सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : १-२

सोमवार १४ अक्तूबर, '६८

अन्य पृष्ठों पर

कृपया क्षमा करें

• पूर्व स्थानीय तथा प्रेस की असुविधाओं के कारण अगस्त और ३ दिन विलम्ब से पाठकों के पास पहुँच रहा है। इस असुविधा के लिए खेद है, कृपालु पाठक क्षमा करेंगे।

• डाक-तार विभाग की हड़ताल के कारण कुछ पाठकों को अंक नियमित नहीं मिल पाते हैं। आशा है, पाठक इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए हमें क्षमा करेंगे।

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

सत्य की शक्ति और व्यक्ति का पुरुषार्थ

संपूर्ण सत्य को अगर हमने देखा होता, तो फिर सत्य का आग्रह किसलिए रखते? तब तो हम परमेश्वर हो जाते। क्योंकि सत्य ही परमेश्वर है, ऐसी हमारी भावना है। हम पूरे सत्य को पहचानते नहीं हैं, इसलिए उसका आग्रह रखते हैं, और इसलिए पुरुषार्थ के लिए स्थान है। इसमें हमारी अपूर्णता का स्वीकार आ जाता है।

आपके जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जब आपके लिए कोई कदम उठाना अनिवार्य हो जाता है, भले आप अपने घनिष्ट मित्रों को भी अपने साथ न ले सकें। जब कर्तव्य का संघर्ष पेश हो तब आपके भीतर की 'शान्त सूक्ष्म आवाज' ही सदा अन्तिम निर्णायक होनी चाहिए।

सत्य क्या है? प्रश्न कठिन है, परन्तु मैंने अपने लिए उसे यह कहकर हल कर लिया है कि जो हमारी अन्तरात्मा कहे वही सत्य है। आप पूछेंगे, तब भिन्न लोग भिन्न और विरोधी सत्यों की कल्पना कैसे करते हैं। इसका उत्तर यह है कि मानव-मन असंख्य माध्यमों द्वारा काम करता है और मानव-मन का विकास हरएक में एक-सा नहीं हुआ है, इसलिए यह परिणाम तो आयेगा ही कि जो एक के लिए सत्य हो वह दूसरे के लिए असत्य हो। और इसलिए जिन लोगों ने सत्य के प्रयोग किये हैं, वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि इन प्रयोगों में कुछ शर्तों का पालन करना जरूरी है। जैसे सफलतापूर्वक वैज्ञानिक प्रयोग करने के लिए अमुक वैज्ञानिक तालीम चाहिए, ठीक वैसे ही आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रयोग करने की योग्यता प्राप्त करने के लिए यम-नियमों की कठोर प्रारंभिक साधना जरूरी है। इसलिए कोई अपनी अंतरात्मा की आवाज की बात करे, उसके पहले उसे अपनी मर्यादाएँ अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए। आजकल हरएक आदमी यम-नियम की कोई भी तालीम लिये बिना ही अपने अन्तःकरण की आवाज के अधिकार का दावा करता है। इसके फलस्वरूप संसार को इतना असत्य प्रदान किया जा रहा है कि वह हैरान है। इसलिए मैं आपसे सच्ची नम्रता से इतना ही निवेदन कर सकता हूँ कि सत्य की प्राप्ति ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं हो सकती, जिसमें नम्रता की विपुल भावना न हो। अगर आप सत्य के महासागर की छाती पर तैरना चाहते हैं, तो आपको शून्य बन जाना होगा।

मैं पूरा लायक हो सकता हूँ। लेकिन जब सत्य मेरे जरिये बोलता है, तब मैं अजेय बन जाता हूँ।

सत्य और अहिंसा को छोड़कर दुनिया में ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसका मैं देश के खातिर त्याग न कर सकूँ। सारी दुनिया के खातिर भी मैं इन दो का त्याग नहीं करूँगा। क्योंकि मेरे लिए सत्य ईश्वर है और अहिंसा के मार्ग के सिवा सत्य को पाने का दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

—मो० क० गांधी

प्रतिक्रिया

शुद्ध-व्यवहार की दिशा में व्यापारियों द्वारा एक और कदम

—सिद्धराज ढड्ढा

ता० १६ जुलाई के "भूदान-यज्ञ" में आन्ध्र प्रदेश की तेल-मिलों द्वारा स्वेच्छापूर्वक सेल्स-टैक्स जमा कराने के अनुकरणीय प्रयोग के सम्बन्ध में मैंने विस्तार से लिखा था। व्यापारी वर्ग के प्रति आज आम तौर पर समाज में जो अविश्वास तथा दुर्भावना है उसका उपाय यही है कि स्वयं व्यापारी समुदाय स्वेच्छापूर्वक अपने व्यवहार में सचाई और शुद्धि दाखिल करें और जो शुद्ध-व्यवहार न करें ऐसे व्यापारियों या कारखानेदारों का वे स्वयं बहिष्कार करें। विनोबाजी ने एक से अधिक बार व्यापारी वर्ग को इसके लिए आह्वान किया और चेतावनी भी दी। उन्होंने व्यापारियों को याद दिलाया कि वैश्य वर्ग का भी अपना धर्म है और अपने-अपने धर्म का पालन करनेवाला हर वर्ग का व्यक्ति उतना ही श्रेष्ठ है जितना किसी दूसरे वर्ग का। कुछ जगह व्यापारी समाज ने थोड़ी जागृति बतलायी, पर समाज पर असर पड़ सके इस प्रकार का व्यापक काम अभी तक नहीं हुआ है।

आन्ध्र के प्रयोग का वर्णन "भूदान-यज्ञ" में पढ़कर श्री रामकृष्ण बजाज ने महाराष्ट्र के एक ऐसे ही प्रयोग की जानकारी भेजी है। दो-तीन वर्ष पहले पू० विनोबा की प्रेरणा से श्री रामकृष्ण बजाज ने, जो उस समय महाराष्ट्र व्यापार संघ के अध्यक्ष थे, उद्योग-व्यापार में शुद्ध-व्यवहार के लिए अपने समकक्ष बड़े-बड़े उद्योगपतियों को आह्वान किया और "फेयर ट्रेड प्रैक्टिसेज एसोसियेशन" के नाम से एक संगठन की स्थापना की। जैसा इसके नाम से जाहिर है, इस संगठन का उद्देश्य व्यापारी समाज में उचित परम्पराओं को प्रतिष्ठित करने और उन्हें कार्यान्वित करने का है। यह खुशी की बात है कि यह संगठन धीरे-धीरे सक्रिय हो रहा है।

श्री रामकृष्ण बजाज ने महाराष्ट्र चेम्बर तथा बम्बई के गल्ला-व्यापारियों की ओर से "उचित व्यवहार" दुकानों के एक प्रयोग की जानकारी भेजी है, जो अन्य शहरों के व्यापारी संगठनों द्वारा भी अनुकरणीय है। जो दुकानदार इस योजना में शामिल होते हैं वे स्वेच्छापूर्वक अपने लिए यह व्यवहार स्वीकार करते हैं कि उनकी दुकानों पर निश्चित किया हुआ माल निर्धारित मूल्य पर, बिना मिलावट का और सही नाप-तौल से मिलेगा। ऐसे दुकानदारों को संगठन की ओर से एक विशेष बोर्ड दिया जायगा, जिसे वे दुकानों पर प्रदर्शित करेंगे, ताकि अन्य दुकानों से उनका अन्तर ग्राहकों को मालूम हो सके। यह खुशी की बात है कि महाराष्ट्र सरकार ने भी इस योजना में सहयोग देना स्वीकार किया है। श्री रामकृष्ण बजाज का पत्र इस प्रकार है :

प्रिय श्री सिद्धराजजी,

श्री गाडोदियाजी ने १६ जुलाई का "भूदान-यज्ञ" मेरे पास भिजवाया था, जिसमें "व्यापारियों के लिए एक अनुकरणीय प्रयोग" नामक आपका लेख छपा है।

आन्ध्र प्रदेश में तेल-मिलों के संघ की तरफ से जो प्रयोग हुआ है यह बहुत ही प्रेरणादायी व उपयोगी लगता है। श्री टोकरसी लालजी कापड़िया को बहुत बधाई! इस तरह के सैकड़ों और हजारों प्रयोग सारे हिन्दुस्तान में अलग-अलग जगह अलग अलग लोगों की प्रेरणा से होंगे तब जाकर कहीं कुछ लाभ हो सकेगा।

इसी दृष्टि को खयाल में रखकर कुछ प्रयोग यहाँ भी शुरू हुए हैं। उसकी जानकारी आपको रहे इसके लिए साथ में अभी तक जितना काम हुआ है उसकी कुछ जानकारी भिजवा रहा हूँ। "फेयर ट्रेड प्रैक्टिसेज असोसिएशन" और "अप्रूव्ड शाप्स स्कीम" के साथियों से भी इस बारे में बातचीत करके यहाँ भी कुछ काम इस दृष्टि से हो सके तो कोशिश करेंगे।

मैं मानता हूँ कि ऐसे आन्दोलन जब तक बहुत सफल नहीं हो जाते और जनता में व्यापारियों के प्रति विश्वास नहीं पैदा होता तब तक सरकार से किसी तरह की सुविधा माँगना ठीक नहीं है। फिर भी यह लगता है कि व्यापारियों की कोशिश से सरकार को सेलसटैक्स आदि काफी अधिक प्रमाण में मिला है तो यदि प्रयत्न करके सरकार को मनाया जा सके और उस हद तक सेलसटैक्स आदि में कुछ थोड़ी भी कमी करायी जा सके तो ऐसे आन्दोलनों को बहुत वेग मिल सकता है। सरकार का काम ठीक से चलने में ऐसे संघ मदद करते हैं और उससे सरकार का बोझा कम होता है। अपेक्षा से अधिक उनका 'कलेक्शन' हो जाता है तो वे टैक्स की दर कम करें तो उसमें उनका भी कोई नुकसान नहीं है। इससे जनता को भी सामग्री सस्ते में मिल सकेगी और उनका भी धन्यवाद सरकार को प्राप्त हो सकेगा। इस दृष्टि से महाराष्ट्र सरकार के साथ कुछ बात चल रही है। "अप्रूव्ड शाप्स स्कीम" के अन्तर्गत हमने ७०० दुकानों को मान्यता दी है। महाराष्ट्र सरकार ने इसे सिद्धान्ततः कबूल किया है कि रवा, मैदा और आटा, जो अभी तक सिर्फ सरकारमान्य राशन की दुकानों के जरिये ही बेचा जाता था वह हमारी "अप्रूव्ड शाप्स" को भी दिया जायगा और वे निश्चित किये हुए दाम पर ही बेचेंगे इसकी जवाबदारी हम लोगों की कमेटी पर छोड़ी जायगी। इस बारे में अधिक बातचीत उनके साथ चल रही है।

यह सब आपकी जानकारी के लिए लिख रहा हूँ, जिससे ऐसे प्रयोगों की जानकारी एक-दूसरे को होती रहे और ऐसे आन्दोलनों को प्रोत्साहन भी मिल सके।

सस्नेह आपका,

२० अगस्त, १९६८ —राम कृष्ण बजाज

श्रद्धाञ्जलि

काशी : १२ अक्तूबर। आकाशवाणी से प्राप्त सूचनानुसार कल ११ अक्तूबर की शाम को राष्ट्रसंत तुकडोजी का स्वर्गवास हो गया। आपने अपने भजनों द्वारा विश्व की मूलभूत एकता का भाव समाज में संचारित किया था। इस महान सन्त को हमारी विनम्र श्रद्धाञ्जलि !

पन्द्रहवाँ वर्ष

रोज सुबह आज की दुनिया कल की दुनिया से कितनी अच्छा लगती है—ताजी, सुहानी, उमंगभरी। लेकिन शाम होते-होते फिर वीते परसों की दुनिया-जैसी हो जाती है—फीकी, निष्फल, भूल जाने लायक। इसी तरह एक के बाद दूसरा दिन, और दूसरे के बाद तीसरा दिन, बीतता जाता है, हम समझ नहीं पाते कि जिस दुनिया में हम जी रहे हैं उसे बनाने या बिगाड़ने में हमारा क्या हाथ है।

उस दिन जॉन और स्मिथ नाम के दो अंग्रेज अतिथियों से बड़ी दिलचस्प चर्चा हुई। दोनों की चेकोस्लोवाकिया के साथ सहानुभूति थी, लेकिन एक की रूस के साथ भी थी। वह कह रहा था कि साम्यवाद के जिस भय के कारण अमेरिका वियतनाम में घुसा हुआ है, पूँजीवाद के उसी भय के कारण रूस चेकोस्लोवाकिया में घुसा है। "यह सब हो तो है जिसे दिखाकर नेता चाहे जो करा लेते हैं। जनता जानती ही क्या है कि कहाँ क्या हो रहा है?" जॉन ने कहा।

इस पर स्मिथ बोला: "बात ठीक है। कामन मैन को दुनिया इतनी उलझी हुई दिखाई देती है कि वह कुछ समझ नहीं पाता, और जब समझ नहीं पाता तो समझना ही छोड़ देता है। मान लेता है कि सारी चिन्ताओं का एक ही जवाब है, सिनेमा और शराब। चिन्ताएँ बढ़ी तो तब हाती हैं जब दिमाग की दुनिया बड़ी होती है।" "टेलीविजन आदमी के दिमाग को उतना बड़ा बना देगा जितना बड़ा यह विश्व है।" जॉन ने कहा। "वह कैसे?" स्मिथ ने पूछा। "टेलीविजन घर-घर फैल जायेगा तो नाश्ते के वक्त, खाने के वक्त, रात को बिस्तर पर लेटे-लेटे, दुनिया को देखेंगे। तब वे जानेंगे कि लन्दन की पार्लियामेंट में उनका प्रतिनिधि खर्राटे ले रहा है, अमेरिका के जहाज बम गिरा रहे हैं और गाँव जल रहे हैं, रूसी सेनाएँ प्राग में घुस रही हैं, आदि। तब उसकी चेतना कितनी व्यापक हो जायेगी?" जॉन ने उत्तर दिया। स्मिथ शंका प्रकट करता हुआ बोला: "मैं कुछ दूसरा ही देख रहा हूँ। अमेरिका में घर घर टेलीविजन है। मैंने खुद देखा है कि लोग प्याले से चाय पीते रहते हैं, और देखते रहते हैं कि उनके जहाजों द्वारा गिराये हुए बमों से मकान पर-मकान गिर रहे हैं, सड़क पर कोई स्त्री मरी पड़ी है, किसी बच्चे के शरीर के तीन टुकड़े हो गये हैं, आगे दस-बीस लोग झुलस-झुलसकर गिर रहे हैं। बच्चा पूछता है माँ से कि ऐसा क्यों हो रहा है? माँ कहती है युद्ध हो रहा है, युद्ध में यह होता ही है। अमेरिका के अनेक लोगों की ऐसी आदत होती जा रही है कि ऐसे दृश्यों से मन में कोई प्रश्न भी नहीं उठता। इतना ही नहीं, जिस दिन टेलीविजन पर यह सब नहीं होता, उस दिन प्रोग्राम फीका-सा लगता है। मैं तो मानता हूँ कि टेलीविजन द्वारा अमेरिका का हिंसा में व्यापक लोक-शिक्षण हो रहा है।" जॉन ने कहा: "भाई, यह सब व्यवसाय है। व्यवसाय को मुनाफा चाहिए, और हमें-तुम्हें मनोरंजन चाहिए। लड़ाई भी एक व्यवसाय है। उसमें मालिकों को मुनाफा मिलता है, और हमें तुम्हें मनोरंजन।"

मैं दोनों अंग्रेज मित्रों की उस दिलचस्प चर्चा में शरीक तो था, लेकिन अब तक चुप था। इतनी बातें हो जाने पर मैंने कहा, "मुनाफा मालिकों को ही नहीं चाहिए। मुनाफे पर देश की सरकार चलती है, और मुनाफे पर ही हमारा-तुम्हारा 'स्टैण्डर्ड आफ लिविंग' निर्भर है। अगर लड़ाई के अस्त्र-शस्त्र न बिकें तो सोचो इंग्लैण्ड के आम लोगों की कमाई में कितनी कमी आ जायेगी। तैयार हो उस कटौती के लिए?" जॉन ने फौरन उत्तर दिया: "मैं तैयार हूँ, मेरे मित्र भी तैयार होंगे।" स्मिथ ने पूछा, "उनकी संख्या कितनी होगी?"

बात बिलकुल सही है। आज की व्यवस्था, उत्पादन की सारी तकनिक, वैज्ञानिक शोध और प्रयोग, तथा लोक-कल्याण के कार्य बहुत-कुछ युद्ध के व्यवसाय पर निर्भर हैं। ऐसा लगता है कि जैसे दुनिया आत्महत्या के भरोसे पर जी रही हो। इसलिए तो गांधीजी ने बार-बार कहा है कि मनुष्य-मात्र की मुक्ति इसमें है कि राज्य की हिंसा समाप्त हो। शान्ति की बात कहने, और कहते रहने से काम नहीं चलेगा, समाज की बुनियादें बदलनी पड़ेंगी।

राज्य की हिंसा की समाप्ति और उत्पादन की नयी तकनीक इन दो के बिना समाज नहीं बदलेगा, और सभ्यता आगे नहीं बढ़ेगी, यह बात दिनों दिन साफ होती जा रही है। हम राज्य को 'हिंसा' सौंप दें और खुद 'अहिंसक' बन जायें, तथा उत्पादन बड़ी मशीन और बड़ी पूँजी को सौंप दें और खुद योग की अपनी छोटी-सी दुनिया में बन्द हो जायें तो दुनिया जैसी है वैसी ही रहेगी।

जब गांधी थे तो गांधी के इस सत्य की जरूरत शायद दुनिया को नहीं थी। आज उस सत्य की जरूरत दुनिया को ही नहीं, सामान्य मनुष्य को भी है। विज्ञान की दुनिया उस सत्य के बिना चल नहीं सकती। गांधी के जाने के बीस वर्ष बाद गांधी और विज्ञान दोनों एक हो गये हैं। अब गांधी-विचार विज्ञान के बल पर खड़ा है।

लेकिन प्रश्न है कि यह सत्य हमारे जीवन का तथ्य कैसे बने? यहीं आकांक्षा, आवश्यकता, और अवसर के साथ पुरुषार्थ का मेल होता है। गांधी के सत्य को जीवन का तथ्य बनाने का नाम विनोबा ने दिया—'ग्रामदान'।

कुएँ बनेंगे, कमरे बनेंगे, किताबें बिकेंगी। ये तथा इस तरह के अनेक काम अपनी जगह अच्छे हैं, और उपयोगी हैं, लेकिन गांधी के सत्य की प्रतीति जगाना और उसके आधार पर ग्रामदान की ईंट नये समाज की नींव में डाल देना पहला काम है। पहला काम हो तो दूसरे काम पूरक बनकर पहले को पूर्ण बना देते हैं, लेकिन अगर पहला ही न हो तो दूसरे-तीसरे-चौथे काम बेकार हो जाते हैं।

'भूदान यज्ञ' हमारे आन्दोलन का प्रहरी है। चौदह वर्षों से वह यह काम करता आ रहा है, अब पन्द्रहवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। बापू की जन्म-शताब्दी का यह वर्ष भारत की जनता के लिए मुक्ति का वर्ष सिद्ध हो, यह चिन्ता हम सबकी है। 'भूदान-यज्ञ' इसी चेष्टा में अब तक जीया है, और आगे भी जीयेगा तो उसीके लिए।●

ग्रामस्वराज्य की रचना : एक प्रारूप

बिहारदान के बाद क्या ? "बिहारदान" के नारे के साथ कुछ कार्यकर्त्ताओं और नागरिक मित्रों के मन में ये प्रश्न उठने लगे कि ग्रामदान, प्रखण्डदान, जिलादान के बाद पूरे बिहार का दान हो जायगा तब भी क्या राजनीति इसी तरह चलती रहेगी जैसे आज चलती रहती है, सरकार का ढाँचा यही रहेगा, चुनाव इसी तरह होते रहेंगे ? एक पूरे राज्य का दान हो जाने पर 'लोकनीति' के विचार किस तरह लागू होंगे ?

ग्राम-प्रतिनिधित्व—हम कुछ लोगो ने ये प्रश्न पिछले साल खादीग्राम, मुंगेर के पडाव पर विनोबाजी के सामने रखे। उन्होने कहा कि यह सारा प्रश्न गहराई से अध्ययन करने का है, फिर भी इतना तय है कि अभी जो भी कदम उठेगा वह मौजूदा संविधान के अन्तर्गत होगा। जहाँ तक प्रतिनिधित्व का प्रश्न है, ग्रामस्वामित्व का विचार मान लेने पर प्रतिनिधित्व संगठित ग्राम-समुदायो (आर्गनाइज्ड विलेज कम्युनिटीज) का ही हो सकता है। ग्रामसमुदाय ग्रामसभाओ में संगठित हो रहे हैं। स्वामित्व ग्रामसभा का है तो प्रतिनिधित्व भी ग्रामसभा का ही होगा। दोनो जुड़े हुए तत्त्व हैं।

इस पर प्रश्न उठा कि क्या चुनाव मे उम्मीदवार ग्रामसभाओ के होंगे ? उत्तर मिला, हाँ। ग्रामदानी ग्रामसभाओ के लोग राजनीतिक दलो के उम्मीदवारो को वोट क्यो देंगे ? वे अपने उम्मीदवार क्यों नहीं खड़े करेंगे ? उम्मीदवारो का चयन हर निर्वाचन-क्षेत्र (कन्स्टीच्युएन्सी) में ग्रामसभाओ के प्रतिनिधियों को लेकर बने हुए 'ग्रामसभा प्रतिनिधि मंडलो' (इलेक्टोरल कालेजेज) के द्वारा होगा।

ग्राम-स्वराज्य के तत्त्व—विनोबाजी द्वारा इतने संकेत के बाद यह स्पष्ट हो गया कि सारा सवाल ग्रामसभाओ के संगठन और शिक्षण का है। लेकिन लोकनीति के सन्दर्भ में राजनीतिक शिक्षण के लिए आवश्यक है कि पहले ग्राम-स्वराज्य के तत्त्व (एसेन्सियल्स आव ग्राम-स्वराज्य) तय हो जायँ, क्योंकि जनता के सामने जब तक ग्राम-स्वराज्य की वैचारिक भूमिका साफ न हो जाय तब तक यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि जीवन के केवल एक क्षेत्र—राजनीति, मे उसका आचरण बदल जायगा। यह सोचकर जनवरी १९६८ में हम लोगों ने खादीग्राम में एक गोष्ठी बुलायी, जिसकी चर्चाएँ पाँच दिन तक श्री धीरेन्द्र भाई के मार्गदर्शन में चलीं। गोष्ठी ग्राम-स्वराज्य के इन पाँच मुद्दों पर एक राय हुई :

१. स्वायत्त ग्रामसभा
२. दलमुक्त ग्राम-प्रतिनिधित्व
३. पुलिस-अदालत-निरपेक्ष व्यवस्था
४. ग्रामाभिमुख अर्थनीति
५. स्वतंत्र शिक्षण

गोष्ठी के बाद विनोबाजी से चर्चा की गयी और उन्होंने ग्राम स्वराज्य के इन मुद्दो को मान्य कर लिया। और, पाँच में एक छठा मुद्दा 'सर्व-धर्म-समभाव' का भी जोड़ते हुए उन्होंने जोर दिया कि इस प्रतिनिधित्व आदि विषयो की चर्चा और अधिक लोगों के बीच, तथा और अधिक ऊँचे स्तर पर, होनी चाहिए।

गोष्ठी—सर्व सेवा संघ की ओर से ५, ६, ७ जुलाई, १९६८ को गांधी विद्या-स्थान, वाराणसी में एक गोष्ठी बुलायी गयी। गोष्ठी मे सर्वश्री जयप्रकाश नारायण (अध्यक्ष), दादा धर्माधिकारी, शंकरराव देव, नवकृष्ण चौधरी, विचित्र नारायण शर्मा, मनमोहन चौधरी, सुगत दासगुप्ता, राधाकृष्ण, सिद्धराज ढड्ढा, पूर्णचन्द्र जैन, राममूर्ति, गोविन्दराव देशपाडे, निर्मलचन्द्र तथा इस्टीट्यूट के कई अन्य सदस्यों ने भाग लिया। गोष्ठी में राज्यदान के सन्दर्भ में उठनेवाले कई राजनीतिक प्रश्नों पर विचार हुआ, मुख्यतः ग्राम-स्वराज्य के तत्त्व तथा प्रतिनिधित्व पर। 'ग्राम-स्वराज्य के तत्त्व' के रूप में वक्तव्य मान्य हुआ वह इस प्रकार है :

भूमिका

भारत गाँवो का देश है। देश का विकास उसके लाखो गाँवों के विकास पर निर्भर है। इस मूल सत्य को पहचानकर ही गांधीजी ने कल्पना की थी कि स्वतंत्र भारत मे गाँव देश की प्राथमिक इकाई बनेगा—हर इकाई अपने मे भरी-पूरी, स्वाश्रयी और स्वायत्त, पर एक-दूसरे से सहकार के धागे मे बँधी हुई, और सब मिलकर पूरे देश और अखिल मानवता से अनेक रूपो में जुड़ी हुई। लेकिन स्वतन्त्रता के बाद यह नहीं हुआ। अंग्रेजी राज मे गाँवो के विघटन का जो क्रम शुरू हुआ था, वह जारी रहा। नयी सरकार की नयी रीति-नीति के अनुसार पंचायतीराज और सामुदायिक विकास-योजनाओ और कार्य-क्रमों द्वारा गाँवों के विकास की कोशिश की गयी, लेकिन उसमे सफलता नही मिली, और गाँव दिनोदिन अधिक असहाय होते गये; टूटते ही चले गये, यहाँ तक कि आज गाँव घरो के समूह मात्र रह गये हैं। उनका कोई 'स्व' जैसे है ही नही। स्वभावतः जब गाँव टूटे तो देश गिरा।

यह क्रम तभी रुकेगा जब एक-एक गाँव में स्वराज्य पहुँचेगा। गाँव एक संपूर्ण इकाई माना जायेगा, उसका 'स्व' उसे वापस मिलेगा। वह अपने निर्णय और अपनी शक्ति से अपने जीवन का नियमन और संचालन करने को स्वतंत्र होगा।

ऐसे ग्राम-स्वराज्य का अर्थ है आज के ढाँचे मे आमूल परिवर्तन—परिवर्तन प्रशासन और प्रतिनिधित्व में, अर्थनीति में, शिक्षण मे, सभी पहलुओं में। जब तक दमन और शोषण की व्यवस्था का अन्त नहीं होगा, तब तक गाँव की प्रतिभा और शक्ति को प्रकट होने का, तथा सत्य और समता के नये मूल्यों के आधार पर हर व्यक्ति को नये जीवन का, अवसर नहीं मिलेगा।

ग्राम-स्वराज्य की क्रान्ति ग्रामदान से शुरू हो गयी है। अनेक प्रखण्डों, जिलो, और कई राज्यों में व्यापक परिवर्तन की भूमिका बन रही है। हजारों गाँवों में प्रारम्भिक हलचल के लक्षण दिखाई देने लगे हैं। अभी इनके ही

रहो, पर जितने ही लोगों के कदम आगे बढ़ने को तैयार हो रहे हैं।

जो आन्दोलन करोड़ों को छुए, जो देश के पूरे जीवन को बदलने-बनाने का दावा करे, जो विचार की ही शक्ति को सर्वोपरि माने, उसके आदर्शों और दिशाओं के बारे में शुरू से ही अधिक स्पष्टता होनी चाहिए। मनुष्यों की तरह क्रान्तियाँ भी भटक जाती हैं। आज देश की जो स्थिति है उसे देखते हुए यह गुंजाइश नहीं है कि उभरती हुई लोक-चेतना सही रास्ते से हट जाय, तथा संकुचित स्वार्थ, स्वार्थ और पूर्वाग्रह के जंगल में भटकती फिरे। रचनात्मक क्रान्ति में मूल्यों और विचारों की सुनिश्चितता आवश्यक हो जाती है।

सत्व

(१) स्वायत्त ग्रामसभा

ग्रामदान के आधार पर बनी हुई हर ग्रामसभा शान्ति, न्याय, ग्राम-संयोजन, तथा सांस्कृतिक विकास के क्षेत्र में अपनी भीतरी व्यवस्था और जीवन पद्धति के विकास के लिए अपनी सामर्थ्य तथा व्यापक हित की मर्यादा में, स्वायत्त होगी। सर्व का निर्णय, सर्व की शक्ति, सर्व का हित, यह उसका प्रेरणा मंत्र होगा। उसके कार्य सर्व-सम्मति अथवा सर्वानुमति से होंगे। गाँव एक सुखी, शान्त, समान परिवार बने, यह उसकी चेष्टा होगी। भीतर सहकार, बाहर सरकार इस प्रकार सरकार पृथक शक्ति रहकर गाँव की नैतिक सहकार-शक्ति को सतत बढ़ाता रहेगी।

ऐसी इकाइयाँ अधिक-से-अधिक स्वावलम्बी, किन्तु देश के सन्दर्भ में परस्परावलम्बी होंगी। यह मान्य रहेगा कि देश एक अखंड बड़ी इकाई है, जिसके प्रति हर छोटी इकाई उत्तरदायी है।

(२) दलमुक्त ग्राम-प्रतिनिधित्व

देश की राज-व्यवस्था के अन्तर्गत विधान सभाओं में गाँव की जनता का प्रतिनिधित्व उनकी ग्राम-सभाओं के द्वारा होगा। जनता के उम्मीदवार उनके अपने ग्रामसभाओं (या ग्राम-स्वराज्यसभाओं) के आधार पर बने हुए 'ग्रामसभा प्रतिनिधि-मण्डलों' द्वारा मनोनीत होंगे, न कि आज की तरह राजनीतिक दलों के द्वारा। चुनाव को लेकर ग्रामसभाओं को अपनी एकता खंडित नहीं होने देनी चाहिए।

(३) पुलिस-अदालत-निरपेक्ष व्यवस्था

ग्रामसभा की सत्ता सामान्यतः नैतिक होगी। रक्षण, शान्ति और सुव्यवस्था की दृष्टि से वह अपनी शान्ति-सेना संगठित करेगी। न्याय-व्यवस्था उसकी अपनी होगी जिसमें कानूनी निर्णय से अधिक जोर आपसी समझौते और समाधान पर होगा। प्रयत्न होगा कि गाँव में कोई गंभीर अपराध न हो, किन्तु यदि हो ही गये तो देश के कानून लागू होंगे, तथा उसके अनुसार सरकार को अपनी ओर से कार्रवाई करने का अधिकार होगा।

(४) ग्रामाभिमुख अर्थनीति

परिवार की तरह ग्रामसभा गाँव के सब सदस्यों के समुचित भरण-पोषण की चिन्ता करेगी—स्वभावतः सबसे गरीब और असहाय की। सबसे पहले हर व्यक्ति का विकास हो, और उसके जीवन के हर पहलू का विकास हो, इस दृष्टि से ग्रामसभा गाँव की बुद्धि, श्रम पूँजी तथा दूसरे साधनों के सदुपयोग की योजना बनायेगी, ताकि शोषण समाप्त हो और विषमता क्रमशः घटे। इस क्रम में ग्रामसभा समय-समय पर प्रकट होनेवाले विवादों और विरोधों का ग्रामहित की दृष्टि से शान्तिपूर्ण, पर न्यायोचित, हल निकालेगी।

(५) स्वतंत्र शिक्षण

ग्रामीण शिक्षण गाँव के जीवन और विकास से अनुबन्धित होगा, तथा शिक्षण में शिक्षकों, अभिभावकों और विद्यार्थियों की सम्मिलित चेष्टा प्रकट होगी। ग्राम स्वराज्य की इकाइयाँ अपने क्षेत्र में शिक्षण के लिए उत्तरदायी होंगी, और उन्हें वैज्ञानिक भूमिका में प्रयोग की पूरी छूट होगी। शिक्षण पर सरकार का एकाधिकार नहीं होगा। लेकिन स्थानीय अधिक्रम की पूर्ति में साधन और कोष की अपेक्षा उससे बराबर रहेगी।

(६) सर्व-धर्म समभाव

सब धर्मों की समानता सर्वमान्य होगी। ग्रामसभा के द्वारा धर्म के आधार पर किसी प्रकार का पक्षपात नहीं होगा। हर नागरिक को अपने विश्वास और उपासना-विधि के अनुसार आचरण की छूट होगी, बशर्ते कि उससे सार्वजनिक नैतिकता खंडित न होती हो। स्वभावतः ऐसे वातावरण में अस्पृश्यता के लिए कोई स्थान नहीं होगा, और न तो दूसरों को अपने धर्म में मिलाने की कोशिश होगी। एक-दूसरे के धर्म के प्रति आदर का भाव रखते हुए लोग सहोमीपन का जीवन बितायेंगे। इसी आधार पर हमारे देश की संस्कृति विकसित हुई है, और इसी दिशा में देश का भविष्य भी है।

× × ×

इस वक्तव्य में ग्राम-स्वराज्य के कई महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर हमारे आन्दोलन का मत (स्टैण्ड) स्पष्ट हो गया है, जिसके आधार पर ग्रामदानी जनता के शिक्षण और संगठन की विस्तृत योजना बनायी जा सकती है, तथा उसको सामने रखकर समय आने पर निर्वाचन क्षेत्रों की ओर से चुनाव की घोषणाएँ भी की जा सकती हैं।

दलमुक्त ग्राम-प्रतिनिधित्व

उम्मीदवार का चयन और चुनाव

१९६८–६९ : लोक शिक्षण

१९७२ दलमुक्त ग्राम प्रतिनिधित्व

गोष्ठी का यह मत रहा कि जब व्यापक क्षेत्रों में ग्रामदानी ग्रामसभाओं के आधार पर ग्राम-समुदाय संगठित हो रहे हैं तो लोकनीति के प्रयोग के लिए बहुत अनुकूल अवसर प्रस्तुत हो रहा है। इस अनुकूलता का भरपूर लाभ उठाना चाहिए, तथा ग्राम-सभाओं को इकाई मानकर प्रतिनिधित्व की पद्धति तय करनी चाहिए। जाहिर है कि निकट भविष्य में होनेवाले मध्यावधि चुनावों में लोकनीति की दिशा में लोकशिक्षण से ज्यादा कुछ करना सम्भव नहीं है। लेकिन शिक्षण के लिए भी जितना सम्भव हो उतना अवश्य करना चाहिए। साथ ही कुछ वर्ष बाद के देश-व्यापी चुनावों को सामने रखकर अभी से व्यापक तैयारी की जानी चाहिए। यह तैयारी शिक्षण के रूप में होगी।

प्रतिनिधि मण्डल की रचना और उम्मीदवार चयन—ग्रामसभाओं को बुनियादी इकाई मान लेने पर "ग्रामसभा-प्रतिनिधि-मंडल" (इलेक्टोरल कालेज) की रचना का सवाल मुख्य हो जाता है। राज्य की विधान-सभा में ग्रामदानी ग्रामसभाओं का प्रतिनिधित्व

होना चाहिए, लेकिन कैसे ? अभी मौजूदा निर्वाचन-पद्धति के भीतर ही सोचा जा सकता है।

पहला प्रश्न यह है कि 'ग्रामसभा-प्रतिनिधि-मण्डल' की रचना कैसे हो, और उम्मीदवार का चयन कैसे हो ? इस सम्बन्ध में पाँच बातें तय हुई :—

१—जिस निर्वाचन-क्षेत्र में कम-से-कम तीन-चौथाई ग्रामसभाएँ बन जायँ उसमें 'ग्रामसभा-प्रतिनिधि-मण्डल' बनाया जाय।

२—मण्डल स्थायी हो।

३—हर ग्रामसभा मण्डल के लिए अपने प्रतिनिधि सर्वसम्मति से चुने।

४—एक ग्रामसभा से जनसंख्या के आधार पर कम-से-कम एक, और ज्यादा-से-ज्यादा पाँच, प्रतिनिधि हों।

५—मण्डल में अधिक-से-अधिक दो सौ पचास सदस्य हों।

यह प्रतिनिधि-मण्डल अपने निर्वाचन-क्षेत्र के उम्मीदवार का चयन करेगा। मण्डल *मन्थन करके अन्त में एक ही उम्मीदवार की* घोषणा करेगा।

अगर कोई प्रतिनिधि-मण्डल चाहे तो वह अपनी ग्रामसभाओं के पास एक 'पैनेल' भेज सकता है, और 'सिंगिल ट्रान्सफरेबुल वोट' से 'सर्वमान्य' उम्मीदवार का चयन कर सकता है।

सामूहिक ग्रामहित का प्रतिनिधित्व— ऐसे सर्वमान्य उम्मीदवार के पीछे ग्रामसभाओं की व्यापक शक्ति होगी। वे किसी दल या जाति या अन्य किसी संकुचित स्वार्थ का *प्रतिनिधित्व नहीं करेंगे। वे प्रतिनिधित्व* करेंगे गाँव-गाँव के सामूहिक ग्रामहित का, और सामूहिक निर्णय का। लेकिन मतदाता के ऊपर कोई दबाव नहीं होगा कि वह इसी उम्मीदवार को वोट दे, दूसरे को न दे। साथ ही क्षेत्र के हर नागरिक के चुनाव में उम्मीदवार के रूप में खड़ा होने का संविधानिक अधिकार भी बना रहेगा।

उम्मीदवार के चयन के बाद की प्रक्रियाएँ जैसे 'नामिनेशन' और चुनाव आदि, प्रचलित पद्धति के अनुसार ही होंगी।

शिक्षण-ग्रुप—ग्राम-प्रतिनिधित्व के आधार पर खड़े होनेवाले लोकतंत्र की इस नयी पद्धति की *सफलता एक ओर ग्रामसभाओं की* क्रियाशीलता पर तथा दूसरी ओर सघन राजनीतिक शिक्षण पर निर्भर है। आज की *व्यवस्था में राजनीतिक शिक्षण राजनीतिक* दलों के द्वारा होता है। नयी भूमिका में शिक्षण के लिए विशेष 'शिक्षण-ग्रुप' बनाने पड़ेंगे। शुरू में *मतदाता-शिक्षण की जिम्मेदारी* सर्व सेवा संघ को उठानी पड़ेगी। हमारा शिक्षण दूसरी बातों के साथ इस पर जोर देगा कि *ग्रामसभा, प्रखण्ड-सभा, जिला-सभा, राज्य-सभा सब अपने-अपने क्षेत्र की समस्याओं* के बारे में सोचें, और स्थानीय शक्ति से उनका हल ढूँढ़ें, सरकारी शक्ति के भरोसे बैठी न रहें।

विधानसभा में ग्रामदानी प्रतिनिधि सरकार का गठन

विधानसभा में ग्रामदानी प्रतिनिधियों का क्या 'रोल' होगा ? हमारे शिक्षण और ग्रामसभाओं के संगठन की यह कसौटी है कि कुछ वर्ष बाद के बड़े चुनाव में राज्यदानी क्षेत्रों की विधानसभाओं में ग्रामदानी प्रतिनिधियों का प्रबल बहुमत हो। प्रश्न उठेगा : सरकार कैसे बनेगी ?

तब विधानसभा में ऐसा वातावरण बनेगा *कि कोई प्रतिनिधि अपने को दल-विशेष या* हित-विशेष से जुड़ा हुआ नहीं मानेगा, बल्कि *वह समस्त जनता का प्रतिनिधि है,* ऐसा सोचेगा।

ग्रामदानी प्रतिनिधि विधानसभा में आज की तरह दलों में बँटकर नहीं बैठेंगे। वे बैठेंगे अपने निर्वाचन-क्षेत्रों के अनुसार (कन्स्टीच्युएन्सीवाइज), या वर्णमाला के अक्षरों के अनुसार (अल्फाबेटिकली)। वे अपना अलग ब्लाक नहीं बनायेंगे।

इस तरह सब प्रतिनिधि मिलकर सर्व-सम्मति से अपना एक नेता चुनेंगे। वह नेता 'सबकी' सरकार बनायेगा। प्रतिनिधियों में सरकारी दल और विरोधी दल जैसा बँटवारा नहीं होगा।

सरकार में कमेटी-प्रथा (गवर्नमेंट बाई कमिटीज) का मुख्य स्थान होगा।

हर *प्रतिनिधि विधानसभा में* अपने चुनाव-क्षेत्र की जनता की बात प्रस्तुत करते हुए, जनता के हित को सामने रखकर, सरकार की किसी नीति के प्रति अपनी असहमति प्रकट करने के लिए स्वतंत्र होगा। जाहिर है कि आलोचक की बात को अनसुनी कर बहुमत के बल पर अपनी नीति लागू करनेवाली पद्धति तब नहीं चलेगी। विधान-*सभा का हर सदस्य* आलोचक की बात को समझने और उसके अनुसार नीति रीति में संशोधन करने, तथा आलोचक अपनी ओर से उस नीति के समर्थकों की बात समझने की तैयारी रखेगा, और आवश्यकतानुसार अपनी असहमति को वापस लेने को तैयार रहेगा।

विधानसभा का काम सामान्यतः सर्व-सम्मति से चलेगा। किसी प्रश्न पर 'अल्पमत' के साथ अधिक-से-अधिक उदारता बरती जायेगी, और निर्णय लोकहित के आधार पर *किया जायगा।*

संसद—संसद के चुनाव में भी प्रतिनिधि मंडल की ही पद्धति बरती जायेगी। संसद के लिए विधानसभा के निर्वाचन-क्षेत्रों के 'ग्रामदान-प्रतिनिधि-मंडल' बुनियादी इकाई (प्राइमरी यूनिट) माने जायेंगे।

शहरी क्षेत्र—शहरों और नोटिफाइड क्षेत्रों में 'मतदाता कौंसिलों' (वोटर्स कौंसिल) *के द्वारा उम्मीदवारों का चयन हो सकेगा।*

आध्यमिक चुनाव : १९६८—६९

अभी आन्दोलन की ऐसी परिस्थिति *नहीं है कि* मध्यावधि चुनावों में 'दलमुक्त ग्राम-प्रतिनिधित्व' का कार्यक्रम ग्रामदानी जनता के सामने रखा जा सके। प्रयोग के लिए राज्यभर में एक-दो निर्वाचन-क्षेत्र लेना प्रभावकारी नहीं होगा। राजनीति की इकाई राज्य है, इसलिए राजनीति पर 'इम्पैक्ट' डालनेवाले कार्यक्रम के लिए राज्य से छोटा क्षेत्र लेना अनुकूल नहीं मालूम होता। लेकिन मध्यावधि चुनाव के अवसर पर हम लोक-नीति की दिशा में ले जानेवाले विचार तो प्रस्तुत कर ही सकते हैं। शिक्षण की दृष्टि से निम्नलिखित बातें प्रस्तुत की जा सकती हैं :

सबसे अच्छे उम्मीदवार को वोट— •गाँव के लोग उम्मीदवारों से निवेदन करें कि वे गाँव में किसी एक दिन एक मंच पर इकट्ठा हों और अपनी-अपनी बात उनके

सामने रखें, और रखने के बाद निर्णय के लिए उन्हें स्वतंत्र छोड़ दें। गांव ध्यान रखे कि चुनाव के कारण उसकी एकता न टूटने पाये—इस पर गांव बैठे और सोचे।

• वोट सबसे अच्छे उम्मीदवार को ही देना चाहिए, चाहे किसी भी पक्ष का या स्वतंत्र हो, न कि जाति, धर्म, वर्ग या अन्य सम्बन्धों के संकीर्ण विचारों के आधार पर। उम्मीदवार की अच्छाई को आंकना कठिन है, फिर भी कुछ बातें सुझायी जा सकती हैं, जैसे उम्मीदवार ग्रामदान में शरीक है या नहीं? दहेज ली तो नहीं की? खादीधारी है या नहीं? भूमि-व्यवस्था, बेकारी, खादी-ग्रामोद्योग, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, मद्य-निषेध आदि प्रश्नों पर विचार; उसका वैयक्तिक और राजनीतिक चारित्र्य, तथा क्षेत्र में उसकी सेवा आदि।

• कोई मतदाता पैसे के लोभ या डंडे के भय से वोट न दे। वह पहले से किसीको वोट का वादा भी न करे। किसी दूसरे के नाम में खुद झूठा वोट न दे, और न अपने नाम में किसी दूसरे को देने दे। चुनाव के प्रचार में गांव के बच्चों को इस्तेमाल न किया जाय, यह ग्रामसभा देखे।

• चुनाव मान्य मर्यादाओं के अनुसार हो तथा उम्मीदवार मान्य आचार-संहिता का पालन करें। यह देखने के लिए निर्वाचन-क्षेत्र जिला और राज्य के स्तर पर 'निरीक्षण-समितियाँ' (विजिलेंस टीमें) बनायी जा सकती हैं।

ग्रामसभा : कृत्य, अधिकार और साधन

स्वायत्त ग्रामसभा—जहां तक कृत्यों और अधिकारों का प्रश्न है वह बहुत कुछ 'स्वायत्त ग्रामसभा' की अवधारणा में निहित है। ग्रामसभा हर व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के लिए आवश्यक अवसर, साधन और संरक्षण दे सके, यह स्थिति पैदा होनी चाहिए। इसके लिए कानून का बल तो चाहिए ही, लेकिन उससे अधिक आवश्यक है जनता की मान्यताओं, धारणाओं और परम्पराओं को शिक्षण द्वारा समुचित और परिष्कृत करना। सिद्धान्त के तौर पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामसभा को उसकी अधिकतम क्षमता के अनुसार काम करने का अधिकार और अवसर होना चाहिए, बशर्ते उसके किसी काम से किसी दूसरी इकाई का अहित न होता हो।

व्यवस्था की सुविधा की दृष्टि से ग्राम-स्वराज्य के विभिन्न स्तरों जैसे गांव, प्रखंड, जिला, राज्य, पर अधिकारों और कृत्यों का विभाजन होना चाहिए।

आय के स्रोत—ग्रामसभा के पास ग्राम-विकास के लिए प्रचुर साधन होने चाहिए। साधनों के ये ६ मुख्य स्रोत हो सकते हैं :

१–कर, २–फीस, ३–दान, ४–श्रम, ५–सहायता—अनुदान और कर्ज, ६–शोषण और बरबादी में रुकावट।

ग्रामसभा की स्वायत्तता की दृष्टि से उचित है कि गांव मुख्यतः अपने साधनों पर निर्भर रहे, और बाहर के साधन पूरक रूप में ले। बाहर से प्राप्त धन 'रिवाल्विंग फण्ड' के रूप में इस्तेमाल किया जाना चाहिए, ताकि गांव के पास पूंजी बनी रहे।

गांव के साधन बढ़ें, यह जितना आवश्यक है, उससे कम आवश्यक यह नहीं है कि कमाई गांव में रहने पाये। इस दृष्टि से नशाबन्दी, सूदखोरी पर नियंत्रण, मुकदमेबाजी या शादी-श्राद्ध में फजूलखर्ची पर रोक आदि का नैतिक के अलावा आर्थिक महत्त्व भी हो जाता है।

साधन के रूप में भूमि की लगान का एक अंश ग्रामसभा के ग्रामकोष में जाना ही चाहिए। इसी तरह गांव के तालाब की मछली, हाट, परती भूमि, बाग, उद्योग, व्यापार आदि आय के स्रोत हो सकते हैं।

श्रम गांव की सबसे बड़ी और प्रधान पूंजी है। उस पूंजी के संवर्धन, संरक्षण और सदुपयोग पर जितना ध्यान दिया जाय थोड़ा है।

हिसाब-आडिट—ग्रामकोष के साथ हिसाब और 'आडिट' का प्रश्न जुड़ा हुआ है। इस काम के लिए इतनी बड़ी संख्या में विशेषज्ञों का मिलना संभव नहीं है, इसलिए आवश्यक है कि ग्रामसभाओं के चुने हुए व्यक्तियों को हिसाब और आडिट का अभ्यास कराने की योजना बनायी जाय।

• हिसाब और आडिट में छोटी इकाई को बड़ी इकाई से पूरी मदद मिलनी चाहिए। हिसाब-किताब के काम में व्यापारी, साहूकार, और शिक्षक उपयोगी हो सकते हैं।

• धन के विनियोग में यह नियम मान्य होना चाहिए कि रुपया लेनेवाली इकाई देनेवाली इकाई (सरकारी या अन्य) के प्रति उत्तरदायी होगी।

ग्रामसभा : न्याय और दण्ड

नैतिक शक्ति—ग्रामसभा की शक्ति नैतिक है। दण्ड-शक्ति के स्थान पर नैतिक शक्ति, सरकार-शक्ति की जगह सहकार-शक्ति का विकास ग्रामस्वराज्य की कसौटी है। इसलिए ग्रामदान के कानूनों के होते हुए भी हमें जनता के सामने बराबर इस पहलू पर जोर देते रहना चाहिए।

कानून नहीं, समाधान—गांव के आपसी जीवन में न्याय कानूनी न होकर समाधानकारी होगा। गांव में समाधान से ही शान्ति आयगी और आपसी सम्बन्ध सुधरेंगे।

ग्रामीण जीवन का जिस तरह ह्रास हुआ है उसके कारण उसमें हृदयहीनता इतनी अधिक आ गयी है कि कई बार प्रत्यक्ष अनीति और अन्याय के विरुद्ध भी गांव की अन्तरात्मा (*कान्शंस*) को जगाना सम्भव नहीं होता। *ऐसी स्थिति में पड़ोस, प्रखण्ड, या* जिले के सज्जनों की 'कान्शंस' का इस्तेमाल करना पड़ेगा। 'कान्शंस' की कोई क्षेत्रीय मर्यादा नहीं है, पर अनीति के *प्रसंग में* अन्तिम स्पष्ट *न्याय गांव के* अंदर ही होना चाहिए। ग्राम-समुदाय अपने हर सदस्य को न्याय दे सके, यह *स्थिति आनी* ही चाहिए।

पंच परमेश्वर—समाधान का सर्वोत्तम उपाय यही है कि दोनों पक्ष मिलकर पंच चुनें, और 'पंच परमेश्वर' के सर्वसम्मत निर्णय से परस्पर समाधान प्राप्त करें। पंच गांव, *या गांव* के बाहर के भी, हो सकते हैं।

न्याय समिति—हर ग्रामसभा की एक न्याय-समिति हो, जिसका काम अभियोग प्राप्त करना और न्याय के लिए उचित कार्रवाई करना हो, लेकिन स्वयं *न्याय करना* न हो। पक्षों के कहने पर यह समिति, अथवा पूरी ग्रामसभा, पंच नियुक्त कर सकती है।

अच्छा होगा कि न्याय-समिति स्थायी न होकर 'ऐडहाक' हो। यह भी हो सकता है कि एक स्थायी 'पैनेल' हो जिसमें से जरूरत पड़ने पर न्याय-समिति बना ली जाय।

गाँव के भीतरी झगड़ों के अलावा अन्तर-ग्रामीण झगड़े भी हो सकते हैं। ऐसे झगड़ों के निपटारे के लिए एक स्थायी 'पंचायत न्याय समिति' बनायी जा सकती है, या एक 'पैनेल' में से 'अदालत' बनायी जा सकती है।

अपील—विशेष स्थितियों में 'पंचायत न्याय समिति' के सामने गाँव के भीतरी झगड़ों की अपील भी की जा सकती है। लेकिन अपील एक ही हो, दूसरी नहीं।

सरकार—जनता फौजदारी के विशेष अपराधों में सरकार को अपनी ओर से कार्रवाई करने का अधिकार रहेगा।

सामाजिक अंकुश—ग्रामसभा अपनी कार्यसमिति को 'सुपरसीड' कर सकती है। लेकिन क्या ग्रामसभा भी 'सुपरसीड' की जा सकती है? ग्रामदान के कानूनों में अधिकारों के दुरुपयोग या कर्त्तव्यों की उपेक्षा की स्थिति में सुपरसेशन की गुंजाइश रखी गयी है, लेकिन ग्राम-स्वराज्य की दृष्टि से सामाजिक अंकुश, जैसे बहिष्कार आदि, विकसित होने चाहिए।

पंचायतीराज की संस्थाओं से सम्बन्ध

समानान्तर प्रतिद्वन्द्वी संस्थाएँ नहीं-इस अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय पर गोष्ठी की राय रही कि जहाँ तक हो सके ग्रामदान के नाम में समानान्तर प्रतिद्वन्द्वी संस्थाएँ न बनायी जायँ, लेकिन पंचायती राज की मौजूदा संस्थाओं पर ग्रामस्वराज्य का रंग कैसे चढ़े, उनका ढंग कैसे बदले, और जब जरूरत हो तो उन्हें भंग कैसे किया जाय, यह पूरा विषय तफसील में जाकर अध्ययन करने का है। अध्ययन के आधार पर विचार के लिए नोट तैयार किया जाना चाहिए।

लोक-शिक्षण : दिशा-संकेत

ग्राम-स्वराज्य और लोकनीति की योजना की सफलता लोक शिक्षण पर निर्भर है। उस पर जितना ध्यान दिया जाय थोड़ा है। गोष्ठी में शिक्षण की कुछ ये दिशाएँ सुझायी गयी :—

१. सरल साहित्य का निर्माण
२. ग्राम-शान्ति-सेना, तरुण-शान्ति-सेना का संगठन
३. ग्राम-सभा की कार्य-समितियों के सदस्यों के शिविर, गण सेवकत्व का विकास
४. कार्यकर्त्ता-शिक्षण
५ प्रशिक्षकों का प्रशिक्षण

अन्त में गोष्ठी ने यह महसूस किया कि बदलते हुए सन्दर्भ में प्रकट होनेवाले लोकनीति के विभिन्न पहलुओं पर चिन्तन के लिए बार-बार मिलना आवश्यक होगा। शोध और अध्ययन की भी समुचित व्यवस्था करनी होगी। —राममूर्ति

बिहारदान की दिशा में : प्रगति के आँकड़े

जिला	ग्रामदान	प्रखंडदान	गठित ग्राम सभाएँ	पुष्टि हेतु गाँवों के तैयार कागजात	पुष्टि पदाधिकारी के पास दाखिल कागजात	अभिपुष्टि गाँवों की संख्या	विशेष
१. पूर्णिया	८,१५७	३८	७५४	६०४	४६०	२००	अगस्त तक
२. सहरसा	३,०२२	२३	४४	६	—	—	अगस्त
३. भागलपुर	४६५	४	२२	४	—	—	जुलाई
४. संथाल परगना	१,०७४	३	४०	१७३	१७३	१६०	जुलाई
५. मुंगेर	२,०६१	१६	५२	४६	—	—	जुलाई
६. दरभंगा सदर	३,७२०	४४	४१६	१५५	५५	२६	अगस्त
७. मधुबनी			५६०	८४	५३	—	अगस्त
८. समस्तीपुर			२३७	६२७	५६१	६२	अगस्त
९. मुजफ्फरपुर	३,६१७	४०	६०	४६	३६	२१	जुलाई
१०. सारण	१,०५१	१५	६८	५०	—	—	अगस्त
११. चंपारण	२,८६०	३६	५७	५३	—	—	अगस्त
१२. पटना	४८	–	२३	१३	—	—	अगस्त
१३ गया	१,२१७	३	१७	७	—	—	अगस्त
१४. शाहाबाद	१३०	२	४२	२३	—	—	११ सितम्बर
१५. पलामू	८०४	६	—	—	—	—	जुलाई
१५. हजारीबाग	१,२७३	५	१	८५	—	—	अगस्त
१७. राँची	५२	—	—	—	—	—	अगस्त
१८. धनबाद	५४८	२	३०	२५	—	—	अगस्त
१९. सिंहभूमि	४८०	४	२१	१४			
कुल :	३०,६३६	२४४	२,५१५	२,०२१	१,४०१	५०२	

चंपारण का चमत्कार और विहारदान की चुनौती
'ऐट वन प्वाइंट, ऐट वन टाइम'

विनोबा

ग्रामदान में सबका सहयोग मिले इसलिए, ऐसा कभी तक नहीं था। चंपारण में जब हम गये, वहाँ खास कुछ था नहीं। एक प्रखण्डदान पहले कर चुके थे। गांधीजी के नाम से चंपारण जिला मशहूर था सारे भारत में। तो मैंने सोचा कि ठीक है अब चलें जरा सम्पूर्ण रूप से लगायें सकल-शक्ति। 'यथाशक्ति मैं करूँगा', 'जहाँ तक हो सकेगा करूँगा', 'हम कोशिश करेंगे'—इसमें कोई सार नहीं। 'यथाशक्ति' शब्द का अर्थ संस्कृत में जिस अर्थ में है उससे बिलकुल विपरीत अर्थ में हमारी व्यवस्था में चलता है। 'यथाशक्ति हम करेंगे' का मतलब, 'लगभग नहीं करेंगे' के बराबर होता है। और इसको कहते हैं—सुवचन, एक अच्छा-सा वचन बोल देना। लेकिन अर्थ वही। तो, उसको 'यथाशक्ति हम करेंगे' या 'धीरे धीरे हम करेंगे'—ऐसा कहते हैं। संस्कृत में 'यथाशक्ति का अर्थ होता है—'शक्ति अनति-क्रम्य', यानी शक्ति की आखिरी मर्यादा जहाँ टूटती है वहाँ तक जाकर। मान लीजिये, हममें काम करने की शक्ति ५ सेर है, तो ५ सेर में १ तोला कम तक काम करेंगे। ५ सेर में शक्ति टूट जायगी। इस टूटने से जरा पहले, इसका अर्थ है यथाशक्ति। और हमारा अर्थ होता है यथाशक्ति का—कोरी सहानुभूति, तो उसको सकल-शक्ति नहीं कहते।

चंपारण में हम जरा परमात्मा का नाम लेकर, गांधीजी का नाम लेकर, दो बड़े नाम—"भारत में तारण मिले सत्नाम दोई, मत सदा शीश उपर राम हृदय होई।" दो तारक शक्तियाँ हैं—राम और सन्त, हृदय में राम और संत सदा शीश, तो गांधीजी हमारे लिए संत पुरुष थे और रामजी तो हैं ही। दोनों नाम लेकर के हम चले गये। फिर वहाँ देखा कांग्रेस कमेटी पूरी-की पूरी काम में लग गयी, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी लग गयी। दोनों अब 'इलेक्शन' में एक दूसरे के खिलाफ खड़े होंगे। लेकिन दोनों पार्टियों ने ताकत उसमें लगायी। और भी पार्टियों ने लगायी होगी ताकत थोड़ी-बहुत, एस० एस० पी० वगैरह ने। उनकी ज्यादा ताकत वहाँ देखी नहीं। लेकिन इन दो पक्षों ने जितनी अच्छी ताकत है वहाँ, पूरी शक्ति से, बराबर सहयोग दिया, कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर।

हमने मिसाल दी कि कहीं गाँव में आग लगी है तो क्या फलाने पार्टीवाला काम करेगा, दूसरी पार्टीवाला नहीं करेगा? उस वक्त पार्टी का खयाल कौन करेगा? हर कोई सोचेगा कि आग बुझाने में सबका सहयोग होना चाहिए। तो इसी भारत में एक आग लगी हुई है और उसे ग्रामदान के द्वारा हम बुझाने का प्रयत्न कर रहे हैं तो सबकी ताकत समान रूप से उस कार्य में लगनी चाहिए। फिर अपने 'इलेक्शन' में वे खेलें, 'इलेक्शन' जैसे खेलना हो। परन्तु जहाँ तक इस काम का ताल्लुक है अपनी पूरी ताकत वे लगायें। इसके अलावा ग्राम-पंचायतों ने कुछ ताकत लगायी। पूरी नहीं लगा पाये, लेकिन कुछ लगायी। विनोबा बाबू उसके लिए खास आये। डाक्टरों ने उनको मना किया था आने को, फिर भी वे आये। और दो-चार, पाँच सात दिन बैठकर सबको प्रेरणा दी। तो कुछ काम उन्होंने किया, कुछ शिक्षकों ने किया, थोड़ा बी०डी० ओ० वगैरह ने किया और ये खादीवाले, सर्वोदयवाले यानी कुल-के-कुल एकदम काम में भिड़ गये। और लगभग सब प्रखण्डों में अभि-यान किया उन लोगों ने।

आखिर आखिर में तो पाँच-सात प्रखण्ड आखिर के तीन-चार दिनों में हो गये। हम पूछा करते थे—'अरे, सबमें अभी इतना बाकी है? कब होगा?' 'हाँ होगा। अभी चार दिन हैं, तीन दिन हैं, दो दिन हैं।' और आखिर में जब हम वहाँ आखिरी समारोह के लिए बैठे थे उसी वक्त दो-तीन प्रखण्ड आ गये। तो यह वहाँ अनुभव हुआ, जिस चंपारण में कोई समस्या बाकी नहीं। जितनी समस्याएँ होनी चाहिए जिले में, उतनी सब समस्याएँ वहाँ मौजूद हैं। दिन बारिश के थे। लोगों को काफी पानी में से जाना पड़ा था। कुछ बीमारी में पड़े, कुछ को साँप ने काटा, कुछ को शेर का भी दर्शन हुआ! यह सारा वहाँ हुआ, लेकिन लोगों ने जान की बाजी लगा दी।

जो काम कम-से-कम समय में होगा वह कम तकलीफ से होगा। और जिसमें ज्यादा समय लगेगा, धीरे-धीरे होगा, उसमें ज्यादा तकलीफ होगी। और जहाँ आप सब इकट्ठा ताकत लगायेंगे, खूब जोर करेंगे, बहुत ज्यादा त्याग करेंगे, लेकिन चन्द दिनों के लिए, दो पाँच पन्द्रह दिन में मामला खतम! यह सूचना हमको पचीसों साल पहले दे रखी है गौतम बुद्ध ने। 'तन्द्रितं कुर्वत पुण्यं'—जो पुण्य कार्य धीरे धीरे करता है, अलसाता हुआ, सुस्ताता हुआ करता है, 'पापेहि रमते-मन।'—तो मन पाप में रम जाता है, पाप जोर करता है। अब अगर हम काम करते होते शून्य से, तो मैं कहता कि ठीक है, धीरे-धीरे करो, पुण्य कार्य धीरे-धीरे करो। परन्तु आज पाप का जोर है। पाप जोरदार काम करेगा, और पुण्य धीरे-धीरे काम करेगा तो उसका परिवर्तन पाप में हो जायेगा। तो इस वास्ते यह काम धीरे-धीरे करने का नहीं। वैसे बाबा को तो धीरज बहुत है, क्योंकि बाबा का अपना यह काम है नहीं। यह तो उनका काम है, जिनके बाल-बच्चे हैं। अपना तो कुछ है ही नहीं।

जब हम आ रहे थे 'पीर पंजाल' तो 'वायरलेस' से 'मेसेज' हमको दिया गया पंडित नेहरू के द्वारा—'कृपा करके आगे मत बढ़ो।' क्योंकि बहुत ज्यादा बाढ़ थी और बाढ़ में ऐसे पत्थर बह रहे थे जो एक-एक पत्थर एक-एक घर के बराबर थे, इस मकान के बराबर। इतना पानी जोरदार था। और लोग कहते थे कि ऐसी बारिश सौ साल में देखी नहीं किसीने। और उसको हम लोगों ने नाम दिया था—हमने ही नाम दिया था—तूफानेनूह। नूह के जमाने में भी तूफान था और ऐसी बाढ़ लाग भारत ने देख गये थे। इसका स्मरण कश्मीर को हुआ। अब पीर पंजाल लांघकर जाना था। उसके ऊपर तो बरफ जमा हुआ रहता है। तो उस पर से

जाना था। वहाँ से वापस जाना पड़ा था गजनी के मुहम्मद को। गजनी का मुहम्मद आया, वहाँ तक कश्मीर पर हमला करने के लिए और मोरान नाम का स्थान है जहाँ हम पहुँचे थे, वहाँ से ऊपर चढ़ना था। तो उसे अपनी सेना लेकर के वापस जाना पड़ा। और इसलिए कश्मीर उसके हाथ आया नहीं। तो वह स्थान जहाँ से उसको वापस जाना पड़ा, वहाँ हम खड़े थे, और पैदल यात्रा करके। हमारे दो साथी—जिनके हाथ हम पकड़ते हैं, उनके हाथ पकड़ना हमने छोड़ दिया। हमने वहाँ के साथी लेकर हाथ पकड़ा। क्योंकि इनका हम हाथ पकड़ते तो हम तीनों चले जाते इकट्ठा—'सह नाववतु सह नौ भुनक्तु।' इसलिए इन लोगों से कहा कि तुम अपने को संभालो, यही बहुत है। और हमने वहाँ के खास जो चलनेवाले होते हैं, उनके हाथ पकड़े थे। उनके पाँव में ऐसे जूते रहते थे जो पूरे पकड़ लेते थे अपने रास्ते को। हाथ से जैसे पकड़ते हैं, वैसे वे पाँव से पकड़ते थे। उनको आदत है। अब यह इतना छोटा-सा रास्ता। इधर टूटा हुआ कड़ा, उधर टूटा हुआ कड़ा। हमको कुछ भी नहीं हुआ। इसका कारण क्या था? हमने दो नियम किये थे, एक-पाँच मिनट चलने के बाद एक मिनट बैठ जाना, जिससे कि साँस न बढ़े, और दूसरा—न इधर देखना, न उधर देखना।

हम बैठ जाते थे हाथ पकड़ करके। फिर जरा देखते थे आसपास क्या आनन्द है। बारिश भी उस समय शुरू हुई, सब कुछ हुआ। अब ऊपर चढ़ने के बाद और भी बारिश शुरू होती तो हम वापस लौटते नहीं, यह पक्की बात थी। लेकिन आश्चर्य हुआ कि हम ऊपर बैठ गये और बारिश बन्द हो गयी। एक खास ईश्वरी योजना! फिर हम उतर गये तो बख्शीजी स्वागत के लिए आये। उनको बड़ी चिन्ता हो रही थी, उनको भी टैलीग्राम मिला था कि बाबा को आगे नहीं बढ़ना चाहिए। बोले 'कैसे हैं?' तो मैंने तीन शब्द कहे—'जिन्दा, जिन्दा है।'

यह कहानी मैं इसलिए सुना रहा था कि एक संकल्प होता है। जब मनुष्य महान संकल्प करता है अपनी शक्ति के बाहर का, तब परमात्मा मदद करता है। जब अपनी शक्ति नाप-तौलकर उसीके अन्दर-अन्दर संकल्प करता है मनुष्य, मेरी शक्ति १५ तोले है तो मैंने १२ तोले का संकल्प किया, तब ईश्वर कहता है, बेटा, तुझे मेरी मदद की जरूरत नहीं, तू अपना कार्य करता चला जा। जब मनुष्य अपनी शक्ति से, अपनी समूह की शक्ति से ज्यादा संकल्प करता है बड़ा, शिव संकल्प, तो परमात्मा मदद करता है। यह हमको कितनी दफा अनुभव हुआ। तो, जैसे यहाँ लग गयी ताकत, वैसे सब पार्टियाँ एकदम ताकत लगायें और उसके साथ-साथ आपकी पंचायत, ग्राम-पंचायत, शिक्षक-समूह आदि सबकी जमात खड़ी हो जाय तो बस, पन्द्रह दिन में बेड़ापार। समाप्तम्। तो फिर आगे जो करने का काम है वह बहुत है। इस काम को जितना जल्दी हम पूरा करें, उतना हमारे लिए श्रेय है।

नेपोलियन बोनापार्ट को आस्ट्रिया पर हमला करना था। रास्ता था बहुत लम्बा। या तो बहुत बड़े पहाड़ को—स्वीट्जरलैंड में पहाड़ हैं—उन पहाड़ों को पार करके जाना था, या प्रदक्षिणा करके जाने का दूसरा रास्ता था। तो नेपोलियन ने कहा—'नहीं, हम उसी रास्ते से जायेंगे, उसी पहाड़ से जायेंगे।' लोगों ने कहा—'इससे तो मनुष्य मरेंगे।' तो बोला—'मरे बिना कभी जीवन होता है रे भैया? इस वास्ते मरना तो पड़ेगा ही।' और यों करके उसीको लाम लिया। इससे उनके चार सौ, पाँच सौ लोग मर गये, वरफ में। उनको छोड़ दिया, आगे चले। जो मरे सो मर गये, उनको देखना नहीं। यह आदेश दिया कि उनको उठाना-बैठाना नहीं। और आखिर में पहाड़ लांघने के बाद वे आस्ट्रियावाले एकदम घबड़ा गये, उनको खयाल ही नहीं था, कल्पना ही नहीं थी कि यहाँ से नेपोलियन आयेगा। इस वास्ते उसके पहुँचने से ही आस्ट्रिया खतम हो गया। अब कुल मिलाकर लड़ाई सस्ती पड़ी ऐसा साबित हुआ। लड़ाई लड़नी पड़ी नहीं, तो सस्ती पड़ी, सिर्फ पहाड़ में जो कुछ त्याग हुआ, सो हुआ।

उत्तर बिहार में बहुत बड़ी बाढ़ आयी थी जब हम घूम रहे थे। और हमसे कइयों ने कहा कि आप मत जाइये। उधर जाने से क्या होगा? ग्रामदान-भूदान का कोई सम्बन्ध वहाँ है ही नहीं। सब जगह बाढ़-ही-बाढ़ है। तो हमने कहा, 'ठीक है। बाढ़ में हम लोगों के पास जायेंगे, और बाढ़ में उनको क्या खाना, कैसे खाना और बीमारी से कैसे बचना, यही सिखायेंगे।' चले हमारे साथ रामदेव। चारों ओर बाढ़-ही-बाढ़ फैली थी, पानी-ही-पानी था। हम हाथ पकड़े हुए जाते थे। वे बहुत ही चिंतित मुद्रा में रहते थे। मैं उनकी तरफ देखता ही नहीं था। कहीं उन्हें देखने से उनकी चिन्ता मुझे न छू जाय। बहुत चिंतित थे कि क्या होगा? लेकिन देखा गया कि जहाँ हम पहुँचे वहाँ सैकड़ों नौकाएँ, और नौका में भर-भर के आदमी आये। क्योंकि उस बाढ़ में आनेवाला कौन था? लोगों ने देखा कि ऐसी बाढ़ में यह शख्स आया तो उसके दर्शन के लिए जरूर जाना चाहिए। तो यह सारा बिहार मेरे सामने है। हम यहाँ भी आये थे सहर्षा में उन दिनों। काफी जमीन मिली थी हमको सहर्षा में। उस वक्त वहाँ भी बाढ़ थी। तो, इस प्रकार से जब जरा संकल्प करके अपनी शक्ति से बाहर का काम करते हैं तो ताकत लगती है।

मैंने कई दफा कहा कि जब एक बड़ा पत्थर हटाना होता है तो सब लोग हाथ लगाते हैं एक, दो, तीन। एकदम जोर लगा दिया। हट गया। और यहाँ तो मैं जोर लगाऊँ, फिर दो जने जोर लगायें, फिर पाँच जने लगायें, तो क्या होगा? हरेक का व्यायाम होगा, सुन्दर व्यायाम। और पत्थर

जयप्रकाशजी आजकल हनुमान का काम कर रहे हैं। उनकी पूँछ में लगी है आग। तो, जगह-जगह जाकर उन्होंने आग लगा दी। अभी गये महाराष्ट्र में, तो महाराष्ट्रवाले हिम्मत करते ही नहीं थे। खूब उनको समझा करके आखिरकार प्रान्तदान का संकल्प करवा करके आ गये। उन्होंने कहा, 'अरे भाई, मौका है। ऐसे मौके को हम खोते हैं तो क्रान्ति-क्रान्ति होती नहीं, वह राह देखती नहीं हमारी। समय होता है। यों करके आखिर संकल्प कराके ही छोड़ा। तो मुझे हनुमान की याद आयी कि आग लगाने चले आये। —विनोबा

हटेगा नहीं। इसलिए पत्थर को हटाने के लिए सबकी ताकत एकदम लगनी चाहिए—'ऐट वन प्वाइंट, ऐट वन टाइम'। तब काम होता है। तो, यही आपसे हमारी अपील है। जब इस प्रकार से काम करियेगा—अभियान के रूप में, तब 'लाज राखो गिरधारी'। काम पूरा होगा।

उत्तर प्रदेशवाले कहते हैं कि हमको बिहार से मार्गदर्शन मिलना चाहिए हर बात में। अब बिहारवाला अगर यों कहेगा कि हमने संकल्प तो किया था २ अक्तूबर का। अनेक कारणों से वह नहीं हो सका, तो कैसे चलेगा? इसलिए कम-से-कम इस साल में ३१ दिसम्बर तक तो पूरा करो, ताकि उत्तर प्रदेशवालों के लिए थोड़ा समय बाबा दे सके। वे माँग कर सकते हैं। ८ करोड़ का प्रान्त है और सारा ग्रामदान करने का संकल्प है। तो थोड़ा समय बाबा का मिलना चाहिए उनको, ऐसी अपेक्षा वे भी कर सकते हैं। और यहाँ का अधूरा काम छोड़कर बाबा चला जायगा, तो दोनों बिगड़ जायँगे। धोबी का कुत्ता, न घर का, न घाट का। तो इस वास्ते यह कुत्ता चाहता है कि घर का बने पूरा, तो जायँ घाट पर, अगर जाने की जरूरत पड़ी तो। सम्भव है कि जाने की जरूरत भी न पड़े। आगे का जोरदार काम यहाँ हो। स्वराज्य-स्थापना का दृश्य दिखे। यह सारा हो सकता है। अगर सद्बुद्धि सबको हो जायगी, लगायेंगे ताकत तो। ताकत दो प्रकार से लगती है—एक, अपने आराम-विश्राम से। अपने गृह जो हैं, उन्हें छोड़ करके काम में लग जाने से। दूसरे, एकसाथ सब पन्द्रह बीस-पचीस दिन लगा दें और पन्द्रह बीस-पचीस दिन में काम पकड़ लें।

बिहार के कार्यकर्ताओं से हुई चर्चा से
मुजफ्फरपुर : ११ सितम्बर '६८

मूल्य-परिवर्तन हिंसा या कानून से असम्भव

वर्तमान युग की माँग है समता—सामाजिक तथा आर्थिक समता, सामाजिक तथा आर्थिक न्याय।

दुनिया में इस माँग की पूर्ति दो प्रकार से करने का प्रयत्न हुआ है—एक हिंसा से, दूसरा कानून से। हम हिंसा के विरुद्ध हैं, इसलिए हमारे लिए यह रास्ता बन्द है। हम यह भी देखते हैं कि जहाँ-जहाँ हिंसा से समता स्थापित करने का प्रयत्न हुआ है, वहाँ अनेक वर्षों के बाद भी भिन्न-भिन्न प्रकार की विषमता कायम है। जो भी हो, हम इस विवाद में पड़ना नहीं चाहते। हम ऐसा मानते हैं कि यदि इस देश में हिंसा का मार्ग अपनाया गया तो देश के टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे और शायद फिर से देश गुलाम भी बन जायगा।

दुनिया में जो प्रयास कानून के द्वारा समता स्थापित करने का अब तक हुआ है, उसमें सफलता थोड़ी ही हुई है। कानून से

जयप्रकाश नारायण

सामाजिक-आर्थिक क्रांति कहीं हो पायी है, ऐसा देखने में नहीं आया है। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि मंगलकारी राज्य के रूप में समता की तरफ वे थोड़ा बढ़े हैं, जहाँ कानून का मार्ग अपनाया गया है।

देश की प्रगति ?

जब हम अपने देश की तरफ ध्यान देते हैं तो पिछले २१ वर्षों में इस दिशा में कुछ भी प्रगति हुई है, ऐसा नहीं लगता। बल्कि विद्वानों का तो यहाँ तक कहना है कि स्वराज्य के पहले जितनी आर्थिक विषमता पायी जाती थी उससे आज अधिक है। सामन्तशाही और जमींदारी प्रथाओं का उन्मूलन हुआ उतना भर समता की तरफ प्रगति हुई, ऐसा कह सकते हैं। भूमि व्यवस्था के सुधार के लिए जो भी कानून बने उनके फलस्वरूप जो भूमि का पुनर्वितरण हुआ है वह नगण्य ही है। बिहार में 'सीलिंग' के कानून के द्वारा ५ हजार एकड़ जमीन का भी पुनर्वितरण नहीं हुआ होगा। पड़ोस के उत्तर प्रदेश में भी लगभग यही हाल है। शायद वहाँ इससे कुछ अधिक भूमि वितरित हुई हो। लेकिन वह भी नगण्य ही है।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि यह असन्तोषकारी परिस्थिति बावजूद इसके है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू से लेकर बाकी अनेक नेता भूमि-सुधार के प्रश्न पर पिछले वर्षों में इतना जोर देते रहे हैं। जब गैर-कांग्रेसी हुकूमतें कायम हुईं तो जहाँ समाजवादी तथा साम्यवादी पार्टियाँ भी सम्मिलित थीं वहाँ भी समता की तरफ एक इंच भी प्रगति नहीं हो पायी, और न किसी प्रकार का सामाजिक, आर्थिक न्याय ही स्थापित हुआ। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव से कह सकता हूँ कि बिहार में इस दिशा में कुछ करने का प्रयास भी हुआ, फिर भी सफलता नहीं हुई।

कत्ल और कानून का विकल्प

यह अत्यन्त भयंकर परिस्थिति है। हिंसा से हम चाहते नहीं, कानून से कुछ होता नहीं तो फिर रास्ता कौनसा रह जाता है? उत्तर विनोबाजी ने अपने भूदान-ग्रामदान आदि आंदोलन से पेश किया है। परन्तु दुःख की बात है कि देश का प्रबुद्ध समाज इस आंदोलन से अब तक विमुख रहा है। यही नहीं, बल्कि यह कहकर कि क्या भीख माँगने से कभी क्रांति हो सकती है, इस आंदोलन का बड़ा मजाक भी बनाया है। आंदोलन अव्यावहारिक है यह तो उसकी आम आलोचना है। तथ्य क्या है इसकी तरफ शायद ही आलोचकों का ध्यान जाता है। भूदान के सम्बन्ध में बहुत कहा गया कि विनोबाजी को जमीन-मालिकों ने पानी, पत्थर, रेत, ऊसर-बंजर देकर बहला लिया और उसीको सर्वोदयवालों ने अपनी सफलता मान ली। परन्तु तथ्य यह है कि कानून से बिहार में ५ हजार एकड़ जमीन का भी अब तक पुनर्वितरण नहीं हुआ पर भूदान से ३ लाख ४० हजार एकड़ खेती के लायक जमीन भूमिहीनों में बिहार में बाँटी जा चुकी है और बिहार भूदान-यज्ञ कमिटी का अंदाज है कि अगले कुछ वर्षों में लगभग डेढ़ लाख एकड़ जमीन और बाँटी जा सकेगी। उत्तर प्रदेश में जहाँ कानून से १०-१५ हजार एकड़ जमीन मुश्किल से पुनर्वितरित हुई होगी वहाँ ३ लाख एकड़ काबिलकाश्त जमीन बँट चुकी

है। सारे देश में भी कानून के जरिए अब तक जितनी जमीन का पुनर्वितरण हुआ है, उससे कहीं ज्यादा भूदान से हो चुका है। परन्तु खेद है कि आराम कुर्सीवाले आलोचक आलोचना करते ही जा रहे हैं।

ग्रामदान की मुख्य बातें

भूदान आन्दोलन के गर्भ से ग्रामदान पैदा हुआ। अहिंसक क्रान्ति की तरफ यह दूसरा चरण है। ग्रामदान सम्पूर्ण भूमि-क्रान्ति नहीं है, लेकिन उस क्रांति की ओर इस देश में अब तक जो कानूनी या गैरकानूनी सफल कदम उठाये गये हैं उनसे कहीं आगे यह है। ग्रामदान क्या है? उसमें मुख्य तीन बातें हैं—

पहली बात, भूमि के स्वामित्व के सम्बन्ध में है। आज भूमि का स्वामित्व व्यक्तिगत है। ग्रामदान व्यक्तिगत स्वामित्व को सामुदायिक स्वामित्व में परिवर्तित करता है। जिस गाँव में ग्रामदान हुआ उसमें जितने जमीन-मालिक शरीक हुए उनके नाम सरकारी खाते से कट जायेंगे और सिर्फ एक नाम उनके बदले में चढ़ेगा—ग्रामसभा का नाम। यह ठीक है कि पहले कदम के तौर पर भू-स्वामित्व का विसर्जन केवल कानूनी स्वामित्व का विसर्जन है। स्वामित्व के दूसरे अधिकार फिलहाल कुछ मर्यादित रूप में उन्हींके पास रहते हैं, जो आज मालिक हैं। फिर भी कानूनी मालकियत का ग्रामीकरण है। यह एक महत्त्वपूर्ण क्रांतिकारी घटना है।

ग्रामदान में दूसरी बात जो महत्त्व की है, वह बीसवाँ हिस्सा जमीन का बाँटना। १९ हिस्से में जो पैदा हो उसका ४०वाँ हिस्सा हर फसल के बाद ग्रामसभा को देते रहना, नकद कमाईवाले के लिए एक महीने की कमाई में से ३०वाँ हिस्सा ग्रामसभा को देते रहना और खेतिहर मजदूरों के लिए महीने में एक दिन का श्रम ग्रामसभा को देते रहना। इस प्रकार से जीवन की एक नयी पद्धति स्वीकार करना, जिसका आधार बाँटकर जीना है। आज के समाज में जहाँ नियम छीन के जीने का है और परस्पर घोर संघर्ष चल रहा है, जिसका परिणाम प्रत्यक्ष है, वहाँ बाँटकर जीने की पद्धति जब प्रचलित होगी तो उसका क्या कल्याणकारी परिणाम हो सकता है, इसकी कल्पना विद्वत्जन कर सकते हैं।

तीसरी बात ग्रामदान में यह है कि हर ग्रामदानी गाँव में वहाँ के कुछ बालिगों को लेकर एक ग्रामसभा बनेगी जिसका हर काम और हर फैसला सर्व-सम्मति अथवा सर्वानुमति से होगा। बिहार ग्रामदान-एक्ट की परिभाषा के अनुसार कम-से-कम ६० फीसदी मत एक ओर और अधिक-से-अधिक १० फीसदी मत दूसरी ओर जब होगा तो फैसला ग्राम राय या सर्वानुमति से हुआ, यह माना जायेगा। आज जहाँ बहुमत के सिद्धान्त के कारण हर बात को लेकर गाँव में फूट और दलबन्दी है, जिसके परिणामस्वरूप ग्राम-पंचायतें निष्फल हो रही हैं वहाँ सर्व-सम्मति अथवा सर्वानुमति की पद्धति कितनी जोड़नेवाली होगी और कितनी गाँव की सामूहिक शक्ति को प्रकट करनेवाली होगी, इसकी कल्पना की जा सकती है।

मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि ग्रामदान सामाजिक-आर्थिक क्रांति की तरफ जितना बड़ा कदम आज है उससे आगे कानून के लिए बढ़ना वर्तमान परिस्थिति में असंभव है। अब प्रश्न यह है कि ग्रामदान क्या सफल होगा? इस प्रश्न का भी उत्तर कठोर तथ्य ही दे सकते हैं। आज देश भर में लगभग ६० हजार ग्रामदान हो चुके हैं, जिनमें से बिहार में २३ और २४ हजार के बीच में है। भारत में ५ (२ अक्तूबर तक १०) जिलादान हो चुके हैं और पूज्य विनोबाजी की प्रेरणा से बिहारवालों का संकल्प है कि इस वर्ष के गांधी जन्म-दिवस तक बिहारदान हो जाय। (२ अक्तूबर तक आधा बिहारदान पूर्ण हुआ) बिहारदान याने बिहार की ग्रामीण जनसंख्या में से ७५ फीसदी भाग ग्रामदान में आ जाय और खेती की कुल जमीन में से ५१ फीसदी भूमि भी उसमें आ जाय। कुछ वर्षों के प्रयास का जहाँ यह परिणाम दीख रहा है, वहाँ क्या कोई गुंजाइश रह जाती है कि आंदोलन व्यावहारिक है या नहीं? इस बात की ओर भी स्पष्टता हो जाती है, जब हम कानून से आज तक हुई निष्पत्तियों को ध्यान में रखते हैं।

ग्रामदान से मानवता की रक्षा होगी

एक प्रश्न यह भी उठाया जाता है कि आज के युग में बाँटकर जीना क्या युगधर्म के प्रतिकूल नहीं है? मुझे नहीं लगता कि आज के युग में भी कोई बात हुई, जिसके कारण मानव की मानवता ही समाप्त हो गयी हो। मैं मानता हूँ कि जब तक मानव है तब तक वह इस बात को कहीं ज्यादा पसन्द करेगा कि स्वेच्छापूर्वक उसके पास जो भी संपत्ति है उसको बाँटे, बनिस्बत इसके कि उसका गला काटकर उसमें कोई छीनने आये या कानून से उसको मजबूर करके उसका कोई भाग ले ले। इतना ही नहीं बल्कि मेरी यह भी मान्यता है कि जहाँ भी जोर-जबरदस्ती से बँटवारा होगा वहाँ मानवता कुंठित होगी और समाज में उसकी प्रतिक्रिया कभी स्वस्थ नहीं होगी। समाजवाद, साम्यवाद आदि के जो मूल्य हैं, उनको तलवार से या कानून से प्राप्त किया जा सकता है, इसको मैं असंभव मानता हूँ। मूल्यों का परिवर्तन हिंसा या दबाव से नहीं हो सकता। वह तो विचार-परिवर्तन तथा हृदय-परिवर्तन से ही किया जा सकता है। और जहाँ मूल्य-परिवर्तन नहीं हुआ है वहाँ क्रांति सफल हुई है यह तो मैं एक बड़ा भ्रम मानता हूँ। अभी पूज्य विनोबाजी का आन्दोलन ग्रामीण क्षेत्रों में ही चल रहा है, इसलिए कि भारत के ८२ फीसदी लोग गाँव में बसते है। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में एक सीमा तक सफलता प्राप्त करने के बाद नगरों की तरफ भी ध्यान दिया जायेगा और जो सिद्धान्त भूमि और ग्राम्य जीवन के क्षेत्र में लागू किये जा रहे हैं, उनका प्रयोग औद्योगिक संपत्ति तथा नगर-जीवन में करना होगा। वह किस प्रकार से होगा, इसका चिन्तन-विचार चल रहा है। •

बापू की मीठी-मीठी बातें

लेखक : साने गुरुजी

मराठी-वाङ्मय के कोमल करुण साहित्यकार और आदर्श गुरु थी साने गुरुजी की लेखनी का यह प्रसाद हिन्दी पाठकों, खासकर किशोर वय के बालकों को खूब ही मीठा-मीठा लगेगा। पुस्तक में गांधीजी के जीवन की कुछ प्रेरक, उद्बोधक और जीवनदायी घटनाओं का चित्रण सीधी, सरल भाषा में हुआ है।

लगभग १५० पृष्ठों की पुस्तक। मूल्य १-५०।

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन,वाराणसी—१

खादी और ग्रामोद्योग

अशोक मेहता समिति का प्रतिवेदन

निष्कर्ष और सुझावों का सार—५

५३—जैसा कि खादी-ग्रामोद्योग कमीशन के लेखा के बारे में नियंत्रक महालेखा निरीक्षक को लेखा परीक्षण प्रतिवेदन के साथ प्रमाणित वार्षिक लेखा विवरण संसद को देना पड़ता है, वैसी ही व्यवस्था राज्य मण्डल अधिनियम में राज्य महालेखापालों के लिए अपने-अपने राज्य के विधान मण्डलों में सम्बन्धित राज्य मण्डलों के लेखा परीक्षण प्रतिवेदन के साथ प्रमाणित वार्षिक लेखा विवरण देने के बारे में होना चाहिए। इसके निमित्त महा लेखापाल को वही, लेखा-विवरण, प्रमाणक और लेखा-परीक्षण से सम्बन्धित अन्य कागजात माँगने तथा राज्य-मंडल के किसी भी कार्यालय के निरीक्षण का अधिकार होना चाहिए।

५४—राज्य मण्डलों को ऐसी शर्तों का परिपालन करना होगा जिन्हें आयोग राज्य सरकारों से परामर्श करके उस धन के बारे में निर्धारित करेगा जो भारत की संचित निधि से राज्य मण्डल और पंजीकृत संस्थाओं, समितियों आदि को आयोग द्वारा दिया जायेगा। भारत की संचित निधि से जो पंजीकृत संस्थाएँ, सहकारी समितियाँ धन प्राप्त करेंगी उन्हें यदि जरूरत हो तो केन्द्रीय सरकार को राज्य सरकार से प्राधिकृत किसी पदाधिकारी द्वारा निरीक्षण के लिए माँग होने पर उस धन के सम्बन्ध में लेखा का विवरण तथा अन्य अभिलेख पेश करना होगा।

५५—प्रशासन-मंत्रालय उच्च पदाधिकारियों की एक स्थायी अन्तर्विभागीय समिति स्थापित करे जो आयोग द्वारा प्रेषित तकनीकी, विक्रय-सम्बन्धी, वित्तीय और लेखा-सम्बन्धी समस्याओं पर विशेषज्ञतापूर्ण मार्गदर्शन करे। इस समिति की मदद प्रशासन मंत्रालय की कोई टुकड़ी या घटक करे जो तत्सम्बन्धित समस्याओं की जाँच के लिए आवश्यक सभी आँकड़ों का संग्रह और विश्लेषण करेगा। उपर्युक्त विशेषज्ञतापूर्ण मार्गदर्शन निस्सन्देह उपयोगी होगा, पर यह आवश्यक है कि आयोग अपने दैनंदिन काम में, विशेषकर पदों पर नियुक्ति, भर्ती के नियम आदि विषय में, निर्णय लेने में पर्याप्त स्वातन्त्र्य का उपयोग करे।

५६—राज्य में खादी ग्रामोद्योग सहकारी समितियों के पर्यवेक्षण और पंजीयन के लिए अभी जो प्रबन्ध है उनमें सुधार के लिए कार्यवाही की जानी चाहिए। जहाँ कहीं भी खादी-ग्रामोद्योग सहकारी समितियाँ एक निश्चित संख्या से अधिक हैं वहाँ उन समितियों की विशेष रूप से देखभाल के लिए राज्य सरकार द्वारा सहकारी समितियों से किसी संयुक्त पंजिकाधिकारी (रजिस्ट्रार), उप-पंजिकाधिकारी की नियुक्ति की जानी चाहिए।

५७—आयोग और राज्य मण्डल मुख्यतः पथप्रदर्शन, समन्वय और प्रोत्साहन-कार्य करें एवं विभागीय केन्द्रों की स्थापना करके उत्पादन या विक्रय योजनाओं के निष्पादन में अपने को सीधे शामिल नहीं करें। ऐसे केन्द्र पंजीकृत संस्थाओं या सहकारी समितियों को न दे दिये जायें। पर जब आवश्यक हो तब आयोग या राज्य मण्डल नये और सुधरे तकनीकों को दाखिल करने की दृष्टि से मार्गदर्शी उत्पादन या विक्रय योजनाओं का दायित्व ले सकते हैं। (समाप्त)

इतिहास का तथ्य : भावना का सत्य

"जे० पी० ! आप तो दुनिया के बहुत-से देशों में गये हैं, क्रान्ति के इतिहासों का अध्ययन किया है, आपका क्या अनुभव है, क्रान्ति-यात्रा में कौन अधिक दूर तक जाता है, क्रान्तिकारी तत्त्वों के प्रति भावनाशील व्यक्ति या कर्मकांडी ?" कई साल हो गये,

श्री गौरी बाबू

बिहार के सम्मानित और रईस बुजुर्ग श्री गौरी बाबू ने यह सवाल पूछा था।

"जहाँ तक क्रान्तियों के इतिहास के पन्ने बोलते हैं, साबित यही होता है कि भावनावालों ने क्रान्ति-यात्रा में अधिक दूर तक के फासले पूरे किये हैं।" जे० पी० ने जवाब दिया था। उन दिनों क्रान्ति के कर्मकाण्ड का बोलबाला था।

अब यह चर्चा शायद किसीको याद भी नहीं होगी और अब तो क्रान्ति के कर्मकाण्ड से अधिक सजग बौद्धिकता का आन्दोलन के वातावरण में प्रवेश हो गया है, भावना अधिक व्यापक हुई है।

उस दिन जे० पी० वाली ऐतिहासिक तथ्य की बात रजौली (श्री गौरी बाबू का गाँव) प्रखण्डदान-अभियान की पूर्व-तैयारी की सभा में सत्य बनकर प्रकट हुई।

प्रखण्ड के प्रमुख व्यक्तियों की एक गोष्ठी पूर्व-तैयारी के लिए स्थानीय हाईस्कूल में १२ सितम्बर '६८ को प्रखण्ड विकास-पदाधिकारी की अध्यक्षता में बुलायी गयी थी। लोग इंतजार कर रहे थे कि श्री गौरी बाबू आयें तो चर्चा शुरू हो और कार्य की योजना बने, कि तभी गौरी बाबू अपने भतीजे श्री व्यास के साथ आते दिखाई पड़े। श्री व्यास के हाथ में एक बड़ा पात्र था, जो खादी के वस्त्र से आवरित था। लोगों की जिज्ञासु निगाहें आतुर थीं। पात्र सभा में उपस्थित लोगों के सामने रखा गया, और श्री गौरी बाबू ने 'सत्य' के आवरण को हटा दिया।

"चाँदी के एक बड़े थाल में हल्दी में रंगे गये सवा सेर बासमती चावल, पाँच सौ एक रुपये नकद और अपने परिवार के छहों हिस्सेदारों के छह ग्रामदान-समर्पण-पत्र, पूरे विवरण के साथ !"

आये थे योजना करने कि कैसे प्रखण्डदान हो, और यहाँ गौरी बाबू ने उसका उद्घाटन ही कर दिया।

और इस माहौल में रजौली का प्रखण्डदान पाँच-छह दिनों में पूरा होकर रहा।

किसीने गौरी बाबू से कहा, "बधाई है!" "बधाई कैसी ? यह तो अपना फर्ज अदा किया !" गौरी बाबू ने जवाब दिया।

—अनिकेत

पुण्य-स्मरण

डा० राम मनोहर लोहिया को गये हुए बारह महीने हो गये। इन बारह महीनों में देश में बहुत हुआ, बहुत नहीं हुआ, लेकिन शायद ही कोई ऐसा काम हुआ हो जो लोहियाजी को संतोष देता, अगर वह जिन्दा होते। 'समता' की रट लगाने-लगाते वह गये। बारह महीनों में देश समता से बारह कोस और दूर चला गया है। जिस कांग्रेस-विरोधी मोर्चे को वह क्रान्ति का माध्यम बनाना चाहते थे वह भी टूट गया। वह मोर्चा ही क्यों, सारी राजनीति टूट रही है, और देश को तोड़ रही है। लेकिन लोहियाजी की अन्तिम श्रद्धा जनता की शक्ति में थी। जनता ही शक्ति का अन्तिम स्रोत है, न कि सरकार या संस्था, यह प्रतीति बढ़ रही है। निश्चित ही इस प्रतीति से वह पावन प्रक्षोभ जगेगा जो एक दिन समता के रोड़ों को दूर कर देगा। लोहियाजी की पुण्य-स्मृति समता के लिए होनेवाले हर पुरुषार्थ के साथ जुड़ी रहेगी। आज के दिन हम श्रद्धा के साथ उनका स्मरण करते हैं। काशी : १२ अक्तूबर '६८

गांधी-विनोबा जयन्ती सम्पन्न

पूरे देश से प्राप्त सूचनाओं के अनुसार ११ सितम्बर—'विनोबा जयन्ती' से २ अक्तूबर—'गांधी जयन्ती' तक सर्वोदय पर्व में सर्वोदय-विचार के प्रचार और शिक्षण के कार्यक्रम उत्साह के साथ सम्पन्न हुए। पदयात्रा, अखण्ड सूत्र-यज्ञ, कताई-प्रतियोगिता, सामूहिक सफाई, सामूहिक प्रार्थना, मद्यनिषेध के लिए लोक-शिक्षण, प्रदर्शनी, प्रभात-फेरी, जुलूस और सभा-गोष्ठी आदि कार्यक्रमों के माध्यम से हजारों कार्यकर्ताओं, नेताओं और संस्थाओं ने गांधी-विनोबा के विचारों को गाँव-गाँव तक पहुँचाने का काम किया।

२ अक्तूबर '६८ को गांधी-जन्म-शताब्दी वर्ष का शुभारम्भ करते हुए जगह-जगह अगले सालभर तक विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम चलाते रहने की योजनाएँ बनायी गयी।

पश्चिम निमाड़ में जिलादान-अभियान

विनोबाजी के चौहत्तरवें जन्म-दिवस (११ सितम्बर '६८) से पश्चिम निमाड़ जिले में जिलादान-अभियान शुरू हो गया है। स्थानीय सेवकों के अलावा अभियान में गांधी-निधि के लगभग ३४ कार्यकर्ता भाग ले रहे हैं। मार्गदर्शन मध्यप्रदेश सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष श्री वि० स० खोड़े स्वयं कर रहे हैं।

१५१ ग्रामदान

तरुण शान्ति-सेना शिविर

मुजफ्फरनगर से श्री प्रकाश भाई ने समाचार दिया है कि कैराना, ऊन, थाना भवन ब्लाकों में ग्रामदान अभियान चलाया गया और १५१ ग्रामदान प्राप्त हुए।

बलिया में तरुण-शान्तिसेना का दूसरा शिविर सुखपुरा इंटर कालेज में आयोजित हुआ, जिसका उद्घाटन १८ सितम्बर को आचार्य राममूर्ति ने किया। इस शिविर की विशेषता यह रही कि विद्यालय के अतिरिक्त समय में ही छात्रों ने शिविर का प्रशिक्षण-क्रम पूरा किया।

उत्तर बिहारदान का काम पूर्ण

सारण जिलादान ३० सितम्बर को घोषित

सारण : ३० सितम्बर'६८। पन्द्रह दिनों के आचार्य विनोबा के सारण-प्रवासकाल में ही जिले के शेष पच्चीस प्रखण्डों का दान पूरा हुआ। इस चमत्कारी अभियान में सारण के जिलाधीश की प्रेरणा और शक्ति मुख्य रूप से लगी। पार्टियों, पंचायतों, खादी-ग्रामोद्योगों आदि के कार्यकर्ता तो लगे थे ही। अब बिहारदान की स्थिति ५ अक्तूबर तक प्राप्त आँकड़ों के अनुसार निम्न प्रकार है :

(१) बिहार की कुल

जनसंख्या	५,६४,५५,६१०
ग्रामीण जनसंख्या	४,२५,४१,६६०
ग्रामदान में भौगोलिक क्षेत्र की कुल जनसंख्या	२,३६,४६,४५७
ग्रामीण जनसंख्या	२,२५,७६,७०१
ग्रामदान-क्षेत्र में कुल जनसंख्या का औसत	५१%
ग्रामदान क्षेत्र में कुल ग्रामीण जनसंख्या का औसत	५३%
कुल ग्रामीण परिवारों में से ग्रामदान में शरीक परिवार	४०%

(२) बिहार का क्षेत्रफल

	१,७३,६३४ कि०मि०
ग्रामदान का क्षेत्र	७७,३६७कि०मी०
कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत	४४%

(३) बिहार के कुल प्रखण्ड

	५८७
ग्रामदान में शामिल	२७१
प्रतिशत	४६.७%

(४) कुल जिले

	१७
ग्रामदान जिले	६
प्रतिशत	३५%

(५) उत्तर बिहार की

कुल जनसंख्या	२,१८,६४,६७६
ग्रामीण जनसंख्या	२,०८,१७,३८८
कुल क्षेत्र	५३,७३६ कि०मि०

—निर्मलचन्द्र

देश के आर्थिक जीवन में गलत प्रवाह

उसे कैसे रोकें ?

गांधी दर्शन के अनन्य भाष्यकार स्व० श्री कि० घ० मश्रूवाला ने हिन्दुस्तान के गाँवों का जो चित्र आजादी के पहिले खींचा था वह आज भी ज्यों-का त्यों बना है —

"हिन्दुस्तान गाँवों में बसा है यह बात तो बारम्बार कही गयी है, पर हिन्दुस्तान की संपत्ति सम्बन्धी आज की अधिकांश योजनाएँ गाँवों के हित की दृष्टि से नहीं बनायी गयी हैं। इसका नतीजा यह हुआ है कि गाँवों का कच्चा माल शहर में पटता है तथा शहरों में बने पक्के माल से गाँवों को पाटने की कोशिश की जाती है। जीवन के बहुतेरे साधन जो गाँव के खेतों और जंगलों में लगभग मुफ्त मिल सकते हैं उनके बदले शहरों और विदेशों में बना हुआ देखने में थोड़ा-बहुत सुविधाजनक लेकिन अधिकांश में दिखावे के लिए ही आवश्यक और अच्छा लगनेवाला माल काम में लाने का फैशन बढ़ जाने से देहात के बहुत-से उद्योग और मजदूरी के धन्धे नष्ट हो गये और होते जा रहे हैं। ऐसा अधिक आकर्षक सामान आरोग्य और स्वच्छता की दृष्टि से हानिकारक और गन्दा भी होता है, खर्चीला तो होता ही है। ये सब चीजें गाँव की वस्तुओं से सस्ती पड़ती हों सो बात नहीं है।

"इसके सिवा व्यापारियों की संकुचित और तुरन्त मुनाफा कमा लेने की स्वार्थ दृष्टि ने बहुत-से देहाती माल को मशीन के माल की अपेक्षा पड़ते में महँगा न होते हुए भी, खरीददार के लिए महँगा बना दिया है। इससे जो बाजार सहज में देहात के हाथ में रह सकता है वह भी कारखानों और विदेशियों के हाथ में चला गया है।

"जब अर्थशास्त्र और जीवन में ग्रामदृष्टि का प्रवेश होगा तब देहात की बनी चीजों का अधिकाधिक उपयोग करने की ओर जनता का मन झुकेगा।

"इस प्रकार आज सम्पत्ति देहात से शहरों में चली जा रही है और देहात हर दृष्टि से कंगाल होते जा रहे हैं।"

इस प्रवाह को बदलने की जरूरत है। यह कैसे बदलेगा ?

त्रिविध कार्यक्रम (ग्रामदान, ग्रामाभिमुख खादी एवं शांति-सेना) के जरिये आप इस प्रवाह को बदल सकते हैं।

सन् १९६९ गांधीजी की जन्म-शताब्दी का साल है।

आइए, इस प्रवाह को बदलने में सब जुट जायँ।

राष्ट्रीय गांधी जन्म शताब्दी समिति की गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति द्वारा प्रसारित

भूदान-यज्ञ : १४-१०-'६८ : रजिस्टर्ड नम्बर एल. २२४ [पहले से डाकव्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त] लाइसेन्स नम्बर ए २४

वाराणसी में विनोबा

गाड़ी सुबह ६ बजे वाराणसी सिटी स्टेशन पहुँची तो सबसे पीछेवाले तीसरे दर्जे के डिब्बे में खिड़की के पास बैठे हुए मगन-मन बाबा की उंगलियाँ धीरे-धीरे ताल दे रही थी। नयन जुड़ा रहे थे सुबह-सुबह शान्ति, करुणा और काव्य के संगम-स्वरूप इस व्यक्तित्व के दर्शन करके। दुनिया को आज विषम और विध्वंसक परिस्थिति से मुक्ति की दिशा देनेवाला व्यक्तित्व करुणा का सागर और शांति का उपासक तो है ही, लेकिन उसके जीवन की हर तरंग काव्यमय भी है। तभी तो उंगलियाँ अक्सर लयबद्ध नाचती रहती हैं, कण्ठ से धीमी-धीमी गुनगुनाहट की ध्वनि निकलती रहती है।

सिर्फ तीन दिनों पूर्व सूचना मिली थी कि बाबा काशी होकर गया जायेंगे। 'सुप्रीम कमाण्डर' आखिरी निर्णय अपने हाथ में रखता है, उसमें 'इफ' (अगर) का कोई स्थान नहीं होता, यह हम जानते हैं। बाबा ने अपने उस अधिकार का उपयोग किया और मुजफ्फरपुर, बड़हिया, नवादा होकर गया जाने का कार्यक्रम रद्द कर दिया। इच्छा हुई 'काशी-दर्शन' की, 'मित्र-मिलन' की, और आ गये।

बाबा काशी आ रहे हैं, इस निमित्त से कुछ कार्यक्रम झटपट तय किये गये। यद्यपि दशहरे की छुट्टियों और विभिन्न प्रकार के आयोजनों के कारण समय उतना अनुकूल नहीं था, लेकिन उत्तर-प्रदेशदान का संकल्प है, आचार्यकुल के संगठन की योजना है, तो बाबा के आगमन का भरपूर लाभ लेने की चेष्टा करनी ही है। कार्यक्रम बन गये, कई एक।

लेकिन बाबा ने पहुँचते ही पूछा, "सम्पूर्णानन्दजी कैसे हैं?" "हालत अच्छी नहीं।" जवाब मिला। "तो हम आज ही उन्हें देखने जायेंगे।" बाबा ने कहा। घटना सुनी थी कभी धीरेन्दा से कि पवनार आश्रम में कुछ लोग बाबा से मिलने गये, लेकिन वे खेत में काम कर रहे थे। घंटों इंतजार किया, लेकिन बाबा ने उनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। और आज देख रहा हूँ कि बाबा 'मिलन' के लिए काशी आये हैं, और यहाँ आने के बाद का पहला कार्यक्रम है—रोगशय्या पर पड़े हुए सम्पूर्णानन्दजी को देखने जाना। व्यक्तित्व के विभिन्न रूप, साधना की विविध दिशाएँ, लेकिन जीवन-प्रवाह का एक अखण्ड क्रम, जिसमें मानवहृदय की अतुल गहराई और विराट व्यापकता, दोनों साथ-साथ!

सर्व सेवा संघ के कार्यकर्ताओं से पारिवारिक ढंग की चर्चा में बाबा ने बोध दिया, भाव दिया, प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया, लेकिन सबसे अधिक प्यार दिया। बच्चे उनकी बतायी-सिखायी ध्यान, भक्ति, ज्ञान और कर्म की मुद्राओं को जब देखिये तब दुहराते रहते हैं।

डा० सम्पूर्णानन्द से ४ बजे शाम को मिले तो देर तक उनके दोनों हाथ अपने हाथों में थामे रहे, फिर नब्ज देखी, डाक्टर से हालचाल पूछा, और चलते-चलते डा० सम्पूर्णानन्द से कहा, "काशी में कोई काम नहीं था, मिलने आया था, तो यहाँ आपके पास आया। परमात्मा आपको शान्ति दे, यही प्रार्थना करता हूँ। जय जगत्।" करीब-करीब बेसुध-से डा० सम्पूर्णानन्द अब जीवन का आखिरी अध्याय पूरा कर रहे हैं। पलकें कभी-कभी खुलती थीं, होंठ कुछ काँपते थे, लेकिन आवाज नहीं निकल पाती थी, किसी प्रकार कह पाये, "...बड़ी...कृपा...।"

२ अक्तूबर को हजारों श्रोताओं के बीच टाउन हाल के मैदान में पूरे एक घंटे का प्रवचन। बाबा उत्तरप्रदेश में आते हैं तो अपनी 'सूक्ष्म' की मर्यादा से बाहर चले जाते हैं। तिसपर आज गांधी-जयन्ती। कहा कि यह आत्म-परीक्षण का दिन है। अपनी आत्म-परीक्षा करते हुए अपने कर्तृत्व का त्रिविध विभाजन कर डाला—"जो कुछ अच्छा कर सका, बापू के नाम के प्रभाव से, जो कुछ बुरा किया, वह अपनी कमी से, और जो कुछ नहीं कर सका, वह भगवान की मर्जी से।" (पूरा भाषण अगले अंक में पढ़ें।)

शाम को काशी के विद्वानों और प्रमुख नागरिकों की मुलाकात के समय वाराणसी के मेयर ने पूछा, "गांधी के बाद इस देश का श्रद्धा-केन्द्र कोई है नहीं, इसलिए एकता और समग्रता का पूर्ण अभाव है। क्या ऐसा कोई केन्द्र हो सकता है?" बाबा ने कहा, "आगे आनेवाला जमाना गण-सेवकत्व का है। तटस्थ सेवकों की जमात ही देश की श्रद्धा का केन्द्र हो सकती है, महान-से-महान व्यक्ति भी नहीं। यह सर्व सेवा संघ है तो छोटी जमात, लेकिन तटस्थ सेवकों की है। उसकी शक्ति सब लोग बढ़ाइये और मिलकर उसे देश की श्रद्धा का केन्द्र बनाइये।"

३ अक्तूबर को बाबा ने प्रदेश के तथा पूर्वी जिलों के कुछ कार्यकर्ताओं को (वाराणसी और पड़ोसी जिलों के अधिक थे) उद्बोधित करते हुए अध्ययन पर जोर दिया और कहा, "हमारे कार्यकर्ता चरखा, करघा, चक्की, घानी के झमेले में इस तरह उलझे रहते हैं कि वे कोल्हू के बैल की तरह हो जाते हैं। जितनी बड़ी जिम्मेदारी है, उसके लिए उतने ही अधिक अध्ययन की जरूरत है।"

शाम को 'आचार्यकुल' की गोष्ठी वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में हुई। बाबा को १०० डिग्री ज्वर हो आया था, फिर भी वहाँ गये और आचार्यकुल की दिशा का निर्देश करते हुए आचार्यों को राजनीति से अलग और मत की सीमाओं से ऊपर उठने की सलाह दी।

काशी बाबा की श्रद्धा और आशा का केन्द्र है। उनको पूरी आशा है कि यहाँ आचार्यकुल और प्रदेशदान की शक्ति प्रकट होगी।

रात को चलते-चलते 'तूफान' के आराधक को प्रकृति ने 'तूफानी' सलामी देकर विदाई दी। तेज ठंडी हवा के साथ वर्षा हो रही थी। बाबा 'गया' की ओर गये, यह आशा मन में पैदा करके कि फिर...फिर काशी आयेंगे!

—राही

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे

संकोच नहीं है। किस्मत का खेल खेलाकर आमदनी करने में भी संकोच नहीं रहा। क्या यह माना जाय कि अब सरकारी वेश्यालय के दिन दूर नहीं रह गये हैं?

यह कहना निरर्थक है कि लाटरी निर्दोष व्यसन है जिसका विरोध करना पाखिण्डवाद के सिवाय और कुछ नहीं है। यों ही हमारे देश के जीवन का नैतिक ताना-बाना ढीला हो गया है। हमारे लिए पैसा परमेश्वर बन गया है। मुख्य जीवन के मूल्य उपहास और अनास्था के विषय बनते जा रहे हैं। सेक्स, हिंसा, सिनेमा, शराब और जुए के साथ लाटरी को रखकर हम सोचेंगे तो साफ दिखायी देगा कि मेहनत के सिवाय दूसरे किसी ढंग से की गयी कमाई पतन का कारण बनती है। पतन का बढ़ावा कम-से-कम सरकार तो न दे?

सच बात यह है कि अगर हमारी सरकारें जनता के कल्याण की चिन्ता थोड़ी कम कर दें तो जनता का बड़ा भला हो। ●

भारत में ग्रामदान 'प्रखण्ड'दान जिलादान

१.	दरभंगा	जिलादान में प्रखण्डदान	४४	ग्रामदान	३,७२०
२.	पूर्णिया	,, ,,	३८	,,	८,१५७
३	मुजफ्फरपुर	,, ,,	४०	,,	३,६१७
४	चम्पारण	,, ,,	३६	,,	२,८९०
५	सहरसा	,, ,,	२३	,,	२,३६०
६	सारण	,, ,,	४०	,,	१,०५१ (अपूर्ण)
७	तिरुनेलवेली	,, ,,	३१	,,	२,८६६
८	बलिया	,, ,,	१८	,,	१,४६६
९	उ० काशी	,, ,,	४	,,	५९६
१०.	टीकमगढ़	,, ,,	६	,,	७७०

भारत में	जिलादान	१०	प्रखण्डदान	४५०	ग्रामदान	७१,७२८
बिहार में	,,	६	,,	२७२	,,	३०,२६८
उ० प्रदेश	,,	२	,,	४६	,,	८,५५८
तमिलनाड	,,	१	,,	५०	,,	५,२०२
मध्यप्रदेश	,,	१	,,	८	,,	३,२६७

दि० १०-१०-१९६८ —कृष्णराज मेहता

देश के आर्थिक जीवन में गलत प्रवाह

उसे कैसे रोकें?

गांधी दर्शन के अनन्य भाष्यकार स्व० श्री कि० घ० मशरूवाला ने हिन्दुस्तान के गाँवों का जो चित्र आजादी के पहिले खींचा था वह आज भी ज्यों का त्यों बना है —

"हिन्दुस्तान गाँवों में बसा है यह बात तो बारम्बार कही गयी है, पर हिन्दुस्तान की संपत्ति सम्बन्धी आज की अधिकांश योजनाएँ गाँवों के हित की दृष्टि से नहीं बनायी गयी हैं। इसका नतीजा यह हुआ है कि गाँवों का कच्चा माल शहर में पटता है तथा शहरों में बने पक्के माल से गाँवों को पाटने की कोशिश की जाती है। जीवन के बहुतेरे साधन जो गाँव के खेतों और जंगलों में लगभग मुफ्त मिल सकते हैं, उनके बदले शहरों और विदेशों में बना हुआ देखने में थोड़ा-बहुत सुविधाजनक लेकिन अधिकांश में दिखावे के लिए ही आवश्यक और अच्छा लगनेवाला माल काम में लाने का फैशन बढ़ जाने से देहात के बहुत-से उद्योग और मजदूरी के धन्धे नष्ट हो गये और होते जा रहे हैं। ऐसा अधिक आकर्षक सामान आरोग्य और स्वच्छता की दृष्टि से हानिकारक और गन्दा भी होता है, खर्चीला तो होता ही है। ये सब चीजें गाँव की वस्तुओं से सस्ती पड़ती हों सो बात नहीं है।

"इसके सिवा व्यापारियों की अनुचित और तुरन्त मुनाफा कमा लेने की स्वार्थ दृष्टि ने बहुत-सी देहाती माल को मशीन के माल की अपेक्षा पक्के में महँगा न होते हुए भी, खरीददार के लिए महँगा बना दिया है। इससे जो बाजार सहज में देहात के हाथ में रह सकता है वह भी कारखानों और विदेशियों के हाथ में चला गया है।

"जब अर्थशास्त्र और जीवन में ग्रामदृष्टि का प्रवेश होगा तब देहात की बनी चीजों का अधिकाधिक उपयोग करने की ओर जनता का मन मुड़ेगा।

"इस प्रकार आज संपत्ति देहात से शहरों में चली जा रही है और देहात हर दृष्टि से कंगाल होते जा रहे हैं।'

इस प्रवाह को बदलने की जरूरत है। यह कैसे बदलेगा?

त्रिविध कार्यक्रम (ग्रामदान, ग्रामाभिमुख खादी एवं शांति-सेना) के जरिये आप इस प्रवाह को बदल सकते हैं।

सन् १९६९ गांधीजी की जन्म-शताब्दी का साल है।

आइए, इस प्रवाह को बदलने में सब जुट जायें।

राष्ट्रीय गांधी जन्म-शताब्दी समिति की गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति द्वारा प्रसारित

अपना हृदय मुक्त रखते हुए जहां-जहां से सत्य का जितना भी अंश मिला उतना साभार स्वीकार करते हुए आगे बढ़ा। यह मिसाल हमारे लिए पर्याप्त है। उसका अनुवर्तन, अनु- सरण, जितना अपने से हो सके, करने की कोशिश करें और आज के दिन आत्म-निरी- क्षण परीक्षण करके चित्तशुद्धि पूर्वक भगवान की शरण में जायें।

बाबा एक सामान्य-जन

मैंने कहा, हमको कोशिश करनी चाहिए अनुवर्तन की। और 'मारग में तारण मिले सन्त राम दोई, सन्त सदा शीश ऊपर राम हृदय होई।' ऐसे हृदय में रामजी को साक्षी रख- करके बाबा ने इतना सोचा कि हम सामान्य- जन हैं। सामान्य जनों की सेवा में हमसे जितना हो सकता है किया जाय। जो राह गांधीजी ने दिखाई अहिंसा की राह, प्रेम की राह, गांधीजी के जाने के बाद, उस पर चलने की कोशिश बाबा ने की। और एक रास्ता मिल गया ग्रामदान का। अभी श्री राममूरत भाई ने आपके सामने जिक्र किया कि वाराणसी जिला ग्रामदान करने की कोशिश हो रही है। और उन्होंने कहा कि इस साल तक या जनवरी तक जिलादान हो सकेगा। मालूम नहीं ३० जनवरी बताया कि क्या बताया, कोई अच्छा दिन बताया होगा।

यह हमलोगों का दुर्भाग्य है कि शुभ दिन हमको दूर ढकेलने में मदद करते हैं।

एक जगह हम गये थे एक बड़े नगर में। उनका नाम नहीं लेना चाहते आज हम। उन्होंने हमको मानपत्र समर्पण किया और क्या क्या संकल्प किया है म्युनिसिपैलिटी में या नगर निगम में उसका वर्णन किया—'दो साल पहले की बात है कि हमने तय किया कि भंगियों की कष्टमुक्ति के लिए, जो आज सिर पर रख कर मैला ढोते हैं, उनको गाड़ी देने का प्रयत्न करेंगे और गांधीजी के जन्मदिन तक उसे पूरा करेंगे। तो मैंने उनको कहा कि मान लीजिए कि गांधीजी की जयन्ती के दो महीने पहले यह हो जाय तो गांधीजी नाराज होंगे क्या?

तो हमको भी समझना चाहिए कि ३० जनवरी एक पवित्र दिन है इसमें कोई शक नहीं; लेकिन आज का दिन सबसे ज्यादा पवित्र है। यह हमको महसूस होना चाहिए। 'कल को जाने कल को' कल का दिन है कि नहीं भगवान जाने।

यात्री-मानस की आत्म प्रवंचना

इस वास्ते अगर हो सकता है तो यह काम आज होना चाहिए पूरा आज नहीं होना है तो कम-से कम कल पूरा हो जाय। लेकिन हम यह तय करें कि ३० जनवरी एक अच्छी तारीख है तो उस तारीख तक हम पूरा करेंगे यानी अपने कार्य को उतना दूर ढकेलेंगे, इसको हमने यात्री-मानस नाम दिया है। यात्री क्या करता है? जो भगवान अपने हृदय में अधिष्ठित है उसको यहां से बारह सौ मील ढकेल देता अमर नाथ, और कहेगा अमर नाथ जा रहा हूं भगवान का दर्शन करने के लिए। खुद ही उसे ढकेल दिया इतनी दूर फिर उसका पीछा कर रहा है। तो इसका नाम है यात्रीमानस। यही यात्री-मानस है कि हम भी अपने काम को पीछे ढकेल दें किसी पवित्र दिन के नाम से; यह न पहचानते हुए कि आज का दिन ही हमारे हाथ में है, आज का दिन ही सबसे पवित्र है। इतनी 'आत्म- प्रवंचना' होती है, इसीवास्ते हमारी अपील है कि वाराणसी जिले जैसा उत्तम जिला— इतने महान् भक्त यहां बैठे हुए हैं उनको इतनी सारी शक्ति उपलब्ध होते हुए वाराणसी को और तीन महीने की जरूरत क्या है?

क्रान्तिकार्य कैसे होता

यहां मैं आया वाराणसी जैसे केन्द्र स्थान में, वाराणसी यानी क्या? तुलसीदास ने लिखा है "विश्व विकासी काशी।" काशी शब्द का आजकल अर्थ भी ठीक से ध्यान में आता नहीं। उसको 'प्र' उपसर्ग लगाने से अर्थ ध्यान में आता है 'प्रकाशी'। काशी धातु का अर्थ प्रकाशित होना है। संस्कृत में तो काशी कहने से अर्थ होता है प्रकाशी। सारे विश्व में प्रकाश फैलानेवाली। और ५००- ६०० साल पहले जब भारत में मुसलमानों का राज्य था, तब एक कहावत थी—इधर काशी उधर काबा।

तो दुनिया को प्रकाश देनेवाली नगरी में मैं आया हूं। और ये सारे भाई यहां बैठे हुए हैं। क्यों-न सब उठ खड़े हो जायें और लगा दें जोर १५ दिन, खतम हो गया मामला। क्रान्ति के जो काम होते हैं वे अति शीघ्र होते हैं। अगर धीरे-धीरे आप करेंगे तो कभी क्रान्ति होनेवाली नहीं है। 'अगर हम पुण्य कार्य धीरे करते हैं तो पाप जोर करता है। हम 'वैकुअम' में काम नहीं कर रहे हैं। ऐसा नहीं है कि पाप चुप है। 'अगर पाप चुप हो, तब हम धीरे धीरे पुण्य-कार्य करेंगे, कोई हर्ज नहीं। पाप का जोर है और ऐसी हालत में पुण्य कार्य हम धीरे-धीरे करेंगे तो पाप जोर करेगा।

क्या कहा जाय काशी के वर्णन में? कौन नहीं रहा काशी में? बुद्ध रहे, महावीर रहे, शंकर रहे, रामानुज रहे, वल्लभ रहे, तुलसी दास रहे कबीर रहे, शंकरदेव रहे, माधवदेव रहे, एकनाथ रहे, रामदास रहे, कौन नहीं रहा? इसलिए आपलोग अगर सोचो तो— सिर्फ वाराणसी ही नहीं, लोगों ने संकल्प कर रखा है कि इस साल के अन्त तक सारा उत्तरप्रदेश ग्रामदान में लायेंगे—ये छोटी चीज नहीं। गंगा शुरू होती है तो छोटी-सी धारा के रूप में, लेकिन गंगा-सागर में जहां पहुंचती है वहां एकदम विशाल रूप प्रकट होता है।

भूदान-गणित

यह (ग्रामदान) धारा शुरू हुई थी सौ एकड़ दान द्वारा। हो गये उसको १७ साल। १७ साल पहले एक गांव में हरिजनों की मांग पर हमको १०० एकड़ मिला था। हमने उस रात में बेचैन होकर भगवान के साथ प्रश्न किया और उसको पूछा कि क्या किया जाय? तो भगवान ने कहा—'तू उठ लग काम में कल से, भूदान प्राप्ति का काम कर' बाबा का पहला विश्वास है भगवान पर, दूसरा विश्वास है गणित पर। तो बाबा ने गणित कर लिया। हिन्दुस्तान में ५ करोड़ भूमिहीन लोग हैं और एक एकड़ एक आदमी को देना है तो ५ करोड़ एकड़ प्राप्त करना होगा। और भारत में ३०-३५ करोड़ एकड़ जमीन है तो छठा हिस्सा प्राप्त करना होगा—सारे भारत का छठा हिस्सा। तो

अन्दर पूछा गया कि इतना माँगते फिरेंगे तो क्या इतनी जमीन दान में मिल सकेगी ? तो भगवान ने कहा—'देखो, जिसने बच्चे के पेट में भूख रखी उसने माता के स्तनों में दूध रखा। वह अधूरी योजना नहीं करता। इसलिए यह इशारा समझकर तू काम में लग।' और दूसरे दिन से मैंने काम शुरू किया, बिना किसी से 'कन्सल्ट' किये। अगर मैं कन्सल्ट करता, सलाह मशविरा लेता, तो हमारे प्यारे-से-प्यारे जो साथी थे, वे सलाह देनेवाले नहीं थे कि इस 'ऐडवेन्चर' के लिए निकल पड़ो। इस जमाने में यह एक मूर्खता मानी जायेगी। इस वास्ते हमने किसी को 'कन्सल्ट' नहीं किया। हो गया हमारा सम्बन्ध भगवान से—और शुरू कर दिया।

यह जो छोटी-सी धारा निकली सौ एकड़ दान की, वहीं अब प्रखण्ड-के-प्रखण्ड दान हो रहे हैं और बिहार ने तो प्रस्ताव किया है प्रान्तदान का और आधा हो चुका, उत्तर बिहार जिसको कहते हैं—९ जिले पूरे-के-पूरे। उत्तर प्रदेश के १५ जिले समझ लीजिये। एक-एक जिला ४० लाख का है। वह सब ग्रामदान में आ गये। यह सारा होगा उसके बाद ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करनी होगी। गाँव-गाँव में काम खड़ा करना होगा। बहुत बड़ा कार्यारम्भ हो रहा है। यह कोई कार्यसमाप्ति नहीं है। यह तो बुनियाद बन रही है। लेकिन १०० एकड़ दान से प्रान्तदान की भाषा बोलने लगे। उत्तर प्रदेशवालों ने संकल्प किया प्रान्तदान का।

मंदमति सज्जनों की चाह : हमारी राह

और हमारे राजनीतिक साथी, मालूम नहीं क्या उनके दिमाग में है! इतना 'डल' देखता हूँ—उन लोगों का दिमाग। उनसे बढ़कर मंद मति मैंने पाया नहीं। हैं बेचारे सज्जन लोग, इसमें कोई शक नहीं। अनेक सज्जन पड़े हैं कांग्रेस में, अनेक सज्जन पड़े हैं पी० एस० पी० में, अनेक एम० एस० पी० में। अनेक पार्टियाँ हैं और उन पार्टियों में अनेक सज्जन हैं इसमें कोई शक नहीं। उनकी सज्जनता के बारे में मुझे कुछ कहना नहीं है। वे चाहते यही हैं कि हमारे हाथ में सत्ता आये, ताकि हम सेवा करें, सत्ता के द्वारा सेवा। लेकिन भगवान बुद्ध ने क्या रास्ता दिखाया ? उनके हाथ में राज्यसत्ता थी, सारी की सारी छोड़कर निकले। क्या वे बेवकूफ थे ? अगर उनको जरा भी खयाल होता कि सत्ता के द्वारा कोई सेवा हो सकती है तब तो उनके हाथ में सत्ता थी ही। वह सब छोड़कर निकले तब काम हुआ। यह हमारे लोगों को सूझ नहीं रहा। सारे इकट्ठा हो कर, नाना प्रकार की चर्चा करते हैं कि इसके-उसके साथ मेल मिलाप करो। इसके साथ तोड़ो, उसको साथ फोड़ो, जोड़ो, तोड़ो, फोड़ो—तीनों कार्यक्रम चलाये गये, और क्या ऊधम मचाये गये, उत्तर प्रदेश में। और क्या ऊधम मचाया बिहार में। और इन लोगों की सम्मिलित अकल का परिणाम यह है कि यहाँ और वहाँ गंगा मइया के प्रदेश में राष्ट्रपति का राज्य चल रहा है। इसका कारण क्या है ? अकल नहीं।

समाज की सेवा प्रथम करें यह सोचते नहीं। हमको मिले सत्ता का अधिकार फिर करेंगे सेवा। अरे तुमको सत्ता क्या सोच करके दें ? क्या तुम्हारा मुँह देख करके ? कोई सेवा तो की नहीं। 'सेवा तो की नहीं, सेवा करेंगे ?' मैंने कहा, आओ जरा मैदान में। गाँव-गाँव में जाओ, लोक संपर्क करो, लोगों की सेवा करो, तब लोग तुमको खुशी से ऊपर भेजेंगे, अगर ऊपर भेजना चाहेंगे तो भेजेंगे ऊपर! जिसका नसीब कम होगा उसको भेजेंगे ऊपर। जिसका मजबूत होगा उसको कहेंगे कि तू गाँव की सेवा के लिए रह जा। अच्छा आदमी है। तेरा उपयोग इस गाँव में होगा। दूसरे लोग हैं तो उनका उतना उपयोग नहीं है। तेरा दिमाग गाँव में उतना नहीं चल सकता, जा तुझे ऊपर भेज देंगे, जा! यों करके सर्वोत्तम पुरुषों को गाँव की सेवा के लिए रख लेंगे, गाँव-गाँव की सेवा के लिए; और गौण पुरुषों को वहाँ भेज देंगे। गौण याने गुणवान! कोई न-कोई गुण हैं उनमें इस वास्ते वे गौण पुरुष हैं।

मुझसे धीरेन्भाई कहते थे कि गांधीजी के जमाने में जो आन्दोलन हुए, उनमें हमें गाँवों में जाना ही नहीं पड़ा। लखनऊ, कानपुर, काशी, प्रयाग, कलकत्ता, पटना आदि नगरों में हुआ कुछ, चले इधर-से-उधर। अखबारों में प्रचार किया गया। जुलूस निकाले गये, होहल्ला हुआ। क्योंकि कार्यक्रम सारा 'निगेटिव' था, अंग्रेजों को यहाँ से हटाना था! वे कितने बेचारे दो लाख, तीन लाख! आज वह सारा राज्य हमीं चला रहे हैं। तो हमारी भावना उसमें से हट जाय तो वे कहाँ रहनेवाले थे। वह 'निगेटिव' कार्यक्रम था तो हमको गाँव-गाँव में जाने की जरूरत नहीं पड़ती थी। वह राज्य उनका यहाँ हमींने चलाया, हमारे मन में से वह हट गया तो हट गया।

आन्दोलन देने का, न कि लेने का

अब यह देने का आन्दोलन है, लेने का नहीं। वह तो लेने का था। अब इसमें हरेक को अपना थोड़ा हिस्सा देना है। ग्रामसभा को जमीन देना, मिल्कियत का हिस्सा देना, अपना अंश देते रहना, अर्थात् यह देने का आन्दोलन है आदमी लेने में तो हमेशा जोर लगाता है, लेकिन देने में जरा ढीला पड़ता है। तुलसीदास ने कहा है, अरे भाई, 'येन केन विधि दीजै दान, करे कल्याण।'

मानव को भगवान का विशेषदान

अरे भाई हाथ दिये कर दान रे! हाथ काहे के लिए दिये हैं ? किसीको तमाचा मारना है, तो ये हाथ काम में आते हैं, किसी को नदी में ढकेल कर डुबोना है तो भी काम में आते हैं। यह हाथ का उपयोग है क्या ? मानव को हाथ दिया किन्तु दूसरे प्राणियों को नहीं दिया। मानव को विशेष दान है भगवान का—उत्तम वाणी और दो हाथ, एक हाथ नहीं! इसलिए दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानों काम।' यही सयानों काम! कबीर कह रहा है—यही अकल का काम है। यह कोई बहुत बड़ी उदारता या बहुत बड़ा परोपकार का काम नहीं, अकल का काम है। अगर तुम्हारे घर में दाम बढ़ा है तो खतरा है। उस खतरे का अनुभव भारत को हो रहा है।

गलत प्रकार का यहाँ 'आर्गेनाइजेशन' हुआ। उसके कारण नीचे के स्तर में कुछ काम नहीं हुआ, अब उससे ऊपर के स्तर में पैसा बढ़ा, बड़े-बड़े कारखाने खुल गये।

खेती वैसी-की वैसी रही। आदेश आया था कि अन्नं बहु कुर्वीत तद् व्रतम्। तुम व्रत करो कि अन्न बढ़ाना है। और यह कौन कह रहा है? उपनिषद् कह रही है, ब्रह्मविद्या की किताब कह रही है। अन्नं बहु कुर्वीत तद् व्रतम्। यह तुम व्रत लो। क्यों व्रत लेने के लिए कहती है अन्न उत्पादन का? इसलिए कहती है कि अगर अन्न उत्पादन नहीं हुआ तो मनुष्य मनुष्य को खायेगा। करुणा नहीं रहेगी, और जहाँ करुणा नहीं, वहाँ ब्रह्मविद्या है ही नहीं। इसलिए ब्रह्मविद्या का आधार करुणा और करुणा के लिए 'अन्नं बहु कुर्वीत।' यह तो हम भूल ही गये।

भिखमंगा देश भारत को भीख मांग करके अनाज लाना पड़ता है, शरम होनी चाहिए। लेकिन यह कहा जाता है कि भारत कृषि प्रधान देश है। कृषि प्रधान के मानी ध्यान में आया कि नहीं? कृषि प्रधान यानी उद्योग शून्य देश। कहने को कहते हैं कृषि प्रधान। उद्योग तो यहाँ हैं ही नहीं, जो कुछ है तो कृषि है। और उस कृषि की तरफ भी ध्यान नहीं दिया। और ऊपर-ऊपर के कुछ उद्योग चला दिये। परिणाम यह हुआ कि 'मिडिल क्लास' के और ऊपर के क्लास के हाथ में पैसे आ गये। और उतना अनाज है नहीं, तो भाव बढ़ गये। तो यह सारा जो सिलसिला चला, चक्र, दुष्टचक्र, उसका परिणाम यह हुआ कि पैसे आ गये घर में। तो परिणाम क्या हुआ? नाना प्रकार के सिनेमा, नाना प्रकार के फैशन बढ़े। क्या भारत में दूध बढ़ा प्रति व्यक्ति?

दुष्टचक्र और उसका परिणाम

पाकिस्तान हिन्दुस्तान अलग होने के पहले भारत में ७ औंस दूध था, प्रति व्यक्ति ७ औंस। ७ औंस याने साढ़े सत्रह तोले। पाकिस्तान अलग होने के बाद दूधवाला बड़ा हिस्सा अलग हो गया, इस वास्ते भारत में प्रति व्यक्ति ५ औंस दूध हुआ। १९४८ की बात है। अभी वे मिले थे, दातार सिंह। गोरक्षा के बड़े भारी ज्ञाता और तज्ञ पुरुष हैं। उनके सामने हमने सवाल किया कि ५ औंस दूध में कैसे चलेगा? तो उन्होंने कहा कि आप गलती कर रहे हैं। तो मैंने कहा कि आपको जानकारी ज्यादा होगी? वे बोले, 'अभी भारत में ३ औंस दूध है, ५ औंस नहीं है। ५ औंस सन् '४८ की बात है।' क्या मुनियेगा गोरक्षा? ३ औंस दूध में काम चलेगा भारत का? अमेरिका में ढाई पौंड है दूध प्रति व्यक्ति। मांस तो खाते ही हैं, अनाज भी है ही। साथ में ढाई पौंड दूध है प्रति व्यक्ति, और यहाँ है प्रति व्यक्ति ३ औंस। तो दूध तो नहीं बढ़ा। तो क्या प्रति व्यक्ति अनाज बढ़ा? नहीं बढ़ा। तो क्या प्रति व्यक्ति तरकारी बढ़ी? नहीं बढ़ी। फल बढ़ा? नहीं बढ़ा। तो क्या बढ़ा? सिगरेट बीडी बढ़ी, चाय बढ़ी, और तरह-तरह के व्यसन बढ़े।

खतरा टलेगा, लेकिन कैसे?

मैं समझा रहा था—पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम, खतरा नं० १। इसलिए दोनों हाथ उलीचिये, दान दीजिये, दोनों हाथों से दीजिये, एक हाथ से नहीं! यह दान की वृत्ति अगर भारत में चलेगी तभी कवि-भाजन होगा। दानं संविभाग.! दान का यह भी अर्थ जरा समझना चाहिए।

काशी नगरी विद्वानों की नगरी है। मैं तो कोई इतना विद्वान् मनुष्य नहीं हूँ। मुझे अनेक भाषाओं का साहित्य पढ़ने का थोड़ा-सा मौका मिला है, इसलिए कुछ कह सकता हूँ—'दा' धातु के संस्कृत में दो अर्थ हैं—एक है काटना, और दूसरा है देना। दो अर्थ हैं 'दाकड्म'। 'दाकड्म' याने काटने का साधन। बंगाली में भी ऐसा ही शब्द है—मैं भूल गया उसको। असमिया में भी यही 'दा' माने काटना, उससे 'दाकडम्।' 'दा' मानी देना। दोनों धातु इकट्ठा होने पर—'काटो और दे दो।'

आशय यह है कि अपना थोड़ा काटना चाहिए। जो अपनी खास चीज है उसे काट-कर थोड़ा दूसरे को देना—इसका नाम है दानम्। काटना और देना—दा धातु इकट्ठा हो करके दान बना, यह ध्यान में ले करके शंकराचार्य ने 'दानं संविभाग.' कहा और गौतमबुद्ध ने भी यही शब्द इस्तेमाल किया। इसका मतलब—यह शब्द, यह व्युत्पत्ति भारत को मान्य उत्पत्ति है, बुद्धों के प्राचीनकाल से मान्य है। ऐसा उसका अर्थ होता है।

गाँव-गाँव को पाँव पर खड़ा करने का मार्ग

मैं कह यह रहा था कि एक मार्ग हमको मिलता है जिस आधार से हम गाँव-गाँव को खड़ा कर सकते हैं और गाँव-गाँव अपने पाँव पर खड़ा हो जायेगा तो 'करेक्शन' होगा। जो-जो गलतियाँ होती हैं सरकारों से, उन सरकारों की गलतियों का 'करेक्शन' होगा, अन्यथा हिन्दुस्तान की जनता डूब मरेगी।

मैं देख करके आया हूँ वह नक्सलबाड़ी का क्षेत्र। मैं उसके नजदीक गया था। लोग मिलने आये तो मैंने उनको प्रेरित किया ग्रामदान के लिए और ग्रामदान वहाँ शुरू हुआ। उन लोगों ने तीर कमान ले करके शुरू कर दिया था क्रान्ति का आन्दोलन, छीन लेना जमीन लोगों की। मैंने कहा—'कैसे मूर्ख हो रे, आप लोग। अगर सफल हो सकते इसमें तो बाबा राजी था।' बाबा हर हालत में स्टेटको पसन्द नहीं करता, बशर्ते कि आप सफल हो। लेकिन आप कैसे मूर्ख हैं कि आपने ही सत्ता दी, 'गवर्नमेंट' को मिलिटरी रखने की जिम्मेदारी दी, और आप हाथ में एक चाकू ले करके, एक धनुष ले करके आयेंगे क्रान्ति करने को? और वह सरकार 'मिलिटरी' भेजेगी, तोपें चलायेगी, तो उस हालत में आपका क्या होगा? यह निरी मूर्खतावाली बात होगी। इसवास्ते आपसे भारत में क्रान्ति हो नहीं सकती।

आपको समझना चाहिए—क्रान्ति का सर्वोत्तम तरीका यही है, जो ग्रामदान के द्वारा चल रहा है। इसको उठा लेना सब लोग। सब पार्टीवाले उठा लें, सरकार के आफिसर लोग उठा लें, शिक्षक आदि वर्ग उठा लें। अब करें इसको, जरा उठायें जोरों के साथ। तब गांधीजी के जाने के बाद कोई पुरुषार्थ का काम हमारे हाथ से हुआ, ऐसा होगा। अन्यथा गांधीजी हिन्दुस्तान में अपमानित हैं, और दुनिया में कहीं उनका मान होगा तो होगा; ऐसी हालत हो जायेगी!

वाराणसी : २ अक्तूबर '६८

कश्मीर समस्या : विधायक दृष्टिकोण और रचनात्मक कदम की आवश्यकता

—जम्मू-कश्मीर लोक-परिषद् में श्री जयप्रकाश नारायण का उद्घाटन भाषण—

[राह चलते यह आरोप किया जाता है कि जे० पी० तो पाकिस्तान को कश्मीर का दान दे डालने की बात कहते हैं। लेकिन सच बात तो यह है कि हमारे देश में बड़ों से लेकर छोटों तक ने समस्याओं से कतराने की एक अजीब पद्धति विकसित कर ली है। श्री जयप्रकाश नारायण का प्रस्तुत भाषण उक्त आरोप को मिथ्या साबित करते हुए कश्मीर-समस्या के प्रति एक विधायक दृष्टिकोण अपनाने और रचनात्मक कदम उठाने की प्रेरणा देता है। —सं०]

मित्रो,

मैं श्री शेख अब्दुल्ला के प्रति कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने इस महत्त्वपूर्ण परिषद् का उद्घाटन करने के लिए मुझे आमन्त्रित किया। शायद आप जानते होंगे कि मैं कुछ हिचक के साथ यहाँ आया हूँ, बल्कि मैं तो इन्कार करने का ही निश्चय कर चुका था, परन्तु अन्ततः दो कारणों से मैं यहाँ आने के लिए प्रेरित हुआ। एक तो, श्री शेख साहब के प्रति मेरा प्रेम और आदर है, और दूसरा यह, कि मुझे आशा है कि दिल की गहराइयों से मैं जो अपने विचार सीधे-सादे शब्दों में व्यक्त करूँगा, उनसे एक तो आपको किसी व्यावहारिक निर्णय पर पहुँचने में मदद मिलेगी, और दूसरे, भारतीय जनमत पर भी प्रभाव पड़ सकेगा कि वे वर्तमान परिस्थिति के बारे में वास्तविक और विधायक दृष्टि अपना सकें।

आपके प्रदेश में आने का सौभाग्य इससे पहले मुझे एक बार प्राप्त हुआ था। जनवरी सन् १९४७ की बात है; तब श्री रामचन्द्र काक मुख्य मन्त्री थे और शेख साहब और उनके साथी जेल में थे। बख्शी गुलाम मुहम्मद उन दिनों दिल्ली में भूमिगत होकर काम कर रहे थे, जिससे राष्ट्रीय नेताओं का सम्पर्क बना रहे और वहाँ रहकर कश्मीर के आन्दोलन को मदद पहुँचा सकें। उन्होंने ही हमारे—उस समय मेरी धर्मपत्नी भी मेरे साथ थी—कश्मीर प्रवास का आयोजन किया था। वे हमारे साथ रावलपिण्डी तक रहे और बाद में स्व० मुन्शी अहमद दीन और 'नेशनल कान्फरेंस' के कुछ कार्यकर्ता हमारे साथ अंत तक रहे।

वह प्रवास बहुत कम समय का था और दुर्भाग्य से इस बार का प्रवास भी वैसा ही हो रहा है। उस समय में जो भी कुछ कर सका था वो यह कि जो लोग अपने की अनुपस्थिति में आन्दोलन चला रहे थे उनसे विचार-विनिमय किया और अपनी टूटी-फूटी उर्दू में, मेरा ख्याल है, हमी मुजाहद मंजिल में एक सार्वजनिक भाषण भी दिया था।

२१ वर्ष और ९ महीने के लम्बे अर्से के बाद, जो अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं से भरा हुआ अर्सा रहा है, अब पुनः इस प्रदेश में आया हूँ। परन्तु बीच की इस अवधि में यहाँ प्रत्यक्ष न आकर भी, यहाँ की बदलती परिस्थितियों से सम्पर्क रखने का मैंने प्रयत्न किया है। मेरा यह भी प्रयत्न रहा है कि अन्य समस्याओं की ही तरह कश्मीर समस्या की ओर भी देखते समय अमुक कुछ बुनियादी राजनैतिक सिद्धांतों और मूल्यों के आधार पर, जो मुझे प्रिय हैं, देखूँ। इस परिषद् में भी मैं यही करने जा रहा हूँ। शायद मुझे यहाँ यह भी कह देना चाहिए कि इन इक्कीस वर्षों में यद्यपि मेरी राजनैतिक गतिविधियों और कार्य के स्वरूपों में काफी विकास और परिवर्तन हुए हैं, फिर भी वे बुनियादी सिद्धान्त और मूल्य वैसे ही अपरिवर्तित और अक्षीण बने हुए हैं। बल्कि सच बात तो यह है कि मेरी राजनैतिक गतिविधियों और कार्यों में मुझे जो भी परिवर्तन करने पड़े हैं, वे उन सिद्धांतों और मूल्यों को कार्यगत करने के लिए।

परिषद् का महत्त्व

अब प्रस्तुत अवसर की ओर आऊँ। सर्वप्रथम मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह परिषद् अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और नाजुक है। मेरे ख्याल में, जम्मू और कश्मीर के इतिहास में यह पहला ही अवसर है कि इस प्रकार का प्रयास किया गया है। इसकी सफलता न केवल इस प्रदेश की जनता के लिए, बल्कि समूचे देश के लिए नूतन और उज्ज्वल दिन का अरुणोदय साबित हो सकती है। इसके विपरीत, इस परिषद् की विफलता से—हमेशा के लिए न भी सही, परन्तु जितनी दूर तक हम देख सकते हैं, उतने भविष्य तक तो उन राजनीतिक और मानसिक तनावों और अनिश्चय और भय के वातावरण को—जिनसे यह प्रदेश गत कई वर्षों से, खासकर १९५३ से जकड़ा हुआ है—दूर करने के सारे प्रयत्नों को धक्का लग सकता है। इसलिए मुझे आशा है कि इस परिषद् में भाग लेने वाले सब सदस्यों को इस बात का पूरा भान है कि उन्होंने कितना बड़ा दायित्व अपने ऊपर लिया है। इनके लिए विधायक दृष्टिकोण की अपेक्षा है, और अपेक्षा है अपने वक्तृत्व और पुरुषार्थ को अनिश्चय अथवा विफलता में खत्म न होने देने के संकल्प की। मैं आशा करता हूँ कि आप इस जीवन-मरण के प्रश्न पर विनम्रता और एक दूसरे को ठीक से समझने की तैयारी के साथ विचार करेंगे और इस जटिल समस्या का एक समाधानकारक हल खोजने को उत्सुक हम लोगों पर, परिस्थिति की जो मर्यादा है, उसका भी ख्याल रखेंगे।

इस परिषद् के इस विशेष महत्त्व को देखते हुए, यह बड़ी निराशा पैदा करनेवाली बात है कि प्रादेशिक कांग्रेस और जनसंघ ने इसमें भाग लेने से इनकार किया। कोई शक नहीं कि उनका इनकार अकारण नहीं है, और मैं उनका महत्त्व कम करना नहीं चाहता हूँ, लेकिन अगर किसीकी किसी से असहमति—सर्वथा असहमति—भी क्यों न हो, तब भी उसके साथ बात तक करने से इनकार करना न तो रचनात्मक कदम है, न ही लोकतंत्र की भावना के अनुकूल है। मुझे मनुष्य की विवेक-बुद्धि पर भरोसा है, और मैं मानता हूँ कि आदान-प्रदान—जो लोकतंत्र की एक मूल भावना है, के आधार पर हम विचार

इस अंक में

• २१ अक्तूबर, '६८

वर्ष ३, अंक ५] [१८ पैसे

दल का दलदल, पुलिस की छाया, बाजार की माया

रात को हरिहर काका के यहाँ रामायण-कथा-चर्चा के लिए गाँव के बहुत से लोग जुटे थे। हरिहरकाका की दालान पर रामायण-कथा हमेशा से होती आयी है। खुद हरिहर काका खानदानी रामायणी हैं। लोग कहते हैं कि गाने-बजाने का शौक काका के घर के बच्चे माँ के गर्भ से ही लेकर आते हैं। इस बुढ़ापे में भी हरिहरकाका का गला इतना साफ, सुरीला और रोबीला है कि इलाके में उनका कोई जोड़ नहीं। रिमझिम-रिमझिम बारिश के समय जब वह ऊँची आवाज में तुलसी कृत रामायण की चौपाई—'दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई, वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई'—गाते हैं तो सुनने में बड़ा ही अच्छा लगता है। मन करता है कि बस, सुनते ही रहें।

लेकिन आज तो जगत ने पहुँचते ही 'मत, मतई और मार' वाली चर्चा छेड़ दी। बलिराम तो उतावले से हो रहे थे यह जानने के लिए कि क्या कोई लखनऊ और दिल्ली का स्वराज गाँव-गाँव तक पहुँचाने का उपाय है? 'ताड़ से गिरे खजूर पर अटके' स्वराज को 'हजूर' लोग कभी मजूर-किसान के साधारण लोगों तक पहुँचने देंगे?

हरिहर काका ने कहा, "बात यह है भाई कि धोबी तो चाहता ही है कि अधिक-से-अधिक बोझ गधे के ऊपर लद जाय। बेचारा तनिक भी 'चीं-चूं' तो करने वाले हैं नहीं, करेंगे भी तो डंडे पड़ेंगे, वही हाल हम लोगों का है।"

"क्या कहते हैं काका, क्या हम गधे हैं?" जगत नारायण को बात अच्छी लगी।

"काका की बात शुरू में कड़वी लगती ही है जगत, और सच तो कुछ-कुछ कड़वा होता ही है!" हरिहर ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "देश की सरकार बनाने के लिए अधिक-से-अधिक 'मत' कहाँ से मिलता है? हजारों-लाखों गाँवों से या सिर्फ कुछ गिने-चुने शहरों?"

"गाँवों से।" बलिराम ने कहा।

"देश की रक्षा के लिए जो सेना बनी है, उसमें भर्ती होने

दिल्ली में अटके स्वराज्य को देश के गाँव-गाँव तक पहुँचाने का एक ही साधन है—ग्रामदान

के लिए 'मनई' अधिक-से-अधिक कहाँ से जाते हैं ?"

"गाँवों से ?" किसी दूसरे ने जवाब दिया।

"...देश के लोगों का, और देश के अधिकतर कल-कारखानों का पेट भरने के लिए 'माल' कहाँ से मिलता है ?"

"गाँवों से।"

"तो जो गाँव देश के जीवन का अधिक-से-अधिक बोझ ढोते हैं, उनकी हालत बद-से-बदतर होती जा रही है, और कुछ थोड़े से लोगों की जिन्दगी दिन-पर-दिन और अधिक रौनकवाली होती जा रही है। सालों से यह सिलसिला चलता जा रहा है। आगे भी इसे बदलने की कोई ठोस कोशिश गाँव की ओर से नहीं होती, तो इसे क्या कहेंगे ? यह 'गधापन' नहीं तो और क्या है ?" हरिहर काका ने अपनी बातें पूरी की।

कई लोगों ने काका की हाँ-में-हाँ मिलाई।

"बात तो पते की कही काका ने, लेकिन इसे सुधारने का कोई उपाय भी है ?" किसी ने पीछे से पूछा।

"जब रोग का पता लग जाता है तो इलाज भी निकल ही आता है। इस 'गधापन' रोग का भी इलाज है, लेकिन अगर हम करना चाहें तो। लेकिन दवा जरा कड़वी होती है, पथ्य परहेज कठिन मालूम होता है, जब तक कि रोगी 'आजिज' न आ गया हो।" काका ने जवाब दिया।

"तो क्या आजिज होने में अभी कोई कोर-कसर रह गयी है काका ? दिन-पर-दिन फटे हाल होते जा रहे हैं। घर में अनाज पैदा होता है तो बाजार के भाव गिर जाते हैं। साल भर की मिहनत की कमाई कौड़ी के मोलबाजार में बेचनी पड़ती है, और बाजार की चीजें खरीदो तो उन चीजों के भाव हमेशा आकाश छूने रहते हैं। और चुनाव के दंगल की तो बात ही क्या कहनी है, उसे हम सब भुगत ही रहे हैं। नेता लोग हमारे ही 'मत' से राजधानियों में कुर्सियाँ तोड़ रहे हैं, और हम यहाँ उनकी सुलगाई आग में जल रहे हैं। जो गाँव कभी एक परिवार की तरह एकमत था, चुनाव के चलते उसमें पाँच-पाँच दल हो गये हैं, कई मुकदमें आज भी चल रहे हैं। चुन जाने के बाद पीछे मुड़ कर गाँव की ओर कौन देखता है ?... और 'मनई' की बात कहते हो ? अभी पिछली ही पाकिस्तानी लड़ाई में तो गाँव के चार-चार पट्ठा जवान... राम कसम, राह चलते अगर कभी उनकी जवान बहुओं की सूनी माँग और बेजान-सी जिन्दगी पर नजर पड़ जाती है, तो कलेजा फट जाता है। काका... भगवान् जाने ये लड़ाइयाँ कब खतम होंगी... 'मनई' के 'लहू' से ये राज चलानेवाले जाने कब तक अपनी प्यास बुझाते रहेंगे ?" बलिराम ने लखनऊ में १५ अगस्त के दिन जो मजलिस देखी थी, उसी दिन से उसके पेट में ये बातें पक रही थीं, आज मौका पाते ही उसने उगल दी।

गाँव के उन चार जवानों की याद आते ही कई लोगों की आँखें गीली हो गयी। कई साल तक 'पचइया' के दिन चारों ने इलाके में कई दंगल जीत कर गाँव की शान बढ़ायी थी।

"बीती, ताहि बिसारिए, आगे की सुधि लेउ !" नन्हकू बोला।

"हाँ भाई, जो बीत गयी सो बीत गयी। कुछ करना-धरना हो तो अब आगे की बात सोचो !" जगत ने कहा।

"बताओ काका, किया क्या जाय ?" किसी ने पूछा।

"गाँव से दल का दलदल, पुलिस की छाया और बाजार की माया को निकाल बाहर करो !" काका ने कहा।

"कैसे ?" एक साथ कई लोगों ने पूछा।

"अगर वोट देना ही है, सरकार बनाने के लिए किसी को चुनकर भेजना ही है, तो क्यों न कोई हमारा अपना आदमी जाय, जो हमारी बात सरकार के सामने रख सके ? हम क्यों 'दलों' के दलदल और उनके वादों के जंगल में फँसें ? आपस की जो कलह हैं, दिन-रात लाठी चलाने की जो नौबत आयी रहती है, और पुलिस किसी-न-किसी बहाने गाँव में पैठती रहती है, हमें थाना-कचहरी, पहुँचाकर चूसते रहते का इंतजाम करती रहती है, उसे आपस की एकता की दीवाल और 'पंच-परमेश्वर' की शक्ति से गाँव के बाहर ही रोक दें। और साथ-साथ ऐसा कुछ इंतजाम करें कि खलिहान से ही फसल बाजार न पहुंचानी पड़े। बाजार-भाव जब उचित मिले तभी उपज गाँव से बाहर जाय, सो भी गाँव की जरूरत से अधिक हो उतनी ही, ताकि गाँव में कोई भूखा न रहे। जिस गाँव में गाँव का कोई आदमी भूखा सोता है, उस गाँव में 'लक्ष्मी' कभी आ ही नहीं सकती।" हरिहर ने कहा।

"बात तो बहुत अच्छी कही काका ने, लेकिन यह होगा कैसे ?" सवाल सबके सामने था।

"करने से होगा, और कैसे होगा ? कोई जादूगर जादू की छड़ी घुमाकर नहीं कर जायगा। इसकी शुरुआत के लिए ग्रामदान करना होगा।" हरिहर ने कहा।

"ग्रामदान ?" सब एक साथ चौंक पड़े !

"हाँ, ग्रामदान, यही एक ऐसा 'साधन' है जिससे खजूर पर अटके 'स्वराज्य' के फल को धरती पर लाया जा सकता है !" हरिहर ने कहा !

"लेकिन ग्रामदान है क्या चीज ?" (क्रमशः)

नयी लोकशक्ति का विकास

पिछले दिनों मुंगेर जिले के सोनो प्रखण्ड में प्रखण्डदान के सिलसिले में घूम रहा था। इस क्षेत्र के भूतपूर्व विधान-सभा के प्रतिनिधि एवं मंत्री श्री श्रीकृष्ण सिंह भी साथ थे। लोगों ने अपनी स्थिति बतायी कि पानी पड़ नहीं रहा है, धान के मर जाने का खतरा सिर पर मंडरा रहा है, ग्रामीण लोग बहुत चिन्तित हैं। साथ ही उनलोगों ने यह जानकारी दी कि गाँव के एक अच्छे 'आहर' की मरम्मत व्यक्तिगत ठीकेदारी के कारण पूरी नहीं हुई। वह आहर यदि बन जाय तो गाँव की जमीन के एक बड़े हिस्से की सिंचाई हो जायगी।

श्री श्रीकृष्णबाबू ने उन लोगों से जानना चाहा कि क्या गाँव के लोग खुद मरम्मत का जिम्मा लेना चाहते हैं? गाँववाले चुप होकर एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। आहर की मरम्मत का ठीका बी० डी० ओ० के कार्यालय से दिया जाता है। काम किये जाने के समय से लेकर काम पूरा किये जाने तक तथा बिल की अन्तिम निकासी में उस काम से सम्बन्धित सरकारी कर्मचारी को डेग-डेग पर जिस तरह सलाम करना पड़ता है एवं घूस के बिना गाड़ी एक डेग भी आगे नहीं बढ़ती, यह बात गाँव वालों को पग-पग पर चुभती है। उस अनुभव के कारण वे अपने ही लाभ के आहर की मरम्मत का ठीका लेने की हिम्मत नहीं किये।

यह देखकर श्रीबाबू ने उनसे कहा : "यह फर्क है ग्रामदानी गाँव में और दूसरे गाँव में। गतवर्ष सूखे के समय जब बिहार सरकार पीने के पानी का कुआँ बहुत उदारता के साथ बनवा रही थी, तब उसके साधन जमुई क्षेत्र के सभी प्रखण्डों को समान रूप से मिल सकते थे, क्योंकि यह अकाल-क्षेत्र घोषित था। उस समय मेरी बहुत इच्छा थी कि झाझा, सोनो और चकाई प्रखण्डों के सभी आदिवासियों के गाँवों में पीने के पानी के कुएँ बन जाँय। इन वनवासियों को गड्ढे और नाले का पानी पीना पड़ता है। उसके कारण उनके स्वास्थ्य पर बहुत खराब प्रभाव पड़ता है। जब से मैं चुनाव में जीतकर पटना गया तब से बराबर यह कोशिश करता रहा कि आदिवासी क्षेत्रों में बनाये जाने वाले कुओं के लिए अधिक खर्च मिले, ताकि अधिक-से-अधिक कुएँ खुदवाये-बंधवाये जा सकें। पिछले सूखे के समय काफी सहूलियतें दी भी गयी। लेकिन मैं अब देखता हूँ कि इस अवसर का लाभ उन गाँवों ने खूब उठाया जिनका ग्रामदान हुआ था और उनकी ग्रामसभा बन चुकी थी।

"झाझा प्रखण्ड में, जो इस समय प्रखण्डदान में आ चुका है, पिछले सूखे के समय ऐसे ५३ गाँवों में कुएं बनवाये गये, जिनमें ग्रामसभाएं बनी है। ये गाँव इतने गरीब हैं कि अपनी औकात से वे कभी कुएँ बनवा नहीं सकते थे। यह फर्क मेरी समझ से ग्रामदान से संगठित लोकशक्ति के कारण हुआ। एक फर्क मैं और देखता हूँ। अपने दल या और दूसरे राजनैतिक दलों में जो लोग हैं, वे कम बेस सफेदपोश लोग हैं। पर झाझा प्रखण्ड में जब ग्रामदानी ग्रामीणों की प्रखण्डस्तरीय बैठक होती है, तब तो उसमें ऐसे लोगों को उत्साह से भाग लेते देखता हूँ जो गाँव के रहने वाले साधारण लोग हैं। और जो अब तक सभा-सोसाइटियों में कोरे तमाशबीन रहते थे। अब वे एक साथ बैठकर निर्णय लिया करते हैं, इसलिए उनका आत्म-विश्वास भी बढ़ रहा है।"

—हेमनाथ सिंह

सबलोग इस काम में जुट जायँ

समाजवादी कहते हैं कि विनोबा जमीन के मामले को हल करने का काम कर रहे हैं, यानी हमारा ही कार्य कर रहे हैं। मैं कहता हूँ, सच है। इसलिए आप मेरे काम में जुट जाइए। जनसंघ वाले कहते हैं कि विनोबा हमारी सभ्यता के अनुसार कार्य कर रहा है। मैं कहता हूँ कि सच है, इसलिए आप भी मेरे काम में जुट जाइए। कांग्रेसवाले कहते हैं विनोबा हमारा ही काम कर रहा है। मैं कहता हूँ सच है, इसलिए मेरे काम में जुट जाइए। सर्वोदयवाले कहते हैं कि विनोबा गांधी-तत्त्वज्ञान के अनुसार काम करते हैं। मैं कहता हूँ सच है, इसलिए आप भी इस काम में जुट जाइए।

इस काम में बहुत सारे जुट जाते हैं, तो हम कंधे-से-कंधा लगाकर यह काम कर सकते हैं। इससे हमारे दूसरे मसले भी हल हो जायेंगे। हम देश में एकता कायम करेंगे।

—विनोबा

फसल-चक्र

एक खेत में एक ही फसल लगातार नहीं बोनी चाहिये। फसलों को हेर-फेर करके बोना चाहिए। इससे भूमि की उत्पादक शक्ति नहीं घटती। इसे फसल-चक्र कहते हैं।

जैसे—यदि एक खेत में पहले साल गेहूँ, दूसरे साल अरहर और तीसरे साल गन्ना बोया जाय तो वह तीन वर्ष का फसल-चक्र होगा। इसके कई लाभ होते हैं। जैसे—

१—मिट्टी की ताकत नहीं घटती

(अ) भिन्न-भिन्न फसलों की जड़ें भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं। कुछ उथली जड़वाली तो कुछ गहरी जड़ वाली होती हैं। गहरी जड़वाली फसलें मिट्टी की गहराई और उथली जड़-वाली मिट्टी के ऊपरी भाग से अपना अधिकांश भोजन प्राप्त करती हैं। यदि गहरी जड़ों वाली फसलें ही बराबर एक खेत में बोयी जायेंगी तो वे मिट्टी की एक विशेष तह से अपना भोजन लेंगी, और खेत को बहुत कमजोर बना देंगी। इस तरह कुछ दिनों में वह खेत फसल के लिए बेकार हो जायेगा। अतः यदि उथली और गहरी जड़वाली फसलें हेर-फेर से बोई जायं तो मिट्टी को भिन्न-भिन्न तहों को शक्ति बटोरने का मौका मिलता रहेगा। इसलिए उथली जड़वाली फसल, जैसे—गेहूं, के बाद गहरी जड़वाली फसल, जैसे—कपास, बोते हैं।

(ब) भिन्न-भिन्न फसलों को भोजन के भिन्न-भिन्न तत्वों की खास तौर से आवश्यकता पड़ती है। कुछ फसलें किसी एक तत्व को अधिक लेती हैं और कुछ दूसरे तत्व को। एक एकड़ खेत से गेहूँ और तम्बाकू की फसलें क्रमशः लगभग २५ से ५० किलोग्राम नाइट्रोजन, ८ से १० किलोग्राम फासफोरिक एसिड और १४ से १५ किलोग्राम पोटाश लेती हैं। यदि एक ही फसल लगातार एक ही खेत में उगायी जाय तो मिट्टी में अवश्य किसी विशेष तत्व की कमी हो जायेगी।

२—फसलों का रोग व कीड़ों के आक्रमण से बचाव

यदि एक ही फसल या एक ही कुटुम्ब की फसलें बिना हेर-फेर किये लगातार प्रति वर्ष उसी खेत में बोयी जायं तो उस फसल के कीड़े एवं रोग बराबर पनपते रहेंगे, जिससे उपज में भारी कमी आ जायेगी। कौन-सी फसल किस कुटुम्ब की है उसकी तालिका नीचे दी गयी है। प्रति वर्ष एक खेत में एक कुटुम्ब की फसल कदापि नहीं बोनी चाहिए।

१ : लौकी कुटुम्ब—लौकी, कुम्हड़ा, पेठा या भतुआ, तरबूज, चिचिड़ा, खीरा आदि।
२ : टमाटर कुटुम्ब—टमाटर, बैंगन, आलू, मिर्चा, तम्बाकू, रसभरी आदि।
३ : गाजर कुटुम्ब—गाजर, धनियाँ आदि।
४ : कपास कुटुम्ब—कपास, भिण्डी आदि।
५ : मटर कुटुम्ब—मटर, चना, अरहर, मूँग, उर्द, मूँगफली, खेसारी, मसूर, सेम, सोयाबीन आदि। सब दलहन।
६ : सरसों कुटुम्ब—सरसों, पातगोभी, फूलगोभी, गाठगोभी, शलजम, मूली, राई आदि।
७ : पालक कुटुम्ब—पालक, चुकन्दर आदि।
८ : प्याज कुटुम्ब—प्याज, लहसुन, बनप्याज आदि।
९ : घास कुटुम्ब—मक्का, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, सॉवा, टांगुन, कोदो, गन्ना, धान, कां, बाँस आदि।

एक ही कुटुम्ब की फसल लगातार लगाने पर उस कुटुम्ब की घासें भी वहाँ अधिक उगती हैं।

३—घास का कम उगना

कुछ फसलों के साथ घासें भी उग आती हैं। जैसे—बंदगोभी, तम्बाकू या गाजर के साथ टोकरा या ठोकर। किन्तु फसल की फेरफार से ये नहीं उगतीं।

४—दालवाली फसलों के बाद दूसरी फसलों को लाभ

जब घड़ियाल के दांत मे मांस अटक जाता है तो वह किसी स्थान पर अपना मुँह खोलकर चुपचाप बैठ जाता है, नदी के किनारे। कोई कौआ उसके मुँह में घुस कर उसके दाँत का मांस खोद-खोद कर खाता है। इस प्रकार कौवे का पेट भर जाता है, और घड़ियाल का दाँत साफ हो जाता है। प्रकृति में यह क्रिया बहुत होती है। प्रत्येक दाल वाली फसल की जड़ पर आपको गाँठें मिलेंगी। ये गाँठें एक प्रकार के जीवाणुओं के कारण होती हैं। जीवाणु उनकी जड़ पर रहते हैं। वे पौधे को कोई हानि नहीं पहुँचाते। बल्कि अपने रहने के एवज में वातावरण से प्रति एकड़ १६ से ३८ किलोग्राम तक नाइट्रोजन दालवाली फसल के साथ जुटाते हैं। भूमि जितनी ही कम उपजाऊ होती है, नाइट्रोजन उतना ही अधिक इकट्ठा होता है। यह नाइट्रोजन दूसरी फसलों के काम आता है। मूँग के बाद गेहूँ बोने से उसको इस प्रकार का सहज लाभ मिलता है।

५—दूसरी फसल के लिए खेत की तैयारी में सहायता

कुछ फसलों की गुडाई के बाद अगली फसलों के लिए खेत की तैयारी में मदद मिलती है। जैसे—आलू व मूँगफली खोद कर जब खेत खाली होता है तो खुदाई से अगली फसल के लिए खेत की तैयारी में आसानी हो जाती है।

६—लागत कम

अधिक खाद चाहने वाली फसलों के बाद कम खाद चाहने वाली फसलें, जैसे—गेहूँ के बाद कपास, अधिक पानी चाहने वाली फसलों के बाद कम पानी चाहनेवाली, जैसे—धान के बाद चना बोने से अच्छा रहता है। साथ ही खर्च भी कम पड़ता है।

७—जल्दी तैयार होनेवाली फसलों से लाभ

कुछ फसलों के तैयार होने में कम समय लगता है। जब कि अन्य फसलों के लिए उनसे अधिक समय चाहिये। जैसे—गेहूँ के बाद मूँग नं० १ और अन्य खरीफ की फसलें भी ले सकते हैं। इस प्रकार जायद में चना व चीना लेकर खरीफ में भी उसी खेत में कोई और फसल ली जा सकती है।

किन्तु फसल-चक्र तैयार करते समय प्रति तीन वर्ष बाद खेत को अवश्य एक बार परती छोड़ना चाहिए। नहीं तो उसकी भी वही दशा होगी जो औरत की प्रति वर्ष बच्चा जनने में होती है। —शैलेन्द्र कुमार निर्मल, पारो, भूटान

विरोधाभास

बीरबल और अकबर बादशाह की कहानी प्रसिद्ध है। बादशाह ने हुक्म दिया कि जितने दामाद हैं, उन सबको फाँसी की सजा दी जाय। बीरबल ने बहुत-सी लोहे की सूलियाँ बनवायीं और एक चाँदी की और एक सोने की सूली भी बनवायीं। बादशाह ने पूछा : "क्यों, तैयारी हो गयी ?" बीरबल ने कहा, "तैयारी हो गयी।" और उसने बादशाह को सूलियाँ दिखायीं। बादशाह ने पूछा, "एक चाँदी और एक सोने की क्यों बनवायी ?" बीरबल ने धीरे से कहा : "चाँदी की मेरे लिए और सोने की आपके लिए, क्योंकि आप और मैं भी किसी के दामाद तो हैं ही !"

इसी तरह जो मालिकी का द्वेष करते हैं, वे खुद मिल्कियत चाहते हैं। उधर वे बड़ी-बड़ी मिल्कियत छोड़ने को तैयार नहीं और इधर ये छोटी-छोटी मिल्कियत छोड़ने को तैयार नहीं। परन्तु बड़े मालिकों से द्वेष जरूर करते हैं। लेकिन केवल मत्सर करने से शक्ति नहीं बनती।

—विनोबा

खादी की इज्जत : पर्दे की प्रतिष्ठा

दरभंगा जिले के जमालपुर गाँव में आधे हिन्दू हैं, आधे मुसलमान। दोनों प्रेम से रहते आये हैं। ग्रामसभा के अध्यक्ष दुखी चौधरी हैं और मंत्री मलीहअहमदखान। ग्रामदान-पुष्टि कार्य अध्यक्ष ने किया है, जब कि अन्य गाँवों में हमारे कार्यकर्तागण जाकर करते हैं। केदार बाबू के साथ पानी में सामूहिक श्रमदान से बाँध, सड़क, पोखर, स्कूल और मंदिर बनाये गये हैं। तुमौल गाँव में पचहत्तर प्रतिशत ग्रामीण खद्दरधारी हैं, अपने घर का बना खद्दर पहनते हैं, कोई मिलावट नहीं। सूत कातना उतना ही जरूरी मानते हैं, जितना धान उपजाना। छः लड़कियाँ एक सौ अम्बर चरखे चल रहे हैं, जिसकी आमदनी से कुछ लड़के कॉलेज में पढ़ रहे हैं। खादीभंडार के लिए लोग भूमि राजी-खुशी से बिना कुछ लिए देते हैं। गरीब-से-गरीब आदमी ग्यारह आदमियों का भोज करता है तो खादी-कार्यकर्ता को जरूर खिलाता है। इतनी अधिक इज्जत है खादी की उस गाँव में!

× × × ×

कोसी-तट पर मोमा गाँव में हमने ग्रामसभा का गठन किया। अध्यक्ष बाबा बलित यादव के परिवार में एक सौ सदस्य हैं। इतना बड़ा परिवार हमने किसी जगह नहीं देखा था। बहुत खुशी हुई। पहले चूल्हा भी एक ही था, पर घर की औरतों ने पंद्रह चूल्हे कर दिये हैं। 'बाबा' ने शिकायत की। उनके पास १०० मवेशी हैं। जमीन रेतीली है, उपजाऊ नहीं है। घास काफी है। मजदूर मालिकों से अधिक सुखी हैं। ग्रामसभा की 'सेवक-समिति' में हर जाति का प्रतिनिधि मनोनीत किया गया है। एक मुसलमान और एक बहन को भी उसमें रखा गया है। फिर पर भी बहनें घूँघट के पीछे खड़ी कारवाई सुन रही थीं। 'औरत बिना पर्दा के, पान बिना जर्दा के बेकार' — यहाँ की यह कहावत प्रचलित है इसे बदलने का समय अब आ गया है।

—जगदीश भवानी

पति-पत्नी के सम्बन्ध

प्रिय राधा,

तुमको मेरा पत्र मिला होगा। उसमें मैंने परिवार के वातावरण तथा सम्बन्धों के बारे में लिखा था। तुमको खुद भी अब इन बातों का अनुभव हो रहा होगा। तुम्हारे इस विषय में क्या विचार हैं, लिखना।

देखो, परिवार के वातावरण तथा सम्बन्धों का असर अपने निजी पारिवारिक जीवन पर भी पड़ता है। विवाह के बाद लड़की और लड़के को एक नया सामाजिक पद मिलता है। इस पद के साथ-साथ उनके कामों में भी परिवर्तन हो जाता है। पद और काम के बदलने पर दोनों को जीवन की नयी परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। तब विवाह के समय की बहुत सारी भावनाएं क्षणिक मालूम होती हैं। अब विवाह जीवन की एक स्थायी चीज बन जाती है। मन की दुनिया की सैर समाप्त करके वास्तविक दुनिया में रहना होता है। जीवन के बहुत से सुख और दुःख, रोग और भोग के अनुभव होते हैं। इनको सहने और भोगने के लिए दोनों को तैयार होना पड़ता है।

वैवाहिक जीवन में पति-पत्नी दोनों को ही अपनी जिम्मेदारियों को निभाना जरूरी होता है। पति अपनी पत्नी से सामान्य देखभाल तथा सेवाओं की आशा करता है, और उसी प्रकार पत्नी पति से अपनी सुख-सुविधा पूरी होने की उम्मीद करती है। ये आशाएं और उम्मीदें पूरी होती रहें, तो पति-पत्नी अपनी अपनी जिम्मेदारी निभाने में सफल हैं नहीं तो असफल हैं, ऐसा माना जाता है।

राधा, दाम्पत्य जीवन सफल पारिवारिक जीवन की बुनियाद माना जाता है। लेकिन आज कितने लोगों का दाम्पत्य-जीवन सचमुच सुखी है? ऊपर से देखने में लगता है कि अमुक के सम्बन्ध बहुत अच्छे हैं, लेकिन जब गहराई में जाकर देखो तो पता चलता है कि वास्तविकता क्या है। कभी-कभी सम्बन्ध शुरू में अच्छे होते हैं, बाद में बिगड़ जाते हैं, और कभी-कभी बिगड़कर भी बन जाते हैं। तुम कहोगी, ऐसा क्यों होता है?

एक नहीं अनेक कारण हैं। जैसे—रुपये-पैसे के मामले, भिन्न तरह के संस्कार और आदतें, मन की दुनिया, स्वास्थ्य और समाज का ढांचा आदि। भिन्न-भिन्न कारणों से भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में सम्बन्ध बनते और बिगड़ते रहते हैं।

मेरे पड़ोस में जो माया रहती है, उसे तुम अच्छी तरह जानती हो। विवाह के बाद जब वह ससुराल आयी तो कुछ दिनों तक पति से और परिवार के लोगों से अच्छे सम्बन्ध रहे। सबके साथ वह बहुत अच्छी तरह घुल-मिल गयी। कुछ दिनों बाद परिवार से तो जैसा सम्बन्ध था बना रहा, लेकिन पति-पत्नी में आपस में तनाव रहने लगा। परिवार में पर्दे का रिवाज था, इसलिए दोनों मे खुलकर कुछ नही होता था, पर अन्दर-अन्दर आपस मे महीनों बोल-चाल नही होती थी। खाते-पीते उठते-बैठते हर समय झनक-पटक होती रहती थी। इस तरह कुछ दिन बीते। फिर जब पति की नौकरी लग गयी और वह पैसा कमाने लगा तो दोनों में खूब पटने लगी। जानती हो पहले तनाव क्यों रहता था? बात यह थी कि माया का पति नौकरी नहीं करता था। ट्रेनिंग कर रहा था। उसमें फेल हो गया तो घर रह कर खेती करने लगा। माया को यह पसन्द नही था। पति के इस तरह रहने से उसकी जरूरतें पूरी नहीं हो पाती थीं। अब वह पति के साथ कलकत्ता में रहती है।

तनाव का कारण केवल आर्थिक ही नही होता। पति-पत्नी के आपस के तनाव के अन्य कारण भी हैं। सुनयना को तुमने देखा है। वह देखने में कितनी सुखी दिखाई देती है। अच्छे-अच्छे गहने, कपड़े, रुपये, पैसे किसी चीज की कमी नही है। उसका पति वकील है, खूब पैसे कमाता है। दोनों पति-पत्नी छुट्टियों में घूमने भी जाते हैं। पति उसकी हर इच्छाओं को पूरी करते हैं, फिर भी यह संतुष्ट नहीं है। यों तो वह पति की खूब सेवा करती है। इतने नौकर-चाकर रहते हुए भी वह पति के पांव स्वयं दबाती है। इतनी पति-परायणा होते हुए भी पति से एक दूरी-सी बनी रहती है। जानती हो किसलिए? उसके घर बहुत से लोग आते-जाते हैं। उसके पति अपने काम में व्यस्त रहते हुए भी उन लोगों को समय देते हैं, किन्तु सुनयना से खुलकर हँसने-बोलने का समय ये नही निकाल पाते। सारा सुख-वैभव रहते हुए भी पति की यह उदासीनता उसके मन को कुरेदती रहती है। यह गुबार अच्छी तरह उस समय निकलता है जब वह बीमार होती है।

तुम कहोगी कि बात कुछ नही है, सुनयना बेकार परेशान रहती है। लेकिन जानती हो, मनुष्य मन का प्राणी है। केवल सुख के साधनों के मिल जाने से ही उसे सन्तोष नहीं होता। जब जैसी आवश्यकता हो, स्त्री को पुरुष

से, और पुरुष को स्त्री से, स्नेह, सहानुभूति आदि मिलनी चाहिए। दोनों को एक दूसरे का हर तरह से ध्यान रखना चाहिए। इन बातों का ध्यान न रखने पर मन में एक तरह की अशान्ति-सी बनी रहती है। किसी भी अवस्था में सहानुभूति या स्नेह में कोई कमी होती है तो पति-पत्नी में आपसी तनाव बढ़ जाता है।

साथ, कभी कभी पति-पत्नी के व्यवहार में समाई हुई छोटी-मोटी बातें, आदतें, व्यवहार करने का ढंग भी भयंकर परिणाम लाते हैं। अब शान्ति की ही बात लो। जब वह पति के साथ रहती है तो उसके पति उसकी आदतों से बहुत परेशान रहते हैं। शान्ति जरा भी ध्यान नहीं देती है। जब उसके पति अपने मित्रों के साथ रहते हैं तो उसी बीच वह उनको डांटने-फटकारने लगती है, और उनके दोषों की चर्चा करने लगती है। उस समय शान्ति के पति हँसकर टाल जाते हैं लेकिन बाद को ये ही बातें आपस में तनाव का कारण बन जाती हैं। इसी तरह जब वह पति के साथ चलती है तो आपस की बातों में कभी-कभी इतना भल्ला कर बोलती है कि आस-पास के लोगों का ध्यान उन दोनों की तरफ खिंच जाता है। उसके पति अनुभव कर मन-ही-मन परेशान हो जाते हैं। पर शान्ति इन बातों की ओर ध्यान ही नहीं देती। उसकी यह लापरवाही दोनों को परेशान करती है। इससे तंग आकर शान्ति के पति ने शान्ति को साथ लेकर कहीं आना-जाना छोड़ दिया है। शान्ति इन बातों को धीरे-धीरे महसूस करने लगी है, दुःखी भी रहती है, लेकिन इस आदत को छोड़ नहीं पाती।

ये सब बातें ऐसी हैं जिनको तुम भी जानती हो। केवल ध्यान देने की जरूरत है। यदि इन बातों पर ध्यान दोगी तो ऐसी भूलें तुमसे नहीं होंगी। तुम कहोगी कि बच्चों के पालन-पोषण की बात करते-करते मैं कहाँ जा पहुँची। लेकिन पति-पत्नी के आपस के सम्बन्धों का प्रभाव उनकी सन्तान के जीवन की बुनियाद पर ही पड़ता है, इसलिए इतनी बातों का जिक्र करना जरूरी लगा। और बातें अगले पत्र में लिखूंगी।

तुम प्रसन्न होगी।

सस्नेह तुम्हारी,
बहन

मिट्टी का बना हुआ सुवर्ण-पात्र

एक दफा एक बड़े नेता ने हमसे पूछा कि 'आप गाँव-गाँव घूमते हैं और सब देखते हैं तो यह बताइये कि हम जो योजनाएँ करते हैं उसमें लोगों का सहयोग, उत्साह क्यों नहीं मिलता है ?'

मैंने जवाब दिया कि इसका एक ही कारण है कि लोग बैल नहीं हैं। कभी किसी किसान ने अपने बैल से पूछा है कि 'अरे बैल भैया, अभी मौसम अच्छा है, बारिश अच्छी हुई है, तो खेत में क्या बोया जाय ?'

किसान कभी बैल की सलाह लेता नहीं है लेकिन बैल का सहयोग अपेक्षित है। किसान तय तय करता है। और बैल भी यह नहीं चाहता है कि उसकी सलाह ली जाय। वह चाहता है कि उसे पूरा खिलाया जाय। आज तो बैल की सलाह भी नहीं ली जाती है और उसे पूरा खिलाया भी नहीं जाता है। इसलिए सहयोग नहीं मिलता।

हिन्दुस्तान के लोग बैल नहीं हैं। उनकी अपनी योजना हो, गाँव-गाँव की योजना हो, तो उनमें उत्साह आयेगा। योजना सरकार की नहीं, गाँव-गाँव की हो। हर गाँव सर्वोदय रिपब्लिक बनें और जैसे 'सोवियत संघ' बना है वैसे भारत आजाद गाँवों का संघ बने।

आजाद गाँवों का बना हुआ आजाद देश हो। आज तो गुलाम गाँवों का बना हुआ आजाद देश है। यानी मिट्टी का बना हुआ सुवर्णपात्र ! यह कैसे हो सकता है ? अगर मिट्टी का बना हुआ है तो सुवर्णपात्र कैसे ? और सुवर्णपात्र है तो मिट्टी का बना हुआ कैसे ? इसका मतलब यह यह है कि नाम की आजादी है।

—विनोबा

काला दिल : गोरा दिल
और
विज्ञानयुग की क्रूरता के कारनामे

पिछले साल ३ दिसम्बर को जब दक्षिण अफ्रीका से खबर आयी कि एक डाक्टर ने एक मरते हुए रोगी को एक नया दिल दे दिया तो लगा कि जो कभी नहीं हो सका था वह हो गया। अब वह दिन दूर नहीं है जब मनुष्य दिल के दर्द से या दिल के टूटने से भले ही परेशान होता रहे, लेकिन दिल के फेल हो जाने के भय से मुक्त हो जायगा। वास्तव में यह सफलता विज्ञान का अद्भुत चमत्कार थी, और उसके आधार पर पिछले एक साल में कई देशों में सफल प्रयोग हुए हैं।

लेकिन यह चमत्कार हुआ द० अफ्रीका में। द० अफ्रीका चमत्कारों का ही देश है! यहाँ के अस्पतालों की 'गोरी' ऐम्बुलेंस गाड़ियाँ काले रोगियों को नहीं ढो सकतीं। अक्तूबर '६७ से फरवरी '६८ तक १२ हजार गैलन दूध रोज पनालों में बहा दिया गया, क्योंकि दूध इतना हो गया था कि कोई पीनेवाला नहीं था, लेकिन अस्पतालों में पड़े काले रोगियों को नहीं दिया गया!

द० अफ्रीका में अगर एक ही चमत्कार होता तो कोई बात भी थी, लेकिन वह तो चमत्कारों का ही देश है—फासिस्टवादी चमत्कारों का। अफ्रीका में ही सोचा जा सकता है कि चीड़-फाड़ के लिए वहाँ से यूरोप लाशों को भेजने का भी व्यवसाय किया जा सकता है! यह सब काले लोगों से अलग-थलग रहने की गोरों की नीति का ही चमत्कार है। और, लाशें ढूंढनी भी कहाँ है? कोई भी गोरा पुलिसमैन जब चाहे चार-छः 'लाशों' को मार गिरा सकता है।

ये दिल किसके हैं जो गोरे रोगियों को दिये जा रहे हैं? क्या ये मरे हुए लोगों के दिल हैं, या मरते हुए लोगों के? चिकित्सा-विज्ञान का कहना है कि खून का दौरा बन्द होने के केवल तीन-चार मिनट के अन्दर मनुष्य का हृदय बेकार हो जाता है। लेकिन द० अफ्रीका के डा० बर्नार्ड और उनके साथी-डाक्टरों का यह दावा है कि उन्होंने इस समस्या का हल निकाल लिया है। वह हल क्या है? मरने के पहले ही हृदय को शरीर से निकाल लेने की कोई वैज्ञानिक पद्धति?

दो 'दिल-दाताओं' में से एक श्रीमती एवलिन जेकब्स थी। एक दिन वह अचानक बेहोश हो गयी, और बेहोशी की हालत में अस्पताल पहुँचायी गयी। दो दिन तक सम्बन्धियों ने मुलाकात की कोशिश की, लेकिन नहीं हो सकी। और जब खबर मिली तो यह कहने के लिए कि आकर लाश ले जाओ। लाश में दिल नहीं था। निकाला जा चुका था। पूछने पर अधिकारियों ने बताया कि रोगी का पता-ठिकाना नहीं मालूम था, इसलिए उसकी लाश पर अस्पताल का अधिकार था। दिल पर ही क्यों, गोरे को काले की आत्मा पर भी अधिकार है!

हिटलर के फासिस्ट डाक्टरों ने यहूदी रोगियों और बंदियों पर प्रयोग किये थे। अब गोरे डाक्टर कालों पर प्रयोग कर रहे हैं। दुनिया द० अफ्रीका के हृदय-विशेषज्ञ डा० बर्नार्ड के लिए 'वाह-वाह' कर रही है लेकिन क्या किसी को इतनी भी फुर्सत है कि उनसे इतना तो पूछ ले कि उनका चाकू किसका दिल निकालने के लिए तेज किया जा रहा है—गोरे का या काले का? जीवित कालों के दिल से मरते हुए गोरे बचाये जायँ, यह विज्ञान भयंकर फासिस्टवादी है, और सभ्य दुनिया को कहना चाहिए कि यह विज्ञान हमें स्वीकार नहीं है।

'गाँव की बात' : वार्षिक चन्दा : चार रुपये, एक प्रति : अठारह पैसे।
श्रीकृष्णदत्तभट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए इंडियन प्रेस (प्रा०) लि०, वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित।

करने लगें तो ऐसी कोई गुत्थी नहीं है जिसे मानव की विवेक-बुद्धि सुलझा न सके।

इस प्रदेश की समस्याएँ इतनी उलझी हुई हैं और उलझनों में डालनेवाली हैं, फिर भी देश के अधिकांश नेता इन समस्याओं के बारे में बिल्कुल गलत दृष्टिकोण रखते हैं, और आत्म-तुष्टि की कोरी बातें कहते हैं। इस स्थिति में प्रदेश की समस्याओं पर विभिन्न दृष्टिकोण रखने वाले नेताओं की यह परिषद इस प्रदेश के भविष्य के बारे में एक सर्वसम्मत राय कायम करे, तो निश्चय ही वह सही दिशा में उठाया गया कदम होगा। प्रदेश कांग्रेस और जनसंघ के नेताओं द्वारा जो सार्वजनिक वक्तव्य दिये गये हैं—इसमें कोई शक नहीं कि उनके दृष्टिकोण काफी महत्वपूर्ण हैं—उन्हें वे स्वयं इस परिषद में आकर व्यक्त किये होते, तो उससे सर्वसम्मत राय पर पहुँचने में सहायता मिलती। इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि राज्य की राजनैतिक परिस्थिति को सुलझाने का एक महान् अवसर ठुकरा दिया गया।

फिर भी जैसा कि 'लन्दन एकोनामिस्ट' के हाल के अंक में लिखा है—'परिषदों और अधिवेशनों का महत्व इस बात में नहीं है कि उनमें कौन-कौन भाग लेते हैं, बल्कि इस बात में है कि उनमें से क्या निकलता है।' इसलिए मैं आशा रखता हूँ, कि इस परिषद की निष्पत्ति नयी प्रगति का प्रारम्भ-बिन्दु साबित होगी, जो यहाँ शान्ति और सुख लायेगी, जहाँ वर्षों से अनिश्चितताओं और दुःखों का साम्राज्य है।

कश्मीर में निपटारे की आवश्यकता

इस परिषद के सामने चर्चा के लिए महत्व के प्रश्न प्रस्तुत करने से पहले, मैं उन लोगों से दो शब्द कहना चाहूँगा जो इस प्रदेश में तथा देश के अन्य प्रदेशों में भी यह दावा करते हैं कि कश्मीर में निपटारे के लिए कुछ भी शेष नहीं है। कश्मीर भी अन्य प्रदेशों की तरह, जैसे उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश, की ही तरह, भारत का अभिन्न अंग है। जो यह बात बोलते हैं वे सब के-सब वास्तव में इस प्रश्न पर एकराय नहीं रखते हैं। उदाहरण के लिए भारतीय जनसंघ तथा कांग्रेस के और भारत सरकार के भी कुछ लोग कहते हैं कि भारतीय संविधान की धारा सं० ३७० को रद्द कर देना चाहिए और कश्मीर राज्य को भारत के अन्य भागों के साथ पूरा-पूरा मिला देना चाहिए, और फिर हर भारतीय नागरिक को कश्मीर में जाकर बेरोक जमीन खरीदने और वहाँ बसने देना चाहिए।

दूसरे कुछ लोग हैं, जैसे वर्तमान मुख्य मन्त्री श्री गुलाम मुहम्मद सादिक, जो इस बात पर जोर देते हैं कि कश्मीर तो भारत का अभिन्न अंग है ही, यद्यपि चर्चा का विषय यह रह गया है कि राज्य को किस मात्रा में स्वायत्तता दी जाय। इस सामान्य धारणा में और भी कई मतभेद हैं, जैसे—(१) राज्य से जम्मू को पृथक् करना चाहिए, (२) राज्य के अन्दर उस क्षेत्र को कुछ अमुक प्रकार की क्षेत्रीय स्वायत्तता के हक दिये जाने चाहिए। इन सुझावों में भी कई भिन्न दृष्टियाँ हैं।

इसके विपरीत श्री शेख अब्दुल्ला और उनके साथ अनेक लोग हैं जो यह मानते नहीं है कि राज्य का विलयन अंतिम रूप से और अपरिवर्तनीय ढंग से हो चुका है। यदि शेख साहब महत्वहीन कोई साधारण व्यक्ति होते और उनके साथ वैसे ही कुछ मुट्ठी भर नगण्य व्यक्ति होते, तो उनकी राय की उपेक्षा की जा सकती थी। लेकिन कोई एक आध व्यक्ति अपने मन के सन्तोष के लिए यह मानने से भले ही इनकार करे, लेकिन यह हमें मानना होगा; और कुछ लोगों को यह कितना ही असुविधाजनक और अप्रिय क्यों न लगे, फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि आज भी कश्मीर में श्री शेख अब्दुल्ला बहुत महत्व का स्थान रखते हैं। और कश्मीर घाटी में तथा अन्य अनेक प्रदेशों में भी शेख अब्दुल्ला के पीछे भारी जनमत खड़ा है। इस परिस्थिति में जबतक कश्मीर के निर्णय में शेख अब्दुल्ला भी भागीदार नहीं होते हैं, तब तक कश्मीर की बहुत बड़ी जनसंख्या यह नहीं मान सकती कि कश्मीर की समस्या का अन्तिम निर्णय हो चुका है।

आप लोगों को स्मरण दिलाने की आवश्यकता नहीं है, कि सन् १९४७ में कश्मीर राज्य का भारत में, और किसीसे भी अधिक जिम्मेदार व्यक्ति कोई था तो वह शेख मुहम्मद अब्दुल्ला थे। इस सन्दर्भ में एक और ऐतिहासिक घटना का उल्लेख करना आवश्यक है। स्वतंत्रता के समय, जब अविभक्त भारत के अधिकांश मुसलमान श्री जिन्ना के झण्डे के पीछे चलने लगे और उनके द्विराष्ट्रवाद के सिद्धान्त का समर्थन करने लगे, तब केवल दो उज्ज्वल अपवाद हिम्मत के साथ अलग खड़े रहे, वे थे—एक, उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त, और दूसरा, जम्मू और कश्मीर राज्य। इन दो प्रदेशों की मुस्लिम जनता ने स्वतन्त्र मुस्लिम राष्ट्र के नारे को लेकर अपना पैर उखड़ने देने से इन्कार किया था। और यह याद स्मरण रखें, कि केवल दो परम धर्मनिष्ठ, उदात्त, और साधु प्रकृति के व्यक्तियों—खान अब्दुल गफ्फार खां और शेख अब्दुल्ला—के नेतृत्व के चलते ऐसा हुआ।

विभाजन के बाद और पाकिस्तान के बन चुकने पर, जबकि पाकिस्तान ने आक्रमण किया, तब उसका मुकाबिला करने में और भारत के भूभाग से उन आक्रमकों को भगाने में नेतृत्व करने वाले भी शेख अब्दुल्ला ही थे। उनके वीरतापूर्ण, असाम्प्रदायिक और जागृत नेतृत्व के ही कारण आज भारत के हर नागरिक को अपनी धर्म-निरपेक्षता के उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में कश्मीर को प्रस्तुत करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। अभी हाल की श्रीनगर के इंजीनियरिंग कालेज की घटनाओं के समय भी श्री शेख साहब ने एक बार और साम्प्रदायिकता के विरुद्ध अपना सुदृढ़ विरोध प्रदर्शित किया।

ये कुछ घटनाएँ तो ऐसी अनेकों घटनाओं में से मिसाल के लिए हैं। इन सबसे श्री शेख अब्दुल्ला का नेतृत्व और उनका वास्तविक दृष्टिकोण स्पष्ट होता है।

कश्मीर की कोई समस्या अब निपटारे के लिए शेष नहीं है, ऐसा कहनेवालों का ध्यान खींचने के लिए मैं एक और परिस्थिति का उल्लेख करना चाहूँगा जो इस राज्य का एक प्रमुख तथ्य है। वह तथ्य यहाँ की वादियों में दूर-दूर तक और गहरे में जमा हुआ असन्तोष है। इस असन्तोष का एक भाग तो निश्चित

हो वही है जो एक-न-एक रूप में सारे देश में व्याप्त है। परन्तु असन्तोष का बहुत बड़ा भाग तो यहीं का अपना है, और वह यहाँ की राजनैतिक परिस्थिति से उभरा है: विशेषतया श्री शेख अब्दुल्ला की असहमति, स्वस्थ लोकतंत्र के अभाव और राज्य में एक अच्छी सरकार के न होने के कारण। इस राज्य में हाल में चुनाव याचिकाओं के जो फैसले हुए हैं उनसे यहाँ के लोकतंत्र की महत्त्वपूर्ण व्याख्या हो जाती है।

मेरे ख्याल से, जो लोग जोर-शोर से यह दावा किया करते हैं कि कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है, उनको इस स्थायी असन्तोष की गहरी चिन्ता होनी चाहिए। लेकिन दुःख की बात है कि इनमें से किसी को वह चिन्ता नहीं है। उनमें से अधिकांश लोग कतराने की नीति में विश्वास करते हैं, और बड़े ही दुःखद ढंग से यह माने हुए हैं कि समय ही सारी समस्याएँ हल कर देगा। उनको यह पता ही नहीं है कि इन इक्कीस वर्षों में समय ने इस विशेष समस्या को हल नहीं किया है। यही अनिर्णय और अवसरवाद का रवैया बना रहा तो, एक और इक्कीस साल का समय भी शायद ही कुछ हल कर पायेगा। लेकिन हाँ, कतराने की वृत्ति को ही बढ़ने दिया जाय और शेख अब्दुल्ला को नजर-अन्दाज ही करते रहें, तो उग्रवाद जरूर उत्तरोत्तर बढ़ता जायेगा और उसका परिणाम क्या होगा, इसका हम-आप अन्दाज नहीं कर सकेंगे।

हाँ, कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनकी दृष्टि में प्रत्येक समस्या का हल फौजी शक्ति में ही है। उनको इस बात की तनिक भी परवाह नहीं है कि शेख अब्दुल्ला कितने लोकप्रिय हैं और उनके अनुयायी कितने असन्तुष्ट हैं। उनके अनुसार तो, सेना उन सबको ठीक कर देगी। ऐसे प्रतिक्रियावादी और पलायनवादी दृष्टिकोण एक विशेष प्रकार के दिमाग को बहुत अच्छे लगते हैं। परंतु बड़े पैमाने पर सेना का उपयोग करना—और वह भी संसार के ऐसे नाजुक इलाके में—सचमुच बेहद खतरों को न्योता देना है। यह भी एक वास्तविक खतरा है कि कश्मीर में सेना पर निरंतर निर्भर रहने से बहुत सम्भव है कि भारत के अन्य भागों में लोकतंत्र के क्षीण होने की स्थिति आये, साम्प्रदायिक दंगों को प्रोत्साहन मिले, और राष्ट्र के राजनैतिक और आर्थिक शरीर में, उत्तरोत्तर बढ़नेवाला और देह को सड़ानेवाला नासूर हो जाय।

वस्तुस्थिति पर आधारित निर्णय आवश्यक

मैंने कुछ विस्तार से और पूरा खुल कर उन बुनियादी तत्त्वों पर विचार किया जो कश्मीर-समस्या पर मेरे दृष्टिकोण को दिशा देते हैं। उतने ही मुक्तभाव से, अब, इस परिषद् में उपस्थित लोगों की ओर मुखातिब होता हूँ। पिछले वर्षों में भिन्न-भिन्न लोगों ने कई प्रकार के समाधान सुझाये हैं, आत्मनिर्णय का उन सबका अपना-अपना अर्थ रहा है। मैं एक बात पर विशेष बल देना चाहता हूँ कि सुनिश्चित और वस्तुस्थिति पर आधारित निर्णय लेने का यह एक बड़ा अच्छा अवसर है।

इस प्रकार के क्रान्तिकारी युग में, जिसमें हम जी रहे हैं, समय और परिस्थिति बहुत जल्दी गुजरते हैं। ऐसे परिवर्तनों के साथ मेल साधने के लिए शीघ्र निर्णय करना राजनयिकता की माँग है। कश्मीर की समस्या कोई शास्त्रीय प्रश्न नहीं है जिस पर अनिश्चित काल तक, हवा में हम चर्चा करते रहें, जब कि वहाँ की जनता की सामाजिक और आर्थिक जरूरतें बुरी तरह उपेक्षित होती रहें। यह तो बहुत अंशों में राजनैतिक प्रश्न है; परन्तु राजनीति में पसन्द और नापसन्दगी के लिए बहुत कम गुंजाइश रहती है, क्योंकि उसके साथ परिस्थिति गुंथी रहती है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

कश्मीर-समस्या पर जब-जब चर्चा उठती है, तब-तब प्रायः आत्मनिर्णय के अधिकार की बात आती है। उस दावे का आधार भारत सरकार की ओर से लार्ड माउन्ट बेटन के द्वारा महाराजा हरिसिंह को लिखे गये पत्र के निम्न शब्द हैं: "ज्यों ही व्यवस्था और कानून स्थापित हो जायेंगे और आक्रमकों को प्रदेश से हटा दिया जायगा, तब लोकमत के आधार पर राज्य के विलयन का प्रश्न तय किया जायगा।" यह भी यहाँ निर्देश कर देना ठीक ही होगा कि आज भी राज्य के काफी बड़े इलाके पर परकीयों का ही कब्जा है। सन् १९६५ में हुआ एक दुःखद संघर्ष इसमें एक और उलझाव बना है और उसका तब तक परिमार्जन नहीं हो सकता, जब तक पाकिस्तान 'युद्ध न करने की संधि' करने से इनकार करता रहेगा।

आपको यह भी बतला दूँ कि १९६८ के संसार की दृष्टि और वृत्ति १९४७ के संसार से अत्यन्त भिन्न है। इन मध्यान्तर के वर्षों में अनेक नयी बातें सामने आयी हैं, जिनकी वजह से कश्मीर समस्या के समाधान से सम्बन्धित मुद्दों का मूल स्वरूप ही जड़मूल से बदल गया है। इस बदली हुई भूमिका में कश्मीर की जनता की आज की माँगों को ध्यान में रखते हुए आत्मनिर्णय के अधिकार की ताजी व्याख्या की जरूरत है।

आत्मनिर्णय के अधिकार का एक व्यापक अर्थ यह तो है ही, कि प्रत्येक समाज को अपनी जीवनपद्धति और अपनी संस्थाओं का स्वरूप और स्वभाव तय करने का अधिकार है। परन्तु यह एक अत्यन्त उलझी हुई बात है। और आजकल की राष्ट्र-सत्ता के सन्दर्भ में तो उलझनें और भी बढ़ गयी हैं। मैं कोई राष्ट्र सत्ता का हिमायती नहीं हूँ, बल्कि वास्तव में मैं उसे असामयिक और अतीतकालिक विचार मानता हूँ। लेकिन वह आज कायम है, और यह दीखता है कि, उसके साथ प्रबलतम भावना जुड़ी हुई है, जो मनुष्य को सक्रिय और संगठित करती है। वह भावना धर्म, जाति, भाषा, संस्कृति, विचारधारा—भले वह साम्यवादी ही क्यों न हो—आदि सब सीमाओं को पार कर जाती है।

राष्ट्र-सत्ता के सन्दर्भ में 'जनता' (पीपुल) की व्याख्या करना और उसकी भौगोलिक सीमा निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है। क्या सभी कश्मीरियों को 'एक जनता' की संज्ञा दे सकते हैं? तब फिर डोगराओं का क्या होगा, लद्दाखियों का क्या होगा? रेखा कहाँ खींचे? आप संसार में चारों ओर निगाह दौड़ायें, और स्वयं देखें कि ये मौजूदा राष्ट्र-सत्ताएँ, चाहे वे जिस किसी भी संयोग या घटना के कारण स्थापित हुई हों, किस प्रकार अपने ही उन लोगों के साथ युद्ध कुत्ते की तरह भिड़ती हैं, जो अलग होना या

आत्मनिर्णय के अधिकार का अमल करना चाहते हैं।

यह कठोर सत्य है, जिसकी ओर हमें पर्याप्त ध्यान देना होगा। किसी को प्रिय हो या न हो, भारत की राष्ट्र-सत्ता भी विभाजन की दुःखद घटना और संयोग की ही रचना है, और इसका भौगोलिक सीमांकन हुआ है। चाहे जो भी तर्क पेश किये जायं, पाकिस्तान या और भी किसी राष्ट्र-सत्ता की तरह भारत भी अब इस बात के लिए तैयार नहीं है कि अपने देश का कोई भी भू भाग किसी दूसरी राष्ट्र-सत्ता को स्वेच्छया और शान्तिपूर्वक सौंप दे। इस तथ्य को पूर्णत स्वीकार करना चाहिए।

निःसन्देह आत्मनिर्णय के अधिकार की रक्षा के लिए सैनिक-शक्ति का उपयोग किया जा सकता है, लेकिन किसी भी राष्ट्र-सत्ता का कोई भी भाग इस माध्यम से अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर सकता और न ही उसे लम्बे अर्से तक कायम रख सकता है जब तक कि उसको किन्हीं अन्य शक्तिशाली राष्ट्र-सत्ताओं द्वारा—उनकी अपनी स्वार्थ सिद्धि की नीयत से—पूरी मदद नहीं मिलती। कुछ भी हो, ऐसी सम्भावना पर यहाँ विचार करना असंगत होगा, क्योंकि मैं नहीं समझता कि यहाँ कोई एक भी व्यक्ति होगा जो सैनिक अथवा हिंसक समाधान का हिमायती हो।

दूसरी अन्य बातों पर भी ध्यान देना होगा। जम्मू, कश्मीर और लद्दाख—इन तीनों इलाकों की जनता का भाग्य निर्णय सैकड़ों वर्षों पूर्व ही हो चुका था, मुख्यतः उनके अपने हित के आधार पर नहीं, बल्कि इस कारण कि जारशाही रूस, चीन और ब्रिटेन इन तीन साम्राज्यों के बीच यह राज्य स्थित था। पिछली शताब्दी की पुरानी प्रतिस्पर्धाएँ तो गायब हो गयीं, परन्तु आज के संसार में दूनों का विरोध अपना चोला बदल कर मौजूद है, और उसकी क्षमता पहले से अधिक विनाशक है। संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणा के उदात्त ध्येयों और सिद्धान्तों के बावजूद, आज छोटे-छोटे राष्ट्र बड़े राष्ट्रों की सत्ता की राजनीति के खेल के असहाय मुहरे मात्र रह गये हैं।

यह सब अप्रिय तथ्य हैं जिनसे हम पलायन नहीं कर सकते; और भारत के एक मित्र और हितैषी के नाते मुझे आपसे यह सत्य कहना ही चाहिए, जैसा कि मैं देखता हूं। इस परिषद् को स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि १९६५ के संघर्ष के बाद, कोई भी भारत की सरकार ऐसा कोई समाधान स्वीकार नहीं कर सकती, जो कश्मीर को भारत से बाहर रखने को कहे। अथवा, दूसरे शब्दों में, विधायक रूपों में कहना हो तो कहना चाहिए कि समस्या का समाधान भारत संघ के चौखटे के अन्दर ही सोचना चाहिए। मेरा यह वक्तव्य सुनकर आपको आश्चर्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि मैं यह पहली बार कह रहा हूं, सो बात नहीं है। जैसाकि आपमें से कुछ लोग तो अवश्य ही यह जानते होंगे कि देश के और भी उन कई लोगों का यही दृष्टिकोण है, जो पिछले अनेक वर्षों से कश्मीर समस्या का एक मान्य समाधान निकालने के लिए अनुकूल जनमत तैयार करने का प्रयत्न करते रहे हैं।

ये वे अनिवार्य सीमाएँ हैं जो परिस्थितिवश हम पर आ पड़ी हैं, जिनका उल्लेख मैंने प्रारम्भ में किया था। आप लोगों की राजनीतिकता का तकाजा यह है कि आपको अपनी नीति और कार्यक्रम ऐसा बनाना चाहिए जो इन परिस्थितिगत तथ्यों के अनुरूप हो। उन्हें नजर-अन्दाज करने का अर्थ है तनाव की वृद्धि; जिसके परिणाम स्वरूप, जहाँ तक आपकी जनता का सम्बन्ध है, निराशा, अनिश्चय और परेशानी बढ़ेगी।

इस विवेचन से अनेक प्रश्न खड़े होते हैं। उनमें से कुछ प्रश्नों पर विचार करूँ। मैं जानता हूं कि यहाँ की जनता के अपने भविष्य का निर्णय करने में शेख साहब और उनके साथी आत्मनिर्णय के अधिकार पर बल देते रहे हैं। जिन बातों से इस अधिकार को बल मिलता है उनका संकेत मैं कर चुका हूं। हां, यह तर्क पेश किया जा सकता है कि (अ) इन्हें स्वीकार करने या न करने का अधिकार जनता को प्राप्त है; (आ) और अगर है, तो उन मर्यादाओं के भीतर रहकर राजनैतिक निपटारे का स्वरूप क्या होगा?

आज आपके सामने जो प्रमुख प्रश्न मैं प्रस्तुत करना चाहता हूं, वह यह है कि कोई भी जनता ऐसे उलझे हुए और गम्भीर प्रश्नों का समाधान उनके अपने नेताओं के स्पष्ट और अनुविधापूर्ण परामर्श के बिना कैसे कर पायेगी? मैं तीव्रता से अनुभव कर रहा हूं, और अपनी पूरी क्षमताभर जोर देकर आप लोगों से यह निवेदन करना चाहता हूं कि यही वह अवसर है जिसके प्रति आपको कृतज्ञ होना है, क्योंकि आपको अपना निश्चय करने का तथा इन महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अपनी जनता को अनुविधापूर्ण सलाह देने का मौका मिला है। मैं समझता हूं कि यहां उपस्थित लोगों के लिए जनता के बीच में पहुंचना और उन्हें यह समझाना कठिन नहीं होगा कि यहां जो निर्णय हुए हैं वे सर्वोत्तम समाधान के उपाय हैं, जो प्रस्तुत परिस्थिति में सम्भव हो सकते थे, और जो निश्चित ही सुख-शान्ति और इज्जत प्रदान करनेवाले हैं। यदि इस परिषद् को राजनैतिक वाद विवाद मात्र ही बन कर नहीं रह जाना है, बल्कि प्रस्तुत जटिल समस्या का व्यावहारिक हल ढूँढने का हार्दिक और विधायक प्रयत्न सिद्ध होना है, तो मेरा दृढ़ मत है कि यह एक सर्वोत्तम बुद्धिमत्ता का मार्ग होगा।

मेरे सुझाव से दूसरा प्रश्न यह उठता है कि मेरे सुझावों के अनुसार किये जाने वाले निर्णय के प्रति पाकिस्तान की क्या प्रतिक्रिया होगी? जब तक पाकिस्तान यहां की परिस्थित के विषय में, कम-से-कम मौनपूर्वक शान्त नहीं रहता, तब तक इस राज्य की शान्ति और सुरक्षा की कोई गारण्टी नहीं हो सकती। यह सच है। इसलिए हम देखें कि पाकिस्तान की क्या सम्भाव्य प्रतिक्रिया हो सकती है।

पाकिस्तान की जाहिर-नीति हमेशा से यही रही है कि इस राज्य के भविष्य का निर्णय यहां की जनता को ही करना चाहिए। इसलिए अगर यहां आप लोग एक निर्णय लें और उसका समर्थन प्राप्त करने के लिए आप जनता को समझायें, और मुझे कोई शंका नहीं कि यह करने के लिए आप पूरी तरह समर्थ हैं, तब पाकिस्तान के लिए शिकायत का कोई मौका या दुःख का कोई कारण नहीं रह जायगा। विश्व का

होगा। मैं ऐसे निर्णय का समर्थन ही करूँगा जो कश्मीरी जनता को स्वीकार्य हो। और विश्वास है पाकिस्तान को भी उसे स्वीकार करने या उससे संतोष करने की नीति अपनाने को विवश करेगा। यह होता है तो हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के सम्बन्धों के इतिहास में भी एक नया और सुखद अध्याय प्रारम्भ होगा।

अन्तिम प्रश्न, बल्कि सबसे अधिक महत्त्व का प्रश्न यह है कि मेरे सुझावों के विषय में भारत सरकार की क्या प्रतिक्रिया हो सकती है? यद्यपि मैं भारत सरकार की ओर से बोल नहीं सकता हूँ, परन्तु आप लोग जो निर्णय करेंगे उससे आपके नेताओं और भारत सरकार के बीच सफल वार्ता हो सकने की भूमिका स्पष्ट हो जायगी, इसमें मुझे शंका नहीं है। ऐसी स्थिति में यहाँ के दूसरे नेता भी, जो इस परिषद् से बाहर रह गये हैं, आपके साथ मिल सकते हैं। मुझे लगता है कि तब निश्चित ही नया सूर्योदय होगा।

भारत-संघ के अन्दर इस राज्य के क्या स्थान-मान होंगे, और उन स्थान-मानों में कभी एक पक्षीय निर्णय या परिवर्तन न करने की गारण्टी क्या होगी, आदि प्रश्नों पर चर्चा बरती रह जाती है। परन्तु ऐसी चर्चा का स्थान यह नहीं है; आगे जाकर भारत सरकार के प्रतिनिधियों के साथ यह सब करना होगा। मुझे यह भी मालूम है कि कुछ लोग ऐसे भी हैं जो किसी एक राज्य को विशेष स्थान देने के विरुद्ध हैं। लेकिन मुझे शंका है कि भारत की इस बदलती हुई परिस्थिति में ऐसी दृष्टि कब तक टिक सकेगी। ऐतिहासिक आवश्यकता के अनुरूप सामान्यतया कई सुधार हमें करने पड़ेंगे। वास्तव में आज भी ऐसे सुधार हो ही रहे हैं।

राज्यों की ओर से अधिकाधिक स्वायत्तता की माँग का दबाव बढ़ रहा है। ऐसी माँगों को राष्ट्रीय एकता के लिए खतरा समझना भूल होगी। इसके विपरीत सारे देश के लिए कोई जड़वत् एकरूपता ऊपर से लादने का प्रयास करना तनाव का कारण बन सकता है और उससे विघटन के बीज पड़ सकते हैं। सन् १९६७ के चुनावों के परिणामस्वरूप देश की परिस्थिति में जो परिवर्तन आया है, उसको देखते हुए केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों पर सर्वथा नयी दृष्टि से विचार करना आवश्यक हो गया है। भारत जैसे इतने बड़े राष्ट्र में राष्ट्रीय एकता तभी बनी रह सकेगी जब हम क्षेत्रीय भावनाओं और हितों को ठीक से समझने का वातावरण बनाये रखें और परस्पर एक दूसरे को सहन करने की वृत्ति रखें। जब तक केन्द्र का पूरा शासन एक ही पार्टी के हाथ में था, और राज्यों में भी वही पार्टी सत्तारूढ़ थी, तब तक केन्द्र और राज्यों के सम्बन्धों का प्रश्न इतना अधिक महत्त्व का नहीं दीखता था। सन् १९६७ के चुनाव के बाद कई राज्यों में राजनैतिक दलों द्वारा सत्ता के लिए हास्यास्पद कार्य हुए हैं। जिनकी विस्तृत चर्चा का न यह स्थान है न अवसर है। परन्तु यहाँ इतना समझ लेना अप्रासंगिक न होगा कि कश्मीर ही एक राज्य नहीं है जो अधिकाधिक स्वायत्तता प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है।

प्रिय मित्रो, ये ही वे सीधे-सादे शब्द हैं जिन्हें आप के सम्मुख प्रस्तुत करने की इच्छा प्रारंभ में मैंने व्यक्त की थी। एक बार फिर मैं आपको विश्वास दिलाऊँ कि ये बातें मैंने अपने अन्तस्तल से कही हैं, और इनका हेतु आपको किसी व्यावहारिक और समझदारी का निर्णय लेने में सहायता पहुँचाना ही है। आज देश की निगाहें आपकी ओर लगी हैं और प्रत्येक व्यक्ति आशा कर रहा है कि आप लोगों का निर्णय अधिक सुखी भविष्य की ओर जाने का नया मोड़ साबित होगा।

यह गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष का प्रारम्भ है, इसलिए उस व्यक्ति के प्रति—जिसने हमें अपने स्वतन्त्रता-संग्राम में नेतृत्व दिया, अपनी श्रद्धांजलि के रूप में अपने विचारों को मोड़ूँ, तो यह अत्यन्त उचित ही होगा। विभाजन के कारण उन्हें बड़ा सदमा पहुँचा था। परन्तु जब उन्होंने देखा कि यह अनिवार्य हो गया है, क्योंकि उनके साथी स्वतन्त्रता की कीमत चुकाना चाहते हैं, तो वे इस आशा पर रहने लगे कि यह विभाजन दो मित्रों के विभाजन जैसा रहेगा और सन्धिपत्र के द्वारा दोनों अपने पारस्परिक सौहार्द और सौजन्य युक्त सम्बन्धों के प्रति आश्वस्त रहेंगे। दुर्भाग्य से वे विभाजन के बाद अपनी उस आशा को पूरी होते हुए देखने के लिए अधिक समय तक जीवित नहीं रहे।

मेरी हार्दिक कामना है कि यह परिषद् उस प्रयास को फिर से ताजा करने की दृष्टि से न केवल सम्भवनीय, बल्कि कार्यकारी सुझाव प्रस्तुत करेगी। संसार में आज अनेक स्थान विस्फोटक खतरों और दुःखों का केन्द्र बने हुए हैं। यदि आप लोगों के निर्णय इस समूचे क्षेत्र में, जिसे हिमालय के दक्षिण का उपखण्ड कहा गया है, शान्ति और सद्भावना की वृद्धि का मार्ग प्रशस्त करते हैं, तो वह महात्मा गांधी की कल्पना के विश्व की ओर बढ़ने का अनिवार्य एक बहुत बड़ा कदम होगा।

यह एक सुअवसर आपको प्राप्त हुआ है जिसमें आप दूर-दृष्टि से काम ले सकते हैं और मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको इस अवसर के लिए उपयुक्त हिम्मत और समझदारी दे। (मूल अंग्रेजी से)

श्रीनगर
१०-१०-'६८

टीकमगढ़-जिलादान-समारोह

आगामी ६ नवम्बर, '६८ को टीकमगढ़ में टीकमगढ़-जिलादान समारोह आयोजित किया जा रहा है, जिसमें टीकमगढ़ जिले के ग्रामदानी गाँवों के हजारों किसान भाई-बहन भाग लेंगे। इस अवसर पर श्री जयप्रकाश नारायण भी उपस्थित रहेंगे, जिन्हें जिलादान-समर्पण करते हुए टीकमगढ़ जिलादान की विधिवत् घोषणा की जायेगी।

दक्षिण-पूर्व एशिया में गांधी सर्वोदय साहित्य-प्रचार

गांधी-शताब्दी के अन्तर्गत गांधी सर्वोदय साहित्य प्रचार दक्षिण-पूर्व एशिया में करने की दृष्टि से सर्वश्री जसवन्त राय, वसन्त व्यास, कृष्णमूर्ति, डा० शकुन्तला देशपांडे और श्रीमती हेमलता मेहता, शिवगुरुनाथन् की एक टोली २१ अक्तूबर से निकल रही है। इनकी यात्रा सिंगापुर, मलाया, थाईलैंड, कम्बोडिया, द० वियतनाम, फिलीपीन्स, बोर्नियो, इंडोनेशिया में २१ अक्तूबर '६८ से १ जनवरी '६९ तक होगी।

विहारदान : प्रगति का लेखा-जोखा

"२ अक्तूबर '६८ तक विहारदान" की घोषणा के साथ ही ग्रामदान के नये आयाम प्रकट हुए। देशभर में इस आन्दोलन की ओर देखने का एक नया कोण बना। २ अक्तूबर '६८ बीत गया। यह सहज ही है कि लोग जानना चाहें—'विहारदान' का क्या हुआ? लीजिये प्रस्तुत है बिहार भूदान-यज्ञ कमेटी के मंत्री श्री निर्मल चन्द्र द्वारा विहार दान आन्दोलन की प्रगति समीक्षा :

बिहार को बाबा का जिस प्रकार का स्नेह मिला उसकी तुलना में बिहार में जो सम्भव हुआ है, वह कम ही है। श्री जयप्रकाशजी कभी कभी विनोद में कहते हैं—"यदि बाबा कह दें तो बिहार के सभी कार्यकर्ता सिर के बल चलने लगें।" वास्तव में यदि ऐसा होता, इस प्रकार की समर्पण-बुद्धि होती, तो काम और भी तेज होता। मन्द होते हुए बाबा की व्यावहारिक बुद्धि एकनिष्ठ रही, लेकिन हमारे सामने समय-समय पर तात्कालिक उग्र समस्याएँ, तूफान के साथ-साथ निर्माण की चिन्ता, तूफान में काम कच्चा होने की आशंका, आदि प्रश्न आते रहे।

२ अक्तूबर तक विहारदान का संकल्प था लेकिन अब तक सिर्फ उत्तर-बिहार का दान हुआ है। बिहार के कुल ५८७ प्रखण्डों में से दक्षिण बिहार के ३२४ प्रखण्ड बच रहे हैं। २६३ प्रखण्डदान हो चुके हैं। यानी ४८ प्रतिशत सफल सिद्ध हुआ है। यह स्पष्ट है कि हमारी अपनी शक्ति के किसी गणित में यह नहीं बैठता था कि २ अक्तूबर '६८ तक विहारदान हो जायगा। संकल्प लिया गया, उद्घोष किया गया, पर मन की आशंका मिटी नहीं। अब लगता है कि बाबा को जितने स्पष्ट रूप से यह सम्भव मालूम होता था, उस प्रकार से हम लोगों के मन में आ जाता तो २ अक्तूबर '६८ तक विहारदान हो जाना सम्भव था। इस कारण यह सिद्ध है कि जो भी कमी रही वह हम कार्यकर्ताओं की अस्वस्थता, व्यस्तता, कार्य-अकुशलता एवं सुस्ती के कारण ही।

ऊँचे लक्ष्य का लाभ

हमारा संकल्प जितना ऊँचा गया, कार्य उतना ही सरल सिद्ध हुआ। विहारदान के संकल्प से जिलादान सुलभ हो गया। बड़ी शब्द-शक्ति का जादू की तरह मनोवैज्ञानिक असर हुआ। ग्रामदान में टोले-टोले को समझाना पड़ता था। एक गाँव दूसरे गाँव की प्रतीक्षा करता था। श्री राममूर्ति भाई ने सेगर और श्री वैद्यनाथ बाबू ने मनिहारी में प्रखण्डदान की प्रथम कोशिश की थी। पर उन प्रखण्डों को लगा कि हमें ही पहले क्यों चुना गया? दरभंगा ने जिलादान का एक साथ प्रयत्न किया तो प्रखण्डदान सुगम हो गया। चम्पारण के ३६ प्रखण्डों का दान ४५-५० दिनों में सम्भव हो गया। यही बात ही लोगों को झकझोरती है।

बिहारदान में सबसे बड़ी शक्ति खादी कार्यकर्ताओं की लगी है। वास्तव में रचनात्मक संस्थाओं में शक्ति भी खादी संस्थाओं की ही है—वह भी मुख्य रूप से बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ की। खादी कार्यकर्ता पूरी शक्ति से लग जायें, तो शेष ११ जिलों का काम तीन-चार माह में पूरा हो जाय। लेकिन हम सब खादी संस्थाओं की स्थिति से पूर्ण परिचित हैं—कमीशन की पूँजी, एक-एक पैसे का हिसाब, घाटे में डूब जाने की आशंका, आदि हमेशा सिर पर सवार रहती है। लेकिन जब भी थोड़ी फुर्सत मिली, टिड्डी दल की तरह टूट पड़े, और 'वाटरलू' भी फतह कर दिया।

राजनैतिक पक्षों का समर्थन

एलवाल की पूँजी अपने हाथ में थी ही, बिहार के नेताओं का ता० १७ १८ दिसम्बर, '६३ को सदाकत आश्रम में आन्दोलन को नैतिक समर्थन प्राप्त हो गया। ता० ४ फरवरी, '६८ को राजगृह में बिहारदान के कार्यक्रम को स्वीकार किया। यह सही है कि उनको राजनैतिक व्यस्तता के कारण इस काम के लिए समय नहीं मिलता है। पर उनके इस निर्णय के कारण गाँव में बिखरे राजनैतिक कार्यकर्ताओं से मदद लेने में सुविधा हो जाती है। इतने बड़े काम में क्षेत्रीय कार्यकर्ता पीछे नहीं पड़ना चाहते हैं। कार्यकर्ताओं के कंधे पर चलनेवाले नेता को चाहे इसकी उतनी चिन्ता न हो।

सरकार की अनुकूलता

स्वर्गीय श्रीबाबू के समय से ही सरकार प्रायः अनुकूल रही। इस अनुकूलता की जड़ में स्वयं बाबा तथा हमारे नेताओं की पक्ष-निरपेक्षता एवं उनकी निरहंकार सेवा-भावना है। कांग्रेस से लेकर संविद, शोषित तथा राष्ट्रपति शासन तक कोई प्रतिकूलता नजर नहीं आयी। सरकारी अधिकारियों के मन में हमारी सफलता का उतना बड़ा असर नहीं है पर हमारे उद्देश्य की पवित्रता में उनकी श्रद्धा है। देश की वर्तमान परिस्थिति एवं कानून की विफलता के कारण विकल्प की जिज्ञासा है। सरकारी अधिनियम, नियम एवं आदेश के कारण हमारी अनुकूलता बढ़ती है। मदद भी मिल जाती है। बिहार में ग्रामदान का अध्यादेश २ अक्तूबर, '६५ को हुआ। बाद में यह अधिनियम बन गया। इसकी मदद से मुख्य सचिव ने परिपत्र प्रसारित कर जिला-स्तर के सारे विभागों को इस अधिनियम की सम्पूर्ति का आदेश दिया। जगह-जगह पर कमिश्नर, कलक्टर, शिक्षा-पदाधिकारी, आदि ने अपने अधीनस्थ लोगों को इस काम में लगने का सीधा आदेश दिया। जहाँ इसके समान्तर में अपने कार्यकर्ताओं की शक्ति खड़ी रही, काम काफी वेग से हुआ है। चम्पारण तथा सारण का उदाहरण हमारे सामने है।

पंचायत तथा शिक्षण संस्थाएँ

पंचायत तथा शिक्षण संस्थाओं का असर अपने नीचे के संगठन पर नहीं है, पर ये गाँव-गाँव में व्याप्त हैं। पक्षों के निर्णय के समान ही इनके निर्णय ने भी अनुकूलता पैदा की। जगह-जगह इनसे पुरजोर सहायता मिली है।

संयोजन-नियोजन

तूफान हमारे संयोजन-नियोजन से परे का प्रवाह है। बिहार ग्रामदान प्राप्ति संयोजन

समिति सूफान के आमंत्रण के समय से ही काम कर रही है। जिलों में सर्वोदय-मंडल तथा ग्रामदान प्राप्ति समितियाँ बनी हैं। सब लोग संयोजन में लगे हैं, पर जो प्रत्यक्ष परिणाम आता है, वह इनकी पकड़ से बाहर है। यों सब मिलाकर संयोजन का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष असर होता है। संस्था, सरकार, पंचायत, पक्ष सबको प्रेरित कर इस ओर मुखातिब करने का श्रेय संयोजन को है, पर इनसे काम लेने का चमत्कार तो बस बाबा के पास है।

आर्थिक आधार

दिसम्बर '६६ तक ४,६३,००० के लगभग चंदा थैली से जमा हुआ था। पड़ाव व्यवस्था आदि का छिटपुट चंदा अलग है। इसके बाद २,००,००० रुपया केन्द्रीय गांधी निधि से अनुदान प्राप्त हुआ। पुनः करीब २,५०,००० रुपये चंदे की रकम आयी। बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ एवं अन्य खादी संस्थाओं के सम्पत्तिदान की रकम—सब मिलाकर आज तक करीब ६,००,००० रुपया हुई होगी। इधर सरकार की ओर से फार्म मिलने लगे हैं। मोटर-खर्च आदि जोड़कर यह सहायता रुपये में १,००,००० के करीब मानी जा सकती है। कार्यकर्ताओं की मदद इससे अलग है। इस तरह अब तक हुए मोट करीब १६,००,००० के नकद खर्च में से केन्द्रीय निधि का खर्च ३,००,००० के आसपास आता है। शेष १३,००,००० में से ३,००,००० बड़े दाताओं का दान है। शेष सारी रकम चंदे से या कार्यकर्ताओं के सम्पत्तिदान से प्राप्त हुई है।

प्राप्ति समिति ने १ रुपये से १०० रुपये तक के कूपन छपवाये हैं। इसीके माध्यम से चंदा वसूल होता है। एकमात्र जयप्रकाश बाबू के प्रयास से बड़े दान मिल पाते हैं। कुछ मदद राजनेताओं से मिली है।

प्रचार

प्रान्त, जिला तथा प्रखण्ड के स्तर के शिविर होते रहे हैं। कुछ शिक्षक, पंचायत के नेता, वकील आदि के भी शिविर हुए। लेकिन यह सब विहारदान के लिए जितना अपेक्षित था, उस अनुपात में कम ही हुआ। इस सबसे अधिक 'गूंज' स्वयं विहारदान की शब्द-शक्ति से पैदा हुई। थोड़ी जगह ही सही, पर दैनिक अखबारों में भी इसके समाचार को स्थान मिलता गया है। समय-समय पर हमारे कार्यक्रम एवं उपलब्धि का रेडियो से भी प्रसारण हुआ है।

प्रवाह की प्रेरणा

प्रश्न आता है कि कौन-सी प्रेरणा है जो शत-शत लोगों को विचार-प्रवाह में खींचती चली जा रही है? सुना—ग्रामदान विचार निरपेक्ष होता है। यह गम्भीर मनोवैज्ञानिक अध्ययन का प्रश्न है। क्या गाँव के गाँव बिना समझे-बूझे हस्ताक्षर करते चले जा रहे हैं? एक व्यक्ति के साथ यदि तर्क-वितर्क प्रारम्भ होता है, तो पूरा दिन गुजर जाता है। श्री राममूर्ति भाई ने एक प्रसंग की चर्चा की। एक पढ़ा-लिखा धनी युवक, दो पुश्त से राजनीति में आमूलचूल घुटा हुआ, चार घण्टे की चर्चा के बाद राममूर्ति जी

भूदान-यज्ञ : २१-१०-'६८ ; रजिस्टर्ड नम्बर एल. २५७ [पहले से डाकव्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त] लाइसेन्स नम्बर ए ३७

आन्दोलन के समाचार

उत्तरप्रदेश में १५ दिनों में ६६४ ग्रामदान

३० सितम्बर तक प्रदेश में कुल ६५५६ ग्रामदान तथा ५० प्रखण्डदान और २ जिला-दान पूरे हुए हैं। १५ सितम्बर तक ८५५० ग्रामदान और ४६ प्रखण्डदान हुए थे। इन १५ दिनों में ही प्रदेश के ११ जिलों में ६६४ ग्रामदान और १ प्रखण्डदान प्राप्त हुए। गाजीपुर में १७, फैजाबाद में २५, हरदोई में ३०६, गोरखपुर में १६८, मेरठ में ६६, मुजफ्फरनगर में १५१, फर्रुखाबाद में ३३, चमोली में ६२, टीहरीगढ़वाल में १६, अलमोड़ा में ४० तथा वाराणसी में ७४। फैजाबाद में पूरा बाजार का प्रखण्डदान पूर्ण हो गया है जिसमें सम्मिलित ग्रामदान संख्या ५० हुई। वाराणसी और आजमगढ़ जिले के विद्यापीठ तथा आजमगढ़ के प्रखण्डों में एक-दो प्रतिशत ग्रामदानों की कमी है वे भी शीघ्र ही पूरे हो जायेंगे।

अभी प्रदेश में वाराणसी जिले में नौगढ़ प्रखण्ड तथा चमोली जिले के नागपुर प्रखण्ड में अभियान चल रहे हैं। शेष प्रदेश के जिलों में कहीं भी अभियान अक्तूबर के पूरे माह तक नहीं चलेंगे। नवम्बर में पूरब-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण के अधिकांश जिलों में अभियान चलेंगे। रचनात्मक कार्यकर्ता उस समय खादी-बिक्री के काम से फुरसत पा जायेंगे। नवम्बर में कुछ नये जिलों में जैसे—उन्नाव, प्रतापगढ़, जौनपुर, पौड़ीगढ़वाल, आदि में भी अभियान प्रारम्भ होंगे।

१५ नवम्बर के इर्द-गिर्द प्रदेशीय ग्रामदान प्राप्ति समिति की एक आवश्यक बैठक प्रदेशदान के संयोजन की दृष्टि से कानपुर में बिठने का निश्चय किया गया है।

—कपिल भाई, संयोजक
उ० प्र० ग्रामदान प्राप्ति समिति

शिक्षकों-विद्यार्थियों की ग्रामदान-यात्रा

औरंगाबाद : सुश्री निर्मला बहन देशपांडे की २ से ६ सितम्बर तक मराठवाड़ा (महाराष्ट्र) में प्रचार-यात्रा हुई। छात्रों की सहायता मिल सके, इस दृष्टि से कालेजों में भी सभाएँ हुई। परभणी जिले की वसमत तहसील में शिक्षक और विद्यार्थियों की टोलियों ने ६ से १४ सितम्बर तक ग्रामदान-पदयात्राएँ कीं। हरएक टोली के साथ एक कार्यकर्ता रहा। एक क्षेत्र में शिक्षकों की टोली के साथ मैं भी रहा। इन ग्रामों की सभा में अनुभव किया कि काफी लोग श्रद्धा से विचार सुनने के लिए आते हैं। ८ सितम्बर को एक शिविर भी हुआ, १५ सितम्बर को समारोप हुआ। लगभग ७६ ग्रामों में कार्यकर्ताओं की सभाएँ हुईं। महाराष्ट्रदान की संकल्प-पूर्ति के लिए ग्रामदान का सन्देश गाँव-गाँव पहुँचाने की कोशिश जारी है। —अच्युत देशपांडे

बोधगया में सन्त और बुद्धिजीवी सम्मेलन

बोधगया। ५ अक्तूबर से ६ अक्तूबर तक केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि के तत्त्वावधान के प्रगतिशील सन्तों, बुद्धिजीवियों और पुराने गांधी परिवार के लोगों के सम्मेलन आचार्य विनोबा भावे के सान्निध्य में आयोजित हुए।

प्रबन्ध समिति की बैठक

सर्व सेवा संघ प्रबन्ध समिति की बैठक श्री जयप्रकाशजी के आश्रम सोखोदेवरा में ५ और ६ अक्तूबर को हुई थी। समिति ने निश्चय किया कि हरियाणा, उत्तर-प्रदेश और बिहार राज्यों के मध्यावधि चुनाव में मत-दाता-शिक्षण का सक्रिय प्रयोग किया जाय। इस काम की जिम्मेदारी जे० पी० ने स्वयं स्वीकार की है। जे० पी० की मदद में आचार्य राममूर्ति इस काम का संयोजन करेंगे।

प्रबन्ध-समिति की अगली बैठक जनवरी '६९ में महाराष्ट्र के सांगली नामक स्थान पर होगी। समिति ने सोखोदेवरा की बैठक में लोक सेवकों के बुनियादी संकल्प-पत्र और संगठन के बारे में आगामी संघ-अधिवेशन में पुनर्विचार करने हेतु कार्यकर्ता साथियों के सुझाव प्राप्त करने का तय किया है। इसी प्रकार अध्यक्ष के चुनाव की पद्धति क्या हो, इस विषय में भी कार्यकर्ताओं के सुझाव आमंत्रित किये गये हैं।

महाराष्ट्र सर्वोदय मण्डल

महाराष्ट्रदान के संकल्प की पूर्ति की दृष्टि से महाराष्ट्र के १४ जिलों की जिम्मेदारी सर्वोदय मंडल के १४ प्रमुख कार्यकर्ताओं ने स्वीकार की। मराठवाड़ा क्षेत्र के पाँच जिलों के लिए सुश्री निर्मला बहन देशपांडे ने समय देने का तय किया। अक्तूबर में चांदा जिले के चिमूर प्रखण्ड में पदयात्रा का आयोजन श्री चंदावार करेंगे। महाराष्ट्र सर्वोदय मंडल का कार्यालय बम्बई से गोपुरी, वर्धा लाया गया है। मंडल ने शान्ति-सेना समिति, अर्थसमिति, साहित्य-प्रकाशन समिति, प्रसिद्धि समिति, विधायक संस्था-संपर्क समिति आदि समितियाँ बनायी हैं। नये मंडल के मंत्री—श्री वसंत बोम्बटकर, सहमंत्री—श्री शिवशंकर पेटे और अध्यक्ष—श्री ठाकुरदास बंग चुने गये हैं।

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे; इस अंक का :२० पैसे
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ४

सोमवार २८ अक्तूबर, '६८

अन्य पृष्ठों पर

आवश्यक सूचना

'भूदान यज्ञ' १८ नवम्बर '६८ का परिशिष्ट 'गाँव की बात' मध्यावधि चुनाव को ध्यान में रखकर तैयार किया जा रहा है। चित्रों सहित यह अंक मतदाता शिक्षण का सुन्दर और सरल माध्यम होगा। इस विशिष्ट परिशिष्टांक को 'भूदान यज्ञ' से अलग भी भेजा जा सकता है—अगर पहले से हमें आर्डर मिल जाय। —व्यवस्थापक

सम्पादक
राममूर्ति

•

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४१८५

सत्याग्रह की शक्ति और सत्ता की सीमा

अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति के लिए दो मार्ग हैं : सत्याग्रह और दुराग्रह। हमारे ग्रन्थों में इन्हीं को दैवी और आसुरी प्रवृत्ति कहा है। सत्याग्रह के मार्ग में सदैव सत्य का आग्रह रहता है। किसी भी कारण से सत्य का त्याग नहीं किया जाता। इसमें देश के लिए भी झूठ का प्रयोग नहीं हो सकता। सत्याग्रह की मान्यता है कि सत्य की सदैव ही जय होती है। कभी-कभी मार्ग कठिन जान पड़ता है, परिणाम भयंकर मालूम होता है, और ऐसा लगता है कि सत्य को थोड़ा छोड़ दें तो सफलता मिल जायेगी। किन्तु सत्याग्रही सत्य का त्याग नहीं करता। उसकी श्रद्धा ऐसे समय भी सूर्य के समान चमकती रहती है। सत्याग्रही निराश तो होता ही नहीं। उसके पास सत्य की तलवार होती ही है, इसलिए उसे लोहे की तलवार, गोला-बारूद की आवश्यकता नहीं होती। वह आत्मबल या प्रेम से शत्रु को भी अपने वश में कर लेता है। मित्रमण्डली में प्रेम की कसौटी नहीं होती। यदि मित्र मित्र पर प्रेम करे तो इसमें कोई नवीनता नहीं है। वह गुण नहीं है, उसमें श्रम नहीं है। परन्तु शत्रु के प्रति मित्रता रखने में प्रेम की कसौटी है। उसमें गुण है, श्रम है, इसी में पुरुषार्थ है और इसी में सच्ची बहादुरी है। शासनकर्ताओं के प्रति भी हम ऐसी दृष्टि रख सकते हैं। ऐसी दृष्टि रखने से हम उनके अच्छे कार्यों का मूल्य आँक सकते हैं और उनकी भूलों के लिए द्वेष करने के बजाय प्रेमभाव से वे भूलें बता कर उन्हें तुरन्त दूर करने में समर्थ होते हैं। इस प्रेमभाव में भय को कोई स्थान नहीं है। निर्बलता तो उसमें हो ही नहीं सकती। निर्बल मनुष्य प्रेम नहीं कर सकता, प्रेम तो शूर ही दिखा सकते हैं। प्रेम की दृष्टि से विचार करें तो हमें अपने शासनकर्ताओं को सन्देह की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए और यह नहीं मानना चाहिए कि वे सब काम बुरी नियत से ही करते हैं। हमारे द्वारा प्रेमपूर्वक की हुई उनके कार्यों की परीक्षा इतनी शुद्ध होगी कि उनके ऊपर उसकी छाप पड़े बिना नहीं रहेगी।

प्रेम लड़ सकता है। प्रेम को कितनी ही बार लड़ना पड़ता है। सत्ता के मद में मनुष्य अपनी भूलों को नहीं देखता। इस समय सत्याग्रही बैठा नहीं रहता। वह स्वयं दुःख सहन करता है। सत्ताधीश की आज्ञा—उनके कानूनों—का सादर निरादर करता है और उस निरादर के परिणाम-स्वरूप होनेवाले कष्ट—जेल, फाँसी इत्यादि सहन करता है। इस प्रकार आत्मा उन्नत होता है।

इस प्रकार विवेकपूर्वक किये गये निरादर में यदि बाद में भूल प्रतीत हो तो इस भूल का परिणाममात्र सत्याग्रही और उसके साथियों को सहन करना पड़ता है। इसमें सत्ताधीश से अनबन नहीं होती। बल्कि अन्त में वे सत्याग्रही के वश में हो जाते हैं। वे समझ लेते हैं कि सत्याग्रही के ऊपर हमारा शासन नहीं चल सकता। सत्याग्रही की सम्मति और इच्छा के बिना वे एक भी काम उससे नहीं

अब वर्ग-संघर्ष !

लखनऊ के एक सम्मेलन में अल्पसंख्यकों का एक संघ बनाने की बात हुई है। भारत के संविधान में किसी को भी संघटन करने और संघ बनाने का अधिकार है। यों भी जब चुनाव करीब होते हैं तो बहुत से नये संघ बनते हैं और बाद को टूट जाते हैं। लेकिन लखनऊ के सम्मेलन में महत्त्व की बात यह है कि मुसलमानों, पिछड़ी जातियों, हरिजनों, आदिवासियों और ईसाइयों की यह नयी सम्मिलित शक्ति सवर्ण हिन्दुओं के जुल्मों का मुकाबिला करने के लिए संघटित की जा रही है। सम्मेलन में सवर्ण हिन्दुओं को तो जालिम के रूप में प्रस्तुत किया ही गया, हिन्दूधर्म और उसके देवी-देवताओं को, यहाँ तक कि ईश्वर को भी, निन्दा भरे शब्दों में अस्वीकार किया गया। अन्त में, जैसा हमेशा होता है, ६ नये राज्यों की माँग की गयी जिनमें इन अल्प मतवालों का बहुमत हो। भारत के राजनीतिक मंच पर उतरनेवाले हर नये 'नेता' का यह विश्वास बन गया है कि अमृतधारा की तरह अलग राज्य का बन जाना जनता के असली रोगों की एक ही अचूक दवा है !

यह बात विवाद की नहीं है कि भारत में जितने लोग रहते हैं वे सब भारत के नागरिक हैं, और सब समान हैसियत और अधिकार के हैं। सबको समान सामाजिक संरक्षण तथा तुल्य पारिश्रमिक मिले, इस तरह की समाज-व्यवस्था और राज-व्यवस्था होनी चाहिए। जाहिर है कि अभी देश में राज्य और समाज की ऐसी क्या, इससे मिलती-जुलती भी व्यवस्था नहीं बन सकी है।

हम मानते हैं कि हमारे देश की मुख्य समस्या गरीबी से बढ़कर विषमता है। *हम कितनी भी कोशिश करें, हर भारतीय नागरिक* को सभ्य जीवन के आवश्यक सामान भरपूर मात्रा में निकट भविष्य में नहीं मिल सकते। आर्थिक विकास समय लेता है। *लेकिन निश्चित* ही सामाजिक संरक्षण और तुल्य पारिश्रमिक की दिशा में ठोस कदम उठाकर ऐसी स्थिति जल्द-से-जल्द पैदा की जा सकती है जिससे लोक-मानस को समाधान हो। देश में गरीबी है तो देशवासियों में गरीबी का तुल्य बँटवारा होना चाहिए।

लेकिन दुःख है कि पिछले इक्कीस वर्षों में हमारी राजनीति इस तरह विकसित हुई है कि वह सामान्य जनता की समस्याओं से *अलग हो गयी है। वस्तुतः हमारी राजनीति* नेताओं के हाथ का खेल बन गयी है। अब जनता समझने लगी है कि सत्ता के लिए होने वाले खेल से जीवन *की समस्याएँ हल नहीं होंगी। हरिजन या मुस्लिम* बहुमत का एक राज्य बन जाय जिसमें हरिजन या मुसलमान नेता, *मिनिस्टर और अधिकारी बन जायँ* तो क्या करोड़ों गरीब और शोषित हरिजनों और मुसलमानों की समस्याएँ हल हो जायँगी ? सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक क्रान्ति की क्या योजना है इन नेताओं के पास, जो नये राज्यों की माँग कर रहे हैं ? शायद क्रान्ति और समाज-परिवर्तन के संदर्भ में वे सोचते ही नहीं। उनकी प्रेरणा स्वार्थ और बदले की है, नया समाज बनाने की नहीं।

क्या सम्प्रदायवाद का उत्तर सम्प्रदायवाद और जातिवाद का उत्तर *जातिवाद है ? क्या अवर्णों का जातिवाद सवर्ण हिन्दुओं के जाति*वाद से अच्छा होगा ? क्या हिन्दू सम्प्रदायवाद मुस्लिम सम्प्रदायवाद से, *या मुस्लिम सम्प्रदायवाद हिन्दू सम्प्रदायवाद से ज्यादा प्रगतिशील* है ? कितनी विचित्र बात है कि हम एक नये जातिवाद की सृष्टि द्वारा प्रचलित जातिवाद के जहर को समाप्त करने की कोशिश कर रहे हैं। *यह सब पुरानी बोतल में नयी शराब भरकर उसे शर्बत का नाम देने का कौतुक है !*

जो हमारे ऊपर जुल्म कर रहे हैं उनपर हम जुल्म कर लें तो हमारी प्यास बुझ जायगी। लेकिन क्या हम यह नहीं जानते कि आज के समाज में सवर्ण हिन्दू द्वारा सवर्ण हिन्दू का, हरिजन द्वारा हरिजन का, और मुसलमान द्वारा मुसलमान का उसी तरह शोषण होता है जैसे एक का गैर द्वारा। यह हो सकता है कि दूसरे से लड़ने के लिए जाति और सम्प्रदाय का जादू चल जाय। लेकिन किसी समुदाय को अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक बना देने से ही बुनियादी सवालों का जवाब कैसे मिल जायगा ?

हम चाहते हैं—शोषणमुक्ति और समानता या संघर्ष और देश का विघटन ? बात यह है कि हमारी राजनीति में कोई ऊँचे मूल्य नहीं रह गये हैं। उसका एक ही भगवान है, और वह है सत्ता ! और, जिस जनता के नाम में राजनीतिक नेता बोलने की कोशिश कर रहे हैं वह अभी पूरी जगी नहीं है। *वह नहीं समझ रही है कि* किस तरह उसके क्षोभों और असंतोषों को उभाड़कर मध्यम वर्ग के राजनीति अपना उल्लू सीधा करती है। गरीबी और विषमता के न कोई जाति होती है, न सम्प्रदाय। हर जाति में गरीब हैं, शोषित हैं। गरीबी के नाम में गरीबों को जातिवाद के झंडे के नीचे खड़ा करने की कोशिश छिपे तौर पर आज के सामाजिक ढाँचे को कायम रखने की कोशिश है। *जब तक जनता का दिमाग जाति और* सम्प्रदाय के फंदों में जकड़ा रहेगा तब तक उसमें क्रान्ति की चेतना नहीं घुस सकेगी।

क्रान्ति दलगत राजनीति का विषय नहीं है। जरूरत है नये सामाजिक सम्बन्धों और नयी योजना की, जिसमें सबके लिए जीविका का रास्ता खुल सके। यह काम लखनऊ में दिये गये आगभरे भाषणों से नहीं होगा ; होगा गाँव-गाँव की जनता को एकता और समता के लिए तैयार करने से। यह काम गर्म दिल और ठंडे दिमाग का है, न कि ठंडे दिल और गर्म दिमाग का। लेकिन नेता तो वोट लेगा गाँवों में, 'क्रान्ति' करेगा शहरों में ! •

क्या संघर्षमुक्ति सम्भव है ?

प्रश्न : ग्रामदान में सह-अस्तित्व, समानता, सर्वांगीण विकास की भावना है। कम्युनिज्म का भी यही सिद्धान्त है। तो आज कम्युनिज्म की जो हालत हुई है—चेकोस्लोवाकिया पर रूस ने आक्रमण किया, वैसी हालत ग्रामदान के बावजूद भारत की नहीं होगी, इसके लिए क्या सबूत है ?

विनोबा : सवाल अच्छा है। ग्रामदान में सह-अस्तित्व, समानता, सर्वांगीण विकास की कल्पना है। कम्युनिज्म का भी वही सिद्धान्त है, यह मेरे लिए नयी चीज हो जाती है। सह-अस्तित्व कम्युनिज्म का सिद्धान्त नहीं है। उसमें एक वर्ग का सिर काटना और सिर काटकर बचे हुए लोगों में कम्युनिज्म की स्थापना करना, यह है। चीन में रेवोल्यूशन (क्रान्ति) हुई। मुझसे कहा गया कि उसमें १ करोड़ ७० लाख मालिकों के सिर काटे गये, चन्द महीनों के अन्दर। और उनकी जमीन लेकर भूमिहीनों में तुरन्त बाँटी गयी। ५ मनुष्य के एक परिवार के लिए लगभग १½ एकड़ जमीन। यह बाँटने के बाद जमीन वालों से कहा गया कि जिनकी जमीन बाँटी गयी है, वे इकट्ठा खेती करें, 'कोआपरेटिव फार्मिंग' करें। प्रथम १ करोड़ ७० लाख के सिर काटे। यह जो 'नरकटियागंज' है, यह तो नाम ही है 'नरकटिया' लेकिन चीन में 'नरकटिया' हुआ। यहाँ अगर 'नरकटिया' होता तो यहाँ जो हजारों एकड़ जमीन बाहर के मालिकों के हाथ में है, वह नहीं रहता और बड़े-बड़े फार्म नहीं रहते। मालिकों के सिर कटते। अगर इस तरह जमीन और फार्म रहें, ऐसा चाहते हों, तो इसमें शक नहीं कि यहाँ भी मालिकों का 'नरकटिया' होकर रहेगा।

बाबा ने कई दफा कहा है कि बाबा उसको टालना चाहता है। लेकिन अगर न टलता हो, तो आज की परिस्थिति से बाबा उसे अधिक पसन्द करेगा। आज भारत जिस स्थिति में है, गाँव की जमीन मालिकों के कब्जे में, उससे बाबा बेहतर मानेगा कि उनके सिर कटें। आखिर सारे मरनेवाले तो हैं ही। तो आज की ही हालत रहती है भारत में, तो बाबा पसन्द करेगा कि मालिकों के सिर कटें और गरीबों को जमीन मिले। यह होकर रहेगा। भारत ने बीस साल स्वराज्य का अनुभव लिया। उसके बाद अगर भारत की स्थिति यही है तो इसके सिवा दूसरा रास्ता नहीं।

बड़े-बड़े जमीन-मालिक—फार्म के मालिक बाहर रहते हैं और उनके मैनेजर वगैरह बाबा का स्वागत करते हैं। बाबा को खिलाते-पिलाते हैं—'ब्राइब' (रिश्वत) देते हैं। यह खिलाना-पिलाना खुशामदी है। इधर बाबा को तो खिलाते जाते हैं और उधर बाबा के काम का सख्त विरोध करते जाते हैं। बड़े फार्म के लोगों ने ग्रामदान का सख्त विरोध किया है। फिर भी उनकी चली नहीं। अगर चलती, तो वे ग्रामदान में जमीन दान नहीं देते, उसकी मुखालिफत करते। यह साफ है कि हिन्दुस्तान में दिन-ब-दिन स्थिति कठिन होती जा रही है। और ये सोचते नहीं कि अगर इस तरह से मुखालिफत करते रहेंगे, तो नतीजा क्या आयगा ? फिर वे सारे खतम हैं। इसलिए इसके आगे इस तरह 'ब्राइबिंग' चलेगी नहीं।

बाबा बेवकूफ नहीं, अगर बाबा को ठगने का प्रयत्न करते हों। बाबा जिस किसी घर में खाता है, बाबा समझता है कि वह भगवान का खाता है। जिस किसी घर में रहता है, समझता है, अपने ही घर में रहता है। जिस किसी घर में खाता है समझता है अपना ही खाता है। यह सारा मनु महाराज ने लिख रखा है—'स्वमेव ब्राह्मणो भुंक्ते, स्वं वस्ते, स्वं ददाति च'—ब्राह्मण दावा करता है कि ब्राह्मण अपना ही खाता है, अपना ही पहनता है, अपने ही घर में रहता है और जिस किसी की चीज उठाकर देगा, तो कहेगा, मेरा ही मैंने दिया। इसलिए बाबा जिस किसी के घर में खाता हो, उस घरवाले का कभी नहीं होगा। बाबा अपने पेट के लिए घूम नहीं रहा। वह लोक-प्रतिनिधि होकर घूमता है। और लोकप्रतिनिधि के नाते कहता है, आप भारत में 'नरकटिया' न चाहते हों, तो फार्म का भी हिस्सा ग्रामदान में दे देना चाहिए।

देना भी क्या होता है ? बाबा केवल बीसवाँ हिस्सा माँगता है। ५०० एकड़ का बीसवाँ हिस्सा याने २५ एकड़ जमीन देनी होगी। बाकी जमीन उन्हीं के पास रहेगी। और उसकी आमदनी का चालीसवाँ हिस्सा हर साल गाँव सभा को गाँव के काम के लिए देना, और जमीन की मालिकी गाँव-सभा के नाम पर करना। गाँव-सभा की सम्मति के बिना जमीन बेची नहीं जायेगी, विरासत का और काश्त का अधिकार आपके हाथ में रहेगा। केवल जमीन बेचने का अधिकार रहेगा नहीं।

जमीन बेचने का अधिकार तो जमीन खोने का अधिकार है। अभी इस गाँव में दो हजार एकड़ के मालिक बाहर के हैं। कइयों ने बड़ी कुशलता से जमीन खरीदी है। इस वास्ते जमीन बेचने का अधिकार यानी जमीन खोने का अधिकार।

इतना सादा फार्मूला है। इसमें सह-अस्तित्व है। सारा गाँव एक परिवार समझकर एक दूसरे से प्यार करें और परिवार के अन्दर जो भावना रहती है, वह गाँव के अन्दर रहे। कम्युनिज्म में सह-अस्तित्व है नहीं। दोनों की तुलना हो नहीं सकती। कम्युनिज्म में स्टेट आनरशिप है। इसलिए वहाँ सरकार सर्वेसर्वा रहेगी। ग्रामदान में मालिकी ग्रामसभा की रहेगी। गाँव सर्वेसर्वा

भूदान-यज्ञ : सोमवार, २८ अक्तूबर, '६८

रहेगा। इसलिए चेकोस्लोवाकिया में जो हुआ, वह ग्रामदान में नहीं होगा। कम्युनिज्म की अच्छाई इसमें है और कम्युनिज्म के दोष इसमें टाले हैं।

अब, यह भी सोचने की बात है। भारत सारा एक है। रूस छोड़ दें तो सारा योरप भारत के बराबर है। आज योरप में एक-एक भाषा का एक-एक देश है, अलग-अलग। हर देश की अपनी सीमा है। सेना है। एक देश से दूसरे देश मे जाने के लिए वीसा लेना पड़ता है। सारा योरप तो क्या, आधे योरप मे भी कामन-मार्केट नहीं। भारत में क्या है? यहाँ ये लोग बैठे हैं—सोमानी, बियानी, ये सारे राजस्थान से यहाँ आये हैं। १२०० मील दूरी से। १२०० मील का दूरी यानी लन्दन से मास्को की दूरी। हिन्दुस्तान मे कामन-मार्केट है। यह खूबी भारत में है। तो समझना चाहिए कि हमारा दिल भी बड़ा होना चाहिए। भारत के लायक। जहाँ भी जायेंगे, लूटने के लिए नहीं जायेंगे, सेवा के लिए जायेंगे, तो आप लोकप्रिय होंगे। इसलिए ये दिन अब गये कि इधर से उधर जाकर कब्जा करें। और वे दिन नजदीक हैं, जिसकी चानिंग नक्सलबाड़ी ने आपको दी है।

मैं नक्सलबाड़ी के नजदीक गया था। वे लोग मुझसे मिलने के लिए आये थे। मैंने उनसे कहा, तुम बेवकूफ हो। तुम लोग अगर सफल होते हो बड़े लोगों के सिर काटकर अपना राज बनाने में, तो बाबा तुम्हारा विरोध करेगा नहीं। लेकिन तुम लोग सफल होगे नहीं। क्योंकि तुम बेवकूफ लोगों ने वोट देकर सरकार बना रखी है और उसके हाथ में सेना दे रखी है। और अपने हाथ में धनुष-बाण रखा है। उधर उनको सेना रखने का अधिकार देंगे और इधर छुरी से क्रान्ति करेंगे? वह होगी नहीं। सेना से वह दबायी जायेगी। इसलिए क्रान्ति करनी हो, तो सेना में बगावत होनी चाहिए और बाहर से मदद आनी चाहिए। आज की हालत में आपकी खूनी क्रान्ति सफल नहीं होगी। इसलिए तुम जो काम कर रहे हो, उसको मैं मूर्खता मानता हूँ। लेकिन वह कहाँ तक समझाओगे?

भारत में पण्डित नेहरू जैसा नेता नहीं मिलेगा, जिसको दुनिया भर में ताकत थी। आज की हालत में दुनिया पर असर डालने वाला नेता आपका रहा नहीं। ऐसी हालत में केन्द्रीय सरकार बोझ बन सकती है। और प्रान्तों के तो हाल ही मत पूछो। बिहार मे क्या हुआ? सरकार हा टिक नहीं सकी। सबने मिलकर सरकार को गिरा दिया—हटा दिया। सब जगह यही देखा।

ऐसी हालत में मालिकों से प्रार्थना है कि कृपा करके ग्रामदान में शामिल हो जायँ, जल्द-से-जल्द। इसमें खोने का है बहुत कम और पाने का है बहुत! उससे प्रतिष्ठा मिलेगी और प्रेम मिलेगा। अगर जरा व्यापारी अक्ल हो, व्यावहारिक अक्ल हो, तो यह ध्यान में आयेगा।

चेकोस्लोवाकिया में जमीन की मालिकी सारी सरकार के हाथ में है। सेना आयी, तो सारे गुलाम बन गये। *यहाँ एक-एक गाँव* स्वतंत्र किला बनेगा। किसी को भारत पर कब्जा करना हो, तो एक-एक गाँव पर कब्जा करना होगा। दिल्ली पर कब्जा करके नहीं होगा। यहाँ तो एक-एक गाँव अपने पाँव पर खड़ा होगा। हर गाँव 'रिपब्लिक' होगा—'सर्वोदय रिपब्लिक।' इसलिए जो हालत चेकोस्लोवाकिया की हुई, वह यहाँ नहीं होगी। रूस में क्या हुआ? बुल्गेनिन गया, ख्रुश्चेव आया, ख्रुश्चेव गया, कोसीगिन आया, वह गया, वह जायेगा। यह सिलसिला ग्रामदान में नहीं चल सकता। यह समझने की बात है। इसलिए आप लोग जितनी जल्दी इसमें शरीक हो सकते हैं, हो जायँ, ऐसी आपके चरणों में बाबा की नम्र प्रार्थना है।

प्रश्न : प्राकृतिक नियमानुसार पृथ्वी पर युद्ध का अन्त नहीं हुआ है। आप कैसे सोचते हैं कि युद्धमुक्त दुनिया बनेगी?

विनोबा : ये कहना चाहते हैं कि आप मानव-स्वभाव के विरुद्ध अपेक्षा कर रहे हैं। आज सायन्स बढ़ गया है। सायन्स ने ऐसे शस्त्रों की उत्पत्ति की है कि अगर आप शस्त्रों का आधार लेते हैं, तो मानव-जाति का संहार होगा।

सायंस ने ऐसे शस्त्र पैदा किये हैं कि जिसमे मानव-जाति के संहार की शक्यता है। इसके पहले ऐसा नहीं था। पहले धनुष-बाण था, उसके बाद बन्दूकें निकलीं, तोपें निकलीं, अब आटोमेटिक बैलेस्टिक वेपन निकले हैं। उससे सब खतम होगा। बम डालने के लिए उस देश मे जाने की जरूरत नहीं। अपने स्थान में बैठकर शान्त ढंग से, ऐंगल ठीक करके डालेंगे, तो ठीक निश्चित जगह पर बम पड़ेगा। वैसी कुशलता प्राप्त हुई है शस्त्रों मे। यह हिंसा नहीं है, संहार है। संहार और हिंसा मे फरक है। संहार परमेश्वर का कार्य है। परमेश्वर सृष्टि की हिंसा नहीं करता, संहार करता है। आणविक शस्त्र हिंसा-शक्ति नहीं, संहार-शक्ति है। मानव जाति का उसमें संहार है। तो मानव उससे डर रहा है। वह चाहता है कि इस शस्त्र का उपयोग न हो। तो बाबा जो कह रहा है, शस्त्रमुक्त, संघर्षमुक्त दुनिया बन रही है, यह प्राचीनों की भी इच्छा थी, लेकिन सफल नहीं हुई, *क्योंकि उस समय* सायंस नहीं आया था। हिंसा के साथ उसकी प्रतिक्रिया भी साथ जाती है। जहाँ विश्व-संहार की शक्ति हाथ में आयी, वहाँ क्रिया भी गयी और प्रतिक्रिया भी गयी। इसलिए या तो आप संघर्ष खतम करें या संहार के लिए तैयार रहें। यह आल्टरनेटिव (विकल्प) सायन्स ने पैदा किया है। इसलिए बाबा आया करता है कि संघर्षमुक्त समाज बनेगा। पहले मानव भी रहता था और हिंसा भी रहती थी। अब, या तो मानव नहीं रहेगा, या वह संघर्षमुक्त रहेगा।

[नरकटियागंज, जिला चम्पारन की चीनी मिल में ता० २-९-'६८ को हुई चर्चा से।]

क्या व्यक्तिगत मुनाफे की प्रेरणा के बिना उद्योग सफल हो सकता है ?

• उद्योग या व्यापार केवल व्यक्तिगत मुनाफे का साधन नहीं है उसका सामाजिक उत्तरदायित्व है।

• व्यक्ति और समाज ये दो परस्पर विरोधी नहीं बल्कि पूरक तत्त्व हैं, एक के बिना दूसरे का अस्तित्व भी असम्भव है। इसलिए दोनों के हितों का समन्वय न सिर्फ सम्भव है बल्कि यही समाज रचना का एकमात्र वैज्ञानिक और स्थायी आधार हो सकता है।

आजकल कई देशों में, जिनके लिए अक्सर "आजाद-समाज व्यवस्थावाले मुल्क" का गलत विशेषण प्रयुक्त किया जाता है लेकिन जिन्हें वास्तव में पूँजीवादी देश कहना चाहिए, उद्योग और व्यापार व्यक्तिगत मुनाफे की चीज समझी जाती है। यह माना जाता है कि अगर व्यक्तिगत मुनाफे की प्रेरणा (इन्सेन्टिव) न हो तो व्यक्ति ठीक से काम नहीं करेगा और उद्योग-व्यापार कुशलता से नहीं चलाये जा सकेंगे। इसलिए व्यक्तिगत मुनाफे की वृत्ति को प्रोत्साहन देना अच्छा समझा जाता है और उसके अधिकार को सर्वोच्च माना जाता है। परिस्थिति के या अन्य किसी प्रकार के दबाव से इस अधिकार पर कोई नियंत्रण स्वीकार करना ही पड़े तो उसे एक अनिवार्य बुराई समझकर बर्दाश्त किया जाता है। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में दूसरे छोर पर यह मान्यता है कि समाज-हित सर्वोपरि है और उसके लिए व्यक्ति के हितों और उसके स्वातंत्र्य तक की बलि जायज है। परिणाम-स्वरूप लोग ऐसा समझते हैं कि व्यक्ति और समाज ये दो परस्पर विरोधी तत्त्व हैं और इसलिए या तो अनियंत्रित व्यक्तिवाद या सामाजिक हित के नाम पर व्यक्ति के हितों और उसके स्वातन्त्र्य तक का अपहरण, यही दो विकल्प समाज-व्यवस्था के लिए हैं।

भारतीय समाजशास्त्रियों ने इन दोनों दृष्टिकोणों के समन्वय के आधार पर एक तीसरा विकल्प प्रस्तुत किया था। जीवन की हर क्रिया को उपासना का रूप देकर और हर काम के साथ सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना जोड़कर व्यक्तिगत स्वार्थ को मर्यादा में रखने और व्यक्ति तथा समाज के हितों में सामंजस्य बिठाने की कोशिश की गयी थी। वास्तव में इस प्रकार के सामंजस्य के अलावा जीवन का दूसरा आधार हो भी नहीं सकता क्योंकि व्यक्ति और समाज परस्पर पूरक हैं एक के बिना दूसरे का अस्तित्व भी असम्भव है। इसलिए दोनों के हितों का समन्वय न सिर्फ सम्भव है बल्कि समाज-रचना का वही एकमात्र श्रेयस्कर वैज्ञानिक और स्थायी आधार हो सकता है। इस तथ्य को यहाँ के समाजशास्त्रियों ने पहचाना था इसीलिए यहाँ की समाज-रचना हजारों बरस टिकी रह सकी।

पर यह सब तो पुरानी बात हो गयी। दुर्भाग्य से भारत भी आधुनिक प्रवाह से बच नहीं सका। यहाँ भी आज व्यक्तिवाद का प्रभुत्व है— सारी रचना, मान्यताएँ और मूल्य व्यक्तिगत स्वार्थ को प्रोत्साहन देनेवाले हैं। यहाँ भी आज उद्योग-व्यापार को केवल व्यक्तिगत मुनाफे का साधन माना जाने लगा है। अगर इनका कोई सामाजिक उत्तरदायित्व

सिद्धराज ढड्ढा

है भी तो वह परोक्ष और गौण वस्तु है, ऐसी आज की मान्यता बन गयी है। इसलिए एक तरफ तो व्यक्ति के अमर्यादित अधिकार की दुहाई दी जा रही है और दूसरी तरफ जनता में वही पुरानी भ्रान्ति खड़ी की जा रही है कि व्यक्ति और समाज के हित परस्पर विरोधी हैं और इन दोनों के बीच शासन और कानून की सत्ता ही सन्तुलन कायम रख सकती है। इसे समाजवाद का नाम दिया जाता है पर वास्तव में इसका उपयोग भी अधिकतर व्यक्तिगत, पार्टीगत या वर्गगत स्वार्थसाधन में ही किया जा रहा है।

क्या आधुनिक संदर्भ में सामंजस्य का कोई नया तरीका नहीं निकाला जा सकता ? जिस तरह ग्रामीण संदर्भ और भूमि-व्यवस्था के क्षेत्र में ग्रामदान के जरिये व्यक्ति स्वातंत्र्य और सामूहिक उत्तरदायित्व का समन्वय बिठाया गया है उसी तरह उद्योग व्यापार के क्षेत्र में क्या सामाजिक उत्तरदायित्व का तत्त्व दाखिल नहीं किया जा सकता ? अगर मुनाफे की प्रेरणा न हो तो व्यक्तियों के लिए ऐसे उद्योगों में 'इन्सेन्टिव' क्या होगा ? ऐसे उद्योगों की व्यवस्था किस प्रकार की होगी ? आदि कई प्रश्न इस सन्दर्भ में खड़े होते हैं।

अभी हाल ही में अंग्रेजी के बहुपठित मासिक "रीडर्स डायजेस्ट" के अगस्त के अंक में नार्वे के एक प्रयोग का वर्णन छपा है। नार्वे के सबसे बड़े इलक्ट्रॉनिक कारखाने "रेडियोफैब्रिकन" की यह कहानी एक "सामाजिक" उद्योग कैसा होना चाहिए इसका प्रेरणादायी उदाहरण है। कारखाने के संचालक, ६३ वर्षीय बेनजोर्न टैडबर्ग शुरू से ही इस कारखाने के "प्राण" रहे हैं, उन्होंने इस उद्योग के सतत् विकास की दृष्टि से इसे एक ट्रस्ट का रूप दिया है, पर जिस तरह आजकल टैक्स बचाने की नीयत से उद्योगों के ट्रस्ट बनाये जाते हैं उस प्रकार का यह ट्रस्ट नहीं है। टैडबर्ग के इस कारखाने का उद्देश्य "चैरीटेबल"—परोपकारी नहीं है, लेकिन कारखाने के विधान के अनुसार इसका तमाम मुनाफा उद्योग में अन्वेषण तथा विकास के लिए अर्पित है। इस उद्योग संस्थान का एकमात्र उद्देश्य कारखाने में काम करनेवाले लोगों की भलाई के साथ-साथ अधिक उत्पादन तथा लोगों के लिए अधिक काम मुहैय्या करना है। इस कम्पनी के कुल पाँच हजार शेयर में से ४६६८ का ट्रस्ट कर दिया गया है, शेष एक शेयर टैडबर्ग के नाम है और दूसरा उनके एक साथी के नाम, क्योंकि नार्वे के कानून के अनुसार किसी भी कम्पनी में कम-से-कम तीन हिस्सेदार होना जरूरी है।

नार्वे में रिसर्च यानी अनुसन्धान का खर्च टैक्स से बरी है, लेकिन कुल आमदनी के सिर्फ छः प्रतिशत तक। इसलिए टैडबर्ग का कारखाना अन्य किसी भी उद्योग की भाँति पूरा टैक्स देता है। वास्तव में रेडियो, टेलि-

विजन सेट, टेपरेकार्डर, ग्रामोफोन आदि का निर्माता और साढ़े बारह करोड़ "क्राउन" (नार्वे का सिक्का) का सालाना कारोबार करनेवाला अपनी लाइन में नार्वे का यह बड़ा कारखाना काफी मात्रा में टैक्स देनेवाली कम्पनियों में से एक है।

टैंडबर्ग, जो इस कारखाने के संचालक हैं, उनका वेतन उनके खुद के शब्दों में "किसी भी सक्षम कम्पनी के संचालक को जो मिलता है उसके बराबर है," और हालाँकि टैंडबर्ग अभी भी इस उद्योग का संचालन उसी प्रकार करते हैं जैसे वे स्वयं इसके मालिक हों, लेकिन वैधानिक दृष्टि से वे कम्पनी के पाँच सबसे ऊँचे अधिकारियों के मंडल के प्रति उत्तरदायी हैं। अगर इस मंडल को यह लगे कि टैंडबर्ग काम बिगाड़ रहे हैं तो वे अपनी शिकायत 'पंच' के सामने पेश कर सकते हैं जो मामले की जाँच करेगा और जिसे विधान के अनुसार यह अधिकार प्राप्त है कि वह टैंडबर्ग को हटा दे। लेकिन अभी तक ऐसा मौका नहीं आया है, क्योंकि कम्पनी का काम उत्तरोत्तर तरक्की ही कर रहा है। इसके अलावा टैंडबर्ग के संचालन में इस "फाउंडेशन" ने अपने कर्मचारियों के हित में इतना काम किया है कि उन लोगों की इच्छा तो यही है कि टैंडबर्ग अपने पद पर कायम रहें।

इस कारखाने में काम करनेवालों के वेतन और मजदूरी तो उतने ही हैं जितने दूसरे कारखानों में, लेकिन इसमें काम करने वालों को अन्य कई लाभ मिल जाते हैं। सन् १९३७ में जबकि नार्वे के सब कारखानों में ४८ घण्टे प्रति सप्ताह काम होता था, टैंडबर्ग ने काम के घण्टे ४२ करा दिये थे और कुछ वर्ष बाद ये घण्टे घटाकर ३९ कर दिये थे, जो अभी कायम हैं। कारखाने के हर कर्मचारी को साल में कम-से-कम साढ़े चार सप्ताह की छुट्टी मिलती है, अधिक उम्रवालों को उत्तरोत्तर अधिक। काम से अवकाश देने की आयु-मर्यादा यहाँ ६७ है जबकि देश के अन्य सब उद्योगों में ७०। बीमारी के अवकाश का भत्ता वेतन का ९० प्रतिशत तक है जो कि सब कारखानों से ऊँचा है। बीस साल पहले टैंडबर्ग ने कम्पनी में काम करने वालों के लिए कम्पनी के खर्च पर विदेश-यात्रा का क्रम जारी किया था। गत वर्ष कम्पनी के खर्च से १०० लोग विदेश गये थे। वे केवल देश-दर्शन या सैर ही नहीं करते बल्कि विदेशों में सक्षम कारखानों का अवलोकन भी करते हैं और अक्सर अपने कारखाने के लिए नयी-नयी सूझ-बूझ लेकर आते हैं। इस प्रकार ये यात्राएँ कारखाने के लिए भी लाभदायक साबित हो रही हैं।

इस उद्योग के संचालन में एक विशेषता यह है कि कारखाने के तमाम पद कारखाने के कर्मचारियों में से ही तरक्की के द्वारा भरे जाते हैं। कारखाने के एक अफसर ने कहा कि 'टैंडबर्ग जब किसी होनहार नौजवान को देखता है तो वह उसे रात्रि-पाठशाला में जाने के लिए प्रेरित करता है। होनहार नौजवान अपना शिक्षण जारी रखें इस बारे में टैंडबर्ग करीब-करीब 'फैनेटिकल' आग्रही हैं।

एक बार रूस के तत्कालीन उपप्रधान-मंत्री मिकोयान नार्वे की यात्रा पर आये और इस कारखाने को देखकर उन्होंने टैंडबर्ग से पूछा, "यह कम्पनी पूँजीवादी ढंग पर चलायी जा रही है या साम्यवादी ?" टैंडबर्ग ने जवाब दिया, "यह दोनों के बीच की चीज है, कम्पनी अपनी खुद मालिक है।" मिकोयान यहाँ की व्यवस्था से इतने प्रभावित हुए कि मास्को लौटने पर उन्होंने अपने कई उच्चस्तरीय साथियों से उसका जिक्र किया।

नार्वे का यह कारखाना आज इस क्षेत्र के दुनिया के विशालकाय संस्थान जैसे 'फिलिप्स, गुडिग, जनरल इलेक्ट्रिक और सोनी' से सफलतापूर्वक मुकाबिला कर रहा है। टैंडबर्ग की सफलता उसकी चीजों की क्वालिटी पर निर्भर है। इस कारखाने की सफलता इस बात को सिद्ध करती है कि कुशलता, गुण, सामाजिक न्याय आदि के आधार पर अपेक्षाकृत छोटा कारखाना भी भीमकाय संस्थानों का मुकाबिला कर सकता है। टैंडबर्ग स्वयं एक अच्छे ध्वनि इंजीनियर थे। शुरू में उन्होंने उत्तम लाउडस्पीकर बनाये और उनके मुनाफे से फिर रेडियो बनाने की कम्पनी खोली। सन् १९३९ में उनके कारखाने में १०० लोग काम करते थे, जिनमें से करीब-करीब सबने उसी कारखाने में ट्रेनिंग पायी थी। जाहिर है कि इस काम में समय और शक्ति का काफी विनियोग (इन्वेस्टमेंट) हुआ था। अपने इन साथियों की भलाई का खयाल करके टैंडबर्ग ने कारखाने की मालकियत को ट्रस्ट के रूप में परिवर्तित कर दिया और कारखाने में एक ऐसी पेन्शन-व्यवस्था चालू की जो असाधारण है। वह व्यवस्था यह है कि काम से अवकाश प्राप्त होने पर कर्मचारी को वेतन की ६० प्रतिशत पेन्शन मिलती है और इसके लिए टैंडबर्ग ने अलग से कोई सुरक्षित कोष भी नहीं रखा है, बल्कि कारखाने के चालू मुनाफे में से ही पेन्शन की रकम दी जाती है। टैंडबर्ग का मानना है कि इस काम के लिए अलग से कोष स्थापित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। आज जो रकम कोष में रखी जाये उसका मूल्य तो मुद्रा-स्फीति के कारण उत्तरोत्तर कम ही होनेवाला है। इसलिए अर्जित पूँजी को किसी कोष में न बाँधकर के विकास में लगाना और उससे उत्तरोत्तर अधिक लाभ कमाना ज्यादा फायदेमन्द है। उद्योग के विकास से जो मुनाफा बढ़ता है उसमें से पेन्शन देना भारी नहीं पड़ता, और न अन्य साधारण पेन्शन योजनाओं की तरह कर्मचारी पर इसका कोई बोझ पड़ता है।

टैंडबर्ग उद्योग-व्यवस्था की अपनी योजना के बारे में बहुत आशान्वित हैं। उनका कहना है कि भविष्य में इस प्रकार के ट्रस्ट-चालित उद्योग, जिनका मुनाफा केवल अनुसन्धान और विकास में काम आये, दुनिया की अर्थ-रचना के स्थायी अंग हो जायेंगे।

• व्यक्ति और समाज के हित परस्पर विरोधी हैं तथा इन दोनों के बीच *शासन और कानून की सत्ता* ही सन्तुलन कायम रख सकती है — यह एक ऐसा भ्रम है जो सत्ता के जरिये स्वार्थ-सिद्धि चाहनेवाले लोगों द्वारा फैलाया जाता है। इसे समाजवाद का नाम दिया जाता है पर वास्तव में इसका उपयोग व्यक्तिगत, दलगत या वर्गगत स्वार्थ-साधन में किया जा रहा है।

वारसा-सन्धि के देशों में विरोध-प्रदर्शन

अन्तरराष्ट्रीय शान्ति-आन्दोलन का एक महत्त्वपूर्ण प्रयास

[सर्वोदय का नारा है जय-जगत; क्योंकि इस विज्ञान के युग में सम्पूर्ण जगत ही एकमात्र मानवनिष्ठ इकाई बन सकता है। हितों के घरौंदों और हृदय की संकीर्णताओं के दिन लद गये। तभी तो चेकोस्लोवाकिया की घटना से दुनिया भर में एक मंथन पैदा हो गया है, और शान्ति की एक नयी लोकशक्ति का आभास भी हुआ है। इसका एक उत्तम उदाहरण है अन्तरराष्ट्रीय युद्ध-विरोधी संघ द्वारा किया गया यह प्रयास, जिसका विवरण भेजा है इस संघ के मंत्री श्री देवी प्रसाद की सहधर्मिणी श्रीमती जानकी देवी प्रसाद ने सीधे इंगलैंड से।—सं०]

गत २१ अगस्त '६८ को रूस तथा वारसा-सन्धि के उसके साथी—पोलैण्ड, हंगरी, बुलगेरिया और पूर्वी जर्मनी की सेनाओं ने चेकोस्लोवाकिया के ऊपर चढ़ाई कर दी, उस देश के प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार किया और वहाँ एक कठपुतली सरकार स्थापित करने का प्रयत्न किया। पिछले कुछ महीनों से चेकोस्लोवाकिया में लोकतन्त्रात्मक व्यवस्था और विचार-स्वातन्त्र्य की तरफ ज्यादा झुकाव हो रहा था, जिसको प्रतिक्रियावादी कहकर उसके दमन के लिए रूस ने यह कदम उठाया था। चेकोस्लोवाकिया के लिए इस आक्रमण का सशस्त्र प्रतिकार करना असम्भव था, लेकिन वहाँ के लोगों ने अद्भुत बहादुरी के साथ आक्रमण के प्रति अपना विरोध दिखाया और उसके सामने सिर झुकाने से इनकार किया। हमारे एक मित्र और साथी, अमेरिका के "वार रजिस्टर लीग" के मंत्री, डेविड मकरेनाल्ड उस रात को प्राग में थे। उन्होंने अपनी आँखों देखी बात यह बतायी कि हजारों साधारण नागरिक बिलकुल निहत्थे, बिना डर के, रूस के टैंकों के सामने चले जाते थे और सिपाहियों से पूछते थे 'क्यों यहाँ आये हो भाई, हमें आप लोगों की जरूरत नहीं है।' सिपाही लज्जित होते थे। असल में उन्हें भी मालूम नहीं था कि उन्हें क्यों यहाँ भेज दिया गया। कई दफा तो औरतें टैंकों के सामने खड़ी होकर उन्हें रोक देती थीं। चेकोस्लोवाकिया की जनता का यह निःशस्त्र प्रतिकार वैचारिक दृढ़ता के कारण नहीं परिस्थिति तथा अन्य विवशता के ही कारण क्यों न हुआ हो, सैनिक-आक्रमण के सामने ऐसा व्यवहार अभूतपूर्व और अहिंसा के मार्ग में एक नयी रोशनी दिखाता है।

एकता और सहानुभूति की अनुभूति

दुनिया के शान्तिवादियों ने महसूस किया कि इस अवसर पर चेकोस्लोवाकिया की जनता के साथ अपनी एकता और सहानुभूति दिखाये बिना नहीं रहा जा सकता है। 'युद्ध-विरोधी अन्तरराष्ट्रीय संघ' ने इस ओर तुरन्त कदम उठाया। उन्होंने उचित यह माना कि आक्रमणकारी देशों की जनता को वस्तुस्थिति बताने का प्रयत्न किया जाय और उनसे सीधे अपील की जाय। इसके लिए उन पाँचों देशों की राजधानियों में एक-एक अन्तरराष्ट्रीय टोली भेजने की योजना बनी। काम बहुत बड़ा था, विभिन्न देशों के शान्तिवादी मित्रों के साथ विचार-विनिमय हुआ, सबका उत्साहपूर्ण समर्थन और सहयोग मिला।

प्रदर्शन की पूर्व तैयारी

कुछ व्यावहारिक व राजनैतिक कारणों से बाद में पूर्वी जर्मनी में जाने का खयाल छोड़ना पड़ा। रूस की राजधानी मास्को, पोलैंड की राजधानी वारसा, हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट और बुलगेरिया की राजधानी सोफिया में जाने के लिए चार टोलियाँ तैयार हो गयीं। इंगलैंड, अमेरिका, इटली, जर्मनी, हालैण्ड, डेनमार्क और भारत से १६ युवक-युवतियाँ इस साहसपूर्ण कार्य के लिए प्रस्तुत हुए। वे सब ऐसे थे जो पहले भी अणुबम के निर्माण, नाटो, वियतनाम का युद्ध, आदि के प्रति अपना विरोध प्रकट कर चुके थे। उनका कार्यक्रम यह बनाया गया कि वे इन राजधानियों में जाकर वहाँ की जनता में एक निवेदन-पत्र बाँटें, और एक निश्चित मुहूर्त पर एक साथ विरोध-प्रदर्शन करें। अलग-अलग देशों में इन युवक-युवतियों से सम्पर्क स्थापित करना, उन्हें योजना बताना, उन-उन देशों में जाने के लिए वीसा वगैरह लेना, निवेदन-पत्र तैयार करना, यह सब बहुत सोच-समझ और मेहनत का काम था, जो 'युद्ध विरोधी अन्तरराष्ट्रीय संघ' के अध्यक्ष, मंत्री, तथा उनके साथी कई सप्ताह तक अविरत परिश्रम के साथ करते रहे।

विरोध और निवेदन

बहुत तैयारी के बाद २४ सितम्बर '६८ मंगलवार को चारों राजधानियों में निवेदन के पर्चे बाँटे गये और उस दिन शाम को एक ही वक्त इन शहरों में एक-एक मुख्य स्थानों पर विरोध-प्रदर्शन के रूप में एक 'बैनर' खोल दिया, जिसमें उन-उन देशों की भाषाओं में लिखा था—"नाटो को खत्म करो, वियतनाम पर अमेरिका के आक्रमण को खतम करो, चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण खतम करो।" और उसी समय (मास्को में ६ बजे, लन्दन में ४ बजे, न्यूयार्क में सुबह के ११ बजे) लन्दन, न्यूयार्क, कोपनहेगन और रोम में अन्तरराष्ट्रीय संवाददाताओं, समाचार-पत्रों तथा रेडियो टेलीविजनों को यह खबर बतायी गयी कि वारसा-सन्धि के देशों में चार अन्तरराष्ट्रीय टोलियाँ निवेदन-पत्र बाँटकर चेकोस्लोवाकिया पर हुए आक्रमण के प्रति विरोध-प्रदर्शन कर रही हैं। इंग्लैंड के सब समाचार पत्रों और रेडियो-टेलीविजनों में उस दिन शाम को तथा दूसरे दिन सुबह यह समाचार महत्त्वपूर्ण ढंग से दिया गया था।

निवेदन का शीर्षक था 'मदद'। उसमें कहा गया था :

- यह चेकोस्लोवाकिया के आपके साथियों की तरफ से आपके प्रति एक निवेदन है।
- आपके तथा वारसा-युद्ध-सन्धि के अन्य देशों की सेनाओं ने २१ अगस्त को चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण किया। नेताओं को गिरफ्तार किया।
- रूस तथा अन्य वारसा-सन्धि देशों को बताया गया है कि चेकोस्लोवाकिया के साम्यवादी साथियों की माँग के अनुसार

उनकी मदद के लिए आप की सेनाएँ भेजी गयी हैं। लेकिन गत जनवरी माह से इस देश को ज्यादा लोकतंत्रात्मक बनाने का काम यहाँ की कम्युनिस्ट-पार्टी की देखरेख में ही हो रहा है।

चेकोस्लोवाकिया की आज की स्थिति का विवरण करने के बाद निवेदन में यह बताया था कि :

• युगोस्लाविया के राष्ट्रपति, रूमानिया के राष्ट्रपति तथा फ्रांस, इटली, ब्रिटेन वगैरह देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों ने रूस के इस आक्रमणकारी कदम पर अपना दुःख और ग्लानि व्यक्त किया है।

• आपकी सरकार के इस काम के कारण दुनिया में शांति की शक्तियों को बहुत नुकसान पहुँचा है।

• रूस तथा अन्य वारसा-सन्धि के देशों की सब सेनाओं को चेकोस्लोवाकिया से एकदम हटाना ही पहला और आवश्यक कदम है, जिससे चेकोस्लोवाकिया की जनता को तथा दुनिया भर को शान्ति और समता के लिए काम करने वाली शक्तियों को नयी आशा मिले। यह करने की शक्ति और उसकी जिम्मेदारी आपकी सरकार की, और आप लोगों की है।

• इसलिए हम आपसे प्रार्थना कर रहे हैं कि जो भी शान्तिपूर्ण कदम आप इसके लिए उठा सकें, उठायें।

दिलचस्प अनुभव

... मास्को में विक्कीरोवरा नाम की एक अमेरिकन लड़की और इग्लंड से एंड्रू पॉपवर्थ गये थे। शाम को, जिस वक्त सड़कों पर काम से वापस आने वाले लोगों की भीड़ थी, पुश्किन् स्क्वायर में उन्होंने निवेदन के पर्चे बाँटे और अपना बैनर खोला। विक्की कहती है : "जल्दी ही एक भीड़ इकट्ठी हो गयी। लोग बैनर पर लिखे शब्द और निवेदन पढ़ने लगे। कुछ लोगों में विरोध का भाव पैदा हुआ। एक स्त्री ने पूछा---'आप क्यों हमारे देश में आकर इस तरह गड़बड़ शुरू कर देती हैं?' मैं उन्हें बताने का प्रयत्न कर रही थी कि मैं एक अन्तरराष्ट्रीय संघ की सदस्या और शान्तिवादिनी हूँ और हमारे विचार क्या हैं? (विक्की रूसी भाषा जानती है।) इतने में पुलिस पहुँची और मुझे ले जाने लगी। मैंने बची हुई निवेदन की प्रतियाँ उनके सिर के ऊपर से भीड़ में बिखेर दीं।" एण्ड्रू विक्की से थोड़ी दूर दूसरे स्थान पर निवेदन के पर्चे बाँट रहा था। उसने अपनी कमीज के पीछे भी बैनर के नारे लिखवाये थे। दोनों ने यह देखा कि विरोध करनेवाले सामने आकर शोरगुल मचाते थे, लेकिन भीड़ के पीछे कुछ लोग निवेदन गौर से पढ़ रहे थे। पुलिस दोनों को ले गयी। कुछ देर तक पूछताछ के बाद वे वापस अपने होटल में पहुँचा दिये गये और दूसरे दिन दोनों लन्दन वापस आ गये। उनका कहना है कि रूस में पुलिस का व्यवहार अच्छा और मैत्रीपूर्ण था।

गिरफ्तार होने के पहले विक्की ने निवेदन की सौ प्रतियाँ रूस के कई विश्वविद्यालयों, संस्थाओं तथा राजनैतिक दलों के पते पर भेज दिया था।

वारसा की टोली में चार युवक और उनमें से एक की पत्नी श्री मिकिलसन भी थी। उन्होंने १.३० बजे से निवेदन बाँटना शुरू किया। कई लाइब्रेरियों में और सार्वजनिक स्थानों में चुपके से एक हजार से अधिक प्रतियाँ बाँटी। ४.३० बजे कम्यूनिस्ट पार्टी के केन्द्रीय दफ्तर के सामने अपना बैनर खोला और खुलेआम निवेदन के पर्चे बाँटने लगे। सब प्रतियाँ बँट गयीं। लोगों ने खूब दिलचस्पी दिखायी। कोई पन्द्रह मिनट के बाद पुलिस पहुँची और उन्हें गिरफ्तार किया। श्रीमती मिकिलसन थोड़ी दूर पर खड़ी थी। उन्होंने कोपेनहेगन में टेलीफोन द्वारा खबर दी और फिर खुद भी गिरफ्तार हुईं। गुरुवार सुबह तक उन्हें कैद में रखा गया। फिर वे छूटकर वापस आ गये।

बुडापेस्ट की टोली को तीन दिन तक जेल भुगतनी पड़ी। उनमें 'युद्ध-विरोधी, अन्तरराष्ट्रीय संघ' के सहायक मंत्री बुजगाग जुश्च, जो जर्मनी के हैं, इग्लंड की एप्रिल कार्टर, अमेरिका के बाब ईटन, हालैंड के फ्रेंक फॅनर और भारत के सर्वोदय-जगत् के सतीश कुमार भी थे। जनता की तरफ से उनका बहुत अच्छा स्वागत हुआ। दो लड़कियों ने बैनर खोलने में मदद की। एक आदमी ने उस पर माला पहनायी। बहुत लोग इकट्ठे हो गये। उन्होंने अपना समर्थन व्यक्त किया। कुछ लोगों ने निवेदन बाँटने में भी मदद की। जब पुलिस पहुँच गयी और प्रदर्शनकारियों को गिरफ्तार किया तो दो विद्यार्थी बैनर लेकर वहाँ से भाग गये, जिससे कि वह पुलिस के हाथ में न पड़े।

टोली के पाँचों सदस्यों को एकान्त-कैद में रखा गया। उनसे अलग-अलग ७२ घंटे तक पूछताछ होती रही। इस बीच में उन्होंने पुलिस को अपने विचार भी समझाये। शुक्रवार रात को पाँचों को आस्ट्रिया की सीमा पर लाकर छोड़ दिया गया। उन्हें बताया गया कि चूँकि वे नाटो और वियतनाम के युद्ध का विरोध करते हैं, इसलिए यह काम जारी रखने के लिए छोड़ दिये जा रहे हैं, लेकिन उन्हें 'साम्राज्यवाद और साम्यवाद का भेद समझने की जरूरत है।'

सोफिया की टोली ने सुबह चाय-काफी की दुकानों और खेल-कूद के मैदानों में निवेदन-पत्र बाँटे। ५ बजे उन्होंने शहर के केन्द्र स्थान पर बाँटना शुरू किया। १४, १५ मिनट तक बाँटते रहे। लोगों ने कोई विरोध नहीं दिखाया। गिरफ्तार होने के बाद उनसे पूछताछ की गयी और बुधवार की रात को छोड़ दिया गया।

अब चारों टोलियाँ सकुशल वापस पहुँच गयी हैं। यह चाहे कितने ही छोटे पैमाने पर क्यों न हो, उन देशों की जनता को वस्तुस्थिति बताने तथा उनसे सीधे अपील करने का एक प्रयास था। अन्ततोगत्वा शक्ति तो जनता के हाथ में ही है न?

लार्ड रसेल का वक्तव्य

२४ सितम्बर '६८ को जब यह प्रदर्शन हो रहा था, तब श्री बर्टेण्ड रसेल ने यह वक्तव्य दिया :

"युद्ध-विरोधी अन्तरराष्ट्रीय संघ के के सदस्य, जिन्होंने कभी शीतयुद्ध के सैनिकों के जैसे बर्ताव नहीं किया, और न ही कभी किसी भी आक्रमण का समर्थन किया, उन्हें हमले का विरोध करने का केवल अधिकार ही प्राप्त नहीं हुआ है, बल्कि उन्होंने आक्रमणकारी देशों की जनता को चेकोस्लोवाकिया की परिस्थिति का

बेल्जियम : छोटा देश, बड़ा आदमी

['देश छोटा तो समस्याएँ भी छोटी' 'आबादी कम तो केन्द्रीकरण भी कम' बेल्जियम की जनता का प्रयोग सिद्ध सन्देश है। विकसित और अविकसित देशों का वैषम्य मिटाने के लिए तथाकथित आर्थिक सहायता से कहीं अधिक आवश्यक है अविकसित का शोषण बन्द करना। प्रस्तुत है यूरोपीय देशों में सर्वोदय विचार के प्रसार में संलग्न श्री सतीशकुमार का ताजा विवरण।—सं०]

एक करोड़ की आबादी हिन्दुस्तान के किसी एक जिले में समा सकती है, पर एक करोड़ की आबादीवाला बेल्जियम यूरोप का एक खूबसूरत और सम्पन्न राष्ट्र है। आबादी और क्षेत्रफल में यह देश भले ही छोटा हो, पर यहाँ के आदमी और उनके दिल पर इस छोटेपन का कोई असर नहीं है। "देश छोटा तो समस्याएँ भी छोटी। आबादी कम तो केन्द्रीकरण भी कम।" ये उद्गार अनेक बेल्जियन नागरिकों के मुँह से सुनने को मिलते हैं। बड़े देश अपने बड़प्पन के अभिमान में किस तरह का व्यवहार करते हैं, यह रूस और अमेरिका की नीतियों से जाहिर है। दुनिया को दो हिस्सों में बाँटकर अपने-अपने प्रभाव क्षेत्र में मनमानी चलाने तथा तटस्थ देशों को तेजहीन बनाकर रखने की राजनीति ने इस संसार को अशान्ति की आग में ढकेल रखा है। "हमें बड़ी ताकत के देशों की नहीं बल्कि बड़े दिल के आदमियों की जरूरत है।" श्री आर्थर डिमुंक ने कहा।

हाल्ले की 'सर्व सेवाकुटी'

श्री आर्थर डिमुंक ने अपने हाथ से लकड़ी की एक कुटी बनायी है और इसका नाम रखा है: "सर्व सेवा कुटी।" इस कुटी का निर्माण करने में श्री आर्थर ने छह महीने लगातार परिश्रम किया। "भारत, गांधी, विनोबा, अहिंसा, शान्ति, अध्यात्म आदि विषयों पर चर्चा, गोष्ठियाँ, एवं अध्ययन-कक्ष चलाने के लिए ही मैंने इसका निर्माण किया है।" श्री आर्थर के निमंत्रण पर मैंने सप्ताह भर इस कुटी में बिताये और दो बार विचार-गोष्ठियों में भाषण किये, पर कुटी का औपचारिक उद्घाटन २ अक्टूबर १९६८ को हुआ होगा। गांधी शताब्दी वर्ष को प्रारम्भ करने के निमित्त इस कुटी में अनेक गांधी मित्र 'रात्रि जागरण' और २४ घंटे लगातार गांधी-साहित्य का पाठ किये होंगे।

बेल्जियम की राजधानी ब्रूसेल्स से करीब ४० मील पश्चिम की ओर 'हाल्ले' नाम के छोटे से गाँव में श्री आर्थर रहते हैं, और यहीं पर 'सर्व सेवा कुटी' भी है। वे अधिकाधिक सर्वोदय कार्यकर्ताओं से सम्पर्क करने को उत्सुक हैं (पता—ARTHUR DUMUYNCK, 17, NACHTE GAALDREEF, HALLE, ANTWERP, Dist. BELGIUM)

बेल्जियम में गांधी, विनोबा और ग्रामदान के प्रति गहरी दिलचस्पी पैदा करने का श्रेय फ्रांस के प्रसिद्ध शान्तिवादी लांजा देल वास्तो और भारत में एक स्वयं-सेविका की तरह काम करनेवाली बेल्जियन बहन लिया ओबो को है। श्री आर्थर ने लांजा और लिया के काम को व्यापक बनाने में अपना पूरा सहयोग दिया है। उनका घर एक आश्रम जैसा है और मेरे लिए तो यह अपना ही 'घर' है। श्री आर्थर और उनका परिवार मात्र शाकाहारी ही नहीं है, बल्कि सत्वहीन—उजली डबल रोटी, डिब्बों और टिनों में भरा हुआ आहार, तथा केमिकल पदार्थों से युक्त खाद्य-सामग्री का भी उन्होंने पूर्ण बहिष्कार किया है। श्रीमती आर्थर कहने लगीं कि "सुपर बाजारों में सजाये हुए, खूबसूरत डिब्बों में बन्द अधिकांश खाद्य-पदार्थ स्वास्थ्य की दृष्टि से 'कुखाद्य' हैं, पर हमारा जीवन तो विज्ञापन वालों द्वारा बनाये हुए नियमों के अनुसार चलता है। प्रकृति के नियम हम क्या जानें! क्या खायें, क्या पीयें, क्या पहनें इत्यादि सब कुछ हम टेलिविजन और अखबारों द्वारा प्रसारित विज्ञापनों से सीखते हैं।"

जनतंत्र के नये प्रश्न

एक मात्र शान्ति चाहनेवाले यूरोप के छात्र बेल्जियम में भी काफी सक्रिय हैं। इन दिनों यहाँ के छात्र जनतंत्र के सही अर्थ और सही व्याख्या की खोज में लगे हैं। अमेरिका जनतंत्र का सबसे बड़ा 'रक्षक' है। पर यह 'रक्षा' बिना बन्दूक के सम्भव नहीं। डेमोक्रेटिक पार्टी के अधिवेशन के दौरान शिकागो में पुलिस की बर्बरता के उदाहरण ने बेल्जियम के छात्रों में नये प्रश्न पैदा किये हैं। पुलिस, पैसा, प्रचार और प्रोपेगंडा पर आधारित यह औपचारिक जनतंत्र कितना खोखला और अव्यावहारिक हो गया है, यह शिकागो की घटनाओं ने सिद्ध कर दिया। १२ हजार युद्ध-विरोधी मेकार्थी-समर्थक, शान्त प्रदर्शन-

---

सही ढंग बताना अपना कर्तव्य माना है। मैं तहेदिल से आशा करता हूँ कि नाटो व वियतनाम के युद्ध के विरोधियों द्वारा किये जानेवाले आज के प्रदर्शन से लोगों को पता चलेगा कि यह आक्रमण किसी भी तरह से न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता है, और उससे चेकोस्लोवाकिया की जनता को अपना स्वयं-निर्णय का हक हासिल करने का मार्ग इतना आपद्ग्रस्त नहीं रहेगा।"

इटली के सुप्रसिद्ध शान्तिवादी आल्दो केपितिनी ने यह कहा: "हिंसक आक्रमण के ऐसे दृश्य के परिणामों से आज कोई भी अछूता नहीं रह सकता है। इसलिए दृढ़ता-पूर्वक लेकिन सौहार्दपूर्ण चेतावनी देना अनिवार्य हो गया है, जिससे जिनके ऊपर यह दमन हुआ है, वह जनता असहाय न महसूस करे। चेकोस्लोवाकिया में अहिंसक प्रतिकार का जो कार्य हुआ है, जिसमें शत्रु को नष्ट करने का नहीं, समझाने का प्रयास है, उससे आक्रामक देशों को वृत्ति बदलनी चाहिए। अन्तरराष्ट्रीय और सौहार्द को जो लोग आज अपने काम से सक्रिय रूप दे रहे हैं, उनको अहिंसक उपायों की कार्यक्षमता पर पूरा विश्वास है।

कल तक अहिंसा एक नयी क्रान्ति थी आज वह ज्यादा व्यापक हो रही है और वह इस दुनिया को बदल देगी।"●

कारियों को चुप करने के लिए १५ हजार सिपाही शिकागो में तैनात थे। इनके अलावा ५ हजार सिपाही और ७ हजार सैनिक जरूरत होने पर तुरन्त पहुँच सकें, इसकी तैयारी थी। राष्ट्रपति-टिकिट के शान्तिवादी उम्मीदवार मेकार्थी के दफ्तर और स्टोर पर भी पुलिस ने हमला किया। "उदारवादी, शान्ति-समर्थक और घृणित-वियतनाम-युद्ध से थकी हुई अमेरिकी जनता ने सोचा था कि शायद मेकार्थी उनके लिए मानवीय-राजनीति का नया रास्ता खोलेंगे और निक्सन के मुकाबिले एक सही विकल्प चुनने का मौका देंगे, पर अमेरिका के ऊँचे साहबों को यह नहीं मंजूर था। आखिर निक्सन और हम्फरी में अन्तर ही क्या है कि चुनाव किया जाय? दोनों ही शान्ति से ज्यादा अमेरिकी प्रतिष्ठा को महत्त्व देते हैं। दोनों ही परिवर्तन को नहीं, बल्कि स्टेटस्को, कानून, व्यवस्था, सक्षम पुलिस एवं सशक्त सेना के समर्थक हैं।"

बेल्जियम के उदारवादी तरुणों एवं क्रान्तिकारी छात्रों के बीच शिकागो में औपचारिक जनतंत्र और चुनाव-पद्धति का जो तमाशा हुआ, उसकी यही प्रतिक्रिया हुई है। इन छात्रों ने मुझसे कहा कि "भारत भी तो इसी औपचारिक जनतंत्र के अमेरिकी रास्ते पर चल रहा है।"

भारत-जैसी ही भाषा-समस्या

बेल्जियम को भाषा-समस्या अब कुछ-कुछ सुलझती नजर आ रही है। यह एक द्विभाषी राष्ट्र है। आधी से ज्यादा आबादी फ्लेमिश है और उसकी भाषा डच है। बाकी आबादी वालून है और उसकी भाषा फ्रेंच है। फ्रेंच भाषियों ने डच भाषियों के साथ लगभग वही बरताव किया, जो अंग्रेजी भाषी साहब हिन्दी अथवा भारतीय भाषाओं के साथ करते हैं। पिछले साल डच भाषी फ्लेमिश जनता ने इस दमन के खिलाफ तीव्र आंदोलन किया। परिणामस्वरूप सरकार को इस्तीफा देना पड़ा। नये चुनाव हुए। पर किसीको भी प्रत्यक्ष बहुमत नहीं मिला। कोई भी पार्टी सरकार नहीं बना पायी। लगभग चार महीने तक बेल्जियम में सरकार थी ही नहीं। हालांकि इस सरकार के अभाव में कोई गजब नहीं ढह गया। आखिर दोनों पक्ष राजी हुए और वर्तमान में दोनों भाषाओं के बराबर-बराबर प्रतिनिधियों ने सरकार का गठन किया है और सभी कामकाज दोनों भाषाओं में चलते हैं। नोब्रसार्ट के 'यूथ-कैंप' में मैंने दो दिन बिताये। वहाँ फ्लेमिश और वालून दोनों प्रकार के तरुण एकत्र थे और एक दूसरे के प्रति पूरी उदारता बरत रहे थे।

शोषितों की 'तीसरी दुनिया'

ब्रुसेल्स से लगभग १०० मील दक्षिण में ३०० आदमियों की एक छोटी-सी बस्ती नोब्रसार्ट है, जहाँ पियरे दुबोट नाम के एक शान्तिवादी शिक्षक प्रतिवर्ष दो सप्ताह के लिए लगभग २५-३० युवकों को अपने घर पर आमंत्रित करते हैं। इन तरुण अतिथियों का यूथ-कैंप केवल खाने-पीने, नाचने गाने, आमोद-प्रमोद करने मात्र तक ही सीमित नहीं है, बल्कि दुनिया की ज्वलंत समस्याओं को समझने और उन समस्याओं के हल में प्रत्येक व्यक्ति कैसे सहायक बन सकता है, इस सम्बन्ध में विचार-विमर्श करने का भी एक मंच इस यूथ-कैंप में उपलब्ध होता है। मेरी उपस्थिति के दौरान पूरे यूथ-कैंप की चर्चा का विषय भारत एवं अन्य 'अविकसित' देशों की समस्याओं से सम्बन्धित था। "पूँजीवादी विकसित देशों की एक दुनिया है और साम्यवादी विकसित देशों की दूसरी दुनिया है। परन्तु एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के देशों की हमारी जो 'तीसरी दुनिया' है, क्या वह सचमुच 'अविकसित' है या पहली और दूसरी दुनिया द्वारा 'शोषित' है?" मैंने यह सवाल यूथ-कैंप के तरुणों के सामने रखा। मेरे इस सवाल के सन्दर्भ में श्री पियरे दुबोट ने कहा कि "इन अविकसित देशों को यूरोप और अमेरिका के रास्ते से विकसित बनाने के लिए हम जो तथाकथित सहायता कर रहे हैं, उससे भी बड़ी सहायता यह होगी कि हम इस तीसरी दुनिया का शोषण करना बन्द कर दें।"

फादर दोमिनिक पीर का 'शान्तिद्वीप'

नोबल पुरस्कार प्राप्त करने के बाद ही नहीं, बल्कि उसके पहले से बेल्जियम के मूर्धन्य समाज-सेवक और गांधी-परिवार के मित्र फादर दोमिनिक पीर को हम सभी जानते हैं। 'तीसरी दुनिया' के देशों की समस्याओं में वे निरन्तर दिलचस्पी लेते रहे हैं। पूर्वी पाकिस्तान में और अब दक्षिण भारत में 'शान्तिद्वीप' की स्थापना के उनके प्रयत्नों को काफी यश प्राप्त हो चुका है। 'शान्तिद्वीप' के कार्यक्रम के पीछे फादर दोमिनिक पीर की यह कल्पना है कि एक नमूने के तौर पर किसी गाँव की पुनर्रचना करके आस-पास के गाँववालों को समझाया जाय कि 'आदर्श गाँव' कैसा होता है। जब इस 'नमूने के गाँव' को लोग देखेंगे और पायेंगे कि इस गाँव का जीवन अधिक सुखी और सम्पन्न है तो आसानी से लोग विकास-कार्यक्रमों को अपना सकेंगे। पूर्वी पाकिस्तान में 'शान्तिद्वीप' की कल्पना को काफी सफलता मिली है और अब तमिलनाड में यह योजना प्रारम्भ होनेवाली है।

मद्रास-सरकार की तरफ से सहयोग के अभाव के कारण कुछ कठिनाइयाँ बतायी जाती हैं, पर ग्रामदान-आन्दोलन के साथ उनका पूरा सहयोग है। यहाँ बेल्जियम में ब्रुसेल्स से लगभग २५ मील पर 'ह्वी' नाम के नगर में फादर पीर ने 'शान्ति विश्वविद्यालय' की स्थापना की है। यह विश्वविद्यालय सीखने-सिखाने का एक उन्मुक्त केन्द्र है। इन दिनों फादर पीर बेल्जियम गांधी शताब्दी समिति के अध्यक्ष हैं, और व्यापक पैमाने पर गांधी शताब्दी समारोह मनाने की तैयारियाँ कर रहे हैं।

मैंने कुल मिलाकर बेल्जियम में ७ सप्ताह बिताये। ग्रामदान आन्दोलन के काम की व्यापक जानकारी और गांधी विचार में गहरी दिलचस्पी इस देश के लोगों में पाकर मुझे आश्चर्य और आनन्द हुआ।

—सतीश कुमार

बुनियादी शिक्षा की बुनियाद

विनोबा

बुनियादी तालीम में श्रेष्ठ-कनिष्ठ है नहीं। यह जो दूसरी तालीम चलती है उसमें हेड-मास्टर, मास्टर वगैरह होते हैं, तनख्वाह कम-बेशी होती है। और यहाँ बिलकुल विपरीत बात चलती है कि जो हेडमास्टर होता है, यानी जिसको ज्यादा बुद्धि और अनुभव होता है, उसको सिखाने के लिए नीचे के वर्ग देने के बदले ऊपर के वर्ग देते हैं। असल में जो सबसे अधिक अनुभवी, कुशल और बुद्धिमान मास्टर होगा उसको बिलकुल पहले वर्ग को सिखाने को कहना चाहिए, क्योंकि वहाँ शून्य में से तैयार करना होता है, इसलिए अधिक कुशलता की आवश्यकता रहती है।

आप जानते हैं भारत के एक बहुत बड़े आचार्य रवीन्द्रनाथ थे। उनका खयाल था कि पढ़ाई नाम की कोई वस्तु नहीं होनी चाहिए। बल्कि गाना गाते जायें, बोलते जायें, विद्या पाते जायें। पता ही न चले कि विद्या पा रहे हैं, ऐसा हो। उस पर हमने लिखा था कि भास नहीं होना चाहिए कि हम सीख रहे हैं, भास होना चाहिए कि हम कुछ-न-कुछ काम कर रहे हैं। हम सीख रहे हैं, यह पता नहीं चल रहा है और काम करते-करते विद्या पाते जायें। जैसे खेलते हैं, तो पता नहीं चलता कि व्यायाम मिल रहा है और व्यायाम मिलता है। किसान खेत में काम करता है तो उसको मालूम नहीं होता कि उसका व्यायाम हो रहा है, और व्यायाम हो जाता है।

हमारे आश्रम में हम हाथ-चक्की पर पीसते थे। एक बार मैं पीस रहा था और मेरे साथ बारह साल का एक लड़का भी पीस रहा था। उसी समय एक सज्जन मुझसे मिलने के लिए आये। उन्होंने देखा, तो बोले, यह तो 'चाइल्ड लेबर' हुआ। बच्चों से इस प्रकार 'लेबर' करवाना ठीक नहीं। हमने कहा, ठीक है। कल हम इसी चक्की पर बैठेंगे—इसी तरह चक्की घुमायेंगे—एक बार दायीं ओर से एक बार बायीं ओर से, लेकिन उसमें अनाज नहीं डालेंगे, यानी पीसा कुछ नहीं जायेगा—पर इसी तरह चक्की घुमाते रहेंगे तो फिर वह 'चाइल्ड लेबर' नहीं होगा, वह 'एक्सरसाइज' होगा। अगर उस श्रम में से कुछ पैदा हुआ, तो वह श्रम होगा, नहीं तो व्यायाम होगा। एक बार, हमने एक किताब पढ़ी थी—'थ्री मिनट्स एक्सरसाइज'—तीन मिनट में व्यायाम। कुछ नहीं करना—कमरे में यहाँ से वहाँ तक दरी बिछा देना और उस पर इधर-से-उधर, उधर-से-इधर लेटकर लुढ़कना, हिलाना, लोढ़ना। बस, ऐसा बिना श्रम का व्यायाम।

आज हमारा सारा जीवन परिश्रमहीन हो गया है। यह बात हममें पैठ गयी है। इसके तीन कारण हैं। एक कारण तो यह है कि जाति-व्यवस्था टूट गयी। और दूसरा, वर्णाश्रम-व्यवस्था बनी। ऊँची जाति के लोग काम करेंगे नहीं। और तीसरा, अंग्रेजों के आने के बाद उन्होंने ऊँची जाति को अंग्रेजी शिक्षा दी। वे अंग्रेजी बोलने में, अंग्रेज जैसे बरतने में बड़प्पन मानने लगे। 'मदर' कहने में उनको विशेष आदर, प्रतिष्ठा महसूस होती है, 'माँ' कहने में अप्रतिष्ठा लगती है। तो यह एक वर्ग तैयार हो गया, जो शरीरश्रम को हीन मानने लगा। जो वर्ण-व्यवस्था के अनुसार ऊँचा वर्ग अंग्रेजी शिक्षा के कारण और ऊँचा हो गया। उनकी ऊँचाई की सीमा नहीं रही, और ऊँच-नीचता बनी रही। फलाना काम ऊँचा, फलाना नीचा—यह भावना आयी। अब यह सारा तोड़ना होगा, तब भारत बचेगा।

हमारे यहाँ परिश्रमनिष्ठा बहुत बड़ा तत्त्व है। वह बुनियादी तालीम का बहुत बड़ा तत्त्व है। लेकिन आज का समाज उसके लिए अनुकूल नहीं।

प्रश्न : आप भारत भर में ग्रामदान-प्रांतदान का आन्दोलन चला रहे हैं। नयी तालीम का काम तो अधिक महत्त्व रखता है। क्या उसके लिए आन्दोलन में कहीं स्थान नहीं कि भारत में नयी तालीम का अमल हो?

उत्तर : इस पर सतत अमल हो रहा है। सन् '५१ से '६८ तक भारत की पदयात्रा हुई। उसमें सतत नयी तालीम का कार्य चला। शिक्षा में अहिंसक क्रान्ति लाने का कार्य चला। उसके पहले कौन पैदल चलता था? हमारी यात्रा के बाद ऐसा असर हुआ कि चुनाव के लिए खड़े होते हैं, तब बड़े-बड़े लोग भी पदयात्रा करने लगे। लेकिन उनकी पदयात्रा कैसी होती है? 'पदयात्रा' एक समास है। बड़े-बड़े लोग जो पदयात्रा करने लगे वह 'पदयात्रा' मध्यम-पदलोपी समास है। पदप्राप्ति के लिए यात्रा। इतनी पदयात्रा की प्रतिष्ठा हो गयी।

आज जनता को शिक्षित किये बिना 'बेसिक एजुकेशन' (बुनियादी शिक्षा) को बुनियाद ही नहीं मिलेगी। यह ध्यान में आया नायकमजी को। वे हमारे साथ तमिलनाड में घूम रहे थे। अभी तो वे हमारे बीच में नहीं हैं, बिलकुल ऊँचा शरीर, हजार लोगों में भी दीखे, ऐसा। उन्होंने कहा कि हरएक बच्चे को तालीम मिलनी चाहिए। लेकिन भारत में करोड़ों लोगों को खाने को मिलता नहीं। और परिवार में पाँच छह साल का लड़का भी 'अर्निंग मेम्बर' (कमाऊ सदस्य) है। भैंस की पीठ पर बैठकर उसे चराने ले जाता है। वह न हो, तो भैंस का दूध मिलेगा नहीं। पाँच साल का लड़का घर का 'अर्निंग मेम्बर' है। वह आपके स्कूल में कैसे जायेगा? इसलिए प्रथम तो सब बच्चों के लिए इन्तजाम होना चाहिए खाने-पीने का। उसके बिना बुनियादी स्कूल को आधार नहीं है। यह उन्होंने देखा, तब कहा कि अब ध्यान में आया कि नयी तालीम विद्यालय केवल विद्यालय तक सीमित नहीं होना चाहिए, पूरे गाँव को विद्यालय मानना चाहिए। और नयी तालीम के सम्मेलन में उन्होंने प्रस्ताव पास किया कि पूरे गाँव को स्कूल मानकर 'ट्रीट' किया जाये। और विद्यालय व्यापक किया जाये। इसका अर्थ यह हुआ कि बुनियादी तालीम के लिए आधार ही ग्राम है। गाँव ग्रामदान हो जाता है, तो ग्राम-सभा के द्वारा हर बच्चे के लिए तालीम का इन्तजाम होगा। ऐसी व्यवस्था होगी कि बुनियादी तालीम घर के हर बच्चे तक पहुँचे। डा॰ जाकिर हुसैन नयी तालीम के बड़े आचार्य हैं। उन्होंने माना है कि बुनियादी तालीम जब ग्रामीण आधार पर खड़ी होगी, तभी

उसकी असलियत प्रकट होगी। नहीं तो नहीं। सरकार ने क्या किया ? कुछ सरकारों ने बुनियादी तालीम को माना और किया क्या ? जो लड़का वह तालीम पायेगा, उसको हाई-स्कूल में प्रवेश नहीं। यानी बुनियाद बनायी त्रिकोणी और ढांचा चतुष्कोणी, अगर ऊपर का ढांचा भी त्रिकोणी हो तो ठीक, नहीं तो बुनियाद चतुष्कोणी हो। बापू के आग्रह के खातिर बुनियादी तालीम चलायी और आखिर उसको भी पटक दिया। आज बुनियादी तालीम के नाम पर भारत में जो चलता है, वह बिलकुल ही गलत है।

बुनियादी तालीम का विचार बहुत व्यापक है और उसके लिए सवगर ग्रामसभा के बिना होगा नहीं। यह विचार गांधीजी ने दिया था और उसका अमल किया चायना ने। वहाँ उन्होंने 'हाफ-हाफ' स्कूल चलाया है। तीन घण्टे श्रम और तीन घण्टे ज्ञान। तमाम विद्यार्थियों को इसी तरह तालीम मिलेगी। वर्ग, जाति, ऊँच-नीच का भेद नहीं। जो भी स्कूल में जायेगा, उसको श्रम करना पड़ेगा। यही बापू ने कहा था कि तालीम में ज्ञान और कर्म साथ साथ होना चाहिए। भारत में आज वैसा है नहीं।

बुनियादी शिक्षकों के बीच

बेतिया, ८-८-'६८

राजस्थान अकाल राहत कमेटी

राजस्थान प्रदेश के अधिकांश क्षेत्रों में इस साल अभूतपूर्व सूखे के कारण भयंकर अकाल की स्थिति आ गयी है। सरकार राहत का काम कर रही है, लेकिन परिस्थिति शायद सरकार के काबू से बाहर की है। ऐसी स्थिति में प्रदेश को देश भर से सहायता पहुँचाने के लिए राजस्थान में एक राजस्थान अकाल राहत कमेटी का गठन हुआ है, जिसके संयोजक श्री गोकुल भाई दौ० भट्ट ने देश के उदार और सहृदय नागरिकों तथा संस्थाओं से मदद की अपील की है। कमेटी का पता :

राजस्थान अकाल राहत कमेटी, किशोर निवास, त्रिपोलियाबाजार, जयपुर-२

देश के आर्थिक जीवन में गलत प्रवाह

उसे कैसे रोकें ?

गांधी-दर्शन के अनन्य भाष्यकार स्व० श्री कि० घ० मशरूवाला ने हिन्दुस्तान के गाँवों का जो चित्र आजादी के पहिले खींचा था वह आज भी ज्यों-का त्यों बना है :—

"हिन्दुस्तान गाँवों में बसा है यह बात तो बारम्बार कही गयी है, पर हिन्दुस्तान की संपत्ति सम्बन्धी आज की *अधिकांश योजनाएँ गाँवों के हित की दृष्टि से नहीं बनायी गयी हैं। इसका नतीजा यह हुआ है कि गाँवों का कच्चा माल* शहर में पटता है तथा शहरों में बने पक्के माल से गाँवों को पाटने की कोशिश की जाती है। जीवन के बहुतेरे साधन जो गाँव के खेतों और जंगलों में लगभग मुफ्त मिल सकते हैं, उनके बदले शहरों और विदेशों में बना हुआ देखने में थोड़ा-बहुत सुविधाजनक लेकिन अधिकांश में दिखावे के लिए ही आवश्यक और अच्छा लगनेवाला माल काम में लाने का फैशन बढ़ जाने से देहात के बहुत-से उद्योग और मजदूरी के धन्धे नष्ट हो गये और होते जा रहे हैं। ऐसा अधिक आकर्षक सामान आरोग्य और स्वच्छता की दृष्टि से हानिकारक और गन्दा भी होता है, खर्चीला तो होता ही है। ये सब चीजें गाँव की वस्तुओं से सस्ती पड़ती हो सो बात नहीं है।

"इसके सिवा व्यापारियों की संकुचित और तुरन्त मुनाफा कमा लेने की स्वार्थ दृष्टि ने बहुत-से देहाती माल को मशीन के माल की अपेक्षा पड़ते में महँगा न होते हुए भी, खरीददार के लिए महँगा बना दिया है। इससे जो बाजार सहज में देहात के हाथ में रह सकता है वह भी कारखानों और विदेशियों के हाथ में चला गया है।

"जब अर्थशास्त्र और जीवन में ग्रामदृष्टि का प्रवेश होगा तब देहात की बनी चीजों का अधिकाधिक उपयोग करने की ओर जनता का मन झुकेगा।

"इस प्रकार आज संपत्ति देहात से शहरों में चली जा रही है और देहात हर दृष्टि से कंगाल होते जा रहे हैं।"

इस प्रवाह को बदलने की जरूरत है। *यह कैसे बदलेगा ?*

त्रिविध कार्यक्रम (ग्रामदान, ग्रामाभिमुख खादी एवं शांति-सेना) के जरिये आप इस प्रवाह को बदल सकते हैं।

सन् १९६९ गांधीजी की *जन्म-शताब्दी* का साल है।

आइए, इस प्रवाह को बदलने में सब जुट जायँ।

राष्ट्रीय गांधी जन्म शताब्दी समिति की गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति द्वारा प्रसारित

सर्वोदय-क्रान्ति की मौलिकता : 'सर्व' के द्वारा 'सर्व' के लिए

[स्वीडेन के एक मित्र ने ग्रामदान आन्दोलन का अध्ययन करके अपनी आलोचनात्मक प्रतिक्रिया श्री नारायण देसाई को एक पत्र में लिख भेजी है। उक्त मित्र के मन के भाव उन तक ही सीमित हों, ऐसी बात नहीं, अक्सर इस आन्दोलन की आलोचनाएँ इन बातों को लेकर होती हैं, जो इस पत्र में व्यक्त हैं। पत्र के कुछ अंश और श्री धीरेन्द्र मजूमदार की प्रतिक्रिया दोनों साथ-साथ प्रस्तुत करते हुए हम आशा करते हैं कि पाठक भी अपनी प्रतिक्रिया भेजेंगे। —सं०]

एक भ्रमजाल

"'''ग्रामदान के सम्बन्ध में मेरा अध्ययन बहुत ही हतोत्साह और निराशा के साथ समाप्त हुआ। आप सोच सकते हैं कि मेरी आलोचना निराधार है, अनजानी है, व्यर्थ है। और मैं स्वीकार करता हूँ कि सम्पूर्ण निर्णय पर पहुँचने की स्थिति से पूर्व मेरे लिए जानने को बहुत कुछ बाकी रह जाता है। लेकिन मैं भरोसे के साथ यह कह सकता हूँ कि कुल मिलाकर मैंने पूरी तस्वीर देख ली है, और मैं मुख्य विचारों और विकास की पद्धतियों से वाकिफ हूँ।

"अहिंसक-क्रान्ति" एक मिथ्या जाल है। यह शब्दों के साथ एक अजीब खेल हो सकती है। सिद्धान्तरूप में, विनोबा के सुन्दर व्याख्यानों में, कुछ ईमानदारी की, कुछ मूल्यों की बात हो सकती है। किन्तु जब हम विचार को व्यवहार के क्षेत्र में लाते हैं तो वे मूल्य तुरन्त गायब हो जाते हैं।

लेकिन क्या आन्दोलन बराबर और अधिक मजबूत नहीं होता जा रहा है? हर महीने आपका यह पढ़ने को मिल जाता है कि इतने और अधिक ग्रामदानों की घोषणाएँ हो गयीं?

मेरे देखने में एक भी सही ग्रामदान नहीं है। कुछ "सुन्दर ग्रामदानी गाँव हैं"। अधिकांश ग्रामदान सिर्फ कागज पर हैं, उनमें कतई कोई काम नहीं होता। मैं जानता हूँ कि आप इससे अवगत हैं, यह बात मेरे लिए नयी है, आपके लिए नहीं।

लेकिन क्यों? जैसा कि मैं देखता हूँ (जो कि निःसन्देह गलत हो सकता है) इसके अनेक कारण हैं। बहुत सारे ग्रामदान-कार्यकर्ता बहुत ही अक्षम, अशिक्षित, अनजान हैं, और वस्तुतः वे यह नहीं जानते कि यह सब कुछ एक सामाजिक क्रान्ति के लिए है। वे अन्दर से और हृदय से रूढ़िवादी और प्रतिक्रियावादी हैं। वे ईमानदारी के साथ यह नहीं चाहते कि समाज में बुनियादी परिवर्तन हो। ग्रामदान-आन्दोलन एक जनआन्दोलन नहीं है। यह एक धनियों की ओर से गरीबों के लिए धनवालों की सीमित दया पर आधारित आन्दोलन है। यह विश्वास करना नासमझी की बात है, कि धनवान अपने सारे अधिकार और धन का त्याग कर देंगे—भले ही वे निष्ठावान हिन्दू हैं, और त्याग इस धरती पर पावनतम् चीज है, तो भी। वे इसका एक छोटा-सा अंश दे सकते हैं, लेकिन उतना तो हरगिज नहीं, जितने से वास्तव में वे प्रभावित होते हों। अधिकार और धन को छोड़ना पड़ेगा और उनका लोगों में बँटवारा करना पड़ेगा।

ग्रामदान आन्दोलन कांग्रेसदल द्वारा समर्थित है, (किसी रूप में, जबानी समर्थन) और बहुत से प्रमुख कांग्रेसी सर्वोदयी लोगों में शामिल हैं। इसमें एक बड़ी चीज सामने आती है। नयी तालीम के बारे में विनोबा कहा करते हैं, कि आरम्भ में इसके बहुत से शत्रु हो सकते हैं, क्योंकि नयी तालीम पूँजीवाद और शोषण की बुनियादों को ही नष्ट कर डालेगी। लेकिन कोई इसका शत्रु नहीं है, यह स्थिति ग्रामदान की है। पूँजीपति और शोषक, कांग्रेसी और अन्य प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ आपको मदद करती हैं, आपके क्रान्तिपूर्ण समाज-परिवर्तन से उन्हें कोई भय नहीं है। वे आपको अपना सहधर्मी-जैसा मानते हैं, और बहुत मानों में आप उनके सहकर्मी हो भी गये हैं।

ग्रामदान की बुनियाद के लिए एक और बड़ा खतरा 'अहिंसा' का है। अहिंसा की आपकी व्याख्या आखिरी सीमा की है। आपके लिए इसका अर्थ है सबके साथ मित्रवत् होना—पूँजीपति, साहूकार, भूपति, शोषक, भूमिहीन, किसान, दैनिक मजदूरी पर खटनेवाला मजदूर, आदि सबके साथ; यहाँ तक कि अपराधियों और पीड़ितों के साथ भी। आपकी अहिंसा समझौते की ओर धकेलती है, और धकेलती ही जाती है, जब तक कि आपके विचार में अपना कुछ रह नहीं जाता।

अगर हिंसा तत्काल शुरू हो जाय और धरती पर शोषण तथा निर्दलन का कोई अस्तित्व ही न रह जाय, तो शायद अहिंसा का नारा सारे झगड़ों को खत्म कर डाले। लेकिन अगर सम्पूर्ण क्षेत्र, आपका अहिंसा का विचार भी, हजारों वर्षों के निर्दलन से ग्रस्त है, आपकी निःशस्त्रता आपको जालिमों की बाँहों में पहुँचाने का काम करती है। हिंसा सर्वत्र है, और जहाँ कहीं मैं गया हूँ, उन सबसे अधिक यहाँ भारत में है। पिछले कुछ महीनों के दरम्यान, जबकि मैं यहाँ रहा हूँ, मैंने काफी नजदीक से इसे और बढ़ते हुए महसूस किया है। अगर यह 'हमारी' अपनी हिंसा नहीं है, और यह 'हमारे' ऊपर लादी गयी है, (मैंने 'हम' का प्रयोग किया है, क्योंकि भारतीयों के भाग्य के साथ कुछ हद तक अपना तादात्म्य महसूस करता हूँ) जिसने हमें भूखा रखा है, प्रताड़ित किया है, निर्वीर्य और पशुवत् बना दिया है, तो हमें इस हिंसा से मुक्ति लेनी होगी—इसे वहीं वापस फेंककर, जहाँ से यह सम्बन्धित है, पूँजीपतियों, शोषकों, निर्दलकों के ऊपर फेंककर।

आप संशोधनवादी रास्ते पर भटक रहे हैं, और जिस तरह आप करते हैं, उससे

यही सम्भव भी है। इसीलिए आपकी विफलता ने मुझे यह मानने को विवश किया है कि हमें क्रान्ति का नया पथ चुनना पड़ेगा। इसमें काफी हिंसा हो सकती है। लेकिन यथास्थिति को कायम रखने से अधिक क्रूर दूसरी और कोई चीज हो नहीं सकती। ग्रामदान के विचार और व्यवहार में बहुत सारे नकारात्मक पहलुओं के बीच कुछ विधायक चीजें भी हैं। मैंने आपलोगों से काफी सीखा है। मैं नहीं जानता, लेकिन मुझे आशा है कि आप पूर्णतया समाप्त नहीं हो गये हैं। मैं सोचता हूँ कि अब भी आपको क्रान्ति की प्रक्रिया से जुड़ने का एक मौका है। आपके बहुत से विचार-क्रान्ति को समृद्ध करेंगे और क्रान्ति के बाद आपके अनुभव बहुत मूल्यवान होंगे, जब समाजवादी समाज-रचना शुरू होगी—शोषण और निर्दलन से मुक्त समान स्त्री-पुरुषों के समाज की रचना। —फ्रीस टेरेनियस

क्रान्ति की 'लीक' से भी अलग

स्वीडेन के जिस भाई ने यह पत्र लिखा है वह उनकी दृष्टि से ठीक है। क्योंकि अब तक क्रान्ति और अहिंसा इन दोनों प्रश्नों पर जितने अमल हुए हैं उनकी प्रक्रिया से सर्वोदय की इस क्रान्ति का मेल नहीं बैठता। पत्र में *दो प्रश्न उठाये गये हैं*। पहला प्रश्न ग्रामदान की प्रक्रिया और निष्पत्ति के बारे में है। इसका समाधान के लिए क्रान्ति की भिन्न-भिन्न *प्रक्रियाओं* को समझना होगा। अब तक क्रान्ति की परम्परागत प्रक्रिया यह रही है कि शक्तिशाली विचारक के नेतृत्व में *विचारनिष्ठ* मनुष्यों की एक जमात बनाकर अवांछनीय तत्त्व पर प्रहार कर उसे परास्त किया जाय। *विनोबाजी क्रान्ति की प्रक्रिया में नया मोड़* देने का प्रयास कर रहे हैं। वह यह है कि क्रान्ति के विचार की शक्ति से लोकमानस में *क्रान्ति का* निर्माण हो और उसके फलस्वरूप समाज के मूल्यों में परिवर्तन हो। इसलिए वे समाज में क्रान्ति-विचार का अनुप्रवेश कराना चाहते हैं। उनके विचार से एक क्रान्तिनिष्ठ जमात क्रान्ति करे और जनता उसका साथ दे, *यह लोकक्रान्ति की प्रक्रिया* नहीं है। वस्तुतः यह प्रक्रिया युद्ध की है। क्योंकि इसके लिए सामने कोई अवांछनीय जमात चाहिए जिस पर प्रहार किया जा सके। उपरोक्त प्रकार की *क्रान्ति की सफलता* का मतलब है कि अवांछनीय जमात के हाथ से क्रान्तिकारी जमात के हाथ में समाज की बागडोर आ जाय और नयी जमात समाज में क्रान्ति का अधिष्ठान करे। इसमें *दोष यह है कि क्रान्ति की निष्पत्ति* क्रान्तिकारी जमात का निहित स्वार्थ हो जाता है। जिसके फलस्वरूप वह जमात समाज के लिए *दूसरे प्रकार का अवांछनीय तत्त्व* बन जाती है। इस प्रक्रिया का दूसरा दोष यह है कि आम जनता क्रान्तिकारी के पीछे चल कर उसके द्वारा कष्ट-मुक्ति की बात सोचती है, न कि क्रान्ति-विचार के अधिष्ठान की बात। फलस्वरूप वह अधिक मजबूती के साथ उस जमात की मुट्ठी के अन्दर चली जाती है, क्योंकि वह मानती है कि उसकी *सुरक्षा जमात में है न कि विचार में।*

सर्वोदय की क्रान्ति में ऊपर बताये हुए युद्ध-तत्त्व नहीं है। इस क्रान्ति की प्रक्रिया यही हो सकती है कि पूरे समाज में क्रान्ति का अनुप्रवेश कराया जाय। यही कारण है कि विनोबा कहते हैं, 'क्रान्ति अहिंसक ही हो सकती है जिसमें कोई किसी पर प्रहार नहीं करता है, बल्कि पूरे समाज को विचार का *उपहार दिया जाता है*'। *इसी सिलसिले में* वे यह भी कहते हैं कि अहिंसा में प्रतिकार नहीं सहकार होता है। क्योंकि इसमें सामनेवालों को *सही ढंग से सोचने के लिए मदद करना* होता है। वस्तुतः अहिंसा का मूल तत्त्व वही है जो क्राईस्ट ने कहा था—"पाप से घृणा करो और पापी से प्रेम करो।" इस सिद्धांत के अनुसार आप किसी जमात पर चाहे वह *कितना भी पापी हो, प्रहार नहीं* कर सकते हैं। उसे समझा ही सकते हैं कि वह अमुक प्रकार के पाप करता है जो उसी के हित में हानिकारक है।

हमारे मित्र का दूसरा प्रश्न क्रान्ति के सन्देशवाहकों के विषय में है। इसके लिए पहली बात यह समझनी चाहिए कि आज के अत्यन्त कोलाहलपूर्ण युग में क्रान्ति के प्रति *लोगों का ध्यान* आकर्षित करना पहली आवश्यकता है ताकि समाज में कुछ जिज्ञासा पैदा हो। विनोबाजी हर तबके के लोगों द्वारा ग्रामदान घोषणा-पत्र को व्यापकरूप से *स्वीकार कराकर पूरे समाज का ध्यान इसकी* ओर आकर्षित कर रहे हैं। उसके लिए वे समाज के हर श्रेणी के लोगों को इसमें शामिल होने को कहते है, ताकि शब्द का व्यापक प्रसार हो; जिसके परिणामस्वरूप अर्थ की जिज्ञासा पैदा हो। इसलिए क्रान्ति के विचार तथा व्यावहारिक व्यूह-रचना की दृष्टि से विनोबाजी की प्रक्रिया आवश्यक है। व्यावहारिक *दृष्टि से कोई भी क्रान्तिकारी तब तक* इन्तजार नहीं करेगा जब तक देश में व्यापक पैमाने पर क्रान्तिनिष्ठ व्यक्ति आगे न बढ़ें, क्योंकि विचार का व्यापक शब्ददान ही वह मन्थन की प्रक्रिया है जिससे समाज के अन्दर से क्रान्तिनिष्ठ व्यक्ति ऊपर आ सकते है। तब तक जिस किसी में थोड़ी हलचल होती है उसी के हाथ में शस्त्र दे देना आवश्यक है। दूसरी *बात यह है कि जब किसी जमात का निर्माण* नहीं करना है, तब समाज के हर व्यक्ति को सन्देशवाहक के रूप में मान लेना आवश्यक होता है। यही कारण है कि विनोबा देश की हर संस्था और जमात से इस काम को उठा लेने की बात कहते हैं।

वैचारिक पहलू यह है कि जब आप पाप से घृणा और पापी से प्रेम करना चाहते हैं तो *सभी आपके मित्र हैं* ऐसा मानना पड़ेगा। विचार के सन्दर्भ में दूसरी बात यह है कि सर्वोदय की क्रान्ति सर्व के लिए और सर्व के द्वारा ही हो सकती है। सर्व में सब प्रकार के लोग स्वाभाविक रूप से आ जायेंगे। *सर्वोदय कोई विशिष्टवाद नहीं है*। इसलिए उसके लिए कोई *विशिष्ट* जमात भी नहीं बन सकता है। सर्वोदय हो ही नहीं सकता, अगर सर्वोदय-समाज की स्थापना के लिए जो भी कुछ क्रान्तिकारी आन्दोलन चले उसमें सर्व का प्रवेश *न हो सके तो। सर्वोदय-विचारक* को यह निष्ठा रखनी होगी कि अमुक व्यक्ति चाहे जितना पापी हो *आन्दोलन की प्रक्रिया द्वारा ही सुधरता रहेगा*। अमुक प्रकार के व्यक्तियों को अलग करके सर्वोदय समाज की स्थापना हो ही नहीं सकती।

अब प्रश्न यह है कि जब ऐसे लोगों के माध्यम से विचार का सन्देश पहुँचाया जाता

पुपरी (मुजफ्फरपुर) का दंगा : सम्प्रदाय-निरपेक्षता के लिए गंभीर खतरे का संकेत

१ अक्तूबर की रात्रि में पुपरी से सूचना मिली कि वहाँ उसी दिन ४ बजे संध्या में दुर्गा-प्रतिमा-विसर्जन के अवसर पर साम्प्रदायिक दंगा हो गया है। दंगे का कारण एवं अन्य जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी। श्री मथुरा प्रसाद सिंह पुपरी पहुँच गये थे और वहाँ खादी एवं अन्य कार्यकर्ताओं के साथ उन्होंने मानस-परिवर्तन एवं सेवा का कार्य प्रारम्भ कर दिया था।

२ अक्तूबर को पुपरी एवं सीतामढ़ी में अपने साथियों से सम्पर्क स्थापित करने का बहुत प्रयास किया लेकिन सम्पर्क न हो सका। ११ बजे दिन में मैंने बिहार के आरक्षी महा-अधीक्षक से उनके पटना स्थित कार्यालय में टेलीफोन से बात की तो पता चला कि उन्हें भी विस्तृत जानकारी नहीं है, लेकिन प्राप्त सूचनानुसार दंगे में कुछ लोगों की मृत्यु हुई है।

३ अक्तूबर को प्रातः ५ बजे बिहार राज्य गांधी स्मारक निधि के राज्यमंत्री श्री सरयू प्रसाद एवं निधि के कार्यकर्ता श्री गया प्रसाद सिंह के साथ पटना से पुपरी के लिए प्रस्थान किया। मुजफ्फरपुर में बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ के वरिष्ठ नेता श्री कामेश्वर शर्मा भी पुपरी जाने में साथ हो लिये। लगभग १ बजे दिन में हम लोग पुपरी पहुँच गये। पहुँचने पर पता चला कि पुलिस के भय से बहुत से लोग घर छोड़कर भाग गये हैं और स्थिति पुलिस के काबू में है। हम लोगों ने राजनीतिक दल के स्थानीय कार्यकर्ता, हिन्दू एवं मुसलमान सम्प्रदाय के प्रमुख लोगों, अस्पताल में दंगे से पीड़ित घायलों, सरकारी अधिकारियों, दंगे के प्रत्यक्षदर्शी एवं दंगे से पीड़ित व्यक्तियों के परिवारों एवं अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों से मिलकर स्थिति की जानकारी प्राप्त की।

प्राप्त सूचना से ज्ञात हुआ कि प्रतिमा-विसर्जन के कई दिन पहले से ही अनेक अफवाहें फैलती रही हैं। अल्प संख्यकों के बीच भी अनेक प्रकार की अफवाहें फैलती रही हैं और समय-समय पर इसकी सूचना सरकारी अधिकारियों को भी लोग देते रहे हैं। अल्पसंख्यकों के बीच अफवाह फैलती रही है कि मूर्ति-विसर्जन के अवसर पर बहुसंख्यक समुदाय द्वारा बड़े पैमाने पर उनकी हत्या एवं लूट पाट की तैयारी की जा रही है, और बहुसंख्यकों के बीच अफवाह थी कि अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा प्रतिमा-विसर्जन के दिन धर्म के नाम पर जुलूस भंग एवं प्रतिमा पर पथराव आदि करने की संगठित तैयारी हो रही है। पुपरी अंचल में रायपुर पंचायत के मुखिया ने रायपुर में सम्भावित दंगे की सूचना अधिकारियों को दी और पुलिस दस्ते के पहुँचने के कारण वहाँ कोई अप्रिय घटना नहीं हुई।

१ अक्तूबर को लगभग साढ़े तीन बजे दिन में रेलवे के प्रांगण में स्थित दुर्गामण्डप से प्रतिमा विसर्जन के लिए विशाल जुलूस प्रस्थान किया। जुलूस की सबसे आगे की पंक्ति में घातक हथियार से लैस ५०० से अधिक व्यक्ति थे।

उनके पीछे लगभग ५० राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के बालचर थे जो जुलूस का मार्गदर्शन एवं नियन्त्रण कर रहे थे। उनके पीछे बाजा बजानेवालों का दल था जिसमें सबके सब मुसलमान थे। बाजावालों के पीछे एक ट्रक पर प्रतिमा थी और ट्रक के पीछे हजारों व्यक्ति तमाशा देखनेवाले थे।

पुपरी में शान्ति समिति पहले से ही बनी है, जिसके हिन्दू और मुसलमान दोनों सदस्य हैं। शान्ति-स्थापना के लिए शान्ति-समिति के दोनों सम्प्रदाय के सदस्य जुलूस के साथ ही चल रहे थे। अफवाह के कारण शान्ति-समिति के अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के सदस्य भयभीत थे और बहुसंख्यक समुदाय के सदस्य सशंकित। फिर भी दोनों सम्प्रदायों के कुछ सदस्य जुलूस के साथ थे। प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी जुलूस मार्ग की अनुमति अधिकारियों से लेनी पड़ी। अधिकारियों ने शान्ति समिति के सदस्यों से बातचीत कर तथा दुर्गापूजा समिति के पदाधिकारियों को समझाकर जुलूस-मार्ग की अनुमति ऐसे रास्ते से दी, जिस रास्ते पर मसजिद, मदरसा एवं मुसलमानों की घनी आबादी नहीं पड़ती थी।

जुलूस उस चौराहे पर पहुँचा जहाँ से अनुमति-प्राप्त मार्ग शुरू होता था और मसजिद एवं मदरसा का मार्ग छूट रहा था।

है, तो लोगों पर उसका क्या असर होगा ? असर फिलहाल बहुत प्रभावकारी नहीं होता, यह सही है। क्योंकि अब तक जन-मानस में विचार-प्रचारक की तसवीर एक उच्च कोटि के निष्ठावान व्यक्ति की है। अब तक लोक-मानस का अभ्यास अमुक व्यक्ति क्या कह रहा है उसे समझने का नहीं है, बल्कि यह है कि कौन व्यक्ति यह बात कह रहा है। सर्वोदय की क्रान्ति को अगर सफल करना है तो लोक-मानस का, कौन कह रहा है, इसके बदले क्या कह रहा है, इस दिशा में सोचने-विचारने का अभ्यास कराना होगा। क्योंकि अब तक वह यही मानता रहा है कि कोई राजा महात्मा, नेता, दल या संस्था सोचे, और उसे राहत पहुँचाये। इसीलिए विचार के सन्दर्भ में विचार-वाहक उसके आकर्षण का केन्द्र रहा है। जनमानस उसी को ठोक-पीट कर जाँचने का काम करता आया है। विचार पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं रही है।

हो सकता है कि परिस्थिति की मजबूरी के कारण विनोबा को जिस प्रकार के साधनों और व्यक्तियों का इस्तेमाल करना पड़ रहा है, उसके चलते जनता में सन्देशवाहक से ध्यान हटाकर विचार के प्रति ध्यान देने का भी अभ्यास बढ़े। क्योंकि आज जनता क्रान्ति के सन्देश को विनोबा के ही मुँह से नहीं सुन रही है बल्कि युग की परिस्थिति भी स्पष्ट रूप से उन्हें सुना रही है। फिर भी यह सही है कि क्रान्ति के वाहकों की कमजोरी के कारण और आज की जनता की मन स्थिति के कारण फिलहाल क्रान्ति की गति कुछ धीमी रहेगी और उसमें दौरान कुछ अधिक जायेगा। लेकिन इस प्रथा के फलस्वरूप समाज में से जो क्रान्ति तत्त्व ऊपर आयेगा वह इसकी गति को काफी तेज करेगा, यह मानना चाहिए।

—धीरेन्द्र मजूमदार

मूर्ति, बाजा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ता एवं शान्ति-समिति के लोग तो चौराहे पर रुक गये लेकिन हथियार से लैस भीड़ तेजी से मसजिद एवं मदरसा की ओर दौड़ी। उस चौराहे पर पहले से ही कुछ मुसलमान जवान मदरसा एवं मसजिद में घातक हथियार से लैस इकट्ठा थे। मुसलमान जवानों ने अपना "नारे तकदीर अल्लाह हो अकबर" का पुराना नारा लगाया और मुकाबिला करने को तैयार हो गये। डर से बहुसंख्यक समुदाय के हथियार-लैस लोग बिना मुकाबिला किये भाग गये और जुलूस में शामिल हो गये। तरह-तरह की अफवाहें फैलने लगीं और दंगा शुरू हो गया।

दंगे में ४ अक्तूबर के प्रातः तक प्राप्त सूचनानुसार ४ मुसलमानों की मृत्यु घटनास्थल पर ही हुई, तथा ११ मुसलमान एवं ५ हिन्दू घायल होकर अस्पताल में भर्ती हुए। उनमें से २ मुसलमान अस्पताल में ही मर गये। शेष ९ मुसलमान एवं ५ हिन्दुओं से हमलोगों ने अस्पताल में भेंट की।

पुपरी कम्यूनिस्ट पार्टी के मंत्री श्री ठाकुर साहब की दंगाइयों ने जुलूस में ही हत्या करने का प्रयास किया, जहाँ वे शान्ति-समिति के अन्य सदस्यों के साथ गये हुए थे।

फिर दंगाइयों ने दंगा की परिपाटी के अनुसार घर जलाने एवं सम्पत्ति लूटने का कार्यक्रम किया। श्री ठाकुरजी के घर पर आक्रमण किया लेकिन उनके परिवार के अन्य सदस्य श्री चण्डी चक्रवर्ती के घर चले गये थे। चक्रवर्ती परिवार ने उनकी जान की हिफाजत की, लेकिन ठाकुर साहब के घर के सटे निवासी सर्व श्री मोहम्मद हुसैन, मोहम्मद इस्माइल, मोहम्मद तसलीम एवं अब्दुल रसीद की हत्या कर दी गयी। इनमें से दो को तो उसी जगह स्थित लकड़ी के छोटे से मकान में आग लगा कर उसी में डाल दिया गया। एक व्यक्ति की हत्या मेला में फुंकनिया बेचते समय हजारों व्यक्तियों के सामने की गयी और एक व्यक्ति की हत्या करके मण्डप के निकट नाले में डाल दिया गया। इस प्रकार छः मुसलमानों की हत्या की गयी तथा ९ मुसलमान एवं ५ हिन्दू सख्त घायल हुए। अफवाह तो कुछ लोगों के लापता होने की भी थी लेकिन हमलोगों के बहुत प्रयास करने के बाद भी कोई व्यक्ति ऐसा न मिला जो बताता हो कि अमुक नाम का व्यक्ति लापता है।

जुलूस का स्वरूप, पहले से फैल रही अफवाहें, जुलूस से काफी दूर स्थित श्री ठाकुर के मकान पर धावा, धावावाले मुसलमानों का बाल-बाल बचना तथा जुलूस में श्री ठाकुर मोहम्मद की हत्या का प्रयास, आदि से प्रतीत होता है कि दंगाइयों ने संगठित होकर तथा राजनीतिक दल से प्रभावित होकर दंगे का संयोजन किया था।

बिहार में जनसंघ एवं राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को छोड़कर सभी दल अपने को सम्प्रदाय-निरपेक्ष मानते हैं लेकिन उन्हें शायद पता नहीं है कि 'सेक्यूलरिज्म' की जमीन उनके पैर के नीचे से खिसक रही है। किसी दल-विशेष को दोषी बताकर अपना कर्तव्य समाप्त मानना गलत होगा। सम्प्रदाय-निरपेक्षता में आस्था रखनेवाले हर व्यक्ति को सक्रिय होकर संगठित रूप से तेजी से फैल रहे इस रोग का इलाज ढूंढ़ना चाहिए।

—रामनन्दन सिंह

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०, या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ५

सोमवार ४ नवम्बर, '६८

अन्य पृष्ठों पर

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : [illegible]

जैसी करनी : वैसी भरनी

मैं ऊँचे उद्देश्यों की चाहे जितनी प्रशंसा करूँ और उनके साथ चाहे जितनी सहानुभूति दिखलाऊँ, किन्तु श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ कार्य के लिए भी मैं हिंसात्मक पद्धति का दृढ़ विरोधी हूँ। अतएव हिंसावादियों और मेरे बीच मेल की वास्तव में कोई गुंजाइश ही नहीं है। इतना होने पर भी मेरा अहिंसा धर्म मुझे अराजकवादियों के साथ और अन्य सभी हिंसावादियों के साथ सम्पर्क रखने से न केवल रोकता नहीं है, बल्कि सम्पर्क रखने के लिए मजबूर करता है। किन्तु यह सम्पर्क केवल इसी आशय से है कि मैं उस राह से उन्हें बचाऊँ, जो मुझे गलत दिखाई देती है। क्योंकि मुझे अपने अनुभव से यह विश्वास हो गया है कि शाश्वत कल्याण असत्य और हिंसा का फल कभी हो ही नहीं सकता।[१]

'मेरे लिए तो समुद्र को पार करने का साधन जहाज ही हो सकता है। अगर मैं पानी में बैलगाड़ी को डाल दूँ तो वह गाड़ी और मैं, दोनों समुद्र के तल में पहुँच जायेंगे।' साधन बीज है और साध्य प्राप्य वस्तु—पेड़ है। इसलिए जितना सम्बन्ध बीज और पेड़ के बीच है उतना ही साधन और साध्य के बीच है।[२]

लोग कहते हैं "साधन आखिर साधन ही है।" मैं कहूँगा : "साधन ही आखिर सब-कुछ है।" जैसे साधन होंगे वैसा ही साध्य होगा। साधन और साध्य के बीच दोनों को अलग करनेवाली कोई दीवाल नहीं है। बेशक, सरजनहार प्रभु ने साधनों पर नियंत्रण रखने की शक्ति हमें दी है, वह भी अत्यंत सीमित मात्रा में। परन्तु साध्य पर नियंत्रण रखने की कोई शक्ति नहीं दी है। लक्ष्य की सिद्धि ठीक साधनों की सिद्धि के अनुपात में ही होती है। यह ऐसा सिद्धांत है जिसमें अपवाद की कोई गुंजाइश ही नहीं है।[३]

अहिंसा और सत्य ऐसे ओतप्रोत-तानेबाने की तरह एक दूसरे से मिले हुए—हैं जैसे सिक्के के दो रुख या चिकनी चकती के दो पहलू। उनमें उलटा कौन-सा और सीधा कौन-सा यह कौन कह सकता है?…फिर भी अहिंसा को हम साधन मानें और सत्य को साध्य। साधन हमारे बस की बात है, इसलिए अहिंसा परम धर्म हुई और सत्य परमेश्वर हुआ। साधन की चिंता हम करते रहेंगे तो साध्य के दर्शन किसी-न-किसी दिन जरूर करेंगे। इतना निश्चय किया कि जग जीत लिया। हमारे मार्ग में चाहे जो संकट आयें, बाह्य दृष्टि से देखने पर हमारी चाहे जितनी हार होती दिखाई दे, तो भी हम विश्वास को न छोड़ते हुए केवल एक ही मंत्र का जाप करें—सत्य है। वही एक परमेश्वर है।[४]

—मो० क० गांधी

---

(१) हिन्दी नवजीवन—१४-१२-२४ (२) हिन्द स्वराज्य—[illegible] (३) [illegible]—१७-१२ (४) [illegible]—३७

सरकार बनाम सरकार

सरकार किसे कहते हैं ? उसमें कौन होता है, और किसकी बात चलती है ?

जब सरकार के लोग सरकार के खिलाफ हड़ताल करते हैं, और सरकार अपने ही लोगों पर डण्डे बरसाती है, मुकदमे चलाती है, तो हम-आप समझ नहीं पाते कि सरकार बनाम सरकार की *यह लड़ाई कैसी है ? क्यों सरकार ही सरकार से लड़ रही है ?*

सरकार में एक होते हैं 'नेता' और दूसरे होते हैं 'नौकर'। दोनों को मिलाकर सरकार *बनती है। संसद के सदस्य तथा* मिनिस्टर नेता हैं, और बाकी सब, बड़े अफसर से लेकर दफ्तर के बाबू और बरामदे में बैठनेवाले चपरासी तक, 'नौकर' हैं। दोनों ही जनता के नोट से वेतन पाते हैं। नौकर की तुलना में नेता में यह विशेषता होती है कि नेता को नोट के अलावा जनता का वोट भी मिला होता है, लेकिन उसी कारण नेता की अवधि सीमित होती है। चुनाव में नेता *बदलते* रहते हैं, लेकिन नौकर नौकरी के नियमों के अधीन स्थायी होते हैं। नेता सरकार की नीति तय करते हैं, और नौकर उन नीतियों को नियमों में ढालकर जनता पर लागू करते हैं।

इस वक्त लड़ाई नौकरों और नेताओं में है। नौकर ज्यादा वेतन माँग रहे हैं। नेता देने को राजी नहीं हैं। नौकरों को तकलीफ है नेताओं की मजबूरी है। नेता कहते हैं सरकार के पास पैसा *नहीं है, और जनता में और अधिक टैक्स देने की शक्ति नहीं है।* नौकर कहते हैं : 'हमारी माँगें पूरी हों, चाहे जो मजबूरी हो।' नौकरों की शिकायत है कि अगर पैसे की तंगी है तो नेताओं ने अपनी तनखाहें, भत्ते, और अपने ऊपर होनेवाले सरकारी खर्च कैसे बढ़ा लिये। यह कैसी बात है कि एक के लिए तो मजबूरी है, और दूसरे को मनमानी करने की छूट है ! *क्या* सिर्फ इसीलिए कि उनके हाथ में मनचाहे नियम और कानून बनाने का अधिकार है ? और, नौकरों की माँग भी क्या है ? यही कि उन्हें कम-से-कम दो सौ रुपये मिलें। सरकार का बजट चाहे जो कहे, लेकिन इस महँगी में दो सौ की माँग कुछ अनुचित *नहीं* मालूम होती। *कैसे पूरी होगी* यह हिसाब लगाकर देखने की बात है। सबसे पहले सरकारी फजूल-*खर्ची खत्म करनी होगी।*

सरकार के घर में छिड़े हुए इस गृहयुद्ध को जनता अलग खड़ी होकर देख रही है। वह मजा भी ले रही है। पिछले इक्कीस वर्षों में सरकार के नेताओं की संख्या बढ़ी है, और नौकरों की तो बेहिसाब बढ़ी है। फिर भी नये राज्यों की माँग रुक नहीं रही है, और नौकरों की संख्या घट नहीं रही है। नौबत यहाँ तक पहुँची है कि कई राज्यों में सरकार की जो आमदनी है उसमें सौ में साठ रुपये वेतन में निकल जाते हैं। नतीजा यह है कि जनता की भलाई के कामों के लिए बहुत कम पैसा बच पाता है। यह विचित्र स्थिति है। जनता सोचती है कि ऐसी सरकार से क्या फायदा जिसके अपने ही घर में झगड़ा हो; जिसके नेताओं के पास जनता को रोजी-रोटी के सवाल का कोई जवाब न हो; जिसके नौकर दिनभर में मुश्किल से दो-तीन घंटे काम करते हों; और जो बिना घूस लिये कागज उठाते भी न हों। क्या ऐसी ही सरकार के लिए जनता टैक्स दे रही है ? सरकार के पास क्या जवाब है उस टैक्स देनेवाली *जनता की इस मजबूरी का; जिसके सामने आठ आने रोज का भी* ठिकाना नहीं है; जिसके बच्चों का कोई भविष्य नहीं है; जो इनसान *तो हैं लेकिन इनसान की मामूली जिन्दगी भी जिन्हें मयस्सर नहीं* है। क्या सरकार इसीलिए निश्चिन्त है कि इन करोड़ों ने, जिनके *नाम की हर मंच पर, हर भाषण में दुहाई दी जाती है* अभी अपनी माँगों को पेश करना सीखा नहीं है ? लेकिन इतिहास इस बात का साक्षी है कि उनकी आह और उनकी क्षोभ में छिपी हुई जो आग है वह हड़तालियों के तने हुए घूँसों और नारों से कहीं अधिक भयंकर है।

हमारे देश की एक विशेष स्थिति है जिस पर ध्यान देना चाहिए। लोकतंत्र में हमने हर एक को वोट का अधिकार दिया है और हर एक के सामने समाजवाद का वादा किया है। इस वादे का साफ अर्थ यह है कि हर एक को आर्थिक विकास में उचित भाग मिलेगा। इसके विपरीत दूसरे देशों में आर्थिक विकास पहले हुआ है, और उसके हो चुकने के बाद ही धीरे-धीरे वोट का अधिकार मिला है। इसका अर्थ यह है कि अधिकारों के लिए समृद्धि का आधार देश में पहले से मौजूद था। देश में इतनी दौलत थी कि अधिकार पानेवाले *नये लोगों को एक भाग दिया जा सके।*

हमने साहस कर यह क्रम बदल दिया, तथा बालिग मताधिकार *और लोक-कल्याणकारी राज्य की एकसाथ घोषणा की।* इसके लिए इतिहास स्वतंत्रता के बाद के भारतीय नेतृत्व का सदा गौरव-गान गायेगा। लेकिन दुःख है कि जिस नेतृत्व ने इतने बड़े साहस का काम किया वह भारत की परिस्थिति की विशेषता नहीं पहचान सका, इसलिए बावजूद अच्छी नीयत के उसकी सारी हिम्मत गलत साबित हुई। यही कारण है कि आज देश वस्तुतः आत्मघाती रास्ते पर चल रहा है। ऐसा लगता है जैसे भारत भविष्यविहीन हो गया है। देश को *इस स्थिति में पहुँचाने की जिम्मेदारी से इतिहास भारत* के नेतृत्व को कभी मुक्त नहीं करेगा। जिसका गौरव होता है उसकी जिम्मेदारी होती है।

'हमारी माँगें पूरी हों, चाहे जो मजबूरी हो' : यह नारा आज सरकारी कर्मचारी लगा रहे हैं, कल दूसरे लगायेंगे, परसों तीसरे। इस नारे को रोकने की शक्ति किसमें है ? गरीब देश की गरीब जनता वैभव को विशेष अधिकार माननेवाले, विज्ञान का सुख भोगनेवाले, व बाजार और सरकार को अपने हाथ में रखनेवाले नेताओं, व्यक्तियों और विद्वानों की यह बात अब मानने के लिए तैयार नहीं है कि

भावना गुरुजनों के लिए कि गुरु और भगवान् एक हैं ; क्योंकि ये पूरक हैं ।

आचार्य मन से ऊपर उठें

यह जो त्रिविध शक्ति आचार्यों की है, यह नहीं प्रकट होगी जबतक यह राजनीति से अपने को मुक्त नहीं रखेंगे, ऊपर नहीं उठेंगे । बल्कि एक *नया शब्द मैं आपके सामने* इस्तेमाल करूँगा, वैसे नया तो नहीं है, इस जमात में नये सिरे से इस्तेमाल मैं कर रहा हूँ कि हमको तो मन के ऊपर जाना चाहिए, आचार्यों का काम है उन्मानसम् –मन के ऊपर उठना । बाकी के जो लोग होते हैं, उनका अपना-अपना क्षेत्र होता है, उनका *अपना मन बन जाता है, और उसी मन* से वे चिन्तन करते हैं । इसलिए वे समग्र चिन्तन नहीं कर पाते । लेकिन आचार्यों का चिन्तन उन्मानस होगा यानी अपना मन वे नहीं रखेंगे, उससे ऊपर उठकरके वे सोचेंगे । इस वास्ते वे गाइडेन्स दे सकते हैं । मैंने कई दफा मिसाल दी है कि थर्मामीटर का खुद का बुखार रहे तो दूसरों का बुखार नापने में वह असमर्थ रहेगा । लेकिन वह सबका बुखार ठीक नापता है क्योंकि उसका अपना बुखार नहीं है । उसी प्रकार दुनिया के मन को, चित्त को, अगर ठीक समझना है, तो हमको मन नाम के तत्त्व से अलग होना चाहिए । विकारों को पहचानने के लिए विकारों से अलग होना पड़ता है । तब हम विचारों को, विकारों को पहचान सकते हैं । *विकारों से अलग होनेवाले, मन से* अलग होनेवाले दो जन होते हैं । एक होता है परम संन्यासी, विरक्त, योगी, सम्राट्, उसका समाज से मतलब नहीं । वह स्वयमेव निर्विकार है । वह सत्ताराभिमुख नहीं है और उसके साथ-साथ निर्विकार है । उसकी जो मिसाल है, उसका उदाहरण हमारे सामने शुकदेव के मुताबिक है । वह हमको गाइडेन्स देता नहीं । हमको उसे देखना होगा, देखकर पहचानना होगा और दिशा समझकर चलना होगा । उसका अपना उपयोग है लेकिन वह स्वयं अभिमुख नहीं है । मन से अलग रहनेवाले दूसरे लोग ये आचार्य हैं । और ये जो आचार्य होंगे वे संसार-अभिमुख होंगे । और अभिमुख होते हुए मन से परे होंगे । इसलिए वह *समाज को गाइडेन्स* दे सकते हैं, निर्विकार बुद्धि से निर्णय दे सकते हैं । ऐसी *निर्णायक-शक्ति* अगर मानव में हो सकती है, किसी मानव में, या किसी मानव-समूह में, तो वह आचार्यों में हो सकती है । और, आपने जोड़ दिया था कि आचार्यों के अलावा दूसरे भी विद्वान् हैं उन्हें भी शामिल किया जाय । आपने सुझाव दिया था और उसे मैंने माना था । उनको भी मैंने आचार्य माना । तो यह जो *आचार्य-समूह* है उसकी यह विशेषता है कि वह सत्ताराभिमुख रहकर अपने को ऊपर रखेगा । और, क्या कहाँ गलती हो रही है उसके बारे में वह निदर्शन दे सकता है ।

यह जो बहुत बड़ा काम अपने महान् भारत में होना जरूरी था वह आज तक हुआ नहीं और सारे समाज का नियमन, सब प्रकार से राजनीतिज्ञों के हाथ में रखा गया । *उसका परिणाम यह हुआ है कि नौका* ऐसी चल रही है कि उसकी कोई दिशा नहीं । *किधर जायगी, क्या* होगा मालूम नहीं । ऐसी हालत भारत की है । बहुत बड़े नेता हो गये भारत में । वह तो गये । जो हैं वे भी अच्छे नेता हैं, लेकिन ऐसे नहीं जो समाज के ऊपर रहें—राजनीति में रहकर भी समाज के ऊपर रहे—यह तो बहुत बड़ी चीज हो गयी 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' कर्तव्य कर्म में रहते हुए भी अकर्ता रहना बहुत बड़ी चीज है । कहते हैं कि अशोक को यह कला सधी थी । सधी होगी । *जनक को सधी थी,* ऐसा कहते हैं, वह भी मानना होगा । ऐसे कुछ बिरले होते हैं—मिथिलायां प्रदग्धायां न मे दह्यति किंचन । मिथिला नगरी को आग लगी तो मेरा कुछ भी नहीं जलता । अब यह कहनेवाला जनक, अपने यहाँ एक बड़ा आदर्श हो गया, लेकिन जनक को भी जब गाइडेन्स की जरूरत पड़ती थी तो उसे याज्ञवल्क्य के पास जाना पड़ता था । वह *स्वयं निर्लिप्त था ।* राजनीति का लेप न लगे अपने को, इतनी उसकी शक्ति उसने प्रकट की थी । लेकिन विशेष मौकों पर, *सूक्ष्म मसलों* में जब मार्गदर्शन की जरूरत पड़ती थी तो याज्ञवल्क्य की शरण में जाता था । इसका वर्णन उपनिषदों में बहुत ही सुन्दर *किया है ।*

आचार्यों की शक्ति कैसे प्रकट होगी ?

अभी एक प्रसंग आया । चेकोस्लोवाकिया पर रूस ने हमला किया, यह कहकर कि 'हम उनके उद्धार के लिए जा रहे हैं । उनके अन्दर ऐसी ताकत अभी पैदा हुई है कि जो उनकी असलियत को समाप्त करेगी । इस वास्ते हम उनकी मदद करने के लिए जा रहे हैं ।' अगर रूस यह *करता कि चेकोस्लोवाकिया में विचार में गलती* हुई है इस वास्ते हम दस-बीस आचार्यों को, वहाँ भेज रहे हैं, रशिया के आचार्यों को और वे गाँव-गाँव जायेंगे विचार समझायेंगे । तब तो हम समझ सकते थे कि ठीक है, कुछ गलत विचार उनका हो गया ऐसा लगा, इस वास्ते उन्होंने ऐसी योजना की और उनके मार्गदर्शन के लिए आचार्यों को भेजा । लेकिन उनके लिए फौज *का क्या काम पड़ा ? गलत रास्ते पर थे तो* उनको अच्छे रास्ते पर लाने के लिए फौज *की क्या जरूरत पड़ी ?* और अभी वहाँ सेना कायम है । पक्का बन्दोबस्त कर लिया है, कस लिया है सब तरह से । अब इस मामले में भारत का क्या रुख है ? यही कि तेरी भी चुप, मेरी भी चुप । उनसे जिन देशों को मदद मिलती है वे देश बिलकुल खुले शब्द से बोल नहीं सकते । बेचारे दबी जबान से बोलते हैं । तो हमारे यहाँ के विज्ञ ने कह दिया कि 'चेकोस्लोवाकिया आजाद होना चाहिए ऐसा *हम चाहते हैं, यह आक्रमण वापिस होना* चाहिए ऐसा हम चाहते हैं, लेकिन हम 'कंडेम' नहीं करते ।' अब सवाल इतना ही रहा कि गर्दभ कहना कि गधा कहना । गधा कहेंगे तो सामनेवाला लात मारना शुरू करेगा । क्योंकि गधा ही है वह । इस वास्ते उसे गर्दभाचार्य कह दिया, तो शायद इतना वह समझेगा नहीं और अपनी मदद-वदद जारी रखेगा, हमारे उसके सम्बन्धों में फरक नहीं पड़ेगा । यह ऐसी कल्पना करके वह किया गया । जिन्होंने किया उनको जरा भी मैं दोष नहीं देता । इसलिए कि वे पेच में हैं । अनेक राष्ट्रों के बीच में हमारा एक राष्ट्र । इधर हमारा झुकाव होता है तो *वह नाराज होता है,* उधर

झुकाव होता है तो यह नाराज होता है। तो दोनों को राजी रखना, सबको राजी रखना, यह कोशिश हो रही है। एक प्रकार की कसरत समझिए—व्यायाम अपना करते हैं ये राजनीतिज्ञ। तो उनको हम दोष नहीं देते। क्योंकि उनकी दृष्टि सीमित है। परन्तु मान लीजिए, भारत में आचार्यों की शक्ति होती और वे आचार्य ऐसे मौकों पर हिन्दुस्तान के मुख्य-मुख्य आचार्य एकत्र होकर, अपनी सर्वसम्मत राय प्रकट करते तो संसार के सामने हमारी एक शक्ति प्रकट होती।

अध्ययन तो करना ही होता है आचार्यों को। उन्होंने किया हो या कुछ-न-कुछ, ऐसा मानना चाहिए। और उन्होंने इकट्ठा हो करके अपना एक मत प्रकाशित किया तटस्थ बुद्धि से 'यूनेनिमसली' (सर्वसम्मत) जो मत बना हो। अगर मान लीजिए, ऐसा हमने किया होता, कर सके होते, तो इस वक्त भारत की एक अपनी स्वतंत्र आवाज, उसकी प्रतिष्ठा में असर करती। यह ठीक है, भारत की गवर्नमेंट ने एक रुख अख्तियार किया, पार्टीवालों ने एक रुख अख्तियार किया, और आचार्यों ने तटस्थ बुद्धि से सोचकर यह फैसला दिया। तो उसका असर जनता पर पड़ता, जनता को गाइडेंस मिलता। यह मैंने एक मिसाल दी।

काशी-आचार्यकुल : सर्व सेवा संघ की भूमिका

हमारे सामने एक मसला खड़ा हुआ था। ऐसे मसले इंटरनेशनल भी आयेंगे, नेशनल भी आयेंगे, राष्ट्रीय भी आयेंगे और प्रान्तीय भी आयेंगे। ऐसे मामलों पर अपना तटस्थ अभिप्राय देने की शक्ति आचार्यों में होनी चाहिए। यह यहाँ के आचार्यगण समझें और जहाँ तक काशी का ताल्लुक है, मैं समझता हूँ कि ये सारे एक होकर के यहाँ उत्तम आयोजन करेंगे। उनको सर्व सेवा संघ की मदद इस काम में मिल सकती है। सर्व सेवा संघ भारत की सेवा के लिए, जन-सेवा के लिए, गांधीजी के आदेश पर स्थापित हुआ संघ है। गांधी ने तो बहुत बड़ा आदेश दिया था, उतना बना नहीं। गांधी ने क्या आदेश दिया था? जब कांग्रेस का एक कार्य समाप्त हुआ—स्वराज्य-प्राप्ति का, तो गांधीजी ने कांग्रेस से कहा कि इसे लोक-सेवक संघ बनना चाहिए ताकि भिन्न-भिन्न लोग राजनीति में जो खड़े होंगे, इलेक्शन के लिए वगैरह-वगैरह, उन सब पर नियंत्रण रखना, उनको गाइडेंस देना इत्यादि काम तटस्थ बुद्धि से वह लोक-सेवक संघ कर सके। बापू का आखिर का वसीयतनामा इसको कहना चाहिए, लेकिन कांग्रेस के लोगों ने उसका अमल नहीं किया। उन्होंने जो किया बिलकुल ही गलत किया ऐसा मैं कहना नहीं चाहता। ठीक किया एक परिस्थिति के अन्दर। उनको जो करना जरूरी लगा वह उन्होंने किया। लेकिन बाद में भी वे सुधारते और कांग्रेस को लोक-सेवक संघ बनाते, तो कांग्रेस एक यूनिफाइंग फैक्टर बनती, सारे भारत को जोड़नेवाली कड़ी बनती। इसके बदले में कांग्रेस बनी रही। पार्टी बन गयी। पार्ट यानी टुकड़ा। टुकड़ा हो गयी, खण्ड हो गयी। जोड़नेवाली कड़ी नहीं हुई। ऐसी हालत में जोड़नेवाली कड़ी होने की जिम्मेदारी बेचारे सर्व सेवा संघ पर आयी। उसमें कुछ मनीषी हैं, दादा धर्माधिकारी आदि लोग हैं, जयप्रकाशजी जैसे लोग हैं, कुछ लोग हैं; बाकी सामान्य सेवक लोग हैं। अब उनकी शक्ति बढ़ते-बढ़ते समय जायेगा थोड़ा। मगर कांग्रेस लोक-सेवक संघ हुई होती तो सारे भारत में ऐसी एक शक्ति बन जाती जो सरकार के ऊपरवाली शक्ति होती। सरकार की शक्ति नम्बर दो और लोक सेवक संघ की शक्ति नम्बर एक, ऐसा होता। अब ऐसा हो गया कि सत्ता-शक्ति सर्वश्रेष्ठ हो गयी। और बाकी की शक्तियाँ उसकी मातहत आ गयीं, गौण हो गयीं। तो यह उन्होंने सलाह दी थी। वह न मानने का यह परिणाम हो गया। खैर, जो हुआ सो हुआ।

यह सर्व सेवा संघ है छोटा-सा। अब उसको किसी प्रकार बड़ा होना ही है। यह नसीब है उसका, क्या करेंगे बेचारे। जो परिस्थिति है उसमें छोटे मनुष्यों को भी जिम्मेदारी आती है बड़े बनने की। अब क्या किया जाए? बाप मरता है तब बेटा नाहक बड़ा बन जाता है। लेकिन यह ईश्वर की सृष्टि में है बड़े मनुष्य चले जाते हैं, छोटे रह जाते हैं। सारे भारत को मार्गदर्शन करने के लिए जब आचार्यकुल खड़ा होगा, तब होगा। यह सर्व सेवा संघ उतना शक्तिशाली होगा न होगा, यह मैं कहता नहीं, यह भी कोशिश कर रहा है अपना शरीर फुलाने की। फिर भी मेंढकी अपना शरीर कितना भी फुलाये बैल तो नहीं बन सकती। इसलिए उसकी जो मर्यादा है उस मर्यादा में रहेगी। तो, जहाँ तक काशी का ताल्लुक है, मेरा खयाल है इनकी शक्ति और आपकी शक्ति मिलकर 'सहयोगेन' उत्तम कार्य यहाँ हो सकता है।

विद्यार्थी राजनीति से मुक्त हों

कल कुछ विद्यार्थी मेरे पास आये थे। और वे विद्यार्थी खूब सख्त विरोध करते थे आचार्यों का, कुलपति उपकुलपतियों का। मैं उनको समझा रहा था कि तुमलोग राजनीति से मुक्त हो जाओ। वे कहते थे कि यहाँ आचार्यों में राजनीति पैठी हुई है, ऐसा उनका आरोप था। तो मैंने कहा कि इसकी तलाश में मैं नहीं पड़ूँगा लेकिन मैं उनके सामने राजनीति से मुक्त होने की बात रख रहा हूँ, और वे कबूल कर रहे हैं ऐसा मेरे ऊपर असर है। तुम भी ऐसा करो कि हम भी राजनीति से अलग रहेंगे। यह मैंने उनके सामने बात रखी। और मुझे कहने में बड़ी खुशी है इतनी जल्दी आशा नहीं थी मुझे, उन्होंने एक्सेप्ट किया कि बात आप ठीक कह रहे हैं। हम भी तय कर करेंगे कि राजनीति से अलग रहेंगे। तो मैंने कहा, सब बराबर हस्ताक्षर करो, तुम्हारा अपना आर्गनाइजेशन है छात्रसंघ। छात्रसंघ के द्वारा सब विद्यार्थियों के हस्ताक्षर हासिल करो कि हम राजनीति से मुक्त रहेंगे, जब तक विद्या पाते हैं तब तक राजनीति से मुक्त रहेंगे। और वे तो प्रतिज्ञा कर ही रहे हैं राजनीति से अलग होने की। इस तरह से तुम दोनों समान भूमिका में आ जाओगे। तुम्हारी समस्याएँ बहुत हल होंगी ऐसे ही। तो वे बोले कि यह ठीक है लेकिन हमको रेस्टिकेट किया गया है, निकाल दिया गया है, उसका क्या होगा? मैंने कहा—देखो, तुम नये बनो, तुम बनो नये और वे बनेंगे नये। तुम यह बात मत बोलो कि वे पुराने हैं और वे यह बात नहीं बोलेंगे कि तुम पुराने हो। जैसे

स्वीडेन : समाजवाद से सर्वोदय की ओर !

[अतिसम्पन्नता और ऊँचा जीवन स्तर मनुष्य को शान्ति नहीं प्रदान करते तब वह उस ओर से विमुख होता है और एक ऐसे जीवन-दर्शन की खोज करता है जो आध्यात्मिक और भौतिक जीवन को एकसाथ जोड़ सके। स्वीडेन में इसकी खोज जारी है और इसकी सम्भावना उन्हें सर्वोदय विचार में दीखती है। —सं०]

१९६५ में मेरे स्वीडिश मित्र श्री वी० मरकर ने मुझे स्वीडेन आने का निमंत्रण दिया था। उन दिनों श्री मरकर भारत में थे और सर्वोदय आन्दोलन का समीक्षात्मक अध्ययन कर रहे थे। भारत से वापस स्वीडेन आकर उन्होंने स्वीडिश जनता को सर्वोदय आन्दोलन से परिचित कराया। अनेक छोटी गोष्ठियों और बड़ी सभाओं में उन्होंने ग्रामदान के क्रान्तिकारी स्वरूप की जानकारी दी। स्टॉकहोम, गोटेनबर्ग और लुन्द नाम के तीन शहरों में तो उन्होंने 'सर्वोदय मण्डल' की भी स्थापना की। सर्वोदय-आन्दोलन के लिए इतनी शानदार पृष्ठभूमि ब्रिटेन के बाद स्वीडेन में ही मुझे देखने को मिली।

१९६८ का मई महीना मौसम के लिहाज से बहुत ही खूबसूरत महीना था। सुबह चार बजे से रात के दस बजे तक सूर्य-भगवान के दर्शन हो रहे थे। संयोग से मुझे बहुत ही अच्छा मौसम मिला, पर मेरे मित्र श्री मरकर अमेरिका गये हुए थे। मरकर भी मेरी ही तरह घुमक्कड़ हैं। हम दोनों की यायावरी-वृत्ति में अद्भुत समानता है, क्योंकि हम दोनों की यायावरी सोद्देश्य होती है। मरकर की अनुपस्थिति के बावजूद मेरी यात्रा में कोई दिक्कत नहीं आयी। सर्वोदय मण्डल के मित्रों ने मेरा कार्यक्रम बहुत ही अच्छी तरह बनाया।

'लेफ्ट-राइट' की राजनीति का कौतुक

स्टॉकहोम में कुमारी इंगाकरिन और हेनरी ह्वाइट ने मुझे समूचे विद्यार्थी-जगत् और उनके आन्दोलन के निकट ला दिया। उन दिनों लगभग एक हजार विद्यार्थियों ने विश्वविद्यालय की एक मुख्य इमारत पर कब्जा कर रखा था। चौबीसों घंटे 'टीच-इन' का कार्यक्रम चल रहा था। इस 'टीच-इन' में मुझे बोलने के लिए आमंत्रित किया गया। राजनीति की घुटन से ऊबे हुए ये तरुण किसी मानवीय समाज व्यवस्था की खोज में लगे हुए थे। इनके लिए 'लेफ्ट' और 'राइट' की राजनीति अर्थहीन नाटक का दृश्य बन गयी है। "कौन है लेफ्ट? माओ की दृष्टि में रूस का समाजवाद 'राइट' है। तो रूस के 'लेफ्ट' नेताओं की दृष्टि में चेकोस्लोवाकिया और युगोस्लाविया राइट' होते जा रहे हैं। उधर निक्सन की निगाहों में हम्फरी 'लेफ्ट' हैं और हम्फरी की निगाहों में मेकार्थी 'लेफ्ट' हैं। पर असलियत में ये सभी अवसरवादी हैं और सत्ता पर बने रहने की होड़ में लगे हैं।" एक विद्यार्थी नेता ने इस प्रकार 'लेफ्ट-राइट' के दुष्चक्र की बखिया उधेड़ी। "अमेरिकी शैली के मानव-निरपेक्ष विज्ञान ने यूरोप और अमेरिका को मात्र 'कंज्यूमर' बना दिया है। विकास की व्याख्या बन गयी है—जितने

रवीन्द्रनाथ ने गाया—नूतन प्राते—हर आदमी नया हो गया है। कल का गुलाब आज नहीं है, आज गुलाब का नया फूल पैदा हुआ है। कल का फूल चला गया, आज नया फूल है। इस प्रकार सृष्टि में आज नया सूर्य है, नया चन्द्र है, नयी तारिकाएँ हैं, सब मानव नये हैं, और मैं नया हूँ, और आप नये हैं। कल की बात हम भूल गये। कल के आज हम हैं नहीं। यह तुम करो तो सोचा जा सकता है। तुमको जिन लोगों ने रेस्टिकेट किया वे दयालु तो हैं ही, आचार्य ही हैं, वे तुमको माफ कर सकते हैं। लेकिन तुम इतना निश्चय करो कि पुरानी बातें भूलना; और उन्हें एक वेद सुनाया, वह मैं आप लोगों को भी सुना दूँ।—"नवो नवो भवति जायमान:"। वेद में दशम मण्डल में है—"नवो नवो भवति जायमान:"। चन्द्र का वर्णन किया है कि चन्द्र तो रोज नया-नया रूप लेता है। कल का चन्द्र आज नहीं, आज का कल नहीं। ऐसा सृष्टि का सारा स्वरूप है। प्रवाहनित्यता है सृष्टि में, अखण्ड प्रवाह बह रहा है। आज का पानी कल नहीं, कल का पानी आज नहीं। परसों का पानी कल नहीं था। इस प्रकार से रोज नया नया पानी आ रहा है। नदी अखण्ड बह रही है। नदी की अखण्डता भी कायम है और पानी भी नित्य नया है। इस प्रकार से मानव नित्य नया बनता है। यह प्रवाह अखण्ड चल रहा है। परमात्मा से जो संसार प्रवाहित हुआ है अखण्ड चल रहा है, इसलिए तुम लोग पुरानी बात भूल जाओ और इस्तीफा करके सारे विद्यार्थी-समाज के लाभो। राजनीति से मुक्त करो। तो, उन्होंने कबूल किया।

अब उनसे यह काम करवाना है। सर्व सेवा संघ के साथियों से उनकी मुलाकात करवायी। और कहा कि भाई देखो, ये आपको मदद देंगे। और, आप किस तरह से आगे बढ़ रहे हैं, मुझे इत्तला देते रहियेगा। साक्षात् मार्गदर्शन आपको सर्व सेवा संघ से मिलेगा। विशेष मौके पर मैं आपको सलाह दे सकता हूँ। अगर आप राजनीति से मुक्त हो जाते हैं और वे राजनीति-मुक्त हो जाते हैं तो मुक्त आचार्य, मुक्त गुरु, मुक्त विद्यार्थी, मुक्त शिष्य। फिर क्या पूछते हो, ताकत बढ़ेगी! अद्भुत शक्ति बनेगी इसमें कोई शक नहीं। शिष्य और आचार्य इकट्ठे हुए, 'सहनाववतु सहनौभुनक्तु सहवीर्यं करवावहै'। हम लोग एकसाथ वीर्य संपादन करें। यह उनकी प्रार्थना है। हम दोनों एकसाथ। दोनों यानी गुरु-शिष्य। सहवीर्यं करवावहै तेजस्विनावधीतमस्तु, हमारा अध्ययन तेजस्वी हो। अब आशा करता हूँ कि यह रोशनी काशी में बनेगी और जैसी प्रगति होगी जानकारी मिलती रहेगी।

वाराणसी,
२-१०-'६८

अधिक कंज्यूमर उतने अधिक विकसित।"

दूसरे विद्यार्थी ने इस प्रकार कंज्यूमर-समाज को चुनौती दी। ऐसा अनुकूल परिवेश पाकर मैंने राजनीति से भिन्न लोकनीति, कंज्यूमर-समाज के स्थान पर 'क्रियेटिव' समाज और विज्ञान को मानव सापेक्ष बनाने की दिशा में चल रहे भारतीय प्रयत्न : ग्रामदान की जानकारी दी।

समृद्धिशाली स्वीडेन की समस्याएं

पिछले ३६ वर्षों से स्वीडेन मे जनतांत्रिक समाजवादी पार्टी का शासन है। पिछले २२ वर्षों से श्री त ग अरलाडर प्रधान मंत्री के रूप मे एकछत्र राज्य कर रहे हैं। स्कॅडिनेविया के अन्य दो देश, डेनमार्क और नार्वे ने लम्बे अरसे तक जनतांत्रिक समाजवाद का स्वाद चख लेने के बाद पिछले दिनो थोडी करवट बदली है और वे इस समय समाजवादी एवं पूँजीवादी फिरकों की संयुक्त सरकार का अनुभव ले रहे हैं। पर स्वीडेन मे अभी भी समाजवादी पार्टी शक्तिशाली है। तटस्थता की विदेश-नीति, समाजवाद की गृहनीति और उद्योगीकरण की अर्थनीति के मजबूत तीन खम्भा के बावजूद स्वीडेन ने अपनी आर्थिक कठिनाइयाँ दूर कर ली हों, ऐसी बात नही है। भावास की समस्या एक तरफ है और बेकारी की समस्या दूसरी तरफ। स्वीडेन के लोगो का जीवन-स्तर दुनिया के उच्चतम जीवन स्तरवाले देशो के साथ गिना जाता है, पर मानसिक बीमारियाँ, पागलपन, आत्महत्याएं, आदि की संख्या भी उसी अनुपात में ऊँची है।

युद्ध-विमुख अमेरिकी सैनिकों का मक्का-मदीना

प्रधान मंत्री ताग अरलांडर के बाद ४१ वर्षीय शिक्षा मंत्री श्री ओलो पाम शायद सबसे अधिक प्रभावशाली व्यक्ति हैं। वियतनाम में अमेरिकी दखलंदाजी का तीव्र विरोध करने के कारण प्रगतिशील बुद्धिजीवियों और विद्यार्थियों की सहानुभूति उन्होंने सहज ही पा ली है। वियतनाम के अर्थहीन और अमानवीय युद्ध से नफरत करनेवाले अमेरिकी सैनिक जब वियतनाम से पलायन करते है तो उनके लिए स्टोकहोम मक्का-मदीना जैसा है। डेढ़ सौ से अधिक अमेरिकी सैनिको को स्वीडिश सरकार ने अबतक 'शरण' दी है। और कई सौ ऐसे 'डेजर्टर्स' शरण प्राप्त करने के लिए लाइन में हैं। वियतनाम में लडनेवाले अमेरिकी सैनिक बडे पैमाने पर युद्ध के खिलाफ है, पर सेना छोडकर भाग निकलने का साहस कम ही कर पाते हैं। जो सैनिक भाग निकलना चाहते हैं, उनके लिए अवसर और सुविधा का भी अभाव होता है। स्टोकहोम मे कुछ ऐसी संस्थाएं हैं, जो वियतनाम मे लडने से इनकार करनेवाले अमेरिकी सैनिको को सहयोग, प्रोत्साहन और काम देने का प्रयत्न करती हैं। इन 'डेजर्टर्स' ने अपना एक क्लब भी बनाया है और एक मासिक बुलेटिन भी प्रकाशित करते हैं। यह बुलेटिन वे गुप्त रूप से अमेरिकी सैनिको के पास पहुँचाते हैं। इस क्लब अथवा इस प्रकार की संस्थाओ से स्वीडिश-सरकार का कोई सम्बन्ध नही है। सरकार तो मात्र मानवीय कारणों से इन सैनिको को स्वीडेन मे आने और रहने की इजाजत देती है। पर इतना करना भी कम साहस की बात नही।

सर्वोदय स्वाध्याय मंडल

'स्टोकहोम सर्वोदय स्वाध्याय मण्डल' के संयोजक श्री हेनरी व्हाइट हैं और १५ व्यक्ति प्रति मास एकत्र होकर आपस मे चर्चा करते है। 'सर्व सेवा संघ न्यूज लेटर' तथा अन्य सर्वोदय साहित्य का नियमित अध्ययन चलता है। 'गोटेनबर्ग सर्वोदय स्वाध्याय मंडल' के संयोजक हैं उत्साही छात्र-नेता श्री लार्स हेल्लरविक। इनके साथ २० व्यक्ति हैं, जो नियमित रूप से मासिक बैठकों में भाग लेते हैं। लार्स हेल्लरविक और उनके मित्रों ने ग्रामदान-आन्दोलन के लिए लगभग दस हजार रुपये एकत्र किये और सर्व सेवा संघ को भेजे। ये विद्यार्थी और भी अर्थ-संग्रह करना चाहते हैं, पर नियमित संपर्क, निश्चित योजना और अर्थ-विनियोग की जानकारी के अभाव में उत्साह का ठंडा पड़ जाना स्वाभाविक ही है। 'लुन्द सर्वोदय स्वाध्याय मण्डल' के संयोजक भी एक छात्र ही हैं। नियमित मासिक बैठकों में आनेवाले तो १०-१२ व्यक्ति ही यहां है, पर समय समय पर निश्चित गोष्ठियों में भाग लेनेवालों की संख्या ३०-४० तक रहती है। जिस दिन मैंने गोष्ठी में भाग लिया, उस दिन तो गोष्ठी में एक सौ से भी अधिक व्यक्ति उपस्थित थे। स्वाध्याय मण्डल के संयोजक श्री दाग एकहोम ने कहा कि "इतनी बडी सभा का आयोजन हमने पहली बार किया है, क्योंकि सर्वोदय आन्दोलन में प्रत्यक्ष काम करनेवाले किसी भारतीय व्यक्ति का आगमन पहली बार ही हुआ है।"

मैंने श्री दाग एकहोम से पूछा कि सर्वोदय-विचार के प्रति आप तरुण छात्रों मे जो आकर्षण है, उसका क्या कारण है?

विकल्प की खोज

श्री दाग एकहोम ने कहा : "पिछले ३६ वर्षों से हमारे यहां समाजवाद का प्रयोग राज्य के स्तर पर चल रहा है। व्यावसायिक स्तर पर कोआपरेटिव सोसाइटियो ने पर्याप्त सफलता हासिल की है। फिर भी हम अपनी मानवीय समस्याएं हल नही कर पाये हैं। भतिसम्पन्नता और ऊँचे जीवन स्तर के बावजूद 'कोई' ऐसी चीज है, जिसकी कमी खटक रही है। नितान्त धार्मिक और आध्यात्मिक विचार उस कमी को दूर नही कर सकता। हमें एक ऐसा जीवन-दर्शन चाहिए जो आध्यात्मिक और भौतिक समस्याओं को एकसाथ जोड़कर देखता हो और दोनो को एकसाथ हल करने का रास्ता बताता हो। हम एक ऐसे विचार की खोज मे हैं, जो वैज्ञानिक भी हो और जीवन के अनुभव में से भी निकला हो, जो बौद्धिक भी हो और भावनामूलक भी हो। सर्वोदय-विचार हमें अपनी चाह के अनुकूल दीखता है, पर हम नहीं जानते कि इस अति औद्योगिक पश्चिमी समाज में सर्वोदय-विचार का व्यावहारिक संस्करण क्या होगा। अभी तो मात्र हम सर्वोदय-विचार को जानने का प्रयत्न कर रहे हैं।"

—सतीश कुमार

बोधगया में आध्यात्मिकता और सही गांधी-मार्ग का अन्वेषण

[विनोबा के सान्निध्य में बोधगया में पिछले दिनों केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि के तत्त्वावधान में दो सम्मेलन आयोजित किये गये। पहला सम्मेलन आध्यात्मिक लोगों का था, जो श्री ढेबर भाई की प्रेरणा से आयोजित किया गया था, दूसरा 'गांधी परिवार' के पुराने लोगों का था। दोनों सम्मेलनों में देश के प्रमुख संतों और गांधी-भक्तों को आमंत्रित किया गया था। सम्मेलन की रिपोर्ट नीचे दी जा रही है।—सं०]

आध्यात्मिक सम्मेलन का प्रारम्भ ५ अक्तूबर को हुआ। इसमें प्रमुख रूप से सर्व श्री स्वामी शरणानन्दजी, (संस्थापक, मानव सेवा संघ, वृन्दावन) रविशंकर महाराज और काका कालेलकर उपस्थित थे। श्री ढेबर भाई की अनुपस्थिति में केन्द्रीय गांधी-निधि के अध्यक्ष श्री दिवाकरजी ने सम्मेलन का संचालन किया। वक्ताओं ने सुबह की सभा में इस बात पर जोर दिया कि जीवन की बुनियाद आध्यात्मिक ही होनी चाहिए। दोपहर की सभा में इस चर्चा को आगे बढ़ाते हुए श्री दिवाकरजी ने कहा कि अध्यात्म को व्यावहारिक जीवन की बुनियाद कैसे बनाया जा सकता है, इस पर विचार करना चाहिए। आपने इस बात पर जोर दिया कि वर्तमान संदर्भ में अध्यात्म की युक्तिसंगत नयी व्याख्या प्रस्तुत करनी चाहिए, जो नयी पीढ़ी को आकर्षित करे। आपने कहा कि "साम्य" इस युग की मांग है, लेकिन उसकी स्थापना के लिए किसी अहिंसक माध्यम की तलाश हमें करनी चाहिए।

विनोबा ने अपने प्रवचन में कहा कि नयी पीढ़ी के सवालों का जवाब आध्यात्मिकता में मिलना चाहिए। आपने कहा कि राजसत्ता पूरी तरह लोकसत्ता पर हावी हो गयी है। इसी परिणाम की कल्पना करते हुए गांधीजी ने लोक-सेवक संघ की योजना देश के सामने रखी थी। दुर्भाग्य से वह साकार नहीं हो सकी, लेकिन तो भी सर्व सेवा संघ और गांधी निधि को राहत कार्यों में अपनी शक्ति और समय गंवाने की जगह लोकसत्ता की स्थापना में अपने को लगाना चाहिए।

स्वामी चिन्मयानन्द, जो वहां उपस्थित नहीं हो सके थे—के पत्र को उद्धृत करते हुए काका कालेलकर ने कहा कि नैतिक और धार्मिक दृष्टि से भी भारतीय, दुनिया के अन्य देशवासियों से बेहतर नहीं हैं। अपनी समस्याओं का हल वे सरकार से नहीं पाते तो भगवान के पास (मंदिरों में) चले जाते हैं। इस तरह की सत्ता-परस्ती का विकास बहुत ही अशुभ है। आपने रूढ़िवादिता को धर्म का कब्रिस्तान बताते हुए इस बात पर बल दिया कि रूढ़ियों से धर्म को मुक्त होना चाहिए।

इस सम्मेलन के प्रमुख प्रेरक श्री ढेबर भाई ६ अक्तूबर की सुबह पहुंच सके। आपने अपनी चर्चा में कहा कि अंधकारपूर्ण वर्तमान काल में विनोबा से प्रकाश की कुछ रश्मियां मिल रही हैं। यह एक अवसर है, सभी प्रतिकूलताओं के बावजूद आगे बढ़ने के लिए।

पुनः श्री दिवाकरजी ने आध्यात्मिकता को अधिक व्यावहारिक धरातल पर लाने की आवश्यकता बताते हुए आर्थिक जीवन को आध्यात्मिकता के साथ जोड़ने का महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया और वेदान्त को व्यावहारिक जीवन से पूरी तरह जोड़ने की आवश्यकता बतायी।

दूसरे दिन की इस बैठक में सर्वश्री गुलजारी लाल नन्दा, कुंदर कुट्टी माहिगल ने भी भाग लिया। श्री ढेबर भाई ने सम्मेलन के समक्ष दो समस्याएं प्रस्तुत कीं :—

(१) जन-जीवन में आत्मसम्मान और आत्मविश्वास पैदा करने के लिए, जिनका इस समय नितान्त अभाव दिखाई देता है, क्या कार्यक्रम हो सकता है?

(२) इस विश्वास का अधिष्ठान—खासकर युवकों में—कैसे हो कि जगत में अच्छे तत्व भी हैं?

सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए विनोबा ने कहा कि बुद्धयुग में भी आत्मविश्वास का अभाव था। यह पुराना मर्ज है। उस समय 'बुद्ध-विश्वास' था, आत्मविश्वास नहीं। गांधी-युग तक यही क्रम चला आ रहा है। इसीलिए बुद्ध से लेकर गांधीजी तक—उनलोगों के गुजरने के बाद—के भक्तों और शिष्यों में परस्पर विरोध पैदा हो गया।

आपने आज की युवापीढ़ी और आध्यात्मिकता की चर्चा करते हुए कहा कि यह एक शुभ लक्षण है कि युवा पीढ़ी ने अवैज्ञानिक और अतर्क संगत किसी भी चीज को स्वीकार करने से इनकार कर दिया है। हम आध्यात्मिकता की चर्चा बहुत करते हैं लेकिन आध्यात्मिक जीवन की युक्तिसंगत कोई चीज नहीं प्रस्तुत करते। इसीलिए भारत के साधु-संतों के लिए यह आवश्यक है कि वे भारत के आध्यात्मिक पुनर्निर्माण की जवाबदेही स्वीकारें।

विज्ञानयुग में अहिंसा की अनिवार्यता पर जोर देकर विनोबा ने कहा अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय से ही अहिंसा का युगानुसारी विकास हो सकेगा।

स्वामी शरणानन्दजी ने प्रत्येक व्यक्ति के अपने प्रति प्रामाणिक रहने पर जोर दिया और कहा कि दूसरों की अप्रामाणिकता की शिकायत करते रहने से कुछ नहीं होगा।

समन्वय-दिवस

ता० ६ अक्तूबर को पूर्णिमा थी और वह दिन समन्वय-दिवस के रूप में मनाया गया। देश भर में समन्वय-विचार प्रसार की यह एक शुभ परम्परा थी काका कालेलकर की प्रेरणा से गत कुछ वर्षों में प्रारंभ हुई है।

इस अवसर पर श्री काका तथा विनोबाजी ने वेद, कुरान, बाइबिल आदि के आधार पर यह दर्शाया कि समन्वय ही सब धर्मों का सार है।

श्री रं० रा० दिवाकर ने अपने भाषण में यह व्यक्त किया कि ईश्वर स्वयं अटल नियम स्वरूप है। वह भी उन नियमों का अतिक्रमण नहीं कर सकता; क्योंकि भगवान आत्महत्या नहीं कर सकता। उस ईश्वरीय ज्ञान का साक्षात्कार ही अध्यात्म का प्रमुख कार्य है।

श्री कुंदर कुट्टी माहिगल ने स्पष्ट किया कि ईश्वर-दत्त सृष्टि में कोई भेद भाव नहीं है;

इस अंक में

४ नवम्बर, '६८

वर्ष ३, अंक ६] [१८ पैसे

'शक्ति' को 'बलिदान' चाहिए

उस रात हरिहर काका की दालान में सब लोग ग्रामदान की बात सुनकर चौंक पड़े थे। और, पूछा था कि ग्रामदान कर देने से क्या हो जायेगा ? क्या हमारी हालत सुधर जायेगी ? सरकार बदल जायेगी ? गाँव-गाँव में स्वराज का सुख मिलने लगेगा ?

हरिहर काका इतने सारे सवालों का एकसाथ क्या जवाब दें ? आज तो हालत यह है कि एक एक आदमी असन्तोष और प्रश्नों के भँवर में चक्कर खा रहा है। समाज के एक सिरे से दूसरे सिरे तक बस प्रश्न ही प्रश्न खड़े दिखाई देते हैं। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि पूरी दुनिया प्रश्नों की ही धुन्ध में समाती जा रही है, ऐसी धुन्ध में जो शायद कभी खत्म ही न हो।

ग्रामदान की बात सुनकर तो प्रश्नों का उठना और भी स्वाभाविक है। 'दान' हमारे देश की बुनियाद में बहुत ही महत्व का शब्द बना हुआ है, प्राचीन काल से ही। 'दान' का अर्थ ही सब जानते हैं 'देना'—बिना कुछ बदले में पाये ही, (पुण्य लाभ की बात अलग है), और देने के बाद फिर वापस नहीं लेना। तो क्या पूरा गाँव ही 'दान' कर दिया जाय ? फिर गाँव के लोग कहाँ जायें ? क्या करें ?

हरिहर काका सत्संगी आदमी हैं। इलाके भर के सोचने-समझनेवाले लोगों से उनका सम्पर्क है। सत्संग का कोई मौका छोड़ते नहीं। अभी तीन-चार दिनों पहले ही श्रीपालपुर के रामधनी बाबू से ग्रामदान की बात सुनकर आये हैं। रामधनी बाबू तहसील के बड़े कालेज में पढ़ाते हैं। ग्रामदान की बात उन्हें जँच गयी है, और अपने गाँव का ग्रामदान कराने की पूरी कोशिश कर रहे हैं। इसी सिलसिले में एक सभा बुलाई थी उन्होंने, जिसमें संयोग से हरिहर काका भी पहुँच गये थे।

सभा के बाद हरिहर काका डेढ़ घंटे तक रामधनी बाबू से ग्रामदान की चर्चा करते रहे थे, और उसी दिन से मन में यह बात चल रही थी कि अगर ग्रामदान से गाँव एक और नेक बनेगा, देश की हालत सुधरेगी तो अपना गाँव भी पीछे क्यों रहे ?

लेकिन गाँववालों ने जब ग्रामदान के बारे में इतने सारे सवाल पूछ दिये तो हरिहर काका से जवाब देते नहीं बना। बात किसी और दिन के लिए टल गयी।
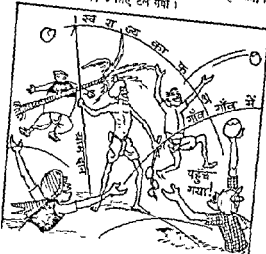
हरिहर काका ने मन में विचार किया कि क्यों न रामधनी बाबू को ही बुला लाया जाय। और, यह सोचकर दूसरे दिन सवेरे ही वे रामधनी बाबू के गाँव चल पड़े। लेकिन रामधनी बाबू उस दिन नहीं आ सके। उनके गाँव के सब लोगों का ग्रामदान के कागज पर दस्तखत नहीं हो पाया था, कल तक हो जाने की उम्मीद थी, इसलिए अपने गाँव का काम पूरा होते ही आने का उन्होंने वचन दिया। दशहरे की छुट्टियों में ही वे चाहते थे कि अपने गाँव में बुनियाद पड़ जाय, तो बाकी काम धीरे-धीरे आगे बढ़ता रहेगा।

रामधनी बाबू के साथ हरिहर काका भी कई लोगों के दरवाजे पर गये। ग्रामदान पर दस्तखत करने-कराने की बात-चीत सुनी, और लोगों को दस्तखत करते देखकर शाम को जब घर लौटे तो मन में यह निश्चय-सा हो गया था कि ये दस्तखत मामूली नहीं हैं। मन-ही-मन उन्होंने तुलना की कि पाँच साल में एक बार वोट का 'ठप्पा' लगाने से सरकारें बनती-बिगड़ती हैं तो इस दस्तखत से गाँव क्यों नहीं बनेगे? फिर उनको अंग्रेजी जमाने की याद आयी—कितना फर्क है तब में और अब में? तब तो हर आदमी गोली-बन्दूक की ताकत को ही जानता था, एक यह जमाना है कि हर आदमी 'ठप्पे' की ताकत आजमाता है। बड़ा-से-बड़ा इसके लिए छोटे-से-छोटे आदमी की चिरौरी करता फिरता है। जमाना ही आ गया ठप्पे का और दस्तखत का।

उस रात चौपाल में दुगुनी भीड़ थी। बात फैल गयी थी कि हरिहर काका गाँव का दान कराना चाहते हैं। कहीं भय तो कहीं जिज्ञासा फैल गयी थी।

काका ने कहा, "पूरी बात तो रामधनी बाबू से समझेंगे। उन्होंने परसों आने का वचन दिया है। लेकिन उनके साथ दिन भर रहकर मैंने जो समझा है, उसे आपको बता देता हूँ। ग्रामदान में गाँव को एक स्वतन्त्र गाँव-समाज बनाने के लिए सबको मिलाकर ग्रामसभा बनायी जायेगी। ग्रामसभा सबके लिए सबकी मिली-जुली शक्ति से काम करेगी। ग्रामसभा गाँव के झगड़ों को गाँव में ही निपटा लेगी, और इस प्रकार पुलिस की छाया से गाँव आजाद हो जायेगा। इसके लिए गाँव में शक्ति तब बनेगी जब गाँव के सभी लोग अपनी-अपनी जमीन में से बीसवाँ हिस्सा अपनी मर्जी से निकालकर बेजमीनों को दे देंगे, हर आदमी अपनी उपज में से मन में एक सेर अनाज या तीस दिन में एक दिन की मजदूरी निकालकर गाँव की पूँजी बना लेंगे, जिससे बाजार की माया से कुछ हद तक बच सकें। पूरी तरह बाजार की माया से तो तब फुर्सत मिलेगी जब पूरे इलाके में ग्रामदान हो जायेगा और इलाके भर के लोग मिलकर नये सिरे से बाजार पर अपना कब्जा करेंगे यानी क्या चीज बाहर से मँगायी जाय, और क्या बाहर भेजी जाय, इसका फैसला इलाके के लोग मिलकर करेंगे। और, उसी तरह जब पूरा क्षेत्र ग्रामदान में आ जायेगा तो मिलकर यह तय कर लेंगे कि कौन आदमी सरकार में हमारा प्रतिनिधि चुनकर जायेगा। तब हम दल के दलदल से बच सकेंगे। और गाँव की बात सरकार तक पहुँच सकेगी। अभी तो सब अपने-अपने दल की बात करते हैं, गाँव की कौन कहता-सुनता है। तब जाकर सही मानी में स्वराज्य का फल देश के गाँव-गाँव तक पहुँचेगा।

"काका, क्या कभी इस तरह गाँव की भी सरकार बन सकेगी?" किसी आदमी ने बहुत ही उमंग में आकर पूछा।

"ग्रामदान तो इसीलिए है कि गाँव में गाँव की सरकार बने और देश में 'गाँव-राज्यों' की मिली-जुली संघ-सरकार बने लेकिन यह तब होगा जब कम-से-कम पूरे प्रान्त के गाँव ग्रामदानी हो जायेंगे। और, आप लोगों को सुनकर खुशी होगी रामधनी बाबू ने हमसे बताया कि अब पूरे बिहार के गाँवों को ग्रामदानी बनाने की कोशिश हो रही है, लेकिन एक बात है जो सबसे जरूरी है और सबसे अधिक ध्यान देने की है। इन सब बातों की बुनियाद है ग्रामसभा। ग्रामसभा जब मजबूत होगी, तब कुछ भी हो सकेगा।"

"ग्रामसभा कैसे मजबूत होगी?" बलिराम ने पूछा।

"जब ग्रामसभा को सबका विश्वास और भरोसा मिलेगा।" हरिहर काका ने कहा।

"उसके लिए क्या किया जाय?"

"ग्रामसभा को विश्वास का केन्द्र बनाने के लिए सब लोग अपनी जमीन की मालिकी ग्रामसभा को सौंप दें। ग्रामसभा की मुख्य बात यही है। यह करने पर ही ग्रामसभा 'गाँव की शक्ति' बन पायेगी। शक्ति की उपासना 'बलिदान' से की जाती है, हमें यह बलिदान करना पड़ेगा।

"जब बलिदान का पुण्य हमें ही मिलनेवाला है तो हम पीछे क्यों रहेंगे?"

"हम पीछे नहीं रहेंगे, नहीं रहेंगे।" एक साथ कई आवाजें सुनाई पड़ीं।

(क्रमशः)

हमारे गाँव कहाँ हैं ?

दो दिन पहले पानी पड़ा। ऊपर धुली हुई हरियाली, नीचे गीली मिट्टी और छाया, बगीचा घनघोर लगता।

'अखबार की क्या खबर है ?' पूछा मौलवी साहब ने। अंग्रेजी हटाओ सम्मेलन की बात बतायी मैंने, तो खबर सुनकर वे दुःखपूर्वक बोले...

'यही तो इन लोगों की हुकूमत है। एक अदना चीज— भाषा का झगड़ा हल नहीं हो सका।'

मेरा ध्यान सिमटकर मौलवी साहब द्वारा कहे 'इन लोगों' शब्द पर केन्द्रित हो गया। मतलब था सरकार से। ऐसा लगा कि इसमें कहीं कोई भयंकर भूल है। मौलवी साहब को 'इन लोगों' की जगह 'हम लोगों' का प्रयोग करना चाहिए था। 'यही तो हम लोगों की हुकूमत है !'

दिन भर मैंने इस पर सोचा। ऐसा लगा कि स्वराज्य के बाद देश में जिसकी सबके अधिक जरूरत थी वह नहीं हुआ। बारह वर्ष बाद भी इस देश की जनता यह नहीं समझ सकी कि यह देश हमारा है और यह सरकार हमारी है। उसी रात को एक बात है।

तिलकोत्सव था। मगर राय के लड़के पुनवासी ने जब प्राइमरी स्कूल परीक्षा पास कर ली तो यह बहुत आवश्यक समझा गया कि घर में बहू आ जाय। तिलकहरू आये। मोल-भाव हुआ और शादी तय हो गयी।

द्वार की शोभा बढ़ाने मैं भी पहुँचा। तमाम गाँव के पलग और बिस्तरे लाकर दो कतार में लगा दिये गये थे। एक ओर पन्द्रह-बीस व्यक्ति, जो तिलक चढाने आये थे, जल पीकर आराम से सोते थे। शेष चारपाइयाँ खाली थीं। एक ओर दस-बारह जन पिलानेवाले लोग खड़े थे, जो मेरे पहुँचते ही टूट पड़े। ऐसे दृश्य की कभी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। ऐसे मौके पर तो जब कि डिब-डिब-डिब-डिब बाजा बज रहा हो, साफ बिस्तरे लगे हों, जल में केवड़ा जल छोड़ा गया हो, बड़े-बड़े टब में शर्बत घोलकर रखा गया हो और पान-बीड़ी की टेम्परेल हो, गाँव के लोग टिड्डी-दल की भाँति दरवाजे पर छा जाते हैं। आज क्या बात है ? कोई नहीं दिखाई पड़ता। लड़के भी नहीं झाँकते !

मैं ऊबने लगा। तबीयत उचटने लगी। इच्छा हुई भाग चलें। समाज की इस गुमसुम धुधुआती जिन्दगी के जहरीले धुंए से दम घुटने लगा। क्या खूब ! बिरादरी के लोगों ने आज हड़ताल बोल दी है। बच्चे तक रोक लिये गये। खबरदार ! आज मंगर राय के दरवाजे पर कोई न जाय। अजाजन और गाँव के और लोगों पर भी रोक।

मामला पंचायत के चुनाव का है। बेचारे मगर राय गाय हैं। किसी तरफ वोट नहीं दिये। दोनों दल बिगड़कर बारूद। अपने सगे लोग और भी आगबबूला। सभापति का चुनाव हुए ६ महीना बीत गया। इस बीच गाँव मे कम से-कम ६ सौ झगड़े इस चुनाव को लेकर खड़े हो गये। विघटन, वैमनस्य और विद्रोह की चरम सीमा।

ऐसे में पड़ गया मंगर राय के लड़के का तिलक और बिरादरी का तनाजा। इधर दरवाजे पर तिलकहरू पड़े हैं, उधर घूम-घूमकर मंगर राय भाइयों के पैर पर पगड़ी पटक रहे हैं। भाइयो ! गलती माफ करो। पानी बिगड़ जायगा। उबार लो।

९ बजे रात को मगर राय के नजदीकी भाई लोग इस शर्त पर खाने-पीने को राजी हुए कि वे नवनिर्वाचित खिलाफ पार्टी के सभापति के बगीचे पर अपने हक का दावा चकबन्दी अधिकारियों के यहाँ दायर कर देंगे। इसके लिए एक हजार रुपये की दावी भी लिखनी पड़ी मंगर राय को।

फिर क्या था ? शोर हो गया। चलो शर्बत पीने। चलो तिलक देखने। चलो...चलो...आज मगर राय के छक्के छुड़ाने हैं। दल-के-दल लोग आये। बड़े-बड़े दिग्गज आये। झुण्ड-के-झुण्ड लड़के आये। ताज्जुब था कि इतनी रात गये तक ये जगे थे। गिलास और लोटे खड़खड़ाने लगे। दरवाजा देखते-देखते भर गया। मेला लग गया। शोर होने लगा। कांव-किच और हल्ला हड़बड़ी से कान फटने लगे, झटके से एक बात सुनी।

'ग्यारह गिलास ! अरे भाई अभी कितना पिओगे ?'

'अभी घबराओ मत। लाओ गिलास भरो। अभी पत्तल पर हमारी मनुसाई देखना। शर्बत और गाढ़ा बनाओ।'

मंगर राय टब के पास बैठे हैं। दहिन राय शर्बत घोल रहे हैं। उजागिर राय बाल्टी से निकाल-निकालकर दे रहे हैं।

'मेरे मामा के लड़के की शादी में तो कुंए में ही पाँच बोरा चीनी छोड़ दी गयी थी।' दहिन राय ने कहा।

'सुना है कि उस शादी में भी कुछ खटपट हो गयी।' उजागिर राय ने एक बड़ी वाल्टी में शर्बत निकालकर पिलानेवालों को देते हुए कहा।

'खटपट बिना तो आजकल शायद ही कोई बरात विदा होती है। हर बरात में कुछ-न-कुछ अवश्य ही झगड़ा-झमेला हो जाता है। इसी झगड़ा को बचाने के लिए हमारे मामा ने पहले ही प्रबन्ध कर दिया। मुख्यतः झगड़ा लेन-देन का होता है। मामा ने द्वार-पूजा से लेकर तीसरे दिन की बिदाई तक के सारे रुपये, दहेज और सामान तिलक पर ही ले लिये। झख मारकर बेटीवाले को देना पड़ा। फिर वहाँ के लिए लिस्ट बना दी। ५०० चारपाई, १ सेर गांजा, १० चौकियाँ, २०० बट्टी साबुन, २०० शीशी तेल, २०० तौलिया, ३ सेर ठण्ढई और १००० सिगरेट आदि आदि। अब झगड़े की कोई सूरत नहीं ···।'

'एक बोरा चीनी खतम हो गयी।' एक व्यक्ति ने मंगर राय को सूचना दी।

'खतम हो गयी! अच्छा दूसरा बोरा खोल दो।' मंगर राय ने कहा।

'हाँ, तो क्या हुआ फिर!' उजागिर राय ने पूछा और दहिन राय की बात आगे बढ़ी।

'हुआ क्या? तमाम बरात को विवाह के दिन रातभर टपरा गाना पड़ा।'

'अरे, क्या खिलाया-पिलाया नहीं?'

'पिलाया तो शाम को खूब किन्तु विवाह के बाद भोजन की प्रतीक्षा करते-करते २ बज गया तो एक आदमी भेजा गया। बेटीवाले ने उत्तर दिया कि भोजन के बारे में तो लिस्ट में कहीं जिक्र नहीं है।' दहिन राय बोले।

'बाबूजी तिलक की मुहुर्त बीत रही है। तिलकहरू लोग घबराये हैं। वह काम भी होना चाहिए।' एक नाई ने आकर मंगर राय से कहा।

'ठीक है, लड़के को जगाओ। देखो कहाँ सोया है।' मंगर राय ने नाई से कहा।

'सरकार पुनर्वासी बबुआ दालान मे सोये हैं। जगाने पर झुनमुनाकर रह जाते हैं, कहते हैं कि हमें सोने दो। बाबूजी से कह दो कि तिलक चढ़वा लें।···सरकार, मालकिन ने कहा है कि यह चाण्डाल बिना सरकार के जगाये नहीं जगेगा। चलिये जगा दीजिये।'

मंगर राय चलने के लिए उठे तबतक एक आदमी दौड़ हुआ आया। बोला, 'बाबू साहब, चीनी का दूसरा बोरा भी खतम हो गया।'

'ऐं दूसरा बोरा भी खतम हो गया! कितने लोग अभी पीने के लिए बाकी हैं?' मंगर राय कुर्सी पर बैठ गये।

'सरकार अभी तो बाबू लोगों का पीना खतम हुआ है। भरटोल, बिनटोल, और चमारटोल बाकी है।'

'क्या जरूरी है सबको पिलाना! खदेड़ो सबको। ब्लैक की चीनी है। परमिट नहीं मिला है।'

'ऐसे न कहो मंगर भाई, दहिन राय बोले 'शादी-ब्याह' में जरा-सी बात के लिए इज्जत बिगड़ जाती है। जब लोग आ ही गये तो पिला दो शर्बत इन्हे भी। खदेड़ दोगे तो तिलकहरू भी सोचेंगे कि क्या दरिद्र है।'

'अच्छा जब यही राय है तो खोल दो तीसरे बोरे का भी मुँह और ··· ···।'

मंगर राय कहते-कहते कुर्सी पर से बेहोश होकर लुढ़क गये। उन पर गर्मी छा गयी। (अभी तो शर्बत अध्याय है। पत्तल-काण्ड शेष है।)

'इन्हें उठाकर घर ले जाओ और औरतों से कहो कि सिर पर पानी का छींटा दें।' उजागिर राय ने कहा।

मैं उस तिलकोत्सव में बैठा-बैठा यह सब देखता-सुनता रहा और उसी समय उस एक बड़े-से सवाल का छोटा-सा जवाब मिल गया।

'हमारे गाँव कहाँ है? किस अन्तरिक्ष युग में?'

··· ···सामाजिक कुरीतियों के घूर पर। सांस्कृतिक विकृतियों के नरक में। उत्सव के नाम पर उत्पीड़न, आनन्द के नाम पर अत्याचार, प्रेम के नाम पर परिताप और मंगल के नाम पर मरण। बनावटी 'इज्जत' का यह नाग-पाश!

—विवेकी राय

आवश्यक सूचना

'गाँव की बात' का अगला अंक मध्यावधि चुनाव में मतदाता के शिक्षण की दृष्टि से तैयार किया जा रहा है। ८ पृष्ठों का यह अंक चित्रों से भरा-पूरा होगा, ताकि मतदाता इसे पढ़कर और बाकी देखकर मतदान के अपने अधिकार का सही उपयोग कर सकें।

अपने कार्यकर्ता साथी उस अंक को ज्यादा-से-ज्यादा मतदाताओं तक पहुँचा सकेंगे ऐसी उम्मीद है। जिन साथियों को उस अंक की जितनी प्रतियाँ चाहिए वे शीघ्र लिखें ताकि उतना अधिक हम छपा सकें। देर से सूचना मिलने पर अंक प्राप्त नहीं हो सकेगा।

—व्यवस्थापक

दरिद्रनारायण का सेवक

भूदान के काम से मैं छपरा गया था। भूमिहीनों की सभा थी। बड़ी हाय-हाय मची थी। कोई कहता था—'बाबू, पाँच वर्ष से मैं भूदान की जमीन जोत रहा था। मेरे गाँव में एक व्यक्ति ने बेदखल कर दिया है। गाँव में उसके डर से कोई बोलता नहीं।' दूसरा रो रहा था—'सरकार, मुझे भूदान से जमीन मिली। जमीन पर जामुन का पेड़ था। तूफान में पेड़ गिर गया। मैं काटकर घर ले आया। पुलिस ने हाजत में बन्द कर दिया। अंचल-अधिकारी ने मुकदमा चला दिया।' इसी तरह की कितनी करुण कहानियाँ! अन्त नहीं। सुन-सुनकर हृदय व्यथित हो गया। वापस पटना आ रहा था। मन पर बोझ था—राहत का रास्ता क्या?

'नेशनल हाइवे' पर मोटर तेजी से आ रही थी। मित्र रामनन्दन बाबू ने मोटर रोकी। फतेहा गाँव का एक छोटा सा खपरैल का मकान सामने था। हम मोटर से उतरकर मकान की ओर बढ़े। देखा, एक छोटी कोठरी में नंगे बदन एक व्यक्ति बैठा है। होमियोपैथी की दो पेटियाँ सामने रखी हैं; दीवाल पर चित्र लगे हैं—योग और ध्यान के। देखने में डाक्टर के बजाय साधक प्रतीत हो रहे थे। नमस्कार के बाद रामनन्दन बाबू ने परिचय कराते हुए कहा—'ये श्री देवनारायण बाबू हैं। इन्होंने अपनी सारी जमीन भूदान में दे दी।' 'अरे, क्या दे दिया? अपने स्वास्थ्य का हाल कहें?' डाक्टर ने कहा। वे अपनी प्रशंसा सुनना नहीं चाहते थे, इसलिए बीच में ही बात काट दी। रामनन्दन बाबू ने अपनी हालत सुनायी। उन्होंने बड़ी गम्भीरता से एक-एक बात सुनी। एक शीशी उठायी और धीरे से रामनन्दन बाबू के मुँह में एक टिकिया डाल दी। डाक्टर साहब अब ध्यानस्थ हो गये। हमें जल्दी थी इसलिए हम तुरंत चल पड़े। बाहर आये ही थे कि सुना—'रघुपति राघव राजाराम'। ठीक चार बजे नित्य धुन लगती है। रोगी, डाक्टर, सभी धुन लगाते हैं।

गाड़ी में चलते चलते रामनन्दन बाबू ने बताया,—"डाक्टर ने अपनी सारी जमीन भूदान में दे दी। सन् '५७ में दादा धर्माधिकारी इनकी दी हुई जमीन का प्रमाणपत्र बाँटने आये थे। ग्रामीणों ने दादा से कहा—'डाक्टर पागल हैं, इनकी विधवा भौजाई फूट-फूटकर रो रही है। आप सारी जमीन बाँट देंगे तो इस परिवार का क्या होगा?' दादा द्रवित हो गये, बोले—'बेटी विमल! अन्दर जाकर देखो तो।' थोड़ी देर में विमला बहन उधार आँगन से वापस आयी। बोली—'विधवा तो यज्ञ की तैयारी में मग्न है।' पूछने पर बताया, "डाक्टर हमारा पालन करते हैं। मैं अभागिन इस पुण्य-कार्य में क्यों बाधक बनूँ?"

सारी जमीन बँटी। गाँववालों ने आँख खोलकर तमाशा देखा। डाक्टर ने जिसने शादी नहीं की, बड़े परिवार की जिम्मेदारी उठायी, भूमिहीन किसानों के आठ परिवार को जमीन दी, उनके बच्चों की दवा, पढ़ने की व्यवस्था, घर की शादी ब्याह, सबकी चिन्ता अपनी छोटी कमाई के भरोसे करते हैं।

दरिद्रनारायण का यह सेवक साक्षात् भगवान है।

—निर्मलचन्द्र

संघर्ष के कारणों को समाप्त करना जरूरी

पिछले महीने बिहार के मुजफ्फरपुर शहर के आसपास के कुछ गाँवों में भूमि-मालिकों और खेतिहरों में कुछ संघर्ष पैदा हो गया। ऐसा लगा कि वहाँ नक्सलबाड़ी की तरह ही उपद्रव हो जायेगा। मुजफ्फरपुर के हमारे प्रतिनिधि श्री गंगा प्रसाद सहनी ने उन क्षेत्रों में जाकर परिस्थिति की सही जानकारी भेजी है। इससे पता चलता है कि स्थिति कितनी नाजुक और सुधार के लिए ग्रामदान कितना जरूरी है। क्योंकि ग्रामदान होने से ही गाँव एक होगा, मालिक मजदूर मिलकर अपनी समस्याओं के बारे में विचार करेंगे और उसको हल करेंगे। जानकारी इस प्रकार है —

(१) जहाँ-जहाँ संघर्ष हुए, वहाँ-वहाँ कुछ प्रमुख लोगों के बीच आपस में लम्बे समय से मुकदमेबाजी चल रही थी।

(२) मजदूरों को दिन भर काम करने पर १ रुपया मजदूरी मिलती थी और एक समय का नाश्ता, लेकिन इतना भी बराबर नहीं।

(३) मजदूर रोजी की तलाश में शहर चले जाते थे। खेती के काम में नुकसान होता था। इसलिए मालिकों की इच्छा थी कि मजदूर गाँव से चले जायँ, उनकी जगह दूसरे मजदूर बसाये जायँ।

(४) इस तरह के तनाववाले वातावरण में कुछ मजदूर-नेता निकल आये। उन्होंने संगठन किया और उत्तेजना में आकर एक किसान और एक पुलिस-कर्मचारी को पीट दिया।

(५) मजदूरों से बदला लेने के लिए गाँव के कुछ बड़े मालिकों ने इस घटना को नक्सलबाड़ी की घटनाओं-जैसा घातक बताकर सरकार और पुलिस की मदद ली और मजदूरों का बुरी तरह दमन किया।

इन कारणों से वातावरण में काफी तनाव आ गया। अब सर्वोदय कार्यकर्ताओं के समझाने-बुझाने से स्थिति सुधरी है। •

एक हल्का और कारगर डिबलर

[डिबलर के उपयोग से बीज की बचत की जा सकती है तथा उपज भी बढ़ायी जा सकती है। नीचे जिस डिबलर का विवरण दिया गया है उसका उपयोग हर किसान कर सकता है। अपने यहाँ स्थानीय लोहार भी इसे बना सकता है। —सं॰]

दो-तीन साल पहले की बात है। उत्तर प्रदेश में जिला मेरठ के बड़ौत इलाके के प्रगतिशील किसान भारी पदावार देने-वाली किस्में बोना चाहते थे। किन्तु उन्हें इन किस्मों का बीज बहुत कम मिल पाया था। कृषि-विशेषज्ञों ने उनको चोबकर बोने तथा बीज गुणन करने की सलाह दी थी।

डिबलिंग यानी चोबकर बोने से बीज कम लगा और पैदा-वार खूब मिली। करीब ८-१० साल पहले उत्तर प्रदेश में डिबलर का काफी प्रचलन था। बाद में इसका प्रयोग कम होता गया। किन्तु थोड़े-से बीज गुणन करने के लिए डिबलर ही एक-मात्र सहारा था।

समय की माँग के साथ डिबलर में भी सुधार की माँग हुई। बड़ौत के ग्रामसेवक प्रशिक्षण-केन्द्र के फार्म पर भी इसकी जरूरत महसूस हुई। उस केन्द्र की वर्कशाप में नये डिबलर का निर्माण किया गया। यह नया डिबलर उस इलाके के किसानों की आवश्यकता के अनुसार बहुत उपयोगी साबित हुआ।

यह डिबलर लोहे का बना है। इसकी बनावट बहुत साधारण तथा मजबूत है। इसके फ्रेम तथा खूंटियाँ बिजली की वेल्डिंग करके जोड़े गये हैं। इसमें कुल २७ खूंटियाँ हैं। हर लाइन में ९ खूंटियाँ हैं। लाइनों के बीच ७ इंच की दूरी तथा खूंटियों के बीच ३ इंच की दूरी रखी गयी है। हर खूंटी ढाई इंच लम्बी है।

केन्द्र में बने इस डिबलर की खूबी यह है कि इसका वजन ५ किलोग्राम है, जिसे किसान-बालक भी आसानी से इस्तेमाल कर सकता है। इसके अलावा इस डिबलर की कीमत वर्कशाप के नियमों के अनुसार सवा आठ रुपये रखी गयी है। बाजार में किसी लोहार से भी इसे बनवाया जा सकता है। उस हालत में इसकी कीमत १२-१३ रुपये से ज्यादा नहीं बैठेगी।

बाजार में बनवाने के लिए इसमें लगनेवाले सामान का विवरण नीचे लिखे के मुताबिक है ;—

१. ऐंगल आइरन	१"×१"×१/८	७ फुट
२. पटिया	१"×१/८"	१ फुट
३. पटिया	१"×१/४"	२ फुट
४. सरिया	१/३"	२ फुट
५. सरिया	१/२"	४ फुट
६. वेल्डिंग राड	८ नम्बर	६

किसी भी लोहार से, जो खेती के यंत्र बनाने का काम करता हो, यह विवरण बताकर डिबलर बनवाया जा सकता है। हमारे इलाके के किसानों ने इस डिबलर से बहुत लाभ कमाया है। उनका एक अनुभव यह भी है कि चोबकर बोयी फसल में कल्ले खूब फूटते हैं।
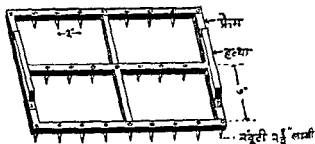
इस ढंग की बढ़ती माँग इसकी लोकप्रियता का सबूत है। अन्य किसानों को इस डिबलर को इस्तेमाल करने से पहले नीचे लिखी बातों को भी ध्यान में रखना चाहिए।

डिबलर से बोने से पहले यह देख लें कि खेत में पर्याप्त नमी है। यदि नमी कम हो तो खेत में पलेवा कर लें। खेत में सिंचाई की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। पर्याप्त खाद और उर्वरक डाल खेत अच्छी तरह तैयार कर लें।

इस प्रकार किसान भारी पैदावारवाली किस्मों को नये डिब-लर से बोकर पूरा-पूरा फायदा उठा सकते हैं।

—'फार्म फीचर' से

स्वायत्त ग्रामसभा

श्री संपादकजी,

हमने ग्रामवासी कोतिया, डाकघर हुलतरा, जनपद आजमगढ़ के—अपनी एक स्वायत्त ग्रामसभा का संगठन किया है। इसमें गाँव के सभी वर्ग के लोग सम्मिलित हैं, जिसका उद्देश्य है गाँव की फसलों एवं माल की रक्षा करना, आपसी मतभेदों को मिटाकर बन्धुत्व भावना से ग्राम की उन्नति करना, गाँव के सांस्कृतिक एवं परमार्थ-कार्यों में सहयोग करना, तथा गरीब बच्चों को पढ़ने का समुचित प्रबन्ध करना।

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कुछ सामान्य नियम हैं तथा जुर्माना आदि की व्यवस्था की गयी है। ऐसा सभी की सम्मति से किया गया है। सदस्यों में से कुछ कार्यकारिणी के सदस्य बनाये गये हैं। इनका मुख्य कार्य गाँव के संगठन एवं विकास-हेतु उचित मार्ग बताने का है एवं छोटे-मोटे मतभेदों को दूर करने का है।

उपरोक्त कार्यवाही के लिए रजिस्टर आदि की व्यवस्था है। इसमें ग्रामसभा की स्वायत्त नियमावली है तथा गाँव के सभी लोगों एवं सदस्यों के सहमति के सम्बन्ध में हस्ताक्षर हैं।

वाचनालय एवं मनोरंजन आदि का प्रबन्ध भी है।

क्या हमारी ग्रामसभा रजिस्टर्ड हो सकती है अथवा ऐसी संस्था से सम्बन्धित हो सकती है, जिसके आधार पर हम अपनी नियमावली को कानूनन वैध समझें? कृपा करके मार्गदर्शन दें तथा इस सम्बन्ध में हमें कौनसी आवश्यक कार्यवाही करना वांछनीय है, कृपया सूचित करें।

—लालप्रताप सिंह
स्वायत्त ग्रामसभा प्रमुख

श्री लालप्रताप सिंहजी,

आपने ग्रामसभा का संगठन किया, यह बहुत ही अच्छी बात है। सबसे अच्छी बात आपने यह की कि सबकी राय का ध्यान रखा। जिस प्रकार आपने नियम बनाते में, जुर्माना करने की व्यवस्था में, सबकी सम्मति का ध्यान रखा है उसीप्रकार गाँव के विकास के लिए जो भी काम किया जाय उसमें सबकी राय का ध्यान रखें। कोशिश यह होनी चाहिए कि किसी पर जुर्माना न करना पड़े। सबकी राय का और सबकी सम्मति का महत्व माना जायेगा और उसका आदर होगा तो भले आपको सरकारी या कानूनी मान्यता न मिले, आपको गाँव में काम करने में विशेष कठिनाई नहीं आयेगी।

हाँ, मगर आपके गाँव का ग्रामदान न हुआ हो तो पहले ग्रामदान की बात सोचनी चाहिए। ग्रामदान के बिना ग्रामसभा में शक्ति नहीं आयगी। ग्रामदान गाँव को एक सूत्र में बाँधता है। आपको ग्रामदान की जानकारी न हो तो ग्रामदान का साहित्य प्राप्त करना चाहिए। पहले सहकार की बात सोचना अच्छा होगा। नियम आदि बाद की चीज है। मनुष्य के सम्बन्धों में सहकार प्रधान होना चाहिए और नियम गौण। —सं०

हम एक हैं, एक रहेंगे

सात बरस पुरानी यह घटना है। अमृतसर के निकट हिन्द-पाक सीमा पर मेंहदीपुर गाँव में जाना हुआ था। मुखिया शाम को टहलते-टहलते सीमा पर लिवा गये। मैं देख रहा था उस भूमि को बड़ी हसरत से, जहाँ मेरा जन्म हुआ था (नवाबशाह, सिन्ध)—धरती का वही मटमैला रंग, वही उजला आसमान, वही प्रेम का सन्देश लाती हुई हवा, खेत से खेत सटे, मगर दिल? दिल भी सटे हुए लगे, क्योंकि दूर से पठान सिपाही जो कन्धे पर बन्दूक रखे देख रहे थे, निकट आये। देखा, फकीर जैसा नवयुवक, झोले में सर्वोदय-साहित्य रखे हुए। बन्दूक नीचे रखकर वे आगे बढ़े। और यह क्या! अगले ही क्षण हम दोनों आलिंगन-पाश में बंध गये। क्या चीज थी जो हमें खींच रही थी? मोहब्बत, हमदर्दी, जिसे देश की सीमाएं नहीं रोक सकती। मैं दुबला-पतला उस हृष्ट-पुष्ट लम्बे पठान की बलिष्ठ भुजाओं में भिंच गया। खिलौने की तरह उसने मुझे उठा लिया प्यार की गरमी ने वातावरण की ठण्डक मिटा दी। जब उस पठान को विदित हुआ कि मैं सन्त विनोबा का शान्ति का सिपाही हूँ, तो उसने सब बातें विस्तार से पूछी। फिर कहा: 'सियासत ने हमें एक-दूसरे से जुदा कर दिया है। मगर क्या भाइयों के दिल जुदा हो सकते हैं?' उसने सच कहा, दोनों की रगों में वही खून, वही संस्कृति, वही सभ्यता। उस छोटी-सी मुलाकात ने सिन्ध की याद ताजा कर दी, जिस मिट्टी में बचपन में मैं मुसलमान लड़कों के साथ खेला था, तब मुझे मालूम नहीं था कि मैं हिन्दू हूँ, वे मुसलमान बच्चे हैं। उस पठान की प्रेमल वाणी प्रायः मेरे कानों में गूंजा करती है—'हम एक हैं और एक रहेंगे।'

—जगदीश मदानी

गांधी जन्म-शताब्दी कैसे मनायें ?

[यह गांधी जन्म-शताब्दी का वर्ष है। जगत भर में गांधी-शताब्दी मनायी जायेगी। हमारे देश में भी शताब्दी मनाने के लिए विविध कार्यक्रम बन रहे हैं। आम जनता के लिए उपयोग की दृष्टि से गुजरात की बड़ौदा जिला सर्वोदय योजना ने गांधी-शताब्दी पत्रिका निकाली है।

उसमें गाँव में गांधी-जन्म शताब्दी पर्व कैसे मनाया जा सकता है उसके लिए कुछ ठोस कार्यक्रम सुझाये गये हैं। हम उन्हें यहाँ दे रहे हैं। इन कार्यक्रमों के अलावा आप जो सोचें उन्हें अपने यहाँ कर सकते हैं।—सं०]

२ अक्तूबर १९६९ के दिन पूज्य गांधीजी के जन्म को एक सौ वर्ष पूर्ण होंगे। बापू अभी हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनके विचार और उनका जीवन खुली हुई किताब की तरह है। उनसे देश-विदेश के अनेक लोगों ने प्रेरणा प्राप्त की है और आगे भी प्रेरणा मिलती रहेगी। बापू की जन्म-शताब्दी देश-विदेश में मनायी जायगी। सब अपने ढंग से बापू के प्रिय रचनात्मक कार्य करेंगे। हम भी बापू-शताब्दी मनायेंगे। गाँव के लोग अपने-अपने कार्य करते हुए—कैसे इस जन्म-शताब्दी मनाने के कार्यक्रम में अपना हिस्सा दे सकते हैं, उसके लिए कुछ कार्यक्रम यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं—

गाँव में

- गृह-कार्य, खेती और पशु-पालन में स्वयं शारीर-श्रम करें।
- अनपढ़ हों तो जल्दी-से-जल्दी पढ़ने-लिखने-जैसा ज्ञान प्राप्त करके रात को अवकाश के समय में अकेले या समूह में जीवनोपयोगी साहित्य पढ़ें या सुनें।
- देश और दुनिया की प्रगति और घटनाओं से परिचित रहने के लिए पत्र-पत्रिकाएं पढ़ें या पढ़ाकर सुनें।
- खेती और पशु-पालन में वैज्ञानिक खोजों की मदद लें और अधिक उत्पादन करें।
- हानिकारक रूढ़ियों तथा अन्धविश्वासों का त्याग करें।
- अपने परिवार तथा गाँव की जरूरत भर अनाज अपने आप ही पैदा करें।
- फुरसत के समय में घर के कपास की पूनियाँ बनाकर सूत कातें और कपड़े-जैसी बड़ी-से-बड़ी जरूरियात में स्वावलम्बी बनें।
- शरीर को हानि पहुँचानेवाली तम्बाकू न उगायें, न पियें।
- शराब वगैरह की आदतों से दूर रहें।
- नौकरों के साथ प्रेम का व्यवहार रखें।

> **मुझे पूजना हो तो मेरे कार्यों को पूजो**
> — महात्मा गांधी

- स्त्री जाति के लिए सम्मान और समानता का व्यवहार रखें।
- इधर-उधर न थूकें। कचरे के लिए कचरा-पात्र, गन्दा पानी निकालने के लिए गड्ढे, स्नानघर, मूत्रालय, शौचालय निर्धूम (बिना धुएं का) चूल्हा और गोबर गैसप्लान्ट बनायें।
- उत्तम बैल और ज्यादा दूध के लिए घर-घर में अच्छी नस्ल की गायें पालें।
- श्राद्ध तथा बरही-तेरही आदि की फिजूलखर्ची छोड़ें।
- शादी-गौना वगैरह में अपनी सामर्थ्य से अधिक खर्च न करें, बल्कि खर्च कम करें।
- गाँव के विकास-कार्यों में खेती के उत्पादन का चालीसवाँ हिस्सा दें।
- प्राकृतिक आफतों में उदार होकर अपना सहयोग दें।
- गाँव की बालवाड़ी, विद्यालय, महाविद्यालय, पुस्तकालय, वगैरह शिक्षण-संस्कार की प्रवृत्तियों में तन-मन-धन से सहायक बनें।
- ईश्वर के रचे हुए हम सब मनुष्य समान हैं ऐसा मानकर छूआछूत के भेद को छोड़ें।

ग्राम-पंचायतों और गाँवों के लिए

- चुनाव में वैर न होने दें।
- गाँव के झगड़े गाँव में ही सुलझायें।
- भूमिहीनों, खेत-मजदूरों की कठिनाई दूर करने का हर सम्भव प्रयास करें।
- गाँव की शैक्षणिक, सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को बढ़ायें।
- गरीबों को न सतायें, न सताने दें।
- ग्रामजनों के प्रति पुत्रभाव रखें। किसीको बुरा लगे वैसी बात न कहें।
- कुएं, तालाब, जंगल वगैरह साफ रखें।
- गाँव से शराब, जुआ आदि खराब आदतों को मिटायें।
- गाँव में छोटे-बड़े उद्योग खुलें, ऐसा प्रयत्न करें।
- गाँव में कोई बेकार या नंगा-भूखा न रहे उसके लिए प्रयत्नशील रहें।
- गांधी, विनोबा के विचारों को जनता समझे इसलिए बार-बार योग्य वक्ताओं को अपने गाँव में बुलायें और उनके प्रवचन का आयोजन करें।

'गाँव की बात' : वार्षिक चन्दा : चार रुपये, एक प्रति : अठारह पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित और इंडियन प्रेस (प्रा०) लि०, वाराणसी में मुद्रित।

इसीलिए समाजगत भेद मिटाने का एकमात्र उपाय अध्यात्म मार्ग का अनुसरण है।

अध्यात्म की प्रक्रिया

ता० ७ की बैठक में श्री जीवराज मेहता, श्री भीमसेन सच्चर, श्री श्रीमन्नारायण, डा० सुशीला नैयर, संत कृपाल सिंह, श्री शंकरराव देव और श्री दादा धर्माधिकारी भी उपस्थित थे।

श्री काका साहब ने ग्रन्थनिष्ठा छोड़कर सत्यनिष्ठा को अपनाने पर बल देते हुए कहा कि दुनिया को भारत की यह देन होनी चाहिए कि अध्यात्मविद्या की प्रक्रिया प्रस्तुत करे।

श्री रविशंकर महाराज ने कहा कि आज के जन-जीवन में सरकार ही प्रमुख बन बैठी है, लोक-अभिक्रम का कोई क्षेत्र बचा ही नहीं है।

दिल्ली के रुहानी सत्संग के प्रमुख संत कृपाल सिंह ने 'संतमत' की पद्धति और संतों के मार्ग के अनुसरण पर जोर दिया।

श्री शंकरराव देव ने अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय का समर्थन करते हुए कहा कि हमें विचार और धर्मों का समन्वय ही नहीं मानव-मानव की एकता सिद्ध करने का प्रयत्न करना चाहिए और यही रामकृष्ण से लेकर विनोबा तक के विभूति पुरुषों का पुरुषार्थ रहा है।

विनोबाजी ने प्रकट चिन्तन को इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य बताया। और सुझाया कि जिन-जिन बातों में विभिन्न परम्परा के लोगों में मतैक्य हो उन्हें एकत्र होकर समस्या परिहार की दिशा में संगठित प्रयत्न करना चाहिए।

इस सिलसिले में विनोबा ने यह भी कहा कि संतति-नियमन के लिए ब्रह्मचर्य का विचार और अपवृद्धि के लिए ग्रामदान का विचार व्यापक रूप से फैलाने की जिम्मेदारी आध्यात्मिक लोगों की होनी चाहिए।

ग्रामदान और अहिंसक शक्ति

प्रबन्ध समिति के सदस्यों ने विनोबा से पूछा कि ग्रामदान-प्राप्ति के काम में सरकारी तौर पर जो प्रयत्न हो रहे हैं, उनसे ग्रामदानी गांवों में अहिंसक शक्ति का विकास कैसे हो सकता है? क्योंकि सरकारी पद्धति में अनेक जगह दबाव से भी काम लिया जाता है, जो ग्रामदान के मूल विचार के विपरीत है।

विनोबाजी ने कहा कि जहां तक सरकारी प्रयत्नों का सवाल है, वह तो स्वागत योग्य है, क्योंकि ग्रामदान का काम सबका काम है। यह सही है कि दबाव से काम नहीं लेना चाहिए, समझाकर ही ग्रामदान कराना चाहिए।

जहां तक अहिंसक शक्ति का सवाल है, मैं तो यहां तक कहूंगा कि यह भी सम्भव है कि सारे-के-सारे पांच लाख गांवों का ग्रामदान हो जाय, फिर भी अहिंसक शक्ति तिल-मात्र भी निर्मित न हो। ग्रामदान तो अहिंसा के विकास के लिए अनुकूल भूमिका तैयार करता है। अहिंसा के विकास का काम आध्यात्मिक काम है और वह ग्रामदान के साथ-साथ और ग्रामदान से अलग भी स्वतंत्र रूप से चलना चाहिए। और, उसी काम के लिए शान्तिसेना का कार्यक्रम है।

गांधी विचार के प्रेमियों का सम्मेलन

ता० ७ अक्तूबर के दोपहर गांधी-विचार के प्रेमियों के सम्मेलन का प्रारम्भ करते हुए गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष श्री र० रा० दिवाकर ने कहा कि देश की एकता खण्डित हो रही है, मद्यपान और अस्पृश्यता के दोष कायम हैं, भ्रष्टाचार बढ़ रहा है, प्रशासन दुर्बल होता जा रहा है, सबसे बढ़कर हिंसा-शक्ति प्रबल और व्यापक होती जा रही है, यह सारी परिस्थिति गांधीजी के विचारों को माननेवालों के सामने एक चुनौती है। अहिंसा में श्रद्धा रखनेवालों को चाहिए कि देश में अहिंसा का वातावरण पैदा करने का उपाय करें।

श्री शंकरराव देव ने परिस्थिति का विश्लेषण करते हुए कहा कि गांधीजी ने अध्यात्म और भौतिकवाद के बीच सेतु का काम किया था, लेकिन उनके साथियों ने अध्यात्म और भौतिकवाद को फिर से अलग कर दिया, यही आज की स्थिति का कारण है, इसके लिए अहिंसा का नया संस्करण हमें प्रस्तुत करना होगा, जिससे भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति और अध्यात्म-साधना, दोनों एक साथ सध सकें। श्री देव ने कहा कि जिस प्रकार गांधीजी के सारे कार्यक्रम स्वराज्य-केन्द्रित थे, उस प्रकार आज हमारी सारी प्रवृत्तियां ग्राम स्वराज्य-केन्द्रित होनी चाहिए, ग्रामदान-मूलक होनी चाहिए।

श्री जयप्रकाश नारायण ने गांधीजी द्वारा सुझाये गये लोक-सेवक संघ का उल्लेख करते हुए अपेक्षा व्यक्त की कि सर्व सेवा संघ उस दिशा में एक कदम सिद्ध होगा।

युवकों के असंतोष और उपद्रव की चर्चा करते हुए श्री जयप्रकाशनारायण ने अपील की कि इस काम में अ० भा० शान्तिसेना मण्डल और गांधी शान्ति-प्रतिष्ठान को मिल जुलकर काम करना चाहिए।

अगले दिन, ता० ८ को श्री स्वामी शरणानन्दजी ने व्यक्ति को कर्तव्यपरायण होने की सलाह दी और हक के लिए लड़ने की वृत्ति छोड़ने की बात की।

डा० सुशीला नैयर ने निराशा प्रकट की कि गांधी की ज्योति मन्द होती जा रही है और सर्वोदय-आन्दोलन भी उसे प्रदीप्त रखने में असफल हो रहा है।

श्री गुलजारीलाल नन्दा ने गांधीजी की विशेषता यह बतायी कि उनमें युक्तिवाद, व्यवहारवाद और धर्मशक्ति का अद्भुत समन्वय था। आज यही समन्वय अत्यावश्यक है। आज की अनीतिमय परिस्थिति और निराशा के वातावरण से देश को बचाने का एकमात्र उपाय आध्यात्मिक जीवन का अनुसरण ही है।

श्री श्रीमन्नारायण ने अपेक्षा की कि गांधी सेवा-संघ और सर्वोदय समाज का पुनरुज्जीवन होना चाहिए। ग्रामदान का स्वरूप जिलादान और प्रदेशदान तक फैला है, परन्तु उसका प्रभाव जिलापरिषदों और विधान-मण्डलों पर पड़ने की दृष्टि से श्री श्रीमनजी ने सुझाया कि ग्रामदान पर एक बार फिर शिखर सम्मेलन होना चाहिए जिसमें प्रधानमंत्री और विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रमुख नेता, तथा समाज के अन्य क्षेत्रों के भी नेता शामिल हों।

श्री ढेबर भाई ने खेद व्यक्त किया कि गांधीजी के परिवार के लोग ही आज अलग-अलग हो गये हैं, एक दूसरे से दूर पड़ गये हैं। हम ही एक न हों, तो लोगों से

कैसे अपेक्षा करें कि गांधी के नाम पर वे एकत्र हों ?

श्री भीमसेन सच्चर ने जीवन की नैतिक बुनियाद पर जोर देते हुए खादी ग्रामोद्योगों को अपने पैरों पर खड़ा करने की सिफारिश की।

श्री नारायण देसाई ने युवक-असंतोष का जिक्र करते हुए बड़ों से अपील की कि वे युवकों का मानस समझने का प्रयत्न करें।

श्री रामानन्द तीर्थ ने ग्रामदान-आन्दोलन में निहित दो तत्वों—स्वावलम्बन और नैतिक उत्थान—का विशेष समर्थन किया।

विनोबाजी ने प्लासी के ग्रामदान और पं० नेहरू से अपनी अंतिम मुलाकात का स्मरण करते हुए ग्रामशक्ति की ओर ध्यान खींचा और 'जिलादान', 'बिहारदान', 'भारतदान' का नारा लेकर उत्साहपूर्वक काम में लगने की प्रेरणा दी।

ता० ६ को सम्मेलन का अंतिम दिन था। उस दिन श्री के० अरुणाचलम, प्रभाकर जी, जैनेन्द्र कुमार, जानकी देवी बजाज भी उपस्थित थे।

विनोबाजी ने गोहत्या और राष्ट्रीय एकता को अपने प्रवचन का केन्द्र बनाया और गोहत्या को महापाप बताते हुए कहा कि मुसलमानों को इस बारे में समझाया जा सकता है और वैसा प्रयत्न होना चाहिए। राष्ट्रीय एकता के प्रश्न के साथ अन्न-समस्या को जोड़ते हुए विनोबा ने अन्न-स्वावलम्बन पर विशेष जोर दिया।

निष्पत्ति

अध्यात्म सम्मेलन के सारे प्रवचन यद्यपि बहुत परिणामकारी रहे, फिर भी उनकी एक कमी यह रही कि उसमें कोई विधायक कार्यक्रम निश्चित नहीं किया गया। न केवल जनता के सामने, विशेषतया युवकों के सामने स्पष्ट मार्ग प्रस्तुत नहीं हुआ, बल्कि अध्यात्म की कोई स्पष्ट और सर्वग्राह्य व्याख्या भी स्पष्ट नहीं हो सकी।

यद्यपि अनेक प्रमुख आध्यात्मिक व्यक्तियों को निमंत्रित किया गया था, परंतु बहुत कम लोग ही सम्मेलन में आ पाये। सब तक पहुँचने का और अन्य धर्मों के नेताओं को भी लाने का पर्याप्त प्रयास नहीं हुआ, ऐसा मालूम होता है।

गांधी-प्रेमियों के सम्मेलन में वे ही लोग थे, जो अध्यात्म सम्मेलन में थे, फिर भी अपने निजी सेवकों सहित एक राज्यपाल की एवं भूतपूर्व (कार्यवाहक) प्रधान मंत्री की, भूतपूर्व गृहमंत्री की, और एक भूतपूर्व कांग्रेस अध्यक्ष की उपस्थिति ने इस सम्मेलन की शोभा बढ़ायी।

चूँकि सम्मेलन के सामने कोई स्पष्ट और निश्चित मुद्दों का अभाव होने के कारण सब व्याख्यान लगभग बिखरे बिखरे से रहे।

अध्यात्म-सम्मेलन में गांधी-प्रेमियों का सम्मेलन विशेष शिथिल रहा, क्योंकि इसमें अनेक सर्वोदय नेता अनुपस्थित थे, जो आ सके होते तो उनका योगदान महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता। सम्मेलन का कोई अध्यक्ष भी नहीं था।

जो भी न्यूनताएँ रही हों, फिर भी दो प्रकार के लोगों के बीच— एक वे जो आत्मस्थ विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं, और दूसरे वे, जो विविध कार्यक्रम के रूप में सर्वोदय आन्दोलन की प्रेरणा लेकर काम कर रहे हैं—वार्तालाप का एक सुअवसर इस सम्मेलन में प्राप्त हुआ। यह वार्तालाप आगे जारी रहे, बार-बार ये लोग मिलते रहें और सक्रिय हों, तो बड़ा अच्छा हो।

—रविकान्त मिश्र

मुद्रण-स्थल : [illegible], ५ अक्टूबर, '६८

मध्यप्रदेश की चिट्ठी :

मर्यादित शक्ति और अमर्यादित समस्याएँ

पिछले पौने तीन सालों से मध्यप्रदेश में मुट्ठीभर सेवकों का एक दल चुपचाप एक ऐसी साधना में लगा है, जिसे हम जप-तप और भाव-भक्ति की साधना का नाम सहज ही दे सकते हैं। इस साधना के मूल में कोई तीन साल पहले का वह संकल्प है, जो प्रान्त के इन सेवकों ने अपने गुरुजनों के सामने, उन्हीं की प्रेरणा से उत्साह और उमंग भरे वातावरण में लिया था। संकल्प था, गांधी जन्म-शताब्दी के निमित्त से मध्यप्रदेश के ६७ हजार आबाद गाँवों में ग्रामस्वराज्य का सन्देश पहुँचाने और ग्रामदान के लिए गाँवों के लाखों-करोड़ों भाई-बहनों की भावना को घर-घर, गाँव गाँव घूम-कर जगाने का। रचनात्मक कामों में लगी मध्यप्रदेश की विविध संस्थाओं का और उनके कार्यकर्ताओं का यह एक संयुक्त संकल्प था। मध्यप्रदेश-सर्वोदय-मण्डल के प्रबन्ध और मार्ग-दर्शन में इस संकल्प के अनुसार प्रान्त में ग्रामदान-प्राप्ति के लिए तूफान की भावना से अभियान चलाने का निश्चय हुआ और मध्यप्रदेश-गांधी स्मारक-निधि ने अपने सभी ग्राम सेवकों और सफाई सेवकों को इस काम में अपनी पूरी शक्ति और भक्ति से लग जाने की प्रेरणा दी।

सन् १९६६ के जनवरी महीने में सबके संयुक्त बल और आशीर्वाद के साथ प्रान्त में ग्रामदान-अभियान का श्रीगणेश हुआ। उस समय तक मध्यप्रदेश में बहुत थोड़े गाँव ग्रामदानी बन पाये थे। अगस्त १९६५ में विनोबाजी बिहार में ग्रामदान का तूफान जगाने के लिए पवनार के अपने परंधाम आश्रम से निकले और मध्यप्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के रास्ते बिहार की दिशा में बढ़े। उस समय उनके मार्ग में पड़नेवाले कुछ जिलों में हमारे कार्यकर्ताओं ने सहज प्रेरणा से जगह-जगह ग्रामदान प्राप्ति का काम किया और प्राप्त ग्रामदान विनोबाजी को उनके पड़ावों पर भेंट किये। इस निमित्त से प्रान्त में ग्रामदान के काम को एक नयी गति मिली और प्रान्त के नक्शे में कुछ सौ गाँव ग्रामदानी के नाम से अंकित हो गये। इस अवसर पर साथियों को जगह-जगह जो सफलता मिली, उसने इस काम के लिए आत्मविश्वास के साथ उत्साह की एक लहर पैदा की और उसके परिणाम-स्वरूप नवम्बर १९६५ में प्रान्त की प्रमुख रचनात्मक संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने एक सम्मेलन के रूप में इकट्ठा होकर छतरपुर में वह ऐति-हासिक निर्णय किया, जिसकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं।

तब से अब तक के इन चौंतीस महीनों में मध्यप्रदेश में ग्रामदान की गंगा का ठीक-ठीक विस्तार हुआ है। इस बीच प्रान्त के पन्द्रह हजार से अधिक गाँवों में ग्रामस्वराज्य का सन्देश पहुँचा है और चार हजार के लगभग गाँव ग्रामदान के विचार को और उसके कार्यक्रम को मान चुके हैं। एक जिला, पाँच तहसीलें पन्द्रह विकासखण्ड और अड़तीस सौ से अधिक गाँव ग्रामदान में आ चुके हैं। गाँवों में ग्रामदान के शिविर किये जा रहे हैं, दृढ़ गति से ग्रामदान-प्राप्ति का काम भी बराबर आगे बढ़ता जा रहा है। हर हफ्ते, हर पखवाड़े और हर महीने में प्राप्ति के नये आँकड़े जुड़ते जा रहे हैं। गाँवों में गाँववालों की सभाएँ होती हैं। चर्चाएँ चलती हैं। अनेक पहलुओं से बात को सोचा-विचारा जाता है। कहीं बात गले उतरती है, कहीं नहीं उतरती। जहाँ नहीं उतरती वहाँ कार्यकर्ता दो-दो, तीन तीन, चार-चार बार भी जाते हैं। गाँव वालों के सामने ग्रामदान की बात फिर फिर रखते हैं। कहीं सुनवाई होती है, कहीं नहीं होती। जो आज नहीं सुनते हैं, वे कल सुनेंगे, इस श्रद्धा और विश्वास के साथ कार्यकर्ता बिना हारे, बिना थके अपना काम करने में लगे हैं। कुछ गाँव हैं, जहाँ लोग आसानी से इकट्ठा हो जाते हैं, ध्यान से बात सुनते हैं, सार समझ लेते हैं और विचार को स्वीकार करके अपनी सही भी दे देते हैं। गाँव ग्राम दान की दिशा पकड़ लेता है। पर कुछ ऐसे भी गाँव मिलते हैं, जहाँ लाख चाहने और कोशिश करने पर भी गाँव के अच्छे भले लोग इकट्ठा नहीं हो पाते, नयी बात को नये मन से सुनने के लिए तैयार नहीं होते. गाँव में ग्राम-दान का सन्देश पहुँचाने के लिए आये हुए अजनबी भाई-बहनों से रख तक नहीं मिलाते। ऐसे गाँवों में न कोई पानी पिलाता है, न आसरा देता है, न खाना खिलाता है और न बात ही सुनता है। कार्यकर्ताओं के धैर्य की, उनकी सहनशक्ति की, और उनकी सूझ बूझ की, खासी अच्छी परीक्षा ऐसे गाँवों में हो जाती है। इस उतार-चढ़ाव के बीच ग्रामदान का जप और तप तो भाव भक्ति के साथ बराबर चलता ही रहता है।

फिर भी सवाल मन में उठता है कि क्या प्रान्त के हजारों हजार गाँवों में ग्रामस्वराज्य की स्थापना का काम पूरा करने के लिए इन मुट्ठीभर सेवकों की यह सेवा और साधना काफी होगी? क्या ३०-४० या ५०-६० या १००-२०० कार्यकर्ताओं की ताकत और मेहनत से पूरे प्रदेश में ग्रामस्वराज्य की अहिंसक क्रान्ति सफल हो सकेगी? क्या इस पूँजी पर गांधी-शताब्दी के चलते हम अपने प्रान्त के ६७ हजार गाँवों में ग्रामस्वराज्य का श्रीगणेश कर सकेंगे? क्या गाँवों और नगरों में रहनेवाले करोड़ों करोड़ भाई-बहनों की ओर से इस क्रान्ति-यज्ञ में तन, मन, धन की कोई आहुति सहज भाव से नहीं पड़ेगी? क्या यह शान्त और अहिंसक क्रान्ति आज के जमाने में इस प्रदेश के कोटि कोटि लोगों को नये पुरुषार्थ और नये पराक्रम के लिए प्रेरित और अनुप्राणित नहीं कर सकेगी? क्या अबके चूके हम फिर जल्दी सँभल पायेंगे? क्या कालपुरुष हमें सँभलने का मौका दे सकेगा? सर्वोदय की इस लोककल्याणी क्रान्ति के संदर्भ में आज ये सवाल हमारे सामने खड़े हुए हैं और हमसे जवाब चाहते हैं। दुःख, शोक, रोग, दासता, दीनता, अज्ञान, अभाव और अत्याचार से कराहती हुई मानवता के उद्धार में विश्वास रखनेवाले समझदार, जवाबदार और दूरन्देश नागरिकों से काल-भगवान आज, अभी, दो टूक जवाब चाह रहा है। काश, हम उसे ठीक जवाब दे पायें, जल्दी दे पायें!

इन्दौर, १४-१०-'६८ —काशिनाथ त्रिवेदी

यहाँ मस्तों का मयखाना

• विश्व मैत्री-यात्रा • संस्कार-मुक्ति • छात्र और राजनीति • शंकराचार्य : 'मिथ्या' नहीं 'माया', • 'अपवाद' और नियमसिद्धि • रावण यानी रव करनेवाला

बोधगया :

२७ अक्तूबर '६८

आज सुबह, बिहार के एक युवक ने बाबा को अपनी १ नवम्बर '६८ से शुरू होनेवाली विश्व मैत्री-यात्रा की रूपरेखा बतायी और बाबा का आशीर्वाद मांगा। बाबा ने कहा, "जो भी युवक ऐसा करना चाहते हैं उन्हें बाबा रोकता नहीं। लेकिन बाबा खुद क्यों नहीं ऐसी यात्राएं करता ? क्या बूढ़ा हो गया है इसलिए ? बुढ़ापे के बावजूद और साधनों से ऐसी यात्रा हो ही सकती है। बहुत से देश के लोग ऐसा चाहते भी हैं। लेकिन तब भी बाबा ऐसी यात्राएं क्यों नहीं करता ? क्योंकि बाबा यह मानता है कि जब तक अपने देश में कोई ताकत नहीं बनती, तबतक दूसरे देश में जाने की जरूरत नहीं, और अगर ताकत बनती है तो भी विदेश जाने की जरूरत नहीं। यह टेलीविजन का युग है। यहाँ जो कुछ होगा, वह दुनिया भर में देखा और सुना जा सकता है।'

'भूदान-यज्ञ' के २८ अक्तूबर '६८ के अंक में 'पत्र प्रतिक्रिया' स्तम्भ के अंतर्गत पृष्ठ ४६ पर प्रकाशित 'क्रांति की 'लीक' से आगे बढ़ें' शीर्षक लेख के कुछ अंश पढ़कर सुनाते हुए बाबा ने कहा कि "पूरा लेख पढ़ने लायक है।" लेख में व्यक्त विचार के एक अंश —जिसमें 'सर्वोदय को क्रान्ति सर्व के द्वारा सर्व के लिए' का आशय स्पष्ट किया गया है—की चर्चा करते हुए आपने इस पहलू को बहुत ही महत्त्वपूर्ण बताया।

संस्कार-मुक्ति के सम्बन्ध में पूछे गये एक प्रश्न का जवाब देते हुए बाबा ने कहा कि "पूर्ण संस्कार-मुक्त आज तक कोई दिखा नहीं, संस्कारों से मुक्त होना यानी शब्दों से मुक्त होना। और शब्दों से मुक्त होना असम्भव है। शब्दों को काटना नहीं, उनमें नये अर्थ भरना और इस प्रकार उनको परिपुष्ट करना। दुनिया में जितने भी महापुरुष हुए हैं, उन्होंने यह किया है।"

गया के छात्र-प्रतिनिधियों के प्रश्नों का जवाब देते हुए बाबा ने कहा कि "छात्रों को पार्टी-पालिटिक्स से अलग होना चाहिए। पार्टियों के नेता छात्रों के हित की बात नहीं सोचते, बल्कि पार्टी-हित की बात सोचते हैं, छात्रों का शोषण करते हैं। उनको अपना 'दल' बनाते हैं।"

आपने कहा कि "९९% छात्र अच्छे हैं, सिर्फ १% ऊधम मचाते हैं। लेकिन जो ९९% अच्छे हैं, वे निष्क्रिय हैं। यह निष्क्रियता ही तकलीफ दे रही है। इन ९९% अच्छे छात्रों को सक्रिय होना चाहिए।"

शंकराचार्य मठ के महन्तों के बीच आचार्य शंकर के ब्रह्मसूत्र पर प्रवचन करते हुए बाबा ने कहा—"बचपन से मुझे तीन महापुरुषों का आकर्षण रहा है स्वामी रामदास, आदि शंकराचार्य और बुद्ध भगवान। तीनों ने गृह-त्याग किया था।"

शंकराचार्य ने देश भर में घूमकर धर्म-प्रचार किया। बाबा ने शंकराचार्य के सम्बन्ध में फैली इस धारणा को गलत बताया कि उन्होंने जगत् को 'मिथ्या' कहा है। बाबा ने कहा कि "उन्होंने जगत् को 'मिथ्या' नहीं 'माया' कहा है। शंकराचार्य ने उस समय समन्वय का काम किया, जब भारत में श्रद्धा विचलित हो रही थी। धर्म एक दूसरे को काटते थे। इसलिए उन्होंने भारत के सभी धर्म-ग्रंथों के सार-तत्त्वों का समन्वय किया और भारत की श्रद्धा स्थिर की।"

बाबा ने शंकराचार्य के अनुसार ज्ञान, भक्ति और कर्म के स्थानों का विवेचन करते हुए अंत में कहा कि, "शंकराचार्य ने अपने युग के लिए अपना काम किया, लेकिन इस युग में उतने से काम नहीं चलेगा, वह इस युग में नाकाफी है। जिन ग्रंथों का उन्होंने समन्वय किया वे वैदिक थे, भारतीय थे। आज तो विश्व भर के धर्मों और पन्थों का समन्वय करना होगा, इस युग के लिए।"

बाबा ने गोष्ठी में उपस्थित शंकराचार्य मठों के महन्तों को सम्बोधित करते हुए कहा कि "यह इस युग का काम आपके द्वारा होना चाहिए। आदि शंकराचार्य आपके द्वारा यह काम हो, ऐसी आशा करते होंगे।"

विनोदपूर्ण शैली में बाबा ने शंकर मठों द्वारा चलाये जा रहे आज के स्कूलों को 'माया-जाल' बताते हुए कहा कि, "आप सबको भगवान शंकर से प्रार्थना करनी चाहिए कि इस 'मायाजाल' से मुक्त होने की बुद्धि और शक्ति आपको दे।"

२८ अक्तूबर '६८

गया का जिलादान ३१ ता० तक पूर्ण करने की बात थी, लेकिन दीवाली और छठ आदि की छुट्टियों के कारण काम पूरा नहीं हो सका। कुछ प्रमुख कार्यकर्ता, प्रजा समाजवादी पार्टी के एक नेता (भू०पू० संविद सरकार के भू०पू० स्वास्थ्य मंत्री) तथा जिले के समाहर्ता (कलेक्टर) बाबा से आग्रह करने आये कि बाबा कुछ दिन यहाँ और ठहर जायँ। लेकिन बाबा 'कुछ' वाले तो हैं नहीं, निश्चित तिथि चाहिए, और आखिर १० नवम्बर की तारीख तय हुई। सबने बाबा को आश्वस्त किया कि १० नवम्बर '६८ को जिलादान समर्पित किया जायगा। बाबा ने १० तक रहने की स्वीकृति दे दी।

सिंहभूमि से श्यामबहादुरजी और रांची से योगेन्द्रजी ने काम की प्रगति की जानकारी दी। श्यामबहादुरजी ने कहा कि टाटा की अनुकूलता कम हुई है। जिससे अर्थ संकट पैदा हो गया है। वैसे अपने फुटकर प्रयास से जितना कुछ कर पा रहे हैं, कर रहे हैं। बाबा ने पूछा कि 'जिलादान कब होगा ?' "२ जून '६९ के पहले तक हो जायगा।"

उत्तर सुनकर बाबा ने कहा, "बाबा इतना वक्त देने को राजी नहीं। टाटा में तीन अनु-कूलताएँ हैं—नम्बर एक, बाबा ने तीन महीने का वक्त दिया, नम्बर दो - आदिवासी पर-म्परा, जो ग्रामदान के अनुकूल है; नम्बर

तीन : उड़ीसा और बंगाल से सटा है, वहाँ की शक्ति भी मिल सकती है।"'लेकिन इतने पर भी काम नहीं होता तो उसे 'अपवाद' मान सकते हैं। 'अपवाद' के बिना नियम सिद्ध नहीं होता। इसलिए या तो आप काम पूरा करो या उसे अपवाद मानकर अपनी शक्ति इधर लगाओ।" ऐसी चर्चाओं से बाबा की तीव्रता और कार्यकर्ताओं की व्यग्रता देखते ही बनती है। पहले ऐसा लगता था कि दक्षिण बिहार का काम सरल है, उत्तर बिहार का कठिन है। अब उत्तर बिहार हुआ बैठा है। दक्षिण बिहार की पहाड़ी धरती जल्दी टूटने का नाम ही नहीं लेती।"'लेकिन शायद यह बात उतनी सही नहीं मानी जायगी। वास्तव में जितने प्रहार होने चाहिए एक साथ, अभी उसी का संयोग नहीं हो पाया है।

इसीलिए यह संयोजन किया गया कि दक्षिण बिहार के सभी समाहर्ता, अपर-समाहर्ता, जिला विकासाधिकारी, शिक्षाधिकारी आदि लोगों की गोष्ठी बाबा के सान्निध्य में बुलायी जाय। आज साढ़े दस बजे से वह गोष्ठी शुरू हुई। दक्षिण बिहार के करीब-करीब सभी जिलों के पदाधिकारी आये, पटना से वित्त सचिव भी आये। लेकिन मुख्य सचिव श्री साहनी नहीं आ सके, जो इस गोष्ठी के केन्द्रीय व्यक्ति थे।

श्री वैद्यनाथ बाबू ने सबका स्वागत करते हुए प्रान्तदान के संकल्प और सबके समर्थन को याद दिलाया, और कहा कि ३ दिसम्बर '६८ तक बिहारदान का काम पूरा हो जाय, इसके लिए आप लोगों की शक्ति लगे, इस दृष्टि से यह गोष्ठी बुलायी गयी है।

बाबा ने कहा कि संकल्प की घोषणा के बाद उसको पूरा न होने पर भगवान के दरबार में गुनहगार साबित होंगे। इसलिए संकल्पपूर्ति के लिए भरपूर प्रयत्न सूर्य-चन्द्र की तरह अखण्ड गति से चलना चाहिए। आपने अपने आधार गिनाते हुए कहा :

नम्बर एक : शिक्षक। बिहार में पौने दो लाख शिक्षक और सत्तर हजार गाँव हैं। हर एक गाँव के लिए करीब-करीब ढाई शिक्षक, इतनी शक्ति है इनकी। लेकिन उनकी शक्ति ठोस तब बनेगी जब वे पक्षों के पक्षपात से मुक्त होंगे।

'जाति, धर्म, पन्थ,
भाषा, पक्ष, प्रान्त,
और विषमता का
होगा अंत,
तब होगा सर्वोदय !'

यह है बाबा की अत्याधुनिक कविता !

नम्बर दो : विद्यार्थीगण। लेकिन वे भी जब 'पक्ष' से मुक्त हों।

नम्बर तीन : ग्राम पंचायत। अखिल भारत पंचायत परिषद ने इसे अपना काम माना, बिहार की परिषद ने भी माना, अब अगर वे चाहें तो ८ दिन में बिहारदान हो जायगा।

नम्बर चार : कार्यकर्ता। लेकिन इनके पास भी बहुत से 'मोह' होते हैं। स्मृति ही नहीं रह जाती कि क्या करना है। मोह का बोझ ये उतारते नहीं तो खतम हो जाते हैं। इसलिए इन्हें उतारकर लगें।

नम्बर पाँच : बिहार में एक भी दल नहीं जिसने हमारा विरोध किया हो, सबका समर्थन है। और यही बाबा का दुर्भाग्य है। ईसा का वाक्य है—'सबने समर्थन किया तो फूटा नसीब तुम्हारा।' समझने से पूर्व ही हाँ कर देते हैं।

नम्बर छह : सरकारी अधिकारी। पार्टी वाले इनको कुछ पीड़ा देते हैं, लेकिन अभी तो उनसे छुट्टी है, इसलिए पूराकर डालो यह काम इसी बीच।

नम्बर सात : साधु, सन्यासी, मठाधीश। *यह धर्म का काम है, इसे करते क्यों नहीं ?*

नम्बर आठ : बाबा का डण्डा। यह बड़ा लम्बा है—कन्या कुमारी तक। वहाँ तक पहुँचता है। एक होती है संयोग भक्ति, दूसरी होती है वियोग भक्ति। वियोग भक्ति संयोग भक्ति से ज्यादा शक्तिशाली होती है। तमिलनाड में, और दूसरे प्रदेशों में वियोग भक्ति चल रही है।'

बाबा ने राजनीतिक दलवालों की चर्चा करते हुए मनुष्यों के निम्न प्रकार बताये :

१. सुस्त—भारत की अधिकांश जनता,
२. ग्रस्त—घर-संसार आदि अनेक प्रकार से व्याधिग्रस्त,
३. व्यस्त—राजनीतिक लोग,
४. मस्त—बाबा जैसे।

बाबा ने आह्वान किया—

'यही मस्तों का मयखाना' चले आओ ! और अपनी मस्ती की कुछ अनुभूति देकर बाबा अपने कमरे में चले गये। सभा की कार्यवाही को आगे बढ़ाते हुए श्री वैद्यनाथ बाबू ने कहा कि जिले के विकास-कार्यकर्ताओं, शिक्षकों, पंचायत के लोगों की सम्मिलित शक्ति १० नवम्बर से २५ नवम्बर तक, कुल १५ दिनों के लिए एकमात्र लग जाय तो काम पूरा हो जायेगा। श्री कृष्णराज भाई ने उसकी व्यूह-रचना भी पेश कर दी कि कैसे-कैसे काम हो ताकि सबकी शक्ति का सदुपयोग हो सके।

वित्त सचिव ने सारी बातें पटना तक पहुँचाने और इन सुझाव पर सरकारी निर्णय की सूचना भेजने का आश्वासन दिया।

शाम को मगध विश्वविद्यालय के *आचार्यों की सभा गया कालेज में हुई।* बाबा ने 'माइक' को हटा दिया। कहा, "आज उपनिषद करेंगे। इसीलिए इस रावण (माइक) को हटा दिया। रावण यानी जो 'रव' करे वह रावण। उपनिषद् यानी नजदीक बैठना, जैसे एक परिवार में बैठे हों।

और, बाबा की यह उपनिषद पूरे ५० *मिनट तक चली। छात्र-जीवन से लेकर* भारत की आरण्यक-संस्कृति तक, प्राचीनतम ऋषियों से लेकर शंकर, रामानुज, *कबीर तक की चर्चा चली। उन्होंने* उपस्थित आचार्यों से कहा कि आप तो शंकर रामानुज और कबीर की जाति के हैं, अकबर बादशाह के नहीं। फिर आचार्यकुल की पूर्व भूमिका, विचार और औचित्य का विवेचन किया।

अगले रविवार को वे लोग बाबा से फिर मिलनेवाले हैं। बिहार में दस हजार आचार्य (Principals) हैं, बाबा चाहते हैं कि उनका आचार्यकुल बने, और उसके लिए यहाँ से अभियान शुरू हो।

देखें, *'मस्तों के इस मयखाने' में कौन* कब आता है !

—राही

गया : जिलादान के करीब

बोधगया : २६ अक्तूबर। गया अब जिलादान के करीब पहुँच रहा है।

२४ अक्तूबर को जिलेभर में ग्रामदान-दिवस मनाया गया। उस दिन, जहाँ ग्रामदान हो चुके हैं वहाँ सभा करके उसकी सामूहिक घोषणा की गयी, जहाँ नहीं हुए वहाँ अभियान शुरू हुए। अभी १०० से अधिक कार्यकर्ता अभियान में जुटे हैं। जिले के तरुण नेता सर्वश्री गीता बाबू, त्रिपुरारिशरण, दिवाकरजी, डाक्टो सुन्दरानी, केशवभाई आदि अपने साथियों सहित पूरी शक्ति से अभियान में जुट गये हैं। आशा है कि १० नवम्बर तक जिलादान की मंजिल पूरी हो जायेगी।

श्रद्धांजलि

स्वर्गीय लक्ष्मी-बाबू की पीढ़ी की एक और विभूति इस बिहारदान के महत्त्वपूर्ण मौके पर विगत २३ अक्तूबर को परमात्मा में लीन हो गयी। सर्वोदय के मूक साधक श्री शीतल प्रसाद तायल अब नहीं रहे। आन्दोलन के प्रारम्भ से ही, उनका दुबला पतला सौम्य व्यक्तित्व अपनी ओर आकर्षित करता था।

स्व० तायलजी का कार्यक्षेत्र बिहार का सबसे छोटा लेकिन खनिज-सम्पदा से भरा-पूरा धनबाद जिला रहा। दुरूह पहाड़ी ग्रामीण क्षेत्रों से लेकर शहर के अत्याधुनिक नगरीय क्षेत्रों तक आपकी सेवा का प्रभाव व्याप्त था और आप लोगों के श्रद्धा-केन्द्र थे।

बाबा कहा करते हैं, "धनबाद धन्यवाद का पात्र है।" धनबाद को यह पात्रता हासिल कराने का श्रेय श्री तायलजी को ही था।

शरीर-मुक्ति के बाद स्व० तायलजी का भाव स्पर्श प्रदेश के हम कार्यकर्ताओं को मिलता रहे और हम उससे प्रेरणा तथा स्फूर्ति प्राप्त कर क्रान्ति-पथ पर अग्रसर होते रहें, भगवान ऐसी शक्ति हमें दे। — निर्मलचन्द्र

विनोबाजी का कार्यक्रम

१० नवम्बर तक : समन्वयाश्रम, बोधगया
११ " को औरंगाबाद (गया)
१२ " " छतरपुर (पलामू)
१३ " " : डाल्टेनगंज (")

गांधी शताब्दी वर्ष १९६८—६९

गांधी-विनोबा का ग्राम स्वराज्य का संदेश गाँव-गाँव घर-घर पहुँचाइए और जन जन को उसके लिए कृत-संकल्प कराइए। सच्चे स्वराज्य का अब यह ही रास्ता है।
इस निमित्त उपसमिति द्वारा निम्न सामग्री पुरस्कृत/प्रकाशित की गयी है —

पुस्तकें—

(१) जनता का राज्य—लेखक : श्री मनमोहन चौधरी, पृष्ठ ६२ मूल्य २५ पैसे। ग्रामदान आन्दोलन की सरल-सुबोध जानकारी।
(२) Freedom for the Masses—'जनता का राज' का अनुवाद, पृष्ठ ७६, मूल्य २५ पैसे।
(३) शान्तिसेना परिचय—लेखक : श्री नारायण देसाई, पृष्ठ ११८, मूल्य ७५ पैसे। शान्तिसेना विचार, संगठन, कार्यक्रम आदि की जानकारी देनेवाली, हर शान्ति-प्रेमी नागरिक के पास रखी जाने योग्य।
(४) हत्या एक आकार की—लेखक : श्री ललित सहगल, पृष्ठ ९६, मूल्य रु० ३.५०। गांधीजी के हत्यारे के हृदय में हत्या से पूर्व चलनेवाले अन्तर्द्वन्द्व का प्रभावपूर्ण सशक्त चित्रण।
(५) A Great Society of small Communities—लेखक सुगत दासगुप्ता, पृष्ठ ७८, मूल्य रु० १०.००। भारत में ग्रामदान-आन्दोलन का स्थान तथा ग्रामदानी गाँवों के सन्दर्भ में आन्दोलन की गतिविधि का विवेचन और समीक्षा।

वितरण और प्रदर्शन की सामग्री—

फोल्डर—(१) गांधी, गाँव और ग्रामदान (२) गांधी, गाँव और शान्ति (३) ग्रामदान क्यों और कैसे? (४) ग्रामदान क्या और क्यों? (५) ग्रामदान के बाद क्या? (६) ग्रामसभा का गठन और कार्य (७) गाँव-गाँव में खादी (८) सुलभ ग्रामदान (९) देखिए ग्रामदान के कुछ नमूने।

पोस्टर—(१) गांधी ने चाहा था सच्चा स्वराज्य (२) गांधी ने चाहा था स्वावलम्बन (३) गांधी ने चाहा था : अहिंसक समाज (४) ग्रामदान से क्या होगा? (५) गांधी जन्म-शताब्दी और सर्वोदय-पर्व।

सामग्री मर्यादित रूप में निम्न स्थानों से प्राप्त की जा सकती है —
(१) गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी जन्म-शताब्दी समिति), दुंकलिया भवन, कुंदीगरों का भैरों, जयपुर—३ (राजस्थान)। (२) सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१ (उत्तर प्रदेश)

राष्ट्रीय गांधी जन्म-शताब्दी समिति की गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति द्वारा प्रसारित

मतदाता-शिक्षण : दलमुक्त लोकनीतिक रचना की पूर्व तैयारी

सोखोदेवरा में हुई सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति की बैठक में प्रस्तावित मध्यावधि चुनाव में व्यापक और सघन मतदाता-शिक्षण के सुझावों पर विचार करने और क्रियान्वयन की योजना बनाने के लिए बिहार सर्वोदय संघ की एक आवश्यक बैठक १० अक्तूबर '६८ को देवघर में 'ग्रामोदय' साप्ताहिक के सम्पादक श्री सच्चिदा बाबू की अध्यक्षता में हुई। बैठक में बिहार के लगभग १२ जिले के करीब ५० प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सर्वप्रथम धनबाद के अपने पुराने कर्मठ साथी—श्री शीतल प्रसाद सावल और राष्ट्रसंत श्री तुकडोजी के देहावसान पर २ मिनट की मौन श्रद्धांजलि अर्पित की गयी।

सर्व सेवा संघ के सुझावों का संदर्भ प्रस्तुत किया श्री निर्मलचन्द्र ने, और इसी से सभा की मुख्य कार्यवाही शुरू हुई। अध्यक्ष महोदय ने शुरू में ही सचेत कर दिया कि आन्दोलन का संचालन करनेवाली अखिल भारतीय समिति की ओर से आन्दोलन की शक्ति क्षमता और भविष्य की सम्भावनाओं पर काफी विचार करके ये सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं, फिर भी हम अपनी दृष्टि से सुझाव दें, आवश्यक हो तो उसमें कुछ जोड़ें, लेकिन 'स्पिरिट' उसकी जो है, उसे कायम रखते हुए।

इस आपत्ति के साथ कि चर्चा को इस प्रकार बांधना ठीक नहीं, विचार-विनिमय शुरू हुआ। करीब ढाई घंटे की इस चर्चा में व्यक्त मन्तव्यों में मुख्य रूप से निम्न बातें सामने आयीं :

• सर्व सेवा संघ की सम्भावनाओं के बारे में अंदाज सही नहीं है। दलमुक्त प्रतिनिधित्व का प्रयोग कुछ जगहों पर अवश्य होना चाहिए।

• उम्मीदवार के लिए खादी ग्रामोद्योग, साम्प्रदायिकता, चरित्र, निरीक्षण-टोली आदि की बातें बेमानी हैं।

• सर्व सेवा संघ के प्रस्तुत सुझाव और सरकार के जन-सम्पर्क विभाग के पर्चे में कोई खास फर्क नहीं है। हम लोग बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, काम नहीं।

• ग्राम-स्वराज का राजनीतिक-दर्शन विकसित होना चाहिए, उसके साथ ही चुनाव-पद्धति भी। आज की पद्धति समाज को तोड़नेवाली है।

• राष्ट्रीय एकता पर प्रहार करनेवाले तत्त्वों से हम तटस्थ नहीं रह सकते।

• उम्मीदवार की अच्छाई की पहचानवाले मुद्दों में हिंसा-अहिंसा की बुनियादी बात नहीं दाखिल हुई है।

• जिनके द्वारा हम यह मतदाता-शिक्षण का काम कराना चाहते हैं, उनका ही शिक्षण नहीं हुआ है। सर्व सेवा संघ को यह कार्य करना चाहिए था, नहीं किया, अब भी करना चाहिए।

• छिद्रान्वेषण से काम नहीं चलेगा। जितने सुझाव आये हैं, उतने का ही कार्यान्वयन हम कर सकें तो बहुत प्रभावकारी परिणाम आयेगा। इसके लिए हमें विस्तृत योजना और कार्यक्रम बनाना चाहिए।

• 'दलमुक्त प्रतिनिधित्व' के प्रयोग के बारे में अपनी क्षमता, क्षेत्रीय सम्भावना और राज्य में उसके राजनीतिक परिणामों पर गम्भीरता से सोचें-विचारें; मगर जहाँ अनुकूलता मालूम होती हो तो वहाँ अवश्य प्रयोग करें। सफलता मिलेगी तो सबका माथा ऊँचा होगा, लेकिन उसकी पूरी व्यवस्था पर विचार किये बिना जल्दबाजी नहीं होनी चाहिए। धीरज का काम है, उतावले न हों।

• दो चार लोग चुनाव में जीत ही जायेंगे, तो उसका कोई ठोस परिणाम नहीं आयेगा। वे प्रतिनिधि वर्तमान ढाँचे में कुछ प्रभावकारी काम कर सकेंगे, यह सम्भव नहीं लगता। परिणामस्वरूप लोगों में इससे भी निराशा ही पैदा होगी।

• मतदाता-शिक्षण का काम आज तक किसी के द्वारा कभी हुआ नहीं। हमें उस काम को संगठित और सुनियोजित रूप से करना है।

• इस समय चुनाव से अलग रहकर मतदाता-शिक्षण का काम ही विवेकपूर्ण कदम होगा। अधिक सम्भव नहीं।

• मतदाता-शिक्षण के इस अभियान को हम दलमुक्त प्रतिनिधित्व की पूर्वयोजना और भूमिका मानें।

• हम 'ग्रामीण गणतंत्र' की बात कहते हैं, और उसी के आधार पर समाज की नयी रचना करना चाहते हैं, तो ग्रामदान-प्राप्ति के साथ ही यह काम भी चलना चाहिए। जिस परिवर्तन और नयी रचना के लिए हम उन्हें तैयार करना चाहते हैं, उसकी पूरी तस्वीर तो उनके सामने रखनी ही चाहिए।

• जिला सर्वोदय मण्डल, ग्राम सभाएँ और ग्रामशान्तिसेना इस शिक्षण कार्यक्रम के वाहक हो सकते हैं, इसलिए उनका संयोजक और संगठन ठोस होना चाहिए।

आखिर में आम राय यह रही कि सुझाव सर्व सेवा संघ को भेज दिये जायँ, और इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन के लिए एक संचालन समिति बना ली जाय। सर्वसम्मति से सर्व श्री हरिकृष्ण ठाकुर (संयोजक), कमलनारायण (सहसंयोजक), श्यामबहादुर सिंह, कैलाश प्रसाद शर्मा, सच्चिदा बाबू, निर्मलचन्द्र, मथुरा बाबू, रामनन्दन सिंह, महेन्द्रनारायण, नवलकिशोर तथा अनिरुद्ध बाबू समिति के सदस्य मनोनीत किये गये। अस्वस्थता के कारण श्री वैद्यनाथ प्रसाद चौधरी और पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के कारण श्री राममूर्तिजी इस गोष्ठी में भाग नहीं ले सके, जिनका गोष्ठी में शामिल होना अपेक्षित था।

—अनिकेत

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०, या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित

विएतनाम की बम-वर्षा बन्द होने से विश्व-शान्ति की सम्भावना सबल

विएतनाम का युद्ध अमेरिका की वैदेशिक नीति के गले में फाँस बनकर अटका हुआ था। न अमेरिका विएतनाम में परास्त होना चाहता था और न ही विरोधी को पराजित कर पा रहा था। वर्षों से अमेरिकी जनमत विएतनाम-युद्ध के खिलाफ अपनी नाराजगी और चिन्ता प्रकट करता रहा है।

अमेरिका के राष्ट्रपति जॉनसन ने १ नवम्बर को वाशिंगटन में उत्तर विएतनाम पर बम-वर्षा बन्द करने की ऐतिहासिक घोषणा की। अपने राष्ट्र को सम्बोधित करते हुए राष्ट्रपति ने कहा कि यह कदम उन्होंने सेना के सर्वोच्च सलाहकारों की सहमति के बाद उठाया है। उन्होंने आशा व्यक्त की कि इस निर्णय से विएतनाम-युद्ध को शान्तिपूर्ण ढंग से समाप्त करने की दिशा में प्रगति होगी।

अमेरिकी राष्ट्रपति की इस घोषणा का दुनिया के देशों में हार्दिक स्वागत हुआ।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के महामंत्री श्री ऊ थाँ ने इस घोषणा का भरपूर स्वागत करते हुए इसे एक ऐसा आवश्यक कदम माना जिसकी एक अर्से से आवश्यकता थी। उन्होंने श्री जॉनसन के निर्णय पर अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की।

पश्चिमी यूरोप के देशों में राष्ट्रपति जॉनसन की घोषणा का तुरन्त स्वागत हुआ। पश्चिम जर्मनी के सरकारी प्रवक्ता ने कहा कि इस निर्णय ने एक बार फिर से यह साबित किया है कि अमेरिकी सरकार विएतनाम-युद्ध समाप्त करने को कितनी तैयार है।

ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों ने भी घोषणा की तारीफ की। ब्रिटिश वैदेशिक विभाग के प्रवक्ता ने कहा कि इस सम्बन्ध में विधिवत घोषणा प्रधानमंत्री श्री विल्सन यथा-समय करेंगे। प्रवक्ता ने कहा कि इस निर्णय की पूर्वसूचना ब्रिटिश सरकार को दी गयी थी।

फ्रांस के राष्ट्रपति श्री देगाल ने श्री जॉनसन की इस घोषणा का स्वागत करते हुए इसे विएतनाम-युद्ध समाप्त करने की दिशा में उठाया गया मौजूँ कदम माना।

भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने बम-वर्षा बन्द होने की सूचना मिलते ही इसे 'शान्ति की दिशा में उठाया गया कदम' कहकर इसका स्वागत किया। उन्होंने कहा कि सचमुच यह बड़ी अच्छी खबर है। अमेरिकी राष्ट्रपति के इस 'साहस और सूझ-बूझ भरे' काम के लिए इन्दिरा गांधी ने उन्हें बधाई दी और उन सब लोगों को धन्यवाद दिया, जिन्होंने इस परिस्थिति के निर्माण में अपना योगदान दिया।

भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने कहा कि श्री जॉनसन की यह घोषणा वस्तुतः विश्व-मत की विजय है। उन्होंने कहा कि यह तथ्य हो सकता है कि यह घोषणा अमेरिकी राष्ट्रपति के आवश्न चुनाव को मद्देनजर रखकर की गयी हो तो भी इसका निश्चित महत्त्व है।

कांग्रेस-अध्यक्ष श्री निजलिंगप्पा ने आशा प्रकट की है कि श्री जॉनसन के इस निर्णय से सिर्फ विएतनाम में ही शान्ति का मार्ग नहीं खुलेगा, बल्कि सारे संसार में शान्ति की समझदारी बढ़ेगी।

स्वतंत्र पार्टी के वरिष्ठ नेता श्री राज-गोपालाचारी ने कहा कि श्री जॉनसन के इस निर्णय से विएतनाम की शान्तिवार्ता के वातावरण में सुधार होगा ऐसी सम्भावना उन्हें नहीं दीखती।

एसोसियेटेड प्रेस के वाशिंगटन स्थित संवाददाता ने समाचार भेजा है कि अमेरिका का रिपब्लिकन दल बम-वर्षा बन्द करने के राष्ट्रपति के निर्णय को एक चुनाव जिताने की दृष्टि से चली गयी चाल मानता है, जिसके द्वारा जॉनसन अपनी (डेमोक्रेटिक) पार्टी के प्रत्याशी श्री हुबर्ट हम्फ्री के चुनाव में जीतने की सम्भावना बढ़ाना चाहते हैं।

राष्ट्रपति-चुनाव के तीनों प्रत्याशियों १. डेमोक्रेटिक प्रत्याशी श्री हुबर्ट हम्फ्री, २. रिपब्लिकन प्रत्याशी श्री रिचर्ड निक्सन तथा ३. अन्य दलीय प्रत्याशी श्री जार्ज वैलेस ने जॉनसन की घोषणा का स्वागत किया।

श्री जॉनसन की घोषणा पर अपनी राय प्रकट करते हुए श्री हम्फ्री ने कहा कि श्री जॉनसन का यह निर्णय शान्ति-स्थापना में सहायक होगा। मैं इसकी पूरी तरह ताईद करता हूँ। जैसा कि राष्ट्रपति ने कहा है, उन्होंने यह निर्णय इस आशा से लिया है कि इसके द्वारा युद्ध का नर-संहार कम होगा और इससे शान्ति-स्थापना में मदद मिलेगी।

श्री जार्ज वैलेस ने कहा कि मैं आशा-पूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि राष्ट्रपति जॉनसन के निर्णय से दक्षिण पूर्व एशिया में शीघ्र सम्मान-पूर्ण समझौते का रास्ता मिलेगा।

श्री निक्सन ने कहा कि 'मेरे इस कथन में मेरे दल के उपराष्ट्रपति पद के प्रत्याशी भी शामिल हैं—कि राष्ट्रपति के प्रत्याशी की हैसियत से मैं कोई ऐसी बात नहीं कहूँगा, जिससे शान्ति की सम्भावना को क्षति पहुँचे।

सिनेटर मेकार्थी ने कहा कि बम-वर्षा के बन्द होने से पेरिस शान्ति-वार्ता में मदद मिलेगी।

'स्टैट्समैन' (अंग्रेजी) ने बम-वर्षा की घोषणा को राष्ट्रपति जॉनसन की ओर से भेंट किया गया 'विदाई का बढ़ा उपहार' कहा है। अपने सम्पादकीय में 'स्टैट्समैन' ने लिखा है कि बम-वर्षा बन्द करने की घोषणा करने में एक मिनट की भी जल्दबाजी नहीं हुई है। यद्यपि अमेरिका के राष्ट्रपति के चुनाव का समय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है, किन्तु बम-वर्षा के बन्द करने में जिस साहस और निर्णय की समझदारी दिखाई गयी है उसका अपना विशेष महत्त्व है। यह शान्ति नहीं है। यह युद्ध विराम का समझौता भी नहीं है। राष्ट्रपति जॉनसन ने तो यह भी माना है कि सम्भवतः स्थल पर घमासान लड़ाई की शुरुआत हो सकती है। फिर भी उत्तर विएतनाम के विरुद्ध हवाई आक्रमण का यह स्थगन एक 'नयी उपलब्धि' है'''अमेरिका के इस निर्णय के पीछे कोई ऐसी बात नहीं है, जो हनोई या उसके समर्थकों को हट्ठ युक्त कर सके। इसके पीछे कोई शर्त नहीं है, लेकिन आशाएँ बहुत हैं। —रहमान

जॉनसन की भेंट

मानना पड़ेगा कि चलते-चलते जॉनसन ने दुनिया को एक अच्छी भेंट दी है। १ नवम्बर को जब उन्होंने घोषणा की कि उत्तरी विएतनाम की बमबारी बन्द रहेगी तो वर्षों की प्रतीक्षा के बाद दुनिया ने सुख की साँस ली।

विएतनाम पर जो लाखों टन बम गिरे—लगातार गिरते ही रहे—लेकिन एक छोटे से देश का मनोबल नहीं तोड़ सके, वे बम अब नहीं गिरेंगे। बमों का गिरना बन्द होगा तो विएतनाम का जो प्रश्न अबतक के युद्ध से नहीं हल हो सका है, उसे अब पेरिस में सार्थक राजनीतिक चर्चा से हल करने की कोशिश की जायेगी। युद्ध से कब किस समस्या का हल निकला है? चर्चा तो ६ महीने से चल रही थी, लेकिन साथ-साथ युद्ध भी चल रहा था। जॉनसन की घोषणा से आशा हुई है कि अब सुव्यवस्थित सन्धि-वार्ता होगी, क्योंकि अब केवल अमेरिका और उत्तर विएतनाम की ही नहीं, बल्कि दक्षिण विएतनाम की सरकार तथा नेशनल लिबरेशन फ्रण्ट के प्रतिनिधि भी रहेंगे। उम्मीद है चर्चा की राजनीति फिर इतनी गर्म नहीं होगी कि दुबारा युद्ध छिड़ जाय। यह जानी हुई बात है कि जब राजनीति गर्म होती है तो लड़ाई होती है, और जब शत्रुता पराकाष्ठा पर पहुँचती है तो सन्धि होती है। कौन नहीं मानेगा कि शत्रुता पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी है? अब बारी है सन्धि की।

बमबारी बन्द तो हुई है, लेकिन फिर शुरू कर देने की धमकी के साथ! ये धमकियाँ दुनिया की त्रस्त जनता, विशेष रूप से छोटे देशों की जनता, को याद दिलाती रहती हैं कि किस तरह उसकी शान्ति, और उसका सुख, कुछ थोड़े-से नेताओं शासकों-योद्धाओं की मर्जी पर निर्भर है। १९४५ में अमेरिका के हाथ अणुबम आया। ४ साल बाद रूस अमेरिका का साथी बना। तब से, ऐसा लगता है, दुनिया इन दो महाशक्तियों के हाथ गिरवी रख दी गयी है। इनकी भौंहों पर दुनिया का भविष्य टिका हुआ है। हो सकता है कि छोटे देश अबतक इसीलिए बचे हुए हैं, क्योंकि रूस और अमेरिका दोनों के पास असीम संहार-शक्ति है। यह संहार-शक्ति दुनिया को खत्म करेगी, लेकिन बम फेंकनेवाले को छोड़ देगी, यह भरोसा दोनों में से किसीको नहीं है। शायद दोनों के बीच का भय यह सन्तुलन ही शेष दुनिया के लिए जीवन का आश्वासन है।

अणुशक्ति के कारण युद्ध में से विजय की धारणा निकल गयी है। ऊपर-ऊपर से यही दिखाई देता है कि आज की दुनिया अमेरिका और रूस के प्रभाव-क्षेत्रों में बँटी हुई है। लगता है जैसे ये दोनों इन्द्र हैं और दूसरे देश इनके दरबारी हैं। लेकिन, अन्दर क्या दिखाई देता है? बम और डालर से लैस अमेरिका ने विएतनाम की कोई बरबादी उठा नहीं रखी, लेकिन विएतनाम को पराजित नहीं कर सका। रूस ने चेकोस्लोवाकिया को नीचा जरूर दिखाया, और उन नागफाँस में कसने की कोशिश भी कर रहा है, लेकिन उसके टैंक चेकोस्लोवाकिया की प्रतिकार-शक्ति को कुचल नहीं सके। फ्रांस, क्यूबा, विएतनाम का अमेरिका क्या बिगाड़ सका? और, चेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया, रूमानिया, क्यूबा और चीन का रूस ही क्या कर पा रहा है? दिखाई तो यह देता है कि आज भले ही अमेरिका और रूस के प्रभाव-क्षेत्र की बात कही जाती हो, लेकिन वह दिन सम्भवतः दूर नहीं है जब न उनका प्रभाव रह जायेगा, और न अपने देश के बाहर कोई प्रभाव-क्षेत्र। उन्हें लड़ना होगा तो लड़ेंगे जाकर चन्द्रलोक में! इस मृत्युलोक को तो युद्ध से मुक्त ही करना है!

शायद छोटे देशों के दिन आ रहे हैं। लेकिन उन्हें समझना चाहिए कि संकीर्ण राष्ट्रवाद में न सुख है, न शान्ति। राष्ट्रवाद के बाद साम्राज्यवाद के सिवाय दूसरा कुछ नहीं है। सुख और शान्ति सह-अस्तित्व और विश्व-परिवार भावना में है, न कि बड़े साम्राज्यवादियों के साथ छोटा साम्राज्यवादी कहलाने में।

कठिनाई यही है कि इस वक्त छोटे देशों में जो नेतृत्व है वह अपने देश और नयी दुनिया की नियति को नहीं पहचान रहा है। वह स्वयं पूँजीवादी-सैनिकवादी-राज्यवादी-विस्तारवादी है। और, इन देशों की भी जनता अभी इन मोहक नारों के जादू से निकल नहीं पायी है। सारे एशिया और अफ्रीका में स्वतन्त्रता का जो दौर शुरू हुआ है, और उपनिवेशवाद को 'विकास' का छद्मवेश बनाकर दुबारा घुसने का जो मौका मिलता जा रहा है उससे चिंता होती है कि ये नये देश अपने भविष्य को कभी पहचानेंगे भी या नहीं।

कुछ भी हो, अमेरिका कुछ भी चाहे, दक्षिण विएतनाम या सरकार कुछ भी कहे, वहाँ की जनता को आत्म निर्णय का अधिकार तो मिलना ही चाहिए। आत्म निर्णय आत्म-सम्मान की माँग है, और सह अस्तित्व की पहली शर्त। दक्षिण विएतनाम साम्यवादी हो जायेगा, इसीलिए उसे आत्म-निर्णय से वंचित रखना है, और किसी-न-किसी रूप में अमेरिका को वहाँ बनाये रहना है, यह मानने लायक बात नहीं है। मानने की नहीं, कहने लायक भी नहीं है। दक्षिण विएतनाम साम्यवाद की ओर न जाय, और चेकोस्लोवाकिया पूँजीवाद की ओर न जाय, यह ठीकेदारी अमेरिका और रूस को किसने सौंपी? जिस तरह दुनिया के अनेक देशों में मजहब और लोक-कल्याण के नाम से फासिस्टवाद और राज्यवाद पनप रहे हैं, उसी तरह विश्व-कल्याण और राष्ट्रीय सुरक्षा के नाम में नये साम्राज्यवाद बढ़ रहे हैं। यह काम जनता का है कि वह कल्याण के इस नये नारे को समझे, और ठीकेदारों से मुक्ति का रास्ता निकाले।

अगर पेरिस में विएतनाम की समस्या का कोई हल निकल आता है तो हो सकता है कि अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में नया मोड़ आये और मनुष्य की मुक्ति के कुछ नये रास्ते खुलें।

मानव-देह की सार्थकता : जीवन-समर्पण

इस सभा में इक्कीस साल से कम उम्र के जो लोग हैं, वे बड़े भाग्यवान हैं, इक्कीस साल के बाद शुरू होती है गधा-पचीसी। 'यौवनम्'—जवानी।

यौवनं धनसम्पत्ति प्रभुत्वमविवेकता
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्

जवानी–धन–सम्पत्ति – सत्ता – अविवेक का होना, इनमें से एक-एक भी अनर्थ करता है।

इसलिए इक्कीस साल से कम उम्र के जो हैं, वे भाग्यवान हैं। वे जवान भी नहीं हैं, धन के मालिक भी नहीं हो सकते, विवेक भी छोटे बच्चों में अधिक होता है। जवानी आयी, मूँछें बढ़ गयीं, तो उसके साथ-साथ विवेक कम होता है। तो बहुत धन्य हैं आप लोग!

आप बालक हैं—'बालकः। बालः।' मतलब बलवान है। वह ऊँची आकांक्षा रख सकता है। उसको उम्मीद है। बड़ा होगा, तब बोझ से लदेगा, उसकी आकांक्षा मिट्टी में मिल जायेगी। ऊँची आकांक्षा बालकों की होती है। सनत्कुमार बचपन में ही ज्ञानी थे। ध्रुव बचपन में ही भगवान की खोज के लिए निकला। नचिकेता बाल था, बिलकुल यमराज के पास पहुँचकर ब्रह्मविद्या हासिल की। शंकराचार्य ने ८ साल की उम्र में संन्यास लिया। भारत भर घूमने निकले। *नर्मदा के* पास उनको गुरु मिले। उनके पास रहकर विद्या हासिल की। वहाँ से काशी आये और संस्कृत में भाष्य लिखा। तब उनकी उम्र थी १६ साल की। उनके बारे में एक कहानी है। उनको ८ साल की ही आयु थी। ८ साल में मृत्यु थी। उनको संन्यास लेना था। माता इजाजत नहीं दे रही थी। एक दिन नदी पर स्नान कर रहे थे, तो मगर ने *पाँव पकड़ लिया। किनारे पर माँ खड़ी थी* तब उन्होंने माँ से कहा—संन्यास लेने की अब तो इजाजत दो, *नहीं तो मैं चला। माँ ने* इजाजत दी, तो मगर ने पाँव छोड़ दिया। तब भगवान ने कहा, तुम्हारी आयु दुगुनी हो गयी। फिर विद्या हासिल कर १६ साल की उम्र में काशी में भाष्य लिखा और उसे भगवान को समर्पण करने बद्रीकेदार चले गये। तब भगवान ने उनसे *कहा*—तुमने बहुत बड़ा काम किया है। पर अब इसका प्रचार करना चाहिए। तो तेरी आयु और १६ साल बढ़ेगी, तुम इसका प्रचार करो।

आगे के १६ साल वे सारे भारत में घूमते रहे। कश्मीर में भी गये थे। श्रीनगर के नजदीक एक टीला है। उसका नाम ही शंकर टीला है। वहाँ के मुसलमान भी शंकर को याद करते हैं। फिर उधर गंगासागर तक गये थे। *वहाँ सांख्यों का बड़ा गढ़ था।* उनसे चर्चा, वाद किया। फिर वहाँ से गौहाटी *गये। वहाँ कामाख्या के* उपासक शाक्त लोग थे। उनसे चर्चा की। फिर शृंगेरी गये। और फिर आखिरी काम के लिए चले गये—समाधि के लिए—हिमालय। वहाँ मानसरोवर के नजदीक उनकी मृत्यु हुई। बेटा पैदा हुआ केरल में और मृत्यु हुई मानसरोवर में, भारत की सीमा पर। सारा भारत दो दफा घूम लिया।

विनोबा

यह कहानी मैंने इसलिए सुनायी कि ऐसे जो होते हैं, वे तरुण होते हैं। तरुण यानी तारनेवाला। यह नहीं कि तरुण यानी डूबनेवाला। वासनायुक्त संसार में डूबनेवाला नहीं। काम-क्रोध से लिप्त, वासना से पीड़ित *ऐसा नहीं। तारने की और तरने की आकांक्षा* रखनेवाला तरुण है। ऐसे तरुण हुए शंकराचार्य। ३२ साल की उम्र में वे मरे। उनका नाम दुनिया में रोशन हो गया, क्योंकि *उन्होंने जो भी किया अपने लिए नहीं किया,* सारा परमात्मा की सेवा में समर्पण किया।

काम–क्रोध–मद–मोह–लोभ–मत्सर—ये मनुष्य के षड्रिपु हैं। इन सबसे हम अलग रहेंगे, ऐसा संकल्प करके, तुम लोगों में से—२५० में से २५ भी निकलें और संकल्प करें कि हम इन सारे विकारों से अलग रहेंगे और *जीवन परमात्मा को समर्पण करेंगे, तो बेतिया* में बाबा का आना सफल हुआ। चाहे ग्रामदान हो या न हो—मगर २५ *तरुण तय* करेंगे कि हम संसार-समुद्र में गोता नहीं लगायेंगे, परमात्मा की सेवा में जीवन देंगे—तो बाबा का काम सफल है। जो सत्य संकल्प करेगा, उसको भगवान मदद देता है। मनुष्य ऊँचा संकल्प करता ही नहीं; लेकिन करता है तो भगवान मदद देता है।

खाना-पीना, संतति पैदा करना, यह तो जानवर का जन्म हुआ। अरे! तुमने क्या यही किया जीवन में? तो तुममें और जानवर में फरक क्या रहा रे? हमारा तो मनुष्य का जीवन है। उसके लायक काम करें। भगवान ने मनुष्य कैसा पैदा किया, इसका वर्णन *भागवत में आता है। एक-एक* वस्तु-प्राणी पैदा करता गया, देखता गया, लेकिन उसको संतोष नहीं हुआ। फिर उसने मनुष्य की आकृति बनायी—"ब्रह्मावलोकधिषणम् मुदमाप देवः"। ऐसी आकृति, जिसमें ब्रह्म साक्षात्कार के लायक सामर्थ्य है, और उसे देखकर 'मुदमाप देव.'—भगवान संतुष्ट हुए। क्या उसकी विशेषता थी? "ब्रह्मावलोकधिषणम्"—ब्रह्म-साक्षात्कार का सामर्थ्य उसमें था।

यही उपनिषद् ने कहा है। प्रथम भगवान ने जानवर बनाये, फिर मनुष्य बनाया और बोले–*"बहुत अच्छा बना, बहुत अच्छा बना।"*

सभा के आरम्भ में किसीने हमसे सवाल पूछा था कि जीवनदान के मानी क्या? हमने उसके मानी आपको बताये। जीवनदान यानी जीवन-समर्पण, भगवान के चरणों में अपना जीवन लगाना।

ज्ञानेश्वर महाराज महाराष्ट्र में सबसे श्रेष्ठ पुरुष हुए। और उन्होंने एक बहुत बड़ा ग्रन्थ, जो गीता पर भाष्य है और जिसका तर्जुमा *हिन्दी में हो चुका है, लिखा है। उसमें* अर्जुन-कृष्ण के संवाद का वर्णन किया है। योग कैसा होता है? कैसे शक्ति बनती है, भगवान के पास मनुष्य कैसे पहुँचता है, इसका वर्णन। अन्त में अर्जुन कहता है—'हे भगवान! अभी जो तुमने वर्णन किया, उसके सुनने में भी इतना आनन्द होता है, तो अगर हम वैसे बन जायेंगे, तो कितना आनन्द आयेगा!' आपको भी सुनने में आनन्द आया दीखता है, आप अगर वैसे बन जायेंगे तो कितना आनन्द आयेगा! जीवनदान से बढ़कर बात हमने रखी—जीवन-समर्पण।

विद्यार्थियों से चर्चा,
बेतिया (चम्पारण, बिहार) ७-८-'६८

सर्वोदय की क्रान्ति धरातल पर कब आयेगी ?

प्रश्न : विनोबा की ग्रामदान की कल्पना, विचार और सिद्धांत जितनी ऊँचाई पर हैं, ग्रामदानी गाँव उतने नीचे नहीं तो ऊँचे भी नहीं कहे जा सकते। विचार आचार के धरातल पर क्यों नहीं उतर रहा है ?

धीरेन्द्रभाई : विचार चाहे जितना ऊँचा हो, उस पर आरोहण के संकल्प के बाद जो जहाँ है, वहीं से उठना आरम्भ करता है। यह अत्यन्त स्वाभाविक है कि ग्रामदानी गाँव ग्राम-स्वराज्य के लक्ष्य की घोषणा के समय उसी स्थान पर रहेगा, जहाँ वह अब तक रहा है। ऐसे प्रसंग पर विचार और आचार की एक-रूपता का प्रश्न नहीं उठ सकता है। जिस व्यक्ति ने विचारपूर्वक संकल्प किया, अगर उसे अकेला ही साधना में लगना है, तो भी उसकी साधना का आरम्भ सिद्धि पर से नहीं होगा।

इस संदर्भ में शुरू से ही विचार की दिशा में तीव्र कदम उठ सकता है, लेकिन जहाँ विचार का प्रतिपादन करनेवाला कोई ऋषि होता है और उस विचार को स्वीकार करनेवाली जनता होती है तो उसके लिए यह स्वाभाविक होता है कि स्वीकृति के बाद वह उस पर मनन करे, सोचे, समझे, अपनी परिस्थिति, मनःस्थिति तथा स्वभाव की स्थिति के अनुसार रास्ता खोजे, तब चलना शुरू करे। तब तक तो जनता जहाँ थी वहीं रहेगी। इतना ही नहीं, बल्कि हो सकता है कि रास्ता खोजने में भटककर कुछ देर के लिए और नीचे चली जाय। लेकिन चूंकि उसने विचार को सुना है, उसका ध्यान उधर आकर्षित हुआ है, और एक हद तक उसकी सम्मति भी है तथा पुरानी जड़ता छोड़कर रास्ता खोजने में भटककर नीचे भी उतरती है, तो भी अन्ततो-गत्वा वह ऊपर को जायेगी। फिर अन्तिम आदर्श तक पहुँचने के लिए उसे निरन्तर आरोहण की प्रक्रिया अपनानी होगी।

प्रश्न : अभी यह आन्दोलन लोक आन्दोलन नहीं बन पाया है वह संस्थाओं के कार्यकर्ताओं पर आधारित है। मगर कार्य-कर्ताओं के अपने जीवन में क्रान्ति नहीं है। वे उन्हीं पुराने मूल्यों से चिपके हुए हैं जिन्हें हम समाज में बदलना चाहते हैं। बदलें किसे, पहले अपने को या समाज को ?

धीरेन्द्रभाई : यहीं पर क्रान्ति की सही प्रक्रिया पर विचार करने की आवश्यकता होती है। आपने पूछा है कि जनक्रान्ति क्यों नहीं होती है ? आखिर आप क्रान्ति किसे कहते हैं ? प्रचलित मान्यता को बदलकर नयी मान्यता की स्वीकृति ही तो क्रान्ति है। अगर व्यापक पैमाने पर ग्राम, प्रखण्ड, और जिला तथा प्रदेशस्तर की जनता मालकियत के प्रश्न पर पुरानी मान्यता छोड़कर नयी मान्यता को स्वीकार कर दस्तखत करती है तो इसे आप जनक्रान्ति कहेंगे या संस्था क्रान्ति ? आप अगर गौर से देखेंगे तो वस्तुस्थिति यह है कि क्रान्ति जनता में हो रही है, संस्थाओं में नहीं। संस्थाएँ तो पुरानी पद्धति छोड़ती नहीं हैं। गांधी, विनोबा के कहने पर भी वे पुरानी पद्धति से चिपकी हुई हैं। फिर संस्था में क्रान्ति कहाँ हो रही है ? अगर कहीं क्रान्ति हो रही है तो जनता में ही हो रही है, ऐसा समझना चाहिए।

इस प्रकार का प्रश्न इसलिए खड़ा होता है कि अभी लोकमानस में क्रान्ति की परम्परा-गत पद्धति ही बद्धमूल है। आमतौर से लोग क्रान्ति की क्रान्तिकारी प्रक्रिया को समझ नहीं पा रहे हैं, क्योंकि अब तक क्रान्ति के नाम से जो कुछ चला है उसमें जनक्रान्ति का तत्त्व नहीं रहा है। वे सब जमात क्रान्ति रही हैं। कोई द्रष्टा पुरुष मानव-समाज के सामने क्रान्ति का विचार रखता है, उस विचार से उद्बुद्ध तथा उस पर निष्ठा रखनेवालों की एक विशिष्ट क्रान्तिकारी जमात बनती है और वह क्रान्ति करती है। जनता उस जमात को देखती है, उसकी निष्ठा, तेजस्विता तथा संगठन के प्रति श्रद्धावान होती है और अपनी कष्टमुक्ति के लिए उसे जब तक योग्य 'एजेन्सी' मानती है, तब तक वह उसका साथ देती है। इस प्रक्रिया में जनता की प्रेरणा के लिए विचार शक्ति उतना काम नहीं करती है जितना जमात शक्ति पर आस्था और वर्तमान संकटमय परिस्थिति से मुक्ति की चाह। अगर फ्रांस, इंग्लैंड के राजा या रूस के जार प्रजा-रंजक तथा मंगलकारी राजा होते तो जनता केवल लोकतंत्र या समाजवाद के विचार-शक्ति की प्रेरणा से क्रान्ति के लिए उमड़ती।

उपरोक्त प्रक्रिया में दोष होता है कि जनता क्रान्ति-विचार को छोड़कर क्रान्ति के वाहक को देखती है। अगर वह मजबूत है तो विचार चाहे जो हो, वह उसके पीछे चल देती है। फलस्वरूप क्रान्ति की सफलता जनता के कब्जे में न आकर जिस वाहक के जरिये उन्होंने क्रान्ति की थी, उसके कब्जे में चली जाती है और वाहक जनता पर सत्ता की फौजी ताकत से विचार को लाद देता है—उसकी मान्यता के खिलाफ भी। तब फिर वह जनक्रान्ति में परिणत न होकर, केवल परिस्थिति-परिवर्तन के लिए सत्ता-परिवर्तन मात्र होता है। यानी सत्ता विचार के मानने-वालों की जमात के हाथ में चली जाती है। लेकिन विनोबा जन-क्रान्ति करना चाहते हैं। जनक्रांति के लिए विशिष्ट क्रान्तिकारी जमात एक बाधक तत्त्व है, ऐसा समझना चाहिए। क्योंकि वैसी स्थिति में जनता का ध्यान क्रान्तितत्त्व से हटकर क्रान्ति के वाहक व्यक्ति और जमात की शक्ति पर चला जाता है। जनता उसी के भरोसे अपनेको सौंप देती है। इसलिए विनोबाजी अपनी क्रान्ति के लिए विशिष्ट जमात नहीं बनाते। वे पूरे समाज में विचार का अनुप्रवेश कराना चाहते हैं, ताकि विचार-शक्ति ही क्रान्ति का साधन बने, कोई दल या संस्था नहीं।

यही कारण है कि विनोबा पूरे समाज को क्रान्ति के लिए आह्वान करते हैं। वे खादी में काम करनेवालों को भिन्न-भिन्न पार्टी के सदस्यों को, पंचायत के सदस्यों और शिक्षकों, सचेतन किसान और मजदूरों को क्रांति का संदेश पहुँचाने के लिए आह्वान करते हैं। अर्थात् वे पूरे समाज के समस्त सचेतन तत्त्वों

को अपना वाहन बनाना चाहते हैं, ताकि उनके मार्फत अचेतन तत्त्व में भी क्रान्ति की चेतना पैदा हो। वस्तुतः आप जिसे जन-क्रान्ति समझते हैं वह जनता के सहयोग से संस्थाक्रान्ति है। चूँकि जमात की विशिष्ट हलचलों के कारण वह ऊपर-ऊपर दिखाई देती है, *इसीलिए आप उससे प्रभावित होते* हैं। सामान्य रूप से 'हमले' की प्रक्रिया अनुप्रवेश की प्रक्रिया से अधिक नाटकीय होती है, जिसका अभाव आप इस क्रान्ति में देख रहे हैं।

मैंने अभी कहा है कि इस क्रान्ति में कोई किसीको बदलने के लिए नहीं जाता है, बल्कि पूरा समाज-क्रान्ति का संकल्प करता है। चूँकि कार्यकर्ता भी जनता का अंग है, इसलिए वह भी क्रान्ति का पात्र है, न कि घटक। जब पूरे समाज में क्रान्ति की आवश्यकता है तो जिसे आप कार्यकर्ता कहते हैं, उसमें भी क्रान्ति की आवश्यकता है, क्योंकि वे भी वर्तमान व्यवस्था और मान्यताओं के शिकार हैं। हो सकता है कि उनमें कुछ व्यक्ति आरोहण की प्रक्रिया में कुछ आगे हैं, और दूसरे पीछे हैं, जैसे जनता में भी कुछ आगे और कुछ पीछे हैं।

विनोबा की एक आम टीका यह है कि वे रूढ़िग्रस्त, प्रतिक्रियावादी या भ्रष्टाचारी व्यक्तियों के मार्फत क्रान्ति का सन्देश पहुँचाने का प्रयास करते हैं। लेकिन स्पष्ट रूप से यह समझना चाहिए, कि जो क्रान्तिद्रष्टा निष्ठावान क्रान्तिकारियों की जमात नहीं बनाना चाहता है, उसके लिए यह अनिवार्य है कि वह जनता के हर व्यक्ति को क्रान्ति का *योग्य* वाहक माने, क्योंकि हर व्यक्ति के अन्दर क्रान्ति-*गुणों का अंकुर मौजूद है, यह निष्ठा* उसकी रहती है। नहीं तो पूरी जनता में क्रान्ति विचार के अधिष्ठान की सम्भावना पर आस्था वह खो देगा। यह भी स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि सर्वोदय की क्रान्ति सर्व के लिए और सर्व द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है। सर्व के बाहर आप किसीको रख नहीं सकते हैं।

प्रश्न : समझबूझकर या जैसे भी हो, अनेक जिलों के लोगों ने ग्रामदान पर हस्ताक्षर कर दिये हैं। क्या ये ग्रामदान मात्र कागज पर ही रह जायेंगे? कबतक लोक-शक्ति प्रकट होने की राह देखें?

धीरेन्द्रभाई : अभी हमने बताया है कि कागज पर दस्तखत यद्यपि लोकशक्ति नहीं है, फिर भी वह लोकसम्मति है। *सम्मति के* अमल में ही शक्ति प्रकट होती है, लेकिन प्रथम *चरण में सम्मति की आवश्यकता तो होती ही* है। अब प्रश्न यह है कि सम्मति का अमल कब होगा? *वस्तुतः* अमल तब होगा जब लोक-मानस में विचार स्पष्ट होगा। कागज पर दस्तखत करने से इतना अवश्य हुआ है कि अब व्यापक रूप से विचार के लिए जिज्ञासा का सन्दर्भ निर्माण हुआ है। यही जिज्ञासा विचार के स्पष्टीकरण का प्रारम्भ-बिन्दु है, इसलिए विनोबाजी लोकयात्रा द्वारा लोकशिक्षण पर इतना अधिक जोर दे रहे हैं। जबतक यह नहीं होता है तबतक तो आपको इन्तजार करना ही होगा। आप चाहेंगे, कोई व्यक्ति या दल कुछ जादू कर देगा, उसका स्थान इस क्रान्ति में नहीं है। लेकिन एक बात समझ लेनी चाहिए, कि जिस किसीको क्रान्ति की चाह है, वह अगर राह ही देखता रहेगा तो वह अपने को और क्रान्ति को धोखा देगा, चूँकि आप ही के *शब्दों में अगर जनक्रान्ति इष्ट है तो जन के* नाते क्रान्ति में लग जाना चाहिए, न कि किसी नेता या संस्था, जो जन से ऊपर अधिष्ठित रहता है, उसकी राह देखें। •

वियतनाम में बमवर्षा : द्वितीय विश्वयुद्ध से भी अधिक

अमेरिका के प्रतिरक्षा विभाग ने वियतनाम में अब तक हुई बमवर्षा-सम्बन्धी जो आँकड़े प्रकाशित किये हैं उनसे ज्ञात होता है कि १९६५ से १९६८ के जुलाई महीने तक २८ लाख टन से अधिक वजन के बम वियतनाम की भूमि पर बरसाये गये जब कि द्वितीय महायुद्ध में कुल मिलाकर २१ लाख टन से कम ही वजन के बम गिराये गये थे। कोरिया के युद्ध में ६ लाख ३५ हजार टन बम इस्तेमाल किये गये थे।

सैनिक विमानों की क्षति के सम्बन्ध में विज्ञप्ति में बताया गया है कि ४ अगस्त १९६४ से ८ अक्तूबर, १९६८ की अवधि में कुल मिलाकर ९१५ अमेरिकी वायुयान और हेलिकॉप्टर वियतनाम के युद्ध में मार गिराये गये। इसके पहले १९६१ से १९६४ के दौरान लगभग ४०० वायुयान और हेलिकॉप्टर मार गिराये जा चुके थे।

वियतनाम पर अमेरिकी बमवर्षा बन्द होने की क्रमिक तिथियाँ—

७ फरवरी, १९६५—वियतनाम पर अमेरिकी बमवर्षा का प्रारम्भ।

१३ मई से १७ मई, १९६५—इस बीच इस आशा से बमवर्षा बन्द की गयी थी कि उत्तर वियतनाम अपनी ओर से इस प्रकार का कोई जवाबी कदम उठायेगा।

२४ से २५ दिसम्बर, १९६६—क्रिसमस के उपलक्ष में अल्पकालिक द्वितीय समझौता।

३१ दिसम्बर, १९६६ और १ जनवरी, १९६७—नये वर्ष के आगमन के उपलक्ष में द्विपक्षीय समझौता।

८ फरवरी से १२ फरवरी, १९६७—वियतनाम के नव वर्ष के उपलक्ष में।

२३ मई, १९६७—बुद्ध-जन्म-दिवस के उपलक्ष में।

२५ दिसम्बर, १९६७—क्रिसमस द्विपक्षीय समझौते के उपलक्ष में।

३१ दिसम्बर, १९६७—नव वर्ष के उपलक्ष में।

१० जनवरी, १९६८—वियतनाम के राष्ट्रीय उत्सव के उपलक्ष में ३६ घंटे तक बमवर्षा बन्द करने की घोषणा हुई, किन्तु उसके बाद ही दक्षिण वियतनाम के नगरों पर वियतकांग की आक्रामक कार्रवाइयों के बढ़ने के कारण बमवर्षा पुनः प्रारम्भ कर दी गयी।

३१ मार्च, १९६८—राष्ट्रपति जॉनसन ने घोषणा की कि २० अक्षांश के उत्तर पड़नेवाले वियतनामी इलाकों पर बमवर्षा नहीं की जायेगी। इस घोषणा के बाद पेरिस शान्ति वार्ता का शुभारम्भ हुआ।

७ अप्रैल, १९६८—अमेरिकी सैनिकों और सैगॉन के सैनिकों को आदेश दिया गया कि वे १९ अक्षांश से उत्तर के क्षेत्र पर कदापि बमवर्षा न करें।

यह है हमारी संस्कृति !

[विनोबा द्वारा प्रेरित महिला लोकयात्री दल मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश की यात्राएँ पूरी कर अब हरियाणा पहुँच गया है। एक साल से ऊपर हो रहे हैं इस यात्रा के शुरू हुए। इस बीच अनुभवों की विविधता ने यात्रा को और भी आकर्षक बना दिया है। कुछ अंश पाठकों के लिए प्रस्तुत है।—सं॰]

•उस दिन बाइदेउ ने कहा, "यह परिवार इस भाई का साथ पसन्द नहीं करता।" मथुरा पहुँचे तो भोला भाई को देखकर आश्चर्य हुआ और अच्छा लगा। वह हमें एक गाँव में मिला था और दूसरे दिन भी हमारे साथ रहा था, अपने गाँव में जाते समय कह गया था कि अब जाकर यही काम करूँगा। फिर उसने अपनी समस्याएँ बतायी थीं। पिछले कई वर्षों से उसने गाँव की सड़क के पास दुकान खोली थी, जहाँ अब सड़क बनने-वाली है। और, इसलिए सरकार दुकान उठाने को कह रही है। फिर कहने लगा कि आज तक मैंने बहुत काम किये, खूब दुःख देखे, पर कोई साथ देता नहीं। घर की भी कई परेशानियाँ थीं, जिन्हें छोड़कर वह आ गया, तो हमें लगा कि ऐसे व्यक्ति ही समाज में काम करते हैं। जिन पर बोझ है वही नया बोझ उठाते हैं। इस राह में केवल दिल का खजाना चाहिए। करुणा आ गयी तो "एक हि साधे सब सधे" वाली बात होगी। ये सब बातें ध्यान में आ गयी और लगा कि शहरवाले यह जानते नहीं कि उनके ऐशआराम की सब चीजें किसान के खून से सनी हैं। बेजबान लोगों की अव्यक्त तपस्या से देश जिन्दा है। उनका नाम बड़े-बड़े कलाकारों, साहित्यकारों में, महान् पुरुषों में नहीं मिलेगा, लेकिन उनके ही बल पर दुनिया चल रही है। हमें ध्यान में आया कि इस तरह फ्रांस में खूनी क्रान्ति हुई और एक-एक करके बुर्जुआ गिलोटिन पर चढ़ाये गये। यह तो हमारे देश की संस्कृति है जो यहाँ के लोग अकाल पड़ने पर भी मर जाते हैं, कहते कुछ नहीं। अन्य साथियों ने भी क्षुब्ध भाव से कहा, "बहिनजी, अब इसे अपने संग न लगाओ।" टोली में चिन्तन का प्रवाह चला—ऐसा क्यों होता है? पढ़े-लिखे और अनपढ़ के व्यवहार में अन्तर क्यों आता है? एक को हम पास बैठा लेते हैं, दूसरे को नहीं; एक को हम कुछ भी कार्य बेहिचक कहते हैं, दूसरे को संभलकर। जो आज के सामाजिक मूल्यों के अनुसार प्रतिष्ठित हैं, उनकी प्रतिष्ठा यात्रा में आने से बढ़ती है। जिनकी नहीं है, उसकी तरफ ध्यान ही नहीं। जो मेहनत का आदी है उससे अधिक मेहनत करवायी जाती है। जिसने श्रम की बूँदों से अपने भाग्य को नहीं सींचा, उसकी कमजोरियों को संरक्षण मिलता है। आखिर उस भोले भाई को यहाँ से जाना पड़ा।

•एक दिन गाँव में प्रवेश करते ही पता चला कि यहाँ की स्त्रियाँ परिवार नियोजन से इतनी भयभीत हैं कि सभा में जाती ही नहीं। उन्हें लगता है कि ये भी वे ही लोग हैं जो झूठ बोलकर हमें बुलवा रही हैं, और फिर जबरदस्ती खानापूर्ति करेंगी। इतिहास की तानाशाही से यह बात किस प्रकार कम कही जा सकती है? इसके बाद तो इन्हीं बातों का ताँता लग गया। देहली की एक बहिन से हमने पूछा, 'आपकी खानापूर्ति हो रही है कि नहीं?' कहने लगी 'बहिनजी, हम क्या करें? हम तो परेशान हैं। मेरे पति ने मुझे छोड़ दिया है और सरकार नौकरी छोड़ा देने का भय दिखाती है। गाँववाले सुनते नहीं।' हमने कहा कि यह भारतीय सभ्यता है कि फिर भी आपको अपने घर में रहने दिया। एक बहिन ने बताया, 'अब इतनी महँगाई में हमारे वेतन में से यदि काटा जायेगा तो हम कैसे गुजर करेंगे?' एक भाई कहने लगे, 'हम तो सरकार के परिवार नियोजन में वैसे ही मदद देते हैं, क्योंकि हम ब्रह्मकुमारी समाज में विवाह नहीं होने देते। जो विवाहित हैं उन्हें संयम से रहने को कहते हैं।' हमने पूछा, 'आप परिवार-नियोजन-वाले कृत्रिम साधन तो बताते हैं न?' उन्होंने कहा, 'बिलकुल नहीं। इसमें दो प्रकार के दोष हैं। पहला, सरकार को धोखा देना, दूसरा, डरपोक बनना, जो बात सही समझें उसका प्रतिकार न करना।' अन्त में वह यह कहकर चला गया कि नौकरी छोड़ना चाहता हूँ। जीवन से स्वाभाविकता तो जैसे रूठकर चली गयी है। इस कृत्रिमता के विरुद्ध आवाज उठाने की शक्ति क्यों नहीं है? कितने बँधे हुए हैं लोग अपने ही बंधनों से? सोने लोहे की बेड़ियाँ इसके आगे क्या चीज हैं!

•मथुरा में हरिजनों के बीच सभा के पूर्व कुछ नवयुवकों से बात चल रही थी। एक जवान ने कहा, 'आखिर यदि हम हिन्दू होते तो क्या ये हमें इतना दूर कर देते? भगवान् के दर्शन भी करने नहीं देते। कोई अपनों से भी इस तरह का व्यवहार करता है!' बातें करते-करते स्कूल-कालेज की भी चर्चा आ गयी। नौजवान कहने लगे, 'आज भी हमारे साथ इन शैक्षणिक संस्थाओं में भेद किया जाता है।' कभी-कभी मार-पीट भी हो जाती है। नौजवान का खून खौल रहा है। उसके अंतिम उद्गार थे, 'हमें ऐसे धर्म के साथ क्या करना है, हम सोच रहे हैं। युग की पुकार हमें सचेत कर रही है।' सभा में एक बुजुर्ग ने कहा कि आप हमें तो सिखाते हैं, पर जरा इन शहरवालों को भी तो सिखाओ। शहर का एक छोटा सा बच्चा चिल्लाकर हुकुम देता है, 'ऐ भंगी! जरा इधर आओ, हमारे यहाँ सफाई करके जाओ।' हम सफाई से रहते हैं तो चर्चा चलने लगती है, 'इनको तो देखो ये कैसे रहने लगे हैं!' हमारे घर का एक एक व्यक्ति काम करता है। पाई-पाई इकट्ठा करके कुछ लोगों ने अच्छे मकान बनवा लिये हैं। तो लोग कहते हैं कि ये कहाँ से लूट लाये हैं, जो ऐसे मकान बन गये हैं। पग-पग पर ताने सुनने को मिलते हैं, अपमानित होना पड़ता है। हमारा यह कलंक कब धुलेगा? हम स्वयं नहीं गिरे हैं और न हम स्वयं उठ सकते हैं। हमें सवर्णों ने गिराया है। वे ही ऊपर उठा सकते हैं।

•यात्रा में ऐसी अनेक वृद्ध महिलाएँ मिलीं, जिन्होंने यात्रा में आने की तीव्रता प्रकट की। उनके मन की स्फूर्ति देखकर हमारा उत्साह बढ़ता है। उन्होंने शायद स्फूर्ति के ही स्रोत को पाया है। अत आजीवन कार्य करते हुए भी उनका बुढ़ापे में उत्साह क्षीण नहीं हुआ है।—देवी रीझवानी

औरंगाबाद, हरियाणा, २१-१०-६८

हाथल की ग्रामसभा : कार्यपद्धति और वैचारिक परिवर्तन का एक अध्ययन

[कुमारप्पा ग्रामस्वराज्य शोध संस्थान, दुर्गापुरा, जयपुर की ओर से किया गया यह अध्ययन उन शंकाओं का निराकरण प्रस्तुत करता है, जिसमें यह कहा जाता है कि गाँव के अनपढ़ और गँवार लोग अपनी समस्याओं को खुद कैसे हल कर सकेंगे ? आज के तनाव और द्वन्द्वपूर्ण वातावरण मे सर्वसम्मति या सर्वानुमति कोरी कल्पना है ।—सं०]

अवध प्रसाद

(१)

आबू पर्वत की तलहटी में बसा हाथल गाँव अपने आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था के कारण सबका ध्यान अपनी ओर खींचता है। गाँव के अध्ययन के बाद सहज ही भारत की प्राचीन ग्राम-व्यवस्था की ओर ध्यान जाता है। वैसे यह गाँव भी पुराना है। करीब ६०० वर्ष पूर्व यहाँ ब्राह्मण लोग आकर बसे थे। आज इस गाँव की जैसी व्यवस्था है उसका ऐतिहासिक संदर्भ है। परन्तु ग्रामदान के बाद इस गाँव ने आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र मे एक नया मोड़ लिया है। २८ दिसम्बर १९६१ को इस गाँव के निवासियों ने ग्रामदान की घोषणा की और उसी दिन ग्रामसभा की स्थापना कर सर्वसम्मति से ग्रामदान की निम्नलिखित शर्तों को व्यावहारिक रूप देने का संकल्प किया। (१) गाँव के भूमिहीनों एवं कम जमीन जोतनेवालों को पर्याप्त जमीन देंगे। (२) हम अपनी जमीन पर, हमारा जो स्वामित्व है वह गाँव की ग्रामसभा को देंगे, इस प्रकार जमीन पर हमारे और हमारे उत्तराधिकारियों के अधिकार बरकरार रहेंगे। (परन्तु यदि वह जमीन नहीं जोत सकते हैं तो जमीन दूसरे को जोतने हेतु दे दी जायगी।) (३) ग्रामीण स्रोतों से ग्रामकोष की स्थापना करेंगे। (४) गाँव के सभी बालिग ग्रामसभा बनायेंगे; ग्रामसभा गाँव के सभी लोगों की भलाई के लिए सर्व-सम्मति अथवा सर्वानुमति से काम करेगी।

हमारा यह अध्ययन ग्रामदान की चौथी शर्त ग्रामसभा का संगठन और संचालन को समझने की दृष्टि से खास तौर पर किया गया। ग्रामदान के बाद गाँव की सामाजिक, आर्थिक-जीवन मे ग्रामसभा का सर्वप्रमुख स्थान हो जाता है। असल में गाँव के जीवन को एक दिशा देनेवाली और संचालन की धुरी ग्रामसभा है।

ग्रामदान के बाद संगठन और निर्माण की दृष्टि से ग्रामसभा की कार्यपद्धति और प्रक्रिया के साथ नित्यप्रति कार्यवाहियों का भी व्यावहारिक महत्त्व हो जाता है। ग्रामदान के बाद अवसर प्रश्न उठता है कि ग्रामसभा को कौन-कौनसे काम करने चाहिए, उसके क्या अधिकार हों, काम का क्या ढंग हो, निर्णय की पद्धति क्या हो, आदि। हाथल मे जो भी प्रयास इस दिशा मे किये गये हैं उसे उसी रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास हम यहाँ करेंगे। अतः क्या नहीं किया गया या सिद्धान्ततः यह किया जाना चाहिए था इस पर हम यहाँ विचार नहीं करेंगे। हम यहाँ पहले ही निवेदन करना चाहते हैं कि ग्रामसभा ने अपनी आवश्यकता, अपनी शक्ति को देखते हुए जो समझ मे आया और जैसा वातावरण बना वैसा निर्णय किया, कार्य किया। यहाँ की ग्रामसभा मे बाहर के किसी कार्यकर्ता का कोई हस्तक्षेप नहीं देखन को मिला।

संक्षेप मे अध्ययन की पद्धति के बारे मे भी विचार कर लेना चाहिए। हमने अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इन साधनों का उपयोग किया—(१) व्यक्तिगत प्रश्नावली, (२) सार्वजनिक प्रश्नावली—ग्रामसभा की कार्यवाही हेतु, (३) पारिवारिक चर्चा, (४) सामूहिक चर्चा, (५) विशिष्ट वर्ग से खास चर्चा। इस प्रकार हमने गाँव की कुल आबादी के १० प्रतिशत लोगों से चर्चा की। परन्तु व्यक्तिगत और खास मत एवं ग्रामदान की प्रक्रिया को जानने की दृष्टि से गाँव के ३० लोगों से व्यक्तिगत प्रश्नावली द्वारा तथ्य संकलन किया।

(२)

इसके पहले कि ग्रामसभा के कार्यों एवं ग्रामदान के प्रति लोगों के रुख पर विचार करें, हम ग्रामसभा की कार्य-पद्धति पर संक्षेप मे विचार करना चाहेंगे। ग्रामसभा में किन लोगों का प्रमुख स्थान रहता है, निर्णय मे किसका प्रमुख स्थान रहता है और निर्णय की प्रक्रिया क्या होती है ? इस सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्नों के निम्नलिखित उत्तर मिले :—

साक्षात्कार संख्या–३०

वक्तव्य	संख्या
१—सबकी सम्मति से कोई भी निर्णय होता है।	२८
२—अध्यक्ष, मंत्री एवं ग्रामसभा के सक्रिय सदस्य विशेष रुचि रखते हैं।	२६
३—अध्यक्ष का विशेष मार्गदर्शन होता है।	३०
४—हमलोग सभा में खुलकर हिस्सा बँटाते हैं, हमारी बात भी मानी जाती है। *	१०
५—निर्णय सर्वानुमति से होता है।	२७
६—मतभेद की स्थिति में प्रस्ताव अगली बैठक के लिए छोड़ते हैं।	२५
७—हरिजन एवं अन्य पिछड़ी जाति के लोग अगुआ के रूप में नहीं भाग लेते है।	२०
८—गैरब्राह्मण लोग ब्राह्मणों के निर्णय पर विश्वास करते हैं।	१८
९—सामान्यतः निर्णय सर्वसम्मति की स्थिति मे आ जाता है।	२६
१०—मतभेदों का निपटारा खुली चर्चा मे होता है।	२५

उपरोक्त तथ्य प्रश्नावली के गणितीय शब्दों मे प्रस्तुत किया गया है। इसके अति-रिक्त १२ से अधिक लोगों से चलते-फिरते एवं सामूहिक मंडली मे मत जानने का प्रयास किया। साफ जाहिर है कि यहाँ ब्राह्मण वर्ग की प्रमुखता है, साथ-ही-साथ अन्य जातियाँ —जो कि पिछड़ी हैं—उन पर पूरा विश्वास करती हैं। पर हम यह नहीं स्वीकार करना चाहेंगे कि इसमें उनका शोषण होता है। इसकी पुष्टि आगे के प्रश्नोत्तर से हो जायेगा। हरिजन सामान्यतया अनपढ़ या मात्र साक्षर हैं। उन्हें मजदूर इसलिए नहीं कहना चाहेंगे

* केवल हरिजनों से पूछा गया (संख्या १६)

कि यहाँ मजदूरी ब्राह्मण भी उसी प्रकार करते हैं, जैसे हरिजन। ब्राह्मण स्त्री-पुरुष भी खाली समय में यदि जरूरत हुई तो मजदूरी करते हैं। गाँव के सबसे प्रतिष्ठित लोगों ने बताया कि हमारे घर की स्त्रियाँ खेत में काम करने गयी हुई हैं। हाँ, शिक्षा के क्षेत्र में ब्राह्मण प्रारम्भ से आगे हैं। अन्य जाति के लोग खेती के अलावा अपना परम्परागत पेशा भी करते हैं। ग्रामसभा के निर्णय में सबकी सहमति आवश्यक होती है। निर्णय में ग्रामसभा के अध्यक्ष एवं अन्य बुजुर्गों का सर्वप्रमुख स्थान रहता है, यह अधिकांश लोगों की उक्ति रही। स्मरण रहे कि ग्राम-सभा के अध्यक्ष श्री गोकुल भाई भट्ट हैं और उनका पूरा प्रभाव है, साथ-ही साथ उनका आवश्यक समय भी ग्रामसभा को मिलता है।

जहाँ तक गाँव में नेता का प्रश्न है, एक रुचिकर बात देखने को मिली। नेता कौन बने, इसके उत्तर में एक से अधिक लोगों से यह सुनने को मिला कि 'जो काम में रुचि लेता है, वह काम करता है।' यदि कई लोग रुचि लें तो? इस प्रश्न के उत्तर में यह सुनने को मिला कि 'अभी चुनाव का दंगल हमारे यहाँ नहीं होता है।' यहाँ एक बात यह देखने में आयी जो कि विशेष उल्लेखनीय है। गाँव में जितने भी ग्रामसभा के सक्रिय सदस्य हैं वे सब-के-सब ४५ वर्ष के ऊपर के हैं। अर्थात् गाँव बुजुर्गों के हाथ में है। इसका एक कारण यह है कि अधिकांश युवक बाहर नौकरी करते हैं या पढ़ते हैं। फिर भी सर्वेक्षण से जाहिर हुआ कि गाँव के बाहर रहनेवाले लोग वर्ष में दो माह गाँव में रहते हैं और सभी कार्यों में सक्रिय सहयोग देते हैं। काम नियमित चले इस कारण ग्रामसभा के पदाधिकारी स्थायी रहनेवालों को ही बनाया गया है।

ग्रामसभा की बैठक में निर्णय मुख्यतया सर्वसम्मति से होता है, किसी-किसी मामले में सर्वानुमति की स्थिति आती है। अबतक की कार्यवाहियों को देखने से स्पष्ट होता है कि बहुमत की नौबत नहीं आयी। हाँ, प्रस्ताव को स्थगित करने की नौबत आयी है। सर्वेक्षण के बाद यह साफ जाहिर हुआ कि ग्रामसभा अपने निर्णय निम्नलिखित प्रक्रिया से करती है :—

१—ग्रामसभा की बैठक में प्रस्ताव पर खुली चर्चा और सर्वसम्मति से निर्णय।

२—अध्यक्ष एवं सक्रिय सदस्यों का मार्ग-दर्शन।

३—प्रस्ताव में थोड़ा मतभेद होने पर सर्वानुमति।

४—किसी खास प्रस्ताव के लिए समिति का गठन करके।

५—महत्त्व के प्रश्न पर मतभेद होने पर उन्मुक्त चर्चा के लिए कुछ समय देकर।

(क्रमशः)

पंजाब और उत्तर प्रदेश में कुष्ठ-सेवा-कार्य :
सही दिशा, अनुभव और जानकारी

राष्ट्रीय कुष्ठ संगठन (एन० एल० ओ०) वर्धा के सुझाव पर मुझे १६ अगस्त से २० सितम्बर के बीच पंजाब और उत्तर प्रदेश की कुष्ठ सेवी संस्थाओं के देखने का अवसर मिला। यात्रा के दौरान जो जानकारी मिली और अनुभव आया वह नीचे प्रस्तुत है —

कुष्ठ सेवा-कार्य विभिन्न प्रकार के सेवा-कार्यों में एक विशिष्ट और ईश्वर के नजदीक पहुँचने का सर्वोत्तम सेवा कार्य है। इसके माध्यम से तिरस्कृत, बहिष्कृत, अपमानित और दुःखी लोगों के साथ नाता जोड़ा जा सकता है। हजारों-लाखों कुष्ठ-रोगी तरसते रहते हैं कि उनका भी कुशल-क्षेम पूछनेवाला कोई हो, उनके सामने साहस और स्नेह से खड़ा होनेवाला कोई हो, जो उनसे इतना मात्र पूछ ले कि "क्यों भाई, कहो, तुम्हारा क्या हाल है?" आज उनसे बात करना, कुशल क्षेम पूछना तो दूर की बात है लोग उन्हें अपनी आँखों से देखना भी पसन्द नहीं करते। इसीलिए जगह जगह कई महानुभाव इस प्रयास में लगे हैं कि कुष्ठ-रोगियों को सार्वजनिक स्थानों, तीर्थस्थानों से हटाकर चहारदीवारी के भीतर बंद कर दिया जाय, ताकि जब लोग घूमने फिरने, सैर-सपाटे अथवा देव-दर्शन, पूजा आदि के लिए बाहर निकलें तो वे विद्रूप, कुरूप, दुःखी और विलखते रोने लोग उनकी नजरों के सामने न पड़ें।

कुष्ठ-समस्या का अन्तरदर्शन

आज का भिखारी कुष्ठ-रोगी भिखारी बनने या दर दर भटकने से पहले एक अच्छे खासे अंगोंवाला सौन्दर्य तथा अनेक गुणों से सम्पन्न मानव रहा है। लेकिन आज वह इस हालत में पहुँचा है कि लोग उसे देखना तक कबूल नहीं करते। प्रारम्भ में जब उसे इस रोग की जानकारी हुई तब उसके मन ने यह स्वीकार ही नहीं किया कि उसे कोढ़ हुआ है। इस प्रकार अनिश्चितता की दशा में उसने कई साल गुजार दिये। जब रोग बढ़ते-बढ़ते इस दशा में पहुँच गया कि छिपाना सम्भव नहीं रहा तो घर के लोगों, सगे-सम्बन्धियों ने भी उससे नाता-रिश्ता तोड़ दिया। घर से निकाल दिया। तब वह दर-दर का भिखारी बनने को विवश हुआ। अब वही मुख्य रूप से तीर्थस्थानों में अपने टाट को बिछाकर बैठा है और टिन के कटोरे या रंग के डिब्बों में कुछ खड़खड़ाता हुआ भीख माँगता फिरता है। वह सिर्फ इसलिए जीता रहता है कि मर नहीं पाता।

छिपे रोगी : मुख्य समस्या

समाज के दानी-धर्मी लोग, जिन्हें अक्सर दान-धरम करना होता है वे भिखारी लोगों को ढूँढ़कर दान करते और दान करने का संतोष प्राप्त करते हैं। इस प्रकार से सीधे दान द्वारा लाखों भिखारी कुष्ठ रोगियों का पालन हो रहा है। जो सरकार के लिए भयंकर समस्या होती उसे आज का समाज सीधे अपने ऊपर उठाये हुए है। आखिर कुष्ठ धामों या लेपर असाइलमों में कितने लोगों को रखा जा सकता है, जब कि भारत में कुष्ठ-रोगियों की कुल संख्या २५ लाख के लगभग है। सच बात तो यह है कि जो कुष्ठ रोगी अपंग, विकलांग और भिखारी बन गये उनसे समाज को कोई डर और हानि नहीं है; क्योंकि वे समाज में जाहिर हो जाते हैं। लोग उनसे सम्पर्क बचाते हैं। परन्तु समाज के लिए मुख्य समस्या उन रोगियों की है, जो अपने रोग को भीतर छिपाये हुए हैं और सीधे समाज के सम्पर्क में रहकर रोग का प्रसार कर रहे हैं।

अपंग भिखारी कुष्ठ रोगी समाज के लिए केवल उतनी ही समस्या हैं जितना कि

बेरोजगारी, भूत और दूसरे प्रकार के भिखारी। उनके बारे में भी कुछ सोचना ही चाहिए; लेकिन जैसा कि मैंने ऊपर बताया है, छिपे हुए कुष्ठ-रोगी मुख्य रूप से कुष्ठ-समस्या हैं। जैसा कि पू० मनोहर दिवाण और डा० वारदेकर—जो विश्व प्रसिद्ध कुष्ठ-सेवक और कुष्ठ-रोग विशेषज्ञ हैं कहते हैं—कुष्ठ-समस्या पर वैज्ञानिक तरीके से कार्य करने की आवश्यकता है, अन्यथा कुष्ठ-सेवा-कार्य भी केवल बड़ी संस्थाएँ कायम करने और उनके माध्यम से सेवा का वैभव प्रदर्शन का साधन-मात्र बनकर रह जायेगा और कुष्ठ-समस्या अपनी जगह ज्यों-की-त्यों रह जायेगी।

पंजाब की मिशनरी संस्थाओं की विकृतपद्धति

पंजाब में फिरोजपुर, लुधियाना, अम्बाला, होशियारपुर आदि में ऐसी कुष्ठ सेवा-संस्थाएँ है, जिनमें पंजाब के बाहर के दूसरे प्रान्तों से आ-आकर एक-एक जगह पर सैकड़ों से अधिक कुष्ठ-रोगी एकत्र हैं। उन कुष्ठ-बस्तियों या आश्रमों में प्रबन्ध रोगियों के हाथ में ही है। वहाँ दवा-दारू का ठीक प्रबन्ध नहीं है। बस केवल रोगी रहते हैं और भीख माँगकर अपना गुजारा करते हैं। कई स्त्री-पुरुष रोगियों ने आपस में शादी भी कर ली है। उनके बच्चे भी हैं, जिनको विदेशी ईसाई मिशनरी खरीद लेते हैं और उनका अपने ढंग से पालन-पोषण करके ईसाई बनाते हैं। सरकार के द्वारा दवा आदि तथा अन्य सहायता इन संस्थाओं को मिलती रहती है, लेकिन उस सहायता के ठीक उपयोग के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता।

कुष्ठ-सेवा-कार्य में विदेशी ईसाई मिशनरियों की अब तक काफी ख्याति रही है, लेकिन उनकी सेवा का अब भंडाफोड़ हो चुका है। उनका मुख्य कार्य धर्म-परिवर्तन रहा है और सेवा उसका माध्यम। धर्म-परिवर्तन पर अब रोक लगने के कारण कुष्ठ-सेवा-कार्य में उनकी खास रुचि नहीं रह गयी है। तरन-तारन (अमृतसर) में, ईसाई मिशनरियों की एक कुष्ठ-संस्था है, जिसमें करीब चार सौ रोगी रहते थे। वहाँ सुबह चर्च में प्रार्थना के समय ही लोगों की हाजिरी लगती थी और जो लोग चर्च में नहीं जाते थे उनको खाना देना बन्द कर दिया गया। काफी झगड़ा बढ़ा। संस्था के व्यवस्थापकों ने पुलिस की सहायता से रोगियों को पीटकर बाहर खदेड़ दिया। अब वहाँ साठ रोगी रह गये हैं।

कुछ पेशेवर कुष्ठ सेवक नेता

उत्तर प्रदेश में देहरादून, ऋषिकेश, मेरठ, मुरादाबाद में कुष्ठ-सेवा-संस्थाएँ हैं। उनमें जितने रोगी रहते हैं उनसे कई गुना अधिक रोगी उन संस्थाओं के पास में अपनी बस्ती बनाकर रहते हैं। वे भीख माँगकर अपना गुजारा करते हैं। इन व्यक्तियों में अनेक प्रकार की अपराध-वृत्ति के लोग हैं जो जुआ खेलते हैं, शराब पीते हैं। उनमें लड़कियों को एक जगह से बहकाकर दूसरी जगह लेकर बसनेवाले भी रहते हैं। इन भिखारी कुष्ठ-रोगियों का अपना अखिल भारतीय संगठन है। इनके अपने नेता हैं, जो इनकी समस्याओं का समाधान ढूँढते और घूमते रहते हैं। ये नेता इन रोगियों से अपनी फीस लेते हैं, जो प्रतिदिन पच्चीस रुपये तक होती है।

वैज्ञानिक सेवा-कार्य की कुछ संस्थाएँ

उत्तर प्रदेश में गोरखपुर एक ऐसी संस्था है, जहाँ वैज्ञानिक ढंग से सेवा-कार्य होता है और इसके पड़ोस में भिखारियों की कोई बस्ती नहीं है। इसके अलावा बस्ती, देवरिया, मुरादाबाद और गोंडा में भी अच्छा काम चल रहा है। इन जगहों में समाज-सेवी संस्थाएँ सही दिशा में अपना काम आगे बढ़ा रही हैं। समग्र सेवा आश्रम, रतनपुर, जौनपुर एक ऐसी संस्था है, जहाँ जनाधार के बल पर हजारों रोगियों की चिकित्सा का प्रबन्ध है।

बनारस में एक दो संस्थाएँ कुष्ठ-सेवा-कार्य में लगी हैं, लेकिन उनका दृष्टिकोण कुष्ठ-*रोग-समस्या के हल की तरफ न होकर केवल* भिखारी कुष्ठ-रोगियों तक ही सीमित है। यदि बनारस की कुष्ठ-संस्थाएँ भिखारी कुष्ठ-रोगियों से दो कदम आगे बढ़कर कुष्ठ-रोग उन्मूलन की तरफ बढ़ सकें तो बहुत काम कर सकती हैं।

आगरा में जापानी लोग कुष्ठ-सेवा कार्य में लगे हैं। संसार में जो भी अच्छा से अच्छा चिकित्सा का साधन है वह सब वहाँ पर *कुष्ठ-रोगियों के लिए उपलब्ध कराने का प्रयत्न* यह संस्था कर रही है।

सरकार के द्वारा भी कुष्ठ-सेवा-कार्य कई जगहों में हो रहा है। एक जगह जहाँ ६४ बिस्तरों का सजा-सजाया अस्पताल और ३५ एकड़ संस्था की जमीन है वहाँ ११ रोगी और २१ कर्मचारी हैं। —मार्कण्डेय

समग्र सेवा आश्रम, रतनपुर
जौनपुर (उ० प्र०)

दैनंदिनी १९६९

गांधी-शताब्दी के अवसर पर १९६९ की जो दैनंदिनी हमारे यहाँ से प्रकाशित की गयी है उसका स्टाक बहुत ही *कम बचा है, अतः वे संस्थाएँ, जो दैनंदिनी मँगाना चाहती हैं,* रकम अग्रिम भिजवाकर या वी० पी० या बैंक की मार्फत प्राप्त कर लें, अन्यथा गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी निराश होना पड़ेगा।

आकार		मूल्य प्रति
क्राउन	७½" × ५"	१.००
डिमाई	६" × २½"	१.२०

५० या उससे अधिक दैनंदिनियाँ एकसाथ मँगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन और ग्राहक के निकटतम स्टेशन तक दैनंदिनी की डिलेवरी से भिजवायी जाती है।

संचालक
सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१

• महाराष्ट्र सरकार का आश्चर्यजनक आदेश
• जुआ और लॉटरी
• उद्योग-धन्धों का सामाजिक उत्तरदायित्व

ताजा समाचारों के अनुसार महाराष्ट्र प्रदेश की राज्य सरकार ने प्रदेश के हाऊसिंग बोर्ड को हिदायत दी है कि बोर्ड के मातहत जो मकान या निवास हैं वे उन लोगों को न दिये जायँ जिनके तीन या तीन से अधिक बच्चे हों, और जो अपनी दरख्वास्त के साथ वन्ध्यीकरण या नसबन्दी कराने का प्रमाणपत्र पेश न करें।

अगर यह सही है तो राज्य सरकार का इस प्रकार का निर्देश आश्चर्यजनक ही नहीं, कई दृष्टियों से अत्यन्त आपत्तिजनक भी है। परिवार-नियोजन के बारे में सरकारी नीति से हम परिचित हैं। उसके कुछ पहलुओं से हम सहमत नहीं हैं, लेकिन वह इस टिप्पणी की चर्चा का विषय नहीं है। सरकार जो नीति बनाती है उसके अनुसार काम करने और उस नीति को आगे बढ़ाने का उसका कर्तव्य है। लेकिन इस कर्तव्य के पालन में भी सरकार को कुछ मर्यादाओं का ध्यान रखना आवश्यक है, उसमें भी खासकर ऐसी नीतियों के बारे में, जिनका नागरिक के व्यक्तिगत जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध हो।

यह माना जाता है कि जनतंत्र में सरकार जनता के बहुमत का प्रतिनिधित्व करती है, और इसलिए उसके निर्णय सभी को मान्य और सब पर लागू होने चाहिए। यह ठीक भी है। लेकिन फिर भी अपनी नीतियों को कार्यान्वित करने में सरकार को अपने अधिकार और सत्ता का उपयोग विवेक के साथ करना चाहिए। कुछ तो आज की परिस्थितियों के कारण, और कुछ जान-बूझकर, आज की सरकारों ने अपने काम का दायरा बहुत व्यापक कर लिया है। इसलिए सरकार के निर्णय और उसकी नीतियाँ नागरिक-जीवन के अन्तरंग से-अन्तरंग पहलू को छूने लगी हैं। राष्ट्र के अस्तित्व उसकी सुरक्षा, और आन्तरिक शान्ति की बात अलग है, लेकिन यह जरूरी नहीं है कि इसके अलावा अन्य बातों से सम्बन्धित सरकारी नीति नियमों को भी उतनी ही कड़ाई के साथ जनता पर लागू किया जाय। खास करके ऐसे मामलों में जो व्यक्ति से निजी और सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखते हों, सरकार को अपनी नीतियाँ जबरदस्ती लादने के बजाय उनके लिए नागरिकों का समर्थन और स्वीकृति प्राप्त करने के लिए शिक्षण और प्रचार पर ही ज्यादा भरोसा रखना चाहिए।

महाराष्ट्र सरकार का यह निर्देश कि हाऊसिंग बोर्ड के मकानों का अलाटमेंट उन लोगों के नाम न हो, जिनके बच्चों की संख्या अधिक होते हुए जिन्होंने, स्त्री हों तो अपने को बन्ध्या और पुरुष हों तो अपने को खस्सी नहीं कराया हो, बहुत ही बेहूदा और आपत्तिजनक है। हमें शक है कि संविधान की दृष्टि से भी इस प्रकार का पक्षपात करने का सरकार को कोई अधिकार है। सरकार अपनी नीतियाँ लादने के लिए इस प्रकार कुछ लोगों को आवश्यक सुविधाओं से वंचित नहीं रख सकती। सार्वजनिक खजाने से दी जानेवाली सुविधाओं में इस तरह का पक्षपात हमारे खयाल से अवैधानिक है। इसके अलावा, इस प्रश्न का मानवीय पहलू भी है। सब जानते हैं कि शहरों में आवास की समस्या बहुत कठिन होती है। लेकिन भोजन और वस्त्र की तरह आवास भी मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं में से है और किसी भी नागरिक को अमुक सरकारी नीति के पालन के लिए मजबूर करने की दृष्टि से उसको प्राथमिक आवश्यकता से वंचित करना नादिरशाही में ही शुमार हो सकता है। हमारा खयाल है कि यह निर्देश राज्य सरकार के किसी जरूरत से ज्यादा वफादारी साबित करना चाहनेवाले सरकारी अधिकारी की सूझ है। अगर राज्य सरकार ऐसे पक्षपातपूर्ण, निकम्मे और आपत्तिजनक आदेश को वापस नहीं लेती है तो हाईकोर्ट में उसको चुनौती दी जानी चाहिए।

× × ×

दिल्ली में सराय रोहिल्ला के एक मोहल्ले में भैया दूज की रात को एक मकान पर छापा मारकर वहाँ जुआ खेलनेवाले १३ लोगों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। जुआ खेलनेवाले आसपास की बस्ती के गरीब लोग थे। उनके पास से कुल १७६ रुपये बरामद हुए।

इस प्रसंग में एक प्रश्न खड़ा होता है। हिन्दुस्तान में जब सरकारें स्वयं लॉटरी चलाने लगी हैं तब हमारी दृष्टि से उनको कोई नैतिक अधिकार नहीं रह गया है कि वे जुए पर पाबन्दी कायम रखें और जुआ खेलने पर लोगों को सजा दें। जुए में और लॉटरी में सामाजिक या मानवीय दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। दोनों के लिए प्रेरणा 'बिना मेहनत की कमाई' करने की इच्छा में से आती है और इसीलिए मनुष्य की वृत्ति, उसके चरित्र आदि पर दोनों का समान असर पड़ता है। समाज में काहिली अकर्मण्यता, मेहनती जीवन से विमुखता, लोभ आदि दुर्गुण, दोनों के कारण फैलते हैं। फर्क है तो शायद इतना ही कि लॉटरी की आमदनी में सरकार बड़ी हिस्सेदार है और छिपे-चोरी जुए के खेल में उसे कुछ नहीं मिलता। पर इसका उपाय तो आसानी से हो सकता है। सरकार जुआ खेलने पर पाबन्दी उठा ले और उसको भी उसी प्रकार लाइसेन्स के जरिये नियंत्रित करे जैसे वह और धन्धों को करती है। लेकिन अपनी ओर से लॉटरी चलानेवाली सरकार को जुए को अनैतिक और असामाजिक मानकर उस पर प्रतिबन्ध कायम रखने का कोई अधिकार नहीं है। दोनों बातें एक-दूसरे से विसंगत हैं।

× × ×

सर्वोदय आन्दोलन में एक बड़ा प्रश्न बार-बार हमारे सामने आता है कि जिस तरह भूमि-समस्या के हल और गांवों की

आर्थिक पुनर्रचना के लिए हमने भूदान-ग्रामदान का कार्यक्रम पेश किया है उस तरह नगर-जीवन और उद्योग-धन्धों के परिवर्तन के लिए हमारा क्या कार्यक्रम हो सकता है। नगरों में और उद्योग-व्यापार में मालकियत-विसर्जन तथा 'शेअरिंग' के तत्त्व किस तरह दाखिल किये जा सकते हैं ?

जिस तरह शुरू में भूदान के कार्यक्रम के जरिये वातावरण निर्माण करके और उसके प्रत्यक्ष अनुभव के सहारे हम लोग ग्रामदान पर पहुँचे उसी तरह उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में पहला कदम उद्योग-धन्धों की सामाजिक जिम्मेदारी से सम्बन्धित कार्यक्रम का हो सकता है। व्यापार में शुद्ध व्यवहार—फेअर ट्रेड प्रैक्टिसेज—अर्थात् उचित मूल्य, निर्धारित क्वालिटी, सही नापतौल, मिलावट न करना आदि के कार्यक्रम व्यापक पैमाने पर एक आन्दोलन के रूप में चलाये जायँ। इससे यह वातावरण बनेगा कि उद्योग-व्यापार केवल व्यक्तिगत मुनाफे के लिए नहीं हैं, उनकी समाज के प्रति भी कुछ जिम्मेदारी है श्री रामकृष्ण बजाज ने महाराष्ट्र में और श्री टोकरसी नापड़िया ने आंध्र में जो प्रयोग शुरू किये हैं वे जाहिर करते हैं कि प्रयत्न करने पर व्यापारी समाज में ऐसे लोगों को आगे लाया जा सकता है, जो इस कार्यक्रम को उठा लें।

इसके बाद दूसरा कदम उद्योग-संस्थानों की मालकियत से सम्बन्धित होगा। वैसे आज की बड़े पैमाने की आर्थिक रचना में 'मालकियत' का प्रश्न एक तरह से गौण हो गया है, प्रत्यक्ष मालिकी किसीकी निश्चित नहीं कही जा सकती, फिर भी जिस स्वरूप में जो मालकियत है उसे भी क्या सार्वजनिक या सामाजिक रूप नहीं दिया जा सकता, यह सोचना होगा। हालांकि मुख्य बात उद्योगों का संचालन करनेवालों के रुख या मनोवृत्ति की है, फिर भी शायद उद्योगों की मालकियत सार्वजनिक ट्रस्टों के रूप में परिवर्तित हो सके तो ठीक होगा। इस क्षेत्र में भी दुनिया के विभिन्न देशों में प्रयोग होते रहे हैं—इंग्लैण्ड में स्काट बाडर का, जर्मनी में जाइस का, नार्वे में टैंडबर्ग का, आदि। वैसे तो पूँजीवादी देशों में भी उद्योग के क्षेत्र में ट्रस्टों की कल्पना नयी नहीं है, कई कम्पनियों की बहुत सी पूँजी ट्रस्टों की ही है पर यह व्यवस्था अधिकतर सरकारी टैक्स को बचाकर उसका उपयोग अपने द्वारा करने की दृष्टि से लागू की गयी होती है, सिद्धान्ततः व्यक्तिगत मालकियत के विसर्जन के लिए नहीं, लेकिन समाज के प्रति उत्तरदायी उद्योग-धन्धों के साधन का स्वरूप क्या हो सकता है, इस सम्बन्ध में इन ट्रस्टों के विधान, नियम आदि से मदद मिल सकती है।

काम का तीसरा पहलू नगरों में बसने-वाले परिवारों के परस्पर सहयोग और संगठन से सम्बन्धित है, जिससे नगरों में सामाजिकता, एक-दूसरे के सुख-दुःख में परस्पर सहयोग करने और हिस्सा लेने की भावना का तथा लोकशक्ति का चाहे मर्यादित ही सही, विकास हो सके। इस श्रेणी में विले-पार्ले—बम्बई में हो रहे प्रयोग जैसी चीजें आती हैं। आशा है उद्योग धन्धों और शहरों के कार्यक्रम में दिलचस्पी रखनेवाले साथी उपरोक्त बातों पर विचार करेंगे और चर्चा को आगे बढ़ायेंगे।

—सिद्धराज ढड्ढा

श्रद्धांजलि

सेठ सोहनलालजी दूगड़ : एक विलक्षण व्यक्तित्व

[सार्वजनिक क्षेत्र में काम करनेवाले बहुत-से लोग, खासकर उत्तर भारत और हिन्दी प्रदेशों में, सेठ सोहनलालजी दूगड़ के नाम से परिचित हैं। अभी कुछ दिन पूर्व कलकत्ते में उनका निधन हो गया।—सं०]

'सेठ' तो बहुत हैं, सेठों में देनेवाले भी कई होते हैं, पर सेठ सोहनलालजी दूगड़ उन सबसे भिन्न थे। उनके जैसा देनेवाला इन दिनों शायद ही कोई हुआ हो। उनके पास से खाली हाथ कोई कभी नहीं लौटा होगा सो बात तो नहीं है, क्योंकि बीच-बीच में जब कभी उनका खजाना खाली होता—वे 'खोड़' में होते—तब वे खेद के साथ माफी चाह लेते थे। इसके अलावा उनकी अपनी पसन्दगी-नापसन्दगी भी रहती थी। पर यह भेद कभी भी जाति धर्म, पंथ, पक्ष या ऐसे किसी ओछे या संकुचित खयाल से वे नहीं करते थे। हर 'प्रगतिशील' और समाजहित के काम के लिए सदा उनका हाथ खुला रहता था—चाहे लेनेवाला इस सम्प्रदाय का हो या उसका, इस धर्म का हो या उसका, कम्युनिस्ट हो या कांग्रेसी वैज्ञानिक हो अथवा संत-महात्मा।

किसी प्रलोभन से किसी दबाव से या किसी मोह से देते हुए, उन्हें न कभी मैंने जाना न सुना, न दान के जरिये अपना महत्त्व या प्रभाव जमाने की कोशिश कभी उन्होंने की। देना उनका सहज स्वभाव था। इतनी सहजता और उदारता से देते थे कि सामनेवाला भी कभी-कभी हैरान हो जाता था। गिड़गिड़ाने या खुशामद करने से वे देते होंगे इसमें मुझे शक है, क्योंकि वे स्वयं निर्भय, स्वतंत्र और मुक्त वृत्ति के थे।

यह सब तो उनके 'दानी' व्यक्तित्व के गुण थे। पर वे केवल 'दानी' नहीं थे। उनके खुद के अन्तर में समाज-सुधार की एक अजीब तड़प थी। पोंगापंथी, गुरुडम, सत्ता-सम्पत्ति या धर्म के मठों आदि में उनका विश्वास नहीं था। वे इन सबकी खुलकर आलोचना करते थे, जो अक्सर 'सेठों' में नहीं होता। पर दरअसल वे उस माने में सेठ या पैसेवाले थे ही नहीं। न पैसे का उनको मोह था न पैसे को वे अपने निजी मौज-शौक की चीज मानते थे। पैसा उनके पास आता था और जाता था।

कलकत्ते के सट्टा-बाजार के वे 'बादशाह' माने जाते थे। बातों बातों में लाखों का वारा-न्यारा करते थे। सट्टा बाजार पर उनकी धाक थी। सट्टा खेलना भी उनका स्वभाव ही बन गया था। कई बार उन्होंने सोचा और कहा भी कि अब बहुत हो चुका, अब वे सट्टा खेलना छोड़ देंगे, कलकत्ता छोड़कर वे एक बार चले भी

गये थे। लेकिन स्वभाव का वेग उन्हें फिर वहीं खींच ले गया, और फिर सट्टा-बाजार का धन बिखरकर उनके पास आने लगा।

समाज-सुधार के लिए वे केवल धन ही नहीं देते थे, स्वयं उसके प्रचारक भी थे। सभाओं में बेधड़क होकर बोलते थे।

इस प्रकार उदारता, सहज दानशीलता, सुधारप्रियता, निर्भयता और अन्तर की सरलता का एक विलक्षण मिश्रण सेठ सोहनलालजी दुगड़ के व्यक्तित्व में था। उनके निधन से जो स्थान रिक्त हुआ है उसकी पूर्ति मुश्किल है। उनका स्मरण बहुतों को प्रेरणा देता रहेगा।

—सिद्धराज ढड्ढा

महिला लोकयात्रा

१५ अक्तूबर '६७ को कस्तूरबाग्राम, इंदौर से आरम्भ हुई लोकयात्रा का २० अक्तूबर '६८ से हरियाणा में कार्यक्रम शुरू हुआ। लगभग २ हजार मील की पदयात्रा द्वारा मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश के कई क्षेत्रों में महिला-जागरण का संदेश देती हुई लोकयात्री बहनों का कार्यक्रम अब हरियाणा में शुरू हुआ है। स्मरणीय है कि विनोबाजी की प्रेरणा से १२ वर्ष तक लगातार यात्रा करते रहने का संकल्प लेकर यह कार्यक्रम शुरू हुआ है। लोकयात्री बहनों से सम्पर्क का पता :

मा० गांधी स्मारक निधि, पट्टीकल्याणा,
जिला : करनाल, हरियाणा

क्षेत्रीय महिला शिविर

राष्ट्रीय बापू जन्म-शताब्दी की महिला बाल उपसमिति की ओर से १० अक्तूबर ६७ से १७ अक्तूबर '६८ तक सेवापुरी, वाराणसी में एक क्षेत्रीय महिला शिविर का आयोजन किया गया। इसमें बहनों ने लगातार आठ दिन साथ बैठकर विचार-विमर्श किया कि समिति के द्वारा लिये गये कार्यक्रमों के कार्यान्वयन को किस प्रकार गतिशील कराया जाय तथा नयी पीढ़ी की बहनों को इस कार्य के लिए कैसे प्रेरित किया जाय। इस शिविर में उत्तर प्रदेश की ०८, म० प्र० की १२ तथा बिहार की ७ बहनों के अतिरिक्त १२ बहनों ने अतिथि के रूप में भाग लिया। —संतोष निगम

श्रद्धा, विश्वास और भगवान के बल पर प्रदेशदान होकर रहेगा

प्रान्त की सब रचनात्मक संस्थाएँ अपनी कार्यकर्ता-शक्ति का दसवाँ भाग प्रान्तदान आन्दोलन के लिए निकालें

प्रान्तदान अभियान के संयोजन हेतु बुलायी गयी सभा का निवेदन

जयपुर, २८ अक्तूबर। राजस्थान प्रान्तदान अभियान के संयोजक श्री गोकुलभाई भट्ट के आवाहन पर २७ अक्तूबर को प्रान्त की कुछ रचनात्मक संस्थाओं के संचालकों व प्रमुख लोगों की एक सभा स्थानीय 'किशोर-निवास' में हुई। इस सभा में विनोबाजी के प्रदेशदान आवाहन का कार्यकर्ताओं ने स्वागत करते हुए कार्य के प्रारम्भ के तौर पर राजस्थान की रचनात्मक संस्थाओं से अपनी वर्तमान कार्यकर्ता-शक्ति का दसवां हिस्सा इस अभियान के निमित्त निकालने का निवेदन करने पर जोर दिया।

सभा के प्रारम्भ में श्री गोकुलभाई ने अपने प्रेरणादायी भाषण में कहा कि शराबबन्दी के काम से हम सब जुटे तो उससे हमारा बल भी बढ़ा और सरकार को भी इस निमित्त कुछ करने की प्रेरणा मिली। जब यह आन्दोलन शुरू हुआ था तो मुझे लगा कि इस निमित्त हमारी कसौटी का मौका आयेगा। इसमें बहुत ज्यादा तो हमारी कसौटी नहीं हुई और भगवान की कृपा से जल्दी ही हमें थोड़ी-बहुत सफलता भी मिल गयी। आज प्रदेशदान की जिम्मेदारी उठाते हुए भी मैं ऐसा ही महसूस कर रहा हूँ। आप लोगों का मेरे लिए जो स्नेह व आदर है, उसीके बल पर यह मैंने स्वीकार किया है।

आपने कहा कि जब हम आज तक जिलादान तो क्या, प्रखंडदान तक में भी कामयाब नहीं हुए तो प्रान्तदान की बात हास्यास्पद-सी लग सकती है, पर यदि श्रद्धा व विश्वास के बल पर हमने पूरी शक्ति से यह काम उठाया तो भगवान की मदद से यह अवश्य पूरा होनेवाला है।

आपने कहा कि जब देश गुलाम था तब मैंने जब तक देश गुलाम रहे तब तक अन्न न ग्रहण करने का प्रण किया था। सन् १९४७ में हमें जो आजादी मिली उससे मेरे मन में सन्तोष नहीं हुआ। मैंने अपनी पीड़ा गांधीजी को लिखी व उनसे पूछा कि ऐसी स्थिति में मैं अन्न चालू करूं या नहीं तो बापू ने मुझसे सहमति प्रकट करते हुए कहा कि अभी सच्चे हिन्द स्वराज्य के लिए काम करना बाकी है, पर अन्न चालू करना या नहीं वह मेरे पर छोड़ दिया। उस समय मैंने जब तक बापू की कल्पना का ग्रामस्वराज्य न हो जाये तब तक एक समय ही अन्न ग्रहण करने का निर्णय लिया। बापू का लक्ष्य आज भी अधूरा है और मेरा एक ही समय अन्न लेने का क्रम जारी है।

आपने कहा कि विनोबाजी के भूदान आन्दोलन से मुझे पूरा सन्तोष नहीं हुआ, पर ग्रामदान की बात आने पर लगा कि ग्रामदान के द्वारा गांव की शक्ति जाग्रत व संगठित की जा सकती है और गांव की भूमि की सारी व्यवस्था ग्रामसभा के हाथ में देकर हमारे देहात ग्राम-स्वराज्य की ओर उन्मुख हो सकते हैं। आज की हमारी ग्राम-समस्याओं का हल ग्रामदान आन्दोलन में निहित है। अतः मुझे स्पष्ट लग रहा है कि बापू के ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के लिए विनोबा के आवाहन को स्वीकार किये बिना कोई चारा नहीं।

आपने कहा कि यह ठीक है कि इस समय हम अकाल-सहायता या शराबबन्दी के काम को भी नहीं छोड़ सकते, पर ये सब बातें तो इसके साथ अपने आप सधनेवाली हैं। ग्रामवाले अपने हाथ में गाँव की व्यवस्था उठा लेते हैं तो ये बहुत-सी बातें तो अपने आप समाप्त हो जानेवाली हैं।

प्रदेशदान की व्यूह-रचना की दृष्टि से कई लोगों ने अपने सुझाव इस सभा में रखे, जिनमें सर्वश्री सिद्धराज ढड्ढा, गोवर्द्धन पन्त, रामेश्वर अग्रवाल, भूरेलाल बया, बद्रीप्रसाद स्वामी, लक्ष्मीचन्द भंडारी, छोटमल गोयल, मोगीलाल पंड्या, त्रिलोकचन्द व राधाकृष्ण बजाज प्रमुख थे।

राजस्थान प्रदेशदान-अभियान कोष

जयपुर, २८ अक्तूबर। राजस्थान प्रदेशदान अभियान के सम्बन्ध में राजस्थान की विभिन्न रचनात्मक संस्थाओं के संचालकों व अन्य प्रमुख लोगों की सभा श्री गोकुलभाई भट्ट के आवाहन पर गत २७ अक्तूबर को स्थानीय 'किशोर निवास' में हुई। इस सभा में श्री सिद्धराज ढड्ढा ने अपील की कि हमने प्रान्तदान जैसा बड़ा काम उठाने का निर्णय किया है तो उसके लिए काफी कार्यकर्ता-शक्ति व अर्थ की आवश्यकता होगी। अतः प्रदेशदान अभियान कोष की तत्काल स्थापना हम सबको अपने अंशदान देकर कर देनी चाहिए। •

उत्तर प्रदेशीय ग्रामदान-प्राप्ति समिति की बैठक

आगामी १६ और १७ नवम्बर '६८ को स्वराज्य आश्रम, सर्वोदयनगर, कानपुर के प्रांगण में प्रदेशीय प्रतिनिधियों की एक महत्त्वपूर्ण बैठक होने जा रही है। समिति के संयोजक श्री कपिलभाई ने प्राप्ति समिति के सदस्यों तथा प्रमुख रचनात्मक कार्यकर्ताओं के नाम लिखे एक पत्र में कहा है कि प्रदेश में एक लाख दस हजार गाँव हैं। प्रदेशदान का संकल्प २ अक्तूबर '६९ तक पूरा करने के लिए हर जिले के लोग जिलादान प्राप्ति के लिए एक सुव्यवस्थित योजना बनाकर लायें, ताकि बैठक में प्रदेशदान की व्यूह-रचना की जा सके।

आन्दोलन के समाचार

टीकमगढ़ के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण अध्याय जुड़ा

टीकमगढ़ : ६ नवम्बर '६८ को श्री जयप्रकाश नारायण की उपस्थिति में आयोजित हो रहे जिलादान-समर्पण समारोह के सिलसिले में जिले की लगभग सभी प्रमुख संस्थाओं और राजनीतिक दलों ने जनता से अपील की है कि—"लोकक्रान्ति के सन्दर्भ में मध्यप्रदेश का प्रथम जिलादान घोषित करने का सौभाग्य टीकमगढ़ को प्राप्त हुआ है। जिले में अहिंसक समाज-रचना के लिए अपनी सामूहिक अभिव्यक्ति जिलादान के रूप में हम सबने व्यक्त की है, और हम सब इस युग परिवर्तन की प्रक्रिया में अपना सहयोग और शक्ति लगाकर समाज परिवर्तन के महान संकल्प को पूरा करेंगे। आइये, संकल्पपूर्वक इस आयोजन को हम सफल बनायें।"

मध्यप्रदेश-दान की दिशा में

मध्यप्रदेश सर्वोदय मण्डल के मंत्री श्री महेन्द्र दुबे ने समस्त गांधी-शताब्दी समितियों, सर्वोदय मण्डलों और रचनात्मक संस्थाओं के नाम एक अपील प्रसारित करते हुए कहा है कि पू० विनोबाजी ने १५ से २१ नवम्बर '६८ तक का समय सरगुजा (मध्यप्रदेश) में दिया है। इस अवसर पर १७ व १८ नवम्बर '६८ को अम्बिकापुर में प्रदेश के रचनात्मक कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन आयोजित किया गया है।

उक्त सम्मेलन में अधिकाधिक संख्या में भाग लेने का निवेदन करते हुए श्री दुबे ने कहा है कि—मध्यप्रदेश के ग्वालियर सर्वोदय सम्मेलन में यह निर्णय किया गया था कि गांधी-शताब्दी वर्ष में ग्रामदान द्वारा ग्रामस्वराज्य का सन्देश प्रदेश के सभी गाँवों में पहुँचाया जायगा। इस दिशा में नम्र प्रयास हुआ है और अभी तक लगभग १५,००० गाँवों में पदयात्राएँ हो चुकी हैं, जिसके परिणामस्वरूप अब तक १ जिलादान, ६ तहसीलदान, १६ प्रखण्डदान और ४,००० ग्रामदान हुए हैं। इस समय प० निमाड़ जिले में अभियान चल रहा है और पूरा प्रयास किया जा रहा है कि २४ नवम्बर '६८ को प० निमाड़ जिलादान में आ जाय। पू० बाबा के म० प्र० आगमन पर यह जिलादान भेंट करने के लिए कार्यकर्ता साथी अथक परिश्रम कर रहे हैं। प्रदेशदान का संकल्प प्रदेश के समस्त रचनात्मक, राजनैतिक, शैक्षणिक तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा संस्थाओं का, और ग्रामीण, मजदूर, उद्योगपति, शासकीय-अर्धशासकीय सभी सेवकों का संकल्प बन सके—इसके लिए पूर्व-तैयारी की आवश्यकता है। अतः हमारा आपसे सादर निवेदन है कि—

(१) आप अपने जिले की शताब्दी समिति, समस्त रचनात्मक संस्थाओं, सर्वोदय मण्डल तथा सभी मित्रों से सलाह-मशविरा कर संकल्प तथा संकल्प-पूर्ति की सम्भावित तारीख का निश्चय कर लें,

(२) जिलादान के लिए निधि-संग्रह का भी लक्ष्यांक निश्चित कर लें। तथा,

(३) "प्रदेशदान" के लिए अपने संकल्प और सम्मति के प्रतीक रूप में कम से कम पच्चीस क्विंटल अनाज अथवा दो हजार रुपये अपने जिले से पूज्य श्री विनोबाजी को भेंट करने का प्रयत्न करें।

विनोबाजी मध्यप्रदेश में

प्राप्त जानकारी के अनुसार विनोबाजी ने अपनी सरगुजा-यात्रा की अवधि तीन दिन के बजाय सप्ताह भर कर दी है। इसके अनुसार वे १५ से २१ नवम्बर तक सरगुजा जिले में पड़ाव करेंगे। बाबा १५ नवम्बर को रामानुजगंज में रहेंगे। यहाँ बाबा के सान्निध्य में प्रादेशिक सर्वोदय मण्डल की कार्यकारिणी समिति की बैठक आयोजित की गयी है। १७, १८, १९ नवम्बर को बाबा का पड़ाव जिले के मुख्यालय अम्बिकापुर में रहेगा।

ग्रामदान : समाज-परिवर्तन की बुनियाद

टीकमगढ़ जिलादान-समर्पण-समारोह सम्पन्न

६ नवम्बर, '६८। पिछले १५ अगस्त, '६८ को ही जिलादान की मंजिल पूरी कर लेनेवाले मध्यप्रदेश के प्रथम जिला टीकमगढ़ में आयोजित आज के समर्पण-समारोह के अवसर पर पूरे नगर में दिनभर अत्यन्त व्यस्तता और उत्सुकतापूर्ण उत्फुल्लता का वातावरण बना रहा। बाहर से टीकमगढ़ नगर का सम्बन्ध जोड़नेवाली प्रायः हर सड़क पर सुन्दर स्वागत-द्वार बने हुए थे। शिक्षण संस्थाओं में तो ऐसा लगता था कि जैसे कोई उत्सव मनाया जा रहा हो। बुनियादी प्रशिक्षण महाविद्यालय कुण्डेश्वर से लेकर गर्ल्स कालेज तक सब जगह भरपूर चहल पहल दिखाई दे रही थी।

सुबह झांसी से जब समारोह के मुख्य अतिथि श्री जयप्रकाश नारायण टीकमगढ़ के लिए रवाना हुए तो मध्यप्रदेश के टीकमगढ़ जिले की सरहद पर जिले के जिलाधीश ने उनकी अगवानी की। मार्ग में पड़नेवाले सभी विद्यालयों ने जे०पी० का हार्दिक स्वागत किया और 'ग्राम स्वराज्य सफल करेंगे, 'जयप्रकाश जिन्दाबाद' के नारे लगाये। टीकमगढ़ में विश्रामगृह पहुंचने पर म०प्र० विधानसभा के अध्यक्ष और प्रमुख राजनीतिक दलों के नेताओं तथा नगर के प्रमुख नागरिकों ने जे०पी० का स्वागत किया।

टीकमगढ़ से तीन मील की दूरी पर स्थित सुप्रसिद्ध जैन मंदिर के वार्षिक समारोह में श्री जयप्रकाश नारायण का स्वागत करते हुए स्थानीय जैन समाज की ओर से टीकमगढ़ में ग्रामदान-पुष्टि-कार्य के लिए एक हजार रुपये की थैली भेंट की गयी। इस स्वागत-समारोह में भाषण करते हुए जे०पी० ने कहा कि ग्रामदान के इस देशव्यापी कार्यक्रम में जैन समाज को विशेष रूप से सहयोग देना चाहिए, क्योंकि भगवान महावीर ने अहिंसा और अपरिग्रह के सिद्धान्तों पर आचरण का उपदेश किया था, और ग्रामदान द्वारा इन्हीं दो मूलभूत सिद्धान्तों की बुनियाद पर समाज की नयी रचना का क्रान्तिकारी प्रयास किया जा रहा है। आपने कहा कि जबतक हिंसा और परिग्रह की बुनियाद पर आधारित आज की समाज-रचना नहीं बदलेगी तब तक भगवान महावीर के सिद्धान्तों का समाज नहीं बनेगा, सच्चे जैनधर्म का विकास नहीं हो सकेगा।

सायंकाल चार बजे कन्या माध्यमिक विद्यालय में आयोजित कार्यकर्ता गोष्ठी में जे० पी० ने सक्षम कार्यकर्ताओं के अभाव की समस्या का समाधान सुझाते हुए कहा कि एक ही रास्ता दीखता है कि गांव के लोग ही इस काम को उठा लें। आपने ग्राम-शान्तिसेना के संगठन और प्रशिक्षण को इस दिशा में बढ़ने के लिए व्यावहारिक और कारगर कदम बताया। जिलादान के बाद के कार्यक्रम की चर्चा करते हुए आपने कहा कि कम-से-कम ग्रामसभा का संगठन, बीघाकट्ठा का वितरण, ग्रामकोष का संग्रह और जो लोग ग्रामदान में अबतक शामिल नहीं हुए हैं उन्हें शरीक करने के प्राथमिक काम जल्द-से-जल्द होने चाहिए। ग्राम-स्वराज्य की राजनीतिक रचना का संकेत देते हुए जे० पी० ने कहा कि ग्रामसभा की बुनियाद पर प्रखण्ड, जिला, प्रान्त और देश के स्तर की एक समानान्तर रचना खड़ी करने की शक्ति हमें पैदा करनी है।

कन्या विद्यालय में एक महिला सम्मेलन का आयोजन किया गया था जिसमें लगभग ५०० महिलाओं ने भाग लिया। सम्मेलन में श्रीमती प्रभावती और सुश्री निर्मला देशपाण्डे ने मार्गदर्शन किया। जे० पी० ने बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में महिलाओं के महत्त्वपूर्ण योगदान की याद दिलाते हुए ग्राम स्वराज्य के इस अभियान में उनसे सक्रिय होने की अपील की।

सायंकाल स्थानीय राजेन्द्र पार्क में जिलादान-समर्पण-समारोह हजारों नगर-वासियों और ग्रामदानी गाँवों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। जिले के कुल ६ प्रखण्डों के दान-पत्र प्रखण्ड के प्रतिनिधियों ने जे० पी० को समर्पित किये और उसके बाद सबने जे० पी० के साथ ग्राम-स्वराज्य की स्थापना का सामूहिक संकल्प दुहराया।

जिले में प्राप्त ग्रामदान की स्थिति :

प्रखण्ड	कुल ग्राम	ग्रामदान में
१. टीकमगढ़	१०८	१६७
२. बलदेवगढ़	१६६	१३८
३. जतारा	२०२	१२१
४. नेवाड़ी	१५४	१०४
५. पृथ्वीपुर	१५०	११७
६. पलेरा	१५३	११३

आबाद गाँव ८०१ : गैरचिरागी गाँव १३१ : ग्रामदान में शामिल गाँव ७७०।

दो घंटे से भी अधिक समय के अपने लम्बे भाषण में जे० पी० ने आज के राष्ट्रीय और जागतिक संदर्भ में ग्रामदान को सारी उलझनों और समस्याओं को सुलझाने और हल करने की कुंजी बताते हुए हाल ही में मध्य-प्रदेश गांधी शताब्दी-समिति द्वारा घोषित 'प्रदेशदान' के संकल्प को गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष में पूरा करके उनके हिन्द स्वराज्य [illegible] सपने को साकार करने की दिशा में तीव्र[illegible] से आगे बढ़ने की अपील की। आपने कहा [illegible] कोई नेता या शासक हमारा उद्धार कर देगा यह मनोवृत्ति बड़ी घातक है। नेताओं [illegible] शासकों के पास समस्याओं को हल करने [illegible] कोई शक्ति नहीं है, अब तो एक-मात्र शक्ति जनता के पास ही है। आपने बड़े ही दर्द के साथ अपनी हाल की विदेश-यात्राओं के अनुभव सुनाते हुए कहा कि अगर भारत की खोई हुई इज्जत और गिरी हुई हालत सुधारनी है तो नेताओं और सरकारों की ओर से नजर फेरनी होगी और जनता को खुद कन्धे-से-कन्धा मिला-कर आगे बढ़ना होगा। अन्त में आपने नगरों में भी काम शुरू करने के लिए आचार्यकुल और तरुण शान्तिसेना के कार्यक्रम की ओर ध्यान आकृष्ट किया। —शाही

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ७

सोमवार १८ नवम्बर, '६८

अन्य पृष्ठों पर

अन्य स्तम्भ

परिशिष्ट

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी–१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४४२८५

दण्ड का औचित्य (?)

मैं स्वयं झूठ बोलूँ और अपने शिष्यों को सच्चा बनाने का प्रयत्न करूँ, तो वह व्यर्थ ही होगा। डरपोक शिक्षक शिष्यों को वीरता नहीं सिखा सकता। व्यभिचारी शिक्षक शिष्यों को संयम किस प्रकार सिखायेगा? मैंने देखा कि मुझे अपने पास रहनेवाले युवकों और युवतियों के सम्मुख पदार्थपाठ-सा बनकर रहना चाहिए। इस कारण मेरे शिष्य मेरे शिक्षक बने। मैंने यह समझा कि मुझे अपने लिए नहीं, बल्कि उनके लिए अच्छा बनना और रहना चाहिए। अतएव कहा जा सकता है कि टालस्टाय आश्रम का मेरा अधिकतर संयम इन युवकों और युवतियों की बदौलत था।

आश्रम में एक युवक ऊधम मचाता था, झूठ बोलता था, किसीसे दबता नहीं था और दूसरों के साथ लड़ता-झगड़ता रहता था। एक दिन उसने बहुत ही ऊधम मचाया। मैं घबरा उठा। मैं विद्यार्थियों को कभी सजा नहीं देता था। पर इस बार मुझे बहुत क्रोध हो आया। मैं उसके पास पहुँचा। समझाने पर वह किसी प्रकार समझता ही न था। उसने मुझे धोखा देने का भी प्रयत्न किया। मैंने अपने पास पड़ा हुआ रूल उठाकर उसकी बाँह पर दे मारा। मारते समय मैं काँप रहा था। इसे उसने देख लिया होगा। मेरी ओर से ऐसा अनुभव किसी विद्यार्थी को इससे पहले नहीं हुआ था। विद्यार्थी रो पड़ा। उसने मुझसे माफी माँगी। उसे डंडा लगा और चोट पहुँची, इससे वह नहीं रोया था। अगर वह मेरा मुकाबला करना चाहता, तो मुझसे निबट सकने की शक्ति उसमें थी। उसकी उमर कोई सत्रह साल की रही होगी। उसका शरीर सुगठित था। परन्तु मेरे रूल में उसे मेरे दुःख का दर्शन हो गया। इस घटना के बाद उसने फिर कभी मेरा सामना नहीं किया। लेकिन उसे रूल मारने का पछतावा मेरे दिल में आज तक बना हुआ है। मुझे भय है कि उसे मारकर मैंने आत्मा का नहीं, बल्कि अपनी पशुता का ही दर्शन कराया था।

बालकों को मारपीट कर पढ़ाने का मैं हमेशा विरोधी रहा हूँ। रूल से (उस युवक को) पीटने में मैंने उचित कार्य किया या नहीं, इसका निर्णय मैं आज तक कर नहीं सका हूँ। इस दण्ड के औचित्य के विषय में मुझे शंका है, क्योंकि उसमें क्रोध भरा था और दण्ड देने की भावना थी। यदि उसमें केवल मेरे दुःख का ही प्रदर्शन होता, तो मैं उस दण्ड को उचित समझता। पर उसमें विद्यमान् भावना मिश्र थी।

उसके बाद युवकों द्वारा ऐसे ही दोष हुए, लेकिन मैंने फिर कभी दण्डनीति का उपयोग नहीं किया। इस प्रकार लड़के-लड़कियों को आत्मिक ज्ञान देने के प्रयत्न में मैं स्वयं आत्मा के गुण को अधिक समझने लगा। —मो॰ क॰ गांधी

: १, पृष्ठ : २९७

निक्सन : घोषणा का भविष्य ?

जो करोड़ों लोगों का विश्वास प्राप्त कर सके वह आदर और बधाई का पात्र तो है ही। जब पड़ोसी को पड़ोसी पर, जाति को जाति पर, और देश को देश पर विश्वास न हो, तो यह बड़ी बात है कि कुछ देशों ने अब भी विश्वास-प्राप्ति की लोकतांत्रिक पद्धति कायम रखी है। रिचर्ड निक्सन इस पद्धति से गुजरकर अमेरिका के राष्ट्रपति चुने गये हैं। उन्हें चार वर्षों तक अपने बड़े राष्ट्र के जीवन का उत्तरदायित्व निभाना है। निक्सन पर अपने देश का ही नहीं, बहुत कुछ सारी दुनिया का सुख और शान्ति निर्भर है। दुनिया के इतिहास में अगले दस वर्ष असाधारण महत्त्व के हैं। अगर अगले दस वर्षों तक दुनिया युद्ध के सर्वनाश से बच सकी, और अपनी असाधारण गति से बढ़ती हुई जन-संख्या के लिए भरपेट अन्न का प्रबंध कर सकी, तो निश्चित ही सभ्यता नया मोड़ ले सकेगी। यह बहुत बड़ी जिम्मेदारी है, और बहुत बड़ा अवसर है; अवसर दुनिया के सबसे अधिक समृद्धशाली देश अमेरिका, और उसके सर्वश्रेष्ठ पदाधिकारी राष्ट्रपति निक्सन के लिए।

निक्सन की पार्टी बड़े व्यवसायियों की पार्टी है, 'कन्जरवेटिव' है। अमेरिका में कन्जरवेटिव की विजय हुई है। उसी तरह इस वक्त रूस में शक्ति उदारवादियों के हाथ में न रहकर स्टालिनवादियों के हाथ में है। फ्रांस में तो दगाल हैं ही, इंग्लैंड का भी मन लेबर पार्टी से खट्टा होता जा रहा है। एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका में तो अलग अलग नामों से फासिस्टवादियों का बोलबाला है ही। जहाँ एक ओर यह हुआ है, वहाँ दूसरी ओर युवकों में आज सामाजिक ढाँचे (इस्टैब्लिशमेंट) से असंतोष बढ़ता जा रहा है, और कभी-कभी ऐसा दिखाई देता है कि नयी और पुरानी पीढ़ियों का संघर्ष शायद सारे दूसरे संघर्षों से अधिक भयंकर होगा।

इतिहास के ऐसे सन्दर्भ में निक्सन की यह घोषणा बड़े महत्त्व की है कि उनकी सरकार का दरवाजा दलबन्दी का भेदभाव छोड़कर नये लोगों और नये विचारों के लिए खुला रहेगा। वास्तव में राजनीतिक दलवाद अपने में एक जबरदस्त प्रतिक्रियावादी शक्ति बन गया है। अब मनुष्यों द्वारा मनुष्य-समाज की व्यवस्था होनी चाहिए, न कि दलों, डिक्टेटरों, जातियों और सम्प्रदायों द्वारा। रिपब्लिकन राष्ट्रपति, डेमोक्रेटिक कांग्रेस, और दोनों की मिली जुली सरकार : अमेरिका का यह नमूना भारत के लिए अनुकरणीय हो सकता है।

निक्सन ऐसे समय राष्ट्रपति हुए हैं जब अमेरिकी समाज में गंभीर दरारें पड़ चुकी हैं, और वह देख चुका है कि भौतिक वैभव एक सीमा के आगे सुख और शान्ति का साधन नहीं है। इतना ही नहीं, अगर वैभव के साथ दूसरे तत्त्व न जोड़े गये, तो वह स्वयं विनाशकारी तत्त्व बन जाता है। काले और गोरे, नये और पुराने, हिंसा और शान्ति, गरीबी और अमीरी आदि के सवाल अमेरिका में गंभीर हो गये हैं। ये प्रश्न राजनीतिक स्तर पर कदापि हल नहीं होंगे। अगर हल होंगे तो मानवीय स्तर पर। नीग्रो लोगों ने निक्सन को वोट नहीं दिया है। वैलेस जैसे वर्णवादी को भी १४ प्रतिशत वोट मिल गये हैं ! ऐसी हालत में निक्सन को नये सिरे से पूरे राष्ट्र का विश्वास प्राप्त करना पड़ेगा। वे किन मानवीय गुणों से ऐसा करते हैं, इस पर विश्वशान्ति की दिशा में उनकी सफलता निर्भर करेगी। जरूरत इस बात की है कि अमेरिका के गोरे अपने कालों का विश्वास प्राप्त करें, और अमेरिका साम्यवाद का भय छोड़कर आत्मविश्वास प्राप्त करे। विश्वास के बिना अमेरिका स्वयं वर्ण-संघर्ष का शिकार होगा, और दुनिया में तनाव और युद्ध का कारण बनेगा। उसकी अपनी भयमुक्ति बहुत कुछ दुनिया को भयमुक्त कर सकेगी। निक्सन के नेतृत्व में अमेरिका के अगले चार वर्षों का इतिहास इस विश्वास और आत्मविश्वास का प्रयोग होगा। हमारी हार्दिक शुभकामना निक्सन के साथ है।

इस वादे को क्या समझें ?

अगर गोवा में हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की बैठक ने नशाबन्दी के प्रस्ताव को साफ-साफ अस्वीकार कर दिया होता तो उसे कम-से-कम ईमानदारी का यश मिल जाता। लेकिन उसने अस्वीकार भी नहीं किया, और स्वीकार भी किया तो इस तरह कि अस्वीकार करने से अधिक कुछ हुआ नहीं। गांधी का भूत कांग्रेस को रह-रहकर सताता रहता है। कांग्रेस अन्दर से चाहे भी कि किसी तरह भूत से जी छूट जाय, तो छूटे कैसे ? भूत मामूली नहीं है !

सात साल में नशाबन्दी होगी, लेकिन योजना बनेगी मुख्यमंत्रियों के साथ बैठकर। नशाबन्दी को लेकर कांग्रेस की राजनीति कहाँ तक जा चुकी है, इसे हर एक जानता है, और कांग्रेस को लेकर देश की राजनीति कहाँ पहुँच चुकी है, इसे भी हरएक जानता है। सात वर्षों में ८४ महीने होते हैं, और महीने में ३० दिन। क्या इतने दिन इस देश की आत्मा इसी तरह पड़ी सोती रहेगी, और उसके साथ खिलवाड़ होता रहेगा ?

नशाबन्दी किसे चाहिए—गांधी को या इस देश की जनता को या यहाँ की सरकारों को ? और, इस देश में भी किसको ? गांधी, जो हाड़-माँस का आदमी था, उसे जो करना था वह कर गया, जो लेना था ले गया। अब जो कुछ करना हो इस देश की जनता को सामने रखकर करना चाहिए—करोड़ों की संख्या में गरीब, पीड़ित, और पसीना बहानेवाली जनता को। बावजूद सारे दलों और नेताओं के अगर अपनी मौत के इक्कीस वर्ष बाद आज भी गांधी उस जनता का प्रतीक और प्रतिनिधि बना हुआ है तो इसमें उसका क्या दोष है ? क्या आज तक कोई भी यह सिद्ध कर सका है कि उस जनता को 'सरकारी' शराब की जरूरत है ? सरकार को शराब टैक्स के लिए चाहिए, लेकिन क्या यह बात मानने लायक है कि जनता को शराब पिलाकर बरबाद करने का अधिकार जनता के वोट से बनी किसी सरकार को है ? इस देश की जनता खुद जितना

अस्वस्थ चित्त, अशान्ति की परिस्थिति और पुलिस की जिम्मेदारी

• विनोबा

आजादी के बाद बीस साल हो गये। लोगों में चित्त की स्वस्थता दीखती नहीं। उसमें कई कारण मिल गये हैं। देश बड़ा है। अनेक भाषाएँ, अनेक धर्म, जाति देश में हैं। फिर इसमें अनेक पक्ष भी शामिल हुए हैं—राजनैतिक पक्ष। परिणामस्वरूप देश में जगह-जगह समस्याएँ खड़ी हैं। जगह-जगह किसी-न किसी निमित्त से दंगे हुआ करते हैं। दंगे के लिए सिर्फ बाहर का कोई निमित्त होता है, इतनी ही बात नहीं। इसका मूल कारण तो यह है कि हमारे चित्त में समाधान नहीं है। जहाँ चित्त में असमाधान होगा वहाँ उसका कभी-न कभी स्फोट होगा। यह बिलकुल स्वाभाविक है। ऐसी हालत में पुलिस का काम बहुत महत्व का भी हो जाता है और कठिन भी। ऐसा कठिन कार्य करनेवाली यह जमात है। उस लिहाज से उनको क्या वृत्ति रखनी होगी, इसबारे में हमारे विचार हम सामने रखेंगे।

बाबा का काम बड़ा आसान है। अगर कोई मारता-पीटता है तो हमने तय कर लिया है मार खाने का, मारने का नहीं। तो इस प्रकार से हम अगर मार खाते हैं तो वह हमारी मर्जी की बात है। उस पर कोई 'जुडिशियरी' (तहकीकात) नहीं हो सकती। हमारे खिलाफ उस सम्बन्ध में कोई तहकीकात नहीं होगी और हमें कोई पूछेगा नहीं कि मार क्यों खाया। वह हमारे हाथ की बात है। हम मार खायेंगे और कभी मारेंगे नहीं, भले मर भी जायेंगे।

फिर मिलीटरी का काम भी बड़ा आसान है, क्योंकि उनको मारने का हक होता है। उनको हुक्म रहता है 'शूट' करने का। उनकी भी तहकीकात नहीं होती। वे अगर शूट करते हैं तो वहाँ 'जुडिशियरी ऐक्शन' का सवाल नहीं आयेगा। बहुत विशेष प्रसंग हो तो मालूम नहीं ऐसा सवाल आ सकता है और उसकी विशेष तहकीकात हो सकती है। लेकिन सामान्यतया यह सवाल पैदा नहीं होता, उनको मारने का अधिकार है। तो हमारे जैसे का, जिसने अहिंसा का व्रत लिया है और परिणाम को न देखते हुए हमारा फर्ज है न मारने का, उसका काम आसान है और मिलीटरीवालों का, जिनको मारने का अधिकार है।

पुलिसवालों का काम बहुत कठिन है। प्रथम तो उनको शांति का काम करना होगा, दंगे न हों इसलिए गाँववालों से परिचय रखना होगा। साथ साथ प्रेम से बरतना होगा। गाँव में अन्दर-अन्दर बात चल रही है, उसको जान लेना, गाँववालों को सावधान करना, यह जो शान्ति-सैनिक का काम है वह उनको करना पड़ता है। अगर उतने से नहीं निभा और अशान्ति फूट पड़ी तो

शराब पीना नहीं चाहती उससे कहीं ज्यादा उसे योजनापूर्वक शराब पीना सिखाया जा रहा है। कौन सिखा रहा है? वह सरकार जो हमारे वोट से बनती है, और हमारे टैक्स से चलती है! इससे भी ज्यादा कांग्रेस की सरकार जिसके पास देशप्रेम का सबसे बड़ा प्रमाण है—गांधी का नाम!

डा० सुशीला नैयर के प्रस्ताव में वर्किंग कमिटी की ओर से संशोधन पेश करते हुए भूतपूर्व खाद्यमंत्री और मद्रास कांग्रेस के वर्तमान अध्यक्ष सुब्रमण्यमजी ने कहा कि इस देश में पूर्ण नशाबन्दी कभी नहीं हो सकती। बिलकुल ठीक! इस दुनिया में कौनसी अच्छी चीज कभी पूर्ण होगी? लेकिन क्या अपूर्णता की आड़ में कभी किसी सरकार को यह अधिकार भी होगा कि वह अच्छाई की ओर बढ़नेवाले समाज को खींचकर बुराई के गड्ढे में ढकेल दे? इतना मान लेने में किसीको क्या कठिनाई है कि सरकार खुद शराब और नशे का व्यापार न करे? क्या कठिनाई यह है कि खाने का जायका मिल गया है? या, यह है कि ठीकेदारों का पैसा राजनीति के बजट की एक बहुत बड़ी मद है? या, सबसे ज्यादा यह है कि सत्ता के नशे में जनता के हित और देश के भविष्य का ध्यान ही नहीं रह गया है? अगर एक बार सरकार व्यसन के व्यापार से हट जाय तो सुधारक इस प्रश्न का उत्तर दे लेगा कि नशा स्वास्थ्य के लिए कितना घातक है, या कितना नैतिक-अनैतिक है। देश के घर घर में भट्ठियाँ खुल जायें उसे वह शायद कबूल होगा, लेकिन एक भी 'सरकारी' दुकान चले, यह मान्य नहीं होगा। इस प्रसंग में विदेशी पर्यटकों का नाम लेना बेकार है। और यह कहना कि देश का नया

भूदान-यज्ञ : सोमवार, १८ अक्तूबर, '६८

युवक गांधी के प्रभाव से अलग और उसकी 'सब्तों' से विमुख है, बुद्धि का दिवालियापन है। सचमुच, युवक सबसे अधिक विमुख उन लोगों से है जो उसके कल्याण के ठीकेदार बने हुए हैं! और मजदूरों का नाम लेना तो साफ-साफ क्रूर व्यंग्य है।

क्या गोवा के बाद यह मान लिया जाय कि कांग्रेस समाज-रचना की शक्ति खो चुकी है? वहाँ मद्यनिषेध जैसे बड़े रचनात्मक कार्य के बारे में जो रुख बरता गया उससे दूसरा क्या नतीजा निकाला जाय? लेकिन अकेली कांग्रेस ही क्यों? दूसरी पार्टियों का ही उससे भिन्न क्या हाल है? वास्तव में हमारे देश की पूरी राजनीति रचनात्मक शक्ति खो चुकी है। वह 'स्टेटस्को' को नहीं छोड़ सकती। क्या डा० सुशीला नैयर इस स्थिति को नहीं जानती थीं? अगर जानती होतीं तो उन्होंने अपने प्रस्ताव में संशोधन स्वीकार कर क्रान्तिकारी सुधार का पक्ष कमजोर न होने दिया होता। लेकिन न जानने की, या जानते हुए भी चूक जाने की, जिम्मेदारी उनकी ही मानी जायेगी।

गोवा में जो कुछ हुआ उसमें इतनी अच्छाई तो है ही कि जनता को यह समझ लेने में मदद मिलेगी कि उसके स्थायी हित अब राजनीति के हाथों में सुरक्षित नहीं है। और सुधारकों को भी यह समझ लेना चाहिए कि हमारे समाज के प्रश्न लोकशक्ति से ही हल होंगे, दूसरी किसी शक्ति से नहीं। उसे बनाना ही हमारा मुख्य रचनात्मक कार्य होना चाहिए। सत्ता तब सुनेगी जब समाज की शक्ति बनेगी। नशाबन्दी का प्रश्न लोगों को 'पवित्र' बनाने का ही नहीं, उनके जीवन-मरण का है; शोषण मुक्ति का है, उनके व्यक्तित्व की रक्षा का है। •

उनको प्रसंगानुसार लाठीचार्ज भी करना पड़ता है। और जरूरत पर बन्दूक भी चलानी पड़ती है। और उसमें उनको शांत वृत्ति रखनी चाहिए। जरूरत से ज्यादा शक्ति से न बरते, और काम पूरा बनना चाहिए। इस वास्ते 'एफिशियेंसी' भी हो, और ज्यादती भी न हो। प्रथम जरा-सा धाक दिखाकर काम होता हो तो ठीक। नहीं तो जितनी जरूरत है उतना पीटना—कम नहीं ज्यादा नहीं। अगर ज्यादा पीटा ऐसा लगा तो तुरन्त 'इंक्वायरी' होगी और सजा भी हो सकती है। इसलिए *पुलिस का काम अत्यन्त कठिन है।* इसका मतलब उनको चित्त मे क्षोभ नहीं होने देना चाहिए। यह पुलिस का कर्तव्य है, हर हालत मे चित्त को शान्त रखना, चित्त बैलेंस मे रखना। परिस्थिति का ठीक नाप लेकर तद-नुसार पीछे हटना पड़े तो पीछे हटना। आक्रमण करना पड़े तो आक्रमण करना। यह सारा बिलकुल गणित-शास्त्र के अनुसार करना होगा। इसलिए चित्त में क्षोभ हो जाय तो कहीं ज्यादती भी हो जायेगी।

हमने सहज पूछा था कि पुलिसवालों के पास 'गीता प्रवचन' होती है या नहीं। इस-लिए गीता पास होनी चाहिए कि गीता ने कहा है कि जरूरत पड़ने पर लड़ना चाहिए। अर्जुन ने भगवान को कहा कि लड़ना तुम्हारा कर्तव्य है, लेकिन कैसे लड़ना? निर्वैर होकर लड़ना, यानी क्षोभरहित होकर लड़ना। गुस्सा नहीं करना, वैर-भाव नहीं रखना। ऐसी सारी समत्व बुद्धि रखकर लड़ना। जैसे कोई सर्जन होता है। वह आपरेशन करता है, मरीज का पेट काटता है। और वह उसके कल्याण की कामना से करता है। उस समय उसके चित्त में क्षोभ नहीं रहता, वैर, गुस्सा नहीं रहता। उसी प्रकार से पुलिस को काम करना चाहिए। तो गीता की यह तालीम हर पुलिस को मिलनी चाहिए। अगर मेरी चली तो मैं हर पुलिस को गीता समझाऊँगा। इसलिए हमने पूछा था कि कितने पुलिसों के पास 'गीता प्रवचन' है? मैं मानता हूँ कि हर पुलिस को वह किताब पढ़नी चाहिए। आपका काम बिलकुल कठिन काम है—जैसे कोई सरकस होती है। उसमे एक तार पर चलना पड़ता है—नहीं झुकना से, सावधानीपूर्वक। झुकाव इधर भी न जाय और उधर भी न जाय। बिल्कुल बीच में समतोल होकर चलना पड़ता है। तो आपका काम उस प्रकार का है।

आरक्षी अधीक्षक ने हमसे सवाल पूछा है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हिंसा के क्षेत्र और प्रसार दिनोंदिन बढ़ते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में पुलिस की स्थिति अत्यन्त कठिन हो जाती है। तो क्या करना चाहिए?

इसका निराकरण करना हो तो पुलिस को—नम्बर एक: सब पक्षों से, सब धर्मों से, सब पंथों से, सब गुटों से अलग रहना चाहिए। चाहे पुलिस का अपना कोई धर्म हो, अपना विचार हो, उनको अपने काम में उन सबसे मुक्त रहना चाहिए। आप विष्णु के भक्त हैं तो अपने घर मे भले विष्णु की प्रार्थना करें। अगर आप मुस्लिम हैं तो अल्लाह की नमाज पढ़े। क्रिश्चियन हैं तो चर्च में जायें। लेकिन फलाना मनुष्य मुस्लिम है, हिन्दू है या क्रिश्चि-यन है, इसका विचार आपको करना नहीं है। सामने मानव खड़ा है यही एक भावना रखनी है। सब धर्मों से अलिप्तता रखना—अपना-अपना धर्म होते हुए भी। नंबर दो: भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्ष होते हैं। और कई कारण होते होंगे, जिससे पोलिटिकल पार्टियाँ उक-साती हैं। ऐसी हालत मे पुलिसवालों को चाहिए कि वे पक्ष मुक्त रहें। उनको हर प्रकार से पक्षमुक्त होना अत्यन्त लाजिमी है। यह मानी हुई बात है कि सरकारी सेवकों का सब पक्षों से मुक्त होकर, धर्म, जाति आदि भेदों से परे होकर समाज की सेवा करनी होती है। तटस्थ बुद्धि से मानवता की हैसियत में सेवा का काम करना होता है। आप समाज के उत्तम सेवक हैं।

'आरक्षी' कितना सुन्दर शब्द है! 'आरक्षी' यानी रक्षा करने का जिनका जिम्मा है, ऐसा जिम्मेवार रक्षक। बहुत ही सुन्दर संज्ञा है। रक्षक को भी समय पर डण्डा लेना पड़ता है, यह अलग बात है, लेकिन उसकी तटस्थ वृत्ति है, उससे उसको हटना नहीं चाहिए और पोलिटिकल पार्टियों का असर अपने दिमाग पर पड़ने नहीं देना चाहिए। यह वृत्ति सध जायेगी तो काम में सहूलियत होगी।

दूसरा सवाल पूछा है कि पुलिस का काम ग्रामदान और शान्ति-सेना आदि कामों में क्या हो सकता है?

बहुत माकूल सवाल पूछा है। प्रधानतया पुलिस शान्ति-सैनिक हैं और 'प्रिवेंशन इज बेटर दैन क्यूअर।' दंगे होने के बाद पुलिस वहाँ जायेगी उसके बजाय दंगे न हों, इसका खयाल करेगी तो वह अधिक लाभदायी होगा। अन्यथा शान्ति के लिए दमन करना होगा। इसलिए गाँव-गाँव से परिचय रखें। अब जो ग्रामदानी गाँव होंगे उनको बनाने में भी पुलिस की मदद हो सकती है। ग्रामदान के बाद हर गाँव में ग्रामसभा बनानी होगी, जमीन का बँटवारा करना होगा। भूमिहीनों को प्रेम से जमीन देनी होगी। और सरकार से ग्रामदान मान्य करवाना होगा। उसके बाद गाँव-गाँव में शान्ति-सैनिक खड़े करने होंगे। मान लीजिए, गाँव की लोक-संख्या हजार हो यानी २०० घर हों, तो उस गाँव में १० शान्ति-सैनिक हों। और उनको मैंने यही बताया कि गाँव मे ऐसी हालत पैदा करनी चाहिए कि पुलिस को गाँव मे आने की कोई जरूरत ही न पड़े। मान लीजिए, गाँव में कोई झगड़ा पैदा हो तो गाँववालों को अपनी कोर्ट बनानी चाहिए और उसमें मतभेद दूर करके दोनों पक्षों का समाधान कराना चाहिए। अब कोई क्रिमिनल केस हो तो पुलिस को आना ही पड़ेगा। लेकिन बाकी झगड़ों के लिए उसका समाधान गाँववाले अन्दर अन्दर ही करें और पुलिस को गाँव में न आना पड़े, ऐसी कोशिश होनी चाहिए। तो पुलिस का काम आसान हो जायेगा। यह हम गाँव-गाँव मे समझा रहे हैं। लेकिन उसमें थोड़ा समय जायेगा। तो यह जो प्राथमिक काम है गाँवों में करने का, उसमें भी पुलिस-वाले मदद दे सकते हैं। गाँववालों को समझा सकते हैं। ग्रामदान के लिए लोगों को प्रेरित कर सकते हैं, क्योंकि 'ला एण्ड आर्डर' के लिहाज से यह काम बहुत महत्त्व का है। यह नहीं कि वे अपना डण्डा दिखाकर लोगों से हस्ताक्षर लें। लेकिन प्रेम से पेश आयें, और विचार समझाकर लोगों को प्रेरित करें।

पुलिस-अधिकारियों के साथ हुई चर्चा से।
समन्वय-आश्रम, बोधगया, २१-१०-'६८

इस अंक में

'वोट' लोकतंत्र की सबसे बड़ी ताकत है, और 'वोट देने वाला' उसकी बुनियादी इकाई। यह कहने की जरूरत नही कि बुनियाद जितनी ही पक्की होगी, इमारत उतनी ही मजबूत होगी। अपने देश में हर बालिग नागरिक के 'वोट' से चुने गये प्रतिनिधियो की सरकार बनती है। इसीलिए कहा जाता है कि अपने देश मे 'जनता का राज' है। लेकिन क्या जनता यह महसूस करती है कि उसका राज है? ऐसा क्यो है कि 'जनता का राज' के नाम पर स्वराज्य के २१ वर्षों बाद भी 'नेताओ का ही राज' चल रहा है? क्यों जनता दिनोदिन असहाय, सरकार की मुहताज और नेताओ का खिलौना बनती जा रही है?

क्योकि वोट देनेवाली जनता के इर्दगिर्द तरह-तरह के ऐसे भ्रमजाल फैलाये गये हैं कि वह अपनी जिम्मेदारी और अपने अधिकार को समझ और पहचान नही पाती। नेता तरह-तरह से बहकाकर जनता के दिमाग मे यह बात बैठा देते हैं कि जनता का काम है सिर्फ वोट देना, बाकी सारा काम तो नेताओं की सरकार कर ही देगी।

और जनता जब नेताओ के 'कोरे वादो' की असलियत पहचान लेती है, और खीझ उठती है, तो जाति-धर्म के नाम पर, भय-लोभ के बल पर, तथा और भी ऐसे ही अनेक निहायत गलत तरीको से वोट लेने की कोशिश चलती है। परिणाम यह होता है कि गाँव-गाँव में कलह पैदा होता है, और गलत ढंग से वोट हासिल करके जो सरकारें बनती हैं, उनमें गलत लोगों का ही बोलबाला होता है। क्योंकि गलत तरीकों से 'वोट' हासिल करके जीतनेवाला गलत कामो का 'उस्ताद' होता है, तभी तो वह जीत पाता है। नतीजा यह होता है कि पूरी सरकार ही गलत होती है। गलतियो का यह सिलसिला तो अब यहाँतक बढ़ गया है कि कौन-सी सरकार कब टूट जायेगी, कुछ कहना मुश्किल है। यही कारण है कि पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और प० बंगाल में पाँच साल की जगह दो साल के ही बाद फिर चुनाव होने जा रहे हैं। 'वोट' देनेवाली जनता के सामने फिर सवाल आ गया है कि वोट किसे दें? गाँव-गाँव में पंडित बाबा के चौडे से लेकर खेत-खलिहान तक अब यह सवाल चक्कर काट रहा है, **'वोट किसे दें?'** इसी सवाल पर वोट देने वालो को सोचने और निर्णय लेने मे मदद पहुँचाने के लिए **'गाँव की बात'** का यह मध्यावधि चुनाव-अंक प्रकाशित किया जा रहा है।

— संपादक।

वर्ष : ३]

— मध्यावधि चुनाव —

[अंक : ७

पंडित काका का कौड़ा

ठंडक बढ़ती जा रही है। बोआई भी लगभग हो चुकी है। बरसाती फसल में तो भगवान ने साथ नहीं दिया, रबी में देगा या नहीं, कौन जानता है? लेकिन यह किसान ऐसा है कि कभी हार नहीं मानता। प्रकृति और समाज की बराबर मार खाते हुए भी किसान कभी हिम्मत नहीं हारता। खेती किसान के धैर्य और साहस की कहानी है। इतने पर भी जब किसान की हार हो जाती है तो वह मजदूर बनकर जीने की कोशिश करता है। पर यह जान लेने की बात है कि जब किसी देश और समाज में किसान की इस तरह हार होने लगती है कि उसके सामने मजदूर होने के सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं रह जाता तो उस देश या समाज को पतन से बचाना बहुत कठिन होता है।

बंसीपुर गाँव के हरखू पंडित बहुत पढ़े-लिखे नहीं हैं, लेकिन अनुभवी आदमी हैं। क्या खेती-बारी, क्या जनम-करम, क्या दवा-दारू, क्या विवाह और श्राद्ध, और क्या पड़ोस के झगड़े और इलाके की राजनीति, कोई चीज ऐसी नहीं है जो हरखू पंडित की 'तीसरी आँख' से छूट गयी हो। वह हर चीज जानते हैं, समझते हैं, एक-एक बात को गहराई के साथ गाँववालों को समझाते हैं।

मौसम देखकर इधर एक हफ्ते से पंडितजी के दरवाजे पर शाम को कौड़ा जलने लगा है। दरवाजा है पंडितजी का, लेकिन कौड़ा सामूहिक है। तापनेवाले अपने-अपने घर से लकड़ी लाकर कौड़े में डालते जाते हैं। कौड़ा भी इतना बड़ा होता है कि एकसाथ चारों ओर बीस-पचीस आदमी बैठ लेते हैं। कभी चालीस-पचास तक आ जाते हैं। कौड़ा भी शाम से ११ बजे रात तक अखण्ड जलता है। एक ओर कौड़ा जलता है, दूसरी ओर अखण्ड चर्चा चलती है। पार्क, सिनेमा, क्लब, पाठशाला, जो समझिए, हरखू पंडित का कौड़ा गाँववालों के लिए सब कुछ है। और चर्चा भी हर रुचि और हर विषय की होती है।

मौसम की ठंडक भले ही बढ़ती हो, लेकिन राजनीति दिनों दिन गरम हो रही है। वह गरमी धीरे-धीरे गाँव-गाँव पहुँचने लगी है। चुनाव होगा अभी तीन महीने बाद, लेकिन चुनाव की चर्चा तो शुरू हो ही गयी है। दूसरे लोग चाहे भूल भी जायँ, लेकिन मनबहाल चुनाव को नहीं भूलता। घुमा फिराकर चुनाव की चर्चा छेड़ ही देता है।

'पंडित काका, लगता है इस बार चुनाव फीका रहेगा', चर्चा छेड़ते हुए मनबहाल ने कहा।

'ऐसा क्यों?' चर्चा बढ़ाते हुए पंडित काका ने पूछा।

'चुनाव में मजा तब आता है जब उम्मीदवार धाकड़ होते हैं। अभी उम्मीदवारों के नाम तो तय नहीं हुए हैं, लेकिन जो लोग टिकट के लिए दौड़-धूप कर रहे हैं उनके नाम तो मालूम ही हैं। नाम ही नहीं, गुण, कर्म, सब मालूम हैं। पार्टी चाहे जो हो, पर लोग एक ही तरह के हैं, इनमें कौन किस लायक है?' मनबहाल ने कहा।

'तो इसका मतलब यह हुआ कि लालाजी एक ही हैं, सिर्फ दूकानें अलग-अलग हैं,' पंडितजी बोले।

श्यामधर मास्टर अबतक चुप थे। लालाजी और उनकी दूकान की बात कान में पड़ी तो बोल उठे: 'चुनाव बिलकुल दूकानदारी है और क्या कहा जाय? अपने माल को अच्छा बताकर ग्राहक को ठगना है।'

पंडित काका ने उत्तर दिया: 'होना तो ऐसा नहीं चाहिए, लेकिन हो गया है कुछ ऐसा ही। चुनाव में दूकानदारी से बढ़कर पंडागिरी है। जैसे पंडा बात करता है जजमान के कल्याण की, लेकिन उसकी निगाह रहती है जजमान के नोट पर, उसी तरह नेता बात करते हैं हमारी-तुम्हारी भलाई की, लेकिन हरदम निगाह रहती है वोट पर।'

'पंडागिरी की बात खूब कही, पंडित काका', रमई बोला।

इस पर पंडित काका ने समझाना शुरू किया। कहने लगे: 'सब लोग प्रयाग-संगम पर गंगा-स्नान करने तो गये ही हो। वहाँ जाने पर क्या दिखाई देता है? हर पंडे की अलग चौकी रहती है। एक लम्बे बाँस पर उसका अपना झण्डा फहराता रहता है। जिस पर उसका निशान बना रहता है। ज्यों ही यात्री दिखाई देता है पंडे एकसाथ चिल्लाने लगते हैं जजमान इधर आओ, जजमान इधर आओ। बोलो रमई, चुनाव के दिन बिलकुल इसी तरह की पंडागिरी होती है या नहीं?'

'आपने तो बिलकुल तस्वीर खींच दी।' तमाखू की फूंक मारते हुए बिरहू ने कहा।

मनबहाल ने चर्चा शुरू तो की थी, लेकिन बीच में वह कुछ नहीं बोला था। सबकी बातें सुनकर जैसे गुनता जा रहा था। अब उससे नहीं रहा गया। कहने लगा: 'पंडित काका ने तस्वीर तो बहुत अच्छी और सही खींची, लेकिन रमई भैया, यह तो सोचो कि इन्हीं पंडों को हम अपना नेता मानते हैं या नहीं? हमारा वोट लेकर ये एम० एल० ए० बनते हैं, मंत्री बनकर हमारे ऊपर हुकुम चलाते हैं और हम गाँव के लोग इन्हें माई-बाप मानकर पीछे-पीछे गिड़गिड़ाते फिरते हैं। जो वोट दे

वह कुछ नहीं, और जो झूठ-सच बोलकर, सही-गलत काम कर, वोट लें, वह नेता, हाकिम—सब कुछ! काशी-प्रयाग का पंडा तो रुपया-दो रुपया लेकर छोड़ देता है, लेकिन ये पंडे तो जैसे हम लोगों को गुलाम बना लेते हैं। अचरज तो यह है कि हम खुशी-खुशी बन भी जाते हैं। इतना ही नहीं, हम इनकी खातिर आपस में लड़ते तक हैं, और जनम-जनम के लिए एक-दूसरे के दुश्मन भी बन जाते हैं।'

चर्चा धीरे-धीरे गम्भीर हो गयी। मनबहाल की इन बातों ने सबको कुरेद-सा दिया। सब पंडित काका की ओर देखने लगे। उनके अनुभव और बुद्धि पर सबको भरोसा था। सब जानना चाहते थे कि मनबहाल की बातों के बारे में पंडित काका की क्या राय है। पंडित काका चुप थे, लेकिन यह देखकर कि दूसरे नहीं बोल रहे हैं, उन्होंने शुरू किया : 'भाई, देखो। हम लोगों ने आजतक इस पंडागिरी को, इस हार-जीत को, नेताओं का तमाशा समझा था। अब समझ में आ रहा है कि सचमुच तमाशा यह नहीं है।

'पाँच साल में वोट हो, ढाई साल में वोट हो, हर साल वोट हो, यहाँ तक कि हर महीने होने लगे, तो भी क्या होगा? अगर हम इसी तरह वोट के पीछे पागल बने रहे, झण्डों और नारों के पीछे दौड़ते रहे, और चुनाव की आग में गाँव को जलने देते रहे तो मुझे दिखाई देता है कि हम इसी तरह गाफिल बने रहेंगे, और बरबाद हो जायँगे। अबतक जो हुआ वह हुआ, लेकिन मेरी राय है कि इस बार आप लोग इकट्ठा बैठिये, और सोचिये कि क्या करना है। मनबहाल, जवान लोगों को जरूर इकट्ठा करना। क्या ऐसे मामले पर भी पूरा गाँव एक होकर नहीं सोच सकता है?'

'क्यों नहीं? जब आपके समझाने पर हमलोगों ने ग्रामदान के कागज पर दस्तखत कर दिया, तो चुनाव के बारे में तय करने के लिए कौन ऐसा होगा जो आने में इनकार करेगा?' मनबहाल ने सबकी ओर से कहा।

'क्या हर्ज है? परसों पूर्णिमा है। खबर करा दो, सब लोग मन्दिर पर इकट्ठा हो जायँ। जिसको जो कहना होगा, सबके सामने कहेगा।' रमई ने कहा।

रात काफी जा चुकी थी। सब उठे और अपने-अपने घर की ओर चल पड़े। कई लोग कहते जा रहे थे : 'बैठक में कुछ-न-कुछ तय हो ही जाना चाहिए।'

वोट किसको दें? किसको नहीं दें?

वोट क्या पंडागिरी है!

वोट! वोट! वोट! पहले तो यह आँधी ५ साल पर आती थी, इस बार दो ही साल में आ गयी। अब आगे क्या हर साल चुनाव हुआ करेगा? कहा जाता था कि चुनाव नहीं होगा तो सरकार कैसे बनेगी? और अबतक हुआ भी यही कि चुनाव हुआ तो सरकार बनी जो कुछ दिन चली, लेकिन अब तो सरकार के बनने की कौन कहे, उसका चलना भी मुश्किल है। नेता आने के बाद कौन कितने दिन रहेगा, इसका कोई ठिकाना नहीं रहा। न किसीकी बात का ठिकाना रहा, न [illegible]।

वोट क्या पूरी पंडागिरी है। 'हमें वोट दो', 'हमें वोट दो,'—जिधर देखो यही रट है। सोचता हूँ, इस बार किसीको वोट न दूँ। जिसकी सरकार में जाना हो जाय, नेता बनना हो बने, मैं क्यों हैरान होऊँ? एक दल की, गिने-चुने दलों की, दल-बदल की, सब तरह की सरकारें तो देख ली गयीं, अब किसे देखना बाकी है? भलाई कुछ नहीं होती, उलटे गाँव-गाँव, घर-घर में लड़ाई का बीज बोया जाता है। लेकिन फिर सोचता हूँ कि यही तो एक मौका है जब लोग मुझे पूछते हैं, मेरे दरवाजे पर आते हैं और कहते हैं : 'तुम स्वामी हो, हम सेवक हैं।' मैं चाहे कुछ हो या न हो, इतना भी कम नहीं है। इसलिए वोट जरूर देना चाहिए, लेकिन सवाल यह है कि किसे दिया जाय?
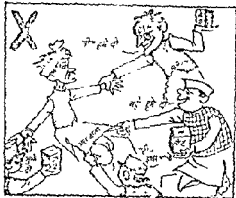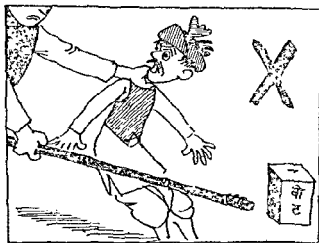
ऐसी जबरदस्ती ?

अरे, यह आदमी डंडा दिखाकर वोट लेगा ? वोट में भी जबरदस्ती ! कहते हैं मतदान है ! यह कैसा दान है, जो डंडे से लिया जाता है ? डंडेवाले को अपना वोट हरगिज नहीं दूँगा ।

वोट भी क्या साग-भाजी है ?

यह नेताजी तो नोट लेकर निकले हैं ! सोचते हैं, गरीब है, गरीब की कीमत ही क्या ? एक-दो रुपये पायेगा, खुश हो जायेगा । देखता भी हूँ कि कई लोगों ने दिन-रात एक कर रखा है । सुना है हरखू बाबू के मत्थे माज एक महीने से चाय पीयी जा रही है, और दोनों वक्त डटकर भोजन किया जा रहा है ! एक दिन रामप्रसाद मुझसे कह रहा था : 'चौधरी, पचीस-पचास जो कहो दिलवा दूँ, लेकिन इस बार पूरे टोले का वोट हरखू बाबू को मिलना चाहिए ।' कभी-कभी मन में आता है कि क्या जाता है अपना । किसीको तो वोट देना ही है, क्यों न सौ रुपये पर सौदा पटा लूँ ? रुपया बड़ी चीज है । अच्छा, करूँगा चर्चा रामप्रसाद से ।

...लेकिन क्या करूँ, मन नहीं मानता । क्या पचास और क्या सौ, रुपये की बात करना यानी अपने को बेचने की बात करना । होगा अपने घर का सेठ, मैं क्या साग-भाजी हूँ कि बाजार में बिकूँ ? क्या गरीब की इज्जत नहीं होती ?

इस बार यह भी ?

इस बार एक नया तमाशा देखने को मिल रहा है । जाति की, धर्म की, पार्टी की दुहाई तो पहले भी दी जाती थी, लेकिन इस बार इस इलाके में सवर्ण-अवर्ण की बाढ़ जोरों से चल पड़ी है । जब दूसरे धर्मवाले से लड़ाई होती है तो कहा जाता है कि अपने धर्मवाले को वोट देना चाहिए, विधर्मी को नहीं । लेकिन इस बार जब सब उम्मीदवार हिन्दू हैं तो कहा जा रहा है कि हिन्दू हैं तो क्या, सवर्ण सवर्ण हैं, अवर्ण अवर्ण । उस दिन राम अभिलाख आया था तो कह रहा था कि पिछड़ी जातियाँ और हरिजन बहुत दिनों से दबे रहे हैं, अब उन्हें उठना चाहिए और सरकार पर कब्जा करना चाहिए । पिछड़े लोग, हरिजन लोग, आदिवासी लोग, सब मिल जायँ तो उनकी बहुत बड़ी शक्ति हो जायेगी । सवर्णों को दबाने का यही तरीका है ।

ठीक है, कहने को बहुत-कुछ कहा जा सकता है । हिन्दू-मुसलमान, सवर्ण-अवर्ण, आदिवासी-गैरआदिवासी, सभी एक-दूसरे के खिलाफ बहुत-कुछ कह सकते हैं । लेकिन सरकार तो सबकी होती है । क्या सरकार भी एक की होगी, दूसरे की नहीं ? क्या हमारी जाति का मिनिस्टर होगा तो हम लोगों के नाम हर महीने मनीआर्डर भेजेगा ? मैं तो बीस बरस से देख रहा हूँ कि जिसको कुर्सी मिलती है वह कुर्सी का हो हो जाता

है। सभा में खड़े होकर चाहे जो कहे, लेकिन सचमुच वह कुर्सी के सिवाय और कुछ जानता नहीं। उसकी कुर्सी ही उसका ईमान और भगवान बन जाती है। बाकी सब कुछ वह भूल जाता है। और, अगर सरकार में भी जाति और वर्ण और धर्म का झगड़ा छिड़ जाय—दल का तो रहता ही है—तो क्या होगा? किसका भला होगा? जो कुछ बचा है वह भी चौपट हो जायेगा। कुछ भी हो, मुझे जाति, वर्ण आदि की बात नहीं जँचेगी। मैं इस चक्कर में नहीं पड़ूँगा।

कौन भला है?

मुश्किल तो यह है कि अगर इन बातों को मन से निकाल दिया जाय, तो जाना कैसे जाय, कि कौन अच्छा है, कौन बुरा! चुनाव में सब अपने सिवाय दूसरों को चोर, घूसखोर, बेईमान, गद्दार कहते हैं। अब कान में हर वक्त इसी तरह की बातें पड़ती रहती हैं तो दिमाग काम नहीं करता, जी घबड़ा जाता है। लगता है, जैसे कोई भला आदमी बचा ही नहीं है।

वोट उसे न दें
जिसकी बात और ईमान का
भरोसा न हो,
जो पैसे की लालच और डंडे
का डर दिखाता हो;
और जिसका दिल, दिमाग
संकीर्ण हो।

इन बच्चों को तो छोड़ देते!

जब इन भले मानुसों को दूसरे लोग नहीं मिलते तो बच्चों को ही बुला लेते हैं। उन्हीं से नारे लगवाते हैं। बच्चे बेचारे क्या समझें? उन्हें चिल्लाने में मजा आता है। जिसने बुला लिया उसीके पीछे चल पड़ते हैं। लेकिन मेरी समझ में इन बच्चों के दिमाग में अभी से जहर भरना अपराध माना जाना चाहिए। मैं अपने गाँव में एक-एक आदमी से कहूँगा कि हम लोग मिलकर गाँव में यह सब न होने दें। आखिर, बच्चे इस पचड़े में क्यों पड़ें? क्या हम सयाने लोग बच्चों के चिल्लाने से किसीको वोट देंगे, और किसीको नहीं देंगे?

सब साथ क्यों न आयें?

इस सारे हल्ले-गुल्ले की जरूरत भी क्या है? क्यों न गाँव भर की ओर से सब उम्मीदवारों के पास सन्देश भेज दिया जाय कि हमारे गाँव में वोट के लिए जिन नेताओं को आना हो, सब

एकसाथ आयें। एक दिन, एक समय आयें, एक मंच पर बैठें, और अपनी बात कहें, और एक बार कहकर हम लोगों को आपस में तय करने दें।

अपनी बात कहिए, और हमें छोड़िए

बड़ा अच्छा है। एक मंच पर कई दलों के नेता बैठे हैं। अब घंटे-दो घंटे घुआँधार भाषण होंगे। हम लोग सबकी बात सुनेंगे सवाल पूछेंगे कि चुन लिये जाने पर कौन गाँव के लिए क्या करेगा, सबकी बात समझेंगे, और अन्त में सबको खिला-पिलाकर आदर के साथ विदा करेंगे। तय तो गाँव को करना है, रोज-रोज हल्ला-गुल्ला मचाने की क्या जरूरत है?

कुछ भी हो, गाँव की एकता न टूटे

चुनाव आया है, एक दिन खत्म हो जायेगा, लेकिन अगर गाँव में आदमी-आदमी के, जाति-जाति के, वर्ण-वर्ण के, या दल-दल के बीच दुश्मनी का बीज बो गया तो क्या होगा? हमें तो गाँव में ही रहना है। क्या आपस में लड़ मरना है? पड़ोसी-पड़ोसी का झगड़ा-रगड़ा बनकर दोनों को खा जाता है। जब हम गाँव में ही, जहाँ हमें और हमारे बाल-बच्चों को रहना है, एक-दूसरे के दुश्मन हो जायेंगे, तो कोई भी जीते, किसीकी भी सरकार बने, हमारे गाँव की तो हार हो ही जायेगी। हम अपने गाँव को क्यों बरबाद होने दें?

गाँव को चुनाव की आग से बचाने का एक अच्छा उपाय यह है कि गाँव के लोग आपस में तय कर लें कि किसे वोट देना चाहिए। जब पूरा गाँव बैठेगा तो सिवाय इसके दूसरा क्या फैसला करेगा कि वोट सबसे अच्छे आदमी को दिया जाय, चाहे वह किसी जाति का, दल का, वर्ण का हो। आदमी की अच्छाई-बुराई का उसकी जाति, वर्ण, दल आदि से क्या सम्बन्ध है?

लेकिन हो सकता है कि गाँव के सब लोग एक राय के न हों। तब यह छूट देनी पड़ेगी कि जो जिसे अच्छा समझे, उसे वोट दे, लेकिन गाँव में 'कन्वेसिंग' आदि न हो और पैसा का लोभ या डंडे का डर न दिखाया जाय। सबको स्वतंत्र छोड़ दिया जाय, जो जिसको चाहे वोट के दिन जाकर चुपके से वोट दे आये। इस तरह मतदान भी स्वतंत्र होगा, और गाँव की एकता भी बच जायेगी, जो सबसे कीमती चीज है।

तो अच्छा किसे मानें?

भाई, अच्छा वह है जो दुखी की सेवा करता हो, और जो अपने क्षेत्र के सामान्य लोगों के साथ मिलकर पसीना बहाता हो।

पार्टी या पड़ोसी, कौन ज्यादा प्रिय है?
पार्टी से गाँव टूटेगा, पड़ोसी से गाँव बनेगा, देश बनेगा!

खूब छिगड़ा है!

उसे अच्छा नहीं माना जा सकता, जिसे गरीब की बात सुनने की फुरसत न हो। और, न तो वह अच्छा माना जायेगा जो शराब की मौज लेता हो और दिन-रात अपना ही उल्लू सीधा करने में लगा रहता हो। आज जहाँ देखिए, इसी तरह लोग आगे दिखाई देते हैं। इनसे भगवान बचाये!

बेदखली भी, और वोट भी?

यही हाल उसका है जो बेदखली करता है। जो गरीब के हाथ से उसकी जीविका का सहारा छीनता हो, उसे क्या अधिकार है वोट की बात करने का?

अरे, ग्रामदान के नाम में अंगूठा!

उस दिन गाँव के मुखियाजी राम गोपाल बाबू के दरवाजे पर ग्रामदान का कागज लेकर गये तो उनकी त्योरी चढ़ गयी, और अंगूठा दिखाते हुए बोले: 'जाइए मुखियाजी, मैं इस प्रपंच में नहीं पड़ता। जमीन बड़ी मुश्किल से कमायी जाती है।' सोचने की बात है कि जो आदमी गाँव की भलाई और संगठन की बात भी न सुनना चाहता हो, उसको भी भला कोई वोट देगा?

दिल और दिमाग नया हो

सचमुच अच्छा वह है जिसका दिल और दिमाग नया हो, जो गाँव की बात सोचता हो, जो गाँव के साथ रहने और काम करने को तैयार हो। ग्रामदान में शरीक होना अच्छाई का एक बहुत बड़ा प्रमाण है।

वोट उसे न दें

जो शराब पीता हो, छुआछूत मानता हो;
जो ग्रामदान में शरीक न हुआ हो।

पड़ोसी हमारा भाई

जो ग्रामदान को समझ जाता है वह भूमि से ज्यादा कीमत पड़ोसी की मानता है। जिसने अपने हृदय में मनुष्य को स्थान दे दिया उसके अन्दर और अच्छाइयाँ अपने-आप आ जायेंगी।

★

वोट उसे दें

जो सच्चरित्र हो, चुनाव में ईमानदार हो,
जो दल-बदल न करता हो;
जो सेवाभावी हो, बेदखली न करता हो;
जो छुआछूत और जातिवाद को बढ़ावा न देता हो;
जो ग्रामदान में शरीक हुआ हो;
जिसके विचार नये हों,
और
जो मनुष्य की मनुष्य के नाते कद्र करता हो।

सन् १९६९ में : ग्रामदान को राजनीति पर रंग चढ़ाना है!
सन् १९७२ में : ग्रामदान द्वारा चुनाव और प्रशासन का ढंग बदलना है!
सन् १९७७ में : ग्रामदान से केन्द्रित राज-शक्ति को भंग करना है!

ग्राम-निर्णय

(कार्य-पद्धति और वैचारिक परिवर्तन : एक अध्ययन)

ग्रामसभा में छोटे प्रश्न से लेकर बड़े-से-बड़े प्रश्न पर विचार किया जाता है। ग्रामसभा ने किस प्रकार के निर्णय कैसे किये, उसकी जानकारी प्राप्त करने पर निर्णय की प्रक्रिया तथा काम के ढंग का अंदाज आसानी से लग जायगा। यहाँ हम ग्रामसभा निर्माण होने से लेकर अबतक हुए कुछ निर्णयों का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं, जो कि महत्त्व के हैं

तारीख	निर्णय	पद्धति
१८-१२-'६१	(१) कम-से-कम दो माह में एक बैठक हो।	सर्वसम्मति
	(२) ५१ लोगों का कोरम हो।	,,
	(३) बिना इजाजत के जो बाड़े (काँटों का घेरा) लगे हैं, उनकी जाँच हेतु कमेटी का निर्माण।	,,
१७-१-'६२	(१) श्री मनोहिरजी ने विद्यालय-निर्माण हेतु ग्रामसभा को २५ हजार रुपय दान में दिये। विद्यालय का नाम 'श्री मनोहिरजी विद्यालय' रखा गया।	
४-२-'६२	(१) धर्मोद्योग, तेलघानी, मट्ठा, रेशा-उद्योग हेतु सरकार के साथ कार्यवाही का निर्णय।	,,
२१-३-'६२	(१) कुएँ का पानी साफ रखने, कूड़ा-करकट एक स्थान पर जमा करने, पेशाबघर निर्माण करने, जंगल काटने पर प्रतिबन्ध लगाने का निर्णय।	,,
१७-५-'६२	(१) (क) लगान सभी लोग समय पर जमा करें, जिससे ग्रामसभा के कोष पर बोझ न पड़े।	सर्वानुमति
	(ख) ग्रामसभा समय पर लगान जमा कर सके इसलिए कुँआवालों से १० रु०, ७ बीघावालों से ५ रु०, १० बीघा या उससे अधिकवालों से १५ रु० अग्रिम जमा कराया जाय।	,,
	(२) मंदिर-खर्च के लिए प्रति १ रु० लगान पर २० पैसा अतिरिक्त कर लगाया जाय।	मुक्त चर्चा हेतु छोड़ दिया गया।
२१-५-'६२	(१) भूमि वितरण :	(१ माह का समय)
	(क) कुएँ के पास एक परिवार को ५० बीघे से जितनी अधिक	सर्वानुमति

तारीख	निर्णय	पद्धति
	जमीन हो वह दूसरे को वितरित की जाय।	
	(ख) जिसके पास बैल नहीं है और वह खेती करना चाहता है, तो उसे ७ बीघा जमीन दी जाय।	सर्वानुमति
	(ग) एक जोड़ी बैलवाले को १२ से १५ बीघा जमीन दी जाय।	,,
	(घ) प्रत्येक बालिग, जो खेती करने को इच्छुक हो, योग्य हो, उसे उक्त हिसाब से जमीन दी जाय।	,,
	(च) बँटाई पर खेती कोई नहीं करा सकता। मजदूर रख सकता है।	,,
	(छ) दूसरे गाँववालों को खेती न करने दिया जाय।	,,
२५-११-'६२	(१) मंदिर हेतु २० पैसा अतिरिक्त लगान का प्रस्ताव मुक्त चर्चा के बाद वापस ले लिया गया।	
	(२) मंदिर-खर्च के विचारार्थ कमेटी का निर्माण।	सर्वानुमति
१४-५-'६३	(१) सामूहिक खेती प्रारंभ की जाय।	,,
	(२) सामूहिक खेती की आय मंदिर खाते में जमा रहे।	,,
	(३) स्कूल में 'अध्यापक-भवन' का निर्माण हो।	,,
६-१-'६४	(१) मकान और कुएँ के लिए ग्रामसभा लोगों को जमीन दें, जिसकी कीमत समतल जमीन की ५ पैसा और असमतल की ३ पैसा प्रति वर्गफुट ली जाय।	सर्वसम्मति
१६-९-'६४	(१) सन् १९६२ में तय हुई भूमि-वितरण नीति पर पुनर्विचार करने के लिए कमेटी का निर्माण।	सर्वसम्मति
८-२-'६५	(१) कार्यकारिणी समिति के दूसरे सत्र का चुनाव सम्पन्न हुआ।	,,
	(२) कार्यकारिणी १० की हो, यह प्रस्ताव वापस और १५ की हो, यह मान्य।	सर्वानुमति
	(३) कार्यकारिणी का कोरम ५ का हो।	सर्वसम्मति
८-६-'६५	(१) श्रमदान से विद्यालय-भवन का निर्माण प्रारंभ।	,,
	(२) भूमि-वितरण की नीति पर विचार।	,,
	(३) मेड़बन्दी की माँग।	,,

तारीख	निर्णय	पद्धति
१७-१-'६६	(१) मेड़बन्दी प्रारंभ की जाय।	सर्वसम्मति
	(२) जागीरदारी मुआवजा बांड १६.२०० रु० को अलग जमा किया जाय, उसे व्यक्तिगत संपत्ति न मानी जाय।*	"
६-२-'६८	(१) 'अध्यापक-निवास' के लिए ग्रामकोष की रकम में से एक निश्चित रकम दी जाय।	"
	(२) इधर-उधर रखी लकड़ी ग्रामसभा जमा कर ले।	"
	(३) गांधी जन्म-शती मनाने का निर्णय।	"

-अवध प्रसाद

* उक्त रकम सरकार की ओर से गाँव के तीन व्यक्तियों को जागीरदारी बांड के रूप में मिली थी।

दैनंदिनी १९६९

गांधी-शताब्दी के अवसर पर १९६९ की जो दैनंदिनी हमारे यहाँ से प्रकाशित की गयी है उसका स्टाक बहुत ही कम बचा है, अतः वे संस्थाएँ, जो दैनंदिनी मँगाना चाहती हैं, रकम अग्रिम भिजवाकर या वी० पी० या बैंक के मार्फत प्राप्त कर लें, अन्यथा गत वर्ष की भाँति इस वर्ष भी निराश होना पड़ेगा।

आकार		मूल्य प्रति
क्राउन	७॥" × ५"	३.००
डिमाई	९" × ५॥"	३.५०

५० या उससे अधिक दैनंदिनियाँ एकसाथ मँगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन और ग्राहक के निकटतम स्टेशन तक दैनंदिनी फ्री डिलेवरी से भिजवायी जाती है।

संचालक
सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१

गांधी शताब्दी वर्ष १९६८-६९

गांधी-विनोबा का ग्राम-स्वराज्य का संदेश गाँव-गाँव, घर-घर पहुँचाइए और जन-जन को उसके लिए कृत-संकल्प कराइए। सच्चे स्वराज्य का अब यह ही रास्ता है।

इस निमित्त उपसमिति द्वारा निम्न सामग्री पुरस्कृत/प्रकाशित की गयी है :—

पुस्तकें—

(१) जनता का राज्य—लेखक : श्री मनमोहन चौधरी, पृष्ठ ६२, मूल्य २५ पैसे। ग्रामदान-आन्दोलन की सरल-सुबोध जानकारी।

(२) Freedom for the Masses—'जनता का राज' का अनुवाद, पृष्ठ ७६, मूल्य २५ पैसे।

(३) शान्तिसेना परिचय—लेखक : श्री नारायण देसाई, पृष्ठ ११८, मूल्य ७५ पैसे। शान्तिसेना विचार, संगठन, कार्यक्रम आदि की जानकारी देनेवाली, हर शान्ति-प्रेमी नागरिक के पास रखी जाने योग्य।

(४) हत्या एक आकार की—लेखक : श्री ललित सहगल, पृष्ठ ९६, मूल्य रु० ३.५०। गांधीजी के हत्यारे के हृदय में हत्या से पूर्व चलनेवाले अन्तर्द्वन्द्व का प्रभावपूर्ण सशक्त चित्रण।

(५) A Great Society of small Communities—लेखक : सुगत दासगुप्ता, पृष्ठ ७८, मूल्य रु० १०.००। क्रान्ति में ग्रामदान-आन्दोलन का स्थान तथा ग्रामदानी गाँवों के सन्दर्भ में आन्दोलन की गतिविधि का विवेचन और समीक्षा।

वितरण और प्रदर्शन की सामग्री—

फोल्डर—(१) गांधी, गाँव और ग्रामदान (२) गांधी, गाँव और शान्ति (३) ग्रामदान क्यों और कैसे ? (४) ग्रामदान क्या और क्यों ? (५) ग्रामदान के बाद क्या ? (६) ग्रामसभा का गठन और कार्य (७) गाँव-गाँव में खादी (८) सुलभ ग्रामदान (९) देखिए : ग्रामदान के कुछ नमूने।

पोस्टर—(१) गांधी ने चाहा था : सच्चा स्वराज्य (२) गांधी ने चाहा था : स्वावलम्बन (३) गांधी ने चाहा था : अहिंसक समाज (४) ग्रामदान से क्या होगा ? (५) गांधी जन्म-शताब्दी और सर्वोदय-पर्व।

सामग्री मर्यादित रूप में निम्न स्थानों से प्राप्त की जा सकती है :—

(१) गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी जन्म-शताब्दी समिति), दुंकलिया भवन, कुंदीगरों का भैरों, जयपुर—३ (राजस्थान)। (२) सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१ (उत्तर प्रदेश)

राष्ट्रीय गांधी जन्म-शताब्दी समिति की गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति द्वारा प्रसारित

सामयिक चर्चा

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय : अशान्ति का अखाड़ा

वाराणसी : ११ नवम्बर, '६८। आज सायंकाल वाराणसी के कुछ नागरिकों की सर्व सेवा संघ के राजघाट स्थित प्रधान कार्यालय में हुई एक बैठक में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की अशान्त स्थिति पर विचार-विमर्श हुआ। लम्बी चर्चा के बाद बैठक में भाग लेनेवाले नागरिकों ने अपने सम्मिलित वक्तव्य में कहा कि : "(१) किसी भी शिक्षण संस्था और विश्वविद्यालय के कार्यकलापों में किसी भी प्रकार का राजनीतिक दलों द्वारा हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए, (२) किसी भी रूप में किसी भी ओर से की गयी हिंसा की खुली निन्दा की जानी चाहिए, (३) शिक्षकों, छात्रों तथा अन्य कर्मचारियों में जो शान्तिप्रिय लोग हैं, उन्हें शिक्षण संस्थाओं में शान्ति और सौहार्द कायम रखने के लिए सक्रिय कदम उठाना चाहिए। हम वाराणसी के नागरिक, जो किसी भी राजनीतिक दल से सम्बन्ध नहीं रखते, और जो बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की हाल की घटनाओं से अत्यधिक चिन्तित हैं, विश्वविद्यालय के अपने शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु कार्यकलापों को सुचारु रूप से चलाने के लिए समाधानकारी हल ढूंढने के निमित्त निम्न व्यक्तियों की एक समिति नियुक्त करते हैं : डा० रामधर मिश्र, श्री रोहित मेहता, राजा प्रियानन्द प्रसाद सिंह, श्री नारायण देसाई, श्री सुगत दासगुप्ता, श्री वंशीधर श्रीवास्तव (संयोजक)।"

स्मरणीय है कि विगत कुछ महीनों में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में जो कुछ हुआ है, वह बहुत ही चिन्ताजनक है। विश्वविद्यालय दो गुटों के संघर्ष का अखाड़ा बना हुआ है। एक गुट राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और जनसंघ के संरक्षण तथा दूसरा समाजवादी और साम्यवादी दलों के समर्थन से शक्ति और प्रेरणा ग्रहण कर रहा है। समाजवादी प्रभाववाले गुट का कहना है कि विश्वविद्यालय के अहाते में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखा लगती है, और कुछ छात्र तथा अध्यापक नियमित इसमें भाग लेते हैं। स्वयं उपकुलपति (वर्तमान) भी गुरु गोलवलकर के साथियों में से हैं, और संघ के लोगों को उनसे विशेष संरक्षण और प्रोत्साहन मिलता है; दूसरे गुट का कहना है कि विश्वविद्यालय में हस्तक्षेप करनेवाले बाहरी तत्त्वों पर रोक लगायी जाय।

आरोप प्रत्यारोप लगभग एक-से हैं और छात्र-प्रतिक्रिया के स्वरूप भी समान-से हैं। परिस्थिति अत्यन्त उलझी हुई है। वस्तुस्थिति का पता लगाना अत्यन्त कठिन है। छात्रों द्वारा हड़ताल, प्रदर्शन, अनशन, घेराव, पथराव से लेकर विश्वविद्यालय के अधिकारियों द्वारा निन्दा, निष्कासन और पुलिस के दमन-चक्र तक का सिलसिला चला है। और अब सुलझाव के लिए सबकी निगाहें दिल्ली की ओर लगी हैं।

रविशंकर महाराज

अखिल भारतीय अणुव्रत समिति १९६८-६९ के लिए अध्यक्ष

१९वें अखिल भारतीय अणुव्रत सम्मेलन मद्रास में आगामी वर्ष के लिए अखिल भारतीय अणुव्रत समिति के अध्यक्ष श्री रविशंकर महाराज निर्वाचित हुए हैं। महाराज ने १९ व्यक्तियों की कार्यसमिति की घोषणा की है।

श्री दातारामजी का प्रयास

सर्वोदय पर्व में कलकत्ता के टाटिया हायर सेकेण्डरी स्कूल में श्री दातारामजी मकड़ के प्रयास से सिर्फ दो दिनों में रु० ३६३ ६० का साहित्य बिका। निश्चित तिथि को एक प्रदर्शनी लगायी और दूसरे दिन साहित्य-बिक्री का काम चला। स्कूल के बच्चों को मार्गदर्शन के लिए श्री दातारामजी ने सर्वोदय साहित्य की जानकारी भी दी।

विनोबाजी का कार्यक्रम

नवम्बर, '६८

१७-१९ अम्बिकापुर, सरगुजा (म० प्र०)
२० बलरामपुर, सरगुजा (म० प्र०)
२१ रामानुज गंज, सरगुजा (म० प्र०)
२२ गढ़वारोड, पलामू (बिहार)

२३ नवम्बर से
२ दिसम्बर '६८ तक डाल्टेनगंज, पलामू।
पता–विनोबा निवास, डाल्टेनगंज,
जि० पलामू (बिहार)

सफाई विद्यालय का अगला सत्र

सफाई विद्यालय, आश्रम पट्टीकल्याणा, जिला करनाल, हरियाणा, प्रान्त का अगला सत्र दिसम्बर '६८ से १५ फरवरी '६९ तक चलेगा। सफाई-काम की वैज्ञानिक जानकारी तथा गोबर-गैस व भंगी-मुक्ति जैसे पवित्र, आध्यात्मिक विषय जानने के इच्छुक भाई प्रार्थना-पत्र भेजकर अपने लिए स्थान सुरक्षित करा लें। समय कम है, अतः शीघ्रता करें। प्रशिक्षार्थी की आयु १८ वर्ष से ४० वर्ष के बीच हो। प्रशिक्षार्थी की योग्यता दसवीं कक्षा की, प्रमाण-पत्रों सहित हो। प्रशिक्षण के पश्चात् काम देने की जिम्मेवारी विद्यालय की नहीं होगी। प्रशिक्षण का माध्यम हिन्दी रहेगा।

प्रशिक्षण-काल में प्रशिक्षार्थी को विद्यालय की ओर से ६० रु० प्रतिमाह छात्रवृत्ति तथा आने जाने का तीसरे दर्जे का मार्ग-व्यय दिया जायेगा। अधिक जानकारी के लिए आचार्य से पत्र-व्यवहार करें।

—महावीर त्यागी
आचार्य,
सफाई विद्यालय,
आश्रम पट्टीकल्याणा
जि० करनाल, हरियाणा

भूल-सुधार

'भूदान-यज्ञ' : अंक ६, दिनांक ११-११-'६८; पृ० ७७ के कालम ३ में चौथी पंक्ति में '६७ की जगह '६८ पढ़ें'। भूल के लिए क्षमा करें।—सं०

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

'उत्तर प्रदेश दान' का संकल्प २ अक्तूबर '६६ तक पूरा करने की व्यूह-रचना तैयार

प्रदेशीय ग्रामदान-प्राप्ति समिति की बैठक में प्रायः हर जिले के प्रतिनिधियों द्वारा निश्चित अवधि के अन्दर संकल्प पूरा करने का निश्चय

कानपुर : गत १६ और १७ नवम्बर '६८ को स्वराज्य आश्रम कानपुर के प्रांगण में आयोजित द्विदिवसीय बैठक में प्रदेश के लगभग सभी जिलों से आये हुए प्रतिनिधियों ने अपने-अपने काम का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हुए निश्चित अवधि के अन्दर प्रदेशदान का संकल्प पूरा करने की दृष्टि से जिलादान की व्यूह-रचना तैयार की। श्री विचित्र भाई की अध्यक्षता में आयोजित इस बैठक में काफी विस्तार से ग्रामदान-प्राप्ति की पद्धतियों पर चर्चाएँ हुईं। प्रदेश की विशालता और परिस्थितियों की प्रतिकूलता के कारण अनेक कठिनाइयों से उलझते हुए भी आगे बढ़नेवाले कार्यकर्ताओं के अन्दर संकल्प-पूर्ति के लिए निरन्तर सक्रिय बने रहने की उत्कट भावना दिखाई पड़ी। स्मरणीय है कि अबतक प्रदेश में २ जिलादान, ५६ प्रखण्डदान और १०,०१६ ग्रामदान हो चुके हैं। चमोली, वाराणसी, आजमगढ़, ये जिले जिलादान के करीब हैं। अबतक के अनुभव के आधार पर अधिकांश जिलों ने आगामी वर्ष के अगस्त तक जिलादान का काम पूरा कर डालने की आशा व्यक्त की। अभी तक १६ जिलों में थोड़ी हलचल पैदा हुई है, लेकिन ठोस काम अब तक नहीं हो पाया है।

ग्रामदान की गंगोत्री जहाँ प्रकट हुई थी, उस बुन्देलखण्ड में गदर पार्टी के संस्थापक सदस्य और सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी पं० परमानन्दजी ने अपना समय देने का निश्चय किया है। उनका आशीर्वाद पूरे प्रदेश के काम को भी गति और रवानी प्रदान करेगा, ऐसी आशा बँधती है।

बैठक में प्रायः हर जिले के प्रतिनिधियों की यह माँग रही कि गांधी-जन्म-शताब्दी-समारोह की प्रदेशीय समिति को प्रदेशदान के काम में पूरी तरह सक्रिय बनाने की चेष्टा की जाय। राज्य खादी-ग्रामोद्योग मण्डल के सचिव ने अपनी कार्यकर्ता-शक्ति ग्रामदान-अभियान में लगाने की घोषणा की। अन्य रचनात्मक संस्थाओं का सक्रिय सहयोग मिल रहा है।

५४ जिलोंवाले इस विशाल प्रदेश के हर जिले में जिला ग्रामदान-प्राप्ति समिति के गठन के लिए योजनाएँ बनीं, प्रदेशीय समिति को और भी व्यापक किया गया और अभियानों की निरन्तर व्यूह-रचना के लिए २१ सदस्यों की एक विशेष समिति भी नियुक्त हुई।

प्रदेशीय स्तर पर कोष-संग्रह के लिए १५ फरवरी, '६६ के बाद अभियान चलाने की योजना बनी है। अखिल भारत शान्ति-सेना मण्डल से प्रदेशीय समिति ने अनुरोध किया है कि प्रदेश में शान्ति सेना के काम के लिए कुछ प्रशिक्षक तैयार कर दें।

मध्यावधि चुनाव के मौके पर सर्व सेवा संघ द्वारा निर्देशित मतदाता-शिक्षण के कार्यक्रम पर भी विचार-विमर्श हुआ। कानपुर तथा इस प्रकार के कुछ केन्द्रीय नगरों में मतदाता-शिक्षण का सघन कार्यक्रम चलाये जाने की भी सम्भावना है। आये हुए प्रतिनिधियों ने 'गाँव की बात' के मध्यावधि चुनाव अंक की ५,००० प्रतियों के वितरण की योजना बनायी है।

१७ नवम्बर '६८ को कानपुर नगर में स्वर्गीय रामस्वरूप गुप्त की स्मृति में आयोजित ग्रामोद्योग प्रदर्शनी के उद्घाटन के अवसर पर एक विशाल जनसभा में भाषण करते हुए आचार्य राममूर्ति ने कहा कि नेता, अफसर, व्यापारी और पत्रकारों के मिले-जुले षड्यन्त्र में देश की प्रगति उलझ गयी है। सरकार और बाजार, ये दोनों भगवान के अतिरिक्त रहस्य बनकर प्रकट हुए हैं। इन सबको माया का पर्दा फाड़ने के लिए ही ग्रामदान आन्दोलन है। आपने कहा कि सर्वोदय-आन्दोलन मध्यावधि चुनाव के इस मौके पर मतदाताओं के दिलों से दल के दलदल को समाप्त करना चाहता है और जाति, धर्म, सम्प्रदाय, दल आदि से मुक्त होकर अच्छे उम्मीदवार को वोट देने की बात कह रहा है, लेकिन अगले आम चुनाव तक लोक-संगठनों द्वारा 'अपने उम्मीदवार' के चयन की व्यूह-रचना करेगा।

सभा के बाद स्थानीय व्यक्तियों ने 'दल-मुक्त मतदान' के इस कार्यक्रम में सक्रिय रूप से काम करने की तैयारी प्रकट की। आशा है कि कानपुर में इस दिशा में विशेष काम हो सकेगा। —विशेष प्रतिनिधि द्वारा

दो जिलादान की भेंट

विनोबाजी को २५ दिसम्बर, '६८ तक वाराणसी और चमोली का जिलादान उनके इलाहाबाद-आगमन के अवसर पर भेंट किया जायगा।

"क्या मेरे कागजात [illegible] चुके, श्रीमान् [illegible] ?"
([illegible]' से)—[illegible]

आपका विज्ञान कहाँ गया ?

जब बिहार में सूखा पड़ा तो संकट में बड़े-बड़े संकल्प किये गये और ऐसा मालूम हुआ कि विज्ञान और योजना की पूरी शक्ति लगाकर खेती 'मानसून की गुलामी' से हमेशा के लिए मुक्त कर दी जायेगी। लेकिन हुआ यह कि संकट टला और संकल्प गये। घूम-फिरकर सरकार की योजना वहीं पहुँच गयी जहाँ पहले थी। सिंचाई के सुगम क्षेत्रों में साधनवाले किसानों को ही मदद देकर उपज बढ़ाने का आसान कार्यक्रम अपना लिया गया। पिछले साल उपज अच्छी हुई, और अपनी योजना पर खुश होकर मंत्रियों और अधिकारियों ने 'खेती में क्रान्ति' का झण्डा फहरा दिया। उस 'क्रान्ति' का फल किसे मिला, कितना मिला, इससे 'क्रान्तिकारियों' को कोई मतलब नहीं। हमारे देश की योजना की शायद सबसे बड़ी सफलता यही है कि वह जनता से अलग चल सकती है, और जनता को छोड़कर सफल बतायी जा सकती है।

इस साल बरसात ने धोखा दिया। बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, मैसूर, मद्रास आदि से सूखे के समाचार आये। राजस्थान में तो सूखा इतना भयंकर हुआ जैसा लोगों की याद में कभी नहीं हुआ था। अब तात्कालिक राहत में चाहे जितना खर्च किया जाय—और खर्च किया भी जायेगा—लेकिन इस तरह के संकटों से खेती की सारी 'इकानमी' और पूरे ग्रामीण जीवन को जो आघात पहुँचता है उसे राहत देकर नहीं बचाया जा सकता। ऐसे संकट के समय लाखों परिवार टुकड़ों के लिए धनियों के हाथों हमेशा के लिए बिक-से जाते हैं। और ये श्रमिक परिवार समाज के 'शेषनाग' होते हैं, जिनकी मेहनत पर सारा समाज टिका हुआ है।

स्वतंत्रता के इक्कीस वर्ष बाद भी इस संकट का कोई हल नहीं दिखाई देता। पानी खेती के लिए चाहिए, पानी जीने के लिए चाहिए, पर अभी हजारों ऐसे गाँव हैं जहाँ पीने तक का पानी मयस्सर नहीं है।

सरकार को विज्ञान में विश्वास है। देश को अपने वैज्ञानिकों पर गर्व है। लेकिन देश की जनता के जीवन में विज्ञान कहीं दिखाई नहीं देता। अज्ञान, विज्ञान और भगवान में से जनता को अपने अज्ञान और अपने भगवान पर ही भरोसा करना पड़ रहा है। विज्ञान दफ्तर की फाइल, बाजार की मुनाफाखोरी, और सभा के नारों तक सीमित है। अब तक कहा जाता था कि भारत का ग्रामीण नागरिक दकियानूस है; विज्ञानविमुख है; लेकिन अब जब वह दिन-रात नये साधनों की खोज कर रहा है तो विज्ञान का कहीं पता नहीं चल रहा है। क्या यह विज्ञान की शक्ति के बाहर था कि हर दस बीघे पर एक कुआँ खुद जाता, और कोई गाँव ऐसा न बचता जिसमें पीने का मीठा, साफ पानी न होता? जो देश कपड़े की एक-से-एक डिजाइनों और शौकीनी की बेशुमार चीजों के लिए पूँजी दे सकता हो वह पानी के लिए पूँजी न जुटा सके, यह योजना के युग में समझ में आने की बात नहीं है। इसे निश्चित रूप से योजना की विफलता ही माननी चाहिए। विदेशों से अन्न की भिक्षा माँगने से कहीं अच्छा है पानी के लिए पूँजी, साधन और तकनीक माँगना। उससे बुनियादी काम भी होता; और राष्ट्र के मान की हानि भी न होती।

यह सारा परिणाम है इस बात का कि इस खेतिहर देश में नेतृत्व खेतिहरों का नहीं है। क्या राजनीति, क्या शासन और क्या शिक्षा, सब उनके हाथ में है, जो 'शब्दों की खेती' करते हैं। जबतक नेतृत्व अनुत्पादकों के हाथ में रहेगा, तबतक उत्पादन संकट ही बना रहेगा। और जब उत्पादन में संकट होगा तो सारा जीवन संकट में घिरा रहेगा। देश उत्पादन और उत्पादकों की उपेक्षा का दण्ड भोग रहा है।

आलय या लय ?

चाहे आर० एस० एस० का जोर हो, चाहे वाम पंथियों का, इतना तय है कि काशी विश्वविद्यालय में पढ़ने पढ़ाने का जोर नहीं है। काशी में ही नहीं, प्रयाग, लखनऊ, गोरखपुर आदि कहीं भी नहीं है। कहाँ है, यह कहना मुश्किल है। अगर कोई चाहे तो यहाँ तक कह सकता है कि आज हम जिन्हें विद्यालय कहते हैं वे किसी अर्थ में विद्या के आलय नहीं रहे, बल्कि उनमें विद्या का लय हो रहा है। यह बात सिद्ध करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि विद्यालयों में उपद्रव हों। जब उपद्रव नहीं भी होते, और चारों ओर शान्ति विराजती रहती है, तब भी उनमें जो अभ्यास होता है उसे विद्या का अभ्यास कहना सरासर गलत होगा। आज के जमाने में कुछ किताबें पढ़ लेना, कुछ पाठ तैयार कर लेना, और कुछ परीक्षाएँ पास कर लेना विद्या का अभ्यास नहीं कहा जा सकता। विश्वविद्यालयों में सचमुच क्या होता है, और जो होता है उसका देश और जमाने से कोई सम्बन्ध भी है या नहीं, यह एक प्रश्न है।

दूसरे कुछ देशों में पिछले दिनों विद्यार्थियों के जो उपद्रव हुए हैं, उनमें नये मूल्यों की कुछ स्पष्ट झलक रही है। इसके विपरीत हमारा विद्यालय-समुदाय मुश्किल से अभी तक जाति और गुट से ऊपर उठ पाया है। ऐसा लगता है कि बौद्धिक दृष्टि से हमारे विद्यालय किसी बीते जमाने की हवा में साँस ले रहे हैं। उनके ऊपर का पलस्तर हटा दीजिए तो अन्दर संकीर्णता और बर्बरता का दर्शन होता है। तभी तो तरुणों के उपद्रव में कभी कभी जो स्फूर्ति होती है वह भी इनमें नहीं है। है तो भरपूर सड़ाँध, जिसकी दुर्गंध पूरे शिक्षा-जगत् में व्याप्त है।

एक समय था जब तरुण होना अपने में एक गुण माना जाता था। लेकिन अब ऐसा मानना संभव नहीं है। आज का तरुण फासिस्ट हो सकता है, वह कट्टर जातिवादी, सम्प्रदायवादी, धर्मवादी, राष्ट्रवादी, हिंसावादी, हो सकता है, दूसरी ओर वह प्रबुद्ध नागरिक और उदात्त ↝

क्रान्तिकारी भी हो सकता है। वह नये समाज का निर्माता हो सकता है; वह सभ्य समाज का संहारकर्ता हो सकता है। वह क्या है, इतना जान लेने पर ही समाज में उसका स्थान स्थिर किया जा सकता है। इसलिए विद्यालय की दीवारों या ऊँची डिग्रियों की आड़ में असामाजिक आचरण की जो छूट कभी मिल जाती थी वह अब नहीं मिल सकती। क्या शिक्षक, और क्या विद्यार्थी, हर एक को सभ्य समाज के संयम और नियम के अन्दर ही रहना पड़ेगा, नहीं तो वह अपराधी घोषित होगा, और उसके साथ उसी तरह का बर्ताव होगा।

इन उपद्रवों में कुसंस्कारिता के अनेक दोष प्रकट हुए हैं, लेकिन कुछ अच्छाइयाँ भी सामने आयी हैं। एक अच्छाई यह है कि स्वयं उपद्रवग्रस्त विद्यालयों में एक ऐसी शक्ति भी दिखाई देने लगी है जो बुद्धिपूर्वक मानती है कि ये उपद्रव दिशाशून्य हैं, निरर्थक हैं, पतन के लक्षण के सिवाय और कुछ नहीं हैं। हो सकता है कि इस बढ़ती हुई प्रतीति के अन्दर से कुछ दिन बाद शांति की शक्ति पैदा हो। दूसरी अच्छाई यह है कि अब इस बात में शुबहा नहीं रहा कि प्रचलित शिक्षा के कपड़े में इतने पैवन्द लग चुके हैं कि अब नये पैवन्द लगाना बेकार है। अब पुराना कपड़ा फेंककर नया कपड़ा लाना चाहिए। अगर शिक्षा आज की ही तरह बनी रही तो उसके परिणामों की पूरी जिम्मेदारी देश के नेतृत्व के ऊपर होगी। देश के युवकों को बर्बाद करने के अपराध से इतिहास उसे मुक्त नहीं करेगा। गरीब की गरीबी और जवान की जवानी के साथ खेल खेलना आग के साथ खेलने जैसा है।

आज हम अपने बच्चों और युवकों की वस्तुतः हत्या कर रहे हैं। हम सोचें कि उन्हें हम क्या सिखा रहे हैं, क्या दे रहे हैं? जिन बड़े लोगों के द्वारा आज का समाज बना हुआ है उसमें कौनसी अच्छाइयाँ हैं, जिन्हें वे युवकों से मनवाना चाहते हैं? जिस समाज को हम खुद निकम्मा मान रहे हैं और जिसे बदलने की बात हम आये दिन करते रहते हैं, उसे बर्दाश्त करने की अपेक्षा हम अपने युवकों से क्यों करते हैं? युवकों ने साफ-साफ यह घोषणा कर दी है कि उम्र के बड़प्पन को मानने के लिए वे तैयार नहीं हैं। एक बार शस्त्र की शक्ति के सामने भी सिर झुकाने के लिए वे तैयार नहीं हैं। वे अब उस दुनिया में ही रहने को तैयार नहीं हैं, जिसे बनाने में उनका अपना हाथ न रहा हो। वे अपने व्यक्तित्व के कायल हैं और चाहते हैं कि दूसरे भी उनके व्यक्तित्व की कद्र करें। क्या उनकी इन माँगों में बुनियादी तौर पर कोई दोष है? अगर ये माँगें गलत हैं, तो नये समाज की नयी बुनियादें क्या होंगी? अगर ये सही हैं, तो सही माँगों को मानने में देर क्यों, संकोच क्यों है? हमारे ये विश्वविद्यालय एक नये रचनात्मक लोकतंत्र तथा सर्जनात्मक सहजीवन का प्रयोग करने का साहस क्यों नहीं दिखाते?

विद्यालयों ने बुद्धि की सत्ता खो दी है। बुद्धि से अधिक उनका भी विश्वास धन, शस्त्र और अधिकार की शक्ति में हो गया है। अभिक्रम, साहस और प्रयोग-बुद्धि खोकर वे 'सुरक्षित जीवन' बिताने की होड़ में शामिल हो गये हैं। बेचारा युवक उस सुखी, सुरक्षित जीवन की आशा से भी वंचित है। उसके हृदय में क्षोभ है, निराशा है, मत्सर है। वह प्रतिकूल परिस्थितियों और दूषित प्रवृत्तियों का शिकार है। वह दूसरों का 'उल्लू' बन गया है।

अच्छा हो या बुरा, देश में नेतृत्व की कुछ शक्ति सरकार में है। इतने उपद्रवों के बाद वह कम-से-कम इतनी बात तो मान ही सकती है कि शिक्षा अब उसके वश की चीज नहीं है। सरकार की कुल बुद्धि है अफसर की फाइल और कुल शक्ति है सिपाही की बंदूक। इस बुद्धि और इस शक्ति से समाज का कौनसा प्रश्न हल होनेवाला है? नयी बुद्धि और नयी शक्ति की खोज विश्वविद्यालयों में हो सकती है, लेकिन वहाँ तो कुछ और ही हो रहा है। वे राजनीति के अभ्यास-केन्द्र बन गये हैं।

जब युवक उन्मादग्रस्त हों, और नेता प्रमादग्रस्त हों, तो भरोसा करना पड़ता है समाज की उस शक्ति का, जो देखने में सोयी हुई है, लेकिन जो इसकी सारी शक्तियों का ह्रास हो जाने पर अकेली इतिहास को आगे बढ़ाती है। क्रान्ति की यही विशेषता है कि वह उस सोयी हुई शक्ति को खोजकर ऊपर ला देती है। हमारे विद्यालयों को भी उसी शक्ति की जरूरत है।

भारत में ग्रामदान-प्रखंडदान-जिलादान

क्र० प्रांत	ग्रामदान	प्रखंडदान	जिलादान
१. बिहार	३२ ६८८	२६०	६
२. उत्तर प्रदेश	६,६७०	५०	२
३. उड़ीसा	८,५०६	३६	–
४ तमिलनाड	४,३०२	५०	१
५ आन्ध्र	४,२००	१०	–
६. संयुक्त पंजाब	३,६३३	६	–
७. मध्यप्रदेश	३,२६७	८	१
८ महाराष्ट्र	३,१२६	१२	–
९ आसाम	१,४८६	१	–
१०. राजस्थान	१,०२१	–	–
११. गुजरात	८०३	३	–
१२. बंगाल	६४४	–	–
१३. कर्नाटक	४१०	–	–
१४. केरल	४१८	–	–
१५. दिल्ली	७४	–	–
१६. हिमाचल प्रदेश	१७	–	–
१७. जम्मू-कश्मीर	१	–	–
कुल :	७५,८६६	४६६	१०

संकल्पित प्रांतदान : ७—बिहार, उत्तर प्रदेश, तमिलनाड, उड़ीसा, महाराष्ट्र, राजस्थान और मध्यप्रदेश

विनोबा-निवास, डाल्टेनगंज; १३-११-'६८ —कृष्णराज मेहता

अखबारी दुनिया में ग्रामदान

[शायद यह पहला अवसर है जब कि भारत के किसी बड़े—"टाइम्स आव इण्डिया" जैसे—दैनिक अखबार में ग्रामदान इतनी अधिक चर्चा का विषय बना है। इस चर्चा को शुरू करनेवाले श्री शामलाल का लेख ("टाइम्स आव इण्डिया" के दिनांक १०,११ अक्तूबर '५८ के अंक में प्रकाशित) तो बहुत कुछ हास्यास्पद सा है; साथ ही इतने बड़े अखबार के इतने बड़े लेखक की ओर से लेख के लिए चुने गये विषय की अनभिज्ञता को देखकर कुछ खेद भी होता है, लेकिन कुल मिलाकर श्री शामलालजी बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने यह चर्चा छेड़ दी। नीचे हम श्री शामलाल के लेख सहित "टाइम्स आव इण्डिया" में ही प्रकाशित अबतक की प्रतिक्रियाओं का सार-संकलन प्रकाशित कर रहे हैं।—सं०]

पाँच लाख कल्पित गणतंत्र

मुझे पता नहीं कि सभी सन्तों के पर होते हैं या नहीं। परन्तु मुझे इतना मालूम है कि कोई भी पक्षी उस सहजता के साथ नहीं उड़ सकता, जिस सहजता से चन्द सन्त यथार्थ की ओर से आँखें मोड़ लेते हैं। प्रत्येक गाँव को सर्वोदय गणतन्त्र बना देने का श्री विनोबा भावे का साधुई उपदेश तो स्तब्ध कर देता है। पाँच लाख सर्वोदय-गणतन्त्र! जादुई शब्द-जाल! ग्रामीण जीवन का दर्दनाक पहलू एक ही हस्तिप्रोक्षल हो जाता है। गाँवों में व्याप्त जातिभेद, आपसी झगड़े, अस्वास्थ्यकर वातावरण, निष्क्रियता, आलस्य, ग्राम्य जीवन की अर्थहीनता, ये सब हवा में उड़ जाते हैं!

एक छोटा व्यक्ति कुछ कम से भी सन्तुष्ट हो सकता है—जाति-भेद की समाप्ति, मक्खियों और मच्छरों को समाप्त करने की कोशिश, मिट्टी की झोपड़ी की शोभा बढ़ाने के लिए फल-फूल लगे एक-दो वृक्ष, सामुदायिक जीवन के कुछ पाठ, सहकारी कृषि के एक-दो प्रयोग, एक की जगह दो फसल उगाने की योजना, नये विचारों के प्रयोग! परन्तु श्री भावे नहीं! उनके लिए ये सब बहुत मामूली हैं, बहुत सामान्य हैं। ये शरीर को तुष्टि पहुँचा सकते हैं; परन्तु आत्मा तो आकाश छूने को लालायित रहती है।

सर्वोदय-गणतन्त्र होता कैसा है? मुझे पता नहीं, श्री भावे ने गत सप्ताह गया में अपने भाषण में उसका कैसा चित्र खींचा। तथापि, पहले से हमें बहुत-कुछ कह चुके हैं, अतः उनके दिमाग में जो है वह बिलकुल साफ है। उन्होंने प्राय. कहा है—"आज के आधुनिक संसार में कहीं भी सच्ची स्वतन्त्रता नहीं है। इसलिए उस ग्रामराज के लिए काम करना बड़ा ही रोमांचकारी और साहसी कार्य है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपना अनाज पैदा करता है, अपना वस्त्र तैयार करता है, अपने बच्चों को शिक्षित करता है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे के साथ सुखद सहयोग करते हुए जीवन बिताता है।" सर्वोदय-गणतन्त्र का प्रत्येक नागरिक स्वतन्त्र होगा, क्योंकि उसे इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं करनी होगी कि दिल्ली, वाशिंगटन या मास्को में लोग क्या कर रहे हैं।

श्री भावे एक कल्पनाशील व्यक्ति हैं और वे बहुत आगे चलकर क्या होगा, इसकी भी कल्पना कर सकते हैं। उन्हें किसी प्रकार का कोई सन्देह नहीं रहता है। हमें रहता है। हम यह जानने की कोशिश करते हैं कि व्यवहार में कल्पना कैसी उतरेगी। हम जानते हैं कि पाँच या दस एकड़ जमीन-वाला किसान अपनी जमीन में उनके साथ भागीदारी नहीं करना चाहता, जिनके पास जमीन है ही नहीं। उसका हृदय-परिवर्तन करने के लिए हम क्या करते हैं? ऊँची जाति के लोग उन लोगों को अपने निकट आने ही नहीं देंगे, जिन्हें छूने से भी वे कतराते हैं। उन्हें हम किस प्रकार अपनी जाति का बिल्ला हटाने को तैयार कर सकते हैं? पंचायत अधिक सम्पन्न लोगों पर कर लगाने में अपने अधिकारों का उपयोग नहीं करेगी। फिर गाँव को अपने लोगों को उत्तम सेवाएँ उपलब्ध करने के लिए पैसे कहाँ से मिलेंगे? उन्हें सहकारी जीवन-पद्धति सिखायेगा कौन?

और फिर, प्रत्येक किसान से हम कैसे इस बात का आग्रह कर सकते हैं कि वह अपने लिए धान, और गेहूँ, तरकारी और मिर्च-मसाले, और यदि कपड़ा पहनना चाहता है तो, कपास भी पैदा करे! और यदि उसकी जमीन सिर्फ बाजरा उगाने लायक हुई तो? यदि आज हम उसे अपना वस्त्र स्वयं बुन लेने के लिए तैयार भी कर लें तो इस बात की क्या गारंटी है कि कल वह उससे ऊबकर उसे छोड़ नहीं देगा! आज भी ग्रामीण जो खादी तैयार करते हैं उसके लिए मिल वस्त्र पर शुल्क लगाकर क्यों अनुदान देना पड़ता है? यह इस बात की चेतावनी है कि यदि सर्वोदय-गणतन्त्र के नागरिक अपनी कताई बुनाई करने लगें, तब भी वे दिल्ली की बिलकुल ही उपेक्षा नहीं कर सकते। किसी-न-किसीको तो मिल-वस्त्र पर शुल्क लगाना ही पड़ेगा, ताकि खादी-बुनकर जीवन-वेतन प्राप्त करने के लिए आश्वस्त हो सकें। किसी-न-किसीको इन दोनों के बीच की प्रतियोगिता को नियमित करना ही होगा।

बहरहाल, प्रत्येक गाँव के बिलकुल स्वतन्त्र रहने में ही कौनसी अच्छाई है? यदि जो काम वह कर सकता है उसे अच्छी तरह करने के बदले अपनी शक्ति अट-संट और अनार्थिक कार्यों में लगाता है तो उसका जीवन-स्तर नीचा ही रहेगा। व्यापक बाजार से विमुक्ति न सिर्फ उसके पहल को, बल्कि नये कौशल सीखने की उसकी इच्छा को भी समाप्त करेगी। गाँव को नये विचार दिये जाने की आवश्यकता है, न कि उससे बचाना है। समृद्ध बनने के लिए इसे बड़े जीवन में भाग लेना ही चाहिए।

साधुई सलाह

परन्तु देश में अन्य अनेक चीजों की तरह ही साधुई सलाह को भी जैसे का तैसा नहीं मान लेना चाहिए। हम औरों से यह अच्छी तरह जानते हैं कि विचार और कार्यान्वयन के बीच कितनी दूरी रखनी चाहिए। अनुभव से हमने सीखा है कि बात जितनी बड़ी की जाय, उसे कार्यान्वित करने का अर्थ उतना ही कम होता है। जापानी ढंग से

धान की खेती करने के लिए लोगों से आग्रह करने पर वे उसे अस्वीकार भी कर सकते हैं, क्योंकि उसमे खेत में रोजाना एक-दो घण्टे ज्यादा काम करना होता है। परन्तु सर्वोदय-गणतंत्र बनाने का आवाहन आत्मा को सन्तोष पहुँचाता है। यह गरीबी को बहुत-कुछ एक देन बना देता है।

मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि श्री भावे का मतलब यह नही है। उन्होने अपने जीवन के सर्वोत्तम वर्ष ग्रामीणों के कल्याणार्थ काम करने में बिताये हैं। परन्तु कुछ कारणो से उन्होंने अपने अनुभवो पर विशेष प्रकाश नही डाला है। उन्होने सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्नो की उपेक्षा की है।

भूमिहीनों के लिए उन्होंने जो २० लाख एकड़ से भी अधिक जमीन प्राप्त की, उसका क्या हुआ? वे ग्रामदानी गाँव कैसे हैं और क्या कर रहे हैं, जहाँ कि सभी लोग सहकारी कृषि व जीवनदान का प्रयोग करने के लिए सबकी जमीन एक में मिला देने को सहमत हो गये हैं?

यह एक ऐसा अवसर था जब कि यदि पाँच लाख नही तो कम-से-कम दर्जन भर सर्वोदय-गणतंत्र बनाये जा सकते थे, ताकि अन्य गाँव उनका अनुकरण करें। परन्तु परिणाम क्या हुआ? अनेक ग्रामदानी गाँव आदिवासी क्षेत्रो मे हैं, जहाँ कि लोगो को सहकारी जीवन-कला में प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं। जैसा कि श्री मिरडल ने बताया है कि ये वैसे गाँव हैं, जिनमें भूमि-सुधार की कोई वैसी आवश्यकता है ही नही। अन्य गाँवो में अवस्था जैसी-की-तैसी बनी हुई है।

इस सम्बन्ध में श्री भावे द्वारा प्रस्तुत चित्र प्राप्त करना अच्छा होगा। कितने ग्रामदानी गाँवो में सही माने मे जमीन के छोटे-छोटे टुकड़ो को मिलाकर एक कर दिया गया है और कितने गाँवों मे यह केवल कागजी भर रहा है? इन गाँवो में प्रति एकड़ उत्पादन-वृद्धि की दर क्या रही है? किस हद तक उन्होने स्वावलम्बन प्राप्त कर लिया है? उनमें से कितनों को अभी अधिकारियो द्वारा प्रदत्त सहारे की आवश्यकता है? क्या यह सही है कि अनेक लोगों ने अपनी भूमि मिलाने का प्रस्ताव इस आशा से स्वीकार किया था कि उन्हे उर्वरक, उत्तम बीज तथा अन्य साधन सहज ही मिल जायेंगे? पाँच लाख सर्वोदय गणतंत्र बनाने की घण्टो हवाई बातें करने के बदले एक ग्रामदानी गाँव का सूक्ष्म अध्ययन करना कही अधिक लाभकर होगा!

गया में श्री भावे द्वारा दिये गये भाषण की अखबारी रिपोर्ट से यह मालूम होता है कि उनके पास ग्रामदानी गाँव के विषय में कहने को कुछ विशेष नहीं था। परन्तु उन्होने इस बात पर पूरा बल दिया कि संसदीय प्रणाली असफल रही है। संसदीय प्रणाली कोई बहुत सफल नही रही है। कई लोगों के पास खाने को नहीं है, तो कई लोगों के पास काम नही है। विदेशी सहायता पर निर्भरता के कारण देश पर तरह-तरह के दबाव पड़ते हैं। गरीब और अमीर के बीच की खाई और चौड़ी हुई है। सार्वजनिक जीवन की एकता टूटती जा रही है। इससे जो बुराइयाँ पैदा हुई हैं उनका कोई अन्त नही है। परन्तु किया क्या जाय? श्री भावे का रहस्यमय उत्तर है: "दल का बिल्ला उखाड फेंको।"

परन्तु यह तो बड़ा ही सहज और सरल हल है। जैसा कि प्रत्येक छोटे गाँव को रामराज्य बनाने का उनका नुस्खा है। श्री भावे ने यह जानने की कोशिश नहीं की है कि यह काम होगा कैसे। दल का बिल्ला लगाये बिना भी लोगो को दल के रूप में काम करने से कौनसी चीज रोक सकती है? क्या हर दल के अन्दर के अलग अलग गुट अपना काम नहीं कर लेते? क्या ग्राम स्तर पर दलरहित लोकतंत्र का विचार साकार हुआ है? फिर कैसे यह राष्ट्रीय स्तर पर सफल हो सकता है, जहाँ कि दाँव बहुत बडा है? दोनों ही मामलों में यह खुली प्रतियोगिता है—एक, ग्राम-विकास निधि के लिए और दो, केंद्रीय सरकार को चलाने हेतु आवश्यक विशाल शक्ति के लिए।

हृदय परिवर्तन

बिल्ला बदलने या बिल्ला हटा देने से कुछ नही होगा। श्री भावे के कार्यक्रम में अन्ततः सार्वजनिक जीवन मे लोभ का त्याग करने को कहा गया है। परन्तु उसके लिए हृदय-परिवर्तन की आवश्यकता है और अब हमे यह अच्छी तरह समझना चाहिए कि यह कोई आसान काम नही है। नैतिक उपदेश व्यक्ति को बदल सकते हैं। परन्तु समाज में परिवर्तन तभी आ सकता है, जब कि प्रत्येक नागरिक के कानूनी कर्तव्य की स्पष्ट व्याख्या करते हुए उसके आधार पर सुनियोजित सामाजिक कार्रवाई की जाय।

जब श्री विनोबा भावे हवा मे बातें करना छोड़ श्रमिको पर नजर डालेंगे तो पायेंगे कि हमे पाँच लाख रामराज्य की नही, बल्कि निम्न स्तर पर कुछ और शिक्षा तथा उच्च स्तर पर कुछ और ईमानदारी की आवश्यकता है। अभी हमारे बीच गरीब बहुत दिनो तक रहेंगे, परन्तु यदि उन्हें उत्साहित किया गया व जीने की प्रेरणा दी गयी तो उनकी अवस्था में बहुत-कुछ सुधार हो जायगा।*

—श्यामलाल

मेरा गाँव : एक वास्तविक इकाई

न तो मैं ग्रामदान द्वारा सर्वोदय के दर्शन और कार्यक्रम की व्याख्या प्रस्तुत करने जा रहा हूँ, और न ही ग्रामस्वराज्य की लोकनीति की वकालत करने जा रहा हूँ, जो कि मेरे दिमाग मे सम्भव, व्यावहारिक और आसानी से कार्य रूप में परिणत करने लायक है। मैं तो अपना ही उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

मैं राजस्थान के सिरोही जिले के ग्रामदानी गाँव हाथल का नागरिक हूँ। लगभग ३२५ परिवारो और ८,००० बीघा भूमिवाले इस गाँव का सन् १९६० के अंत में ग्रामदान हुआ था। ग्रामदान के बाद यहाँ सबकी राय से एक ग्रामसभा का गठन हुआ था। तब से आज तक यह ग्रामसभा ग्रामहित के लिए सफलतापूर्वक काम करती आ रही है।

अवसर मिलने पर ग्रामदान कोरी कल्पना की चीज नहीं रह जाती, बल्कि गाँव खुशहाल स्वच्छ और स्वाश्रयी इकाई बन जाता है। ग्रामदानी गाँव किसी भी हालत में अत्य-

* 'टाइम्स आव इण्डिया', दिनांक १०,११ अक्तूबर, '६८ के अंक में पृष्ठ : ६ पर प्रकाशित।

अलग इकाई नहीं होंगे, बल्कि विश्वशान्ति और एक विश्व के लक्ष्य को सामने रखते हुए पूरी दुनिया से जुड़े होंगे।*

—गोकुलभाई दौ० भट्ट

मानवोचित लोकतंत्र का निर्माण कैसे ?

श्री श्यामलाल ने आचार्य विनोबा भावे के आदर्श समाज-कल्पना (यूटोपिया) की जो चुस्त आलोचना की है उसके लिए मैं उन्हें बधाई देता हूं।···लेकिन श्री श्यामलाल ने दलमुक्त लोकतंत्र की जो आलोचना की है, वह मान्यता के विपरीत है। उन्होंने अपने विषय को विस्तार के साथ नहीं पेश किया। देश की मौजूदा राजनीतिक परिस्थिति पर उन्होंने अपनी राय जाहिर की है, लेकिन सही कदम उठाने के सवाल पर वे चुप लगा गये हैं। क्या आज के बिना मतलब के लिए बनाये गये मोर्चे, अनशन और हड़तालें आज की राजनीतिक प्रतिक्रिया के ही परिणाम नहीं हैं? क्या आज की बढ़ती हुई अशान्ति और सत्ता की राजनीति के बीच जो लगाव है, वह जाहिर नहीं है? यदि ऐसा है तो हम सत्ता की राजनीति के गन्दे दाँतों को कैसे निकाल बाहर करें? लोकतांत्रिक राजनीति को कैसे मजबूत रास्ते पर खड़ा किया जाय यह एक परेशानी में डालनेवाला सवाल है और इस सवाल पर श्री श्यामलाल ने मौन रहना पसन्द किया है। आज की अराजक व्यवस्था की बाढ़ ने जो कसमसाहट की है, उसमें से मानवोचित लोकतांत्रिक व्यवस्था का निर्माण कैसे हो सकता है यह मुख्य सवाल है। राजनैतिक मार्क्सवाद के अन्तर्गत इसका उत्तर नहीं मिल सकता। ऊपर के स्तर पर भ्रष्टाचार कम करना और नीचे के स्तर पर शोषण-विलाप मिटाना राजनीतिक अभिप्राय है। इस समस्या पर हमें कुछ अधिक गहराई तक विचार करने की जरूरत है।*

—आर० सी० परेख, बड़ोदा

* 'टाइम्स आफ इण्डिया' दि० १४-१०-'६८ : पृ० ८ पर; श्यामलाल के लेखों का कुछ विवरण भी प्रकाशित हुआ था। हमने पूरी अध्ययन रिपोर्ट ही "भूदान-यज्ञ" के दिनांक ११, १८, २२ नवम्बर, '६८ के तीन अंकों में प्रकाशित की है।

ग्रामदान : एक सही परिप्रेक्ष्य

मैंने 'पाँच लाख कल्पित गणतंत्र' नामक लेख ध्यान से पढ़ा। जिस तीव्र भाषा में लेख लिखा गया है तथा जो निष्कर्ष निकाले गये हैं, उससे मुझे कोई ताज्जुब नहीं हुआ। परन्तु क्या दोनों ही विषयान्तर नहीं हैं?

ग्रामदान के उद्देश्य को समझना आवश्यक है। यह 'राज्यवाद' के विपरीत है, भले ही वह प्रशासनिक कार्यवाही के लिए हो या कल्याण-कार्यों के लिए। इस लेख में जिस राज्य सरकार की बात कही गयी है, ग्रामदान में उसका कोई स्थान ही नहीं है। कल्पना उस तरह के पाँच लाख गणतंत्र बनाने की नहीं है, जिस तरह कि लेखक ने समझा है। यह तो लोगों को धीरे धीरे अपनी जिम्मेदारी समझने तथा तदनुसार काम करने की ओर ले जाना है। ग्रामदान लोगों को स्वावलम्बी बनने हेतु शिक्षा देने की एक प्रक्रिया है। स्वावलम्बन गणतंत्रवाद नहीं है।

फिर स्वावलम्बन की यह कल्पना इस विचार पर आधारित नहीं है कि व्यक्ति या गाँव अपने मिर्च मसाले खुद ही पैदा करें। यह इस विचार पर आधारित है कि गाँव में रहनेवाले विभिन्न जातियों, सम्प्रदायों और धर्मों के लोग चन्द बुनियादी जिम्मेदारियों में हिस्सा बँटायें। वे भूमि में हिस्सा बँटायेंगे। प्रत्येक ग्रामदानी ग्रामीण अपनी भूमि का पाँच प्रतिशत गाँव को दान दे देगा। वे अपनी आय में हिस्सा बँटायेंगे। प्रत्येक ग्रामदानी ग्रामीण अपने वार्षिक उत्पादन का चालीसवाँ हिस्सा दान में देगा। वह नियत आय में से एक दिन की आय दान में देगा। इस प्रकार प्राप्त भूमि भूमिहीन श्रमिकों में बाँट दी जायेगी। इस प्रकार एकत्रित नकद और अन्य सामग्री ग्रामनिधि में जमा होगी। भूमि गाँव के नाम पर होगी। ग्रामसभा भूमि की ट्रस्टी होगी।

ग्रामसभा को कोष इकट्ठे करने की अपनी क्षमता देखते हुए और अपनी प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए अपनी योजना तैयार करना है। इस प्रकार ग्रामदान सम्पूर्ण ग्रामस्वराज के लिए आयोजन की ठोस बुनियाद डालेगा।

उपरोक्त लेख का लेखक यह समझता है कि अधिकांश ग्रामदान तो सिर्फ कागजी ग्रामदान है। परन्तु इस सन्दर्भ में यह पूछा जा सकता है कि 'वोट' क्या है? क्या एक कागज का टुकड़ा नहीं है? इसका महत्त्व इसीलिए हो जाता है कि समाज और राज्य इसे एक विशेष प्रकार का कागज समझते हैं और इसे कुछ अधिकार प्रदान करते हैं। और यह बहुमत को जनता की सरकार बनाने का आदेश देता है। फिर, ये रुपये के नोट भी कागज के सिवा क्या हैं? सरकार और जनता इसे जो मान्यता देती है, वही उसका मूल्य है। ग्रामदानी गाँवों के मामले में यह कानूनी व्यवस्था की गयी है कि आवेदन-पत्रों की अच्छी तरह जाँच-पड़ताल कर उन्हें सही होने का प्रमाण-पत्र दिया जाय। जैसे ही आवेदन पत्र सही मान लिया जाता है और गाँव पर ग्रामदानी कानून लागू हो जाता है, वर्तमान सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों में संशोधन हो जाता है। सबसे बड़ी बात तो स्वेच्छा से यह संशोधन करना है। इस तरह की क्रान्ति के भी निहितार्थ हैं, जिनका अच्छी तरह अध्ययन किया जाना है।

लेखक यह समझता है कि भारतीय ग्रामीण बिलकुल निर्बुद्ध है और उसे अपने हित की ही जानकारी नहीं है। मैं यह मानता हूं कि जहाँ तक अपने हित को समझने की बात है, ग्रामीण कुशाग्र बुद्धि है। वह महसूस करता है कि विनोबाजी एक ही काम के जरिये उसे चौतरफे खतरे से बचाने की कोशिश कर रहे हैं।

सर्वप्रथम, मैंने जो अध्ययन किया है उसके आधार पर मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि ग्रामदानी गाँव में सामुदायिक प्रयास से गाँव सामाजिक रूप में और मजबूत होगा तथा उसकी आर्थिक जोखिम और घाव घटेगी। द्वितीय, कपट अथवा बिक्री का काम ग्रामसभा की राय से किया जायेगा, यह व्यक्तियों को साहूकार के चंगुल

*'टाइम्स आफ इण्डिया' १७-१०-'६८

से मुक्त करेगा। तृतीय, आपसी 'समझ-बूझ' के आधार पर ग्राम-आयोजन किया जा सकेगा; कहने का तात्पर्य यह है कि आयोजन 'गाँव की व्यावहारिक समस्याओं को समझते हुए' किया जायेगा, न कि '*शहरी जटिल ढंग*' से। चतुर्थ, यह ग्रामीण को राजस्व प्रशासन की लालफीताशाही तथा न्यायालय के विवाद से बचायेगा, क्योंकि ग्रामसभा विवादों को सुलझाने की जिम्मेदारी उठाती है। और इस पर भी गाँव स्वतंत्र समाज होगा। उक्त लेख *का लेखक ग्रामीणों को* आचार्य विनोबा भावे के स्वप्निल के विरुद्ध चेतावनी देने के लिए स्वतंत्र होगा। यह ग्रामीणों को आचार्य और उनके खादी-कार्यकर्ताओं के दल के खर्चों के प्रति भी चेतावनी देने के लिए स्वतंत्र होगा। वह उन्हें यह समझाने के लिए भी स्वतंत्र होगा कि आयोजन की समस्याओं को किस प्रकार शहरी उपागम अपनाकर दूर किया जा सकता है, बशर्ते कि वे उसकी भाषा समझ सकें। निस्सन्देह उसे जनता को अपने साथ लेकर चलना होगा। एक बार ग्रामसभा के काम आरम्भ कर देने पर विनोबाजी उसके *काम के विषय में कोई दावा नहीं करते और* न ही उस पर कोई अधिकार जमाते हैं। वे अपने सभी सामाजिक और आर्थिक मामलों में ग्राम-समाज के मतानुसार निर्णय लेने को पूर्णतया स्वतंत्र होंगे। जनमत का सिद्धान्त आन्तरिक झगड़ों के विरुद्ध गारंटी है। यह *ग्रामदानी गाँव को अखिल भारतीय प्रशास*निक और राजनीतिक ढाँचे से अलग नहीं करता। यह उस ढाँचे के लिए स्वतंत्र लोकतान्त्रिक और समतावादी आधार प्रदान करेगा।

इस उपागम में गलत क्या है? उक्त लेख का लेखक यह तर्क कर सकता है कि यह केन्द्रीय योजना-आयोग और राज्यों के आयोजन विभागों के अधिकारों को धीरे-धीरे कम कर देगा। परन्तु योजना-आयोग तथा राज्य आयोजन विभागों, जहाँ कहीं भी वे हैं, ने अपनी हवाई परियोजनाओं के जरिये क्या अपने को समाप्त किये जाने योग्य नहीं बना लिया है? सम्भवतः विनोबाजी वह व्यक्ति नहीं हैं जिन्हें कि यह बताने की जरूरत है, कि वे हवाई बातें करना छोड़ जमीन पर चलें। बताने की जरूरत है, पर किसी और को। यदि ग्रामदानी गाँव में ग्राम आयोजन कृषि-विकास, मवेशी-विकास और ग्रामोद्योग-विकास के साथ आरम्भ होता है तो यह कोई *उल्टी बात नहीं होगी। यह तो बहुत पहले* राष्ट्रीय स्तर पर ही किया जाना चाहिए था।

लेखक को तथा अन्य लोगों को भी यह मालूम होगा कि विनोबाजी देश में सर्वाधिक अद्यतन भारतीय नेता हैं। उन्हें १५ भाषाएँ आती हैं। उन्हें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय *घटनाओं की पूर्ण जानकारी है। भारत के* गाँवों के विषय में सारे आँकड़े उनकी जुबान पर हैं। भारतीय अवस्थाओं का १५ वर्षों तक सूक्ष्म अध्ययन और ५० वर्षों तक क्षेत्रीय कार्य के आधार पर व्यक्त किये गये विचारों पर गंभीरतापूर्वक और विस्तार से ध्यान देने की जरूरत है और लेखक ने जैसा *बताया* है उससे कहीं अधिक वास्तविकता से ध्यान देना है

विनोबाजी जानते हैं कि बिहार के दरभंगा जिले में प्रति व्यक्ति चौथाई एकड़ जमीन और सारण जिले में प्रति व्यक्ति तिहाई एकड़ *जमीन वर्तमान ग्रामसमाज को जिन्दा रखने के* लिए किसी भी तरह पर्याप्त नहीं है। अतः वे ग्रामीणों को इतने सरल ढंग से समझाते हैं कि एक ग्रामीण महिला भी आबादी सीमित रखने की आवश्यकता आसानी से समझ जाय। वे वेद से यह उद्धरण देते हैं कि अधिक सदस्यवाले परिवार का जीवन अच्छा नहीं रहता और मृत्यु के बाद भी वे सुखी नहीं होते। राम का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि दो बच्चे पर्याप्त हैं। वे अन्य धर्मग्रन्थों के उद्धरण देकर भारतीयों को यह समझाते हैं कि उन्हें अपनी आवश्यकताओं को सीमित तथा अपने स्रोतों को संरक्षित रखने की आवश्यकता है। विनोबाजी जो कहते हैं उसे टेपरेकार्ड कर यदि ग्रामीणों को सुनाया जाय तो वे अपने परिवार को छोटा रखने के लिए गंभीरतापूर्वक ध्यान देंगे, जब कि सरकार के सारे प्रचार-यंत्र भी यह काम नहीं कर सकते।

स्कूलों और कालेजों में जो बरबादी हो रही है, विनोबाजी उसके प्रति भी सचेत हैं। वे शिक्षकों का संघ बनाने की कोशिश कर रहे हैं—शिक्षकों के अधिकारों के लिए नित नयी माँग करने के लिए नहीं, बल्कि बिना किसी राजनीति में पड़े शिक्षण-व्यवसाय के हित में काम करने के लिए। विनोबाजी *यहाँ तक व्यावहारिक हैं कि बिहार के मुसल*मानों से इस बात का आग्रह कर रहे हैं कि वे उर्दू को राज्य की सरकारी भाषा बनाने का अपना आन्दोलन बन्द करें। विनोबाजी ही सद्भावना और कर्तव्य के आधार पर विकल्प प्रदान कर संविधान में निर्धारित सिद्धान्तों में भूमिहीनों का विश्वास बढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं, भले ही वे भूमिहीन तेलंगाना के हों या नक्सलबाड़ी के।

एक बात और। सर्व सेवा संघ अपने दायरे के बाहर समाजशास्त्रियों व अर्थशास्त्रियों के दल बनाने का विचार रखता है, ताकि वे ग्रामदान आन्दोलन के कार्य का अध्ययन करें और रचनात्मक सुझाव दें। मैं मानता हूँ कि बुद्धिजीवियों और संगठनों के बीच सम्पर्क आवश्यक है। परस्पर सम्पर्क से निश्चित ही दोनों को लाभ होगा।★

—ज० म० देवर

पदप्राप्ति की आपाधापी

श्री विनोबा भावे सार्वजनिक जीवन में चुनाव की पद्धति के बदले सर्वसम्मति का तरीका प्रचलित करना चाहते हैं। लेकिन सर्वोदय के अन्दर पद-प्राप्ति के लिए *जितनी आपाधापी चलती है, उसके आगे राजनीतिक* दल शर्म का अनुभव करेंगे!†

—सुदर्शन कुमार कपूर, नयी दिल्ली

भारतीय पत्रकार क्षेत्र में आयें

भारतीय पत्रकार दूर-दूर ही बैठे न रहें, *बल्कि अपनी बौद्धिक कपोल-कल्पना के आव*रण से बाहर निकलकर प्रत्यक्ष क्षेत्र में आयें और देखें कि सन्त विनोबा और उनके साथी वस्तुतः क्या कर रहे हैं। श्री प्रामलाजी जैसे बुद्धिजीवियों से अपेक्षा है कि यदि वे गहराई से देखें तो निश्चित ही ग्रामदान

★ यह लेख सदौर में 'टाइम्स आव इण्डिया' के ता० १६-१०-'६८ पृ० ६ पर छपा था।

† 'टाइम्स आव इण्डिया' : २४-१०-'६८

आन्दोलन का महत्त्व समझ सकेंगे। लेकिन ऐसे आधारहीन आक्षेप भूदान के समय भी होते रहे हैं और आज भी हो रहे हैं, फिर भी विनोबा और उनके साथी कार्यकर्ताओं के कदम डगमगानेवाले नहीं हैं।*

—सी. ए. मेनन

यूटोपिया भी, हकीकत भी

श्री शामलाल का '५० हजार यूटोपियाज' नामक लेख सर्वोदय आन्दोलन के लक्ष्य और कार्य-पद्धति के बारे में अनभिज्ञता का सूचक है।

गाँव में रहनेवाली आबादी के विभिन्न तबकों के बारे में एक बुनियादी तथ्य यह है कि लोगों के आपसी सम्बन्धों में निर्दय शोषण और दबाव मौजूद है। नीचे के स्तर पर शिक्षण और ऊपर के स्तर पर ईमानदारी की प्रक्रिया से आज की बुरी हालत कुछ हद तक कम होगी इसमें शक नहीं है, लेकिन इससे इस हालत का अन्त नहीं होगा।

श्री शामलाल ने सर्वोदय के ग्राम-स्वराज्य की कल्पना को 'यूटोपियन' बताया है। यह गलत है। यहाँ मैं सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डा० आर्नल्ड टायनबी का उद्धरण देना चाहता हूँ। अपने एक लेख में उन्होंने कहा है: 'नीचे की बुनियाद में ग्रामीण समुदाय और ऊपरी स्तर पर विश्व-सरकार।" क्या यह यूटोपिया की माँग नहीं है? यह तो खूब अच्छी तरह जाना हुआ, आजमाया हुआ संघीय प्रणाली का कार्यक्रम है।

मैं कहना चाहता हूँ कि यदि ग्रामदान यूटोपिया है, फिर भी इसकी आजमाइश होनी चाहिए। इतिहास इस बात का साक्षी है कि आज का यूटोपिया कल को हकीकत बनता है। ग्रामदान एक विधायक हकीकत बनने जा रहा है। इसके जरिये भारत की शकल बदल जायेगी। यह भारत में अहिंसक और शोषण-मुक्त समाज-रचना कायम करेगा।†

—सुरेशराम, इलाहाबाद

* 'टाइम्स आफ इंडिया' : ५-११-'६८

† 'टाइम्स आफ इण्डिया' : १२-११-'६८

ग्राम-स्वामित्व

(कार्य-पद्धति और वैचारिक परिवर्तन का एक अध्ययन)

[कुमारप्पा ग्राम स्वराज्य शोध संस्थान द्वारा कराये गये इस अध्ययन के क्रम में पिछले दो अंकों में आप पढ़ चुके हैं ग्रामदानी गाँव हायल की ग्रामसभा के संगठन, स्वरूप और निर्णय-पद्धति के बारे में। इस अंक में प्रस्तुत है सर्वसम्मति और सर्वानुमति तक पहुँचने की कुछ प्रयोगसिद्ध पद्धतियाँ और ग्रामस्वामित्व के सम्बन्ध में गाँव के लोगों की भावनाएँ। —सं०]

पिछले अंक में ग्रामसभा के कुछ प्रमुख निर्णय दिये गये थे। कुछ निर्णय कार्यकारिणी द्वारा भी होते हैं। ग्रामसभा के कार्यों के संचालन, देखरेख एवं बाहर से सम्बन्ध स्थापित करने का कार्यभार कार्यकारिणी पर है। फिर भी सभी निर्णय की सूचना, (१) मंदिर एवं प्रमुख स्थानों पर नोटिस लगाकर (२) डुग्गी पिटवाकर, (३) आपसी चर्चा द्वारा गाँव में सबको दी जाती है। यदि आवश्यकता हुई तो किसी खास मसले को लेकर ग्रामसभा या कार्यकारिणी की विशेष बैठक होती है। पिछले अंक में प्रकाशित सारिणी से स्पष्ट है कि जिन प्रमुख निर्णयों का उल्लेख किया गया है, उनमें से २३ सर्वसम्मति से किये गये जो कि कुल निर्णय (३०) का ७६.६६ प्रतिशत है। शेष ५ निर्णय, जो कि कुल का १६.६६ प्रतिशत है सर्वानुमति से किये गये। एक प्रस्ताव पर विशेष मतभेद होने के कारण उस पर मुक्त चर्चा हेतु समय दिया गया और बाद में वह प्रस्ताव वापस ले लिया गया। अपने मतों को व्यक्त करते समय वक्ताओं ने सामान्यतया यह भाव प्रकट किये कि भूमि के अलावा अन्य सम्पत्ति, मकान, कुएँ-सम्बन्धी प्रश्नों पर कभी-कभी आपस में थोड़ा मतभेद होता है। पर अभी तक प्रत्यक्ष और अन्तिम समय तक 'विरोध' का मौका नहीं आया है। सर्वसम्मति या सर्वानुमति तक पहुंचने की प्रक्रिया की तलाश में हमने पाया कि 'मुक्त चर्चा' गुत्थियों को सुलझाने एवं मतभेदों को दूर करने का सबसे सुन्दर 'गुर' है। गाँव में ऐसे दो चार व्यक्ति मिले, जो गुत्थियोंवाले सवालों को 'पब्लिक ईशू' बनाकर गाँव में उसकी खूब चर्चा करते हैं। इससे सबको एक दूसरे के मत का अंदाज लग जाता है और कोई-न कोई सुलझाव निकल ही आता है; उस स्थिति में :

(१) प्रस्तावक अपनी वास्तविक स्थिति समझ लेता है और प्रस्ताव वापस ले लेता है।

(२) यदि आवश्यकता हुई तो उस पर विचार करने के लिए कमिटी का भी निर्माण किया जाता है।

(३) कभी-कभी कोई उससे अच्छा समाधान निकल आता है, जो कि सबको मान्य हो—जैसे कि मन्दिर के खर्च के लिए २० पैसे का प्रस्ताव। काफी लोगों ने इसके पक्ष में मत व्यक्त किये। पर यह सबके ऊपर भारी बोझ था। अन्त में सामूहिक खेती का सुन्दर रास्ता निकला। अब सैकड़ों रुपये हर साल सामूहिक खेती से आ जाते हैं। गाँव में राजनीतिक गुटबन्दी देखने को नहीं मिली। वैसे किसी दल-विशेष के प्रति वैचारिक झुकाव नहीं है यदि झुकाव है तो ग्रामदान के प्रति। जहाँ तक मत देने का प्रश्न है, इस गाँव के लोग कांग्रेस को मत देते हैं। परन्तु यहाँ कांग्रेस का कार्यकर्ता एक भी नहीं। ग्रामसभा में कांग्रेस या किसी दल का कोई स्थान नहीं है। यह भी इस गाँव का सौभाग्य मानना चाहिए कि ग्रामसभा 'दलमुक्त' है।

(३)

ग्रामदान में सबसे क्रान्तिकारी तत्त्व व्यक्तिगत स्वामित्व का पूर्ण विसर्जन है। ग्रामदान के बाद पूरी जमीन ग्रामसभा के नाम होती है और व्यक्ति को मात्र जोतने-बोने का अधिकार रहता है। हायल के भूस्वामित्व का पूर्ण विसर्जन किया जा चुका है। हायल के सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि यहाँ प्रारम्भ से ही जमीन किसी एक व्यक्ति के नाम नहीं थी। यह गाँव की भूमि पर बसा है और भू स्वामित्व 'खोत' नामक ग्रामपंचायत के अन्तर्गत था। इस खोत

पंचायत में पाँच सदस्य होते थे। भूमि अधिक होने के कारण व्यक्तिगत स्वामित्व की उलझन सामने नहीं आयी। परन्तु ग्रामदान के पूर्व जमीन मुख्यतया ब्राह्मणों के हाथ में थी। अन्य जातियाँ उनके अधीन थीं। ग्रामदान के बाद सभी जातियों ने स्वामित्व-विसर्जन पूर्ण रूप से स्वीकार किया और पुरानी पंचायत से स्वामित्व लेकर अधिकार ग्रामसभा को सौंपा गया। ऐसा निर्णय किया गया कि भूमि पर ग्रामसभा का अधिकार होगा, जिसमें गाँव का प्रत्येक बालिग सदस्य होगा। इस सिद्धांत को स्वीकार करने के बाद गाँव की जमीन का पुनर्वितरण किया गया, इसके लिए कमिटियाँ बनायी गयीं। ता० २६-५-'६२ की बैठक में भूमि-वितरण के सिद्धान्त के अनुसार गाँव की भूमि का वितरण किया गया। उस सिद्धान्त में कालान्तर में परिवर्तन भी किये गये। नये परिवर्तन के अनुसार जिन्हें और जमीन चाहिए थी, उन्हें और अधिक जमीन दी गयी। परन्तु ग्रामसभा की पक्की हिदायत यह है कि यदि कोई जमीन पर खेती नहीं करता है तो उसकी काश्त की जमीन अन्य किसीको देने का अधिकार ग्रामसभा को ही है। अतः सभी खेती करते हैं। अब प्रश्न किया जा सकता है कि स्वामित्व-विसर्जन की मान्यता गाँव में कितनी है? इसमें गाँववाले कुछ लाभ देखते हैं या नहीं? स्वामित्व-विसर्जन का गाँववाले क्या अर्थ समझते हैं? इन प्रश्नों की दिशा निम्नलिखित सारिणी में देख सकते हैं :

स्वामित्व-विसर्जन : विचार-परिवर्तन की दृष्टि से

(साक्षात्कार-संख्या-३०)

वक्तव्य	संख्या
यहाँ पहले से ही जमीन गाँव की थी।	२६
ग्रामदान के बाद जमीन ग्रामसभा की हो गयी।	३०
इससे भूमि सुरक्षित हो गयी।	३०
जो जोतेगा उसीको जमीन मिलती है, इस कारण सब खेती करते हैं।	२८
चरागाह, जंगल की सुरक्षा हुई।	२६
बाहर के लोगों से जमीन का झगड़ा समाप्त हो गया।	२५
आपस में जमीन को लेकर झगड़े नहीं होते हैं।	२६
लगान-वसूली एवं अन्य तरीकों से कर्मचारियों की परेशानी से मुक्ति मिली।	२८
स्वामित्व-विसर्जन अर्थात् जमीन पर सबका हक।	२५
जो जोते उसके हाथ में जमीन रहती है।	२४

उपरोक्त सारिणी से स्वामित्व-सम्बन्धी धारणा का अन्दाज लग जाता है। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि अधिकांश लोगों ने स्वामित्व-विसर्जन से लाभ का अनुभव किया।

गाँववालों ने व्यवहारगत लाभ को व्यक्त करते हुए कहा कि **'सबसे बड़ा लाभ सरकारी कर्मचारियों से मुक्ति है।'** अब सब काम ग्रामसभा कर लेती है, हम मेहनत करते हैं, खाते हैं। एक रुचिकर स्वाद यहाँ सहज ही याद हो जाता है। एक १२ वर्ष का लड़का, जो मेरा सामान ले जा रहा था, उससे मैंने उसके परिवार के बारे में जानकारी चाही। मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कि 'तुम्हारे पास कितनी जमीन है?' उस हरिजन बालक ने जवाब दिया, **"हम १२ बीघा जमीन जोतते हैं। पर उसे बेच नहीं सकते। हाँ, कमाकर खा सकते हैं। लेकिन यदि उस पर खेती भी नहीं करते तो वह दूसरों को दे दी जाती है।"** मैंने सहज ही पूछा, "ऐसा क्यों? जमीन तुम्हारी है न, दूसरे को क्यों दी जायेगी?" उसका उत्तर था, **"जब हम जोतें तो हमारी है, नहीं जोतें तो हमारी कैसे होगी? जमीन तो सबकी है। बेकार पड़े रहने से अच्छा है कोई भी जोते।"** उसके बाद रास्ते भर उस बालक ने अपनी समझभर खेतों का परिचय कराया। इस वर्ष वर्षा न होने के कारण सबकी खेती मारी गयी, यह दर्द उसके दिल में था। हम उसके वक्तव्य से चकित रह गये। उसने जिस सहजता से स्वामित्व-विसर्जन की बात प्रकट की उससे यही लगा कि उस हरिजन बालक के मन में—भूमि निजी स्वामित्व के रूप में हो सकती है, उसकी खरीद-बिक्री भी हो सकती है,—यह भावना है ही नहीं।

अन्य लोग जिनसे हमने साक्षात्कार किये—हरिजन, अन्य जाति, ब्राह्मण सभी—उनका सामान्य मत था कि जमीन ग्रामसभा की होने से सबको लाभ है। जमीन खरीद-बिक्री की चीज नहीं है। एक बुजुर्ग ने मुझे बार-बार यह समझाने का प्रयास किया कि पास-पड़ोस के गाँवों में व्यक्तिगत स्वामित्व होने से काफी झगड़े एवं अन्य परेशानियाँ होती हैं। मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कि 'फिर वे क्यों नहीं ग्रामदान करते हैं?' उन्होंने कहा कि 'अब वे भी समझ रहे हैं, पर उनके यहाँ आगे बढ़नेवाला कोई नहीं। फिर आन्तरिक कमजोरियाँ भी हैं।'

हायल की भूमि-व्यवस्था परम्परा से विशेष ढंग की थी। परन्तु ग्रामदान के बाद इस व्यवस्था में कई परिवर्तन हुए, जैसे—
(१) पहले भूमि की असमानता अधिक थी।
(२) भूमि ब्राह्मणों के अधिकार में ही थी।
(३) सामाजिक स्तरीकरण अधिक था।
(४) अन्य जातियाँ उनके अधीन-सी थीं। ग्रामदान के बाद भूमि-स्वामित्व में तो परिवर्तन हुए ही, साथ-ही-साथ अन्य क्षेत्रों में भी कई परिवर्तन हुए। ग्रामदान से क्या लाभ हुए हैं? इसके उत्तर में जो वक्तव्य दिये गये उनसे परिवर्तन का अंदाज लगा सकते हैं :

(साक्षात्कार-संख्या-३०)

वक्तव्य	संख्या
खेती करने के इच्छुक को जमीन मिली।	३०
हमारी समस्याएँ यहीं सुलझ जाती हैं।	२८
सरकारी कर्मचारी की परेशानी समाप्त हो गयी।	२६
चरागाह और जंगल की व्यवस्था एवं सुरक्षा हुई।	२८
लगान के सामूहिक एकत्रीकरण से परेशानी खतम हो गयी।	२७
गाँव की अपनी पूँजी बनी।	२१
गरीबों को जमीन और रोजगार मिला।	२१
आपसी एकता बढ़ी।	२१
जमीन बेच नहीं सकते इससे (क) सभी खेती करते हैं, (ख) आगे के लिए भूमि सुरक्षित हो गयी।	२१
स्कूल, डाकघर खुले, कुछ उद्योग भी चलते हैं।	२६

→

खादी, उसका गिरता हुआ मूल्य और अहिंसा

[विगत ११ व १२ अक्तूबर को मद्रास में आयोजित अ० भा० अणुव्रत सम्मेलन आचार्य श्री तुलसी के सान्निध्य में सम्पन्न हुआ। उक्त सम्मेलन में सक्रिय अणुव्रतियों के लिए आगामी वर्ष में प्रयोगात्मक अनिवार्य के रूप में 'खादी या हाथ-करघे का बना हुआ वस्त्र' पहनने का प्रस्ताव पारित हुआ। इसी सन्दर्भ में मुनि श्री रूपचन्द और आचार्य श्री तुलसी के खादी के सम्बन्ध में हुए महत्त्वपूर्ण संवाद को हम पाठकों की सेवा में प्रस्तुत कर रहे हैं।—सं०]

मुनि श्री रूपचन्द्र : आज जब सभी दृष्टियों से खादी-वस्त्रों का अवमूल्यन होता जा रहा है और कुछ स्वार्थपरस्त लोगों ने इसे अपनी स्वार्थ-साधना का माध्यम भी बना रखा है, इस स्थिति में अ० भा० अणुव्रत समिति द्वारा किये जानेवाले इस निर्णय में—कि सक्रिय अणुव्रती के लिए खादी पहनना अनिवार्य होगा—आप क्या कोई विशेष लाभ देखते हैं ?

आचार्य श्री तुलसी : मैं इस निर्णय को अहिंसा के परिप्रेक्ष्य में देखता हूँ। एक अणुव्रती या आदर्श अहिंसा और अपरिग्रह को सम्पूर्णतया स्वीकार कर नहीं चल सकता। इसलिए वह अपने जीवन-निर्वाह के लिए उन साधनों को अपनाना चाहता है, जिनमें हिंसा और परिग्रह की अल्पता हो। किसी भी प्रकार के उद्योग में हिंसा का सर्वथा अभाव हो, यह कठिन है। किन्तु हिंसा का तारतम्य अवश्य होता है। खादी-उद्योग में मैं अल्पारम्भ, अल्प हिंसा और अल्प-परिग्रह देखता हूँ। जैन आगमों में अहिंसा का सूक्ष्म विश्लेषण देते हुए बड़े कल-कारखानों को महा-आरम्भ और महा-परिग्रह का स्थान बताया गया है। मैं इस निर्णय में सबसे बड़ा यही लाभ देखता हूँ कि यह अल्प-हिंसा-जन्य वस्त्र है।

खादी वस्त्रों के प्रति होनेवाले सम्मान का आज अवश्य अवमूल्यन हुआ है, किन्तु खादी के मूल में रहे हुए मूल्यों का महत्त्व आज भी कम हुआ हो, ऐसा मैं नहीं मानता। महात्मा गांधी ने जिन कारणों से चरखा-आन्दोलन का सूत्रपात किया, उनमें अहिंसा के साथ साथ और भी अनेक कारण थे। विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार, राष्ट्र की गिरती हुई आर्थिक स्थिति, स्वावलम्बन, गरीबी, बेकारी, बेरोजगारी, गाँवों का विकास आदि अनेक राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान उन्होंने इस चरखे में देखा और इसलिए उन्होंने इस पर विशेष जोर दिया। इनमें से अधिकतर समस्याएँ आज भी देश के सामने मुँह बाये खड़ी हैं। किन्तु चरखे का अवमूल्यन हो जाने से और बड़े बड़े कल-कारखानों को अधिक प्रोत्साहन मिलने से देश की स्थितियाँ दिन-प्रतिदिन उलझती ही जा रही हैं।

विनोबाजी कहा करते हैं कि चरखा गांधीजी की सबसे बड़ी सूझ है। इसका आशय यही है कि गांधीजी की सर्व-हित और सर्वोदय की कल्पना इस चरखे से ही साकार की जा सकती है। उन्होंने अपने सपनों का जो भारत बनाया था, उसके आधार में चरखा ही था। चरखा यानी बेकारी और बेरोजगारी को दूर करने का साधन, चरखा यानी स्वदेशी वस्त्रों का उत्पादन, जिससे विदेशी वस्त्रों के आयात पर स्वयं असर आये, चरखा यानी जनता की गरीबी को दूर करने का सरलतम उपाय, जिससे राष्ट्र आर्थिक दृष्टि से स्वयं समृद्ध हो, और चरखा यानी ग्रामों की आत्म निर्भरता, ग्रामों में खुशहाली और ग्रामों का विकास। लेकिन गांधीजी के बाद इस आवाज में ढीलापन आ गया। परिणाम स्पष्ट है कि देश में गरीबी, बेकारी और बेरोजगारी ज्यों की-त्यों कायम है, आर्थिक दृष्टि से भी वह अबतक आत्मनिर्भर नहीं बना है और गाँव के लोग शहरों की ओर दौड़े आ रहे हैं। शहरों की आबादी बहुत अधिक तेजी से बढ़ रही है और गाँव खाली होते जा रहे हैं।

गांधीजी पहला महत्त्व मनुष्य के श्रम को देते थे। वे अर्थ और सत्ता का केन्द्रीकरण होना ठीक नहीं समझते थे। केन्द्रीकरण का अर्थ ही है शहरों का विकास। एक बड़ी मिल की स्थापना का मतलब होता है हजारों मजदूरों का गाँवों को छोड़कर शहर में आना। उस एक मिल के उत्पादन का मतलब है लाखों हाथों का बेकार हो जाना। अमेरिका जैसे धनाढ्य देश में भी आज बेकारी की समस्या है। इसका एकमात्र कारण अर्थ का केन्द्रीकरण ही है। भारत सरकार ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बड़े कल-कारखानों को अधिक प्रश्रय दिया। परिणामस्वरूप लघु उद्योग स्वयं पिट गये। आज स्थिति यह है कि जहाँ पाकिस्तान को चरखा-उद्योग से बड़ा लाभ होता है, वहाँ भारत घाटा उठा रहा है।

खादी का अवमूल्यन इस दृष्टि से अवश्य स्वीकार किया जा सकता है कि कुछ लोगों ने इससे अनुचित लाभ उठाने की कोशिश की है, किन्तु अहिंसा सादगी और श्रम का वह आज भी सक्रिय प्रतीक है और देश की अनेक समस्याओं का समाधान भी इसमें दिखाई देता है।

मुनि श्री रूपचन्द्र : क्या विकेन्द्रीकरण की नीति में आप आध्यात्मिक लाभ भी देखते हैं ?

आचार्य श्री तुलसी : केन्द्रीकरण का अर्थ है शक्ति का एक जगह में सिमट आना, जहाँ सबमें काम करनेवाली शक्ति और सबके काम आनेवाली शक्ति एक स्थान पर सिमट

वक्तव्य	संख्या
—कोई विशेष लाभ नहीं दिखता, फिर भी हम साथ हैं।	२
धार्मिक एवं सांस्कृतिक एकता बढ़ी है।	१४
छोटी जाति में जागृति आयी है।	१३

उपरोक्त वक्तव्यों से साफ जाहिर है कि स्वामित्व-विसर्जन के लाभ से अतिरिक्त ग्रामदान के कई लाभ गाँववालों को हुए ऐसा वे महसूस करते हैं। ग्रामदान में सभी लोग शामिल हैं, इस कारण आपसी टकराव नहीं है।

—अवध प्रसाद

जाती है, वहाँ एक के सिवाय सबका शक्ति-शून्य होना स्वाभाविक है। वह शून्यता फिर एक नयी शक्ति को जन्म देती है, जिसमें वर्तमान व्यवस्था से जूझने का सामर्थ्य होता है।

हम औद्योगिक क्रान्ति को ही लें। इस क्रान्ति के बाद विश्व में बड़े-बड़े उद्योगों का विस्तार हुआ है; किन्तु हिंसा, तनाव और यांत्रिकता भी क्या इसी क्रान्ति की देन नहीं है? बड़े-बड़े कल-कारखाने स्थापित हुए और वहाँ लाखों लाख मजदूर काम करने लगे। फिर उनके यूनियन बने और एक नयी शक्ति का उदय हुआ। फिर उसके बाद थोड़े से आपसी असंतोष के साथ ही हड़ताल, घेराव, सत्याग्रह, लूट-मार, तोड़-फोड़ आदि हिंसात्मक प्रवृत्तियों का जन्म हो गया। फिर उनको दबाने के लिए सत्ता ने प्रतिनियंत्रण का सहारा लिया।

आज स्थिति यह है कि उद्योगपति और मजदूर, ये दो ऐसे वर्ग बन गये हैं, जिनके बीच निरन्तर संघर्ष अनिवार्य है। इस प्रकार केन्द्रीकरण, सामूहिक हिंसा और प्रतिनियंत्रण, ये क्रमशः एक-दूसरे के अनिवार्य परिणाम हो गये हैं।

विकेन्द्रीकरण में हिंसा और संघर्ष के अवसर नहीं के बराबर होते हैं। वहाँ एक का नुकसान दूसरे पर असर नहीं डाल सकता। एक मिल के बन्द होने का मतलब है हजारों व्यक्तियों का बेकार होना। हजारों के बेकार होने का मतलब है एक बहुत बड़े समूह में असंतोष, रोष और आक्रोश का जन्म होना, जिसका परिणाम एकमात्र हिंसा ही हो सकता है।

विकेन्द्रित व्यवस्था में विकास का सबको समान अवसर मिलता है। सबके सब समान स्तर पर विकास कर सकें, यह वहाँ भी संभव नहीं होता। किन्तु समान अवसर की सुलभता से किसीके दिल में असन्तोष या रोष जैसी स्थिति को उत्पन्न होने का मौका नहीं मिलता। हिंसा, प्रतिनियंत्रण, तनाव आदि को जिस व्यवस्था में अवकाश नहीं मिलता और समता और समानता को जिस व्यवस्था में पनपने का अवकाश मिलता है वह अपने आप में एक बड़ी आध्यात्मिक उपलब्धि है।

('अणुव्रत' से साभार)

गांधी-शताब्दी वर्ष १९६८–६९

गांधी-विनोबा का ग्राम-स्वराज्य का संदेश गाँव-गाँव, घर-घर पहुँचाइए और जन-जन को उसके लिए कृत-संकल्प कराइए। सच्चे स्वराज्य का अब यह ही रास्ता है।

इस निमित्त उपसमिति द्वारा निम्न सामग्री पुरस्कृत/प्रकाशित की गयी है :—

पुस्तकें—

(१) जनता का राज्य—लेखक : श्री मनमोहन चौधरी, पृष्ठ ६२, मूल्य २५ पैसे। ग्रामदान-आन्दोलन की सरल-सुबोध जानकारी।

(२) *Freedom for the Masses*—'जनता का राज' का अनुवाद, पृष्ठ ७६, मूल्य २५ पैसे।

(३) शान्तिसेना परिचय—लेखक : श्री नारायण देसाई, पृष्ठ ११८, मूल्य ७५ पैसे। शान्तिसेना विचार, संगठन, कार्यक्रम आदि की जानकारी देनेवाली, हर शान्ति-प्रेमी नागरिक के पास रखी जाने योग्य।

(४) हत्या एक आकार की—लेखक : श्री ललित सहगल, पृष्ठ ९६, मूल्य रु० २.५०। गांधीजी के हत्यारे के हृदय में हत्या से पूर्व चलनेवाले अन्तर्द्वन्द्व का प्रभावपूर्ण सशक्त चित्रण।

(५) **A Great Society of Small Communities**—लेखक सुगत दासगुप्ता, पृष्ठ ७८, मूल्य रु० १०.००। क्रान्ति में ग्रामदान-आन्दोलन का स्थान तथा ग्रामदानी गाँवों के सन्दर्भ में आन्दोलन की गतिविधि का विवेचन और समीक्षा।

वितरण और प्रदर्शन की सामग्री—

फोल्डर—(१) गांधी, गाँव और ग्रामदान (२) गांधी, गाँव और शान्ति (३) ग्रामदान क्यों और कैसे? (४) ग्रामदान क्या और क्यों? (५) ग्रामदान के बाद क्या? (६) ग्रामसभा का गठन और कार्य (७) गाँव-गाँव में खादी (८) सुलभ ग्रामदान (९) देखिए : ग्रामदान के कुछ नमूने।

पोस्टर—(१) गांधी ने चाहा था : सच्चा स्वराज्य (२) गांधी ने चाहा था : स्वावलम्बन (३) गांधी ने चाहा था : अहिंसक समाज (४) ग्रामदान से क्या होगा? (५) गांधी जन्म-शताब्दी और सर्वोदय-पर्व।

सामग्री मर्यादित रूप में निम्न स्थानों से प्राप्त की जा सकती है :—

(१) गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी जन्म-शताब्दी समिति), डुंकलिया भवन, कुंदीगरों का भैरों, जयपुर—१ (*राजस्थान*)। (२) सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी–१ (उत्तर प्रदेश)

राष्ट्रीय गांधी जन्म-शताब्दी समिति की गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति द्वारा प्रसारित

विश्राम भाई "सर्वोदयी"

"मेरी जीवन-कहानी सुनना चाहते हैं ? मैं क्या सुनाऊँ भाईजी !" हमारे प्रतिनिधि के आग्रह पर अत्यन्त सकोच के साथ बस्ती जिले के कार्यकर्ता साथी ने रामकहानी सुनायी :

"मैं तो कोई पढ़ा-लिखा आदमी नहीं हूँ। कक्षा ४ का फेल आदमी हूँ, और गरीब परिवार का हूँ। गरीबी के कारण १० वर्ष की आयु में पड़ोस के एक महाजन की दूकान पर मुझे सिर्फ डेढ़ रुपये मासिक पर नौकरी करनी पड़ी सन् १९३६ में।

'भूदान यज्ञ' पढ़ते पढ़ते 'भूदानी' बन गया

१९४० तक इसी १।।) मासिक पर नौकरी करता रहा। बेकार हो गया। उन दिनो बड़ी ही मुश्किल से अपना पेट पाला, दिन बड़ी मुश्किल से गुजारे। किसी तरीके से सन् १९४२ में फिर नौकरी लगी। एक महाजन —जो कि मेरे रिश्तेदारो में से थे—उसने मुझे चार रुपये मासिक पर सन् १९४४ तक रखा। सन् '४४ के बाद जब मुझे कुछ होश-हवास हुआ तो मैंने दूसरे महाजन की दूकान पर ६) मासिक पर नौकरी करना शुरू किया। उधर गांधीजी का आन्दोलन शुरू छिड़ा हुआ था। आजादी के दिनो मैं वे ब्लैक-मारकेटिंग में व्यस्त रहा। सन् '४६ में मैंने नौकरी छोड़कर अपना काम शुरू किया और थोड़े समय अपना व्यापार वगैरह किया।

"उसके बाद जब मैं कुछ साथी कांग्रेसियो से मिला, तो मेरे दिल-दिमाग में टकराहट पैदा हुई। और सन् १९५२ तक कांग्रेस का पूरा जोर लगाकर काम किया। कांग्रेस में काम करते-करते मुझे कुछ मित्र मिले और उनके साथ में घूमते घामते राजनैतिक पार्टियों से सम्पर्क हुआ। लेकिन मुझे उन लोगो से कोई शांति नहीं मिली।

"अपना कारोबार छोड़-छाड़कर मैं गरीबो का जीवन बिताने लगा। कांग्रेस के नेताओ से जब कुछ कभी अपनी बात कहता था तो वे बेवकूफ बनाते थे। मैं शुरू से सत्य के आश्रित और भगवान के भरोसे पर रहने की कोशिश करता था। सन् १९५२ मे विनोबाजी की पदयात्रा के सिलसिले में बस्ती में पड़ाव था। मैंने जब सुना कि विनोबाजी सन्त हैं, तो मैंने उनके बारे में कुछ मित्रो से पूछताछ की। मुझे बड़ी रुचि हुई। मेरे एक मित्र ने कहा कि उनकी पत्रिका 'भूदान-यज्ञ' निकलती है, उसको देखिये। और 'भूदान-यज्ञ' देखते-देखते मैं 'भूदानी' बन गया। 'भूदान-यज्ञ' पत्रिका के ग्राहक भी बनाना शुरू किया और विनोबाजी के भाषणो पर पूरा-पूरा ध्यान देता रहा। मैंने अपने को और अपने परिवार को इसी विचार में डुबो दिया। और कहाँ तक कहूँ। मैंने अपने ऊपर बहुत आक्रमण किया। मेरे माता पिता-भाई का भरापूरा परिवार मौजूद है। मैं परिवार का एक छोटा महाजन ही बन गया था, लेकिन असत्य जीवन पसन्द नही आया और सत्य जीवन बिताना पसन्द किया। आज तक मेरा जीवन संघर्षमय बीत रहा है। कितना कहूँ, बड़ा कष्टकर मालूम होता है। ईश्वर जो कुछ करता है, अच्छा करता है।

"मई १९५८ में विनोबा का दर्शन अजमेर में हुआ, तभी से मुझे कुछ दूसरा रास्ता नहीं दिखाई देता। जबतक सर्वोदय नहीं होगा तबतक मुझे सन्तोष भी नहीं होगा। इधर ग्रामदान ने तो और रंग ला दिया है। विनोबा का आन्दोलन और गांधी का देश अब जगमगाया है। २० सालों में तो लोगों ने अपने देश को फिर से परावलम्बी बना दिया। अब फिर आ गयी है क्रान्ति, उसको सफल करना है।

"और क्या कहूँ, इस वक्त मेरे परिवार का जीवन बड़े कष्ट में पड़ गया है। पूरा परिवार चरखा, चक्की आदि चलाने में ही समय लगाता है। परिवार का कपड़ा चरखे से, और भोजन कुछ सर्वोदय-मित्रों से, इस तरह चलता है। समय-समय पर अन्न-संग्रह करता रहता हूँ। कभी फाके भी करने पड़ते हैं !"

"बच्चे ?"

"मेरे लड़के सब पढते लिखते हैं। बड़ा लड़का जिसकी उम्र २० साल है, बी० ए० ज्वाइन कर रखा है, और दो लड़कियाँ जूनियर हाईस्कूल मे पढ़ती हैं। और एक लड़का प्राइमरी में पढ़ता है। कुल ४ बच्चे हैं। मेरे माता-पिता हिन्दू धर्म के बड़े ही भगत हैं। मैं तो उनके विचार से बिलकुल अलग हो गया हूँ।

"समाज में अकेला मालूम पड़ता हूँ। समाज ने तो मुझे पागल घोषित कर दिया है ! लेकिन कुछ मित्रो ने मेरा पूरा साथ दिया है। उनकी वजह से मैं कुछ शान्ति पाता हूँ। रोज-रोज गाँव मे जाता हूँ और ग्रामदान का विचार समझाता हूँ। और शाम को अपने परिवार मे जो कुछ ईश्वर देता है उसको पाता हूँ। सर्वोदय के काम में लगा हूँ। अब भगवान का ही सहारा है।

"जिला-प्रतिनिधि भी चुना गया हूँ। और हर सम्मेलन मे पहुँचता रहता हूँ। बिहार में 'बीघा-कट्ठा'-अभियान में पूर्णिया जिले मे एक माह का समय दिया था। गाँव गाँव में जमीन माँगकर बाँटा है। अब जितना समय मेरे जीवन का बाकी है वह सब सर्वोदय के लिए ही बिताने का सोचा है। ऐसी प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे और मेरे परिवार को साथ-साथ ऐसे पुण्य-काम में लगे रहने की शक्ति दे। अपने जिले में ग्रामदान-अभियान शुरू करने जा रहा हूँ। उम्मीद है, बस्ती जिला जल्दी ही जिलादान में आ जायगा। और उसके बाद तो प्रान्तदान होकर ही रहेगा।

"गाँव गाँव में जाना, ग्रामदान की बातें समझाना और ग्रामदान करवाना—इसके अलावा अपने बारे में अधिक कुछ सोच नहीं पाता।"

विश्राम भाई से हुई इस मुलाकात में हमारे प्रतिनिधि ने महसूस किया कि विचार और भावना के बल पर परिस्थिति से जूझते हुए जिन्दादिल जिन्दगी से मुलाकात हुई है, जो ग्रामस्वराज्य की नींव का एक ठोस पत्थर है। •

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में १० रु०; या १५ शिलिंग या १ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ

लोकनागरी लिपि

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : १

सोमवार २ दिसम्बर, '६८

अन्य पृष्ठों पर

आवश्यक सूचना

"भूदान-यज्ञ" के १८ नवम्बर '६८ अंक का परिशिष्ट "गाँव की बात" जो मध्यावधि चुनाव परिशिष्टांक था, वह दो रंगों [में] दुबारा छपा है। आशा है, जिन राज्यों [में] मध्यावधि चुनाव हो रहे हैं, उन राज्यों [के] मतदाताओं तक इस विशेष अंक को पहुँचा[ने] की कोशिश की जायेगी। जो साथी मँगाना चाहें, वे २० पैसे प्रति अंक की दर से मँ[गा] सकते हैं।

—व्यवस्थापक

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४१८५

परिग्रह : एक अपराध

जब मैंने अपने-आपको राजनीतिक जीवन के भँवरों में खिंचा हुआ पाया, तब मैंने अपने-आपसे पूछा कि मुझे अनैतिकता से, असत्य से और जिसे राजनीतिक लाभ कहा जाता है उससे अछूता रहने के लिए क्या करना जरूरी है? मैं निश्चित रूप से इस नतीजे पर पहुँचा कि यदि मुझे उन लोगों की सेवा करनी है, जिनके बीच मेरा जीवन बीतनेवाला है और जिनकी कठिनाइयों को मैं दिन-प्रतिदिन देखता हूँ, तो मुझे समूची सम्पत्ति तथा सारे परिग्रह का त्याग कर देना चाहिए।

मैं सचाई के साथ आपसे यह नहीं कह सकता कि ज्यों ही मैं इस निश्चय पर पहुँचा त्यों ही मैंने एकदम प्रत्येक चीज का परित्याग कर दिया। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि पहले-पहल इस त्याग की प्रगति धीमी रही। और आज जब मैं संघर्ष के उन दिनों को याद करता हूँ, तो मैं देखता हूँ कि आरम्भ में यह त्याग दुःखद भी था। लेकिन जैसे-जैसे दिन बीतते गये वैसे-वैसे मैं यह महसूस करता गया कि कई अन्य चीजों का भी, जिन्हें मैं तब तक अपनी मानता था, मुझे संपूर्ण त्याग करना चाहिए, और एक समय आया जब उन वस्तुओं का त्याग मेरे लिए निश्चित रूप से हर्ष का विषय हो गया। और तब एक के बाद एक वे सारी वस्तुएँ बहुत तेजी से मुझसे छूटती गयीं। उनके छूटने से मेरे कन्धों से एक भारी बोझ उतर गया और मुझे लगा कि अब मैं आराम के साथ चल सकता हूँ तथा अपने बन्धुओं की सेवा का कार्य भी बड़ी निश्चिन्तता और अधिक प्रसन्नता के साथ कर सकता हूँ। फिर तो किसी भी चीज का परिग्रह मेरे लिए कष्टदायक और भार रूप बन गया। उस हर्ष के कारण की खोज करते हुए मैंने पाया कि यदि मैं किसी भी चीज को अपनी मानकर अपने पास रखता हूँ, तो मुझे सारी दुनिया से उसकी रक्षा भी करनी पड़ेगी। मैंने यह भी देखा कि कई लोग हैं जिनके पास वह चीज नहीं है, यद्यपि वे उसे चाहते हैं, और यदि कुछ भूखे, मेरे साथ बँटवारा करके ही सन्तुष्ट न हों, बल्कि उसे मुझसे छीन लेना भी चाहें, तो मुझे पुलिस की सहायता भी प्राप्त करनी होगी। मैंने अपने-आपसे कहा : यदि वे लोग इसे चाहते हैं और मुझसे ले लेते हैं, तो ऐसा वे किसी ईर्ष्यापूर्ण हेतु से नहीं करेंगे, लेकिन इसलिए करेंगे कि उनकी आवश्यकता मेरी आवश्यकता से कहीं अधिक है।

और तब मैंने अपने आपसे कहा परिग्रह मुझे अपराध मालूम होता है। मैं उसी स्थिति में अमुक चीजों का संग्रह कर सकता हूँ, जब मुझे ज्ञात हो जाय कि उन चीजों को रखना चाहनेवाले दूसरे लोग भी उनका संग्रह कर सकते हैं। लेकिन हम जानते हैं—हममें से हरएक अपने अनुभव से कह सकता है—कि ऐसा होना असम्भव है। अतएव एक ही चीज ऐसी है, जिसे सब रख सकते हैं, और वह है अपरिग्रह—कोई भी चीज अपने पास न रखना।

—मो० क० गांधी

ता० २७-९-१९३१ को लन्दन के गिल्ड-हाल में किये गये भाषण से।

एक प्रेमपूर्ण माँग

नौकरीपेशा और व्यापारी लोग सर्वोदय-काम के लिए अपनी आमदनी का ढाई प्रतिशत दान दें —विनोबा

अभी आप लोगों ने एक व्यर्थ कार्यक्रम किया, जिसमें आठ-दस मिनट गये। कुछ नाम सुनाये गये—राम, कृष्ण, हरि, वासुदेव ……(परिचय कराया गया था), जो सारे भारत में हुआ करते हैं। वे नाम हम संध्या में सुनते हैं और विष्णु-सहस्रनाम में भी सुनते हैं। तो यहाँ सुनाने में कोई मतलब नहीं होता। फिर रूप दिखाये गये। एक दफा रूप देखकर याद होगा नहीं। बार-बार देखेंगे तब ध्यान में होगा। लेकिन बेमतलब होते हुए भी ऐसे कार्यक्रम प्रेम के लिए करने होते हैं। और प्रेम से बढ़कर कोई मतलब दुनिया में है नहीं। यह प्रेम हमको व्यापक करना है भारत में, और व्यापक करना है विश्व में।

आज सर्वत्र इस गुण की कमी पायी जाती है। क्योंकि छोटे-छोटे स्वार्थ बड़े हैं, मनुष्य के चित्त पर दबाव है—आर्थिक, मानसिक। इसमें लोगों का दोष नहीं, लेकिन योजना ही ऐसी बनायी गयी कि उसके कारण देश में पैसा बढ़ा और उत्पादन बढ़ा नहीं। पैसा कितना बढ़ा? दुगुने से भी अधिक। और उत्पादन कितना बढ़ा, क्या प्रति व्यक्ति अनाज बढ़ा? अनाज बढ़ता तो अकाल की नौबत क्यों आती? और आज भारत को दूसरे देशों से अनाज माँगना पड़ रहा है, कितनी गुलामी करनी पड़ रही है! यह नौबत क्यों आती? देश में पैसा बढ़ गया। न अनाज बढ़ा, न फल बढ़ा, न तरकारी बढ़ी; न दूध बढ़ा। दूध की कहानी तो ऐसी है कि जब भारत और पाकिस्तान एक थे तब प्रति व्यक्ति सात औंस दूध था। अब जब कि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान बन गये तब ज्यादा दूध देनेवाली गायें पाकिस्तानवाले प्रदेश में गयीं। भारत में प्रति व्यक्ति पाँच औंस दूध हुआ। और कुछ दिन पहले मुझे सुनाया गया कि पाँच औंसवाली बात तो अब पुरानी हो गयी। अब भारत में प्रति व्यक्ति तीन औंस दूध है। तीन औंस यानी साढ़े सात तोला। उसमें देना भी होगा, मिठाई भी होगी, चाय के लिए भी होगा, और उसमें गाय का भी दूध आया, भैंस का भी आया, बकरी का भी आया और हमको सुनाया गया कि गधे का दूध भी इसमें शामिल है। इसका अर्थ क्या हुआ? बढ़ा क्या भारत में? पैसा बढ़ा और पैसे के साथ भोग-विलास के साधन बढ़े।

मैं कहना यह चाहता था कि अभी प्रेम बड़ा महँगा है। मानव का मूल्य घट गया है। हर चीज का मूल्य बढ़ गया है, लेकिन मानव का घट गया है। मैं नहीं मानता कि अगर कोई हरिश्चन्द्र ने किया था, वैसे मनुष्य को बेचने जाय तो उसका पैसा मिलेगा। घोड़ा बेचे तो पैसा मिलेगा, गाय बेचे तो पैसा मिलेगा, लेकिन मनुष्य को बेचेगा तो पैसा नहीं मिलेगा। क्योंकि लोक-संख्या इतनी बढ़ी है तो और मनुष्य को लेकर क्या करेंगे? यह अलग बात है कि घर में मेहनत करने के लिए किसीको रख सकते हैं, लेकिन पैसा देकर खरीदेंगे नहीं। तात्पर्य, प्रेम बहुत महँगा हुआ है, मानव की कीमत घट गयी है। इसलिए आपने अभी नाम सुनाने का काम किया वह सार्थक है।

लेकिन बाबा आपको लूटने आया है। आपने सोचा होगा कि बाबा आया तो उसको खिलाई-पिलाई कर देंगे। लेकिन उतने से नहीं होगा, बाबा तो लूटने आया है। जब हमने भूदान माँगना शुरू किया तब दुनिया भर में चर्चा चली और अमेरिका के एक मासिक 'टाईम' में 'दिन में, प्रेम से लूटनेवाला बाबा' आया है, ऐसा वर्णन आया था। तो अभी हम जो कहना चाहते हैं वह दो-तीन मिनट में कह देंगे। हमको कहना तो थोड़ा है, आपको करना अधिक है।

अभी भारत में ग्रामदान हो रहे हैं। गाँव के जमीन का २० वाँ हिस्सा लोग प्रेम के लिए देते हैं। अपनी कमाई का ४० वाँ हिस्सा ग्रामसभा को देते हैं। यह सारा लिखित होता है और तदनुसार वे देते हैं। गाँव के सभी छोटे-बड़े काश्तकारों से बाबा उपज का ४० वाँ हिस्सा माँगता है। अब आगे के काम के लिए—ग्रामसभा बनाना, जमीन का बँटवारा करना आदि काम करने के लिए कार्यकर्ताओं की सेना, जो सतत गाँव-गाँव में घूमती रहेगी, खड़ी करनी है। उनके योगक्षेम के लिए मैं आप लोगों से माँग करता हूँ कि आप अपनी मासिक आमदनी का ढाई प्रतिशत दीजिए। बाबा की यह माँग हरएक को लागू है। मैं एक मिसाल दे दूँ। गया जिले में एक मीटिंग हुई थी। वकील डाक्टर, इंजीनियर वगैरह उसमें आये थे। मैंने उनसे यही कहा कि मैं गाँव-गाँव के किसानों से ४० वाँ हिस्सा माँग रहा हूँ तो आप इंजीनियर, वकील, डाक्टर सरकारी अधिकारी और भी बड़े-बड़े लोग हैं, आप अपनी आमदनी का ढाई प्रतिशत इस काम के लिए दें। तब एक वकील ने कहा कि यह विचार उन्हें मान्य है। उनकी आमदनी दो हजार रुपये है, उसका ढाई प्रतिशत यानी ५० रुपये वे देंगे। कोई भी कबूल करेगा कि दो हजार मासिक प्राप्तिवाले मनुष्य को ५० रुपये देना भार नहीं होगा। अगर आप लोग यह स्वीकार करें तो जितने लोग यहाँ आये हैं, उतने संकल्प-पत्र पर हस्ताक्षर देकर जायँ। हम किसीकी आमदनी कितनी है, यह तलाश नहीं करेंगे। जिस मनुष्य ने हमको दो हजार आमदनी बताया, उसने अगर एक हजार बताया होता तो हम मान लेते, तलाश नहीं करते। अगर आप यह करते हैं तो अभी नाम सुनाने में समय व्यर्थ गया, ऐसा हमने कहा, उसके बदले में समय सार्थक हो जायेगा—प्रेम की वृद्धि में और अर्थशास्त्र की वृद्धि में भी।

अम्बिकापुर : ता० १७-११-'६८।

हंगामे की राजनीति और भारत से अपेक्षा

देश की राजधानी दिल्ली में जब संसद का अधिवेशन शुरू होता है, तो अखबारी दुनिया में रौनक आ जाती है। पृष्ठ के पृष्ठ भरे रहते हैं संसद की चटपटी बातों से। जो संसद भारतीय नागरिकों के लिए लोकतांत्रिक श्रद्धा, आशा और निष्ठा की प्रतीक होनी चाहिए, ऐसा लगता है कि वह एक नाट्यशाला मात्र बनकर रह जाती है।

पिछले 11 नवम्बर को जब संसद का शरदकालीन अधिवेशन शुरू हुआ तो इन्दिरा-सरकार के खिलाफ पेश किये गये अविश्वास प्रस्ताव पर हुई दो दिनों की बहस के बाद तीसरे दिन जब प्रधानमंत्री ने अपना स्पष्टीकरण पेश करना चाहा तो सदन में इतना हंगामा मचा कि उन्हें मौन साध लेना पड़ा। विरोधी सदस्यों की एक ही मांग थी कि प्रधानमंत्री दो टूक आश्वासन दें, जब कि प्रधानमंत्री इनके पूर्व कुछ महत्वपूर्ण स्पष्टीकरण पेश करना चाहती थीं। बहस में मुख्य विषय केन्द्रीय कर्मचारियों की हड़ताल थी।

लोकतंत्र में जन-प्रतिनिधि जन-भावना को व्यक्त करनेवाले माने जाते हैं। मौजूदा लोकतंत्रीय व्यवस्था में विरोधी सदस्यों का सरकार द्वारा की गयी कार्रवाइयों पर अपना मत और विरोध प्रकट करना स्वस्थ लोकतंत्रीय परम्पराओं में ही गिना जाता है। लेकिन अगर विरोधी या सरकारी, किसी भी ओर से किसी भी प्रतिनिधि को बहस के दौरान 'मन की बात मन में' ही रहने देने को विवश किया जाय, और वह भी सदन में हंगामा करके, तो इसे संसद् को, और लोकतंत्रीय परम्पराओं को दुर्बल बनानेवाला कदम ही माना जायगा। देश की जनता जहां से सही नेतृत्व, मार्गदर्शन और समाधानकारी भविष्य के निर्माण की आशा लगाये बैठी है, वहां जब इस तरह के करिश्मे होते हैं, तो देश के हर जागरूक नागरिक के लिए यह एक गहन चिन्ता का विषय हो जाता है।

तब क्या यह माना जाय कि देश की सत्तात्मक राजनीति देश की गम्भीर और खतरनाक परिस्थिति की ओर से शुतुरमुर्ग की तरह विमुख रहकर जनता को भरमानेवाले कुछ प्रहसन पेश करके अपना कर्तव्य पूरा कर दे रही है?

२५ नवम्बर को एक प्रश्न का जवाब देते हुए उपप्रधान मंत्री श्री मुरारजी देसाई ने यह आश्वासन दिया कि विदेशी सहायता की अनिश्चितता के कारण चतुर्थ पंचवर्षीय योजना स्थगित नहीं की जायेगी। उन्होंने कहा कि योजना जनवरी '६९ तक तैयार हो जायेगी, और भारत में मौजूद आन्तरिक साधनों के आधार पर विकास के कार्यक्रम तैयार किये जायेंगे।

अभी तीन योजनाओं का जायका हम ले चुके हैं, जिनके बदले भारत को हर साल १६१ करोड़ रुपये सिर्फ सूद में विदेशी महाजनों को देने पड़ रहे हैं। भारत को विकासोन्मुख योजना के परिणाम-स्वरूप देश विदेशों का कर्जदार और जनता सरकार की कर्जदार बन गयी है। क्या इसका कारण यह नहीं है कि हमारी विकास की योजना पूंजी-केन्द्रित है, और पश्चिम के साहूकार देश हमारी प्रेरणा के आदर्श-केन्द्र?...कि हजारों वर्षों की गुलामी के कारण हीन-भावना से ग्रस्त भारत अपनी अन्तर्निहित पूंजी और शक्ति की ओर ताकने में भी घबराता है?...कि उसके लिए पश्चिम प्रगति का पैगम्बर बन बैठा है?

आखिर इन सत्वहीन, सत्तात्मक राजनीति और आत्महीन विकास की योजनाओं से हम कब तक छले जाते रहेंगे?

भारत की आत्मा कभी भी सत्ता में नहीं रही है, और न शक्ति ही कभी सत्ताधीशों में केन्द्रित रही है। भारत तो अपनी जीवनी-शक्ति प्राप्त करने के लिए हमेशा दर्शन के स्तर पर संघर्षशील रहा है। इसलिए विनोबा बार-बार इस बात को दुहराते हैं कि भारत को बनाया है यहां के महान् सन्तों ने, विचारकों ने। भारत जिन्दा रहा है तो यहां की सत्तोन्मुख नहीं, बल्कि आत्मोन्मुख जनता की अखण्ड जीवनी-शक्ति से।

विनोबा स्वयं एक सन्त हैं, इसलिए उनके द्वारा इस तरह की बातें कही जायें, तो यह सहज ही है, लेकिन आश्चर्य तो तब होता है जब हम जिन्हें अपना पैगम्बर मान बैठे हैं, उनमें से ही यदाकदा कोई अपनी सीमाओं को पहचानकर भारत की आन्तरिक असीमता की ओर आकर्षित होता है।

पिछले दिनों दुनिया के राजनीतिक मंच पर जो कुछ विशेष घटनाएं हुई हैं, उनमें मैक्सिको के भारत स्थित राजदूत श्री आक्टोवियो पॉज का अपनी सरकार की छात्रदमन नीति के विरोध में दिया गया त्यागपत्र (—या मुक्ति पत्र?) महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पॉज इन दिनों विश्व की विद्रोही चेतना के प्रतीक-से बन गये हैं, ऐसा कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा। पिछले दिनों दिल्ली से विदा होने से पूर्व एक भेंट-वार्ता में पॉज ने भारत के प्रति जो अपेक्षा व्यक्त की वह ध्यान देने लायक है। सम्भव है कि भारत के तथाकथित बुद्धिजीवी लोगों—जिन्हें पॉज ने राजनेताओं का दास कहा है—का ध्यान इधर जाय।

एक प्रश्न के उत्तर में पॉज ने कहा है कि "पश्चिम की समस्त राजनीतिक क्रान्तियाँ, चाहे वे पूँजीवाद की हों, या साम्यवाद की, अन्तत नौकरशाही राजतंत्र बनकर रह गयी हैं।...लेनिन की संतानें चेकोस्लोवाकिया में अपने टैंक लेकर आती हैं, और लिंकन के उत्तराधिकारी वियतनाम पर अनन्त काल तक बमबारी करते-से जान पड़ते हैं।...भारत यदि भुखमरी के कगार पर खड़ा है तो पश्चिम परमाणु बमों के ढेर पर खड़ा हुआ है। इसलिए पश्चिमी सभ्यता का यह गर्व झूठा है कि उसने इतिहास के प्रश्नों को सुलझा लिया है। प्रश्न सुलझाने के बजाय उलझ गये हैं।" पॉज का कहना है कि, "विश्व सभ्यताओं में भारत का अनोखा स्थान रहा है। उसने अपने दर्शन से संसार का पथप्रदर्शन किया है। लेकिन भारत राजनीतिक अर्थों में कभी भी महान् सत्ता नहीं रहा→

राजस्थान

प्रदेशदान-अभियान की दिशा में प्रथम चरण

अभियान-कार्यकारिणी के महत्त्वपूर्ण निर्णय

राजस्थान ग्रामदान अभियान समिति की कार्यसमिति की प्रथम बैठक में यह निर्णय किया गया कि दिसम्बर अन्त तक राजस्थान की समस्त ग्राम-पंचायतों तक पहुँचना कठिन होगा, परन्तु इस काल में राज्य की समस्त २३२ पंचायत-समितियों से सम्पर्क साधकर वहाँ "ग्रामदान से ग्रामस्वराज्य" का संदेश पहुँचाकर प्रदेशदान के समर्थन में प्रस्ताव पास करवाने का पूर्ण प्रयत्न किया जाय जिससे कि प्रान्त में सर्वोदय सम्मेलन से पूर्व प्रदेशदान के लिए अनुकूल वातावरण बन सके। उक्त बैठक १७ नवम्बर को जयपुर में हुई थी।

इस कार्य के लिए विभिन्न जिलों से संपर्क करने की जिम्मेदारी विभिन्न साथियों ने ली। ये लोग यह भी प्रयत्न करेंगे कि प्रान्तीय सर्वोदय-सम्मेलन के समय राजस्थान के सब जिलों से ग्रामदान-प्रेमियों का अच्छा दल जयपुर पहुँचे और जिले में इस अभियान के निमित्त अर्थसंग्रह व कार्यकर्ता-प्राप्ति का प्रयत्न भी चालू हो जाय।

दूसरा निर्णय यह लिया गया कि ग्रामदान के लिए प्रदेश में वातावरण बनाने की दृष्टि से विविध क्षेत्रों के राजस्थान के प्रमुख लोगों के हस्ताक्षरों से युक्त एक अपील इस अभियान के समर्थन व सहयोग के लिए प्रसारित की जाय और उसे सारे प्रदेश में प्रचारित किया जाय।

यह भी तय रहा कि सर्वोदय-सम्मेलन के अवसर पर प्रदेशदान के संकल्प की घोषणा कुछ प्रखंडदानों के साथ की जाय। अतः दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह के पूर्व तक कुछ प्रखंडों में ग्रामदान का कार्य पूर्ण हो जाय इस दृष्टि से नीम का थाना, चाकसू, सिरोही व डूंगरपुर क्षेत्रों में कार्य किया जाना चाहिए।

प्रदेशदान अभियान के लिए अर्थ-संग्रह की दृष्टि से सोचा गया कि अन्य सूत्रों से मांगने से पूर्व प्रदेश के कार्यकर्ता-जगत् को इस कोष में अपना हविर्भाग सर्वप्रथम देना चाहिए। जो कार्यकर्ता इसको मानते हैं उनको अपनी आय का कुछ अंश अनिवार्यतः नियमित रूप से देना प्रारम्भ कर देना चाहिए। वह अंश क्या हो इसके लिए विभिन्न सुझाव बैठक में प्रस्तुत किये गये, यथा--प्रति मास एक रुपया, अथवा माह में एक दिन का वेतन।

बैठक में यह भी सोचा गया कि प्रदेशदान अभियान के सन्दर्भ में ग्रामदान अभियान सम्बन्धी काफी साहित्य की आवश्यकता होगी। हाल ही में वाराणसी में जो ग्रामदान-गोष्ठी हुई थी उसका सार छपवाकर लाखों की तादाद में बाँटे जाने की भी आवश्यकता है। कुछ 'ग्रामदान से ग्राम-स्वराज्य' सम्बन्धी पोस्टर्स आवश्यक होंगे। इस सब सामग्री के प्रकाशन के लिए गांधी-शताब्दी समिति की रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति से निवेदन करने का तय रहा।

बैठक में यह तय रहा कि सर्वोदय सम्मेलन के अवसर पर श्री जयप्रकाश नारायणजी की उपस्थिति का लाभ उठाने के लिए पंचों व सरपंचों का एक सम्मेलन भी बुलाने का प्रयत्न किया जाय। •

श्री केलप्पन द्वारा केरल में सत्याग्रह

केरल के पालघाट जिलान्तर्गत अगाली-पुरम् के शाली-मन्दिर पर राज्य सरकार द्वारा विगत १६ नवम्बर '६८ को लगाये गये प्रतिबन्ध के खिलाफ श्री के० केलप्पन् के नेतृत्व में स्थानीय जनता ने १७ नवम्बर को सत्याग्रह शुरू किया। श्री केलप्पन ने इस प्रतिबन्ध को 'पूजा पर प्रतिबन्ध' मानकर इसका विरोध किया। उसी दिन सत्याग्रही जत्थे सहित श्री केलप्पन पुलिस द्वारा हिरासत में ले लिये गये, और बाद में छोड़ दिये गये। सत्याग्रह जारी रहा। पुन २४ तारीख को पुलिस ने उन्हें हिरासत में ले लिया और तब से श्री केलप्पन ने उपवास भी शुरू कर दिया। उनका कहना था कि मन्दिर में पूजा का प्रतिबन्ध समाप्त होने और वहाँ जाकर पूजा करने के बाद ही वे उपवास तोड़ेंगे।

खुशी की बात है कि २५ नवम्बर '६८ को श्री थाकरन् की याचिका के ऊपर फैसला देते हुए पेरीन्तलमन्ना मुन्सिफ कोर्ट ने आगामी ३ दिसम्बर '६८ तक के लिए राज्य पुलिस द्वारा लगाये गये प्रतिबन्ध को समाप्त कर दिया। श्री केलप्पन ने उसी दिन उपवास तोड़ दिया और अपार जन समूह के साथ मन्दिर में जाकर प्रार्थना की।•

एक सराहनीय प्रयास

गांधी जन्म-शताब्दी के उपलक्ष में दि० ३०-१०-'६८ से ७-११-'६८ तक श्री गांधी आश्रम, अचलदेवी, अलीगढ़ में खादी-ग्रामोद्योग एवं सर्वोदय-साहित्य प्रदर्शनी का आयोजन किया गया, जिसका उद्घाटन अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के उपकुलपति डा० अब्दुल अलीम के द्वारा सम्पन्न हुआ। इस अवधि में कुल १६,५०० रु० की बिक्री हुई।

है। वह हमेशा विचारों के स्तर पर जीवित रहा है।'''अब तो महान् राज्य बनने का कोई अर्थ ही नहीं रह गया है। भारत चाह-कर भी महान् राज्य नहीं बन सकता, इसके लिए अब बहुत देर हो चुकी है, लेकिन अगर वह महान् राज्य बन भी जाता तो क्या हो जाता?" शायद इसी निष्कर्ष के आधार पर पॉज की अपेक्षा है कि,''''"आज हमें एक ऐसी विश्व सभ्यता की आवश्यकता है, जो वैज्ञानिक आकांक्षा और कविता (दर्शन – सं०) के आन्तरिक अनु-भव का समन्वय हो। यह संभावना मुझे केवल भारत में ही नजर आती है। हो सकता है कि इसमें सौ साल लग जायें। मगर भविष्य के लिए दृष्टि शायद भारत से ही मिल सकती है।"

यह दृष्टि भारत हंगामे की राजनीति और कर्जे की विकास-नीति को अपनाकर कभी नहीं दे सकेगा, यह तय है। इसके लिए हमें उपप्रधान मंत्री के कथनानुसार, लेकिन बिल्कुल भिन्न सन्दर्भ में, अपनी आन्तरिक शक्तियों का आधार लेना पड़ेगा—विचार की शक्ति और जनसहकार की शक्ति का। और इन दोनों शक्तियों के लिए घातक सत्तोन्मुख राजनीति और कर्जोन्मुख विकास नीति से विमुख होना पड़ेगा। ग्रामदान आन्दोलन को इस दिशा में पहल करनी है।•

परिपुष्ट विश्व का दर्शन दो।

इस अंक में

२ दिसम्बर, '६८
वर्ष ३, अंक ८] [१८ पैसे

मध्यावधि चुनाव :

किसी एक दल की सरकार नहीं, सबकी सरकार

प्रश्न : अब आप सबसे अच्छे उम्मीदवार को वोट देने को कहते हैं तो क्या यह अच्छा नहीं होगा कि जिले-जिले में सर्वोदय के लोग छान-बीनकर घोषणा कर दें कि किस क्षेत्र में वे किसे अच्छा समझते हैं ?

उत्तर। ऐसा करना बहुत बुरा होगा। चुनाव का अर्थ यह है कि वोट देनेवाला खुद तय करे कि वह किसे वोट देगा। तय करने में दो बातों का ध्यान रखना पड़ता है। एक यह कि कैसे आदमी को चुनें, दूसरी यह कि किस आदमी को चुनें। यह सलाह 'गाँव की बात' ने आपको दी थी है, कैसे आदमी को चुनें इस बारे में सलाह ली जा सकती है, लेकिन किस आदमी को चुनें, यह फैसला आपको खुद करना चाहिए। विद्यार्थी साल भर शिक्षक की मदद से किताब पढ़ता है, लेकिन परीक्षा में खुद सोचकर लिखता है। अगर वह परीक्षा में शिक्षक से पूछे, और शिक्षक चुपके से उसे बताने लगे, तो पूछनेवाला और बतानेवाला, दोनों बेईमान कहे जायेंगे। परीक्षा यह देखने के लिए होती है कि विद्यार्थी ने साल भर क्या पढ़ा।

उम्मीदवार में क्या गुण होने चाहिए, यह साफ-साफ बता दिया गया है। आपका वोट ऐसे ही आदमी को मिलना चाहिए जिससे पूरे समाज का हित सधे। समाज और देश का भला होगा तो हमारा, आपका, सबका भला होगा। हर आदमी, हर जाति, हर दल, अलग-अलग अपनी बात सोचेगा तो अंत में किसीका भला नहीं होगा, और सबका नाश होगा।

आप सर्वोदयवालों से यह माँग क्यों करते हैं कि वे आपको नाम बतायें ? क्या इसीलिए कि वे दलबन्दी से अलग हैं, निष्पक्ष हैं ? सोचिए, जो 'सर्व' का भला चाहेगा वह दलबन्दी में कैसे पड़ सकता है ? लेकिन समझ लीजिए कि जिस दिन सर्वोदय का कोई आदमी एक को अच्छा और दूसरे को बुरा बताने लगेगा उस दिन वह 'सर्व' का नहीं रह जायगा। तब वह पक्षपात का दोषी माना जायगा। पक्षपात से 'सर्व' का हित नहीं सधेगा।

एक बात और है। किसीको 'सर्वोदयवाला' मत मानिए। ऐसा समझिए कि जो 'सर्व' की बात कहे वही सर्वोदय का है, चाहे वह किसी भी संस्था में हो, और कोई भी काम करता हो। विनोबाजी बराबर कहते हैं कि सरकार के आदमी भी सर्वोदय के हैं, क्योंकि वे बिना भेदभाव के सबकी सेवा करते हैं। इस परिभाषा के अनुसार क्या आप अपने को सर्वोदय का नहीं मानते?

तो, सलाह चाहे जिससे लीजिए, लेकिन तय खुद कीजिए कि किस उम्मीदवार को वोट दीजिएगा। तय करने में न किसीका दबाव मानिए, न किसी पर दबाव डालिए, और वोट गुप्त दीजिए।

प्रश्न : हम दल के उम्मीदवार को वोट न देकर अच्छे उम्मीदवार को वोट दें, ऐसी आपकी राय है। लेकिन बतलाइए, इतने दिनों के अनुभव के बाद यह भरोसा कैसे हो कि इन अच्छे लोगों की सरकार अब तक की सरकारों से अच्छी होगी ?

उत्तर : जरूर यह बात समझने लायक है। सचमुच अच्छी सरकार, जनता की सरकार, गाँव की सरकार, तो तब बनेगी जब तीन शर्तें पूरी होंगी। एक यह कि गाँव के लोग अ-

की भीतरी व्यवस्था के लिए सरकार की मुहताजी छोड़ दें। जब देश की जनता अपनी सरकार के हाथों में अपने को पूरा-पूरा सौंप देती है, और रोटी-कपड़े के लिए भी सरकार की मुहताज हो जाती है, तो सरकार में चाहे जितने अच्छे लोग हों, अधिकार का नशा उन्हें भ्रष्ट कर देता है। दूसरी शर्त यह है कि गाँव-गाँव, शहर-शहर की जनता खुद तय करे कि उसके क्षेत्र से, उसकी ओर से, कौन आदमी असेम्बली-पार्लियामेण्ट में जायगा। उसका अपना प्रतिनिधि कौन होगा? अभी तो यह होता है कि उम्मीदवार होते हैं दलों के या 'स्वतंत्र', और उन्हींमें से आपको किसी एक को वोट देना पड़ता है। यह गलत है। होना यह चाहिए कि जिसका वोट हो उसका उम्मीदवार हो। तीसरी शर्त यह है कि समाज में सच्चरित्र, सेवाभावी, दलबन्दी से दूर रहनेवाले ऐसे सज्जनों की एक जमात रहनी चाहिए जो निडर होकर सच्ची बात कह सके—जनता से भी कह सके और सरकार में भी कह सके। जिस देश में निर्भय होकर सत्य कहनेवाले लोग नहीं होते उसकी सरकार भ्रष्ट और निरंकुश हो जाती है। आज गांधीजी-जैसा कौन है जो सत्ता का भय और सम्पत्ति का लोभ छोड़कर सत्य कहे; सत्य ही कहे, और कुछ न कहे! अगर नाम लें तो केवल दो नाम ले सकते हैं—एक विनोबाजी का, दूसरा जयप्रकाशजी का, जो निडर होकर वह बात कहते हैं *जिसे वे सच समझते हैं। दूसरा हमारा बड़ा-से-बड़ा आदमी उस* बात को कहता है जिसे उसका दल 'सत्य' मानता है। आप सोचें, किसी दल का सत्य पूरे देश का सत्य कैसे हो सकता है? इस वक्त हर दल का अपना सत्य अलग है, इसीलिए तो एक सत्य की दूसरे सत्य से लड़ाई हो रही है।

लेकिन आप कहेंगे कि ये शर्तें तुरन्त तो पूरी हो नहीं सकतीं। सही है, नही हो सकती। ग्रामदान गाँव-गाँव की जनता से यही कह रहा है कि अपने गाँव मे एकता कायम करो, गाँव में अपनी स्वायत्त ग्रामसभा (या ग्राम-स्वराज्य सभा) बनाओ, और अगले आम चुनाव में अपने क्षेत्र से अपना उम्मीदवार खड़ा करो। ऐसा होने से तीनों शर्तों के लिए रास्ता खुल जायगा। लेकिन यह काम आगे करने का है।

फरवरी का चुनाव सिर पर है। उसमें दल, जाति आदि का ध्यान छोड़कर अच्छे उम्मीदवार को वोट देने को कहा जा रहा है। मान लीजिए कि उत्तर प्रदेश की *विधान-सभा में अधिक ऐसे* लोग चुन लिये जायें जिन्हें इसलिए वोट मिला कि वे अच्छे थे, न कि इसलिए कि वे इस दल के थे, या उस दल के, भले ही चुने जानेवाले लोग अपने को अपने-अपने दल का मानते रहें। आप कहेंगे कि इस तरह सभी दल के कुछ लोग विधान-सभा में पहुँच जायेंगे, तो सरकार किसकी बनेगी? जाहिर है कि मिली-जुली सरकार बनेगी, चाहे कुछ दलों की बने या सब दलों की। ऐसी सरकार आपस मे समझौते से काम करेगी।

अगर विधान-सभा के सब दलों के तथा निर्दलीय 'अच्छे' लोगों को मिलाकर सरकार बन जाय तो सबसे अच्छी बात होगी। वह 'सबकी सरकार' होगी। उसे सबका समर्थन मिलेगा, और हर वक्त टूटने का डर नही रहेगा। लेकिन अगर ऐसा न भी हो तो कम-से-कम इतना तो होगा कि ये अच्छे लोग दल-बदल नही करेंगे, भ्रष्टाचार में नही फँसेंगे, जो काम करेंगे जनता के हित का ध्यान रखकर करेंगे, जनमत का दबाव मानेंगे, और सोचेंगे कि आगे क्या कहकर जनता के सामने वोट के लिए जायेंगे। इससे भी बड़ी बात यह होगी कि एक बार जनता के दिल से दल निकल जाय तो आदमी की परख आदमी की हैसियत से होना शुरू हो जायगी। इसके अलावा दलवाद के खत्म होते ही जनता की शक्ति ऊपर आयेगी और चुनाव में से भ्रष्टाचार, जातिवाद, आदि के समाप्त होने का रास्ता खुल आयेगा। इतने वर्षों तक दलबन्दी के जहर को देख लेने के बाद अब तय कर लीजिए कि आगे भी दलबन्दी चलने देनी है या नही। अब यह पक्का मानिए कि *या दल रहेंगे या* देश। दोनों नही रह सकते।

मतदाता की मुसीबत

दल का उम्मीदवार नही, अच्छा उम्मीदवार यह नये लोकतंत्र का पहला कदम है। आगे दूसरे का अच्छा उम्मीदवार भी नही, अपना उम्मीदवार, यह लोकतंत्र का अगला कदम है। पहला कदम अगले कदम के लिए रास्ता तैयार करेगा।•

याद रखिए, वोट सबसे अच्छे उम्मीदवार
को ही देना चाहिए।
दल से मुक्ति होगी तो गाँव बनेगा, देश बचेगा।

मिलकर राह खोजनी है !

"शक्ति की उपासना के लिए 'बलिदान' चाहिए।...जब बलिदान का पुण्य हमें ही मिलनेवाला है तो हम पीछे क्यों रहेंगे ?"

...कहने को तो जोश में सब लोग उस रात की सभा में एकसाथ कह गये थे, लेकिन आज जब श्रीपालपुर के रामधनी बाबू की मौजूदगी में ग्रामदान की पूरी बात समझायी गयी, और ग्रामदान के कागज पर हस्ताक्षर करने की बात आयी तो एक बार सबके दिल में कँपकँपी पैदा हो गयी।

सबकी अलग-अलग मिल्कियत नहीं रह जायेगी, गाँव भर की जमीन का खाता एक हो जायेगा, जमीन की खरीद-बिक्री ग्रामसभा की राय से गाँव में ही की जा सकेगी, ये सब बातें बाप-दादों के जमाने से चली आ रही परम्पराओं को तोड़नेवाली मालूम होती हैं। इससे बड़ी—शायद सबसे बड़ी—बात तो यह हो जायेगी कि जो छोटे-छोटे लोग बड़ों के सामने अब तक सिर नहीं उठा सकते थे, वे सबके साथ ग्रामसभा में बराबरी करने बैठेंगे। कैसे सहन होगा यह सब ?

सवाल सबके सामने विकट था। रामधनी बाबू ने समझाया, "गाँव की जमीन गाँव में ही रोक रखने की कोशिश नहीं की गयी तो पूरा गाँव भूमिहीनों का होकर रहनेवाला है। यह जमाना पैसे का हो गया है। दुनिया की सारी चीजें पैसे के जोर से खिंचकर पैसेवालों के पास चली जा रही हैं। अगर सबने मिलकर जोर नहीं लगाया इसे रोकने में, तो क्षुद्र मोह में सबकी बड़ी हानि होनेवाली है। छोटे-छोटे और अलग-अलग स्वार्थ में फँसे रहेंगे तो सोना बह जायेगा और हम कोयले पर छापा मारते रह जायेंगे।

"...और जहाँ तक छोटे लोगों की बराबरी का सवाल है, तो भैया, जमाने का रुख पहचाननेवाला ही चतुर आदमी कहलाता है। जमाना यह है कि जो लोग अब तक गर्दनें नीची किये रहते थे, वे अब अपनी छाती 'उतान' करके चलने की कोशिश करने लगे हैं। बात यहीं तक रहती तो कोई हर्ज नहीं था, किसी तरह चल जाता। लेकिन ये छोटे लोग तरह-तरह के बहकावे में आकर मरने-मारने को उतारू हैं, और पुराने समय से अपने ऊपर हुए बड़े लोगों के अत्याचारों का बदला भी लेना चाहते हैं।

"...मूल बात यह है कि जो पुश्त-दर-पुश्त से एकसाथ रहते आये हैं, जिनका एक-दूसरे की मदद के बिना निभ नहीं सकता, उन सबका भला इसीमें है कि भेदभाव की दीवालें ढहाकर एक दिल हो जायँ, और प्रेमपूर्वक रहने के लायक गाँव का वातावरण तैयार करें।

"...शक्ति की उपासना के लिए बलि देनी है आपसी भेदभावों की, छोटे-छोटे स्वार्थों की। बिना छोटी चीजों का मोह छोड़े बड़ी चीज हाथ नहीं लगती।" रामधनी की इन बातों से गाँव के लोगों की आँखों में एक नयी चमक पैदा हो गयी थी।

"छोड़ोजी मोहमाया को, लाओ, दस्तखत करें।" और सबसे पहले बलिराम ने ग्रामदान के कागज पर दस्तखत कर दिया। दस्तखत करते समय उनका हाथ काँप रहा था, और दस्तखत करने के बाद आँखें डबडबा आयी थीं। उनके बाद बगल में बैठे जगत नारायण की बारी थी। बलिराम के काँपते हाथ और दस्तखत के बाद की डबडबाई आँखों को देखकर उन्होंने पूछा, "क्यों, पीड़ा अधिक मालूम होती है ?"

"ओखल में सिर डालकर बलिराम मूसल की परवाह नहीं करता, जगत ! लेकिन जनम-जनम की केंचुल छोड़ते समय कुछ तकलीफ तो हो ही रही है !" बलिराम ने कहा।

"लाओजी, हम भी कर ही दें !" और जगत नारायण ने दस्तखत कर दिया।

हरिहर काका ने आगे बढ़कर कागज थाम लिया और दस्तखत करते हुए गान लगे :—

"कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।
जो घर फूंके आपनो, चले हमारे साथ॥"

और इसके बाद तो दस्तखतों का ताँता लग गया।

कुल ३४५ घरोंवाले इस गाँव में लगभग ३०० लोगों के हस्ताक्षर उसी दिन हो गये।

शाम के समय रामधनी बाबू को विदा करते समय बलिराम पड़े उनसे लिपट गये। रुँधे कण्ठ से बोले, "स्वराज के जमाने में बहुत कुछ मैं कर नहीं पाया था रामधनी बाबू, आशाएँ बहुत लगायी थीं कि स्वराज्य के बाद सब कष्ट दूर हो जायेंगे। लेकिन २१ वर्षों में संकट बढ़े ही, घटे नहीं। अब इस नये रास्ते पर आप सबके साथ चलने का इरादा किया है तो साथ निभाना मेरे भाई ! नेता तो काम आये नहीं, अब गाँव को गाँव के लोगों का ही भरोसा है। ग्रामदान के बाद क्या करें ? आपको ही राह दिखानी होगी !"

"राह दिखानी नहीं है, मिलकर खोजनी है बलिराम भाई ! इस जमाने की अँधियारी तभी दूर होगी, जब सब साथ-साथ सहकार की मशाल लेकर आगे बढ़ेंगे।"

(क्रमशः)

सुखिया

सुखिया की शादी हुए आठ साल हो गये। बहुत दिनों बाद ससुराल से मायके आयी है। न वह शरीर रह गया है और न चेहरे पर वह चमक। पड़ोसिनों ने बताया कि बीमार है। क्या बीमारी है कोई नहीं बताता; क्योंकि औरत की बीमारी के प्रति पुरुष लापरवाह रहता है, और दूसरी स्त्रियाँ डाह रखती हैं।

अपनी पड़ोसिनों के साथ एक दिन मैं सुखिया को देखने गयी। सात साल बाद गाँव लौटी थी, वह भी बीमार होकर। सोचा कम-से-कम देख तो लूँ। रास्ते में पड़ोसिनें बताती जाती थीं कि न जाने क्या हो गया है कि वह न तो ढंग से नहाती-धोती है, न खाती-पीती है। सोती है तो सोती ही रहती है, रोती है तो रोती ही रहती है। अक्सर रोती दिखाई देती है। मैंने कहा : 'हिस्टीरिया का असर मालूम होता है।'

'बयार है बयार। डाइन लगी है। आठ साल में उसे तीन बच्चे हुए, तीनों मर गये।'—पड़ोसिन ने बताया। मेरा मन साफ था कि *हिस्टीरिया के सिवाय और कुछ नहीं है।* बच्चों के मरने का शोक बर्दाश्त नहीं कर सकी है। इसीसे ऐसी हो गयी है।

दरवाजे पर जाकर पूछा, 'सुखिया कहाँ है?' उसकी माँ बोली : 'तीसरा पहर हुआ, सुबह से बिना खाये-पीये पड़ी है। आओ, चली आओ।'

मैं दरवाजे के अन्दर घुसी ही थी कि देखती हूँ, सुखिया चली आ रही है। मुझे देखते ही ठिठक-सी गयी। एक क्षण खड़ी रही, आँखें फाड़कर देखती रही, फिर झटके से बैठ गयी। उसकी आँखों से आँसू की धारा बह निकली। यह कहकर रोती जाती थी—'मोर आगम अँधियार होई गइल रे मैया।' 'अइसन अभागिन जनमली रे मैया।' 'सर्पिनियों क नाईं मोर भइल रे मया।' बार-बार यही कहती और रोती। संतति का शोक उसके रोयें-रोयें से टपकता था। उसके रोग का कारण भी यही था। लेकिन पड़ोसियों की नजर में वह संतति को खा जाने वाली नागिन थी। कोई उसे मातृत्व से वंचित रहनेवाली अभागिन मानता था तो किसीके लिए वह डाइन के कोप का शिकार थी। कोई भी ऐसा नहीं था जो यह कहता कि सुखिया सुखिया है, आदमी है, दुखिया है, इसलिए सहानुभूति की पात्र है। आश्चर्य तो यह था कि स्त्रियों के मन में भी सहानुभूति से अधिक दुराव ही था।

बच्चे न हों, खासकर लड़का न हो तो स्त्री का आगम अन्धेरा क्यों माना जाय? उसके बच्चे मरें तो वह बच्चों को खानेवाली नागिन क्यों समझी जाय? क्या स्त्री के जीवन की इतनी ही सार्थकता है कि वह 'रसोई की रानी' और 'पुत्रों की माँ' बने? समता और स्वतंत्रता के नारे लगानेवाले इस नये जमाने के नये लोगों का भी क्या यही निर्णय है, जो कबीलावादी और सामंतवादी पुराने जमाने का था, कि पिता, पति, और पुत्र से अलग स्त्री का न जीवन है, न व्यक्तित्व? क्या स्त्री का स्वतंत्र व्यक्तित्व पुरुष-समाज को आज भी मान्य नहीं है? पुरुषों को छोड़ें, अपने को प्रगतिशील समझनेवाली स्वयं स्त्रियों का क्या निर्णय है?

पिता, पति, पुत्र सब अपनी जगह ठीक हैं, पर उनसे अलग और स्वतंत्र व्यक्तित्व के बिना स्त्री को समानता और स्वतंत्रता का क्या अर्थ होगा? और जिस परिवार में स्त्री का समान और स्वतंत्र स्थान नहीं है वह आज के लोकतांत्रिक समाज की इकाई कैसे बनेगी?

सुखिया समझती थी कि अगर उसके बच्चे जिन्दा होते तो वह सुखी होती। उसे क्या पता कि इस जमाने में संतति सच्चे सुख का आधार नहीं रह गयी है! अपनी जीविका नहीं तो पति या बेटे का मुँह देखना पड़ता है, लेकिन वह प्रश्न आर्थिक विकास का है। सुख के लिए दो चीजें चाहिए—स्वतंत्र जीविका, और अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को पहचानना। लेकिन वह क्रिया तो हमारे देश में अभी शुरू भी नहीं हुई है। शहरों में ही नहीं हुई है, तो गाँवों की कौन कहे? नये लोग भी यही मानते दिखाई देते हैं कि स्त्री अबला है, इसलिए कृपा की पात्र है, समानता की नहीं। •

आवश्यक सूचना

१८ नवम्बर '६८ के 'भूदान-यज्ञ' के साथ की 'गाँव की बात' का 'मध्यावधि चुनाव' विशिष्टांक दुबारा दो रंगों में छपा है। इसके एक अंक की कीमत सिर्फ २० पैसे है। कार्टूनों से भरा हुआ दो रंगों का यह विशिष्टांक ज्यादा आकर्षक और रोचक बना है। उत्तर प्रदेश में ज्यादा-से-ज्यादा मतदाताओं तक इस अंक को पहुँचाने की कोशिश उत्तर प्रदेश के साथियों ने शुरू कर दी है। आशा है, जिन-जिन प्रदेशों में मध्यावधि चुनाव होनेवाला है वहाँ के साथी उस अंक को मतदाताओं तक पहुँचाने की कोशिश करेंगे।

—व्यवस्थापक

चोरी नहीं, चालाकी

दिल्ली से आसाम मेल में बैठी थी। ग्यारह साल के एक लड़के को उसके पिताजी डिब्बे में बैठा गये। थोड़ी देर में गाड़ी चली। साथ-साथ उस लड़के का मन भी सहज ही चंचल हो उठा। उसने धीरे-धीरे कुछ गुनगुनाना शुरू किया। धुन बड़ी लुभावनी थी। मैंने उससे पूछा, "क्या गा रहे हो ?" उसने बताया, "यह एक नेपाली गीत है। वर्षा के समय बादलों को देखकर बच्चे लोग खुशी से इसको गाते हैं।" मैंने पूछा, "कहाँ जा रहे हो ?" उसने गाँव का जो नाम बताया, उसे मैं ठीक से सुन नहीं पायी। उसने साथ-साथ यह भी बताया कि मुझे वहाँ पहुँचने में दो दिन लगेंगे और दार्जिलिंग में गाड़ी बदलनी पड़ेगी। मुझे कुतूहल इस बात पर हो रहा था कि इतना छोटा लड़का अकेला इतनी दूर जा रहा है, फिर भी उसके चेहरे पर चिन्ता या भय का कोई नामो-निशान नहीं दीखता। उसके स्टेशन का नाम जानने के लिए सहज ही मैंने उससे अपना टिकट दिखाने को कहा। उसने कहा, "मेरे पास टिकट है ही नहीं !" मैंने पूछा, "मगर टी० टी० टिकट माँगेगा तो क्या करोगे ?" तो कहने लगा, "मेरे पिताजी ने बताया कि उस समय संडास में घुस जाना।" मैंने कहा, "यह चोरी होगी।" जवाब मिला, "चोरी नहीं, यह तो चालाकी है।"

इस छोटे-से लड़के का ऐसा बुद्धिपूर्ण जवाब सुनकर मैं दंग रह गयी ! फिर पूछा, "अच्छा, यह बताओ कि अगर तुम्हारी जेब में कोई हाथ डालकर पैसे निकाल ले तो उसे क्या कहोगे ?" कहता है, "उसे चोरी ही कहेंगे, लेकिन मैंने किसीकी जेब से पैसे थोड़े ही लिये हैं; यह तो मेरे पैसे मेरी जेब में हाथ डालकर निकालेगा।" मैंने कहा, "परन्तु इसमें धोखा तो होगा ही न ?" "हाँ, धोखा हो सकता है, पर चोरी नहीं।" लड़के ने कहा। "अच्छा यह बताओ कि इस डिब्बे में बैठनेवाले बहुत-से लोगों ने टिकट न लिया हो और सबके-सब संडास में घुसने लगें और इतनी भीड़ के बीच तुम संडास में नहीं जा सको, तो तुम क्या करोगे ?" मेरा प्रश्न था। "तब तो बहुत अच्छी बात है; मैं कहूँगा कि इतने सारे लोगों ने जब टिकट नहीं लिया है तो पहले उनको जाकर पकड़ो, मुझे ही क्यों पकड़ते हो ?" लड़के का जवाब था।

उसकी इतनी चतुराई की बातों को सुनकर उसके साथ और बातें करने की इच्छा बढ़ती गयी। मैंने पूछा, "तुम्हारे कितने भाई-बहन हैं ?" बोला, "तीन भाई और तीन बहनें।" "पिताजी क्या करते हैं ?" "वह हवाई अड्डे पर नौकरी करते हैं। अभी उनकी बदली दिल्ली में हुई है।" "नेपाल क्यों जा रहे हो ?" "मेरी बहन वहाँ पर है और मेरा स्कूल का सर्टीफिकेट भी वहाँ के स्कूल में है, उसके बिना मुझे दिल्ली के स्कूलों में प्रवेश नहीं मिल रहा है। अगर नेपाल से सर्टीफिकेट मिल जायगा तो वापिस आ जाऊँगा, नहीं तो वहाँ पर ही बहन के घर रहकर पढ़ाई करनी पड़ेगी। मेरे पिताजी की आय केवल एक सौ पचास रुपये है। मुझे पढ़ना तो है ही, मेरे पिताजी के पास रुपये नहीं हैं; बताइए कि हम मुसाफिरी न करें ?"

उस बालक ने मेरे सब प्रश्नों के उत्तर तो अपनी बुद्धि के अनुसार दे दिये; लेकिन उसके इस अन्तिम प्रश्न का उत्तर क्या हमारे समाज के पास है जो व्यक्ति को ऐसे कार्य करने के लिए मजबूर कर देता है ?

—कान्तिबाला

जहाँ की तहाँ

एक दिन दुर्गापुरा (जयपुर) के पास के एक गाँव में जाने का मौका मिला। सहज ही एक महिला ने पूछा, 'ये क्यों सी आया ?' थोड़े में मैंने अपना परिचय दिया। धीरे-धीरे उनकी उत्सुकता बढ़ती गयी मेरी बातों में। मुझे भी उनकी बातों में मजा आने लगा। तब तक कई महिलाओं ने आकर मुझे घेर लिया। उनमें कुछ महिलाएँ थोड़ी शिक्षित भी मालूम हुईं। बात ग्रामदान की आयी, तो एक ने मुझसे पूछा—'ग्रामदान के बाद क्या होगा ?' मेरे उत्तर देने के पहले ही एक दूसरी महिला ने कहा, 'पहले तो ग्रामसभा बनेगी, फिर सब लोग एक होंगे, मिल-कर काम करेंगे।' मैंने उसकी बातों का समर्थन किया। एक दूसरी महिला ने शिकायत की, 'हमारे गाँव में तो लोग आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं, एकता आयेगी कहाँ से, यह सब होगा कैसे ?' मैंने कहा, 'तो आप लोग क्यों नहीं लड़ाई-झगड़े बन्द कराती ?' उनका उत्तर था, 'हम गाँव की स्त्रियाँ पुरुष की बराबरी कहाँ तक कर सकती हैं ? असल बात तो यह है कि हमें घर के काम से फुरसत नहीं, फिर गाँव की स्त्रियों में इतना ज्ञान भी कहाँ है ? पर ऐसा लगता है कि आपसी झगड़ा मिट जाय तो बहुत कुछ हो सकता है।'

राजस्थान के बहुत सारे गाँवों में पर्दा-प्रथा करीब-करीब नहीं है। स्त्रियाँ कर्मठ होती हैं। परन्तु बाहरी कामों के बारे में पुरुषों पर ही निर्भर रहती हैं। ग्रामदान के बाद स्त्रियों के विकास की दिशा क्या हो, यह एक सोचने-विचारने लायक प्रश्न है। हमने देखा कि यहाँ स्त्रियों में जानने की उत्सुकता है, पर अज्ञानता भी कम नहीं है। राजस्थान की बहनें ग्रामदान में काफी सहयोग कर सकती हैं, क्योंकि उनमें संकोच कम है,

समस्याओं से जूझने की तैयारी भी कहीं-कहीं दिखाई देती है। इसलिए इनमें जागृति लाना सरल होगा। परन्तु अभी यहाँ ग्रामदान-आन्दोलन की गति काफी मन्द है। महिलाओं में तो इसका प्रचार नाममात्र का है। चलते समय एक महिला ने कहा, 'बहनजी, आप आयीं और जा रही हैं, पर हम जहाँ-के-तहाँ रह जायेंगी। इसका भी कोई उपाय है?'

इस प्रश्न पर सोचते-सोचते रास्ता कट गया, पर कोई उपाय सूझा नहीं! सोच रही हूँ कि आखिर कब तक नारी समाज "जहाँ-का-तहाँ" पड़ा रहेगा? ग्रामदान से निजी स्वामित्व मिटेगा, ग्रामसभा द्वारा सबका हित होगा, तब शायद महिलाओं की भी स्थिति सुधरे। —करुणा

प्रधान वजीर का चुनाव

एक देश में सम्राट के प्रधान वजीर की मृत्यु हो गयी। अब दूसरे वजीर की जरूरत थी। उस देश में यह रिवाज था कि देश भर में वजीर के चुनाव की सूचना हो जाती थी और जितने लोग उम्मीदवार होते थे उनकी जाँच होती थी। जो प्रथम आता था वह प्रधान वजीर बनाया जाता था। ऐसा ही हुआ। पूरे देश से तीन आदमी चुने गये। इन तीनों में जो प्रथम होगा, उसे वजीर बनना था। इनकी जाँच स्वयं सम्राट करनेवाले थे। इनको इस बात की फिकर थी कि न जाने सम्राट क्या पूछें! इन्होंने इधर-उधर से पूछताछ शुरू की। गाँववालों को मालूम था कि जाँच में क्या पूछा जायेगा। गाँववालों से उन्हें मालूम हो गया कि तीनों को एक कोठरी में बन्द किया जायेगा। उसमें एक ताला लटका होगा। वह ताला इंजीनियर और गणितज्ञ की राय से बना है। उस पर कुछ गणित के आँकड़े लिखे होंगे। वह ताला किसी कुञ्जी से नहीं खुलेगा।

अब, उस ताले को तीनों में से जो खोलकर पहले बाहर निकल आयेगा वह वजीर बनेगा।

इतना सुनते ही 'एक' चादर तानकर सो गया। बचे दो। दोनों ने गणित शास्त्र की खूब छान-बीन की। साथ में गणित की एकाध पोथी भी चोरी से रख ली। जब समय हुआ तो चले सम्राट के पास। तीसरा भी पीछे साथ हो लिया। दोनों ने पूछा, 'क्या तुम भी चल रहे हो?' उसने कहा, 'चले चलते हैं।' तीनों सम्राट के पास पहुँचे। सम्राट तीनों को उस कोठरी में ले गये। उन्हें बताया कि यह है दरवाजा और यह लटका है ताला। जो खोलकर पहले बाहर निकलेगा वह वजीर बनेगा। सम्राट ने बाहर निकलकर ताला लगा लिया। जिन दो ने पोथी साथ में रखी थी, वे लग गये ताला खोलने के शास्त्र की खोज में। तीसरा एक कोने में बैठ गया। थोड़ी देर बाद जब दोनों शास्त्र में मशगूल हो गये, तो वह उठा, दरवाजा खोला और बाहर आ गया।

सम्राट उस आदमी को लेकर जब अन्दर आये और बोले, 'पण्डितो, क्या कर रहे हो, जिसे निकलना था, वह निकल गया।' तब पण्डितों को होश आया। उन्होंने पूछा, 'क्यों भाई, तुम कैसे निकले?' तो उसने कहा, 'मैंने कुछ नहीं किया। सोचा, जरा देखूँ तो ताला बन्द भी है या नहीं! दरवाजा खोला और खुल गया।'

आज बिलकुल यही हाल चारों तरफ है। समस्या का पता नहीं, सभी निदान में लगे हुए हैं। और समस्या अपनी जगह ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। —आचार्य रजनीश द्वारा कथित

सर्वोदय बनाम साम्यवाद

रामपट्टी-ग्रामसभा के अध्यक्ष सीताराम पाडे एम० ए० पास नवयुवक हैं, कम्युनिस्ट हैं। उन्होंने अपने खून से हस्ताक्षर दिये हैं। ग्रामोदय-सहयोग-समिति के भी अध्यक्ष हैं। समिति का भवन सबने टोकरी सिर पर ढो-ढोकर बनाया। बोर्ड से बीस हजार रुपये का ऋण मिला। अभी खादी और रेशम-उद्योग है, तेल-घानी शीघ्र शुरू होगी। गाँव में रात्रि-पाठशाला चल रही है। जनसंख्या तीन सौ है। गाँव की चालीस एकड़ भूमि में से तीस एकड़ ग्रामदान में है। दस परिवारों के पास जमीन है। शेष भूमिहीन रस्सी बटते हैं, बँटाई और मजदूरी करते हैं। महंथ मनमोहनदास के पास तीन सौ बीघा जमीन है। वे बँटाईदारी-कानून के भय से, बँटाईदार से बिना पूछे कच्चा धान कटवा लेते हैं, मेड़ तोड़ देते हैं।

मैंने महंथजी से ग्रामदान में शामिल होने का पुनः अनुरोध किया। उन्होंने मुझसे साहित्य खरीदा और पढ़कर निर्णय देने का वादा किया। कम्युनिस्ट भाई कहते हैं, कि लोगों का धैर्य टूट रहा है। भूदान नहीं आया होता, तो सारे देश में खूनी क्रान्ति आ गयी होती!

कार्यसमिति के मन्त्री भुवनेश्वर ठाकुर जौनपुर के चीनी मिल में काम करते थे। विनोबा का एक लेख पढ़कर नौकरी छोड़कर गाँव लौट आये। जब उनसे पूछा कि विनोबा से मिले हैं या नहीं, तो बोले: "ग्रामस्वराज्य को साकार कर मिलूँगा।"

ग्रामदान-पुष्टि के कागजात तैयार कर शासन को भेज दिये हैं। उनका दावा है कि सर्वोदय-विचार से ही त्राण होगा, साम्यवाद से नहीं। —जगदीश बवाने

गाँव की बात

केला उगाइए और खाइए

केला स्वादिष्ट और सस्ता फल है। इसकी खेती बड़े पैमाने पर की जा सकती है और आंगन में भी कुछ पेड़ लगाकर थोड़ा फल प्राप्त किया जा सकता है। अपने देश के कुछ क्षेत्रों में केलों की खेती बड़े पैमाने पर की जाती है। भारतीय केले की मांग देश तथा विदेश के बाजारों में बढ़ती जा रही है। इसके परिणाम स्वरूप बहुत-से किसान केले की खेती व्यवसाय के रूप में करने लगे हैं।

बहुत-से किसान, खास-कर गुजरात के किसान केवल केले की खेती करने लगे हैं, क्योंकि इससे उनको दूसरे फल या अनाज की फसलों के मुकाबले ज्यादा मुनाफा मिल रहा है।

एक कहावत है कि अगर कोई केले के ३६५ पेड़ लगाता है तो उनसे उसको साल में ३६५ दिन ही आमदनी होती है। चूंकि केला सारा साल उगाया जा सकता है, इसलिए इसकी फसल से किसान को पूरे साल आमदनी हो सकती है।

केले की सबसे बड़ी खूबी यह है कि यह सबका मनभाता फल है। साथ ही यह मनुष्य का पूर्ण आहार है। इसमें विटामिन, लोहा, फास्फोरस वगैरह पोषक तत्व दूसरे सभी फलों तथा सब्जियों के मुकाबले ज्यादा होते हैं। इसीलिए केला अरसे से लोगों का मुख्य भोजन रहा है।

केला कच्चा तथा पकाकर, दोनों तरह से खाया जाता है। बहुत-से देशों में इसका शरबत भी पीया जाता है। केले के आटे में गेहूं के आटे के मुकाबले खनिज तीन गुना अधिक होते हैं।

फल तो फल, इसके कोमल नर फूल तथा गोभ के भी तरह तरह के व्यंजन बनाये जा सकते हैं। महाराष्ट्र में केले की गोभ से कागज बनाया जा रहा है। इसके फल से स्टार्च तथा खमीर बनाया जा सकता है। इसके अलावा केला दवाइयों के काम में भी आता है।

इतने सारे केले के उपयोग देखकर भारतीय कृषि-अनुसंधान परिषद् ने इसके विकास के लिए अखिल भारतीय समन्वय प्रयोजना चालू की है। इस प्रयोजना के मुताबिक केले की खेती सभी पहलुओं से सुधारने के लिए खोज की जा रही है। इसके केन्द्र केला उगानेवाले विभिन्न राज्यों में हैं, जैसे—पश्चिमी बंगाल में चिन्सुरा, मद्रास में कोवुरई, महाराष्ट्र में पूना, आंध्र प्रदेश में टणकु और केरल में कन्नारे। केले की लगभग ६० किस्में हैं, लेकिन व्यवसाय के लिए उनमें से सिर्फ एक दर्जन किस्में ही उगायी जाती हैं। किस्मों का चुनाव इस आधार पर किया जाता है कि वे दूर भेजने पर खराब न हों और साथ ही खूब स्वादिष्ट हों।

केले की बसराई ड्वार्फ सबसे महत्वपूर्ण व्यावसायिक किस्म है और इसकी विदेशों में सबसे अधिक मांग है। इस किस्म का फल तीन-चौथाई पकने पर तोड़ा जा सकता है और इसे शीत भंडार में १५ से २० दिन तक रखा जा सकता है।

बंगाल का मोर्टोमन किस्म का केला संसार भर का सबसे स्वादिष्ट केला है। इस तरह हरी छाल केले को भी बहुत-से लोग पसन्द करते हैं। नेन्द्रन केले की केरल की एक प्रचलित किस्म है, जिसे कच्चा तथा पकाकर दोनों तरह से खाया जा सकता है। प्रत्येक परिवार अपने आंगन में, कुएं के पास कुछ पेड़ लगा दे तो उसे वर्ष में ३६५ दिन तो बिना पैसे के ही केले प्राप्त हो सकते हैं।

—'फार्म फीचर' से

गुरुजी की गुरुता : गणों की लघुता

"पा लगी सुकुल बाबा।"

"मस्त रहो, कहो बहादुर, खेती-गृहस्थी का हालचाल!"

"आपके आशीर्वाद से सब कुशल है गुरुजी। किसी तरह खेतों की बोअनी पूरी हो गयी। अब मटर की सिंचाई में लगना है।"

"एक काम करो बहादुर, केराय की सिंचनी में दो-एक *दिन की देर भी हो जाय तो अभी कोई हरज नहीं है। हमारी* भी अभी आधी केराय सींचने के लिए पड़ी है।"

"आज्ञा दीजिए गुरुजी, सबेरे-सवेरे आपके दर्शन हुए हैं। नहीं, नहीं कहूँगा।"

"मुझे भी ऐसी ही आशा थी। १४ नवम्बर को पूज्य गुरुजी प्रयाग होते हुए काशी आ रहे हैं। प्रयाग से काशी की जनता को पीछे नहीं रहना चाहिए, इसीलिए हम चाहते हैं काशी में पूज्य गुरुजी का प्रयाग से भी बढ़चढ़कर स्वागत हो।।"

"तो कहिए गुरुजी, मुझे क्या करना होगा?"

"तुम्हारे टोले से कम-से-कम १० जवान मेरे साथ काशी नहीं चलेंगे तो हमारे इस शिवपुरवा गाँव की प्रतिष्ठा घटेगी। इससे छोटे-छोटे काशी के मुहल्लों से ५०–५०, १००–१०० युवक पूज्य गुरुजी का स्वागत करने आयेंगे। हम लोग १० भी नहीं होंगे तो *वहाँ क्या मुँह लेकर जायेंगे?*"

"गुरुजी! १० की क्या बात है, मौका पड़ने पर १०० आदमी भी हमारे टोले से जुट सकते हैं।"

"लेकिन एक बात है कि सबको खाकी नेकर, सफेद कमीज, काली टोपी और फौजी बूट पहनकर जाना होगा।"

"यह तो कठिन बात है। इतने लोगों के लिए यह लिबास कहाँ से आयेगा?"

"बहादुर, यह कोई ऐसी बहुत बड़ी कठिनाई नहीं है, जो हल न हो सके। १० लोगों की जगह २० तक के लिए सब *व्यवस्था* मेरे पास है।"

"सिर्फ इतनी ही बात नहीं है गुरुजी, जिसको पैंट-कमीज और बूट पहनने की आदत होगी, वही न आपके साथ जायेगा?"

"मैं सबको पैंट-कमीज पहनने के लिए जोर नहीं देना चाहता। जो गणवेश पहनकर चल सके अच्छा है। वह खूब अच्छी तरह पूज्य गुरुजी के दर्शन कर सकेगा। जो गणवेश में नहीं जायेंगे उन्हें दर्शकों की कतार में रहना होगा। मेरी इच्छा थी कि हम शिवपुरवा के सब लोग एकसाथ रहते तो खूब शान रहती। जो कुछ भी हो, अपने साथ ज्यादा-से-ज्यादा आदमी लेकर चलना है।"

निश्चित दिन बहादुर अपने टोले के कुछ लोगों के साथ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री गुरुजी (श्री माधवराव सदाशिव गोलवलकर) का स्वागत करने के लिए वाराणसी पहुँचा। *वाराणसी के बेनिया बाग के मैदान में श्री गोलवलकर* की सार्वजनिक सभा की व्यवस्था थी। सभा के मंच को एक किले के समान बनाया गया था। श्री गोलवलकर के आने पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सभी लोगों ने सलामी दी। स्वागत के बाद श्री गोलवलकर का भाषण शुरू हुआ: "हिन्दू अपने को हिन्दू कहलाने में शर्म करते हैं। हिन्दू राष्ट्र की प्रबल भावना पर आधारित राष्ट्र की रचना से ही देश की अखण्डता एवं स्वतंत्रता की रक्षा संभव है। हिन्दू राष्ट्रीयता को स्वीकार करने पर ही देश सम्पन्न और शक्तिशाली हो सकता है। अल्पसंख्यकों को हिन्दू समाज से डरना नहीं चाहिए! *उनकी प्रगति हिन्दू समाज के साथ* चलने में ही सम्भव है…।" लेकिन बहादुर समझ नहीं पा रहा था कि इस हिन्दू राष्ट्र और अल्पसंख्यक आदि की बड़ी-बड़ी बातों से हमको क्या लेना-देना! दूसरी बात उसके मन में खटकने लगी कि गुरुजी तो कुछ ज्ञान की बात सुनाते, लोक-परलोक सुधारने का उपाय बताते तो हमको कुछ हासिल भी होता, लेकिन ये तो दूसरे सब नेताओं की तरह राष्ट्र, सरकार आदि की ही बातें कर रहे हैं।

जब गुरुजी का भाषण हो रहा था, उस समय अल्पसंख्यक-वाली बात उसकी समझ में नहीं आयी थी। पास खड़े एक पढ़े-लिखे आदमी से—जो खाकी पैंट, सफेद कमीज, काली टोपी और काला बूट पहने, हाथ में एक अहीरउ लाठी लिये खड़ा था—पूछा था, कि अल्पसंख्यक माने क्या होता है? तो उसने जवाब दिया था, हमें इसी लाठी के जोर से सब साले मुसल-*मानों को मार भगाना है।* एक भी मुसलमान को *यहाँ नहीं* रहने देना है।

हे भगवान्, तो क्या ये हिन्दू-मुसलमान दंगा कराने की तैयारी कर रहे हैं? एक बार मार-काट हुई तो देश के टुकड़े हुए, अब दुबारा फिर खून की नदी बहेगी तो भारत माता के *दिल के और कितने टुकड़े होंगे?*

बहादुर को लगा कि गुरुजी के लिए किले जैसा बनाया गया सभा का मंच जिस तरह एक ढकोसला है उसी तरह उनकी कथनी और उनके गुर्गों की करनी में भी भयंकर ढकोसलेबाजी है। इससे सावधान रहना होगा, इस जहर को फैलाने से *रोकना होगा।*

'गाँव की बात' : वार्षिक चन्दा : चार रुपये, एक प्रति : अठारह पैसे।

श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित और इंडियन प्रेस (प्रा०) लि०, वाराणसी में मुद्रित।

शहरी लोगों को ग्रामदान-आन्दोलन में शामिल होने का आह्वान

मध्यप्रदेश कार्यकर्ता-सम्मेलन द्वारा पूरी शक्ति और भक्ति से प्रदेशदान का संकल्प पूरा करने की अपील

विनोबाजी ने बिहार से मध्यप्रदेश के सरगुजा जिले में सात दिनों के लिए गत १५ नवम्बर को प्रवेश किया। रामानुजगंज में वहाँ की जनता, शासकीय अधिकारी तथा प्रदेश के कोने कोने से आये रचनात्मक कार्यकर्ता कन्हर के तट पर विनोबाजी का स्वागत करने के लिए खड़े थे। मध्यप्रदेश शासन की ओर से आदिवासी विभाग के राज्यमंत्री भी उपस्थित थे। विनोबाजी का स्वागत जिले की जनता की ओर से श्री फूलचन्द सापुरिया, अध्यक्ष जिला स्वागत-समिति ने किया। विनोबाजी को राजपुर में वाड्रफनगर और सीतापुर, दो प्रखण्डदान भेंट किये गये।

सरगुजा जिलादान का संकल्प २६ जनवरी, १९६९ तक शासकीय अधिकारियों और कार्यकर्ताओं के मिले-जुले प्रयास से पूरा करने का तय हुआ। २ दिसम्बर १९६८ तक सरगुजा जिले के ७ प्रखण्ड ग्रामदान में लाने का निश्चय उत्साह और उमंग भरे वातावरण में रचनात्मक संस्थाओं के कार्यकर्ताओं ने लिया। इसको पूरा करने के लिए प्रदेश के ३० कार्यकर्ता २ दिसम्बर १९६८ तक विनोबाजी की बैठ स्वीकार करके अपनी पूरी शक्ति और भक्ति से लग गये। इनमें मध्यप्रदेश गांधी-निधि के कार्यकर्ता मुख्य रूप से सम्मिलित हैं।

रामचन्द्रपुर तहसील के वाड्रफनगर और रामानुजगंज प्रखण्डदान पूरे हो चुके हैं। अब तीसरा, बलरामपुर प्रखण्ड पूरा होने पर सम्पूर्ण तहसील ग्रामदान में आ जायगी।

विनोबाजी का पड़ाव १७ से १९ नवम्बर तक अंबिकापुर में रहा। अम्बिकापुर में १८-१९ को छत्तीसगढ़ में गांधी-शताब्दी सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन का आयोजन गांधी शताब्दी की राज्य स्तरीय समिति ने किया। इसमें छत्तीसगढ़ क्षेत्र के रायपुर, दुर्ग, बस्तर, रायगढ़, बिलासपुर और सरगुजा जिलों के कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। इसके अतिरिक्त प्रदेश के रचनात्मक संस्थाओं के प्रतिनिधि और कुछ प्रमुख कार्यकर्ता भी उपस्थित थे। विनोबाजी के सान्निध्य में भावी कार्यक्रम पर गहराई से चर्चा हुई। विनोबाजी के आवाहन पर छत्तीसगढ़ क्षेत्र के कार्यकर्ताओं ने १८ अप्रैल १९६९ तक समूचे छत्तीसगढ़दान का संकल्प किया है। उसकी व्यूह-रचना की जा रही है।

अम्बिकापुर में विनोबाजी के सान्निध्य में महिला बाल-कल्याण उपसमिति की ओर से छत्तीसगढ़ महिला-शिविर का आयोजन किया गया। इसमें मुख्य रूप से अम्बिकापुर शहर की महिलाओं ने भाग लिया। विनोबाजी ने महिलाओं को संबोधित करते हुए कहा कि शान्ति-रक्षा और शील-रक्षा, ये दो कार्यक्रम उठाने चाहिए। ये महिलाओं के लिए अत्यन्त महत्व के कार्यक्रम हैं। आज देश में अत्यन्त अश्लील साहित्य निकल रहे हैं। उसको रोकने के लिए महिलाओं को आगे आना चाहिए, शान्ति-रक्षा और शील-रक्षा के सम्बन्ध में विविध कार्यक्रम सोचे गये।

सर्वोदय आन्दोलन के लिए अपनी आमदनी का ढाई प्रतिशत प्रतिमाह नियमित रूप से देने की अपील विनोबाजी ने यहाँ के व्यवसायियों, शासकीय विभागों में लगे सेवकों, वकीलों, डाक्टरों, शिक्षकों तथा श्रमिकों से की। इस अपील का सर्वत्र स्वागत हो रहा है। ग्रामदान के अन्तर्गत अपनी आमदनी का चालीसवाँ भाग किसानों से लिया जाता है। उसी प्रकार विनोबाजी की इस ढाई प्रतिशत की माँग से शहरी नागरिकों के लिए ग्रामदान-आन्दोलन में शामिल होने का नया आयाम प्रकट हुआ है और इस पर वे बहुत जोर दे रहे हैं। विनोबाजी ने अपेक्षा व्यक्त की है कि इस कार्यक्रम को अधिकाधिक व्यापक बनाया जाय।

अम्बिकापुर में विनोबाजी को पश्चिम निमाड़ जिले की बड़वानी, भिकनगाँव दो तहसील-दान भेंट किये गये, जिनमें ४ प्रखण्ड हैं। प० निमाड़ जिले में गत ११ सितम्बर से जिलादान-अभियान चलाया जा रहा है, जिसके अन्तर्गत १,७१८ गाँवों में से १,३२२ गाँव ग्रामदान में आ चुके हैं। निकट भविष्य में शेष गाँव भी ग्रामदान के अन्तर्गत आ जायेंगे, ऐसी उम्मीद है। फरवरी के दूसरे सप्ताह में श्री जयप्रकाशजी ने प० निमाड़ जिलादान-समर्पण-समारोह में भाग लेने की स्वीकृति दे दी है।

विनोबाजी की इस साप्ताहिक यात्रा के दौरान मध्यप्रदेश सर्वोदय मंडल की बैठकें विभिन्न पड़ावों पर समय-समय पर होती रहीं, जिनमें मुख्य रूप से राज्य-स्तरीय गांधी शताब्दी समिति द्वारा गत २६ अक्तूबर को भोपाल में आयोजित प्रथम मध्यप्रदेश गांधी-शताब्दी सम्मेलन में स्वीकृत प्रदेशदान के संकल्प का हार्दिक स्वागत और समर्थन करते हुए पूरी शक्ति और भक्ति के साथ उसके लिए जुट जाने का प्रस्ताव विधिवत पारित किया गया, और इसी प्रकार प्रदेश की विभिन्न रचनात्मक संस्थाओं की शक्ति भी शताब्दी-वर्ष में प्रदेशदान को सफल बनाने में लगे, यह अपेक्षा प्रकट की गयी। इसके लिए शताब्दी समिति ने निम्न व्यूह-रचना की है :

(१) प्रदेश के सातों संभागों में संभागीय शताब्दी-सम्मेलनों के आयोजन द्वारा उपयुक्त वातावरण बनाया जाय। इसका पहला सम्मेलन विनोबाजी के सान्निध्य में अंबिकापुर में संपन्न हुआ।

(२) जिला-स्तर पर ग्रामदान-शिविर एवं अभियान के प्रशिक्षण हेतु भी शताब्दी-समिति की ओर से एक योजना बनायी गयी है। प्रदेश के ४३ जिलों में लगनेवाले इन शिविरों में ग्रामसेवक, जिला-अधिकारी, शिक्षक तथा अन्य कुछ लोग भाग लेंगे।

अंबिकापुर शहर से ३ मील दूर, राघवपुरी आश्रम में १९ तारीख को विनोबाजी कुछ घंटों के लिए गये। राघवपुरी की स्थापना सन १९२८ में स्व० बाबा राघवदासजी की स्मृति में हुई। राघवपुरी आश्रम के माध्यम

से सरगुजा जिले में आदिवासी कल्याण के विविध कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। राघवपुरी में विनोबाजी ने स्व० बाबा राघवदासजी का पुण्य-स्मरण किया और भावविभोर हो उठे!

विनोबाजी ने जिले की आदिवासी आध्यात्मिक नेता राजमोहिनी देवी के निमंत्रण पर उनके 'भगतगणों' से मिलने के लिए अंबिकापुर से ३ मील दूर, सरगवाँ गाँव भी गये। वहाँ पर 'भगतगणों' ने बाबा का हार्दिक स्वागत किया। विनोबाजी ने आदिवासियों को शराब से मुक्त होने का आवाहन किया।

सरगुजा की अपनी यात्रा को विनोबाजी ने *ऋण-अदायगी-यात्रा* माना और इसका उल्लेख भी उन्होंने अपने व्याख्यानों में किया। विनोबाजी ने राजमोहिनी देवी को वादा किया था कि जब संभव होगा सरगुजा की यात्रा करेंगे।' उन्होंने इस प्रेम-यात्रा के कारण कई अपवाद भी किये, और अंबिकापुर की एक सभा में ७१ मिनट तक लगातार बोलते रहे।

मध्यप्रदेश में अब तक ३ भूदान-बोर्ड कार्यरत हैं, जिनका विधानसभा द्वारा विलीनीकरण ऐक्ट पारित हुआ है, जिसके अनुसार पूरे प्रदेश के लिए एक नये बोर्ड का गठन किया जा रहा है। उसका मुख्यालय भोपाल में रहेगा।

विनोबाजी की सरगुजा-यात्रा की व्यवस्था जिला विनोबा-स्वागत-समिति ने किया था। जनता ट्रान्सपोर्ट कंपनी ने कार्यकर्ताओं के आवागमन की नि:शुल्क व्यवस्था कर उल्लेखनीय योगदान किया। जिले की जनता तथा मध्यप्रदेश शासन का सहयोग भी सराहनीय रहा।

इस तरह विनोबाजी की साप्ताहिक यात्रा से प्रेरणा लेकर कार्यकर्ता श्रद्धा और विश्वास के साथ बिना हारे, बिना थके अपना संकल्प पूरा करने में जुट गये हैं।

— गायत्री प्रसाद

परिवर्तन की स्वीकृति

(कार्य-पद्धति और वैचारिक परिवर्तन का एक अध्ययन)

[हायल की ग्रामसभा के तथ्यपूर्ण अध्ययन का यह क्रम इस चौथी किश्त में पूरा हो रहा है। यह अध्ययन जहाँ एक ओर ग्रामदान के विचारों की व्यावहारिकता को लेकर उठने और उठाये जानेवाली शंकाओं का निराकरण प्रस्तुत करता है, वहाँ दूसरी ओर अपनी समस्याओं को हल करने के लिए गाँव में ही छिपी हुई शक्ति के स्रोतों की ओर स्पष्ट संकेत भी करता है। —सं०]

ग्रामदान का क्या तात्पर्य है, इस प्रश्न के उत्तर में जो मन्तव्य प्राप्त हुए, उनसे ग्रामदान की वैचारिक पकड़ का और व्यावहारिकता का अन्दाज लगाया जा सकता है

ग्रामदान का तात्पर्य

(साक्षात्कार संख्या-३०)

वक्तव्य	संख्या
• स्वामित्व-विसर्जन होता है, जमीन सबकी है।	२६
• सामूहिक शक्ति बनती है।	२४
• ग्रामसभा बनती है, जिसके द्वारा हम अपनी समस्याएँ स्वयं सुलझाते हैं।	१८
• गरीबों को जमीन मिलती है, जिससे उनका आर्थिक विकास होता है।	३०
• चरागाह, कुएँ, जंगल आदि को सुरक्षा मिलती है।	२४
• उद्योगों का विकास होता है।	१५
• सरकारी कर्मचारियों से मुक्ति मिलती है।	६
• ग्रामकोष से गाँव की पूँजी बनती है।	२४
• ग्रामसभा सबके हित में काम करती है।	१८

यहाँ साफ जाहिर है कि गाँववाले प्रत्यक्ष ...म को देखते हुए ग्रामदान का अर्थ समझते हैं। ग्रामदान के बाद चरागाह, जंगल, भूमि आदि से प्रत्यक्ष लाभ उनको दिखता है, अतः उनके लिए वही ग्रामदान का अर्थ है। परन्तु व्यक्त मन्तव्य से साफ जाहिर है कि स्वामित्व-विसर्जन, ग्रामसभा, ग्रामकोष एवं सर्वहित के लाभ को अधिकांश वक्ताओं ने स्वीकार किया है।

प्रत्यक्ष पूछताछ से स्पष्ट होता है कि हायल में जो भी प्रगति ग्रामसभा की कार्य-पद्धति एवं विचार-परिवर्तन के क्षेत्र में हुई है उसका प्रत्यक्ष लाभ सब लोग महसूस करते हैं। ग्रामसभा की कार्य-पद्धति ने एक रास्ता पकड़ लिया है और उसी रास्ते पर वह चल रही है। फिर भी जो भी प्रगति हुई, उसके कुछ कारण अवश्य हैं, जो कि अन्य गाँवों में नहीं हैं। वे कारण इस रूप में व्यक्त किये जा सकते हैं :

(१) ऐतिहासिक रूप से व्यक्तिगत स्वामित्व का न होना।

(२) पास-पड़ोस के व्यक्तिगत भूमि-स्वामित्व की परेशानियों से परिचित होना।

(३) श्री गोकुलभाई भट्ट द्वारा विचार-प्रचार एवं गाँव के सदस्य के रूप में प्रत्यक्ष सहयोग करना।

(४) परम्परा से विभिन्न जातियों में सौम्य वातावरण का होना।

(५) एक ही जाति—ब्राह्मण—का बोलबाला होना और बाद में अन्य जातियों की जागृति, अधिकार की माँग, सामाजिक शोषण को अस्वीकार करने की माँग को ब्राह्मणों द्वारा सहजता से स्वीकार किया जाना।

(६) दलगत राजनीति से मुक्त रहना।

(७) कुछ सक्रिय लोगों का आगे आ जाना।

उक्त कारणों से हायल की ग्रामसभा ठीक ढंग से चल रही है, ऐसा माना जा सकता है। ब्राह्मण प्रधान गाँव होने से सामाजिक भेद था और आज भी है। परन्तु बदलती परिस्थितियों को देखकर अन्य जातियों की स्वतन्त्रता एवं जागृति को ब्राह्मणों ने सहज स्वीकारा है, जिससे किसी प्रकार का संघर्ष नहीं हो पाया। अब ब्राह्मणों के समान ही ग्रामसभा में उनका भी समान स्थान है। समानता की इस स्वीकृति में बुजुर्गों को सांस्कारगत कष्ट अवश्य हुए, पर हकीकत समझकर उन्होंने भी मान लिया। फिर आर्थिक क्रियाओं के क्षेत्र में पहले से ही यहाँ ब्राह्मण एवं गैरब्राह्मण समान थे। सभी जाति के लोग एकसाथ खेत में काम करते थे, करते हैं। ब्राह्मण-हरिजन, सभी मजदूरी तक करते थे, आज भी करते हैं। ब्राह्मणों की प्रतिष्ठित महिलाएँ भी हरिजनों के साथ खेत में काम करती हैं। पर हाँ, घर आने पर वह आज भी अपने को ब्राह्मण मानती हैं, और उनके हाथ का पानी पीने में संकोच करती हैं। पर यह भी धीरे-धीरे कम हो रहा है। जो लोग गाँव के बाहर रहते हैं उनकी संख्या काफी है। करीब ५०० लोग बाहर रहते हैं। उनके द्वारा भी इस भेदभाव को मिटाने में योग ही मिला है। इस बदलती परिस्थिति में ग्रामदान ने गाँव को वैचारिक दिशा दी है, ऐसा गाँववाले महसूस करते हैं।

हायल के कुछ आँकड़े

जाति-संरचना

जाति		परिवार	प्रतिशत
ब्राह्मण	—	१६८	७१
बढ़ई	—	५	१.७८
माली	—	६	२.११
लुहार	—	५	१.७८
कुम्भार	—	१०	३.५०
हरिजन (चमार)		४५	१६
सरगड़े	—	५	१.६८
नाई	—	२	०.७०
भंगी	—	१	०.३५
कुल		२८०	

कुल जन-संख्या १४२४। काम करने लायक ७००।

भूमि

	बीघा
सिंचित जिस पर खेती होती है।	१२६०
असिंचित "	३१३०
चरागाह	७९१½
परती	४०३½
बंजर	३९०½

→ १११

ग्राम-राज। सोमवार, २ दिसम्बर, '६८

नागपुर में अपूर्व शान्ति-यात्रा

महाराष्ट्र के विदर्भ क्षेत्र में कृषि विद्यापीठ स्थापित हो, इस मांग को लेकर गत-अगस्त सितम्बर माह में उग्र आंदोलन हुए। लाखों रुपये की संपत्ति नष्ट हुई और पांच जानें गयीं, सैकड़ों को जेल भेजा गया। इस तरह हिंसक आन्दोलनों से सामान्य जनता और सरकार भी परेशान हुई। १८ नवम्बर को नागपुर में विधान सभा की बैठक के समय आन्दोलन न भड़के, इसलिए शहर के प्रमुख नागरिकों, सब धर्मों और पक्षों के नेताओं और आन्दोलनकारियों के सहयोग से सर्वोदय-कार्यकर्ताओं ने शान्ति-यात्रा का आयोजन १६ नवम्बर को किया। सर्व श्री दादा धर्माधिकारी, आर के० पाटील आदि के मार्गदर्शन में लगभग ५०० नागरिक भाई बहनों ने शहर में पांच मील की मौन शान्ति-यात्रा के रूप में हिंसा के खिलाफ सफल प्रदर्शन किया। शान्ति-यात्रा की समाप्ति सभा में हुई। श्री आर० के० पाटील के संयोजकत्व में शान्ति-समिति का गठन हुआ, जो भविष्य में शान्ति बनाये रखने के कार्यक्रम आयोजित करेगी।

आजमगढ़ में चौथा प्रखण्डदान

आजमगढ़, २१ नवम्बर। उत्तर प्रदेश-दान के शुभ संकल्प में आजमगढ़ जिला सक्रिय रूप से लगा हुआ है। ११ नवम्बर से २१ नवम्बर '६८ तक के ग्रामदान-अभियान में हरैया ब्लाक का प्रखण्डदान ब्लाक-प्रमुख श्री रामदेव सिंह द्वारा प्रस्तुत किया गया। इस ब्लाक में १४० राजस्व गांव थे, जिनमें से ११७ ग्रामदान घोषित हुए। प्रायः सभी प्रमुख एवं प्रभावशाली गांव ग्रामदान की घोषणा में शामिल हैं। अब आजमगढ़ जिले में ७२३ ग्रामदान तथा ४ प्रखण्डदान हो चुके। दिसम्बर में मेंहनगर, सरवा आदि ब्लाकों के अभियान चलाने की पूर्वतैयारी हो रही है। —श्रीनिवास राय

पुरुलिया में प्रखण्डदान

जिला सर्वोदय मण्डल, पुरुलिया (प० बंगाल) के संयोजक श्री सुनिलचन्द्र महतो से प्राप्त सूचनानुसार पुरुलिया जिले के मनाल्दा प्रखण्ड का दान घोषित हो गया है।

→ भूमि	बीघा
सड़क, पत्थर आदि	८१½
अन्य (मकान रास्ता आदि)	१७६६
	कुल—८२४२½

ग्राम-कोष

सन्	रकम
१९६३	१,४८८.४५
१९६४	१,९३३.४६
१९६५	१,१०१.७६
१९६६	२,९७९.४०
१९६७	१,१४८.०५
१९६८	७,१४७.१२
अबतक कुल—	१५,७९८.३०
अबतक व्यय—	३,१३७.६२
शेष —	१२,६६०.६८

*इसके अलावा सामूहिक खेती से जमा रकम ८६६ रु०।

जागीरदारी बॉंड बेचने पर प्राप्त रकम १८,५२८ रु० बैंक में स्थायी खाता में जमा है। (समाप्त) —अवध प्रसाद

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : १०

सोमवार ६ दिसम्बर, '६८

अन्य पृष्ठों पर

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी–१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४१८५

जनता के सेवकों के लिए दो जरूरी बातें

जो किसान सूरज की तेज धूप में कमर झुकाकर खेतों में काम करते हैं, उनके साथ हमें अपना तादात्म्य स्थापित करना चाहिए और देखना चाहिए कि जिन तालाबों में वे नहाते हैं, अपने कपड़े धोते हैं, बर्तन साफ करते हैं, उनके पशु पानी पीते हैं और पड़े रहते हैं, उन तालाबों का पानी हमें पीना पड़े तो कैसा लगेगा ? हम ऐसा कर पायें तभी, हम सचमुच जनता का प्रतिनिधित्व कर पायेंगे और जनता हमारी हर पुकार पर हमारे साथ चलने को तैयार मिलेगी।१

अब तक गाँवों के लोग हजारों की तादाद में मरते रहे हैं, ताकि हम जिन्दा रह सकें। अब हमें मरना पड़ सकता है, जिससे कि वे जिन्दा रह सकें। किसान अपनी नादानकारी में और अनिच्छा के साथ मरते रहे हैं। उनकी मजदूरी में किये गये बलिदान से हमारी प्रतिष्ठा गिरी है। अब अगर हम इच्छापूर्वक समझ-बूझकर मरते हैं तो हमारा बलिदान हमें ऊपर उठायेगा और इससे पूरा राष्ट्र ऊपर उठेगा।२

इस तरह के सब मामलों में लागू होनेवाला एक अनमोल सिद्धान्त यह है कि जो चीज लाखों लोगों को नसीब नहीं है उसे प्राप्त करने से हम इनकार करें। इस मामले में पहली जरूरी चीज यह है कि हम अपना ऐसा दिमागी रुख बना लें जो उन चीजों और सहूलियतों को हासिल न करे, जो लाखों लोगों को नसीब नहीं है, और दूसरी जरूरी बात यह है कि हम अपनी जिन्दगी में जितनी जल्दी हो सके इस नयी कसौटी के मुताबिक रद्दोबदल कर लें।३

गाँव का काम हमें डरा देता है। हममें से जो लोग शहर में पैदा हुए और पले हैं, उन्हें देहाती जिन्दगी अपनाने में बड़ी मुश्किल मालूम पड़ती है।४ गाँव की कठिन जिन्दगी अपनाने के मामले में हमारा शरीर ज्यादातर साथ नहीं देता। लेकिन अगर हम जनता के स्वराज्य की इच्छा रखते हैं; एक वर्ग की जगह दूसरे वर्ग के शासन की नहीं, तो हमें अपनी शारीरिक कठिनाई पर हिम्मत और बहादुरी के साथ विजय हासिल करनी होगी।

इसका एक ही रास्ता है और वह यह कि हम सुविधावालों को भूल जायँ और गाँववालों के बीच में बैठकर गहरे विश्वास के साथ सफाई, परिचर्या और सेवा का काम किसी सत्ताधिकारी के रूप में नहीं, बल्कि सेवक के रूप में करें।५

—मो० क० गांधी

(१) ''मेरे सपनों का भारत'', पृष्ठ : २१ (२) 'यंग इण्डिया'', १७ अप्रैल '२४, पृष्ठ : १३० (३) 'यंग इण्डिया'', २४ जून '२६, पृष्ठ : २२६ (४) ''यंग इण्डिया'', १७ अप्रैल '२४, पृष्ठ : १३० (५) 'हरिजन'', १६ मई '२६, पृष्ठ : ११२।

चिन्तन-प्रवाह

"गवर्नमेंट को कैसे समझाया जाय ?"—व्यापारियों की परेशानी
खादी-कार्यकर्ताओं के खिलाफ बगावत

पिछले दिनों "भूदान यज्ञ" में हैदराबाद के तेल मिल-मालिक संघ तथा बम्बई में श्री रामकृष्ण बजाज द्वारा परिचालित व्यवहार-शुद्धि कार्यक्रम के सम्बन्ध में जो लेख प्रकाशित हुए थे, उन्हें पढ़कर मुरैना (म० प्र०) के एक व्यापारी भाई लिखते हैं :

"मैं सर्वोदय-प्रेमी हूँ। सात वर्ष से अखिल भारतीय सर्वोदय-सम्मेलनों में दर्शक के तौर पर शरीक होता रहा हूँ। छोटा व्यापारी हूँ। सेल्स टैक्स की चोरियों से परेशान हूँ। मेरे जैसे हजारों व्यापारी परेशान हैं। इस झगड़े से मुक्ति कैसे मिले इसके लिए आप व्यापार मण्डलों में दौरा कर सकें, मार्गदर्शन दे सकें, तो बड़ी हवा बने, तेलों पर सेल्स टैक्स पहाड़ जैसा है। गवर्नमेंट को कैसे समझाया जाय? एक मिलवाला टैक्स नहीं देता है, चोरी से काम करता है। दूसरा टैक्स देता है तो उसका माल १२ रुपये क्विण्टल ऊँचा हो जाता है। टैक्स-चोर का माल बिक जाता है, टैक्स देनेवाले का पड़ा रहता है। आप बताइए, ऐसी परिस्थिति में क्या किया जाय ?"

पहली बात तो इन्हें और इनके जैसे दूसरे भाइयों को तथा हम सबको यह समझनी है कि इसमें गवर्नमेंट को समझाने की कोई बात नहीं है। गवर्नमेंट यानी गवर्नमेंट का संचालन करनेवाले लोगों से ये सब बातें छिपी नहीं हैं। वे जानते हैं, पर उनका हित इसीमें है कि यह सब चलता रहे। समझना तो यह चीज आपको-हमको है। व्यापार के क्षेत्र में ही नहीं, आज हर क्षेत्र में चोर और बेईमान की बन आ रही है। ईमानदारी और सच्चाई तिरोहित हो रही है। ऐसी व्यापक बीमारी का इलाज क्या बताया जाय; सिवाय इसके कि अब जड़ ही काटने में शक्ति लगानी चाहिए। आज उद्योग, व्यापार, राजनीति आदि में छोटे-बड़े सत्ता-केन्द्र बन गये हैं, और इन सब प्रवृत्तियों का संचालन इन केन्द्रों के "सत्ताधारियों" में सीमित हो गया है। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के इन सत्ताधारियों का आपस का अलिखित और मन-समझ समझौता है, जिसके परिणामस्वरूप जनता के शोषण में सब एक हैं, चाहे अपने आपस में सत्ता के बँटवारे के बारे में विभिन्न पार्टियों या वर्गों के रूप में एक-दूसरे से लड़ते या विरोध करते नजर आते हों। सत्ता के इन केन्द्रों को तोड़ना ही मुख्य काम है। इन केन्द्रों को तोड़कर जनता को ताकत सीधे अपने हाथ में लेनी होगी।

सवाल यह है कि यह हो कैसे? ऊपर से या राजनीति के जरिये, कभी भले ही यह सम्भव रहा हो, आज तो नहीं है। विरोधी पार्टियों की आज की असहायता और नैराश्य इसका प्रमाण है। तोड़-फोड़ करके ये लोग अव्यवस्था जरूर पैदा कर सकते हैं, लेकिन परिस्थिति को सुधार नहीं सकते। यह दूसरी बात है कि आज की परिस्थिति और परेशानी की अपेक्षा तो अव्यवस्था भी स्वागत-योग्य है। वास्तव में तो परिस्थिति को सुधारना इन पार्टियों का भी लक्ष्य नहीं है। खुले शब्दों में कहें तो हर पार्टी का लक्ष्य यही है कि आज सत्ता का संचालन, अर्थात् शोषण और मनमानी करने का अधिकार, जो अमुक पार्टी के हाथ में है वह उसके बजाय हमारे हाथ में आ जाय। पर उससे समस्या का स्थायी हल नहीं होता। छाती पर से एक पत्थर हटेगा, दूसरा आ बैठेगा। जनता कहाँ तक इन पत्थरों को हटाती रहेगी? इसलिए एकमात्र उपाय यही है कि पत्थरों को छाती पर टिकने ही न दिया जाय।

× × ×

खादी के क्षेत्र में वर्षों से काम कर रहे एक साथी ने खादी-जगत् की मौजूदा स्थिति से दुखी होकर लिखा है कि "अपने ही लोगों" यानी खादी-संस्थाओं के संचालकों के खिलाफ बगावत करने को जी चाहता है। आज समाज में अन्याय के खिलाफ सिर उठाने की वृत्ति और प्रतिकार की शक्ति इतनी कम होती जा रही है कि कहीं से भी बगावत की आवाज आती है तो वह सुहाती है। पर वस्तुस्थिति के सही आकलन की दृष्टि से मैंने इन भाई को लिखा था कि खादी के काम का सन्दर्भ और वातावरण आज इतना बदल गया है कि खादी या खादी-कार्यकर्ताओं से आज भी हम वही अपेक्षा रखें जो पहले रखते थे तो यह शायद उनके प्रति न्याय नहीं होगा।

इस बात के औचित्य को स्वीकार करते हुए इन भाई ने एक बहुत वाजिब सवाल पूछा है। उन्होंने लिखा है कि अगर हम यह मानते हैं कि खादी की संस्थाओं में अब पहलेवाली दृष्टि नहीं है; "तो फिर आप जैसे लोगों का वहाँ क्या काम है? क्यों नहीं आप उनको छोड़कर बाहर आते और उनके खिलाफ बगावत का झण्डा उठाते ?"

यह प्रश्न बहुत संगत (पर्टिनेण्ट) है। मैं खुद अपने-आपसे अकसर यह सवाल करता हूँ, और जो जवाब मुझे अपने चिन्तन से मिलता है वह यह है कि आज चारों ओर समाज के मूल्य इतने गिर गये हैं कि बहुत-सी ऐसी बातों के लिए, जो पहलेवाले मूल्यों की दृष्टि से नहीं होनी चाहिए, खादी-संस्थाएँ या खादी-कार्यकर्ता पूरी तौर से जिम्मेदार नहीं माने जा सकते। वे भी परिस्थितियों के शिकार हैं। जैसा विनोबा अकसर विनोद में कहते हैं, भ्रष्टाचार इतना व्यापक हो गया है कि वह "शिष्टाचार"-सा हो गया है। ऐसी परिस्थिति में हम कहाँ-कहाँ से अलग होंगे, या किस-किसको छोड़कर बाहर जायेंगे? एक मोह यह भी है कि हम इन संस्थाओं में रहते हैं तो इनका कुछ उपयोग हमारे मूल उद्देश्य की पूर्ति के लिए हो सकता है।

जहाँ तक बगावत का सवाल है, यह स्पष्ट है कि पत्ते या टहनियों को नोचने में शक्ति खर्च करना व्यर्थ है। हमारी शक्ति जड़ को काटने में ही लगनी चाहिए। बगावत करनी अवश्य है, पर वह समग्र करनी है, यानी आज की सम्पूर्ण समाज-व्यवस्था के खिलाफ करनी है। मैं यह भी मानता हूँ कि अब समय आया है जब यह बगावत सिर्फ विधायक, अर्थात् ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य के प्रयत्न तक सीमित नहीं रहनी चाहिए, बल्कि आज की अन्यायपूर्ण और दम घोटनेवाली व्यवस्था के प्रति विद्रोह के रूप में भी प्रकट होनी चाहिए। —सिद्धराज ढड्ढा

किस गांधी को जन्म-शताब्दी ?

"राजनैतिक नेताओं ने गांधीजी के क्रान्तिकारी विचारों को पीछे ढकेल दिया है। गांधीजी के जो विचार समाज परिवर्तन के थे, उन पर से जोर हटकर उनके व्यक्तित्व के उन परम्परागत और धार्मिक पहलुओं पर चला गया है जो समाज के मौजूदा ढाँचे की ओर झुके हुए दिखाई देते हैं।"

ये शब्द उन जर्मन समाजशास्त्रियों के हैं जो हाल में भारत आये थे तथा उत्तर प्रदेश और आन्ध्र प्रदेश के चार जिलों में घूमे—यह जानने के लिए घूमे कि लोगों के दिलों में जो गांधी है, और जो गांधी 'बड़ों' द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है वह कैसा है। इन विद्वानों ने पाया कि बहुत अधिक लोगों को यह मालूम भी नहीं है कि यह गांधी-जन्म-शताब्दी का वर्ष है। उन्होंने यह भी देखा कि नेता अपने जिस विचार का प्रचार करना चाहते हैं उसके साथ गांधी का नाम जोड़ लेते हैं। जनता को गांधी में पूरा विश्वास है; नेताओं में उसका विश्वास उठ चुका है। जीवन के प्रति भी उसकी आशा उठ चुकी है।

हमने सन् १९६९ को गांधी-वर्ष के रूप में मनाने का निर्णय तो कर लिया, लेकिन क्या हमने यह भी सोचा कि किस गांधी का वर्ष मनाना है? बकरी का दूध पीने और लंगोटी लगानेवाले गांधी का, या उस गांधी का जो कुछ स्वप्न छोड़ गया, कुछ प्रश्न उठा गया, और सामाजिक क्रान्ति की एक सम्पूर्ण योजना बना गया? गांधी को चिन्ता थी मनुष्य की मुक्ति की—हिंसा से, असत्य से। उसे गरीब को राहत पहुँचाने से कहीं अधिक चिन्ता थी गरीबी का अन्त करने की, शोषण और दमन को हमेशा के लिए खत्म करने की। यह आज के सामाजिक ढाँचे में कैसे सम्भव होगा? गांधी पैदा हुआ था, इस ढाँचे को बदलने के लिए, और समाज का ढाँचा तब बदलता है जब सत्ता (पावर) और सम्पत्ति (प्रापर्टी) का स्वरूप बदलता है—स्वामित्व और नेतृत्व बदलता है। क्या यह बुनियादी परिवर्तन होगा कुएँ, सड़क और गांधी-भवन बनवाने से, प्रदर्शनियाँ लगाने से, बैज और चित्र बेचने से, गांधीकी प्रशंसा में लेख लिखने और भाषण देने से? क्या जिस देश में गांधी नहीं थे उनमें कुएँ नहीं खोदे जाते, सड़कें नहीं बनवायी जातीं?

गांधी ने कहा था कि सबसे बड़ी हिंसा है राज्य की हिंसा। उससे मुक्त होना वास्तविक क्रान्ति है। राज्य की शक्ति का क्षय और 'लोक' की शक्ति का उदय, उस क्रान्ति के दो अभिन्न पहलू हैं। लेकिन कहाँ दिखाई देती है विद्वानों, नेताओं और सेवकों में वह तीव्रता और तत्परता जो १९६९ में देश के जन-जीवन में ऐसी लहर पैदा कर दे कि लोक-शक्ति का उदय और राज्य-शक्ति का क्षय होता स्पष्ट दिखाई दे? शायद उस गांधी के लिए अभी हमारे 'बड़े' तैयार नहीं हैं।

जो कुछ गांधी ने किया उसके लिए प्रशंसा के पाठ पढ़ना निरर्थक है। गांधी का स्थायी मूल्य उन स्वप्नों में है जिन्हें वह पूरा नहीं कर सके। उनके स्वप्न हमारे लिए आज जीवन-मरण के प्रश्न बन गये हैं। आज भी उन प्रश्नों का सही और साध्य उत्तर गांधी के सिवाय दूसरे किसीके पास नहीं है। लेकिन अगर गांधी के स्वप्नों और उत्तरों में हमें रुचि नहीं है तो गांधी के नाम में समारोह रचकर हम जनता के सामने अपने मन का गांधी क्यों पेश करें? कम-से-कम हम इतना तो करें कि जनता और उसके गांधी के बीच में हम न खड़े हों। इस देश की जनता अपने गांधी को खूब समझती है, और अब गांधी का नाम लेनेवालों को भी समझने लगी है।

दुनिया भारत में १९६९ के गांधी को देखना चाहती है। वह गांधी कौन है?

टिकट ! टिकट !

हमारी रेलों के सामने एक बड़ा सवाल यह है कि सफर करने-वाले टिकट लें, और कोई 'डब्ल्यू टी' सफर न करे। दूसरी ओर हमारी राजनैतिक पार्टियों के सामने यह समस्या है कि जितने लोग टिकट चाहनेवाले हैं उतने टिकट उनके पास नहीं हैं। राजनीति की यह खूबी है कि उसमें ज्यादा-से-ज्यादा लोग 'विथ टिकट' चलना चाहते हैं। उसमें 'विदाउट टिकट' चलनेवालों की संख्या बहुत कम होती है।

इस वक्त लखनऊ या पटना में जाइए, तो चुनाव की एक अजीब चहल-पहल दिखाई देगी। रिक्शेवाले, तांगेवाले, होटलवाले, सिनेमा-वाले, सब खुश मिलेंगे। टिकट चाहनेवाले, टिकट दिलानेवाले, कुछ लोगों को टिकट मिलने से रोकनेवाले, टिकट देनेवाले, कुल मिलाकर टिकट के इर्दगिर्द अच्छी-खासी जमात बन जाती है। कभी पार्टी के दफ्तर से निकलकर चाय की दूकान पर बैठ गये तो दूध, चीनी, सब खत्म हो गयी। होटल में घुस गये तो दाल साफ कर दी। उस दिन लखनऊ में एक चायवाला कहने लगा 'बाबूजी, क्या यह चुनाव हर साल नहीं हो सकता?' पूछा 'क्यों?' बोला, 'और कुछ तो क्या होगा, कम से-कम चार पैसे तो मिल जाते हैं।'

रेल का टिकट तो पैसे से मिलता है, लेकिन पार्टी का टिकट कैसे मिलता है? जैसे रेल में पैसे की जरूरत होती है, उसी तरह पार्टी में भी बिना पैसे के काम नहीं चलता। पैसा अपना हो, मित्रों से मिले, पार्टी दे, कहीं से आये, लेकिन पैसा जरूर होना चाहिए। चुनाव में पैसे की ताकत से बहुत काम बनता है। पैसा सिद्ध कर सकता है कि वोट मांगनेवाले में गुण ही गुण है। उम्मीदवार की अच्छाइयाँ दिल और दिमाग से ज्यादा उसके पैसे में, उसके प्रचार में, उसके गुट में और उसकी जाति में होती हैं। दल का जादू अब बहुत कम हो गया है। दल लोगों के दिल से निकलता जा रहा है।

ऐसा क्यों होता है कि टिकट पार्टी से, और वोट जनता से लिया जाता है? जिसका वोट हो उसीका टिकट भी क्यों न हो? क्या ऐसा नहीं हो सकता कि जिस जनता से वोट मांगा जाय उसीसे टिकट भी लिया जाय? पार्टियों को टिकट देने का क्या विशेष अधिकार है? उनके टिकट में क्या शक्ति है, किसका प्रतिनिधित्व है?

समाजवाद का पुराना नारा है : "जमीन किसकी ? जो जोते-बोये उसकी !" क्या इसी तरह यह नारा नहीं हो सकता कि उम्मीदवार किसका ? जो वोट दे उसका। सचमुच उम्मीदवार वोटरों का ही होना चाहिए, न कि दल का। 'लोक' और उसके 'तंत्र' के बीच में दलों की पंडागिरी की जरूरत क्यों होनी चाहिए ? था एक समय जब दलों द्वारा जनता की आवाज बुलंद हुई थी, उसे अधिकार मिले थे, लेकिन अब जनता बालिग हो गयी है। उसे दलों के नेतृत्व या संरक्षण की जरूरत नहीं रह गयी है। लेकिन दलवाले हमारे समाजवादी अब भी यही मानते आ रहे हैं कि अगर स्वामित्व एक वर्ग के हाथ से निकलकर दूसरे वर्ग के हाथ में चला जाय, और वह वर्ग अपने नये स्वामित्व को कायम रखने के लिए सरकार को अपने हाथ में कर ले तो समाजवाद कायम हो जायेगा। इस भ्रम में वह नारा लगाते हैं समाजवाद का और बनाते हैं दल। जिस समाज में वे काम करते हैं वह समाज तो समाजवाद चाहता नहीं, चाहता है एक समुदाय। जब वह समुदाय अपनी पार्टी बना लेता है, तो दूसरे समुदाय भी अपनी-अपनी पार्टियाँ बना लेते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि स्वामित्व का सवाल झगड़े की जड़ बन जाता है, और समाज दलों के दलदल में फँसकर रह जाता है। सचमुच समाजवाद तो कायम नहीं हो पाता, अलबत्ता सरकार की तानाशाही कायम हो जाती है।

इसके विपरीत ग्रामदान में गाँव के लोग अपने-आप अपने-अपने स्वामित्व को अपनी ग्रामसभा को दे रहे हैं। इस तरह स्वामित्व का झगड़ा ही नहीं रह जाता। और, जब स्वामित्व का झगड़ा नहीं रहता, तो समाजवाद के लिए दल बनाने की जरूरत क्यों रहनी चाहिए ? ग्रामदान में गाँव खुद नये स्वामित्व की इकाई बन जाता है, साथ ही नये नेतृत्व की भी इकाई बन जाता है। जब जनता ने खुद इतना कर लिया तो समाजवाद और लोकतंत्र से दल की समाप्ति हो जानी चाहिए। गाँव को किसीके टिकट की जरूरत नहीं है। एक निर्वाचन-क्षेत्र के संगठित गाँव स्वयं तय कर सकते हैं कि ऊपर की सरकार में उनकी आवाज पहुँचाने के लिए उनकी ओर से कौन आदमी जायेगा।

आज जितने लोगों को पार्टियों के टिकट मिल रहे हैं क्या वे समझते हैं कि जनता की नजर में वे 'विदाउट टिकट' हैं ? इसलिए उन्हें मिलनेवाला वोट जनता के विश्वास का नहीं, उसके अविश्वास का प्रतीक और प्रमाण माना जायेगा। पार्टियों के टिकट से चलनेवाले चुनाव का ही यह नतीजा है कि हमारे लोकतन्त्र में बहुमत का सिद्धान्त भी नहीं रह गया है, और बराबर ऐसी सरकारें बनती जा रही हैं जो 'मेजारिटी वोट' की सरकारें नहीं कही जा सकतीं। जब इतनी बात भी नहीं रह गयी है तो टिकट का लोकतन्त्र से कोई अनिवार्य सम्बन्ध है, यह मानना कठिन है। इसलिए इस मध्यावधि चुनाव में हमें 'विथ या विदाउट टिकट' का ध्यान छोड़कर अच्छे उम्मीदवार को ही वोट देना चाहिए। तब हमारा वोट बावजूद दल के टिकट के लोकतंत्र और समाजवाद को दलमुक्त करने की दिशा में पहला ठोस कदम होगा। हमें अब खुलकर कहना चाहिए कि भले ही दल बने हुए हैं, लेकिन हम नहीं मानते कि वे हैं। •

भारत में ग्रामदान-प्रखंडदान-जिलादान

प्रांत	ग्रामदान	प्रखण्डदान	जिलादान
१. बिहार	३२,९८८	२९६	६
२. उत्तर प्रदेश	१०,१३६	५७	२
३. उड़ीसा	८,५०६	३६	–
४. तमिलनाड	५,३०२	५०	१
५. आन्ध्र प्रदेश	४,२००	१०	–
६. मध्यप्रदेश	४,१५२	१८	१
७. संयुक्त पंजाब	३,६९४	७	–
८. महाराष्ट्र	३,१२६	१२	–
९. आसाम	१,४८९	१	–
१०. राजस्थान	१,०२१	–	–
११. गुजरात	८०१	३	–
१२ बंगाल	६४४	–	–
१३. केरल	४१८	–	–
१४. कर्नाटक	४१०	–	–
१५ दिल्ली	७४	–	–
१६ हिमाचल प्रदेश	१७	–	–
१७. जम्मू-कश्मीर	१	–	–
कुल	७६,९८१	४९०	१०

भारत के जिलादान में प्रखण्डदान-ग्रामदान

जिलादान	प्रखण्डदान	ग्रामदान	जिलादान की तारीख
१. दरभंगा	४४	३,७२०	१८ फरवरी १९६७
२. तिरुनेलवेली	३१	२,८९६	२५ दिसम्बर १९६७
३. पूर्णियाँ	३८	८,१५७	१८ अप्रैल, १९६८
४. उत्तरकाशी	४	५६६	२५ मई, १९६८
५. बलिया	१८	१,४६६	३ जून, १९६८
६. चम्पारण	३६	२,८९०	५ सितम्बर, १९६८
७ मुजफ्फरपुर	४०	३,६१७	११ सितम्बर, १९६८
८. सहरसा	२३	२,३९०	११ सितम्बर, १९६८
९. सारण	४०	३,७७१	३० सितम्बर, १९६८
१०. टीकमगढ़	६	७७०	६ नवम्बर, १९६८

भारत में जिलादान : १०; प्रखंडदान : ४९०; ग्रामदान : ७६,९८१

बिहार में	,,	६	,,	२९६	,,	३२,९८८
उत्तर प्रदेश में	,,	२	,,	५०	,,	१०,१३६
तमिलनाड में	,,	१	,,	५०	,,	५,३०२
मध्यप्रदेश में	,,	१	,,	१८	,,	४,१५२

विनोबा निवास, डालटेनगंज,
२८ नवम्बर, '६८

—कृष्णराज मेहता

मुक्ति के मार्ग में पाप से अधिक पुण्य बाधक

प्रश्न : बार बार प्रयास के पश्चात् भी हमारा आन्दोलन जन-आन्दोलन नहीं बन पा रहा है। केवल कुछ ही संस्थाएँ इसमें सक्रिय हैं। जन-आन्दोलन कैसे बने ?

विनोबा : यह प्रश्न कई दफा पूछा गया है। जब जन-आन्दोलन बनेगा, तो हमारा काम लगभग पूरा हो जायेगा। हमको उसके आगे लोगों में शामिल होना, इतना ही करना होगा, बाकी कुछ विशेष रहेगा नहीं। इसलिए जन आन्दोलन बने, यह इच्छा तो अच्छी है। लेकिन समझना चाहिए कि हमारे परम पुरुषार्थ के बाद वह होगा। उसके लिए हमको बहुत प्रयास करना होगा। उसके अन्त में वह होगा, लेकिन वह कैसे बने, यह सवाल पूछ सकते हैं।

कुछ लोग होते हैं जन, कुछ होते हैं दुर्जन, कुछ होते हैं सज्जन, और कुछ होते हैं महाजन। सज्जन और दुर्जन, इन दोनों का है झगड़ा। दोनों में विरोध है। प्रथम तो हमारी ओर जमात है वह कम-से-कम सज्जनों की जमात ही होनी चाहिए, जिससे कि दुर्जनों का विरोध स्वयमेव क्षीण हो जाय। उनको दुर्जन नाम दिया है वह केवल भिन्न-भिन्न वर्ग बताने के लिए। वास्तव में "सुमति कुमति सबके उर बसहिं" सबके हृदय में कुमति सुमति होती है, इसलिए खास कोई दुर्जन और खास कोई सज्जन नहीं होता। ऐसा केवल वर्गीकरण के लिए बोलना पड़ता है। तो कुछ प्रेरणा लोगों को ऊपर खींचती है और कुछ प्रेरणा नीचे खींचती है। ऐसी दोनों प्रकार की प्रेरणाएँ लोगों में होती हैं। तो पहली बात, हमको यह करना होगा कि हमारी जमात अच्छी प्रेरणा से ऊपर खींची जाय, यह पहला कदम होगा और एक मुकाम हासिल कर लिया ऐसा होगा।

दूसरी बात, महाजनों का सहयोग हमको मिले। महाजन कौन हैं? जिनके हाथ में किसी प्रकार की शक्ति है वे महाजन हैं। शिक्षक हैं, प्रोफेसर्स हैं, वे महाजन हैं; क्योंकि उनके हाथ में विद्यार्थी-वर्ग है और कुछ करने की शक्ति भी है। सरकारी सेवक हैं, वे भी महाजन हैं, क्योंकि उनके हाथ में भी कुछ करने की शक्ति है। ऐसे ही अन्य लोग भी दीखेंगे—ग्राम-पंचायत के मुखिया होते हैं, ये सारे महाजन हैं। आपने अभी कहा कि कुछ संस्थाएँ इसमें सक्रिय हैं और बाकी सारी सक्रिय नहीं हैं। तो ये संस्थाएँ भी महाजन हैं, क्योंकि उनके हाथों में भी कुछ शक्ति है करने की। तो ऐसे महाजनों का सहयोग प्राप्त करना होगा। उसके बाद जन-साधारण का सहयोग प्राप्त करने की बात आयेगी। प्रथम विरोध शमन, उसके बाद सहयोग-प्राप्ति और आखिर में जनता उसे उठा ले, ऐसे कदम होंगे।

हम समझते हैं कि पहला भाग हमारा लगभग हो चुका है। कम-से-कम बिहार में तो इसका भास होता है। वहाँ इसके खिलाफ कोई विरोध नहीं है। चन्द लोग होते हैं जो विरोध करते हैं। गाँव में एकाध मनुष्य विरोध करनेवाला मिल भी जायेगा, लेकिन सामान्य हालत विरोध की नहीं। जहाँ तक बिहार का ताल्लुक है, कह सकते हैं कि एक कदम उठाया गया है। यानी विरोध शमन हो चुका है। जहाँ तक सहयोग-प्राप्ति की बात है, बिहार में बहुत सा काम हुआ है। चन्द लोग हैं ऐसे पंचायत के मुखिया वगैरह, उनको समझाना होगा; लेकिन उनमें भी बहुत-से लोग अनुकूल हो गये हैं और राजनैतिक पक्षों के लोग भी अनुकूल हो गये हैं। यह प्रक्रिया वहाँ पूरी नहीं हुई है, लेकिन जारी है। ये दो प्रक्रियाएँ जब पूरी होंगी तब सारे समाज को छू लेंगे—सारे ग्राम-समाज को छू लेना, उसके बिना हवा बनती नहीं।

धीरेन् भाई ने कहा कि गांधीजी के जमाने में जो आन्दोलन चला उसका 'इम्पैक्ट' शहरों पर था। सारे काम शहरों में हुए। कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, बंगलोर, लखनऊ आदि शहरों का दौरा हुआ, मानो नेता का भारत का दौरा हुआ, समाप्त। और उसके बाद अखबारों में आता था कि 'इम्पैक्ट' हुआ है। लेकिन अन्दर की बात जिनको मालूम है वे जानते हैं कि गाँव में यह बात मालूम तक नहीं थी और गाँव के लोगों को सत्याग्रह के लिए पकड़-पकड़कर ले आते थे। वह आन्दोलन लेने का था, देने का नहीं। स्वराज्य-प्राप्ति का आन्दोलन था और जेल में जो राजनैतिक नेता रहते थे उनसे जेलर आदि डर-डरकर रहते थे। हमारी जेलर के साथ हमेशा दोस्ती होती थी, क्योंकि हम उनके काम में सहयोग करते थे। तो हम उनसे पूछते थे कि आप उन लोगों से डरते क्यों हैं? तब वे जवाब देते थे कि आज नहीं, कल उनके हाथ में राजडोर जानेवाली है। उनके साथ झगड़ा करेंगे तो मामला मुश्किल होगा। इसका मतलब यह था कि उस जमाने में जिन लोगों ने त्याग किया उनको यकीन था कि आगे हमारे हाथ में राज आयेगा। अब इस आन्दोलन में सबको देना है तो हमेशा देने के आन्दोलन में उतना उत्साह नहीं रहता, जितना लेने के आन्दोलन में रहता है। अब गाँव-गाँव को मजबूत बनाना है। यह बात ध्यान में आयेगी तो देने के आन्दोलन में भी उत्साह आयेगा। तो धीरेन् भाई कहते थे कि इस आन्दोलन में हर गाँव में जाना पड़ता है, हर घर में जाना पड़ता है और हस्ताक्षर लेने के लिए घर में लोग न मिलें तो खेत पर भी जाना पड़ता है। इतनी मेहनत करनी पड़ती है, जितनी स्वराज्य के आन्दोलन में नहीं करनी पड़ती थी। उसमें करना भी क्या था? मुट्ठी भर अंग्रेज थे उनसे भारत छोड़कर जाने को कहना था। और हमारे ही लोग थे जो उनका राज चलाते थे। तो एक सामूहिक इच्छा-शक्ति जागृत हो गयी, सारे लोगों ने इकट्ठा होकर अंग्रेजों से कहा कि भारत छोड़कर जाओ। तो वे समझ गये और छोड़कर चले भी गये। आज तो हर गाँव में हर मनुष्य के पास जाना पड़ेगा, उनको समझाना पड़ेगा। हर व्यक्ति का हस्ताक्षर प्राप्त करना होगा। व्यापक प्रमाण में वह सारा करना पड़ेगा।

यह जन-संपर्क का आन्दोलन है। गाँव गाँव में संपर्क बनाते जायें। हर कोई दान दे। इसीलिए मैंने कहा था कि आपका पर्चा हर गाँव में पहुँचे। यह मैंने क्यों कहा? आप लोग गाँव-गाँव में ज्यादा-से-ज्यादा दो-चार दफा जा सकेंगे, तो गाँववालों को आगे क्या करना होगा इसका मार्गदर्शन, जगह-जगह क्या चल रहा है इसकी जानकारी कैसे प्राप्त होगी? तो आपके इस पर्चे के द्वारा यह काम होगा और जन-सम्पर्क सधेगा। यह होगा तब जन-आन्दोलन बनेगा।

प्रश्न : प्राचीन काल से आज तक भारत में वर्षा का संतुलन बिगड़ गया है। इसका क्या कारण है? कहीं बाढ़ और कहीं अकाल पड़ रहे हैं। इसका कारण आध्यात्मिक और वैज्ञानिक, दोनों दृष्टियों से बतलाने की कृपा कीजिए।

विनोबा : इसका कारण अगर बाबा बतला सकता तो बाबा को ईश्वर का पता चला, ऐसा मानना पड़ेगा। क्योंकि कारण ईश्वर के हाथ में है। जहाँ तक वैज्ञानिक कारणों का सवाल है, विज्ञान इतना ही कहता है कि फलाने समय, फलाने भाग में बारिश होने की सम्भावना है। आज विज्ञान इतना आगे नहीं बढ़ा है, उसका इतना विकास नहीं हुआ है कि वह उसके कारण बताये कि बारिश क्यों नहीं हुई और बाढ़ क्यों आयी। उतना विकास दस-पाँच साल में हो सकता है, लेकिन अभी तक ठीक नियम मालूम नहीं हुए हैं। और मुख्य कारण यह है कि यह सारा ईश्वर के हाथ में है।

आध्यात्मिक दृष्टि से सोचना हो तो, उससे हमको अगर तकलीफ न होती हो बारिश होने से या न होने से, तो उसके साथ हमारा कारण ढूँढने का कोई कारण नहीं। वह परमात्मा तय करता है। लेकिन जब हम उससे तकलीफ पाते हैं तब समझना चाहिए कि हमारे किसी पापों के बिना भगवान हमको तकलीफ नहीं देगा। अगर बाढ़ आने से, अकाल पड़ने से तकलीफ नहीं होती तो हम वही हैं और स्रष्टा काम कर रहा है, ऐसा मानें; लेकिन हमको तकलीफ होती है, यह अगर हमको अनुभव आया तो ढूँढना चाहिए कि हमारे हाथ से क्या पाप हो रहा है। आज जो अकाल या बाढ़ दीख रहे हैं, उसका कारण मुझे दीखता है कि हमारे हाथ से पाप हो रहा है, कि हमने जमीन का गलत बँटवारा किया है। इसलिए भगवान पानी का भी गलत बँटवारा करता है। अगर हम जमीन का बँटवारा ठीक से करेंगे तो भगवान इस तरह नहीं करेगा। यह हो सकता है कि कुल मिलाकर कम बारिश हो या ज्यादा हो, लेकिन इतना विषम बँटवारा नहीं करेगा। आज यह हो रहा है। उसका कारण यह है कि आज संपत्ति का विषम वितरण है और उस पाप के कारण वर्षा में सतुलन नहीं रहा है, ऐसा हमको लगता है। हम संपत्ति का, जमीन का सुन्दर वितरण करें, तो भगवान बारिश ठीक भेजता रहेगा।

प्रश्न : वर्षा का पुनः संतुलन ज्यों-का-त्यों कायम हो, इसके लिए भारत में क्या उपाय करने चाहिए?

विनोबा : इसमें इन्होंने यह माना हुआ दीखता है कि वर्षा का संतुलन पुराने जमाने में था, आज नहीं। लेकिन यह ठीक नहीं। पुराने जमाने में भी बार-बार अकाल आता था। लेकिन लोगों को मालूम नहीं होता था। मान लीजिए असम में बाढ़ आयी, बहुत-से लोग मरे, लेकिन मारवाड़ में मालूम नहीं होता था कि बाढ़ आयी। आज छोटी-सी बात भी सब जगह मालूम होती है। पुराने जमाने में भी मनुष्य के जीवन में, आचरण में विषमता थी, तो उस कारण से भगवान भी उन्हें विषम वर्षा देता होगा। तो वर्षा का सतुलन ठीक नहीं है, इसका कारण यही है कि मनुष्य जो पाप करता है इस कारण ईश्वर उसको सजा देता है।

प्रश्न : सभी रचनात्मक क्षेत्र में लगे साथी सर्वोदय-क्रान्ति में तत्परता नहीं दिखा रहे हैं। उसके लिए क्या करना चाहिए?

विनोबा : इसका कारण है। ये लोग अच्छा काम करते हैं और इसीलए मुक्ति के मार्ग में पाप जितना बाधक होता है उससे पुण्य अधिक बाधक होता है। पुण्य करनेवाला कहता है कि मैं तो पुण्य कर रहा हूँ। इसलिए यह काम छोड़ने का कोई सवाल ही नहीं और जो पाप कर रहा है, वह सोचता है कि मैं तो पाप कर रहा हूँ इसलिए इस पाप से छुटकारा पाना चाहिए। क्योंकि रचनात्मक कार्यकर्ता अच्छा कार्य कर रहे हैं, वह पुण्य कार्य है। इसलिए वह मुक्ति के मार्ग में बाधक होता है नम्बर एक, और नम्बर दो, रचनात्मक कार्यकर्ताओं में से बहुत-से लोग अपने काम में फँसे रहते हैं। उनमें से जितने आ आयेंगे, उतने की मदद लेनी चाहिए और जो नहीं आयेंगे उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि पुण्य की निन्दा करने से पाप फैलता है। इसलिए जो आयें उनसे मदद लें, और जो नहीं आयें उनकी निन्दा न करें और ईश्वर के पास प्रार्थना करें कि वह उन्हें आने की बुद्धि दे।

प्रश्न : अकाल और बाढ़, जो कि भारत में किसी-न किसी क्षेत्र में पड़ रहे हैं, हमारे क्रान्ति-कार्य में बाधक हैं या साधक?

विनोबा : प्रश्न पूछा है कि अकाल, बाढ़ आदि सकट हमारे काम के लिए अनुकूल हैं या प्रतिकूल? स्पष्ट है कि दुःख बाँटने से कम होता है और सुख बाँटने से बढ़ता है। इसलिए समझ लीजिए कि यह सारा आपके लिए तो अनुकूल है ही। अक्सर हम समझते हैं कि जो दुखी है उसके लिए तकलीफ है, लेकिन सुखी को भी तकलीफ होती है और वह बाँटना चाहिए। यह समझकर सुख-दुःख, दोनों का लाभ उठाकर आप आगे बढ़िए।

कार्यकर्ताओं से हुई चर्चा से, बलरामपुर (म० प्र०) : २०-११-'६८

- उद्योगपति कभी लालच देकर श्रमिकों से और श्रमिक-नेताओं से काम निकालते हैं, कभी खुशामद करके अतिरिक्त सुविधाएँ देकर। नीतिविहीन व्यवहार बढ़ता जा रहा है। इससे एक ओर श्रमिकों का अहित हो रहा है, उनका राजनीतिक और आर्थिक शोषण हो रहा है, तो दूसरी ओर उद्योगपति दुःखी, भयत्रस्त और परेशान हो गये हैं। स्थिति यहाँ तक पहुँच रही है कि कोई भी पैसेवाला अपना पैसा उद्योगों में नहीं लगाना चाहता।

ऐसी विकट परिस्थिति का दबाव लोकतंत्र पर पड़ रहा है। और यही कारण है कि आम जनता में यह भावना दृढ़ होती जा रही है कि आज का लोकतंत्र इन चुनौतियों का जवाब नहीं दे सकता है। इसीलिए एक या दूसरे प्रकार की तानाशाही की माँग दबे-छिपे अनेक कोनों से आती रहती है। क्योंकि आज की सरकार में और आज की राजनीति में यह शक्ति नहीं रही है कि इस परिस्थिति को बदल सकें।

इस परिस्थिति को बदलने के लिए बिलकुल नये सिरे से और नये तरीके से प्रयत्न करने की आवश्यकता है। सर्वोदय-आन्दोलन की पृष्ठभूमि में शहरी श्रमिकों में कार्य करने की दिशा निम्नानुसार हो सकती है :

उद्योग-सभा : एक सुझाव

- प्रत्येक उद्योग में श्रमिक, उद्योगपति, व्यापारी, उत्पादक और उपभोक्ता के हितों को ध्यान में रखकर इस एक 'उद्योग-सभा' का संगठन किया जाय। इस सभा का स्वरूप एक संस्था का भी हो सकता है। किसी बड़े उद्योग में विभागों के आधार पर भी ऐसी छोटी-छोटी सभाओं का गठन हो सकता है। इस सभा में उद्योग से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं पर आपस में विचार-विमर्श किया जाय तथा सभी निर्णय सर्वानुमति से किये जायँ। सभी लोग यदि एक-साथ बैठकर विचार करेंगे तो आपसी सद्भाव भी बढ़ेगा और एक-दूसरे की कठिनाइयों को समझने का अवसर मिलेगा। इस सभा की सबसे बड़ी विशेषता और वह इस मान्यता में होगी कि मजदूर, महाजन, व्यापारी, उद्योगपति तथा उपभोक्ता, सबका हित एक-दूसरे के हित में है। इनमें आपस में हित-विरोध नहीं है।
- उद्योगों की मालकियत केवल कुछ 'मालिकों' तक सीमित नहीं रहनी चाहिए। 'उद्योग सभा' ही उद्योग की मालिक है। इस भावना को दृढ़ करने के लिए एक घोषणापत्र विकसित करके उद्योग के श्रमिक, कर्मचारी, मैनेजर तथा उद्योग-प्रवृत्ति से सम्बन्धित सभी हिस्सेदार आदि यह संकल्प करें कि वे अपने उद्योग में विश्वस्त (ट्रस्टी) की हैसियत से रहेंगे। इसमें व्यक्तिगत अभिक्रम और स्वातंत्र्य कायम रहे इसलिए वर्तमान मैनेजर, प्रबन्धक आदि की आज जो हैसियत है, उनका बना रहना आवश्यक है।
- उद्योग-सभा के सदस्य किसी श्रमिक-संगठन के सदस्य नहीं रहेंगे।
- यह 'उद्योग-सभा' दलगत और सत्ता की राजनीति में भाग नहीं लेगी। चुनाव में अपने उम्मीदवार खड़े नहीं करेगी और न किसी उम्मीदवार का समर्थन या विरोध करेगी।
- यह 'उद्योग-सभा' किसी भी प्रकार के राजनैतिक चन्दे नहीं देगी।
- उद्योग-सभा सामान्यतः नवीन वैज्ञानिक साधनों, यन्त्र आदि को उद्योगों के लिए अवश्य स्वीकार करेगी, लेकिन यह ध्यान रखा जायगा कि इससे बेकारी न बढ़े और यदि बेकारी हो तो अतिरिक्त प्रवृत्ति खड़ी करके अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध कराने का भी भरसक प्रयास करे।
- उद्योग-सभा की एक समाधान समिति रहेगी, जिसके द्वारा आपसी मतभेद आदि के निर्णय किये जायँगे। ये निर्णय अंतिम होंगे और सभी पर बन्धनकारक होंगे।
- सामान्यतः इस उद्योग-सभा की अपनी कोई स्वतन्त्र अचल सम्पत्ति नहीं रहेगी। अपने दैनन्दिन कार्य चलाने के लिए सभी सदस्य, (श्रमिक, प्रबन्धक, व्यवस्थापक, कर्मचारी आदि) अपना सदस्यता-शुल्क देंगे।
- उद्योग-सभा अपने सदस्यों के शिक्षण, निवास, चिकित्सा, मनोरंजन और विकास के लिए भी शनैः-शनैः प्रवृत्तियाँ खड़ी करती जायगी, जिससे न्यूनतम जीवन-मान सभी सदस्यों को उपलब्ध हो सके।

इस दिशा में धीरे-धीरे ही प्रयास किया जा सकता है। लेकिन आज इस बात की आवश्यकता जरूर है कि श्रमिक-संगठनों के क्षेत्र से राजनीति का विसर्जन किया जाय, जिससे श्रमिक सच्चे मानों में संगठित हो सकें तथा उद्योग-संचालक, उद्योगपति और श्रमिकों में पैदा की गयी काल्पनिक खाई को पाटा जा सके।

यह योजना केवल सुझाव मात्र है। आशा है कि श्रमिक-समस्याओं में रुचि रखनेवाले सज्जन और नागरिक इस पर विचार करेंगे तथा कोई व्यावहारिक मार्ग निकालकर श्रमिकों में व्याप्त असुरक्षा और समाज में व्याप्त अशांति को दूर करने का प्रयास करेंगे, तो देश को बहुत लाभ होगा।

—नरेन्द्र कुमार दुबे

बिहार के ग्रामदानी गाँव : कैसे आगे बढ़ रहे हैं ?

बिहार राज्य की ग्रामीण अर्थनीति पर भूदान या ग्रामदान-आन्दोलन की कैसी छाप पड़ी है, इसका पूरा लेखा-जोखा करने का शायद अभी समय नहीं आया है। ग्रामदान-आन्दोलन का प्रभाव-क्षेत्र ३० हजार से अधिक गाँवों तक विस्तृत हो चुका है, किन्तु इनमें से अधिकांश उत्तर बिहार के हैं। इन ३० हजार गाँवों में से ज्यादातर गाँव हाल ही में विनोबाजी को भेंट किये गये हैं। विनोबाजी के ग्रामदान-आन्दोलन के सन्देश को गाँव-गाँव तक फैलाने में ज्यादा दिलचस्पी है, बजाय इसके कि वे ग्रामीण नव-निर्माण की पूर्व-योजना की तफसील में जायँ।

मौजूदा स्थिति यह है कि नये ग्रामदानी गाँवों में से अभी कुल १८ गाँव अपने यहाँ ग्रामदान-अधिनियम के अनुसार ग्रामसभाओं का गठन कर पाये हैं। इनमें से १२ गाँव पूर्णियाँ जिले के हैं, ५ मुजफ्फरपुर के और १ दरभंगा जिले का।

विनोबाजी ने बिहार ग्रामदान-तूफान शुरू किया, उसके पहले ही बिहार विधान-सभा ने बिहार ग्रामदान-अधिनियम पारित कर लिया था। घोषित ग्रामदानी गाँवों की पुष्टि शीघ्र हो सके और गाँव में ग्रामसभा चुनी जाकर शीघ्र सक्रिय हो सके, इसके लिए बिहार ग्रामदान-अधिनियम का संशोधन होना चाहिए। इसके बगैर पिछड़े हुए गाँवों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति के विकास की गति तेज नहीं हो पायेगी। राज्य के उत्तरी भाग में हिमालय और गंगा के बीच में ऐसे गाँवों की तादाद अधिक है। ग्रामदान-आंदोलन के पीछे जो आदर्शवादी तत्त्व है, उसका अकसर गाँव की तात्कालिक कुरूप सामाजिक आर्थिक-परिस्थिति से टकराव होता रहता है, लेकिन इसके साथ ही साथ परम्परा से बँधे हुए ग्रामीण समाज पर इसकी छाप मामूली नहीं है।

आलोचकों को उत्तर

आलोचकों की तरह ही श्री विनोबा भावे और श्री जयप्रकाश नारायण यह जानते हैं

जितेन्द्र सिंह

कि भूदान-ग्रामदान आन्दोलन का अधिकांश कार्य कागजी लिखा-पढ़ी में अपना अस्तित्व रखता है, लेकिन दोनों में से कोई भी इस *जाहिर तथ्य से हताश नहीं हैं।*

अपने आलोचकों के लिए विनोबाजी का उत्तर यह है कि *जिस मतदान-पत्र द्वारा* मतदाता अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं वह *कागज का एक टुकड़ा ही होता है,* लेकिन उसने सन् १९६७ के आम चुनाव के *बाद देश की राजनीतिक संरचना में बुनियादी* परिवर्तन ला दिया है।

*आकाशवाणी द्वारा प्रसारित श्री जय-*प्रकाश नारायण की एक वार्ता में इसका एक और *विशिष्ट* उत्तर दिया गया। जयप्रकाशजी ने कहा कि 'बिहार अधिकतम भूमि-सीमा-*निर्धारण अधिनियम*' के अन्तर्गत अगस्त तक मुश्किल से ५ हजार एकड़ भूमि प्राप्त होकर भूमिहीनों में बाँटी गयी, लेकिन बिहार प्रदेश में कम-से-कम ३ लाख ४० हजार एकड़ भूदान की भूमि भूमिहीनों में वितरित हुई है और आगामी कुछ वर्षों में कम-से-कम डेढ़ लाख एकड़ भूमि और बाँटी जायेगी।

यह सही बात है कि सन् १९५३ के बाद बिहार में भूदान में जो २१ लाख एकड़ जमीन प्राप्त हुई है, उसका अधिकांश भाग खेती के लायक नहीं है। यह भी सही है कि ज्यादा-तर दान कागज पर हैं। फिर, यह भी सच है कि जो जमीन खेतीलायक है उसके पुनर्वितरण में १५ वर्ष लग गये और तब भी पुनर्वितरण का काम बाकी है। लेकिन श्री जयप्रकाश नारायण का तर्क यह है कि बिहार के 'अधि-कतम भूमि-सीमा-निर्धारण अधिनियम' के अन्तर्गत जितनी जमीन प्राप्त हो पायी उससे कहीं अधिक जमीन सर्वोदय-कार्यकर्ताओं द्वारा वितरित हुई। ग्रामदान आन्दोलन का लोगों पर कैसा प्रभाव पड़ा उसका अन्दाज दरभंगा जिले के समस्तीपुर सबडिवीजन के ग्रामदानी गाँव रघुदयपुर के विकास-कार्य के अवलोकन करने से हो जाता है।

रघुदयपुर की नवगठित ग्रामसभा ने गाँव के विकास का एक कार्यक्रम बनाया है। गाँव की जनसंख्या ३०० है, जिसमें से २०० निर्धन भूमिहीन मजदूर हैं। ग्रामसभा ने लघु-सिंचाई द्वारा गाँव को अन्नोत्पादन में स्वाव-लम्बी बनाने की योजना तैयार की है।

इस गाँव की आबादी में उच्च जातीय भूमिहार अच्छी संख्या में हैं। साग-भाजी की खेती में कुशल कोइरी जाति के लोगों की आबादी गाँव में जहाँ-तहाँ बिखरी हुई है। गाँव में हरिजन भी हैं, जो अब गाँव के कुएँ से पानी ले सकते हैं। पहले सिर्फ सवर्ण जाति के लोगों के लिए ही कुएँ सुरक्षित थे। जाति-वाद से दबे हुए बिहार-जैसे प्रदेश के गाँव के *लोगों के लिए यह कोई मामूली फायदा नहीं* है। लघु सिंचाई का कार्यक्रम सर्वोदय-कार्य-कर्ताओं द्वारा बिहार रिलीफ कमेटी के तत्वा-वधान में चल रहा है, जो एक गैरसरकारी संस्था है। श्री जयप्रकाश नारायण बिहार रिलीफ कमेटी के अध्यक्ष हैं। कुछ विदेश की सामाजिक कार्य करनेवाली संस्थाओं ने आर्थिक और तकनीकी सहयोग देने का आश्वा-सन दिया है। लघु सिंचाई कार्यक्रम की देख-रेख करनेवाले सर्वोदय के कार्यकर्ता श्री वजीर

→कि जिस भारत को उन्होंने लहू से सींचा, देखें उसको रेगिस्तान बनाने से रोकता कौन है !"

पंडित परमानन्दजी का ओजस्वी व्यक्तित्व और दीप्त हो चला था, उनके अन्तर का भाव-प्रवाह वाणी की गति से भी तीव्रतर था। गदर पार्टी के संस्थापक सदस्य, इस महान् क्रान्तिकारी विभूति के—उम्र जिनके जीवन की गति को जरा भी शिथिल नहीं कर पायी है—सान्निध्य में आकर हम स्फूर्ति से भर गये थे, और ग्रामदान के आदिस्रोत-स्थल-बुन्देलखण्ड में आपका प्रत्यक्ष आशी-र्वाद और प्रसादस्वरूप सहयोग इस आन्दो-लन को मिलने लगा है, इस ऐतिहासिक महत्व की घटना को जानकर अपने अन्दर एक नयी शक्ति का अनुभव करने लगे थे।

—रामचन्द्र राही

सों ने मुझसे कहा—"हमारी मौजूदा कठिनाइयाँ चाहे जैसी हों, हम उम्मीद और भरोसे के साथ उस नये भविष्य की ओर देख रहे हैं, जब सरकार के आगे हाथ फैलाने के बजाय अपनी ही कोशिश और रहनुमाई की बदौलत हम ग्राम स्वराज्य को साकार कर सकेंगे। जो सरकार लोकतान्त्रिक संविधान के अन्तर्गत काम कर रही है, उसे तो हमारी मदद करनी ही है, लेकिन ग्रामदान ने हमे सिखाया है कि हमें अपनी सामाजिक, आर्थिक समस्याएँ सुलझाने के काम में अपनी ओर से ही पहल करनी चाहिए। सार्वजनिक जीवन और प्रशासन में निहित स्वार्थ के लोगों द्वारा जो रुकावटें पैदा की जाती हैं उनकी परवाह न करके हमें अपनी तरक्की के रास्ते पर आगे बढ़ते जाना है।"

बेराई की गिरने-उठने की मिसाल

बिहार प्रदेश के मुंगेर जिले में बेराई एक गाँव है। बिहार का यह वह गाँव है, जो वर्षों पहले ग्रामदान की घोषणा कर चुका है। बेराई का उदाहरण इस बात की मिसाल पेश करता है कि कैसे गाँव के लोगों ने उठकर-गिरकर ग्रामदान आन्दोलन के विभिन्न पहलुओं का अनुभव प्राप्त किया है। बेराई में यादव और हरिजनों की सख्या अधिक है। अपने प्रारम्भिक जोश-खरोश के बहाव में आकर बेराई के लोगों ने न सिर्फ अपनी अपनी जमीन, बल्कि मकान और गल्ले का भण्डार भी ग्रामसभा को सौंप दिया। उन लोगो ने सहकारी खेती भी शुरू कर दी। गाँव के लोगों की अपनी पारिवारिक और व्यक्तिगत प्रतिस्पर्द्धा के कारण सामाजिक खींचातानी शुरू हुई। इसके चलते ग्रामसभा के सुचारु रूप से काम करने में कठिनाई आयी। बाद में गाँव के जीवन को नया रूप देने में व्यक्तिगत और पारिवारिक महत्व को जगह मिली। अब ग्रामसभा गाँव की जमीन तथा अन्य साधनों की सिर्फ कानूनी हकदार है। जमीन के जोतने बोने और सम्पत्ति को उपयोग में लाने के सब अधिकार परिवारों को वापस दे दिये गये हैं। भूमिहीन किसानों में कुछ जमीन फिर से बाँट दी गयी है और सिर्फ ११ एकड़ का एक प्लाट सहकारी खेती के लिए अलग रखा गया है।

कुछ उपलब्धियाँ

बेराई की ग्रामसभा एक विद्यालय भी चलाती है। सहकारी खेती की जमीन की उपज द्वारा गाँव के गरीब विद्यार्थियों के लिए न सिर्फ भोजन की व्यवस्था हो जाती है, बल्कि उसीसे बच्चों की विद्यालय की फीस और पुस्तकों की भी व्यवस्था हो जाती है। गाँव में पारिवारिक खेती करनेवाले व्यक्ति अपनी उपज का एक हिस्सा ग्रामसभा के कोष में दान करते हैं। गाँव में अम्बर चरखा-केन्द्र खोला गया है। बेराई में सबसे महत्वपूर्ण और खास बात यह हुई है कि वहाँ के दुसाध, जो कि हरिजनों में भी निचली श्रेणी के लोग हैं, और जिनकी हत्या और अपराध की परंपरा रही है, अब नयी जिन्दगी बिता रहे हैं।

बोधगया के समीप का मनपहाड़ नामक गाँव का एक उदाहरण है आदिवासी ग्रामीणों का। इस गाँव के अधिकांश लोग मुइयाँ समुदाय के हैं। ये लोग वर्षों से खेतों और जगलों में चोरी करके अपना जीवन-यापन करते थे। उनमें से अधिकांश ने अब खेती-बारी शुरू कर दी है। उन लोगों ने अपने खेतों में सिंचाई के तालाब, छोटे बाँध और सिंचाई की नालियाँ बना ली हैं, जिसके जरिये वे अपने छोटे-छोटे खेतों की सिंचाई कर लेते हैं। वे उन खेतों से अपने लिए साल में १० महीने की जरूरत भर का अनाज उपजा लेते हैं। विकास कार्यक्रमों में भागीदार बनने के लिए उन्होंने अपना एक श्रमिक-संगठन भी बनाया है।

आधिकारिक मूल्याङ्कन

गया जिले के दो ग्रामदानी गाँव, गाधीधाम तथा भूरनगर के आधिकारिक मूल्यांकन के अनुसार यद्यपि भूमि के पुनर्वितरण के बाद औसत आमदनी में थोड़ी-सी बढ़ोतरी हुई है, लेकिन भूमि, पशुधन और खेती के साधनों की उन्नति हुई है। योजना-आयोग के परियोजना मूल्यांकन संगठन ने अपनी रिपोर्ट में कहा है—सन् १९५७ से १९६७ की अवधि में भूदान की नयी बस्तियों के लोग क्रमशः अपने को अधिक मुक्त महसूस करते रहे। जमीन मिल जाने पर भूमिहीनों की सामाजिक हैसियत बदल जाती है। उन्हें कुछ आर्थिक सुरक्षा भी प्राप्त हो जाती है।

कई ऐसे उदाहरण सामने आये हैं, जिनमें सर्वोदय की कार्य-प्रणाली ने व्यक्तियों का हृदय-परिवर्तन करने में सहायता पहुँचायी है। चंपारण जिले में श्री बेघा नाम के संयुक्त समाजवादी दल के एक कार्यकर्ता हैं। वे उस जिले के 'रॉबिन हुड' कहे जाते हैं, क्योंकि वे 'जनता की अदालत' बैठाते हैं, कर इकट्ठा करते हैं और सार्वजनिक सड़क और स्कूल बनवाते हैं। उन्होंने अपने आपको ग्रामदान का स्वयंसेवक बना लिया है।

प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं की कमी ग्रामदान-आन्दोलन की मुख्य समस्या है। ग्रामदानी गाँवों में ग्रामसभा बन सके और सुचारु रूप से काम कर सके इसके लिए ग्रामदान-आन्दोलन को कार्यकर्ताओं के सैन्यदल की आवश्यकता है। ग्रामदान के प्रसार-प्रचार के लिए आचार्य विनोबा भावे ने ५ हजार खादी-कार्यकर्ताओं का सहयोग प्राप्त किया है। श्री जयप्रकाश नारायण शान्ति-सेना मण्डल के अध्यक्ष हैं। शान्ति सेना मण्डल ने ६ हजार कार्यकर्ताओं को गाँवों में न केवल जातिगत तनावों को कम करने और साम्प्रदायिक सौमनस्य बनाये रखने, बल्कि ग्राम-विकास की योजनाओं को शुरुआत करने की पद्धति में प्रशिक्षित करने का निर्णय लिया है।

ग्रामदान-आन्दोलन की वर्तमान अवस्था में भूमि का वैध स्वामित्व ग्रामसभा का है, लेकिन ग्रामसभा किसानों को उनकी जमीन पर खेती-बारी करने की इजाजत देती है। ग्रामदान के इस संस्करण में प्रत्येक किसान को अपनी भूमि का बीसवाँ हिस्सा गाँव के गरीब भूमिहीन के लिए अलग करना पड़ता है। ग्रामदान में यह भी शर्त रखी गयी है कि प्रत्येक किसान अपनी खेती की उपज का चालीसवाँ भाग ग्रामसभा के ग्रामकोष में दान करता रहेगा।

गाँव में सामूहिक साधनों की व्यवस्था करने के लिए मजदूरी या नौकरी करनेवाले गाँव के निवासी से उसकी आय के तीसवें भाग यानी महीने में एक दिन की मजदूरी को ग्रामकोष में जमा करने लिए कहा जाता है।

इसी बीच जयप्रकाश नारायण ग्रामदान-आन्दोलन के राजनैतिक स्वरूप-

भूदान-यज्ञ : सोमवार, ८ दिसम्बर, '६८

अपने आयोजन में अग्रसर हैं। उनकी योजना के अनुसार प्रतिनिधियों के चुनाव में ग्रामदानी गाँवों की ग्रामसभाओं को निर्णायक भूमिका निभाने का अवसर प्राप्त होगा।

लोकतांत्रिक क्रान्ति की यह योजना इस तथ्य पर आधारित है कि विभिन्न राजनीतिक दलों की मर्जी से ग्राम चुनाव के लिए प्रतिनिधि चुने जाने की वर्तमान प्रणाली पर अन्ततोगत्वा ग्रामीण समुदाय की अपनी आवाज हावी हो सकेगी।

श्री जयप्रकाश नारायण के अनुसार एक दिन ऐसा आयेगा कि राजनैतिक दलों के उच्च नेताओं द्वारा नामांकित उम्मीदवारों के मुकाबिले ग्रामसभाओं द्वारा प्रस्तावित उम्मीदवार चुनाव में बाजी मार ले जायेंगे। वे महसूस करते हैं कि इससे नीचे की इकाइयों में उस वास्तविक ग्राम-स्वराज्य या लोकतंत्र की स्थापना हो सकेगी, जिसकी महात्मा गांधी ने कल्पना की थी।

आगामी मध्यावधि चुनाव के दौरान बिहार तथा कुछ अन्य प्रदेशों के ग्रामदानी कार्यकर्ता अपने प्रदेश के इस कार्यक्रम के शैक्षिक पहलू पर अपनी पूरी शक्ति लगाने की योजना में लगे हुए हैं।

—'टाइम्स आफ इंडिया' के २ नवम्बर '६८ के अंक से साभार।

विनोबाजी का संशोधित कार्यक्रम

१०	दिसम्बर '६८	सासाराम (शाहाबाद)
११	" "	विक्रमगंज "
१२–१९	" "	आरा "
२०–२१	" "	इलाहाबाद (उ०प्र०)
२२–२४	" "	आरा (शाहाबाद)

२५ दिसम्बर '६८ को पटना–सायंकाल

पता

२४-१२-'६८ तक	२५-१२-'६८ के बाद
विनोबा-निवास मा० जिला सर्वोदय मण्डल, बाबू बाजार, आरा, जि० शाहाबाद, बिहार	विनोबा-निवास मा० बिहार ग्रामदान-प्राप्ति संयोजन समिति, कदम कुआँ, पटना–३

सीमा-क्षेत्र में सम्मेलन :

क्रान्ति की मशाल जलती रहेगी

उत्तराखण्ड के चमोली जिले के मध्य में स्थित गोपेश्वर का एक छोटा-सा गाँव, अब जिला हेडक्वार्टर बनने के कारण एक नयी पर्वतीय नगरी के रूप में विकसित हो रहा है। गत २८ से ३१ अक्तूबर तक वह चहल-पहल का केन्द्र रहा। हिमालय की कश्मीर से लेकर उत्तराखण्ड तक की और राजस्थान की सीमा में रचनात्मक कार्य करनेवाली संस्थाओं के १०० से अधिक कार्यकर्ता और श्री जयप्रकाश नारायण के अलावा विभिन्न रचनात्मक कार्यक्रमों में लगे प्रमुख लोग उपस्थित थे। शिविर का उद्घाटन श्री देवर भाई ने तथा समापन श्री जयप्रकाश नारायण ने किया। एक छोटी खादी-ग्रामोद्योग प्रदर्शनी भी लगायी गयी थी, जिसमें इस क्षेत्र के बने हुए ऊनी वस्त्रों का प्रदर्शन किया गया था।

उत्तराखण्ड में सर्वोदय-कार्य की नींव गांधीजी की तपस्विनी शिष्या सरलाबहन द्वारा सन् १९४० से ही पहाड़ों में निवास और सन् १९४६ में कौसानी में लक्ष्मी आश्रम की स्थापना के साथ पड़ चुकी थी। कई वर्षों तक गांधीजी की दूसरी शिष्या मीराबहन भी हिमालय-क्षेत्र में रहीं। सन् १९६१ से उत्तराखण्ड सर्वोदय-मण्डल विभिन्न क्षेत्रों में बिखरे हुए सेवकों का मार्गदर्शन करता रहा है। फलतः क्षेत्र स्तर की विकास संस्थाएँ उग आयीं। शराब की दुकानों पर शान्ति-मय धरना हुआ और देशी शराब की ५ दुकानें बन्द हुईं। उत्तरकाशी का जिलादान हुआ, तिब्बत की सीमा से मिला हुआ दूसरा सीमांत जिला चमोली अब जिलादान के निकट है। धारचूला का प्रखण्डदान हुआ है और अन्य पर्वतीय जिलों में भी कुछ ग्रामदान हुए हैं।

अक्तूबर १९६२ में भारत-चीन सीमा-संघर्ष के बाद देश के उपेक्षित सीमा क्षेत्र की ओर सारे देश का ध्यान आकर्षित हुआ। रचनात्मक कार्य की अखिल भारतीय संस्थाओं ने इन क्षेत्रों में अहिंसक सुरक्षा की सुदृढ़ दीवार खड़ी करने की दृष्टि से अपने सेवा-केन्द्र आरम्भ किये। इनमें से खादी-ग्रामोद्योग आयोग और गांधी-स्मारक निधि मुख्य थी। ये संस्थाएँ अपनी परम्परागत कार्य-पद्धतियों और कार्यक्रमों को लेकर इस क्षेत्र में गयीं। दूसरी ओर स्थानीय अभिक्रम से खड़े हुए संगठनों ने स्थानीय परिस्थितियों और आवश्य-कताओं के आधार पर अपने कार्यक्रम निश्चित किये। फलतः समन्वय समिति के सामने सबसे बड़ा काम इन दो धाराओं का समन्वय करने का था। पहाड़ की परिस्थितियाँ कदम-कदम पर स्वतंत्र कर्तृत्व शक्ति और स्थानिक निर्णय की माँग करती हैं। केन्द्रित संस्थाओं को अपने नियम-कानूनों का बोझ ढोने के लिए नौकरशाही पर आश्रित रहना पड़ता है। अतः शुभेच्छा से प्रारम्भ किये गये उनके कार्यक्रम स्थानीय जनता को गहराई से स्पर्श न कर सके। वे यहाँ के जीवन का अंग न बन पायीं। दूसरी ओर स्थानीय संस्थाएँ खादी को उत्पादन-बिक्री के चौखटे से मुक्त कर वस्त्र स्वावलम्बन के कार्यक्रम को अपना पायी हैं। वन-संपदा यहाँ के आर्थिक जीवन का मुख्य आधार है। पर्वतीय जिलों की ४५ प्रतिशत धरती पर वन हैं। उत्तर-काशी में तो ८४ प्रतिशत वन हैं, इसलिए वन ही यहाँ के लोगों को रोजगार दे सकते हैं। इस दिशा में गोपेश्वर स्थित दशोली ग्राम-स्वराज्य संघ द्वारा प्रेरित 'मल्ला नागपुर श्रम संविदा सहकारी समिति' ने खुली होड़ में वन-विभाग से जंगल का ठीका लेकर अग्र-गामी कदम लिया है। जड़ी-बूटियाँ इकट्ठी करने एवं लीसे से तारपीन बनाने के उद्योग की ओर भी संस्थाओं का ध्यान जाने लगा है।

गोपेश्वर की चर्चाओं का एक स्पष्ट निष्कर्ष तो यह निकला कि हिमालय-क्षेत्र में केवल विकेन्द्रित पद्धति से ही रचनात्मक कार्य किये जा सकते हैं। भागीरथी का प्रवाह समुद्र से हिमालय की ओर नहीं मोड़ा जा सकता। दूसरे एक ऐसे क्षेत्र को जो गंगोत्री, यमुनोत्री, बद्री और केदार जैसे तीर्थों के कारण सारे देश के साथ समरस रहा हो, जिसने देश को उच्च कोटि के प्रशासक, साहित्यकार, सैनिक और स्वातंत्र्य-संग्राम के सेनानी दिये हों, संरक्षित क्षेत्र की तरह नहीं रखा जा सकता। यह तय किया गया कि खादी-कमीशन एवं विभिन्न खादी-संस्थाओं के कार्यों के संचालन एवं मार्गदर्शन के लिए उत्तराखण्ड खादी-ग्रामोद्योग समन्वय समिति का संगठन किया जाय। इस समिति के निर्णय खादी-कमीशन को मान्य होंगे और इसमें पर्वतीय जिलों की स्थानीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों के अलावा खादी-कमीशन, खादी-बोर्ड, गांधी आश्रम, गांधी-स्मारक निधि, पर्वतीय विकास परिषद् के इस क्षेत्र में रहनेवाले प्रतिनिधि होंगे। समन्वय समिति के मंत्री इसके पदेन सदस्य होंगे। समिति का सचिव खादी-कमीशन द्वारा नियुक्त ऐसा उच्चाधिकारी होगा, जो कमीशन के इस क्षेत्र के कार्यों के लिए उत्तरदायी होगा।

शिविर की समाप्ति के दिन पुलिस की परेड-ग्राउण्ड में जे० पी० की सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया था। इस अवसर पर ढोल-नगाड़े के गगन-भेदी स्वरों के साथ "हमारा मंत्र, जय जगत्; हमारा तंत्र, ग्रामदान" का घोष करती हुई एक टोली ने इस जिले में अब तक प्राप्त लगभग ७०० ग्रामदान समर्पित किये।

—सुन्दरलाल बहुगुणा

कस्तूरबा-सेविका-सम्मेलन

कस्तूरबा गांधी राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट द्वारा आगामी फरवरी, १९६९ के प्रथम सप्ताह में कस्तूरबाग्राम, इन्दौर में अ० भा० कस्तूरबा-सेविका सम्मेलन आयोजित किया जा रहा है। बा-बापू जन्म-शताब्दी सम्बन्धी अपने कार्यक्रमों का शुभारम्भ ट्रस्ट इस सम्मेलन से करेगा, जिसका उद्घाटन राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन करेंगे। इस सम्मेलन में देश भर के विभिन्न भागों से लगभग ८०० सेविकाएँ भाग लेंगी। (सप्रेस)

आन्दोलन के समाचार

उत्तर प्रदेश की चिट्ठी

उत्तर प्रदेश ग्रामदान-अभियान के लिए आगरा क्षेत्र के मंत्री श्री चन्द्रदत्त पाण्डेयने सात जिलादान की जो योजना बनायी है, उसका स्थूल कार्यक्रम इस प्रकार है :—

१५ दिसम्बर '६८ से १६ फरवरी '६९ तक फर्रुखाबाद, २४ दिसम्बर '६८ से ११ सितम्बर '६९ तक मैनपुरी, २ जनवरी से २ जुलाई '६९ तक एटा, ११ जनवरी से १२ जुलाई '६९ तक मथुरा, १२ फरवरी से १५ अगस्त '६९ तक आगरा, ३ मार्च से २२ सितम्बर '६९ तक अलीगढ़, १२ मार्च से २ अक्तूबर '६९ तक इटावा का जिलादान करने का निश्चय किया है।

टिहरी जिले के घनसाली गाँव में जिला गांधी-शताब्दी समिति की ओर से त्रिदिवसीय (१६-१७-१८ नवम्बर) शिविर हुआ जिसमें लोकसेवकों, राजनीतिज्ञों व कर्मचारियों ने भाग लिया। अंतिम दिन एक सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें शराबबंदी की माँग की गयी। इस कार्यक्रम को विधायक स्वरूप देने के लिए उस क्षेत्र में ग्रामदान-अभियान शुरू किया गया है।

पिथौरागढ़ से समाचार मिला है कि जिले के विभिन्न आयोजनों के अवसर पर सर्वोदय-साहित्य की दो हजार रुपये की बिक्री हुई।

वाराणसी जिलादान-अभियान

३० दिसम्बर को विनोबाजी इलाहाबाद आ रहे हैं, इसलिए इसको शुभवसर मानकर वाराणसी जिले के कार्यकर्ताओं ने निश्चय किया कि जिले में सघन और व्यापक अभियान चलाकर जिलादान का प्रयत्न किया जाय। इस निश्चयानुसार सेवापुरी में १-२ दिसम्बर को एक द्विदिवसीय शिविर का आयोजन हुआ और २ दिसम्बर की शाम से कार्यकर्ता अपने-अपने क्षेत्र में ग्रामदान के काम में जुट गये। कुल ६५ कार्यकर्ता इस अभियान में शामिल हैं। आशा है, शीघ्र ही ५५ कार्यकर्ता और शामिल होंगे।

अब तक वाराणसी जिले के २२ विकास-खण्डों में से ११ प्रखण्डों का दान हो चुका है। शेष ११ प्रखण्डों का दान निश्चय ही २० दिसम्बर तक पूरा हो जायेगा।

गया जिलादान अभियान की प्रगति

(२७ नवम्बर '६८ तक)

औरंगाबाद अनुमंडल के गोह और सदर अनुमंडल के कोच और आमस प्रखंड का प्रखंडदान २६ नवम्बर '६८ को घोषित हो जाने के बाद अब तक गया जिले के कुल ४६ प्रखंडों में से २५ प्रखंडदान हो चुके। इस तरह नवादा अनुमंडल के १०, सदर के ८ और औरंगाबाद के ७, इस तरह २५ प्रखंडों का दान हुआ। शेष २१ प्रखंडों का प्रखंडदान संपन्न कराने हेतु ग्राम निर्माण मंडल के प्रधान-मंत्री श्री त्रिपुरारि शरण, जिला सर्वोदय-मंडल के संयोजक श्री दिवाकरजी, जिला शिक्षा-पदाधिकारी पं० भागवत मिश्र सक्रिय हैं। जहानाबाद अनुमंडल दान कराने हेतु पटना के सर्वश्री विद्यासागरजी, बजरंगी प्र० सिंह और केशव मिश्र कार्य में लगे हैं।

खादी समिति गया के मंत्री श्री गोवा प्रसाद सिंह अर्थ-संग्रह का कार्य सहयोगियों के साथ कर रहे हैं। —केशव मिश्र

अ० भा० शान्ति-सेना प्रशिक्षक प्रशिक्षण-शिविर

अ० भा० शान्ति सेना मण्डल के तत्त्वावधान में चौथा अखिल भारतीय शान्ति-सेना प्रशिक्षक-प्रशिक्षण-शिविर का आरम्भ शान्ति-केन्द्र, राजघाट, वाराणसी में २५ नवम्बर, १९६८ से हो गया है। इसका समापन १५ दिसम्बर, १९६८ को होगा। देश के लगभग सभी भागों से आये हुए वर्तमान समय में प्रशिक्षण-कार्य कर रहे तथा भविष्य में यह कार्य करने की भावना रखनेवाले ४० शिविरार्थी भाग ले रहे हैं।

गांधी-दर्शन, सर्वोदय-आन्दोलन और शान्ति-सेना आदि विषयों के साथ-साथ भारत सहित अनेक देशों में हुई क्रान्तियों के विभिन्न पहलुओं पर भाषण और चर्चा इस शिविर के मुख्य आकर्षण हैं। शिविर को सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, दादा धर्माधिकारी, नवकृष्ण चौधरी तथा अन्य विद्वानों के भाषणों का लाभ प्राप्त होगा।

पंजाब, हरियाणा तथा हिमाचल में ग्रामदान और प्रखण्डदान

(३१ अक्तूबर '६८ तक)

प्रदेश	जिला	ग्रामदान	प्रखण्डदान
हिमाचल प्रदेश :			
	कांगड़ा	८७३	—
	महासू	३१५	—
पंजाब :			
	फीरोजपुर	१९०	—
	भटिण्डा	८३	—
	जालन्धर	१७५	१
	कपूरथला	५४	—
	लुधियाना	१८	—
	होशियारपुर	२६२	१
	गुरुदासपुर	४२३	२
हरियाणा :			
	हिसार	१६३	—
	रोहतक	२१३	२
	करनाल	५२४	१
	जींद	२२	—
	अम्बाला	३४१	—
	कुल :	३,६६४	७

—ओमप्रकाश त्रिखा
१६-डी, चण्डीगढ़-१७

श्री धीरेन्द्र भाई का उत्तर प्रदेश में दिसम्बर माह का कार्यक्रम

तारीख	स्थान	पता
९–१०	अलीगढ़	श्री गांधी आश्रम, मोतीगंज, आगरा
११ से १४	आगरा	"
१५–१६	कानपुर	गांधी-विचार केन्द्र, १५।२३६, सिविल लाइन्स, कानपुर-१
१७–१८	फैजाबाद	श्री गांधी आश्रम, फैजाबाद
१९ से २२	वाराणसी	सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी-
२३–२४	आजमगढ़	श्री गांधी आश्रम, मगहर, जि० बस्ती
२५ से २७	मगहर	"
२८ से ३०	गोरखपुर	श्री गांधी आश्रम, गोलघर, गोरखपुर

—कपिल अवस्थी

बिहार में भूमि-वितरण

बिहार में भूदान में कुल २१,२७,४५२ एकड़ जमीन दान-स्वरूप प्राप्त हुई है। ऐसा अनुमान है कि इसमें लगभग १०·५ लाख एकड़ जमीन खेती के योग्य नहीं है और लगभग ३·२६ लाख एकड़ जमीन का वितरण हो चुका है। भूदान-यज्ञ कमिटी बाकी कृषि योग्य जमीन की जाँच-पड़ताल कर शीघ्र वितरण कराने के लिए पूर्ण सचेष्ट है और इसके लिए उनके द्वारा विभिन्न जिलोंमें भू-वितरण टोलियों की नियुक्ति की गयी है।

आवश्यक सूचना

"भूदान-यज्ञ" के १८ नवम्बर '६८ के अंक का परिशिष्ट "शांति की बात" जो मध्यावधि चुनाव परिशिष्टांक था, वह दो रंगों में दुबारा छपा है। आशा है, जिन राज्यों में मध्यावधि चुनाव हो रहे हैं, उन राज्यों के मतदाताओं तक इस विशेष अंक को पहुँचाने की कोशिश की जायेगी। जो साथी मँगाना चाहें, वे २० पैसे प्रति अंक की दर से मँगा सकते हैं।

इस विशिष्टांक की सामग्री उर्दू में भी "भूदान तहरीक" पाक्षिक में प्राप्य है। एक अंक की कीमत २० पैसे। —व्यवस्थापक

सम्पादक के नाम पत्र :

महोदय,

इन दिनों सर्वत्र गांधी जन्म-शताब्दी मनाने की धूम है। इस ऐतिहासिक अवधि में क्या अपनी सरकार कम-से-कम इतना भी नहीं कर सकती है कि सरकारी-अर्द्धसरकारी पदाधिकारियों को सब समय नहीं तो कार्य (ड्यूटी) के वक्त खादी पहनना अनिवार्य कर दे ? बहुत-सारे कार्यक्रम बनाये गये हैं, किन्तु खादी (वस्त्र) की सघन एवं व्यापक प्रचार के बारे में कोई सक्रिय योजना नहीं है। मेरा विचार है, इतना नहीं तो इस साल से, यानी गांधी-जयन्ती '६८ से नव नौकरी पानेवाले को खादी पहनना लाजिमी कर दिया जाय, तो इस वर्ष में गांधीजी की जन्म-शताब्दी का यह एक बुनियादी महत्त्वपूर्ण शुभ कार्य होगा।

हो सकता है, इसके कानूनी रूप लेने में देर लगे। गांधी जन्म-शताब्दी के अन्त तक भी अनिवार्य खादी का कानून बन जाय तो अन्त भला तो सब भला के अनुसार समझा जायगा कि अपने देश ने सही रूप से यह समारोह मनाया।

आशा है, सर्वोदयवाले, सेवा करनेवाले, सरकारवाले और अधिकारवाले इस ओर ध्यान देंगे। —पूलमणि

विष्णुपुर, मुंगेर, १४-११-'६८

नये प्रकाशन

- **अध्यात्मतत्त्व सुधा** —विनोबा
  विनोबाजी के अध्यात्म-विषयक विचारों का संकलन। मूल्य २.००
- **बापू के चरणों में !** —विनोबा
  गांधीजी के सम्बन्ध में विनोबाजी के विचारों का संकलन। मूल्य १.२५
- **बापू की मीठी-मीठी बातें** —साने गुरुजी
  मराठी के कोमल-करुण कलाकार और बालकों के हृदय को स्पर्श करनेवाले मनीषी लेखक की कथात्मक बानगी। मूल्य १.२५
- **भारतीय तरुण शांति सेना**
  तरुणों में राष्ट्रीय चेतना शांति स्थापना और देश के लिए कर्मनिष्ठा जगाने, उनमें अनुशासन पैदा करने, निर्भयता तथा जिम्मेदारी की भावना भरने की दृष्टि से यह संगठन बनाया गया है। पुस्तक में तत्सम्बन्धी आचार-संहिता आदि की जानकारी है। मूल्य ४० पैसे

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१

बिहारदान की वर्तमान स्थिति

पटना, २ दिसम्बर '६८। बिहार ग्रामदान-प्राप्ति संयोजन समिति के सहमंत्री कैलाश प्रसाद शर्मा ने हमारे विशेष प्रतिनिधि को बिहारदान की अद्यतन जानकारी देते हुए बताया :

गया में बाबा ने पलामू की ओर जाते समय कहा था कि ३ दिसम्बर '६८ तक गया का काम पूरा नहीं हुआ तो "बाबा तय करेगा कि उसे आगे गया में तप करना है।" बाबा की इस घोषणा ने गया के साथियों को जी-जान से जुट जाने की प्रेरणा दी है। और उम्मीद है कि निर्धारित समय के अन्दर काम पूरा हो जायगा। कुछ थोड़ा-बहुत बाकी रहा तो वह भी जल्द ही पूरा हो जायगा।

पलामू के २५ प्रखण्डों में से १५ अब तक की जानकारी के अनुसार दान हो चुके हैं। रामनन्दन बाबू ने अपनी पूरी शक्ति वहाँ लगायी है, परमेश्वरी दत्त झा तो लगे ही हैं। सरकारी कर्मचारी और शिक्षक अधिक सक्रिय हुए हैं।

शाहाबाद में कुछ भी काम नहीं था। कुल ४६ प्रखण्डों में से सिर्फ २ प्रखण्ड हुए थे। लेकिन अभी २८ नवम्बर '६८ को वहाँ एक बैठक हुई थी, जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि २५ दिसम्बर '६८ तक शाहाबाद का जिलादान अवश्य हो जायगा। कई स्थानीय सक्षम लोग सक्रिय हो गये हैं। जिला-स्तर पर संयोजन करने के लिए हरिकृष्ण ठाकुर के अलावा राधामोहन राय, और विष्णुदेव मिश्र दौड़-धूप कर रहे हैं। सासाराम के दो व्यक्ति—रामविलास सिंह, एक स्थानीय सम्पन्न किसान और रामरसिक दीक्षित, प्राचार्य, तकिया हायर सेकेंडरी स्कूल, बहुत सबल सहयोगी मिले हैं। उन्होंने अभियान-खर्च के अलावा विनोबा को २५ हजार रुपये की थैली देने का भी संकल्प किया है। रामविलास सिंह में तो सबको आन्दोलन में समाहित कर लेने की अद्भुत क्षमता है। वही सासाराम अनुमण्डल ग्रामदान प्राप्ति समिति के संयोजक भी हैं। अन्य अनुमण्डलों में—आरा में देवसिंह शर्मा, बक्सर में रामेश्वर राय, और भभुआ में किशोरीजी, लगे हैं। हर प्रखण्ड में काम को गति देने के लिए प्रभारी नियुक्त हुए हैं, शिक्षा-पदाधिकारी की ओर से शिक्षकों को इस काम में लगने की प्रेरणा मिल रही है।

शाहाबाद जिले की ओर से १ लाख रुपये की थैली बाबा को समर्पित करने की कोशिश चल रही है। विनोबा-स्वागत समिति की अध्यक्षता जगजीवन राम (केन्द्रीय खाद्य मंत्री) ने स्वीकार की है।

मुंगेर में १३ प्रखण्ड बाकी हैं। अभियान चल रहा है, और २५ दिसम्बर '६८ तक जिलादान पूरा हो जायगा।

धनबाद का काम आधा हो चुका है। कुल १० प्रखण्डों में से ५ प्रखण्ड दान हो चुके हैं। बिहार ग्रामदान-प्राप्ति समिति की ओर से कमल नारायणजी वहाँ जी-जान से लगे हैं। गोपाल झा शास्त्री के भी दौरे हुए हैं। हजारीबाग से श्याम प्रकाशजी भी मदद में पहुँच गये हैं। ११ दिसम्बर '६८ को वहाँ जे० पी० का कार्यक्रम रखा है। मजदूरों की ओर से उनको ५१ हजार रु० की थैली समर्पित की जायगी। पूरी सम्भावना है कि उस समय तक जिलादान भी हो जायगा।

सिंहभूमि में काम गति से शुरू हुआ है। शिक्षकों की शक्ति हासिल करने के लिए प्रखण्ड-स्तरीय गोष्ठियाँ आयोजित की जा रही हैं। इसमें एक दुखद व्यवधान अचानक एक जीप-दुर्घटना के रूप में आ पड़ा है। ऐसे ही एक शिविर में भाग लेने के लिए जाते समय जिले के प्रमुख कार्यकर्ता श्याम बहादुर सिंह, बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ के क्षेत्रीय संचालक पंचानन्द सिंह तथा अनुमण्डलीय शिक्षा-पदाधिकारी दुर्घटनाग्रस्त हो गये हैं। ताजी जानकारी के अनुसार तीनों व्यक्ति खतरे से बाहर हैं, लेकिन श्याम-बहादुरजी की एक बाँह में 'फ्रैक्चर' हो गया है।

पटना को तूफान की हवा अभी तक झकझोर नहीं पायी है। लेकिन बाबा वहाँ २५ दिसम्बर '६८ को पहुँच रहे हैं। और उन्होंने कह दिया है कि पटना का काम जल्द-से-जल्द पूरा करना ही है। पटना के प्रमुख कार्यकर्ता विद्यासागरजी संयोजन में लग गये हैं। ऐसा सोचा जा रहा है कि पटना जिले में चुनाव की आँधी के समानान्तर ग्रामदान का तूफान भी चलाया जाय।

आगामी १८ दिसम्बर '६८ को पटना में अब तक हो चुके जिलादानी जिलों के प्रमुख कार्यकर्ताओं की एक सभा बुलायी गयी है। मध्यावधि चुनाव के समय इन जिलों में सर्व सेवा संघ द्वारा निर्धारित नीति के अनुसार सक्रिय रूप से मतदाता-शिक्षण का काम इस सभा की चर्चा और संयोजन का मुख्य विषय होगा। ८ दिसम्बर को प्रदेश के तटस्थ और प्रमुख नागरिकों की एक बैठक जे० पी० के आमंत्रण पर होने जा रही है। इस बैठक में भाग लेनेवालों की ओर से मतदाताओं के नाम एक अपील प्रसारित की जायगी। दूसरे दिन, ९ दिसम्बर '६८ को सभी राजनीतिक दलों की भी एक बैठक बुलायी जा रही है, जिसमें चुनाव के समय आचार-संहिता के पालन पर हर दल के नेता ओर दें, इसका प्रयास होगा।•

बिहारदान-अभियान में

दो कार्यकर्ता निरन्तर अभियान-टोलियों तक ग्रामदान-पत्र पहुँचाने का काम कर रहे हैं। गोदाम भर गये हैं; तो अब दान-पत्रों के बण्डल गैराज और बरामदे में रखने पड़ रहे हैं। ऐसी जानकारी दी बिहार भूदान कमेटी के मंत्री निर्मलचन्द्र ने हमारे प्रतिनिधि को दानपत्रों के ढेर दिखाते हुए।

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।

श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

सर्व सेवा संघ का मुख्य पत्र

वर्ष : १५ अंक : ११

सोमवार १६ दिसम्बर, '६८

अन्य पृष्ठों पर

सम्पादक
राममूर्ति

•

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : [illegible]

राजनीतिक सत्ता : साध्य नहीं, साधन

स्वराज्य का मतलब है सरकारी नियंत्रण से स्वतंत्र होने की लगातार कोशिश, चाहे सरकार विदेशी हो या राष्ट्रीय। स्वराज्य की सरकार में यदि लोग जिन्दगी की हर चीजों के लिए सरकार का मुँह देखने लगें तो वह एक खेदजनक हालत होगी।१

स्वराज्य निर्भर करता है हमारी आन्तरिक शक्ति पर, बड़ी से बड़ी कठिनाइयों से जूझने की हमारी ताकत पर। सच पूछिए तो वह स्वराज्य, जिसे पाने के लिए अनवरत प्रयत्न और जिसे बचाये रखने के लिए सतत जागृति नहीं चाहिए, स्वराज्य कहलाने लायक ही नहीं है।२

शासन जहाँ विदेशी लोगों के हाथ में रहता है, तो जो कुछ लोगों तक पहुँचता है वह ऊपर से आता है। इस तरीके के कारण लोग बराबर मुहताज होते चले जाते हैं। जहाँ शासन नीचे तक फैला हुआ और लोगों की मर्जी पर कायम रहता है वहाँ सब चीजें नीचे से ऊपर की तरफ जाती हैं और इसीलिए वह ज्यादा दिन टिकता है। वह सुन्दर होता है और लोगों को मजबूत बनाता है।३

मेरी दृष्टि में राजनीतिक सत्ता अपने आप में साध्य नहीं है, परन्तु जीवन के प्रत्येक विभाग में लोगों के लिए अपनी हालत सुधार सकने का एक साधन है। राजनीतिक सत्ता का अर्थ है राष्ट्रीय प्रतिनिधियों द्वारा राष्ट्रीय जीवन का नियमन करने की शक्ति। अगर राष्ट्रीय जीवन इतना पूर्ण हो जाता है कि वह स्वयं अपना नियमन कर ले, तो फिर किसी प्रतिनिधित्व की आवश्यकता नहीं रह जाती। उस समय ज्ञानपूर्ण अराजकता की स्थिति हो जाती है। ऐसी स्थिति में हर एक अपना राजा होता है। वह ऐसे ढंग से अपने पर शासन करता है कि अपने पड़ोसियों के लिए वह कभी बाधक नहीं बनता। इसलिए आदर्श अवस्था में कोई राजनीतिक सत्ता नहीं होती, क्योंकि कोई राज्य नहीं होता। परन्तु जीवन में आदर्श की पूरी सिद्धि कभी नहीं होती। इसीलिए थोरो ने कहा कि जो सबसे कम शासन करे वही उत्तम सरकार है।४

मेरी राय में स्वराज्य की जो तालीम हमें चाहिए वह केवल इतनी ही है कि हम सारी दुनिया से अपनी रक्षा करने की योग्यता हासिल करें और पूर्ण स्वतंत्रता से अपना जीवन जीने की क्षमता प्राप्त करें—फिर वह स्वराज्य कितना ही दोषपूर्ण क्यों न हो। अच्छी सरकार स्वराज्य सरकार का स्थान नहीं ले सकती।५

अगर मैं मानव समाज को यह विश्वास करा सकूँ कि प्रत्येक मनुष्य—भले वह शरीर से कितना ही दुर्बल क्यों न हो, अपने स्वाभिमान और स्वतंत्रता का रक्षक है, तो मेरा काम पूरा हो जायेगा।६

(१) "यंग इण्डिया", ६ अगस्त '२५, पृष्ठ : २७६ (२) हिन्दी "नवजीवन", ८ दि० '२७ (३) "हरिजन", २ नवम्बर '४७ पृष्ठ : ३६२ (४) "सिलेक्शन्स फ्रॉम गांधी", पृष्ठ ४१ (५) "महात्मा, लाइफ ऑव मोहनदास करमचन्द गांधी", खण्ड . २, पृष्ठ : २४ (६) "महात्मा, लाइफ ऑव मोहनदास करमचन्द गांधी" खण्ड : ६, पृष्ठ : ३२६।

भूखा शिक्षक

कौन नहीं मानेगा कि शिक्षक भूखा है? और इससे भी किसे इनकार होगा कि भूखा शिक्षक देश के लिए खतरा है? उ० प्र० के शिक्षकों को इस वक्त ये बातें जुलूस में नारे लगा-लगाकर बतानी पड़ रही हैं। शिक्षक भूखा है। पुलिस का सिपाही भूखा है। दफ्तर का बाबू भूखा है। रिक्शेवाला भूखा है। दस्तकार भूखा है। छोटा किसान भूखा है। खेत का मजदूर भूखा है। शिक्षित युवक भूखा है। कौन कहेगा कि ये भूखे नहीं हैं, और इनका भूखा रहना देश के लिए खतरा नहीं है? दूसरी ओर अफसर भूखा है ऊँची कुर्सी का। मालिक भूखा है दौलत का। नेता भूखा है गद्दी का। क्या कोई कह सकता है कि इनकी भूख देश के लिए कम भयंकर खतरा है?

ढूँढ़ना पड़ेगा कि अब इस देश में कौन बच गया है जो भूखा नहीं है? भूख चाहे रोटी-कपड़े की हो, और चाहे सत्ता-सम्पत्ति की या और किसी चीज की, अतृप्त भूख खतरा तो होती ही है। अतृप्त भूख जलाने में आग से भी तेज होती है। आज हमारा देश दोनों तरह की भूखों का शिकार है। पहली भूख देश को तोड़ रही है, और दूसरी देश को जला रही है।

भूखे लोगों की सरकार से यह माँग है कि वह उनकी भूख शान्त करे। सरकार के सिवाय माँग भी किससे की जाय? शायद माँग करनेवालों को यह पता नहीं है कि सरकार के पास केवल सत्ता है, शक्ति नहीं। सत्ता से दमन हो सकता है, किन्तु सृजन के लिए तो शक्ति चाहिए। अगर वह शक्ति सरकार के पास होती तो इतने वर्षों में देश की बुनियादी समस्याएँ कुछ हल होती दिखाई देतीं। क्या किसीको दिखाई दे रही हैं? जब गरीबी के साथ विषमता भी जुड़ जाती है तो दोनों दुगुनी असह्य हो जाती हैं। *पिछले वर्षों में विषमता बहुत बढ़ी है। शिक्षक गरीब तो हैं ही,* पर उनमें विषमता भी कम नहीं है। प्राइमरी स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक के शिक्षकों में विषमता की कई सीढ़ियाँ हैं। सरकारी, गैर-सरकारी शिक्षकों में जबरदस्त खाई है। एक ही विभाग में काम करनेवाले शिक्षकों और शिक्षा के शासकों में बहुत फासला है।

भूख का हल माँग में नहीं है, बल्कि यह जान लेने में है कि आज की सामाजिक और सरकारी व्यवस्था में भूख का हल है ही नहीं। जो *व्यवस्था भूख को पैदा करती है और विषमता को बढ़ाती* है, वही उन्हें मिटा कैसे सकती है? यह बात साफ समझ में आ जायगी अगर हम पूरे देश को सामने रखकर सोचें। लेकिन अगर समाज के हर टुकड़े को अलग रखकर सोचेंगे तो सिवाय नारे लगाने और सरकार से माँग करने के दूसरा कुछ सूझेगा नहीं। इतना ही *नहीं, एक की माँग दूसरे की माँग से* इस तरह टकरायेगी कि किसी भी माँग की पूर्ति का रास्ता नहीं निकलेगा। शिक्षक कहता नहीं लेकिन चाहता है कि फीस बढ़े, दूसरी ओर *विद्यार्थी किसी तरह राजी नहीं* होता कि फीस बढ़े। इसके अलावा जब बाजार समाज और सरकार दोनों की काबू से बाहर हो गया है तो माँगें पूरी होकर भी पूरी नहीं होंगी। माँगों और मूल्यों में दौड़ होती रहेगी। मूल्य जीतेंगे, माँगें हारेंगी, और माँग करनेवालों के हाथ निराशा के सिवाय दूसरा कुछ नहीं आयेगा।

जब भूख के साथ चेतना जुड़ती है तो भूखा व्यक्ति भिखारी न रहकर क्रान्तिकारी बन जाता है। भिखारी की भूख अभिशाप और अपमान है, जब कि क्रान्तिकारी की स्वेच्छा से स्वीकृत भूख उसका गौरव है। उस भूख में ज्वालामुखी की शक्ति होती है। *भला यह* शक्ति सरकार के कानून या नौकरशाही की योजना में कैसे आ सकती है? *जब विनोबा ने शिक्षक के* सामने 'आचार्यकुल' की बात रखी थी तो संभवतः उनके मन में यह आशा जरूर रही होगी कि शिक्षकों का चेतन समुदाय अपनी चेतना को भूख के साथ जोड़कर कुछ नया चिंतन करेगा, और समाज को चिंताओं से मुक्त करने की दिशा में नया कदम उठायेगा। लेकिन शायद शिक्षक के सामने भूख की चिंता के *साथ साथ राजनीति का चक्कर भी है। क्या शिक्षक आज तक* यह नहीं समझ सका है कि राजनीति बराबर नये चक्कर पैदा करती *जायगी, और शिक्षक उसमें फँसता जायगा, और समस्या जहाँ थी* वहीं रह जायगी?

आज चाहे जो हालत हो, लेकिन भूख तब मिटेगी जब भूखे लोग अपनी भूख मिटाने के लिए मिलकर खुद सामने आयेंगे। ग्रामदान इसी सामूहिक पुरुषार्थ के लिए ग्रामीण जनता का आवाहन कर रहा है। शिक्षक इस व्यापक पुरुषार्थ का अगुआ क्यों नहीं बन पा रहा है? क्या वह सामान्य भूखों की जमात से अलग अपने को विशिष्ट भूखों की कोटि में गिनना चाहता है? कहने को तो हजार-दो हजार *पानेवाले लोग भी अपने को भूखा कहते हैं और हड़ताल की धमकी* देते हैं! लेकिन उन भूखों की 'जाति' दूसरी है। शिक्षक के लिए ग्रामदान द्वारा प्रस्तुत यह बहुत बड़ा अवसर है, जो स्वतंत्रता के बाद पहली बार सामने आया है, कि वह समाज में अपना स्थान तय करे, और उसके अनुरूप अपना आचार विकसित करे।

एक बात और है। हम चाहे जो करें, अभी बरसों तक हमारा देश गरीबी से मुक्त नहीं हो सकेगा। गरीबी से लड़ाई लड़ते हुए हम इतना तो फौरन कर सकते हैं कि हम गरीबी बाँटें और हमारे हिस्से जो आये उसमें ही गुजर करने के लिए तैयार हों। इस देश में गरीबी से लड़ाई का अर्थ है समता की लड़ाई। अभी तक हमने समता का इतना ही अर्थ समझा है कि किस तरह ऊपरवाले के मुकाबिले पहुँच जायें, न कि नीचेवाले के साथ एक हो जायें। इसे मत्सर कहते हैं, समता नहीं। *अगर हमें समता प्रिय है तो विषमता से मुक्ति सबसे* पहले सबसे नीचेवाले को दिलाने की कोशिश करनी चाहिए।

शिक्षक अपने स्कूल में 'नौकर' हो गया है, और बाहर सड़क पर 'एजिटेटर'। कब और कहाँ वह 'टीचर' है? शिक्षक की समस्याओं का समाधान उसी दिन शुरू हो जायगा जिस दिन उसमें अपने सही *'रोल' की प्रतीति पैदा होगी।* उसका काम है नयी चेतना का समर्थ वाहक बनना; नारे लगाना और धक्के खाना नहीं। शिक्षक भूखा है, पर वह सचेत कब होगा? •

ईश्वर की सृष्टि, मनुष्य का पुरुषार्थ

प्रश्न : ईश्वर ने ही सारी दुनिया की रचना की है और सब साधन उपलब्ध कराये हैं, किन्तु हम उस नियंता के नियंत्रण में नहीं चल रहे हैं। तो फिर वह अपनी रचना समेट क्यों नहीं लेता ? आखिर वह इस रचना को क्यों जमाये बैठा है ?

विनोबा : यह (प्रश्नकर्ता) काम करते-करते थक गया दीखता है; तो मुक्त हो जाना चाहता है। इसलिए पूछ रहा है कि ईश्वर अपनी माया समेट ले तो अच्छा होगा। मगर माया समेटनी हो तो उसके लिए उसको योजना करनी होगी। तो मान लीजिए, यह आपका मध्यप्रदेश है। कल यहाँ भूकंप आ गया और सब जगह पानी-पानी हो गया तो ग्रामदान का मसला हल हो जायेगा। यह बात हुई है, जब मारवाड़ तैयार हुआ। कहते हैं कि यह सारा, मारवाड़ से लेकर ऊपर तक बहुत बड़ा समुद्र था और हिमालय दीखता नहीं था, उसके ऊपर से पानी जाता था। भूकंप आया और सारा समुद्र सिन्ध के ऊपर खिसक गया, हिमालय ऊपर आया और यह सारा रेगिस्तान तैयार हुआ। ऐसी घटना हुई है। और इन भाई जैसे प्रार्थना करनेवाले लोग निकलें तो फिर हो भी सकती है !

प्रश्न : ग्रामों के जो व्यक्ति जड़ हैं, उनका हृदय-परिवर्तन कैसे हो ? क्योंकि "मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं विरंचि सम।"

विनोबा : इन्होंने तुलसीदास का आधार लेकर पूछा कि गाँव में जो व्यक्ति जड़ हैं, उनका हृदय-परिवर्तन कैसे करें ? "मूरख हृदय न चेत जो गुरु *मिलहिं विरंचि सम*।" विरंचि के समान गुरु मिले तो भी मूरख के हृदय में परिवर्तन नहीं होता। अब यह तो तुलसीदास को ही पूछना चाहिए कि अगर ऐसा है तो आपने रामायण किसके लिए लिखा ? सज्जनों को उसकी जरूरत नहीं और मूर्खों को उसका उपयोग नहीं। तो इतना सारा क्यों लिखा है ? ऐसा है कि ऐसे वचनों का आत्यंतिक अर्थ नहीं निकालना चाहिए। जो जड़ होता है उसका हृदय खराब होता है, ऐसा नहीं। उसकी बुद्धि *मन्द होती है।* जिसकी बुद्धि मंद होती है उसको बुद्धिमान मनुष्य समझा देगा तो वह समझ जाता है। जिसका हृदय खराब है उसका हृदय-परिवर्तन करना होगा। खराब यानी कुछ दोष हो। दोष 'निगेटिव' होते हैं, 'पाजिटिव' नहीं। उनमें आक्रमण करने की शक्ति नहीं होती। अन्धकार में आक्रमण करने की शक्ति नहीं है, प्रकाश में है। टार्च आया तो अन्धकार एकदम खतम हो जाता है। इसलिए एक व्याख्यान में मैंने कहा था कि जहाँ अत्यन्त अन्धकार होता है वहाँ टार्च को उत्साह आता है। अगर अन्धकार मिश्रित हो तो टार्च को उतना उत्साह नहीं आता। जिसका हृदय मलिन है उसका, जिसका हृदय शुद्ध है उससे स्पर्श होता है तब मलिनता दूर हो जाती है। वाल्मीकि की कहानी है। वाल्मीकि महापापी और नारद शुद्ध हृदय के थे। तो उनके स्पर्श से वाल्मीकि का हृदय-परिवर्तन हुआ।

प्रश्न : "असन्तुष्टा द्विजा नष्टा" यह व्याख्यान हमने एक जगह पढ़ा है। आपने इसको "असन्तुष्टाः द्विजाः कम्युनिस्टा" किया है। केरल और बंगाल की स्थिति इसी तरह की हो गयी है। आजकल की शिक्षा के अनुसार जब शत-प्रतिशत लोग शिक्षित हो जायेंगे तो क्या इन शिक्षित लोगों का झुकाव कम्युनिज्म की ओर नहीं होगा ?

विनोबा : जरूर होगा। क्योंकि उनको उद्योग करने की तालीम नहीं मिलती, उद्योग करने का शौक नहीं होता। वे नौकरी चाहते हैं। वह उनको मिलेगी नहीं। तो उस हालत में वे असन्तुष्ट होंगे और कम्युनिस्ट बनेंगे। इसलिए मैं इन लोगों को हमेशा कहता हूँ कि आपकी कांग्रेस की सरकार है, लेकिन आपने कम्युनिस्ट बनाने के कारखाने खोल रखे हैं। ये सारे स्कूल और कालेज कम्युनिस्ट बनाने के कारखाने हैं। वहाँ से शिक्षित होकर बाहर आयेंगे और नौकरी चाहेंगे, नौकरी न मिली तो असन्तुष्ट होंगे और कम्युनिस्ट बनेंगे। इसलिए अच्छी शिक्षा नहीं देंगे तो क्या होगा ? समझने की बात है। एक तो असन्तुष्ट क्षीण होगा, निराश होकर खतम होगा। लेकिन अब दूसरा रास्ता चीन ने खोल दिया है, इसलिए "असन्तुष्टाः द्विजा कम्युनिस्टाः", यही होगा !

प्रश्न : आम तौर पर कार्यकर्ता सामान्य वर्ग के होते हैं, फिर भी कार्यकर्ता की सक्षमता का मार्ग क्या हो सकता है ?

विनोबा : ठीक बात है। हमारे कार्यकर्ता सामान्य वर्ग के हैं, जो असामान्य काम है उसको लेना नहीं चाहते। गाँव-गाँव में जाकर समझाना, इतना ही काम चाहते हैं। समझाने की योग्यता तो हो सकती है। उसके लिए उनको शिक्षा भी दी जा सकती है। शिविर आदि चलाये जा सकते हैं और यह भी हो सकता है कि एक बार शिविर में शिक्षा पाकर जो कार्यकर्ता काम के लिए गया उसको कुछ दिन के बाद दुबारा शिविर में शिक्षा मिले।

इस तरह से ज्ञान-प्रक्रिया, शिविर आदि समय-समय पर चलने चाहिए। ऐसा होगा तो कार्यकर्ता बुद्धिमान और कुशल बनेगा, काम अच्छा होगा। हमको असामान्य काम तो करना नहीं है, सामान्य काम ही करना है। इसलिए उतना ज्ञान, शिविर आदि से मिलेगा।

प्रश्न : बुद्धि और श्रम में समन्वय, हम सभी लोगों की आकांक्षा है, किन्तु हमारे बीच ही यह समन्वय नहीं सध रहा है, तो समाज में कैसे सधेगा ?

विनोबा : बहुत ठीक प्रश्न है। बुद्धि और श्रम का समन्वय नहीं है, क्योंकि ऐसी *तालीम* बचपन में हमको मिली नहीं और उसके लायक शरीर हमको मिला नहीं। लेकिन उसका सादा उपाय हमको गांधीजी ने बताया है कि, और कुछ नहीं होता तो कम-से-कम चरखा तो चलाओ। हम यह नहीं कह सकते कि हम चरखा नहीं चला सकते। उन्होंने हमारे लिए आसान औजार दे दिया। लेकिन उसके अलावा एक घंटा भर खेत में निराई वगैरह काम कर सकते हैं। उसकी मजदूरी तो विशेष नहीं मिलेगी, लेकिन 'टोकन' के तौर पर, प्रतीक-रूप, चिह्न-रूप परिश्रम करें। उससे आज का समाज सन्तुष्ट होगा। उसके आगे के लोग इसके आगे आयेंगे।

क्रान्ति तो जनसमाज में होती है, उसका लाभ उठानेवाली अगर सरकार हो तो ७५ प्रतिशत काम हुआ ऐसा मानकर बाकी काम करना अपने लिए जरूरी है, ऐसा मानकर कानून बना सकती है, मगर सरकार की नीयत ठीक है। लेकिन सरकार कानून नहीं बनाती तो ७५ प्रतिशत काम हो चुका है, इससे सरकार बदलेगी। क्योंकि ७५ प्रतिशत लोगों का रंग सरकार पर होगा। और फिर सरकार उनके अनुसार कानून करेगी।

प्रश्न : प्रदेशदान के संकल्प के लिए आपका आशीर्वाद चाहते हैं।

विनोबा : मैं इतना ही कहूँगा कि उससे मुझे बहुत ही सन्तोष हुआ है। यद्यपि मैंने ऐसी प्रवृत्ति नहीं रखी थी कि बिहार के बाहर जाकर आग लगाऊँ। मैंने सोचा था कि पहले बिहार का काम पूरा करूँ और फिर बाहर जाऊँ। एक पोलिटिकल यूनिट पूरा हो जाता है तो भी बहुत होगा और इसके बाद बाहर असर होगा। लेकिन हमारा हनुमान है वह यह काम कर रहा है। हनुमान लंका में गये थे तब उनकी पूँछ को आग लगायी गयी तो उन्होंने हर घर पर जाकर अपनी पूँछ से घर को आग लगायी और पूरी लंका को आग लग गयी। वैसे हमारा हनुमान यानी जयप्रकाशजी हैं। उनकी पूँछ को आग लग गयी है। वे जहाँ-जहाँ जाते हैं वहाँ कहते हैं कि प्रांतदान करो। कहीं भी जिलादान हुआ हो तो फौरन वहाँ पहुँचते हैं और लोगों को उत्तेजना देते हैं।

मैं पहले इधर नहीं आया था, इसलिए आने का मैंने स्वीकार कर लिया। लेकिन बहुत खुशी हुई। कुछ अपरिचित चेहरे दिखे, कुछ पुराने परिचित देखने को मिले। बहुत अच्छा संकल्प आप लोगों ने किया। मैंने कई दफा कहा है कि जहाँ शुभ संकल्प होता है और सामूहिक संकल्प करते हैं, और जहाँ वह अपनी ताकत से ज्यादा होता है वहाँ भगवान मदद करने जाते हैं। तो हमको हमारे चित्त में अनुभव होना चाहिए कि हम भगवान का कार्य कर रहे हैं। हम कोई नहीं, नाचीज हैं, लेकिन भगवान का कार्य हमको मिला है। रात-दिन इसका भान रहे कि हम भगवान के औजार हैं। वाहन कौन बनता है, कह नहीं सकते।

गणेशजी इतने बड़े, इतना बड़ा उनका पेट, लेकिन चूहे को वाहन बनाया। क्योंकि चूहा छोटा है तो सुलभ प्रवेश मिल सकता है। तो हम-जैसे चूहे को उसने वाहन बनाया है। तो कार्य वह करेगा, चूहा नहीं करेगा। इसका निरन्तर भान कि हम जैसे तैसे लोगों से वह काम ले रहा है, यह प्रतीति, यह अनुभव, यह भान प्रतिक्षण रहेगा तो मैं मानता हूँ कि पचासों अशुद्धियाँ हममें होंगी, वे ऐसी ही खतम हो जायेंगी। दिन-ब-दिन शुद्धि होगी। अभी लोकयात्रा से मुझे एक पत्र मिला है। उनकी यात्रा को एक साल पूरा हुआ। उस दिन वे सब इकट्ठी बैठी थीं, और चर्चा की थी। उस समय लक्ष्मी बोली थी कि मैंने जब यात्रा शुरू की तब पहले मुझमें बहुत कटुता थी। यह एक साल के बाद कुछ कम हुई है। कुछ मिठास आयी है, ऐसा लगता है। फिर भी कुछ कटुता बाकी है। वह इस यात्रा में जायेगी, ऐसा *विश्वास* हो रहा है। क्योंकि फल पकता है तो उसकी कटुता जाती है। यों कहकर उस असम की लड़की ने पंजाब में महाराष्ट्र के तुकाराम का एक कोटेशन कहा—'पिकलिया सेंद कडुपण गेले।' सेंद यानी फल जब कच्चा होता है तब कड़ुवा होता है। और पकता है तब मधुर होता है, ऐसा अनुभव आ रहा है। ऐसी बात उस लड़की ने सुनायी। बहुत आनन्द हुआ। क्योंकि भास है कि भगवान हमसे कार्य करवा रहे हैं। ऐसा हमको लगा और यह भान हमको रहा तो हममें जो कटुता होगी, दोष होंगे वे ऐसे ही खतम हो जायेंगे।

मध्यप्रदेश के कार्यकर्ताओं के बीच हुई चर्चा से, बलरामपुर : २०-११-'६८

काशी पर सर्व सेवा संघ का असर पड़े !

काशी नगर में शांति रह सकी तो शांति-सेना ने बहुत सफलता पायी। उस नगर पर सर्वोदय का असर होना चाहिए। काशी सर्व सेवा संघ का स्थान है। हम थोड़े हैं, भारत में सब जगह 'टैकल' नहीं कर सकते। पर हमारे केन्द्र-स्थान, खास स्थान (जैसे इंदौर, बड़ौदा, काशी, जयपुर आदि) जहाँ-जहाँ हैं वहाँ हमें शांति बनाये रखना चाहिए। वैसे देश में इस समय सब जगह असंतोष और अशांति है।

अभी गांधीजी के स्थान पर राजकोट में मोरारजी भाई पर वहाँ की लड़कियों ने पत्थर मारे। उन्हें मीटिंग में बोलने नहीं दिया। गुजरात जैसे प्रदेश में भी बहनें पत्थर मारें, मीटिंग न होने दें, यह सोचने की बात है। यह राजकोट में हुआ। गांधीजी का यह खास स्थान था। कलकत्ता में दंगे हों तो समझ में आता है। वहाँ हमारी कोई ताकत है नहीं। सर्व सेवा संघ के लोगों का असर हिंदुस्तान पर पड़े यह आशा ज्यादा होगी। पर काशी नगर पर संघ का असर पड़े यह आशा ज्यादा नहीं है।

—विनोबा

डालटेनगंज, २-१२-'६८

रहे हैं। इसकी मुख्य प्रक्रिया यह होगी कि समाज के हर वर्ग और हर प्रकार के लोगों को किसी-न-किसी सत्कार्य में शामिल कर दिया जाय। जैसे सत्संग से मनुष्य की असत् वृत्ति का निराकरण हो सकता है, उसी तरह सत्कर्म से भी असत् वृत्ति का निराकरण होता है, बल्कि सत्संग से सत्कर्म मनुष्य के चरित्र-निर्माण में अधिक प्रभावशाली होता है। यह सही है कि जिस तरह सत्संग में रहने पर भी असत् व्यक्ति शुरू-शुरू में पूर्वसंस्कार के अनुसार असत् व्यवहार भी करता है, लेकिन एक लम्बी अवधि में सत्संग का प्रभाव उसकी असद् वृत्ति को क्षीण कर देता है, उसी तरह सत्कर्म में लगा असत् व्यक्ति शुरू-शुरू में उस सत्कर्म में भी असत् वृत्ति का प्रवेश करा सकता है, लेकिन सत्कर्म का प्रभाव अन्ततोगत्वा असद् वृत्ति को क्षीण कर देगा।

अहिंसा की प्रक्रिया में पूरे समाज या किसी वर्ग की ओर से कुछ व्यक्तियों के सिपाही बनकर लड़ाई करने की कल्पना नहीं हो सकती है। शिक्षक बनकर कुछ व्यक्ति समाज को अन्याय के प्रति जाग्रत बना सकते हैं, ताकि लोग अन्याय के निराकरण में लग सकें, लेकिन लड़ाई लड़ने का काम शुरू करना अहिंसा की प्रक्रिया में सही नहीं होगा। तुम लोगों को यह बात बहुत समाधान नहीं देती है, उसका कारण है असहयोग और सत्याग्रह का पुराना संस्कार। कुछ लोगों या वर्गों द्वारा अन्याय के विरोध में सत्याग्रह कराना व्यवहार में भी नहीं उतर सकता है, यह समझ लेना चाहिए। व्यवहार में जो लोग कुछ लोगों के नेतृत्व में अन्याय का प्रतिकार करने चलते हैं, उनमें अन्याय-निराकरण के विचार के प्रति निष्ठा नहीं होती है, बल्कि अपने प्रति होनेवाले अन्याय तथा उसके कष्ट से मन में क्षोभ अधिक होता है। जिनमें (अन्याय-निराकरण के विचार के प्रति निष्ठा रहती है, वे अन्याय-पीड़ित के विक्षोभ को उभाड़कर संघर्ष नहीं कराते हैं।) फलस्वरूप वे पीड़ित जन अन्याय-मुक्ति के लिए संघर्ष नहीं करते हैं, बल्कि अपनी कष्ट-मुक्ति के लिए प्रयास करते हैं। नतीजा यह होता है कि वे अपने प्रति हो रहे अन्याय को समाप्त करने में सफल तो हो जाते हैं, परन्तु अपने अन्दर की अन्याय-वृत्ति

धीरेन्द्र भाई : जीवन शोधक

को कायम रखते हैं और संघर्ष की सफलता से अर्जित शक्ति से जब स्वयं उनको अन्याय करके उससे लाभ उठाने का अवसर प्राप्त होता है, तो उसे वे छोड़ना नहीं चाहते। इसलिए 'कुछ लोग' जो अन्याय का प्रतिकार करना चाहते हैं, उन्हें पूरे समाज को अन्याय के खिलाफ सचेत होने की प्रेरणा देनी चाहिए। इससे अन्याय-मुक्ति की दुहरी प्रक्रिया चल सकती है। व्यक्ति को चेतना उसके 'खुद' के द्वारा हो रहे अन्याय से भी मुक्ति के लिए प्रेरित करेगी और उनकी इस क्रिया की सामाजिक प्रतिक्रिया भी इसी दिशा में होगी। अन्याय का प्रतिकार चाहनेवालों को समाज में इस प्रतिक्रिया का द्रुत-गति से प्रसार करना चाहिए।

अन्याय और भ्रष्टाचार के जिस पहलू में हम स्वेच्छा से शामिल होते हैं, उसे तो हमें छोड़ना ही चाहिए, इसके लिए हमें चाहे जितनी भी तकलीफ उठानी पड़े। अन्याय और भ्रष्टाचार का जो पहलू जबर्दस्ती हमारे ऊपर लादा जाता है, उसके लिए उस रचना को ही बदलना होगा, जिसके कारण यह लादनेवाली परिस्थिति बनती है। मेरा 'दोहरा मोर्चा' तुम्हारी असहयोग और सत्याग्रह की जो कल्पना है, उसमें शायद फिट नहीं बैठता है। मेरा 'दोहरा मोर्चा' शिक्षण-प्रक्रिया के लिए ही है। क्योंकि मैं मानता हूँ कि इस अणुयुग में सदा स्वाभिमान और स्वातंत्र्य वृत्ति की सार्वजनिक-चेतना के युग में शिक्षण ही सामाजिक शक्ति बन सकता है। आज के युग में दो साल के बच्चे को भी दबाव से नहीं मनाया जा सकता है।

प्रश्न : आज की गरीबी, असमानता और अज्ञान से भी मानव ज्यादा ग्रस्त भ्रष्टाचार और अन्याय से है। किसीकी हिम्मत इससे लड़ने की नहीं है। परन्तु मनुष्य अन्दर-ही-अन्दर उसमें शामिल रहते हुए भी लड़ने की आवश्यकता महसूस करता है। यह ग्रंथि का ठौर बन गया है! प्रश्न है, कौन पकड़े ?

उत्तर : आज समाज में उत्कट 'पैराडाक्स' पैदा हो गया है। हरएक व्यक्ति अन्याय और भ्रष्टाचार का शिकार है, और हरएक व्यक्ति अन्याय और भ्रष्टाचार करता है। इसी 'पैराडाक्स' के कारण आज किसीको लड़ने की हिम्मत नहीं पड़ती है। हरएक व्यक्ति जो लड़ने की आवश्यकता महसूस करता है वह अपने ऊपर के अन्याय से लड़ना चाहता है, लेकिन अपने अन्दर का अन्याय उसे लड़ने नहीं देता है। इसीलिए विनोबा आज सम्पूर्ण समाज को मुक्ति के कार्यक्रम में शामिल करना चाहते हैं, क्योंकि बन्धन भी सम्पूर्ण का ही है।●

संस्था, सेवक और सेव्य

—चिंतन के लिए कुछ मुद्दे—

गत एक माह से मेरे मन मे एक विचार चल रहा है। मेरे एक मित्र डेढ़-दो माह के लिए सीलोन चले गये थे। वहाँ सर्वोदय-मण्डल है। उसके २५०० सदस्य हैं। हर सदस्य माहवार २ रु० फीस देता है। कोई कार्यकर्ता पूरे समय का नहीं है। सभी सदस्य छुट्टी के दिन अपना समय सेवाकार्य में लगाते हैं। कोई वेतन नहीं लेता है। सब एक विचार से सप्ताह में एक या दो दिन गाँव में जाकर रहते हैं या कोई सेवा कार्य करते हैं। इस तरह का संगठन बना है। सर्वोदय विचार का प्रचार भी होता है। साहित्य-प्रचार भी वे लोग करते हैं, अखबार भी निकाला जाता है। अतः मेरे मन में विचार आता है कि क्या इस तरह का संगठन हमारे यहाँ भी बन सकेगा ? या फिर हमारे जैसे वेतन-भोगी कार्यकर्ता ही यह आन्दोलन चलाते रहेंगे ?

विनोबाजी ने सन् १९४६ में कहा था कि कुछ कार्यकर्ता वानप्रस्थी और कुछ गृहस्थ होने चाहिए। १० गृहस्थो के पीछे १ वानप्रस्थी हो सकता है। वह नहीं बन सका। आज हम सब वेतनभोगी हैं। यही कारण है कि हमारा आन्दोलन कार्यकर्ताओं तक ही सीमित रह गया है। भूदान-आन्दोलन तभी व्यापक बनेगा और उसे गति मिलेगी, जब सीलोन की तरह का संगठन हम बना सकेंगे।

सन् १९२१ में मेरी गांधीजी से इस बारे में चर्चा हुई थी। मैंने उनसे कहा था कि पहले खादी नहीं बल्कि खेती हो। वे बोले, 'नहीं, जबतक आजादी की लड़ाई करनी है तबतक सैनिक ऐसे हों, जो कभी भी घर छोड़कर निकल सकें, पीठ पर अपना संसार लेकर चल सकें। जैसे बिच्छू अपना संसार अपनी पीठ पर रखता है, उसी तरह आन्दोलन के लिए ऐसी ही सेना होनी चाहिए। इसलिए खेती में आज कार्यकर्ता नहीं ले जाना चाहता हूँ। अतः खादी काम करो। वास्तविक चीज है जनता से सम्पर्क। उसीका महत्त्व है। सभी विधायक कार्यक्रम जनता के पास पहुँचने के साधन हैं।'

गांधीजी को भी यह आशा नहीं थी कि भारत की सभी मिलें बन्द हो जायेंगी, और घर-घर खादी बनेगी। लेकिन खादी हो, ग्रामोद्योग हो, हरिजन सेवा हो, इन सबका उद्देश्य जनता से परिचय करना, मेल करना ही था।

आज यहाँ (कोरापुट—उड़ीसा में) ग्रामदान संघ, सहकारी संघ आदि बने हैं। ये सभी संगठन कार्यकर्ताओं को जनता के बीच पहुँचने में मदद करते हों तो ठीक है, अन्यथा दीवाल बनाने से क्रान्ति नहीं होगी। जनता से सम्पर्क बढ़ाया जाय तो ही क्रान्ति हो सकती है। अगर हमारे संगठन इसमें मदद-रूप हों तो उनको रख, अन्यथा नहीं।

संगठन का भी एक नियम है। विनोबाजी बारडोली के स्वराज्य आश्रम में गये। संस्थाओं

अण्णा सहस्रबुद्धे

के बारे में उन्होंने कहा, "ये सब आश्रम परोपजीवी बन गये हैं। ये ज्यादा दिन टिकनेवाले नहीं हैं। जबतक गांधी का नाम चलता है, ये टिकेंगे, बाद में नहीं, क्योंकि जनता से इनका सम्बन्ध नहीं रहा है।"

संस्था किसी उद्देश्य से बनती है, बड़ी होती है। कार्यकर्ता भी बढ़ते हैं। लेकिन कुछ समय बाद कार्यकर्ताओं के सवाल हल करना ही काम रह जाता है। आम जनता से सम्पर्क छूट जाता है। आज हमारे संगठन की यह परिस्थिति है। अतः नये संगठन से और बंधन बढ़े, ऐसा न करें।

सन् १९२० से २५ साल तक हम लोग स्वराज्य का आन्दोलन करते रहे। सब संस्थाएँ सन् १९३० के आसपास बनीं। तबतक ग्राम-आधारित ही हमारा जीवन चलता था। उस समय जितना परिचय गाँवों का हुआ, वह बाद में नहीं हुआ। क्योंकि बाद में संस्थाएँ आ गयीं, कार्यकर्ता बन गये और उनसे ही सम्पर्क रहा। बुनकरों, कत्तिनों आदि से सम्पर्क कम हो गया। किसी भी संस्था की यह मर्यादा हमेशा रहती है।

अप्पा : जीवन-शिल्पी

अतः संस्था बनाने के साथ जनता की तरफ से ध्यान ओझल होता है, जिससे क्रान्ति का वातावरण नहीं बनता है।

बुद्ध भगवान ने कहा है : 'बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि'। संस्थाओं की प्रगति भी इसी दिशा में होनी चाहिए। एक क्रान्तदर्शी व्यक्ति संस्था बनाता है। उसके व्यक्तित्व से लोग एकत्रित होते हैं। व्यक्ति-आधारित संस्था बनती है। लेकिन हमें 'संघं शरणं गच्छामि' की नीति पर जाना चाहिए। एक व्यक्ति-आधारित संस्थाएँ आगे नहीं चल पायेंगी। और आगे चलकर संघ-शक्ति छोड़कर धर्म यानी सिद्धान्त पर डटे रहने का कर्तव्य भी आ सकता है।

एक ही ध्येयवाद से प्रेरित लोग साथ मिलकर एक दिल से काम नहीं करें तो संघ-शक्ति नहीं बनेगी, और न आन्दोलन ही बढ़ेगा। ईसाइयों का एक संगठन है। वे लोग रोज मिलते हैं। सर्वसम्मति होने पर ही आगे बढ़ते हैं। इसीलिए आज भी उनमें संघ-शक्ति है। लेकिन हमारे मुँह अलग-अलग दिशा में हैं। हमलोग अलग होने की दिशा में अपनी शक्ति खर्च करते हैं।

स्वराज्य के समय आन्दोलन के कार्यकर्ता थे, लेकिन स्वराज्य के बाद परिस्थिति बदल गयी है। अब आन्दोलनात्मक या भावनात्मक काम करने के साथ यदि आप किसी एक विचार में रत नहीं होंगे तो

इसके आगे देश में काम नहीं कर सकेंगे। आम जनता यदि खेती जानती है तो हमें अन्य काम करते हुए भी खेती और उसका विकास का काम करना चाहिए। उसका तज्ञ बनना चाहिए, तभी जन-सम्पर्क बनेगा। दूसरी बात कि हम जो करते हैं, उसका उनको भी भान हो, जिनके लिए वह किया जाता है।

जो लोग ४० से कम उम्र के हैं, उन सबको श्रम का अभ्यास करना चाहिए। श्रमाधारित जीवन बिताना चाहिए। जिस क्षेत्र में काम करना है उस जनता के मुख्य उद्योग में हमें निष्णात बनना चाहिए। उनकी भाषा सीखनी चाहिए। भाषा के बिना एकरूपता नहीं आयेगी। इस तरह उनका उद्योग, भाषा और उनके रीति-रिवाज का ध्यान रखने के साथ हमारा अध्ययन जारी रहे, तभी जन-सम्पर्क सधता है। ग्रामदान-भूदान के सैनिक के नाते काम करना हो तो भी यह सारा जरूरी हो गया है। उद्योग ऐसा हो, जिससे आप अपनी जीविका चला सकें, यह होगा तभी जनता का सहकार मिलेगा।

आज समाज में जो अन्याय चल रहे हैं, वे तबतक चलते रहेंगे, जबतक कि जनता जागृत नहीं हो जायगी। इसलिए जनता को जागृत करना ही मुख्य काम है। •

सम्पादक के नाम पत्र

"भूदान-यज्ञ : नाम-चर्चा

महोदय,

१३ जनवरी '६९ के प्रकाशित सम्पादक के नाम पत्र को पढ़ा और भाई जंगबहादुर के तर्कयुक्त विचार का स्वागत करता हूँ। मैं भी मानता हूँ कि 'भूदान-यज्ञ' जनमानस व लोकमानस के माफिक नहीं है। मेरे विचार से सर्वोदय-लक्ष्य और भूदान एवं ग्रामदान साधन एवं साध्य ठीक है। लेकिन सर्वोदय-विचार स्वयपूर्ण है, अतः क्यों नहीं इसका नाम 'सर्वोदय-विचार' रखा जाय ?

—सुदर्शन सिंह

जोगीबांध, सरगुजा
२८–१–'६९

हिंसात्मक खूनी क्रान्ति एवं गांधीजी

गांधीजी ने कहा था :

"आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है पूंजी और श्रम के बीच के शाश्वत संघर्ष का अन्त करना। इसका मतलब जहाँ एक ओर यह है कि जिन थोड़े-से अमीरों के हाथ में राष्ट्र की सम्पदा का कहीं बड़ा अंश केन्द्रीभूत है उनके उतने ऊंचे स्तर को घटाकर नीचे लाया जाय, वहाँ दूसरी ओर यह है कि अध-भूखे और नंगे रहनेवाले करोड़ों का स्तर ऊंचा किया जाय। अमीरों और करोड़ों भूखे लोगों के बीच की यह चौड़ी खाई जब तक कायम रखी जाती है तब तक तो इसमें कोई सन्देह ही नहीं कि अहिंसात्मक पद्धतिवाला शासन कायम हो ही नहीं सकता। स्वतंत्र भारत में, जहाँ कि गरीबों के हाथ में उतनी ही शक्ति होगी जितनी कि देश के बड़े-बड़े अमीरों के हाथ में, वैसी विषमता तो एक दिन के लिए भी कायम नहीं रह सकती, जैसी कि नयी दिल्ली के महलों, और वहीं नजदीक की उन सड़ी-गली झोंपड़ियों के बीच पायी जाती है, जिनमें मजदूर-वर्ग के गरीब लोग रहते हैं। हिंसात्मक और खूनी क्रान्ति एक दिन होकर ही रहेगी, अगर अमीर लोग अपनी सम्पत्ति और शक्ति का स्वेच्छापूर्वक ही त्याग नहीं करते और सबकी भलाई के लिए उसमें हिस्सा नहीं बंटाते।"

देश में दंगे-फसाद और खून-खराबी का वातावरण बढ़ता जा रहा है। इसमें आर्थिक, सामाजिक विषमता भी बड़ा कारण है। गांधीजी की उक्त वाणी और चेतावनी आज अधिक ध्यान देने को बाध्य करती है। क्या देश के लोग, विशेषतः अमीर, समय के संकेत को पहचानेंगे ?

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी समिति), दुंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भेरू, जयपुर–३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

मुलाकातें :

जर्मनी के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी डा० हान्स : यातनाओं से निखरा एक व्यक्तित्व

बात २६ जनवरी '६९ की है। कुण्डेश्वर (जिला टीकमगढ़, म० प्र०) में केन्द्रीय गांधी-जन्म शताब्दी समिति, नयी दिल्ली की जन-संपर्क समिति की ओर से एक शिविर 'बा-बापू' सप्ताह के उपलक्ष में आयोजित किया गया था। और उसमें मार्ग-दर्शन हेतु जर्मनी के प्रसिद्ध क्रांतिकारी डा० हान्स ए० डी० बोमर भी पधारे थे। शिविर में डा० हान्स के व्यक्तित्व और अभिव्यक्ति ने मुझे अत्यधिक आकर्षित किया।

डा० हान्स ने बताया कि "हिटलर के समय में जर्मनी में जो हिंसा हुई उसे सुनकर दिल कांप उठेगा! ऐसा नर-संहार हुआ कि टैंक लाशों पर से गुजरते थे और एक मिनट में १५-१५ बच्चों को मौत के घाट उतारा जाता था! सरकार फौज में भरती होने के लिए बाध्य करती थी। मुझे भी किया गया था और मेरी अस्वीकृति के कारण मुझे अनेक यातनाएं सहनी पड़ी थीं। मुझे जेल में बंद करके खाना नहीं दिया गया। तीन दिन के बाद खाने के लिए सड़े चूहों का मांस और पीने के लिए पानी के स्थान पर पेशाब दी गयी। देह कांप उठी! जेल में मेरा एक फेफड़ा और किडनी बेकार हो गयी। अंत में मैं कायर बन गया और फौज में भरती होने की स्वीकृति दे दी। लेकिन मैंने वर्दी अपने हाथ नहीं पहनी, बंदूक नहीं ली, इस पर मुझे फिर जेल भेज दिया गया। वहां मुझे दो तवों पर खड़ा करके नीचे से बिजली के झटके दिये गये। मैंने फिर कायर बनकर उनकी शर्तें स्वीकार कर लीं।"

"जर्मनी में मुझे 'क्रिश्चियन गांधी' कहा गया। 'क्रिश्चियन' शब्द का ज्ञान तो मुझे था, किन्तु 'गांधी' मेरी समझ से बाहर का शब्द था। मैंने इसे जानना चाहा। लोगों ने बताया कि भारत में एक ऐसा व्यक्ति है, जो आधा नंगा रहता है और संसार में अहिंसा के द्वारा शांति स्थापित करना चाहता है। सत्य, प्रेम, न्याय, तीनों के द्वारा विश्वबंधुत्व की भावना को साकार करना चाहता है।" डा० हान्स ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा कि "हिंसा का रूप मैं देख चुका था। इसलिए मुझे अहिंसा और शांति की बात जल्दी समझ में आयी, और एक दिन मैं फौज से भाग गया विदेश जाने के लिए। रास्ते में मैंने अपने नाम का 'पासपोर्ट' एक अन्य व्यक्ति को दे दिया और उसका मैंने ले लिया, क्योंकि फौज मेरा पीछा कर रही थी। थोड़े दिनों के बाद मैंने कुछ लोगों को एक जनाजा दफनाने के लिए ले जाते देखा और मैं भी उसमें शामिल हो गया। जब उस मृत व्यक्ति के बारे में जानने की इच्छा हुई, तो मैंने लोगों से पूछा। लेकिन कोई उसका नाम नहीं बताता था। जब मैंने एक व्यक्ति से बहुत ही आग्रह करके पूछा तो उसने कहा, 'शोर मत करो, डा० हान्स को मार डाला गया! यह उन्हींका जनाजा है।' मुझे स्थिति को समझते देर न लगी कि मैंने अपने नाम का 'पासपोर्ट' जिस व्यक्ति को दिया था, उसको डा० हान्स मानकर मार डाला गया। मुझे बड़ी पीड़ा हुई।"

".. और तब मैंने 'भारत छोड़ो' की भांति 'हिटलर छोड़ो' का नारा बुलंद किया तथा हिटलर के विरुद्ध भीषण बगावत की। रेलें गिराकर बारूद एवं रसद रोकी। फलस्वरूप मेरे मकान पर बम गिराया गया, जिससे मेरे पिता का देहान्त हो गया। मैं और मेरी बहन मलबे से निकाले गये। मेरी मां की हत्या कर दी गयी और काटकर उसके शरीर के सोलह टुकड़े कर दिये गये। मैं फिर पकड़कर बंदी बना लिया गया और मुझे और मेरे १८ साथियों को फांसी की सजा सुनायी गयी। वे १८ व्यक्ति तो हंसते-हंसते फांसी पर झूल गये, लेकिन हिटलर की अधीनता नहीं स्वीकारी।.. लेकिन. ."

डा० हान्स ने वेदनायुक्त आवाज में कहा, "केवल मैं कायर क्षमा-याचना करने पर फांसी की सजा से मुक्त कर लिया गया। लेकिन फिर मैंने बगावत करना शुरू कर दिया, जिससे मुझे अनेक यातनाएं भोगनी पड़ीं। मेरे सभी नाखूनों को निकालकर सूइयां चुभोयी गयीं। मैंने फिर जर्मनी से निकलने का निश्चय कर लिया। और अपने देश को छोड़कर संसार के सभी देशों में अबतक घूमा। सभी देशों की नीतियां मेरी समझ में आयीं, लेकिन योरप बार-बार युद्ध क्यों पसंद करता है, यह अभी तक समझ नहीं पाया।"

डा० हान्स ने भारत के सम्बन्ध में अपनी राय जाहिर करते हुए कहा, "यद्यपि भारत को मैं कोई उत्तम देश नहीं मानता, लेकिन यही एक ऐसा देश है जो पश्चिमी सभ्यता से अछूता है, और यहीं से नयी रोशनी पाने की अन्य देश आशा लगाये हैं।" भारत-प्रवास के अपने अनुभवों को सुनाते हुए डा० हान्स ने बहुत ही व्यथित होकर कहा, "जब मैं भारत आया तो विजयवाड़ा में मुझे पता चला कि १५ हरिजनों की हत्या कर दी गयी। यद्यपि १५ व्यक्तियों की हत्या मेरे लिए कोई नयी खबर नहीं थी, किन्तु इसके साथ नयी और आश्चर्यजनक खबर यह थी कि उसीके बगल में लोग सूत कातते रहे, मंदिरों में 'ओम् शांति' 'ओम् शांति' चिल्लाते रहे, नमाज पढ़ते रहे, गिरजाघरों में ईसा के उपदेशों को चुपचाप सुनते रहे, पर किसीने इस दुष्कृत्य को रोकने की कोशिश नहीं की। गांधी का यह देश मुझे अपने यहां खींच लाया, किन्तु आते ही यह अत्याचार देखकर मुझे लगा कि इस देश के लोग जितनी बात करते हैं, उतना काम नहीं करते। गांधी की अहिंसा अन्याय बर्दाश्त करना नहीं सिखाती, अन्याय के विरुद्ध जेहाद बोलना सिखाती है। हम अपनी आंखों के सामने अन्याय देखते हैं, अथवा उसका अनुमोदन करते हैं तो निःसंदेह हम मूक हिंसा करते हैं।"

डा० हान्स इन दिनों सेवाग्राम आश्रम में "अन्तर्राष्ट्रीय विचारधारा एवं गांधी-विचारधारा" पर शिक्षण कार्य कर रहे हैं। आप वहां से केवल १५० रु० प्रतिमाह लेते हैं, जिसमें से ९० रु० प्रतिमाह केवल डाक-व्यय में ही खर्च हो जाते हैं, शेष ६० रु० में खाना कपड़ा एवं अन्य व्यय शामिल हैं।

—हरिगोविन्द त्रिपाठी 'पुष्प'

आत्म-समर्पणकारी बागियों के जीवन का नया अध्याय

विनोबाजी के समक्ष आत्म-समर्पण करनेवाले उन २० बागियों का क्या हुआ ? यह प्रश्न सहज ही लोग पूछते हैं। यह घटना मानव इतिहास का नया परिच्छेद है। यद्यपि विनोबाजी के समक्ष आत्म समर्पण करने से पहले भी अंगुलीमाल से लेकर आज तक कई डाकुओं के आत्म समर्पण की कहानियाँ इतिहास-प्रसिद्ध हैं, पर सामूहिक रूप से आत्म-समर्पण की यह पहली ही घटना है।

इन २० डाकुओं के पूरे गैंग के गैंग ने जब समर्पण किया तो यह समाचार अखबारों के लिए एक सनसनीखेज खबर थी। इस घटना को हुए अब लगभग ६ वर्ष हो गये। इस अवधि में उनका क्या हुआ ? आज वे कहाँ और कैसे हैं ?

२० बागियो मे से १६ अपराध-मुक्त हो चुके हैं, और सामान्य गृहस्थ का जीवन बिता रहे हैं। एक कन्लाल ही आजन्म कारावास की सजा जेल मे भुगत रहे हैं। बीसो व्यक्तियो पर सन् १६६० से लेकर सन् १६६४ तक ६२ मुकदमे मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान राज्यो के भिण्ड, मुरैना, दतिया, ग्वालियर, आगरा, इटावा व हिण्डौन में कत्ल, अपहरण व डकैती के चले। इनमें से कुछ की अपीलें इलाहाबाद, जबलपुर और जोधपुर के हाईकोर्ट में की गयी। कुछ के हाईकोर्ट मे फैसलो के बाद सुप्रीम कोर्ट में भी अपीलें की गयी। चम्बल घाटी शान्ति-समिति के प्रयत्न से उपरोक्त सभी अदालतो मे बड़े-बड़े वकील और एडवोकेट्स ने नि:शुल्क पैरवी की। नीचे की अदालतो से दोषमुक्त सिद्ध होने पर सरकार ने भी हाईकोर्ट तक अपीलें की। दोनो तरफ से यह न्याय की कहानी लगातार ४ साल तक कही-सुनी गयी। सबसे पहले मुकदमे में तो केवल १ को छोड़कर १६ ने सहर्ष अपना अपराध स्वीकार कर लिया था। पर बाद में जेल में इन लोगों पर पुलिस की ओर से ज्यादतियाँ होने लगीं और आई० जी० पुलिस की दृष्टि में गुनहगार का गुनाह छुड़ाना ही गुनाह हो गया ! उन्होंने इन्हें तो इन्हें, विनोबा तक को अपने 'प्रेस-स्टेटमेंट' में फटकार डाला !

इसी बीच मानव-इतिहास की इस उज्ज्वल घटना के सूत्रधार मेजर जनरल यदुनाथ सिंह का हार्ट फेल हो गया। शासन का रवैया ही बदल गया। तरह तरह के अत्याचार हुए, जिसे देखकर इन आत्म-समर्पणकारियों ने भी कहना शुरू किया कि सरकार जो अपराध बताती है, उसे वह सिद्ध करे। हम क्यो उसे अपनी ओर से स्वीकार करें ? इन ६२ मुकदमों मे कुछ ऐसे भी थे जिनमे ये लोग कतई शामिल नही थे। केवल पुलिस के शक का आधार था। इसलिए उन्होंने फिर अस्वीकार करना शुरू कर दिया। सबसे पहले आत्म-समर्पण करनेवाले रामऔतार को फाँसी की सजा हुई, जिसकी अपील इलाहाबाद हाईकोर्ट में होने पर वह बिलकुल बरी हो गया। कुछ लोगो को ५-७ और १०-१० साल की सजाएँ हुईं। लोकमन, तेजसिंह और भगवान सिंह को आजन्म कारावास हुआ था, जिसे मध्य प्रदेश सरकार और राज्यपाल ने पिछले साल १७ अप्रैल १९६८ को क्षमा दान देकर माफ कर दिया।

आत्म समर्पण के बाद विनोबाजी की उपस्थिति में एक चम्बल घाटी शान्ति-समिति का गठन हुआ था। उस समिति ने इन लोगों की पैरवी, पुनर्वास और क्षेत्र में शान्ति-स्थापना के काफी प्रयास किये। बागियों की शत्रुता जिन लोगों से थी, उनके मनोभाव बदलने की कोशिश की। उनका प्रेम प्राप्त किया। जिनको मारकर ये बागी फरार हुए, उनके सम्बन्धियों ने बागी से ही नहीं, बल्कि हृदय से इन लोगों को क्षमा किया। इसीलिए जेल से छूटकर आने के बाद अब ये लोग अपने गाँव में अपने घर पर रह रहे हैं, अपनी खेती कर रहे हैं। यह काम आत्म-समर्पण से भी अधिक महत्त्व का हुआ है। एक प्रकार से सन्दर्भ और परिस्थिति बदलने का काम हुआ है। परस्पर का प्रेम और मैत्री-भाव बढ़ा है, और लोगों ने महसूस किया है कि बैर से बैर नहीं मिटता।

जेल से छूटकर आने के बाद इन लोगो को भी बराबर यह लगता रहा है कि कोई क्या कहेगा ? उनका कहना है कि हमने आत्म-समर्पण किया था। यह हमारी नयी जिन्दगी है। इन लोगो ने फिर कोई लूट-पाट, अपहरण आदि नही किये। इनके रहन सहन से क्षेत्र के लोगों को भी विश्वास हो चला है कि अब इनसे कोई खतरा नही है। इनकी पहचान अब इनकी इन्सानियत से होने लगी है। इनका विचार बदला है, और उसके फलस्वरूप जीवन का व्यवहार भी बदला है।

चम्बल घाटी शांति-समिति ने पैरवी के काम की तरह ही इनके पुनर्वास के लिए काफी प्रयत्न किया है। जेल से छूटकर आने के बाद इनकी पुरानी जमीन पर इन्हें कब्जा दिलाया है, जिसे इनके साथ दुश्मनी रखनेवालो ने जबरदस्ती जोत ली थी। जिनके पास पुराना घर और जमीन नही थी, उनको घर बनाने के लिए आर्थिक सहायता और भूदान-यज्ञ में प्राप्त जमीन दिलायी गयी है। कुछ को बैल खरीदने में भी आर्थिक सहायता की है। अब तो इस समिति ने कुछ राहत के काम भी स्थायी तौर पर अपना लिये हैं : जैसे—खादी उत्पादन और बिक्री, अन्न-प्रशोधन, चर्म-उद्योग, बढ़ईगीरी, लुहारी आदि के काम। इससे इस क्षेत्र के बागी और बागी-पीड़ित परिवारो के हजारों लोगों को रोजी-रोटी का सिलसिला शुरू हो गया है। पीड़ित परिवारो के बच्चों का एक नि:शुल्क छात्रावास भिण्ड में शुरू हुआ है। विरोधियों का सहयोग प्राप्त करने में इससे आशातीत सफलता प्राप्त हुई है।

इस क्षेत्र में शान्ति-स्थापना की दिशा में लल्लू दद्दा ने सभी का प्रेम प्राप्त करने में अद्भुत सफलता पायी है। उनका प्रशासकीय अधिकारियों एवं पुलिस-कर्मचारियों, सभी से प्रेम का नाता। इन आत्म-समर्पणकारी बागियों की बहुत सी छोटी छोटी दिक्कतों को उन्होंने अधिकारियों से मिल-जुलकर समाप्त करा दी। कुछ नये छोटे छोटे बागियों को हाजिर भी कराया। उनके मन से भय की भावना दूर कर प्रेम से रहने की स्थिति उत्पन्न की। —गुरुशरण

विनोबा-निवास से

[ता० १ से १५ मार्च, १९६९]

[*कार्यकर्ता साथियों तथा 'भूदान-यज्ञ' के पाठकों की जोरदार माँग के अनुसार* अब हम 'विनोबा-निवास से' इस स्तम्भ को चालू कर रहे हैं। यह स्वाभाविक है कि आन्दोलन के केन्द्रीय व्यक्तित्व के इर्द-गिर्द की हलचलों से आन्दोलन में लगे हुए लोगों और आन्दोलन में रुचि रखनेवालों को प्रेरणा, स्फूर्ति और अद्यतन जानकारी प्राप्त हो सकेगी। इस स्तम्भ को चालू करने के लिए श्री कृष्णराज भाई ने यह अतिरिक्त कष्ट स्वीकार किया है, इसके लिए हम आभारी हैं। हम आशावान हैं कि यह सिलसिला भविष्य में कायम रख सकेंगे। —सं०]

१ मार्च :

पंडित विनोदानन्द झा अपने घर (देवघर) जाते हुए बाबा से मिलने पहुँचे। यह पूरा वर्ष ग्रामदान और गांधी-जन्म-शताब्दी-कार्यों में लगाने का अपना निश्चय उन्होंने जाहिर किया। सबसे पहले पटना और शाहाबाद जिलों का जिलादान पूरा करने में वह लगेंगे।

जिला तरुण-शान्ति सेना द्वारा शहर के एक पुराने और विद्वान मुस्लिम सज्जन के मकान पर आयोजित सभा में विनोबाजी गये। *समझाया कि, "प्राचीन धर्म-ग्रन्थों में कुछ हिस्से अब भी काम के हैं और कुछ छोड़ने लायक हैं, यह बात ध्यान में आनी चाहिए।*

हमने गहरे अभ्यास के बाद भिन्न-भिन्न धर्मों के सार-ग्रन्थ तैयार किये हैं, इससे एक-दूसरे के धर्म को और *ग्रन्थों को समझना* आसान होगा।"

२ मार्च :

कैथोलिक धर्म के बिशप अर्बन मेगारी (Urban Megarric) ११ बजे मिलने आये। प्रसन्नचित्त और उदार वृत्ति के दीखे। बोले, "विनोबाजी, मैं आपके *काम का समाचार* हमेशा पढ़ता आया हूँ। आप बहुत महत्त्व के कार्य में लगे हैं।" जब उन्हें सुझाया गया कि उनका सहयोग संथाल परगना में मिलना चाहिए, तो उन्होंने खुशी से अपनी तैयारी बतायी। बाबा ने पूछा, "घर में माँ किस नाम से बुलाती थी?" घर का नाम युजन (*Eugene*) बताया। बाबा ने कुछ सोचने पर कहा, "युरोप शब्द का मूल उच्चारण सुरूप है, इसलिए आपको *युजन की जगह* सुजन कहेंगे।" और 'सुजन स्वामी' नाम लिखकर अंग्रेजी की 'क्रिस्त धर्मसार' पुस्तक बाबा ने उन्हें भेंट की।

यहीं गंगा किनारे महर्षि मेंहीदासजी का आश्रम है। ८५ वर्ष के होने पर भी उनके सब अवयव ठीक हैं। ध्यान प्रक्रिया की दीक्षा शिष्यों को देते हैं।

आजकल वे अपने स्थान से कहीं बाहर गये हैं। परन्तु आश्रम के भक्तों का आग्रह देखकर विनोबाजी आज ४ बजे साथ उनका स्थान देखने गये।

शाम को बैठक में जिला-स्तर के एक शासकीय सेवक सपरिवार आये। पूछा कि, "मैं नौकरी में सच्चाई, ईमानदारी बरतता आया हूँ। परन्तु देखता हूँ कि मेरी *लायक पदोन्नति भी नहीं हो पाती।*" विनोबाजी ने पहले *उनके परिवार और आमदनी वगैरह की जान*कारी ली, और सुझाया कि, "अपने से कम-*स्तरवालों की तरफ देखेंगे, तो मन में खिन्नता* नहीं होगी।"

३ मार्च :

पटना से श्री विद्यासागर भाई आये थे। बताया कि कार्यकर्ता होली मनाने चले गये हैं, और मैं अपनी होली बाबा के सहवास में *मनाने आ गया हूँ।*

राष्ट्रीय त्योहारों के शुद्धिकरण की जरूरत समझाते हुए बाबा ने डा० रामजी सिंह के साथ हुई चर्चा में कहा, 'आनन्द के बिना प्राणी का जीवन क्षण भर भी नहीं रहता। मच्छर को भी खून चूसने का आनन्द होता है। मानव की कोशिश आनन्द-प्राप्ति न होकर आनन्द-शुद्धि की होनी चाहिए। यही उसके विकास की कसौटी है।"

शाम को एक वकील को बता रहे थे कि, "वकील का काम है कानून का भाष्य करना। शंकर, रामानुज ने धर्म-ग्रंथों का भाष्य ही तो किया है। और कुरान में 'वकील' ईश्वर का ही एक नाम बताया है। वहाँ वकील *का अर्थ संरक्षक हुआ है।*"

५ मार्च :

बिहार ग्रामदान-प्राप्ति समिति के मंत्री श्री वैद्यनाथ बाबू, बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ के मंत्री श्री रमापति बाबू, जिला ग्रामदान समिति के अध्यक्ष श्री जागेश्वर मंडल और श्री रामजी सिंह ने जिलादान के लिए पैदा हुए उत्साह को बनाये रखने हेतु विनोबाजी से निवेदन किया कि ईद और होली के कारण प्राप्ति-कार्य में जो बाधा आ गयी उसकी पूर्ति करने के लिए आप दस दिन तक जिले में और रुकना स्वीकार करें। बाबा १६ मार्च की जगह अब २६ मार्च तक इस जिले में रहेंगे।

शाम को बाबा ने मैत्री-आश्रम (५ मार्च '६२ को असम के पूर्व के छोर पर लखीमपुर जिले में बाबा के द्वारा स्थापित) की स्थापना-दिवस के निमित्त इन ७ वर्षों में आश्रम द्वारा हुए कार्यों का सिंहावलोकन किया। असम की स्त्री शक्ति का गौरव करते हुए अमलप्रभा बाईदेव का स्मरण स्वाभाविक था।

श्री हनुमानदास हिम्मतसिंहका, जिनका आतिथ्य हमें भागलपुर में आने के दिन से उपलब्ध है, (उनके निवास पर ही हम लोग ठहरे हुए हैं), बाबा के शिक्षण-सम्बन्धी विचारों से प्रेरित होकर जीवन-शिक्षण की योजना करने में आतुर हैं। उन्होंने बाबा से इस नये विद्यालय का नाम पूछा।

बाबा ने 'सा विद्या या विमुक्तये' कहकर 'मुक्ति विद्यालय' नाम दिया।

६ मार्च :

नगर के कुछ व्यापारी बाबा के पास शाम को बैठे। बाबा ने कहा, 'राहत के कामों में करुणाप्रेरित होकर भारत में और दुनिया में हमेशा दान दिया जाता रहा है। गरीब दुःखी को कुछ दिया यह काफी नहीं। सोचना यह होगा कि उसकी गरीबी कैसे मिटे। मुझे महाजनों के सहयोग की कीमत है, धन ले लेने से ही अहिंसक क्रांति नहीं होगी, नयी समाज-रचना में उनका हृदय मुझे चाहिए।"

७ मार्च :

श्री हेलम टेनिसन शाम को जैसे पहुंचे, वैसे सीधे बाबा के पास आये। प्रणाम (भारतीय पद्धति से) करके बोले, "बाबा मैं १५ वर्ष पूर्व आपके साथ पदयात्रा में रहा था।" टेनिसन बंगला में बोले। वह सन् '४६ से '४८ तक, आज के 'पूर्व पाकिस्तान' के देहातों में रह चुके हैं।

८ मार्च :

आज सुबह और शाम मुलाकात के दोनों समय श्री टेनिसन को दिये। उन्होंने चर्चा टेप-रिकार्ड करनी चाही। बाबा ने मना किया और कहा कि, "ये चर्चाएँ हृदय-से-हृदय जोड़ने के लिए हैं। चैतन्य से-चैतन्य को जो प्रेरणा मिलनी होगी, वह मिलेगी। आज तक दुनिया में बड़े आध्यात्मिक विचार इसी माध्यम से फैलते आये हैं।"

टेनिसन क्वेकर पंथ के हैं। बाबा ने कहा, "क्वेक शब्द का अर्थ है कंपन। भक्त भक्ति में भावविभोर होकर कंपन की स्थिति में आ जाता है, उसे संस्कृत में विप्र कहा है। वेपन का अर्थ भी कंपन है। आप क्वेकर हैं और मैं विप्र हूं।" टेनिसन ने बताया कि ३० जनवरी को इसी *वर्ष गांधी-जन्म-शताब्दी* के निमित्त लंदन के बड़े गिरजा में हम लोगों ने जो प्रार्थना की, उस समय बापू की प्रिय धुन "रघुपति राघव..." गायी गयी थी। चर्चा के भिन्न-भिन्न विषय थे। ग्रामदान से *उत्पादन बढ़े इसमें* टेनिसन की विशेष रुचि थी। ब्रह्मचर्य और संतति-संयम समझाते हुए बाबा ने कहा कि, "दम्पति-सम्बन्ध एक पवित्र सम्बन्ध है। सोचना होगा कि कोई किसान बीज बोकर उसे उगने न देना चाहेगा?" टेनिसन ने फिर पूछा, "क्या पति-पत्नी प्रेम के लिए शारीरिक सम्बन्ध जरूरी *नहीं?*" बाबा ने उत्तर में शुद्ध प्रेम की भूमिका समझायी।

९ मार्च :

आज गुरुद्वारा गये। भागलपुर में २५-३० सिख परिवार हैं। स्वागत में भूदान की सराहना करते हुए एक भाई ने कहा, "मैंने कालेज की पढ़ाई में सर्वोदय-विचार का जब अध्ययन किया था तभी मुझे लगा कि भूदान-आन्दोलन देश की एक महान सेवा है।" बाबा बोले, "गुरु नानकजी ने नाम-स्मरण, कीर्तन, और बांटकर खाने का उपदेश दिया है। वही काम बाबा कर रहा है। हम-आप दूर नहीं हैं।"

*संथाल परगना से जिला ग्रामदान-*संयोजक श्री लक्ष्मीनारायण आये और अपने जिले के लिए तीन दिन, २७ से २९ मार्च तक का कार्यक्रम ले गये।

शाम की चर्चा में एक ने पूछा, "सात्विक संतुलित आहार कैसा होगा?" बाबा ने मांस, मादक द्रव्य और मिर्च-मसालों को निषिद्ध बताया। कहा, "*मनु ने मांस शब्द की व्याख्या ही की है*—मा=मुझे, स=वह, यानी जिसका मांस मैं खा रहा हूं, वह मुझे खायेगा।" फिर पूछने पर कहा, "लहसुन-प्याज भी जरूरत पड़ने पर औषध के रूप में *ही लेना ठीक है।*"

१० मार्च :

श्री हनुमानदासजी के पूछने पर कहा, "*मुक्ति विद्यालय में शुरू में* पारपरिक परखा दिया जाय और बाद में एक तकुए का अंबर।"

१२ मार्च :

सर्वश्री मनमोहन चौधरी, राधाकृष्ण व *नारायण देसाई आये। सर्व सेवा संघ-प्रबंध-*समिति की सांगली में हुई बैठक की रिपोर्ट दी। रात को राधाकृष्ण भाई जरूरी काम से चले गये।

आज सविभागीय आयुक्त श्री कश्यपजी *सपत्नीक मिलने आये थे। अभी तक छुट्टी* पर थे। बताया कि वर्षों पहले भूदान-यात्रा के समय मैं सहरसा में कलक्टर था, वहीं आपसे भेंट हुई थी। बाद में श्री कृष्णराजजी और श्री रामजी सिंह उनके दफ्तर में जाकर मिले और तय हुआ कि बाबा के बांका पड़ाव पर बांका अनुमंडल के सब सरकारी सेवकों को *बुलाया जाय और अब तक हुए ग्रामदान-कार्य* का लेखा-जोखा हो। उस समय आयुक्त महोदय भी पहुँचेंगे। संथाल परगना में भी वे दौरे पर जा रहे हैं, वहां भी जिला स्तरीय अधिकारियों के साथ ग्रामदान-प्राप्ति अभियान की बात करेंगे।

१३ मार्च :

धनबाद जिलादान का समाचार लेकर वहां के खादी भंडार के व्यवस्थापक श्री हरि-शंकरजी, जो जिला ग्रामदान-समिति के संयोजक भी हैं, अपने अन्य सहयोगियों के साथ आये। निवेदन किया कि समर्पण-समारोह के निमित्त धनबाद आने का कार्यक्रम बने। *बाबा ने कहा, "वहां तो हम जरूर आना* चाहते हैं। वहां रहकर बंगाल के काम को भी प्रेरणा दी जा सकेगी।" उस समय श्री ध्वजाप्रसाद साहू भी उपस्थित थे।

सर्व सेवा संघ के साथियों से दिन में दो बार चर्चाएं हुईं।

शाम को भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति डा० विश्वेश्वरप्रसाद आये। बाबा ने इस तरफ ध्यान खींचा कि विश्वविद्यालय की तरफ से क्यों न एक व्यक्ति नियुक्त किया *जाय, जो आचार्यकुल के संयोजन का काम* करे। उसे पूरा समय इस कार्य में देना होगा। जगह-जगह दौरा करना होगा।

१४ मार्च :

प्रसिद्ध वयोवृद्ध प्राकृतिक उपचारक श्री महावीरप्रसाद पोद्दार मिलने आये। बाबा आजकल आमतौर पर मिलनेवालों से उम्र पूछते हैं, और अपेक्षा रखते हैं कि १०० साल जीने की हर एक को आकांक्षा क्यों न हो? महावीरप्रसादजी ने पूछा, "यदि स्वास्थ्य अच्छा रहा तो उम्र लम्बी होना जरूरी है क्या?" बाबा ने कहा, "उम्र तो लिखी है उतनी रहेगी। परन्तु जो लम्बी उम्र जीते हैं, यानी ८० के पार जाते हैं उनके *पास जाकर उनके आहार-विहार का अध्ययन* करना वैज्ञानिक होगा।" सातारा (महाराष्ट्र) के श्री सातवलेकर-दंपति को इस सम्बन्ध में एक आदर्श बताया।

एक गरीब छात्र के प्रश्न के उत्तर में बाबा ने कहा, "रात को जल्दी सोकर आठ घण्टा पूरी नींद लेना। इससे सुबह के समय *जो ताजे दिमाग से अध्ययन होगा,* वह थोड़ा अध्ययन भी ज्यादा पुष्ट होगा। हर रोज पाँच-सात मील पैदल चलना चाहिए। ये दोनों काम बिना खर्च के हो सकते हैं। शरीर और बुद्धि, दोनों का लाभ होगा।"

श्री जोनाथन एक महिला के साथ बी० बी० सी० लंदन की तरफ से भारत में गांधी-शताब्दी के निमित्त फिल्म तैयार करने आये हैं। उनका मानना है कि विनोबाजी गांधी-→

सिरोही (राज०) जिले में ग्रामदान-अभियान

राजस्थान में ग्रामदान-अभियान का तीसरा चरण सिरोही जिले के पिंडवाड़ा प्रखण्ड में पूर्ण हुआ। गुजरात सर्वोदय मण्डल के अध्यक्ष डा० द्वारकादास जोशी की अध्यक्षता में सरूपगंज में आयोजित १५, १६ मार्च के दो दिन के शिविर में प्रशिक्षित होकर कार्यकर्ताओं की २७ टोलियाँ अभियान के लिए गयीं। कुल ६७ गाँवों में कार्यकर्ता पहुँच पाये, और ३० ग्रामदान प्राप्त हुए। शिविर और अभियान में डा० दयानिधि पटनायक, श्री सिद्धराज ढड्ढा, श्री बद्रीप्रसाद स्वामी, आदि प्रमुख सर्वोदय-नेताओं का मार्गदर्शन एवं सहयोग मिला।

उत्तर प्रदेशदान-अभियान १५ मार्च तक की उपलब्धियाँ

पू० विनोबाजी की उपस्थिति में बलिया जिलादान-समारोह के अवसर पर उत्तर प्रदेश के सर्वोदय-कार्यकर्ताओं द्वारा किये गये "उत्तर प्रदेश-दान" के संकल्प की पूर्ति की दिशा में प्रदेश के सभी रचनात्मक कार्यकर्ताओं में ग्रामदान अभियान की त्वरा दिखाई पड़ने लगी है। फरवरी के अन्त तक १३,५४६ ग्रामदान और ७१ प्रखण्डदान हुए थे। उसके बाद चलाये गये अभियानों की फलश्रुति, जो १५ मार्च तक हमारे कार्यालय में प्राप्त हुई है, उसके अनुसार गाजीपुर में १२६, फैजाबाद में १२६, आजमगढ़ में ३४४, सहारनपुर में १०६, मेरठ में २५, झाँसी में १२, गोरखपुर में १०० और अलीगढ़ में ५५ ग्रामदान हुए। देवकली (गाजीपुर), बीकापुर (फैजाबाद), बिलरियागंज और महराजगंज (आजमगढ़) का प्रखंडदान पूर्ण हुआ। अतएव १५ मार्च, '६६ तक १४,४४३ ग्रामदान और ८३ प्रखंडदान उत्तर प्रदेश में हुए हैं।

—कपिल भाई

अलीगढ़ जिले में द्वितीय ग्रामदान-अभियान

अलीगढ़ जिले का ग्रामदान अभियान हाथरस विकास क्षेत्र में ९ मार्च से १५ मार्च तक चलाया गया। अभियान की पूर्वतैयारी के दौरान श्री चिरंजीलाल बागला डिग्री कालेज के प्रिंसिपल डा० के० एस० सिंहल की अध्यक्षता में आर्यसमाज मंदिर हाथरस में एक शिविर हुआ। शिविर की व्यवस्था में स्थानीय नागरिकों का सराहनीय सहयोग रहा।

शिविर में लगभग ७० कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। शिविर की कार्यवाही प्रिंसिपल डा० के० एस० सिंहल की अध्यक्षता में हुई।

श्री कामतानाथ गुप्त आदि कई सर्वोदय-विचारकों ने पधारकर शिविर को सफल बनाया। दो दो कार्यकर्ताओं की २६ टोलियाँ पूरे क्षेत्र के १४२ गाँवों में घूमीं। ५४ ग्रामदान प्राप्त हुए।

—नरेन्द्र बहादुर सिंह

उ० प्र० के जौनपुर जिले में प्रथम प्रखण्डदान

तार से प्राप्त सूचनानुसार १७ मार्च को जौनपुर का केराकत प्रखण्डदान घोषित हुआ।

मुरादाबाद में प्रखण्डदान-अभियान

गंगोत्री और हसनपुर प्रखण्डों में ७ से १३ मार्च '६६ तक अभियान चलाये गये। १५० कार्यकर्ताओं ने अभियान में भाग लिया। २४१ गाँवों में से १२४ ग्रामदान प्राप्त हुए। १६ मार्च '६६ की सूचना के अनुसार दोनों

सर्वश्री डा० रामजी सिंह, अध्यक्ष तरुण-शांति-सेना, जागेश्वर मंडल, अध्यक्ष जिला पंचायत परिषद्, अतुल्य बाबू, जिला शिक्षा अधिकारी, गिरधर बाबू आदि सतत प्रखंडों में जाकर प्राप्ति-कार्य को जाग्रत करते रहते हैं। क्षेत्र में करीब ३० संस्थागत कार्यकर्ता हैं। मदद में सब शिक्षक सरकारी सेवक और पंचायत के लोग हैं।●

प्रखण्डों का प्रखण्डदान पूरा करने की दृष्टि से अभियान जारी है।

ग्रामस्वराज्य-प्रचार पदयात्रा

गत १८ मार्च से हरियाणा के हिसार जिले में *सर्वश्री रामेश्वर शास्त्री तथा हरलाल* साहू ने ग्रामस्वराज्य के विचार-शिक्षण के लिए ६ माह की अखण्ड पदयात्रा शुरू की। *हिसार से ८ मील दूर स्थित ग्राम लाड़वा से* यात्रा का समारोहपूर्वक शुभारम्भ हुआ।

तमिलनाड में शंकरराव देव की पदयात्रा

तमिलनाड में भूमि-समस्या के कारण मालिक-मजदूरों के आपसी सम्बन्ध बिगड़ गये हैं। घनी आबादी और बड़े बड़े जमींदारों के कारण मजदूरों की संख्या अधिक है, फलस्वरूप विषमता बढ़ी है। इसके अलावा बड़े-बड़े मन्दिरों के नाम पर हजारों एकड़ भूमि है। तंजावर जिले की स्थिति तो और भी विकट है। इस परिस्थिति का लाभ कम्युनिस्ट उठा रहे हैं और असन्तोष की ज्वाला को भड़का रहे हैं। इन्हीं परिस्थितिजन्य समस्याओं को प्रत्यक्ष समझने और कुछ हल निकालने और तंजावर में जिलादान का वातावरण बनाने के लिए ११ मार्च से ३० मार्च तक तंजावर जिले में शंकरराव देव पदयात्रा कर रहे हैं। (स०प्रे०स०)

तेलंगाना में प्रो० गोरा की शान्ति-यात्रा

स्वतंत्र तेलंगाना राज्य की माँग को लेकर जो अशान्ति वहाँ हुई, उस अशान्ति-शमन के लिए सुप्रसिद्ध नास्तिक कार्यकर्ता प्रो० गोरा ने अपने सहयोगियों के साथ तीन सप्ताह की शान्ति-यात्रा कृष्णा, नलगोंडा और वरंगल जिले के देहातों में की।

अप्पासाहब पटवर्धन की चलनशुद्धि पदयात्रा

इन दिनों नागपुर-विदर्भ क्षेत्र में अप्पासाहब पटवर्धन की चलनशुद्धि-प्रचारार्थ पदयात्रा चल रही है। २४ मार्च को नागपुर जिले से वर्धा जिले में उनकी पदयात्रा का शुभारम्भ होगा।

→मार्ग पर महत्त्वपूर्ण शोधकार्य कर रहे हैं, इसलिए उनके काम का फिल्म में जरूरी स्थान है। बाबा से मिलने जब वे आये थे तो मजेदार प्रश्न पूछा—"मान लें, आपकी विनोबा से मुलाकात हो, तो आप क्या प्रश्न पूछेंगे?" इन दोनों का झुकाव ईश्वर खोज की ओर दिखा। वे लंदन से श्री सतीशकुमार *का परिचय-पत्र भी लाये थे।*

बिहारदान के बाद की व्यूह-रचना का शुभारम्भ

सन् '७२ तक ग्राम-प्रतिनिधित्व का स्वप्न साकार करने हेतु लोक-शिक्षण की एकाग्र-साधना के लिए कार्यकर्ताओं का संकल्प

आचार्य राममूर्ति की अपील पर ३७ कार्यकर्ताओं का तत्काल निश्चय

श्री ध्वजाबाबू द्वारा संस्था की ओर से पूर्ण सहयोग का आश्वासन

हाजीपुर (बिहार)। प्रदेश के प्रमुख कार्यकर्ताओं तथा उत्तर प्रदेश, नेपाल से आये हुए कुछ कार्यकर्ताओं के राष्ट्रीय गांधी शताब्दी समिति के तत्त्वावधान में आयोजित एक सप्तदिवसीय शिविर में 'प्रदेशदान' के बाद के कार्यक्रमों पर विस्तार से चर्चाएँ हुईं। शिविर में भाग लेनेवाले कुल ११७ कार्यकर्ताओं ने यह महसूस किया कि चूँकि बिहारदान की मंजिल करीब है, इसलिए 'प्रदेशदान' के बाद लोक-शिक्षण और ग्राम-संगठन के आधार पर ग्राम-प्रतिनिधित्व के लिए पूर्वतैयारी का शुभारम्भ करने का वक्त आ गया है। इस काम के लिए अपने को समर्पित करनेवाले सक्षम कार्यकर्ताओं के लिए आचार्य राममूर्ति द्वारा अपील किये जाने पर तत्काल ३७ कार्यकर्ताओं ने अपना संकल्प घोषित किया। जिस उत्साहवर्धक और प्रेरक वातावरण में यह शुभारम्भ हुआ, उससे आशा बँधती है कि यह क्रम तेजी से आगे बढ़ेगा।

श्री ध्वजा बाबू ने यह आश्वासन दिया कि लोक-शिक्षण का काम करने के लिए संकल्पित बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ के कार्यकर्ताओं को संघ की ओर से पूरी अनुकूलता प्रदान की जायगी।

(शिविर की पूरी रिपोर्ट अगले अंक में पढ़ें)।

चन्द्रपुर जिले में २६ ग्रामदान

महाराष्ट्र के चन्द्रपुर जिले की पदयात्रा में ग्रामदान-प्राप्ति का कार्य २२ फरवरी से ३ मार्च तक वारोरा प्रखण्ड में हुआ। फलस्वरूप २६ ग्रामदान मिले, ६० रुपये की साहित्य-बिक्री हुई। (स०प्रे०स०)

जलगाँव जिले में किसान-शिविरों का आयोजन

जलगाँव जिला सर्वोदय-मण्डल के संयोजक श्री नन्दलाल काबरा ने जिले के विभिन्न स्थानों पर किसान शिविरों का आयोजन किया। पाचोरा तहसील के वरखेड़ी के शिविर में डेढ़-दो सौ किसान भाइयों ने भाग लिया। नगरदेवले, लोहटार, पिपलगाँव हरेश्वर में भी शिविर हुए। इन किसान-शिविरों में मराठी साप्ताहिक "साम्ययोग" के सम्पादक श्री वसन्तराव बोबटकर, एम० एल० ए० श्री सुपडू पाटील आदि कार्यकर्ताओं का भी मार्गदर्शन मिला। (स०प्रे०स०)

छतरपुर में कार्यकर्ता नवसंस्कार शिविर

मध्यप्रदेश गांधी-स्मारक निधि तथा प्रदेश की अन्य रचनात्मक संस्थाओं के कार्यकर्ताओं का एक नवसंस्कार शिविर छतरपुर में प्रदेशीय गांधी-स्मारक निधि के तत्त्वावधान में सम्पन्न हुआ। शिविर में करीब १२० कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। प्रदेशदान के संदर्भ में ग्रामस्वराज्य के काम करने के लिए अधिक क्षमता अर्जित करने और प्रदेश में नयी समाज-रचना की ठोस बुनियाद का निर्माण करने की दृष्टि से कार्यकर्ताओं का यह नवसंस्कार शिविर बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा। शिविर में मध्यप्रदेश सर्वोदय-मण्डल के अध्यक्ष श्री विश्वनाथ खोड़े, म० प्र० गांधी-स्मारक निधि के मंत्री श्री काशिनाथ त्रिवेदी, अ०भा० शांति सेनामण्डल के मंत्री श्री नारायण देसाई और केन्द्रीय गांधी-स्मारक निधि के मंत्री श्री देवेन्द्र गुप्त आदि ने मार्गदर्शन किया।

जमशेदपुर में काकासाहब कालेलकर

गांधी के विचारों के आधार पर जागतिक और राष्ट्रीयस्तर पर प्रयोग करने की आवश्यकता स्पष्ट है। स्वतंत्रता की रक्षा के लिए तथा आर्थिक, सामाजिक जीवन में क्रान्ति करने के लिए गांधी-विचार और पद्धति पर अध्ययन, मनन और चिन्तन अनिवार्य है। इस दृष्टि से गांधी-शान्ति-प्रतिष्ठान केन्द्र, जमशेदपुर के तत्त्वावधान में एवं जमशेदपुर गांधी-जन्म-शताब्दी समिति के सहयोग से १२ मार्च से १५ मार्च तक नगर के विभिन्न सेवा-संगठनों एवं शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा व्याख्यानमालाएँ आयोजित की गयीं। इन अवसरों पर विद्वान मनीषी एवं तत्त्व-चिंतक श्री काकासाहब कालेलकर मुख्य अतिथि एवं वक्ता रहे। —मु० अयूब खाँ

जीवन साहित्य

वैष्णव जन अंक, सम्पादक: हरिभाऊ उपाध्याय, यशपाल जैन, प्रकाशक: सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली, संयुक्तांक: जनवरी-फरवरी '६९, पृष्ठ: १६०, वार्षिक मूल्य: ५ रुपये। इस अंक का मूल्य: २ रु० ५० पैसे।

विगत तीस वर्षों से प्रकाशित होनेवाले "जीवन साहित्य" ने कुछ ऐसे विशेषांक निकाले हैं, जिनका महत्त्व भविष्य में संदर्भ के लिए बड़ा उपयोगी होगा। गांधी जन्म-शताब्दी के इस वर्ष में "वैष्णव जन अंक" प्रकाशित कर मण्डल ने स्तुत्य कार्य तो किया ही है, साथ ही महात्मा गांधी के दार्शनिक जीवन का सार संकलित कर अपनी भावांजलि भी अर्पित की है, जो कि सर्वथा उपयुक्त ही है। देश के वरिष्ठतम विद्वानों एवं प्रसिद्ध लेखकों के लेखों से सुसज्जित यह अंक, भाषा और शैली की दृष्टि से भी, काफी सुन्दर बन पड़ा है। लेखों का स्तर, सामग्री तथा प्रकाशन की दृष्टि से इतना अच्छा अंक निकालने के लिए सम्पादकों को बधाई।

वार्षिक शुल्क: १० रु०; विदेश में १६ रु०, या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति: २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इंडियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ , अंक : २७

सोमवार ७ अप्रैल, '६९

अन्य पृष्ठों पर

स्वाध्याय का अर्थ प्रायः आध्यात्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करना समझते हैं, लेकिन उसका वास्तविक उद्देश्य है अपनी सब चीजों को अलग करके स्वयं को परखना, अपनी परीक्षा करना। इसके लिए मदद में कोई भी ग्रन्थ लिया जा सकता है। लेकिन होना यह चाहिए कि हम अपने को परख रहे हैं, अपनी 'स्टडी' कर रहे हैं, अपनी भावनाएँ आदि को देख रहे हैं। —विनोबा

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४१८५

पूर्व का संदेश

[दिल्ली में ता० २-४-४७ के दिन एशियाई कान्फरेन्स की आखिरी बैठक में भाषण करते हुए गांधीजी ने बताया कि पश्चिम को ज्ञान की रोशनी पूर्व से ही मिली है। इस सिलसिले में उन्होंने आगे कहा :]

इन विद्वानों में सबसे पहले जरथुस्त हुए थे। वे पूरब के थे। उनके बाद बुद्ध हुए, जो पूरब के—हिन्दुस्तान के—थे। बुद्ध के बाद कौन हुआ ? ईसु ख्रिस्त। वे भी पूरब के थे। ईसु से पहले मोजेज हुए, जो फिलस्तीन के थे, अगरचे उनका जन्म मिस्र में हुआ था। ईसु के बाद मुहम्मद हुए। यहाँ मैं राम, कृष्ण और दूसरे महापुरुषों का नाम नहीं लेता। मैं उन्हें कम महान नहीं मानता। मगर साहित्य जगत उन्हें कम जानता है। जो हो, मैं दुनिया के ऐसे किसी एक भी शख्स को नहीं जानता, जो एशिया के इन महापुरुषों की बराबरी कर सके। और तब क्या हुआ ! ईसाइयत जब पश्चिम में पहुँची, तो उसकी शकल बिगड़ गयी। मुझे अफसोस है कि मुझे ऐसा कहना पड़ता है। इस विषय में मैं और आगे नहीं बोलूँगा।...जो बात मैं आपको समझाना चाहता हूँ, वह एशिया का पैगाम है। उसे पश्चिमी चश्मों से या एटम-बम की नकल करने से नहीं सीखा जा सकता। अगर आप पश्चिम को कोई पैगाम देना चाहते हैं तो वह प्रेम और सत्य का पैगाम होना चाहिए।...जमहूरियत के इस जमाने में, गरीब से-गरीब की जागृति के इस युग में, आप ज्यादा-से-ज्यादा जोर देकर इस पैगाम का दुनिया में प्रचार कर सकते हैं। चूँकि आपका शोषण किया गया है, इसलिए उसका उसी तरह बदला चुकाकर नहीं, बल्कि सच्ची समझदारी के जरिये आप पश्चिम पर पूरी तरह से विजय पा सकते हैं। अगर हम सिर्फ अपने दिमागों से नहीं, बल्कि दिलों से भी इस पैगाम के मर्म को, जिसे एशिया के ये विद्वान हमारे लिए छोड़ गये हैं, एकसाथ समझने की कोशिश करें और अगर हम सचमुच उस महान पैगाम के लायक बन जायँ, तो मुझे विश्वास है कि पश्चिम को पूरी तरह से जीत लेंगे। हमारी इस जीत को पश्चिम खुद भी प्यार करेगा।

पश्चिम आज सच्चे ज्ञान के लिए तरस रहा है। अणु-बमों की दिन-दुनी बढ़ती से वह नाउम्मीद हो रहा है। क्योंकि अणु-बमों के बढ़ने से सिर्फ पश्चिम का ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया का नाश हो जायेगा; मानो बाइबिल की भविष्यवाणी सच होने जा रही है और पूरी कयामत होनेवाली है। अब यह आपके ऊपर है कि आप दुनिया को नीचता और पापों की तरफ उसका ध्यान खींचें और उसे बचायें।...यही विरासत है, जो मेरे और आपके पुरखों से एशिया को मिली है।

मो० क० गांधी

"हरिजन सेवक" : २०-४-'४७

सर्वसम्मति या सर्वानुमति निर्णय तक पहुँचने की पद्धति

[आन्ध्र प्रदेश के तिरुपति नगर में आगामी २३, २४, २५ अप्रैल, '६६ को आयोजित होनेवाले सर्व सेवा संघ के अधिवेशन में संघ के अध्यक्ष का चुनाव होगा। सर्व सेवा संघ के विधान और लोकनीति के विचार के अनुसार चुनाव सर्वसम्मति या सर्वानुमति से ही होना चाहिए। लेकिन सर्वसम्मति या सर्वानुमति तक पहुँचने की पद्धति क्या हो ? यह एक चिंतन का विषय है। यहाँ हम श्री जयप्रकाश नारायण की पुस्तक 'लोक-स्वराज्य' से इस विषय पर प्रकाश डालनेवाला एक अंश प्रकाशित करते हुए कार्यकर्ता साथियों के विचार आमंत्रित कर रहे हैं। समय कम है, इसलिए अपने सुझाव जल्द भेजने की कृपा करें, ताकि अधिवेशन से पहले अंकों में उन्हें प्रकाशित किया जा सके। —सं०]

उम्मीदवारी के लिए नाम मांगे जायें और प्रस्तावित तथा समर्थित नामों की सूची बना दी जाय और हो सके, तो एक मन्दे-से बोर्ड पर लगा दी जाय। यदि दो नामों से अधिक का प्रस्ताव न हो, तो आपसे-आप निर्वाचित प्रतिनिधि बन जाते हैं। अन्य सूची में हर नाम पर मतदान होना चाहिए। यह मतदान हाथ उठाकर होना चाहिए। हर उम्मीदवार द्वारा प्राप्त मतों को बोर्ड पर दर्ज किया जाना चाहिए। दो से अधिक उम्मीदवारों की स्थिति में ऐसा मतदान बार-बार होना चाहिए और सबसे कम मत पानेवाले उम्मीदवारों को छाँटते जाना चाहिए।

यह चुनाव हो जाने के बाद निर्वाचन-परिषद् बुलानी चाहिए। निर्वाचन-परिषदों को निर्वाचन के लिए उम्मीदवार खड़े करने चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित पद्धति अपनायी जा सकती है :

पहले उम्मीदवारों के नाम मांगे जायें और तब हर प्रस्तावित और समर्थित नाम पर वोट लिये जायें। एक निर्धारित प्रतिशत—उदाहरणतः ३० प्रतिशत—से अधिक मत पानेवाले व्यक्ति विधान-सभा या लोकसभा के लिए उस निर्वाचन-क्षेत्र से उम्मीदवार घोषित किये जाने चाहिए।

मेरा विचार है कि लोकतंत्र की चरितार्थता के लिए—यह लोकतंत्र चाहे किसी भी प्रकार का क्यों न हो—इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि उसकी प्रक्रियाओं में जितना कम मत-विभाजन हो, उतना ही अच्छा है। अधिक स्पष्ट शब्दों में, वह जहाँ तक सम्भव हो सके, एकतामूलक हो। इसलिए मेरा आग्रह है कि विविध शिक्षणात्मक और वैधानिक उपायों द्वारा एक सीट के लिए एक उम्मीदवार से ज्यादा न खड़े करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। क्योंकि आखिरकार, अंतिम रूप में पूरे निर्वाचन-क्षेत्र का प्रतिनिधित्व एक व्यक्ति ही करता है, उम्मीदवारों की संख्या चाहे जितनी हो और चुनाव की विधि कोई भी क्यों न हो।....यदि निर्वाचन-परिषदों को केवल एक ही उम्मीदवार चुनने के लिए राजी किया जा सके, तो यह असंगति और व्यर्थ की उत्तेजना तथा बल और पैसे की बर्बादी बचायी जा सकती है। यदि कुछ क्षेत्रों में यह व्यावहारिक न हो तो ऊपर बताये ढंग से चुने गये व्यक्तियों के नाम उम्मीदवारों के रूप में घोषित कर दिये जायें और तब अंतिम निर्वाचन निम्नलिखित ढंग से किया जाय।

निर्वाचन-परिषद् द्वारा चुने गये उम्मीदवारों के नाम सम्बद्ध निर्वाचन क्षेत्र के सभी 'ग्रामसभाओं' के पास भेज दिये जायें। फिर हर सभा ग्राम बैठक का आयोजन करे, जिसमें हर उम्मीदवार के नाम पर मत लिये जायें। उसके बाद निम्नलिखित दो विकल्पों में एक अपनाया जाय :

(१) सबसे अधिक संख्या में वोट पानेवाले उम्मीदवार के बारे में घोषणा कर दी जाय कि यह 'ग्रामसभा' अपने प्रतिनिधि के रूप में इस मनुष्य को उच्च 'सभा' में भेजना चाहती है। ऐसे सब व्यक्तियों में से, जिसे सभी ग्रामसभाओं में सबसे अधिक वोट मिले, उसे उस निर्वाचन-क्षेत्र से विधानसभा या लोकसभा (जिसके लिए भी चुना हुआ हो) का सदस्य घोषित किया जाय।

(२) विकल्पतः हर उम्मीदवार द्वारा हर ग्रामसभा की साधारण सभा में पाये गये वोटों को दर्ज कर लेना चाहिए। तब प्रत्येक उम्मीदवार द्वारा पूरे निर्वाचन-क्षेत्र की विभिन्न ग्रामसभाओं की बैठकों में प्राप्त वोटों को जोड़ लिया जाय। इस प्रकार सबसे अधिक मत पानेवाला उम्मीदवार उस निर्वाचन-क्षेत्र का सदस्य हो जाता है।●

आन्दोलन के समाचार

उत्तराखण्ड सर्वोदय-कार्यकर्ता सम्मेलन

पर्वतीय ग्राम-स्वराज्य मण्डल, जयन्ती सालम, जिला अल्मोड़ा में ७ से ११ मार्च तक श्रम-शिविर सम्पन्न हुआ, जिसमें १६ कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। १२ से १५ मार्च तक उत्तराखण्ड सर्वोदय-कार्यकर्ता सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इसी अवसर पर गांधी-शताब्दी शान्ति-सेना शिविर का भी आयोजन अ० भा० शान्ति-सेना मण्डल के प्रशिक्षक श्री अमरनाथ भाई के मार्गदर्शन में किया गया। इस शिविर में १० ग्रामीण बहनों और २० भाइयों ने भाग लिया।

इस सम्मेलन और शिविर द्वारा हजारों भाई-बहनों के पास गांधीजी का सर्वोदय-विचार पहुँचा है। सर्वश्री दिवान सिंहजी, सुन्दरलालजी, देवी पुरस्कार पांडे, राधाबहन तथा शान्तिबहन गुहरानी ने सालम की जनता से जिलादान के आन्दोलन में भाग लेकर पूरे जिले का नेतृत्व करने की अपील की।

—गोविन्द सिंह कुंजवाल

भरुच जिले में ग्रामदान-अभियान

बड़ौदा, १८ मार्च। गुजरात सर्वोदय-मण्डल के अन्तर्गत २६ मार्च से ५ अप्रैल तक भरुच जिले की राजपीपला तहसील में ग्रामदान-अभियान आयोजित किया जा रहा है। उड़ीसा के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक और सर्वोदय-सेवक डा० दयानिधि पटनायक शिविर एवं अभियान का मार्गदर्शन करेंगे। अभियान में लगभग १०० कार्यकर्ता भाग लेंगे। (सप्रेस)

अमरावती जिले में साहित्य-प्रचार

अमरावती जिले के वरुड़ और नांदगांव प्रखण्ड में कुल १३७६ रुपये की साहित्य-बिक्री हुई। 'साम्ययोग' पत्रिका के २५१ ग्राहक बनाये गये।

एक-एक दिन

ग्रामदान ग्रामस्वराज्य का 'नमक' है। इसी रूप में हम लोगों ने शुरू से ग्रामदान को देखा है। कभी किसीने यह नहीं माना कि ग्रामदान से हम अपनी यात्रा के किसी ऐसे मुकाम पर पहुँच जायेंगे जहाँ इतमीनान के साथ बैठकर आराम किया जा सकेगा। इसीलिए ग्रामदान के बाद प्रखण्डदान, प्रखण्डदान के बाद जिलादान, और जिलादान के बाद राज्यदान की बात आयी। बात सिर्फ आयी ही नहीं, बल्कि जैसे-जैसे बात बनती गयी, वह बढ़ती गयी और हम आन्दोलन के नये क्षितिज देखते गये। ऐसे मित्रों की कमी नहीं थी जो ग्रामदान के बाद रुक जाना चाहते थे, और ग्रामदानी गाँवों को विकास और रचनात्मक कार्य का नमूना बनाकर ही आगे बढ़ना चाहते थे। उनको बहुत निराशा हुई जब ग्रामदान की हमारी गाड़ी रुकी नहीं, और एक के बाद दूसरे 'दान' की ओर बढ़ती ही चली गयी। वे यही कहते रहे : 'अब कब करोगे ?'

अगर हम ग्रामदान पर रुक गये होते तो क्या होता ? आज हम कहाँ होते ? गाँव जीने मरने की इकाई भले ही हो, लेकिन विकास की इकाई प्रखण्ड है, प्रशासन की इकाई जिला है, और राजनीति की इकाई स्वयं राज्य है। देश की गतिविधि को समझनेवाला कौन ऐसा है जो मानेगा कि राज्य की राजनीति जैसी है वैसी ही चलती रहे, लेकिन जिले का प्रशासन बदल जाय, और प्रखण्ड में विकास की रीति-नीति बदल जाय ? जाहिर है कि जबतक राज्य की राजनीति नहीं बदलेगी तबतक जिले या प्रखण्ड में कोई ठोस परिवर्तन करना सम्भव नहीं है। बल्कि कई काम तो ऐसे हैं जो तभी होंगे जब दिल्ली से परिवर्तन होगा।

क्या हम ग्रामदान के अभियान में इसीलिए लगे थे कि कुछ गाँवों में विकास और निर्माण के कुछ छोटे-मोटे काम हो जायँ ? अगर उतना ही करना होता तो क्रान्तिकारी नारोंवाले एक तूफानी आन्दोलन की क्या जरूरत थी ? ग्रामदान में तो हमने कुछ दूसरा ही दृश्य देखा था। वह दृश्य क्या था ? एक नये समाज का। कैसा समाज ?

ऐसा समाज जिसमें इनसान इनसान की तरह रह सके। आज का समाज ऐसा नहीं है; बल्कि ऐसा है जिसमें करोड़ों लोग चाहते हुए भी इनसान की जिन्दगी नहीं बिता सकते। सारी व्यवस्था ही सड़ गयी है। उसको जड़ से बदले बिना सबके विकास का रास्ता निकल ही नहीं सकता। समाज का आमूल परिवर्तन शुरू से ग्रामदान का संकल्प रहा है।

लेकिन संकल्प की पूर्ति कैसे होगी ? जिन जिलों का 'दान' हो चुका है, उनमें जनता हिल-डुल क्यों नहीं रही है ? क्या उसके हिले बिना भी परिवर्तन हो जायगा ? क्यों ग्रामदान का कार्यकर्ता जिलादान के बाद भी खोया हुआ है, और ग्रामदानी गाँवों के लोग सोये हुए हैं ? क्यों उनके कदम नहीं उठते ? कब उठेंगे ? भूमिवाला, पूँजीवाला, मजदूर, कार्यकर्ता, ये सब क्या सोच रहे हैं ?

कारण चाहे जो हो, लेकिन आज जो स्थिति है वह आगे के लिए अच्छी नहीं है। हम कीमती वक्त खो रहे हैं। ग्रामदान हो चुका, राज्यदान दूर नहीं है। ग्रामस्वराज्य का कदम नहीं उठ रहा है। दोनों के बीच की खाली जगह (वैकुअम) का बहुत बुरा असर हम और जनता, दोनों पर पड़ रहा है। इस 'वैकुअम' को जल्द-से-जल्द भरना चाहिए।

ग्रामदान समाज की चेतना को कई बिन्दुओं पर छूने में सफल हुआ है। वह सफलता हमारी पूँजी है। अब जरूरत इस बात की है कि वह चेतना सक्रिय हो, कुछ शक्ति दिखाई दे, समस्याओं को हल करने की बेचैनी पैदा हो। इस दृष्टि से शिविर तत्काल सबसे अधिक उपयोगी होंगे। जगह-जगह शिविरों का अभियान चलाने की जरूरत है। एक नया तूफान खड़ा किया जाना चाहिए। राज्य-स्तर का शिविर, जिले के शिविर, सब-डिवीजन के शिविर; यहाँ तक कि प्रखण्ड और पंचायत के भी शिविर हों। इन शिविरों में कार्यकर्ता और सहयोगी नागरिक, दोनों शरीक हों। सब दो तीन दिन साथ रहें, और ग्रामदान की भूमिका में समस्याओं का हल सोचें। ये सब शिविर अभ्यासिक हों। इन शिविरों से ग्रामदान के बाद ग्रामस्वराज्य की यात्रा का शुभारम्भ किया जाय। कई जगहों में शुरुआत की भी जा रही है।

एक बात है जिसकी ओर हमारा ध्यान फौरन जाना चाहिए। हमने यह बार-बार कहा है कि ग्रामदान वर्ग-संघर्ष को नहीं मानता। ग्रामदान समाज को शोषक-शोषित में नहीं बाँटता। वह मालिक-मजदूर, दोनों को इस दूषित समाज-व्यवस्था का शिकार मानता है, और दोनों को उस दोष से मुक्त करना चाहता है। लेकिन अभी तक हम न तो मजदूर में आगे आनेवाले अच्छे दिनों का विश्वास जगा सके हैं, और न मालिक को भय से मुक्त ही कर सके हैं। ग्रामदान को मालिक की बुद्धि और भूमि तथा महाजन की पूँजी उतनी ही चाहिए जितनी मजदूर की मेहनत। ग्रामदान में सबके उचित हितों की रक्षा है; किसीको किसीसे भय खाने की जरूरत नहीं है। ये सब बातें ग्रामदान में मौजूद हैं, लेकिन अभी तक हमने व्यावहारिक दृष्टि से इन पहलुओं को समाज के सामने रखा नहीं है।

अब दो बातें लोगों के सामने साफ-साफ रखी जानी चाहिए। एक, लोक-शक्ति और 'दलमुक्त ग्राम-प्रतिनिधित्व' द्वारा उसकी अभिव्यक्ति; दूसरी, मालिक-महाजन-मजदूर सबको अभयदान। इसका व्यावहारिक स्वरूप लोगों के सामने बारीकी के साथ प्रस्तुत करने की जरूरत है।

ग्रामदान हो चुका लेकिन ग्रामदान को लेकर गाँव में लोग ग्रामस्वराज्य की ओर चल पड़ें इसके लिए समाज की चेतना को इन दो बिन्दुओं पर जगाना जरूरी है। यह काम इतना जरूरी है कि हर दिन जो बीत रहा है, हमें कमजोर कर रहा है। राज्यदान का काम रुके न लेकिन जिलादानी क्षेत्रों में आन्दोलन में गिरावट न आने दी जाय। दोनों मोर्चों पर काम जरूरी भी है और सम्भव भी है। ●

भारत की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और "मोहब्बत का पैगाम"

विनोबा

भारत का इतिहास कम-से-कम बीस हजार साल पुराना है। पहला ग्रन्थ 'ऋग्वेद' बीस हजार साल पुराना है। इतना पुराना ग्रन्थ दुनिया के देशों में कहीं नहीं है। अमेरिका बहुत बड़ा राज्य है, किन्तु तीन सौ साल पुराना है। भारत बीस हजार साल पुराना है। भारत ने अनेक को देखा, अनेक राज्य देखे। राजा-महाराजा आये और गये। राज्यों को चढ़ती-उतरती देखी। आर्य आये, अनार्य आये, मिस्र, चीन और मध्य एशिया के लोग, मुगल, मुसलमान, पारसी, सिक्ख और यहूदी आये। भारत ने सबका स्वागत किया। कोई तलवार लेकर आये, कोई तराजू लेकर, तो कोई किताब लेकर। किताब लेकर आनेवालों के साथ भारत ने चर्चा की और उनकी किताबों में जो अच्छा था वह ले लिया, पचा लिया। इस प्रकार ग्रन्थवालों को हजम किया। जो तराजू लेकर आये उनको व्यापार की सब सुविधाएँ भारत ने कर दीं—'इस ढंग से और ईमानदारी से व्यापार करो।' दूसरे देश में व्यापार करना हो तो वीसा, पासपोर्ट और व्यापार करने की स्वीकृति अलग से लेनी पड़े।

हिन्दुस्तान एक देश था। दो हुए। सब व्यापार बन्द। हिन्दुस्तान में जूट की मिलें थीं और पाकिस्तान में जूट के खेत। अब ढाका में मिल खड़ी है। कलकत्तेवालों को लगा कि वे कहाँ से जूट लायेंगे? तो उत्तेजन दिया जूट की खेती को। और जहाँ चावल होता था वहाँ जूट पैदा होने लगा। भारत में चावल इतना कम हो गया। बंगाल पहले अपने लिए चावल पैदा कर लेता था। अब दूसरे पर अवलम्बित हुआ। और उधर जूट के दाम कम हुए। कारण कि जूट दुगुना हुआ। पाकिस्तान में मिल और भारत में भी मिल; उत्पादन ज्यादा होने पर कीमत कम; खेती में चावल गँवाया और जूट की कीमत घटने पर पैसा गया; भारत को दोनों बाजू नुकसान, इसके बदले व्यापार चालू रहता तो सम्बन्ध अच्छा रहता।

भारत ने आज तक किसीको व्यापार करने की मना ही नहीं की। आनेवाले को ना नहीं कहा। सबका स्वागत किया। भारत के महान कवि टैगोर ने कहा—'भारतेर महामानवेर सागर तीरे, ऐसो हे आर्य, ऐसो अनार्य।' भारत का अर्थ होता है सबका भरण-पोषण करनेवाली भूमि, स्वागत स्वीकार करना। परिणामस्वरूप यहाँ हरेक के चेहरे पर श्रद्धा है।

मेरे पास एक भाई अमेरिका से आये थे। मेरे साथ १५ दिन रहे, घूमे। उन्होंने कहा, "यहाँ अत्यन्त दारिद्र्य है। योरप, अमेरिका में कल्पना भी न कर सकते कि इतना दारिद्र्य है।" भारत इंग्लैंड, अमेरिका से गरीब, और भारत के सब प्रान्तों में बिहार सबसे गरीब। भारत की औसतन आमदनी वार्षिक साढ़े चार सौ रुपये की है। बिहार में तीन सौ से साढ़े तीन सौ रुपये। किन्तु उसको बड़ा आश्चर्य हुआ। हमसे कहने लगा, "किसी के चेहरे पर दुःख नहीं देखा, हँसते हुए चेहरे देखे। घर में जाकर पूछा तो बोले, 'दोपहर के लिए भोजन है, शाम का पता नहीं। शाम को खेत में से कुछ लेकर आयेंगे तो खा लेंगे। नहीं तो फाका करेंगे।' शाम का खाना घर में नहीं, फिर भी फिकर नहीं और चेहरे पर हँसी। तो ऐसा क्यों?" मैंने कहा, "भारत सन्तों की भूमि है, आध्यात्मिक भूमि है। चीनी लेखक लोउटियाग ने भारत का वर्णन किया है: "इण्डिया इज गाड इण्टाक्सीकेटेड लैण्ड"—जैसे शराबी शराब में मस्त होता है वैसे यहाँ के लोग भक्ति की मस्ती में मस्त हैं। जानते हैं दुनिया क्या है। कितने दिन रहना—पचास, साठ, सत्तर, अस्सी साल, और काल तो अनन्त है। अनन्त काल में थोड़े दिन रहना है। 'रहना नहीं देश बिराना है'—भारत अपना देश नहीं, अपनी मातृभूमि दूसरी है। "यह संसार कागज की पुड़िया"—आसक्ति रखना नहीं और प्रसन्न भाव से भगवान की गोद में जाना है। लोग पागल हैं, इसलिए पीछे दौड़ते हैं। कहते हैं, "भूदान दो, भूदान दो।" 'भूदान दीजिए' के बदले 'भूदान लीजिए' चालू हो गया। बाहर के लोग कहते हैं, "भारत के लोग लोभी हैं, भ्रष्टाचारी हैं।" होगा भ्रष्टाचार जहाँ नगर हैं। भारत की असल संस्कृति गाँवों में है। भूदान में ५० लाख एकड़ जमीन दी। बहुत कम कीमत लगाओ, एकड़ के सौ रुपये, तो भी ५० करोड़ रुपयों की जमीन दान में दी। तो हम मन में सोचते हैं कि कैसे लोग हैं! करोड़ों रुपयों की जमीन देना क्या लोभ है! और पागलपन की भी कोई हद है? ग्रामदान में तो जमीन की मालिकी हमारी नहीं, ग्रामसभा की होगी, ऐसा लिखकर देते हैं। दुनिया में ऐसा कोई देश है, जहाँ के लोग अपनी जमीन बेचने का अधिकार ग्रामसभा को दे देंगे? भूमिहीन के लिए हिस्सा दे देने के बाद भी जो जमीन रहेगी वह रहेगी मेरे हस्तक, किन्तु बेचने की मालिकी ग्रामसभा की। ७०-८० हजार भारत के गाँवों ने ग्रामदान-पत्रक पर हस्ताक्षर करके अपनी मालिकी खतम की। क्या समझकर? लोभी होते तो करते क्या?

लेकिन उनके हृदय में कुछ है। अध्यात्म भरा है। भगवान को ढूँढ़ रहा है। तो कहाँ है भगवान? बाइबिल ने कहा, "तेरे पड़ोस ही में है।" तो पड़ोसी कौन? जो खोये हुए दुःखी हैं, वे ही तेरे पड़ोसी हैं। गांधी का पड़ोसी भारत में कोई न था, उनके पड़ोसी तो थे नोआखाली में। इसी तरह से गांधी, जिनकी तीक्ष्ण दृष्टि थी, सामाजिक क्रांति शुरू की भंगी से और प्रतीक रखा 'झाड़ू'। स्वराज्य की बात में मिला—बुढ़ियों का चरखा; दूसरी प्रार्थना; जो मेरी माँ किया करती थी और तीसरा मिला झाड़ू, दुःख-निवारण में मिला कुष्ठ रोगी। ये बीमारी, ये रोग ऐसे हैं कि जिनके नाम से लोग तिरस्कार करते हैं। वैसे परचुरे शास्त्री को अपनाया और वही उनका पड़ोसी था।

एक वकील और उनकी पत्नी मेरे पास आये। उन दिनों मैं भूदान की बात करता था। तो वकील बोले, "ठीक है, पाँच एकड़ जमीन देता हूँ।" उनके पास तीस एकड़ जमीन थी। बाबा छठा हिस्सा माँगता था

इस अंक में

७ अप्रैल, '६६
वर्ष ३, अंक १६] [१८ पैसे

अब किसे भेजें ? : २ :

उत्तर : ऐसा होना कठिन नहीं है। शर्त यही है कि गांव संगठित हों और एक हों।

प्रश्न : कहने को भले ही यह एक शर्त हो, लेकिन ऐसी कठिन शर्त है जो पूरी नहीं होती दिखाई देती। अगर हमलोगों के अपने ही झगड़े होते तो लड़-झगड़कर किसी तरह एक राय होने का कोई रास्ता निकल आता, लेकिन ये जो राजनैतिक पार्टियां हैं वे हमलोगों को एक होने नहीं देंगी। किसी एक गांव का नहीं, सभी गांवों का यही हाल है। क्या ऐसी बात नहीं है ?

उत्तर : आप बिलकुल सही कह रहे हैं। दलों ने गांव का दिल तोड़ दिया है। एकता की कौन कहे, मामूली ईमानदारी भी अब गांवों में नहीं रह गयी है। हमेशा से गरीबी, बेकारी, और अज्ञान का बोलबाला तो था ही, जमीन के झगड़े भी भरपूर थे। जातियों में आपसी तनाव भी रहता था, लेकिन राजनैतिक दलबन्दी सबसे ऊपर हो गयी है। इसने तो घर-घर में आग-सी लगा दी है।

प्रश्न : इन बातों को जानते हुए भी आप गांव की एकता की बात कह रहे हैं ?

उत्तर : मैं यह इसलिए कह रहा हूं कि अगर गांवों को बचाना है तो, उन्हें एक होना ही है। और, अगर हम अपने गांवों को बचाना चाहते हैं तो हमें उनकी एकता की रक्षा के लिए जी-जान से कोशिश करनी ही चाहिए। एक बार कोशिश करके हम ग्रामसभाएं बना लें और धीरज के साथ उन्हें मजबूत करते जायं। हमारी ग्रामसभाएं ढाल होंगी जो गांव पर होनेवाले सभी तरह के प्रहारों को रोक लेंगी। आप इस काम के लिए खुद तैयार हों, और हर गांव में आपकी तरह के दो-दो, चार-चार आदमी तैयार हो जायं तो काम बन जाय।

राजनैतिक प्रहार

ग्रामसभा द्वारा बचाव
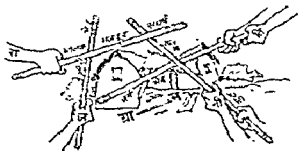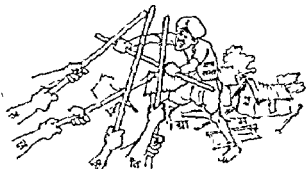
प्रश्न : गाँव में मालिक-मजदूर के झगड़े दिनोंदिन तीखे होते जा रहे हैं।

उत्तर : हर तरफ से कोशिश झगड़े बढ़ाने की ही हो रही है। घटाने की कोशिश कौन कर रहा है? झगड़े की जड़ इस बात में है कि जमीन 'ऊँची' जातियों के पास है, और 'नीची' जातियाँ भूमिहीन हैं, मजदूर हैं। इस तरह एक ही जगह जातियों का झगड़ा भी शुरू होता है, और मालिक-मजदूर का भी। भूमि के इस बुनियादी तनाव का बहुत अनुचित लाभ उठा रही है हमारी राजनीति।

प्रश्न : कैसे?

उत्तर : राजनीति मालिक से कहती है कि मजदूर से बचने के लिए संगठन बनाओ, और मजदूर से कहती है कि मालिक से बचने के लिए एक हो जाओ, जब कि कोशिश यह होनी चाहिए थी कि दोनों को न्याय मिलता, और दोनों को एक-दूसरे के करीब लाया जाता। उलटे बात यह फैला दी गयी है कि मालिक-मजदूर एक-दूसरे के दुश्मन हैं। मालिकों की राजनीति दक्षिणपंथी कही जाने लगी है और मजदूरों की वामपंथी। झगड़ा, तनाव, संघर्ष; इसी विटैमिन पर तो राजनीति जिन्दा है!

प्रश्न : आप जो कह रहे हैं उसे मैं मानता हूँ, लेकिन सच पूछिए तो मैं भी नहीं समझ पा रहा हूँ कि मालिक-मजदूर एक कैसे होंगे। मजदूर मेहनत करे और उसका पेट न भरे, मालिक बैठा रहे और उसका घर भरे, सोचिए जब ऐसी हालत है तो दोनों मिलकर कैसे रह सकते हैं?

उत्तर : यह बिलकुल सही है कि मजदूर का पेट नहीं भरता। लेकिन यह भी सही है कि बैठे बैठे घर भरनेवाले मालिकों की संख्या बहुत थोड़ी है। सोचिए, आपके गाँव में कितने परिवार हैं जिनके पास ज्यादा जमीन है, जिनके पास खेती में लगाने के लिए पूँजी है, जो खेती से सालभर दोनों वक्त अपना और बाल-बच्चों का पेट भर लेते हों, और जो महाजन के कर्ज से बचे हुए हों?

प्रश्न : क्या कहूँ, मेरे गाँव में तो मुश्किल से तीन-चार परिवार ऐसे निकलेंगे।

उत्तर : आप देखेंगे कि गाँव में धन उसीके पास है जिसके घर अनाज या रुपये की महाजनी होती हो, या कलकत्ता बम्बई से बेहिसाब कमाई आती हो, जिसके घर में लड़कियाँ कम हों, और जो मुकदमेबाजी से बचा हुआ हो। गहराई से सोचिएगा तो यह बात साफ समझ में आ जायेगी कि अगर मालिक-मजदूर का झगड़ा न मिटा, और गाँव-गाँव में न्याय की व्यवस्था न कायम हुई तो मालिक बरबाद होंगे, मजदूर बरबाद होंगे, गाँव बरबाद होंगे, देश बरबाद होगा। बोलिए, होगी यह चौमुखी बरबादी या नहीं? लेकिन यह भी समझ लीजिए कि अगर ये दल बने रह गये, और सरकार आज जिस तरह चल रही है उसी तरह चलती रह गयी तो न यह झगड़ा मिटेगा, और न यह बरबादी रुकेगी।

प्रश्न : लगता ऐसा ही है। गाँव में किसीको शान्ति नहीं है। मालूम नहीं आगे हमारे बच्चों का क्या हाल होगा, लेकिन समझ में नहीं आता कि दलों से जान कैसे बचेगी और सरकार की रीति-नीति कैसे बदलेगी?

उत्तर : एक तरह से पूरी राजनीति को बदलने की बात है। आज के चुनाव में उम्मीदवार दलों की ओर से खड़े होते हैं। इसकी जगह ऐसा क्यों न हो कि एक निर्वाचन-क्षेत्र के गाँव मिलकर, एक राय से अपना उम्मीदवार खड़ा करें? ऐसी व्यवस्था बनायी जाय कि एक ओर गाँव के लोग मिलकर अपने गाँव की भीतरी व्यवस्था चलायें, और दूसरी ओर सरकार में अपने आदमी भेजें। अगर इतना हो जाय तो दलों से मुक्ति मिल सकती है। दलों से मुक्ति मिलते ही गाँवों की हवा बदल जायेगी। बोलिए, कैसा है यह विचार?

प्रश्न : अगर ऐसा हो जाय तो बहुत अच्छा होगा। लगता है कि अगले चुनाव के लिए कोशिश अभी से करनी चाहिए।

उत्तर : जरूर, आज से ही।

प्रश्न : बताइए क्या करना चाहिए?

उत्तर : विनोबाजी के ग्रामदान आन्दोलन ने 'दलमुक्त ग्राम-प्रतिनिधित्व' की पूरी योजना सुझायी है। वह इस प्रकार है। मान लीजिए कि आपके निर्वाचन-क्षेत्र में कुल १२५ गाँव हैं जिनमें १०० गाँवों का ग्रामदान हो गया है। गाँव के लोगों ने ग्रामदान के कागज पर हस्ताक्षर कर दिये हैं, भले ही अभी ग्रामदान कानून में पक्का न हुआ हो। पहली बात यह है कि आप जैसे समझने-बूझनेवाले जो लोग हैं वे इन १०० गाँवों में जल्द-से-जल्द ग्रामदान की शर्तों के अनुसार ग्रामसभा (या ग्रामस्वराज्य सभा) बना डालें। गाँव के लोगों से कहिए कि सबको मिलकर अपना गाँव बनाना है, अपने गाँव की व्यवस्था चलानी है, और अगले चुनाव में 'अपना' आदमी भेजना है, दल का नहीं। 'गाँव-गाँव के लोगो, एक हो जाओ' की गूँज गाँव-गाँव, घर-घर, पहुँचा दीजिए। जैसे स्वराज की आवाज गाँव-गाँव पहुँची थी, उसी तरह यह आवाज भी पहुँचनी चाहिए। यह भी गाँव के स्वराज्य का सवाल है, मामूली सवाल नहीं है, समझ लीजिए।

प्रश्न : ग्रामसभा बन जाने के बाद क्या होगा? →

सहनशीलता

एकनाथ महाराज गोदावरी में रोज स्नान करने जाते। एक दिन जब वे नहाकर लौट रहे थे तो रास्ते में पड़नेवाले एक सराय में रहनेवाले एक पठान ने उन पर कुल्ला कर दिया।

एकनाथ महाराज फिर जाकर स्नान कर आये।

नहाकर रोज वे उसी रास्ते से निकलते और वह रोज उन पर कुल्ला कर देता। वे लौटकर फिर नहा आते।

एक दिन उस पठान को सनक-सी सवार हो गयी। देखें कब तक इस साधु को गुस्सा नहीं आता!

पहली दफा वे नहाकर लौटे तो उन पर कुल्ला कर दिया। दूसरी बार नहाकर लौटे तो उसने फिर उन पर कुल्ला कर दिया। दो बार, तीन बार, चार बार, दस बार, बीस बार, पचीस बार, होते-होते संख्या जा पहुँची १०८ पर।

एकनाथ महाराज हर बार लौटकर गोदावरी में स्नान कर आते।

१०८ बार स्नान करके जब वे लौटे तो पठान उनके पैरों पर गिर पड़ा। बोला : 'बाबाजी, माफ करें। आज मेरी बद-माशी की हद हो गयी। मैं देखना चाहता था कि आपको कभी तो गुस्सा आयेगा। पर आपने दिखा दिया कि आदमी कितना अच्छा हो सकता है, कितना सहनशील! अपनी नालायकी के लिए मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ। आपने अपने उपकार से मुझे लाद दिया। आप खुदा के सच्चे बन्दे हैं। मुझे माफ कर दें!'

एकनाथ बोले : 'भैया, उपकार तो तुम्हारा ही है मुझ पर! तुम्हारी कृपा से आज मुझे १०८ बार गोदावरी माता के स्नान का पुण्य मिला।'

—श्रीकृष्णदत्त भट्ट

→ उत्तर : मान लीजिए कि आपके निर्वाचन क्षेत्र के १०० गाँवों में ग्रामसभाएँ बन गयीं। उससे अधिक में भी बन सकती हैं। एक बार जब ग्रामस्वराज्य की हवा बहेगी तो आज अभी जिन गाँवों का ग्रामदान नहीं हुआ है वे भी जल्दी-जल्दी ग्रामदान में शरीक हो जायंगे, और ग्रामसभा बनाकर इस अभियान में शरीक होंगे। उम्मीदवार तय करने के लिए इन ग्रामसभाओं के सर्व-सम्मत प्रतिनिधि क्षेत्र के किसी मुख्य स्थान पर इकट्ठा होंगे। जैसी छोटी-बड़ी ग्रामसभाएँ होंगी उसके हिसाब से हर ग्रामसभा एक से लेकर पांच तक प्रतिनिधि भेजेंगी। ये प्रतिनिधि अपनी-अपनी ग्रामसभा द्वारा सर्व-सम्मति या सर्वानुमति से चुने जायंगे, जैसा कि ग्रामदान के हर चुनाव में होता है। लेकिन निर्वाचन क्षेत्र की कुल ग्रामसभाओं के प्रतिनिधियों की संख्या २५० से अधिक नहीं होगी। इन २५० लोगों को मिलाकर 'ग्रामसभा-प्रतिनिधि-निर्वाचन-मण्डल' बनेगा। यह पूरा मण्डल एक जगह बैठेगा, सोचेगा, और अन्त में सर्व-सम्मति से उस क्षेत्र के लिए एक ग्रामदानी उम्मीदवार तय करेगा।

प्रश्न : अगर कई नाम आ गये, और सर्व-सम्मति से फैसला न हो सका तो क्या होगा?

उम्मीदवार कौन हो?

उत्तर : हाँ, यह सवाल पैदा हो सकता है। इसके कई सवाल भी पैदा हो सकते हैं। लेकिन सब दिक्कतों को हल करके निर्वाचन-मण्डल को एक सर्व-सम्मत उम्मीदवार तय करना ही है।

सवाल है एक नाम कैसे आये?

प्रश्न : करना तो है, लेकिन करेगा कैसे? कठिनाइयाँ जबरदस्त हैं।

(अगले अंक में पढ़ें)

...और पारबती सोहर गा उठी

ए हो! राजा जनकजी के मिललीं सीया
उनकर पुलकल हीया, दोऊ अंखिया हरखि हुलसानी हो।

(राजा जनकजी को सीता मिली तो उनका हृदय आनन्द से पुलकित हो उठा और दोनों आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं।)

पारबती अपनी सुरीली आवाज में सोहर गाते हुए आंगन में कंबल और दरी बिछाती जा रही थी।

देखि सीया क सुघर सरूप अनूप,
महीपजी मन में ठानी हो।
सीता सौम्य सुता, मोरी धरम धीया
पालब पुरइन-पुत्र समानी हो।

(सीता के सुन्दर और अनोखे बाल-स्वरूप को देखकर राजा जनकजी ने मन में तय किया कि सौम्य कन्या सीता मेरी धर्म-पुत्री है। मैं इसका पालन सरसिज पुत्र की तरह करूंगा।)

पारबती सोहर का दूसरा चरण गा ही रही थी कि कई पड़ोसिनें आंगन में पहुंच गयी। सावित्री अपने साथ ढोलक और मजीरा लेती आयी थी। आंगन में पहुंचते ही वह कम्बल पर बैठ गयी और ढोलक पर थाप देने लगी। ललिता ने मजीरा उठा लिया और ढोलक की ताल पर उसे टुनटुनाने लगी।

रानी पलना झुलावैं,
ललना सोहर गावैं,
वधुएं मोद मनावें मनमानी हो।
केहु स्वांग रचावैं,
केहु मृदंग बजावैं,
केहु थिरकि थिरकि बौरानी हो।

(जनकजी की रानी पालना में सीताजी को रखकर झुला रही हैं, स्त्रियां सोहर गा रही हैं और वधुएं मनमाने ढंग से अपना मनोविनोद कर रही हैं। उनमें से कोई दूसरों की नकल उतार रही हैं, कोई मृदंग बजा रही हैं और कोई प्रसन्नता से नाचते-नाचते बावली हो गयी हैं।)

ढोलक और मजीरे के मिलेजुले स्वर ने पारबती को प्रसन्नता की गहराई में पहुंचा दिया। सोहर गाने के साथ-साथ वह हाथों से पालना झुलाने और बलैया लेने का संकेत करने लगी। फिर पांव की एड़ी रंगवाने और सोहर गाने के संकेत के बाद पारबती के पांव में जैसे पंख लग गये। वह सोहर की ताल पर मगन होकर थिरकने लगी।

पारबती के आंगन मे जैसे हंगामा मच गया। सावित्री ने ढोलक ललिता को थमाया और मजीरा लेकर पारबती के साथ थिरकने लगी। देखते ही देखते आंगन गांव की स्त्रियों और बच्चों से खचाखच भर गया।

चौथिया जब सब घरों में न्योता पहुंचाकर वापस लौटी तो पारबती के आंगन में इकट्ठा मजमे को देखकर दंग रह गयी! प्रायः स्त्रियों ने कोई-न-कोई काम-काज का बहाना सुना दिया था, लेकिन वे ही जब आंगन में गाते-नाचते दिखाई पड़ीं तो चौथिया का जी गद्गद हो उठा। वह लपककर अपनी मड़ई में पहुंची। खूंटी पर उसके पति का खाकी कोट लटक रहा था। चौथिया ने फुर्ती से चारपाई की चादर निकालकर उसे लुंगी की तरह अपनी कमर में बांधा, कोट पहन लिया और अपनी छपी साड़ी को पगड़ी की तरह सिर में लपेट लिया। कंधे पर भारी-भरकम लाठी रखकर पैर पटकते हुए जब वह दुवारा आंगन में दाखिल हुई तो वहां जैसे हड़कम्प मच गया।

"सावधान! कोई भागने नहीं पावेगा। गांव के परधान का हुकुम है कि उनकी पोती के जनम पर जो नाचेगा वह परधानजी के धरमगोला से हलुआ-पूड़ी और बखीर का भोज खाकर ही बाहर जाने पायेगा। जो सिर्फ गायेगा वह दो बीड़ा पान पायेगा।"

चौथिया की नाटकीय घोषणा के पूरे होते ही पारबती का आंगन स्त्रियों की हंसी और खिलखिलाहट से गूंज उठा। चौथिया ने पारबती को सिपाहियाना सलामी दागते हुए कहा—"दीवानजी को कारिन्दे का सलाम! लाइए सरकार मेरा इनाम!"

पारबती की आंखों में खुशी के आंसू छलछला आये। चौथिया की पीठ पर धौल जमाते हुए बोली—"ओस चाटने से किसी प्यासे की प्यास नहीं बुझती। प्यास तो बस पानी से ही बुझती है। जबतक तू भी सोहर नहीं गाती तबतक मैं नहीं माननेवाली हूं।"

"खाने-खिलाने की बात किसीसे निभ सकती है और किसीसे नहीं भी निभ सकती है, लेकिन अपने मन की खुशी जाहिर करने में कोई खर्च नहीं होता। इसमें कंजूसी नहीं चलेगी।" यह कहते हुए पारबती ने चौथिया के सिर की पगड़ी खोलकर उसे ओढ़नी की तरह ओढ़ा दिया और उसे धकियाते हुए सबके बीच में ले जाकर खड़ा कर दिया। चौथिया ने साड़ी को लपेटकर नाचना शुरू कर दिया।

—त्रिशंकु

एक सच्ची कहानी

यह तो दस्तूरी है जी'''!

गाडी इलाहाबाद से आगे बढ़ी तो हमारे डिब्बे में कण्डक्टर ने यात्रियों के टिकट की जाँच शुरू की। तीसरे दर्जे के स्लीपर का डब्बा था और गाड़ी थी दिल्ली से सियालदह को जानेवाली अपर-इंडिया एक्सप्रेस। तारीख थी पिछले मार्च महीने की तेरहवीं।

हमारे पड़ोस में ही पाँच-छः सदस्यों का एक परिवार था, जो दिल्ली से पटना जा रहा था। साथ में बच्चे भी थे—कुछ कम उम्र के, कुछ अधिक के। नियम के अनुसार ३ साल से ऊपर के बच्चों का आधा टिकट लगता है। और इस परिवार में ३ साल से अधिक के दो बच्चे थे, जिनमें एक का टिकट लिया गया था, दूसरे का नहीं। कण्डक्टर ने उस लड़के का टिकट दिखाने को कहा तो जवाब मिला, "अजी साहब अभी तो बच्चा है, इसका क्या टिकट... ... ?" कण्डक्टर ने कहा, "दिन-रात मैं यही धंधा करता हूँ। आप मुझे बहका नहीं सकते। इस लड़के की उम्र ५ साल से कम नहीं है। टिकट बनवा लीजिए।" उस परिवार के मुख्य व्यक्ति ने कहा, "साहब, दिल्ली और कानपुरवाले कण्डक्टर लोग बड़े 'सज्जन' थे, उन्होंने छोड़ दिया, आप भी ...!" "माफ कीजिएगा, मैं वैसा 'सज्जन' नहीं हूँ कि अपनी ड्यूटी ही न करूँ। आप टिकट बनवा लीजिए, यही उचित है, वर्ना जितनी ही दूर गाड़ी आगे बढ़ती जायेगी, जुर्माना उतना ही बढ़ता जायेगा। वैसे मैं दिल्ली से इलाहाबाद तक का जुर्माना लेकर और उसके बाद पटना तक का किराया लेकर टिकट बना दूँगा।" कण्डक्टर ने कहा। (रेलवे-कानून के अनुसार बिना टिकट पकड़े जाने पर दुगुना किराया देना पड़ता है जुर्माने के रूप में।)

अब तो यात्री महोदय और भी परेशान होने लगे। दूसरे यात्रियों ने भी उनकी ओर से सिफारिश करनी शुरू की, "कण्डक्टर साहब, छोड़ दीजिए बेचारे को!" "'' दे दो भाई, कण्डक्टर साहब को कुछ चाय-मिठाई के लिए।" एक मारवाड़ी सज्जन ने मामला निपटाने के लिए नेक सलाह दी।

यात्री महोदय दस रुपये का नोट हाथ में लिये कण्डक्टर के पास खड़े थे, और कण्डक्टर बेचारा टिकट बनाने की रसीद खोले, एक हाथ में पेंसिल थामे बैठा था। गाड़ी प्रयाग से खुलकर अब गंगा का पुल पार कर रही थी। उसकी घड़घड़ाहट की परवाह किये बिना मोल-भाव की कोशिश चल रही थी। फूलपुर भी निकल गया और मामला निपटा नहीं। यात्री और कण्डक्टर, दोनों के चेहरे पर परेशानी के भाव अधिक साफ होते जा रहे थे। लेकिन दोनों की भूमिका में कितना फर्क था ? एक अपनी 'ड्यूटी' का ईमानदारी से पालन करना चाहता था, दूसरा उसकी 'ईमानदारी' की कीमत चुकाने के लिए तत्पर खड़ा था।

आखिर मामला तय होता दिखाई नहीं दिया तो मारवाड़ी महोदय ने 'पन्ना नम्बर २६३ की कहानी' सुनाकर अपनी व्यवहार-बुद्धि की धाक जमानी चाही, "साहब, कत्ल का मुकदमा था और सजा मिलनी ही थी, वह भी मौत की सजा। उसका भाई जी-जान लगाकर बचाने की कोशिश कर रहा था। पैसा पानी की तरह बहाया, लेकिन कोई उम्मीद हाथ नहीं लगी। आखिरी दिन, जब फैसला सुनाया जानेवाला था, तो उसने अन्तिम बार तकदीर आजमायी। उसने कानून की किताब के पन्ना नम्बर २६३ में २ लाख का एक चैक रखकर जज साहब तक अपने वकील के मार्फत पहुँचा दिया। और जब वकील ने कहा, 'जजसाहब, आप पन्ना नम्बर २६३ पर देखिए, कानून क्या कहता है।' तो साहब, जजसाहब ने वह पन्ना खोलकर देखा, और फैसले की तारीख आगे सरका दी। और बाद में कुछ वर्षों की सजा सुना दी। तो साहब, आप भी पन्ना नम्बर २६३ का कानून लागू कीजिए, और मामले को खतम कीजिए।" मारवाड़ी महोदय इस समय 'तीसमारखाँ' लग रहे थे, और बेचारे कण्डक्टर के माथे पर पसीने की बूँदें आ रही थीं, टिकट बनाने के लिए तैयार उसके दोनों हाथ काँप रहे थे। शायद पन्ना नम्बर २६३ और उसकी ईमानदारी का संघर्ष तेज हो गया था।

अब मुझसे नहीं रहा गया। मैंने पूछा "आप लोगों में से कितने लोग ऐसे होंगे, जो आये दिन जमाने को गाली नहीं देते होंगे कि 'जमाना भ्रष्ट हो गया है, कलियुग आ गया है ?' अब आप लोग क्या कोई ऐसा उपाय भी निकाल सकते हैं कि देश का हर आदमी भ्रष्टाचार करने-कराने पर उतारू हो, और 'जमाने' में सुधार भी हो जाय,.. शुद्धि भी आ जाय ?" मैंने देखा, मेरी बात से कण्डक्टर बेचारे को कुछ राहत मिली और यात्री लोग चौंक-से गये! मारवाड़ी महोदय ने शायद अपने पन्ना नम्बर २६३ का अपमान अनुभव किया। तुरत बोल उठे, "अजी, आप इनकी जगह होते, तो यही करते। दूसरों को सदाचार सिखानेवाले आप जैसे बहुत देखे हैं।" "लेकिन माफ कीजिएगा, मैंने दूसरों को दुराचार के लिए मजबूर करनेवाले बहुत-से लोग आज ही देखे हैं।" मारवाड़ी महोदय की बात पर मुझे भी कुछ गुस्सा आ गया था, इसलिए जरा जोर देकर कहा।

अब मारवाड़ी महोदय ने अपना रुख बदलते हुए कहा, "साहब, भ्रष्टाचार तो तब रुकेगा, जब इन (कण्डक्टर की ओर

इशारा करके) गरीब बेचारों की तनख्वाह बढ़ेगी।" यह बात दुहरा प्रभाव पैदा करनेवाली थी। कण्डक्टर के प्रति हमदर्दी भी जाहिर हुई, और बिना टिकट बनाये रुपया ले लेने के लिए एक तर्क भी मिला।

"'लेकिन कण्डक्टर ने उस 'दस रुपये' के नोट की ओर निगाह नहीं फेरी, जो उनकी बगल में खड़े सज्जन के हाथ में अभी भी ज्यों-की-त्यों पड़ी थी।

"अच्छा साहब, अब बहुत हो गया, अब ले लीजिए और मामला खत्म कीजिए। दे दीजिए साहब, पाँच रुपये और दे दीजिए।...यह सब तो दस्तूरी है, इसमें इतनी बकवास की क्या जरूरत थी?" मेरी बगल में बैठे सज्जन ने मामले को हल्का बनाने की कोशिश करते हुए कहा। शायद उनकी दृष्टि से साधारण-सी बात नाहक तूल पकड़ रही थी। उनके दोनों कंधों पर खाकी वर्दी में उत्तर प्रदेश पुलिस के बिल्ले लगे थे।

मुझे अब कुछ कहने की इच्छा नहीं हुई। सभी लोगों की निगाहें मुझे ऐसे घूर रही थीं, मानो मैंने कोई अपराध किया हो! अपराध ही तो किया था! विनोबा कभी-कभी व्यंग्य में कहते हैं न, कि "जब सब लोग भ्रष्टाचार में शरीक हों, तो वह भ्रष्टाचार नहीं, 'शिष्टाचार' हो जाता है।"...और मैंने इतने लोगों के इस 'शिष्टाचार' का विरोध किया था, यानी 'अशिष्टाचार' किया था। मैं सोच रहा था कि अब बेचारा कण्डक्टर भी चुपचाप इस शिष्टाचार में शरीक हो जायेगा, और दिल्ली तथा कानपुरवालों की तरह 'सज्जन' बन जायेगा।

"उस लड़के को जरा सबके सामने लाइए तो साहब।" कण्डक्टर ने उन यात्री महोदय से कहा, जो अबतक अपने हाथ में नोट थामे खड़े थे। "अगर आप सब लोग मिलकर एकसाथ कह दें कि यह लड़का ३ साल से कम उमर का है तो मैं छोड़ दूँगा।" कण्डक्टर ने बहुत ही गम्भीर आवाज में कहा।

लड़का सबके सामने लाया गया। अब कोई कैसे कहे कि इस लड़के की उमर ३ साल से कम है? साफ मालूम पड़ता था कि उसकी उमर ५ साल से कम नहीं होगी। सब लोग चुप! "'बोलते क्यों नहीं आप लोग, कहिए कि इस लड़के की उमर'''या इस लड़के के बाप ही कह दें कि इसकी उमर ३ साल से कम है, मैं छोड़ दूँगा।" कण्डक्टर ने कुछ चुनौती देते हुए कहा।

दो-तीन सज्जनों ने मिलीजुली आवाज में मेरी ओर इशारा करते हुए कहा, "साहब, आपने ही मामले को इतनी दूर पहुँचाया है, आप ही कह दीजिए, बात खत्म हो।" मैंने कुछ चुटकी लेते हुए कहा, "पंच-परमेश्वर की बात सर आँखों पर, आप लोग जब यह नहीं कह सकते कि लड़का ३ साल से कम उम्र का है, तो मैं आपकी राय के खिलाफ कैसे जा सकता हूँ?" मेरी बात सुनकर डब्बे के तनावपूर्ण वातावरण में मिली-जुली खिलखिलाहट गूँज उठी।

"'और यात्री महोदय ने चुपचाप जुर्माने सहित टिकट के रुपये कण्डक्टर को थमा दिये, और कण्डक्टर ने टिकट बनाकर राहत की साँस ली। •

हृदय-परिवर्तन

पात्र-परिचय

मनेश्वर बाबू—गाँव के सबसे बड़े भू-स्वामी
माँ (महेश्वरी देवी)—मुनेश्वर बाबू की पत्नी
राजू—मुनेश्वर बाबू का पुत्र, कालेज का विद्यार्थी
रंजू—मुनेश्वर बाबू की पुत्री

ग्रामदान-यात्री-दल

मिनती दीदी—दल की नेत्री
रागिनी—सेविका
भानू दीदी—शिक्षिका

(मनेश्वर बाबू ठाट से बैठे हुक्का पी रहे हैं।)

नेपथ्य से ध्वनि :

राष्ट्रयज्ञ मूर्तिमान
होना ही है ग्रामदान
क्षुधा-पीड़ा का अवसान
करे मात्र ग्रामदान।

हमारा मंत्र जय जगत्
हमारा तंत्र ग्रामदान
ग्राम-स्वराज्यप्रतिष्ठित हो
स्त्री-शक्ति जाग्रत हो।

(यात्री-दल के प्रकट होते ही, मुनेश्वर बाबू उपेक्षा से मुँह दूसरी ओर फेर लेते हैं, उन्हें बैठने के लिए भी नहीं कहते।)

माँ : आइए, आइए बैठिए। आप लोग''' '''

मिनती दीदी : कल 'नामघर' में हुई सभा के सब समाचार आपने सुने होंगे। गाँव के सभी परिवारों ने 'दान-पत्र' पर हस्ताक्षर कर दिये। आपका ही घर बाकी है।'''

काम सब के लिये

जब तक कि ए[illegible]
भी भला चंगा पुरुष या
[illegible]ली बेरोज़गार या भूखा
रहे, तब तक हमें
खाली बैठने में या
भरपेट खाना खाने में
शर्म आनी चाहिये।
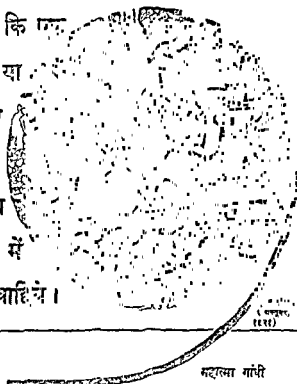
(नवम्बर, [illegible])

महात्मा गांधी

'गाँव की बात' : वार्षिक चन्दा : चार रुपये, एक प्रति : अठारह पैसे
सम्पादक : राममूर्ति : सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-1

ही पाँच एकड़ दे दी। उनकी पत्नी आकर बोली, "बाबा तो सबके पास छठा हिस्सा माँगते हैं। आप तो वकालत करते हैं और अच्छी चलती है। तो क्यों न सारी जमीन दी जाय? आप तो खेती करते नहीं।" तो फिर वे दोनों मेरे पास आये और पूछा, तो मैंने दोनों के बीच का रास्ता निकाला—आधी लो १५ एकड़ और १५ एकड़ उनके लिए रखी।

हमारे पूर्वजों ने गाया है : दुर्लभं भारते जन्म। याने देश में जन्म दुर्लभ है। वैसे तो दुनिया भर के लोग गाते हैं, किन्तु भारत के लोगों ने आगे बढ़कर कहा है कि 'मानुष्यं तत्र दुर्लभम्—मनुष्य का जन्म पाना, वह तो इससे भी दुर्लभ है। इसका माने यह हुआ कि जन्तु होकर भी भारत में जन्म पाना दुर्लभ है। ऐसा वचन दूसरे किसी देश की भाषा में पढ़ने को नहीं मिलेगा। भारत की मिट्टी में पैदा होना नम्बर एक, और मनुष्य-जन्म पाना नम्बर दो ··भाग्य है!

परदेश के लोग पूछते हैं, आप इतनी जमीन लेते हैं और ग्रामदान पाते हैं तो आप उनको क्या समझाते हैं?···क्या चीन की राज्य-क्रान्ति?' कि फ्रेंच की राज्य-क्रान्ति? ऐसी कौनसी राज्य-क्रान्ति का इतिहास समझाते हैं?" मैं कहता हूँ कि, "मैं उनको प्रेम का सन्देश देता हूँ। दुनिया में जो कुछ भी करोगे वह यहीं रहेगा। साथ में ले जायेंगे प्रेम, प्रेम की पूँजी। दुनिया में कर्तव्य है प्रेम करना। काश्मीर में मैंने व्याख्यान दिया तो उसका नाम दिया—"मोहब्बत का पैगाम"। गाँव के लोग क्रान्ति की बात क्या समझेंगे? सभा में बहनें आती हैं, भाई आते हैं। मैं बहनों को पूछता हूँ कि आपके घर में बाल-बच्चे हैं? तो कहती हैं, "हाँ।" और भूमिहीन के घर में भी हैं? तो कहती हैं, "हाँ।" अगर भगवान की इच्छा होती कि उनके पास जमीन न हो तो उनको बाल-बच्चा क्यों देता? आपके बाल-बच्चे हैं, वैसे उनके हैं। उनके भरण-पोषण के लिए जमीन देनी चाहिए न? तो कौन देगा? कहती हैं कि "हम देंगे। बालकों का भरण-पोषण होना चाहिए।"

मेरे प्यारे भाइयो, यह जो श्रद्धा है भारत की, वह हमारे दिल में है और इसीलिए श्रद्धा से जाते हैं और माँगते हैं तो कोई ना नहीं करता।

आप ऐसी आध्यात्मिक श्रद्धा लेकर जायेंगे कि जिसने आज नहीं दिया वह कल देगा तो आपको भी मिलेगा। जो आज नहीं मरा वह क्या अमर हो गया? वह कल मरेगा, या परसों मरेगा। हरेक को विश्वास है कि हर कोई मरेगा। मृत्यु को सौ प्रतिशत वोट देते हैं। यह तो जीवन के लिए है। जिसने आज नहीं दिया, वह जरूर कल देगा और जिसने कल नहीं दिया वह परसों देगा, ऐसी श्रद्धा लेकर काम करो!

बाँका, भागलपुर (बिहार)
दिनांक : २१-२-'६९

विनोबा-निवास से—

ग्रामदान के बाद : 'लेवी' नहीं 'देवी'

बाँका डाक-बंगला में १९ मार्च को दोपहर बाद बाँका अनुमण्डल के प्रखण्ड स्तर के सब सरकारी अधिकारी विनोबाजी के पास जुटे। क्षेत्रीय आयुक्त महोदय ने भी इसमें शामिल होना स्वीकार किया था। परन्तु वह पहुँच नहीं सके। जिला समाहर्ता ने अपने प्रतिनिधि के रूप में अपने सहायक श्री घोष को भेजा था।

इस अनुमण्डल में दस प्रखण्ड हैं। कुछ प्रखंडों के पंचायत-प्रमुख भी आये थे। अमरपुर के प्रमुख ८१ वर्ष के होने पर भी स्वस्थ और उत्साह भरे थे। बाबा ने उन्हें अपने साथ ऊँचे आसन पर बैठाते हुए कहा, "आप मुझसे बड़े हैं, आपको यहाँ बैठने का अधिकार है।" (वह भाई बाबा के साथ बैठने में झिझक रहे थे।)

प्रमुखजी ने अपना प्रखंडदान बाबा को समर्पित करते हुए कहा, "मैंने शुरू में स्वयं अपने हस्ताक्षर किये और फिर अपने प्रखंड के बड़े लोगों को ग्रामदान में शामिल होने के लिए कहा। मुझे तो आश्चर्य होता है, जब कुछ को कहते सुनता हूँ कि बाहर के कार्यकर्ता आयेंगे तब हमारे क्षेत्र में काम होगा। यह तो गाँव तथा प्रखंड के जिम्मेवार लोगों का अपना काम है। हम खुद कार्यकर्ता हैं।" प्रमुखजी ने बैठक में आये अन्य प्रखंड-प्रमुखों को भी निवेदन किया कि वे लोग जल्दी अपने अपने प्रखण्डदान को पूरा करवाने में लग जायें। प्रमुखजी ने आगे कहा, "इसमें नयी बात भी क्या है? अपने मजदूरों को जमीन देना, उनका ठीक पालन करना, यह हमारा कर्तव्य है। मेरी माँ हमेशा कहती थी कि बेटा, बाँटकर खाना।"

हरएक प्रखण्ड के विकास-अधिकारी ने अपने प्रखण्ड में काम कहाँ तक हुआ है, उसकी जानकारी दी।

काम सब जगह शुरू है। कहीं-कहीं से तो यह आशा व्यक्त हुई कि तीन-चार दिन में कार्य पूरा हो जायेगा। कुछ जगह कार्यकर्ता-शक्ति कम पड़ रही है, इसलिए ही देरी है। कुल मिलाकर सबमें इस काम को विनोबाजी के रहते पूरा करने का उत्साह था।

विनोबाजी ने अमरपुर प्रखण्डदान-घोषणा के लिए प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा, "आप लोगों ने अभी प्रमुखजी की बातें सुनीं। उन्होंने कहा है कि लोग अब समझ रहे हैं और बुलाकर अपने हस्ताक्षर देते हैं। कानूनी हिसाब से जरूरी जनसंख्या शामिल हो, यह तो ठीक है, परन्तु खुशी इस बात की है कि प्रमुखजी ने बताया कि उनकी पंचायत से सौ प्रतिशत हस्ताक्षर मिले हैं। बिहार में ४०,००० से अधिक गाँव शामिल हो चुके हैं। बचे हुए काम में अब देरी क्यों? यही सोचने की बात है। आज परिस्थिति का खतरा समझने की जरूरत है। आपकी सरकार पर भरोसा नहीं, लोगों का अपने पर भरोसा नहीं और हिंसा की शक्तियों पर विश्वास बैठ रहा है। पड़ोसी बंगाल में तो जनता ने उन्हें वोट दिया है, और सरकार में लाया है, जो खुले शब्दों में चीन की भक्ति करते हैं। बंगाल सीमा-प्रदेश है। बिहार का पूर्णिया जिला नक्सालबाड़ी से बहुत दूर नहीं है।"

बाबा को जब बताया गया कि सरकारी अधिकारियों की सहानुभूति इस काम में होने पर भी उन्हें आजकल अपनी पूरी शक्ति सर-

कारी कर्ज वसूली में लगानी पड़ रही है, तब वह मुस्कराकर बोले, "देश के सामने सवाल टिकाने का है। इसके लिए जरूरी है कि गाँव अपने पैर पर खड़ा हो। स्वराज्य की शक्ति वहीं से बनेगी। देश में अनाज का उत्पादन बढ़ा नहीं, यह पिछले १० वर्ष की प्रगति है। जनसंख्या बढ़ रही है। प्रति व्यक्ति दूध की मात्रा ७॥ तोले रह गयी है, जो स्वराज्य के पूर्व दुगुनी से भी ज्यादा थी। सरकार लेवी, कर्ज यह सब वसूल न करे यह मैं नहीं कहता। गाँव में शक्ति संगठित होगी, तो 'लेवी' नहीं 'देवी' होगी। लोग खुशी से गाँवसभा के द्वारा देंगे। सरकारी कर्ज आज खेती के नाम पर लेते हैं और कई बार शादी-विवाह में खर्च होता है। जब गाँवसभा होगी तो यह दुरुपयोग रुकेगा। जो गाँव कर्ज लेकर अच्छी खेती करे, उसे प्रोत्साहन देने के लिए कुछ कर्ज माफ भी किया जा सकता है। यह सब काम बाद में हमें करने ही हैं। अभी तो सब एकमात्र पाँच-सात दिन समय देकर अपना-अपना प्रखण्डदान पूरा कर डालो। अच्छे काम में यह राह मत देखो कि ऊपर से आदेश आयेगा, भगवान का इशारा समझो।"

अमरपुर प्रखण्ड में २४ पंचायतें हैं। अभी तक ६३६२ परिवारों के हस्ताक्षर लिये जा चुके हैं, जो ७५ प्रतिशत से अधिक हैं। काम अभी शुरू है। अमरपुर प्रखण्ड में अधिकांश किसान हैं। परिश्रमी, शिक्षित व सम्पन्न किसानों ने ग्रामदान में अगुवाई की, इसलिए भूमि भी ५१ प्रतिशत से अधिक प्रखण्डदान में आयी है।•

अ० भा० सर्वोदय-सम्मेलन के लिए स्वागत-समिति गठित

पटना : १ अप्रैल। आज स्थानीय नागरिकों की एक बैठक में राजगीर में आयोजित होनेवाले आगामी सर्वोदय-सम्मेलन की पूर्व-तैयारी के लिए स्वागत-समिति का गठन हुआ। समिति के अध्यक्ष श्री जयप्रकाश नारायण, कार्यकारी अध्यक्ष श्री ध्वजा बाबू, महामंत्री श्री वैद्यनाथ प्रसाद चौधरी और कोषाध्यक्ष श्री नवलकिशोर सिंह चुने गये।

स्वागत-समिति की सदस्यता का शुल्क १० रुपये निर्धारित किया गया और प्रदेश भर में १० हजार सदस्य बनाने का लक्ष्य घोषित किया गया।•

३९ वें गणेश शंकर बलिदान-दिवस (२५ मार्च) के अवसर पर

स्वराज्य किसके लिए ?

"देश में जो स्वराज्य होगा, वह होगा किसी छोटे-मोटे समुदाय का नहीं, धनवानों और शिक्षितों का नहीं, वह होगा साधारण से साधारण आदमी तक का। संसार के कुछ देशों में व्यक्ति को समान अधिकार कागजों पर दिये गये हैं, परन्तु कुलीनों, धनवानों और शिक्षितों के गुट करोड़ों आदमियों को दाबे बैठे हैं। साधारण व्यक्ति अपनी हीन अवस्था को अनुभव कर रहा है। वह कहता है—कागज के इन अक्षरों का कोई मूल्य नहीं, समान अधिकार है तो आगे बढ़ने के लिए भी समान अवसर दो।

भारतवर्ष में भी मुट्ठी भर आदमी—कभी गोरे, कभी भूरे—तुम्हारे भाग्य-विधाता बने रहेंगे, तुम्हारी राह में रोड़े अटकायेंगे और तुम्हें अज्ञान और अन्धकार में रखेंगे। यदि सचमुच इस देश के भाग्य में यही बदा है तो हम यही कहेंगे, हमें स्वराज्य नहीं चाहिए। हमारे करोड़ों भाई, यदि गुलामी के बन्धन में जकड़े हुए हैं, यदि वे अज्ञान और अन्धकार में पड़े हैं, यदि उन्हें पेट भर खाने को नहीं मिलता और पहनने भर को कपड़ा, उन्हें रहने के लिए जगह नहीं मिलती और चलने के लिए राह, तो उस दिशा की ओर जिधर हमारे इने-गिने आदमी सुख से समय बिताते हों और प्रभुता के अधिकारी बने हुए हों, उधर, हम अपना मुँह भी नहीं करना चाहते। 'हम तो' उसी ओर जायेंगे, उसी ओर रहेंगे—सड़ने-घुटने और गुमनामी में मर जाने तक के लिए, जिधर हमारे शरीर के शरीर, हमारे हृदय के हृदय, हमारे दीन-हीन और पीड़ित करोड़ों भाई होंगे। उस दुःख में एक शान्ति होगी, और उस सुख में—करोड़ों के कंकाल पर भोगे जानेवाले थोड़े-से आदमियों के उस सुख में एक गहरी ग्लानि।" —गणेश शंकर विद्यार्थी

['गणेश शंकर विद्यार्थी के श्रेष्ठ निबन्ध' नामक पुस्तक से साभार]

✻ गांधी-शताब्दी कैसे मनायें ? ✻

★ आर्थिक व राजनैतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण और ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के लिए ग्रामदान-आन्दोलन में योग दें।

★ देश को स्वावलम्बी बनाने और सबको रोजगार देने के लिए खादी, ग्राम और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दें।

★ सभी सम्प्रदायों, वर्गों, भाषावार समूहों में सौहार्द-स्थापना तथा राष्ट्रीय एकता व सुदृढ़ता के लिए शांति-सेना को सशक्त करें।

★ शिविर, विचार-गोष्ठी, पद-यात्रा वगैरह में भाग लेकर गांधीजी के संदेश का चिंतन-मनन और प्रसार करें, उसे जीवन में उतारें।

शताब्दी-समिति के गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति द्वारा प्रसारित।

राज्यदान के बाद क्या और कैसे ?

अब बिहार का राज्यदान होगा। और इसी प्रकार तमिलनाडु को भी राज्यदान की घोषणा करने में देर नहीं होगी। अन्य राज्य भी, जिन्होंने संकल्प किया है, एक-एक कर राज्यदान की मंजिल पूरी करेंगे। सहसा यह प्रश्न उठेगा—"राज्यदान तो हुआ, अब क्या ?" यह प्रश्न आज भी सामने है, लेकिन आज तो हम मन को यह कहकर समझा लेते हैं कि राज्यदान तो होने दीजिए। जब राज्यदान हो जायेगा तो फिर तत्काल इस प्रश्न का जवाब देना पड़ेगा कि राज्यदान के बाद क्या ?

इसी प्रश्न पर सहचिन्तन के लिए हाजीपुर (मुजफ्फरपुर) में उत्तर प्रदेश, बिहार और नेपाल के कुछ साथियों का एक सप्ताह का एक शिविर गांधी-जन्म-शताब्दी समिति के तत्वावधान में गत १५ मार्च से २१ मार्च तक आयोजित किया गया। शिविर में भाग लेनेवाले शिविरार्थियों की संख्या उत्तर प्रदेश से १५, बिहार से ९७ और नेपाल से ५, कुल ११७ थी। शिविर में श्री धीरेन्द्र भाई दो दिन उपस्थित रहे। आचार्य राममूर्तिजी ने शिविर के सहचिन्तन में सातों दिन मार्गदर्शन किया। इनके अलावा श्री ध्वजाप्रसाद साहू, श्री वैद्यनाथ प्रसाद चौधरी और श्री सरयू प्रसादजी के चिन्तन का लाभ इस शिविर को प्राप्त हुआ।

शिविर के सहचिन्तन के लिए भूमिका स्पष्ट करने के लिए निवेदन की साइक्लोस्टाइल प्रतियाँ शिविरार्थियों को बाँट दी गयी थीं। इस निवेदन में कहा गया था कि "साम्यवाद खुलकर आक्रामक हुआ है तथा अपनी उपलब्धियों में 'अंतिम व्यक्ति' से बहुत दूर जा पड़ा है। साम्यवादी विचार आज भी 'बुर्जुआ डिमोक्रेसी' और 'प्रालिटेरियन सोशलिज्म' के नारों में भटक रहा है। एशियाई देशों का पाश्चात्य टेक्नालाजी और उद्योगवाद से विकास होगा या उनका ब्रिटेन, अमेरिका के नमूने पर स्थायी राजनैतिक संगठन हो सकेगा, अथवा सैनिक-शक्ति से वे अपनी स्वतंत्रता कायम रख सकेंगे, यह सब आग्रह कोरे भ्रम सिद्ध हो चुके हैं। कुछ भी हो, लोकतंत्र और विज्ञान के प्रभाव में 'सर्व' एक नया दर्शन बन चुका है। व्यक्ति की स्वायत्तता (अटानोमी आफ दी इंडिविजुअल) मूल्य के रूप मान्य हुई है और सर्वोदय आज नयी पीढ़ी की जागतिक आकांक्षा बन गया है। भारत में हम उस आकांक्षा को मूर्त रूप देने की दिशा में ग्रामदान के द्वारा एक जोरदार कदम उठा चुके हैं।

ग्रामदान लोकतंत्र के नाम में न दल के हाथ में सत्ता सौंपने का आंदोलन है, और न राष्ट्रीयकरण के नाम में सरकार के हाथ में स्वामित्व सौंपने का। ग्रामदान का उपास्य 'सर्व' है। ग्रामदान ने इसको ही सत्ता और स्वामित्व का अधिकार माना है। जैसे-जैसे गाँव में सहकार बढ़ता है, जनता, सरकारी, अर्ध-सरकारी, या गैर-सरकारी तंत्रों का आश्रय छोड़ती जाती है, और क्या व्यवस्था और क्या विकास, हर क्षेत्र में उसकी स्वाश्रयिता बढ़ती जाती है। स्वाश्रयिता समन्वित इकाई के रूप में गाँव के नये जीवन का आधार है। इस स्वाश्रयिता का विकास 'गाँव एक गणराज्य' तथा 'भारत गणराज्यों का संघ' तक हो सकता है।

इस विराट कल्पना के संदर्भ में ग्रामदान-आन्दोलन ने तात्कालिक कार्यक्रम के रूप में दो बातें प्रस्तुत की हैं। एक छोर पर 'स्वायत्त ग्राम-व्यवस्था' और दूसरे पर 'दलमुक्त राज्य-व्यवस्था'। ग्रामदान सन् १९७२ को इसी दृष्टि से देखता है। उस समय राज्य की व्यवस्था संगठित स्वायत्त ग्रामसभाओं के सर्वसम्मत प्रतिनिधियों के हाथों में आ जानी चाहिए। इन दोनों छोरों का मिलाप ग्राम स्वराज्य का शुभारम्भ होगा।

हर रोज की शिविर-चर्चा-गोष्ठी के लिए नये-नये अध्यक्ष निर्वाचित होते रहे। श्री सरयू बाबू ने शिविर में आये प्रतिनिधियों का सम्मान करते हुए कहा कि ग्रामदान का काम ठीक से कैसे सम्पन्न हो, यही गांधी-शताब्दी वर्ष का मुख्य काम है।

प्रारम्भ में आचार्य राममूर्ति ने कहा कि आज अपने देश में राजनैतिक रिक्तता पैदा हो रही है। इस रिक्तता को कौन भरेगा ? यह एक बड़ा सवाल है।

श्री धीरेन्द्र भाई ने कहा कि गोष्ठी-अभियान चलाया जाय, ताकि नये समाज का चित्र लोगों के दिमाग में स्पष्ट हो सके। इसके लिए गाँव-गाँव में गोष्ठियाँ चलायी जायँ और साथ ही प्रखण्ड-स्तरीय गोष्ठियाँ भी आयोजित हों। उन्होंने कहा कि कम-से-कम एक प्रखण्ड में एक लोकसेवक बैठे। वह लोकसेवक जीविका के लिए किसी दूसरे पर निर्भर न रहे। अपनी जीविका में लोकसेवक स्वयमाश्रित हो। उन्होंने अपनी आकांक्षा व्यक्त की कि पूरे देश में कम-से-कम १० हजार लोकसेवक निकलने चाहिए।

श्री धीरेन्द्र भाई के भाषण के बाद शिविर तीन गोष्ठियों में विभक्त हो गया। एक गोष्ठी ने 'ग्रामदान-पुष्टि एवं संगठन', दूसरी ने 'ग्रामसभा का गठन' तथा तीसरी ने 'ग्रामसभा का संचालन' पर चर्चा की। तीनों गोष्ठियों ने चर्चा करने के बाद अपना-अपना सुझाव शिविर के सामने रखा। फिर उस पर चर्चा हुई। कुछ सुझाव नीचे दे रहे हैं।

पुष्टि कार्य के लिए यह सुझाव आया कि इस कार्य के लिए संस्थाओं से बाहर के कार्यकर्ता तैयार किये जायँ। इसमें शिक्षक तथा विद्यार्थी ज्यादा मददगार साबित होंगे। इनके शिक्षण के लिए शिविरों का आयोजन करना चाहिए।

ग्रामसभा-संचालन के लिए आर्थिक आधार ग्रामकोष होगा। इसके लिए पूरा समय देनेवाला हर गाँव में एक कार्यकर्ता तैयार हो। सरकार द्वारा विकास के जितने भी काम किये जाते हैं, वे सब ग्रामसभा के माध्यम से ही किये जायें। ग्रामसभा सर्वप्रथम बीघा-कट्ठा निकाले, ग्रामकोष संग्रह करे। गाँव के झगड़े ग्रामसभा तय कराये, कोई मुकदमा अदालत में न जाय।

लोकनीति ग्राम प्रतिनिधित्व पर चर्चा करते हुए आचार्य राममूर्तिजी ने पहले ग्रामस्वराज्य के छहों [illegible] १. स्वायत्त ग्रामसभा, २. [illegible] घस, [illegible] ३.पुलिस.

संगठन के सम्बन्ध में सहचिंतन के लिए...

१८ अप्रैल सन् १९५१ को तेलगाना के पोचमपल्ली गाँव में भूमिहीनों के लिए ८० एकड़ भूमि का दान माँगनेवाले के अभ्यन्तर में क्या रहा होगा, नहीं मालूम, लेकिन जाहिर रूप में इतनी बात स्पष्ट है कि उसकी कोई पूर्वयोजना नहीं थी और न उसकी सम्भावनाओं के सम्बन्ध में बहुत दूर तक का चिंतन था। देनेवाले के मन में तो सम्भावनाओं के सम्बन्ध में और भी कम पूर्व चिंतन की गुंजाइश थी, लेकिन परिस्थिति के गर्भ से यह 'भूदान' प्रकट हुआ और शायद इतिहास, नियति या परमेश्वर की प्रेरणा से उसका स्वरूप व्यापकतर होता गया। आकार भी बढ़ा, आत्मा भी विकसित हुई और आज भूदान छठा हिस्सा, बीघा-कट्ठा, ग्रामदान, प्रखण्डदान, जिलादान की मंजिलों से होते हुए राज्यदान तक पहुँच रहा है।

हर मंजिल पर आगे बढ़ने के लिए इस क्रान्ति-अभियान के नायक ने एक लक्ष्य की घोषणा की—करायी कहना शायद अधिक उपयुक्त होगा—और लक्ष्य-पूर्ति की चेष्टा करते हुए हम आगे बढ़ते रहे। कहनेवाले कहते हैं कि इस आन्दोलन का इतिहास विफलताओं का ही इतिहास है। भूदान का जो लक्ष्य घोषित था, पूरा नहीं हुआ, सन् १९५७ तक 'पूर्ण विकास या पूर्ण विनाश' का उद्घोष उद्घोष बनकर ही रह गया। आँकड़े बढ़ते गये, लेकिन ग्राम-स्वराज्य का चित्र किसी एक गाँव में भी कहीं देखने को नहीं मिला, दरभंगा जिलादान के बाद कुछ नहीं हुआ, आन्दोलन का आकार फैल रहा है, लेकिन उस अनुपात में 'आत्मा' पुष्ट नहीं हो रही है, गुणात्मक विकास आन्दोलन का नहीं हो रहा है, परिमाणात्मक हो रहा है। जिस कोण से आन्दोलन को देखकर ये बातें कही जाती हैं, उस दृष्टि से ठीक हो सकती हैं।

लेकिन इसे देखने का एक दूसरा भी कोण है दृष्टि का, और वह है क्रान्ति का दृष्टिकोण! पश्चिम का एक क्रान्तिकारी लेखक डेब्रे अपनी पुस्तक "क्रान्ति में क्रान्ति" में लिखता है : "एक क्रान्तिकारी के लिए विफलता अगली छलाँग के लिए एक 'स्प्रिंग बोर्ड' है। क्रान्तिकारी दर्शन की दृष्टि से यह 'विजय' से अधिक सम्भावनाओं से भरा है। इससे अनुभव और ज्ञान अर्जित होता है।" क्या क्रान्ति के इस दृष्टिकोण से ग्रामस्वराज्य का आन्दोलन विफलता का इतिहास कहा जायगा? क्या हमें हर संकल्प से एक नये और अधिक व्यापकतर संकल्प की प्रेरणा और शक्ति नहीं मिलती रही है? कहनेवाले इसे विफलता कहें, लेकिन करनेवालों के लिए तो इसे क्रान्ति के आरोहण में एक के बाद एक दिखाई देनेवाली मंजिलें हैं, जिनसे प्रेरणा और शक्ति पाकर वे आगे बढ़ते जा रहे हैं'''बढ़ते जा रहे हैं।

गुरिल्ला-युद्ध और क्रान्ति का एक 'हीरो' चेग्वारा अपनी एक पुस्तक में कहता है : "तात्कालिक संघर्षों की निष्पत्ति बहुत महत्त्व नहीं रखती। आखिरी परिणाम का जहाँ तक सम्बन्ध है, महत्त्व इस बात का नहीं है कि एक या दूसरा आन्दोलन पराजित हुआ, महत्त्व का मुद्दा तो क्रान्ति के लिए यह है कि आन्दोलन दिन-प्रति-दिन परिपक्व हो रहा है या नहीं, क्रान्ति की चेतना और उसकी सम्भावनाओं के प्रति निष्ठा बढ़ रही है या नहीं।" यद्यपि हमारी क्रान्ति की पद्धति और प्रक्रिया चेग्वारा की पद्धति और प्रक्रिया से भिन्न है, लेकिन उसमें निहित जो चेतना है, वह महत्त्वपूर्ण है, हमारे लिए भी।

क्रान्ति की इस दृष्टि से निश्चय ही हमें विफलता या निराशा की कोई बात अपने आन्दोलन में दिखाई नहीं देती। लेकिन इतना जरूर है कि 'राज्यदान' के करीब आने से अब हम एक ऐसे मुकाम पर पहुँच रहे हैं, जहाँ बहुत ही सतर्कता के साथ आगे कदम बढ़ाने की जरूरत है।

क्रान्ति के प्रयासों और परिणामों का अध्ययन करके विद्वान लोगों ने क्रान्ति की ३ स्थितियाँ स्पष्ट की है : (१) स्थापना, (२) विकास, और (३) सफलता के लिए आखिरी पूर्ण संयोजित और संगठित चेष्टा। आज हम यह कहने की स्थिति में पहुँच गये हैं कि ग्रामस्वराज्य की क्रान्ति विचार को देश में स्थापित कर चुके हैं। अब यह विचार उपेक्षणीय नहीं है। इससे आगे की स्थिति विकास की ओर हम बढ़ रहे हैं। ग्रामदानी ग्रामसभाओं का संगठन, ग्रामदान की शर्तों की पूर्ति, निर्वाचन मण्डलों का संगठन आदि क्रान्ति-विकास के काम पूरे करके हमें 'सत्ता' को 'लोक' तक पहुँचाने का लक्ष्य पूरा करना है। निश्चय ही यह बात लिख देने या कह देने में जितनी आसान है, करने में उतनी ही कठिन। लेकिन इससे हम रुकने या हार माननेवाले तो हैं नहीं! जैसा कि विनोबाजी कहते हैं कि भगवान छोटे लोगों द्वारा ही बड़े काम कराना चाहता है। इस भारी काम को हमें अपनी अल्प शक्ति से करने की प्रेरणा देनेवाला बाबा का महान व्यक्तित्व उपलब्ध है, यह हमारा सौभाग्य है, हमसे अधिक इस युग का सौभाग्य है। लेकिन इस उपलब्धि के साथ ही हमें एक दूसरे पहलू पर भी विचार करना बहुत ही आवश्यक लगता है, और वह है हमारे संगठन की शक्ति का। 'संगठन अहिंसा की कसौटी है,' इसी मंत्र-वाक्य को ही ध्यान में रखकर सर्वोदय-मण्डलों और सर्व सेवा संघ का संगठन खड़ा करने का प्रयास हुआ है।

लेकिन मेरी नम्र राय में आज ये संगठन आन्दोलन की आवश्यकताएँ अभी पूरी नहीं कर पा रहे हैं। जब कि राज्यदान के कारण इस आन्दोलन से देश में अपेक्षाएँ तेजी से बढ़ रही हैं। हम पूरे देश को, समाज के हर व्यक्ति को इसमें लाना चाहते हैं, तो ऐसी अपेक्षा अस्वाभाविक भी नहीं है। इस स्थिति में आन्दोलन जीवन-मरण की नाजुक स्थिति में पहुँच गया है, ऐसा कहा जा सकता है।

प्राथमिक सर्वोदय मण्डल कैसे अधिकाधिक संगठित और सक्रिय हों, उनकी बुनियाद पर बीच की, और उसके बाद देश की इकाई सर्व सेवा संघ, किस प्रकार सबल नेतृत्व देने की क्षमता विकसित कर सके, ये अत्यन्त गम्भीरता और सतर्कता से विचार करने के पहलू हैं। अधिकार और संघर्ष से मुक्त विचार की शक्ति ही हमारी मुख्य शक्ति है, इसलिए अपने क्रान्ति-विचार को केन्द्र मानकर हम तिरुपति-अधिवेशन में इस पहलू पर विचार करें, ताकि संगठन विचार का पूरी तरह प्रतिनिधित्व कर सके। —रामचन्द्र राही

डिक्टेटर-से-डिक्टेटर

पाकिस्तान एक डिक्टेटर से छूटा और दूसरे डिक्टेटर के हाथ में गया। दस साल में इतिहास का चक्र घूम गया। जो पहले अयूब ने किया था वही अब याह्या खां ने किया है। जब अन्तिम फैसला तलवार को ही करना है तो फैसला उसीके पक्ष में होगा जिसकी तलवार मजबूत होगी। अयूब ने जिस तरह इसकन्दर मिर्जा को खत्म किया था, उसी तरह याह्या ने अयूब को खत्म किया। जनता ने उस तमाशे को भी देखा था, और अब इस तमाशे को भी देख रही है। देखने और भोगने के सिवाय वह फिलहाल कर ही क्या सकती है?

पाकिस्तान का जन्म उन्माद में हुआ था। उन्माद के कारण उसकी स्वतन्त्रता जन्म से ही विषाक्त हुई। जिस तरह धर्मान्धता और घृणा ने स्वतंत्रता को विषाक्त किया, उसी तरह पिछले महीनों के उपद्रवों ने नागरिक-अधिकारों के अभियान को कमजोर बनाया, और अन्त में उभरती हुई नयी लोकतांत्रिक चेतना को पूँजीवाद और सैनिकवाद के सम्मिलित प्रहार का शिकार बन जाना पड़ा। मालूम नहीं कहाँ तक पाकिस्तान के जन्मदाता जिन्ना ने नियति के इस क्रम की कल्पना की होगी।

पाकिस्तान का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि कोई देश एक बार हिंसा के रास्ते को अपनाकर बाकी मंजिल पर नहीं रुक सकता। हिंसा और तानाशाही की यात्रा अयूब की 'बेसिक डिमाक्रेसी' पर नहीं रुक सकती थी; उसे याह्या के 'मार्शल ला' तक पहुँचना ही था। जहाँ पहुँचना अनिवार्य था, वहाँ पाकिस्तान पहुँच गया।

हिंसा और तानाशाही की इस यात्रा में पाकिस्तान ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि अगर नागरिक भी तानाशाह की तरह हिंसा को ही अपनी शक्ति बनाने की कोशिश करेगा तो अन्तिम विजय हिंसा की ही होगी, नागरिक की नहीं। और अन्त में जो हिंसा अधिक शक्तिशाली होगी वही विजयी होगी। निश्चित ही आज के युग में राज्य की हिंसा नागरिक की हिंसा से कहीं अधिक शक्तिशाली है। उपद्रव से संगठित, सुसज्जित हिंसा का मुकाबिला नहीं किया जा सकता। अवसरी हिंसा को लेकर पाकिस्तान की जनता ने अपने बचे-खुचे अधिकार भी खो दिये, और अगर बन्दूक से उसकी विजय भी होती तो शासन बन्दूकवालों का होता, जनता का नहीं। हिंसा की 'शान्ति' की उत्तराधिकारी अशान्ति ही होती है।

आखिर, पाकिस्तान की जनता क्या चाहती थी? उसकी माँग थी नागरिक-अधिकारों की। पश्चिमी पाकिस्तान का आन्दोलन मुख्यतः शहरी था। विद्यार्थी, मजदूर, पढ़े लिखे मध्यमवर्गीय लोग, सब अयूबशाही की घुटन से व्याकुल थे। वे कुछ कहना चाहते थे, पर कह नहीं सकते थे; करना चाहते थे, लेकिन कर नहीं सकते थे। वे अपनी आँखों से देख रहे थे कि विकास के नाम में जो दौलत पैदा हो रही है वह कहाँ जा रही है। गिने हुए कुल २० परिवारों के हाथ में ६६ प्रतिशत औद्योगिक सम्पत्ति, ७९ प्रतिशत बीमा और ८० प्रतिशत बैंक थे। भला अनीति का यह कड़ुवा घूँट पीया जा सकता था? एक ओर यह भयंकर विषमता, और दूसरी ओर भ्रष्ट और स्वार्थी नौकरशाही! अयूब के जमाने में इन्हीं तत्त्वों को बढ़ावा मिला। लोग खुलकर कहने लगे कि पाकिस्तान में 'डाकुओं का पूँजीवाद' है। सिन्धी, पठान, पख्तून आदि सबकी आँखों के काँटे थे 'घृणित पंजाबी', और हर तरफ से यही आवाज आने लगी थी कि पश्चिमी पाकिस्तान को जबरदस्ती एक न रखा जाय, और हर क्षेत्र को विकास का समान अवसर दिया जाय।

इसी तरह की आवाज, लेकिन ज्यादा जोरदार, पूर्वी पाकिस्तान में भी उठी। पूर्वी बंगाल की आवाज ज्यादातर ग्रामीण थी। उसकी नजरों में पश्चिमी पंजाबी 'बाहरी' थे जिन्होंने सब बड़े ओहदे घेर रखे थे। पूर्वी बंगाल पश्चिमी पंजाब का 'बाजार' बना हुआ था। पूर्वी बंगाल के जूट की कमाई का ४० प्रतिशत से अधिक पश्चिमी पाकिस्तान के उद्योगपतियों के हवाले हो जाता था। पूर्वी बंगाल के गृहउद्योग नष्ट हो गये और बेकारी भयंकर रूप में फैल गयी। भूखे बंगाली को अपनी तबाही तो खलती ही थी, उससे अधिक खलता था अपनी भाषा और संस्कृति के प्रति होनेवाला सौतेले बेटे का बर्ताव। बंगाली देखता था कि जब उसका मानस क्षोभ से भरा हुआ था तो कुछ नेता 'बेसिक डेमोक्रेट' कहलाकर अयूबशाही के पिट्ठू बने हुए थे। यही कारण था कि उपद्रव के दिनों में सबसे अधिक प्रहार इन पिछलगुओं पर हुए।

एक के बाद एक कारण जुड़ते गये और परिस्थिति बकती गयी। दस वर्षों के दबे हुए सारे क्षोभ एकसाथ उभड़ उठे। बोलने लिखने की छूट मिले, चुनाव बालिग मताधिकार से हो, सरकार संसदीय ढंग की बने, पूर्वी बंगाल स्वायत्त हो, आदि माँगें एकसाथ बुलन्द होने लगीं। 'जमाते इस्लामी' की कट्टर धर्मान्धता के मुकाबिले एक इस्लामी धर्मनिरपेक्षतावाद की हवा बहने लगी जो नये जमाने के नये मूल्यों को समर्थक थी। कई मुल्लाओं और मौलवियों तक ने अयूबशाही का विरोध किया। जगह-जगह समाजवाद का स्वर सुनाई देने लगा।

यह सब हुआ। महीनों तक अनेक रूपों में लोक-मानस का क्षोभ प्रकट हुआ। लेकिन एक बात विशेष ध्यान देने लायक थी। सिवाय कभी-कभी भुट्टो और असगर खाँ की बहक के, कहीं भारत-विरोधी नारे नहीं लगे। कहीं अल्पसंख्यक हिन्दुओं पर आक्रमण नहीं हुए, बल्कि हुआ यह कि जब अयूब के समय मुस्लिम राजनैतिक बन्दी छोड़े जाने लगे तो उन्होंने आग्रह किया कि हिन्दू बन्दी भी छोड़े जायें। बात यह है कि पाकिस्तान की लड़ाई सम्प्रदायवाद की नहीं थी, राष्ट्रवाद की भी नहीं थी; थी सचमुच रोटी और इज्जत की, इनसान की तरह जीने का अवसर पाने की। इस व्यापक चाह का प्रतिनिधित्व करनेवाली जनता की उपराष्ट्रीयता दमनकारी पाकिस्तानी राष्ट्रवाद के मुकाबिले सामने आयी। प्रश्न उठा दोनों में कौन बड़ा है? —

राष्ट्र, राष्ट्र के नायक और शासक, या राष्ट्र में रहनेवाले करोड़ों नर-नारी ?

एक ओर जनता का मानस नये आत्मविश्वास और नयी उमंगों से उमड़ रहा था, और दूसरी ओर राजनैतिक नेता यह सिद्ध करने में लगे हुए थे कि वे सही नेतृत्व करने में कितने असमर्थ हैं। वे क्षोभों को उभाड़ सकते हैं, और उन्हें अपनी महत्वाकांक्षा के साथ जोड़ भी सकते हैं, किन्तु वे यह नहीं बर्दाश्त कर सकते कि उनका नेतृत्व न रहे। वे सब कुछ कर सकते हैं, लेकिन जनता को अपने पैरों पर खड़ा होने देने के लिए राजी नहीं होंगे। आज की विरोधवादी राजनीति ध्रुवीकरण (पोलराइजेशन) के सिद्धान्त पर चलती है। नतीजा यह होता है कि अपने साथ-साथ जनता की शक्ति को भी तोड़ देती है। अयूब की तानाशाही के मुकाबिले पाकिस्तान के नेता एक नहीं हो सके। पूर्वी बंगाल की स्वायत्तता,या पश्चिमी पंजाब के क्षेत्रों का बँटवारा, आदि कई प्रश्नों पर एक राय नहीं हो सकी। 'डेमोक्रेटिक ऐक्शन कमिटी' के सदस्यों में स्वयं आपसी मतभेद थे, तथा उनका भुट्टो-भासानी से भी मतभेद था। राजनीति के मतभेदों तथा युवकों के उपद्रवों ने लोक-पक्ष को कमजोर किया, जिसका फायदा उठाकर तथा निहित स्वार्थों का पक्ष और 'पाकिस्तान खतरे में' का नारा लेकर याह्या कूद पड़ा और परिस्थिति पर हावी हो गया। किसी वक्त 'इस्लाम खतरे में' का नारा लगा तो पाकिस्तान बना, और अब 'पाकिस्तान खतरे में' का नारा लगा तो पाकिस्तान की जनता की पुकार कुचली गयी। सत्ता की भूखी यह राजनीति चाहे वह तानाशाह की हो, और चाहे दलों के नेताओं की—खोखली हो चुकी है। उनके सारे क्रिया-कलाप इसीलिए होते हैं कि जनता को कल्याण के भ्रम में रखकर कुछ दिन और अपने को जिन्दा रखें। हर जगह फासिस्टवाद का रास्ता इस राजनीति द्वारा साफ हो रहा है।

जो कुछ होना था, हो गया। अब आगे क्या होगा ? दो ही रास्ते दिखाई देते हैं—*याह्या की कृपा या जनता का विद्रोह।* कृपा होगी तो चुनाव होंगे, नहीं होगी तो विद्रोह होगा। सचमुच वास्तविक शक्ति विद्रोह की ही है। लेकिन तब, जब विद्रोह खुला और अहिंसक हो। सच्चा लोकतंत्र लोक की शक्ति से आयेगा, बन्दूक की शक्ति से नहीं।

भारत में जो भी अधूरा लोकतंत्र आज तक कायम है उसके पीछे गांधी की आत्मा काम कर रही है। उनके और स्वतंत्रता की लड़ाई के अदृश्य प्रभाव का नेताओं की निरंकुशता पर इतना अंकुश तो है ही कि बालिग मताधिकार पर आघात करने की हिम्मत किसीमें नहीं है। हजार गलत काम हुए हैं, और हो रहे हैं, किन्तु कहीं कोई बात जरूर है जिससे इस देश की रक्षा हो रही है। उस बात का तकाजा है कि भारत की जनता पाकिस्तान के प्रति अपनी दृष्टि बदले। पाकिस्तान हमारा पड़ोसी ही नहीं, मित्र भी है, ऐसी *प्रतीति हमें अपने व्यवहार से पाकिस्तान की जनता को करानी* चाहिए। सन् १९४६ के लीगी नारे 'इस्लाम खतरे में' का बदला हम सन् १९६९ में 'हिन्दू खतरे में' के नारे से न चुकायें। इस नारे से हम पाकिस्तान-हिन्दुस्तान दोनों का अहित करेंगे। भारत में हिन्दुओं की राजनीति एक नहीं हो सकती, ठीक उसी तरह जैसे पाकिस्तान में मुसलमानों की राजनीति एक नहीं हो सकी। राजनीति अल्प-संख्यकों की एक होती है, बहुसंख्यकों की नहीं। इसलिए दलों की राजनीति से अलग हटकर अब दिलों की लोकनीति की बात सोचनी चाहिए। पाकिस्तान की घटनाओं के असर से कश्मीर में हवा का रुख बदल रहा है। भारत का मुसलमान देख रहा है कि पाकिस्तान में क्या हो रहा है। *भारत का हिन्दू भी समझ रहा है कि उसके* सवाल हिन्दू होने से नहीं हल होंगे, अगर हल होंगे तो मनुष्य होने से। अगर हिंदू मुसलमान-विरोधी होगा तो हरिजन-ईसाई आदि सब हिन्दू-विरोधी हो जायेंगे। यह परस्पर-विरोध भारत को *कहाँ पहुंचायेगा ? परिस्थिति की मांग है कि हम अपना दिल बड़ा* करें। यह मानकर चलें कि वह दिन दूर नहीं है जब भारत-पाकि-स्तान-हिन्दुस्तान-सिक्किम-भूटान आदि सब पड़ोसी देश एक महासंघ के सदस्य होंगे, और उस महासंघ में भारत और पाकिस्तान दोनों के कई क्षेत्रों और कई समुदायों को अपने निर्णय से अपने ढंग की जिन्दगी जीने की छूट होगी।

संयोग है कि भारत के लिए इस वक्त मनुष्यता की दृष्टि से जो नीति सही है वही कुशल राजनीति की दृष्टि से भी सही है। पाकिस्तान डिक्टेटर-से-डिक्टेटर के हाथ में गया है; हम कोशिश करें कि हमारा यह लोकतंत्र हाथ से न जाने पाये। कौन जाने भविष्य भारत-पाकिस्तान को फिर करीब लाना चाहता हो !•

भारत में ग्रामदान-प्रखण्डदान-जिलादान

(३१ मार्च '६९ तक)

प्रांत	ग्रामदान	प्रखण्डदान	जिलादान
बिहार	४०,८०४	३७१	९
उत्तर प्रदेश	१४,१२६	८२	२
तमिलनाडु	११,६२३	१३४	३
उड़ीसा	९,२४८	४०	–
मध्य प्रदेश	५,१००	२५	२
आन्ध्र प्रदेश	४,२००	१०	–
संयुक्त पंजाब	३,६९४	७	–
महाराष्ट्र	३,४५१	१४	–
असम	१,४८६	१	–
राजस्थान	१,०२१	१	–
गुजरात	८०३	३	–
प० बंगाल	६४४	–	–
केरल	४१८	–	–
मैसूर	५७०	–	–
दिल्ली	७४	–	–
हिमाचल प्रदेश	१७	–	–
जम्मू-कश्मीर	१	–	–
कुल :	९७,३८३	६८८	१६

—कृष्णराज मेहता

समाज बदले, और शीघ्र बदले

आवश्यकता है विनोबा के पीछे शक्ति खड़ी करने की — केवल समर्थन पर्याप्त नहीं

मित्रों के मिलन का दिन है, इसलिए मैं कुछ खास की बातें आपसे कर लेना चाहता हूँ। सार्वजनिक प्रवचन या भाषण एक अलग चीज है और मित्र के बीच की बातचीत एक अलग चीज है। आप लोगों से मेरा निवेदन है कि जो कुछ मैं कहता हूँ, मेरे साथ उसका थोड़ा गम्भीरतापूर्वक विचार करें।

आज हमारे देश की जो परिस्थिति है, इस परिस्थिति के कारण हर देशप्रेमी मनुष्य का दिल बैठ रहा है। कुछ असमंजस में वह अपने आपको पा रहा है, कुछ खोया-खोया-सा है। समझ में नहीं आ रहा है, क्या करें। असंतोष सबके मन में है लेकिन किसीको कोई रास्ता साफ दिखाई नहीं दे रहा है। ऐसी परिस्थिति में अपने काम में बम्बई जैसे शहरों में अपने सामने तरुणों को और तरुणियों को देखता हूँ, तो मुझे कुछ आशा होती है।

मेरी अपनी ऐसी धारणा है कि समाज-परिवर्तन का जो आंदोलन विनोबा इस युग में कर रहा है उस तरह का मूलगामी आन्दोलन और इस देश में कोई नहीं कर रहा है। लेकिन फिर भी कुछ ऐसी संकीर्ण भावनाएँ देश में फैल रही हैं जो वातावरण को इतना जहरीला बना देती है कि पता नहीं, ग्रामदान सारे देश में हो जाने के बाद भी इस देश के लोग एक-दूसरे के साथ रहना सीखेंगे या नहीं सीखेंगे ! बहुत गंभीर समस्या है और मेरा निवेदन आपसे यह है कि अकेला विनोबा या अकेला जयप्रकाश नारायण इस समस्या को हल नहीं कर सकता। मेरे कुछ मित्र कहते हैं कि ऐसा संकट इस देश के जीवन में शायद ही कभी पैदा हुआ हो। क्यों नहीं जयप्रकाश जैसा व्यक्ति सामने आता ? क्यों नहीं वह यह कहता है कि इस देश की परिस्थिति को सम्हाल लूँगा ? कौन-कौन मेरे साथ आते हैं, आओ।

समाज शीघ्र बदले

मैं आपसे विश्वास दिलाता हूँ कि जयप्रकाश बाबू जैसा व्यक्ति अगर अपने-आप में यह शक्ति पाता तो वह बगैर इस प्रकार का आवाहन किये नहीं रहता। केवल सिद्धांत के लिए वह यह नहीं कहता कि सत्ता लेना मेरा काम नहीं। लेकिन जिस प्रकार की शक्ति आज इस देश को चाहिए, मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ, वह शक्ति राज्य की नहीं हो सकती और सेना की भी नहीं हो सकती। एक दृष्टि से बहुत ही भयानक परिस्थिति है कि सेना की भी वह शक्ति न हो। लेकिन एक दृष्टि से हम यह भी कह सकते हैं कि हमारे लिए यह परिस्थिति अब अनुकूल है, जब सैनिक-शक्ति की जगह नागरिक शक्ति का विकास हो सके। सैनिक शक्ति की जगह नागरिक-शक्ति का विकास न हो सका तो न सैनिक-शक्ति रही, न नागरिक-शक्ति रही और न राज्य-शक्ति रही। राज्य शक्ति तो अब, मैं समझता हूँ, आनेवाले एक दो महीनों में, शून्य-लब्धि तक पहुँच जानेवाली है। जिसे आप 'डिसइण्टिग्रेशन' कहते हैं, बंगाल में शुरू हो गया है।

दादा धर्माधिकारी

दिल्ली के साथ एक तरह की लड़ाई शुरू हो गयी है, केरल में भी शुरू हो सकती है। मध्यप्रदेश का, बिहार का तमाशा आप देख रहे हैं। अगर इस तमाशे से केवल मनोरंजन होता तो हम आनन्द से देखते, लेकिन यह तमाशा भस्मसुख तमाशा है। मानो, अपना मकान जल रहा है और हमको तमाशा देखने के लिए कहा जा रहा है। इस तरह की परिस्थिति आज इस देश में है। ऐसी अवस्था में आप और हमको भी आज क्या कुछ सोचना होगा, क्या कुछ करना होगा ? लोगों का दुःख दूर करने की, संकट निवारण की कितनी क्रियाएँ हैं, कितने आन्दोलन हैं— करने होंगे, करने चाहिए। लेकिन आज आवश्यकता है, सबसे बड़ी आवश्यकता है— तुरन्त इस समाज को जड़मूल से बदलने की। आज अगर हम इस समाज को जड़मूल से बदलने का संकल्प नहीं करते हैं तो अब यह देश बचनेवाला नहीं है। क्या आपको आज की सामाजिक स्थिति असह्य मालूम होने लगी है ? आज की सामाजिक स्थिति से मेरा मतलब है गरीबी और बेकारी से। इस देश में जो गरीबी और बेकारी है—क्या उसको देखकर अब आपकी सहन शक्ति अपनी सीमा तक पहुँच गयी है ?

क्रान्ति का तीसरा विकल्प : ग्रामदान

यह सवाल हमको अपने से इसलिए पूछना है कि आज गरीबी के नाम पर जितने उपद्रव हो रहे हैं उन सारे उपद्रवों में गरीब यह समझ रहा है कि ये उपद्रव करनेवाले हमारे अभिभावक हैं। क्या हमारे लिए गरीब की यह धारणा है, यह सवाल है ? वह हमको सज्जन माने, साधू माने, सच्चरित्र माने, इतना काफी नहीं है। क्या वह यह मानता है कि हम उसके तरफदार हैं ? यह अगर भावना हम गरीब और बेकार के मन में पैदा नहीं कर सकेंगे तो हमको सोचना होगा कि हमारे जीवन में, हमारी मनोवृत्ति में और हमारे आचरण में ऐसी कोई कमी जरूर रह गयी है, जिसके सबब से गरीब आदमी उपद्रवकारी को अपना अभिभावक समझता है और हमें नहीं समझता। सारे देश के गरीबों ने गांधी को अपना माना था। उस वक्त भी मजदूरों के संगठन थे, उस वक्त भी मजदूरों की हड़तालें होती थीं, उस वक्त भी किसान-सभाएँ थीं और मजदूर-नेता, किसान-नेता गांधी की कड़ी आलोचना करते थे। लेकिन देश का साधारण मजदूर और किसान गांधी को अपना आदमी मानता था।

आज हमको कहा जा रहा है कि देश के सामने दो ही विकल्प हैं—एक तो पूँजीवादियों की प्रस्थापित, वैधानिक, प्रतिष्ठित हिंसा या फिर जो बेकार हैं, गरीब हैं उनकी अव्यवस्थित, अप्रतिष्ठित, अन्धाधुन्ध हिंसा। क्या हम यह कह सकते हैं कि तीसरा भी कोई विकल्प है ? विनोबा ने तीसरा विकल्प दिखा दिया है। उसने यह कहा है कि तीसरा भी विकल्प है।

मेरे मन में इसके विषय में कोई संदेह नहीं है। इस देश में कोई पार्टी ऐसी नहीं है, इस देश में कोई मजदूरों का और किसानों

का संगठन ऐसा नहीं है, जो अपनी सत्ता और सुव्यवस्था इस देश में कायम कर सके। उपद्रवों से क्या होगा? अराजकता आयेगी। आज पुलिस और फौज साधारण मनुष्य को कोई संरक्षण नहीं दे सक रही है। साधारण मनुष्य की न जान सुरक्षित है, न माल सुरक्षित है। उपद्रवकारियों का यह जब तक विरोध नहीं करता है तभी तक सुरक्षित है। जिस दिन उपद्रवकारियों के सामने वह खड़ा हो जायगा, वह सुरक्षित नहीं है। न पुलिस उसका संरक्षण कर सकती है, न फौज उसका संरक्षण कर सकती है। ऐसी परिस्थिति में अराजकता के बाद सत्ता—सत्ता से मेरा मतलब प्रभाव—उन लोगों का होगा, जिनमें उपद्रव करने की शक्ति है। देश-भक्ति से कोई मतलब नहीं, शान्ति से कोई मतलब नहीं। लेकिन यह परिस्थिति ज्यादा दिन नहीं टहरेगी। इस परिस्थिति के बाद अगर व्यवस्था आयेगी तो उस व्यवस्था में दो सत्ताएँ प्रमुख होंगी—एक चीन की और दूसरी पाकिस्तान की। इसके आसार, इसके चिह्न आज हमें दिखाई दे रहे हैं। जहाँ-जहाँ पर आज अपने हाथ में परिस्थिति लेने की कोशिश लोगों की भीड़ कर रही है, वहाँ पर दो नारे चल रहे हैं। असल में नारा एक ही ज्यादा चल रहा है, माओ का। लेकिन जो माओ का नारा लगाते हैं, उनका आज मुस्लिम संप्रदायवादी संस्थाओं के साथ गठबंधन है। हमारे पड़ोस में, सीमा के उस पार जो परिस्थिति है—चीन और पाकिस्तान के गठबंधन की—उस परिस्थिति की परछाईं, उसका प्रतिबिम्ब देश की अंतर्गत परिस्थिति पर भी पड़ रहा है।

भारतीय क्रान्ति की प्रेरणा भारत में मौजूद

एक तरफ हिंदू सम्प्रदायवाद है। बहुसंख्या का सम्प्रदायवाद है, इसलिए अधिक भयानक है। लेकिन दूसरी तरफ उससे कहीं अधिक भयानक मुस्लिम सम्प्रदायवाद है, जिसमें 'एक्स्ट्रा टेरिटोरियलिज्म' भी मिला हुआ है। 'एक्स्ट्रा टेरिटोरियलिज्म' से मेरा मतलब भारत-बाह्य निष्ठा, यह विश्वनिष्ठा नहीं है। मैं संकुचित संकीर्ण राष्ट्रवाद का हिमायती नहीं हूँ। लेकिन जिसे भारत में बाह्य निष्ठा कहते हैं, वह इस देश के माओवादी भी हैं और मुसलमान सम्प्रदायवादी भी हैं। मैं सभी मुसलमानों की बात नहीं कर रहा हूँ। जैसे सम्प्रदायवादी हिंदुओं की बात मैंने कही, सम्प्रदायवादी हिंदुओं की जैसी एक जमात है, वैसी ही सम्प्रदायवादी मुसलमानों की एक जमात है, ये पाकिस्तानवादी हैं। अराजकता से लाभ इन्हींका होनेवाला है। और मेरा और आपका काम है लोगों को यह समझाना। इसमें इस देश के गरीब की कोई भलाई नहीं होनेवाली है। ये दोनों ईमानदार हो सकते हैं। मुझे पता नहीं—मैं किसीको बेईमान नहीं कह रहा हूँ। शायद वे अपने दिल में यह मानते होंगे कि चीन की सहायता से यहाँ जो सत्ता स्थापित होगी वह सत्ता भारतीय होगी, प्रभुत्व चीन का होगा—उस सत्ता के द्वारा इस देश के गरीब की वे भलाई कर सकेंगे। लेकिन यह भ्रम है।

दुनिया के इतिहास में अभूतपूर्व घटना घटी है—दो कम्युनिस्ट देशों का आपस में युद्ध। यह कभी हुआ था दुनिया के इतिहास में? कभी सुना था आपने? कभी मार्क्स ने सपने में भी यह सोचा होगा कि दो समाजवादी देश हो सकते हैं और उनका भी एक-दूसरे के साथ युद्ध हो सकता है? लेकिन हो रहा है। चीन और रूस एक होते तो शायद दुनिया में, आज अधिकांश दुनिया में कम्युनिज्म का सिक्का चल जाता। इन दोनों का युद्ध जिस बात का द्योतक है कि अब किसी विदेशी सत्ता के भरोसे देश के गरीब का कल्याण नहीं होगा। चीन के विषय में जानकारी कुछ है नहीं। लेकिन मेरी तो अक्ल नहीं काम करती कि चीन के नेता क्या सोच रहे होंगे? वे हरेक से लड़ाई मोल ले रहे हैं। किसके भरोसे? किस चीज का भरोसा है? ऐसी कौनसी शक्ति उनके पास है कि जिसके भरोसे वे दुनिया भर से लड़ाई मोल ले रहे हैं? उनके पास कोई ऐसी गुप्त ताकत हो, जिसका हमें पता न हो। लेकिन वह तो उनके अपने भरोसे की बात है। हमारा देश अपने भरोसे कुछ नहीं कर सकता—मानो, इस बात को घोषित कर रहे हैं ये नेता, जो चीन के नारे लगा रहे हैं। क्योंकि जो दूसरे हैं, जो चीन के नारे नहीं लगा रहे हैं, उन्होंने भी आज तक हमको यही सिखाया कि बगैर रूस और अमेरिका के, यह देश अपने भरोसे नहीं जी सकता, तो क्या हमारे सामने यही विकल्प है? इसको सोचने की जरूरत है। और अगर यह विकल्प नहीं है तो अब वह दिन आ गया है, जब विनोबा के पीछे सबकी शक्ति खड़ी होनी चाहिए। केवल समर्थन से अब काम नहीं चलेगा। मैंने आपसे निवेदन किया कि आज की तुरन्त आवश्यकता है समाज-परिवर्तन। अगर समाज परिवर्तन हो जाता है तो माओ का नारा बेकार हो जाता है। लेकिन जिस बिहार में विनोबा रोज ग्रामदान करता है, उसी बिहार में, उन्हीं ग्रामदानी गाँवों में बेदखलियाँ चल रही हैं। उन्हीं गाँवों में सत्ताधारी और सम्पत्तिधारी उसके काम को बिगाड़ने की कोशिश कर रहे हैं। आप यह नहीं समझिए कि शहर का इससे कोई सम्बन्ध नहीं। उन गाँवों की तरफ, उनकी समस्याओं की तरफ अब बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, बंगलोर, हैदराबाद, दिल्ली के शहर-निवासी अगर ध्यान नहीं देंगे तो गाँव तो खो ही जायेंगे, और गाँव खो जायेंगे तो जिन गाँवों की बुनियाद पर ये शहर खड़े हुए हैं, वे पत्ते के बंगले जैसे गिर जायेंगे।

[बम्बई : कार्यकर्ताओं के बीच]

सामाजिक टकराव और गांधीजी

ए० के० दासगुप्त

कम-से-कम एक जीवनी लेखक ने गांधीजी की मार्क्स के साथ तुलना की है। लुई फिशर ने कहा है—"गैर-अधिकारी वर्ग के लोगों में से जिन व्यक्ति का मनुष्य के मन पर प्रभाव पड़ा है, उनमें गांधी की तुलना में सिर्फ कार्ल मार्क्स का नाम आता है।"[1] यह तुलना मौजूं है। लेकिन जिस प्रकार के मूल्यांकन को मद्देनजर रखकर लुई फिशर ने यह तुलना की है उसे बहुत दूर तक लागू किया जा सकता है, इसमें शक है। जितना मार्क्स का मनुष्य के मन पर प्रभाव पड़ा उसके साथ गांधी के प्रभाव की तुलना की जा सकती है, यह कहना बहुत हद तक गलत होगा। आज मानव-समाज का लगभग आधा हिस्सा मार्क्स के बताये रास्ते पर चल रहा है। मानव समाज के बाकी हिस्से में भी यह धारणा जमती जा रही है कि मार्क्स ने जैसे समाजवादी समाज की कल्पना की थी, यद्यपि उसमें पूंजी और श्रम का द्वंद्व विभाजन अवास्तविक है, तो भी वह समझ में आने लायक और व्यावहारिक भी है। दूसरी ओर गांधीजी ने जो बातें सिखायी वे अस्पष्ट रूप से बहुत लोगों तक पहुंची, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उनके कारण लोगों के दिमाग में ऐसी कोई हलचल पैदा हुई हो, जो उनमें सक्रियता लाने का आधार बनी हो।

इसमें कोई शक नहीं कि स्वतंत्रता की लड़ाई के प्रसंग में सन् १९२० से '३० के दौरान भारत में गांधी के बताये ढर्रे पर बहुत से काम हुए। किन्तु स्वतंत्रता प्राप्त करने का सारा श्रेय गांधी के प्रभाव की देन को देना ऐतिहासिक दृष्टि से अतिशयोक्ति की बात होगी। गांधी के कार्यक्रम के साथ-साथ उन दिनों भारतीय आतंकवादियों का आन्दोलन भी मौजूद था, जो बाद में श्री सुभाषचन्द्र बोस की भारतीय राष्ट्रीय सेना (आई० एन० ए०) में रूपांतरित हुआ। नौसेना का विद्रोह भी एक आन्दोलन था, जिसका आजादी के आन्दोलन पर असर पड़ा। आजादी मिलने के बाद भारत में जो सामाजिक और आर्थिक कार्यक्रम चालू हुए उन पर गांधीजी की बतायी हुई बातों का कोई खास असर रहा हो, यह भी नहीं कहा जा सकता। पंचवर्षीय योजनाओं की चाहे जो भी उपलब्धि हुई हो, वे गांधी की योजना नहीं हैं।

भारत के बाहर दुनिया के एकाध हिस्से में दबे हुए लोगों ने बलवान लोगों के खिलाफ संघर्ष करने में गांधीजी के नाम का इस्तेमाल किया है, लेकिन यह सब छिटपुट ढंग से हुआ और उसका अभी तक कोई गहरा असर नहीं प्रकट हुआ है।

टकराव की सामाजिक परिस्थिति

इतना सब होते हुए भी मैं मानता हूं कि गांधीजी के सामाजिक सिद्धांतों के कुछ ऐसे पहलू हैं, जो कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों के बहुत करीब पहुंचे हुए दिखाई देते हैं। यहां पर मैं गांधी और मार्क्स में तुलना करना मौजूं मानता हूं, क्योंकि मार्क्स और गांधी, दोनों सामाजिक टकराव (कान्फ्लिक्ट) को एक तथ्य के रूप में कबूल करते हैं और दोनों ने इसके निराकरण के लिए अपने-अपने कार्यक्रम निर्धारित करते समय वैज्ञानिक रुख अख्तियार किया है।

गांधीजी ने वैज्ञानिक रुख अख्तियार किया, यह सुनकर बहुत लोगों को हैरत होगी। सभी देखनेवालों को गांधीजी एक प्रज्ञावान व्यक्ति के रूप में दिखाई दिये, जो प्रकाश के लिए अन्तःप्रेरणा या अन्तरात्मा की 'भीतरी आवाज' पर निर्भर करते थे। और, गांधीजी यही कहा भी करते थे। इतना सब होते हुए भी गांधीजी अवश्य ही एक वैज्ञानिक थे। क्या उन्होंने अपने सारे जीवन का 'सत्य के प्रयोग' के रूप में उल्लेख नहीं किया है? यदि कठिनाई की घड़ियों में अन्तःप्रेरणा ने उनकी सहायता की तो इसे उन्होंने अवलोकन, अनुभव और परीक्षण के द्वारा समझा था और ये ही वैज्ञानिक खोज के अत्यावश्यक पहलू हैं।

मो० क० गांधी : टकराव का विकल्प

गांधीजी ने समाज में टकराव (कान्फ्लिक्ट) को देखा और बताया कि यह टकराव तीन दायरों में मौजूद है—(१) उद्योग में मजदूर और मालिक के बीच, (२) खेती में रैयत और जमींदार के बीच, और (३) देहातों और शहरों के बीच। टकराव के तीसरे दायरे का हवाला देकर दरअसल गांधी मार्क्स से एक कदम आगे निकल गये।[2]

खेती में काम करनेवाला मजदूर, खेती की मजदूरी से भले ही गरीबी का जीवन बिताये, लेकिन जमींदार को खेती की पैदावार का ज्यादा से ज्यादा हिस्सा मिले, इसीमें उसका स्वार्थ है। पूंजीपति का स्वार्थ इसमें है कि मिल की आमदनी का ज्यादा-से ज्यादा

१. लुई फिशर : "दी लाइफ ऑफ महात्मा गांधी" : पृष्ठ-३६७

२. "सिलेक्शन्स फ्राम गांधी" : पृष्ठ-३६

दिहगा उसे मिले और उसमें काम करनेवाले मजदूर जैसे-तैसे जिन्दा रहने भर की मजदूरी पायें। इसी तरह देहात के लोगों से कारोबार करते समय शहर के लोग अपने लिए सुविधाजनक शर्तें रखते हैं। गांधीजी ने इस बात को भांप लिया था कि औद्योगीकरण की प्रक्रिया में एक ओर मजदूरों का, और दूसरी ओर खेती का शोषण होता है। आधुनिक औद्योगीकरण मजदूरों को कम मजदूरी देने और उद्योग के लिए जरूरी कच्चे माल की सस्ती कीमत चुकाने पर टिका हुआ है और इससे पूँजीपतियों को सबसे ज्यादा लाभ मिलता है।

मगर गांधीजी मशीनों के खिलाफ हैं, तो इसलिए कि उनका आज की अर्थ-व्यवस्था में खास उपयोग है और मशीनें पूँजीपतियों के शोषण का जरिया बनती हैं। दरअसल गांधीजी मशीनों के खिलाफ नहीं हैं। अगर कोई मालिक खुद किसी मशीन का उपयोग करता है और किसी बाहरी मजदूर का अपनी मशीन पर इस्तेमाल नहीं करता तो वह मशीन शोषण का साधन नहीं होती। गांधीजी ऐसी मशीनों के लिए अपना आशीर्वाद देते हैं। *उन्होंने कहा है—"मेरा मकसद* यह नहीं है कि हर तरह की मशीनों का खात्मा हो जाय, बल्कि उनके उपयोग की मर्यादा तय की जाय। उन्होंने सिलाई की मशीन की मिसाल देते हुए कहा कि अबतक जितनी चीजों का आविष्कार हुआ है, उनमें से यह एक काम की चीज है।"[३]

टकराव से बचाव

अब यह सामाजिक टकराव कैसे खत्म हो? इस मामले में गांधीजी के विचारों के दो मुद्दे हैं, *जिन्हें साफ-साफ समझने की* जरूरत है। पहला मुद्दा उनकी ट्रस्टीशिप की बात है और दूसरा मुद्दा है अनाक्रामक प्रतिकार (पैसिव रेसिस्टेंस) का। यह सही है कि गांधीजी हमेशा दोनों को एक-दूसरे से अलग नहीं करते। उन्होंने अक्सर अनाक्रामक प्रतिकार को शोषितों द्वारा ट्रस्टीशिप की भावना को मजबूत बनाने के साधन के रूप में माना है। गांधीजी ने जो कुछ लिखा है, उसमें निश्चय ही ऐसे अंश मौजूद हैं, जो *यह जाहिर करते हैं कि उनके मन में जिस* अच्छे समाज का नक्शा है, उसमें सिर्फ इतना ही नहीं है कि कहीं किसीका शोषण नहीं होगा, बल्कि किसीके मन में टकराव की *भावना भी नहीं होगी—जो अबतक शोषक* हुआ करते थे, उनमें एक नया विश्वास पैदा होगा, जिससे वे अपनी संपत्ति को एक ट्रस्ट के रूप में देखेंगे।

गांधीजी के विचारों को सफाई से समझने के लिए यह बहुत जरूरी है कि गांधीजी के इस आदर्श चित्र और असहयोग तथा निष्क्रिय प्रतिरोध के सिद्धांत के अन्तर को जान लिया जाय। असहकार और अनाक्रामक प्रतिरोध की खास विशेषता यह है कि वह समाज में टकराव की स्थिति को मद्देनजर रखते हुए प्रस्तुत हुआ है। सामाजिक सम्बन्धों का एक वास्तविक, अत वैज्ञानिक मूल्य-मापन (एसेसमेण्ट) है। और यहीं पर गांधीजी और मार्क्स की तुलना की सार्थकता सिद्ध होती है।

यह दुर्भाग्यजनक है कि भारत के स्वतंत्र हो जाने के बाद जिन लोगों ने गांधीजी के विचारों को देश में फैलाने की *कोशिश की, उदाहरण के लिए सर्वोदय का* काम करनेवाली जमात को ले लें, वे लोग गांधीजी के ट्रस्टीशिप के विचार को ही सामने ला रहे हैं। इन लोगों द्वारा गांधीजी दुनिया के सामने एक आदर्शवादी और द्रष्टा की शकल में पेश किये जा रहे हैं।

मार्क्स और गांधी में मतैक्य

जो पद्धति यह मानकर चली हो कि आमतौर से आदमी अपने निजी स्वार्थ को छोड़ देने के लिए राजी किया जा सकता है, उसे कोई गम्भीरतापूर्वक कैसे कबूल कर सकता है? एक बार श्री आल्फ्रेड मार्शल कह चुके हैं कि "किसी सामाजिक नीति की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह मानव-स्वभाव की न सिर्फ उदात्त, बल्कि बलवान शक्तियों का भी उपयोग करती हो।"[४] शोषण समाप्त करने के प्रति मानव-स्वभाव में निहित प्रचण्ड इच्छा-शक्ति को मार्क्स ने वर्गों के टकराव को मिटाने के कार्यक्रम में प्रयुक्त होने के लिए पेश किया।

गांधीजी के अनाक्रामक प्रतिकार के पीछे भी यही दर्शन विद्यमान है। असहयोग और सिविल नाफर्मानी को सामाजिक टकराव को समाप्त करने का *'उचित और अजेय साधन'* बताते हुए गांधीजी कहते हैं—"समाज में गरीबों का सहयोग पाये बिना धनी लोग धन इकट्ठा करने में सफल नहीं हो सकते, यदि यह ज्ञान गरीबों को हो जाय और उनके अन्दर असर जमा ले तो गरीब ताकतवर हो जायेंगे। और यह सीख लेंगे कि कैसे अपने को उस परिस्थिति से आजाद करें।"

गांधीजी का चरखे का कार्यक्रम आत्म-निर्भरता और स्वावलम्बन का प्रतीक है, यह एक ऐसा औजार है, जिससे समाज का कमजोर आदमी भी पूरी ताकत के साथ शोषण का सामना कर सकता है। यदि जमींदार ठीक आचरण नहीं करता तो जमीन जोतनेवालों को कहा जाता है कि वे भूमि-कर न दें। गांव के लोगों को बताया जाता है कि अगर नगरों के उद्योगपति व्यापार की सुविधाजनक शर्तें नहीं मानते तो उनके साथ कारोबार बन्द *कर दें। कारखाने में काम करनेवाले मजदूर* को मिल-मालिक से निपटने के लिए यही तरकीब सुझायी जाती है और अंत में अंग्रेजी राज के लिए भी यही बात समूचे देश के लोगों को समझायी जाती है। इस प्रकार असहयोग और प्रतिरोध को शोषण से मुक्ति *पाने के हथियार के रूप में प्रस्तुत किया गया* है और इसे कारगर बनाने के लिए आत्म-निर्भरता तथा स्वावलंबन का दार्शनिक आधार प्रदान किया गया है।

इन सभी मामलों में गांधीजी और मार्क्स के उपदेशों में साफ साफ सामीप्य है। दोनों समाज में व्याप्त टकराव की वस्तुस्थिति के प्रति सजग हैं और दोनों शोषण के मुकाबले के लिए एक ही साधन-शोषितों को इस्तेमाल करते हैं।[५] दोनों की भावना क्रांतिकारी है। दोनों में जो फरक है और वह निश्चय ही

---

३. 'सिलेक्शन्स फ्राम गांधी' : पृष्ठ ७९

४. आल्फ्रेड मार्शल : "इण्डस्ट्री ऐण्ड ट्रेड" : पृष्ठ-६६४

५. गांधीजी का ट्रस्टीशिप का विचार इससे भिन्न चीज है। ट्रस्टीशिप में गांधीजी शोषकों को ही वर्ग-वैषम्य मिटाने का माध्यम बनाते हैं।

बुनियादी है, वह है दोनों की भावी समाज की धारणा का फरक।

मार्क्स और गांधी में अन्तर

मार्क्स की परियोजना में बड़े पैमाने की उत्पादन व्यवस्था कायम रहती है, लेकिन उसकी पूँजी (जिसमें जमीन भी शामिल है) व्यक्ति के हाथों में न होकर समाज के हाथों में रहती है। मार्क्स ने दलील दी है कि पूँजीवादी पद्धति के विकास में ही यह बात छिपी हुई है कि उसमें मजदूर-वर्ग रहेगा। समाज-रचना को पूँजीवादी से समाजवादी बनाने के लिए ऐसी व्यूह रचना की गयी है कि मजदूर वर्ग बगावत द्वारा मालिकों की संपत्ति जब्त करके अपने वर्ग की मालिकी स्थापित करे। इसके विपरीत गांधीजी ने ऐसे सामाजिक ढाँचे की बात रखी है, जिसमें व्यक्ति का निजी स्वामित्व रहेगा। लेकिन वह उतनी ही संपत्ति रख सकेगा, जितनी वह खुद इस्तेमाल कर सकता है।

जब खेती करनेवाले लोग अपने खेत के मालिक होते हैं तो ऐसा ही होता है। इसमें जमींदार और रैयत के सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं। उद्योग के क्षेत्र में इसे लागू करने के लिए ग्रामोद्योगों को विकसित करना होगा, ताकि जो लोग उद्योग में लगे हैं, वे अपने ही साधनों से काम कर सकें।

जिस प्रक्रिया द्वारा यह सामाजिक रूपांतर होगा उसके बारे में भी गांधी और मार्क्स की अलग अलग दृष्टियाँ हैं। मार्क्स ने उद्योगपतियों और मजदूरों के बीच युद्ध का प्रतिपादन किया है। गांधीजी की प्रक्रिया अहिंसात्मक है। कर्मचारी द्वारा जिस प्रतिरोध का अनुसरण होगा वह मार्क्स के सघर्ष के ढग का ही होगा। लेकिन उसके अन्तर्गत किसी ऐसी हिंसात्मक क्रिया का उपयोग नहीं होगा, जो मार्क्स ने सुझाया है।

इस मामले में सिर्फ एक ही गुत्थी और रह जाती है कि औजारों के उत्पादन का क्या होगा? क्या गांधीजी की पद्धति में कारखानों के काम को एकदम तिलांजलि दे दी गयी है? वस्तुओं के उत्पादन को सम्भव बनाने के लिए जिन औजारों और यंत्रों की जरूरत होगी वे कितने भी आसान हों, फिर भी क्या बिना किसी बड़े पैमाने की प्राद्योगिकी के उनका उत्पादन सम्भव होगा? और बड़े पैमाने की प्राद्योगिकी रहेगी तो बड़े पैमाने के कल-कारखाने और श्रमिक भी तो रखने ही पड़ेंगे?

गांधीजी ने जब सिलाई की मशीन को अपनी मान्यता के अन्दर माना तो उनसे पूछा गया कि जो कारखाना सिलाई की मशीन बनायेगा, उसके बारे में आप क्या कहते हैं? *गांधीजी ने जवाब दिया कि हाँ, वह तो रहेगा, लेकिन मैं इतना समाजवादी हूँ कि कह सकूँ कि वह कारखाना राष्ट्रीयकरण या राज्य के नियंत्रण में रहना चाहिए।*

प्रतिकार का युद्ध या शोषण की समाप्ति करने के औजार के रूप में कितनी उपादेयता है, इसके बारे में कोई कुछ भी कह सकता है और गांधीजी जिस तरह का समाज बनाना चाहते हैं, उसकी आर्थिक सम्भावनाओं के बारे में भी कोई कुछ कह सकता है, लेकिन इस सन्दर्भ में कुछ कहनेवाले को भारत की इस परिस्थिति को ध्यान में रखकर ही कुछ कहना होगा कि यहाँ इफरात श्रम-शक्ति मौजूद है। भारत की परिस्थिति में गांधीजी ने एक *यथार्थवादी और ऐसा सम्यक् दर्शन दिया है,* जो न सिर्फ मानव स्वभाव की सिर्फ 'उदात्त भावनाओं' पर, बल्कि 'शक्तिशाली' प्रेरणाओं पर भी आधारित है। यह खेदजनक बात है कि गांधीजी के विचारों का यह पहलू आज के भारत के सामने नहीं रखा जा रहा।

["इकोनोमिक ऐण्ड पोलिटिकल वीकली" के ७ दिसम्बर '६६ के अंक में प्रकाशित अंग्रेजी लेख से] अनुवादक—रूपभाव

रचनात्मक कार्यकर्ताओं द्वारा मध्यप्रदेश-दान की योजना

२० से २४ मार्च, '६६ तक छतरपुर में आयोजित मध्यप्रदेश-गांधी-स्मारक-निधि के कार्यकर्ता-नवसंस्कार-शिविर में उपस्थित कार्यकर्ताओं ने घोषणा की कि हम सब कार्यकर्ता गांधी शताब्दी-वर्ष में पूज्य महात्मा गांधी के ग्राम स्वराज्य और अहिंसक समाज-रचना के लिए गांधी-शताब्दी-दिवस पुण्यपर्व २ अक्तूबर, '६६ तक मध्यप्रदेश-दान के *महान् संकल्प की पूर्ति के लिए कृतसंकल्प हैं।*

प्रदेशदान के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने निम्न निर्णय लिये—

• प्रदेश में एकसाथ सभी जिलों में जिलादान के लिए व्यापक अभियान शुरू हो, इसके लिए जिलास्तरीय गोष्ठियाँ, परिसंवाद, शिविर-सम्मेलन और बैठकों आदि का आयोजन *करेंगे और समस्त शासकीय-अशासकीय* कार्यकर्ताओं के सहयोग से विकास खण्ड-स्तर और पंचायत-स्तर पर ग्रामदान-प्राप्ति-शिविरों और यात्राओं का संयोजन करेंगे।

• प्रदेश में प्रदेश स्तरीय संस्थाओं के सहयोग से कुछ जिलों में कम से कम समय और अवधि में जिलादान प्राप्त हो, इस दृष्टि से जिलादान के लिए सघन अभियानों का आयोजन करेंगे।

• प्रदेश के जो जिले दान में आ गये हैं, उनमें स्थानीय कार्यकर्ताओं, संस्थाओं और *शासन के सहयोग से जिलादान-पुष्टि-अभियान* का आयोजन करेंगे, जिसके अन्तर्गत *ग्रामसभा-संगठन, ग्रामकोष संग्रह,* भूमिहीनों में भूमि-वितरण, पुलिस अदालत-मुक्ति, ग्रामाभिमुख खादी, ग्रामोद्योग, मद्य-निषेध, भंगी-मुक्ति तथा स्त्री और युवक-शक्ति के जागरण के लिए विविध कार्यक्रमों का संगठन करेंगे।

• प्रदेश के सब गाँवों में सर्वोदय का सन्देश पहुँचाने के लिए पंचायतों, सहकारी-समितियों, शिक्षण संस्थाओं तथा ग्रामसभाओं *आदि के माध्यम से पाक्षिक 'शताब्दी-सन्देश'* के साथ कुछ चुना हुआ सर्वोदय साहित्य पहुँचाने का प्रयास करेंगे।

• प्रदेश में शान्ति-सेना के संगठन के लिए नगरों और कस्बों के विद्यालयों में तरुण शान्ति-सेना तथा ग्रामों में ग्राम शान्ति-सेना का संगठन करेंगे तथा इसके लिए उत्सुक नागरिकों से संकल्प पत्र प्राप्त करेंगे।

• प्रदेश में बुद्धिजीवियों और विशेषत शिक्षकों की शक्ति प्रकट हो, उनकी प्रतिष्ठा बढ़े और देश के नवनिर्माण में उनकी प्रतिभा का लाभ मिले, इस दृष्टि से 'आचार्य-कुल' के संगठन में मदद करेंगे।

• प्रदेश में शान्ति सेना तथा सर्वोदय-विचार-सम्पन्न कार्यकर्ताओं का समूह बढ़े, इस दृष्टि से इस वर्ष मध्यप्रदेश के हर सम्भाग में गांधी-शताब्दी विद्यालय के दो सत्र चलाने का प्रयास करके कम-से-कम २५० *कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करेंगे।* •

भागलपुर जिलादान शीघ्र सम्पन्न होने की आशा

१७ फरवरी को विनोबाजी का सुलतानगंज गंगाघाट पर भागलपुर जिला-निवासियों ने स्वागत किया था और २६ मार्च को बाँका डाकबंगला से विदाई दी। बाबा का पड़ाव जिलादान हेतु इस बार भागलपुर जिले में ४० दिन का रहा।

१८ फरवरी को नाथनगर, २२ फरवरी को शाहकुण्ड, १६ मार्च को अमरपुर और २६ मार्च को कटोरिया, धोरैया, बांका, बाराहाट, जगदीशपुर और कहलगाँव, इस तरह कुल ९ प्रखण्ड दान में मिले।

अब ८ प्रखंड बाकी रहे हैं, जिनमें से कुछ एक सप्ताह में और कुछ दो सप्ताह में पूरा कर देने का आश्वासन मिला है। विदाई सभा में प्रो० रामजी सिंह गिना रहे थे कि किस प्रखंड में काम कैसे किन सज्जनों ने पूरा किया है। वहाँ के प्रतिनिधि सामने आकर दो शब्द बोलते और बाबा को प्रखंड समर्पित करते जाते थे। कहीं प्रखंड-पंचायत-प्रमुख, कहीं प्रखंड-विकास अधिकारी, कहीं प्रखंड-शिक्षा-प्रसार अधिकारी और कहीं खादी-संस्था को काम पूरा करने का श्रेय रहा है। जिला-शिक्षा अधिकारी श्री अतुल बाबू ने यहाँ जब बाबा से शुरू में भेंट की थी तभी बाबा ने उनके कन्धे अपने आशीर्वचनों से मजबूत कर दिये : "आपको दरभंगा से इस जिले में भेजा गया है, यह ठीक ही हुआ। बाबा का काम यहाँ पूरा करना होगा।" श्री अतुल बाबू दरभंगा जिलादान-अभियान के समय उस जिले में ही नियुक्त थे। इसलिए उन्हें ग्रामदान-प्राप्ति की कार्यपद्धति और भावना, दोनों ही पूँजी प्राप्त थी। १८ फरवरी से सतत जिले भर में वे दौरा करते रहे। सम्भव हुआ तो कभी कृष्णराजजी, कभी रामजी बाबू साथ हो लिये। यहाँ शिक्षक संघ ने बाबा की वाणी को—"शिक्षक हम शांति के अग्रदूत बनें"—चरितार्थ किया है। शिक्षकों की मदद रही तभी इस गति से काम हो सका।

इन ४० दिनों में स्वयं भाई रामजी सिंह कितनी रातें ५ घंटे की नींद भी ले पाये होंगे! कुछ रातें तो प्रखंडदान की धुन में किसी-न-किसी प्रखंड-पड़ाव पर ही बीतीं। घर से एक छोटी-सी दरी और एक चादर का बिछौना और कागजों के झोले का तकिया। दिन भर की दौड़-धूप से थका हुआ, काम की चर्चा करते-करते रात को १० बजे के बाद नींद के आक्रमण से लाचार होकर जो सोयेगा उसे बिस्तर-बिछौने का होश ही क्या!

बाबा ने कार्यकर्ताओं का तप कैसे अपने हृदय में संजो रखा है, वह कभी-कभी प्रकट हो जाता है। ता० २१ को बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ के अध्यक्ष श्री गोपालजी शास्त्री जब बाबा से मिले तब बाबा ने कहा—"अभी १४ प्रखंड बाकी हैं और बाबा की यहाँ से विदाई में भी १४ ही घंटे बाकी हैं। बाबा अब रामजी को इस जिम्मेवारी से मुक्त होने को कहेगा। आपको किसी दूसरे पर यह बाकी काम सौंपना चाहिए, नहीं तो आप आदमी खोयेंगे। (यह कहते बाबा ने स्वर्गीय भाई कर्मवीर की याद की!) रामजी न पूरा सो पाता है न ही पूरा खा पाता है। उसे कालेज की अपनी जिम्मेवारी अलग निभानी पड़ती है। इस तरह वह टूट जायेगा। यह 'बर्निङ्ग दी कैण्डल एट बोथ एण्ड्स' होगा।

इस जिले में पूरे समय के कार्यकर्ता तो ५-६ ही हैं। कुछ थोड़े दिनों के लिए पूर्णिया और मुंगेर से भी कार्यकर्ता मदद में आये। जमुई (मुंगेर) के निवासी, स्वराज्य आंदोलन के सेनानी श्री गिरधर बाबू, सत्ता की राजनीति में जिनका अब तक प्रभावशाली स्थान था, अब लोकनीति के अग्रदूत बनकर सतत बाँका अनुमंडल में गाँव गाँव जाकर बड़े लोगों का शंका-समाधान करने में लगे रहे हैं।

अंत में विनोबाजी ने कहा—"जिन सज्जनों ने साथ मिलकर काम को सफल किया उनको मैं धन्यवाद देता हूँ। बाकी काम ५-१० दिन में पूरा करने का आप लोगों से वचन मिला है। एक बात कहूँ कि यह जो काम हुआ है, आगे के एक महान काम की बुनियाद है। हमें ग्रामस्वराज्य खड़ा करना है, जिसमें सरकारी शक्ति से भिन्न लोकशक्ति बनेगी। पंथ, पार्टी में बँटी राजनीति समाप्त होगी। हमको अब आगे के काम के लिए कमर कसनी है, नहीं तो डूब जायेंगे। आराम तो नदी के उस पार जाकर ही होगा। जबतक भारत में लोकशक्ति की स्थापना नहीं होगी, लोकशक्ति निर्माण नहीं बनता तबतक आराम कहाँ?

"देह आराम चाहता है, यह उसका स्वभाव है। हमें उसे बार बार गति देनी पड़ती है। शरीर रोज मैला होता है, हम उसे नहलाकर शुद्ध करते हैं। हममें और देह में यह लड़ाई सदा बनी है। लोग कहते हैं—मालिक मजदूर में झगड़ा है, अमीर-गरीब की लड़ाई है। लड़ाई तो देह और आत्मा के बीच है। शरीर नीचे खींचता है। हमें शरीर को अपने हाथ में करना है। बाबा भी आज यह नहीं कह सकता, जब कि उसको घर-त्याग किये हुए कल पूरे ५१ साल हुए हैं, कि अभी उसका शरीर उसे नीचे नहीं खींचता। शरीर तो तमोगुण में जायेगा, इन्द्रियाँ, मन इत्यादि रजोगुण में, बुद्धि सतोगुण में, आत्मा इन सबसे मुक्त है। हमारी यही प्रार्थना है कि आप हम सब सतत सजग रहकर प्रयास करते रहें, ताकि आत्मा का प्रकाश बुद्धि, मन, इन्द्रियों और शरीर में प्रकट हो।" •

विनोबाजी का कार्यक्रम

१८ अप्रैल तक—गांधी संग्रहालय, पटना
पता : ग्रामदान प्राप्ति समिति,
कदम कुआँ, पटना-३

१६ से २५ अप्रैल तक—आरा (शाहाबाद)
पता : बिहार खा० ग्रा० संघ, खादी भंडार,
आरा, जिला-शाहाबाद (बिहार)

२६ से २८ अप्रैल तक—संथाल परगना
पता : ग्रामोद्योग-समिति, देवघर
जिला संथाल परगना (बिहार)

विनोबा-निवास, पटना
दिनांक : ३-४-'६६ —कृष्णराज मेहता

पंजाब-हरियाणा सर्वोदय-मंडल

(कार्य-विवरण : अप्रैल '६८ से मार्च '६९ तक)

लोक शिक्षण अभियान, हरियाणा :— ५ अप्रैल को चंडीगढ़ में हुई मंडल की विशेष बैठक में हरियाणा में मध्यावधि चुनाव पर विचार किया गया और मंडल ने इस अवसर पर सर्व सेवा संघ की रीति-नीति के अनुसार हरियाणा भर में मतदाता-शिक्षण का अभियान चलाने का निश्चय किया। पूरे पंजाब तथा हरियाणा, दोनों राज्यों के गिने चुने कार्यकर्ता, जिनमें गांधी स्मारक निधि, खादी संस्थाओं और सर्वोदय-मंडलों के लोग थे, एक द्विदिवसीय कार्यकर्ता प्रशिक्षण शिविर रोहतक में किया गया। शिविर के बाद कार्यकर्ताओं की टोलियां एक-एक प्रमुख कार्यकर्ता के नायकत्व में राज्य के सभी सातों जिलों में रवाना हुईं और प्रत्येक टोली ने अपने जिले के केन्द्रीय स्थान पर शिविर स्थापित करके सघन रूप से लोक-शिक्षण का कार्य किया। कतिपय स्थानों पर सांझा-मंच भी लगाकर प्रत्याशियों द्वारा एक ही स्थान से अपने विचार रखने का आयोजन हुआ।

पंजाब :—पंजाब में भी मध्यावधि चुनाव का मौका आया। मंडल ने हरियाणा की तरह पंजाब में भी लोक शिक्षण अभियान चलाने का फैसला किया। रोहतक की ही तरह फिरोजपुर में दिसम्बर '६८ में सर्व सेवा संघ के क्षेत्रीय मंत्री श्री पूर्णचन्द्र जैन के मार्गदर्शन में कार्यकर्ता-प्रशिक्षण शिविर किया गया और पूरे प्रान्त में पूर्ववत मतदाता-शिक्षण का काम हुआ।

अ० भा० तरुण-शान्ति-सैनिक शिविर, पठानकोट —दिनांक ११ जून से २६ जून तक अखिल भारतीय तरुण शांति सेना शिविर पठानकोट के श्री सनातन धर्म हायर सैकेण्डरी स्कूल में सम्पन्न हुआ। इसमें नागालैंड, नेफा से लेकर गुजरात तक और केरल से काश्मीर तक के लगभग १०० तरुण विद्यार्थियों ने भाग लिया। शिविर को सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, मनमोहन चौधरी—अध्यक्ष सर्व सेवा संघ, राधाकृष्णजी—मंत्री सर्व सेवा संघ, आचार्य दादा धर्माधिकारी, दादा किशोर, देवेन्द्रकुमार गुप्त, गंगाशरण सिंह आदि नेताओं और प्रमुख सेवकों का मार्गदर्शन भी प्राप्त हुआ। अखिल भारतीय शान्ति-सेना मंडल के मंत्री श्री नारायण देसाई तो आद्योपान्त पूरा समय शिविरार्थियों के साथ रहे। शिविरार्थी प्रायः प्रतिदिन टोलियों में श्रमदान निमित्त प्रस्थान आश्रम में भी आते रहे और दो बार अमृतसर और हाईड्रोलिक स्टेशन मलकपुर तथा हैड वर्क्स माधोपुर की यात्रा भी हुई। शिविर के दौरान अ० भा० शान्ति-सेना मंडल की बैठक भी पठानकोट में हुई।

प्रस्थान आश्रम :—प्रस्थान आश्रम पूज्य विनोबाजी द्वारा संस्थापित ब्रह्मविद्या के पाँच आश्रमों में से देश की उत्तर पश्चिमी सीमा का आश्रम है। पंजाब-हरियाणा सर्वोदय-मंडल का प्रधान कार्यालय भी आश्रम में ही है और यहीं से पूरे प्रान्त में सर्वोदय-आन्दोलन की गतिविधियों का संचालन होता है।

शान्ति-सेना समिति :—प्रान्त में शान्ति-सेना के कार्य के लिए मंडल द्वारा गठित शान्ति-सेना समिति है। समिति का कार्यालय पहले प्रस्थान आश्रम में था, परन्तु इस वर्ष सुविधा की दृष्टि से अधिक केन्द्रीय स्थान जालंधर में स्थानान्तरित किया गया। कुलथम (पंजाब) तथा पट्टीकल्याणा (हरियाणा) में दो शान्ति सैनिक शिविर लिये गये।

ग्रामदान समिति — शांति सेना की तरह ग्रामदान-प्राप्ति एवं पुष्टि-कार्य के लिए मंडल ने श्री ओंकारचन्दजी के संयोजकत्व में ग्रामदान-प्राप्ति तथा पुष्टि-समिति बनायी है। पूरे ग्रामदान कार्य का मार्गदर्शन एवं संचालन प्रसिद्ध सर्वोदय नेता डा० दयानिधि पटनायक करते हैं। मंडल ने इस वर्ष के आरम्भ में ही ५ अप्रैल '६८ को चंडीगढ़ में हुई बैठक में समिति द्वारा बनायी गयी ग्रामदान-कार्य की वार्षिक योजना को स्वीकार किया था, जिसके अनुसार प्रतिमास १५० कार्यकर्ताओं पर आधारित कम-से-कम दो प्रखण्ड या पूरी तहसील का एक-एक अभियान चलाने का विचार था और इसके साथ-साथ पुष्टि की शुरुआत के तौर पर ग्रामदानी गाँव में खादी-संकल्प, पुलिस-अदालत-मुक्ति, साहित्य प्रचार और ग्रामसभाओं का संगठन आदि का विचार था, परन्तु विविध कारणों से योजना पर आंशिक तौर पर ही अमल हो सका।

क्रमशः मई, जून, अगस्त तथा अक्तूबर '६८ और मार्च '६९ में कोटकपुरा जिला भटिण्डा, कुसुमपट्टी, सुन्नी जिला शिमला, फरीदकोट तथा बडलाडा जिला भटिण्डा तथा घरौंडा जिला करनाल में, इस प्रकार कुल ५ ग्रामदान अभियान चलाये गये। इसमें सर्वोदय मंडल, गांधी स्मारक निधि तथा खादी कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त गांधी आश्रम उत्तर प्रदेश के कार्यकर्ताओं ने भी योग दिया और कुल ३६६ ग्रामदान प्राप्त हुए।

घरौंडा के आँकड़े आना अभी बाकी हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर इस समय पूरे प्रान्त में पंजाब, हरियाणा और हिमाचल को मिलाकर प्राप्त ग्रामदानों की संख्या ३,६९३ हो जाती है, जिसका ब्योरा जिलेवार इस प्रकार है।

जिला	ग्रामदान	प्रखण्डदान
पंजाब		
फिरोजपुर	१६०	—
गुरदासपुर	४२१	२
होशियारपुर	२६२	१
कपूरथला	५४	—
जालन्धर	१७८	१
लुधियाणा	१८	—
भटिण्डा	८३	—
प्रान्तवार योग :	१२०४	४
हरियाणा :		
अम्बाला	३४६	—
करनाल	५२४	१
जीन्द	२२	

जिला	ग्रामदान	प्रखंडदान
रोहतक	२१३	२
हिसार	१६३	–
प्रान्तवार योग :	१३०१	३
हिमाचल प्रदेश :		
कांगड़ा	८७३	–
महासू	३१५	–
प्रान्तवार योग :	११८८	–

इन अभियानों के अतिरिक्त बीच-बीच में हमारे कार्यकर्ताओं ने उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान के ग्रामदान अभियानों में भी जाकर भाग लिया। कार्यकर्ता-प्रशिक्षण की दृष्टि से फरवरी के प्रथम सप्ताह में पट्टीकल्याणा, पानीपत तथा प्रादमपुर में दो-दो दिनों के तीन कार्यकर्ता-शिविर भी किये गये।

दिसम्बर '६८ में फिरोजपुर में हुई पंजाब-हरियाणा सर्वोदय-मंडल की बैठक में ग्रामदान के कार्य पर पुनः गहराई से विचार हुआ और निर्णय हुआ कि मंडल की विभिन्न प्रवृत्तियों में ग्रामदान कार्य को प्रमुखता दी जाय तथा पूज्य विनोबाजी ने पूरे पंजाब-हरियाणा तथा हिमाचल प्रदेशदान का जो आह्वान किया है, उस दिशा में शताब्दी-वर्ष के दौरान हरियाणा-दान के संकल्प से शुरूआत की जाय। इसके लिए हरियाणा के सभी तबकों के प्रमुख व्यक्तियों का सम्मेलन बुलाकर औपचारिक संकल्प किया जाय।

अखिल भारत महिला लोकयात्रा : इस वर्ष हमारे लिए अत्यन्त सौभाग्य की बात है कि पूज्य विनोबाजी के आशीर्वाद से १२ वर्ष की अखण्ड पद-यात्रा पर निकली बहनें सुश्री हेम भराली, निर्मल वैद्य, लक्ष्मी फूंकन तथा देवी रोहवानी की अखिल भारत लोकयात्रा मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश की यात्रा के बाद २० अक्तूबर '६८ से होडल जिला गुड़गांव के मुकाम से हरियाणा में दाखिल हुई। छः मास में पूरे हरियाणा के सभी जिलों क्रमशः गुड़गांव, महेन्द्रगढ़, हिसार, जींद, रोहतक, करनाल की पदयात्रा करके अब अन्तिम जिला अम्बाला का कार्यक्रम चला। इन बहनों को इस सतत यात्रा ने पूरे हरियाणा में जन-जागृति तथा नव-चेतना का संचार किया है।

सर्वोदय पुस्तक भंडार हिसार, पठानकोट पट्टीकल्याणा तथा गांधी-स्मारक भवन चंडीगढ़ की ओर से खास तौर से साहित्य-प्रचार की दिशा में कार्य हुआ। इनके द्वारा क्रमशः १७,८०० रु०, ३,६०० रु०, और २०,००० रु० की बिक्री हुई। पुलिया भगतजी घर-घर घूमकर सतत साहित्य-बिक्री के लिए समय देते हैं। चालू वर्ष के दौरान उन्होंने ७५० रुपये की साहित्य-बिक्री की।

गांधी-जन्म शताब्दी :—पंजाब तथा हरियाणा में पिछले वर्ष गांधी-जन्म-शताब्दी के सन्दर्भ में एक गैर-सरकारी समिति गठित की गयी। जुलाई के प्रारम्भ में चंडीगढ़ में एक त्रिदिवसीय कार्यकर्ता प्रशिक्षण शिविर आयोजित किया गया, जिसे दादा धर्माधिकारीजी का मार्गदर्शन भी प्राप्त हुआ। अब हरियाणा तथा पंजाब, दोनों सरकारों ने अलग-अलग समितियाँ गठित की हैं। इनमें से हरियाणा की समिति काफी सक्रिय है। उन्होंने लोकयात्रा को भी काफी सहयोग दिया है।

संगठन :—जिला सर्वोदय मंडलों की सक्रियता के लिए सतत प्रयत्न हुआ। पंजाब-हरियाणा के १६ जिलों में से अब तक ११ जिलों में नया जिला सर्वोदय-मंडल का गठन हुआ है।

—यशपाल मित्तल, मंत्री

बम्बई में शिवसेना का प्रभाव

हाल ही में एक गांधी शताब्दी विचार-गोष्ठी के कार्यक्रम के निमित्त से मैं बम्बई गया था। वहाँ कई दिन रहने का अवसर मिला, जिसके कारण मैं उस हिंसा-काण्ड का भी अध्ययन कर सका, जिसकी वजह से गत फरवरी के दूसरे सप्ताह में बम्बई की नगरी को शिवसेना ने हिला दिया था। जैसा मेरे सर्वोदय-मित्रों ने बताया, इस उपद्रव का तात्कालिक कारण तो यह था कि ७ फरवरी को जब उपप्रधान मंत्री बम्बई गये थे, तो उन्होंने उस स्मरण-पत्र (मेमोरण्डम) को लेने से इन्कार कर दिया, जो एक विशाल जनसमूह उन्हें पेश करना चाहता था और जिसका नेतृत्व शिवसेना के अध्यक्ष श्री बाल ठाकरे स्वयं कर रहे थे। जब उपप्रधान मंत्री की गाड़ी के नीचे दो नौजवान घायल हो गये तो श्री ठाकरे ने ऐलान कर दिया, "अब सचमुच ही हमारा जग शुरू हुआ है।" उसके बाद जो घटनाएँ हुईं वे बड़ी भयानक और दुःखद थीं। बम्बई में फरवरी ८ से ११ तक जो आगजनी, लूटपाट और बरबादी की गयी वैसी पहले कभी नहीं हुई थी। रेलवे-स्टेशन, ट्रेनें, बसें, टैक्सियाँ, सरकारी दफ्तर और दुग्ध-केन्द्र आदि जला दिये गये। विध्वंस का खास निशाना दक्षिण भारतीयों, विशेषकर कन्नड भाषा-भाषियों के होटल और दूकानें थीं। लेकिन गुजराती, ईरानी, सिन्धी और कुछ मराठी दुकानदारों का भी नुकसान हुआ। उन चार दिनों में बम्बई में अभूतपूर्व आतंक छा गया था। जब यह सब हो रहा था तो पुलिस प्रायः नजर नहीं आती थी, या दिखाई भी पड़ी तो कोई कारवाई करने के लिए सजग नहीं मालूम पड़ती थी। बम्बई के हमारे सर्वोदय-मित्रों ने बताया कि केवल रेलवे का ही दो करोड़ रुपये से ज्यादा का नुकसान हो गया। गोली-काण्ड में ५८ लोग मारे गये और ३०० से ज्यादा घायल हुए।

बम्बई के इस उपद्रव का सबसे दुःखद पहलू मालमाल की बरबादी उतनी नहीं थी, जितनी कि वह लाचारी, जिसके शिकार सभी हो गये थे—चाहे आम जनता हो, चाहे प्रतिष्ठित नागरिक हो, या चाहे राजनैतिक नेता हो। सब बेबस हो गये थे। आश्चर्य की बात यह है कि कम्युनिस्टों के अतिरिक्त जिनको वह अपना 'कट्टर दुश्मन' कहती है, शिवसेना को, प्रत्यक्ष नहीं तो परोक्ष में अवश्य ही, विभिन्न राजनैतिक पक्षों को—कांग्रेस, संसोपा, प्रसोपा और जनसंघ को—सद्भावना प्राप्त है। सच तो यह है कि पिछले दस सालों में शिवसेना ने इन पक्षों के नेताओं के साथ काफी एहसान किये हैं और यही कारण है कि शिवसेना के खिलाफ कोई आवाज नहीं उठ सकता। बातचीत के दौरान में शिवसेना के स्वयंसेवक स्पष्ट कहते हैं कि केन्द्रीय गृहमंत्री श्री यशवंतराव चह्वाण के आशीर्वाद भी उन्हें प्राप्त है। श्री चह्वाण का वे बहुत आदर करते हैं और उन्हें महाराष्ट्र का बेताज का बादशाह मानते हैं। यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है कि श्री चह्वाण ने बम्बई में शिवसेना के विरुद्ध कुछ नहीं कहा और न उसे कोई चेतावनी ही दी है। साथ ही महाराष्ट्र-सरकार ने जनता की इस माँग को मंजूर नहीं किया है कि फरवरी की घटनाओं की न्यायायिक जाँच (जुडिशियल इन्क्वायरी) की जाय।

प्रश्न उठता है कि यह सब क्यों हुआ? इसके अनेक कारण हो सकते हैं, जिनमें दो प्रमुख हैं—लोगों की भयानक आर्थिक दुर्दशा और उनकी यह मान्यता कि बिना हिंसा के सरकार के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। शिवसेना के लगभग सभी स्वयंसेवक सुन्दर, स्वस्थ और प्राणवान नवयुवक हैं, लेकिन उनके पास रोजी कमाने का कोई साधन नहीं है। बेकारी से वे परेशान हैं। हमें बताया जाता है कि देश ने करवट ले ली है और चौथी योजना शीघ्र शुरू होगी। बड़े दुःख के साथ कहना पड़ेगा कि दिल्ली में रहनेवाले हमारी योजना के कर्णधारों को देश की वस्तुस्थिति का ज्ञान नहीं है और वे मानो अपने स्वप्नलोक में विचर रहे हैं। अगर बम्बई के उपद्रवों से वे यह नहीं सोचते कि देश के हर बालिग नवजवान को काम मिलना चाहिए तो मुझे डर है कि बम्बई में और जगह-जगह पर कहीं ज्यादा विनाशकारी हिंसक काण्ड होंगे। इसके अलावा राजनैतिक पक्षों को भी यह समझ लेना चाहिए कि निहित स्वार्थों या संकीर्ण और प्रतिक्रियाशील समुदायों के साथ मौकापरस्ती और साँठ-गाँठ करने से उन्हें कोई लाभ न होगा और वे उसी तरह निष्प्राण और प्रभावहीन हो जायँगे, जैसे बम्बई-काण्ड के समय हो गये थे। साथ ही सरकार को भी इतनी सुबुद्धि आनी चाहिए कि हिंसा भड़कने के पहले ही समस्या का समाधान कर दे, क्योंकि हिंसा से समस्या उलझ जाती है और जनता का विश्वास भी सरकार से उठता है। —सुरेशराम भाई

कोटद्वार में शराबबन्दी आन्दोलन
श्री मानसिंह रावत का उपवास समाप्त

कोटद्वार। यहाँ पर १ मार्च से शराब की दूकान पर चलनेवाले शान्तिमय धरना-आन्दोलन ने २७ मार्च से जिला गांधी-जन्म-शताब्दी समिति के मंत्री और गढ़वाल के सर्वोदय-सेवक श्री मानसिंह रावत के उपवास के फलस्वरूप नया मोड़ लिया है। ३० मार्च को नगर में हजारों स्त्री-पुरुषों के विशाल जुलूस निकले और शराबबन्दी के समर्थन में सभाएँ हुईं।

कोटद्वार के अलावा लैंसडौन और सतपुली की देशी शराब की दूकानों पर भी धरना चल रहा है। शराब की बिक्री पूर्णतः बन्द हो गयी है। कोटद्वार के शराब-विक्रेताओं ने ३१ मार्च को ठेके की मियाद के अन्तिम दिन स्वेच्छा से दूकान बन्द कर दी। मजदूरों और मोटर-चालकों ने प्रदर्शन कर घोषणा की है कि वे शराब नहीं पियेंगे और यदि दूकानें बन्द न हुईं तो सारे गढ़वाल में मोटर-यातायात बन्द कर देंगे।

३१ मार्च को नगर के प्रमुख नागरिकों और नेताओं की एक सभा धरना-स्थल के निकट हुई, जिसमें तुरन्त शराब की दूकान को बन्द करने की माँग को लेकर जिले के विधायकों एवं वयोवृद्ध नेता श्री मुकुन्दलाल बैरिस्टर तथा नगराध्यक्ष श्री किशनलाल अग्रवाल का शिष्टमण्डल मुख्यमंत्री श्री चन्द्रभान गुप्त से मिलने भेजने का निश्चय हुआ है। श्री रावतजी से अनशन छोड़ने का निवेदन किया गया। नगरपालिका के एक सदस्य श्री रूपचन्द वर्मा ने नगरपालिका से त्यागपत्र दे दिया है। और अन्य सदस्य भी शराब बन्द न होने पर विरोध में सामूहिक त्यागपत्र देनेवाले हैं।

प्रमुख नेताओं के द्वारा दिये गये इस आश्वासन पर कि किसी भी हालत में शराब नहीं बिकने दी जायेगी, श्री रावत ने अपना आमरण अनशन ४ अप्रैल को समाप्त किया।

—योगेशचन्द्र बहुगुणा

भारत-पाक एकता

"लोहिया ने सन् १९६६ में कहा था कि भारत-पाक एकता के मार्ग में तीन बाधाएँ हैं :—(क) पाकिस्तान का शासक-वर्ग, जिसका स्वार्थ बँटवारा कायम रखने से जुड़ा हुआ है। (ख) कांग्रेस पार्टी, जो एकता के परिणामों से डरती है कि उसका प्रभुत्व खत्म हो जायेगा। (ग) हिन्दुओं और मुसलमानों के दिमाग अभी काफी हिले नहीं हैं।

इनमें से दो बाधाएँ टूटने की प्रतीक्षा में हैं। भारत में कांग्रेस का एक-छत्र शासन नहीं रह गया। वह दिनोंदिन कमजोर पड़ता जा रहा है। पाकिस्तान में जन विद्रोह के आगे शासक-वर्ग को झुकना पड़ रहा है। लेकिन तीसरा काम—हिन्दुओं और मुसलमानों के दिमाग को हिलाने का—कहाँ तक हो रहा है?

लोहिया ने कहा था : भारत में हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे के जितने नजदीक आयेंगे, पाकिस्तान की आखिरी घड़ी भी उतनी ही नजदीक आयेगी।"

—"दिनमान", ३१ मार्च, '६९

समाजवाद क्या है ?

"इस समय समाजवाद समाज के अनेक रूपों में से एक है। इसके गुण और दोष, दोनों पूँजीवाद से भिन्न हैं। प्रश्न है कि समाजवाद को कैसा होना चाहिए। समाजवाद को बाहरी स्वतंत्रता में ठोस तत्त्व भरना चाहिए। आज आपके देश में चुनाव की, सभा करने की, विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता है। ये औपचारिक, मध्यमवर्गीय स्वतन्त्रताएँ हैं। लेकिन अगर समाजवाद के नाम में इन स्वतंत्रताओं को छीनना पड़ता है, तो मानना पड़ता है कि समाजवादी समाज में सचमुच कोई बड़ा दोष है। एक बार मैंने एक चीनी से पूछा कि क्या तुम अपने को स्वतंत्र महसूस करते हो तो उसने कहा : "हाँ"। मैंने पूछा कि कैसे, तो उसने उत्तर दिया कि अब वह टैनिस का रैकेट खरीद सकता है, और टैनिस खेल सकता है। यह एक बहुत अच्छा ठोस उत्तर है। मगर दोनों स्वतंत्रताएँ एकसाथ सिद्ध हो जायें—वास्तविक तरीके पर, केवल दिखाने के लिए नहीं—तो एक ऐसे मनुष्य का जन्म होगा जैसा पहले कभी हुआ नहीं था। वह अब टैनिस खेलना चाहेगा तो खेल सकेगा, और जब अपने विचार प्रकट करना चाहेगा तो खुलकर प्रकट कर सकेगा। वह अपने प्रति वफादार रहकर सचमुच जैसा है वैसा रहेगा, और जैसा बनना चाहता है, बनेगा। वह एक प्रौढ़ व्यक्ति के रूप में सामने आयेगा। लेकिन जबतक समाजवाद ऐसे समाज में है, जिसमें किसी "बड़े व्यक्ति" (डिक्टेटर या अन्य कोई) को हरदम बताना पड़ता है कि यह करो, वह मत करो, तबतक यह अनिवार्य है कि समाजवाद अपने आप खत्म हो जाय। हम जो चाहते हैं, और हमें जिसकी जरूरत है, वह एक प्रौढ़, विकसित व्यक्ति की है—पूर्ण प्रौढ़ और पूर्ण मुक्त, प्रकृति को अपने वश में रखनेवाला। समाजवाद यही है।"

(दो चेक पत्रकारों को सार्त्र का उत्तर)

"टाइम्स आफ इंडिया", २३ मार्च, '६९

केन्द्र और राज्य

"भारत का संविधान बनानेवालों ने केन्द्रीय सरकार को राज्य-सरकारों का महाजन, और टैक्स वसूल करनेवाली एजेंसी क्यों बनाया? इसलिए कि पूरे देश से कर वसूल हो, और वित्त-आयोग के निर्णय के आधार पर हर राज्य को आवश्यकता के अनुसार विकास के लिए धन मिल सके। अगर ऐसा न होता तो गरीब राज्य अपनी जरूरत के लिए धन कभी इकट्ठा ही न कर पाते। संविधान बनाते समय बम्बई और प० बंगाल ने 'संग्रह' के आधार पर आय-कर के हिस्से की माँग की थी, जिसका अर्थ यह होता कि बम्बई ३३ फीसदी और प० बंगाल २८.६ फीसदी, यानी दोनों मिलकर ६२ फीसदी आय-कर ले लेते, जब कि उनकी जनसंख्या देश की कुल जनसंख्या का केवल १७ फीसदी है।

"आज राज्यों के लिए अधिक अधिकारों की माँग है, जिसे कांग्रेसी और गैर-कांग्रेसी राजनैतिक नेता दोनों कर रहे हैं। सस्ती लोकप्रियता का यह आसान तरीका बन गया है। यह सही है कि देश एक-दलीय शासन से निकलकर बहु-दलीय शासन के युग में प्रवेश कर रहा है, लेकिन इसका अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि केन्द्र कमजोर किया जाय, या दूसरी ओर केन्द्र का एकात्मक शासन कायम किया जाय। संविधान ने जो ढाँचा कायम किया है उसमें 'सहकारी संघवाद' (कोआपरेटिव फेडरलिज्म) की कल्पना है। उसीमें आज के प्रश्नों का उत्तर है।"

—"हिन्दू", २९ मार्च, '६९

गांधी का उत्तर

"इस विचित्र जीव मनुष्य के लिए, जो पशुता और आध्यात्मिकता के बीच कहीं खड़ा है कौनसी सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था सबसे अच्छी होगी? इस प्रश्न का गांधी ने एक सरल और बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तर दिया। उसने कहा, मनुष्यों को समुदायों में रहना और काम करना चाहिए—ऐसे छोटे समुदाय जिनमें वास्तविक स्वराज्य सम्भव हो तथा जिसमें हर व्यक्ति जिम्मेदारी ले सके। और, ये समुदाय बड़ी इकाइयों से इस तरह जुड़े हुए हों कि सत्ता के दुरुपयोग की गुंजाइश न रहे। संगठन की दृष्टि से लोकतन्त्र की व्यवस्था जितनी ही बड़ी और बोझिल होती जाती है, उतना कर राज्य उतना ही नकली होता जाता है; और व्यक्ति की आवाज कमजोर होती जाती है, और स्थानीय समूहों की अपने जीवन के बारे में निर्णय करने की शक्ति क्षीण होती जाती है। इसके अलावा स्नेह वैयक्तिक सम्बन्धों में ही सम्भव होता है। इसलिए छोटे समुदायों में ही हृदय की उदारता प्रकट हो सकती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि छोटे समुदाय में अपने आप उदारता का प्रकट होना अनिवार्य है। लेकिन बड़े बिखरे समूह में तो उदारता की संभावना भी नहीं रह पाती, क्योंकि बड़े समुदाय के सदस्यों का एक-दूसरे से कोई वैयक्तिक सम्बन्ध नहीं रह जाता।"

—अल्डुस हक्सले, '६३

बिहारदान के आखिरी अभियान में सभी संस्थाओं से दस प्रतिशत कार्यकर्ता-शक्ति लगाने की अपील

आगामी ७ मई से ३१ मई तक के महा अभियान को सफल बनाने के लिए पूर्वतैयारी प्रारम्भ

पटना : ७ अप्रैल । बिहार ग्रामदान-प्राप्ति समिति के मंत्री और प्रदेश के वरिष्ठ सर्वोदय-नेता श्री वैद्यनाथ प्रसाद चौधरी ने हमारे संवाददाता को बताया कि अब बिहारदान के शेष काम को पूरा करने के लिए पूर्व-तैयारी शुरू हो गयी है। प्रदेश के प्रमुख कार्यकर्ताओं के दौरे इस निमित्त से हो रहे हैं और श्री जयप्रकाश नारायण भी रांची, जमशेदपुर, आरा आदि स्थानों का दौरा करने जा रहे हैं। विनोबाजी का भी पटना के बाद आरा, संथाल परगना, धनबाद, हजारीबाग, रांची का कार्यक्रम बन चुका है। ७ मई के पहले ही बिहार ग्रामदान-प्राप्ति समिति का दफ्तर रांची चला जायगा। इस सम्बन्ध में स्मरणीय है कि रांची, हजारीबाग, सिंहभूमि जिले ही बिहारदान के अभियान की सबसे दुर्गम चढ़ाई साबित हो रहे हैं।

श्री वैद्यनाथ बाबू ने बताया कि इस अभियान में प्रदेश की सभी छोटी-बड़ी संस्थाओं से अपनी १०% कार्यकर्ता-शक्ति लगाने की अपील की जा रही है। बिहार-दान के संकल्प के समय सभी संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने इस प्रकार का निश्चय किया था, उसके लिए यह महत्त्वपूर्ण अवसर है।•

उत्तर प्रदेश में ग्रामदान की स्थिति

(३१ मार्च '६९ तक)

जिला	ग्रामदान	प्रखंडदान
बलिया*	१,४६६	१८
उत्तरकाशी*	५६६	४
वाराणसी	२०,५६	२०
आजमगढ़	१,५४४	१०
आगरा	६७६	८
फर्रुखाबाद	८३५	–
मैनपुरी	७६०	५
गाजीपुर	६०२	५
चमोली	५६६	५
सहारनपुर	४६६	–
एटा	४८१	–
मिरजापुर	४७८	३
मथुरा	४६६	–
कानपुर	४४३	–
फैजाबाद	४०६	४
हरदोई	३०६	–
मुरादाबाद	२६६	–
अलीगढ़	२६०	–
गोरखपुर	२८६	–
देहरादून	२५५	२
मेरठ	२४१	–
मुजफ्फरनगर	१०७	–
देवरिया	१८४	–
बुलन्दशहर	१५७	–
झांसी	१३७	–
जौनपुर	१०८	१
इटावा	१०५	–
बस्ती	१०५	–
पिथौरागढ़	९४	१
अलमोड़ा	८४	–
टेहरी	६६	–
गढ़वाल	६१	–
इलाहाबाद	४०	–
उन्नाव	५	–
हमीरपुर	१	–
गोंडा	१	–
शाहजहांपुर	१	–
फतेहपुर	१	–
रायबरेली	१	–
कुल :	१५,१९४	८६

* जिलादान हो चुका है।

—कपिलभाई, संयोजक

संकल्प-सिद्धि के लिए अधिक तपस्या

हाल ही में बिहार ग्रामदान-प्राप्ति समिति की पटना में आयोजित बैठक में विनोबाजी ने बिहारदान के संकल्प को एक निश्चित अवधि में पूरा कर लेने की अपील करते हुए अपने मार्मिक प्रवचन में कहा, "कर्मयोग की एक मुद्दत मानी है, मुद्दत के अंदर अगर संकल्प-सिद्धि नहीं हुई तो अधिक तपस्या की जरूरत पड़ सकती है। बाबा ने उसकी तैयारी कर ली है।"

लोकभारती, शिवदासपुरा में गांधी-दर्शन के प्रशिक्षण का आयोजन

गांधी-जन्म-शताब्दी वर्ष में राज्य के युवक भाई-बहनों व रचनात्मक कार्य में लगे कार्यकर्ताओं को गांधी-विचार एवं समकालीन विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन कराने की दृष्टि से शिवदासपुरा स्थित लोकभारती में प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी है। तद-नुसार १ मई '६९ से एक-एक महीने के शिविर प्रारम्भ हो जायेंगे। एक महीने की अवधि में गांधी-विचार आन्दोलन एवं कार्य-क्रम, सत्याग्रह-विज्ञान, ट्रस्टीशिप, ग्रामदान-आन्दोलन, गांधी-जीवन व देश-विदेश में शान्ति-आन्दोलन इत्यादि पाठ्य-विषय होंगे। स्वाध्याय के लिए गांधी-साहित्य से सम्पन्न पुस्तकालय की व्यवस्था रहेगी तथा १ महीने तक गांधी विचार के अनुसार आश्रम-पद्धति के अनुरूप जीवन जीने का अवसर सुलभ रहेगा। जो भी भाई-बहन गांधी-विचार का अध्ययन करना चाहते हैं, उन्हें आचार्य, लोक-भारती, शिवदासपुरा (जयपुर) से पत्र-व्यवहार करना चाहिए। एक महीने के लिए जो भी भाई-बहन शिक्षण के लिए आयेंगे, उन्हें भोजन व आवासीय व्यवस्था के लिए ७० रुपया जमा करना होगा।

—लोकभारती, शिवदासपुरा द्वारा प्रसारित

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : २९

सोमवार २१ अप्रैल, '६९

अन्य पृष्ठों पर

स्वाध्याय के लिए दिन भर में एक घंटे से ज्यादा समय की जरूरत नहीं। एक घंटे से ज्यादा स्वाध्याय करनेवाले तो आलसी लोग होते हैं। उन्हें यह भ्रम होता है कि हम अभ्यास करते हैं। लेकिन वे करते-करते कुछ नहीं। सामान्य कार्यकर्ता के लिए एक घंटे से अधिक स्वाध्याय की आवश्यकता नहीं। स्वाध्याय के लिए समय अवश्य निकालना चाहिए। —विनोबा

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश

वर्ण के रूप और जाति

वर्णाश्रम धर्म इस पृथ्वी पर मनुष्य-जीवन के उद्देश्य की व्याख्या करता है। वह रोज बरोज धन बटोरने और आजीविका के भिन्न साधन खोजने के लिए पैदा नहीं हुआ है। इसके विपरीत मनुष्य इसलिए पैदा हुआ है कि वह अपने प्रभु को जानने के लिए अपनी शक्ति का एक एक अणु काम में ले। इसलिए वर्णाश्रम धर्म उस पर यह पाबन्दी लगाता है कि वह जीवित रहने के लिए सिर्फ अपने बाप दादों का पेशा ही करे। यही वर्णाश्रम धर्म है—न कम, न ज्यादा।[1]

आर्थिक दृष्टि से इसका किसी समय बहुत बड़ा महत्त्व था, जिसमें परम्परागत कौशल की रक्षा होती थी। इससे आपसी प्रतिस्पर्धा मर्यादित होती थी। यह दरिद्रता का सबसे अच्छा इलाज था। और इसमें व्यवसाय-संघों के तमाम फायदे मौजूद थे। यद्यपि इसमें साहस या आविष्कार को पोषण नहीं मिलता था, फिर भी ऐसा नहीं मालूम होता कि इन दोनों के रास्ते में उसने कभी रुकावट डाली हो।

इतिहास की दृष्टि से कहें तो जाति को भारतीय समाज की प्रयोगशाला में मनुष्य का प्रयोग या सामाजिक मेल बिठाने का प्रयत्न माना जा सकता है। यदि हम इसे सफल सिद्ध कर सकें, तो संसार के सामने हृदयहीन स्पर्धा और लोभ व लालच से पैदा होनेवाले सामाजिक विग्रह के उत्तम उपाय के तौर पर हम इसे पेश कर सकते हैं।[2]

मैं मानता हूँ कि हरएक मनुष्य अमुक स्वाभाविक वृत्तियाँ लेकर इस संसार में जन्म लेता है। प्रत्येक व्यक्ति कुछ निश्चित मर्यादाओं के साथ पैदा होता है, जिन पर वह काबू नहीं पा सकता। उन मर्यादाओं का ध्यानपूर्वक अवलोकन करके ही वर्ण का कानून बनाया गया। वह अमुक वृत्तियोंवाले अमुक लोगों के लिए कार्य के अमुक क्षेत्र निश्चित करता है। इससे सारी अनुचित स्पर्धा टल जाती है। मर्यादाओं को स्वीकार करते हुए भी वर्णधर्म में ऊँच नीच के भेदभाव की कोई गुंजाइश नहीं, एक तरफ वह प्रत्येक को अपने परिश्रम के फल की गारण्टी देता है और दूसरी तरफ मनुष्य को अपने पड़ोसी को दबाने से रोकता है। इस महान धर्म को नीचे गिरा दिया गया है और वह बदनाम हो गया है। परन्तु मेरा पक्का विश्वास है कि आदर्श समाज व्यवस्था का विकास तभी होगा, जब इस धर्म के गूढ़ अर्थों को पूरी तरह समझकर उन पर अमल किया जायगा।[3]

मो० क० गांधी

(१) "यंग इण्डिया" २७-१०-'२७, (२) "यंग इण्डिया" २-१-'२१।
(३) [illegible]

भूदान-यज्ञ १४-४-'६९ रजिस्टर्ड नम्बर एल. १६७ [पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त] लाइसेन्स नम्बर ए ३४

बिहारदान के आखिरी अभियान में सभी संस्थाओं से दस प्रतिशत कार्यकर्ता-शक्ति लगाने की अपील

आगामी ७ मई से ३१ मई तक के महा अभियान को सफल बनाने के लिए पूर्वतैयारी प्रारम्भ

पटना : ७ अप्रैल । बिहार ग्रामदान-प्राप्ति समिति के मंत्री और प्रदेश के वरिष्ठ सर्वोदय-नेता श्री वैद्यनाथ प्रसाद चौधरी ने हमारे संवाददाता को बताया कि अब बिहारदान के शेष काम को पूरा करने के लिए पूर्व-तैयारी शुरू हो गयी है। प्रदेश के प्रमुख कार्यकर्ताओं के दौरे इस निमित्त से हो रहे हैं और श्री जयप्रकाश नारायण भी रांची, जमशेदपुर, आरा आदि स्थानों का दौरा करने जा रहे हैं। विनोबाजी का भी पटना के बाद आरा, संथाल परगना, धनबाद, हजारीबाग, रांची का कार्यक्रम बन चुका है। ७ मई के पहले ही बिहार ग्रामदान-प्राप्ति समिति का दफ्तर रांची चला जायगा। इस सम्बन्ध में स्मरणीय है कि रांची, हजारीबाग, सिंहभूमि जिले ही बिहारदान के अभियान की सबसे दुर्गम चढ़ाई साबित हो रहे हैं।

श्री वैद्यनाथ बाबू ने बताया कि इस अभियान में प्रदेश की सभी छोटी-बड़ी संस्थाओं से अपनी १०% कार्यकर्ता-शक्ति लगाने की अपील की जा रही है। बिहार-दान के संकल्प के समय सभी संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने इस प्रकार का निश्चय किया था, उसके लिए यह महत्त्वपूर्ण अवसर है।•

उत्तर प्रदेश में ग्रामदान की स्थिति

(३१ मार्च '६९ तक)

जिला	ग्रामदान	प्रखंडदान
बलिया*	१,४६६	१८
उत्तरकाशी*	५६६	४
वाराणसी	२०,५९	२०
आजमगढ़	१,५४४	१०
आगरा	६७९	८
फर्रुखाबाद	८३५	—
मैनपुरी	७६०	५
गाजीपुर	६०२	५
चमोली	५६६	५
सहारनपुर	४९६	—
एटा	४८१	—
मिरजापुर	४७८	३
मथुरा	४६६	—
कानपुर	४४३	—
फैजाबाद	४०६	४
हरदोई	३०६	—
मुरादाबाद	२९६	—
अलीगढ़	२९०	—
गोरखपुर	२८९	—
देहरादून	२५२	२
मेरठ	२४१	—
मुजफ्फरनगर	१०७	—
देवरिया	१८४	—
बुलन्दशहर	१५७	—
झांसी	१३७	—
जौनपुर	१०८	१
इटावा	१०५	—
बस्ती	१०५	—
पिथौरागढ़	९४	१
अलमोड़ा	८४	—
टेहरी	६६	—
गढ़वाल	६१	—
इलाहाबाद	४०	—
उन्नाव	५	—
हमीरपुर	१	—
गोंडा	१	—
शाहजहाँपुर	१	—
फतेहपुर	१	—
रायबरेली	१	—
कुल :	१५,११४	८६

* जिलादान हो चुका है।

—कपिलभाई, संयोजक

संकल्प-सिद्धि के लिए अधिक तपस्या

हाल ही में बिहार ग्रामदान-प्राप्ति समिति की पटना में आयोजित बैठक में विनोबाजी ने बिहारदान के संकल्प को एक निश्चित अवधि में पूरा कर लेने की अपील करते हुए अपने मार्मिक प्रवचन में कहा, "कर्मयोग की एक मुद्दत आती है, मुद्दत के अंदर अगर संकल्प-सिद्धि नहीं हुई तो अधिक तपस्या की जरूरत पड़ सकती है। बाबा ने उसकी तैयारी कर ली है।"

लोकभारती, शिवदासपुरा में गांधी-दर्शन के प्रशिक्षण का आयोजन

गांधी-जन्म-शताब्दी वर्ष में राज्य के युवक भाई-बहनों व रचनात्मक कार्य में लगे कार्यकर्ताओं को गांधी-विचार एवं समकालीन विचारधाराओं का तुलनात्मक अध्ययन कराने की दृष्टि से शिवदासपुरा स्थित लोकभारती में प्रशिक्षण की व्यवस्था की गयी है। तद-नुसार १ मई '६९ से एक-एक महीने के शिविर प्रारम्भ हो जायेंगे। एक महीने की अवधि में गांधी-विचार आन्दोलन एवं कार्य-क्रम, सत्याग्रह-विज्ञान, दृष्टिकोण, ग्रामदान-आन्दोलन, गांधी-जीवन व देश-विदेश में शान्ति-आन्दोलन इत्यादि पाठ्य-विषय होंगे। स्वाध्याय के लिए गांधी-साहित्य से सम्पन्न पुस्तकालय की व्यवस्था रहेगी तथा १ महीने तक गांधी विचार के अनुसार-आश्रम-पद्धति के अनुकूल जीवन जीने का अवसर सुलभ रहेगा। जो भी भाई बहन गांधी-विचार का अध्ययन करना चाहते हैं, उन्हें आचार्य, लोक-भारती, शिवदासपुरा (जयपुर) से पत्र-व्यवहार करना चाहिए। एक महीने के लिए जो भी भाई-बहन शिक्षण के लिए आयेंगे, उन्हें भोजन व आवासीय व्यवस्था के लिए ७० रुपया जमा करना होगा।

—लोकभारती, शिवदासपुरा द्वारा प्रसारित

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इंडियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक—साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ | अंक : २९

सोमवार | २१ अप्रैल, '६९

अन्य पृष्ठों पर

स्वाध्याय के लिए दिन भर में एक घण्टे से ज्यादा समय की जरूरत नहीं। एक घण्टे से ज्यादा स्वाध्याय हजम करनेवाले तो असल लोग होते हैं। उन्हें यह भ्रम होता है कि हम अभ्यास करते हैं। लेकिन वे करते करते कुछ नहीं। सामान्य कार्यकर्ता के लिए एक घंटे से अधिक स्वाध्याय की आवश्यकता नहीं। स्वाध्याय के लिए समय अवश्य निकालना चाहिए। —विनोबा

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश

वर्ण के रूप और जाति

वर्णाश्रम धर्म इस पृथ्वी पर मनुष्य-जीवन के उद्देश्य की व्याख्या करता है। वह रोज बरोज धन बटोरने और आजीविका के भिन्न साधन खोजने के लिए पैदा नहीं हुआ है। इसके विपरीत मनुष्य इसलिए पैदा हुआ है कि वह अपने प्रभु को जानने के लिए अपनी शक्ति का एक एक अणु काम में ले। इसलिए वर्णाश्रम धर्म उस पर यह पाबन्दी लगाता है कि वह जीवित रहने के लिए सिर्फ अपने बाप दादों का पेशा ही करे। यही वर्णाश्रम धर्म है—न कम, न ज्यादा।[1]

आर्थिक दृष्टि से इसका किसी समय बहुत बड़ा महत्त्व था, जिसमें परम्परागत कौशल की रक्षा होती थी। इससे आपसी प्रतिस्पर्धा मर्यादित होती थी। यह दरिद्रता का सबसे अच्छा इलाज था। और इसमें व्यवसाय-संघों के तमाम फायदे मौजूद थे। यद्यपि इसमें साहस या आविष्कार को पोषण नहीं मिलता था, फिर भी ऐसा नहीं मालूम होता कि इन दोनों के रास्ते में उसने कभी रुकावट डाली हो।

इतिहास की दृष्टि से कहें तो जाति को भारतीय समाज की प्रयोगशाला में मनुष्य का प्रयोग या सामाजिक मेल बिठाने का प्रयत्न माना जा सकता है। यदि हम इसे सफल सिद्ध कर सकें, तो संसार के सामने हृदयहीन स्पर्धा और लोभ व लालच से पैदा होनेवाले सामाजिक विग्रह के उत्तम उपाय के तौर पर हम इसे पेश कर सकते हैं।[2]

मैं मानता हूँ कि हरएक मनुष्य अमुक स्वाभाविक वृत्तियाँ लेकर इस संसार में जन्म लेता है। प्रत्येक व्यक्ति कुछ निश्चित मर्यादाओं के साथ पैदा होता है, जिन पर वह काबू नहीं पा सकता। उन मर्यादाओं का ध्यानपूर्वक अवलोकन करके ही वर्ण का कानून बनाया गया। वह अमुक वृत्तियोंवाले अमुक लोगों के लिए कार्य के अमुक क्षेत्र निश्चित करता है। इससे सारी अनुचित स्पर्धा टल जाती है। मर्यादाओं को स्वीकार करते हुए भी वर्णधर्म में ऊँच नीच के भेदभाव की कोई गुंजाइश नहीं, एक तरफ वह प्रत्येक को अपने परिश्रम के फल की गारण्टी देता है और दूसरी तरफ मनुष्य को अपने पड़ोसी को दबाने से रोकता है। इस महान धर्म को नीचे गिरा दिया गया है और वह बदनाम हो गया है। परन्तु मेरा पक्का विश्वास है कि आदर्श समाज व्यवस्था का विकास तभी होगा, जब इस धर्म के गूढ़ अर्थों को पूरी तरह समझकर उन पर अमल किया जायगा।[3]

मो. क. गांधी

([illegible] [इं]डिया" २७-१०-'२७, (३) "यंग इंडिया" ४-१-'२१ ।

विचार-पुष्टि का अभियान

[नवम्बर '६८ में जयप्रकाशजी को टीकमगढ़ जिलादान समर्पित हुआ। जिलादान के बाद जिले में विचार-पुष्टि और ग्रामस्वराज्य की स्थापना के लिए क्या करें, इसके लिए मार्गदर्शन प्राप्त करने हेतु धीरेन्द्र भाई को टीकमगढ़ पधारने का निवेदन किया गया, और उन्होंने १ अप्रैल से ६ अप्रैल का समय दिया। १ से ६ अप्रैल तक जिले में धीरेन्द्र भाई के विभिन्न स्थानों में विभिन्न कार्यक्रम हुए। यात्रान्त में जिले की स्थिति का अध्ययन करके धीरेन्द्र भाई ने जो सुझाव दिये, वे नीचे दिये जा रहे हैं। —सं॰]

टीकमगढ़ जिले की ७ दिन की यात्रा में, मुझे जितनी आशा थी उससे अधिक जागृति भिन्न-भिन्न स्थानों के लोगों में दिखाई दी।

ग्रामदान-प्राप्ति के बाद पुष्टि का काम करना है, ग्रामदान-आंदोलन का अब यह सर्वमान्य विचार है। लेकिन पुष्टि के अर्थ के बारे में हमारे मन में कुछ सफाई होनी चाहिए। मैं मानता हूँ कि पुष्टि का अर्थ विचार-पुष्टि ही होना चाहिए। शुरू से ही मेरी मान्यता यह रही है कि अबतक जो कुछ भी उपलब्धि हुई है, वह शब्द प्रसारण मात्र ही है। हमने अर्थ फैलाने का काम किया ही नहीं। अब अर्थ फैलाने का काम उसी तेजी के साथ करना चाहिए, जिस तेजी के साथ हमने प्राप्ति-अभियान में शब्द को फैलाया; क्योंकि अभी तक ग्रामदान का अर्थ जनमानस में साफ नहीं है। अभी तो इसका जो कुछ अर्थ लगाया जाता है वह अर्थ न होकर अनर्थ ही है। लोगों की मान्यता यह है कि ग्रामदान होने से सरकारी-विकास का काम कुछ अच्छा होगा, क्योंकि ग्रामदानी गाँव में जन सहकार अधिक मिलेगा। गाँववालों की मान्यता भी कुछ ऐसी ही है कि राजनैतिक पार्टियों से कुछ दूसरे नहीं, विनोबा और जयप्रकाश बाबू जैसे अच्छे लोगों के नेतृत्व में सर्वोदयवाले कुछ अच्छा काम कर सकेंगे। मैंने यह अनुभव किया है कि विनोबाजी के बार-बार दुहराने के बावजूद कार्यकर्ता और जनता ने स्पष्ट रूप से यह नहीं समझा है कि कोई व्यक्ति या जमात जाकर गाँव के विकास या संगठन के काम नहीं कर सकेंगे। बल्कि गाँव के सामूहिक-संकल्प, चिन्तन, निर्णय और पुरुषार्थ से ही गाँव का विकास होगा। वस्तुतः ग्रामदान की क्रान्ति मुक्ति के लिए है, विकास के लिए नहीं। मुक्त समाज में विकास अवश्य होगा, लेकिन आन्दोलन का बुनियादी ध्येय वह नहीं है। मुक्ति शासन से यानी दण्ड-शक्ति से, तथा शोषण से यानी नेता तथा सेवक शक्ति से। क्रान्ति का यह स्पष्ट ध्येय जनता के सामने प्रस्तुत करना ही पुष्टि का काम है, यह मैं मानता हूँ। जबतक जनता मुक्ति के संदेश को नहीं समझेगी तथा इसकी आवश्यकता को नहीं मानेगी, तबतक ग्रामस्वराज्य की कल्पना साकार नहीं होगी और इस शान्ति के जरिये अधिक-से-अधिक निष्पत्ति यह होगी कि प्रचलित दलवादी राजनीति में कुछ सुधार भर हो जायेगा।

अतः मेरी राय में अब समय आ गया है कि हम उन प्रदेशों में जहाँ जिलादान हो चुके हैं, एक-एक जिला विशेष रूप से चुन लें और उसमें विचार-पुष्टि के लिए गाँव-गाँव में उसी तरह से विचार-गोष्ठी-अभियान चलायें, जिस तरह हमने प्राप्ति-अभियान चलाया है। इसके लिए जिले भर में लोक-यात्राओं का संगठन करना चाहिए। लोक-यात्रा के लिए शिविर-पद्धति से यात्रियों का प्रशिक्षण होना चाहिए, ताकि हर यात्रा में कम-से-कम एक व्यक्ति ऐसा हो, जो जनता के हर प्रश्न का समाधानकारक उत्तर दे सके और क्रान्ति-विचार को ठीक-ठीक समझा सके।

लोक-यात्राओं के संगठन के साथ-साथ क्रान्ति के स्थायी आधार बनाने का कार्य भी करना होगा। गांधीजी ने प्रत्येक गाँव में एक क्रान्तिकारी समग्र सेवक जाकर बैठे, ऐसी सूचना की थी। मैं गांधीजी के इस हिसाब से पूर्ण सहमत हूँ, क्योंकि वर्तमान क्रान्ति समाज की पुरानी शक्ति और रचना को कायम रखते हुए संचालकों के बदलने मात्र की क्रान्ति नहीं है, बल्कि शक्ति और रचना, दोनों में आमूल परिवर्तन करने की है। विनोबाजी ने १७ साल तक सतत यात्रा द्वारा ग्रामस्वराज्य की चेतना को आगे बढ़ाया है, इसलिए लगभग ५००० की लोकसंख्या के बीच में एक सेवक हो, तो उतने से भी शायद काम चल सकेगा।

उपरोक्त हिसाब से जिलादानी जिलों में जितनी न्याय-पंचायतें हैं, उतने सेवकों को ग्रामस्वराज्य-केन्द्र बनाकर स्वावलम्बी लोक-सेवक की हैसियत में तथा नागरिक की भूमिका में बैठना चाहिए। गांधीजी ने कहा था कि समग्र ग्रामसेवक जनता के प्रेम और अपने श्रम से गुजारा करें। उसे इस प्रकार से विभाजित करना चाहिए कि जनता अपने क्षेत्र से साधन दे और कार्यकर्ता उस साधन पर अपना पुरुषार्थ लगाकर गुजारा करे और अपने क्षेत्र में ग्राम-स्वराज्य के लिए मार्गदर्शन करे।

ग्राम-स्वराज्य-सेवक के दो प्रकार हो सकेंगे। एक प्रकार यह होगा कि जो गांधीजी द्वारा प्रतिपादित संस्थाओं के अन्तर्गत काम करके अनुभव प्राप्त किये हुए हैं, और अभी अपनी-अपनी व्यक्तिगत जमीन और साधन से जीवन व्यतीत कर रहे हैं, वे अपने स्थान को ग्रामस्वराज्य-केन्द्र के रूप में परिवर्तित कर लें, ऐसा करने में समाज उन्हें मदद करे। दूसरा प्रकार यह होगा कि इस क्रान्ति के आवाहन पर जो नवजवान आगे बढ़ें, उन्हें जिले के सारी न्याय-पंचायत के स्तर पर समग्र ग्रामसेवक के रूप में अधिष्ठित करें। ऐसे नये लोगों को प्रशिक्षित करना तथा उनके लिए साधन जुटाने के लिए जिले में विशेष रूप से कोई संगठन खड़ा करना चाहिए। यह संगठन आन्दोलन का रचनात्मक हिस्सा होगा, जैसे सर्वोदय-मण्डल आन्दोलनात्मक संगठन है। इस रचनात्मक काम के लिए जिला-स्तर पर एक ग्राम-स्वराज्य संयोजन समिति के नाम से संस्था बनानी चाहिए, जो इस काम को करे।

आन्दोलन में लगे नेतृत्व का काम होगा कि वह नवजवानों का आवाहन करे और जिलादान के बाद के पूरे-पूरे कार्यक्रम का तेज गति से संयोजन करे।

प्रेषक—हरिश्चन्द्र प्रसाद

बंगाल

आज बंगाल में जो कुछ हो रहा है उसे क्या समझें ? भारत सरकार से संविधान के अन्दर होनेवाला आपसी विवाद, या कुछ और ?

बंगाल की सरकार कहती है कि केन्द्र से बंगाल को जितना चावल मिलना चाहिए उतना नहीं मिल रहा है; कलकत्ता के विकास के लिए जितना रुपया मिलना चाहिए उतना नहीं मिल रहा है, काशीपुर के कारखाने में अधिकारियों की ओर से गलती हुई जिसके लिए उन्हें दंड मिलना चाहिए। ये या इस तरह की जितनी बातें हैं उनकी शान्तिपूर्वक छानबीन की जा सकती है, और पता लगाया जा सकता है कि किस मामले में भूल किसकी ओर से हो रही है—भारत सरकार की ओर से, या बंगाल सरकार की ओर से। क्या मौजूदा संविधान के अन्दर दो सरकारों के बीच होनेवाले विवादों की जांच और निबटारे के लिए गुंजाइश नहीं है ? अगर है तो उसका इस्तेमाल क्यों नहीं होता ? और अगर नहीं है तो उपाय क्यों नहीं होता ? संघीय शासन में, जहां एक से अधिक सरकारें होती हैं, और हरएक के अपने अपने स्वतंत्र अधिकार-क्षेत्र होते हैं, विवादों का खड़ा हो जाना अस्वाभाविक नहीं है, लेकिन उनके निबटारे के लिए उचित व्यवस्था होनी है ? तो, क्या कारण है कि कलकत्ता और दिल्ली के बीच के झगड़े 'शीत युद्ध' का रूप लेते जा रहे हैं ? अभी कुछ दिन पहले दिल्ली में होनेवाले नेशनल कन्वेन्शन ने केन्द्र और राज्यों के सही सम्बन्धों की दृष्टि से एक 'कौंसिल' की स्थापना का सुझाव दिया था। अगर उस पर अमल हुआ होता तो इस वक्त देश के सामने निष्पक्ष निर्णय होता, और वह जान सकता कि सचमुच बात क्या है।

लेकिन दिखाई देता है कि मामला अन्दर से कुछ दूसरा है। बंगाल की सरकार 'न्याय' से ज्यादा अपनी शक्ति दिखाने पर उतारू है। वह यह जोखिम लेने को तैयार नहीं है कि न्याय उसके खिलाफ भी हो सकता है। उसे जिद है अपनी बात रखने की और मनवाने की। संविधान की चिन्ता वह करना नहीं चाहती। वह यह दिखाना चाहती है कि संघर्ष से शक्ति बनती है और आतंक से संघर्ष सफल होता है।

बंगाल की सरकार है तो मिली-जुली, लेकिन उस पर कम्युनिस्ट हावी हैं। कहने को बंगला कांग्रेस के श्री अजय घोष मुख्यमंत्री हैं, किन्तु वस्तुतः वह कुछ नहीं हैं; जो कुछ हैं श्री ज्योति बसु हैं जो कम्युनिस्ट हैं। कम्युनिस्ट लोग सरकार का इस्तेमाल एक मोर्चे के रूप में कर रहे हैं। चुनाव में जनता की शक्ति से उन्हें सरकार मिली; अब सरकार की शक्ति से उन्हें अपना संगठन मजबूत करना है। शक्ति-संचय की उस प्रक्रिया में कुछ संस्थाओं को खोखला करना है और कुछ को अपने हाथ में करना है। पुलिस को खोखला करना है। गवर्नर को निरर्थक करना है। विद्यालयों और मजदूर-संगठनों को अपने हाथ में करना है। सरकार में आते ही दिल्ली से लड़ाई छेड़कर उन्होंने गवर्नर के पद को निकम्मा कर दिया और अपना प्रभुत्व जमा लिया। दिल्ली से लड़ाई इसलिए भी जरूरी है कि बंगाल की जनता में और बंगाल की सरकार में एकता कायम रहे और कम्युनिस्टों का नेतृत्व बना रहे।

काशीपुर के मामले को लेकर १० अप्रैल को बंगाल में जो हड़ताल हुई उसमें वहां की सरकार शामिल ही नहीं हुई बल्कि उसका संगठन और नेतृत्व किया। इतना ही नहीं, रेलें भी बंगाल की सीमा में घुसने से रोकी गयीं और डाक तार तक का काम बन्द किया गया। क्यों ? इसलिए कि जब 'बंगाल बन्द' है तो शेष भारत से रेलें भी बंगाल में क्यों जायेंगी। यह ठीक है कि रेलें बंगाल की ही नहीं, पूरे भारत की हैं, लेकिन बंगाल की सीमा में बंगाल की सरकार का हुक्म चलेगा।

इस सारी व्यूह-रचना के पीछे जो प्रेरणा काम कर रही है उसे बारीकी के साथ समझना चाहिए। यह दिखाने की कोशिश तो है ही कि बंगाल की जनता के दुखों का कारण दिल्ली में है और कम्युनिस्ट दिल्ली से मुक्ति की लड़ाई लड़ रहे हैं। राज्य की जनता के साथ न्याय हो यह देखना राज्य सरकार का काम है, लेकिन दिल्ली से मुक्ति का अर्थ भारत के पूर्वांचल में एक 'कम्युनिस्ट पाकेट' का निर्माण भी हो सकता है। आगे चलकर यह पाकेट कितना बड़ा होगा, कौनसे दूसरे भाग उसमें शामिल किये जायेंगे, और क्या उसके वैदेशिक सम्बन्ध होंगे, आदि बातें हैं जो किसी भी भारतीय के मन को शंका से भर देती हैं। कम्युनिस्ट इतिहास और कम्युनिस्ट तरीकों के कारण ये शंकाएं निर्मूल नहीं कही जा सकतीं। प्रश्न साम्यवाद का नहीं, साम्यवादी दल का है। देश में कोई दल बनता है तो दल को देश का ही होकर रहना चाहिए।

देश को देखना चाहिए कि उसके एक भाग में क्या हो रहा है। भारत-सरकार की यह जिम्मेदारी है कि वह देखे कि देश अपने किसी भाग से बहिष्कृत न हो। रेल या किसी विभाग के अपने कर्मचारियों की हड़ताल एक चीज है, और किसी राज्य की सरकार द्वारा उनका रोक दिया जाना बिलकुल दूसरी बात है। इस तरह का हस्तक्षेप खुले आक्रमण से कम नहीं है।

श्री ज्योति बसु ने दिल्ली विरोधी अभियान के लिए बंगाल की जनता का आवाहन किया है। दिल्ली का विरोध भारत का विरोध बन जाय तो क्या होगा ? भारत के हितों की रक्षा होनी ही चाहिए। दिल्ली की सरकार है और किसलिए ? •

भूल-सुधार

पत्र "भूदान-यज्ञ" : १४ अप्रैल '६८ के अंक में पृष्ठ-संख्या ३४० पर ऊपर से तेरहवीं पंक्ति में "जब भारत पाकिस्तान हिन्दुस्तान-सिक्किम भूटान" की जगह पढ़ें : "जब भारत पाकिस्तान-नेपाल-सिक्किम-भूटान ?"—सं०

ग्रामदान : एक सिंहावलोकन तथा कुछ सुझाव

सन् १९६३ में रायपुर में हमने भविष्य की ओर नजर दौड़ाकर यह माना था कि गांधी-शताब्दी-दिवस (२ अक्तूबर, १९६९) तक १ लाख ग्रामदान हो जायेंगे। उस समय जब कि सम्पूर्ण भारत में सिर्फ ७-८ हजार ग्रामदान हुए थे, बहुत-से लोगों को यह एक खयाली सपने जैसी बात मालूम हुई थी, जिसको व्यावहारिक रूप लेना असम्भव था। लेकिन अब ग्रामदान की संख्या ९५ हजार से अधिक हो गयी है और जब तिरुपति में सर्व सेवा संघ की बैठक होगी तबतक ग्रामदान की संख्या लाख से ऊपर पहुँच चुकी रहेगी। अबतक १८ से अधिक जिलादान हो चुके हैं और इस समय कितने प्रखण्डदान हो चुके हैं यह बताना कठिन हो जाता है, जब कि बलिया सम्मेलन के समय प्रखण्ड दान होना अपने-आप में एक शानदार बात मानी जाती थी।

आबू रोड के सम्मेलन में हमने आशा-पूर्वक यह चर्चा की थी कि भारत के सभी साढ़े पांच लाख गांवों में ग्राम स्वराज्य का सन्देश पहुँचायेंगे। भारत के जिन ७ राज्यों के ग्रामदान को 'राज्यदान' की मंजिल तक ले जाना है उनके ग्रामदानी गांवों की संख्या भारत के कुल ग्रामदान का दो तिहाई भाग है।

आंकड़ों का देश पर प्रभाव

ग्रामदान के ये आंकड़े बुद्धि को प्रभावित तो करते ही हैं, इनके साथ ही ये ऐसी चीज हैं, जिनके लिए हमें गर्व होना चाहिए। लेकिन इनके साथ-ही-साथ यह प्रश्न लगातार हमारे सामने आकर अपना उत्तर माँगता रहा है कि इनका कुल मिलाकर देश पर कितना असर पड़ा है। लोगों के अन्दर आगे बढ़कर कुछ करने की स्वतःस्फूर्त प्रेरणा (इनीशियेटिव) किस हद तक पैदा हुई है और उनके चलते देश की राजनीतिक और आर्थिक संरचना में क्या फर्क आया है।

ये सब अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और गहन प्रश्न हैं। कोई आन्दोलन देश की राजनीति पर कैसा प्रभाव डाल पाता है इसीके आधार पर उसकी सफलता आँकी जाती है। ग्रामदान-आन्दोलन द्वारा सबसे बड़ी उम्मीद यह बनी है कि उसके भीतर से लोक-शक्ति के जुटने और लोकप्रिय नेतृत्व के जागृत होने के महत्त्वपूर्ण परिणाम सामने आयेंगे। यह लोक-शक्ति ही आज के समाज के शक्ति-संतुलन का पलड़ा पलटेगी और फिर राष्ट्रीय जीवन के हर क्षेत्र और दायरे में अपना गहरा असर डालेगी। इसलिए यह जानना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि ग्रामदान-आन्दोलन द्वारा यह लोक-शक्ति किस हद तक पैदा होती है और वह किस प्रकार और कहाँ तक और अधिक जोरदार बनायी जा सकती है।

ग्रामदान में जन-सहकार बढ़ा

ग्रामदान-आन्दोलन का आज जो दृश्य दिखाई दे रहा है, उसकी ओर अगर हम खुली नजर से देखें तो हमें साफ दिखाई देगा कि इस आन्दोलन में कुछ ऐसा घटित हुआ है, जिसने इसे सामान्य जन की स्वयंस्फूर्त

मनमोहन चौधरी

कार्य-प्रेरणा के नजदीक पहुँचा दिया है। कुछ वर्ष पहले ग्रामदान-आन्दोलन कुल मिलाकर कार्यकर्ताओं पर आधारित एक आन्दोलन था। गांधीजी की विभिन्न रचनात्मक संस्थाओं में काम करनेवाले पूरे समय के कार्यकर्ता ही इस आन्दोलन के सन्देश को गांव-गांव तक पहुँचाने की जिम्मेदारी निभा रहे थे। उस समय गांव के लोगों का सहयोग ग्रामदान के संकल्प-पत्र पर हस्ताक्षर करने तक सीमित था। कम-से-कम कुछ प्रदेशों में यह स्थिति बदल चुकी है और अब वहाँ इस आन्दोलन में हजारों ग्रामवासी, किसान, मजदूर, शिक्षक विद्यार्थी और सरकारी कर्मचारी शामिल हो रहे हैं। कुछ राज्यों में लोगों की यह सहभागिता ग्रामदान प्राप्त करने तक सीमित है, लेकिन कुछ राज्यों में लोगों की सहभागिता इतनी बढ़ गयी है कि वे नेतृत्व की अगली कतार में पहुँच गये हैं। आन्दोलन की पद्धति और ढंग में आया यह परिवर्तन ध्यान में रखने और प्रशंसा करने योग्य है।

जहाँ तक यह कदम उठा है, वह काफी आगे ले जानेवाला है, लेकिन उसने लोकप्रिय नेतृत्व और लोक-शक्ति का बाहरी हिस्सा ही छुआ है।

जहाँ एक ओर यह स्थिति है कि हजारों लोग ग्रामदान के लिए सक्रिय हैं वहीं उनसे सैकड़ों नहीं, बल्कि हजारों गुना अधिक ऐसे लोग पड़े हुए हैं, जिन्होंने अपने गांव का ग्रामदान किया है, लेकिन अभी तक सक्रिय होने से कोसों दूर हैं। ऐसे लोगों को सक्रिय बनाने के तरीके ढूँढ़ निकालने हैं। ऐसे लोगों को कार्य-प्रेरित करने के लिए ग्रामसभाएँ एक माध्यम बन सकती हैं, ऐसा माना गया है।

ग्रामदान के बाद के काम

कई प्रदेशों में ग्रामसभाओं के गठन का कार्य हाथ में लिया गया है, लेकिन यह काम बड़ी धीमी गति से हो रहा है। पिछले १८ महीनों में दरभंगा जिले के ३०० ग्रामदानी गांवों में ग्रामसभाओं का गठन किया गया, जब कि जिले के ग्रामदानी गांवों की संख्या ३ हजार से अधिक है। ग्रामसभाओं का यह गठन-कार्य लोगों को सक्रिय बनाने की प्रक्रिया की शुरुआत मात्र है। इस प्रक्रिया को पूर्णता तक पहुँचाने के लिए दो काम और कर लेना जरूरी है—(१) गांव में कोई लोकप्रिय कार्यक्रम शुरू करने का वातावरण तैयार करना। (२) सक्रियता के साथ काम में जुटनेवालों के ऐसे छोटे घटक बनाना, जो गांव के ग्रामलोगों के बीच शासन का काम कर सकें। दूसरे उद्देश्य की पूर्ति करने की दृष्टि से ही ग्राम-शान्ति-सेना को बसाना सामने रखा गया। सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध-समिति ने एक बार सुझाया था कि ग्रामदान के बाद के कार्यक्रम में ग्राम-शान्ति-सेना के गठन को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की जाय। प्रबन्ध-समिति ने यहाँ तक सुझाव दिया था कि जब गांव का ग्रामदान हो रहा हो, उसी समय गांव में कुछ शान्ति-सैनिकों का नाम दर्ज कर लिया जाया करे। लेकिन इस प्रस्ताव को अमल में लाने के बारे में बहुत कम उत्साह दिखाई पड़ा।

संघ की प्रबन्ध-समिति की पिछली बैठक में इस प्रश्न पर फिर से चर्चा हुई। लोगों की आमराय रही कि जो राज्य राज्यदान अभियान की ओर सक्रिय हैं, वहाँ इस कार्यक्रम को चलाना असम्भव न रहे, लेकिन बहुत

गाँव की बात

समर्पित

है यह अंक

उनको,

जिनके सुखी जीवन के सपने

आज भी

"भरपेट भात" की सीमा में ही घिरे है,

और

जिनके लिए १८ अप्रैल १९५१ को

"भूदान-यज्ञ"

की

गंगोत्री प्रकट हुई थी ।

●

आवश्यक सूचना

'गाँव की बात' का अगला अंक अब क्रमानुसार ५ मई के 'भूदान-यज्ञ' के अंक के साथ प्रकाशित न होकर १२ मई के अंक के साथ प्रकाशित होगा । —व्यवस्थापक

इस अंक की बात

★ जिन्होंने यह मान ही लिया है कि 'भूदान बोगस है।···जंगल, नदी, पहाड का दानपत्र विनोबा को देकर लोगों ने उन्हें ठग लिया है। इससे क्या होगा ?' उनसे क्या कहा जाय ?···लेकिन जो लोग यह मान लेने से पहले कुछ सुनना चाहते है, कुछ देखना चाहते है, और कुछ देख-सुनकर किसी निर्णय पर पहुँचना चाहते है, उनसे इस अंक की मार्फत हम कुछ कहना चाहते है, और अधिक देखने-सुनने के लिए आमंत्रित करना चाहते हैं ।

★ मनुष्य का पुरुषार्थ और विज्ञान की मदद मिले तो जंगल, नदी, पहाड मे भी हरी-भरी फसलें लहलहा सकती है, और भारत की 'भूखे भिखारी' वाली शक्ल बदल सकती है। भूदानपुरी, भूपनगर, अरवल के क्षेत्र मानवीय पुरुषार्थ और हिम्मत के उदाहरण तो प्रस्तुत करते हैं, लेकिन विज्ञान की सहायता के अभाव मे पूरा परिणाम नही दिखाई देता । कैसे विज्ञान उनकी हिम्मत के साथ जुडेगा, यह एक प्रश्न है सबके सामने !

★ भूदान की जमीन पर खेती करनेवाले अधिकतर इन पिछड़ी जाति के गरीब लोगों के जीवन मे एक सांस्कृतिक क्रान्ति हुई है । इस क्रान्ति-प्रवाह को कायम रखने के लिए 'गांधीजी की मांग के मुताबिक' सेवकों की जरूरत है, जो लोगों की सेवा में अपने को खपा दें। यह एक खुली चुनौती है देश में क्रान्ति चाहनेवाली नयी पीढ़ी के लिए !

★ बिहारदान की मंजिल नजदीक है। बिहार ग्राम-स्वराज्य की क्रान्ति की प्रयोग-भूमि बनने जा रहा है, बिहार के इन हजारों भूदान-किसानों की एक बड़ी सेना इस क्रान्ति की जबरदस्त शक्ति बन सकती है ।

★ **'गाँव की बात'** के पाठकों को भूदान-किसानों और उनके दो गाँवों के जीवन की कुछ झलकियाँ पेश की जा रही है, यह याद दिलाते हुए कि 'भूदान-यज्ञ' की शुरुआत हुई थी १८ अप्रैल सन् १९५१ में। तब से अब-तक बहुत कुछ हुआ है, उसका एक छोटा-सा अंश इस अंक में दिया जा रहा है।

★ इस अंक को तैयार करने में बिहार भूदान-यज्ञ कमेटी के अध्यक्ष श्री गौरीशंकर शरण सिंह और मंत्री श्री निर्मलचन्द्रजी के हम आभारी हैं, जिनके कारण ही बहुत थोड़े समय में हम इतनी दूर की यात्रा कर सके और इतनी जानकारी पा सके । —सम्पादक

प्यासा धरती : भूखे लोग

इस सुनसान बियाबान जंगल में पीपही (शहनाई की तरह का एक बाजा) की एक दर्दभरी तेज बारीक आवाज गूंज रही है। ज्यों-ज्यों हम गांव के नजदीक पहुंच रहे हैं, ढोलक के 'धप्...धा...धाधिन...धिन, धप्...धा..धा...धिन...धिन' के साथ बच्चों का मिलाजुला कोलाहल और अधिक साफ-साफ सुनाई पड़ रहा है। सामने कई मील दूर ऊंची पहाड़ियों का लम्बा सिलसिला है। हम दो-ढाई मील चल चुके हैं, और अब उस गांव के नजदीक पहुंच रहे हैं, जहां के लिए चले थे। एक छोटी-सी पहाड़ी टेकरी के इर्द गिर्द लाल मिट्टी की दीवालोंवाले छोटे-छोटे मकान दिखाई दे रहे हैं। बीचों-बीच दीखता है एक सफेद दीवालोंवाला खपरैल से छाया हुआ मकान। जहां तक नजर दौड़ पाती है उस एक गांव के अलावा और मनुष्यों की बस्ती के कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ते। सिर्फ दिखाई देती है ऊंची-नीची सूखी, उजाड़, पथरीली जमीन और कहीं कहीं महुआ के पेड़, जंगली करौंदों की हरी-हरी झाड़ियां।

हमारे वहां पहुंचते ही सब कुछ एकाएक थम जाता है। सबकी निगाहें हमारी ओर खिंच जाती हैं। एक युवक दौड़कर पास के घर से एक चारपाई लाकर डाल देता है, हम बैठ जाते हैं। "भूइदान बहुत नामी है। ईह...कहां-कहां के लोग आवे है।" बिना कोई परिचय पूछे ही हमारी चारपाई से कुछ फासले पर बैठा एक आदमी कहता है। सूखी हड्डियों पर झूलती उसकी चमड़ी उसके बुढ़ापे का इजहार कर रही है। दांत टूट चुके हैं, इसलिए गालों की चमड़ी और भी अधिक सिकुड़ी हुई है। कंधे पर एक मटमैला गमछा, और कमर में घुटने से ऊपर जांघ तक पहुंचनेवाली चौड़ाई की एक धोती, ये ही दो वस्त्र हैं तन पर। एक हाथ में है एक लकड़ी— बुढ़ापे का सहारा। दूसरे हाथ से वह अपनी बात पूरी तरह साफ करने के लिए संकेत करता है। "जमीन तो खूब देलके,...पानीए के जोगाड़ न होवे है।" वह अपनी बात पूरी करता है। सन् '६७ के बिहार के अकाल ने लोगों को सिंचाई की आवश्यकता का भरपूर एहसास करा दिया है। शायद इसीलिए बाहर से आये हमारे जैसे हर सफेदपोश आदमी (जो उनकी दृष्टि में कुछ-न-कुछ मदद देनेवाले होते हैं) से ये लोग एक ही फरियाद करते हैं, सिंचाई की जोगाड़ करा देने की।

"नाचो न जी, तुम लोग काहे रुक गया ?" होरो मांझी सेमल के फूल-सा लाल-लाल घंघरा पहने, कमर पर ढोलक बांधे उन दोनों लड़कों से कहते हैं।

समर्पित

है यह अंक

उनको,

जिनके सुखी जीवन के सपने

आज भी

"भरपेट भात" की सीमा में ही घिरे है,

और

जिनके लिए १८ अप्रैल १९५१ को

"भूदान-यज्ञ"

की

गंगोत्री प्रकट हुई थी ।

●

आवश्यक सूचना

'गाँव की बात' का अगला अंक अब क्रमानुसार ५ मई के 'भूदान-यज्ञ' के अंक के साथ प्रकाशित न होकर १२ मई के अंक के साथ प्रकाशित होगा। —व्यवस्थापक

इस अंक की बात

★ जिन्होंने यह मान ही लिया है कि 'भूदान बोगस है।'''जंगल, नदी, पहाड़ का दानपत्र विनोबा को देकर लोगों ने उन्हें ठग लिया है। इससे क्या होगा ?' उनसे क्या कहा जाय ?'''लेकिन जो लोग यह मान लेने से पहले कुछ सुनना चाहते हे, कुछ देखना चाहते है, और कुछ देख-सुनकर किसी निर्णय पर पहुँचना चाहते हे, उनमे इस अंक की मार्फत हम कुछ कहना चाहते है, और अधिक देखने-सुनने के लिए आमंत्रित करना चाहते है ।

★ मनुष्य का पुरुषार्थ और विज्ञान की मदद मिले तो जंगल, नदी, पहाड़ मे भी हरी-भरी फसले लहलहा सकती हे, और भारत की 'भूखे भिखारी' वाली शकल बदल सकती है। भूदानपुरी, भूपनगर, अरवल के क्षेत्र मानवीय पुरुषार्थ और हिकमत के उदाहरण तो प्रस्तुत करते है, लेकिन विज्ञान की सहायता के अभाव मे पूरा परिणाम नही दिखाई देता। कैसे विज्ञान उनकी हिकमत के साथ जुड़ेगा, यह एक प्रश्न है सबके सामने !

★ भूदान की जमीन पर खेती करनेवाले अधिकतर इन पिछड़ी जाति के गरीब लोगों के जीवन में एक सांस्कृतिक क्रान्ति हुई है। इस क्रान्ति-प्रवाह को कायम रखने के लिए 'गांधीजी की माँग के मुताबिक' सेवको की जरूरत है, जो लोगो की सेवा में अपने को खपा दें। यह एक खुली चुनौती है देश में क्रान्ति चाहनेवाली नयी पीढ़ी के लिए !

★ बिहारदान की मंजिल नजदीक है। बिहार ग्राम-स्वराज्य की क्रान्ति की प्रयोग-भूमि बनने जा रहा है, बिहार के इन हजारों भूदान-किसानों की एक बड़ी सेना इस क्रान्ति की जबरदस्त शक्ति बन सकती है ।

★ 'गाँव की बात' के पाठकों को भूदान-किसानों और उनके दो गाँवों के जीवन की कुछ झलकियाँ पेश की जा रही हैं, यह याद दिलाते हुए कि 'भूदान-यज्ञ' की शुरुआत हुई थी १८ अप्रैल सन् १९५१ में। तब से अब-तक बहुत कुछ हुआ है, उसका एक छोटा-सा अंश इस अंक में दिया जा रहा है।

★ इस अंक को तैयार करने में बिहार भूदान-यज्ञ कमेटी के अध्यक्ष श्री गौरीशंकर शरण सिंह और मंत्री श्री निर्मलचन्द्रजी के हम आभारी हैं, जिनके कारण ही बहुत थोड़े समय में हम इतनी दूर की यात्रा कर सके और इतनी जानकारी पा सके। —सम्पादक

प्यासा धरती : भूखे लोग

इस सुनसान बियाबान जंगल में पीपही (शहनाई की तरह का एक बाजा) की एक दर्दभरी तेज बारीक आवाज गूंज रही है। ज्यों-ज्यों हम गांव के नजदीक पहुंच रहे हैं, ढोलक के 'धप्...धा, धाधिन...धिन, धप्...धा...धा...धिन...धिन' के साथ बच्चों का मिलाजुला कोलाहल और अधिक साफ-साफ सुनाई पड़ रहा है। सामने कई मील दूर ऊंची पहाड़ियों का लम्बा सिलसिला है। हम दो-ढाई मील चल चुके हैं, और अब उस गांव के नजदीक पहुंच रहे हैं, जहां के लिए चले थे। एक छोटी-सी पहाड़ी टेकरी के इर्द-गिर्द लाल मिट्टी की दीवालोंवाले छोटे-छोटे मकान दिखाई दे रहे हैं। बीचों-बीच दीखता है एक सफेद दीवालोंवाला खपरैल से छाया हुआ मकान। जहां तक नजर दौड़ पाती है उस एक गांव के अलावा और मनुष्यों की बस्ती के कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ते। सिर्फ दिखाई देती है ऊंची-नीची सूखी, उजाड़, पथरीली जमीन और कहीं-कहीं महुआ के पेड़, जंगली करौंदों की हरी-हरी झाड़ियां।

हमारे वहां पहुंचते ही सब कुछ एकाएक थम जाता है। सबकी निगाहें हमारी ओर खिंच जाती हैं। एक युवक दौड़कर पास के घर से एक चारपाई लाकर डाल देता है, हम बैठ जाते हैं। "भूइदान बहुत नामी है। ईह...कहां-कहां के लोग आवे है।" बिना कोई परिचय पूछे ही हमारी चारपाई से कुछ सामने पर बैठा एक आदमी कहता है। सूखी हड्डियों पर झूलती उसकी चमड़ी उसके बुढ़ापे का इजहार कर रही है। दांत टूट चुके हैं, इसलिए गालों की चमड़ी और भी अधिक सिकुड़ी हुई है। कंधे पर एक मटमैला गमछा, और कमर में घुटने से ऊपर जांघ तक पहुंचनेवाली चौड़ाई की एक धोती, ये ही दो वस्त्र हैं तन पर। एक हाथ में है एक लकड़ी— बुढ़ापे का सहारा। दूसरे हाथ से वह अपनी बात पूरी तरह साफ करने के लिए संकेत करता है। "जमीन तो खूब देलके,...पानीए के जोगाड़ न होवे है।" वह अपनी बात पूरी करता है। सन् '६७ के बिहार के अकाल ने लोगों को सिंचाई की आवश्यकता का भरपूर एहसास करा दिया है। शायद इसीलिए बाहर से आये हमारे जैसे हर सफेदपोश आदमी (जो उनकी दृष्टि में कुछ-न-कुछ मदद देनेवाले होते हैं) से ये लोग एक ही फरियाद करते हैं, सिंचाई की जोगाड़ करा देने की।

"नाचो न जी, तुम लोग काहे रुक गया ?" छोटी-सी झाबा सेमल के फूल-सा लाल-लाल घंघरा पहने, कमर पर ढोलक बांधे उन दोनों लड़कों से कहते हैं।

२१ अप्रैल, '६९

जंगल में मंगल : पिपही-नाच और सामूहिक धमंगोला

...और पीपही की सुरीली आवाज फिर हवा में गूंजने लगती है, ढोलक पर थाप पड़ने लगती है। दोनों की मिलीजुली लय पर उनके पाँव थिरकने लगते हैं। सामने के बरामदे में खड़ी जवान, बूढ़ी, अधेड़ औरतें आँचल से मुंह आधा ढके खड़ी एकटक देख रही हैं। नंगे-अधनंगे बच्चे चारों ओर से घेरे खड़े हैं। उनकी आँखें कभी नाच पर टिकती हैं, कभी हमारी ओर खिंचती हैं, और कभी आपस में हो रही शरारतों में उलझती हैं।

"हटोजी, तुम लोग काहे को घेर लिया?" होरो माझी बच्चों को डाँटते हैं। और बच्चे कुछ सहमकर अलग हट जाते हैं। होरो माझी की चांद के बाल उड़ गये हैं। शरीर अभी तगड़ा है, आवाज भी काफी तेज है। उनके व्यवहार से मुखिया-पन प्रगट हो रहा है।

नाच बन्द होता है। होरो माझी उन्हें फिर ललकारते हैं, लेकिन हम मना कर देते हैं। नाचनेवाले बेचारे थक गये हैं।

"आप लोगों को यहाँ बसे कितने साल हुए?" मैं पूछता हूं।

"दस-एगारह साल भेले।" होरो माझी जवाब देते हैं।

"सन् सत्तावन में बसे थे।" हमारे पास खड़ा एक नव-जवान कहता है। उसके नीले हाफ-पैण्ट, सफेद बनियाइन और बोलने के ढंग से जाहिर होता है कि वह कुछ पढ़ा-लिखा है।

"तुम्हारा क्या नाम है?" मैं पूछता हूं।

"खगन्" वह धीरे से कहता है।

महुए के पेड़ पर बैठा पक्षी कुहुक उठता है।

"खगन् हमारा गाँव का मंत्री है।" होरो माझी खगन् का परिचय देते हैं। खगन—मुश्किल से उसकी उम्र होगा २०-२१ साल की। उसका परिचय दे रहे हैं गर्व के साथ होरो माझी कि खगन् हमारा मन्त्री है। होरो माझी—जिनकी उम्र होगी साठ से ऊपर की।

मुझे याद आती है भारत के राजनीतिक दुनिया के दाँव-पेच को। किस तरह आज लगभग हर राजनीतिक दल के पुराने और नयों में लड़ाई चल रही है, भारत में और राजनीति में ही क्या, दुनिया भर में, और लगभग हर क्षेत्र में नये-पुरानों की कशम-कश चल रही है। लेकिन यहाँ कितना सीधा बहाव है जीवन का! पुरानों ने नयों पर जिम्मेदारी डाल दी है, और खुश हैं कि नये अपनी जिम्मेदारी अच्छी तरह निभा रहे हैं।

खगन् का एक साथी है रामू। दोनों ने खादीग्राम में १ साल तक रहकर खेती को नयी-नयी बातें सीखी हैं। वहाँ से काम चलाने भर को लिखना-पढ़ना भी सीख आये हैं।

"अठासी एकड़ नवासी डिसमिल जमीन मिली भूदान से। हम २६ परिवाल (इधर 'र' को 'ल' और 'ल' को 'र' का उच्चारण करते हैं।) आकर यहाँ बस गये। तब मैं बहुत छोटा था। हर घर को परिवाल के मुताबिक ढाई से पाँच एकड़ तक जमीन मिली है। एक-तिहाई जमीन अभी तक आबाद नहीं कर पाये हैं। मकाई (मक्का,) लाहर (अरहर), कुरथी (कुल्थी) पैदा होता है। थोड़ा-बहुत धान होता है। पानी हो जाय तो धान बहुत हो।" खगन और रामू, दोनों एक-दूसरे की बात में पूरक जानकारी जोड़ते हुए ये बातें बताते हैं। "जी हाँ सरकार, पानी के जोगाड़ होते तो धान खूब होते।...पानिए के कोई 'जोगाड़' नहीं है, आकाशे के भरोसा है।" होरो माझी मन की बेकली प्रगट करते हैं। मुझे 'सरकार' संबोधन से बड़ी चिढ़ होती है, लेकिन इनके लिए हमारे जैसा हर 'सफेदपोश' 'सरकार' है। काश! अगर सरकार ने अपनी पंचवर्षीय योजनाओं में केवल एक ही काम किया होता कि देशभर में सिंचाई की व्यवस्था कर दी होती तो आज भूखे भारत को विदेशों का भिखारी नहीं बनना पड़ता, और होरो माझी के गाँव के बच्चे ऐसे नर-कंकाल की शकल में नहीं जीते।

"तो पानी के लिए आहर-कुआँ बनाने की कोशिश क्यों नहीं करते?" मैं पूछता हूं।

पत्थर तोड़कर पानी की तलाश : पौरुष का प्रमाण

सचमुच रेत नहीं सोना उगलती है

नदी पार कर अब हम रेत पर चल रहे हैं। पानी में पाँव ठंढे हो गये थे, मगर गरम रेत में उनकी सेंक हो रही है। सुबह के दस ही बजे हैं, इसलिए रेत अभी उतनी नहीं तपी है कि बहुत परेशानी मालूम हो। थोड़ी देर चलकर हम उस जगह पहुँचते हैं जहाँ की हरियाली उस किनारे से तभी से, अपनी ओर खींच रही थी। पचकौड़ी का साथी बसगीत एक ओर खड़ा होकर इशारे से दिखाता है, 'वो जहाँ तक हरियाली दिखाई देती है, सब भूदान-किसानों की खेती है। थोड़ी-थोड़ी गेहूँ की खेती भी कर लेते हैं, वह तो कट गयी है। अभी खेतों में ककड़ी, खरबूजा, तरबूजा, लौकी, कुम्हड़ा, तोरई आदि लगाये हैं। रेड़ी (अरण्ड) की भी बहुत अच्छी फसल होती है।' कमण्डल भगत का बेटा दौड़कर अरण्ड की एक बड़ी घौद लाकर दिखाता है।

'रेतों में खेती' वह भी इतनी अच्छी मैं देखकर दंग रह जाता हूँ। यहाँ खेती करनेवाले उस पार के गाँव में ही रहते हैं। यहाँ उनके फूस के छोटे-छोटे झोपड़े लगे हैं, ठीक वैसे ही, जैसे कि पढ़ते समय छुटपन में हमने भूगोल की किताब में टुण्ड्रा के एस्किमो लोगों के घरों के चित्र देखे थे। फर्क केवल बर्फ की जगह फूस का है।

"जरा ककड़ी खाइए।" पंचकौड़ी एक निहायत नरम सी ककड़ी तोड़कर मुझे देता है। ककड़ी इतनी ताजी और मुलायम है कि इसके आगे लखनऊ की 'लैला की उंगलियाँ और मजनूँ की पसलियाँ' वाली ककड़ी भी फीकी मालूम दें।... पंचकौड़ी की दी हुई ककड़ी हम अभी पूरी खा भी नहीं पाये हैं कि तभी बसगीत, रामलोचन और उनके साथ डेरे पर रहने वाले बहुत सारे लोग अपने अपने खेत की एक-एक, दो-दो ककड़ी लाकर देने और खाने का आग्रह करते हैं। मैं हैरान होकर कहता हूँ कि 'भाई, कितनी ककड़ी हम खा सकेंगे ?' ..लेकिन मेरी कौन सुनता है। यहाँ तो होड़ लगी है खिलानेवालों में कि 'थोड़ी सी मेरी खा लो, नहीं थोड़ी सी मेरी खा लो।' उनके आदर और स्नेह से हमारा हृदय भर आता है।

.. इनकी आँखों का भाव 'भूदानपुरी' या भूपनगर के लोगों से काफी भिन्न दिखाई देता है। वहाँ तो बेबसी की घुटन, और अपनी गरीबी से जूझने की तैयारी के साथ-साथ कुछ माँग है मदद की, जो न्यायोचित है, इतना ही नहीं, उसका हक भी है। लेकिन यहाँ लोगों की आँखों में कुछ देने की हविस है। एक ऐसी उदार हविस, जो किसी सम्पन्न किसान में पहले कभी होती थी। अब ये भी किसान हैं, और एक हद तक सम्पन्न हैं। उस सम्पन्नता का इजहार ये अपने लिए अधिक-से-अधिक भोग-सामग्री बटोरकर नहीं करते, 'अपने पास है तो कुछ दूसरों को भी दे सकते हैं,' इसमें जो गौरव इनको महसूस होता है, वह है इनकी सम्पन्नता का इजहार। वह मैं इनके व्यवहार में, जब से इनका साथ हुआ है, तब से ही देख रहा हूँ। भोग की इनकी इच्छाएँ अभी सीमित हैं, संतोष की शीतलता है इनके जीवन में। हो सकता है कि 'बाजार और उसकी भोगी सभ्यता' का सम्पर्क इनको मिले, और तब इनकी भी इच्छाएँ सुरसा के मुँह की तरह फैलती जाय, और जीवन में असंतोष की आग जल उठे! लेकिन अभी तो ऐसा कुछ नहीं दिखाई देता।

...बूढ़े कमण्डल भगत कहते हैं कि आरा जिलावाले बहुत तंग करते थे। हमारी फसल चरा देते थे। बहुत कहा कि हमारे पास भी कागज है, कोई हक का झगड़ा हो तो कागज से फरिया लो। लेकिन वो लोग नहीं माने। लाठी लेकर

हम भी सब लोग लाठी लेकर भिड गये। हम इतने लोग साथ हैं, हमारे सामने वो क्या टिकते! भाग गये। तब से फिर तंग नहीं किया।"

"तो क्या आप लोग लाठी से ही सब झगडे निपटाते हैं? पड़ोसी आरावालों से दुश्मनी कर ली है? यह तो ठीक नहीं।" मैं कुछ नाराजगी जाहिर करते हुए कहता हूं।

"राम···राम···लाठी से कहीं बात बने हल! अपने में कुछ हूद्धे कइल हत महड के आपस में फरिया लिहिले। आरा वाला से 'हक के लड़ाई' होवे हइल, बाकी दुश्मनी ना ह। सत्तदेव स्वामी के कथा, शादी-बियाह में उनका सबके एक-एक दू-दू ककड़ी देले हल, त एतना हो जात कि चलिए ना सके हल।" कमण्डल भगत अपने गले की कण्ठी को हाथ मे लेकर अन्दर की सच्ची बात बताते हैं।

बात कितनी अजीब लगती है। जिनसे लाठी चलाकर हक की लड़ाई लड़ी, उन्हींके घर सत्यनारायण की कथा या शादी-ब्याह पड़ने पर ये लोग एक-एक, दो-दो ककड़ी दे देते हैं, तो उस घर के आदमी को खेत से ककड़ियों का एक भारी बोझ उठाकर ले जाना पड़ता है।

पंचकौड़ी और उनके साथियों की इच्छा है कि हम उनके साथ चलकर सभी के खेत देख लें। वे उत्साह से लम्बी ककड़ियाँ, बड़े कुम्हड़ों तथा इसी प्रकार की फल-तरकारियों की अच्छी फसल को दिखाते हैं। मैं कुछ फलों के फोटो उतार लेता हूं।

एक झोपड़े के पास दो-तीन ईंटों का चूल्हा बनाकर मिट्टी की हंड़ियों में एक औरत 'भात' पका रही है। मैं पास से गुजरते हुए पूछता हूं, "खाना पक रहा है?" "ह, खईब?" आँचल की ओट से कुछ मुस्कराकर वह पूछती है।

"ना, अभी तो ककड़ी से पेट भर गया है।" मैं जवाब देता हूं।

"ककड़ी से कहीं पेट भरे हल!" कमण्डल भगत का बेटा हँसते हुए कहता है। और हम आगे बढ जाते हैं। थोड़ी दूर चलने पर स्त्री पुरुषों का पूरा एक काफिला ही दिखाई देता है, जो सिर पर फसलों का बोझ लिये बाजार या घर जा रहा है। मैं उनके भी फोटो उतार लेता हूं। फोटो उतारते देखकर कुछ लोग बहुत खुश होते हैं। एक तरुण आकर उत्साह से पूछता है, "हमारा फोटो खींचे हैं।"

"हाँ!"

"तो दिखाइए न!"

"अभी कैसे दिखाऊं, अभी तो शहर जाकर इसको देखने लायक बनवाना पड़ेगा। अभी तो कुछ नहीं दीखेगा।"

मेरे जवाब से वह तरुण कुछ निराश होकर कहता है, "बाबू लोग का हर काम शहर में होता है।" मेरा मन उसकी भोलीभाली खीझ पर रीझ उठता है। कैसी बात कही है इसने—'बाबू लोग का हर काम शहर में होता है।'...शहर और बाबू...दोनों एक-दूसरे को टिकाये रखने के लिए जरूरी हैं।

"अब तो भाई, वापस लौटना चाहिए, धूप तेज हो रही है।" मैं उन लोगों से आग्रहपूर्वक कहता हूं। और वे मेरा और धूप का ख्याल करके मेरी बात मान लेते हैं, लौट पड़ते हैं। जितनों के खेतों में नहीं जा सके, वे कुछ उदास दीखते हैं।

सोन के पास आकर सभी पल भर रुक जाते हैं। पंचकौड़ी कहता है, "अगर सोन का पानी मोटर से उठाकर हमारे खेतों तक फेंक दिया जाय, तो रेहों की जगह गेहूं की फसल लहलहाये।
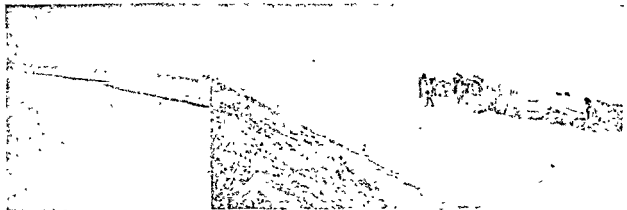
सोन नदी का रेतीला किनारा हरे भरे खेत सुखदाल भूदान-किसान

...लेकिन इसमें शायद २०-३० हजार रुपया लगेगा, वह हम कहाँ से लायेंगे...?" आखिरी बात कहते-कहते पचकौड़ी उदास हो जाता है।

"सरकार लोग तो हमरा पर जुलुम करत रहत ह। सकरी-चौकी का २० एकड़ जमीन अचल अधिकारी जबरन नीलाम कर दिया।" कमण्डल भगत कहता है। मुझे यह बात बहुत खलती है। ऐसा क्यों किया अचल-अधिकारी ने! हमारे साथी बिहार भूदान कमेटी के मंत्री निर्मलचन्द्रजी उनको भरोसा दिलाते हैं कि वे मामले की जाँच-पड़ताल करेंगे।

हम वापस अरवल डाकबगले पर आकर उनके साथ आम के पेड़ की छाया में बैठकर कुछ देर बातचीत करते हैं। एक चौपाल-सी जम गयी है। चर्चा के विषय बहुत-से हैं। बच्चों की पढ़ाई, खेतों की सिंचाई, मेहनत की कमाई आदि आदि। एक लड़का मैट्रिक में पढ रहा है। और भी बच्चे स्कूल मे पढ़ने जाते हैं। पढ़ते है, सो भी मेहनत तो करनी ही पड़ती है सबके साथ। न करें तो खायें क्या? निर्मलजी उनसे पम्प की चर्चा छेड़कर कहते हैं, "मान लो कि कहीं पानी उठानेवाले पम्प की व्यवस्था एक बार हो भी जाय, तो उसे बनाये रखने के लिए भी तो खर्चा चाहिए, वह तो कोई बाहर से नही देगा? क्यों नहीं अपनी अपनी कमाई से थोड़ा-थोड़ा निकालकर गाँव भर की पूँजी इकट्ठी करते? अपने पास पूँजी रहे, अपने में से ही कोई 'पम्प' की मरम्मत का काम सीख ले, तो फिर सब काम आसानी से होगा, नहीं तो कहीं से पम्प मिल भी गया तो उसको सम्भालते-सम्भालते ही परेशान हो जावोगे सब लोग।"

निर्मलजी की बात सबको बहुत अच्छी लगती है। और वादा करते हैं कि हम लोग 'पचैती बटोरकर' इस काम को शुरू करने का फैसला का बटोरकर' इस काम को शुरू करने का फैसला कर लेंगे। अब हम चलने के लिए तैयार है, गाड़ी मे बैठे-बैठे मैट्रिक में पढ रहे उस लड़के से मैं पूछता हूँ, "क्यों, पढ़ने के बाद खेती में लगोगे कि नौकरी करोगे?" लड़का संकोच में सिकुड़ भर जाता है, कोई जवाब नहीं देता। बूढ़े कमण्डल भगत कहते हैं, "पसीना के कमाई खइला से बुद्धि पवित्तर रहत, दोसर सब कमाई हराम के ह, हराम के। ई त पढ़-लिखके बढ़िया से खेती करी, हमरा सबने बेसी फसल उपजाई!" मकण्डल भगत की बात मुझे कुछ चुभ-सी जाती है। लेकिन उस चुभन का दर्द न जाने क्यों बहुत बुरा नहीं लगता।

गाड़ी एक झटके के साथ आगे बढ़ जाती है, और हमारे हाथ हाथ जुड़े रह जाते हैं उनके जुड़े हाथों के जवाब में कुछ क्षणों तक।•

"एक ऐसन आदमी भेज देत सरकार, कि रैंगन के (बच्चों को) पढ़ैतन, अकिल गियान होतेन ! वड़का बाबू भइया कहेहल कि 'भूइयां लोग पढ़ जायेगा, तो मजूरी कौन करेगा !'" विपत् कहते हैं ।

अपनी अगली पीढ़ी के लिए सम्मानपूर्ण जिन्दगी का सपना विपत् इस नन्हें बच्चे की आँखों में देख रहा है । एक ऐसा सपना, जो दुनिया का हर मनुष्य देखता है, देखना चाहता है !...लेकिन विपत् का सपना साकार कब होगा ?

जितना भी अधिक महत्त्व माना जाय, वह उचित ही होगा। हरेक गांव में एक छोटा ही, लेकिन जागरूक और नवचेतना से प्रभावित स्वयंसेवक दल बन सके तो वह ग्राम-समाज के लिए आवश्यक जामन और ग्रामस्वराज्य-आन्दोलन के लिए रीढ़ की हड्डी का काम करेगा।

ऐसे स्वयंसेवक दल की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए उसे लगातार किसी-न-किसी प्रकार के प्रशिक्षण-कार्यक्रम में संलग्न रखना होगा।

अभियान में स्थानीय लोगों के शरीक होने से इस प्रकार की, तथा अनेक अन्य प्रकार की भी सम्भावनाओं का सूत्रपात हो सकता है। इसके लिए जिला-स्तर के कुछ कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित होने और स्थानीय अभिक्रम को संगठित करने के काम को अपना कर्तव्य मानने की आवश्यकता होगी। प्रारम्भ में इस कार्यक्रम की शुरुआत छोटे पैमाने पर होगी, लेकिन समय-समय पर प्रोत्साहित होते रहने पर यह छोटी-सी शुरुआत ही एक शक्तिशाली प्रवाह में परिणत हो जायेगी।

१६-३-६६ (मूल अंग्रेजी से)

कन्हैयाभाई मालपुरवाला का निधन

महाराष्ट्र प्रदेश के पश्चिम खानदेश क्षेत्र के वयोवृद्ध मूक सेवक कन्हैयाभाई मालपुरवाला का निधन बम्बई में गत ११ मार्च '६६ को में हुआ। आपकी उम्र ७५ साल की थी। आप सन् १९३० का देशव्यापी आंदोलन शुरू होने के पहले से ही खादी-सेवा में लगे रहे। खादी को अहिंसक नवसमाज-निर्मिति का प्रतीक मानकर पिछले तीस-चालीस साल तक मालपुर, धुलिया, नंदुरबार, बम्बई आदि विभिन्न स्थानों में खादी-उत्पादन, बिक्री और ग्रामोद्योग-प्रचार करते हुए आप जीवन के अंत तक कार्यरत रहे। कन्हैया भाई ने सार्वजनिक कार्य में प्रामाणिक, कर्तव्यनिष्ठ, सेवापरायण जीवन जीकर नयी पीढ़ी के लिए एक आदर्श मूक सेवक का उदाहरण पेश किया।

※ गांधी-शताब्दी कैसे मनायें ? ※

★ आर्थिक व राजनैतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण और ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के लिए ग्रामदान-आन्दोलन में योग दें।

★ देश को स्वावलम्बी बनाने और सबको रोजगार देने के लिए खादी, ग्राम और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दें।

★ सभी सम्प्रदायों, वर्गों, भाषावार समूहों में सौहार्द-स्थापना तथा राष्ट्रीय एकता व सुदृढ़ता के लिए शांति-सेना को सशक्त करें।

★ शिविर, विचार-गोष्ठी, पदयात्रा वगैरह में भाग लेकर गांधीजी के संदेश का चिंतन-मनन और प्रसार करें, उसे जीवन में उतारें।

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी-समिति), इंडस्ट्रिया भवन, कृष्णीगरों का भैरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

कल का संसार

आज का जागरूक मस्तिष्क ऐसे स्वाधीन राज्यों की कल्पना नहीं करता, जो आपस में ही लड़ते हों, बल्कि वह स्वाधीन राज्यों के एक ऐसे सं की चाहना करता है, जिसमें सभी राज्य एक दूसरे पर निर्भर हों। यह सपना पूरा होने में, हो सकता है, एक बड़ा अरसा लग जाये। मैं अपने देश के लिये ऐसी कोई बड़ी बात नहीं कहना चाहता लेकिन, मैं इतना कहना कोई अनुचित नहीं समझता कि हमें केवल स्व के बजाय अन्तर्राष्ट्रीय निर्भरता के ज्यादा तैयार रहना चाहिये।

महात्मा गांधी

सत्याग्रही जेल में

कोटद्वार में नशाबन्दी-सत्याग्रहियों को हिरासत में लिया गया

पी० ए० सी० की देखरेख में पुनः शराब की दुकानें खुलीं

श्री मानसिंह रावत का अनशन जेल में भी जारी

कोटद्वार १४-४-'६६। आज तार से मिली सूचना के अनुसार श्री मानसिंह रावत तथा सुश्री राधा भट्ट को उनके अनेक साथियों के साथ गिरफ्तार किया गया। ज्ञात है कि कोटद्वार में शराबबन्दी के लिए वहाँ के कार्यकर्ता-साथियों ने शराब की दुकानों पर धरना दिया था और श्री मानसिंह रावत ने आमरण अनशन किया था; परन्तु शराब के ठेकेदारों तथा नागरिकों के इस आश्वासन पर कि पुनः शराब की दुकानें नहीं खुलेंगी, उन्होंने अपना अनशन छोड़ा था। लेकिन जब फिर शराब की दुकानें खुली तो कार्यकर्ताओं ने दुकानों पर धरना देना शुरू किया और श्री रावत का अनशन दुबारा प्रारम्भ हो गया। लेकिन पी० ए० सी० के संरक्षण में दुकानें खोली गयी और सत्याग्रहियों को गिरफ्तार किया गया। आकाशवाणी से समाचार मिला कि सत्याग्रही छोड़ दिये गये।

स्वर्गस्थ रामदास गांधी

पिछले १४-१५ तारीख की मध्यरात्रि को गांधीजी के एकमात्र जीवित पुत्र श्री रामदास गांधी के बम्बई के अस्पताल में पोलियो के रोग के कारण ७३ वर्ष की आयु में निधन के दुःखद समाचार मिले। किसी भी महापुरुष के पुत्र होने के नाते एक कठिनाई यह होती है कि पुत्र की तुलना हमेशा पिता से होती है और साधारण नागरिक से वह अधिक गुणवान हो तो भी उसकी कीमत कुछ कम आँकी जाती है। गांधीजी के चारों पुत्रों को यह कठिनाई भुगतनी पड़ी थी। गांधीजी के बड़े पुत्र श्री हरिलाल गांधी जवानी से ही कुछ गलत रास्ते पर चले गये, लेकिन उनकी गांधीजी की प्रतिभा से स्वतंत्र रहकर अलग व्यक्तित्व के विकास की अभिलाषा थी। गांधीजी के दूसरे पुत्र श्री मणिलाल में गांधीजी की सत्याग्रही वृत्ति आयी थी और सबसे छोटे पुत्र श्री देवदास में गांधीजी के विचार-गांभीर्य के साथ रसिक वृत्ति तथा विनोद-वृत्ति का गुण आया था। गांधीजी के व्यक्तित्व की सारी मृदुता मानो रामदास में प्रतिबिम्बित हुई थी।

श्री रामदास भाई रेशमी स्वभाव के सज्जन थे। यद्यपि उनकी युवा अवस्था से पहले ही पिता मोहनदास की ख्याति विश्वव्यापी हो चुकी थी, तो भी कभी उन्होंने उस ख्याति का लाभ अपने लिए, कोई स्थान प्राप्त करने के लिए, नहीं उठाया। वर्षों तक एक व्यक्तिगत मालिकों की पेढ़ी में एक साधारण आदमी की तरह उन्होंने नौकरी की और इस प्रकार साधारण नागरिकत्व का बहुमान किया। गांधीजी के नाम से किसी प्रकार की विशेष सुविधा न पाना उनके लिए परम आग्रह का विषय बनता था। परिणामतः जब वे जेल गये तब भी उन्होंने दूसरे बन्दियों से विशेष सुविधा नहीं ली। यहाँ तक कि दूसरों को यदि गांधीजी से जेल में भेंट करने की इजाजत नहीं होती थी, तो गांधीजी के पुत्र के नाते उनसे मुलाकात करने का अपना अधिकार भी छोड़ने के लिए वे तैयार रहते थे। एक बन्दी के नाते रामदास भाई का जीवन आदर्श सत्याग्रही का था। यदि गांधीजी के पुत्र के नाते उन्होंने कोई लाभ लिया, तो वह यह था कि कुछ समय के लिए अपनी बड़ी पुत्री सुमित्रा को तथा अधिक समय के लिए पुत्र कनु को उन्होंने गांधी के आश्रम में सुपुर्द कर दिया। रामदास भाई की धर्म-पत्नी निर्मला बहन गांधी शुरू से ही आश्रम-जीवन में घुल मिल गयी थी और कुछ वर्षों में सेवाग्राम-आश्रम में ही बस गयी थी। पिछले कुछ समय से सेवाग्राम-आश्रम के संचालन की जिम्मेवारी भी उन्होंने सम्भाली थी। ये तीनों तथा रामदास भाई की छोटी पुत्री उषा के साथ हमारी आन्तरिक संवेदना है। व्यापक गांधी परिवार के हजारों लोग आज इस घटना से उतना ही आघात अनुभव करते होंगे, जितना कि रामदास भाई का निजी परिवार करता होगा।

पिछले कुछ वर्षों से श्री रामदास भाई शारीरिक तथा मानसिक अस्वस्थता भुगत रहे थे। अतएव उनकी मृत्यु से उनको मुक्ति ही मिली होगी। ईश्वर इस आघात को सहन करने की शक्ति उनके सतप्त परिवार को तथा हम सबको दे! —नारायण देसाई

चांदा जिले में ४१ ग्रामदान

गत ७ मार्च से ६ अप्रैल तक नागविदर्भ चरखा संघ के प्रमुख श्री के० प्र० आम्बुलकरजी के मार्गदर्शन में चांदा जिले के चामोर्शी, ब्रह्मपुरी और आरमोरी विकास-खंडों में पदयात्रा हुई। कुल ४१ ग्रामदान मिले और चार-पाँच सौ रुपयों की साहित्य-बिक्री हुई।

प्रखण्डदान

भागलपुर: संथाल परगना का मधुपुर प्रखण्डदान २६ मार्च को बाबा को समर्पित किया गया। इस प्रखण्ड के ४५२ गाँवों में से ३१८ गाँवों का ग्रामदान हुआ।

भागलपुर: पटना जिले के राजगृह तथा इसलामपुर प्रखण्डों का प्रखण्डदान २६ मार्च को बाबा को समर्पित हुए। राजगृह प्रखण्ड के १३७ गाँवों में से १०५ गाँवों का ग्रामदान हुआ और इसलामपुर प्रखण्ड के ६१ गाँवों में से ८१ गाँवों का ग्रामदान हुआ है।

विनोबाजी का परिवर्तित कार्यक्रम

१७ अप्रैल को प्राप्त सूचना के अनुसार विनोबाजी १९ से २५ तक आरा, जि० शाहाबाद में न रहकर पटना में ही रहेंगे। आगे का कार्यक्रम अभी तय नहीं है।

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०, या २५ शिलिंग या ३ डालर। इस अंक का मूल्य : ४० पैसे।

"कुआँ खोदतिए, पानी ने निकलले।" (कुआँ खोदा, पानी नहीं निकला।) वह दुबला-पतला बूढ़ा आदमी उदास होकर कहता है।

"अभी आहर बना रहे हैं। देखने चलिएगा?" रामू उत्साहित होकर कहता है। "हाँ, जरूर चलूंगा। लेकिन एक बात और जानना चाहता हूँ, आप लोगों को इतने साल यहाँ रहते हो गये, क्या आपस में कभी झगड़ा-बगड़ा नहीं हुआ?" मैं पूछता हूँ। मेरा शंकित मन सोचता है कि ये अशिक्षित, अज्ञानी और दरिद्र मुसहर एक-दूसरे के साथ मिलजुलकर शायद ही कुछ कर पाते होंगे।

"दस आदमी जहाँ रहे हे, हुआँ कुछ खटपट होवे करे हे, लेकिन वेसी कुछ झगडा-टंटा ने होवे हे।" (दस आदमी जहाँ रहते हैं, वहाँ कुछ अनबन होती ही है, लेकिन अधिक कुछ झगड़ा बगड़ा नहीं होता!) बूढ़ा आदमी कहता है।

"आप लोगों के गाँव में कभी पुलिसवाले आये थे?" मैं दूसरी तरह से बात को और साफ करना चाहता हूँ।

"अनियाय ने करबे, तो पुलिस कथीले अईते?" (अन्याय नहीं करेंगे तो पुलिस क्यों आयेगी?) बूढ़ा दृढ़ता के साथ कहता है।

× × ×

"एक बार दरोगा आया रहा, घूम-फिरके चला गया।" रामू कुछ मद्धिम आवाज में बताता है। हम आहर की ओर जा रहे हैं। धान के खेतों की पतली पगडण्डी पर जरा सम्भलकर चलना होता है। इसलिए मुझे रामू के तेज कदमों के साथ कदम मिलाना कुछ कठिन मालूम होता है। उसको कुछ धीरे-धीरे चलने का निवेदन करते हुए मैं पूछता हूँ, "दरोगा क्यों आया था गाँव में?"

"पाडों के ठिकेदार पाडे के देलिए डेंगाई। 'जन' के खटइलके, आ मजूरी ने देलेक, हम कहलिए कि तोरा 'भूत' से मजूरी चुकाई लेवौ।" (पाडों के ठीकेदार पाड़े को पीट दिया। उसने मजदूरों से काम कराकर मजदूरी नहीं दी थी। हमने कहा कि तुम्हारे 'भूत' से वसूल करेंगे।) पीछे से गर्वीली आवाज सुनाई पड़ती है। मैं मुड़कर देखता हूँ कि रामू और सगन् के साथ-साथ होरो मांझी और वह बूढ़ा आदमी भी अपनी लाठी के सहारे हमारे पीछे-पीछे चले आ रहे हैं। आवाज उसी बूढ़े की है। इस समय उसके चेहरे पर स्वाभिमान का भाव झलक रहा है।

मुझे बहुत ताज्जुब होता है। अजीब बात सुन रहा हूँ। इस क्षेत्र की सबसे पिछड़ी, सदियों की दबी हुई निहायत कमजोर जाति के मुसहर, बड़ों के जुल्म सहना ही जिनके जीवन का सहज स्वरूप है, उन्होंने इसी क्षेत्र के एक ब्राह्मण ठीकेदार को पीट दिया! कहाँ से हिम्मत आयी इनमें? क्या भूदान की जमीन मिली, और मजदूर से किसान की श्रेणी में ये लोग आ गये तो अब खुद जुल्म सहने की जगह जुल्म करने पर उतारू हो गये? जमीन मिली, जीवन को सुरक्षा और स्वाभिमान की परिस्थिति मिली तो क्या उसका यही परिणाम होना चाहिए? 'दान' में प्राप्त जमीन से जुड़कर अगर उनके अन्दर वर्ग-द्वेष और बदले की भावना बनी रही, उसका इजहार इस प्रकार हिंसक कार्रवाइयों के रूप में होता रहा तो वर्ग-संघर्ष का अन्त कैसे हो पायेगा? ... ...बिना पूरी बात जाने ही मेरे दिमाग में इस प्रकार की बहुत-सी बातें चक्कर काट जाती हैं। मैं आया हूँ भूदान की जमीन पर बसे किसानों के जीवन में परिवर्तन किस रूप में हुए हैं, और किस मात्रा में हुए हैं, इसकी पूरी जानकारी लेने। मेरा दिमाग भरा हुआ है सर्वोदय के विचारों और सिद्धान्तों से। मैं इनकी हर बात को विचार और सिद्धान्त की कसौटी पर कसकर देखना चाहता हूँ।

"अकाल के समय रिलीफ के काम में पाडों के पाडे ने ७ हजार का सरकारी ठेका लिया, लेकिन 'जन' लोग को खटा के मजूरी नहीं दिया। 'जन' कमायेगा तो 'कलेवा' नहीं माँगेगा? हमलोग कहा कि आधा ही दे दो, तो नहीं दिया। सब डूब गया तो की करीये? देलिए डेंगाई। खादीग्राम के 'भाईजी' लोग ने 'पचैतो' कराकर फिर मब मेल करा दिया। अस्सी रुपया जुर्माना देलिए।" होरो मांझी पूरी बात बताते हैं। मेरे मन के किसी कोने में छिपी हुई यह भावना पूरी घटना सुनकर प्रबल हो जाती है कि ठीक ही तो किया इन्होंने। बेचारों से काम कराया और मजदूरी ही नहीं दी तो क्या करते? क्या सदियों से दबते आये हैं, अब भी दबते ही रहें? आखिर इनमें भी स्वाभिमान की भावना जग गयी है, अब ये सिर्फ मजदूर नहीं किसान हैं। मगर अपने स्वाभिमान और हक की रक्षा के लिए मारपीट पर उतारू हो गये तो क्या बहुत गलत किया!

"अपनी ही बात सब लोग जोर से कहता है। दूसरे की गलती देखता है, अपनी नहीं। बेचारा ठेकेदार काम कराया, लेकिन उसीको रुपया नहीं मिला सरकार की ओर से। बरसात के पानी में चौका डूब गया। नापी नहीं हो सकी तो बेचारा अपने घर से पैसा देता?" सगन् अपनी बात जोर देकर कहता है।

"बेकार ताव में आकर झगड़ा-टंटा खड़ा कर दिया।" रामू भी उतने ही जोर से सगन् की बात के समर्थन में अपनी बात जोड़ता है।

"हां, कुछ गलती त करलिए, तबे न जुर्माना देलिए ?" बूढ़ा आदमी मानो अपनी भूल स्वीकार करता हुआ कहता है।

"बिन राम यह सुनो अजोधा। राम नहीं जनमे थे तो अजोधा सूनी थी, जनमे तो बाजा-गाजा खूब बजा, फिर बनवास हो गया, अजोधा सूनी हो गयी। लिखले था। हमलोग का भी बुधो का राम जन्मता है, फिर बनवास चला जाता है। लिखले हैं। हम मूरख लोग है न। हमेशा बुधो ठीक नहीं रहता है। कभी-कभी गलती हो ही जाता है।" होरो मांझी कहते हैं।

मैं दंग रह जाता हूँ सुनकर ! इन मुसहर लोगों के अन्दर भी अपने आपको, अपने कर्मों को इस तरह एक हद तक तटस्थ होकर देखने की चेतना है और सबसे अधिक आश्चर्य तो इस बात से होता है कि बूढ़े लोगों के पुराने संस्कारों से अधिक खगनू, रामू जैसे लोगों के नये लोगों के नये संस्कार प्रभावशाली और बलवान हो रहे हैं। नयों के संस्कार में वर्ग-द्वेष की चिनगारी नहीं दिखाई देती। मुझे बहुत समाधान होता है यह सोचकर। लगता है कि जीवन-परिवर्तन के जिन लक्षणों को इनमें देखने की आशा लेकर मैं यहाँ आया हूँ, वह एक हद तक पूरी हो रही है।

हमारे कदम आहर की ओर बढ़ रहे हैं। हमारी बातचीत का सिलसिला कुछ दूसरा रूप लेता है। मैं पूछता हूँ, "आपके गांव का नाम भूदानपुरी क्यों है ?" "भूइदान के जमीन पर बसलिए त भूदानपुरी नाम ने होते ?" बूढ़ा आदमी कहता है। लाठी के सहारे उसके दुबले-पतले सूखे सूखे-से पाँव किसी तरह सम्भल-सम्भलकर खेत की पतली मेड़ पर आगे बढ़ रहे हैं।

"भूदान मे आपको जमीन किसने दी ?" मैं पूछता हूँ।

"विनोबा देलके। ईहृ... हम्मर माय-बाप उहे होके। खूब जमीन देलके, बाकी पानीए के जोगाड़ ने...।" बूढ़ा आदमी कहता है। उसके वाक्य मुझे चुभ जाते हैं। जब से हम यहाँ आये हैं, यह आदमी कितनी दफे यह बात दुहरा चुका। कितनी प्यास है इसके अन्तर मे ? सदियों... सदियों की अतृप्त प्यास ! सोचता होगा, खेत तो मिल गये, किसान बन गया, पानी हो जाता तो मालिक लोगों के गाँवों की तरह हमारे गाँव के खेतों में भी धान की फसल लहलहाती। भरी जवानी में जब यह मालिक के खेतों में जलती धूप में शरीर का खून जलाकर काम करता रहा होता होगा, और शाम को हरी-भरी लहलहाती फसलों को देखता होगा तो क्या इसकी आँखों के किसी कोने में यह सपना नहीं पलता होगा कि हमारा अपना भी कोई खेत होता !... पता नहीं, कौन जाने सदियों से मजदूर की लगभग गुलाम-सी जिन्दगी बिताने के कारण इनकी आँखों के सुखी जीवन के सपने भी इनसे छिन गये हों ? भूदान ने इनसे छिन गये सुखी जीवन के सपने इनकी आँखों में वापस ला दिया है, यह मैं यहाँ आकर साफ साफ देख और अनुभव कर रहा हूँ।

मुझे तमिलनाडु के तंजोर जिले की और प० बंगाल के नक्सालबाड़ी के मालिक-मजदूर संघर्ष की घटनाएँ याद आती हैं। इनसे कहता हूँ, "देश में कई जगह तो जमीन को लेकर बहुत लड़ाई-झगडे हो रहे हैं, कितनों की जानें गयी हैं, कितने जेल में हैं।"

"की करते, भुक्खल मरते ? मालिक जमीनवा ने देते त ई सब होवे करते!" बूढ़ा आदमी फिर कहता है। और मुझे लगता है कि इस बूढ़े की यह बात घोषणा कर रही है कि शोषित मजदूरों की सहन करने की सीमा अब खत्म होने जा रही है, अब इसके बाद वैसा हो नहीं चलेगा, जैसा चलता आया है।

"विनोबा बाबा के मालिक लोग जमीन दे देगा, और गरीब को भी जीने का सहारा हो जायेगा तो ई सब कलह काहे होगा ?" होरो मांझी समझाते हुए कहते हैं।

खगनू कहता है, "भाईजी, सुना है कि बाबा विनोबा को बहुत जमीन दान में मिली है, गरीबों को बाँटने के लिए, क्या सच बात है ?"

"हाँ खगनू, सच है। इस बिहार प्रदेश में ही २१ लाख एकड़ जमीन दान मे मिली थी। जंगल-जंगल छोड़कर अभी तक २ लाख २८ हजार १७६ एकड़ बे-जमीनों को बाँट दी गयी है, अभी और बंटनेवाली है।" मैं खगनू को पटना से मिली जानकारी के आधार पर बताता हूँ।

"तब तो भाईजी, बिना लड़ाई-झगड़ा के ही यह सब ठीक हो जाना चाहिए। लड़ाई-झगड़ा से कोई फायदा नहीं होता, उलटे नुकसान होता है।" रामू कहता है। शायद उसे ८० रुपये जुर्माने के याद आते हैं।

"हाँ रामू, इसी बाबा विनोबा का काम चल रहा है। यही आशा करनी चाहिए कि सब कुछ बिना लड़ाई-झगड़ा के ही ठीक हो जायेगा।" मैं रामू से कहता हूँ।

× × ×

हम आहर पर पहुँच गये हैं। काम चल रहा है, लेकिन काम करनेवाले बहुत थोड़े हैं। खगनू ने बताया है कि आहर बनाने के लिए किसी दूसरे देश के लोग गेहूँ भेजते हैं। हमारे साथ आये खादीग्राम के साथी ने पूरी जानकारी दी है कि "कैथलिक चैरिटीज"—अमेरिका की ओर से 'फूड फार वर्क' की योजना में यहाँ आहर बनाने के लिए गेहूँ या गेहूँ का दलिया मिलता है। उसीसे यह आहर बन रहा है। मिहनत करने के लिए तो गाँव-

वाले हमेशा राजी रहते हैं, लेकिन दिन भर कमाने के बाद खाने भर को मजदूरी न मिले तो भला ये बेचारे रात को क्या खायेंगे? अपनी खेती में तो सिर्फ कुछ बरसाती फसलें हो पाती हैं, जिससे कुछ महीनों के खाने के लिए हो जाता है लेकिन साल भर के लिए तो बिना पानी की व्यवस्था किये पैदावार हो ही नहीं सकती यहाँ।

काम करनेवालों की संख्या कम है, यह देखकर मैं पूछता हूँ, "यहाँ तो २६ परिवारों की बस्ती है, फिर ८-१० लोग ही काम पर क्यों लगे हैं? और लोग क्यों नहीं काम कर रहे हैं?"

"आज दम मारे हैं। कल्ह घटवी बाँट देलके। आज ठढ़इते, फेर कल्ह काम पर अइते।" (आज आराम कर रहे हैं। बस दलिया बाँट दिया, आज ठढ़ायेगा, फिर कल काम पर आयेगा।) यह बूढ़ा आदमी सहजता के साथ पीछे से जवाब देता है। एक हाथ कमर पर रखे लाठी के सहारे तनकर वह इस समय सीधा खड़ा है, शायद अपनी कमर सीधी कर रहा है और मिट्टी काटनेवालों को कुछ निर्देश भी दे रहा है।

इस गाँव में बसे मुसहर जाति के लोगों के बारे में इस क्षेत्र के लोगों की आम राय है कि घर में भरपेट खाने को हो जाय, तब ये काम पर नहीं जाते। रोज कमाने और रोज खानेवालों को जब हर रोज अपने दिन के भोजन की चिंता करनी ही रहती है तो उस चिंता से मुक्त हो लेने का अवसर शायद ये इसी तरह बीच बीच में निकाल लेते हैं। दो तीन दिन की मजदूरी एकसाथ मिल गयी और उसमें एक दिन बिना कमाये भी खाने को मिल जायेगा तो उस दिन भी काम क्यों करें? हर स्थिति में मनुष्य अपनी चिंताओं से अपने को कुछ समय तक अलग कर लेने का अवसर निकाल ही लेता है। मुसहरों के चरित्र की यह विशेषता मानव मन की एक सहज स्थिति है, लेकिन मालिक लोग जिन्हें इनके जीवन को भी मनुष्य के स्तर में रखकर सोचने का अभ्यास नहीं, इसे इनका एक गम्भीर चरित्र-दोष बताते हैं।

काम करनेवाले कई लोगों के पास जाकर मैं हालचाल पूछता हूँ। मेघन् और बालेसर नाम के दो तरुण बातचीत करने के लिए कुछ अधिक उत्सुक दीख पड़ते हैं। चौके के किनारे मैं बैठ जाता हूँ, वे भी टोकरी, कुदाल छोड़कर पास आकर बैठ जाते हैं।

थोड़ी-सी बातचीत में ही ये कुछ अधिक आत्मीयता महसूस करने लगते हैं, और खुलकर अपनी बातें बताते हैं। मेघन् कहता है, "झरिया कोइलरी में काम करने गया रहा। राम रे, वो भी कोई जिनिगी है? वहाँ का दूध यहाँ का पानी बराबर। यहाँ अपने मन से काम करेगा। मन में नहीं होगा काम करने का, तो नहीं करेगा। वहाँ तो साहेब माथा पर चढ़ा रहता है। मन कहे या न कहे, काम पर जाना होगा। काम भी कितना रहो... ज्यादे पैसा के लिए क्या अनमोल जिनगी बरबाद करते भाईजी। करेजा में कोइला घुस जाता है।" मेघन् अपनी बंगला-हिन्दी में कहता है। शायद बाहर से आये हुए आदमियों से वह इसी बोली में बोलता होगा।

धूप तेज हो रही है। सूखी मिट्टी तपने लगी है। मेघन्, बालेसर किसीके तन पर कुर्ता नहीं है। कमर में सिर्फ एक मैली धोती है। सिर पर एक-एक गमछा है। उनके तन पर पसीने में घुली मिट्टी की लकीरें बन रही हैं। धूप की जलनवाली अपने मन की जिन्दगी इन्हें प्रिय है, भले उसमें पैसा कम मिले, लेकिन कोइलरी की घुटनवाली 'साहबों' के मन की जिन्दगी इन्हें नापसन्द है,—भले उसमें पैसे अधिक मिलें। मैं सोच रहा हूँ अपने जैसे उन लोगों की बात, जो स्कूलों और कालेजों में पढ़ते हैं, और पढ़कर एक ही आकांक्षा, एक ही योग्यता लेकर जीवन के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं कि किसी प्रकार कहीं भी किसी छोटे या बड़े 'साहब' के मातहत अपने मन को सौंप दूँ, ताकि सुरक्षा और आराम की रोटी मिल जाय। कैसे कहूँ कि ये मजदूर अपनी जिन्दगी यों ही बिता देते हैं? सीमा है इनके जीवन की, लेकिन उस सीमा में अपने मन से जीने की तड़प आज भी इनके अन्दर बनी हुई है, पीढ़ियों से गुलामों की सी जिन्दगी गुजारने के बाद भी। मेघन् और भी बहुत-सी बातें बताता है अपने परिवार, घर और गाँव की।

मैं बालेसर से पूछता हूँ, "क्यों, आहर में पानी रहने लगेगा तब तो धान की खेती होने लगेगी?"

"हाँ भाईजी, मेहनत कर रहा है हम लोग, तो भगवान का किरपा होगा ही। पानी जमा हो जाय तो कवनो जोगाड करके बिजली से ऊपर पानी फेंकवे। खूब धान होते।" बालेसर उल्लसित होकर कहता है। उसकी आँखों में भविष्य के लिए एक चमक दिखाई देती है। लोग कहते हैं कि गाँव के गँवार लोग आधुनिक तरीकों को अपनाने के लिए राजी ही नहीं होते। लेकिन मैं यहाँ प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि कितनी आतुरता है, बिजली से पानी ऊपर फेंकने के लिए। आधुनिक तरीके तो लोग अपनाने को राजी हैं, लेकिन जो उनकी जरूरतों को पूरा करने वाले तरीके हैं, उन्हीं को।

मेघन् कहता है, "धान होगा तो खूब भात खाने को मिलेगा।"

"अभी क्या-क्या मिलता है खाने को?' मैं पूछता हूँ।

"घाठा मिले हे, मकाई, कुरथी मिले हे, 'भात' तो नहिये मिले हे। जब कौनो भोजवोज होवे हे, त गाँव भर के 'भाता' के भोज मिले हे।' मेघन् कहता है। अपने अन्तर की भूख प्रगट करने में वह अपनी बंगला-हिन्दी भूल गया है।

भात नहीं मिलता : महुआ चुन कर खे जाते हैं खाने के लिए

"भात तो नहिए मिले हे।" कहते हुए मेघन् के चेहरे पर न जाने कितनी पुरानी 'भात' के 'भूख' की जलन उभर आती है। मुझे परिचय मिलता है, इनके सुखी जीवन के सपनों की सीमाओं का, और उसमें 'भात' के स्थान का।

न जाने क्यों उसकी यह आखिरी बात मेरे अन्दर एक बेचैनी-सी पैदा कर देती है। और अधिक यहाँ ठहरने की इच्छा नहीं होती। मैं चलने को होता हूँ तो मेघन्-बालेसर 'परनाम' करते हैं।

खगन् और रामू मुझे कुछ दूर तक पहुँचाने जाते हैं। रामू कहता है कि "हमारे घरमगोला (सामूहिक घर) में 'इसकूल' (स्कूल) चलता है, मार्निग (मार्निग), आठ लड़के पढते हैं, एक दोकान भी चलाते हैं। महाजन के पास कब तक दौड़ते?"

मेघन् कुछ चिंतित होकर कहता है, "कई आदमी अपना खेत नही आबाद करता है। कहता है कि खेती की झंझट कौन करे। मजूरी करके खाने की आदत हो गयी है।"

मुझे दोनों की बातें बहुत अच्छी लगती हैं। दोनों के मन में अपने पूरे गाँव की चिंता है, कैसे सब लोग आगे बढे, सुखी हों, गाँव को प्रतिष्ठा बढ़े। काश! भारत के हर गाँव में खगन् और रामू जैसे गाँव भर की चिंता करनेवाले दो-दो युवक भी निकल आते, तो गाधी का गाँवों को नये सिरे से बनाने का सपना साकार होते देर नहीं लगती। लेकिन भारत के पढ़े-लिखे युवकों को भारत के गाँवों की फिकर कहाँ है?... ...और भी किसको फिकर है गाँवों की?

मैं खगन् से पूछता हूँ, "मान लो कि तुमको कहीं से गाँव के लिए जितनी जरूरत हो, उतना पैसा मिले तो गाँव में सबसे पहला काम कौन-सा करोगे?"

"पानी का जोगाड़ करेंगे, भाईजी, खूब धान होगा, सबको भात खाने के लिए मिलेगा।" खगन् उत्साह से कहता है।

खगन् की इस आकांक्षा में हजारों-हजार गाँवों की आकांक्षा एकसाथ मेरे सामने प्रगट हो आती है। प्यासी धरती और भूखे लोगों का विह्वल भारत मेरे दिल में एक प्रकार की तड़प पैदा कर देता है। बच्चों की तरह मैं सोचने लगता हूँ—'अगर मुझे अलादीन का चिराग मिल जाता!' फिर मुझे याद आता है कि इस देश की जनता के लिए तो देश की लोकसभा अलादीन की चिराग है, जहाँ से 'वोटर' जनता को यह भरोसा दिलाया जाता है कि 'जन-जीवन' की सुरक्षा, संरक्षण और पोषण के लिए लोकसभा अपनी पूरी जिम्मेदारी मानती है। लेकिन कितना नकली साबित हो रहा है यह 'अलादीन का चिराग'?

लोकसभा में क्या होता है? बहसें होती हैं, गरमागरम होती हैं, और उन बहसों के बहुत दिलचस्प विषय भी होते हैं। ... ...और इन दिलचस्प बहसों में इस क्षेत्र की जनता के वोट से चुने गये प्रतिनिधि मधु लिमयेजी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। इच्छा होती है कि कभी मधु लिमयेजी अपनी जोरदार आवाज में लोकसभा के सामने यहाँ की प्यासी धरती और भूखे लोगों की माँग भी पेश करते!... ...लेकिन कहाँ फुर्सत है इन छोटे-छोटे सवालों के लिए बड़ों के पास? ... ...शायद वे जानते भी नहीं कि उनके ऐसे 'वोटर' भी हैं जिनकी आज भी एकमात्र आकांक्षा है 'भरपेट भात की'।... शायद वे भूखे लोग भी नहीं जानते होंगे कि देश की सरकार में उनके वोट से चुने गये इतने बड़े नेता हैं, उनकी बात को राजधानी दिल्ली तक पहुँचाने के लिए। लेकिन बात वहाँ तक पहुँच नहीं पाती। कैसे पहुँचे? 'वोटर' और 'नेता' का सम्बन्ध तो पाँच साल में सिर्फ एक बार आता है। वोट लेने के बाद नेता भूल जाता है कि वह किसका प्रतिनिधि है, और 'वोटर' भी भूल जाता है कि कौन उसका प्रतिनिधि है।

हम गाँव से काफी दूर चले आये हैं। खगन् और रामू से विदा लेकर हम वापस लौटने के लिए आगे बढ़ते हैं। इतनी देर के इनके साथ ने मेरे मन में इनके लिए एक मोह-सा पैदा कर दिया है। इसलिए दिमाग में इन्हींकी बातें गूँज रही हैं। सोच रहा हूँ, 'भूदान में इन्हें जमीन मिली, मजदूर की हैसियत से ये किसान की हैसियत में आये, सुखी जीवन के लिए कुछ करने की आकांक्षा इनमें जगी, इनकी आकांक्षा को आवाज और शक्ति कब मिलेगी?•

पहाड़ पर पौदे

गया से लगभग ४५-४६ मील की दूरी तय करके हमारी गाड़ी पक्की सड़क से कच्ची पर उतरती है। पूछने पर पता चलता है कि भुवनगर यहाँ से ३ मील होगा। कोई कहता है गाड़ी वहाँ तक चली जायगी, कोई कहता है नहीं जायगी। हमारा ड्राइवर हिम्मतवाला है, कहता है, "अगर जीप के जाने का रास्ता होगा तो भी हम इस 'एम्बेसडर' को खींच ले जायेंगे।" लेकिन एक मील जाने के बाद ही उसको हिम्मत को हार माननी पड़ती है। बरसाती नालों, पहाड़ों और जंगलों में से होकर गाड़ी को घसीटने का मतलब है उधर से लौटते समय अपने सहित गाड़ी को भी पैदल घसीटना। इसलिए गाड़ी और ड्राइवर को एक पेड़ की छाया में छोड़कर हम आगे बढ़ते हैं। गया से हमारे मार्गदर्शक साथ-साथ हैं, इसलिए निश्चिन्त होकर हम चल रहे हैं।

शेरघाटी का यह जंगल हजारीबाग की सीमा से जुड़ा हुआ है। पक्की सड़क से नीचे अपनी गाड़ी उतारकर इधर आनेवाले अधिकतर शिकारी होते हैं, नहीं तो कौन भला आदमी इधर को रुख करेगा? और हम हैं कि निकले हैं इन जंगलों-पहाड़ों में बसे 'भुवनगर' में जीवन की तलाश करने। यह भी सामान्य नहीं, बदलते जीवन की तलाश में। पूरा जंगल जैसे कँटीली झाड़ियों का ही हो। जरा-सी असावधानी में काँटे फाँस लेते हैं कुछ क्षणों के लिए। दोपहर के बारह बजनेवाले हैं। अप्रैल की धूप अब काफी तेज होने लगी है, सूरज माथे पर आ रहा है। गनीमत यही है कि जंगल की हरियाली के कारण हवा में गर्मी नहीं मालूम होती।

उस जंगल में चलते-चलते करीब एक घंटा बीत चुका है, लेकिन अभीतक भुवनगर का दर्शन दूर से भी नहीं हो पाया है। हमारे मार्गदर्शक साथी ने गाड़ी छोड़ते समय बताया था कि वहाँ पहुँचने में अधिक-से अधिक २०-२५ मिनट लगेंगे। लेकिन एक घंटा चलने के बाद भी जब हम मार्गदर्शक साथी को पहाड़ की एक ऊँची टेकरी पर चढ़कर इधर-उधर झाँकते देखते हैं तब बात समझ में आती है कि हम रास्ता भूल गये हैं, और जंगल में भटक रहे हैं। न जाने क्यों मुझे कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली जैसे महानगरों के आदमियोंवाले जंगल में भटकने से शेरघाटी के इस पेड़-पौधों और कँटीली झाड़ियोंवाले जंगल में भटकना ज्यादा अच्छा मालूम होता है। शायद इसका प्रमुख कारण यह हो कि उन महानगरों में हर आदमी एक-न-एक नकली चेहरा लगाये घूमता है, जो बाहर कुछ दीखता है, और भीतर से कुछ होता है। इस शेरघाटी के जंगली पेड़-पौधे कम-से-कम अपने असली रूप में तो दिखाई देते हैं!

हमारे मार्गदर्शक साथी बताते हैं कि अब हम भुवनगर के करीब आ पहुँचे हैं। भटकना कुछ पड़ा, लेकिन अब मंजिल निकट है, रास्ता दिखाई पड़ रहा है। और सचमुच हम १५-२० मिनट में भुवनगर पहुँच जाते हैं। गाँव में एक चहल-पहल-सी आ जाती है कि कुछ लोग बाहर से गाँव देखने आये हैं। सहमे-सहमे से बच्चे हमें कुछ दूर से ही निहार रहे हैं। बड़े-बूढ़े नवजवानों को दरी, बाल्टी, लोटा, ठंडा पानी जल्दी लाने के लिए ललकार रहे हैं। मुझे लगता है कि ये गाँव भारत माँ के हृदय हैं, भावनाओं से भरपूर। इन गाँवों पर जितने प्रकार के प्रहार हुए और होते चले जा रहे हैं, उनके बावजूद इनका भावभण्डार अभी भी भरा हुआ ही है, यह कोई मामूली महत्त्व की बात नहीं है।

विपत् भुइयाँ इस गाँव के मुखिया हैं। उम्र होगी पचास से ऊपर की। दाँत आधे टूट चुके हैं। बाल भी कुछ ही काले रह गये हैं। माथे पर एक मटमैले अँगोछे की पगड़ी, घुटने तक धोती, बदन में कुर्ता है। कुर्ते का शायद एक ही बटन ठीक है।

भुवनगर : पहाड़ियों से घिरा पुरुषार्थी जीवन

कपड़ों का एक ही रंग है मिट्टी का। मिट्टी के ये लाल मिट्टी के रंग में न रंगें तो हमारी सफेदी कैसे कायम रहे?

कुछ देर सुस्ताकर थकान उतारने के बाद हमारी बैठक शुरू हो जाती है। विपत् भुइयाँ बताते हैं, "६६ एकड़ भूइदान के जमीन पर भूपनगर बसे हल। २१ परिवार हैं। अभी ७८ एकड़ पर खेती होवे हल। तिल, मक्का, केतारी (गन्ना), राहर, (अरहर), पियाज सब थोड़ा-थोड़ा करलिए। पहिले एक आदमी पर १-२ कट्ठा करते थे, अब एक आदमी पर १० कट्ठा करेहल।" विपत् भुइयाँ बीच-बीच में खड़ी बोली बोलने की भी कोशिश करते हैं।

"विनोबा बाबा को जानते हो?" मैं पूछता हूँ। "देखिलिए हल।. पास बैठिके दर्शन कइलिए हल। कानी हउदी (कांजी हाउस) पर आये थे। हम गेलिए। बाबा बाह्मन, रजपूत को कहा कि सब हटो, हमरा किसान आये हैं।" अबकी बार विपत् भुइयाँ के पास बैठे अक्कल मोक्ता जवाब देते हैं। बात पूरी करते-करते ऐसा लगता है कि गर्व से उनकी छाती—फूलकर दूनी हो गयी है। जिन लोगों को गाँव के किसी ऊँची जाति की ओर से कभी सम्मान नहीं मिला, विनोबा ने उन्हीं लोगों को पास बिठाने के लिए बड़े लोगों को हटाया, यह इनके जीवन की शायद सबसे बड़ी घटना होगी। युगों बाद इन्होंने महसूस किया होगा कि हम भी आदमी हैं, हमारा भी कहीं सम्मान हो सकता है। वर्ना ये तो बड़ों के सम्मान में न जाने कितनी पीढ़ियों से अपनी जिन्दगी को समर्पित करते आ रहे हैं। मुझे ध्यान में आता है कि विनोबा के पास बैठाने से इनके हृदय में 'हम भी मनुष्य हैं' की जो अनुभूति पैदा हुई होगी, उसका माओ की सांस्कृतिक क्रान्ति से कहीं अधिक महत्त्व है। इस सांस्कृतिक क्रान्ति को विकसित होने का आर्थिक आधार मिल गया है भूदान में प्राप्त जमीन के रूप में। लेकिन यह सब बिना खून बहे हो गया तो इस क्रान्ति को कौन जानेगा, कौन मानेगा? नक्सालबाड़ी में यह सब कुछ नहीं हुआ, सिर्फ खून बह गया, तो वह एक क्रान्ति हो गयी, भारत और दुनिया के लोग जान गये, मान गये; इसको क्या कहा जाय?

"जमीन भूप बाबू का दिया है। बड़ा अच्छा आदमी है। गरीब को खूब मानता है। बड़का जमीदार रहा। अब तो जमीदारी है नहीं। भूइदान में बाबा को बहुत जमीन दिया रहा।" राजबली कहते हैं। शायद बाहर मजदूरी आदि के लिए जाते रहने से ये खड़ी बोली में अपनी बात कह लेते हैं।

"पहिले एक कूआँ था, अब तो चारगो बाँध बाँध लेलिए। दूगो कुइँया के और जरूरत हल! चारों ओर पहाड़—पानीए से पैदा होवे है।" विपत् भुइयाँ खेती की समस्या पेश करते हैं।

"तो मिलकर कुआँ क्यों नहीं बना लेते?" मैं पूछता हूँ!

"एको साँझ के खर्ची नैं हल, त केना काम होते? एक वेला के खर्ची होते हल तो दू बेरा के काम कर लेते हल!" मेघू कहता है। मेघू एक दुबला-पतला तरुण, जो बहुत देर से कुछ कहना चाहता था, और शायद बड़े-बूढ़ों की बात खत्म होने का इन्तजार कर रहा था।

"परियाल (३ साल पहले) हाट-लेबर (हार्ड मैनुअल लेबर स्कीम) के ठेका लेलिए हल। आहरा देलिए (आहर बनाया)। पानी बान्हल जरूरी हल (पानी बाँधना जरूरी है)। लेकिन भगवान चले नहीं देते हैं। आहरा टूट जाता है। पक्का छिलका (पानी रोकने के लिए) बनावे के है।" विपत् अपनी और भी समस्याएँ रखता है। शायद उसके मन के किसी कोने में यह आशा बँध गयी है कि हम लोग उसकी कुछ मदद कर देंगे।

"आपलोगों को मजदूरी के लिए बाहर भी जाना पड़ता है या गाँव की खेती से ही काम चल जाता है?" मैं पूछता हूँ।

"ये बाहर-गलेहल गुजारा है? एगो-दूगो चल जावे हथिन, साँझो के चल आवे हल।" विपत् कहते हैं।

"आप लोग अपने गाँव के काम के लिए अपनी जो कुछ भी कमाई होती है, उसमें से कुछ बचाकर क्यों नहीं रखते? बाहरी मदद का क्या भरोसा?" मैं उन्हें सलाह देते हुए पूछता हूँ।"

विपत् भुइयाँ किसी पुरानी बात को याद दिलाते हुए गाँव भर के लोगों को मानो चुनौती देते हैं—"अब बोलो?......सरकार, हम आठ रोज पर मीटीन करे हिये। समुझाते-समुझाते थकि गेलिएहल कि कुछ जमा होते, त गाँवे का भलाई होते हल। अकाल का पहले ४ मन मकाई जमा हल, अकाल में काम कराके बाँट देलिए। तब से फेरू नहीं जमा हुआ। का जमा होते हल त हम खाई जइतिए?"

"खाए-पीए के बात कौन कहता है? फेरू जमा होते। सब लोग कोशिश करते तो होकर रहते। अपनी हिकमत के बाद ही दूसरों का आसरा करना चाहिए।" राजबली कहता है।

राजबली की यह सीधी-सी बात हमारे देश के नेता क्या कभी समझ पायेंगे? अगर समझ पाते तो शायद देश भर में 'लाटरी' का सरकारी धंधा शुरू कराकर पहले से ही भाग्य के भरोसे रहनेवाली भारत की जनता को और भी अधिक तकदीर आजमाते रहनेवाले जुए का खिलाड़ी बनाने में न जुटते, बल्कि उनको अपनी हिकमत से कुछ कर डालने के लिए उत्साहित करते। हमारे देश के वित्त-मंत्री नशाबन्दी के खिलाफ बोलते हैं, 'लाटरी' नामक इस सरकारी जुए के खिलाफ क्यों नहीं

बोलते ? शराब बन्द की बात याद आते ही मैं गाँववालों से पूछता हूँ, "आप लोगों के यहाँ ताड़ी-दारू चलती है कि नहीं ?"

"कहावत है कि मुइयाँ के 'लबनी भर' अनाज होवे हल, त पीके भूमे हल ! बाकी हमारा गाँव मे ताड़ी-दारू एकदम खतम है सरकार ! भूदान के जमीन पर भला ताड़ी-दारू चलते ?... राम... राम ! कुटुम-कुटुम (रिश्तेदार) के भइला पर माँग-चाँग कभी काल मंगा लेन हल।" विपत् बिना कुछ छिपाये साफ-साफ कह देते हैं। 'भूदान' की जमीन पर बसने और उसकी पैदावार पानेवालों को ताड़ी दारू से दूर रखना चाहिए, यह बात इनकी चेतना में बस गयी है। तभी तो मे इतनी जबरदस्त 'लत' से छुटकारा पा सके हैं ? जीविका के अनुसार ही जीवन का भी स्वरूप बनता है, इस बात की सच्चाई सिद्ध करनेवाली यह कितनी अच्छी मिसाल है ?

हम गाँव और खेती देखने निकल पड़ते हैं।

दोनों तरफ फूस के छप्पर और मिट्टी की दीवालोंवाले मकान, बीच में चौड़ा आँगन—जो सड़क भी है, और रहटवाले कुएँ से सिंचाई के लिए बह रहे पानी की एक पतली सी नाली भी। एक घर के पास रुककर राजवली बताते हैं, "इस घर के चारों भाई—जगेसर, बीरधन, पोखु, बालगोविन्द में झगड़ा होता रहता था। सबका परिवार, घर एक ही, झगड़ा तो होना ही। गाँव के लोगों ने फैसला किया कि सब लोग अपना-अपना घर बनाकर रहो। झगड़ा-टंटा किसलिए करते हो। अब सबका अलग-अलग मकान बन रहा है। झगड़ा बंद हो गया है।" सुनकर बहुत खुशी होती है। चारों भाइयों और झगड़े का हल सुझानेवाले मुखिया विपत् भुइयाँ का कैमरे से एक फोटो उतार लेता हूँ !

हम रहटवाले कुएँ पर पहुँचते हैं। इस तेज गर्मी में भी जहाँ तहाँ खेतों में गन्ने और प्याज की गहरी हरियाली आँखों को बहुत ही सुहावनी लग रही है। प्यासी धरती तृप्त होकर हवा में एक सोंधी सुगन्ध बिखेर रही है।

अकेलो रहट घूमने संघे। सामूहिक शक्ति का कमाल

"अकेले केकरो से कुछ नै होते, सब मिलजुलके करते तबे होते। अकेले रहट कौन लगवा सकेहल ? गाँव एक है, तो रहट चलेहल। बाकी पानी पूरा नै पड़ेहल !" विपत् हर मौके पर अपनी आहरवाली बात सामने लाते रहते हैं।

हम गैर-आबाद जमीन की ओर बढ़ते हैं। बहुत ही ऊँचे-नीचे मिट्टी के टीले चम्बल के बेहड़ो की याद दिलाते हैं। विपत् दिखाते हैं कि इस जमीन में भी अरहर बो दिये थे, लेकिन हुई नहीं, केवल सूखे डण्ठल खेत में खड़े हैं। पीछे से राजवली कहता है, "बुलडोजर लाकर सरकार माटी उलटाकर एक बार बराबर कर देती, और यहाँ पानी का जो सोता है, वहाँ बिजली का कुआँ (ट्यूबवेल) लगवा देती तो हेरघाटी को हम धान से भर देते।" सचमुच चारों तरफ से पहाड़ों से घिरा भुरनगर एक सुन्दर हरी भरी उपजाऊ घाटी बन सकती है, अगर अधिक कोशिश की जाय। राजवली हमें उस जल स्रोत के पास भी ले जाता है, जहाँ का पानी कभी सूखता नहीं। लेकिन वह इनके खेतों से इतनी दूर और नीची सतह पर है कि गाँववालों का पुरुषार्थ हार मान जाता है।

कितनी ही ऐसी घाटियाँ होंगी भारत में जो अन्न का भण्डार हो सकती हैं, लेकिन उस दिशा में देश की शक्ति लगे तब न ! लेकिन विकास की सड़क तो यहाँ से दूर ही दूसरी दिशा में मुड़ जाती है। कभी-कभी तो ऐसा भी लगता है कि अच्छा है, ये गाँव विकास की सड़क से दूर ही रहें, वर्ना 'विकास' का प्रवेश होते ही इनका अपना पुरुषार्थ मर जायगा। होना तो नहीं चाहिए ऐसा, लेकिन अपने देश के 'विकास' का अनुभव यही बताता है।

पाँच बज गये हैं। अब हमें वापस लौटना है। विपत् भुइयाँ आखिर में खुलकर कहते हैं, "सरकार, कुछ दिन के लिए एको साँझ के खाए भर देवे लायक मदद मिल जइते हल, त हम गाँव भर के लगा के आहरा के छिलका बनवा लेतिए हल।"

"अच्छा हम कुछ कोशिश करेंगे, अगर कहीं से कोई मदद मिल गयी तो···!" हम आगे बढ़ रहे हैं। विपत् रास्ता दिखाने के बाद पीछे से हाँक लगा रहे हैं, "हम कान 'बुजुड़ते' ('कान लगाये रहेंगे'—जैसा भाव व्यक्त करनेवाला एक विशेष शब्द) रहवे···आठ रोज तक, आठ रोज बाद खबर नै मिलते त निराश हो जे—!" पहाड़ों की ऊँचाई में सूरज ढक गया है। और उस जंगल में विपत् भुइयाँ की आवाज गूँज रही है विकास के लिए आतुर जन-हृदय की पुकार बनकर···"हम 'कान बुजड़ते' रहवे···!"

रेती में खेती

सोन नदी की बिखरी जलधारा बह रही है,...और बहती ही जा रही है—जाने कब से, न जाने कब तक के लिए। उसके विशाल आंचल में बिछी हुई रेत की पर्तें सूरज की तेज किरणों में ऐसे चमक रही हैं, जैसे प्रकृति ने सोन के आंचल को मोतियों से भर दिया हो।

गया जिले के इस अरवल क्षेत्र मे सोन नदी के उस पार का बहुत बड़ा क्षेत्र डुमराव के राजा ने भूदान में दे दिया था। तभी न कहा जाता है कि भूदान में जमीन के नाम पर लोगों ने जगल, नदी, पहाड़ दे दिये हैं, भला इससे क्या होगा ?

लेकिन पंचकौड़ी और उसके साथी कहते हैं कि सोन की कोख में तो सोना उपजता है सोना। विश्वास न हो तो चलिए हमारे साथ। रेत में थोड़ा पैदल जरूर चलना पड़ेगा, क्योंकि कोई सवारी नहीं जा सकती, इस समय पानी भी उतना नही है कि नाव ले जायें।

और हम पंचकौड़ी और उसके साथियों के साथ चल पड़ते हैं। चलते-चलते जानकारी मिलती है कि शाहजहांपुर, बासिल-पुर, अहियापुर, सोनवरसा छपरा और संकरी चौकी तक के भूमिहीनों को भूदान में सोन के किनारेवाली जमीन दान में मिली है। करीब चार जरीब चौड़ाई में और तीन-साढे तीन मील की लम्बाई में सोन के किनारे की भूदान की जमीन पर फसल लहलहाती है। कुल १२३ भूमिहीन परिवारों को जमीन मिली है। वर्षों से कमा-खा रहे हैं।

हम नदी में घुसने के लिए जूते उतारते हैं, एक युवक लपक-कर उसे बहुत जिद करके अपने हाथ में ले लेता है। उसका तर्क है कि आप शहरी बाबू लोग, कहीं नदी की धार में पाँव फिसला तो...कपड़ा भी संभालना है न आपको! यह तो नही कहा जा सकता कि उस युवक ने सोच-समझकर शहरी लोगों पर कोई व्यंग्य किया हो, लेकिन मुझे उसकी बात व्यंग्य-सी लगती है। फिर सोचता हूँ कि ठीक ही तो कहता है, शहरी लोग तेज प्रवाह में अपने पाँव नही टिका पाते, वहाँ तो धारा के साथ बह जाने का ही 'फैशन' है। जो धारा के विरोध में पाँव टिकाने की कोशिश करता है उसे तो बेवकूफ और अव्यावहारिक ही कहा जाता है। लेकिन ये गंवार लोग अपनी दिशा मे बढ़ते हैं, धारा के विरोध में भी। तभी तो शायद भारत मे इतने बाहरी प्रहार हुए, लेकिन उसके बावजूद भारत की अपनी संस्कृति अबतक मरी नही, सबको अपने में समेटते हुए अपनी दिशा में बढ़ती रही। भारत की बुनियाद—इन गाँवों—को तोड़ने की इतनी बड़ी कोशिश अंग्रेजों की गुलामी के जमाने में हुई, फिर भी गांव बहुत अंशों में बचे रहे, अपनी इसी दृढ़ता के कारण।...लेकिन अब जो दलगत राजनीति और पश्चिमी भोगवादी संस्कृति बिगड़े रूप में इन गाँवों में घुसपैठ कर रही है, उससे ये गांव कब तक बचे रह पायेंगे राम जाने!

नदी के उस किनारे से माथे पर हरी ककड़ियों, तरकारियों से भरे टोकरों को इस पार लानेवाली अधिकांश महिलाओं का पुष्ट शरीर देखकर बहुत अच्छा लगता है। तेज धूप में तपती रेत पर नंगे पाँव सिर पर भारी-भारी बोझ लेकर चलनेवाली इन महिलाओं के कर्मठ कदम सोन नदी के प्रवाह में जरा भी नही डगमगाते। कमण्डल भगत का बेटा बताता है कि 'ये सब भूदान-किसान के परिवार के लोग हैं। फसल बेचने के लिए बाजार ले जा रहे हैं।'

पंचकौड़ी और उनके साथियों की बातों में, उनके व्यवहार में, कहीं दीनता नही दिखाई देती। उनके अन्दर से एक स्वाभि-मान और संतोष झलकता है। पंचकौड़ी गर्व से बताते हैं कि गया में जिला ग्रामदान-अभियान चल रहा था तो हमने भी काम किया था!
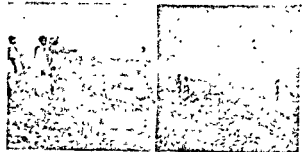
भूदान का वरदान : यहाँ से वहाँ तक ३ मील लम्बी खेती

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ३०

सोमवार २८ अप्रैल, '६६

अन्य पृष्ठों पर

आजतक हिन्दुस्तान का भक्ति-मार्ग मूर्ति ध्यान-परायण हो रहा है। लेकिन अब जमाना आया है कि भक्ति-मार्ग को अपना मुख्य स्वरूप सेवा परायणता ही बनाना होगा। जब देश के लोग भूखे नंगे और रोग से पीड़ित हों, तब उनकी सेवा में लग जाना ही भक्ति का सर्वोत्तम कार्यक्रम है। सेवा-परायणता ही भक्ति मार्ग की आत्मा है। —विनोबा

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४१८५

विद्यार्थी छुट्टियों में क्या करें ?

विद्यार्थियों को अपनी सारी छुट्टियाँ ग्रामसेवा में लगानी चाहिए। इसके लिए उन्हें मामूली रास्तों पर घूमने जाने के बजाय उन गाँवों में जाना चाहिए जो उनकी संस्थाओं के पास हों। वहाँ जाकर उन्हें गाँव के लोगों की हालत का अध्ययन करना चाहिए और उनसे दोस्ती करनी चाहिए। इस आदत से वे देहातवालों के सम्पर्क में आयेंगे। और जब विद्यार्थी सचमुच उनमें जाकर रहेंगे तब पहले के कभी कभी के सम्पर्क के कारण गाँववाले उन्हें अपना हितैषी समझकर उनका स्वागत करेंगे, न कि अजनबी मानकर उनपर सन्देह करेंगे। लम्बी छुट्टियों में विद्यार्थी देहात में ठहरें, प्रौढ़शिक्षा के वर्ग चलायें, ग्रामवासियों को सफाई के नियम सिखायें और मामूली बीमारियों के बीमारों की दवा दारू और देखभाल करें। वे उनमें चरखा भी जारी करें और उन्हें अपने हर फालतू समय का उपयोग करना सिखायें। यह काम कर सकने के लिए विद्यार्थियों और शिक्षकों को छुट्टियों के उपयोग के बारे में अपने विचार बदलने होंगे। अकसर विचारहीन शिक्षक छुट्टियों में घर करने के लिए विद्यार्थियों को पढ़ाई का काम दे देते हैं। मेरी राय में यह आदत हर तरह से बुरी है। छुट्टियों का समय ही तो ऐसा होता है, जब विद्यार्थियों का मन पढ़ाई के रोजमर्रा के कामकाज से मुक्त रहना चाहिए और स्वावलम्बन तथा मौलिक विकास के लिए स्वतंत्र रहना चाहिए। मैंने जिस ग्रामसेवा का जिक्र किया है, वह मनोरंजन का और बोझ न मालूम होनेवाली शिक्षा का उत्तम रूप है। स्पष्ट ही यह सेवा, पढ़ाई पूरी करने के बाद केवल ग्रामसेवा के काम में लग जाने की सबसे अच्छी तैयारी है।[1]

अपनी योग्यताओं को रुपया-आना पाई में भुनाने के बजाय देश की सेवा में अर्पित करो। यदि तुम डाक्टर हो तो देश में इतनी बीमारी है कि उसे दूर करने में तुम्हारी सारी डाक्टरी विद्या काम आ सकती है। यदि तुम वकील हो तो देश में लड़ाई झगड़ों की कमी नहीं है। उन्हें बढ़ाने के बजाय तुम लोगों में आपसी समझौता कराओ और इस तरह विनाशक मुकदमेबाजी को दूर करके लोगों की सेवा करो। यदि तुम इंजीनियर हो तो अपने देशवासियों की आवश्यकताओं के अनुरूप आदर्श घरों का निर्माण करो। ये घर उनके साधनों की सीमा के अन्दर होने चाहिए और फिर भी शुद्ध हवा और प्रकाश से भरपूर तथा स्वास्थ्यप्रद होने चाहिए। तुमने जो भी सीखा है उसमें ऐसा कुछ नहीं है, जिसका देश की सेवा के काम में सदुपयोग न हो सके।[2]

मो. क. गांधी

(१) 'यंग इंडिया' २६-१२-'२६, (२) 'यंग इंडिया' ५-११-'३१

अकाल, राहत और चुनाव

गुजरात के बनासकांठा क्षेत्र में ४ मई को लोकसभा के उपचुनाव के लिए मतदान होनेवाला है। इस चुनाव में तीन उम्मीदवार हैं जिनमें कांग्रेस की ओर से भूतपूर्व केन्द्रीय रेलमंत्री श्री एस० के० पाटिल, स्वतंत्रपार्टी के श्री मनुभाई अमरसी और निर्दलीय उम्मीदवार श्री हिम्मत सिंह हैं। 'टाईम्स ऑफ इण्डिया' में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार इस चुनाव-क्षेत्र के करीब साढ़े बारह सौ गांवों के लोगों के लिए यह उपचुनाव एक वरदान साबित हो रहा है। इस क्षेत्र में इस वर्ष अकाल है लेकिन उक्त पत्र के संवाददाता के अनुसार "अकाल के पिछले तीन महीनों में लोगों को इतनी फुर्ती से और समाधानकारक राहत कभी नहीं मिली, जितनी पिछले एक सप्ताह में मिली।" इस बीच इन संकटग्रस्त गांवों से करीब ५० हजार लोग काम और आजीविका की तलाश में दूसरे क्षेत्रों में चले गये।

आज जनतंत्र में जनता के हित या कल्याण के काम उनके गुणदोषों के आधार पर पार नहीं पड़ते बल्कि तभी होते हैं जब या तो इस तरह के मतदान के प्रसंग आते हैं और राजनैतिक नेताओं को जनता की गरज होती है, या जब जनता की ओर से पैरवी करनेवाला कोई शक्तिशाली प्रतिनिधि होता है। आज की राजनीति के संदर्भ में शक्तिशाली प्रतिनिधि का मतलब उससे है जो या तो स्वयं मंत्री ही या जो राजनैतिक 'ब्लैक मेल' करके, अर्थात् डरा-धमकाकर, काम निकालने की हिकमत रखता हो। जाहिर है कि ऐसी परिस्थिति में जो व्यक्ति या समूह इस दृष्टि से ताकतवर होता है वह ज्यादा मदद अपनी ओर खींच लेता है तथा और ज्यादा ताकतवर बन जाता है। यही कारण है कि हमारे देश में नाम के लिए शासन जनतंत्रीय होते हुए भी पिछले बीस बरसों में अमीरों और गरीबों के बीच की खाई घटने के बजाय बढ़ी है। जनतंत्र का अर्थ होता तो यह चाहिए था कि जो सबसे कमजोर हो उसको सबसे पहले राहत मिले, लेकिन लोगों की यह आशा सपने जैसी हो गयी है। इस आशा को पूरी होने का अब एक ही उपाय है कि नीचे से गांव-गांव के लोग संगठित हों और अभिक्रम अपने हाथ में लें।

विकेन्द्रीकरण का विकल्प ?

लोकसभा में कांग्रेस पार्टी के सदस्य श्री चन्द्रशेखर ने, जिन्होंने पिछले दिनों वित्त-मंत्री मोरारजी देसाई की नीतियों के खिलाफ, आवाज उठाकर प्रसिद्धि पायी है, अभी हाल में चण्डीगढ़ की एक सभा में कहा कि उनके विरोध का मुख्य मुद्दा श्री मोरारजी देसाई पर लगाये गये अभियोगों का नहीं है बल्कि, देश में आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण के खिलाफ लड़ाई का है।

आर्थिक शक्ति के केन्द्रीकरण के खिलाफ उठायी गई आवाज का हम हार्दिक स्वागत और समर्थन करते हैं। लेकिन श्री चन्द्रशेखर के पास इसका जो विकल्प है, यानी आर्थिक शक्ति व्यक्तिगत क्षेत्र में पूंजीपतियों के हाथ में न रखकर राज्य के हाथ में आ जाय, इससे आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण कैसे मिटेगा यह हमारी समझ में नहीं आता। पूंजीपतियों के बजाय राज्य के हाथ में आर्थिक सत्ता आ गयी तो उससे उसके केन्द्रीकरण में, या जनजीवन पर होनेवाले उस केन्द्रीकरण के बुरे असर में, क्या फर्क पड़नेवाला है? बल्कि राज्य के हाथ में आर्थिक सत्ता आने से तो उलटे सत्ता का केन्द्रीकरण बढ़ने वाला है, क्योंकि तब राजनैतिक और आर्थिक दोनों प्रकार की ताकत राज्य के हाथ में केन्द्रित हो जायेगी, जैसी कि आज होती चली जा रही है। साफ-साफ कहने के लिए हम माफी चाहते हैं, लेकिन श्री चन्द्रशेखर जैसे लोगों को, जो राज्य के हाथ में सारा नियंत्रण केन्द्रित करना चाहते हैं, वास्तव में इस बात से ज्यादा मतलब नहीं है कि आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो और वह सचमुच लोगों के हाथ में आ जाय, बल्कि इस बात की ज्यादा चिन्ता है कि वह सत्ता पूंजीपतियों के बजाय सरकार के जरिये उनके जैसे लोगों के हाथ में आ जाय।—हम नहीं चाहते कि आर्थिक सत्ता टाटा, बिड़ला जैसे उद्योगपतियों के हाथ में केन्द्रित हो, लेकिन हम यह भी नहीं चाहते कि वह सरकार के हाथ में केन्द्रित हो। क्योंकि यह सही है कि सत्ता के केन्द्रीकरण से जनता का निर्दलन और शोषण बढ़ता है। हम चाहते हैं कि शक्ति सीधे जनता के हाथ में आये।

अनावश्यक तूल

पुरी मठ के शंकराचार्यजी ने हिन्दू धर्म में छुआछूत के स्थान के बारे में जो कुछ कहा है वह निश्चय ही एक प्रतिगामी विचार है। धर्म-शास्त्रों में क्या लिखा है क्या नहीं, और 'धर्म शास्त्र' भी किसे कहा जाय किसे नहीं, यह अलग चीज है, लेकिन मनुष्य मनुष्य के बीच ऊँच-नीच की दीवार खड़ी करने का कोई भी विचार निश्चय ही आज के युग में मान्य नहीं होगा, चाहे उसके लिए प्राचीन व्यवस्थाओं की कितनी भी दुहाई दी जाय। पर साथ ही हम देश के वयोवृद्ध नेता श्री राजगोपालाचारी की इस बात से सहमत हैं कि श्री शंकराचार्य के कथन को अनावश्यक तूल दिया जा रहा है। कभी कभी ऐसी बातों की उपेक्षा करना उनका ज्यादा कारगर विरोध साबित होता है। इसके अलावा, श्री शंकराचार्य के कथन को लेकर उनकी व्यक्तिगत आलोचना तो और भी गलत है। भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष श्री अटल बिहारी वाजपेई ने ठीक ही कहा है कि वे भी श्री शंकराचार्य की राय से सहमत नहीं हैं, "पर अपनी राय व्यक्त करने के उनके अधिकार का हमें आदर करना चाहिए।" मत-भिन्नता, और भिन्न मत को प्रगट करने का अधिकार, जनतंत्र की आत्मा है यह हमें नहीं भूलना चाहिए।

अब भी कुछ कीजिए

'भूल हुई। कांग्रेस ने प्रशासन और शिक्षण ज्यों-का त्यों बनाये रखा। अगर बदला होता तो आज देश की शकल दूसरी होती।'

ये शब्द किसी आलोचक के नहीं हैं, स्वयं प्रधानमंत्री के हैं जिन्हें उन्होंने अभी कुछ दिन हुए रायबरेली उत्तर प्रदेश की एक सभा में दुख के साथ कहे। जरूर दुख के साथ उनके मन में पश्चात्ताप भी रहा होगा, और कुछ करने की बात भी रही होगी। यही दुख तो देश के करोड़ों लोगों को भी है कि देश से अंग्रेजी राज गया लेकिन रह गयी अंग्रेजी, और दूनी हो गयी अंग्रेजियत। न बदली हुकूमत, न बदला शिक्षण; न बदली पुलिस, और न बदला न्याय। अगर कुछ बदला तो बदली राजनीति— इतनी बदल गयी कि उसने लोगों के दिलों से देश को निकालकर दल और जाति, और न जाने क्या क्या, घुसा दिया। स्वतंत्रता आयी लेकिन गरीब के लिए रोटी न लायी, बेकार के लिए काम न लायी, स्त्री के लिए इज्जत न लायी, जवान के लिए आशा न लायी, आपस की मुहब्बत न लायी। लोग बार बार पूछते हैं कि स्वतंत्रता क्षुद्र आयी तो स्वराज्य को कहाँ छोड़ आयी ?

ऐसा क्यों हुआ, इसको लेकर बाईस साल के पिछले इतिहास को टटोलने से क्या मिलेगा ? आज इतने वर्षों बाद हम बीती बातों को बटोरकर क्या करेंगे ? भूलें बहुत हुईं लेकिन उन्हें गिनाने से क्या होगा ? हाँ, अगर स्वीकृति के साथ साथ यह संकल्प भी हो कि जो होना था हो गया, अब आगे की सुधि लेनी चाहिए, तो जरूर अब भी काम बन सकता है। बिगड़ा तो बहुत कुछ है, फिर भी जो बचा है उससे नयी नींव डाली जा सकती है।

नेहरूजी ने अभी अपनी जिन्दगी के आखिरी दौर में एक बार पार्लियामेंट में कहा था कि भूल हुई कि खेती पर जोर नहीं दिया गया, और यह कहते हुए उन्होंने यह भी कहा था कि बहुत मुमकिन है इस मुल्क के सवालों का जवाब गांधीजी के ही बताये हुए रास्ते पर मिले।

नेहरू ने चलते चलते भूल देखी लेकिन उसका सुधार नहीं हो सका। हम कैसे मानें कि इन्दिराजी आज जो भूलें देख रही हैं उनका सुधार हो जायगा ? कौन करेगा, कब करेगा, कैसे करेगा ? या, इसी तरह भूलों की सूची बनती जायगी, नयी नयी भूलें जुड़ती जायँगी, और देश जहाँ था वहीं बना रहेगा ?

एक बात जाहिर है कि देश का संकट अब किसी एक दल के बस का नहीं रह गया है। यह बात इतनी साफ है कि यह सोचना ही बेकार है कि कोई ऐसा भी होगा जो इसे नहीं मानता होगा। अभी कुछ दिन हुए श्री कामराज ने कहा, और अब स्वयं प्रधान मंत्रीजी ने प्रशासन और शिक्षण की बात कहते हुए सभी दलों के नेताओं से अपील की है कि सब मिलकर समस्याओं का समाधान ढूँढ़ें।

इसमें शक नहीं कि पहली जिम्मेदारी राजनैतिक नेताओं पर है। उनमें भी सबसे बड़ी जिम्मेदारी कांग्रेस पर है क्योंकि अब भी वह सबसे बड़ी पार्टी है। पिछले बाईस वर्षों से दिल्ली में उसका अखंड राज है। इसलिए जो भी भूलें हुई हैं उनमें उसका हाथ सबसे ज्यादा है। अंग्रेजी राज के बाद जैसे उसने झंडा बदला उसी तरह वह प्रशासन बदल सकती थी, शिक्षण बदल सकती थी, और इस पंच-वर्षीय योजना की जगह दूसरी योजना बना सकती थी। कांग्रेस ने ऐसा क्यों नहीं किया ? उसके पास गांधीजी की वसीयत थी, और नेहरू का नेतृत्व था। दो-चार नहीं, पूरे सत्रह वर्षों तक नेहरूजी प्रधानमंत्री थे, देश के नेता थे, करोड़ों करोड़ लोगों के लिए सब कुछ थे। इसलिए पहल कांग्रेस को ही करनी पड़ेगी—संकोच छोड़कर, साहस के साथ।

प्रधानमंत्रीजी ने अपने भाषण में बात बहुत बड़ी कही है। क्रान्ति की बात कही है। लेकिन क्या उनको भरोसा है कि यह काम राजनीति से होगा ? जो प्रशासन चल रहा है उससे होगा ? क्या बाईस वर्षों का अनुभव यह नहीं बता रहा है कि जनता को अलग रखकर सरकारी अफसरों और दफ्तरों के द्वारा सुधार की जो कोशिश की गयी वह भूल थी, और सब भूलों में शायद सबसे बड़ी और बुनियादी भूल थी ? किसी देश में क्रान्ति की शक्ति जनता के सिवाय और कहीं नहीं होती। गांधीजी ने वह शक्ति पैदा की थी, हमने योजनापूर्वक उसे खो दिया।

देश एक है, जनता भी एक है, लेकिन अफसोस है कि नेता एक नहीं रह गये हैं। वे अपने-अपने दल की आँखों से देखते हैं, और दल के ही कानों से सुनते हैं। उनके मन में सरकार की सत्ता की ज्यादा कीमत है, जनता की शक्ति की कम। किन्तु क्रान्ति का स्रोत जनता में होता है न कि सरकार में। यह बात नेताओं को कौन समझायेगा ?

गांधीजी ने जीवन भर—जीवन के अंतिम दिन तक—यही कोशिश की थी कि जनता की शक्ति बने। वह अपने पैरों पर खड़ी हो। सरकार रहे, लेकिन जनता की पूरक होकर रहे। गांधीजी की यह बात नहीं मानी गयी। सत्रह वर्षों से विनोबाजी ग्रामदान के द्वारा गाँव-गाँव की निरंश और कुंठित लोकशक्ति को जगाने का काम कर रहे हैं। लेकिन उनकी ओर भी नेताओं का ध्यान कहाँ है ? तो, क्या जिस तरह गांधीजी की बात अनसुनी कर दी गयी, उसी तरह विनोबा का यह कौतुक भी अनदेखा ही रह जायेगा ? गांधी हों या विनोबा, देश को किन्हीं व्यक्तियों से बँधने की जरूरत नहीं है। देश बड़े से-बड़े व्यक्ति से बड़ा है। लेकिन देश की परिस्थिति की उपेक्षा अपराध है।

हमारे देश में क्रान्ति का क्या अर्थ है ? क्या यह नहीं कि देश की राजनैतिक व्यवस्था, विकास की पद्धति और शिक्षानीति की बुनियादें बदलने का एक साथ प्रयत्न हो ? इतने वर्षों के बाद अब प्रयत्न एकांगी नहीं होने चाहिए, और न केवल पैबन्द लगाकर→

गांधी का गांधीत्व

•दादा धर्माधिकारी

गांधी ने कहा था कि केवल सन्दर्भ और परिस्थिति बदलना काफी नहीं है। परिस्थिति बदलनेवालों का दिल भी बदला हुआ होना चाहिए। जिसका अपना दिल न बदला हो वह कैसे दूसरों का दिल बदल सकता है? यह एक नया आयाम, नया पैमाना गांधी लेकर आया, जिसकी तरफ दकियानूसी क्रान्तिकारियों ने ध्यान नहीं दिया। कुछ रूस की तरफ देखते हैं, कुछ चीन की तरफ। इससे आगे वे बढ़ना ही नहीं चाहते। देखने की मुख्य बात यह है कि क्रान्ति किसके लिए होगी? और, किसके द्वारा होगी? सत्ता, सम्पत्ति और शस्त्रधारी अगर क्रान्ति करेगा तो वह उसे खुद हड़प लेगा। सत्तावाला खुद राजा बनेगा, चाहे पार्टी हो, चाहे डिक्टेटर। सम्पत्तिधारी अगर क्रान्ति करेगा तो वह क्रान्ति को खरीद लेगा। आज वह पार्लियामेंट को खरीदता है, कल क्रान्ति को खरीद लेगा। शस्त्रधारी अगर क्रान्ति करेगा तो जवान-ही-जवान रह जायँगे, किसान कोई नहीं रहेगा—जैसा चीन में हुआ।

फिर क्रान्ति कौन करेगा?

हम अपने देश की राजनैतिक पार्टियों के झण्डों की तरफ देखें तो कांग्रेस के झण्डे पर चरखा, समाजवादियों के झण्डे पर एक पहिया और एक हल, साम्यवादियों के झण्डे पर हँसिया हथौड़ा है। लोग कहते हैं कि इन मार्क्सवादी कम्युनिस्टों को जोर जबरदस्ती पर विश्वास है तो झण्डे पर पिस्तौल क्यों नहीं रखते? झण्डे पर रिवाल्वर क्यों नहीं रखते? कुछ नहीं तो, रामचन्द्रजी का धनुष रख लें, हनुमानजी की गदा रख लें, राणा प्रताप की तलवार रख लें, यह हँसिया-हथौड़ा आखिर क्यों रखा है? इसमें एक संकेत है कि शक्ति उन लोगों के हाथ में होगी, जिन लोगों के पास उत्पादन के साधन हों।

अब मुझे बतलाइए

हँसिया और हथौड़े को तलवार की शरण में जाना पड़ा तो क्रान्ति तलवार की होगी, हँसिया-हथौड़े की नहीं। हँसिए से गला भी काटा जा सकता है, हथौड़ा सर पर भी मारा जा सकता है, लेकिन यह उनका सही उपयोग नहीं है। औजार वह है, जिसका सही उपयोग जीवन देना है और हथियार वह है, जिसका काम जान लेना है। इसलिए हथियार की क्रान्ति क्रान्ति नहीं है।

एक तरफ पुलिस का आतंक है, दूसरी तरफ भीड़ का आतंक है; नागरिक आतंकित हैं। आतंकित नागरिक आजादी का उपभोग नहीं कर सकते हैं। लोहार जिस तिजोरी को बनाता है वही तिजोरी उसे खरीद सकती है। जो बेवकूफ तलवार बनाता है, तलवार से वह कांपता रहता है। उसे समझाइए कि शोषण के और अपने ऊपर अत्याचार के सारे साधन तू बनाता है, यह तेरी समझ में क्यों नहीं आता, यह तुझे नहीं बनाना चाहिए। यह होश दिलाने की जरूरत है। यह होश वही दिलायेगा जो उसके पास वोट माँगने नहीं जाता। जिसको वोट जुटाने हैं वह किसी को समझाने की फिक्र में क्यों पड़ेगा? वह तो यह देखेगा कि गाँव का दमदार आदमी साथ में आओ तो जल्दी मिल जायेगा। जो वोट माँगता है उसके समझाने का कोई परिणाम नहीं है। सिनेमा देखने गये तो वहाँ पर शरीर की हिफाजत के लिए बड़े मोटे-मोटे आकर्षक अक्षरों में वाक्य देखे। खुशी हुई कि अब सिनेमा में भी स्वास्थ्य के पाठ पढ़ाये जाने लगे। अन्त में आया कि हमारा च्यवनप्राश खरीदिए, तो सारा स्वास्थ्य का पाठ उस च्यवनप्राश खरीदने के लिए था। इसी तरह वोट माँगनेवाले समझायेंगे और अन्त में कह देंगे कि वोट हमको दीजिए। इस प्रकार की 'पालिटिक्स' की फिक्र गांधी को नहीं थी। आजादी के बाद इसीलिए उसने कहा कि कांग्रेस अब लोकसेवक समाज में परिवर्तित हो जाय।

जरूरत है लोकमत के जागरण की

जिनको वोट नहीं चाहिए, उनका यह काम है कि लोकमत का जागरण करें। इस देश में भूख की समस्या है, और भीख की भी समस्या है। भूख का उत्तर कारखानों से नहीं दिया जा सकता। कारखानों में, चाहे लोहा हो या सोना ही सोना होने लगे, भूख का निवारण नहीं हो सकता। चूँकि भूख है इसलिए भीख भी है, भूखा या तो चोर बनेगा या भिखारी बनेगा। गांधी का यह कहना था कि मेहरबानी करके लोगों को भीख मत सिखाइए। अन्न कहाँ से आये? आज हम कहते हैं, अमेरिका से। अमेरिका क्यों दे? क्या हमारे पूर्वजों ने धरोहर रख छोड़ी है? हमारा देश ब्राह्मणों का है, लगता है कि उसके यहाँ श्राद्ध होगा। इस मनोवृत्ति को गांधी बदलना चाहता था। इसका नाम उसने

→संतोष मानना चाहिए। जिन हजारों गाँवों ने ग्रामदान के द्वारा एक नये संकल्प की घोषणा की है उन्हें अपने ढंग से स्वायत्त जीवन विकसित करने का पूरा मौका मिलना चाहिए। इसके लिए अगर सरकार की शक्तियों और जिम्मेदारियों का दायरा कम भी करना पड़े तो उसकी तैयारी नेताओं को रखनी चाहिए।

प्रधानमंत्रीजी ने भूलें तो मान लीं लेकिन मालूम होना चाहिए कि सुधार के लिए वह क्या सोच रही हैं? क्या पहले कदम के रूप में इन्दिरा-जयप्रकाश-विनोबा की प्रत्यक्ष चर्चा जरूरी नहीं माननी चाहिए? यह चर्चा हो जाय तो सरकारी और गैर-सरकारी 'बड़ों' में मुख्य प्रश्नों पर 'कन्सेन्सस' की तलाश होनी चाहिए। जहाँ तक गाँवों का सम्बन्ध है, ग्रामदान के सिवाय दूसरा कोई आन्दोलन नहीं है जिसे ग्रामीण जनता की इतनी व्यापक सम्मति मिली हो। ग्रामदान ग्रामीण जनता की क्रान्ति के लिए 'वोट' है। देश में एक लाख गाँव क्रान्ति के लिए तैयार हैं। देर है बड़े लोगों के तैयार होने की।

हमारा देश संकट में है। संकट की घड़ी साहस की घड़ी होती है। एक बार, प्रधानमंत्रीजी दल के ऊपर उठकर देश के सामने अपना दिल रख दें तो देखेंगी कि देश के हृदय में अब भी गांधी का स्पर्श है, और उस स्पर्श में क्रान्ति की शक्ति है।•

स्वदेशी रचा था। भूख का निवारण खेती से होगा इसीलिए क्रान्ति का आरम्भ अन्न के उत्पादन से होगा। अन्न का उत्पादन क्रान्ति की विभूति है।

बड़े आश्चर्य की बात है बिड़ला, टाटा डालमिया कहते हैं कि अन्न सस्ता होना चाहिए। कुली, मजदूर, भिखारी भी कहते हैं कि अन्न सस्ता होना चाहिए। सभी कहते हैं कि अन्न सस्ता होना चाहिए। ब्राह्मण कहता है कि दक्षिणा ज्यादा चाहिए। सरकारी नौकर कहता है कि तनख्वाह ज्यादा चाहिए, प्रोफेसर और मास्टर कहता है कि वेतन ज्यादा मिलना चाहिए, लड़कों से फीस ज्यादा चाहिए और ये सब मिलकर कहते हैं कि अन्न सस्ता चाहिए। अब किसान पूछता है कि मेरा क्या होगा? मैं क्यों अन्न का उत्पादन करूं? इसका कोई जवाब नहीं देता।

हमारे बहुत से मित्रों ने जमीन खरीद ली है। कहते हैं कि काला पैसा सफेद करने के लिए यही अच्छा साधन है। जमीन खरीद लो, तो क्या अन्न की फसल ज्यादा होगी? कहते हैं, बेवकूफ हो क्या हम अन्न उपजायेंगे? क्या उपजायेंगे? तम्बाकू, मिर्च, मूंगफली, सौंफ और ज्यादा से ज्यादा अंगूर और गन्ना। तो फिर दूसरे किसान क्या बेवकूफ हैं, जो अन्न उपजायेंगे! तब तो फिर सभी तम्बाकू उपजायेंगे और सभी तम्बाकू खायेंगे।

आखिर उत्पादन की प्रेरणा क्या हो?

अन्न के उत्पादन की प्रेरणा क्या हो, यह आज के अर्थशास्त्र का एक प्रश्न है। किसी अर्थशास्त्री ने इसका उत्तर देने की चेष्टा नहीं की। अर्थशास्त्र में हर एक की कीमत आंकी जाती है जिसके पास विद्या है, बाजार में उसकी कीमत की चिट्ठी लगी हुई है, जिसके पास पाण्डित्य है तो चिट्ठी लगी हुई है, पूजा करने की शक्ति है तो चिट्ठी लगी हुई है। विश्वनाथजी की पूजा पर भी चिट्ठी है, ठाकुरधाम में चिट्ठी है, नाथद्वारा में भी चिट्ठी है, रामेश्वर में चिट्ठी लगी हुई है। आज का अर्थशास्त्र यह कहता है कि जिसके बदले में कुछ मिलता है वह सम्पत्ति है, जिसके बदले में कुछ नहीं मिलता वह सम्पत्ति नहीं है। तुलसीदास का रामचरित-मानस सम्पत्ति नहीं है, क्योंकि लोग प्याले में मिलता है। जासूसी उपन्यास सम्पत्ति है, क्योंकि पांच रुपये में मिलता है, ग्वाले का दूध सम्पत्ति है, डेढ़ रुपया किलो मिलता है, मां का दूध सम्पत्ति नहीं है, क्योंकि मुफ्त मिलता है। लता मंगेशकर का गीत सम्पत्ति है, क्योंकि एक गीत गाने के पांच हजार रुपये मिलते हैं, मीराबाई का भजन सम्पत्ति नहीं है, क्योंकि उसकी कोई कीमत नहीं है। यह अर्थशास्त्र है, जो सिखाया जा रहा है। अर्थशास्त्र में मेहनत बिकती है, विद्या बिकती है, कला बिकती है, उद्योग बिकता है, इन्सान बिकता है और अन्त में भगवान भी बिकता है। जब वस्तु बिक्री के बजाय उपभोग के लिए बनेगी तो उत्पादन की प्रेरणा स्वतः विकसित होगी।

गांधी ने हमें बताया

जो क्रान्तिकारी होता है उसका दिमाग किताब से बाहर होता है, जीवन में रहता है। इतिहास की पुस्तक और राज्य-शास्त्र की पुस्तक लेकर अगर गांधी बैठता तो कभी सत्याग्रह का आविष्कार नहीं कर सकता था। पिछले २१ वर्षों में जितने सत्याग्रह हुए, उतने गांधी के अपने जीवन में नहीं हुए। फिर भी गांधी के सत्याग्रहों का प्रभाव हुआ और इन सत्याग्रहों से किसी की भी शक्ति नहीं बनी, क्योंकि इनके पीछे एक ही उद्देश्य था कि दूसरों का हृदय-परिवर्तन हो। अपने हृदय का नहीं, जिसका अपना हृदय परिवर्तन न हुआ वह दूसरे का हृदय-परिवर्तन करने का अधिकारी नहीं है, यह हमें गांधी ने बताया।

दिमाग सही रखिए

एक आदमी ने पैर का जूता उतारा और दूसरे के सिर पर दे मारा। अब एक तीसरा व्यक्ति बेचारा दौड़ा-दौड़ा बाजार में जूतों की दुकान पर गया कि कल से आपको दुकान बन्द कर देनी चाहिए। उसने कहा, 'भाई मैंने क्या किया?' 'अरे, तेरी दुकान न होती तो यह जूते न चलते।' दुकानवाला कहने लगा, 'भाई साहब, मैंने तो ये जूते पैर में पहनने के लिए दिये थे, अब तुम सिर पर मारते हो तो तुम्हारा दिमाग बिगड़ा हुआ है या मेरा?'

दिमाग अगर सही न हो तो कला साहित्य, संस्कृति, सम्प्रदाय, धर्म, भगवान, सब हथियार बन जाते हैं और इन सबको लेकर लड़ाई हो जाती है। दिमाग अगर सही नहीं हुआ तो दुनिया के जितने अच्छे साधन हैं, सबके सब बुरे साबित होते हैं।

समाजीकरण की शुरुआत कहां से हो?

गांधी ने इतिहास की पुस्तकें, दर्शन की पुस्तकें, राज्यशास्त्र की पुस्तकें ताक में रख दीं, तो सत्याग्रह का आविष्कार किया। गांधी बड़ा अर्थशास्त्री नहीं था, इसलिए क्रान्तिकारी हुआ। क्रान्तिकारी के लिए कोई चीज असम्भव नहीं होती। क्रान्तिकारी पण्डित नहीं होता, लकीर का फकीर नहीं होता, पन्थवादी नहीं होता। आज गांधी के बाद विनोबा इस प्रश्न का उत्तर खोज रहा है कि अन्न-उत्पादन की प्रेरणा क्या हो? उसका जवाब है कि अन्न के उत्पादन के साधन, अन्न के उत्पादन के औजार और अन्न के उत्पादन की जमीन, तीनों का ग्रामीकरण होना चाहिए। जमीन सबकी, मेहनत सबकी। समाजवादियों ने इसे समाजीकरण कहा था। विनोबा कहता है कि यह समाजीकरण ग्राम से शुरू होगा और आज वह इसी खोज में लगा हुआ है और इसी के समाधान में प्रवृत्त है।

प्रेषक—गुरुशरण

गुण-दर्शन

किसी का दोष हमें दिखता है, तो वह हमारा ही दोष है, यह मानना चाहिए। उसकी निन्दा करना दूसरा दोष होगा और उसके पीछे उस दोष की चर्चा या निन्दा करना तीसरा दोष। इस तरह एक के बाद एक दोष का सम्पुट चढ़ता जायगा, तो गुण दर्शन होगा ही नहीं। फिर गुण दर्शन नहीं होगा तो ईश्वर का दर्शन भी लुप्त हो जायगा। इसलिए हमें अपने भी दोषों का दर्शन नहीं करना चाहिए। अपने गुणों का ही दर्शन करना होगा। इस तरह गुण स्तवन, गुण-दर्शन, गुण वर्णन होना चाहिए। इसी को भगवान के गुणों का स्तवन कहते हैं।

—विनोबा

की ओर से गांधी जन्म शताब्दी मनाने का आयोजन चल रहा है। इस समारोह में औपचारिकता का अंश बहुत होगा। फिर भी सारी चीज को औपचारिकता मानकर उसका महत्त्व कम करना उचित नहीं। गांधी कोई ऐसे बड़े और शक्तिशाली देश का राष्ट्र-पुरुष नहीं था, जिसका शताब्दी-समारोह मनाकर दुनिया के देश उस देश की सरकार की खुशामद करने का प्रयत्न करें। इसमें तो गांधीजी के विचार और आदर्श के लिए दुनिया का आदर ही दिखाई देता है। उसकी शान्ति की भूख दीखती है।

राष्ट्रीय परिस्थिति

अब अपने देश की ओर ध्यान दें, तो यहाँ पिछले वर्षों में बहुत कुछ हुआ भी और नहीं भी। पिछले आम चुनाव में कई प्रान्तों में कांग्रेस के बदले दूसरे पक्षों का सत्ता में आना बहुत बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना थी। इससे देश का राजनैतिक नक्शा ही पलट गया और कई नये सवाल सामने आये, जिनमें केन्द्र और राज्यों के परस्पर सम्बन्ध का सवाल मुख्य है। दूसरा सवाल है दल-बदल का, जो राजनैतिक अपरिपक्वता और अनैतिकता का लक्षण है। देश को इस समय यह समस्या बहुत सता रही है और मनोरंजन के साधन भी मुहैया कर रही है।

इन दिनों भाषा की समस्या को लेकर, अलग प्रान्त की माँग को लेकर, जोरदार आन्दोलन और अशांति हुई। शिवसेना, गोपालसेना, आदि सेनाओं का बोलबाला रहा। इस तरह काफी संकीर्णता और भेद-बुद्धि प्रकट हुई। तेलंगाना के स्वतन्त्र राज्य की माँग इस गन्दा प्रवाह का इस समय का आखिरी दृष्टान्त है। यद्यपि ये सारी घटनाएँ तथा भावनाएँ देश की एकता के लिए खतरनाक हैं, फिर भी यह ध्यान में रखना चाहिए कि देश की आर्थिक दुर्दशा भी ऐसी भावनाओं को बढ़ावा देने के लिए जिम्मेदार है।

दो लड़ाइयों के कारण तथा विदेशी सहायता की सरगर्मी कम होने से अब अपनी अर्थ-व्यवस्था की बुनियादी कमजोरियाँ स्पष्ट रूप से प्रकट हो गयी हैं। पिछले दो-तीन साल के व्यापक सूखा और भयानक अकाल भी अर्थ-व्यवस्था को डाँवाडोल करने में कारणीभूत रहे हैं। पर यह भी भूलना नहीं चाहिए कि यह सूखा भी पिछले बीस साल की गलत योजना का ही परिणाम था। हमारे समाज और अर्थरचना की बुनियाद में रही शोषणवृत्ति के कारण सूखा तथा दूसरी नैसर्गिक विपत्तियों के दुष्परिणाम और भी उत्कट हुए। गाँवों की, यानी देश की आबादी की ८५ प्रतिशत की एक तरह से अवहेलना करके खुशहाली पैदा करने का प्रयत्न किया गया, जो स्वभावतः निष्फल साबित हो रहा है। गाँवों की दुर्दशा सारे समाज को ग्रस रही है। आज शिक्षितों में बेकारी व्यापक है। दस हजार इंजीनियर बेकार हैं। इससे अधिक विचित्र और सारी अर्थरचना को निकम्मी साबित करने के लिए पर्याप्त बात और क्या हो सकती है? जिस देश के नवनिर्माण के लिए जितना भी विशेष ज्ञान और योग्यता कम पड़नेवाली है, वहाँ यह ज्ञान और योग्यता उपयोग में नहीं आ पा रही है। हमारे अर्थमंत्री तथा दूसरे मंत्री और नेता बीच बीच में कहते रहे हैं कि 'यह देखो, आर्थिक स्थिति सुधर रही है, मन्दी खतम हो रही है।' लगता है जैसे स्वसम्मोहन (ऑटोसजेशन) की प्रक्रिया अपनायी जा रही है। मानो 'मैं अच्छा हो गया हूँ, मैं अच्छा हो गया हूँ' रटने मात्र से तबीयत सुधर जायगी। असल में नीति और कार्य में बुनियादी परिवर्तन की जरूरत है, पर उसका कोई लक्षण कहीं नजर ही नहीं आता। वामपन्थी प्रधान संयुक्त मोर्चों से यह उम्मीद की गयी थी कि वे जमीन की समस्या, ग्रामीण बेकारी तथा दूसरे महत्त्वपूर्ण सवालों पर कोई नये अभिक्रम का सबूत देंगे। पर वैसा अभी तक नहीं हुआ।

देश में जो भी संकीर्णता और अविवेकमूलक तत्त्व काम कर रहे हैं, उनमें सबसे खतरनाक वह तत्त्व है जो साम्प्रदायिकता पर आधार रखता है और इस देश में एक "हिन्दू-राष्ट्र" स्थापित करने का स्वप्न देखता है। इसने अपना प्रचार और संगठन काफी तत्परता और सातत्य के साथ जारी रखा है। अक्सर अपने देश के साम्प्रदायिक हंगामों को पाकिस्तानी घटनाओं की प्रतिक्रिया समझी जाती है, पर पिछले दो-तीन वर्षों में यहाँ कई ऐसे साम्प्रदायिक हंगामे हुए, जिनके लिए यह कारण कतई नहीं दिया जा सकता। सोच समझकर मुसलमानों को सताने के उद्देश्य से ऐसे कई हंगामे कराये गये हैं।

हिन्दू संस्कृति पर आधारित भारतीय राष्ट्र की कल्पना इस तत्त्व की हरकतों का मुख्य आधार रहा है। जयप्रकाशजी ने इस सवाल को देश के सामने बार-बार उठाया है कि भारतीय राष्ट्रीयता की कोई विधायक और असाम्प्रदायिक स्पष्ट कल्पना दूसरा कोई पक्ष या तत्त्व आज देश के सामने नहीं रख रहा है। ऐसी एक कल्पना विकसित होनी और रखी जानी चाहिए। प्रसन्नता का विषय है कि पिछले दिनों जयप्रकाशजी द्वारा आयोजित राष्ट्रीय कन्वेन्शन में इस दिशा में ठोस कदम उठाना सम्भव हुआ है।

नागालैण्ड और कश्मीर की समस्याओं में अपने आन्दोलन की ओर से विशेष दिलचस्पी ली जाती रही। नागालैण्ड में जयप्रकाशजी ने ही काम किया। बाद में डा० आरम उनकी मदद में गये। वहाँ की स्थिति में आज जो परिवर्तन हुआ है तथा समस्या के हल की सम्भावनाएँ उज्ज्वलतर हुई हैं, उसमें इन सबके प्रयत्नों की बड़ी देन है। कश्मीर के मामले में अभी तक अपने प्रयत्नों का कोई खास असर नहीं हुआ है।

इस तरह अपने देश के बड़े-बड़े सवाल जहाँ के तहाँ खड़े हैं और उनका कोई समाधानकारक हल शीघ्र होगा, ऐसा नहीं लगता। असल में इन समस्याओं के हल के लिए अपने समाज में राजनैतिक और आर्थिक सत्ता का सन्तुलन ही बदलना चाहिए। जिस जनसमूह के कल्याण की अवहेलना हो रही है, उसको ताकत बननी चाहिए और देश के सारे कारोबार में यह ताकत अनुभूत होनी चाहिए। नयी सरकारों के सत्ता में आने से भी ऐसा नहीं हुआ। अवश्य ही पिछले आम चुनाव और बाद के मध्यावधि चुनाव के परिणाम इसके सबूत हैं कि जनता में चेतना बढ़ी है, पर अभी तक ताकत बनी नहीं है। अभी वाम से दक्षिण तक के सारे पक्षों का खेल समाज के एक छोटे से वर्ग के अन्दर ही अन्दर चलता है। इसलिए सत्ता एक पक्ष से दूसरे पक्ष के हाथों में जाने मात्र से जनता के हाथ में नहीं, जनता की ताकत नहीं हुई,

ग्रामदानी इकाइयों के आधार पर दल-निरपेक्ष लोक-प्रतिनिधियों का चुनाव होगा और उनके माध्यम से, राज्यभर की ग्रामदानी जनता के संगठन और चेतनशीलता के आधार पर, शासन और योजना में बुनियादी परिवर्तन लाने का जबर्दस्त प्रयत्न होगा। बल्कि इसी राजनैतिक परिणाम के दर्शन ने ही राज्यदान की आकांक्षा को बलशाली बनाया है। साथ ही सर्वोदय सेवक की इस भूमिका का महत्त्व भी अधिक स्पष्ट हुआ है कि वह सत्ता की आकांक्षा से अलग रहे तथा लोकशिक्षण और संघर्ष निरसन का काम करता रहे। यह भी कहा जा सकता है कि लोकतंत्र को पूर्ण और सफल बनाने के लिए देशभर में फैली हुई इस प्रकार की जमात की आवश्यकता राजनैतिक पक्षों के लोग भी एक हद तक अनुभव करने लगे हैं।

इसी सिलसिले में ग्रामस्वराज्य की कल्पना पर भी काफी चिन्तन हुआ है और *गाँव के साथ ऊपर की इकाइयों का सम्बन्ध* उनके आपसी अधिकारों का बँटवारा, आदि सवालों के जवाब पहले से कुछ अधिक स्पष्ट दीखने लगे हैं।

आन्दोलन के शुरू के दिनों में ग्रामदान में निर्माण और व्यापक प्रसार का वाद विवाद जोर-शोर से चलता रहा। एक स्तर पर दोनों की आवश्यकता स्वीकृत हुई तथा दोनों एक-दूसरे के परिपूरक माने गये। ग्रामदानों की संख्या अपरम्पार बढ़कर प्रखण्ड तथा जिलादान तक पहुँचने के परिणामस्वरूप निर्माण के स्वरूप और आयाम की कल्पना में एकदम फरक हुआ है। विनोबाजी की सूचना कि 'निर्माण करना नहीं, कराना है' का तात्पर्य अधिक ध्यान में आया है। उसका छिटपुट प्रयोग भी हुआ है। पर अभी 'कराने' की प्रक्रिया के बारे में पूरी स्पष्टता नहीं हुई है और अमल से हम कोसों दूर हैं।

खादी तथा ग्रामोद्योगों में पावर के उपयोग के बारे में पिछले वर्षों काफी वाद-विवाद चलता रहा। उसके फलस्वरूप इस सवाल पर विचार की काफी सफाई हुई है। पावर के उपयोग की आवश्यकताएँ तथा उसकी मर्यादाएँ काफी स्पष्ट हुई हैं। खादी-ग्रामोद्योगों के साधनों की यांत्रिक कुशलता-वृद्धि के लिए प्रयोगों के साथ-साथ कई साधनों में बिजली का उपयोग भी शुरू हुआ है। *यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रगति है।* इण्टरमीडियट टेकनालॉजी की कल्पना का उदय और विकास भी इसी सन्दर्भ में बहुत महत्त्व का रहा है। इस पर काफी चिंतन भी हुआ है और इस तरह खादी-ग्रामोद्योग प्रधान अर्थरचना की धारणा में गतिशीलता (डायनेमिज्म) के तत्त्व का समावेश हुआ है, जो पहले नहीं था या था तो छिपा हुआ। आमतौर पर खादी-ग्रामोद्योगों के समर्थक तथा आलोचकों में यही मान्यता बनी हुई थी कि ग्रामोद्योग का अर्थशास्त्र एक स्थाणु (स्टेटिक) अर्थ-व्यवस्था और जीवनस्तर की कल्पना रखता है।

सर्वोदय-आन्दोलन के वैचारिक विकास के सन्दर्भ में एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना 'गांधी विद्या संस्थान' की स्थापना है। संस्थान के माध्यम से सामाजिक विज्ञान-समूह के जगत् के साथ सर्वोदय-आन्दोलन का सम्बन्ध स्थापित हुआ है। सर्वोदय के विचार और कार्यक्रमों की जाँच अब तक सिर्फ तत्त्वज्ञान की कसौटी पर होती रही और वाद-विवाद भी उसी स्तर पर चलते रहे। अब वैज्ञानिकता के समागम से उसे वास्तविकता की कसौटी पर जाँचने का रास्ता खुल गया है तथा वैज्ञानिक प्रयोग और चिन्तन से उसमें नयी सामर्थ्य भरने की, उसके उत्तरोत्तर विकास की अपार सम्भावनाएँ पैदा हुई हैं। इन सबका परिणाम तो आगे, लम्बे अरसे में *ही अधिक प्रकट होगा।*

उपलब्धियों तथा सफलताओं का विवेचन मेरे विचार में यहीं पूरा हो जाता है। अब हम जरा विफलताओं या अपूर्णताओं की ओर ध्यान दें।

हमारी कमियाँ

इस प्रकार ये पिछले वर्ष हमारे लिए गतिशील, घटनापूर्ण और प्रेरणाप्रद रहे हैं। मैं इसे अपना अहोभाग्य मानता हूँ कि आप सबने मुझे ऐसे समय पर पटना और विचार-प्रवाह के केन्द्रस्थल के नजदीक रहकर उन सबसे अपने को लाभवान् होने का मौका दिया।

साहित्य-प्रसार का अभाव

हमारी सबसे बड़ी कमी साहित्य के क्षेत्र में रही है। *आन्दोलन का विस्तार पिछले* वर्षों में बढ़ते-बढ़ते कई गुना हो गया है। एक लाख गाँव ग्रामदान में आये हैं, पर साहित्य का प्रचार दस साल पहले जितना था, उससे कम ही हुआ है। पत्रिकाओं का प्रचार, एक 'भूमिपुत्र' को छोड़कर, स्थिर रहा है या घटा है। इस परिस्थिति को देखकर एक मित्र ने कुछ खेद के साथ और कुछ विनोद से कहा कि 'अपना आन्दोलन साहित्य निरपेक्ष बन गया है।' हमारे जैसे कम लिखे-पढ़े देश में किसी भी आन्दोलन का पठन के बजाय श्रवण पर आधार रखना एक हद तक स्वाभाविक है। कोई आन्दोलन जन-आन्दोलन का स्वरूप पकड़ने लगता है तो जनता एक-आध नारा, मंत्र या सूत्र को उठा लेती है और उसके आधार पर कुछ कर डालती है। १९४२ में बिहार की जनता ने डेढ़ हजार मील की रेल की पटरी उखाड़ डाली, तो उससे पहले थोड़े ही अध्ययन मंडलियाँ बनाकर चर्चा विचार किया था। पर यह भी कारण था कि पटरियाँ उखाड़ने के बाद उतना ही शीघ्र जनता फिर से सुस्त हो गयी, क्योंकि विचार का आधार गहरा नहीं था।

आन्दोलन के जोर पकड़ने के साथ साहित्य की माँग का जोर पकड़ना स्वयं क्रिया-प्रक्रिया नहीं है। पर यह माँग पैदा करना आवश्यक है। कारण, आन्दोलन सिर्फ गतिशील नहीं, प्रगतिशील भी होना चाहिए। लाख गाँवों के लोग आन्दोलन में शरीक हुए हैं, और भी लाखों के होंगे, तो उनके साथ नियमित जीवित सम्पर्क के बिना कोई सुसम्बद्ध, और शक्तिशाली संगठन तथा निरन्तर आगे बढ़नेवाला आन्दोलन कायम रखना असम्भव है। साहित्य इसका प्रधान माध्यम है। पर इस पर विनोबाजी के बार-बार जोर देने के बावजूद हम इस क्षेत्र में खास कुछ कर नहीं पाये हैं।

स्थानीय अभिक्रम का अभाव

दूसरी कमी ग्रामदानी गाँवों में, क्षेत्रों में, स्थानिक सेवक-शक्ति खड़ी करने में रही है। ग्रामदान-प्राप्ति-अभियानों में हजारों लोग शरीक हुए हैं, ग्रामदानी गाँवों में लाखों ऐसे

लोग हैं, जिन्होंने श्रद्धा और उत्साह के साथ अपने-अपने गाँव ग्रामदान कराने का प्रयत्न किया है। यह इन सब साथियों का संग्रह करके एक स्थायी और मजबूत संगठन के सूत्र में बाँधने की ओर हमारा ध्यान बहुत कम गया है। गाँवों की करोड़ों की जनता से सम्पर्क रखने के लिए, उसके पास विचार पहुँचाने के लिए, उनमें सर्वीर के तौर पर काम करने के लिए यह बीच की कड़ी आवश्यक है। लाखों गाँवों में लाखों सेवकों का यह विशाल जाल आन्दोलन के अग्रिपक्ष का काम करेगा। साहित्य द्वारा इन सबसे सम्पर्क रखना, शिविरों के माध्यम से इनका विचार और ज्ञान की भूमिका गहरी बनाना, उनको पराक्रम के मार्ग सुझाना, यह सब बहुत जरूरी काम है। ग्रामदान के बाद जो मार काम करने हैं, उनमें यही सबसे अधिक महत्त्व का है। यह सधेगा तो बाकी के सारे काम के लिए आवश्यक शक्ति इन्हीं में से पैदा होगी। पर इस काम की ओर हमने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। इसलिए ग्रामदान से जो ताकत पैदा हो सकती है, वह अभी भी थोड़ी हुई है। कुछ जगहों पर (यथा तमिल-नाडु और उड़ीसा में) इस दिशा में थोड़ा सा प्रयत्न हुआ है और उसका उत्साहजनक परिणाम आया है। तूफान-अभियानों की सफलता के लिए भी यह आवश्यक है। आगे हमें इस दिशा में अधिक ध्यान देना चाहिए।

खादी-कार्य जहाँ के तहाँ

तीसरी निराशा खादी-ग्रामोद्योग के क्षेत्र में रही है। ग्रामाभिमुख खादी का विचार आया और कृषि-उद्योगपूरक एग्रो इंडस्ट्रियल समाज की रचना, इंटरमीडियट टेक्नोलाजी की रचना शुरू हुई। पर व्यवहार में अभी तक हम पुरानी लीक में से निकल नहीं पाये। इधर-उधर कुछ अच्छे और उत्साहजनक प्रयोग हुए, पर खादी के काम का अधिकतम भाग पुरानी लीक में फँसा रहा। इस आचरण के समर्थन में हम यही दलील देते रहे कि विकेन्द्रित और क्रान्तिकारी खादी की बात करना है वह सिद्धान्ततः ठीक है तो ठीक है, पर लोगों को धन्धा देना, राहत पहुँचाना बेकारी मिटाना, यह भी जरूरी काम है। इसे हम टाल नहीं सकते।' पर व्यापक अर्थों के चक्कर में खादी भी फँसी और आज धन्धा देने का काम भी फैलने के बजाय संकुचित हो रहा है। अभी हमारे ध्यान में यह बात स्पष्ट रूप से आयी नहीं है कि इतने बड़े देश में करोड़ों दुःखी लोगों को राहत पहुँचाना क्रान्ति के तरीके से ही सम्भव है। राहत के मामूली तरीके यहाँ निकम्मे साबित होंगे।

आर्थिक अभाव

हमारी आखिरी कमजोरी आन्दोलन के आर्थिक संयोजन के क्षेत्र में है। इस मामले में ऐसा है कि कुछ क्षेत्रों में स्थानिक स्तर पर तो जन-आधार अमुक हद तक सध रहा है। शिविर, अभियान आदि के लिए काफी स्थानिक मदद मिल जाती है। पर ज्यों ज्यों हम ऊपर आते हैं, त्यों-त्यों कठिनाई बढ़ती है। गुजरात सर्वोदय मण्डल की आर्थिक आवश्यकताएँ ठीक-ठीक पूरी हो जाती हैं। अभी महाराष्ट्र में भी एक सफल अर्थ-संग्रह-अभियान चला। इनके अलावा बाकी सारे प्रान्त कठिनाई में हैं और सर्व सेवा संघ सबसे ज्यादा कठिनाई में है। अर्थ-संग्रह के हर प्रकार के उपाय हमारे लिए उपलब्ध हैं और महाराष्ट्र का अनुभव बताता है कि प्रयत्न करने पर सफलता मिल सकती है। अटका कहाँ है यह हमें सोच लेना चाहिए।

अपने आन्दोलन की सफलताओं और विफलताओं, उसकी शक्ति के स्थान और कमजोरियाँ जिस प्रकार मेरे ध्यान में आयीं, मैंने आपके सामने रख दीं। अब आपको इन पर सोचना है और मेरे विवेचन में कहाँ तक यथार्थता है यह जाँचना है। मैं इतना तो जरूर कहूँगा कि इनमें सारी सफलताएँ कुछ आन्दोलन की हैं, जनता की हैं और विफलताएँ मुख्यतया संगठन की हैं, या तो मेरी या सर्व सेवा संघ की।

अपने संगठन से आशा

मैं आशा करता हूँ कि आगे जो साथी सर्व सेवा संघ के संगठन का जिम्मा लेंगे, वे नये उत्साह से अधिक सफलतापूर्वक आनेवाली सारी समस्याओं का सामना कर सकेंगे। उसमें उनको हमारा सबका पूर्ण हृदय से सहकार रहेगा। शायद इस सन्दर्भ में 'उनका-हमारा' कहना योग्य ही नहीं है। हमारी एक ही स्निग्ध मित्र-मण्डली है और उसमें से जिम्मेदारी उठाने के लिए नये साथी आगे आयेंगे, तो कोई पराये तो होंगे ही नहीं।

पिछले महीने में हम कुछ साथी विनोबा-जी से मिले थे। उन्होंने उस समय हमसे एक मार्मिक सवाल पूछा : 'मैत्री कितनी रखी? अखिल भारत में आपके ऐसे मित्रों की संख्या कितनी है, जो विचार, कर्म और भावना से एक हैं?' हमने कहा : 'अखिल भारतीय स्तर पर परिचित मित्रों के अलावा प्रान्त-प्रान्त में मित्र मण्डलियाँ हैं। उनमें कुछ साथी अखिल भारतीय स्तर पर परिचित हैं, पर बाकी के नहीं हैं। फिर भी वे मित्र मण्डली के अन्तर्गत हैं।' हम सूची बनाने बैठे तो तीन सौ की सूची वहीं के वहीं बनी। जिलों तक का फैलाव ध्यान में लेते तो सैकड़ों के बदले हजारों की सूची बनती। यही अपने आन्दोलन की सबसे बड़ी थाती है कि सारे देश में सैकड़ों का एक सच्चा भाई-चारा कायम हुआ है। अणुमैत्रत्व का एक आधार खड़ा हुआ है। इसीको मैं आन्दोलन की आध्यात्मिक शक्ति का स्रोत मानता हूँ। इस भाई-चारे को लाखों करोड़ों तक पहुँचाने की सम्भावना पैदा हो चुकी है, ऐसा करने का कर्तव्य हम पर आ पड़ा है, जबकि लाख गाँव के करोड़ों लोग ग्रामदान में शामिल हुए हैं।

आभार प्रदर्शन

आपने मुझे छह साल तक अध्यक्ष बनाये रखना उचित समझा। अब उसमें आपको कितना लाभ हुआ, वह आप जानें। मुझमें कितनी कमजोरियाँ हैं यह तो मैं शुरू से ही जानता था। इन छह वर्षों में सर्व सेवा संघ की गाड़ी अगर थोड़ी बहुत ठीक चली, तो उसका श्रेय आप सबको, प्रबन्ध-समिति के साथियों को, विनोबाजी दादा, जयप्रकाशजी शंकररावजी, धीरेनभाई, आदि गुरुजनों के आशीर्वाद और मार्गदर्शन को तथा सर्वोपरि हमारे कार्यालय के साथियों को है। राधाकृष्ण, नारायणभाई, दत्तोबाभी, राममूर्तिजी आदि की मजबूत और समर्थ टोली कार्यों में जिम्मे-दारी उठा लेने के लिए मौजूद न होती, तो पता नहीं, मेरी और आपकी हालत क्या होती। ये सब इतने घनिष्ठ मित्र हैं कि इन सबके मामले में आभार और कृतज्ञता जैसी औपचारिक बातें निकम्मी मालूम होती हैं।

आबूरोड से तिरुपति तक

आबूरोड में हुए संघ-अधिवेशन के बाद पिछले १० महीनों में जिलादान से जिलादान की शृंखला से क्रान्ति के आरोहण की एक के बाद एक जो मंजिलें तय की हैं, वे असाधारण महत्त्व की हैं। एक लाख से अधिक ग्रामदान तक हम पहुँच चुके हैं। उत्तरप्रदेश में वाराणसी और चमोली, उड़ीसा में कोरापुट और मयूरभंज, मध्यप्रदेश में सरगुजा, और तमिलनाड में रामनाथपुरम् जिलादान में सम्मिलित हैं। बिहार प्रदेशदान की ओर उत्तरोत्तर आगे बढ़ रहा है। १७ जिलों में से ६ जिलों का ग्रामदान हो चुका है। ६ में तीव्रता से काम बढ़ रहा है। उत्तरी बिहार, जिसकी करीब दो करोड़ से अधिक आबादी है, का पूरा क्षेत्र ग्रामदान में आ चुका है। जिस तीव्र गति से आंदोलन का तूफान देश में चल रहा है, उससे यह आशा बलवती होती जा रही है कि गांधी-शताब्दी के इस वर्ष में एक से अधिक प्रदेशदान हो जायेंगे। प्रदेशदान से भारतदान के नये क्षितिज तक पहुँचने का मार्ग सहज ही प्रस्तुत हो रहा है।

जन-आंदोलन का स्वरूप

ग्रामदान आंदोलन जन-आंदोलन के रूप में अग्रसर हो रहा है। इस बीच आंदोलन को दिशा में विभिन्न प्रदेशों में नयी पद्धतियों का विकास हुआ है। उड़ीसा और तमिलनाड में सैकड़ों की संख्या में ग्रामदानी गाँवों के लोग तथा स्थानीय जन इस काम के लिए निकले हैं। स्थानीय अभिक्रम और नेतृत्व जागृत तथा संगठित करने में यह प्रयास समर्थ हुआ है। तमिलनाड में ग्रामदान के लिए ग्रामीण प्रशिक्षित नवयुवक एवं विद्यार्थियों को संगठित करने की नयी पद्धति अपनायी गयी। इन नवयुवकों की शक्ति निरन्तर तमिलनाड के लक्ष्य को पूरा करने में आज लगी है। तमिलनाड में वकीलों का भी आंदोलन में काफी योग रहा। बिहार में गया और बाद में दक्षिण जिलों में शिक्षकों और पंचायतराज के नेताओं और लोगों के आंदोलन में सम्मिलित होने से काफी ताकत बढ़ी है। श्री विनोबाजी की प्रेरणा से सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों का बड़ी मात्रा में सहयोग बिहार में मिला है। मध्यप्रदेश में तमाम रचनात्मक संस्थाओं का सहकार मिला और उनके द्वारा सुनियोजित पद्धति की व्यूह रचना की गयी है। राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पंजाब में कम समय में सामूहिक शक्ति से सघन काम करने की नयी पद्धतियों का विकास हुआ है। महाराष्ट्र में देशभर की विभिन्न संस्थाओं के कार्यकर्ताओं को लेकर एक सामूहिक शिविर हुआ। महाराष्ट्र में इस प्रकार से अपने-आपमें एक महत्त्वपूर्ण घटना थी, जहाँ विभिन्न रचनात्मक क्षेत्रों में लगे कार्यकर्ता इतनी बड़ी संख्या में एक स्थान पर इकट्ठे हुए और सबका सम्मिलित समर्थन मिला।

विभिन्न प्रदेशों में खादी तथा अन्य रचनात्मक संस्थाओं की ओर से आर्थिक और कार्यकर्ता-सहायता काफी मात्रा में आन्दोलन के लिए प्राप्त हुई। इनमें बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ, गांधी-आश्रम, उत्तरप्रदेश और तमिलनाड सर्वोदय संघ के नाम उल्लेखनीय हैं।

ग्रामदान-घोषणा-पुष्टि

जहाँ जिलादान हुए हैं, वहाँ कानूनी पुष्टि में दिक्कतों को ध्यान में रखते हुए ग्रामदानी गाँवों की अनौपचारिक रूप में पुष्टि तथा तदर्थ ग्रामसभाओं की स्थापना करने का आग्रह रखा गया है, हालांकि इस दिशा में काम कम हुआ है।

बिहार में पुष्टि की कार्यवाही के साथ-साथ कागजात तैयार करने के पहले गाँवों में ग्रामसभा बनाकर पुष्टि का काम तुरन्त करने के प्रयास किये जा रहे हैं। बिहार में इस तरह अब तक २,७८५ अस्थायी ग्रामसभाओं का गठन विभिन्न जिलों में किया गया है। उत्तरप्रदेश के बलिया और उत्तरकाशी जिलों में ग्रामसभाएँ गठित की जा रही हैं। बलिया जिले में पुष्टि की दृष्टि से तीन प्रखंड लेकर वहाँ सघन काम हाथ में लिया गया है। मध्यप्रदेश के पश्चिमी निमाड में पुष्टि का काम विशेष रूप से शुरू किया गया है। तमिलनाड के बटलागुंडु क्षेत्र में इस दिशा में विशेष कार्य हुआ है। वहाँ ग्रामसभाएँ गठित हुई हैं। वे नियमित रूप से बराबर मिलती हैं, मुख्य विषयों पर चर्चाएँ करती हैं। इससे स्थानीय लोक-शक्ति का निर्माण हुआ है और दूसरे क्षेत्रों पर अच्छा प्रभाव (इम्पैक्ट) पड़ा है। श्री शंकररावजी की पदयात्रा मार्च से तंजौर (तमिलनाड) में चल रही है, उसके फलस्वरूप वहाँ प्राप्ति के साथ ही ग्रामसभा की स्थापना और भूमि वितरण करने का काम शुरू हुआ है।

बचपन में मेरे मन में तरह-तरह की आकांक्षाएँ उठती थीं। किसी भी कुशल मनुष्य को देखता था, तो वैसा बनने की आकांक्षा होती थी। कभी चित्रकार बनने की इच्छा होती थी, तो कभी वैज्ञानिक। कभी लेखक, तो कभी पहलवान। पर एक आकांक्षा कभी नहीं हुई थी और वह है किसी मजमा के अध्यक्ष बनने की।

बचपन से मैं राजनैतिक आन्दोलन के वातावरण में पला और तरह-तरह की बैठकें, सभाएँ, सम्मेलन आदि देखता रहा। उनमें अध्यक्ष की हालत मुझे सबसे दयनीय मालूम होती थी। जब लम्बे, मनहूस भाषण चलते हैं, तब दूसरे लोग सो भी सकते हैं, पर वह बेचारा सो नहीं सकता। इसलिए अध्यक्ष बनने की कल्पना मुझे छू भी नहीं गयी। और यह करतार की करनी देखिए कि मैं जिस बात से सबसे ज्यादा डरता था, वही आप सबके आग्रह से आ पड़ी मेरे पल्ले! पर कबूल करना चाहिए कि यह काम मुझे जितना डरावना और मनहूस मालूम होता था, वास्तव में उतना नहीं रहा। आप सबके सहयोग से सभा-संचालन का काम दिलचस्प रहा और उसमें से मनोरंजन के अवसर भी मिलते रहे।

मैं लगातार यह महसूस कर रहा हूँ कि आप सबका प्रेम और सहयोग मुझे मिला न होता, तो मैं इस स्थान पर टिक नहीं पाता। मैं जानता हूँ कि आपने मेरी कमियों को प्रेम और धीरज के साथ निभाया है। उसका भान होते ही मेरा हृदय भर आता है। मैंने जाने-अनजाने जो गलतियाँ की हैं और मेरे कारण आप लोगों को जो भी दुःख या तकलीफ हुई हो, उनके लिए मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ। •

उड़ीसा, असम, बिहार, महाराष्ट्र, मद्रास, आन्ध्र और राजस्थान में ग्रामदान अथवा भूदान कानून के अन्तर्गत विधिवत् ग्रामदानी गाँवों की घोषणाओं का काम भी हुआ है। राजस्थान और असम में जहाँ कि बहुत पहले ही ग्रामदान-कानून बने हैं, वहाँ कानूनी रूप से ग्रामसभाओं की स्थापना भी हुई है।

ग्रामदान-अभियान उपसमिति—नेताओं के दौरे

देशभर में ग्रामदान आन्दोलन को वेग देने, प्रदेशों में परस्पर सहकार, सहयोग और एकसूत्रता लाने, हर प्रदेश की दिक्कतों और प्रगति पर विचार करने तथा ग्रामदान अभियान में उपस्थित होनेवाले सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक प्रश्नों के निराकरण या उपाय खोजने आदि कार्यों के लिए संघ की प्रबन्ध-समिति तथा गांधी शताब्दी की रचनात्मक उप-समिति की ओर से श्री गोविन्दराव देशपांडे के संयोजकत्व में एक ग्रामदान-अभियान उप-समिति का गठन किया गया है।

आन्दोलन को अखिल भारतीय स्वरूप और नेतृत्व मिले, इस दृष्टि से समय-समय पर समिति के साथियों ने विभिन्न प्रदेशों में शिविरों, सम्मेलनों और यात्राओं में प्रत्यक्ष भाग लिया है और अन्तरप्रान्तीय मार्गदर्शन दिया है। डा० दयानिधि पटनायक ने उत्तर प्रदेश, राजस्थान, संयुक्त पंजाब और मध्य-प्रदेश में, सुश्री निर्मला देशपांडे ने तमिलनाडु, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश में, श्री गोविन्दराव देशपांडे ने महाराष्ट्र, मध्य-प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और बिहार में, श्री ठाकुरदास बंग ने महाराष्ट्र, गुजरात और बिहार में, श्री चारुचन्द्र भण्डारी ने गुजरात तथा श्री सिद्धराजजी ने बिहार में वहाँ के आन्दोलन को वेग देने की दृष्टि से दौरे किये। श्री राममूर्तिजी ने उत्तरप्रदेश और बिहार के विभिन्न शिविर-सम्मेलनों में मार्गदर्शन दिया। श्री शंकररावजी का उड़ीसा और तमिलनाडु में विशेष दौरा हुआ। दादा धर्माधिकारी का महाराष्ट्र, उड़ीसा और मध्यप्रदेश में मार्ग-दर्शन मिला। श्री जयप्रकाश नारायण और मनमोहन चौधरी के देशभर में दौरे हुए।

सेवाग्राम गांधी-शताब्दी सम्मेलन में ग्रामदान के लिए सम्मति

२७ जुलाई से २६ जुलाई, '६८ तक सेवाग्राम में सारे हिन्दुस्तान के सभी प्रदेशों के गांधी-शताब्दी समिति के अध्यक्ष और मंत्रीगण तथा राष्ट्रीय शताब्दी समिति के सदस्यों को लेकर शताब्दी वर्ष के कार्यक्रम के सम्बन्ध में तीन दिवसीय एक सम्मेलन हुआ। गांधी शताब्दी के दौरान कार्यान्वित करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक नौसूत्री न्यूनतम कार्यक्रम स्वीकार किया गया और इस कार्यक्रम के अन्तर्गत ग्रामदान को सम्मति प्राप्त हुई।

इस संदर्भ में गांधी शताब्दी की रचनात्मक कार्यक्रम उप-समिति का काम भी विशेष उल्लेखनीय है। इस वर्ष समिति की ओर से अन्तरप्रांतीय शिविर, प्रदर्शनी, फिल्म और फोटो प्रदर्शनी आदि का आयोजन हुआ, जिसमें त्रिविध कार्यक्रम और खास करके ग्रामदान के काम को मदद मिली है। शिविरों में कार्यकर्ताओं को काफी मार्गदर्शन मिला है।

राजनैतिक दलों का समर्थन

प्रदेशों के विभिन्न राजनैतिक दलों से सम्पर्क किया गया है और ग्रामदान, प्रदेशदान के लिए उनका समर्थन प्राप्त हुआ है। बिहार, मध्यप्रदेश और राजस्थान में यह प्रयास विशेष उल्लेखनीय है। इन प्रदेशों में ग्रामदान के समर्थन में अपील भी वहाँ विभिन्न दलों के नेताओं तथा प्रमुख नागरिकों के हस्ताक्षरों से जारी की गयी है।

आर्थिक संयोजन

आन्दोलन के आर्थिक संयोजन के सम्बन्ध में विभिन्न प्रदेशों में कुछ विशेष तरीके अपनाये गये हैं। प्रदेशदान के संकल्प की ओर बढ़ते हुए रचनात्मक कार्यकर्ताओं की सहायता पहले की अपेक्षा ज्यादा दिखने लगी है। रचनात्मक संस्थाओं की ओर से नकद तथा कार्यकर्ताओं के रूप में सहायता भी बहुत बड़ी मात्रा में मिली है। बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ, श्री गांधी आश्रम, तमिलनाडु सर्वोदय संघ, पंजाब खादी-ग्रामोद्योग संघ आदि संस्थाओं के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं, जिनकी ओर से आन्दोलन में कार्यकर्ता तथा धन के रूप में बड़े परिमाण में सहायता मिली है या एक प्रकार से यों कहा जा सकता है कि आन्दोलन इन प्रदेशों में मुख्यतः इन संस्थाओं की सहायता से ही चला है।

महाराष्ट्र में पंचायतराज-संस्थाओं, सहकारी समितियों और ग्रामदानों से सहायता मिली है। गुजरात में कार्यकर्ताओं के मानधन तथा आन्दोलन खर्च के लिए एकमुश्त सहायता मिलने लगी है। राजस्थान से सर्वोदय मित्र के रूप में बड़ी तादाद में आर्थिक सहायता मिली है। वहाँ कार्यकर्ताओं ने अपनी ओर से भी आन्दोलन में आर्थिक योग दिया है। मुजफ्फरपुर (बिहार) में स्थानीय सहायता की दृष्टि से एक-एक रुपये के कूपन छपवाये गये, जिससे स्थानीय सहायता बड़ी मात्रा में मिली। उत्तरप्रदेश, उड़ीसा आदि प्रदेशों में अभियान के लिए स्थानीय सहायता मिली है। लेकिन कुल मिलाकर यह आर्थिक व्यवस्था बहुत ही अपर्याप्त है और आवश्यक मात्रा तक हम नहीं पहुँचे हैं।

जन-आन्दोलन के रूप में आन्दोलन को केवल व्यापक करना ही नहीं है, यह संगठन भी जनता का अपना संगठन बने, उस संगठन के जरिये वहाँ आन्दोलन हो तथा आर्थिक, सामाजिक व पुनर्रचना का कार्यक्रम वे उठायें।

भूदान-यज्ञ-बोर्डों का पुनर्गठन

इस वर्ष राजस्थान और पंजाब भूदान-यज्ञ-बोर्डों का पुनर्गठन किया गया है। मध्यप्रदेश में नये भूदान-कानून के अन्तर्गत भूदान-बोर्ड का गठन किया गया है। •

राज्यदान के लिए संकल्पित प्रदेश

(३१ मार्च '६६ तक)

बिहार, तमिलनाडु, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान।

कानूनी घोषित ग्रामदान

१ उड़ीसा ८७०
२ असम १६१७ (ग्रामसभाएँ स्थापित १३२)
३. राजस्थान १४५ (ग्रामसभाएँ स्थापित १४१)
४ बिहार १२४
५. तमिलनाडु २६ (राजपत्रित १३)
६ महाराष्ट्र १
७. आंध्र १

संथाल परगना में तीन दिन

भागलपुर जिले से पटना जाना तय था, परन्तु बाबा ने जमीडीह, मधुपुर (संथाल परगना) से ट्रेन द्वारा जाने में सुविधा थी। अचानक संथाल परगना को तीन दिन मिल गये। बाबा आ रहे हैं, यह सूचना पाने ही मोतीलालजी की शान्ति-प्रेरणा पुनः जाग गयी। सबको निमंत्रण भेजे गये। श्री लखो भाई भागलपुर आये। दो दिन देवघर और एक दिन मधुपुर के कार्यक्रम तय करके गये।

२६ मार्च की शाम को देवघर डाकबंगले में जिला-उपायुक्त श्री रामचन्द्र सिन्हा, अपर समाहर्ता श्री देवशरण सिंह, आरक्षी अधीक्षक तथा अन्य मुख्य अधिकारी, जनसेवक, तथा सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के साथ श्री मोती बाबू ने बाबा का स्वागत किया। बाबा ने परिचय होने के बाद प्रथम यही माँग की—"संथाल परगना सन्तों का जिला है। जिलादान कब तक पूरा होगा ?" उत्साह भरे स्वर में उपायुक्त महोदय बोले—"बाबा, यह कार्य अवश्य जल्दी पूरा होगा। जब अन्य जिलों में हुआ है तो यहाँ क्यों नहीं होगा ?" फिर यह बताने पर—कि सारण और चम्पारण में सबके सम्मिलित प्रयास से एक निश्चित अवधि में जिलादान पूरे हो गये, वैसा प्रयास संयोजनपूर्वक यहाँ हो तो दो सप्ताह में जिलादान अवश्य हो सकता है—उपायुक्त ने तदनुसार योजना बनाकर काम करने का बाबा को आश्वासन दिया।

२७ मार्च को ११ बजे मैत्रा हाईस्कूल में सभा हुई। उसमें जिले के अधिकारी, सरकारी सेवक, पंचायत के अध्यक्ष, शिक्षक-संघ के मंत्री, पहाड़िया सेवा मण्डल, खादी-ग्रामोद्योग समिति आदि के कार्यकर्ता और प्रतिष्ठित नागरिक पहुँचे। प्रारम्भ में जिलादान की व्यूह-रचना के बारे में जानकारी दी गयी। रामनवमी और मुहर्रम, दोनों त्योहारों में कहीं शान्ति-भंग न हो, इसके लिए सरकारी अधिकारी चिन्तित थे। शान्ति-सुरक्षा के जाप्ते में लगे थे। यह जानकर बाबा उसके बारे में ही बोले—"पुलिस की शान्ति कायम करने की शक्ति तभी बनेगी जब वह निःशस्त्र होकर जनता के बीच जायगी और राम रहीम की एकता और सगोत्रत्व समझायगी।" बाबा ने रचनात्मक सेवा-कार्य में लगे कार्यकर्ताओं को याद दिलाया कि वे सब अहिंसक शान्ति-सैनिक हैं, उन्हें अशान्ति के मौकों पर जनता के बीच घूमने आना चाहिए। सभा के बाद सरकारी और गैरसरकारी प्रमुख लोग एक साथ बैठे, जिलादान के संयोजन-सम्बन्धी चर्चा हुई। तय हुआ कि ता० ६ अप्रैल को जिला-स्तर पर दुमका में एक प्रशिक्षण शिविर (गोष्ठी) हो। हर प्रखण्ड से विकासपदाधिकारी, अंचलाधिकारी, शिक्षा-प्रसार अधिकारी तथा शिक्षकों, पंचायतों तथा सार्वजनिक संस्थाओं के प्रमुखों को बुलाया जाय। उन्हें जिलादान का विचार, व्यवहार और व्यूह-रचना समझायी जाय। जरूरत का साहित्य, प्रचार-पत्र और ग्रामदान फार्म उन्हें मुहैया किये जायँ, और ता० १० से २५ अप्रैल तक हर प्रखण्ड में प्राप्ति का अभियान चलाया जाय। २५ अप्रैल तक जिलादान पूरा करना है, यह सूचना गम्भीरतापूर्वक उपायुक्त तथा अन्य मित्रों ने दी।

शाम को देवघर कालेज के प्राचार्य तथा कुछ आचार्य आये। बुनियादी तालीम असफल होने की शिकायत की। विनोबाजी ने कहा—"मेरी शिक्षकों से एक प्रार्थना है, वे अपने जीवन में श्रमनिष्ठा लायें, और इसके लिए हर रोज २ घण्टे कोई उत्पादक श्रम करें। खेत खोदने का भी काम हो सकता है। बाबा ने वह काम खुद किया है। बाबा का इस बारे में शोध भी है कि लोग कुदाली एक ही ढंग से पकड़ते हैं। बाबा बारी-बारी बायें और दायें बदलकर खोदता था, जिससे दोनों हाथों पर काम का बोझ बराबर-बराबर आये। जिन्हें नया अभ्यास करना है तो खोदने का काम ५ मिनट से शुरू करें और ५ मिनट का समय प्रति सप्ताह बढ़ाते जायँ।"

२८ मार्च को सुबह ८ बजे बाबा श्री महावीर प्रसाद पोद्दार द्वारा संचालित प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्र, जसीडीह गये। बाबा ने कहा—"मैं इस चिकित्सा को सत्त्व-चिकित्सा कहता हूँ। इसमें श्रद्धा ही मुख्य आधार है।" बाबा ने यह भी बताया कि, "चरक-संहिता में यह लिखा है कि 'अगर रोग असाध्य है यह दीखे तो नाहक दवा न लें, उपचार न करें, पानी सेवन करें, और विष्णुसहस्रनाम का पाठ करें।' यह चरक मुनि की विशेषता है कि विशेष रोग के लिए विष्णुसहस्रनाम बताया। विष्णुसहस्रनाम आखिर में बचायेगा तो पहले ही क्या न बचायेगा ? सत्त्व-चिकित्सा मानती है कि उसके पास हर रोग के लिए उपचार है, हर रोगी के लिए नहीं। रोगी अगर भगवान के पास पहुँचने की तैयारी करता है तो हम बीच में क्यों आयें ? मरने के समय चित्त शान्त रहे, भगवान का स्मरण हो, इससे बेहतर चीज क्या हो सकती है ?" अन्त में पोद्दारजी ने बाबा को लिखकर दिया कि 'भूदानी (ग्रामदानी) गाँवों के मौन्दा-औ अच्छे कार्यकर्ताओं को २५-२५ के दल में प्राकृतिक चिकित्सा की शिक्षा के लिए यहाँ भिजवा सकते हैं। १-१ महीने में कुछ सीख सकेंगे। यदि परिश्रमी हों तो यहाँ श्रम से उनका आधा खुराक-खर्च निकल सकेगा। इस महान कार्य में यह साधारण सहयोग समझा जा सकता है।"

भागलपुर में कैथोलिक चर्च के बिशप श्री सुजन स्वामी (युरबन मैंगरी) का परिचय हुआ था। अपने वादे के अनुसार वह संथाल परगना के अपने सहायक फादर श्री यलोसियस के साथ देवघर पड़ाव पर मिलने पहुँचे। जिलादान अभियान की योजना समझी। ग्रामदान-अपील पर हस्ताक्षर किये। ग्रामदान प्राप्ति में भाग लेने के लिए कार्यक्रम बनाया और महसूस किया कि ग्रामदान याने 'लव दाई नेबर ऐज दाईसेल्फ' (पड़ोसी को अपना-सा प्यार करो) फादर यलोसियस केरल-निवासी हैं। केरल में विनोबाजी को भूदान-यात्रा में देखा था और उनके स्वागत में मलयाली कविता भी सुनायी थी। वे गत ५ साल से पोड़ैया हाट में स्कूल के मंत्री हैं। उन्होंने अपने क्षेत्र में ग्रामदान कार्य में लगने का आश्वासन दिया इसके लिए बिशप की एक अपील भी अलग से निकालना तय किया।

आज की सभा में बाबा ने शिक्षकों को प्रमुखतया आचार्यकुल की आवश्यकता और महत्ता समझायी। और सहज ही इस के→

राजस्थान

• राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी रचनात्मक समिति एवं राजस्थान ग्रामदान-अभियान समिति के सहयोग से नागौर जिले के मकराना प्रखण्ड में २० ग्रामदान प्राप्त हुए। चार दिवसीय इस अभियान में प्रखण्ड के लगभग १०० गांवों में से ४० गांवों में टोलियां गयी थीं।

• मकराना में ही २६ से २८ मार्च तक राजस्थान, पंजाब, हरियाणा और दिल्ली प्रदेशों के जिला शांति सेना संयोजकों व प्रमुख शांति सैनिकों का एक क्षेत्रीय शिविर श्री सिद्धराज ढड्ढा के कुलपतित्व में चला। शिविर में ३५ शांति सैनिकों ने भाग लिया। शिविर-काल में मकराना नगर के शिक्षकों, विद्यार्थियों की गोष्ठियों और सार्वजनिक सभाओं का आयोजन किया गया, जिनमें ग्राम परिवार से लेकर राष्ट्रीय समस्याओं तक के विभिन्न पहलुओं पर सर्वोदय की दृष्टि से प्रकाश डाला गया।

२ अप्रैल को मकराना में राजस्थान प्रदेश ग्रामदान-अभियान समिति के संचालक श्री गोकुल भाई भट्ट की अध्यक्षता में अभियान समाप्ति-समारोह किया गया। उन्होंने उपस्थित शांति-सैनिकों तथा नागरिकों को आज की जागतिक परिस्थिति में ग्रामदान से ग्रामस्वराज्य विचार को अपनाने का आवाहन किया।

→उपदेशों की चर्चा करते हुए बोले—"क्या सामने बैठे हुए सुजनस्वामी युद्ध में घायल सिपाहियों की सेवा शुश्रूषा करने में क्रीस्तधर्म का सही पालन मानेंगे या समाज में से युद्ध ही समाप्त हो ऐसी अहिंसक समाज-रचना के काम में?"

ता० २६ मार्च को मधुपुर में प्रखण्डदान समर्पण हुआ। बाबा आ रहे हैं, इससे प्रेरणा पाकर प्रखण्ड विकास पदाधिकारी और खादी-समिति के थोड़े-से कार्यकर्ता जुट गये थे और ८-१० दिन में ही यह प्रखण्डदान पूरा कर डाला।

रात ६ बजे तूफान से पटना सिटी स्टेशन पहुँचे।●

डा० सुशीला नायर का अनशन समाप्त

लखनऊ—२३-४-'६९। प्राप्त सूचना के अनुसार अखिल भारत नशाबन्दी परिषद की अध्यक्षा डा० सुशीला नायर ने गढ़वाल की शराब की दुकानें बन्द कराने के सम्बन्ध में चल रहे अपने अनशन को संध्या समय समाप्त किया। उपवास की समाप्ति पर डा० सुशीला नायर ने वक्तव्य दिया कि श्री गुप्त के इस आश्वासन पर, कि वे गढ़वाल की तीन शराब की दुकानें बन्द करने के बारे में मेरी तीव्र भावनाओं को समझ गये हैं और इस मामले में वे उचित कदम उठायेंगे, मैंने अनशन समाप्त करने का निश्चय किया है। मैं उन सभी शुभचिन्तकों और सहानुभूति रखनेवालों को धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने सामान्य व्यक्ति के हित में नशाबन्दी का समर्थन किया है। मैं श्री गुप्त को भी उनके उदारता भरे रवैये के लिए उन्हें धन्यवाद देती हूँ।

डा० सुशीला नायर का अनिश्चित काल का अनशन पिछले ७ दिनों से जारी था। यह अनशन उन्होंने लैंसडोन में ६ अप्रैल को प्रारम्भ किया था जब कि स्थानीय जनता की इस माँग और समर्थन के बावजूद कि शराब की बन्द दुकानें फिर से न खुलवायी जायँ, स्थानीय अधिकारियों ने पुलिस की सहायता से दुकानें खुलवा दी थीं। डा० सुशीला नायर उ०प्र० के मुख्य मंत्री श्री चन्द्रभान गुप्त से समझौता वार्ता के लिए लखनऊ आयी हुई थीं। ३१ अप्रैल को वार्ता सफल न होने पर लखनऊ की रचनात्मक कार्य करनेवाली महिलाओं का प्रतिनिधि मण्डल श्री गुप्त से मिला। २३ अप्रैल को डा० सुशीला नायर के बड़े भाई और गांधीजी के भूतपूर्व निजी मंत्री श्री प्यारेलालजी भी दिल्ली से लखनऊ आये थे। अनेक लोगों के समवेत प्रयास के फलस्वरूप श्री गुप्त ने गढ़वाल की शराब की दुकानें बन्द कराने का आश्वासन दिया।

सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष : एस० जगन्नाथन्

एस. जगन्नाथन् : जन-नेतृत्व

दक्षिण भारत के प्रमुख तीर्थस्थान तिरुपति (आन्ध्र प्रदेश) में २३ से २५ अप्रैल तक हुए सर्व सेवा संघ के वार्षिक अधिवेशन में ५५ वर्षीय श्री शंकरलिंगम् जगन्नाथन् सर्व सम्मति से आगामी तीन वर्षों के लिए संघ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

श्री एस० जगन्नाथन् सर्वोदय-जगत में जाने-माने उच्च कोटि के व्यक्ति हैं। उनके ही अथक परिश्रम और मूक सेवा का परिणाम है कि दक्षिण भारत में एकमात्र प्रदेश तमिलनाडु में ग्रामदान-आन्दोलन का गहरा और व्यापक प्रसार हुआ है तथा तमिलनाडु आज राज्यदान के करीब पहुँच चुका है। उन्होंने तमिलनाडु में जन-शक्ति खड़ी की है और उसी के माध्यम से वे जनक्रान्ति की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

नशाबन्दी सम्मेलन

भरतपुर वीर भूमि राजस्थान के पूर्वी सिंहद्वार ऐतिहासिक नगर भरतपुर में सम्पन्न पंचम अखिल भारत नशाबन्दी सम्मेलन ने घोषित किया है कि अब समय आ गया है कि जब शराब की दुकानों तथा शराब-निर्माणशालाओं और गोदामों आदि को बन्द कराने के लिए सुनिश्चित क्रियात्मक कार्यक्रम अपनाया जाय।

सम्मेलन में दिल्ली में ६-१० मार्च को आयोजित सर्वदलीय राष्ट्रीय नशाबन्दी सम्मेलन के निर्णयों का अनुमोदन करते हुए विभिन्न राज्य सरकारों तथा केन्द्र सरकार से माँग की है कि वे आगामी १५ अगस्त तक अपने इस निश्चय की घोषणा करें कि वे निश्चित अवधि में मद्यनिषेध की नीति को कार्यान्वित करने का विचार रखती हैं और वे महात्मा गांधी के आगामी जन्म दिवस २ अक्तूबर से अपनी इस नीति को कार्यान्वित करने के लिए क्रमबद्ध कार्यक्रम अपनायेंगी कि जिससे शीघ्रातिशीघ्र नशाबन्दी की नीति को पूर्णरूप से कार्यान्वित करना सम्भव हो सके।

सम्मेलन ने सिफारिश की है कि यदि सरकारें उपरोक्त घोषणा १५ अगस्त तक न करें, तो फिर शराब की दुकानों तथा शराब-निर्माणशालाओं इत्यादि को बन्द कराने के लिए शांतिमय सत्याग्रह विनोबा जन्म दिवस ११ सितम्बर से शुरू कर दिया जाय। सम्मेलन ने सभी राजनैतिक, सामाजिक, रचनात्मक तथा धार्मिक संस्थाओं को आवाहन किया है कि वे राष्ट्रीय नवनिर्माण के इस कार्य में अपना सक्रिय सहयोग प्रदान करें।

बिहार

शाहाबाद (बिहार) से श्री बैजनाथ उपाध्याय लिखते हैं कि भावानगर प्रखण्ड में ग्रामदान-अभियान को गतिवान बनाने के लिए श्री मथुरा प्रसाद सिंह और श्री राधा मोहन राय आये। ग्रामदानोत्तर कार्य के लिए २३ मार्च को जिले के प्रमुख लोगों की बैठक हुई जिसमें भावी योजना बना ली गयी है।

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ३१

सोमवार ५ मई, '६९

अन्य पृष्ठों पर

सत्य में समदर्शन है, समाधान है, सम्यक समाधान है। जो अन्दर से एक आवाज उठती है। उसके साथ हम चलता है, तो सत्य पर चलता है ऐसा होगा। फिर तो तुम्हें गंगा जाने की, तीर्थ नहाने की जरूरत नहीं। न्याय-निर्णय देते समय न्यायाधीश सत्य पर रहने की कोशिश करता है। जहाँ सत्ययुक्त निर्णय होता है, वहाँ सत्य है। —विनोबा

सम्पादक

राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश

फोन : ४२८५

अहिंसक अर्थ-व्यवस्था

मैं कहना चाहता हूँ कि हम सब एक तरह से चोर हैं। अगर मैं कोई ऐसी चीज लेता और रखता हूँ, जिसकी मुझे अपने किसी तात्कालिक उपयोग के लिए जरूरत नहीं है, तो मैं उसकी किसी दूसरे से चोरी ही करता हूँ। यह प्रकृति का एक निरपवाद बुनियादी नियम है कि वह रोज केवल उतना ही पैदा करती है जितना हमें चाहिए। और यदि हर एक आदमी जितना उसे चाहिए उतना ही ले, ज्यादा न ले, तो दुनिया में गरीबी न रहे और कोई आदमी भूखा न मरे। मैं समाजवादी नहीं हूँ और जिनके पास सम्पत्ति का संचय है उनसे मैं उसे छीनना नहीं चाहता। लेकिन मैं यह जरूर कहता हूँ कि हममें से जो लोग प्रकाश की खोज में प्रयत्नशील हैं उन्हें व्यक्तिगत तौर पर इस नियम का पालन करना चाहिए। मैं किसी से उसकी सम्पत्ति छीनना नहीं चाहता, क्योंकि वैसा करूँ तो मैं अहिंसा के नियम से च्युत हो जाऊँगा। यदि किसी के पास मेरी अपेक्षा ज्यादा सम्पत्ति है तो भले रहे। लेकिन यदि मुझे अपना जीवन नियम के अनुसार गढ़ना है तो मैं ऐसी कोई चीज अपने पास नहीं रख सकता जिसकी मुझे जरूरत नहीं है। भारत में लाखों लोग ऐसे हैं जिन्हें दिन में केवल एक ही बार खाकर संतोष कर लेना पड़ता है और उनके उस भोजन में भी सूखी रोटी और चुटकी भर नमक के सिवा और कुछ नहीं होता। हमारे पास जो कुछ भी है उस पर हमें और आपको तब तक कोई अधिकार नहीं है जब तक इन लोगों के पास पहिनने के लिए कपड़ा और खाने के लिए अन्न नहीं हो जाता। हममें और आपमें ज्यादा समझ होने की आशा की जाती है। अतः हमें अपनी जरूरतों का नियमन करना चाहिए और स्वेच्छापूर्वक अमुक अभाव भी सहना चाहिए, जिससे कि उन गरीबों का पालन पोषण हो सके, उन्हें कपड़ा और अन्न मिल सके।[1]

मेरी सूचना है कि यदि भारत को अपना विकास अहिंसा की दिशा में करना है, तो उसे बहुत सी चीजों का विकेन्द्रीकरण करना पड़ेगा। केन्द्रीकरण किया जाय तो फिर उसे कायम रखने के लिए और उसकी रक्षा के लिए हिंसा-बल अनिवार्य है। जिनमें चोरी करने या लूटने के लिए कुछ है ही नहीं ऐसे सादे घरों की रक्षा के लिए पुलिस की जरूरत नहीं होती। लेकिन धनवानों के महलों के लिए अवश्य बलवान पहरेदार चाहिए, जो डाकुओं से उनकी रक्षा करें। यही बात बड़े-बड़े कारखानों की है। गाँवों को मुख्य मानकर जिस भारत का निर्माण होगा उसे शहर प्रधान भारत की अपेक्षा—शहर-प्रधान भारत जल, स्थल और वायुसेनाओं से सुसज्जित होगा तो भी—विदेशी आक्रमण का कम खतरा रहेगा।[2]

मो. क. गांधी

(१) स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स आफ महात्मा गांधी, पृष्ठ ३८४.

(२) 'हरिजन', ३०-१२-'३६.

एस० जगन्नाथन्

श्री शंकरलिंगम् जगन्नाथन्, सर्व सेवा संघ के नये अध्यक्ष, सरल, सीधे और विशिष्ट व्यक्तित्ववाले, स्वभाव से नम्र और एकांकी हैं। इनके जीवन का कण-कण सेवा से ओत-प्रोत है। किसान और मजदूरों के इस विनम्र सेवक का सारा जीवन अहिंसक सत्याग्रह की एक शृंखला से भरा हुआ है। सन् १९६५-६६ में मदुराई के मीनाक्षी मन्दिर की भूमि के सम्बन्ध में उन्होंने एक अहिंसक सत्याग्रह का नेतृत्व कर गरीब किसानों की भूमि-सम्बन्धी समस्या का निवारण कराया था। तभी से तमिलनाडु में श्री जगन्नाथन् लोकप्रिय हो गये।

१८ वर्ष की अल्पायु में अपनी शिक्षा का परित्याग कर १९३२ में श्रीजगन्नाथन् राजनैतिक आंदोलन में कूद पड़े। ११४० ई० के मास पास गांधीजी के सम्पर्क में आने के बाद जगन्नाथन्जी ने तमिलनाडु के हरिजन सेवक संघ में कार्य करना स्वीकार किया। १९४२ में भारत छोड़ो आन्दोलन में शरीक हुए और साढ़े तीन वर्ष तक जेल यात्रा की। १९४७ में मदुराई के गांधीग्राम में रचनात्मक कार्यकर्ता संघ की स्थापना की और यहीं से हरिजन तथा पीड़ित गरीबों का उद्धार करने का आन्दोलन छेड़ दिया।

१९५२ में श्रीजगन्नाथन् ने सर्वोदय आन्दोलन में प्रवेश किया और पहली बार लगभग ९ महीने तक विनोबाजी के साथ पदयात्रा में रहे। १९६२ में श्री जगन्नाथन् बेरुत में हुए वार रेसिस्टर्स इण्टरनेशनल के सम्मेलन में गये थे और उसके बाद यूरोप तथा रूस की यात्रा की।

ठाकुरदास बंग

नवगठित सर्व सेवा संघ के मंत्री श्री ठाकुरदास बंग सर्वोदय आन्दोलन में आने के पूर्व गोविन्दराम सेकसरिया कामर्स कालेज (वर्धा) में प्रोफेसर थे। उन्हीं दिनों विनोबाजी ने कांचनमुक्ति का प्रयोग किया जिससे प्रभावित होकर श्री बंग ने सर्वोदय आन्दोलन में रुचि लेनी शुरू की और रचनात्मक जीवन बिताने का निश्चय किया। फलत प्रोफेसरी छोड़कर विनोबा के आन्दोलन में कूद पड़े। शरीरश्रम और खेती ही इनकी जीविका का साधन थी।

महाराष्ट्र में भूदान से लेकर ग्रामदान आन्दोलन तक के प्रमुख नेताओं और मार्गदर्शकों में श्री बंग एक हैं। इनके मार्गदर्शन में वर्धा से मराठी साप्ताहिक "साम्ययोग" प्रकाशित होता है।●

संघ के नये मंत्री

राधाकृष्ण —अलविदा— मनमोहन

हमारे दोनों, मनमोहन और राधाकृष्ण की मूर्तियां दो थीं पर दोनों मूर्तियों में विभूति एक थी, दोनों का संयुक्त व्यक्तित्व था। हम लोगों ने सोचा था कि ६० के बाद के लोगों का निवृत्त जीवन मान लें। तरुण ही संघ की बागडोर सम्भालें। बूढ़ों में हिम्मत कम होती जाती है। वह अपनी चाभी पुत्र को सौंपता है तो डरते-डरते सौंपता है। पर संघ ने इन दोनों की तरुणाई में विश्वास किया। निरंतर तरुणाई ईश्वर का गुण माना गया है। तरुणाई के प्रतीक मनमोहन और राधाकृष्ण हैं। बड़ी ही कुशलता और अनुरता से सर्व सेवा संघ का काम इन दोनों ने चलाया। आप सबकी ओर से इन दोनों का मैं अभिनन्दन करता हूं।

—दादा धर्माधिकारी

तिरुपति का संघ अधिवेशन

तिरुपति में हमने पुराने अध्यक्ष और उनके साथियों को 'विदा' कहा, तथा नये अध्यक्ष और उनके साथियों का स्वागत किया। भाई श्री जगन्नाथनजी, श्री ठाकुरदास बंग, श्री नरेन्द्र दुबे और श्री कान्ता बहन हमारे उन साथियों में हैं जिनकी पहली और अन्तिम निष्ठा ग्रामदान मूलक क्रान्ति में है। उन्होंने सेवा का यह नया अवसर अपने त्याग और समर्थन से प्राप्त किया है। हमने उन्हें आदर दिया है, उनके ऊपर आन्दोलन का उत्तरदायित्व सौंपा है। हमने ऐसा इस विश्वास से किया है कि उनके सबल हाथों में हमारी क्रान्ति सुरक्षित है। तिरुपति के संघ अधिवेशन में और कुछ न भी हुआ होता फिर भी हम उसे याद करते सिर्फ इसलिए कि वहाँ हमें जगन्नाथन्, बंग, नरेन्द्र, और कान्ता जैसे साथी मिले।

वस्तुतः तिरुपति में इसके अलावा दूसरा कुछ महत्त्व का हुआ भी नहीं। बल्कि कई बार तो ऐसा लगता था कि क्या इतने के लिए ही हम लोग इतनी शक्ति, इतना समय और इतना पैसा लगाकर इकट्ठा हुए हैं, यद्यपि इकट्ठा होनेवालों की संख्या भी बहुत सीमित थी। न थे हमारे लोकसेवक और न थे जिलों के प्रतिनिधि, जिन्हें मिलाकर सर्व सेवा संघ बनता है। और, जो आये भी थे उन्होंने किया क्या? किसी चीज की गहराई में वे गये? एजेण्डा बड़ा, विचारणीय मुद्दे बहुत, कागजों का पुलिन्दा मोटा, गम्भीर विषय कितने, लेकिन चर्चा? नहीं के बराबर। हमारे आन्दोलन का उदार से उदार मित्र भी वहाँ हमारी चर्चाओं को देखकर यह नहीं कह सकता था कि यह समुदाय उन क्रान्तिकारियों का है जो कुछ बड़ा सोचने और करने के लिए इकट्ठा हुआ है। आश्चर्य तो यह है कि यह स्थिति उस वर्ष के अधिवेशन में थी जो गांधी का शताब्दी वर्ष है, और जिसमें विनोबा के आन्दोलन का सबसे बड़ा कौतुक शीघ्र पूरा होने जा रहा है—राज्यदान। निश्चित ही इस हालत में सुधार होना चाहिए, लेकिन सुधार तो तब होगा जब हमें चिन्ता हो, यह तलाश करने की कि ऐसी हालत है क्यों? प्रसन्नता की बात है कि प्रबन्ध समिति का ध्यान ग्रामदानी गाँवों के संगठन, लोकसेवकों के संघ और सर्वोदय प्रेमियों के व्यापक भाई चारे की ओर गया है, और एक समिति भी नियुक्त हुई है। पहले दिन की पहली बैठक में श्री वल्लभभाई देसाई ने कहा था कि यह सर्व सेवा संघ की आवाज गाँवों की आवाज है। बहुत बड़ी बात कही उन्होंने, और सही भी कही, लेकिन गांधी की आवाज में एक ओर सत्य का बल था, और दूसरी ओर 'सर्व' का, जिसने उस सत्य को अपना सत्य माना था। हमारे पास सत्य का बल भले ही हो, लेकिन यह कौन कहेगा कि उस सत्य के पीछे सर्व का भी बल है? अगर सर्व का बल न हो तो सर्वसम्मति का क्या अर्थ होगा? शायद सारी कमजोरियों की जड़ इसमें है कि अभी हमारी शक्ति बुनियाद में ही नहीं बनी है। इसी-लिए न दिखाई देते हैं लोकसेवक, न प्राथमिक सर्वोदय मण्डल, और न जिले और न उनके प्रतिनिधि। क्या सर्व सेवा संघ का भव्य-भवन ऐसी दीवारों पर खड़ा होगा, जो खुद खड़ी न हो, और सर्वोदय आन्दोलन ऐसे 'सर्व' पर चलेगा जिसका खुद पता न हो?

हमारे सामने एक चेतावनी मौजूद है। गांधी को पाकर, और अपनी स्वतंत्र शक्ति रखते हुए भी आखिर कांग्रेस ने अपने को खो दिया। कहीं ऐसा न हो कि विनोबा को पाकर भी हमारे लिए वही बात कही जाय। अगर हमने नीचे से ऊपर तक सामूहिक शक्ति नहीं विकसित की तो दूसरा क्या कहा जायेगा? तिरुपति में जो कमी सामने आयी वह सुधार की प्रेरणा दे, यही हमारी कामना और कोशिश होनी चाहिए।

तीन नयी समितियाँ

इस बार प्रबन्ध समिति ने तीन नयी समितियाँ बनायी हैं:— एक, श्री राममूर्ति की अध्यक्षता में ग्रामस्वराज्य समिति; दो, श्री मनमोहन की अध्यक्षता में प्रशिक्षण समिति; तीन, श्री सिद्धराज की अध्यक्षता में नगर-कार्य समिति। हमारा आन्दोलन ऐसी स्थिति में पहुँच गया है कि इन तीनों कामों का बहुत ज्यादा महत्त्व महसूस किया जा रहा है। बिहारदान अब कितनी दूर है? और, बिहारदान के पूरा होते ही ग्रामस्वराज्य का अभियान शुरू हो जाता है। कठिन लड़ाई है, लेकिन इसी में ग्रामदान की परीक्षा भी है। बराबर प्रश्न पूछा जाता रहा है, 'ग्रामदान के बाद क्या?' उत्तर है, 'ग्रामस्वराज्य'। उस ग्रामस्वराज्य की साधना अब शुरू होनी चाहिए—केवल बिहार में ही नहीं, बल्कि तमाम दूसरे जिलादानी क्षेत्रों में। जरूरत है कि ऐसे सभी क्षेत्रों में अभियान के तौर पर विचार शिविर चलाये जायँ, और उसके बाद स्वायत्त ग्रामसभाओं के संगठन का काम सघन तौर पर किया जाय, ताकि एक ओर ग्राम-दान की शर्तें पूरी हों और दूसरी ओर गाँव दलमुक्त राज्य-व्यवस्था के लिए तैयार हों। शुरू में पूरे-पूरे जिले न लेकर चुने हुए प्रयोग क्षेत्र लिये जा सकते हैं, लिये जाने चाहिये भी। हर क्षेत्र को कोई न कोई एक समर्थ साथी अपने हाथ में ले। उस क्षेत्र में लोकशक्ति के संग-ठन और शिक्षण के लिए वह अपने को दूसरी जिम्मेदारियों से मुक्त रखे।

बढ़ते हुए आन्दोलन की माँग है कि पुराने और नये कार्य-कर्ताओं का, चाहे वे संस्था के हों या नागरिक हों, समुचित शिक्षण-प्रशिक्षण हो। एक बार नहीं, बराबर होता रहे, ताकि कार्यकर्ता हर नयी परिस्थिति का मुकाबिला करने में समर्थ हो सके।

अभी तक हमारा लगभग पूरा जोर गाँवों पर ही रहा है। यह हमने जान बूझकर किया, और ऐसा करने में हमने कोई गलती भी नहीं की। ग्रामस्वराज्य की सारी कल्पना ही ग्राम-केन्द्रित है। इसके अलावा किसी खेतिहर देश में क्रान्ति—लोकक्रान्ति—गाँव और खेती-केन्द्रित ही हो सकती है। लेकिन अब समय आ गया है कि ग्रामस्वराज्य की आवाज जोरदार ढंग से शहरों में पहुँचे और शहर अपने→

बम्बई जैसे शहरों में समन्वित जीवन विकसित हो

इस देश के गरीब लोग अब इस कोशिश में हैं कि हमको कोई पूछे, और हमको अगर कोई नहीं पूछता है, तो जो उपद्रव करेंगे उनके पीछे हम जायेंगे। इसी तरह से जो पिछड़ी हुई छोटी-छोटी जमातें हैं उनकी यह कोशिश है कि हमारी अस्मिता को लोग स्वीकारें। नागा, खॅसी, गारो, संथाल, गोंड, भील, कोरकूये, सब अब कह रहे हैं कि हमारी अपनी कुछ अस्मिता है। हमारी अपनी भी एक संस्कृति है। हमारी अपनी भी एक जीवन-पद्धति है। इसका संरक्षण करना चाहते तो हैं हो। ये नारे है। मित्रो, ये सारे भ्रम हैं। लेकिन ये नारे लोगों के दिल को पकड़ लेते हैं। क्या ये खॅसी, नागा, संथाल—जैसे आज तक रहते थे वैसे रहना चाहते हैं? उनमें से कोई वैसा नहीं रहना चाहता है। नागालैंड में सारे पढ़े-लिखे लोग यूरोपियन पोशाक पहनते हैं। लड़कियाँ सब यूरोपियन पोशाक में चलती हैं। खॅसी सब पढ़े-लिखे हैं। रोमन लिपि में लिखते हैं, अंग्रेजी बोलते हैं। आधुनिक जीवन सब अपनाना चाहते हैं। लेकिन इसके साथ-साथ अपनी अस्मिता को भी रखना चाहते हैं। इसका नतीजा यह है कि अलगाव की एक भावना जोर पकड़ रही है।

द्विराष्ट्रवाद बनाम बहुराष्ट्रवाद

जयप्रकाश बाबू ने एक दफा कहा कि छोटे छोटे राज्य होंगे तो अच्छा होगा। लोगों ने इसका मतलब यह किया कि छोटे राज्य से मतलब अपने जाति का राज्य; परन्तु छोटे राज्य से मतलब है व्यापक राज्य, जो छोटे पैमाने पर होगा। थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि छोटे राज्य वांछनीय हैं। तो भी वे मिले जुले और व्यापक होने चाहिए। व्यापकता और विशालता में अंतर है। विशालता केवल आकार में होती है। आप कल्पना कीजिए। दस हजार आदमी बैठे हुए हैं लेकिन सब एक ही जाति के हैं, सभा बहुत बड़ी है। वह विशाल है लेकिन व्यापक नहीं है। व्यापकता तब होती है जब वह सबका समावेश करती है। आकार छोटा हो, लेकिन जिसमें सबका समावेश करने की वृत्ति हो वह व्यापक है। छोटे राज्य हों लेकिन व्यापक हों तो छोटे राज्यों से लाभ होगा। छोटे राज्य हों लेकिन व्यावर्तक हों, व्यावर्तक से मतलब अपवर्जक (exclusive) अपनी भाषा के, अपने सम्प्रदाय के, अपनी जाति के, तो ये छोटे राज्य अपनी मानवता का ह्रास करेंगे और वे छोटे राज्य राष्ट्रीयता का नाश करेंगे।

दादा धर्माधिकारी

हमारे मित्रों ने कहा कि हमारा यह देश बहु-राष्ट्रीय (multi national) है।

बहुराष्ट्रीय से मतलब, जिसमें छोटे-छोटे उपराष्ट्र हैं। जितनी भाषाएँ उतने राष्ट्र, जितनी जाति (race) मानववंश—उतने राष्ट्र—यह उनका चित्र है। इसलिए यह छोटे-छोटे राष्ट्रों का एक संघ (फेडरेशन) होगा ऐसी उनकी कल्पना है। यह अवैज्ञानिक है और अवास्तविक है। इसमें जरा भी वास्तविकता नहीं है। अगर इस देश के लिए द्विराष्ट्रवाद मिथ्या है, तो आजकल जो लोग बहुराष्ट्रवाद का प्रतिपादन कर रहे हैं उनका बहुराष्ट्रवाद भी मिथ्या है, भ्रम है। एक मूलभूत एकता बहुत पुराने जमाने से इस देश में रही है। राष्ट्रीयता तो नहीं रही, लेकिन एक मूलभूत एकता रही। इसलिए हमारे इस देश की उपमा किसी दूसरे देश के साथ नहीं दी जा सकती। दुनिया में बहुभाषिक राष्ट्र हैं, दुनिया में ऐसे भी राष्ट्र हैं जिनमें अलग-अलग मानववंश रह रहे हैं। लेकिन उन सबसे हमारा देश कुछ अलग है। इसलिए जैसे क्रान्तिवाले कहते हैं रेडीमेड क्रान्ति कहीं से नहीं आ सकती, उसी तरह से कोई राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की नकल इस तरह से नहीं बन सकता है। यह बहुराष्ट्रवाद हमारे देश में जड़ पकड़ रहा है। बेलगाँव का वाद, बहुराष्ट्रवाद का झगड़ा है। नदियों के झगड़े बहुराष्ट्रवाद के झगड़े हैं। सामान्य मनुष्य जिस भाषा को समझता है और जिस भाषा में व्यवहार करता है उस भाषा में राज्य का *शिक्षण और राज्य का कारोबार* चलना चाहिए। माँग उचित है। लेकिन भिन्न भाषिक लोग एक साथ रहें इसकी क्या कोशिश हो रही है? भिन्नभाषिक जनता एक दूसरे के निकट आये, क्या इसकी आवश्यकता इस देश को नहीं है? और अगर है, तो उस दिशा में कदम कैसे बढ़ायेंगे? कदम बढ़ चुका है। अंग्रेजों के राज्य में ही बढ़ चुका है। बम्बई जैसे शहर, जहाँ पर अनेक भाषाएँ बोलनेवाले लोग इकट्ठा हो गये हैं। वह बहु-भाषिक है, इसलिए यहाँ पर भाषिक दुराग्रह, दुरभिमान नहीं होना चाहिए। और, यहाँ नहीं होना चाहिए, तो कहीं नहीं होना चाहिए। भिन्न-भाषिक लोग एक दूसरे के साथ रह सकें यह परिस्थिति देश के नेताओं को पैदा करनी चाहिए। और, अगर नेता नहीं करते हैं तो हमको कहना चाहिए कि यह परिस्थिति आनी चाहिए। इसका एकही

→विकास के लिए ग्राम स्वराज्य के मूल्य ग्रहण करें। क्या गाँव और क्या शहर, दोनों के लिए क्रान्ति के मूल्य एक ही हैं।

इन तीनों समितियों के काम बहुत कुछ परस्पर पूरक हैं। फिर भी काफी हद तक अलग-अलग भी किये जा सकते हैं। इसलिए तीन समितियाँ बनायी गयी हैं। हमारा निवेदन है कि हर साथी अपनी रुचि, शक्ति और परिस्थिति के अनुसार इन समितियों से सम्पर्क स्थापित करे। उसे स्थानीय तौर पर अपने चारों ओर एक सक्रिय 'सेल' बनानी पड़ेगी। ऐसी सक्रिय 'सेलें' गाँव-गाँव, मुहल्ले-मुहल्ले में होनी चाहिए ताकि हर जगह नयी चेतना और नयी सक्रियता की लहर दिखाई दे।

प्रबन्ध समिति ने सही वक्त पर सही कदम उठाया है। हम अपनी-अपनी जगह रहकर उस कदम में *कदम मिलाने की कोशिश* करें।

एक सौम्य प्रवृत्ति ग्रामदान के बाद विकास की है। नयी नहीं है, पुरानी है। कई क्षेत्रों में विकास के सघन काम होते रहे हैं जिन्हें अब तक के मंत्री श्री राधाकृष्णनजी देखते रहे हैं। अब दिल्ली गान्धि प्रतिष्ठान में चले गये हैं लेकिन विकास के काम को प्रबन्ध समिति की ओर से वह देखते रहेंगे।

सूत्र है—हमको भाषा से मनुष्य अधिक प्रिय है—पहले मनुष्य बाद में भाषा।

सम्प्रदायवाद बनाम प्रतिसम्प्रदायवाद

अब सम्प्रदाय को लें। इस्लामियत कौमियत है कहाँ? पाकिस्तान में इस्लामियत अगर कौमियत नहीं है तो हिन्दुत्व भी राष्ट्रीयत्व नहीं है। हिन्दुत्व भी भारतीयत्व नहीं है। पाकिस्तानवादी सम्प्रदायवादी है। हिन्दुत्ववादी प्रतिसम्प्रदायवादी है। तो सम्प्रदायवाद चाहे असली हो चाहे जवाबी हो, दोनों की शक्ल एक है। दोनों के गुणधर्म एक हैं। जो साम्प्रदायिक संस्थाएँ और संगठन इस देश में हैं उनकी तरफ आपको ध्यान देना चाहिए। उनमें से जो ऐसे हैं जो अपने सम्प्रदाय का सम्बन्ध नागरिकता से जोड़ना चाहते हैं,—उनको बहुत खतरनाक मानना चाहिए। जो सम्प्रदाय का सम्बन्ध नागरिकता से, सम्प्रदाय का सम्बन्ध राज्य से, राष्ट्र से जोड़ना चाहते हैं वे खतरनाक हैं।

पुराना शब्द हमारे यहाँ है—विश्व-कुटुम्ब। मैं कई बार दोहरा चुका हूँ कि कौटुम्बिकता में हार्दिकता होती है और नागरिकता में औपचारिकता होती है। तो अब नागरिकता को कौटुम्बिकता की दिशा में मोड़ना होगा। और इसका आधार होगा—मैत्री, मित्रता (Fellowship) दूसरा इसका आधार हो नहीं सकता। यह एक नया समाज कायम करने की कोशिश है। विश्वामित्र की तरह यह समानान्तर (Parallel) सृष्टि नहीं। महादेव के मुकाबिले में विश्वामित्र ने कहा कि मैं अपनी अलग सृष्टि बनाऊँगा—जैसे समानान्तर सरकार (Parallel Govt.) वाले होते हैं—प्रतिसरकार की तरह प्रतिसृष्टि का निर्माण। और उसने इस तरह की कोशिश की इसलिए उसका नाम विश्वामित्र हुआ। असल में वह समास है—विश्व और अमित्र। विश्व और मित्र का अगर समास होता तो विश्वमित्र होना चाहिए। विश्व और अमित्र हुआ। लेकिन वह तपस्वी था। और सब जानते हैं कि तपस्या से शक्ति प्राप्त होती है। उस शक्ति का उपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी। वह विश्वामित्र बड़ा क्रोधी था। उसने कहा कि मेरे नाम का अर्थ विश्व और अमित्र अगर कोई करेगा तो वह जी नहीं सकेगा। तो फिर वैय्याकरणीय ने क्या किया? व्याकरण में पाणिनी ने कहा कि भाई विश्वामित्र ऋषि के नाम में विश्वमित्र ही इसका अर्थ होगा। विश्वामित्र नहीं होगा। एक नया सूत्र बना दिया। ऐसा आज का विज्ञानवाला कर रहा है। आज का वैज्ञानिक यह कर रहा है। वह सत्ताधारियों के इशारे पर नाच रहा है। वह नहीं नाचेगा तो जी नहीं सकेगा। नतीजा यह है कि फ्रान्स में अब बुद्धिमान लोग और साहित्यिक आगे आ रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि इन क्रान्तिकारियों ने, पुराने समाजवाद ने, पुराने साम्यवाद ने हमको धोखा दिया। अब हमको यह निश्चय कर लेना होगा कि हम डंडेवाले के सामने सिर नहीं झुकायेंगे। पैसेवाले को सलाम नहीं करेंगे। क्या यह निश्चय आप और हम कर सकते हैं? बस, यह है कसौटी का अन्तिम प्रश्न।

शान्तिसैनिक क्या करें?

आज देखिए न, मृत्यु का बोलबाला है। मृत्युलोक तो है ही। यहाँ प्रतिष्ठा जीवन की होनी चाहिए थी। एक कहता है कि मेरी बात नहीं मानोगे तो अपने आपको जला लूँगा। दूसरा कहता है कि अपने आपको जलाऊँगा लेकिन तुमको भी साथ साथ जलाऊँगा। याने जो मरने और मारने को तैयार है, परिस्थिति उसके हाथ में चली जाती है। हमारे सामने सवाल यह है कि क्या हम भी अपने जीवन को उत्सर्ग करने के लिए तैयार हैं? पाकिस्तान में बेचारे अयूब को कहना पड़ा कि लोग आतंकित होकर जी रहे हैं। हमारे यहाँ कोई कहता नहीं है। लेकिन साधारण नागरिक आतंक में जी रहा है। हड़ताल की जरा सी बात कहीं निकल जाय, दुकानें एकदम बन्द हो जाती हैं। हर सभ्य नागरिक अपने-अपने घर में छिपा रहता है। उसको कोई पूछता नहीं, देखता नहीं, क्योंकि वह उपद्रवकारियों का मुकाबिला नहीं कर रहा है। लोग हमसे कहते हैं कि सिर्फ सरकारी सम्पत्ति जलायी गयी। सरकारी सम्पत्ति इसलिए जलायी गयी कि सरकार विरोध में खड़ी मालूम होती है। हमारी आपकी सम्पत्ति इसलिए नहीं जलायी गयी कि हम कहीं हैं नहीं। हर मौके पर आप जा सकेंगे और रोक सकेंगे, असम्भव है। सरकार की पुलिस और फौज नहीं कर सकती है तो मुट्ठीभर शान्ति-सैनिक कर सकेंगे? लेकिन एक भी मौका अगर ऐसा आ जाता है जहाँ आप जान की बाजी लगाकर अड़ जाते हैं, तो मैं आपसे विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि सारी खासियत बदल जाती है। सोचने लगेंगे लोग। यहीं आकर हमारा काम आज रुक गया है। हमको सिर्फ शान्ति-पाठ करनेवाला माना जाता है। यह नहीं माना जाता कि शान्ति के लिए हम कुछ करेंगे भी। उपद्रवकारी तो हथेली पर सर लेकर आगे आ गया है। हमारा सर कन्धे पर है। लेकिन हथेली पर आने के लिए उद्यत है, यह कल्पना हमारे विषय में हो नहीं सकती है। कहीं ऐसा न हो कि हमारी शान्तिसेनाओं के सारे समारोह पुलिस की संरक्षिता में करने हों। मैंने कहा कि अगर मैत्री हम इस देश में कायम करना चाहते हैं तो जो बहुभाषिक शहर हैं बम्बई जैसे—ये नर्सरीज बन जाने चाहिए। इस प्रकार के प्रयास, इस पौधे का बीजारोपण, उसका संवर्धन यहाँ होना चाहिए। मैंने ऐसे लोग भी देखे हैं जो अपने प्यारे कुत्ते के लिए अपनी जान दे देते हैं। तो क्या ऐसे लोग भी इस देश में आगे नहीं आ सकते? मैं उनसे नहीं कह रहा हूँ जो मेरे पीढ़ी के हो गये हैं। जिनकी आयु थोड़ी बच जाती है उनको आयु से बहुत ज्यादा प्रेम हो जाता है। लेकिन जिन लोगों में आज यह उमंग है कि यह देश हमारा है, इसमें हमको जीना है, जो नौजवान हैं उनके सामने मारा नक्शा है।

कौटुम्बिकता का विकास हो

मैंने आपके सामने रखा कि अगर द्विराष्ट्रवाद इस देश के लिए भयानक है तो बहुराष्ट्रवाद उससे अधिक भयानक है। बहुराष्ट्रवाद इस देश में नहीं पनपेगा, ऐसा संकल्प कर लेना चाहिए। बहुराष्ट्रवाद भाषा में से आया, जाति में से आया, वर्ग में से आया और सम्प्रदाय में से आया। इन सबका हम विरोध करेंगे। उपद्रवकारियों में वीरवृत्ति लोगों को दिखाई देती है। वह उद्दण्डता, अत्याचारी की वृत्ति है, वीरवृत्ति नहीं, लेकिन

तंजौर में भूमिवानों और भूमिहीन श्रमिकों का आपसी तनाव : उसके मूल कारण

[पिछले माह श्री शंकरराव देव ने तंजौर जिले के दो मुख्य प्रखण्डों की पद यात्रा की। पद-यात्रा के बाद उन्होंने तंजौर की भूमि और वहाँ के किसानों की समस्याओं के बारे में एक वक्तव्य प्रसारित किया। नीचे हम श्री शंकरराव देव के वक्तव्य का मुख्य अंश प्रकाशित कर रहे हैं। सं०]

तंजौर की भूमि समस्या मूलरूप में राज्य के दूसरे जिलों या अन्य राज्य जैसी ही है। लेकिन तंजौर की भूमि या खेती सम्बन्धी कुछ विशेष समस्याएँ हैं जिनका तत्काल हल निकलना निहायत जरूरी है। इन खास समस्याओं के कारण भूमिवानों और उनकी खेती में काम करनेवाले मजदूरों के आपसी सम्बन्धों में तनाव पैदा हो गया है। इस तनाव के चलते वहाँ कुछ हत्याएँ हो चुकी हैं और कुछ मासूम बच्चे और निरीह स्त्रियाँ जीवित ही जला दी गयीं। जाहिर है कि तंजौर में हमें ग्रामदान या जिलादान-अभियान के साथ-साथ इस तात्कालिक समस्या के समाधान के लिए भी काम करना है। मुख्य रूप से इसी तथा कुछ अन्य कारणों के चलते हमने पूर्वी तंजौर के नागापट्टीनम् तालुका के किलवेलर तथा तिरुवरूर प्रखण्डों में सघन पदयात्रा करने का निर्णय किया; क्योंकि इन्हीं प्रखण्डों में उपर्युक्त घटनाएँ घटी थीं।

हम यह मानते हैं कि इस देश की भूमि की कठिन समस्या का स्थायी और एकमात्र समाधान ग्रामदान ही है क्योंकि ग्रामदान गाँव के विभिन्न तबके के लोगों में अच्छे सम्बन्धों की स्थापना करके ग्राम-समुदाय का अस्तित्व कायम करता है। अतः ग्रामदान द्वारा सिर्फ भूमि की समस्या ही नहीं, बल्कि आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक समस्याएँ भी सुलझेंगी।

अपनी पदयात्रा के दौरान हम मुख्यरूप से ग्रामदान करने और ग्राम-समाज को

श्री शंकरराव देव

स्थापना करने पर जोर देते थे। यह कार्यक्रम जारी रखते हुए हम यह भी पता लगाने की कोशिश करते कि इस क्षेत्र के तात्कालिक झगड़े के असली कारण क्या हैं। भूमिवानों और खेतिहर मजदूरों से मिलकर हमने यह भी मालूम करने की कोशिश की कि इस समस्या का आपसी तौर पर बढ़िया समाधान किन उपायों से सम्भव होगा। भूमिवान और खेतिहर मजदूर, दोनों ने हमारी पद-यात्रा का स्वागत किया। ये लोग अच्छी संख्या में हमारी ग्रामसभाओं में आते थे। इसके अलावा हमने उनके साथ अकेले और समूह में निजी ढंग की भी बात-चीत की। बात-चीत के दौरान झगड़े के जिन कारणों का बारबार जिक्र किया गया वे निम्नलिखित हैं—

पूरे तंजौर जिले में हरिजनों की संख्या कुल आबादी का २३% है। पूर्वी तंजौर में हरिजनों की आबादी २९% है और पश्चिमी क्षेत्र में सिर्फ १८ प्रतिशत। तंजौर जिले में हरिजन समुदाय ही मुख्य रूप से खेती में मजदूरी का काम करता है। बहुत कम हरिजनों के पास खेती की अपनी जमीन है और जो है भी वह बहुत छोटे टुकड़ों में है। हरिजनों में से अधिकांश लोगों की रहने की छोटी झोपड़ियाँ भी दूसरों की भूमि पर बनी हैं। सही अर्थ में ईसा की तरह ही प्रभु के पुत्र ये गरीब जन कह सकते हैं कि आदमी की औलाद को इस दुनिया में सुस्ताने की कहीं जगह नहीं है।

तंजौर के हरिजनों की स्थिति

हम जहाँ भी गये, हरिजन भाइयों ने हमें अपनी झोपड़ियों में रहने को आमन्त्रित किया। मैंने इस निमंत्रण को उसी प्रायश्चित की भावना से स्वीकार किया जो गांधीजी चाहते थे। मुझे यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उनकी हालत दर्दनाक थी। जो लोग मजदूरी सम्बन्धी विवाद के लिए हरिजनों को दोषी ठहराते हैं और मानते हैं कि वे (हरिजन) कम्युनिस्टों द्वारा गुमराह हुए हैं वे भी बिना अपवाद के यह कबूल करते हैं कि हरिजनों की बस्तियों की हालत दयनीय है। हरिजनों की झोपड़ियों में जाकर रहना मेरे लिए हमेशा एक वेदनापूर्ण अनुभव रहा है।

यह भूलने की बात नहीं है कि हरिजन और भूमिवान (जो प्रायः सवर्ण हिन्दू हैं) जब कभी एक दूसरे से मिलते हैं तो प्रायः खेतों में मिलते हैं या गाँव में किसी अन्य काम के बहाने, जो अक्सर किसी-न-किसी प्रकार का शोषण का ही काम होता है। गाँव के सामुदायिक काम में बराबरी के सदस्य की हैसियत से वे बहुत कम मिलते हैं और हरिजनों की झोपड़ियों में तो कभी नहीं मिलते।

तनाव की जड़ें

इस एक कारण के साथ ही इस क्षेत्र में खेती सम्बन्धी एक खास रिवाज के प्रचलित होने के कारण इस क्षेत्र की आर्थिक समस्याएँ

लोगों को उसमें वीरवृत्ति दिखाई देती है। अगर यही सिलसिला चला तो अराजकता आयेगी। अराजकता से लाभ सिर्फ पाकिस्तान और चीन का होगा। चीन और पाकिस्तान की लॉबी आज इस दिशा में कदम बढ़ा रही है। हमको सावधान हो जाना चाहिए। इसलिए आपके शहर जैसे जितने शहर हैं, जिन शहरों में एक सम्मिलित जीवन है, जिसमें सारी भाषाओं के लोग हैं और सारे सम्प्रदायों के लोग हैं, उनके सम्मिलित तथा समन्वित जीवन का विकास होना चाहिए। इस संवादी नागरिकत्व का, जिसे मैंने कौटुम्बिकता कहा, विकास यहाँ हमको करना है।

क्या कोई बना-बनाया कार्यक्रम है? मित्रो, जीवन में कहीं बने-बनाये कार्यक्रम नहीं होते। जीवन नित्य विकासमान है। यहाँ रेडीमेड कपड़े नहीं चलते। आज के बने कपड़े दो महीनों में छोटे हो जाते हैं। निरन्तर खोज चलेगी और निरन्तर प्रयोग चलेगा। शोध और प्रयोग, जो गांधी के जीवन का रहस्य है, जो विनोबा के जीवन का रहस्य है। वह रोज शोध करता है, रोज प्रयोग करता है। इन प्रयोगों के अनुकूल पूरक और पोषक प्रयोग अन्य क्षेत्रों में हमको और आपको करने होंगे।

—बम्बई में कार्यकर्ताओं के बीच किया भाषण

और अधिक उग्रतर उत्तेजक बन रही है।

यहाँ का काम मुख्यतः मौसमी होता है। खेतिहर मजदूर खेती की आवश्यकता के अनुसार, जुताई, रोपाई, निराई और कटाई का काम करते हैं। खेती का मौसम आने पर इन कामों के लिए मजदूरों की इतनी जरूरत पड़ती है कि स्थानीय मजदूरों द्वारा पूरा काम अच्छी तरह नहीं हो पाता। इसलिए बाहर से मजदूरों को बुलाना ही पड़ता है। ऐसी स्थिति में जबकि एक खास मौसम में बाहर से मजदूर बुलाना पड़े, स्थानीय स्थायी मजदूरों और बाहर से आनेवाले अस्थायी मजदूरों में प्रतिद्वंद्विता की स्थिति का बनना और इसके चलते मजदूरी की दर का घटना रोका नहीं जा सकता। भूमिवानों और मजदूरों के बीच हुए दो समझौतों में इस बात का खास जिक्र किया गया है कि यदि स्थानीय मजदूरों को काम में लगने का मौका दिया गया हो तो बाहर से भी मजदूर बुलाये जा सकते हैं। समझौते में इस बात का भी निःसंदेह जिक्र किया गया है कि स्थानीय मजदूरों में ऐसे लोगों को काम में लगाया जायेगा जो "अनुशासनहीन, निकम्मे और आलसी" न हों। मजदूर-संगठन का काम करने का जिन्हें अनुभव है वे इसके बहाने मनचाहे किसी भी आदमी को काम से हटा सकते हैं।

सवर्ण हिन्दुओं का उत्तरदायित्व

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि तंजौर के स्थायी मजदूर हरिजन हैं। हरिजनों में जो बुराइयाँ पायी जाती हैं और जिनके लिए वे बदनाम हैं उसके प्रति सवर्ण हिन्दुओं की कोई जिम्मेदारी नहीं है, ऐसा नहीं है। यदि हरिजनों में बुराइयाँ मौजूद हैं तो इसलिए हैं कि हजारों वर्षों से न सही, लेकिन सैकड़ों वर्षों से इन हरिजनों को समाज-बहिष्कृत होकर जीवन बिताना पड़ रहा है। वे समग्र-जीवन की मूलधारा से अलग हो गये हैं। सामाजिक जीवन की मूलधारा में रहने पर ही आदमी के भीतर आदमियत के गुण विकसित होते हैं।

यद्यपि हरिजन अपने इलाके में स्थायी रूप से रहते हैं, फिर भी तंजौर के खेतिहर मजदूरों की (एकाध-सूत्र) सुरक्षा के लिए सन् १९५२ में जब कानून बना तो वहाँ के अधिकांश जमींदारों ने अपने मजदूरों को काम से हटा दिया। इस प्रकार जो कानून जमींदारों से खेती के मजदूरों की रक्षा के लिए बनाया गया था उसी की आड़ में वे कार्यमुक्त कर दिये गये। इस तथ्य को स्थानीय जमींदार स्वीकार करेंगे यद्यपि कार्यमुक्त (लिबरीडेशन) शब्द को वे बहुत सख्त मानेंगे। लेकिन मैं इस इलाके के भूमिवानों से कह सकता हूँ कि यह उन्हीं की कोई खास बात नहीं है। आजादी मिलने के बाद जहाँ भी कानूनन भूमिहीनों या खेतिहर मजदूरों के हित की रक्षा करने की कोशिश की गयी वहाँ वहाँ कानूनी कोशिश नाकामयाब रही। लेकिन तंजौर से 'पन्नायलों' के आने से एक नयी उलझन पैदा हुई। उस इलाके में मौके-मौके पर मजदूरी करनेवालों की तादाद बहुत बढ़ गयी। इसके साथ ही ऐसे मजदूरों की मजदूरी की दर भी घट गयी। तंजौर में फसल की कटनी के समय "कलावदी" के नाम से मजदूरी का एक रिवाज चलता आया है जिसके अनुसार काटी गयी फसल के १४ बोझ में से कटिया करनेवाले मजदूर को मजदूरी के रूप में डेढ़ बोझ मिलता है। कई जमींदारों ने आपसी चर्चा में हमसे कहा कि फसल-कटाई की यह पद्धति बन्द होनी चाहिए।

मन्दिरों और मठों की भूमिका

इस इलाके की खेती की काफी भूमि मन्दिरों और मठों के कब्जे में है। इस वजह से यहाँ का मसला और भी उलझ गया है। हमें बताया गया कि मन्दिरों और मठों की जमीन का इन्तजाम बहुत से बिचौलियों (मिडिलमैन) के जरिये होता है। इस विशेष परिस्थिति के कारण इस इलाके में ग्रामदान और जिलादान प्राप्त करने में कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। स्वामी 'कुन्नकुडी आदि कालार' की चेष्टा के फलस्वरूप मैं इस इलाके के दो मुख्य मठों के मठाधीशों से मिला। मठाधीशों का रुख सहानुभूतिपूर्ण था लेकिन जैसा कि इस तरह के मामलों में आम-तौर से होता आया है—समस्या पेश होती है कि पहले कौन हिम्मत करके अपना कदम उठाये। मुझे आशा है कि मन्दिरों के प्रबन्धक और मठाधीश इस दिशा में काफी दूर तक आगे आयेंगे।

मठाधीशों से बातचीत के समय मैंने उनसे कहा कि चूँकि समस्या सामाजिक ढंग की है इसलिए इसके समाधान में आपको पहल लेनी चाहिए। यदि आप ऐसा करेंगे तो जीवन की इस दुखदायी वास्तविकता के प्रति सारा समुदाय सजग हो जायेगा और आपके नेतृत्व तथा मार्गदर्शन में कार्यरत होगा। मैं तमिलनाडु के प्रति उसके मन्दिरों के लिए और यहाँ के लोगों के प्रति उनकी मन्दिर-संस्कृति के लिए अनुराग रखता हूँ। लेकिन इसीलिए मैं लोगों से कहता हूँ कि इस मन्दिर-संस्कृति के सर्व में सबको शरीक होना चाहिए और किसी के प्रति इसमें पक्षपात नहीं होना चाहिए। अब वह युग नहीं रहा जबकि भूमिवान मन्दिर के लिए जमीन दान देते थे और खेती करनेवाले मजदूर भगवान और उसके भक्तों के लिए अपने जीवन भर खटते थे और उनके बाद उनकी नयी पीढ़ी भी खटती जाती थी।

समस्या कैसे सुलझेगी ?

जब हम इस इलाके की सामाजिक और विशेष रूप से आर्थिक समस्या पर विचार करते हैं तब हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि यहाँ के हरिजनों की जीविका का एकमात्र जरिया खेती ही है। जब खेती का कोई काम नहीं होता तो उनके या उनकी औरतों के लिए और कोई काम नहीं रहता। इस समस्या के सुलझाने के लिए न तो रचनात्मक संगठनों द्वारा कोई रचनात्मक प्रयास किया गया और न राजनीतिक दलों द्वारा। मुझे साम्यवादियों के लिए खेद है क्योंकि वे आमतौर पर इस तरह के किसी रचनात्मक और समाज-कल्याणकारी कार्यों में विश्वास नहीं करते। शुरुआत के तौर पर यहाँ कुछ इस प्रकार के कृषि-पूरक उद्योग शुरू होने चाहिए जिसमें खेती का काम न होने पर मजदूर और विशेष कर के उनकी स्त्रियाँ लग सकें। इससे हरिजनों का सिर्फ आर्थिक लाभ नहीं होगा बल्कि उनके जीवन को उन्नत करने की एक नयी राह खुल जायेगी।

जैसा कि स्वाभाविक है, इस समुदाय में साम्यवादी अपनी विचार-धारा और अपनी कार्य-पद्धति के अनुसार काम कर रहे हैं। इस इलाके के तीनों विधायक साम्यवादी दल के हैं। इस वस्तुस्थिति से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यहां के श्रमिकों पर उनका कितना जोरदार प्रभाव है।

चूंकि साम्यवादी लोगों का श्रमिक समुदाय पर जबर्दस्त असर है, इसलिए बहुत से भूमिवान इस समस्या को राजनीतिक कहकर टाल देते हैं। वे कहते हैं कि यह आर्थिक समस्या साम्यवादियों द्वारा पैदा की गयी एक बनावटी समस्या है। स्वभावतः भूमिवान यह भूल जाते हैं कि इस समस्या का आर्थिक असर तो है ही इसके साथ ही सामाजिक असर भी है। सिर्फ समस्या को टाल देने से वह नहीं सुलझती। ऐसा करने से उसकी कीमत आपको ही चुकानी पड़ेगी। किसी समस्या को सुलझाने का मतलब है। उसे समझना एक दृष्टि से देखा जाय तो कोई समस्या शुद्ध राजनीतिक नहीं है। राजनीति का प्रभाव पूरी जिन्दगी को छूना है। हमें यह स्वीकार करना होगा कि प्रत्येक राजनीतिक समस्या अन्ततोगत्वा एक सामाजिक आर्थिक समस्या बन जाती है। यदि मौजूदा परिस्थिति से साम्यवादी लाभ उठा रहे हैं और उसको अपने उद्देश्य की पूर्ति में इस्तेमाल कर रहे हैं तो जो लोग इस समस्या को सुलझाना चाहते हैं उनके लिए यह और जरूरी हो जाता है कि वे और गहराई में जायें और जो सच्चाई दीखे उसे कबूल करें।

इस इलाके की इन अजीब परिस्थितियों के कारण यहाँ की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं में एक जोरदार तेजी और सरगर्मी का संचार हो गया है। इस सरगर्मी को शान्त करने की प्रक्रिया को भी उतनी ही तेजी से सक्रिय करना होगा।

हरिजनों का ग्राम समुदाय में पुनर्ग्रहण

मेरी राय है कि इस समस्या को सुलझाने के लिए एक समग्र दृष्टिकोण की आवश्यकता है। अगर हमें इस समस्या का वास्तविक और स्थायी समाधान ढूंढ निकालना है तो हमें इस समस्या को इस रूप में लेना है कि कैसे इलाके का पूरा हरिजन समुदाय ग्राम समुदाय के अन्दर फिर से अपना सामाजिक स्थान प्राप्त करे। इस पुनर्ग्रहण (रिक्लेमेशन) का अर्थ यह होता है कि इस समस्या को सुलझाने के लिए जीवन के सभी क्षेत्रों यानी आर्थिक, सामाजिक, और इससे भी आगे बढ़कर आध्यात्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में भी एक साथ प्रयास करके इसके तरीके और साधन ढूंढना है। मैं मानता हूँ कि तमिलनाडु सर्वोदय संघ और हरिजन सेवक संघ जैसी संस्थाओं को इसके लिए आगे आकर पहल करना चाहिए।

भूमिवान अपने ढंग से इस समस्या के सुलझाने में मदद दे सकते हैं। जहाँ तक 'कालावदी' जैसी अन्यायपूर्ण प्रथा का प्रश्न है, मैं आशा करता हूँ कि वह शीघ्र समाप्त कर दी जायेगी। लेकिन मजदूरी की समस्या उस समय तक बनी रहेगी जब तक समाज में भूमिवान और कृषक मजदूर ग्रामीण समुदाय के अंगरूप में मौजूद रहेंगे।

मुझे बताया गया है कि मजदूरी सम्बन्धी विवाद के सुलझाने के लिए एक व्यक्ति के जिस आयोग की नियुक्ति सरकार द्वारा की गयी है उसका कार्यक्षेत्र सीमित रखा गया है फिर भी मैं आशा करता हूँ कि वह आयोग एक ऐसे समाधान का सुझाव पेश करेगा जो बहुत समय तक उपयोगी साबित होगा। इस समस्या पर विचार करते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आज हमारे देश में आमतौर से जीवन की आवश्यकताओं पर आधारित मजदूरी की मांग पेश की जा रही है। मेरी राय में इस जटिल समस्या का दीर्घकाल तक काम आनेवाला एक ही उपाय हो सकता है और वह यह है कि इसके लिए एक स्थायी संगठन बना दिया जाय जिसे भूमिवान और श्रमिक, दोनों का विश्वास प्राप्त हो। गांधीजी ने अहमदाबाद के सूती मिल के मालिकों और मजदूरों के प्रसंग में एक ऐसा ही संगठन स्थापित किया था।

तंजोर के भूमिवानों से मेरी अपील है कि वे अपने इलाके के मजदूरों से अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने का वातावरण बनायें। मुझसे कई भूमिवान कह चुके हैं कि वे दिल से ऐसा चाहते हैं। अब उनकी ओर से पहल शुरू होनी चाहिए। इसकी शुरुआत के लिए वे कम-से-कम इतना तो करें ही कि हरिजनों ने भूमि के जितने टुकड़े पर अपनी झोपड़ी बना ली है उतने पर उनकी मालिकी मान लें। वैसे यह एक मामूली सी बात होगी लेकिन आज के वातावरण में यह एक बड़ी चीज हो जायेगी। मुझे आशा है कि अच्छाई की विजय होगी ही।

(मूल अंग्रेजी में)

उड़ीसा का पहला जिलादान : कोरापुट

महीनों के कठिन परिश्रम के बाद कोरापुट जिलादान का संकल्प पूरा हुआ और १७ अप्रैल, १९६६ की शाम को जैपुर (कोरापुट) में जिलादान का समर्पण-समारोह प्रसिद्ध गांधीवादी नेता श्री शंकरराव जी देव की अध्यक्षता में सानन्द सम्पन्न हुआ। समारोह के पहले लगभग ४०० शान्तिसैनिकों का जुलूस जैपुर शहर की परिक्रमा करता हुआ सभास्थल पर गया। जिले के ६ अनुमण्डल और ४२ विकास-खण्डों का दान श्री वृन्दावन बेना ने अध्यक्ष को समर्पित किया। विनोबाजी की कल्पना कोरापुट में आज साकार हुई। उनकी १९५५ की उड़ीसा-पदयात्रा में प्रवाहित होनेवाली "ग्रामदान गंगा" आज जिलादान तक आ गयी है और आगे वह ग्राम स्वराज्य का रूप धारण करने जा रही है।

इस अवसर पर सर्व सेवा संघ के तत्कालीन अध्यक्ष श्री मनमोहन चौधरी ने जिलादान का स्वागत करते हुए कहा कि आज बड़े आनन्द का दिन है। सारे भारत में १७ जिलादान हो चुके हैं और आज कोरापुट १८वां जिलादान की शृंखला में जुड़ गया है। उन्होंने आज के राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय संदर्भ में जिलादान के विशिष्ट महत्त्व पर विस्तार से प्रकाश डाला।

१९५५ में अपनी कोरापुट यात्रा के समय

विनोबाजी ने कहा था : "हम सोचते थे कि इतना औदार्य इन ग्रामीणों को किसने सिखाया ? हमको यही उत्तर मिला कि ये पहाड़ों की सन्निधि में रहते हैं, जहां से नदियां बहती हैं, इसलिए इनके हृदय भी ऐसे ही प्रवाहित, उदार और उदार बनते हैं।" इसलिए इन पहाड़ों के बीच रहनेवाले सरल आदिवासियों ने ग्रामदान के विचार को बहुत आसानी से ग्रहण कर लिया।

कोरापुट आन्ध्र प्रदेश की सीमा से लगा हुआ उड़ीसा का सबसे बड़ा जिला है। यहां जंगलों, पहाड़ों की अधिकता है। पर प्रकृति की यह मनोरम सुषमा आर्थिक दृष्टि से लाभकर नहीं है। सिंचाई के लिए न नहरें हैं और न कुएं। यह आदिवासी तथा पिछड़ा हुआ जिला है। यहां के आदिवासी सरल-सहज स्वभाव के हैं। उनकी भाषा न तो उड़िया है न तेलुगु। उनकी अपनी स्वतंत्र भाषा है। यहां दरिद्रता का नग्न रूप, रोग, बीमारियों का प्रधान क्षेत्र, शिक्षा का सर्वथा अभाव तथा सभ्य जगत से सर्वथा पृथक भाग देखने को मिलता है। पर अत्यन्त पिछड़े हुए इस जिले ने ग्रामदान के विचार को बहुत पहले ही अपना लिया था।

कोरापुट भू-क्रान्ति का तीर्थक्षेत्र माना जाता है। भूदान ग्रामदान की क्रान्ति में यह जिला सारे देश में अग्रणी रहा। अक्तूबर १९५५ में कोरापुट की अपनी पदयात्रा पूरी करके जब विनोबाजी आन्ध्र प्रदेश जा रहे थे तब तक जिले में कुल ६०५ ग्रामदान हो चुके थे, और १ ६५, २६८ एकड़ भूमि दान में मिल चुकी थी।

देश की आजादी के पूर्व भी यहां की जनता सदा जागरूक रही है। कोरापुट की इस भूमि ने स्वतन्त्रता संग्राम में कई सेनानी दिये हैं। उनमें से १९४२ को क्रान्ति के अमर शहीद श्री लक्ष्मण नायक का नाम आज भी कोरापुट का बच्चा बच्चा याद करता है।

जिलादान की व्यूह-रचना

गत साल उड़ीसा सर्वोदय मंडल ने २ अक्तूबर, १९६९ तक प्रखण्डदान पूरा करने का संकल्प लिया। उस सन्दर्भ में कोरापुट में जिलादान का अभियान साथियों ने तीव्र गति से चलाने का निश्चय किया। अभियान में उत्कल सर्वोदय मण्डल, उत्कल खादी-मण्डल, उत्कल नवजीवन मण्डल, कस्तूरबा स्मारक ट्रस्ट, नारायण पाटना क्षेत्र समिति, ग्रामदान संघ तथा जिले की अन्य रचनात्मक संस्थाओं के लगभग ११० भाई-बहनों ने सक्रिय रूप से भाग लिया। इनके अलावा ग्रामदानी गांवों के लोगों ने भी प्राप्ति के काम में हिस्सा लिया, जिनकी संख्या बहुत अधिक थी। जिलादान के इस अभियान का नेतृत्व कोरापुट जिले के बेताज के बादशाह, त्याग, सेवा तथा नम्रता की मूर्ति श्री विश्वनाथ पटनायक गत फरवरी मास से कर रहे थे। फरवरी के पहले ४३ प्रखण्डों में से सिर्फ २२ प्रखण्डदान पूरे हुए थे।

अभियान को चलाने के लिए आर्थिक कठिनाई साथियों के सामने खड़ी थी। पर मंजिल तक पहुँचने में वह बाधक नहीं हुई। जैसा कि विनोबाजी अक्सर कहा करते हैं, पैसा न होना ही अपने आप में बहुत बड़ी शक्ति है। अभियान के काम में वेग लाने के लिए नारायणपाटना क्षेत्र समिति ने १२०० रुपये, राज्य गांधी शताब्दी समिति ने ४०० रु० तथा जिले के ग्रामदान संघों ने पचास-पचास रुपये (जिले में कुल १५ ग्रामदान संघ हैं) तुरन्त देने का निर्णय लिया। इसके अलावा स्थानिक मदद से जिलादान संकल्प की पूर्ति हुई। बचे हुए २० प्रखण्ड पूरा करने में लगभग ५००० रु० खर्च हुए। कोरापुट जिले के मूक कार्यकर्ता इस विचार के वाहक रहे। इसमें मुख्यतः सर्वश्री महम्मद बाजी, रतनदास, वृन्दावन जेना, रामचन्द्र जेना, श्यामबाबू, निशाकर दास, मनादि भाई, शान्ति बहन, तथा मालती विश्वाल आदि हैं।

जिलादान समर्पण-समारोह में अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री शंकररावजी ने जिले की जनता, रचनात्मक संस्थाओं तथा कार्यकर्ताओं का जिलादान के लिए अभिनन्दन किया। उन्होंने कहा कि सबसे पहले बड़े पैमाने पर ग्रामदान यहां विनोबाजी की सन् ५५ की पदयात्रा में हुए थे और उसके कारण विनोबाजी की श्रद्धा ग्रामदान में बढ़ी थी। उन्होंने कहा कि गांधीजी के स्वप्नों का स्वराज्य अभी हिन्दुस्तान की जनता को नहीं मिला है। देश के मुट्ठी भर लोगों के लिए स्वराज्य मिला है। आज की सारी व्यवस्था ऐसी है कि सिर नीचे और पैर ऊपर है। सारा समाज सिर के बल चल रहा है। ग्रामस्वराज्य की स्थापना के लिए प्रखण्डदान, जिलादान, राज्यदान के विचार को अपनाने की अपील उन्होंने उड़ीसावासियों से की और इसके लिए अपनी मंगल-कामना प्रकट की।

अन्त में श्री श्यामबाबू ने बाहर से आये हुए अतिथियों, ग्रामीणों तथा नागरिकों का आभार मानते हुए कहा कि आप लोगों के आशीर्वाद तथा सहकार, सहयोग से जिलादान की मंजिल तक पहुँचने में हम सब सफल हुए।

—गायत्री प्रसाद शर्मा

कोरापुट जिलादान के आँकड़े

अनुमण्डल का नाम	प्रखण्ड संख्या	कुल गांव संख्या	चिरागी गांव	कुल ग्रामदान संख्या	कुल आबादी	ग्रामदान में शामिल आबादी	ग्रामदान में शामिल आबादी का प्रतिशत	ग्रामदान में प्राप्त जमीन (एकड़ में)
कोरापुट	६	१६०५	१२५७	१३४०	२,८५,०४३	२,३६,८५४	७६·७%	२,३१,८०६-७०
जैपुर	५	७१८	६६८	४५६	२,६३,२२२	२,०३,२२७	७७·७%	६८,६१७-३६
नवरंगपुर	१०	१०७४	८३०	७८४	३,८०,८१६	३,३१,७६२	८७·१%	१,६८,५८७-४६
मालकानगिरी	७	६५५	५८२	४६१	१,३६,२३०	१,०६,२७८	६०%	१,०३,४६६-२६
रायगडा	८	२५६०	११०३	१०४३	१,६०,०६५	१,२६,४४२	८०·४%	१,२५,१३५-६५
गुणुपुर	७	१५५५	१२७२	८४८	१,६२,६६४	१,५४६७६	८२%	६६८६०-६०
कुल योग :	४२	७२०७	५८१०	४६१५	१४,२११३७०	११,४२,१४६	८०%	८,३३ ८५४-७६

ग्रामदान-अभियान के अनुभव तथा आगामी व्यूह-रचना

ग्रामदान-आन्दोलन में जहाँ हम पहुँचे हैं, वहाँ से देखने पर कुछ चीजें हमारे ध्यान में आती हैं। एक ओर जहाँ समस्याएँ हैं, वहाँ दूसरी ओर हमारी मर्यादाएँ अथवा कमियाँ भी हैं। जहाँ तक सफलताओं का सम्बन्ध आता है, आज हम ग्रामदान से शुरू करके प्रखण्डदान, प्रखण्डदान से जिलादान और उसके आगे प्रदेशदान के नजदीक पहुँच रहे हैं। आन्दोलन ने *जिलादान की* शृंखला से क्रान्ति के आरोहण की एक के बाद एक जो मंजिलें तय की हैं, वे असाधारण महत्व की हैं। एक लाख के करीब ग्रामदान तक हम पहुँच चुके हैं। १६ जिलों का दान हो चुका है। प्रदेशदान का संकल्प सात प्रदेशों ने किया है और उसे पूर्ण करने के लिए तत्परता से काम शुरू भी हो गया है। अब ऐसा लगने लगा है कि जैसे हमारे सामने पूरे *ग्रामदानी राज्य के विकास और व्यवस्था का* प्रश्न खड़ा हुआ है। यद्यपि अभी तक किसी प्रदेश का दान नहीं हुआ है, लेकिन इस वर्ष में ऐसी सम्भावना है कि एक से अधिक प्रदेश का दान हो जायगा। आज ग्रामदान-आन्दोलन भावना से सम्भावना की मंजिल तक पहुँच चुका है।

प्रदेशदान के संकल्प की ओर बढ़ने में रचनात्मक कार्यकर्ताओं की सहायता पहले की अपेक्षा हमें ज्यादा मिलने लगी है। आन्दोलन में खादी-कार्यकर्ताओं की संख्या भी कई गुनी बढ़ी है। रचनात्मक संस्थाओं ने आर्थिक सहायता बहुत बड़ी मात्रा में दी है। आन्दोलन के लक्ष्य की पूर्ति को उन्होंने अपनी संस्थाओं का लक्ष्य माना है। उनके अनुभवी नेताओं का सहयोग भी स्वाभाविक ही ज्यादा मिला है।

जिलादान प्राप्त करने में विभिन्न प्रदेशों में नयी पद्धतियों का विकास हुआ है—

१. सैकड़ों ग्रामदानी गाँवों के नागरिक अभियान में शामिल हुए। उन्हें मानधन इत्यादि नहीं देना पड़ा। इन नागरिकों के साथ ग्रामीण जीवन के नेता भी अभियान में शामिल हुए।

२. ग्रामीण क्षेत्रों के शिक्षित नवयुवकों की सहायता अपने में एक नयी उपलब्धि है, क्योंकि यही लोग आगे जाकर ग्रामीण जीवन की पुनर्रचना में बहुत बड़ी जिम्मेदारी का काम करनेवाले हैं। उनका शान्तिप्रवण होना आगे की रचना को भी शान्ति की दिशा मिलने का संकेत है। हर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्र में इस प्रकार के शिक्षित नवयुवक मौजूद हैं और उनकी सहायता *प्राप्त होने की सम्भावना है।*

३ शिक्षकों तथा विद्यार्थियों की सहायता बड़े पैमाने पर मिलने लगी है।

४. शासन के कर्मचारियों की सहायता विशेष परिस्थिति में कहीं-कहीं प्राप्त हुई है।

५ राजनीतिक दलों के ग्रामीण क्षेत्रों में काम करनेवाले लोगों की सहायता भी हमें मिली है।

६. *कहीं कहीं एक नयी व्यूह-रचना का भी* दर्शन हुआ है। एक सघन क्षेत्र लेकर अच्छी पूर्व तैयारी करने के बाद पूरी शक्ति से योजनाबद्ध काम करने में अभियान आगे बढ़ता है, यह दर्शन हमे हुआ। इससे कार्यकर्ताओं का आत्म-विश्वास बढ़ा है।

केवल अविरोध के वातावरण की जगह कहीं-कहीं अधिक सक्रिय सहानुभूति हमें प्राप्त हुई है। वर्तमान घुटन की स्थिति के विकल्प के रूप में ग्रामदान सबकी आशा और आकांक्षा का केन्द्र बना है। जनता में ग्रामदान को एक सम्भाव्य विकल्प के रूप में समझने की उत्कटता पैदा हुई है अथवा अपेक्षाएँ पैदा हुई हैं। *अपेक्षाएँ दो प्रकार की हैं :*

१. जन-मानस में

२. आन्दोलन के भीतर—हमारे अपने बीच।

नये पर्याय के कारण जन-मानस आन्दोलन की ओर देखने लगा है। जन-मानस में आन्दोलन के प्रति जो अपेक्षा है उसका स्वरूप लोगों ने पूछना शुरू किया है। उसका प्रभाव क्या है? किसी क्षेत्र-विशेष में आज के सामाजिक जीवन में सुधार हुआ है—आर्थिक क्षेत्रों की बुराइयाँ कम हुई हैं? इत्यादि इस प्रकार के कई प्रश्न पूछे जाने लगे हैं और *स्वाभाविक ही इस ओर उनकी आकांक्षाएँ* जाग्रत हुई हैं। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में ग्रामदान के स्वरूप का अब दर्शन होना चाहिए। समाज में आज जो जन-जीवन को छूनेवाली तात्कालिक समस्याएँ उपस्थित होती हैं, सर्वोदय-कार्यकर्ताओं के लिए उनके मन में आशा और अपेक्षाएँ हैं।

हमारे अपने बीच ग्रामदान की चार शर्तों की पूर्ति होगी या नहीं? कब होगी? क्या नागरिक जीवन पर ग्रामदान की सफलता का असर दीख रहा है—पड़ रहा है? कार्यकर्ताओं की संख्या बावजूद इन सफलताओं के क्यों नहीं बढ़ रही है? यानी अब आन्दोलन को लोक आन्दोलन का रूप लेना चाहिए, यह अपेक्षा स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हुई है। हमारी संगठन-शक्ति प्रकट नहीं हुई है। जनसंख्या के आधे भाग अर्थात् स्त्रियों तक हम पहुँच नहीं पा रहे हैं।

इन अपेक्षाओं की पूर्ति करने की दिशा में स्वाभाविक ही हमारा ध्यान जाता है :

१ वातावरण जितना हमारे लिए अनुकूल चाहिए, वैसा नहीं बना सके। वातावरण से मतलब है उस प्रदेश के समग्र जीवन में और विशेषतः कर्म-प्रवण जीवन में ग्रामदान का विचार सम्मत हो। सम्मति का अगला चरण ग्रामदान के लिए प्रत्यक्ष कार्य में प्रकट होना चाहिए। साहित्यिक, शैक्षणिक तथा समाचार-पत्रीय जीवन की हलचलों से अक्सर जीवन बनता है। हमारा विचार वहाँ पूर्णरूपेण स्वीकृत नहीं हुआ है। इसलिए वातावरण बनानेवाले वर्गों पर शिक्षित, प्रतिष्ठित, समाज-जीवन की बागडोर सँभालनेवालों के सोचने पर हमारा गहरा असर पड़े, ऐसी कार्यवाही हमें करनी चाहिए। इसलिए वातावरण बनाने का हमारा मुख्य कार्यक्रम होना चाहिए।

२. अभी तक सब प्रदेशों में पर्याप्त संख्या में कार्यकर्ता हमारे बीच नहीं हैं। कार्यकर्ताओं के शिक्षण का क्रान्ति-आन्दोलन चलाने लायक व्यक्तित्व बन सके, इसके

लिए कोई व्यवस्था हमें अभी करनी होगी। यह तो त्रिकोणात्मक क्रान्ति है, इसलिए कार्यकर्ता सजग और व्यक्तित्व-वाले चाहिए।

३. अभी यह चित्र नहीं बना है कि आन्दोलन आज की समस्या को हल करने में सामने आया है। आन्दोलन के संयोजन का भी तंत्र हमें नये ढंग से विकसित करना है। हर उथल पुथल के साथ भावना, विचार तथा कृति के प्रवाह समाज में उठते हैं, वे ध्यान में लेकर आन्दोलन का संचालन किस ढंग से करें?

४. पूरे साधन हम अभी जुटा नहीं पाये हैं। पर्याप्त आर्थिक व्यवस्था जुटाना बाकी है।

जहाँ उक्त बातों का अभाव बहुत ही अधिक है, उन प्रदेशों में हमारा आन्दोलन बहुत कमजोर है। ऐसे प्रदेशों में आन्दोलन गति पकड़े, इसके लिए हम क्या कर सकते हैं, यह सवाल हमारे सामने है।

कोई ऐसी व्यूह रचना हमें ढूँढनी है, जिससे नियोजित समय में यानी गांधी-शताब्दी की अवधि में प्रदेशदान के संकल्प पूरे हो सकें, उसके लिए :

१. प्रदेश की पूरी शक्ति किसी छोटे सघन क्षेत्र में लगायी जाय। वह क्षेत्र पूरा होने के बाद दूसरा क्षेत्र हाथ में लिया जाय।

२. या एक पूरे क्षेत्र में काम करें।

३. एक से अधिक प्रदेश एक साथ इकट्ठा आकर एक प्रदेश को पूरा करने का प्रयास करें और उसको पूरा करने पर दूसरे प्रदेश में चले जायें।

४. इसको अमल में लाने के लिए अन्तर-प्रान्तीय मार्गदर्शन की व्यवस्था करें। एक टोली बने, जो इस तरह के अन्तर-प्रान्तीय काम को चालना देने का काम करे। वह टोली आर्थिक सहायता प्राप्त करने, वातावरण बनाने, कार्यकर्ताओं की संख्या बढ़ाने तथा शिविर का मार्ग-दर्शन कर सकने में क्षमतावाली हो।

भविष्य के काम की व्यूह-रचना करते हुए ग्रामदानोत्तर काम की तरफ क्या हम पूरा ध्यान न दें? शायद यह खतरे से खाली नहीं होगा। ग्रामदान कानून विभिन्न प्रदेशों में बने हैं। उनके अन्तर्गत तेज रफ्तार से पुष्टि होनी चाहिए। उसके लिए कोई अलग तंत्र (मशीनरी) खड़ा करना होगा या केवल शासकीय तंत्र से यह होगा? कानून के अन्तर्गत पुष्टि तथा तत्सम्बन्धी काम सरल और सुगमता से हो सके, इसके लिए कानून में आवश्यक सुधार संशोधन भी करने होंगे। ग्रामदान की शर्तों के अनुसार वास्तविक पुष्टि यानी ग्राम-सभा का विधिवत् गठन और भूमिहीनों के लिए जमीन का वितरण आदि कामों की तरफ भी हमें ध्यान देना होगा।

हमारे लक्ष्य की ओर बढ़ने में जिन वर्गों अथवा निहित स्वार्थ का विरोध है उसे हटाने या उनके निराकरण का कोई इलाज अथवा तरीका हमारे पास है? और है तो क्या है? लोक प्रतिनिधि, बुद्धिजीवी, पुस्तकें, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, और लेखकों के साथ आन्दोलन के विचार का गहरा सम्बन्ध जोड़ना चाहिए और हमारे विचार के लिए उनकी मान्यताएँ प्राप्त करनी चाहिए, क्योंकि जनमानस बनाने में इनका बहुत बड़ा हाथ होता है।

(तिरुपति अधिवेशन में प्रस्तुत सन्दर्भ लेख —१)

सर्व सेवा संघ अधिवेशन—१

सर्व सम्मति की अनोखी मिसाल

जे० पी० ने तिरुपति में २३, २४, २५ अप्रैल '६६ को आयोजित सर्व सेवा संघ के अधिवेशन के सम्बन्ध में जो बात कही, अगर वही बात सबके मन में होती तो शायद संघ अधिवेशन पूर्ण सफल माना जाता। उन्होंने अपने आखिरी भाषण में कहा था कि यह अधिवेशन तो सिर्फ सर्व सेवा संघ की संगठन सम्बन्धी औपचारिक आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए आयोजित किया गया था। लेकिन अधिवेशन में भाग लेने आनेवाले हर साथी के मन में यह बात रही हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता, यद्यपि ऐसे लोगों की संख्या भी कुछ अधिक नहीं थी, जो मन में कुछ आशा लेकर गये हों। इस अधिवेशन में तो ऐसा लगा कि बाबा सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम की ओर हैं और हम लोग आन्दोलन से तटस्थ, तटस्थतर, तटस्थतम की ओर हैं। इसलिए जे० पी० की बात मन को सान्त्वना देनेवाली साबित हुई।

२३ अप्रैल की शाम को चार बजे अधिवेशन का कार्यक्रम शुरू हुआ। स्वागत् समिति के मंत्री श्री तिम्मा रेड्डी के औपचारिक भाषण और दिवंगत साथियों को मौन श्रद्धांजलि अर्पित करने के बाद आबूरोड अधिवेशन की कार्यवाही स्वीकृति के लिए पेश की गयी और स्वीकृत हुई।

सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष मनमोहन चौधरी ने अपने महत्वपूर्ण विदाई भाषण में आन्दोलन की समीक्षा पेश करते हुए अपने कार्यकाल में प्राप्त साथियों के सक्रिय सहयोग के प्रति आभार व्यक्त किया तथा नये अध्यक्ष और मंत्री के लिए शुभकामना व्यक्त की। (पूरा भाषण २८ अप्रैल के अंक में प्रकाशित हो चुका है)

आंध्र के राज्यपाल श्री खण्डुभाई देसाई ने श्री मनमोहन भाई के अध्यक्षीय भाषण के बाद अपने आशीर्वचन में कहा, "बिना किसी प्रकार की हिचकिचाहट के मैं यह कहना चाहता हूँ कि मैं आपके इस परिवार का एक सदस्य हूँ।" आपने कहा, "गांधीजी अब भी सर्व सेवा संघ के माध्यम से बोल रहे हैं।" श्री खण्डुभाई की इस बात ने हमारे आत्म-गौरव की अनुभूति को बढ़ाया, लेकिन उसके साथ ही यह संकेत भी दिया कि सर्व सेवा संघ से अपेक्षाएँ कितनी और कैसी हैं।

इसके बाद शुरू हुआ अध्यक्ष के चुनाव का कार्यक्रम, जो इस अधिवेशन का मुख्य कार्यक्रम था। संघ की भावना और उसके विधान के अनुसार अध्यक्ष का चुनाव सर्व सम्मति या सर्वानुमति से होना चाहिए, लेकिन अभी तक इसकी कोई स्पष्ट पद्धति नहीं निकल पायी है, इसलिए तय हुआ कि नाम प्रस्तावित कर दिये जायँ, और २० मिनट के लिए सभा स्थगित कर दी जाय, लोग टोलियों में बँटकर सर्व सम्मति या सर्वानुमति की पद्धति पर चर्चा करें और

सुझाव पेश करें। अध्यक्ष के लिए १४ नामों का प्रस्ताव आया, जिनकी घोषणा के बाद २० मिनट के लिए सभा स्थगित हुई।

अपेक्षा से भी अधिक सहूलियत से २० मिनट के अन्दर सर्वसम्मति से अध्यक्ष का चुनाव हो गया, यह इस अधिवेशन की और सर्व सेवा संघ की एकता की सबसे बड़ी मिसाल मानी जायगी। इस युग में, जबकि हर राजनैतिक दल में, यहाँ तक कि धर्म और अध्यात्म के नाम में चलने वाले संगठनों में भी, नेतृत्व के प्रश्न पर कितनी खींच-तान होती रहती है, सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष का एक राय से चुनाव हो जाना बहुत ही महत्वपूर्ण बात तो है ही, साथ ही सर्व-सम्मति या सर्वानुमति की नीति पर शंका करनेवालों के लिए एक जवाब भी है।

एक ओर यह बात है, दूसरी ओर ध्यान देने लायक एक महत्त्व की चीज यह भी है कि किस प्रकार सर्व सेवा संघ इस आन्दोलन में लगे सामान्य कार्यकर्ताओं के सामूहिक निर्णय का सक्रिय मंच बने। सर्वसम्मति या सर्वानुमति की पद्धति ढूँढने के लिए २० मिनट तक सभा स्थगित रही, और लोग टोलियों में बिखर कर चर्चाएँ करते रहे। लेकिन यह लिखते हुए कुछ दुख होता है कि बिखरने और टोलियों में चर्चा करने का दृश्य सभा-स्थल पर दिखाई तो दिया, लेकिन चर्चा का विषय वह नहीं था, जिसके लिए लोग बिखरे थे। सर्व सेवा संघ के कुछ प्रमुख लोगों और प्रस्तावित अध्यक्षों की एक गोष्ठी मंच के निकट चर्चा में सक्रिय थी, और आखिर के दो नामों—श्री एस० जगन्नाथन् और आचार्य राममूर्ति—में से श्री एस० जगन्नाथन् के नाम पर सब की एक राय हुई। अनिच्छा और इनकार के बाद भी श्री जगन्नाथन्‌जी को पंचों की राय माननी पड़ी, और उनके जैसे 'डायनेमिक' व्यक्तित्व का नेतृत्व हमें प्राप्त हुआ। लेकिन उनका क्या, जिनकी चर्चा और चिन्तन का विषय न तो सर्वसम्मति या सर्वानुमति था, और न इस विषय पर उनकी कोई राय ही व्यक्त हुई? विवाद और टकराव को न आने देना या आने पर उसे समझदारी के साथ निपटा लेना एक बात है, और सक्रिय उदासीनता या 'कोई नृप होय हमें क्या हानी' वाली मनोवृत्ति बिल-कुल दूसरी। पहली में शक्ति और सक्रियता का इजहार है तो दूसरी में शक्तिहीनता और निष्क्रियता का। क्या इस तरह सर्व सेवा संघ में देश की अपेक्षाएँ पूरी करने की सामर्थ्य जुटाई जा सकेगी?

दूसरे दिन आठ बजे अधिवेशन का कार्य-क्रम नये अध्यक्ष के अभिनन्दन के साथ शुरू हुआ। पुराने अध्यक्ष ने नये अध्यक्ष को जिम्मेदारी सौंपते हुए प्रतीक स्वरूप सूत की गुण्डी पहनायी। लोकसेवकों की ओर से पंजाब के श्री बिलगाजी ने पुराने को विदाई दी और नये अध्यक्ष का स्वागत किया। परम्परा के अनुसार दादा धर्माधिकारी ने नये अध्यक्ष का परिचय कराते हुए कहा, 'सर्वसम्मति (यूनेनिमिटी) और समझदारी (सैनिटी) साथ-साथ चल सकती है, इस विषय में मुझे संदेह था, लेकिन कल के निर्णय से यह जाहिर हो गया कि सर्वसम्मति और समझदारी साथ-साथ चल सकती है। यह ऐतिहासिक महत्त्व की चीज है, और इससे आगे को प्रेरणा और शक्ति मिलेगी।" दादा ने श्री जगन्नाथन् के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व की ओर संकेत करते हुए कहा, रामायण में जटायु ने असफलता का प्रयास किया। जीवन में असफलता हो, पराजय नहीं। जटायु ने असफलता स्वीकार की, लेकिन पराजित नहीं हुआ, इससे हनुमान का मार्ग प्रशस्त हुआ। क्रान्ति के सहगामी होकर दक्षिण में जहाँ हम मानते थे कि अलगाव की भावना पैदा हो रही है, वहाँ असफल प्रयास ही नहीं, निरन्तर प्रयास हुआ। जगन्नाथन्‌जी के जीवन में अबतक जो संकेत दीखे हैं उनसे मन बहुत आश्वस्त है। मैं उनका स्वागत करता हूँ।" पुराने अध्यक्ष मन्त्री को इस अवसर पर धन्यवाद देते हुए दादा ने कहा, "सज्जनता के साथ बुद्धि-मानी और कार्य क्षमता भी चल सकती है, इसकी मिसाल रहे हैं मनमोहन और राधा कृष्ण। सर्व सेवा संघ ने पठानकोट के अधि-वेशन में तरुणाई में अपना विश्वास प्रगट किया, और यह प्रसन्नता की बात है कि उस विश्वास को इनकी चतुराई ने पुष्ट किया।'

दादा के बाद श्री जगन्नाथन्‌जी ने कहा, "मैं एक सामान्य कार्यकर्ता हूँ, और इस जिम्मेदारी के योग्य नहीं। अब सबके सक्रिय सहयोग से ही गतिशीलता और एकता कायम रहेगी। जनता को हमसे अपेक्षाएँ हैं, हमें आशा है कि सर्व सेवा संघ अपनी 'कामरेड-शिप' की शक्ति से उन अपेक्षाओं को पूरी करने में सक्षम साबित होगा।"

इन औपचारिक कार्यवाहियों के बाद श्री गोविन्दराव देशपाण्डे ने आन्दोलन और अभियान विषयक चर्चा की शुरुआत की। आपने आन्दोलन के सम्बन्ध में व्यक्त दो प्रकार की रायों का जिक्र करते हुए कहा कि "जो मध्यधारा में हैं, उनकी राय से किनारे वालों की राय भिन्न है। किनारेवालों को बहुत सी शंकाएँ होती हैं, जो सहज हैं, लेकिन मध्यवालों को भरोसा है कि हम क्रान्ति के लिए जितनी एकता आवश्यक है, उतनी इसमें है।" आपने आन्दोलन की सफलताओं का उल्लेख करते हुए कहा कि "प्रतिरोध की स्थिति बनी है और उपेक्षा की मनोवृत्ति घटी है। जितना प्रयास हुआ है, उस अनुपात में उसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है, जिस क्षेत्र में प्रयास ही नहीं हुआ वहाँ प्रभाव क्या दिखाई देगा? देश में हमसे अपेक्षाएँ बड़ी हैं, कहीं कुछ होता है, तो लोग पूछते हैं कि आप लोग चुप क्यों हैं, कुछ करते क्यों नहीं?" आन्दोलन की कठिनाइयों का जिक्र करते हुए आपने कार्यकर्ता-शक्ति के अभाव का जिक्र किया और व्यापक आन्दोलन के लिए जन के द्वारा जन के हित का आन्दो-लन चले, इस बात की महत्ता की ओर ध्यान आकर्षित किया। आपने आन्दोलन में जल्दी-बाजी वृत्ति को जहर बताते हुए सतर्क रहने की सलाह दी और अन्त में 'बारडोली-फार्मूले' से काम करने की आवश्यकता पर बल दिया।

इसके बाद अधिवेशन में भाग लेनेवालों को आमंत्रित किया गया, चर्चा को आगे बढ़ाने के लिए, लेकिन कोई सामने नहीं आया। आखिर मंच खाली न रहे, इस दृष्टि से प्रदे-शीय कार्यों की जानकारी प्रस्तुत करने का सिलसिला चालू किया गया। शोभाजी ने तेलंगाना की अपनी यात्रा और 'फूल के पौधे हटाओ, सब्जी उगाओ' आन्दोलन की जान-कारी दी। उड़ीसा के मनादि नायक ने कोरा-

पुर के ग्रामदान की घोषणा की। पंजाब, हरियाणा, और हिमाचल प्रदेश की जानकारी दी यशपाल मित्तल ने। गुजरात के डा० द्वारकादास जोशी ने गुजरात में ग्रामदान अपेक्षित गति से आगे नहीं बढ़ पा रहा है, इस पर चिंता व्यक्त की। मंथान् और नटराजन् ने दक्षिण के आन्दोलन की जानकारी दी। नटराजन् ने तजौर के कम्युनिस्ट प्रभावित क्षेत्र में शंकरराव देव की हाल की पदयात्रा के उल्लेखनीय प्रभावों का जिक्र किया। बिहार के निर्मलचन्द्र ने कहा कि सरकारी पुष्टि का काम बिलकुल बन्द कर देना चाहिए और हमें अपने ढंग से संगठन खड़ा करने की ओर ध्यान देना चाहिए।

जानकारी प्रस्तुत करने का यह सिलसिला दोपहर को ही समाप्त हो जाना चाहिए था, लेकिन ऐसा नहीं हो सका और दोपहर के बाद मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश की जानकारियाँ पेश की गयीं।

इस चर्चा का उपसंहार करते हुए निर्मला बहन ने कहा कि, "हमने बहुत महत्त्व की मंजिल पूरी की है, लेकिन लक्ष्य बहुत बड़ा है, इसलिए उपलब्धियों की महत्ता का प्रत्यय हमें नहीं हो रहा है। अब आगे की व्यूह-रचना हमें सतर्क होकर करनी है। इसके तीन क्षेत्र हैं—(१) बिहार, (२) संकल्पित प्रदेश, (३) अन्य प्रदेश।

निर्मला बहन द्वारा प्रस्तुत कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दे निम्न प्रकार हैं :

(१) ३१ मई तक बिहारदान के संकल्प को पूरा करने में सारी शक्ति लगायें।

(२) संकल्पित प्रदेशों के कार्यकर्ताओं का आपस में सहयोगी आदान-प्रदान हो।

(३) नगरों के शिक्षितों, बुद्धिजीवियों को आन्दोलन की ओर आकर्षित किया जाय, उन्हें शामिल करने की चेष्टा हो।

(४) आन्दोलन की आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने का निरन्तर प्रयास हो।

(५) हमारा आपस में आर्द्रभाव और अधिक विकसित हो।

(६) साहित्य के व्यापक प्रचार की योजना बने।

(७) आन्दोलन के साथ सांस्कृतिक कार्यक्रम जोड़े जायँ।

(८) हमारे कार्यों में आध्यात्मिक वृत्ति रहे।

(९) कार्यकर्ताओं के लिए हृदय में स्नेह भाव विकसित करें।

(१०) पत्रिकाओं को और से जहाँ-जहाँ अच्छे काम हो रहे हैं, उनकी जानकारी प्रस्तुत करने का काम अनुबंध-वृत्ति से हो।

(११) हम अधिक से अधिक जनता के बीच रहें।

—रामचन्द्र राही

उत्तरप्रदेश की सरकार लोकमत का समादर करे

— पुलिस के संरक्षण में शराब की दुकानें चलाना अनुचित —

उत्तराखण्ड की शराब बन्दी व आन्दोलन पर सर्व सेवा संघ का प्रस्ताव

उत्तरप्रदेश के कोटद्वार, लैन्सडाउन और सतपुली नगरों में पुनः शराब की दुकानों को चालू करने के सम्बन्ध में वहाँ की जनता और प्रदेशीय सरकार के बीच पैदा हुई वर्तमान टकराव की घटनाओं से सर्व सेवा संघ पूरी तरह अवगत हुआ। ऐसा मालूम पड़ता है कि वहाँ के निवासियों ने शराब की दुकानों के समक्ष शान्तिपूर्ण धरना देने का एक अभियान शुरू कर दिया है, और महिलाओं ने उसमें उत्साह के साथ योगदान दिया है। वहाँ की नगरपालिका ने अपनी सीमा में शराब की दुकान न खोलने का प्रस्ताव किया है, जब कि उत्तरप्रदेश की सरकार नगरपालिका के क्षेत्र में शराब की दुकानें खोलने पर हट है। शराब की दुकानें खोलने में उत्तरप्रदेश की सरकार ने सशस्त्र पुलिस का सहारा लिया है, और शराब खरीदने और पीने के लिए उसके माध्यम से वह जोरदार प्रचार करा रही है।

सर्व सेवा संघ उन परिस्थितियों से अवगत है, जिनके कारण डा० सुशीला नायर को आमरण उपवास शुरू करना पड़ा और जो आठवें दिन समाप्त हुआ। यह स्पष्ट है कि स्थानीय जनता की इच्छाओं के विरुद्ध जिसे उसने अपने लोकप्रिय संगठन नगरपालिका के द्वारा—शराब की दुकानों के चालू रखने के विरोध में—जाहिर किया है, वहाँ शराब की दुकानें चलाने का प्रयत्न किया जा रहा है। सर्व सेवा संघ स्थानीय लोक-निर्णय (लोकल आप्शन) के सिद्धान्त को बहुत महत्त्वपूर्ण मानता है, और उत्तरप्रदेश की सरकार का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करना चाहता है कि भारत के कुछ अन्य राज्यों ने, खासकर महाराष्ट्र सरकार ने, ग्रामीण क्षेत्रों के लिए इसे स्वीकार किया है। लोकतंत्रीय प्रशासन का यह एक सुन्दर सिद्धान्त है कि शराब की बिक्री के लिए चालू की जानेवाली शराब की सरकारी दुकानों के सम्बन्ध में उस क्षेत्र की स्थानीय जनता की भावनाओं का समादर किया जाय। संघ उत्तरप्रदेश की सरकार से अपील करता है कि अपनी नशाबन्दी की नीति को लागू करने की दिशा में इस सुन्दर सिद्धान्त का पालन करे।

(दिनांक २५-४-'६१ को सर्व सेवा संघ के तिरुपति अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव)

श्रद्धांजलि

श्री लोकेन्द्र भाई ने सूचना दी है कि झाँसी जिले के एक वयोवृद्ध गांधीवादी एवं सर्वोदय विचार के प्रबल समर्थक एवं सहयोगी श्री बाबू गुरुदयालजी श्रीवास्तव (स्वतंत्री) का दिनांक १७ अप्रैल को झाँसी में ७५ वर्ष की आयु में निधन हो गया। हम सर्वोदय-परिवार की ओर से उनके दुःखी परिवार के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं तथा परमात्मा से स्वर्गीय श्री गुरुदयालजी की आत्मा की शान्ति के लिए कामना करते हैं।

साहित्य-प्रचार

बम्बई सर्वोदय मण्डल की एक सूचनानुसार जनवरी और फरवरी मास में ६,७८०.६२ रुपये का साहित्य बिका तथा निम्नलिखित पत्र पत्रिकाओं के ग्राहक बनाये गये।

सर्वोदय साधना (मराठी)—	३०
सर्वोदय साधना (गुजराती)—	३७
साम्ययोग	६
भूमिपुत्र	११६
भूदान-यज्ञ	८
सर्वोदय (अंग्रेजी)	१
अन्य	१९

आंध्र भूदान-यज्ञ समिति के पक्ष में हाईकोर्ट का फैसला

वर्षों से चली आ रही भूदान की जमीन पर सरकारी धाँधली का अन्त

सन् १९५३ में हैदराबाद के नवाब निजाम साहब ने भूदान में ३६०० एकड़ जमीन का दान दिया था। उसमें से २३२४ एकड़ जमीन बंजर थी, जिसके बारे में वन-विभाग ने आपत्ति की कि यह जमीन उनकी है। उस समय के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री रामकृष्ण राव से इस प्रश्न पर चर्चा हुई, और निर्णय हुआ कि यह जमीन निजाम साहब की ही है, इसलिए उसे भूदान के हवाले किया जाय। इस निर्णय के बाद वन-विभाग ने कहा कि इससे अच्छी जमीन बँटवारे के लिए विभाग की ओर से दी जायगी। मुआवजे में दूसरी जमीन दी गयी लेकिन उसके बीस दिन बाद ही सरकार का दूसरा हुक्म आया कि हम यह जमीन नहीं देंगे, दूसरी देंगे। उसके बाद आन्ध्र सरकार बनी और उसने एक साल तक विचार करने के बाद कह दिया कि निजाम वाली जमीन ही भूदान-समिति को सौंप दी जाय। इसपर फिर एतराज हुआ और आखिर में उस समय के मुख्यमंत्री श्री संजीव रेड्डी ने कह दिया कि भूदान-यज्ञ समिति को जमीन देने की जरूरत नहीं, क्योंकि भूदान का इस पर कोई हक नहीं है, निजाम का भी नहीं था।

पूरे मामले को विनोबाजी के सामने पेश किया गया तो उन्होंने हाईकोर्ट में 'रिट' करने की अनुमति दी, इस शर्त के साथ कि एक बार पुनः मुख्यमंत्री से बातचीत की जाय। इसके अनुसार मुख्यमंत्री श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी के समक्ष सारी बातें पत्र द्वारा पेश की गयीं। मुख्यमंत्री ने एक निश्चित तारीख को आंध्र के भूदान कार्यकर्ता श्री रामकिशन राव तथा सर्वोदय मण्डल के लोगों से बातचीत की और मुआवजे में जमीन देने का वादा किया। लेकिन इस पर भी एक साल तक कोई कार्रवाई नहीं हुई। इसलिए मजबूर होकर हाईकोर्ट में 'रिट' किया गया।

अब गत महीने के आखिरी सप्ताह में हाईकोर्ट ने फैसला किया है कि निजाम को यह जमीन दान में देने का पूरा हक था, इसलिए जमीन भूदान-यज्ञ समिति को दी जाय। हाईकोर्ट के जज ने यह भी कहा है कि सरकार को अपने वादों पर पाबंदी करनी चाहिए और समय-समय पर अपने निर्णय इस तरह नहीं बदलने चाहिए। आंध्र प्रदेश के भूदान-यज्ञ बोर्ड के उपाध्यक्ष श्री उमेनाल केशवराव ने यह 'रिट' पेश की थी। उनका कहना है कि अब इस २३२४ एकड़ भूमि पर सर्व सेवा संघ के मार्गदर्शन में एक गाँव बसाया जाना चाहिए। आन्ध्र के सर्वोदय-कार्यकर्ताओं और मित्रों में हाईकोर्ट के इस फैसले से संतोष और उत्साह बढ़ा है। •

उड़ीसा में शंकररावजी

श्री शंकररावजी देव ने उड़ीसा में चल रहे राज्यदान-अभियान में वेग लाने के लिए १३ दिन का समय क्रमशः कलाहांडी, सम्बलपुर, सुन्दरगढ़, केउंझर, मयूरगंज, बालेश्वर, टेकानाल, कटक, पुरी, फुलवाणी और कोरापुट जिलों में दिया। उनकी कुल ११०६ मील की यात्रा हुई। यात्रा का प्रारम्भ ५ अप्रैल को खरियार रोड (कलाहांडी) से हुआ और उसकी समाप्ति १७ अप्रैल को जयपुर (कोरापुट) में जिलादान समर्पण-समारोह से हुई।

उनकी इस यात्रा से ग्रामदान-अभियान कार्य में लगे कार्यकर्ताओं में काफी उत्साह पैदा हुआ है। कोरापुट जिले के करीब २० प्रमुख कार्यकर्ताओं की टोली श्री विश्वनाथ पटनायक के नेतृत्व में मयूरगंज जिलादान जल्द-से-जल्द पूरा करने के लिए लगेगी।•

भूदान-प्राप्ति तथा वितरण के प्रदेशवार आँकड़े

(३१ मार्च, १९६१ तक)

प्रदेश	जिलों की संख्या	भूमि-प्राप्ति (एकड़ में)	दाता संख्या	भूमि-वितरण (एकड़ में)	आदाता संख्या	खारिज भूमि	शेष भूमि
१. असम	९	११,९३५·००	७,३४४	२६५ ००	—	—	११,६७०·००
२. आन्ध्र	२०	२,४१,९५२ ००	१६,६२७	१,०३,३५१·००	२२,७१३	८६,३८५·००	५२,२१६·००
३. उड़ीसा	१३	१,८५,७८२·८०	८४,४५६	९६,४६३·१६	४२,६१४	—	८९,३१८ ८४
४. उत्तरप्रदेश	५४	४,३५,४५७·५४	३८,२९६	२,१०,०९०·७३	७३,३१८	२,०१,६५३·४०	२३,७३३·४१
५ केरल	६	२६,२९३ ००	—	५,७७४·००	—	७,९९९·००	१२,५२०·००
६. तमिलनाडु	१२	५१,३३० ००	२१,८९६	१६,३९४·००	११,१५३	—	३४,९३६·००
७. दिल्ली	१	३००·००	—	१८०·००	—	१२०·००	—
८. पंजाब-हरियाणा	१८	१४,७३९·००	—	३,६०१.००	—	३,३८०·००	७,७५८·००
९. गुजरात	१९	१,०३,५३०·२१	१८,३२७	५०,९२४·२८	१०,२७०	—	५२,६०५·९३
१०. महाराष्ट्र	८	१,०५,०९४·२४	१९,९५३	७०,९५०·२७	१५,१९९	३,३१५·८१	३०,८२८·१७
११. मध्यप्रदेश	४१	४,०५,७८६·१३	५८,३०५	१,७३,०६२·८९	४७,४४५	५६,४७६·९६	१,७६,२४६·२८
१२. मैसूर	१९	१५,८६४ ००	५,०१७	२,१२३·००	९४१	—	१३,७४१·००
१३. प० बंगाल	१०	१२,९६०·००	—	३,८९८·००	—	८,४२६·००	६३६ ००
१४. बिहार	१७	२१,२७,४५२·००	२,९७,२००	३,५१,४४३·००	२,२४,८५०	१३,६४,६३७·००	४,११,३७२·००
१५. राजस्थान	२६	४,३२,८६८·००	८,३९१	८४,७८१·०२	१३,१५८	१,२२,४८९·००	२,२५,५९८·००
१६. हिमाचल प्रदेश	६	५,२४० ००	—	२,५३१·००	—	—	२,७०९·००
१७. जम्मू-काश्मीर	१५	२११.००	—	५·००	—	—	२०६ ००
	२९८	४१,७६,८१४·९३	५,७५,८८५	११,७५,८३८·१२	४,६१,९८१	१८,५४,८८२·१७	११,४६,०९४ ६३

सर्व सेवा संघ की नयी प्रबन्ध समिति

मध्यप्रदेश-शिविर-शृंखला समाप्त

• मध्यप्रदेश गांधी स्मारक निधि और प्रदेश सर्वोदय मण्डल द्वारा संचालित गांधी शताब्दी ग्रामस्वराज्य शिविर शृंखला का छत्तीसवाँ और अन्तिम शिविर हाल ही में ग्वालियर में समाप्त हुआ। शिविर में जिले के कार्यकर्ताओं, शिक्षकों, अधिकारियों आदि ने भाग लिया। शिविरोपरान्त मुरार विकासखण्ड के गांवों में पदयात्राएँ हुईं। फलस्वरूप १२ ग्रामदान मिले।

※ गांधी-शताब्दी कैसे मनायें ? ※

★ आर्थिक व राजनैतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण और ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के लिए ग्रामदान-आन्दोलन में योग दें।

★ देश को स्वावलम्बी बनाने और सबको रोजगार देने के लिए खादी, ग्राम और कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दें।

★ सभी सम्प्रदायों, वर्गों, भाषावार समूहों में सौहार्द-स्थापना तथा राष्ट्रीय एकता व सुदृढ़ता के लिए शांति-सेना को सशक्त करें।

★ शिविर, विचार-गोष्ठी, पदयात्रा वगैरह में भाग लेकर गांधीजी के संदेश का चिन्तन-मनन और प्रसार करें, उसे जीवन में उतारें।

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी-समिति) दुंकड़िया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर-१ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

आरोहण की अंतिम चढ़ाई पर गठरी फेंकें

खादी के शीर्षस्थ सेवक श्री ध्वजा प्रसाद साहू आज कम से-कम चौदह वर्ष से चिल्ला रहे हैं कि 'जिसका विकास अवरुद्ध है, उसकी मृत्यु ध्रुव है।" अब तो खादी के विकास अवरुद्ध होने की ही चिन्ता नहीं, इसके गुण और विस्तार के ह्रास के आंकड़े सामने आने लगे। शताब्दी-वर्ष में बापू के सौर्य मंडल के केन्द्र का यह धूमिल चित्र स्मरण मात्र से बेचैन कर देता है। खादी-संस्थाओं में लगे रचनात्मक जगत् के महारथी और अतिरथी एक ओर तथा दूसरी ओर राज्यदान के रूप में उमड़ रहे ग्रामस्वराज्य के चित्र के बीच इस देदीप्यमान नक्षत्र के प्रच्छन्न प्रकाश को तिरोहित होते देखकर भी तर्क इस सत्य को ग्रहण नहीं कर पा रहा है। यदि खादी-विचार सत्य है तो ध्रुव भी, और तब क्या यह मानें कि जो समाप्त हो रहा है, वह बाह्य आवरण है, सत्य युग-धर्म की नयी चादर ओढ़कर सामने आयेगा?

दूसरे विकल्प की आशा संजोकर हजारों सेवकों के असमाधान को टेक मिलती है पर क्या सत्य के इस नये स्वरूप का भी दर्शन बिना पुरुषार्थ के होगा? सन् १९६५, '६६, '६७, '६८ अब '६९ भी, न जाने कितनी बार इन पांच वर्षों के बीच खादी-कमीशन के अध्यक्ष श्री ढेबरजी विनोबा के पास आये। हमेशा एक ही समस्या और निदान भी एक ही, पर सब मिलाकर मर्ज बढ़ता ही गया। हम क्या मानें? क्या यह कहा जा सकता है कि विनोबा के बताये रास्ते पर चलकर भी कोई प्रकाश नहीं मिला? यदि उनके विचार को हम व्यवहार में नहीं ला सके तो त्रुटि कहां है? क्या विचार के व्यवहार के लिए परिस्थिति परिपक्व नहीं हो सकी? या आज की खादी की प्रक्रिया एवं तंत्र का ढांचा निष्प्राण हो गया, जो अपनी अन्त्येष्टि की प्रतीक्षा कर रहा है।

जहां तक मेरी जानकारी है, नये विचार के आचार की ओर कोई प्रयास नहीं हो रहा है। जो कुछ भी अबतक हुआ, वह 'पीसमील प्रोग्राम' था, जो पुराने ढांचे को समय-समय पर स्वर्ण-भस्म देकर उसके हृदय की गति को अवरुद्ध होने से बचाता रहा। परिस्थिति परिपक्व नहीं है, इसे मानने का कोई कारण नहीं, नित्य हजारों हजार लोगों का ग्रामदान-समर्पण ग्राम-भावना की प्यास का प्रमाण है। इस कारण सहज ही हम तीसरे विकल्प पर आ पहुंचते हैं। महर्षि परशुराम ने समाज की अत्यन्त सेवा की, पर 'रामावतार' होते ही सदेह अन्तर्धान हो गये।

रचनात्मक जगत् राजनैतिक पार्टियों को बापू की अन्तिम वसीयतनामे की सीख दे नहीं सकते हैं, पर क्या सन् १९४७ के नवसंस्करण में प्रकट बापू की व्याकुलता को पुस्तकों में प्रकाशित कर खादी-संस्थाएं अपने कर्तव्य का इतिश्री मान लेंगी?

सर्व सेवा संघ ने पुराने सेवकों की सफेद चादर में स्वतंत्र समिति बनाकर इस महत्व की प्रत्यक्ष जिम्मेदारी को दुर्लक्ष किया है। सेवकों की समवेत सभा को इस प्रश्न पर गम्भीरता से विचार करना है।

सहज ही कोई ठोस प्रस्ताव अपेक्षित है। पुराने शरीर का विसर्जन हो, यह तो स्पष्ट है। इस चिन्तन को स्वीकार करने में सेवकों को संगठन के शरीर का मोह तथा नये चित्र को इसी जन्म में गढ़ लेने की आकांक्षा बाधा उत्पन्न करती है। यदि इस पर थोड़ा और स्थूल रूप से विचार करें तो हमारे सामने यह प्रश्न आयेगा कि आज के आन्दोलन का प्रमुख वाहक खादी-संगठन है। बिहार दान का किनारा, तमिलनाडु दान की तीव्रता एवं उत्तरप्रदेश जैसे विशाल राज्यदान के उपक्रम के पीछे वाहक शक्ति खादी-संगठन की ही है। पर बाबा पिछले वर्षों से कहने लगे हैं कि पर्वत के उत्तुंग शृंग की चढ़ाई की अन्तिम मंजिल पर गठरी फेंकनी पड़ती है।

कमीशन का पैसा, तंत्र, व्यापार, स्टाक, इमारत, सभी हमारे बाधक हैं। वस्तुतः आज का शरीर वास्तविक शरीर नहीं है। इसमें प्रभुत्व का प्रदर्शन, ऐश्वर्य का एहसास तथा तंत्र की दुर्गन्ध आती है, जिसमें समाज के क्रुद्ध मानस ने आग फूंक दी, पटना खादी-इम्पोरियम की काली दीवालें प्रतीकस्वरूप आज भी खड़ी हैं। खादी का वास्तविक रूप वह है, जिसे देखकर समाज के मन में श्रद्धा उत्पन्न हो, जो जीवन को आश्वासन देता हो। ऐसी खादी को जलानेवाले स्वयं समाप्त होंगे, जैसे अंग्रेजी शासन का हुआ। मुसोलिनी के दरबार में टंगी नग्न तलवार से जितना उसका हिंसक पराक्रम प्रकट होता था, उससे स्पष्ट सौम्य शक्ति अहिंसा के प्रतीक खादी से प्रकट होनी चाहिए।

मेरा मानना है कि खादी-संगठन कमीशन के पैसे और 'एप्रोड प्रोग्राम' से मुक्त होकर अपने कार्यकर्ताओं के हाथ में एक तकुए का चरखा देकर गांव की ओर एक साथ भेजने का निश्चय करे तो देश-दान शीघ्र होगा। संस्था के बचे हुए मकान, सरंजाम आदि की शेष निःशेष कायिक शक्ति नवनिर्माण का ज्ञापन होगी। इससे आगे का चित्र उभड़नेवाली नयी शक्ति के नवीन मानस से बनेगा। आज अपनी ओर से ग्रामसभा के लिए भी कार्यक्रम गढ़ देने का मोह हमारे पुराने शरीर को ढोने की आकांक्षा मात्र है।

ग्रामदान से भेड़ापुर, कशीपुर आदि का नष्ट तो प्रारम्भ हो गया है, पर खादी संगठन का पुराना शिव-पिनाक मुक्त शेखर समाज की प्रतीक्षा में पड़ा, ग्राम-भावना को ग्राम-स्वराज्य के वरण से रोक रहा है, जिसके बिना 'रामावतार' प्रकट नहीं होगा।

—निर्मलचन्द्र

विनोबाजी का पता

C/o बिहार ग्रामदान-प्राप्ति संयोजन समिति, कैम्प कार्यालय—जिला भूदान यज्ञ कार्यालय

बरदवान कम्पाउण्ड, २२, राजस्थान रोड

रांची (बिहार)

डा० जाकिर हुसैन

जो इन्सान था वह भगवान में मिला, और जाते-जाते हमारे लिए इन्सानियत की एक मिसाल छोड़ गया। गुणों की जिन बातों पर मनुष्य-जाति जिन्दा है, उसमें कुछ जोड़कर वह गया।

कौन था? आज भारत का राष्ट्रपति था एक ऊँचा इन्सान, जो आजादी की लड़ाई में लड़ा, जिसने बच्चों को प्यार किया, और उन्हें इन्सान बनाने की कोशिश की, जो धर्म का पाबन्द था लेकिन उन्माद से मुक्त रहा, जिसने ऊँचा-से-ऊँचा पद पाया लेकिन उसके मद से अलग रहा; उसने जीवन के अनेक उतार-चढ़ाव देखे लेकिन जो कभी इन्सान को भूला नहीं, और उसने कभी अपने भगवान को छोड़ा नहीं?

विपन्नता और वैभव, दोनों में जो अंत तक अपनी मनुष्यता को बचाये रख सका, वह साधारण मनुष्य नहीं था। "पूरा भारत मेरा कुनबा, और हर भारतीय मेरा सगा"—जो बचपन से बुढ़ापे तक इस मंत्र के सहारे धर्म और राजनीति के तूफानों में अविचल खड़ा रह सका, वह केवल मुसलमान नहीं था। वह यह सब तो था ही, पर कुछ और भी था। वह 'कुछ और' ही तो है जो लाखों की आँखों में आँसू लाता है, और याद बनकर दिलों में छिपकर बैठ जाता है। इस 'कुछ और' के ही कारण सदियों बाद जब मनुष्य अपनी पुरानी धरोहर को टटोलता है तो उसे उसमें मौजूद पाता है। हृदय के धन का कभी क्षय नहीं होता।

भारतीय हृदय इक्कीस साल पहले गांधी के गांधीत्व को पूरे तौर पर नहीं पहचान सका, उसे कुछ समय लगेगा जाकिर हुसैन के बड़प्पन को पहचानने में। हमारा हृदय आज भी हिन्दू है, मुसलमान है, ऊँच है, नीच है, उत्तरी है, दक्षिणी है। वह अभी विशुद्ध भारतीय नहीं हुआ है। हम मनुष्य होते हुए भी मनुष्यता से दूर हैं लेकिन यह सौभाग्य है कि इस दूरी को पार करनेवाले हमारे बीच एक के बाद दूसरे आते गये, और हमें दिखाते गये कि दूरी तो है लेकिन ऐसी नहीं है जो पार न की जा सके। डा० जाकिर हुसैन उन लोगों में थे जिन्हें यह दूरी पार करने की कभी कोशिश नहीं करनी पड़ी। उनके जीवन में दूरी कभी थी ही नहीं। तभी तो हिन्दू-प्रधान राष्ट्र में एक मुसलमान को राष्ट्रपति होने का गौरव मिला। जाकिर हुसैन के व्यक्तित्व में हिन्दू और मुसलमान, दोनों अपने बीच की दूरी भूल कर एक हो गये थे।

अगर डा० जाकिर हुसैन केवल राष्ट्रपति होते तो इतिहास की अनेक सूचियों में से एक में पड़े रहते, लेकिन उन्होंने तो इस देश के करोड़ों के हृदय में अपना स्थान युग युग के लिए सुरक्षित कर लिया है।

गाँव की क्रान्ति

इस चुनाव, इस राजनीति, और इस प्रशासन से समाज-परिवर्तन की शक्ति कभी निकलेगी, इसमें भरोसा हमने अठारह साल पहले खो दिया। हमारे मित्र नक्सालवादी अब खो रहे हैं। हमने उसी वक्त समझ लिया था कि नेता और सरकार को छोड़कर गाँव को पकड़ना चाहिए। यह नक्सालवादी भी अब शहर और कारखाने को छोड़कर गाँव को पकड़ रहे हैं। हम दोनों इस नतीजे पर पहुँच गये हैं कि नयी क्रान्ति का क्षेत्र गाँव ही है।

ग्रामदान और नक्सालवाद, दोनों 'प्रत्यक्ष कार्रवाई' (डाईरेक्ट ऐक्शन) के कार्यक्रम हैं। दोनों मानते हैं कि पीड़ित मानवता की मुक्ति राजधानियों में नहीं है, और आज की राजनीति में तो कतई नहीं है। नक्सालवादी को यह शिकायत है कि उन कम्युनिस्टों ने भी जो मार्क्स का नाम लेते थे 'सर्वहारा की क्रान्ति' को चुनाव और सरकार के पूँजीवादी मायाजाल में फँसा दिया। हमें भी यही शिकायत है कि हमारे नेताओं ने देश को पूँजीवादी मायाजाल में फँसा दिया।

अभी १ मई को कलकत्ता में नक्सालवादियों ने प्रदर्शन किया। नक्सालवादी के बाद कलकत्ता में वे खुलकर एक नयी शक्ति बनकर प्रकट हुए हैं। उन्होंने एक नयी पार्टी बना ली है जिसे वे 'कम्युनिस्ट मार्क्सवादी-लेनिनवादी' कहते हैं। इसमें माओ का नाम नहीं है, लेकिन उनके हाथ में तस्वीर उसीकी है। उन्होंने मार्क्सवाद-लेनिनवाद को मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद से अलग कर लिया है। एक कारखानों का साम्यवाद है, दूसरा खेतों का। हमारा ग्रामदान भी 'खेतिहर सर्वोदय' है।

नक्सालवादी कहता है 'हमें बुर्जुआ साम्यवाद नहीं चाहिए।' अगर उसी भाषा का प्रयोग करें तो हम भी कह सकते हैं कि हमें 'बुर्जुआ सर्वोदय' नहीं चाहिए। नक्सालवादी ने तय किया है कि क्रान्ति बन्दूक की नली से है, इसलिए उसकी कोशिश है कि गाँव के किसान मजदूर हाथ में बन्दूक लेकर सामने आयें, 'गुरिल्ला सिपाही' बनें। वे सामने आयेंगे तो गाँव-गाँव में संघर्ष होंगे, मरने-मारने का क्रम चलेगा, अराजकता फैलेगी, गृहयुद्ध होगा। नक्सालवादी कहता है कि जो होना होगा होगा, लेकिन इससे शोषितों की शक्ति बनेगी और एक दिन सत्ता बन्दूक के हाथ आयेगी और क्रान्ति पूरी होगी।

यही तो ग्रामदान नहीं चाहता। हम नक्सालवादी मित्रों से कहना चाहते हैं कि कुछ भी कीजिए सत्ता बन्दूक के हाथ मत आने दीजिए। सत्ता मनुष्य के लिए है तो मनुष्य के हाथ में रहनी चाहिए। सत्ता और सम्पत्ति, दोनों मनुष्य के ही हाथ में रहनी चाहिए। क्रान्ति जनता के लिए है तो जनता के हाथ में रहनी चाहिए। लेकिन यह

तब होगा जब क्रान्ति जनता की शक्ति से होगी, बन्दूक की शक्ति से नहीं। यही कारण है कि ग्रामदान ने गाँव की विद्रोह-शक्ति में भरोसा किया है। गाँव का विद्रोह उसके सामूहिक निर्णय में है। जब हमारी आँखों के सामने गाँव के-गाँव ग्रामदान में शरीक हो रहे हैं तो हम क्यों मानें, कैसे मानें, कि गाँव क्रान्ति विरोधी है? नक्सालवादी मानता है कि खेत का किसान और खेतिहर मजदूर तो क्रान्तिकारी हैं लेकिन बाकी सब क्रान्ति-विरोधी है। हम खेत के किसान और खेतिहर मजदूर को दूसरे मनुष्यों से अलग क्यों करते हैं? हम क्रान्ति का दरवाजा सबके लिए खुला क्यों नहीं रखते? किसीके लिए भी बन्द क्यों करते हैं? क्या यह बात नहीं है कि जमाना बदला है तो मनुष्य भी बदला है? मनुष्य के पास पूँजी हो तो वह क्रान्ति-विरोधी है और पूँजी न हो तो क्रान्तिकारी है, यह तर्क पुराना है। पूँजी भले ही शरारत करती हो, लेकिन उसके कारण मनुष्य क्यों मारा जाय? समस्या यह है कि पूँजी को समाज का अहित करने से कैसे रोका जाय?

जो भरोसा नक्सालवादी को बन्दूक में है वही भरोसा फासिस्टवादी को भी है। दोनों को एक ही भरोसा क्यों है? क्या फासिस्टवादी भी क्रान्तिकारी है? हम जानते हैं कि जब बन्दूक का शासन होगा तो वह थोड़े लोगों का ही शासन होगा, नाम हम चाहे जो उसे दें। फासिस्टवाद और नक्सालवाद, दोनों ही से शासक और सैनिक की ही शक्ति बढ़ती है। भूमिहीन को एक टुकड़ा जमीन देना, और बदले में उसकी छाती पर अपनी बन्दूक रखकर हुकूमत करना--यह भी कोई क्रान्ति है! क्या जमाने के साथ-साथ क्रान्ति की पद्धति नहीं बदलेगी?

ग्रामदान को भूमिहीन और गरीब उतने ही प्रिय हैं जितना नक्सालवादी को। ग्रामदान ऐसे ग्रामीण जीवन की कल्पना करता है जिसमें क्रान्ति का शुभारम्भ इससे होता है कि भूमि गाँव की हो, खेती खेतिहर की हो, रोटी और रोजी सबकी हो। गाँव के जीवन में सरकार का हस्तक्षेप न हो; गाँव पर किसी बाहरी का नेतृत्व न हो। ऐसी व्यवस्था में न बन्दूक का दमन रहेगा, न थैली का शोषण और न टोपी का नेतृत्व।

ऐसी ही व्यवस्था तो मार्क्स, लेनिन और माओ भी चाहते हैं। क्या नहीं? फिर क्यों मार्क्स-लेनिन-माओ का नाम लेनेवाले क्रान्तिकारियों को भरोसा नहीं होता कि गाँव में जो भी रहते हैं वे सब मनुष्य हैं। उन्हें मनुष्य से अधिक राज्य में भरोसा क्यों होता है? जब एक धनी व्यक्ति साम्यवादी हो सकता है--कितने ही हुए हैं, और आज भी हैं--तो यह सिद्ध है कि बुद्धि तात्कालिक स्वार्थ से ऊपर उठकर स्थायी हित को समझ सकती है। हम इस नयी चेतना का लाभ क्रान्ति के लिए क्यों नहीं उठाते? बुद्धि को ऊपर उठने से दो ही चीजें रोक सकती हैं--एक भय, दूसरी स्वार्थ, अगर हम गाँव के लोगों को आश्वस्त कर सकें कि ऐसी ग्राम व्यवस्था सम्भव है जिसमें किसीको किसीसे डरने का कारण नहीं, और जिसमें सबका उचित 'स्वार्थ' (स्थायी हित) सुरक्षित है, तो कौन है जो परिवर्तन का स्वागत करने से इनकार करेगा? क्यों हम अपनी अनावश्यक शंकाओं से गाँव-गाँव में प्रतिक्रान्ति पैदा करें? जिस देश में गरीबों का इतना प्रबल बहुमत है उसमें क्रान्तिकारी को मुट्ठीभर अमीरों का भय हो, यह इस बात का प्रमाण है कि मार्क्स का नाम लेकर भी क्रान्तिकारी आज की ऐतिहासिक परिस्थिति में क्रान्ति का नया स्वरूप नहीं स्थिर कर पा रहा है। मार्क्सवाद की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि उसने बदलती हुई ऐतिहासिक परिस्थिति में क्रान्ति के बदलते हुए स्वरूप की कल्पना की है। फिर क्यों हम आज देश की नयी परिस्थिति में सत्ता और स्वामित्व के स्वरूप के परिवर्तन की नयी पद्धति पर विचार करने से मुँह मोड़ते हैं, और क्रान्ति को बन्दूक की नली में ढूँढ़ने का सौ साल पुराना आग्रह दुहराते जा रहे हैं? माओ ने मजदूर से आगे बढ़कर किसान को क्रान्तिकारी माना जो कभी क्रान्ति का दुश्मन माना जाता था। हम इतना ही कहते हैं कि अब जरा नागरिक को क्रान्तिकारी मानकर देख लीजिए। हमारा उद्देश्य क्या है—दमन और शोषण का अन्त या संघर्ष के लिए संघर्ष? संघर्ष से किसकी शक्ति बढ़ती है--'क्रान्तिकारी' की या नागरिक की? क्या हम अब भी नहीं मानते कि जो राज्य कभी संरक्षण का साधन था वह आज कठोर दमन का साधन बन गया है? बन्दूक से इस दमनकारी राज्य की ही शक्ति बढ़ती है। क्या हम यही चाहते हैं? सरकार की शक्ति बन्दूक की शक्ति है, और बन्दूक से हमेशा सरकार की ही शक्ति बनती है। एक बार हम नागरिक की शान्तिपूर्ण विद्रोह-शक्ति पर भरोसा रखकर देखें तो! ग्रामदान यही देखना चाहता है। क्रान्तिकारी अपनी क्रान्ति में भी क्रान्ति करे, यह जमाने की माँग है। पुरानी क्रान्ति से नये परिणाम नहीं निकलते दिखाई देते। विज्ञान के जमाने में विचार की शक्ति को स्वीकार करना चाहिए, और अब बन्दूक की शक्ति का भरोसा छोड़ना चाहिए। लेकिन क्या हम बन्दूक को इसीलिए ढोते जायेंगे कि वह परिचित है? हम यह क्यों नहीं सोचते कि वह पुरानी पड़ गयी, इसलिए अब छोड़ देने लायक है?

ग्रामदान गाँव को ही क्रान्तिकारी बनाना चाहता है। नक्सालवादी गाँव के कुछ लोगों को लेकर क्रान्ति की शक्ति बनाना चाहता है। यह स्पष्ट है कि अगर गाँव क्रान्तिकारी नहीं बनेगा तो क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति के संघर्ष में पड़ जायगा। उससे गृहयुद्ध का जन्म होगा, क्रान्ति का नहीं। इतना मान्य है कि क्रान्ति में देर नहीं होनी चाहिए। देर होगी तो ग्रामदान और नक्सालवाद दोनों की हार होगी। अगर क्रान्ति 'कुछ' की बन्दूक का भरोसा करेगी तो भारत बन्दूक का गुलाम होगा। कौन जानता है कि वह बन्दूक साम्यवादी होगी या फासिस्टवादी? अगर 'गाँव' की जीत हुई तो भारत दुनिया को एक नयी चीज दे सकेगा। क्रान्ति मजदूर की देख चुकी, किसान की देख चुकी, पार्टियों की देख चुकी, अब उसे गाँव की देखना चाहिए। भारत में गाँव ही जनता है। जनता की ही शक्ति क्रान्ति की शक्ति है।●

उन्होंने शिक्षा को पक्षपात की प्रवृत्तियों से बचाया

जयप्रकाश नारायण

"मैं शायद यह गुस्ताखी की बात कहने के लिए माफ कर दिया जाऊंगा कि इस ऊंचे ओहदे के लिए मुझे जिन अनेक अनेक वजहों से चुना गया, उनमें से एक खास वजह यह है कि मेरा ताल्लुक अपने मुल्क के लोगों की तालीम से रहा है।" ये उद्‌गार भारत के तीसरे राष्ट्रपति ने अपने प्रारम्भिक भाषण के दौरान जाहिर किये थे।

यह एक अनोखी बात है कि जब डा० जाकिर हुसैन को मुल्क के सबसे ऊंचे ओहदे के लिए चुना गया तो उन्होंने अपना हवाला एक शिक्षक के रूप में दिया। वे जानते थे कि पिछले २० वर्षों में मुल्क में शिक्षकों का पेशा सत्ता की खींचातानी के कारण अपनी इज्जत खो चुका था। लेकिन डा० जाकिर हुसैन के लिए शिक्षा का पेशा उनकी जिन्दगी थी। इसलिए नहीं कि उन्हींके शब्दों में वे भी "सियासी आसमान के चमकदार सितारे की तरह चमक नहीं सकते थे", बल्कि इसलिए कि "शिक्षा राष्ट्रीय उद्देश्य-सिद्धि का प्रधान औजार है।" और, मुल्क की शिक्षा का गुण राष्ट्र के गुण के साथ अविभाज्य रूप में जुड़ा हुआ है यह बात डाक्टर जाकिर हुसैन ने अपने उद्‌घाटन भाषण में ही कही थी।

अफसोस की बात है कि इस देश की शिक्षा सरकार की इस हद तक आश्रित हो गयी है कि वह राष्ट्रीय उद्देश्य नहीं, बल्कि राजनीति का औजार बन गयी है। और, जैसे-जैसे मुल्क की राजनीति तेजी से ढलान की ओर फिसलती जा रही है वैसे वैसे शिक्षा भी गिरती जा रही है।

आजादी की लड़ाई के दिनों में ऐसी हालत नहीं थी। यह दुर्भाग्य है कि आजादी की लड़ाई के दिनों में सामने आनेवाली *चुनौतियों के मुकाबिले के लिए लोगों में जिस* ढंग की निःस्वार्थ सेवा, सबकी मिलीजुली कोशिशों और कठिन काम करने की विशेषताओं का दर्शन होता था वह आजादी के बाद नहीं दिखाई पड़ीं। उस जमाने में "राष्ट्रीय शिक्षा" के लिए लोगों द्वारा जगह-जगह जो कोशिशें की गयीं वे अपने आप में नमूना हैं। जामिया मिलिया की मिसाल उस जमाने की कोशिशों का एक प्रशंसनीय उदाहरण है। और जामिया मिलिया की कहानी जैसे डाक्टर जाकिर हुसैन की जिन्दगी की ही कहानी है।

एक नन्हा-सा बीज बढ़ने-बढ़ते बरगद के विशाल वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। आदमी की जिन्दगी में भी ऐसा ही होता है। आदमी के अन्दर एक छोटी सी चिनगारी है, जो उसे ऊंचे करतब की ओर ले जाती है। अगर आदमी के भीतर वह छोटी-सी चिनगारी न पैदा होती तो वह औरों के लिए अनजान हो बना रह जाता। डा० जाकिर हुसैन के बारे में भी ऐसा ही हुआ।

"मेरी जिन्दगी का वह पहला फैसला था जो मैंने खूब समझ-बूझकर किया था। शायद वही एक फैसला है जो वाकई मैंने कभी अपनी जिन्दगी में लिया है, क्योंकि उसमें से ही मेरी बाद की जिन्दगी का बहाव फूट निकला।" उपरोक्त शब्दों में जाकिर साहब ने अपनी उस जिन्दगी का जिक्र किया है जब उन्होंने अलीगढ़ में एक नवजवान, शिक्षक-छात्र की हैसियत से अपने आपको सभी चीजों से अलग करके असहयोग आन्दोलन में कूद पड़ने का फैसला किया था। असहयोग आन्दोलन सन् १९२० में गांधीजी द्वारा शुरू किया गया पहला राष्ट्रव्यापी आन्दोलन था। ऊपर ऊपर से ऐसा लगता है कि जाकिर साहब ने बात कुछ बढ़ा-चढ़ाकर कही है, लेकिन जो लोग उस नव-जागरण के जमाने में मौजूद रहे हैं, और जिन्होंने भावना के जोरदार बहाव में पड़कर नहीं, बल्कि खूब सोच-समझकर और दिल टटोलकर उस जमाने की प्रेरणाओं को स्वीकार किया था, वे ही इन शब्दों का अर्थ समझ पायेंगे।

सन् १९२१ की जनवरी के दिन थे। उन दिनों आत्मा को आलोकित करनेवाले असहयोग आन्दोलन की धारा में मैं खुद कूदने की तैयारी कर रहा था, उस समय के अपने निजी अनुभव की बात कहूं तो कहना चाहिए कि उस जमाने ने मेरे भीतर ऐसी चाभी भर

डा० जाकिर हुसैन की महान् आत्मा ईश्वर के पास चली गयी, जहाँ एक दिन सभी प्राणियों को जाना है! —विनोबा

दी जो तब से लेकर आज तक बराबर मुझे आगे बढ़ाती जा रही है।

तो, अलीगढ़ का निर्णय ही वह बीज था, जिससे भारत के तीसरे राष्ट्रपति का आविर्भाव हुआ। उस प्रारम्भिक बीजरूपी निर्णय के अभाव में डा० जाकिर हुसैन शायद अनजान आदमी तो नहीं रहते, लेकिन वे उस जमाने के उन बहुत-से पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियों में से होते जो आमतौर पर प्रचलित अच्छी आमदनीवाली नौकरियों या पेशे में लगकर संतुष्ट रहते हैं। लेकिन, अपने उस फैसले पर चलते नवजवान जाकिर साहब ने अपनी जिन्दगी को आजादी की लड़ाई, राष्ट्रीय शिक्षा, कुर्बानी, और गरीबी के लिए समर्पित कर दिया।

भारत के तीसरे राष्ट्रपति के चुनाव के समय पहली बार राजनैतिक दलों में आपसी मतभेद पैदा हुआ। उस मतभेद के कारण एक ऐसे पद के लिए पक्षपात की राजनीति का खेल खेलने की नासमझ कोशिश की गयी जिस पद का महत्त्व ही इस बात में है कि वह हर तरह के पक्षपात से ऊपर की चीज है। हालांकि डा० जाकिर हुसैन की उम्मीदवारी का फैसला चुनाव के जरिए हुआ, लेकिन उनकी पूरी जिन्दगी इस बात का

सबूत है कि वे हमेशा सोच-समझकर हर तरह के पक्षपात से अलग रहे।

डा० जाकिर हुसैन के जीवनी-लेखक श्री ए० जी० नूरानी ने उनकी जिन्दगी के इस पहलू को प्रकाशित करनेवाले कई उदाहरणों का उल्लेख किया है, जैसे कि जामिया मिलिया को कांग्रेस और मुस्लिमलीग के आपसी द्वन्द्व का अखाड़ा बनाने से बचाने की उनकी सफल चेष्टा, अन्तरिम सरकार के बनने पर उनको उसमें उस समय तक शामिल न होने की हिचकिचाहट जबतक कि मुस्लिमलीग उसके लिए राजी न हो जाय, और अन्त में अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उपकुलपति के चुनाव के समय उनकी यह शर्त कि जब तक अलीगढ़ विश्वविद्यालय की चुनाव-सभा (कोर्ट) उनके पक्ष में सर्वसम्मत प्रस्ताव नहीं करती तबतक वे उपकुलपति का पद स्वीकार नहीं करेंगे।

यह उनकी सफलता का एक प्रमाण था कि उन्होंने शिक्षा को पक्षपात की उत्तेजना से तो अलग रखना, लेकिन राष्ट्रीयता की मूल धारा और आजादी की लड़ाई से नहीं। जामिया की रजत जयन्ती के अवसर पर १७ नवम्बर १९४६ में उन्होंने एक ही मंच पर एक ओर जवाहरलाल नेहरू, मौलाना अबुल कलाम आजाद, और दूसरी ओर मुहम्मद अली जिन्ना और लियाकत अली खान जैसे कट्टे राजनैतिक प्रतिद्वन्द्वियों को इकट्ठा करके अपनी सफलता का जीता-जागता प्रमाण प्रस्तुत किया था।

उस दिन डाक्टर जाकिर हुसैन ने जो भाषण दिया था वह जल्दी भुलाने लायक नहीं। वह ऐसा समय था जब कि साम्प्रदायिक दंगों की लहर पूरे देश में फैल रही थी। एक शिक्षक की हैसियत से बोलते हुए उन्होंने कहा था—

"यह आग एक महान राष्ट्र में सुलग रही है। इस आग के रहते हुए उदारता और समझदारी के फूल कैसे खिलेंगे? जानवरों की दुनिया में रहकर आप इनसानियत को कैसे बचायेंगे? यद्यपि ये शब्द बहुत तीखे हैं, लेकिन आज की बिगड़ती हुई हालत में इससे ज्यादा तीखे शब्द भी नरम ही मालूम होंगे। हम लोग जो कि नये लोगों को इज्जत देने का वादा कर चुके हैं, अपने अन्दर महसूस होनेवाली तकलीफ को किस तरह जाहिर करें यह समझ में नहीं आता; जब कि हम देखते हैं कि बेगुनाह और मासूम बच्चे भी इस खौफनाक दहशत के असर से सुरक्षित नहीं हैं। किसी भारतीय कवि ने कहा है कि हरेक बच्चा जो इस दुनिया में आता है वह यह पैगाम लाता है कि खुदा ने अभी तक इनसान का भरोसा नहीं खोया है। लेकिन क्या हमारे मुल्क के लोगों का अपने आप पर से इतना भरोसा उठ गया है कि वे इन कलियों के खिलने के पहले ही उन्हें कुचल देने की ख्वाहिश रखते हैं!"

और तब, विशिष्ट आमंत्रितों को 'राजनैतिक आसमान के सितारों' के विशेषण से सम्बोधित करते हुए उन्होंने मन को उद्बोधित करनेवाली आवाज में कहा था—"खुदा के लिए एक जगह बैठिए और नफरत की इस आग को बुझाइए। यह पूछने का समय नहीं है कि इसके लिए कौन जिम्मेदार है और इसके कारण क्या हैं? आग फैलती जा रही है। मेहरबानी करके आप इसे बुझायें। इस समय सवाल यह नहीं है कि किस कौम पर मरने का खतरा मंडरा रहा है और किस पर नहीं। हमें इस बात का चुनाव करना है कि हम सभ्य इनसानी जिन्दगी पसन्द करते हैं या बर्बरता को। खुदा के नाम पर ऐसा न होने दीजिए कि इस मुल्क में सभ्यता की बुनियादें ही नष्ट-भ्रष्ट हो जायें।"

मैंने उनके शब्दों को विस्तार से इसलिए उद्धृत किया है कि उनका सन्देश आज भी तरोताजा है और आज के राजनीति के आकाश के सितारों को भी उनमें मानवीय और राष्ट्रीय कर्तव्यों के प्रति सजग रहने की जरूरत है।

जो इतना सक्रिय, सृजनशील, शिष्ट, निर्भय, सत्यवादी, समर्पित और राष्ट्र द्वारा मान्य था, ऐसे आदमी की जिन्दगी की कहानी वस्तुतः सबके लिए प्रकाश और प्रसन्नता का स्रोत है। (मूल अंग्रेजी से)

—श्री ए० जी० नूरानी द्वारा लिखित डा० जाकिर हुसैन की जीवनी की प्रस्तावना।

मध्यप्रदेश

• शाजापुर जिला गांधी शताब्दी समारोह के अन्तर्गत संयोजक जिलाध्यक्ष श्री आर० सी० दुबे ने जिले के पाँच विकासखण्डों में ग्रामस्वराज्य शिविर-शृंखला के दो दिवसीय शिविर लगाने के कार्यक्रम निश्चित किये हैं।

• छतरपुर जिला गांधी-शताब्दी-समिति और सर्वोदय-मण्डल द्वारा जिले के नौगाँव विकासखण्ड में १८ ग्रामदान प्राप्त हुए हैं। यह ज्ञातव्य है कि जिले के ईशानगर विकासखण्ड में पदयात्राओं के पहले दौर में १० ग्रामदान मिले थे।

• इन्दौर से ११ मील दूर, ग्रामदानी गाँव पालिया की जनता द्वारा ग्राम की शराब की दुकान हटाने के लिए १२ अप्रैल से शान्तिपूर्ण सत्याग्रह शुरू किया गया। पालिया की ६० प्रतिशत से भी अधिक जनता द्वारा लगभग १ वर्ष पूर्व शराब-दुकान बन्द कराने के अपने हस्ताक्षर-युक्त माँग-पत्र शासन को प्रस्तुत किया गया था। ग्रामसभा पालिया ने विगत १८ मार्च को मुख्यमंत्रीजी को पत्र लिखकर माँग की थी कि ३१ मार्च से दुकान बन्द कर दी जाय, अन्यथा सत्याग्रह शुरू किया जायगा। अतएव १२ अप्रैल से श्री शंकरलाल मण्डलोई के नेतृत्व में शान्तिपूर्ण सत्याग्रह किया गया। (सप्रेस)

श्रद्धांजलि

सर्व सेवा संघ एवं गांधी विद्या संस्थान, वाराणसी के सदस्यों की यह सम्मिलित सभा भारत के राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन के आकस्मिक एवं अप्रत्याशित निधन पर अपना हार्दिक शोक प्रकट करती है और दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए कामना करती है। यह सभा राष्ट्रपति के शोक-संतप्त परिवार के साथ संवेदना प्रकट करती है और आशा करती है कि इन दुःखद क्षणों में उन्हें इस शोक को सहन करने की पर्याप्त शक्ति एवं धैर्य मिले। ३ मई, '६९

भगवत्-प्रेरित काम होकर रहेगा

विनोबा

"माधव ! मोह फाँस क्यों टूटै,
बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रंथि
न छूटै ।"

एक साधु पुरुष थे, उनसे पूछा गया कि मोक्ष यानी क्या ? वे संस्कृत नहीं जानते थे। तो उन्होंने कहा, मो यानी मोह और क्ष यानी क्षय। मोह का क्षय यानी मोक्ष। मोह अनेक प्रकार के होते हैं। मोह का एक ही रूप नहीं है। वह तरह-तरह के रूप लेता है। ऐसे रूप लेता है कि लगता है कि मित्र है—लेकिन दुश्मन का काम करता है। जो साफ दुश्मन होता है, उसका तो उतना भय नहीं—समझ सकते हैं कि दुश्मन आया है। लेकिन दोस्त का रूप लेना और अन्दर से दुश्मनी करना अधिक खतरनाक है। दूसरे अनेक प्रकार के विकार हैं, वे प्रकट हैं। द्वेष है, तो वह प्रकट है। लेकिन मोह ऐसी वस्तु है, जो अनेक प्रकार के रूप लेकर आती है।

भगवत्-प्रेरणा की कुछ मिसालें

विचार तो ठीक लगता है, लिहाज दूसरी ओर होता है। यह हालत बहुतों की होती है। इसलिए इस आन्दोलन में कोई दाखिल हुआ, तो हम उसका कोई उपकार नहीं मानते। भगवान ने प्रेरणा दी इसलिए वह दाखिल हुआ। और जो दाखिल नहीं हुए, उन्हें नफरत नहीं करते। वे इसलिए दाखिल नहीं हुए कि भगवान ने उन्हें प्रेरणा नहीं दी। भगवद् प्रेरणा के अलावा दूसरी कोई प्रेरणा दुनिया में काम कर रही है ऐसा बाबा मानता नहीं। कल आंधी आयी। कौन कह सकता था कि आंधी आयेगी। लेकिन आयी और गयी। नुकसान नहीं किया, लेकिन कर भी सकती थी। अब सह्याद्रि बहुत पक्का, मजबूत माना गया था, हिमालय मुलायम माना गया। वहीं भूकम्प होते हैं। लेकिन कोई यह खयाल नहीं कर सकता था कि सह्याद्रि भी हिलेगा। लेकिन कोयना में भूकम्प हुआ। वैज्ञानिक ने कहा कि वहाँ जमीन के अन्दर ८०० मील नीचे पानी है और वह उधर से लेकर केरल तक है। इसका मतलब इतना हिस्सा सेन्सेटिव है। इसलिए एक भगवद् प्रेरणा ही दुनिया में काम करती है ऐसा बाबा का विश्वास है।

कौन मनुष्य क्या था और उसको प्रेरणा कैसे मिली, इसकी कुछ मिसाल : बाबा ने देखा एक प्रोफेसर सामान्य व्यक्ति, उसको इच्छा हुई कि भूदान, ग्रामदान का काम करे। उसने अपने काम से इस्तीफा दिया और भूदान-ग्रामदान का काम करना चाहा। मैंने उससे कहा, देखो भैया, अपने प्रान्त में काम मत करो, "ए प्राफेट इज नाट आनर्ड इन हिज ओन कण्ट्री।" तो वह निकल पड़ा उड़ीसा के बाहर। पंजाब में गया, उत्तर-प्रदेश में गया, राजस्थान में गया, गुजरात में गया। सब दूर अलख जगाया। जहाँ-जहाँ पटनायक जाता है, एकदम जनता खड़ी होती है। पटनायक नहीं होता, तो उत्तरप्रदेशवाले खबर नहीं करते।

दूसरी मिसाल, प्रोफेसर निर्मला। बाबा का भूदान शुरू हुआ और निर्मला को प्रेरणा मिली। निर्मला नागपुर में प्रोफेसर थी। उसने सोचा, यह मौका है, निकलना चाहिए, और वह निकल पड़ी। भूदान आरम्भ होकर १८ साल हुए। वह लड़की भी १८ साल से काम कर रही है। और जहाँ भी जाती है, उसका असर हुए बिना नहीं रहता। और कहाँ-कहाँ जाती है ? इधर असम से सौराष्ट्र तक और उधर केरल से गंगोत्री तक। लेकिन जहाँ जाती है, वहाँ आध्यात्मिक भूमिका रख देती है कि इस आन्दोलन का ऊपर का पहलू आर्थिक, मानसिक, सामाजिक है, लेकिन अन्दर से वह आध्यात्मिक है। और, हजारों लोग उसको सुनते हैं। उस लड़की ने जगह-जगह अलख जगाया।

मैंने तो पटनायक को प्रेरणा दी नहीं थी, निर्मला ने मुझसे पूछा नहीं था और इस्तीफा दे दिया और आयी। ऐसे दृष्टान्त अगर मैं दूँ, जो बिलकुल रस्सी काटकर आये हैं, तो ५०-६० तो सहज ही दे सकता हूँ।

"मात छोड़ी, बन्धु छोड़या,
छोड़या सगा सोई,
अँसुवन जल सींच सींच
प्रेम बेलि बोयी।
अब तो बात फैल गयी,
जाने सब कोई,
मीरा प्रभु लगन लागी,
होनी होय सो होई।।"

इस प्रकार से बिलकुल सब कुछ छोड़कर निकल पड़े हुए लोग, इस आन्दोलन में कई मिलेंगे। और उनको यह प्रेरणा बाबा की दी हुई नहीं है।

हमारे बापो—नबकृष्ण चौधरी। उड़ीसा के मुख्यमंत्री थे। एक दिन अचानक मंत्रीपद छोड़ दिया। उसके पहले मुझसे वे कई दफा मिले थे। लेकिन एक दफा भी मैंने उनसे छोड़ने को सुझाया नहीं था। उनके दिमाग में आया कि छोड़े बिना, रस्सी काटे बिना, मोह छोड़े बिना, लोक-शक्ति का निर्माण नहीं होगा। अशोक के मन में आया और उसने एकदम सारा छोड़ दिया, युद्ध बन्द कर दिया। प्राचीन काल की मिसाल अशोक की, लेकिन नबबाबू की मिसाल कोई कम नहीं है। यह सब मेरे ध्यान में आया और मेरा विश्वास दृढ़ हो गया कि दुनिया में भगवद् प्रेरणा के अलावा दूसरी कोई प्रेरणा काम नहीं करती।

दुनिया में सर्वोदय ही चलेगा

"मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।" अर्जुन को भगवान ने कहा, अर्जुन ! ये सारे मर चुके हैं, मुर्दा हैं, दीखते हैं जिन्दा, लेकिन ये मर चुके हैं—मैं उनको मार चुका हूँ तू निमित्त मात्र बन, तेरे यश के लिए मैंने यह नाटक किया है। बिलकुल ऐसा ही साक्षात्कार मुझे होता है कि *ये सारे मर चुके हैं। हमारा दुश्मन मर चुका* है, उसकी हस्ती है नहीं। यह तब ध्यान में आया, जब मैंने देखा कि कम्युनिज्म में बिलकुल दरार पड़ गयी है। एक जमाना था, जब कम्युनिस्ट कहते थे, सारी दुनिया में कम्युनिज्म की स्थापना होगी, हमारा भेद है नहीं। हमारा कार्य जब आरम्भ होगा, तब सब दुनिया में कम्युनिज्म की स्थापना होगी। तब

कार्य समाप्त नहीं होगा, प्रारम्भ होगा, और हम स्थापना करेंगे, सारी दुनिया में कम्युनिज्म को—लिबरेशन आर्मी भेजकर। लेकिन मजा क्या हुआ? उसमें दो भाग पड़ गये। इसलिए कि उन्होंने देखा कि यह जो हिंसा-शक्ति है, सैनिक-शक्ति है, वह पतिव्रता नहीं। पतिव्रता एक पति को वरी हुई रहती है। लेकिन हिंसा-शक्ति अमरीका के हाथ में भी जा सकती है। जहाँ कम्युनिज्म नहीं है, वहाँ भी जा सकती है। इसलिए वह व्यभिचारिणी है। उन्होंने यह देखा कि जितनी हिंसा-शक्ति उनके हाथ में है, उससे ज्यादा अमरीका के हाथ में है, तब उनके ध्यान में आया कि हिंसा-शक्ति से यह काम होगा नहीं। यह बात प्रथम रूस के मन में आयी, इस वास्ते उन्होंने सोचा कि हमको अपने देश में उत्तम-से-उत्तम कम्युनिज्म का नमूना दिखाना होगा, न कि हिंसा-शक्ति का। यह उनके मन में साफ हुआ।

लेकिन अभी चीनों के मन में यह बात साफ नहीं है। क्योंकि वहाँ ७० करोड़ लोग हैं इसलिए दस-बीस करोड़ मर जायें, तो कोई हरज नहीं। दीखता ऐसा है, लेकिन एक लेखक ने कहा है कि चीन जैसा सोच-सोचकर कदम डालनेवाला कोई दूसरा देश नहीं है। क्योंकि वह पुराना देश है। जवानों जैसा तुरन्त काम नहीं कर डालता। पाँच-पाँच, छह-छह साल बातें करता रहता है—कहता है, सब्र से काम करो, धीरे-धीरे बातें होंगी। उन्होंने पक्का निश्चय कर लिया है कि बार्डर को पक्का करना है, बाकी काम धीरे-धीरे। बातें खूब करता है। वह 'पेपर टायगर' है। बोलता है, धमकाता है, लेकिन करता कुछ नहीं। उसके नजदीक एक छोटा-सा द्वीप है पोर्तुगीजों के कब्जे में, उस पर हमला करके उसको कब्जे में करना चीन के लिए अत्यंत आसान है। लेकिन अगर वह वैसा करेगा, तो अमरीका उसमें पड़ेगा। इस वास्ते वह चुप है। और आपने पोर्तुगीजों को हटा दिया गोवा से, तो चीन ने एकदम धन्यवाद दिया आपको, कि आपने अच्छा काम किया—यह उपनिवेशवाद (कलोनिएलिज्म) बढ़ रहा है दुनिया में, उसके खिलाफ आपने काम किया। चीन से पूछा जाय कि तुम क्यों नहीं हटाते हो पोर्तुगीजों को तो कहेगा, अमरीका बीच में पड़ेगा। इस वास्ते मैं कह रहा हूँ, चीन में जो ताकतें (फोर्सेस) काम कर रही हैं, वे दीखती हैं प्रतिकूल, लेकिन वे खतरा उठाकर काम नहीं करेंगे। उनका कोई भय नहीं। रूस के बारे में दरार पड़ गयी तब मैं समझ गया कि दुनिया में कोई चीज चलनेवाली है तो सर्वोदय है। कम्युनिज्म का सैद्धांतिक (आयडियालाजिकल) मुकाबिला कर सके, ऐसी दूसरी चीज जो सारी दुनिया को स्पर्श करती है, वह है सर्वोदय।

सर्वोदय के लिए सप्ताह में एक समय का भोजन छोड़ें

कल की बात। मैं विद्यासागर से कह रहा था, आपका पैसा इतना विशाल है कि किसी बैंक में रख नहीं सकते। इसलिए वह हर घर में रखा है। हर घर में आपका पैसा है। "स्वयमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते, स्वं वस्ते, स्वं ददाति च"—बाबा अपना खाता है, अपना पहनता है। इच्छा हुई तो यहाँ की चीज उठाकर दे देगा। और पूछेंगे कि किसका दिया, तो कहेगा अपना ही दिया। कल मैंने एक मिसाल दी। एक जगह बच्चों ने और शिक्षकों ने मिलकर हमें अपनी जेब-खर्च तथा अपने तनख्वाह से थोड़ा-थोड़ा निकालकर कुछ पैसा दिया। वह उत्तम दक्षिणा है, मामूली दान नहीं। तब मैंने उनसे कहा, जो मैं पहले भी कई दफा कह चुका हूँ कि इससे भी उत्तम दान देने का तरीका है—हफ्ते में एक खाना छोड़ो। एक समय के भोजन का खर्च औसत ८ आना आता होगा। हफ्ते में हम २१ बार खाना लेते हैं। उसमें से एक खाना छोड़ना यानी साल भर में २६ रुपये होंगे। उतना सर्वोदय के काम के लिए दान दें। उससे आपका आरोग्य भी सुधरेगा और राष्ट्रसेवा भी होगी। हिन्दुस्तान में ५० करोड़ लोग हैं। मान लें, २५ करोड़ लोग इस प्रकार हफ्ते में एक खाना छोड़ते हैं तो कुछ ६५० करोड़ रुपये इकट्ठे होंगे। यह मेरा विचार आज का नहीं, ८ साल पहले कह चुका हूँ। यह सुनकर जर्मनी की स्टुटगार्ट की युनिवर्सिटी के विद्यार्थियों ने सोचा कि बात अच्छी है, बाबा यहाँ गरीबों के उत्थान का काम कर रहा है और उपाय भी ऐसा बताया है कि हमें भी लाभदायी है। तो उन्होंने उस तरह→

जिलादान के बाद क्या ?

(राज्यदान के सन्दर्भ में लोकशक्ति का विकास)

नया कदम : नये आयाम

उत्तरित भी, अनुत्तरित भी

१. 'जिलादान के बाद क्या ?' का प्रश्न उत्तरित भी है, और अनुत्तरित भी। उत्तरित इस अर्थ में है कि जिलादान के बाद राज्यदान है। राज्यदान के होने तक मंजिलें चाहे जितनी हों, लेकिन मुकाम एक ही है—राज्यदान। आन्दोलन की व्यूह-रचना की दृष्टि से ग्रामदान से राज्यदान तक का रास्ता साफ और सीधा है, बीच में रुककर पीछे देखने की न जरूरत है और न गुंजाइश।

यह प्रश्न अनुत्तरित इस अर्थ में है कि ज्यों-ज्यों राज्यदान करीब आता जाता है ग्रामदान पीछे पड़ने लगता है, और लोगों का ध्यान बार-बार आगे की ओर जाने लगता है। यद्यपि यह हमेशा स्पष्ट रहा है कि ग्रामदान पूर्वार्द्ध है, और ग्रामस्वराज्य उसी प्रक्रिया का उत्तरार्द्ध, फिर भी ग्रामस्वराज्य ग्रामदान से राज्यदान तक के सीधे रास्ते पर नहीं है। ग्रामस्वराज्य में संख्या से अधिक महत्त्व शक्ति का है। ग्रामदान में जनता का संकल्प है, ग्रामस्वराज्य में वह संकल्प-शक्ति के रूप में प्रकट होता है; और नये सामाजिक संगठन का आधार बनता है। ग्रामदान कार्यकर्ता के कहने से भी हो सकता है, लेकिन ग्रामस्वराज्य में ऐसा कुछ है ही नहीं, जो गाँव की जनता के मिलकर किये बिना हो सके। ग्रामस्वराज्य स्वाश्रयिता का अभ्यास है, और मुक्ति की दिशा में आरोहण की प्रक्रिया है।

यों तो ग्रामदान और ग्रामस्वराज्य, दोनों में लोकशिक्षण का तत्त्व समान है, फिर भी ग्रामस्वराज्य में संगठन का तत्त्व प्रमुख है, इसलिए उसकी पद्धति और व्यूह-रचना काफी नयी हो जाती है। क्या कार्यकर्ता साथियों को, और क्या जनता को, ग्रामस्वराज्य या ग्राम→

—दान के बाद सहज रूप से निकलता हुआ नहीं दिखाई देता। ग्रामस्वराज्य का शब्द नया, उसका स्वरूप नया, उसकी योजना और कार्यपद्धति नयी, इतने नयेपन के कारण 'जिलादान के बाद क्या ?' प्रश्न वस्तुतः अनुत्तरित रह जाता है। इस स्थिति के कारण जो कार्यकर्ता सोचने-समझनेवाले हैं, वे भी खोये-खोये-से लगने लगते हैं, और जो नागरिक चेतन हैं, उन्हें शंका और अनास्था घेरने लगती है। जिलादानी क्षेत्रों में जाने से आन्दोलन में गिरावट (डिप्रेशन) की स्पष्ट अनुभूति होती है, और ऐसा लगता है कि इस गिरावट को रोकना, और लोकचेतना में ग्रामस्वराज्य की नयी स्फूर्ति पैदा करना हमारा पहला काम है।

ग्रामदान में आगे की बात

२. प्रश्न है : 'यह काम कैसे हो ?' यह सही है कि तूफान में ग्रामदान पक्के हुए हैं, कच्चे हुए हैं, मिले जुले हुए हैं, और बिलकुल नहीं हुए हैं। साथ ही यह भी सही है कि आज तक प्रचार और शिक्षण का जो काम हुआ है, उससे ग्रामदान की गूँज वातावरण में फैल गयी है। आम तौर पर लोग जानने लगे हैं कि ग्रामदान क्या चाहता है। ग्रामदान का असर एक एक गाँव में भले ही न दिखाई दे, लेकिन आम हवा में है, और फैल रहा है। कुल मिलाकर एक ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति बनती जा रही है, जिसमें हम ग्रामदान से आगे ग्रामस्वराज्य की दिशा में, अगला कदम उठा सकते हैं। अब समय नहीं है कि ग्रामदान की किसी अपूर्णता का बोझ मन पर रखा जाय। ग्रामस्वराज्य में लोकशक्ति का जो चित्र और आवाहन है, वह अपने में इतना शक्तिशाली है कि ग्रामदान को ज्यों-का-त्यों समेटकर आगे बढ़ सकता है। इसलिए जरूरत है संगठित होकर जनता के सामने ग्रामस्वराज्य को प्रस्तुत करने की, न कि बैठकर ग्रामदान की शव-परीक्षा करने या गणित की तराजू में उसे तौलने की। अगर हम वैसा करेंगे तो नाहक दूसरे की आलोचना और साथियों की अनास्था के शिकार होंगे।

विकल्प की भूख

३. ग्रामदान के तूफान में हमने गाँववालों से बहुत कुछ कहा है, फिर भी अभी बहुत कहने को बाकी है। ग्रामदान के विराट् दर्शन के बिखरे विचार-मोतियों को पिरोकर हमने अभी ग्रामस्वराज्य की माला नहीं बनायी है। आन्दोलन का विषय बनाने को कौन कहे, ग्रामस्वराज्य अभी दूर की एक धीमी आवाज ही है। ऐसे साथियों और नागरिक मित्रों की संख्या कितनी होगी, जिन्हें ग्रामस्वराज्य के तत्त्व स्वायत्त ग्रामसभा, दलमुक्त ग्राम-प्रतिनिधित्व, ग्रामाभिमुख अर्थनीति, पुलिस अदालत-निरपेक्ष व्यवस्था, स्वतंत्र शिक्षण और सर्व-धर्म समभाव अच्छी तरह मालूम होंगे ? ग्रामदान के चेतन-से-चेतन गाँवों में चले जाइए, लोग ग्रामस्वराज्य के बारे में या तो अनभिज्ञ हैं, या अस्पष्ट। यह स्थिति जल्द-से जल्द दूर होनी चाहिए। मध्यावधि चुनाव में सबसे अच्छे उम्मीदवार का नारा लेकर हमने जो थोड़ा काम किया, उसका तत्काल भले ही कोई स्पष्ट प्रभाव न हुआ हो, लेकिन इतना तो हुआ दिखाई देता है कि आन्दोलन को प्रतिष्ठा मिली है, और लोगों में यह आशा और अपेक्षा जगी है कि सर्वोदय आज की राजनीति का कोई सुन्दर विकल्प सुझायेगा। लोग दल, ब्लाक, कोआपरेटिव और पंचायत, सबका विकल्प चाहते हैं। ग्रामस्वराज्य वह विकल्प है, और स्वायत्त ग्रामसभा उसकी बुनियादी इकाई, यह बताने—बताने ही नहीं, घोषणा करने का समय आ गया है। दलमुक्त-ग्राम-प्रतिनिधित्व कोरी कल्पना नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक योजना है, जिसकी परीक्षा का वर्ष १९७२ बहुत करीब है, यह कहने की शुरुआत अभी नहीं तो कब होगी ?

यह सम्भव है कि जिलादान के बाद राज्यदान के काम में बाधा न डालते हुए जिलादानी क्षेत्रों में ग्रामस्वराज्य के शिक्षण और संगठन के काम में शक्ति लगायी जा सके। हम जानते हैं कि हममें क्षमता जितनी चाहिए, उतनी नहीं है। एकसाथ एक से अधिक मोर्चों पर शक्ति लगाना प्रायः कठिन होता है, लेकिन हमें अपनी शक्ति का संयोजन करना पड़ेगा। उदाहरण के लिए, क्या कारण है कि उत्तर बिहार के ६ जिले, जिनकी कुल संख्या २॥ करोड़ से कम न होगी, बिहारदान की प्रतीक्षा करते बैठे रहें ? उलटे, अगर उनमें कुछ नयी हलचल दिखाई देती तो दक्षिण बिहार के काम पर बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ा होता। और, जो काम राज्यदान के तुरन्त बाद करना है उसे अभी से हाथ में लिया जा सके तो आन्दोलन के दो चरणों (फेज) के बीच में जो रिक्तता (वैकुअम) आ जाती है, और आन्दोलन को कमजोर करती है, उससे हम बच जायेंगे। इसके अलावा अबतक हमारा आन्दोलन समाज की चेतना को जिन बिन्दुओं पर छू सका है, उनसे अधिक बिन्दुओं पर छू सकेगा।

अभयदान

४. यह सारा काम सुनियोजित लोक-शिक्षण का है। शिक्षण द्वारा इस समय ग्रामस्वराज्य के तीन पहलुओं पर सबसे अधिक जोर देने की जरूरत है। (क) ग्रामस्वराज्य मूलतः स्वाश्रयिता (सेल्फ-रिलायेंस) का आन्दोलन है। गाँव में सरकार नहीं, सहकार। यह सामान्य भाषा में इसका मंत्र है।

—इसमें से एक खाना छोड़कर जो पैसा इकट्ठा हुआ हमें भेजना शुरू किया। वह पैसा बराबर हमारे पास आता है, और उसका उपयोग भी अच्छे काम में हो रहा है। उसका कारण यह है कि 'ए मार्केट इज नाट आलर्ड इन हिज ओन कंट्री।" हिन्दुस्तान में बाबा ने यह विचार कहा और जर्मनी—इतनी दूर वहाँ के विद्यार्थियों ने वहाँ अमल करना शुरू किया।

इसमें दो प्रकार के लाभ हैं। गरीबों के हित के काम में आपका सहयोग होगा और आरोग्य सुधरेगा। इसके अलावा एक तीसरा लाभ भी है—वह आध्यात्मिक है—प्रसन्नता होगी, संयम आयेगा। तो, त्रिवेणी संगम होगा। लेकिन यह तीसरा लाभ मैंने गुप्त रखा था, क्योंकि सरस्वती गुप्त रहती है।

यह अगर एक बार लगे कि हमारी चारों ओर—ऊपर, नीचे, दायें, बायें, सामने, पीछे—भगवान ही प्रेरणा दे रहा है, तो काम होकर रहेगा और हम निमित्त मात्र हैं ऐसा अनुभव आयेगा। जो निमित्त मात्र बनना चाहते हैं, उनको शून्य बनना चाहिए—अहंकार-शून्य। जो शून्य बनता है, वह अनन्त बनता है।

[कार्यकर्ताओं के बीच दिया गया भाषण। १८-४-'६९, पटना।]

यह स्वाश्रयिता खाने-कपड़े तक सीमित नहीं है, बल्कि पूरी ग्राम-व्यवस्था इसके अन्तर्गत आ जाती है। इसीलिए तो स्वायत्त ग्रामसभा की बात है। (ख) ग्राम-स्वराज्य में मालिक, महाजन, मजदूर, सबको 'अभयदान' है—हाँ, मालिक और महाजन को भी। हमारा आन्दोलन किसी वर्ग-विशेष का नहीं, 'सर्व' का आन्दोलन है, जिसमें एकांगी हितों को लेकर संघर्ष की गुंजाइश नहीं है। मगर हम 'सर्व' को छोड़ दें, तो आन्दोलन में रह क्या जाता है? (ग) नयी ग्राम-व्यवस्था के अंतर्गत बढ़ते हुए उत्पादन में मजदूर सामान्य मजदूरी के अलावा समुचित भाग का अधिकारी है।

हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि अब-तक हम न मालिक-महाजन को आश्वस्त कर सके हैं, और न मजदूर को आशान्वित। यह हम कब करेंगे? इसको किये बिना हम समाज की उस रचनात्मक चेतना और सहकार-शक्ति को कैसे जगा सकेंगे, जो ग्राम स्वराज्य के सारे कार्यक्रम के लिए अनिवार्य है? पूंजी-पति के प्रश्न को लेकर स्वयं हमारे चेतन कार्यकर्ता साथियों के मन में तरह-तरह की शंकाएँ रहती हैं, इसलिए चेतन ग्रामीणों के मन में भी तरह-तरह के भय बने हुए हैं। कारण कि हमने उन्हें नहीं बताया है कि ग्राम-स्वराज्य में ये भय निराधार हैं, क्योंकि गांव को पूँजीपति की पूँजी और प्रतिभा दोनों की जरूरत है, और उसका उचित मुनाफा ग्रामसभा के हाथों में ज्यादा सुरक्षित है। हमने ग्रामदान की वह अर्थ-नीति नहीं स्पष्ट की है, जिसमें मालिक, मजदूर, महाजन परस्पर-मारक न होकर, पूरक हो सकते हैं, जिसमें ग्रामहित की दृष्टि से पूँजीपति को सम्मान दिया जाता है और उसकी पूँजी का उपयोग किया जा सकता है। परिणाम यह हो रहा है कि ग्रामदान के बाद के कामों, जैसे पुष्टि और ग्रामसभा के संगठन आदि, के लिए उनके कदम नहीं उठ रहे हैं। जब उनके नहीं उठ रहे हैं तो मजदूर के कैसे उठें? मजदूर तो निराशा और अविश्वास के समुद्र में डूबा ही हुआ है।

भिन्न धरातल

५. ग्रामसभा के संगठन में हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न गांव की एकता (इन्टीग्रेशन) और ग्रामीणों के प्रमाद (इनर्शिया) का है। 'एक गांव एक हित' के नये नारे पर गांव को—वर्गगत शोषण और जातिगत दमन के ताने-बाने से बने गांव को—एक करना कठिन काम है। लेकिन अगर यह कठिन काम न हुआ, और जल्द न हुआ, तो ग्रामस्वराज्य की नींव कैसे पड़ेगी?

इतने वर्षों का *अनुभव बता रहा है* कि गांव अपनी भीतरी शक्ति बहुत हद तक खो चुका है। सहकार की शक्ति भी खो चुका है, और प्रतिकार की शक्ति भी खो चुका है। ऐसी स्थिति में हमें गांव के बाहर के बड़े क्षेत्र की शक्ति से गांव की समस्याओं को हल करने और उसकी अपनी शक्ति विकसित करने की कला सीखनी पड़ेगी। जिस धरातल पर समस्या पैदा होती है, उससे भिन्न धरातल पर उसका समाधान होता है। अभी तक हमने इतना ही किया है कि ग्रामदान के लिए गांव की सम्मति प्राप्त कर ली है। सम्मति से संकल्प, संकल्प से शक्ति, शक्ति से संगठन, और संगठन से स्वराज्य तक की सारी सीढ़ियां चढ़ने को बाकी हैं। समाज-परिवर्तन की सारी *डायनेमिक्स का शुभारम्भ मात्र हुआ है।* उसका विकास होना शेष है। आरोहण में सीढ़ियाँ तो कितनी ही हैं, लेकिन फिलहाल ग्राम-स्वराज्य काफी है। ग्रामदान की समस्याएँ ग्राम-स्वराज्य के ही धरातल पर हल होंगी।

सन् १९७२

६. जहाँ शक्ति का प्रश्न आता है, वहाँ अवधि का प्रश्न आ ही जाता है। निर्धारित अवधि के बाद शक्ति शक्ति नहीं रह जाती। हमारे सामने अवधि १९७२ है। स्वायत्त ग्रामसभाएँ १९७२ के पहले, दलमुक्त राज्य-व्यवस्था १९७२ में; सेवानिष्ठ, सत्ता निरपेक्ष, लोकसेवकों का भाईचारा आज से ही, यह हो सकता है ग्रामस्वराज्य के पहले चरण का टाइम-टेबुल। लोक-शक्ति लोक नीति में किस तरह परिणत होगी, किस तरह ग्रामसभाओं के प्रतिनिधि विधानसभा में जायेंगे और किस तरह सरकार बनेगी, आदि विषयों की मोटी रूपरेखा 'ग्रामस्वराज्य' पुस्तिका में दी हुई है। उसे गांव-गांव में पहुँचाना चाहिए, ताकि लोगों में मंथन हो, चिन्तन हो, और समाज की चेतना में लोक-नीति के सही स्वरूप का प्रवेश हो। आज भी परिस्थिति से निराश लोकमानस लोकनीति के लिए तैयार है। लोकनीति के सिवा दूसरा कोई नारा नहीं है, जो उसमें प्रेरणा भर सके—न किसी राजनीति का और न रचनात्मक कार्यक्रम का। यह याद रखने की बात है कि अगर हम १९७२ में भी चूक गये तो विनोबाजी के शब्दों में *'इतिहास हमें राइट-ऑफ कर देगा।'*

विकास

७. एक महत्वपूर्ण प्रश्न विकास (डेवलप-मेण्ट) का है। उजड़ा देश *विकास के लिए* भूखा है, और कार्यकर्ता भी कुछ करने देखने को उत्सुक रहते हैं। इस वक्त कई सघन-क्षेत्रों में विकास के कुछ काम हो भी रहे हैं। हम महसूस करते हैं कि सर्वोदय की भूमिका में विकास की एक नयी डायनेमिक्स विकसित होनी चाहिए, जो यह सिद्ध कर सके कि 'अन्तिम व्यक्ति' को छोड़े बिना गांव का अधिक विकास हो सकता है, जो यह बता सके कि वर्ग-संघर्ष के बिना सामाजिक न्याय की स्थापना हो सकती है? जो इस बात का जीवित प्रमाण बन सके कि ग्रामदान का ग्राम-स्वामित्व वास्तव में 'व्यावहारिक अमानतदारी' (ट्रस्टीशिप इन ऐक्शन) ही है, जिसमें मनुष्य की प्रेरणाओं के लिए भरपूर अवसर है, वासनाओं पर सामूहिक अंकुश है तथा सबके लिए समाज का संरक्षण है। इन गुणों के बिना *विकास विकास कैसे माना जायगा? यह* विकास शिक्षण और संगठन की निष्पत्ति (बाई प्रोडक्ट) के रूप में *होगा।*

यह तभी हो सकता है, जब ग्रामकोष इकट्ठा हो और ग्रामसभा द्वारा गांव अपने साधनों का संयोजन करे। बाहर की सहायता के बहिष्कार का प्रश्न नहीं है। वह आये, और जरूर आये; प्रश्न इतना ही है कि पूरक बनकर आये। अभी शायद ऐसा नहीं हो रहा है। जबतक ऐसा नहीं होता, तबतक हम यह नहीं कह सकते कि विकास हो रहा है; ज्यादा-से-ज्यादा यही कह सकते हैं कि कुछ काम हो रहा है। और, हमने कब माना कि *केवल काम हमारा काम है?*

नया अभियान

८. अगर परिस्थिति को यह परख सही हो तो ग्राम-स्वराज्य की पूर्वतैयारी के रूप में ये कदम जल्द उठाये जा सकते हैं :

(१) शिविर-अभियान

जिस तत्परता के साथ प्राप्ति का अभियान चलाते हैं, उसी तरह हमें चेतन कार्यकर्ताओं तथा नागरिकों के सम्मिलित 'ग्राम-स्वराज्य-शिविरों' का अभियान शुरू करना चाहिए—पहले राज्यस्तरीय, फिर जिलास्तरीय और ब्लाकस्तरीय भी। अभी तक प्राप्त सूचना के अनुसार राजस्थान और बिहार में यह क्रम शुरू हो गया है, और कुछ शिविर हो भी चुके हैं।

इन शिविरों में विशेष रूप से 'ग्राम-स्वराज्य' पुस्तिका को आधार मानकर चर्चा की जाय। चर्चा के बाद ग्राम-स्वराज्य की योजना कार्यान्वित करने के लिए स्थानीय मित्रों का आवाहन किया जाय। अनुभव आ रहा है कि मित्र मिलेंगे।

(२) त्रिविध कार्यक्रम के प्रयोग-क्षेत्र

जिन जिलों का दान हो चुका है, उनमें त्रिविध कार्यक्रम के सघन प्रयोग के लिए क्षेत्र चुने जायें। हर क्षेत्र में धुरी के रूप में कोई एक समर्थ साथी बैठे, जो स्थानीय शक्ति को प्रेरित कर सके। उसे 'प्रखण्ड-सेवक' कहा जा सकता है। अगर वह संस्था का कार्यकर्ता हो तो संस्था उसे रोजमर्रा की जिम्मेदारियों से मुक्त करे।

इन क्षेत्रों में अभियान-पद्धति से त्रिविध कार्यक्रम शुरू किया जाय। ग्रामसभाओं का संगठन, ग्रामदान की शर्तों की पूर्ति, आचार्यकुल, तरुण शान्ति-सेना, ग्राम शान्ति-सेना, पंचायतस्तरीय शिविर, सर्वोदय मित्र आदि कार्यक्रम सम्मिलित शक्ति से एक साथ लिये जायें।

बिहार और बलिया में इस योजना की शुरुआत हो गयी है। बिहार के लगभग तीन दर्जन मित्र इस तरह काम करने के लिए तैयार हुए हैं।

(३) नयी श्रेणी :

- जिन कार्यकर्ताओं की पहली निष्ठा ग्रामस्वराज्य की क्रान्ति के प्रति हो, उनकी एक नयी श्रेणी (केडर) बनायी जाय।
- आन्दोलन के वरिष्ठ व्यक्ति इन प्रखण्ड-सेवकों को अपने सत्परामर्श का लाभ पहुँचायें।
- प्रखण्ड सेवकों की बैठक अभी दो महीनों में एक बार आमंत्रण पर किसी प्रखण्ड-सेवक के क्षेत्र में हो। बिहार में ऐसी पहली बैठक मध्य जून में होगी।

(४) शहर का काम :

- सुविधानुसार शहरी क्षेत्रों में काम शुरू किया जाय।
- ज्यों ही किसी ब्लाक में तीन-चौथाई ग्रामसभाएँ बन जायें, उनकी प्रखण्ड-सभा बना ली जाय, और सारा काम उसके तत्त्वावधान में किया जाय।
- 'गाँव की बात' गाँव-गाँव में पहुँचायी जाय।

(५) प्रचार-साहित्य :

- अखबारों और रेडियो का प्रयोग यथासम्भव ग्राम-स्वराज्य के प्रचार और प्रसार के लिए किया जाय।
- अपनी 'ग्रामदान उप-समिति' ग्राम-स्वराज्य के विभिन्न पहलुओं पर अध्ययन और सरल साहित्य के निर्माण की व्यवस्था करे।

(६) जन-आधार :

कार्यकर्ता भले ही संस्था-आधारित हों, लेकिन कार्य जनाधारित हो। इसके लिए धन-संग्रह किया जाय और सर्वोदय-मित्र बनाये जायें। •

—तिरुपति अधिवेशन में प्रस्तुत सन्दर्भ लेख-२

सर्व सेवा संघ अधिवेशन-२

आन्दोलन के 'तूफान' में 'उफान' का अभाव

आन्दोलन की अभियान और व्यूह-रचना विषयक चर्चा अचानक ही पूरी हो गयी। चर्चा प्रारम्भ की थी गोविन्दरावजी ने, समारोप किया निर्मला बहन ने, बीच की रिक्तता पूरी की गयी प्रदेशीय रिपोर्टिंग से, जिसके लिए कार्यक्रम में कोई स्थान नहीं था।

आन्दोलन में प्राप्ति के बाद का प्रश्न पूरे देश के साथियों के सामने अनुत्तरित है। छिटपुट प्रहार हो रहे हैं, लेकिन इस चट्टान में कहीं दरार पड़ती दिखाई नहीं देती। आचार्य राममूर्ति ने इस विषय की चर्चा शायद इस दृष्टि से प्रारम्भ की होगी कि सामूहिक चिन्तन से कुछ नयी बातें सामने आयेंगी, लेकिन भाषण को मगन होकर सुनने के बाद किसी ने चर्चा की जरूरत ही नहीं महसूस की। निर्मल भाई ने अपने सवेरे के भाषण में एक मजेदार बात कही थी, कि विचार शिक्षण साहित्य-पठन से नहीं के बराबर होता है, हमारे गाँवों के लोग श्रवण प्रधान हैं। इस अधिवेशन में भाग लेनेवालों ने इस बार जाहिर कर दिया कि हम चर्चाओं की चकचक में नहीं पड़ते, हम तो श्रोता हैं, हमारा काम है सिर्फ सुनना।

राममूर्तिजी ने पहले से तैयार किये हुए और अधिवेशन में भाग लेनेवालों को परिपत्रित किये गये विचारणीय मुद्दों पर वक्तव्य देते हुए कहा, "१८ वर्षों के बाद यह आन्दोलन अब हमारी इच्छाओं और निष्ठाओं का ही नहीं रहा, जनता की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं का हो गया है। इस मनोवैज्ञानिक स्थिति से लाभ उठाने की स्थिति हमारी है या नहीं, यह चिन्ता का विषय है। ग्राम-स्वराज्य में कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसमें गाँववालों के किये बगैर कुछ हो सकता है। इसलिए राज्यदान होने के बाद और ग्राम-स्वराज्य की स्थिति आने के बीच की रिक्तता अधिक खतरनाक होगी। यह रिक्तता आने न पाये और राज्यदान के बाद ग्रामस्वराज्य में सहज प्रवेश हो, यह हमारी विशेष चिन्ता, चिन्तन और अभिक्रम का विषय है।"

राममूर्तिजी के बाद जे० पी० ने अपने महत्त्वपूर्ण भाषण में कई ऐसी बातों की ओर ध्यान खींचा, जो आन्दोलन की जीवनी-शक्ति को पुष्ट करने के लिए बहुत ही आवश्यक है। पहले तो उन्होंने आन्ध्रप्रदेश के कार्यकर्ताओं को ललकारा कि इस प्रदेश का काम धीमा

के प्रति आभार-प्रदर्शन के साथ अधिवेशन समाप्त हुआ।

अधिवेशन तो समाप्त हुआ, लेकिन मन में एक बेचैनी-सी पैदा कर गया। आन्दोलन जब अपनी उपलब्धियों के एक ऊँचे शिखर पर हो उस समय के इस अधिवेशन में ऐसा क्यों लगा कि मानो भाग लेनेवालों ने किसी विषय पर गम्भीरता से विचार करने से ही इन्कार कर दिया है? एक साथी ने मजाक-मजाक में कहा, "अधिवेशन हाल में उधर सभा की कार्यवाही चलती थी, इधर प्रतिनिधि लोग बाजार घूमने निकल जाते थे।"

यह बात आम होगी, ऐसा नहीं कह सकते। कहीं उस साथी ने किसी को बाजार में देख लिया होगा, और उसके आधार पर ही अधिवेशन के बारे में अपनी धारणा बना ली होगी, लेकिन इसमें से भी उदासीनता स्पष्ट झलकती है।

इस अधिवेशन से मन में जो प्रतिक्रियाएँ पैदा कीं, उन्हें आन्दोलन के एक सिपाही के नाते मैं सबके सामने रखना चाहता हूँ, इस आशा के साथ कि इस पर व्यापक सहचिन्तन शुरू होगा।

(१) अधिवेशन में गिनती करने पर भाग लेनेवालों में प्रत्यक्ष काम में लगे प्रतिनिधियों की संख्या २५ से अधिक नहीं निकली। इसके दो कारण समझ में आते हैं— (क) काम में लगे हुए अधिकांश साथियों के लिए मार्ग-व्यय जुटा पाना सम्भव नहीं हो पाया होगा, (ख) जिन प्रदेशों या जिलों में सघन काम हो रहे हैं, वहाँ के लोग अभियानों का सिलसिला तोड़कर अधिवेशन में शरीक होने की मनःस्थिति नहीं बना पाये होंगे।

(२) सर्व सेवा संघ के संगठन की बुनियाद प्राथमिक सर्वोदय मण्डल बहुत कम जगह अस्तित्व में हैं। जिला सर्वोदय मण्डल भी बहुत कम बने हैं। जहाँ बने हैं, उनमें भी ठोस कदम उठा सकने लायक बहुत कम हैं।

(३) कुछ थोड़े से जिलों में संगठन है भी, तो उनका जीवन्त सम्पर्क सर्व सेवा संघ से नहीं के बराबर है। इस दिशा में न तो सर्व सेवा संघ की ओर से सक्रियता दिखाई गयी है और न जिलों की ओर से।

(४) शायद आन्दोलन के नवीनतम स्वरूप के साथ सर्व सेवा संघ के वर्तमान ढाँचे का समुचित अनुबन्ध नहीं जुड़ पाया है, और जुड़ने के लिए नये सन्दर्भ में संगठन-सम्बन्धी अनिवार्य स्पष्टता भी कहीं है नहीं।

(५) बाबा कहते हैं कि 'भगवान हम छोटे लोगों से बड़े काम कराना चाहते हैं।' कहीं ऐसा तो नहीं है कि बड़े काम को विराटता का जो स्वरूप विकसित हो रहा है उसे देखकर हम लोग सहम से गये हैं, और हमारी चिन्तन धारा ही अवरुद्ध हो गयी है?

(६) अपने प्रदेशीय या अखिलभारतीय सभाओं को देखने पर ऐसा लगता है कि नये लोगों का आना बन्द हो गया है। निस्सन्देह क्षेत्रीय स्तर पर यह अनुभव नहीं होता। क्या प्रदेशीय और राष्ट्रीय स्तर के संगठन में किसी प्रकार की व्याप्त आन्तरिक जड़ता का लक्षण इसे माना जाय?

(७) सर्व सेवा संघ के पालितगाँव अधिवेशन में हुए निर्णय के अनुसार सन् १९५६ में आन्दोलन को जनाधारित करने के लिए उस समय के संगठन को विसर्जित किया गया। अपेक्षा थी कि संगठन के विसर्जन के बाद जनक्रान्ति को ठोर हाथ लगेगी और शक्ति का नया स्रोत फूटेगा। लेकिन कुछ ही दिनों बाद निराशा के ये स्वर जगह-जगह सुनाई पड़ने लगे कि भूदान-समितियों के विसर्जन के बाद सक्षम कार्यकर्ता तो किसी-न-किसी संस्था से चिपक गये और जिनको कहीं कोई स्थान नहीं मिला वे आन्दोलन के कार्यकर्ता बने रहे। इस बात को पूरी तरह स्वीकारना उचित नहीं होगा, लेकिन उक्त सिलसिले को आज भी कायम रखनेवाली मिसालें योग्य-से योग्य कार्यकर्ता साथी भी पैदा करते रहते हैं तो सवाल उठता है कि क्या इस आन्दोलन में समर्पित जीवन की आवश्यकता नहीं है? निश्चय ही एक बार शहीद हो जाने से बहुत अधिक कठिन है शहादत की जिन्दगी जीना, लेकिन इसके बिना भी क्या भविष्य में कोई क्रान्ति सफल होनेवाली है?

(८) कुछ साल पहले के हमारे अधिवेशनों सम्मेलनों में सूत्र और श्रम-यज्ञ के प्रतीकात्मक कार्यक्रम रखे जाते थे, जिनके कारण वातावरण में परम्परागत सम्मेलनों से भिन्न एक वैचारिक तथापन रहता था, अब तो फावड़ों की जगह फाइलों ने ले ली है, यद्यपि उसमें जितने कागज होते हैं, उनमें से अधिकांश अपठित और शायद अनपढ़े ही रह जाते हैं। फावड़े को कायम रखते हुए फाइलों का सिलसिला चले तो उससे अच्छी बात और क्या होगी?

तिरुपति-अधिवेशन ने हमें अपने अन्दर झाँकने की प्रेरणा दी, और इस अवलोकन में जो कुछ दिखाई दिया उसे निःसंकोच साथियों के समक्ष प्रस्तुत करने की मैंने धृष्टता की।

आशा है, आप सब इन पर विचार करेंगे, और अपनी सम्मति भेजेंगे, ताकि जब हम राजगीर में मिलें तो वहाँ मायूसी की छाया नहीं उमंग की लहरें उठती दिखाई दें।

—रामचन्द्र 'राही'

'भूदान-यज्ञ' : नाम-चर्चा

'भूदान यज्ञ' का नाम बदला जाय, यह सुझाव बार-बार कार्यकर्ता साथियों की ओर से आता रहता था, इसलिए हमने इसकी चर्चा 'भूदान यज्ञ' में शुरू की। बहुत सारे पत्र आये, बहुत से सुझाव आये परिवर्तन के पक्ष में भी, विपक्ष में भी। अभी भी हमारे पास कई पत्र पड़े हैं : सिकन्दराबाद (आंध्र) से उत्तमजी ने तथा श्री अ० स० गद्रे ने सुझाया है 'अहिंसक क्रान्ति', रायबरेली के आनन्द प्रियदर्शी ने 'अभियान' सुझाया है। भागलपुर के श्रीधर प्रसाद सिंह ने 'ग्रामदान महायज्ञ', मथुरा के जयती प्रसाद ने 'ग्रामस्वराज्य सन्देश', बरेली के ओमप्रकाशजी ने 'सत्याग्रह-क्रान्ति' सुझाया है। फैजाबाद के सीताराम सिंह और मुरादाबाद के लखीचन्द ने 'भूदान-यज्ञ' को कायम रखने की बात लिखी है।

अब हम इस चर्चा को बन्द कर रहे हैं। पाठकों के सुझाव सर्व सेवा संघ के सामने आ गये, अच्छा हुआ। जहाँ तक बाबा की राय मालूम है, उन्होंने पिछले साल इस प्रश्न पर कहा था कि गांधीजी 'हरिजन' में पूरे स्वराज्य की बात लिखते थे, 'भूदान यज्ञ' में भी पूरे ग्रामस्वराज्य की बात लिखी जा सकती है। —सम्पादक

✻ गांधी-शताब्दी कैसे मनायें ? ✻

★ आर्थिक व राजनैतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण और ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के लिए ग्रामदान-आन्दोलन मे योग दें।

★ देश को स्वावलम्बी बनाने और सबको रोजगार देने के लिए खादी, ग्राम और कुटीर-उद्योगो को प्रोत्साहन दें।

★ सभी सम्प्रदायों, वर्गों, भाषावार समूहों में सौहार्द-स्थापना तथा राष्ट्रीय एकता व सुदृढ़ता के लिए शांति-सेना को सशक्त करें।

★ शिविर, विचार-गोष्ठी, पदयात्रा वगैरह में भाग लेकर गांधीजी के संदेश का चिंतन-मनन और प्रसार करें, उसे जीवन में उतारें।

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म शताब्दी-समिति),
दूंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैंरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

पुस्तक-परिचय

हापल

(ग्रामदानी गाँव : ग्रामसभा की कार्य-पद्धति और सम्बन्धों का अध्ययन)

शोध अधिकारी : अवध प्रसाद

प्रकाशक : कुमारप्पा ग्राम-स्वराज्य संस्थान, गोकुल, दुर्गापुरा, जयपुर (राजस्थान)

पृष्ठ : ८४, मूल्य : २-२५ ।

७०० वर्षों के अपने इतिहास में हापल ने अनेक प्रकार के उतार चढ़ाव देखे। प्राप्त ऐतिहासिक सूत्रों एवं किंवदन्तियों के आधार पर हापल गाँव (जिला सिरोही, राजस्थान) को बसाने का श्रेय भोला भट्ट को है। इस गाँव की जमीन राजा जयसिंह ने अश्वमेध यज्ञ के सम्पन्न हो जाने पर दक्षिणास्वरूप एवं जीविका के लिए जागीर में दी थी।

इसी हापल गाँव के निवासी थी गोकुल-भाई भट्ट हैं, जिनको अपने अदम्य उत्साह एवं अपरिमित त्याग के कारण राजस्थान के स्वतंत्रता सेनानियों एवं सर्वोदय आन्दोलन के संचालकों में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है।

इस गाँव की छोटी छोटी समस्याओं को हल करने के लिए 'क्षौत' नाम की संस्था ने बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसी क्षौत के सर्वसम्मत प्रयास से इस गाँव का ग्रामदान हुआ। हर नये काम का, नये विचार का एक अपना आकर्षण होता है। ग्रामदान की हवा ने इस गाँव के लोगों को नयी स्फूर्ति प्रदान की है।

ग्रामदान का नाम लेते ही हम सबका ध्यान स्वामित्व विसर्जन पर जा टिकता है। वैसे तो इस गाँव में भूमि कभी व्यक्तिगत सम्पत्ति थी ही नहीं। समाज पंचायत लेती थी। लेकिन एक चीज ग्रामदान के बाद विशेष रूप से यहाँ हुई, जो कि इस गाँव के इतिहास में कभी नहीं थी, वह यह कि जमीन पर ब्राह्मणों का ही संयुक्त रूप से अधिकार था, वह ग्रामदान के बाद स्वेच्छा से 'सर्व' के हाथ में चला गया। अब उस गाँव में सभी भूमिवाले हो गये हैं।

इस पुस्तिका में हापल का सर्वांगीण सर्वेक्षण प्रस्तुत करके गाँव को नयी दिशा क्या हो, यह बताने का बड़ा ही विवेकपूर्ण प्रयास किया गया है।

"कुमारप्पा ग्राम-स्वराज्य संस्थान के शोध-अधिकारी श्री अवध प्रसाद ने हापल में जाकर वहाँ के लोगों से प्रत्यक्ष सम्पर्क किया और अध्ययन-रिपोर्ट के रूप में इस पुस्तिका को तैयार किया है। इस पुस्तिका से भावी शोधकर्ताओं को प्रश्नावली बनाने एवं सर्वेक्षण की शैली अपनाने में बड़ी सहायता मिलेगी।

८४ पृष्ठों की "हापल" नामक पुस्तिका में ग्रामदानी गाँव, ग्रामसभा की कार्य पद्धति और पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन पाँच अध्यायों में समाहीत है। अन्त में प्रश्नावली अंकित कर अपने परिश्रम को सार्थक कर दिया गया है।

सम्पूर्ण पुस्तक की साज और मेकअप सुन्दर है, किन्तु प्रूफ की अशुद्धियाँ हर पृष्ठ में खटकती हैं। वाक्य-रचना बड़ी शिथिल-सी है, जो कि पाठकों को खटकेगी, किन्तु शायद वाक्य सजाने और संवारने की कोशिश की गयी होती तो रिपोर्ट की मौलिकता नहीं रह जाती।

ग्रामदान आन्दोलन में लगे कार्यकर्ताओं एवं समाज शास्त्र का अध्ययन करनेवालों के लिए यह पुस्तिका बड़ी उपयोगी है।

—कपिल अवस्थी

लन्दन में भू-क्रान्ति दिवस का आयोजन

• लन्दन मे भारतीय युवक श्री सतीश-कुमार द्वारा १८ अप्रैल को भूदान-आंदोलन की अठारहवी वर्षगांठ पर एक विशेष रैली का आयोजन दि मार्टिन लूथर किंग फाउण्डेशन के तत्वावधान में किया गया। ट्राफिल्गर स्क्वायर स्थित महात्मा गांधी की प्रतिमा के पास से २०० नर-नारी हाथों में गांधी, विनोबा और मार्टिन लूथर किंग के चित्र लिये हुए मार्च कर रहे थे। उनके हाथों मे "हम विनोबा भावे की अहिंसक भूमि क्रान्ति का समर्थन करते हैं," आदि बैनर भी सुशोभित थे। सर्वप्रथम यह विशाल जुलूस भारतीय हाईकमीशन पहुँचा, जहाँ रेवरेण्ड कैनन कोलीन्स, सतीशकुमार और रेवरेण्ड कालिन होगेट के प्रतिनिधि मण्डल का राजनीतिक परामर्शदाता ने भारतीय उच्चायुक्त की अनुपस्थिति में स्वागत किया। मि० कैनन कोलीन्स ने विनोबा भावे के समर्थन और समेवय पर एक पत्र दिया। तत्पश्चात् पदयात्री 'लन्दन स्कूल आफ नानवायलेन्स' गये, जहाँ "ग्रामदान" विषय पर प्रवचन हुआ। वक्ताओं में सर्वश्री कैनन कोलीन्स, जियाफे आसे, जार्ज क्लार्क, अर्नेस्ट बाडर, सतीशकुमार, निर्मल वर्मा और डोनाल्ड ग्रूम प्रमुख थे।

लन्दन के लिए यह प्रथम अवसर था, जब कि ग्रामदान-आन्दोलन के लिए लोक-समर्थन का इतना विशाल आयोजन हुआ। हजारो दर्शक यह जानने को व्यग्र थे कि ग्राम-दान है क्या और यह विनोबा कौन है? श्री सतीशकुमार द्वारा ग्रामदान-आन्दोलन विषयक प्रकाशित नोटिस का जनता ने स्वागत किया।•

सर्व सेवा संघ कार्यालय क्रान्ति का 'सेल' बने

—अध्यक्ष श्री एस० जगन्नाथन् की कार्यकर्ताओं से मार्मिक अपील—

वाराणसी : ६ मई। सर्व सेवा सघ के प्रधान कार्यालय मे नव निर्वाचित अध्यक्ष श्री एस० जगन्नाथन् ने कार्यकर्ताओं की परिचय-सभा मे बोलते हुए कहा—"ग्रामदान क्रान्ति का आध्यात्मिक और नैतिक ढाँचा है। ग्राम-दान, जो अब प्रदेशदान की मंजिल पर पहुँच रहा है, क्रान्ति की शक्ति तभी बन सकेगा, जब हमारे हर साथी के दिल में क्रान्ति की ज्वाला पैदा होगी। हम चाहे जिस किसी भी काम में लगे हों, हमारी चेतना में हरदम यह बात रहनी चाहिए कि हम एक महान् क्रान्ति के कर्ता हैं।" आपने कहा कि "क्षेत्र और कार्यालय के कार्यकर्ताओं में कोई भेद नहीं होना चाहिए। हर कार्यकर्ता को क्षेत्र में काम करना चाहिए और क्षेत्र के कार्य-कर्ताओं को कार्यालय का काम भी करना चाहिए। जब ऐसी स्थिति आयेगी तभी सर्व सेवा संघ सच्चे अर्थों में क्रान्ति का 'सेल' और विनोबा के सन्देशों का वास्त-विक वाहक बन सकेगा।" आपने गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष और प्रदेशदान उपलब्ध विनोबा के मार्गदर्शन में काम करने के अव-सर को जीवन का सौभाग्य बताते हुए कहा कि "हम कार्यालय के चाहे जिस काम में लगे हों, हम सबसे पहले क्रान्तिकारी हैं और बाद में और कुछ!"

उत्तरप्रदेश

• बदायूँ जिले में २६, २७ मार्च को ग्रामदान-अभियान का प्रथम शिविर हुआ। शिविर के बाद ५० कार्यकर्ता गुन्नौर तहसील के रजपुरा ब्लाक में ग्रामदान-प्राप्ति हेतु गये। ५ अप्रैल को पलश्रुति-समारोह में रजपुरा का प्रखण्डदान घोषित हुआ।

• ६ अप्रैल को ग्रामस्वराज्य दिवस पर गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र कानपुर द्वारा आयोजित "सर्वोदय मित्र-मिलन" गोष्ठी में डा० सोमनाथ शुक्ल ने दलमुक्त ग्राम-प्रति-निधित्व से ही लोकशाही की वास्तविक प्रतिष्ठा बताया।

प्रो० ओंकारशंकर विद्यार्थी ने भारत और पाकिस्तान की सांस्कृतिक एवं भौगोलिक एकता के आधार पर मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने की आशा व्यक्त की। श्री जाफर अली ने पाकिस्तान की मौजूदा हालत से खुदगर्ज राजनीतिज्ञों को सबक लेने की अपील की। इसी गोष्ठी में जालियाँवाला बाग के शहीदों का भी पुण्य स्मरण किया गया।

महाराष्ट्र

• श्री जयप्रकाश नारायण-सम्मान समिति, बम्बई की प्रथम बैठक ३१ मार्च को डा० पी० बी० गजेन्द्रगडकर के सभापतित्व मे हुई जिसमें श्री जयप्रकाश बाबू के मित्रों और प्रशसकों ने बम्बई महानगरी के उपयुक्त एक थैली भेंट करने का निश्चय किया है। श्री गजेन्द्रगडकर ने कहा कि देश में इस वक्त श्री विनोबाजी और जयप्रकाशजी ही हैं जो त्याग और सेवा के द्वारा जनता की वास्तविक सेवा में रत हैं। आपने कहा कि हम बम्बई-निवासी केवल सत्ता और राज-नीतिज्ञों को ही आदर नहीं देते, अपितु लोक-हित में सन्नद्ध महात्माओं और देश के लिए कुरबानी करनेवालों को भी सम्मानित करने में पीछे नहीं रहते। इस अवसर पर उपस्थित सम्भ्रान्त लोगों की समिति धन-संग्रह हेतु बना दी गयी है।

हिमाचल प्रदेश

• हिमाचल प्रदेश में कांगड़ा जिले में सर्व सेवा संघ के परिपत्रानुसार सर्वोदय मंडल का गठन हुआ और श्री सत्यपाल (२६ वर्ष) सर्वसम्मति से संयोजक बनाये गये। अपने प्रदेश में सर्वोदय-साहित्य-प्रसार के लिए सतत प्रयत्नशील हैं।

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक—साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ३३

सोमवार १९ मई, '६९

अन्य पृष्ठों पर

मृत्यु के समय जो विचार चित्त में गहरा पैठ जाय, वही दूसरे जन्म में जोरदार सिद्ध होता है। वही पूँजी लेकर जीव आगे की यात्रा के लिए निकलता है।

—विनोबा

सम्पादक

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी–१, उत्तर प्रदेश

फोन : ५३८५

धार्मिक चोगे उतारने होंगे

जिनके हाथ में पाकिस्तान का भाग्य है, उन सभी पाकिस्तानवासियों को मैं एक मित्र और हितैषी के नाते कहूँगा कि अगर उनका ईमान जाग्रत नहीं हुआ और उन्होंने अपनी भूलों को स्वीकार नहीं किया, तो वे पाकिस्तान को स्थायी बनाने में निष्फल होंगे।

इसका अर्थ यह नहीं कि मैं (दोनों देशों के) स्वेच्छया पुनर्मिलन को नापसंद करता हूँ। लेकिन मैं इस विचार का विरोध करूँगा कि हथियारों के बल से पाकिस्तान को भारत के साथ मिलाया जाय। मुझे आशा है कि मेरे इस कथन को बेसुरा आलाप मानने की गलतफहमी न की जाय, खासकर इस वक्त, जब मैं सचमुच मृत्युशय्या पर पड़ा हूँ। मैं उम्मीद करता हूँ कि सभी पाकिस्तानी यह महसूस करें कि अपनी कमजोरी के कारण या उनकी भावनाओं को चोट न पहुँचे, इस भय के कारण जिसे मैं ईमानदारी से ठीक मानता हूँ, अगर उसे उनको न कहूँ तो मैं अपने प्रति असत्याचरण करूँगा।[1]

हिन्दू मुस्लिम प्रश्न के विषय में मेरा एक ही उद्देश्य है कि इसका समुचित समाधान तभी होगा, जब भारत या पाकिस्तान में लघुमति अपने-आप को सुरक्षित माने, भले ही वह लघुमति एक ही व्यक्ति की क्यों न हो। कहीं भी न तो किसी कौम को विशेषाधिकार होगा और न कोई दलित वर्ग होगा। सभी को अपने-अपने धार्मिक चोगे उतार देने होंगे।[2]

हर मुसलमान को भारत से और हर हिन्दू व सिक्ख को पाकिस्तान से खदेड़ देना इस देश के लिए युद्ध व सर्वनाश का आवाहन करना है। यदि दोनों राज्यों में ऐसी आत्मघातक नीति का अनुसरण किया गया, तो पाकिस्तान व हिन्दुस्तान में इस्लाम व हिन्दू-धर्म के लिए वह विनाश का कारण होगी। अच्छाई से ही अच्छाई पैदा होती है। प्रेम से प्रेम उत्पन्न होता है। रही बदले की बात, सो मनुष्य को इसी में शोभा है कि (दंड के लिए) वह कुकर्मी को प्रभु के हाथों में सौंप दे। इसके अतिरिक्त मुझे और किसी मार्ग की जानकारी नहीं।[3]

मैं इस बात का प्रतिपादन नहीं करता कि भारत की सरकार पाकिस्तान में हिन्दुओं व सिक्खों पर हो रहे दुर्व्यवहार की ओर ध्यान न दे, उनकी रक्षा के लिए उन्हें भरसक सभी प्रयत्न करने होंगे। परन्तु निःसंदेह इसका यह उत्तर नहीं कि वे पाकिस्तान के कुख्यात तरीकों की नकल करें और मुसलमानों को खदेड़ दें। हाँ, जो स्वेच्छा से पाकिस्तान जाना चाहें, उन्हें सीमा तक सुरक्षित पहुँचा दिया जाय।[4]

मो० क० गांधी

हरिजन—(१) २२-९-'४७; (२) २४-९-'४७; (३) २८-९-'४७, (४) २-१०-'४७

बिहार की राजधानीवाले पटना जिले का आधा भाग ग्रामदान में शामिल

"आगे हम फिर समय नहीं मांगेंगे, और ३१ मई तक पटना जिलादान अवश्य पूरा करेंगे," यह आश्वासन देते हुए समाहर्ता श्री श्रीवास्तव ने बाबा से कहा कि श्री विद्यासागरजी के साथ मिलकर हमने शेष प्रखण्डों को ग्रामदान में लाने की कार्यकारी योजना बनायी है।

३० अप्रैल को गांधी स्मारक संग्रहालय में विनोबाजी के निवास-स्थान पर पटना जिले के कार्यकर्ताओं की बैठक में श्री विद्यासागर भाई ने कहा कि हमें खेद है कि हम अपने वादे के अनुसार अपना जिलादान समर्पण नहीं कर सके। परन्तु पटना जिले का सबसे बड़ा अनुमंडल बिहारशरीफ अनुमंडलदान पू० बाबा को समर्पित कर रहा हूँ, जिसमें १. राजगीर, २. अस्थावां, ३. नूरसराय, ४. हिलसा, ५. चण्डी, ६. इस्लामपुर, ७. एकंगरसराय, ८. गिरियक, ९. बिहार और १०. रहुई प्रखण्ड आते हैं। इन प्रखण्डों के कुल ८८२ गांवों में से ग्रामदान में शामिल गांवों की संख्या ७०५, कुल जनसंख्या ९,१३,८६८ में से ग्रामदान में शामिल जनसंख्या ७,२६,५२६, कुल रकबा—५,११,५३७ एकड़ में से ग्रामदान मे शामिल रकबा २,७२,०५० एकड़ ४२ डिसिमल है।

बाढ़ और दानापुर प्रखण्ड भी वहाँ के एस० डी० ओ०, कार्यकर्ताओं और शिक्षकों ने मिलकर प्राप्त किये थे, वे, भी समर्पित हुए, जिसका ब्योरा निम्न प्रकार है :

बाढ़ प्रखण्ड में :	कुल गांव ८८	दान में शामिल गांव ८८
२३ पंचायत	कुल जनसंख्या ९७,९८४	दान में शामिल जनसंख्या ७१,३६६
	कुल रकबा ४६,८७४ एकड़	दान में शामिल रकबा २६,४०३एकड़
दानापुर प्रखण्ड :	कुल गांव ५१	दान में शामिल गांव ५१
१५ पंचायत	कुल जनसंख्या ५७,०४६	दान में शामिल संख्या ४८,७७६

हरनौत प्रखंड के कार्यकर्ताओं ने बताया कि यह भी प्रखंडदान हो गया है, परन्तु उसके कागज यहाँ नहीं पहुँचे हैं, वे ५-७ दिन में संकलित कर भेज देंगे। बाढ़ अनुमंडल का सरमेरा प्रखंड तो पहले ही प्रखण्डदान में आ चुका था इसलिए अब कुल मिलाकर पटना के २८ प्रखंडों में से १४ प्रखंड दान में आ चुके हैं, यानी आधा जिलादान हो चुका है, और बाकी का काम ३१ मई तक पूरा करने का सबने संकल्प घोषित किया है। जिलादान के बाद तुरन्त ही बिहार अनुमंडल में पुष्टि के काम का अभियान चलाने की योजना है ताकि अक्तूबर में राजगीर में होनेवाले अ० भा० सर्वोदय सम्मेलन में आनेवाले लोगों को उस क्षेत्र में कुछ देखने को मिल सके।

बाबा ने इस अवसर पर कहा, "प्रथम तो आप सबको धन्यवाद देना चाहिए। माना गया था कि पटना जिला कठिन जायगा। पटना बहुत बड़ा शहर है। यहाँ राजनीति का गढ़ है। जहाँ तरह-तरह की सैकड़ों सभाएँ होती रहती हैं। उस शहर को सब तरह की चीजें सप्लाई करना होता है, इससे उसके आसपास के गांवों में 'मनी इकॉनामी' होगी। इन सब कारणों से पटना जिलादान कुछ कठिन जायगा ऐसा लगा था, और हमने भी सोचा था कि पटना बाद में हो जाये, और विनोद में कहते थे—जहाँ किसीकी पटती नहीं, इसलिए उसका नाम पटना रखा। लेकिन आसपास के जिलादान हो गये और खासकर मुजफ्फरपुर, मुंगेर, गया आदि कठिन माने जानेवाले जिले ग्रामदान में आ गये तो पटना भी होना चाहिए, यह श्रद्धा रखकर हम यहाँ आये। यहाँ आने पर अनुकूल ही दर्शन हुआ। कहते हैं—अच्छा आरम्भ आधा काम पूरा करने जैसा होता है। परन्तु आप सब लोगों ने तो मिलकर आधा जिलादान यानी १४ प्रखण्डदान कर ही दिया है, तो पूरा करने में अब देर क्या? जिलादान के लिए ३१ मई आखीरी तारीख तय की, उसके लिए बाबा धन्यवाद देता है।" —कृष्णराज मेहता

आन्दोलन के समाचार

• उत्तर प्रदेश के पश्चिमी जिलों में इटावा के अछल्दा ब्लाक में १५ अप्रैल से अभियान शुरू हुआ और १२१ ग्रामदान घोषित हुए। इटावा जिला के लोगों ने २ अक्तूबर तक जिलादान करने का संकल्प किया है। एटा जिले में अभियान चला रहे हैं। मथुरा में भी ३ मई से अभियान शुरू है।

पूर्वी जिलों में बस्ती के हरैया ब्लाक में अभियान चला और ४७ ग्रामदान प्राप्त हुए। इसके बाद नाथनगर में अभियान चलाया जायगा। गोरखपुर और देवरिया में भी अभियान चल रहे हैं।

• भंडार (महाराष्ट्र) जिले में ग्रामदान प्राप्ति के लिए सघन सामूहिक पदयात्राएँ शुरू की गयी हैं। इस पदयात्रा में श्री अ० गो० शेंडुर्णीकर और श्री बापट का मार्गदर्शन प्राप्त है। ७५ कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण-शिविर में ग्रामसेवक और शिक्षक भी थे। शिविर के बाद कार्यकर्ता ग्रामदान-प्राप्ति हेतु क्षेत्र में गये हैं।

• करनाल जिला सर्वोदय मण्डल के संयोजक श्री आनन्द रंक बन्धु, प्रतिनिधि श्री सत्यप्रकाश शर्मा बनाये गये। प्रान्तीय सर्वोदय मण्डल हरियाणा के संयोजक श्री शादीराम जोशी तथा मंत्री श्री सुन्दरलाल सच्चदेव सर्वसम्मति से चुने गये।

• बड़ौदा, २८ अप्रैल। प्राप्त जानकारी के अनुसार गुजरात सर्वोदय मण्डल के तत्वावधान में दाण्डी से पोरबन्दर तक चल रही गांधी-शताब्दी-पदयात्रा ने ९ जिले पूरे करके दसवें जिले बनासकांठा में ११ दिन घूमकर गत २४ अप्रैल से कच्छ जिले में प्रवेश किया है।

दस जिलों में १२४३ मील की पदयात्रा के दौरान अबतक ९,१७३ रुपये के सर्वोदय-साहित्य की बिक्री हुई, ७९७ सभाएँ की गयीं तथा गुजरात के सर्वोदय-आन्दोलन के मुखपत्र दश-वारिक "भूमिपुत्र" के ४,१९३ वार्षिक ग्राहक बनाये गये।

नया नारा

नारा सचमुच नया नहीं है, सिर्फ लगाया जा रहा है इस वक्त नये जोर-शोर के साथ। नेताओं द्वारा यह बात बार-बार दुहरायी जा रही है कि अभी हमारी राजनीति पिछड़ी हुई है; उसमें निखार तब आयेगा जब 'ध्रुवीकरण' (पोलराइजेशन) होगा। और, जब राजनीति निखरेगी तो शक्तिशाली होगी, स्थायी होगी, कल्याणकारी होगी। कांग्रेस सबसे बड़ी पार्टी है, लेकिन उसमें विभिन्न हितों की खिचड़ी है। राइट, लेफ्ट, सेठ, किसान, मजदूर, आदि सब कांग्रेस के गड़बड़झाले में शामिल हैं। कांग्रेस कहती भी है कि वह सड़क के बीच से चलनेवाली पार्टी है, न दाहिने, न बायें। कांग्रेस के नेताओं में कुछ ऐसे हो गये हैं जो चाहते हैं कि अब कांग्रेस को भी दाहिने या बायें अपना एक रास्ता तय कर लेना चाहिए। राजनीति में जो सबका होना चाहता है वह किसी का नहीं हो पाता।

कांग्रेस के विरोध में जो संविद सरकारें बनीं वे भी खिचड़ी ही बनीं—ऐसी खिचड़ी जिसमें चावल अलग, दाल अलग। ऐसी खिचड़ी को खिचड़ी भी क्या कहें? इसलिए अब यह कहा जा रहा है कि खिचड़ी पकाना बन्द किया जाय। खिचड़ी सुपाच्य होती है, लेकिन हमारी राजनीति का पेट ऐसा है कि उसे खिचड़ी भी नहीं पच सकी। संविद के अनुभव के बाद अब यह बात चल पड़ी है कि सरकार बनाने के लिए भले ही कभी कुछ बातों में मेल-जोल कर लिया जाय, लेकिन राजनीति को ध्रुवीकरण का पौष्टिक भोजन मिलना चाहिए जो उसे जीवनी शक्ति दे सके।

राजनीति में क्या होता है? विभिन्न स्वार्थों का प्रतिनिधित्व और उनकी टक्कर। अगर राजनीति का यही उद्देश्य है तो कोई भी एक पार्टी मालिक और मजदूर, दोनों के स्वार्थों का प्रतिनिधित्व कैसे कर सकती है? राजनीति की दृष्टि में मालिक-मजदूर के हित परस्पर-विरोधी हैं। विरोधी हितों की विरोधी राजनीति होनी चाहिए। इस आधार पर मालिक यानी राइट की राजनीति अलग होगी, और मजदूर यानी लेफ्ट की राजनीति अलग। जब राजनीति में यह अलगाव होगा तो परस्पर-विरोधी हितों में होड़ होगी, संघर्ष होगा और सत्ता की छीना झपटी ही राजनीति का मुख्य धन्धा होगी। यह होगी संघर्ष की राजनीति। ध्रुवीकरण संघर्ष की राजनीति का प्राण है। ध्रुवीकरण के बिना संघर्ष होगा कैसे?

ध्रुवीकरण की इस राजनीति में समाज के कौन से तत्व 'राइट' के साथ रहेंगे, और कौन से 'लेफ्ट' के साथ? पश्चिम की तरह भारत केवल वर्गों का देश नहीं है। हमारे यहाँ वर्ण, जाति, सम्प्रदाय, उतना ही महत्व रखते हैं जितना वर्ग। हमारे गाँवों में जो शोषित वर्ग है, सर्वहारा है, वह जाति से हरिजन है, और वर्ण में अवर्ण है। इसलिए राजनीति में ध्रुवीकरण हो, और समाज में न हो, यह संभव नहीं है। एक बार राजनीति में ध्रुवीकरण शुरू हो जायगा तो अनिवार्य है कि गाँव-गाँव के जीवन में, रोज के जीवन में, हिन्दू मुसलमान में, सवर्ण-अवर्ण में, द्विज-हरिजन में, आदिवासी-गैर आदिवासी में, शहर-गाँव में, राज्य-राज्य में, भाषा भाषा में, बूढ़े जवान में, सबमें सब जगह ध्रुवीकरण होगा। यह कहना मुश्किल होगा कि कौन से तत्व होंगे जिनमें नहीं होगा? अलगाव, दुराव, और टकराव की आज भी कमी नहीं है। उस वक्त तो संघर्ष सामूहिक जीवन का दैनिक भोजन बन जायगा। सहयोग और एकता का नाम नहीं रह जायगा। संघर्ष संसद *और विधान-सभा तक सीमित नहीं रहेगा।* सड़क, चौराहा, खेत और खलिहान, सब संघर्ष के क्षेत्र बन जायेंगे। अराजकता फैलेगी। गृहयुद्ध होगा। देश के टुकड़े होंगे। विदेशी हस्तक्षेप होगा। लोकतंत्र भीड़तंत्र बन जायगा। स्वतंत्रता समाप्त हो जायगी। हिंसा का बोलबाला होगा। भारत भारत नहीं रह जायगा। और क्या-क्या होगा, कौन जाने? संघर्ष के सिद्धान्त पर मतभेद हो सकता है, लेकिन उसके जो व्यावहारिक परिणाम हैं वे अनिवार्य हैं।

ध्रुवीकरण छिपा हुआ वर्ग-संघर्ष है, जाति-संघर्ष है, और सम्प्रदाय-संघर्ष भी है इसलिए अगर संघर्ष ही करना हो तो खुलकर करना चाहिए। फिर चुनाव, दल और लोकतंत्र के सारे घटाटोप की आड़ क्यों? क्यों न साफ साफ कहा जाय कि हाथ में हथियार लो, और मैदान में उतरो। देश रहे या जाय, कम-से कम संघर्ष तो हो जाय। राजनीति का पेट तो भरे!

संघर्ष की दिशा संहार की है। संघर्ष का अन्तिम लक्ष्य यही है कि प्रतिपक्षी का सफाया हो जाय। संघर्ष को शान्ति की मर्यादा में नहीं बाँधा जा सकता। संघर्ष होगा तो हिंसक ही होगा। हिंसा और लोकतंत्र, हिंसा और सभ्यता, हिंसा और जनता की मुक्ति ये सब परस्पर-विरोधी तत्व हैं। इसलिए संघर्ष भी लोकतंत्र का विरोधी तत्व है। संघर्ष के बाद जनता पर विजेताओं का शासन होगा। वोट द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों का भी शासन समाप्त हो जायगा।

यही कारण है कि ग्रामदान शुरू से राजनीति की बात न कहकर लोकनीति की बात कहता आया है। लोकनीति की नजर में नागरिक की दुहरी हैसियत है: एक मनुष्य की, दूसरी मालिक की। हर मनुष्य मनुष्य है, हर मनुष्य में मनुष्य-तत्त्व है। और हर एक मालिक भी है: भूमि का, पूँजी का, बुद्धि का, श्रम का। जब मजदूर कोई है ही नहीं, तो मालिक-मजदूर का हित विरोध कैसा? यह सही है कि समाज में शोषण है, लेकिन शोषक और शोषित के रूप में मनुष्य का बँटवारा नहीं किया जा सकता। लोकनीति में वर्ग नहीं, वर्ग-संघर्ष नहीं, दल नहीं, दल की राजनीति नहीं।

जरूरत इस बात की है कि देश के राजनीतिक संगठन के बारे में नये सिरे से सोचा जाय। व्यापार ने विज्ञान को कोरा यंत्रवाद बना डाला है। राजनीति में लोकतंत्र आतंकवाद होकर रह गया है। हमारे लिए यह व्यापार और यह राजनीति, दोनों त्याज्य हैं। हम विचार भी बदलें, और नारा भी।●

इस अंक में

१९ मई, '६६
वर्ष ३, अंक १९] [१८ पैसे

अब किसे भेजें ? : २ :

चुनाव : दल बनाम दल का नहीं, दल बनाम जनता का

प्रश्न : आपने पहले बताया था कि एक निर्वाचन-क्षेत्र में ग्रामदानी ग्रामसभाओं का जो निर्वाचन-मंडल बनेगा वह चुनाव में अपनी ओर से एक सर्वसम्मत उम्मीदवार खड़ा करेगा। वह उस क्षेत्र की ग्रामसभाओं का उम्मीदवार होगा। ग्रामसभाओं के लोग इस अपने उम्मीदवार को वोट देंगे, और उसे जितायेंगे। यह बात तो मेरी समझ में आती है कि जिस उम्मीदवार के पीछे ग्रामसभाओं की शक्ति होगी उसका मुकाबिला कौन करेगा। लेकिन कठिनाई यह मालूम होती है कि निर्वाचन-मंडल अपना उम्मीदवार सर्व-सम्मति से तय कैसे करेगा ? मुझे नहीं लगता कि लोग किसी आदमी पर एक राय हो सकेंगे। आप ही बताइए कि यह सवाल कैसे हल होगा ?

उत्तर : आज जो हालत है उसे देखते हुए यही मानना पड़ेगा कि आप जो कठिनाई बता रहे हैं वह बहुत बड़ी है। लेकिन प्रश्न है कि इस कठिनाई को लेकर क्या हम बैठे रहेंगे ? क्या लोग आज की हालत को बदलना नहीं चाहते ? अगर बदलना नहीं चाहते तो कोई नयी बात सोचने की जरूरत क्या है ? लेकिन ग्रामदान आन्दोलन यह मानता है कि आज की हालत बदलनी चाहिए, और जल्द बदलनी चाहिए, और सबसे पहले राजनीति बदलनी चाहिए, क्योंकि राजनीति से सरकार चलती है। देश में बुनियादी परिवर्तन के लिए राजनीति का बदलना सबसे पहले जरूरी है।

सर्व सम्मति कैसे हो ?

आखिर, एक देश में चुनाव हुआ है

प्रश्न : मैं मानता हूँ कि राजनीति को बदलना चाहिए। यह कौन नहीं मानेगा कि अगर आज की हालत न बदली तो देश का न जाने क्या हाल होगा? मैं दिल से चाहता हूँ कि पार्टी-बन्दी का गंदा सिलसिला टूटे, लेकिन क्या बताऊँ, रह-रहकर मन में एक ही सवाल उठता है। 'क्या निर्वाचन-मंडल सर्व-सम्मति से अपना उम्मीदवार तय कर सकेगा?'

उत्तर : सबसे बड़ी यह बात है कि गाँव के लोगों ने ग्रामदान के विचार को कहाँ तक समझा है, और समझकर उन्होंने अपनी ग्रामसभा का कितना मजबूत संगठन किया है। देखिए, ग्रामदान जिस ग्रामस्वराज्य का नारा लगा रहा है उसकी बुनियादी शर्त यह है कि गाँव के लोगों को मिलकर अपने गाँव की व्यवस्था चलानी है। जो काम गाँव के लोग अपने-आप नहीं चला सकते उसके लिए सरकार जरूरी है, लेकिन उस सरकार को गाँव के मेल में चलना चाहिए, इसलिए जरूरी है कि गाँव के लोग सरकार में अपने आदमी भेजें। गाँव के नाम में दलों के लोग न जायें। अगर गाँव के लोग इतनी बात समझ जायेंगे तो गाँव-गाँव में एकता और संगठन की हवा फैल जायगी। हर गाँव में दस-दस, बीस-बीस लोग ऐसे निकल आयेंगे जो देखेंगे कि गाँव एक हो, और संगठन मजबूत हो। गाँवों की इस हवा के प्रभाव में उनके निर्वाचन-मंडल की बैठक होगी। क्या आप सोचते हैं कि गाँव-गाँव की इस बदली हुई हवा का असर नहीं होगा?

प्रश्न : जरूर होगा। फिर भी जाति, दल आदि के कारण सर्व-सम्मति में रुकावट पड़ सकती है। अगर रुकावट पड़ गयी तो क्या होगा?

उत्तर : हम सोचें कि निर्वाचन-मंडल के सामने क्या-क्या स्थितियाँ आ सकती हैं। अगर कोई एक ही नाम आया, और ऐसे आदमी का नाम आया जिसकी सेवा-भावना और नेकनीयती पर सबको भरोसा है, तो सवाल फौरन हल हो जायगा। लोग खुशी से उसे मान लेंगे। किसी-किसी निर्वाचन-क्षेत्र में ऐसा होगा। कठिनाई शुरू होगी जब एक से अधिक नाम आयेंगे। मान लीजिए कि आपके निर्वाचन-मंडल के सामने ६ नाम आ गये। सोचिए कि उस समय निर्वाचन-मंडल क्या करेगा? एक उपाय यह हो सकता है कि निर्वाचन-मंडल इन ६ सज्जनों से कहे। 'हमारे लिए आप सभी योग्य हैं, लेकिन उम्मीदवार हमें एक ही चुनना है। हम चाहते हैं कि आप लोग थोड़ी देर के लिए अलग बैठ जायें और आपस में तय करके एक नाम हमें बता दें। हम वही नाम मान लेंगे।' कई जगह यह उपाय सफल हो जायगा।

प्रश्न : लेकिन अगर न सफल हुआ तो?

उत्तर : दूसरा उपाय भी है। निर्वाचन-मंडल अपने में से चार-पाँच व्यक्तियों की एक छोटी समिति बनाकर उसे यह काम सौंप सकता है कि वह एक राय होकर इन ६ नामों में से जिसे तय कर देगी उसे निर्वाचन-मंडल मान लेगा। यह उपाय अच्छा है, और कई जगह लोग इसे पसंद करेंगे।

प्रश्न : इससे भी काम न बना तो?

उत्तर : तो यह हो सकता है कि जो ६ नाम सामने हैं उनमें से कौन नाम सौ में नब्बे लोगों को मान्य है, यह देखा जाय। पहले से यह तय रहे कि जो व्यक्ति ऐसा निकलेगा उसे सर्वमान्य माना जायगा।

प्रश्न : यह कैसे देखा जायगा?

उत्तर : उसका उपाय है। वोट लेकर देख लीजिए कि कौन ऐसा है जिसे सौ में नब्बे लोग मानते हैं। जो ऐसा निकल आये उसे उम्मीदवार मान लीजिए। यह सर्व-सम्मति नहीं तो सर्वानुमति होगी।

प्रश्न : मान लीजिए कि कोई ऐसा नहीं निकलता, तो?

उत्तर : तब एक तरीका दूसरा निकल सकता है।

प्रश्न : वह क्या?

उत्तर : वह यह होगा कि बार-बार वोट लीजिए और छँटनी करते जाइए। पहली बार यह तय करके वोट लीजिए कि जिसे ७० फीसदी या ७५ फीसदी वोट नहीं मिलेगा वह छँट जायगा। इसी तरह फीसदी वोट बढ़ाते जाइए, और छाँटते जाइए। अन्त में जो एक बच जाय उसे सर्व-सम्मत उम्मीदवार मान लीजिए। यह भी हो सकता है कि जब दो या तीन उम्मीदवार बच जायें तो चिट्ठी डाल लीजिए। चिट्ठी डालकर एक नाम निकालने का काम शुरू में भी किया जा सकता है। आजकल वोट पूरा-पूरा हिकमत का खेल हो गया है; आप किस्मत का थोड़ा इस्तेमाल कर लेंगे तो कोई हर्ज नहीं होगा।

प्रश्न : उपाय तो आपने बहुत अच्छे बताये। मुझे खुद आपसे बातें करते-करते दो-एक उपाय सूझ रहे हैं।

उत्तर : बताइए।

प्रश्न : क्या यह नहीं हो सकता कि निर्वाचन-मंडल के सामने जितने नाम आयें उस पूरी सूची को मंडल ग्रामसभाओं के पास वापस भेज दे, और कहे कि ग्रामसभाएँ अपनी बैठक करके अपनी पसन्द तय करें और पसन्द के क्रम में नाम लिखकर वापस मंडल के पास भेज दें। पसन्द के अनुसार अंक तय कर लिये जायें, जैसे पहली पसन्द के ५० अंक, दूसरी के ४०, तीसरी के ३०, और इसी तरह जिस नाम को सबसे अधिक अंक मिलें→

अर्थशास्त्र या अनर्थशास्त्र ?

एक बड़े किसान के साथ चर्चा हो रही थी। 'मजदूरों और हरिजनों का तकलीफ-भरा जीवन', यही चर्चा का विषय था। 'चीन का हमला भूखों के पेट में हो रहा है।'—मैंने कहा। वह सहानुभूतिपूर्वक सुन रहे थे। आखिर में उन्होंने कहा, "बात तो सही है। लेकिन हम लोगों की हालत भी कोई सन्तोषजनक नहीं है। मैं दस बैलों की खेती करता हूँ। एक-एक बैल पर १०० रुपये माहवारी खर्च करता हूँ। परिवार का खर्च भी लगभग २००० रुपये माहवारी है। इतना खेती से निकलता नहीं है। हम लोग कर्ज लेकर ही जी रहे हैं।"

सवा रुपये रोज कमानेवाले मजदूर का पेट नहीं भरता है, ३००० रुपये माहवारी खर्च करनेवाले किसान का पेट नहीं भरता है। रुपये की यह कौनसी माया है? बड़ा किसान पैसे कमाने के लिए खेती कराना चाहता है, और उस चक्कर में बैल के पोषण-पालन पर १०० रुपये माहवारी खर्च करता है और बैल की सेवा करनेवाले मजदूर पर लगभग ४० रुपये। शायद बैल की तरह मजदूर भी उसके इशारे का गुलाम होता, तो उसका मालिक उसके लिए ज्यादा फिक्र करता! क्योंकि वह भूखों मरता तो मालिक को नुकसान होता। लेकिन आजकल वह भूखों मरता है, तो दूसरे मजदूर खोजने नहीं पड़ते, अपने आप ही मिल जाते हैं!

समझदार बड़े किसानों को भी अब ग्रामस्वराज्य का महत्व समझना चाहिए। यदि रुपये कमाने के बदले में ये गाँव की जरूरतों को पैदा करने के लिए खेती करेंगे, तो बहुत तेजी से परिस्थिति में सुधार आ जायगा। हिसाब लगाकर, गाँव में जितना अनाज चाहिए, उसके लायक अनाज, गाँव की जरूरत भर के कपड़े के लिए कपास, गाँव को जितना तेल चाहिए, उसके लायक तिलहन, गाँव के पशुओं के लिए जितनी खुराक चाहिए, उतना चारा-दाना पैदा करेंगे, और बाहर के बाजार में बेचने के लिए भटकने के बदले गाँव के पूरे पोषण की व्यवस्था करेंगे, तो गाँव में सबका पालन-पोषण आसानी से हो सकेगा। आजकल रुपया पैदा करनेवाली फसलों पर जोर है, कपास और तिलहन जैसी चीजों पर। कपास बाहर बेची जाती है। बिनौले बैलों को नहीं मिलते हैं। दस रुपये में जितनी कपास बेची गयी उससे जितना कपड़ा बना उसे खरीदने में गाँव को लगभग सौ रुपये नकद बाजार में देना पड़ता है। तिलहन भी शहर की मिलों में पेरा जाता है। बैल की खुराक, खली भी बाहर गयी। और, गाँववाले उसी तिलहन का सत्वहीन और मिलावटी तेल शहर के महँगे दामों में खरीदते हैं। जहाँ गन्ने की खेती होती है, वहाँ पर गन्ना मिल में जाता है, और गाँववाले अपने गाँव का बना स्वास्थ्यकर गुड़ खाने के बदले सफेद, सत्वहीन चीनी बाजार से खरीदकर खाते हैं।

इसमें सिर्फ मजदूर और छोटे किसानों को नुकसान नहीं है, बड़े किसानों को भी है। यदि गाँव में स्वावलम्बी, एक-दूसरे के सहयोगवाली व्यवस्था चलती, गाँव की आवश्यकता गाँव में पैदा की जाती, गाँव में ही उसका विनिमय होता, गाँव के कच्चे माल का पक्का माल गाँव में ही बनता, तो कितना फर्क होता! बड़ा किसान मालिक न रहकर बड़ा भाई बन जाता। वह अपने व्यक्तिगत परिवार के लिए फिक्र करने के साथ-साथ अपने ग्राम-परिवार के लिए योजना बना लेता, तो गाँव भी सुखी होते, और वह भी अपने परिवार के साथ सुखी होता। तब बैलों को भरपेट खुराक मिलती, मजदूर को भरपेट खुराक मिलती, और बड़े किसान को भी अपने घर की आवश्यकता पूरी करने में आसानी होती। तब गाँव में भी अच्छे शिक्षण, आरोग्य की व्यवस्था हो पाती। उन्हें ऐसी आवश्यकताओं के लिए शहरों में जाने और अपनी कमाई बर्बाद करने की आवश्यकता नहीं होती। यह बात 'अशिक्षित' देहाती भाइयों की समझ में जल्दी आ जाती है, क्योंकि यह व्यवहार बुद्धि की बात है। —सरला देवी

→उसे सर्व-सम्मत उम्मीदवार मान लिया जाय।

उत्तर: हाँ, यह भी एक तरीका हो सकता है। बात यह है कि एक बार जब आप यह निर्णय करके बैठेंगे कि कुछ भी हो सर्व-सम्मत उम्मीदवार चुनना ही है तो एक नहीं अनेक उपाय सूझेंगे। गाँव के लोगों में गृहस्थ-बुद्धि होती है। वे कोई-न-कोई रास्ता निकाल ही लेंगे।

प्रश्न: जो निर्वाचन-मंडल उपाय नहीं निकाल सकेगा वह निकम्मा साबित होगा।

उत्तर: वह अनुभव से सीखेगा। उस क्षेत्र की जनता उसे धिक्कारेगी, और जोर डालेगी कि अगली बार ऐसा न हो।

प्रश्न: लेकिन मेरा ख्याल है कि अगर गाँव-गाँव में विचार पहुँचा दिया जायगा, और संगठन हो जायगा तो अधिकांश निर्वाचन-क्षेत्र में सफलता मिलेगी। सबसे बड़ी रुकावटें दो ही हैं—दल और जाति।

उत्तर: हाँ, रुकावटें तो हैं ही। लेकिन इन कठिनाइयों के सामने जनता को हार नहीं माननी है। अगर जनता अगली बार हार गयी तो समझिए बहुत दिनों के लिए गयी। अब चुनाव दल बनाम दल का नहीं, दल बनाम जनता का होगा। आप ही बताइए कि दल और जनता में किसकी कीमत ज्यादा है? •

प्रश्न : मैं मानता हूँ कि राजनीति को बदलना चाहिए। यह कौन नहीं मानेगा कि अगर आज की हालत न बदली तो देश का न जाने क्या हाल होगा ? मैं दिल से चाहता हूँ कि पार्टी-बन्दी का गंदा सिलसिला टूटे, लेकिन क्या बताऊँ, रह-रहकर मन में एक ही सवाल उठता है : 'क्या निर्वाचन-मंडल सर्व-सम्मति से अपना उम्मीदवार तय कर सकेगा ?'

उत्तर : सबसे बड़ी यह बात है कि गाँव के लोगों ने ग्रामदान के विचार को कहाँ तक समझा है, और समझकर उन्होंने अपनी ग्रामसभा का कितना मजबूत संगठन किया है। देखिए, ग्रामदान जिस ग्रामस्वराज्य का नारा लगा रहा है उसकी बुनियादी शर्त यह है कि गाँव के लोगों को मिलकर अपने गाँव की व्यवस्था चलानी है। जो काम गाँव के लोग अपने-आप नहीं चला सकते उसके लिए सरकार जरूरी है, लेकिन उस सरकार को गाँव के मेल में चलना चाहिए, इसलिए जरूरी है कि गाँव के लोग सरकार में अपने आदमी भेजें। गाँव के नाम में दलों के लोग न जायँ। अगर गाँव के लोग इतनी बात समझ जायेंगे तो गाँव-गाँव में एकता और संगठन की हवा फैल जायगी। हर गाँव में दस-दस, बीस-बीस लोग ऐसे निकल आयेंगे जो देखेंगे कि गाँव एक हो, और संगठन मजबूत हो। गाँवों की इस हवा के प्रभाव में उनके निर्वाचन-मंडल की बैठक होगी। क्या आप सोचते हैं कि गाँव-गाँव की इस बदली हुई हवा का असर नहीं होगा ?

प्रश्न : जरूर होगा। फिर भी जाति, दल आदि के कारण सर्व-सम्मति में रुकावट पड़ सकती है। अगर रुकावट पड़ गयी तो क्या होगा ?

उत्तर : हम सोचें कि निर्वाचन-मंडल के सामने क्या-क्या स्थितियाँ आ सकती हैं। अगर कोई एक ही नाम आया, और ऐसे आदमी का नाम आया जिसकी सेवा-भावना और नेकनीयती पर सबको भरोसा है, तो सवाल फौरन हल हो जायगा। लोग खुशी से उसे मान लेंगे। किसी-किसी निर्वाचन-क्षेत्र में ऐसा होगा। कठिनाई शुरू होगी जब एक से अधिक नाम आयेंगे। मान लीजिए कि आपके निर्वाचन-मंडल के सामने ६ नाम आ गये। सोचिए कि उस समय निर्वाचन-मंडल क्या करेगा ? एक उपाय यह हो सकता है कि निर्वाचन-मंडल इन ६ सज्जनों से कहे : 'हमारे लिए आप सभी योग्य हैं, लेकिन उम्मीदवार हमें एक ही चुनना है। हम चाहते हैं कि आप लोग थोड़ी देर के लिए अलग बैठ जायँ और आपस में तय करके एक नाम हमें बता दें। हम वही नाम मान लेंगे।' कई जगह यह उपाय सफल हो जायगा।

प्रश्न : लेकिन अगर न सफल हुआ तो ?

उत्तर : दूसरा उपाय भी है। निर्वाचन-मंडल अपने में से चार-पाँच व्यक्तियों की एक छोटी समिति बनाकर उसे यह काम सौंप सकता है कि वह एक राय होकर इन ६ नामों में से जिसे तय कर देगी उसे निर्वाचन-मंडल मान लेगा। यह उपाय अच्छा है, और कई जगह लोग इसे पसंद करेंगे।

प्रश्न : इससे भी काम न बना तो ?

उत्तर : तो यह हो सकता है कि जो ६ नाम सामने हैं उनमें से कौन नाम सौ में नब्बे लोगों को मान्य है, यह देखा जाय। पहले से यह तय रहे कि जो व्यक्ति ऐसा निकलेगा उसे सर्वमान्य माना जायगा।

प्रश्न : यह कैसे देखा जायगा ?

उत्तर : उसका उपाय है। वोट लेकर देख लीजिए कि कौन ऐसा है जिसे सौ में नब्बे लोग मानते हैं। जो ऐसा निकल आये उसे उम्मीदवार मान लीजिए। यह सर्व-सम्मति नहीं तो सर्वानुमति होगी।

प्रश्न : मान लीजिए कि कोई ऐसा नहीं निकलता, तो ?

उत्तर : तब एक तरीका दूसरा निकल सकता है।

प्रश्न : वह क्या ?

उत्तर : वह यह होगा कि बार-बार वोट लीजिए और छँटनी करते जाइए। पहली बार यह तय करके वोट लीजिए कि जिसे ७० फीसदी या ७५ फीसदी वोट नहीं मिलेगा वह छँट जायगा। इसी तरह फीसदी वोट बढ़ाते जाइए, और छाँटते जाइए। अन्त में जो एक बच जाय उसे सर्व-सम्मत उम्मीदवार मान लीजिए। यह भी हो सकता है कि जब दो या तीन उम्मीदवार बच जायँ तो चिट्ठी डाल लीजिए। चिट्ठी डालकर एक नाम निकालने का काम शुरू में भी किया जा सकता है। आजकल वोट पूरा-पूरा हिकमत का खेल हो गया है; आप किस्मत का थोड़ा इस्तेमाल कर लेंगे तो कोई हर्ज नहीं होगा।

प्रश्न : उपाय तो आपने बहुत अच्छे बताये। मुझे खुद आपसे बातें करते-करते दो-एक उपाय सूझ रहे हैं।

उत्तर : बताइए।

प्रश्न : क्या यह नहीं हो सकता कि निर्वाचन-मंडल के सामने जितने नाम आयें उस पूरी सूची को मंडल ग्रामसभाओं के पास वापस भेज दे, और कहे कि ग्रामसभाएँ अपनी बैठक करके अपनी पसन्द तय करें और पसन्द के क्रम में नाम लिखकर वापस मंडल के पास भेज दें। पसन्द के अनुसार अंक तय कर लिये जायँ, जैसे पहली पसन्द के ५० अंक, दूसरी के ४०, तीसरी के ३०, और इसी तरह जिस नाम को सबसे अधिक अंक मिलें→

अर्थशास्त्र या अनर्थशास्त्र ?

एक बड़े किसान के साथ चर्चा हो रही थी। 'मजदूरों और हरिजनों का तकलीफभरा जीवन', यही चर्चा का विषय था। 'चीन का हमला भूखों के पेट में हो रहा है।'—मैंने कहा। वह सहानुभूतिपूर्वक सुन रहे थे। आखिर में उन्होंने कहा, "बात तो सही है। लेकिन हम लोगों की हालत भी कोई सन्तोषजनक नहीं है। मैं दस बैलों की खेती करता हूँ। एक-एक बैल पर १०० रुपये माहवारी खर्च करता हूँ। परिवार का खर्च भी लगभग २००० रुपये माहवारी है। इतना खेती से निकलता नहीं है। हम लोग कर्ज लेकर ही जी रहे हैं।"

सवा रुपये रोज कमानेवाले मजदूर का पेट नहीं भरता है, ३००० रुपये माहवारी खर्च करनेवाले किसान का पेट नहीं भरता है। रुपये की यह कौनसी माया है? बड़ा किसान पैसे कमाने के लिए खेती कराना चाहता है, और उस चक्कर में बैल के पोषण-पालन पर १०० रुपये माहवारी खर्च करता है और बैल की सेवा करनेवाले मजदूर पर लगभग ४० रुपये। शायद बैल की तरह मजदूर भी उसके इशारे का गुलाम होता, तो उसका मालिक उसके लिए ज्यादा फिक्र करता! क्योंकि वह भूखों मरता तो मालिक को नुकसान होता। लेकिन आजकल वह भूखों मरता है, तो दूसरे मजदूर खोजने नहीं पड़ते, अपने आप ही मिल जाते हैं!

समझदार बड़े किसानों को भी अब ग्रामस्वराज्य का महत्व समझना चाहिए। यदि रुपये कमाने के बदले में वे गाँव की जरूरतों को पैदा करने के लिए खेती करेंगे, तो बहुत तेजी से परिस्थिति में सुधार आ जायगा। हिसाब लगाकर, गाँव में जितना अनाज चाहिए, उसके लायक अनाज, गाँव की जरूरत भर के कपड़े के लिए कपास, गाँव को जितना तेल चाहिए, उसके लायक तिलहन, गाँव के पशुओं के लिए जितनी खुराक चाहिए, उतना चारा-दाना पैदा करेंगे, और बाहर के बाजार में बेचने के लिए भटकने के बदले गाँव के पूरे पोषण की व्यवस्था करेंगे, तो गाँव में सबका पालन-पोषण आसानी से हो सकेगा। आजकल रुपया पैदा करनेवाली फसलों पर जोर है, कपास और तिलहन जैसी चीजों पर। कपास बाहर बेची जाती है। बिनौले बैलों को नहीं मिलते हैं। दस रुपये में जितनी कपास बेची गयी उससे जितना कपड़ा बना उसे खरीदने में गाँव को लगभग सौ रुपये नकद बाजार में देना पड़ता है। तिलहन भी शहर की मिलों में पेरा जाता है। बैल की खुराक, खली भी बाहर गयी। और, गाँववाले उसी तिलहन का सत्वहीन और मिलावटी तेल शहर के महँगे दामों में खरीदते हैं। जहाँ गन्ने की खेती होती है, वहाँ पर गन्ना मिल में जाता है, और गाँववाले अपने गाँव का बना स्वास्थ्यकर गुड़ खाने के बदले सफेद, सत्वहीन चीनी बाजार से खरीदकर खाते हैं।

इसमें सिर्फ मजदूर और छोटे किसानों को नुकसान नहीं है, बड़े किसानों को भी है। यदि गाँव में स्वावलम्बी, एक-दूसरे के सहयोगवाली व्यवस्था चलती, गाँव की आवश्यकता गाँव में पैदा की जाती, गाँव में ही उसका विनिमय होता, गाँव के कच्चे माल का पक्का माल गाँव में ही बनता, तो कितना फर्क होता! बड़ा किसान मालिक न रहकर बड़ा भाई बन जाता। वह अपने व्यक्तिगत परिवार के लिए फिक्र करने के साथ-साथ अपने ग्राम-परिवार के लिए योजना बना लेता, तो गाँव भी सुखी होते, और वह भी अपने परिवार के साथ सुखी होता। तब बैलों को भरपेट खुराक मिलती, मजदूर को भरपेट खुराक मिलती, और बड़े किसान को भी अपने घर की आवश्यकता पूरी करने में आसानी होती। तब गाँव में भी अच्छे शिक्षण, आरोग्य की व्यवस्था हो पाती। उन्हें ऐसी आवश्यकताओं के लिए शहरों में जाने और अपनी कमाई बर्बाद करने की आवश्यकता नहीं होती। यह बात 'अशिक्षित' देहाती भाइयों की समझ में जल्दी आ जाती है, क्योंकि यह व्यवहार बुद्धि की बात है। —सरला देवी

→उसे सर्व-सम्मत उम्मीदवार मान लिया जाय।

उत्तर : हाँ, यह भी एक तरीका हो सकता है। बात यह है कि एक बार जब आप यह निर्णय करके बैठेंगे कि कुछ भी हो सर्व-सम्मत उम्मीदवार चुनना ही है तो एक नहीं अनेक उपाय सूझेंगे। गाँव के लोगों में गृहस्थ-बुद्धि होती है। वे कोई-न-कोई रास्ता निकाल ही लेंगे।

प्रश्न : जो निर्वाचन-मंडल उपाय नहीं निकाल सकेगा वह निकम्मा साबित होगा।

उत्तर : वह अनुभव से सीखेगा। उस क्षेत्र की जनता उसे धिक्कारेगी, और जोर डालेगी कि अगली बार ऐसा न हो।

प्रश्न : लेकिन मेरा ख्याल है कि अगर गाँव-गाँव में विचार पहुँचा दिया जायगा, और संगठन हो जायगा तो अधिकांश निर्वाचन क्षेत्र में सफलता मिलेगी। सबसे बड़ी रुकावटें दो ही हैं—दल और जाति।

उत्तर : हाँ, रुकावटें दो हैं ही। लेकिन इन कठिनाइयों के सामने जनता को हार नहीं माननी है। अगर जनता अगली बार हार गयी तो समझिए बहुत दिनों के लिए गयी। अब चुनाव दल बनाम दल का नहीं, दल बनाम जनता का होगा। आप ही बताइए कि दल और जनता में किसकी कीमत ज्यादा है? •

मणिपुर में सर्वोदय-कार्य

ब्रह्मदेश की सीमा पर, इम्फाल से तीस मील पूर्व बसे ककचिंग गाँव के १७० परिवारों ने मिलकर एक 'सर्वोदय संघ' गठित किया है, जिसके प्रमुख काम हैं—भूदान, संपत्तिदान, सर्वोदय-पात्र, धानकुटाई-उद्योग, खादी-उत्पादन-केन्द्र । गाँव का अनाज संग्रह करने के लिए श्रमदान से एक गोदाम बनाया है । सर्वोदय संघ जरूरतमंदों को अनाज और गरीब मेहनती विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देता है, तथा उन्हें यह निवेदन करता है कि ली हुई राशि बाद मे लौटा दें ताकि अन्य विद्यार्थी लाभ उठा सकें । हाईस्कूल के आठ (सभी) शिक्षक अवैतनिक हैं, वे मात्र अस्सी से सौ रुपये मासिक 'आनरेरियम' लेते हैं । निमाई नामक एक शिक्षक एम० ए० हैं और सांध्य-कालेज मे प्रवक्ता भी हैं । हेडमास्टर गंधार सिंह इन सब कार्यों के प्राण हैं । वे और निमाई कुछ दिन विनोबा-पदयात्रा में रहे, और बस, गांधी-विचार में रंग गये ।

एक-तिहाई जनसंख्या भूमिहीन है, किन्तु कोई भूखा नही है। "सामूहिक उत्तरदायित्व" गंधार सिंह के कार्य का मूल तत्त्व है । पंचायत की ओर सरकार की उपेक्षा, धान की जबरन लेवी, स्कूल की मान्यता उठा लेने का भय, और शराबखोरी, वे मुख्य समस्याएं बतलाते हैं ।

स्वामी शिवानन्द ऋषिकेश की शाखा 'दिव्य जीवन सेवा समिति' साप्ताहिक सत्संग और श्रमदान आयोजित करती है। इसके छात्र-स्वयंसेवक तथा मन्त्री निगंथेमजओ शराब और अन्य सामाजिक कुरीतियों को बदलने के लिए लोक-शिक्षण करते हैं । सांध्य सत्संग मे मेरी बातें ध्यानपूर्वक सुनकर सबने ग्रामदान से सहमति बतलायी ।

लोहे के सुधरे हुए कृषि के औजार बनाते हुए, बढ़ईगिरी करते हुए, 'सहकारी समिति' के माध्यम से गुड़-खांडसारी निर्मित करते हुए, ग्रामीण अत्यन्त परिश्रमी दीख पड़े । कतार में बने कच्चे घर, बिना सरकारी सहायता लिये रास्ते-पुलिया और कालेज-भवन का निर्माण, जनशक्ति के अनुपम नमूने हैं । गाँव-गाँव में सस्ते किस्म के बाजारू बंबइया हिन्दी सिनेमा के प्रभाव को देखकर दुःख होता है, यद्यपि हिन्दी भाषा के प्रचार में इनसे बड़ी मदद मिली है । सत्यजीत राय के गंभीर बंगला खेल लोग देखें, तो क्या ही अच्छा हो । आर्ट्स्-कालेज की वृद्धि होते देख, प्रश्न उठता है कि ये गाँव के लिए कितने उपयोगी हैं ? विद्यार्थी गरीब पिता के पैसे बर्बाद करें, नौकरी की व्यर्थ आशा रखें और फिर निराश होकर कम्युनिस्ट बन जायँ, क्या यही है शिक्षा ? वे क्या ज्ञान पाने आते हैं ? और फिर ये अभावग्रस्त कालेज कितना ज्ञान दे सकते हैं ? वे मात्र सम्मान-सूचक चिह्न हैं । पालिटेक्निक स्कूल (यंत्र-सम्बन्धी शिक्षालय) गाँव की अधिक सेवा कर सकते हैं ।

बुनियादी प्रशिक्षण संस्थान के बारह शिक्षक और प्रशिक्षार्थियों ने मेरे भाषण के बाद, अपना प्रेम दर्शाने के लिए मार्ग-व्यय हेतु एक-एक रुपया दिया । श्रोताओं में एक नाई भी था, जिसने मेरे बाल काटे तथा एक रुपया और दो संतरे दिये, और इम्फाल जानेवाले एक ट्रक में बैठा दिया । जब लोग आप पर इतना प्रेम बरसाते हैं, तब क्या भीतर से एक आवाज नही उठती है—'क्या मैं इस लायक हूँ ?' और अगर नही हूँ तो बनना चाहिए ? यही आवाज उठी, जब भाई आदू ने जबर्दस्ती मेरी जेब में दस रुपये डाल दिये, जब विनोद कुमार ने पाँच रुपये हाथ पर धर दिये ।

मणिपुर नृत्यों का प्रदेश है, स्त्रियों का प्रदेश है । यहाँ की दो विशेषताएं हर दर्शक को मोहित करती हैं । एक तो, कृष्ण-चैतन्य की भक्तिप्रधान वैष्णव-परम्परा । बर्मा और चीन के बगल में होते हुए भी, मणिपुर में सनातन हिन्दू धर्म बचा हुआ है । यहाँ एक हनुमान-मंदिर है, जिसे पांच शताब्दी पूर्व चीनियों ने आकर बनाया बताते हैं । दूसरी प्रधान विशेषता है, हर क्षेत्र में यहाँ की स्त्रियों को बराबरी और सम्मान । दुरंगे वस्त्रों में, जिन्हें वे स्वयं बुनती हैं, स्वतन्त्रता से साइकिलों पर वे घूमती हैं । सौम्य चेहरे, नाक और माथे पर चंदन का तिलक । सूत कातने की कला अवश्य समाप्त होती जा रही है, क्योंकि बाजार में मिल का सूत सुविधा से मिल जाता है ।

पंडित शिवदत्त के गीता-क्लास में हम शरीक हुए । बाजार के मध्य में स्थित 'गीता-मंदिर' में हर शाम दो-चार श्रोता आकर गीता-प्रवचन सुनते हैं । शिवदत्तजी शिकायत करने लगे कि मणिपुर पर सर्वोदय की छाप पड़ना बाकी है । "गीता-प्रवचन" की मणिपुरी भाषा में छपी एक हजार प्रतियाँ भी नहीं बिक सकीं । "एक अच्छा त्यागी सर्वोदय-कार्यकर्ता भेजिए", उन्होंने माँग की । मैंने विरोध किया, "मणिपुर में जब कि दस लाख लोग हैं, तब बाहर से एक व्यक्ति लाने की क्या जरूरत है ? सर्वोदय एक विचार है, जीवन-पद्धति है, पंथ या सम्प्रदाय नही । यदि एक व्यापारी, वकील, शिक्षक या किसान प्रतिदिन अपना काम सचाई-ईमानदारी से करता है, तो वह सर्वोदय-कार्य ही है ।" इसे मैंने एक छात्र-सभा में समझाया । कुछ छात्र जेल की सजा भुगत आये थे, जिन्होंने "मणिपुर राज्य" बनाने की माँग करते हुए गणतंत्र-दिवस का बहिष्कार किया था । मैंने

डा० ज़ाकिर हुसैन और विनोबा

मृत्यु : एक इन्सान की

डा० जाकिर हुसैन की मृत्यु का समाचार ऐसे समय मिला जब कि ऐसी खबर सुनने की तैयारी मन की थी नहीं। ३ मई को अचानक रेडियो ने खबर दी कि राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसैन अब नहीं रहे! हृदय-गति रुक जाने से उनकी मृत्यु हुई। 'सारा भारत मेरा घर और उसके लोग मेरा परिवार', जो ऐसा मानता था उसके अचानक उठ जाने की खबर से भारत भर में फैला विशाल परिवार शोक-सागर में डूब गया। जिसने यह खबर सुनी और जो उनको कुछ निकट से जानता था, या जो थोड़े समय के लिए भी उनके सम्पर्क में आया था उसने यही कहा कि वह भले आदमी थे। किसीका नुकसान करना तो क्या, वह ऐसा सोच भी नहीं सकते थे। वह भारत के सबसे ऊँचे पद पर थे, शिक्षा-शास्त्री थे, विद्वान थे, अहंकार तो जैसे उन्हें था ही नहीं। असाधारण गुण उनके जीवन में कूट-कूटकर भरे थे, लेकिन साधारण मनुष्य से कभी भी उन्होंने अपने को विलग नहीं होने दिया। और यही कारण था कि उन्हें साधारण लोगों का प्रेम प्राप्त था।

डा० जाकिर हुसैन स्वयं मुसलमान थे, लेकिन आदमी और आदमी के बीच सम्प्रदाय (हिन्दू-मुस्लिम) रूपी दीवाल को उन्होंने कभी खड़ा नहीं होने दिया।

डा० जाकिर हुसैन का जन्म ८ फरवरी, १८९७ में हैदराबाद में हुआ। उनके पिता वकील थे। वह ८ वर्ष के ही थे कि उनके पिता का देहान्त हो गया। सन् १९०७ में उनका परिवार इटावा पहुँच गया। वहाँ ही उन्होंने इस्लामिया हाईस्कूल में शिक्षा पायी। अलीगढ़ विश्वविद्यालय में एम० ए० पास करने के बाद वह सन् १९२३ में जर्मनी चले गये और वहाँ बर्लिन विश्वविद्यालय में पीएच० डी० की डिग्री प्राप्त की।

डा० जाकिर हुसैन गांधीजी की बुनियादी शिक्षा के विचार को मानते थे और उन्होंने बुनियादी शिक्षा के विकास का भरसक प्रयत्न किया और उसे एक शास्त्रीय रूप दिया। जामिया मिलिया को उन्होंने प्रयोगशाला बनाया था। उनका मानना था कि जामिया मिलिया से जितने छात्र पढ़ाई पूरी करके निकलें, सबके सब अध्यापक बनें और अध्यापन-कार्य से देश की सेवा करें।

डा० ज़ाकिर हुसैन बच्चों में देशभक्ति की भावना पैदा करने तथा उत्साह को बढ़ानेवाली छोटी-छोटी कहानियाँ भी लिखा करते थे। (उनकी एक कहानी अलग से अगले पृष्ठ पर दे रहे हैं।)

डा० जाकिर हुसैन शिक्षक थे। शिक्षक का आदर करते थे और जब राष्ट्रपति हुए तो उसको एक शिक्षक का सम्मान ही बताया था। शिक्षक और शिक्षा की मौजूदा हालत को देखकर उन्हें कष्ट होता था। बीच-बीच में जब भी अवसर मिलता था वह अपना अफसोस जाहिर करते रहते थे।

डा० जाकिर हुसैन की याद बनी रहेगी एक सही इनसान के रूप में। वह इंसानियत की ऐसी थाती छोड़ गये हैं जिन्हें सम्हालना हमारा-आपका काम है।

→उनसे प्रश्न किया, कि जब आप मंगल ग्रह पर उतरेंगे और पूछे जायँगे "कहाँ से आये हैं?" तब मंगल निवासियों को क्या उत्तर देंगे? कि, "मणिपुर राज्य से आये हैं?" नहीं, वहाँ आप कहेंगे, "हम पृथ्वी से आये हैं।" है न? जब हमारी दुनिया इतनी छोटी होती जा रही है, तब प्रांत-राज्य की सीमाएँ खड़ी करना कहाँ तक उचित है?

छात्रों ने रोष प्रकट किया, कि भारत ने मणिपुर को पिछड़ा हुआ रहने दिया, उद्योग धंधे नहीं खोले। मैंने उन्हें शांत किया, कि बिहार-उड़ीसा के कुछ हिस्से आपसे अधिक पिछड़े हुए हैं, जहाँ वर्षा में कहीं-कहीं हाथी पर सवार होकर जाना पड़ता है। न रास्ते हैं, न बिजली। कुछ गरीब गाँवों में तेल का दीपक भी नहीं मिलेगा। न पीने का स्वच्छ पानी उपलब्ध है, न जोतने के लिए भूमि।

छात्रों ने सर्वोदय में अत्यधिक दिलचस्पी ली, अनेक प्रश्न किये। वे कुछ करने को उत्साही थे। यहाँ सर्वोदय-अध्ययन-मंडली की नींव डाली गयी। —जगदीश बजाजी

कौन जीता ?

अल्मोड़ा में एक बड़े मियाँ रहते थे। उनका नाम अब्बू खाँ था। उन्हें बकरियाँ पालने का बहुत शौक था। अकेले आदमी थे। बस, एक-दो बकरियाँ रखते। अब्बू खाँ बड़े गरीब थे और बदनसब भी। उनकी सारी बकरियाँ भी कभी-न-कभी रस्सी तुड़ाकर भाग जाती थी। वे भागकर पहाड़ पर चली जाती थीं। वहाँ एक भेड़िया रहता, जो उन्हें खा जाता। एक दिन वे एक बकरी मोल लाये थे। यह अभी बच्ची ही थी। अब्बू खाँ ने सोचा कि कम उम्र की बकरी लूँगा तो शायद मेरे से हिल जाय। उन्होंने इसका नाम चाँदनी रखा। लेकिन एक दिन चाँदनी भी निकल भागी। पहाड़ पर पहुँची तो भेड़िये के आगे सिर नहीं झुकाया। वह खूब जानती थी कि बकरियाँ भेड़ियों से पार नहीं पा सकती, वह तो केवल यह चाहती थी कि अपनी क्षमता के मुताबिक मुकाबिला करे, जीत-हार पर काबू नहीं, वह तो अल्लाह के हाथ है। मुकाबिला जरूरी है। चाँदनी रात भर भेड़िये का मुकाबिला करती रही, पर सुबह होते-होते चाँदनी बेदम हो जमीन पर गिर पड़ी। उसका सफेद बालों का लिबास खून से सुर्ख (लाल) था। भेड़िया उसे दबोचकर खा गया।

कहानी अभी खत्म नहीं हुई, इसका असली मकसद बाकी है। कहानी खत्म इस प्रकार होती है कि पेड़ पर बैठी चिड़ियाँ यह सब देख रही थीं। उनमें यह बहस चल रही थी कि जीत किसकी हुई। सब कहती थी कि भेड़िया जीता, पर एक बूढ़ी चिड़िया बोली—'नहीं, चाँदनी जीती!'

—डा० जाकिर हुसैन

उत्पादक को क्या मिलता है ?

(१) एक सौ रुपये का अनाज बेचने पर बेचनेवाले किसान को बाजार के ये खर्च चुकाने पड़े :

आढ़त	१.००
पल्लेदारी	०.१६
धर्मादा	०.०६
व्यापार मंडल	०.०५
दलाली	०.२५
गोशाला	०.०३
गोपाल मन्दिर	०.०३
कमेटी	०.०१
तौलाई	०.०८
अन्य	०.१२
चुंगी	०.४०
कुल	२.२२

(२) खरीदनेवाला ग्राहक क्या देता है ?

मंडी के भीतर ढुलाई	०.१६
तौलाई	०.०५
निकासी	०.०५
दलाली	०.२५
कुल	०.५४

कुल बाजार-खर्च में ८० फीसदी बेचनेवाला देता है, और २० फीसदी खरीदनेवाला देता है।

(३) गाहक जो दाम देता है उसमें से उत्पादक को कितना मिलता है ?

गाँव में उत्पादक को	७६.३३
बाजार तक गाड़ी-भाड़ा	२.३६
इकट्ठा करने का खर्च जो बेचनेवाला देता है	२.९७
विक्रेता का मुनाफा	५.८२
विक्रेता को कुल मिला	८७.४८
इकट्ठा करने का खर्च जो ग्राहक देता है	०.५२
आढ़ती को मिलता है	३.३७
कुल	९१.३७
रिटेलवाले को जो बाजार का खर्च देना पड़ा	४.८०
रिटेलवाले का मुनाफा	३.८३
ग्राहक ने दिया कुल	१००.००

अगर उत्पादकों का सहकारी संगठन हो तो ग्राहक के दिये हुए दाम में से एक बड़ा भाग जो बीचवाले लोगों की जेब में चला जाता है बच जाय और किसान को मिले। किसान पैदा करे, और फायदा बाजार उठाये तो किसान कैसे पैदावार बढ़ायेगा, और क्यों बढ़ायेगा ?

वैभव की फैलती दुनिया और टूटता-बिखरता आदमी

अपने बहुत ही निकट के एक मित्र की बीमारी की खबर पाकर कल हम उन्हें देखने गये थे। वहाँ और भी कई पुराने दोस्तों से मुलाकात हो गयी, जिनके साथ कभी रात-दिन का उठना-बैठना था। उस मुहल्ले में हमारी टोली आपसी निकटता और प्रेमभाव के लिए मशहूर थी। और सचमुच हमारे आपसी सम्बन्ध ऐसे थे, जो किसी अच्छे परिवार में भी शायद ही देखने को मिलें। जैसा कि अक्सर होता है, चर्चा में पुराने दिनों की यादें ताजी की जाने लगी। रामनिवास ने चर्चा छेड़ दी लल्लन के परिवार की। हम सबमें लल्लन का परिवार उस समय सबसे अधिक समझदार, सम्पन्न, और सभ्य माना जाता था। परिवार के सभी लोग पढ़े-लिखे थे, सभी भाइयों में रामलखन-सा प्रेम था, उनके पारिवारिक सम्बन्धों को और भाइयों के आपसी प्रेम को देखकर यह बात झूठी मालूम पड़ने लगती थी कि कलि-काल में भाई भाई का पट्टीदार है, और उनमें हक के लिए आज नहीं तो कल लड़ाई होने ही वाली है। सभी कमाते थे, सबमें सुमति और एकता थी तो लक्ष्मीजी भी खुले दिल से आशीर्वाद देती थीं, और सम्पत्ति दिन-दूनी रात-चौगुनी की रफ्तार से बढ़ती जाती थी।

बीच में एक बार उड़ती फिरती खबर मिली थी कि लल्लन के परिवार में बँटवारा हो गया। कानों से सुनी बात पर भरोसा नहीं हुआ था और इसे झूठी अफवाह मानकर दिमाग से निकाल दिया था, लेकिन आज अब कई लोगों के मुँह से यह बात सुनी तो दिल में गहरी चोट-सी लगी। रामनिवास ने बताया कि आज-कल सभी भाई बहुत ही तबाही की हालत में हैं। शिवमूरत ने इस पर अपनी राय जाहिर करते हुए बात आगे बढ़ायी, "भइया, सुखी परिवार और खुशहाल गाँव का जमाना गया। अब तो न कहीं कोई परिवार दिखाई देता है, और न गाँव। पहले तो गाँव छोटे-बड़े परिवारों का एक बड़ा कुनबा था, आज तो गाँव तेजी से टूटते और कलह की आग में जलते लोगों का अड्डा भर रह गया है। भाई तो भाई का दुश्मन बन ही गया है, जवान और कमाऊ बेटों और उनके बूढ़े माँ-बाप के भी सम्बन्धों को देखकर रोना आता है। माँ-बाप ने आस लगाकर बेटे को पाला-पोसा था कि बुढ़ापे को सहारा मिलेगा, लेकिन बेटे को अपने बीबी-बच्चों से फुरसत ही नहीं मिलती कि माँ-बाप की ओर ताकें। इसलिए आज गाँवों में आधे से भी अधिक बूढ़ों की संख्या ऐसी हो गयी है, जो रोज सुबह-शाम प्रार्थना करते हैं, 'भगवान, अब जल्दी से वापस बुला लो!' जाना तो सबको है किसी-न किसी दिन, लेकिन इस तरह, जिन्दगी से ऊबकर जाने की प्रार्थना करनी पड़े तो इसमें परिवार और गाँव का कौनसा रूप सामने आता है?"

इसमें कोई शक नहीं कि अब भारत के पुराने-से-पुराने गाँवों में भी फूट की दरारें पड़ गयी हैं, और जीवन में कोई एकता नहीं रह गयी है। लेकिन ऐसा क्यों है? क्यों भाई, चाचा, काका, दादा, भाभी, चाची, काकी, दीदी वाले बड़े बड़े परिवार पति-पत्नी तक सिकुड़ गये हैं, और शायद इनमें भी सिकुड़न की यह क्रिया जारी है, तभी तो पति-पत्नी भी बाहरी-भीतरी कलह की आग में झुलसती जिन्दगी का बोझा किसी तरह ढोते जाते हैं, उनके जीवन में कोई रौनक नहीं दिखाई देती!

अपने देश के अज्ञान, अभाव और तरह-तरह के अन्याय में पिसते गाँवों और परिवारों की यह हालत है, लेकिन दुनिया के सबसे धनी, पढ़े-लिखे और सभ्य देशों के परिवारों और उनके समुदायों की क्या हालत है?

दुनिया के अमीर, सभ्य कहे जानेवाले इज्जतदार देशों में अमेरिका, रूस, ब्रितानिया, आस्ट्रेलिया आदि की गिनती सबसे ऊपर के देशों में की जाती है। इन देशों के बड़े-बड़े महानगर दुनिया के लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचते रहते हैं, और उन्हें जीवन को सुखी करने की नयी-नयी दिशाएं दिखाते रहते हैं। दुनिया का हर पढ़ा-लिखा आदमी इन नगरों की ओर ताकता रहता है कि कोई नयी चीज मिले जिन्दगी को सुखी बनाने की। और, प्रायः हर देश की अनपढ़ जनता अपने देश के इन पढ़े-लिखे लोगों का मुँह ताकती रहती है कि वे संकट से उबरने का कोई रास्ता सुझायें। इसीलिए कुल मिलाकर आज मनुष्य की जिन्दगी को आकार देनेवाले इन बड़े देशों के महानगर ही माने जा सकते हैं। लेकिन इन महानगरों की क्या स्थिति है?

आस्ट्रेलिया से प्रकाशित एक अंग्रेजी पत्रिका 'दी प्लेन ट्रूथ' ने अपनी एक रिपोर्ट में ट्रूथ खोल देनेवाली जान-कारियाँ जनवरी '६६ के अंक में प्रकाशित की हैं। हम जानते हैं कि स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के आधार पर परिवार की इकाई बनती है, और परिवार की इन इकाइयों के आधार पर समुदाय और समाज बनते हैं। हम यह भी जानते हैं कि व्यक्ति→
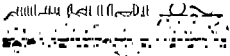
अम्बर चरखे का चमत्कार

मैं एक रोज सकुनपुरा को ग्रामस्वराज्य-सभा की बैठक में सम्मिलित हुआ। गाँव के लोगों ने ग्रामदान-पद्धति द्वारा संगठन बनाने के बाद अन्य गाँवों की तरह ग्रामकोष इकट्ठा करने का निश्चय किया। यह क्षेत्र कोड़र, आठवाँव या लंकापुरी के नाम से मशहूर है, क्योंकि तीन तरफ दह (पानी) से बारहों महीने घिरा रहता है। सरकारी अधिकारी तथा नेता लोगों को जहाँ जाना मुश्किल है वहीं पर ग्रामदान के लोग जाकर ग्राम-संगठन का कार्य बड़े तेजी से करा रहे हैं।

सकुनपुरा के बाद मैं मल्हौवा गांधी आश्रम के केन्द्र पर पहुँचा। उसी समय बारिस होने लगी। गांधी आश्रम मल्हौवा में साधारण पोशाक पहने १० वर्ष का एक लड़का प्रसन्न मुद्रा में बैठा था। मैंने लड़के का परिचय पूछा तो गांधी आश्रम के व्यवस्थापकजी ने बताया कि यह लड़का प्रतिमाह दो सौ रुपया अम्बर चरखे द्वारा कमा लेता है। यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरे मन में लड़के के पिता से मिलने की इच्छा हुई। व्यवस्थापकजी ने बताया कि आज रात को उसके यहाँ सहभोज है। वह सत्यनारायण की कथा सुनकर अपने परिश्रम के पैसे में से दो सौ रुपये गरीब लोगों के खिलाने में खर्च कर चुका है।

मैं मल्हौवा से पनिचा गया। पनिचा से सूर्यपुरा जाना था, जो वहाँ से ५ मील दूर था। वहाँ रात में ग्रामसंगठन की मीटिंग थी। पनिचा से चलने पर रास्ते में एक गाँव पड़ा, जिसका नाम बड़ागाँव है। वहाँ सूत-खरीद के लिए गांधी आश्रम के एक भाई मौजूद थे। वे अकेले सूत खरीद रहे थे। एक आदमी सूत तौलने में उनकी मदद कर रहा था। मैंने उस आदमी का परिचय पूछा तो सूत खरीदनेवाले भाई हँसने लगे और कहने लगे कि वह वही भाई है, जिसका आप दर्शन करना चाहते हैं। मुझे बड़ी खुशी हुई।

मैंने उस भाई का परिचय पूछा। उसने बताया, "मेरा नाम विश्वनाथ है। मैं चुरकैण्ट ग्राम का रहनेवाला हूँ। मेरे घर मेरी स्त्री, दो लड़कियाँ तथा एक लड़का है। मैं पहले बहुत गरीब था, क्योंकि मेरे पास केवल १० कट्ठा ही जमीन है। उसी पर कठिन परिश्रम करके जीविकोपार्जन कर रहा था। कुछ माह पूर्व मेरे गाँव में अम्बर मास्टर अम्बर चरखा सिखाने के लिए आये। मेरी स्त्री ने चरखे का प्रशिक्षण लिया। प्रशिक्षण होने पर वह घर पर ही खाली समय में चरखा चलाने लगी। मैं भी उसकी मदद करने लगा। इस प्रकार मुझे भी चरखे की कुछ जानकारी हो गयी। चरखे के बारे में गांधीजी का विचार भी ग्रामदान के कार्यकर्ता लोगों से मालूम हुआ। मेरा उत्साह बढ़ा। मैं इस कार्य में ज्यादा समय देने लगा। घर का काम करने के पश्चात् दोनों प्राणियों में से जब जो खाली रहता है वह चरखा चलाने लगता है, यानी मेरा चरखा प्रायः चलता रहता है।

"मैंने सात माह में ८०० रुपये खेत में, २०० रुपया गरीबों को खिलाने में, २२५ रुपये कपड़े में तथा शेष घर के अन्य कार्य में खर्च किये। समय मिलने पर व्यवस्थापकजी को भी सहयोग दे देता हूँ। कभी-कभी गाँव में नमक, मसाला आदि लेकर फेरी भी करता हूँ।"

उसकी इन बातों को सुनकर वहाँ पर मौजूद अन्य लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। एक भाई जो थोड़ा-बहुत पढ़ा-लिखा जान पड़ता था, कहने लगा कि जिस रोज प्रत्येक घर में चरखा चलने लगे, उस रोज से ही ग्रामस्वराज्य की ओर कदम उठ जाय। यही तो गांधीजी के स्वप्न को पूरा करने का एक-मात्र साधन है।

—रामसुन्दर भाई

->और समाज को सुखी-समृद्ध करने के लिए उसकी भौतिक जरूरतें पूरी करनी होती हैं, और विज्ञान उसके लिए चमत्कारी मदद कर रहा है। दुनिया के ये बड़े देश, और इन देशों के ये महानगर विज्ञान की अद्भुत शक्ति के अड्डे हैं, और यहाँ वैभव का कोई पारावार नहीं। लेकिन क्या वहाँ के आदमी सुखी हैं ? सन्तुष्ट हैं ? उनका पारिवारिक और सामाजिक जीवन साफ-सुथरा है ? (क्रमशः)

'गाँव की बात' : वार्षिक चन्दा : चार रुपये, एक प्रति : अठारह पैसे
सम्पादक : राममूर्ति : सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१

लिए किया जा रहा है। दूसरी ओर अपने आन्दोलन को यह नयी पीढ़ी अच्छी तरह से समझे बूझे और प्रत्यक्ष इसमें हाथ बँटा सके, यह उनके पुरुषार्थ को रचनात्मक मोड़ देने का बहुत बड़ा सुअवसर है। मण्डल ने तरुण-शांति-सेना के माध्यम से युवकों के बीच पिछले सात आठ वर्षों से इस सन्दर्भ में एक नम्र प्रयास शुरू किया है। इस अल्पावधि में किये गये प्रयास की तुलना में काफी उत्साहवर्धक और प्रेरणादायी अनुभव आये हैं। इस सन्दर्भ में निम्न मुद्दों को दृष्टिगत रखते हुए विचार करना उपयोगी होगा .

(१) तरुण शांति सेना के लक्ष्य, कार्यक्रम, संगठन आदि पर विचार किया जाय।

(२) कार्यकर्ताओं के लड़के-लड़कियाँ तरुण शांति-सेना में शामिल हों।

(३) हर सर्वोदय-मण्डल अपने प्रदेश के प्रमुख नगरों में तरुण शांति-सेना केन्द्र गठित करें।

शांति-सैनिक तथा शांति-सेना

देश के शांतिप्रेमी नागरिकों के लिए शांति-सैनिक, शांति-सेवक के रूप में शांति केन्द्रों के माध्यम से शांति का वायु मण्डल तैयार करने तथा आपसी तनावों को प्रेमपूर्वक दूर करने की अनन्त सम्भावनाएँ हैं। किन्तु यह काम भी बहुत ही उपेक्षित है। एक समय यहाँ १२,००० शांति-सैनिक और १,५०० शांति-केन्द्र संख्या में थे। 'छँटनी' के बाद आज यह संख्या क्रमशः ५,५०० और ६५० रह गयी है। यह भी बहुत सक्रियतापूर्वक काम में लगे हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता है। देश में शांति की हवा बन सके, शांति-सेना का काम यशस्वी हो, ऐसी मनशा रखनेवालों को यह स्थिति गहराई से विचार करने के लिए बाध्य करती है। विचार करने की दृष्टि से कुछ प्रमुख प्रश्न हमारे समक्ष हैं :

(१) शांति सैनिकों को तथा शांति-केन्द्रों को कैसे सक्रिय बनाया जाय ?

(२) शांति-सैनिकों के संयोजन, प्रशिक्षण, कार्यक्रम आदि पर विचार।

(३) इनके माध्यम से देश में शांतिमय वातावरण का निर्माण कैसे किया जाय ?

नगरों में काम

देश के प्रमुख नगरों में काम की दृष्टि से १०० नगरों से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास हुआ, जिसमें ६५ नगरों से सम्पर्क हो चुका है। कुछ औद्योगिक बस्तियों में तथा साम्प्रदायिक दृष्टि से सम्भावित स्थलों में ठोस कार्यक्रम की नितान्त आवश्यकता महसूस होती रही है। छिटफुट प्रयासों के अतिरिक्त कुछ व्यवस्थित प्रयत्न की आवश्यकता है। इस सन्दर्भ में गांधी शांति प्रतिष्ठान, गांधी स्मारक निधि, खादी-ग्रामोद्योग आयोग तथा रचनात्मक संस्थाओं के समन्वित सहकार से एक निश्चित कार्यक्रम बनाया जाना उपयोगी होगा।

सीमावर्ती क्षेत्रों में काम

सन् १९६२ के बाद सीमा-क्षेत्रों में काम भी शांति सेना मण्डल का एक महत्वपूर्ण एवं दीर्घकालीन कार्यक्रम बन गया है। देश की रचनात्मकसंस्थाओं से चुने हुए कार्यकर्ता इस काम के लिए आगे बढ़ने चाहिए।

भारत पाक-सम्बन्ध

अपने पड़ोसी देश पाकिस्तान में शासन-परिवर्तन हुआ। नये शासक भी याह्या खाँ तथा इस बदली हुई परिस्थिति में वहाँ के नेता व आम जनता का भारत के प्रति क्या रुख होगा, अभी निश्चित नहीं कहा जा सकता। यह थोड़ी प्रतीक्षा करके अध्ययन करना होगा। यदि अनुकूलता दीखती हो, तो भारत को फिर से मैत्री का हाथ बढ़ाना चाहिए।

भारत में रहनेवाले मुसलमानों में भी पाकिस्तान की अस्थिरता को देखते हुए कुछ चिन्तन शुरू होना स्वाभाविक है। अतः हिन्दू-मुस्लिम एकता की दृष्टि से इस अवसर का लाभ मिल सकता है।

आज शांति-सेना के काम की काफी आवश्यताएँ तथा सम्भावनाएँ विद्यमान हैं। इसकी अनिवार्यता समाज में तीव्रता से महसूस की जा रही है। हमारे आन्दोलन का यह यशस्वी पहलू है, किन्तु सचमुच संगठन, साधन, शक्ति तथा क्षमता के अभाव में सक्रियता नहीं आ पा रही है। आर्थिक दृष्टि से भी मण्डल की हालत काफी चिन्ताजनक है। अतः अर्थ-संयोजन के बारे में विचार करना आवश्यक है। ग्रामदान और खादी के साथ-साथ शांति-सेना पर भी सचमुच ध्यान देते हुए त्रिमूर्ति की तेजस्विता प्रकट करने का हमारा प्रयत्न होना चाहिए।

—तिरुपति अधिवेशन में प्रस्तुत सन्दर्भ लेख-३

※ गांधी-शताब्दी कैसे मनायें ? ※

★ आर्थिक व राजनैतिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण और ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के लिए ग्रामदान-आन्दोलन में योग दें।

★ देश को स्वावलम्बी बनाने और सबको रोजगार देने के लिए खादी, ग्राम और कुटीर-उद्योगों को प्रोत्साहन दें।

★ सभी सम्प्रदायों, वर्गों, भाषावार समूहों में सौहार्द-स्थापना तथा राष्ट्रीय एकता व सुदृढ़ता के लिए शांति-सेना को सशक्त करें।

★ शिविर, विचार-गोष्ठी, पदयात्रा वगैरह में भाग लेकर गांधीजी के संदेश का चिंतन-मनन और प्रसार करें, उसे जीवन में उतारें।

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी-समिति),
हंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैंरू, जयपुर-१ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

चार अधिवेशन और उनकी उपलब्धियाँ

कांग्रेस : 'लोक' और परम्पराएँ

हरियाणा क्षेत्र में पहली बार कांग्रेस महासमिति का ७२वाँ वार्षिक अधिवेशन २५ अप्रैल को प्रात: प्रारम्भ हुआ। दिल्ली-हरियाणा सीमा पर दिल्ली से सिर्फ २० मील दूर स्थित फरीदाबाद में कांग्रेस के अधिवेशन के लिए हरियाणा के मुख्यमंत्री ने ३ लाख वर्गफुट का विशाल पण्डाल बनवाया था। इस अधिवेशन-स्थल को स्थायी नगर बनाने के इरादे से एवं दिल्ली में चल रहे संसद के अधिवेशन से नित्य केन्द्रीय मंत्रियों एवं सदस्यों को आने-जाने में सुविधा रहे, इस दृष्टि से फरीदाबाद उपयुक्त माना गया। अधिवेशन स्थल का नाम परंपरानुसार हरियाणा के पुराने स्वातंत्र्य-सेनानी पं० नेकीराम शर्मा के नाम पर "नेकीराम शर्मा नगर" रखा गया।

अधिवेशन में भाग लेने के लिए दिल्ली से अधिवेशन-स्थल तक हरियाणा राज्य परिवहन और डी० टी० यू० की विशेष बसों की व्यवस्था थी। पश्चिम रेलवे व सेन्ट्रल रेलवे की सब महत्वपूर्ण ट्रेनों के फरीदाबाद न्यु टाउनशिप स्टेशन पर रुकने की व्यवस्था थी।

फरीदाबाद नगर में अ० भा० कांग्रेस, रेलवे, पुलिस, बिजली, लोकनिर्माण विभाग, प्रेस, सड़क, परिवहन और हरियाणा सरकार की आवश्यकताओं के लिए लगभग ३०० टेलीफोन लगाये गये। अन्तर्राष्ट्रीय तारघर के लिए पृथक् दूरमुद्रक लगाये गये, ताकि वहाँ से विदेशों में सीधे समाचार भेजे जा सकें। स्थानीय तथा दूरकाल के लिए बूथ बनाये गये और टेलीफोन विभाग की तरफ से वहाँ एक प्रेस कार्यालय खोला गया।

फरीदाबाद के बारे में कहा जाता है कि सन् १९४७ में देश के कई अंचलों से सताये गये हिन्दू भागकर दिल्ली आये थे। तत्कालीन शासकों ने दिल्ली के पास ही इस फरीदाबाद में शरणार्थियों को बसाया। जमने के कुछ वर्षों के बाद यह शरणार्थी-कस्बा देश का एक औद्योगिक केन्द्र बन गया। प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि वहाँ ४०० से अधिक बड़े कारखाने उद्योग हैं, जिनमें १९००० से अधिक लोगों को रोजगार मिला हुआ है।

इस अधिवेशन-स्थल का अपना एक और ऐतिहासिक-धार्मिक महत्व है। ४९१ वर्ष पूर्व महाकवि सूरदास ने इस स्थल के पास सीही ग्राम में जन्म लिया था।

कांग्रेस का अधिवेशन २५ अप्रैल को शुरू हुआ। २५ अप्रैल की पूर्वसंध्या पर कांग्रेस-अध्यक्ष श्री निजलिंगप्पा का भव्य स्वागत किया गया। कांग्रेस-अध्यक्ष को लाल रंग की खुली कार में 'नेकीराम शर्मा नगर' ले जाया गया। बदरपुर से अधिवेशन-स्थल तक ७२ सुसज्जित गेट बनाये गये थे। मार्ग में दोनों ओर खड़े हजारों स्त्री-पुरुषों ने हर्षध्वनि के साथ पुष्प वर्षा भी की।

इसी पूर्व संध्या पर अधिवेशन की विषय-सूची का निर्धारण करते हुए कांग्रेस कार्य-समिति ने तीन मण्डलों के गठन का प्रस्ताव रखा। सामाजिक व आर्थिक विषय तथा चतुर्थ पंचवर्षीय योजना से सम्बन्धित मण्डल के सभापति श्री मोरारजी देसाई, राजनीतिक मण्डल के सभापति श्री यशवन्तराव चह्वाण और संगठन-सम्बन्धी मण्डल के सभापति श्री सादिक अली बनाये गये।

अधिवेशन मण्डप के पीछे ही कांग्रेसाध्यक्ष और प्रधान मंत्री के विश्राम के लिए वातानुकूलित कक्ष बनाये गये थे। २५ अप्रैल को अधिवेशन के प्रारम्भ होने के आधे घण्टे के अन्दर ही भव्य पंडाल जलने लगा! कहा जाता है कि यह आग नवनिर्मित वातानुकूलित कमरों में बिजली के शार्ट सर्किट से लगी थी।

आग लगते ही भगदड़ मच गयी। श्री ढेबर भाई बिना चप्पल के भागे। श्री भक्तवत्सलम् गिर पड़े और उनकी बाहों की हड्डी टूट गयी। श्रीमती इंदिरा गांधी समेत अन्य वरिष्ठ लोगों को सावधानीपूर्वक सकुशल बाहर निकाल लिया गया, फिर भी अनुमान है कि लगभग १०० व्यक्ति आग से झुलस गये हैं। कुमारी मणिबेन का दाहिना हाथ झुलस गया है।

कांग्रेस पार्टी के इतिहास में ७२ अधिवेशनों में से आग द्वारा ध्वस्त होनेवाला यह तीसरा पण्डाल है। पहली बार सन् १९४६ में मेरठ अधिवेशन और दूसरी बार सन् १९५१ में दिल्ली अधिवेशन के समय आग लगी थी। कांग्रेसवालों को ही यह कहते हुए सुना गया कि दिल्ली और उसके आसपास का इलाका कांग्रेस-अधिवेशनों के लिए शुभ नहीं है।

कांग्रेस के इस अधिवेशन में युवा कांग्रेसियों ने महासमिति के पदाधिकारियों को स्पष्ट याद दिलाया कि कांग्रेस के घोषित दससूत्री कार्यक्रमों पर अमल नहीं किया गया तो सन् १९७२ में केन्द्र में कांग्रेस अपनी सरकार बना पायेगी, इसमें सन्देह है। कई कांग्रेसी नेताओं ने इसी स्वर में अपना स्वर मिलाया। आपस में तूँ-तूँ-मैं मैं होने से पूरा अधिवेशन बिना ठोस निर्णय किये ही समाप्त हो गया।

यह अधिवेशन जिस राजनीतिक पृष्ठभूमि में हुआ और कांग्रेस के सामने जो बड़ी पेचीदी समस्याएँ थीं उनको सुलझाना जरूरी था। इस सम्बन्ध में दो मत नहीं हैं कि कांग्रेस की शक्ति क्षीण हो रही है। उसके लिए ऐसी स्थिति पैदा हो गयी है कि सन् १९७२ में मिलीजुली सरकारों के बारे में अभी से सोचना पड़ रहा है। इस प्रकार के कई महत्वपूर्ण प्रश्नों पर कांग्रेस को अपनी नीति सुनिश्चित करनी थी और उस पर दृढ़ता से अमल करना था। लेकिन अन्यमनस्कता के कारण कुछ खास नहीं हुआ।

लोकतान्त्रिक समाजवाद कांग्रेस का घोषित आदर्श है, इसकी सच्चे अर्थों में स्थापना होनी चाहिए। लोकतान्त्रिक शासन-प्रणाली में किसी राष्ट्र के भाग्य का उत्थान-पतन किसी दल के भाग्य के उत्थान पतन से मरती नहीं होता। विकट समस्याओं के तूफान को देखकर शुतुर्मुर्ग की तरह निष्क्रियता की बालु में अपनी गर्दन गड़ाकर कांग्रेस ने त्राण पाने की जो नाहक कोशिश की है, उससे देश निराशा का शिकार हुआ है। यह निराशा केवल प्रशासन और संगठन में ही नहीं, लोकमानस में भी उपेक्षा का भाव जागृत करनेवाली है, जो कि लोकतंत्र और आजादी के लिए घातक सिद्ध होगी।

जनसंघ : संशोधन के सुझाव

भारतीय जनसंघ का १४वाँ अधिवेशन दीनदयालनगर, दक्षिण बम्बई में २५, २६, २७ अप्रैल को हुआ। जनसंघ के अध्यक्ष श्री अटलबिहारी वाजपेयी ने पार्टी का भगवाध्वज फहराकर वार्षिक सम्मेलन का श्रीगणेश किया। उस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डा० एस० के० मुरंजन थे।

कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव द्वारा केन्द्र-सरकार से अनुरोध किया कि जनतंत्र की आकांक्षाओं के अनुरूप चतुर्थ पंचवर्षीय योजना को वास्तविक रूप में स्वदेशी बनाये, ताकि सामान्य जनता को भी इसका लाभ मिल सके। देश में बढ़ती हुई विघटनकारी प्रवृत्तियों के—जैसे, असम के पहाड़ी राज्य की माँग, केरल में मल्लापुरम् जिले का निर्माण तथा बम्बई में शिवसेना के नाम पर तथा सीमा-विवाद के आधार पर आयोजित दंगाफसाद आदि पर गहरी चिंता व्यक्त की।

भारतीय जनसंघ की कार्यसमिति ने अपने अन्य प्रस्तावों में आर्थिक नियोजन, कृषि, और अंतर्राष्ट्रीय स्थिति के सम्बन्ध में यह आग्रह किया कि पूर्वाग्रह, परम्परा का निर्वाह और अस्पष्टता की नीति को त्यागकर वस्तुपरक दृष्टिकोण अपनाया जाय। पख्तून आन्दोलन को भी समर्थन देने पर सभी लोग एक राय रहे।

भारतीय जनसंघ के इस वार्षिक अधिवेशन में दूसरे राज्य-पुनर्गठन आयोग की *माँग को राजनीतिक क्षेत्रों में बड़ा महत्त्व* दिया गया है। पहला आयोग सन् ५१ में बना था और उसने भाषावार राज्यों के *पुनर्गठन की योजना प्रस्तुत की थी।*

हिन्दू महासभा : लोकतंत्र की चिंता

अखिल भारतीय हिन्दू महासभा के नागपुर में हुए ६२वें अधिवेशन में २७ अप्रैल को अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुए श्री व्रजनारायण व्रजेश ने सुझाव दिया है कि देश का शासन पाँच वर्ष के लिए कुछ योग्यतम व्यक्तियों को सौंप दिया जाना चाहिए, क्योंकि वर्तमान स्थिति को देखते हुए देश में लोकतंत्र को स्थिर और सुरक्षित रखने का यही एकमात्र उपाय है। *उन्होंने* स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जिन योग्यतम व्यक्तियों को देश का शासन सौंपा जाय वे सर्वाधिक बुद्धिमान, अनुभवी, राजनीतिज्ञ, कुशल प्रशासक होने चाहिए। भले ही वे किसी भी राजनीतिक दल से सम्बन्धित क्यों न हों। उन्होंने यह भी कहा कि देश में ऐसे व्यक्तियों *की कमी नहीं है।*

श्री व्रजेश ने विदेश-नीति में आमूल-चूल परिवर्तन करने तथा शत्रु-देशों के प्रति कड़ी नीति एवं नेपाल, जापान, बर्मा तथा मारीशस आदि पड़ोसी देशों से मैत्री सम्बन्ध बनाने की नीति पर बल दिया।

हिन्दू महासभा ने रूस और अमेरिका पर भारत के साथ विश्वासघात का आरोप लगाया और भारत की रक्षा के लिए देश का सैनिकीकरण और अणुबम बनाने का सुझाव *दिया है। १६ से २२ वर्ष के हिन्दू युवकों को* अनिवार्य सैनिक-शिक्षा देने पर विशेष बल दिया गया है।

अध्यक्ष श्री व्रजेश ने कहा कि यदि देश की आर्थिक स्थिति सुधारनी है तो सरकारी व्यय कम करने के लिए मंत्रियों की फौज को छँटनी के साथ साथ शान-शौकत पर बहाये जानेवाले धन पर भी रोक लगानी होगी तथा उत्पादन-वृद्धि में कागजी योजनाओं के बदले रचनात्मक कार्य करना होगा।

सर्वोदय : सर्वसम्मति की चुनाव-प्रणाली

दक्षिण-भारत के प्रमुख तीर्थस्थान तिरुपति (आंध्रप्रदेश) में २३ से २५ अप्रैल तक सर्व सेवा संघ का अधिवेशन हुआ। देश के एक कोने में होने के कारण उतनी संख्या में प्रतिनिधि और लोकसेवक नहीं पहुँच सके, जितनी सोदपुर में प्रायः पहुँचते थे। इस संघ-अधिवेशन में नये अध्यक्ष का निर्वाचन हुआ। सर्वोदय-जगत् में सर्वसम्मति का तरीका अपनाने की प्रणाली है। अध्यक्ष श्री एस० जगन्नाथन् और मंत्री श्री ठाकुरदास बंग बनाये गये। अध्यक्ष और मंत्री ने २१ सदस्यीय *प्रबन्ध समिति का गठन किया है।*

इस अधिवेशन में मुख्यतः ग्रामदान आन्दोलन चर्चा और चिन्तन का विषय था। इसलिए सर्व सेवा संघ का नवगठन भी ग्रामदान-आन्दोलन के अनुकूल किया गया है।

× × ×

इन चारों अधिवेशनों (कांग्रेस, जनसंघ, *हिन्दू महासभा और सर्वोदय*) के भीतर झाँककर देखने पर यह स्पष्ट हो गया कि इन सबके कार्यकर्ताओं में तत्काल परिवर्तन की आकांक्षा है। आकांक्षा ही नहीं, बल्कि असंतोष भी है। और यह असंतोष किसी व्यक्ति के प्रति नहीं, अपितु अधिष्ठानों के प्रति है, जिन पर संचालन का दायित्व है। वे नया परिवर्तन नहीं चाहते और फील्ड में काम करनेवाले पुरानी लीक पर चलना नहीं चाहते। क्रांति जिसका स्वधर्म है, वह स्वयं अपनी राह बनाकर आगे बढ़ना चाहता है। अब यह एक बुनियादी प्रश्न है कि क्रान्ति की स्पर्द्धा का नया स्वरूप क्या हो?

—कपिल अवस्थी

प्रति ग्राहक १ रुपया विशेष कमीशन
गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष में

'भूदान-यज्ञ' के ग्राहक बनाने का व्यापक अभियान चलायें

गांधी-विनोबा के विचारों को गाँव-गाँव घर घर पहुँचाने के लिए और ग्रामस्वराज्य की बुनियाद डालने के लिए इस वर्ष 'भूदान-यज्ञ' के नये ग्राहक बनाने पर कार्यकर्ताओं को २० मई से प्रति ग्राहक १ रुपया कमीशन देने का निर्णय किया गया है। आशा है सब साथी इस अवसर का लाभ उठाने से नहीं चूकेंगे।

—व्यवस्थापक

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०, या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ३४

सोमवार २६ मई, '६९

अन्य पृष्ठों पर

सब लोगों को, और खासकर आध्यात्मिक साधना करनेवालों को तो सत्य को कभी छिपाना ही नहीं चाहिए। मेरी दृष्टि से तो सब सद्गुणों में सबसे श्रेष्ठ सद्गुण सत्य है। —विनोबा

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

अहिंसा में कायरता नहीं

मेरी अहिंसा धर्म एक सक्रिय बल है। इसमें कायरता की या दुर्बलता की भी गुंजाइश नहीं है। किसी हिंसक मनुष्य के किसी दिन अहिंसक बनने की आशा हो सकती है, मगर बुजदिल के लिए ऐसी कोई आशा नहीं होती। इसलिए मैंने इस पत्र में अनेक बार कहा कि यदि हमें कष्ट-सहन की शक्ति से अर्थात् अहिंसा से अपनी स्त्रियों की और अपने पूजा-स्थानों की रक्षा करना नहीं आता, तो हममें—अगर हम मर्द हैं—कम-से-कम इन सबकी लड़कर रक्षा करने की शक्ति तो होनी चाहिए।[1]

बचाव के दो रास्ते हैं। सबसे अच्छा और सबसे कारगर तो यह है कि बिलकुल बचाव न किया जाय, बल्कि अपनी जगह पर कायम रहकर हर तरह के खतरे का सामना किया जाय। दूसरा उत्तम और उतना ही सम्मानपूर्ण तरीका यह है कि आत्म-रक्षा के लिए बहादुरी से शत्रु पर प्रहार किया जाय और अपने जीवन को बड़े-से बड़े खतरे में डाला जाय।[2]

अहिंसा और कायरता का कोई मेल नहीं। मैं पूरी तरह शस्त्रसज्जित मनुष्य के हृदय से कायर होने की कल्पना कर सकता हूँ। हथियार रखना कायरता नहीं तो कुछ डर का होना तो जाहिर करता ही है। परन्तु सच्ची अहिंसा शुद्ध निर्भयता के बिना असम्भव है।[3]

मैं यह जरूर मानता हूँ कि जहाँ केवल कायरता और अहिंसा के बीच ही चुनाव करना हो वहाँ मैं हिंसा की सलाह दूँगा। मैं चाहूँगा कि भारत अपनी इज्जत की रक्षा करने के लिए भले ही शस्त्रों का आश्रय ले, मगर कायर बनकर बेइज्जती का निःसहाय साक्षी न बने या न रहे।[4]

परन्तु मेरा विश्वास है कि अहिंसा हिंसा से कहीं श्रेष्ठ है, क्षमा में सजा से अधिक बहादुरी है। क्षमा वीर का भूषण है। परन्तु दण्ड देने की शक्ति होने पर भी दण्ड न देना सच्ची क्षमा है। जब कोई निःसहाय प्राणी क्षमा करने का दंभ करता है, तब वह निरर्थक है। परन्तु मैं भारत को निःसहाय नहीं मानता। बल शारीरिक क्षमता से नहीं आता। वह अजेय संकल्प-शक्ति से आता है।

सत्याग्रही का अन्यायी को परेशान करने का इरादा कभी नहीं होता। वह उसे डराना भी नहीं चाहता, हमेशा उसके हृदय से अपील करता है। यही होना भी चाहिए। सत्याग्रही का उद्देश्य अन्याय करनेवाले को दबाना नहीं, बल्कि उसका हृदय-परिवर्तन करना होता है। उसे अपने तमाम कामों में कृत्रिमता से बचना चाहिए। वह स्वाभाविक रूप में और भीतरी विश्वास से कर्म करता है।[5]

मो. क. गांधी

(१) 'यंग इंडिया' : १६-६-२७; (२) 'यंग इंडिया' . १८-१२-२४ (३) 'हरिजन' : १५-७-३९; (४) 'यंग इंडिया' : ११-८-२० (५) 'हरिजन' : २५-३-३९।

कश्मीर का चुनाव और मुख्य चुनाव-कमिश्नर

हम लोगों ने कश्मीर प्लेबिसिट फ्रंट की इस घोषणा का कि वह जम्मू और कश्मीर राज्य के मध्यावधि चुनाव तथा भविष्य में होनेवाले किसी भी चुनाव में भाग लेगा, बहुत स्वागत किया था। हमने माना था कि उस राज्य के राजनैतिक जीवन को सामान्य बनाने की दिशा में यह एक बड़ा कदम है, इससे वहाँ लोकतान्त्रिक प्रक्रिया शुरू होगी जिसके कारण भारतीय संविधान के अन्तर्गत वहाँ की जनता को स्वतंत्रतापूर्वक विचार प्रकट करने का मौका मिलेगा।

इसलिए जब हमने सुना कि मुख्य चुनाव-कमिश्नर ने फ्रंट को चुनाव की तिथियाँ आगे बढ़ाने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया तो हमें बहुत सदमा पहुँचा। प्रार्थना इसलिए की गयी थी कि फ्रंट को चुनाव में भाग लेने का मौका मिल जाय। अगर चुनाव-कमिश्नर प्रशासन की कठिनाइयों का हवाला देकर तिथियों को बढ़ाने में अपनी असमर्थता प्रकट करते तब भी हमें दुख तो होता, लेकिन हम चुप रहते। इस वक्त सबसे ज्यादा दुख चुनाव-कमिश्नर के इस वक्तव्य से है कि उन्होंने प्रशासकीय कारणों से इनकार नहीं किया है, बल्कि इनकार किया है राजनैतिक कारणों से। वह चाहते थे कि फ्रंट पहले यह घोषणा करे कि उसका संविधान के प्रति रुख क्या है। यह जान लेने पर ही वह चुनाव स्थगित करने पर राजी होते। हमारा मत है कि चुनाव-कमिश्नर का यह निर्णय संविधान के विरुद्ध तो है ही, तथ्य और सिद्धान्त की दृष्टि से भी गलत है। चुनाव-कमिश्नर का यह संविधानिक कर्तव्य नहीं है कि वह चुनाव में शरीक होने की इच्छा रखनेवाले दलों के मत की छानबीन करें। अंग्रेजी जमाने में भी किसी राजनैतिक दल को कभी चुनाव से उसके राजनैतिक मत के कारण अलग नहीं किया गया, बशर्ते वह कानून और नियम मानने को तैयार हो। अंग्रेजी जमाने में कांग्रेस ने इस घोषित उद्देश्य से चुनाव लड़ा था कि वह संविधान का सुधार करेगी या उसका अन्त करेगी, और उसकी इस घोषणा पर कभी किसी ने आपत्ति नहीं की। चुनाव कमिश्नर का निर्णय तथ्य और सिद्धान्त में गलत इसलिए है, क्योंकि नामजदगी का पर्चा दाखिल करते समय हर उम्मीदवार को संविधान के प्रति वफादारी के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करना ही पड़ता है।

हम महसूस करते हैं कि चुनाव-कमिश्नर के इस संविधान-विरोधी निर्णय को यों ही नहीं छोड़ देना चाहिए। गृह-मंत्रालय और कानून-मंत्रालय का संविधान के प्रति कर्तव्य है कि चुनाव-कमिश्नर के वक्तव्य की जाँच करें और उचित कार्रवाई करें। लेकिन हमें दुःख है कि ऐसा करने के बजाय सरकार इस विषय पर प्रश्न का उत्तर देने तक को राजी नहीं हुई। अगर आज चुनाव-कमिश्नर कश्मीर के प्लेबिसिट फ्रंट को चुनाव लड़ने से रोक सकते हैं तो कल किसी भी राजनैतिक दल के साथ यही बर्ताव हो सकता है। उन्हें चुनाव लड़नेवाले दलों के बर्ताव से कोई मतलब नहीं है, उनका काम मात्र यह देखना है कि चुनाव स्वतन्त्र और निष्पक्ष हो।

हस्ताक्षर

—जे० बी० कृपालानी, हुमायूँ कबीर, अब्दुल गनी दर, पी० राममूर्ति, ए० के० गोपालन, सुशीला गोपालन, निर्लेप कौर, एम० मोहम्मद इस्माइल, सय्यद बदरुद्दुजा, ए० पी० चटर्जी, आर० उमानाथ, एस० कुण्डू, किंकर सिंह, अर्जुनसिंह भदोरिया, मयूर अली खाँ, रामअवतार शास्त्री, इशाक सम्भाली, लताफत अली खाँ, एम० इस्माइल, इब्राहिम सुलेमान सेट, भगवान दास, सत्यनारायण सिंह, इन्द्रजीत गुप्त, महाराज सिंह भारती, गणेश घोष, ज्योतिर्मयी बसु, एस० एम० बनर्जी, पी० के० वासुदेवन नायर, एम० चो० अप्रम्, जोगेश्वर यादव, चित्त बसु, एस० ए० आगा मोइद्दीन, भोगेन्द्र झा, जे० एम० इमाम, बी० विश्वनाथ मेनन, के० सुब्रवेलु, धीरेश्वर कलिता, जे० एम० बिस्वास, त्रिदीव कुमार चौधरी, जी० गोपीनाथ नायर, रामजी राम, परमम गोपालन् के०, चन्द्रशेखरन्, चन्द्रशेखर सिंह, बी० वी० अब्दुल्ला कोया, राम चरण, जुल्फिकार अली खाँ, जी० पी० मंगलाथुन्दम्, शशी राजन् पी० विश्वम्भरम्, शिवपूजन शास्त्री (सभी संसद-सदस्य)

नयी दिल्ली, १६ मई, १९६९

विद्यार्थी और समाज-परिवर्तन

'बड़ी अच्छी बात है कि विद्यार्थी प्रगति और परिवर्तन के लिए आगे बढ़ रहे हैं, लेकिन कसौटी तो तब होगी जब वे विश्वविद्यालय छोड़ चुकेंगे। उस वक्त क्या वे उसी ढाँचे के सेवक बनेंगे? अपने हाथ-पैर, अपना दिल-दिमाग उसी व्यवस्था से बँधने देंगे? और, जब वे इस लायक होंगे कि दूसरों का दमन कर सकें तो भी क्या आज की ही तरह मुक्ति का पक्ष लेते रहेंगे?

—'पीस न्यूज', ८ अप्रैल '६९

सेना और निष्पक्षता

दस साल पहले अयूब ने सेना की शक्ति से पाकिस्तान पर कब्जा किया। उसने बार-बार व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा से इनकार किया, और वादा किया कि ज्यों ही देश तैयार हो जायगा वह संसदीय लोकतंत्र की पद्धति कायम होने देगा। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया। दस साल बाद उसने दूसरे सैनिक, जेनरल याहिया खाँ को अपनी जगह बिठा दिया। याहिया खाँ अब वही वादा कर रहा है जो अयूब ने दस साल पहले किया था।

क्या याहिया विभिन्न निहित स्वार्थों का मेल मिलाकर देश में शान्ति और व्यवस्था कायम कर सकेगा? उसे भी हटाने के लिए दूसरी क्रान्ति ही करनी पड़ेगी, जो शायद पूर्वी पाकिस्तान में ही संभव होगी। लेकिन इस तरह की क्रान्ति से उस पूरे क्षेत्र में शक्ति का सन्तुलन बदल जायगा। और, तब पश्चिम के बड़े राष्ट्र अपने 'सीटो' (साउथ ईस्ट एशिया ट्रीटी आरगनाइजेशन) द्वारा सामने आयेंगे और यथास्थिति (स्टेटस्को) कायम रखने के लिए याहिया को बनाये रखने की कोशिश करेंगे।—बाब कोस्टो, 'पीस न्यूज'

नौकर की यह मजाल !

अभी हाल में राज्यसभा में एक मजेदार घटना हुई। घटना में क्या सच और क्या झूठ था, यह दूसरी बात है, लेकिन उसे लेकर कानून के डिप्टी मिनिस्टर और उस विभाग के सचिव में जो अप्रिय प्रसंग पैदा हो गया उसका अपना अलग महत्व है। महत्व इस बात में है कि यह प्रश्न सदस्यों के लिए प्रतिष्ठा का बन गया, और इस बात पर बन गया कि एक नौकर की यह मजाल कि जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों की शान के खिलाफ कुछ कह सके ! विभाग का सचिव नौकर है, और डिप्टी मिनिस्टर, छोटा ही सही, लेकिन है नेता।

नेताशाही बनाम नौकरशाही का सवाल ऐसा है जिसमें सभी नागरिकों को रुचि होगी। संसद में यह सवाल 'नेता बनाम नौकर' का है, लेकिन जहाँ वोट और टैक्स देनेवाले नागरिक हैं वहाँ यह प्रश्न 'नौकर बनाम मालिक' का हो जाता है। जनता दोनों की मालिक है—नौकर की भी, नेता की भी, और, उसीकी सबसे कम इज्जत है।

एक समय था जब नेता नेता थे, और जनता उनके पीछे चलती थी। उन नेताओं के त्याग और सेवा से मुल्क की शान बढ़ती थी। लेकिन आज कहाँ हैं नेता और उनकी प्रतिष्ठा ! इस शब्द 'नेता' की प्रतिष्ठा किसने छीन ली ? क्यों जनता की निगाह में 'नेता' का दर्जा 'नौकर' से भी नीचे हो गया ! क्यों एक बी० डी० ओ० एम० एल० ए० से ज्यादा इज्जत पाने लगा ? इसकी जिम्मेदारी स्वयं नेताओं पर है। अगर नेताओं ने मुल्क की शान का ख्याल नहीं रखा तो कायदे-कानून और कुर्सी की बदौलत कबतक अपनी शान कायम रख सकेंगे ?

लोक-प्रतिनिधि की प्रतिष्ठा लोकतन्त्र की प्रतिष्ठा है। एशिया और अफ्रीका के देशों में जिस तरह लोक नेताओं ने अपने को गिराया और अपनी दलगत राजनीति से मुल्क को भ्रष्ट और कमजोर किया, उससे लोकतंत्र धीरे-धीरे फासिस्टवाद के पेट में समाता चला गया। आज अगर हर देश में लोकतन्त्र के स्थान पर सैनिक-तंत्र है, जो नौकरशाही का ही एक रूप है, तो उसकी जिम्मेदारी नेताओं पर नहीं तो और किस पर है ? उनका बड़प्पन तो तब कायम रहता जब वे अपनी सेवा-भावना, सादगी, निष्पक्षता, ईमानदारी और कार्यक्षमता से देश को आगे बढ़ाते, और जनता को रास्ता दिखाते। लेकिन यह सब नहीं हुआ, नौकरों के सामने उनकी कलई खुल गयी। ३१ से ५१ रुपये रोज भत्ता हो जाय फिर भी कलई न खुले, तो कब खुलेगी ?

जहाँ तक जनता का प्रश्न है उसके लिए साँपनाथ और नागनाथ में क्या अन्तर है ? वह तो देख रही है कि जिस वोट से वह कभी लोकतन्त्र की मालिक बनी थी वही आज उसके दमन का साधन बन रहा है और जो टैक्स देकर उसने कभी संरक्षण का आश्वासन प्राप्त किया था वही उसके शोषण का माध्यम बन रहा है। उसके सामने नेताशाही और नौकरशाही, दोनों से ही मुक्त होने का सवाल है। उसका एक ही उत्तर है; वह यह कि अपने अधिक-से अधिक जीवन को नेताशाही और नौकरशाही के हाथों से निकाल ले। ग्राम स्वराज्य उसीका आन्दोलन है।

अशुभ-लक्षण

"एक बात बताइएगा ? मुझे कहने में बड़ा सकोच हो रहा है, लेकिन···।" "सकोच क्या है ? आप निस्संकोच कहें, क्या बात है ?" बोले "ग्रामदान में मैं लगा तो हूँ और लगा भी रहूँगा, लेकिन यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि इससे क्या होगा, कैसे होगा। कुछ अजीब उलझन-सी बनी रहती है मन में।"

यह बात एक ऐसे आदमी की है जिसने स्वराज्य के जमाने से लेकर आज तक देश और समाज का ही काम किया है; जो आज भी ग्रामदान के लिए निरतर घूमता रहता है। मैं उसकी बात सुनकर अचम्भे में पड़ गया। जल्दी सोच नहीं सका कि क्या उत्तर दूँ। बार-बार यही प्रश्न उठता था कि जिस चीज को आदमी समझ नहीं सकता उसमें वह इतनी लगन के साथ लगा कैसे रह सकता है ? क्या न समझने से श्रद्धा मजबूत होती है ?

अगर यह स्थिति किसी एक आदमी की होती तो कोई बात नहीं थी। *अगर कार्यकर्ताओं के दिल को टटोला जाय तो ऐसे लोगों* की संख्या ज्यादा नहीं मिलेगी जिनके सामने आन्दोलन के अगले कदम की स्पष्ट कल्पना हो, या जो एक कार्यक्रम का दूसरे कार्यक्रम के साथ सही मेल मिला सकते हों।

हमें मानना चाहिए कि अगर साथियों के मन में विचार की उलझन या अस्पष्टता हो और वह बराबर बनी रहे तो यह हमारे आन्दोलन की एक बहुत बड़ी कमी है जिसे दूर करने की हर सम्भव कोशिश जल्द होनी चाहिए। अब आन्दोलन, कम-से कम एक राज्य में, ग्रामदान के बाद ग्रामस्वराज्य की मंजिल पर पहुँच रहा है; कम कठिनाई की ओर से ज्यादा कठिनाई की ओर जा रहा है। ऐसी हालत में उलझन या अस्पष्टता हमारे लिए एक ऐसी समस्या बन जायेगी जो हमें आगे बढ़ने में असमर्थ कर देगी।

ग्राम स्वराज्य की दृष्टि से दो तैयारियाँ नितान्त आवश्यक मालूम होती हैं। एक, मुख्य साथियों का शिक्षण। शिक्षण दोनों चीजों का—आन्दोलन के दर्शन का और उसकी बदलती हुई कार्य-पद्धति का। दूसरी, सामूहिक निर्णय का अभ्यास। नीचे से लेकर ऊपर तक हर स्तर पर स्वतन्त्र अभिक्रम और निर्णय प्रकट होना चाहिए। आज ऐसा नहीं है। अभ्यास है बने-बनाये निर्णय दूसरों को सुनाने का, और खुद निर्णय मान लेने का। इसका नतीजा यह हुआ कि हमारा हाथ-पैर तो काम में लगता है, लेकिन दिमाग अलग रहता है, क्योंकि हम मान लेते हैं कि हमारा काम सोचने का नहीं है, सिर्फ करने का है। कई बार हमारी उच्चस्तरीय बैठकों में भी सर्वसम्मति के नाम में चिन्तन और निर्णय की जिम्मेदारी से भागने की छिपी प्रवृत्ति साफ दिखाई देती है।

ग्रामस्वराज्य के लिए कार्यकर्ताओं की एक सुसगठित श्रेणी कैसे बनेगी, और नीचे से ऊपर तक सामूहिक निर्णय के आधार पर *आन्दोलन कैसे चलेगा, ये ऐसे प्रश्न हैं जिन पर आन्दोलन के साथियों* और मार्ग-दर्शकों, दोनों का ध्यान शीघ्र जाना चाहिए।●

कार्यकर्ताओं के लिए नित्य एक घंटे का अध्ययन अत्यावश्यक

आज भिन्न भिन्न लोग मरते हैं तो उनके नाम का स्मारक बन जाता है, जैसे—अनुग्रह-नारायण स्मारक, श्री बाबू स्मारक, लक्ष्मी-नारायण स्मारक, नेहरू स्मारक, राजेन्द्र स्मारक, लालबहादुर स्मारक, गांधी स्मारक वगैरह-वगैरह। भिन्न-भिन्न स्मारक खड़े होते हैं और उनकी भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियाँ चलती हैं, जिनका एक-दूसरे से मेल नहीं। अगर ये सब संस्थाएँ मिलकर इकट्ठा काम करती तो कितना बड़ा काम होता!

गांधीजी कहते थे कि समग्र दृष्टि से सब काम होना चाहिए। इसके लिए उन्होंने तीन बातें बतायी :

(१) समग्र दृष्टि से काम होना चाहिए।

(२) शाखा नहीं, बल्कि मूल पकड़ना चाहिए। संस्कृत में कहा है – शाखाग्राही और मूलग्राही। लोग शाखा काटते हैं, तो फिर बारिश होने पर उसमें नयी-नयी टह-नियाँ बहुत सी निकल आती हैं। अगर मूल पर प्रहार करते हैं, तब वृक्ष गिरता है।

(३) गांधीजी ने जो विचार दिया है वह वृक्ष के समान है। उसकी अनेक शाखाएँ हैं, जैसे—सामाजिक, आर्थिक, नैतिक आदि, सब पर कहा है। परन्तु आध्यात्मिकता उसका आधार है।

हमने पूसा रोड की संस्था लक्ष्मीनारा-यणपुरी को 'ठोंक पीट आश्रम' कहा है। वहाँ रात-दिन खादी की ठोंक-पीट होती रहती है। वहाँ सरकार से, खादी कमीशन आदि से रुपये आते हैं और काम चलता है। बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ मुजफ्फरपुर में तो एक मामला-मुकदमा विभाग भी है। हमारी रचनात्मक संस्थाओं की ऐसी हालत है। कोई समग्र दृष्टि से काम नहीं होता, बल्कि अलग-अलग प्रवृत्तियों को लेकर वे चलती हैं। इन संस्थाओं में ये तीन बातें होनी चाहिए :

(१) विचारों का अध्ययन हो।

(२) अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का पालन हो।

(३) भक्ति का वातावरण हो।

ये तीन चीजें जहाँ नहीं, वहाँ गांधी-विचार कैसे फैलेगा? सोचा जाय तो सारे भारत में गांधी की आश्रम जैसी संस्थाओं में दो-चार हजार लोग होंगे। गांधी-निधि आदि के पैसे से वे संस्थाएँ चलती हैं। अगर ये सब निधियाँ समाप्त हो जायँ तो ये संस्थाएँ बंद हो जायेंगी। इन संस्थाओं को स्थानीय आधार पर खड़ा होना चाहिए।

काहिरा में मस्जिद है। उसे बने हजार साल हो गये। हजरत मुहम्मद को मरे तेरह सौ साल हो गये। उस मस्जिद में कुरान का—कुरान में तीस भाग हैं, जिसे 'पारा' कहते हैं, उन तीस पारों का—बारी-बारी से अखण्ड रूप से रात-दिन पाठ होता है जो आज तक कभी रुका नहीं। क्या यह सामान्य निष्ठा है?

क्रिश्चियनों का उदाहरण लीजिए। बाइबिल का सतत अध्ययन चलता है। बाइ-बिल का एक हजार भाषाओं में अनुवाद किया है। जहाँ जिन भाषाओं में कोई पुस्तक नहीं, उस भाषा में भी बाइबिल छपी है और चार सौ भाषाओं में छापने की योजना है।

शंकराचार्य को मरे करीब ग्यारह सौ साल हो गये। उनके मठ में ग्यारह सौ साल से शांकरभाष्य, ब्रह्मसूत्र आदि का अध्ययन-अध्यापन चल रहा है। मैं वह स्वयं देखकर आया हूँ। परन्तु गांधीजी की किताबों को गांधी के लोग भी बराबर नहीं पढ़ते हैं। हम पूछते हैं तो लोग कहते हैं कि किताबें क्या पढ़ें, उसमें कताई, हरिजन-सेवा वगैरह की ही बातें न लिखी होंगी, सो तो हम करते ही हैं। तो मैं कहता हूँ कि अगर आपको पढ़ने की नहीं पड़ी, तो वे हर सप्ताह लिखते क्यों थे? समय पर छपने के लिए कभी कभी तो हवाई जहाज से भेजते थे। वे अपने व्यस्त कार्यक्रम में से समय निकालकर लिखते थे तो हमें उनको पढ़ने में आलस क्यों करना चाहिए?

पहले गांधीजी की प्रश्नोत्तरी निकलती थी। उसमें पहले मैं प्रश्नों को पढ़ जाता था और मैं अपने मन से उसका जवाब सोचता था। फिर गांधीजी का उत्तर पढ़ता था और देखता कि हमारे उत्तर में और गांधीजी के उत्तर में कहाँ फर्क है, कितना साम्य है। इस तरह से तुलनात्मक अध्ययन चलना चाहिए। गांधीजी की पुस्तकों को मार्क्स के विचारों से और प्राचीन वेद पुराण और सन्तों की वाणी से तुलना करके पढ़ना होगा। हमें बड़ी चिन्ता होती है कार्यकर्ताओं की यह अध्ययनशून्यता देखकर। बाबा का अध्ययन सतत चलता रहा है। पदयात्रा में भी अध्ययन रुका नहीं, चलता रहा। बाबा की उम्र अब ७४ साल की है, तो बाबा अभी भी अध्ययन करता है। अभी मेरी एक पुस्तक प्रकाशित होगी (प्रकाशित हो गयी), जिसमें वेद का चयन किया है।

इसलिए कहता हूँ कि शाम को खा-पीकर सोने से पहले एक घण्टा अवश्य अध्ययन करें। अगर शाम को नींद आती है तो भोर में उठ-कर शौच आदि से निवृत्त होकर मुँह-हाथ धोकर एक घण्टा अवश्य अध्ययन करें, उस समय का अध्ययन अच्छा होता है। कार्य-कर्ताओं को एक घंटा नित्य अध्ययन करने की बड़ी जरूरत है।

आप लोग जानते हैं कि बाबा कल यहाँ से निकलेगा और २१ घंटा रामगढ़ में बिता-कर रांची पहुँचेगा।

कल दो नेताओं ने कहा कि भारत का संकट बिना ग्रामदान के टलेगा नहीं। श्री के० बी० सहाय ने तो स्पष्ट कहा कि भारत की सीमाओं पर हिंसात्मक कम्युनिज्म आ गया है, अब बिना ग्रामदान-आन्दोलन के उससे बचने का उपाय नहीं है। के० बी० सहाय का यह एकदम स्पष्ट चिन्तन है। दूसरा नेता है बसन्तनारायण सिंह, उसने भी यही बताया।

इसलिए सभी मिलकर शक्ति लगाओ कि ३० मई तक जिलादान पूरा करके रांची में समर्पण करने पहुँचो तो उससे रांचीवालों को भी धक्का लगेगा और उन्हें जिलादान करने में बल मिलेगा। रांची का फैसला रांची में होगा। ३० तारीख को तय होना चाहिए—रांची में हजारीबाग जिला-समर्पण। एडवो-केट इसकी एडवोकेसी करें, व्यापारी अपनी शक्ति इसमें लगायें। इसमें देना थोड़ा है, परन्तु पाना अधिक है।

—हजारीबाग जिले के रचनात्मक कार्य-कर्ताओं के बीच दिया गया प्रवचन, ८-५-'६९ : हजारीबाग

विनोबा

• करुणा हो क्रान्ति की सर्वोत्तम शक्ति
• कत्ल-क्रान्ति की परिणति सुधारवादी
• कानून : न क्रान्ति की शक्ति, न विकल्प

पिछले दिनों में कोई लगभग डेढ़ वर्ष से मेरे मन में एक सैद्धान्तिक निश्चय-सा होता आ रहा है, जिसका हमने जब-तब अपने साथियों से जिक्र भी किया है। हम अपने प्रचार में अक्सर ऐसा कहते हैं कि सामाजिक क्रान्ति के लिए—'काम्प्रेहेन्सिव सोशल रेवोल्यूशन' (व्यापक सामाजिक क्रान्ति) के अर्थ में प्रयोग कर रहा हूँ—तीन ही रास्ते हैं : कानून, कत्ल, और करुणा के। मुझे अपने देश में कानून का जो कुछ अबतक का अनुभव हुआ, कांग्रेसी और गैर-कांग्रेसी हुकूमत का, और दुनिया में भी जहाँ-जहाँ समाजवादी आदि प्रगतिशील लोग सत्ता में आये और वहाँ का जो अनुभव हुआ उस पर से मैं इस निर्णय पर पहुँचता जा रहा हूँ (मुझे बड़ी खुशी होगी, अगर मेरा यह निष्कर्ष गलत साबित हो) कि कानून से कोई क्रान्ति होगी समाज में, इसके लिए कोई सम्भावना नहीं दीखती है। कुछ थोड़ा-बहुत सुधार हो सकता है। लेकिन समाज की जो व्यवस्था है उसका आमूल परिवर्तन हो जाय कानून से, ऐसा हमें नहीं लगता है।

आमूल परिवर्तन तो जनता की शक्ति से ही हो सकता है—चाहे वह शक्ति जनता की रक्त-क्रान्ति के रूप में प्रकट हो या अहिंसक क्रान्ति के रूप में। रक्त-क्रान्ति में मुझे कोई नैतिक आपत्ति नहीं है। अहिंसा में विश्वास रखते हुए भी मुझसे ये बातें सुनकर आपको कुछ अचम्भा होगा। लेकिन मुझे उसमें आपत्ति नैतिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक है जो यह है कि रक्त क्रान्ति अहिंसक क्रान्ति से ज्यादा जल्द होती है, या ऐसी संभावना है, दुनिया के इतिहास से ऐसा लगता नहीं है। दूसरी जो बुनियादी बात है, वह यह हमें देखने को मिली कि रक्त क्रान्ति से जो नया समाज बनता है, वह उस समाज से बहुत भिन्न बनता है जिसकी कल्पना क्रान्तिकारियों ने पहले की होती है। जिन उद्देश्यों को लेकर वह रक्त क्रान्ति के पीछे पड़ते हैं, वह कुछ-का-कुछ बन जाता है, यह एक ही क्रान्ति का नहीं, बल्कि सभी क्रान्तियों का लगभग यही हश्र हुआ। कुछ आमूल परिवर्तन होता अवश्य है, लेकिन फिर भी समाज की रचना, क्रान्ति से पहले जैसा क्रान्तिकारी करना चाहते थे, वैसी नहीं हो पाती।

भारत की राष्ट्रवादी आंशिक अहिंसक क्रान्ति

अपने देश में भी एक प्रकार से आंशिक रूप से, पूर्ण रूप से नहीं कह सकते हैं, एक अहिंसक क्रान्ति या शान्तिमय क्रान्ति हुई जो राष्ट्रवादी क्रान्ति (नेशनल रेवोल्यूशन) थी। कोई सामाजिक क्रान्ति (सोशल रेवोल्यूशन) तो नहीं थी। राजनीतिक स्वतंत्रता भारत को प्राप्त हुई। और उसका अधिकांश

जयप्रकाश नारायण

श्रेय गांधीजी के नेतृत्व को और उनके द्वारा चलाये गये आन्दोलन को था। एकमात्र उसीका श्रेय था ऐसा तो नहीं कह सकते। उसके बाद यहाँ तो यह देखने को मिला कि कम से कम गांधीजी के मन में स्वराज्य के बाद की जो कल्पना थी, और उनके विचारों को अच्छी तरह से जिन्होंने समझा है, उन लोगों के सामने भी जो कल्पना थी, उससे भिन्न यहाँ निर्माण हो गया। लेकिन फिर भी एक बात अवश्य रह गयी, जिसका श्रेय मैं समझता हूँ गांधीजी को है, उनके उस शान्तिमय आन्दोलन को है कि कम-से-कम इस देश में औपचारिक लोकतन्त्र (फार्मल डेमोक्रेसी) तो कायम है। लोकतंत्र इस देश में है। नागरिक अधिकार लोगों को प्राप्त हैं बहुत अंश तक। अपने-अपने विचार हर कोई प्रकट कर सकता है। नक्सलवादी भी अपना विचार प्रकट कर सकते हैं, अपने संगठन बना सकते हैं, आन्दोलन चला सकते हैं। यह सब आजादी है, और जनता को यह अवसर है कि वह अपनी पसन्द की हुकूमत बनाये।

जयप्रकाश नारायण :
निरन्तर क्रान्ति की आकांक्षा

जनता की हुकूमत तो नहीं होती है, लेकिन उसके पसंद की, उसके द्वारा निर्वाचित लोगों की होती है। मैं ऐसा मानता हूँ। सारे एशिया अफ्रीका के ऊपर नजर डालें तो जितने नये राष्ट्र स्वतंत्र हुए साम्राज्यवाद से वहाँ लोकतन्त्र इस प्रकार से टिकाऊ (स्टेबुल) नहीं दीखता। पाकिस्तान में लोकतन्त्रीय स्थिरता नहीं आयी है, उसका मुख्य कारण यही है कि पश्चिमोत्तर सीमा (नार्थ-वेस्ट फ्रंटियर) के मुस्लिम अवाम को छोड़कर इस देश की मुस्लिम जनता उस प्रकार से गांधीजी के आंदोलन में भाग नहीं ले पायी थी।

जनक्रान्ति (मास-रेवोल्यूशन) हो, लेकिन अगर खूनी क्रान्ति हो, तो उसमें से इस प्रकार का टिकाऊ लोकतन्त्र (स्टेबुल डेमोक्रेसी) निकल सकता है, यह नहीं होता है। फ्रांस की राज्य-क्रान्ति से नेपोलियन बोनापार्ट निकला, रूस में स्टालिन निकला। यह आप हर जगह देखेंगे। जनता उसमें भाग लेती है। जनता के भाग लिये बिना क्रान्ति हो नहीं सकती है। लेकिन अगर वह खूनी क्रान्ति होती है, तो लोकतंत्र उसमें से निकलेगा, ऐसा कम से-कम मेरे अध्ययन में नहीं आया है। भारत में यह हो पाया, इस कारण से, कि यहाँ की मुस्लिम जनता को छोड़कर बाकी अन्य धर्म के लोगों ने इसमें भाग लिया। तो इतना भर तो कह ही सकते हैं कि अहिंसक क्रान्ति से यह हुआ। लेकिन जिस प्रकार की स्वराज्य की कल्पना गांधीजी की थी वह तो अभी आगे है।

मुझे नहीं लगता है—कोई ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय अनहोनी घटना हो जाय तो दूसरी बात है कि ऐसी कोई परिस्थिति बने और यहाँ रक्त-क्रान्ति हो जाय—कि यहाँ निकट भविष्य में रक्त-क्रान्ति होने जा रही है। हाँ, अगर रक्त-क्रान्ति में विश्वास करनेवालों का काम कुछ अधिक व्यापक बनता है, तो उसका परिणाम निश्चित रूप से यही होगा, जैसा कि पाकिस्तान में हो गया। समाज आगे जाने के बजाय पीछे—फौजी तानाशाही—की तरफ जायेगा।

कानून : न क्रान्ति की शक्ति, न विकल्प

मुझे बड़ी खुशी हो, अगर यह सम्भव हो जाय कि सामाजिक क्रान्ति के लिए कानून भी एक विकल्प है। लेकिन मुझे पूरा संदेह है कि ऐसा कभी सम्भव हो सकेगा। बाकी दो विकल्प रहते हैं। भारत में अगर कभी रक्त-क्रान्ति होगी, तो ज्यादा विलम्ब से होगी और अहिंसक क्रान्ति उससे कहीं शीघ्र होगी—और हो रही है, अपनी आँखों के सामने हो रही है।

मेरा ख्याल है कि नक्सालवादी विचार-वाले जो लोग हैं, जैसे नागी रेड्डी आदि, वे तो यह मानते हैं कि वामपंथी कम्युनिस्ट लोग भी संसदीय लोकतंत्र में फँसे हैं। हो सकता है कि वे सही रास्ते पर हों, वे ठीक सोचते हों। इस माने में कि इस—संसदीय लोकतंत्र—में से कुछ निकलेगा नहीं। आप देखिए, जितने भी ये वामपंथी लोग शासन में हैं, उनको मौका मिला है कुछ भी करने के लिए अपने प्रदेश में। कोई आमूल परि-वर्तन कानून के द्वारा कर सकते हैं, कम से-कम भूमि-सुधार के मामले में। लेकिन वह भी नहीं कर पा रहे हैं, या नहीं करेंगे। उसके लिए एक हवा बनायी है उन्होंने कि केन्द्र हमारे रास्ते में रुकावट है। इसलिए जबतक कि केन्द्रीय शासन हमारे हाथों में नहीं आता है तबतक हम कुछ नहीं कर सकते। अब बैठिए, उसका इंतजार करते रहिए, कि एम०एस० नम्बूदरीपाद के हाथ में या ज्योति बसु के हाथ में केन्द्र की सत्ता आये। तबतक तो क्रान्ति कानून से भी उनके कहने के मुताबिक टल गयी; क्योंकि राज्य में वह कुछ कर नहीं सकते हैं।

रक्त-क्रान्ति का सुधारवादी चेहरा और अहिंसक क्रान्ति की समग्रता

इस प्रकार से एक प्रकार का नैराश्य (फ्रस्ट्रेशन)—सा है। कोई दक्षिणपंथी या वामपंथी साम्यवादी आदि में विश्वास करते हैं, अहिंसा में विश्वास करते हैं, ऐसा मैं नहीं कहता; लेकिन वे रक्त-क्रान्ति के लिए तैयारी कर रहे हैं, ऐसा भी नहीं कहा जाता है। दूसरे लोग कर भी रहे होंगे। लेकिन मुझे नहीं लगता है—कोई ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय अनहोनी घटना हो जाय तो दूसरी बात है, जिससे कि ऐसी कोई परिस्थिति बने और यहाँ क्रान्ति हो जाय—कि यहाँ रक्त-क्रान्ति निकट भविष्य में होने जा रही है। हाँ, अगर रक्त-क्रान्ति में विश्वास करनेवालों का काम कुछ अधिक व्यापक बनता है, तो उसका परिणाम निश्चित रूप से यही होगा, जैसा कि पाकिस्तान में हो गया। समाज आगे जाने के बजाय पीछे फौजी तानाशाही (मिलिटरी डिक्टेटरशिप) की तरफ जायेगा। वह कितने साल तक रहेगा, और फिर उसमें से क्या निकलेगा, वह तो भगवान ही जाने!

इसलिए बिलकुल एक व्यावहारिक (प्रागमैटिक) तरीके से, कोई नैतिक या अध्यात्म आदि की बात नहीं, बिलकुल एक सामाजिक क्रान्तिकारी (सोशल रेवोल्यू-शनरी) की दृष्टि से सोचता हूँ, तो बराबर, हर मिनट इस मान्यता पर और अधिक दृढ़ होता जा रहा हूँ कि क्रान्ति अगर हो सकती है तो अहिंसा के ही रास्ते से।

अब इतने ग्रामदान हुए, फिर भी हमको आत्म-विश्वास नहीं होता कि कोई बहुत बड़ी बात हुई। इस बात का निर्मला बहन ने जिक्र किया। इन्होंने कहा कि नक्सालवादी में कुछ हुआ तो सभी वामपंथी लोगों को लगा कि कोई बहुत बड़ा काम हुआ। उस वक्त वे लोग अलग नहीं थे। हालाँ कि बाद में उनके इस काम को गलत घोषित किया गया। लेकिन इसका कारण क्या है कि उनके अन्दर ऐसी अनुभूति हुई और हमको नहीं होती? मुझे ऐसा लगता है कि क्रान्तियाँ जिस प्रकार से आज तक हुईं उनसे यह तरीका बिलकुल भिन्न है। गांधीजी ने इतना बड़ा काम किया, लेकिन फिर भी अपने देश में ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि कुछ भी नहीं हुआ। यह इसलिए कि वह नये ढंग से हुआ। इस नये ढंग में क्या ताकत थी, उसका इतिहास में क्या असर हुआ, वह उनके ध्यान में नहीं है। इसलिए गांधीजी ने जो किया उसको छोटा बनाया जाय और हिंसा को माननेवाले क्रान्तिकारियों ने जो कुछ किया उसको बड़ा बनाया जाय, ऐसी कोशिश होती है। नेताजी ने जो आजाद हिंद फौज खड़ी की, उसकी जो देन है उसको बड़ा बनाया जाता है। यह कोई युक्तिसंगत बात होती है ऐसा नहीं है। लेकिन चूँकि यह क्रान्ति का नया ढंग था, इसलिए लोग आमतौर पर इसे समझ ही नहीं सके हैं।

आज तक जो क्रान्ति का रूप रहा, वह ऐसा रहा कि समाज में एक वर्ग है जिसके पास कुछ है, और एक वर्ग है जिसके पास कुछ नहीं है; जिसके पास नहीं है, उसके द्वारा जिसके पास है उसके पास से ले लेने का, जमीन, कारखाने आदि पर कब्जा कर लेने का, इसके लिए खून बहाने का सारा क्रम चलता रहा है और ऐसा होता है तो हम समझते हैं कि क्रान्ति हो रही है।

क्रान्ति का क्षेत्र गाँव ही क्यों?

अब भारत में दूसरी क्रान्तिकारी प्रक्रिया शुरू है। इसके लिए पहले यह माना गया कि क्रान्ति के स्थान भारत के गाँव हों। यह भी आज की दृष्टि से-दुनिया को अनोखी-सी बात लगती है। हालाँकि चीन की क्रान्ति को सामने रखते हुए हम कह सकते हैं कि यह अनोखी बात नहीं है। क्रान्ति का क्षेत्र देहातों को माना गया है। इस पर हमसे बात करनेवाले और बुद्धिवादी लोग कहते हैं कि आपने शहरों को क्यों नहीं लिया? उनको यह समझाना थोड़ा कठिन होता है कि इसका क्या कारण है। उनको जो कारण हम बताते हैं, वह सब आपके सामने पेश करने नहीं जा रहा हूँ। लेकिन एक बात, जिसका स्पष्ट चित्र हम लोगों में से बहुत लोगों को नहीं होगा या जितना होना चाहिए उतना नहीं होगा, निवेदन कर देना चाहता हूँ; वह यह

> पहले का क्रान्तिकारी—रक्त-क्रान्तिवाला क्रान्तिकारी—बाद मे सुधारवादी बन जाता है। ऐसा कह सकते है कि आज के 'थर्ड वर्ल्ड' मे, यानी एशिया-अफ्रीका के गरीब देशो को छोड़कर दुनिया के दूसरे देशो मे जितने भी कम्युनिस्ट आन्दोलन हैं, वे एक सुधारवादी आन्दोलन है, क्रान्तिकारी आन्दोलन नही हैं।

कि क्रान्ति के बाद क्या होगा समाज का रूप? नया समाज कैसा बनेगा? उसमें ही गाँव का जो स्थान है वह एक बड़े महत्त्व का स्थान बन जाता है। समाज की रचना ऐसी हो कि समाज छोटी छोटी 'कम्युनिटीज' (समुदाय) हो जैसा कि आज के गाँव है, ऐसा तो उन्होंने नही कहा। इसको तो उन्होंने कहा कि ये तो कूडे-कचड़े के ढेर हैं। लेकिन इनके बदले में जो नया समाज बनेगा, उसमे कृषि और उद्योग की बराबर बात करते थे। वह तो विकासशील व्यक्ति थे। अब उनके जाने के २२ वर्ष बाद कृषि और उद्योग का क्या हाल हुआ, अब यह कहना बेमानी बात होगी। 'एग्रो-इण्डस्ट्रियल' (कृषि औद्योगिक) शब्द का हम इस्तेमाल करते हैं, कि कृषि और उद्योग का, दोनों का सन्तुलन (बैलेंस) होना चाहिए। जैसा कि दुनिया में हर जगह हुआ, चीन में, रूस में, अमेरिका में, जापान में भी, हर जगह यूरोप के देशो में, कि उद्योग (इण्डस्ट्री) का विकास हुआ तो किसानो का शोषण करके और गाँवो को गरीब बनाकरके; तो ऐसा हमारे समाज के अन्दर नहीं हो सकता। गांधीजी ने कहा कि दोनो को समृद्ध करना हो तो दोनो को संतुलित (बैलेंस) करना और उसके अनुकूल तकनीक ले आना होगा। अब ये पुराने चरखे हैं, पुराने तरीके हैं, ये तो जितनी जल्दी हम छोड दें, और नये औजार, नयी तकनीक ले आयें उतना ही हमारे देश के लिए, ५ करोड की आबादी के लिए उपयुक्त होगा। इसमें जितनी जल्दी हम कर सकें, उतनी जल्दी करना चाहिए।

विज्ञान की तकनीक और समुदाय का आकार?

लोगों से जब बात करते हैं तो वे कहते हैं कि यह तकनीक का जमाना है विज्ञान का जमाना है, छोटे-छोटे समुदाय आप सोचते हैं, तो कितने छोटे होंगे ये समुदाय, बड़ा-से-बड़ा आकार क्या होगा? यह तो हम जैसे-जैसे आगे बढ़ेंगे, अपने-आप स्पष्ट होगा। कोई १०० घरों के गाँव तो नही होंगे, २०० घरों के भी नहीं होंगे, लेकिन फिर भी इतने छोटे तो होंगे कि उनमें मनुष्य-मनुष्य का सम्बन्ध मानवीय रह सके, उनमें एक मानवीय पैमाना रह सके। बम्बई, कलकत्ता, शिकागो, टोकियो नही बनें, यह प्रयत्न तो जरूर करना होगा। लोग कहते हैं कि तकनीक के जमाने में यह कैसे होगा? लेकिन हमने विदेशो में देखा कि ऐसा सोचनेवाले लोग हैं, जो यह कह रहे हैं कि यह सब बड़ी भूल हो गयी। आज के जमाने की जो व्यवस्था है, वह मानवीय पैमाने से इतनी दूर हो गयी है कि आदमी तो उसके अन्दर दब-कर मर रहा है, पिस रहा है, दम घुट रहा है, सामुदायिकता उसके अन्दर से खतम हो गयी है।

प्रश्न यह है कि तकनीक का क्या होगा? तो, तकनीक, जैसा कि गांधीजी बराबर कहते थे, आदमी मालिक रहेगा और वह गुलाम रहेगी। यह आवाज उधर पश्चिम से भी निकल रही है कि तकनीक का कोई मानवीय उद्देश्य है? आज जिस तरह से पश्चिम यूरोप और रूस आदि देशों का विकास हो रहा है, उसमें तकनीक ही मालिक बनती जा रही है। रूस में भी तकनीक दासी है और मानव उसका मालिक है, ऐसा नही हो रहा है।

इन बातों को अगर हम समझते हैं, ध्यान में रखते हैं तो फिर गाँवों से हमने क्यों शुरू किया यह समझना आवश्यक होगा। गाँवों में कुछ रूढ़िवादी शक्तियाँ (कन्जर्वेटिव फोर्सेज) हैं, और कुछ क्रान्तिकारी शक्तियाँ (रेवोल्यूशनरी फोर्सेज) हैं। मतलब क्या? कि जिसके पास जमीन है, जो जमीन के मालिक हैं वे समाज मे यथा-स्थिति (स्टेटस्को) रखनेवाले हैं। वे क्रान्ति-कारी (रेवोल्यूशनरी) नहीं होंगे। जो साहू-कार-महाजन है वे यथास्थिति (स्टेटस्को) रखना चाहते हैं। रक्त क्रान्ति का जो तरीका है वह क्या है? जो क्रान्तिकारी शक्तियाँ (रेवोल्यूशनरी फोर्सेज) हैं, उनका एक वर्ग करते हैं, उनको इकट्ठा करके उनके यथा-स्थिति चाहनेवालों के खिलाफ लडा करते हैं। लेकिन ग्रामदान की प्रक्रिया में क्या है? जो यथास्थितिवाले हैं, जो चाहते हैं कि समाज ज्यों का त्यों बना रहे, उनको भी क्रान्तिकारी बनाना और दूसरों को भी क्रान्ति-कारी बनाना—यह एक नयी पद्धति हो गयी। यह जो नयी पद्धति हो गयी, वह पूरी तरह हमारी समझ में भी नही आती, तो दूसरों की समझ में तो आती ही नहीं कि यह कौनसी क्रान्ति है।

जो जमीन का मालिक है, वह केवल दस्तखत ही कर देता है बीसवाँ भाग भूमि का और चालीसवाँ हिस्सा उपज का छोड भी दीजिए—केवल इतना भी मानकर कि जो अपनी लीगल टाइटिल है जमीन की, मालिकी का कानूनी अधिकार है, यह मैं छोड रहा हूँ, मालिकी को छोड रहा हूँ, तो यह कितनी क्रान्तिकारी (रेवोल्यूशनरी) बात हो जाती है? लेकिन चूँकि कोई तल-वार से छीनकर ले नहीं रहा है, तो लगता है कि क्रान्ति नहीं हुई। कानून से कोई मालिकी छीन लेगा? मैं तो बंगाल में दो चार जगह बोलकर आया हूँ विश्वविद्यालय में, कि मैं बड़ी उत्सुकता से देख रहा हूँ किस रास्ते से ज्योति बसु आगे बढ़नेवाले हैं, कितना क्रान्तिकारी भूमि सुधार करनेवाले हैं? मुझे कोई सदेह नही है कि...कि वह यह कर नहीं सकेंगे। नंबूदरीपाद के पाँव में तो पत्थर भी बँधा हुआ है मुस्लिम लीग के नाम से, जो एक क्रान्तिकारी या वामपंथी पार्टी नही कही जा सकती, लेकिन यहाँ तो सभी वामपंथी लोग हैं। ज्योति बसु के पैर को किसीने बाँध नहीं रखा है। तो देखना है कि वह कानून से क्या करते हैं!

तो, तलवार से मालिकी छीन लें तो क्रान्ति हो गयी और वह खुद दे देता है तो क्या वह क्रान्ति नहीं हुई? इसको समग्र क्रान्ति (टोटल रेवोल्यूशन) कहते हैं। इसमें उसका भी परिवर्तन होता है जो यथास्थिति (स्टेटस्को) में मानता है।

हमारे देश में जो बड़े-बड़े नेता लोग हैं, वे समझते हैं कि सर्वोदयवाले पुरानी लकीर पीट रहे हैं। ...लेकिन शायद दुनिया की जो सबसे आगे बहनेवाली धारा है, उसके साथ-साथ यह धारा बह रही है, क्योंकि हम भी ग्रामस्वराज्य की बात कहते हैं।

ग्रामदान : सतत क्रान्ति का आरम्भ

अब मान लीजिए कि यह हो गया। तो यहाँ चर्चा हुई कि आगे क्या करना है? बहुत कुछ करना है। सन् १९७२ या बिहार की दृष्टि से सोचें तो सन् १९७४ में पाँच वर्ष के बाद वहाँ चुनाव होगा, उसमें गाँव का प्रतिनिधित्व होगा, आदि-आदि सब बातें हम सोचते हैं, लेकिन अभी गाँव में क्या करना है? जैसा कि ट्राटस्की बोल गया था सतत क्रान्ति (परमानेंट रेवोल्यूशन) लाना है। उसको तो इन लोगों ने निकाल दिया था, और कुछ को कतल करा दिया। जो आज सत्ता में आ जाता है वह, सतत क्रान्ति (परमानेंट रेवोल्यूशन) पसन्द नहीं करता है। उसको वह भाता नहीं है। वह तो, जितनी क्रान्ति हो गयी, जिसमें वह गद्दी पर बिठा दिया, तो उसके आगे की क्रान्ति वह चाहता नहीं। पहले का क्रान्तिकारी रक्त-क्रान्तिवाला क्रान्तिकारी, बाद में सुधारवादी (रिफार्मिस्ट) बन जाता है। ऐसा कह सकते हैं कि आज के थर्ड वर्ल्ड में, एशिया अफ्रीका के गरीब देशों को छोड़कर दुनिया के सारे देशों में जितने भी कम्युनिस्ट आन्दोलन हैं, वे एक सुधारवादी (रिफार्मिस्ट) आन्दोलन हैं, कोई क्रान्तिकारी आन्दोलन नहीं है। जो गरीब देश हैं वहाँ इनका (साम्यवादियों का) क्रान्तिकारी रोल है, लेकिन विकसित मुल्कों में तो इनका बिलकुल सुधारवादी रोल है।

पिछले साल पेरिस में क्रान्ति हुई, उसमें कम्युनिस्ट ट्रेड यूनियन ने क्रान्ति को पकड़कर पीछे खींचने का काम किया, नहीं तो, विद्यार्थियों के साथ हो गये होते! फ्रांस में सन् १७८९, १८३०-३२, १८७१ में तीन-चार क्रान्तियाँ हुईं, जिसका परिणाम निकला जेनरल दगाल। लेकिन इस बार लगता था कि कुछ नया हो जायेगा। क्योंकि वहाँ ऐसा कुछ नहीं था कि क्रान्ति हुई, और वहाँ रोटी का सवाल है, बिजली का सवाल है। वहाँ तो बिजली आदि सब कुछ था। लोग नयी क्रान्ति के लिए तैयार थे, लेकिन इन लोगों ने नहीं होने दिया। जो समाजवादी हैं वे तो हैं ही सुधारवादी, लेकिन यह तो साम्यवादी कहलानेवाले लोगों ने किया।

तो, सतत क्रान्ति (परमानेंट रेवोल्यूशन) की तरफ जाना है। गाँव में ग्रामसभा बनती है। उसमें गाँव की जमीन पर ग्रामसभा की मालिकी कायम होती है, ठीक है। लेकिन ५ प्रतिशत जमीन दी है, बाकी ९५ प्रतिशत जमीन तो उसके पास ही है। उधर बहुत-सारे भूमिहीन लोग हैं। काश्तकार हैं, बँटाईदार हैं, मालिक के नीचे और जितने प्रकार होते हैं, वे सब हैं। एक क्रान्ति के लिए अवसर वहाँ पेश है। ग्रामसभा की बैठक में एक दूसरे के सामने बैठकर वे लोग चर्चा करेंगे। सर्वसम्मति के सिद्धान्त को उसमें डालकर ऐसी क्रान्तिकारी परिस्थिति में क्रान्ति के कदम को आगे बढ़ा ले जाना है। बँटाईदार है, क्यों नहीं बोलेगा कि कानून कहता है कि मालिक का हिस्सा एक-चौथाई है और हमारा तीन चौथाई है, तो हम आपको इतना क्यों दें? यह तो ग्रामराज हमलोगों का राज है, तो ऐसा क्यों होगा? इसका रास्ता निकालिए। तो उसका कोई हल निकलेगा।

कानून की मजबूरी राजनीति की मक्कारी

नटराजन् ने बताया कि यहाँ पर (तमिलनाडु में) 'होम स्टेड टेनेंसी ऐक्ट' वास की जमीन का कानून नहीं है। यानी जिस हरिजन की झोपड़ी जिस जमीन में है, उसका वहाँ कोई अधिकार नहीं है। मैं तो समझता था कि मद्रास बहुत आगे है। कम-से-कम बिहार में कानून तो बना है। लेकिन उसका भी अमल नहीं होता है। राजनीति की मक्कारी देखिए, इसको मैं मक्कारी ही कहूँगा, जब महामाया प्रसाद सिन्हा की हुकूमत बनी, तो हमने उन लोगों के सामने यह प्रस्ताव किया था कि जो कानून हैं, उन पर अमल कीजिए। उसमें एक कानून था 'होम स्टेड टेनेंसी ऐक्ट'। उसके अनुसार जिस जमीन पर उसकी झोपड़ी है, वह उसमें से निकाला नहीं जा सकता है। उस व्यक्ति का नाम दर्ज करने के लिए दरखास्त नहीं देना है। रेवेन्यू आफिसर को जाकरके रिकार्ड कर देना है। १० महीने तक इनका राज था। उन लोगों ने पहले कहा था कि बहुत अच्छा है, हम इसे करेंगे। लेकिन नहीं हुआ। अभी हमने देखा अखबार में, कि बिहार के एस० एस० पी० के नेता श्री कर्पूरी ठाकुर ने वक्तव्य दिया है कि हम लोग संघर्ष (स्ट्रगल) करनेवाले हैं। किसलिए? 'होम स्टेड टेनेंसी ऐक्ट' को अमल कराने के लिए। लेकिन यह खुद १० महीने तक उपमुख्यमन्त्री वहाँ रहे। क्या मक्खी मारते रहे? अब कांग्रेस की हुकूमत हुई तो वह रहे हैं कि संघर्ष करेंगे। उस वक्त नहीं किया। क्यों नहीं अपने सदस्यों को कहा कि तुम हमारे खिलाफ संघर्ष करो। कम-से-कम कम्युनिस्ट तो ऐसा कहते हैं कि हमारे खिलाफ संघर्ष करो, घोर करो। गद्दी पर हम आराम से बैठ गये, अपना प्रोग्राम भूल गये, तो उसके लिए आओ, हमारे दरवाजे पर घोर करो!

अब ग्रामदानी ग्रामसभा में वह आदमी कह रहा है हम आपकी जमीन जोतते हैं। हम आपके मजदूर हैं। हम आपकी जमीन पर बसे हुए हैं। जिस जमीन पर बसे हैं, उस जमीन से हम बेदखल कर दिये जायँ, कम-से-कम इतनी गारण्टी तो ग्रामसभा से मिलनी चाहिए। वहाँ महाजन बैठा है ग्रामसभा में। उससे किसान कहेगा कि हम से १२॥ प्रतिशत से ज्यादा सूद नहीं ले सकते। तुम हमसे ७५ प्रतिशत सूद क्यों लोगे? यह ग्रामसभा है। ग्रामराज है। अब यह नहीं चलेगा। तो इन सब बातों की तरफ भी जाना होगा। यह नहीं समझना चाहिए कि ग्रामदान हो गया और ग्रामसभा बन गयी। तीन-चार काम करने के हैं, कर लिये बस हो गया। यहाँ सतत क्रान्ति की प्रक्रिया कायम रहेगी—ग्रामसभा में कोई एक दिन की मजदूरी देगा, कोई एक महीने में एक दिन की आमदनी देगा,

कोई अपनी उपज का हिस्सा देगा। हर कोई कुछ-न-कुछ देगा, तो इससे एक प्रकार की बराबरी बनती है। अगर ऐसा हम सब करते हैं, इतनी दूर तक हमारी ग्रामसभा जाती है, तो फिर ग्राम-स्वराज्य बनता है।

भावी समाज-रचना में सर्वाधिक महत्त्व नीचे का

अब ऊपर क्या होगा, यह तो हम लोग सोच ही रहे हैं। एक बात का आपसे निवेदन कर देना चाहता हूँ। जो भी आगे समाज की रचना करनी है उसमें अधिक से-अधिक महत्त्व, यह सबसे नीचे का जो स्तर है समाज के जीवन का, समाज के संगठन का, उसका है वह अगर कमजोर है, तो चाहे किसी प्रक्रिया से उम्मीदवार खड़ा कीजिए और किसी भी प्रकार से विधान-सभा का निर्माण हो, उससे कुछ नहीं होगा। यह जो ग्रामदान का आन्दोलन है, इसमें शक्ति का, सत्ता का, शासन का सबका एक प्रकार से वितरण करना है। इसी प्रकार से हम समाज की रचना चाहते हैं। राज्य की सरकार और केन्द्र की सरकार का भी चुनाव हुआ और फिर भी सत्ता का सम्बन्ध ऊपर से नीचे का उसी तरह का रहा, तो सब विफल हो जायेगा और फिर उलट जायेगा। फिर बाद में किसीको क्रान्ति करनी पड़ेगी। जैसे रूस में फिर से क्रान्ति करनी पड़ेगी, वह तो एक अवस्था तक जाकर रुक गयी है। अब चीन में क्या होगा पता नहीं! वहाँ पर माओ की सतत क्रान्ति चल रही है। सांस्कृतिक क्रान्ति के नाम से वह अपनी पार्टी के खिलाफ लड़ा, और कुछ कर रहा है। अब पता नहीं उसमें से क्या निकलेगा, लेकिन उसमें साम्यवाद का आदर्शवाद है, ऐसा हमको नजर आता है। लेनिन खुद पार्टी और राज्य की नौकरशाही के खिलाफ आवाज उठानेवाला था।

तो, सत्ता का निरसन हो इसके लिए ग्रामराज को मजबूत करना है नीचे से। फ्रांस की क्रान्ति जो मई में हुई, उसे कुछ लोग मानते हैं कि यह अवास्तविक-सी थी और कुछ मानते हैं कि यह बहुत गहरी घटना थी और इसका असर सारी पाश्चात्य सभ्यता पर पड़ेगा। यहाँ से यह एक नयी शुरुआत हो रही है ऐसा मैं मानता हूँ। और जो कुछ मैं समझ पाया हूँ अपने अध्ययन से, तो मुझे लगता है कि यह दूसरा विचार जो फ्रांसीसी क्रान्ति का सन् '६८ का है वह शायद ज्यादा सही है। ऐसे समाजों में—हमारे समाज में नहीं—जिनमें बहुत ज्यादा औद्योगिक विकास हुआ है, बहुत ज्यादा समृद्धि हुई है, व्यापक तौर से लोगों में शिक्षा का प्रचार हुआ है, हर तरह के तंत्रज्ञ और विद्वान लोग उनमें हैं, उनकी मदद से यह सारा समाज चल रहा है, जहाँ जहाँ इस प्रकार का ढाँचा बना है, वहाँ के लिए फ्रांस की क्रान्ति, मैं मानता हूँ कि एक बहुत बड़े कदम के रूप में हुई है। इसको विद्यार्थियों का केवल विद्रोह मानकर छोड़ नहीं देना है।

क्रान्ति का पूर्वनिर्मित ब्लूप्रिण्ट नहीं स्वत-स्फूर्त नयी रचना

एक इसमें विश्वविद्यालय के शिक्षकों की संस्था थी, जो विद्यार्थियों के साथ हो गयी थी, उसके एक नेता के साथ बातचीत हुई। उसका एक पुस्तक में जिक्र है। उससे पूछा गया कि आप कहते हैं कि विश्वविद्यालय खतम होगा, और एक नया विश्वविद्यालय बनेगा यह सब खतम होगा और एक नया समाज बनेगा, तो वह नया विश्वविद्यालय और नया समाज क्या है? उसका वह जवाब दे रहा है। उसने कहा कि 'मैं कोई विशेषज्ञ नहीं हूँ। कुछ लोगों का खयाल है कि इस क्रान्ति पर कैलीफोर्निया के मारक्यूजे के विचारों का असर है। ऐसा मैं नहीं मानता हूँ। उनका भी असर है, लेकिन इसके पीछे और बहुत कुछ भी है।' ये कहते हैं कि 'हमारे सामने आगे का पूरा चित्र नहीं है और उसमें हम विश्वास नहीं करते हैं।' इसमें भी यह गांधीजी की तरह बात कर रहे हैं कि हम इसमें विश्वास नहीं करते कि नक्शा (ब्लूप्रिंट)—सा हम बना लें कि क्या होगा। इससे हमारे आन्दोलन की सहजता (स्पाण्टेनियटी) खतम हो जायेगी। इन्होंने कहा कि इस पद्धति की जो विशिष्टता (नावेल्टी) होगी—यह फ्रांस की बात कर रहे हैं, यूरोप में फ्रांस और प० जर्मनी सबसे ज्यादा समृद्ध देश हैं; जो तकनीकी क्रान्ति उधर हुई, उसमें फ्रांस लन्दन से कहीं आगे है—इस पद्धति की जो विशिष्टता है, वह यह कि इसमें प्रत्यक्ष लोकतंत्र है। प्रातिनिधिक लोकतंत्र में विश्वास नहीं, चाहते हैं कि जहाँ तक हो, प्रत्यक्ष लोकतंत्र (डायरेक्ट डेमोक्रेसी) चले। हम लोग यही कहते हैं तो लोग कहते हैं कि 'प्रत्यक्ष लोकतंत्र' (डायरेक्ट डेमोक्रेसी) इतने बड़े समाज में कैसे चलेगी? फ्रांस में कैसे चलेगी? ये बुद्धिमान लोग हैं, और उस क्रान्ति के नेता हैं, और ऐसी बात कर रहे हैं। फिर उन्होंने कहा :

"यह कहना असम्भव है कि यह प्रयोग पूरे समाज पर लागू किया जा सकता है, लेकिन यह जाहिर है कि अधिकार किसी कार्यकारिणी, संसद या विधान-सभा को देने के सिद्धान्त को चुनौती दी गयी है। इस क्रान्ति में जितने लोगों को आपने प्रवक्ता बनाया उनमें से किसीको नीचे के स्तर की मीटिंग करके वापस कर लेंगे।" वह जो सामूहिक नेतृत्व (कलेक्टिव लीडरशिप) की बात चली, गणसेवकत्व की बात चली, वह सारा इसके अन्दर है। फिर वह कहते हैं कि "सत्ता के लिए काम की जो जगह है, उसी जगह सत्ता रहे, चाहे श्रमिकों का कारखाना हो, चाहे खेतिहरों का 'फार्म' हो, चाहे विद्यार्थियों का विद्यालय हो। काम करनेवाले के स्तर पर, जहाँ काम होता है उस स्तर के लिए सत्ता की माँग है। सत्ता की माँग ऊपर के स्तर के लिए नहीं है।"

हमारे देश में जो बड़े-बड़े राजनीतिक नेता लोग हैं वे समझते हैं कि सर्वोदयवाले पुरानी लकीर पीट रहे हैं। लेकिन आपको इसे पढ़कर सुनाया, इसलिए कि पढ़कर उत्साह होगा। अब यह सब पढ़ने से लगता है कि शायद दुनिया की जो सबसे आगे बहनेवाली धारा है, उसके साथ साथ यह धारा बह रही है, क्योंकि हम भी ग्रामस्वराज्य की बात करते हैं।

तिरुपति . सर्व सेवा संघ-अधिवेशन में दिया गया भाषण . २४ अप्रैल '६९।

एक विनती

युद्ध-विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय संघ का १३ वाँ त्रैवार्षिक सम्मेलन इस साल—अगस्त २५ से ३१ तक—अमेरिका के फिलडेल्फिया स्टेट में हावेरफोर्ड कालेज में होनेवाला है। (यह स्थान न्यूयार्क से करीब दो घंटे के सफर का है।) इस सम्मेलन के दो विशेष महत्त्व हैं। पहला यह कि यह गांधी-शताब्दी के साल में हो रहा है। दुनिया के शान्तिवादी बीसवीं सदी के लिए गांधी की देन का अध्ययन करें, उसकी सार्थकता की जाँच-पड़ताल करें, इसका तकाजा आज जितना है, उतना पहले कभी नहीं हुआ है। शान्ति व शोषण-मुक्ति अहिंसा के द्वारा आ सकती है या हिंसा और रक्तपात ही आगे का रास्ता है, जैसे कि आज दुनिया के दलित और पीड़ित मानने लगे हैं, यह प्रश्न अब टल नहीं सकता है। इसलिए इस सम्मेलन का मुख्य विचारणीय विषय रहेगा—मुक्ति और शान्ति—गांधी का आवाहन।

दूसरा, यह पहली बार एक विश्वशान्ति परिषद पश्चिमी गोलार्द्ध में हो रही है। शान्ति चाहनेवालों तथा शान्ति के लिए चिन्ता करनेवालों का एकत्र मिलना आज और कहीं इतना ही उचित नहीं होगा जितना कि अमेरिका में, जो साम्राज्यवादी शक्ति का केन्द्र है, संसार के दो सबसे बड़े आणविक संहार-शक्तिशालों में से वह एक है। सारे इतिहास में कभी किसी राष्ट्र के पास इतनी विनाशक शक्ति नहीं रही है, जितनी आज अमेरिका के पास है। और उसी अमेरिका में आज दुनिया एक ऐसे सक्रिय और प्रभावशाली शान्ति-आन्दोलन को भी देख रही है, जिसने इतनी बड़ी सत्ता को भी वियतनामियों के साथ शान्ति की बातें शुरू करने के लिए बाध्य किया। इसी अमेरिका में हजारों नौजवान अपने 'ड्राफ्टकार्ड' (अनिवार्य सैनिक सेवा का आज्ञापत्र) खुलेआम जला रहे हैं या शान्तिपूर्वक अधिकारियों को वापस कर रहे हैं, जिसके लिए उन्हें सालों तक जेल की सजा भुगतनी होगी। अब वहाँ के सिपाही भी सैकड़ों की संख्या में शान्ति-यात्राओं में शामिल हो रहे हैं।

युद्ध-विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय संघ की स्थापना पहले विश्वमहायुद्ध के बाद हुई। उसका काम मुख्यतः आन्तरिक चेतना की पुकार के अनुसार युद्ध से इनकार करनेवालों को सहायता देने तथा ऐसे इनकार का हक सरकारों द्वारा मान्य कराने का रहा। संघ ने मानवता के नाते युद्धमात्र का निषेध किया। उसकी प्रतिज्ञा में कहा है कि "युद्ध मानवता के प्रति अपराध है। इसलिए मेरा निश्चय है कि मैं किसी भी युद्ध का समर्थन नहीं करूँगा और युद्ध के सभी कारणों के निराकरण के लिए प्रयत्न करूँगा।" यह विश्वासपत्र सर्वथा सही होने पर भी बहुत अर्से तक पेसिफिस्टों का काम युद्ध-विरोध का ही रहा, दुनिया के सामाजिक, राजनैतिक ढाँचे में जो युद्ध के कारण निहित हैं, उनकी तरफ उन्होंने कम ही ध्यान दिया। अब कुछ सालों से यह स्थिति बदल रही है। यह तो आज दुनिया के बड़े-बड़े विचारक और राजनीतिज्ञ—यहाँ तक कि मिलिटरीवाले भी—कह ही रहे हैं कि किसी भी विवाद का हल शस्त्रबल से ढूँढ़ना निरर्थक ही नहीं, बर्बरता और क्रूरता भी है, समझ और सहानुभूति के साथ विचार-विनिमय से ही राष्ट्रों के बीच के झगड़े खतम किये जा सकते हैं। लेकिन जबतक शोषण और दमन हो, जब दुनिया सम्पन्नों और अभावग्रस्तों में बँटी हो तबतक यह समझदारी का वातावरण हो भी कैसे सकता है? इसलिए युद्ध विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय संघ अब केवल युद्ध-निषेध की भूमिका से आगे बढ़कर अपने प्रतिज्ञा-पत्र के दूसरे भाग पर ज्यादा ध्यान दे रहा है—अन्य प्रगतिशील आन्दोलनों के साथ इन सवालों का हल ढूँढ़ने तथा लोकमत को शिक्षित करने के कार्य में अधिकाधिक अग्रसर हो रहा है। उसके सम्मेलन में चार दिन इन्हीं विषयों को लेकर गहराई के साथ काम करने की योजना है। एजेण्डा इस प्रकार है: प्रारम्भिक बैठक, स्वाधीनता और शान्ति; दूसरी बैठक, संकुचितता से मुक्त राष्ट्रीयता और अहिंसा का स्थान; तीसरी बैठक, सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन के द्वारा मुक्ति; चौथी बैठक, सब विभाजनों के परे। इसके अलावा इन खास मुद्दों पर टुकड़ियों में बैठकर काम होगा—विद्यार्थियों और तरुणों के आन्दोलन, जापान-अमेरिका सुरक्षा-संधि, मध्यपूर्वी देशों का सवाल, नाटो और वारसा पैक्ट, यूरोपीय सुरक्षा, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका, अल्पसंख्यकों के सवाल।

भारत का सर्वोदय-आन्दोलन आज दुनिया में अहिंसक सामाजिक क्रान्ति का निःसंशय ही अग्रणी है। दूसरे कौनसे देश में हजारों की संख्या में इतने कार्यकर्ता एकाग्र निष्ठा के साथ अहिंसक समाज-परिवर्तन के काम में जुटे हैं? और कहाँ इतने विशाल क्षेत्रों ने इन सिद्धान्तों को अपनाया है और अपने जीवन में कार्य-रूप देने में लगे हैं? भारत के इस अनोखे आरोहण की सही जानकारी तथा उसमें लगे कार्यकर्ताओं से उनके अनुभवों की कहानी सुनने का लाभ इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन को मिले, यह नितान्त आवश्यक है। दूसरे देशों के विचारकों, शान्तिवादियों तथा कार्यकर्ताओं से मिलना और उनसे विचारविनिमय करना भारत के शान्तिवादियों को भी जरूर लाभप्रद होगा।

अमेरिका का युद्ध-विरोधी संघ (वार-रेसिस्टर्स लीग) के, जो इस सम्मेलन का आतिथ्य कर रहा है, मंत्री डेविड मैकरेनाल्ड ने हमें लिखा है, कि भारत से अधिक-से-अधिक प्रतिनिधि इस सम्मेलन में भाग लें, यह उनका आग्रहपूर्वक निवेदन मैं आपके पास पहुँचाऊँ। आपके लिए उनका आदरपूर्ण आमंत्रण है।

हम जानते हैं कि इसमें खर्च, समय वगैरह का सवाल कठिन है। फिर भी आज के जागतिक सन्दर्भ में इस सम्मेलन में आपका योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण होगा। हमारी विनती है कि कठिनाइयों के बावजूद कार्य के महत्त्व को देखते हुए सर्वोदय-जगत् से एक अच्छा दल इस सम्मेलन में आने के लिए प्रस्तुत हो।

—जानकी देवीप्रसाद

पृष्ठभूमि, जिससे चेक-क्रान्ति की शुरुआत हुई

क्रान्तिकारी दार्शनिक इवान स्विताक : एक मुलाकात

[यद्यपि आज चेकोस्लोवाकिया की राजनीतिक स्थिति अस्थिरता की चाक पर चक्कर खा रही है, नावोतनी की छाया फिर मँडराती सी दिखाई पड़ रही है, दुबचेक सहित जनतंत्रीकरण की जनचेतना दबा दी गयी मालूम पड़ती है, लेकिन स्टालिनवादी भूत बनकर सोवियत संघ इसमें सफल हो सकेगा? प्रस्तुत मुलाकात पढ़कर आप स्वतः कह उठेंगे···नहीं···नहीं···नहीं···! —सं०]

जिस तरह पश्चिमी यूरोप में बर्लिन और पेरिस के छात्र-आन्दोलनों ने यूरोप की आन्तरिक उथल-पुथल को वाणी दी, उसी तरह पूर्वी यूरोप में मास्को में तरुण लेखकों की गिरफ्तारी, वारसा में छात्रों का प्रदर्शन और चेकोस्लोवाकिया में राजनैतिक परिवर्तन यूरोपीय चेतना के नये निशान हैं। सन् १९६८ का जाड़ा और वसन्त काफ्का की नगरी प्राहा के लिए एक अन्तर्द्वन्द्व का जाड़ा और वसन्त था। अप्रैल की धूप ने जहाँ शरीर को गरमाया वहीं राजनैतिक कशमकश ने दिमाग में गरमी पैदा की। श्री दुबचेक और स्वोबोदा ने संयुक्त रूप से जब श्रीमान नोवोतनी साहब को सामदब गद्दी से नीचे उतारा तब मैं प्राहा के ऊँचे गुम्बदोंवाले कासल (महल) के स्पेनिश हॉल (पार्लियामेंट) में साक्षी के रूप में उपस्थित था। कल तक जिनका वचन कानून की तरह सारे देश में शिरोधार्य किया जाता था, कल तक जो बेताज के बादशाह और बिना शक के डिक्टेटर थे, वे ही नोवोतनी साहब मेरे बगलवाली कुर्सी पर एक निर्जीव दर्शक की भांति बैठे थे। मुझे इस बात की कल्पना भी नहीं हो सकती थी कि किसी दिन नोवोतनी साहब मेरे बिलकुल बगल में होंगे और उनका परिचय करानेवाला भी कोई नहीं होगा।

इस रक्तहीन क्रान्ति और शांतिपूर्ण सत्ता-परिवर्तन ने मेरे मन में एक नयी यूरोपीय क्रान्ति की आशा पैदा की। मैं जानना चाहता था : इस उथल-पुथल की स्पष्ट व्याख्या, और इसलिए साइंस एकेडेमी के दार्शनिक एवं राजनैतिक विचारक श्री इवान स्विताक से मैंने कुछ सवाल पूछे। "इवान, क्या आप भी व्यक्तिगत रूप से नोवोतनी एवं कम्पनी की तानाशाही के पहिये के नीचे थे? आखिर वह कैसी तानाशाही थी?" मैंने पूछा। "समाजवाद के नाम पर असमाजवादियों की यह तानाशाही थी। पार्टी के नाम पर और प्रोलेटेरियट के नाम पर कुछ मुट्ठी भर नये मालिकों की यह तानाशाही थी। 'सोचो मत' और 'बोलो मत', इन दो मन्त्रों के इर्दगिर्द हमारा जीवन चल रहा था। सोवियत संघ में शायद (?) स्टालिन मर चुका था, पर प्राहा की गद्दी पर स्टालिन की छाया राज्य कर रही थी। सन् १९५६ में सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी के बीसवें अधिवेशन के बाद मैंने अपना मुँह खोलने की कोशिश की। पर तुरन्त मेरा मुँह सी दिया गया।

सतीश कुमार

यूगोस्लाविया के लोकस्वराज्य की भांति चेकोस्लोवाकिया में भी स्व शासन तथा लोकशाही की ओर हमें बढ़ना चाहिए, इतना ही मैंने कहा था। मैं मार्क्सवादी हूँ और देशभक्त भी हूँ पर मेरा मार्क्सवाद और मेरी देशभक्ति तत्कालीन शासकों के लिए सुविधाजनक नहीं थी, इसलिए मुझ पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये। उसके बाद पाँच साल तक मैं अपनी कोई भी रचना प्रकाशित नहीं करा सका। यहाँ तक कि किसी लघु-पत्रिका में, प्राहा से नहीं, बल्कि किसी छोटे नगर से प्रकाशित पत्रिका में भी मेरी रचनाएँ नहीं छप सकती थीं। फिर सन् १९६४ में मेरे और पार्टी-मालिकों के बीच दूसरा संघर्ष हुआ। मैंने बहुत नम्र तरीके से कम्युनिस्ट पार्टी की सांस्कृतिक नीतियों की समीक्षा की। मैंने कहा कि प्रशासन द्वारा सांस्कृतिक गतिविधियों को दिशानिर्देश नहीं दिया जा सकता। संस्कृति अपनी स्वयं की गति से ही आगे बढ़ सकती है। मेरी इस सामान्य सी आलोचना के कारण मुझे साइंस एकेडेमी से बाहर निकाल दिया गया। मैं एक लम्बे अर्से तक बेकारी की यातना भोगने के लिए मजबूर कर दिया गया। साइंस एकेडेमी के मेरे साथियों ने मुझे एकेडेमी से निकाले जाने का विरोध भी किया, पर ऊपर के मालिकों की नाराजगी का मैं शिकार था। उसके बाद न केवल मेरी कोई रचना प्रकाशित नहीं हो सकती थी, बल्कि मेरा नाम तक कहीं उद्धृत नहीं किया जा सकता था। मैं चेकोस्लोवाकिया से बाहर कहीं यात्रा पर भी नहीं जा सकता था। पर जब से जनतंत्रीकरण की यह नयी राजनैतिक यात्रा प्रारम्भ हुई है, मुझे साइंस एकेडेमी का काम वापस मिल गया है। मेरी रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो रही हैं। विदेश-यात्रा के लिए पासपोर्ट भी मिल गया है। मेरे इन व्यक्तिगत अनुभवों की कहानी से आप समझ सकते हैं कि हमारे यहाँ कैसी तानाशाही थी।"

"आपने कहा कि चेकोस्लोवाकिया में जनतंत्रीकरण की नयी राजनैतिक यात्रा प्रारम्भ हुई है। घुटनभरी तानाशाही के बाद यह यात्रा कैसे प्रारम्भ हो सकी?" मैंने जानना चाहा।

"कुछ लोग ऐसी कल्पना करते हैं कि यह यात्रा किसी पूर्वयोजना का परिणाम है, या इस यात्रा की कोई तैयारी की गयी थी, या कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति ने इस यात्रा की व्यूह रचना की। पर ये सारी कल्पनाएँ भ्रमपूर्ण हैं। असल में यह यात्रा जन-मानस की स्वातंत्र्य आकांक्षा का स्वाभाविक परिणाम है। यह यात्रा पूरी तरह स्वतःस्फूर्त (स्पोंटेनियस) है। पार्टी के नये मंत्री दुबचेक ने इस यात्रा के लिए आवाहन नहीं दिया, बल्कि लोक मानस की अभिलाषाओं को उन्होंने अभिव्यक्त किया। इसलिए इस यात्रा का श्रेय सही अर्थ में लोक मानस को ही दिया जाना चाहिए। विशेष रूप से सन् १९६० के बाद से लेखक, बुद्धिजीवी, विद्यार्थी और कारखानों के लोग जहाँ-तहाँ इस जनतंत्रीकरण के लिए उतावले हो रहे थे। कितने ही लेखकों ने बार-बार खतरे उठाकर जनतंत्रीकरण के लिए आवाज उठायी। मेरी तरह से कितने ही बुद्धिजीवी उपेक्षित और अपमानित किये गये। इस सारी लम्बी

सापता, सच्ची प्रक्रिया और समग्र जन-आकांक्षा का यह परिणाम है कि हम इस नयी लोक-यात्रा पर रवाना हुए हैं।

"इस जनतंत्रीकरण के पीछे चेकोस्लोवाकिया की डगमगाती हुई आर्थिक स्थिति भी बहुत बड़ा कारण है। सन् १९६० के बाद से देश के पढ़े-लिखे लोग, विशेष रूप से तरुण इंजीनियर्स, मैनेजर्स, टेक्नीशियन्स और डायरेक्टर्स यह अनुभव करने लगे थे कि ऊपर के मुट्ठी भर बूढ़े लोगों के हाथ में इतना अधिक नियंत्रण है और आर्थिक सत्ता का इतना बुरी तरह केन्द्रीकरण हो गया है कि जिसके कारण कोई भी मौलिक प्रयोग, कोई भी बुनियादी उपक्रम और कोई भी साहसिक कदम उठाना असम्भव बन गया है। परिणामस्वरूप आर्थिक प्रगति एकदम रुक गयी थी, उलटे देश की कुल आर्थिक स्थिति ह्रास की ओर थी।"

'इवान, आपने जनतंत्रीकरण के दो मुख्य कारण बताये: पहला, स्वातंत्र्य के लिए व्यापक आकांक्षा 'और बुद्धिजीवियों द्वारा उसकी अभिव्यक्ति, तथा दूसरा, आर्थिक स्थिति का ह्रास। क्या आप पहले कारण की थोड़ी और स्पष्ट व्याख्या करेंगे? आखिर वह कौनसा बिन्दु था, जहाँ जन-आकांक्षा अपने चरमोत्कर्ष पर दिखाई दी?" मैंने इवान को बीच में रोकते हुए पूछा।

"सन् १९६७ की गरमियों में जब हमारे लेखक-संघ का वार्षिक अधिवेशन हो रहा था तब उस अधिवेशन में चार पाँच लेखकों ने देश की कुल परिस्थिति का आलोचनात्मक विश्लेषण किया। इन लेखकों ने बड़े साहस के साथ कहा कि हमारे देश में जो कुछ चल रहा है, वह समाजवाद नहीं है और उन्होंने यह भी कहा कि समाजवाद एवं जनतंत्र के बीच कोई अन्तरविरोध नहीं है, बल्कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं और एक के बिना दूसरा अधूरा है। इस आलोचना ने सोयी हुई जन-आकांक्षा को जगा दिया, परन्तु सत्ताप्रेमी नोवोतनी और उनके मित्रों को भला यह कटु आलोचना कैसे सहन हो सकती थी। ये लेखक लेखक-संघ से बहिष्कृत किये गये। लेखक-संघ की साहित्यिक पत्रिका के सम्पादक मण्डल से इनको निकाल दिया गया। इस कारंवाई की भी तरुण लेखकों, समीक्षकों, कवियों, विद्यार्थियों और अध्यापकों पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई और यही प्रतिक्रिया अपने प्रचण्ड रूप में कम्युनिस्ट पार्टी के सन् १९६८ की सर्दियों के अधिवेशन में प्रतिध्वनित हुई। यह कहा जा सकता है कि सन् १९६७ की गरमियों के लेखक सम्मेलन ने सन् १९६८ की सर्दियों के कम्युनिस्ट-सम्मेलन को आकृति दी और यह जनतंत्रीकरण की नयी लोक-यात्रा प्रारम्भ हो सकी। यह भी कहा जा सकता है कि सन् १९६८ की चेक क्रान्ति का नेतृत्व बुद्धिजीवियों ने किया।"

मैंने विषय को भविष्य की तरफ मोड़ते हुए पूछा 'आखिर इस जनतंत्रीकरण की यात्रा की मंजिल कहाँ है?"

दार्शनिक इवान स्विताक

"मेरी दिलचस्पी मंजिल में नहीं, बल्कि मार्ग में है। कौन जानता है कि हम मंजिल तक पहुँचेंगे भी या नहीं और यदि पहुँचें भी तो न जाने वह मंजिल कैसी होगी? इसलिए अज्ञात मंजिल की चिन्ता छोड़कर ज्ञात मार्ग में मेरी ज्यादा रुचि है। राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक गतिविधियों के सम्बन्ध में निर्णय लेने का हक प्रत्येक नागरिक को मिले, यही हमारा मार्ग है। हम समाजवाद की बुनियादी उपलब्धियों से पीछे नहीं हटना चाहते। हमारा जनतंत्र पूँजीवादी बुर्जुआ जनतंत्र से भिन्न होगा। राज-काज में सामान्य नागरिक साझीदार हो यह हमारी आकांक्षा है। जिन्दादिल के समाजवाद को हम जीवन का समाजवाद बनाना चाहते हैं। हमारी मुख्य समस्या यह है कि किस तरह समाजवादी जनतंत्र का साक्षात्कार हो? आखिर समाजवादी जनतंत्र क्या है? समाजवाद और जनतंत्र के बीच किस तरह समन्वय पैदा किया जाय? पश्चिमी यूरोप और अमेरिका में जिस तरह की औपचारिक लोकशाही और संसदीय प्रणाली चल रही है, वह हमारे लिए मॉडल नहीं हो सकती। इसलिए एक आन्तरिक संघर्ष में से नया मार्ग ढूँढने की कोशिश हम कर रहे हैं। हमारी इस कोशिश के नजदीक यदि कोई प्रयोग चल रहा है तो वह युगोस्लाविया का लोक-स्वराज्य है। हमें अपने ढंग से, अपनी प्रकृति के अनुसार अपना मार्ग ढूँढना होगा।"

'आपने कहा कि हम समाजवाद की उपलब्धियों से पीछे नहीं हटना चाहते। तब फिर सोवियत-कम्युनिस्ट पार्टी को यह चिन्ता क्यों सता रही है कि चेकोस्लोवाकिया जनतंत्र के नाम पर कहीं समाजवाद से ही पीछे न हट जाय?" मैंने पूछा।

'सोवियत संघ में जो दीर्घसंघ सत्ताधारी हैं उनको चेकोस्लोवाकिया का जनतंत्रीकरण खतरनाक लगता है। वे जानते हैं कि हमारी यह नयी यात्रा किसी अमुक प्रकार की नीति में परिवर्तन मात्र नहीं है, बल्कि यह एक आन्तरिक कायाकल्प है। रूमानिया ने सोवियत संघ के सन्दर्भ में अपनी विदेश नीति थोड़ी बदली है, पर आन्तरिक ढाँचा ज्यों-का-त्यों है, पर चेकोस्लोवाकिया अपने समाज के आन्तरिक ढाँचे को बदल रहा है। यह परिवर्तन निश्चय ही हंगरी, पोलैंड, पूर्वी जर्मनी और यहाँ तक कि सोवियत संघ के जन-मानस को प्रभावित करेगा। प्राहा से लुढ़का हुआ यह 'स्नो बॉल' मास्को पहुँचते पहुँचते काफी बड़ा और शक्तिशाली बन सकता है। इस समय दुनिया भर के प्रतिभासम्पन्न मार्क्सवादी विचारक जहाँ एक ओर सोवियत-अधिनायकवाद पर उँगली उठाकर सामान्य नागरिक की साझीदारी पर जोर दे रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर सोवियत नौकरशाही पर उँगली उठाकर क्रान्तिकारी साम्यवाद पर जोर दे रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में सोवियत-नेताओं के लिए अपने अस्तित्व की रक्षा का सवाल पैदा→

३१ मई तक बिहारदान की योजना

बिहार में कुल १७ जिले हैं, उनमें से ८ जिले जिलादान हो गये हैं—दरभंगा, मुजफ्फरपुर, पूर्णिया, सारन, चम्पारन, गया, मुंगेर और धनबाद। जिलादान होने के बाकी हैं—पलामू, हजारीबाग, भागलपुर, सिंहभूम, संथाल परगना, शाहाबाद, पटना और रांची।

पलामू—पलामू में २५ प्रखंडों में से १५ प्रखंडदान हो गये हैं और ६ बाकी हैं। स्वामी सत्यानंदजी यहाँ काम कर रहे हैं। ३१ मई तक जिलादान होने की उम्मीद है।

हजारीबाग—इस जिले में ७ प्रखण्डदान हुए हैं, ३५ बाकी हैं। तूफान और पत्ता है। शक्ति कम होते हुए भी अभियान चल रहा है। श्यामप्रकाशजी और रामनंदन बाबू यहाँ काम कर रहे हैं। शिक्षकों और सरकारी कर्मचारियों की मदद मिल रही है। यह भी महीने के अन्त तक जिलादान हो जाने की उम्मीद है।

भागलपुर—इस जिले में अभी ७ प्रखण्डों का दान बाकी है। खादी-ग्रामोद्योग संघ की ओर से काम हो रहा है। डा० रामजी सिंह का पूरा सहयोग मिल रहा है। वहाँ ढेवर भाई का कार्यक्रम इस महीने में होनेवाला है।

संथाल परगना—संथाल परगना में १२ प्रखण्डदान हुए हैं और २१ बाकी हैं। खादी-कार्यकर्ताओं का सहयोग यहाँ मिल रहा है।

शाहाबाद—इस जिले में अभियान थोड़ा कमजोर है। श्री रामेश्वर राय और श्री राधामोहन राय, भूतपूर्व एम० एल० ए० काम कर रहे हैं। बक्सर अनुमण्डल में सघन रूप से काम उठाया गया है। यहाँ जयप्रकाशजी का दौरा इस महीने में होगा। बिहार गांधी-शताब्दी समिति के सहायक मंत्री श्री मथुरा प्रसाद सिंह इसके लिए नियुक्त किये गये हैं। मुजफ्फरपुर के कुछ कार्यकर्ता भी यहाँ काम करनेवाले हैं।

पटना—जोरों से काम चल रहा है। १६ प्रखंडदान हो गये हैं, १२ बाकी हैं।

रांची—रांची में अभी ही काम शुरू हुआ है। कुल ४२ प्रखण्ड हैं, कोई प्रखण्डदान अभी तक नहीं हुआ है। यह बिहार का सबसे बड़ा जिला है, आदिवासी इलाका है। प्रखण्ड-स्तर पर मीटिंग हो रही है। विनोबाजी के सान्निध्य में सरकारी कर्मचारियों की, शिक्षकों की, शिक्षा-पदाधिकारियों की और सर्वोदय-कार्यकर्ताओं की बैठक हुई थी। व्यूह-रचना की गयी है। सब पार्टियाँ एक-साथ मिलकर काम में लग जायँगी, ऐसा उन्होंने आश्वासन दिया है। विनोबाजी रांची में ही रहकर बिहारदान का नेतृत्व करेंगे, ऐसी संभावना है। बिहार ग्रामदान-प्राप्ति समिति का दफ्तर भी रांची में आ गया है।

सिंहभूम—इस जिले में ५ प्रखण्डदान हुए हैं। २७ प्रखण्ड बाकी हैं। यहाँ के मुख्य कार्यकर्ता श्यामबहादुर भाई के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने के बाद काम स्थगित हो गया। अब फिर चालू करने का प्रयत्न हो रहा है। मनमोहनजी का दौरा यहाँ होगा। यह जिला उड़ीसा से लगा हुआ है, इसलिए मनमोहनजी का अच्छा प्रभाव यहाँ होगा। मुंगेर के गोखले भाई भी यहाँ के काम में मदद करने के लिए आयेंगे।

कुछ विशेष बातें—जयप्रकाशजी का पूरा समय बिहारदान के लिए मिलनेवाला है। अभियान और अर्थ-संग्रह के लिए वे दौरा करेंगे। सर्वश्री कृष्णवल्लभ सहाय, ध्वजा बाबू, सरजू प्रसाद—गांधी स्मारक निधि के मंत्री, जयलोक ठाकुर, निर्मलचन्द्र वगैरह बिहारदान में पूर्ण सहयोग दे रहे हैं। डा० पटनायक आ गये हैं। निर्मला देशपाण्डे, मनमोहनजी जैसे अन्य लोगों का समय बिहारदान के लिए मिला है।

पूर्णिया जिले के १४ कार्यकर्ता रांची में काम करनेवाले हैं। गया के कार्यकर्ता हजारीबाग के तीन प्रखण्डों में काम करेंगे।

बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ बिहारदान के काम के लिए डेढ़ लाख रुपये खर्च करनेवाला है। और अधिक धन इकट्ठा करने की कोशिश हो रही है। जयप्रकाशजी का पूरा समय इस काम में मिल रहा है। इसी तरह श्री कृष्णवल्लभ सहाय का भी समय इस काम के लिए प्राप्त हुआ है। —हरिहरन्

विनोबाजी का कार्यक्रम

दिनांक	समय	स्थान
६ जून	२½ दिन	रांची से रवाना
६ „	४½ „	गोला पहुँचना
७ „	२½ „	गोला से रवाना
७ „	४½ „	धनबाद पहुँचना
६ „	२½ „	धनबाद से रवाना
६ „	४½ „	पुरुलिया पहुँचना
१० „	२½ „	पुरुलिया से रवाना
१० „	५½ शाम	रांची पहुँचना

(१) पता—विनोबा-निवास, बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ, खादी भंडार, रांची (बिहार)

(२) धनबाद का पता :—विनोबा-निवास, बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ, बिक्री-केन्द्र, नया बाजार, धनबाद। फोन नं० ३४५६

—कृष्णराज मेहता

धीरेन्द्र भाई का कार्यक्रम

२६ से ३० मई तक फतेहगढ़

पता : श्री गांधी आश्रम उत्पत्ति केन्द्र, फर्रुखाबाद

१ जून से ५ जून तक मिर्जापुर

पता : वनवासी सेवाश्रम, गोविन्दपुर (दुद्धी) जिला मिर्जापुर

६ से ७ जून तक वाराणसी

पता : सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी-१

→हो गया है। यह सारी कशमकश अस्तित्व रक्षा के लिए ज्यादा है और समाजवाद की रक्षा के लिए कम। यदि प्रश्न समाजवाद की रक्षा का हो तो चेकोस्लोवाकिया से तिल भर भी खतरा नहीं है। क्योंकि चेक-नेतागण अथवा चेक जनता सोवियत विरोधी नहीं है। बल्कि नाजी-जर्मनों से सोवियत संघ ने चेकोस्लोवाकिया को मुक्त किया, इसलिए आम चेक नागरिक की सोवियत संघ के प्रति विशेष सहानुभूति है। इसके अलावा हम वारसा-सन्धि से भी बंधे रहना चाहते हैं। सोवियत-नेताओं का भय अनावश्यक है। मुझे उम्मीद है कि सोवियत-नेता दूरदर्शी बनेंगे और कल्पना-शक्ति से काम लेंगे। मार्क्सवादी समाज-रचना के विकास में चेक प्रयोग मील का पत्थर बनेगा।"●

स्वयं पालिया पहुँचकर शासन के निर्णय की घोषणा की और शराब की दुकान बन्द करायी। राज्य के पंचायत-मंत्री श्री शिवभानु सिंह सोलंकी ने पालिया में कहा कि जिस गाँव में कोई भी शराब नहीं पीयेगा उस गाँव की जनता को शासन ५००० पुरस्कार देगा।

साहित्य-बिक्री

• सर्वोदय-साहित्य भण्डार, इन्दौर ने मई '६८ से अप्रैल '६९ तक १,५६,८४७ रुपये का तथा रेलवे स्टाल से ९,१७१ रुपये का साहित्य बेचा है।

श्रद्धांजलि

झाँसी जिले के एक बहुत ही त्यागी तपस्वी कर्मठ, वयोवृद्ध गांधीवादी [illegible] श्री पं० रामसहायजी शर्मा का दिनांक १२ मई की रात्रि को झाँसी के सिविल अस्पताल में अपनी ६४ वर्ष की आयु में निधन हो गया। स्वतन्त्रता-संग्राम में सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड आपका क्षेत्र रहा और आप ७ वर्ष जेल में रहे थे। आजादी के बाद आप गांधीजी के विचारों का प्रचार करते हुए गाँव गाँव पैदल घूमे। गुरसराय का इंटर कालेज, वाचनागार का पुस्तकालय एवं हाईस्कूल, व व्यायाम मन्दिर आपकी रचनात्मक प्रवृत्तियों के जीते-जागते स्तम्भ हैं।

आपने जीवन के अन्तिम क्षण बहुत ही निश्चिन्तता में बिताये। झाँसी जिला परिषद के अध्यक्ष श्री डा० गोविन्द दासजी आपके निकट थे, जिनसे आप कह रहे थे, "जीवन में अबतक रोज थोड़ा रहा पर जब जागा तो काम का बोझ सामने रहा। गोविन्द दास, अब ऐसी चिर निद्रा आ रही है, फिर कोई काम का बोझ नहीं रहेगा। मैं उस निद्रा के लिए बिलकुल हृदय से प्रसन्नतापूर्वक तैयार हूँ। आप सब गांधीजी विनोबाजी का काम करते-करते ऐसी ही चिर निद्रा की आकांक्षा रखें।" और वे चले गये।...

—धीरेन्द्र

ग्रामदान-प्रखण्डदान-जिलादान

भारत में **(५ मई '६९ तक)** **बिहार में**

प्रांत	प्रखण्डदान	ग्रामदान	जिलादान	जिला	ग्रामदान	प्रखण्डदान	जिलादान
बिहार	४०,९१८	३८७	९	दरभंगा	१,७२०	४४	१
उत्तरप्रदेश	१५,१९४	८६	२	मुजफ्फरपुर	३,९१७	४०	१
तमिलनाडु	१२,३८५	१२४	३	पूर्णिया	८,१५७	३८	१
उड़ीसा	६,३४८	४०	—	सारण	३,७३१	४०	१
मध्यप्रदेश	५,०६६	२५	२	चम्पारण	२,८६०	२६	१
आन्ध्र	४,०१६	१२	—	गया	४,८४५	४६	१
सं० पंजाब (पंजाब, हरि०, हिमा०)	३,६६४	७	—	सहरसा	२,७५१	२३	१
महाराष्ट्र	२,५५६	१४	—	मुंगेर	३,०४४	३७	१
असम	१,५००	१	—	धनबाद	१,६८४	१०	१
राजस्थान	१,६७०	[illegible]	—	पलामू	८०४	१९	—
गुजरात	६२०	[illegible]	—	हजारीबाग	१,२८७	५	—
प० बंगाल	७४८	—	—	भागलपुर	५७८	१४	—
कर्नाटक	९६२	—	—	सिंहभूम	१,२१३	५	—
केरल	४१८	—	—	संथाल परगना	१,१६४	१२	—
दिल्ली	७४	—	—	शाहाबाद	१७१	५	—
जम्मू-कश्मीर	१	—	—	पटना	४८	११	—
				राँची	४[illegible]	—	—
कुल :	१,००,८[illegible]६	४००	१६	कुल :	४०,९१८	३८७	९

संकल्पित प्रदेशदान • (१) बिहार, (२) तमिलनाडु, (३) उड़ीसा, (४) उत्तर प्रदेश, (५) मध्यप्रदेश, (६) महाराष्ट्र (७) राजस्थान।

कानूनी घोषित ग्रामदान :— १ उड़ीसा ८३०
२ आसाम १६१ (ग्रामसभाएँ स्थापित १५२)
३. राजस्थान [illegible] (ग्रामसभाएँ स्थापित १४१)
४ बिहार १२४
५. तमिलनाडु ५६ (ग्रामसभाएँ ११)
६ महाराष्ट्र [illegible]
७ आन्ध्र १

एक स्पष्टीकरण : जिला तथा अन्य कई प्रदेशों में प्रखण्डदान पूरे होने के समाचार मिलते ही उन्हें प्रखण्डदान की संख्या में जोड़ दिया जाता है, लेकिन उनमें जहाँ ग्रामदानी गाँवों की संख्या नहीं मिल पाती, इसलिए कहीं कहीं के आँकड़े, वे प्रखण्डदानों की संख्या के अनुसार वे ग्रामदानों की संख्या कम होती है।

विनोबा निवास, गिरीडीह
दिनांक : ५-५-६९

—कृष्णराज मेहता

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०, या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक—साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ३५

सोमवार २ जून, '६६

अन्य पृष्ठों पर

हम राम का नाम इसलिए लेते हैं कि वह हृदय में रममाण है, आनन्दमय है, उससे हम आनन्द गुण पाते हैं। कृष्ण का नाम लिया तो, वे आकर्षण करते हैं। दुनिया की जितनी अच्छाइयाँ हैं, उनका हमें आकर्षण हो यही उसका परिणाम है। हम हरिनाम लेते हैं, वह सब विकारों का हरण करता है। सारांश, भगवान का एक एक नाम एक-एक गुण का सूचक है। —विनोबा

सम्पादक
रामामूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

प्राचीन भारत में सर्वोदय

सदाचार का पालन करने का अर्थ है अपने मन और विकारों पर प्रभुत्व पाना। हम देखते हैं कि मन एक चंचल पक्षी है। उसे जितना मिलता है उतनी ही उसकी भूख बढ़ती है और फिर भी उसे संतोष नहीं होता। हम अपने विकारों का जितना पोषण करते हैं, उतने ही निरंकुश वे बनते हैं। इसीलिए हमारे पूर्वजों ने हमारे भोग की मर्यादा बना दी थी। उन्होंने देखा कि सुख बहुत हद तक मानसिक स्थिति है। यह जरूरी नहीं कि कोई मनुष्य धनवान होने के कारण सुखी हो और निर्धन होने के कारण दुखी हो। धनवान अक्सर दुखी और गरीब अक्सर सुखी पाये जाते हैं। करोड़ों लोग सदा निर्धन ही रहेंगे। यह सब देखकर हमारे पूर्वजों ने हमें भोग-विलास से और ऐश-आराम से दूर रहने का उपदेश दिया। हमने हजारों वर्ष पहले के हल से ही काम चलाया है। हमारी झोपड़ियाँ अब भी उसी किस्म की हैं जैसी पुराने जमाने में थी, और हमारी देशी शिक्षा अब भी वैसी ही है जैसी पहले थी।

हमारे यहाँ जीवन नाशक स्पर्धा की प्रणाली नहीं थी। हरएक अपना-अपना धंधा या व्यवसाय करता था और नियमित मजदूरी लेता था। यह बात नहीं कि हमें यंत्रों का आविष्कार करना नहीं आता था। परन्तु हमारे बाप-दादा जानते थे कि अगर हमने इन चीजों में अपना दिल लगाया तो हम गुलाम बन जायेंगे और अपनी नैतिक शक्ति खो बैठेंगे। इसीलिए उन्होंने काफी विचार करने के बाद निश्चय किया कि हमें केवल वही करना चाहिए जो हम अपने हाथ-पैरों से कर सकते हैं। उन्होंने देखा कि हमारा सच्चा सुख और स्वास्थ्य अपने हाथ पैरों को ठीक तरह काम में लेने में है। उन्होंने यह भी कहा कि बड़े-बड़े शहर एक फंदा और व्यर्थ का भार हैं और लोग उनमें सुखी नहीं रहेंगे वहाँ चोर-डाकुओं की टोलियाँ लोगों को सतायेंगी, व्यभिचार व बदी का बाजार गर्म रहेगा और गरीब लोग अमीरों द्वारा लूटे जायेंगे। इसलिए वे छोटे छोटे गाँवों से संतुष्ट थे।

इस प्रकार के विधानवाला राष्ट्र दूसरों से सीखने के बजाय उन्हें सिखाने के लिए अधिक योग्य है। इस राष्ट्र के पास अदालतें, वकील और डाक्टर थे, परन्तु वे सब मर्यादाओं के भीतर रहते थे। हरएक जानता था कि ये पेशे खास तौर पर श्रेष्ठ नहीं है, साथ ही, ये वकील और वैद्य लोगों को लूटते नहीं थे। वे लोगों के आश्रित माने जाते थे, न कि उनके मालिक। न्याय काफी निष्पक्ष था। साधारण नियम तो अदालतों से दूर ही रहने का था। लोगों को फुसलाकर अदालतों में ले जानेवाले कोई दलाल नहीं थे। यह बुराई भी राज-धानियों के भीतर और उनके आसपास ही दिखाई देती थी। साधारण लोग स्वतंत्र जीवन व्यतीत करते और अपना खेती का धंधा करते थे। वे सच्चे स्वराज्य का उपभोग करते थे।

("हिन्द स्वराज्य"। सन् १६०८, अध्याय : १३)

सम्पादक के नाम चिट्ठी

ग्रामदान के आँकड़े ही बढ़ेंगे या ग्राम-निर्माण का काम भी होगा ?

संपादकजी,

वर्ष १५, अंक २७, सोमवार, ७ अप्रैल, '६९ की 'भूदान-यज्ञ' पत्रिका मैंने पढ़ी और आपके संपादकीय लेख पर काफी देर तक सोचा। अन्तिम अनुच्छेद की अन्तिम ढाई पंक्तियाँ, जो आशा और विश्वास की रोशनी हैं, अध्ययन-लायक हैं। मैं इसका कुछ विस्तार रूप चाहता हूँ और मेरे विचार से वह रूप ऐसा होगा।

आपने लिखा है : "राज्यदान का काम रुके न, लेकिन जिलादानी क्षेत्रों में आन्दोलन में गिरावट न आने दी जाय। दोनों मोर्चों पर काम जरूरी भी है और संभव भी है।"

मेरे विचार से ग्रामदान होने के साथ-साथ ग्रामदानी गाँव में ग्रामसभा-गठन, ग्राम-सभा में दानपत्र-समर्पण, और कुल जमीन के बीस भागों में से एक भाग जमीन को भूमिहीनों के बीच वितरण, ग्रामकोष-संग्रह तथा योजना के साथ कृषि-गोपालन का विकास, ग्रामाभिमुख खादी का प्रचलन और ग्रामोद्योग की स्थापना होनी चाहिए। यह निर्माण-कार्य नहीं होने से गाँव के लोग धीरे-धीरे ग्रामदान को भूल जाते हैं और ग्रामदान की वाणी में ओज नहीं रहता है। मेरे विचार से इसमें सन्देह का अवकाश नहीं है और इस सत्य को अस्वीकार करने का अर्थ, जैसा कि मैं सोचता हूँ, आत्मप्रवंचना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। गत पन्द्रह वर्षों से जो ग्रामदान हुए हैं वे केवल आँकड़ों में हैं और ग्रामदान की आत्मा उन ग्रामदानी गाँवों में विलपती रहती है।

ग्रामदानी गाँवों में उपर्युक्त काम ग्राम-दान की वृद्धि में सहायक होंगे, बाधक नहीं। ग्रामदान के बाद पंचायत-दान, पंचायत के बाद प्रखण्ड, प्रखण्ड के बाद जिला, जिले के बाद राज्य और राज्यदान के उपरान्त भारतदान की आशा-आकांक्षा रखना स्वाभाविक है और विश्व-शान्ति के लिए, विश्व में साम्य और मैत्री की स्थापना के लिए पृथ्वी-दान का स्वप्न देखना भी अस्वाभाविक नहीं है। ग्रामदान में जो मौलिक भावना है, जो गहरा अर्थ है, विचार की गंभीरता है, साम्य, मैत्री और विश्व-भ्रातृत्व का सुविस्तार रूप है, उसमें विश्वदान का स्वप्न देखना कल्पना-विलासी की काल्पनिक भावना नहीं है, बल्कि वस्तुवादी की वास्तविक धारणा है।

आपके विचार के अनुसार विकास के लिए प्रखण्ड, प्रशासन के लिए जिला और राजनीति के लिए राज्यदान की जैसी आवश्यकता है, शांति, मैत्री और साम्य के लिए पृथ्वीदान की वैसी ही आवश्यकता है। यह ठीक है और उच्च कोटि का विचार भी है। लेकिन इन सबका मूल रूप ग्रामदान है। ग्रामदान में अगर ग्राम-भावना नहीं पनपी, ग्रामदान से लोगों के अन्न-वस्त्र की भौतिक समस्या का समाधान न हुआ, तो यह विकास, प्रशासन और राजनीति में परिवर्तन लाने की कल्पना केवल कल्पना में ही रह जायेगी। इसलिए ग्रामदान की नींव को मजबूत करने के लिए ग्राम निर्माण करके ग्राम स्वराज्य की ओर आगे बढ़ने से अन्य सब लक्ष्य हासिल करने में सुविधा होगी और सहज साध्य भी होगा। यह ठीक है कि इसके लिए जितनी पूँजी की आवश्यकता है, वह हमारे पास नहीं है और शायद यही कारण है कि ग्राम-निर्माण, जो ग्रामदान की आत्मा है, पीछे पड़ा हुआ है और हमारे नेताओं की कृपादृष्टि जितनी होनी चाहिए उससे बहुत-बहुत कम है। ग्राम-निर्माण का काम सरकारी कर्मचारियों से नहीं होनेवाला है। इसके लिए चाहिए वह जनसेवक जो ग्रामदान के आदर्श में उद्‌बुद्ध हो, जनता की सेवा में अपने को खो बैठे।

ग्राम-स्वराज्य विद्यालय, गोपालबाड़ी,
जिला कोरापुट, उड़ीसा —मदनमोहन साहू

खादी-कमीशन का नया फरमान

सम्पादकजी,

आज सुबह खाजा प्रखण्ड (मुंगेर) के एक ग्राम-इकाई के कार्यकर्ता यहाँ आये थे। उनसे मालूम हुआ कि खाजा प्रखण्ड की ग्राम-इकाई टूट रही है। यह सुनकर आश्चर्य और दुःख, दोनों हुआ। और बात करने पर पता चला कि यह निर्णय खादी-कमीशन ने इसलिए किया है कि वहाँ अभी तक खादी-काम की प्रगति संतोषजनक नहीं है। यह निर्णय सात प्रखण्डों के लिए हुआ है, ऐसा भी पता चला है। यह बात कुछ समझ में नहीं आयी। एक ओर तो आप लोग कमीशनसहित त्रिविध कार्यक्रम की बात करते हैं और दूसरी ओर खादी की प्रगति न होने के कारण प्रखण्ड-इकाई बन्द की जाती है। खादी-कमीशन के कर्णधार जब विनोबाजी से मिलते हैं तो सभी ग्राम-इकाई के कार्यकर्ताओं का बिहारदान में लगाने का आश्वासन देते हैं। आप भी, बराबर यही कहकर ग्रामदान के काम में कार्यकर्ताओं को लगाते थे कि खादी ग्रामदान के आधार पर ही खड़ी होगी। गत ५ वर्षों के अथक परिश्रम से हम लोग जिलादान तक पहुँचे हैं। जिस आधार की तलाश में हम लोग थे वह मिला और अब खादी को खड़ा करने की बात हमारे मन में थी ही कि ऐसा फरमान कमीशन की ओर से आया। सारी आशा और कल्पना समाप्त हुई। मैं आपको सिर्फ खाजा की मिसाल देना चाहता हूँ। अकाल के बाद दो वर्षों में कृषि-विकास और लघु सिंचाई तथा ग्रामदानी गाँवों में ग्राम-सभा, ग्रामकोष, और बीघा-कट्ठा का जो काम हुआ है, क्या वह भविष्य की खादी के लिए आधार नहीं बना है ? क्या इस काम की कोई कीमत नहीं मानी जानी चाहिए ?

आपसे प्रार्थना है कि आप इस सम्बन्ध में कमीशन के अधिकारियों का ध्यान पुनर्विचार करने के लिए इस ओर आकर्षित करने की कृपा करें। हमारी राय में खादी-कमीशन को इस पर विचार करके हम कार्यकर्ताओं को काम का मौका देना चाहिए।

खादीग्राम, —पारस
जिला मुंगेर, बिहार

प्रयोगकर्ता कौन ?

हिंसा जितनी ही सूक्ष्म, अहिंसा उतनी ही सौम्य। यह आदर्शवादिता नहीं है, सीधा सादा नियम है। किसी शक्ति का मुकाबिला उसकी विरोधी शक्ति से ही किया जा सकता है। आज की हिंसा का मुकाबिला उग्र अहिंसा से भी नहीं, बल्कि उत्कट, लेकिन सौम्य, अहिंसा से ही किया जा सकता है। जो हिंसा 'मत' और 'व्यवस्था' का अंग और आधार बन गयी है, वह प्रहार की अहिंसा से कैसे दूर होगी ?

समाज में हिंसा बढ़ रही है। हाँ, बढ़ रही है। लेकिन नक्सालवादियों की हिंसा को हम रोग की तरह बढ़नेवाली हिंसा मानकर टाल नहीं सकते। यह हिंसा यह दावा लेकर सामने आयी है कि गाँव में जो अनीति और अन्याय है कि उसका हिंसक संघर्ष के अलावा दूसरा कोई उपाय है ही नहीं। उसकी नजर में दो ही विकल्प हैं : गरीब पिसता रहे और मुँह से आह भी न निकाले, या मरने-मारने को तैयार हो। अब गरीब को न्याय के लिए प्रतीक्षा करने की सलाह देने का साहस किसमें है ? और उसने बाईस वर्षों में देख लिया कि इस देश में उसीकी बात मानी जाती है जो मरने-मारने को तैयार हो जाता है।

अन्याय और शोषण हिंसा से ही मिटेगा, यह हवा पश्चिम की दुनिया में भी बह रही है और पूरब की दुनिया में भी। नयी पीढ़ी को यह हवा अपनी ओर खींच भी रही है। जो गरीब है, सताया हुआ है, बेकार है, उसके सामने प्रश्न हिंसा-अहिंसा का नहीं है; प्रश्न है अपनी रोटी और इज्जत का। अगर ये चीजें उसे नहीं मिलती हैं तो किसी तरह जीते रहने में उसे आकर्षण क्या है, और अगर उसे खुद नहीं जीना है तो दूसरों को जीने भी क्यों देना है ? यह है गरीब का मनोविज्ञान। हिंसा अहिंसा की नैतिकता-अनैतिकता के प्रश्न से वह कभी अपने को परेशान नहीं होने देता। इतना ही नहीं, अक्सर वह यह भी नहीं सोचता—सोचने की शक्ति वह खो चुका है—कि जो कुछ वह कर रहा है उससे उसका उद्देश्य भी पूरा होगा या नहीं। उसके लिए बस इतना संतोष काफी है कि जो कुछ वह कर सकता था उसने कर लिया।

अहिंसा हिंसा से बड़ी है, इसे कौन नहीं मानता ? जो हिंसा कर रहा है, और दूसरों से करने को कह रहा है, वह भी इस बात को फौरन मान लेता है। उसे अड़चन उस जगह होती है जब वह सहायता नहीं पाता कि अहिंसा से वह काम कैसे बनेगा जिसके लिए वह हिंसा करना चाहता है ? अहिंसा बड़ी तो है, लेकिन क्या उपयोगी भी है ? हिंसा से कम-से-कम तत्काल इतना परिवर्तन तो हो जाता है जो आँखों से दिखाई दे। इतना संतोष कम नहीं है। प्रतिकार का प्रहार, अपने में बहुत बड़ा समाधान है, भले ही परिणाम की दृष्टि से निष्फल हो।

गांधीजी के नेतृत्व में अहिंसा ने यह बीड़ा उठाया कि वह समाज की समस्याएँ हल करेगी, और हिंसा को अनुचित ही नहीं, अनावश्यक भी सिद्ध करेगी। और उन्होंने बहुत हद तक इसे करके दिखाया भी। जब हमने ग्रामदान-आन्दोलन शुरू किया तो हमने भी यही माना था, और यही कहा था, कि ग्रामदान से दमन और शोषण की समस्याएँ हल होंगी। बिहार का राज्यदान हो रहा है। अब समय आ गया है कि क्रान्तिकारी अहिंसा की सारी शक्ति समस्याओं को हल करने में लगे। ग्रामदान अहिंसा की गारंटी नहीं है, लेकिन अहिंसा का दरवाजा ग्रामदान से खुल गया है। शान्ति की शक्ति से समाज का संगठन चल सकता है, यह संभावना ग्रामदान में स्पष्ट है। एक बार शान्ति की शक्ति प्रकट हो जाय तो सौम्य, सौम्यतर अहिंसा के प्रयोग और साधना के लिए रास्ता साफ होता चला जायगा।

अहिंसा में विश्वास रखनेवालों के सामने एक चुनौती है। हमें यह सिद्ध करना होगा कि हिंसक संघर्ष से कुछ परिवर्तन और सुधार भले ही हो जाय, लेकिन समग्र क्रान्ति अहिंसा से ही होगी। अहिंसा से तात्कालिक सुधार भी होगा, और स्थायी क्रान्ति भी। अगर हम इतना नहीं कर सकते तो नीचे की जनता मात्र परिवर्तन और कुछ सुधारों से संतुष्ट हो जायगी, और क्रान्ति अनिश्चित भविष्य के लिए टल जायगी। जनता इस भ्रम में पड़ी रह जायगी कि भले ही और कुछ न हुआ हो, लेकिन उसने अपने सतानेवालों से बदला तो ले ही लिया।

नक्सालवादी ने गाँव में अपना 'बेस' बनाया है। हमने पूरे गाँव को अपना 'बेस' माना है। एक सीधी प्रतिद्वंद्विता है हमारे-उसके बीच। नीयत न उसकी खराब है, न हमारी। मुकाबिला है हिकमत का। जरूरत है हिम्मत की। बड़ी हिंसा का जवाब हल्की हिंसा नहीं है। सम्पूर्ण हिंसा का जवाब है सम्पूर्ण अहिंसा।

राज्यदान के बाद का काम अहिंसा के नये प्रयोग और अभ्यास का है। प्रयोगकर्ता कौन बनेगा ?•

मेरा 'भा वाद'

मैं यहाँ कोई व्याख्यान देने के खयाल से नहीं आया हूँ, बल्कि आप लोगों का आशीर्वाद माँगने आया हूँ। और अगर आप कर सकते हैं, तो सहयोग भी। हमारी चौदह साल की पदयात्रा में हमारे तेरह चौदह हजार व्याख्यान हो गये हैं। इसके अलावा चलते समय कई चर्चाएँ भी। उसको हमने नाम दिया था—'वाकिंग सेमिनार'! इस तरह विचारों का प्रचार वाणी से जितना हो सकता था, किया गया। अब पाँव में पदयात्रा करने की शक्ति रही नहीं, चित्त मे तो है, तो मोटर से जाता हूँ।

केरल के चर्च का स्मरणीय पत्रक

पदयात्रा में मैं सारे भारत भर में घूमा। भारत-यात्रा में, जहाँ-जहाँ क्रिश्चन कम्यूनिटी है, वहाँ हर जगह जाने का मौका मुझे मिला है। उन लोगों ने बहुत प्रेमपूर्वक आशीर्वाद दिया और हमारा स्वागत किया। केरल में चार मुख्य चर्च हैं। उन सब चर्चवालों ने एक सम्मिलित पत्रक निकाला और बाबा के काम को 'सपोर्ट' किया। उन्होंने जिन शब्दों में 'सपोर्ट' किया, वह कभी भूला नहीं जा सकता। उन्होंने उस पत्रक में अपील की थी कि बाबा जो काम कर रहा है, वह ईसा मसीह की राह में है। ईसा मसीह ने जो राह दिखाई, उसी पर चलने की बाबा की कोशिश है। और यह काम क्रिश्चन स्पिरिट में हो रहा है। इसलिए सब क्रिश्चनों का फर्ज है कि वे इसको मदद करें। यह जो शब्द इस्तेमाल किया गया कि यह आन्दोलन भगवान ईसा मसीह की राह पर चल रहा है, वह बहुत बड़ी बात है। इसके बाद हम असम प्रदेश में गये थे। वहाँ भी क्रिश्चन कम्यूनिटी से मिलने का मौका मिला। वहाँ उन लोगों ने कहा कि आपका जो आदेश है, उसके अनुसार काम करने की कोशिश हम करेंगे।

ईसा की सिखावन का सार

ईसा मसीह का जो कथन है, उस सबका सार हमने तीन वचनों में निकाला।

(१) लव दाय नेबर एज दायसेल्फ

(२) लव दाइन एनिमी

(३) यी लव वन-अनादर एज आई हैव लव्ड यू।

मैं समझता हूँ कि उनकी 'टीचिंग' का सार इन तीन वचनों में है।

पहला वाक्य—"लव दाय नेबर एज दायसेल्फ।" 'लव दाय नेबर' इतना ही वे कहते, तो वह मामूली बात थी। आप अपने पड़ोसी से प्यार करेंगे, तो वह भी आपसे करेगा। आप उसको गालियाँ देंगे, तो वह भी आपको गालियाँ देगा। यह तो 'सेल्फ इंटरेस्ट' की बात है। है स्वार्थ ही—उदात्त स्वार्थ है, पर स्वार्थ ही। वह कोई खास बात नहीं थी, अगर इतना ही कहा होता कि 'लव दाय नेबर', लेकिन उन्होंने जोड़ दिया—'एज दायसेल्फ'। यह बात बहुत कठिन और गहरी है। हमारा अपने पर जितना प्यार है, उतना पड़ोसी पर करना चाहिए। जरा सोचें, हम लोग अपने पर कितना प्यार करते हैं! इस देह के लिए हमने क्या-क्या नहीं किया? उसको खिलाते हैं, पिलाते हैं, नहलाते हैं,

विनोबा

निद्रा दिलाते हैं, स्नान कराते हैं—कितना प्यार है अपने पर! उतना ही प्यार पड़ोसी पर करो।

यह बात एकदम हमको वेदांत में ले जाती है। जो आत्मा मुझमें है, वही आत्मा दूसरे में है। इस वास्ते हम सब एक दूसरे के हकदार हो जाते हैं। इसको मैंने नाम दिया—'अप्लाइड वेदांत'। आचार्य शंकर आदि महापुरुषों ने हिन्दुस्तान में यह सिखाया कि जो आत्मा आपमें है, वही दूसरे में है, इस वास्ते सब पर समान प्रेम करना चाहिए।

दूसरा वाक्य है—'लव दाइन एनिमी'। इससे तो शस्त्र हाथ में आ गया दुनिया को जीतने का। अभी दुनिया को जीतने की कोशिश अमेरिका कर रहा है, रूस भी कर रहा है। दोनों राष्ट्र क्रिश्चन राष्ट्र हैं। एक जमाने में इंग्लैंड की भी यह कोशिश थी। ये सारे क्रिश्चन राष्ट्र हैं। लेकिन क्रिश्चन लोग जितने आपस-आपस में लड़े, और जितना खून क्रिश्ती लोगों ने बहाया, मैं मानता हूँ, दूसरे ... ने बहाया नहीं। एक अंग्रेजी किताब पढ़ी थी—'दुनिया की भयंकर लड़ाइयाँ।' उनमें दो-चार लड़ाइयाँ एशिया की थीं, बाकी तमाम यूरोप की थीं, जिसमें क्रिश्चन राष्ट्र शामिल थे। जर्मनी और इंग्लैंड, दोनों राष्ट्रों के लोग चर्च में बैठकर परमात्मा से प्रार्थना करते थे कि हे प्रभु, हमारे राष्ट्र की जय हो! जर्मनी के लोग कहते थे कि जर्मनी की जय हो, इंग्लैंड के लोग कहते थे कि इंग्लैंड की जय हो! बेचारा भगवान घबरा गया होगा कि अब क्या किया जाय! एक को जय देंगे तो उसका अर्थ होगा कि दूसरे की प्रार्थना नहीं सुनी। जर्मनी के हवाई जहाजों ने लंदन पर आक्रमण करके हजारों मकान खतम किये और इंग्लैण्ड के हवाई जहाजों ने बर्लिन पर आक्रमण करके उसको खतम किया। जर्मनी के लोगों ने फिर से जर्मनी को खड़ा किया है वे, पराक्रमी लोग हैं। और जब लंदन और बर्लिन खत्म रहे थे, तब उनको क्या क्या चिंता थी? लंदन में लाइब्रेरी थी, जिसमें दुनिया की हर भाषा के ग्रन्थ थे। जर्मनी ने भी ऐसा ही किया था। और फिर *जब हवाई जहाज से बमवर्षा चलायी, तब* नीचे क्या जल रहा, इसकी परवाह नहीं की। और दोनों थे क्रिस्ती राष्ट्र।

प्रेम का अभिक्रम

'लार्ड-लार्ड' कहने से भक्ति सिद्ध नहीं होती। जो परमात्मा की सेवा करता है, उसके आदेश पर अमल करता है, उसकी वह भक्ति है। केवल 'लार्ड-लार्ड' कहनेवाले बहुत हुए दुनिया में। यह ईसा मसीह ने स्वयं कह दिया है। तो 'लव दाइन एनिमी', दुनिया में कितने कर सकेंगे? दूसरा प्रेम करेगा, तो हम उससे प्रेम करेंगे, वह मारेगा तो हम उसको मारेंगे, वह मत्सर करेगा, तो हम भी उसका मत्सर करेंगे—इसमें अभिक्रम सामनेवाले के हाथ में है, मेरे हाथ में नहीं। 'लव दाय एनिमी' में अभिक्रम मेरे हाथ में है। मैं तो सबके साथ प्रेम का व्यवहार करूँगा, आप चाहे जो करें—मारें, मत्सर करें। इस प्रकार हम दुनिया को प्रेम से जीत सकते हैं। यही गौतम बुद्ध ने कहा था—"नहि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचन"—वैर से वैर कभी शमन
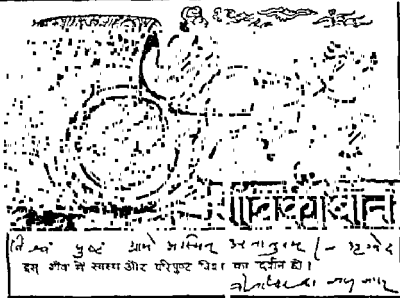
२ जून, '६६
वर्ष ३, अंक २०] [१८ पैसे

प्रश्न किसे भेजें ? : ४

सरकार जनता की, दल की नहीं

प्रश्न : आपने कहा था कि अब चुनाव की लड़ाई दल और जनता के बीच होगी। और, आपने यह भी बताया था कि किस तरह ग्रामदानी गाँवों के लोगों को अपनी ग्रामसभाएँ बनानी चाहिए, और उन ग्रामसभाओं के आधार पर 'निर्वाचन-मंडल'। ये निर्वाचन-मंडल सर्वसम्मति से अपने उम्मीदवार तय करेंगे। इतनी बात तो समझ में आ गयी, लेकिन यह बताइए कि बाकी काम कैसे होंगे ?

उत्तर : जैसे चुनाव में होते हैं। निर्वाचन-मंडल का उम्मीदवार दूसरे उम्मीदवारों की ही तरह नामजदगी का पर्चा दाखिल करेगा, और चुनाव में शरीक होगा। दलों के, या निर्दलीय, उम्मीदवार भी रहेंगे ही। आखिर, किसी को उम्मीदवार बनने से मना तो किया नहीं जा सकता! लेकिन एक बात होनी चाहिए। वह यह है कि ग्रामदान के उम्मीदवार के लिए गाँव-गाँव, घर-घर घूमकर वोट माँगने की नौबत नहीं आनी चाहिए। अगर यही करना पड़ा तो फिर ग्रामदान क्या रहा ?

प्रश्न : बिना घूमे और कन्वेसिंग किये भी काम चल सकता है ?

उत्तर : क्यों नहीं ? आप यह सोचिए कि जो ग्रामदान का उम्मीदवार है वह निर्वाचन-मंडल द्वारा उम्मीदवार बनाया गया है। वह अपने-आप उम्मीदवार नहीं हो गया है, और न तो किसी दल ने, दिल्ली, लखनऊ या पटना में बैठकर उम्मीदवार बना दिया है। यह निर्वाचन-मंडल क्या है ? ग्रामसभाओं के भेजे हुए २५० प्रतिनिधियों से निर्वाचन-मंडल बना है। और ये प्रतिनिधि किसके हैं ? निर्वाचन-क्षेत्र भर में फैली हुई ग्रामसभाओं के, जिनमें क्षेत्र के वोटर रहते हैं। हो सकता है कि कुछ ऐसे गाँव रह गये हों जो अभी तक ग्रामदान में शरीक न हुए हों। उनकी संख्या बहुत कम होगी। आप ही सोचिए कि जिस उम्मीदवार के पीछे इतने अधिक लोगों की शक्ति हो, क्या उसे भी कन्वेसिंग करने की जरूरत पड़नी चाहिए ? होना तो यह चाहिए कि निर्वाचन-मंडल द्वारा उम्मीदवार घोषित हो जाने के बाद उस क्षेत्र से दूसरा कोई व्यक्ति खड़ा होने की हिम्मत न करे। बल्कि मैं तो यह कहूँगा कि अगर ग्रामदानी उम्मीदवार को कन्वेसिंग करनी पड़ी तो उसके जीतने में भी शुबहा रहेगा।

प्रचार नहीं, सर्वसम्मत सरकार

प्रश्न : बात आप ठीक कहते हैं। जब हमने अपना उम्मीदवार खड़ा किया तो उसे जिताने की चिंता हमें होनी चाहिए, न कि जीतने की चिंता उसे। और, मैं ऐसा सोचता हूँ कि अगर ग्रामसभाएं संगठित हो गयी, और निर्वाचन-मंडल ने अपना काम कर लिया तो जो आप चाहते हैं वही होगा। अब यह बताइए कि चुनाव तो हो जायगा, लेकिन सरकार कैसे बनेगी?

उत्तर : कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। अगर गांव मे शक्ति होगी तो ऊपर के सब काम आसान होते चले जायंगे। हर चीज की कुंजी आपके हाथ मे है। आज ऊपर की शक्ति से गांव चल रहे हैं। अब गांव की शक्ति से ऊपर के काम चलेंगे। गांव एक हो जायें, संगठित हो जायें, और अपनी भीतरी व्यवस्था अपने बल पर संभाल लें, तो आप देखेंगे कि देखते-देखते सारा ढांचा बदल जायगा, और आज जो कठिनाइयाँ दिखाई देती हैं वे सब दूर हो जायंगी।

प्रश्न : बताइए, सरकार कैसे बनेगी?

उत्तर : मिसाल के लिए बिहार को लीजिए। उत्तर प्रदेश या किसी भी दूसरे राज्य को भी ले सकते हैं। जो बात एक जगह वही सब जगह। बिहार विधान-सभा में ३१८ सदस्य होते हैं। मान लीजिए कि अगले चुनाव मे ३१८ में २५० या इससे अधिक ग्रामदानी सदस्य विधान-सभा मे पहुँच जाते हैं। यों तो होना यह चाहिए कि जब पूरे बिहार का राज्यदान हो गया तो दो-चार उम्मीदवार भी गैर-ग्रामदानी क्यों चुने जायं! लेकिन, मान लीजिए कि राज्यदान के बाद पहले चुनाव मे ऐसा नहीं होता और केवल २५० ही ग्रामदानी सदस्य विधान-सभा में पहुंचते हैं। आज की पद्धति मे इन २५० की सरकार बननी चाहिए। बाकी सदस्यों को विरोधी दल मे रहना चाहिए। यह सरकारी दल, विरोधी दल की जो पद्धति है हम उसे जड़ से गलत मानते हैं। वह झगड़े की जड़ है। ग्रामदान की पद्धति मे होगा यह कि प्रबल बहुमत मे होते हुए भी ग्रामदान के २५० सदस्य शेष ६८ सदस्यों को आमंत्रित करेंगे, और कहेंगे : 'हम लोगों को जनता ने चुना है। हमें सरकार बनानी और चलानी है। जिस तरह ग्रामसभा में सरकारी दल और विरोधी दल नहीं हैं उसी तरह यहां भी नहीं होना चाहिए। होने की जरूरत भी क्या है? आइए, हम सब इकट्ठा बैठ जायं, सर्वसम्मति से नेता चुन लें, और गांवों को सामने रखकर एक कार्यक्रम तय कर लें। दल, या दल-बदल का प्रश्न हमेशा के लिए खत्म कर देना चाहिए। विधान-सभा मे हम लोग क्षेत्र के क्रम मे बैठें, सरकारी दल, विरोधी दल के अनुसार नहीं।' क्या आप समझते हैं कि गैर-ग्रामदानी सदस्यों को इस बात का असर नहीं पड़ेगा?

एकदलीय नहीं, सर्वदलीय सरकार

प्रश्न : नहीं, न पड़ने का कोई कारण नहीं है। तो क्या गैर-ग्रामदानी सदस्य मंत्री हो सकते हैं?

उत्तर : कोई रुकावट नहीं है। जिस तरह सर्वसम्मति से नेता चुना जायगा जो मुख्य मंत्री होगा उसी तरह सर्वसम्मति से दूसरे मंत्री भी चुन लिये जा सकते हैं, या मुख्य मंत्री को दूसरे मंत्री चुनने का अधिकार दे दिया जा सकता है, और वह योग्यता के आधार पर गैर ग्रामदानी सदस्यों मे से भी कुछ मंत्री ले सकता है।

प्रश्न : लेकिन यह बताइए कि जब विरोधी दल नहीं रहेगा तो सरकार को भूलें कौन बतायेगा?

उत्तर : आज क्या होता है? विरोधी दलों का काम है गलती निकालने का, और सरकारी दल का काम है गलती न मानने का। इससे क्या काम बनता है सिवाय व्यर्थ विवाद के? लेकिन ग्रामदान की पद्धति में केवल विरोधी दल को नहीं, हर सदस्य को आलोचना करने का अधिकार होगा। हर आदमी अपनी बात कहेगा और दूसरे की बात सुनेगा, और कोशिश करेगा कि हर कठिनाई का कोई सही हल निकले। आज तो सदस्यों पर उनकी पार्टी का अंकुश रहता है और वे पार्टी की नीति-रीति से अलग हटकर कोई बात कह नहीं सकते। लेकिन तब ऐसा कोई बन्धन नहीं रहेगा। तब सरकार विफल होगी तो सब सदस्य मिलकर उसे हटा देंगे, लेकिन यह नहीं होगा कि तोड़-जोड़कर एक सरकार को हटा दें और उसकी जगह अपनी सरकार बना लें। उधर राज्य भर में फैले निर्वाचन-मंडल देखते रहेंगे कि सरकार ग्रामदान की लाइन में काम कर रही है या नहीं।

असफल ग्रामदानी गाँव !

(उमरा-तिलायडीह)

रांची जिले में, खासकर गुमला अनुमंडल में, मैं जहाँ भी जाता किसी-न-किसी कोने से आवाज आती—"ग्रामदान-विचार तो बड़ा अच्छा है, पर आज के युग में जब पिता पुत्र का आपस में नहीं बनता तो ग्राम-परिवार कैसे बन सकेगा? उमरा-तिलायडीह में हजारों रुपया नष्ट हुआ। हाँ, गोपाल खरिया ने अपना खूब घर भड़ा।" सारा समझाना-बुझाना इन दो वाक्यों से थोड़ी देर के लिए बेकार हो जाता। चर्चा-गोष्ठी के लोग मुझे एक भला बेवकूफ मानकर मुस्करा देते।

उमरा-तिलायडीह के समीप के बघिमा बाजार में ज्यों ही पहुंचा, मूसलाधार वृष्टि होने लगी। वर्षा के थमने के बाद, मेरे साथी ने गोपाल खरिया को ढूंढना शुरू किया। यहाँ-वहाँ करते-करते हम गांधी-निधि सेवा-केन्द्र पर आये। वहाँ से गोपाल को बुलाने के लिए किसीको भेजना ही चाहता था कि गोपाल दिखाई पड़ा। यही है, मुजरिम बेचारा गोपाल, जिसकी आड़ लेकर लोग अपने दिमाग पर दीवाल कर ग्रामदान-विचार नहीं समझना चाहते हैं। एकदम भोला-भाला चेहरा। साफ कुरता, घुटने भर की धोती, उम्र ६०-६५ की होगी। थोड़ा पढ़ा-लिखा भी दीखा।

मैंने पूछा, "गोपाल खरियाजी, आपका ग्रामदान कैसा चल रहा है?"

"क्या चलेगा बाबू, बड़ा हौसला था, पर सब बिखर गया।"

"फिर पड़ोस के लोग आपकी शिकायत क्यों करते हैं?"

"मेरा गाँव और ग्रामीण, दोनों दस कदम की दूरी पर हैं। मैं गाँव को बना नहीं सका, तो बिगाड़ा भी नहीं है।" वह बोला।

गोपाल के आग्रह पर गाँव की परिक्रमा पर निकला। दूर से ही गाँव आकर्षक मालूम होता है। कल्याण-विभाग से सैकड़ों गाँव बने होंगे, पर ऐसा ठोस मकान एवं इस प्रकार की योजना मैंने कहीं नहीं देखी। बीच में एक बड़ा-सा प्रार्थना-भवन, उसकी एक ओर धर्म-गोला तथा दूसरी ओर उद्योग-मंदिर, इनके चारों ओर चौड़ा रास्ता और रास्ते के बाद ग्रामीणों के पंक्ति-बद्ध मकान। गाँव के दक्षिणी छोर पर गाँव के खेत नजर आते हैं। ३३० बीघे ग्रामीणों की कुल जमीन। इस जमीन के बाद काली पहाड़ी के धुले हुए चट्टानों पर से बहती हुई जलधारा पर सूर्य की किरणें पड़ रही हैं। ऐसा मालूम होता है, वह पहाड़ी ग्रामीण बहनों की तरह चांदी के गहने पहनी हो! गोपाल ने एक बड़ा सा तालाब खोदकर पहाड़ी का पानी बटोर लेने की व्यवस्था कर ली है। तालाब की ओर चट्टानों से चबूतरा बना है। पास-पड़ोस के लोग वहाँ के साफ जल में स्नान के लिए आते हैं।

गोपाल बता रहा है—"इसी वृक्ष की छाया में बहन विमला ठकार ने इस ग्रामदान का उद्घाटन किया था।" सन् '५७ में श्री वैद्यनाथ बाबू की प्रेरणा से वह भूदान के लिए पागल बना था—"कैसा अच्छा लगता था उस समय! प्रातः चार बजे सामूहिक प्रार्थना, सामूहिक श्रमदान, सामूहिक योजना। गाँव में शादी-ब्याह की व्यवस्था ग्राम-स्वराज्य समिति के द्वारा होती है।"

ग्रामीण पड़ोसी गाँव की स्वतंत्रता देखकर ललचाने लगे। साहूकार ने नारा लगाया कि गोपाल संस्था और सरकार से हजारों-हजार रुपया लाता है, पर गाँववालों से श्रमदान कराकर पैसा बचा लेता है। संस्था के सेवकों को भी गोपाल खरिया का खरा स्वभाव खलता था।

सबसे दर्दनाक हुआ, गोपाल की स्वयं की चोरी। पक्ष, पंथ; दोनों की बिलाव दृष्टि गोपाल के समर्थ व्यक्तित्व पर पड़ी। गोपाल एसेम्बली का उम्मीदवार बनाया गया। और वह चलाता है क्रिस्तानी आदिवासियों के मुकाबले पाठा-समाज। गोपाल की व्यापक बदनामी का रहस्य उसकी इन्हीं दो भूलों में है।

उमरा-तिलायडीह का ग्रामदान विफल हुआ, लेकिन आज भी वहाँ की ग्रामसभा चलती है, धर्मगोला जमा होता है, उद्योग चलता है, सबसे बड़ी बात, इस गाँव में कोई भूख के कारण नहीं मर सकता, परमात्मा की कृपा से भारत के सभी ग्राम उमरा-तिलायडीह की तरह आज की भी स्थिति तक पहुंच जाय तो भारत की दरिद्रता की कालिख धुल जाय।

—निर्मलचन्द्र

• सरकार पर असली अंकुश जनता की प्रतिकार-शक्ति का होता है। आजकल विधान सभा और संसद में बहुत 'विरोध' दिखाई देता है, लेकिन बाहर जनता इतनी कमजोर है कि किसी गलत चीज का मुकाबिला नहीं कर सकती। उसकी यह कमजोरी दूर होनी चाहिए। उसमें इतनी शक्ति होनी चाहिए कि सरकार के अन्याय का प्रतिकार कर सके। निर्वाचन-मंडल और ग्रामसभाओं का यह काम होगा। तभी सरकार जनता की होगी। अब दलों की सरकार समाप्त करके जनता की सरकार बनानी है।•

जिलादान मानी क्या ?

जिलादान के मानी है ग्रामराज की नींव डालना। ग्रामराज की कल्पना गांधीजी की है। हिन्दुस्तान की आजादी के दिन दिल्ली में एक बड़ा समारोह हुआ। लार्ड माउण्टबेटन ने जवाहरलाल नेहरू को सत्ता सौंप दी। कहा जाता है कि १५ अगस्त को दिल्ली में लोगों के हाथ में सत्ता सौंप दी गयी, जिस सत्ता के लिए २५ वर्षों तक गांधीजी ने युद्ध किया। स्वाधीनता दिलाने में गांधीजी का सबसे बड़ा हाथ था। आपको यह जानकर ताज्जुब होगा कि दिल्ली के इस समारोह में गांधीजी दिल्ली में नहीं थे। गांधीजी का रहना आवश्यक था, क्योंकि उन्हींकी वजह से लोगों को स्वाधीनता मिली थी। जवाहरलाल आदि ने गांधीजी से बहुत आग्रह किया कि आप कम-से-कम एक दिन के लिए दिल्ली आयें, पर उन्होंने इनकार किया। वे दिल्ली क्यों नहीं आये? उन्होंने इनकार करते हुए कहा, "यह मेरे स्वप्नों का स्वराज्य नहीं है।" वे उन दिनों कलकत्ता में थे। वहाँ हिन्दू-मुस्लिम आपस में एक-दूसरे का गला काट रहे थे, लड़ रहे थे। उन्होंने कहा कि मेरे स्वप्नों का स्वराज्य होता तो हिन्दू-मुसलमान आपस में एक-दूसरे का गला नहीं काटते।

स्वराज्य के १२ वर्ष हुए, पर अभी तक हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे का गला काटते हैं। अभी भी देश में अस्पृश्यता कायम है। अभी भी शंकराचार्य जैसे लोग देश में हैं, जो कहते हैं कि यदि किसी अछूत को मैं स्पर्श करूँगा तो घर जाकर स्नान जरूर करूँगा। अभी कुछ दिनों पहले कुछ राज्यों में चुनाव हुए। इस देश में सबको मतदान का अधिकार मिला है। यही लोकराज्य का अर्थ है। राज्य बनाना या तोड़ना, यह लोगों के हाथ है। इस चुनाव में क्या हुआ? हजारों हरिजनों को जबर्दस्ती, बलपूर्वक मत देने से रोका गया। क्या उनके लिए स्वराज्य हुआ है? आज देश में मुट्ठी भर लोगों के लिए स्वराज्य हुआ है। १५ अगस्त को दिल्ली में सूर्योदय हुआ। परन्तु भारत के ७ लाख गाँवों में उस समय अन्धकार था, रात थी, और आज भी अन्धकार है। लोग कहते हैं कि दिल्ली में स्वराज्य हुआ, पर हम तो अन्धेरे में हैं। १५ अगस्त को गांधीजी ने कहा कि यह मेरा स्वराज्य नहीं है, दिल्ली, भुवनेश्वर के लिए स्वराज्य आया है। आपमें से जो लोग गये होंगे, उन्होंने देखा होगा वहाँ बड़ी-बड़ी इमारतें हैं, बड़े-बड़े रास्ते हैं, बिजली है, बड़ी बड़ी दूकानें हैं। उसकी तुलना में देहातों में क्या है? करीब-करीब अंधेरा है। देहात के जीवन के बारे में पहले सोचा जाय, यह गांधीजी चाहते थे।

खून चूसने का काम एक रास्ते से नहीं हो रहा है, अनेक रास्तों से हो रहा है। गरीब गरीब बनता जा रहा है और धनी धनी बनता जा रहा है। ज्यादा सुविधा शहरों में है। गाँवों में अधिक लोग रहते हैं, पर सुविधा कम है। आज व्यवस्था ऐसी है कि सिर नीचे और पैर ऊपर हैं। सारा समाज सिर पर चल रहा है, पैर पर नहीं। सारा उत्पादन शहरों में जाता है। गांधीजी यह शोषण-पद्धति बदलना चाहते थे।

ग्रामराज और पाकिस्तान से लड़ाई, ये दोनों बातें एक जगह बैठती नहीं। जबतक ग्रामराज नहीं होगा तबतक लड़ाई बंद नहीं हो सकती। इसलिए ग्रामराज की स्थापना करनी है, लड़ाई रोकनी है। आज सत्ता और सम्पत्ति केन्द्रित है। अपने देश में ही नहीं, सारी दुनिया में यही सिलसिला चल रहा है। दस्तखत करनेवाले को ज्यादा पैसा और हल चलानेवाले को कम पैसा! गांधीजी चाहते थे कि समाज के सब लोग श्रम करें। गांधीजी ने कहा था कि मेरा पेशा खेती का और बुनकर का है। यह क्यों कहा? उनका कहना था कि किसान सबको खिलानेवाला और बुनकर सबको कपड़ा देनेवाला है। यह लोगों की बुनियादी आवश्यकता है, राष्ट्रपति से किसान को पैसा क्यों कम मिलना चाहिए? गांधीजी कहते थे कि नाई को और वकील को समान मजदूरी मिलनी चाहिए। गांधीजी ने कहा था कि राजधानियों में जो सत्ता है वह सूख जानी चाहिए।

हम लेने को तैयार हैं, देने को कम तैयार हैं। आज भी देते हैं तो लाभ के कारण देते हैं। अधिक भूमिवाले देते नहीं हैं। गरीबों के लिए पहले त्याग, उसके बाद लाभ। ग्रामसभा के माने हैं कि हमने जीवन में त्याग स्वीकार किया है। गांधीजी कहते थे कि मानव का जीवन त्याग है, भोग नहीं।

—शंकरराव देव

आजाद गाँवों का आजाद भारत

आज हमारे देश की योजना हमारे हाथ में नहीं है। भारत देखता है कि पाकिस्तान का क्या बजट है, सेना पर उसने क्या खर्च करने का सोचा है और तदनुसार अपना बजट बनाता है। पाकिस्तान भी भारत की तरफ देखकर अपना बजट बनाता है। रूस और अमेरिका भी, ऐसे ही एक-दूसरे की ओर देखकर अपना बजट बनाते हैं। यानी आपकी योजना पाकिस्तान के हाथ में और उसकी आपके हाथ में है। जो राष्ट्र योजना बनाने में आजाद नहीं, वह वास्तव में आजाद नहीं, गुलाम है। अब यही देखिए, भारत सरकार के ध्यान में आता है कि शिक्षा पर इतना-इतना खर्च करना चाहिए, फिर भी नहीं करती, क्योंकि युद्ध पर बहुत खर्च करना पड़ रहा है। इसका नाम है गुलामी। जब-तक एक-दूसरे का इस तरह डर बना हुआ है, तबतक कोई भी राष्ट्र स्वतंत्र नहीं।

हमारा देश खेतीप्रधान देश है, उद्योगप्रधान नहीं। फिर भी अगर खेती की ओर ध्यान न दिया जायेगा, तो देश को खतरा है। सरकार यह समझती है, पर लाचार है बेचारी, उसको क्या दोष दिया जाय! जबतक गाँव-गाँव आजाद नहीं बनता, गाँवों की ताकत नहीं बनती, तबतक केन्द्र कमजोर रहेगा। देश तबतक सुरक्षित नहीं बन सकता, जबतक गाँव-गाँव मजबूत नहीं बनते। इस वास्ते जब पाकिस्तान से लड़ने का मौका आया, तब शास्त्रीजी ने एक नारा चलाया—"जय जवान, जय किसान"। लड़ाई का मौका है तो, "जय जवान" कहना ठीक है, पर "जय किसान" क्यों कहा लड़ाई के मौके पर? इसलिए कि गाँव-गाँव में उत्तम खेती हो, गाँव अपने पाँव पर खड़े रहें, गाँवों की चिंता सरकार को ज्यादा न करनी पड़े, इस हालत में सरकार परदेश से लड़ सकती है। लेकिन अगर उलटा हुआ और उस हालत में बाहर से हमला हुआ, तो क्या लड़ोगे? फिर अमरीका से कहेंगे—हे अन्नपूर्णा देवी! अन्न पूर्ण करो! हमारा पालन-पोषण, रक्षण, शिक्षण, सब अमरीका करेगा। और आप रहेंगे आजाद। कौन स्वतंत्रता है यह! आजकल कोई राष्ट्र किसी राष्ट्र को अपने कब्जे में नहीं रखेगा। किसीका कब्जा लेना महँगा पड़ता है। इसलिए कब्जा नहीं लेंगे, पर उनका प्रभाव आप पर रहे, इसका पूरा प्रयत्न करेंगे। आज हमारे आजाद देश की यह स्थिति है।

इसलिए जब शिक्षकों की शक्ति खड़ी होगी, तब भारत खड़ा होगा। आज शिक्षक की हैसियत नौकर की है। हमारे भारत में, प्राचीन काल में शिक्षकों पर, आचार्यों पर किसी बादशाह का भी अंकुश नहीं रहता था। आज शिक्षक सरकार के नौकर हैं। क्या शिक्षा देनी है, यह सरकार तय करती है और तद-नुसार शिक्षक सिखाता है।

बाबा चाहता है कि शिक्षकों की हैसियत फिर से खड़ी हो। शिक्षक गाँव के 'फ्रेण्ड, फिलासफर एण्ड गाइड' बन जायँ, तो गाँवों को खड़ा करने का काम जल्दी होगा। बिहार में पौने दो लाख शिक्षक हैं और सत्तर हजार गाँव हैं। हर गाँव के पीछे ढाई शिक्षक हैं। ग्रामदान-प्राप्ति के बाद एक-एक शिक्षक एक एक गाँव के साथ सम्बन्ध रखेगा। तभी आजाद गाँवों के आजाद देश की स्थिति फिर आयेगी।

—विनोबा

हजारीबाग, १-५-'५३

• देश में कुल ८० लाख तपेदिक के रोगी—५ लाख हर साल मरते हैं।

बूढ़ों को मरने दो—

• इंग्लैण्ड के डा० केनेथ विकरी ने कहा है कि अस्पतालों में जो सुविधाएं हैं उनका ज्यादा लाभ बूढ़े लोग ले रहे हैं। कई जवान लोगों को इस कारण जगह नहीं मिलती, क्योंकि सब जगहें बूढ़ों से भरी रहती हैं। उनकी राय है कि ८० के आयु के बाद जो बुढ़ापे के कारण मरने की ओर हो उसे विज्ञान की मदद से बचाने की कोशिश न की जाय। उसे मरने दिया जाय। विज्ञान की सेवा पहले युवकों को मिलनी चाहिए।

ज्यादा बच्चे समस्या, बूढ़े समस्या और जवान तो समस्या हैं ही। आज के गलत समाज में हम सब एक-दूसरे के लिए समस्या बन गये हैं। बूढ़े इसलिए समस्या बने हुए हैं, क्योंकि उन्हें भोग की वे सारी चीजों की आवश्यकता है जो जवान को चाहिए। वानप्रस्थी बूढ़ा समाज की समस्या नहीं, उसका उप-योगी सेवक होता है। लेकिन जीवन के आखिरी दिन तक गृहस्थ बन रहने की लिप्सा बहुत-सी समस्याओं की जड़ है।

सच्चा अर्थशास्त्र

मई के प्रथम सप्ताह की बात है। मैं एक बस-स्टैण्ड पर लाइन में खड़ा था। थोड़ी ही देर में एक महाशय मेरे पीछे आकर खड़े हो गये। वह शुद्ध टेरोलीन के कपड़े और बाटा के हाईक्लास जूतों में शोभायमान थे। एक हाथ में चमड़े का बैग व दूसरे में गोल्ड फ्लेक की सिगरेट तथा आँखों पर काला चश्मा लगा था। पास ही सड़क पर एक छोटा-सा 'वर्कशाप' था, जहाँ लोहे के छोटे-छोटे पुरजों पर पालिश का काम हो रहा था। कुछ कारीगर लेथ मशीन पर भी काम कर रहे थे। वर्कशाप के नीचे सड़क पर जहाँ हम लोग बस के लिए खड़े थे आठ दस वर्ष के तीन बच्चे मशीन से सम्बन्धित कुछ पुरजों की सफाई कर रहे थे। उनके हाथ, कपड़े व शरीर कालिख से पुते हुए थे। उन तीनों की दृष्टि मेरे पास खड़े अप-टू-डेट साहब पर थी। साहब ने सिगरेट का धुआँ छोड़ते हुए तथा अपना चश्मा हाथ में लेते हुए बच्चे से पूछा, "रोज कितने मिलते हैं तुमको ?"

"हमें तीस रु० महीना मिलता है।"—बच्चों ने जवाब दिया।

"काम कितना करना पड़ता है ?"

"सुबह आठ बजे से रात के आठ बजे तक।"

"हैं! बारह घंटे!" इतना कहकर साहब ने खड़े लोगों को भाषण सुनाना शुरू कर दिया—"हमारी सरकार ऐसी निकम्मी है कि स्कूल जानेवाले बच्चों को जो लोग काम पर लगाते हैं, उनके खिलाफ कुछ नहीं करती। अभी तो इन बच्चों की उम्र पढ़ने-लिखने की है!"

बच्चों ने कहा, "यदि सरकार हमें पढ़ने के लिए कहेगी भी तो हम नहीं जायेंगे!"

"क्यों ?"

"साहब! आप बड़े आदमी हैं। आप दफ्तर में बाबू बन-कर काम करते हैं। खूब रुपया मिलता है। आपके बच्चे स्कूल जा सकते हैं। हम लोगों के घर पर तो एक वक्त का भोजन भी नहीं रहता है। हम पढ़ेंगे तो खायेंगे क्या ?"

बाबूजी चौंके और बोले, "पढ़ेंगे तो खायेंगे क्या? अरे दुनिया तो खाने-कमाने के लिए ही पढ़ती है। तुम उल्टी ही बात कहते हो!"

"हाँ, यह सब आपके लिए है!"

"क्या तुम्हारे माँ-बाप नहीं हैं ?"

"सब हैं। पर माँ-बाप क्या करें! वे चाहें तो भी ज्यादा नहीं कमा सकते, और न हमें पढ़ा सकते हैं। हमारे घरों में चमड़े का काम होता था। गाँव के चार परिवार इस काम को करते थे। सभी का धन्धा चलता था और खाने को रोटी मिल जाती थी। हम पहले दर्जे में पढ़ते भी थे। धीरे-धीरे हमारे यहाँ चमड़े का काम बन्द हो गया। किसे पसन्द आये हमारा जूता! बाटा का जूता सबको भाता है। जब गाँव में पेट नहीं भरा तब हम दिल्ली भाग आये हैं। हमारी माँ चौका-बर्तन करती है, बाप आइसक्रीम बेचता है और हम यह नौकरी। सब काम करते हैं तो शाम को रोटी मिल जाती है।"

बच्चों के मुँह से ऐसी अर्थशास्त्र की बात सुनकर साहब चुप रह गये। अन्य दूसरे यात्री बच्चों की इस होशियारी भरी बात से प्रसन्न भी थे और हम जैसे कुछ लोग दिल-ही-दिल भारत के इस अर्थशास्त्र के प्रति खिन्न भी! समाज का एक अंग दूसरे अंग के दुःख-दर्द को कब समझेगा ? क्या कभी समझेगा भी ?•

• सन् १९६९-७० में सरकार ने जो कर लगाये हैं उनमें—

७१ प्रतिशत प्रशासन में खर्च होगा,

१४ प्रतिशत विकास मे, और

१५ प्रतिशत प्रतिरक्षा में लगेगा।

इन आँकड़ों से ज्ञात है कि देश का प्रशासन कितना बोझिल और खर्चीला होता जा रहा है और नतीजा क्या है? सरकार का खर्च बढ़ता है, लेकिन सरकार समस्याएं कितनी हल कर पाती है? दिनों दिन यह बात साफ होती जा रही है कि सरकार अपने और अपने नौकरों को पालने के लिए कर लगाती है, न कि समाज की सेवा के लिए। समाज को अपनी सेवा चाहिए तो पहले सेवा के साधनों को सरकार के हाथों में देकर फिर उससे माँगा जाय यह उल्टा काम क्यों ?

प्रीत की नयी रीत

नतिनी के जनम पर सोहर गाने और झूम-झूमकर नृत्य करने का नया रिवाज पारवती ने शुरू क्या किया कि गाँव में एक नया बवंडर खड़ा हो गया !

रामदेव की बहिन तारा ने पारवती के घर से बाहर निकलते समय मीठी चुटकी लेते हुए कहा—"जिसके घर मे गंगा बहती हो वह भला काशीजी में गंगा नहाने क्यों जायेगा ? लो भैया ! अब थोड़े ही समय में अपना गाँव इन्द्रलोक हो जायेगा। घर-घर में अप्सराएं अपने-अपने देवता का दिल बहलायेंगी। घर के मरदों को अब घर के बाहर झाँकने-ताकने की जरूरत नही रहेगी।"

चौधिया ने तारा की ये बातें सुनी तो फौरन समझ गयी कि तीर का निशाना किसे बनाया जा रहा है। उसने तारा की ओर एक आँख दबाकर देखते हुए कहा—"हाय, मेरी टिल्लो को तो किसीने पूछा ही नही। यह छरहरी काया, यह ऊँटनी जैसी चाल और किसीका डँस लेने के लिए तैयार नागिन जैसे सिर के ये घुंघराले बाल ! मेरी लाड़ली ननद किस अप्सरा से कम है ?" फिर रामदेव को लगभग धकियाते हुए चौधिया ने सुनाया—"ए ननदोई भाई ! तुम नहीं समझते, लेकिन मैं अपनी लाडली ननद की पीर को समझती हूँ। दोपहर को नृत्य मे भले ही सह ले जाय, लेकिन सावन-भादों की अँधियारी रात ये कैसे झेल पायेंगी ?"

रामदेव ने चौधिया की बातों का रुख दूसरी ओर मोड़ते हुए कहा— "रस्सी जल गयी, लेकिन ऐंठन ज्यों की त्यों है ! अभी भी तुम्हारा नाचने-गाने का मन हो जाता है ? ४ बच्चो की माँ हो गयी हो। जरा कभी-कभी आईने में अपने खिचड़ी बालों की ओर भी नजर डाल लिया करो।"

चौधिया ने रामदेव को आड़े हाथों लेते हुए कहा—"लाला, मैं जब यहाँ आयी तो तुम लंगोटी पहने गली में गुल्ली-डंडा खेलते थे। गुल्ली-डंडा छोड़कर न जाने कब तुम कुदाल-फरसा चलाने लगे ! तुम्हारी बंसरी तो मैंने कभी सुनी नही। राम को तो धनुष तोड़ने के बाद सीताजी का संग नसीब हुआ था मगर तुम्हें घर बैठे-बैठे ही बहुरिया मिल गयी ! तुम क्या जानोगे कि रस्सी की ऐंठन क्या चीज होती है। अगर इस जमाने मे कही फिर से स्वयंवर होने लगे तो तुम्हारे जैसे न जाने कितने कुंवर जिन्दगी भर कुंआरे ही रह जाते !"

आपकी ननद तारा को अभी यह समझ में नही आया कि दीदी पारवती लाख में एक है। वह हम औरतों का जनम-जनम की जहालत से छुटकारा दिलाना चाहती है। वह कहती है कि भगवान की निगाह में लड़का-लड़की समान हैं। वेद-शास्त्र मे भी दोनों को एक-सा मानते हैं। फिर लड़की के जनमने पर हम नाहक अपना मन क्यों छोटा करें ?

अपनी खुशी के लिए गाना-नाचना और आनन्द मनाना एक बात है और पैसा कमाने या दूसरे को रिझाने के लिए हावभाव दिखाना अलग बात है। इन दोनो मे उतना ही भेद है, जितना गंगाजल और गड़ही के पानी मे। पारवती दीदी ने जो कुछ नयी रीत चलायी है वह प्रीत की रीत है, अनरीत नही।

चौधिया जब रामदेव की ओर देखते हुए इतनी बातें फर्राटे से बोल गयी तो रामदेव की काकी अपनी हुक्की पर से चिलम उतारते हुए बोलीं—"कितना जमाना देख चुकी, अभी और न जाने क्या क्या देखना है ! औरत की हया चली जाती है, फिर वह कही की नही रह जाती। हमारी इतनी जिन्दगी बीत गयी, पर किसी आदमजाद को हमने आँख उठाकर नहीं देखा। हमे भी कभी चहकने-फुदकने की जिन्दगी मिली थी, लेकिन हमने तो बस जाँगर कूटकर घर के प्राणियों को खिलाया-जिलाया। और इसीमे हमारी जिन्दगी बीत गयी। अब नयी बहुरियों का जमाना है। चाहे घर बसायें या बहावें ! औरत जात नाच सकती है, मर्द को अपने इशारे पर नचा सकती है, लेकिन वह मरदों की बराबरी कैसे कर सकती है ?"

चौधिया ने कहा—"मैया, तुम्हारा राम राम कहने का समय है। वही करो। जमाने का बखान करने के पचड़े में नाहक पड़ती हो। जमाने की हवा के साथ बगिया को लहराना ही पड़ता है।"

— त्रिशंकु

वैभव की फैलती दुनिया और टूटता-बिखरता आदमी

आदमी की भौतिक जरूरतों की और उसके भोग की क्षमता की भी एक सीमा होती है, जिसके बाद भोग से उसके अन्दर अरुचि पैदा हो जाती है। वस्तुओं के भोग से ऊबकर मनुष्य-मनुष्य के सम्बन्धों की खोज में लगता है, लेकिन कोशिश होती है कि *मनुष्यों का समुदाय मिलकर समाधान की कोई दिशा ढूंढें*, या फिर वह समाज से विमुख होकर ईश्वर की तलाश में भागता है।

आज इंग्लैण्ड-अमेरिका आदि देशों में वहाँ की नयी पीढ़ी के लोग भौतिक वैभव से ऊबकर मन के समाधान के लिए तरह-तरह की कोशिशें कर रहे हैं। इन्हीं कोशिशों में एक कोशिश है—स्त्री-पुरुष के मुक्त मैथुन-सम्बन्ध। शायद उनको इसका आभास अभी नहीं मिल पाया है कि स्त्री-पुरुष का मैथुन-सम्बन्ध भी भौतिक भोग का ही एक रूप है और उसकी भी एक सीमा है।

इस मुक्त मैथुन-सम्बन्ध के परिणाम कितने भयानक हैं, यह नीचे के तथ्यों से पता चल सकेगा :

(१) इन देशों में *एक नारा लग रहा है, जब जैसा जो कुछ* करने को जी चाहे, उसे करो।" जिसके परिणामस्वरूप पारिवारिक जिन्दगी के टुकड़े हो रहे हैं, आदमी-आदमी के सम्बन्धों में कोई स्थिरता और सन्तुलन नहीं रह गया है। सीधी-सी बात है कि अपने अन्दर के विकारों को समझदारी के साथ कम करने की कोशिश के बजाय उसको उभड़ने का अवसर देंगे, तो आदमी का आदमी के साथ रहना असम्भव ही हो जायेगा।

(२) गुप्त रोगों, खासकर गर्मी और सुजाक से पीड़ित मरीजों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। अमेरिका के डाक्टरों ने यह घोषणा की है कि उत्तरी अमेरिका और पूरे पश्चिमी जगत् में इन रोगों को रोक थाम अब सम्भव हो गयी है।

(३) इसके परिणामस्वरूप एक प्रकार का कैंसर रोग तेजी से फैल रहा है। दुनिया की प्रसिद्ध अंग्रेजी साप्ताहिक पत्रिका 'न्यूजवीक' के २१ अक्तूबर '६८ के अंक में प्रकाशित एक रिपोर्ट में कहा गया है कि गुप्त रोगों के कारण चालीस हजार महिलाओं को इस प्रकार का कैंसर रोग हर साल होता है, जिसका कोई इलाज नहीं है।

(४) अकेले अमेरिका में हर साल तीन लाख अवैध बच्चे पैदा होते हैं! वहाँ का हर चौदहवाँ बच्चा नाजायज सम्बन्धों से पैदा होता है। इन अवैध बच्चों की अविवाहित माताओं में १०० में ४४ माताओं की उम्र २० वर्ष से भी कम होती है! अमेरिका का महानगर न्यूयार्क तो कई बातों की तरह इस मामले में भी सबसे आगे है! वहाँ पैदा हुए हर छः बच्चों के बाद एक बच्चा नाजायज सम्बन्धों से पैदा होता है। इंग्लैण्ड में भी तेरह बच्चों में एक बच्चा नाजायज सम्बन्धों से पैदा हुआ है और अंदाजन हर सात में से एक बच्चा शादी के दायरे से बाहर के *सम्बन्धों का है। आस्ट्रेलिया में बारह में एक, न्यूजीलैंड में* में आठ में एक बच्चा नाजायज सम्बन्धों से पैदा हुआ है। यहाँ तक कि सोवियत रूस, जो ऊँची नैतिकता का दावा करता है, वहाँ भी हर नौ बच्चों के बाद एक बच्चा बगैर शादी के हुए सम्बन्धों से पैदा हुआ है।

('यू० पी० आई०', मास्को, २६ अप्रैल १६६७ के अनुसार)

(५) बहुतेरे आधुनिक लोग यह कहते हैं कि जायज कहे जानेवाले और नाजायज कहे जानेवाले इन बच्चों में कोई फर्क नहीं है। नैतिकता का सवाल कुछ देर के लिए छोड़ भी दिया जाय तो भी शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से ही कुछ महत्त्व के तथ्य सामने आये हैं, जो दर्दनाक हैं। पेरिस के एक *बड़े डाक्टर ने चेतावनी दी है कि नाजायज बच्चे औरों की तुलना* में अधिक बेडौल और मरीज होते हैं। अल्पायु में उनकी मृत्यु अधिक होती है। पिता का साथ न होने के कारण उनका अच्छी तरह शारीरिक और मानसिक विकास नहीं होता, और माँ-बच्चे के सम्बन्ध सामान्य नहीं रहते, आखिर में बच्चा दिमाग से कमजोर होता जाता है, मानसिक रोग भी उसके बढ़ते जाते हैं।

(६) शिकागो के एक विश्वविद्यालय में मानसिक रोगियों की जाँच करने पर पता चला कि १०० में ७२ से ८६ तक की संख्या के रोगियों का नाजायज मैथुन-सम्बन्ध एक *या* एक से अधिक लोगों के साथ हुआ है!

(७) वास्तव में इस आजादी से पश्चिम का मनुष्य अधिक सुखी हो, ऐसा दिखाई नहीं देता और शायद इस उन्माद को बढ़ाते जाने या खुली छूट देने से वह कभी सुखी हो नहीं सकता।

तब, आखिर क्यों मनुष्य लगातार इसी ओर बढ़ रहा है? सुख की तलाश में क्यों वह रोग और अशान्ति के पंजे में जकड़ता जा रहा है? कौनसी शक्ति उसे ऐसा करने के लिए मजबूर कर रही है? (क्रमशः)

'गाँव की बात' : वार्षिक चन्दा : चार रुपये, एक प्रति : अठारह पैसे
सम्पादक : राममूर्ति : सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१

नहीं होता। 'अक्कोधेन जिने कोध'—क्रोध को अक्रोध से जीतो।

यही महात्मा गांधी ने कहा। और मैं मानता हूँ कि गांधीजी ने सत्याग्रह वगैरह जो कुछ किया, वह 'लव दाय एनिमी' का एप्लिकेशन था। और हमने देखा कि महात्मा गांधी ने हमेशा कहा कि अंग्रेज का द्वेष हम नहीं करते, इंग्लिश राज का द्वेष करते हैं। दुर्जन का द्वेष नहीं करते, दुर्जनता का द्वेष करते हैं। यह 'एनालिसिस' आखिर तक उन्होंने सिद्ध किया। उनका इंग्लैण्ड पर उतना ही प्रेम था, जितना भारत पर था। इतनी बड़ी चीज—सत्याग्रह-शक्ति उस वाक्य में आती है।

तीसरा वाक्य ईसा ने अपने अनुयायियों को आखिर में कहा है। जाने का मौका आया, तब कहा है—मैं नहीं जाऊँगा तो वह नहीं आयेगा, वह आनेवाला है। जितना मैं नहीं दे सका, वह आपको शिक्षा देगा, उसकी तैयारी के लिए जाना होगा। लेकिन तुम एक-दूसरे पर प्यार करो। यह तो कोई बड़ी बात नहीं। अपने अनुयायियों से सभी सम्प्रदायवाले कहते हैं कि आपस आपस में प्यार करो। लेकिन आगे जोड़ दिया—'ऐज आय लव्ड यू।' जिस प्रकार मैंने अपना सर्वस्व त्याग किया, 'सेक्रिफाइस' किया तुम्हारे लिए, वैसा तुम एक दूसरे के लिए करो। अपने मित्रों के लिए समर्पण करें, इससे अधिक प्रेम क्या किया जा सकता है इस सृष्टि में? तो वह तुम करो, ऐसा संदेश देकर वह महापुरुष चला गया।

यह तो मैंने आपके सामने जीसस क्राइस्ट की 'टीचिंग्स' को, जिस प्रकार मैं समझा हूँ और जिस प्रकार अमल करने की कोशिश कर रहा हूँ आपके सामने रखा। टूटा-फूटा अमल है मेरा, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि उन्होंने जो रास्ता दिखाया है, उसी रास्ते पर जाने का यह प्रयत्न है।

ऐसे तो आप लोग जिनको क्रिश्चन समझते होंगे, उस कौम में मेरी गिनती आप उदारता से करेंगे, तो करेंगे। लेकिन साम्प्रदायिकतापूर्वक तो नहीं करेंगे। कहेंगे, आखिर यह हिन्दू है। लेकिन ईसा मसीह ने ऐसा भेद नहीं किया है। उन्होंने कहा है—'माई फेदर्स हाउस इज मेनी मैन्शन्स,' इस वास्ते ईसा मसीह का एक मकान है, जिसको आप क्रिश्चन कहते हैं, एक मकान है; जिसको आप वेदान्त कहते हैं; एक है, जिसको आप इस्लाम कहते हैं; एक है, जिसको आप बौद्ध कहते हैं। ये सारे उनके मकान हैं। और ईसा मसीह कोई 'परमनल' तो थे नहीं 'ही इज टुडे, टुमारो एण्ड फारएवर।' हमेशा के लिए हैं। लेकिन मैं दावा करना चाहता हूँ कि मैं क्रिश्चन भी हूँ। यह 'भी' आप समझेंगे, तो बहुत बड़ा लाभ होगा दुनिया को। इसको मैंने नाम दिया है 'भी वाद'। मैं क्रिश्चन भी हूँ, हिन्दू भी हूँ, मुसलमान भी हूँ और बौद्ध भी हूँ। 'भी हूँ।' हम 'इनक्ल्यूजीव' हों, 'एक्सक्ल्यूजीव' नहीं। मैंने एक भाई से पूछा था कि क्या भिन्न-भिन्न चर्चवाले क्रिश्चन लोग एक होते हैं? मैं मानता हूँ प्रार्थना के लिए भी एक नहीं होते। वे कहने लगे कि 'आजकल होते हैं।' तो मैंने कहा, बड़ी कृपा है आपकी भगवान ईसा मसीह पर।

मत अनेक : चित्त एक

मतभेद तो होते ही हैं धर्म में। हिन्दू धर्म में, भी कहाँ नहीं हैं? षड् दर्शन, सांख्य, योग, वेदांत, मीमांसा, अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत। तत्त्व-विचार में भेद होते हैं। लेकिन चित्त एक हो सकता है। विचारों में भेद होता है तो सबका 'सिथेसिस' करना चाहिए; सबके अनुभवों का लाभ लेना चाहिए। और यह नहीं मानना चाहिए कि भगवान का अनुभव एकमेव हमको ही है। इस्लाम मानता है कि—"ला नु फर्रिकु"—हम फरक नहीं करते, "बैन अहदिम्मिरं सुलिही"—जितने रसूल हैं। भगवान के भेजे हुए हैं—रामकृष्ण, गौतम बुद्ध, महावीर से लेकर जीसस क्राइस्ट, इब्राहीम, मुहम्मद—इनमें हम भेद नहीं करते और हम सब रसूलों में मानते हैं। मेरे प्यारे भाइयो! कोई भी सच्चा धर्म 'एक्सक्ल्यूजिव' नहीं हो सकता। वह 'इनक्ल्यूजिव' होगा—तुम भी मेरे हो, तुम भी मेरे हो।

सर्वधर्म-समन्वय की कामना

आप शायद जानते हों कि पच्चीस तीस साल लगातार जीसस क्राईस्ट का अध्ययन करके उनकी 'टीचिंग्स' के सार की एक छोटी-सी किताब मैंने तैयार की है। उसके शीर्षक संस्कृत में दिये हैं। 'कुरान शरीफ की इसी प्रकार अध्ययन करके उसका भी सार निकालकर 'कुरान-सार' नाम से प्रकाशित किया है। बौद्धों के 'धम्मपद' का भी अध्ययन करके उसको 'रिअरेंज' किया है। गीता पर भी एक छोटी-सी कमेंटरी लिखी है। 'गीता-प्रवचन' के नाम से वह हिन्दुस्तान की सब भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी है। सिक्खों का ग्रंथ 'जपुजी' पर भी मैंने कुछ लिखा है।

मैं कहना चाहता हूँ कि बाबा सब धर्मों का समन्वय चाहता है। सब धर्मवालों का हृदय एक हो और सब मिलकर बुराई को मुखालिफत करें। आज स्थिति यह है कि और कई दूसरी बातों में तो सब इकट्ठा बैठकर बात कर लेंगे, पर प्रार्थना के समय भगवान का नाम लेने के समय सब दूर दूर भाग जायेंगे—मानो, लाठी-चार्ज हुआ हो! यानी भगवान जो सबको जोड़नेवाला था वही सबको तोड़नेवाला साबित हुआ। इसलिए मैंने नुक्ता निकाला है मौन प्रार्थना का। उसमें सब इकट्ठा प्रार्थना कर सकते हैं। आज अपने-अपने अभिमान के कारण सतत दिलों को तोड़ने का काम धर्मों ने किया है। और आज समन्वय का, जोड़ने का काम नहीं करेंगे, तो दुनिया को खतरा है। आज के आणविक अस्त्र दुनिया को आह्वान दे रहे हैं कि 'तुम जल्द-से-जल्द हृदय से एक हो जाओ, अन्यथा खतम हो जाओ।' इसलिए यह बहुत जरूरी है कि हम जुड़ जायें।

आप जानते हैं कि मैं ग्रामदान के लिए घूम रहा हूँ और सारा बिहार प्रांत ग्रामदान में आ जाय यह मेरी कोशिश है। मैं उसके लिए आपका आशीर्वाद चाहता हूँ और बन सके तो सहयोग भी, ताकि यह राँची जिला जल्द-से-जल्द ग्रामदान में आ जाय। जहाँ क्रिश्चैनिटी है, वहाँ तो सारा गाँव एक होना चाहिए। और जहाँ आदिवासी हैं, उनकी ट्रेडिशन भी वैसी ही है। इस प्रकार से देखा जाय, तो यह जिला ग्रामदान के लिए अत्यन्त अनुकूल है।

[ईसाई-पादरियों के बीच
राँची, बिहार : १२-४-'६६]

ग्रामदान-कानून अविश्वास पर आधारित न हो

सन् '५१ में विनोबा अपनी एकांत-साधना की समाधि त्यागकर पवनार आश्रम से समाज की ओर अग्रसर हुए। बाबा के पास मुहब्बत के पैगाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। मुहब्बत के पैगाम में से करुणा की धारा 'भूदान' के रूप में निकल पड़ी। समाज ने प्रेम और करुणा के इस सत्य का 'भूदान' के रूप में दर्शन किया। आज जब हम आन्दोलन का मूल्यांकन करते हैं तो हम यही गणित रखते हैं कि कितनी जमीन भूमिहीनों में बँटी। इस आन्दोलन को भी समाज इसी संकुचित अर्थ में जानने लगा।

आन्दोलन की जबरदस्त भूल

तृषित और त्रस्त, भयाक्रान्त और शंकाशील समाज इस प्रेम-प्रसाद को ग्रहण कर पुनः वापस दौड़ गया सत्ता की छाया में, तलवार की हिफाजत पाने। कानून के आश्रय में जाने से आन्दोलन की आत्मा निकल गयी। ऐसा करने में क्या यह माना गया कि जितनी करुणा प्रवर्तक हो चुकी वह अब आगे संभव नहीं? यदि हम यह मानकर चलें तो क्या कानून समाज की क्रूरता से हमारी हिफाजत कर सकेगा? कितने भूदान-किसान आते हैं, रोते-बिलखते हैं, कहते हैं कि बाबू, हमें नहीं चाहिए भूदान की जमीन। वही जेल, मुकदमा, मारपीट, अत्याचार! कचहरी की डिग्री के कागज में दीमक लग रही है।

यदि करुणा की गंगा बहती रहती तो किसान दान की भूमि के साथ हल, बैल, बीज, पानी—सब कुछ समाज से पाता। भूदान-आन्दोलन के इतिहास में समाज पर शंका करके कानून का सहारा लेना एक जबर्दस्त भूल मानी जायेगी।

यदि 'भूदान' गाँव में ग्राम-परिवार के लिए 'वामन' के रूप में होता तो गाँव भूदान से ग्रामदान की ओर बढ़ जाता, पर ग्रामदान का *तूफान अलग से उठाना पड़ा* और आश्चर्य तो तब होता है जब आये दिन यह सूचना मिलती है कि अमुक क्षेत्र में भूदान की समस्या के कारण ग्रामदान मिलने में कठिनाई हो रही है। लेकिन इससे भी आश्चर्य तब होता है जब इस ग्रामदान को कानूनी जामा पहनाने की बेचैनी देखता हूँ।

भूदान के कानून को पढ़कर एक कवि की तपस्या की मिसाल याद आती है। कवि ने तपस्या प्रारम्भ की कि 'कवि के स्वप्न समान' नायिका का उसे दर्शन हो। अन्ततोगत्वा भगवान को कवि की माँग पूरी करनी पड़ी। जब नायिका सामने आयी, तो कवि त्राहि-त्राहि करने लगे। कमर वक्षस्थल का बोझ नहीं संभाल पा रही है। कोमल अधर से खून की धारा बह रही है। कवि ने पुनः ईश्वर का स्तवन कर उस नायिका को वापस भिजवा दिया। हमारे ग्रामदान-कानून की कथा भी इससे भिन्न नहीं है। आन्दोलन में लगे कानून के विशेषज्ञों ने कानून के कटघरे में ग्रामदान *के विचार को बाँधकर विधेयक के लिए मसविदा* दिया। वही विधेयक जब अधिनियम के रूप में सामने आया तो इतना भयानक मालूम होता है कि सात सौ वर्ष तक यह ग्रामदान की पुष्टि का कार्य रोक सकता है।

अब एक लाख से अधिक ग्रामदान हो गये। एक राज्यदान भी शीघ्र ही पूरा होगा। इधर हमने कानून के प्रयोग का नमूना भी हासिल कर लिया। अबतक के अनुभव से लाभ लेकर यदि हम कानून को शीघ्र नहीं सुधार लेंगे तो शंकर की इस जटा से ग्रामदान की गंगा आगे जानेवाली नहीं है। लेकिन कानून का मसविदा गढ़ते समय यदि हमारे मन में समाज की श्रद्धा के प्रति रंच मात्र भी शंका रही तथा उसके लिए कानून की कील लगाने का प्रयास किया तो भूदान का विचार निष्प्राण हो जायगा, पुरुषार्थ कुंठित होगा तथा कानून की कटार ही सामने बचेगी।

असली समस्या

वर्तमान कानून में भूमि का बीघा-कट्ठा दान, बेजमीन के लिए घोषणा के समय ही समर्पणपत्र में निर्दिष्ट करने की व्यवस्था कानून को पूरा सोप-पोत डालती है। *'ग्रामदान' का अर्थ 'भूक्रान्ति'* मानने के भ्रम में पड़े मन को इस प्रस्तावना से निराशा होगी। वे कहेंगे कि ठोस निष्पत्ति तो बीघे-कट्ठे की थी, इसे भी निकाल दिया तो अब ग्रामदान में बचा क्या? ऐसे विचारकों की सहानुभूति के लिए थोड़ी दूर तक मैं उनके साथ सोचता हूँ। क्या हमारे देश की समस्या मात्र भूवितरण की समस्या है या सारी समस्याओं के केन्द्र में मात्र भूमि है? यदि भूमिवितरण की समस्या है तो भूवितरण की *मर्यादा क्या होगी, जब कि प्रति व्यक्ति १० डिस*मिल जोत की जमीन उपलब्ध है? साम्यवादी देशों के प्रयोगों के बावजूद क्या राष्ट्रीयकरण का हौसला बचा है? हमारे सामने तो बस ग्रामभावना ही एकमात्र विकल्प है। ग्राम-भावना ग्रामस्वामित्व की अनुचरी बनेगी या ग्राम-भावना स्वयं स्वामिनी बनेगी? स्पष्ट है कि सबसे आगे रखना होगा ग्रामभावना को, और इस ग्राम-भावना की शुरुआत करनी होगी परस्पर-विश्वास और श्रद्धा से।

आज के कानून का अन्तरदर्शन

आज के कानून में अपने राजस्व-गाँव की जमीन का बीघा-कट्ठा समर्पण-पत्र में भरकर ही पुष्टि के लिए दाखिल करने की व्यवस्था है। इसकी परीक्षा के पहले इसके स्वरूप का सजीव दर्शन कर लें। शब्द है—'गाँव की जमीन का ५ प्रतिशत भूमिहीन के लिए', लेकिन जब इसे कानून में बाँधने लगे तो मुश्किल से १ प्रतिशत जमीन हाथ लगी। किसी गाँव में उस गाँववाले की औसत जमीन ६० प्रतिशत होती है। शेष पड़ोसी या दूर के गाँव के लोगों में निहित होती है। इस ६० प्रतिशत में से ५१ प्रतिशत भूमिवालों के शरीक होने पर ग्रामदान मान लेते हैं। कहीं-कहीं ज्यादा भूमि भी आती है। औसत ५५ प्रतिशत ही मानें तो कुल गाँव की अधिकतम ३३ प्रतिशत जमीन के मालकियत विसर्जन की घोषणा होती है। इस ३३ प्रतिशत में कम-से-कम २० प्रतिशत जमीन ऐसे अल्प-भूमिवान की है, जिसका बीघा-कट्ठा निकालकर दूसरे गरीब को देना अव्यावहारिक होगा। इस ३३ प्रतिशत में ही गाँव के ७५ प्रतिशत लोगों का निवास एवं ग्राम व्यवहार आदि की भूमि है। फिर कुछ लोगों ने पहले ही भूदान में भी जमीन दी होगी। सब मिलाकर २० प्रतिशत जमीन से अधिक में से बीघा-कट्ठा निकालने की सम्भावना गणित से भी नहीं आती। (क्रमशः)

—निर्मलचन्द्र

तत्त्वज्ञान

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को दी गयी फाँसी तथा गणेश शंकर विद्यार्थी के आत्म-बलिदान के प्रसगों से क्षुब्ध कराची-कांग्रेस-अधिवेशन के लोगों को सम्बोधित करते हुए २६ मार्च १९३१ को गांधीजी ने कहा था :—

"जो तरुण यह ईमानदारी से समझते हैं कि मैं हिन्दुस्तान का नुकसान कर रहा हूं, उन्हें अधिकार है कि वे यह बात संसार के सामने चिल्ला-चिल्लाकर कहें। पर तलवार के तत्त्वज्ञान को हमेशा के लिए तलाक दे देने के कारण मेरे पास अब केवल प्रेम का ही प्याला बचा है, जो मैं सबको दे रहा हूं। अपने तरुण मित्रों के सामने भी अब मैं यही प्याला पकड़े हुए हूं ...।"

उसके बाद का इतिहास साक्षी है कि देश ने तलवार के तत्त्वज्ञान को तलाक देनेवाले गांधी का साथ दिया। साम्राज्य-वाद की नींव हिली, भारत में लोकतंत्र की नींव पड़ी और संसार को मुक्ति का एक नया रास्ता मिला।

संसार आज बन्दूक की नाली के तत्त्वज्ञान से और अधिक त्रस्त हुआ है। विनोबा संसार को वही प्रेम का प्याला पिलाकर बन्दूक के तत्त्वज्ञान को तलाक दिलाना चाहता है और देश में सच्चे स्वराज्य की स्थापना के लिए उसने नया रास्ता बताया है।

क्या हम वक्त को पहचानेंगे और महान कार्य में वक्त पर योग देंगे?

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म शताब्दी-समिति)
दुंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

भूदान-यज्ञ २ ९-'६६ रजिस्टर्ड नम्बर एल. ३५४ [पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त] लाइसेंस नम्बर ए १७

आन्दोलन के समाचार

उत्तरप्रदेश

वाराणसी, २४ अप्रैल। अप्रैल के अन्त तक उत्तरप्रदेश में ४ नये प्रखण्डदान और ६६४ ग्रामदान हुए, जिससे प्रदेश में प्राप्त ग्रामदानों की संख्या ३० अप्रैल को १६,१८७ हो गयी और ६० प्रखण्डदान हो गये।"—यह सूचना उत्तरप्रदेश ग्रामदान प्राप्ति समिति के संयोजक श्री कपिल भाई ने एक भेंट में हमारे प्रतिनिधि को दी। उन्होंने अत्यन्त उल्लास के साथ कार्यकर्ताओं के उत्साह की चर्चा करते हुए कहा कि मई में मेरठ बुलन्दशहर और सहारनपुर में अभियान चले हैं। बड़ौत (मेरठ) प्रखण्ड में १० हजार की आबादी से अधिक के गाँव ग्रामदान में शामिल हुए हैं। देवरिया जिले मे सुकरौली और गोरखपुर जिले में गोलाबाजार प्रखण्डों में अभियान चलाये गये। उन्नाव जिले में अभी तक सिर्फ ५ ग्रामदान पुराने थे, अब वहाँ तहसील-स्तर का अभियान चलाया जा रहा है। आगरा में एत्मादपुर में ग्रामदान-अभियान शुरू किया गया है।

आपने बताया कि फर्रुखाबाद में जिलादान के लिए प्रयास चल रहे हैं। जिला परिषद् के १०० शिक्षक और २०० खादी-कार्यकर्ता ग्रामदान-प्राप्ति में लगे हैं। इस जिलादान अभियान का मार्गदर्शन करने के लिए श्री धीरेन्द्र भाई पहुँच गये हैं।

लखनऊ में २०-२१ मई को प्रदेश भर के जिला परिषद् के अध्यक्षों का महत्त्वपूर्ण सम्मेलन हुआ, जिसमें प्रदेशीय पंचायत परिषद् के अध्यक्ष श्री कालीचरण टण्डन, मुख्य मंत्री श्री चन्द्रभानु गुप्त, नियोजन एवं पंचायत-राज मंत्री श्री नारायणदत्त तिवारी तथा अ० भा० पंचायत परिषद् के अध्यक्ष श्री एस० के० डे उपस्थित थे।

उ० प्र० ग्रामदान-प्राप्ति समिति के संयोजक श्री कपिल भाई ने स्थापना के महत्त्व पर प्रकाश डाला। आपने सभी जिला परिषद् के अध्यक्षों का सहयोग "प्रान्तदान" के संकल्प-पूर्ति के लिए प्राप्त करने का निवेदन किया। इस सम्मेलन में आये हुए अध्यक्षों और अधिकारियों ने सहर्ष मदद करने का आश्वासन दिया है। इस प्रकार का सम्मेलन और उसमें ग्रामदान-आन्दोलन को व्यापक समर्थन मिलने का यह पहला ही अवसर है।

प्राकृतिक चिकित्सा-प्रशिक्षण

प्राकृतिक चिकित्सालय, बापूनगर, जयपुर–४ (राजस्थान) में १ जुलाई '६६ से एक वर्षीय प्राकृतिक चिकित्सा-प्रशिक्षण सत्र प्रारम्भ हो रहा है। [illegible] १८ से ४० वर्ष तक की आयु के मैट्रिक उत्तीर्ण अथवा समकक्ष शैक्षणिक योग्यतावाले स्त्री-पुरुषों को प्रवेश दिया जायेगा। प्रशिक्षण-काल में ४० रु० मासिक छात्रवृत्ति दी जायगी। निवास-व्यवस्था निःशुल्क है। सेवाभावी रचनात्मक कार्यकर्ताओं एवं सज्जनों को प्राथमिकता एवं आयु में छूट भी दी जा सकेगी। प्रवेश के आवेदन-पत्र एक रुपया शुल्क अग्रीम भेजकर मँगा लें। आवेदन-पत्र पहुँचने की अन्तिम तिथि १५ जून ६६ है।

—व्यवस्थापक, प्राकृतिक चिकित्सालय

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक—साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख्य पत्र

वर्ष : १५ अंक : ३६

सोमवार ९ जून, '६९

अन्य पृष्ठों पर

अन्य स्तम्भ

पटना जिलादान

छपते-छपते प्राप्त सूचना के अनुसार बिहार की राजधानी वाला पटना जिलादान १ जून' ६९ को घोषित हुआ।

स्त्रियों का स्थान

युगों से किसी-न-किसी तरह पुरुष ने स्त्री पर अपना प्रभुत्व रखा है और इसलिए स्त्री अपने को पुरुष से नीचा समझने लगी है। उसने पुरुष की इस स्वार्थपूर्ण सीख की सचाई में विश्वास कर लिया है कि वह पुरुष से नीची है। परन्तु ज्ञानी पुरुषों ने उसका बराबरी का दर्जा स्वीकार किया है। फिर भी इसमें कोई शक नहीं कि एक खास स्थान पर पहुँचकर दोनों की दिशा अलग-अलग हो जाती है। जहाँ मूल रूप में दोनों एक हैं, वहाँ यह भी उतना ही सच है कि शरीर रचना की दृष्टि से दोनों में गहरा अन्तर है। इसलिए दोनों का काम भी जुदा-जुदा ही होगा। स्त्रियों के भारी बहुमत पर मातृत्व का कर्तव्य भार सदा ही रहेगा, लेकिन उसके लिए जिन गुणों की आवश्यकता है उनका पुरुष में होना जरूरी नहीं है। स्त्री निवृत्ति-प्रिय है, पुरुष क्रियाशील। स्त्री स्वभाव से गृह-स्वामिनी है। पुरुष रोटी कमानेवाला है। स्त्री रोटी का रक्षण और वितरण करनेवाली है। वह हर अर्थ में सँभाल रखनेवाली है। मानव जाति के शिशुओं का पालन करना उसका विशेष और एकमात्र असाधारण अधिकार है। उसकी देखभाल के बिना मानव वंश अवश्य लुप्त हो जायगा।

यह स्त्री और पुरुष, दोनों के लिए पतन की बात होगी कि स्त्री से घर छोड़कर उसकी रक्षा के लिए बन्दूक उठाने को कहा जाय या ललचाया जाय। यह तो फिर से बर्बरता की ओर लौटना और प्रलय का प्रारंभ कहा जायगा। पुरुष अपनी संगिनी को उसका काम छोड़ देने के लिए ललचायेगा या मजबूर करेगा, तो इसका पाप उसके सिर पर रहेगा। अपने घर को सुव्यवस्थित और साफ सुथरा रखने में उतनी ही वीरता है, जितनी बाहरी आक्रमण से उसकी रक्षा करने में।

मैंने लाखों किसानों को उनके प्राकृतिक वातावरण में देखा है और आज भी मैं छोटे से गाँव में उन्हें रोज देखता हूँ; उससे बलात् मेरे ध्यान में दोनों के कार्यक्षेत्र के स्वाभाविक बँटवारे की बात आयी है। स्त्रियाँ लुहार और बढ़ई नहीं होतीं। परन्तु स्त्री पुरुष, दोनों खेतों में काम करते हैं और सबसे भारी काम पुरुष करते हैं। औरतें घरों को सँभालती और उनकी व्यवस्था करती हैं। वे परिवार के अल्प साधनों में वृद्धि करती हैं, परन्तु मुख्य कमानेवाला पुरुष ही रहता है। कार्यक्षेत्र के विभाजन की बात मान लेने पर जिन साधारण गुणों और संस्कृति की जरूरत है, वे लगभग दोनों के लिए एक-से ही हैं।

इस महान समस्या को हल करने में मेरा योग यह है कि व्यक्तियों और राष्ट्रों, दोनों के जीवन के हर क्षेत्र में मैंने सत्य और अहिंसा को अपनाने के लिए पेश किया है। मैंने यह आशा बाँध रखी है कि इस काम में स्त्री का असंदिग्ध नेतृत्व रहेगा और इस प्रकार मानव-विकास में अपना योग्य स्थान पाकर वह अपने को नीचा समझना छोड़ देगी।*

मो. क. गांधी

* ('हरिजन' २४-२-'४०)

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

महातूफान का वेग बिहारदान के करीब पहुँचा

३१ मई तक बिहार के चार सौ चौदह प्रखण्डदानों की घोषणा

पटना, पलामू, भागलपुर, संथाल परगना जिलादान की ओर

शाहाबाद, सिंहभूम, हजारीबाग और राँची में तूफान-अभियान की गति और तेज हुई

राँची : बिहार ग्रामदान प्राप्ति समिति के कैम्प कार्यालय, राँची से प्राप्त सूचना के अनुसार बिहारदान का अभियान अब पूरे वेग के साथ पूर्णता की ओर बढ़ रहा है। काम में और गति लाने के लिए डाक्टर दयानिधि पटनायक अपने साथियों सहित पंजाब से आकर जुटे हुए हैं। सर्व सेवा संघ के महामंत्री श्री ठाकुर दास बंग और सह मंत्री श्री नरेन्द्र कुमार दुबे तथा इंदौर सर्वोदय प्रेस सर्विस के सम्पादक श्री महेन्द्र कुमार भी अभियान में भाग लेने के लिए राँची पहुँच गये हैं। बिहार के कार्यकर्ता साथी प्राप्ति की इस आखिरी-चढ़ाई में जी-जान से लगे हुए हैं। श्री जयप्रकाश नारायण के दौरे हो रहे हैं। सर्वश्री वैद्यनाथ प्रसाद चौधरी तथा कैलाश प्रसाद शर्मा तो राँची में मई के प्रारम्भ से ही डटे हुए हैं।

एक विशेष जानकारी के अनुसार बिहार के आदिवासी क्षेत्रों में प्राप्ति का काम कुछ कठिन हो गया है। क्योंकि उनके मन में यह धारणा बन गयी है कि यह आन्दोलन उनके हित में नहीं है। वर्षों से हो रहे गैर आदिवासी लोगों द्वारा उनके शोषण ने इस धारणा को पुष्ट किया है। आदिवासियों के लिए एक विशेष भूमि-कानून के अनुसार उनकी भूमि की खरीद-बिक्री नहीं हो सकती, फिर भी साहूकारों ने कर्ज की सूद में उनकी जमीनों पर गैर कानूनी कब्जा जमा रखा है, जिससे उनके अन्दर व्यापक असंतोष व्याप्त है। उनका कहना है कि हम तो भूमिहीन हैं नहीं, हमारे क्षेत्र में तो भूमिहीन गैर आदिवासी लोग हैं, इसलिए यह आन्दोलन उन्हीं को भूमि दिलाने के लिए चल रहा है। कार्यकर्ता गाँव-गाँव पहुँचकर उन्हें समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं कि यह आन्दोलन हर गाँव को ठोस और मजबूत बनाने के लिए है। गाँव एक होगा तो शोषणमुक्त होगा। किसी मानी में इस आन्दोलन से आदिवासियों का अहित नहीं होनेवाला है। इस भ्रम के निराकरण के लिए आदिवासी नेताओं से भी सम्पर्क करने की पूरी कोशिश चल रही है। आशा है कि इस भ्रम का निराकरण होते ही आदिवासी क्षेत्र अल्पावधि में ही ग्रामदान में शामिल हो जायेंगे।

ग्रामदान-प्रखण्डदान-जिलादान

भारत में (३१ मई '६९ तक) बिहार में

प्रांत	ग्रामदान	प्रखण्डदान	जिलादान	जिला	ग्रामदान	प्रखण्डदान	जिलादान
बिहार	४०,६१८	४१४	६	दरभंगा	३,७२०	४४	१
उत्तरप्रदेश	१५,१६४	८६	२	मुजफ्फरपुर	३,६१७	४०	१
तमिलनाडु	१२,३८५	१२४	४	पूर्णिया	८,१५७	३८	१
उड़ीसा	६,३४८	४०	१	सारण	३,७३१	४०	१
मध्यप्रदेश	५,०९९	२५	२	चम्पारण	२,८६०	३१	१
आन्ध्रप्रदेश	४,११६	१२	–	गया	३,८४५	४१	१
सं० पंजाब (पंजाब, हरि०, हिमा०)	३,६६४	७	–	मुंगेर	३,०४४	३७	१
महाराष्ट्र	३,५३९	१४	–	सहरसा	२,७५१	२१	१
असम	१,५००	१	–	धनबाद	१,३८४	१०	१
राजस्थान	१,२७०	१	–	पलामू	८०४	२०	–
गुजरात	६२०	३	–	हजारीबाग	१,२८७	८	–
प० बंगाल	७४८	–	–	भागलपुर	५७८	१८	–
कर्नाटक	६६२	–	–	सिंहभूम	१,२६३	५	–
केरल	४१८	–	–	संथाल परगना	१,१६४	११	–
दिल्ली	७४	–	–	शाहाबाद	७०१	१	–
जम्मू-कश्मीर	१	–	–	पटना	४८	२७	–
				राँची	४४	–	–
कुल :	१,००,००९	७३०	१८	कुल :	४०,६१८	४१४	६

संकल्पित प्रदेशदान * : (१) बिहार, (२) तमिलनाडु, (३) उड़ीसा, (४) उत्तर प्रदेश, (५) मध्यप्रदेश, (६) महाराष्ट्र, (७) राजस्थान।

एक स्पष्टीकरण : बिहार तथा अन्य कई प्रदेशों से प्रखण्डदान पूरे होने के समाचार मिलते ही उन्हें प्रखण्डदान की संख्या में जोड़ दिया जाता है, लेकिन उतनी जल्दी ग्रामदानी गाँवों की संख्या नहीं मिल पाती, इसलिए कहीं कहीं के आँकड़ों में प्रखण्डदानों की संख्या के अनुपात में ग्रामदानों की संख्या कम होती है।

विनोबा-निवास, राँची, दिनांक : ३१-५-६९ —कृष्णराज मेहता

विवाह का बाजार

जब विवाह भी बाजार की वस्तु बन गया तो बचा क्या ?

इस वक्त गाँव-गाँव में, शायद घर-घर में, विवाह की धूम है। जहाँ देखिए लोग दावत और नाच में मस्त हैं। यह पूरा एक मौसम ही विवाह का है। खेतिहर देश में किसी वक्त यह रिवाज शुरू हुआ होगा कि जब लोग खेती के काम से खाली हों तो विवाह आदि कामों को पूरा कर लें। इसलिए गर्मी में महीने-डेढ़ महीने का समय इसके लिए अलग कर दिया गया, और उस पर ज्योतिषियों के पत्रे की मुहर लगा दी गयी ताकि किसीको उल्लंघन करने की हिम्मत न हो। लेकिन इस जमाने में जब सघन खेती की प्रक्रियाओं के कारण गर्मी में भी खेती हो सकती है, और जहाँ पानी मिलता जा रहा है वहाँ हो भी रही है, इस तरह शादी के पीछे इतना समय लगाना कोई अर्थ नहीं रखता। पर तर्क में अर्थ रहे या न रहे, जीवन में अभी न जाने कब तक रखता रहेगा। संस्कारों के पीछे समय और श्रद्धा का बड़ा बल होता है।

जिस समाज के मध्यम वर्ग में विवाह एक इतना ऊँचा संस्कार माना गया, जिस विवाह पर आध्यात्मिकता का गहरा-से-गहरा रंग चढ़ाने की कोशिश की गयी, जिसमें पातिव्रत्य, सती, तथा विधवा-विवाह निषेध आदि धार्मिक सामाजिक विचारों और विधियों द्वारा पति में पत्नी की अनन्य भक्ति बनाये रखने का विलक्षण प्रयोग हुआ, वह विवाह आते-आते इतना भ्रष्ट, बाजारू, लेन-देन का सौदा कैसे बन गया, यह गहरे शोध का विषय है। 'पति-परमेश्वर' पर सदियों तक हमारी जीवन-व्यवस्था चली और 'पंच परमेश्वर' पर ग्राम-व्यवस्था, लेकिन अब समता और सहयोग की सामाजिक क्रान्ति के संदर्भ में हमारी परिवार-व्यवस्था और ग्राम-व्यवस्था की आधारभूत मान्यताएँ क्या होंगी ? कुछ बदलेंगी या पुरानी ही रहेंगी ? 'विवाह के बाद प्रेम'—अबतक हमने यह सिद्धान्त मान्य किया। क्या अब 'पहले प्रेम तब विवाह' का सिद्धान्त भी मान्य करेंगे ? यह पूरा विषय गंभीर चिंतन का है। अगर ग्राम-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन की माँग है तो विवाह में भी क्रान्ति-संशोधन की तैयारी रहनी चाहिए—कम-से-कम सामाजिक क्रान्तिकारी की।

विवाह के मौसम में बाजार में चले जाइए और धीरज के साथ आँखें खोलकर देखिए। देहात में चले जाइए और सहानुभूति के साथ लड़कीवाले से बातें कीजिए, लड़केवाले से बातें कीजिए। पूछिए : 'विवाह के लिए रुपया कैसे इकट्ठा किया ?' उत्तर में आपको कर्ज, कष्ट और कपट की अनंत कथा सुनने को मिलेगी। लेकिन गृहस्थ को यह सब स्वीकार है। क्योंकि उसे बेटी या बेटे का विवाह करना है, और समाज में रहना है।

बाजार, बारात, वेश्या और बोतल, इन चारों को अगर एक नाम देना हो तो 'विवाह' दे सकते हैं। गाँव का आदमी बाजार आता है। घर का अनाज बेचता है, पुराने गहने गिरवी रखता या बेचता है। रुपये जुटाता है। और उस रुपये से खरीदता क्या है ? अपनी औकात से कहीं ऊपर शौकीनी की चीजें—चमक-दमकवाले कपड़े, जूते, ट्रान्जिस्टर, पाउडर, क्रीम, बर्तन, आदि। इनके साथ साथ शराब की बोतलें भी खरीदता है, क्योंकि उसके दरवाजे पर जब कलकत्ता-बम्बई में दूध-पानी की कमाई करनेवाले या शहर के पढ़े-लिखे और हाकिम लोग बारात में आयेंगे तो उनके मन-बहलाव के लिए बोतल चाहिए और बोतल के साथ वेश्या भी चाहिए जो मनचले गानों और छेड़खानियों से उनके अन्दर गुदगुदी पैदा करती रहे। नाच ही तो ऐसी चीज है जिसमें बूढ़े, जवान, बच्चे, सब बराबरी के दर्जे पर शरीक होते हैं। मनुष्य को मनोरंजन चाहिए, और खुशी के वक्त खुशी का वातावरण भी चाहिए, लेकिन विवाह के वक्त जो नकली रईस लोग नोकीली मूँछें निकालकर, या अगर बड़ी हुई तो रोगन से नोकीली बनाकर, महफिल में बैठते हैं, उनको खिदमत के लिए खवास चाहिए और तफरीह के लिए सुरा और सुन्दरी। तारीफ तो यह है कि यह सारा इन्तजाम लड़कीवाले को करना है, क्योंकि लड़की का बाप बनने का उसने असम्य अपराध जो किया है।

हम खादी में विश्वास रखनेवाले लोग हिसाब लगाते हैं, और गाँववालों से कहते भी हैं, कि कपड़े के लिए कितना पैसा गाँव से बाहर में चला जाता है। ठीक है, जाता है। लेकिन कभी हमने यह हिसाब भी लगाया है कि विवाह के कारण कितनी दौलत गाँव से शहर में जाती है, गरीब का कितना कर्ज बढ़ता है, कितनी जमीन इधर-की-उधर हो जाती है ? कितनी श्राद्ध के कारण जाती है, और कितनी शिक्षा के कारण ? शायद इन चीजों में हम खुद भी शरीक हैं ! इन कामों में लगनेवाली करोड़ों नहीं, अरबों रुपयों की पूँजी किस काम में लगती है ? बाजार-भाव बढ़ाने में, निरर्थक उपभोग में, अनुत्पादक कामों में। और, यह हाल उस देश में है जहाँ एक-एक परिवार पूँजी के लिए तरस रहा है। किसान के घर में ढंग की एक कुदाल भले ही न हो, लेकिन बेटे के विवाह में मिला एक ट्रान्जिस्टर कोने में पड़ा हुआ मिलेगा। विवाह में ट्रान्जिस्टर लगभग उतना ही जरूरी हो गया जितना जरूरी सिन्दूर। बेटे की बहू को, जो ट्रान्जिस्टर के साथ घर में आयी थी, बीमारी में दवा के लिए पैसा भले ही न जुटे, लेकिन ट्रान्जिस्टर के लिए बैटरी तो चाहिए। गरीब पड़ोसी अमीर से नफरत करता है, उसके खिलाफ नारे लगाता है, और मौका पड़ने पर उससे लड़ने के लिए भी तैयार होता है, लेकिन विवाह पड़ता है तो उसी अमीर के हाथों में अपने गले की फाँसी की रस्सी सौंप देता है। जेवर-जमीन गिरवी रखेगा, बेचेगा, दूने-चौगुने सूद पर कर्ज लेगा। पैसेवाले में दिखाऊ 'सहानुभूति' के साथ इतनी बुद्धि भी है कि सूद पर सूद जोड़ता जाय और कर्ज को पुश्त-दर-पुश्त कभी अदा न होने दे। पैसेवाला शोषण करना जानता है और विवाह करनेवाला शोषण कराना जानता है और विवाह के मंच पर शोषक और शोषित का पूर्ण मेल है। विवाह में शौक भी होता है, और बेबसी भी होती है। दोनों में पैसेवाले के लिए अवसर है। →

ऐसी भूमिका, और ऐसे वातावरण में विवाह होता है—जीवन का एक पवित्र संस्कार, धर्म का एक महान कृत्य ! सच बात तो यह है कि अगर परिवार की बरबादी, समाज की कुसंस्कारिता, और बच्चों के कुशिक्षण की कोई सम्मिलित योजना बनानी हो तो हमारे विवाह से बढ़कर दूसरी योजना मुश्किल से बनेगी। हमारा विवाह अस्पृश्यता से छोटा कलंक नहीं है।

हर आदमी मानता है कि विवाह की प्रथा दूषित है। हर आदमी चाहता है कि यह प्रथा बदले। लेकिन हर आदमी बेबस है—अपने संस्कारों से, समाज की व्यवस्था से। कोई आगे नहीं बढ़ना चाहता—'क्रान्तिकारी' युवक भी नहीं ! विवाह सामन्तवाद का सांस्कृतिक गढ़ है, ठीक उसी तरह जैसे हमारी शिक्षा अंग्रेजी साम्राज्यवाद का सांस्कृतिक मोर्चा थी, और अंग्रेजियत की आज भी है। निजी स्वामित्व पूँजीवाद की रीढ़ है। आज हम ग्रामदान से उस रीढ़ को तोड़ने में लगे हुए हैं। भूमि, शिक्षा और विवाह को एक जीवन नयी है। जब-तक यह नयी रहेगी पुराना समाज बना रहेगा। समग्र सामाजिक क्रान्ति के लिए इन तीनों का बदलना जरूरी है।

'बालू की भीत'

तिरुपति में हमारे अध्यक्ष ने संगठन की कमजोरी की ओर बार-बार ध्यान दिलाया। अपने भाषण में उन्होंने यहाँ तक कहा कि सर्व सेवा संघ बालू की भीत पर खड़ा है। बालू की भीत थोड़ी देर के लिए चाहे जितनी बड़ी और मोटी दिखाई दे, लेकिन उसमें कोई शक्ति नहीं होती। वह किसी क्षण गिर सकती है।

यह सही है कि हमारे पास विचार का बल चाहे जितना हो, संगठन का बल बिलकुल नहीं है। जिस लोक-सेवक और सर्वोदय मंडल पर हमने अपनी दुनिया बसाने की कोशिश की थी या वह बालू की भीत की तरह ढह गया। आज कहाँ है लोकसेवक और कहाँ है सर्वोदय मंडल ? और, अगर कुछ हैं भी तो कितने हैं ? क्या इतने थोड़े, और इस तरह बने, लोकसेवकों और सर्वोदय मंडलों से कोई संगठन चल सकता है, और उनकी शक्ति बन सकती है ?

जो हाल लोकसेवकों और सर्वोदय मंडलों का है, वही हाल ग्रामसभाओं का है। आँकड़े छलिया होते हैं। हम आँकड़ों के चक्कर में न पड़ें। लोकसेवक, सर्वोदय मंडल, शान्ति-सैनिक, ग्रामसभा—ये सब गुणात्मक इकाइयाँ हैं। उनके गुण का प्रमाण उनकी संख्या नहीं है।

ग्रामसभा हमारे आन्दोलन का 'कन्सेन्सस' है, और लोकसेवक 'कान्शंस'। कन्सेन्सस का संगठन बन सकता है, और बनना भी चाहिए, लेकिन कान्शंस का तो भाईचारा ही बन सकता है। ये दोनों आन्दोलन की शक्ति के स्रोत हैं। ये ही दोनों दैनिक-शक्ति के मुकाबिले नागरिक-शक्ति के मोर्चे भी हैं। दोनों को मिलाकर ग्रामस्वराज्य का संयुक्त मोर्चा बनता है।

तिरुपति के अधिवेशन में संगठन की कमजोरी तीव्रता के साथ महसूस की गयी। उस विषय पर गहराई के साथ विचार करने के लिए एक समिति भी नियुक्त की गयी।

समिति की नियुक्ति अपनी जगह ठीक है, लेकिन असली काम वहाँ है जहाँ ग्रामदान है। बिहार का राज्यदान दूर नहीं है देश भर में डेढ़ दर्जन जिलों के दान हो चुके हैं अब सघन क्षेत्र लेकर ग्राम-सभाओं के संगठन द्वारा ग्रामस्वराज्य की शक्ति प्रकट करने का अभियान शुरू होना चाहिए। कब शुरू होगा ? प्रतीक्षा किस बात की है ?

प्राप्ति पर अधिक-से-अधिक शक्ति लगाना आवश्यक है, लेकिन प्राप्त क्षेत्रों की उपेक्षा सर्वथा अनुचित है। सोचना चाहिए कि दोनों काम साथ-साथ कैसे चलेंगे ?•

अखबार की कतरनें

अल्प विकसित या अति शोषित ?

भारत तथा उसकी तरह के अन्य देशों को अल्प विकसित कहा जाता है। दुनिया के धनी देशों में कई सेवा-संस्थाएँ हैं, जो दान का धन इकट्ठा करती हैं, और अपनी ओर से गरीब देशों को दान देती हैं। हम इस दया के लिए कृतज्ञ हैं, लेकिन धनी देशों के लोग यह क्यों नहीं महसूस करते कि हमारी गरीबी में उनके द्वारा होनेवाले हमारे शोषण का कितना ज्यादा हाथ है ? वे दान भले ही न दें, पर यह शोषण तो बन्द करें !

बात होती है व्यापार (ट्रेड) की, सहायता (एड) की, और प्रतिरक्षा (डिफेंस) की।

व्यापार क्या है ?

व्यापार दो तरह का होता है

१. धनी देशों की कम्पनियों का गरीब देशों के उपभोक्ताओं के साथ व्यापार। वे अपनी शर्त पर व्यापार करती हैं, और मन-माना मुनाफा लेती हैं। उसे बाजार कहते हैं।

२. गरीब देशों की कम्पनियों का धनी देशों के उपभोक्ताओं के साथ व्यापार। इसमें कोटा होता है, टैरिफ होती है। कीमतें कम होती हैं। इसे संरक्षण (प्रोटेक्शन) कहते हैं।

सहायता क्या है ?

सहायता भी दो प्रकार की होती है—

१. गरीब देशों की सरकारों को अनुदान या कर्ज। किसलिए ? सड़क, बन्दरगाह, कारखाने बनाने के लिए, जो व्यापार के लिए दी जाती है। इसे विकास (डेवलपमेंट) कहते हैं।

२. गरीब देश की सेनाओं के लिए बन्दूक, टैंक आदि, जिनकी मदद से सरकारें जनता के सीने पर सवार रहें। इसे 'शान्ति-रक्षा' कहते हैं।

प्रतिरक्षा क्या है ?

प्रतिरक्षा के भी दो प्रकार हैं। लेकिन प्रतिरक्षा धनी देशों के लिए है।

१. अन्य धनी देशों से संभावित युद्ध के लिए सैनिक-तैयारी।

२. गरीब देशों में धनी देशों के हितों की रक्षा। गरीब देशों में जब कभी जनता अपनी सरकार पर नियंत्रण करने की कोशिश करती है तो धनी देशों की प्रतिरक्षा (डिफेंस) की जरूरत होती है —'पीस न्यूज'

विज्ञान और अध्यात्म : बाह्य और आंतरिक ज्ञान के स्रोत

विनोबा

अभी मैं श्रोताओं के चेहरे देख रहा था, जैसी मुझे आदत है। किसी एक का चेहरा दूसरे के समान नहीं है। अंगूठे पर की रेखाएँ भी अलग-अलग लोगों की अलग अलग होती हैं। इस तरह दुनिया में ३२० करोड़ लोगों के ३२० करोड़ अंगूठों के 'प्रिंट' होंगे। पुलिस को अंगूठे का निशान मिल जाय तो वे उससे चोर पकड़ सकते हैं, यह अद्‌भुत विचार है। इंग्लैण्ड में प्रस्ताव आया कि सबके अंगूठे के निशान लेकर सरकारी दफ्तर में रखे जायँ, ताकि चोर पकड़ने में मदद मिले, परन्तु वह प्रस्ताव वहाँ के लोगों ने माना नहीं, क्योंकि उसमें पहले ही सबको चोर मानने की बात है।

एक पीपल का पेड़ है, उसमें बहुत-सी पत्तियाँ हैं, लेकिन किसी भी पत्ते की शक्ल एक-जैसी नहीं है। अगर फोटो लिया जाय तो हर पत्ता भिन्न होगा याने उसमें विविधता होगी। एक ओर सृष्टि में इतनी विविधता है और दूसरी ओर अंदर में समान अनुभूति आती है। रामदास स्वामी ने आत्मा की एकता के बारे में कहा है : 'सर्पं आयोन डंसूं आला। प्राणी आयोन पळाला। दोहीकडे जाणिवेला। येरें पहा।'

ज्ञानरूपेण आत्मा सिद्ध होता है। ज्ञान सर्वत्र है। साँप डंक मारने के लिए हमला करने आया, जो जान-बूझकर व्यक्ति पर हमला किया, और व्यक्ति जान बचाने को भागा, तो ज्ञानपूर्वक भागा। इसलिए ज्ञान दोनों में समान है। दोनों में ज्ञानरूपेण आत्मा एक है। इससे आत्मा की एकता सिद्ध होगी। यह एक युक्ति है। युक्ति से सिद्ध हो जाय कि बकरी और शेर की आत्मा समान है, तो आत्मज्ञान बड़ा आसान हो जायगा।

जैसे ज्ञानशक्ति चित्‌रूपेण सर्वत्र है, वैसे आनंदरूपेण भी सर्वत्र है—कोई भी प्राणी बिना आनंद के नहीं जीते। सबको कुछ न-कुछ आनंद है।

पटना में प्रखण्डदान की घोषणा के बाद श्रोताओं को बाबा की वाणी से आनंद मिल रहा था, तो उधर मच्छर बाबा का शरीर-रस लेकर आनंद प्राप्त कर रहे थे! आनंदरूपेण अभिव्यक्ति दोनों में समान है, इसलिए आनंद सर्वत्र भरा है। जो सर्वत्र भरा है उसे प्राप्त करने की कोशिश करते हैं, वे मूर्ख हैं। आनंद तो प्राप्त ही है। कोशिश आनंद-शुद्धि की करनी चाहिए।

एक था महारोगी की सेवा करनेवाला क्रिश्चियन। वह १५-२० साल से सेवा करता था, और उसमें आनंद मानता था। परन्तु जब उसको महारोग हो गया तो लोगों ने कहा—'बड़े दुःख की बात है कि आपको भी महारोग हो गया' तब उस क्रिश्चियन सेवक ने कहा—'दुःख नहीं, परमात्मा की बड़ी कृपा है कि अब मुझे उन महारोगियों के अंतर-अनुभव प्राप्त हो सकेंगे। जो पहले सेवा करते हुए भी मुझे प्राप्त नहीं होते थे। इसलिए दुःख नहीं, मुझे आनंद है।' एक जैन साधु ने जाहिर किया कि संथारा लेकर निर्जला करेंगे, आमरण अनशन करेंगे, यानी मरने तक नहीं खायेंगे। उस साधु ने ४५ दिन के बाद देह छोड़ी। इसे देश ने आत्म-हत्या माना नहीं। लेकिन एक जैनी भाई मुझसे मिलने आये तो मैंने सुझाया कि 'वे पानी पीते रहें।' लेकिन मेरी यह सूचना उस जैनी भाई ने देर से उन्हें पहुँचायी। उन्हें लगता था कि इससे पुण्यकार्य में बाधा पहुँचेगी और उत्तम आनंद कम हो जायगा। जब मैं उनसे मिलने गया तो उन्होंने कहा कि—'अब तो पानी भी गले से नीचे नहीं उतरता।' फिर दो दिनों में देह छोड़ी। तो मरना खास बात नहीं, खानेवाले और न खानेवाले, सब मरते हैं। इसलिए प्रयत्न आनंद शुद्धि का करना चाहिए।

एक आदमी अभी आया और उसने मुझसे कहा कि मेरे पास पाँच एकड़ जमीन है, वह सब दान देना चाहता हूँ। उसमें वह अपना आनंद मानता है। तो उसे दानानंद है। कोई लुटानंद होता है, जो लूटने में आनंद मानता है। इसलिए प्रयत्न आनंद-शुद्धि का करना चाहिए।

हमारे एक डाक्टर मित्र थे, वह सब रोगों का उपचार नमक से करते थे। जब संन्यासी हुए तो अपना नाम भी लवणानंद रखा। मैंने कहा कि आनंद में लवण क्यों रखते हो?

इस प्रकार मैंने आपके सामने एक विषय रखा कि आनंद को शुद्ध करना चाहिए। अब प्रश्न है—आनंद को शुद्ध कैसे किया जाय? आनंद को शुद्ध करने को ही अध्यात्म कहते हैं।

मैं बार-बार समझाता हूँ कि यह दान आनंद-शुद्धि के लिए है। ईसा का महावाक्य है—'इट इज मोर ब्लेस्ड टु गीव दैन टु रिसीव' (प्रदान करना प्राप्ति करने से अधिक सुखकारक है।) इसमें आनंद की शुद्धि और वृद्धि, दोनों होती है।

विज्ञान बाहर की दुनिया का ज्ञान कराता है और आत्मज्ञान अंतर का ज्ञान कराता है। अंत में देखा जाय तो दोनों अध्यात्म ही हैं। विज्ञान में तटस्थ बुद्धि से साक्षी रूप रहकर देखना होता है। जैसे आत्मज्ञानी अंतर-शोध के लिए अपरिग्रही व ब्रह्मचारी रहता है वैसे वैज्ञानिक भी सत्य की शोध में पूर्ण तन्मयता से लगता है। विषय-भोग छूट जाते हैं और जीवन संयमी हो जाता है। वैज्ञानिक न्यूटन के जीवन की एक घटना है—न्यूटन छोटे छोटे कागज के टुकड़ों पर अपने प्रयोग के अनुभव लिखता था। कई दिनों के बाद उसका प्रयोग पूरा हुआ तो वह कोठरी से बाहर घूमने निकला। बहुत दिनों से कमरे की सफाई नहीं हो पायी थी। इसलिए अवसर पाकर नौकर सफाई करने के लिए कमरे में गया। उसने देखा कि बहुत से छोटे छोटे कागज के टुकड़े पड़े हुए हैं। उसने कमरे की सफाई करके सारे कागज के टुकड़ों को बाहर डालकर जला दिया। जब न्यूटन वापिस लौटा तो देखा कि उसके प्रयोग के अनुभव लिखे हुए कागज के टुकड़े नहीं हैं। तो उसने नौकर को बुलाकर पूछा। नौकर ने कहा कि कमरे की सफाई की और उन कागज के टुकड़ों को कचरा समझकर बाहर ले जाकर जला दिया। तब न्यूटन ने शांति से कहा—'देखो, तुम्हारा →

ट्रस्टीशिप : विचार को व्यवहार में लाने की आवश्यकता

गांधीजी की ट्रस्टीशिप की कल्पना थी कि जिनके पास सम्पत्ति है उसे वे अपनी न मानें, बल्कि धरोहर मानकर उसकी मालिकी की भावना से अपने को मुक्त कर लें। उस समय श्री जमनालाल बजाज आदि कुछ धनीमानी व्यक्तियों ने इस विचार को चालना दी, पर कालान्तर में इस दिशा में प्रगति न हो सकी।

मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि मात्र फैक्टरियों के लिए ही ट्रस्टीशिप की बात सोचते रहना ठीक नहीं है। उसका शुभारम्भ व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन, फिर व्यक्ति और समाज से सम्बन्धित जीवन-मूल्यों तथा सामाजिक प्रवृत्तियों एवं रचनात्मक संस्थाओं में होना चाहिए।

गांधीजी ने चरखा संघ शुरू किया तो उसके रचनात्मक कार्यकर्ताओं के लिए जो नियम बनाये उनमें एक अपरिग्रह भी था। उस समय तय था कि ज्यादा-से-ज्यादा २५ रु० दिया जाय और खर्च करके अगर कुछ बचे तो कार्यकर्ता संस्था को वापिस लौटा दे। गांधी सेवा संघ के सम्मेलनों में अपरिग्रह को लेकर काफी बहसें हुईं। लोगों का कहना रहा कि जब अपरिग्रह को हमने एकादश व्रतों में दाखिल किया है, उसका जीवन में पालन करने का संकल्प किया है तो हमें उस पर आचरण करना चाहिए। उस समय गांधी सेवा संघ के अध्यक्ष के नाते श्री किशोरलाल भाई ने 'रूलिंग' दी कि हर व्यक्ति एक साल के लिए, अर्थात् जो कमाई आज वह करता है उतनी वह एक साल के लिए आपद्-काल की दृष्टि से संग्रह करके रख सकता है। महाराष्ट्र में एक रामदास स्वामी हुए हैं, उन्होंने साधु पुरुषों के लिए नियम बना रखा था कि किसी जगह तीन दिन से ज्यादा रहना नहीं और तीन दिन से अधिक के लिए संग्रह नहीं करना चाहिए।

बीमा : जनता द्वारा

गांधीजी के सामने सवाल रखा गया कि क्या हमारे खादी के स्टाक का बीमा कराया जाय? उन्होंने कहा, नहीं। खादी के कार्यकर्ता अपना जीवन बीमा कराये? उन्होंने कहा, नहीं। हमारा बीमा जनता ही है। यदि हमारा रक्षण जनता करने को तैयार नहीं तो उसे मैं खादी नहीं मानूँगा। सिद्धान्त की दृष्टि से प्रोविडेण्ट फंड के विचार से भी वे सहमत नहीं थे, पर बाद में 'सर्विस फ्लस' बने और उनको उन्होंने कबूल भी किया। चरखा संघ में एक व्यक्ति ने दो हजार रुपये का गबन कर दिया। बापू के पास पेशी हुई। बापू ने पूछा, 'क्या ऐसा हुआ है?' उसने कबूल किया और मकान बन्धक रखकर रुपया लौटाया भी। अन्त में बापू ने एक और फैसला किया कि अब यह व्यक्ति चरखा संघ में नहीं रहेगा, पर

अण्णा सहस्त्रबुद्धे

श्री जमनालाल बजाज को कह दिया कि इसे व्यापारिक संस्थाओं में काम दो। इस पद्धति से वह सुधर भी गया। रचनात्मक संस्थाओं और उन संस्थाओं के कार्यकर्ताओं की तरफ देखने की बापू की दृष्टि ही कुछ और थी।

जीवन में ट्रस्टीशिप कैसे सधे ?

व्यक्ति जिस जगह रहता है वहाँ ग्राम-धाम के परिवारों की कम-से-कम आमदनी सौ रुपये मासिक है तो उसे अपने परिवार का अधिक-से-अधिक पाँच सौ रुपये मासिक से ज्यादा खर्च नहीं करना चाहिए। यदि उसकी आमदनी पाँच सौ रुपये मासिक से अधिक होती है तो फिर उस अधिक आय का उसे ट्रस्टी बनना चाहिए। श्री जमनालाल बजाज स्वयं पाँच सौ रुपये मासिक लेते थे और बाकी का उन्होंने ट्रस्ट बनाकर रखा था। एक जमाना था कि उन्हें 'कॉटन प्रिन्स आफ बेरार' (बरार के रुइया राजकुमार) कहा जाता था। स्पेशल ट्रेन से आया-जाया करते थे। वाइसराय को दावतें दिया करते थे, पर ट्रस्टीशिप की भावना का उनके जीवन में प्रवेश हुआ तो वे गांधीजी के पाँचवें पुत्र कहलाये।

ट्रस्टीशिप की कल्पना कागज पर या किसी कल-कारखाने की मशीनरी और फर्नीचर पर थोड़े ही उतरनेवाली है। वह सबसे पहले व्यक्ति के जीवन में उसके दैनंदिन कार्यकलापों में दाखिल होगी तब वह उस व्यक्ति से सम्बन्धित संस्था में प्रविष्ट होगी। गांधीजी का स्वयं का जीवन इसका उज्ज्वल उदाहरण है। उनको या कस्तूरबा को किसी रिश्तेदार ने भी भेंट में कुछ दो चार रुपये भी दिये तो वह आश्रम के हैं और खुद को जो जरूरत होगी वह आश्रम से लेंगे, ऐसे कठोर नियम का उन्होंने पालन किया।

चरखा संघ, ग्रामोद्योग संघ, हरिजन सेवक संघ, गो-सेवा संघ आदि सभी रचनात्मक संस्थाएँ ट्रस्टीशिप के आधार पर उन्होंने खोली हैं, ऐसा वे दावे के साथ कहा करते थे। इनका सिद्धान्त ही 'नो प्राफिट, नो लॉस' (न लाभ, न हानि) था और यदि कुछ लाभ हुआ भी तो वह काम करनेवालों को मिलना चाहिए। काम करनेवालों में, जैसे चरखा संघ है तो, कत्तिन और बुनकरों को लाभ मिलना चाहिए। १/१० भाग संस्था के लिए माना जाय और ९/१० लाभ 'वर्कर्स बेनीफिट फण्ड' (सुतकार कल्याण कोष) में जमा किया जाय, जिससे सुधरे हुए औजार, कत्तिन और बुनकरों की तालीम के लिए स्कूल, दवाखाना, हफ्ते में बाजार की सुविधा आदि का प्रबन्ध किया जाय। प्रबंधक-वर्ग को बोनस आदि की बात बापू ने कतई स्वीकार नहीं की। उनकी मंशा तो इस प्रबंधक वर्ग को कम से-कम रखने की थी।

जब गांधी सेवा संघ बना तो उन्होंने इसे यही काम सौंपा कि यह देखा जाय कि रचनात्मक संस्थाओं में ट्रस्टीशिप के आधार पर काम कितना चला। उसमें क्या-क्या

—बिना पूछे ऐसा काम नहीं करना। वे कागज मेरे काम के थे।' जीवन की अमूल्य शोध-सामग्री जल जाने पर भी काम-क्रोध का नाम नहीं। तो, वैज्ञानिक को भी काम-क्रोध पर जय प्राप्त हो जाती है। फिर लोगों ने उससे कहा—"आप तो महान् गणितज्ञ हैं, आपको गणित का काफी ज्ञान है।" तो उसने कहा—"गणित का ज्ञान विशाल समुद्र जैसा है। उस समुद्र के एक बिन्दु को समुद्र मानें, तो उसके बिन्दु सदृश ज्ञान भी मुझे नहीं है।" न्यूटन की नम्रता और निरहंकारिता का यह नमूना है। इसलिए विज्ञान भी अन्त में आत्मज्ञान या अध्यात्म ही है।

देवघर : ४-५-'६६

कमियाँ रहीं? आगे काम चलाना हो तो उसका क्या रूप हो? इन सब पर गांधी सेवा संघ शोध करे, ऐसी उनकी इच्छा थी। शोध करने के उपरान्त इस पर भी विचार करें कि वह समाज में कैसे विकसित हो? पर उन दिनों हमारा ध्यान मुख्य रूप से स्वतंत्रता-प्राप्ति की ओर था, इसलिए इस दिशा में गहराई से सोच विचार सम्भव नहीं हुआ।

गांधीजी जब हरिजन दौरे पर निकले और खादी-केन्द्रों में जाकर कत्तिनों और बुनकरों की गरीबी उन्होंने देखी तो एकदम दृढ़ निश्चय के साथ कहा, इनको जीवन-वेतन के रूप में आठ आना मजदूरी दी जानी चाहिए। सवाल आया कि इससे खादी महँगी होगी तो उनका कहना रहा, कि हम ट्रस्टी बने हैं, कोई 'मिडिलमैन' (दलाल) या एजेण्ट थोड़े ही हैं। महँगी पड़ेगी तो महँगी बेचेंगे।

जिस तरह गरीबों को उठाने में उनका स्पष्ट चिन्तन चलता था उसी तरह अमीरी कम करने में भी उनका चिन्तन बिलकुल खुला और साफ था। उन दिनों आश्रम में कुछ व्यापारी तथा कुछ सम्पन्न समझे जानेवाले लोग आश्रमवासी के रूप में दाखिल हुए। भोजन में आधा सेर दूध दिन भर में सबको मिल जाता था, इस पर कुछ लोगों ने चर्चा चलायी कि ऐसा देहातों में तो संभव नहीं; तो बापू का उत्तर था, जो दूध के बजाय मूंगफली पर चला सकते हैं उनको खुद से निर्णय लेना चाहिए। वैयक्तिक रूप से घटा सकते हैं। गांधीजी आश्रमों में मनोवृत्ति-संशोधन और रचनात्मक प्रवृत्तियों में काम करने की प्रक्रिया के माध्यम से ट्रस्टीशिप की कल्पना को साकार करना चाहते थे।

सामाजिक मूल्यों में ट्रस्टीशिप की भावना

ईसाइयों में एक धार्मिक परम्परा है कि प्रातः में प्रभु से याचना करते हैं कि वह उन्हें दिन भर की अपनी रोटी दे। यानी काम वे करेंगे और रोटी की प्रार्थना ईश्वर से करेंगे। गांधीजी ईश्वर को समाज या मानव-समुदाय के रूप में देखते थे। आज समाज में आर्थिक विषमता है, क्या यह कायम के लिए समाज में अविभाज्य अंग के रूप में रखनी चाहते हैं? जो वर्ग-संघर्ष में विश्वास रखते हैं उनका मानना है कि वह अन्तरिम रूप में रहेगी। गांधीजी हृदय-परिवर्तन में विश्वास करते थे और उसके माध्यम से समाज-परिवर्तन करना चाहते थे। पर यह सब केवल सिद्धान्त से थोड़े ही होनेवाला है। वे मानव-मानव में विरोध को स्वीकार नहीं करते, इसलिए सहयोग का रास्ता बताते हैं। यहीं सामाजिक मूल्यों का प्रश्न खड़ा होता है। इतना तो मानना ही होगा कि औद्योगीकरण के साथ-साथ विषमता बढ़ी है इसलिए एकमात्र रास्ता सामाजिक मर्यादाओं और सामाजिक नियंत्रण का है। जापान में नियम है कि गाँव में स्कूल की इमारत से बड़ा कोई मकान न बनावे। जिसके पास ज्यादा पैसा है वह स्कूल को दान करे। विद्यालयों में जब कोई नयी फैकल्टी खड़ी करनी होती है तो सारी व्यवस्था गाँववाले खुशी खुशी करते हैं, फिर शिक्षा की माँग करते हैं। वहाँ स्कूल के बच्चों की पोशाक समान रहती है। किस उम्र तक के बच्चों को बाल रखने चाहिए, नहीं रखने चाहिए, यह भी समाज तय करता है। खेत में रोपाई के समय स्कूल, कल-कारखाने, दफ्तर बन्द करके सब खेतों में काम करते हैं। सफेदपोशवाली बात वहाँ नहीं है।

ट्रस्टीशिप और कल्याणकारी राज्य

कानून बनाने और इनकम टैक्स व सुपर टैक्स से ट्रस्टीशिप का विकास नहीं होनेवाला है। कल्याणकारी राज्य के ध्येयवाद में ट्रस्टीशिप के लिए जगह नहीं है। यह बात सुनने में बुरी लग सकती है, पर यह सच है कि आज बूढ़े लोगों को सम्हालने की जिम्मेदारी समाज के बजाय राज्य की कही जाती है।

विधवाश्रम, अनाथाश्रम आदि आज सरकार चलाती है, समाज की कोई जिम्मेदारी नहीं। सरकारी नौकरों को पेंशन राज्य देता है, बच्चों पर कोई जिम्मेदारी नहीं। यह सब गहराई से देखा जाय तो क्या है?

पुराने जमाने में हमारे सामाजिक मूल्य थे कि अतिथियों को ही नहीं, बल्कि गोग्रास निकालकर उन्हें भी अपने जीवन में शामिल किया है। खाने का ही नहीं, बल्कि पहले शिक्षा की जिम्मेदारी माँ-बाप और समाज ने अपने ऊपर ली थी आज उसे सरकार को सौंपकर हम निश्चिन्त बैठे हैं और क्या परिणाम हो रहा है, वह हम आप किसी से छिपा नहीं है।

जापान पूँजीवादी देश है, फिर भी वहाँ मकान हाथ से बने कागज के और बड़े-से-बड़े आदमी के यहाँ पुवाल की हाथ से बनी चटाइयाँ बिछी मिलेंगी, क्योंकि इससे तीन-चार लाख लोगों को काम मिलता है।

गांधीजी स्वतंत्र भारत में संस्थाओं को सामाजिक मूल्यों से युक्त करके काम लायक काम और जरूरत के मुताबिक भोजन देकर एक अहिंसक और शोषणमुक्त समाज देखना चाहते थे।

ट्रस्टीशिप और सहकारिता आन्दोलन

जिस प्रकार कल्याणकारी राज्य के लिए मैंने कहा, उसी तरह यह बात सहकारिता आन्दोलन पर भी लागू होती है। मुट्ठी भर लोगों के स्वार्थ को सगठित करने का काम सहकारी समितियों ने इस देश में किया है।

जो सहकारी समितियाँ बुनकर, चमार, लुहार, आदि की बनीं उन्होंने जातिवाद को और मजबूत किया। समाज की यथास्थिति (स्टेटसको) को तोड़ने के बजाय उसे बनाये रखने में वे मदद रूप हुई हैं।

सहकारिता का नाम लेकर समाजवाद का नारा दिया जाता है, पर निष्ठाएँ वही पूँजीवादी रहती हैं। दरअसल में, उनके क्रिया-कलापों में समाजवादी मनोवृत्ति का दर्शन नहीं होता। आज सहकारी कामनवेल्थ की बात की जाती है, पर उसमें कोई दम नहीं, यह 'एण्टीरेवोल्यूशनरी' (प्रतिक्रान्तिकारी) कल्पना मात्र है।

ट्रस्टीशिप के कुछ अन्य पहलू

साधन आज बढ़ रहे हैं। टेक्नालोजी का विकास हो रहा है। गाँव-गाँव टैक्टर, ट्यूबवेल तथा अन्य साधन पहुँच रहे हैं। ये व्यक्ति के हाथ में न होकर समुदाय के हाथ में हों। गाँव है तो ग्रामसभा ट्रैक्टर रखे।

जो रोजगार परिवार में हैं वे विकेन्द्रित रूप में परिवारों में हो रहे और किसानों की मदद से अगर कुछ शुरू होता है तो वह गाँव

की तरफ से चले तो समाज में समानता लाने में मदद होगी। गाँव के स्तर पर पंचायत या कुछ गाँव मिलकर ब्लाक-स्तर पर पंचायत समिति के पास ऐसे साधन हैं।

जहाँ तक शेयरिंग (साझेदारी) का सवाल है, यह भी ट्रस्टीशिप की कल्पना में कुछ हद तक बैठता है। एक इंजीनियरिंग का कारखाना खुला है, उसने मजदूरों को ट्रेनिंग देने के बाद उन्हें चार-पाँच हजार की मशीनरी दे दी। कच्चा माल देकर उनसे यह फर्म पक्का माल लेती है और खुद उन पुर्जों को जोड़कर (assemble करके) मशीन तैयार करती है। ये विकेन्द्रित इकाइयाँ इस कम्पनी के शेयर होल्डर भी हैं। आज इन इकाइयों की पूंजी दस लाख के करीब है।

सेवाग्राम में ढाई लाख रुपये की पूंजी लगाकर बम्बई की एक फर्म ने ऐसा कारखाना खोलना चाहा। राजस्थान में देश के एक उद्योगपति ने सरकार से दस हजार एकड़ भूमि पर इस तरह का प्रयोग करना चाहा, जिसमें किसानों को वे खेत तैयार करके देने के दस साल बाद वह अपनी पूंजी लौटा लेनेवाले थे। उत्तर प्रदेश के इटावा जिले में लिवर ब्रदर्स ने गन्ने की खेती करनेवालों को गन्ने के उत्पादन के साथ-साथ मटर पैदा करने को प्रोत्साहित किया। ढाई लाख रुपये का बीज पहले अपनी ओर से वितरित किया और पहले साल में ही अपनी पूंजी निकाल ली। गाँववालों को रासायनिक खाद, बीज आदि की तथा पानी की सुविधा मिली, उनको गन्ने में भी लाभ हुआ और मटर उत्पादन में भी।

देश के पूंजीवालों का लाभ इस तरह ग्रामीण विकास में मिलेगा तो निश्चित रूप से ट्रस्टीशिप के विचार को भी फूलने-फलने को इस देश में अवसर मिलेगा। शर्त यही है कि गाँववालों को प्रशिक्षित करते समय उनकी ट्रेनिंग में सामाजिक मूल्यों को दाखिल किया जाय। सामाजिक शिक्षा को बढ़ावा मिलना चाहिए।

आज देश में भिलाई कारखाने में विदेशी पूंजी के साथ भारतीय सरकार अपनी पूंजी लगाकर काम कर रही है। धीरे-धीरे इसी इंजीनियरों की टीम कम होती जा रही है। दस साल बाद वे अपनी पूंजी भी वापिस ले लेंगे। इसी तरह भारतीय पूंजीपतियों को प्रेरित करना चाहिए, नहीं तो वे दो नम्बर के खाते बनाते रहेंगे और हम उनकी जांच के लिए अधिकारी के ऊपर अधिकारी बढ़ाकर देश का खर्च ही और बढ़ायेंगे। दिल्ली से आगे सूरतगढ़ फार्म है, उसमें २ करोड़ रुपये सरकार ने लगाये हैं और पिछले दस सालों में १½% ब्याज भी उस धन का नहीं निकल पाया है।

ट्रस्टीशिप के विचार को आज के सन्दर्भ में समझने और समझकर व्यक्ति, संस्था और राज्यस्तर पर अमल में लाने की जरूरत है, फैक्टरियों की ओर ही देखते रहने से यह व्यवहार में आनेवाला नहीं है।

प्रस्तुतकर्ता : गुरुशरण

सत्ता, पूँजीपति और सरकार

[इस विषय पर 'भूदान यज्ञ' के अंक ३० में ३६२वें पृष्ठ पर श्री सिद्धराज ढड्ढा का 'चिन्तन-प्रवाह' प्रकाशित हुआ है। उसी सन्दर्भ में श्री सुरेश राम भाई ने अपना चिन्तन पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। इस विषय पर पाठक अपना चिन्तन लिखें तो अच्छा रहे। —सं०]

भारत के आर्थिक नियोजन और सामुदायिक विकास की अजीब विडम्बना है कि जितना ही सरकार द्वारा समाजवाद का नारा ज्यादा बुलन्द किया जाता है उतनी ही यहाँ विषमता की खाईं चौड़ी होती जाती है और बेकारी, गरीबी और भुखमरी के शिकार होनेवालों की तादाद भी बढ़ती जाती है! दुनिया में इस नमूने का 'मोनोपोलिस्टिक सोशलिज्म' (एकाधिकारवादी समाजवाद) शायद ही कहीं पनपता हो। क्या गजब है कि चोटी के ५ प्रतिशत श्रीमानों की आमदनी सन् १९५२–५३ में जहाँ देश की आबादी का १४·४ प्रतिशत थी वहाँ सन् १९६२–६३ में २४ प्रतिशत हो गयी और नीचे के २० प्रतिशत लोगों की आमदनी इसी मुद्दत में ७·५ प्रतिशत से गिरकर ६·४ पर उतर आयी।

दो रास्ते

स्पष्ट है कि पूंजी, साधन और सत्ता का केन्द्रीकरण हो रहा है और सारा देश लाचारी के साथ आर्थिक दासता के बन्धन में जकड़ता जा रहा है। सवाल यह है कि इन जंजीरों को कैसे तोड़ा जाय और आर्थिक आजादी कैसे हासिल हो। दो ही रास्ते हैं। एक तो यह कि सारी पूंजी, साधन और सत्ता, व्यक्ति से सरकार अपने हाथों में ले ले और फिर न्यायपूर्वक उसका विभाजन करे। दूसरा यह कि मालकियत न व्यक्ति के पास रहे, न सरकार के; बल्कि जनता अपने हाथों में ले ले और फिर उसका समत्वपूर्वक वितरण या विनियोग हो।

दुनिया में अबतक इन दो में से पहले रास्ते की मिसालें सामने आयी हैं। मार्क्स और लेनिन के कदमों पर चलकर रूस और चीन में पूंजीपतियों को निहत्था करके सारी सत्ता और साधन सरकार ने अपने हाथों में लेकर सबका हित करने और शोषण मिटाने की कोशिश की। सब जानते हैं कि इसमें पूरी कामयाबी भले न मिली हो, लेकिन जनता का दुःख पहले के मुकाबिले बहुत कम हो गया। उसे और भी कम करने और सच्चा साम्यवाद स्थापित करने का प्रयत्न वहाँ जारी है।

दूसरा रास्ता यानी सीधे जनता के हाथ में साधन पहुँचाने की कोशिश करनेवाला, इतिहास में अकेला भूदान-ग्रामदान का आन्दोलन है। पिछले अठारह बरसों में उसके अंदर की छिपी हुई अनेक सम्भावनाएँ प्रकट हुई हैं और अहिंसा के माध्यम से आर्थिक क्रान्ति की शक्यता में लोगों को विश्वास पैदा हुआ है। लेकिन अभी इस दिशा में बहुत कुछ करना बाकी है और तभी अहिंसा द्वारा शोषण-रहित और शासन-मुक्त समाज की स्थापना हो सकेगी।

पूंजीपति बनाम सरकार

लेकिन जबतक अहिंसा का यह पराक्रम सामने नहीं आता है तबतक क्या किया जाय? क्या पूंजीपतियों के हाथ में केन्द्री-

केन्द्रित होने दिया जाय ? और हम विकेन्द्रीकरण का राग अलापते रहें ? देश के सभी हितैषियों और सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को, विशेषकर सर्वोदय-प्रेमियों और गांधी-परिवार को इस पर आज सोचना है। अपने "चिन्तन-प्रवाह" लेखमाला में गांधी-परिवार के वरिष्ठ सदस्य और सुप्रसिद्ध सर्वोदय-विचारक श्री सिद्धराज ढड्ढा ने हाल ही में कहा है कि "हम नहीं चाहते कि आर्थिक सत्ता टाटा, बिड़ला जैसे उद्योगपतियों के हाथ में केन्द्रित रहे, लेकिन हम यह भी नहीं चाहते कि वह सरकार के हाथ में केन्द्रित हो। हम चाहते हैं कि शक्ति सीधे जनता के हाथ में आवे।" श्री सिद्धराज ने अपने लेख में संसद सदस्य श्री चन्द्रशेखर द्वारा पूंजीपतियों और केन्द्रीकरण के खिलाफ उठायी आवाज का स्वागत करते हुए यह खेद प्रकट किया है कि चन्द्रशेखरजी को इससे ज्यादा मतलब नहीं कि आर्थिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो और वह मयभुक्त लोगों के हाथ में आ जाय, बल्कि उन्हें इस बात की ज्यादा चिन्ता है कि यह सत्ता पूंजीपतियों की बजाय सरकार के जरिये लोगों के हाथों में आ जाय।"

राष्ट्रीयकरण की मांग

श्री सिद्धराजजी ने जो मन्तव्य प्रस्तुत किया है, उसकी सच्चाई से कोई इनकार नहीं कर सकता। उनके कथन से हम पूरी तरह सहमत हैं। लेकिन उनके वक्तव्य से कुल मिलाकर यह झलक निकलती है कि आर्थिक क्षेत्र में राष्ट्रीयकरण की जो प्रवृत्ति फैल रही है उसे वे पसन्द नहीं करते। सिद्धराजजी को जो जानता है वह स्वप्न में भी यह नहीं सोच सकता कि वे पूंजीपतियों का पक्ष करेंगे या उनके हाथ में सत्ता का केन्द्रीकरण चाहेंगे। लेकिन सवाल यही है जो हमने ऊपर उठाया है, वह यह कि जबतक जनता के हाथों में सत्ता न आ जाये तबतक क्या हो ? हमारा स्पष्ट मत है कि राष्ट्रीयकरण का रास्ता ही, जिसकी मांग श्री चन्द्रशेखर कर रहे हैं, बहुत सही और मुनासिब है। हम जानते हैं कि राष्ट्रीयकरण में भी शोषण की प्रक्रिया जारी रहती है। लेकिन व्यक्तिगत पूंजीवाद से तो राष्ट्रीयकरण लाख दर्जे बेहतर है। गत १० मई को प्रधानमंत्री ने अपने भाषण में कहा है कि "सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में बहुत सुधार की गुंजाइश है और उसके जो दोष सामने आये हैं उनका निराकरण होना चाहिए।" हम स्वीकार करते हैं कि दोष-मुक्त अवस्था में भी राष्ट्रीयकरण द्वारा जनता का शोषण जारी रहेगा। लेकिन उसका कुछ कल्याण भी जरूर होगा, जो कि पूंजीवाद में असम्भव है। इसलिए पूंजीवाद और राष्ट्रीयकरण में से हमको कोई एक चीज पसन्द करनी हो तो निःसंकोच भाव से हम राष्ट्रीयकरण का समर्थन करेंगे और इस दृष्टि से भाई चन्द्रशेखरजी ने जो मांग की है उसके औचित्य और आवश्यकता के बारे में जितना कहा जाय, थोड़ा है। जिस साहस और निष्ठा से चन्द्रशेखरजी ने यह कदम उठाया है उस कदम पर हम उनका अभिनन्दन करते हैं।

हम सर्वोदयवालों को एक बात नहीं भूलनी चाहिए। वह यह कि हमारी अपनी सीमाएँ हैं। पिछले अठारह बरस में भूमि के समवितरण की दिशा में तो हम कुछ काम कर सके हैं, लेकिन उद्योग के दायरे में हम सफल साबित नहीं हुए। हमने लाखों भूमिवालों से दान लिया है और अनेक ने अपनी भूमि के स्वामित्व का विसर्जन भी किया है। लेकिन हम किसी एक भी पूंजीपति या उद्योगपति को नहीं समझा सके और ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को अमली रूप देने के लिए नहीं मना पाये। श्रीमानों से हमको सम्पत्तिदान या आर्थिक सहायता भी ज्यादा नहीं मिल पा रही है। उनका रुख हमारे प्रति तिरस्कार का नहीं तो उदासीनता का जरूर है। उनकी दृष्टि में हम निपट अव्यावहारिक या कोरे आदर्शवादी हैं। न हम गरीब जनता या दरिद्रनारायण से समरूप हो सके हैं और न पूंजीपतियों को हिला पाये हैं। इस बीच उनका धंधा जारी है और जोरों से शोषण बढ़ रहा है और विषमता फैल रही है। बड़े उद्योगों, बैंकों, आयात-निर्यात आदि के राष्ट्रीयकरण से पूंजीपतियों की शोषण-शक्ति निःसन्देह घटेगी और जनता का भी बहुत कुछ त्राण होगा। इसलिए बुद्धिमानी की मांग है कि राष्ट्रीयकरण जितनी जल्दी हो सके, किया जाय।

तो, क्या पूंजीवाद से हम सीधे उस मंजिल पर पहुंच जायेंगे या पहले राष्ट्रीयकरण हो और फिर हम उस तरफ चलें। आज की परिस्थिति में ऐसा लग रहा है कि पूंजीपति ट्रस्टीशिप के लिए तैयार नहीं हैं और राष्ट्रीयकरण की सीढ़ी से ही आगे बढ़ना होगा। लेकिन उसमें कुछ देर लग सकती है, इसलिए हम यही चाहेंगे कि भारत के उद्योगपतियों को भगवान सुबुद्धि दे और वे ट्रस्टीशिप के लिए स्वयं आगे आकर स्वामित्व-विसर्जन करें।

सर्वोदय का गणित

आज जो अर्थशास्त्र दुनिया में चलता है उसमें पूंजीवाद का मतलब है 'प्राइवेट सेक्टर' और राष्ट्रीयकरण के मानी हैं 'पब्लिक सेक्टर'। अगर समाजवाद सौ प्रतिशत 'पब्लिक सेक्टर' लाना चाहता है तो पूंजीवाद 'प्राइवेट सेक्टर' पर लट्टू है। दोनों में ही केन्द्रीकरण है और जनता का शोषण है। लेकिन दोनों ही जनकल्याण का दावा करते हैं—एक सामूहिक स्वामित्व द्वारा और दूसरा व्यक्तिगत अभिक्रम द्वारा। इन दोनों का गणित एक-सा है : १०० + ० = १००।

लेकिन सर्वोदय-विचार का गणित निराला है : १०० + १०० = १००।

यह सूत्र हमें 'ईशावास्य उपनिषद्' से मिला है, लेकिन अर्वाचीन युग के लिए खरा उतरता है। दूसरे शब्दों में प्राइवेट और पब्लिक सेक्टर अलग-अलग और एक-दूसरे के वैरी न रहकर एक-दूसरे में ओत-प्रोत हो जायें। उनमें वही नाता होना चाहिए जो उँगलियों और हथेली में होता है। न हथेली काट देने से काम बनेगा और न उँगलियाँ उड़ा देने से। जब पब्लिक सेक्टर रूपी हथेली और प्राइवेट सेक्टर रूपी उँगलियाँ, दोनों अपना आपा भूलकर एक-दूसरे से समरस हो जायेंगी, तभी मुट्ठी बँधेगी और आर्थिक गतिविधि का हाथ देश रूपी शरीर के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकेगा।

भूदान-ग्रामदान आन्दोलन से हम जमीन के मसले को उठाकर यही नक्शा लाना चाहते हैं। लेकिन औद्योगिक क्षेत्र में जबतक हम अपने लक्ष्य पर नहीं पहुँचते हैं तबतक पूंजीवाद के मुकाबिले राष्ट्रीयकरण को अवश्य ही और सहर्ष प्राथमिकता देंगे। —सुरेश राम

• आध्यात्मिक साम्यवाद
• आन्दोलन के त्रिदोष
• सुखी कौन, दुखी कौन ?

अब सब जान गये हैं कि यह काम होकर ही रहेगा। अब भले कोई उसे चार-एक दिन आगे ढकेलने का प्रयत्न करे, लेकिन बिहार प्रान्तदान हुए बिना नहीं रहेगा। और इसलिए इस महायज्ञ में अपनी ओर से भी कुछ आहुति डालने के लिए सभी उत्सुक हैं। हजारीबाग में इसका दर्शन हुआ। ३० अप्रैल की रात को बाबा ने पटना छोड़ा, बीच में ४ दिन संथाल परगना में बिताकर ५ तारीख को हजारीबाग जिले में प्रवेश किया। तीन दिन हजारीबाग शहर में निवास था। एक दिन जिलेभर के प्रखण्ड-पदाधिकारी, शिक्षा-पदाधिकारी आदि लोग इकट्ठे हुए थे। सबने मिलकर तय किया कि ३१ मई तक हजारीबाग जिला पूरा दान में आ जाना चाहिए। शिक्षकों की पूरी ताकत उसमें लगे, यह भी तय हुआ। तब सवाल आया कि मई में ही स्कूलों की छुट्टियाँ शुरू होती हैं। छुट्टियाँ शुरू होते ही शिक्षक अपने-अपने घर चले जायेंगे। तो क्या किया जाय? शिक्षा-पदाधिकारी ने जाहिर किया कि स्कूलों की छुट्टियाँ जून के आरम्भ में शुरू होंगी और सारे शिक्षक मई अन्त तक इस काम में लगेंगे। कमिश्नर और सरकारी अधिकारी भी सहयोग के लिए तैयार थे। अब हजारीबाग में काम जोरों में शुरू हो गया है।

× × ×

१० मई की शाम को चार बजे बाबा राँची पहुँचे। हलकी-हलकी बारिश हो रही थी। प्रथम चार दिवस के लिए निवास की व्यवस्था सर्किट हाउस में थी। राँची जिले में सर्वोदय के कार्यकर्ता नहींवत् हैं। श्री वैद्यनाथ बाबू अपना दफ्तर बाबा के यहाँ पहुँचने के कुछ दिन पहले ही राँची लाये हैं। कैलाशबाबू भी उनके साथ हैं। स्वागत में एक छोटी-सी सभा हुई। उसे सम्बोधित करते हुए बाबा ने कहा—'बहुतों को बहुत कठिनाई मालूम होती है कि राँची जिलादान कौन करेगा? कैसे बनेगा? हम नहीं जानते कि कैसे बनेगा, लेकिन बनेगा इतनी पक्की बात है। कौन करेगा? उसका हमारे मन में एक ही उत्तर है—भगवान।'' 'राँची जिला तो यों ही दान में आ जायेगा। क्योंकि यहाँ के लोगों (आदिवासी) की परम्परा में ही 'स्पिरिचुअल कम्युनिज्म' (आध्यात्मिक साम्यवाद) है। 'कम्यूनिज्म' शब्द बाइबिल से आया है। ये कम्यूनिस्ट तो तोताराम हैं। बाइबिल का ही शब्द, उन्होंने उठा लिया है। जीसस क्राईस्ट के शिष्यों ने साम्ययोगी समाज बनाया था। वही शब्द कम्यूनिस्टों ने उठा लिया। यह जो साम्ययोगी समाज है, वह आदिवासियों की परम्परा में है। वे जमीन पर व्यक्तिगत मिलकियत नहीं मानते। इसलिए ग्रामदान का काम यहाँ आसान होना चाहिए।

सर्व सेवा संघ के नये अध्यक्ष श्री जगन्नाथनजी तथा मंत्री श्री ठाकुरदास बंग बाबा से मिलने आये थे। नये काम का भार सँभालने की तैयारी में हुए चिंतन की रूपरेखा बंगसाहब ने बाबा के सामने रखी। हमारे काम की गति बढ़ाने में तीन प्रकार की रुकावटें दिखाई दे रही हैं—१. वातावरण का अभाव, २. कार्यकर्ताओं का अभाव, ३. पैसे का अभाव। इन तीन समस्याओं का परिहार किस तरह से हो सकता है, इसकी योजना की रूपरेखा भी उन्होंने सामने रखी। बाबा ने कहा—'अभी जो त्रिदोष बताये गये, उनमें दो गुण हैं और एक दोष है। कार्यकर्ताओं की कमी और शिक्षित लोग कार्यक्रम में नहीं, यह दोष है। पैसे का अभाव बहुत बड़ा गुण है। और परिस्थिति विरोधी है, यह तो अत्यन्त अनुकूलता माननी चाहिए। अंधकार जितना गहरा होता है, उतना दीपक के लिए अनुकूल होता है। इसलिए परिस्थिति जितनी विरोधी होगी, उतनी आपके लिए अनुकूलता माननी चाहिए। पैसे का अभाव यह भी गुण है। ध्यान में आना चाहिए कि हमारे पास इतना पैसा है कि किसी एक घर में रह नहीं सकता। हर घर में वह पड़ा है।'

एक बार सर्व सेवा संघ के हरिहरन भाई से चर्चा करते हुए कहा—''शांति-सेना में आयु-मर्यादा नहीं होनी चाहिए। अगर आयु-मर्यादा रखते हैं, तो शांति-सेना शरीर-प्रधान हुई। कोई ऐसा हो सकता है कि उसके केवल हाजिर रहने से ही शांति हो सकती है। यह अलग बात है कि शारीरिक काम करना हो, तो शक्ति चाहिए। पर अहिंसा की खूबी यह है कि इन ताकतों का उपयोग अहिंसा में होता है। 'सरवाइवल आफ दी अनफिटेस्ट इन नानव्हायलन्स'। (अहिंसा में अंत्य का भी अस्तित्व रह सकेगा।) इसलिए जो ताकतें लड़ाई में काम नहीं कर सकतीं वे अहिंसा में काम करेंगी। इस तरह कुल ताकतों का इस्तेमाल अहिंसा करती है। हिंसा में सब ताकतें काम नहीं कर सकतीं और इसलिए हिंसा से जो शक्ति पैदा होती है, वह खास लोगों के हाथ में ही आती है।''

× × ×

ऐसे तो आजकल बाबा के पास खास कार्यक्रम रहता नहीं। सुबह ४ बजे ही बाबा उठ जाते हैं। सुबह का सारा समय प्रातः अध्ययन-अध्यापन में जाता है। १०-३० बजे से खुला दरबार लगता है। १२ बजे तक आवश्यकतानुसार सभा-चर्चाएँ होती हैं। कभी दर्शनार्थियों से बातें होती हैं। छोटा नागपुर कमिश्नरी के ईसाई बिशप बाबा से मिलने आये थे। उनका मुख्य कहना यह था कि—''हमें कोई आदर्श ग्रामदानी गाँव, जहाँ आगे का काम शुरू हो गया हो, देखने को मिलेगा, तो हम आदिवासी लोगों को समझा सकेंगे।'' बाबा ने उनसे कहा—''भारत में आप लोगों के संगठन पर हमारा विश्वास है। आप अपने क्षेत्र में ग्रामदान करवा कर नमूना तैयार करिएगा। एक आदर्श बनाने के लिए कितना समय लगेगा?'' बिशप साहब ने कहा—''वह नहीं सकते।'' बाबा ने कहा—''आपका संगठन अच्छा संग-

टन है। आपके पास पैसा भी है। फिर भी आप निश्चित तरह से कह नहीं सकते कि एक आदर्श गाँव बनाने में कितना समय लगेगा। आदर्श गाँव तो गाँववाले ही बनायेंगे। इसलिए आदर्श गाँव बनाने की बात यानी आन्दोलन टालने की बात है। आदर्श गाँव बनाने से क्रान्ति नहीं होती। अंग्रेज सरकार अगर कहती कि आप स्वराज्य माँग रहे हैं, पहले एक जिला आदर्श करके बताओ, फिर स्वराज्य मिलेगा, तो आप लोग मानते ? लोकमान्य तिलक ने कहा था—"स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। और, स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हम लोग सुखी होंगे, ऐसा जो कहता होगा, वह भ्रम में है। स्वराज्य के बाद मुसीबतें आयेंगी, लेकिन हम अपनी बुद्धि का विकास करना चाहते हैं। पारतंत्र्य में बुद्धि अविकसित रहती है। इसलिए बुद्धि विकास के लिए स्वराज्य चाहिए। आजादी का नाम है बुद्धि की आजादी।" बिशप साहब ने पूछा—"लेकिन गरीबों में दुःख-निवारण के लिए कुछ करना होगा।" बाबा ने कहा—"यह खूब समझना चाहिए कि ईसा मसीह ने कहा है कि - 'दी पुअर यू हैव आलवेज विथ यू।' गरीब तुम्हारे बीच में हमेशा रहेंगे। कम्यूनिस्ट पूछता है, आपको गरीब कायम रखने हैं क्या ? 'फार पुअर पट्रनाइजिंग एटिट्यूड ?' क्योंकि आप गरीबों को कायम रखनेवाले दृष्टिकोण को संरक्षण दे रहे हैं। आपकी सेवा करने के लिए, और स्वर्ग पाने के लिए, क्या आप गरीबी कायम रखना चाहते हैं ? इसका सीधा उत्तर आपको देना होगा। नक्सलवादी ने आदिवासी हो थे, बाण लेकर खड़े हो गये। उनो क्रान्ति आ रही है जोरों से। आप लोग आँखें बंद किये हुए हैं, बाबा आँख खुली रखकर देखता है। दुःखी को सुखी बनाने की बात क्या करें, दुनिया में कोई सुखी है नहीं। क्या अमरीका, इंग्लैंड में लोग सुखी हैं ? पैसा बढ़ा यानी सुख नहीं बढ़ा। हम लोगों को सुखी बनाने का दावा नहीं कर रहे हैं। हम उनको भाग्यनिष्ठ बनाना चाहते हैं। जिनके पास जो है वह सबको बाँटेगा। गरीबी हो, तो गरीबी बाँटेगा, विपुलता हो, तो विपुलता बाँटेगा। गाँवों में आध्यात्मिक वृत्ति बढ़े, बाँटने की वृत्ति बढ़े, यही इच्छा है।"

राँची जिले के प्रतिष्ठित लोगों की ओर से, जिनमें सरकारी अधिकारी भी होंगे, जिलादान के काम के लिए अपील निकालने का तय हुआ है। उपस्थित बिशपों ने व्यक्तिगत तौर पर अपने हस्ताक्षर भी उसमें शामिल कर दिये हैं।

× × ×

इन्दौर से श्री जसवंतराय भाई आये थे। आप इन्दौर में साहित्य-प्रचार का काम बहुत लगन से कर रहे हैं। बहुत दिनों के बाद बाबा से मिल रहे थे। बातें चल रही थीं। बाबा ने भाईजी से उनकी उम्र पूछी। उन्होंने ५५ वर्ष बतायी। बाबा ने कहा—'वैदिक धर्म में प्रार्थना है—जिजीविषेद् शत समा'...'पश्येम शरदः शतम्।' लेकिन आज का दिन आखिरी है समझकर व्यवहार करना चाहिए। हमने नियम किया था कभी किसीसे कर्जा लेना नहीं और देना नहीं। देना है तो दान देना और लेना है तो दान लेना। देनेवाला भी मुक्त और लेनेवाला भी मुक्त। आज का काम आज पूरा करके सोयेंगे। आज का दिन आखिरी समझकर काम पूरा कर देंगे। भगवान ने बुलाया, तो यह नहीं कहेंगे कि अभी थोड़ा काम बचा है।"

फिर भाईजी से पूछा कि नींद कितनी लेते हो ? भाईजी ने बताया कि नींद इतनी सहजता से नहीं आती। तब कहने लगे—'हम हमेशा मनुष्य को पहचानने के लिए पूछते हैं कि नींद कितनी लेते हो ? एक बार एक राजनैतिक नेता हमसे मिलने आये, तब उनसे हमने यही पूछा, तो बोले—'लेता हूँ, लेकिन पाता नहीं।' यह हालत है। कुल दुनिया का बोझ मेरे सिर पर है, यह जो मान लेता है, उसकी गति क्या होगी ? एक दफा मैं ट्रेन से जा रहा था। डिब्बा खाली पड़ा था। तो मैंने टहलना शुरू कर दिया। तो दूसरा आदमी बैठा था, उसने पूछा टहलते क्यों हो, तो मैंने जवाब दिया कि इसलिए कि जरा जल्दी पहुँच जाऊँगा। आपके टहलने से ट्रेन की गति में फरक पड़ता नहीं। गति है ट्रेन की। फिर आपको स्वतंत्र व्यायाम करना है, तो जरूर करें। वैसे बोझ उठानेवाला वह है ऊपर। आपको चिंता करनी है, तो करें। गाढ़ निद्रा आनी चाहिए। निद्रा समाधि स्थिति।" जसवन्त रायजी ने पूछा—"समाधि और निद्रा में क्या फरक है ?" बाबा ने कहा—"यह एक सवाल है। अगर निद्रा में आत्मा परमात्मा में लीन होती है, तो वापस कैसे आती है ? तो शंकराचार्य ने उसके लिए मिसाल दी है। गंगा के पानी से भरा हुआ लोटा सीलबंद कर के गंगा में डाल दिया और बाहर निकाल लिया, तो जैसे के वैसे निकला। आत्मा पर अहंरूपी सील लगी है। वह सील टूट जायेगी, तो परमात्मा के साथ एकरूप हो जायेंगे। सील किया हुआ लोटा बाहर रखेंगे, तो धूप से गरम होगा। गंगा में डालेंगे, तो उसके साथ एकरूप नहीं होगा, लेकिन ठंढा तो होगा।"

× × ×

बाबा का निवास फिलहाल राँची में रहेगा। बीच में ता० ६ से १० जून तक धनबाद और पुरुलिया जायेंगे। धनबाद में जिलादान समर्पण समारोह होगा। १० जून को वापिस राँची जायेंगे। यहाँ बाबा का निवास उत्तर का के रोड पर के एक मकान में है। स्व० अनुग्रहनारायण सिंह जब मंत्री थे, तब यहीं रहते थे। बाबा का स्वास्थ्य अच्छा है।

विनोबा निवास, —कालिन्दी
राँची (बिहार)

'भूदान-यज्ञ' के ग्राहक बनाने का व्यापक अभियान चलायें

सर्व सेवा संघ के मंत्री श्री ठाकुरदास बंग की कार्यकर्ता साथियों से अपील

वाराणसी। सर्व सेवा संघ के मंत्री श्री ठाकुरदास बंग ने सर्वोदय आन्दोलन को गतिवान्, प्राणवान् और ठोस बनाने के लिए कार्यकर्ता साथियों और मित्रों से अपील की है कि विचार-शिक्षण और उसकी स्थापना के लिए अहिंसक क्रान्ति के सदेशवाहक मुखपत्र 'भूदान यज्ञ' के ग्राहक बनाने का व्यापक और सघन अभियान चलायें। इस दृष्टि से 'भूदान-यज्ञ' के ग्राहक बनाने पर प्रति ग्राहक एक रुपया विशेष कमीशन देना भी तय हुआ

ग्रामदान-कानून अविश्वास पर आधारित न हो

बिहार की २०० लाख एकड़ जोत की जमीन में से आज की शर्त के अनुसार बिहार-दान होने तक भूमिहीन के लिए मिलनेवाली जमीन का आसानी से गणित हो सकता है। करीब १५ प्रतिशत आबादी के गाँव प्रखण्ड-दान में छूट जाते हैं। फिर लाखिरागी मौजा तथा शहरी क्षेत्र का जोत का रकबा, सब मिलाकर कम-से कम २०-२५ प्रतिशत जमीन तो एकदम अलग छूट जाती है। शेष १५० लाख एकड़ में से यदि एक-एक इंच का 'बीघा-कट्ठा' निकल जाय तो अधिक-से-अधिक ९ लाख ५० हजार एकड़ जमीन इस समुद्र-मंथन में से प्राप्त होने की सम्भावना है जब कि भूदान की बची जमीन में से अबतक करीब ४ लाख एकड़ जमीन बँट चुकी है।

व्यावहारिकता का विश्लेषण

हमने अबतक ऊपरी गणित सामने रखा। अब थोड़ा और समीप आकर इसकी व्यावहारिकता का विश्लेषण करें। ग्रामदान की शर्तों में मोटे तौर पर हस्ताक्षरकर्ता द्वारा यह कहा जाता है कि मैं अपनी कुल जमीन की मालिकी ग्राम-सभा को इस शर्त पर समर्पित करता हूँ कि इसमें भूमिहीनों के लिए बीघा-कट्ठा निकालकर शेष जमीन पर मेरा तथा मेरे आल-औलाद का जोत का हक कायम रहेगा। अब कानून चाहेगा कि जितनी जमीन घोषक के पास है उसका बीसवाँ हिस्सा स्पष्ट होना चाहिए। फिर इस बीसवें हिस्से का खाता, खसरा देकर घोषणापत्र पर घोषक की कुल जमीन का विवरण देना होगा, अन्यथा कानून की निगाह में हस्तांतरण होगा ही नहीं।

जहाँ थोड़ा भी ग्रामदान-पुष्टि का काम हुआ है, वहाँ इस शर्त की दुरूहता एवं अव्यावहारिकता का स्पष्ट दर्शन हुआ है। बिहार जैसे दमामी बन्दोबस्त के प्रान्त में कोई भूमि-अभिलेख पूर्ण नहीं है। इस स्थिति में घोषणापत्र पर भूमि का विवरण देना कठिन होता है और विवरण उपलब्ध कर दिया भी जाय तो विवरण छूट जाने का या 'अ' के नाम की जमीन 'ब' के नाम दाखिल हो जाने की सम्भावना रहती है। अब रहा बीघा-कट्ठा की जमीन का अलग से विवरण देने का प्रश्न। यदि इसे दाता से प्राप्त करते हैं तो पता नहीं रहता कि दाता किस प्रकार की भूमि का विवरण दे रहा है। चूँकि सर-जमीन तो देखी नहीं जाती और यदि दाता से विवरण पाने के विलम्ब के कारण कार्य-कर्ता स्वयं अपनी ओर से लिख देता है, जैसा कि आज बहुत करके हो रहा है, तो क्या पता कि दाता की झोपड़ी ही बीघे-कट्ठे में चली जाय!

हमने सिद्धान्त में माना है—भूमि की मालकियत का विसर्जन और कृषक-मजदूर की भूमिहीनता-निवारण। यह निर्भर करता है गाँव के दिल खुदकर एक और नेक होने पर। कोई व्यक्ति मात्र दो शर्तें मानकर ग्रामदान में शरीक होता है—मालकियत का विसर्जन, एवं ग्राम-सभा के सर्वसम्मत निर्णय का समादर, तो इसमें से छूट क्या जाता है? कार्यक्रम के रूप में घोषणा में ग्राम-कोष एवं भूमिहीनता-निवारण जोड़ दें। लेकिन चालीसवाँ हिस्सा का क्या प्रयोजन?

ग्रामदान की सरल घोषणा का नमूना

उपरोक्त तथ्य मानने के बाद हमारी घोषणा एकदम सरल हो जाती है—"मैं अपनी भूमि की मालकियत ग्रामसभा को इस शर्त पर समर्पित करता हूँ कि इसके जोत का अधिकार मुझे और मेरी सन्तान को हमेशा रहेगा। इसके साथ ही मैं संकल्प करता हूँ कि गाँव की सामूहिक पूँजी के लिए हमारे द्वारा ग्रामसभा में लिये गये निर्णय के अनुसार अपनी उपज या अन्य आय का एक हिस्सा ग्राम कोष में जमा करूँगा तथा हमारे गाँव के श्रमिक-मजदूर का गाँव से स्थायी सम्बन्ध हो, इस हेतु उनकी भूमिहीनता दूर करने का हमारा प्रयत्न होगा।"

अब इस प्रकार की घोषणा में कुछ छूटता भी नहीं और न नाहक कुछ सटता है। गाँव में पारस्परिक विश्वास नहीं है तो मुठिया से ग्रामकोष प्रारम्भ होगा और विश्वास होगा तो अपना बड़ा हिस्सा देकर गाँव का बैंक हो खड़ा हो जायेगा। उसी प्रकार बीघा-कट्ठा की अव्यावहारिकता भी दूर हो जाती है।

आज की स्थिति में 'अ' गरीब है, पर उसकी जमीन उसी राजस्व गाँव में है तो उसके पाँच बीघे में से पाँच कट्ठा तो निकल जायगा। लेकिन दूसरी ओर 'ब' धनी आदमी है, उसकी जमीन उस राजस्व गाँव में नहीं है तो उससे कुछ नहीं मिलेगा। बहुत-से ऐसे उदाहरण हैं कि जमीन पड़ोसी लाखिरागी गाँव या अन्य गाँव में है जहाँ अपने गाँव जैसा ही माना-जाना है। हमारी प्रस्तावित शर्त में यदि 'अ' अपनी ५ बीघे जमीन में से ५ कट्ठा दिल से निकालता है तो 'ब' अपने ५० बीघे में ५० कट्ठा निकालेगा। वह कानून की नजर में छूट जाने पर फिर आसानी से पकड़ में नहीं आयेगा, पर ग्राम-सभा के सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में प्रस्तावित कानून उसका बाधक नहीं होगा।

उसी प्रकार गाँव की जोत की जमीन के ५१ प्रतिशत की नाहक शर्त भी अलग करने योग्य है। जरा अपनी निगाहें उठाकर देखें। पूरे आन्दोलन में कितने गाँव की भूमि का ५१ प्रतिशत का हिसाब ठीक-ठीक मिलाकर घोषणा की गयी? क्या ऐसा नहीं होता कि जहाँ बड़े भूमिवान आज इस विचार को मानने में हिचक रहे हैं वहाँ मात्र भूमिहीन का रामपुर-मुसहरी तथा रामपुर हरिजन टोला, आदि नाम से ग्रामदान करवाकर अस्वाभाविक गाँव भी इस आन्दोलन में लाये जाने लगे हैं। जब हमने सिद्धान्त में यह मान लिया कि जो ग्रामदान में शरीक नहीं होंगे उन्हें भी ग्रामसभा की सदस्यता प्राप्त होगी, तो ५१ प्रतिशत तथा ४० प्रतिशत में क्या फर्क आता है, यह समझ में नहीं आता। और अब मात्र भूमिहीन का अलग ग्रामदान करवा ही लेते तो उससे तो यही अच्छा है कि उन्हें समीप आने का ही मौका दीजिए। यहाँ भी यदि ७५ प्रतिशत की शर्त कम मालूम हो तो और भी ५ जोड़ लें, यानी ८० प्रतिशत जन-संख्या के परिवारों की ओर से ग्रामदान की घोषणा हो जाय तो ग्रामदान पूरा हो जायेगा। ऐसा मानें।

आज सरकारी अधिकारी एवं हमारे आन्दोलन के कुछ कानूनदाँ लोगों के बीच

बड़ी खींचातानी चल रही है। हमारी तरफ से यह कहा जाता है कि अन्दाज से ५१ प्रतिशत मान लेने पर ग्रामदान घोषित किया जाय। सरकारी अधिकारी कहते हैं कि गाँव के भूमिवानों को पूरी जमीन का रकबा तथा ग्रामदान के शरीक जमीन का रकबा जब तक मालूम नहीं होता तबतक यह ५१ प्रतिशत आयेगा कहाँ से ? राजस्व अभिलेख में राजस्व गाँव की कुल जमीन का रकबा तो मिलेगा, पर उसमें से उस गाँववाले की कितनी जमीन है, यह पता लगाना थोड़ा कठिन है और उससे भी कठिन है पाही और देही काश्तकार की व्याख्या करना। यानी एक तरफ हम नाहक शर्तें लगाते हैं और दूसरी ओर उससे छूटना भी चाहते हैं।

ग्रामदान-घोषणा का नया तरीका

यदि बीघा-कट्ठा और ५१ प्रतिशत भूमि की शर्त निकालकर कानून बनता है तो ग्रामदान की सरकारी घोषणा का काम सहज और सुकर हो जायगा। गाँव में ढोल देकर एक जगह यह सूचना लगा दी जायगी कि अमुक-अमुक व्यक्ति ने अपने या अपने परिवार की ओर से निम्नलिखित शर्तों के अनुसार ग्रामदान में शरीक होने की घोषणा की है। ३० दिन के अन्दर कोई आपत्ति नहीं आयी तो पंचायत की परिवार पुस्तिका या सेन्सस रिपोर्ट उलटकर देखा। जनसंख्या मिलायी। ८० प्रतिशत हस्ताक्षर पूरे हुए कि ग्रामदान घोषित।

इस सरकारी और वैधानिक घोषणा के साथ यदि वहाँ वातावरण भी बना है तो ग्रामदान विचार पल्लवित होने लग जायेगा। यदि वातावरण नहीं बना है तो घोषणा वातावरण की प्रतीक्षा में पड़ा रहेगा, पर यह वहाँ के किसी काम में रुकावट नहीं बनेगा। यह नहीं होगा कि 'अ' की जमीन 'ब' के नाम हो गयी।

इतने लम्बे अनुभव के बाद अब आन्दोलन में लगे एक-एक मित्र पुष्टि की कठिनाई से पूर्ण परिचित हो गये हैं। ऐसे सभी साथियों को हमारा निवेदन मानो उनकी ही बात है, ऐसा लगेगा।

मेरा अनुरोध है कि सब लोग अपने पूर्वाग्रह से ऊपर उठकर इस नयी प्रस्तावना पर गंभीरता से विचार करें और उचित हो तो कहीं सिद्धान्त का धागा नहीं छूट रहा है तो इसे एक स्वर से स्वीकार करें। फिर कानून के निष्णात लोग इसे भाषा प्रदान कर सरकार से वर्तमान अधिनियम में बदल करने का प्रस्ताव दें। मुझे लगता है कि सरकारी अधिकारियों को भी इसे मानने में कठिनाई नहीं होगी।

यदि आन्दोलन के मित्रों को मेरी बात जँचे तथा सरकार से इस अनुसार कानून में जल्दी परिवर्तन करवा लिया जाय तो मेरे अनुमान से बिहारदान की पुष्टि के लिए अधिक से अधिक तीन माह का समय चाहिए।

—निर्मलचन्द,
मंत्री, बिहार भूदान-यज्ञ कमिटी, पटना

"अणुव्रत" (पाक्षिक) : अहिंसा विशेषांक

संपादक : हर्षचन्द्र, रिषभदास रांका, प्रकाशक : अ०भा० अणुव्रत समिति, छतरपुर रोड, महरौली, नयी दिल्ली–३०।
पृष्ठ २६६, वार्षिक मूल्य : दस रुपये।

आज विश्वशांति एक समस्या बनी हुई है। गांधी-शताब्दी के इस वर्ष में बहुत अधिक लोगों को यह मालूम भी नहीं है कि गांधी जीवित हैं या मर गये हैं तथा गांधी ने सत्य और अहिंसा नाम की कोई देन दुनिया को दी है। लोगों को गांधी की जानकारी हो या न हो, लेकिन गांधी को लोगों की चिन्ता थी। चिन्ता ही सिर्फ नहीं थी, उन्होंने हिंसा और असत्य से छुटकारा दिलाने की कोशिश भी की थी। उनकी कोशिश उनके जीवन-काल में कोई परिणाम नहीं ला सकी, यह अलग बात है।

शताब्दी के इस वर्ष में दुनिया भारत में गांधी को देखना चाहती है। और यह भी देखना चाहती है कि हिंसा और अहिंसा की वर्तमान असमंजस भरी मंजिल में भारत का क्या रोल होगा ? इस बात से शायद किसीको इनकार नहीं है कि आज जनजीवन में जिस तीव्रता से हिंसा प्रवेश कर रही है, अगर यही गति और परिस्थिति बनी रही तो गौतम, गांधी, बुद्ध, विनोबा के इस देश को रसातल में जाने से कोई बचा नहीं सकेगा।

गांधीजी को दूसरे देशवाले भी उनकी मानवीय हित की दृष्टि से उपयोगी शिक्षाओं के कारण सही अर्थों में अपना रहे हैं। इसका सबसे ताजा और प्रेरक उदाहरण चेकोस्लोवाकिया है। भारत के स्वयंभू गांधीवादियों ने अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए अहिंसा का नाम अवश्य लिया, लेकिन उससे अहिंसा बदनाम हुई है। यही कारण है कि गांधी के देश में गांधी कहीं दिखाई ही नहीं देता! विनोबाजी बराबर कहते हैं कि अहिंसक क्रान्ति का गंगाजल लेकर पड़ोसी देशों में जाना चाहिए क्योंकि दुनिया को गांधी की अहिंसक क्रान्ति की तीव्र आवश्यकता है।

महावीर-जयन्ती के अवसर पर नैतिक जागरण का संदेश देनेवाली अणुव्रत समिति द्वारा गांधी-शताब्दी के उपलक्ष्य में "अहिंसा विशेषांक" प्रकाशित हुआ है, इसके लिए संपादकद्वय धन्यवाद के पात्र हैं। जैन मतावलम्बी लेखकों ने अहिंसा को एक ही कोण से प्रस्तुत किया है। यदि विवेचन में समग्रता का भाव रहता तो विशेषांक की उपयोगिता और बढ़ जाती।

भारत की संत-परम्परा में महावीर का एक उच्च स्थान है। उन्होंने अपने जीवन द्वारा अहिंसा का मार्ग प्रशस्त किया है। उनके पहले भी अहिंसा का प्रसार अन्य देशों में किया गया था। आज तो पहले से कहीं ज्यादा अहिंसा धर्म की जड़ें गहराई में जा सकती हैं, लेकिन क्या अणुव्रत समिति इस पुनीत कार्य के लिए कुछ प्रयास करेगी ?

इस "अहिंसा विशेषांक" में देश के जाने माने सुपरिचित गांधी-भक्तों एवं अहिंसा-अनुयायियों के लेख संकलित हैं। पूरे पृष्ठों के ८४ विज्ञापन देखकर पाठकों को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि विज्ञापनों के लिए ही विशेषांक निकाला गया है। यदि लेखों का क्रम रखने में थोड़ी सावधानी बरती गयी होती तो पूरा अंक ज्यादा रुचिकर होता। अंक पठनीय एवं संग्रहणीय है। आशा है, अहिंसा-प्रेमी पाठक इसका स्वागत करेंगे।

—कपिल अवस्थी

तत्त्वज्ञान

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को दी गयी फांसी तथा गणेश शंकर विद्यार्थी के आत्म-बलिदान के प्रसंगों से क्षुब्ध कराची-कांग्रेस-अधिवेशन के लोगों को सम्बोधित करते हुए २६ मार्च १९३१ को गांधीजी ने कहा था :—

"जो तरुण यह ईमानदारी से समझते हैं कि मैं हिन्दुस्तान का नुकसान कर रहा हूं, उन्हें अधिकार है कि वे यह बात संसार के सामने चिल्ला-चिल्लाकर कहें। पर तलवार के तत्त्वज्ञान को हमेशा के लिए तलाक दे देने के कारण मेरे पास अब केवल प्रेम का ही प्याला बचा है, जो मैं सबको दे रहा हूं। अपने तरुण मित्रों के सामने भी अब मैं यही प्याला पकड़े हुए हूं ....।"

उसके बाद का इतिहास साक्षी है कि देश ने तलवार के तत्त्वज्ञान को तलाक देनेवाले गांधी का साथ दिया। साम्राज्य-वाद की नीव हिली, भारत में लोकतंत्र की नीव पड़ी और संसार को मुक्ति का एक नया रास्ता मिला।

संसार आज बन्दूक की नाली के तत्त्वज्ञान से और अधिक ग्रस्त हुआ है। विनोबा संसार को वही प्रेम का प्याला पिलाकर बन्दूक के तत्त्वज्ञान को तलाक दिलाना चाहता है और देश में सच्चे स्वराज्य की स्थापना के लिए उसने नया रास्ता बताया है।

क्या हम वक्त को पहचानेंगे और महान कार्य में वक्त पर योग देंगे ?

संताल परगना में जिलादान-अभियान तीव्रतर

जिले का लगभग पूरा गैर आदिवासी क्षेत्र ग्रामदान में शामिल

—आदिवासियों में व्याप्त कुछ भ्रामक धारणाओं को दूर करने का प्रयत्न जारी—

देवघर। हमारे विशेष प्रतिनिधि की सूचना के अनुसार बिहार के संताल परगना जिले में जिलादान का अभियान जोरों से चल रहा है। २६ मई '६६ तक के प्राप्त आंकड़ों के अनुसार जिले की स्थिति निम्न प्रकार है।

१. अनुमण्डल जामताड़ा के कुल चारों प्रखंडों का प्रखण्डदान हो चुका है।

२. अनुमण्डल देवघर में प्रखण्ड मधुपुर, सारवाँ, मोहनपुर, सारठ भी पूरे हो चुके हैं; शेष तीन में देवघर का ७०%, पालोजोरी का ४०% तथा करौं का ३५% काम हुआ है, अभियान जारी है।

३. अनुमण्डल गोड्डा में प्रखण्ड सुन्दरपहाड़ी, बोआरीजोर, मेहरमा, महगावा, पत्थरगावा, पोड़ियाहाट पूरे हो चुके हैं। गोड्डा के कुल २०० गाँवों में से ६३ गाँव हो चुके हैं। शेष गाँवों को, जो आदिवासियों के हैं, ग्रामदान में लाने का प्रयत्न चल रहा है।

४. अनुमण्डल राजमहल का बोरियो प्रखण्डदान हो चुका है, बड़हरवा में ७०% और साहेबगंज में ६०% काम हुआ है। शेष आदिवासियों के प्रखण्ड बरहेट, पतना, राजमहल, तालाझारी में आदिवासियों में व्यापक रूप से व्याप्त भ्रम के निवारण का प्रयास चल रहा है।

५. अनुमण्डल पाकुड़ के प्रखण्ड महेशपुर-राज और पाकुड़िया में क्रमशः ४०% और ३०% काम पूरा हुआ है, शेष प्रखण्ड पाकुड़, आमरा पाड़ा, लिट्टीपाड़ा, हरेनपुर, जो आदिवासियों के हैं, अभी नहीं हो सके हैं।

६. अनुमण्डल दुमका का प्रखण्ड रानेश्वर हो चुका है। मसलिया में ६०%, जड़मुण्डी में ६०%, सरैयाहाट में ४०% काम हो चुका है, शेष शिकारीपाड़ा, काठीकुण्ड, गोपीकान्दर, रामगढ़, जामा आदिवासियों के प्रखण्डों का काम बाकी है।

संताल परगना बिहार के सबसे बड़े जिलों में से है। मुख्य आबादी आदिवासियों की है। मिशन (रोमन कैथलिक) का काम सघन रूप से फैला है। आदिवासियों के सांस्कृतिक और धार्मिक ही नहीं, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में भी इनका प्रभाव है, और एक तरह से मिशन के लोग ही उनके दिशा-निर्देशक हैं। सहानुभूति होते हुए भी मिशनवालों का अभी तक ग्रामदान आन्दोलन में सक्रिय योगदान नहीं प्राप्त हो सका है। दूसरी ओर गैर आदिवासी लोगों द्वारा आदिवासी लोगों का जो शोषण हुआ है, उसके कारण भी उनमें व्यापक असन्तोष व्याप्त है। उनके अन्दर यह भ्रामक धारणा फैल गयी है कि यह 'दिकू' (गैर आदिवासियों) का आन्दोलन है, जो आदिवासियों के हित में नहीं है। इस कारण यहाँ आदिवासियों में काम तेजी से आगे नहीं बढ़ पा रहा है। प्रयास जारी है कि लोगों के अन्दर व्याप्त इस गलत धारणा का निराकरण हो, और सही स्थिति सामने आये।

जिले के विकास पदाधिकारी तथा शिक्षक लोग पूरी निष्ठा से काम में लगे हैं। पथरगामा-हाट और गोड्डा के विकास पदाधिकारियों से हमारे प्रतिनिधि ने प्रत्यक्ष मुलाकात की, और उनसे बातचीत करने पर इस नतीजे पर पहुँचा कि ये कर्मचारी अपनी स्वतंत्र हैसियत से आन्दोलन के एक कार्यकर्ता की तरह पूरी निष्ठा से काम में लगे हैं; और अच्छी तरह विचार समझाकर ही ग्रामदान प्राप्त करते हैं।

पईयाहाट के विकास पदाधिकारी ने तो हमारे प्रतिनिधि के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा, "साहब, इस काम से हमारी नौकरी में न तो तरक्की होने वाली है, और न हमें कोई खास प्रतिष्ठा ही मिलनेवाली है, लेकिन फिर भी मैं काम में लगा हूँ, क्योंकि मुझे अनुभव हो रहा है कि इससे ही विकास के काम की बुनियाद बन सकेगी। दूसरी बात कि विनोबाजी की प्रेरणा हमें चुप-बैठने नहीं देती। उन्होंने हमारी सभा में कहा था—'जो विचार नहीं समझता है, और काम नहीं करता है, वह अज्ञानी है, लेकिन जो विचार समझता है, फिर भी काम नहीं करता, वह अपराधी है।' दूसरी बात उन्होंने कही थी, 'सभी सरकारी कर्मचारी सर्वोदय कार्यकर्ता हैं, क्योंकि उन्हें जाति, धर्म, पंथ, पक्ष आदि संकुचित सीमाओं से परे होकर मनुष्य के नाते मनुष्य की सेवा करनी होती है।'—तो ये दोनों बातें दिल में पैठ गयी हैं, और हमें चुपचाप बैठने नहीं देती।"

संताल परगना खादी ग्रामोद्योग समिति के मंत्री श्री लखीभाई अपने साथियों सहित रातदिन एक करके काम में लगे हैं। जिले के सम्मान्य नेता श्री मोतीलाल केजरीवाल भी पूरे उत्साह से काम में लगे थे, अभी अस्वस्थ हो जाने के कारण इलाज में हैं।

ऋग्वेद-सार

भागवत धर्म-सार, नामघोषा सार, कुरान-सार, मनु शासनम्, ख्रिस्त धर्म-सार आदि की श्रेणी में "ऋग्वेद-सार" भी प्रकाशित हो गया है।

यह सर्वविदित है कि ऋग्वेद विश्व का प्राचीनतम आध्यात्मिक मंत्र संग्रह (अनुभूति-स्फुरण) है। इस पर गत ११ साल से विनोबाजी का मनन-चिंतन चल रहा है। उसका प्रकट परिणाम है उपर्युक्त "ऋग्वेद-सार"। मूल ग्रन्थ का आठवाँ हिस्सा इसमें संगृहित है। केवल मूल मंत्र ही दिये गये हैं। इस सम्बन्ध में विनोबाजी की यह राय है—"शब्द प्रमाण है। अर्थ तो अनन्त हो सकते हैं। और इसलिए अर्थ देने का सूझ नहीं रहा। ऋषियों का मुख्य उपकार है, उन्होंने हमें शब्द दिये।"

मूल्य: साधारण संस्करण : रु० ३ } डाकखर्च
विशिष्ट संस्करण : रु० ५ } अलग

परमधाम प्रकाशन
पो० पवनार, जि० वर्धा (महाराष्ट्र)

एक सप्ताह में जिलादान प्राप्त करने का अभूतपूर्व प्रयास

उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में सोलह सौ कार्यकर्ता एक साथ अभियान में जुटे

—सम्पूर्ण जिले में ग्रामदान का महातूफान प्रारम्भ—

फर्रुखाबाद (उ० प्र०)—उत्तरप्रदेश में फर्रुखाबाद जिला सर्वोदय विचारवाला जिला है। यहाँ के जिला परिषद के अध्यक्ष श्री कालीचरण टण्डन, जो कि उत्तरप्रदेशीय पंचायतराज के भी कार्यकारी अध्यक्ष हैं, भूदान आन्दोलन के प्रारंभिक समय से ही सर्वोदय आन्दोलन में विशेष रुचि लेते रहे हैं और कार्यक्रमों में भाग लेते हुए योगदान करते रहे हैं। जबसे ग्रामदान का आन्दोलन चला, तबसे उनकी तीव्र इच्छा और प्रयत्न रहा है कि जल्दी-से-जल्दी फर्रुखाबाद जिला-दान हो जाय।

इस जिले में १४ ब्लाक थे जिनका विलीनीकरण होकर अब १० ब्लाकों में जिला विभक्त है। १. मुहम्मदाबाद, २. राजेपुर, ३. कमाल गंज, ४. उमेरदह, ५. कन्नौज, ६. छिबरामऊ, ७. तालग्राम, ८. हुसेरन, ९. कायमगंज, और १०. शमसाबाद। इन ब्लाकों में कुल राजस्व गाँव १७०८ हैं। ३० अप्रैल तक इस जिले में ८३५ ग्रामदान हो चुके हैं। एक ब्लाक करीब-करीब पूरा हो गया था।

पूरे जिले में एक साथ अभियान चलाकर जिलादान पूरा करने के लिए शिविर किये गये हैं। सभी ब्लाकों के सभी गाँवों में एक साथ अभियान चले, इस योजना को सम्पन्न करने के लिए करीब १४०० शिक्षक और खादी व अन्य रचनात्मक कार्यों में लगे हुए २०० कार्यकर्ताओं ने ६ शिविरों में ३०, ३१ मई को शिक्षण प्राप्त किया। शिविरों का उद्घाटन और मुख्य शिक्षण सर्व श्री धीरेन्द्र भाई, राजाराम भाई, कपिल भाई, रामजी भाई, लक्ष्मीन्द्र प्रकाश, रामजीवन शुक्ला, कामतानाथ गुप्त (रिटायर्ड जज) ने किया। शिविरों में २ दिन तक भली-भाँति प्रशिक्षण और अभ्यास जारी रहा। सभी ब्लाकों में १ जून '६९ को ७ जून तक के लिए सैकड़ों टोलियाँ "जय जगत" का नारा लगाती हुई क्षेत्र में चली गयीं। सारे जिले में एक अभूतपूर्व दृश्य और उत्साह दीख रहा है। सारा जिला ग्रामदान ग्रामस्वराज्य-मय-सा लगता है। इन शिविरों में गाँवों के बहुत से प्रधान और प्रतिष्ठित नागरिकों ने शामिल होकर अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त किया। शिविरों का प्रबंध स्थानीय सहयोग, अन्न व अर्थ प्राप्त करके शिक्षकों के अभिक्रम ने किया। ग्रामदान में शामिल होने के लिए और अपना पूर्ण सहयोग देने के लिए जिला परिषद के अध्यक्ष के हस्ताक्षर से सारे जिले में नोटिस वितरित की गयी है। पूर्व तैयारी के लिए जितने भी फोल्डर, पोस्टर, ग्रामदान-सम्बन्धी विचार साहित्य उपलब्ध था, प्रसारित किया गया है।

इस जिलादान-अभियान से आशा बँधी है कि जिस उत्साह और लगन के साथ कार्यकर्ताओं ने प्रस्थान किया है, जिले के १० ब्लाकों का प्रखण्डदान पूर्ण होकर ७ जून को जिलादान पूरा हो जायेगा।●

पूर्णिया जिला ग्रामस्वराज्य शिविर

कटिहार में गत २५, २६, २७ मई को जिला गांधी शताब्दी समिति की ओर से एक ग्रामस्वराज्य शिविर आयोजित किया गया। शिविर में २५, २६ को आचार्य राममूर्ति का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

जिलादान के बाद अब पूर्णिया जिले में ग्रामस्वराज्य की स्थापना के लिए क्या *कार्यक्रम शुरू किये जायें, यह चर्चा का मुख्य* विषय था। कार्यकर्ताओं ने, जिलादान के बाद ग्रामस्वराज्य की दिशा में बहुत कुछ काम नहीं हो पाया, इस पर असंतोष जाहिर किया, और चिंता व्यक्त की कि अगर हमारा काम तेजी से आगे नहीं बढ़ा तो नक्सलपंथी बाजी मार ले जायेंगे और हम देखते रह जायेंगे।

आचार्य राममूर्ति ने उनके समक्ष ग्राम-स्वराज्य का पूरा चित्र प्रस्तुत करते हुए हर कार्यकर्ता को अपना एक सघन क्षेत्र बनाकर उसमें जी-जान से जुट जाने की अपील की। आपने कहा कि ग्रामस्वराज्य की स्थापना के लिए गाँव की शक्ति बढ़ाने का काम जरूरी है। बिना गाँव की शक्ति बढ़े और सक्रिय हुए ग्रामस्वराज्य नहीं होगा। आशा है, इस शिविर के बाद इस दिशा में ठोस काम हो सकेगा।●

शमसाबाद में बलिदान की प्रथा बंद

आगरा जिले के प्रखण्डदानी क्षेत्र में ३००वर्षों से चले आ रहे देवी मेले में प्रतिवर्ष ४००-५०० पशुओं के बलिदान की प्रथा को इस वर्ष सर्वोदय कार्यकर्ताओं ने बन्द करा दिया। प्राप्त सूचना के अनुसार सर्वोदय कार्यकर्ता श्री चिमनलाल के नेतृत्व में ८० कार्यकर्ताओं ने वहाँ जाकर इस प्रथा के विरुद्ध प्रचार, लोक-शिक्षण, तथा प्रतिरोध का कार्यक्रम किया, जिससे यह प्रथा शान्तिपूर्ण ढंग से बन्द हो गयी।

भूल-सुधार

कृपया २ जून के 'भूदान-यज्ञ' में सम्पाद-कीय के कालम एक में नीचे से ६ठीं पंक्ति में 'सहायता' शब्द की जगह 'समझ'; ४३७ पृष्ठ पर अन्त में १२-७-'६९ की जगह १२-५-'६९; ४४० पृष्ठ पर पहले कालम के आखिरी पंक्ति में 'श्री कपिल भाई ने ग्राम-स्वराज्य की स्थापना पर जोर दिया।'—पढ़ें। भूल के लिए क्षमा-याचना।—सम्पादक

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक—साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ३७

सोमवार १६ जून, '६९

अन्य पृष्ठों पर

शास्त्रों का अर्थ अनेक लोग अनेक करते हैं। सीधा रास्ता यह है कि जो अर्थ हमें जँचे वही करें और उसके मुताबिक चलें, भले हमारा अर्थ व्याकरण से प्रतिकूल सिद्ध हो। शर्त यह है कि हमारा अर्थ नीति का विरोधी न हो और हमको संयम की ओर ले जाता हो। —महात्मा गांधी

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४३८५

आम लोगों का असली शत्रु कौन है?

वर्ग विग्रह का विचार मुझे अपील नहीं करता। भारत में वर्ग विग्रह न सिर्फ अनिवार्य नहीं है, बल्कि वह परिहार्य भी है, यदि हमने अहिंसा का सन्देश समझ लिया है। जो वर्ग विग्रह के अनिवार्य होने की बात करते हैं, उन्होंने अहिंसा के गूढ़ अर्थ नहीं समझा है या केवल ऊपर-ऊपर से ही समझा है।

हमें पश्चिम से आये हुए लुभावने नारों को अपने पर हावी नहीं होने देना चाहिए। क्या हमारी कोई स्वतंत्र पूर्वीय परम्परा नहीं है? क्या हम पूँजी और श्रम के प्रश्न का अपना ही हल नहीं खोज सकते? वर्णाश्रम-व्यवस्था ऊँच-नीच के भेदों और पूँजी तथा श्रम के भेदों के बीच सामंजस्य कायम करने का उपाय नहीं तो और क्या है? इस विषय में जो भी चीज पश्चिम से आती है, उस पर हिंसा का रंग चढ़ा हुआ होता है। मुझे उस पर आपत्ति इसलिए है कि मैंने वह बरबादी देखी है, जो अन्त में इस मार्ग पर चलने से होती है। आजकल पश्चिम के भी अधिक विचारशील लोग, जिस गहरी खाई की ओर यह प्रणाली तेजी से जा रही है, उसे देखकर स्तंभित रह जाते हैं। और मेरा पश्चिम में अगर कोई असर है, तो वह एक ऐसा हल ढूँढ़ने के मेरे सतत प्रयत्न के कारण है, जिसमें हिंसा और शोषण के कुचक्र से निकलने की आशा निहित है। मैं पश्चिम की समाज व्यवस्था का सहानुभूतिपूर्ण विद्यार्थी रहा हूँ और मैंने यह बात पायी है कि पश्चिम का आत्मा जिस ज्वर से पीड़ित है, उसकी जड़ में सत्य की अविश्रान्त खोज है। मैं पश्चिम की इस भावना की कद्र करता हूँ। हमें अपनी पूर्वीय संस्थाओं का वैज्ञानिक खोज की उसी भावना से अध्ययन करना चाहिए। फिर हम एक ऐसे सच्चे समाजवाद और साम्यवाद का विकास कर लेंगे, जिसकी संसार ने अभी कल्पना भी नहीं की होगी।[1]

समस्या एक वर्ग को दूसरे वर्ग से भिड़ा देने की नहीं है, मगर मजदूरों को शिक्षा देकर अपने गौरव का भान कराने की है। आखिर तो धनवानों की संख्या संसार में आटे में नमक के बराबर ही है। ज्यों ही मजदूर अपनी ताकत को पहचान लेंगे और पहचानकर भी न्यायपूर्ण व्यवहार करेंगे, त्यों ही पूँजीपतियों का व्यवहार भी न्यायपूर्ण हो जायगा। मजदूरों को धनवानों के विरुद्ध भड़काना वर्ग-द्वेष को और उससे होनेवाले सारे बुरे परिणामों को चिरस्थायी बनाना है। यह संघर्ष ऐसा कुचक्र है, जिसे हर कीमत पर टालना चाहिए। यह अपनी कमजोरी को कबूल करना है, अपने को हीन समझने की निशानी है। जिस क्षण मजदूर अपना गौरव पहचान लेंगे, उसी क्षण पैसे को अपना उचित स्थान मिल जायगा—अर्थात् वह मजदूरों के लिए धरोहर बन जायगा, क्योंकि श्रम पैसे से बड़ा है।[2]

मो. क. गांधी

(१) 'अमृत बाजार पत्रिका' : ३-८-'३४, (२) 'हरिजन' : १९-१०-'४२

आम जनता की मुक्ति की क्रान्ति अहिंसा से ही सम्भव

स्वयंसेवी सेवा-संस्थाओं के राष्ट्रीय सम्मेलन में श्री जयप्रकाश नारायण की घोषणा

नयी दिल्ली, रविवार, ८ जून। नयी दिल्ली स्थित गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र में स्वयंसेवी (वालण्टरी) सेवा संस्थाओं के अखिल भारतीय सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि यदि मुझे यकीन हो जाय कि हिंसा के बिना आम जनता की मुक्ति नहीं हो सकती तो मैं हिंसा का तरीका कबूल कर लूँगा।

स्वयंसेवी सेवा-संस्थाओं के जिस राष्ट्रीय सम्मेलन का श्री जयप्रकाश बाबू ने उद्घाटन किया, उसमें भारत की १२० से अधिक सेवा-संस्थाओं के प्रतिनिधि उपस्थित थे। यह सम्मेलन गांधी जन्म-शताब्दी-समारोह की जनसम्पर्क समिति की ओर से आयोजित था।

गांधी-शताब्दी वर्ष के दौरान भारत के सभी भागों में हिंसा का विस्फोट हो रहा है, इस पर अपना दुःख प्रकट करते हुए श्री जयप्रकाशजी ने कहा कि मैं हिंसा को इसलिए कबूल नहीं कर पाता, क्योंकि अन्ततः हिंसक क्रान्ति की परिसमाप्ति आम लोगों के प्रति विश्वासघात में होती है।

देश की वर्तमान परिस्थिति के प्रति अपना खेद प्रकट करते हुए श्री जयप्रकाशजी ने कहा कि स्वतंत्र होने के २२ वर्ष बाद भी बम्बई और कलकत्ता जैसे नगरों में लोग सूअरों जैसी जिन्दगी बिता रहे हैं और नालियों में से अन्न के दाने चुनकर खाते हैं! कानून और व्यवस्था के नाम पर यह अन्याय जारी रखा जा रहा है। उन्होंने कहा कि क्या कानून सिर्फ उस समय लागू होना चाहिए, जबकि वे गरीब और निराशोन्मत्त लोग उन खिड़कियों को तोड़ रहे हों, जिनके पीछे खाद्य पदार्थों का प्रदर्शन होता है? जब कि गरीब लोगों को बहुत मामूली-सा सामाजिक और आर्थिक न्याय भी नहीं मिल रहा है, तब वे हिंसा का सहारा लेने के अलावा और करेंगे भी क्या? आखिर गरीब लोग कितना धीरज रखें? श्री जयप्रकाशजी ने कहा—'यद्यपि नक्सलपंथी हिंसात्मक तरीका इस्तेमाल कर रहे हैं, फिर भी उनके साथ मेरी सहानुभूति है, क्योंकि वे लोग सामान्य-जन के लिए कुछ करना चाहते हैं। बिहार उनकी में सुविधा-सम्पन्न किसानों के रैयत को झोपड़ी वाली जमीन का अधिकार देनेवाला कानून सन् १९५० में ही पारित हो गया था, लेकिन निहित स्वार्थ के लोगों ने उस कानून को लागू नहीं होने दिया। बिहार में गैर-कांग्रेसी सरकार सत्तारूढ़ हुई, वह भी इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कर सकी।

'कांग्रेसी और गैर-कांग्रेसी सरकारों के काम को देखकर मेरी यह पक्की धारणा बन गयी है कि इस देश में अब कोई भी सरकार आज के लोकतन्त्री तरीकों से प्रगतिशील सामाजिक क्रान्ति नहीं ला सकेगी। सच्ची सामाजिक क्रान्ति अहिंसक जन-सत्याग्रह और देशव्यापी रचनात्मक आन्दोलन से ही सम्भव है।' सत्याग्रह के ब्रह्मास्त्र का उल्लेख करते हुए श्री जयप्रकाशजी ने कहा कि इसके लिए बिना नैतिक औचित्य स्थापित किये और बिना आध्यात्मिक तैयारी या अनुकूल वातावरण बनाये भारत के राजनीतिक दल इसका हर मामले में फूहड़ ढंग से इस्तेमाल कर रहे हैं। इस प्रकार के इस्तेमाल से हमें सतर्क रहना चाहिए।

आज के लोकतांत्रिक ढंग से आम लोगों की समस्याएँ हल हो सकती हैं, इस पर अपनी गहरी शंका प्रकट करते हुए श्री जयप्रकाश बाबू ने कहा कि यदि लोकतांत्रिक पद्धति से लोगों की समस्याएँ हल न हुईं तो उनके सामने हिंसा का तरीका अपनाने के सिवा और कोई उपाय नहीं होगा। वस्तुतः राजनीतिक दायरे में भारत में एक अहिंसक सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता है। इस कार्य के लिए देश की स्वयंसेवी संस्थाओं का आह्वान करते हुए आपने उन्हें सुझाया कि वे लोगों के लिए होनेवाले रचनात्मक अहिंसक क्रान्ति के कार्यक्रमों के प्रति नैतिक शक्ति और सामाजिक पुष्टि की परिस्थिति पैदा करें। गांधीजी ने, जो स्वयं स्वयंसेवी कार्यक्रमों के मूर्तिमन्त प्रतीक थे, इस अहिंसक ब्रह्मास्त्र यानी अहिंसक असहयोग का उपयोग केवल असाधारण अवसरों पर किया था।

दूसरे देशों में हुई हिंसक क्रान्तियों का विश्लेषण करते हुए श्री जयप्रकाशजी ने कहा कि हिंसा ने वहाँ की क्रान्ति को सफल नहीं किया। हिंसा ने पुरानी समाज-व्यवस्था को जड़ समेत जरूर उखाड़ फेंका, लेकिन जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्रान्ति शुरू हुई थी उसमें उसे सफलता नहीं मिली। उन्होंने अपने विचार स्पष्ट करते हुए कहा—'क्रान्ति के एक विद्यार्थी की हैसियत से मैं यह कह सकता हूँ कि हिंसक क्रान्ति से जो परिणाम सामने आये उनसे सत्ता आम लोगों के, जो अधिकार-वंचित थे, हाथों में नहीं आयी। फ्रांस की राज्यक्रान्ति ने नेपोलियन को सत्तारूढ़ बनाया। रूस में राज्य की सत्ता सोवियतों के हाथ में नहीं है। रूस में सिर्फ 'महल की क्रान्ति' हुई, अर्थात् आम जनता को सत्ता नहीं मिली। भीतर-ही-भीतर राजा की जगह पार्टी के नेता सत्ताधिकारी बन बैठे। चीन की क्रान्ति के मामले में क्या हुआ? माओ ने जब कहा कि बन्दूक की नली से सत्ता का जन्म होता है तो वे बहुत बेलाग बात कह गये, यह सही है। लेकिन चीन में बन्दूक की नली किसके हाथ में है? वहाँ बन्दूक की नली लोगों के हाथों में नहीं, माओ के उत्तराधिकारी लिन पियाओ के हाथों में है।'

श्री जयप्रकाशजी ने कहा कि क्रान्ति के बाद कोई-न-कोई समाज-व्यवस्था खड़ी करनी पड़ती है। क्रान्ति के दौरान जो लोग हिंसा के साधनों का नियन्त्रण करते हैं, और क्रान्ति के नये अनुशासन को समाज पर लागू करते हैं, वे ही सत्ता के मालिक बन जाते हैं। अन्ततोगत्वा हिंसक क्रान्ति आम जनता के प्रति विश्वासघात में समाप्त होती है।

अंत में श्री जयप्रकाशजी ने कहा—'मैं हिंसा को अस्वीकार करता हूँ। क्योंकि वह सिर्फ अधूरी क्रान्ति तक ले जाती है। मैं लोगों के लिए सत्ता चाहता हूँ। अगर लाखों लोग एक विराट अहिंसक कार्यक्रम में शरीक होते हैं तो यह एक सामाजिक क्रान्ति होगी और अगर सिर्फ थोड़े-से लोग उसमें शरीक होते हैं तो वह थोड़े-से सत्ताधारियों की अदला-बदली की क्रान्ति होगी।'

—'दी टाइम्स आव् इंडिया' समाचार

कन्सेंसस—आम-राय : कान्शंस—अंतरचेतना

ग्रामदान आन्दोलन में आज तक हमारा ध्यान मुख्य रूप से ग्रामदान के विचार के लिए लोक सम्मति प्राप्त करने पर रहा है। उसी लक्ष्य को सामने रखकर हमने प्रचार किया है और अभियान चलाये हैं। इसमें शक नहीं कि लोक-सम्मति हमें बहुत बड़े पैमाने पर मिली है, और मिलती जा रही है। इतने दिनों के बाद अब हम यह कहने की स्थिति में पहुँच गये हैं कि समाज का मन इस विचार के साथ है। यद्यपि ग्रामदान की व्यावहारिकता के बारे में अनेक लोगों के मन में तरह-तरह की शंकाएं हैं, जो स्वाभाविक हैं, फिर भी इस विचार के लिए शुभ-कामना हर एक की है, विरोध किसी का नहीं है। हम मान सकते हैं कि ग्रामदान को 'कन्सेंसस' मिल गया है।

'कन्सेंसस', यानी क्या? समर्थन, या इससे कुछ अधिक? हम किसी व्यक्ति, विचार, या कार्यक्रम का समर्थन करते हैं, इसका यह अर्थ नहीं है कि हमने प्रत्यक्ष कुछ करने की भी जिम्मेदारी मान ली है। यह जरूरी नहीं है कि समर्थन में समर्थन करनेवाले पर किसी तरह की व्यावहारिक जिम्मेदारी भी है। लेकिन सम्मति समर्थन से भिन्न है। सम्मति में शरीक होने का भाव है। सम्मति में सम्मति देनेवाले की कुछ व्यावहारिक जिम्मेदारी भी होती है। इस दृष्टि से ग्रामदान को समाज का जो कन्सेंसस मिला है, वह समर्थन है या सम्मति? दोनों है, या दोनों नहीं है? या, यह माना जाय कि आम-तौर पर समर्थन है, लेकिन कुछ क्षेत्र और व्यक्ति ऐसे भी हैं जिन्होंने सम्मति दी है, सिर्फ समर्थन नहीं। जरूर कुछ मिली-जुली स्थिति होगी। राज्यदान या जिलादान के बाद यह हमारा पहला काम है कि हम सम्मति के व्यक्तियों और क्षेत्रों को ढूंढें और उनकी सम्मति को सक्रिय बनाकर, सहयोग और जिम्मेदारी के रास्ते पर आगे बढ़ायें।

राज्य-दान हो जाने पर कार्यकर्ता का रोल बदल जाता है। राज्य-दान प्राप्त करने में कार्यकर्ता मुख्य था, लेकिन प्राप्त होते ही वह गौण बन जाता है। उसकी जगह मुख्य स्थान उन नागरिकों का हो जाता है जिन्होंने ग्रामदान के विचार का केवल समर्थन नहीं किया, बल्कि उसके लिए अपनी स्पष्ट सम्मति दी। कार्यकर्ता का स्थान मुख्य हो या गौण, वह क्रान्ति का वाहन बनने की जिम्मेदारी से मुक्त नहीं हो सकता। वाहन बनने का गौरव और उत्तरदायित्व, दोनों उसका रहेगा। कार्यकर्ता में क्रान्ति का वाहन बनने की क्षमता और तत्परता बनी रहनी चाहिए। बनी ही नहीं, निरंतर बढ़ती रहनी चाहिए। कार्यकर्ता वाहन नहीं बनेगा तो नागरिक को सक्रिय नहीं कर सकेगा।

कार्यकर्ता की पात्रता का एक प्रमाण है समाज का कन्सेंसस प्राप्त करने की उसकी क्षमता। इतना ही काफी नहीं है। क्रान्तिकारी का व्यक्तित्व क्रान्ति की 'कान्शस' है। प्रश्न उठता है कि जिस तेजी के साथ आन्दोलन के कन्सेंसस-पक्ष का विकास हुआ है, क्या उसी तेजी के साथ कान्शस पक्ष का भी विकास हुआ है? अगर नहीं तो क्यों? हम बराबर कहते आये हैं कि हमारा आन्दोलन आध्यात्मिक है। लेकिन सिर्फ कहने से क्या होगा? आध्यात्मिकता की कसौटी कन्सेंसस से अधिक कान्शंस से है। अगर किसी आन्दोलन का कान्शंस-पक्ष कमजोर हो तो वह एक मंजिल से दूसरी मंजिल पर नहीं पहुँच सकेगा, और बावजूद सारी ऊँची मान्यताओं और घोषणाओं के आन्दोलन सामाजिक शक्ति नहीं बन पायेगा। सामाजिक शक्ति के बिना क्रान्ति की सफलता का कोई आधार नहीं रह जाता।

इसमें शक नहीं कि पिछले अठारह वर्षों में हमारे अनेक साथियों ने सातत्य का असाधारण परिचय दिया है। उसीका परिणाम है कि हम ग्रामदान-विचार के लिए इतना कन्सेंसस इकट्ठा कर सके। लेकिन अब समय आ गया है कि हम कान्शंस की ओर ज्यादा ध्यान दें। क्रान्तिकारी जब क्रान्ति की बात करता है तो समाज स्वयं क्रान्तिकारी को उसकी घोषित क्रान्ति का प्रतीक मान लेता है। प्रतीक वास्तव में वह है भी, क्योंकि क्रान्तिकारी कम-से-कम अपनी निष्ठाओं और भावनाओं में प्रचलित समाज का सदस्य नहीं रह जाता। वह रहता है समाज में, लेकिन श्मशान के शिव की तरह रहता है—अपने साथियों के साथ ताण्डव के लिए सदा तत्पर। क्रान्ति क्रान्तिकारी में मूर्तिमान होती है। यह नहीं है कि ऐसे 'शिव' हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन यह मान लेने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि उनकी संख्या अत्यन्त सीमित है। शिव के व्यक्तित्व में लोकहित के प्रति जो समर्पण है, सत्ता और सम्पत्ति के विषैले साँपों से खेलनेवाली जो विद्रोह-शक्ति है, वह हमारे बीच अभी उतनी नहीं है जितनी होनी चाहिए। इस कमी की ओर हमारा ध्यान जाना चाहिए, और जहाँ तक हो सके दूर करने की कोशिश करनी चाहिए। हमारी बौद्धिक क्षमता, हमारा नैतिक स्तर, हमारी क्रान्ति-निष्ठा, आदि सबमें कमियाँ हैं जो आन्दोलन के कान्शस-पक्ष को सुदृढ करने की दृष्टि से शीघ्र दूर होनी चाहिए। आँखों से देखकर, और कानों से सुनकर, कभी-कभी ऐसा लगने लगता है जैसे हमारे साथी क्रान्ति के बोझ से दबे जा रहे हैं, और वे जिस क्रान्ति का नाम ले रहे हैं उससे स्वयं भयभीत हो उठे हैं। वे क्रान्ति का काम करते जा रहे हैं, किन्तु क्रान्तिकारी बनने को तैयार नहीं हैं। यह स्थिति क्रान्ति के लिए शुभ नहीं है। क्रान्ति का जो चित्र विनोबा ने समाज के सामने रखा है, उसके लिए क्रान्तिकारी चाहिए जो शिव की तरह विद्रोह-शक्ति का प्रतीक बनकर जनता को तांडव के लिए तैयार कर सके। ऐसी क्रान्ति का काम मात्र कार्यकर्ता से कैसे चलेगा? हमें क्रान्तिकारी और कार्यकर्ता का अंतर समझना चाहिए।

राज्यदान का अर्थ है सैनिक-शक्ति के मुकाबिले नागरिक शक्ति का तैयार होना। बापू ने लोकतंत्र के विकास में सैनिक-शक्ति और नागरिक-शक्ति के बीच जिस टक्कर की कल्पना सन् १९४८ में की थी, उसके दिन सन् १९६९ में राज्यदान के साथ आ गये दीखते हैं। हम अब अपनी 'कान्शंस' को जरा टटोल लें।●

स्नेहल दादा

१८ जून, १८९९ को ग्राम मुलतापी, जिला बैतूल (म० प्र०) में जन्मे श्री शंकर त्र्यंबक धर्माधिकारी आज दादा धर्माधिकारी के नाम से जाने-माने जाते हैं। उनके पिता श्री टी०डी० धर्माधिकारी तत्कालीन सी०पी० और बरार प्रान्त में 'एडीशनल डिस्ट्रिक्ट सेशन जज' थे। श्री शंकर उनकी पहली सन्तान होने के नाते सहज ही छोटे भाई-बहनों द्वारा दादा के नाम से सम्बोधित किये जाने लगे। कालान्तर में जब वे केवल अपने घर के न रहकर सबके हो गये तो सब लोग उनको दादा के नाम से पुकारने लगे। इस प्रकार अब स्नेह द्वारा प्रदत्त नाम दादा धर्माधिकारी ही उनका जान-पहचान का नाम हो गया है।

क्रिश्चियन कालेज, इन्दौर और मोरिस कालेज, नागपुर में इण्टरमीडियट के द्वितीय वर्ष तक उनका स्कूल-शिक्षण हुआ। बिना परीक्षा के दिये ही वे गाधीजी के असहयोग आन्दोलन में शामिल हो गये। उसके बाद फिर कभी कालेज-शिक्षण की ओर प्रवृत्त नहीं हुए। लेकिन ज्ञान, चिन्तन और मनन की दृष्टि से आज ७० वर्ष की अवस्था में भी उनका स्वाध्याय सतत चलता रहता है। उनका स्वाध्याय स्वयं के अध्ययन के साथ दूसरों के अध्ययन के लिए भी होता है। कुछ नहीं तो कम-से-कम एक दर्जन से अधिक ही उनकी छोटी-बड़ी डायरीनुमा नोटबुक्स रहती हैं, जिनमें वे सार की बातें लिख लिया करते हैं। उनके निजी पुस्तकालय में देश विदेश के लब्धप्रतिष्ठित विद्वानों की बड़ी-बड़ी पुस्तकें विधिवत् कागज चढ़ी हुई उनके पाने और पढ़ चुकने की तिथि के साथ आज भी रखी हुई मिलेंगी। उन्होंने एक वर्ष तक नियमित रूप से वेदान्त साहित्य का विधिवत् अध्ययन किया। उनकी बुद्धि बड़ी ही प्रखर और स्वभाव बड़ा ही मृदु है। ज्ञान का अहंकार तो रंच मात्र भी नहीं है। वे आज जीवित-जाग्रत विश्वविद्यालय-सरीखे हो गये हैं।

दादा भारतीय संस्कृति के नवनीत-स्वरूप गार्हस्थ्य-संस्कृति के प्रारम्भ से ही समर्थक रहे हैं। उनका विवाह गाधीजी के आन्दोलन में पड़ने से पूर्व ही दमयन्तीबाई से हुआ और उन्होंने उनकी समाज-सेवा के प्रारम्भिक काल में कन्धे-से-कन्धा मिलाकर साथ दिया। श्रीमती दमयन्तीबाई ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लिया और दो बार जेल गयीं। समाज-सेवा में लगे सच्चे सेवक अपने को एक जगह बिलकुल बाँधकर नहीं रख सकते। उनका क्षेत्र आँगन और पड़ोस से बढ़कर राष्ट्र और उससे भी आगे समूचे मानव-जगत् तक हो जाता है।

वे सन् १९२१ से १९३५ तक प्रदेश की सर्वोपरि राष्ट्रीय संस्था तिलक विद्यालय में अध्यापक रहे। सन् १९३५ में गाधी-सेवा-संघ के काम से बजाजवाड़ी, वर्धा रहने लगे। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-संग्राम के आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया और कई बार जेल गये। सन् १९३८ से १९४२ तक श्री काका कालेलकर के साथ गाधी-सेवा-संघ के मुखपत्र 'सर्वोदय' हिन्दी मासिक का सम्पादन किया। सन् १९४६ और '४७ में सबके बहुत कहने-सुनने पर और गाधीजी द्वारा अनुमति दिये जाने के बाद प्रान्तीय धारासभा नागपुर और 'कान्स्टीट्युएण्ट असेम्बली' दिल्ली के सदस्य रहे। एक राज्य के राज्यपाल बनने को भी कहा गया, पर उन्होंने उसे छोड़ 'सर्वोदय' हिन्दी मासिक का सम्पादन-कार्य सम्हाला और धीरे-धीरे सत्ता की राजनीति से सदा-सदा के लिए अलग हो गये।

दादा धर्माधिकारी : स्नेह का दर्शन

जिसने दादा को सार्वजनिक सभाओं में सुना, वह उनकी वक्तृत्वकला से बिना प्रभावित हुए रह नहीं सका। उनकी वाणी में अजीब जादू है। उनको देश-विदेश के अनेक विद्वानों के अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू और मराठी में ढेरों उद्धरण कण्ठस्थ हैं, जो भाषण के बीच-बीच में नगीने की तरह जड़े रहते हैं। छोटी मिल-बैठ गोष्ठियों में भी दादा की फबतियाँ गजब की रहती हैं! गाधीजी के देहावसान के बाद सेवाग्राम में पहला रचनात्मक कार्यकर्ता-सम्मेलन आयोजित हुआ तो विनोबाजी ने अपने को बापू का पाला हुआ बताया। दादा तुरन्त कह उठे, 'बापू के पाले हुए होकर भी पालतू नहीं हैं!' उनका शब्द चयन अद्वितीय है। उनकी हिन्दी अंग्रेजी में कई पुस्तकें हैं, जिनमें 'सर्वोदय-दर्शन', 'स्त्री-पुरुष सहजीवन', 'मानवीय क्रान्ति', 'क्रान्ति का अगला कदम' विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। उनका साहित्य विविधताओं का निकाय है।

वे स्वयं किसी भी आश्रम में नहीं रहे; बापू, विनोबा या अन्य किसी महान व्यक्ति के दायरे में नहीं रहे। कोई रचनात्मक और विधायक कार्य नहीं किया, फिर भी खुद में एक आश्रम बन गये। आज सभी छोटे-बड़े सर्वोदय-कार्यकर्ताओं के लिए वे उलझी-से-उलझी समस्याओं की 'डिक्शनरी' हो गये हैं। इस ७० वर्ष की आयु में दादा अपने अगाध स्नेह से सर्वोदय परिवार को सिक्त करते रहते हैं। भगवान हमारे ऊपर यह कृपा दादा के प्रत्यक्ष स्नेह-रूप में वर्षों-वर्षों तक बरसाता रहे, ऐसी हमारी हार्दिक प्रार्थना है!

—गुरुशरण

गाँव की बात

इस गाँव में स्वस्थ और परिपुष्ट विश्व का दर्शन हो!

इस अंक में

१६ जून, '६९
वर्ष ३, अंक २१] [१८ पैसे

अब किसे भेजें ! ! ५ !

ग्रामदानी गाँव, ग्रामदानी सरकार

प्रश्न : वह कितना अच्छा दिन होगा जब हम लोग आज की दलबन्दी से मुक्त हो जायेंगे ? हम लोग इस दलबन्दी से बहुत घबड़ा गये हैं। क्या सचमुच वह दिन आयेगा ?

उत्तर : इसमें भी कोई शक है ? अब यह मानकर काम कीजिए कि वह दिन दूर नहीं है जब गाँव और सरकार, दोनों एक लाइन में आ जायेंगे।

प्रश्न : एक लाइन में कैसे आ जायेंगे ?

उत्तर : क्यों ? जब ग्रामदान के बाद गाँव में ग्रामदानी ग्रामसभा बनेगी और पटना-लखनऊ में ग्रामदानी सरकार बनेगी तो गाँव से राजधानी तक सीधी लाइन नहीं होगी ? एक लाइन में आकर दोनों ग्रामदान के धागे में बँध जायेंगे और ग्रामदान के बाद ग्रामस्वराज्य को आगे बढ़ाने में मिलकर काम करेंगे।

प्रश्न : लेकिन मेरे मन में एक डर है। जब सरकार ग्रामदानी हो जायगी तो हम लोगों की जैसी आदत है उसके मुताबिक सब यही चाहेंगे कि सरकार ही सब कुछ कर दे।

उत्तर : अगर ग्रामदान के बाद भी आप लोगों ने यही रुख रखा तो ग्रामस्वराज्य की बात बेकार है। ग्रामस्वराज्य का अर्थ ही यह है कि ग्रामदानी गाँव सरकार से मुक्त हो जाय, यानी गाँव का सारा प्रबन्ध ग्रामसभा के द्वारा हो। उधर दूसरी ओर सरकार दल से मुक्त हो जाय, और इस तरह काम करे जैसे वह ग्रामसभाओं को मजबूत करने के लिए है, तथा उन्हें हर तरह की सहायता और साधन पहुँचाने के लिए है।

प्रश्न : बहुत बड़ी जिम्मेदारी आयेगी गाँव के लोगों पर, और अगर सचमुच ग्रामसभाएँ बन गयी और चलने लगी तो गाँवों में सरकार का काम बहुत कम हो जायगा। क्या नहीं ?

उत्तर : हाँ, ग्रामस्वराज्य का यही मतलब है कि गाँव का अधिक से-अधिक काम खुद गाँव के लोग आपस में मिलकर करें। स्वराज्य की जिम्मेदारी नहीं उठाइएगा तो स्वराज्य का सुख कैसे भोगिएगा ? आपका सुख इसीमें है कि गाँव के जीवन में गाँव का हर आदमी इज्जत के साथ गाँव के जीवन में शरीक हो सके। इसके अलावा आपमें यह शक्ति होनी चाहिए कि आप अपने अधिकारों की रक्षा कर सकें। अगर सरकार, भले ही वह ग्रामदानी सरकार हो, आपके अधिकारों में, स्वायत्तता में, हस्तक्षेप करती है या कोई गलत काम करती है, तो आपको साहस के साथ अपने अधिकारों की रक्षा के लिए मिलकर खड़ा हो जाना चाहिए। जो गाँव—गाँव ही क्यों, जो मनुष्य—अनीति और अन्याय से अपने अधिकारों की रक्षा नहीं कर सकता वह दूसरों की कृपा पर कितने दिन टिकेगा ?

प्रश्न : पक्की बात है ! यह मैं सोच ही रहा था कि क्या नेता लोग और अफसर लोग गाँववालों को अपने ढंग से काम करने देंगे ? आज तो हर काम में उनकी यही कोशिश रहती है कि ज्यादा से-ज्यादा अधिकार वे अपने ही हाथ में रखें। ग्रामदानी सरकार के लोग भले ही कुछ दिन तक ऐसा न करें, लेकिन आगे चलकर अपने होते हुए भी वे यही करने लगेंगे।

उत्तर : हाँ, ऐसा होता है। इसलिए तो बार-बार कहा जा रहा है कि ग्रामस्वराज्य की असली शक्ति ग्रामसभा में है।

प्रश्न : बात समझ में आ रही है। राजधानी में सरकार कैसे बनेगी, कैसे चलेगी, यह बहुत-कुछ निर्भर करता है इस बात पर कि ग्रामसभा कैसे बनती है, कैसे चलती है। लेकिन हालत यह है कि आज हम जिन्हें गाँव कहते हैं वे सचमुच गाँव नहीं रह गये हैं। वे गाँव इसी अर्थ में हैं कि पचीस-पचास घर एक जगह बसे हुए हैं। एकता नाम की चीज उनमें रह ही नहीं गयी, वे टूट गये हैं। जो कुछ बचा था उसे राजनीति चाट गयी।

उत्तर : आपका कहना सही है, फिर भी हम जहाँ हैं वहीं से आगे बढ़ना पड़ेगा। गाँव के लोगों को महसूस करना पड़ेगा कि वे एक हैं, और सबका एक ही हित है।

प्रश्न : यहीं से असली बात है। ग्रामदान के सिवाय दूसरा कोई भी नहीं कहता कि गाँव एक है। हर नेता, चाहे वह किसी पार्टी का हो और उसके हाथ में झण्डा चाहे जिस रंग का हो, हम लोगों से यही कहता है। 'गाँव की एकता कैसी? मालिक-मजदूर एक कैसे होंगे? ऊँच-नीच एक कैसे होंगे? वे न एक हैं, न एक हो सकते हैं। कौन जीयेगा, कौन मरेगा, इसका निर्णय संघर्ष से होगा। संघर्ष होकर रहेगा। जीवन में संघर्ष के सिवाय और होता क्या है? संघर्ष के बिना मुक्ति नहीं।'
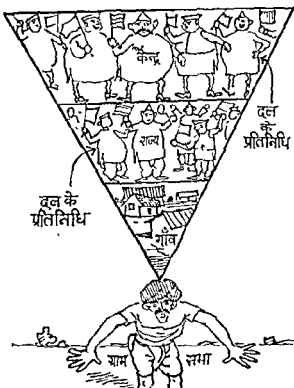
उत्तर : आप लोगों को यह तय कर लेना चाहिए कि गाँव के लोग मुक्ति चाहते हैं या सिर्फ बदला? संघर्ष से मुक्ति नहीं मिल सकती, नया समाज नहीं बन सकता। थोड़ा-बहुत बदले का सन्तोष भले ही मिल जाय। इन सारी बातों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। क्या आप जानते हैं कि मनुष्य चन्द्रमा से सिर्फ १० मील ही दूर रह गया है, और इस दूरी को भी तय करके जुलाई मे वह चन्द्रलोक पर उतर जायगा? क्या आप सोचते हैं कि चाँद पर, या मंगल पर, पहुँचने की यह दौड़-धूप क्यों है, और इन प्रयोगों पर कितना खर्च होता है? अभी पिछली बार 'अपोलो-१०' की यात्रा में दस अरब रुपये खर्च हुए थे। एक यात्रा में अमेरिका ने उतना खर्च किया जितना भारत अपनी कुल सेना पर साल भर में खर्च करता है! अमेरिका आसमान के प्रयोगों पर एक साल में लगभग ४० अरब रुपये खर्च करता है, और सेना से सम्बन्ध रखनेवाले प्रयोगों पर ६४ अरब! शोध और विकास पर होनेवाले कुल खर्च का लगभग ७५ फीसदी इन्हीं दो मदों में लग जाता है। सोचिए, स्वास्थ्य, शिक्षण और कल्याण के प्रयोगों में सिर्फ ८ फीसदी। अणुशक्ति के प्रयोगों में १० फीसदी! लोक-कल्याण के और आसमान के प्रयोगों के खर्च में कितना जबरदस्त अन्तर है?•

आज का लोकतंत्र : उल्टा ढाँचा

ग्रामस्वराज्य का लोकतंत्र : सीधा ढाँचा

सुखी गृहस्थी की कुंजी

जिस समय घर के आँगन में गाँव की स्त्रियाँ इकट्ठी होकर सोहर गाने और नाचने-कूदने के कार्यक्रम में तल्लीन थीं उस समय नीलिमा को उस दिन की बातों की याद आयी जिस दिन वह पहली बार इस घर की बहू बनकर आयी थी। करीब-करीब इसी तरह गाँव की स्त्रियों से आँगन खचाखच भर गया था।

द्वार-पूजा के समय बारात जब दरवाजे पर आती है तो गाँव के लोगों को, और विशेष रूप से स्त्रियों को, उत्सुकता यह जानने की होती है कि दूल्हा गोरा है या काला, सुन्दर है कि बदसूरत, और लड़की के हिसाब से ठीक है कि बेठीक! जब बहू अपनी ससुराल में पाँव रखती है तो गाँव की स्त्रियाँ उसके रूप-रंग, चाल-ढाल, शरीर की गठन और स्वभाव की जानकारी पाने के लिए अधीर रहती हैं। बहू की परीक्षा की पहली चीज मानी जाती है उसकी देह का रूप-रंग। बहू यदि गोरी है तो गाँव की सौ में निन्यानब्बे स्त्रियाँ उसे रूपवती मान लेती हैं। स्वस्थ और सुडौल देह भी बहुतों को प्रभावित करती है। किन्तु चेहरे की सुन्दरता को बहुत कम स्त्रियाँ समझ पाती हैं। बहू की निगाहें शर्मीली और झुकी हुई हों तो वह सुशील मानी जाती है। बहू की आँखें चचल हों तो प्रायः स्त्रियाँ उसे घमंडी मान लेती हैं।

जिस दिन नीलिमा की पालकी पहले-पहल ससुराल के दरवाजे पर आकर लगी थी, उस दिन घर में ऐसी ही चहल-पहल थी। नीलिमा की काया साँवले रंग की थी। जो उसे देखता, कुछ देर में आँखें फेर लेता। नीलिमा का बस चलता तो वह धरती में समा जाती। जुबान से कुछ न कहते हुए भी सिर्फ नजरों द्वारा नीलिमा की जो उपेक्षा हो रही थी उसे वह बड़ी कठिनाई से झेल पा रही थी। उसकी देह की गठन आकर्षक थी। जो निगाहें उसके चेहरे से हटती वे उसकी देह पर कुछ देर के लिए जरूर रुक जाती थीं। उसे यह समझते देर न लगी कि उसके स्वस्थ शरीर का जादू सबसे ऊपर काम कर रहा है। मुँह-देखाई के बाद जाते समय बेकली ने पारबती से कहा था—"भैया, घर-गृहस्थी के लिए पतोहू बड़ी सुघर है। रूप-रंग भी काटने-बराने लायक नहीं है।"

पारबती ने बेकली की बात काटते हुए उस दिन जो कुछ कहा था उसे नीलिमा जिन्दगी भर नहीं भूल सकती। पारबती ने न सिर्फ बेकली, बल्कि गाँव की सभी स्त्रियों को सुनाते हुए कहा था—"मनपसन्द रूप-रंग पाना किसीके बस की बात नहीं है। कुम्हार का कोई घड़ा पककर लाल हो जाता है तो कोई ज्यादा पककर काला भी हो जाता है। अब इसमें कोई घड़े को दोषी माने तो उसकी अकिल को क्या कहा जाय? जिसका तन गोरा है, उसका मन देवता जैसा है, यह कोई नहीं कह सकता। सुन्दरता का गोराई से कैसे सम्बन्ध जुड़ गया इसे भला कितने लोग जानते हैं? किसी भी स्त्री की सुन्दरता के असली दो ही ढंग हैं—एक तो उसकी सुगठित देह और दूसरा उसका मनमोहक शील स्वभाव। स्त्री में यदि ये दोनों गुण नहीं हैं तो उसकी सोने जैसी काया भी व्यर्थ है।"

नीलिमा के झुके हुए चेहरे को अपने दोनों हाथों से उठाकर अपनी छाती से लगाते हुए पारबती ने कहा था—"दुलहिन, तू मेरे बेटे की बहू है, लेकिन मेरे लिए तो मेरी बेटी-जैसी ही है। तू नाहक अपना मन छोटा मत कर। दस लोग दस तरह की बातें कहेंगे। उन बातों में कुछ नहीं रखा है। असली चीज है मन। कहा भी है कि 'मन चंगा तो कठौती में गंगा।' जिस स्त्री का मन अच्छा है उसकी घर-गृहस्थी हमेशा सुख और शान्ति से बीतती है। मन अच्छा होने के लिए अच्छा स्वभाव चाहिए। अच्छे स्वभाव का मतलब है सबके साथ अच्छा बर्ताव। अच्छा बर्ताव ही सुखी गृहस्थी की कुंजी है। मुझे पूरा भरोसा है कि तेरे पास यह कुंजी है। जबतक यह कुंजी तेरे पास रहेगी तबतक तेरी गृहस्थी हरी-भरी और खुशहाल रहेगी।"

नीलिमा को अपनी छाती से लगाकर जब पारबती ये बातें कह रही थी, उस समय नीलिमा की आँखें नम हो गयी थीं। उसे पारबती के सीने में अपनी बिछुड़ी माँ की धड़कन सुनाई दे रही थी।

—त्रिशंकु

हाथघुई गाँव का कायापलट

महाराष्ट्र में १५० जनसंख्या का हाथघुई नाम का एक छोटा-सा गाँव है। कई गाँवों की तरह यहाँ के लोग भी शराब और उसी तरह के व्यसनों के शिकार थे। हर साल शराब के कारण पुलिस को इस गाँव से हजार-पाँच सौ रुपये गाँववालों को देने-पड़ते थे, इसके अलावा इज्जत भी खोनी पड़ती थी।

गाँव के पाँच तरुणों ने निश्चय किया कि यह दीन स्थिति शराब के कारण ही है, तो हमें शराब छोड़नी चाहिए। लेकिन आसानी से शराब छोड़ने को कोई तैयार नहीं होता था। बड़े लोगों को इन तरुणों ने बहुत समझाया। लेकिन वहाँ तो ऐसी भावना बनी थी कि देवी-देवता को शराब समर्पित न करने से रोग बढ़ेंगे, जानवर मरेंगे, फसल नहीं होगी, शेर गाय-बकरियों को ले जायेंगे! उनकी यह धारणा पीढ़ी-दर-पीढ़ी के संस्कारों के कारण पक्की बनी थी। बच्चे के जन्म होने पर भी शराब, मरने पर भी शराब का उपयोग होता! मुरदे के मुँह में शराब नहीं डालने से उसको मुक्ति नहीं मिलेगी, ऐसी भावना थी। फसल बोते समय शराब, काटते समय शराब, शादी में शराब, शुरू में, बीच में, और आखिर में भी शराब! ऐसे शराबी लोगों को शराब से मुक्त करना सामान्य पराक्रम की बात नहीं थी। इन पाँच तरुण लोगों ने निश्चय किया और साल भर प्रयत्न करते रहे। उनके प्रयत्नों से लोग शराब न पीने का शपथ लेने लगे और दो साल में तो पूरा गाँव ही शराब-मुक्त हो गया।

तरुणों को इन दो सालों में सबको समझाने में जी-तोड़ कोशिश करनी पड़ी। कभी-कभी तो उनको जान का भी खतरा रहा। शराब के नशे में गाँववाले उनकी छाती पर बैठकर जबर्दस्ती उनको शराब पिलाने का प्रयत्न करते थे। इन सब संकटों का उन्होंने मुकाबिला किया और गाँव शराब-मुक्त हुआ। उनके यहाँ "कल्याण" धार्मिक मासिक पत्रिका आती थी। उसमें से प्रभु रामचन्द्रजी का चित्र निकालकर उसे फ्रेम में मढ़ा लिया। उसके बाद शपथ लेने का कार्यक्रम उस मूर्ति के सामने होता रहा। धीरे-धीरे गाँव मे पुलिस का आना बन्द हुआ। लोग खुद शराब नहीं पीते, तो फिर पुलिस को कहाँ से पिलायें? जुर्माना, सजा आदि का सिलसिला बन्द हुआ। आलस्य कम हुआ, काम करने की आदत हुई। रोज गाँव के लिए दो घंटे परिश्रम होने लगा। एक साल में तीन सौ एकड़ जमीन मे मेंड़ बनाने का काम पूरा कर लिया गया।

हाथघुई गाँव पड़ोस के टेंबला गाँव से जुड़ा हुआ है। वहाँ के स्कूल की इमारत तो खंडहर, टूटा फूटा छप्परवाली जगह मात्र थी जिसमें केवल बकरियाँ रखी जाती थीं। न शिक्षक आता था और न लड़के ही आते थे। हाथघुई के लोग अपने गाँव में स्कूल चाहते थे, लेकिन पड़ोसी गाँव मे स्कूल के होने के कारण हाथघुई गाँव के लिए अलग स्कूल मिलना असंभव था। सरकार तो जानती थी कि पड़ोस का स्कूल चलता है। आखिर मे गाँववालों ने अपनी ग्रामस्वराज्य सहकारी सोसायटी बनायी। पंच लोगों ने वस्त्र, निवास, दवा, शिक्षण, रक्षण और न्याय की जिम्मेदारियाँ आपस में बाँट ली और उस पर यथाशक्ति अमल करने की कोशिश की जा रही है। गाँव का सोया हुआ और छिपा हुआ सेवकत्व प्रकाश में आया है।

हनुमान सिंह नामक तरुण कार्यकर्ता ने गाँव का कारोबार सुव्यवस्थित चलाने की ओर ध्यान दिया है।

ग्रामदान के पहले गाँव साहूकार के कर्ज से लदा हुआ था। लेकिन अब साहूकार से कर्ज लेना बन्द हुआ और साहूकारी पंजे से गाँव मुक्त हुआ। ग्रामस्वराज्य सहकारी सोसायटी की ओर से सामान की खरीद-बिक्री होती है। इसके कारण यहाँ शोषण बन्द हुआ।

हाथघुई गाँववालों की वृत्ति और विचार में कैसा मूलगामी परिवर्तन हुआ है, इसका एक ही उदाहरण काफी होगा। "हमारा गाँव ग्रामदानी बना है, अब हम आपको रिश्वत बिलकुल नहीं देंगे।"—ऐसा कड़ा जवाब पुलिस को मिला। उसके कारण पुलिस नाराज हुई और एक आदमी को उसने लातों-मुक्कों, और डंडे से पीटा। जिसने इतना मार खाया उसने कार्यकर्त्ता को कहा तक नहीं। दूसरों की ओर से कार्यकर्त्ता को पता चला। कार्यकर्त्ता ने पुलिस से पूछताछ की। पुलिस ने पिटाई के आरोप से इन्कार किया। तब उस तरुण ने कहा—"हम कहते हैं न, कि ग्रामदान द्वारा मनुष्य का हृदय-परिवर्तन करेंगे। तब फिर हम पुलिस-अधिकारियों के पास किसलिए जायें? मुझे उस पुलिस ने लातों-मुक्कों और डंडे से पीटा यह सही है, लेकिन इसे सजा मत दीजिए। कभी न-कभी इसे अपनी गलती महसूस होगी ही।"

यह सारी घटना उस पुलिस के लिए नयी ही थी। अपराधी को सजा देना-दिलाना उसका धन्धा था, लेकिन ऊपर की घटना से उसके हृदय में करुणा और आँखों से आँसू बहने लगे। पुलिस ने क्षमा माँगी।

—गुमन बंव

ग्रामदान से राज्यदान तक

आज ग्रामदान की चर्चा गाँव गाँव में होने लगी है। १८ अप्रैल सन् १९५१ को विनोबाजी ने भूदान-आन्दोलन शुरू किया था। उस आन्दोलन के सिलसिले में उन्होंने भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक गाँव-गाँव की पदयात्रा की। इस पदयात्रा के कारण भारत के गाँवों का सही दर्शन उनको हुआ और गाँव-वाले भी सन्त विनोबा के नाम से परिचित हो गये। भूदान-यात्रा सिलसिले में ही उत्तरप्रदेश में हमीरपुर जिले का मगरौठ गाँव भारत में पहला ग्रामदान हुआ और यहीं से ग्रामदान की शुरूआत हुई। अब तो पूरे बिहार के गाँवों का ग्रामदान करीब-करीब पूरा होने जा रहा है। प्रान्तदान के लिए प्रान्त भर के ८५ प्रतिशत गाँवों का ग्रामदान घोषित होना जरूरी है। ग्रामदान का मतलब है, गाँव के लोगों द्वारा गाँव में ग्रामस्वराज्य कायम करने के लिए किया गया सामूहिक-संकल्प। ग्रामस्वराज्य की दिशा में पहला कदम था आजादी हासिल करना और उसके बाद अब दूसरा कदम है गाँववालों में अपनी व्यवस्था सम्भालने का पुरुषार्थ जगाना। यह तब हो सकता है, जब गाँव के लोग चार बातें मान लें। १. ग्रामस्वराज्य-सभा बनाना, २ ग्रामकोष का संग्रह करना, ३ मालकियत किसी एक की नहीं, सारे गाँव की करना, ४. बीघे में से एक कट्ठा गाँव के भूमिहीनों को स्वेच्छा से दे देना। इस समय देश के १७ प्रदेशों में ग्रामदान आन्दोलन चल रहा है। ३१ मई '६६ तक सारे देश में १ लाख से अधिक ग्रामदान, ७२७ प्रखंडदान और १८ जिलादान हो गये हैं। प्रान्तदान के लिए बिहार, तमिलनाडु उड़ीसा उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र और राजस्थान के कार्यकर्ताओं ने गांधी-जन्म-शताब्दी (२ अक्तूबर '६९) तक संकल्प कर रखा है। और संकल्प का पूर्ति में अपने अपने प्रदेशों में लगे भी हैं।

बिहार में विनोबाजी हैं, इसलिए वहाँ ग्रामदान का महातूफान चल रहा है। अक्तूबर '६८ तक उत्तर बिहार के जिलों का जिलादान हो गया था। उत्तर बिहार में सारन, चम्पारन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, सहरसा, और पूर्णिया जिले हैं। दक्षिण बिहार में पटना, मुंगेर, गया और धनबाद का जिलादान हो गया है। शाहाबाद, भागलपुर, संतालपरगना, पलामू, हजारीबाग, रांची और सिंहभूम जिलों के काफी गाँवों का ग्रामदान हो चुका है।

बिहारदान के शेष काम को पूरा करने के लिए देश के कई भागों से चुने हुए कार्यकर्ता पहुँच गये हैं। ग्रामदान-पुष्टि का काम भी चल रहा है। अभी तक २,७८५ गाँवों में ग्राम-सभाओं का गठन हो चुका है। २,०३६ गाँवों के कागजात ग्रामदान-पुष्टि के लिए तैयार किये जा चुके हैं।

प्रान्तदान के बाद गाँव की व्यवस्था कैसे की जायगी और व्यवस्था का स्वरूप क्या होगा, इस पर विचार करने के लिए और व्यवस्था की पूर्वतैयारी के लिए हाजीपुर में उत्तरप्रदेश, बिहार और नेपाल के कुछ साथियों का एक शिविर हुआ, जिसमें ग्रामदान की कानूनी पुष्टि, ग्रामसभा के संगठन और संचालन, विकास, शान्तिसेना और दलमुक्त ग्राम प्रतिनिधित्व के स्वरूप पर काफी गहराई से चर्चा हुई। ग्रामदान के आधार पर ग्रामस्वराज्य की इमारत तैयार करने के लिए कार्यकर्ताओं ने स्वेच्छा से संकल्प किया है।

बिहार का पड़ोसी प्रदेश उत्तरप्रदेश है। तूफान का प्रभाव यहाँ भी पड़ना स्वाभाविक था। इस उत्तरप्रदेश में कुल ५४ जिले हैं। बलिया में अखिल भारतीय सर्वोदय-सम्मेलन अप्रैल सन् १९६६ में हुआ। उसके पहले इस प्रदेश में सिर्फ १२३ ग्रामदान हुए थे। बलिया जिले में सम्मेलन की पूर्वतैयारी के लिए पदयात्रा की गयी तो २० ग्रामदान और मिले। उसके बाद तो ग्रामदान तूफान का वेग ही चल पड़ा और ३ जून सन् १९६८ को बलिया का जिलादान पूरा हो गया। इसके पहले ३१ मई सन् १९६८ को उत्तरकाशी का जिलादान घोषित हो जाने से दो जिलादान हो गये और कार्यकर्ताओं में नया जोश उभर आया। आज तो यहाँ पांच जिले जिलादान की मंजिल के करीब पहुँच गये हैं।

बलिया जिलादान का समारोह १० जुलाई '६८ को हुआ, जिसमें विनोबाजी को जिलादान समर्पित किया गया। इस अवसर पर आचार्य कृपलानी और जयप्रकाश नारायण भी थे। १५ जुलाई को विनोबाजी के सामने सब कार्यकर्ताओं ने प्रदेश-दान का संकल्प किया। बस, फिर क्या था, कार्यकर्ता प्रखण्डदान के लिए प्रखण्ड और तहसील-स्तर के अभियान चलाने में जुट गये।

इस प्रदेश में हिमालय के अंचल में जो जिले हैं उनमें शराब की बहुत खपत होती है, जिसका बुरा असर गाँव के जीवन पर है। इस शराब की बिक्री को बन्द कराने के लिए सर्वोदय-कार्यकर्ताओं ने धरने दिये और उत्तरप्रदेश सरकार को विवश होकर तीन दूकानदारों के लाइसेन्स रद्द कर देने पड़े। इसका सीधा असर ग्रामदान आन्दोलन के लिए अनुकूल पड़ा है।

हाथधुई गाँव का कायापलट

महाराष्ट्र में १५० जनसंख्या का हाथधुई नाम का एक छोटा-सा गाँव है। कई गाँवों की तरह यहाँ के लोग भी शराब और उसी तरह के व्यसनों के शिकार थे। हर साल शराब के कारण पुलिस को इस गाँव से हजार-पाँच सौ रुपये गाँववालों को देने पड़ते थे, इसके अलावा इज्जत भी खोनी पड़ती थी।

गाँव के पाँच तरुणों ने निश्चय किया कि यह हीन स्थिति शराब के कारण ही है, तो हमें शराब छोड़नी चाहिए। लेकिन आसानी से शराब छोड़ने को कोई तैयार नहीं होता था। बड़े लोगों को इन तरुणों ने बहुत समझाया। लेकिन वहाँ तो ऐसी भावना बनी थी कि देवी-देवता को शराब समर्पित न करने से रोग बढ़ेंगे, जानवर मरेंगे, फसल नहीं होगी, शेर गाय-बकरियों को ले जायेंगे! उनकी यह धारणा पीढ़ी-दर-पीढ़ी के संस्कारों के कारण पक्की बनी थी। बच्चे के जन्म होने पर भी शराब, मरने पर भी शराब का उपयोग होता! मुरदे के मुँह में शराब नहीं डालने से उसको मुक्ति नहीं मिलेगी, ऐसी भावना थी। फसल बोते समय शराब, काटते समय शराब, शादी में शराब, शुरू में, बीच में, और आखिर में भी शराब! ऐसे शराबी लोगों को शराब से मुक्त करना सामान्य पराक्रम की बात नहीं थी। इन पाँच तरुण लोगों ने निश्चय किया और साल भर प्रयत्न करते रहे। उनके प्रयत्नों से लोग शराब न पीने का शपथ लेने लगे और दो साल में तो पूरा गाँव ही शराब-मुक्त हो गया।

तरुणों को इन दो सालों में सबको समझाने में जी-तोड़ कोशिश करनी पड़ी। कभी-कभी तो उनको जान का भी खतरा रहा। शराब के नशे में गाँववाले उनकी छाती पर बैठकर जबर्दस्ती उनको शराब पिलाने का प्रयत्न करते थे। इन सब संकटों का उन्होंने मुकाबिला किया और गाँव शराब-मुक्त हुआ। उनके यहाँ "कल्याण" धार्मिक मासिक पत्रिका आती थी। उसमें से प्रभु रामचन्द्रजी का चित्र निकालकर उसे फ्रेम में मढ़ा लिया। उसके बाद शपथ लेने का कार्यक्रम उस मूर्ति के सामने होता रहा। धीरे-धीरे गाँव में पुलिस का आना बन्द हुआ। लोग खुद शराब नहीं पीते, तो फिर पुलिस को कहाँ से पिलायें? जुर्माना, सजा आदि का सिलसिला बन्द हुआ। आलस्य कम हुआ, काम करने की आदत हुई। रोज गाँव के लिए दो घंटे परिश्रम होने लगा। एक साल में तीन सौ एकड़ जमीन में मेंड़ बनाने का काम पूरा कर लिया गया।

हाथधुई गाँव पड़ोस के टेंबला गाँव से जुड़ा हुआ है। यहाँ के स्कूल की इमारत तो खंडहर, टूटा फूटा छप्परवाली जगह मात्र थी जिसमें केवल बकरियाँ रखी जाती थीं। न शिक्षक आता था और न लड़के ही आते थे। हाथधुई के लोग अपने गाँव में स्कूल चाहते थे, लेकिन पड़ोसी गाँव में स्कूल के होने के कारण हाथधुई गाँव के लिए अलग स्कूल मिलना असंभव था। सरकार तो जानती थी कि पड़ोस का स्कूल चलता है। आखिर में गाँववालों ने अपनी ग्रामस्वराज्य सहकारी सोसायटी बनायी। पंच लोगों ने वस्त्र, निवास, दवा, शिक्षण, रक्षण और न्याय की जिम्मेदारियाँ आपस में बाँट लीं और उस पर यथाशक्ति अमल करने की कोशिश की जा रही है। गाँव का सोया हुआ और छिपा हुआ सेवकत्व प्रकाश में आया है।

हनुमान सिंह नामक तरुण कार्यकर्ता ने गाँव का कारोबार सुव्यवस्थित चलाने की ओर ध्यान दिया है।

ग्रामदान के पहले गाँव साहूकार के कर्ज से लदा हुआ था। लेकिन अब साहूकार से कर्ज लेना बन्द हुआ और साहूकारी पंजे से गाँव मुक्त हुआ। ग्रामस्वराज्य सहकारी सोसायटी की ओर से सामान की खरीद-बिक्री होती है। इसके कारण यहाँ शोषण बन्द हुआ।

हाथधुई गाँववालों की वृत्ति और विचार में कैसा मूलगामी परिवर्तन हुआ है, इसका एक ही उदाहरण काफी होगा। "हमारा गाँव ग्रामदानी बना है, अब हम आपको रिश्वत बिलकुल नहीं देंगे।"—ऐसा कड़ा जवाब पुलिस को मिला। उसके कारण पुलिस नाराज हुई और एक आदमी को उसने लातों-मुक्कों, और डंडे से पीटा। जिसने इतना मार खाया उसने कार्यकर्ता को कहा तक नहीं। दूसरों की ओर से कार्यकर्ता को पता चला। कार्यकर्ता ने पुलिस से पूछताछ की। पुलिस ने पिटाई के आरोप से इन्कार किया। तब उस तरुण ने कहा—"हम कहते हैं न, कि ग्रामदान द्वारा मनुष्य का हृदय-परिवर्तन करेंगे। तब फिर हम पुलिस-अधिकारियों के पास किसलिए जायें? मुझे उस पुलिस ने लातों-मुक्कों और डंडे से पीटा यह सही है, लेकिन इसे सजा मत दीजिए। कभी-न-कभी इसे अपनी गलती महसूस होगी ही।"

यह सारी घटना उस पुलिस के लिए नयी ही थी। अपराधी को सजा देना-दिलाना उसका धन्धा था, लेकिन ऊपर की घटना से उसके हृदय में करुणा और आँखों से आँसू बहने लगे। पुलिस ने क्षमा माँगी।

—भूमन यंत्र

ग्रामदान से राज्यदान तक

आज ग्रामदान की चर्चा गांव गांव मे होने लगी है। १८ अप्रैल सन् १९५१ को विनोबाजी ने भूदान-आन्दोलन शुरू किया था। उस आन्दोलन के सिलसिले में उन्होंने भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक गांव-गांव की पदयात्रा की। इस पदयात्रा के कारण भारत के गांवों का सही दर्शन उनको हुआ और गांववाले भी सन्त विनोबा के नाम से परिचित हो गये। भूदान-यात्रा सिलसिले में ही उत्तरप्रदेश में हमीरपुर जिले का मंगरौठ गांव भारत में पहला ग्रामदान हुआ और यहीं से ग्रामदान की शुरुआत हुई। अब तो पूरे बिहार के गांवों का ग्रामदान करीब-करीब पूरा होने जा रहा है। प्रान्तदान के लिए प्रान्त भर के ८५ प्रतिशत गांवों का ग्रामदान घोषित होना जरूरी है। ग्रामदान का मतलब है, गांव के लोगों द्वारा गांव में ग्रामस्वराज्य कायम करने के लिए किया गया सामूहिक-संकल्प। ग्रामस्वराज्य की दिशा में पहला कदम था आजादी हासिल करना और उसके बाद अब दूसरा कदम है गांववालों में अपनी व्यवस्था सम्भालने का पुरुषार्थ जगाना। यह तब हो सकता है, जब गांव के लोग चार बातें मान लें। १. ग्रामस्वराज्य-सभा बनाना, २ ग्रामकोष का संग्रह करना, ३. मालकियत किसी एक की नहीं, सारे गांव की करना, ४. बीघे में से एक कट्ठा गांव के भूमिहीनों को स्वेच्छा से दे देना। इस समय देश के १७ प्रदेशों में ग्रामदान आन्दोलन चल रहा है। ३१ मई '६९ तक सारे देश में १ लाख से अधिक ग्रामदान, ७२७ प्रखंडदान और १८ जिलादान हो गये हैं। प्रान्तदान के लिए बिहार, तमिलनाडु उड़ीसा उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र और राजस्थान के कार्यकर्ताओं ने गांधी-जन्म-शताब्दी (२ अक्तूबर '६९) तक संकल्प कर रखा है। और संकल्प की पूर्ति में अपने अपने प्रदेशों में लगे भी हैं।

बिहार मे विनोबाजी हैं, इसलिए वहां ग्रामदान का महातूफान चल रहा है। अक्तूबर '६८ तक उत्तर बिहार के जिलों का जिलादान हो गया था। उत्तर बिहार में सारन, चम्पारन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, सहरसा, और पूर्णिया जिले हैं। दक्षिण बिहार में पटना, मुंगेर, गया और धनबाद का जिलादान हो गया है। शाहाबाद, भागलपुर, संथालपरगना, पलामू, हजारीबाग, रांची और सिंहभूम जिलों के काफी गांवों का ग्रामदान हो चुका है।

बिहारदान के शेष काम को पूरा करने के लिए देश के कई भागों से चुने हुए कार्यकर्ता पहुंच गये हैं। ग्रामदान-पुष्टि का काम भी चल रहा है। अभी तक २,७८५ गांवों में ग्रामसभाओं का गठन हो चुका है। २,०३६ गांवों के कागजात ग्रामदान-पुष्टि के लिए तैयार किये जा चुके हैं।

प्रान्तदान के बाद गांव की व्यवस्था कैसे की जायगी और व्यवस्था का स्वरूप क्या होगा, इस पर विचार करने के लिए और व्यवस्था की पूर्वतैयारी के लिए हाजीपुर में उत्तरप्रदेश, बिहार और नेपाल के कुछ साथियों का एक शिविर हुआ, जिसमें ग्रामदान की कानूनी पुष्टि, ग्रामसभा के संगठन और संचालन, विकास, शान्तिसेना और दलमुक्त ग्राम प्रतिनिधित्व के स्वरूप पर काफी गहराई से चर्चा हुई। ग्रामदान के आधार पर ग्रामस्वराज्य की इमारत तैयार करने के लिए कार्यकर्ताओं ने स्वेच्छा से संकल्प किया है।

बिहार का पड़ोसी प्रदेश उत्तरप्रदेश है। तूफान का प्रभाव यहां भी पड़ना स्वाभाविक था। इस उत्तरप्रदेश मे कुल ५४ जिले हैं। बलिया में अखिल भारतीय सर्वोदय-सम्मेलन अप्रैल सन् १९६६ में हुआ। उसके पहले इस प्रदेश में सिर्फ १२३ ग्रामदान हुए थे। बलिया जिले में सम्मेलन की पूर्वतैयारी के लिए पदयात्रा की गयी तो २० ग्रामदान और मिले। उसके बाद तो ग्रामदान तूफान का वेग ही चल पड़ा और ३ जून सन् १९६८ को बलिया का जिलादान पूरा हो गया। इसके पहले ३१ मई सन् १९६८ को उत्तरकाशी का जिलादान घोषित हो जाने से दो जिलादान हो गये और कार्यकर्ताओं में नया जोश उभर आया। आज तो यहां पांच जिले जिलादान की मंजिल के करीब पहुंच गये हैं।

बलिया जिलादान का समारोह १० जुलाई '६८ को हुआ, जिसमें विनोबाजी को जिलादान समर्पित किया गया। इस अवसर पर आचार्य कृपालानी और जयप्रकाश नारायण भी थे। १५ जुलाई को विनोबाजी के सामने सब कार्यकर्ताओं ने प्रदेशदान का संकल्प किया। बस, फिर क्या था, कार्यकर्ता प्रखण्डदान के लिए प्रखण्ड और तहसील-स्तर के अभियान चलाने में जुट गये।

इस प्रदेश में हिमालय के अंचल में जो जिले हैं उनमें शराब की बहुत खपत होती है, जिसका बुरा असर गांव के जीवन पर है। इस शराब की बिक्री को बन्द कराने के लिए सर्वोदय-कार्यकर्ताओं ने धरने दिये और उत्तरप्रदेश सरकार को विवश होकर तीन दूकानदारों के लाइसेन्स रद्द कर देने पड़े। इसका सीधा असर ग्रामदान आन्दोलन के लिए अनुकूल पड़ा है।

उत्तरप्रदेश का क्षेत्रफल १,१३,६५४ वर्गमील है। आबादी ७ करोड़, ३७ लाख, ४६ हजार, ४०१ है। कुल गाँव १ लाख, ११ हजार, ७४२ हैं। कुल प्रखण्ड ८७५ हैं। इनमें से १६,१८७ ग्रामदान और ६० प्रखण्डदान ३० अप्रैल '६६ तक हो चुके हैं।

तमिलनाडु में ग्रामदान हासिल करने का काम नवजवानों ने उठा लिया है। वहाँ तिरुनेलवेली, तिरुचि, मदुराई और रामनाड जिलों का जिलादान हो गया है। तंजौर जिले में जमीन्दारों और किसानों के बीच भूमिस्वामित्व को लेकर बड़ी दरार पड़ गया थी, जिसका शांतिपूर्ण हल तमिलनाडु के सर्वोदय-कार्यकर्ता खोज रहे हैं। यहाँ के लोकसेवक श्री शंकरलिंगम् जगन्नाथन् को सर्व सेवा संघ का अध्यक्ष सर्वसम्मति से बनाया गया है। १२,३८५ ग्रामदान और १२४ प्रखण्डदान अबतक इस प्रदेश में हुए हैं।

इसी प्रकार महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश में भी ग्रामदान आन्दोलन में कार्यकर्ता लगे हैं। मध्यप्रदेश में टीकमगढ़ और पश्चिम निमाड़ का जिलादान हो गया है और ५,०६६ ग्रामदान तथा २५ प्रखण्डदान हुए हैं। गांधी-जन्मशताब्दी की जिला-समितियों ने ग्रामदान-प्राप्ति का कार्यक्रम उठा लिया है। महाराष्ट्र सर्वोदय मण्डल द्वारा श्री जयप्रकाश नारायण की उपस्थिति में प्रान्तदान का संकल्प किया गया है। जहाँ-जहाँ प्रान्तदान के संकल्प हुए हैं वहाँ संकल्प-पूर्ति में सभी संस्थाओं का योगदान मिल रहा है।

—क० भ०

राजस्थान में अकाल

पिछले महीने मैंने राजस्थान के अकालग्रस्त पश्चिमी जिलों—जोधपुर, जैसलमेर और बाड़मेर—में भ्रमण किया और वहाँ की परिस्थिति देखी। राजस्थान का यह हिस्सा सबसे अधिक सूखा है। सामान्य तौर पर वर्ष में ६ से ८ इंच तक बारिश होती है, लेकिन प्रकृति की ऐसी लीला है कि ४-६ इंच बारिश भी २-३ बार में हो जाती है तो बाजरा आदि की अच्छी फसल हो जाती है। इसके अलावा जैसलमेर, बाड़मेर की तरफ 'सेवण' नाम की घास खूब होती है, जिसके कारण गोपालन का धन्धा यहाँ व्यापक है। सामान्य तौर पर एक-एक परिवार के पास सौ-सौ, डेढ़-डेढ़ सौ गायें हैं। भेड़-पालन भी इस क्षेत्र का एक प्रमुख धन्धा है। आज की 'सभ्यता' से दूर होने के कारण यह इलाका शोषण का शिकार भी कम हुआ है। इन सब कारणों से अकाल के समय भी इस क्षेत्र के लोगों में दीनता नहीं आयी है। इस मुसीबत के समय भी उनकी आँखों में तेज और चेहरों पर मुस्कराहट है। शरीर सामान्य तौर पर अच्छे हैं, स्त्री-पुरुषों के बदन पर पर्याप्त कपड़े, गहने भी नजर आते हैं।

पर पिछले ४-६ वर्षों से इस क्षेत्र में बारिश कम होती गयी है। पिछले साल तो करीब-करीब बिल्कुल सूखा पड़ा। हम बीसों गाँवों में घूमे, सब जगह एक ही कहानी थी। लगभग दो-तिहाई से तीन-चौथाई तक गायें मर गयी हैं। ऐसा डर है कि इस क्षेत्र की आर्थिक स्थिति को इस अकाल से स्थायी खतरा पैदा हो जायेगा। ऐसी विपत्ति के समय हमारे दया के काम भी अक्सर बिना सोचे-समझे होते हैं। विकास के बारे में हमारी कल्पनाएं कितनी गलत रही हैं, इसका प्रमाण तो पिछले २० वर्षों की योजनाओं से मिल ही चुका है। खतरा इस बात का है कि दया और विकास के हमारे कामों के कारण राजस्थान के इस पश्चिमी क्षेत्र की आजाद और सुखी प्रजा कहीं परावलम्बी और गुलाम न हो जाय!

(श्री सिद्धराज ढड्ढा की चिट्ठी से)

"ग्रामभावना" : "कम्पोस्ट"-विशेषांक

हिन्दी भाषा में "ग्रामभावना" नाम से एक पत्रिका हर महीने आश्रम पट्टीकल्याणा, जिला करनाल, हरियाणा से प्रकाशित होती है। इस पत्रिका के प्रधान सम्पादक श्री ओमप्रकाश त्रिखा हैं। अप्रैल-मई १९६६ में इसका एक "कम्पोस्ट"-विशेषांक प्रकाशित हुआ। इसका सम्पादन श्री बनवारीलाल चौधरी ने किया है, जिन्हें खेती की शास्त्रीय-व्यावहारिक जानकारी है। भारतीय ग्रामीण किसानों की परिस्थिति से सम्पादक पूर्ण परिचित हैं, इसलिए इस अंक का सम्पादन बड़ी ही कुशलता से हुआ है। किसान जिस परिस्थिति मे रहता है वह उसमें ही थोड़ी-बहुत सावधानी बरते तो अच्छी खाद बनाकर वह ज्यादा उत्पादन कर सकता है, और महँगे तथा पौधों एवं मिट्टी को नुकसान पहुँचानेवाले रासायनिक खादों के उपयोग से बच सकता है।

उसमें खाद की बरबादी, खाद के तत्त्व, उनकी उपयोगिता तथा खाद के बनाने की अनेक विधियों को विस्तार से समझाया गया है। जो भी जानकारी इसमें दी गयी है वह परीक्षणों और प्रयोगों तथा सम्पादक के निजी अनुभवों पर आधारित है।

हर प्रकार से यह "कम्पोस्ट"-विशेषांक ग्रामीण किसानों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। छपाई काफी सुन्दर है। हर किसान को यह अंक मँगाना चाहिए। इस अंक की कीमत २ रुपये है। वर्ष भर का चन्दा ६ रुपये है।

कूड़े-कचरे से खाद बनायें

गोबर और कचरे से खाद बनाना

हमारे देश के बहुत से हिस्सों में आजकल किसानों का जो खाद तैयार करने का ढंग है, वह यह कि जितना भी कचरा व गोबर इकट्ठा होता है (जलाने के बाद जो कुछ बच रहता है), उसको वह एक बड़े गोल गड्ढे में, जो कि छः महीनों के लिए काफी होता है, जमा करता जाता है। छः महीने के बाद कचरे व गोबर को गड्ढे की जगह जमीन की सतह से ४-५ फीट ऊंचाई तक ढेर बनाता जाता है। इस तरीके में निम्नलिखित खास खराबियां हैं—

(क) जानवरों का मूत्र (पेशाब), जिसमें पौधों के खाद्य पदार्थ-नत्रजन (१–१½ प्रतिशत) गोबर के (½ प्रतिशत) बनिस्बत बहुत ज्यादा होता है, ठीक ढंग से इकट्ठा करके खाद के ढेर में नहीं डाला जाता है।

(ख) खेत में से जितनी भी फालतू वनस्पति इकट्ठी की जाती है, वह खाद बनाने के काम में नहीं ली जाती है।

(ग) उघड़े ढेरों में खाद बनाने का तरीका गलत है। उससे वह गर्मियों में बहुत जल्दी सूख जाता है, ठीक प्रकार से सड़ता नहीं और नत्रजन का बहुत-सा हिस्सा हवा में उड़ जाता है। वर्षा के मौसम में पौधों के काम आने योग्य नत्रजन का हिस्सा तथा सेन्द्रिय पदार्थ (ह्यूमस) का अधिकांश जमीन में घुलकर बेकार हो जाता है। अन्त में खराब किस्म की थोड़ी-सी खाद मिलती है।

आजकल गांवों में जो खाद बनती है, उसमें नत्रजन केवल आधे से पौन प्रतिशत होता है, जब कि सुधरे हुए तरीके से बनाने से नत्रजन का डेढ़ से दो प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। इसके लिए खास आवश्यकता इस बात की है कि—

(१) ढेर को तेजी से सूखने से रोका जाय, और

(२) जितना भी हो सके, मूत्र इकट्ठा करके काम में लिया जाय। सब कचरे को जानवरों के बाड़े में, जहां पर मूत्र अक्सर जमा होता है, बिछाकर मूत्र का संग्रह किया जा सकता है। वास्तव में जितना भी कूड़ा-कचरा हो, उसको खाद के ढेर में डालने से पहले मूत्र को सोखने के काम में लेना चाहिए।

लेखक के अनेक प्रयोगों के फलस्वरूप निम्नलिखित तरीका खाद बनाने के लिए ठीक पाया गया है।

खाइयों से खाद बनाना

गर्मी के मौसम में खाइयों में खाद बनाना अच्छा रहता है, क्योंकि खाइयों में जमीन पर के ढेरों की बनिस्बत तरी या नमी की और नत्रजन की रक्षा भली प्रकार होती है। लेकिन जहां पर पानी की सतह ज्यादा नीची न हो तथा अतिवृष्टि के समय में खाइयां काम में नहीं आ सकती हों, वहां जमीन के ऊपर ही किये हुए ढेर काम में लाये जा सकते हैं।

खाइयां—खाइयां ऐसे नाप की होनी चाहिए जो जानवरों के बाड़े का, दो-तीन महिने का गोबर, कचरा वगैरा भरने के लिए काफी हो। खाई की ठीक नाप तो जानवरों की संख्या, खराब तथा बिना खाये हुए चारे का परिमाण तथा खेत से मिलनेवाले कचरे के परिमाण पर निर्भर रहता है। सुविधा के लिए यहां कुछ नाप दिये जाते हैं।

जानवरों की संख्या	लम्बाई	चौड़ाई	गहराई
२–५	२० फीट	३ फीट	२॥ फीट
६–१०	२५ फीट	३॥ फीट	३ फीट
११–२०	३० फीट	४ फीट	३॥ फीट
२० से ऊपर	३० फीट	५ फीट	३॥ फीट

खाइयों के किनारे एकदम सीधे नहीं होने चाहिए, परन्तु ऊपर से नीचे की ओर ६ इंच का ढलाव होना चाहिए। खाई के पेंदे में भी किसी एक सिरे की ओर एक फुट का ढलाव होना चाहिए, जिससे बरसात का पानी, यदि भरा हो तो, गहरेवाले सिरे पर इकट्ठा हो जाय और खाई में खाद को न बिगाड़े। खाइयां जानवरों के बाड़े के पास ही तथा कुछ ऊंची जमीन पर होनी चाहिए। खाइयों के किनारे को मेड़ से ऊंचा उठाकर चारों तरफ ढलान कर देना चाहिए, जिसमें बरसात का पानी बाहर से अन्दर न आने पाये। यदि जमीन बहुत ढीली न हो तो खाई को ईंटों से जड़ने की आवश्यकता नहीं है। एक मामूली किसान के लिए तीन-चार खाइयों की आवश्यकता पड़ेगी, ताकि जबतक सब खाई भरी जायें उस वक्त पहली खाई की खाद खेत में देने योग्य हो जाय और वह खाई फिर भरने के लिए खाली हो जाय। (क्रमशः)

—बनवारीलाल चौधरी

जिला काफी परिचित है। जून तक इस जिले का जिलादान अवश्य हो जायेगा, ऐसा दीखता है।

भागलपुर : पिछले दिनों ढेबर भाई का बिहारदान के सिलसिले में दौरा हुआ था तो एक रोज का समय भागलपुर को भी उन्होंने दिया था। उस अवसर पर चार प्रखण्डदान समर्पित किये गये। भागलपुर में ३ प्रखण्ड बाकी हैं, सिर्फ उन्हींके कारण जिलादान घोषित नहीं हो पा रहा है। उम्मीद है कि दो हफ्ते में भागलपुर का जिलादान सम्पन्न हो जायेगा। सर्वश्री डा० रामजी सिंह, जागेश्वर मंडल, रघुवंश सिंह, नागेश्वर सेन, साकेत बिहारी अपने मित्रों के साथ लगे हैं। मुंगेर के श्री गिरिधर बाबू इस जिले में पहुँचकर सक्रिय रूप से सहयोग कर रहे हैं।

संथाल परगना : इस जिले में ४१ प्रखण्ड हैं। कुल १६ प्रखंडों का दान हुआ है। २७ मई से ३१ मई तक आचार्य राममूर्ति भाई का जिले में दौरा हुआ, २९ मई को ढेबर भाई भी गये थे। उन्हें ४ प्रखंड समर्पित किये गये। जिले के कर्मठ नेता मोती बाबू बीमार पड़ गये हैं, किन्तु प्राकृतिक चिकित्सालय से ही सारे अभियान का संचालन कर रहे हैं। सर्वश्री लखी भाई, रत्नेश्वर झा, अनन्त शर्मा, काशीनाथजी अन्य प्रमुख साथियों के साथ लगे हैं। सरकारी कर्मचारियों एवं शिक्षकों का सहयोग मिल रहा है। जिले की हूल झारखंड पार्टी अभी अनुकूल नहीं हुई है, जिसके कारण कुछ व्यवधान हो रहा है। प्रान्त के वरिष्ठ नेता श्री व्रजमोहन शर्मा बाबा के आदेश पर जिलादान के अभियान में वेग देने मुंगेर से पहुँचे हुए हैं।

हजारीबाग : इस जिले में अभी १४ प्रखण्ड शेष हैं। श्री ढेबरभाई के दौरे के समय एक प्रखण्डदान समर्पित किया गया है। शिक्षकगण मई मास तक बड़ी मुस्तैदी से लगे थे। अब वे छुट्टी में चले गये हैं। सरकारी कर्मचारी तत्पर हैं। दूसरे जिलों से सर्वोदय एवं खादी-कार्यकर्ता पहुँच रहे हैं। आशा है, गाड़ी निश्चित रूप से आगे बढ़ेगी। सर्वश्री रामनन्दन बाबू, श्यामप्रकाशजी, रामनारायण सिंह, फूलमान शर्मा, कैलाश सिंह अपने मित्रों के साथ लगे हुए हैं। भूदान-कमिटी एवं खादी-बोर्ड के कार्यकर्ता भी बड़ी मुस्तैदी से काम में लगे हुए हैं।

सिंहभूम : बिहार के वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री भाई गोखले संयोजन हेतु यहाँ पहुँचे हैं। उनकी मदद में पंजाब से श्री दयानिधि पटनायक अपने सात मित्रों के साथ पहुँच गये हैं। श्री पूरन झा अपने मधुबनी के कार्यकर्ता मित्रों के साथ पहुँचनेवाले हैं। महाराष्ट्र के श्री गंगा प्रसाद अग्रवाल भी इसी जिले में लगे हैं। बिहार सरकार के भूतपूर्व राज्य-मंत्री एवं बिहार कांग्रेस कमिटी के मंत्री श्री नवल किशोर सिंह ने तीन सप्ताह का समय बिहारदान-अभियान में दिया है। १० दिनों के लिए सिंहभूम जिले का दौरा वे कर रहे हैं। इनके पहुँचने से राजनैतिक नेताओं में सक्रियता हुई है। श्री मनमोहन भाई का समय भी ५ दिनों के लिए मिला है। उनके समय का उपयोग इस जिले में किया जा रहा है। इस जिले में २१ प्रखण्ड बाकी हैं। सर्वश्री दिवाकर मिश्र, मयूब खाँ, रामसेवक शर्मा, मन्नान खाँ, रामनाथ सिंह अपने मित्रों के साथ लगे हैं। भाई श्याम बहादुरजी का अभाव खटक रहा है, जिनका वर्षों का सम्बन्ध इस जिले से रहा है। दुर्घटना के बाद वे अभी भी पूर्ण स्वस्थ नहीं हो सके हैं।

राँची : राँची, सिंहभूम संतालपरगना एवं पलामू का कुछ अंश पूर्ण रूप से आदिवासी क्षेत्र है। इसके साथ-साथ इन क्षेत्रों में ईसाई मिशनरियों का भी अच्छा काम हुआ है, उसका व्यापक प्रभाव भी है। सर्वोदय या खादी के कार्यकर्ताओं में आदिवासी कार्यकर्ता नगण्य हैं। इस कारण उनके बीच पहुँचने में कठिनाई हो रही है। फिर भी इन क्षेत्रों में कार्यकर्ता जुट गये हैं। राँची जिला ही एक ऐसा जिला है, जहाँ एक भी प्रखण्डदान नहीं हुआ था। ६ जून '६९ को पहला प्रखण्डदान 'बोलवा' सम्पन्न हुआ है। प्रखण्डों की संख्या भी यहाँ सब जिलों से अधिक है। कुल ४३ है। बाबा नित्य प्रखण्डदान की राह देख रहे हैं। जे० पी० की एक आमसभा राँची में हुई थी, खूँटी सबडिवीजन में होनेवाली है। ढेबरभाई का भी दौरा इस जिले में हुआ। वातावरण धीरे-धीरे अनुकूल होता जा रहा है। बाहर से कार्यकर्ता मित्र भी पहुँचने लगे हैं। गुमला अनुमंडल के संयोजन का भार सर्वश्री नरेन्द्र दुबे एवं महेन्द्र कुमार पर सौंपा गया है। खूँटी में सहरसा जिले से महेन्द्रभाई अपने मित्रों के साथ पहुँच गये हैं। बिहार ग्रामदान-प्राप्ति समिति का कैम्प कार्यालय राँची पहुँच गया है। यहाँ से पूरे छोटानागपुर डिवीजन के काम का संयोजन हो रहा है। विशेष रूप से राँची जिलादान-अभियान में प्रान्तीय दफ्तर सक्रिय है। वैद्यनाथ बाबू २ मई से ही राँची में रुके हैं। उनके स्वास्थ्य को देखते हुए बाबा ने राँची में उन्हें रोक रखा है। उनके कहीं भी बाहर जाने पर बाबा ने जबरदस्त रोक लगा दी है। फिर भी वे बैठे बैठे सारे बिहारदान का संयोजन कर रहे हैं। सर्वश्री ध्वजा बाबू, गोपाल बाबू, जयलोक बाबू, निर्मल भाई, सरयू बाबू आदि प्रान्तीय नेतागण भी इन क्षेत्रों में दौरा कर रहे हैं।

राँची, ९-६-'६९ — कैलाश प्रसाद शर्मा,
सहमंत्री, बिहार ग्रामदान प्राप्ति समिति

तत्त्वज्ञान

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को दी गयी फांसी तथा गणेश शंकर विद्यार्थी के आत्म बलिदान के प्रसंगों से क्षुब्ध करांची-कांग्रेस-अधिवेशन के लोगों को सम्बोधित करते हुए २६ मार्च १९३१ को गांधीजी ने कहा था :—

"जो तरुण यह ईमानदारी से समझते हैं कि मैं हिन्दुस्तान का नुकसान कर रहा हूं, उन्हें अधिकार है कि वे यह बात संसार के सामने चिल्ला-चिल्लाकर कहें। पर तलवार के तत्त्वज्ञान को हमेशा के लिए तलाक दे देने के कारण मेरे पास अब केवल प्रेम का ही प्याला बचा है, जो मैं सबको दे रहा हूं। अपने तरुण मित्रों के सामने भी अब मैं यही प्याला पकड़े हुए हूं ।"

उसके बाद का इतिहास साक्षी है कि देश ने तलवार के तत्त्वज्ञान को तलाक देनेवाले गांधी का साथ दिया। साम्राज्यवाद की नींव हिली, भारत में लोकतंत्र की नींव पड़ी और संसार को मुक्ति का एक नया रास्ता मिला।

संसार आज बन्दूक की नली के तत्त्वज्ञान से और अधिक त्रस्त हुआ है। विनोबा संसार को वही प्रेम का प्याला पिलाकर बन्दूक के तत्त्वज्ञान को तलाक दिलाना चाहता है और देश में सच्चे स्वराज्य की स्थापना के लिए उसने नया रास्ता बताया है।

क्या हम वक्त को पहचानेंगे और महान कार्य में वक्त पर योग देंगे ?

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म शताब्दी-समिति)
ढूंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैंरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

अ० भा० ग्रामस्वराज्य समिति का गठन

• तिरुपति (आन्ध्र-प्रदेश) में २३ से २५ अप्रैल '६६ तक हुए सर्व सेवा संघ के अधिवेशन में आचार्य राममूर्ति के संयोजकत्व में ग्रामस्वराज्य समिति बनायी गयी है। नवगठित ग्रामस्वराज्य समिति में निम्नांकित सदस्य मनोनीत किये गये हैं :—सर्वश्री नरेन्द्र दुबे (मध्य प्रदेश), सिद्धराज ढड्ढा (राजस्थान), मनमोहन चौधरी (उड़ीसा), रवीन्द्र उपाध्याय (असम), ए० मदंथ्यान (तमिलनाडु), चण्डी प्रसाद भट्ट (उत्तरप्रदेश), लखनदेव प्रसाद (बिहार), सर्वनारायण दास (बिहार) लवणम् (आन्ध्र) और हरिवल्लभ परीख (गुजरात)।

उपर्युक्त समिति की प्रथम बैठक बिहार के किसी ग्रामीण क्षेत्र में '१४, १५, १६, १७ अगस्त को रखी गयी है। इस बैठक में श्री जयप्रकाश नारायण और धीरेन्द्र मजूमदार भी उपस्थित रहनेवाले हैं। बिहार का राज्यदान सन्निकट है। आगे की व्यूह-रचना और ग्रामस्वराज्य के लिए नागरिक शक्ति का संगठन और विकास में योगदान करने के लिए उपर्युक्त सदस्यों के अतिरिक्त कुछ प्रभावी, निष्ठावान एवं सर्वोदय-आन्दोलन के सक्रिय साथियों को, जिनकी पहली और अन्तिम निष्ठा ग्रामदानमूलक क्रान्ति में है, विशेष रूप से आमंत्रित किया गया है। (सप्रेस)

मुंगेर के कार्यकर्ता संताल परगना पहुँचे

• बिहार के खादी-परिवार के वरिष्ठ मार्गदर्शक श्री ध्वजाबाबू ने सभी रचनात्मक संस्थाओं से यह मार्मिक अपील की है कि सभी लोग एकसाथ मिलकर "बिहारदान" के शेष काम को यथाशीघ्र पूरा करें।

उनकी अपील से प्रभावित होकर ग्रामस्वराज्य संघ, मुंगेर ने ६४ कार्यकर्ताओं का एक जत्था संताल परगना भेजने का तय किया है।

आगरा और मीरजापुर में ग्रामदान-अभियान

• आगरा जिले (उ० प्र०) की एत्मादपुर तहसील के ग्रामदान-अभियान-शिविर का उद्घाटन डा० दयानिधि पटनायक ने किया और शिविर की अध्यक्षता की अवकाशप्राप्त जज श्री वामतानाथ गुप्त ने। इस तहसील-स्तर के अभियान में ७५ खादी-कार्यकर्ता और ११८ शिक्षकों ने सक्रिय रूप से भाग लिया। २२ मई से २७ मई तक ६१ टोलियों में विभक्त होकर कार्यकर्ताओं ने पदयात्रा की। इस पदयात्रा में ५७१ ग्रामदान प्राप्त हुए।

• मीरजापुर जिले में लालगंज हलिया विकास-क्षेत्र में चलाये गये ग्रामदान-अभियान में २६ ग्रामदान और प्राप्त हुए।

रामकुमार 'कमल' की पदयात्रा पुनः प्रारम्भ

• श्री रामकुमार 'कमल' गोरखपुर से पदयात्रा करते हुए ३० मई '६६ को सीतापुर पहुँचे। जिले के नागरिकों और खादी-संस्थाओं की ओर से उनका स्वागत किया गया। श्री गांधीआश्रम के व्यवस्थापक ने खबर दी है कि श्री 'कमल' की उपस्थिति में सर्वोदय मण्डल का गठन हुआ। जिला परिषद् के 'नेहरू हाल' में सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया, जिसमें श्री 'कमल' ने विविध कार्यक्रम को आज की सामाजिक विषमता के निराकरण का एकमेव हल बताया।

मुरैना में प्रशिक्षण विद्यालय

• मुरैना (म० प्र०) में ६ जून से २७ जून '६६ तक "गांधी जन्म शताब्दी, कार्यकर्ता प्रशिक्षण विद्यालय" का आयोजन जी० पी० पोस्टग्रेजुएट कालेज में किया गया है। इस विद्यालय का शुभारंभ प्रो० एम० एम० मेहता ने किया। इस प्रशिक्षण क्रम में १५ छात्रों ने, जिनकी शैक्षिक योग्यता हायर सेकेण्डरी और बी० ए० स्तर की है, प्रवेश लिया है। जिलाधीश श्री भाई० एस० राव, उदयभानु सिंह, और श्री कामेश्वर बहुगुणा ने छात्रों को अपने जीवन में निष्ठा और दृढ़ निश्चय का समन्वय करने की सीख दी।

कश्मीर में गांधी जन्म-शताब्दी शिविर

• विलम्ब से प्राप्त समाचार के अनुसार १५ से १६ मार्च '६६ तक गांधी स्मारक निधि, श्रीनगर (कश्मीर) द्वारा मर्तण्डपुरा (जिला अनन्तनाग) में गांधी जन्मशताब्दी कार्यकर्ता-शिविर हुआ, जिसमें ३५ शिविरार्थियों ने भाग लिया। ६० ग्रामसेवक और सुपरवाइजरों ने भी भाषणों और चर्चाओं में शामिल होकर ज्ञानार्जन किया। सर्वश्री प्यारे लाल, श्यामलाल सराफ, डा० रमेश कुमार शर्मा और आर० आर० परिहार ने शिविरार्थियों का मार्गदर्शन किया।

अ० भा० तरुण शांति सेना शिविर

• वनवासी सेवाश्रम, गोविन्दपुर, जिला मीरजापुर (उत्तर प्रदेश) में गत २ जून से चौथा अखिल भारतीय तरुण शान्ति-सेना शिविर हो रहा है। विभिन्न प्रदेशों से आये शिविरार्थियों का ब्योरा इस प्रकार है—केरल ८, मैसूर ४, आन्ध्र २, तमिलनाडु २, मध्यप्रदेश ३, उत्तरप्रदेश ५, महाराष्ट्र २, गुजरात ६। शिविर का उद्घाटन श्री धीरेन्द्र मजूमदार के भाषण से हुआ। शिविरार्थी रोज सुबह ५ से ६ बजे तक शरीर-परिश्रम करते हैं।

अकोला में प्रखण्डदान की तैयारी

• अकोला तहसील के बार्शी टाकली विकासखण्ड में १३ से २१ मई तक ३६ गाँवों में ग्रामदान पदयात्रा हुई। फलस्वरूप ३० ग्रामदान मिले। विनोबाजी के दौरे में ३२ ग्रामदान हो चुके थे। अब बाकी ३४ गाँवों का ग्रामदान होने पर यह प्रखण्डदान जाहिर हो सकेगा। पता चला कि यहाँ के सरपंच, ग्रामसेवक, शिक्षक, प्रमुख नागरिकों की १३ टोलियों में १२५ व्यक्तियों ने प्रचार-कार्य किया।

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ३८
सोमवार २३ जून, '६६

अन्य पृष्ठों पर

अन्य स्तम्भ

मरण का सदा स्मरण रखना पाप से मुक्त रहने का एक उपाय है। —विनोबा

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : [illegible]

शिक्षा का अभिप्राय

अहिंसक प्रतिरोध सबसे उदात्त और बढ़िया शिक्षा है। यह बच्चों को मिलनेवाली साधारण अक्षर-ज्ञान की शिक्षा के बाद नहीं, पहले होनी चाहिए। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि बच्चे को, वह वर्णमाला लिखे और सांसारिक ज्ञान प्राप्त करे उसके पहले, यह जानना चाहिए कि आत्मा क्या है, सत्य क्या है, प्रेम क्या है, और आत्मा में क्या क्या शक्तियाँ छिपी हुई हैं। शिक्षा का जरूरी अंग यह होना चाहिए कि बालक जीवन-संग्राम में प्रेम से घृणा को, सत्य से असत्य को और कष्ट-सहन से हिंसा को आसानी के साथ जीतना सीखे। इस सत्य का बल अनुभव करने के कारण ही मैंने सत्याग्रह-संग्राम के उत्तरार्ध में पहले टाल्स्टाय फार्म में और बाद में फिनिक्स आश्रम में बच्चों को इसी ढंग की तालीम देने की भरसक कोशिश की थी।[1]

मेरी राय में बुद्धि की सच्ची शिक्षा शरीर की स्थूल इन्द्रियों अर्थात् हाथ, पैर, आँख, कान, नाक वगैरा के ठीक-ठीक उपयोग और तालीम के द्वारा ही हो सकती है। दूसरे शब्दों में, बच्चे द्वारा इन्द्रियों का बुद्धिपूर्वक उपयोग उसकी बुद्धि के विकास का उत्तम और जल्द से-जल्द तरीका है। परन्तु शरीर और मस्तिष्क के विकास के साथ आत्मा की जागृति भी उतनी ही नहीं होगी, तो केवल बुद्धि का विकास घटिया और एकांगी वस्तु ही साबित होगा। आध्यात्मिक शिक्षा से मेरा मतलब हृदय की शिक्षा है। इसलिए मस्तिष्क का ठीक-ठीक और सर्वांगीण विकास तभी हो सकता है, जब साथ-साथ बच्चे की शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों की भी शिक्षा होती रहे। ये सब बातें अविभाज्य हैं, इसलिए इस सिद्धान्त के अनुसार यह मान लेना घोर कुतर्क होगा कि उनका विकास अलग अलग या एक-दूसरे से स्वतंत्र रूप में किया जा सकता है।[2]

शिक्षा से मेरा अभिप्राय यह है कि बच्चे और मनुष्य के शरीर, बुद्धि और आत्मा के सभी उत्तम गुणों को प्रकट किया जाय। पढ़ना लिखना शिक्षा का अन्त तो है ही नहीं, वह आदि भी नहीं है। वह पुरुष और स्त्री को शिक्षा देने के साधनों में से केवल एक साधन है। साक्षरता स्वयं कोई शिक्षा नहीं है। इसलिए मैं तो बच्चे की शिक्षा का आरम्भ इस तरह करूँगा कि उसे कोई उपयोगी दस्तकारी सिखायी जाय और जिस क्षण से वह अपनी तालीम शुरू करे, उसी क्षण से उसे उत्पादन का काम करने योग्य बना दिया जाय।[3]

मो. क. गांधी

---

(१) 'स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स आफ महात्मा गांधी', चौथा संस्करण; पृष्ठ १०
(२) "हरिजन" : ८-१-'३७, (३) "हरिजन" : ११-७-'३७।

लोकसेवकों, जिला तथा प्रान्तीय सर्वोदय मण्डलों की सेवा में :

आन्दोलन जनता के हाथों में सौंपें

[सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष श्री शं० जगन्नाथन् ने यह पत्र हिन्दी में ही लिखकर भेजा है, जिसे हम अल्पतम संशोधन के साथ प्रकाशित कर रहे हैं। तिरुपति में अध्यक्ष महोदय ने घोषणा की थी कि वे शीघ्र ही हिन्दी का पर्याप्त अभ्यास कर लेंगे। —सं०]

प्रिय बंधु,

नमस्ते ! हमने ग्रामदान-तूफान-आंदोलन द्वारा बहुत उन्नति की है। यह बात इतिहास-प्रसिद्ध हो गयी है कि भारत में १ लाख गांवों, ७०० प्रखण्डों और १६ जिलों का दान हो गया है। न केवल हमारे देश के लिए, बल्कि समूची दुनिया के लिए यह एक क्रान्तिकारी घटना है।

गत १७ वर्षों से जो आंदोलन चल रहा है, उसके मूल पुरुष के रूप में भगवान की कृपा से विनोबाजी हमको मिले हैं। उनके अलावा सर्वश्री जयप्रकाशजी, शंकररावजी, दादा धर्माधिकारीजी और धीरेन्द्र भाई आदि नेताओं का नेतृत्व भी हमें प्राप्त हुआ है। हजारों कार्यकर्ताओं ने लगातार आंदोलन में भाग लिया है। सामान्य जनता का हाथ भी इसमें है। विनोबाजी ने सन् १९५६ में ही इसे जन-आंदोलन बनाने के लिए भूदान-कमेटियों का विसर्जन कर दिया था। इतने साल बीतने पर भी यह जन-आन्दोलन का रूप नहीं ले सका, इसका कारण क्या है ? क्या आंदोलन के संचालन में या उसके उद्देश्य में कमियां होने के कारण जनता इसमें भाग नहीं लेती ? या आन्दोलन का उद्देश्य उन्हें आकर्षित नहीं करता ? अथवा कार्यकर्ताओं की कार्य-पद्धतियों, योजनाओं आदि के ठीक न होने के कारण ऐसा हुआ ? हमें इसके असली कारण के बारे में ध्यान से सोचना होगा।

हममें से कुछ लोगों का इस पर विश्वास होने से कि जब हम इतना कर सके हैं, तब अगर अधिकतर लोगों, मुख्यतः ग्रामवासियों तथा किसानों को इस पर विश्वास हो जाय तो समाज में महत्त्वपूर्ण क्रांति या परिवर्तन हो सकता है। अब आगे सिर्फ कार्यकर्ताओं द्वारा आंदोलन चालू रखना लाभदायक नहीं होगा। कार्यकर्ताओं को आंदोलन जनता के सामने रखकर उनको काम में लगाना चाहिए।

हमारे आंदोलन की कार्य पद्धति में परिवर्तन करने का समय अब आ गया है। हमें इसमें और देरी नहीं करनी चाहिए, नहीं तो जैसे जनता राजनीतिक दलों पर विश्वास खो रही है वैसे ही एक दिन सर्वोदय आन्दोलन के प्रति भी विश्वास खो देगी। हमें बताना है कि लोगों द्वारा अपनी तरफ से आंदोलन चलाने का क्या रास्ता है ?

आज कार्यकर्ता ही गांव-गांव जाकर ग्रामदान-पत्रों पर हस्ताक्षर लेते हैं। इसके बदले वे क्या यह नहीं कर सकते कि गांव में कुछ सर्वोदय-प्रेमियों को ढूंढकर उन्हींके द्वारा हस्ताक्षर प्राप्त करें ? हम विचार-प्रचार में मदद कर सकते हैं, अथवा पत्र-पत्रिका और साहित्य प्रकाशित करके उनकी मदद कर सकते हैं, लेकिन हस्ताक्षर लेने का काम तो ग्रामवासियों के हाथों में ही सौंपना चाहिए। गांव में ही सर्वोदय प्रेमियों को ढूंढ लेना सर्वोदय-सेवकों का पहला काम है। हम ऐसे कुछ लोगों को ले सकते हैं, जो अपनी जमीन का बीसवां हिस्सा दान देंगे या एक दिन एक पैसा के हिसाब से एक साल में ३ रुपया ६५ पैसा देंगे, या सर्वोदय-पात्र में रोज एक मुट्ठी अनाज-दान देंगे, या रोज सूत कातकर महीने में एक गुण्डी सूत दान देंगे। हम ऐसे कुछ लोकसेवकों को गांव में ढूंढ सकते हैं, जो किसी दल या सत्ता की राजनीति में भागीदार नहीं होना चाहते। यदि शान्ति सेना में युवक भर्ती होना चाहें तो उनका सहयोग हम हासिल कर सकते हैं। क्या हरएक पंचायत में ऊपर बताये नियमों पर अमल करनेवाले सर्वोदय प्रेमी नहीं मिल सकते ? यदि हम कोशिश करें तो निश्चय ही ऐसे अनेक लोगों का सहयोग प्राप्त कर सकते हैं। हम पंचायत-स्तर पर ऐसे सदस्यों से सर्वोदय-मंडल का निर्माण कर सकते हैं। पहले यही करना चाहिए। क्या ऐसे सर्वोदय-मंडलों की सभा बुलाकर, ग्रामदान का विचार उन्हें समझाकर उनमें इसके प्रति विश्वास जगाकर इनके हाथों में ग्रामदान के लिए हस्ताक्षर प्राप्त करने का काम नहीं सौंप सकते ?

एक प्रखण्ड में औसतन ३० या ४० पंचायतें होती हैं। हर पंचायत के ५ सदस्य और प्रान्त के २०० सर्वोदय प्रेमी मिलें तो तूफान का वेग तेज ही होगा। पहले प्रखण्ड के स्तर पर सर्वोदय-मंडल का निर्माण कर सकते हैं। इसके बाद जिला सर्वोदय-मंडल का निर्माण होगा।

इसकी कल्पना करते ही हमारी आंखों के सामने एक अद्भुत दृश्य खड़ा होता है। एक जिले में औसतन ३० प्रखण्ड होते हैं। योजनानुसार हरएक जिले में ५,००० से अधिक सर्वोदय सेवक आन्दोलन में भाग लेंगे। यही होगा हमारा जन आंदोलन। पू० बाबा की राय भी यही थी। इस प्रकार की रचना के सहारे एक महान् क्रान्ति बहुत शीघ्र ही हो सकती है। जाहिर है कि आपके गांव के आसपास निम्नानुसार कार्यक्रम में भाग लेनेवालों का सहयोग हासिल करके जन-आंदोलन चलाया जा सकता है :

(१) अपनी जमीन के बीसवें भाग का दान देनेवाले,

(२) प्रतिदिन एक पैसा के हिसाब से एक साल में रु० ३.६५ देनेवाले,

(३) सर्वोदय-पात्र में रोज एक मुट्ठी भर अनाज दान देनेवाले,

(४) रोज सूत कातकर एक महीने में एक गुण्डी सूत देनेवाले, और

(५) महीने में एक दिन का श्रमदान देनेवाले।

आप ऐसे लोगों की खोज करके पंचायत में सर्वोदय-मंडलों का निर्माण कीजिए। सब पंचायतों में सर्वोदय-मंडल निर्मित करके समूचे प्रखण्ड के सर्वोदय-प्रेमियों की सभा बुलाकर कम-से-कम १० या १५ सदस्यों का सर्वोदय मंडल बनाइए।

ऊपर मैंने जो कुछ सुझाया है, उसके बारे में अपनी राय लिखिए। अगर आप इसे ठीक समझते हों, तो इस काम में फौरन लग जाइए। अगर हम इसमें सफल होंगे तो अहिंसक क्रान्ति पूरी होगी, और ग्राम-स्वराज्य की शीघ्र ही स्थापना हो सकेगी।

—शं० जगन्नाथन्

जे०पी० के भाषण पर कुछ प्रतिक्रियाएँ

पिछले अंक में हम जे० पी० का वह भाषण, जिसे उन्होंने गांधी जन्म-शताब्दी के तत्वावधान में ऐच्छिक-सेवा-संस्थाओं के सामने दिल्ली में दिया था, छाप चुके हैं। इस बार हम उस पर कुछ प्रतिक्रियाएँ छाप रहे हैं।

जे० पी० की दुविधा भारत की समस्या

दिल्ली के दैनिक अंग्रेजी 'हिन्दुस्तान टाइम्स' (बिड़ला ग्रुप) ने १५ जून के अंक में लिखा है :

"सामान्यतः शांत जयप्रकाश नारायण गुस्से में हैं। किसी भी सच्चे गांधीवादी को इतने न किये गये कामों को देखकर सन् '६६ के गांधी शताब्दी-वर्ष में गुस्सा आना ही चाहिए।"

"अपने उद्घाटन-भाषण में श्री नारायण ने बिहार और बंगाल के बँटाईदारों की बात कही है। उन्होंने पूछा है कि अगर सभ्य कहलानेवाला राजनैतिक समाज इन अभागे ग्रामीण मेहनतकश लोगों के दुःख नहीं दूर कर सकता तो नक्सालवादियों की क्यों निन्दा की जाय? वास्तव में सन् १९६९ में कोई सरकार या पार्टी ईमानदारी के साथ नहीं बता सकती कि बँटाईदारों का इतना नंगा शोषण क्यों हो रहा है—खासकर पूर्वी और दक्षिणी भारत में?...क्या आश्चर्य कि निराश और क्षुब्ध बँटाईदार नक्सालवादी के बनाये हुए हिंसक समाधान की ओर मुड़ रहा है!"

"श्री नारायण समस्या का यह हल सुझा रहे हैं कि सामाजिक व्यवस्था में आमूल क्रान्ति हो, अहिंसक क्रान्ति द्वारा सर्वोदय समाज की स्थापना हो। पिछले अनेक वर्षों से वह खुद आचार्य विनोबा भावे के साथ ग्रामदान-आन्दोलन में शरीक हैं, और उस आन्दोलन ने बिहार में उल्लेखनीय सफलता भी प्राप्त की है। अगर यह प्रयोग दान से आगे बढ़ाकर वास्तविक अमल और पुनर्वितरण तक ले जाया जा सके तो अब भी प्रश्न का उत्तर मिल सकता है, या कम-से-कम ऐसी जगह पहुँचा जा सकता है जहाँ भूमि-सुधार कानून का परिचित सहारा लिया जा सके। हम इसको यह कहकर नहीं टाल सकते कि बंगाल, बिहार की स्थानीय समस्या है। समृद्ध पंजाब में भी 'हरी क्रान्ति' ने बड़े किसान को फायदा पहुँचाया है, तथा उसके तथा छोटे किसान और खेतिहर मजदूर के बीच की खाई चौड़ी कर दी है। नये तनाव बन रहे हैं, और उनके नये हल ढूँढ़े जाने चाहिए—आज ही ढूँढ़े जाने चाहिए।"

"श्री नारायण ने गांधीजी के नमक सत्याग्रह की तरह बड़े पैमाने पर लोक-आन्दोलन की भी सलाह दी है। लेकिन इसके लिए एक लक्ष्य (काज) और एक प्रतीक चाहिए। दोनों अनुपस्थित हैं। फिर भी देश भर में अनेक व्यक्ति हैं, और संस्थाएँ हैं, जो अपनी शक्ति से कुछ करना चाहेंगी। लेकिन नौकरशाही और लाल फीते की ऐसी व्यापक माया है कि बिना उसकी मदद या समर्थन के खुद आगे बढ़कर बहुत कुछ किया नहीं जा सकता। इससे भी किसी काम में बहुत देर होती है, और निराशा होती है। इसलिए अगर गैर-सरकारी प्रभिक्रम में बाधाएँ आती हैं, और सार्वजनिक तौर पर परिणाम नहीं निकलता, या निकलता भी है तो रुक-रुककर, तो हिंसा का विकल्प क्या रह जाता है? यह सिर्फ श्री नारायण की दुविधा नहीं है। यह भारत की समस्या है।"

एक महत्त्वपूर्ण चेतावनी

दिल्ली के अंग्रेजी कम्युनिस्ट साप्ताहिक 'मेनस्ट्रीम' ने १४ जून के अंक में लिखा है :

"यह मालूम है कि श्री जयप्रकाश नारायण का अहिंसा और सर्वोदय में विश्वास काफी दिनों का है। उनके मन में साम्यवाद के लिए सहानुभूति की विरोधी भावना है, और हिंसा से घृणा भी है। इतने पर भी अगर उन्होंने सार्वजनिक तौर पर नक्सालवादियों के प्रति सहानुभूति यह कहकर कि 'वे जनता के लिए कुछ कर तो रहे हैं,' प्रकट की है तो उसे इस दृष्टि से देखना चाहिए कि हमारे देश में लोकतांत्रिक प्रशासन सामान्य जन की समस्याओं को हल करने, और निहित स्वार्थों के प्रहार से उनकी रक्षा करने में विफल रहा है।"

"...साहस के साथ सत्य कहने के लिए कुछ पूँजीवादी अखबारों ने उनका उपहास किया है। एक अखबार ने उनके भाषण में 'अनियंत्रित क्रोध' देखा है। उन्होंने स्पष्ट कहा है कि जब तक ये स्वार्थ सामान्य लोगों का शोषण करेंगे, और कानून अधिकांश जनता के अधिकारों की रक्षा करने में असमर्थ रहेगा, तब तक जनता की निन्दा इसलिए नहीं की जा सकती कि वह हिंसा पर उतारू हो गयी है।"

"श्री नारायण की चेतावनी पर राजनीति की सभी धाराओं के लोगों को गम्भीरतापूर्वक ध्यान देना चाहिए। जो लोग सत्ता में हैं उन्हें चेतावनी लेनी चाहिए कि किसी तरह कुछ करते जाने और यथा स्थिति (स्टेटस-को) बनाये रखने की नीति से जनता का विश्वास उठ रहा है, यहाँ तक कि जो तिरस्कृत और वंचित हैं वे हिंसा का सहारा लेने को विवश हो रहे हैं। यह चेतावनी आपस में लड़नेवाले वामपंथी गुटों के लिए भी है कि एक न्यायपूर्ण सामाजिक आर्थिक व्यवस्था कायम करने के लिए कहीं ज्यादा संकल्पनिष्ठ और सार्थक एकता की जरूरत है; यह भी जरूरी है कि आपस की तुच्छ ईर्ष्याएँ और झगड़े दृढ़तापूर्वक अलग रखे जायँ। अहिंसक लोक-आन्दोलन का उनका आवाहन गांधीवादी और अव्यावहारिक मालूम हो सकता है, लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि एक जन आन्दोलन से, जिसका नेतृत्व प्रगति और बुनियादी परिवर्तन चाहनेवाली शक्तियाँ करती हों, शोषण का अन्त कर सकता है, और जनता अपनी सही स्थिति में पहुँच सकती है। किसीको हिंसा हिंसा के लिए पसंद नहीं होती—सिवाय उनको जो पागल-जैसे हैं। हमारे देश में आज जो परिस्थिति है उसमें शान्ति-

पूर्ण जन-आन्दोलन से स्थायी परिणामों का निकलना अनिवार्य है, और उससे भावी लोकतांत्रिक समाज के लिए विस्तृत, व्यापक आधार भी बनेगा। लेकिन इस तरह का आन्दोलन अहिंसक रह सकेगा या नहीं, यह इस बात पर निर्भर है कि अधिकारी न्याय की माँग को कहाँ तक सुनते हैं। अगर वे कल्पना और ईमानदारी से काम लेंगे तो क्रान्ति के लक्ष्य पूरे हो जायँगे, अगर नहीं तो आग का भड़कना नहीं रोका जा सकता। तब बहुत नुकसान होगा। श्री नारायण के निर्भीक भाषण में यह चेतावनी छिपी हुई है। उसकी उपेक्षा करना घातक होगा।"

निराशा

कांग्रेस के बड़े नेता, भूतपूर्व मंत्री, भारत सरकार, श्री गुलजारीलाल नंदा ने कलकत्ता में कहा है कि जयप्रकाशजी के विचार निराशा में से निकले हैं।

हमने अपने पाठकों, और ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य आन्दोलन में लगे हुए साथियों के लिए ये उद्धरण जानबूझकर विस्तार के साथ दिये हैं। अभी कुछ दिन पहले 'इण्टक' के अध्यक्ष-पद के लिए चुने जाते समय श्री नंदा ने मजदूरों के सामने जो भाषण दिया था उसे उनके साप्ताहिक 'नवजीवन' में पढ़कर हमें यह आशा हो चली थी कि वह भी जनता की मुक्ति की शक्ति सत्ता से अलग जनता में ढूँढ़ना चाहते हैं, लेकिन अब लगता है कि हम भूल कर रहे थे। हमारी आशा गलत थी; उनको 'निराशा' मालूम नहीं क्या है।

शेष दोनों रायें विचारपूर्ण हैं। आज की समाज-रचना में न्याय हो सकेगा यह संभव नहीं। आज की राजनीति और सरकारी कानून से समाज बदल सकेगा यह संभव नहीं। अगर समाज नहीं बदला तो हिंसा को रोकना संभव नहीं। इतनी बातें स्पष्ट हो जाने पर भरपूर कोशिश होनी चाहिए कि देश में समाज-परिवर्तन के लिए शीघ्र बड़े-से-बड़े पैमाने पर अहिंसक जन-आन्दोलन हो।

समाज-परिवर्तन में सरकार-परिवर्तन अनिवार्य है, लेकिन समाज-परिवर्तन केवल सरकार-परिवर्तन नहीं है। अहिंसक समाज-परिवर्तन का अर्थ है कि आज के ढाँचे के रहते-रहते समानान्तर ढाँचे (काउण्टर सोसाइटी) का बनना शुरू हो जाय। नये ढाँचे का बनना और पुराने का टूटना साथ-साथ। यही कारण है कि ग्रामदान-आन्दोलन बुनियादी परिवर्तन चाहनेवाले सारे ग्रामीण तत्वों को ग्रामसभाओं में संगठित होने और तत्काल नयी व्यवस्था कायम करने का आवाहन कर रहा है। यह काम सरकारी दफ्तरों के सामने प्रदर्शन करने या धरना—शान्तिपूर्ण ही सही—देने से नहीं होगा। यह सही है कि आज की परिस्थिति अहिंसक आन्दोलन के लिए अत्यन्त अनुकूल है। देश की कोई शक्ति—सरकार की या निहित स्वार्थों की—व्यापक, सर्जनात्मक, लोक-शक्ति के सामने नहीं खड़ी हो सकती।

इसके विपरीत, नीयत कुछ भी हो, हिंसा का आन्दोलन चाहे जितना बड़ा हो, सीमित, अत्यन्त सीमित, ही होगा। उसे एकसाथ सरकार और निहित स्वार्थों का प्रहार बर्दाश्त करना पड़ेगा, और सामान्य जनता ऊबकर या भयभीत होकर निष्क्रिय बनी रहेगी। दलगत, वर्गगत, जातिगत संघर्ष होंगे। गृहयुद्ध की स्थिति बन जायगी। उपद्रव होंगे। क्रान्ति पीछे पड़ जायगी; युद्ध में खो जायगी। एक ओर आपसी गुण्डागर्दी होगी, दूसरी ओर पुलिस का राज होगा। कुल मिलाकर परिवर्तन की विरोधी शक्तियाँ मजबूत होंगी, संगठित होंगी और 'स्टेटस-को' नये रूप में बना रहेगा।

जे० पी० की चेतावनी हम कार्यकर्ताओं के लिए भी है। हमारे लिए चेतावनी ही नहीं, चुनौती भी है। अहिंसा को शीघ्र समाज-परिवर्तन की शक्ति बनकर सामने आना है। केवल भावना, या कुछ निष्ठाओं के दायरे में सीमित रहनेवाली अहिंसा, अपनी जगह अच्छी हो सकती है, ऊँची हो सकती है, लेकिन वह इतने से हिंसा की विरोधी शक्ति नहीं बन सकती। अहिंसा को लोकशक्ति का रचनात्मक रूप देना ही ग्रामदान के बाद ग्रामस्वराज्य का काम है। अगर हम यह न कर सके तो विपरीत पद्धति अपनानेवालों को गलत कहने का हमारा अधिकार क्या रहेगा? जे० पी० ने हिंसा की नैतिक आलोचना का अधिकार छोड़ दिया है, और अहिंसा की खोज का कर्तव्य स्वीकार किया है। समाज-परिवर्तन के क्षेत्र में अहिंसा की खोज अपरिचित समुद्र की नयी यात्रा है। पार वे पहुँचेंगे जो लहरों में उतरने का साहस करेंगे। जोखिमों का हिसाब लगानेवाले किनारे ही रह जायँगे। सन् १९४२ के बाद देश फिर 'करो या मरो' की स्थिति में पहुँच गया है। कौन जाने, अगर गांधीजी होते तो अहिंसावालों के लिए यह स्थिति शायद कुछ पहले आ जाती! खैर, थोड़ी देर हुई, लेकिन आयी।●

बिहार में प्रखण्डदान की प्रगति

जिला	प्रखण्डदान ११-५-'६९ तक	प्रखण्डदान ११-६-'६९ तक	प्रखण्डदान नये	प्रखण्डदान बाकी
दरभंगा	४४	४४	—	—
मुजफ्फरपुर	४०	४०	—	—
पूर्णिया	३८	३८	—	—
सारण	४०	४०	—	—
चम्पारण	३६	३६	—	—
गया	४६	४६	—	—
सहरसा	२३	२३	—	—
मुंगेर	३७	३७	—	—
धनबाद	१०	१०	—	—
पटना	१३	२८	१५	—
पलामू	१९	२०	१	५
हजारीबाग	७	१२	५	३०
भागलपुर	१४	१८	४	३
सिंहभूम	५	५	—	२७
संतालपरगना	१२	१६	४	२५
शाहाबाद	५	६	१	३५
राँची	—	१	१	४२
कुल :	३८९	४२०	३१	१६७

विनोवा-निवास, राँची
दिनांक : १२-६-'६९

—कृष्णराज मेहता

एक निरुपाधिक मानव : बादशाह खाँ

बादशाह खाँ

"किताबों में जैसा गांधीजी के बारे में पढ़ते हैं, कुछ-कुछ वैसी ही झलक मिली—हमारे नेताओं से बिलकुल अलग। पहली नजर में नेता तो वह लगते ही नहीं। एक सन्त, एक फकीर, एक भला इनसान, एक वली की आप कल्पना कीजिए, और फिर बादशाह खाँ की तसवीर सामने लाइए। कभी-कभी ऐसा लगता है कि इतने नेक इनसान को सतानेवालों का दिल कितना कठोर होगा?"

'दिनमान' के प्रतिनिधि का यह वर्णन बादशाह खाँ पर बिलकुल फिट बैठ जाता है। जिन लोगों ने स्वतंत्रता की लड़ाई के जमाने में बादशाह खाँ, डा॰ खान साहब, और उनके लाल कुर्तीवाले साथियों को कभी देखा होगा उनके दिल में याद करने भर से न जाने कितनी भावनाएँ उमड़ आती होंगी! शुरू से आज तक बादशाह खाँ की जिन्दगी त्याग और तपस्या की एक अखण्ड और अमर कहानी है। बादशाह खाँ सदा सिपाही रहे, नेता कभी बने नहीं। लेकिन जनता का जो प्यार बादशाह खाँ को मिला वह क्या किसीको मिलेगा? एक निरुपाधिक मानव के ऐसे नमूने कितने हैं?

अहिंसा बादशाह खाँ के लिए कभी मात्र नीति नहीं रही। उन्होंने गांधी-जी की सीख हृदय से स्वीकार की, और अहिंसा को जीवन का अटल सिद्धान्त माना। माना ही नहीं, अपनी साधना से उन्होंने जीवन और अहिंसा को पर्याय बना डाला। और, उनकी अगुआई में सीमा के पठानों ने स्वतंत्रता की लड़ाई में 'वीरों की अहिंसा' का जो उदाहरण पेश किया वह इतिहास में अद्वितीय था। कहा जाता है कि पठान बन्दूक खाता है, बन्दूक बोलता है, और बन्दूक से ही जीता है। ऐसे पठान को अहिंसा की दीक्षा दी 'सीमा के गांधी' ने, जिसने उस पठान का हाथ पीठ पर बाँधकर सीने पर अंग्रेजी बन्दूक की गोली खाने के लिए तैयार कर दिया! आज कहाँ है वह निर्वैर वीरता, और वह स्वातन्त्र्य-प्रेम?

देश के विभाजन ने भारत की आत्मा को कितनी ठेस पहुँचायी इसका लेखा-जोखा कोई भावी इतिहासकार करेगा। लेकिन हमारी आँखों के सामने ठेस के जो दो सबसे बड़े शिकार हुए वे थे गांधी और सीमा के गांधी। गांधी तो गये, लेकिन सीमा के गांधी अपने ही देशवासियों के हाथों यातना भोगने के लिए रह गये। लगता है जैसे बादशाह खाँ भी फाँसी के लिए तैयार फ्रांस के क्रान्तिकारी रोब्सपियर के साथ कह रहे हों: 'स्वतंत्रते, तू कितनी विश्वासघातिनी है?'

भारत और पाकिस्तान की स्वतंत्रता से एक यह बात सिद्ध हो गयी है कि देश की स्वतंत्रता एक चीज है, और देश में रहनेवाली जनता की स्वतंत्रता बिलकुल दूसरी। उस दूसरी स्वतंत्रता के बिना पहली का बहुत महत्व नहीं रह जाता। ये दोनों देश ऐसे हैं जिनमें दूसरी स्वतंत्रता अभी नहीं आयी है। बादशाह खाँ पहली स्वतंत्रता की लड़ाई में तो आगे थे ही, आज दूसरी स्वतंत्रता की लड़ाई में भी आगे हैं। जब तक जीयेंगे आगे रहेंगे। पराजय या निराशा उनके जीवन में है ही नहीं।

बादशाह खाँ अक्तूबर में भारत आ रहे हैं। उनका हजार-हजार स्वागत!

—सादिम

राज्यदान से ग्रामस्वराज्य का सहज विकास अनिवार्य

बीच का "वैकुअम" खतरनाक

राज्यदान के संदर्भ में जिलादान के आगे का प्रश्न प्रस्तुत है। मैं कुछ बातों की ओर ध्यान दिलाना चाहता हूँ। एक-दो नहीं, पूरे १८ वर्षों से इस काम में लगे हुए साथियों की संख्या कम नहीं है; बहुत है। लेकिन आज तक हमारी स्थिति कुछ उस लड़की जैसी हो रही है, जो एक स्कूल में चित्रकला की विद्यार्थी थी। रोज शिक्षक आता था और क्लास में कोई-न-कोई नमूना रखकर विद्यार्थियों से कहता था कि इसे देखकर चित्र बनाओ। प्रतिदिन कोई नयी चीज होती थी। उसे देखकर विद्यार्थी चित्र बनाते थे और बनाकर अपने शिक्षक को दिखाते थे। एक रोज शिक्षक के मन में कुछ दूसरी बात आयी। उसने कहा कि जो चीज तुम्हें सबसे ज्यादा पसंद हो उसकी तसवीर बनाओ। बच्चों ने, जो चीज जिसे पसंद थी उसकी तसवीर बनायी। बाद को शिक्षक ने एक-एक बच्चे को बुलाया और कहा, अपनी तसवीर दिखाओ। हर एक ने दिखाई। जब लड़की की बारी आयी तो वह चुपचाप खड़ी हो गयी। शिक्षक को बहुत नाराजगी हुई। उसने सोचा कि इसने चित्र बनाया ही नहीं। शिक्षक की त्योरी देखकर वह लड़की घबड़ा गयी। स्कूल नयी तालीम का तो था नहीं। डंडाप्रधान शिक्षण था। शिक्षक ने कापी देखी तो बिलकुल कोरी! पूछा, तुमने क्या किया? उस लड़की ने जवाब दिया—"क्या करूँ, जो चीज मुझे सबसे ज्यादा पसन्द थी उसकी शकल कैसी है, मुझे मालूम नहीं था।" शिक्षक ने डाँटकर पूछा तो वह दबी जबान से बोली—"मास्टर साहब, मुझे सबसे ज्यादा पसन्द छुट्टी है। उसका चित्र कैसे बनाऊँ? सचमुच बच्चों को छुट्टी से ज्यादा पसंद दूसरी क्या चीज होगी? हम लोग १८ वर्षों से मुक्ति का नाम लेते रहे हैं लेकिन उसकी क्या शकल होती है, यह मालूम नहीं था। अब इतने वर्षों के बाद चतुर कलाकार ने कुछ ऐसी स्थिति पैदा कर दी है कि राज्यदान के साथ आगे का चित्र कम-से-कम मोटी रेखाओं में दिखाई देने लग गया है, और अब हम यह कह सकते हैं कि हमारा आन्दोलन हमारी इच्छाओं और निष्ठाओं का आन्दोलन नहीं है बल्कि जनता की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं का आन्दोलन है। जनता चाहती है राजनीति बदले, अर्थनीति बदले और शिक्षानीति बदले। राज्यदान के बाद यह परिवर्तन संभव होना चाहिए। यह परिवर्तन कैसे हो, और परिवर्तित स्वरूप क्या हो, यह सारा प्रश्न हमारे सामने है।

एक विशेष मनोवैज्ञानिक परिस्थिति

जिलादान के बाद क्या? यह प्रश्न उत्तरित भी है, और अनुत्तरित भी। उत्तरित इस अर्थ में है कि जिलादान के बाद राज्यदान है। रुकने की कोई बात नहीं है। अनुत्तरित इस रूप में है कि बावजूद इसके कि यह बात इतने वर्षों से हो रही है, और आज हम राज्यदान के करीब पहुँच रहे हैं, कार्यकर्ताओं को यह अनुभूति नहीं होती कि हम

राममूर्ति

छोटे आदमी हैं लेकिन काम बहुत बड़ा कर रहे हैं। और जनता को यह अनुभूति नहीं हो रही है कि जो परिवर्तन हम चाहते थे उसका दरवाजा इसके द्वारा खुल रहा है। हम देख रहे हैं एक गिरावट, एक 'डिप्रेशन' चारों ओर है। जिलादानी क्षेत्रों में भी है। तो मुझे ऐसा लगता है कि जिलादान के बाद तत्काल जो काम करने का है वह इस गिरावट को रोकने का है। हमारे सारे काम का आधार है विचार की शक्ति। इस आन्दोलन में इस वक्त ऐसी मनोवैज्ञानिक स्थिति है कि फौरन निर्णय करके कोई उपाय करना जरूरी है। इस अर्थ में यह प्रश्न अनुत्तरित रह जाता है। ग्रामदान के आगे की बात यह है कि जहाँ कहीं हमको गिरावट दिखाई देती है उसको रोकना चाहिए। यह वक्त नहीं है कि हम ग्रामदान की शव-परीक्षा करने बैठें कि कितने ग्रामदान हमारे पक्के हुए हैं, कितने कच्चे हुए हैं, कितने मिले-जुले हुए हैं और कितने बिलकुल हुए ही नहीं हैं। यह सारी शव-परीक्षा करने की जरूरत नहीं है, और शायद संभव भी नहीं है। अगर इसको करने बैठेंगे तो दूसरों की आलोचना के पात्र बनेंगे, और आत्म-विश्वास भी खोयेंगे। एक मनोवैज्ञानिक परिस्थिति राज्यदान से बन रही है जिसको मानकर हम भरोसे के साथ आगे का जोरदार कदम उठा सकते हैं। इसमें संदेह की कोई बात नहीं है। आज समाज को विकल्प की भूख है। वह चाहता है कि आज की परिस्थिति से निकलने का कोई रास्ता दिखाई दे। नहीं दिखाई देता है तो वह बेचैन होता है। अगर हम कोई रास्ता दिखा सकेंगे तो उसकी जो भूख है वह मिटेगी।

ग्रामस्वराज्य का नयापन

लेकिन इस जगह एक चिंता पैदा होती है। इस अनुकूल मनोवैज्ञानिक परिस्थिति से लाभ उठाने की शक्ति और सामर्थ्य हमारे अंदर है या नहीं। ऊँचे इरादे रखनेवाले और ऊँचे हौसले रखनेवाले लोग भी अपने काम को अधकचरा छोड़कर हट जाते हैं; पराजित हो जाते हैं; विफल हो जाते हैं। यह ठीक है कि क्रान्तिकारी और शहीद कभी हार नहीं मानता। वह विफल हो जाता है लेकिन पराजित नहीं होता। लेकिन समाज को जब झटका लगता है तो वह उस झटके से बहुत दिनों तक ऊपर नहीं उठ पाता। समाज को राज्यदान के रास्ते पर लाकर, पहुँचाकर, अगर हम वह शक्ति नहीं पैदा करते हैं कि समाज अगला कदम उठा सके तो उसका कितना भयंकर परिणाम होगा, उसकी कल्पना की जा सकती है। अगर इतना ही होता कि हमारी जिन्दगी खराब होती तो कोई बात नहीं थी, लेकिन यह तो पूरे समाज का प्रश्न है, देश का प्रश्न है, करोड़ों का प्रश्न है, मुक्ति का प्रश्न है। इसलिए यह चिंता का विषय बन जाता है। हमें चाहिए कि हम अपने आन्दोलन को बारीकी के साथ समझें। आज कितने ही ऐसे साथी हैं जो पूछने पर यह नहीं बता पाते कि ग्रामस्वराज्य के तत्त्व क्या हैं। अगर गाँव का कोई आदमी पूछता है कि बताइए ग्रामस्वराज्य में क्या-क्या बातें हैं तो वे नहीं

देता पाते। उनको मालूम ही नहीं है। इधर-उधर की कुछ सुनी हुई बातें जोड़जाड़कर कुछ कह देते हैं। सोचिए, इससे काम कैसे चलेगा? बहुत सारे गाँवों के ग्रामदान हमारे कहने से हो गये लेकिन ग्रामस्वराज्य का काम ऐसा है जिसमें ऐसी कोई चीज ही नहीं है जो गाँववालों के किये बिना भी पूरी हो सके। इसलिए अबतक जिस रास्ते पर चलकर हम यहाँ तक पहुँचे हैं अब यों ही उसके आगे नहीं जा सकेंगे।

ग्रामदान और ग्रामस्वराज्य बहुत कुछ समान होते हुए भी ग्रामस्वराज्य में बहुत-कुछ नया है। ग्रामस्वराज्य में संगठन का प्रश्न है, शक्ति का प्रश्न है, उसमें केवल भावना का प्रश्न नहीं है, यद्यपि वह बुनियाद में है। नयेपन के कारण कार्यकर्ता और जनता किसीको भी ग्रामदान में से सहज रूप से ग्राम-स्वराज्य निकलता हुआ नहीं दिखाई देता। ग्रामस्वराज्य को नये सिरे से बताने की जरूरत है। अभी टीकमगढ़ में धीरेन् भाई गये थे। उन्होंने वहाँ यह महसूस किया कि नये सिरे से लोगों को ग्रामस्वराज्य का अर्थ बताने की जरूरत है।

सन् १९७२ अब कितनी दूर है? हममें से कई लोगों के मन में उसका अलग-अलग महत्त्व है। लेकिन विनोबाजी ने जो बात कही है वह हमारे दिमाग में रहनी चाहिए। उनके दिमाग में उसका क्या महत्त्व है? उन्होंने अनेक बार यह बात दुहराई है। उन्होंने कहा है कि सन् १९७२ में भी अगर हम इसी तरह रह जायेंगे तो इतिहास हमको 'राइट आफ्' कर देगा।

सम्पूर्ण और समग्र क्रान्ति के लिए योग्य वाहक...?

बिहार का राज्यदान नहीं हुआ लेकिन पूरे उत्तर बिहार का हो गया। लगभग २ करोड़ की जनसंख्या है। उत्तर बिहार के सबके सब कार्यकर्ता तो दक्षिण बिहार में नहीं गये हैं। कार्यकर्ता चले भी जायें तो जनता कहाँ जाती है? वह अपनी जगह मौजूद है। फिर क्या कारण है कि हम अपनी शक्ति का ऐसा संयोजन नहीं कर पाते कि उत्तर बिहार में जिलादान के बाद का काम शुरू होता और दक्षिण बिहार में प्राप्ति का काम जारी रहता? हमारे अन्दर समग्रता की कमी है जिसे जयप्रकाशजी बार-बार कहते हैं। हममें यह अभ्यास नहीं है कि एकसाथ हम एक से अधिक काम सँभाल सकें। प्राप्ति करेंगे तो प्राप्ति में ही रहेंगे; पुष्टि में लगेंगे तो पुष्टि ही करते रहेंगे। लेकिन यह हम कबतक कहते रहेंगे? अपनी शक्ति और संख्या का संयोजन इस तरह होना चाहिए कि हमारे हर मोर्चे एकसाथ चल सकें। हमारी यह क्रान्ति सम्पूर्ण और समग्र है, इसलिए अगर क्रान्तिकारी अपूर्ण और आंशिक रहेगा तो क्रान्ति का सफल वाहक नहीं बन सकेगा। और, अगर हम आज से ही तैयारी नहीं करते हैं तो जिलादान के बाद के काम की समय से शुरुआत नहीं हो सकेगी। राज्यदान होने और ग्रामस्वराज्य का काम शुरू होने के बीच जो खाली जगह रह जायेगी वह हमारे आंदोलन के लिए शायद घातक सिद्ध होगी। इसलिए यह सोचना चाहिए कि इस तरह का 'वैकुअम' (रिक्तता) आंदोलन में न पैदा होने पाये, तथा एक स्थिति से दूसरी स्थिति में सहज प्रवेश होता चला जाय। ग्रामसभाओं का संगठन बुनियादी काम है। हमारा आगे का महल ग्रामसभाओं के गठन के ऊपर निर्भर है। वह हमारे बुनियाद की ईंट है। कठिनाइयाँ बहुत हैं, लेकिन ग्रामसभाएँ बनानी हैं, और उन्हें सक्रिय करना है।

मालिक-महाजन के हृदय की धड़कन

ग्रामसभाओं के संगठन के सम्बन्ध में एक बात की ओर आप लोगों का ध्यान दिलाना चाहता हूँ। वह है मालिक और मजदूर का प्रश्न। एक नहीं, अनेक गाँवों में जाकर मालिकों और महाजनों से बातें करने का मौका मुझे मिला है। उन्होंने हस्ताक्षर किये हैं। बीघे में एक बित्ता देने के लिए भी तैयार हैं। लेकिन वे कहते हैं: 'आप हमें विश्वास दिलाते हैं कि हमारी गर्दन आपके हाथों नहीं कटेगी, लेकिन समाज को बदलने की वे ही सारी बातें कहते हैं जो साम्यवादी कहते हैं। तो यह समझाइए कि हमारी गर्दन कटे बिना समाज कैसे बदल जायेगा?' मालिकों और महाजनों के दिल में यह भय है जिसके कारण मालिक और महाजन का कदम ग्रामसभा के संगठन में नहीं उठता। अनुभव बता रहा है कि उनके कदम के उठे बिना ग्रामसभाएँ बननी नहीं, और बन भी जायें तो चलती नहीं, और आज की सरकारों की तरह चल भी गयी तो टिकती नहीं। यह सब समस्या है और अपना 'कनवर्शन' का तरीका है। आखिर हम कहते हैं कि हृदय को बदल रहे हैं। हमारे आलोचक कहते हैं कि सामूहिक रूप से मालिकों और महाजनों के पास कोई हृदय होता ही नहीं। फिर भी हमने साहस करके उनके अन्दर हृदय 'ट्रांसप्लांट' किया है। हम मानकर चलते हैं कि मनुष्य मनुष्य है, लेकिन समाज की व्यवस्था ने उसे शोषक-शोषित बना दिया है। यह बात हमने कही है। लेकिन हम देखते हैं कि हमारी बातें सुन-सुनकर उनके दिल और दिमाग में दूसरी धड़कन पैदा हो जाती है। वह धड़कन है भय की। इसलिए मैं मानता हूँ कि हमारी क्रान्ति का जो वादा है महाजन और मालिक को अभयदान देने का, उसका व्यावहारिक स्वरूप निकालना चाहिए, और बड़े पैमाने पर। मालिकों और महाजनों को मालूम होना चाहिए कि उनकी पूँजी सुरक्षित भी रह सकती है, और समाजोपयोगी भी हो सकती है, और उनकी जान के लिए कोई खतरा नहीं है, बल्कि उनकी प्रतिभा के लिए हमारे आन्दोलन में स्थान है। अगर वे मनमाना शोषण छोड़ दें तो पूँजी की प्रतिष्ठा और उसका उचित लाभ उन्हें मिल सकता है। यह इस आन्दोलन का अभयदान है, किन्तु यह दान हमने दिया नहीं है। यह बात जल्दी की है। इसे किये बिना हमारा कदम आगे नहीं बढ़ेगा, ऐसा मेरा निश्चित मत है।

दूसरी चीज। ग्रामसभा का गठन शुरू करते ही गाँव की तमाम समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं। वह जो दबा हुआ आदमी है, वाचाल हो जाता है। वह कुछ कहने लगता है, कुछ माँगने और चाहने लगता है। यह सब होता है। हम यह भी देखते हैं कि गाँव के अन्दर अपनी समस्याओं को हल करने की शक्ति नहीं रह गयी है। गाँव अन्दर से बिलकुल खोखले हो गये हैं। गाँव

के धरातल पर गाँव की समस्याओं का समाधान होना दिखाई ही नहीं देता। उस धरातल को बदलने की जरूरत है। गाँव के बाहर की शक्तियों को जोड़कर गाँव की समस्याओं को 'सबलीमेट' करने की जरूरत है। गाँव के सवालों का धरातल बदलेगा, और उस बदले हुए धरातल पर उनका समाधान निकलेगा, यह एक प्रश्न है जिस पर विचार करना चाहिए।

हमारे सामने सन् १९७२ है। सन् १९७२ को आन्दोलन के संदर्भ में समाज के सामने प्रस्तुत करना चाहिए। मतदाताओं के सामने सारी बातें खुलकर जानी चाहिए। आज का मतदाता इस देश के भविष्य का विधाता है। उसके हाथ में इसके बनाने और बिगाड़ने की शक्ति है। सन् १९७२ के लिए उसे आज से तैयार करना चाहिए। हम यह महसूस करते हैं कि पुराने नारों से जन-समुदाय प्रेरित होता नहीं है। लोकनीति एकमात्र ऐसा नारा है जिसकी झलक लोगों की आँखों में रोशनी पैदा कर देती है। इस लोकनीति से आज की राजनीति बदल जायेगी, अर्थनीति बदल जायेगी और शिक्षा-नीति बदल जायेगी। जब वे समझ जाते हैं कि लोकनीति से यह सब सम्भव है तो उनके चेहरे पर आशा का प्रकाश छा जाता है।

ग्रामस्वराज्य के लिए सुनियोजित अभिक्रम

लोकनीति से किस तरह ग्रामस्वराज्य की रचना हो सकती है इसकी रूपरेखा एक गोष्ठी में तैयार हुई थी। उस गोष्ठी के आधार पर एक छोटी-सी पुस्तिका बनायी गयी है—'ग्रामस्वराज्य'। यह पुस्तिका एक-एक गाँव में पहुँचनी चाहिए और एक-एक कार्यकर्ता को उसकी बातें नमाज की तरह रट जानी चाहिए। हम कुरान पढ़ सकें या नहीं, लेकिन नमाज तो याद होनी ही चाहिए। उतने से अपना बहुत काम बनता है। व्यावहारिक ब्रह्मविद्या ग्रामदान से शुरू होती है और ग्रामस्वराज्य से पूरी होती है। उसकी पूरी रूपरेखा इस छोटी-सी पुस्तिका में मौजूद है। हमने इसमें सुझाया है कि जिस तरह से ग्रामदान की प्राप्ति का अभियान चलता है उसी तरह अब विचार-शिक्षण का अभियान चलना चाहिए। हर शिविर में इस पुस्तिका को 'टेक्स्टबुक' के रूप में रखना चाहिए। इसमें दो चीजें मुख्य हैं। आज जो हम पहले कदम के तौर पर योजना पेश करना चाहते हैं उसके दो छोर हैं—एक छोर पर 'स्वायत्त ग्रामसभा' (ऑटोनोमस विलेज असेम्बली), है और दूसरे छोर पर 'दलमुक्त राज्यव्यवस्था' (पार्टीलेस एडमिनिस्ट्रेशन) है। दूसरे शब्दों में यह सरकारमुक्त गाँव, और दलमुक्त सरकार की योजना है। ये दोनों कैसे प्राप्त किये जा सकते हैं इसकी योजना होनी चाहिए। आदरणीय धीराजी को बहुत चिन्ता थी कि हमारी एक राजनीति बननी चाहिए। बहुत दिनों से वह कहते आये हैं। राजनीति तो बनी हुई है। हमारी तो लोकनीति बननी चाहिए दलमुक्ति की। वह इस पुस्तिका में मौजूद है। केवल कार्यकर्ताओं के ही नहीं, बल्कि नागरिकों के शिविरों में, इस पुस्तिका का अभ्यास होना चाहिए। इस तरह की शुरुआत बिहार में हुई है। मुजफ्फरपुर के वैशाली स्थान में सबसे पहले यह शिविर हुआ। पूर्णिया में मई महीने में होगा, सारन में होगा, सहरसा जिले में होगा। इस तरह एक के बाद दूसरे जिले करते चले जायेंगे।

विकास और रचना का नया आयाम

एक प्रश्न विकास का आता है। हमारे अनेक मित्रों के मन में सवाल उठता है कि आखिर विकास का क्या होगा। जहाँ तक नमूने बनाने का सवाल है जयप्रकाशजी ने आबूरोड के सम्मेलन में उसका आखिरी जवाब दे दिया था कि नमूने बनाने का काम हमारा नहीं है। नमूने को हम खिलौना समझते हैं। हम खिलौने बनाने नहीं निकले हैं। हम तो समाज बनाने की बात कहते हैं और समाज बनाने का काम करते हैं। कम-से-कम दिल में समाज-परिवर्तन का सपना रखते हैं। हमारा काम है विकास की मूल शक्ति पैदा करने का। सोचिए, अगर आज की राजनीति चलती रह गयी, तो क्या समाज की रचनात्मक शक्ति प्रकट होगी? अगर लोकनीति नहीं आयी तो क्या लोक-विकास सम्भव होगा? सरकारी अधिकारी अच्छी तरह जानते हैं और कहते हैं कि राजनीति नहीं बदलती है तो किसी प्रकार का विकास सम्भव नहीं है। रचनात्मक कार्यों का इतिहास क्या बताता है? सरकार की विकास-योजना का इतिहास क्या बताता है? उस इतिहास को दुहराने की जरूरत नहीं है। इसलिए लोकनीति से लोकशक्ति बनती है तो विकास के लिए जितना आधार आवश्यक है वह बन जाता है। अनेक क्षेत्र हैं जहाँ विकास के काम हो रहे हैं। लेकिन हम इतना ही मान सकते हैं कि विकास के कुछ छोटे ही काम हुए हैं। विकास का कोई नया आयाम हमारे हाथ आया नहीं है, इस कारण कि राजनीति के क्षेत्र में अभी हमारी 'डायनेमिक्स' चली नहीं; शुरू ही नहीं हुई।

यह तब चलेगी जब लोकनीति के विचार के अनुसार सन् १९७२ में हम वोटरों से यह कह सकेंगे कि वोट पार्टी के उम्मीदवार को नहीं देना है बल्कि अपने उम्मीदवार को खड़ा करना है। अभी मध्यावधि चुनाव में हमने कहा कि वोट अच्छे उम्मीदवार को देना है; सन् १९७२ में हम कहेंगे कि अपना उम्मीदवार खड़ा करना है। अपने उम्मीदवार का अर्थ क्या है? इलेक्टोरल कालेज कैसे बनेंगे, निर्वाचन-मण्डल कैसे बनेंगे, ये सारी बातें 'ग्रामस्वराज्य' पुस्तिका में लिखी हुई हैं।

जिलादान के बाद जिलादानी क्षेत्रों में एक नया अभियान चलना चाहिए। जिस तीव्रता के साथ प्राप्ति का अभियान चलता है उसी प्रकार नागरिकों के ग्राम स्वराज्य शिविरों का अभियान चलना चाहिए। त्रिविध कार्यक्रम के कुछ सघन प्रयोग क्षेत्र लेने चाहिए। अभी कोई प्रयोग हमने नहीं किये। लोकनीति की दिशा में तो कोई प्रयोग हुए ही नहीं। हमें यह मालूम नहीं है कि जनता ग्रामस्वराज्य के लिए कहाँ तक जायगी। यह जाने बिना आगे का काम कैसे होगा? बिहार में प्रयोग क्षेत्र बनाने का काम शुरू हुआ है। हर एक सघन क्षेत्र में अपना एक मुख्य साथी जो समाज को प्रभावित कर सके, बैठे। अगर वह संस्था का कार्यकर्ता है तो संस्था उसको वेतन दे, लेकिन वह संस्था की रोजमर्रा की जिम्मेदारी से मुक्त हो। ऐसा मुख्य मित्र अपने

प्रयोग-क्षेत्र में ग्रामसभा का संगठन, लोकनीति के लिए आवश्यक लोक-शिक्षण, तरुण शांति-सेना, ग्राम-शांतिसेना, साहित्य-प्रचार वगैरह के काम में शक्ति लगाये। खादी के काम की कोई दिशा हमें अभी तक स्पष्ट नहीं हुई है, या यों कहिए कि दिशा तो स्पष्ट है लेकिन कहाँ से शुरू करें और कैसे आगे बढ़ें यह साफ नहीं है। बावजूद बहुत सिर मारने के कोई चीज हाथ नहीं आयी है, लेकिन आनी चाहिए। पुरानी खादी चलती नहीं। वह खुद ही नहीं चलती तो दूसरे को क्या चलायेगी? नयी खादी, गाँव की खादी, कैसे खड़ी होगी कहाँ से यंत्र आयेंगे, कहाँ से साधन आयेंगे, यह सारा सवाल अनिर्णित है। यह भी दिखाई देता है कि इस सवाल का जवाब विद्वान और विशेषज्ञ नहीं दे सकेंगे। शायद सारे अनुत्तरित प्रश्नों का उत्तर अन्त में जनता ही देती है, लेकिन अपने ढंग से देती है। इसलिए जनता के हाथों में खादी को सौंपकर संतोष मानना होगा। इसलिए 'प्रयोग-क्षेत्र' हर जिलादानी क्षेत्र में चुने जाने चाहिए।

समर्पित कार्यकर्ताओं का 'कैडर'

इस सारे काम के लिए कार्यकर्ताओं का एक 'कैडर' तैयार होना चाहिए। अभी तो हमारे खिचड़ी कार्यकर्ता हैं जो सब बहुधन्धी हैं। आगे का काम इतना कठिन है कि उसमें ऐसे कार्यकर्ताओं की जरूरत है जो उसके लिए 'कमिटेड' हों, उनके सामने इस आन्दोलन के सिवाय और कुछ न हो। ऐसे समर्पित कार्यकर्ताओं का एक 'कैडर' बनाना चाहिए। वह कैसे बनेगा, इस पर विचार करने की जरूरत है।

शहरों के काम की तरफ बहन निर्मला ने ध्यान दिलाया है। वह आवश्यक है। ग्राम-*स्वराज्य के सन्दर्भ में वह टाला नहीं जा* सकता है। शहरों को छोड़कर आगे बढ़ना खतरे से खाली नहीं है। वे हमारा रास्ता रोक सकते हैं, समाज की चिन्तनधारा को बदल सकते हैं और बहुत दिनों तक भारत को भटका सकते हैं। इसलिए अब उनको अपने धुन के अन्दर लाना चाहिए, पहुँच के अन्दर लाना चाहिए, और उनके काम की बात सोचनी चाहिए।

साहित्य हमारी लड़ाई की बन्दूक है। गाँव-गाँव साहित्य पहुँचना चाहिए। गाँव के साथ सम्बन्ध जोड़ने का दूसरा कोई माध्यम नहीं है। कोई कारण नहीं है कि 'गाँव की बात' पत्रिका हर गाँव में न पहुँचे। अगर गाँव की बात गाँव में नहीं पहुँचेगी तो शहरों की बात पहुँचेगी। आप उसको पहुँचने से रोक नहीं सकेंगे। और शहर की बात पहुँच गयी तो ग्राम-स्वराज्य साफ हो जायेगा। कम-से-कम हमारे लिए ग्रामस्वराज्य नहीं रह जायेगा।

अन्तिम बात कि कार्यकर्ता भले ही अपनी जीविका के लिए संस्था आधारित हों, लेकिन हमारे नये प्रयोग-क्षेत्रों में संगठन और शिक्षण का सब काम जनाधारित होने चाहिए। कार्य वहाँ की जनता के निर्णय से, कर्ता भी वहीं के, और कोष भी वहीं का हो। इस तरह कार्य, कर्ता और कोष की एक त्रयी इन प्रयोग-क्षेत्रों में बने तो उसका जो परिणाम आयेगा, उससे ग्रामस्वराज्य की शक्ति बनेगी। लोकनीति के लिए रास्ता खुलेगा। लोकशक्ति ही लोकक्रान्ति की आत्मा है।

सर्व सेवा संघ अधिवेशन, तिरुपति में दिनांक २८-४-'६१ को दिया गया भाषण।

अर्थ की समस्या और माँगने के अनुभव

[अर्थ संग्रह के काम का यह अनुभव इस बात का संकेत है कि अब हमें शहरों की ओर से उदासीन नहीं रहना चाहिए। परिस्थिति और उसके अनुसार की गयी आन्दोलन की व्यूह रचना के कारण अब तक हम गाँवों की सीमा में ही काम करते रहे, लेकिन अब हमें अपनी आवाज शहरों तक पहुँचानी होगी, इसके साथ ही नीचे की इकाई के ठोस संगठन पर भी अपेक्षाकृत अधिक ध्यान देना होगा। —स०]

गत दिनांक २३ से २५ अप्रैल तक मद्रास के पास तिरुपति, आन्ध्र में आयोजित सर्व सेवा संघ के अधिवेशन के बाद मद्रास शहर के राजस्थानी लोगों में सर्वोदय-कार्य के लिए चंदा करने के लिए श्री गोकुलभाई भट्ट, तथा श्री बिरधीचंदजी चौधरी के साथ मैं लगभग १० दिन मद्रास रहा। सर्व सेवा संघ के नवनिर्वाचित अध्यक्ष श्री जगन्नाथनजी का बहुत दिनों से आग्रह था कि तमिलनाडु के सर्वोदय काम के लिए मद्रास शहर के राजस्थानी भाइयों से सहायता प्राप्त करने में हम लोग मदद करें। राजस्थान-प्रदेशदान के काम के लिए भी अर्थ-संग्रह बहुत जरूरी हो गया है। मद्रास के राजस्थानी समाज से जो सहायता एकत्र हो रही है उसमें से छठा हिस्सा सर्व सेवा संघ को देने के बाद बाकी रकम का उपयोग तमिलनाडु के लिए और आधी का राजस्थान के लिए करने का निश्चय किया है।

ग्रामदान-आन्दोलन का काम गाँवों में सीमित है और उसके लिए अर्थ-संग्रह शहरों से करना पड़ता है, जहाँ ग्रामदान के काम की जानकारी लोगों को नहीं के बराबर है। व्यापारी समाज तो इन गतिविधियों से और भी अछूता है। अतः चंदे के काम में काफी कठिनाई होती है। वैसे भी माँगने का काम बहुत कठिन है। समाज में भोग और स्वार्थ की प्रवृत्ति बढ़ते जाने के कारण दान और त्याग की भावना भी दिनों दिन कम हो रही है। दूसरी ओर आजकल सार्वजनिक कामों के नाम पर, और राजनैतिक पार्टियों के द्वारा काफी चंदे होने लगे हैं, और इनमें से कुछ का दुरुपयोग भी होता है, अतः यह काम और भी दूभर हो गया है। बहुत सुनना पड़ता है। देने वाले तो सभी को एक नजर से देखते हैं। यह उनके लिये स्वाभाविक भी है। इन सब कारणों से इस काम में कभी-कभी बड़ी ग्लानि होती है, लेकिन और कोई चारा भी नजर नहीं आता, क्योंकि जल्दी-से जल्दी गाँव गाँव में आन्दोलन को पहुँचाने के लिए काफी बड़े पैमाने पर *अर्थ-व्यवस्था* करना भी जरूरी हो गया है जो केवल स्थानीय सूत्रों से सम्भव नहीं है। उधर देश में परिस्थिति इतनी तेजी से बिगड़ रही है कि नीचे से समाज संगठित नहीं हुआ और उसमें शक्ति नहीं आयी तो विनाश को रोकना सम्भव नहीं है। अभी भी शायद काफी देर हो चुकी है।

(श्री सिद्धराज ढड्ढा की चिट्ठी से)

तरुण शान्ति-सेना

क्या तरुणों की इस बात पर ध्यान दिया जायेगा ?

[हमें यह घोषणा करते हुए खुशी हो रही है कि 'भूदान-यज्ञ' में 'तरुण शान्ति-सेना' का एक पाक्षिक स्तम्भ इस अंक से शुरू कर रहे हैं। इस स्तम्भ का शुभारम्भ बम्बई में पिछले दिनों आयोजित तरुण शान्ति-सेना के पहले अधिवेशन द्वारा स्वीकृत घोषणा-पत्र तथा उसमें भाग लेनेवाले उत्साही और सक्रिय तरुण शान्ति-सेवक अभय बंग की अभिव्यक्तियों द्वारा हो रहा है। हम कोशिश करेंगे कि इस स्तम्भ में हम अपनी ओर से विश्व की युवा-चेतना, उसकी अकुलाहट और अन्वेषणों की जानकारी तरुणों के लिए प्रस्तुत करें। हमारी अपेक्षा होगी तरुण पाठकों, शान्ति-सैनिकों, सेवकों से कि वे इस स्तम्भ को अपना मानें, और इसे तरुणों की बिखरी शक्ति को सूत्रबद्ध करने का एक माध्यम बनायें।

अभय बंग स्वयं सर्वोदय-क्रान्ति के लिए समर्पित परिवार की देन है, और इस लेख द्वारा उसने सर्वोदय-परिवार के लड़के-लड़कियों से जो अपील की है, वह महत्त्वपूर्ण है। क्या हम आशा करें कि देशभर में फैले हजारों कार्यकर्ताओं के लड़के-लड़कियाँ अभय की पुकार को सुनेंगे और तरुणों की 'उफनती शक्ति को विधायक दिशा' देने के काम में सक्रिय होंगे ? —सम्पादक]

तरुण शान्ति-सेना का आठवाँ अखिल भारतीय शिविर और प्रथम सम्मेलन हाल ही में बम्बई में सम्पन्न हुआ। भारतभर के करीब २०० तरुणो ने शिविर में ११ मई से २५ मई तक भाग लिया। सब साथ रहे, साथ श्रमदान किया, साथ चर्चाएँ की। वहाँ से लौटने के बाद कुछ विचार, कुछ सुझाव मन में आते हैं। उन्हे एक तरुण शान्ति-सेवक के नाते साथियो और गुरुजनो के सामने रखना चाहता हूँ।

बिहार के अकाल में तरुणो ने जो अद्भुत सेवा-कार्य किया उससे प्रभावित होकर जयप्रकाशजी ने तरुणों की शक्ति का विधायक कार्य के लिए उपयोग हो, इसलिए तरुण शान्ति-सेना की स्थापना की। पुराना किशोर शान्ति-दल इसमें विलीन कर दिया गया। उसके बाद तरुण शान्ति-सेना के अनेक शिविर हुए हैं, और संगठन कुछ आगे बढ़ा है। लेकिन जिस धीमी गति से और ढीले तरीके से वह आगे बढ़ रहा है, उस बारे में हम तरुणों को गहरा असन्तोष है।

आज सारी दुनिया में, तरुणों में हलचल और जागृति है। क्रान्ति की ओर वे अग्रसर हो रहे हैं। वे समाज में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने की माँग कर रहे हैं, और क्रान्तियो में सक्रिय भाग ले रहे हैं।

भारत के तरुणो में भी वर्तमान परिस्थिति के प्रति गहरा असन्तोष है। लेकिन आज वे व्यापक दृष्टि से नहीं सोच रहे हैं, वे या तो संकुचित दायरों में रहकर हड़ताल या दूसरी हरकतें कर रहे हैं, या फिर किसी राजनीतिक पक्ष के हाथों के खिलौने बन रहे हैं। उनकी अपार शक्ति व्यर्थ जा रही है, या विनाशकारी हो रही है।

तरुण शान्ति-सेना इन सब तरुणो की उफनती हुई शक्ति के लिए सुनियोजित कार्य-क्षेत्र और तरुणों को अपना एक मंच देना चाहती है। यह शक्ति व्यापक पैमाने पर क्रान्ति के लिए, समाज से विविध प्रकार के घातक जहर हटाने के लिए और विधायक कार्य के लिए सक्रियता से लगे, यह तरुण शान्ति-सेना का उद्देश्य है।

इस विशाल उद्देश्य तक पहुँचने के लिए जो महत्त्व तरुण शान्ति-सेना को दिया जाना चाहिए था, जो शक्ति उस पर केन्द्रित की जानी चाहिए थी, दुर्भाग्य से वह नहीं हो रहा है, ऐसा लगता है।

तरुण शान्ति-सेना के दो अखिल भारतीय शिविर हर साल हो रहे हैं। भारत भर के दो-तीन सौ तरुण इन शिविरों में हर साल आते हैं, १५ दिन साथ रहते हैं, प्रेरणा लेते हैं; लेकिन शिविर खतम होने के बाद ये मोती फिर से बिखर-से जाते हैं। एक सूत्र में पिरोकर उनकी माला नहीं बनायी जाती। आज तरुण शान्ति-सेना के सिर्फ ३५० सदस्य (तरुण शान्ति-सेवक) हैं। शान्ति-सेना मण्डल की ओर से बीच-बीच में भेजे जाने वाले पत्रों के सिवाय उनसे भी दूसरा कोई सम्पर्क करता नहीं है। कोई संगठित स्वरूप उनका नहीं है। किसी ठोस कार्यक्रम की कोई स्पष्ट कल्पना उनके सामने नहीं है। सब अकेले-अकेले बिखरे हुए हैं।

इसलिए यह सुझाव देना चाहता हूँ कि :

१ तरुण शान्ति-सेवकों की संख्या बहुत बढ़ायी जाय, करीब एक लाख तक, ताकि व्यापक परिणाम हो। सर्वोदय-कार्यकर्ता अपने लड़के लड़कियों को इस ओर मोड़ें।

२. तरुण शान्ति-सेना के संगठन की जानकारी का प्रचार और प्रसार किया जाय। अधिकांश तरुणों को इसकी जानकारी तक नहीं है। हर विद्यापीठ, कालेज में इसकी शाखाएँ बनें।

३. इन तरुण शान्ति-सेवको को बाँध रखनेवाला कोई तत्त्व हो। आज हमारी कोई 'सेना' है, ऐसा हमें महसूस नहीं होता। इसलिए अकेलेपन महसूस होता है, और शक्ति का भान नहीं होता।

४. शिविर तथा सम्मेलनों में व्याख्यान, चर्चाएँ, विचारों की सफाई बहुत अच्छी और भरपूर होती है। प्रस्ताव पास किये जाते हैं। लेकिन इन विचारों को, प्रस्तावों को प्रत्यक्ष कार्यान्वित करने का कोई उत्साहवर्धक कार्यक्रम आगे के लिए न दिया जाता है, न सुझाया जाता है। और काम के बिना विचार टिक नहीं सकते। बिहार का शिविर अत्यन्त उत्साहवर्धक हुआ, क्योंकि अकाल-पीड़ितों की सेवा का काम था। बम्बई के शिविरों में भी 'स्लम' (झोपड़-पट्टी) में गंदी नाली और रास्ते आदि को बाँधने का श्रमदानवाला हिस्सा ही सबसे ज्यादा रुचिकर और प्रेरणादायी था। प्रत्यक्ष काम करने में तरुण हमेशा आगे रहते हैं, इसलिए ऐसे कुछ कार्यक्रमों से संगठन आकर्षक, प्रेरणादायी और महत्त्व का होगा। लेकिन आज हमारे पास, अपनी-अपनी जगह करने के लिए ऐसा, या दूसरा कोई विधायक कार्यक्रम, जो साधारण तरुणों को भी खींच लायेगा, प्रेरणा देगा, नहीं है।

कोई ऐसा सर्वमान्य कार्यक्रम नहीं है, जो सारी सेना पूरे राष्ट्र में अपनी-अपनी जगह कर रही हो। ऐसा कार्यक्रम दिया जायेगा, तभी तरुण शान्ति सेना को कोई आकर्षक, ठोस स्वरूप मिल पायेगा। तभी तरुणों को इस संगठन की ओर आकर्षित करना और उनकी संख्या बढ़ाना भी शक्य होगा। और आज के स्वरूप की जगह, जो कि सिर्फ शिविर के रूप में है, सेना का नया स्वरूप विकसित होगा।

५. तरुण शान्ति-सेना में अनुशासन हो, जो दुर्भाग्य से आज नहीं है। इस बारे में एन० सी० सी० या आर० एस० एस०, इन संगठनों से हम सीख सकते हैं।

शिविर तथा सम्मेलनों में 'प्रत्यक्ष क्या कार्यक्रम हो', इसे छोड़कर सब विषयों पर चर्चा होती है। कई बार इस पर विचार हुआ तो अधूरा हुआ, उस पर भी कार्यान्वयन नहीं हुआ। इसलिए हाथ कुछ भी नहीं आता।

शिविर से लौटने के बाद अपनी जगह पर तरुण शान्ति-सेना का केन्द्र स्थापित करना, दस पाँच मित्र जमा करना, हफ्ते में नियोजित दिन केन्द्र पर एकत्रित होकर प्रार्थना, चर्चा करना, ज्यादा से-ज्यादा किसी देहात में जाकर सफाई करना, इससे ज्यादा कुछ नहीं होता। धीरे-धीरे हवा निकल जाती है, हम ठंडे पड़ जाते हैं। आज की विस्फोटक परिस्थिति में अगर हम इतने पर ही समाधान मान लें और कोई क्रान्तिकारी, ठोस कदम न उठायें, तो समय हमारे हाथों से निकल जायेगा।

इसलिए तरुणों को आकर्षक लगे, ऐसा विधायक ठोस कार्यक्रम दिया जाना चाहिए, जो पूरे राष्ट्र में तरुण शान्ति-सेवक अपनी-अपनी जगह करें। इसके सिवा हरेक केन्द्र अपनी स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार दूसरे कार्य भी करें। तरुण शान्ति-सेना के आज के बिखरे हुए, बिना चेहरे के स्वरूप की जगह उसे अनुशासित, लेकिन लचीला, व्यापक और एक-दूसरे से सम्बन्धित संगठन का स्वरूप दिया जाय।

तरुणों में जो अपार शक्ति है, उसका भान अभी शायद सर्वोदय-समाज को नहीं हुआ है, नहीं तो तरुण शान्ति-सेना पर इतना कम जोर नहीं दिया जाता। बम्बई के शिविर में प्रशिक्षकों की संख्या अत्यन्त कम थी, इसलिए संचालकों की ओर से शिविर पर आवश्यक शक्ति नहीं लगायी जा सकी। पहले ही शान्ति सेना पर सर्वोदय जगत् की बहुत कम शक्ति लगती रही है, और उसका भी सिर्फ कुछ ही हिस्सा तरुण शान्ति-सेना को मिल पाता है। तरुण शान्ति सेना के कार्य का स्वरूप विधायक हो, यह अपेक्षित है। इसलिए तरुण शान्ति-सेना पर अधिक शक्ति लगाना अत्यन्त आवश्यक है। वरना तरुण, जो आज गांधी-विचार और विधायक कार्य से दूर खिसकता जा रहा है, कहीं-का कहीं भटक जायेगा।

अगर हम शीघ्र ही तरुणों का विशाल संगठन बना पाये, तो ग्रामदान की पुष्टि और निर्माण के कार्य का भार बूढ़ों के थके हुए कन्धों पर से हम तरुण जरूर अपने कन्धों पर उठा लेंगे। सर्वोदय कार्यकर्ताओं के लड़के-लड़कियाँ भी इसके द्वारा आन्दोलन में भाग ले सकेंगे। पूरे राष्ट्र में एक विधायक निर्माण करनेवाली शक्ति पैदा होगी।

इसलिए तरुण शान्ति-सेना को खूब बढ़ाना चाहिए, सुसंगठित करना चाहिए। अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद एक साल इस कार्य को देने के लिए तरुणों को प्रेरित करना चाहिए, और इन सबकी शक्ति का पूरा उपयोग कर लेना चाहिए।

बरसात के पानी का कोई योग्य उपयोग न करें, तो वह बह जायेगा, बाढ़ की आफत लायेगा या सूख जायेगा।

क्या तरुणों की इस बात पर ध्यान दिया जायगा? —अभय बंग

मेडिकल कालेज, नागपुर

बम्बई-सम्मेलन में स्वीकृत :

तरुण शान्ति-सेना का घोषणा-पत्र : क्रान्ति की अवधारणा में क्रान्ति

तरुण शान्ति सेना के प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन में एकत्रित हम भारत के युवक और युवतियाँ यह अनुभव करते हैं कि आज मानव जाति एक ऐसे संकट-काल से गुजर रही है, जैसा अबतक के लम्बे इतिहास में पहले कभी नहीं उपस्थित हुआ था। विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने दुनिया को मानव पक्षियों का एक छोटा घोंसला-सा बना दिया है और इसकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के साधन भी जुटा दिये हैं। यह एक विचित्र विरोधाभास है कि देश में उपभोग के सामानों की प्रचुर मात्रा मौजूद होने के बावजूद भी लोग घोर गरीबी की जिन्दगी बिता रहे हैं! एक तरफ ऐसा जमाना है कि आदमी चाँद तक पहुँच सकता है, लेकिन वह अपने पड़ोसी के दिल तक पहुँचने में नाकाबिल साबित हो रहा है! चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास कर लेने के बावजूद आदमी बीमारियों का शिकार हो रहा है। मनोविज्ञान और समाजशास्त्र ने बहुत प्रगति की है, लेकिन इनसान दिमागी बीमारियों और सामाजिक कुव्यवस्था को भुगतने के लिए मजबूर है।

हम भारत के युवा इस विरोधाभास के मूक और बेबस दर्शक मात्र होने के लिए कतई तैयार नहीं हैं। हम यह जानते हैं कि युवा लोगों को यह हक हासिल है कि वे इस परिस्थिति और व्यवस्था के खिलाफ बगावत करें और इसे बदलने की क्रान्ति में शामिल हों।

हमें विश्वास है कि क्रान्ति लाने के सिर्फ दो ही रास्ते हैं—हिंसक और अहिंसक। हिंसक क्रान्ति के बारे के प्रभाव में पड़ने से हम दृढ़ता के साथ इनकार करते हैं। यद्यपि देखने में हिंसक क्रान्तियाँ तेजगतिवाली मालूम देती रही हैं, लेकिन उन्होंने अन्त में उन आदर्शों को ही मिट्टी में मिला दिया, जिनको प्रतिष्ठित करने के लिए वे शुरू हुई थीं। हिंसक क्रान्तियों ने संगठित हिंसक शक्तियों को तो शक्तिशाली बनाया, लेकिन दुर्बलों और दलितों का हाथ मजबूत नहीं किया। इन क्रान्तियों ने एक प्रकार का परिवर्तन लाने में

जरूर सफलता पायी, लेकिन इनके साथ ही इन्होंने एक ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी, जिसमें उन लक्ष्यों की ही पराजय हो गयी, जिन्हें हासिल करने के लिए क्रान्तियाँ शुरू हुई थीं।

इसीलिए अब अहिंसक क्रान्ति ही एकमात्र विकल्प है। यद्यपि महात्मा गांधी और मार्टिन लूथर किंग जैसे व्यक्तियों के अहिंसा की शक्ति का शोध करनेवाले प्रयोगों में मानव को कुछ अनुभव मिल चुका है, फिर भी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इसे अपनी सामर्थ्य सिद्ध करना बाकी है। अहिंसा की सामर्थ्य को सिद्ध करना आज की सबसे बड़ी चुनौती है। हम भारत के युवागण इस चुनौती को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं, और ऐसा करते हुए हम क्रान्ति की धारणा में ही क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना चाहते हैं।

हम विश्वास करते हैं कि युवकों को न केवल क्रान्ति की कामना करने का हक है, बल्कि क्रान्ति करने का दायित्व निभाना है। इस दायित्व के निभाने के लिए पहला कदम उठाने की दृष्टि से हम नीचे लिखा कार्यक्रम तय करते हैं :

• यह मानते हुए कि व्यक्ति और समाज अन्योन्याश्रित और अविभाज्य है, हम अपनी जिन्दगी में क्रान्ति लाने का प्रयास करेंगे। हम जमाने की निष्ठुरता के आगे नहीं झुकेंगे और न तो हम अपने को उसका एकदम विरोधी मानेंगे। हम चाहेंगे कि जमाने की बुद्धिमत्ता और अनुभव का युवा-शक्ति और दूरदृष्टि के साथ मेल बैठे।

• हम जातिवाद, क्षेत्रवाद, सम्प्रदायवाद, प्रदेशवाद, भाषावाद और उत्कट देश-प्रेम आदि, इन सब वृत्तियों को अस्वीकार करते हैं, जो आदमी और आदमी के बीच अलगाव पैदा करती हैं और उनसे युद्ध ठानने को तत्पर हैं।

• हम भ्रष्टाचार के किसी काम में भागीदार नहीं बनेंगे और दूसरे भ्रष्ट आचरण करेंगे तो उसे सहन भी नहीं करेंगे।

• हममें से जो छात्र हैं, वे परीक्षाकाल में चलनेवाले दुराचार में शरीक नहीं होंगे और अन्य छात्रों को इस प्रकार के दुराचार से विरत करने के लिए उन्हें ऐसे दुराचार के खिलाफ संगठित करेंगे। हम अपने साथी छात्रों को इस बात का यकीन करायेंगे कि शिक्षा का बुनियादी उद्देश्य शरीर और बुद्धि का प्रशिक्षण और चरित्र निर्माण है, सिर्फ परीक्षा पास करना नहीं।

• हम भारत की परिस्थिति को बदलने, असमानता और अन्याय की जंजीरों को तोड़ने, और समाज के विक्षुब्ध लोगों तक पहुँचने का माध्यम बनाने का प्रयास करेंगे।

आज की शिक्षा जिन्दगी से दूर है। हम इस शिक्षा-पद्धति को बदलेंगे। विज्ञान के क्षेत्र में हमारी शिक्षा पद्धति जमाने से बहुत पिछड़ी हुई है। यह जिन्दगी को वैज्ञानिक दृष्टिकोण देने में असफल है। साहित्य और ललित कला के क्षेत्र में यह शिक्षा-पद्धति ऐसे चरित्र के लोगों का जत्थुंज तैयार करती है, जिनमें न गहराई होती है और न आत्म-सम्मान। शैक्षिक प्रशासन ऊपर से लेकर नीचे तक असंतोषजनक है। शैक्षिक प्रशासन में हम छात्रों की सक्रिय और उत्तरदायित्वपूर्ण भागीदारी चाहते हैं। हम पुराने जमाने की तस्वीर के अनुसार अपना निर्माण नहीं करना चाहते। हम एक नयी और बेहतरीन दुनिया बनाना चाहते हैं। हम गलतियाँ कर सकते हैं, लेकिन हम अपनी जिम्मेदारी नहीं छोड़ेंगे। हम सिर्फ इतना ही चाहते हैं कि पहले के लोगों के लिए हमें दोषी न ठहराया जाय।

आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में हम एक अहिंसक क्रांति लाने का प्रयास करेंगे। आनेवाले कल की बेहतरीन दुनिया को आगे लाने में इन क्षेत्रों का बुनियादी महत्त्व है। हम इस बात को साफ कर देना चाहते हैं कि आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय हमारे लक्ष्य हैं। क्रान्ति की हमारी पद्धति हमारे इन उद्देश्यों के अनुरूप होगी। हम भूमिहीन को जमीन दिलाने, बेरोजगार को काम दिलाने, बेघर को मकान दिलाने और शक्तिहीनों में शक्तिसंचार करने का प्रयास करेंगे।

राजनीतिक दल हमारा शोषण करने की कोशिश करते हैं। हम इसका विरोध करेंगे। हम राजनीति से पलायन नहीं करना चाहते, लेकिन हम पक्षपात की राजनीति में भी नहीं शामिल होना चाहते। वस्तुतः हम आज की राजनीति पर असर डालने की पुरजोर कोशिश करेंगे।

हम माँग करते हैं कि अठारह वर्ष की उम्र होने पर हमें मताधिकार मिले। इससे हममें जिम्मेदारी की भावना आयेगी और हमें इस बात का मौका मिल सकेगा कि हम अपना सड़क पर लड़ा जाने वाला संघर्ष लोकसभा में पहुँचा सकें।

विश्व के जो युवक उपनिवेशवाद के खिलाफ लड़ रहे हैं, उनके प्रति हमारी सहानुभूति है। लेकिन हम उन्हें यह चेतावनी भी देना चाहते हैं कि हिंसक तरीकों से उनके उद्देश्य की ही पराजय हो सकती है।

उपनिवेशवाद के विरुद्ध चलनेवाले पूरब और पश्चिम के सभी संघर्षात्मक आन्दोलनों को हम अपना नैतिक समर्थन देते हैं।

दुनिया के युवजन में उत्पीड़न, पाखंड, धोखेबाजी, संकीर्ण विचारधाराओं, सैनिकवाद और युद्ध के खिलाफ विद्रोह की जो भावना निरन्तर बढ़ रही है, उससे हम रोमांचित हैं। विश्व युवा का यह आन्दोलन स्वतंत्रता को समानता के साथ जोड़ना चाहता है। हम अपने-आपको इस आन्दोलन का अंग मानते हैं। भारत में अहिंसक शान्ति के लिए काम करके हम आशा करते हैं कि विश्व-शान्ति के प्रति हम अपना फर्ज पूरा कर रहे हैं। हम फिर से राष्ट्रीय भावनात्मक एकता, धर्म-निरपेक्षता, सामाजिक तथा आर्थिक न्याय, लोकतंत्र और विश्वशान्ति में अपनी आस्था की पुष्टि करते हैं। (मूल अंग्रेजी से)

सम्पादक के नाम चिट्ठी

लोकवस्त्र द्वारा मिथ्याचार से मुक्ति

सम्पादकजी,

७ मई के 'भूदान-यज्ञ' में श्री निर्मल भाई का खादी के बारे में विचार पढ़ा। यह हरेक खादी-कार्यकर्ता के लिए चुनौती है। उन्होंने बड़े मौके पर गांधीजी के नवसंस्करण को बड़े जोरदार शब्दों में दिखाया है, और यह संकेत किया है कि इस पर अमल करने का सबसे अच्छा अवसर यह शताब्दी वर्ष है। आज खादी जिस रूप में पहुँची है अब वह आगे उस रूप में नहीं चल सकेगी। इसमें कोई शंका की गुंजाइश नहीं रह गयी है। जब ऐसी स्थिति है तो करना क्या है? जो काम अभी चल रहा है उसे विसर्जित करके नया काम नये सिरे से शुरू किया जाय।

आज स्थिति ऐसी हो गयी है कि खुले-आम बुनकर सड़क पर बैठकर खादी का कपड़ा ठीक खादी-भण्डार के मुकाबिले आधे दाम पर बेचता है, और यह कहता है कि यह वही कपड़ा है जो खादी-भण्डार में मिलता है। कहीं जाइए, अब लोग कहने लगे हैं कि आपके भण्डार से क्यों कपड़ा लिया जाय, जब कि बुनकर वही कपड़ा आधी कीमत लेकर घर में दे जाता है। ऐसी बात नहीं है कि यह बात किसीसे छिपी है। यह खुला सत्य है। वर्षों से राजाजी लोक-वस्त्र की बात कहते रहे हैं। हमारी राय में शायद गांधीजी आज होते तो वे भी लोक-वस्त्र की इजाजत देते, क्योंकि शुरू में उन्होंने मिल के ताने और चरखे के बाने को स्वदेशी नं०-१ कहा था। आज की स्थिति वास्तव में अधिकांश लोक-वस्त्र की ही है, लेकिन उस स्थिति को कोई भी मानने के लिए तैयार नहीं है। अगर कोई खुलेआम इसे स्वीकार करके कहता है तो वह नालायक और संस्था का विरोधी समझा जाता है। मैं नम्रता-पूर्वक आपसे पूछने की धृष्टता कर रहा हूँ कि जब गाँव-गाँव में खादी चलेगी तो क्या इस काम के लिए सबसे अच्छा मौका नहीं है कि हम ईमानदारीपूर्वक यह घोषणा करें कि अमुक कपड़े में ताना मिल का है, इसलिए वह सस्ता है और अमुक शुद्ध खादी है जो दूनी महँगी है। फिर भी कुछ भावनाशील लोग होंगे जो महँगी खादी खरीदेंगे, बाकी लोक-वस्त्र। इस प्रकार हम इस असत्य कर्म से बच जायेंगे और आज जो गांधी के नाम पर इतने व्यापक रूप से असत्य का व्यापार चल रहा है, वह शायद समाप्त होगा।

आज मुझे यह लिखते दुःख हो रहा है। मुझे उन दिनों की आज भी याद आ रही है, जब हम लोगों ने खादीग्राम में मिल वस्त्रों की होली जलायी थी। हम कहाँ से कहाँ पहुँच चुके हैं! शायद समय के कारण यह सब होता है। ऐसी परिस्थिति में अगर हम खादी को जिन्दा रखना चाहते हैं तो हमें लोकवस्त्र की योजना स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए।

श्री निर्मल भाई ने अपने लेख में जो बेचैनी जाहिर की है वह शायद सर्वसाधारण कार्यकर्ताओं की है। अब ऐसा समय आ गया है जब इस विषय पर विचार होकर परिस्थिति के अनुसार कोई रास्ता निकालना चाहिए, नहीं तो हम कहीं के नहीं रहेंगे। यह स्थिति सामूहिक पुरुषार्थ द्वारा बदली जा सकती है।

मैं एक बात और कहना चाहता हूँ कि खादी के एकाध केन्द्र का इस दृष्टि से सर्वे किया जाय कि बुनकरों की सीधी बिक्री के कारण उस केन्द्र की स्थिति क्या है?

आपका,

खादीग्राम : मुंगेर — पारस

स्वास्थ्योपयोगी प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तकें

पुस्तक	संस्करण	लेखक	मूल्य
कुदरती उपचार		महात्मा गांधी	०-८०
आरोग्य की कुंजी		" "	०-४६
रामनाम		" "	०-५०
स्वस्थ रहना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है	द्वितीय संस्करण	धर्मचन्द सरावगी	२-००
सरल योगासन	" "	" "	२-५०
यह कलकत्ता है	" "	" "	२-००
तन्दुरुस्त रहने के उपाय	प्रथम संस्करण	" "	१-२५
स्वस्थ रहना सीखें	" "	" "	२-००
घरेलू प्राकृतिक चिकित्सा	" "	" "	०-७५
पचास साल बाद	" "	" "	२-००
उपवास से जीवन-रक्षा		अनुवादक " "	३-००
रोग से रोग निवारण		स्वामी शिवानन्द	२०-००
How to live 365 day a year		John	22-05
Everybody guide to Nature cure		Benjamin	24 30
Fasting can save your life		Shelton	7-00
उपवास		शरण प्रसाद	१-२५
प्राकृतिक चिकित्सा-विधि		" "	२-२०
पाचनतंत्र के रोगों की चिकित्सा		" "	२-००
आहार और पोषण		झवेरभाई पटेल	१-५०
वनौषधि-शतक		रामनाथ वैद्य	२-५०

इन पुस्तकों के अतिरिक्त देशी-विदेशी लेखकों की भी अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं।

विशेष जानकारी के लिए सूचीपत्र मँगाइए।

एकमे, ८।१, एसप्लानेड ईस्ट, कलकत्ता—१

तत्त्वज्ञान

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को दी गयी फांसी तथा गणेश शंकर विद्यार्थी के आत्म-बलिदान के प्रसंगों से क्षुब्ध करांची-कांग्रेस-अधिवेशन के लोगों को सम्बोधित करते हुए २६ मार्च १९३१ को गांधीजी ने कहा था :—

"जो तरुण यह ईमानदारी से समझते हैं कि मैं हिन्दुस्तान का नुकसान कर रहा हूँ, उन्हें अधिकार है कि वे यह बात संसार के सामने चिल्ला-चिल्लाकर कहें। पर तलवार के तत्त्वज्ञान को हमेशा के लिए तलाक दे देने के कारण मेरे पास अब केवल प्रेम का ही प्याला बचा है, जो मैं सबको दे रहा हूँ। अपने तरुण मित्रों के सामने भी अब मैं यही प्याला पकड़े हुए हूँ...।"

उसके बाद का इतिहास साक्षी है कि देश ने तलवार के तत्वज्ञान को तलाक देनेवाले गांधी का साथ दिया। साम्राज्यवाद की नींव हिली, भारत में लोकतंत्र की नींव पड़ी और संसार को मुक्ति का एक नया रास्ता मिला।

संसार आज बन्दूक की नली के तत्त्वज्ञान से और अधिक त्रस्त हुआ है। विनोबा संसार को वही प्रेम का प्याला पिलाकर बन्दूक के तत्त्वज्ञान को तलाक दिलाना चाहता है और देश में सच्चे स्वराज्य की स्थापना के लिए उसने नया रास्ता बताया है।

क्या हम वक्त को पहचानेंगे और महान कार्य में वक्त पर योग देंगे ?

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी-समिति)
ढूंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैंरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

अखिल भारतीय समाजसेवी संस्थाओं का सम्मेलन

गांधी जन्म-शताब्दी के सिलसिले में देश भर की कोई सवा सौ अखिल भारतीय समाजसेवी संस्थाओं का सम्मेलन हाल ही में ८, ९ व १० जून को नयी दिल्ली स्थित गांधी शान्ति-प्रतिष्ठान के नवनिर्मित भव्य भवन में आयोजित हुआ। उद्घाटन किया श्री जयप्रकाश नारायण ने और समारोप किया गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष श्री आर० आर० दिवाकर ने। भाषण करनेवालों में डा० सुशीला नैय्यर थीं, श्री एल० एम० श्रीकान्त थे और वैसे भाषण के लिए तो लगभग सभी प्रतिनिधि उत्सुक थे, पर पचास लोगों को ही मौका मिल पाया, बाकी को बेहद अफसोस रहा। खाने-पीने और ठहरने का प्रबन्ध बहुत शानदार था। सभी को हर तरह का आराम था, पर इस आराम के साथ देश की गरीबी, भुखमरी, बेकारी वगैरह पर बहुत दुःख था। बस, सब यह चाहते थे कि उनको भरपूर आराम मिलता रहे और देश व दुनिया की हालत जल्द-से-जल्द बदल जाय!

उद्घाटन करते हुए श्री जयप्रकाश नारायण सन् १९४२ के जयप्रकाश की तरह बार-बार हाथ उठाकर, मुक्का तानकर गर्जनात्मक ढंग से कह रहे थे कि बेहद शर्म की बात है कि आज भी बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली में आदमी सुअरों की तरह गन्दी बस्तियों में रह रहे हैं। बिहार में 'टेनेन्सी ऐक्ट' होते हुए भी गरीबों के झोपड़े उजड़ रहे हैं। उन बेघरबारों की कोई सुननेवाला नहीं। हम सरकार के भरोसे हाथ रखे बैठे हैं। हमसे तो वे नक्सलपंथी ही अच्छे हैं। मेरी उनसे पूरी सहानुभूति है. आखिर वे उनके लिए कुछ कर तो रहे हैं! गरीबी, बेकारी, बेबसी, जात-पाँत, ऊँच-नीच आदि के भेदभाववाले इस *सामाजिक ढाँचे को बदलना ही होगा*। इसके लिए जरूरत है सामाजिक क्रान्ति की। सही रास्ता तो 'गांधियन टेकनिक' ही है, पर उस पर अमल हो तब ना! (श्री जयप्रकाशजी के भाषण का अंश 'भूदान यज्ञ' के पिछले अंक में प्रकाशित किया गया है। –सं०)

जयप्रकाशजी के इस उद्घाटन-भाषण का बार-बार हवाला देते हुए पचास प्रतिनिधियों के भाषण हुए। सभी आज की स्थिति से असन्तुष्ट लगे। उसे बदलने के लिए बेचैन भी प्रतीत हुए। पर वे सबके सब सोये सोये-से दिखे। स्वयं हर तरह की सुख-सुविधाएँ उठाकर वे पिछड़े हुए गरीब तबके की हालत के बारे में कम सोच सोचकर परेशान थे, जैसे कि फर्स्ट क्लास का मुसाफिर थर्ड क्लास की भीड़ की चीख-पुकार से परेशान हो उठता है।

संस्थाओं के प्रतिनिधियों ने कर रहे कार्यों की तथा संकलित कार्यक्रमों की जानकारी दी। मिलजुलकर सबका एक कार्यक्रम क्या हो, इसकी भी चर्चा हुई।

कुछ ने यह भी कहा कि गांधीजी राजनैतिक आजादी प्राप्त करने के लिए जिये और साम्प्रदायिक सद्भावना की स्थापना के लिए उन्होंने अपने प्राणों की बलि दे डाली। वह खून आज भी टपक रहा है, उसे रोकना होगा।

श्री देवेन्द्रकुमार गुप्त, अध्यक्ष, जनसम्पर्क समिति ने सम्मेलन की भूमिका बताते हुए मुख्यतः की थी और जनसम्पर्क समिति के मंत्री श्री एस० एन० सुब्बाराव ने श्री जयप्रकाश नारायण के नेहरूजी के जमाने में प्रधानमंत्री और अब राष्ट्रपति न बनने की बात कहकर उनसे बहुत आशाएँ प्रकट कीं, जिसे सुनकर वे बोले, 'मैं राष्ट्रपति हो नहीं सकता, मैं जानता हूँ ये सब फिजूल की बातें हैं। ये लोग मुझे बरदाश्त नहीं कर सकते!'

जातिवाद के बढ़ते हुए जहर को रोकने पर भी जोर दिया गया। बच्चों, युवकों, महिलाओं, सबमें गांधीजी के विचारों का प्रचार किया जाय, यह हजार बार दुहराया गया। चर्चाओं की अध्यक्षता सेण्ट्रल इन्स्टीट्यूट आव ट्रेनिंग इन पब्लिक कोआपरेशन के डायरेक्टर श्री जोन बर्नबास ने की।

विचार-मंथन के बाद प्रतिनिधि तीन गोष्ठियों में बँट गये और उन्होंने अलग-अलग महिला और बाल कल्याण, युवक कार्यक्रम और ग्रामीण क्षेत्र में गरीबों और पिछले वर्गों के कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विचार किया, जिसके निष्कर्ष अन्तिम दिन पढ़े गये। यह सम्मेलन केन्द्रीय गांधी जन्म शताब्दी-समिति की तीन उपसमितियों के द्वारा बुलाया गया था। उनकी ओर से श्री पूर्णचन्द्र जैन, श्री एल० एम० श्रीकान्त, और डा० सुशीला नैय्यर ने भाषण दिये। श्री आर० आर० दिवाकर ने सम्मेलन का समारोप करने के पूर्व श्री राधाकृष्ण के संयोजकत्व में पाँच सदस्यों की एक 'फालोअप कमेटी' की घोषणा की। आखिर में सम्मेलन की संयोजिका श्रीमति आशाप्रभा गुप्ता ने सभी आगत जनों के प्रति आभार प्रकट किया और सम्मेलन तीन दिनों का सम्मिलन मेला होकर पच्चीस हजार रुपयों के खर्चे के साथ समाप्त हुआ!

—गुरुशरण

गांधीजी और राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ

लेखक : शंकरलाल बैंकर

श्री शंकरलाल बैंकर बहुत प्रारम्भ से ही गांधीजी के निकट सम्पर्क में रहे हैं और खादी प्रवृत्ति में तो लेखक की सेवाएँ उल्लेखनीय हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में लेखक ने गांधीजी की राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का संस्मरणात्मक इतिहास प्रस्तुत किया है। बड़ी-से-बड़ी और छोटी-से छोटी, यानी दियासलाई की सींकों की गिनती रखने तक का ध्यान रखने तक की बातों का सरस वर्णन पाठक को स्पर्श किये बिना नहीं रहता।

गांधीजी के पारिवारिक और व्यवहार-दक्ष व्यक्तित्व को समझने के लिए यह उपयुक्त ग्रंथ है। मूल्य १० रुपये मात्र।

सत्याग्रह-विचार

लेखक : विनोबाजी

सत्याग्रह के सम्बन्ध में विनोबाजी के विचारों का यह संकलन सत्याग्रह के विचार के विकासक्रम को समझने के लिए बड़ा उपयोगी है। मूल्य : रु० १.२५।

दी एसेंस ऑफ दी कुरान

संकलन : विनोबाजी

'दी एसेंस ऑफ दी कुरान' का यह तीसरा संस्करण अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। इस बार सामग्री दो कालम में दी गयी है और मूल्य भी चार रुपये से घटाकर रु० २.५० कर दिया गया है। सुन्दर, आकर्षक छपाई।

सजिल्द प्रति का मूल्य ३ रुपये।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी–१

पटना जिलादान सम्पन्न

१२ जून को राँची में पटना जिलादान-समारोह सम्पन्न हुआ। पटना जिला के सभा-ध्यक्ष तथा जिला ग्रामदान प्राप्ति समिति के संयोजक श्री विद्यासागरजी ने जिलादान का कागज विनोबाजी को समर्पित किया। यह जांच है कि पटना जिला में ग्रामदान का काम बहुत ही धीमी गति से हो रहा था और ऐसा प्रतीत होता था कि पटना का जिलादान बिहार में सबसे आखिर में होगा। परन्तु श्री विद्यासागरजी तथा उनके साथियों के अथक परिश्रम से और जिले के अन्य लोगों के सहयोग से जिलादान शीघ्र सम्पन्न हो सका।

पटना जिलादान के आँकड़े

अनुमंडल	पंचा० संख्या	गाँव संख्या	जनसंख्या	रकबा	ग्रामदान में शामिल पंचा० संख्या	गाँव संख्या	जनसंख्या	रकबा
बाढ़	१३६	४८३	५,३४,७९२	३,४७,८०६	११५	४०६	४,२०९८६	१ ७६,४८७
बिहार-शरीफ	२०६	८९१	८,६६,६१४	५,०१,५५८	१७६	७५८	७,०४,०४१	२,७०,५१८
सदर	८७	५५२	३,७०,८४६	२ ०७,०४१	७१	४००	२,६२,१८१	१,२७ ३१५
दानापुर	१३८	५५४	५,४२,६७७	२,६४,११८	११३	४८४	४,२४,५३३	१,४४,६६६
	५७०	२,४८०	२३,४८,२२६	१३,७८,६०६	४७८	२,०४८	१८,४२,५४१	७,२२,३१६

शाहाबाद जिलादान की ओर

डुमरांव कैम्प, १४ जून। शाहाबाद जिलादान की तरफ तेजी से बढ़ रहा है। दान करने में जनता की रुचि है और साथ ही नये काम की तरफ मंगल भावना है। तभी तो इतनी तेजी से कई प्रखण्डदान हो चुके। अभी-अभी नावानगर तथा इटा दान हुआ है। राजपुर प्रखण्ड में इतनी तेजी से काम चला कि उसके १२ पंचायत-दान हो चुके हैं। साथ में सटा हुआ प्रखण्ड ब्रह्मपुर तथा सिमेरी में काम जोरों से चल रहा है। कार्यकर्ता जी-जान से काम कर रहे हैं। दूसरे अनुमण्डल भभुआ में भी काम लग चुका है। भभुआ के प्रखण्डों में कार्यकर्ता इतनी धूप में भी पंचायत-पंचायत घूमकर काम कर रहे हैं। काम की तेजी, कार्यकर्ताओं की लगन तथा जनता का सहयोग देखकर लगता है शाहाबाद का शीघ्र दान हो जायेगा।

—सोमेश्वरनाथ सिन्हा

प्रखण्डदान

- एक विशेष जानकारी के अनुसार राँची जिले में बोलवा प्रखण्ड का प्रथम प्रखण्डदान हुआ है। हजारीबाग जिले के जरीडीह, केरेडारी, हटरगंज तथा कसमार प्रखण्डों का प्रखण्डदान घोषित हुआ है। पलामू जिले में मेराल तथा गढ़वा प्रखण्डों का प्रखण्डदान हुआ।
- गाजीपुर (उ० प्र०) जिले में अब तक प्राप्त जानकारी के अनुसार ७२१ ग्रामदान, ६ प्रखण्डदान तथा १ तहसील-दान हुआ है।

कौसानी में महिला-शिविर

वाराणसी, १६ जून। उत्तरप्रदेश गांधी-जन्म-शताब्दी की महिला बाल कल्याण उप-समिति द्वारा लक्ष्मी आश्रम कौसानी (अल्मोड़ा) में सात दिनों के महिला शिविर का आयोजन हुआ। इस शिविर में प्रदेश के विभिन्न अंचलों से आयी हुई बहनों ने गांधीजी के नारी-जागरण एवं पुनरुत्थान सम्बन्धी कार्यक्रमों का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया। अपने-अपने क्षेत्रों में इन शिविरार्थी बहनों ने गांधी-शताब्दी के कार्यक्रमों को व्यापक बनाने का संकल्प किया है। (सप्रेस)

महिलाओं की ग्राम-स्वराज्य यात्रा

टिहरी जिले के चम्बा विकास क्षेत्र में ७ जून से तीन महिलाओं—श्रीमती विशेश्वरी देवी, तारा देवी, और निर्मल बहिन—ने ग्राम स्वराज्य यात्रा प्रारम्भ की है। श्रीमती विशेश्वरी देवी टिहरी के जाने-माने वकील स्व० हरिराम उनियाल की पत्नी हैं। दो साल पहले चम्बा के पास बादशाही थौल के शराब-बन्दी आन्दोलन में स्त्रियों को आगे लाने में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। तारा बहिन कई वर्षों तक रेडक्रास सोसायटी के केन्द्रों पर काम करती रही हैं और निर्मल बहिन लक्ष्मी आश्रम कौसानी व शांति-सेना विद्यालय इन्दौर की छात्रा रही हैं।

चम्बा विकास क्षेत्र में ५ टोलियाँ ग्रामदान-प्रचार व गाँव गाँव में ग्राम-स्वराज्य के संकल्प करवाने की दृष्टि से घूम रही हैं।

—योगेशचन्द्र बहुगुणा

नगालैण्ड, मणिपुर में सर्वोदय-कार्य

पिछले छः महीनों में असम, नगालैंड और मणिपुर के लगभग साठ स्कूल-कालेजों में तथा तीन ग्रामदान-गांधी-शताब्दी-शिविरों में गया। शिवसागर जिले के मसजिदों और नगालैंड के गिरजाघरों में गांधी-विनोबा-विचार का प्रसार एवं सर्वधर्म प्रार्थना हुई। विद्रोही नगाओं से मैत्री हुई, एक-दूसरे के नजदीक आये। अंग्रेजी "सर्वोदय" मासिक के पचपन वार्षिक ग्राहक बने, बारह ग्राहक साप्ताहिक "भूदान-यज्ञ" तथा तीन "मैत्री" हिन्दी मासिक के। सारी यात्रा तंत्रमुक्त व निधिमुक्त रही। चौदह अप्रैल '६६ को 'मणिपुर प्रांतीय सर्वोदय मण्डल' का गठन एवं शुभारम्भ हुआ।

—जगदीश चचानी

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

वर्ष : १५ अंक : ४०
सोमवार ७ जुलाई, '६९

अन्य पृष्ठों पर

अन्य स्तंभ

सत्याग्रह की खूबी यह है कि करनेवाले के पास वह सहज आता है। उसे खोजने के लिए किसीको कहीं बाहर नहीं जाना पड़ता। —मो० क० गांधी

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

अगर हम अपनी इच्छा दूसरों पर लादें, तो हमारा अत्याचार उन मुट्ठीभर अंग्रेजों के अत्याचार से हजार गुना खराब होगा, जिन्होंने नौकरशाही को जन्म दिया है। उनका आतंकवाद एक ऐसे अल्पमत का लादा हुआ था, जो विरोध के बीच में अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करता था। हमारा आतंकवाद बहुमत का लादा हुआ होगा, इसलिए वह उससे ज्यादा बुरा और सचमुच ज्यादा दानवी होगा। इसलिए हमें अपने संग्राम में से हर प्रकार की जबरदस्ती को निकाल देना चाहिए। अगर हम असहयोग के सिद्धान्त पर स्वतंत्रतापूर्वक डटे रहनेवाले थोड़े ही लोग हों, तो हमें दूसरों को अपने विचार के बनाने की कोशिश में मरना पड़ सकता है। मगर यह तो कहा जायगा कि हमने अपने पक्ष का बचाव और प्रतिनिधित्व सचाई के साथ किया। लेकिन अगर हम अपने झंडे के नीचे दबाव से लोगों को भर्ती करेंगे, तो हम अपने ध्येय और ईश्वर से इन्कार करेंगे; और अगर हम थोड़े समय के लिए इसमें कामयाब भी होते दिखाई दें, तो भी यही कहा जायगा कि हमने ज्यादा बुरा आतंकवाद कायम करने में कामयाबी हासिल की है।

अगर हम असहिष्णुता से दूसरों के मत का दमन करेंगे, तो हमारा पक्ष बिगड़ जायगा। कारण उस सूरत में हमें यह कभी मालूम नहीं हो पायेगा कि कौन हमारे साथ है और कौन हमारे विरुद्ध। इसलिए सफलता की अपरिहार्य शर्त यह है कि हम अधिक से-अधिक मत-स्वातंत्र्य को प्रोत्साहन दें।[१]

सत्याग्रह का मर्म यह है कि जिन्हें अत्याचार सहना पड़े सिर्फ वे ही सत्याग्रह करें। ऐसे मामलों की कल्पना की जा सकती है, जिनमें सहानुभूतिपूर्ण कहा जा सकनेवाला सत्याग्रह करना उचित हो। सत्याग्रह की जड़ में विचार यह है कि अन्यायी का हृदय परिवर्तन किया जाय, उसमें न्याय-बुद्धि जाग्रत की जाय और उसे भी यह दिखा दिया जाय कि पीड़ित पक्ष के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग के बिना अन्यायी मनचाहा अन्याय नहीं कर सकता। दोनों ही स्थितियों में अगर लोग अपने ध्येय के लिए कष्ट सहने को तैयार न हों, तो सत्याग्रह के रूप में किसी बाहरी सहायता से उनकी सच्ची मुक्ति नहीं हो सकती।[२]

सत्याग्रह के आन्दोलन में लड़ाई का तरीका और रणनीति का चुनाव—अर्थात् आगे बढ़ें या पीछे हटें, सविनय कानून भंग करें या रचनात्मक कार्य तथा शुद्ध निःस्वार्थ मानव सेवा के द्वारा अहिंसक बल संगठित करें, आदि बातों का निर्णय परिस्थिति की विशेष आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता है।[३]

मो॰ क॰ गांधी

(१) 'यंग इंडिया' : २७-१०-'२१
(२) 'हरिजन' : १०-१२-'३८
(३) 'हरिजन' : २७-३-'३६

सम्पादक के नाम चिट्ठी

आत्म-चिन्तन और विश्लेषण की आवश्यकता

सम्पादकजी,

आशा है, सर्वोदय-सेवकों के लिए लिखा गया यह पत्र आप "भूदान-यज्ञ" में अवश्य प्रकाशित करेंगे।

अप्रैल माह में सर्व सेवा संघ का अधिवेशन तिरुपति में हुआ। इस अधिवेशन में सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष का चुनाव हुआ। अधिवेशन की रिपोर्ट "भूदान-यज्ञ" में प्रकाशित हुई। रिपोर्ट में लिखा गया है कि "अधिवेशन में गिनती करने पर भाग लेनेवालों में प्रत्यक्ष काम में लगे प्रतिनिधियों की संख्या २५ से अधिक नहीं निकली।"

पढ़कर एक प्रश्न उठता है कि यह संस्था देश में इतना बड़ा आन्दोलन चला रही है, एक लाख के ऊपर देश में ग्रामदान घोषित हो चुके हैं, परन्तु अधिवेशन में इतने कम प्रतिनिधि क्यों आये? रिपोर्ट में लिखा है कि जो कार्यकर्ता आये, उनके रुख से उदासीनता स्पष्ट झलकती थी। इस उदासीनता का कारण गहरा होना चाहिए। यों निवृत्त-परायण व्यक्तियों में उदासीनता होती ही है। परन्तु सर्वोदय-विचार के लिए काम करनेवाली यह जमात कोई निवृत्त-परायण नहीं है।

इस उदासीनता का एक मुख्य कारण यह है कि सर्वोदय-विचार-क्रान्ति का आन्दोलन मानव-सम्बन्धों को सत्य, प्रेम, करुणा की आधार-शिला पर खड़ा करने का आन्दोलन है। लेकिन इसमें लगे व्यक्ति इन मूल्यों के प्रचार में इतनी अधिक शक्ति लगा देते हैं कि जीवन में उन पर अमल करने के लिए शक्ति बचती ही नहीं है। आपसी व्यवहार में भी सत्य, प्रेम और करुणा की अनुभूति नहीं होती है। इसका परिणाम यह होता है कि कार्यकर्ता संगठन के प्रति उदासीन हो जाता है।

आन्दोलन के मुख्य तीन कार्यक्रम हैं: ग्रामदान, खादी और शान्ति-सेना। देश भर में एक लाख से ऊपर की जो ग्रामदानों की संख्या है, उनमें सत्य का आधार छूट गया है। खादी-काम में लगे कार्यकर्ताओं से चर्चा करने पर पता चलता है कि खादी-काम में सत्य का आधार खोजने पर भी नहीं मिलेगा। शान्ति-सेना भी सत्य के आधार पर नहीं टिकी है। कहने का तात्पर्य यह है कि लच्छेदार रिपोर्टों में सत्य के पाँव उखड़ चुके हैं। कार्यकर्ता-वर्ग का काफी नैतिक पतन हो चुका है। दूसरे आधार, प्रेम और करुणा का तो नाम ही शेष रह गया है। सर्व सेवा संघ तथा खादी आदि संस्थाओं के कार्यों में लगे व्यक्ति और सर्वोदय-विचार के लिए काम करनेवाले व्यक्तियों के बीच प्रेम तो है, शायद दिखाने के लिए थोड़ा है भी, लेकिन करुणा तो है ही नहीं। हाँ, साधारण-सी स्पर्धा, ऊपर के मार्गदर्शन करने का नाटक करनेवालों में अवश्य आ गयी है।

ऐसी स्थिति में कार्यकर्ताओं के मानस में उदासीनता एक अनिवार्य स्थिति है। परन्तु यह उदासीनता बहुत ही कम मात्रा में है, जब कि परिस्थिति इससे भी अधिक की है। प्रत्यक्ष काम में लगे २५ कार्यकर्ता संघ अधिवेशन में पहुँचे, यह तो आज की परिस्थिति में बहुत अधिक हो गया। सर्वोदय-विचार में इतनी शक्ति है कि उदासीनता का वातावरण होते हुए भी काफी व्यक्ति सक्रिय हैं। विचार मनुष्य को प्रेरित कर रहा है। लेकिन संगठन और कार्यक्रमों का स्वरूप इन प्रेरित व्यक्तियों को जोड़ने में सक्षम साबित नहीं हो रहा है। इस दिशा में चिन्तन करना तथा इस स्थिति का विश्लेषण करना भी बुरा माना जाता है। सर्वोदय प्रेमी इस कमी को महसूस कर इस पर चर्चा तथा आत्मविश्लेषण करके इसमें से निकलने का रास्ता नहीं खोजेंगे, तो इतने प्रखर विचार को भी लजा देंगे।

तिरुपति की यह घटना गहराई से विचार करने का निमंत्रण और चेतावनी, दोनों है। अधिक-से अधिक इस सम्बन्ध में अपने विचार लिखेंगे तो अच्छा रहेगा।

आपका,
नरेन्द्र भाई

क्रान्ति जल्दी होनी चाहिए

कोई भी आन्दोलन हो, उसको मनुष्य अपने-अपने दृष्टिकोण से देखता है, और ऐसा होना स्वाभाविक है। विचारवान लोग सोचते हैं कि विनोबाजी की कल्पना का ग्राम कैसे बन सकता है, ऐसा ग्राम तो सात्त्विक गुण-प्रधान समाज ही बना सकता है, और सब लोगों में सात्त्विक गुण होना सम्भव नहीं है। युवक लोग कहते हैं कि यह बहुत लम्बा पथ है। संसार तेजी से बदल रहा है। यह हवाई जहाज और ऐटम का जमाना है, विनोबाजी पैदल यात्रा करवाते हैं। साम्यवादी कहते हैं कि विनोबाजी अहिंसा की राह बतलाते हैं, और यहाँ पूँजीपति गरीबों का शोषण करते हैं। सबसे पहले शोषण रुके, गरीबों को दम लेने का अवसर मिले। इन विचारों का समाधान हुए बिना सर्वोदय-आन्दोलन सार्वजनिक आन्दोलन नहीं बनेगा।

विनोबाजी सब कुछ जानते और समझते हैं, इसीलिए चेतावनी देते हैं कि काम जल्दी होना चाहिए। जल्दी काम न हुआ तो यह मिशन फेल हो जायेगा। क्रान्ति धीरे-धीरे नहीं हुआ करती है। देरी का कारण साधनों की कमी है। मुख्य साधन मनुष्य है। यह गरीब देश है। इसमें काम करनेवाले त्यागी होने चाहिए। यह अनपढ़ देश है और यहाँ के पढ़े-लिखे भी अनपढ़ हैं। इनको पढ़ने-लिखने में रुचि नहीं है। यदि ठीक शिक्षित होते तो देश में 'भूदान-यज्ञ' की ग्राहक संख्या कम-से-कम पचास हजार होनी चाहिए थी। यहाँ के लोगों का बालक-स्वभाव है, और बालक-बुद्धि है। बालक को चाहिए सुनने के लिए कहानी। अर्थात् यहाँ बातें सुनानेवाले आदमी चाहिए।

आश्रम, जीन्द — स्वामी कृष्णानन्द

चेकोस्लोवाकिया

चेकोस्लोवाकिया आज कहाँ है ? कहाँ हैं उसके नेता, और क्या सोच रही है उसकी जनता ?

समाजवाद को मानवीय बनाने का जो अभियान चेकोस्लोवाकिया ने दुबचेक और उनके साथियों के नेतृत्व में शुरू किया था, वह समाज-निर्माण के इतिहास में एक उज्ज्वल अध्याय था। रूसी आक्रमण के समय चेकोस्लोवाकिया की जनता ने, विशेष रूप से युवकों ने, जिस प्रतिकार-शक्ति का प्रदर्शन किया वह शान्ति की शक्ति की एक शानदार मिसाल थी। इसीलिए जब रूस ने चेकोस्लोवाकिया की भूमि पर अनधिकार प्रवेश किया तो स्वतन्त्रता से प्रेम करनेवाले हर हृदय की भरपूर सहानुभूति चेकोस्लोवाकिया को मिली। दुनिया ने उसे वियतनाम और दक्षिण अफरीका के साथ रखा और इज्जत के साथ उसकी बहादुरी का बखान किया। दुनिया ने माना कि चेकोस्लोवाकिया ने जो सवाल उठाये हैं उनके उत्तर का सम्बन्ध सभ्यता के विकास से तो है ही, मनुष्य के अस्तित्व से भी है। इसीलिए इतने महीनों बाद रह रहकर मन में यह सवाल उठता है कि आज वह चेकोस्लोवाकिया कहाँ है ?

क्या कारण है कि शहादत और समर्पण की जिस सीमा तक वियतनाम जा सका, या अफरीका के कई देश जा सके वहाँ तक चेकोस्लोवाकिया नहीं जा सका ? क्यों वह रूस की सारी जबरदस्ती, एक के बाद दूसरी, मानता चला आ रहा है ? जिस क्रम से उसकी स्वतन्त्रता खत्म होती चली जा रही है उसे देखते हुए तो ऐसा लगता है कि कुछ दिनों में चेकोस्लोवाकिया रूस का पूरा 'गुलाम' बन जायगा। क्या यह स्थिति वहाँ के नेताओं और युवकों ने कबूल कर ली है ? अगर नहीं कबूल की है तो वे कर क्या रहे हैं ? क्या वे अपने पतन को महसूस नहीं कर रहे हैं ?

आखिर, क्या कमजोरी थी जिसके कारण चेकोस्लोवाकिया अंत तक नहीं टिक सका ? क्या नेता हिम्मत हार गये ? क्या वे डर गये कि रूस ज्यादा नाराज होगा तो देश को बरबाद कर डालेगा ? क्या जनता थककर बैठ गयी ? क्या पिछले पचीस वर्षों में आयी हुई एक-के-बाद दूसरी चोटों ने जनता की हिम्मत पस्त कर दी थी ? क्या चेकोस्लोवाकिया को भय था कि अगर वह डटेगा तो बाहर का समर्थन और सहायता उसे नहीं मिलेगी ? या, ऐसा तो नहीं था कि चेकोस्लोवाकिया जहाँ तक जा सका उससे आगे जाने की उसमें आंतरिक शक्ति ही नहीं थी ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि चेकोस्लोवाकिया के नेता, बुद्धिवादी और युवक समय देखकर जानबूझकर इस वक्त चुप बैठ गये हों ? कुछ कारण तो होगा ही जिसने आज चेकोस्लोवाकिया-जैसे देश को निराशा और अपमान का जीवन बिताने को विवश किया है।

जो संहार लीला वियतनाम में हुई—कौन जाने कब समाप्त होगी ? उसका कोई अंश चेकोस्लोवाकिया में नहीं हुआ, लेकिन वियतनाम ने कभी कदम पीछे नहीं हटाया। फिर चेकोस्लोवाकिया को क्या हो गया ? प्रतिकार हिंसा से हो या अहिंसा से, वीरता को छोड़कर प्रतिकार की कल्पना भी नहीं की जा सकती। उत्सर्ग की *आवश्यकता हिंसा में जितनी होती है उससे कम अहिंसा में नहीं होती;* बल्कि ज्यादा होती है। लगता है कि चेकोस्लोवाकिया में हिंसा या अहिंसा किसी भी रास्ते पर अन्त तक जाने की तैयारी नहीं थी। हाँ, आजादी की एक भावना थी जो चुनौती पाकर उभरी और उभड़कर रह गयी; दूर तक नहीं जा सकी। जिन्दगी के साथ खेलने, और हँसते-हँसते मौत को गले लगाने की जो वीर-भावना वीएतनाम में थी वह चेकोस्लोवाकिया में नहीं थी। मरकर जीने की कला चेकोस्लोवाकिया ने अभी शायद सीखी नहीं।

हजार विज्ञान ने विकास कर लिया हो, किन्तु मरकर जीने की कला के बिना इज्जत के साथ जीना सम्भव नहीं है। स्वाभिमानी देश चेकोस्लोवाकिया से यह सबक सीख सकते हैं। उनके सामने दूसरा कोई रास्ता नहीं है। किसी छोटे देश के लिए किसी बड़ी शक्ति के सहारे अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करने का प्रयत्न करना आगे चलकर उस 'रक्षक शक्ति की गुलामी पहले से ही मान लेने जैसी बात है। यह बहुत महँगा सौदा है। रक्षा की कोई नयी राह निकालनी चाहिए। वह राह अहिंसा की ही हो सकती है। लेकिन अहिंसा वीरों की हो, और समाज का संगठन भी अहिंसक प्रतिकार के अनुकूल हो। जालिमों की तोपों का मुकाबिला—सफल मुकाबिला—मर मिटने के संकल्प से किया जा सकता है। वही हमारा कवच है। उसीमें मुक्ति का आश्वासन है।

वियतनाम, चेकोस्लोवाकिया और बियाफा को देख लेने के बाद दुनिया की जनता के सामने यह प्रश्न तो आ ही गया है कि वह बड़ी शक्तियों से अपने अस्तित्व को कैसे बचायेगी, सम्मान की रक्षा कैसे करेगी, और भविष्य को अपने अनुकूल कैसे बनायेगी ?

बिहार

श्री जयप्रकाश नारायण ने पटना से प्रसारित वक्तव्य में कहा है कि बिहार के राज्यपाल को ढुलमुल (अनस्टेबल) राजनीतिज्ञों की जमात को ज्यों-त्यों इकट्ठा करने की कोशिश न करके विधान-सभा तत्काल भंग कर देनी चाहिए। जयप्रकाशजी ने केन्द्रीय सरकार से भी अपील की है कि वह बिहार राज्य में ऐसे योग्य, कल्पनाशील और शक्तिसम्पन्न व्यक्तियों के नेतृत्व में मजबूत सरकार स्थापित करने की कोशिश करे, जिन्हें लोकसभा का शक्तिशाली समर्थन और प्रधान मंत्री तथा उनके सहयोगियों का बुद्धिमत्तापूर्ण समर्थन प्राप्त हो। उन्होंने केन्द्रीय सरकार को आगाह किया कि वह राष्ट्रपति शासन की पुनरावृत्ति न करे, जिसे लोग कामचलाऊ (केयरटेकर) सरकार कहकर सम्बोधित करते हैं।

गणनेतृत्व के नये युग में
गुणदर्शन द्वारा मैत्री का भाव विकसित करें
बंगाल के कार्यकर्ताओं के बीच आचार्य विनोबा की हार्दिक अपील

बात तो पुरानी है। बाबा ने कुछ शब्द दिये। बाबा को कुछ शब्द सूझे थे, उनमें एक शब्द था—गणसेवकत्व। दुनिया में काम तो शब्द ही करता है। कुछ शब्द होते हैं जो मनुष्य को प्रेरणा देते हैं और उनसे काम होते हैं। 'क्विट इण्डिया' (भारत छोड़ो) आन्दोलन शुरू हुआ। वह क्या था ? एक शब्द चल पड़ा और सारे भारत में पैठ गया। लोगों पर उसका असर पड़ा और वह काम हो गया। यह तो मैंने सहज मिसाल दी। एक-एक युग में एक-एक शब्द मनुष्य को मिलता है और उससे मानवता प्रेरित होती है।

यह जो 'गणसेवकत्व' शब्द है, वह अर्थ-बहुल है, अर्थघन है। पुराने जमाने में एक से बढ़कर एक नेता हो गये। और भारत में उच्च कोटि के नेता हो गये। आखिरी नेता पंडित नेहरू माने जायँ और फिर वह खाता समाप्त किया जाय।···नेतृत्व का खाता समाप्तम्! इसके आगे महापुरुष नहीं होंगे ऐसी बात नहीं, बल्कि मैं तो ऐसी उम्मीद करता हूँ कि पुराने जमाने से भी महान पुरुष हो सकते हैं। पुराने जमाने में जो महान पुरुष हो गये, उनसे भी बढ़कर आगे होंगे और उत्तरोत्तर श्रेष्ठ पुरुष निर्माण होंगे। यह बात हमने अपनी एक किताब—'स्थितप्रज्ञ दर्शन'—में लिख रखी है कि इस जमाने के स्थितप्रज्ञ पुराने जमाने के स्थितप्रज्ञ से आगे होंगे। यह तो अपेक्षा है ही। लेकिन आगे जो महा-पुरुष होंगे वे अनेक में से एक होकर रहेंगे। यह खूबी है। उनका अनेकों में से एक होना खूबी है।

हमको एक कविता याद आती है। 'वर्ड्‌सवर्थ' अंग्रेजी के एक महान कवि थे। उनकी एक छोटी-सी कविता है। उसमें उन्होंने व्यक्त किया है कि मेरा स्मारक कैसे बनाया जाय। तो लिखा है कि अमुक जगह मैं रोज जाता था एक टीले पर, और वहाँ अनेक पत्थर पड़े हैं। उनमें से बहुत-से अच्छे-अच्छे पत्थर खोदकर लोग ले गये और उन पर कारीगरी की। मैंने देखा कि एक पत्थर जो कारीगरी के लिए उपयोगी नहीं था वहीं पड़ा हुआ है जिधर किसीका ध्यान नहीं गया। वह मेरे स्मारक के लिए चुना जाय और उस पर लिखा जाय कि 'वन आफ मेनी'—बहुतों में से एक। यह आकांक्षा थी वर्ड्‌सवर्थ की। वर्ड्‌सवर्थ कोई छोटा मनुष्य तो था नहीं, लेकिन यह पसन्द नहीं किया कि स्मारक पर अपना नाम हो। बहुतों में से एक रहना, इसमें ही आनन्द है।

दूसरी मिसाल अब्राहम लिंकन की कहानी है। वे अमरीका के एक सफल नेता थे। एक बार उनका बहुत बड़ा जुलूस निकाला गया था। उसे देखने के लिए बहुत से लोग इकट्ठा हुए थे। उनमें कुछ मामूली लोग भी शामिल थे। उनमें से दो लोग आपस में बातें कर रहे थे। एक ने कहा कि, 'हमने समझा था कि लिंकन बहुत बड़ा कोई विशेष मनुष्य होगा, लेकिन यह तो मामूली मनुष्य-जैसा ही लगता है!' लिंकन ने यह बात सुनी और कहा कि, 'देखो बेटा, भगवान ने ऐसे लोगों की 'मेजारिटी' (बहुसंख्या) पैदा की है। इसलिए सामान्य मनुष्य भगवान को कितने प्यारे हैं उसका अन्दाज लगता है।' सार यह है कि आगे जो नेता आयेंगे वे एक-से-एक बढ़कर होंगे, लेकिन इसीमें उनकी विशेषता समझूँगा कि वे अपने को अनेकों में से एक समझें।

यह बात वेद में भी पायी जाती है। वेद दीर्घदर्शी पुस्तक है। वह निःसंशय भारत की पहली किताब है। लेकिन कुछ लोगों की राय है कि वह दुनिया की पहली किताब है। उसमें आर्य ऋषि हैं और आगे के जमाने के लिए भी काफी अन्दाज किया गया है: 'पंचजनान् अनुजनान् पतते पंचधीराः'—जो बुद्धिमान मनुष्य होता है, वह पाँच जन जो कहते हैं, तदनुसार प्रयत्न करता है। है तो धीर, बुद्धिमान, लेकिन पाँच लोग जो एक राय से बताते हैं उसके अनुसार काम करता है। उसका नाम है ऋषि। लोकतंत्र-वालों की जो राय है वह यही है। उसीके अनुसार वे राज चलाना चाहते हैं, न कि किसी एक विद्वान के अनुसार। स्वराज्य का अर्थ सामान्य जनता की बुद्धि जो चाहती है उसके अनुसार राज्य।

यह कहानी इसलिए कही कि हम लोग नेतृत्व की आशा रखनेवाले लोगों में से एक हैं। मैं कहता हूँ कि वे दिन अब खतम हुए हैं। हम और आप अब कन्धे-से-कन्धा मिलाकर, भाई-भाई के नाते मित्र-मित्र के नाते, बल्कि 'भाई' शब्द भी वेद को अच्छा नहीं लगा, उसने कहा—"अज्येष्ठासो अक-निष्ठास"—ज्येष्ठ कनिष्ठ यह फर्क भाई-भाई में रहता है, इसलिए मित्र बनें, जिनमें कोई ज्येष्ठ नहीं और कोई कनिष्ठ नहीं, काम करें।

दूसरी बात मैं यह कहना चाहता हूँ कि आमलोगों का आपस-आपस में प्रेम होना चाहिए, स्नेह होना चाहिए। यह मामला जरा मुश्किल है, खास करके बंगाल के लोगों के लिए। कारण यहाँ सत्यनिष्ठा अधिक है। हर किसीके पास सत्य है और उसको वह छोड़ना नहीं चाहता। सामनेवाले के पास भी सत्य होगा, ऐसी गुञ्जाइश नहीं रखी। यह समझना चाहिए कि हमारे पास सत्य का एक पहलू होता है और सामनेवाले के पास भी सत्य का एक पहलू होता है, तो हमारे ही पास सत्य है यह समझना गलत है। और हर एक के पास से सत्य का अंश ग्रहण करने की कोशिश करनी चाहिए। हर एक पास जो गुण है, उसे लेने की कोशिश करनी चाहिए। गुण-दोष तो हर एक के पास होते हैं। मैंने एक रूपक बनाया है। मनुष्य-जीवन एक मकान है। मकान में दर-वाजे होते हैं और दीवारें होती हैं। दरवाजे गुण हैं और दीवारें दोष हैं। कितना भी गरीब मनुष्य हो उसके घर में कम-से-कम एक दरवाजा तो रहेगा ही। आपको अगर घर में प्रवेश करना हो तो आप दरवाजे से ही प्रवेश कर सकते हैं। दीवार से प्रवेश→

सर्वोदय : अतिवादी अहिंसक वामपंथ

मनमोहन चौधरी

पिछले वर्ष पश्चिम बंगाल की संयुक्त मोर्चे की सरकार को बड़े अनियमित तरीके से बर्खास्त कर दिया गया था, फिर भी बहुत से भले विचारवाले लोगों ने उसका स्वागत किया था, क्योंकि उन्होंने सोचा, यह कदम उठाकर बंगाल के राज्यपाल यानी केन्द्रीय सरकार ने, वामपंथी साम्यवादियों द्वारा नियोजित एक खतरनाक और हिंसक विद्रोह से बंगाल का बचाव किया था। केरल में जब सन् १९५७ में पहली कम्युनिस्ट सरकार गठित हुई थी तो वह सन् १९५८ में जिस दाँव पेंच से उलट दी गयी थी वह भी कम भरमार नहीं था। उस समय भी बहुत-से लोगों ने राहत की साँस ली थी।

इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि वामपंथी कम्युनिस्टों का हिंसक उपायों में विश्वास है और वे यदि हिंसक उपायों से क्रान्ति कर सकें तो इसकी उन्हें बड़ी खुशी होगी। यह भी सच है कि हम लोकतंत्र को जिस रूप में समझते हैं, उससे कम्युनिस्टों की धारणा का लोकतंत्र भिन्न वस्तु है और कम्युनिस्ट सरकारों ने अपने विरोधियों को बड़ी बेरहमी से दबाया है। लेकिन हमें इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए कि सिर्फ कम्युनिस्ट ही ऐसे लोग हैं जो एक खासे अच्छे और शान्तिपूर्ण समाज व्यवस्था में हिंसा का प्रवेश कराना चाहते हैं।

जब बंगाल में बढ़ती हुई बेचैनी और अव्यवस्था की लहरों के बारे में चर्चा करते हुए लोग मेरे सामने अपने मन का खेद प्रकट करते हैं और बंगाल की दूसरे राज्यों में मौजूद सुव्यवस्था से तुलना करते हैं तो मेरे दिमाग के सामने कालाहांडी और सरगुजा का चित्र उभर आता है।

दो जिले : आँख खोलनेवाले

उड़ीसा तथा मध्यप्रदेश के इन दो *जिलों में पिछले वर्षों के भयानक सूखे में* सैकड़ों की संख्या में युवक और बूढ़े लोग भूख के कारण मौत के शिकार बन गये। सूखे का कारण प्राकृतिक प्रकोप था, लेकिन लोगों की मौतें प्राकृतिक प्रकोप के कारण नहीं हुईं। एक अत्यंत शोषण प्रधान समाज-व्यवस्था ने सामान्य लोगों की जिन्दगी में से जीवन-निर्वाह के साधनों को आखिरी बूँद तक निचोड़ लिया था और इसके नतीजे से लोगों में विपरीत परिस्थिति का सामना करने की थोड़ी-सी भी क्षमता नहीं बची थी। जिस समय लोग भूखों मर रहे थे, उस समय भी शोषण की यह प्रक्रिया जारी थी। व्यापारी और सूद पर रुपया देनेवाले कर्जदाता ऐसे लोगों की जमीन-जायदाद, पशु, गहने और गृहस्थी के बर्तन लोभ के साथ हथियाते जा रहे थे। सूखे से पीड़ित लोगों के लिए दूसरी *जगहों से जो खाद्य-सामग्री और अन्य सामान* आया था वह उन्हें मिलने के बदले काला *बाजार में पहुँच रहा था।* देश की *आर्थिक* व्यवस्था ने ऐसे लोगों के हाथ से उन रोज़गार के साधनों को छीन लिया था, जिससे उन्हें खेती से बचे हुए *समय* में कुछ कमाई हो जाती थी। पिछले २० वर्षों के दौरान देश की अर्थ-व्यवस्था ने ऐसे लोगों को रोजगार के साधन उपलब्ध कराने के लिए कुछ नहीं किया। *भूमि-सुधार के कामों और सिंचाई की सुविधाओं की बुरी तरह उपेक्षा की गयी और इन्हीं कारणों से लोग भूखों मरे।*

ऐसी बात सिर्फ दो ही जिलों में हुई हो ऐसा नहीं है। देश के अनेक क्षेत्रों में ऐसा ही हुआ। ऐसे इलाकों में भी जहाँ आर्थिक उन्नति होने के बाहरी लक्षण दिखाई देते हैं, आम *लोग पूँजीवादी शोषण के चंगुल में जकड़े हुए* दिखाई देते हैं। आज करोड़ों की तादाद में ऐसे लोग हैं, जो जैसे-तैसे किसी तरह अपना गुजाराभर कर सकने के लिए मजबूर हैं।

असह्य परिस्थिति कौनसी ?

इतना सब सोचने के बाद मैं अपने आपसे पूछता हूँ—"कौनसी परिस्थिति ज्यादा असह्य है, वह जिसमें लोग इतने मायूस और *बेसहारा बना दिये गये हैं कि वे प्रतिवाद का* एक शब्द कहे बिना चुपचाप मर जाते हैं या कि वह परिस्थिति जिसमें वे लोग जाग चुके हैं और *गिड़गिड़ाकर* मजबूरी से कोई परिस्थिति कबूल करने के लिए तैयार नहीं हैं ?"

जाहिर है कि हम एक ऐसी समाज-व्यवस्था में जी रहे हैं, जिसे टूटना ही चाहिए और जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी टूटना चाहिए। अगर सर्वोदय-आन्दोलन यह *नहीं करना चाहता* तो वह कुछ नहीं-के बराबर है। सर्वोदय-आन्दोलन हिंसा का परित्याग करना चाहता है, इसलिए नहीं कि हिंसा एक अच्छे और वांछनीय समाज की सुचारु रूप से चलनेवाली व्यवस्था के साथ छेड़छाड़ करती है, बल्कि इसलिए कि वह उस हिंसा का *उन्मूलन करना चाहता है,* जो आज की सड़ी-गली समाज व्यवस्था का मूल आधार बनी हुई है और यह काम सिर्फ *अहिंसक तरीके से* ही हो सकता है। सर्वोदय-आन्दोलन लोकप्रिय हिंसा की इसलिए निन्दा करता है कि उससे आम लोगों की तकलीफ बढ़ती है।

हमारा मतभेद हिंसक साधनों से, साध्य से नहीं

इस बारे में हमारा दिमाग बहुत साफ रहना चाहिए कि हम वामपंथी दलों के अपनाये गये तरीकों के विरोधी तो हैं, लेकिन हमारा उन निहित स्वार्थवाले उन लोगों के

→नहीं कर सकते, सिर फूट सकता है। अगर आप मनुष्य के हृदय में प्रवेश करना चाहते हैं तो उसके गुण के द्वारा ही कर सकते हैं। दोषों की ओर देखेंगे तो सिर टूटेगा। इस-*लिए गुण ग्रहण की दृष्टि* बढ़नी चाहिए और निरन्तर गुणगान करना चाहिए। यह मैत्री के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

मैं पसन्द करता हूँ 'गणसेवकत्व' शब्द। हम सारे सेवक हैं और हम सारे गुण दोष से भरे हुए हैं, लेकिन हम लोगों में एक सूत्र है। एक स्नेह सूत्र पिरोया हुआ है, ऐसा होना चाहिए। दिमाग अनेक हों तो, हर्ज नहीं, लेकिन एक दिल हो जाय, यह हमारे आंदोलन के लिए जरूरी है।

पुरुलिया, बंगाल
१०-६-'६९
(बंगाल के कार्यकर्ताओं के बीच)

साथ कोई मेल नहीं है, जो मौजूदा समाज की उस हिंसा के पक्षधर हैं, जिसने अपने नाग-पाश में सबको जकड़ रखा है और, उसे दबाने के लिए वे सब कुछ करने को तैयार रहते हैं, जो इसे चुनौती देता है। अगर हम अपने विश्वास को गम्भीरतापूर्वक आजमाना चाहते हैं और यह भरोसा रखते हैं कि अहिंसक उपायों द्वारा हम निहित स्वार्थवालों के रुख और व्यवहार में परिवर्तन ला सकते हैं तो हमें इस बात का और पक्का भरोसा होना चाहिए कि हम वामपंथियों पर प्रभाव डालने में सफल होंगे, क्योंकि गरीब और शोषितों के प्रति करुणा की भावना रखने के कारण वे हमारे और नजदीक हैं।

इसीलिए पश्चिम बंगाल में लोकमत के वामपथ की ओर मुड़ने को हमें एक स्वागत-योग्य धाराप्रवाह मानना चाहिए। इससे यह जाहिर होता है कि बंगाल में जातिगत और साम्प्रदायिक राजनीति की शक्ति घटी है और आज की वास्तविक तथा ज्वलंत समस्याओं के प्रति लोगों की जागरूकता बढ़ी है। इस जागरूकता के साथ जो बेचैनी और अव्यवस्था आयी उसकी परीक्षा सिर्फ त्रिविध कार्यक्रम के जोरदार प्रचार-प्रसार से ही हो सकती है। यह काम कब्र जैसी शान्ति की पुनर्स्थापना से नहीं होगा, बल्कि त्रिविध कार्यक्रम—जैसे मौलिक, गतिशील और व्यावहारिक कार्यक्रम द्वारा बुराइयों का मुकाबिला करने से होगा। वामपंथियों में जो सबसे ज्यादा वामपंथी हैं उनसे भी सर्वोदय कुछ अधिक वामपंथी है और हमें अपनी इस योग्यता में भरोसा होना चाहिए कि हम वामपंथियों को यह विश्वास दिला सकेंगे कि उन्हें अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए एक कदम और पीछे नहीं, बल्कि आगे बढ़ना है। फिर हमें उन घटनाओं का भी ध्यान रखना चाहिए जो साम्यवादियों की दुनिया का चेहरा बदल रही हैं। साम्यवाद अब अन्तरयुगीन आन्दोलन नहीं है। आज दुनिया में उतने प्रकार के साम्यवाद हैं, जितने कि दुनिया के देश हैं। साम्यवादियों की एक सबल आकांक्षा व्यक्ति को और अधिक आजादी देने की रही है। हम सबने आश्चर्य और प्रशंसा की भावना के साथ यह देखा कि कितने वीरतापूर्ण और शान्तिमय प्रतिकार द्वारा चेक जनता ने पाँच साम्यवादी शक्तियों के आक्रमण का सामना किया।

भारत में साम्यवाद : दिशा किस ओर ?

भारत में तीन साम्यवादी दल हैं। यद्यपि तीनों साम्यवादी दल समाज-परिवर्तन के लिए हिंसा के औचित्य को मानते हैं, किन्तु वे तात्कालिक कार्यक्रम के सम्बन्ध में मतभेद रखते हैं। दो साम्यवादी दलों ने नक्सलवादियों के प्रतिवाद से आमतौर पर असहमति जाहिर की है। इससे इतना तो कहा ही जा सकता है कि उन्होंने छिटपुट हिंसा की निरर्थकता का अनुभव कर लिया है। यह उनके दृष्टिकोण के एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का सूचक है। प्रशासन के काम में हाथ बँटाने पर उन्हें देश की समस्याओं का और नजदीक से परिचय प्राप्त होगा। फिर इसके नतीजे से उनका दृष्टिकोण और अधिक यथार्थवादी होगा।

जिन-जिन प्रदेशों में वामपंथी दल →

लोकशक्ति जगेगी तभी क्रान्ति होगी

मैं थोड़े दिन पटना जिले में बैठा रहा, किया कुछ नहीं। थोड़ा *विचार समझता था। अब वह जिलादान में आ गया है। पटना जिले का* दान यह छोटी बात नहीं है। आजकल 'जमीन' शब्द से लोगों पर इतना असर नहीं होता जितना 'पैसा' सुनकर होता है। जमीन अपनी माता है, वह हमें खिलाती है। नोटें तो छपती हैं। १० लाख रुपयों की नोटें गढ़े में डालेंगे तो कितनी फसल आयेगी? क्या नतीजा होगा? कुछ नहीं! लेकिन जमीन से अनाज उत्पन्न होता है, इसलिए जमीन की कीमत पैसे में नहीं होती है। पटना जिले की जमीन १० हजार रुपये एकड़वाली है। और कम-से-कम कहें, तो भी ५ हजार रुपये एकड़ से कम नहीं है। मतलब, १० करोड़ रुपयों की २० हजार एकड़ जमीन पटना जिले में बँटेगी। यह छोटी घटना नहीं है। जन शक्ति जो कर सकती है, वह सरकार की शक्ति नहीं कर सकती। बिहार में देखा, यहाँ कांग्रेस का राज्य था। दूसरा भी राज्य था। हमने जे० पी० से कहा था कि आपके मित्र सरकार में हैं, उनसे दरयाफ्त कीजिए कि सरकार की तरफ से कितनी जमीन बँट सकती है। तो उनको जवाब मिला कि ७-८ हजार एकड़ जमीन बँट सकती थी, लेकिन बँटी नहीं। उसी बिहार में साढ़े तीन लाख एकड़ जमीन भूदान से बँटी है। लोक-शक्ति अगर जग जायेगी तो क्रान्ति हो सकती है, लोक-मानस में परिवर्तन हो सकता है। सरकार के तरीके से लोक-मानस में परिवर्तन नहीं हो सकता। अपना यह देश खेतीप्रधान है, उद्योग कम है। ऐसे देश में खेती की उपज कम हो तो जगह-जगह अकाल पड़ेगा और यहाँ अकाल पड़ा भी है। अभी भी दुनिया के दूसरे देशों से अनाज मँगवाना पड़ रहा है। बाहर से लाखों टन अनाज आ रहा है। वादे किये जाते हैं कि अब नहीं मँगवाना होगा, लेकिन वैसा अभी तक नहीं हो पाया। इसलिए मजदूर, जमीन के मालिक और महाजन, ये तीनों 'म' इकट्ठा हो जायेंगे तो खेती की उपज बढ़ सकती है। तिपाई तीन पाँव पर खड़ी होती है। वैसे ही ये तीन 'म' इकट्ठा हो जायें ऐसा प्रयत्न ग्रामदान के द्वारा हो रहा है।

सारे भारत में १२ लाख एकड़ से अधिक जमीन बँटी। सरकार से बहुत हुआ तो पाँच-पचास हजार एकड़ जमीन बँटेगी। इसमें आपके ध्यान में आयेगा कि हमें नीचे से काम करना होगा। जन-शक्ति विकसित करनी होगी तभी हमारे देश का भला है।

रांची · १२-६-'६९ —विनोबा

आर्थिक सत्ता : नियंत्रण किसका ?

[गत २८ अप्रैल '६९ के 'भूदान यज्ञ' में चिन्तन प्रवाह के अन्तर्गत श्री सिद्धराज ढड्ढा ने यह मत व्यक्त किया था कि आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण के खिलाफ उठनेवाली आवाजों का हार्दिक स्वागत करते हुए भी हम पूँजीपतियों द्वारा नियंत्रित केन्द्रित आर्थिक सत्ता के विकल्प के रूप में राज्यनियंत्रित आर्थिक सत्ता को स्वीकार नहीं कर सकते। क्योंकि तब राजनीतिक और आर्थिक, दोनों प्रकार की सत्ताओं का नियंत्रण राज्य के हाथ में होने से केन्द्रीकरण और अधिक होगा, और उसके परिणाम और भी अधिक जनता के लिए आपत्तिकारी होंगे। इस अभिव्यक्ति पर श्री सुरेश राम भाई ने अपनी प्रतिक्रिया जाहिर करते हुए 'भूदान यज्ञ' के ९ जून के अंक में लिखा कि राष्ट्रीयकरण' में भी शोषण की प्रक्रिया जारी रहती है लेकिन व्यक्तिगत पूँजीवाद से तो राष्ट्रीयकरण लाख दर्जे बेहतर है। लीजिए, इस विषय पर प्रस्तुत हैं कुछ और अभिव्यक्तियाँ। —सं०]

मर्ज से भी ज्यादा घातक इलाज

आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण के विषय में श्री सुरेश राम भाई का जो लेख 'भूदान यज्ञ' के ९ जून '६९ के अंक में प्रकाशित हुआ है वह मैंने पढ़ा। मेरा आशय तो उन्होंने ठीक ही समझा है। मूल बात के बारे में कोई मत-भेद नहीं है। लेकिन मैं तो केन्द्रीकरण मात्र का विरोधी हूँ, राज्य के हाथों में सत्ता के केन्द्रीकरण को और भी ज्यादा भयानक मानता हूँ। पूँजीवादी केन्द्रीकरण को रोकने के के लिए भी राज्य-सत्ता का आश्रय लेना मुझे तो 'लिविंग अप दी फाइट' जैसा लगता है। इतना ही नहीं, इलाज मर्ज से भी ज्यादा घातक साबित हो सकता है। फिर भी पूँजीवाद का विरोध जाहिर करने की जिस भावना से श्री सुरेश राम भाई ने राज्य-सत्ता की बुराई को स्वीकार करने की बात लिखी है, उस भावना से मैं सहमत हूँ – सिद्धराज ढड्ढा

राष्ट्रीयकरण या विकेन्द्रीकरण ?

अपने देश में जिस रीति-नीति से पिछले २० वर्षों में औद्योगिक विकास किया गया है, उससे यह तो स्पष्ट ही है कि बड़े बड़े उद्योगों को काफी प्रोत्साहन मिला, जिनमें से कुछ 'प्राइवेट सेक्टर' में चल रहे हैं और कुछ 'पब्लिक सेक्टर' में। परन्तु दोनों ही क्षेत्र के उद्योगों की एक-सी स्थिति है। दोनों ही विदेशी मार्गदर्शन व सहायता पर आधारित हैं। दोनों में ही मजदूर-वर्ग असंतुष्ट है। उत्पादन में जनहित के दृष्टिकोण का दोनों ही जगह अभाव है। मुनाफे की वृत्ति दोनों ही जगह मौजूद है तथा दोनों ही क्षेत्र में शोषण भी जारी है। इसके अलावा दोनों ही क्षेत्रों के बड़े उद्योगों ने गृहउद्योगों, ग्रामोद्योगों और लघुउद्योगों को अत्यधिक नुकसान पहुँचाया है, इसलिए आज सरकार की सहायता और संरक्षण के बावजूद ये छोटे-छोटे उद्योग आगे बढ़ ही नहीं पा रहे हैं। (यद्यपि इनको सरकार की ओर से जितना संरक्षण और जितनी सहायता मिलनी चाहिए उतनी मिल नहीं रही है, उसमें भी बड़े उद्योग व उद्योगपतियों का ही हाथ है, जो सरकार की औद्योगिक नीति को प्रभावित किये हुए हैं।)

सरकार की आज तक की औद्योगिक नीति से इस देश में ग्रामीण उद्योग तो नष्ट प्राय हो गये हैं। उन्हें न तकनीकी मार्गदर्शन दिया गया, न उसे धन और न माकूल ऋण व शिक्षा दी गयी। इसलिए देश में जिस ढंग से उद्योगों का वैज्ञानिक विकास होना चाहिए था वह नहीं हो पाया। जिस प्रकार गृहउद्योग से बड़े उद्योग तक समन्वय होना चाहिए था वह नहीं हुआ और न मानवीय पहलू का भी औद्योगिक विकास में कोई ध्यान रखा गया। नतीजा यह हुआ कि बड़ी-बड़ी मशीनों के आगे मानव आज खोता जा रहा है। उसकी संस्कृति व कला का ह्रास होता जा रहा है। इस देश की अपार मानव व पशु शक्ति बेकार हो चुकी है और होती जा रही है।

देश की मौजूदा स्थिति को देखते हुए यह सभी के लिए विचारणीय विषय है कि क्या आज बड़े-बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण उचित होगा ? अगर उचित मान भी लें तो क्या आज की सरकार के लिए सम्भव होगा ? और अगर उचित नहीं है तो फिर आज दूसरा क्या विकल्प है ?

जहाँ तक उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का प्रश्न है, मेरे खयाल से यह अनुचित ही नहीं, बल्कि राष्ट्र के लिए घातक भी होगा। आज समाज शोषण से इतना पीड़ित नहीं, जितना शासन से। इस शासन के सहारे ही तो आज बड़े-बड़े उद्योग खड़े हुए हैं, और इनके सहयोग व समर्थन से ही शोषण कर रहे हैं। आज 'पब्लिक सेक्टर' के उद्योगों में सरकार सबसे बड़ी शोषक है। ऐसी सूरत में जितने उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जायगा उतना ही

—सताहड हुए हैं, वहीं उन्हें एकसाथ दुहरी समस्याएँ सुलझानी पड़ रही हैं। एक प्रकार से उन्हें राज्यशक्ति और जनसमूह द्वारा होनेवाली सीधी कार्रवाई की एकसाथ बागडोर सम्भालनी पड़ रही है।

वामपंथी दलों ने 'घेराव' तथा दबाव डालनेवाले अन्य उपायों को जिस हद तक बढ़ावा दिया उसमें शुरू में तो उन्हें कुछ तात्कालिक सफलता मिलती दिखाई दी, लेकिन बाद में वे एक अंधेरे रास्ते पर पहुँच गये। यदि उन्होंने अहिंसा को गम्भीरता से अपनाया और उसकी संभावनाओं की छानबीन की तो वे पायेंगे कि अहिंसा पूरी तरह उनके लिए लाभदायक है। यदि अहिंसा में विश्वास करनेवाले लोग उसकी क्षमता को प्रदर्शित कर पायें तो इसका बहुत अच्छा परिणाम सामने आयेगा। जिन क्षेत्रों में ग्रामदान-आन्दोलन जोर शोर से चल रहा है वहाँ के लगभग सभी वामपंथी दल, जिनमें साम्यवादी भी हैं, इसमें भाग ले रहे हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि ग्रामदान आन्दोलन की सफलता उग्रपंथियों के हिंसा के विश्वास को बहुत दूर तक कम करेगी। (मूल अंग्रेजी)

शासन के हाथ में शोषण केन्द्रित होता चला जायगा। इसके अलावा आज उद्योग के मालिक को उत्पादन में जो दिलचस्पी है वह सरकारी मैनेजर में कभी नहीं हो सकती। इसे हम सरकारी उद्योगों में देख ही रहे हैं कि वे सभी घाटे में जा रहे हैं। राष्ट्रीयकरण से मैनेजरवाद व नौकरशाही बढ़ेगी और जन-अभिक्रम घटेगा, पूँजी का अभाव होगा। और सबसे खतरनाक बात यह होगी कि जिस शासन से समाज को मुक्त करना है, उसी शासन के हाथ हम राष्ट्रीयकरण से और मजबूत कर देंगे, केन्द्रित सत्ता के ही हाथ में पूंजी को भी केन्द्रित कर देंगे, इससे बड़ी और भयंकर भूल क्या होगी?

अगर थोड़ी देर के लिए यह मान भी लें, कि बड़े-बड़े उद्योगों का राष्ट्रीयकरण उचित है तो भी आज की सरकार इस दिशा में कदम उठा नहीं सकेगी, क्योंकि लोकसभा में बहुमत इसके पक्ष में नहीं है। अगर होता तो अभी तक कर भी चुके होते। इसके अलावा जो उद्योग इस समय सरकार के हाथ में हैं, उन्हें भी सरकार भली प्रकार चला नहीं पा रही है। साथ ही आज की सरकार पर उद्योगपतियों का जो प्रभाव है उसको देखते हुए सरकार के लिए यह कदम उठाना सम्भव ही नहीं दिखता। इसका कारण और भी है कि सरकार के पास ऐसी सक्षम मशीनरी नहीं है, जो राष्ट्रीयकरण के बाद देश के सभी बड़े उद्योगों को सुचारु रूप से चला सके, न आम जनता व राजनैतिक दलों की ओर से राष्ट्रव्यापी ऐसी कोई आवाज ही है, जिसके दबाव से सरकार को ऐसा कदम उठाना पड़े।

तब प्रश्न यह रहता है कि फिर इसके लिए विकल्प क्या है? इसके लिए सही विकल्प वही हो सकता है, जिससे इस देश को भयंकर अर्द्धबेकारी व बेकारी से मुक्त किया जा सके, वैज्ञानिक ढंग से औद्योगिक विकास भी हो सके, तथा पब्लिक और प्राइवेट सेक्टर के विवाद के साथ ही शोषण भी समाप्त हो सके। इसके लिए एकमात्र उपाय है केन्द्रित उद्योगों का जल्दी-से-जल्दी विकेन्द्रीकरण करके उनका वैज्ञानिक ढंग से विकास करना। विकेन्द्रीकरण का अर्थ बड़े उद्योगों का लघु उद्योगों में टुकड़ीकरण हर्गिज नहीं है—जैसा कि कुछ हद तक आज सोचा जा रहा है। बल्कि हर बड़े उद्योग की जितनी प्रक्रियाएँ छोटे-से-छोटे यूनिट के रूप में हो सकती हैं, उतनी उस स्तर पर चलायी जायें। उदाहरणार्थ, वस्त्र-उद्योग में कताई अगर किसान के घर में हो सकती हो तो पूर्णतया वैज्ञानिक ढंग से कताई-कार्य गृह-उद्योग के रूप में चले और केन्द्रित कताई-कार्य समाप्त किया जाय। जहाँ तक बुनाई का प्रश्न है, यह कार्य कताई से सीमित कार्य है, परन्तु गाँव-गाँव में बुनकरों को काम देने हेतु बुनाई कार्य भी जहाँ तक सम्भव हो, ग्रामोद्योग के रूप में पूर्णतया वैज्ञानिक ढंग से चलाया जाय। कार्डिंग गृह उद्योग व ग्रामोद्योग के रूप में नहीं चल सकता, इसलिए यह कार्य कई गाँवों के बीच प्रखण्ड-स्तर पर हो और 'फिनिशिंग' कार्य जिला-स्तर पर हो। वस्त्र-उद्योग में जिस-जिस किस्म की विशेष कताई व बुनाई आदि के कार्य गृह, ग्राम, प्रखण्ड व जिला-स्तर पर न हो सकें, उतने से काम के लिए यह उद्योग प्रान्त या राष्ट्रीय स्तर पर बड़े उद्योग के रूप में तब तक चले, जबतक उसका भी विकेन्द्रीकरण सम्भव न हो जाय। इस प्रकार सभी बड़े उद्योगों का विकेन्द्रीकरण सम्भव है। इसके लिए त्रिविध प्रयत्न करने होंगे। नीचे के स्तर पर समाज के सहयोग से गृह-उद्योग, ग्रामोद्योग व लघु-उद्योगों का विकास करना होगा, दूसरी तरफ सरकार को इस दिशा में सक्रिय रूप से शीघ्र आगे बढ़ाने हेतु ग्राम-स्वराज्य के रूप में शासन का शीघ्र विकेन्द्रीकरण करना होगा; तीसरी तरफ बड़े-बड़े उद्योगपतियों को ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त पर अपने बचे हुए उद्योग को चलाने के लिए तैयार करना होगा।

इस प्रकार तिहरा कदम उठाने से देश की भयंकर बेकारी व अर्द्धबेकारी ही नहीं दूर होगी, बल्कि 'प्राइवेट' और 'पब्लिक सेक्टर' का भेद तथा औद्योगिक क्षेत्र में शोषण भी पूर्णतः समाप्त हो जायेगा। तब, राष्ट्रीयकरण की जगह विकेन्द्रीकरण (विकेन्द्रित समाजीकरण) हो जायेगा, जहाँ श्रम, साधन व उपभोक्ता, तीनों मौजूद हैं। वहाँ उनकी रुचि, कला व संस्कृति के अनुसार मानवीय दृष्टि से जीवनोपयोगी उत्पादन उपयोग के लिए होगा। —बद्रीप्रसाद स्वामी

व्यक्तिगत् स्वामित्व की हिंसा, राज्य की हिंसा से कम हानिकारक

मैं राज्य की सत्ता की वृद्धि को बड़े-से-बड़े भय की दृष्टि से देखता हूँ, क्योंकि जाहिरा तौर पर तो वह शोषण को कम से-कम करके लाभ पहुँचाती है, परन्तु व्यक्तित्व को जो सब प्रकार की उन्नति की जड़ है—नष्ट करके वह मानव जाति को बड़ी-से-बड़ी हानि पहुँचाती है।

राज्य केन्द्रित और संगठित रूप में हिंसा का प्रतीक है। व्यक्ति के आत्मा होती है, परन्तु चूँकि राज्य एक आत्मा रहित जड़ मशीन होता है, इसलिए उससे हिंसा कभी नहीं छुड़वायी जा सकती, उसका अस्तित्व ही हिंसा पर निर्भर है।

मेरा यह पक्का विश्वास है कि अगर राज्य हिंसा से पूँजीवाद को दबा देगा, तो वह स्वयं हिंसा की लपेट में फँस जायगा और किसी भी समय अहिंसा का विकास नहीं कर सकेगा।

मैं स्वयं तो यह अधिक पसंद करूँगा कि राज्य के हाथों में सत्ता केन्द्रित न करके ट्रस्टीशिप की भावना का विस्तार किया जाय। क्योंकि मेरी राय में व्यक्तिगत स्वामित्व की हिंसा राज्य की हिंसा से कम हानिकारक है। किन्तु अगर यह अनिवार्य हो तो मैं कम-से-कम राजकीय स्वामित्व का समर्थन करूँगा।

मुझे जो बात नापसंद है वह बल के आधार पर बना हुआ संगठन, और राज्य ऐसा ही संगठन है। स्वेच्छापूर्वक संगठन जरूर होना चाहिए।

('दी मॉडर्न रिव्यू': सन् १६३५, पृष्ठ-४१२)

नगर-आन्दोलन शुरू हो

दिनांक ९ जून के ३६ वें अंक में गत ३० वें अंक के श्री सिद्धराजजी के 'चिंतन-प्रवाह' में श्री सुरेश राम भाई का चिंतन प्रस्तुत हुआ है, उस पर पाठकों के पृथक् चिंतन की माँग की है। आशा है इस प्रकार के विचार-मंथन से कोई दिशा भी मिल सकेगी, तथा एक दूसरे के विचारों की जानकारी भी।

श्री सिद्धराजजी तथा श्री सुरेश राम भाई, दोनों ही अहिंसक पद्धति से आर्थिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया में ही विश्वास करनेवाले हैं, और केवल विश्वास ही नहीं, अपितु इस ओर इनका अथक प्रयास भी निरन्तर जारी है। श्री सुरेश राम भाई ने सम्बंधित लेख में श्री चन्द्रशेखर के राष्ट्रीयकरण के औचित्य का अभिनन्दन करके अहिंसा में विश्वास करनेवालों के अन्तस्तल को झकझोरा है, ऐसा मेरा विचार है।

हम जिस क्रान्ति-विचार के सहारे जय जगत् का सपना देख रहे हैं, और उसकी संभावनाओं में विश्वास रखते हुए भी यदि इतिहास की पीछे छूट गयी मान्यता को स्वीकार कर लें तो क्रान्ति विचार ही कुंठित होगा, और जन-अभिक्रम के लिए कोई अवकाश नहीं रहेगा।

इसके अतिरिक्त आज तक के परिणाम-स्वरूप प्रशासन के माध्यम से जो भी विकास आदि के नाम पर व्यय हुआ है, उसमें न्यायिक वितरण की बात किसीने भी स्वीकार की है क्या? रूस या चीन में जैसा भी कुछ हुआ हो, वह बात पृथक् है, किन्तु भारत की स्थिति में तो यह संदेहास्पद है।

आज देश क्रान्ति के कगार पर खड़ा है। और जितना शोषण उत्पीड़न है, वह उसमें गति ला रहा है। पूँजीपति वर्ग भी अपनी पूँजी की सुरक्षा की गारंटी में शासन के द्वारा पूर्ण आश्वस्त नहीं रह गया है।

क्रान्तदर्शी बापू या विनोबा ने क्रान्ति की मर्यादा गाँव को ही माना है। सह-स्वामित्व की भूमिका पर स्थित गाँव का आरम्भ क्या पूँजीवाद के सिंहासन को न हिला सकेगा? स्वराज्यान्दोलन की बात सभी को मालूम है, कि देशी रियासतें अंततक आन्दोलन से अछूती रहीं, किन्तु उन्हें भी बरबस देश के साथ आना पड़ा। देश की बहुत जनता के समक्ष चोटी के गिने-चुने पूँजीपति डटे रहें, यह हो नहीं सकता। आज ग्रामदान के आन्दोलन में भी यह प्रश्न पर्याप्त मात्रा में उठता है कि पहले हम ही क्यों, दूसरे इस प्रकार के लोग क्यों नहीं, तो उनका समाधान करना पड़ता है।

हमारा ध्यान तो लक्ष्य की ओर ही केन्द्रित रहना चाहिए। अर्जुन को जैसे मछली

आदिवासी नेता मेरा हृदय-परिवर्तन करें या मैं उनका हृदय-परिवर्तन करूँगा

यहाँ आदिवासियों के नेताओं पर हमें तरस आता है। उन्होंने यहाँ के लोगों को समझाया कि ग्रामदान में आपका नुकसान है। यह बिलकुल गलत बात है। बाबा सारा भारत देश घूमकर आया है। बाबा जनता को जितना जानता है, बाबा का जनता के साथ 'हार्ट-टु-हार्ट' जितना परिचय है, उतना किसीका भी नहीं है। उड़ीसा का कोरापुट जिला आदिवासी जिला है। वह दान में आया है। वह यहाँ से दूर नहीं है। जिन प्रांतों में ग्रामदान के लिए आकर्षण कम है, वहाँ भी आदिवासी क्षेत्र में ज्यादा ग्रामदान हो रहे हैं। क्योंकि उनके जीवन को तोड़ने का काम सरकारी कानून ने किया है। गाँव की जमीन गाँव के बाहर बेची न जाय, गाँव के लोग बाँट करके मिलजुलकर खायें और मिलजुलकर काम करें, यह आदिवासियों का तरीका, जीवन की पद्धति अनादि काल से चली आयी है। लेकिन सरकारी कानून ने इसे तोड़ा है। इसलिए ग्रामदान से आदिवासियों को लाभ हो है। औरों को ग्रामदान से आनंद मिलेगा, लेकिन आदिवासियों को इसमें शक्ति मिलेगी और मुक्ति मिलेगी। आज उनका शोषण हो रहा है। व्यापारी जमीन छीन लेते हैं। धीरे-धीरे उनकी जमीन की मिलकियत छीनी जा रही है। जमीन ही उनकी ताकत थी। वह छीनी जा रही है। **वे आदिवासी नेता कभी मुझसे मिलने आयेंगे तो मैं अपना विचार उनके सामने रखूँगा और कहूँगा कि आप अपना विचार मुझे समझाइए और सिद्ध कर दीजिए कि इसमें आदिवासियों का नुकसान है, तो मैं आपके क्षेत्र को छोड़ दूँगा। उनको मेरी बात जँच जायेगी तो उनको इसमें आना होगा। वे मेरा हृदय-परिवर्तन करें या मैं उनका हृदय-परिवर्तन करूँगा।** ऐसे दूर-दूर रहकर बोलना और रिमार्क पास करना गलत बात है। अभी पटना के समाहर्ता ने जैसे बताया कि लंदन में १८ अप्रैल के दिन एक जुलूस निकला था। हिन्दुस्तान को राजनैतिक आजादी अहिंसा से प्राप्त हुई, यह गांधीजी ने करके बताया। अब करुणा से, अहिंसा से आर्थिक आजादी मिल सकती है यह ग्रामदान ने दिखाया, इसलिए विदेश में इस कार्य के लिए आकर्षण है। आदिवासी नेताओं को अज्ञान के अँधेरे में नहीं रहना चाहिए। अगर उनके पास टार्च है तो वे दिखायें कि उससे अँधेरा दूर होता है। किसके पास टार्च है, यह चर्चा करके सिद्ध होगा, अँधेरा उनके पास है या मेरे पास है यह देखें। केवल कल्पनामात्र से बातें करना और जो चीज सारे भारत भर में हो रही है उसके बारे में अज्ञान रखना ठीक नहीं है।

राँची : १२-६-'६९ —विनोबा

की मांग ही दीख रही थी, उसी भांति। और जब कि हमारा आन्दोलन प्रान्तदान तक पहुँच रहा है, ऐसी स्थिति में गांधीजी के ट्रस्टीशिप के विचार को व्यवहार्य बनाने के लिए नगर पदयात्रा के माध्यम से वरिष्ठ विचारकों को 'कैपट्री दान' आदि के लिए घोषणापत्रों के सहारे अविलम्ब निकलना चाहिए। आज तक भारत के उद्योगपति या पूँजीपतियों के पास हम विचार को लेकर गांवों की तरह पहुँचे हैं क्या? कहीं हृदय पर अविश्वास लाकर हम अपनी आत्मा को ही कुंठित न करें। इस प्रकार के कार्य के लिए गांधी-विनोबा का आशीर्वाद तो प्राप्त ही है, दूसरे, बिना इस प्रकार के आन्दोलन के देश के नगरों की जनता ग्रामदान के आन्दोलन को गांव की उन्नति का ही कार्य समझकर उदासीन बनी रहेगी। नगरों के व्यापक आन्दोलन से जो बुद्धि और संपत्ति केन्द्रित है, उसका लाभ ग्रामीण जनता को आसानी से मिल सकेगा। इसके अतिरिक्त समाचार-पत्र भी नगर-आन्दोलन से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। अतः चोटी के विचारक योजनाबद्ध कार्यक्रम तैयार करके नगरों को सही दिशा प्रदान करें, जिसका शुभारंभ देश के प्रमुख उद्योगपतियों तथा पूँजीपतियों से ही किया जाना चाहिए।

—शिवनारायण शास्त्री
मथुरा

'भूदान-यज्ञ' के ग्राहक बनाने का व्यापक अभियान चलायें

सर्व सेवा संघ के मंत्री श्री ठाकुरदास बंग की कार्यकर्ता साथियों से अपील

वाराणसी : सर्व सेवा संघ के मंत्री श्री ठाकुरदास बंग ने सर्वोदय-आन्दोलन को गतिवान्, प्राणवान् और ठोस बनाने के लिए कार्यकर्ता साथियों और मित्रों से अपील की है कि विचार-शिक्षण और उसकी स्थापना के लिए अहिंसक क्रान्ति के संदेशवाहक मुखपत्र 'भूदान-यज्ञ' के ग्राहक बनाने का व्यापक और सघन अभियान चलायें। इस दृष्टि से 'भूदान-यज्ञ' के ग्राहक बनाने पर प्रति ग्राहक एक रुपया विशेष कमीशन देना तय हुआ है।

कौसानी में महिला शिविर

बा-बापू जन्म-शताब्दी में बहनें भी सक्रिय होकर कुछ काम करें, इस दृष्टि से बाल महिला समिति ने प्रखण्ड, जिला और प्रादेशिक स्तर के अनेक शिविरों के आयोजन किये हैं। हमारा यह प्रादेशिक शिविर उस शृंखला की सातवीं कड़ी थी।

७ दिन का यह प्रादेशिक शिविर ७ जून से कौसानी में प्रारम्भ हुआ। शिविर के प्रथम प्रभात से ही कार्यक्रम ने एक व्यवस्थित रूप ले लिया। बहनें ६ की शाम को ही पहुँच गयी थीं। उत्तरप्रदेश के १२ जिलों की ३२ प्रतिनिधि बहनें शिविर में शरीक हुईं। इनमें मुख्य रूप से शिक्षिकाएँ, छात्राएँ और समाज-सेविकाएँ थीं।

शारीरिक श्रम और बौद्धिक श्रम के बीच के भेद को मिटाने और उस अभेद का अनुभव करने के लिए शिविरार्थी बहनों ने प्रतिदिन प्रातः ६० मिनट से ९० मिनट तक हिमालय की एक ऊँची चोटी से अनासक्ति आश्रम तक पत्थर ढोने का काम किया। इसके अलावा सफाई भोजन बनाने, परोसने, आदि के दैनिक कार्य तो हुए ही। मैदान से आयी बहनों को पहाड़ के जीवन का रंचमात्र अनुमान नहीं था। परन्तु बहुत शीघ्र बहनों ने इस जीवन के साथ समरस होने का प्रयत्न शुरू किया।

इस शिविर का उद्घाटन किया सुश्री सरला बहन ने। उन्होंने बहनों को अपनी शक्ति पहचानकर आत्मविश्वास के साथ आत्मनिर्भर जीवन जीने की प्रेरणा देते हुए कहा कि गांधी ने अमानवीय व्यवस्था के प्रति विद्रोह करने का संदेश दुनिया को दिया है, जो आज विश्व के जागरूक राष्ट्रों में उथल-पुथल के रूप में दिखाई दे रहा है। यह उथल पुथल स्वस्थ, संतुलित व्यवस्था की मांग है। यहाँ की महिलाओं को उसी मानवीय व्यवस्था के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। अमानवीय समाज व्यवस्था के प्रति व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, सभी स्तरों पर बहिष्कार करना चाहिए। श्री कामताप्रसाद गुप्त ने शब्द-चित्र खींचते हुए बहनों को दर्शन कराया कि मालिकी और हुकूमत की व्यवस्था ने दो विश्वयुद्ध करा दिये। अगर विश्वयुद्ध की पुनरावृत्ति नहीं चाहिए तो हुकूमत के स्थान पर प्रेम और मालिकी के स्थान पर सेवा के मूल्य को आचरण में लाना होगा। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि गांधी कोई विचार नहीं, आधार था। आधार लादा नहीं जाता, विचार लादा जाता है। जहाँ लादना है वहाँ हिंसा है, दबाव है। सुश्री राधाबहन ने उत्तराखण्ड में हुए शराबबन्दी-आन्दोलन के अनुभव सुनाये। प्रातःकालीन प्रार्थना के बाद मानसिक खुराक श्रद्धेय सुरेन्द्रजी से नियमित मिली। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में जितने संत हो चुके, धर्म माने गये और शास्त्र रचे गये, उन सबकी सिखावनों का सार सहजता और सरलता से हमें प्राप्त हुआ। *गृहस्थ-जीवन के सारे सम्बन्ध विश्व-बन्धुत्व के लिए सीढ़ियाँ हैं।* अगर हमारा पारिवारिक जीवन जाति और संस्कार की मान्यताएँ मुक्ति के अभियान में बाधक हैं तो उन्हें त्यागने की क्षमता पैदा करनी चाहिए। नारी को अपने प्रेम, सहनशीलता, निष्ठा-जैसे मानवीय गुणों के बल से समाज में बढ़ती हुई पाशविक शक्तियों का सामना करना चाहिए। विकास की व्याख्या करते हुए श्री विचित्रनारायण शर्मा ने कहा कि गांधीजी के स्वराज्य एवं विकास की भूमिका में एक की जय एवं दूसरे की पराजय नहीं थी। *वही निर्विरोध मानस एवं जीवन हमें लाना है।*

इस प्रकार के निर्विरोध जन-जीवन के लिए ग्रामदान की व्यावहारिकता तथा क्रान्तिकारिता का सुन्दर चित्रण श्री कपिलभाई ने किया। गांधीजी के इस ग्राम-स्वराज्य को साकार स्वरूप देने के लिए उन्होंने बहनों का आह्वान किया। अन्त में श्री करण भाई और डा० सुशीला नैयर ने गांधी-शताब्दी वर्ष में काम करने के लिए बहनों से अपील की और सुझाव दिये।

—कान्तिबाला

तत्त्वज्ञान

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को दी गयी फाँसी तथा गणेश शंकर विद्यार्थी के आत्म-बलिदान के प्रसंगों से क्षुब्ध कराची-कांग्रेस-अधिवेशन के लोगों को सम्बोधित करते हुए २६ मार्च १९३१ को गांधीजी ने कहा था :—

"जो तरुण यह ईमानदारी से समझते हैं कि मैं हिन्दुस्तान का नुकसान कर रहा हूँ, उन्हें अधिकार है कि वे यह बात संसार के सामने चिल्ला-चिल्लाकर कहें। पर तलवार के तत्त्वज्ञान को हमेशा के लिए तलाक दे देने के कारण मेरे पास अब केवल प्रेम का ही प्याला बचा है, जो मैं सबको दे रहा हूँ। अपने तरुण मित्रों के सामने भी अब मैं यही प्याला पकड़े हुए हूँ।"

उसके बाद का इतिहास साक्षी है कि देश ने तलवार के तत्त्वज्ञान को तलाक देनेवाले गांधी का साथ दिया। साम्राज्यवाद की नींव हिली, भारत में लोकतन्त्र की नींव पड़ी और संसार को मुक्ति का एक नया रास्ता मिला।

संसार आज बन्दूक की नली के तत्त्वज्ञान से और अधिक त्रस्त हुआ है। विनोबा संसार को वही प्रेम का प्याला पिलाकर बन्दूक के तत्त्वज्ञान को तलाक दिलाना चाहता है और देश में सच्चे स्वराज्य की स्थापना के लिए उसने नया रास्ता बताया है।

क्या हम वक्त को पहचानेंगे और महान कार्य में वक्त पर योग देंगे?

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म शताब्दी-समिति)
इंडिया भवन, कुन्दीगरों का भैंरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

तरुण शांति-सेना

केवल शिकायत और सुझाव ही या और कुछ...?

तरुण-शान्ति-सेना के इस स्तम्भ का तरुण साथियों ने स्वागत किया है, जितनी आशा की जा सकती है, उतने तो नहीं, लेकिन कुछ तरुण शान्ति-सेवकों ने अपने उद्गार प्रकट किये हैं। उनमें से दो हम इस अंक में प्रकाशित कर रहे हैं।

पिछले पत्र में अभय बंग ने और इस पत्र में अनूपकुमार जैन ने संगठन-सम्बन्धी कुछ शिकायतें पेश की हैं, साथ ही सुझाव भी प्रस्तुत किये हैं। शिकायतें उनकी सही हैं, सुझाव भी अच्छे हैं, लेकिन इनके अतिरिक्त क्या? यह एक प्रश्न सहज ही उठता है कि शिकायतों को दूर कौन करेगा और सुझावों को अमल में कौन लायेगा? आज तो दुनिया का तरुण समाज केन्द्रित संगठनों और बुजुर्ग नेताओं से अलग खुद अपने पथ की तलाश और अपने ही पुरुषार्थ से अपनी मंजिल का निर्माण करना चाहता है। यह इस युग की प्रगतिशील चेतना है।

युग की इस चेतना का दूर-दर्शन करके ही सर्वोदय-विचार के संगठनों की कल्पना संचालक-शक्ति के रूप नहीं संयोजक-सूत्र के रूप में की गयी है, और केन्द्रित नेतृत्व की जगह गणसेवकत्व की बात कही गयी है। इसलिए आपसी विचार-विनिमय के लिए शिकायतें, सुझाव तो ठीक ही हैं, लेकिन हमें इससे आगे बढ़कर खुद ही शिकायतों को दूर करने और सुझावों को अमल में लाने की शक्ति पैदा करनी है। क्या नहीं? —हमराही

कुछ शिकायतें, कुछ सुझाव

श्री सम्पादकजी,

मैं २३ जून का 'भूदान-यज्ञ' पढ़ रहा था, उसमें तरुण शान्ति-सेना का एक नया स्तम्भ आपने शुरू किया है, इसके लिए आपको बधाई!

अभय बंग भाई ने जो सुझाव तरुण-शान्ति-सेना के लिए दिये, वे बहुत ही अच्छे हैं। भाई इस पर विचार करना चाहिए।

आज मुझे दुःख के साथ लिखना पड़ रहा है कि मैंने अपने जीवन में पहली बार कैम्प-जीवन में प्रवेश किया था। कैम्प में बहुत कुछ इच्छा लेकर गया, परन्तु इच्छाओं की पूर्ण पूर्ति नहीं हुई। अनुशासन नाम की चीज तो मैंने कैम्प में बिलकुल पायी ही नहीं। जब पिछली जुलाई '६८ में कैम्प से वापिस आया तो मैंने तथा वर्तमान संयोजक श्री सुरेशचन्द्रजी ने यहाँ केन्द्र स्थापित किया। हमने केन्द्र खोलने की सूचना अपने केन्द्रीय कार्यालय को भेजी, परन्तु वहाँ से महीनों जवाब नहीं आया। आज हमारे केन्द्र की संख्या १५ है, परन्तु यह बहुत कम है। आज हम आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं, किन्तु सहयोग न मिलने के कारण हम पीछे रह जाते हैं। केन्द्रीय कार्यालय से कोई सम्पर्क नहीं रहता है। हमारे केन्द्र को इस वर्ष बहुत ही हानि हुई, जो कि एक वर्ष में जाकर पूरी होगी। पत्रों का जवाब समय से न मिलने के कारण हमारे शान्ति-सेवक इस वर्ष दोनों शिविरों से वंचित रह गये, इसका जिम्मेदार कौन? इसलिए मेरे कुछ सुझाव हैं। इन पर सब लोगों को गौर करना चाहिए, वरना तरुण-शान्ति-सेना के विकसित होने में बहुत समय लग जायगा। आज आप देश की स्थिति तो जानते ही हैं, हिंसात्मक सेनाओं को लोग याद रखते हैं। आज शिव-सेना का नाम किसी देशवासी से पूछ लीजिए!

सुझाव: १. जहाँ तरुण-शान्ति-सेना का केन्द्र खुले, वहाँ एक कार्यकर्ता समय-समय पर दौरा करे।

२. तीन महीने या इससे कम अवधि में केन्द्रों पर प्रान्तीय तथा केन्द्रीय पदाधिकारी लोग पहुँचें।

३. तरुण-शान्ति-सेना का साहित्य-केन्द्रों पर भेजा जाय।

४. गांधी-जन्म शताब्दी का वर्ष है, हर जिले में समितियाँ हैं, उनको प्रान्तीय कार्यालय से आदेश दिया जाय कि उनके जिले में कहीं भी तरुण-शान्ति-सेना का नया केन्द्र खुले, उसकी देखभाल करें, तथा केन्द्र स्थापित करने में मदद दें।

५. गांधी-जन्म-शताब्दी-समितियों का भेंट साहित्य उस जिले के केन्द्रों को मिले।

६. केन्द्रीय कार्यालय में पत्र-व्यवहार के लिए एक अलग कार्यकर्ता बैठाया जाय।

७. प्रचार का साहित्य भेजा जाय।

अब समस्या पैदा होगी कि पैसा कहाँ से लाया जाय? इसके लिए सुझाव है:

(अ) बच्चों के शिशु-मन्दिर खोलें।

(आ) प्रदर्शनी लगायें।

(इ) ड्रामा, पहलवानों की कुश्ती आदि कार्यक्रमों के द्वारा पैसे इकट्ठे किये जायें।

अन्यथा सारी मेहनत बेकार हो जायेगी। कैम्प वर्ष में एक महीने के लिए लगता है, उसमें पैसा भी खर्च किया जाता है। परन्तु कमियों के कारण न तरुण लाभ उठा पाते हैं, न तो तरुण-शान्ति-सेना का विकास होता है। बम्बई के लिए यहाँ से पाँच फार्म भेजे थे। वहाँ से केवल एक रेल्वे-कन्सेशन फार्म भेजा गया। हमने कारण पूछा तो पता लगा कि एक हजार आवेदन आये थे। आखिर सबको शिविर में क्यों नहीं बुलाया गया? अगर सब लोग तरुण-शिविर में पहुँचते तो कितना विकास होता सेना का! आपके 'भूदान-यज्ञ' में बम्बई-सम्मेलन का स्वीकृत तरुण-शान्ति-सेना का घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ जो कि मूल अंग्रेजी से लिया गया है। क्या हिन्दी में घोषणा-पत्र प्रकाशित नहीं हुआ, कि आपको अंग्रेजी से लेना पड़ा?

—अनूपकुमार जैन, दलनायक,
तरुण शान्ति सेना केन्द्र,
बदरा मान राय, बरेली

वर्षा में तरुण-शान्ति-सेना का सराहनीय श्रमिकम

आन्ध्र प्रदेश में पिछले माह में जो भयंकर बाढ़ व आंधी आयी उसके कारण मुसीबत में फँसे हुए लाखों भाइयों के आँसू पोंछने के लिए यहाँ के तरुण-शान्ति-सेना केन्द्र के २१ सदस्यों ने लगातार चार घण्टे श्रमदान किया।

नौवाँ अखिल भारत तरुण-शांति-सेना शिविर, गोविंदपुर

(संक्षिप्त कार्य-विवरण)

अखिल भारत शांति-सेना मण्डल ने पिछले कुछ वर्षों से तरुण शांति-सेना के माध्यम से विश्वविद्यालयों तथा कालेजों में एक नया प्रयास प्रारम्भ किया है। प्रति वर्ष स्थानीय, प्रदेशीय, क्षेत्रीय तथा अखिल भारतीय स्तर के शिविरों का आयोजन होता है, जिसके माध्यम से राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय महत्त्वपूर्ण समस्याओं की चर्चा तथा विशेषकर उसमें युवकों के दायित्व की ओर ध्यान आकर्षित करने का प्रयास रहता है। इस बार नौवाँ अखिल भारत तरुण-शांति सेना शिविर उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर जिला स्थित बनवासी सेवा आश्रम, गोविंदपुर में आयोजित किया गया था। शिविर में शिविरार्थियों की अपेक्षित संख्या से कम लोग आये। लेकिन प्रदेशवार प्रतिनिधित्व काफी अच्छा रहा—केरल ८, मध्यप्रदेश, ३, मैसूर ५, उत्तरप्रदेश ३, तमिलनाडु २, पश्चिम बंगाल १, आन्ध्र २, बिहार १, महाराष्ट्र २, गुजरात ६, और राजस्थान १।

शिविर १ जून से १५ जून तक हुआ।

शिविर के सम्पूर्ण कार्यक्रम तीन भागों में विभाजित थे: १ बौद्धिक, २ क्रियात्मक, और ३. समूह जीवन।

बौद्धिक : शिविर में चर्चा के लिए निम्नलिखित विषय निश्चित थे और इन पर विभिन्न वक्ताओं ने व्याख्यान किये।

(१) जागतिक परिस्थिति, आणविक शस्त्रास्त्र तथा शांति

(२) राष्ट्र पुनर्निर्माण में युवकों का दायित्व,

(३) राष्ट्र निर्माण के प्रयोग में ग्रामीण युवकों का योगदान,

(४) शांति विचार तथा युवकों का योग, राष्ट्रीय परिस्थिति, प्रतिरक्षा और शांति तथा चरित्र-निर्माण,

(५) तरुण शांति-सेना,

(६) भाषा-समस्या।

व्याख्यानों के अतिरिक्त शिविरार्थियों ने अलग-अलग गोष्ठियों में निम्नलिखित विषयों की चर्चा की—

(१) शिक्षा में क्रान्ति,

(२) भाषा समस्या,

(३) छात्र राजनीति में भाग लें या न लें।

इन चर्चा-गोष्ठियों के अतिरिक्त कई प्रदेशों के शिविरार्थियों ने तीन अलग-अलग गोष्ठियों में विभाजित होकर भावी कार्यक्रम की रूपरेखा की चर्चा की।

क्रियात्मक : (१) श्रम, (२) खेलकूद, (३) प्रार्थना तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम।

श्रम—यह शिविर मुख्य रूप से श्रम-शिविर ही रहा। प्रतिदिन चार घण्टे श्रम होता था। प्रारम्भ में २ जून से लेकर १० जून तक शिविरार्थियों ने प्रतिदिन चार घण्टे काम किये। मानसिक तैयारी तथा उत्साह होते हुए भी शारीरिक मर्यादा तथा थकान के कारण आखिर के ११ से १५ जून तक चार घण्टे के बजाय ढाई घण्टे श्रम-कार्य किया गया। कुल चार हजार घनफुट मिट्टी उठी। कुल १२० रु० का काम हुआ।

खेलकूद—यहाँ 'कितने भाई कितने', 'ऐसे कैसे', 'मछली जाल' आदि खेलों का आनन्द लिया गया। लेकिन मुख्यतः वालीबाल का ही आकर्षण रहा।

प्रार्थना तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम—शिविर में शांति केन्द्र की सर्वधर्म-प्रार्थना सायंकाल होती थी, जिसमें प्रमुख धर्मों के मूलमंत्रों का हिन्दी रूपान्तर है। शिविरार्थियों के मानस पर इस प्रार्थना का बहुत अच्छा असर पड़ा।

प्रत्येक दिन रंजन कार्यक्रम होता था। विभिन्न प्रदेशों के मित्रों द्वारा वहाँ के जन-जीवन की झाँकियाँ, लोकगीत तथा नृत्यों के रूप में वह पेश की जाती थी। आधुनिक रंजन के नमूने भी इस शिविर में आकर्षक रहे।

समूह जीवन : विभिन्न जाति, धर्म, संस्कारवाले युवक शिविर में इकट्ठा हुए थे। उनमें जोश खरोश की कमी तो थी ही नहीं। आज के समाज में व्याप्त गुटबन्दी आदि के छूत से भी विद्यार्थी-समाज अलग कैसे रह सकता है, अतः १५ दिनों के सहजीवन में आपसी तनाव के कुछ प्रसंग उपस्थित हो जाना तो स्वाभाविक ही था। लेकिन अन्ततः इस अनेकता में एकता का ही स्वर गुंजन करता सुनाई पड़ा। कुछ को नये मित्र मिले, कुछ की पुरानी मैत्री और प्रगाढ़ बनी तथा १५ दिनों तक सुबह से शाम तक एक परिवार जैसे वातावरण में रहकर परस्पर-मैत्री तथा सद्भावना लेकर एक दूसरे से विदा हुए।

शिविर की अवधि में एक दिन शिविर की सम्पूर्ण व्यवस्था तथा संचालन शिविरार्थियों के ही हाथों में रहा।

शिविर की स्थानीय व्यवस्था बनवासी सेवा आश्रम की ओर से ही हुई थी। आश्रम के संयुक्त मंत्री श्री प्रेम भाई ने अपने साथियों सहित काफी परिश्रम तथा उत्साहपूर्वक निवास, भोजन, स्नान, आदि की तैयारी की थी।

समापन समारोह : १५ जून को सायं ४ बजे से समापन कार्यक्रम का आयोजन किया गया था। कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री मनमोहन चौधरी ने की। शिविर की पूर्णाहुति करते हुए श्री मनमोहन चौधरी ने यह बताया कि ऐसे शिविरों में मैं स्वयं प्रेरणा लेने के लिए आता हूँ। हमारी साधना में ज्ञानयोग, कर्मयोग और भक्तियोग का जो उल्लेख है, उसकी तीनों प्रकार की साधना आधुनिक रूप में हमें इस प्रकार के शिविरों में प्राप्त होती है।

अन्त में राष्ट्रगान से कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

—अमरनाथ

श्रमदान से मिली मजदूरी आन्ध्र प्रदेश के इन आपत्तिग्रस्त भाइयों की सहायता के लिए भेजी जा रही है।

इसके अलावा यहाँ के तरुण शान्ति-सेना सदस्यों ने लगातार चार-पाँच दिन वर्षा में घूमकर करीब साढ़े आठ सौ रुपये इस काम के लिए इकट्ठे किये हैं।

वर्धा में तरुण-शान्ति-सेना का एक केन्द्र शुरू किया गया है। उसमें शरीक होने के लिए हर तरुण तरुणी का स्वागत है।

(अशोक बंग के एक पत्र से)

तरुण-शान्ति-सेना प्रशिक्षक-शिविर

बिहार तरुण शान्ति-सेना द्वारा आयोजित प्राध्यापकों तथा अध्यापकों के शिविर से अपेक्षा यह थी कि ये अध्यापक जब शिविर से वापस जायेंगे तो तरुणों का मार्गदर्शन करेंगे और अपने-अपने विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में तरुण शान्ति-सेना का संगठन करेंगे। पूरे बिहार से चुने हुए ५० शिक्षकों का शिविर हो, इस निश्चय के साथ विद्यालयों को यह निमंत्रण भेजा गया था। अपेक्षा यह रखी गयी थी कि विद्यालयों से एक शिक्षक २२ जून से २९ जून तक होनेवाले बिरौली रूरल इंस्टिच्यूट के शिविर में शामिल होंगे। जिन शिक्षकों से व्यक्तिगत परिचय था उन्हें सीधे निमंत्रण भेजा गया था। निमंत्रण १०० भेजे गये थे, लेकिन यह माना गया था कि ५० लोगों का ही यह शिविर होगा। राजकीय शिक्षा विभाग ने भी अपने अन्तर्गत चलनेवाले विद्यालयों को परिपत्र भेजा था कि बिहार तरुण-शान्ति-सेना द्वारा आयोजित एक सप्ताह के शिविर में उनका एक शिक्षक अवश्य भेजा जाय। शिविर में भाग लेनेवाले शिक्षकों के मार्गव्यय के लिए २५ रुपये तक तथा भोजन के लिए भी २५ रुपये की व्यवस्था शिक्षा-विभाग की ओर से की गयी थी। कुछ ऐसे शिक्षक, जिनकी रुचि तरुण शान्ति-सेना के काम में पहले से ही थी, वे भी इस शिविर में अपने निजी खर्च से शामिल हुए थे।

आंधी और तूफान के कारण बिरौली रूरल इंस्टिच्यूट में शिविर करना सम्भव नहीं हो सका, इसलिए वह लक्ष्मीनारायणपुरी, पूसारोड में रखा गया।

शिविर का प्रारम्भ २२ जून की शाम को हुआ। श्री नवल बाबू ने शिविर के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए बताया कि बिहार में तरुण-शान्ति-सेना का कितना काम हुआ है। श्री द्वारका बाबू ने, जो बिहार तरुण-शान्ति-सेना के उपाध्यक्ष हैं, तरुण-शान्ति-सेना के उद्देश्य को स्पष्ट किया और, श्री जयप्रकाशजी से अनुरोध किया कि वे शिविरार्थियों का उद्बोधन करें।

श्री जयप्रकाशजी ने अपने उद्घाटन-भाषण में अपनी यह आशा व्यक्त की कि यद्यपि आज तरुण-शान्ति-सेना एक छोटी-सी संस्था है, लेकिन जल्द ही देश की सभी शिक्षा-संस्थाओं में तरुण शान्ति सेना स्थापित होगी और इसमें लाखों तरुण शामिल होंगे। उन्होंने कहा कि तरुण-शान्ति सेना को सामाजिक क्रान्ति का एक माध्यम के रूप में ही मैं देखता हूँ। फिर आगे उन्होंने बताया कि सामाजिक क्रान्ति कहते किसे हैं और क्रान्ति की भिन्न-भिन्न प्रक्रियाएँ क्या हैं। कत्ल, कानून, और करुणा की क्रान्ति-पद्धति में कौनसी पद्धति आज की सामाजिक, वैज्ञानिक, परिस्थिति में उपयुक्त और सम्भव है। इस विषय पर श्री जयप्रकाशजी ने तीन प्रवचन किये और तीनों प्रवचनों में काफी विस्तार के साथ इस विषय का विवेचन किया।

इस शिविर में लगभग सम्मेलन का ही वातावरण बना रहा; क्योंकि श्रम, सफाई, शिविर-अनुशासन आदि कार्यक्रमों को शिविर में शामिल विद्वान शिक्षकों की उम्र, प्रतिष्ठा तथा उनके अभ्यास का लिहाज करके गौण रखना पड़ा। हालांकि श्रम का कार्यक्रम रखा जाता तो सभी शिक्षक खुशी के साथ श्रम करते और जिस ढंग का वहाँ भोजन मिला उसके पचने में मदद मिल जाती। ऐसा संकोच स्वयं शिविर के संयोजकों का था। भोजनालय ने तो उनकी प्रतिष्ठा का पूरा-पूरा ध्यान रखा। मेजबानों ने एलान किया कि 'मिथिला को आतिथ्य का जो सौभाग्य प्राप्त है उससे हमें वंचित न करें। इसलिए आप केवल भोजन करें, पत्तल हम फेंकेंगे। भोजनालय की सफाई हम करेंगे।' हम अपनी परम्परा को क्यों छोड़ें! शिविर-संचालक महोदय ने बार-बार भोजनालय-व्यवस्थापक से कहा कि शिविर का अपना कुछ नियम है, अनुशासन है इसलिए भोजन परोसने, भोजनालय की सफाई, जूठा पत्तल अपने उठाने की छूट दी जानी चाहिए। लेकिन मिथिला का आग्रह अन्त तक नहीं समाप्त हुआ। भोजन-व्यवस्था से सन्तु- शिविरार्थियों को यह कहते सुना गया कि यह शिविर है या बारात!

शिविर के तीसरे दिन शिविर को शिविर का रूप देने की कोशिश की गयी और प्रार्थना, खेल-कूद, योगासन, रेलीपोस्ट शिविर-कार्यक्रम में शामिल किये गये। शिविर-व्यवस्था के लिए अलग-अलग दस्ते बने।

२३ जून को श्री रामनन्दन मिश्रजी आये। उन्होंने अपने प्रवचन में आध्यात्मिक मूल्यों को जीवन में स्थापित करने पर बल दिया और कहा कि इसके बिना सर्वोदय-आन्दोलन का स्रोत सूख जायेगा।

प्रो० श्री रामजी बाबू ने आचार्यकुल के उद्देश्य तथा उसकी कार्य-पद्धति को स्पष्ट किया और शिक्षक साथियों से निवेदन किया कि आचार्यकुल की स्थापना तरुण शान्ति-सेना के साथ-साथ की जानी चाहिए।

आचार्य श्री राममूर्तिजी ने विद्यार्थियों के विश्वव्यापी विद्रोह का विश्लेषण किया और कहा कि तरुण, स्त्री और मजदूर, तीनों मुक्ति चाहते हैं। दूसरे दिन आचार्यजी ने ग्रामस्वराज्य के औचित्य पर प्रकाश डाला और इसमें आचार्यकुल तथा तरुण शान्ति-सेना का क्या रोल हो सकता है, इसे स्पष्ट किया।

श्री धीरेन्द्र मजुमदार के लिए 'शिक्षा में क्रान्ति' विषय रखा गया था। इस विषय को समझाते हुए उन्होंने कहा कि सामाजिक परिस्थिति बदले बिना शिक्षा में परिवर्तन संभव नहीं है। शिक्षक शिक्षा में परिवर्तन चाहता है तो उसे समाज-परिवर्तन के काम में लगना होगा। शिक्षा में परिवर्तन की माँग लोक की तरफ से हो इसके लिए शिक्षक का काम है लोक-चेतना पैदा करना।

श्री नारायण देसाई ने युवक-क्रान्ति के तत्त्व और दिशा की स्पष्ट व्याख्या की। दुनिया के १४ देशों के युवक-विद्रोहों के स्वरूप और तरीके के उदाहरण से युवक-विद्रोहों को समझने में काफी आसानी हुई।

आखिर के दिनों में शिविरार्थी अधिक खुले और उन्होंने परस्पर सामीप्य का अनुभव किया। अगर शिविरार्थियों का निवास एक स्थान पर रखा गया होता तो परस्पर-मैत्री का अवसर मिलता।

शिविर के आयोजनकर्ताओं की इस शिविर के बारे में जैसी कल्पना थी, वैसा शिविर नहीं हुआ। पूरे बिहार से शिक्षकों के शामिल होने की आशा थी, लेकिन कुछ जिलों के ही शिक्षक आये, जो निम्नानुसार है दरभंगा २७, भागलपुर १, मुजफ्फरपुर ४, सारण ६, चम्पारण १, मुंगेर १। महाविद्यालयों से ५, उच्चतर विद्यालयों से २२, बुनियादी विद्यालयों से ७, तथा शिक्षक प्रशिक्षक विद्यालयों से ६ शिक्षक आये। कुल ४० शिविरार्थी थे। इस प्रकार यह शिविर राज्य-स्तर का न होकर क्षेत्रीय स्तर का शिविर ही रहा। शिविर-आयोजकों को यह महसूस हुआ कि आगे शिविरों का आयोजन छोटे क्षेत्रों का ही होना चाहिए।

भोजन आदि के खर्चे का भार कई संस्थाओं तथा लोगों ने मिलकर उठा लिया था।

२६ जून को श्री रामश्रेष्ठ राय की अध्यक्षता में शिविर का समापन-समारोह सम्पन्न हुआ। शिविरार्थियों ने अपने हृदय के उद्गार प्रकट किये कि काफी ऊँचे स्तर की बौद्धिक खुराक उन्हें मिली है और उनका आकर्षण इस आन्दोलन की ओर हुआ है।

श्री धीरेन्द्र मजुमदार ने अपने समारोप-भाषण में कहा कि यह सर्वोदय की क्रान्ति साधनों की नहीं, सम्बन्धों की क्रान्ति है। अगर साधनों की क्रान्ति हुई, विपुलता बढ़ी और सम्बन्ध नहीं बदले तो संघर्ष की स्थिति ही पैदा होगी। उसमें से शान्ति की स्थापना नहीं होगी। उन्होंने कहा कि जो शिक्षक समुदाय १० रुपये की महँगाई के लिए आन्दोलन कर सकता है वह अपनी मुक्ति के लिए क्यों न आन्दोलन खड़ा करे?

श्री रामश्रेष्ठ राय ने प्राथमिक पाठशालाओं में शान्ति-सेना की स्थापना पर जोर दिया और कहा कि उसका चाहे जो भी नाम दिया जाय। समस्तीपुर अनुमण्डल में तरुण शान्ति सेना का सुनियोजित कार्यक्रम चले, ऐसी उन्होंने अपनी आकांक्षा व्यक्त की। इसके लिए उन्होंने अपना पूरा सहयोग देने का निश्चय बताया।

शिविर की समाप्ति इस संकल्प के साथ हुई कि सब अपने अपने विद्यालय में तरुण शान्ति-सेना का संगठन करेंगे। —कृष्णकुमार

राँची में दूसरा प्रखंडदान

अपेक्षित गति से काम को आगे बढ़ाने का प्रयास जारी

बिहारदान की मंजिल तक पहुँचने में सबसे कठिन क्षेत्र छोटानागपुर मनुमण्डल साबित हो रहा है। राँची जिला इस कठिन चढ़ाई में कठिनतम माना जा सकता है। लेकिन इस जिले में भी जून के आखिरी सप्ताह में दूसरा प्रखण्डदान-बुण्डू-घोषित हुआ। इसके पूर्व बोलवा नामक प्रखण्डदान हो चुका है। बिहार ग्रामदान-प्राप्ति समिति के सहमंत्री श्री कैलाश प्रसाद शर्मा से हुई बातचीत के अनुसार यद्यपि अभी आदिवासी नेता अनुकूल नहीं हो पाये हैं, और अपेक्षित गति से काम आगे नहीं बढ़ पा रहा है। ३० जून को आदिवासी लोगों की विशेष परिस्थिति को सामने रखकर ग्रामदान अधिनियम में संशोधन करने हेतु सम्बन्धित अधिकारियों की एक बैठक राँची में ही आयोजित की गयी। इस क्षेत्र में काम कर रहे बिहार के लगभग १०० ५मिरतीयों की द्विदिवसीय बैठक २, ३ जुलाई को इस समस्या पर सामूहिक चिंतन हेतु आयोजित की गयी। इस प्रकार काम को अपेक्षित गति से आगे बढाने का प्रयास जारी है।

हजारीबाग जिलादान-अभियान

हजारीबाग जिले में जिलादान-अभियान तीव्र गति से चल रहा है। पटना जिले से ३० कार्यकर्ता तथा गया से २० कार्यकर्ता ग्रामदान-प्राप्ति समिति की मदद करने के लिए पहुँच गये हैं। ग्रामदान अभियान का काम विशेष जोर देकर किया जा रहा है, ताकि १५ जुलाई ६९ तक जिलादान का काम अवश्य सम्पन्न हो।

उपायुक्त श्री प्रभात कुमार मिश्रजी ने इस जिले के सभी प्रखण्ड विकास पदाधिकारी से ग्रामदान में पूरा-पूरा सहयोग देने के लिए परिपत्र जारी किया है। इसी तरह का परिपत्र डा० रामाशीष सिंह, जिला शिक्षा पदाधिकारी ने भी जारी किया है तथा इस जिले के सभी शिक्षा-प्रसार पदाधिकारीगण से अनुरोध किया है कि ग्रामदान के काम में वे सक्रिय सहयोग दें। अभी तक हर जिले के ४२ प्रखण्डों में से १३ प्रखण्डों का प्रखण्डदान घोषित हो चुका है। शेष २९ प्रखण्डों का दान आगामी १५ जुलाई '६९ तक होने की आशा है। यह स्मरणीय है कि आचार्य विनोबा ने गत मई '६९ तक इस जिले का जिलादान होने की आशा रखी थी, परन्तु कार्यकर्ताओं के अभाव में यह पूरा नहीं हो सका।

—श्याम प्रकाश सिंह
संयोजक,
जिला ग्रामदान-प्राप्ति समिति, हजारीबाग

सीकर (राजस्थान) जिले में ग्रामदान-अभियान

राजस्थान के सीकर जिले में ८ से १३ जुलाई तक दो प्रखण्डों—माधुपर तथा खण्डेला—में ग्रामदान-अभियान चलाया जायगा। श्रीमती सौरी बहन के पत्रानुसार इसी जिले के नीमका थाना में सभाओं के संगठन का अभियान भी चल रहा है। अब तक ३३ ग्राम-सभाएँ बन चुकी हैं।

जयपुर जिला सर्वोदय-मंडल का संकल्प

जयपुर (डाक से), २६ जून। गांधी-शताब्दी के विभिन्न कार्यक्रमों के मध्य जयपुर जिला सर्वोदय-मंडल ने अपनी विशेष बैठक में यह संकल्प जाहिर किया कि गांधी-जयन्ती तक जयपुर जिले की समस्त पंचायत-समितियों में ग्रामदान के विचार का प्रचार किया जायेगा तथा सब तहसीलों में ग्रामदान के संकल्प प्राप्त किये जायेंगे।

जिला सर्वोदय-मंडल ने अहिंसा एवं लोकतंत्र में विश्वास रखनेवाले सब भाई-बहनों को आमंत्रित किया है कि वे ग्रामदान-अभियान में समय और शक्ति लगायें। इसके लिए हर प्रखण्ड में जुलाई माह से अभियान प्रारम्भ किया जायेगा। प्रारम्भिक तैयारियाँ चालू हो गयी हैं।

रतलाम (म० प्र०) में जिलादान की तैयारी

श्री मानव मुनि के पत्रानुसार रतलाम जिले में जिलादान की हवा बनाने के लिए प्रथम चरण में रतलाम, बाजना, और सैलाना प्रखण्डों में प्रखण्डस्तरीय शिविर सम्पन्न हुए। इन शिविरों में मुख्यतः सरपंच, सचिव, पटवारी, ग्रामसेवक तथा शिक्षकों ने भाग लिए। मध्य प्रदेश गांधी स्मारक निधि के संचालक श्री काशिनाथ त्रिवेदी का मार्गदर्शन मिला। शिविरों के बाद अभियानों का भी सिलसिला चला। लगभग १२५ प्रतिनिधियों ने प्रत्येक शिविर में भाग लिया।

सर्व सेवा संघ का कैम्प कार्यालय

सर्व सेवा संघ का कैम्प कार्यालय गोपुरी, वर्धा (महाराष्ट्र) में शुरू हुआ है। सबसे प्रार्थना है कि कृपया आगे से ग्रामदान आन्दोलन, संगठन एवं मंत्री से सम्बन्धित पत्र व्यवहार गोपुरी के निम्न पते पर करने का कष्ट करें:

सर्व सेवा संघ,
कैम्प कार्यालय,
गोपुरी, वर्धा (महाराष्ट्र)
फोन नं० : ४१
तार : 'सर्वसेवा'

Sarva Seva Sangh,
Camp office,
Gopuri, Wardha,
(Maharashtra)

—ठाकुरदास बंग
मंत्री

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ४१

सोमवार १४ जुलाई, '६९

अन्य पृष्ठों पर

अन्य स्तम्भ

परिशिष्ट

जबतक कोई सेवा में आनन्द का अनुभव न करे, सेवा का कुछ अर्थ नहीं हो सकता। वह जब दिखावे के लिए अथवा जनमत के भय से की जाती है तब वह व्यक्ति को नीचे गिराती और उसकी आत्मा का हनन करती है। —मो० क० गांधी

बिना श्रम खाये, चोर कहाये

'मुझे खाने के लिए काम करने की जरूरत ही नहीं है, तो फिर मैं क्यों कातूँ ?'—यह सवाल पूछा जा सकता है। चूँकि जो चीज मेरी नहीं है उसे मैं खा रहा हूँ, इसलिए कातना चाहिए। मैं अपने देशवासियों की लूट पर गुजर कर रहा हूँ। पता लगाइए कि आपकी जेब में एक-एक पाई जो आती है, वह कैसे और कहाँ से आती है। तब मैं जो लिख रहा हूँ, उसकी सच्चाई आपकी समझ में अच्छी तरह आ जायेगी।

मुझे नंगों को जिन कपड़ों की उन्हें जरूरत नहीं वे कपड़े देकर, और जिस काम की उन्हें अत्यन्त आवश्यकता है वह न देकर, उनका अपमान नहीं करना चाहिए। मैं उन पर कृपा करने का पाप नहीं करूँगा। परन्तु यह जान लेने पर कि उन्हें दरिद्र बनाने में मैंने भी मदद की है, मैं न तो उन्हें टुकड़े डालूँगा और न उतरे हुए कपड़े दूँगा, बल्कि अपना अच्छे-से-अच्छा भोजन, वस्त्र उन्हें दूँगा और उनके साथ काम में शरीक होऊँगा।[1]

सेवा की जड़ में जबतक प्रेम या अहिंसा न हो, तबतक सेवा नहीं हो सकती। सच्चा प्रेम महासागर की भाँति असीम होता है और हमारे भीतर ही-भीतर उठता और उमड़ता हुआ बाहर फैल जाता है तथा सारी सीमाओं और सरहदों को पार करता हुआ पूरी दुनिया को व्याप्त कर लेता है। साथ ही यह सेवा शरीर श्रम के बिना भी असम्भव है, जिसे गीता ने दूसरे शब्दों में यह कहा है। जब कोई स्त्री या पुरुष सेवा के खातिर शरीर-श्रम करता है, तभी उसे जीने का हक मिलता है।[2]

मेरे विचार से यज्ञ के रूप में कताई ही सबसे उपयुक्त और अपनाने लायक शरीर-श्रम हो सकता है। मैं इससे अधिक पवित्र या राष्ट्रीय अन्य किसी वस्तु की कल्पना नहीं कर सकता कि हम सब घण्टे भर रोज वही परिश्रम करें, जो गरीबों को करना पड़ता है और इस प्रकार हम उनके साथ और उनके द्वारा सारी मानव जाति के साथ एक हो जायँ। मैं इससे अच्छी ईश्वर पूजा की कल्पना नहीं कर सकता कि उसके नाम पर गरीबों के लिए मैं भी उसी तरह श्रम करूँ, जैसे वे करते हैं। चरखे में दुनिया की दौलत का अधिक न्यायपूर्ण बँटवारा निहित है।[3]

मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि गरीबों के लिए छोटा-सा यज्ञ करके उन्हें कुछ तो बदला दीजिए। कारण, गीता कहती है कि जो यज्ञ किये बिना खाता है, वह चोरी करता है। हमारे युग का और हमारे लिए यह यज्ञ चरखा ही है। मैं नित्य ही इसकी चर्चा करता हूँ और इसके विषय में लिखता रहता हूँ।[4]

मो० क० गांधी

(१) 'यंग इंडिया' : १३-१०-'२१, (२) २०-६-'२८, (३) २०-१०-'२१, (४) २०-१-'२७।

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : [illegible]

सम्पादक के नाम चिट्ठी

जयप्रकाश बाबू की परेशानी

अभी दिल्ली में 'गांधी-जन्म शताब्दी उत्सव' की एक समिति में जयप्रकाश नारायणजी ने कहा है कि वर्तमान सरकार गरीबों की समस्याएँ हल करने में असफल रही है, वह राजनेताओं के चंगुल में फँस गयी है। ऐसी दशा में नक्सलवादी जो कुछ कर रहे हैं वह ठीक कर रहे हैं। इस आशय की बात कहकर उन्होंने नक्सलवादियों का समर्थन किया है। यह सुनकर क्या गांधीवादी और क्या दूसरे जिम्मेदार भारतीयों को सआश्चर्य दुःख हुआ होगा। यह एक ओर जहाँ यह दिखलाता है कि देश की वर्तमान शासन-व्यवस्था इस कदर ढीली हो गयी है कि जयप्रकाश बाबू जैसे अहिंसा में आस्था रखनेवाले और धैर्यवान् समझदार नेता का भी धीरज छूट गया, वहाँ दूसरी ओर सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो कहना पड़ता है कि अहिंसा पर उनकी आस्था वैसी नहीं थी जैसी गांधीजी की थी और विनोबाजी की है।

राणा प्रताप भी आखिर धीरज छोड़ बैठे थे। और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनमें बड़े सूरमा-महारथी, तपस्वी भी अपने निश्चित पथ से विचलित हो गये। इस दृष्टि से देखें तो जयप्रकाश बाबू की वर्तमान दुःखाभिभूत मनःस्थिति के साथ सहानुभूति ही होती है। परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि मजबूर होकर ही सही यदि हम नक्सलवादी पन्थ का अनुसरण करते हैं तो हम अहिंसा की हार मान लेते हैं। पर क्या अहिंसा की हार मान लेने का समय आ गया है? क्या भारत में जितने भी गांधी-भक्त या अहिंसावादी माने जाते हैं उन्होंने भारत की समस्याओं को हल करने के लिए अपना सारा अहिंसात्मक बल या आत्मबल लगाकर देख लिया? मेरी राय में अहिंसा के शस्त्रागार के एक भी शस्त्र से हमने अभी डटकर काम नहीं लिया। मुझे आश्चर्य होता है कि जबतक हम एक व्यक्ति भी, किसी काम में अपनी पूरी शक्ति नहीं लगा दें, तबतक हम कैसे कह सकते हैं कि हम असफल या निराश हो गये। जयप्रकाश बाबू को यह राय तबतक क्यों बना लेनी चाहिए जबतक कि वे और उनके साथी गरीबों की समस्याएँ सुलझाने में प्राण तक की बाजी नहीं लगा देते। मेरी जानकारी में गांधीवादियों ने नशाबन्दी के सिलसिले में सिर्फ राजस्थान और उत्तरप्रदेश में ही सविनय अवज्ञा या अनशन-जैसे कष्ट सहने के मार्ग का थोड़ा-बहुत सहारा लिया। अलबत्ता मुझे यह विश्वास था कि यदि श्री सुखाड़ियाजी या उनकी सरकार सहानुभूति, साहस, दृढ़ता से काम नहीं लेती तो राजस्थान में ऐसे लोग हैं जो जान की बाजी लगाये बिना पीछे नहीं हटते। अतः मेरी राय से जयप्रकाश बाबू ने आवेग में कहकर नक्सलवादियों का समर्थन किया। वह या तो क्षणजीवी है और या, उन्हें फिर से इस पर गहराई से सोचने की आवश्यकता है। नक्सलवादी-पथ पर चलने के बजाय यदि जयप्रकाश बाबू 'कष्ट-सहन' और 'करो या मरो' का मंत्र देश में फूंकें और कष्ट-सहन और अन्त में स्व-मरण के मार्ग पर चलने का आह्वान करते तो उनकी अपील खाली नहीं जाती।

मैं निश्चित रूप से मानता हूँ कि अभी हमने देश की समस्याओं से टकराने के लिए 'कष्ट-सहन' की दिशा और 'मरण' के मार्ग पर चलने का कोई प्रायोजन ही नहीं बनाया है, उसका प्रयोग तो दूर। इसलिए यह अहिंसा की हार तो है ही नहीं, स्वयं जयप्रकाश बाबू की भी हार नहीं, जो शायद उन्होंने अपने मन में मान ली हो।

जहाँ तक सरकार की विफलता और कमियों का सम्बन्ध है, मेरी यह निश्चित राय बनती जा रही है कि वर्तमान सरकार ही नहीं, कोई भी सरकार, क्रान्तिकारी कदम नहीं उठा सकती। क्योंकि हर सरकार या शासन-व्यवस्था अपने संविधान और नियम-से बँधी रहती है और उनकी सीमाओं में ही वह कुछ शासन के अलावा सुविधा और निर्माण-विकास का कार्य कर सकती है। समाज के कल्याण के प्रति वह कितनी ही जागरूक हो, समाज में कोई युगान्तर क्रान्ति नहीं ला सकती। अतएव यह उचित नहीं होगा कि पहले तो हम उससे वे आशाएँ रखें जो नहीं रखी जा सकतीं या नहीं रखनी चाहिए और फिर उनके न कर पाने की अवस्था में उसे कोसते रहें। इससे स्थापित सरकार को न कोई बल मिल सकता है और न जनता को क्रान्तिकारी कदम उठाने की प्रेरणा।

मुझे विश्वास है कि जयप्रकाश बाबू अपने उद्गारों पर पुनर्विचार करेंगे और देश को अहिंसात्मक क्रान्ति के पथ पर शीघ्रता से चलने का आह्वान करेंगे।

हटुण्डी : २६-६-'६६ —हरिभाऊ उपाध्याय

"गाँव की बात" का पृथक् प्रकाशन

अपनी उम्र के चौथे वर्ष में "गाँव की बात" अब प्रेस-रजिस्ट्रार द्वारा "गाँव की आवाज" नाम से स्वीकृत होकर "भूदान-यज्ञ" से पृथक् स्वतंत्र पाक्षिक के रूप में प्रकाशित होने जा रही है। उसका नया अंक संयुक्त रूप में १५ अगस्त को प्रकाशित होगा। "भूदान-यज्ञ" अब अगस्त से बराबर १६ पृष्ठों का प्रकाशित हुआ करेगा। इससे हम आन्दोलन के अधिकाधिक समाचार प्रकाशित करने में समर्थ हो सकेंगे। इस प्रकार "भूदान-यज्ञ" के पाठकों को "गाँव की बात" का परिशिष्ट नहीं मिलेगा। अब "गाँव की आवाज" के लिए उन्हें अलग से वर्ष भर के लिए ४ रुपये चन्दा भेजना होगा।

हम अपने सहृदय पाठकों और कार्यकर्ता साथियों से आशा करते हैं कि वे "गाँव की आवाज" को पूरी आत्मीयता से अपनायेंगे। — व्यवस्थापक

दस दिन का अचरज !

एक उत्साही, सेवाभावी, युवक इंजिनियर, जिन्होंने अमेरिका में बरसों रहकर इंजिनियरी सीखी है, पटना में गंगा-पुल बनाने तथा इसी तरह के निर्माण कार्यों के लिए अपनी एक नयी योजना बना रहे थे। योजना अच्छी थी। वह चाहते थे कि सरकार उनकी योजना पर विचार करे, और निर्माण के लिए नये तरीके अपनाये, ताकि देश की पूंजी और विशेषज्ञों की प्रतिभा का ज्यादा अच्छा इस्तेमाल हो सके। उनकी उत्साह भरी बातें सुनकर मैंने कहा: 'लेकिन यह तो बताइए, बिहार में सरकार कहाँ है? दस दिन का अचरज था, वह भी समाप्त हो गया।' बोले: 'समझ में नहीं आता कि इस तरह कैसे काम होगा?' 'यह राजनैतिक इंजिनियरिंग है। आपने सिविल इंजिनियरिंग सीखी है,' मैंने जवाब दिया।

उन्होंको क्या, जिनकी समझ में हमारी यह राजनीति आ रही है? पटना के अंतःपुर में कब क्या उलट फेर होगा, इसे कौन जानता है? और, जानकर भी क्या करेगा? जो जनता सरकार बनाने के लिए वोट और चलाने के लिए टैक्स देती है, वह सिर्फ सुन लेती है कि एक राम आये, और दूसरे राम गये। बस इतना सुनकर वह अपने धन्धे में लग जाती है। क्या करे, किसके पास जाय अपनी बात कहने? कौन सुने, कौन समझे, कौन कुछ करे? वस्तुतः बिहार में सरकार है ही नहीं। समाज अपने संस्कार से चल रहा है। जितना चल सकता है, चल रहा है। प्रशासन जर्जर हो गया है, विकास ठप्प है। लेकिन कौन सोचनेवाला है कि देश और बिहार की समस्याएँ दिनोंदिन घनी होती चली जा रही हैं, और एक-एक दिन जो बीत रहा है वह उन्हें हल करने का ऐसा समय जा रहा है जो लौटकर नहीं आयेगा। समस्याओं को टालना हिंसक विस्फोट के लिए खुला आमंत्रण देने के बराबर है। लेकिन हमारे नेता अपनी करनी से हिंसा को आमंत्रण देने में कोई बात उठा नहीं रख रहे हैं।

भारत नेताओं की नाट्यशाला है, या राजनैतिक चिड़ियाघर? हर राज्य की अपनी राजनीति है, लेकिन ऐसा नहीं दिखाई देता कि कहीं की राजनीति ने जनता की समस्याओं का कोई सही और रचनात्मक हल निकालने की शक्ति दिखाई हो। देश में धर्म, जाति, भाषा, परम्परा आदि के भेद तो थे ही, अब तो यह कहना भी कठिन हो रहा है कि देश राजनैतिक दृष्टि से भी एक रह गया है या नहीं। हमारी राजनीति साफ साफ राष्ट्रविरोधी हो गयी है।

दल अनेक हैं, उनके चोंच और उनकी घोषणाएँ भी अनेक हैं, लेकिन राजनीति सबकी एक है। अंतर है नाम का; कर्म और गुण सबके समान हैं। इन दलों ने सौदेबाजी को ही राजनीति का नाम दे रखा है। राजनीति क्या है, सत्ता सौदागरों की खरीद-बिक्री है। जनता द्रौपदी है जो खुद जुए में शरीक नहीं है, लेकिन उसके संरक्षकों ने उसे दाँव पर लगाने का अपना अधिकार मान लिया है।

यह ऐसी असह्य स्थिति है जिसे आगे स्वीकार करने से जनता को खुलकर इनकार करना चाहिए। लेकिन वह इनकार कैसे करेगी? जुलूस, नारे, सभा और खोखली ललकार, यह तरीका 'प्रोटेस्ट' का प्रचलित है। इस तरह के विरोधी प्रदर्शन तो हम बाईस साल से देख रहे हैं। इनसे क्या होता है? अनीति अपनी जगह चलती रहती है और नारे अपनी जगह लगते रहते हैं। दलों की आपसी होड़ ने सार्वजनिक जीवन को तो भ्रष्ट किया ही, जिस सरकार में वे घुसना चाहते हैं उसे भी निकम्मा कर डाला, यहाँ तक कि हम गृहयुद्ध और देशव्यापी अराजकता के नजदीक पहुँच गये हैं। समाज के संस्कार लगभग टूट चुके हैं। ऐसी कोई शक्ति नहीं दिखाई देती जो समाज को धारण कर सके।

प्रश्न है: हमें और आपको क्या करना है? पहली चीज है कि हम राष्ट्रपति से कहें कि वह बिहार में अपना शासन कायम रखें। जनता को अधिकार है कि वह अपने लिए संविधान का संरक्षण प्राप्त करे। लोकतंत्र का नारा निरर्थक है। दलतंत्र लोकतंत्र नहीं है। लोकतंत्र का चीर-हरण करनेवाले उसके रक्षक नहीं माने जा सकते। दूसरी बात यह है कि इस सारी व्यवस्था से हमारी स्पष्ट अस्वीकृति प्रकट होनी चाहिए। वह कैसे होगी? उसका एक ही उपाय है। वह यह कि हम नयी व्यवस्था बनाने में तुरन्त लग जायँ। नयी व्यवस्था की शुरुआत करने के लिए पटना का मुँह जोहने की जरूरत नहीं है। जरूरत है पड़ोसी के साथ मिलकर नींव में पहली ईंट फौरन रख देने की। फिर तो ईंट पर ईंट जुड़ती जायगी और देखते-देखते दीवाल बनकर खड़ी हो जायगी।

हमारा 'ग्राम-स्वराज्य' उस नयी व्यवस्था का ही नाम है। कोई कारण नहीं कि गाँव अपने नित्य के जीवन को सरकार के दायरे, और राजनीति के प्रपंच से बाहर न निकाल ले। हम मान लें कि सरकार-शक्ति टूट चुकी है, उसकी जगह हमारी सहकार-शक्ति प्रकट होनी चाहिए।

एक एक गाँव में ग्रामसभा बने जो गाँव की व्यवस्था और विकास की जिम्मेदारी ले ले। सहकार शक्ति की स्वायत्त इकाइयों के रूप में हजारों की संख्या में ग्रामसभाएँ बननी चाहिए। उनके बनने से समाज में नया आत्म-विश्वास पैदा होगा, और वह नीचे की ओर तेजी से फिसलने से रुक जायगा। अगले आम चुनाव में इन्हीं संगठित ग्रामसभाओं के प्रतिनिधि सरकार में जाने चाहिए, न कि राजनैतिक दलों के। अब सरकार दलमुक्त होकर ही समाज के काम की हो सकती है।

यह प्रचलित अर्थ में 'विरोध' नहीं है, नयी रचना है जो आज की राजनीति से मुक्त है। लोकजीवन की शक्ति लोकनीति में है, राजनीति में नहीं। यह बात अब जनता की समझ में आ जानी चाहिए।

बिहार में राजनीति का टूटना इस अर्थ में शुभ हो सकता है कि लोकनीति के लिए रास्ता साफ हो गया है। इस अवसर पर ग्राम-स्वराज्य की क्रान्तिकारिता प्रकट करने का पूरा प्रयास होना चाहिए।●

अहिंसक क्रान्ति के लिए दान दें

—व्यापारी-वर्ग से विनोबा की अपील—

मैं सबसे मिलता रहता हूँ, भूमिवानों से मिलता हूँ, भूमिहीनों से मिलता हूँ, मजदूरों से मिलता हूँ विद्यार्थियों से मिलता हूँ, शिक्षकों से मिलता हूँ, राजनीतिक पार्टियों से मिलता हूँ, धार्मिक संस्थाओं से मिलता हूँ और उसी प्रकार से व्यापारियों से भी मिलता हूँ। यह मेरा हृदय-सम्पर्क का कार्य है। यह मेरा स्वभाव है।

सन् १९५४ में मैं यहाँ आया था। उस समय भी व्यापारियों की एक सभा हुई थी, जिसमें मैंने संपत्तिदान के बारे में समझाया था, जैसे कि भूदान के बारे में समझाता हूँ। और कहा था कि आज एक दिन यहाँ आया हूँ और कल यहाँ से चला जाऊँगा तो आप लोगों से यानी जो व्यापारी वहाँ इकट्ठा हुए थे और जिनको मैंने विचार समझा दिया था, उनसे अभी कोई धन लूँगा नहीं। मैंने विचार समझा दिया है। आप उस पर सोचें और उचित लगे तो संपत्तिदान में अपना हिस्सा दीजिए। उसी दिन दोपहर को कुछ लोग मेरे पास आये और कहने लगे कि बाबा का यह रवैया अगर मालूम होता तो बहुत ज्यादा लोग सभा में आते। उन्हें भय था, इसलिए वे आये नहीं। तो बाबा ऐसा अभयदान देता है। उस दिन जो अभय-वचन हमने दिया था, वह आज भी कायम है।

अब इस वक्त मैं यहाँ आया हूँ और आपसे विशेष आशा रखता हूँ। पहले उसका विशेष कारण क्या है, वह बताऊँगा। और फिर आशा किस काम के लिए रख रहा हूँ, यह भी बताऊँगा। इस वक्त बाबा बहुत चिंतित है कि व्यापारियों की प्रतिष्ठा आज भारत में समाप्त सी है। अजीब-सी बात है कि व्यापारियों के बिना समाज का चलता नहीं और उनको गाली दिये बिना भी उसका चलता नहीं। हर कोई व्यापारियों को गाली देता है और आज समाज की परिस्थिति ऐसी भी नहीं कि व्यापारियों को जो शक्ति है, संगठन की जो कुशलता है और उनके पास जो संपत्ति है उसका उपयोग व्यापारियों की शक्ति के अभाव में कर सकें। वहाँ तक समाज आज भारत में पहुँचा नहीं है। इसलिए व्यापारियों की आवश्यकता मान्य है और इधर उनको गालियाँ भी देते रहते हैं।

व्यापारी गालियों से डरता नहीं। लेकिन हमको जो लक्षण दीख रहे हैं, वे यह हैं कि हिन्दुस्तान में 'ब्लडी-रिवोल्यूशन' (रक्त-क्रान्ति) की तैयारी की जा रही है। उससे भी बाबा को दुःख नहीं है। इसलिए बाबा ने कई दफा जाहिर किया है कि आज की परिस्थिति के बजाय खूनी क्रांति बाबा पसन्द करेगा। आज जो 'स्टेटस-को' (यथास्थिति) है वह असह्य है। दरभंगा जिले में आज किसान की आमदनी सबसे नीचे स्तर की बात कह रहा हूँ–प्रति आदमी ३॥ आने है। यानी पाँच मनुष्यों के परिवार के लिए १७॥ आने। तो महीने के ६॥ रु० और साल के ७५ रु०। अब ७५ रु० साल में परिवार का कैसे चलेगा ! बिलकुल देह और आत्मा इकट्ठा रखना, इससे अधिक की अपेक्षा नहीं रख सकते। और वह भी कैसे बनेगा यह भारत के दरिद्र लोग ही जानें। दूसरे तो कल्पना भी नहीं कर सकते। अशक्य है कल्पना करना। लोग ऐसी परिस्थिति सहन करते रहें, जो मजदूरी कर रहे हैं और जिनकी मजदूरी पर हमको खाना मिलता है, वे यह सहन करते रहें, यह बात सहने करने लायक नहीं। वे डरेंगे या उनकी ओर से लोग खड़े होंगे और खूनी क्रान्ति होगी तो बाबा को कतई दुःख नहीं होगा।

लेकिन यह सम्भव नहीं हिन्दुस्तान में आज। जबतक हिन्दुस्तान में सेना है, तबतक यह सम्भव नहीं। मैं नक्सालबाड़ी के नजदीक १०-१२ मील के फासले पर गया था। तब वहाँ उन लोगों को यह बात समझायी थी। वहाँ तो सारे आदिवासी लोग हैं। उनके हाथ में हमेशा धनुष-बाण रहता है और वे इतना बराबर बाण मारते हैं कि मनुष्य मर ही जाता है। अर्जुन के वे उत्तम शिष्य हैं और रामचन्द्र के भक्त हैं। भारत में दो धनुर्धारी प्रसिद्ध हैं—एक, धनुर्धारी रामचन्द्र और दूसरा, अर्जुन। मैंने उनको समझाया कि तुम्हारे हाथ में जो यह शस्त्र है वह त्रेता-युग का है। और तुमने वोट देकर जो सरकार बना रखी है, उसके हाथ में सेना है। रामचन्द्र ने राक्षसों को जीता, क्यों कि राक्षसों के पास धनुष-बाण नहीं था। आज सरकार के पास सेना है। वह सेना आपके धनुष-बाण को खतम कर सकती है, इसलिए यह कार्य मूर्खता का है। जबतक सेना का अधिकार आपने सरकार को दिया हुआ है तबतक आपकी क्रान्ति असम्भव है। अब यह अलग बात है कि देहात-देहात में सरकार बने, जो लोगों की सरकार हो, तो अलग बात है। अन्यथा यह कार्य नाटक मात्र है। वह नहीं सधेगा। और यह सबसे खराब अवस्था है। क्योंकि 'ब्लडी रिवोल्यूशन' (रक्त-क्रान्ति) हो या न हो, झगड़े चलते रहेंगे और यह रहेगा तो भारत की अत्यन्त दुर्दशा होगी और भारत पर परदेश का आक्रमण होगा।

अब व्यापारियों को इस आन्दोलन में आने की सद्‌बुद्धि हो और वे थोड़ा-सा दान इसमें दें। दान तो वे देते ही हैं, लेकिन समाज का स्वरूप बदलने के लिए दान दें। इसलिए मैं अपेक्षा करता हूँ कि यह जो सामाजिक अहिंसक क्रान्ति का, अहिंसक तरीके से समाज का स्वरूप बदलने का काम हो रहा है, इसमें आपका सहकार हो। आपके पास से मैं क्यों दान माँगता हूँ, उसका विशेष कारण मैंने आपको बताया।

अभी मैं जो यहाँ आया हूँ वह बंगाल के लिए आया हूँ। बंगाल में एक क्षेत्र है—नक्सालबाड़ी, जलपाईगुड़ी और इस्लामपुर-द्वार—उसको मैंने नाम दिया है हिन्दुस्तान का 'बाटलनेक'। उसके एक बाजू पाकिस्तान है और दूसरी बाजू में चीन यानी तिब्बत है। एक बाजू में नेपाल है। असम प्रांत और हिन्दुस्तान को भौगोलिक दृष्टि से जोड़नेवाला यह क्षेत्र है। इसलिए उसका बहुत महत्व है। अगर वह क्षेत्र कमजोर पड़ जाय और हिन्दुस्तान पर परदेश का आक्रमण हो तो असम हिन्दुस्तान से कट जायेगा।

ग्रामदान ग्रामस्वराज्य

इस अंक में स्वस्थ और परिपुष्ट विश्व का दर्शन हो।

इस अंक में

१४ जुलाई, '६६
वर्ष ३, अंक २२] [१८ पैसे

गाँव की मुक्ति–२

मुन्नर की उम्र तेरह-चौदह साल से ज्यादा नहीं होगी। इकहरा बदन, चमकती आँखें, देखने से ऐसा लगता था कि पौधे को पानी मिले तो फूल खिल सकता है। लड़का होनहार था।

मैंने पूछा : "तुम्हारी क्या उम्र है?"

मुन्नर सिर झुकाये खड़ा रहा। शायद इसके पहले उससे इस तरह का सवाल कभी पूछा ही नहीं गया था। कोई ताज्जुब नहीं कि उसके माँ-बाप को भी न मालूम हो कि उसकी क्या उम्र है। मजदूर जन्म के बाद की जिन्दगी को गिनकर क्या करेगा?

"किस दर्जे में पढ़ते हो?"–मैंने दूसरा प्रश्न पूछा।

इस बार मुन्नर बोला, "मालिक के काम से छुट्टी कहाँ कि पढ़ूँ?"

"कुछ पढ़ लेते तो अच्छा होता। तुम पढ़ने लायक तो हो! सोचना।"

"सोचता तो मैं भी हूँ। एक बार बाप ने नाम लिखवा भी दिया था, लेकिन पढ़ नहीं सका।"

"क्यों, क्या बात हुई?"

"बात यही है कि मेरे बाप ने ६० रुपया सहदेव बाबू से किसी समय कर्ज लिया था। अब मुझे उस कर्ज के बदले मालिक के खेत में हलवाही करनी पड़ती है। साल के बाद साल बीतता जाता है लेकिन कर्ज नहीं अदा होता। यह समझिए कि मैं बिका हुआ हूँ। मेरी किस्मत में पढ़ना-लिखना कहाँ! ६० रुपया भी कहाँ मिलेगा कि मेरा गला छूटेगा? और, अगर मिल भी जाय तो पेट कैसे भरेगा?"–मुन्नर ने बात इस तरह कही कि मेरा दिल छू गया।

हलवाही की बात मैंने पहले भी सुनी थी, लेकिन उस वक्त तक मैंने ऐसे किसी लड़के को नहीं देखा था जो 'बिका हुआ' हो। या, देखा भी होगा, तो बहुत ध्यान नहीं दिया। आज मुन्नर को देखा तो गरीबी और गुलामी का चित्र एकसाथ सामने खिंच गया। अगर खोजा जाय तो देश भर में लाखों मुन्नर मिलेंगे जिन्हें बाप-दादा से विरासत में कर्ज मिला है, और हलवाही मिली है। उनकी जिन्दगी अपनी नहीं है। उन्हें सोचना भी नहीं है कि क्या काम करना है, और कहाँ करना है। काम, मजदूरी, मालिक, सब पहले से तय हैं। दासता में कितनी निश्चिन्तता होती है।

इस जमाने में भी मजदूर की गुलामी पर हमारी खेती चल रही है, स्त्री की गुलामी पर गृहस्थी चल रही है, और युवक के दमन पर समाज चल रहा है। कर्ज से, कानून से, डण्डे से, चाहे जैसे हो, अगर मजदूर को कब्जे में न रखा जाय तो खेती ठप हो जाय। अजीब बात यह है कि जो खेत का मालिक है वह भात खायेगा लेकिन धान नहीं रोपेगा। धान रोपेगा मुन्नर, और भात खायेंगे सहदेव बाबू। यह है हमारी खेती में श्रम-विभाजन!

आजकल नारा वैज्ञानिक खेती का लगता है। नये बीज, रासायनिक खाद, और तरह-तरह के यंत्रों की धूम है। लेकिन मेहनत कौन करेगा? मेहनत मुन्नर को करनी है। मुन्नर

के लिए भी कुछ नया करना है, यह कोई सोचता नही। सोचने की जरूरत भी नही समझता। खेती चाहे जैसी हो, जो मालिक है वह मालिक रहेगा, जो मजदूर है वह मजदूर रहेगा।

खेती मे उन्नति नहीं हुई है, यह कौन कहेगा? नये-नये साधन बनते जा रहे हैं, यह हर एक देख रहा है। जहां नहर है, या सिंचाई के नये साधन हैं, वहाँ खेती आगे बढ़ गयी है। २५ साल पहले कौन सोच सकता था कि ऐसे जादू भरे बीज होंगे जिनसे इतनी उपज होगी। इसलिए अगर सरकार अपनी हरी क्रान्ति (ग्रीन रेवोल्यूशन) पर गर्व करती है तो बहुत अनुचित नहीं है। उसने काम किया है तो घमंड भी दिखाती है। लेकिन एक बात सोचने की है। क्या कारण है कि जहाँ हरी क्रान्ति हो रही है वहाँ 'लाल क्रान्ति' (रेड रेवोल्यूशन) भी बढ़ रही है? हरी क्रान्ति और लाल क्रान्ति का ऐसा मेल क्यों है? मालिक चाहता है कि ज्यादा उपज हो तो उसका घर भरे, और मजदूर चाहता है कि जब उसकी मेहनत लगती है तो उसको भी ज्यादा मिलना चाहिए। मालिक थोड़ी मजदूरी बढ़ाने पर राजी हो भी जाता है लेकिन मजदूर केवल मजदूरी नही, बढ़े हुए उत्पादन में अपना हिस्सा भी माँगता है। वह यह भी कहने लगा है कि हिस्सा नहीं देना है तो जमीन दे दीजिए, हम अपनी खेती कर लेंगे। यह कैसे हो सकता है कि खेती तो बदले लेकिन खेती पर जीनेवाले मालिक और मजदूर जहाँ पहले थे वहीं रह जायें? उन्हें भी तो बदलना चाहिए। उनका सम्बन्ध बदलना चाहिए। सम्बन्ध नही बदल रहा है इसीलिए तो हर जगह चुनाव और संघर्ष की हवा बहती हुई दिखाई देती है। जिन्हें हम नक्सलवादी कहते हैं, वे क्या कहते हैं? नक्सलबाड़ी का आदिवासी क्या माँगता था? यह यही तो कहता था कि नये भारत में उसे नयी जिन्दगी मिलनी चाहिए। जब भारत पुराना नही रहा तो पुराने ढंग की जिन्दगी क्यों बितायी जाय? उसकी कोई ऐसी माँग तो थी नहीं जो अनुचित कही जाय, या जो ऐसी ऊँची रही हो कि पूरी न की जा सके। क्या हमारा स्वतंत्र देश अपने नागरिकों को एक टुकड़ा जमीन भी नही दे सकता?

हाँ, मुल्लर की पढ़ाई का सवाल है। कहाँ मिलेंगे ६० रुपये कि मुल्लर का गला छूटेगा और वह पढ़ने जायेगा? मुल्लर के सामने गरीबी और गुलामी, दोनों का सवाल है। उसे दोनों से एकसाथ मुक्ति चाहिए।

कोई ६० रुपये दे दे तो उसका गला छूट सकता है, हालां कि मालिकों को यह बात बहुत नापसन्द होती है कि उनका मजदूर उनके हाथ से छुड़ाया जाय। वे सोचते हैं कि उनके हाथ से मजदूर छुड़ाना वैसा ही अपराध है जैसा उनके खूंटे से बैल खोल लेना। उस दिन मुल्लर कह रहा था कि जब सहदेव बाबू ने सुना कि हमलोग ६० रुपये इकट्ठा कर रहे हैं तो वह मुसहर टोले में आये और बहुत डाँट-फटकार बताने लगे। बार-बार यही कहते रहे कि कर्ज भले ही अदा हो जाय, लेकिन डंडा तो बना ही रहेगा। सहदेव बाबू को अपने पहलवानों और दारोगाजी से दोस्ती पर बहुत भरोसा है। उधर मुल्लर कहता है कि रुपया अदा हो जाय तो चाहे जो हो वह जबरदस्ती काम पर नहीं जायगा। बेचारा मजबूर है बाप के कर्ज से!

मुल्लर स्कूल में जाने भी लगेगा तो खायेगा क्या? सब गुलामियों में सबसे बड़ी गुलामी गरीबी है। अगर कोई ऐसा स्कूल होता जिसमें मुल्लर कमाता भी और पढ़ता भी तो कितना अच्छा होता? मुल्लर की मेहनत भी बनी रहती और वह पढ़ भी लेता।

गरीबी, गुलामी, और अच्छे जीवन की आकांक्षा। इन तीनों का मेल कैसे निभेगा?

"गाँव की बात"

अब

"गाँव की आवाज"

के नाम से

लगातार तीन वर्षों की लिखा-पढ़ी के बाद अब प्रेस-रजिस्ट्रार के यहाँ से "गाँव की बात" का रजिस्ट्रेशन "गाँव की आवाज" के नाम से मिल पाया है। गाँव की बात अब गाँव की आवाज बनने जा रही है। इस परिवर्तन से एक पुराने परिचित नाम के छूटने का कुछ मोह हमें अवश्य हो रहा है, लेकिन कोई भी बात जब आवाज बनती है तब उसमें शक्ति पैदा होती है। हम आशा करते हैं कि गाँव की बात अब गाँव की आवाज बनकर अधिक शक्तिशाली होगी। यह ध्यान देने की बात है कि 'गाँव की आवाज' का प्रकाशन पूरी तरह सार्थक तभी होगा, जब इसे गाँव-गाँव तक पहुँचाने की कोशिश होगी। यह पाक्षिक पत्रिका हर माह की तारीख १ और १६ को प्रकाशित होगी। इसका वार्षिक चन्दा चार रुपये और एक प्रति का मूल्य बीस पैसे रहेगा। —व्यवस्थापक

भूल-सुधार

'गाँव की बात' के पिछले ३० जून '६६ के अंक में पृष्ठ १७३ पर प्रकाशित 'कितने बेकार?' शीर्षक जानकारी में छपी नौवीं पंक्ति में 'देश में सौ में आठ लोग ऐसे हैं' की जगह 'देश में सौ में साठ लोग ऐसे हैं' पढ़ें। भूल के लिए क्षमा करें। —सं०

लाठियाँ उठीं, लेकिन चलीं नहीं

आपसी झगड़े तो लगभग सभी जगह होते हैं, लेकिन बात बात पर लाठी उठ जाने और चल जाने की जितनी घटनाएँ भोजपुर-क्षेत्र में होती हैं, उतनी शायद ही कहीं और होती हों! उसमे भी बलिया और शाहाबाद तो बेमिसाल जिले हैं।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि बलिया-शाहाबाद के लोग सिर्फ लाठी चलाना ही जानते हैं। उनके जीवन में एक खास प्रकार की जो निर्भयता और दिलेरी होती है, वह भी अपने आप में कोई कम महत्त्व की चीज नहीं। तभी तो शाहाबाद के कुंवर सिंह की वीरगाथा और बलिया की सन् '४२ की विद्रोह-शक्ति भारत के इतिहास में इतने महत्त्व का स्थान रखती है।

बलिया ने अपने ऐतिहासिक गौरव को एक बार फिर चमकाया, पिछले साल जुलाई में जिलादान की घोषणा यानी ग्रामस्वराज्य की स्थापना का संकल्प करके। शाहाबाद भी इस दौड़ में पीछे नहीं रहनेवाला है, वहाँ के लोग भी अब जल्द ही इस तरह की घोषणा करनेवाले हैं, काम वहाँ तेजी से चल रहा है।

बार-बार यह सवाल उठता है कि जिलादान के बाद वहाँ क्या हुआ? यह सही है कि जिलादान के बाद जादू के मंतर से तुरन्त कोई बड़ा भारी परिवर्तन नहीं हो जाता, लेकिन परिवर्तन की सम्भावना पैदा हो जाती है, और किसी-न-किसी रूप में कुछ शुरुआत भी हो ही जाती है।

बलिया के बेल्हारबारी प्रखण्ड के एक गाँव सूर्यपुरा की ताजी मिसाल हमारे सामने है। सूर्यपुरा की आबादी लगभग डेढ़ हजार की होगी। ग्रामदानी गाँव है।

पिछले महीने १६ जून को वहाँ प्रखण्ड के प्रमुख व्यक्तियों, समाज-सेवकों, पंचायत के प्रधानों का एक ग्रामस्वराज्य शिविर आयोजित हुआ। प्रखण्ड के विकास-अधिकारी और प्रमुख ने भी शिविर में भाग लिया। ग्राम-स्वराज्य क्या है, उसकी स्थापना गाँव में कैसे होगी, कौन करेगा, गाँव की शक्ति कैसे बनेगी, गाँव से आगे प्रखण्ड, जिला, प्रदेश और राष्ट्रस्तर पर संगठन का क्या स्वरूप होगा, इन विषयों पर लोगों ने बड़ी दिलचस्पी के साथ चर्चा की। चर्चा के लिए सहायक पुस्तिका थी, 'ग्रामस्वराज्य'। इस पुस्तिका में वाराणसी में आयोजित अखिल भारतीय ग्रामस्वराज्य-गोष्ठी में हुई चर्चाओं का सार छपा है। गोष्ठी श्री जयप्रकाश नारायण की अध्यक्षता में हुई थी और उसमे देश के प्रमुख विचारकों ने भाग लिया था।

सूर्यपुरा के इस शिविर में प्रखण्ड के करीब ५० व्यक्तियों ने भाग लिया। शिविर बहुत व्यवस्थित ढंग से चला और भाग लेनेवालों ने महसूस किया कि शिविर आशा से अधिक सफल रहा।

इस शिविर में भाग लेनेवालों को जब आयोजक कार्यकर्ताओं ने एक-दो दिन पहले १४ जून की घटना का बयान किया तो एकाएक किसीको विश्वास नहीं हुआ, लेकिन बात माननी पड़ी, क्योंकि गाँववालों ने भी इसे सही बताया। घटना यों थी :

१४ जून को चुनाव-इन्सपेक्टर वहाँ की मतदाता-सूची की जाँच करने आया। मध्यावधि चुनाव के समय गाँव में भयंकर फूट पड़ी थी, दो दलों में गाँव के लोग बँट गये थे। एक दल के लोगों ने शिकायत कर दी थी कि दूसरे दल की सूची जाली है, नाबालिग लोगों को भी घूस देकर मतदाता बनवाया है, जब कि हमारे दल के बालिगों को भी छोड़ दिया गया है। इन्सपेक्टर आया तो उस दिन कहा-सुनी में बात बढ़ती गयी, यहाँ तक बढ़ी कि लाठियाँ निकल आयीं, जिनके घरों में भाले थे वे भाला लेकर और जिनके घर में बन्दूक थी, वे बन्दूक लेकर 'मारने-मरने पर' उतारू हो गये। सर्वोदय-कार्यकर्ताओं ने बीच-बचाव किया, तो क्रोध में लोगों ने इन्हें भी डाँटा-फटकारा और कहा, "आप लोग जिस काम से आये हैं। वह करें, हमारे बीच दखल नहीं दें।" लेकिन कार्यकर्ता भला इस हालत में अलग कैसे हट जाते। उन्होंने कहा "हमारा काम है ग्राम स्वराज्य की स्थापना का और ग्राम-स्वराज्य की स्थापना तबतक नहीं हो सकती जबतक कि गाँव में फूट हो, गाँव के लोग खुद महाभारत रचायें,

लाठियाँ उठीं, लेकिन चलीं नहीं

और हम ग्राम-स्वराज्य करें, यह कैसे हो सकता है? हमारा पहला काम है आपके बीच अविश्वास, घृणा और वैर-भाव की जो आग जल रही है, उसे बुझाना, इस काम में अगर हम खुद जल जायें तो भी हमें इसकी परवाह नहीं। आप लोगों ने ग्रामदान किया है, कुछ तो सोचना चाहिए?"

आखिर गुस्सा कब तक टिकता? लाठियाँ उठी थीं, लेकिन चली नहीं। लोग शान्त हुए तो ख्याल आया कि परसों यानी १६ जून को ही हमारे यहाँ ग्राम-स्वराज्य का शिविर होनेवाला है। प्रखण्ड भर के लोग आयेंगे, और हमारी आपसी कलह की कहानी सुनकर वापस लौट जायेंगे, तो गाँव की इज्जत कहाँ रहेगी? और गाँव की इज्जत माटी में मिल गयी तो हमारी क्या बची रही? ग्रामदान करते समय तो हमने गाँव अपना परिवार माना था न!

और तब झगड़े भूलकर लोग शिविर के लिए ५० आदमियों के ठहरने, तीन वक्त की नाश्ता-भोजन की व्यवस्था करने तथा गोष्ठी के लिए शामियाना, चौकी, दरी, पेट्रोमैक्स आदि जुटाने में लग गये। जब शिविर १६ जून को शुरू हुआ तो गाँव भर के लोगों ने उसमें भाग लिया। शिविर की सुव्यवस्था को देखकर ही तो शिविर में आनेवाले लोगों को १४ जून की घटना पर विश्वास नहीं हो रहा था। लेकिन जब गाँव हमारा है, हम गाँव के हैं, यह भावना गाँव में पैदा हो जाती है तो ऐसी बातें अक्सर होती हैं, जिन पर जल्दी विश्वास नहीं होता। गाँव के एक होने में ही गाँव की शक्ति छिपी है, इसलिए तो देश के एक लाख से भी अधिक गाँवों के लोगों ने अपने गाँवों का ग्रामदान किया है, और इस प्रकार गाँव को एक और नेक बनाने का बीड़ा उठाया है।

गांधी-संस्मरण

"मैं छोटा-सा सेवक हूँ"

नोआखाली-यात्रा के समय की बात है। गांधीजी चलते-चलते एक गाँव में पहुँचे। वहाँ किसी परिवार में नौ दस वर्ष की एक लड़की बहुत बीमार थी। उसके मोतीझरा निकला था। उसीके साथ निमोनिया भी हो गया था। बेचारी बहुत दुर्बल हो गयी थी। मुझे साथ लेकर गांधीजी उसे देखने गये। लड़की के पास घर की और स्त्रियाँ भी बैठी हुई थीं। गांधीजी को आता देखकर वे अन्दर चली गयीं। वे पर्दा करती थीं।

बेचारी बीमार लड़की अकेली रह गयी। झोंपड़ी के बाहरी भाग में उसकी चारपाई थी। गाँव में रोगी मैले-कुचैले कपड़ों में लिपटे गंदी-से-गंदी जगह में पड़े रहते। यही हालत उस लड़की की भी थी। मैं स्त्रियों को समझाने के लिए घर के भीतर गयी। कहा, 'तुम्हारे आँगन में एक महान संत पुरुष पधारे हैं, बाहर आकर उनके दर्शन तो करो।'

लेकिन मेरी दृष्टि में जो महान पुरुष थे, वह हो उसकी दृष्टि में दुश्मन थे। उनके मन में गांधीजी के लिए रंच मात्र भी आदर नहीं था। स्त्रियों को समझाने के बाद जब मैं बाहर आयी तो देखा, गांधीजी ने लड़की के बिस्तर की मैली चादर हटाकर उस पर अपनी ओढ़ी हुई साफ चादर बिछा दी है। अपने छोटे-से रूमाल से उसकी नाक साफ कर दी है। पानी से उसका मुँह धो दिया है। अपना शाल उसे ओढ़ा दिया है और बड़ा़के की सर्दी में खुले बदन खड़े खड़े रोगी के सिर पर प्रेम से हाथ फेर रहे हैं।

इतना ही नहीं, बाद में दोपहर को दो-तीन बार उस लड़की को शहद और पानी पिलाने के लिए उन्होंने मुझको वहाँ भेजा। उसके पेट और सिर पर मिट्टी की पट्टी रखने के लिए भी कहा।

मैंने ऐसा ही किया। उसी रात को उस बच्ची का बुखार उतर गया। अब उस घर के व्यक्ति, जो गांधीजी को अपना दुश्मन समझ रहे थे, अत्यन्त भक्तिभाव से उन्हें प्रणाम करने आये। बोले, 'आप सचमुच खुदा के फरिश्ते हैं! हमारी बेटी के लिए आपने जो कुछ किया, उसके बदले में हम आपकी क्या खिदमत कर सकते हैं?'

गांधीजी ने उत्तर दिया, 'मैं न तो फरिश्ता हूँ और न पैगम्बर। मैं तो एक छोटा-सा सेवक हूँ। इस बच्ची का बुखार उतर गया, इसका श्रेय मुझे नहीं है। मैंने उसकी सफाई की। उसके पेट में ताकत देनेवाली थोड़ी-सी खुराक गयी, इसलिए शायद बुखार उतरा है। अगर आप बदला चुकाना चाहते हैं तो निडर बनिये और दूसरों को भी निडर बनाइए। यह दुनिया खुदा की है। हम सब उसके बच्चे हैं। मेरी यही विनती है कि अपने मन में तुम यही भाव पैदा करो कि इस दुनिया में सभी को जीने-मरने का समान अधिकार है।' —मनुबहन गांधी

सुखिया की राह : पारवती की चाह

नीलिमा की सउरी की सफ़ाई करने के लिए सुखिया चमा-इन ग्रोर में ग्रायी। सुखिया ने एक मैली-सी साड़ी पहन रखी थी। पारबती की सुखिया पर नजर पड़ते ही वह कह उठी—"ग्ररे! जरा ठहर। इतनी गन्दी साड़ी पहनकर तू सउरी में जायेगी?"

सुखिया—"मेरे पास इस समय के लिए यही साड़ी है, तो मैं दूसरी कहाँ से लाऊँ?"

पारबती—"हर रोज तू ऐसी साड़ी पहनती थी?"

सुखिया—"हर रोज ऐसा क्यों पहनूंगी? यह साड़ी तो मैंने सउरी के लिए ही बचाकर रखी है।"

पारबती—"इसीलिए तो मैं कहती हूँ कि जरा ठहर। मैं इस साड़ी के साथ तुझे सउरी में पाँव नहीं रखने दूँगी। मैं दूसरी साड़ी देती हूँ। उसे ही पहनकर तू सउरी में जायेगी।"

थोड़ी ही देर में पारबती ग्रपने बक्स में से एक धुली हुई साफ साड़ी ले ग्रायी। सुखिया को साड़ी थमाते हुए पारबती ने कहा—"हाथ-पैर ग्रच्छी तरह धोकर यह साड़ी पहन ले ग्रौर ग्रपनी साड़ी मुझे वापस लाकर दे।"

सुखिया—"इसे ग्राप क्या कीजिएगा लेकर?"

पारबती—"मैं इसे किसी खाद के गड्ढे में दबवा दूँगी, ताकि तू किसी ग्रौर की सउरी में इसे पहनकर न जा सके। जिस सउरी में एक नये प्राणी ने जन्म लिया हो, उसमें किसी प्रकार की गन्दगी को पहुँचने देना नासमझी की बात है। सउरी मानो प्रसूति का मन्दिर। जैसे हम मन्दिर में साफ-सुथरा होकर जाते हैं, वैसे ही तुझे भी सउरी में पाक साफ होकर जाना चाहिए।"

सुखिया—"ग्राप जो कहेंगी वह मैं मान लूँगी। मुझे ग्रपने काम से मतलब है। मैं गन्दी साड़ी पहनना पसन्द थोड़े ही करती हूँ। जब से होश हुग्रा, यही देखती ग्रायी हूँ कि सउरी में जाते समय पुरानी साड़ी ही पहनी जाती है।"

पारबती—"मैं पुरानी साड़ी के लिए कब मना करती हूँ? मैं तो मैली साड़ी के लिए कह रही हूँ।"

सुखिया—"सउरीवाली को तेल लगाकर मीजना-मसीना पड़ता है। ऐसे काम में कितने दिन साड़ी ऐसी साफ रहेगी?"

पारबती—"यह मैली होगी तो इसे साफ करने के लिए तुझे साबुन दूँगी। समझदार को इशारे से ही ग्रपने काम की बात समझ लेनी चाहिए। मैं तुझे एक समझदारी की बात सिखा रही हूँ कि चाहे मेरा घर हो या किसी गैर का, लेकिन सउरी में जब भी जाना हो तो साफ-सुथरा होकर जाया करना। सउरी में जच्चा ग्रौर बच्चा, दोनों रहते हैं। गन्दगी के कारण ही जच्चा-बच्चा को प्रसूति के समय बीमारी पकड़ने का डर रहता है। इसीलिए पहले से ही सावधान रहना चाहिए।

सुखिया—"बर-बीमारी तो ग्रपने-ग्रपने करम की बात है। सफाई तो ग्रस्पताल में बहुत रहती है। फिर वहाँ से कभी कभी लोग बीमार होकर काहे ग्राते हैं?"

पारबती—"सिर्फ साफ-सुथरा रहने से कोई बीमारी नहीं होगी ऐसी बात नहीं है। बीमारी के कई ग्रौर भी कारण होते हैं, जैसे शरीर के किसी ग्रंग की कमजोरी या किसी बीमारी के कीटाणु का शरीर में पहुँच जाना। बीमारी के कीटाणु गन्दगी के सहारे ही एक जगह से दूसरी जगह पहुँचते हैं। इसीलिए सफाई से रहना बीमारी से बचने का एक बहुत ग्रासान ग्रौर ग्रच्छा उपाय है।

सुखिया—"ग्राप तो जैसे ग्रामसेविका की तरह मुझे पूरा शास्त्र बताने लगी। ग्राप जैसा कहती हैं वैसा ग्रकेले मेरे चाहने से नहीं होगा। सब लोग ग्रापकी तरह साफ साड़ी लाकर दें तो मुझे पहनने में क्या है?"

पारबती—"यही बात मैं तुझे दूसरी तरह समझाना चाहती हूँ। मैं कहती हूँ कि तुझे ग्रपनी तरफ से हो यह कोशिश करनी चाहिए कि तू सउरी में साफ सुथरी होकर जाया कर। चाहे कोई कहे या न कहे, तेरा काम सही ग्रौर समझदारी के साथ ही होना चाहिए। तू बस इतनी सी बात समझ ले तो मैं तुझे समझदार मान लूँगी।"

सुखिया—"मैं हजार चाहूँ, लेकिन ग्रापकी जैसी समझ मुझे थोड़े ही मिल सकती है?"

पारबती—"यह कौन जानता है कि कौन कितना समझदार होगा? फिर एक बड़ी बात ग्रौर है। एक ऐसी गलती होती है, जिसका नतीजा करनेवाले को स्वयं भोगना होता है। इसे ही कर्म कहते हैं। कर्म का ग्रर्थ पिछले जन्म का कर्म भी होता है, जिसे हमलोग ग्रपना भाग्य कहते हैं। एक गलती

ऐसी भी होती है, जिसे करते तो हम हैं, लेकिन उसका नतीजा भोगना पड़ता है किसी दूसरे को। ऐसी गलती को मैं पाप कहती हूं। किसी लालटेन का शीशा फूट गया। उसे हमने रास्ते पर फेंक दिया और यह नहीं सोचा कि वह किसीके पांव में गड़ जायेगा, तो क्या होगा? ऐसी गलती करना पाप है। तू अगर अपने घर में गन्दी साड़ी पहनती है तो वह और बात है। गन्दी साड़ी पहनकर सउरी में जाती है तो वह पाप है।"

सुखिया— "मैया! हम मूरख हैं। न हम पाप जाने, न पुण्य! जो हमसे कराया जाता है वही हम करते हैं। हम समझदारी की बात कहें तो हमारी कौन मानता है?"

पारबती—"दुर बौरही! घूम-फिरकर तू एक ही बात कहती है। तू मूर्ख नहीं, बड़ी होशियार है। मुझे जो कहना था, कह चुकी। अब तुझे जितना समझ में आये, कर।"

सुखिया—"मैया! आप नाराज मत होइए। आपकी तरह हमसे सीधे मुंह कौन बात करता है? हमको तो बस हुकुम दिया जाता है। हम हुकुम न मानें तो हमारी गलती मानी जाती है। बहुत बातें हमें अच्छी नहीं लगती, लेकिन करते हैं, क्योंकि करना पड़ता है। हमें गन्दी साड़ी पहनने की कोई चाह नहीं है। हमें आप जैसी राह पर चलाइएगा उसी पर मैं चलूंगी। अच्छा लगेगा तो हंसती-गाती चलूंगी, अच्छा नहीं लगेगा तो गुमसुम चलूंगी।" —त्रिशक

ग्राम-गीत

ग्राम है देश का अंश, देश यह विश्व का जानो।
आओ मिल करके सब भाई, मिटाओ पक्षबाजी को। टेक।
सजाओ ग्राम की गलियां, चौक लिखकर वचन वंदे।
कहीं ना चित्र हो गंदे, ग्राम-चारित्र्य बढ़ाने को। १।
शराबी ना जुआरी हो, गंजेठी न गांव में कोई।
व्यभिचारी, गुंडगिरी, हो न, कभी गांव डूबने को। २।
अखाड़ा, स्कूल, मादर्श, पानी का घाट हो शुद्ध।
गोरक्षण, खेति विकसित हो, ग्राम समृद्ध होने को। ३।
बगीचा, वाचनालय हो, प्रार्थना-ध्यान को मंदर।
समिती न्याय की सुन्दर, देव-सन्तन के पूजन को। ४।
तमन्ना है भरी दिल में, सभी भारत का हो उत्थान।
खंजड़ी का सुनो शुभ गान, देश खतरा मिटाने को। ५।
— रामशक्ति

सर्वोदय पात्र के कुछ अनुभव

सर्वोदय-पात्र, जो कभी नहीं भरता

याद आती है बड़ौदा शहर के रावपुरा मुहल्ले की, जहां पल भर में लाखों का व्यापार हो जाता है। आधुनिक जमाने की प्रत्येक चीजों से भरा हुआ यह प्रतिदिन दस घंटे तक शोर मचाता रहता है। शाम को इस रावपुरा से रास्ता पार करना दूभर हो जाता है। इसी रावपुरा के एक मुहल्ले के एक परिवार की यह बात है।

तीसरी मंजिल पर मुकाम, घर में ८ सदस्यों की संख्या। मां बाप के अलावा ६ लड़कियां, लड़का इस घर में नहीं है। बड़ी पुत्री मानसिक रोग से सदा बीमार रहती है, बाकी सब पढ़ती हैं।

अत्यन्त पुराना घर, टूटी हुई सीढ़ियां, इनसे ऊपर पहुंचने तक भय—ऊपर पहुंचते ही घर की मां आदर से बिठाती है और मिट्टी का सर्वोदय-पात्र पेश कर देती है। पात्र से सिक्के निकाले जाते हैं, ज्यादा से-ज्यादा बारह पैसे या पन्द्रह पैसे। मां को इस बात की चिन्ता है कि सर्वोदय-पात्र में पूरे पैसे नहीं डाले जाते!

कभी खाली नहीं लौटा

चारों तरफ खेत, हरीयाली से सजावटमयी धरती, आस-पास में छोटे-छोटे घर—बांस, घास और मिट्टी से बने हुए।

करीब ५५ वर्षीय माताजी का एक ही सदस्य का घर। इस मां ने खुद होकर सर्वोदय पात्र रखना शुरू किया है। पास-पड़ोस में रखवाया भी है।

प्रत्येक सप्ताह वह सर्वोदय-पात्र की वसूली किया करती है, एक भी सप्ताह मुझे खाली नहीं लौटना पड़ा है।

भगवान के कार्य के लिए

एक कोयले के व्यापारी भाई ने अपनी दूकान पर सर्वोदय-पात्र की स्थापना करवायी है। सात-आठ बार उन्होंने विचार सुना, समझा, और नियमित रूप से पात्र में पैसे डालते हैं।

इस व्यापारी भाई पर तेरह सदस्यों की जिम्मेदारी है। विधवा बहन के पूरे परिवार की भी यह भाई मदद करते हैं।

'अप्रैल' माह की वसूली में इनके पात्र में से दो रुपये बाईस पैसे के सिक्के निकले।

"इतने सारे क्यों?"

जवाब था—"भगवान का काम चलाने के लिए आप लेते आये हैं न! भगवान जो डलवाता गया सो डालते गये हैं, आप सब ले लीजिए।"

—काकुभाई दोशी

कूड़े-कचरे से खाद बनायें—३

खाई का भरना

खाई को कम गहराई के सिरे से शुरू करके ढाई या तीन फीट का लम्बा निशान बना लिया जाता है और इस हिस्से में सुबह का इकट्ठा किया हुआ कचरा वगैरा (गोबर, मूत्र से भीगी हुई मिट्टी और कचरा अच्छी प्रकार मिलाकर) डाल दिया जाता है। एक कच्चा परदा जो कपास की छड़ियों या जुवार की कड़बी और दो बाँस के टुकड़ों से बनाया जा सकता है, सुभीते के लिए, खाई के भरे जानेवाले हिस्से को बाकी से अलग करने के लिए काम में लिया जा सकता है। जैसे ही दिन का इकट्ठा किया हुआ गोबर, कचरा वगैरा पहले हिस्से में भर दिये जायँ, वैसे ही ऊपर से फावड़े से हलका-सा दबा दिया जाय और उसको सूखी मिट्टी की आधे इंच मोटी तह से ढंक दिया जाय। कचरे को मिट्टी की तह से ढंकने के पहले उसमें हड्डी का चूरा या राख मिला देने का एक अच्छा तरीका है। इससे खाद में फासफोरिक एसिड बढ़ जाता है और उसकी किस्म भी अच्छी हो जाती है। दूसरे दिन का इकट्ठा किया हुआ गोबर, कचरा वगैरा फिर पहले हिस्से में पहले दिनवाले कचरे पर डाल दिया जाता है और पहले की तरह ही मिट्टी से ढँक दिया जाता है। इस तरह पांच छह रोज तक किया जाता है। जब खाई के पहले हिस्से में कचरे के ढेर की सतह जमीन से डेढ़-दो फीट ऊंची उठ जाय तब फिर ढेर को गुम्बदनुमा बनाकर उसको गोबर और मिट्टी से लीप दिया जाता है। यह लेप एक इंच मोटा होना चाहिए। इस लेप से मक्खियाँ पैदा नहीं होती हैं, तरी और नत्रजन की भी रक्षा हो जाती है। कुछ दिनों बाद यदि कहीं दरार पड़ जाय तो उसको गोबर के लेप से बन्द कर देना चाहिए। खाई का इस प्रकार पहला दो-तीन फीट का हिस्सा भर जाने के बाद उतना ही लम्बा हिस्सा भरना चाहिए और इसी तरह जब तक पूरी खाई भर न जाय, हिस्सेवार भरते जाना जारी रखना चाहिए। खाई को बन्द करने से चार महीने बाद खाद तैयार हो जाती है। यदि एक या दो महीने बाद ढेर जमीन की तह से नीचा हो जाय, तो फिर गोबर, कचरा वगैरा डालकर उसको डेढ़ दो फीट ऊंचा उठा देना चाहिए और पहले की तरह ही गोबर-मिट्टी से लीप देना चाहिए। इस बात की तरफ, खासकर बरसात के मौसम में, ज्यादा ध्यान देना चाहिए, जिससे बरसात का पानी खाई में घुसने न पाये। इस तरीके से बनी खाद में नत्रजन मामूली तरीके से किसानों द्वारा बनायी गयी खाद से करीबन दुगुना (डेढ़ से दो प्रतिशत) होता है।

जमीन के ऊपर ढेर में खाद बनाने का तरीका

यह तरीका, बरसात के मौसम में या उन हिस्सों में जहां कि पानी की सतह बहुत ऊंची हो, और खाइयाँ खोदना संभव न हो, ठीक रहता है। उपर्युक्त सूचनाएं—बाड़े का इंतजाम मूत्र सुखाने के लिए कचरा फैलाना वगैरा इसमें भी पूरी तरह लागू होती हैं, अंतर केवल इतना ही है कि इसमें कचरे को जमीन में खुदी खाइयों में डालने के बजाय जमीन के ऊपर ढेर किया जाता है।

६-१० फीट के एक चौकोर टुकड़े में पत्थर या ईंट जड़ दी जाती है, जिससे चारों तरफ जमीन की सतह से ६-७ इंच ऊंचा एक चबूतरा बन जाय। इस चबूतरे के बीचोंबीच दिन भर का इकट्ठा किया हुआ, मूत्र से भीगा हुआ कचरा और गोबर अच्छी तरह मिलाकर डाल दिया जाता है और उसका एक तिकोना ढेर बना दिया जाता है। बाद के दिनों का कचरा पहलेवाले ढेर पर डाल दिया जाता है, जिससे प्रथम तिकोने पर लगातार पर्त पर पर्त पड़ती जाती है।

यह तरीका वहीं उपयोगी होता है, जहाँ जानवरों की संख्या १० से अधिक हो तथा कचरा इतने परिमाण में मिल सके कि रोजाना ढेर पर ६ इंच मोटी तह बनती जाय, नहीं तो ढेर सूख जाता है और नत्रजन उड़ जाता है। एक सप्ताह या १० रोज बाद जब ढेर ४-४॥ फीट ऊँचा हो जाय तो उसको गोबर और मिट्टी से लीप देना चाहिए।

खेत के कचरे से कम्पोस्ट बनाना

जहाँ गोबर और पेशाब के अनुपात में पौधों के पत्ते और डंठल, जैसे—गन्ने की पत्ती, ज्वार और मक्के की कड़बी, कपास के डंठल, बसटिया के पौधे इत्यादि अधिक मात्रा में मिल सकते हों, वहाँ उन्हें अच्छी खाद में परिणत करने के लिए कम्पोस्ट का तरीका उपयोगी है। यदि पौधों के डंठल सख्त हों, तब या तो इन्हें काटकर बारीक कर लिया जाय या बैलों के पैरों के नीचे डालकर तोड़-फोड़कर बारीक कर लेना चाहिए। (क्रमशः)

—बनवारीलाल चौधरी

ग्रामदान में नयी समाज-रचना के बुनियादी आधार

ग्रामदान के गाँवों में किस प्रकार चार वर्ण और चार आश्रमों की स्थापना होती है, उसका हमने एक छोटा-सा सूत्र बनाया है। वे चार गुण जिनमें हैं, उनमें चार वर्ण और चार आश्रम हैं।

शान्ति

चित्त में शान्ति का होना ब्राह्मण का लक्षण है। हम चाहते हैं कि ग्रामदान के गाँव में शान्ति हो। सबके हृदय में राम हो। आज के गाँवों में शान्ति नहीं है। देश में भी शान्ति की चाह है, पर राह ली है अशान्ति की। शान्ति की स्थापना तभी होगी, जब सब लोगों के हृदय के दुःख मिट जायंगे। उन दुःखों के कारणों में एक साधारण दुःख है कि लोगों को सर्व-साधारण चीजें प्राप्त नहीं होतीं। दूसरा कारण यह है कि कुछ लोगों के पास चीजें ज्यादा पड़ी हैं, इससे उनके चित्त को शान्ति नहीं होती। शरीर के लिए कम-से-कम जितना चाहिए, उतना न मिले, तो शान्ति नहीं रहती। इसमें कोई शक नहीं कि ग्रामदानी गाँव में दूसरे किसी भी गाँव से ज्यादा शान्ति रहेगी।

दम

क्षत्रिय का सच्चा लक्षण है निर्भयता। निर्भयता किसी प्रकार के शस्त्रास्त्र से नहीं आती। उसकी स्थापना करने के लिए हम दम-रूप क्षत्रिय की स्थापना करते हैं। 'दम' याने अपने पर अंकुश रखना। जहाँ सब लोग अपने पर काबू या दमन नहीं कर पाते, वहाँ बाहर से दमन करने की बात आती है। हम समझते हैं कि ग्रामदान के गाँवों में दूसरे किन्हीं गाँवों से दम की प्रतिष्ठा अधिक होगी। दूसरे का छीनने की इच्छा होगी ही नहीं, क्योंकि कोई दूसरा है ही नहीं, सब अपने ही हैं। सारे गाँव की जमीन एक होने और मालकियत मिट जाने पर हरएक मनुष्य अपने पर काबू रखेगा।

दया

वैश्य के लक्षणों का अगर एक शब्द में वर्णन करना हो, तो वह है दया। हिन्दुस्तान में मांसाहार छोड़े हुए लोगों की गिनती की जाय, तो वैश्यों की संख्या ब्राह्मणों से ज्यादा निकलेगी। वैश्य का लक्षण ही है, दोनों की संभाल करना, उनके लिए संग्रह करना और अपने संग्रह से सबकी रक्षा करना। वैश्य का दया से बढ़कर दूसरा कोई गुण ही नहीं हो सकता। दया और करुणा के बिना ग्रामदान का आरम्भ ही नहीं होता।

श्रद्धा

बिना श्रद्धा और भक्ति के सेवा हो ही नहीं सकती। आप ही बताइए कि ग्रामदान के बच्चों के दिल में श्रद्धा पैदा होगी या नहीं? आज भूमिहीन और गरीबों के बच्चों को अनाथ समझकर कुछ सज्जनों को उनका पालन करना पड़ता है। वह जिम्मा गाँव का होना चाहिए। जहाँ आपने ग्रामदानी गाँव बनाया, वहीं 'अनाथाश्रम' खोल ही दिया। दुनियाभर के अनाथों का एकत्र संग्रह करने की कोई जरूरत नहीं है। ग्रामदानी गाँवों में किसीका पिता मर जाय, तो एक पिता मर गया, पर १५० पिता और मिल गये। ग्रामदान के गाँव में एक-एक बच्चे को सौ-दो सौ बाप होंगे। ग्रामदान के गाँव में एक-एक माता को तीन-तीन सौ, चार-चार सौ लड़के होंगे। इसलिए स्वतंत्र अनाथाश्रम खोलने की कोई जरूरत ही न रहेगी। फिर उन लड़कों को समाज के लिए कितनी श्रद्धा होगी? वे बचपन से ही सीखेंगे कि जिस समाज में हम पैदा हुए, वह कितना दयालु और प्रेमी है कि हम सब बच्चों की बराबर रक्षा करता है।

संन्यास: समाज को संन्यासी की अत्यन्त आवश्यकता है, यह सबको मालूम है। क्योंकि संन्यासी रहा, तो सबकी सेवा करने के लिए मुफ्त का नौकर मिल जायगा। वह सर्वत्र ज्ञान-प्रचार करता चला जायेगा। संन्यासी का लक्षण है शम। जहाँ चित्त में शान्ति नहीं, वहाँ संन्यास भी नहीं है। बाल मुड़ाने या दाढ़ी बढ़ाने भर से कोई संन्यासी नहीं हो जाता। संन्यासी की परीक्षा है शम, शान्ति। ग्रामदान से हम इसी शम-रूप संन्यास-आश्रम की स्थापना करना चाहते हैं।

वानप्रस्थ: वानप्रस्थाश्रम का लक्षण है—दम। हमें तपस्या से इन्द्रियों का दमन करना है, अपने को सम्पूर्ण रूप से जीत लेना है। इस तरह जहाँ दम गुण आ जाय, वहाँ वानप्रस्थ-आश्रम की स्थापना हो जाती है। ग्रामदान से हम इसी दम-रूप वानप्रस्थ आश्रम की स्थापना करना चाहते हैं।

गृहस्थ: गृहस्थाश्रम का लक्षण है दया। जहाँ दया की प्रतिष्ठा हो जाती है, वहाँ गृहस्थाश्रम की स्थापना हो गयी। ग्रामदानी गाँव में हम दया-रूप गृहस्थ-आश्रम की स्थापना करना चाहते हैं।

ब्रह्मचर्य: ब्रह्मचर्य-आश्रम का लक्षण है श्रद्धा। जहाँ श्रद्धा की प्रतिष्ठा हो जाय, वहाँ ब्रह्मचर्य-आश्रम की स्थापना हो गयी। ग्रामदान में हम श्रद्धा-रूप ब्रह्मचर्य-आश्रम की स्थापना करना चाहते हैं। इस प्रकार ग्रामदानी गाँव बनेंगे, तो धर्म-स्थापना या धर्म-चक्र-प्रवर्तन होगा। —विनोबा

'गाँव की बात': वार्षिक चन्दा: चार रुपये, एक प्रति: अठारह पैसे
सम्पादक: राममूर्ति: सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१

इसलिए हम चाहते हैं कि उस 'बाटल-नेक' क्षेत्र में जनता की ताकत खड़ी हो और वह मजबूत बने। वैसे तो वहाँ सरकार की सेना है, लेकिन जब लड़ाई नहीं होती और सेना होती है तब वहाँ के लोगों को सेना से केवल तकलीफ ही होती है और दूसरा कोई उपयोग उसका नहीं होता। इस वास्ते सेना वहाँ होने से वहाँ की जनता में आपस में प्रेम पैदा नहीं हो सकता, बल्कि सेना के लिए नफरत ही पैदा होगी। लड़ाई हुई होती तो बात अलग थी; फिर सेना सीधा काम कर सकती है। लेकिन आज की हालत में सेना का कोई उपयोग नहीं। उस हालत में हम चाहते हैं कि वहाँ का जो ग्रामीण हिस्सा है वह जाग्रत हो जाय और वहाँ की आर्थिक स्थिति में, वहाँ के काम के लिए और कार्यकर्ताओं को खड़ा करने के लिए आपका योगदान हो तो यह बात बन सकती है। और इससे भारत बच सकता है।

पहले हिन्दुस्तान पर हमले समुद्र की ओर से होते थे। लेकिन अब वे बन्द हो गये हैं। अब हिन्दुस्तान को खतरा उत्तर की ओर से है। उस खतरे को रोकने के लिए वहाँ काम करना जरूरी है। उस काम के लिए बाबा आपसे मदद चाहता है। भूदान ग्रामदान के द्वारा उनमें राष्ट्रीय भावना पैदा होती है तो वहाँ ताकत खड़ी होगी। यह दृष्टि आपके ध्यान में आ जाय तो बाबा आपसे अपेक्षा करेगा—ज्यादा तो नहीं, लेकिन दो लाख की अपेक्षा करेगा, वहाँ का कार्य खड़ा करने के लिए।

बंगाल की सरकार के खिलाफ मुझे कुछ कहना नहीं है। वह अगर सचमुच 'वामपंथी' हो और अपने नाम के अनुसार जमीन का बँटवारा करे तो मैं उसको बहुत धन्यवाद दूँगा, लेकिन मुझे शंका है कि वह ऐसा नहीं कर सकेगी। हमने पूछा था कि बिहार सरकार की ओर से कितनी जमीन बँटी है? तो हमको बताया गया कि कोई ७-८ हजार एकड़ जमीन बाँटने की बात है, बाकी अभी बँटी नहीं है। कोई भी सरकार यह काम नहीं कर सकी है। भूदान में जो जमीन मिली उसमें से ३॥ लाख एकड़ जमीन बिहार में बँट चुकी है और कुल भारत में १२ लाख जमीन बँटी है। कोई भी सरकार अभी तक यह काम नहीं कर सकी है। इसलिए हमें अब सरकार से कोई आशा नहीं। जन शक्ति के द्वारा ही यह काम हो सकता है।

बंगाल के लिए मैंने आपसे मदद की माँग की है। दो लाख की माँग कोई ज्यादा माँग नहीं है। अगर वह पूरी हो जाती है तो बंगाल के कार्यकर्ताओं से मैं कहूँगा कि वे यह काम हाथ में लें।

व्यापारियों की सभा में,
धनबाद। ता० ८-६-'६१

बिहारदान की दिशा में

पलामू, हजारीबाग, शाहाबाद और भागलपुर जिलादान की मंजिल के करीब

आदिवासी क्षेत्रों में व्याप्त गतिरोध कुछ कम हुआ

३० जून समाप्त हुआ, किन्तु बिहारदान सम्पन्न नहीं हो सका। १० जिलों का जिलादान सम्पन्न हो गया है, बाकी के ७ जिलों में एकसाथ ग्रामदान का अभियान जोरों से चल रहा है। अभी करीब ५०० खादी एवं सर्वोदय के कार्यकर्ता अनवरत लगे हुए हैं। इसके अलावा सभी जिलों में विकास-पदाधिकारी एवं उनके सहयोगियों तथा शिक्षकों का भी पूर्ण सहयोग मिल रहा है। शाहाबाद एवं हजारीबाग में अभियान की गति तीव्र हुई है और आशा इस बात की अवश्य है कि जुलाई माह में इन जिलों का जिलादान अवश्य सम्पन्न हो जायेगा। शाहाबाद में १२ प्रखण्डों का प्रखण्डदान हो चुका। अब २६ प्रखण्ड बाकी हैं, जिनमें से १४ प्रखण्डों का काम शीघ्र ही सम्पन्न होनेवाला है, बाकी के १५ प्रखण्डों में काम प्रारम्भ कर दिया गया है। हजारीबाग जिले में पुनः शिक्षक एवं सरकारी पदाधिकारी मुस्तैदी से लग गये हैं। चतरा अनुमण्डल का काम पूरा हो गया। बाकी गिरीडीह एवं सदर अनुमण्डल में भी कई प्रखण्डदान हो चुके हैं। अबतक १८ प्रखण्डों का दान सम्पन्न हो गया है, २४ प्रखण्ड बचे हुए हैं, जिनमें एकसाथ काम प्रारम्भ है।

पलामू के महुआडाँड़ प्रखण्ड को छोड़कर सभी प्रखण्डों का दान सम्पन्न हो गया है। महुआडाँड़ में करीब २० कार्यकर्ता लग गये हैं। यह प्रखण्ड आवागमन की सुविधा से वंचित है। प्रखण्ड के प्रधान कार्यालय में पहुँचने के लिए कम-से-कम १० मील तो निश्चय ही पैदल चलकर पहुँचना पड़ता है। किसी तरह जीप पहुँच सकती है। इस प्रखण्ड में ईसाई मिशनरी लोगों का अच्छा प्रभाव है तथा ईसाई आदिवासियों की संख्या भी काफी है। अबतक वे अनुकूल नहीं हुए थे, अतः वहाँ ग्रामदान का काम प्रारम्भ भी नहीं हुआ था। अब उनकी भी अनुकूलता हुई है और स्थानीय कार्यकर्ताओं का छिटपुट सहयोग मिलना प्रारम्भ हो गया है। इस जिले में सर्व सेवा संघ के मंत्री प्रो० ठाकुरदास बंग का दौरा पिछले महीने में हुआ था और उनके संयोजन का ही फल है कि पलामू जिलादान के बिलकुल निकट पहुँच गया है।

संथालपरगना के ४१ प्रखण्डों में से १८ प्रखण्डों का दान सम्पन्न हो गया, बाकी के २४ प्रखण्डों में से ९ प्रखण्डों में जोर-शोर से कार्यकर्ता लग गये हैं। १५ प्रखण्डों में 'झारखण्ड पार्टी' का प्रभाव है। कार्यकर्ता जाते हैं, सम्पर्क करते हैं। आदिवासी भाई सारी बातों से सहमत भी होते हैं, किन्तु हस्ताक्षर के लिए आगे नहीं आते हैं। अभी-अभी श्री जयप्रकाश नारायण का दौरा इस जिले में हुआ है, इससे अनुकूलता बढ़ी है। श्री जयप्रकाश नारायण की झारखण्ड के नेता श्री जयपाल सिंह से भी ग्रामदान के सारे पहलुओं पर चर्चा भी हुई है तथा उन्होंने ग्रामदान तथा बिहारदान के महत्त्व को समझा है और अपनी अनुकूलता दिखाई है। आशा है, अब उन प्रखण्डों में भी काम आगे बढ़ेगा।

सिंहभूमि के सरायकेला एवं धालभूमि अनुमंडल में प्रखण्डदान की अच्छी प्रगति है। अभी-अभी मरमवाँ प्रखण्डदान हुआ है। और समारोह के साथ उसकी घोषणा भी हुई है। भाई श्यामबहादुरजी भी अब आ गये हैं। चाईबासा अनुमंडल में काम रुका हुआ है। इस अनुमंडल में आदिवासी जनसंख्या अधिक है। अभी हम उन्हें पूर्ण रूप से ग्रामदान के लिए तैयार नहीं कर पाये हैं। श्री जयप्रकाशजी की एक आमसभा चाईबासा में हुई थी। उसके बाद डा० दयानिधि पटनायक ने आदिवासी नेताओं से अच्छा सम्पर्क किया और विभिन्न स्तर की उनकी गोष्ठियों में ग्रामदान से ग्राम-स्वराज्य की बात को समझाने का सफल प्रयास किया है। आदिवासी युवकों का संगठन बिरसा सेवा दल इस क्षेत्र का उग्रपन्थी संगठन है। उनके नेताओं से भी डाक्टर साहब ने सम्पर्क किया है और उन्हें ग्रामदान के महत्त्व को समझाने का प्रयास किया है। उन लोगों ने ग्रामदान के महत्व को समझ तो लिया है, किन्तु अभी ग्राम जनता को उसके लिए तैयार करने में अपनी असमर्थता महसूस कर रहे हैं। कुछ दिन पूर्व जिलादान-अभियान के प्रारम्भ में इस संगठन का विरोध प्रकट हो चुका है। आवश्यकता है इस क्षेत्र में बराबर सघन रूप से विचार-प्रचार करने की। डा० पटनायक एक माह के बाद अपने सहयोगियों के साथ वापस गये हैं। उनका अभाव अवश्य ही खटकता है, किन्तु फिर निर्मला बहन से निवेदन किया गया है कि इस क्षेत्र में वे आकर सम्पर्क करें। यह भी निश्चय किया गया है कि इस अनुमंडल में यहाँ के मूल निवासियों में से कार्यकर्ता निकाले जायें, शिविर के माध्यम से प्रशिक्षण करके उनको क्षेत्र में लगाया जाय। बाहर से आये कार्यकर्ता सतत घूम रहे हैं।

भागलपुर के शम्भूगंज का प्रखंडदान सम्पन्न हो गया। इस प्रखंड का घटमारोह गाँव का ग्रामदान उल्लेखनीय है। पुराने ग्रामदान की शर्त के मुताबिक इस गाँव के कुछ टोलों का ग्रामदान बहुत पहले हो चुका था। यह धनी-मानी राजपूतों की अच्छी बस्ती है। इस गाँव में धीरेन्द्र भाई के काफी प्रयोग भी चले थे, खासकर श्रम-प्रतिष्ठा के। गाँव के सुखी सम्पन्न राजपूत परिवार की बहुएँ भी खेत में काम करने पहुँची थीं। किन्तु बाद में आन्दोलन की शिथिलता की अवधि में यह ग्रामदान सूख गया और उसकी एक एक प्रतिक्रिया हुई। इस कारण फिर से सुलभ ग्रामदान में भी उस गाँव को लाने में कठिनाई हो रही थी, किन्तु बिहारदान का अन्तिम अभियान प्रारम्भ हुआ तो इस गाँव को भी झटका लगा और गाँव के बुजुर्ग श्री उद्यम बाबू तथा युवक प्रधानाध्यापक मुकुलजी के नेतृत्व में सारे गाँव का हस्ताक्षर सम्पन्न हुआ। शिवप्रसादजी ने, जिनकी अभी १०५ वर्ष की उम्र है, खुशी-खुशी अपना हस्ताक्षर करके इस अभियान को आशीर्वाद दिया। भागलपुर के बचे दो प्रखंडों—सबौर और पीरपैंती—का प्रखंडदान भी १५ जुलाई तक सम्भव दीखता है। जो कार्यकर्ता आये हैं वे घूमकर विचार समझा रहे हैं।

राँची जिले में करीब १०० कार्यकर्ता लगे हैं। पहले इस जिले में ग्रामदान का कोई सुनियोजित काम नहीं हो सका था, अत मई से यहाँ एकाएक अभियान के तौर पर ही काम प्रारम्भ हुआ। एकाएक ग्रामदान की बात सुनकर एक प्रतिक्रिया भी हुई है, और कहीं-कहीं विरोध भी प्रकट हुआ है; किन्तु अब विरोध घट रहा है और धीरे धीरे सहयोग के हाथ भी बढ़ रहे हैं।

मुख्य रूप से यहाँ आदिवासी एवं गैर-आदिवासी के बीच दुराव का वातावरण व्याप्त है। इधर कुछ राजनैतिक पार्टियों ने इस दुराव को और भी बढ़ावा दिया है। ग्रामदान-आन्दोलन को यहाँ के मूल निवासी आशंका की नजर से देखते हैं। कार्यकर्ता भी तो मुख्यतः गैर-आदिवासी ही हैं। आदिवासियों में भूमिहीनता कम है, अतः उन्हें आशंका है कि उनकी जमीन पहले ही गैर-आदिवासियों ने हड़प ली थी, अब ग्रामदान के माध्यम से भी उनकी जमीन गैर-आदिवासी लोगों के हाथों में ही चली जायगी। जमीन-सम्बन्धी कुछ विशिष्ट हक भी आदिवासी लोगों को प्राप्त है, जिसे एक तरह की जमींदारी ही कह सकते हैं। बिहार भूमि-सुधार में उनके उस हक को बरकरार रखा गया। उसके सम्बन्ध में भी उनकी आशंका है कि उनका यह हक चला जायगा। इन कारणों से उनके बीच ग्रामदान का विचार अभी जड़ नहीं जमा पा रहा है। श्री जयप्रकाशजी के सुझाव पर ३० जून को राँची में सरकारी अधिकारियों एवं बिहार के ग्रामदान के प्रमुख नेताओं की एक बैठक इस सम्बन्ध में विचार करने को हुई और तय हुआ कि आदिवासी नेताओं के साथ मिलकर पुनः इस सम्बन्ध में चर्चा हो, और आवश्यकता महसूस हो तो ग्रामदान-अधिनियम में आवश्यक संशोधन भी किये जायँ। अभी तो इस बात पर सबकी सहमति हुई, कि ऐसा प्रावधान अवश्य किया जाय, ताकि आदिवासी की जमीन आदिवासी को ही मिले।

दो महीने तक कार्यकर्ता इस क्षेत्र में एक तरह से प्रचार का ही काम करते रहे हैं, तथा सम्पर्क करके वातावरण अनुकूल बनाते रहे हैं। अब पूरे जिले में 'ग्रामदान' शब्द का प्रचार तो हो ही गया है। २४ प्रखण्डों में कार्यकर्ता लगे थे; किन्तु सिर्फ २ प्रखण्डों का काम सम्पन्न हुआ। बाबा ने उस रोज कार्यकर्ताओं के शिविर में बोलते हुए कहा कि ताले की कुंजी ही खोजने में समय गया है, अब कुंजी हाथ लग गयी है। इसलिए शीघ्र ही ताला खुलेगा ऐसी आशा है। फिर २ एवं ३ जुलाई के शिविर के बाद कार्यकर्ता दूने उत्साह के साथ क्षेत्र में वापस गये हैं। सिंहभूमि के चाईबासा अनुमण्डल तथा सम्पूर्ण राँची एवं संताल परगना के उन प्रखण्डों का जहाँ 'हूल झारखंड' का प्रभाव है, काम पूरा होने में कुछ विलम्ब की सम्भावना दीखती है। किन्तु जैसा कि बाबा कहते हैं कि इन क्षेत्रों की इंजन मजबूत है, मगर एक बार पटरी बदली तो फिर गाड़ी तेजी से दौड़ने लगेगी बिना रोक-टोक के। कोई आश्चर्य नहीं कि कभी भी वैसी परिस्थिति पैदा हो सकती है।

नरेन्द्र भाई वापस मध्यप्रदेश गये हैं, किन्तु तुरत ही राँची वापस लौटनेवाले हैं। सरगुजा से कुछ और भी कार्यकर्ता आ गये हैं।

राजनीतिक दलों के नेतागण तो बिहार की राजनीतिक अस्थिरता के भँवर में इस तरह फँसे हुए हैं कि पटना से बाहर ताकने झाँकने की भी उन्हें फुर्सत नहीं, अतः उनसे जो आशा की गयी थी वह पूरी नहीं हो पा रही है।

राँची, ८-७-'६९ —कैलाशप्रसाद शर्मा

तत्त्वज्ञान

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को दी गयी फाँसी तथा गणेश शंकर विद्यार्थी के आत्म-बलिदान के प्रसंगों से क्षुब्ध कराची-कांग्रेस-अधिवेशन के लोगों को सम्बोधित करते हुए २६ मार्च १९३१ को गांधीजी ने कहा था :—

"जो तरुण यह ईमानदारी से समझते हैं कि मैं हिन्दुस्तान का नुकसान कर रहा हूँ, उन्हें अधिकार है कि वे यह बात संसार के सामने चिल्ला-चिल्लाकर कहें। पर तलवार के तत्त्वज्ञान को हमेशा के लिए तलाक दे देने के कारण मेरे पास अब केवल प्रेम का ही प्याला बचा है, जो मैं सबको दे रहा हूँ। अपने तरुण मित्रों के सामने भी अब मैं यही प्याला पकड़े हुए हूँ...।"

उसके बाद का इतिहास साक्षी है कि देश ने तलवार के तत्त्वज्ञान को तलाक देनेवाले गांधी का साथ दिया। साम्राज्य-वाद की नींव हिली, भारत में लोकतंत्र की नींव पड़ी और संसार को मुक्ति का एक नया रास्ता मिला।

संसार आज बन्दूक की नली के तत्त्वज्ञान से और अधिक त्रस्त हुआ है। विनोबा संसार को वही प्रेम का प्याला पिलाकर बन्दूक के तत्त्वज्ञान को तलाक दिलाना चाहता है और देश में सच्चे स्वराज्य की स्थापना के लिए उसने नया रास्ता बताया है।

क्या हम वक्त को पहचानेंगे और महान कार्य में वक्त पर योग देंगे?

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी-समिति)
ईश्वरिया भवन, कुम्हारों का भैरू, जयपुर-१ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

आन्दोलन के समाचार

गुजरात के तरुण-शान्ति-सेना शिविर

इस साल गर्मियों की छुट्टियों में गुजरात में तरुण-शान्ति-सेना के कुल सात शिविर हुए : १-नाना भाड़ीया (कच्छ) २-विद्यानगर (खेड़ा) ३-पत्री (कच्छ) ४-मालसा (भड़ौच) ५-रामनगर (खेड़ा) ६-ममनी (भड़ौच) और ७-नानी वहीयाल (बलसार)। इन सभी शिविरों में कुल ३१० शिविरार्थी भाई-बहनों ने भाग लिया। इन शिविरों में आये हुए शिविरार्थियों में से ४५ शिविरार्थी तरुण शान्ति सेना के फार्म भरकर तरुण-शान्ति सैनिक बने और १३६ शिविरार्थियों ने गांधी शताब्दी के अवसर पर अपने जीवन को अच्छे बनाने के संकल्प किये। १३ शिविरार्थियों ने खादी पहनने का संकल्प किया।

इन सभी शिविरों का खर्च स्थानिक लोगों के सहकार से इकट्ठा किया गया। कच्छ की दोनों शिविरों के फलस्वरूप तरुणों ने कच्छ तरुण-शान्ति सेना का गठन किया और अभी वे सब तरुण भाई भुज शहर में सफाई, श्रम और स्कूल कालेजों में गांधी-विचार-प्रचार का कार्य कर रहे हैं। हरिजन-बस्ती में जाकर छोटे छोटे बच्चों को इकट्ठा करके गीत, खेलकूद कराते हैं।

—उमेशभाई पटेल,
शिविर-संयोजक

भरतपुर जिलादान की योजना

भरतपुर जिला ग्रामदान-अभियान समिति ने २ अक्तूबर, '६९—गांधी-जयन्ती—तक इस जिले की सभी पंचायत-समितियों में ग्रामदान-अभियान चलाकर लोगों की सहमति ग्रामदान के लिए प्राप्त कर लेने व जिलादान का कार्य पूरा कर लेने का तय किया है।

इस निर्णय के अनुसार आगामी १९ जुलाई से बयाना में इस जिले का दूसरा प्रखण्डदान-अभियान प्रारम्भ होगा। इसके पूर्व यहाँ के वाडी-बसेड़ी क्षेत्र में ग्रामदान-प्राप्ति का अभियान आशातीत सफलता के साथ सम्पन्न हो चुका है। बयाना-अभियान में लगभग १०० कार्यकर्ता भाग लेंगे। शिविर व सारे आयोजन का व्यय गांधी सेवा सदन सोसाइटी, बयाना वहन करेगी। —सत्येन्द्र

टीकमगढ़ जिला ग्राम-स्वराज्य संयोजन समिति

टीकमगढ़ जिले में ग्रामदान के बाद के आरोहण कार्य के लिए जिले के सर्वोदय-विचार में आस्था रखनेवाले एवं अन्य विशिष्ट नागरिकों ने ग्राम स्वराज्य समिति का निर्माण किया है। उक्त समिति की प्रथम बैठक गत २६ जून को टीकमगढ़ में सम्पन्न हुई। उक्त समिति शीघ्र ही आरोहण कार्य प्रारम्भ करेगी। —मगनलाल गोयल

बलिया में प्रखण्ड स्तरीय गोष्ठियों का सिलसिला जारी

ग्राम-स्वराज्य की स्थानीय शक्ति विकसित करने के लिए बलिया जिले के हर प्रखण्ड में शिविर और गोष्ठी आयोजित करने का कार्यक्रम चल रहा है। दावा क्षेत्र में इस प्रकार की गोष्ठी २४ जून को हुई थी। इस सिलसिले को हर पन्द्रह दिन पर चलाने की जिम्मेदारी स्थानीय श्री वृजविलास सिंह ने उठायी है। अगली गोष्ठी सोहांव क्षेत्र में होने जा रही है। इसी तरह शिविरों का भी सिलसिला शुरू हुआ है। इस प्रकार का पहला शिविर सूर्यपुरा में सम्पन्न हुआ। अगला शिविर मनियर में २० जुलाई को होने जा रहा है। जिले की ओर से सर्व सेवा संघ के प्रतिनिधि श्री पंचदेव तिवारी गोष्ठियों के कार्यक्रम को आयोजित करने और लोकसेवकों तथा क्षेत्रीय सर्वोदय-मण्डलों के संगठन के काम में जुटे हैं।

विनोबाजी का कार्यक्रम

जुलाई ता०	पड़ाव	मील	पता
१४	लोहरदगा	४६	द्वारा—बि० खा० ग्रा० बोर्ड, खादी-भवन, लोहरदगा, रांची
१६	गुमला	३२	द्वारा—आदिमजाति सेवा मण्डल, गुमला, रांची
१९	सिमडेगा	४८	द्वारा—आदिमजाति सेवा मंडल, सिमडेगा, रांची

सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति की आगामी बैठक

सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति की आगामी बैठक दिनांक २५ से २७ जुलाई, '६९ तक सौराष्ट्र रचनात्मक समिति की संस्था 'ग्रामोद्योग मंदिर, मु० पेडक, राजकोट, सौराष्ट्र—में होगी। पेडक राजकोट से ही मिली हुई एक छोटी बस्ती है।

भूल-सुधार

कृपया 'भूदान-यज्ञ' के :

अंक ३९ : दिनांक ३०-६-'६९ के आखिरी पृष्ठ पर आदिवासियों की अलगाव भावना''' वाले समाचार में दूसरे कालम की तीसरी लाइन के अंत में शुरू होनेवाले वाक्य—ईसाई मिशनरी इस''' से लेकर सक्रिय नहीं हो रहे हैं।'' तक के वाक्य को निम्न प्रकार पढ़ें : ''दलगत राजनीति इस घृणा को बढ़ाने में आज पूरा सहयोग कर रही है। मिशनरी लोगों ने यद्यपि ग्रामदान की अपील पर हस्ताक्षर कर दिये हैं, किन्तु सक्रिय नहीं हो रहे हैं।'' अंक ४० : दिनांक ७-७-'६९ के पृष्ठ ४६६ पर अंत में ('दि मॉडर्न रिव्यू' : सन् १९१५, पृष्ठ ४१२) के पहले मो० क० गांधी छूट गया है। भूल के लिए क्षमा करें। —सम्पादक

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०, या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इंडियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ४२

सोमवार २१ जुलाई, '६९

अन्य पृष्ठों पर

पूँजीवादी अर्थशास्त्र में श्रम को क्रय-विक्रय की वस्तु माना गया है। इसलिए मजदूरी इस मानवीय वस्तु की कीमत के रूप में सामने आती है। उसमें मानवता के मूलभूत विचारों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। एक उद्योगपति जिस भावना से फौलाद की मशीनें खरीदता है, उसी भावना से मानव श्रम को खरीदता है। शोषण की यहीं प्रथा की है, और जबतक मानव-श्रम एक जड़ वस्तु समझा जायगा, तबतक यह प्रथा बदली नहीं जा सकती।

—जे॰ सी॰ कुमारप्पा

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

असहकार का अमोघ अस्त्र

अगर मैं पूँजीपति और मजदूर की मूलभूत समानता को मान लेता हूँ जैसा कि मुझे करना चाहिए, तो मुझे पूँजीपति के विनाश का लक्ष्य नहीं रखना चाहिए। मुझे उसके हृदय-परिवर्तन की कोशिश करनी चाहिए। मेरे असहयोग से उसकी आँखें खुल जायेंगी और वह अपने अन्याय को समझ लेगा। यह आसानी से प्रत्यक्ष सिद्ध किया जा सकता है कि पूँजीपति के विनाश का परिणाम अन्त में मजदूर का विनाश ही होगा; और जिस तरह कोई इतना बुरा नहीं होता कि कभी सुधर ही न सके, उसी तरह कोई मनुष्य पूर्ण भी नहीं होता कि जिसे वह भूल से बिलकुल बुरा मान लेता है, उसका नाश उसके हाथों उचित ठहराया जा सके।[१]

अंग्रेजी में एक बड़ा शक्तिशाली शब्द है और वह फ्रेंच में भी है; संसार की सभी भाषाओं में है—वह शब्द है 'नहीं'; और हमें जो रहस्य हाथ लगा है वह यह कि जब पूँजीपति चाहते हैं कि मजदूर 'हाँ' कहें तब मजदूर उच्च स्वर से 'नहीं' चिल्लाते हैं, अगर वे 'नहीं' कहना चाहते हैं। ज्योंही मजदूरों को यह ज्ञान हो जाता है कि वे जब चाहें तब 'हाँ' और जब चाहें तब 'नहीं' कह सकते हैं, त्योंही वे पूँजीपति के पंजे से मुक्त हो जाते हैं। और पूँजीपति को उन्हें मानना पड़ता है। पूँजीपति के पास तोप बन्दूक और जहरीली गैस हो, तब भी कोई परवाह की बात नहीं। अगर मजदूर अपने 'नहीं' पर अमल करके अपने गौरव को कायम रखें तो पूँजीपति इन सबके होते हुए भी असहाय रहेगा। मजदूरों को बदले में वार करने की जरूरत नहीं होती, बल्कि वे गोलियाँ खाते और जहरीली गैस सहते हुए भी विरोध में डटे रहते हैं और अपने 'नहीं' का आग्रह नहीं छोड़ते। मजदूर क्यों असफल होते हैं, इसका कारण यह है कि [illegible] स्वयं मजदूर [illegible] और ज्यादा [illegible] अच्छी तरह सुरक्षित और संगठित हैं, यह देखकर कि मजदूरों में भी उस पद के कुछ उम्मीदवार हैं, उनमें से कुछ का उपयोग मजदूरों को दबाने में करते हैं। अगर हमपर सचमुच जादू का असर न हो, तो हम सब स्त्री पुरुष इस अटल सत्य को बिना किसी कठिनाई के समझ और मान लेंगे।[२]

समाज में अमीर लोग गरीबों के सहयोग के बगैर दौलत जमा नहीं कर सकते। यह ज्ञान गरीबों को हो जाय और उनमें फैल जाय, तो वे बलवान बन जायेंगे और यह जान जायेंगे कि जिन भयंकर असमानताओं के कारण वे भुखमरी के किनारे पहुँच गये हैं, उनसे अहिंसा द्वारा कैसे वे अपने को मुक्त कर सकते हैं।[३]

: मो॰ क॰ गांधी

(१) 'यंग इण्डिया' २६-३-'३१,
(२) 'इण्डियाज केस फॉर स्वराज', पृष्ठ ३६४,
(३) 'हरिजन' २५-८-'४०।

आन्दोलन के समाचार

गुजरात के तरुण-शान्ति-सेना शिविर

इस साल गर्मियों की छुट्टियों में गुजरात में तरुण-शान्ति-सेना के कुल सात शिविर हुए : १-नाना भाडीया (कच्छ) २-विद्यानगर (खेड़ा) ३-पत्री (कच्छ) ४-नालसा (भडोच) ५-रामनगर (खेड़ा) ६-समनी (भडोच) और ७-नानी वहीयाल (बलसार)। इन सभी शिविरों में कुल ३१० शिविरार्थी भाई-बहनों ने भाग लिया। इन शिविरों में आये हुए शिविरार्थियों में से ४५ शिविरार्थी तरुण-शान्ति सेना के फार्म भरकर तरुण-शान्ति-सैनिक बने और ११६ शिविरार्थियों ने गांधी शताब्दी के अवसर पर अपने जीवन को अच्छे बनाने के संकल्प किये। १३ शिविरार्थियों ने खादी पहनने का संकल्प किया।

इन सभी शिविरों का खर्च स्थानिक लोगों के सहकार से इकट्ठा किया गया। कच्छ को दोनों शिविरों के फलस्वरूप तरुणों ने कच्छ तरुण-शान्ति सेना का गठन किया और अभी वे सब तरुण भाई भुज शहर में सफाई, श्रम और स्कूल कालेजों में गांधी-विचार-प्रचार का कार्य कर रहे हैं। हरिजन-बस्ती में जाकर छोटे-छोटे बच्चों को इकट्ठा करके गीत, खेलकूद कराते हैं।

—उमेशभाई पटेल,
शिविर-संयोजक

भरतपुर जिलादान की योजना

भरतपुर जिला ग्रामदान-अभियान समिति ने २ अक्तूबर, '६९ –गांधी-जयन्ती– तक इस जिले की सभी पंचायत-समितियों में ग्रामदान-अभियान चलाकर लोगों की सहमति ग्रामदान के लिए प्राप्त कर लेने व जिलादान का कार्य पूरा कर लेने का तय किया है।

इस निर्णय के अनुसार आगामी १९ जुलाई से बयाना में इस जिले का दूसरा प्रखण्डदान अभियान प्रारम्भ होगा। इसके पूर्व यहां के वाड़ी-बसेडी क्षेत्र में ग्रामदान-प्राप्ति का अभियान आशातीत सफलता के साथ सम्पन्न हो चुका है। बयाना-अभियान में लगभग १०० कार्यकर्ता भाग लेंगे। शिविर व सारे आयोजन का व्यय गांधी सेवा सदन सोसाइटी, बयाना वहन करेगी। — सत्येन्द्र

टीकमगढ़ जिला ग्राम-स्वराज्य संयोजन समिति

टीकमगढ़ जिले में ग्रामदान के बाद के आरोहण कार्य के लिए जिले के सर्वोदय-विचार में आस्था रखनेवाले एवं अन्य विशिष्ट नागरिकों ने ग्राम स्वराज्य समिति का निर्माण किया है। उक्त समिति की प्रथम बैठक गत २६ जून को टीकमगढ़ में सम्पन्न हुई। उक्त समिति शीघ्र ही आरोहण कार्य प्रारम्भ करेगी। —मगनलाल गोयल

बलिया में प्रखण्ड स्तरीय गोष्ठियों का सिलसिला जारी

ग्राम-स्वराज्य की स्थानीय शक्ति विकसित करने के लिए बलिया जिले के हर प्रखण्ड में शिविर और गोष्ठी आयोजित करने का कार्यक्रम चल रहा है। छाता क्षेत्र में इस प्रकार की गोष्ठी २४ जून को हुई थी। इस सिलसिले को हर पन्द्रह दिन पर चलाने की जिम्मेदारी स्थानीय श्री वृजविलास सिंह ने उठायी है। अगली गोष्ठी सोहांव क्षेत्र में होने जा रही है। इसी तरह शिविरों का भी सिलसिला शुरू हुआ है। इस प्रकार का पहला शिविर सूर्यपुरा में सम्पन्न हुआ। अगला शिविर मनियर में २० जुलाई को होने जा रहा है। जिले की ओर से सर्व सेवा संघ के प्रतिनिधि श्री पंचदेव तिवारी गोष्ठियों के कार्यक्रम को आयोजित करने और लोक-सेवकों तथा क्षेत्रीय-सर्वोदय-मण्डलों के संगठन के काम में जुटे हैं।

विनोबाजी का कार्यक्रम

जुलाई ता०	पड़ाव	मील	पता
१४	लोहरदगा	४६	द्वारा–बि० खा० ग्रा० बोर्ड, खादी-भवन, लोहरदगा, रांची
१६	गुमला	३२	द्वारा–आदिमजाति सेवा मण्डल, गुमला, रांची
१९	सिमडेगा	४८	द्वारा–आदिमजाति सेवा मंडल, सिमडेगा, रांची

सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति की आगामी बैठक

सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति की आगामी बैठक दिनांक २५ से २७ जुलाई, '६९ तक सौराष्ट्र रचनात्मक समिति की संस्था 'ग्रामोद्योग मंदिर, मु० पेढ़ला, राजकोट, सौराष्ट्र' में होगी। पेढ़ला राजकोट से ही मिली हुई एक छोटी बस्ती है।

भूल-सुधार

कृपया 'भूदान-यज्ञ' के :

अंक ३९ : दिनांक ३०-६-'६९ के आखिरी पृष्ठ पर आदिवासियों की अलगाव भावना...वाले समाचार में दूसरे कालम की तीसरी लाइन के अंत में शुरू होनेवाले वाक्य—ईसाई मिशनरी इस ... से लेकर सक्रिय नहीं हो रहे हैं।" तक के वाक्य को निम्न प्रकार पढ़ें : "दलगत राजनीति इस घृणा को बढ़ाने में आज पूरा सहयोग कर रही है। मिशनरी लोगों ने यद्यपि ग्रामदान की अपील पर हस्ताक्षर कर दिये हैं, किन्तु 'सक्रिय नहीं हो रहे हैं।" अंक ४० : दिनांक ७-७-'६९ के पृष्ठ ४६६ पर अंत में ('दि मॉडर्न रिव्यू'। सन् १९१५, अंक ४१२) के पहले मो० क० गांधी छूट गया है। भूल के लिए क्षमा करें। —सम्पादक

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०, या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ४२

सोमवार २१ जुलाई, '६६

अन्य पृष्ठों पर

पूँजीवादी अर्थशास्त्र में श्रम को क्रय-विक्रय की वस्तु माना गया है। इसलिए मजदूरी इस मानवीय वस्तु की कीमत के रूप में सामने आती है। उसमें मानवता के मूलभूत विचारों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। एक उद्योगपति जिस भावना से फौलाद की मशीनें खरीदता है, उसी भावना से मानव श्रम को खरीदता है। शोषण की यहीं प्रथा शुरू होती है, और जबतक मानव-श्रम एक जड़ वस्तु समझा जायगा, तबतक यह प्रणाली बदली नहीं जा सकती।

—जे० सी० कुमारप्पा

सम्पादक

रामसूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश

फोन : ४२८५

असहकार का अमोघ अस्त्र

अगर मैं पूँजीपति और मजदूर की मूलभूत समानता को मान लेता हूँ जैसा कि मुझे करना चाहिए, तो मुझे पूँजीपति के विनाश का लक्ष्य नहीं रखना चाहिए। मुझे उसके हृदय-परिवर्तन की कोशिश करनी चाहिए। मेरे असहयोग से उसकी आँखें खुल जायँगी और वह अपने अन्याय को समझ लेगा। यह आसानी से प्रत्यक्ष सिद्ध किया जा सकता है कि पूँजीपति के विनाश का परिणाम अन्त में मजदूर का विनाश ही होगा; और जिस तरह कोई इतना बुरा नहीं होता कि कभी सुधर ही न सके, उसी तरह कोई मनुष्य पूर्ण भी नहीं होता कि जिसे वह भूल से बिलकुल बुरा मान लेता है, उसका नाश उसके हाथों उचित ठहराया जा सके।[१]

अंग्रेजी में एक बड़ा शक्तिशाली शब्द है और वह फ्रेंच में भी है, संसार की सभी भाषाओं में है—वह शब्द है 'नहीं'; और हमें जो रहस्य हाथ लगा है वह यह कि जब पूँजीपति चाहते हैं कि मजदूर 'हाँ' कहें तब मजदूर उच्च स्वर से 'नहीं' चिल्लाते हैं, अगर वे 'नहीं' कहना चाहते हैं। ज्योंही मजदूरों को यह ज्ञान हो जाता है कि वे जब चाहें तब 'हाँ' और जब चाहें तब 'नहीं' कह सकते हैं, त्योंही वे पूँजीपति के पंजे से मुक्त हो जाते हैं। और पूँजीपति को उन्हें मानना पड़ता है। पूँजीपति के पास तोप बन्दूक और जहरीली गैस हो, तब भी कोई परवाह की बात नहीं। अगर मजदूर अपने 'नहीं' पर अमल करके अपने गौरव को कायम रखें तो पूँजीपति इन सबके होते हुए भी असहाय रहेगा। मजदूरों को बदले में वार करने की जरूरत नहीं होती, बल्कि वे गोलियाँ खाते और जहरीली गैस सहते हुए भी विरोध में डटे रहते हैं और अपने 'नहीं' का आग्रह नहीं छोड़ते। मजदूर क्यों असफल होते हैं, इसका कारण यह है कि

[illegible]

सुरक्षित और संगठित हैं, यह देखकर कि मजदूरों में भी उस पद के कुछ उम्मीदवार हैं, उनमें से कुछ का उपयोग मजदूरों को दबाने में करते हैं। अगर हमपर सचमुच जादू का असर न हो, तो हम सब स्त्री पुरुष इस अटल सत्य को बिना किसी कठिनाई के समझ और मान लेंगे।[२]

समाज में अमीर लोग गरीबों के सहयोग के बगैर दौलत जमा नहीं कर सकते। यह ज्ञान गरीबों को हो जाय और उनमें फैल जाय, तो वे बलवान बन जायँगे और यह जान जायँगे कि जिन भयंकर असमानताओं के कारण वे भुखमरी के किनारे पहुँच गये हैं, उनसे अहिंसा द्वारा कैसे वे अपने को मुक्त कर सकते हैं।[३]

—मो० क० गांधी

(१) 'यंग इण्डिया' २६-३-'३१।

(२) 'इण्डियाज केस फॉर स्वराज', पृ० ३६४,

(३) 'हरिजन' २५-८-४०।

संगम-तट से

पार्टियों पर पाबन्दी

[श्री सुरेशराम भाई और उनकी लेखनी का नये सिरे से परिचय कराना अनावश्यक है, पाठकगण उनसे लम्बे अर्से से परिचित हैं। आजकल श्री सुरेशराम भाई संगम तीर्थ प्रयाग में रह रहे हैं। इस अंक से हम सामयिक प्रश्नों पर उनकी सुचिन्तित और सचोट टिप्पणी का प्रकाशन 'संगम-तट से' स्तम्भ के अन्तर्गत् शुरू कर रहे हैं। आशा है लेखक और पाठक के बीच का यह चिन्तन सूत्र सोत्साह जारी रहेगा।—सं०]

देश में हिंसा दिन-दिन बढ़ रही है, जिस पर हर किसी का चिन्तित होना स्वाभाविक है। साथ ही यह भी जरूरी है कि उन कारणों की खोज करनी चाहिए जो उसके लिए जिम्मेदार हैं। लेकिन यह न करके एक आवाज उठी है कि हिंसावाली पार्टियों पर, और विशेषकर कम्युनिस्ट पार्टियों (कम्युनिस्ट पार्टी, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी और नक्सालबाड़ी या माओवादी कम्युनिस्ट पार्टी) पर पाबन्दी लगा दी जाय। भारत सरकार के गृहमंत्री ने इस मुद्दे पर विचार करने के लिए संसद के विभिन्न पक्षों के नेताओं को दावत दी थी। कम्युनिस्ट मित्रों के उसमें जाने का सवाल ही नहीं था। लेकिन खुशी की बात है कि संयुक्त समाजवादी, प्रजा समाजवादी, इन दोनों पार्टियों ने भी इन्कार कर दिया और जनसंघ ने भी। केवल स्वतंत्र पार्टी के प्रतिनिधि गृहमंत्री से मिलने गये।

सच तो यह है कि भारत सरकार या गृहमंत्री की कल्पना ही दोषपूर्ण और अन्याय-संगत थी। आज के जमाने में कौन-सी सरकार दुनिया में है जो किसी पार्टी को फूलने-फलने से रोक सकती या किसी विचार को बंदिश में रख सकती है? हाँ, लश्करशाही में भले यह संभव हो सके, तो भी कुछ अर्से के लिए ही। लेकिन भारत जैसे देश में, जहाँ का संविधान जनतंत्र पर आधारित है, ऐसा होना हमारे जनतंत्र पर ही कुठाराघात है। इस तरह का विचार ही मन में उठना भारत सरकार की तानाशाही मनोवृत्ति का द्योतक है जो अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है।

फिर, कांग्रेस पार्टी हो या स्वतंत्र, भारत सरकार हो या अन्य कोई और, उन्हें गंभीरता से सोचना चाहिए कि हिंसा-मार्गी पार्टियाँ क्यों पनप रही हैं। अभी फरवरी के मध्यावधि चुनाव में ही बंगाल में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी को सबसे अधिक सीटें मिलीं और वहाँ की सरकार में उन्हीं का बोलबाला है, तो *क्या बात है कि बंगाल की जनता ने माओवादियों के पक्ष में* अपना मत डाला और तथाकथित शान्ति या अहिंसा के दावेदार पक्ष जैसे कांग्रेस, स्वतंत्र आदि देखते रह गये?

देश में माओवादी या नक्सालपंथी कम्युनिस्टों की ताकत कैसे बढ़ रही है और हिंसा क्यों फैल रही है? जवाब एक है—यहाँ उत्पादन के साधन, सम्पत्ति और सत्ता का दिन-दिन केन्द्रीकरण हो रहा है, और वे नीचे बंटने की बजाय ऊपर के गिने-चुने चन्द हाथों के कब्जे में चली जा रही हैं। अब देश की *विशाल जनसंख्या इन साधनों से वंचित* रहेगी और उसका शोषण उत्तरोत्तर बढ़ता रहेगा और आर्थिक व सामाजिक विषमता की खाई ज्यादा चौड़ी होती जायेगी तो जनता जिन्दा कैसे रहेगी? या तो वह चन्द मुट्ठी भर श्रीमानों की गुलामी स्वीकार करे और जो टुकड़ा वे दें, उस पर सबर करे या फिर अपने अधिकार माँगे। माँग तो की जाती है लेकिन जनतंत्र का कानून उसे दिलाने में असमर्थ है—जमींदारी-खात्मे के और सरकार और काश्तकार के बीच से बिचवइये को मिटाने के कानून बने मगर उनका अमल कहाँ हुआ? उल्टे खेती में पूंजीवाद जोर-शोर के साथ घुसता चला जा रहा है। और 'जेंटिलमैन फारमर्स' (साहब बहादुर काश्तकार) का एक नया वर्ग खड़ा हो रहा है। वे गाँव-गाँव की आर्थिक नाकेबन्दी कर रहे हैं, जमीनें खरीदते जा रहे हैं, और गाँव के रहने-वालों को लाचार मजदूर की तरह रहने पर मजबूर कर रहे हैं। सरकार यह सारा नाटक चुपचाप देख ही नहीं रही है, बल्कि साहब-लोगों की मदद भी दे रही है।

यह सिलसिला कैसे बर्दाश्त किया जा सकता है? इसके खिलाफ हिंसक बगावत का नाम है नक्सालबाड़ी और अहिंसक विद्रोह का नाम है ग्रामदान—लेकिन सरकारी क्षेत्रों में अहिंसा को आदर्शवादी समझा जाता है और सब उसका मजाक बनाने में कोई कसर नहीं उठा रखते। तो यह स्वाभाविक है कि लोगों का आकर्षण हिंसा की तरफ होता है और आये दिन देश में किसी-न-किसी सवाल को लेकर हिंसा होती रहती है। हिंसा की भाषा को सरकार मान्य भी करती है। इसलिए *नक्सालवादी कम्युनिस्ट पार्टी या वामपंथी* पार्टियों की तरफ लोग खिंचते हैं, उनके उम्मीदवारों को वोट देते हैं और राजसत्ता भी उनके हाथ में सौंपते हैं। ऐसी सूरत में तीनों कम्युनिस्ट पार्टियों या किसी वामपंथी पक्ष को गैर कानूनी ठहराना जनमत को ठुकराने जैसा होगा। यह काम एकदम गलत होगा। जाहिर है कि अगर नासमझी से उनको गैरकानूनी भी करार दे दिया गया तो अन्दर-ही-अन्दर वे खूब बढ़ेंगी, लोकप्रिय बनेंगी और फिर एक दिन जब उन पर से पाबन्दी हटेगी तो चौगुने जोर-शोर से वे हावी हो जायेंगे।

सोचना यह चाहिए कि वामपंथी पार्टियाँ पैदा ही क्यों होती हैं, और जो काम वे करती हैं वह किसकी ताकत से करती हैं? जैसा ऊपर बताया गया उनकी बुनियाद में देश की आर्थिक व सामाजिक विषमता है। और, कांग्रेस को यह चाहिए कि पहले इसे जड़मूल से नष्ट करे और फिर किसी पार्टी पर पाबन्दी लगाने का स्वप्न देखे। —सुरेशराम

महाराष्ट्र सर्वोदय मण्डल का अधिवेशन

आगामी १, २ और ३ अगस्त को जलगाँव जिले के एरंडोल नामक कस्बे में महाराष्ट्र सर्वोदय मण्डल का अधिवेशन होने जा रहा है। अधिवेशन में ग्रामदान आन्दोलन के अन्तर्गत "महाराष्ट्र दान" पर व्यापक विचार होगा। इस सम्मेलन में महाराष्ट्र सर्वोदय मण्डल के वर्तमान अध्यक्ष प्रो० ठाकुरदास बंग के स्थान पर नवीन अध्यक्ष का चुनाव भी होगा।●

दुर्योधन का दरबार

जब श्री जयप्रकाशजी हमारे गाँवों की तुलना दुर्योधन के दरबार से करते हैं तो उनके मन की वेदना और रोष, दोनों एक साथ प्रकट होते हैं। गाँव में कोई भी अनीति हो, कैसा भी अन्याय हो, भीष्म की तरह गाँव के 'सज्जन' सब देखते बैठे रहते हैं। कभी भीरु बनकर वे यह सोचते हैं कि जुल्म करनेवाला शहजोर है, गुण्डा है, कौन जाय उससे बैर मोल लेने; कभी यह जानकर कि अन्यायी उनके ही वर्ग या जाति का है उनके मन में उसके साथ पक्षपात भी होता है, भले ही जिस पर अन्याय हो रहा है उसका पक्ष सही और सच्चा हो। वर्गगत शोषण और जातिगत दमन गाँव के जीवन के ताने-बाने में है। कौन किसको अन्यायी कहे, और क्यों कहे? क्योंकि आगे पीछे सभी को अनीति और अन्याय के उसी रास्ते पर चलकर पद, पैसा और प्रतिष्ठा कमानी है। इतना ही नहीं, अपनी तरह-तरह की दूसरी लिप्साएँ भी इसी तरह तृप्त करनी हैं। सवर्ण हरिजन की लड़की या बहू के साथ व्यभिचार करेगा, बलात्कार करेगा, लेकिन कोई भी सज्जन आवाज नहीं उठायेगा, बल्कि कई बार उसका मूक समर्थन करेगा। यह है हमारा समाज और उसका जीवन।

शोषण और दमन करनेवाले कौन हैं? जमीन के मालिक हैं; गाँव के महाजन हैं; पंचायत के पदाधिकारी हैं; स्कूल के मैनेजर हैं; कोआपरेटिव के डाइरेक्टर हैं, पुलिस के दोस्त हैं; किसी राजनैतिक दल के नेता हैं। डंडा, पैसा, अधिकार, कानून, वर्ण, जाति, और वोट आदि की सब शक्तियाँ दमन और शोषण में एक हो गयी हैं। कानून असहाय है। मानवता हारी हुई है।

जे॰ पी॰ ने कई बार इस कठोर सत्य की ओर हमारा ध्यान खींचा है कि यह जो खेती में हरी क्रान्ति कही जा रही है उसके द्वारा गाँव के समाज में जबरदस्त पूँजीवाद का संगठन हो रहा है, तथा शहरी और देहाती, दोनों पूँजीवादों का गठबन्धन हो रहा है। प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ दिनोदिन समाज के जीवन में अपनी जड़ें गहरी जमाती जा रही हैं। एक ओर ये शक्तियाँ हैं, और दूसरी ओर इनकी प्रतिक्रिया में उभरनेवाली छिटपुट हिंसा है जो अपने को संगठित करने की कोशिश कर रही है।

जो अपने को 'बुद्धिजीवी' समझता है उसकी दुनिया अलग है। उसने अपने सारे दकियानूसीपन तथा समाज-विरोधी हरकतों को अपने कपड़ों और डिग्रियों के पीछे छिपा रखा है। यही उसकी बुद्धि (या दुर्बुद्धि?) है। उसे समस्याओं का पता भी नहीं है; जानने की रुचि या फुर्सत भी नहीं है, समाधान ढूँढ़ने की तो बात ही क्या! उस दिन पुलिस के एक बहुत ऊँचे युवक अधिकारी कह रहे थे कि उन्हें पूरे शहर से जितना सिरदर्द है उतना अकेले हाल में स्थापित नये विश्वविद्यालय से है। एक ऐसे युवक पर डकैती के अपराध में उन्हें मुकदमा चलाना पड़ा जिसे इसी साल एम॰ ए॰ राजनीति में फर्स्ट डिवीजन मिला है। वह पूछ रहे थे कि क्या वह जिस तरीके से दूकानें लुटवा है उसी तरीके से प्रोफेसरों से नम्बर भी ले लेता है?

जे॰ पी॰ कहते हैं कि यह ठीक है कि राज्यदान हो चुका तो ग्रामसभाएँ बनेंगी; ग्रामसभाओं से निर्वाचन मण्डल बनेंगे; इन निर्वाचन मण्डलों के द्वारा ग्रामसभाओं के प्रतिनिधि चुनाव में खड़े होंगे और जीतकर राज्य की विधानसभा में जायेंगे, और इस तरह दल समाप्त हो जायेंगे। यह सब होगा, जरूर होगा, लेकिन अगर गाँव-गाँव में दुर्योधन के दरबार लगे ही रहे तो इन दरबारों के सर्वसम्मत प्रतिनिधियों के सरकार में जाने से भी पीड़ित जनता को क्या मुक्ति मिलेगी? घर में घरवाला ही आग लगा दे तो बुझायेगा कौन?

ग्रामस्वराज्य की क्रान्तिकारी शक्ति की परीक्षा गाँवों में ही होनेवाली है। अहिंसा के पास सहकार और प्रतिकार, दोनों की शक्तियाँ हैं। सहकार की शक्ति जगाकर प्रतिकार को अनावश्यक करना हमारी पहली साधना है, लेकिन मुक्ति के लिए आवश्यक प्रतिकार-शक्ति संगठित करना हमारा क्रान्ति-धर्म है।

कानून पंगु है। हिंसा अधूरी है। विरोचित, व्यावहारिक अहिंसा ही अन्तिम सहारा है।

बंगलूर का धमाका

बंगलूर का धमाका दिल्ली को इस तरह हिला देगा, इसकी कल्पना नहीं थी। सत्ता का संघर्ष अब खुलकर सामने आ गया है। लेकिन इस संघर्ष को इस तरह भी देखा जा सकता है कि कांग्रेस अब तरह-तरह के अनाजों की खिचड़ी नहीं रहेगी; अब उसके अनाज शायद साफ-साफ अलग दिखाई दें। ऐसा होना जरूरी भी है। दलीय राजनीति में 'सबको' लेकर चलने का कोई अर्थ नहीं है। दल का अर्थ ही यह होता है कि दल में रहनेवालों को मालूम हो कि वे दल में किसलिए हैं, और जनता को मालूम हो कि कौन दल किसलिए है। कांग्रेस की वैचारिक तसवीर बहुत धूमिल हो गयी थी।

प्रधान मंत्री एक स्पष्ट कार्यक्रम को लेकर देश के सामने आयें, संसद को मनायें, और उसी पर उनका सरकार में रहना-न-रहना निर्भर हो, यह हमारे संसदीय लोकतन्त्र के लिए शुभ स्थिति होगी।

कांग्रेस के नेताओं में यह प्रतीति बहुत पहले पैदा हो जानी चाहिए थी कि कांग्रेस देश नहीं है, मात्र दल है, जिसे अतीत के गौरव के अलावा वर्तमान में भी अपना औचित्य सिद्ध करने की नये सिरे से जरूरत है। अब यह स्पष्ट है कि देश एक दल के शासन के युग से निकल चुका। यह दूसरी बात है कि देश को उसकी प्रतिभा और परिस्थिति के अनुरूप लोकतंत्र अभी मिला ही नहीं है। लेकिन जो भी ढाँचा आज है उसमें देश तो सामने रखा जाय! दल देश के लिए है, देश दल के लिए नहीं। देश की जनता प्रधानमंत्री और उसकी सरकार को इसी रूप में देखना चाहती है, भले ही वह संतति हो दल की। देखना है कि दिल्ली इस नाजुक समय दलों के दलदल से कितना ऊपर उठ पाती है। अब भी कांग्रेस को राष्ट्रीय सरकार बनाने की भूमिका तैयार करने में आगे बढ़ना चाहिए।●

ग्रामदान : हरिजन और गिरिजन को ऊपर उठाने का आन्दोलन

शक्ति और मुक्ति के लिए छिटपुट नहीं, संगठित प्रयास अनिवार्य

'करो या मरो' की उत्कट भावना से काम में जुट जाने के लिए

—आचार्य विनोबा का प्रेरक उद्बोधन—

किसी मकान को अगर ताला लगा हुआ है और उस मकान में प्रवेश करना है तो ताला तोड़कर जाना पड़ेगा और मजबूत ताला हो तो तोड़ना कठिन होगा। लेकिन अगर ताले की कुंजी हाथ में हो तो मकान में प्रवेश करना आसान हो जायेगा। 'ताला-कुंजी गुरु हमें दीन्ही, जब चाहे तब खोलो किवड़वा'—हमको गुरु ने ताला-कुंजी दी है इसलिए जब हम चाहते हैं तब एकदम दरवाजा खोल लेते हैं। इस क्षेत्र में ग्रामदान का काम करते हुए आपके इतने दिन गये। अब हमको विश्वास होता है कि यह समय ताला खोलने में नहीं गया है, बल्कि कुंजी खोजने में गया है। अब कुंजी हाथ में आयी है। अब कुंजी खोजने में जितना समय गया उसके साथ इसकी तुलना नहीं हो सकती कि उतना ही समय ताला खोलने में जायेगा। समझने की बात है कि ग्रामदान-आन्दोलन किनके लिए है, यानी मुख्यतया किनके लिए है? ऐसे तो उसका विचार सबका भला हो, यही है। लेकिन सबमें जो पिछड़ा हुआ है, नीचे दबा हुआ है उसके लिए यह आन्दोलन है, यह समझने की जरूरत है। एक परिवार में परिवार के सब लोगों का भला चाहते हैं, फिर भी कोई लड़का बीमार हो, कमजोर हो तो सबका मुख्य ध्यान उस पर होता है। जो कमजोर है उसे पहले मजबूत होना चाहिए। सबका भला समानरूपेण चाहते हैं, लेकिन जो गिरे हुए हैं उनको उठाना, जो डूब रहा है उसको बाहर निकालना, उसकी मदद करना, यह प्रथम काम होता है। हमारे आन्दोलन का मुख्य बिन्दु है सबसे पिछड़े हुए को ऊपर उठाना। इसको संस्कृत में अन्त्योदय कहते हैं। वह उठ गया तो सब अपने आप उठ जाते हैं। यह ध्यान में आ जाय तो पिछड़े हुए लोगों में कौन-कौन हैं यह देख सकते हैं। हरिजन हैं, आदिवासी हैं भूमिहीन हैं। हमने भूदान में जो जमीन मिली उसका कुछ निश्चित हिस्सा हरिजनों को देने के लिए रख दिया, वैसे ही ग्रामदान में आदिवासी आयेंगे तो जो जमीन उनकी होगी वह आदिवासी भूमिहीनों को ही दी जायेगी। वे हरिजन थे और ये गिरिजन हैं।

आपको यहाँ एक कठिनाई यह आयी होगी कि उत्तर बिहार की मिट्टी में पत्थर नहीं, और कांटा नहीं, और पहाड़ का तो सवाल ही नहीं। तो प्रथम आपको मुकाबिला करना पड़ा होगा जंगलों से, पहाड़ों से। यहाँ के गाँव दूर-दूर होते हैं। उधर तो इस गाँव के कुत्ते की आवाज दूसरे गाँव के लोगों को सुनाई देती है और यहाँ तो दो गाँवों के बीच पहाड़ ही आ जाता है। मेरे प्यारे भाइयो, इसलिए इनको कहा 'गिरिजन'। तो हरिजन, और गिरिजन इन दोनों के लिए मुख्यतया यह आन्दोलन चल रहा है। इसमें और जितने जन हैं उनका भला होता है। यह है कुंजी। अगर कहीं यह गलतफहमी हुई कि उधर के लोग इधर आते हैं, और सारी जमीन हड़प लेते हैं, तो अच्छी बात नहीं होगी। उनको समझाना चाहिए कि यह आन्दोलन उनके भले के लिए है। उनको मुक्ति दिलानेवाला, शक्ति दिलानेवाला आन्दोलन है, शक्तिदायी और मुक्तिदायी आन्दोलन।

मुझसे पूछा गया कि आदिवासियों को जो जमीन मिली वह सब आप आदिवासी में बाटेंगे, ऐसी कुछ सुविधा की जाय; तो हमने उसको मंजूर किया है। आदिवासियों की जो जमीन मिलेगी वह तो उनमें बँटनी ही चाहिए और दूसरी जमीन भी उनको मिलनी चाहिए। इस आन्दोलन का यह कार्य है। इसमें कोई भय की बात नहीं है।

अवतार : वीरता और साधुता का समन्वित स्वरूप

दूसरी बात एक भाई ने कही कि यहाँ बिरसा भगवान की चलती है। हमारे लिए यह कोई नयी बात नहीं है। हम यहाँ पहले आ चुके हैं। १५ साल पहले पदयात्रा करते-करते आये थे और सारा क्षेत्र पैदल घूम चुके हैं। उस वक्त हमने यहाँ का काफी अध्ययन किया था। बिरसा भगवान का नाम हमको मालूम हुआ था। आदिवासियों की रीति-रिवाज के बारे में भी हमने पढ़ा था। बिरसा भगवान एक अवतारी पुरुष हो गये। यह छोटी-सी जमात है जिसमें वे जन्मे थे। क्या आदिवासियों में भी अवतार होता है? हाँ, वह होता है। परमेश्वर की यह लीला है—मत्स्यावतार, कच्छपावतार! भगवान तो हर प्राणियों में अवतार लेते हैं। तो मानवों में जो पिछड़े हुए हैं वे उनमें क्यों नहीं अवतार लेंगे? हमको समझना चाहिए कि अवतार भले ही किसी कौम में पैदा होते हों, लेकिन वे कौम के नहीं होते, सब दुनिया के होते हैं।

कबीर हो गये। उनका जन्म किस कौम में हुआ, सवाल ही नहीं रहा। जब उनकी मृत्यु हुई, तब उनको दहन करना कि दफन, यही सवाल रहा। वे हिन्दू थे कि मुसलमान यही झगड़ा। फिर सब लोगों ने मंजूर किया कि वे हिन्दू भी थे और मुसलमान भी। तो अवतार सबका होता है। अवतार किसी कौम का नहीं होता, भले किसी एक कौम में जन्मा हो। तो बिरसा भगवान हमारे भी हैं। एक वीर पुरुष होता है, और एक सन्त पुरुष होता है। अवतार वह होता है जो वीर और सन्त दोनों होता है। शाहाबाद के कुँवर सिंह वीर पुरुष का नमूना थे। सन्त पुरुष का नमूना हैं तुलसीदास। जिनमें दोनों गुण इकट्ठे होते हैं, वह अवतार होता है। बिरसा भगवान उस कोटि के अवतार हुए। उनकी जमात छोटी थी इसलिए दुनिया भर में ख्याति नहीं गयी। इसलिए हमको उनके वचनों का अध्ययन करना चाहिए। बाबा यह दावा करता है कि उसने उनका अध्ययन

किया है और एक ... थी उसमें उन्होंने खमीर का काम किया यह बाबा के ध्यान में आया है। खमीर डालने से आटा फूल जाता है। वैसा उन्होंने अपनी कौम के लिए काम किया है। तो यहाँ उनका चलता है, तो मेरा भी चलना है। यानी उन्हीं का काम मैं कर रहा हूँ।

एक भाई ने मुझे कहा कि वे यहाँ काम कर रहे हैं। आदिवासियों की जो जमीन उनके हाथ से चली गयी है वह वापस लेने का काम वे कर रहे हैं। मैंने उनको कहा कि काम टुकड़े टुकड़े में नहीं होता। अगर मुझे किसी को पकड़ना है और मैं उसकी नाक पकड़ लूँ तो वह मेरे हाथ में नहीं आयेगा। कान पकड़ लूँ तो भी हाथ में नहीं आयेगा। उसके हाथ पकड़ने पड़ेंगे तब वह मेरे काबू में आयेगा। इसलिए जो जमीन गयी वह वापस लेना, केवल इतने से काम नहीं होगा, नयी जमीन लेना, पुरानी जमीन लेना, लोगों में ताकत पैदा करना, यह होगा तब शक्ति खड़ी होगी और गाँव-गाँव की मुक्ति होगी।

ग्रामदान : शक्ति और मुक्ति-आन्दोलन

अब यहाँ क्या स्थिति है? सब टुकड़े-टुकड़े पड़े हैं। आदिवासी, गैर आदिवासी, क्रिश्चियन आदिवासी, और गाँव के बाहर के व्यापारी वगैरह, भिन्न-भिन्न राजनैतिक पार्टी वगैरह के टुकड़े तो हैं ही। इस प्रकार से सब टुकड़े टुकड़े किये जायें तो काम नहीं बनता। इस वास्ते गाँव का परिवार बनाओ। गाँव की ताकत बढ़ाओ तो गाँव मुक्ति की ओर बढ़ेगा। फिर गाँव की जो माँग होगी, सब लोगों के द्वारा मिलकर की हुई, उसे सरकार अमान्य नहीं कर सकती। इसलिए हमने इसको नाम दिया शक्ति आन्दोलन और मुक्ति आन्दोलन। फिर आप केवल चाहें तो काम हो जायेगा, केवल चाह भर से काम होगा।

अब इस काम के लिए आप लोगों को यहाँ की भाषा सीखनी होगी, नम्र बनना होगा। 'कटु वचन मत बोल, घूँघट का पट खोल।' नम्रतापूर्वक मधुर वचन बोलना चाहिए।

फिर मुझसे कहा गया कि किसी ने ...न के ... है। इससे क्या बनेगा? कोई प्रस्ताव करे जीवन के खिलाफ तो उससे क्या बननेवाला है? यह नासमझी की बात है। इसीलिए वे ग्रामदान के खिलाफ हैं। उनको समझाना चाहिए कि इसके बिना गाँव खड़ा नहीं होगा। इसलिए बाबा आदिवासी, गैर आदिवासी, सबकी ताकत खड़ी करना चाहता है।

ताकत खड़ी करने के तीन रास्ते हैं—एक रास्ता है कानून का। लेकिन उससे काम कितना बन सकता है, यह हम देख रहे हैं। बिहार में तो खेल चल रहा है। मध्यावधि चुनाव के बाद एक मंत्रिमण्डल आया, कुछ दिन रहा चला गया। दूसरा आया वह तो नव-रात्रि, नौ दिन रहा और चला गया। यह तो क्रिकेट का खेल चल रहा है। कभी बॉल इधर तो कभी उधर। इसलिए आज जनता को कानूनी तरीके से मदद मिलेगी, यह आशा हो तो आज की परिस्थिति को आपने पहचाना नहीं और आपकी मृग जल-वत् आकांक्षा है। आज तो सरकार वचन देते चली जाती है। 'वचने का दरिद्रता' वचन देने में क्यों दरिद्र होना चाहिए। पालन करने का तो सवाल ही नहीं आता, इसलिए वचन देने में दरिद्र नहीं होना चाहिए, तो देते चले जाओ।

क्रान्ति का एक ही मार्ग

कल हमने अखबार में पढ़ा कि भारत सरकार के खाद्यमंत्री ने कहा है कि हमें दो साल के बाद अनाज बाहर से नहीं मँगवाना पड़ेगा और इतना ही नहीं हम बाहर के लोगों के लिए भेज भी सकेंगे। यह गर्जना तो सन् १९५१ में भी सुनी थी। आज सन् १९६९ है। १८ सालों में लोगों को खाने के लिए भी अनाज नहीं है और अब आप कह रहे हैं कि दो साल में बाहर भेजने तक अनाज हो जायेगा। प्यारे भाइयो, ऊपर के वादे से कुछ होने-वाला नहीं है और कानून से कुछ होगा, यह आशा करना व्यर्थ है। तो यह एक कानून का रास्ता हुआ।

दूसरा रास्ता कत्ल का है। अगर कत्ल का रास्ता मदद करेगा, ऐसा हम समझते हैं, आदिवासी या हरिजन ... होगी। इनके पास क्या शस्त्र होते हैं? नक्सालवाई वालों को हमने यह बात समझायी थी। आपके पास तीर धनुष होता है। तीर-धनुष लेकर क्रान्ति हो सकती थी रामचन्द्र के युग में। क्योंकि उनके पास धनुष-बाण थे और दूसरों के पास वे नहीं थे। वह त्रेता युग की बात थी। आज तो 'एटमिक एनर्जी' मिली है। तरह तरह के साधन उपलब्ध हैं और आपने सरकार चुनकर उसको मिलिटरी रखने का अधिकार दिया हुआ है। इसलिए आप धनुष-बाण लेकर कुछ करेंगे तो मिलीटरी आयेगी और आपको खतम करेगी। अब नक्सालवादी की बात करते हैं। नाम ही अगर लेना हो तो माओ का लो, लेनिन का लो। माओ या लेनिन का नाम लेते हैं, तो समझ सकता हूँ। लेकिन नक्सालवादी में क्या किया? कुछ छिटफुट खून बहाया, क्रान्ति नहीं हुई। इसलिए मैं कहता हूँ कि हिन्दुस्तान में खूनी क्रान्ति नहीं होगी। इसी तरह अगर खून, मारा मारी चलता रहे तो क्रान्ति तो होगी नहीं, लेकिन देश कमजोर होगा। उस हालत में परदेश को आक्रमण करना आसान होगा। ऐसी स्थिति में ये छोटी छोटी कौमें क्या कर पायेंगी?

इसलिए तीसरा रास्ता करुणा का है। गाँव का परिवार बनायें। और परिवार बनाकर देश को मजबूत करें। गाँव का परिवार बनाकर अगर माँग करते हैं तो उस माँग की मुखालिफत होगी नहीं।

मैं जानता हूँ कि आपलोग काफी दिनों से इस क्षेत्र में आकर काम में लगे हैं। घर की याद आती होगी। खेत बोने के दिन आये हैं। लेकिन मैं आपको खबरदार करना *चाहता हूँ कि हमारी यह शान्तिसेना है,* तो हमें यह काम पूरा करके ही वापस जाना है। गुरुदेव का गीत है—'अमारेर यात्रा होलो शुरू होगो कर्णधार, फिरबो नाइको आर,' बापू ने कहा था—डू आर डाई'। ऐसा मन्त्र सामने आता है तो मनुष्य को ताकत आती है। अभी हमें और तकलीफ भोगनी है। तकलीफ भोगनी है ऐसा दर्शन हुआ तो उत्साह होना चाहिए। अब तक तो→

जयप्रकाश नारायण

तरुण सामाजिक क्रान्ति और निर्माण की शक्ति बनें

[गत २२ से २६ जून तक बिहार के दरभंगा जिला स्थित पूसा रोड में बिहार के अध्यापकों, प्राध्यापकों, आचार्यों का शिविर तरुण शान्तिसेना को संगठित और संचालित करने का प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से बिहार शान्तिसेना समिति द्वारा आयोजित हुआ था। इस शिविर का उद्घाटन करते हुए श्री जयप्रकाश नारायण ने तरुण शान्ति-सेना के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला। प्रस्तुत लेख उनके उक्त भाषण पर ही आधारित है। इससे तरुण साथियों को अपनी दिशा निर्धारित करने में मदद मिलेगी। —हमराही]

तरुण शान्तिसेना आज एक छोटी-सी संस्था है, लेकिन हम आशा जरूर करते हैं कि जल्द ही यह संस्था देश के हर महाविद्यालय और विद्यालय में स्थापित हो जायगी और उसमें हजारों नहीं, लाखों सैनिक हो जायँगे। इस संस्था के लिए जो बड़े और मोटे उद्देश्य हैं, वे चार हैं ऐसा मानिए '—१. राष्ट्र की एकता, २. सर्वधर्म समादर और समानता, ३. लोकतंत्र की पुष्टि, ४. विश्वशान्ति।

चरित्र की शक्ति

इसके लिए पहला कार्यक्रम है तरुणों में चरित्र का विकास करना, उनमें नेतृत्व की शक्ति पैदा करना, उनमें यह क्षमता पैदा करना कि सम्मिलित रूप से वे काम कर सकें। तरुण शान्तिसेना के संचालक, उसके प्रशिक्षक इस योग्यता के हों, इस चरित्र के हों, स्वयं उनमें यह गुण हो चरित्र का, लोगों को इकट्ठा करके साथ मिलकर काम करने का, तो मैं मानता हूँ कि जिन तरुणों को हम इस सेना में इकट्ठा करेंगे, उन सबमें इस प्रकार के गुण हम पैदा कर सकते हैं। अपने देश में हम लोगों की एक बुराई है कि हम भाषण बहुत देते हैं, एक तरफ वक्ता, दूसरी तरफ श्रोता। लेकिन प्राचीन भारत की बात हम जब पढ़ते हैं, तो दूसरी ही बात सामने आती है, खास करके उस काल की जो इतिहास में एक हजार वर्ष का काल था। मेरा मतलब उपनिषद काल से है। उसमें शायद जितना विकास हुआ मनुष्य की बुद्धि का, मनुष्य के मानस का, विचारों का, उतना शायद दुनिया के इतिहास में नहीं हुआ होगा। पास बैठकर के गुरु से चर्चा हो, यह उपनिषद् का शाब्दिक अर्थ है। अगर आपने उपनिषद् देखे होंगे तो उसमें प्रश्नोत्तरी आप बहुत पाये होंगे, जैसे सुकरात की पद्धति थी उस प्रकार की पद्धति उपनिषद् काल में थी। मुझे इस शिविर में भी लगता है, और तरुण शान्तिसेना के सारे शिविरों में, सारे कार्यक्रमों में, लगता है कि ऐसी पद्धति हमें निकालनी होगी ताकि अधिक-से-अधिक युवक भाग ले सकें चर्चाओं में। उसमें उनका जितना विकास होगा, उतना विकास केवल श्रवण से नहीं होगा।

मेरा ख्याल है कि चरित्र के निर्माण में जो सबसे प्रभावशाली तत्त्व है, वह यही है कि जो तरुण समाज का नेता होगा, उसका स्वयं किस प्रकार का चरित्र है, कैसा वह आदर्श पेश करता है। छोटे बच्चों को भी आप जानते हैं कि उदाहरण का ज्यादा गहरा असर होता है। छोटा बच्चा भी बहुत गहराई से समझ लेता है कि माता-पिता-अभिभावक जो उसे समझाते हैं, उसपर स्वयं आचरण करते हैं कि नहीं। अगर वह देखता है कि वे केवल बात ही करते हैं काम उसके अनुकूल नहीं, तो उस उपदेश का कोई असर उसपर नहीं होता। तो आप इस बात को स्वीकार करेंगे कि अगर तरुणों को हम एकत्रित करते हैं, तो पहला उद्देश्य यही होना चाहिए इसके संगठन का कि स्वयं उनका विकास हो और एक दूसरे से उनका सम्बन्ध, सौहार्द, सहकार बढ़े और उनके अन्दर नेतृत्व की शक्ति पैदा हो। उनमें विकसित होनी चाहिए भाईचारे की, एकता की भावना। ऐसा नहीं है कि चरित्र के लिए अलग से कोई वर्ग नहीं लिया जायेगा। नीति-शास्त्र की चर्चा हो सकती है, आधुनिक समाज में क्या परिस्थिति है, और उन परिस्थितियों में मौजूदा रीति-नीति में क्या परिवर्तन करने की आवश्यकता है, बौद्धिक स्तर पर इसकी चर्चाएँ हो सकती हैं।

धार्मिक उदारता

अपने देश में अनेक धर्म हैं। यह सम्भव है कि जो जिसका धर्म है, उसे वह माने कि हमारा धर्म सबसे अच्छा है। परन्तु साथ-साथ दूसरे धर्मों के प्रति वह आदर रखे, यह तो अवश्य ही होना चाहिए। यह एक सत्य है मानवीय जीवन के लिए। सभी धर्मों में कुछ-न-कुछ तत्त्व है। कोई धर्म ऐसा नहीं है जो दावा कर सकता है कि सारा तत्त्व हमारे ही पास है। इस प्रकार से हम अपने धर्म का पालन करें और हमें लगे कि किसी धर्म में कोई अच्छाई है, कोई सत्य है, तो हम उसे ग्रहण भी करें। इससे हम कोई विधर्मी बन जाते हैं, ऐसा नहीं है। हमारे धर्म में जो प्राण था, जो शक्ति थी, जो तेज था, वह आज नहीं है, बाहर का ऊपरी रूप है, कर्मकाण्ड है, दिखावा है। नहीं तो हमारे ये हरिजन भाई किस प्रकार से रह रहे हैं? आज कोई आठ

←कुंजी हाथ में नहीं थी। अब कुंजी हाथ में आ गयी है तो ताला खोलने में देरी नहीं लगनी चाहिए और जितनी देरी लगेगी उतना हम यहाँ रुकेंगे, ऐसा मन में निश्चय होना चाहिए।

—राँची जिलादान-अभियान में लगे मुख्यतः उत्तर बिहार के कार्यकर्ताओं की सभा में किया गया भाषण।
राँची : २-७-'६६

करोड़ की संख्या है उनकी। समाज में उनको कैसा दरजा है ?

आज हिन्दू धर्म के नाम से जो धर्म प्रचलित है उसके अन्दर उनका स्थान नहीं है। आदिवासी हैं, वे भी दूर हैं हमसे। ईसाई मिशनवाले किस प्रकार से उनका धर्मान्तर कर रहे हैं ? वह कोई धर्म समझाकर कर रहे हैं ऐसी बात नहीं है। हिन्दू धर्म अपनी संकीर्णता के कारण अपना ही नुकसान कर रहा है। वे सब पूछते हैं कि हिन्दू बनेंगे तो कहाँ रखियेगा आप ? हम बौद्ध होते हैं, ईसाई होते हैं, मुसलमान होते हैं तब तो बराबरी के दर्जे पर आते हैं! यह थोड़ा विषयान्तर हुआ। लेकिन जानबूझकर यह विषयान्तर इसलिए किया कि जो दुर्बलता हमारे अन्दर आयी है, उसका परिणाम होता है कि हम अपने को दूसरों से बचाने के लिए जाति-प्रथा के नाम पर, छुआछूत के नाम पर, खानपान के नाम पर एक दीवार खड़ी कर लेते हैं, और उसके अन्दर हम घेर लेते हैं अपने को।

लोकतान्त्रिक आस्था

जहाँ तक लोकतंत्र की बात है, उसके एक-एक मुद्दे को लेकर के सोचना होगा हमें कि लोकतन्त्र को पुष्ट करने के लिए तरुण क्या कर सकते हैं। तरुणों की कोई पार्टी होगी चुनाव लड़ने के लिए, उनकी कोई अलग हुकूमत होगी, कोई शासन खड़ा किया जायेगा, तब लोकतन्त्र पुष्ट होगा या तरुणों को अमुक पार्टी में भरती होना होगा, क्या करना होगा, यह समझने की जरूरत है। आज तो वर्तमान जो परिस्थिति है अपने देश की, और खासकर बिहार की, यह समस्या बहुत महत्त्व की हो गयी है। सन् '६७ के बाद से अपने देश में जो लोकतंत्र है उसकी नौका बिलकुल डाँवाडोल है। कब डूब जायेगी, कहना मुश्किल है। इस हालत में अगर यह सन्देह पैदा हो कि इसका भविष्य और भी धूमिल है, खतरे में है, तो यह कोई सन्देह बेबुनियाद तो नहीं होगा। बहुत से पढ़े लिखे लोग, आप जैसे शिक्षक कालेज के, स्कूल के तथा दूसरे लोग कहते हैं, "साहब अब राजनीति पर हमारा विश्वास नहीं रहा, इस चुनाव पर हमारा विश्वास नहीं रहा, लोकतंत्र की पद्धति पर विश्वास नहीं रहा।" तो किस पर विश्वास है ? भगवान ने बुद्धि दी है तो सोचना चाहिए न कि इसका कोई विकल्प है, कैसा विकल्प है, क्या है ? और तरुण नहीं सोचेंगे तो कौन सोचेगा ? अगर तरुण नहीं सोचेगा तो क्या होगा ? डिक्टेटरशिप (तानाशाही) होगी। आपने देखा तानाशाह अपने बगल में था उसका क्या परिणाम हुआ ? जनता का विद्रोह हुआ तो गद्दी छोड़नी पड़ी। बहुत से लोग कहते हैं कि लोकतन्त्र में भ्रष्टाचार होता है। अब अयूब खाँ साहब के जाने के बाद उनकी पार्टी के लोगों ने उनपर आरोप लगाया है कि दो करोड़ रुपये का हिसाब देना है आपको। दो करोड़ रुपया किधर गया मालूम नहीं है। दुनिया के किस देश में तानाशाह है, जिसने को बहुत कुछ कर लिया ? सुकर्णो था, क्या उसका हुआ ? नक्रूमा था उसका क्या हुआ ? ईराक में कितने आये और गये। नासिर की स्थिति भी डाँवाडोल है, न जाने क्या होगा। इस्तीफा नहीं दिया होता, तो शायद और भी ज्यादा विरोध उनका हुआ होता। तो इस पर हमें बहुत गम्भीरता से विचार करना पड़ेगा।

विश्वशान्ति

विश्वशान्ति एक ऐसा लक्ष्य है, जिसके बारे में आज विवाद नहीं है। अभी अखिल भारतीय तरुण शान्तिसेना का सम्मेलन हुआ। उस सम्मेलन का उद्घाटन किया गुजरात विश्वविद्यालय के उपकुलपति ने। उन्होंने कहा कि आइंस्टीन ने ऐसा कहा है कि मुझे नहीं मालूम तीसरा विश्व-युद्ध किस प्रकार का होगा, (शायद ऐसा होगा जिसमें मनुष्य चूहों की तरह मरेंगे) लेकिन हमें मालूम है कि चौथा विश्वयुद्ध किस प्रकार का होगा। इस बारे में हमें कोई संशय नहीं है। और कहा उन्होंने कि चौथा विश्व-युद्ध होगा ऐसा जिसमें लोग लड़ेंगे मुक्कों से और लाठियों से, यानी अगर तृतीय विश्व-युद्ध हुआ तो इस सारी सभ्यता का, और मानव-सृष्टि का सर्वनाश हो जायगा। मानव समाज हजारों वर्ष पीछे चला जायगा। इसलिए विश्वशान्ति कोई ऐसी एक वस्तु है, या कोई ऐसा एक उद्देश्य है जिसे कुछ पागल लोग, जो अहिंसा को मानते हैं, उन्हीं का ध्येय है ऐसा नहीं। दुनिया का आज कोई राष्ट्र ऐसा नहीं जिसका राष्ट्राध्यक्ष या प्रधानमंत्री यह नहीं कह रहा है कि हम विश्व-शान्ति चाहते हैं। संयुक्तराष्ट्र संघ बना ही इसलिए कि दुनिया में कहीं भी आग लगती है, तो सबको यह भय होता है कि यह चिनगारी फैल जायगी, सारी दुनिया में। उसको बुझाने का सारा प्रयास होता है। चाहे कोरिया हो, कांगो हो, कश्मीर हो, पश्चिम एशिया हो, चाहे वियतनाम हो, सब लोग मिलकर इस आग को बुझाने का प्रयत्न करते हैं। क्योंकि सबको भय है कि अब युद्ध को एक क्षेत्र में सीमित करना कठिन है।

पश्चिमी तरुणों का विद्रोह

सारा जो विद्रोह हुआ है अमेरिका में तरुणों और तरुण शिक्षकों का, उसके पीछे जो सबसे बड़ी प्रेरणा थी, वह वियतनाम-युद्ध की थी। राष्ट्रपति जानसन को गद्दी छोड़नी पड़ी। उन्हें एलान करना पड़ा कि मैं खड़ा नहीं होऊँगा अगले चुनाव में। आप देख रहे हैं कि श्री निक्सन ने घोषणा की है, कि वियतनाम से धीरे-धीरे अपने सैनिकों को वापस बुलायेंगे। अबतक ३० हजार वापिस करने का तय किया है और हाल में ही कहा है कि जो समय निर्धारित था, उससे पहले ही हम हटा लेंगे। तो युद्ध अब वैसा नहीं रहा जैसा पहले का था। इसलिए आज लोग गांधीजी के भक्त हो गये हैं, ईसामसीह के भक्त हो गये हैं, बुद्ध भगवान के भक्त हो गये हैं, ऐसी बात नहीं है। बौद्ध भी हैं, और हिन्दू या भारतीय भी हैं जो गांधीजी को माननेवाले हैं, और ईसाई भी हैं, जिनके हृदय में अभी वे सब बातें मौजूद हैं जिनसे युद्ध पैदा होता है, हृदय में भी, मानस में भी। युद्ध तो हमारे दिमाग में घुसा हुआ है, जो बराबर प्रकट होता रहता है। वह जो पशु हमारे अन्दर बैठा है, काफी प्रबल है। सबसे खतरा है कि इस पशु के हाथ में जो हथियार है वह पुराना हथियार नहीं है, सर्वनाशक हथियार है। तो विश्वशान्ति अब सबको मान्य है, चीन को भी मान्य है। इसलिए विश्वशान्ति अब सर्वमान्य है।

ऐसी बात नहीं है कि चीन विश्वशान्ति

नहीं मानता है। विश्वयुद्ध की तैयारी कर रहा है। वह जानता है कि इसका परिणाम क्या होगा। इसीलिए एक हद तक वह लड़ाई ठानता है, लेकिन उसके आगे वह नहीं जाता। रावण की तरह एक हद तक वह आगे बढ़ता है। वियतनाम के बारे में इतना उद्धत रूप उसने किया, लेकिन कम-से-कम मदद की है वियतनाम की। रूस से भी झगड़ा है, अमेरिका से झगड़ा है। बातों में तो वह झगड़ता है, बहुत गालियाँ बकता है, लेकिन वास्तव मे काम में भयभीत है। लेकिन दुनिया मे उसका जो स्थान है वह 'पावर' ही नहीं 'सुपर पावर' के रूप मे है, इस बात को वह स्थापित करना चाहता है और लगभग वह बात स्थापित हो चुकी है। तो सब यह मानते है कि विश्वशान्ति होनी चाहिए। इधर-उधर आग लगे तो उसको बुझाना चाहिए। अब तरुण शान्तिसेना इस विश्वशान्ति को नजदीक लाने में, व्यावहारिक करने में क्या मदद कर सकती है? तरुण हमसे पूछते हैं कि यह शान्ति-शान्ति क्या है? हमें रस्सियों में बाँधना चाहते हैं क्या? हम सारे समाज को पलट देना चाहते है तो शान्ति के नाम मे क्या आप यथास्थितिवाद को प्रश्रय देते हैं?

समग्र सामाजिक क्रान्ति

ऐसी बात नहीं है। मुझे केवल सामाजिक न्याय से संतोष नहीं है। मैं सम्पूर्ण और समग्र सामाजिक क्रान्ति चाहता हूँ। आज समाज मे जितनी कुरीतियाँ हैं उनमे आमूल परिवर्तन करना है। लेकिन जाति प्रथा है तरुणों में, शिक्षकों में, राजनैतिक नेताओं में और लगभग सभी लोगों में। भयंकर जातिवाद है। तरुणों के स्वधर्म में है क्या जातिवाद? बैठता है, तरुणों के स्वधर्म में? उनकी भी दृष्टि सीमित ही रहेगी क्या? इस तरह के छोटे-से घरौंदे मे घिरे रहेंगे क्या हमारे तरुण? और हर जाति के तरुण अलग-अलग रहेंगे क्या? जो जाति की कल्पना आज के समाज में है, भावी समाज जिसे हमें बनाना है, उस समाज की कल्पना में भी उस जातिवाद का, जाति की संस्था का स्थान है क्या? आज कोई कहता है कि विवाह की प्रथा में सुधार करना चाहिए? माता-पिता अगर संकोच भी करते हों कि कितना हम पैसा माँगे, कितना हम दहेज माँगे अपने बेटे की शादी के लिए तो बेटा खुद आगे आकर के बोलता है। यह तरुणाई का लक्षण है क्या? ऐसे ही तरुण नया भारत बनायेंगे क्या? और वह भारत कैसा होगा जिस भारत के तरुणों ने शादी के लिए अपनी कीमत रुपयों में तय की हो, और उसकी बीवी के माँ-बाप ने उनको खरीदा हो। वह कैसा समाज बनेगा? वह कोई सुसंस्कृत समाज होगा? भारतीय समाज होगा? तो तरुणों में अगर क्रान्ति-भावना हो और वे समाज की क्रान्ति के लिए साधन बनें तो फिर उनका आचरण कैसा होना चाहिए, दूसरे के साथ उनका बरताव कैसा होना चाहिए? आजकल के तरुणों में बहुत अहम् है। उनका व्यवहार, जो उनसे नीचे के लोग हैं, उनके साथ बराबरी का नहीं होता, सौहार्द्र का नहीं होता। तो तरुण सामाजिक क्रान्ति में कैसे सहायक हों, यह सोचना होगा। केवल जुलूस निकालना, नारे लगाना, गालियाँ देना, उपकुलपति का घेराव करना, तोड़फोड़ करना, बेचारे गरीब बस के कण्डक्टर को मारना-पीटना, परीक्षा-भवन में चोरी कर रहे हों और निरीक्षक ने पकड़ लिया, परीक्षा हाल से निकाल दिया तो दूसरे दिन कहीं मिलकर उसकी ठोकाई कर देना। क्या यही तरुणाई है? क्या यही क्रान्ति है? क्या इससे कोई नया भारत बननेवाला है? अगर क्रान्ति की भूख है, और उसका साधन बनना है, तो उसके योग्य बनना होगा।

आखिरी उद्देश्य तरुण शान्तिसेना का है कि शिक्षा-प्रणाली में और शिक्षा के तंत्र में परिवर्तन होना चाहिए। तरुण शान्तिसेना के लोग गम्भीरता से उस पर विचार करें और जो तरुण हैं, विद्यार्थी की हैसियत से उनको समस्याएँ क्या हैं, उन समस्याओं को समझने की कोशिश करें, और उनको हम दूर करने की चेष्टा करें। अगर ये चार उद्देश्य हम सामने रखते हैं तो देश के नवनिर्माण में तरुणों का सर्वांगीण रूप से योगदान हो सकता है, ऐसा मैं मानता हूँ।●

सम्पादक के नाम चिट्ठी

जयप्रकाश बाबू की परेशानी और हरिभाऊ उपाध्याय तथा गांधीवादियों का दुःख

महोदय,

'भूदान-यज्ञ' के १४ जुलाई '६९ के अंक में पृष्ठ ५०६ पर प्रकाशित 'जयप्रकाश बाबू की परेशानी' शीर्षक श्री हरिभाऊ उपाध्याय का पत्र पढ़ा। श्री हरिभाऊ उपाध्याय के अनुसार क्या गांधीवादी और क्या दूसरे जिम्मेदार भारतीयों को साश्चर्य दुःख; (जिसमें हरिभाऊजी भी निःसन्देह शामिल हैं) जयप्रकाश बाबू की दिल्ली में आयोजित 'गांधी जन्म शताब्दी उत्सव' में व्यक्त परेशानी (जो वास्तव मे उनकी परेशानी नहीं चेतावनी है, और जिसे वे किसी-न-किसी रूप में काफी अर्से से देश के चेतन समुदाय के समक्ष रखते रहे हैं) के कारण हुआ, उसे पढ़कर गांधी-विचार मे आस्था रखनेवाले और ग्राम-स्वराज्य के आन्दोलन में एक सिपाही की हैसियत से अपनी शक्ति भर काम करने वाले मुझ कार्यकर्ता को भी कम साश्चर्य दुःख नहीं हुआ। वह पत्र उस दुःख से विकल होकर ही मैं लिख रहा हूँ, आशा है आप इसे प्रकाशित करने की कृपा करेंगे।

मुझे न केवल श्री हरिभाऊ उपाध्याय की अभिव्यक्ति पर ही, बल्कि उनकी भाषा पर भी गहरी आपत्ति है। श्री उपाध्यायजी ने लिखा है,—"क्या गांधीवादी और क्या दूसरे जिम्मेदार भारतीयों को साश्चर्य दुःख हुआ होगा।" मुझे नहीं पता कि देश में और भी कितने ऐसे गांधीवादी और जिम्मेदार भार-

पुण्य-स्मरण

अमर शहीद श्री देव 'सुमन'

'क्या तुम अपने को चाँदी के चंद टुकड़ों के बदले बेच डालोगे?'—यह था मेरे तरुण मस्तिष्क में हलचल पैदा करनेवाला श्री देव 'सुमन' का छोटा-सा सवाल, जो उन्होंने १० वर्ष पहले मुझसे पूछा था। यही सवाल उन्होंने कई तरुणों से पूछा होगा, क्योंकि उस समय तक 'हिमालय की अंधेरी-से-अंधेरी गुफाओं' में रहनेवाले लाखों प्रजा-जनों के कानों तक गांधी का स्वराज्य का संदेश नहीं पहुँचा था। इन रियासतों के शासक अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि कहकर भोली-भाली प्रजा पर मनमाने अत्याचार करते थे। टिहरी के राजा 'बोलांदा बद्रीनाथ' (बोलते हुए बद्रीनाथ) कहलाते थे। ऐसी हालत में उनकी मनमानी के विरुद्ध प्रजा का संगठन राजद्रोह माना जाता था। बड़े लोग बागी 'सुमन' की बातें नहीं सुनते थे, इसलिए उनके पहले साथी स्कूली लड़के हुए। इन तरुणों ने पुराने मूल्यों और मान्यताओं को ठुकराकर स्वराज्य लिये बिना चैन न लेने के 'सुमन' के संकल्प में साझीदार बनने का निश्चय किया था।

जीवन-यात्रा का प्रारम्भ

२५ मई सन् १९१५ को टिहरी-गढ़वाल के छोटे से पहाड़ी गाँव जौल में एक सेवाभावी वैद्यजी के घर जन्म लेकर श्री देव 'सुमन' को बचपन से ही संघर्षमय जीवन बिताना पड़ा था। पिताजी हैजा के रोगियों की सेवा करते-करते स्वयं ही हैजे से ग्रस्त होकर मर गये। फलतः बच्चों का पोषण कठोर परिश्रमी माँ तारादेवी ने बहुत गरीबी में किया। माँ ने 'सुमन' को मिडिल तक की शिक्षा भी दिला दी। सब गरीब गढ़वाली लड़कों की तरह 'सुमन' भी रोजगार की खोज में देहरादून गये। वे नमक-सत्याग्रह के दिन थे। उनके पास पिता की सेवा-भावना और माँ की कठिनाइयों से जूझने की शक्ति की पूँजी थी। स्वयं के पास रियासती शासन के शोषण और उत्पीड़न की कसक को महसूस करनेवाला हृदय था। गांधी का सन्देश सुनते ही, उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य निश्चित कर लिया, जो आज भी पहाड़ों की घाटियों और चोटियों में इस लोकगीत की धुन में गूंजता है :

> 'मरि जाणु भलो 'सुमन';
> गुलाब नी रणु रे'।

(सुमन! मरना भला है, लेकिन गुलाम नहीं रहना।)

दिल्ली, देहरादून, लाहौर और दूसरे बड़े नगरों में, जहाँ हजारों पर्वतीय जन रोजगार के लिए रहते हैं, 'सुमन' ने उनको संगठित किया। हिमालय सेवा संघ और प्रजामण्डल के संगठनों का जन्म हुआ। हिमालय के देशी राज्यों का अ० भा० देशी राज्य लोक परिषद से सम्बन्ध हुआ और 'सुमन' उसकी स्थायी समिति में इन राज्यों का प्रतिनिधित्व करने लगे। उन्होंने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, महामना मालवीयजी, पंडित नेहरू, पंतजी टण्डनजी और दूसरे नेताओं का प्रेम प्राप्त कर लिया।

दुर्गम मंजिलें

परन्तु हिमालय में सामन्तशाही के अभेद्य दुर्ग के अंदर प्रवेश कैसे किया जाय? राज्यों के बाहर तो प्रजामण्डल काम कर रहे थे, राज्यों के अन्दर न तो संगठन करने की छूट थी और न कार्यकर्ता ही थे। अतः सत्य और अहिंसा का यह अकेला संदेशवाहक हाथ में चरखा और झोले में किताबें लेकर पहाड़ों की घाटियों और चोटियों की कठिन मंजिलें तय करता जाता था। उसकी छोटी पुस्तकों—हिन्द-स्वराज्य, सर्वोदय, ग्राम-सेवा, रचनात्मक कार्यक्रम, राष्ट्रीय गीत, नवयुवकों से दो बातें—के खरीददार भी स्कूली लड़के ही होते थे। इन यात्राओं में पुलिस छाया की तरह 'सुमन' का पीछा करती रहती थी। यह देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि एक अंधेरी रात को 'सुमन' एक बीमार हरिजन की झोपड़ी पर उसकी सेवा में तल्लीन हैं!

अपनी स्वतंत्रता पर इस प्रकार की पाबन्दियों का 'सुमनजी' ने विरोध किया। उन्हें टिहरी राज्य से निर्वासित किया गया, परन्तु उन्होंने इस आदेश को भंग करने में गौरव समझा और अंत में पुलिस-सुपरिटेंडेंट के दफ्तर के बरामदे पर ही अनशन करके बैठ गये और इस तपस्वी के सामने 'बोलांदा बदरीनाथ' को झुकना पड़ा। पुलिस का पहरा हटा लिया गया।

मूल प्रश्न तो नागरिक स्वतंत्रता का था। 'सुमन' की माँग थी कि प्रजा को अपना संगठन बनाने और उत्तरदायी शासन के लिए आन्दोलन करने की छूट होनी चाहिए। सन् १९४२ के तूफानी दिनों में वे बम्बई से राजाओं के लिए 'अंग्रेजों से नाता तोड़ो' का सन्देश लेकर लौटे थे। कुछ अन्य साथियों-सहित गिरफ्तार कर आगरा सेंट्रल जेल में बन्द किये गये। इधर 'सुमन' की कई वर्षों की तपस्या का टिहरी में यह फल हुआ कि सन् '४२ के आन्दोलन में टिहरी की जेल में लगभग चार दर्जन नवयुवक पहुँच गये। जेल के बाहर और भीतर ये अकथनीय दमन के दिन थे।

नवम्बर '४३ में 'सुमनजी' को आगरा सेन्ट्रल जेल से रिहा किया गया। टिहरी के अत्याचारों की कहानी सुनते ही वे दौड़े टिहरी आये, परन्तु अपने गाँव के पास चम्बा में गिरफ्तार कर लिये गये। उन पर जेल के अन्दर चलाया गया राजद्रोह का मुकदमा, दो वर्ष की कैद की सजा और जेल में उनके साथ किये गये अमानवीय अत्याचारों की कहानी तो जग-जाहिर है। जेल में उनको झुकाने के लिए कई कुचक्र रचे गये, परन्तु उनकी दृढ़ संकल्प-शक्ति और अन्तरात्मा की आवाज ने अपने देश और उद्देश्य के लिए प्राणों की बाजी लगाने के लिए उनको तत्पर किया।

अन्तिम लौ

२ मई सन् १९४४ को 'सुमनजी' ने टिहरी-गढ़वाल की जनता के नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए टिहरी जेल में अपना ऐतिहासिक अनशन प्रारम्भ किया। अनशन के दिनों पढ़ने के लिए गीता देने तक की उनकी माँग को ठुकराया गया। उनकी उपवासी देह को कोड़ों की मार, हथकड़ी और पाँवों में ३५ सेर वजन की बेड़ियों से कुचलने का जघन्य कृत्य किया गया, परन्तु इन अत्याचारों ने उनको अधिकाधिक दृढ़ बनाया। टिहरी जेल से बाहर इस ऐतिहासिक अनशन

असर नहीं थी। २५ जुलाई सन् १९४४ को सायंकाल सवा चार बजे वह वेला आ पहुँची, जिसने 'सुमन' को अमर शहीद बना दिया। टिहरी जेल का अस्पताल-वार्ड, जहाँ उन्होंने अपने महान-आदर्शों के लिए नश्वर शरीर को त्याग दिया था, अब जन-सेवकों के लिए तीर्थधाम बन गया है। इस स्थान पर 'सुमनजी' का चित्र, उनका संक्षिप्त परिचय और उनकी अंतिम दर्दिनी ३५ सेर वजन की लोह-बेड़ियाँ—त्याग और बलिदान का मूक-सन्देश देने के लिए रखी हुई हैं। ९१ वर्ष हुए स्व० बाबा राघवदास इस स्थान पर फूट-फूटकर रो पड़े थे।

हिमालय की पुकार

'सुमनजी' को गये २१ वर्ष हो गये हैं। इस बीच में हिमालय की 'अँधेरी-से अँधेरी गुफाएँ' बिजली के प्रकाश से जगमगाने लगी हैं। सारा हिमालय अन्तरराष्ट्रीय महत्त्व का क्षेत्र बन गया है। उत्तर की ओर से चीन की सेनाएँ हिंसा और वर्ग-संघर्ष के विनाशकारी विचार को लेकर खड़ी हैं। इधर हिम और चीन की चिन्ता किये बिना सीमा की सुरक्षा के लिए हमारे देश के सुरक्षा कटिबद्ध हैं। परन्तु चीन के विचार का मुकाबिला कौन करेगा ? यह एक जटिल प्रश्न है। हमें अहिंसा, प्रेम और शान्ति से सामाजिक और आर्थिक विषमताओं को दूर करना होगा। यह संतोष का विषय है कि सीमांत जिला उत्तरकाशी, चमोली और पिथौरागढ़ की जनता ने संत विनोबा के ग्राम दान-ग्रामस्वराज्य के विचार को स्वीकार कर इस दिशा में कदम बढ़ाना आरंभ किया है। गाँव गाँव में ग्राम-स्वराज्य की स्थापना कर, स्वावलम्बन की दिशा में बढ़कर, झगड़ों का गाँव में ही निपटारा कर तथा आपसी सहकार वृत्ति बढ़ाकर ही हम चीन की चुनौती का उत्तर दे सकते हैं।

सारे देश को गंगा, यमुना, सतलज, व्यास, ब्रह्मपुत्र आदि नदियों के रूप में जीवन-धाराएँ प्रदान करनेवाला हिमालय अपनी उपजाऊ मिट्टी भी बहाकर भेंट देता है और हिमालय के गाँव रोजगार के लिए अपने कमाऊ व्यक्तियों और हट्टे-कट्टे पुरुषों को भी मैदानों में भेज देते हैं। बहुमूल्य जड़ी-बूटियों, अन्य वन सम्पदाओं और खनिजों के अपार हिमालय की गोद में बसे गाँव दरिद्रता के घर हैं। देश में सबसे कम आमदनी २३ पैसे प्रति व्यक्ति प्रतिदिनवाला जिला टिहरी गढ़वाल ('सुमन' की जन्मभूमि) इन्हीं में एक है। अन्य पहाड़ी जिलों का भी यही हाल है। दरिद्रता के इस अभिशाप से मुक्ति दिलाने के लिए 'सुमन' से समर्पित सेवकों की हिमालय को आवश्यकता है। नयी पीढ़ी से 'सुमन' का सवाल है :

"क्या तुम अपने को चाँदी के कमरद्ध कहीं के बदले बेच सकोगे ?"

—सुन्दरलाल बहुगुणा

खादी को जनता के आधार पर खड़ा करना ही एकमात्र विकल्प

सरकारी मदद से खादी समाप्ति की ओर

समझने की बात है कि अलग-अलग रचनात्मक कार्य चल रहे हैं। लेकिन ऐसे काम करनेवालों में से बहुतों को अब उसमें अधिक आशा नहीं रही। खादी-वाले तो खादी के काम से तंग हैं, क्योंकि उनको जनता के आधार से खड़े नहीं करेंगे तो खादी टूट जायेगी और सरकार का आधार दिन-पर-दिन कम होनेवाला है, यह बात उनके ध्यान में आने लगी है। तो उनके सामने बिलकुल समस्या है। मैंने उनको कह रखा है कि जबतक गाँव की जनता को आप खड़ा नहीं करते, और जो भी कार्य हो उसके द्वारा नहीं करते, उनको प्रेरणा नहीं देते, तबतक कोई भी चीज नहीं बनेगी, लोकहृदय को छुएगी नहीं, उसमें प्राण-संचार नहीं होगा।

लेकिन अब उनको यह कुछ साफ हुआ है। ध्वजा बाबू का पत्र आया है कि खादी के बारे में, उसके मूल स्वरूप के बारे में सोचना होगा। लोगों में चेतना लानी होगी। वह नहीं लायेंगे तो खादी टिकेगी नहीं। यह अनुभव हुआ है, जो सारे रचनात्मक कार्यकर्ताओं को जगा रहा है। उनको सरकार की ओर से थोड़ी मदद मिलती रहती है और वही उनके कार्य को खतम करती है। जबतक सरकार की मदद मिलती है तबतक कार्य चलता है किसी एक व्यक्ति के आधार से, और जब वह मुख्य व्यक्ति खतम होता है तब यह कार्य भी खतम होता है। परम्परा जारी नहीं रहती। अब बिहार में हम जो काम करना चाहते हैं वह यही है कि गाँव-गाँव में बुनियाद बने। उनकी मदद में हम काम कर रहे हैं। उनसे हम सहायता चाहते हैं, ऐसा नहीं। उनके सहाय में, उनकी मदद में हम काम कर रहे हैं, ऐसा होना चाहिए। यह सारी प्रयोग यहाँ शुरू किया गया है। आपलोग उसमें समय देंगे, यह बहुत खुशी की बात है

खादी कार्यकर्ताओं से —विनोबा

रांची : ३-७ '६९

तत्त्वज्ञान

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को दी गयी फाँसी तथा गणेश शंकर विद्यार्थी के आत्म-बलिदान के प्रसंगों से क्षुब्ध कराची-कांग्रेस-अधिवेशन के लोगों को सम्बोधित करते हुए २६ मार्च १९३१ को गांधीजी ने कहा था :—

"जो तरुण यह ईमानदारी से समझते हैं कि मैं हिन्दुस्तान का नुकसान कर रहा हूँ, उन्हें अधिकार है कि वे यह बात संसार के सामने चिल्ला-चिल्लाकर कहें। पर तलवार के तत्त्वज्ञान को हमेशा के लिए तलाक दे देने के कारण मेरे पास अब केवल प्रेम का ही प्याला बचा है, जो मैं सबको दे रहा हूँ। अपने तरुण मित्रों के सामने भी अब मैं यही प्याला पकड़े हुए हूँ।"

उसके बाद का इतिहास साक्षी है कि देश ने तलवार के तत्त्वज्ञान को तलाक देनेवाले गांधी का साथ दिया। साम्राज्यवाद की नींव हिली, भारत में लोकतंत्र की नींव पड़ी और संसार को मुक्ति का एक नया रास्ता मिला।

संसार आज बन्दूक की नली के तत्त्वज्ञान से और अधिक त्रस्त हुआ है। विनोबा संसार को वही प्रेम का प्याला पिलाकर बन्दूक के तत्त्वज्ञान को तलाक दिलाना चाहता है और देश में सच्चे स्वराज्य की स्थापना के लिए उसने नया रास्ता बताया है।

क्या हम वक्त को पहचानेंगे और महान कार्य में वक्त पर योग देंगे ?

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म शताब्दी-समिति)
दूंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैंरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

बिहारदान-अभियान की चुनौती और कार्यकर्ताओं की हिकमत

बाबा ने जब चम्पारण को 'वाटर लू' की संज्ञा दी थी, तो बिहार के एक प्रमुख नेता ने बाबा से कहा था कि 'वाटर लू' चम्पारण नहीं रांची के हो सकने की सम्भावना अधिक है। परिस्थिति की मूल स्थिति की ओर यह संकेत था, और सही था, आज यह बात जाहिर है, लेकिन बाबा ने इसे 'वाटर लू' नहीं माना है। शायद इसलिए कि चट्टान जितनी कड़ी होती है, उसके टूटने पर उतना ही निर्मल जल का स्रोत फूटता है। और रांची में इसकी पूरी सम्भावना है।

रांची मुख्यतः आदिवासी लोगों का जिला है। दूसरे जो गैर-आदिवासी लोग यहां हैं: उनके दो ही रूप इनके सामने हैं—शोषक या सेवक के, सेवक ईसाई मिशनवाले, शोषक बिहार या भारत के दूसरे प्रदेशवाले। खादी का काम भी यहां के गांवों में नहीं के बराबर हुआ है, इसलिए बाहर से आये यहां ग्रामदान के काम में लगे कार्यकर्ता भी इनके लिए शोषक-वर्ग के ही हैं, इसलिए पहले दौर में तो कार्यकर्ताओं को भ्रमनिवारण की ही कोशिश में लगना पड़ा। तेल के खौलते कड़ाहे में क्रिया डाल देने से लेकर सूत से दाढ़ी रंगने तक की भयभीत करनेवाली धमकियों का हंसते हंसते सामना करके कार्यकर्ताओं ने प्रतिकूलता को अनुकूलता और अविश्वास को विश्वास में बदलने की जी-तोड़ कोशिश की, जिसका परिणाम हुआ कि रांची का जिला-दान असम्भव मानने की स्थिति नहीं रही।

गत २, ३ जुलाई को मुख्य रूप से उत्तर बिहार से आये कार्यकर्ताओं ने जब रांची शिविर में अपने १ माह के कार्यों का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया तो थकान भले ही किसी-किसी के चेहरे पर दिखाई पड़ी हो, लेकिन निराशा की झलक किसी के चेहरे पर नहीं थी। सबकी आवाज में आत्मविश्वास का बल था और प्रत्येक की रिपोर्ट में उत्साहवर्धक उपलब्धियां थीं।

इस शिविर की अध्यक्षता करने का निवेदन जब बिहार के बुजुर्ग नेता श्री बैद्यनाथ प्रसाद चौधरी से किया गया तो उन्होंने शिविर के लिए मध्यस्तता को अनावश्यक बताते हुए मध्यस्तता करने की जिम्मेदारी स्वीकार की और सचमुच उन्होंने कार्यकर्ताओं और उनकी समस्याओं के बीच आखिर तक मध्यस्तता की।

शिविर में कार्यकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत प्रतिकूलताओं का आकलन किया तो मुख्य रूप से निम्नलिखित बातें सामने आयीं :

- एक गांव से दूसरा गांव बहुत दूर बसा है। जंगली पहाड़ी रास्ते हैं, आने-जाने में ही बहुत वक्त निकल जाता है।
- भाषा भिन्न है, पूर्व परिचय क्षेत्र का नहीं है, इसलिए बातचीत में निकटता नहीं बन पाती।
- यातायात के साधनों का सख्त अभाव है, यहां तक कि साइकिल की सवारी भी सब जगह सम्भव नहीं।
- 'दिकू' (गैर आदिवासी लोगों के लिए आदिवासियों का सम्बोधक शब्द जिसका अर्थ होता है 'दिक' यानी तंग करनेवाला) लोगों के प्रति उनके मन में घोर अविश्वास व्याप्त है।
- शंका, अविश्वास की भावना के कारण ठहरने की जगह और भोजन आदि के मिलने में बड़ी कठिनाई होती है।
- पंचायतों, सहकारी समितियों द्वारा लोग ठगे गये हैं, इसलिए हमारे ग्रामदान के सामुदायिक विचार को भी उसी दृष्टि से देखते हैं। पंचायतों, सहकारी समितियों में आदिवासियों का प्रबल बहुमत होते हुए भी इन संस्थाओं पर कब्जा 'दिकुओं' का है और अपने फायदे के लिए वे इनका इस्तेमाल करते हैं।
- आदिवासी लोगों की भूमि-व्यवस्था में एक तरह की जमींदारी कायम है। इस व्यवस्था को वे छोड़ना नहीं चाहते। क्योंकि इससे सरकारी हस्तक्षेप सीमित रहता है। उन्हें यह शंका होती है कि ग्रामदान के बाद उनकी यह व्यवस्था टूट जायगी।
- मिशन के लोग चर्चा में विरोध नहीं करते, लेकिन अपनी ओर से सक्रिय भी नहीं होते, जिसका असर उनकी प्रतिकूलता के रूप में पड़ता है।
- आदिवासी लोग विचार को समझ लेते हैं, स्वीकार भी कर लेते हैं, लेकिन अपने नेताओं की स्वीकृति के बिना हस्ताक्षर नहीं करते।
- उनके कुछ उग्रपंथी संगठनों की सहमति अभी तक ग्रामदान-आन्दोलन के लिए प्राप्त नहीं हो सकी है।
- आदिवासियों में भूमिहीनता कम है। इसलिए बीघाकट्ठा का नारा उन्हें आकर्षित नहीं करता, उल्टे यह शंका होती है कि ग्रामदान में जो जमीन दान में निकलेगी, उस पर 'दिकुओं' को बसाया जायेगा।

कार्यकर्ताओं ने अपनी-अपनी सूझ-बूझ और स्थानीय परिस्थिति के अनुसार इन प्रतिकूलताओं और समस्याओं का हल ढूंढने की कोशिश की। इन कोशिशों में मुख्यरूप से :

- गांववालों की धमकी और विरोध के बावजूद उन्हें अपनी बात समझाने की लगातार कोशिश की, उनके सवालों का जवाब दिया, खाना नहीं मिला तो उपवास करके भी वहीं रहे।
- स्थानीय नेताओं को अपने अनुकूल बनाने के लिए विशेष प्रयत्न किये। उन्हें आन्दोलन की पूरी जानकारी दी।
- जिला स्तर पर प्रमुख लोगों के हस्ताक्षर से ग्रामदान के लिए अपील का पर्चा छपाया गया है, उसे वितरित किया।
- स्थानीय पढ़े-लिखे युवकों को अपना साथी बनाने की कोशिश की।
- उनकी ओर से व्यक्त शंका और अविश्वास के बावजूद अपनी ओर से नम्र और आदरयुक्त व्यवहार रखा।
- ग्रामदान को ग्रामस्वराज्य के रूप में प्रस्तुत किया और इसे गांव को साहूकारों के शोषण और सरकार के दमन से मुक्ति का मार्ग बताया। यह बात खासतौर पर उनके लिए आकर्षक साबित हुई।

इन प्रयासों का ही परिणाम है कि उस समय तक दो प्रखण्डदान हो चुके थे, दो और लगभग पूरा होने की स्थिति में थे।

जिले के कुल प्रखण्डों में से २२ प्रखण्डो में काम सफलता की राह पर आगे बढने लगा था।

दोनों दिन दोपहर के बाद शिविरार्थियों के बीच बाबा के प्रेरक संक्षिप्त प्रवचन हुए। आखिरी दिन तो उन्होंने हाथ उठाकर कार्यकर्ताओं से काम पूरा होने तक डटे रहने का संकल्प कराया। ऐसे अवसरो पर उनके 'प्यार' को 'फौज' से अलग हो सकना कठिन होता है।

बाबा ने खुद क्षेत्रो में जाने का कार्यक्रम बनवाया और अब तो उनकी यात्रा शुरू भी हो गयी है।

कार्यकर्ताओं को आदिवासी जीवन का निकट-परिचय दिलाने के लिए स्थानीय जानकार व्यक्तियों को भी शिविर में आमंत्रित किया गया था। बाबा से भी बूढ़े आदिवासी नेता रेवरेन्ड जुवेल लकड़ा ने आदिवासी जीवन का अन्तरंग परिचय देते हुए उनके सोचने की दिशा और कोण की भी जानकारी दी।

अनुभवों के आधार पर कार्य की योजना नये सिरे से बनायी गयी। सहयोग में मध्यप्रदेश के भी ८-९ कार्यकर्ता आकर काम में जुट गये हैं। संयोजन के लिए बिहार ग्रामदान प्राप्ति समिति के कार्यालय सहित समिति के मंत्री श्री वैद्यनाथ बाबू तथा सहमंत्री श्री कैलाश प्रसाद शर्मा रांची में शुरू से ही डटे हुए हैं। —रामचन्द्र 'राही'

रतलाम जिलादान का संकल्प

रतलाम जिले के ६ विकास-खण्ड रतलाम, बाजना, सैलाना, पीपलौदा, जावरा और आलोट में विकास खण्डस्तरीय ग्रामदान शिविर सम्पन्न हुए, जिनमें जिले के २,५०० सरपंच, सचिव, ग्रामसेवक, पटवारी, पटेल, समिति सेवक, तथा शिक्षकों को ग्रामदान का विचार समझाया गया और ग्रामदान-प्राप्ति का प्रशिक्षण दिया गया। १४ अगस्त तक जिलादान का सामूहिक संकल्प किया गया। प्रत्येक विकासखण्डों मे प्राप्ति-हस्ताक्षर-अभियान प्रारम्भ कर दिया गया है।●

एक हजार पृष्ठों का साहित्य पाँच रुपये में

प्रत्येक हिन्दीभाषी परिवार में बापू की अमर और प्रेरक वाणी पहुँचनी चाहिए। गांधी-वाणी या गांधी-विचार मे जीवन-निर्माण, समाज-निर्माण और राष्ट्र-निर्माण की वह शक्ति भरी है, जो हमारी कई पीढ़ियों को प्रेरणा देती रहेगी, नये मूल्यों की ओर अग्रसर करती रहेगी। परिवार में ऐसे साहित्य के पठन, मनन और चिन्तन से वातावरण मे नयी सुगन्धि, शान्ति और भाईचारे का निर्माण होगा।

गांधी जन्म-शताब्दी के अवसर पर हम सबकी शक्ति इसमें लगनी चाहिए।

हजार पृष्ठों का आकर्षक चुना हुआ गांधी-विचार-साहित्य पाँच रुपये में हर परिवार में जाय, इसका संयुक्त प्रयास गांधी स्मारक निधि, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान और सर्व सेवा संघ की ओर से हो रहा है। हर संस्था और व्यक्ति, जो गांधी-शताब्दी के कार्य मे दिलचस्पी रखते हैं, इस सेट के अधिकाधिक प्रसार-कार्य में सहयोगी होंगे, ऐसी आशा है। इस प्रयास में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों का सहयोग भी अपेक्षित है।

रं० रा० दिवाकर अध्यक्ष गांधी स्मारक निधि, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान	**एस. जगन्नाथन्** अध्यक्ष, सर्व सेवा संघ
उ० न० ढेबर अध्यक्ष, खादी ग्रामोद्योग कमीशन	**जयप्रकाश नारायण** अध्यक्ष अ० भा० शान्तिसेना मंडल
विचित्र नारायण शर्मा उपाध्यक्ष, उ० प्र० गांधी-शताब्दी समिति	**राधाकृष्ण बजाज** संचालक, सर्व सेवा संघ-प्रकाशन

गांधी जन्म-शताब्दी सर्वोदय-साहित्य सेट

पुस्तक	लेखक	पृष्ठ	मूल्य
१. आत्मकथा (संक्षिप्त)	: गांधीजी	२००	१'००
२. बापूकथा (सन् १९२१-१९४८)	: हरिभाऊ उपाध्याय	२५५	२'००
३. गीता-बोध, मंगल प्रभात	: गांधीजी	१३०	१'२५
४. मेरे सपनों का भारत	: गांधीजी	१७५	१'२५
५. तीसरी शक्ति (सन् १९४८-१९६९)	: विनोबाजी	२४०	२'००
	कुल :	१०००	७'५०

आवश्यक जानकारी

१. इस सेट में पाँच पुस्तकें होंगी, जिनका मूल्य ७ से ८ रु० तक होगा। यह पूरा सेट ५) रु० में मिलेगा।
२. इन सेटों की बिक्री २ अक्तूबर के पावन-दिवस से प्रारम्भ होगी।
३. चालीस सेटों का एक बंडल बनेगा। एक बंडल से कम नहीं भेजा जा सकेगा।
४. चालीस या अधिक सेट मँगाने पर प्रति सेट ५० पैसे कमीशन मिलेगा।
(सारे सेट की डिलीवरी यानी निकटतम रेलवे-स्टेशन-पहुँच भेजे जायँगे।)
५. सेटों की अग्रिम बुकिंग १ जुलाई १९६९ से शुरू है। अग्रिम बुकिंग के लिए प्रति सेट रु० २) के हिसाब से अग्रिम भेजने चाहिए। शेष रकम के लिए रेलवे रसीद वी० पी० या बैंक के मार्फत भेजी जायगी।
६. सेटों की रकम तथा आर्डर निम्नलिखित पते से ही भेजें :

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी–१

अशांत तंजौर में शान्ति-स्थापना का प्रयास

श्री शंकरराव देव की पदयात्रा का दूसरा दौर सम्पन्न

—समस्या के स्थाई समाधान हेतु पंचसूत्री कार्यक्रम—

पूर्व तंजौर में सम्पन्न हुई श्री शंकरराव देव की दूसरी तीन सप्ताह की पदयात्रा के बाद तमिलनाडु सर्वोदय मण्डल की बैठक प्रलयमबाडी में दिनांक ६-७-'६६ को हुई, जिसमें वहाँ की वर्तमान क्षेत्रीय परिस्थिति पर विचार-विमर्श करके निम्न प्रस्ताव पारित किया गया :

तमिलनाडु सर्वोदय मण्डल श्री शंकरराव देव के प्रति, तंजौर जिले पर विशेष ध्यान देने के लिए, हार्दिक आभार प्रकट करता है। मार्च और जुलाई '६६ की अवधि में उन्होंने ५७ दिन का समय दिया, और चार प्रखण्डों—किवालुर, मद्दुकुर, तिरुवाहर, पत्तुकोट्टाई—में ४२ दिनों की पदयात्रा की, और शिविरों में मार्गदर्शन हेतु १५ दिन का समय दिया। इस अवधि में उनको पूर्व तंजौर के मालिक-मजदूरों के बीच विद्यमान तनावपूर्ण स्थिति के बुनियादी कारणों को सूक्ष्मता से परखने का मौका मिला। तमिलनाडु सर्वोदय मण्डल उनके द्वारा सुझाये गये प्रथम चरण के तौर पर भूस्वामियों और मजदूरों द्वारा तत्काल क्रियान्वित किये जाने लायक निम्न न्यूनतम कार्यक्रमों को पूर्णतः स्वीकार करता है :

(१) हिन्दू समाज की अन्य जातियों की तरह हरिजनों को भी हर स्थान, सम्पान और धर्मों में प्रवेश की खुली छूट होनी चाहिए।

(२) जिस भूमि पर मजदूर का मकान है, उस भूमि पर स्वामित्व का हक उसे अवश्य प्राप्त होना चाहिए।

(३) हिंसा से किसी भी विवाद का निपटारा नहीं हो सकता, इसलिए हर प्रकार की हिंसा पूर्णतः से बन्द होनी चाहिए। किसी भी पक्ष को एकांगी कदम नहीं उठाना चाहिए। जब भी कोई विवाद पैदा हो, तो सम्बन्धित पक्षों को पंचायती करनी चाहिए और पंच फैसले को मानना चाहिए।

(४) तमिलनाडु सर्वोदय मण्डल की यह मान्यता है कि एकमात्र ग्रामदान ही भूमि के इस कठिन सवाल का हल प्रस्तुत करता है। जबतक भूस्वामियों और भूमिहीन मजदूरों के दो अलग-अलग वर्ग रहेंगे, तब-तक आपसी सम्बन्धों में इस प्रकार के विवादों का पैदा होना अनिवार्य है। भूमिस्वामित्व स्वेच्छया ग्रामसमाज को हस्तांतरित होनी चाहिए, और भूमि का बीसवाँ भाग भूमिहीनों में वितरित करने के लिए गाँव की ग्रामसभा को दी जानी चाहिए।

(५) हरिजन समुदाय के आर्थिक और जीवन स्तर की उन्नति के लिए शिक्षण और पूर्ण रोजगार के प्रावधानों के माध्यम से तत्काल प्रयत्न किये जाने चाहिए। तमिलनाडु सर्वोदय मण्डल महसूस करता है कि इसकी मुख्य जिम्मेदारी पूरे समाज को उठानी चाहिए, खासकर भूमिस्वामियों को।

तमिलनाडु सर्वोदय मण्डल समाज—खासकर मालिकों और मजदूरों से, इस पंचसूत्री कार्यक्रम को स्वीकार करने तथा सम्पूर्ण ग्राम-समुदाय में शान्ति एवं समृद्धि हेतु मालिक मजदूर सम्बन्धों में सौहार्दता एवं सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए तत्काल इसके क्रियान्वयन में सहकार की अपील करता है। केवल आर्थिक पहलू को निपटाना समस्या का सही समाधान नहीं होगा। इसे समग्र सामाजिक आर्थिक समस्या मानकर समाधान का प्रयास करने पर ही स्थायी हल संभव होगा।

मीरजापुर में दो प्रखण्डदान

श्री कृष्णकुमार मिश्र से प्राप्त जानकारी के अनुसार मीरजापुर के लालगंज और हलिया इन दो प्रखण्डों का प्रखण्डदान सम्पन्न हुआ। लालगंज के कुल आबाद गाँव १९६ में से ११६ गाँवों का और हलिया प्रखण्ड के १७७ गाँवों में से १३८ गाँवों का ग्रामदान हुआ।●

मैनपुरी में ग्रामदान-अभियान

उ० प्र० के मैनपुरी जिले की भोगाँव तहसील में तहसीलदान का अभियान प्रारम्भ हुआ, जिसका उद्घाटन जिलाधीश एवं अध्यक्ष जिला गांधी शताब्दी समिति मैनपुरी ने किया। शिविर की अध्यक्षता जिला परिषद् के अध्यक्ष महोदय ने की। शिविर का संचालन डा० दयानिधि पटनायक की देखरेख में हुआ। दिनांक ७-७-'६६ को ६५ टोलियाँ गाँवों में ग्रामदान हेतु गयीं। शिविर में २०० शिविरार्थियों ने भाग लिया।●

सासनी (अलीगढ़) का प्रखण्डदान

प्राप्त सूचना के अनुसार सासनी में हुए ग्रामदान-अभियान में सासनी प्रखण्ड का प्रखण्डदान पूरा हुआ। कुल १४४ राजस्व गाँवों में से १३३ गाँवों का ग्रामदान हुआ।●

गाजीपुर में दो प्रखण्डदान

गाजीपुर जिले के मदौरा और रेवतीपुर दो प्रखण्डों का प्रखण्डदान हुआ। मदौरा के ६३ गाँवों में से ३३ गाँव तथा रेवतीपुर के ६६ गाँवों में से ४१ गाँव प्रखण्डदान में शामिल हैं। गाजीपुर में अबतक कुल ७ प्रखण्डदान हुए हैं।●

साहित्य-प्रचार

श्री पुनिया भगतजी ने जून महीने में ४४ मील की पदयात्रा की। इस दरम्यान उन्होंने ८० रुपये का साहित्य बेचा। ३० गाँवों में सर्वोदय-विचार का प्रचार किया। आप हरियाणा के कार्यकर्ता हैं और सतत साहित्य-प्रचार के कार्य में लगे रहते हैं।●

भिण्ड जिले में ५५१ ग्रामदान

भिण्ड जिलादान अभियान के अन्तर्गत अब तक जिले में ५५१ ग्रामदान मिल चुके हैं। जिले में कुल ८६० गाँव हैं। चम्बल घाटी शान्ति समिति, गांधी-निधि, भूदान बोर्ड आदि के कार्यकर्तागण सघन ग्रामदान प्रचार-में लगे हुए हैं।●

उज्जैन में ग्रामस्वराज्य शिविर

उज्जैन जिले के ६ विकास खण्डों महिदपुर, बड़नगर, खाचरौद, घटिया, तराना तथा उज्जैन में ग्रामस्वराज्य शिविर सम्पन्न हुए। इन शिविरों में दो हजार शिविरार्थियों ने भाग लिया।●

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ४३

सोमवार २८ जुलाई, '६९

अन्य पृष्ठों पर

आवश्यक सूचना

तीन वर्षों से 'भूदान-यज्ञ' के परिशिष्ट के रूप में हर महीने 'गाँव की बात' के दो अंक हम देते रहे हैं। हमें खुशी है कि 'गाँव की बात' का प्रायः सब जगह समर्थन मिला और उसका स्वागत हुआ। अब इसी अंक के बाद से 'गाँव की बात' का 'भूदान यज्ञ' के परिशिष्ट के रूप में निकलना स्थगित हो रहा है। 'गाँव की बात' पढ़ने के लिए आवश्यक होगा कि वे पाठक 'गाँव की आवाज' के नाम से अलग चार रुपये चन्दा भेजें। 'गाँव की आवाज' का पहला अंक १६ अगस्त को प्रकाशित होगा।

—सम्पादक

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

सरकारी कार्रवाई

मेरे ख्याल से भारत वर्षों तक ऐसे कानून पास करने में लगा रहेगा, जिनसे पद दलित और पतित लोगों का उस दलदल से उद्धार हो सके, जिसमें पूँजीपतियों ने, जमींदारों ने तथाकथित उच्च वर्गों ने और बाद में वैज्ञानिक ढंग से अंग्रेज शासकों ने उन्हें फँसा दिया है। अगर हमें इन लोगों का इस दलदल से उद्धार करना है, तो अपने घर को व्यवस्थित करने के लिए भारत की राष्ट्रीय सरकार का यह अनिवार्य कर्तव्य होगा कि इन लोगों को लगातार तरजीह दे और वे जिस भार से कुचले जा रहे हैं उससे उन्हें मुक्त करे।

...भले वे कितने ही भले और मेरे प्रति मित्रभाव रखनेवाले क्यों न हों, कानून किसी भी व्यक्ति का लिहाज नहीं रखेगा। मेरे ध्यान में कुछ ऐसे एकाधिकार हैं, जो प्राप्त तो बेशक उचित रूप में ही किये गये हैं, मगर वे राष्ट्र के उत्तम हितों के विरुद्ध हैं। मैं आपको एक उदाहरण दूँगा, जिससे आपका कुछ मनोरंजन तो होगा, मगर उसका आधार स्वाभाविक है। आप इस सफेद हाथी (देश पर भारी बोझ डालनेवाली चीज) को ही लीजिए, जिसे नयी दिल्ली कहा जाता है। इस पर करोड़ों रुपये खर्च किये गये हैं। मान लीजिए कि भावी सरकार इस नतीजे पर पहुँचती है कि जब यह सफेद हाथी हमारे पास है ही, तो इसका कोई उपयोग ही कर लिया जाय। कल्पना कीजिए कि पुरानी दिल्ली में प्लेग या हैजा फैला हुआ है और हमें गरीब लोगों के लिए अस्पताल चाहिए। तब हम क्या करेंगे? क्या आप समझते हैं कि राष्ट्रीय सरकार अस्पताल वगैरा बना सकेगी? ऐसा नहीं हो सकेगा। हम इन इमारतों पर अधिकार कर लेंगे और इन प्लेग पीड़ित लोगों को वहाँ रखकर अस्पतालों की तरह उनका उपयोग करेंगे; क्योंकि मेरा दावा है कि ये इमारतें राष्ट्र के उत्तम हितों के विरुद्ध हैं। वे करोड़ों भारतीयों का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं, वे उन धनवानों का प्रतिनिधित्व कर सकती हैं। वे उन लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकतीं, जिन्हें सोने के लिए कोई जगह और खाने के लिए रोटी का एक टुकड़ा भी नसीब नहीं होता। अगर राष्ट्रीय सरकार इस परिणाम पर पहुँचे कि यह स्थान अनावश्यक है, तो वह छीन लिया जायगा—भले वह किन्हीं लोगों के हाथ में हो। और मैं आपको बता दूँ कि बगैर किसी मुआवजे के छीन लिया जायगा। क्योंकि अगर आप इस सरकार से क्षतिपूर्ति करवाना चाहेंगे, तो उसे अहमद को लूटकर महमूद को देना होगा, जो उसके लिए असंभव होगा।

अगर कांग्रेस की कल्पना की सरकार अस्तित्व में आती है, तो यह कड़वा घूँट पीना ही पड़ेगा।

मो. क. गांधी

लंदन में गोलमेज परिषद् के सामने दिये गये एक भाषण से—"दि नेशन्स वायस,"
न १९३१, पृष्ठ : ७१।

तेलंगाना

पृथक् तेलंगाना की मांग जनता की है—या असामाजिक तत्वों की, अथवा व्यापारियों—अधिकारियों—वकीलों-जैसे निहित स्वार्थों की, इसमें मतभेद हो सकता है, लेकिन सच्चाई क्या है इसे जानने का उपाय क्या है ? हम कैसे जानें कि जनता कौन है और वह क्या चाहती है ? सिनेमावाला कहता है जनता अश्लील चित्र चाहती है। व्यापारी कहता है जनता शुद्ध घी की जगह वनस्पति चाहती है। सरकार कहती है जनता शराब चाहती है। सच बात तो यह है कि जनता वही चाहती है जो जनता के नाम में बोलनेवाला चाहता है। जो जनता है वह जानती नहीं। जनता के नाम में बोलने का दावा करनेवाला गुण्डा भी हो सकता है जिसके बहकावे में आकर जनता रेल तोड़ती है, बस जलाती है, और उसी जनता के नाम में बोलने का दावा नेता भी कर सकता है जिसके वादों और ललकारों के भुलावे में आकर जनता अखाड़े में उतरती है, नारे लगाती है, वोट देती है। हम जनता की भाषा किसे मानें—वोट को या उपद्रव को ? हमारी राजनीति ने दोनों भाषाओं को बराबरी का दर्जा दे रखा है। जनता जानती है, देखती है, कि राजनीति स्वयं दोनों भाषाएँ बोलती है; जब जिससे काम बन जाय ! राजनीति लोक-शिक्षण द्वारा लोकमत जगाना नहीं जानती; वह लोकहठ उभाड़कर काम निकालना चाहती है। कुछ भी हो, पृथक् तेलंगाना का लोकहठ अब काफी फैल चुका है, और उसे जनता, उपद्रवकारी और नेता की सम्मिलित शक्ति प्राप्त हो चुकी है।

लोकहठ कहें या लोकमत, जब दिल्ली-सरकार यह मान चुकी कि आन्ध्र-सरकार तेलंगाना के साथ हुए समझौते की शर्तें पूरी नहीं कर सकी और तेलंगाना को न्याय नहीं मिला तो पृथक् तेलंगाना के लिए काफी मसाला मिल चुका। आन्ध्र धनी है, तेलंगाना गरीब। आन्ध्र की राजनीति मजबूत है तेलंगाना की अभी उभर रही है। ऐसी हालत में तेलंगाना के मन में शंका होना स्वाभाविक है कि आन्ध्र के साथ उसका गुजर नहीं है। अगर तेलंगाना आन्ध्र के साथ नहीं रहना चाहता तो बेजा दबाव डालकर उसे साथ रहने के लिए मजबूर क्यों किया जाय ? दबाव से प्रेम और विश्वास नहीं पैदा किया जा सकता।

तेलंगाना के विरुद्ध यह तर्क देना कि अगर उसका एक अलग राज्य बन जायगा तो देश के कई दूसरे भागों में अलग राज्य की माँगें होने लगेंगी, निरर्थक है। यह कहना भी निरर्थक है कि अगर अधिक राज्य बन जायेंगे तो राष्ट्र कमजोर हो जायगा। राष्ट्र कुछ और राज्यों के बन जाने से कमजोर नहीं होगा; अगर कमजोर होगा तो निकम्मे और बोझिल केन्द्र तथा राज्यों के निरंकुश प्रशासन के कारण। दिल्ली-सरकार के पास काम कम हो और अधिकार अधिक हो तो वह मजबूत होगी और देश की एकता कायम रखने में अधिक समर्थ हो सकेगी। इसके विपरीत राज्य-सरकारों की जिम्मेदारियाँ अधिक हों और वे, छोटा राज्य होने के कारण, जनता के अधिक-से-अधिक निकट हों, तो उनके ऊपर लोकमत का अंकुश ज्यादा होगा। लोकमत जितना सशक्त होगा, राजनीति और नौकरशाही के हथकंडे उतने ही कमजोर पड़ेंगे। छोटे राज्य एकता, केन्द्र, लोकहित, सबकी दृष्टि से अच्छे हैं।

'पृथक् तेलंगाना' में एक अच्छाई यह है कि उससे भाषावाद की समाप्ति शुरू होती है। हाँ, यह कहा जा सकता है कि इस तरह क्षेत्रवाद को बढ़ावा मिलेगा। लेकिन अगर भाषा, जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदि के स्थान पर 'क्षेत्र' राजनीतिक-आर्थिक संगठन का स्थान ले सके तो राष्ट्र की दृष्टि से अच्छा होगा। भारत भाषायी इकाइयों के बजाय क्षेत्रीय इकाइयों का संघ बने तो आपस के सहयोग की गुंजाइश अधिक होगी, और छोटे राज्यों के होने के कारण केन्द्र एकता और समन्वय की शक्ति के रूप में अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकेगा।

अधिक राज्यों की माँग में भय का कोई कारण नहीं है। लेकिन जरूरत इस बात की है कि नया राज्य बनाने या पुराने राज्य को तोड़ने का निर्णय सरकार अपने हाथ में न रखे। उसे चाहिए कि ऐसे तमाम विवादों के लिए सर्वोच्च न्यायालय की तरह निष्पक्ष व्यक्तियों की कोई समिति या कौंसिल बना दे, और उसे ही निर्णय के अंतिम अधिकार दे दे। ऐसा हो जाने पर अलग राज्य का प्रश्न, या ऐसा दूसरा कोई भी प्रश्न, आन्दोलन और उपद्रव के दायरे से निकलकर न्याय के दायरे में चला जायगा। ऐसा होना उचित है, और आवश्यक भी।

तेलंगाना लक्षण है, रोग नहीं। जबतक राजनीति उन्मादों पर चलेगी, जबतक एक क्षेत्र का विकास और दूसरे का ह्रास होगा, जबतक समाज में आर्थिक विषमता इतनी भयकर रहेगी और दिनोंदिन बढ़ती जायगी, और जबतक सरकार का दर्जा 'माई-बाप' का रहेगा, तबतक एक के बाद दूसरे तेलंगाना की माँग होती ही रहेगी। तेलंगाना देखने में एक राजनीतिक प्रश्न है, किन्तु उसकी जड़ में विकास की भूख है। जनता ऊपर उठना चाहती है, वह उठने का अवसर चाहती है। उस अवसर का नाम है 'तेलंगाना'। हम उस अवसर से किसी क्षेत्र को वंचित कैसे रख सकते हैं ?

अवसर की भूख 'तेलंगाना' बन जाने मात्र से तृप्त नहीं होगी वह गाँव तक पहुँचेगी। आखिर, हमारे देश में जीवन की बुनियादी इकाई गाँव ही है। अगर तेलंगानावाले तेलंगाना में अपना निर्णय चलाना चाहते हैं तो गाँव में गाँववालों का प्रत्यक्ष निर्णय क्यों न चले ? अगर तेलंगाना का अपना राज्य हो तो गाँव में अपना 'स्वराज्य' हो। अगर स्वराज्य न हो तो, राज्य बनने से निरंकुश प्रशासन में एक कड़ी और जुड़ेगी। दूसरा क्या होगा ? जिस दिन गाँव को यह मान्यता मिल जायगी उस दिन क्षेत्रवाद का भूत भी समाप्त हो जायगा। सचमुच वही दिन जनता की सच्ची एकता का होगा।

यदि हमारे नेता दल के पक्षपात और सत्ता के आग्रह को छोड़कर देश को सामने रखें और कल्पना से काम लें तो उन्हें तेलंगाना के साथ-साथ पूरे राजनीतिक और आर्थिक विकेन्द्रीकरण की बात सोचनी चाहिए। देश का भविष्य निश्चित रूप से उसी दिशा में है। परिस्थिति का संकेत हम कब समझेंगे ?●

लोकतंत्र में दलमुक्त प्रतिनिधित्व : कुछ विचारणीय पहलू

अवध प्रसाद

लोकतंत्र में राजनैतिक दलों से मुक्त शासन चल सकता है, यह एक बिलकुल नयी चीज है। पिछले कुछ दिनों से दलमुक्त लोकतंत्र की चर्चा देश के कुछ प्रमुख विचारकों, खासकर श्री जयप्रकाश नारायण द्वारा की जा रही है। इस ओर कुछ ठोस प्रयास भी प्रारम्भ किये गये हैं। परन्तु दलमुक्त लोकतंत्र आज भी सामान्य जन की कल्पना के बाहर की चीज है। आखिर दलमुक्त लोकतंत्र का वैचारिक आधार क्या होगा? व्यावहारिक स्वरूप क्या होगा? इसकी शासन-पद्धति क्या होगी? इस तरह के कई प्रश्न इस सम्बन्ध में उठते हैं, क्योंकि आज तो सम्पूर्ण राजनीतिशास्त्र, जिसका सम्बन्ध लोकतंत्र से है, राजनीतिक दल को अनिवार्य आवश्यकता मानता है।

राजनीतिक दल की परिभाषा

लोकतंत्र में राजनीतिक दल की परिभाषा करते हुए बर्क ने कहा है कि "राजनीतिक दल ऐसे व्यक्तियों का समूह है, जो किसी राष्ट्रीय हित की पूर्ति के लिए किसी एक विशिष्ट सिद्धान्त को आधार मानकर अपना संगठन करते हैं। यह एक ऐसी संस्था है, जो किसी सिद्धान्त या नीति के समर्थन में बनायी जाती है और जो संवैधानिक साधनों द्वारा उन सिद्धान्तों या नीतियों के अनुसार शासनतंत्र का निर्माण करने की चेष्टाएँ करती है।" स्पष्ट है कि ये दल निरन्तर अपने क्रियाकलापों से शासनतंत्र का नियंत्रण अपने हाथ में लेने की चेष्टा करते हैं, ताकि वे जिन सिद्धान्तों या नीतियों में विश्वास करते हैं, उन्हें शासनतंत्र के साधन द्वारा सिद्ध कर सकें। यहाँ दल के लिए मुख्य कार्य सत्ता-प्राप्ति हो जाता है। इसके लिए वे सतत जनता को अपने पक्ष में करने का प्रयास करते हैं, ताकि चुनाव के द्वारा व्यवस्थापिका सभा में उनको बहुमत प्राप्त हो।

आज के युग में लोकतंत्र सबसे अधिक प्रचलित तथा अच्छी शासन-पद्धति मानी जाती है। लेकिन यह लोकतंत्र आज राजनीतिक दलों के चौखटे में घिरा है। इससे मुक्त होकर भी लोकतंत्र कायम रह सकता है, यह विचार राजनीतिशास्त्र से परे समझा जाता है। लोकतंत्र का राजनीतिक दलों से अलग हो जाने पर क्या स्वरूप हो जाता है, यह श्री पी० डी० राय के शब्दों में इस प्रकार है : "जहाँ कोई राजनीतिक दल न हो वहाँ दो ही अर्थ निकल सकते हैं, या तो यह दिखेगा कि सभी सार्वजनिक मामलों में जनता निरपेक्ष भाव से उदासीन रहती है, और यह उदासीनता अज्ञता एवं असमर्थताजनित होती है, या फिर वहाँ ऐसा निरंकुश शासनतंत्र होता है, जो जनता की महत्त्वाकांक्षाओं और सामान्य नागरिकों की भावनाओं को अपने दमन द्वारा प्रकट भी नहीं होने देता।" अबतक दलमुक्त लोकतंत्र के प्रयोग नहीं किये गये हैं और न ही इस विचार का सैद्धांतिक स्वरूप भी निखारने का प्रयास किया जा सका है। शायद श्री जयप्रकाश नारायण तथा विनोबा इसके प्रथम विश्लेषणकर्ता हैं।

नयी चुनाव-पद्धति

इस दलमुक्त लोकतंत्र के चुनाव-पद्धति वाले पक्ष पर हम विचार करें। इस विचार को माननेवालों का कहना है, मतदाताओं को दल से ऊपर उठकर प्रतिनिधि का चुनाव करना चाहिए। व्यवस्थापिका सभा में दल के प्रतिनिधि के स्थान पर क्षेत्र के अपने प्रतिनिधि यानी आम जनता के प्रतिनिधि को चुनकर भेजना चाहिए। उन्हें दल के घेरे में नहीं पड़ना चाहिए। प्रश्न उठता है कि इसके लिए चुनाव की प्रक्रिया क्या होगी?

चुनाव की प्रक्रिया पर हाल ही में आयोजित कुछ गोष्ठियों से अच्छा प्रकाश पड़ा है। इनमें विचार-विमर्श के बाद सुझाया गया है कि ग्रामदानी ग्रामसभा देश की राजनीतिक इकाई होगी। दलमुक्त लोकतंत्र में चुनाव-प्रक्रिया मोटे रूप में इस प्रकार बतायी गयी है :

उम्मीदवारों का चयन एक क्षेत्र की ग्रामदानी-ग्रामसभाओं के चुने गये प्रतिनिधियों द्वारा किया जायेगा। इन प्रतिनिधियों का चुनाव-क्षेत्रीय स्तर का एक मतदाता-मंडल बनेगा। यह मतदाता-मण्डल सर्वसम्मति या सर्वानुमति से उम्मीदवार का चयन करेगा। इसके लिए : (क) जिस निर्वाचन क्षेत्र में कम से कम तीन-चौथाई ग्रामदानी ग्रामसभाएँ बन जायेंगी, उनमें यह मतदाता-मण्डल बनाया जायगा। (ख) मण्डल स्थायी होगा। (ग) हर ग्रामसभा मण्डल के लिए अपने प्रतिनिधि सर्वसम्मति से चुनेगी। (घ) एक ग्रामसभा से जनसंख्या के आधार पर कम-से-कम एक, और ज्यादा-से-ज्यादा पाँच प्रतिनिधि होंगे। (च) मतदाता-मण्डल में अधिक से अधिक दो सौ पचास सदस्य होंगे।

'अगर कोई मतदाता-मण्डल चाहे तो वह अपनी ग्रामसभाओं के पास एक पैनल भेज सकता है और 'सिंगल ट्रान्सफरेबुल वोट' (एकल परिवर्तनीय मत) से सर्वमान्य उम्मीदवार का चयन कर सकता है। ऐसे सर्वमान्य उम्मीदवार के पीछे ग्रामसभाओं की व्यापक शक्ति होगी। वे किसी दल या जाति या अन्य किसी संकुचित स्वार्थ का प्रतिनिधित्व नहीं करेंगे। वे प्रतिनिधित्व करेंगे गाँव गाँव के सामूहिक ग्राम-हित का, और सामूहिक निर्णय का। लेकिन मतदाता के ऊपर कोई दबाव नहीं होगा कि वह इसी उम्मीदवार को वोट दे, किसी दूसरे को न दे। साथ ही क्षेत्र के हर नागरिक का चुनाव में उम्मीदवार के रूप में खड़ा होने का संवैधानिक अधिकार भी बना रहेगा। चुनाव प्रचलित पद्धति के अनुसार होंगे।'* यहाँ स्पष्ट है कि ग्रामदानी-ग्रामसभा अपने उम्मीदवार को खड़ा करे, उसकी प्रक्रिया ऊपर बतायी गयी है। उसके अतिरिक्त यहाँ वर्तमान संवैधानिक चुनाव-पद्धति को स्वीकार किया गया है। साथ ही साथ अन्य राजनीतिक दलों के तथा निर्दलीय उम्मीदवार खड़ा करने का पूरा प्रावधान रखा गया है। हाँ, इसमें सभी ग्रामदानी ग्रामसभा मिलकर अलग उम्मीदवार खड़ा करें, इसका पूरा

---

* "ग्रामस्वराज्य" : परिचर्चा और व्यापक विचार विमर्श के लिए प्रकाशित पुस्तिका से।

प्रयास किया जायगा। वह उम्मीदवार ग्रामदान के विचार का समर्थक होगा, इसमें कोई संदेह नहीं। यहाँ अपेक्षा यह रखी जाती है, कि पूरा क्षेत्र ग्रामदान में शामिल होगा और सभी मिलकर एक ही उम्मीदवार खड़ा करेंगे। पर जबतक पूरा क्षेत्र शामिल नहीं होता तबतक अन्य उम्मीदवारों से संघर्ष की पूरी गुंजाइश रहती है।

दलमुक्त सरकार संगठन

इसमें एक मुख्य बात यह भी कही गयी है कि मतदाताओं को इस बात का शिक्षण दिया जायगा कि वे राजनीतिक दलों के मतवाद से ऊपर उठें। मतदाता को राजनीतिक दलों से ऊपर उठकर अपनी समस्या, उम्मीदवार के गुण, आत्म-निर्भरता, सरकार पर कम-से-कम निर्भर रहने आदि के लिए संगठित तथा प्रशिक्षित किया जायगा।

सरकार-संगठन के बारे में सुझाया गया है कि : "प्रतिनिधि विधानसभा में आज की तरह दलों में बँटकर नहीं बैठेंगे, वे बैठेंगे अपने निर्वाचन क्षेत्रों के अनुसार या वर्णमाला के अक्षरों के अनुसार। अपना अलग ब्लाक नहीं बनायेंगे। इस तरह सब प्रतिनिधि मिलकर सर्वसम्मति से अपना नेता चुनेंगे। सरकार में कमेटी प्रथा (गवर्नमेंट बाईकमेटीज) का प्रमुख स्थान होगा। हर प्रतिनिधि विधानसभा में अपने चुनाव क्षेत्र की जनता की बात प्रस्तुत करते हुए जनता के हित को सामने रखकर सरकार की किसी नीति के प्रति अपनी असहमति प्रकट करने के लिए स्वतंत्र होगा।"*

(१) लेकिन सवाल यह है कि : इसमें यह मान लिया गया है कि पूरे राज्य या देश की जनता की सर्वसम्मति से ग्रामदान के सिद्धान्तों और अन्ततः व्यवहार को स्वेच्छा से, सर्वसम्मति से स्वीकार कर लेगी। आज के वैचारिक तथा संगठन की स्वतंत्रता के युग में यह सम्भव नहीं दिखता है। फिर आज वैचारिक आधार पर इतनी विभिन्नता है कि सामान्य हित किसमें है यह निश्चय करना कठिन है।

(२) प्रतिनिधि अपने चुनाव क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करेगा। उसे न तो किसी राजनीतिक दल से मतलब रहेगा और न किसी वैचारिक संगठन से। ऐसी स्थिति में क्या सदस्य क्षेत्रीय संकीर्णता का शिकार नहीं होगा? क्योंकि तब उसका किसी राष्ट्रीय राजनीतिक दल से सम्बन्ध तो रहेगा नहीं। आज एक पार्टी के सामने देश का पूरा क्षेत्र रहता है, न कि एक खास क्षेत्र।

(३) ग्रामदान के बाद राजनीतिक दलों का कोई अस्तित्व नहीं रहेगा, यह स्वीकार कर लेना सम्भव नहीं दिखता है। जाति, वर्ग, विचारवाद आदि को पूर्णतः निर्मूल कर देना एक कल्पनीय चीज है।

(४) एक वैचारिक प्रश्न भी सामने आता है। लोकतंत्र में—ग्रामदान में भी—विचार तथा संगठन की पूरी स्वतंत्रता दी गयी है। विचार-भेद को देखते हुए यह स्पष्ट है कि ग्रामदान में समाजवाद के अलावा अन्य विचारों—पूँजीवाद, साम्यवाद सम्प्रदायवाद, कभी कभी तानाशाही आदि का भी अस्तित्व रहेगा। देश में इस प्रकार के वैचारिक भेद रखनेवाले भी पर्याप्त मात्रा में रहेंगे। अब व्यवस्थापिका सभा में एक ही विचार के लोग जायें, यह सम्भव नहीं। यहाँ यह कहा जाता है कि देश की योजना, विकास पद्धति, सबके कल्याण के प्रश्न पर मतभेद होने का कारण नहीं। जैसे कृषि का विकास हो, उद्योग कहाँ चलें, इस पर मतभेद की बहुत गुंजाइश नहीं रहती है। परन्तु व्यवहारतः इस प्रकार के मतभेद होते हैं। अब पूँजीवाद समर्थक, सम्प्रदायवाद समर्थक या अन्य गहरे वैचारिक मतभेद के लोग ग्रामदान या समाजवाद के सिद्धान्त-व्यवहार को कैसे स्वीकार सकते हैं? यदि किसी में वैचारिक निष्ठा है तो उसे अपने विचार पर पूर्ण रूप से दृढ़ रहने की पूरी छूट होगी। इस स्थिति में वैचारिक भेद के कारण व्यवस्थापिका सभा में वैचारिक-वर्ग का बनना स्वाभाविक लगता है। और यह वर्ग अन्ततः वैचारिक दल के रूप में विकसित हो सकता है। यह मान लेना कि ग्रामसभा के माध्यम से चुना गया उम्मीदवार किसी निश्चित वैचारिक घेरे में नहीं रहेगा, उचित नहीं। फिर यह भी सही नहीं कि सभी प्रतिनिधि समाजवाद या ग्रामस्वराज्य के सिद्धान्त-व्यवहार को ही माननेवाले हों।

जब वैचारिक भेद होंगे तो वैचारिक वर्ग भी बने रहेंगे और इस तरह लोकतंत्र दलमुक्त नहीं हो सकेगा। यदि दलमुक्त प्रतिनिधित्व का मात्र इतना ही अर्थ लगायें कि प्रतिनिधि दल से ऊपर, दल के घेरे से मुक्त रहेंगे तो भी उपरोक्त वैचारिक भेद की समस्या खत्म नहीं हो जाती। पूरी व्यवस्थापिका, व्यवस्थापिका के अध्यक्ष के समान दलमुक्त हो (ब्रिटेन में प्रतिनिधि-सभा का अध्यक्ष दल से ऊपर होता है) यह भी व्यावहारिक नहीं।

इन शंकाओं के बावजूद दलमुक्त लोकतंत्र के प्रति आशावान होना शायद लाभकर होगा। लोकतंत्र का बिगड़ती राजनीतिक दशा—खासकर भारत में—को देखते हुए यदि दलमुक्त लोकतंत्र का कोई रास्ता निकल सका, तो राजनीति शास्त्र के विज्ञान एवं कला में एक नया अध्याय जुड़ेगा। इसलिए इन प्रश्नों पर गहराई से विचार किया जाना चाहिए। और कोई ऐसी पद्धति विकसित करनी चाहिए, जिससे दलमुक्त लोकतंत्र के व्यावहारिक पक्ष को बल मिले।●

* "ग्रामस्वराज्य" : परिचर्चा और व्यापक विचार विमर्श के लिए प्रकाशित पुस्तिका से।

"भूदान-यज्ञ" के ग्राहक बनाने का व्यापक अभियान चलायें

सर्व सेवा संघ के मंत्री श्री ठाकुरदास बंग की कार्यकर्ता साथियों से अपील

वाराणसी : सर्व सेवा संघ के मंत्री श्री ठाकुरदास बंग ने सर्वोदय-आन्दोलन को गतिमान्, प्राणवान् और ठोस बनाने के लिए कार्यकर्ता साथियों और मित्रों से अपील की है कि विचार-शिक्षण और उसकी स्थापना के लिए अहिंसक क्रान्ति के संदेशवाहक मुखपत्र "भूदान-यज्ञ" के ग्राहक बनाने का व्यापक और सघन अभियान चलायें। इस दृष्टि से 'भूदान-यज्ञ' के ग्राहक बनाने पर प्रति ग्राहक एक रुपया विशेष कमीशन देना तय हुआ है।

"भूदान यज्ञ" २८ जुलाई '६६ का परिशिष्ट

इस अंक में

गाँव की मुक्ति—३

२८ जुलाई, '६६
वर्ष ३, अंक २४]
[१८ पैसे

सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं

पुलिस है लेकिन रक्षा नहीं, पंचायत है लेकिन मेल नहीं, अदालत है लेकिन न्याय नहीं, विद्यालय है लेकिन विद्या नहीं, सरकार है लेकिन सुनवाई नहीं।

जिस सरकार को जनता अपने वोट से बनाती है, और अपने टैक्स से चलाती है, उसके यहाँ भी सुनवाई न हो तो मनुष्य कहाँ जाय ? उसका अंतिम भरोसा भगवान पर होता है, किन्तु भगवान की कृपा कब, किस रूप में होगी, इसका किसीको क्या पता ? सबसे बड़ी शक्ति जिसे मनुष्य अपनी आँखों से अपने चारों ओर देखता है वह है सरकार की। उसका रुपया चलता है, उसकी रेल चलती है, उसकी लाठी-बन्दूक चलती है, उसकी अदालत चलती है, उसका स्कूल चलता है। सब जगह सब कुछ उसीका चलता है। लोग कहते भी हैं कि सरकार सबसे बड़ी, सबसे धनी, सबसे शक्तिशाली है।

हरखू यह सब जानता है, लेकिन अपने गाँव में हरखू कुछ दूसरा ही देखता है। वह देखता है कि वहाँ मानधाता बाबू की चलती है, रामबली की चलती है, सोहन सेठ की चलती है। ये लोग सरकार तो नहीं हैं फिर भी इनकी ही चलती है। मानधाता बाबू गाँव के एक बड़े आदमी हैं; १५० बीघा जमीन है; हाईस्कूल के मैनेजर हैं। पहले गाँव के प्रधान थे, इस बार ब्लाक-प्रमुख हैं। कई मोटरें चलती हैं। लड़का डाक्टरी पढ़ रहा है। दारोगा, बी० डी० ओ०, नेता, जो भी आते हैं उन्हींके यहाँ ठहरते हैं, खाते-पीते हैं। जब चाहें दस-बीस आदमी उनका हुक्म बजाने के लिए तैयार रहते हैं। नेकी करें तो उनकी कृपा; सतायें तो उनकी मर्जी। रामबली के पास न धन है, न विद्या है, न सरकार में पहुँच है, लेकिन ऐसा बेहया है कि जरा-जरा सी बात में लाठी उठा लेता है। रात को खड़ा होकर खेत चराता है। कुछ कहो तो माँ-बहन की गाली देता है, और मारने की धमकी देता है। अभी उस दिन हरखू पर नाहक टूट पड़ा। अगर उसी समय गाँव के कुछ लोग आ न गये होते तो कौन जाने कुछ और कर बैठता।

सोहन साहु हैं तो मीठे आदमी लेकिन सूद का हिसाब कौड़ी-कौड़ी कर लेते हैं। चुनाव में पार्टी माँगेगी, सबको कुछ-न-कुछ देंगे, हाकिमों की खातिर भरपूर करेंगे, लेकिन क्या मजाल कि कोई गरीब कर्ज का एक पैसा भी छुड़वा ले ! पैसे का बल है, सब जगह पहुँच है, जो चाहते हैं कर लेते हैं। गाँव में कौन है जिसने सोहन साहु का कर्ज नहीं खाया है ? इस बार मानधाता बाबू ब्लाक-प्रमुख हुए तो सोहन साहु ग्रामप्रधान हैं।

हरखू देखता है कि गाँव में उसकी चलती है जिसके हाथ में मोटा डंडा है, जिसकी थैली में पैसा है, जिसकी नेताओं और अफसरों में पहुँच है। वहाँ कौन किसकी सुनता है ? जिसके हाथ में शक्ति हो वह चाहे जो अनीति करे, चाहे जितना गरीब को सताये, सब जानते रहेंगे, देखते रहेंगे, लेकिन कोई कुछ नहीं कहेगा।

उस दिन बियावन मिसिर का लड़का बिरजू चमार के घर में घुस गया। उसकी लड़की शादी के बाद पहली बार ससुराल

से आयी थी। सोती रात हल्ला हुआ। क्या किया किसीने? बाबू लोग सब एक हो गये। कानाफूसी कई दिन तक होती रही, पर हुआ कुछ नहीं।

ग्रामसभा की जितनी जमीन थी उसका आज पता नहीं है। जो जितनी दबा सका, उसने उतनी दबा ली। खुद प्रधानजी ने भी डेढ़-दो बीघे पर कब्जा कर रक्खा है। कौन किसको कहे, और कौन सुने? लाठी उसकी नहीं है जिसकी भैंस है, बल्कि जिसकी लाठी है उसकी भैंस है।
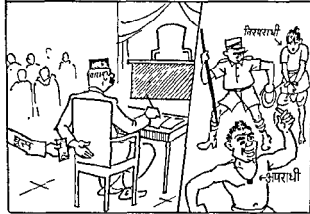
पैसा है तो कोई क्या कर लेगा?

गाँव-गाँव में कौरव का राज है

हरखू कहता है कि गाँव गाँव नहीं, दुर्योधन का दरबार है। कौरव-पांडव सब बैठे हैं, और द्रोपदी का चीर-हरण हो रहा है। कोई कुछ बोलता नहीं। हरखू पूछता है, यह पंचायत किसलिए है? थाना-अदालत किसलिए है? हाकिम और नेता किसलिए हैं? और किसलिए हैं पंडित, पुरोहित और शिक्षक? ये तो ये ही ठहरे, सरकार किसलिए है?

पुलिस के सामने ही लूटपाट

विद्यालय में पढ़ाई नहीं, हड़ताल

सरकार अन्धी है, बहरी है और गूंगी है

क्या यह सब इसी तरह चलता रहेगा? क्या इसी तरह जीने का नाम जिन्दगी है? रह-रहकर हरखू के मन में ये सवाल उठते हैं। हरखू के मन में जो सवाल उठे हैं वे ऐसे हैं कि जबतक उनके जवाब नहीं मिलते उसे चैन नहीं लेने देते।•

क्या गांधी हमारे देश में जिन्दा हैं ?

आजकल शहरों की चकाचौंध के बीच यदि हम गांधी को
खोजने बैठेंगे, तो संभव है कि हम इस नतीजे पर पहुँचें कि
गांधी की आत्मा अब हमारे देश में नहीं रही।
गगन छूनेवाले मकानों के बीच में चींटियों की तरह कतार
में भोंपू बजाते हुए रंग बिरंगी मोटरें चलती रहती हैं। एक
तरफ सड़क पर डेरा डालनेवाले, दूसरी तरफ अत्यन्त ऐशो-
आराम से रहनेवाले! गरीबों और अमीरों, दोनों में शराब का
बोलबाला। सड़कों को पार करने के लिए मनुष्यों के झुण्ड भेड़
बकरियों की तरह रहते हैं और इसके साथ-साथ वास्तविक
बकरियों के झुण्ड भी कसाई-घर की ओर उस सारे हल्लागुल्ला
के बीच में अत्यन्त डरे हुए, धीरे धीरे कसाई के छुरी की ओर
बढ़ रहे हैं। शहरों के किनारे-किनारे नये कारखानों के बोर्ड
लगाये हुए रहते हैं। देहातों के बीच में अन्न उपजानेवाली देहात
की अच्छी जमीन पर भी नये कारखानों के बोर्ड लगाये हुए रहते
हैं। रात को आँखें नायलान लाइटों से चकाचौंध हो जाती हैं।
खादी के वस्त्र देखने में कहाँ? अब टेरलीन का जमाना आ गया
है। क्या यह देश गांधीजी का देश है? क्या वे कहीं इस देश
में जिन्दा हैं?

हाँ, वे जिन्दा हैं ही, और जिन्दा रहेंगे। एक दिन सिर्फ
भारत को नहीं, बल्कि सारी दुनिया को इस खराब स्वप्न से
जगना पड़ेगा। बम्बई-जैसे राजसी नगरों के बीच में भी कहीं-
कहीं एक छोटी-सी गांधी को माननेवाली जमात मिल जाती है।
बम्बई में भी कितनी निष्ठा से काम करनेवालों की कितनी
सादगी से रहनेवाली जमात खोजने पर मिलती है। दिन भर
अपनी जी उबानेवाली नौकरी करने के बाद फिर भी अपने
फालतू समय में ये कितने अलग प्रकार के सृजनात्मक कार्यों में
अत्यन्त श्रद्धा से लगे रहते हैं! आपस में कितना प्रेम और भाई-
चारा! इससे उनके कष्टमय जीवन में एक आनन्द भी आता है।
ये ही लोग हैं, जो गांधी की आत्मा को भारत में रोक रहे हैं।

देहातों में भी रेगिस्तान के बीच में नखलिस्तान की तरह
ऐसे कुछ टापू मिलते हैं, जहाँ अभी तक गांधी जिन्दा हैं, जहाँ
वर्षों की तपस्या से देहात में एक ऐसी बुनियाद अभी तक भी
रही है, जिस पर ग्रामस्वराज्य की सीधी, लेकिन पक्की और
स्थायी रहनेवाली इमारत खड़ी की जाने की उम्मीद है।

मुरेवान के आसपास एक काफी बड़ा क्षेत्र है। जनवरी
न १९४८ में स्वामी नीलकण्ठ सेवाग्राम में प्रशिक्षण ले रहे
। ३० जनवरी से उन्होंने संकल्प किया कि आज से मेरा
जीवन भारत के देहातों के लिए समर्पित है। घर लौटकर
वे घर को छोड़कर मुरेवान के पास के एक गाँव, कोलाल में बैठ
गये। खादी, सफाई, मुकदमा मुक्ति, हरिजन-सेवा, भजन, कीर्तन
इत्यादि, यह उनका कार्यक्रम रहा और उनका क्षेत्र बढ़ता गया।
अपने सीधे, सरल और भक्तिमय स्वभाव के द्वारा वे बहनों में भी
काफी हद तक प्रवेश कर चुके हैं। उनके साथ नौजवानों की
एक छोटी सी जमात भी जुट गयी है। यह स्थान तीन जिलों के
सगम पर है, तो उनका 'प्रेमक्षेत्र बेलगांव, धारवाड़ और विजा-
पुर जिलों में फैला हुआ है।

कस्तूरबा संवत्सरी लोकयात्रा टोली को उस क्षेत्र में घूमने
का अवसर मिला। वास्तव में वहाँ पर हमने पाया था कि
गांधी की आत्मा जिन्दा है। दीया लेकर देहाती बहनों की एक
खासी बड़ी जमात हमारे स्वागत में खड़ी रहती थी और भक्ति-
मात्र से हमें सूत की माला पहनाकर वे हमारे कितनी बार मना
करने पर भी दण्डवत प्रणाम करती थीं। स्कूल के बच्चे बाजा
लेकर हमें गाँव में जुलूस में घुमाते थे। दिन भर भाई और
बहनें बड़े चाव से हमसे मिलने आती थी। शाम को एक विराट
सभा जुटती थी। एक तरफ भाइयों की, दूसरी तरफ
बहनों की अच्छी जमात बहुत शान्ति और भक्तिभाव से बैठती
थी। कार्यक्रम भजन से प्रारम्भ होता था और फिर उतनी
ही भक्ति-भावना से भाई-बहन बहुत प्रेम और श्रद्धा से प्रवचन
सुनकर गद्गद हो जाते थे। इस इलाके में ग्रामदान काफी हो
चुके हैं। थोड़ा-सा प्रयत्न करने पर यह इलाका पूरी तरह
ग्रामदानी बन सकता है।

विजापुर जिले में स्वामीजी का प्रेम-क्षेत्र बागलकोट से आगे
हुणगुण्द तक फैला हुआ है। बहुत दूर से लोग अपने व्यक्तिगत
और सामाजिक मतभेदों और झगड़ों को मिटाने के लिए उनके
पास आया करते थे, लेकिन अब लगभग तीन साल से वे बरा-
बर ग्रामदान तूफान यात्रा में घूम रहे हैं। उनके जवान साथी
उनके आश्रम और खादी के काम को आगे बढ़ा रहे हैं।

फिर हुदली का क्षेत्र। सन् १९२४ में गांधीजी की प्रेरणा
से श्री गंगाधरराव देशपाण्डे ने यहाँ पर खादी का काम प्रारंभ
किया। सन् १९२९ में गांधी सेवा संघ के अधिवेशन में गांधीजी
एक हफ्ते तक यहीं पर रहे और उसी समय से अभी तक उनकी
आत्मा उस क्षेत्र में भी जिन्दा है।

गांधीजी के स्वागत के लिए सारे गाँव में श्रमदान के द्वारा
पत्थर लगाये गये। सिर्फ लगभग २० फुट लम्बा अन्तिम हिस्सा
रह गया। वह हिस्सा तो रह गया, सो रह ही गया! लेकिन
गांधीजी बराबर पूछते लिखते रहे कि वह पूरा हो पाया है या

नहीं ? उस छोटे हिस्से को पूरा करने में लगभग दस साल लग गये लेकिन जबतक आश्वासन नहीं मिला कि वह पूरा हो ही गया है, तबतक गांधीजी उस बात को भूले नहीं। गांधीजी ने एक कुएं को खोदने में पहला फावड़ा चलया, वह कुआं भी पूरा हुआ। और सिर्फ वह कुआं नहीं, लेकिन हुदली गांव के सारे कुएं, आसपास के क्षेत्र के कुएं भी, सब अभी तक हरिजनों के लिए खुले हैं। स्कूल में भी सार्वजनिक समाओं इत्यादि में वर्ण-भेद, अस्पृश्यता का कलंक पूरी तरह मिट गया है। गांधी चौक में गांधीजी की एक सुन्दर मूर्ति भी बनी है। उस क्षेत्र के गांवों से बहुत बड़ी संख्या में भाई-बहनें जेल जाया करती थी। कभी-कभी एक ही गांव से २०० से ज्यादा लोग एक ही समय में जेल में ही रहा करते थे। खादी के काम में उत्तरोत्तर प्रगति चलती रही। अखिल भारतीय कताई-प्रतियोगिता में इधर की बहनें लगातार इनाम लाती रहीं यहां तक कि अन्त में तय करना पड़ा कि अब औरों को भी मौका देना चाहिए, हम लोग भविष्य में भाग नहीं लेंगे। पाच्छापुर गांव में ७० हजार रुपये की कीमत का 'गांधी-भवन' बन चुका है, जिसमें सिर्फ १० हजार रुपये बाहर से आये थे, बाकी सब स्थानीय रुपये और श्रमदान के द्वारा बना है।

अभी दो तालुकों के लिए एक तालुका-स्तर की संस्था बना है, जिसके द्वारा लगभग १ हजार लोग अपना गुजारा कर रहे हैं। अब टमाटर तथा आम के संरक्षण के लिए भी एक योजना बन रही है। ग्राम-स्वावलम्बन की ओर बढ़ने के दृष्टिकोण से गांव में बिकनेवाली खादी पर १० प्रतिशत कमीशन बराबर मिलता रहता है। खादी की बिक्री अन्य प्रान्तों में भी बराबर चलती रहती है। तो इस इलाके में गांधी अभी तक जिन्दा है।

इस क्षेत्र में भी कस्तूरबा-शतसंवत्सरी लोकयात्रा से काफी प्रेरणा मिली है। कार्यकर्ताओं में और जनता में उत्साह काफी दीखता है और ये मिलकर सोचने लगे हैं कि शतसंवत्सरी में यह करके दिखायेंगे कि गांधी अभी तक जिन्दा है, और उसका प्रभाव बढ़ रहा है।

इसी प्रकार हमारे सारे देश में ऐसे प्रकाश-स्तंभ छिपे हुए होंगे, सिर्फ उन्हें खोजकर उनमें बिजली की धारा के प्रवाह का प्रचार फिर जगाने की आवश्यकता है। आशा होती है कि इस शतसंवत्सरी वर्ष में जहां-जहां गांधी और विनोबा का प्रत्यक्ष स्पर्श हुआ, लेकिन दीया कुछ मंद हुआ, वहां अब ग्राम-स्वराज्य की क्रान्ति में कूदकर ये फिर देश में प्रकाश के स्तंभ का सच्चा स्थान लेने को तैयार होंगे। —सरलादेवी

किसानों को राहत

एक सज्जन चलता-फिरता बापूगांव में आया। वहां के आदिवासियों की परिस्थिति देखकर उसको बहुत दुःख हुआ। उसने देखा कि किसानों के पास जमीन है, पर अपना बैल नहीं। उन्हें हल चलाने के लिए बैल भाड़े पर साहूकार के पास से लाना पड़ता था। उन्हें एक जोड़ी बैल के लिए चार मन धान अथवा १२० रु० देना पड़ता था। इस तरह मेहनत किसान की, जमीन किसान की और पैदावार के पैसे साहूकार के पास चले जाते थे। यह हालत देखकर उस सज्जन ने बापूगांव के किसानों को ६ १० हजार रुपये के ७० बैलों का ४४ किसानों में वितरण कर दिया।

इस तरह किसानों की कठिनाई दूर हुई। साहूकार के चंगुल से किसान मुक्त हुए। किसानों ने उसे खूब आशीर्वाद दिया।

जिस सज्जन ने आदिवासियों की मदद की वह ६० वर्ष का बूढ़ा था। प्रतिदिन कम-से-कम १२ से १६ घंटे तक काम करता था। उसका मुख्य काम सूत-कताई, कपड़ा-सिलाई, बड़े-बड़े संत-महात्माओं के चित्र बनाना आदि था। तीन सप्ताह तक बापूगांव में रहकर हर किसानों के घर जाकर सम्पर्क किया और उनसे प्रेम प्राप्त किया। —श्यामसुन्दर सिंह

"गांव की बात"

अब

"गांव की आवाज"

लगातार तीन वर्षों की लिखा पढ़ी के बाद अब प्रेस रजिस्ट्रार के यहां से "गांव की बात" का रजिस्ट्रेशन "गांव की आवाज" के नाम से मिल पाया है। गांव की बात अब गांव की आवाज बनने जा रही है। इस परिवर्तन से एक पुराने परिचित नाम के छूटने का कुछ मोह हमें अवश्य हो रहा है, लेकिन कोई भी बात जब आवाज बनती है तब उसमें शक्ति पैदा होती है। हम आशा करते हैं कि गांव की बात अब गांव की आवाज बनकर अधिक शक्तिशाली होगी। यह ध्यान देने की बात है कि 'गांव की आवाज' का प्रकाशन पूरी तरह सार्थक तभी होगा, जब इसे गांव-गांव तक पहुंचाने की कोशिश होगी। यह पाक्षिक पत्रिका हर माह की तारीख १ और १६ को प्रकाशित होगी। इसका वार्षिक चन्दा चार रुपये और एक प्रति का मूल्य बीस पैसे रहेगा। इस अंक के बाद अगला अंक १६ अगस्त को १६ पृष्ठों का प्रकाशित होगा। —व्यवस्थापक

नवटोलियों की ग्रामसभा

मुंगेर जिले का चौथम प्रखण्डदान दिसम्बर १९६६ में ही घोषित हो गया था। जिले के निष्ठावान लोकसेवक तथा सर्व सेवा संघ के जिला प्रतिनिधि श्री गणेश प्रसाद सिंह का घर तथा मुख्य कार्य-क्षेत्र इसी प्रखण्ड में है। आचार्य राममूर्तिजी का सम्पर्क सन् १९५७ से ही चौथम प्रखण्ड से रहा है। प्रखण्ड-दान अभियान में आचार्य राममूर्तिजी ने इस क्षेत्र में गहरा सम्पर्क किया था। प्रखण्ड के सिलसिले में अधिकांश गाँवों में वे स्वयं गये। आचार्यजी ने जिस तरह अभियान का संयोजन तथा मार्गदर्शन किया, उससे लोक शक्ति का अच्छा खासा स्वरूप उसी समय प्रकट हुआ था। अभियान के फलस्वरूप जो लोकशक्ति सामने आयी थी, उसका उपयोग प्रखण्डदान के बाद ग्रामसभा का गठन तथा बीघा कट्ठा निकालने आदि के लिए नहीं हो सका।

जून में जिला सर्वोदय मण्डल की ओर से एक टोली प्रखण्डदान में सहयोग देनेवाले मित्रों से सम्पर्क के सिलसिले में कई गाँवों में गयी। प्रायः सभी मित्रों ने यही बताया कि अभी तक हमलोग अपने अपने गाँव में ग्रामसभा का गठन तथा बीघा कट्ठा निकालने आदि की दिशा में कुछ नहीं कर सके हैं, ऊपर से तकाजा रहता तो यह स्थिति नहीं रहती। इस प्रखण्ड के सभी मित्र चाहते हैं कि प्रखण्ड स्तर की गोष्ठी बुलायी जाय और चर्चा करके कार्य शुरू हो।

इस क्रम में १६ जून की शाम को श्रीगणेश बाबू के साथ नवटोलिया गाँव पहुँचा। नवटोलिया में ग्रामसभा बनी है, यह सूचना हमें पहले मिल गयी थी। हमलोगों के पहुँचने की पूर्व-जानकारी ग्रामवासियों को नहीं थी। ग्रामसभा के मंत्री बाहर थे। श्री रामदेव साह ग्रामसभा के अध्यक्ष हैं। अध्यक्ष ही मुख्य रूप से ग्रामसभा का संचालन करता है। तुरन्त ग्रामसभा की बैठक बुलायी गयी। खेती बारी का समय होने के बावजूद ग्रामवासी जुटकर बैठक में आये। बैठक में नवटोलिया गाँव के सम्बन्ध में निम्नलिखित जानकारी मिली।

गाँव की कुल परिवार-संख्या ८५ और जनसंख्या ५६० है। गाँव में गाँववालों की कुल जमीन का रकबा १७५ बीघा है। ६० परिवार भूमिवान हैं, शेष २५ परिवारों को जमीन नहीं है। एक परिवार के पास अधिकतम भूमि ३० बीघा है।

८५ परिवारों में से एक परिवार, जिसके पास सबसे ज्यादा भूमि है, ग्रामदान से अलग है। पूरे गाँव में नौ जाति के लोग रहते हैं, लेकिन तेली, कुम्हार तथा कोइरी की संख्या अधिक है। ये तीनों जातियाँ प्रायः समान संख्या में हैं।

गाँव में एक प्राथमिक पाठशाला है। गाँव के अधिकांश पुरुष साक्षर हैं। एक व्यक्ति बी० ए०, दो आई० एससी० तथा पाँच युवक मैट्रीक पास हैं।

सन् १९६७ के प्रारम्भ मे ग्रामसभा का गठन किया गया। अध्यक्ष, मंत्रीसहित कार्यकारिणी के सदस्यों की संख्या ११ है। कोषाध्यक्ष अलग से नहीं है। ग्रामसभा का कोष अध्यक्ष के पास रहता है। सन् १९६७ में ६ तथा सन् १९६९ के मई माह तक ग्रामसभा की दो बैठकें हुई हैं। बैठक की कार्यवाही का विवरण कार्यवाही-पुस्तिका पर विधिवत् लिखा जाता है। आमद-खर्च का ब्योरा भी जमा-खर्च-बही पर लिखा जाता है। ग्रामसभा के कोष में मन-सेरी, दान तथा सामूहिक दूकान की आमदनी में से डेढ़ वर्ष में ७०६ रु० ५८ पैसे एकत्र हुए हैं। ग्राम-विकास के काम में कुल ४३४ रु० ३८ पैसे खर्च हुए हैं। अभी ग्रामकोष में २७२ रु० २० पैसे जमा है। ग्रामसभा का काम गाँव की दूकान से प्रारम्भ हुआ, उस समय ग्रामसभा मे ग्राम-कोष से कुछ जमा नहीं हुआ था। अध्यक्ष श्री रामदेव साह ने दूकान चलाने के लिए अपनी ओर से ५०० रु० की पूँजी का प्रबन्ध कर दिया। श्री रामदेव साह स्वयं साधारण स्थिति के किसान हैं। उनको अपनी मात्र ८ बीघा जमीन है। उनकी स्थिति ही यह स्पष्ट करती है कि ग्रामसेवा के लिए उनकी उत्कंठा कहाँ तक आगे बढ़ी हुई है। उन्होंने अपनी ओर से पूँजी का प्रबन्ध ही नहीं किया, बल्कि नियमित समय भी दूकान के संचालन में देते रहे हैं। गाँव की दूकान से एक ही वर्ष में ३०० रु० की आमदनी हुई।

ग्रामसभा ने अपनी आवश्यकता तथा स्थिति को देखते हुए शिक्षा के काम को प्रथम स्थान दिया है। गाँव के विद्यालय का निजी मकान नहीं रहने के कारण छात्रों को बहुत कठिनाई होती थी। ग्रामकोष से २५ हजार ईंट तैयार की गयी तथा भवन-निर्माण का काम आधा से अधिक पूरा किया जा चुका है। जहाँ विद्यालय बना है, वह स्थान बहुत नीचे था। श्रमदान से मिट्टी भरकर उसे काफी ऊँचा किया गया। अध्यक्ष श्री रामदेव साह की तैयारी है कि ग्रामसभा ही सभी छात्रों के परीक्षा-शुल्क तथा पुस्तक आदि की व्यवस्था करेगी।

जब से ग्रामसभा बनी है, गाँव का कोई झगड़ा कचहरी नहीं गया है। झगड़े की रोक थाम शान्ति-सेना करती है। कभी-कभी

ग्र में-सफाई ग्रादि का कार्य भी सामूहिक रूप से किया जाता है। जिस कार्यक्रम पर सबकी सहमति होती है, उसे ही कार्यान्वित किया जाता है।

गाँववालों के पास जमीन बहुत कम है। सब लोगों के लिए खेती में पूरा काम नहीं रहता है। गाँव में तेली हैं, लेकिन कोल्हू नहीं चलता है। कारण पूछने पर मालूम हुग्रा कि *मिल का तेल कोल्हू से सस्ता पड़ता है, इसलिए कोल्हू का तेल* जमा होने पर पूँजी की समस्या हो जाती है। पूँजी का प्रबन्ध हो तथा तेल की निकासी की योजना की जाय तो २५ परिवारों में कोल्हू चलेंगे, इसी तरह कुम्भकारी उद्योग के लिए पूँजी की जरूरत है। जब मैंने *वस्त्र-स्वावलम्बन तथा रोजगारी के* लिए ग्रंबर चरखे का सुझाव दिया तो ग्रामसभा के सदस्यों को ग्रच्छा लगा। उन लोगों ने यह सुझाव दिया कि ग्रामसभा की जमानत पर संस्था ग्रम्बर चरखे का प्रबन्ध करके सिखानेवाले ग्रध्यापक की व्यवस्था करे तो ग्रम्बर का काम तुरन्त चालू किया जा सकता है। श्री नागेश्वर साहु (छात्र—कोसी कालेज, खगड़िया) ने कहा कि संस्था से शिक्षक माँगने के बजाय गाँव का एक युवक ही शिक्षक का प्रशिक्षण ले, यह उपयुक्त होगा।

नवटोलिया गाँव के संगठन, विकास तथा चिन्तन को देखकर मुझे ऐसा लगता है कि जबतक श्री रामदेव साहु जैसे गाँव के जीने तथा मरने की भावनावाले लोकसेवक प्रखण्ड-पीछे पाँच-सात भी तैयार नहीं होंगे तबतक बिहारदान के बावजूद ग्रामस्वराज्य की कल्पना का साकार होना कठिन है। इस तरह ग्राम-स्तर पर काम करनेवाले लोकसेवकों की फौज तुरन्त कैसे तैयार हो, तथा उनके शिक्षण की क्या व्यवस्था हो, यह विचारणीय है। इस तरह के फौज के ग्रधिकांश सिपाही किसान-मजदूर सामान्य वर्ग से निकलेंगे। हमारा ग्रान्दोलन इस तबके के बीच पहुँचा तो जरूर है, लेकिन जड़ नहीं पकड़ सका है।

—रामनारायण सिंह

भूमिहीनों में भूमिवितरण

मार्च १९६८ तक केन्द्र-प्रयोजित योजना के ग्रन्तर्गत लगभग ४ लाख ५८ हजार ४६८ (९७० एकड़ का एक हेक्टर) बेकार भूमि को खेती-योग्य बनाया गया ग्रौर उस भूमि पर भूमिहीन खेतिहर मजदूरों के १ लाख ८० हजार परिवारों को बसाया गया है। —'सम्पदा', जून '६६

भूदान ग्रान्दोलन के द्वारा ११ लाख ७५ हजार, ८३८ एकड़ भूमि ४ लाख ९१ हजार ९८१ परिवारों में ३१ मार्च '६६ तक वितरित की गयी।

जय ग्राम : जय जगत्

विश्व ग्राप ही से पहचानो। विश्व-ग्रंश ग्रपने को जानो॥
बने व्यक्ति से कुटुम-कबीला। उसके ग्रागे समाज फैला॥
समाज से फिर गाँव लसा है। गाँवों से ही देश बसा है॥
विश्व बना यह देश-देश मिल। ब्रह्माण्ड-थाह ले तिल-तिल॥
मनुज मात्र का पहला नैहर। ग्रपना गाँव उसीमें का घर॥
प्रगति उसीमें से कर सुन्दर। बढ़ना है दुनिया से ग्राखिर॥
प्रथम नींव रहनी मानुष की। भलीभाँति हो रक्षा उसकी॥
होवे सब विध गाँव सुहाना। दिव्य विश्व का ग्रल्प नमूना॥
गाँव जगत का सुन्दर नक्शा। उसपे निर्भर देश-परीक्षा॥
बिगड़े गाँव देश बेहाल। गाँव बिना वह कहाँ निराना ?॥

ग्रनुवादक—सुदाम सावरकर

(मूल मराठी 'ग्रामगीता' से) —संत तुकडोजी

रागिनी की आँख-मिचौनी

नीलिमा का छोटा भाई कमलेश हाईस्कूल में पढ़ता है। स्कूल के पते पर ही उसे पारबती का लिखा हुआ पत्र मिला। पारबती ने लिखा था—"प्रिय कमलेश, तुम बहुत दिनों से अपनी दीदी की खोज-खबर नहीं ले रहे हो। तुम्हें नीलिमा अनेक बार याद करती रही है। आ नहीं सकते थे तो कम-से-कम पोस्टकार्ड पर तो चार अक्षर लिखकर भेज ही सकते थे। ईश्वर की कृपा से पिछले सोमवार को एक नन्हीं मुन्नी से तेरी दीदी की गोद भर गयी है। हम सब लोग बहुत प्रसन्न हैं। पत्र पाते ही तुम अपनी दीदी और उसकी नन्ही मुन्नी से आकर मिल लो। इस बार तुम कम-से-कम ४ दिन तक यहाँ रहने की तैयारी रखकर आना। आने के दूसरे दिन जाने की तैयारी मत करना। रागिनी यह::सुनकर बहुत खुश है कि तुम्हें यहाँ आने का बुलावा मैं भेज रही हूँ। अगले शुक्रवार को दोपहर तक तुम जरूर यहाँ आ जाओ। नन्ही मुन्नी के लिए एक अच्छा-सा नाम चुनने की जिम्मेदारी नीलिमा ने तुम्हारे ऊपर सौंपी है।"

कमलेश ने पारबती का पत्र पहले सरसरी नजर से पढ़ा, फिर दुबारा जरा रुक रुककर और तीसरी बार पत्र के बीच की कुछ पंक्तियों को नजरें गड़ाकर—"रागिनी यह सुनकर बहुत खुश है कि मैं तुम्हें यहाँ आने का बुलावा भेज रही हूँ।" कमलेश सोचने लगा, क्या अम्माजी मेरी और रागिनी की आँख-मिचौनीवाली बात जान गयी हैं? कमलेश पिछले साल की उस घटना को शायद कभी भूल नहीं सकेगा। नीलिमा जब विवाह के बाद अपनी ससुराल के लिए विदा हो रही थी तो उसने बड़े आग्रह के साथ कमलेश को अपने साथ ले जाने की जिद की थी। कमलेश को गाने का शौक है, इसलिए नीलिमा ने सोचा कि छोटे भाई के साथ चलने से उसका मी बहलेगा और ससुराल में उसके भाई के प्रशंसक भी बनेंगे। कमलेश ने बहन के गाँव पर पहुँचने के दूसरे दिन ही लौटने की तैयारी शुरू की। बहन ने मनावन करके उसे एक दो दिन और रोकने की कोशिश की। गाँव के अनेक लोग कमलेश से ऐसा मजाक करते थे, जो मन-चले पुरुष स्त्रियों से करते हैं। कुछ लोग उसे भद्दी गालियाँ देकर हँस देते। कमलेश को यह सब बहुत वाहियात लगा था। वह इस अनचाहे वातावरण से यथाशीघ्र अपना छुटकारा चाहता था। पारबती को जब यह पता चला कि कमलेश इतनी जल्दी वापस जाना चाहता है तो पूछ बैठी—"कमलेश, तुम्हें किस बात की चिन्ता है कि यहाँ आते ही लौट जाने की जल्दी में पड़ गये? कम-से-कम चार-छः दिन टिक जाते तो गाँव के सब लोगों से तुम्हारी अच्छी तरह जान-पहचान हो जाती।"

कमलेश ने कहा था—"अम्माजी, मेरा यहाँ जी नहीं लग रहा है।"

"जी क्यों नहीं लगता, यही तो मैं पूछ रही हूँ?"

"मुझे नहीं मालूम।"

"बिना कारण बताये मैं तुझे नहीं जाने दूँगी। गाँव में हमारी हँसाई होगी कि तू इतनी जल्दी क्यों चला गया।"

"अम्माजी, आप तो बहुत अच्छी हैं, लेकिन कुछ लोग मुझे तंग करते हैं, बड़ी भद्दी-भद्दी गालियाँ देते हैं।"

"अब समझी। तुम कुछ लोगों के मजाक से घबड़ा उठे हो। अभी यहाँ नये आये हो, इसलिए लोग तुम्हें ज्यादा परेशान करते होंगे। मरदों में यहाँ ऐसा कोई है भी नहीं, जो इस कुरीति के बारे में दूसरों को समझाये। लेकिन इससे तुम कहाँ-कहाँ भागोगे? यह रिवाज तो हर जगह है। तुम्हारे गाँव के लोग भी बहू के भाई के प्रति ऐसा ही व्यवहार करते होंगे। तुम्हें अभी यह जो बात खटक रही है यह तो अच्छी ही बात है। यह जिन्दगी भर खटकती रहे तो बड़ी अच्छी बात होगी।"

कमलेश को माँजी की बातें बहुत भली लगी थीं। माँजी के जाने के बाद वह ओसारे की चारपाई पर सिर झुकाये इस उधेड़बुन में खोया हुआ था कि यहाँ रुके या न रुके। न जाने कब, किसीने पीछे से आकर उसकी दोनों आँखों को अपनी हथेलियों से मूँद लिया। कमलेश के शरीर पर जैसे एक अभूतपूर्व स्पर्श की लहर दौड़ गयी। दीदी तो ऐसा कर नहीं सकती। न जाने कितने वर्षों से दीदी की आँख-मिचौनी की हरकत बन्द है! किसीने चुपके से आकर अपनी हथेलियों का जो करतब दिखाया था, उससे कमलेश किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया। उसने अपने हाथों से जैसे ही आँखों को मूँदनेवाली हथेलियों को छूना था कि आँख मूँदनेवाली अपरिचिता हवा के झोंके की तरह सामने के बड़े दरवाजे में घुस गयी थी। कुछ देर बाद जब वह कुछ सँभलकर दीदी के पास गया तो उसे यह समझते देर न लगी थी कि उससे आँख-मिचौनी किसने की थी। रागिनी नीलिमा से ऐसे बातें कर रही थी जैसे कमलेश को उसने देखा ही नहीं। पारबती के पत्र में रागिनी का जिक्र पढ़कर कमलेश उधेड़बुन में पड़ गया—"क्या अम्माजी को उस दिन की आँख-मिचौनी और उसके बाद की बात मालूम हो गयी है?"

—विरंद्र

'गाँव की बात' : वार्षिक चन्दा : चार रुपये, एक प्रति : अठारह पैसे
सम्पादक : राममूर्ति : सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१

बैंक अब सरकार के हाथ में

चौदह बड़े बैंकों का राष्ट्रीयकरण एक बड़ी घटना है—उतनी ही बड़ी जितनी बड़ी घटना थी रियासतों का खत्म होना और जमींदारी का टूटना। कांग्रेस में, और कांग्रेस के बाहर, यह बात बहुत दिनों से होती चली आ रही थी कि सरकार ने विकास की जो जिम्मेदारी अपने ऊपर ले रखी है उसे पूरी करने के लिए जरूरी है कि व्यापार, उद्योग, खेती आदि में लगनेवाली पूँजी के स्रोत सरकार के हाथ में रहें। लेकिन ऐसा हो नहीं पा रहा था। पूँजी बैंकों के हाथ में थी, और बैंक सरकार के हाथ में नहीं थे। वे मालिकों और संचालकों के हाथों में थे। नतीजा यह होता था कि देश की पूँजी का काफी हिस्सा पूँजीपतियों की निजी योजना में लगता था। भारत जैसे खेतिहर देश में खेती के लिए पूँजी न मिले, और दूसरी ओर सट्टेबाजी और मुनाफाखोरी के लिए पूँजी पानी की तरह बहे, यह स्थिति किसी अर्थ में देश के लिए शुभ नहीं मानी जा सकती।

पिछले वर्षों में भारत में विदेशी पूँजी खूब आयी है—कर्ज, अनुदान, और व्यापार के रूप में। लेकिन सोचने की बात यह है कि इस साल जनवरी में भारत में जितना रुपया था उसका ५० प्रतिशत अमेरिकन रुपया था जो भारत में इकट्ठा हो गया है। देश में जो नोटें चल रही हैं उनकी दो-तिहाई नोटें अमेरिकन रुपये की हैं यह है हमारा हाल!

देश की पूँजी देश के काम आनी चाहिए इसमें दो राय नहीं हो सकती। यह असह्य है कि देश की दौलत, पूँजी और विकास के अवसर थोड़े लोगों के हाथों में रहें, और देश की विशाल जनता उनके लाभ से वंचित रहे। भूमि, पूँजी, कारखाने और स्कूल पर से निजी मालिकी अविलम्ब समाप्त होनी ही चाहिए।

सरकार ने बैंकों का राष्ट्रीयकरण जनता के नाम में किया है। वह यह देख रही थी, जैसा कि देश के सभी समझदार शुभचिन्तक देख रहे हैं, कि बढ़ती हुई गरीबी, बेकारी, और विषमता के कारण समाज में जो तनाव और संघर्ष पैदा हो रहे हैं—उनका पैदा होना अनिवार्य है—वे न लोकतंत्र को टिकने देंगे, और न देश की एकता कायम रहने देंगे। देश ज्वालामुखी के कगार पर पहुँच गया है। धीरे-धीरे चलकर हम सर्वनाश के सिवाय और कहीं पहुँच नहीं सकते। हमें जल्द से जल्द कुछ करना है।

सरकार ने एक जबरदस्त कदम उठाया है। लेकिन सरकार का हाथ जनता का हाथ है इसे सरकार ने अबतक की अपनी नीति-रीति से सिद्ध नहीं किया है। सरकार की पंचवर्षीय योजनाओं के बावजूद न बेकारी घटी है, और न विषमता। खेती की उसकी नीति ग्रामीण क्षेत्रों में एक नये अत्यन्त विदेने पूँजीवाद को जन्म दे रही है। बैंकों की पूँजी अपने हाथ में लेकर क्या सरकार उसे इसी तरह की गलत योजनाओं में लगानेवाली है? अगर खेती और छोटे उद्योगों को बढ़ावा देने की उसकी बात सही हो तो यह जरूरी है कि सरकार अपनी खेती, शिक्षा और उद्योग की नीति तत्काल बदले। पूँजी पूँजीपतियों के हाथ से निकले तो सही अर्थ में जनता के हित में लगे, यह जरूरी है। निजी पूँजीवाद का स्थान सरकारी पूँजीवाद ले ले, तो जनता को क्या समाधान होगा? तब तो साँपनाथ की जगह नागनाथ होकर रह जायगा। इतने से समाजवाद की क्या सेवा होगी?

भारत की जनता सरकार को वोट देती है, और टैक्स देती है। उसे यह जानने का अधिकार है कि उसके विश्वास और उसके पैसे का क्या इस्तेमाल किया जा रहा है। भारत का समाजवाद जनता का समाजवाद होगा, सरकार का नहीं। हमें समाजवाद चाहिए, नये वेष का पूँजीवाद नहीं।

—राममूर्ति

राष्ट्रीयकरण यानी क्या ?

१. भारत सरकार ने १४ बड़े बैंकों का 'राष्ट्रीयकरण' कर दिया है। ये वे बैंक हैं, जिनमें लोगों ने ५० करोड़ या इससे ज्यादा रुपया जमा किया है।

२. पचास करोड़ से कम जमावाले बैंक तथा विदेशी बैंक अभी छोड़ दिये गये हैं।

३ अभी कुछ दिनों तक हर बैंक का कारबार उसके ही नाम से होता रहेगा।

४. हर बैंक एक 'कारपोरेशन' हो जायगा जिसका प्रबन्ध एक 'कस्टोडियन' द्वारा होगा। अभी जो बैंक का चेयरमैन है वही 'कस्टोडियन' नियुक्त कर दिया जायगा।

५ जिन्होंने बैंकों में हिस्सा खरीदा है (शेयरहोल्डर) उन्हें सरकार मुआवजा (कम्पेन्सेशन) देगी, लेकिन रुपया सेक्योरिटी के रूप में सरकार के यहाँ जमा रहेगा।

मुआवजे के रूप में सरकार को कुल ६० करोड़ रुपया देना पड़ेगा।

मुआवजे के सम्बन्ध में जो प्रश्न पैदा होंगे उनके निपटारे के लिए 'ट्रिब्यूनल' कायम किया जायगा।

६ बैंक-डाइरेक्टरों के जो बोर्ड हैं वे भंग कर दिये गये उनकी जगह हर बैंक के लिए एक सलाहकार बोर्ड' नियुक्त होगा।

७ बैंक के कर्मचारी आज की ही तरह काम करते रहेंगे। वेतन, भत्ता, छुट्टी आदि में कोई अन्तर नहीं किया जायगा।

८ अध्यादेश के पहले जिस तरह काम होता था उसी तरह अब भी काम होता रहेगा। किसी प्रकार की कोई असुविधा नहीं होगी।

९. बैंकों के संगठन आदि में जो परिवर्तन करने होंगे वे एक कमीशन द्वारा जाँच-पड़ताल के बाद किये जायेंगे।

१० छः महीने पहले बैंकों के सामाजिक नियंत्रण की जो व्यवस्था की गयी थी वह अब ५० करोड़ से नीचेवाले बैंकों पर ही लागू होगी।

बैंकों के राष्ट्रीकरण का यह अर्थ नहीं है कि अब सरकार ने हर चीज के राष्ट्रीयकरण की कोई व्यापक नीति अपना ली है। उसका उद्देश्य इतना ही है कि पूँजी थोड़े लोगों के हाथ में न रहे, सट्टेबाजी आदि में न लगे, तथा खेती और छोटे उद्योगों को भी जरूरत भर पूँजी मिले। जिन उत्पादक उद्योग में जो पूँजी लगी हुई है उसे वहाँ से निकालने की बात नहीं है।●

पहला कदम

'चोटी के बैंकों का राष्ट्रीयकरण प्रधान मंत्री की नयी अर्थनीति का पहला कदम है। यह कदम वित्त-विभाग को अपने हाथ में

लिये बिना संभव न होता। विभाग का परिवर्तन कितना उचित था यह सिद्ध हो गया। सिवाय निहित स्वार्थों के, बाकी पूरा देश राष्ट्रीयकरण का स्वागत करेगा। कांग्रेस में भी जो सत्ता का संघर्ष दिखाई देता है वह वास्तव में सिद्धान्तों का संघर्ष है।'

'प्रधान मंत्री का दूसरी पार्टियों तथा जनता के सम्बन्ध में जो स्थान है उसके कारण वह अपने दल की उठापटक का विषय नहीं बनाया जा सकता। सन् १९७२के काफी पहले कांग्रेस को तय कर लेना पड़ेगा कि वह परिवर्तन के साथ रहेगी या यथास्थिति के। बैंकों के राष्ट्रीयकरण को लेकर इतना हल्ला क्यों? बैंक आखिर व्यापारिक संस्थाएँ हैं, जिनका उद्देश्य सार्वजनिक सेवा के सिवाय और क्या है?'

'कांग्रेस को चाहिए कि जवाहरलाल नेहरू की नीतियों पर दृढ़ रहे। ये नीतियाँ बार-बार दुहरायी गयी हैं। अगर इस समय कोई गलत काम हुआ और कोई अनिष्टकारी स्थिति पैदा हुई तो उसकी जिम्मेदारी दूसरों की होगी, न कि प्रधान मंत्री की। प्रधान मंत्री ने तो एक ऐतिहासिक काम किया है।' —"नेशनल हेरल्ड" (दिल्ली)

मनमाना कदम

'विदेशी बैंकों को छोड़कर १४ भारतीय बैंकों का राष्ट्रीयकरण श्रीमती गांधी के आज के समाजवादी सपनों से भी आगे का काम है। स्टेट बैंक को लेकर इन चौदह बैंकों के पास कुल बैंकों की जमा पूंजी का लगभग ८० प्रतिशत होगा। जब विदेशी बैंकों का राष्ट्रीयकरण नहीं हुआ है तो इन बैंकों के पास इतनी पूँजी रह जायगी, यह आसानी से सोचा जा सकता है। कुछ भी हो, यह तो मालूम होना चाहिए कि राष्ट्रीयकरण के इस कदम से भारतीय अर्थनीति का, या समाजवाद का ही, क्या हित होगा? बैंकों ने अपनी पूँजी का बहुत बड़ा भाग निजी उद्योग और व्यापार में लगा रखा है। तो क्या सरकार समाजवाद के नाम से इन निजी उद्योगों और व्यापार को बंद कर देगी? बहुत थोड़ी ही पूँजी इनके अलावा दूसरे कामों में लग सकेगी। इसका काम तो सामाजिक नियंत्रण (सोशल कंट्रोल) से, जो अभी लागू है हो सकता था। सामाजिक नियंत्रण के क्या परिणाम होते हैं, इसे कुछ दिन और देखना चाहिए था।'

'सरकार की बातों और वादों का कोई ठिकाना नहीं है। इसने आर्थिक व्यवस्था को बहुत बड़ा धक्का लगेगा; राष्ट्रीयकरण के जो दोष हैं वे तो अपनी जगह रहेंगे ही। अब निजी उद्योगों को सरकार की कृपा पर निर्भर रहना पड़ेगा। सरकार की जो क्षमता है वह हमें मालूम है। उसका पूँजी-बाजार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। बैंकों में रुपया जमा करनेवालों, और बैंकों से कर्ज लेनेवालों, दोनों को परेशानी उठानी पड़ेगी। असल में जिसे राष्ट्रीयकरण कहा जा रहा है वह सरकारीकरण है। यह एक ऐसा तमाशा है जिसे राजनीति के कुछ लोग किया करते हैं।'

—"स्टेट्समैन" (दिल्ली)

उत्तरप्रदेश के ११ जिलों का जिलादान पूरा करने का निश्चय

वाराणसी २४ जुलाई। यहाँ से १३५ किलोमीटर दूर श्रीगांधी आश्रम अकबरपुर में उत्तरप्रदेश ग्रामदान प्राप्ति समिति की बैठक श्री विचित्रनारायण शर्मा की अध्यक्षता में १८-१९ जुलाई को हुई। इस बैठक में समिति के संयोजक श्री कपिल भाई ने बताया कि ३० जून तक प्रदेश के ४१ जिलों में १८,७०६ ग्रामदान, ९७ प्रखण्डदान और २ जिलादान हुए हैं।

समिति में ग्रामदान प्राप्ति की प्रक्रिया पर विशद चर्चा हुई और यह निश्चय किया गया कि जिस जिले में अनुकूल परिस्थिति हो और ८० प्रतिशत कार्यकर्ता तथा लगभग २०० अस्थायी कार्यकर्ता (शिक्षक अथवा सरकारी, गैर-सरकारी या समाज-सेवी संस्थाओं के कार्यकर्ता) प्राप्त हो सकें वहाँ पर तहसील-स्तर के ग्रामदान-अभियान चलाये जायँ। अक्तूबर तक प्रत्येक जिले की १० तहसीलों तक में अभियान चलाये जाने का निश्चय हुआ।

जिन जिलों में १०० से कम ग्रामदान मिले हैं, वहाँ प्रखण्ड स्तर पर गोष्ठियाँ की जायें और वातावरण बनने पर अभियान चलाया जाय। कई जिले ऐसे भी हैं, जहाँ अभी तक ग्रामदान का कार्य प्रारंभ ही नहीं हुआ है, वहाँ पर जिला परिषद और गांधी-शताब्दी समितियों के सहयोग से विचार-प्रचार और गोष्ठियाँ आयोजित की जायें। अनुकूलता होने पर ग्रामदान-अभियान प्रारंभ हो।

समिति ने यह भी निश्चय किया है कि अभियानों में जो कार्यकर्ता जायें वे अपने साथ ग्रामदान व सर्वोदय-साहित्य भी रखें। आन्दोलन का मुखपत्र "भूदान-यज्ञ" साप्ताहिक और "गाँव की आवाज" पाक्षिक के ग्राहक बनाने का प्रयत्न होना चाहिए, ताकि ग्रामदानी गाँवों में विनोबाजी की पवित्र वाणी पहुँचती रहे।

ग्रामदान-प्राप्ति समिति ने सर्वसम्मति से ६ सदस्यीय अभियान-संचालन मण्डल का गठन किया है। सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं: सर्वश्री राजाराम भाई, सुन्दरलाल बहुगुणा, कृष्णमोहन तिवारी, मेवालाल गोस्वामी, आनन्दी भाई और सुरेशराम।

उपर्युक्त संचालन-मण्डल को यह दायित्व सौंपा गया है कि अक्तूबर १९६९ तक निम्नांकित जिलों के जिलादान की पूर्ति का प्रयास करें। इन जिलों के नाम हैं—वाराणसी, चमोली, फर्रुखाबाद, देहरादून, आजमगढ़, गाजीपुर, फैजाबाद, आगरा, मैनपुरी, पीलीभीत और रामपुर।

समिति के सदस्यों को सम्बोधित करते हुए सर्व सेवा संघ के मंत्री श्री ठाकुरदास बंग, ग्रामस्वराज्य समिति के संयोजक आचार्य राममूर्ति और डा० दयानिधि पटनायक ने कहा कि वातावरण, कार्यकर्ता और धन के अभाव से आन्दोलन में तीव्रता नहीं आ रही है, इसके लिए प्रयास होना चाहिए। कार्यकर्ताओं के 'कैडर' बनाने की आवश्यकता पर बल देते हुए आचार्य राममूर्ति ने कहा कि हमारा आन्दोलन ग्रामस्वराज्य का है, ग्रामदान उसका कार्यक्रम है, और सर्वोदय जीवन-दर्शन है। डा० पटनायक ने जनाधार शक्ति की आवश्यकता पर बल दिया। (सर्वोदय)

तत्त्वज्ञान

भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को दी गयी फांसी तथा गणेश शंकर विद्यार्थी के आत्म-बलिदान के प्रसंगों से क्षुब्ध कराची-कांग्रेस-अधिवेशन के लोगों को सम्बोधित करते हुए २६ मार्च १९३१ को गांधीजी ने कहा था :—

"जो तरुण यह ईमानदारी से समझते हैं कि मैं हिन्दुस्तान का नुकसान कर रहा हूँ, उन्हें अधिकार है कि वे यह बात संसार के सामने चिल्ला-चिल्लाकर कहें। पर तलवार के तत्त्वज्ञान को हमेशा के लिए तलाक दे देने के कारण मेरे पास अब केवल प्रेम का ही प्याला बचा है, जो मैं सबको दे रहा हूँ। अपने तरुण मित्रों के सामने भी अब मैं यही प्याला पकड़े हुए हूँ ।"

उसके बाद का इतिहास साक्षी है कि देश ने तलवार के तत्त्वज्ञान को तलाक देनेवाले गांधी का साथ दिया। साम्राज्यवाद की नींव हिली, भारत में लोकतंत्र की नींव पड़ी और संसार को मुक्ति का एक नया रास्ता मिला।

संसार आज बन्दूक की नली के तत्वज्ञान से और अधिक त्रस्त हुआ है। विनोबा संसार को वही प्रेम का प्याला पिलाकर बन्दूक के तत्वज्ञान को तलाक दिलाना चाहता है और देश में सच्चे स्वराज्य की स्थापना के लिए उसने नया रास्ता बताया है।

क्या हम वक्त को पहचानेंगे और महान कार्य में वक्त पर योग देंगे ?

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म शताब्दी-समिति)
दुंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर-१ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

गुजरात में सर्वोदय-कार्य के लिए गुजरात के नागरिकों द्वारा १ लाख २५ हजार रु० का दान

गुजरात सर्वोदय मण्डल को अध्यक्षा सुश्री कान्ताबहन शाह और गुजरात के प्रसिद्ध लोकसेवक डा० द्वारकादास जोशी ने गत मई, '६९ में गुजरात की जनता से अपील की थी कि वह गांधी-शताब्दी वर्ष के लिए सोचे गये विविध कार्यों के खर्च को चलाने हेतु गुजरात सर्वोदय मण्डल को इस वर्ष कम-से-कम २ लाख रुपयों की मदद करें। इस रकम के सहारे पूरे समय के १०० कार्यकर्ताओं को प्रान्त में रखने की योजना है। कान्ताबहन ने इस निमित्त से अहमदाबाद, बम्बई और मद्रास नगरों की यात्रा करके अर्थ संग्रह के लिए जो प्रयत्न किया, उसके परिणामस्वरूप उन्हें इन नगरों के कोई ९०० सर्वोदय प्रेमी नागरिकों ने ४० दिनों में कुल रु० १,२५ ००० की सहायता दी। दाताओं में कम-से-कम २ रु० और अधिक-से-अधिक ५,००० रु० देनेवाले दाता उन्हें मिले। अर्थ-संग्रह के निमित्त से की गयी इस यात्रा में सुश्री कान्ताबहन को उक्त नगरों में लोक-मानस के जो दर्शन हुए और लोक हृदय की निर्मलता तथा सरलता की जो प्रतीति हुई, उसकी चर्चा करते हुए वे लिखती हैं : "अपनी इस यात्रा में हमें सर्वोदय-विचार की व्यापकता का और विनोबाजी के पुण्य-प्रताप का दर्शन एक बार फिर हुआ। अपरिचित-से-अपरिचित परिवारों और व्यक्तियों के पास पहुँचकर भी हम अपनी बात निःसंकोच भाव से रख सके। हमने अनुभव किया कि विनोबाजी का तथा सर्वोदय का नाम और काम आज न केवल सर्वव्यापक, बल्कि सर्वपरिचित भी बन चुका है। हमारा यह विश्वास फिर पुष्ट हुआ है कि सर्वोदय का काम एक ईश्वर-प्रेरित काम है और उसी ईश्वर की प्रेरणा से जनतारूपी जनार्दन ही इस काम को चला रहा है।"●

भूदान में सबसे अधिक भूमि देनेवाले क्रान्तिकारी जिला हजारीबाग का जिलादान

प्राप्त सूचनानुसार हजारीबाग का जिलादान रामगढ़ कैंप में आचार्य विनोबा को २८ जुलाई को समर्पित किये जाने की सम्भावना है। हजारीबाग के सम्बन्ध में अपने उद्गार प्रकट करते हुए आचार्य विनोबा ने कहा है कि "सारे भारत में सबसे अधिक जमीन इस जिले में मिली है और बँटी है। बड़ा क्रान्तिकारी काम हुआ है।"

जिले के युवक नेता श्री श्यामप्रकाश ने एक भेंट में बताया कि जिलादान में सहयोग देनेवाले सभी महानुभावों और जिले की जनता के प्रति हम कृतज्ञ हैं। स्मरणीय है कि इस अभियान को पूर्णता की मंजिल तक पहुँचाने में पटना जिले के कार्यकर्ता साथी श्री विद्यासागरजी के नेतृत्व में जून महीने से ही महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।●

ग्राम-स्वराज्य समिति की बैठक

वाराणसी, २४ जुलाई। दुनिया के इतिहास में अपने जनपदों के लिए प्रसिद्ध वैशाली क्षेत्र के मुजफ्फरपुर जिले में अखिल भारतीय ग्राम स्वराज्य समिति की प्रथम बैठक का आयोजन एक ग्रामदानी गाँव के आमंत्रण पर १४ से १७ अगस्त '६९ तक किया गया है, समिति के प्रवक्ता के अनुसार इस ग्रामदानी गाँव में बीघा कट्ठा का वितरण, ग्रामकोष का निर्माण और नयी ग्रामसभा का शुभारम्भ इसी अवसर पर होगा। इस बैठक का सारा खर्च उक्त ग्रामदानी गाँव वहन करेगा। इस सारे आयोजन में श्री जयप्रकाश नारायण शामिल रहेंगे।●

टीकमगढ़ को नशामुक्त बनाने का आश्वासन

२८ जून को नगरपालिका के पार्षदों एवं जिले के सर्वोदय-कार्यकर्ताओं की एक सम्मिलित बैठक हुई, जिसमें सर्वसम्मत निर्णय द्वारा नगर को नशामुक्त बनाने, भंगी कष्ट-मुक्ति का कार्य तीव्रता से चलाने, गांधी-स्मारक के निर्माण-हेतु राजेन्द्र पार्क में गांधी स्वाध्याय-कक्ष स्थापित किये जाने एवं पेय जल-पूर्ति की समस्याओं के समाधान का आवश्यक कार्यवाही द्वारा पूरा करने का निश्चय किया गया।

बिहार रिलीफ कमिटी द्वारा राजस्थान के अकाल-कार्य के लिए ५० हजार रु० की सहायता

श्री जयप्रकाश नारायण ने बिहार रिलीफ कमेटी की ओर से ५० हजार रुपये की रकम राजस्थान के अकाल-कार्य के लिए सहायता-रूप में भेजी है। यह रकम प्रान्तीय सर्वोदय संगठन राजस्थान समग्र सेवा संघ को प्राप्त हुई है।●

कानपुर में शतदिवसीय गांधी-शताब्दी अभियान प्रारम्भ

गांधी-शताब्दी में गांधीजी का सन्देश उनके साहित्य और कार्यक्रमों के माध्यम से शहर के हर क्षेत्र और हर वर्ग में पहुँचाने के लिए यहाँ नागरिक और प्रमुख रचनात्मक संस्थाएं २५ जून से २ अक्तूबर तक एक शतदिवसीय अभियान चला रही हैं। २१ जून को प्रात. साढ़े छः बजे कार्यक्रम का श्रीगणेश हुआ।

अभियान-समिति के संयोजक श्री विनय अवस्थी ने बताया कि अभियान के अन्तर्गत भंगी-मुक्ति, मद्य-निषेध, खादी-ग्रामोद्योग ग्रामदान ग्रामस्वराज्य, सर्वधर्म-समभाव, शान्ति सेना और गांधी-साहित्य, इन सात कार्यक्रमों पर बल देना तय किया है।

—विजय बहादुर सिंह

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ४४

सोमवार ४ अगस्त, '६९

अन्य पृष्ठों पर

आवश्यक सूचना

तीन वर्षों से 'भूदान-यज्ञ के परिशिष्ट के रूप में हर महीने 'गाँव की बात' के दो अंक हम देते रहे हैं। पर अब 'गाँव की बात' 'भूदान-यज्ञ' के परिशिष्ट के रूप में नहीं प्रकाशित होगी। 'गाँव की बात' के पाठक 'गाँव की आवाज' के नाम से अलग चार रुपये चन्दा भेजें। 'गाँव की आवाज' का पहला अंक १५ अगस्त को प्रकाशित होगा।

—व्यवस्थापक

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन,
राजघाट, वाराणसी-१ उत्तरप्रदेश
फोन : ४३८५

शान्ति-दल कैसा हो ?

कुछ समय पहले मेरे कहने पर शान्ति-दल बनाने का प्रयत्न किया गया था। मगर उसका कोई नतीजा नहीं निकला। फिर भी उससे यह सीखने को मिला कि शान्ति दल बड़े पैमाने पर काम नहीं कर सकते। साधारणतः बल के आधार पर बने किसी बड़े स्वयंसेवक दल को अच्छी तरह चलाने में अनुशासन भंग होने पर बल प्रयोग की गुंजाइश मानी जाती है। ऐसी संस्थाओं में मनुष्य के चरित्र पर कोई जोर नहीं दिया जाता। शारीरिक योग्यता ही मुख्य चीज होती है। अहिंसक दल में उल्टी बात होती है। उसमें चरित्र या आत्मबल, सब कुछ होना चाहिए और शरीर को गौण स्थान मिलना चाहिए। ऐसे बहुत से आदमियों का मिलना कठिन है। इसीलिए अहिंसक दल को यदि कारगर बनना है तो वह छोटा ही होना चाहिए। ऐसे दल सब जगह बिखरे हुए हो सकते हैं, हरएक गाँव या मुहल्ले के लिए एक दल हो सकता है। दल के सदस्य एक-दूसरे से भली-भाँति परिचित होने चाहिए। प्रत्येक दल अपना मुखिया आप ही चुन लेगा। सब सदस्यों का दर्जा एक सा होगा, मगर जहाँ हरएक व्यक्ति वही काम करता हो, वहाँ एक आदमी ऐसा होना ही चाहिए, जिसके अनुशासन में सब रहें, नहीं तो काम की हानि होगी। जहाँ दो या अधिक दल हों, वहाँ नेताओं को आपस में सलाह करके काम की एक सी दिशा तय करनी चाहिए। यही सफलता की कुंजी है।

अगर इस ढंग पर अहिंसक स्वयंसेवक-दल बनाये जायँ, तो वे आसानी से झगड़ों को बन्द कर सकते हैं। इन दलों के लिए अखाड़ों में दी जानेवाली पूरी शारीरिक तालीम की जरूरत नहीं होगी, परन्तु उसका कुछ भाग आवश्यक होगा।

किन्तु इन तमाम शान्ति दलों में एक बात सामान्य होनी चाहिए, और वह है ईश्वर में अनन्य श्रद्धा। वही एकमात्र सच्चा साथी और कर्ता है। उसमें श्रद्धा हुए बिना ये शान्ति दल निर्जीव होंगे। हम ईश्वर को किसी भी नाम से पुकारें, हमें यह महसूस करना चाहिए कि हम उसीके बल पर काम कर सकते हैं। ऐसा आदमी कभी दूसरे की जान नहीं लेगा। जरूरत पड़ने पर वह अपनी जान दे देगा और इस प्रकार मृत्यु पर विजय पाकर अमर बन जायेगा।

जिस मनुष्य के जीवन में यह धर्म सजीव सत्य बन जाता है, उसे संकट में घबराहट नहीं होती। उसे काम करने का सही रास्ता अन्त प्रेरणा से मालूम हो जायेगा।

मो० क० गांधी

"हरिजन" : ५-५-४६

संगम-तट से

सरकार और सिनेमा

नयी पीढ़ी के खिलाफ बुजुर्गों की तरफ से अक्सर यह कहा जाता है कि इसकी वृत्ति विध्वंसात्मक है और इसमें संयम, सहनशीलता, त्याग आदि गुणों का अभाव है। सन् १९२०-२१ या १९३०-३२ में जेल काटने के एवज में स्वराज्य के बाद से हर तरह की सत्ता और सुख लूटनेवालों को इस तरह के उपदेश देना शोभा नहीं देता। फिर भी शाश्वत मूल्यों की बच्चों को याद दिलाना हर किसीका अधिकार है, और पुरानी पीढ़ी की शिकायत को हम थोड़ी देर के लिए जायज मान लेते हैं। लेकिन सोचने-समझने की बात यह है कि सद्गुणों के विकास के लिए हम क्या कर रहे हैं? या तो नयी पीढ़ी को वे विरासत में हासिल होते, सो तो नहीं हुए, जिसके लिए पुरानी पीढ़ी जिम्मेदार ठहरायी जायेगी, या फिर हम ऐसा वातावरण बनाते जिससे नेकी, सच्चाई और सेवा की प्रेरणा हमारी औलाद को आप-से-आप मिलती, मगर हम यह न कर, चारों तरफ ऐसी हवा तैयार कर रहे हैं, और ऐसी सामग्री जुटा रहे हैं, जिससे नौजवान लालच में फँसकर अपने रास्ते से बहक जाय और गलत संस्कारों का शिकार होता रहे।

जून के पहले हफ्ते में गाजियाबाद के पास प्रदेश के मुख्यमंत्री महोदय ने उत्तरप्रदेश के नये हालीवुड, 'अजन्ता स्टूडियो' का शिलान्यास किया। अभिनन्दन करने के लिए *केन्द्र के सूचना और प्रसार विभाग के राज्य*मंत्री पधारे थे। इस फिल्म नगरी के सुन्दर भविष्य का आश्वासन दे रहे थे फिल्मी कलाकार, और इस सबका संयोजन कर रहे थे उस नगरी के नये नरेश, जो प्रदेश के सरनाम मदिरा-उद्योगपति हैं। उन्होंने ढाई सौ एकड़ जमीन इस काम के लिए ली है, और सन् १९७१ तक वहाँ इन्द्रपुरी बनाने का उनका स्वप्न है। इस नगरी की कल्पना वर्तमान कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल के आगमन के पहले ही राष्ट्रपति-शासन के दौरान की गयी थी। उन दिनों इस बारे में एक समझौता प्रदेश-सरकार और फिल्मनगर-निर्माताओं के बीच हुआ था, जिसको प्रकाशित नहीं किया गया। लेकिन एक बड़ी रकम गाजियाबाद-योजना को सरकार ने दी या देने का वायदा किया, और ऐसे समय किया जब कि प्रदेश के शिक्षक बन्धु हड़ताल कर रहे थे और उनकी वेतन वृद्धि के लिए सरकार के पास देने को पैसा नहीं था!

प्रदेश-सरकार इस योजना की कई तरह से मदद दे रही है—(१) प्रदेश का 'इण्डस्ट्रियल फायनेन्स कारपोरेशन' एक बड़ा 'लोन' उसको देगा। (२) वहाँ लगनेवाले सामान पर सरकार बिक्री कर नहीं लेगी। (३) मनोरंजन-कर पर सरकार छूट देगी। सवाल है कि प्रदेश की नयी सरकार ने इन बातों को क्यों चुपचाप मान लिया। क्या उसका कोई प्रतिनिधि फिल्म-कम्पनी में है, जो यह बता सके कि पैसे का सदुपयोग हो रहा है और वह मारा नहीं जायेगा? फिर, यह बिक्री-कर और मनोरंजन-कर की छूट क्यों दी जा रही है? एक गरीब मजदूर को अपनी गाढ़ी कमाई से अगर एक छोटा घर बनाना हो, तब तो ईंटों और सीमेण्ट पर बिक्री-कर उससे लिया जायेगा, लेकिन एक संपन्न पूँजीपति कोई उद्योग खोलता है, जो जनजीवन को हानि पहुँचाने के अतिरिक्त कुछ नहीं करेगा, तो उसे रुपया उधार देने के साथ-साथ बिक्री-कर पर भी छूट दी जाती है। यह है भारत के समाजवाद का नमूना!

इसके अलावा प्रदेश-सरकार लगभग एक करोड़ का बोझ ऊपर से बर्दाश्त करेगी। बिजली पहुँचानेवाला पावर-स्टेशन खड़ा करने और बिजली के लिए दो डीजल सेट, स्थायी तौर से लगाने के लिए ये सारी सुविधाएँ सरकार मुफ्त करेगी—किसी जरूरत मन्द को बिजली या टेलीफोन की जरूरत हो, तो खम्भे लगाने, तार ले जाने और लाइनें डालने का खर्च का बोझ उस पर पड़ता है, लेकिन गाजियाबाद के प्रोजेक्ट के लिए सरकार खुद ये चीजें मुहैया कर रही है। फिर भी कहती है कि उसके पास पैसे नहीं हैं। हम मान लेते हैं कि सरकार ने जान-बूझकर यह सहूलियत देने का और जनता पर पूँजीपति का बोझ डालने का तय किया है।

लेकिन उस नगरी से लाभ किसका होगा? आर्थिक लाभ होगा उसके बनानेवाले श्रीमान को, जिसका मतलब है धन और साधनों का केन्द्रीयकरण होना और पूँजीवाद की जड़ों को मजबूत करना। जाहिर है कि वहाँ से जो चीज निकलेगी वह वैराग्य और कष्ट-सहन का पाठ पढ़ाने के बजाय, भोग, अपहरण, अपराध और अन्य कुत्सित वृत्तियों को प्रोत्साहन देगी। दूसरे शब्दों में, नौजवानों के लिए, नैतिक दृष्टि से हानिकर होगी और कुमार्ग पर ले जाने के लिए प्रेरित करेगी। इस प्रकार इस योजना से दोहरा नुकसान होगा। (१) आर्थिक दृष्टि से समाजवाद के खिलाफ पूँजीवाद बलवान होगा, (२) व्यावहारिक दृष्टि से समाज में अनैतिकता, असंयम और अन्याय बढ़ेंगे। फिर भी सरकार इसको मदद दे रही है, और मुख्यमंत्री ने इसे अपने आशीर्वाद दिये, जिनका जीवन सच्चरित्रता का प्रमाण है। लेकिन व्यक्ति के नाते वे जिन चीजों को बुरा समझते हैं, उनका मुख्यमंत्री के नाते स्वागत कर रहे हैं।

यहाँ हमें सुप्रसिद्ध ब्रिटिश विचारक और तत्त्ववेत्ता प्रो० लास्की की याद आ जाती है। उन्होंने कहा है कि जहाँ जो सत्ता या शासन होता है वह वहाँ के समाज के निहित स्वार्थों का प्रतिनिधि होता है। उनका यह कथन हमारे प्रदेश या सारे देश पर सोलह आने सच उतरता है। गाजियाबाद की फिल्म-नगरी को सरकारी इमदाद इस सत्य को डंके की चोट पर ऐलान कर रही है।

—सुरेशराम

अखिल भारत सर्वोदय-सम्मेलन

सर्व सेवा संघ प्रबन्ध समिति की राजकोट बैठक में हुए निर्णय के अनुसार आगामी २५-२६ अक्तूबर को प्रथम अंतरराष्ट्रीय सर्वोदय-सम्मेलन तथा २७-२८ अक्तूबर को अखिल भारत सर्वोदय-सम्मेलन राजगीर (बिहार) में आयोजित किया जायेगा। उक्त सम्मेलन में सरहदी गांधी खान अब्दुल गफ्फार खाँ के भी शामिल होने की पूरी आशा है। सम्मेलन में १० से १५ हजार प्रतिनिधियों की उपस्थिति सम्भावित है।

तंजोर में हरी बनाम लाल क्रान्ति

दक्षिण का तंजोर जिला, खास तौर पर पूर्वी तंजोर, 'हरी क्रान्ति' के लिए, जिसकी आजकल बहुत चर्चा है, मशहूर है। लेकिन तंजोर इस बात की भी मिसाल है कि जहाँ हरी क्रान्ति होती है वहाँ लाल क्रान्ति भी पहुँच जाती है। हरी क्रान्ति नाम है खेतिहर पूँजीवाद का, और लाल क्रान्ति नाम है खेतिहर साम्यवाद का। ये दोनों 'वाद' मिलकर तंजोर को वाद-विवाद और वर्ग-संघर्ष का अखाड़ा बना रहे हैं। अगर यह संघर्ष बढ़ा तो क्या होगा खेती का, और क्या होगा खेतिहर किसान और मजदूर का, कोई कह नहीं सकता। लेकिन अगर विकास इसी तरह एकांगी होता रहा, और राजनीति आज की ही तरह चलती रही, तो संघर्ष के सिवाय दूसरा होगा भी क्या ? यह सोचने की बात है कि क्या ग्रामदान ग्राम-स्वराज्य के द्वारा, जिसकी कोशिश तंजोर में शुरू हो गयी है, हम इन दोनों वादों के विवाद से बचकर साम्य और समन्वय की एक ऐसी स्थिति पैदा कर सकते हैं जिसमें सबको समाधान हो, और जिसमें श्रम और साधन एक दूसरे के शत्रु नहीं, पूरक हो सकें ?

१ पूर्वी तंजोर में मिरासदार (जमीन का मालिक) – मजदूर का झगड़ा लगभग २५ वर्ष पुराना है, लेकिन इस वक्त हालत हमेशा से ज्यादा खराब है। पिछले दस वर्षों में सघन और अच्छी खेती के विकास के साथ साथ इन दोनों के सम्बन्ध बराबर बिगड़ते चले गये हैं। पहले एक फसल होती थी, और सारा काम इतमीनान के साथ होता था, लेकिन अब दो फसलें होती हैं, और नये बीजों में समय भी कुछ अधिक लगता है, इसलिए खेतों की तैयारी और रोपाई आदि काम जल्दी-जल्दी और क्षमता के साथ करना पड़ता है। ऐसी हालत में जरूरत इस बात की थी कि मालिक-मजदूर के सम्बन्ध अच्छे हों, पर हुआ है बिलकुल उलटा। मजदूर एक ओर संगठित हैं, और मालिक दूसरी ओर। खेती भी अच्छी और संघर्ष भी तेज !

२. मजदूरों में दोनों कम्यूनिस्ट पार्टियों का प्रभाव है। मार्क्स-वादी-लेनिनवादी माओवादी (नक्सालवादी) कम्यूनिस्ट भी हैं लेकिन अभी शुरू की हालत में हैं। कम्यूनिस्ट मित्रों का कहना है कि (१) मालिक-वर्ग दूसरों की मेहनत पर जीनेवाला है; काम करता नहीं, और फल ज्यादा चाहता है। सरकार और पुलिस से मिलकर मजदूर को दबाने की कोशिश करता है। (२) मालिक लोग दूसरे क्षेत्रों से मजदूर बुलाकर काम कराते हैं। वे चाहते हैं कि स्थानीय मजदूरों का संगठन टूट जाय। (३) मालिक खेती में ट्रैक्टर का इस्तेमाल करते हैं। इनसे मजदूरों की बेकारी बढ़ती है। अगर भूमि की व्यवस्था बदल गयी होती और 'सीलिंग' का कानून सख्ती के साथ लागू हुआ होता तो बात दूसरी थी, किन्तु वह सब हुआ नहीं, इसलिए ट्रैक्टर मजदूर-विरोधी है। (४) डी० एम० के० सरकार का भी वही हाल है जो कांग्रेस का था। वह खुलकर श्रमिकों का साथ नहीं देती जो उसे करना चाहिए।

इस झगड़े के दो मुख्य कारण हैं—बाहर से मजदूर बुलाना, और ट्रैक्टर। कम्यूनिस्ट कहते हैं कि जरूरत पड़ने पर बाहर से मजदूर बुलाये जा सकते हैं बशर्ते स्थानीय मजदूरों को भरपूर काम मिले, और बाहरी मजदूरों को भी उतनी ही मजदूरी मिले जितनी की माँग स्थानीय मजदूर करते हैं। कम्यूनिस्टों की शिकायत है कि मालिक बाहर से मजदूर इसलिए बुलाते हैं कि स्थानीय मजदूर भूखों मरने लगें और कम मजदूरी पर काम करने के लिए मजबूर हों।

कम्यूनिस्ट ट्रैक्टर को दुश्मन मान रहे हैं। उनका कहना है कि ट्रैक्टर से २५ से ३० फीसदी तक बेकारी बढ़ती है। अगर कहा जाय कि रूस में ट्रैक्टरों से ही खेती होती है तो वे जवाब देते हैं कि रूस में मजदूरों की कमी है, और रूस समाजवादी देश है। भारत में काम करनेवाले बहुत और काम कम है, इसलिए रूस की मिसाल भारत पर लागू नहीं होती।

३ मालिकों (मिरासदार) को भी अपनी कठिनाइयाँ हैं। वे कहते हैं कि मजदूर कम्यूनिस्ट राजनीति के रंग में रंग गये हैं। अब उनसे काम लेना आसान नहीं है। एक तो पाँच साल में एक बार कहीं अच्छी फसल होती है, दूसरे मजदूरी तो तय रहती है जो देनी ही पड़ती है, लेकिन काम की कोई माप नहीं होती। उनका यह भी कहना है कि नयी खेती में थोड़े समय में ट्रैक्टर के बिना काम पूरा करना संभव नहीं है। उत्पादन का लक्ष्यांक ऐसे मजदूरों से नहीं पूरा किया जा सकता जो मनमाने हों। खेती के सरकारी अधिकारी भी यही कहते हैं कि अधिक से अधिक उत्पादन के लिए ट्रैक्टर अनि-वार्य है।

जहाँ तक इन दो मुख्य प्रश्नों—बाहरी मजदूर और ट्रैक्टर का सम्बन्ध है, दोनों कम्यूनिस्ट पार्टियाँ एकमत हैं। उनमें अन्तर दूसरे ढंग का है। कम्यूनिस्ट (सी० पी० आई०) कहते हैं कि मजदूरी जीने भर यानी १२५ रु० मिले, काम की सुविधा हो, और जो सवाल पैदा हों वे मालिक, मजदूर और सरकार के बीच आपसी चर्चा से तय हों। मार्क्सवादी कम्यूनिस्टों की माँग है कि मजदूरी अधिक-से-अधिक मिले। साथ ही वे यह भी कहते रहते हैं कि आगे चलकर मालिक-वर्ग को समाप्त करना ही है। इन दोनों से भिन्न मार्क्सवादी-लेनिन-वादी-माओवादी कम्यूनिस्टों का जोर है कि मजदूरों की मुक्ति बन्दूक में है, क्योंकि मालिक बन्दूक की ही भाषा समझेंगे, दूसरी नहीं।

४. कम्यूनिस्ट नेतृत्व में मजदूर अच्छी तरह संगठित हैं, किन्तु मालिकों में एकता नहीं है। एक तो छोटे बड़े मालिकों में मेल नहीं है, दूसरे जाति के भेद भी हैं जो उन्हें एक नहीं होने देते। पूर्वी तंजोर में अधिकांश मालिक सवर्ण हैं, और मजदूर हरिजन। हरिजन कुल जनसंख्या के २१ प्रतिशत हैं। मजदूरों की कुल संख्या ४ लाख है, जिनमें ८० प्रतिशत हरिजन हैं। ब्राह्मण अब्राह्मण मालिक में मजदूर

की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। मालिक मालिक है। वर्ग-संघर्ष और वर्ण-संघर्ष मिले हुए हैं।

तंजौर में ३० एकड़ की सीलिंग है, लेकिन हर जगह की तरह वहाँ भी तरह-तरह की चालें अपनाकर मालिकों ने जमीन हाथ से जाने नहीं दी है।

इस वक्त जोत के अनुसार मालिकों का प्रतिशत इस प्रकार है :

१० एकड़ या ज्यादा	—	१२ प्रतिशत
५ से १० एकड तक	—	६ प्रतिशत
२॥ से ५ एकड़ तक	—	३२ प्रतिशत
२॥ एकड़ से कम	—	४७ प्रतिशत

सन् १६६१ में ५ फीसदी मालिकों के हाथ में ३० फीसदी भूमि थी। सीलिंग-कानून के बाद भी वही स्थिति बनी हुई है।

पहले मजदूर मालिक से जुड़ा हुआ था जो उसे खाना, कपड़ा, और कुछ मजदूरी देता था, लेकिन सन् १६५२ में उसके संरक्षण के लिए जो कानून बना उससे मजदूर 'कुली' हो गया। अब उसे किसी कानून का संरक्षण नहीं है। इस वक्त उसे धान-रोपाई की मजदूरी प्रतिदिन ६ लिटर धान और एक रुपया मिलता है; स्त्रियों को ५ लिटर और २५ पैसा। कई जगह इससे कम भी मिलता है। इतना ही नहीं, अब वह उस यातना से भी मुक्त है जब मालिक उसे कोड़े लगा सकता था, और पानी में गोबर मिलाकर जबरदस्ती पिला सकता था। इतनी भी मुक्ति उसने सन् १६४४ से आज तक के लगातार संघर्ष से प्राप्त की है। फिर भी साल भर काम न रहने के कारण उसका गुजर नहीं हो पाता। कम्युनिस्ट पार्टी की ओर से भूमिहीनों की स्थिति का जो अध्ययन हुआ है उसके अनुसार ४ व्यक्तियों के परिवार के गुजर-बसर के लिए साल भर में १५०० रुपये की जरूरत होती है। मजदूर को साल में १७७ दिन काम मिलता है। इतने दिनों के काम से पति-पत्नी को मिलाकर परिवार की आय साल भर में कुल ७८० रु० होती है। बाकी रुपये परिवार कहाँ से लाता है? महाजन से कर्ज लेता है, या बीच-बीच में भुखमरी झेलता है।

मिरासदार मानते हैं कि मजदूर तकलीफ में हैं, लेकिन कहते हैं कि करें क्या? अभी खेती की जो उपज है और बाजार में जो भाव हैं, उन्हें देखते हुए माँग के अनुसार मजदूरी देने की गुंजाइश नहीं है। खेती का खर्च दिनोंदिन बढ़ता चला जा रहा है। सन् १६६० की तुलना में आज केवल मजदूरी का खर्च ५० फीसदी से ज्यादा बढ़ गया है। अधिकांश मिरासदार छोटे किसान हैं जो खुद चिंताओं से घिरे हुए हैं। उनके सामने एक ओर अपने परिवार और खेती की समस्या है, और दूसरी ओर कम्युनिस्टों के नेतृत्व में मजदूरों का विद्रोह है।

कुल मिलाकर ऐसी स्थिति बन गयी है कि किसी को कोई रास्ता नहीं दिखाई देता। तमिलनाडु की किसी सरकार ने अभी तक तंजौर की समस्या में पड़ने की कोशिश नहीं की है। मालिक-मजदूर की आपसी चर्चा से भी क्या होगा कहना कठिन है। नक्सलवादी तो कह ही रहे हैं कि भेड़िया और मेमना साथ नहीं रह सकते। लेकिन संघर्ष में कौन भेड़िया होगा, कौन मेमना?

पिछले दिसम्बर में तमिलनाडु सरकार ने पूर्वी तंजौर की खेतिहर समस्याओं पर विचार करने के लिए एक कमीशन बिठाया था। उसने मोटे तौर पर मजदूरी में १० फीसदी की वृद्धि की सिफारिश की है। उसकी अन्य सिफारिशें ये हैं :

१. तालुका स्तर पर 'लेबर कोर्ट' हो जो न्यूनतम मजदूरी के कानून को लागू करे।

२. यदि कोई मालिक जबरदस्ती स्थानीय मजदूरों को काम देने से इन्कार करता है तो सरकार को १४४ धारा के अनुसार उसे ऐसे मजदूरों को काम देने के लिए मजबूर करना चाहिए।

३. मजदूरी की निम्नलिखित दरें उचित मानी जायँ :

जोताई : अगर मजदूर अपना हल-बैल लाता है	—	पुरुष	—	५–२५
जोताई बिना हल बैल	—	पुरुष	—	३–००
रोपाई, निराई	—	स्त्री	—	१–८०
हेंगा चलाना, मेड़ ठीक करना	—	पुरुष	—	३–००
बेहन उखाड़ना	—	पुरुष	—	३–००
रोपाई-कटाई से अलग मौसम में विविध कार्य	—	पुरुष	—	२–५०
	—	स्त्री	—	१–७५
अन्य कार्य	—	पुरुष	—	३–००
	—	स्त्री	—	१–८०

पुरुष मजदूर का काम ८ घंटे का माना जायगा, और स्त्री का ७ घंटे का।

ऐसे तंजौर में अपना ग्रामदान आन्दोलन शुरू हुआ है। वयोवृद्ध शंकररावजी युवक साथियों के साथ, पदयात्रा कर रहे हैं, शिविर ले रहे हैं। मालिकों को स्वामित्व-विसर्जन का संदेश सुना रहे हैं, और गाँववालों के सामने मिरासदार-मजदूर की 'वर्ग-चेतना से ऊपर उठकर गाँव' का चित्र रख रहे हैं। उनकी बात लोगों के दिल को छू रही है। लोग महसूस करने लगे हैं कि समस्या ऐसी है जो मालिक-मजदूर को दुश्मन मानकर सिर्फ कानून से हल नहीं होगी। कानून की मुहर जरूर लगायी जाय लेकिन समाधान के लिए मानवीय संदर्भ बनाना ही पड़ेगा। वह विरोध से नहीं, अविरोध से बनेगा। कठिन प्रयोग है, लेकिन ग्रामदान आन्दोलन के लिए अत्यन्त मूल्यवान प्रयोग है। क्रान्ति तो होनी ही है; प्रश्न इतना ही है कि उसका रंग क्या होगा।●

ग्रामदान-प्रखण्डदान-जिलादान

— २७ जुलाई '६६ तक —

	ग्रामदान	प्रखण्डदान	जिलादान
भारत में	१,०७,६६६	८२१	२१
बिहार में	४५,०६०	४८२	१२

दिमाग के साथ दिल भी बड़ा बने

—अन्य ग्रहों के सम्पर्क से मनुष्य का दिमाग और बड़ा बना—

मेरे प्यारे भाइयो और बहनो, आज की बहुत बड़ी घटना है कि जब हम यहाँ आ रहे थे, लगभग उसी वक्त चाँद पर मानव घूम रहा था। यह इस जमाने की सबसे बड़ी घटना मानी जायेगी। इसके पहले कोलम्बस ने अमरीका की खोज की। मार्कोपोलो उत्तर ध्रुव पर गये। अगस्त ऋषि ने बोर्नियो में कालोनी की। ये और ऐसी दूसरी घटनाएँ बनी थीं। वे उस जमाने में बहुत महत्व की साबित हुईं और उसके परिणाम सारे समाज पर पड़े। यह हम सब लोग इतिहास पर से जानते हैं। लेकिन आज इस घटना के सामने ये पुरानी घटनाएँ छोटी मानी जायेंगी। उनका भी बहुत बड़ा प्रभाव समाज पर पड़ा था, तो आज की घटना का क्या-क्या परिणाम मानव जीवन पर होगा इसका अंदाज लगाना संभव नहीं। लेकिन उसमें एक बात सोचने की हो जाती है। अब वह जमाना लद गया जब समाज में यह जाति मेरी, वह जाति मेरी, ऐसे जाति-भेद के कारण हम बँट गये थे और यह धर्म हमारा, इस तरह धर्म, पंथ के कारण बँट गये थे और यह कम नहीं हुआ, इसलिए हमने और भेद बना लिये राजनैतिक पक्षों के। तो जाति भेद, पंथ भेद, धर्म-भेद, पक्ष-भेद, ऐसे नाना प्रकार के भेदों में आज समाज बँट गया। समझना चाहिए कि अब ये सारे पक्ष, जातियाँ, धर्म, पंथ सब पुराने जमाने के हो गये हैं। उनके दिन लद गये हैं। हम यह नहीं समझेंगे तो हमारे दु:ख बढ़ते जायेंगे। उसका अन्त नहीं होगा।

आज दुनिया बहुत नजदीक आ रही है विज्ञान के कारण। इसका उत्तम निदर्शन हमको मिला जब चन्द्रमा से हमारा सम्बन्ध बन गया। इस निदर्शन से हमको लाभ उठाना चाहिए और जितना हमारा दिमाग बड़ा बना है उतना ही अब हमें अपना दिल बड़ा बनाना चाहिए।

दिमाग और दिल का झगड़ा

आज जो झगड़े दुनिया में चल रहे हैं, कोई कहता है कि ये मजदूर और मालिक के झगड़े हैं, कोई कहता है विद्यार्थी और शिक्षकों के झगड़े हैं। और कोई कहता है हिन्दू और मुसलमान के झगड़े हैं। कोई कहता है छूत और अछूत के झगड़े हैं। कोई कहता है आदिवासी और गैर-आदिवासी के झगड़े हैं। कोई कहता है रूस और अमेरिका के झगड़े हैं। कोई कहता है चीन और भारत के झगड़े हैं। लेकिन *दरअसल दुनिया में आज एक ही झगड़ा है—दिमाग और दिल का।* नाम उसको चाहे जो कुछ दें। आज मानव का दिमाग बड़ा बन गया है और उसका दिल छोटा रह गया है।

पुराने जमाने में क्या था? अकबर बादशाह, बड़ा सम्राट था। लेकिन उसको मालूम नहीं था, इंग्लैण्ड नाम का देश इस दुनिया में है। उसको तब मालूम हुआ, जब इंग्लैण्ड के कुछ लोग यहाँ आ पहुँचे। अकबर के दरबार में गये और उनसे व्यापार की इजाजत माँगी। इतने बड़े सम्राट को भूगोल का इतना कम ज्ञान था। आज तो स्कूल के बच्चे को भी उससे कहीं ज्यादा ज्ञान दुनिया के भूगोल का है। इस वक्त हमारा ज्ञान पुराने जमाने से बहुत बढ़ गया है। न्यूटन अपने जमाने का उत्तम गणितवेत्ता था। लेकिन उसके पास जो गणित का ज्ञान था, उससे ज्यादा ज्ञान आज कालेज के बच्चों को होता है। न्यूटन आज अगर आ जाय और कालेज के क्लास में बैठे तो वहाँ विद्यार्थी के तौर पर ही वह बैठ सकेगा, प्रोफेसर के नाते नहीं। मतलब उस जमाने का बहुत बड़ा गणितवेत्ता जो था उसका भी ज्ञान आज छोटा पड़ गया है।

विनोबा

सोचने की बात है कि जमाना आगे बढ़ता जा रहा है और विज्ञान इतने जोरों से आगे बढ़ रहा है कि दो साल पहले की विज्ञान की किताब आज पुरानी हो जाती है, इतना जल्दी ज्ञान बढ़ रहा है। और, हमारा दिल कितना बड़ा है? बिलकुल छोटा। हम कौन हैं? ब्राह्मण हैं, भूमिहार हैं, शिव के उपासक हैं। केवल क्रिस्ती नहीं तो रोमन कैथोलिक हैं, लूथर्न क्रिस्ती हैं, ऐंग्लिकन क्रिस्ती हैं, प्रोटेस्टेन्ट हैं। तो क्रिश्चनों में भी भेदभाव पड़ गये हैं, और हम शिया हैं, हम सुन्नी हैं। इस प्रकार से मुसलमानों में भी भेद हैं। पेड़ पर कितनी पत्तियाँ हैं, जरा गिनें। पेड़ पर जितनी पत्तियाँ मिलेंगी, उतनी जातियाँ और उतने पंथ भारत में मिलेंगे। अनगिनत भेद! इतना छोटा दिल हमारा बना है। वह बड़ा दिमाग सम्भाल नहीं सकता।

यह होता कि जितना दिल छोटा उतनी ही कम अक्ल, उतना ही छोटा दिमाग तो बात अलग थी। मेरी इतनी छोटी सी जाति और मेरी दुनिया कितनी बड़ी?—५० मील लम्बी और ५० मील चौड़ी, तो दिल और दिमाग दोनों छोटा। शेरों का ऐसा होता है। फिर झगड़े नहीं होते। शेरों को मालूम नहीं होता कि उनकी जाति के लोग कितने हैं। उनको अगर कहा जाय कि तुम्हारी जाति के लोग सरगुजा (म० प्र० का जिला) में हैं तो वे कहेंगे कि सरगुजा हमने देखा ही नहीं। उनको १०-१२ मील का ट्रैक मालूम है। और उनका 'इन्टरेस्ट' एक ही चीज में है कि दिन भर में एक शिकार मिल जाय। हिरन मिले तो अच्छा, नहीं तो कम से-कम खरगोश तो मिल ही जाय। दूसरी बात खाने के बाद पानी चाहिए। हर जगह पानी नहीं मिलता तो कभी कभी पानी के लिए दस-बारह मील जाना पड़ता है। उतनी ही दूर का उनका भूगोल है। उसके आगे का उनको कुछ मालूम नहीं। उनका दिमाग इतना छोटा है और दिल भी छोटा है, इसलिए उनको समाधान है। जो असमाधान आज मानव को होता है वह शेर को नहीं होता। उनको खाने-पीने को मिल जाता है और काम-वासना होगी तो उसकी भी वहाँ व्यवस्था होती है। उससे अधिक उनको कुछ नहीं चाहिए। इतने से उनका पूरा समाधान है।

दिल को बड़ा बनाना होगा

लेकिन मानव का ऐसा नहीं है। मानव का दिमाग बड़ा बन गया है और दिल छोटा, इसलिए उसको असमाधान है। अब दिमाग तो छोटा बनाना असम्भव है। विज्ञान ने यह बात अब असम्भव कर डाली है। अभी तो

मानव चाँद पर गया है। मुमकिन है वहाँ तो मिट्टी-ही-मिट्टी होगी, जीव सृष्टि नहीं; लेकिन कल अगर मंगल पर जायेंगे तो वहाँ जीव सृष्टि मिल सकती है, ऐसा माना गया है। संस्कृत में यह बात मानी है। संस्कृत में 'कु' याने पृथ्वी और मंगल को 'कुज' कहते हैं, याने पृथ्वी से पैदा हुआ। भौम भी कहते हैं, याने भूमिपुत्र मानते हैं। मतलब, प्राचीन ऋषि भी मानते थे कि पृथ्वी और मंगल में कुछ अंश समान है और उनका सम्बन्ध है। वैज्ञानिक भी मानते हैं कि शायद मंगल पर अनुकूलता होगी। तो मनुष्य चाँद पर जाय, मंगल पर जाय और हम यहाँ डिमडेगा (मनुमंडल) ही चलायें, तो यह कैसे चलेगा ?

मुझे तो बचपन से एक उम्मीद है, धुन है, कल्पना है कि परमात्मा की सृष्टि अनन्त है। इस सृष्टि को निश्चित आँकड़ों में नहीं दिखा सकते। वह अनन्त है और एक जल-बिन्दु में लाखों कृमियाँ होती हैं, ऐसी विशाल सृष्टि है। एक जगह सीमा आती है कि मनुष्य को पाँच इंद्रियाँ हैं। कुछ प्राणी हैं, जिनको चार इंद्रियाँ हैं। कुछ को तीन इन्द्रियाँ हैं, कुछ को दो इन्द्रियाँ हैं और कुछ तो एक ही इन्द्रिय के प्राणी हैं। वह स्पर्शेन्द्रिय होता है। वह छुयेगा तभी पता चलेगा। ऐसे बारिक-बारिक जंतु सृष्टि में हैं। जापान के लोग मानते हैं कि जब भूकम्प होनेवाला होता है तो वहाँ के एक विशिष्ट प्रकार के कीड़ों को स्पर्शेन्द्रिय से भूमि के अन्दर जो क्रिया होती है उसका पता लगता है और वे हलचल करने लगते हैं। उससे मालूम होता है कि भूकम्प घंटे, डेढ़ घंटे में होनेवाला है। इस प्रकार मनुष्य से भी ज्यादा ज्ञान उनको स्पर्शेन्द्रिय के कारण होता है।

लेकिन हम सोचते थे कि एकेन्द्रिय, दो इन्द्रियों, चार इन्द्रियों और पाँच इन्द्रियों के जीव, बस समाप्त। ईश्वर की सृष्टि में इन्द्रियों की संख्या ऐसी निश्चित कैसे हो सकती है ? तो कहीं छः इन्द्रियोंवाला, सात या आठ इन्द्रियोंवाला जीव पृथ्वी में होना चाहिए। और पृथ्वी पर नहीं तो और कहीं होना चाहिए। हमको बचपन से धुन है कि किसी स्थान पर चन्द्रमा या मंगल पर ऐसे जीव होंगे, जिनको अधिक इन्द्रियाँ होंगी। मान लीजिए, वहाँ का कोई जीव यहाँ आये और आप लोग उससे कहें कि हम सुनते हैं। तो वह कहेगा कि मैं सुनता हूँ और 'टुनता' भी हूँ। हम तो केवल सुनते हैं, उसके पास टुनना भी है। उसके पास कोई छठी इन्द्रिय होगी। 'टुनना' एक स्वतंत्र इन्द्रिय हो सकती है। जैसे हम कान से सुनते हैं, उसे और एक इन्द्रिय होगी जिससे वह टुनता होगा। फिर आज जो फिजिकल साइन्स (पदार्थविज्ञान) है, वह सारा चलेगा नहीं। दूसरा फिजिकल साइन्स वहाँ पर होगा, जहाँ छः इन्द्रियाँ होंगी। इसलिए हमको बचपन से धुन है कि कहीं पाँच से अधिक इन्द्रियवाला जीव होगा और ऐसे जीवों से संपर्क होगा तो हमारे ज्ञान का विस्तार होगा।

दिमाग उत्तरोत्तर बढ़ता जायेगा

एक थी दुनिया। वहाँ आँखवाले नहीं थे, सारे लोग अन्धे थे। एक बार एक आँखवाला मनुष्य वहाँ पर पहुँचा। वहाँ उन लोगों को वह कहने लगा कि यह फूल लाल, पीला दिखता है। तो वे सारे अन्धे लोग कहने लगे कि यह क्या तुम कह रहे हो ? लाल-पीला-नीला क्या कह रहे हो ? वे सारे घबड़ा गये कि यह क्या बोल रहा है। उससे पूछने लगे कि तुम्हें यह बात कहाँ से मालूम होती है। तो उसने उनकी उंगलियाँ पकड़कर अपनी आँख में लगायीं और कहा कि यहाँ से मालूम होता है। उन लोगों ने सोचा कि इसे जरूर कोई बीमारी हुई है। उसे पकड़कर अस्पताल ले गये। उसकी दोनों आँखों का आपरेशन करके फोड़ डाला। फिर उससे पूछा—लाल पीला, नीला दिखता है ? बोला—नहीं। बोले कि अब अच्छा हो गया। अंधों का वहाँ बहुमत था और आँखवाला अकेला था। जैसे, हमारे यहाँ बहुमत का रूल चलता है वैसे उन लोगों ने वहाँ चलाया कि इसको बीमारी हुई है तो इसकी आँखें ठीक की जायें। उसने कहा कि अब मुझे लाल पीला-नीला नहीं दिखता तो बोले कि अब यह पास हो गया। आँखवाले का इलाज हो गया, अंधों की दुनिया में।

मेरे प्यारे भाइयो, कुछ भी दुनिया हो सकती है चन्द्र और मंगल पर, हम जानते नहीं। लेकिन अनेक इन्द्रियवाले जीवात्मा भी हो सकते हैं और उनसे संपर्क आया तो संभव है कि हमारा ज्ञान बढ़ेगा।

यह सारा इसलिए कहा कि हमको अपना दिल बड़ा बनाना होगा, चाहे राजी हो या चाहे बेराजी। यह यहाँ कहावत है। जब भूदान शुरू हुआ तब यह नारा लगाया जाता था—राजी,बेराजी भूमि बाँटे के पड़ी—राजी हो चाहे नाराजी हो, जमीन बाँटनी होगी। वैसे अब चाहे राजी हो या बेराजी, हमको आगे हमारा दिल बड़ा बनाना होगा।

बड़ा बनाना होगा याने क्या ? स्केल बढ़ाना होगा। एक स्केल होती है। भारत का नक्शा कितना लम्बा-चौड़ा होता है ? दस इंच लम्बा दस इंच चौड़ा और भारत कितना लम्बा-चौड़ा है ? दो हजार मील लम्बा और दो हजार मील चौड़ा। लेकिन इतने से नक्शे पर सारा भारत आ जाता है। उसमें स्केल दी जाती है कि एक इंच में दो सौ मील समझें वैसे हमें हमारा स्केल बढ़ाना होगा।

जय हिन्द नहीं, जय जगत्

हम कहते हैं कि भारत हमारा देश है। वह अब बढ़ाना होगा। अब जय हिन्द नहीं, जय जगत् कहना होगा। जय हिन्द अब पुरानी चीज हो गयी, पुरानी बात हो गयी। हमने जय जगत् का नारा दिया था। याने कुल दुनिया को एक समझना चाहिए। दुनिया के निवासी एक हैं, ऐसा विचार बनना चाहिए। तभी मानव-मानव एक होगा, अन्यथा झगड़े नहीं मिटेंगे। इस वास्ते क्या करना पड़ेगा ? हमारा देश होगा जगत्, भारत होगा प्रान्त, बिहार होगा जिला और राँची होगा तहसील और गाँव क्या होगा ? गाँव होगा परिवार। आज क्या है ? आज पाँच मनुष्यों का परिवार होता है। उसीके लिए पुरुषार्थ करते हैं। लेकिन अब उनको बढ़ाकर सारा गाँव परिवार बनाना होगा। अगर ऐसा हम बना दें तब तो हमारा दिल बड़ा बनेगा और दिमाग तो बड़ा है ही। और अब तो हमारा 'इंटर-प्लेनेटरी' सम्बन्ध बनेगा, अन्तरखगोल-सम्बन्ध बनेगा। हमको दिल बड़ा बनाना होगा और

[शेष पृष्ठ ५४६ पर]

परिचर्चा

नक्सालवादियों के प्रति व्यक्त जयप्रकाशजी की सहानुभूति और अहिंसावादियों की परेशानी

[यों तो जयप्रकाशजी ही नहीं, विनोबाजी ने भी बार-बार यह बात कही है कि यथास्थिति असह्य है, इसको बजाय रक्त-क्रान्ति पसन्द की जा सकती है। इस बात को बार-बार दुहराते समय मशा बराबर यह रहती रही है कि अहिंसक क्रान्ति के लिए और अधिक वेग और समर्पण के साथ जुटना अनिवार्य है।...लेकिन पिछले दिनों दिल्ली में गांधी शताब्दी समिति द्वारा आयोजित एक समारोह में जब श्री जयप्रकाश नारायण ने नक्सालपंथी लोगों के प्रति अपनी सहानुभूति जाहिर की, तो दिल्ली के पत्रकारों के कलम की नोक कुछ अधिक पैनी हो उठी, और जयप्रकाशजी की आवाज उन कानों के पर्दों से भी जा टकरायी, जिन्होंने यथास्थितिवाद को अहिंसा का पर्याय मान लिया है। शायद इसलिए कि कुछ को उनकी उक्त आवाज में सन् '४२ जैसी ललकार सुनायी पड़ी थी।

वर्तमान जड़ता को झकझोरनेवाली इस घटना पर "भूदान यज्ञ" के पाठक गत १४ और २१ जुलाई के अंकों में दो प्रतिक्रियाएँ पढ़ चुके हैं। इस अंक में प्रस्तुत हैं कुछ और भी प्रतिक्रियाएँ। —सम्पादक]

कूच का वक्त आ गया है!

प्रजातंत्र के सवैधानिक तौर-तरीकों से, शान्तिपूर्ण रीति-नीति से समाज-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन किया जा सकता है। पर अंग्रेजों की नौकरशाही, जो हमें विरासत में मिली है वह इस क्रान्ति को आगे नहीं बढ़ा सकी है। नक्सालवादी, साम्यवादी मित्रों के प्रति जयप्रकाशजी का उदार रुख समयानुरूप ही है, किन्तु यह उनके कोमल स्वभाव की विवशता में से निकली आवाज है। ऐसा लगता है कि दुविधा में फँसे जयप्रकाशजी नया मार्ग खोज रहे हैं, पर वह मार्ग वही हो सकता है, जो बाबा का है। पगडंडी बाबा ने बना दी है, अब युग आह्वान करता है कि जयप्रकाशजी शिविरों-सम्मेलनों का उद्घाटन करना छोड़ निकल पड़ें अपने सभी साथियों को लेकर बापू की तरह नमक-कानून तोड़ने, विनोबा की तरह भूमिहीनों और भूमिवानों से नाता जोड़ने। तब एक ऐसी शक्ति प्रकट होगी जिसको मिसाल मिलना कठिन है। बन्द बुद्धिजीवियों के बीच रहकर युगप्रवर्तक, लोक-शक्ति का उन्नायक, हमारा यह जननायक क्रान्ति का वाहक नहीं बन पायेगा और उनकी प्रतिभा को कुंठित होना पड़ेगा।

लोकशक्ति प्रकट होने को है। कई जगह हो चुकी है, पर वह हिंसक रूप में उभरी है। अहिंसक रूप में उसको उभारने का काम अपने स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए भी जयप्रकाश बाबू करेंगे तो राजनीति से दूर रहकर निःस्वार्थ सेवा करनेवाले अनेक लोगों में नयी जान आ जायेगी। फिर हमको बार-बार राजनेताओं की ओर नहीं भागना पड़ेगा। जनशक्ति के आगे राजशक्ति तो सदैव ही नतमस्तक होती आयी है। अब समय आ गया है कि पुराने जमाने में जिस तरह राजदंड सन्यासियों के हाथ में होता था, उसी तरह राजनीति से संन्यास धारण करने-वाले जयप्रकाश लोकनीति का राजदंड उठा लें, और देश में कायम हो रही अनेक बुरा-इयों का कृष्ण की तरह अपनी कुशल चैतन्य बुद्धि-कौशल से नाश करें। नये समाज की रचना का महान् कार्य करने में दुविधा छोड़ अर्जुन की तरह गांडीव उठाना ही आज का स्वधर्म हो गया है। भगवान बुद्ध की तरह विनोबा की पदयात्रा ने इस देश की धरती में सत्य, प्रेम और करुणा का बीज बोया था, अब जयप्रकाशजी की बारी है कि वे निकलें फसल काटकर उसका न्यायोचित बँटवारा करने। यदि इनमें तनिक भी विलम्ब किया तो सारा देश गृहयुद्ध के चंगुल में फँसकर दूसरा वियतनाम, कम्बोडिया, लाओस और कोरिया की शक्ल धारण कर लेगा। करुणा रस की धारा के स्थान पर यहाँ खून की धारा बहेगी। शस्य श्यामला भारतमाता रक्तरंजित हो जायेगी।

जनता प्रतीक्षा कर रही है जयप्रकाश के रूप में राम की, जो पूंजीवाद के रावण से उसे छुड़ा दे। कई हनुमान स्वार्थों की लंका में अपनी त्याग-तपस्या के तेज से आग लगाने को तैयार बैठे हैं। निहित स्वार्थवालों से पीड़ित कई विभीषण हमारे साथ हो जायेंगे। फिर हर जगह ग्रामदान-नगरदान की गंगा फूट पड़ेगी। कल कारखाने, मकान का ट्रस्टी-करण हो जायेगा। शोषण पर आधारित समाज-व्यवस्था लड़खड़ाकर गिर जायेगी।

एक बार हम सभी कार्यकर्ता जयप्रकाश को आह्वान करें और अगले सर्वोदय सम्मेलन से ही हम सब उनके साथ अनन्त की लम्बी यात्रा पर कूच करने को निकल पड़ें, तभी तो सर्वोदय होगा, अन्यथा देश के पहले ही हमारा सर्वनाश निश्चित है!

—जगन्नाथ सेठिया, इन्दौर

अहिंसा कब्रिस्तान की शान्ति नहीं, सामाजिक क्रान्ति की महाशक्ति

श्री जयप्रकाश नारायण के हाल के वक्तव्यों और विशेषकर उनके गांधी-जन्म-शताब्दी की एक समिति के उत्सव में दिये गये भाषण पर पूँजीवादी क्षेत्रों में जो होहल्ला मचा, वह तो समझ में आता है, किन्तु जब अहिंसा और सर्वोदय में विश्वास रखनेवाले भी उसी सुर में बोलने लगते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि श्री हरिभाऊ उपाध्याय जैसे वयोवृद्ध गांधीवादी भी नक्साल-वादियों की हिंसा के बारे में तो बहुत अधिक चिन्तित हैं, किन्तु पूँजीवाद व सामन्तवाद की व्यापक हिंसा और अन्याय के प्रति उनमें ऐसी तीव्र भावना नहीं है, न ही उस हिंसा को पोषण करनेवाली सरकार के प्रति विरोध की भावना है, न उसको दूर करने की क्रान्ति के लिए उद्यत कर देनेवाली बेचैनी ही है, इसीलिए वे जयप्रकाश बाबू की पूरी बात

समझे बगैर ही उन पर टीका-टिप्पणी करना व उनकी अहिंसा के प्रति आस्था को चुनौती देना आवश्यक समझते हैं। क्या श्री हरिभाऊ उपाध्याय को भी यह याद दिलाना पड़ेगा कि जब हिटलर ने पोलैंड पर आक्रमण किया तो गांधीजी ने पोलिश लोगों की सशस्त्र रक्षात्मक लड़ाई की भर्त्सना नहीं की, बल्कि उसे उचित ही बताया। यह बात अहिंसा के उसूल के अनुकूल है, इसके लिए इसे गांधीजी के द्वारा कही हुई होना आवश्यक नहीं है। वास्तव में यदि बहुत बड़ी हिंसा और आततायीपन का मुकाबला अहिंसा से करने की किसीमें क्षमता नहीं है या उसका अहिंसा में इतना विश्वास नहीं है तो उसे बर्दाश्त करने से लाख गुना अच्छा है कि वह हिंसा से उसका मुकाबला करे। मुकाबला न करके कायरतापूर्ण तरीके से उसे बर्दाश्त करना उससे बहुत अधिक व गंभीर हिंसा होगी।

यह तो सही है कि इस व्यापक हिंसा को जड़ से दूर करने के लिए अहिंसक तरीका ही सर्वोत्तम और अधिक कारगर तरीका है और श्री जयप्रकाश नारायण ने यह बात साफ तरीके से बतायी है। (लेकिन श्री हरिभाऊ भाई जैसे लोगों ने उसे नजरअन्दाज कर दिया।) यदि जयप्रकाशजी अहिंसा में विश्वास न करते तो उन्हें यह कहने में कोई हिचक न होती कि अहिंसा निरर्थक है, लेकिन अहिंसा में उनका विश्वास होते हुए भी, उनसे यह आशा तो नहीं की जानी चाहिए कि जिन्होंने अत्यधिक व्यग्रतावश अथवा अहिंसक तरीके को कारगर न समझते हुए हिंसक तरीका अपना लिया है, उनकी वे इस समय भर्त्सना करके लोगों की सामाजिक अन्याय के विरुद्ध उठती हुई भावनाओं को कुचलने में मदद दें। हमने समाजवाद की ओर कदम रखनेवाले समाज के लिए एक सूबे में लगभग पूर्ण रूप से और बाकी सूबों में आंशिक रूप से केवल लोक-सम्मति प्राप्त की है, जिनमें समाजवादी अथवा सर्वोदय समाज की स्थापना की सम्भावनाएँ थी हैं, किन्तु जिसको विधानवाद व सुधारवाद के नाम इसने और जिसमें राजा रामगढ़-सरीखे लोग बहुमत प्राप्त करके जनचेतना को निष्प्राण बना देने को तैयार बैठे हैं। इसको रोकने के लिए इन मार्गों से बचकर हमें अहिंसक सीधी कार्यवाही के द्वारा सामन्तवादी व पूंजीवादी हितों को कमजोर बनाना है।

हमें नक्सलवादियों की भर्त्सना करने का मौका केवल तब होगा जब अहिंसा सर्वव्यापी हो जायेगी। अहिंसा द्वारा सब समस्याएँ सुलझ रही होंगी और ये लोग उन समस्याओं के सुलझाने में बाधक हो रहे होंगे।

आज यह स्थिति नहीं है। आज तो हिंसा की नींव पर टिका हुआ और व्यापक हिंसा को पोषित करनेवाला पूंजीवाद व सामन्तवाद न केवल मौजूद है, बल्कि जहाँ तक पूंजीवाद का ताल्लुक है, वह तो कांग्रेस व उसकी सरकार व अन्य तत्त्वों की कृपा से खूब फल-फूल रहा है। ऐसी स्थिति में अहिंसा के नाम पर, इस व्यवस्था पर चोट करनेवालों की भर्त्सना नहीं की जानी चाहिए, बल्कि उन्हें यह बताकर साथी बनाया जाय कि उनका पवित्र ध्येय अहिंसक उपायों द्वारा ज्यादा कारगर तरीके से प्राप्त हो सकता है। जब गांधीजी बहुत-से आतंकवादियों व अन्य हिंसक उपायों में आस्था रखनेवाले लोगों को अपने मार्ग में अग्रसर करने में सफल हो गये, तो यह क्यों असम्भव समझा जाय कि ये लोग भी अहिंसक उपायों से सर्वोदय (अथवा साम्यवादी) समाज को लानेवाले सिपाही नहीं बन सकेंगे ?

ऐसे लोगों के प्रति प्रतिस्पर्धा का रूप अपनाकर अपने अहिंसक तरीके को उत्तम साबित करने की बजाय यदि हमने उनकी भर्त्सना करना शुरू कर दिया तो हम यथास्थिति, जो व्यापक हिंसा की जन्मदात्री है, को ही पोषण देने में लगेंगे।

जाहिर है कि अहिंसा कत्र की निस्तब्धता नहीं है, बल्कि न्याय को लाने का एक उपाय है। श्री जयप्रकाश नारायण को प्राणों की बाजी लगाने को कहा गया है। सम्भवतः उन्हें इसमें कोई गुरेज भी नहीं होगा। वे कई बार कह चुके हैं कि बिहार में झोपड़ियों की जमीन के अधिकार को भी कांग्रेस या संविद सरकारें बड़े-बड़े भूपतियों के दबाव में आकर नहीं दे पायीं, ऐसी दशा में ग्रामदान हुए। बिहार में यदि जयप्रकाशजी जनता को अहिंसक सीधी कार्यवाही के द्वारा उन अधिकारों को न दिलवा पाये तो न केवल सर्वोदय और अहिंसा की बदनामी ही होगी, वरन् सामन्तवाद की जड़ जमी रहेगी और वे ग्रामदानी गाँवों की ग्राम सभाओं पर प्रभावकारी ढंग से असर डालकर उन्हें किसी भी क्रान्तिकारी कदम से अलग रखेंगे।

अत: श्री जयप्रकाशजी अवश्य ही किसी अहिंसक सीधी कार्यवाही की बात सोच रहे होंगे, ऐसा हमें विश्वास है। किन्तु ऐसी किसी भी कार्यवाही में श्री उपाध्याय-सरीखों के वर्तमान विचार बाधक हो सकते हैं, क्योंकि ऐसी कार्यवाही करने के लिए पूंजीवाद, सामन्तवाद पर सीधी चोट करनी होगी। और जो भी तत्त्व सामाजिक न्याय में आस्था रखते हैं, जिनमें नक्सलवादियों को भी शामिल किया जा सकता है, उन्हें सहानुभूतिपूर्वक अपने अहिंसक सत्याग्रह आदि की क्षमता व उत्तमता समझानी होगी।

ऐसी किसी भी कार्यवाही में कांग्रेसी अथवा अन्य सरकार से टक्कर होगी, जो सम्भवत: श्री उपाध्याय-सरीखे लोगों को अभीष्ट न हो। इसलिए हम अनुरोधपूर्वक श्री उपाध्याय व उनकी तरह सोचनेवाले लोगों से निवेदन करना चाहते हैं कि वे अहिंसा को संकुचित अर्थ में अपनाकर श्री जयप्रकाश नारायण की आलोचना करने के बजाय अहिंसा को व्यापक अर्थ में अपनायें और पूंजीवाद, सामन्तवाद उनको पोषित करनेवाली कांग्रेस-सरकार की हिंसक शक्ल जनता के सामने रखकर उन तत्त्वों की भर्त्सना करें और ऐसी व्यवस्था पर चोट करनेवालों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रुख अपनायें।

—सीताराम, मुरादाबाद

नक्सलवाद की उत्पत्ति शराब की बोतल में से नहीं, शोषित और उत्पीड़ित लोगों की आह में से

१४ जुलाई के अंक में "भूदान-यज्ञ" के सम्पादक ने श्री हरिभाऊ उपाध्यायजी का वह पत्र, जिसमें उन्होंने श्री जयप्रकाशजी के दिल्ली में गांधी-जन्म-शताब्दी उत्सव में व्यक्त विचार पर अपने हृदय का दु:ख प्रकट किया है, प्रकाशित करके एक नेक कार्य

किया है। श्री उपाध्यायजी गाधीजी के साथ के लोगो में से हैं और गाधीजी के रचनात्मक कार्यों में सतत लगे रहे हैं तो यह उनके मानस के अनुरूप ही है कि उन्हें अहिंसा से अनुराग हो। अनुराग के कारण ही वे श्री जयप्रकाशजी के विचार पर दुखाभिभूत हो उठे हैं। श्री उपाध्यायजी की मशा पर शक नही किया जा सकता। उन्होने अपना दुख जिस भाषा में व्यक्त किया है, उससे ऐसा ही प्रतीत होता है कि वे अपने भावावेश को रोक नहीं सके हैं और विचार के स्तर को छोडकर उन्होने व्यक्ति के स्तर पर विचार करने की कोशिश की है। मैं ऐसा महसूस करता हूं कि श्री उपाध्यायजी ने इस विषय को भावना के स्तर से ऊपर बुद्धि के स्तर पर नहीं जाने दिया है।

श्री जयप्रकाशजी ने नक्सालवादियों के लिए जितनी भी अपनी सहानुभूति प्रकट की हो, लेकिन इस बात की ओर उन्होंने स्पष्ट सकेत किया है कि हिंसा से उस लक्ष्य की प्राप्ति कदापि नहीं हो पाती, जिसकी कल्पना क्रातिकारियों के दिमाग में रही होती है। और यह भी उन्होंने कहा है कि अगर हिंसा से क्रान्ति की सभावना होती तो वे हिंसा के मार्ग को चुनने में सकोच नहीं करते। वह नक्सालवादियों के लिए जब सहानुभूति प्रकट करते हैं तो यही न कहते हैं कि अगर नक्साल-वादी पद्धति से भूखे को रोटी मिल जाती है तो उनके लिए सहानुभूति के सिवाय दूसरा भाव क्या प्रकट किया जा सकता है। एक ओर करोडों-करोड़ लोग भूख की ज्वाला में जलते रहें और उसके बुझने का निकट भविष्य में कोई आसार न देखते हों तो वे क्या करें? वे तो यही न चाहेंगे कि उन्हें रोटी मिले? उस समय वे हिंसा-अहिंसा का विचार करने बैठेंगे? अगर हमें अहिंसा की बहुत ज्यादा चिन्ता है तो हमारा काम है कि हिंसा के कारण दूर हों और अहिंसा सामा-जिक शक्ति (सोशल फोर्स) बनकर सामने आये। समाज के अन्याय शीघ्रातिशीघ्र दूर हों। मानवीय सम्बन्धो का नया विहान क्षितिज पर दिखाई दे। इसीलिए विनोबाजी बार बार कहते हैं कि यह 'करो या मरो' का समय उपस्थित है, करने के लिए कुछ बचनेवाला नहीं है, जो करना है आज करना है। लेकिन उनकी यह नेक सलाह लोगो के कान तक नहीं पहुँचती है या अगर पहुँचती है तो दिमाग में नहीं अंटती; और जब नक्सालवादी छोटे-मोटे उपद्रव होते हैं तो अहिंसक पुजारी के कान खड़े हो जाते हैं। वह चिन्तित हो उठता है। उसके दिल से एक 'आह' निकलती है और शब्दो में दुख के साथ प्रकट होती है—'गाधी के देश में यह हिंसा'। सवाल आज यह नहीं है कि गाधी के देश में हिंसा हो रही है—ईसा के देश में हिंसा हुई है, बुद्ध, महावीर और गाधी के देश मे भी हिंसा होगी, इसलिए जरूरी है कि भूखो को भरपेट भोजन मिले, तन ढकने के लिए वस्त्र मिले और उन्हें मिले इज्जत की जिन्दगी। जातिगत अन्याय समाप्त हो, और शीघ्र समाप्त हो। अन्यथा अहिंसा के जप से हिंसा को नहीं रोका जा सकता। यह अलग बात है कि हिंसा से समाज-परिवर्तन होता है या नहीं।

विनोबाजी 'करो या मरो' की मनोभूमिका मे अहिंसक समाज परिवर्तन के काम मे वर्षों से लगे हुए हैं, श्री जयप्रकाशजी-जैसा समर्थ नेता पूरी तन्मयता और निष्ठा से इसमे जुटा हुआ है, दोनों आह्वान पर आह्वान करते चले जा रहे हैं, लेकिन हम हैं कि हमारे कान बहरे हो गये हैं, आँखें बन्द हैं! श्री उपाध्यायजी जैसे गाधीवादी को चौकन्ने होने के लिए क्या नक्सालवादियों का उपद्रव, एक नहीं अनेक, आवश्यक है? क्या उन्हें ग्रामदान में अहिंसा की शक्ति नहीं दिखती? अहिंसक समाज-रचना की सभावना अगर ग्रामदान-आन्दोलन में नहीं दिखाई देती तो दूसरा कौनसा अहिंसक प्रयोग देश में हो रहा है, जिससे यह माना जाय कि सामाजिक अन्यायो, अनीतियो से यह देश बचाया जा सकेगा? गाधी की अहिंसा तो प्रयोग की अहिंसा थी!

श्री उपाध्यायजी ने राजस्थान के नशाबन्दी-सत्याग्रह का उल्लेख किया है, परन्तु नक्साल-वादी 'नशा' की उपज नहीं हैं। वे हैं भूख और अन्याय की उपज। इसलिए पूर्ण नशा-बन्दी भी नक्सालवाद का जवाब नहीं होगा। उसका एकमात्र जवाब है ग्रामदान-आन्दोलन। इसीलिए विनोबाजी और श्री जयप्रकाशजी सकल्पित हैं, ग्रामदान-आन्दोलन के लिए। आज श्री जयप्रकाशजी को कष्ट-सहन और 'करो या मरो' के आह्वान के बजाय उनके प्रस्तुत आह्वान पर उनके पीछे स्वय कष्ट-सहन की तैयारी के साथ लग जाने की आवश्यकता है। —कृष्ण कुमार, वाराणसी

मन की खीझ

"भूदान-यज्ञ" के २१ जुलाई के अक में श्री अनिकेत के पत्र मे जो विचार प्रस्तुत किये गये हैं, वे उनके अन्तरमन की वेदना हैं। पत्र लिखनेवाले ने श्री हरिभाऊ उपाध्याय के पत्र को जिस रूप मे अगीकार किया है, उसमें उपाध्यायजी के तथ्यो पर विचारणीय विचार प्रस्तुत करने की अपेक्षा अपने मन की खीझ उतारने में अधिक लाइनें भरी हैं। श्री उपाध्यायजी को प्रतीक बनाकर काग्रेस तथा अन्य गाधी समर्थको को आडे हाथ लिया है। क्या इसके लिए श्री हरिभाऊ उपाध्याय ही उनको मिले? अपने को छोडकर सम्पूर्ण गाधी-समर्थको को 'करोडो-करोड जनता का रक्त अधिकतर किसी खूबसूरत पर्दे की ओट से चूस लेनेवाली दर्दनाक और भयकर हिंसा को प्रश्रय' देनेवाला मान बैठे। अनिकेतजी को श्री उपाध्यायजी के विचार तथा भाषा, दोनों पर आपत्ति है। परन्तु अनिकेतजी ने जो भाषा अपनायी है वह श्री उपाध्यायजी की भाषा से कहीं अधिक कटु तथा व्यक्तिगत कटाक्षपूर्ण है। —अवध प्रसाद, जयपुर

'गाँव-गाँव में तुम्हारा पर्चा कब पहुँचेगा ?'

—बिहारदान के बाद का सवाल और बाबा की एक ही 'रट'—

"राही···राह चलनेवाला या राह खोजनेवाला ?"—अपनी दिमागी और व्यावहारिक स्पष्टता के लिए (और निःसंदेह 'भूदान-यज्ञ' के पाठकों तथा कार्यकर्ता साथियों के लिए भी) पूछे गये मेरे लिखित सवालों को लेटे-लेटे पढ़ने के बाद बाबा ने पूछा। मैं इस प्रश्नोत्तर के लिए तैयार नहीं था, फिर भी अनायास कहा गया, "खोजनेवाला।"

"अच्छी बात !" बाबा के चिरपरिचित शब्द सुनायी दिये, जो शायद उनकी अभिव्यक्ति-शैली के 'टेक' बन गये हैं।

थोड़ी देर तक निस्तब्धता-सी रही। हम बाबा की ओर केन्द्रित रहे और शायद बाबा अपने आप में। फिर पालथी लगाकर इत-मीनान से बैठ गये और दोनों हाथों से नीचे की ओर शून्य में ही अलग-अलग वृत्त-से बनाने लगे, फिर 'नकार' का भाव प्रदर्शित किया और आखिर में ऊपर की ओर ताककर दोनों हाथों से मानो आकाश से कुछ व्यापक परिमाण में गिरने का संकेत करने लगे। हम कुछ-कुछ समझने का प्रयास करते हुए विस्मित-से एकटक उधर ताकते रहे।

"कुछ समझ में आया ?"—मानो बाबा ने सबक सिखाकर परीक्षा लेनी चाही।

"नहीं बाबा !" हमने बेहिचक अपनी असफलता स्वीकार कर ली।

आखिर उन संकेतों को शब्दाकार करना पड़ा। बाबा बोले, "हजारों-लाखों किसान काम में लग जायेंगे, जब बारिश होगी। अगर यह कोशिश करो कि यहाँ कुआँ खोदें, वहाँ कुआँ खोदें तो यह कब होगा ? सारे बिहार में कब तक होगा और सारे भारत में कब तक होगा ? तब फिर कब पानी मिलेगा ? ऐसे काम मानव-शक्ति से नहीं होते, ईश्वर की शक्ति से होते हैं। मामूली समय में पक्षी आकाश में उड़ते हैं। लेकिन तूफान में पत्तियाँ भी उड़ती हैं। ग्रामदान शब्द चल पड़ा है। पहले तो बेचारा मामूली भूदान था। फिर ग्रामदान उसमें से निकला और अब प्रखण्डदान, जिलादान, फिर प्रान्तदान !

"···किसानों ने सारी जमीन बराबर कर ली, हल जोतकर तैयार कर लिया और ऊपर से बारिश नहीं हुई तो मामला खतम हो गया ! लेकिन वे तैयारी करते हैं। हल चलायेंगे, इस आशा में कि ऊपर से पानी बरसेगा।"

मेरा प्रश्न बिहारदान के बाद के अपेक्षित कार्यक्रम और उसकी संचालक शक्ति विकसित करने से सम्बन्धित था। मन को इस जवाब से कुछ निराशा-सी हो रही थी, कि तभी उन्होंने पहले बिहारदान को पूर्णता की मंजिल तक पहुँचने की महत्ता स्पष्ट की, "जहाँ यह शब्द चलेगा वहाँ या तो उसकी कीमत—'जीरो', सारा पोल, होना-जाना कुछ नहीं, या तो एकदम पूर्ण। शून्य दिखाने के लिए पूरी सर्किल (परिधि) दिखाते हैं। शून्य भी पूर्ण होता है, और पूर्ण के लिए भी शून्य ही है। अगर ईश्वर की इच्छा हो कि यह सारा हो जाय तो वैसा होगा।"

मेरा मन निराशा के दूसरे दौर से गुजरते हुए बाबा की अभिव्यक्तियों को समझने की चेष्टा करने लगा। लेकिन पूरी स्पष्टता तब हुई जब बाबा ने कहा, "पॉलिटिकल पार्टीज (राजनीतिक दलों) के लिए तो कोई आशा नहीं रही, और प्रान्तदान से कुछ नहीं निकलता, तो फिर कतल की रात···जैसे भागवत में है कि यादव लोग आपस-आपस में मार-काट करने लगे थे; ऐसा गाँव गाँव में होने लगेगा। अगर ईश्वर की इच्छा होगी कि संहार करना है, तो हमारे सभी प्रयत्न निष्फल जायेंगे। अगर उसकी इच्छा हो गयी कि काम सफल करना है तो एकदम जनता को जगायेगा। यहाँ सारी पार्टियाँ फेल हो गयीं तो जयप्रकाश चिल्ला रहे हैं कि राज-नीति से कुछ नहीं होगा, लोक-शक्ति पैदा करनी होगी। यदि यह बात समझ में आ जाय तो लोग अपनी शक्ति बढ़ायेंगे। लोगों की शक्ति हिंसा से या अहिंसा से खड़ी करनी है, इस पर विचार होगा तो लोगों को ध्यान में आयेगा कि हिंसा से शक्ति नहीं बनती। उससे चन्द लोगों के हाथ में शक्ति आयेगी। उनका राज होगा।"

मेरे प्रश्न का एक हिस्सा यह था कि बिहारदान के बाद अपेक्षित लोकशक्ति खड़ी करने की शक्ति कहाँ है ? इस पर बाबा ने कहा, "अब सारा हमसे होगा कि नहीं होगा ? और हमसे यानी कौन ? बाबा तो कल रात है या नहीं कौन जाने ! अभी हमने पढ़ा मैथ्यू आर्नल्ड का—वह वर्ड्सवर्थ के बड़े भक्त थे। उन्होंने वर्ड्सवर्थ की कविताओं का सेलेक्शन किया है। वह इंग्लैण्ड के अच्छे कवि माने जाते हैं।···वह बहुत वर्षों बाद अपनी कन्या से मिलने के लिए गया और सामने से कन्या आ रही है ऐसा देखा तो चिल्ला पड़ा, सामने एक बाड़ थी उस पर एकदम कूदा, और जहाँ गिरा वहीं मरा.··· समाप्तम् ! इसलिए बाबा से कुछ बनेगा, ऐसा नहीं। अभी जो बना वह बाबा से नहीं बना। तो जिस 'शक्ति' से इतना बना, वही आगे बनायेगी।"

बाबा हमारी आकांक्षाओं और क्षमताओं से भली प्रकार परिचित हैं। बाबा की कही हुई बातों में से अपने और अपने साथियों के पुरुषार्थ के लिए कोई क्षेत्र, किसी काम का संकेत मैं खोज लेना चाहता था। चाहता था कि कम-से-कम 'बिहारदान के बाद क्या ?' के जवाब में बाबा द्वारा समर्पित कोई कार्य-क्रम, कोई कल्पना पेश करने के लिए मिल जाय ! लेकिन बाबा ने हमारी मंशा को समझते हुए अपनी पुरानी रट दुहरायी, जिसे सुनकर भी, उनके बारम्बार के आह्वान, अपील और एक हद तक आग्रह के बाद भी, अबतक कुछ किया नहीं जा सका है।

"तुम लोग एक बात करो। हमने बहुत दफा कह रखा है कि तुम्हारा जो पर्चा है उसे गाँव-गाँव में पहुँचाओ।···तुम्हारे पास 'एजेंसीज' हैं, तो पैसे का होना जरूरी नहीं। खादी-कार्यकर्ता जगह-जगह काम कर रहे हैं। बहुत बड़ी जमात है। कम-से-कम एक लाख गाँव में पर्चा जाय। फिर एक लाख को पाँच लाख कैसे करना, आगे देखा जायेगा। लेकिन उधर अभी लोगों का ध्यान नहीं गया है।"

बाबा की यह बात निश्चित ही मन को कुरेदनेवाली थी, कचोट पैदा करनेवाली थी। बाबा चाहते हैं कि ग्रामदान के बाद→

(४) आश्रम-भजनावली (५) गांधी-शिक्षा, भाग : १,२,३ (६) नयी तालीम (७) घरेलू कताई की आम बातें (८) रामतीर्थ संदेश (९) मूल उद्योग कातना।

भंडार के प्रयास, प्रेरणा और प्रभाव से हुई कुछ खास बातें : (१) इस वर्ष मध्यप्रदेश शिक्षा-विभाग द्वारा लगभग ५०,००० रु० के गांधी-साहित्य का आदेश दिया गया। (२) श्री जान चैरिटी ट्रस्ट के द्वारा इन्दौर तथा महू की समस्त शिक्षण-संस्थाओं के लिए गांधी-साहित्य का एक-एक सेट भंडार के मार्फत दिलवाया गया, जिसकी कीमत १५,००० रु० है। राजकुमार मिल की ओर से दीपावली के अवसर पर गत वर्ष समस्त सम्बन्धित विशिष्ट २५० व्यक्तियों को हर साल की तरह क्राकरी आदि भेंट में न देकर ३० रु० का 'गांधी-संस्मरण और विचार' भेंट में दिया गया। (४) वेतन मिलने के बाद कुछ लोग नियमित १०-१५ रु० का साहित्य खरीदते हैं। विवाह शादियों में, पुरस्कारों में साहित्य भेंट में देने की प्रथा बन रही है। (५) भंडार की फुटकर बिक्री में इस वर्ष अपेक्षाकृत काफी वृद्धि हुई है। (६) पिछले वर्षों के चालू खर्च में गत वर्ष तक कुल ५,५०० रु० घाटा शेष रहा था, जिसकी सम्पूर्ण पूर्ति इस वर्ष हुई है। (७) भंडार के आगामी फरनीचर निर्माण हेतु श्री गोविन्दराम सेकसेरिया चैरिटी ट्रस्ट की सौजन्यता से २,००० रु० अनुदान-स्वरूप प्राप्त हो चुके हैं। स्मरणीय है कि भंडार का पूरा फरनीचर इस ट्रस्ट से ही अनुदान रूप में प्राप्त हुआ है, जिसकी कीमत ७५०० रु० होगी। —जसवन्तराय

'विनोबा-चिन्तन' (मासिक)

'विनोबा-चिन्तन' प्रति मास प्रकाशित होता है। इसमें लगभग ५० पृष्ठों में किसी एक विषय पर विनोबाजी के समय समय पर दिये प्रवचन कलात्मक ढंग से संजोये जाते हैं, जो अपने-अपने विषय में एक एक पुस्तक बन जाती है। इसके स्थायी ग्राहक बनकर इस ज्ञानराशि का संग्रह करना प्रत्येक जिज्ञासु एवं अभ्यासु के लिए लाभप्रद है।

वार्षिक मूल्य : ६ रु०, एक प्रति : ६० पैसे।

एक हजार पृष्ठों का साहित्य पाँच रुपये में

प्रत्येक हिन्दीभाषी परिवार में बापू की अमर और प्रेरक वाणी पहुँचनी चाहिए। गांधी-वाणी या गांधी-विचार में जीवन-निर्माण, समाज-निर्माण और राष्ट्र निर्माण की वह शक्ति भरी है, जो हमारी कई पीढियों को प्रेरणा देती रहेगी, नये मूल्यों की ओर अग्रसर करती रहेगी। परिवार में ऐसे साहित्य के पठन, मनन और चिन्तन से वातावरण में नयी सुगन्धि, शान्ति और भाईचारे का निर्माण होगा।

गांधी जन्म-शताब्दी के अवसर पर हम सबकी शक्ति इसमें लगनी चाहिए। हजार पृष्ठों का आकर्षक चुना हुआ गांधी-विचार-साहित्य पाँच रुपये में हर परिवार में जाय, इसका संयुक्त प्रयास गांधी स्मारक निधि, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान और सर्व सेवा संघ की ओर से हो रहा है। हर संस्था और व्यक्ति, जो गांधी शताब्दी के कार्य में दिलचस्पी रखते हैं, इस सेट के अधिकाधिक प्रसार-कार्य में सहयोगी होंगे, ऐसी आशा है। इस प्रयास में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों का सहयोग भी अपेक्षित है।

रं० रा० दिवाकर अध्यक्ष गांधी स्मारक निधि, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान	**एस. जगन्नाथन्** अध्यक्ष, सर्व सेवा संघ
उ० न० ढेबर अध्यक्ष, खादी ग्रामोद्योग कमीशन	**जयप्रकाश नारायण** अध्यक्ष अ० भा० शान्तिसेना मंडल
विचित्र नारायण शर्मा उपाध्यक्ष, उ० प्र० गांधी-शताब्दी समिति	**राधाकृष्ण बजाज** संचालक, सर्व सेवा संघ-प्रकाशन

गांधी जन्म-शताब्दी सर्वोदय-साहित्य सेट

पुस्तक	लेखक	पृष्ठ	मूल्य
१. आत्मकथा (संक्षिप्त)	गांधीजी	२००	१·००
२. बापू-कथा (सन् १९२१-१९४८)	हरिभाऊ उपाध्याय	२५५	२·००
३. गीता बोध, मंगल प्रभात	गांधीजी	१३०	१·२५
४. मेरे सपनों का भारत	गांधीजी	१७५	१·२५
५. तीसरी शक्ति (सन् १९४८-१९६९)	विनोबाजी	२४०	२·००
	कुल :	१०००	७·५०

आवश्यक जानकारी

१. इस सेट में पाँच पुस्तकें होंगी, जिनका मूल्य ७ से ८ रु० तक होगा। यह पूरा सेट ५ रु० में मिलेगा।
२. इन सेटों की बिक्री २ अक्तूबर के पावन-दिवस से प्रारम्भ होगी।
३. चालीस सेटों का एक बंडल बनेगा। एक बंडल से कम नहीं भेजा जा सकेगा।
४. चालीस या अधिक सेट मँगाने पर प्रति सेट ५० पैसे कमीशन मिलेगा।
(सारे सेट की डिलीवरी यानी निकटतम रेलवे-स्टेशन-पहुँच भेजे जायेंगे।)
५. सेटों की अग्रिम बुकिंग १ जुलाई १९६९ से शुरू है। अग्रिम बुकिंग के लिए प्रति सेट २ रु० के हिसाब से अग्रिम भेजने चाहिए। शेष रकम के लिए रेलवे रसीद वी० पी० या बैंक के मार्फत भेजी जायगी।
६. सेटों की रकम तथा आर्डर निम्नलिखित पते से ही भेजें :

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१

[पृष्ठ ५४२ का शेषांश]

सारी दुनिया के साथ हमारा सम्बन्ध है, ऐसा विचार बनाना पड़ेगा।

प्राचीन ऋषियों ने संस्कृत में लिख रखा है—"वसुधैव कुटुम्बकम्"। वसुधा यानी पृथ्वी हमारा छोटा कुटुम्ब है। "कुटुम्बकम्" बोला माने जैसे बाल छोटा होता है उसमें भी छोटा बालक होता है। "कुटुम्बम्" नहीं कहा। यानी यह पृथ्वी छोटा सा परिवार है। तो हमको परिवार का विस्तार करना होगा और अब तो हमारा सम्बन्ध अन्य ग्रहों से भी हो रहा है।

जानवरों के साथ प्रेम बढ़ायें

हम आपको और आगे ले जा रहे हैं, जरा सम्भल कर आइएगा। पाँव फिसलने का डर है। हम आपको कह रहे हैं कि सिर्फ मानव के साथ प्रेम नहीं, बल्कि जानवरों के साथ भी प्रेम करना होगा। उन्हें भी अपनी 'फेमिली' में दाखिल करना होगा। उसके बिना नहीं चलेगा। अमेरिकन मिलक की एक छोटी सी पुस्तक हमने पढ़ी थी। उस किताब में यह कथन है—'किल ए सरपेण्ट एण्ड लूज ए पाउण्ड'। एक साँप को मारने से एक पाउण्ड खोते हैं। अब यहाँ के मूल्य से एक पाउण्ड यानी आप २१ रु० खोते हैं। साँप क्या करता है? अनगिनत कीड़ों को खाता है, जो कि आपकी खेती को नुकसान पहुँचाते हैं। इस तरह वह आपको मदद पहुँचाता है। इस वास्ते बिना कारण से मारना ठीक नहीं, खास कारण हो तो अलग बात है। उसको अपना काम करने देना चाहिए। इस तरह से हमें प्राणियों के साथ अपना प्रेम-सम्बन्ध बनाना होगा।

अभी एक बहुत बड़ी खोज उड़ीसा में हुई, जैसे कि पं० नेहरू की 'डिस्कवरी आफ इंडिया' वैसे इसकी 'डिस्कवरी आफ उड़ीसा'। उड़ीसा में चूहों के उन्मूलन के लिए अभियान चला लेकिन उनकी संख्या कम नहीं हुई तो खोज शुरू हुई और पाया कि चूहों के उन्मूलन के लिए सबसे सस्ता और आसान उपाय बिल्ली पालना है। इस तरह बिल्ली आपको चूहों से बचायेगी और साँप कीड़ों से बचाता है। गाय और बैल के तो हम पर अनेक उपकार हैं ही।

तो हमने पाया कि हमें अपना दिल बड़ा बनाना है। उसमें कुल दुनिया भर के मनुष्यों का समावेश करना होगा और यथासंभव दूसरे प्राणियों का भी समावेश करना होगा। आपने सेंट फ्रांसिस का नाम सुना होगा। उनका प्राणियों पर कितना प्रेम था! वे साँप को देखते तो कहते—'कम माई ब्रदर,' तो साँप आकर उनकी गोद में बैठ जाता। ऐसी कहानी उनकी है। इसमें झूठ मानने की जरूरत नहीं है। अपने दिल में प्रेम पैदा हो जाय तो आसपास के प्राणियों में भी उसका असर होता है। वे भी प्रेम के स्पर्श को समझते हैं। मेरा कहने का सार यह है कि अपना दिल बड़ा बनाना होगा, दिमाग तो बड़ा बन चुका है। पाँच लोगों के परिवार से नहीं चलेगा, अब इसे व्यापक करना होगा।

—सिमडेगा, राँची

२१-७-'६९

दो सप्ताह की यात्रा

बाबा की यात्रा के कारण ३१ अगस्त तक राँची जिलादान की सम्भावना

विनोबाजी राँची जिले की दो सप्ताह की यात्रा करके वापस आ गये हैं। उनका पड़ाव लोहरदगा, गुमला, सिमडेगा, बसिया और खूँटी में था। पड़ावों पर सामान्य तौर पर प्रतिदिन दो से तीन बैठकें होती थीं। कोई-कोई बैठक तो आमसभा का ही रूप ले लेती थी। बैठकों में सरकारी कर्मचारी, विद्यालय के शिक्षक, वकील, पादरी, आदिवासी नेता, पंचायतों के मुखिया, पंचायत-समितियों के प्रमुख एवं अन्य समाजसेवीगण होते थे। बैठकों में प्रखण्डदान के लिए किये गये अबतक के काम का सिंहावलोकन होता था। जिन लोगों के मन में इस ग्रामदान आन्दोलन के प्रति शंकाएँ होती थीं उनकी शंकाओं के समाधान में सुश्री निर्मला देशपांडे और श्री कृष्णराज भाई घनश्याम कुटे रहते थे। बाबा का दरबार सभी के लिए खुला हुआ रहता था। जिसकी हिचक और शंका जितनी गहरी होती थी, बाबा का वर्ग उनके लिए उतना ही अधिक समय का होता था। वे उन्हें बराबर "हार्ट टु हार्ट टॉक" के लिए प्रेरित करते थे।

बाबा की यात्रा का लाभ यह हुआ कि जिन आदिवासी मित्रों के मन में यह शंका थी कि ग्रामदान आन्दोलन उनकी जमीन पर गैर आदिवासियों को काबिज करना चाहता है, उनका भ्रम दूर हुआ। उनके ध्यान में आया कि बाबा गिरिजनों की मुक्ति के लिए छटपटा रहा है। ख्रिस्तियों को लगा कि "बाबा प्रभु का राज" स्थापित करने का प्रयास कर रहा है। आदिवासियों को लगा कि बिरसा भगवान जिस काम को पूरा नहीं कर सके, अधूरा छोड़ गये हैं, बाबा उसी काम को पूरा करने का प्रयास कर रहा है। तीर-धनुष लेकर सभाओं में आनेवाले वीर-बिरसा दल तथा बिरसा सेवा-दल के नवजवानों से बाबा ने कहा कि यदि आपलोग मुझे यह समझा दें कि ग्रामदान, ग्राम-स्वराज्य आदिवासियों के हित के लिए नहीं है तो मैं इस आन्दोलन को आपके बीच से वापस ले लूँगा। लेकिन बात को तह पर पहुँचने पर वे पाते थे कि बाबा किसी निहित-स्वार्थ का प्रतिनिधि नहीं है। बाबा तो समाज के सब व्यक्तियों के उत्थान का रास्ता खोज रहा है, जिसमें सबसे अधिक पिछड़े लोगों के लिए सबसे पहले राहत की व्यवस्था है। बाबा की योजना आज की आर्थिक और सामाजिक विषमताओं को जड़-मूल से समाप्त करने की है। आदिवासी जन बाबा की बातों से प्रभावित होते और ग्रामदान के काम में जी-जान से लग जाने का संकल्प करके विदाई लेते।

सिमडेगा और खूँटी के पड़ावों पर अनुमंडलदान-प्राप्ति समितियाँ बनीं। जिन आदिवासी नेताओं ने सभा करके यह प्रस्ताव पारित किया था कि ग्रामदान-आन्दोलन का विरोध करना चाहिए, उन्होंने अपनी यह भूल स्वीकार की कि उन्होंने वैसा निर्णय

सम्बन्ध की जानकारी के अभाव में किया था। उन्होंने सभा में घोषणा की कि उन्होंने अब स्वयं ग्रामदान-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये हैं। उन्होंने अपने अनुयाइयों से भी हस्ताक्षर करने की अपील की।

जो अनुमंडलदान-प्राप्ति-समितियाँ बनी हैं उनमें वे सभी स्थानीय नेता हैं, जिनका समाज पर असर है। क्षेत्र के सब तरह के कार्यकर्ता ग्रामदान का विचार समझाने और हस्ताक्षर प्राप्त करने के काम में लग गये हैं। इस काम को पूरा करने में उन्होंने खर्च का भी हिसाब लगाया और समाज के बड़े-छोटे सब लोगों से दान लेकर आन्दोलन को सफल करने का निश्चय किया।

अब राँची जिले में किसीका ग्रामदान से विरोध नहीं रह गया है। इस बात की आवश्यकता अवश्य है कि बिहार के पैमाने पर जो लोग ग्रामदान-प्राप्ति का संयोजन कर रहे हैं, वे इन अनुमण्डलदान-प्राप्ति समितियों के सपर्क में रहें और उन लोगों ने १५ से ३१ अगस्त तक की अवधि में प्रत्येक प्रखण्ड का प्रखण्डदान पूरा करने का जो संकल्प लिया है, उसकी पूर्ति में उनको सहारा देते रहें।

विनोबाजी की इस यात्रा से जो अनुकूलता बनी है वह न सिर्फ ग्रामदान-प्राप्ति में सहायक होगी; बल्कि प्रखण्डदान, जिलादान के बाद गाँव गाँव में ग्रामसभा को पक्का करने, बीघा-कट्ठा जमीन का वितरण कर भूमिहीनता मिटाने, हर गाँव की ग्रामसभा का प्रतिनिधि लेकर एक-एक चुनाव-क्षेत्र में निर्वाचन-मंडल बनाने, आगे के निर्माण और विकास के काम को संभालने तथा गाँव गाँव में ग्राम-स्वराज्य का नमूना खड़े करने में भी सहायक हो सकती है। अब आवश्यकता इस बात की है कि दीपक से दीपक की लौ बढ़ने की संख्या बढ़ती रहे और ग्राम-स्वराज्य का विचार और योजना व्यापक रूप से और धीरजपूर्वक गाँव-गाँव में ले जाने का मार्गदर्शन चलता रहे।

विनोबाजी की यात्रा ने राँची जिले के आदिवासी भाइयों के बीच फैले भ्रम का निवारण कर उन्हें सही दिशा में बढ़ने को प्रेरित किया। अब वे छोटी छोटी जमातों में बैठकर, उलझनों से बचकर और अपनी पूरी शक्ति संगठित कर सही दिशा में विकास करने में लग सकते हैं।

सर्वोदय-नेता राँची की ओर

सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष श्री एस० जगन्नाथन् ने बिहारदान के आखिरी लक्ष्य को पूरा करने में सर्वोत्तम योगदान देने की अपील करते हुए यह घोषणा की कि वे खुद मार्जरी साइक्स तथा कैथान के साथ १८ अगस्त को राँची पहुँच रहे हैं। उनकी इस अपील पर सर्वश्री ठाकुरदास बंग, सिद्धराज ढड्ढा, आचार्य राममूर्ति आदि लोग भी राँची पहुँच रहे हैं। श्री जयप्रकाशजी का भी राँची का कार्यक्रम बन गया है।•

बाबा की यात्रा के क्रम में लोहरदगा और पालकोट में न सिर्फ प्रखण्डदान हुए, बल्कि इस आन्दोलन को आगे बढ़ाने के लिए दोनों जगहों में क्रमशः १६०१ रु० और ६५१ रु० की थैली भी बाबा को समर्पित की गयी। थैली की रकम से बचे हुए प्रखण्डों के दान का कार्य शीघ्रता से आगे बढ़ सकेगा।

बाबा के पड़ावों पर सर्वोदय साहित्य की भूख व्यापक रूप से दीख पड़ी। लोगों के घर तक जब साहित्य ले जाया जाता है तब वे उसे बड़े चाव से खरीदते हैं। यात्रा में लगभग एक हजार रुपये का साहित्य बिका और 'भूदानयज्ञ' 'मैत्री', 'न्यूज लेटर' 'गाँव की आवाज' आदि पत्रिकाओं के ३० से अधिक ग्राहक बने।

सर्व सेवा संघ की ओर से श्री निर्मला देशपाण्डे, आचार्या, शान्तिसेना विद्यालय, इंदौर, (मध्य प्रदेश) इस क्षेत्र में अनुमण्डलदान में सहायता, मार्गदर्शन और प्रेरणा देने के लिए पिछले महीने भर से लगी हुई हैं और आगे भी लगी रहने को कृतसंकल्प हैं।

बाबा ७ अगस्त तक राँची शहर में ही रहेंगे।

राँची —मथिजाल पाठक
२८-७-'६६

चित्तौड़गढ़ में गांधी-शताब्दी क्षेत्रीय शिविर

इन्दौर, २४ जुलाई। ज्ञात हुआ है कि राष्ट्रीय गांधी जन्म-शताब्दी समिति की महिला-बाल उपसमिति तथा जन-सम्पर्क उपसमिति के संयुक्त तत्त्वावधान में आगामी दिनांक २० से २४ अगस्त तक चित्तौड़गढ़ (राजस्थान) में पश्चिमी क्षेत्र अर्थात् महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान तथा मध्यप्रदेश की जिला गांधी-शताब्दी महिला-बाल उपसमिति की संयोजिकाओं एवं अन्य सामाजिक कार्यकर्ता भाई-बहनों का एक विचार-शिविर आयोजित किया जा रहा है।

शिविर में सम्मिलित होने के लिए शिविरार्थियों को रेलवे कन्सेशन के अतिरिक्त एक ओर का तृतीय श्रेणी का मार्ग-व्यय दिया जायेगा। भोजन एवं निवास की व्यवस्था समितियों की ओर से की जायेगी।

शिविर में भाग लेनेवाले भाई-बहनों से यह अपेक्षा की गयी है कि शिविरोपरान्त वे अपने-अपने क्षेत्र व जिले में शताब्दी कार्यक्रम संगठित व संचालित करेंगे। शिविर में भाग लेने के लिए विशेष इच्छुक भाई-बहन कु० सन्तोष निगम, पो० कस्तूरबाग्राम (इन्दौर) म० प्र० से सम्पर्क कर सकते हैं। (सप्रेस)•

स्वामी कृष्णदास खप्परवाले का स्वर्गवास

अलीगढ़ जिले के प्रमुख शान्ति-सैनिक और सर्वोदय के वयोवृद्ध लोकसेवक श्री स्वामी कृष्णदास खप्परवाले ७४ वर्ष की आयु में अपने निवासस्थान ग्राम खड़ई में लम्बी बीमारी के पश्चात् शरीर छोड़ गये!

स्वामीजी सन् १९५४ में हमारे सर्वोदय-परिवार में सम्मिलित हुए थे और अन्त समय तक वे हमारे साथ भूदान-यज्ञ की भूमि का वितरण, साहित्य-प्रचार और शान्ति कार्य में लगे रहे। अब उनके चले जाने पर स्थान की पूर्ति होना सम्भव नहीं लगता। सर्वोदय परिवार उनकी सेवाओं की सराहना करता है और परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता है कि वह दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे! —गंगाधर शास्त्री

विवेकरहित विरोध

बनाम

बुनियादी परिवर्तन-प्रक्रिया

"शासन के खिलाफ विवेकरहित विरोध चलाया जाय तो उससे अराजकता की, अनियन्त्रित स्वच्छंदता की स्थिति पैदा होगी और समाज अपने हाथों अपना नाश कर डालेगा।"

—गांधीजी

आज देश में आये दिन घेराव, धरना, लूटपाट, आगजनी, कथित सत्याग्रह की कार्रवाइयाँ लोकतंत्र में सामूहिक विरोध के हक के नाम पर होती हैं।

सर्वोदय-आन्दोलन भी वर्तमान समाज, अर्थ और शासन-व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह है। किन्तु, वह इसका एक नियंत्रित, रचनात्मक एवं अहिंसक कार्यक्रम प्रस्तुत करता है।

इसके लिए पढ़िए, मनन कीजिए :—

(१) हिन्द स्वराज्य — गांधीजी

(२) ग्रामदान — विनोबाजी

फिर एक जिम्मेवार नागरिक के नाते समाज परिवर्तन की इस क्रान्तिकारी प्रक्रिया में योग भी दीजिए।

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी समिति)
टूंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर-१ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

पलामू तथा भागलपुर जिलादान सम्पन्न

[पलामू और भागलपुर जिलादान के बाद बिहार के कुल १२ जिलों के जिलादान सम्पन्न हुए। अब सिर्फ ५ जिलों में काम शेष हैं, जिनमें शाहाबाद, राँची और हजारीबाग जिलों के जिलादान शीघ्र पूरा होने की सम्भावना है। —सं०]

बिहार का प्रथम प्रखंडदान था प्रतापपुर (हजारीबाग जिला)। बिहार का दूसरा प्रखंडदान था गारू (पलामू जिला)। उस समय प्रखंडदान प्राप्त करना बड़ा कठिन था, लेकिन स्व० कर्मवीर भाई के प्रयत्न एवं प्रयास से गारू का प्रखंडदान सम्भव हो सका। उस समय पलामू के उपायुक्त श्री कुमार सुरेश सिंह थे। सर्वोदय-आन्दोलन की ओर से कर्मवीर भाई तथा सरकारी अधिकारियों के रूप में श्री कुमार सुरेश सिंहजी, सर्वोदय समाज की स्थापना के लिए दिन-रात ग्रामदान का अलख जगाते रहते थे। सरकारी कार्यालय के राजस्व विभाग की ओर से ग्रामदान-भूदान के लिए जो परिपत्र तथा आदेश प्रखंडों में भेजे गये थे, उनको मुझे देखने का मौका मिला है। मालूम पड़ता था कि ग्रामदान का विचार सरकारी पदाधिकारियों को सिखाया जा रहा है। उनकी ही देन है कि सरकारी पदाधिकारी दिल खोलकर इस आन्दोलन को मदद करते रहे हैं। आज न उस जिले में स्वर्गीय कर्मवीर भाई हैं, न डा० कुमार सुरेश सिंहजी हैं। एक की आत्मा तथा दूसरे के द्वारा किया हुआ कार्य जिलादान-आन्दोलन को बल दे रहा है। मुझे सैकड़ों गाँवों में जाने का मौका मिला, हजारों लोगों से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सबने दोनों नेताओं के मुक्त कंठ से गुण गाये। कितनों को जब कर्मवीर भाई के स्वर्गीय हो जाने की जानकारी मेरे द्वारा प्राप्त हुई, तो वे दुःख से विह्वल हो उठे!

इन दोनों के जाने के बाद कुछ दिनों के लिए आन्दोलन मन्द-जैसा हो गया। गत वर्ष के दिसम्बर महीने में पूज्य बाबा पलामू आये। पुनः उत्साह का वातावरण पैदा हुआ। स्वामी सत्यानन्दजी एवं श्री परमेश्वरी झा, अध्यक्ष, जिला ग्रामदान-प्राप्ति समिति के नेतृत्व में आन्दोलन आगे बढ़ने लगा, क्योंकि अभियान में स्वामीजी का कठिन परिश्रम एवं सरकारी अधिकारियों का सहयोग था। ११ प्रखंडों का प्रखंडदान हुआ। माह फरवरी सन् १९६६ तक कुल प्रखंडदान की संख्या १८ हो गयी थी। दैवयोग से स्वामीजी बीमार हो गये, परमेश्वरी बाबू गृह-कार्य में उलझ गये। आन्दोलन का कार्य पुनः बन्द-सा हो गया।

बिहार ग्रामदान-प्राप्ति समिति की बैठक गया में बाबा के सान्निध्य में माह फरवरी में हुई। उसमें हुए निर्णय के अनुसार मुझे पलामू में कार्य करने का आदेश वैद्यनाथ बाबू के द्वारा प्राप्त हुआ। मेरी मानसिक तैयारी इस जिले में काम करने की थी नहीं, फिर भी प्राप्ति समिति के निर्णय के अनुसार मुझे पलामू आना ही पड़ा। १० मार्च '६६ तक पलामू का जिलादान कराने के संकल्प को लेकर मैं काम पर लग गया। अप्रैल में वैद्यनाथ बाबू का दौरा हुआ। उससे बहुत बल मिला। १६ अप्रैल को संयुक्त समाजवादी पार्टी के अध्यक्ष श्री कर्पूरी ठाकुर का शुभागमन हुआ। समाजवादी विचार के सभी साथियों का सहयोग मिला। बचे हुए ६ प्रखंडों का प्रखंडदान २० जून १९६६ को सम्पन्न हो गया। इस प्रकार २० जून १९६६ तक कुल २४ प्रखंडों का प्रखंडदान सम्पन्न हो गया। एक प्रखंड शेष था महुआटाड़। उसका भी प्रखंडदान पूरा हुआ। —कमल नारायण

भागलपुर—शुरू में भागलपुर जिले में ग्रामदान का तूफान इतना वेग से चला था कि एक पर एक प्रखण्डदान की घोषणा होती चली गयी। बीच में तूफान का वेग मन्द पड़ा। परन्तु जिलादान का संकल्प लोगों को चैन से कैसे बैठने देता? जिन प्रखण्डों का काम शेष रह गया था, उनमें कार्यकर्ता उत्साह तथा उमंग से जुट गये और उन्होंने जिलादान के संकल्प को पूरा किया। भागलपुर जिले को जिलादान के लिए वैचारिक ठोस आधार मिले इसका प्रयास प्रो० श्री रामजीत सिंह करते रहे हैं।

जिलादान की पूर्ति में इस जिले के सरकारी पदाधिकारियों, बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ के कार्यकर्ताओं तथा शिक्षकों का बहुत बड़ा हाथ है।●

भिण्ड जिलादान के निकट

चम्बल घाटी शान्ति-समिति द्वारा भिण्ड जिले में चलाये जा रहे अभियान में अबतक ६६० ग्रामदान मिल चुके हैं। जिले में कुल ८६० गाँव हैं।

२ अक्तूबर '६९ तक ५० जिलादान प्राप्त करने का लक्ष्य

सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति के महत्त्वपूर्ण सुझाव

राजकोट। यहाँ २५ से २७ जुलाई तक आयोजित सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति की बैठक में २ अक्तूबर '६९ तक जिलादानों की संख्या ५० तक पहुँचाने का लक्ष्य रखकर तूफानी गति से काम आगे बढ़ाने की अपील देशभर में ग्रामदान के काम में लगे साथियों से की गयी। खासकर प्रदेशदान तथा जिलादान के लिए संकल्पित क्षेत्रों में पूरी शक्ति लगाकर इस लक्ष्य तक पहुँचने की सिफारिश करते हुए प्रबन्ध समिति ने यह अपेक्षा व्यक्त की कि आगामी सर्वोदय-सम्मेलन में हर प्रदेश जिलादान की भेंट लेकर पहुँचे।●

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

संगम-तट से

अफ्रीका से खुशखबरी

अफ्रीका महाद्वीप का दक्षिणी हिस्सा अभी तक गुलामी के पंजे में जकड़ा हुआ है। उसमें पाँच देश आते हैं—अंगोला, मोजाम्बीक रोडेशिया, दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका और दक्षिणी अफ्रीका। पहले के दोनों देशों में पुर्तगाली राज्य है, तीसरे में कहने को तो ब्रिटिश शासन है, लेकिन वहाँ के गोरों ने लन्दन-सरकार की परवाह किये बिना अपनी हुकूमत खड़ी कर ली है। चौथे में दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका है संयुक्त राष्ट्र की निगरानी में, लेकिन वहाँ दक्षिण अफ्रीका की मनमानी चलती है, और पाँचवें में दक्षिण अफ्रीका गोराशाही का जबरदस्त अड्डा है, जहाँ गैर-गोरे डाक्टर तथा खिलाड़ी तक रंगभेद के शिकार हैं। ये पाँचों देश काफी सम्पन्न हैं, और दक्षिण अफ्रीका तो हीरे व सोनों की खानों के लिए सरनाम है।

जबतक ये पाँचों देश आजाद नहीं हो जाते, तबतक न केवल अफ्रीका की, बल्कि सारी दुनिया की शान्ति खतरे में है। इन सभी देशों में राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहे हैं—कहीं कुछ ठंडे, कहीं जोरदार। इन आन्दोलनों को अफ्रीका के स्वतंत्र देशों की हमदर्दी और मदद प्रायः मिलती रहती है, विशेषकर जेम्बिया के राष्ट्रपति काउण्डा, तन्जानिया के राष्ट्रपति नेरेरे और इथोपिया के सम्राट हेल सिलासी से। और दक्षिणी अफ्रीका की रंग-भेद-नीति के खिलाफ तो संयुक्त राष्ट्र एक प्रस्ताव पास कर चुका है और बहुत से देशों ने उसके साथ राजनीतिक सम्बन्ध-विच्छेद कर रखे हैं। लेकिन अमरीका, ब्रिटेन और फ्रांस के साथ उसका लेन देन व्यवहार चल रहा है। इसलिए दक्षिण अफ्रीका को बाकी दुनिया की ज्यादा परवाह भी नहीं है।

धार्मिक दृष्टि से तो वह मामला है ही, सैनिक दृष्टि से भी दक्षिणी अफ्रीका उस महाद्वीप में सबसे बलशाली है। वह हर साल लगभग १५० करोड़ रुपये (अपने बजट का पाँचवाँ हिस्सा) सुरक्षा पर खर्च करता है। उसकी सेना में १६,२०० तैनात सिपाही हैं, और ४२,००० रिजर्व में हैं, जो किसी समय भी बुलाये जा सकते हैं। हथियारों में उसके पास है अर्मान और सेन्चुरियन टैंक, फ्रांसीसी आर्मर्ड कारें, आदि। परमाणु-बम बनाने की योजना भी चल रही है। समुद्री बेड़े में १३ जहाज हैं, जिनमें दो डेस्ट्रायर और छः एन्टी-सबमेरीन फ्रिगेट शामिल हैं। हवाई दल में तीन हजार सैनिक हैं और तरह-तरह के बाम्बर वगैरह हैं। पुलिस में २८,६०० तैनात आदमी हैं और १५,००० रिजर्व में। देहातवासी गोरों ने संकट के लिए अपनी २१० टुकड़ियाँ बना रखी हैं जिनमें ५१,५०० सदस्य हैं। दक्षिणी अफ्रीका ज्यादातर हथियार फ्रांस से खरीदता है, और छोटी-छोटी चीजें खुद बना लेता है।

जाहिर है कि इतनी बड़ी शक्ति का हिंसा से मुकाबला करना हँसी खेल नहीं है। विशेषकर अफ्रीका में तो किसीके बस का यह है ही नहीं। पिछले ८-९ वर्षों से कुछ कोशिश की गयी और शस्त्रों का इस्तेमाल किया गया, लेकिन वे सारे आन्दोलन कुचल डाले गये और जनता का दमन भी बहुत किया गया। वहाँ के स्वतन्त्रताप्रेमी अपने सामने अल्जीरिया की मिसाल रखते हैं, उसीके सपने देखते हैं। और उनका ख्याल है कि अगर बड़े पैमाने पर हिंसा हो तो दक्षिणी अफ्रीका की गोरी सरकार डोल जायेगी।

लेकिन काफी वजनदार हिस्सा ऐसे लोगों का भी है, जो यह महसूस करते हैं कि हमें हथियारों की बजाय शान्ति व अहिंसा का रास्ता पकड़ना चाहिए और वह कारगर भी होगा। खुशी की बात है कि इस सिलसिले में पूर्वी और मध्य अफ्रीका के चौदह देशों के नेताओं का एक शिखर-सम्मेलन हाल में जेम्बिया की राजधानी लुसाका में हुआ। उसमें जेम्बिया, तन्जानिया, युगान्डा कीनिया और मलावी के राष्ट्रपति शरीक हुए और युथोपिया के वयोवृद्ध सम्राट् भी पधारे। कई दिन तक परिस्थिति पर विचार करने के बाद उन्होंने एक वक्तव्य जारी किया। उसमें इन्होंने माँग की कि दुनिया के सभी देश व्यापार-व्यवहार में दक्षिणी अफ्रीका का बहिष्कार करें। और साथ ही यह भी कहा—'जहाँ तक आजादी का सवाल है, इसमें न किसी समझौते की बात है और न झुकने की; लेकिन हम यह पसन्द करेंगे कि बर्बादी की बजाय बीच विचार का रास्ता अपनाया जाये, मार-काट की बजाय बातचीत व समझौता करने का।' अन्त में उन्होंने अपील की है : "अगर आजादी का शान्तिमय रास्ता सम्भव हो या बदलती हुई परिस्थिति उसे आगे भविष्य में सम्भव बना दे तो आजादी के आन्दोलनों में लगे अपने भाइयों से हम अनुरोध करेंगे कि वे संघर्ष के शान्तिमय तरीके अपनायें चाहे परिवर्तन के समय पर कुछ समझौता ही क्यों न करना पड़ जाये।"

अफ्रीका के अनुभवी नेताओं ने स्वतंत्रता-प्रेमियों को यह बड़ी नेक सलाह दी है और हमारा विश्वास है कि वे इसे स्वीकार कर अपनी अहिंसक शक्ति खड़ी करेंगे। उससे जनता का भी मनोबल मजबूत होगा और वह पूरी तरह अपने नेताओं का साथ देगी। साथ-ही साथ, दक्षिणी अफ्रीका की सरकार दुनिया में बदनाम होगी और अन्दर से उसका नैतिक बल गिरता चला जायेगा और वह कहीं की न रहेगी। दक्षिणी अफ्रीका और आस-पास के चारों देशों की आजादी हासिल करने का यही एक तरीका है। लेकिन इस पर सफलता के लिए यह जरूरी है कि स्वतंत्रता-सेनानियों में आपस में प्रेम और विश्वास हो और वे हर तरह की कुर्बानी के लिए तैयार हों।

—सुरेशराम

'गाँव की आवाज'

अबतक आप 'भूदान यज्ञ' के परिशिष्ट के रूप में 'गाँव की बात' पढ़ते रहे हैं। आगे आप गाँव की बात पढ़ना चाहते हैं तो 'गाँव की आवाज' के नाम से ४ रुपये वार्षिक शुल्क भेजिए। 'गाँव की आवाज' महीने में दो बार प्रकाशित होगी। पहला अंक प्रकाशित हो चुका है।

—व्यवस्थापक

उनका आना और जाना

वह हवा की तरह आये, और पानी की तरह चले गये। किसलिए आये थे, और क्यों इस तरह चले गये? राष्ट्रपति निक्सन दिल्ली में चौबीस घंटे भी नहीं रहे। प्रधानमंत्री से चर्चा भी कुछ ज्यादा देर नहीं हुई। लेकिन कहा जाता है कि उन्होंने जो बातें कीं उनका एशिया पर गहरा असर पड़ेगा। क्या थीं वे बातें?

'हम चले, अपना घर संभालो!' कहने को उन्होंने बहुत कुछ कहा होगा, लेकिन सौ बातों की यह एक बात कही।

अमेरिका वियतनाम से जा रहा है। उसने देख लिया कि शस्त्र-शक्ति की एक सीमा है। देश प्रेम की शक्ति और मनुष्य के संकल्प को कोई भी शस्त्र शक्ति झुका नहीं सकती। चन्द्रलोक की यात्रा करनेवाला अमेरिका वियतनाम के वीर युवकों और युवतियों के मुकाबिले मुँह की खाकर जा रहा है। स्वतंत्रता का प्रेमी कौन ऐसा होगा जो अमरिकी साम्राज्यवाद की वियतनाम से इस विदाई पर खुश नहीं होगा? अमेरिका को जाना ही था, जा रहा है, इसमें निक्सन को कहना क्या था? लेकिन नहीं, कहना यह था कि अब एशिया के दक्षिणी और दक्षिण-पूर्वी देशों को अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए, अब आगे अमेरिका दूसरों की लड़ाई नहीं लड़ेगा। यह बहुत बड़ी बात थी जो निक्सन को कहनी थी। मदद भी वह उन्हींको देगा, जो अपनी मदद के लिए अपने-आप या आपस में मिलकर खड़े होंगे। किसी देश को कम्यूनिस्टों से बचाने की जिम्मेदारी अकेले अमेरिका पर क्यों रहे?

अबतक वियतनाम में जो इतना खून बहा है वह सिर्फ इसलिए कि अमेरिका एशिया में कम्यूनिस्ट शक्ति को बढ़ने नहीं देना चाहता था। अमेरिका के हट जाने पर जो जगह खाली होगी उसे भरने के लिए चीन दौड़ेगा, रूस दौड़ेगा। रूस और अमेरिका की—चीन की भी—विश्व व्यापी समर रचना है। ये सब दुनिया के हर कोने में रहना चाहते हैं, ताकि लड़ाई के समय कोई कहीं कमजोर न साबित हो। भले ही अमेरिका की सेनाएँ धीरे-धीरे वियतनाम से निकल जायँ, लेकिन ऐसी बात नहीं है कि वह एशिया की ओर से गाफिल हो जायगा। क्या रूस, और क्या अमेरिका और क्या चीन, जितने भी 'साम्राज्यवादी' देश हैं—चीन भी यही है किन्तु अभी छोटा भाई है—वे यह कोशिश करते हैं कि अधिक-से-अधिक देशों के जीवन में उनका प्रवेश हो। वे राजनीति में दखल देते हैं, सैनिक-अड्डे बनाते हैं, सैनिक संधि करते हैं, तथा व्यापार और विकास को अपनी ओर मोड़ने की कोशिश करते हैं। इतना ही नहीं, शिक्षा तथा सिनेमा तक को अछूता नहीं छोड़ते। ये सब कोशिशें बड़े देशों की ओर से बराबर चलती रहती हैं, और आगे भी चलती रहेंगी। रूस भी अब अपने एशिया में और पाकिस्तान के जरिए हिन्द महासागर में प्रवेश कर रहा है। एशिया की गरीबी और विषमता ऐसी है कि उसके कारण लगभग हर देश में रूसवादी और चीनवादी साम्यवादी शक्तियाँ पैदा हो गयी हैं। उनके पास राष्ट्रीयता और समता, दोनों का नारा है। अमेरिका के पास क्या है? कुबेर का धन है, और साम्यवाद के विरोध का नारा है। जनता को प्रेरित करनेवाली कौनसी शक्ति उसके पास है? अमेरिका दुनिया में 'स्टेटस-को' की आवाज बन गया है, करोड़ों गरीबों के लिए साम्यवाद समाज-परिवर्तन की पुकार है।

एक बात तय है। अमेरिका की सेनाएँ वियतनाम में रहें या न रहें, लेकिन अगर एशिया के छोटे, कमजोर, गरीब देश विकास के लिए विदेशी सन्दूक और सुरक्षा के लिए विदेशी बन्दूक का ही भरोसा करते रहेंगे तो उनकी परवशता बनी रहेगी, और वे अशांति और अस्थिरता से मुक्त नहीं हो सकेंगे। एशिया की मुक्ति—अफ्रीका की भी—उनके हाथ में है; न रूस के, न अमेरिका के, और न चीन के। एशिया को नया राजनीतिक संगठन चाहिए, नयी तकनीक चाहिए, नयी शिक्षा चाहिए, और जीवन की नयी डिजाइन चाहिए। उनका कल्याण इसीमें है कि वे अपने लिए पूँजीवाद और साम्यवाद, दोनों से भिन्न कोई तीसरा रास्ता निकालें। पूँजीवाद और साम्यवाद अलग-अलग परिस्थितियों में अपना चोला चाहे जितना बदलें, लेकिन ये दोनों शोषण और दमन की ही शक्ति पर टिकनेवाले हैं, इसलिए मूलतः मनुष्य-विरोधी हैं।

एशिया और अफ्रीका के पिछले बाईस वर्षों का क्या अनुभव है? हमारा अपने देश में क्या अनुभव है? क्या पश्चिम की नकल पर खड़ा लोकतंत्र का ढाँचा टिक सका? क्यों एक के बाद दूसरा देश सैनिक-तानाशाही का शिकार होता गया? क्या पूँजी से विकास हो सका? क्या पश्चिमी तकनीक हमारे काम आयी? क्या बन्दूक की गुलामी स्वीकार कर हम दिनोंदिन अधिक अरक्षित नहीं होते जा रहे हैं? क्या इतना सारा अकाट्य अनुभव हमें नयी दिशा की ओर प्रेरित करने के लिए काफी नहीं है? निक्सन ने ठीक कहा है कि एशिया की समस्याएँ हैं तो एशिया को ही समाधान ढूँढ़ने पड़ेंगे।

अगर अमेरिका के वियतनाम से जाने के साथ-साथ एशिया (और भारत) की मानसिक गुलामी भी चली जाय तो मानना होगा कि वियतनाम ने अपने खून से पूरे एशिया और अफ्रीका को मुक्ति की एक नयी दिशा दिखायी।●

ग्रामदान-प्रखण्डदान-जिलादान

— ३१ जुलाई '६९ तक —

	ग्रामदान	प्रखण्डदान	जिलादान
भारत में	१,१६,८९८	८६८	२२
बिहार में	४६,०६०	५०६	१३

हिंसक क्रान्ति : सम्भावनाएँ और सीमाएँ

अपने देश में २२ वर्ष हो गये स्वराज्य के। जवाहरलालजी भी कुछ समाजवादी तो थे ही, लेकिन इन २२ वर्षों में क्या क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ? केवल दो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए, एक तो जो राजाओं की प्रथा थी उसका उन्मूलन हुआ, वह प्रथा जड़ से खत्म कर दी गयी, दूसरी प्रथा जमींदारी, मालगुजारी, तालुकेदारी, इन सब प्रथाओं का उन्मूलन हुआ। लेकिन बावजूद इन दो के आज का जो वर्तमान समाज है भारत का, सामन्तवादी और पूँजीवादी समाज है। पहले तो ऐसा था कि देहातों में सामन्तवाद और जहाँ उद्योग वगैरह हैं वहाँ शहरों में पूँजीवाद, अब जो 'ग्रीन रेवोल्यूशन' हो रहा है उससे देहातों में भी पूँजीवाद घुस रहा है। बड़े बड़े करोड़पतियों ने लाखों रुपया डाला है, कृषि में। जो पहले कृषक थे वे पूँजीपति बनते जा रहे हैं। क्योंकि वहाँ सभी साधन इकट्ठे हो जाते हैं कृषक विकास के लिए—पानी, बिजली, खाद, नये बीज, ताकि अनाप-शनाप लोगों के यहाँ धन पैदा हो रहा है खास करके जिनके पास ज्यादा जमीन है, सैकड़ों एकड़ की बात नहीं, पच्चीस-पचास, सौ एकड़ जमीन भी हो। एक नया वर्ग पैदा हो रहा रहा है। इस वर्ग का गठबन्धन शहरों के पूँजीवादी वर्ग से होता जा रहा है। गले का फंदा पैदा हो रहा है।

आज के समाज का रूप सामन्तवादी-पूँजीवादी समाज है। उसी के सारे मूल्य, गाँव-गाँव में आज भी हैं। सामन्तवादी मूल्य मे कुछ अच्छे मूल्य थे, कुछ बुरे थे। अच्छे मिटते चले जाते हैं। सामन्तवादी समाज में कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं होता था, एक पद्धति थी और उस समाज मे सुरक्षा थी। मालिक गरीबों की देख-रेख करेगा, शादी, विवाह मे, बीमारी में कुछ मदद कर देगा। पूँजीवाद में तो वह भी नहीं है। आप बीमार पड़िए, तो एक महीने की छुट्टी ले लीजिए, उसके बाद खटिया पर पड़े रहिए। छुट्टी बिना वेतन की मिलेगी। अगर सर्विस कायम रह जाये तो गनीमत है। ये पूँजीवाद के सारे मूल्य हैं। कोई मानवता की दृष्टि नहीं। जो नियम-कानून बने भी गरीबों के हित के लिए, कागज पर पड़े हैं! उस पर कोई अमल करना चाहता है तो एक हाहाकार मच जाता है।

बिहार-सरकार की असफलता

महामाया बाबू की जब मिनिस्टरी हुई तो मेरे ध्यान में आया कि कुछ काम इनके द्वारा अगर हो तो अच्छा है। मैंने बहुत मामूली-सी बात उनके सामने रखी कि कांग्रेस ने १९ वर्षों में जो कानून बनाये हैं गरीबों के हित के लिए, देहातों में जो गरीब हैं, उनके हित के लिए, उन कानूनों पर आप अमल कराइए। पहली बात हमने कही थी, जो पहला कानून श्री बाबू के जमाने में बना, वासगीत जमीन का कि जिस गरीब की झोपड़ी काश्तकार की जमीन पर खड़ी है वह टेनेन्सी ऐक्ट के द्वारा वास की रैयत होगी,

जयप्रकाश नारायण

वास की रैयती हो जाने पर वह बेदखल नहीं होगा। दूसरा कहा कि भूमि-सुधार-कानून के अन्दर जो हदबन्दी की दफा है उसपर अमल करा दें। तीसरी बात बटाईदार की हमने कही थी कि बटाइदारों के मामले में जो कानून पहले का बना हुआ है, अमल कराइए। सब लोगों ने इस विचार को माना। चौथी बात न्यूनतम मजदूरी कानून की, कि सालभर जो न्यूनतम मजदूरी-कानून है उसके अनुसार उन्हें मजदूरी मिलती है कि नहीं देखना चाहिए। और पाँचवी बात हमने कही लाइसेन्स मनी-लेण्डर्स ऐक्ट। साढ़े बारह प्रतिशत से ज्यादा सूद कोई नहीं ले सकता है। ये पाँच बातें उनके सामने रखी थीं, जिनमें चार कानूनों से से सम्बन्ध रखती हैं। उन्होंने कहा कि आप अपने दस्तखत से सभी लोगों की बैठक बुलाइए। हमने कहा कि कांग्रेस के लोगों को भी बुलाइए क्योंकि कानून तो उन्हींका बनाया हुआ है। तो मैंने सबको निमन्त्रित किया। मैंने अपना विचार विस्तार से उनके सामने रखा। सब लोगों ने एक स्वर से स्वीकार किया कि यह बात ठीक है, होना चाहिए। पहली मीटिंग में कहा कि एक एडवाइजरी कमिटी बना दीजिए और उसका मुझे चेयरमैन बना दिया। उसके बाद दूसरी मीटिंग बुलायी एडवाइजरी की। कम्यूनिस्ट पार्टी को छोड़कर कोई आया ही नहीं। मैंने नाराज होकर पत्र लिखा तो तीसरी मीटिंग में सब लोग आये।

अब वहाँ सारी हवा बदल गयी। ठाकुर प्रसादजी जनसंघ के चेयरमैन थे, उन्होंने कहा कि और सब बातें तो मान्य हैं, लेकिन बटाईदारी की बातें हम नहीं मानते। यह बटाईदारी का कान्ट्रेक्ट, प्राइवेट कान्ट्रेक्ट है। उसमें स्टेट को दखल देने का कोई अधिकार नहीं। उसमें समाज की तरफ से बोलने का कोई हक नहीं है। सिर्फ ५ प्रतिशत आदमियों पर इसका प्रभाव पड़ता था। इन्द्रदीप बाबू (तत्कालीन राजस्वमन्त्री) समझा नहीं सके, प्रेस कान्फ्रेन्स किया, भाषण किया, रेडियो पर बोले। ठाकुर बाबू ने कहा 'नहीं,' कैलाशपति मिश्रजी ने कहा 'नहीं,' अगर इसके ऊपर अमल करने का प्रयत्न किया गया तो खून का दरिया बह जायेगा। राजा बहादुर कामाख्यानारायण ने कहा कि ठाकुर बाबू ने जो कहा है वही हमारे दल की भी राय है। कुछ नहीं हुआ तो मैंने आपके सामने एक मिसाल रखी।

ज्योति बसु से मेरी मुलाकात हुई तो मैंने उनसे कहा कि आपकी तरफ मेरा ध्यान है। आपके मन्त्रिमंडल में कोई दक्षिणपंथी नहीं है, बंगला-कांग्रेस से लेकर सभी वामपंथी अपने को कहते हैं। तो मैं देखना चाहता हूँ कि आप क्या क्रान्तिकारी परिवर्तन करते हैं। हमने कहा कि शासन की व्यवस्था में अगर आप मूलगामी परिवर्तन नहीं करते हैं, तो कुछ नहीं कर पाइएगा। आपकी क्रान्ति सब कागज पर रहेगी। यह सारा हमने इसीलिए कहा कि पहली बात को मैं पुष्ट करूँ, मैं इस नतीजे पर पहुँचता आ रहा हूँ कि कानून के जरिए सामाजिक क्रान्ति संभव नहीं है।

नक्सालवादियों का उदय

इस पर से निराश होकर कुछ नौजवान लोगों ने, कुछ ज्यादा उम्र के लोग भी

है, पश्चिम बंगाल में, आंध्र में, केरल में, और उनके साथी और जगह है, उनकी संख्या थोड़ी है, ऐसा निर्णय किया कि यह क्रान्ति कानून के जरिए, लोकतांत्रिक तरीके से नहीं होगी। उन लोगों ने यह विचार रखा और वे लोग मार्क्सवादी पार्टी से अलग हुए। उन्होंने मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी कायम की। और स्पष्ट शब्दों में उन्होंने कहा कि इस रास्ते पर हमारा विश्वास नहीं है, सब सुधारवादी हो गये हैं, अवसरवादी हो गये हैं। उन्होंने कहा कि हमारा विश्वास तो एक ही रास्ते पर है, वह सशस्त्र क्रान्ति है, सशस्त्र विद्रोह है। कैसे होगा, क्या होगा वह तो अलग बात है, लेकिन उन्होंने इस बात को मजबूती से रखा। नक्सलवादियों के लिए सहानुभूति इस कारण से पैदा हुई कि कम-से-कम यह उन्हें लग रहा है कि यह मार्ग क्रान्ति का मार्ग नहीं है, कुछ सुधार भले हो जाय।

क्रान्ति का भ्रम

अब यह विचारणा है कि यह जो हिंसा का मार्ग है और उसमें अबतक जो सफलता मिल पायी है, उस पर से हम किस निर्णय पर पहुँचते हैं। अगर इस मार्ग से हुई क्रान्तियों को, दोनों अर्थ में क्रान्ति वर्तमान समाज का मामूल परिवर्तन और नये समाज का निर्माण, इस कसौटी पर हम कसें तो क्या वे क्रान्तियाँ सफल मानी जायेंगी ? मैंने क्रान्तियों का जो कुछ अध्ययन किया उस पर से मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि वे सफल नहीं हुईं। उनकी सफलता का केवल भ्रम होता है। भ्रम इस कारण से होता है कि क्रान्ति का जो पहला भाग है वह तो पूर्ण रूप से सफल हो जाता है, लेकिन जो दूसरा भाग है, जो असली उद्देश्य है नये समाज का निर्माण, वह नहीं हो पाता है।

फ्रांस की महान क्रान्ति

अब सन् १७८९ से जितनी आधुनिक सामाजिक क्रान्तियाँ हुई हैं—'ग्रेट फ्रेंच रेवोल्यूशन' से लेकर आज तक, उनमें हम देखते क्या हैं ? फ्रांस की क्रान्ति को आप लें तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि लुई के जमाने में जो समाज की रचना थी वह सामन्तवादी थी, अभी पूंजीवाद का जन्म हो रहा था। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उस क्रान्ति ने उस सामन्तवादी समाज की बुनियाद खोद डाली और वह सामन्तवादी समाज निर्मूल हो गया। कुछ साल के लिए निर्मूल हो गया और उसकी जो बुनियादी उपलब्धियाँ थीं वे कुछ कायम रह गयीं। किसानों की मिल्कियत वहाँ कायम हुई, जो आज तक चलती है। और नेपोलियन आया, या उसका पोता आया। उन्होंने भी उस सामन्तवाद को कायम नहीं किया। यह बात तो ठीक है। सन् १७८९ की क्रान्ति में लुई का भी कत्ल हुआ और बहुत से अन्य सामन्त लोगों का भी कत्ल हुआ। उनके स्टेट्स पर लोगों ने कब्जा कर लिया, खेती करनेवाले लोगों के हाथों में खेती गयी, लेकिन जो नया समाज उनको बनाना था, वह नहीं बन पाया। फ्रांस की क्रान्ति के नारे क्या थे ? समता, स्वातन्त्र्य, भ्रातृत्व। ऐसा समाज हम कायम करेंगे जिसमें समता होगी, स्वातंत्र्य होगा, भाईचारा होगा। अब उस क्रान्ति के १८० वर्ष हो गये, अबतक तो नहीं हुआ। निकट भविष्य में वहाँ समता होगी, स्वातन्त्र्य होगा, या भ्रातृत्व कायम होगा इसकी कोई सम्भावना नहीं है।

रूस की क्रान्ति

रूस की क्रान्ति है। मैं जब नौजवान था, अमेरिका में पढ़ता था, जान रीड की वह पुस्तक मैंने वहीं पढ़ी 'टेन डेज द शुक द वर्ल्ड'। यह अन्तरात्मा को बिलकुल हिला देनेवाली पुस्तक ! क्या हुआ ? फ्रांस की क्रान्ति से नेपोलियन बोनापार्ट पैदा हुआ, लेनिन की क्रान्ति से स्टालिन पैदा हुआ। 'सभी सत्ता सोवियत को, यह उनका नारा था। सोवियत नाम तो है उस देश का। लेकिन सोवियत के हाथ में कोई पावर है ऐसा तो है नहीं। सत्ता तो कम्युनिस्ट पार्टी के हाथ में है, उसमें भी कुछ मुट्ठी भर लोगों के हाथों में है। उन मुट्ठी भर लोगों में आपस में पैलेस रेवोल्यूशन (महल की क्रान्ति) होते रहते हैं। पावर में यह आयेगा कि वह आयेगा, इसके लिए आपस में लड़ाइयाँ होती हैं, लेकिन वहीं पर सत्ता केन्द्रित है।

अब आप देखें रूस की क्रान्ति को, कोई हाल की तो बात है नहीं। ७ नवम्बर १९६९ को ५२ वर्ष पूरे हो जायेंगे। अब इन ५२ वर्षों में क्या हालत हुई ? आज वहाँ मास्को विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को इतनी भी आजादी है कि जो भी बोलना चाहें बोलें, जो भी पढ़ना चाहें पढ़ें, जो लिखना चाहें लिखें ? कब पूंजीवाद मिटा, कब सामन्तवाद मिटा ! यहाँ भी क्रान्ति का पहला भाग तो पूर्ण रूप से सफल हुआ। जारशाही और उसके साथ जो सामन्तशाही थी वह मिट गयी और यहाँ रूस में तो पूंजीशाही भी पैदा हो गयी थी, इंडस्ट्रियल कैपिटलिज्म पैदा हो गया था। यह साम्राज्य बना रहा था। दोनों वर्ग मिलकर चल रहे थे। इन दोनों वर्गों को उसने समाप्त कर दिया और उसकी जड़ उसने खोद डाली। जैसे फ्रांस में लुई की हत्या हुई, यहाँ जार की हत्या हुई, जारिना की हत्या हुई, जार के लड़कों की हत्या हुई, सबकी हत्या हुई। उसमें तो सफलता हुई। इसीसे भ्रम हुआ कि क्रान्ति सफल हो गयी। जिस तन्त्र से, जिस सामाजिक रचना से, जिस व्यवस्था से जो लोग दुखित थे, शोषित थे, पीड़ित थे, जिसके प्रति रोष था क्रान्तिकारियों का, पीड़ितों का, दुखितों का, उसको देखा आँखों के सामने कि वह खत्म हुआ। तो भ्रम हुआ कि पूर्ण रूप से क्रान्ति सफल हो गयी।

आन्तरिक साम्यवाद का स्वरूप

हमने क्रान्ति की परिभाषा में बताया था कि सत्ता के ढाँचे में पूर्ण परिवर्तन हो। सामाजिक क्रान्ति है तो जनता के हाथों में सत्ता हो, आर्थिक भी, राजनीतिक भी। न राजनीतिक, न आर्थिक किसी प्रकार की सत्ता श्रमजीवी के हाथों में आज है नहीं। कार्ल मार्क्स ने कहा कि स्वत्वहरक (एक्सप्रोप्रिएटर्स) जब स्वत्वहीन (एक्सप्रोप्रिएट) हो जायेंगे तब मनुष्य स्वतंत्र होगा। सोवियत रूस में 'एक्सप्रोप्रिएटर्स' 'एक्सप्रोप्रिएट' हो गये लेकिन मनुष्य तो स्वतंत्र हुआ नहीं। चेकोस्लोवाकिया के कम्युनिस्ट पार्टी के उस समय के सर्वश्रेष्ठ नेता ने इस बात का प्रयास किया कि अब पार्टी की तानाशाही को थोड़ा कम किया जाय, बुद्धिजीवियों को, लेखकों को, पत्रकारों को, विद्यार्थियों को, ट्रेड यूनियन्स को कुछ स्वतन्त्रता दी जाय। २० जनवरी को उनका

सम्पन्न हुआ, जिसमें उन्होंने कहा कि समाजवाद को हम मानवीय चेहरा देना चाहते हैं। इससे रूस के शासकों को इतना भय हुआ मानो उसी क्षेत्र में, उनका ही कम्युनिस्ट राज्य नहीं है, कोई पूँजीवादी देश चढ़ा हो ऐसा भय हुआ। उन्होंने वहाँ धड़ाधड़-धड़ाधड़ चढ़कर ले गये, हवाई-जहाज, बहुत सारे हुआ। बाद में उन्होंने देखा कि अब वे लोग नहीं मानेंगे तो, रातोरात हवाई जहाज से रूस के टैंक पहुँच गये प्राहा में! उन्होंने कब्जा कर लिया। फिर भी दुबचेक को निभाने की कोशिश की। अब देखा कि यह आदमी तो चलता है। एक हद तक जाने को तैयार है, लेकिन इसके बाद आगे जाने को तैयार नहीं है तो हटा दिया। आप देखेंगे कि ५२ वर्ष के बाद यह हालत है कि बहुत मामूली तौर से रूसी की ढंगी की बात साम्यवादी देश से, ऐसा नहीं है। तो साम्यवाद की बुनियाद कितनी कमजोर है! अपने नौजवानों से भय, अपने मजदूरों से भय, जनता से भय। उनको आजादी नहीं, न वे रोटी माँग सकते हैं, न हड़ताल कर सकते हैं, न वे कोई आवाज उठा सकते हैं। आप यह कहते हैं कि ठीक है, क्रान्ति के बाद कुछ वर्षों तक शुद्धि कर लेना है और जो पुराने तत्त्व हैं, उनको मिटा देना है। पर अब कहाँ हैं रूस में, पूँजीवादी तत्त्व, सामन्तवादी तत्त्व, अब किससे भय है?

जब हमने मार्क्सवाद सीखा तब हमें यह बताया गया था कि जब दुनिया में साम्यवाद की स्थापना हो जायेगी तो विश्वशान्ति हो जायेगी। साम्यवादी शान्ति विश्वशान्ति लायेगी। अब हम ऐसी बात देख रहे हैं कि रूस भी कम्युनिस्ट देश है, चीन भी कम्युनिस्ट देश है, पर किले भर जमीन के लिए लड़ाई चल रही है। अब यह कौनसा साम्यवाद हुआ? एक अजीब मजाक हो गया है इस क्रान्ति का। ऐसा माना जाता था कि साम्यवाद में राष्ट्रवाद बह जायेगा, घुल जायेगा। लेकिन जितने साम्यवादी देश हैं सब राष्ट्रवाद के शिकार हो गये हैं। रूस भी राष्ट्रवादी राष्ट्र है, चीन है, यूगोस्लाविया है, चेकोस्लोवाकिया भी है, पोलैंड भी है, सब हैं। कोई अन्तर-राष्ट्रीयता हो, ऐसा उनमें दिखता नहीं है।

बिहार में ग्राम-स्वराज्य की शक्ति खड़ी करने के लिए पूरा समय लगा दूँगा !

राजकोट की प्रबन्ध-समिति के समक्ष जयप्रकाश नारायण की घोषणा

राजकोट। यहाँ २५,२६,२७ जुलाई '६९ को आयोजित प्रबन्ध-समिति की बैठक में बिहारदान के बाद की व्यूह रचना के सम्बन्ध में चर्चा करते हुए श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि, "प्राप्ति के काम में तो मैं पर्याप्त समय नहीं दे सका, बिहारदान के बाद काम में मैं पूरा समय दूँगा।" इसी सिलसिले में आपने कहा कि, "अहिंसक क्रान्ति के लिए समाज की बुनियाद तक जाना अनिवार्य है। भारत में क्रान्ति का प्राथमिक क्षेत्र गाँव ही है।"

जबतक बड़े थे वे और स्टालिन ने अन्तर-राष्ट्रीयता कायम रखी तबतक वह रही। जब वह डंडा हटा तो यह हुआ कि हर देश को अपने ही ढंग से साम्यवादी क्रान्ति करने का अधिकार है। हर देश में अलग समाजवाद का रूप होगा। यह सारी मान्यताएँ लोगों की हुईं। जब मास्को में अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन हुआ तो उद्देश्य यह था कि चीन को आइसोलेट (अलग) करें, लेकिन वह तो संभव नहीं हुआ। कई देशों की पार्टियाँ उसमें गयीं नहीं। उन्होंने उसमें भाग ही नहीं लिया। जो पार्टियाँ गयी थीं उन्होंने भी जो कुछ कहा था रूस ने चीन के बारे में, अन्तर-राष्ट्रीयता के बारे में, अन्तरराष्ट्रीय साम्यवाद के बारे में बहुत पार्टियों ने 'नोट आफ रिजर्वेशन' के साथ मंजूर किया। कुछ ने दस्तखत करने से इनकार किया। यूरोप की सबसे बड़ी पार्टियाँ फ्रांस की और उसके बाद इटली की, दोनों ने रिजर्वेशन के साथ हस्ताक्षर किया। चेकोस्लोवाकिया को इटली की पार्टी ने आज तक मान्य नहीं किया। यह अधिकार एक देश के कम्युनिस्ट राज्य को नहीं है कि दूसरे देश में जहाँ कम्युनिस्ट राज्य है वहाँ हथियारों के बल पर दबाव डाले। लेकिन रूस की फौजें बैठी हुई हैं, हंगरी में, बुल्गारिया में, पोलैंड में, चेकोस्लोवाकिया में चली गयी, रूमानिया में नहीं हैं, कब चली जायगी मालूम नहीं। यह सारा मैं इसलिए निवेदन कर रहा हूँ कि जो कुछ उन लोगों ने कहा था वह पता नहीं कब होनेवाला है। कब वह नया समाज बनेगा, जनता का राज होगा, श्रमजीवी का राज्य होगा, उसके हाथ में सत्ता होगी। कब वह जमाना आयेगा जब राज्य का ही लोप हो जायेगा। जितने उनके ऊँचे ऊँचे उद्देश्य थे, उनकी प्राप्ति कब होगी, पता नहीं।

ऐसा होता क्यों है?

प्रश्न उठता है कि यह होता क्यों है? हिंसक क्रान्तियों की यही परिणति होती तो हर क्रान्तियों के नेता बेईमान होते हैं क्या? बदमाश होते हैं क्या? सत्तालोलुप होते हैं क्या? रक्त के लिए प्यासे होते हैं क्या? ऐसी बात नहीं है। तो ऐसा क्यों होता है? यह इसलिए होता है कि हिंसा का यही लॉजिक है। हिंसा से अगर क्रान्ति होगी तो परिणाम यही होगा, दूसरा कुछ हो नहीं सकता। क्या होता है हिंसक क्रान्ति में? जो बिखरी हुई, असंगठित हिंसा है, उस हिंसा में से एक संगठित हिंसा का जन्म होता है, इसको 'रेड आर्मी' कहें, 'पीपुल्स लिबरेशन आर्मी' कहें, जो कहें, सत्ता उनके हाथों में जाती है जिनके हाथों में इस संगठित हिंसा के साधन जाते हैं। तो मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि हिंसा से सामाजिक क्रान्ति हो ही नहीं सकती है।

—अगले अंक में करुणा की क्रान्ति

कानून और पुलिस का संरक्षण : एक कोरा वहम

[पिछली ३१ जुलाई को प० बंगाल की विधान सभा में हुए ऐतिहासिक पुलिस-काण्ड के बाद शायद पहली बार आज की लोकतंत्रीय व्यवस्था को कायम रखने में मददगार एक मुख्य शक्ति पुलिस ने भारत में लोकतंत्र के प्रति आस्थावान लोगों को यह सोचने के लिए मजबूर किया है कि लोकतंत्र की मुख्य शक्ति अगर 'लोक' न होकर 'तंत्र' हो जाय तो लोकतंत्र और लोक प्रतिनिधि की स्थिति क्या हो सकती है? वास्तविक लोकतंत्र की स्थापना के लिए जितनी जल्दी पुलिस और सेना के सहारे को छोड़कर भारत 'लोक' की 'संगठित चेतना' को अपना आधार बनाने के काम में जुटेगा, उतनी ही जल्दी यहाँ का लोकतंत्र तानाशाही खतरे की स्थिति से दूर हटेगा। कानून, पुलिस, सेना से 'लोक'-संरक्षण का भरोसा एक कोरा वहम है। प्रस्तुत लेख में इसे स्पष्ट किया है जीवन भर कानून के द्वारा समाज में न्याय-स्थापन का काम करनेवाले एक रिटायर्ड जज कामतानाथ गुप्त ने। उत्तरप्रदेश के सर्वोदय परिवार में 'जज साहब' के सम्बोधन से पुकारे जानेवाले श्री कामता नाथ गुप्त ने अपने जीवन को अब ग्रामदान-आन्दोलन के लिए समर्पित कर दिया है।—सं०]

कानून ही गुनहगार

पुलिस और कानून, खासकर भारत में किसीकी भी जानमाल और आबरू की हिफाजत न कर सकते हैं और न उन्होंने उनके संरक्षण की कोई जिम्मेवारी ही ली है। भारत के किसी पुलिस-सम्बन्धी या अन्य कानून में इस संरक्षण या उसकी जिम्मेवारी की कोई व्यवस्था नहीं है। यह केवल कल्पना ही रही है कि सरकार, पुलिस तथा कानून जान माल और इज्जत की हिफाजत के लिए हैं। शायद ही भारतीय इतिहास में कोई ऐसा उदाहरण मिले कि कानून या पुलिस ने किसी जुर्म, कत्ल, डकैती, चोरी, व्यभिचार, रिश्वतखोरी, चोरबाजारी आदि किसीको भी रोक पाने में सफलता पायी हो। जिस वक्त सेंध, चोरी, डकैती, कत्ल, व्यभिचार, गबन, ४२० आदि के जुर्म किये जाते हैं, *उस समय पुलिस कहीं भी नजदीक नहीं* होती, जो उन्हें रोक सके। कानून तो केवल कागजों के पन्नों के भीतर ही धरा रहता है। होता यह है कि जब ये अपराध हो चुकते हैं, तब कानून पुलिस के कर्मचारियों के द्वारा कागजात की खानापूरी कराता है। कभी कोई सही जुर्म करनेवाला पकड़ा गया, तो कभी जुर्म न करनेवाला ही फँस गया।

कानून में जुर्म करने की कोई मनाही नहीं है। जितने जुर्म दंड देनेवाले कानून में दर्ज हैं उनकी केवल व्याख्या की गयी है। किसी कानून में ऐसा नहीं है कि किसी जुर्म करने की मनाही हो। जुर्म की व्याख्या कर दी गयी और फिर उसके बाद उस *व्याख्या के अन्तर्गत जो जुर्म बन सकी,* जिस पर जुर्म साबित हुआ उसको, सजा दी गयी। इतना ही होता है। जिस प्रकार का समाज आज चल रहा है उसको कायम रखते हुए कानून और पुलिस अपराध बन्द नहीं करा सकती है। यह भी खामख्याली है कि सजा देने का असर यह हो सकता है कि अपराध कम हो जायँ या बन्द हो जायँ। अनुभव से यह बात सिद्ध नहीं है।

कामतानाथ गुप्त
रिटायर्ड जज

अंग्रेजों के जमाने में अपराध होते थे और उनके लिए सजाएँ भी होती थीं। वे ही सारे कानून कम बेश अब भी लागू हैं और अंग्रेजों के चले जाने के इतने वर्षों के बाद अपराध बढ़े ही हैं, घटे नहीं हैं। इसीलिए मैंने कहा कि आज की समाज-व्यवस्था कायम रखते हुए अपराध कम नहीं हो सकते हैं, *बढ़ते ही जायेंगे, और उनको सहन करना* पड़ेगा। अपराधियों को सजा या दण्ड का कोई भय नहीं होता। अनुभव यह कहता है कि नेक आदमी ही कानून से डरा करते हैं और उस पर पाबन्द रहने का ध्यान रखते हैं। अपराधियों के लिए कानून और पुलिस का कोई अस्तित्व नहीं है; अपराध करेंगे, सजा भी काटेंगे। एक बहुत बड़े पश्चिमी कानून के ज्ञाता का एक वाक्य है : "It is the law that commits sin"—यह कानून ही है जो गुनाह किया करता है।

समाज में बेकारी : जेल में काम भी भोजन भी

एक दो उदाहरण जो मेरी जानकारी में हैं, उनको यहाँ प्रस्तुत करता हूँ। हर्षा हुआ, लखनऊ के एक बाजार में दिन-दहाड़े एक अपराधी, एक पेड़ के नीचे सोते हुए दूकानदार के गले की जंजीर तोड़कर ले भागा। दूकानदार जग गया, उसने शोर मचाया। अपराधी कुछ ही दूरी पर पकड़ लिया गया। मजिस्ट्रेट के इजलास पर कोर्ट-इन्सपेक्टर ने उसके खिलाफ यह दलील पेश की कि 'बड़ा शातिर चोर है, इस पर दफा ७५ लगायी जाय, मानो बढ़ी हुई सजा दी जाय, क्योंकि दो बरस में इसने तीन चोरियाँ की।' पहली दफा जब पकड़ा गया तब मजिस्ट्रेट ने उसे दो महीने की कैद की सजा दी थी। कैद से छूटने के बाद ही उसने दूसरी चोरी की। तब मजिस्ट्रेट ने उसे ५ महीने की सजा दी। दूसरी सजा काटने के बाद फिर जब वह जेल से बाहर आया तो उसने यह तीसरी चोरी की है। अपराधी ने जवाब में कहा, "मेरी भी यही शिकायत है, जो कोर्ट-इन्सपेक्टर कर रहे हैं। क्योंकि पहली दफा जब मैंने चोरी की, तब मुझको मजिस्ट्रेट ने केवल दो महीने कैद की सजा दी, जब कि वे २ साल की कैद दे सकते थे। फिर दुबारा जब मैंने चोरी की, तब फिर मुझको ५ ही महीने की कैद दी गयी तो मेरी प्रार्थना है कि इस दफा इस तीसरी चोरी की सजा में मुझे २ बरस की पूरी कैद दी जाय।" पूछे जाने पर कि आखिर वह इतनी लम्बी सजा क्यों चाहता है, अपराधी बोला, "इसलिए कि समाज में मेरे लिए कोई रोजी धन्धे *की व्यवस्था नहीं है। मैं गरीब हूँ, जेल में* काम भी मिलेगा और खाना भी मिलेगा। तो बिना अपराध किये जेल में कैसे जा सकता हूँ?" एक दूसरा उदाहरण—एक दफा बिजनौर में जबरदस्ती एक कहार युवक के कान से सोने की एक छोटी बाली (Ring) नोचकर ले भागा था, जिसके अपराध में मैंने उसे १० बरस की कैद की सजा दी। तो उसने मुझे इजलास में मेरा उपकार मानते

हुए कहा "मुझे सन्तोष है कि आपने मेरे खाने-पीने की १० बरस की व्यवस्था कर दी है।" क्या ऐसी घटनाओं के सम्बन्ध में समाज की बनावट का भी कोई दोष माना जायेगा या नहीं ? मैं यहाँ पर कानून के मतहेरान और विसंगतियों की चर्चा नहीं कर रहा हूँ, वह विषय तो अपने में अलग ही है। इस चर्चा का सारांश यह है कि कानून ने दरवाजा खोल रखा है कि अगर कोई काम और रोजगार न हो तो चोरी कर सकते हो, डाका, लूटमार कर सकते हो और फिर जेल में काम भी मिलेगा और खाने को भी मिलेगा।

संरक्षण जीवितों को नहीं मृतकों को

एक दफा बिहार में विनोबाजी की यात्रा में मैं सम्मिलित हुआ। उनकी सुबह की यात्रा प्रारम्भ होने पर उनके यात्री-दल में सबसे पीछे कुछ पुलिसवालों को उनकी वर्दी में मैंने देखा। पूछने पर विनोबाजी ने कहा कि उन्होंने मुख्यमन्त्री को पत्र लिखवा दिया था कि पुलिसवाले उनके साथ न भेजे जायें। जवाब यह आया कि विनोबाजी को उनकी जरूरत नहीं है, फिर भी सरकार का फर्ज है कि उनके संरक्षण के लिए पुलिस उनके साथ भेजी जाय। मैंने उस समय कहा कि पुलिस के पास किसीके जान की संरक्षण की व्यवस्था नहीं है। जिन्दे आदमी की वे हिफाजत नहीं कर सकते। जब वह मार डाला जायेगा, तब उसकी लाश की हिफाजत कर सकते हैं, और उसे बन्द बक्स में सील लगाकर पूरी हिफाजत के साथ उसे सिविल-सर्जन के पास पोस्ट-मार्टम् यानी चीर-फाड़ के लिए ले जा सकते हैं। और, फिर उस लाश की हिफाजत का सबूत भी इजलास पर देने की व्यवस्था है। इस तरह जिन्दा की हिफाजत नहीं, लाश की हिफाजत पुलिस और कानून कर सकते हैं। यदि कानून या पुलिस जिन्दा की हिफाजत कर सकते होते तो गांधीजी को ३ गोलियों का शिकार नहीं होना पड़ता।

क्या कानून या पुलिस उसकी जिम्मेदारी लेते हैं कि सरकारी मुलाजिम ठीक समय से काम करेंगे ? रिश्वत नहीं लेंगे ? हड़ताल नहीं करेंगे ? क्या कानून या पुलिस इसकी जिम्मेदारी लेते हैं कि रेलगाड़ियाँ ठीक समय से चलेंगी ? बरखिलाफ इसके समय-सारणियों में यह जाहिर कर दिया जाता है कि गाड़ियों के समय पर चलने की कोई जिम्मेदारी नहीं ली जाती है। रेलवे का कानून यह है कि बिना मुसाफिरों की स्वीकृति के रेल के डिब्बे में धूम्रपान नहीं किया जायेगा। लेकिन रेल के डिब्बे में ऐसा लिखने की कोई व्यवस्था नहीं है। वहाँ यह लिखा मिलता है कि अगर कोई मुसाफिर ऐतराज करे तो धूम्रपान न किया जाये। कानून में धूम्रपान करनेवाले का ही यह कर्तव्य है कि वह स्वयं धूम्रपान करने के पूर्व मुसाफिरों की रजामन्दी हासिल करे, न कि उन मुसाफिरों का धर्म है कि वे ऐतराज करें, जिसका नतीजा प्रायः झगड़ा मोल लेना हुआ करता है। लेकिन वहाँ धूम्रपान हो रहा है और अन्य मुसाफिर परेशान हो रहे हैं। उस समय पुलिस या कानून रेल के डिब्बे में क्या मदद करते हैं ?

अपराधी को सजा देने का क्या अधिकार है ?

क्या जनता की ५ मुख्य आवश्यकताओं (खाना, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य और शिक्षा) की पूर्ति करने की व्यवस्था कोई पुलिस या कानून करती है या कर सकती है ? हाँ, एक उदाहरण हमारे पास यह जरूर है कि पुलिस के संरक्षण में शराब बिकवायी जा सकती है। क्या पुलिस या कानून ने इसकी जिम्मेदारी ली है या व्यवस्था की है कि नागरिक को सभ्य बनाया जा सके। क्या पुलिस या कानून ने कोई ऐसी व्यवस्था की है कि जनता को इस काबिल बनाये कि जनता स्वयं अपने पैरों पर खड़ी होकर अपना कार्यभार सम्भाले और उसे किसी व्यवस्थापक, मैनेजर, प्रबन्धक का मुँह न देखना पड़े। इतना और ध्यान में रखना है कि अगर जनता को सभ्य बनाने की कोई योजना या जिम्मेदारी कानून या पुलिस ने अपने हाथ में नहीं रखी है, यानी उसको सभ्य बनाने की कोई दिशा नहीं दी है तो कानून या पुलिस को क्या कोई अधिकार इसका होना चाहिए कि जब कोई व्यक्ति अपराध करे तो उसको कानून और पुलिस सजा दे ?

"When you have not taught the people to behave well, what right have you got to take the sword against them when they misbehave?" (अगर आपने लोगों को भद्र व्यवहार नहीं सिखाया है, तब आपको क्या अधिकार है कि उनके अभद्र व्यवहार के कारण उनके विरोध में आप खड्गधारी बनें ?) ऐसा एक दफा लार्ड मैकाले ने 'हाउस आफ कामन्स' में 'निःशुल्क शिक्षण बिल' पर बहस करते हुए कहा था।

अब प्रश्न होता है कि होना क्या चाहिए ? और कैसे होगा ? इसका कुछ संकेत महात्मा गांधी ने देश के सामने कुछ विस्तार सहित भी रखा था। उनकी अन्त में एक वसीयत भी थी। हमने उनकी पूर्ण उपेक्षा की। उस नयी समाज-रचना की जिसकी जरूरत है और जिसका संकेत गांधीजी ने किया था, सन्त विनोबा पूरी तफसील के साथ सारे जगत्, और मुख्य रूप से इस देश के सामने वर्षों से प्रस्तुत कर रहे हैं; उनकी भी उपेक्षा की गयी।

आदर्शवादिता और वास्तविकता

यह कहने से काम नहीं चलेगा कि गांधी आदर्शवादी (Idealist) थे। यह भूलना नहीं चाहिए कि यह चमत्कारों का युग है। आदर्शवादिता (Idealism) जब परिश्रम किया जाता है, तब ही किसी हद तक वास्तविकता (Realism) में परिणत होती है। बीमारी की दवा सुझाये जाने पर औषधि का प्रयोग किये बिना, क्या स्वास्थ्य की आशा की जा सकती है ? गांधीजी का 'करो या मरो' का नारा आज भी लागू है। उन्होंने आदर्श को वास्तविकता में लाने का प्रयास किया और सफल भी हुए, लेकिन उससे बड़ा अन्धा कोई नहीं, जो देखते रहने पर भी नहीं देखता। आज के शासकों (कल्याणकारी समाज चलानेवालों) और राजनीतिक पार्टियों का इस देश में यही हाल है। अगर गांधीजी और विनोबाजी के सुझाये गये रास्ते के अतिरिक्त कोई अन्य सुझाव नयी समाज-रचना या समाज-सुधार का सन्तोषजनक किसी अन्य व्यक्ति के पास हो तो उसे देशहित में प्रस्तुत करना चाहिए, अन्यथा उसे व्यावहारिक बनाने में जुट जाना चाहिए, जिसे गांधीजी ने देखा था, जिसे विनोबा कर रहे हैं।●

छोटानागपुर क्षेत्र के आदिवासियों की रामकहानी : श्री हरमन लकड़ा की जुबानी

[पिछले अंक में आप पढ़ चुके हैं आदिवासी नेता श्री हरमन लकड़ा से एक मुलाकात। आदिवासियों के उत्थान के लिए उनके मन में जो तड़प है, वह निरन्तर उनके प्रयासों में प्रकट होती रहती है। बिहार के आदिवासियों का एक संक्षिप्त इतिहास देकर उनके विकास की दिशा का संकेत करते हुए 'बाबा विनोबा भावेजी की सेवा में' उन्होंने यह लेख प्रस्तुत किया है। —सम्पादक]

जो भी कारण हो, चाहे आर्यों से खदेड़े जाने की वजह से या अपनी मर्जी से, यह बात निर्विवाद है कि आदिवासीगण अपने जीवन-यापन के लिए तराइयों को छोड़ जंगलों में रहना पसन्द किये। जगह-जगह जंगलों को छाँटकर अपने ढंग से खेती, आखेट, नदी-नालों से मछली इत्यादि मारकर और जंगलों से साग-सब्जी, फल-फूल, कन्द-मूल खाकर जंगल-में-मंगल करते थे। इनकी दुनिया सीमित थी। दिमाग छोटा था, पर शायद दिल बड़ा बड़ा था। जब एक परिवार के लिए किसी खास वजह से जीवन-यापन नहीं हो पाता था, तो परिवार का एक हिस्सा दूसरी जगह जा बसता था। लोहार और कुम्हार के कामों को छोड़कर बाकी सब काम, जैसे-बढ़ई का काम, मिस्त्री का काम, घर बनाना, कपास धोटना और कपड़ा बुनना इत्यादि, हर परिवार में विरासत में चला आता था।

स्वायत्त ग्राम व्यवस्था

गाँव बनते गये, सामाजिक ढाँचा बदलता गया। हर गाँव में पंचायतें बनीं। अभी भी वे पंचायतें हैं, मगर कुछ बिगड़ी रूप में। इनके बीच पर्दे का रिवाज न था, और न है। आजादी का जीवन था। पुरुष-स्त्री, लड़के-लड़कियाँ और सब परिवारों के लोगों का एकसाथ खाना-पीना, काम करना (भारी कामों में सामूहिक मदद करना), शिकार खेलना, गीत-भजन और एकसाथ सम्मिलित नाच करना, ये सारी प्रथाएँ अभी तक चली आ रही हैं। कोई ऊँच-नीच नहीं था। जब गाँव बने तो गाँव में पंचायत-पद्धति शासन के लिए बनायी गयी। यह पद्धति कब आयी, किस सदी में आयी, यह कहना मुश्किल है। जमीन के मालिक नहीं, पर महतो या मुण्डा (कहीं-कहीं दूसरा नाम भी है) या देव 'मिन' चुने गये। गाँव का पुजारी 'पहन' कहलाया। गाँव का महतो, पहन और कम-से-कम तीन मुख्य व्यक्ति गाँव के पंचपरमेश्वर सर्वसम्मति से चुने जाने लगे। एक बात जरूर है कि 'महतो' और 'पहन' का पद पुश्तैनी (हेरीडिटरी) भी हुआ। उनके बड़े लड़के के जिम्मे चला यह काम बना आता है। मगर इनको बदलने का हक किसी विशेष कारणवश गाँव के लोगों को सर्वसम्मति से था। पंचपरमेश्वर इसलिए कहे जाते थे कि इनका फैसला कोई तोड़ नहीं सकता था। यह अभी भी मानना पड़ता है। इनका आदर बहुत ज्यादा था, पर मौजूदा पंचायत-राज्य की वजह से अब उनका मान घटता चला जा रहा है। आज का पंचायत-राज्य ऊपर से लाद दिया गया है।

पंचायत-परिषदें

उरांव जन जातियों के बीच कई गाँवों को मिलाकर गाँव-पंचायतों का 'फेडरेशन' हुआ। पाँच गाँवों को मिलाकर कहीं पाँच-पड़हा बना, कहीं सात गाँवों को मिलाकर सात-पड़हा कहलाया। इसी तरह नाव-पड़हा, बारह-पड़हा, इत्यादि बने। बड़ा-से-बड़ा इक्कीस और बाईस-पड़हा तक है। मुण्डा भाइयों के बीच गोत्र के मुताबिक पड़हा बने, जैसे-होरो पड़हा, टोप्पो पड़हा, इत्यादि। एक गोत्र के कई गाँववालों का एक पड़हा बना। पड़हा के राजा (मगर राजा, जैसा हम लोग समझते हैं वैसा नहीं, शायद 'प्रेसीडेंट' या 'चेयरमैन' का अर्थ लगायें तो अच्छा होगा।), दीवान (मंत्री), सेनापति, जिनको पल्टन स्वयंसेवकों के अर्थ में समझना चाहिए, और कोटवार (चौकीदार या नोटिस बाँटने और ढिंढोरा पीटनेवाला) सर्वसम्मति से चुने जाते थे। इस तरह से जिस गाँव का राजा हुआ, पूरा गाँव राजा गाँव, दीवान-गाँव, और कोटवार-गाँव इत्यादि कहलाया। जब पड़हा की बैठकी होती थी या अभी भी जब होती है, तो आम को टहनी (डहुरा घुमाना) लेकर पूरे पड़हा में घूमकर राजा और दीवान की आज्ञा से कोटवार गाँववालों को दिन, तारीख आदि की खबर देता था, आज भी देता पड़ता है। अहम सवाल या बड़े मुकदमे का फैसला पड़हा-पंच करता था। समाज-विरोधी अपराध (एण्टीसोशल क्राईम) या किसी जबर्दस्त गुनाह की सबसे बड़ी सजा थी समाज से बहिष्कृत करने की, या फिर बहुत बड़ा जुर्माना देकर पूरे गाँववालों को भोज खिलाने की। इस फैसले के विरोध में कोई न गया है, न जा सकता है। खड़िया और दूसरी आदिवासी जातियों में करीब ऐसी ही प्रथाएँ हैं।

जमाने गुजर गये, कितने गुजरे पता नहीं। मुगलों के राज्य के समय इस झारखंड (झारखण्ड शब्द मुगल इतिहास में है) में कई बार मुगलों ने चढ़ाई की। वे राजाओं से कुछ पैसे वसूल कर चले जाते थे। इसके बाद बीच बीच में मराठे लुटेरों का लुका-छिपा आक्रमण होता था। इनसे बचने के लिए और कुछ सेनापति, जो सरदार कहलाये, बने। वे 'सरदार' या सरदार लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध हैं।

अंग्रेज आये, इनसे आदिवासियों की लड़ाई जहाँ-तहाँ जोरों से हुई। वे कुछ सफल हुए और आदिवासियों का दमन करने के लिए उन्होंने गैर-आदिवासियों की जमीनदारी प्रथा चलायी। आदिवासी छाता लेकर नहीं चल सकता था, बर्तन में नहीं खा सकता था और बेगारी करने के लिए मजबूर किया जाता था।

बिरसा भगवान का नेतृत्व

उन्नीसवीं शताब्दी के बीच मिशनरियों का आना हुआ। कुछ क्रीश्चियन हुए। पहले तो आदिवासी समाज को वे समझ नहीं पाये, और क्रीश्चियनों को बाकी आदिवासी, जिनको संसार (सांसारिक) कहते हैं, अलग रखना चाहे, मगर बाद में अपनी गलतियों को महसूस कर ऐसा करना छोड़ दिये।

मिशनरियों ने स्कूल, अस्पताल खोलकर आदिवासियों की आँखें खोलनी शुरू की। इनकी दुनिया का दायरा कुछ बढ़ने लगा। कुछ लोग शिक्षित हुए। बिरसा भगवान, जो चाईबासा क्रीश्चियन मिडल स्कूल में पढ़े थे, चौबीस या पच्चीस वर्ष की उम्र में आदिवासियों के एक सामाजिक और धार्मिक सुधारक के रूप में सामने आये। वे बाँसुरी और मांदर बहुत सुन्दर बजाते थे। कुछ कविताएँ भी बना लेते थे। उन्होंने देखा कि आदिवासियों की दुनिया पर परदेशियों का हमला हो रहा है। इससे बचने का उपाय वे सोचने लगे। उन सरदारों ने, जिनका वर्णन पहले हो चुका है। जिनमें कुछ क्रिश्चियन भी थे, और जो एक किस्म से राजनैतिक नेता भी थे बिरसा भगवान को अपना नेता बनाकर अंग्रेजों और परदेशियों के विरुद्ध लोहा लिया। छिटपुट लड़ाइयाँ हुईं, तीर चले, और मार-काट हुई, मगर बन्दूक के सामने हार खानी पड़ी। बिरसा बन्दी हुए, और जेल में शहीद होकर मरे।

इसके बाद अंग्रेजों ने मिशनरियों के सुझाने-बुझाने पर जमीन-सम्बन्धी कानूनों का सुधार किया। छोटानागपुर टेनेन्सी ऐक्ट बनाया। जहाँ-तहाँ कुछ स्कूल वगैरह खुले।

आदिवासियों के बीच अपना 'नेशनल ड्रींक' था हँड़िया था। यह चावल में अच्छी कच्ची जड़ी बूटियों को देकर और 'फरमेंट' लाकर बनाया जाता है। खासकर पर्व-त्योहारों में, बड़े बड़े सामूहिक कामों में, जैसे–पूरे घर की मरम्मत, धान की रोपाई, बरसात भर के लिए लकड़ी जुटाने-करने इत्यादि के कामों के समय में हँड़िया का व्यवहार किया जाता था। यह विशेषकर थकावट मिटाने के लिए और नाच-गान करने के लिए लिया जाता था। अंग्रेजों ने भट्ठी खोल दी, और दारू बिकने लगी। पहले महुआ खाने के काम में आता था अब उसकी दारू बनने लगी।

स्वराज्य-आन्दोलन और उसके बाद

गांधी बाबा का आन्दोलन चला। यहाँ छोटानागपुर में 'टाना भगतों' का आन्दोलन भी चला था। यह कुछ सामाजिक था और कुछ राजनैतिक था। इनका कहना था, और अभी भी कहना यह है कि जमीन भगवान की है, इसकी मालगुजारी हम सरकार को नहीं देंगे। गांधी बाबा के आन्दोलन की बात सुनकर ये कलकत्ता के कांग्रेस-अधिवेशन में पहुँचे। और बाबू राजेन्द्र प्रसाद से इनका बहुत सम्पर्क हुआ, और इस तरह आदिवासियों ने भी स्वराज्य-आन्दोलन में भाग लिया।

स्वराज्य मिला। गांधी बाबा शहीद होकर अमर हुए! 'सेकुलर गवर्मेण्ट आयी। छोटे-बड़े स्कूलों में धर्म की पढ़ाई बन्द कर दी गयी। इसकी सजा भी सरकारी अफसरों के द्वारा कहीं-कहीं लोगों को भुगतनी पड़ी। स्कूलों का अनुशासन धर्म-वर्म की पढ़ाई छोड़ देने पर कमजोर होता चला गया। हमारे कुछ आदिवासी 'लीडरों' का कहना है कि भगवान को स्कूल से निकाल दिया गया और अनुशासन खराब हुआ। स्वराज्य होने पर और खासकर श्री के० बी० सहाय के 'रेवेन्यू मिनिस्टर' होने पर ज्यादा-से-ज्यादा भट्ठियाँ खुलने लगीं। गरीबों के पैसे लुटने लगे। एसेम्बली और कौन्सिलों में आदिवासी नेताओं ने भट्ठियों के विरुद्ध जोरदार आवाज उठायी, लेकिन वे विफल हो गये। अभी तक आवाज उठती है, मगर इस पर ध्यान नहीं दिया जाता है। इसके अलावा हम पंचायत-राज्य में 'परचुनियों' की भरमार हो गयी है। एक्साइज विभागवाले, थानावाले और कुछ मुखिया 'परचुनियों' से घूस खाकर मोटे होने लगे हैं।

आदिवासियों की एक कमजोरी है नशाबाजी, दूसरी विशेष कमजोरी है 'हीनभाव'। पहली कमजोरी से आदिवासियों को बचाने के लिए परचुनिया-पद्धति और भट्ठियों का बन्द होना निहायत जरूरी है। दूसरी कमजोरी से बचने के लिए शिक्षा का व्यापक प्रचार, और दूसरों के साथ कंधे-से-कंधा मिलाकर और बिना डर आगे बढ़ना जरूरी है।

हमारा निवेदन विनोबा भावे से यही है कि हमारी (आदिवासियों की) स्थिति को समझकर हमारे भविष्य को सुधारने के लिए अच्छी सलाह दें। हमारी परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि विनोबा बाबाजी अमर रहें!

—इग्नस खकड़ा एम० एल० सी०
खुंटी टोली, सिमडेगा, राँची

आभार और अपेक्षा

दिनांक २२ जुलाई '६९ को भागलपुर जिलादान का महत्त्वपूर्ण कार्य पूर्ण हुआ। इसे सम्पन्न करके भागलपुर जिले के लोगों ने अपने सक्रिय पुरुषार्थ को प्रकट किया। समय-समय पर प्रान्तीय स्तर के नेताओं का मार्ग-दर्शन मिलता रहा। पूर्णिया, मुंगेर तथा दरभंगा के साथियों ने इस महत्त्वपूर्ण आन्दोलन में हमारी मदद की। भागलपुर जिले के बिहार खादी-ग्रा० संघ के जिला-पदाधिकारी, व्यवस्थापक एवं कार्यकर्ताओं ने अपने भंडार के दैनिक कार्यक्रमों को बन्द करके भागलपुर जिला के जिला शिक्षा-पदाधिकारी की प्रेरणा से स्थानीय शिक्षण-संस्था के अधिकारी और शिक्षक ने अपनी रोज-रोज की जिम्मेवारी को सँभालते हुए इस कार्य को पूर्ण करने में लगे। उसके साथ-साथ तमाम राजनैतिक पक्ष, पंचायत समिति, सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं के लोगों का जो सराहनीय तथा उत्साहवर्द्धक सहयोग मिला है, उसे हम भूल नहीं सकते। हम सबके प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अब इस आन्दोलन का प्रथम चरण पूरा हो गया है। यह कार्य इस आन्दोलन का एक संकेत मात्र है। आगे का कार्य ग्राम-निर्माण तथा अहिंसक समाज-रचना का है। यह ज्यादा क्रान्तिकारी कार्य होगा। इस कार्य में और भी विशेष पुरुषार्थ, निष्ठा एवं पराक्रम की आवश्यकता होगी। तभी ग्राम-स्वराज्य की दिशा में समाज आगे बढ़ेगा और मूल्य-परिवर्तन की क्रान्ति होगी। आशा है, जिस प्रकार इस आन्दोलन के प्रथम चरण में सबने उत्साह दिखाया है, उससे दूने उत्साह के साथ आगे के कार्य में जुटेंगे। यह हमारा विनम्र निवेदन है। विनीत

नागेश्वर सेन, साकेत बिहारी सिंह
मंत्री
जिला ग्रामदान-प्राप्ति समिति
भागलपुर (बिहार)

तरुण-शान्ति-सेना

भागलपुर में 'हिरोशिमा-दिवस'

गत ६ अगस्त को तरुण-शान्ति-सेना भागलपुर के तत्वावधान में तरुण शान्ति-सेना दिवस (हिरोशिमा-दिवस) मनाया गया। इस अवसर पर सुबह स्थानीय जरलाही मुहल्ला में सफाई का काम किया गया। भागलपुर शहर में यह मेहतरों की बस्ती है और वहाँ की सफाई नगरपालिका द्वारा भी सम्भव नहीं हो पा रही थी। तरुण-शान्ति-सेना के इस प्रयास मे नगरपालिका के अधिकारियों ने भी साथ दिया तथा अपूर्ण काम को पूरा करने का आश्वासन दिया।

दोपहर मे तरुण शान्ति-सेना के लिए सदस्य बनाने का अभियान चलाया गया, और ११ नये सदस्य बनाये गये। सध्या में एक मौन जुलूस निकाला गया, जो शहर के प्रमुख सड़कों से गुजरता हुआ, श्री मारवाड़ी कन्या पाठशाला में आकर सभा में परिणत हो गया। जुलूस में सभी सदस्यों के हाथ में 'प्लेकार्ड' थे, जिन पर निम्नलिखित वाक्य अंकित थे : राष्ट्रीय एकता . जिन्दाबाद, हमारा मत्र : जय जगत्, हमारा लक्ष्य। विश्व-शान्ति, लाटरी जुआ है, लाटरी . मत खरीदें, लाटरी : बन्द करें, अनैतिक कमाई : नहीं चाहिए. ६ अगस्त तरुण शान्ति-सेना दिवस, ६ अगस्त हिरोशिमा-दिवस।

शाम को एक सभा का आयोजन किया गया। सभा की अध्यक्षता श्री आनन्द शास्त्री, उपनिदेशक, जनसम्पर्क विभाग, भागलपुर ने की। तरुण शान्ति-सेना के सदस्यों ने आगत सज्जनों का स्वागत किया। सभा का आरम्भ शान्ति-गीत से किया गया। सयोजक तरुण-शान्ति-सेना भागलपुर ने तरुण शान्ति-सेना का सक्षिप्त परिचय दिया तथा 'हिरोशिमा-दिवस' को तरुण शान्ति-सेना दिवस के रूप में क्यों मनाया जाता है, इस पर प्रकाश डाला।

श्री मोहरी लाल सिंघानिया, एडवोकेट, मार्गदर्शक तरुण शान्ति सेना भागलपुर, ने इस अवसर पर तरुण शान्ति सेना के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि तरुण शान्ति-सेना दिवस, जो आज मनाया जा रहा है, वह हिंसा के विरुद्ध अहिंसात्मक कदम है, आज अहिंसा का स्थान संसार में सर्वोपरी है। इन्होंने कहा कि तरुण-शान्ति सेना अहिंसात्मक सेना है, जिसका काम है सत्य, प्रेम और करुणा से समाज के मानवों के हृदय को बदलना। तरुण शान्ति सेना समाज-सेवा और शान्तिमय ढग से किसी भी समस्या का समाधान करती आ रही है। आज इस तरह की सस्था की आवश्यकता देश को है।

आपने लाटरी को सरकारी जुआ बताया, तथा जनता से आह्वान किया कि लाटरी के टिकट न खरीदें तथा सरकार से इस अनैतिक कमाई को तुरन्त बन्द कर देने की अपील की।

शहर के अन्य विशिष्ट नागरिकों ने भी अहिंसा के महत्त्व, तरुण शान्ति सेना के कामो की प्रशसा तथा लाटरी का विरोध किया।

अध्यक्ष महोदय ने अपने भाषण में कहा कि, यह शताब्दी वर्ष है। अत बापू की आत्मा की शान्ति के लिए हमें दृढ़सकल्प होकर समाज सेवा का काम करना है, तथा बापू के सदेश को घर घर पहुँचाना है।

इस अवसरों पर बिहार सरकार की गीत-मडली के कलाकारो एव तरुण-शान्ति-सेना भागलपुर के कलाकारों ने बहुत ही अच्छा कार्यक्रम उपस्थित किया, शान्ति गीत, और जागरण गीत ने तो सचमुच सभी दर्शकों को मुग्ध कर दिया।

अन्त में तरुण-शान्ति सेना, भागलपुर के सयोजक ने सभा में उपस्थित तथा नगर के अन्य सहयोगी सज्जनों के प्रति आभार प्रकट किया।

लाटरी के विरोध में तरुण-शान्ति-सेना का प्रस्ताव

यह सभा विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा संचालित लाटरी की व्यवस्था को नैतिकता के खिलाफ एक विश्वासघात समझती है। जब व्यक्तिगत रूप से जुआ एक कानूनी एवं सामाजिक अपराध है, तो फिर राज्य द्वारा संचालित लाटरी के रूप में यह जुआ निश्चित रूप से एक भीषण सामाजिक अपराध है। विशेषकर गांधी शताब्दी वर्ष में लाटरी को सरकार का संरक्षण सचमुच एक मार्मिक वेदना का प्रश्न है।

यह सभा विभिन्न प्रदेशों की सरकारों के साथ बिहार-सरकार से भी जोरदार अपील करती है कि इस अनैतिक कमाई की पहली किश्त को तो स्थगित करे ही, साथ-साथ आगे इस काम को बन्द करे।

—संयोजक

भारत में सर्वोदय आन्दोलन

भारत में ग्रामदान प्राप्ति अभियान आगे बढ़ रहा है। बिहार में हजारीबाग, पलामू और भागलपुर जिलादान हुए, वैसे ही गुजरात के कार्यकर्ताओं ने तय किया है कि अक्तूबर तक बड़ोदा जिला ग्रामदान हो जाय। महाराष्ट्र में ठाणा जिला अक्तूबर तक ग्रामदान में लाने की योजना महाराष्ट्र सर्वोदय मडल के एरंडोल सम्मेलन में ३ अगस्त को बनायी गयी है।

राजकोट में गत सप्ताह में हुई सर्व सेवा सघ की प्रबन्ध समिति ने अक्तूबर तक कुल ५० जिलादान सम्पन्न कराने का निश्चय किया और प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय और अठारहवां अखिल भारतीय सर्वोदय सम्मेलन राजगीर (बिहार) में खान अब्दुल गफार खाँ के भाग लेने के उपलक्ष्य में शान्ति-सेना की एक टुकड़ी दस हजार शान्ति-सैनिकों की "खुदाई खिदमतगार" नाम से सगठित की जायगी।

ठाकुरदास बंग
मत्री, सर्व सेवा सघ

विनोबाजी का कार्यक्रम

अगस्त	स्थान	दूरी : मीलों में
	२७ तक पूर्ववत् उड़ीसा।	
२८	जमशेदपुर से रायरंगपुर	४५
२९	रायरंगपुर से करंजिया	४०
३१	करंजिया से बीसोई	४०
३०	बीसोई से बारीपदा	३०

पता : द्वारा—श्री प्रशान्तकुमार महन्ती, भूदान-आफिस, पो० बारीपदा, जिला मयूरभंज, उड़ीसा।

पन्द्रह सौ पृष्ठों का साहित्य सात रुपये में

प्रत्येक हिन्दीप्रेमी परिवार में बापू की अमर और प्रेरक वाणी पहुँचनी चाहिए। गांधी-वाणी या गांधी-विचार में जीवन-निर्माण, समाज-निर्माण और राष्ट्र-निर्माण की वह शक्ति भरी है, जो हमारी कई पीढ़ियों को प्रेरणा देती रहेगी, परिवार में ऐसे साहित्य के पठन, मनन और चिन्तन से वातावरण में नयी सुगन्धि, शान्ति और भाईचारे का निर्माण होगा।

गांधी जन्म-शताब्दी के अवसर पर हम सबकी शक्ति इसमें लगनी चाहिए।

पन्द्रह सौ पृष्ठों का आकर्षक चुना हुआ गांधी-विचार-साहित्य सात रुपये में हर परिवार में जाय, इसका संयुक्त प्रयास गांधी स्मारक निधि, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान और सर्व सेवा संघ की ओर से हो रहा है। हर संस्था और व्यक्ति, जो गांधी-शताब्दी के कार्य में दिलचस्पी रखते हैं, इस सेट के अधिकाधिक प्रसार-कार्य में सहयोगी होंगे, ऐसी आशा है।

रं० रा० दिवाकर	**एस. जगन्नाथन्**
अध्यक्ष	अध्यक्ष, सर्व सेवा संघ
गांधी स्मारक निधि, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान	**जयप्रकाश नारायण**
उ० न० ढेबर	अध्यक्ष
अध्यक्ष, खादी-ग्रामोद्योग कमीशन	अ० भा० शान्ति-सेना मंडल
विचित्र नारायण शर्मा	**राधाकृष्ण बजाज**
उपाध्यक्ष, उ० प्र० गांधी-शताब्दी समिति	अध्यक्ष, सर्व सेवा संघ-प्रकाशन

गांधी जन्म-शताब्दी सर्वोदय-साहित्य सेट नं० २

पुस्तक	लेखक	पृष्ठ	मूल्य
१. आत्मकथा (सन् १८६९-१९६९)	: गांधीजी	१७६	१'००
२. बापू-कथा (सन् १९२०-१९४८)	: हरिभाऊ उपाध्याय	३२०	२'५०
३. गीता-बोध व मंगल प्रभात	: गांधीजी	११२	१'२५
४. मेरे सपनों का भारत (संक्षिप्त)	: गांधीजी	१७६	१'२५
५. तीसरी शक्ति (सन् १९४८-१९६९)	: विनोबा	२१६	२'००
६. गीता-प्रवचन	: विनोबा	३००	२'००
७. संघ-प्रकाशन की एक पुस्तक		१०० से १५०	१'००
	कुल	१४५०	११'००

आवश्यक जानकारी

१. इन सेट में सात पुस्तकें होंगी, जिनका मूल्य ११ रु० होगा। पूरा सेट ७ रु० में मिलेगा।
२. इन सेटों की बिक्री २ अक्तूबर के पावन-दिवस से प्रारम्भ होगी।
३. २८ सेटों का एक बंडल बनेगा। एक बंडल से कम नहीं भेजा जा सकेगा।
४. २८ या अधिक सेट मँगाने पर प्रति सेट ५० पैसे कमीशन मिलेगा।
(सारे सेट फ्री डिलीवरी यानी निकटतम रेलवे-स्टेशन-पहुँच भेजे जायँगे।)
५. सेटों की अग्रिम बुकिंग १ जुलाई १९६९ से शुरू है। अग्रिम बुकिंग के लिए प्रति सेट २ रु० के हिसाब से अग्रिम भेजने चाहिए। शेष रकम के लिए रेलवे रसीद वी० पी० या बैंक के मार्फत भेजी जायगी।

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी–१

श्री जगन्नाथन् को डेढ़ लाख की थैली समर्पित

वाराणसी, १२ अगस्त। सर्व सेवा संघ की राजकोट में हुई प्रबन्ध समिति की बैठक (२५ से २७ जुलाई तक) के अवसर पर संघ के अध्यक्ष श्री एस० जगन्नाथन् को गुजरात सर्वोदय मंडल की ओर से डेढ़ लाख रुपये की थैली भेंट की गयी।

इस अवसर पर आभार प्रकट करते हुए श्री जगन्नाथन् ने कहा कि देश इस समय संक्रमण-काल से गुजर रहा है। ऐसे अवसर पर हम सबकी जिम्मेदारी है कि बापू के बताये हुए मार्ग पर चलकर ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करें। अगर देश ग्रामस्वराज्य के मार्ग पर नहीं चला तो भविष्य में इससे कठिन मुसीबतों का सामना करना पड़ सकता है। (सप्रेस)

आगरा जिले की किरावली तहसील में ग्रामदान-अभियान

आगरा जिले में ७ तहसीलें हैं। इनमें से फिरोजाबाद, एत्मादपुर, बाह, खैरागढ़ तहसीलें ग्रामदान में शामिल हो चुकी हैं। निश्चय किया गया है कि २ अक्तूबर से पहले बाकी तहसीलें भी ग्रामदान में शामिल हो जायँ। फतेहाबाद तहसील का शमशाबाद ब्लाक भी ग्रामदान में शामिल हो चुका है। इस समय किरावली तहसील में कार्यकर्ता, ब्लाक-अधिकारी और अध्यापक सब लगे हुए हैं।

सहारनपुर में अभियान

सहारनपुर जिले की देवबन्द तहसील में ग्रामदान ग्रामस्वराज्य-अभियान श्री दया-निधि पटनायक व श्री रामजी भाई के संचालन में दिनांक २६-७-६९ से ५-८-६९ तक २६५ ग्रामों में चला, उनमें से १२२ गाँव ग्रामदान में प्राप्त हुए।

देवबन्द ब्लाक के ७२ गाँवों में २५, नागल ब्लाक के ६१ गाँवों में ३६, रामपुर मनिहारान ब्लाक के ७४गाँवों में से ३४और नानौता ब्लाक के ५७ गाँवों में से २७ गाँव ग्रामदान में घोषित हुए। —चन्द्रशेखर भाई

उत्कल

कोरापुट जिलादान घोषित होने के बाद अब मयूरभंज जिलादान के लिए ग्रामदान-प्राप्ति का काम जोरों से चल रहा है। मयूरभंज जिले के कुल ३१२३ गांवों में से २१०० गांव ग्रामदान कर चुके हैं। इस जिले का ११ सितम्बर को जिलादान घोषित करने के अभिप्राय से विभिन्न रचनात्मक संस्थाओं के पचास कार्यकर्ताओं का एक जिलादान-अभियान पहली अगस्त से शुरू हुआ। मयूरभंज का काम पूरा हो जाने के बाद बालेश्वर में जिलादान-अभियान शुरू करने की योजना बनी है।

अप्रैल से जून तक प्रदेश के विभिन्न जिलों में दस प्रखण्ड-स्तरीय शिविर हुए हैं। इनमें १५०० शिविरार्थी शामिल हुए। प्रखण्डदान के काम को आगे बढ़ाने के खयाल से इस तरह के शिविरों की तादाद बढ़ाने का प्रयत्न चल रहा है।

प्रदेश के कुल ३१४ प्रखण्डों में से ६१ प्रखण्डों का दान अबतक हो चुका है। आर्थिक स्थिति अनुकूल न होने के कारण काम को आगे बढ़ाने में रुकावट पैदा होती है। प्रांतीय सर्वोदय मण्डल ने यह निश्चय किया है कि २ अक्तूबर के दिन उत्कल के हर गांव को ग्रामस्वराज्य का संकल्प लेने के लिए तथा जिन गांवों के लोगों ने अबतक ग्रामदान का संकल्प-पत्र पूरा नहीं किया है, उन्हें उसी दिन ग्रामदान घोषित करने के लिए निवेदन किया जायेगा।

तमिलनाडु

यहां दूसरे स्टेज पर कोयम्बटूर, तंजौर और चिंगलपेट, इन तीन जिलों में आन्दोलन प्रगति पर है। यह ऐसे जिले हैं जहां भूमिवानों की प्रधानता है तथा भूमिहीनता की समस्या है। यदि इन तीन जिलों का ग्रामदान हो जाता है तो सेलम, उत्तर अर्काट तथा दक्षिण अर्काट आदि जिलों का काम बहुत ही आसान हो जाता है। अबतक उक्त तीन जिलों में १५ प्रखण्डदान हो चुके हैं। इन तीनों जिलों का ग्रामदान राजगृह-सम्मेलन तक हो सके, इस ओर पूरी कोशिश जारी है। कन्याकुमारी जिले का काम भी हाथ में लिया जा रहा है। यदि यहां वातावरण बन जाता है तो उम्मीद है कि इसका जिलादान भी राजगृह-सम्मेलन तक हो सकता है।

अबतक ४ जिलों का दान हो चुका है। इन चारों जिलों में जिला ग्रामदान विकास समितियों का पंजीकरण करवाया जा चुका है। इनके मार्फत ग्रामसभाओं का गठन तथा यथासंभव अधिक-से-अधिक गांवों में बीसवां हिस्सा भूमि प्राप्त करना है।

राजस्थान

नये वर्ष के प्रारंभ में नीमकाथाना-अभियान के तत्काल बाद वर्ष के प्रथम तीन माह में राजस्थान के तीन विभिन्न क्षेत्रों में मुख्यतः कार्यकर्ता प्रशिक्षण व प्राप्ति की दृष्टि से तीन अभियान आयोजित हुए। इनमें वाड़ी बसेड़ी (भरतपुर), शाहपुरा बैराठ (जयपुर) तथा पिंडवारा (सिरोही) में क्रमशः १२१, ८७ और ३३ कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। चौथा अभियान जुलाई को ८ तारीख से सीकर जिले के श्रीमाधोपुर तथा खण्डेला प्रखण्डों में चला, जिसमें करीब १५० कार्यकर्ता शामिल हुए। इन अभियानों में ग्रामदान-प्राप्ति क्रमशः १७, ७६ और २८ थी। चौथे अभियान में श्रीमाधोपुर प्रखण्ड का दान करीब करीब होने को आया है।

जून में कोटा और नागौर जिले के दो प्रखण्डों में छोटे-छोटे अभियान आयोजित हुए। पर इन दोनों अभियानों की निष्पत्ति बड़ी उत्साहवर्धक रही। कुल मिलाकर इस अवधि में करीब ४०० ग्रामदान हुए।

जयपुर, उदयपुर, भरतपुर, नागौर व सीकर जिलों में जिले की खादी-संस्थाओं ने मिलकर जिला ग्रामदान-अभियान समितियां गठित की हैं और जिलादान के लिए तैयारी कर रहे हैं। अजमेर, भीलवाड़ा और चित्तौड़ के साथी भी इस दृष्टि से मिले हैं। अभी यह सोचा गया है कि २५-३० कार्यकर्ताओं की एक स्थायी टुकड़ी कम-से-कम आगामी ६ माह के लिए रहे जो बराबर अभियान के काम में लगी रहे। प्रदेश को ६-७ क्षेत्रों में बांटा गया है और कुछ चुने हुए वरिष्ठ साथियों के जिम्मे एक-एक, दो दो जिलों की जिम्मेवारी सौंपी गयी है, जो अमुक समय तक यह साथी अपना डेरा-डंडा वहीं उनके बीच जा डालें।

पंजाब

अक्तूबर तक कपूरथला जिलादान करवाने का निश्चय किया गया है। पूर्वतैयारी का काम वहां शुरू हुआ है। उत्साह जग रहा है और अनुकूलताएं बन रही हैं। कार्य को तीव्रता देने के लिए प्रान्तीय सर्वोदय मण्डल का कैम्प-कार्यालय भी १५ जुलाई से कपूरथला पहुंच गया है।

२१ जुलाई से दो प्रखण्ड लेकर अभियान शुरू कर रहे हैं, जिसके लिए पंजाब खादी-ग्रामोद्योग संघ ने अपने कुल कार्यकर्ताओं का ११६ अर्थात् लगभग १०० कार्यकर्ता देने का वचन दिया है। गांधी स्मारक निधि, खादी आश्रम, कस्तूरबा सेवा मंदिर और दूसरी संस्थाओं से भी ६० ७० कार्यकर्ता आने की उम्मीद है। इस समय मुख्य कठिनाई पैसे की है। उसके लिए २१ अगस्त से तीन-चार दिन तक श्री जयप्रकाश बाबू का पंजाब में कार्यक्रम आयोजित किया जा रहा है। इस यात्रा में एक लाख रुपये से ऊपर की थैली भेंट करने की कोशिश है। आशा है, उस समय तक कपूरथला का जिलादान भी हो सकेगा।

हरियाणा

जहां तक हरियाणादान की बात है, पिछले दिनों हरियाणा सर्वोदय मंडल की बैठक में यह विचार आया था। यहां के मित्रों में ग्रामदान के काम के लिए बहुत तड़प है, लेकिन कार्यकर्ता शक्ति विशेषतः संयोजन की कमी, के कारण अभी हरियाणादान की तैयारी नहीं दीखती। फिलहाल प्रखण्डदान, जिलादान की दिशा में ही काम होगा और प्रतिमाह एक अभियान चलाने की योजना है।

कर्नाटक

संघ के अध्यक्ष श्री जगन्नाथनजी यहां पर विशेष शक्ति लगा रहे हैं। कर्नाटक सर्वोदय मण्डल और प्रदेश के सर्वोदय-कार्यकर्ताओं का २४-२५ जून को सम्मेलन हुआ। श्री अण्णासाहब भी इसमें विशेष रूप से उपस्थित थे।

इस सम्मेलन में कर्नाटक के मित्रों ने अक्तूबर तक बीजापुर जिले का ग्रामदान कराने का संकल्प लिया है। अण्णासाहब ने भी एक माह का समय यहाँ के लिए दिया है। बीजापुर में तीन पदयात्राएँ निरंतर चल रही हैं। उससे वातावरण बन रहा है। इसके लिए फण्ड्स भी जुटाने होंगे। कर्नाटक सर्वोदय मण्डल खादी-संस्थाओं तथा गांधी-निधि के पास पहुँच रहा है। अलग से भी अर्थ-संग्रह करने की योजना बन रही है। अण्णासाहब की उपस्थिति से वहाँ इस समस्या को हल करने में मदद मिलेगी।

आन्ध्र

श्री जगन्नाथनजी कडप्पा हो आये हैं। श्री राधाकृष्णजी ने आन्ध्र के काम का विशेष जिम्मा लिया है। वे भी जुलाई के पहले सप्ताह में आन्ध्र के साथियों से मिले थे। विजयवाड़ा में आन्ध्र प्रदेश के लगभग ५० कार्यकर्ता साथी वहाँ के काम के बारे में विचार करने के लिए दो दिन तक इकट्ठे हुए थे। इस बैठक में कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये गये हैं।

पोचमपल्ली से दो शान्ति-यात्राएँ, एक तेलंगाना क्षेत्र तथा दूसरी आन्ध्र क्षेत्र के लिए शुरू हो रही हैं। श्री गोराजी, आर० के० राव, सुब्रमण्यम् तथा कुछ अन्य मित्रों ने इसमें शामिल होना तय किया है। श्री केवर भाई और श्री मदालसा बहन भी कुछ समय वहाँ के लिए देंगे। कडप्पा जिलादान २ अक्तूबर तक हो सके, इसके लिए प्रयत्नशील हैं। श्रीकाकुलम क्षेत्र में कुछ अध्ययन टोलियाँ जा रही हैं। वहाँ उड़ीसा के सीमावर्ती मित्रों के साथ ग्रामदान प्राप्त करने की योजना बना रहे हैं। गांधी शान्ति प्रतिष्ठान के कार्यकर्ता तरुण शान्ति-सेना का कार्यक्रम हाथ में लेंगे। श्री रंगणम् और शेषगिरि इसमें सहायक होंगे।

गुजरात

अभी तो ग्रामदान के लिए भावनगर जिले में ग्रुप-मीटिंग्स हो रही हैं। पंचमहाल जिले में जुलाई में पदयात्रा आयोजित की गयी है। इस प्रकार से विचार-प्रचार की दिशा में काम होता रहता है। भरुच जिले में कुछ ग्रामदान की प्राप्ति हुई, लेकिन अभी वहाँ का काम भी रुका पड़ा है। सभी कार्यकर्ताओं की एकाग्र शक्ति भी ग्रामदान में लगी नहीं है।

पश्चिम बंगाल

नक्सालबाड़ी के हंगामे के बाद ग्रामदान आन्दोलन नक्सालबाड़ी में केन्द्रित किया है। श्री चारु बाबू के परिचालन में यहाँ ग्रामदान-अभियान चल रहा है। श्री विनोबाजी ९ जून '६९ को एक दिन के लिए राँची जाते समय पुरुलिया रुके थे। पुरुलिया का प्रखण्डदान भेंट करने का प्रयत्न किया गया, लेकिन वह हो नहीं सका। श्री विनोबाजी ने इस क्षेत्र को "वाटरलेक आफ इण्डिया' कहा है। अब-तक इस क्षेत्र में इस्लामपुर प्रखण्ड और जल-पाईगुड़ी जिले के आधे भाग में प्रचार-कार्य किया गया है। गाँव गाँव में ग्रामदान के पोस्टर्स तथा प्रचार-सामग्री वितरण की गयी है। बैठकें और सभाएँ हुई हैं। अबतक पाँच ग्रामदान मिले हैं।

संयुक्त मोर्चा सरकार बनने के बाद वहाँ कम्यूनिस्ट-सक्रियता बढ़ गयी है। अब तो कहीं-कहीं परिस्थिति बदल भी गयी है। भूमि-मालिक ग्रामदान करना चाहते हैं, लेकिन भूमिहीन मजदूर ग्रामदान में आना नहीं चाहते, क्योंकि अब 'बीघे में कट्ठा' जमीन से उनको संतोष नहीं है और वे यह मानते हैं कि इसमें जमीन की मालकियत भी नहीं रहेगी। उनको आशा है कि संयुक्त मोर्चा सरकार के बदौलत उनको ज्यादा जमीन मिलनेवाली है। जमींदारी-उन्मूलन कानून के तहत जो जमीन सरकार में निहित हुई, वह जमीन अब सरकार उनके समर्थक भूमिहीन लोगों को बाँट रही है। इसके अलावा भूमि-पतियों ने जो जमीन अपने सम्बन्धियों और दूसरों के नाम ट्रान्सफर की थी, मार्क्सिस्ट कम्यूनिस्ट दल के सैकड़ों लोग उस पर जबरन कब्जा कर रहे हैं। कानूनी पद्धति का इस्ते-माल करने की बात ही नहीं रही है। उसमें पुलिस की तरफ से भूमिवालों की रक्षा करने में भी मनाही है। इस अवस्था में अराजकता की स्थिति वहाँ पैदा हुई है। इस हालत में लोगों को ग्रामदान की तरफ आकर्षित करना और भी कठिन काम हुआ है।

श्री विनोबाजी की प्रेरणा से वहाँ के काम के लिए एक लाख रुपये के करीब संपत्ति-दान मिला है। इसकी सहायता से आगे काम की योजना बनायी जा रही है।

उत्तरप्रदेश में अबतक २० हजार गाँवों का ग्रामदान

वाराणसी, १२ अगस्त। उत्तर प्रदेश ग्रामदान-प्राप्ति समिति के राजघाट स्थित प्रधान कार्यालय से समाचार मिला है कि गत जून के अन्त तक उत्तर प्रदेश के ४१ जिलों में कुल १८,७०६ ग्रामदान, ९७ प्रखंड-दान एवं २ जिलादान हुए थे। जुलाई महीने में १२९४ नये ग्रामदान एवं ७ प्रखण्डदान और हुए। इस प्रकार जुलाई के अन्त तक २०,००० ग्रामदान, १०४ प्रखंडदान हुए हैं।

प्राप्त सूचनानुसार पीलीभीत जिले में १४ जुलाई से ग्रामदान-अभियान का प्रथम दौर शुरू हुआ। देहरादून से श्रीमती शशि बहन और सुश्री चम्पाबहन ने भी लालौरी-खेड़ा ब्लाक में पदयात्रा की। फलस्वरूप ९५ ग्रामदान प्राप्त हुए। मैनपुरी जिले की भोगाँव तहसील में १२३ ग्रामदान, गाजीपुर जिले के रेवतीपुर ब्लाक में ४१, भदौरा ब्लाक में ३३ ग्रामदान १ प्रखंडदान, प्रयाग की बिछिया तहसील में ३ और ग्रामदान, देवरिया जिले में १७४ ग्रामदान ४ प्रखंडदान, फैजाबाद जिले के तारुन ब्लाक में १२७ और भीटी ब्लाक में १५१ ग्रामदान २ प्रखंडदान, मिर्जापुर जिले में ७८ ग्रामदान, मुरादाबाद जिले के सम्भल ब्लाक में ७५ ग्रामदान हुए हैं। समिति के संयोजक श्री कपिलभाई ने प्रवास से सूचना दी है कि आगामी २ अक्तूबर तक ११ जिलों का जिलादान पूरा करने के लिए कार्यकर्ताओं की टीमें सक्रिय हैं।

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ४७

सोमवार २५ अगस्त, '६९

अन्य पृष्ठों पर

अन्य स्तम्भ

आन्दोलन के समाचार

वाराणसी जिलादान

उत्तर प्रदेश ग्रामदान प्राप्ति समिति के संयोजक श्री करण भाई द्वारा प्रेषित तार सूचना के अनुसार वाराणसी का जिलादान पूर्ण हो गया। यह उत्तर प्रदेश का तीसरा जिलादान है। इसके पूर्व उत्तरकाशी और बलिया का जिलादान सम्पन्न हो चुका है।

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन,
राजघाट, वाराणसी–१ उत्तरप्रदेश
फोन : ६४२८५

कांग्रेस : संगठन और नेतृत्व

हमारी भीतरी कठिनाई यह है कि हमारी कांग्रेस के रजिस्टर ऐसे सदस्यों से भरे पड़े हैं, जो यह जानकर बड़ी संख्या में भरती हो गये हैं कि कांग्रेस में घुसने का अर्थ सत्ता हासिल करना है। इस कारण जो पहले कांग्रेस में शामिल होने का कभी विचार भी नहीं करते थे वे भी अब उसमें आ गये हैं और उसे नुकसान पहुँचा रहे हैं, इसलिए कि शायद वे स्वार्थ की भावना से प्रेरित होकर इसमें आये हैं। जो लोग स्वार्थ की भावना से भी आते हैं तो लोकशाही संस्था में उन्हें आने से कैसे रोका जा सकता है? और जबतक हमारा संगठन इतना मजबूत नहीं हो जाता कि सबल लोकमत के दबाव से ही ऐसे लोग बाहर रहने पर मजबूर हो जायँ, तबतक हम उन्हें कांग्रेस में आने से रोक नहीं सकते।

और जबतक प्रारंभिक सदस्यों के साथ हमारा सम्पर्क सिर्फ वोट की खातिर ही रहेगा तबतक बुद्धि और बल भी नहीं आ सकता। कांग्रेस में कोई अनुशासन नहीं है। लोग दलों में बँटे हुए हैं और उनमें लड़ाई झगड़े हैं। स्वयं अपने भीतरी संगठन के बारे में हमें अहिंसा रखने की आवश्यकता नहीं मालूम होती। मैं जहाँ कहीं भी जाता हूँ, मुझे यही शिकायत सुनाई देती है। प्रजातंत्र की मेरी कल्पना में ऐसे दलों का निर्माण नहीं है, जो आपस में इस हद तक लड़ते-झगड़ते रहें कि उससे संगठन ही नष्ट हो जाय। और फिर हमारी संस्था तो लोकशाही और लड़ाकू, दोनों ही है। हमारी लड़ाई अभी खत्म नहीं हुई है। जब हम एक सेना के रूप में आगे बढ़ते हैं तो हम लोकशाही नहीं रहते। बतौर सिपाही के तब हमें सेनापति से आदेश लेना पड़ता है और उसे बिना किसी हिचकिचाहट के मानना पड़ता है। सेना में तो जो कुछ सेनापति कहे, वही कानून होता है। मैं आपका सेनापति हूँ। इसका यह मतलब नहीं कि मैं आपको अपनी भावनाओं के बारे में अन्धकार में रखूँ। लेकिन मुझे अपने जैसा कमजोर सेनापति की मिसाल इतिहास में नहीं मिलती। मेरे पास कोई अधिकार नहीं है। मेरा एकमात्र बल आपका प्रेम है। एक प्रकार से यह बड़ी भारी चीज है, लेकिन दूसरी प्रकार से वह निरर्थक भी है। मैं कह सकता हूँ कि मेरे दिल में सबके लिए प्रेम है। शायद आप भी ऐसा ही करते हों, लेकिन आपका प्रेम क्रियात्मक होना चाहिए। आपको आजादी की प्रतिज्ञा में बतायी गयी शर्तों को पूरा करना चाहिए। मैं आपको यह बता देना चाहता हूँ कि अगर आप उन शर्तों को पूरा नहीं कर सकते तो मेरे लिए आन्दोलन शुरू करना संभव न होगा। आपको कोई और सेनापति तलाश करना होगा। आप मुझे मेरी मर्जी के खिलाफ अपना नेतृत्व करने के लिए मजबूर नहीं कर सकते।

मो. क. गांधी

रामगढ़ कांग्रेस : सन् १९४० में दिये गये भाषण से।

अग्रलेख / सम्पादकीय

भीड़ की राजनीति

राष्ट्रपति के चुनाव में कांग्रेस के अनेक विधायकों ने कांग्रेस के उम्मीदवार को वोट नहीं दिया; यह कहकर वोट नहीं दिया कि उसे वोट देना उनकी अन्तरात्मा के खिलाफ था। उनकी अन्तरात्मा की पुकार थी कि श्री गिरि को वोट दिया जाय। शायद एक भी कांग्रेसी विधायक ऐसा नहीं रहा होगा जिसकी अन्तरात्मा ने यह कहा हो कि श्री गिरि और श्री रेड्डी को छोड़कर श्री देशमुख को वोट देना चाहिए। अन्तरात्मा सिर्फ दो तक सीमित थी। लेकिन एक प्रश्न उठता है कि दल के निर्णय के बाद दलवालों के मन में अपने दल का निर्णय न मानने, और अन्तरात्मा का सवाल उठाने की बात पैदा क्यों हुई? क्या दलगत राजनीति का कोई दल अन्तरात्मा पर चलता है, या चल सकता है? यह कौतुक हुआ कैसे? प्रधानमंत्री कहती हैं कि यह सवाल इसलिए उठा क्योंकि कांग्रेस संसदीय दल में निर्णय हमेशा 'कन्सेंसस' से होता था, किन्तु इस बार राष्ट्रपति के पद के लिए उम्मीदवार बहुमत से तय किया गया। उनकी राय में यही जड़ थी जिससे मन में दरार पैदा हुई और बाद को 'वोट की स्वतंत्रता' की पुकार उठी। अगर प्रधानमंत्री की बात सही हो तो पिछले दिनों का सारा विवाद 'कन्सेंसस' और 'कान्शेंस' को लेकर खड़ा हुआ है, जिसके परिणाम क्या-क्या होंगे, अभी कहना कठिन है। इतना तो साफ दिखाई देता है कि कांग्रेस आज तक जैसी थी वैसी आगे नहीं रहेगी, और उसके साथ वह मिली-जुली मध्यम-मार्गीय राजनीति भी नहीं रहेगी जिसका प्रतिनिधित्व कांग्रेस किसी-न-किसी रूप में अबतक करती आ रही थी। राष्ट्रीय कांग्रेस गांधी के साथ गयी; दलीय कांग्रेस नेहरू के साथ गयी; गुटों की कांग्रेस का अब क्या होगा?

कोई आये, कोई जाये, यह उतने महत्त्व की बात नहीं है, जितने महत्त्व की यह है कि देश की सारी राजनीति कहाँ जा रही है। स्वतंत्रता के पहले राजनीति देश की थी, उसके बाद दलों की हुई, और अब? सचमुच अब कोई दल ऐसा रह नहीं गया जो अपने विचार, सिद्धान्त और कार्यक्रम पर खड़ा हो, और जो एक बार अपने वोटर-जजमानों को नाराज करके भी उनके कल्याण की कामना कर सकता हो। समाज को सही नेतृत्व देने का साहस किस दल में है? जिन्हें हम दल समझते हैं वे व्यक्ति-गत, जाति-गत या वर्ग-गत गुटों की खिचड़ी मात्र हैं। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि हमारी राजनीति अब दल की न रहकर 'भीड़ की राजनीति' (मॉस-पालिटिक्स) बन रही है; बल्कि यह कहा जाय कि बन चुकी है, और उसी दिशा में तेजी के साथ बढ़ रही है।

कौन सोचता है—किसे फुर्सत है सोचने की—कि लोकतंत्र का यह रूप कितना खतरनाक है? भीड़ की राजनीति हमारे बचे-खुचे लोकतंत्र को भी खा जायगी। गांधी ने कोशिश की थी, जिसे नेहरू ने किसी हद तक कायम रखा, जनता की चेतना में विवेक भरने की, उसके उत्साह में संयम लाने की, और उसकी सक्रियता को सही दिशा देने की। गांधी ने जनता के टूटे, बुझे, दिलों में शक्ति फूँकी थी, और मिट्टी के शेर बनाये थे, क्योंकि गांधी में साहस था मौका पड़ने पर जनता से यह कहने का कि तुम गलत हो। आज यह साहस किसमें है, सिवाय एक अकेले जयप्रकाश नारायण के? आज तो हमारी राजनीति निरी सत्ता की उपासना और वोट की सौदागरी बन गयी है। परिणाम यह है कि भीड़ चाहे जो करे, विद्यार्थी, मजदूर, या दूसरे चाहे जो कहें, सब ठीक है, बशर्ते वे नेता की जयजयकार करते रहें और उसे वोट देते रहें। कहाँ पहुँच गया यह देश गांधी के दिनों से? गांधी ही नहीं, नेहरू के दिनों से। नेता बहुत हैं लेकिन जनता नेतृत्वविहीन है; कमजोर, खोयी हुई, और दिशाहीन है।

कहा जाता है कि समाजवाद का रथ इसी रास्ते से आगे बढ़ता

हमारे नये राष्ट्रपति

श्री गिरि हमारे नये राष्ट्रपति। उनका हृदय से स्वागत! हम उनके शतायु होने की कामना करते हैं। अब यह सोचने का समय नहीं है कि कौन हारा, कौन जीता, क्यों हारा, क्यों जीता। इतना जानना काफी है कि नये राष्ट्रपति चुन लिये गये। इस नाते वह हम सबके, हर भारतीय नागरिक के, आदर और सम्मान के अधिकारी हैं। जो पद हमारी राष्ट्रीयता का प्रतीक है, वह इस तरह दल-बन्दी के दलदल में घसीटा जाय, यह न शोभनीय है, और न भविष्य के लिए शुभ। उनका चुनाव तो राष्ट्र की आम सम्मति (कन्सेन्सस) से ही होना चाहिए था। अगर राष्ट्रपति भी राजनीतिक खींचतान का शिकार बनाया जायगा तो वह राष्ट्रपति न रहकर दलपति की कोटि में आ जायगा। तब उससे पक्षों के बीच रहते हुए भी पक्ष-मुक्ति की जो अपेक्षा है वह कभी पूरी नहीं होगी, और स्वयं संविधान का सही ढंग से चलना संभव नहीं रह जायगा। संविधान को बदलना एक बात है, किन्तु उसे रखना और दलगत संघर्ष का साधन बनाना देश का घोर अहित करने-जैसा होगा।

राष्ट्रपति के अधिकारों और कर्तव्यों के बारे में मतभेद है, और होने की गुंजाइश है। संविधान की बात संविधानिक ढंग से हल होनी चाहिए। लेकिन एक बात स्पष्ट है। प्रधानमंत्री देश का होते हुए भी दल का रह जाता है, किन्तु राष्ट्रपति को राष्ट्र का ही रहना पड़ेगा। इस बारे में श्री गिरि ने राष्ट्र को आश्वासन दिया है। आशा है वह पूरे तौर पर पूरा होगा।

है। क्या सचमुच ? हर दल का अपना-अपना समाजवाद है। लेकिन एक बात में सभी दल सहमत हैं कि समाजवाद के लिए सरकार पर अपनी सत्ता रखना जरूरी है। भले ही यह समाजवाद न होकर सरकारवाद हो या सत्तावाद हो, लेकिन यह एक रास्ता है जिस पर सभी चल रहे हैं। अगर सभी समाजवादी हैं तो क्या यह संभव नहीं है कि सब एकसाथ बैठकर कुछ ऐसे मुद्दे तय कर लें जिन्हें समाजवाद की पहली किस्त में लागू किया जा सके ? निश्चित रूप से विभिन्न दलों के घोषणा-पत्रों के आधार पर ऐसा कार्यक्रम बनाया जा सकता है। किन्तु यह तभी हो सकता है जब हमारे नेता सत्ता की पूजा को शासन और भीड़ की उत्तेजना को अपने लिए कन्सेंसस मानना छोड़कर सिर्फ लोक-हित की बात सामने रखकर बैठें। क्या नेताओं से इतना भी न होगा ?

कांग्रेस 'सिन्डिकेट' और 'इन्डिकेट' (नया नाम) में बंट जायगी तो देश की राजनीति में निखार आ जायगा, और जनता आसानी के साथ अपने लिए रास्ता चुन सकेगी यह सोचना भ्रम है—बहुत बड़ा भ्रम है। समाजवाद का रास्ता तब साफ होगा जब वह समाज से शुरू होगा, दलों का समाजवाद सरकारवाद के जंगल में फंसकर रह जायगा। इसीलिए ग्रामदान आन्दोलन गांव-गांव से शुरू होनेवाले 'समाजवाद की दिशा में प्रयत्न कर रहा है।

जिस तेजी के साथ हमारी राजनीति में 'भीड़' (मॉब पावर) का प्रवेश हो रहा है उसे देखते हुए यह आशंका होती है कि हमारे नेता देश को अनियंत्रित हिंसा के हाथ में सौंपना चाहते हैं—शायद अनजान में।

उपद्रव-प्रिय जनता और सत्ता-प्रिय नेता, जब इन दोनों का मेल हो जाता है, तो एक की अस्थिरता और दूसरे की विफलता के संयोग से हिंसा का जन्म होता है। विचार प्रेरित, संयमित, संगठित, हिंसा ने दुनिया में बहुत कुछ किया है, लेकिन हमारी राजनीति तो अंधी, बर्बर, हिंसा को बढ़ावा दे रही है। कहीं इस तरह जनता की वह शक्ति बनती है जिससे एक नया समाज उभरता है, जीवन के नये मूल्य स्थापित होते हैं ? अगर जनता की 'कान्शस' ऊपर न उठे, और नये मूल्यों के लिए उसका 'कन्सेंसस' न मिले तो क्या बनेगा देश, और कहाँ रहेगा समाजवाद ? भीड़ के नेता में कान्शंस कहाँ, और नेता की भीड़ में कन्सेंसस कहाँ ?●

उन्माद × भीड़ = वर्तमान भारतीय राजनीति

राष्ट्रपति-चुनाव कैसे होता है ?

१. संविधान की धारा ५४ के अनुसार राष्ट्रपति एक निर्वाचन मंडल (इलेक्टरल कालेज) द्वारा चुना जायगा जिसमें (क) संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य और (ख) राज्यों की विधान-सभाओं के निर्वाचित सदस्य वोटर होंगे। यह भी है कि जहाँ तक सम्भव होगा राष्ट्रपति के चुनाव में विभिन्न राज्यों का प्रतिनिधित्व समान होगा।

२. विधान-सभाओं और संसद का हर 'वोटर' कितने वोट दे सकेगा उसका निर्णय इस प्रकार होता है :

राज्य की कुल जन-संख्या में उस राज्य की विधान-सभा के सदस्यों की टोटल संख्या से भाग दीजिए। जो भागफल आये उसमें १००० का भाग दीजिए। जितनी बार १ हजार आये उतने वोट एक 'वोटर' के होंगे।

यही बात इस तरह कही जा सकती है : मान लीजिए, राज्य की जन संख्या ५ करोड़ है, और उस राज्य की विधान सभा के चुने हुए (कुछ नामजद सदस्य भी होते हैं) सदस्यों की संख्या ३ सौ है, तो ५ करोड़ में ३०० से भाग दीजिए। भागफल आया १६६६६६। अब इसमें १००० से भाग दीजिए। आया १६६। तो एक सदस्य के १६६ वोट हुए।

३. संसद के दोनों सदनों के हर निर्वाचित सदस्य के कितने वोट होंगे ? सब राज्यों की विधान सभाओं के सब निर्वाचित सदस्यों के कुल जितने वोट होंगे उनके टोटल में संसद के निर्वाचित सदस्यों की संख्या के टोटल से भाग दीजिए। जो आये वही संसद के एक सदस्य के वोट की संख्या होगी।

४. विभिन्न राज्यों के एम० एल० ए० लोगों के वोटों का मूल्य भिन्न-भिन्न होता है। नीचे की तालिका से यह स्पष्ट होगा :

राज्य	एम० एल० ए० की संख्या	एक वोट का मूल्य
आन्ध्र प्रदेश	२८७	१२५
असम	१२६	९४
बिहार	३१८	१४६
गुजरात	१६८	१२१
हरियाणा	८१	९८
जम्मू और कश्मीर	७५	४६
केरल	१३३	१२७
मध्यप्रदेश	२९६	१०९
महाराष्ट्र	२७०	१४६
मैसूर	२१६	१०९
नागालैण्ड	५२	७
उड़ीसा	१४०	१२५
पंजाब	१०४	१०७
राजस्थान	१८४	११०
तमिलनाडु	२३४	१४८
उत्तरप्रदेश	४२५	१ ५
पश्चिम बंगाल	२८०	१३४

५. इस चुनाव में कुल १७ राज्यों के एम० एल० ए० लोगों के वोटों की संख्या ४ लाख ३० हजार ८ सौ ४७ थी। यही संसद के निर्वाचित सदस्यों के कुल वोटों का टोटल मूल्य भी है। राज्यों और केन्द्र के वोटों में समानता हो, इसलिए ४,३०८४७ वोट संसद के ७४८ निर्वाचित सदस्यों (लोकसभा ५२० + राज्यसभा २२८) में बराबर-बराबर बांट दिये गये। इस तरह हर एम० पी० के एक वोट का मूल्य ५७६ हुआ।

६. संविधान के अनुसार राष्ट्रपति का चुनाव 'एकल संक्रमणीय सानुपातिक प्रतिनिधित्व मत-प्रणाली' (सिस्टम ग्राफ प्रपोरशनल रीप्रेजेन्टेशन बाई मीन्स ग्राफ दी सिंगिल ट्रान्सफरेबुल वोट) से होता है।

इस सानुपातिक प्रणाली का ग्रर्थ क्या है ? इसे ग्रामतौर पर वैकल्पिक वोट (ग्राल्टरनेटिव वोट) कहते हैं। उदाहरण के लिए :

मान लीजिए कि वैलिड वोटों की संख्या १५ हजार है, और क, ख, ग, घ चार उम्मीदवार हैं जिन्हें ये वोट मिले हैं—

क ५२५०,	ख ४८००
ग २७००,	घ २२५०

सामान्य रूप से बहुमत के ग्राधार पर क को निर्वाचित मानना चाहिए, लेकिन वैकल्पिक वोट की पद्धति में ऐसा नहीं होता। 'सेकेंड प्रेफरेंस' का उम्मीदवार 'फर्स्ट प्रेफरेंस' का बहुमत प्राप्त करनेवाले उम्मीदवार के मुकाबिले विजयी हो सकता है। विजय इस नियम के ग्रनुसार तय की जाती है :

$$\frac{१५,०००}{१+१}+१=७५०१$$

सानुपातिक पद्धति (प्रपोरशनल प्रेजेन्टेशन) में ७५०१ वोटों से कम पानेवाला विजयी नहीं माना जायगा। इसका ग्रर्थ यह है कि विजय के लिए ७५०१ या उससे ग्रधिक फर्स्ट प्रेफरेंस वोट मिलने चाहिए। लेकिन ऊपर के उदाहरण में क, ख, ग, घ में से किसीको इतने वोट नहीं मिले हैं इसलिए दूसरे, तीसरे, चौथे प्रेफरेंस को गिना जायगा—उस वक्त तक जब तक कि ७५०१ का कोटा पूरा न हो जाय।

७. प्रेफरेंस के वोट कैसे गिने जाते हैं ?

जिस उम्मीदवार के सबसे कम वोट होते हैं वह छाँट दिया जाता है, और उसके बैलट पेपर (मतदाता-पत्र) देखे जाते हैं। उनमें ग्रगर दूसरे उम्मीदवारों के लिए कुछ वोट होते हैं तो वे वोट उन उम्मीदवारों के वोटों में जोड़ दिये जाते हैं। इस तरह ग्रगर किसी उम्मीदवार का कोटा पूरा हो जाता है तो वह विजयी माना जाता है।

यह छँटनी उस वक्त तक होती रहेगी जबतक कि कोटा पूरा न हो जाय, या छाँटते-छाँटते एक ग्रन्तिम उम्मीदवार न बच जाय।

ऊपर लिखे उदाहरण में सबसे पहले 'घ' छँटेगा। उसके २२५० मत पत्रों में जितने सेकेंड प्रेफरेंस वोट हैं वे 'क', 'ख', 'ग' को दे दिये जायेंगे—जिसको जितने मिले होंगे। मान लीजिए, इन मत-पत्रों में सेकेण्ड प्रेफरेंस वोट इस प्रकार हैं :

क ३००, ख १०५०, ग ९००। ये इस प्रकार जोड़े जायेंगे :

क ५२५० + ३०० = ५५५०

ख ४८०० + १०५० = ५८५०

ग २७५० + ९०० = ३६००

जाहिर है कि इस बार भी कोटा पूरा नहीं हुग्रा, इसलिए ग छँटेगा, और उसके ३६०० वोट क और ख में थर्ड प्रेफरेंस वोटों के ग्राधार पर बँटेंगे।

मान लीजिए कि ३६०० मत-पत्रों में क और ख के पक्ष में वोट क्रम से १७०० और १९०० हैं, जोड़ने पर ये वोट ग्राते हैं :

क ५५५० + १७०० = ७२५०

ख ५८५० + १९०० = ७७५०

इस तरह ख विजयी घोषित हो जायगा, क्योंकि उसने ७५०१ का कोटा पूरा कर लिया। ग्रब फोर्थ प्रेफरेंस वोट गिनने की जरूरत नहीं है।

यद्यपि ख को क से फर्स्ट प्रेफरेंस वोट कम मिले थे, फिर भी ख विजयी हुग्रा क्योंकि उसे सेकेण्ड प्रेफरेंस वोट ग्रधिक मिले। इस विजय गणना का तर्क यह है कि ख को क की ग्रपेक्षा ज्यादा मतदाताग्रों ने पसन्द किया है, इसलिए उसे चुना जाना चाहिए। ●

सम्पादक का पत्र : आपके नाम

प्रिय साथी,

आप जानते हैं कि हमारे ग्रान्दोलन के ये दो संदेशवाहक, 'भूदान यज्ञ' और 'गाँव की ग्रावाज' बरसों से कितनी प्रतिकूल परिस्थितियों में ग्रपना काम करते ग्रा रहे हैं। लेकिन समुचित पोषण के न मिलने पर कब तक कर सकेंगे, या जैसा काम करना चाहते हैं वैसा कैसे कर सकेंगे ? बीस पचीस हजार रुपये साल का घाटा उठाकर हम चल नहीं सकते। सफेद कागज की जगह मटमैला कागज ग्रापको ग्रच्छा नहीं लगा होगा, लेकिन हम क्या करें ? ग्राहक सीमित हों, और महँगाई बढ़ती जाय, तो खर्च में कटौती करनी ही पड़ती है। हम मानते हैं कि ग्राप हमारी इस मजबूरी को जरूर बर्दाश्त करेंगे। न्यूजप्रिन्ट कागज से खर्च में कमी ग्रायी है। लेकिन यह कमी भी काफी नहीं होगी, ग्रगर ग्राहक-संख्या न बढ़ी, और विज्ञापन न मिले। इसलिए हम ग्रपने बड़े परिवार के हर सदस्य से, चाहे वह हमारा पाठक हो, या ग्रान्दोलन का मित्र, ग्रनुरोध करेंगे कि हमारी मदद करे। एक दो-चार जितने ग्राहक बना सकता है बनाये, और ग्रगर कोई विज्ञापन (जो हमारे लिए निर्दोष हो) प्राप्त कर सकता है तो प्राप्त करे। 'गाँव की ग्रावाज' ग्रब ग्रलग निकलने लगी है। यह ग्रावाज हर गाँव में पहुँचनी चाहिए। खासकर कोई ग्रामदानी गाँव तो ऐसा रहना ही नहीं चाहिए जहाँ ग्राम-स्वराज्य की ग्रावाज न पहुँचे। जो पहले गाँव की सिर्फ बात थी वह ग्रब ग्रावाज बन गयी है; जो ग्राज ग्रावाज है, वह पुकार बनेगी और वह दिन भी दूर नहीं है जब 'गाँव की ग्रावाज' ललकार बनकर सारे देश में ग्रपनी गूँज फैला देगी। हम जीयेंगे, मरेंगे, लेकिन ग्रारोहण के इस क्रान्तिकारी संकल्प से नहीं डिगेंगे। जिस संकल्प में हम-ग्राप, दोनों शरीक हैं उसमें एक को दूसरे का भरपूर सहयोग मिलना चाहिए। बताइए, कितने ग्राहक बनाइएगा, और कब तक ?

जय जगत् !

ग्रापका साथी,

राममूर्ति

करुणा की क्रान्ति

जयप्रकाश नारायण

अगर कानून से क्रान्ति सम्भव नहीं है, हिंसा से सम्भव नहीं है, तो क्या तीसरा कोई रास्ता है? मुझे लगता है कि तीसरा रास्ता है, और इस गांधी के देश में किसीको हक नहीं है यह कहने का कि तीसरा रास्ता नहीं है। तीसरा रास्ता अहिंसा का हमें दीखता है। गांधीजी रहते तो किस प्रकार से समाज का परिवर्तन करते यह मालूम नहीं है। कुछ बात तो मालूम हैं, जो हम गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष में हमें ध्यान में लानी चाहिए। इस बात को सब लोगों ने ओझल किया है। गांधीजी ने यह नहीं कहा कि स्वराज्य हो गया तो हमारा काम पूरा हो गया। हमारा काम शुरू हुआ यह कहा। और, इस काम को पूरा करने के लिए वह ७६ वर्ष का बूढ़ा आदमी कह रहा है कि 'मैं १२५ वर्ष जीना चाहता हूँ नया समाज बनाने के लिए, नये भारत के निर्माण के लिए' जिसे स्वयं उन्होंने 'सर्वोदय' नाम दिया था।

गांधीजी क्या करते?

गांधीजी ने सर्वोदय के निर्माण के लिए एक बात स्पष्ट की है कि यह काम हमें सत्ता के द्वारा नहीं करना है। सत्ता इसका माध्यम नहीं बनेगी, सत्ता इसका साधन नहीं होगी। जो हम काम करना चाहते हैं, वह करेंगे तो सत्ता हमारे पीछे आयेगी। वह जानते थे कि सत्ता के हाथों से सर्वोदय का निर्माण नहीं होगा। वह चाहते थे कि स्वराज्य के बाद एक जमात खड़ी करें और उस जमात के द्वारा यह काम हो। गांधीजी ने समाज-परिवर्तन का जो तरीका अपनाया, उसके लिए उन्होंने बताया कि जनता के सामने हम नये समाज के लिए विचार रखें, जीवन के नये मूल्य रखें। जनता को समझाकर हम उसको इस नये विचार के ऊपर, इन नये मूल्यों के ऊपर, इन नये आदर्शों के ऊपर आचरण करायें। अगर बहुत बड़ी संख्या में आचरण हो तो इस आचरण से समाज बदलेगा, बदलने की प्रक्रिया शुरू हो जायेगी।

दूसरी बात, अब इस विचार का प्रचार करना है तो इसके लिए सेना चाहिए। इसलिए गांधीजी ने लोकसेवक संघ का निर्माण करना चाहा और अगर सम्भव हो तो कांग्रेस का ही वे रूपान्तर करना चाहते थे। २९ जनवरी, १९४८ उनके जीवन का बहुत ही व्यस्त दिवस था। फिर भी कांग्रेस की कार्यकारिणी ने उनसे कहा था कि आप जो बात कहते हैं कांग्रेस के रूपान्तर की, कांग्रेस का एक नया निर्माण आपके ध्यान में जो हो, वह आप सामने रखिए, वह 'ड्राफ्ट' कर दीजिए। दिन भर के सब काम से निवृत्त होकर रात को बैठकर गांधीजी ने वह दस्तावेज तैयार किया, जिसे प्यारेलालजी ने 'गांधीजी का वसीयतनामा कहा।' अब गांधीजी होते, उस पर चर्चा होती, उसका क्या रूप बनता, मालूम नहीं। शायद वह यह चाहते थे कि कांग्रेस का नाम इतिहास में अमर इस माने में रहे कि इस संस्था ने भारत की आजादी की लड़ाई लड़ी। यह संस्था कोई राजनीतिक दल नहीं थी, यह संस्था भारत की आजादी की शान्तिमय सेना थी। इसलिए वे कांग्रेस का नाम बदल देना चाहते थे, और उन्होंने कहा कि कांग्रेस रूपान्तरित हो लोक-सेवक संघ में। अगर वह होता तो कितने गौरव की बात होती हम सब लोगों के लिए, जो कांग्रेस के झंडे के नीचे आजादी की लड़ाई लड़ चुके और आज इस दल को मानते नहीं! और इस दल से जो दुख होता है, क्लेश होता है वह नहीं होता।

तीसरी बात यह है कि सेवकों का लाख लाख का वह एक संगठन खड़ा करना चाहते थे। फिर नया आह्वान करना चाहते थे नवयुवकों को और आजादी के सिपाहियों को, और वे चाहते थे कि ये सब सेवक लोग रचनात्मक कार्यक्रम लेकर जायेंगे और जनता की सेवा करेंगे। इस सेवा के द्वारा जनता को समृद्ध करेंगे, जाग्रत करेंगे। उनको अपने पैरों पर खड़ा करेंगे। उनमें आत्मविश्वास डालेंगे। रचनात्मक संस्थाओं के सेवकों के लिए उन्होंने लिखा है कि लोकसेवकों का एक काम यह भी रहेगा कि जिस क्षेत्र की वह सेवा कर रहा है वहाँ की मतदाता की सूची लेकर वह देखेगा कि किसका नाम छूट गया है, कौन झूठा नाम है, कौन मर गया है। इस प्रकार से लोकसेवक प्रत्येक मतदाता से सम्पर्क पैदा करेगा। वे वहाँ तक पहुँचना चाहते थे। उसके बाद क्या-क्या और कार्यक्रम वे रखते, भगवान जाने। लेकिन ये तीन बातें तो स्पष्ट हैं। अब यह सारा होता, लोक-सेवक संघ का निर्माण होता, सेवा के क्षेत्रों का विस्तार होता, लाखों लोक-सेवक होते, गांधीजी उसके सेनापति होते, और उनके सेनापति होने से, वह जो अध्यात्म की अपूर्णता होती है, उसकी भी पूर्णता होती, नया विचार लोगों के सामने रखा जाता, यह सारा चलता। फिर गांधीजी क्या करते? उनकी यह प्रतिभा थी, ऐसा कोई जन-सम्पर्क (मास-ऐक्शन) का सरल कार्यक्रम निकालते कि लाखों-करोड़ों आदमी उस पर अमल करते और इन लाखों-करोड़ों के अमल करने से परिवर्तन होता। तो यही नहीं मालूम है कि कौनसा कार्यक्रम वह रखते। वह इतिहास के गर्भ में है।

गांधी के अनुयायी गांधी को भूल गये

लेकिन यह कोई कहे कि गांधीजी सर्वोदय-समाज का निर्माण कैसे करते, यह मालूम नहीं है तो यह गलत बात है। उनकी जो बुनियादी मुख्य बातें हैं, वे मालूम हैं। बहुत-से लोग पूछते हैं हमसे, कि दुनिया में ऐसा कभी हुआ नहीं कि एक क्रान्तिकारी नेता था, और उसने अपने जीवन में इतनी बड़ी सफलता प्राप्त की, अकस्मात उनके दुनिया से उठ जाने पर रास्ता बदल गया। यह क्यों हुआ? संविधान बना, योजनाएँ बनीं, कानून बनें, सारा प्रशासन बदला, लेकिन गांधीजी के रास्ते तो हुआ नहीं। *संविधान बन रहा था,* तो गांधीजी ने ध्यान भी नहीं दिया। एक आदमी ने लिखा गांधीजी को कि अब करीब-करीब भारत का संविधान बन चुका है, और बड़ी खेद की बात है कि इस संविधान में आपके ग्रामस्वराज्य का जिक्र तक नहीं है। तो गांधीजी ने 'हरिजन' में जिक्र करते हुए कहा कि एक मित्र ने ऐसा लिखा है, अगर यह बात

सच्ची है तो यह बहुत बड़ा खेद का विषय है और जो लोग संविधान बना रहे हैं उनको ध्यान देना चाहिए। यह लेख 'हरिजन' में गांधीजी ने अपनी हत्या से केवल ४० दिन पहले लिखा।

क्यों यह सारा हुआ? कुछ अमेरिका से लिया, कुछ इंग्लैंड से लिया, हमारा संविधान तैयार हो गया और जिनके चरणों में बैठकर रात-दिन हमने राजनीति सीखी, जिसने लोकतन्त्र का स्वरूप हमारे सामने खड़ा किया, उसे हम भूल गये? कोई कारण तो होना चाहिए? तो मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ (और कुछ लोगों को इस पर दु:ख हो तो मुझे खेद होगा, मैं क्षमा चाहूँगा) कि गांधीजी के जो राजनैतिक अनुयायी थे जवाहरलालजी, राजेन्द्र बाबू, मौलाना साहब, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी साहब, सरदार पटेल साहब, इन लोगों ने और इनके साथियों ने गांधीजी के अहिंसा के दर्शन को स्वीकारा नहीं था। उन्होंने अहिंसा को केवल स्वराज्य-प्राप्ति की पद्धति के रूप में मान्य किया था, वह भी अहिंसा नहीं, शान्तिमय प्रतिकार। इसलिए सब लोगों ने, गांधीजी के जाने के बाद या तो स्वराज्य-प्राप्ति के बाद गांधीजी के जीवन में ही, उनकी तरफ पीठ फेर ली। जो थोड़े-से लोग बच गये थे, जो रचनात्मक क्षेत्रों में लगे हुए थे उन्होंने भी गांधीजी को 'क्रिएटीव' तरीके से समझा नहीं। उनका उद्धरण लेना, उन्होंने जो किया उस बात की लकीर पीटते रहना बस, और इस प्रकार से रचनात्मक कार्य में जो लगे हुए लोग थे, जिनका पार्टी से कोई सम्बन्ध भी नहीं था, वे निस्तेज होते चले जा रहे हैं।

खादी-संस्थाओं के सम्मेलन हों, उनमें आँकड़े पढ़े जायेंगे, पिछले साल इतनी गज खादी पैदा हुई, इस साल इतनी गज खादी पैदा हुई! तो हम बहुत सन्तोष प्रकट कर रहे हैं कि १० फीसदी ज्यादा खादी हमने पैदा कर ली! इतने से क्या हो गया? आपकी सौ फीसदी-दो सौ फीसदी बढ़ जाय तो भी उससे कोई समाज बदलनेवाला है? गांधीजी स्पष्ट कह गये कि रचनात्मक कार्यक्रमों का उद्देश्य यह नहीं है कि गरीबों की जेबों में हम कुछ पैसे डाल दें, कुछ बेकार लोगों को हम काम दें। रचनात्मक कार्यक्रमों का उद्देश्य है अहिंसक क्रान्ति। अहिंसक क्रान्ति समाज में करनी है, तो वह कैसे होगी?

सौभाग्य है अपने देश का कि विनोबा जैसा गांधीजी का एक साथी अपने बीच मौजूद था। उन्होंने गांधीजी को बहुत गहराई में जाकर समझा था, जिनमें यह शक्ति थी कि परिवर्तनशील समाज में गांधीजी के मूल विचारों को कार्य-रूप देते।

अगर विनोबाजी नहीं होते

मुझे कोई सन्देह नहीं है कि विनोबाजी नहीं होते तो गांधीजी के विचार, जैसे उनका शरीर वहाँ भस्म हो गया था वैसे ही विचार भी दफना दिये गये होते। और शायद कोई १०० वर्ष के बाद या २०० वर्ष के बाद आता, जो फिर गांधीजी का आविष्कार करता। लेकिन आज विनोबा हैं। और चूँकि वह देख रहे थे कि परिस्थिति बहुत बिगड़ रही है, तो जरूर कुछ करना चाहिए, समय नहीं है कि पूरी तैयारी करके और तब जनता के सामने एक 'मास ऐक्शन' का प्रोग्राम रखा जाय, इसमें बहुत विलम्ब होगा, शायद इस वक्त मौका छूट जायेगा, इसलिए इन्तजार में वह नहीं रहे कि सेवकों का एक संघ हो। जो रचनात्मक क्षेत्र के सेवक थे, जो संस्थाएँ थीं, उनमें से जितनों को वे जोड़ सके उनको जोड़कर उन्होंने सर्व सेवा संघ बनाया। उनके सामने एक कार्यक्रम दिया। विचार तो गांधीजी का था ही, उस विचार में उन्होंने भी विकास किया और भी सर्वोदय के कई लोगों ने विकास किया है, जोड़ा है राजनीति के क्षेत्र में, आर्थिक क्षेत्र में, और भी क्षेत्रों में। सर्वोदय के कई नेताओं ने जोड़ा है उसमें, यह बड़ी खुशी की बात है। तो इन विचारों का प्रसार हो और साथ साथ इन विचारों के आधार पर आचरण के लिए कोई कार्यक्रम हो, इसलिए उन्होंने भूदान का कार्यक्रम देश के सामने रखा।

भूमि वितरण के प्रयास

अब भूदान के विषय में लोगों का भ्रम है। भूदान विफल हो गया, इसलिए कि भूमि की समस्या इससे हल नहीं हुई। तो मित्रो, भूमि की समस्या तो भारत में हल नहीं होगी। कोई हल नहीं कर सकता, न कानून से, न करुणा से, न कत्ल से। जो भी खेती करना चाहे, धरती माता की सेवा करना चाहे, उसको अपनी जीविका के लायक उसके परिवार को उतनी भूमि मिले, यह असम्भव बात है। जमीन थोड़ी है, लोग ज्यादा हैं। इसलिए उस समस्या का हल नहीं होगा। और विनोबा ने भूदान का जो आन्दोलन चलाया था, वह सिर्फ भूमि-समस्या के हल के लिए नहीं, बल्कि सर्वोदय का जो एक नया विचार, नया मूल्य था उसके अमल के लिए, मानव परिवर्तन के लिए, मूल्य-परिवर्तन के लिए, समाज-परिवर्तन के लिए। परन्तु भूमि-वितरण की दृष्टि से भी आप सोचें तो भूदान में जितनी सफलता मिली उतनी तो किसीको नहीं मिली। जब मैं समाजवादी पार्टी से अलग हुआ, तो समाजवादी पार्टी के लोगों ने कहा कि भीख माँगने से क्या होगा? इस तरह से नहीं होगा, कानून से हो सकता है। हमने कहा कि ठीक है, आप कानून का रास्ता पकड़ो, विनोबा आपका रास्ता साफ ही कर रहे हैं, वह भी तो गाँव-गाँव जाकर यही कह रहे हैं—'सबै भूमि गोपाल की'। तुम्हारे पास हजार बीघा है तो जो तुम्हारा पड़ोसी है, जिसके पास कुछ भी नहीं है, उसका भी उतना ही हिस्सा है। उसकी न्यायोचित माँग होगी कि उसे भूमि में हिस्सा मिले। और कह रहे हैं कि पूरा हिस्सा अपने भाई को नहीं दे सकते हो तो जितना दे सकते हो, दो। पहला चरण है, इसमें कोई कानून के रास्ते को तो रोक नहीं रहे हैं। उनको मैं बहुत समझा नहीं पाया। अनुभव से कुछ लोग समझे, कुछ लोग हमारे साथ आये। जवाहरलाल नेहरूजी बराबर मुख्यमन्त्रियों को पत्र लिखते रहे कि भूमि-व्यवस्था में सुधार करो, 'सीलिंग' खड़ी करो, कितने पत्र लिखे, बड़े व्याकुल थे! लेकिन आयोग कह रहा है, 'लैण्ड रिफार्म' नहीं होगा तो कृषि का विकास नहीं होगा। अमेरिकन 'एक्सपर्ट' ने जाँच करके अपनी रिपोर्ट दिखला दी कमीशन को कि भूमि सुधार में और कृषि विकास में क्या अनुबन्ध है।

मैं तो एक खिदमतगार हूँ

मेरे पास हिन्दुस्तान से लोगों के बहुत-से खतूत आ रहे हैं। प्रोग्राम के मुतअल्लिक लिख रहे हैं। मेरे पास कोई प्रोग्राम नहीं। मैं तो गांधीजी के सौ साला जन्म दिन की तकरीब पर जा रहा हूँ। अखबारात लिखते हैं कि 'अवार्ड' के लिए आ रहे हैं। कोई कहता है कि हमें 'लीड' करें, कोई कहता है कि आप 'टीचिंग' के लिए आयें। मैं कहता हूँ कि मैं 'लीडर' नहीं और न 'टीचर' हूँ। जब आपने गांधीजी की 'लीडिंग' और 'टीचिंग' कबूल नहीं की, तो मेरी 'लीडिंग' और 'टीचिंग' को क्या कबूल करोगे? मैं तो 'लीडर' और 'टीचर' नहीं, मैं तो एक खिदमतगार हूँ।

—खान अब्दुल गफ्फार खान

(मृदुला साराभाई के नाम भाये १२ जुलाई, '६९ के पत्र से)

कम्यूनिस्टों का आन्दोलन चला, और वामपंथियों का चला। हिंसावालों ने भी तेलंगाना से काम शुरू किया, उस जमाने में जब सरदार वल्लभभाई पटेल गृहमंत्री थे। उन्होंने तलवार से जमीन बाँटने का प्रयत्न किया। नक्शलबाडीवालों ने किया, केरल में अभी हाल में प्रयत्न हुआ। ये सारे प्रयत्न वर्षों से तलवार से जमीन बाँटने के हो रहे हैं, लेकिन आज तक तलवार के जरिए एक एकड़ जमीन बाँटी नहीं गयी। हिंसात्मक क्रान्ति को माननेवाले यह नहीं कह सकते कि उन्होंने एक इंच भी भूमि बाँटी। कानून से, बिहार में 'सीलिंग' कानून के द्वारा एक एकड़ जमीन का बँटवारा नहीं हुआ! सरकार को आशा थी कि शायद एक लाख एकड़ जमीन 'सरप्लस' घोषित की जाय और बाँटी जाय। कहाँ एक लाख एकड़ की उनकी उम्मीद थी, एक एकड़ जमीन नहीं बँटी। और, इन्द्रदीप बाबू के जमाने में उनके विभाग ने हिसाब किताब करके उन्हें बताया था कि शायद ७ हजार से लेकर १० हजार एकड़ तक जमीन से ज्यादा नहीं मिल सकेगी, वह भी जब शक्ति से 'सीलिंग ऐक्ट' को लागू करेंगे तब। और उस हालत में जब कि खुद यह राजस्वमंत्री कह रहे हैं मुझसे कि अमुक परिवार है बिहार में, जिसके पास आज भी १० हजार एकड़ जमीन है। यह तो विवशता है कानून की। भूदान से आपके इस प्रदेश में ३ लाख ६५ हजार एकड़ जमीन बँट गयी। बहुत लोगों ने मजाक बनाया कि जंगल दिया लोगों ने, पत्थर दिया, पहाड़ दिया, रेत, पानी दिया। इसी रेत, पहाड़, जंगल में से छाँट-छाँटकर ३ लाख ६५ हजार एकड़ खेती लायक जमीन बाँटी गयी। कत्ल का शून्य, कानून का शून्य, और करुणा का ३ लाख ६५ हजार। जितनी जमीन बाँटी गयी उसमें से अधिकांश जमीन आदाताओं के कब्जे में है।

अब विनोबाजी ने इस आन्दोलन में से दूसरा नारा ग्रामदान का दिया। वह चल रहा है।

ग्रामदान में स्वामित्व-विसर्जन

मैं समझता हूँ कि अब तक १२५ लाख गाँवों का ग्रामदान हो चुका है। यह कोई मामूली बात नहीं है। जो जमीन का मालिक है वह लिख दे, दस्तखत कर दे, एक फार्म के ऊपर, जो ग्रामदान-ऐक्ट के अन्दर स्वीकृत फार्म है, कि परिवार का जो कानूनी हक है वह हम ग्रामसभा को देते हैं। गांधीजी ने सर्वोदय समाज की जो कल्पना की उसमें सर्वोदय समाज में स्वामित्व का क्या हाल होगा? स्वामित्व का क्या विचार होगा? समाजवाद, साम्यवाद में क्या है? कागज पर है कि श्रमजीवियों का होगा, व्यवहार में लेकिन राज्य का है। राज्य का, श्रमजीवियों का नहीं, सत्ताधारियों का, जिनके हाथों में शस्त्र है। यहाँ सर्वोदय में? गांधीजी ने कहा कि व्यक्तिगत स्वामित्व का विचार मिथ्या विचार है, अनैतिक विचार है, अधार्मिक विचार है। स्वामित्व भगवान का, 'सम्पत्ति सब रघुपति के आही' जो कुछ हमारे पास है भगवान की कृपा और समाज के सहयोग से प्राप्त है। इसलिए हमारे पास जो कुछ है— बुद्धि है, इल्म है, कोई हुनर है, धरती है, खान है, जंगल है, और कुछ नहीं है श्रम करने की शक्ति है, बाहुबल है, जिसके पास जो भी सम्पदा है उसका वह थातीदार है। वह यह समझे कि यह थाती है भगवान की तरफ से, समाज की तरफ से, और अमानतदार का यह धर्म है कि इसमें से आवश्यकतानुसार ले और बाकी जिसका है उसको वापस करे। कोई इनकम टैक्स जैसा कानून गांधीजी ने नहीं बनाया। सिर्फ आत्मिक विकास किसका कितना है इस पर छोड़ा। स्वयं उनका कितना आत्मिक विकास हुआ कि कुर्ते से भी उनका शरीर जलने लगा तो उसको भी उन्होंने उतार दिया। इतना उन्होंने अपने को गरीब के साथ एकरूप कर लिया था।

यह स्वामित्व का विचार सब धर्मग्रन्थों में भरा पड़ा है। लेकिन ईश्वर का है तो ईश्वर को दो दाना दे देते हैं और बाकी अपने पेट में डाल लेते हैं, यही धर्म का पालन हुआ क्या? तो आज के युग में कैसे होगा इसका आचरण? विनोबा ने धरती के क्षेत्र में, जमीन के स्वामित्व के क्षेत्र में यह बात कही कि अगर इस विचार को मानते हो तो स्वामित्व का विसर्जन करो। ग्रामसभा को आप स्वामित्व समर्पित करो। स्वामित्व का यह जो नया विचार, क्रान्तिकारी विचार है यह समाजवाद, साम्यवाद से कहीं आगे का विचार है। शंका यही होती है कि ट्रस्टीशिप व्यावहारिक है या नहीं? गांधीजी हम लोगों को कहते थे कि तुम लोग तो पूँजीपतियों का कारखाना ही लेना चाहते हो, हम तो उनका कारखाना लेना चाहते हैं और पूँजीपतियों को भी लेना चाहते हैं, उनको भी बदलना चाहते हैं। अब शंका यही होती है कि यह होगा कि नहीं?

अबतक जितना विनोबाजी के नेतृत्व में कार्य हुआ उस पर से यह कहने का कोई कारण नहीं है कि यह संभव नहीं है। हम मनुष्य हैं, मानव हृदय है, मानव-चेतना है। परमेश्वर का वह मन्दर है, इसलिए मानव पर विश्वास करके यह सर्वोदय का आन्दोलन आगे बढ़ रहा है। अब सब एक दिन में साधु बन जायेंगे, ऐसा तो है नहीं। और इसीलिए

विनोबा ने इसको आन्दोलन न कहकर आरोहण कहा। इसलिए उन्होंने कहा कि स्वामित्व का कानूनी विसर्जन करो, सरकारी खाते में तुम्हारा नाम कट जायेगा और ग्रामसभा का नाम चढ़ जायेगा। लेकिन बाकी जो मालिक के अधिकार होंगे वे सब करीब-करीब तुम्हारे पास रहेंगे। कब्जा तुम्हारा रहेगा, सिर्फ ५ प्रतिशत कब्जा छोड़ना पड़ेगा, २०वें हिस्से के दान के कारण, जिसे ग्रामसभा को देना है। जहाँ तक उपभोग करने का सवाल है अपनी सम्पत्ति का, जो पैदा करोगे वह सबका सब तुम्हारा, सिर्फ ढाई प्रतिशत से भी कम ४०वाँ हिस्सा या उससे भी कम जितना ग्रामसभा तय करे, उतना फसल का हिस्सा देना पड़ेगा। आमदनी का तीसवाँ हिस्सा देना होगा। श्रम का तीसवाँ हिस्सा देना होगा। तो कब्जा, उपभोग, उत्तराधिकार—उत्तराधिकार तो सौ फीसदी—सुरक्षित हैं। और चौथा अधिकार होता है बेचने का, बंधक रखने का, वह भी है, लेकिन सीमित है, मर्यादित है, उसके हित में जो मालिक है और गाँव के हित में। जिस गाँव में जमीन है उस ग्रामसभा की राय से यह काम होगा।

तो आप देखिए कि स्वामित्व के विचार को कार्य रूप देना, और स्वामित्व का जो रूप है, वह ज्यों का त्यों; जिसके पास १०० एकड़ है उसमें से ५ एकड़ दे दिया, ९५ एकड़ है। ट्यूबवेल वगैरह लगा ले तो जितना पहले पैदा करता था उससे ज्यादा पैदा करने लगे। तो कोई कहेगा, क्या हो गया, कौनसी क्रान्ति हो गयी? परन्तु स्वामित्व का परिवर्तन हुआ। आज तो कोई भी पार्टी ऐसा नहीं कहती है इस देश की मार्क्सवादी-कम्यूनिस्ट-पार्टी, जो अपने को सबसे क्रान्तिकारी मानती है, जो वैधानिक तरीके से काम करनेवाली है वह अगर अपने घोषणा-पत्र में लिख दे कि हमारा शासन होगा, हमको वोट दोगे और हमारी जीत होगी तो जमीन की व्यक्तिगत मालकियत मिटा करके समाज की मालकियत हम कायम करेंगे, तो आधा एकड़ का मालिक भी उनको वोट नहीं देगा।

ग्रामदान में नैतिक पतन रुकेगा

मैं मानता हूँ कि हम देश को सबसे बड़ी→

सर्वोदय-आन्दोलन में सरकारी सेवकों का सहयोग

—एक महत्वपूर्ण स्पष्टीकरण—

विनोबा

लोकमान्य ने कहा था कि जिसको यह कल्पना हो कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हम सुखी होंगे, उनकी यह कल्पना गलत है, फिर भी हमें स्वराज्य चाहिए। उनका एक बड़ा व्याख्यान इसी विषय पर हुआ था। उन्होंने कहा कि "स्वराज्य प्राप्ति के बाद अनेक समस्याएँ खड़ी होंगी और जो आज हम लोग एकमत होकर काम करते हैं उनमें अनेक पक्ष पड़ जायेंगे। इस वास्ते स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हमारा काम कठिन होगा और हम सुखी होंगे, यह मानना गलत है। सुखी होने के लिए बहुत प्रयत्न करना पड़ेगा। हम लोगों को बहुत लम्बा फासला तय करना पड़ेगा। यद्यपि सुखी हम होनेवाले नहीं हैं, फिर भी हमें स्वराज्य चाहिए। क्योंकि स्वराज्य के बिना हमारी बुद्धि का विकास रुक गया है। आज जितना भी भला होता है वह अंग्रेज-सरकार करती है और बुरा भी वही करती है। भले-बुरे की जिम्मेदारी उसकी है। हम लोग किसी प्रकार की कोई जिम्मेदारी अपने पर पाते नहीं। इस वास्ते हमारा बुद्धि विकास रुक गया है। इसीलिए हमको स्वराज्य की आवश्यकता है। सुखी तो हम होंगे बहुत दिनों के बाद।"

विकास की दिशा और आखिरी तबका

उनका यह वचन हमें हमेशा याद रहता है। यह बहुत महत्व की बात उन्होंने बतायी थी। जो उन्होंने कहा था, उसका उत्तम अनुभव इन २० वर्षों में आया। अनेक मिनिस्टरी आयी और गयी इन २० वर्षों में, लेकिन भारत की समस्याएँ सुलझी नहीं, बल्कि ज्यादा उलझी ही हैं और भारत में पहले जितना सुख था अंग्रेजों के राज में, उतना भी आज नहीं है। भारत में प्रति व्यक्ति पहले की अपेक्षा अनाज, फल, दूध कम है। यह बात प्रमाण है कि अरबों रुपये खर्च किये गये इस वास्ते कुछ तबके के लोगों को अधिक सहूलियतें मिली हैं, यह मानना होगा और कुछ काम हुआ है यह भी मानना होगा। फिर भी हमें लगता है कि बुनियादी काम नहीं हुआ है, केवल 'सेकेन्डरी' काम हुआ है। वह जितना हुआ है वह मान्य करते हैं। तीन चुनाव हुए, अच्छे हुए। लोकतंत्र की दृष्टि से अच्छा काम हुआ। विदेशनीति के बारे में भी अच्छा रुख रहा, यह मानते हैं। 'इंडस्ट्रीज' बढ़ी हैं, लोगों की आकांक्षाएँ बढ़ी हैं, आरोग्य का सुधार हुआ है। ये सब बातें मान्य हैं लेकिन फिर भी जो बुनियादी चीजें हैं, वे नहीं हुई हैं। आम लोगों को, जो 'लोएस्ट स्ट्रेटा' (आखिरी तबका) है उसको कुछ नहीं मिला है।

सर्वोदय-आन्दोलन और सरकारी सेवक

अभी आज मैं जो कहने जा रहा हूँ, वह एक खास बात है, जिसके बारे में हम लोगों के मन में सफाई कम है। सारे भारत में हमारे कार्यकर्ता हैं। उनके मन में इस विषय में उलझन है। वह यह है कि बाबा ने चार-छः महीनों से प्रारम्भ किया है, चाहता तो बहुत पहले से था, सरकारी सेवकों की मदद हासिल करना। उस सिलसिले में कुछ छुट-पुट भेद हमारे लोगों के मन में है। उसको हमने अस्पृश्यता नाम दिया। उस विषय में थोड़ा कहना चाहता हूँ।

एक तो यह कि जब अंग्रेजों का राज यहाँ आया तो वह परकीय सत्ता थी और उसके द्वारा काफी शोषण हुआ, जो स्वाभाविक ही था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने काफी शोषण किया। उसके बाद अंग्रेजों का राज चला सारे भारत में, तो हमारे उत्तम-से-उत्तम जो नेता उस जमाने के थे उन सब नेताओं ने यह उचित माना कि सरकारी नौकरी में ही जाकर काम होगा। राजा राममोहन राय से लेकर रानडे तक जितने भी नेता आप ढूंढेंगे, उनमें से कुछ वकील पायेंगे, बाकी सारे सरकारी नौकरी में पायेंगे। उन्होंने सरकारी नौकरी में रहकर ही, सन् १८८५ में कांग्रेस की स्थापना की। सारे लोगों ने यह क्यों माना कि सरकारी नौकरी में जाना अच्छा है? उन्होंने माना कि सारा भारत एक ही सत्ता के नीचे आज तक आया नहीं था। अशोक की बात अलग है। उनके जमाने में भी दक्षिण के प्रान्तों में उसकी सत्ता नहीं थी। लेकिन अंग्रेजी राज में कुल-का-कुल भारत एक हो गया। इसलिए भारत की एकता हमको अंग्रेजों के राज के कारण प्राप्त हुई। यह ठीक है कि इस एकता का अर्थ है कि सारे परावलम्बी हो गये। सबके सब लोग एक सत्ता के नीचे दबाये जायेंगे, ऐसी हालत हुई थी। लेकिन सारे लोग एक दफा एक जगह आये, यह बहुत बड़ी बात हुई। तो जो कांग्रेस बनी उसमें महाराष्ट्र, पंजाब आदि प्रान्तों के लोग थे और वे बहुत सारे सरकारी नौकर थे। भारत की एकता का लाभ हमको मिलना चाहिए। अंग्रेजी राज के कारण दुनिया के साथ सम्बन्ध आ गया है उसका लाभ मिलना चाहिए, यों समझकर के सरकारी नौकरों ने कांग्रेस की स्थापना की। मैं सोचता हूँ कि अंग्रेजों के जमाने में उन भारतीय नेताओं ने परकीय राज में नौकरी करना ठीक माना, वे सामान्य लोग नहीं थे। उन्होंने पेट भरने के लिए नौकरी नहीं की। अब जब कि भारत आजाद हुआ, तो आजाद भारत में नौकरी के लिए अच्छे लोग जायेंगे कि नहीं? यह मानना होगा कि परकीय सत्ता में सरकारी नौकरी में जाकर देश की सेवा हो सकती है तो स्वराज्य की सरकार में देश की सेवा करने का जो मौका मिलता है, वह अच्छा है।

देश की सर्वोत्तम प्रतिभा सरकारी नौकरी में

दूसरी यह बात है कि देश की 'बेस्ट

→समस्या यह है कि इस देश का नैतिक पतन हो गया है। जिस देश की नैतिक शक्ति टूट गयी वहाँ के लोग देश को बेच देने को तैयार होंगे। फिर वह देश कुछ भी कर नहीं सकेगा। और बहुत तीव्रता से हमारा पतन हो रहा है। मैं मानता हूँ कि इस ग्रामदान के आन्दोलन में, जो देश की यह सबसे बड़ी समस्या है उसका जिस हद तक, जिस सीमा तक समाधान है, उतना किसीमें नहीं है।

(समाप्त)

टैलेन्ट' (सर्वोत्तम प्रतिभा) अगर कहीं है तो वह सरकारी नौकरी में है। उत्तम-से-उत्तम शिक्षा पाये हुए लोग सरकारी नौकरी में जाते हैं। जो वहाँ नहीं जाते, उनमें से कुछ लोग पार्टी में बँटे हुए हैं, जिनको 'पालिटिशियन्स' (राजनीतिक) कहते हैं। उत्तम-से-उत्तम प्रतिभावाले, अधिक-से-अधिक दुनिया का ज्ञान जिन्हें मिला है, ऐसे सब लोग सरकारी नौकरी में जाते हैं। इसका मतलब है कि देश की 'सर्वोत्तम प्रतिभा' वहाँ है। अब बाबा के पास कुछ लोग आ गये, जो बचे हुए लोग थे सो आये। उनमें 'प्रतिभा' वालों की संख्या ज्यादा नहीं है। लेकिन जो आये वे अच्छे हृदयवाले आये। और ज्यादा प्रतिभावाले सरकार में गये, इसमें बाबा को शक नहीं।

अब सोचने की बात है कि वे देश की सेवा करते हैं, यह मानना होगा। देश की सेवा कौन नहीं करता? आज की हालत में जो वहाँ सिगनल बतानेवाला रेल का नौकर है वह देश की सेवा करता है। वह अगर कोई गलती करेगा तो हजारों लोग घायल होंगे। इस वास्ते वह अपने देश के सर्वोत्तम सेवक का नमूना है। वह रेल पर खड़ा रहता है, रात में जागना पड़ता है, दिन में भी खड़ा रहना पड़ता है। ट्रेन आयी कि एकदम सिगनल देना पड़ता है। वह ईमानदार सेवक है। वह सर्वोत्तम सेवकों में से एक है। यह सहज मैंने एक मिसाल दी। इस प्रकार से जो उत्तम सेवा का काम कर रहे हैं वे सब-के-सब देश की सेवा में लगे हुए हैं। सरकारी 'मिलीटरी' सेवा करती है, पुलिस भी अपनी सेवा कर रही है यह मानना ही पड़ेगा। उस हालत में इस जमात के बारे में हम अपने मन में अछूतपन रखें, यह उचित नहीं। उस सिलसिले में यह बात ध्यान में लेने की है, कि एक तो 'बेस्ट टैलेन्ट' वहाँ है, दूसरे वे देश की सेवा करते हैं और तीसरे वे लोग ३० साल सेवा करनेवाले हैं। आपके जो 'पालिटिशियन्स' हैं, जिनकी आप ज्यादा कद्र करते हैं, वे ज्यादा-से-ज्यादा पाँच साल के लिए आपके नौकर हैं। प्रधान मंत्री इन्दिरा भी पाँच साल के लिए चुनी हुई नौकर हैं। उनके लिए पाँच साल की 'टेस्ट' लगा रखी है। पाँच साल से ज्यादा उनकी हस्ती नहीं है। और बिहार में तो आप इन नेताओं का तमाशा देख ही रहे हैं। कोई दो साल रहे, कोई चार महीने रहे और कोई तो चन्द रात ही टिकते हैं। इस वास्ते समझना चाहिए कि सारे देश की सेवा करनेवाले जिम्मेदार सरकारी सेवक हैं, उनके द्वारा ही देश का काम चल रहा है।

एक दफा दरभंगा जिले में इन्दिराजी मुझसे मिलने के लिए आयीं। उनसे पूछा गया कि इस वक्त अपने अपने स्थान पर सेवा करने के बजाय दो-तीन हजार लोग पटना में इकट्ठे हुए हैं। उस हालत में देश की सेवा कैसे होगी? उन्होंने जवाब दिया कि "इसकी चिंता नहीं है, देश की सेवा करनेवाले लोग मौजूद हैं।" उनका यह उत्तर सही है। ये लोग पटना में अड्डा लगायें तो भी देश का कुछ काम नहीं अड़ता। उनकी हैसियत आपके 'पोलिटिशियन्स' से ऊँची है।

सभी सरकारी सेवक सर्वोदय-सेवक

अब दूसरी बात, उनको जो आदेश है वह सर्वोदय समाज को जैसा आदेश है वैसा ही है। उनको आदेश है कि आपको समाज की सेवा करने में भाषा, धर्म, पंथ, जाति आदि का खयाल नहीं करना चाहिए। जो आदेश हमने सर्वोदय-सेवकों को दिया है वह उनको दिया गया है कि भाई तुमको सेवा करने में ये सारे भेद ध्यान में नहीं लेना चाहिए, यदि लेते होंगे तो गलत काम करते हैं। अपने हास्पिटल में जो दाखिल होगा वह किस पार्टी का है, किस जाति का है, किस धर्म का है यह डाक्टर नहीं देखेगा। उसका तो एक ही काम होगा कि यह किस रोग वाला है, तदनुसार सेवा करेगा। वह सेवा करने में इन सारे भेदों का ख्याल नहीं करेगा। मिलीटरी भी इन भेदों का ध्यान नहीं करती। आपकी संसद का नौकर किसी पार्टी का नहीं होता। न्यायाधीश को भी सर्वोदय-सिद्धान्त के अनुसार तटस्थ होकर सेवा करनी होती है। इसका मतलब है, जितने भी सरकारी सेवक हैं, सर्वोदय समाज को जो आदेश है वह आदेश उनको भी प्राप्त है।

मुझ से पूछा जाता है कि सर्वोदय समाज कब बनेगा? मैं जवाब देता हूँ कि सर्वोदय समाज की स्थापना हो चुकी है, आप कब देखेंगे, यही सवाल है। ऐसा जो सर्वोदय समाज सेवा करने के लिए स्थापित हुआ है जिसको किसी पार्टी का काम करने का नहीं है ऐसा जिसको आदेश दिया गया है उन पर बाबा का असर हो रहा है, तो आपको तो नाचना चाहिए कि ये लोग भी बाबा के आदेश के अनुसार काम करते हैं। इसकी उत्तम मिसाल पटना के डी० सी० की है। सर्वोदय-विचार वे उत्तम ढंग से समझे हुए हैं। ये पटना जिलादान-समर्पण के लिए मेरे पास आये थे। उसका समारोह पटना में था। उसमें उन्होंने कहा कि देश की सेवा करने का मौका बाबा के आन्दोलन ने मुझे दिया, इसका मैं अत्यन्त उपकार मानता हूँ। यह भी बताया कि किस प्रकार से यह काम किया। यह उत्तम और अद्यतन मिसाल आपके सामने रखी।

दूसरी मिसाल, अभी सिमडेगा अनुमंडल में बाबा गया था। वहाँ पर बाबा के इस काम के लिए सरकारी सेवकों ने अपने एक दिन का वेतन इकट्ठा करके ५०० रु० बाबा को दिया। इस तरह से उनको प्रेरणा हो रही है कि हम दान दें और इसमें काम करें तो आपको समझना चाहिए कि बहुत बड़ा काम हो रहा है। ये सारे सरकारी सेवक हमारे सेवक बन रहे हैं तो हमारी जमात बहुत बड़ी हो रही है, ऐसा आपको लगना चाहिए। उसके बदले आपका उनकी तरफ देखने का कोण टेढ़ा रहे कि ये तो सरकारी लोग हैं, हम क्यों उनकी मदद लें तो उचित नहीं होगा।

पुराने जमाने में जब गांधीजी ने इन सरकारी नौकरों को आवाहन किया था। उसके बाद जो अपनी नौकरी पर कायम रहे वे देशद्रोही साबित हुए। लेकिन राजा राममोहन राय और रानडे देशद्रोही नहीं थे, क्योंकि उस वक्त 'नान-कोआपरेशन' (असहयोग) का आदेश नहीं था, लेकिन 'असहयोग' का आदेश लागू होने के बाद जो नौकरी में बने रहे, उनको यह टीका लागू हो सकती है कि ये देशद्रोही हैं। वैसे अब ये जो सरकारी

सेवक हैं, उनको 'असहयोग' का आदेश नहीं दिया गया है। इस वास्ते उनके द्वारा काम होता है तो आपको खुशी होनी चाहिए।

भारत के सभी लोग 'बाबा के प्यारे'

शिक्षकों से मदद लेने की कोशिश मेरी तीन-चार साल से रही है। एक बार ध्वजा बाबू ने कहा था कि यह आन्दोलन लोग ही कब उठा लेंगे? मैंने जवाब दिया था कि जनता को उठाने से पहले शिक्षक लोग ही पहले इसे उठायेंगे। शिक्षकों के द्वारा यह लोगों में जायेगा। यह प्रथम दरभंगा में शुरू हुआ। उन्होंने वहां कुछ प्रखण्डदान प्राप्त किया। अब यह सारी की-सारी शिक्षक जमात इस काम के लिए प्रेरित है। वह कहते हैं कि हम इसको पसंद करते हैं। तो इतनी बड़ी जमात जब काम में आ जाती है तो जनता अपना काम अपने हाथ से करेगी, यह इसकी पूर्वतैयारी है। ग्रामसभा बनाकर अपना सारा काम करेगी। अब हमारा दिमाग साफ होना चाहिए। यहाँ के लोगों की बात तो छोड़ दीजिए, सर्वोदय के जो दूसरे नेता हैं उनको भी लगा कि बाबा सरकारी सेवकों का सहयोग क्यों लेता है। इनको लगता था कि उनका सहयोग लेने से दबाव होता होगा। लेकिन ध्यान में आया कि दबाव का सवाल नहीं है, प्रेम से समाधान का है। दबाव से दबनेवाली जनता अब नहीं रही। इस वास्ते जब वह प्रथम भावना उत्पन्न हुई थी, उसी वक्त हमने कह दिया कि बाबा अपना धर्म जानता है और बाबा यह मानता है कि भारत के जितने भी लोग हैं वे बाबा के अत्यन्त प्यारे हैं। आज नहीं तो कल उनका सहयोग मिलने ही वाला है। यह जानकर ही बाबा काम कर रहा है। सरकारी सेवक और शिक्षक आपके काम में लग गये। दो बातें हो गयीं। अब इसके आगे का काम जो करना है वह ग्रामसभा के लोग ही उठायें, यह कराने की बात है। आगे के लिए पूरी सामग्री तैयार हो गयी है।

नेताओं का जमाना समाप्त

एक बात मैं कई दफा कह चुका हूं, फिर भी दुहराता हूं। आज ही मैं कुछ लोगों से कह रहा था कि बाबा जनता का सामान्य सेवक है और थोड़ा-सा आध्यात्मिक ग्रन्थों का ज्ञान रखता है और उसकी ईश्वर पर श्रद्धा है। हम सारे सामान्य सेवक हैं। मैंने कहा था कि पंडित नेहरू के जाने के बाद जो नेता होंगे वे जनता में एक होकर रहेंगे। इसके आगे नेता नहीं, 'गण सेवक' होंगे। नेताओं का जमाना अब समाप्त हो गया। पं० नेहरू आखिरी नेता थे। इनके आगे वह ताता खतम है। मैंने कहा था कि इसके आगे उनसे भी बढ़कर नेता होंगे, लेकिन वे अनेक में से एक होंगे। उसके लिए बहुत बार मैं एक कहानी सुनाया करता हूं। वर्ड्सवर्थ अंग्रेजी के एक बड़े कवि हो गये। जहाँ वह रहते थे वहाँ एक पहाड़ था। वह घूमने के लिए वहाँ जाया करते थे। किसीने पूछा कि आपका स्मारक कैसे बनाया जाय? तो उन्होंने बताया कि वह जो पहाड़ है, उसमें कई पत्थर अच्छे। कुछ थे उनको सारे लोग कारीगरी के लिए ले गये। फिर भी एक पत्थर ऐसा पड़ा है, जिसका आकर्षण किसीको कारीगरी के लिए नहीं हुआ। वह मैंने देखा है। उसका स्मारक के लिए उपयोग किया जाय। उस पर मेरे जन्म और मृत्यु की तारीख हो और यह लिखा हो—"वन आफ् द मेनी" (अनेक में से एक)। वैसे ही हम भी सारे अनेक में से एक हैं, यह हमको समझ लेना चाहिए। इस कविता को कहते हुए मैं कभी अघाता नहीं।

हमारे पास विशिष्ट और अपवाद माने जानेवाली प्रतिभा के लोग नहीं आये हैं, लेकिन अच्छे हृदयवाले आये हैं। उनमें भी काफी गुण-दोष पड़े हैं। लेकिन बाबा गुण गाना ही पसन्द करता है। दूसरे के गुण गाता है और अपने भी गुण गाता है। यह मैंने सिद्धान्त ही बना लिया है। गांधीजी के जमाने में ऐसा था कि अपने दोष देखो और दूसरों के गुण देखो। लेकिन अब बाबा ने यह नया सिद्धान्त निकाला कि अपना गुण देखो और दूसरों के भी गुण ही देखो। दूसरे के भी गुणों का ही उच्चारण करना और दोष का उच्चारण ही नहीं करना, जैसा कि मीराबाई ने गाया है—"राणाजी, मैंने तो गोविंद गुण गाना।—मैंने तय किया है कि मैं गोविंद का गुण गाऊँगी, मैं केवल गुण ही उच्चारण करूँगी।"

गुण-दोष तो सबमें होते हैं। बाबा में तीन गुण हैं। एक तो करुणा, गरीबों का दुःख मिटाना चाहिए, यह बाबा के हृदय में चल रहा है। दूसरा, जो काम लिया उसको छोड़ना नहीं, सतत करते ही रहना। लोगों का सहकार मिले अथवा नहीं, सातत्यपूर्वक उस काम को करते रहना। और तीसरी बात, बाबा की ईश्वर पर श्रद्धा है। ये तीन गुण उसके हैं, बाकी अनन्त दुर्गुण हैं। ऐसे ही आप लोगों में से हर एक में कुछ गुण होंगे और असंख्य दोष होंगे। हम अनेक दोषों से भरे हुए कुछ-न-कुछ गुणों से युक्त, भगवान के भक्त हैं। हमको एक-दूसरे पर प्यार करना चाहिए। एक-दूसरे का दोष देखना नहीं चाहिए, हर हालत में। हम अधिकारी नहीं हैं कि किसीका दोष देखें और फैसला दें। वह हमारा अधिकार नहीं है। वह ईश्वर का अधिकार है। अन्दर का वह ज्ञाता है। हर एक के हृदय का थर्मामीटर उसके पास है। इस वास्ते फैसला देने का अधिकार हमारा नहीं है। "जज नाट दैट यी, बी नॉट जज"। (दूसरे का फैसला करेंगे तो आप पर ही फैसला लागू होगा।) इस वास्ते दूसरे पर प्रेम करना चाहिए और यह सारी जमात कई दोषों से भरी हुई है, लेकिन ईश्वर-प्रेरित है। ईश्वर इस जमात से काम करवा रहा है।

रांची	बिहार के प्रमुख
२ अगस्त '६९	कार्यकर्ताओं के बीच

विनोबाजी का कार्यक्रम

माह	स्थान	दूरी : मीलों में
सितम्बर		
	उड़ीसा	
३	बारीपदा से उदला	२५
४	उदला से बारीपदा	२५
	बिहार	
६	बारीपदा से चाकुलिया	४२
७	चाकुलिया से घाटशिला	४०
८	घाटशिला से चांडिल	४०
९	चांडिल से बुण्डू	३०
१०	बुण्डू से रांची	३०

—कृष्णराज मेहता

विवेकरहित विरोध

बनाम

बुनियादी परिवर्तन-प्रक्रिया

"शासन के खिलाफ विवेकरहित विरोध चलाया जाय तो उससे अराजकता की, अनियंत्रित स्वच्छंदता की स्थिति पैदा होगी और समाज अपने हाथों अपना नाश कर डालेगा।"

—गांधीजी

आज देश में आये दिन घेराव, धरना, लूटपाट, आगजनी, कथित सत्याग्रह की कार्रवाइयाँ लोकतंत्र में सामूहिक विरोध के हक के नाम पर होती हैं।

सर्वोदय-आन्दोलन भी वर्तमान समाज, अर्थ और शासन-व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह है। किन्तु, वह इसका एक नियंत्रित, रचनात्मक एवं अहिंसक कार्यक्रम प्रस्तुत करता है।

इसके लिए पढ़िए, मनन कीजिए :—

(१) हिन्द स्वराज्य — गांधीजी

(२) ग्रामदान — विनोबाजी

फिर एक जिम्मेवार नागरिक के नाते समाज परिवर्तन को इस क्रान्तिकारी प्रक्रिया में योग भी दीजिए।

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म शताब्दी-समिति)
ढूंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

अ० भा० ग्रामस्वराज्य समिति

— वैशाली-गोष्ठी के कुछ प्रमुख निर्णय और सुझाव —

सर्व सेवा संघ के तिरुपति-अधिवेशन में गठित अ० भा० ग्रामस्वराज्य समिति की पहली बैठक श्री सिद्धराज ढड्ढा की अध्यक्षता और सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, धीरेन्द्र मजूमदार शंकरराव देव जैसे बुजुर्ग नेताओं के मार्गदर्शन में गत १४ से १७ अगस्त तक समिति के संयोजक आचार्य राममूर्तिजी द्वारा तैयार किये गये 'विचार पत्र' के आधार पर सविस्तार चर्चा के बाद सम्पन्न हुई। गोष्ठी के प्रमुख निर्णय निम्न प्रकार हैं :

पुष्टि अभियान

• ग्रामस्वराज्य की लक्ष्य प्राप्ति के लिए व्यापक विचार-शिक्षण और प्रचार हेतु पूरे विचार को सरल भाषा-शैली में समझाते हुए एक नयी पुस्तिका जल्द से-जल्द तैयार की जाय।

• बिहारदान के अगले कदम के रूप में ग्रामदान-पुष्टि के संदर्भ में आगामी नवम्बर '६९ से अप्रैल '७० तक के बीच की अवधि में पूरे बिहार में प्रखण्ड स्तरीय करीब ६०० ग्रामस्वराज्य-गोष्ठियाँ की जायें। उन गोष्ठियों में ग्रामस्वराज्य में रुचि रखनेवाले, सहयोग देनेवाले तथा प्रत्यक्ष भागीदार बननेवाले गाँव के प्रमुख लोगों को, गाँव में ग्रामसभा के संगठन, बीघा-कट्ठा के वितरण, ग्रामकोष के संग्रह आदि कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए, तैयार किया जाय, ताकि वे पंचायत-स्तर पर, आवश्यक हो तो ग्राम-स्तर पर, शिविर करके इस काम को आगे बढ़ा सकें।

• पूरे बिहार में सर्वश्री जयप्रकाश नारायण और धीरेन्द्र भाई की लोकशिक्षण यात्राएँ आयोजित की जायें। श्री जयप्रकाश नारायण छात्रों से अवकाश के वक्त में ग्रामदान-पुष्टि के काम में लगने की अपील करेंगे। श्री जयप्रकाश नारायण ने यह शर्त रखी कि उनकी सभाएँ गाँवों में ही आयोजित की जायें।

• सभी ग्रामदानी गाँवों से तथा ग्रामदान के काम में सहयोग देने व रुचि रखने वाले लोगों से ग्रामसभा के संगठन के लिए कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों की ओर से अपील प्रकाशित की जाय, इसके साथ ग्रामसभा-संगठन के सम्बन्ध में जानकारी भी रहे।

• ग्रामदान पुष्टि के काम की जिम्मेदारी मुख्य रूप से ग्रामसभाओं पर डाली जाय।

• पुष्टि कार्य में इस बात पर जोर रहे कि पूरे गाँव के लोग समारोहपूर्वक बीघा कट्ठा का वितरण करें पूरा गाँव एकसाथ तैयार न भी हो सके, तो जितने तैयार हों, पहले उतने लोगों द्वारा ही वितरण कराया जाय।

संगठन

• हर स्कूल में तरुण शान्तिसेना और हर गाँव में ग्राम शान्तिसेना का संगठन भी पुष्टि कार्य का ही अंग माना जाय।

• ग्रामस्वराज्य के सघन कार्य के लिए उस क्षेत्र को ले सकते हैं, जिस क्षेत्र में :

(१) ग्रामदान की सभी शर्तों की पूर्ति हो जाय।

(२) ग्राम शान्तिसेना संगठित हो जाय।

(३) क्षेत्र की ओर से किसी आगे के काम के लिए कार्यकर्ता की माँग हो, और वह क्षेत्र उस कार्यकर्ता के आवास और भोजन की व्यवस्था की जिम्मेदारी निभाने को तैयार हो।

• रचनात्मक संस्थाओं से अपील की जाय कि संस्था के जो कार्यकर्ता अपनी स्वतःस्फूर्त प्रेरणा से ग्रामस्वराज्य के काम में लगने को तैयार हों, उन्हें संस्था अपनी दैनंदिन कामों की जिम्मेदारी से मुक्त कर दे, लेकिन उनके वेतन आदि की व्यवस्था पूर्ववत् करती रहे।

• बिहार में राज्य स्तर पर इस काम को आगे बढ़ाने के लिए कम-से-कम २५ कुशल कार्यकर्ताओं की एक टीम तैयार की जाय, उनके खर्च आदि के लिए राज्य-स्तर पर एक कोष का संग्रह किया जाय। इसकी सिफारिश समिति बिहार सर्वोदय मंडल से करती है।

• जिस तरह ग्रामदान की प्राप्ति का वातावरण तैयार किया जाता था, उसी प्रकार ग्रामसभा के संगठन का वातावरण भी तैयार किया जाय। पूरे गाँव की चेतना को जगाने के लिए लोकशिक्षण हो। ग्रामसभा में गाँववालों की रुचि के विषय लिये जायें।

• आखिरी तबके की चेतना जगाने के लिए विशेष प्रयत्न करने होंगे। कहीं टकराव की स्थिति आती है, तो उसे शान्तिपूर्ण ढंग से हल किया जाय।

विकास

• विकास का लाभ गाँव के हर आदमी को मिलना चाहिए। खेतिहर मजदूरों को भी गाँव की सहकारी समिति का सदस्य उनकी श्रमशक्ति के आधार पर बनाया जाय। अतिरिक्त उत्पादन (विकसित साधनों और प्राप्त नयी सहूलियतों के कारण) में मजदूरों को मजदूरी के अलावा भी उत्पादन का एक भाग मिलना चाहिए।

• ग्रामसभाओं के शिक्षण के तीन विभाग हो सकते हैं (क) गाँव को नेतृत्व देनेवाला तैयार करने की दृष्टि से, (ख) गाँव में स्वयं-सेवी जमात खड़ी करने की दृष्टि से, (ग) ग्रामसभा की प्रवृत्तियों को चलाने की दृष्टि से।

• गाँव के स्कूल को ग्रामसभा के साथ जोड़ना चाहिए। ग्रामसभा गाँव के स्कूल को श्रम, साधन दे, अपनी जिम्मेदारी महसूस करे। गाँव के स्कूल का शिक्षक ग्रामसभा का सहकारी सदस्य माना जाय। इस संदर्भ में कुछ प्रमुख उत्साही शिक्षकों की तथा प्राथमिक शिक्षण के प्रशासकों का एक राज्य स्तरीय सम्मेलन बुलाया जाय।

• भूमि-कर पूरा पूरा ग्रामसभा को ही मिलना चाहिए। उसका कुछ अंश पंचायत और प्रखण्ड स्तर पर भी खर्च हो सकता है, लेकिन मुख्य भाग ग्रामसभा गाँव में खर्च करे।

लोकनीति

• लोकनीति के लोकशिक्षण के लिए पुस्तिकाएँ सरल भाषा शैली में तैयार करायी जायें।

• ग्रामसभाओं के संगठन का आधार होना चाहिए कम से-कम २० परिवार या १०० की जनसंख्या।

• चुनाव-क्षेत्र का मतदाता-मण्डल एक

स्थाई संगठन होगा। उसके सदस्य बदलते रहेंगे। आमतौर पर एक हजार की जनसंख्या पर एक प्रतिनिधि होगा। इस प्रतिनिधि-मण्डल का अपने विधायक से प्रत्यक्ष सम्बन्ध चुन जाने के बाद भी कायम रहेगा। विधायक अपने कार्यों की रिपोर्ट इस प्रतिनिधि मण्डल को देगा, और आगे के लिए परामर्श लेगा। अगर विधायक इस क्षेत्र का सही प्रतिनिधित्व नहीं करनेवाला साबित होगा तो उसे वापस बुला लिया जायगा।

• इस प्रतिनिधि मण्डल की ओर से चुनाव में खड़े होने का टिकट किसी पार्टी के सदस्य को नहीं मिलेगा। पार्टी के सदस्य से कहा जायगा कि वे पार्टी से अलग होकर हमारे साथ हों।

संगठन तथा अगली बैठक

• राज्य और जिला स्तर पर भी ग्राम-स्वराज्य के काम को अधिक वेगवान् बनाने के लिए ग्रामस्वराज्य समितियाँ संगठित की जायँ। राज्य और जिले के सर्वोदय-मण्डल इस समिति को संगठित करें।

• समिति की अगली बैठक सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष श्री जगन्नाथनजी के आमंत्रण पर अप्रैल या मई '७० में तमिलनाडु में होगी, उस बैठक में बिहार के सघन ग्रामसभा संगठन तथा पुष्टि-अभियान के अनुभव भी प्राप्त हो गये रहेंगे। •

सम्मेलन-समाचार

आगामी सर्वोदय-सम्मेलन (राजगीर) के अवसर पर 'सम्मेलन-समाचार' दैनिक बुलेटिन प्रकाशित करने की योजना बनायी गयी है। २०"×३०" फाउन साइज में प्रकाशित होनेवाली ८ पृष्ठों की इस दैनिक बुलेटिन की एजेंसी-कमीशन आदि की जानकारी के लिए सम्पर्क करें :

व्यवस्थापक
पत्रिका विभाग,
सर्व सेवा संघ प्रकाशन,
राजघाट, वाराणसी–१

पन्द्रह सौ पृष्ठों का साहित्य सात रुपये में

प्रत्येक हिन्दीप्रेमी परिवार में बापू की अमर और प्रेरक वाणी पहुँचनी चाहिए। गांधी-वाणी या गांधी विचार में जीवन-निर्माण, समाज-निर्माण और राष्ट्र-निर्माण की वह शक्ति भरी है, जो हमारी कई पीढ़ियों को प्रेरणा देती रहेगी, परिवार में ऐसे साहित्य के पठन, मनन और चिन्तन से वातावरण में नयी सुगन्धि, शान्ति और भाईचारे का निर्माण होगा।

· गांधी-जन्म-शताब्दी के अवसर पर हम सबकी शक्ति इसमें लगनी चाहिए।

गांधी जन्म-शताब्दी सर्वोदय-साहित्य सेट नं० २

पुस्तक	लेखक	पृष्ठ	मूल्य
१. आत्मकथा (सन् १८६९-१९६९)	गांधीजी	१७६	१·००
२. बापू-कथा (सन् १९२०-१९४८)	हरिभाऊ उपाध्याय	३२०	२·५०
३. गीता-बोध व मंगल प्रभात	गांधीजी	११२	१·२५
४. मेरे सपनों का भारत (संक्षिप्त)	गांधीजी	१७६	१·२५
५. तीसरी शक्ति (सन् १९४८-१९६९)	विनोबा	२१६	२·००
६. गीता-प्रवचन	विनोबा	३००	२·००
७. संघ-प्रकाशन की एक पुस्तक		१०० से १५०	१·००
	कुल :	१४५०	११·००

सेट नं० १

ऊपर की पाँच पुस्तकों का १००० पृष्ठों का सेट ५ रुपये में प्राप्त होगा। एकसाथ ४० या अधिक सेट लेने पर रु० ४) ५० में मिलेगा।

सेट नं० २

१५०० पृष्ठों का पूरा साहित्य-सेट केवल ७ रुपये प्राप्त होगा। एकसाथ २८ या अधिक सेट लेने पर रु० ६) ५० में मिलेगा।

गांधी-जन्म शताब्दी सर्वोदय-साहित्य सेट के लिए मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री की अपील

मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री श्यामाचरण शुक्ल ने गांधी जन्म शताब्दी सर्वोदय-साहित्य-सेट के अधिकाधिक प्रसार के लिए निम्नलिखित अपील की है :

"आगामी २ अक्तूबर, '६९ को हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की जन्म-शताब्दी आ रही है। इस सुअवसर पर गांधी स्मारक निधि, सर्व सेवा संघ और गांधी शान्ति प्रतिष्ठान के सम्मिलित सहयोग से गांधीजी की वाणी घर-घर पहुँचे, इस दृष्टि से गांधीजी की अमर जीवनी, कार्य तथा विचारों से सम्बन्धित एक हजार पृष्ठों का अत्यन्त उपयोगी और चुना हुआ साहित्य का सेट मात्र पाँच रुपये में देने का निश्चय किया गया है। गांधी-जन्म-शताब्दी के अवसर पर हम सबकी शक्ति इस कार्य में लगनी चाहिए। प्रत्येक संस्था और व्यक्ति, विशेषकर मध्यप्रदेश की शिक्षण-संस्थाएँ, सार्वजनिक सेवा संस्थान तथा जनसाधारण जो गांधी जन्म-शताब्दी में दिलचस्पी रखते हैं इस सेट के अधिकाधिक प्रचार-प्रसार कार्य में सहायक होंगे ऐसी आशा, अपेक्षा एवं अनुरोध है।"

सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी–१

आन्दोलन के समाचार

एक-तिहाई दतिया जिला ग्रामदान के अन्तर्गत

इन्दौर से प्राप्त जानकारी के अनुसार मध्यप्रदेश गांधी जन्म-शताब्दी समिति द्वारा २ अक्तूबर, '६६ तक "प्रदेशदान" के घोषित संकल्प की सिद्धि की दिशा में दतिया जिला गांधी-शताब्दी-समिति "दतिया जिलादान" के लिए प्रयत्नशील है। इस उद्देश्य से जिले के गांवों में विगत दिनों से ग्रामदान अभियान चलाया जा रहा है। अभियानों के पांच दौर में अबतक १४० ग्रामदान घोषित हो चुके हैं, अर्थात् एक तिहाई दतिया जिला ग्रामदान के अन्तर्गत आ चुका है। यह उल्लेखनीय है कि गांधी-शताब्दी के क्षेत्रीय संगठक श्री कल्याणचन्द्र त्रिपाठी के नेतृत्व में गांधी-निधि के २० कार्यकर्ता और स्थानीय सेवा-भावी सज्जन अभियान में लगे हुए हैं। शीघ्र ही दतिया-जिलादान घोषित होने की सम्भावना है। (सप्रेस)

देवास जिले में १६८ ग्रामदान

मध्यप्रदेश के देवास जिले की तीन तहसीलों—देवास, खातेगांव और कन्नोद—में ग्रामदान प्राप्ति की संख्या १६८ तक पहुँच गयी है। देवास जिला गांधी-शताब्दी समिति की ओर से पिछले दिनों जिले की सभी तहसीलों में एक-एक दिवसीय गांधी विचार शिविर आयोजित किये गये थे, जिनमें गांधी-शताब्दी के लिए प्रस्तावित नौसूत्री कार्यक्रम पर सविस्तार चर्चा हुई। उसीकी फलश्रुति है कि देवास जिले के इन गांवों ने ग्रामदान की घोषणा कर ग्रामस्वराज्य की दिशा में कदम बढ़ाने का निश्चय किया है। यह प्रयत्न किया जा रहा है कि गांधी शताब्दी-वर्ष में जिले के सभी गांव ग्रामदानी बन जायें।

इन्दौर में आयोजित राष्ट्रीय परिसंवाद अब नवम्बर या दिसम्बर में होगा

इन्दौर, १७ अगस्त। नगरों में सर्वोदय-कार्य सम्बन्धी आगामी सितम्बर माह में इन्दौर में आयोजित राष्ट्रीय परिसंवाद अब नवम्बर या दिसम्बर माह में करने का निश्चय किया गया है। परिसंवाद के अध्यक्ष श्री जयप्रकाश नारायण के "बिहारदान" एवं अन्य महत्त्वपूर्ण कार्यों में व्यस्तता के कारण तारीखों में परिवर्तन करना पड़ा है।

उक्त परिसंवाद का आयोजन सर्व सेवा संघ, गांधी शान्ति प्रतिष्ठान, इन्दौर विश्वविद्यालय, इन्दौर मैनेजमेण्ट एसोशियेशन तथा जिला गांधी-शताब्दी समिति के तत्त्वावधान में प्रस्तावित है।•

उत्तरप्रदेश में अभियान

• टिहरी जिले के चम्बा ब्लाक में १० ग्रामदान प्राप्त होने की सूचना मिली है।

• सुल्तानपुर जिले के लम्भुआ ब्लाक के २०५ गांवों में से १७३ ग्रामदान (८६ प्रतिशत) प्राप्त हुए। इस जिले में २६ जुलाई से ६ अगस्त तक अभियान चलाया गया और प्रखण्डदान घोषित हुआ।

• गाजीपुर जिले से श्री नरेन्द्र मिश्र ने सूचना दी है कि भरदह ब्लाक में २५ जुलाई से ५ अगस्त तक ग्रामदान अभियान चला। कुल १०५ गांवों में से ६६ ग्रामदान (६१ प्रतिशत) प्राप्त हुए, मदौरा ब्लाक में ३३ ग्रामदान हुए थे, किन्तु प्रतिशत पूरा न होने से *प्रखण्डदान की घोषणा नहीं हुई थी।* इस माह में ६ और ग्रामदान हो जाने से ४२ गांवों में से ३६ ग्रामदान (८६ प्रतिशत) प्राप्त कर प्रखण्डदान की घोषणा हुई।

—कपिल भाई के पत्र से

देवरिया जनपद में ५ प्रखंडदान

देवरिया जनपद के हाटा तहसील में सुकरौली-हाटा-रामकोला बस्तानगंज और मोतीचक ब्लाक में एक ही साथ ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य-अभियान दिनांक ५ जुलाई ६६ से १६ जुलाई ६६ तक चलाया गया। इस अभियान के प्रारम्भ में दो दिन का शिविर श्री गांधी स्मारक इन्टर कालेज हाटा में चला। ७ जुलाई से १६ जुलाई तक उक्त क्षेत्रों के प्रत्येक न्याय पंचायतों में तीन-तीन कार्यकर्ताओं की टोलिया गांव के प्रत्येक परिवार तक पहुँची और ग्राम स्वराज्य का सन्देश पहुँचाने का प्रयास किया। फलस्वरूप सुकरौली-हाटा रामकोला मोतीचक और कप्तानगंज ब्लाक के ६० प्रतिशत गांवों ने सामूहिक घोषणा द्वारा हस्ताक्षर करके अपनी सहमति व स्वीकृति प्रदान की। तदनुसार सुकरौली-हाटा-रामकोला और मोतीचक ब्लाक का प्रखंडदान उसी समय घोषित हो गया। कप्तानगंज ब्लाक के शेष गांवों की सहमति भी अब ६० प्रतिशत प्राप्त हो गयी है। इस प्रकार देवरिया जनपद के हाटा तहसील में, रामकोला कप्तानगंज-मोतीचक, सुकरौली तथा हाटा प्रखंड का प्रखंडदान घोषित हो गया।

अभियान मुख्य रूप से श्री कपिल भाई व श्री शिवकुमार पाण्डेय, मंत्री, क्षेत्र कार्यालय मगहर की प्रेरणा से चलाया गया। पूर्व-संचालन व देखरेख का काम श्री बाबू राम राय, व्यवस्थापक, श्री गांधी आश्रम, उत्पत्ति-केन्द्र, देवरिया द्वारा किया गया था। इस अभियान में श्री गांधी आश्रम देवरिया, गोरखपुर, मगहर, बस्ती, गोण्डा, बहराइच के लगभग १५० कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। इस अभियान में गांधी स्मारक इन्टर कालेज के प्रधानाचार्य व शिक्षकों का सहयोग सराहनीय रहा। जिला ग्रामदान प्राप्ति समिति देवरिया के अध्यक्ष श्री प्रताप ध्वज सिंह ने समय-समय पर कार्यकर्ताओं का उत्साह-वर्धन किया। ●

जयपुर में ८१ ग्रामदान

श्री फूलचन्द्र अग्रवाल द्वारा प्रेषित तार से प्राप्त सूचनानुसार राजस्थान खादी विकास मण्डल और राजस्थान खादी संघ के सम्मिलित प्रयत्नों के फलस्वरूप जयपुर जिले के गोविन्दगढ़ प्रखण्ड के कुल १०२ गांवों में से ८१ गांवों ने ग्रामदान का संकल्प घोषित किया है। ●

उज्जैन और इन्दौर में आचार्य राममूर्ति का कार्यक्रम

राजकोट प्रबन्ध समिति की बैठक से महाराष्ट्र सर्वोदय-मण्डल के अधिवेशन में भाग लेने के लिए जलगांव जाते हुए रास्ते में ३० और ३१ जुलाई को उज्जैन तथा इन्दौर की शिक्षा-संस्थाओं में आचार्य राममूर्ति के व्याख्यान आयोजित किये गये थे। ३० जुलाई को उज्जैन कालेज के छात्रों तथा शिक्षकों के बीच दो व्याख्यान हुए। उज्जैन स्थित विक्रम विश्वविद्यालय में गांधी-शताब्दी व्याख्यान-माला के अन्तर्गत '३० जनवरी '४८ के बाद भारत में गांधी' विषय पर आचार्यश्री का उद्बोधक भाषण हुआ।

सर्वोदय-साहित्य भण्डार के स्थापना-दिवस ३० जुलाई के अवसर पर इन्दौर नगर में रात को 'भारत में लोकतंत्र और उसके भविष्य' पर व्याख्यान हुआ। ३१ जुलाई को इन्दौर के शिक्षकों के बीच गैर-राजनीतिक शक्ति के रूप में आचार्यकुल के संगठन की आवश्यकता और महत्ता पर विशद विवेचन करते हुए आचार्य राममूर्ति ने कहा कि शिक्षण-संस्थाओं के अनुशासित यानी शासन के पीछे चलनेवाले वातावरण में छात्रों की उच्छृंखलता आश्चर्य की चीज नहीं है। आपने कहा कि शिक्षा में व्याप्त उलझी समस्याओं का हल गैर-राजनीतिक स्वायत्त शिक्षण-संस्थाओं के विकास से ही सम्भव है। ●

श्री जयप्रकाश नारायण का बिहारदान की संकल्प-पूर्ति के लिए तूफानी दौरा

दिनांक	विवरण
२२ से २४ अगस्त	तक रांची के विभिन्न क्षेत्रों का दौरा।
२५ अगस्त	. दोपहर में भोजन विश्राम रांची, सर्किट हाउस में, २-३० बजे रांची से माराफारी के लिए प्रस्थान। ५ बजे संध्या मारफारी में आमसभा।
" अगस्त	. ७ बजे संध्या में मारफारी से देवघर के लिए कार से प्रस्थान। १३२ मील। देवघर में रात्रि-विश्राम।
२६ अगस्त	प्रातः ८ बजे देवघर से साहेबगंज के लिए प्रस्थान। साहेबगंज में आमसभा का कार्यक्रम, संध्या-समय।
२७ अगस्त	. साहेबगंज से प्रातः ५-१० बजे 'अपर इंडिया एक्सप्रेस' से भागलपुर के लिए प्रस्थान और ५-५० बजे भागलपुर पहुँचना। जिलादान समारोह में भाग लेना। भागलपुर विश्वविद्यालय में सभा। २३-१२ बजे दानापुर फास्ट पैसिंजर ट्रेन से पटना के लिए प्रस्थान।
२८ अगस्त	. ७-३१ बजे प्रातः पटना पहुँचना।
,, अगस्त	. पटना से १० बजे आरा के लिए प्रस्थान। ११ बजे आरा पहुँचना। आरा में सभा आदि के कार्यक्रम।

'विनोबा चिन्तन' (मासिक)

'विनोबा चिन्तन' प्रति माह प्रकाशित होता है। इसमें लगभग ५० पृष्ठों में किसी एक विषय पर विनोबाजी के समय-समय पर दिये प्रवचन कलात्मक ढंग से संजोये जाते हैं, जो अपने अपने विषय में एक एक पुस्तक बन जाती है। इसके स्थायी ग्राहक बनकर इस ज्ञानराशि का संग्रह करना प्रत्येक जिज्ञासु एवं अध्यासु के लिए लाभप्रद है।

वार्षिक मूल्य : ६ रु०, एक प्रति : ६० पैसे।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी-१

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०, या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इंडियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ५०

सोमवार १५ सितम्बर, '६६

अन्य पृष्ठों पर

जब आस्तिक कहलानेवाले ही आपस में झगड़ते रहेंगे, तो नास्तिकों से मुकाबिला कैसे हो सकेगा ? इसलिए बहुत जरूरी है कि भिन्न-भिन्न धर्मों में भिन्नता के जो अंश हैं उन पर जोर न देकर समान अंशों पर ही जोर दिया जाय। —विनोबा

सम्पादक

सर्व सेवा संघ प्रकाशन,
राजघाट, वाराणसी–१ उत्तरप्रदेश
फोन : ४२८५

क्या आप वर्गयुद्ध को टाल सकते हैं ?

प्रश्न—यदि आप मजदूरों, किसानों और कारखाने के श्रमिकों को लाभ पहुँचाना चाहते हैं, तो क्या आप वर्गयुद्ध को टाल सकते हैं ?

उत्तर—बेशक मैं टाल सकता हूँ, बशर्ते कि लोग अहिंसक मार्ग का अनुसरण करें। अहिंसक तरीके से हम पूंजीपति का नहीं, बल्कि पूंजीवाद का नाश करना चाहते हैं। हम पूंजीपति से कहते हैं कि वह अपने को उन लोगों का संरक्षक समझे, जिन पर उसकी पूंजी बनने, टिकने और बढ़ने का दारमदार है। श्रमिक को पूंजीपति के हृदय-परिवर्तन की प्रतीक्षा करने की भी जरूरत नहीं है। यदि पूंजी में बल है तो श्रम में भी है। बल का उपयोग विनाशक और रचनात्मक, दोनों प्रकार से किया जा सकता है। दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं। ज्योंही मजदूर अपनी ताकत को पहचान लेता है, त्यों ही पूंजीपति का गुलाम बना रहने के बजाय उसका बराबरी का हिस्सेदार बनने की स्थिति में आ जाता है। यदि वह अकेला ही मालिक बनना चाहेगा, तो वह सम्भवतः सोने का अंडा देनेवाली मुर्गी को मार डालेगा। बुद्धि और अवसर की असमानताएँ अन्त काल तक बनी रहेंगी।

नदी के किनारे रहनेवाले आदमी के लिए सूखी मरुभूमि में रहनेवाले की अपेक्षा फसल उगाने का अवसर सदा ही अधिक रहेगा। परन्तु यदि असमानताएँ हमारे सामने हैं, तो मूलभूत समानताओं को भी हमें अपनी पहुँच के बाहर नहीं समझना चाहिए। पशु-पक्षियों की तरह ही प्रत्येक मनुष्य को जीवन की आवश्यकताओं के लिए समान हक है। और चूंकि प्रत्येक अधिकार के साथ अनुरूप कर्तव्य और उस पर होनेवाले हमले को रोकने का अनुरूप इलाज लगा हुआ है, इसलिए मूल प्रारंभिक समानता की प्राप्ति और रक्षा करने के लिए उन कर्तव्यों और उपायों को खोज निकालने की ही बात रह जाती है। वह अनुरूप कर्तव्य है अपने हाथ-पैरों से परिश्रम करना और वह अनुरूप उपाय है उस आदमी से असहयोग करना, जो मुझसे मेरे परिश्रम का फल छीन लेता है।

मेरा असहयोग वह जो अन्याय कर रहा होगा उसके प्रति उसकी आँखें खोल देगा। मुझे यह डर रखने की जरूरत नहीं कि मेरे असहयोग करने पर कोई और मेरा स्थान ले लेगा। क्योंकि मुझे अपने साथियों पर इतना असर डाल सकने की आशा है कि वे मेरे मालिक के अन्याय में सहायता न दें।

मो. क. गांधी

यंग इं० १९३१ : पृष्ठ ४९

राजगीर सर्वोदय सम्मेलन में ग्रामदानी गाँव के प्रतिनिधि अधिकाधिक संख्या में भाग लें

—सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष की अपील—

राजगीर (बिहार) में अक्तूबर २५ से २८ तारीख तक जो सर्वोदय समाज का सम्मेलन चलेगा, वह इस बार बड़ा महत्त्व रखता है। राजगीर इतिहास-प्रसिद्ध है। भगवान बुद्ध की पुण्य स्मृति में स्तूप भी इस अवसर पर वहाँ बनाया जा रहा है। २५-२६ को शान्ति-प्रेमियों का सम्मेलन चलेगा जिसमें कई राष्ट्रों के प्रतिनिधि भाग लेंगे। उसके बाद २७ और २८ को सर्वोदय सम्मेलन चलेगा, यह आप जानते ही हैं। इस प्रकार से इस बार का यह सर्वोदय सम्मेलन 'अन्तर्राष्ट्रीय सर्वोदय सम्मेलन' के रूप में आयोजित हो रहा है।

पिछले १८ साल के आन्दोलन के इस आरोहण में बिहार राज्यदान की प्राप्ति बहुत ही महत्त्व की है। यह ऐसा सम्मेलन है जिसमें 'सर्वोदय के सेवक और प्रेमी गर्व और उत्साह से भाग लेंगे। यह हमारे लिए और भी खुशी की बात है कि गांधीजी के दो परम अनुयायी और अहिंसा के अवतार सीमांत गांधी बादशाह खान और पू० विनोबाजी भी इसमें भाग लेनेवाले हैं। गांधी शताब्दी के इस वर्ष में राजगीर का यह सम्मेलन ग्रामस्वराज्य तथा विश्व-शान्ति के लिए प्राणदायी होगा।

अब तक सर्वोदय-सम्मेलन इस बात का मौका बनता था जिसमें सर्वोदय सेवक आपस में मिलें, आत्मिक प्रेम और सौहार्द बनायें तथा अपने अनुभवों के आधार पर भविष्य का कार्यक्रम बनायें, व्यूह-रचना करें। आज आन्दोलन जिस स्टेज पर आ पहुँचा है अथवा जो इसकी नैतिक वृद्धि हुई है, उससे ग्रामस्वराज्य की सम्भावना दृढ़ हो गयी है। इसलिए इस सन्दर्भ में ग्रामदान-आन्दोलन में भाग लेनेवाले ग्रामवासियों को भी सम्मेलन में सक्रिय भाग लेना आवश्यक हो जाता है। सैकड़ों ग्रामवासी ऐसे हैं जिन्होंने तत्परता पूर्वक ग्रामदान-आन्दोलन में भाग लिया है और ग्रामदान के बाद निर्माण-कार्य में भी हिस्सा ले रहे हैं। हर प्रदेश में ऐसे ग्रामवासी हैं जो ग्रामस्वराज्य के आदर्श में विश्वास रखकर ग्रामसभाएँ संगठित कर सेवा कर रहे हैं। ऐसे ग्रामदानी लोगों को राजगीर सम्मेलन में बुलाया जाय तो उनको नया उत्साह, प्रोत्साहन और प्रेरणा मिलेगी। ग्रामदान-आरोहण और निर्माण-कार्य को जन-आन्दोलन का रूप देने के लिए इन ग्रामवासियों को हमें इस सम्मेलन में बुलाना चाहिए।

इसलिए सभी राज्यों के ग्रामदानियों के प्रतिनिधि इसमें भाग ले सकें, इसका इन्तजाम किया जा रहा है। आपके प्रदेश में ऐसे ग्रामवासियों को, जो आन्दोलन, निर्माण-कार्य तथा ग्रामसभा के प्रबन्ध में काम कर रहे हैं, उनको चुनकर सम्मेलन में भाग लेने के लिए प्रेरित करने का इन्तजाम कीजिये। हर प्रदेश से एक सौ तक ऐसे प्रतिनिधि भेजे जा सकते हैं इसलिए कृपया आप ऐसे योग्य प्रतिनिधियों को सम्मेलन में भेजने की कोशिश कीजिये। सम्मेलन में उनके आने-जाने का करीब एक सौ रुपये तक खर्च हो सकता है। इसका इन्तजाम ग्रामसभा कर सकती है या प्रतिनिधि स्वयं उठा सकते हैं। उनके आने जाने में १०-१२ दिन लग सकते हैं। उनकी अनुपस्थिति में कृषि-कार्य रुक न जाय, इसका भी प्रबन्ध करना होगा। इन सब बातों का ध्यान रखकर आप शीघ्र ही प्रबन्ध करेंगे, ऐसा विश्वास करता हूँ। इनके लिए सर्व सेवा संघ की ओर से एक सौ रेलवे-कन्सेशन फार्म आपके पास भेजे जायेंगे। सम्मेलन में भाग लेनेवाले ग्रामदानवासियों से सम्बन्धित निम्न विवरण कृपया सर्व सेवा संघ के गोपुरी कैम्प कार्यालय वर्धा, महाराष्ट्र के पते पर भिजवाने का कष्ट करेंगे :—

१—सम्मेलन में भाग लेनेवाले ग्रामवासियों के नाम

२—ग्राम और पूरा नाम

३—उनका व्यवसाय तथा सहायक अन्य उद्योग

४—आन्दोलन में उनका भाग

५—निर्माण-कार्यक्रम में उनकी लगन और साधना

६—ग्रामसभा में उनकी जिम्मेवारी

७—अन्य विवरण।

सम्मेलन के बीच में ग्रामदानियों की सभाएँ फुरसत के अनुसार हो सकती हैं। आवश्यकता हो तो उनकी एक अलग विशेष सभा २९ ता० को कराने का विचार है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपके प्रान्त से आन्दोलन में अनुभव रखनेवाले सुयोग्य ग्रामदानी गाँवों के लोग सम्मेलन में भाग लेकर उसको सफल बनायेंगे।

—एस० जगन्नाथन

कैम्प—तिलवेलूर (तंजौर) अध्यक्ष

१ सितम्बर, १९६९ सर्व सेवा संघ

भूल-सुधार

'भूदान-यज्ञ' के पिछले ८ सितम्बर'६९ के अंक में अंतिम पृष्ठ के अंतिम समाचार—राँची में 'विनोबा-जयन्ती' में दूसरी लाइन में भूल से ७४ की जगह ७५ छप गया है। पाठकगण क्षमा करेंगे। —सम्पादक

'भूदान-यज्ञ' का गांधी-जयन्ती-विशेषांक

मेरे सपनों का भारत और आखिरी वसीयत

अपने पूर्व विशेषांकों की विशिष्ट परम्परानुसार 'भूदान-यज्ञ' उपर्युक्त शीर्षक से २ अक्तूबर '६९ को अपनी मौलिकता सहित प्रकाशित हो रहा है। जिन्हें विशेषांक की अधिक प्रतियाँ चाहिए वे शीघ्र सूचित करें। पूर्व तैयारी के लिए भूदान-यज्ञ का २२ सितम्बर का अगला अंक प्रकाशित नहीं होगा।

—व्यवस्थापक

योजनाओं से दूर हटती चली जा रही है। समझ में नहीं आता कि जो 'परतन्त्र' हैं उन्हें अलग रखकर स्वतन्त्रता की लड़ाई कैसे लड़ी जायगी, और जो लाखों गाँवों में फैला हुआ इस देश का समाज है उसे अलग रखकर समाजवाद की लड़ाई कैसे लड़ी जायगी? लेकिन लड़ी तो जा रही है!

आर्थिक स्वतन्त्रता के नाम में पूँजीवाद बढ़ा; उसीके नाम में साम्यवाद आया; और अब उसी नारे पर मिश्रित अर्थनीति के लोक-कल्याणकारी राज्य की रचना की जा रही है। पूँजीवाद ने आर्थिक स्वतन्त्रता का अर्थ किया भूखों मरने की स्वतन्त्रता; साम्यवाद ने किया स्वतन्त्रता की बात भूलकर जीते रहने की स्वतन्त्रता; अब हमारा राज्य अर्थ कर रहा है। बड़े-बड़े नारों पर जीने या मरने दोनों की स्वतन्त्रता। पश्चिम के संघर्ष पूरब में फैली हुई पेट की लड़ाई को देखकर यह मानने को विवश होना पड़ रहा है कि आर्थिक स्वतन्त्रता का सही अर्थ है बाजार की शक्तियों, साधनों, और सम्बन्धों से मुक्ति, ठीक उसी तरह जैसे राजनीतिक स्वतंत्रता का सही अर्थ है आज की समूची राजनीति से मुक्ति, जिस पर नागरिक का कोई अंकुश नहीं है।

प्रधानमन्त्री इस बारे में क्या सोचती हैं? उनका सुझाव क्या है? पेट की लड़ाई लड़नेवाली, और रोज-रोज हारती चली जाने वाली जनता उनकी आर्थिक स्वतन्त्रता की लड़ाई में कैसे शरीक हो? वह क्या करे? क्या करे मजदूर, क्या करे बँटाईदार, छोटा किसान, दस्तकार, और बेकार युवक? क्या यही कि जो कुछ हो रहा है, होने दे और सरकार को माई-बाप मानता रहे? ठोकरें खा-खाकर भी उन्हींका भरोसा करता रहे, जो अब भरोसे के लायक रह नहीं गये हैं? कोई बताये कि इन लोगों को क्या करना चाहिए?

आर्थिक स्वतन्त्रता का एक दूसरा अर्थ भी है। वह है समान सामाजिक संरक्षण और तुल्य पारिश्रमिक। हर व्यक्ति को समाज (जिसमें सरकार भी शामिल है) की ओर से जीविका का समुचित साधन और शिक्षण मिलना चाहिए। जो जहाँ काम करता है उसे उस जगह निर्णय का अधिकार होना चाहिए। अन्त में, विषमता एक सीमा से आगे नहीं बढ़नी चाहिए। श्रम से मिलनेवाले पारिश्रमिक में विषमता ऐसी हर्गिज न हो कि श्रम और कौशलवाले मनुष्य की स्वतन्त्रता विषमता के नीचे दब जाय।

ये गुण हैं स्वतन्त्रता के। लेकिन इन गुणों का प्रकट होना सम्भव नहीं है। प्रश्न केवल नीयत के नेक होने का नहीं रह गया है। नीयत के साथ-साथ सही हिकमत होनी चाहिए और उस हिकमत पर चलने की जरूरी हिम्मत भी होनी चाहिए। लेकिन किसी ओर दिखाई नहीं दे रहा है कि दिल्ली या किसी दूसरी राजधानी में कोई सही हिकमत अपनायी जा रही है। प्रधानमन्त्री खुद कई बार कह चुकी हैं कि प्रशासन का यह निकम्मा ढाँचा, और शिक्षण की यह सड़ी-गली पद्धति देश की प्रगति में सबसे बड़ी बाधाएँ हैं। राजनीति जोड़ ली जाय तो दोषों की कमी पूरी हो जायगी।

जनता जानना चाहती है कि प्रधानमन्त्री देश को इन त्रिदोषों से मुक्त करने के लिए क्या कर रही हैं। अगर यह साफ साफ मालूम हो जाय तो जनता उनकी लड़ाई को उत्साहपूर्वक अपनी लड़ाई मान लेगी। पहले मालूम तो हो कि कौनसी लड़ाई लड़ी जा रही है। •

एक सच्चा इंसान चला गया

जिसने जाना उसने प्यार किया।

शायद ही कोई हो जिसने रावसाहब को जाना हो और उन्हें प्यार न किया हो। जिसने उन्हें एक बार भी जाना उसने उन्हें जिन्दगी भर प्यार किया। और, रावसाहब ने जिसे जान लिया उसको उन्होंने हमेशा प्यार दिया, दिल खोलकर दिया। न जाने कितने लोगों से हर उम्र, हर जाति, हर धर्म, हर भाषा और राज्य के लोगों से—उनका दिल का—दिल से सम्बन्ध था। उनकी बाँहें दिल से लगाने के लिए हमेशा खुली ही रहती थीं। इसीलिए रावसाहब का जाना ऐसा लगता है जैसे कोई अपना प्यारा-से प्यारा चला गया।

और, उनका प्यार भी कितना परिष्कृत और सुसंस्कृत था! हम सब प्यार करना चाहते हैं लेकिन प्यार करना जानते कितने हैं? प्यार पाना चाहते हैं लेकिन प्यार के पात्र कितने होते हैं? रावसाहब ने कभी पात्रता देखकर किसीको प्रेम का पुरस्कार नहीं दिया। जो मनुष्य था वह उनके प्रेम का पात्र था। स्वार्थ, सन्देह, संकीर्णता का मैल अक्सर प्रेम को घेर लेता है, किन्तु रावसाहब ने अपने मन में इस मैल को कभी घुसने नहीं दिया।

रावसाहब नेता थे, विद्वान थे, बहुत कुछ थे, किन्तु सबसे बढ़कर वह इंसान थे। असल इंसानों की दुनिया में सच्चे इंसान की कितनी कमी है! रावसाहब पटवर्धन चले गये, एक सच्चा इंसान चला गया। •

लेखकों से

- 'भूदान-यज्ञ' में प्रेषित अस्वीकृत रचनाओं की वापसी तभी सम्भव है, जब रचना के साथ आवश्यक डाक-टिकट भेजे जायँगे।
- रचनाओं की स्वीकृति-सूचना रचना प्राप्त होने के दो सप्ताह के अन्दर हम भेज देते हैं।
- 'भूदान-यज्ञ' में प्रकाशित लेख हम अपने सुहृदय लेखकों की ओर से अहिंसक क्रान्ति के अभियान में एक योगदान मानते हैं। किसी प्रकार का पारिश्रमिक देने की स्थिति हमारी नहीं है। प्रकाशित लेखवाला अंक हम लेखक को सप्रेम भेंट करते हैं।
- 'भूदान-यज्ञ' जिस अहिंसक क्रान्ति का संदेशवाहक है, उसमें योगदान करनेवाली सामग्री ही प्रकाशित होती है। —सम्पादक

"जाके प्रिय न राम बैदेही। तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही।" यों कहकर उनको सलाह दी और यह भी लिख दिया—"ये तो मतो हमारो।" मतलब यह कि आपको जँचे सो यह करिएगा। तुलसीदासजी की सलाह मानकर उन्होंने घर छोड़ा। जो भी हो, मालूम नहीं किस जमाने में यह हुआ, लेकिन लोगों में यह किस्सा प्रचलित है।

तो जिस प्रकार से मीराबाई को यह सलाह काम आयी उस प्रकार से औरों को भी गुरु की सलाह काम में आयी। ऐसे गुरु जब भारत में थे तब भारत उन्नति के शिखर पर था। वह लोगों को शिक्षण देते थे और बिलकुल निरपेक्ष भाव से सलाह भी देते थे। शंकराचार्य, वल्लभाचार्य आदि सन्तों की जमात सब दूर घूमती थी। बाबा की भी आज जो महिमा है वह उसके घूमने के कारण है, क्योंकि जिस जमाने में मोटर चलती है, उसमें भी वह पैदल घूमा। लेकिन पुराने जमाने में कौन नहीं घूमा ? तुलसीदासजी ने भगवान से प्रार्थना की—"तुलसी तव तीर-तीर सुमिरत रघुवंशवीर बिचरत मतिदेहि" हे गंगे, मुझे ऐसी बुद्धि दे कि मैं तुम्हारे किनारे-किनारे घूमते हुए रामजी का गुण गाता रहूँ। तुलसीदासजी निरन्तर घूमते रहे। कबीर भी ऐसे ही घूमते रहे। मैं जब दक्षिण में गया था तो वहाँ के लोगों ने कहा कि कबीर दक्षिण के थे। उत्तरवाले कहते हैं कि कबीर उत्तर के थे। पश्चिमवाले कहते हैं कि वे पश्चिम के थे। इस प्रकार से सारे भारत में घूमे। नानकजी मक्का में गये थे। वहाँ पर वे एक स्थान पर लेटे थे और उनका पैर मस्जिद की तरफ पड़ता था, जहाँ नहीं पड़ना चाहिए था, जो पवित्र स्थान माना जाता है। लोगों ने इसकी शिकायत की तो नानकजी ने कहा कि तुम मेरे पैर को उस तरफ हटा दो जिस तरफ ईश्वर उपस्थित न हो, मैं अपने पाँव उधर कर सकता हूँ। लोग उनके पैरों को दूसरी दिशा में रखने लगे, लेकिन जिधर वे रखते उधर ही मस्जिद आ जाती। तब मक्कावालों के ध्यान में आया कि यह सन्त भारत से आया है, इसको ऐसा ज्ञान है जो हम लोगों को भी नहीं है। यों कहकर उनका अत्यन्त सम्मान किया।

तुलसीदास की विशिष्ट देन

आज हमको किसीने याद दिलायी कि आज तुलसीदासजी का प्रयाण-दिन है। तुलसीदासजी ने उत्तर भारत को बचाया। क्योंकि उस जमाने में हिन्दुओं में अनेक जमातें परस्पर-विरोधी काम कर रही थीं। कोई एक देवता को पूजता था, कोई दूसरे देवता को, ऐसे नाना देवताओं को पूजनेवाले पचासों पंथ हो गये थे और उनमें परस्पर-झगड़े होते थे। उस समय मुसलमान आये और उनके साथ इस्लाम धर्म आया। इस्लाम ने समझाया कि परमात्मा एक है। लोगों में इससे बुद्धि-भेद हो गया। उस जमाने में तुलसीदासजी आये। उन्होंने 'रामायण' पेश कर राम को बढ़ाया और कहा कि सारे देवता राम के सेवक हैं। अनेक देवताओं का सम्मिलन रामजी में लगा दिया। रामजी ही परमात्मा हैं, ऐसा उन्होंने सारे भारत में फैलाया। लोगों की बुद्धि एकाग्र हो गयी। यह उन्होंने सबसे श्रेष्ठ काम किया। मेरा मानना है कि उत्तर भारत में गौतम बुद्ध के बाद तुलसीदासजी के जैसे महान कोई नहीं हुआ। उनका आज स्मरण-दिन है। बड़ा आनन्द हुआ कि थोड़ी कुछ महिमा उनकी आप लोगों के बीच गायी। उनकी 'विनय-पत्रिका' से चुने हुए अंश निकालकर एक पुस्तक मैंने तैयार की है, जिसका नाम 'विनयांजलि' है। उस पुस्तक में तुलसीदासजी के बारे में मेरी प्रस्तावना है।

यह सब मैंने इसलिए कहा कि आपके पूर्वज कौन हैं, यह मालूम हो। किसी राजनीतिज्ञ को पूछेंगे कि आपके पूर्वज कौन थे ? तो वह अकबर सम्राट, चन्द्रगुप्त सम्राट के नाम बतायेंगे। लेकिन आपको पूछा जायेगा तो आप कबीर, तुलसीदास, नानक आदि सन्तों और आचार्यों का नाम लेंगे। आप उनकी परम्परा में हैं, राजनीतिज्ञों की परम्परा में नहीं। वह हैसियत आपको दुबारा प्राप्त हो, भारत में आपकी बुलन्द आवाज हो, आपकी ताकत बने, इसके लिए आपको राजनीति से मुक्त होना होगा। आप सब सर्वसम्मति से किसी ज्वलन्त प्रश्न पर अपनी राय जाहिर करेंगे, इसका दर्शन होना चाहिए। आपको तीन बातें करनी हैं। पहला गाँव-गाँव से सम्पर्क करना, उनकी सेवा करना, दूसरी—राजनीति से मुक्त हो जाना। राजनीति के बारे में आपका गहरा अध्ययन हो और समय समय पर अपनी सर्व-सम्मत राय जाहिर करें, लेकिन दलीय राजनीति में नहीं पड़ें, और तीसरी—अपने लड़कों को माता के समान प्रेम देना तथा आचार्यों के समान ज्ञान देना। दोनों चीजों से उनको भर दें, यह आपका काम रहेगा। यह करने के लिए आपको चौथी चीज करनी होगी कि अपना अध्ययन बढ़ाना होगा। अध्ययन करके नये-नये ज्ञान की पूँजी प्राप्त करनी होगी।

दिनांक २०-८-'६९
चाईबासा अनुमण्डल (सिंहभूम) के शिक्षा-पदाधिकारियों के बीच।

संघ के सभी सदस्यों की सेवा में :

संघ-अधिवेशन, राजगीर
दिनांक २३-२४ अक्तूबर, '६९

प्रिय बन्धु,

सर्व सेवा संघ का वार्षिक अधिवेशन सर्वोदय-सम्मेलन के ठीक पहले दिनांक २३-२४ अक्तूबर, '६९ को राजगीर (बिहार) में आयोजित किया गया है।

आपसे प्रार्थना है कि आप अपना अक्तूबर माह का कार्यक्रम कृपया इस प्रकार बनाय कि २२ की रात अथवा २३ की सुबह तक आप राजगीर पहुँच सकें, ताकि संघ-अधिवेशन ता० २३ की सुबह से प्रारम्भ हो सके।

अधिवेशन में विचारणीय विषयों की सूची तथा कार्यक्रम आदि की जानकारी आपको यथाशीघ्र भेजी जा सकेगी। आप जिन विषयों को अधिवेशन में रखना चाहते हैं, उनको अपने सुझाव एवं तत्सम्बन्धी नोट सहित यहाँ शीघ्र भिजवा दें ताकि वह विचारणीय सूची में शामिल कर परिपत्रित किया जा सके।

आपका
नरेन्द्र दुबे,
सहमंत्री

सर्व सेवा संघ
पो०-गोपुरी, वर्धा
(महाराष्ट्र)

सहचिंतन के लिए प्रस्तुत :

अद्यतन औद्योगिक व्यवस्था और ग्रामस्वराज्य की औद्योगिक दिशा

अठारहवीं-उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में औद्योगीकरण ने सम्पूर्ण मानव-समाज में परिवर्तन ला दिया है। कहा जाता है कि औद्योगीकरण ने नयी तकनीक को जन्म दिया, जिसने नये किस्म की अर्थ-व्यवस्था विकसित की। इस कारण सामाजिक वर्गों का ढाँचा एकदम बदल गया। प्राचीन शक्तिशाली वर्गों की शक्ति का ह्रास होने लगा और एक बिलकुल ही नये वर्ग की उत्पत्ति हुई, जिसकी शक्ति दिनोदिन बढ़ने लगी। वह था पूंजीपति व्यवस्थापक वर्ग। इस वर्ग ने अपनी कल्पना-शक्ति, कठोर श्रम, खतरा उठाने की योग्यता और प्रबन्ध कौशल से चारों ओर उद्योगों का जाल-सा बिछा दिया, जिसके फलस्वरूप सामाजिक धन व पूंजी में काफी वृद्धि हुई। लाभ कमाना इस वर्ग का एकमात्र ध्येय रहा। यह वर्ग अपने कार्यों में स्वतंत्र, फिर भी बाजार, माँग व पूर्ति के नियमों के अधीन था। प्रोफेसर गैलब्रेथ ने हाल में ही अमेरिकी अर्थ तथा समाज व्यवस्था का अद्यतन अध्ययन प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार पूंजीपति-व्यवस्थापक, जिसमें शेयर होल्डर्स भी शामिल हैं, पूंजीवादी व्यवस्था का मुख्य केन्द्र माना जाता है। मोटे तौर पर यह तो कहा ही जा सकता है कि आधुनिक औद्योगिकरण की व्यवस्था में लाभ एक व्यक्ति को न मिलकर, वह शेयर होल्डरों तथा व्यवस्थापक वर्ग में बँटता है। हाल के वर्षों में सामाजिक सेवा के नाम पर वह कुछ अंश में मजदूर वर्ग में भी बँटता है।

नयी तकनीक और व्यक्तिवाद

प्रो॰ गैलब्रेथ ने अद्यतन औद्योगिक व्यवस्था का जो रूप प्रस्तुत किया है, उससे सोचने की दिशा मिलती है, हालांकि भारत की आर्थिक, सामाजिक और तकनीकी परिस्थिति में उनका अध्ययन कोई खास महत्त्व नहीं रखता है। उनका निष्कर्ष है कि "आयोजन के साथ यह नयी तकनीक व्यवस्थापक-पूंजीपति को, जिसकी प्रधानता तकनीक के परिणामस्वरूप ही बढ़ी थी, पीछे ढकेलने लगी है। आर्थिक क्षेत्र में उसकी निर्बाध स्वतंत्रता को सीमित करने लगी है। विकसित तकनीक, जो आधुनिक युग की विशेषता है, इतनी भारी व भयावह है कि इसने व्यक्ति के महत्त्व को नगण्य कर दिया है। व्यक्ति, जो औद्योगिक जनतंत्र का महत्त्वपूर्ण अंग है। नयी तकनीक का युग व्यक्ति का युग न रहा।"* इनकी राय में आज निगमों का महत्त्व काफी बढ़ चुका है। इस निगम पर 'टेक्नोस्ट्रक्चर वर्ग' का अधिकार रहता है, जिसमें व्यवस्थापक वर्ग तकनीशियन, कर्मचारी होते हैं और इनके सहयोग में शिक्षक, वैज्ञानिक, स्कूल-कालेज, विश्वविद्यालय के अनुसंधानकर्ता रहते हैं। यह बात केवल अमेरिकी अर्थ व्यवस्था पर नहीं लागू होती है। साम्यवादी अर्थ-व्यवस्था पर

अवध प्रसाद

आधारित सोवियत रूस के औद्योगिक प्रतिष्ठान कई बातों में अमेरिकी निगम से मिलते-जुलते हैं। परस्पर-विरोधी विचारधाराओं पर आधारित ये दोनों उद्योग-इकाइयाँ तकनालाजी के कारण बहुत समीप आ चुकी हैं। दोनों का राज्य से घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया है।

प्रो॰ गैलब्रेथ के उक्त अध्ययन से इतना तो अवश्य ही जाहिर होता है कि आज के युग में व्यक्ति के स्थान पर समूह का महत्त्व बढ़ गया है। सारी आर्थिक क्रियाएँ समूह द्वारा संचालित होती हैं। जो भी औद्योगिक या व्यापारिक निर्णय लिये जाते हैं, कदम उठाये जाते हैं, उनमें सामूहिक निर्णय ही प्रमुख होता है। यही कारण है कि पूंजीपति, जिसमें अनेक शेयर होल्डर्स होते हैं, उनका भी महत्त्व कम हो गया है। आज विशेषज्ञों का युग है और वास्तव में वही पूरी अर्थ-व्यवस्था का संचालन करते हैं। व्यक्ति की व्यक्तिगत इच्छा पर आज कोई भी कार्य सम्भव नहीं रहा। समाजवाद और लोकतंत्र ने व्यक्ति के स्वार्थ को तेजी से कम किया है। आज यह सर्वमान्य विचारधारा बन रही है कि जो भी आर्थिक, सामाजिक कदम उठाये जायें, कार्य किये जायें, वे पूरे समाज के हित में हों। आर्थिक दृष्टि में पूंजीवाद में निहित व्यक्तिगत लाभ का विचार काफी पुराना पड़ गया है। यही कारण है कि दूसरे रूप में पूंजीवादी देशों में निगमों का महत्त्व अत्यधिक बढ़ गया है। और इसमें व्यक्तिगत लाभ का स्थान नगण्य हो गया है। इस क्षेत्र में पूंजीवादी निगम तथा साम्यवादी राज्य अर्थ व्यवस्था में काफी अन्तर हो सकता है, परन्तु 'टोटल' दिशा सर्व का अधिक-से-अधिक कल्याण है, न कि व्यक्तिगत लाभ।

भारत की विशिष्ट परिस्थिति

भारत की परिस्थिति न तो साम्यवादी रूस की-सी है और नहीं पूंजीवादी अमेरिका की-सी। हम यहाँ एक बात यह कहना चाहेंगे कि तकनीक तथा उत्पादन व्यवस्था में अपनायी जानेवाली नीति तथा पद्धति की दृष्टि से दोनों समान हैं। दोनों ने ही बड़े पैमाने की औद्योगिक तथा व्यापारिक नीति को स्वीकार किया है। आर्थिक तथा सामाजिक पूंजी की दृष्टि से भारत की परिस्थिति उनसे भिन्न है। पाश्चात्य देशों में जो आर्थिक तथा सामाजिक सुविधाएँ प्राप्त थीं, वे भारत को नहीं प्राप्त हैं। पश्चिमी देशों को जो तकनीकी सुविधा, पूंजी की पर्याप्तता, श्रम-शक्ति की कमी, खास ढंग की समाज व्यवस्था, बाजार की सुविधा आदि प्राप्त हुई, वह हमें प्राप्त नहीं है। हमारी खास विशेषता है—शिक्षा का अभाव, तकनीक का बेहद पिछड़ा होना, पूंजी का नितान्त अभाव, बिखरा हुआ ग्रामीण समाज, श्रमशक्ति का आधिक्य आदि। ये कुछ ऐसे कारण हैं जिनसे पाश्चात्य बड़े पैमाने के औद्योगीकरण का अन्धानुकरण भारत के लिए सम्भव नहीं। भारत में विकेन्द्रित अर्थ तथा समाज-रचना के पीछे जो तर्क दिये जाते हैं उन्हें हमें स्वीकार करना चाहिए। वैसे विकेन्द्रीकरण के नाम पर सरकारी तथा गैर-

* श्रीसूरज शाह : 'निगमों के समाज में व्यक्ति' 'खादी ग्रामोद्योग' पृष्ठ ११० अक्तूबर १९६८।

ी ढंग से कुछ प्रयास किये गये हैं। ारा मानना है कि सम्पूर्ण विकेन्द्रित त-आर्थिक जीवन-दर्शन को स्वीकार ाबतक कोई भी ठोस प्रयास नहीं किया । ग्रामदान-आन्दोलन उसे व्यावहारिक ने का प्रयास कर रहा है। लेकिन दृष्टि से ग्रामदान का व्यावहारिक क्या होगा, इसका स्पष्ट खाका सोचना है। फिर भी सिद्धान्त के आधार पर र का दिशा-दर्शन तो किया ही जा है।

स्वराज्य की अर्थरचना

आर्थिक क्षेत्र में सर्व के कल्याण की बढ़ने के जो भी प्रयास अबतक किये ए उनमें स्पष्ट है कि अर्थ-व्यवस्था में नगत हित, व्यक्तिगत लाभ का तत्त्व गौण हो चुका है। समाप्त हो चुका ा हम नहीं कह सकते हैं; क्योंकि आज व्यक्तिगत अभिरुचि के आधार पर क उत्पादन किया जा सकता है, यह य विचार है। अद्यतन आर्थिक कार्यों में न्त का स्थान अत्यन्त गौण हो गया है, ा-ही-साथ उत्पादन, विनिमय तथा वित- के उद्देश्य में भी काफी परिवर्तन हो ा है। आज कोई भी व्यवस्था इस बात प्रयास करती है कि अधिक-से-अधिक याण हो। ग्रामदान सिद्धान्त तथा व्यव- रता यह मानता है कि ऐसी अर्थ-व्यवस्था नायी जानी चाहिए, जिसमें सर्व का ्याण हो। इस दृष्टि से प्रयास होना हिए कि पूंजी, श्रम और बुद्धि को समान ान प्राप्त हो और उत्पादन में सबको मान हिस्सा मिले। साफ जाहिर है कि मदान में जो भी अर्थ-व्यवस्था अपनायी ायगी, उसमें शोषण का कोई स्थान नहीं ोगा। यही कारण है स्वामित्व विसर्जन मकी प्रथम शर्त है। स्वामित्व की दृष्टि से ामदान ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को स्वीकार रता है। व्यक्ति सम्पत्ति का संरक्षक मात्र , स्वामी नहीं। हम यहां यह भी मान ते हैं कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था विकेन्द्रित ग से चलनी चाहिए। इस कारण, ग्रामदान ी मान्यता के अनुसार गांव एक स्वतंत्र इकाई होगी और गांव की सामूहिक शक्ति से आर्थिक विकास के कार्य किये जायंगे।

जैसा कि दादा धर्माधिकारी ने कहा है कि, "इसका तात्पर्य यह नहीं कि एक गांव का दूसरे गांव के साथ कोई सम्बन्ध ही नहीं होगा"। गांधीजी के शब्दों में "ग्राम-स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपने अहम जरूरतों के लिए पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं होगा, और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए, जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा, वह परस्पर-सहयोग से काम लेगा।"[1] फिर इसकी रचना इस प्रकार की होगी—"उसका फैलाव एक के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि लहरों की तरह एक के बाद एक की शकल में होगा। वहां तो समुद्र की लहरों की तरह जिन्दगी एक के बाद एक घेरे की शकल में होगी और व्यक्ति उसका मध्यबिन्दु होगा।"[2] ग्रामदान भी इसी शकल में अर्थ, समाज तथा राज्य-व्यवस्था स्थापित करना चाहता है।

पश्चिम की नकल सम्भव नहीं

हमने देखा कि (१) भारत में आर्थिक-सामाजिक परिस्थिति खास ढंग की है। इसमें श्रमशक्ति का आधिक्य, प्रति व्यक्ति पूंजी की अत्यधिक कमी, अशिक्षा, अत्यधिक पिछड़ी तकनीक, प्राकृतिक साधनों की भी एक सीमा है। व्यापार तथा अन्य सुविधाएं भी कम हैं। (२) विश्व की अद्यतन औद्योगिक व्यापारिक दिशा व्यक्ति विमुख तथा समुदाय की ओर अभिमुख है। यहां याद रखना चाहिए कि प्रो० गैलब्रेथ ने जिस 'टेक्नो-स्ट्रक्चर' की बात कही है, वह भारत में आने-वाले दशकों में सम्भव नहीं है। इस कारण यूरोपीय-पूंजीवादी या साम्यवादी ढंग की अर्थ-व्यवस्था, निगम-व्यवस्था या टेक्नोस्ट्रक्चर की व्यवस्था भारत में सम्भव नहीं। यदि इस ढंग के प्रयास किये गये तो इसके कुछ नमूने अवश्य बना सकेंगे। और वह नमूना विशाल समुद्र में छोटे-छोटे द्वीप के समान ही होंगे। इन द्वीपों के चारों ओर कूड़ा-करकट लहराता मिलेगा। इन कारणों से ग्रामदान को ऐसी अर्थ-व्यवस्था की तलाश करनी होगी, जो कि गांव की सामूहिक शक्ति से चल सके। इसके लिए यह जरूरी है कि व्यक्ति को काम की पूरी प्रेरणा भी मिले और सर्व का कल्याण भी हो।

औद्योगिक रचना से सम्बद्ध कुछ सुझाव

हम यहां व्यक्तिगत तथा ग्रामोद्योग पर थोड़ा विस्तार से विचार करना चाहेंगे। आज गांव में पूंजी और तकनीक की जो स्थिति है उसे देखते हुए परम्परागत ग्रामोद्योग भी चलाना सम्भव नहीं। बाजार ने परम्परागत उद्योगों को समाप्त कर दिया है। फिर भी कृषि के साथ-साथ कोई-न-कोई उद्योग देना आवश्यक है। पूंजी की स्थिति को देखते हुए व्यक्तिगत तौर पर गांव का सामान्य व्यक्ति किसी छोटे उद्योग को अपनाने में असमर्थ है। यहां यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यूरोपीय देशों की भांति यहां कोई संगठित औद्योगिक निगमों की स्थापना भी फिलहाल सम्भव नहीं है। इस कारण ग्राम-स्तर के व्यक्तिगत तथा सहकारी उद्योगों को पनपाने के लिए सामूहिक प्रयास ही उपयोगी होंगे। ये प्रयास ग्रामसभा के माध्यम से किये जा सकते हैं, चूंकि हमने स्वामित्व की दृष्टि से ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को स्वीकार किया है, इस कारण व्यक्तिगत अभिरुचि से उद्योग चलाने, प्रोत्साहन देने में कोई बाधा नहीं आनी चाहिए। प्रश्न है, ग्रामसभा किस प्रकार व्यक्तिगत या सामूहिक अभिरुचि से उद्योगों के विकास में सहयोग दे? ग्रामसभा इसे चाहे जैसा भी सहयोग दे, पर प्रारम्भिक तौर पर यह आवश्यक है कि ग्रामीण उद्योगों के लिए (१) उन्नत तकनीक, (२) अनुकूल बाजार की सुविधा उपलब्ध हो। इसके बाद ही ग्रामीण जनता को इस ओर बढ़ने की प्रेरणा मिलेगी। अच्छी तकनीक तथा बाजार ग्रामसभा के क्षेत्र से बिलकुल बाहर हैं। इसके लिए उच्च स्तरीय निर्णय तथा प्रयास की आवश्यकता है। तकनीक की दृष्टि से खादी-ग्रामोद्योग कमीशन तथा अन्य संस्थाओं को व्यापक शोध तथा प्रचार करना चाहिए।

व्यवस्था की दृष्टि से ग्रामसभा कृषि-

१—गांधीजी : 'आर्थिक और औद्योगिक जीवन, पृष्ठ-२४, नवजीवन' प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद।

२—वही, पृष्ठ [illegible]।

उद्योग के विकास के लिए जिम्मेदार होगी और उसके सहयोग से ही गाँव मे व्यक्तिगत तथा सामूहिक उद्योग चलेंगे। इस दृष्टि से ग्रामसभा ये कार्य कर सकती है :

१—गाँवमे कौन उद्योग व्यक्तिगत आधारपर चलें और कौन सामूहिक, इसका निर्णय करना।

२—व्यक्तिगत आधार पर चलनेवाले उद्योगो को तकनीक, प्रशिक्षण, बाजार, कच्चा माल आदि की व्यवस्था मे सहयोग। व्यक्तिगत उद्योगो के लिए अलग सहकारी समिति भी बन सकती है।

३—पूँजी जुटाने मे ग्रामसभा स्वय तथा बाहरी लोगोसे सहयोग करे।

४—ऐसे उद्योग, जो कि व्यक्तिगत तौर पर नही चल सकते या जिसे ग्रामसभा व्यक्तिगत तौर पर नही चलाना चाहती हो, उसकी व्यवस्था करना। ऐसे उद्योग ग्रामसभा (क) स्वय चला सकती है, (ख) सहकारी समिति के माध्यम से चलाने के लिए कुछ लोगो की सहकारी समिति बना सकती है, (ग) व्यक्तिगत तौर पर चलाने के लिए, निश्चित शर्तों के साथ किसी व्यक्ति को भी दे सकती है।

५—स्पष्ट है ग्रामदान मे व्यक्तिगत स्वामित्व-विसर्जन के बाद भी फिलहाल आर्थिक असमानता रहेगी और ऐसे लोग रहेगे, जिनके पास पर्याप्त पूँजी होगी। ऐसे लोगो मे महाजन, बडे किसान, नौकरी करनेवाले आदि होगे। उद्योगो के विकास की दृष्टि से ग्रामसभा इनका पूरा सहयोग ले सकती है। इस दृष्टि से ग्रामसभा किसी खास या सभी उद्योगो के लिए (क) शेयर इकट्ठा कर सकती है, और शेयर लेनेवालो को उचित लाभ की सुविधा भी दे सकती है। (ख) व्यवस्था के लिए एक समिति बना सकती है, जिसमे विशेषज्ञ हो।

६—ग्रामसभा मध्यम तकनीक की उपलब्धि सरकारी-गैरसरकारी संस्थाओं के सहयोग से कर सकती है।

एकाएक व्यक्तिगत अभिरुचि के क्षेत्र को नहीं समाप्त कर सकते, इसलिए महाजन तथा बड़े किसानों की पूँजी, शिक्षित लोगो की बुद्धि तथा तकनीकी ज्ञान, और श्रमिको का श्रम, तीनों का पूरा और सम्यक् उपयोग करना आवश्यक है।•

स्व० रावसाहब : भव्य व्यक्तित्व, कृतार्थ जीवन

दो प्रकार की लोकप्रियता होती है—दूर की और समीप की। बहुत थोड़े व्यक्तियों में ही दोनों प्रकार की लोकप्रियता पायी जाती है। कुछ व्यक्ति दूर-दूर तक प्रसिद्ध होते हैं। वक्तृत्व, कर्तृत्व, नेतृत्व इन समान गुणों के कारण दूर-दूर के लोगों में उनका परिचय होता है। परन्तु व्यक्तित्व की सच्ची परख इन गुणों में ही नहीं होती है। बहुत समीप रहनेवालों को कभी-कभी इन गुणों का परिचय भी नहीं होता है। समीप के लोगों को प्रिय लगनेवाले व्यक्ति मुख्य रूप से हृदय के गुणों पर पोषित होते हैं। अन्य लोगों के हित में ही अपना हित मानना, स्वयं का सम्पूर्ण आनन्द अन्य लोगों के सुख में मिला देना, ऐसे व्यक्तियों का यह सहज स्वभाव होता है। सम्पर्क में आनेवाले लोगों के साथ ऐसे व्यक्तियों की एक तरह से लगभग अभिन्नता-सी होती है।

दोनों प्रकार की लोकप्रियता जिन थोड़े-से लोगों को प्राप्त होती है, उनमें से एक 'रावसाहब' पटवर्धन भी थे। जो भी उनके सम्पर्क में आता था उसे उनके व्यक्तित्व का मृदु स्पर्श मिलता था। जैसे क्षितिज जो दूरी से देखने पर भी समीप ही जान पड़ता है, वैसे ही रावसाहब भी सबके समीप थे। हरेक को ऐसा लगता था कि 'रावसाहब' अपने ही हैं, और रावसाहब को भी सभी अपने ही मालूम पड़ते थे। तभी तो उनका परिवार हमेशा भरापूरा दिखता था। नगर-जिले की सामान्य व्यायामशालाएँ, पूना के विद्यालयों के विद्यार्थी, राजकीय पक्षों के कार्यकर्ता, नेता, साहित्यिक, पत्रकार, मजदूर, कारखाने के मालिक, सभी उनके यहाँ आते-जाते थे। सभी लोगों का स्वागत-सत्कार रावसाहब समान रूप से बड़े प्रेम के साथ करते थे। 'बहुत दिनों बाद दिखाई पड़े, स्वास्थ्य कैसा है? स्वास्थ्य का ध्यान अवश्य रखें।'—ये वाक्य तो तीन ही होते थे, लेकिन इनके माध्यम से वे सामनेवाले व्यक्ति के हृदय तक पहुँचने का प्रयत्न करते थे। मिलने आये हुए व्यक्ति को आज तो प्राप्त होता ही था, जिसका उनके यहाँ अतुल भंडार था; लेकिन दूसरों के साथ आन्तरिकता स्थापित कर लेना उनकी विशेषता थी। विविध प्रकार के लोग उनके समीप आते उसका यही कारण था। निकट के लोगों में उनके लिए जो स्नेह था, वह भी इसीलिए।

व्यक्ति-सम्पर्क की उनकी चाह हर जगह कायम रहती थी, अगर कोई मिला नहीं, तो वे कुछ बेचैन हो जाते थे, और बस निकल पड़ते थे लोगों के पास मिलने के लिए। हमेशा वे मोटर में ही नहीं चलते थे। अस्वस्थता के कारण आजकल पैदल चलना और श्रम करना उनके लिए अनुकूल नहीं था फिर भी वे अक्सर पैदल ही निकल पड़ते थे। अनेक बार तो वे साइकिल से ही मीलों अपने किसी मित्र से मिलने चले जाते थे, किसी काम से नहीं, सिर्फ मिलने की इच्छा से ही। और कोई प्रिय व्यक्ति मिला तो दूर से केवल हाथ जोड़कर नमस्कार करने से ही रावसाहब को सन्तोष नहीं होता था जब तक कि वे स्वयं जाकर उसे गले से नहीं लगाते थे। रावसाहब स्वच्छताप्रिय व्यक्ति थे, परन्तु ऐसे अवसरों पर सामनेवाले व्यक्ति के कपड़े साफ हैं कि नहीं, उन्हें इसका कोई ध्यान नहीं रहता था। इसमें उनकी हार्दिकता प्रकट होती थी। उनके बड़प्पन का रहस्य इसमें निहित है।

राजनीतिक प्रकृति के वे थे ही नहीं। वे थे स्वातंत्र्य-प्रकृति के। स्वतंत्रता उनके लिए एक जीवन-मूल्य थी। और इसी दृष्टि से वे स्वतंत्रता के आन्दोलन में शामिल हुए थे, राजनीतिक दृष्टिकोण से नहीं। राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त हुई, इस स्वतंत्रता का सुख दलित, पीड़ित लोगों को भी प्राप्त हो सके, इस सन्दर्भ में राष्ट्र के विकास की योजना बनेगी और राष्ट्रभर में स्वतंत्रता की हवा जोरों के साथ बहने लगेगी ऐसी उन्हें आशा थी। स्वतंत्रता आन्दोलन के समय के त्याग की थकावट पायी और अब स्वतंत्र भारत में त्याग की आवश्यकता नहीं, इस विचार ने कभी उनके मन को स्पर्श नहीं किया।

आज की राजनीति उन्हें कैसी दिखाई देती थी, इसका विवेचन उन्होंने बहुत ही सुन्दर और स्पष्ट शब्दों किया है- "भारत की राजनीति में पहले जैसा ध्येयवाद नहीं रहा, सेवा और त्याग के मूल्य की कदर नहीं रही, बलवान गुटों की आपसी स्पर्धा, उधम-बाजी, यही राजनीति बन गयी है।"

रावसाहब

उनकी दृष्टि में इसका परिणाम- "अधिकारारूढ़ मंत्रिमंडल में एकता का अभाव दिखाई पड़ने लगा है। किसी भी प्रकार अधिकार जमाये रखना यही राजनीतिक कुशलता का अर्थ रूढ़ हुआ, ऐसा नजर आता है।"

रावसाहब को यह सब अच्छा नहीं लगा—'मुझे नेता कहिए, मुझे नेता मानिए, मैं आपकी जाति का, धर्म का, भाषा का, वर्ग का हूँ, यह भूमिका उनके जैसे ध्येयनिष्ठ व्यक्ति को कभी भी जँचा नहीं। राजनीति यानी खींचातानी, स्वार्थ; राजनीति यानी व्यक्ति से भी अधिक 'संगठित सत्ता' श्रेष्ठ होती है, यह सूत्र स्वतंत्रताप्रिय रावसाहब कभी भी स्वीकार नहीं कर सकते थे। स्पर्धा से दूर, किन्तु त्याग में समीप, यही उनका सूत्र था। उनकी मानवतावादी भूमिका में यही मेल खानेवाला था। उनके लिए राष्ट्रीय स्वतंत्रता सम्पूर्ण मानव जाति की अबाधित स्वतंत्रता का शुभारम्भ थी। राष्ट्रीय स्वतंत्रता के बाद लोगों को खुद ही कदम बढ़ाने चाहिए। उदात्त ध्येय से प्रेरित होकर लोग इसके लिए संगठन और आन्दोलन करें, ऐसी उनकी इच्छा थी। जहाँ उदात्तता, भव्यता हो वहाँ रावसाहब न हों, ऐसा कभी नहीं होगा। लोगों को जहाँ दुख है, वहाँ उन्हें निमंत्रण की आवश्यकता नहीं थी। इसीलिए भूदान-आन्दोलन की बुनियाद में होनेवाली उदात्त प्रेरणा की उन्होंने कदर की। यह समता का, समविभाजन का, त्याग का और लोगों के पुरुषार्थ का आन्दोलन है, इस बारे में उन्हें किंचित् भी शंका नहीं थी। "मैं सर्वोदय का सहप्रवासी हूँ, ऐसा कहते-कहते वे सर्वोदय के कार्य में पूर्णतः एकरूप हो गये थे। छोटा-

का शिविर हो, या अखिल भारतीय सम्मेलन हो, विनोबाजी की पदयात्रा हो, इन सभी में रावसाहब अवश्य भाग लेते थे। अंग्रेजी **'भूदान' साप्ताहिक के संपादक की जिम्मेदारी को उन्होंने कर्मठता एवं कुशलतापूर्वक निभाया।**

संकुचित विचारों से रावसाहब बहुत दुखित होते थे। भाषा के आधार पर प्रान्तों की पुनर्रचना को लेकर फैले हुए आन्दोलन से उनके मन को अधिक ठेस पहुँची थी। वे कई बार कहते—**"हम सब स्वतंत्रता एवं लोकशाही के लायक ही नहीं! कैसे हैं ये पक्ष, और कैसे हैं ये आन्दोलन!"**—ऐसा कहते हुए उनके हृदय में दुख की बाढ़ उमड़ पड़ी है, ऐसा सुननेवालों को लगता था। असम में बंगला-भाषा के विरुद्ध उत्पात हुआ, अनेक परिवार निराधार हो गये। उनकी सान्त्वना के लिए **रावसाहब** वहाँ दौड़ पड़े। वापस लौटने पर असम के बंगाली बन्धुओं की सहायता के लिए एक निधि जमा करने के काम में पहल की। पानशेत बाँध के टूटने पर नागरिकों की जो हानि हुई, उस समय पूना में सर्वोदय-कार्यकर्ताओं ने सेवा-कार्य किया। उस समय **रावसाहब** नित्यप्रति सेवा में हर कठिन-से-कठिन कार्य में कार्यकर्ताओं के साथ लगे रहे। तब दस दिन के शिविर का आयोजन किया, जिसमें करीब १०० कार्यकर्ता थे। इन सभी कार्यकर्ताओं को **रावसाहब** का विशेष रूप से सहारा था। अभी हाल ही में कोयनानगर के भूचाल के समय प्रारम्भिक सेवा-कार्य में **रावसाहब** ने सर्वोदय-सेवकों की सभी प्रकार से काफी मदद की थी। एक जीप के लिए कितने ही लोगों के पास गये थे। **रावसाहब** को माँगना अच्छा नहीं लगता था, परन्तु दुखियों के लिए माँगने में कभी भी उन्होंने संकोच नहीं किया। अणुशस्त्र से लोगों को खतरा है इसकी भयंकरता का अनुमान करके अणुशस्त्र-विरोधी सम्मेलन में उन्होंने विशेष रूप से सहयोग दिया। पूना की जनता को अणुशस्त्र के बारे में समझाने के लिए अनेक सभाओं में भाषण करने का सर्वाधिक प्रयत्न आपने किया था। सामाजिक जीवन में महत्त्व के कौनसे कार्य करने है, इसके बारे में उनका एक दृष्टिकोण था। सत्ता व स्पर्धा की राजनीति सांस्कृतिक, शैक्षिक क्षेत्र में घुसने लगे तो सामाजिक जीवन छिन्न-भिन्न हो जायगा, इसका उन्हें स्पष्ट आभास था। सत्ता की राजनीति में स्पर्धा होगी ही यह उन्हें मालूम था, परन्तु एक मर्यादा के बाहर यह स्पर्धा गयी तो लोकशाही को और राष्ट्रीय प्रगति को बहुत बड़ा धक्का लगेगा, ऐसा उन्हें डर था। लोकशाही की नौका लोकमत की जलधारा में तैरती है। अपने इस लोकशाही में लोकमत वास्तविक दृष्टि से निर्माण ही नहीं हुआ। इसके बारे में उनका कहना था, "चेतन, जागृत और संगठित लोकमत का राष्ट्रीय नेताओं के पीछे आधार न होने के कारण राज्यकर्ता लोग सावधान नहीं रह सके।" और फिर—**"साम्प्रदायिकता, धार्मिक कर्मकाण्ड अर्थशून्य होते हैं, अर्थात् उससे चित्त-शुद्धि नहीं होगी। यही स्थिति राजनीतिक पक्षों की भी हुई है। चाहे वह दक्षिण पंथ हो अथवा वाम पंथ, सब जगह औपचारिक और सतही बकझक! लोकमानस पर लोकतांत्रिक संस्कार डालने की राजकीय नेताओं में कूवत ही नहीं रही।"**

फिर यह काम कौन करे? इसका उत्तर **रावसाहब** ने गत बीस वर्षों के अपने जीवन में दिया है। राजनीतिज्ञ, दल अथवा संस्थाएँ यह कभी भी नहीं कर सकती थी। लोकमत-निर्माण के प्रत्येक कार्य में **रावसाहब** ने सजग होकर भाग लिया, क्योंकि वे राजनीतिक स्थिति के प्रति जागरूक थे। विधानसभा में होनेवाले उपद्रवों से **रावसाहब** को जो कष्ट होता था, उसका वर्णन करना कठिन है। ये उपद्रव क्यों होते हैं? इसका कौन जिम्मेदार है? लोग भी क्यों नहीं कुछ बोलते? जागृत व प्रभाव लोकमत अस्तित्व में होता तो लोगों के वोट से चुनकर आये हुए प्रतिनिधियों को लोकशाही के इन मंदिरों में अभद्रता बरतने तथा उसे अपवित्र करने का साहस नहीं होता। अर्थात् वास्तविक लोकमत तैयार करने का काम तो होना ही चाहिए। उसे करनेवाले को सत्ता व स्पर्धा से अलिप्त रहना चाहिए। परन्तु हमेशा कार्यरत रहना चाहिए। लोगों को, दूर से देखनेवालों को **रावसाहब** निवृत्त हुए ऐसा लगता होगा। स्वयं भी वे यही कहते थे। परन्तु कहीं भी इस तरह के काम सामने आने पर **रावसाहब** अग्रणी रूप में अवश्य शामिल होते थे, इसका क्या कारण है? वास्तविक कारण यही है कि राजनीति से भी अधिक उन्होंने लोकशिक्षण को महत्त्वपूर्ण माना था।

सत्याग्रही समाज, समता, समृद्धि, मानवता, ये सब उच्चतम लक्ष्य **रावसाहब** के जीवन में थे।

सभी दीन-दुर्बल व्यक्तियों के प्रति करुणा, आपद्ग्रस्तों के प्रति हार्दिक सहानुभूति **रावसाहब** के अन्दर भरपूर थी। तभी तो वे क्या असम और क्या सह्याद्रि की घाटियों में, सब जगह एक-सी आत्मीयता के साथ वे घूमे। वास्तव में वे एक विश्व-नागरिक थे।

जीवन में कटु, अप्रिय प्रसंगों में मनुष्य कैसा व्यवहार करता है, इससे उसके व्यक्तित्व की गहराई का अन्दाज लगाया जा सकता है। दुख में उद्वेग न हो, यह उसकी पहचान है। शान्त, गम्भीर, धीर-उदात्त व्यक्तित्व, आनन्दमयी मुद्रा, मुक्त हँसी, विनम्र विनोद, फूलों का शौक, और बालकों से अगाध स्नेह, ये सभी रावसाहब के व्यक्तित्व की गहराई व्यापकता को दर्शाते हैं।

ऐसा समृद्ध व्यक्तित्व आज चिरनिद्रा में विलीन हो चुका है। वे यह कहते हुए गये, **'जीवन का प्याला भर चुका है, लबालब भर चुका है, अत अब जाना ही चाहिए',** और वे चले गये। अनेक को दुख में छोड़कर चले गये। श्रीमती माणिकबाई उनकी सुविद्य, गम्भीर, शान्त, मधुरभाषी पत्नी हैं, इनके ऊपर तो दुख का पहाड़ टूट पड़ा है! उनका खुद का भी व्यक्तित्व **रावसाहब** के अनुरूप बराबरी का ही है। यह दुख वे धैर्यपूर्वक सहन करेंगी, हम सब उनके दुख में सहभागी हैं।

रावसाहब के पाँच भाई—**श्री अच्युतराव, जनुभाऊ, बालासाहब, पमासाहब, माधवराव,** सभी लोगों को अपार दुख है। उन्हें हम सब किन शब्दों में सान्त्वना दें?

रावसाहब ने पूना में हम सब लोगों के बीच अपार प्रेम की वर्षा की। अब तो उनकी याद ही हम लोगों की थाती है! 'रावसाहब की पवित्र स्मृति को हमारे सहस्र प्रणाम!

(मूल मराठी से) **—गोविन्दराव देशपांडे**

अहमदाबाद में सर्वोदय-पात्र

यों तो सर्वोदय-पात्र देश के कोने-कोने में रखे जाते हैं और उनसे होनेवाली आय का विनियोग भी सर्वोदय-आन्दोलन के लिए होता है, किन्तु अहमदाबाद जैसे महानगर में सर्वोदय-पात्र अभियान की अपनी एक कहानी है।

अभी पिछले दिनों सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष श्री एस० जगन्नाथन् अहमदाबाद के गांधी-आश्रम में रचनात्मक कार्यकर्ताओं से मुलाकात के लिए आये थे। उनसे मिलकर जब हम नगरीय कार्यालय वापस आ रहे थे तो रास्ते में श्री शिवाकाका मुझसे कहने लगे—"सर्वोदय-पात्र के कार्य में मुझे हर रोज घर की सीढ़ियाँ चढ़नी उतरनी पड़ती हैं। इससे थकान खूब आती है और भूख बड़ी अच्छी लगती है, और शाम को सब पैसों का हिसाब करता हूँ तो दिमागी कसरत हो जाती है, जिससे नींद भी बढ़िया आती है।" श्री शिवाकाका इस समय साठ वर्ष के हैं। उनको मैं पिछले आठ सालों से देख रहा हूँ। इनको सिर्फ एक ही धुन है—नगरों में सर्वोदय-पात्र को अधिक से अधिक लोकप्रिय और प्रतिष्ठित करना। दिनभर अपने काम में मशगूल रहते हैं और जब मौका मिलता है तो अपना भोजन खुद तैयार कर लेते हैं। आजकल एक हजार सर्वोदय-पात्रों की देखभाल कर रहे हैं। कौन जानता था कि महेसाणा जिले के एक देहात में जन्मे शिवाकाका सिर्फ उस गाँव के ही नहीं, अपितु सारे गुजरात के छोटे-छोटे बच्चों के प्रिय बन जायेंगे?

एक और भाई कृष्णवदन शाह हैं, जो एम० ए० करके श्री रविशंकर महाराज की ओर आकृष्ट हुए और अहमदाबाद में सर्वोदय के कार्य में जुट गये। विचार प्रचार और सर्वोदय-पात्र के काम इनको प्रिय हैं। अभी पिछले दिनों जिला-संयोजक भी इन्हीं को बनाया गया है। एक बार इनको सूझा कि क्यों न 'गीता-प्रवचन' ग्रंथ को आयोजक किया जाय। फलतः 'गीता-प्रवचन' की दस हजार प्रतियाँ घूम घूमकर बेचीं। एक हजार सर्वोदय-पात्र चलाने का जिम्मा भी इन्होंने उठाया है और सफलतापूर्वक चला भी रहे हैं। इन्होंने सर्वोदय-पात्र के बारे में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा—'सर्वोदय-पात्र से अहमदाबाद शहर में हम आगे हैं और जीवन का संतोष मुझे मिल रहा है।'

श्री जुगतराम भाई का सूरत जिला है। उस जिले की ग्रामीण संस्थाओं में हजारों की संख्या में सर्वोदय पात्र हैं। शान्ति सेना के शिविर वगैरह अच्छे कार्यक्रम वहाँ चलते हैं जिनको श्री जुगतराम भाई का मार्गदर्शन मिलता है।

बड़ौदा शहर में श्री रतनसिंह ७६ वर्ष की आयु में भी हर मुहल्ले में सर्वोदय-पात्र की वसूली के लिए चार-चार, पाँच-पाँच मंजिलोंवाली इमारतों की सीढ़ियों पर घड़ल्ले से चढ़ते उतरते रहते हैं। और, महेसाणा में श्री गोपाल भाई पटेल वरसों से सर्वोदय-पात्र चलाते आ रहे हैं।

श्री नन्दलाल ठक्कर भले ही ६५ वर्ष के हो गये हैं, लेकिन उनकी मस्ती और स्फूर्ति देखकर उन्हें कोई वृद्ध कह नहीं सकता। गाँवों में सर्वोदय-पात्र चलाने का काम इन्होंने स्वयं ले लिया है।

याद आती है वह घड़ी जब श्री रविशंकर महाराज ने सिर्फ अहमदाबाद नगर में ४५ हजार सर्वोदय-पात्र रखाये थे। कुछ दिन तक सर्वोदय-पात्रवाले परिवारों से इनका जीवन्त सम्पर्क भी रहा। बाद में कोई ऐसा व्यक्तित्व आगे नहीं आया, जो इन पात्रों की सातत्यता कायम रख सके।

मेरा अपना विश्वास है कि गुजरात प्रदेश के सर्वोदय-पात्रों की आय से देश में सर्वोदय-आन्दोलन को काफी सहायता मिलती रह सकती है। काश, ये सर्वोदय-पात्र बन्द न होते!

—डाहुभाई दोशी

सा शिविर हो, या अखिल भारतीय सम्मेलन हो, विनोबाजी की पदयात्रा हो, इन सभी में रावसाहब सक्रिय भाग लेते थे। अंग्रेजी 'भूदान' साप्ताहिक के संपादक की जिम्मेदारी को उन्होंने कर्मठता एवं कुशलतापूर्वक निभाया।

संकुचित विचारों से रावसाहब बहुत दुखित होते थे। भाषा के आधार पर प्रान्तों की पुनर्रचना को लेकर फैले हुए आन्दोलन से उनके मन को अधिक ठेस पहुँची थी। वे कई बार कहते—"हम सब स्वतंत्रता एवं लोकशाही के साधक ही नहीं! कैसे हैं ये पक्ष, और कैसे हैं ये आन्दोलन!"—ऐसा कहते हुए उनके हृदय से दुख की बाढ़ उमड़ पड़ी है, ऐसा सुननेवालों को लगता था। असम में बंगला-भाषा के विरुद्ध उत्पात हुआ, अनेक परिवार निराधार हो गये। उनकी सांत्वना के लिए रावसाहब वहाँ दौड़ पड़े। वापस लौटने पर असम के बंगाली बन्धुओं की सहायता के लिए एक निधि जमा करने के काम में पहल की। पानशेत बाँध के टूटने पर नागरिकों की जो हानि हुई, उस समय पूना में सर्वोदय-कार्यकर्ताओं ने सेवा-कार्य किया। उस समय रावसाहब नित्यप्रति सेवा में हर कठिन-से-कठिन कार्य में कार्यकर्ताओं के साथ लगे रहे। सब दस दिन के शिविर का आयोजन किया, जिसमें करीब १०० कार्यकर्ता थे। इन सभी कार्यकर्ताओं को रावसाहब का विशेष रूप से सहारा था। अभी हाल ही में कोयनानगर के भूचाल के समय प्रारम्भिक सेवा-कार्य में रावसाहब ने सर्वोदय-सेवकों की सभी प्रकार से काफी मदद की थी। एक जीप के लिए कितने ही लोगों के पास गये थे। रावसाहब को माँगना अच्छा नहीं लगता था, परन्तु दुखियों के लिए माँगने में कभी भी उन्होंने संकोच नहीं किया। अणुशस्त्र से लोगों को खतरा है इसकी भयंकरता का अनुमान करके अणुशस्त्र-विरोधी सम्मेलन में उन्होंने विशेष रूप से सहयोग दिया। पूना की जनता को अणुशस्त्र के बारे में समझाने के लिए अनेक सभाओं में भाषण करने का सर्वोचित प्रयत्न आपने किया था। सामाजिक जीवन में महत्व के कौनसे कार्य करने हैं, इसके बारे में उनका एक दृष्टिकोण था। सत्ता व स्पर्धा की राजनीति सांस्कृतिक, शैक्षिक क्षेत्र में घुसने लगे तो सामाजिक जीवन छिन्न-भिन्न हो जायगा, इसका उन्हें स्पष्ट आभास था। सत्ता की राजनीति में स्पर्धा होगी' ही यह उन्हें मालूम था, परन्तु एक मर्यादा के बाहर यह स्पर्धा गयी तो लोकशाही को और राष्ट्रीय प्रगति को बहुत बड़ा धक्का लगेगा, ऐसा उन्हें डर था। लोकशाही की नौका लोकमत की जलधारा में तैरती है। अपने इस लोकशाही में लोकमत वास्तविक दृष्टि से निर्माण ही नहीं हुआ। इसके बारे में उनका कहना था, "चेतन, जागृत और संगठित लोकमत का राष्ट्रीय नेताओं के पीछे आधार न होने के कारण राज्यकर्ता लोग सावधान नहीं रह सके।" और फिर—"**साम्प्रदायिकता, धार्मिक कर्मकाण्ड अर्थशून्य होते हैं, अर्थात् उससे चित्त-शुद्धि नहीं होगी। यही स्थिति राजनीतिक पक्षों की भी हुई है। चाहे वह दक्षिण पंथ हो अथवा वाम पंथ, सब जगह औपचारिक और सतही बकझक! लोकमानस पर लोकतांत्रिक सरकार डालने की राजकीय नेताओं में कुवत ही नहीं रही।**"

फिर यह काम कौन करे? इसका उत्तर रावसाहब ने गत बीस वर्षों के अपने जीवन से दिया है। राजनीतिज्ञ, दल अथवा संस्थाएँ यह कभी भी नहीं कर सकती थीं। लोकमत-निर्माण के प्रत्येक कार्य में रावसाहब ने सजग होकर भाग लिया, क्योंकि वे राजनीतिक स्थिति के प्रति जागरूक थे। विधानसभा में होनेवाले उपद्रवों से रावसाहब को जो कष्ट होता था, उसका वर्णन करना कठिन है। ये उपद्रव क्यों होते हैं? इसका कौन जिम्मेदार है? लोग भी क्यों नहीं कुछ बोलते? जागृत व प्रभावी लोकमत अस्तित्व में होता तो लोगों के वोट से चुनकर आये हुए प्रतिनिधियों को लोकशाही के इन मंदिरों में अभद्रता बरतने तथा उसे अपवित्र करने का साहस नहीं होता। अर्थात् वास्तविक लोकमत तैयार करने का काम तो होना ही चाहिए। उसे करनेवाले को सत्ता व स्पर्धा से अलिप्त रहना चाहिए। परन्तु हमेशा कार्यरत रहना चाहिए। लोगों को, दूर से देखनेवालों को रावसाहब निवृत्त हुए ऐसा लगता होगा। स्वयं भी वे यही कहते थे। परन्तु कहीं भी इस तरह के काम सामने आने पर रावसाहब अग्रणी रूप से अवश्य शामिल होते थे, इसका क्या कारण है? वास्तविक कारण यही है कि राजनीति से भी अधिक उन्होंने लोकशिक्षण को महत्त्वपूर्ण माना था।

सत्याग्रही समाज, समता, समृद्धि, मानवता, ये सब उच्चतम लक्ष्य रावसाहब के जीवन में थे।

सभी दीन-दुर्बल व्यक्तियों के प्रति करुणा, आपद्ग्रस्तों के प्रति हार्दिक सहानुभूति रावसाहब के अन्दर भरपूर थी। तभी तो वे क्या असम और क्या सह्याद्रि की घाटियों में, सब जगह एक-सी आत्मीयता के साथ वे घूमे। वास्तव में वे एक विश्व-नागरिक थे।

जीवन में बहुत अप्रिय प्रसंगों में मनुष्य कैसा व्यवहार करता है, इससे उसके व्यक्तित्व की गहराई का अन्दाज लगाया जा सकता है। दुख में उद्वेग न हो, यह उसकी पहचान है। शांत, गम्भीर, धीर-उदात्त व्यक्तित्व, आनन्दमयी मुद्रा, मुक्त हँसी, विनम्र विनोद, फूलों का शौक, और बालकों से अगाध स्नेह, ये सभी रावसाहब के व्यक्तित्व की गहराई व्यापकता को दर्शाते हैं।

ऐसा समृद्ध व्यक्तित्व आज चिरनिद्रा में विलीन हो चुका है। वे यह कहते हुए गये, **जीवन का प्याला भर चुका है, लबालब भर चुका है, अतः अब जाना ही चाहिए',** और वे चले गये। अनेक को दुख में छोड़कर चले गये। श्रीमती माणिकबाई उनकी सुविद्य, गम्भीर, शान्त, मधुरभाषी पत्नी हैं, इनके ऊपर तो दुख का पहाड़ टूट पड़ा है! उनका खुद का भी व्यक्तित्व रावसाहब के अनुरूप *बराबरी का ही है। यह दुख वे* धैर्यपूर्वक सहन करेंगी, हम सब उनके दुख में सहभागी है!

रावसाहब के पाँच भाई-**श्री अच्युतराव**, जनुभाऊ, बालासाहब, पमासाहब, माधवराव, सभी लोगों को अपार दुख है। उन्हें हम सब किन शब्दों में सांत्वना दें?

रावसाहब ने पूना में हम सब लोगों के बीच अपार प्रेम की वर्षा की। अब तो उनकी याद ही हम लोगों की थाती है! "**रावसाहब की पवित्र स्मृति को हमारे सहस्र प्रणाम!**
(मूल मराठी से) —**गोविन्दराव देशपांडे**

अहमदाबाद में सर्वोदय-पात्र

यों तो सर्वोदय-पात्र देश के कोने-कोने में रखे जाते हैं और उनसे होनेवाली आय का विनियोग भी सर्वोदय-आन्दोलन के लिए होता है, किन्तु अहमदाबाद जैसे महानगर में सर्वोदय-पात्र अभियान की अपनी एक कहानी है।

अभी पिछले दिनों सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष श्री एस० जगन्नाथन् अहमदाबाद के गांधी-आश्रम में रचनात्मक कार्यकर्ताओं से मुलाकात के लिए आये थे। उनसे मिलकर जब हम नगरीय कार्यालय वापस आ रहे थे तो रास्ते में श्री शिवाकाका मुझसे कहने लगे—"सर्वोदय-पात्र के कार्य से मुझे हर एक घर की सीढ़ियाँ चढ़नी-उतरनी पड़ती हैं। इससे थकान खूब आती है और भूख बड़ी अच्छी लगती है, और शाम को सब पैसों का हिसाब करता हूँ तो दिमागी कसरत हो जाती है, जिससे नींद भी बढ़िया आती है।" श्री शिवाकाका इस समय साठ वर्ष के हैं। इनको मैं पिछले आठ सालों से देख रहा हूँ। इनको सिर्फ एक ही धुन है—नगरों में सर्वोदय-पात्र को अधिक से अधिक लोकप्रिय और प्रतिष्ठित करना। दिनभर अपने काम में मशगूल रहते हैं और जब मौका मिलता है तो अपना भोजन खुद तैयार कर लेते हैं। आजकल एक हजार सर्वोदय-पात्रों की देखभाल कर रहे हैं। कौन जानता था कि मेहसाणा जिले के एक देहात में जन्मे शिवाकाका सिर्फ उस गाँव के ही नहीं, अपितु सारे गुजरात के छोटे-छोटे बच्चों के प्रिय बन जायेंगे ?

एक और भाई कृष्णवदन शाह हैं, जो एम० ए० करके श्री रविशंकर महाराज की ओर आकृष्ट हुए और अहमदाबाद में सर्वोदय के काम में जुट गये। विचार-प्रचार और सर्वोदय-पात्र के काम इनको प्रिय हैं। अभी पिछले दिनों जिला-संयोजक भी इन्हीं को बनाया गया है। एक बार इनको सूझा कि क्यों न 'गीता-प्रवचन' ग्रंथ को व्यापक किया जाय। फलतः 'गीता-प्रवचन' की दस हजार प्रतियाँ घूम-घूमकर बेचीं। एक हजार सर्वोदय-पात्र चलाने का जिम्मा भी इन्होंने उठाया है और सफलतापूर्वक चला भी रहे हैं। इन्होंने सर्वोदय-पात्र के बारे में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा—'सर्वोदय-पात्र से एकदम अंदर से हम जुड़े हैं और मंदिर का मजा मुझे मिल रहा है।'

श्री जुगतराम भाई का सूरत जिला है। उस जिले की ग्रामीण संस्थाओं में हजारों की संख्या में सर्वोदय-पात्र हैं। शान्ति सेना के शिविर वगैरह अच्छे कार्यक्रम वहाँ चलते हैं जिनको श्री जुगतराम भाई का मार्गदर्शन मिलता है।

बड़ौदा शहर में श्री रतनसिंह ७६ वर्ष की आयु में भी हर मुहल्ले में सर्वोदय-पात्र की वसूली के लिए चार-चार, पाँच-पाँच मंजिलवाली इमारतों की सीढ़ियाँ पर चढ़ते उतरते रहते हैं। और, मेहसाणा श्री गोपाल भाई पटेल वर्षों से सर्वोदय-पात्र चलाते आ रहे हैं।

विवेकरहित विरोध

बनाम

बुनियादी परिवर्तन-प्रक्रिया

"शासन के खिलाफ विवेकरहित विरोध चलाया जाय तो उससे अराजकता की, अनियंत्रित स्वच्छंदता की स्थिति पैदा होगी और समाज अपने हाथों अपना नाश कर डालेगा।"

—गांधीजी

आज देश में आये दिन घेराव, धरना, लूटपाट, आगजनी, कथित सत्याग्रह की कार्रवाइयाँ लोकतंत्र में सामूहिक विरोध के हक के नाम पर होती हैं।

सर्वोदय-आन्दोलन भी वर्तमान समाज, अर्थ और शासन-व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह है। किन्तु, वह इसका एक नियंत्रित, रचनात्मक एवं अहिंसक कार्यक्रम प्रस्तुत करता है।

इसके लिए पढ़िए, मनन कीजिए :—

(१) हिन्द स्वराज्य —गांधीजी

(२) ग्रामदान —विनोबाजी

फिर एक जिम्मेवार नागरिक के नाते समाज परिवर्तन की इस क्रान्तिकारी प्रक्रिया में योग भी दीजिए।

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी-समिति)
टूंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर-३ (राजस्थान) द्वारा प्रसारित।

आन्दोलन के समाचार

राजगीर सर्वोदय सम्मेलन के लिए रेलवे-रियायत

यह सूचना देते हुए प्रसन्नता है कि रेलवे बोर्ड की ओर से सम्मेलन में जाने के लिए एक तरफ का किराया देकर "वापसी टिकट" की सुविधा प्राप्त हो चुकी है। कन्सेशन सर्टिफिकेट्स छप गये हैं और जल्द-से-जल्द यहाँ से डिस्पैच हो जायेंगे। इस सम्बन्ध में निम्न बातों की ओर कृपया ध्यान देने का कष्ट करें —

• वापसी टिकट की यह सुविधा १६० किलोमीटर से अधिक की यात्रा के लिए ही प्राप्त हो सकेगी। प्रति व्यक्ति के हिसाब से (पूरा नाम व पता देकर) ५ रुपये प्रतिनिधि-शुल्क प्राप्त होने पर कन्सेशन सर्टिफिकेट भेजे जायेंगे। सम्मेलन की कार्रवाई में भाग लेने के इच्छुक भाई-बहन १० अक्तूबर, '६९ तक सम्मेलन मंत्री, १८वाँ सर्वोदय समाज सम्मेलन, गोपुरी, वर्धा के पते पर पाँच रुपये मात्र प्रतिनिधि-शुल्क भेजकर प्रतिनिधि बन सकते हैं।

• ये सर्टिफिकेट्स सर्व सेवा संघ के वाराणसी तथा गोपुरी कार्यालय के अलावा सभी प्रादेशिक सर्वोदय मण्डलों, कुछ जिला सर्वोदय मण्डलों और कुछ चुनी हुई रचनात्मक संस्थाओं और प्रदेश की बड़ी खादी-संस्थाओं से प्राप्त हो सकें, यह व्यवस्था भी की जा रही है।

• राजगीर पहुँचने पर भोजन शुल्क जमा करके भोजन-टिकट लिये जा सकेंगे।•

कानपुर जनपद में ग्रामदान-अभियान

कानपुर जनपद के मैथा प्रखण्ड में गत २८, २९ अगस्त को ग्रामदान अभियान शिविर हुआ, जिसमें १०० कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करके चार दिनों तक पूरे प्रखण्ड में अभियान चलाया गया। प्रखण्ड के कुल २४३ गाँवों में १४७ गाँवों का ग्रामदान सम्पन्न हुआ।

—रामजीवन

भारत में ग्रामदान-प्रखण्डदान-जिलादान

(३०-८-'६९ तक)

प्रांत	ग्रामदान	प्रखण्डदान	जिलादान	जिला	ग्रामदान	प्रखंडदान	जिलादान
बिहार	४९,७१२	५३०	१४	दरभंगा	३,७२०	५४	१
उत्तरप्रदेश	२०,०००	१०४	३	मुजफ्फरपुर	३,११७	४०	१
तमिलनाडु	१२,३८५	१३९	४	पूर्णिया	८,१५७	३८	१
उड़ीसा	११,७३८	५९	१	सारण	३,७७१	४०	१
मध्यप्रदेश	५,४०८	२५	२	चम्पारण	२,८९०	३६	१
आन्ध्रप्रदेश	४,११९	१२		गया	५,८४७	४६	१
संयुक्त पंजाब	३,६९४	७		मुंगेर	३,०४४	३७	१
महाराष्ट्र	३,६६६	१५		सहरसा	२,७५१	२३	१
असम	१,५७०	१		धनबाद	१,७८८	१०	१
राजस्थान	१,२७०	१		पटना	२,०८५	२८	१
गुजरात	१,०१७	३		पलामू	८०४	२५	१
प० बंगाल	७८८			हजारीबाग	५,९३९	४२	१
कर्नाटक	६९२			भागलपुर	२,८७०	२१	१
केरल	४१८			सिंहभूम	१,२६३	२१	—
दिल्ली	७४			संताल परगना	१,१९८	२७	—
जम्मू-कश्मीर	१			शाहाबाद	७७१	४१	१
				राँची	८८	११	—
कुल :	१,१६,४९२	८९६	२४	कुल :	४९,७१२	५३०	१४

कुछ आवश्यक सूचनाएँ

• सफेद कागज अत्यधिक महँगा हो जाने के कारण 'भूदान यज्ञ' अब अखबारी कागज पर छपने लगा है। अभी जो कागज हम इस्तेमाल कर रहे हैं वह बहुत ही साधारण किस्म का, लेकिन भारत के राष्ट्रीय उद्योग का उत्पादन है। लेकिन हम आगे दो महीने में ही इससे अधिक अच्छे किस्म के अखबारी कागज दे सकने की स्थिति में आ जायेंगे।

• जिन लोगों को 'भूदान-यज्ञ' की फाइल रखनी होती है, उनके लिए हम १२ रुपये वार्षिक शुल्क प्राप्त होने पर सफेद कागज पर छपे 'भूदान यज्ञ' की व्यवस्था कर सकते हैं।

• पाठकों, कार्यकर्ताओं, शुभ-चिन्तक मित्रों की ओर से बराबर यह माँग आती रही है कि 'भूदान-यज्ञ' का नाम बदला जाय। आप सबको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि राजकोट में सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति ने 'भूदान-यज्ञ' का नाम बदलकर 'सर्वोदय' रखना निश्चित कर लिया है। इस नये नाम के आधार पर रजिस्ट्रेशन की कार्यवाही चल रही है।

• अपने पास प्रेस न होने के कारण हमें बाहर के प्रेस पर निर्भर रहना होता है, जिसके कारण कभी-कभी पत्र प्रकाशित होने में एकाध दिन की देर हो जाया करती है। हम इसके लिए क्षमा चाहते हुए निरन्तर समय से पत्रिका प्रकाशित करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

• किसी प्रकार के पत्र-व्यवहार में ग्राहक-संख्या लिखना न भूलें, जो आपके पोस्टल रैपर पर छपा होता है।

—व्यवस्थापक

विनोबाजी शतायु हों

—राँची में विनोबा-जयन्ती के अवसर पर विनोबाजी को शतायु होने की कामना—इस अवसर पर दतिया (म० प्र०) का जिलादान तथा राँची का सदर अनुमण्डलदान विनोबाजी को समर्पित—

राँची से हमारे विशेष सम्वाददाता ने सूचित किया है कि विनोबाजी की जयन्ती उन्हीं की उपस्थिति में मनायी गयी। दुनिया के लगभग सभी धर्मों की सद्‍वचनों का पाठ किया गया और भारत की सभी भाषाओं में भजनों का गायन हुआ। बिहार के वयोवृद्ध नेता श्री गौरीशंकर शरण सिंह ने राँची की तरफ से तथा पूरे बिहार की तरफ से बाबा के शतायु होने की कामना की।

इस समारोह में भारत के करीब प्रत्येक प्रदेश के लोग तथा भारत के बाहर के भी कुछ लोग उपस्थित थे। बाबा ने समारोह में उपस्थित बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री-पुरुष, सबके लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा कि यहाँ एक छोटा-सा विश्व-रूप का ही दर्शन होता है। स्व० श्री रावसाहब पटवर्धन की याद करते हुए उन्होंने कहा कि अभी एक निर्मल पुण्य रावसाहब पटवर्धन भगवान के चरणों में समर्पित हो गये। उन्होंने अपनी उम्र का ध्यान रखते हुए तथा अपने साथियों को इस संसार से विदा लेते देखकर कहा कि बचपन के मित्र 'वयू' छोड़कर चलने जा रहे है। इसे देखते हुए बाबा ने कहा कि उनके जीवन की गंभीरता भी दिनोदिन बढ़ती जा रही है। इस अवसर पर देश के अनेक नेताओं की आयी हुई शुभकामनाएँ पढ़ी गयी।

मध्यप्रदेश के दतिया जिलादान की सूचना इस मौके पर प्राप्त हुई। राँची जिले के सदर अनुमण्डलदान तथा सिंहभूम के २ प्रखण्डों के दान की घोषणा की गयी।

बिहार ग्रामदान प्राप्ति समिति ने निश्चय किया है कि अखिल भारत सर्वोदय सम्मेलन तक पूरी ताकत लगाकर राज्यदान पूर्ण करने की भरपूर कोशिश की जायेगी। ३० सितम्बर तक सिंहभूम जिले का जिलादान पूर्ण होगा, ऐसी सम्भावना है। सन्थाल परगना का २ अक्तूबर तक जिलादान पूर्ण होगा या नहीं तो सम्मेलन तक तो पूर्ण हो ही जायेगा।

ग्रामदान प्राप्ति समिति के कार्यकर्ताओं को सम्बोधित करते हुए विनोबाजी ने कहा कि लोकतन्त्र की दृष्टि से तथा सर्वोदय की दृष्टि से भी सर्वसम्मत निर्णय का स्वतन्त्र तथा महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः पूरे देश में हर स्तर पर कार्यकर्ताओं को इसका प्रयास करना चाहिए।

शाम को राँची मारवाड़ी कालेज की एक सभा में श्री जयप्रकाशजी ने विगत शान्तियों के परिप्रेक्ष्य में सर्वोदय की क्रान्ति की अनिवार्यता को सिद्ध करते हुए इसका विशद विवेचन किया। उन्होंने कहा कि कानून और हिंसा, दोनों समाज-परिवर्तन में असफल साबित हुई है, यह बात सिद्ध हो चुकी है। अब उन दोनों मार्गों को छोड़कर अहिंसक मार्ग को अपनाना होगा तभी सही मानी में क्रान्ति चरितार्थ होगी।

उन्होंने तरुणों को सम्बोधित करते हुए तरुण शान्तिसेना की आवश्यकता पर बल दिया। तरुणों की शक्ति समाज-परिवर्तन में लगे ऐसी आकांक्षा उन्होंने व्यक्त की। दुनिया में हो रहे तरुण-विद्रोहों का भी उन्होंने हवाला दिया।

१२ सितम्बर को प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने बाबा से मुलाकात की। •

प्राथमिक सर्वोदय मण्डल का गठन

बलिया (उ० प्र०) द्वारा क्षेत्र के लोकसेवकों की पिछले महीने हुई बैठक में प्राथमिक सर्वोदय मण्डल का गठन हुआ। सर्वश्री पचदेव तिवारी अध्यक्ष तथा शिवकुमार मिश्र मंत्री और रामाधार सिंह कोषाध्यक्ष चुने गये।•

आवश्यक सूचना

हमें खेद के साथ यह सूचना देनी पड़ रही है कि श्री राधेश्याम जायसवाल मु० पो०-सआदतगंज, जिला-बाराबंकी, (उ० प्र०) ने सन् १९६१ में 'भूदान-यज्ञ' के ग्राहक बनाने की रसीद प्राप्त की थी, उसका हिसाब वापस नहीं लौटा रहे हैं और इतने दिनों बाद उन रसीदों पर ग्राहक बनाकर पैसा अपने पास रख ले रहे है, हमें नहीं भेजते; फलस्वरूप उनके द्वारा बनाये गये ग्राहकों को पत्रिका नहीं मिल पाती। हमने लगातार यह चेतावनी उन्हें दी, कि ऐसा गलत काम वे न करें, लेकिन उनका यह गलत सिलसिला अब भी जारी है। इस आशय की सूचना दो-तीन साल पहले भी प्रकाशित की जा चुकी है। हम पुनः कार्यकर्ता साथियों, ग्राहक-मित्रों से यह निवेदन करते है कि उनके इस गलत कार्य को रोकने में हमारी मदद करें, और रसीद नं० ५३१-५५०, १२७१-१२८०, २५३१-२५५०, १०६५१-१०६७१, १३५०१-१३५२०, १४१३१-१४१४०, १९३५१-१९३७० तक के आधार पर ग्राहक न बनें।

इतनी रसीदें उन्होंने सन् १९६१ में हमारे लखनऊ-स्थित सर्वोदय-साहित्य भण्डार से प्राप्त कर ली थी।

—व्यवस्थापक
पत्रिका-विभाग
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन,

कांगड़ा जिला (हि० प्र०) सर्वोदय मण्डल की बैठक

जिले के संयोजक श्री सत्यपालजी के समाचार के अनुसार पिछले महीने हुई सर्वोदय मण्डल की बैठक में निष्ठावान कार्यकर्ता श्री लक्ष्मी भाई को सर्व सेवा संघ का प्रतिनिधि सर्वसम्मति से चुना गया।•

वार्षिक शुल्क : १० रु०, (सफेद कागज : १२ रु०, एक प्रति २५ पै०), विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।
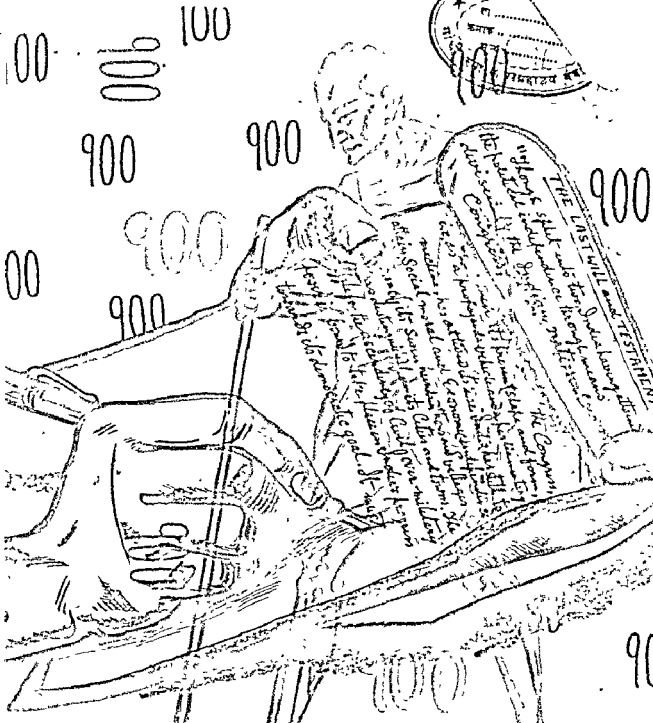
THE LAST WILL and TESTAMENT

आखिरी वसीयतनामा

देश का बँटवारा होते हुए भी, राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा तैयार किये गये साधनों के जरिये, हिन्दुस्तान को आज़ादी मिलने के कारण मौजूदा स्वरूपवाली कांग्रेस का काम अब खतम हुआ। यानी प्रचार के वाहन और धारा-सभा की प्रवृत्ति चलानेवाले तंत्र के नाते उसकी उपयोगिता अब समाप्त हो गयी है। शहरों और कस्बों से भिन्न उसके सात लाख गांवों की दृष्टि से हिन्दुस्तान की सामाजिक, नैतिक और आर्थिक आज़ादी हासिल करना अभी बाकी है। भारत के लोकतांत्रिक लक्ष्य तक पहुँचने में सैनिक-शक्ति पर नागरिक शक्ति के प्राधान्य होने का संघर्ष अवश्यम्भावी है। --

ता० २९-१-'४८

मो० क० गांधी

[अपनी हत्या से पहले एक दिन पूर्व गांधीजी ने कांग्रेस को नयी दिशा में मोड़कर भारत के नवनिर्माण में लगाने के लिए जिस निवेदन को लिख कर तैयार किया था, वह उनका आखिरी वसीयतनामा बन गया। आज वह हमारे हिन्दुस्तान में और अधिक महत्त्वपूर्ण बन गया है क्योंकि समस्याओं का उलझाव पहले से भी अधिक सघन हुआ है और इससे मुक्ति की दिशा का संकेत है इस वसीयतनामे में। प्रस्तुत पाठ उसी आखिरी वसीयतनामे से लिया गया है। आवरण-पृष्ठ पर [illegible] दिया है। —सं०]

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान
अहिंक क्रान्ति का सन्देशवाहक
सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ५१-५२
सोमवार २६ सितम्बर, '६६

—इस अङ्क में—

इस अक मे पृष्ठ ६५५ से ६७५ तक की प्रकाशित सामग्री—पिछली तीन-चार अखिल भारतीय ग्रामस्वराज्य गोष्ठियो मे हुए विचार-मथन की उपलब्धियो पर आधारित है। —सं०

२ अक्तूबर '६६ के अवसर पर
गांधी-जन्म-शताब्दी विशेषांक

सम्पादक
सर्व सेवा संघ प्रकाशन,
राजघाट, वाराणसी–१ उत्तरप्रदेश
फोन : ४१८५

गांधीजी के सपने और यह क्रान्ति-यात्रा

४ जुलाई सन् १८८८ को जब गांधीजी की उम्र सिर्फ १८ थी और वे वकालत पढने के लिए विलायत जा रहे थे, तो राजकोट के अल्फ्रेड हाईस्कूल में अपने सहपाठियों द्वारा आ विदायी-समारोह मे कहा था: "विलायत से पढ़कर लौटने के बाद और शहादत की भावना से भारत के नवजागरण का काम करना है आशा है कि भारत का हर सुशिक्षित युवक भारत में नयी चेतना लाने के लि हार्दिकता के साथ काम करेगा।" स्थानीय 'काठियावाड टाइम्स' के १२ सन् १८८८ के अक में उक्त समारोह का समाचार प्रकाशित हुआ था, गांधीजी के वक्तव्य का यह सार छपा था।

उसके बाद से ३० जनवरी सन् १९४८ की सध्या तक की गाधीज जीवन-यात्रा एक क्रान्तिदर्शी की जीवन-यात्रा है, जिससे सारा जगत परिचि अपनी शहादत से एक ही दिन पूर्व—कह सकते हैं कि अपने लौकिक की आखिरी रात को—काग्रेस के लिए जो दिशा-निर्देशक पत्रक उन्होंने किया था, जिसे आखिरी वसीयतनामा कहा जाता है, उसमे ... अभिव्यक्ति अकित है।

इन पहली और आखिरी अभिव्यक्तियो के बीच का उनका जीवन नये के निर्माण के लिए समर्पित रहा। अगर ३० जनवरी सन् १९४८ की सांझ नहीं साबित होती, तो भी उनके वसीयतनामा को काग्रेस अपनाती, इसमें की पूरी गुंजाइश है, लेकिन इसमे किसी प्रकार की शंका की गुजाइश नही है उनकी आगे की जीवन-यात्रा ४ जुलाई सन् १८८८ को मुखर हुई आकाक्षा-निरन्तर मुखरतर और स्पष्टतर होती गयी थी—की पूर्ति के लिए होती।

इस गांधी-जन्म-शताब्दी वर्ष में गांधीजी को अमर बनाये रखने के सर और गैरसरकारी-स्तर पर अनेकानेक प्रयत्न हुए हैं। कुछ और भी होंगे २२ फरवरी सन् १९७० तक। आश्चर्यजनक आयोजन हुए गांधीजी की को वस्तुत मृत या मृतप्राय साधनों से उजागर करने के। ...लेकिन यह परम्परा की एक और कड़ी है जो जोड दी गयी है गांधी के नाम से इतिहास और उन सपनों तथा उस आखिरी वसीयतनामे के बारे में क्या हुआ? क कागज के टुकड़े पर अंकित कर संग्रहालय में सजा देने भर के लिए है?

गाधी जैसे क्रान्तिदर्शी के सपने इन जड़-प्रतीको मे नही, क्रान्ति के प्र प्रवाह मे ही पलते है। क्या भारत में उस प्रवाह को कायम रखने के भी प्र हुए हैं? इस प्रश्न के उत्तर में ही ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य का आरोहण सामने है। समस्याओं की नित नवीन चुनौतियों का समाधानकारी हल ढूंढने का प्रयास गांधीजी के जाने के बाद शुरू हुआ था, उसने आज राज्यदान के रू एक ऐसी मंजिल प्रस्तुत किया है जहां से हम गांधीजी के 'सपनों का भारत' उ अंतरिक्ष में अपनी आंखों से देख सकते हैं, उसे अपनी पलकों में भी बसा सकते

२ अक्तूबर '६९ की इस महत्त्वपूर्ण तिथि पर हम 'भूदान-यज्ञ' के इस वि पांक द्वारा भारत के चेतन नागरिको को गांधीजी की इस अखंड ग्रामस्वराज्य-य में शरीक होने का आमंत्रण देना चाहते हैं ताकि १८ साल के किशोर गांधी से ले करीब ७८ साल के बुजुर्ग गांधी की यह क्रान्ति-यात्रा चलती रहे.. अखंड रूप अनन्त काल तक...

गांधी-विचार में ग्रामदान के बीज

स्वराज्य

सच्ची लोकशाही केन्द्र में बैठे हुए दस-बीस आदमी नहीं चला सकते। वो नीचे से हर एक गांव के लोगों द्वारा चलायी जानी चाहिए।

—हरिजन, १८-१ '४८

स्वराज्य से मेरा अभिप्राय है लोक-सम्मति के अनुसार होनेवाला भारतवर्ष का शासन। लोक-सम्मति का निश्चय देश के बालिग लोगों की बड़ी-से-बड़ी तादाद के मत के जरिये से हो, फिर वे चाहे स्त्रियां हों या पुरुष, इसी देश के हों या इस देश में आकर बस गये हों। वे लोग ऐसे हों जिन्होंने अपने शारीरिक श्रम के द्वारा राज्य की कुछ सेवा की हो और जिन्होंने मतदाताओं की सूची में अपना नाम लिखवा लिया हो। सच्चा स्वराज्य थोड़े लोगों के द्वारा सत्ता प्राप्त कर लेने से नहीं, बल्कि जब सत्ता का दुरुपयोग होता हो तब सब लोगों के द्वारा उसका प्रतिकार करने की क्षमता प्राप्त करके हासिल किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, स्वराज्य जनता में इस बात का ज्ञान पैदा करके प्राप्त किया जा सकता है कि सत्ता पर कब्जा करने और उसका नियमन करने की क्षमता उसमें है।

— यंग इंडिया, २९-१-'२५

ग्रामस्वराज्य

ग्रामस्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी अहम जरूरतों के लिए अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं रहेगा, और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए—जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा—वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। इस तरह हर एक गांव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का तमाम अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले। इसके अलावा उसके पास इतनी सुरक्षित जमीन होनी चाहिए, जिसमें ढोर चर सकें और गांव के बड़ों व बच्चों के लिए मनबहलाव के साधन और खेलकूद के मैदान वगैरह का बन्दोबस्त हो सके। इसके बाद भी जमीन बची तो उसमें वह ऐसी उपयोगी फसलें बोयेगा, जिन्हें बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सके, लेकिन वह गांजा, तम्बाकू, अफीम वगैरह की खेती से बचेगा।

हर एक गांव में गांव की अपनी एक नाटकशाला, पाठशाला और सभा भवन रहेगा। पानी के लिए उसका अपना इन्तजाम होगा, वाटर वर्क्स होंगे, जिनसे गांव के सभी लोगों को शुद्ध पानी मिला करेगा। कुओं और तालाबों पर गांव का पूरा नियंत्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी तालीम के आखिरी दर्जे तक शिक्षा सबके लिए लाजिमी होगी। जहां तक हो सकेगा, गांव के सारे काम सहयोग के आधार पर किये जायेंगे। जात-पांत और क्रमागत अस्पृश्यता के जैसे भेद आज हमारे समाज में पाये जाते हैं, वैसे इस ग्राम-समाज में बिलकुल नहीं रहेंगे।

सत्याग्रह और असहयोग के शस्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज का शासन-बल होगी। गांव की रक्षा के लिए ग्राम-सैनिकों का एक ऐसा दल रहेगा, जिसे लाजिमी तौर पर बारी-बारी से गांव के चौकी-पहरे का काम करना होगा। इसके लिए गांव में ऐसे लोगों का रजिस्टर रखा जायगा। गांव का शासन चलाने के लिए हर गांव के पांच आदमियों की एक पंचायत चुनी जायगी। इसके लिए नियमानुसार एक खास निर्धारित योग्यतावाले गांव के बालिग स्त्री-पुरुषों को अधिकार होगा कि वे अपने पंच चुन लें। इन पंचायतों को सब प्रकार की आवश्यक सत्ता और अधिकार रहेंगे। चूंकि उस ग्रामस्वराज्य में आज के प्रचलित अर्थों में सजा या दण्ड का कोई रिवाज नहीं रहेगा, इसलिए यह पंचायत अपने एक साल के कार्यकाल में स्वयं ही धारासभा, न्यायसभा और कार्यकारिणी सभा का सारा काम संयुक्त रूप से करेगी।

आज भी अगर कोई गांव चाहे तो अपने यहां इस तरह का प्रजातंत्र कायम कर सकता है। उसके इस काम में मौजूदा सरकार भी ज्यादा दस्तंदाजी नहीं करेगी। यहां मैंने इस बात का विचार नहीं किया है कि इस तरह के गांव का अपने पास-पड़ोस के गांवों के साथ या केन्द्रीय सरकार के साथ, अगर वैसी कोई सरकार हुई, क्या सम्बन्ध रहेगा। मेरा हेतु तो ग्राम-शासन की एक रूप-रेखा पेश करने का ही है। इस ग्राम-शासन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधार रखनेवाला सम्पूर्ण प्रजातंत्र काम करेगा। व्यक्ति ही अपनी इस सरकार का निर्माता भी होगा। उसकी सरकार और वह दोनों अहिंसा के नियम के वश होकर चलेंगे। अपने गांव के साथ वह सारी दुनिया की शक्ति का मुकाबिला कर सकेगा। क्योंकि हर एक देहाती के जीवन का सबसे बड़ा नियम यह होगा कि वह अपनी और अपने गांव की इज्जत की रक्षा के लिए मर मिटे।

राज्य और हिंसा

राज्य हिंसा का एक केन्द्रित और संगठित रूप ही है। व्यक्ति में आत्मा होती है, परन्तु चूंकि राज्य एक जड़ यंत्रमात्र है, इसलिए उसे हिंसा से कभी नहीं छुड़ाया जा सकता। क्योंकि हिंसा से ही तो उसका जन्म होता है। मेरा दृढ़ निश्चय है कि यदि राज्य ने पूंजीवाद को हिंसा के द्वारा दबाने की कोशिश की, तो वह खुद ही हिंसा के जाल में फंस जायगा और फिर कभी भी अहिंसा का विकास नहीं कर सकेगा।

व्यक्तिगत तौर पर तो मैं यह चाहूंगा कि राज्य के हाथों में शक्ति का ज्यादा केन्द्रीकरण न हो, उसके बजाय ट्रस्टीशिप की भावना का विस्तार हो। क्योंकि मेरी राय में राज्य की हिंसा की तुलना में वैयक्तिक मालिकी की हिंसा कम हानिकर है। लेकिन यदि राज्य की मालिकी अनिवार्य हो ही तो मैं भरसक कम-से-कम राज्य की मालिकी की सिफारिश करूंगा।

—दी मार्डन रिव्यू, सन् १९३५

मेरी दृष्टि में राजनैतिक सत्ता कोई साध्य नहीं है, परन्तु जीवन के प्रत्येक विभाग में लोगों के लिए अपनी हालत सुधार सकने का एक साधन है। राजनैतिक सत्ता का अर्थ है राष्ट्रीय प्रतिनिधियों द्वारा राष्ट्रीय जीवन का नियमन करने की शक्ति। अगर राष्ट्रीय जीवन इतना पूर्ण हो जाता है कि वह स्वयं आत्म नियमन कर ले, तो किसी प्रतिनिधित्व की आवश्यकता नहीं रह जाती। उस समय ज्ञानपूर्ण अराजकता की

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान
अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : ५१-५२
सोमवार २६ सितम्बर, '६६

— इस अङ्क में —

इस अंक में पृष्ठ ६५५ से ६७५ तक की प्रकाशित सामग्री—पिछली तीन-चार अखिल भारतीय ग्रामस्वराज्य गोष्ठियों में हुए विचार-मंथन की उपलब्धियों पर आधारित है। —सं०

२ अक्तूबर '६६ के अवसर पर
गांधी-जन्म-शताब्दी विशेषांक

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन,
राजघाट, वाराणसी-१ उत्तरप्रदेश
फोन : ४२८५

गांधीजी के सपने और यह क्रान्ति-यात्रा

४ जुलाई सन् १८८८ को जब गांधीजी की उम्र सिर्फ १८ थी और वे वकालत पढ़ने के लिए विलायत जा रहे थे, तो उ[illegible] राजकोट के अल्फ्रेड हाईस्कूल में अपने सहपाठियों द्वारा आयो[illegible] विदायी-समारोह मे कहा था : "विलायत से पढ़कर लौटने के बाद [illegible] और शहादत की भावना से भारत के नवजागरण का काम करना है। आशा है कि भारत का हर सुशिक्षित युवक भारत में नयी चेतना लाने के लिए हार्दिकता के साथ काम करेगा।" स्थानीय 'काठियावाड टाइम्स' के १२ [illegible] सन् १८८८ के अक में उक्त समारोह का समाचार प्रकाशित हुआ था, जि[illegible] गांधीजी के वक्तव्य का यह सार छपा था।

उसके बाद से ३० जनवरी सन् १९४८ को सध्या तक की गाधीजी [illegible] जीवन-यात्रा एक क्रान्तिदर्शी की जीवन-यात्रा है, जिससे सारा जगत परिचित [illegible] अपनी शहादत से एक ही दिन पूर्व—कह सकते हैं कि अपने लौकिक जी[illegible] की आखिरी रात को—कांग्रेस के लिए जो दिशा-निर्देशक पत्रक उन्होंने [illegible] किया था, जिसे आखिरी वसीयतनामा कहा जाता है, उसमे उनकी [illegible] अभिव्यक्ति अंकित है।

इन पहली और आखिरी अभिव्यक्तियों के बीच का उनका जीवन नये भा[illegible] के निर्माण के लिए समर्पित रहा। अगर ३० जनवरी सन् १९४८ की साँझ [illegible] नहीं साबित होती, तो भी उनके वसीयतनामा को कांग्रेस अपनाती, इसमें श[illegible] की पूरी गुंजाइश है, लेकिन इसमे किसी प्रकार की शंका की गुंजाइश नही है [illegible] उनकी आगे की जीवन-यात्रा ४ जुलाई सन् १८८८ को मुखर हुई आकांक्षा— निरन्तर मुखरतर और स्पष्टतर होती गयी थी—की पूर्ति के लिए होती।

इस गांधी-जन्म-शताब्दी वर्ष में गांधीजी को अमर बनाये रखने के सरक[illegible] और गैरसरकारी-स्तर पर अनेकानेक प्रयत्न हुए हैं। कुछ और भी होंगे श[illegible] २२ फरवरी सन् १९७० तक। आश्चर्यजनक आयोजन हुए गांधीजी की अमर[illegible] को वस्तुत: मृत या मृतप्राय साधनो से उजागर करने के। ...लेकिन यह श[illegible] परम्परा की एक और कड़ी है जो जोड दी गयी है गांधी के नाम से इतिहास में।

और उन सपनो तथा उस आखिरी वसीयतनामे के बारे मे क्या हुआ? क्या कागज के टुकडे पर अंकित कर संग्रहालय में सजा देने भर के लिए हैं?

गाधी जैसे क्रान्तिदर्शी के सपने इन जड-प्रतीकों मे नहीं, क्रान्ति के अम[illegible] प्रवाह में ही पलते हैं। क्या भारत में उस प्रवाह को कायम रखने के भी प्र[illegible] हुए हैं? इस प्रश्न के उत्तर में ही ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य का आरोहण सामने आ[illegible] है। समस्याओं को नित नवीन चुनौतियों का समाधानकारी हल ढूँढने का [illegible] प्रयास गांधीजी के जाने के बाद शुरू हुआ था, उसने आज राज्यदान के रू[illegible] एक ऐसी मंजिल प्रस्तुत किया है जहाँ से हम गाधोजी के 'सपनो का भारत' उस[illegible] अंतरिक्ष मे अपनी आँखों से देख सकते हैं, उसे अपनी पलकों में भी बसा सकते हैं।

२ अक्तूबर '६९ की इस महत्वपूर्ण तिथि पर हम 'भूदान-यज्ञ' के इस वि[illegible] पांक द्वारा भारत के चेतन नागरिकों को गांधीजी की इस अखंड ग्रामस्वराज्य-या[illegible] में शरीक होने का आमंत्रण देना चाहते हैं ताकि १८ साल के किशोर गांधी से लेक[illegible] करीब ७८ साल के बुजुर्ग गांधी की यह क्रान्ति-यात्रा चलती रहे . अखंड रूप में अनन्त काल तक...

—[illegible]

गांधी-विचार में ग्रामदान के बीज

स्वराज्य

सच्ची लोकशाही केन्द्र मे बैठे हुए दस-बीस ग्रादमी नही चला सकते ।
तो नीचे से हर एक गांव के लोगों द्वारा चलायी जानी चाहिए ।

—हरिजन, १८-१ '४८

वराज्य से मेरा अभिप्राय है लोक-सम्मति के अनुसार होनेवाला
र्ष का शासन । लोक-सम्मति का निश्चय देश के बालिग लोगो
डी-से-बड़ी तादाद के मत के जरिये से हो, फिर वे चाहे स्त्रियाँ हो
प, इसी देश के हो या इस देश मे आकर बस गये हों । वे लोग
। जिन्होंने अपने शारीरिक श्रम के द्वारा प्रदेश की कुछ सेवा की
और जिन्होंने मतदाताओं की सूची मे अपना नाम लिखवा लिया
सच्चा स्वराज्य थोड़े लोगों के द्वारा सत्ता प्राप्त कर लेने से नही,
जब सत्ता का दुरुपयोग होता हो तब सब लोगों के द्वारा उसका
ार करने की क्षमता प्राप्त करके हासिल किया जा सकता है ।
शब्दों मे, स्वराज्य जनता मे इस बात का ज्ञान पैदा करके प्राप्त
जा सकता है कि सत्ता पर कब्जा करने और उसका नियमन करने
मता उसमे है ।

— यग इंडिया, २९-१-'२५

ग्रामस्वराज्य

ग्रामस्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि यह एक ऐसा पूर्ण प्रजातन्त्र
, जो अपनी अहम जरूरतों के लिए अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नही
ा, और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए—जिनमे दूसरों
सहयोग अनिवार्य होगा—वह परस्पर सहयोग से काम लेगा । इस तरह
एक गांव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का तमाम
ज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले । इसके अलावा उसके
इतनी सुरक्षित जमीन होनी चाहिए, जिसमे ढोर चर सके और गांव
ड़ों व बच्चों के लिए मनबहलाव के साधन और खेलकूद के मैदान
रह का बन्दोबस्त हो सके । इसके बाद भी जमीन बची तो उसमे
ऐसी उपयोगी फसलें बोयेगा, जिन्हें बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा
, लेकिन वह गाजा, तम्बाकू, अफीम वगैरह की खेती से बचेगा ।

हर एक गांव मे गांव की अपनी एक नाटकशाला, पाठशाला और
ा भवन रहेगा । पानी के लिए उसका अपना इन्तजाम होगा, वाटर
र्क होंगे, जिनसे गांव के सभी लोगों को शुद्ध पानी मिला करेगा ।
ों और तालाबों पर गांव का पूरा नियन्त्रण रखकर यह काम किया
सकता है । बुनियादी तालीम के आखिरी दरजे तक शिक्षा सबके
ए लाजिमी होगी । जहाँ तक हो सकेगा, गांव के सारे काम सहयोग
आधार पर किये जायेंगे । जात-पांत और क्रमागत अस्पृश्यता के
े भेद आज हमारे समाज मे पाये जाते हैं, वैसे इस ग्राम-समाज में
ल्कुल नही रहगे ।

सत्याग्रह और असहयोग के शस्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता ही
मीण समाज का शासन-बल होगी । गांव की रक्षा के लिए ग्राम-
सियों का एक ऐसा दल रहेगा, जिसे लाजिमी तौर पर बारी-बारी से
गांव के चौकी-पहरे का काम करना होगा । इसके लिए गांव मे ऐसे
लोगों का रजिस्टर रखा जायगा । गांव का शासन चलाने के लिए हर
गांव के पांच आदमियों की एक पंचायत चुनी जायगी । इसके लिए
नियमानुसार एक खास निर्धारित योग्यतावाले गांव के बालिग स्त्री-पुरुषों
को अधिकार होगा कि वे अपने पंच चुन लें । इन पंचायतों को सब
प्रकार की आवश्यक सत्ता और अधिकार रहेंगे । चूंकि उस ग्रामस्वराज्य
मे आज के प्रचलित अर्थों में सजा या दण्ड का कोई रिवाज नही रहेगा,
इसलिए यह पंचायत अपने एक साल के कार्यकाल मे स्वय ही धारासभा,
न्यायसभा और कार्यकारिणी सभा का सारा काम संयुक्त रूप से
करेगी ।

आज भी अगर कोई गांव चाहे तो अपने यहाँ इस तरह का प्रजातन्त्र
कायम कर सकता है । उसके इस काम मे मौजूदा सरकार भी
ज्यादा दस्तंदाजी नही करेगी । यहाँ मैंने इस बात का विचार
नही किया है कि इस तरह के गांव का अपने पास-पड़ोस
के गांवों के साथ या केन्द्रीय सरकार के साथ, अगर वैसी कोई सरकार
हुई, क्या सम्बन्ध रहेगा । मेरा हेतु तो ग्राम-शासन की एक रूप-रेखा
पेश करने का ही है । इस ग्राम-शासन मे व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधार
रखनेवाला सम्पूर्ण प्रजातन्त्र काम करेगा । व्यक्ति ही अपनी इस सरकार
का निर्माता भी होगा । उसकी सरकार और वह दोनो अहिंसा के नियम
के वश होकर चलेंगे । अपने गांव के साथ वह सारी दुनिया की शक्ति
का मुकाबिला कर सकेगा । क्योंकि हर एक देहाती के जीवन का सबसे
बड़ा नियम यह होगा कि वह अपनी और अपने गांव की इज्जत की रक्षा
के लिए मर मिटे ।

राज्य और हिंसा

राज्य हिंसा का एक केन्द्रित और सगठित रूप ही है । व्यक्ति मे
आत्मा होती है, परन्तु चूंकि राज्य एक जड़ यन्त्रमात्र है, इसलिए उसे
हिंसा से कभी नही छुड़ाया जा सकता । क्योंकि हिंसा से ही तो उसका
जन्म होता है । मेरा दृढ़ निश्चय है कि यदि राज्य ने पूँजीवाद को हिंसा के
द्वारा दबाने की कोशिश की, तो वह खुद ही हिंसा के जाल म फँस जायगा
और फिर कभी भी अहिंसा का विकास नही कर सकेगा ।

व्यक्तिगत तौर पर तो मैं यह चाहूँगा कि राज्य के हाथों मे शक्ति
का ज्यादा केन्द्रीयकरण न हो, उसके बजाय ट्रस्टीशिप की भावना का
विस्तार हो । क्योंकि मेरी राय मे राज्य की हिंसा की तुलना मे वैयक्तिक
मालिकी की हिंसा कम हानिकर है । लेकिन यदि राज्य की मालिकी
अनिवार्य ही हो तो मैं भरसक कम-से-कम राज्य की मालिकी की सिफा
रिश करूँगा ।

—दी माडर्न रिव्यू, सन् १९३५

मेरी दृष्टि मे राजनीतिक सत्ता कोई साध्य नही है, परन्तु जीवन
के प्रत्येक विभाग मे लोगों के लिए अपनी हालत सुधार सकने का एक
साधन है । राजनीतिक सत्ता का अर्थ है राष्ट्रीय प्रतिनिधियों द्वारा
राष्ट्रीय जीवन का नियमन करने की शक्ति । अगर राष्ट्रीय जीवन इतना
पूर्ण हो जाता है कि वह स्वयं आत्म नियमन कर ले, तो किसी प्रतिनि-
धित्व की आवश्यकता नहीं रह जाती । उस समय ज्ञानपूर्ण अराजकता की

स्थिति हो जाती है। ऐसी स्थिति में हरएक अपना राजा होता है। वह इस ढंग से अपने पर शासन करता है कि अपने पडोसियो के लिए कभी बाधक नही बनता। इसलिए आदर्श अवस्था में कोई राजनीतिक सत्ता नहीं होगी, क्योंकि कोई राज्य नही होगा। परन्तु जीवन में आदर्श की पूरी सिद्धि कभी नही होती। —यंग इण्डिया, २-७-'३१

श्रम और पूँजी

सवाल एक वर्ग को दूसरे वर्ग के खिलाफ भडकाने और भिडाने का नही है, बल्कि मजदूर-वर्ग को अपनी स्थिति के महत्त्व का ज्ञान कराने का है। आखिर तो अमीरो की संख्या दुनिया में इनी-गिनी ही है। ज्योंही मजदूर-वर्ग को अपनी ताकत का भान होगा और अपनी ताकत जानते हुए भी वह ईमानदारी का व्यवहार करेगा, त्योंही वे लोग भी ईमानदारी का व्यवहार करने लगेंगे। मजदूरो को अमीरो के खिलाफ भडकाने का अर्थ वर्गद्वेष को और उससे निकलनेवाले तमाम बुरे नतीजो को जारी रखना होगा। **संघर्ष एक कुचक्र है और उसे किसी भी कीमत पर टालना ही चाहिए। वह दुर्बलता की स्वीकृति का, हीनता ग्रंथि का चिन्ह है।** श्रम ज्योंही अपनी स्थिति का महत्त्व और गौरव पहचान लेगा, त्योंही धन को अपना उचित दरजा मिल जायगा, अर्थात् अमीर उसे अपने पास मजदूरो की धरोहर के ही रूप में रखेंगे। कारण, श्रम धन से श्रेष्ठ है —हरिजन, १६-१०-'४२

मालिक और मजदूर

जमीन पर मेहनत करनेवाले किसान और मजदूर ज्योंही अपनी ताकत पहचान लेंगे, त्योंही जमींदारी की बुराई का बुरापन दूर हो जायगा। अगर वे लोग यह कह दें कि उन्हें सभ्य जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार अपने बच्चो के भोजन, वस्त्र और शिक्षण आदि के लिए जबतक काफी मजदूरी नही दी जायगी, तबतक वे जमीन को जोतेंगे बोयेंगे ही नहीं, तो जमींदार बेचारा कर ही क्या सकता है? सच तो यह है कि मेहनत करनेवाला जो कुछ पैदा करता है, उसका मालिक वही है। अगर मेहनत करनेवाले बुद्धिपूर्वक एक हो जायँ, तो वे एक ऐसी ताकत बन जायेंगे जिसका मुकाबिला कोई नहीं कर सकता, और इसलिए मैं वर्गयुद्ध की कोई जरूरत नही देखता। यदि मैं उसे अनिवार्य मानता होता तो उसका प्रचार करने में, और लोगो को उसकी तालीम देने में मुझे कोई संकोच न होता। —हरिजन, ५-१२-'३६

समता और संरक्षता

वास्तव में समान वितरण के इस सिद्धान्त की जड में धनवानो के अनावश्यक धन की संरक्षता का या ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त होना चाहिए, क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार वे अपने पडोसियो से एक रुपया भी अधिक नही रख सकते। यह कैसे किया जाय? अहिंसा द्वारा? या धनवानो से उनकी सम्पत्ति छीनकर? ऐसा करने के लिए हमें स्वभावतः हिंसा का आसरा लेना पडेगा। इस हिंसक कार्यवाई से समाज का लाभ नही हो सकता। समाज उल्टा घाटे में रहेगा, क्योंकि इससे समाज एक ऐसे आदमी के गुणो से वंचित रहेगा जो दौलत जमा करना जानता है। इसलिए अहिंसक मार्ग प्रत्यक्ष रूप से श्रेष्ठ है। धनवान के पास उसका धन रहेगा, परन्तु उसका उतना ही भाग वह अपने काम में लेगा जितना वह अपनी निजी आवश्यकताओं के लिए उचित रूप में ... समझता है, और बाकी को समाज के उपयोग के लिए धरोहर समझे... इस तर्क में यह मान लिया गया है कि संरक्षक प्रामाणिक होगा। —हरिजन, २५-८-'...

सबै भूमि गोपाल की

सच्चा समाजवाद तो हमें अपने पूर्वजो से प्राप्त हुआ है, जो... यह सिखा गये है कि 'सब भूमि गोपाल की है, **इसमें कहीं मेरी और तेरी की सीमाएँ नहीं है। ये सीमाएँ तो आदमियो ने बनायी हैं ... इसलिए वे इन्हें तोड भी सकते हैं।**" गोपाल यानी भगवान्। आधुनिक भाषा में गोपाल यानी राज्य, यानी जनता। आज जमीन जनता ... नही है, यह बात सही है। पर इसमें दोष उस सिखावन का नहीं है ... दोष तो हमारा है जिन्होंने उस शिक्षा के अनुसार आचरण नही किया ... मुझे इसमें कोई सन्देह नही कि हम आदर्श के जिस हद तक रूस ... और कोई देश पहुँच सकता है उसी हद तक हम भी पहुँच सकते ... *और वह भी हिंसा का आश्रय लिये बिना।* —हरिजन, २२-८-'...

व्यक्ति, गाँव और विश्व

ऐसा समाज अनगिनत गाँवो का बना होगा। उसका फैलाव ए... के ऊपर एक के ढंग पर नहीं, बल्कि लहरो की तरह एक के बाद ए... की शकल में होगा। जिन्दगी मीनार की शकल में नहीं होगी, जहाँ ऊपर की तंग चोटी को नीचे के चौडे पाये पर खडा होना पडता है ... वहाँ तो समुद्र की लहरो की तरह जिन्दगी एक के बाद एक घेरे की शकल में होगी और व्यक्ति उसका मध्यबिन्दु होगा। वह व्यक्ति हमेशा अपने गाँव के खातिर मिटने को तैयार रहेगा। गाँव अपने इर्द-गिर्द के गाँवो के लिए मिटने को तैयार होगा। इस तरह आखिर सारा समाज ऐसे लोगों का बन जायगा, जो उद्धत बनकर कभी किसी पर हमला नहीं करते, बल्कि हमेशा नम्र रहते है, और अपने में समुद्र की उस शान को महसूस करते हैं जिसके वे एक जरूरी अंग है।

इसलिए सबसे बाहर का घेरा या दायरा अपनी ताकत का उपयोग भीतरवालो को कुचलने में नहीं करेगा, बल्कि उन सबको ताकत देगा और उनसे ताकत पायेगा। मुझे ताना दिया जा सकता है कि यह सब तो खयाली तसवीर है, इसके बारे में सोचकर वक्त क्यों बिगाडा जाय? युक्लिड की परिभाषावाला बिन्दु कोई मनुष्य खींच नही सकता, फिर भी उसकी कीमत हमेशा रही और रहेगी। इसी तरह मेरी इस तस्वीर की भी कीमत है। इसके लिए मनुष्य जिन्दा रह सकता है। अगरचे इस तस्वीर को पूरी तरह बनाना या पाना सम्भव नहीं है तो भी इस सही तस्वीर को पाना या इसतक पहुँचना हिन्दुस्तान की जिन्दगी का मकसद होना चाहिए। जिस चीज को हम चाहते हैं, उसकी सही-सही तस्वीर हमारे सामने होनी चाहिए, तभी हम उससे मिलती-जुलती कोई चीज पाने की आशा रख सकते हैं। अगर हिन्दुस्तान के हरएक गाँव में कभी पंचायती राज कायम हुआ, तो मैं अपनी इस तस्वीर की सचाई साबित कर सकूँगा, जिसमें सबसे पहला और सबसे आखिरी दोनों बराबर होंगे या यों कहिये कि न कोई पहला होगा, न आखिरी।
—हरिजन, २८-७-'४...

भावना-योजना-साधना

कोई सौ मिले-जुले आदमी चुन लिये जायें, और उनसे कहा जाय कि 'आपकी जो तीन सबसे बड़ी समस्याएँ हों उन्हें क्रम से लिख दीजिए।' उनका लिखा हुआ देखकर आश्चर्य होगा कि अलग-अलग लोगों की समस्याएँ कितनी 'अलग-अलग होती हैं। समस्याएँ शरीर की होती हैं, मन की होती हैं और आध्यात्मिक होती हैं। आयु, परिस्थिति और मनःस्थिति पर निर्भर है कि कौन कब, किस समस्या को महत्त्व देगा।

एक बार एक पत्रकार ने १८-१९ साल के कुछ युवकों-युवतियों से पूछा 'आपकी सबसे बड़ी समस्या क्या है ?' उन्होंने उत्तर दिया 'हमारे माता-पिता'। उसने फिर पूछा 'कैसे ?' वे बोले 'हम जिस तरह रहना चाहते हैं वे हमें उस तरह रहने नहीं देते।' सचमुच नयी उम्रवालों के लिए बड़ों का दबाव कितनी बड़ी समस्या है इसे वे ही समझ सकते हैं जिन्हें अपने वे दिन याद होंगे।

समस्याएँ एक युग से दूसरे युग मे बदलती रहती हैं क्योंकि लोगों की कल्पनाएँ, भावनाएँ, आवश्यकताएँ, आकांक्षाएँ बदलती रहती हैं। बड़ा-से-बड़ा सुधारक या दार्शनिक हो, अपने युग के प्रभाव से पूरा-पूरा मुक्त नहीं हो सकता। अरस्तू जैसा सामाजिक विचारक भी मानता था कि सभ्य जीवन के लिए गुलामों का होना जरूरी है। अगर वे नहीं रहेंगे तो सेवा और श्रम कौन करेगा ? समाज को नागरिकों और दासों मे बाँटकर उसने सामाजिक व्यवस्था की समस्या का एक हल ढूँढा था। उस हल मे क्या अनीति और अन्याय है, इस पहलू पर उसने विचार भी नही किया। यह परिस्थिति की विवशता है !

हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था को लीजिये। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की बात सोचने और कहनेवाले हिन्दू ने भी समाज को सवर्ण और अवर्ण मे बाँटा, शूद्र और चाण्डाल को सभ्य जीवन के दायरे के बाहर रखा। इतना ही नहीं, पुरुषों के मुकाबिले स्त्रियों को, मालिकों के मुकाबिले मजदूरों को, और बूढ़ों के मुकाबिले युवकों को अधिकारों से अलग रखा—ऐसे अधिकारों से अलग रखा जो आज जीवन के लिए बिलकुल बुनियादी माने जाते हैं। आश्चर्य होता है कि पुराने जमाने मे सभ्य कहे जानेवाले देशों मे भी समाज मे इस तरह का अलगाव और दुराव था—दमन और शोषण था। यह दमन और शोषण बना रहे और समाज की व्यवस्था चलती रहे, इसके लिए धर्म, शिक्षण, कानून, राज-दण्ड आदि सबका इस्तेमाल किया जाता था। इस व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाना समाज के विरुद्ध विद्रोह तो था ही, ईश्वर-द्रोह भी था, और उसी के अनुरूप विद्रोही को दंड भी मिलता था।

प्रश्न उठता है कि क्या उस जमाने के विद्वानों विचारकों, और सन्तो-महात्माओं को यह अनीति खलती नहीं थी ? क्या वे इतने स्वार्थी और बदनीयत थे ? वे कुछ भी रहे हों, इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उनके जमाने की समाज-व्यवस्था मे दासों के साथ, या शूद्रों-चाण्डालों के साथ अन्याय बहुत पैठा था। अन्याय उस व्यवस्था के अंदर था, उसका एक अंग था। सदियों तक एक व्यवस्था मे रहने के कारण लोगों के संस्कार ऐसे हो गये थे कि आज जो बातें असह्य मानी जायेंगी वे उस समय आसानी के साथ मान ली जाती थीं। इसका एक बहुत बड़ा कारण यह था कि उस जमाने मे साधन बहुत कम थे, और लोगों की सहानुभूति भी सीमित थी। सीमित साधनों और सीमित सहानुभूति के कारण ऊपर के लोगों ने नीचेवालों को अलग रखा। न उन्हें सम्पत्ति लेने दिया, न शिक्षा। बस उन्हें उतना ही दिया जितना पाकर वे जिन्दा रहें और उनके लिए सेवा और श्रम करते रहें।

अलगाव, बहिष्कार, संहार (एलिमिनेशन) प्राचीन समाज-रचना का आधार था। समय पाकर अलगाव की नीति एक सिद्धान्त बन गयी, तथा क्या समाज और क्या धर्म और शिक्षण, हर जगह समान रूप से लागू हुई। लेकिन धीरे-धीरे जमाना बदला। पिछले चार-सौ वर्षों में जैसे-जैसे शिक्षण का विस्तार हुआ, तथा विज्ञान के कारण बड़े पैमाने पर उत्पादन हुआ और तरह-तरह की चीजें बड़ी मात्रा में बनने लगीं, लोगों के सोचने-समझने मे बुनियादी परिवर्तन हुआ। ऊपर के कुछ समझदार लोगों ने दमन और शोषण के विरुद्ध आवाज उठायी। कई जगह विप्लव हुए। क्रान्तियाँ हुईं। कुछ देशों में लोकतन्त्र के कारण नागरिकों को वोट का अधिकार मिला। कारखानों के विकास के साथ-साथ मजदूरों का संगठन हुआ। सुधारकों और क्रान्तिकारियों ने अन्याय के विरुद्ध आवाज उठायी। छिपे छिपे विद्रोह संगठित हुए। जिनका दमन और शोषण होता था उनमे गुस्सा तो था ही, क्रान्तिकारियों की अगुआई मिल गयी, तो उन्होंने भरपूर गुस्सा उतारा। ऊपरवालों के हाथ मे शासन था, सेना थी, कारखाने थे। नीचेवालों ने छिपकर सशस्त्र शक्ति के लिए षड्यन्त्र किये, लेकिन उनकी सबसे बड़ी शक्ति थी मुक्ति का उनका संकल्प। सन् १७८९ मे फ्रांस की राज्यक्रान्ति, सन् १९१७ मे रूस की बालशेविक क्रान्ति, और सन् १९४९ मे चीन की साम्यवादी क्रान्ति मे संघर्ष का यही आधार था। इन संघर्षों के कारण पुरानी व्यवस्था तो बदली ही, साथ ही मनुष्य की चेतना मे बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। दमन और शोषण मिटना चाहिए, और मनुष्य के साथ समानता का बर्ताव होना चाहिए, यह बात कम-से-कम सिद्धान्त मे मान्य हो गयी।

इन संघर्षों मे भयंकर रक्तपात हुआ। जो दबे हुए थे उन्होंने दबानेवालों पर भरपूर गुस्सा उतारा, और दिल खोलकर बदला लिया। उन्हें यह भी डर था कि अगर पुरानी व्यवस्था के लोग रह जायेंगे तो वे संगठित होकर विद्रोह को विफल कर देंगे। एक ओर विद्रोह करने मे, और दूसरी ओर विरोधियों को समाप्त करने मे हिंसा ही हिंसा हुई। बल्कि पुरानी व्यवस्था को तोड़ने मे जितना खून बहा उससे ज्यादा खून बहा नयी व्यवस्था को कायम करने और चलाने में, क्योंकि कोशिश करनी थी लाखों-करोड़ों लोगों को पुराने रास्ते से हटाकर जल्दी और जबरदस्ती नये रास्ते पर चलाने की। यह काम हिंसा की ही शक्ति से हो सकता था। हिंसा एक संगठित दल के हाथ मे थी, और उसी दल के हाथ मे थी सरकार, कल कारखाने, पुलिस, सेना और शिक्षा, यानी सारी शक्ति।

जिस तरह पुराने वर्णवादियों ने 'अवर्ण' का नाम देकर एक बहुत बड़े समुदाय को सभ्यता से अलग कर दिया उसी तरह साम्यवाद के नाम से आधुनिक वर्गवादियों ने 'शोषक' नाम देकर एक समुदाय को समाप्त

कर दिया। वर्णवादी और वर्गवादी, दोनों ने रास्ता एक ही अपनाया—अलग करने (एलिमिनेशन) का। अन्तर इतना माना जा सकता है कि वर्णवादियों ने नीचेवालों को अलग किया, और वर्गवादियों ने ऊपर-वालों को। लेकिन वर्णवादियों ने केवल अलग किया था जब कि वर्ग-वादियों ने खून बहाकर पूरा सफाया कर दिया! मनुष्य को उसकी जाति, धर्म, रंग, लिंग, आर्थिक स्थिति आदि से अलग कर मनुष्य के नाते सबको मिला लेने (ऐसीमिलेशन) की कोशिश नहीं हुई। मिला लेने, पचा लेने की बात आज भी न वर्णवादियों के गले उतरती है, और न वर्ग-वादियों के। विज्ञान इतना बढ़ा कि मनुष्य चन्द्रलोक तक पहुँच गया, लोकतंत्र इतना फैला कि एक-एक आदमी को वोट का अधिकार मिल गया, फिर भी इतना न हुआ कि मनुष्य की मनुष्य के नाते प्रतिष्ठा मान्य हो। कभी वर्णवादियों ने एक समुदाय का दमन किया तो कभी वर्गवादियों ने दूसरे समुदाय का दमन किया। दमन करनेवाले बदले, लेकिन सामान्य मनुष्य को दमन से मुक्ति नहीं मिली। आज दुनिया में वर्णवादी और वर्गवादी दोनों का दमन चल रहा है। एक समुदाय दूसरे समुदाय को सताकर या खत्म कर ही जीना चाहता है।

क्या विज्ञान और लोकतंत्र के इस जमाने में भी यही होना रहेगा? गांधी ने कहा कि विज्ञान का आधार है सत्य, ग्रन्थ, गुरु या परम्परा नहीं, तथा लोकतंत्र का आधार है स्वायत्त व्यक्ति, इसलिए इस युग में ऐसी सामाजिक व्यवस्था सम्भव होनी चाहिए जिसमें दमन और शोषण के अन्त के लिए किसी समुदाय का संहार करने की नौबत न आये। नये समाज को सब स्वीकार करें, तथा सबको विज्ञान के साथ और लोकतंत्र के अवसर मिलें। गांधी ने 'सर्व' के उदय की बात कही। सर्व का उदय ही विज्ञान और लोकतंत्र की मुख्य प्रेरणा हो। लेकिन वर्णवादी और वर्गवादी, इन दोनों में से एक भी 'सर्व' को नहीं स्वीकार करता। एक के लिए कुछ लोग पतित हैं, तो दूसरे के लिए कुछ लोग अपराधी। एक पतित को मनुष्य मानने को तैयार नहीं है, दूसरा अपराधी को।

अगर अलगाव की नीति रहेगी तो टकराव अनिवार्य है। और अगर समाज अलगाव और टकराव (एलिमिनेशन और कान्फ्लिक्ट) के ही रास्ते पर चलता रहा तो हजारों वर्षों में विराम क्या हुआ? परम्परा क्या टूटी? अगर क्रान्ति ने 'सर्व' को छोड़ दिया तो जीवन को नये मूल्य क्या मिले? फिर तो इतिहास एक हिंसा से दूसरी हिंसा तक पहुँचने की एक लम्बी निर्मम कहानी के सिवाय दूसरा कुछ नहीं रहा।

गांधी ने 'सर्व' की बात कही इसीलिए सत्य और अहिंसा की बात कही। मार्क्स में 'सर्व' की भावना तो थी लेकिन वह अलगाव से आगे की पद्धति नहीं निकाल सका। उसके नाम से वर्गवाद ही निकल सका। गांधी ने 'सर्व' की स्पष्ट योजना की। अब विनोबा उसकी साधना प्रस्तुत कर रहे हैं ऐसी साधना जिसमें एक-एक नागरिक शरीक हो सकता है। क्रान्ति स्वयं 'सर्व' की हो गयी है। —राममूर्ति

सर्व-सम्मति की महत्ता

ग्रामदान प्राप्ति के बाद पुष्टि आदि का जो कार्य है, उसका जितना महत्त्व है, सर्व-सम्मति से काम करने का जो विचार है, उसका उससे कम महत्त्व नहीं है। यह अपने में एक स्वतंत्र चीज है। अपने अपने व्यक्ति-गत विचार होते हैं, मतभेद होते हैं। लेकिन उसके बावजूद एक सर्व-सम्मत प्रस्ताव करें। अन्त में जितने मतभेद हों, उतना छोड़कर सर्व-सम्मत प्रस्ताव करके तदनुसार चलें, यह लोकतंत्र के लिए, सर्वोदय की दृष्टि से, अत्यन्त आवश्यक है।

इस सर्वोदय आन्दोलन में १०-१५ साल से, सारे भारत में कम-से-कम दो हजार कार्यकर्ता तो लगे ही हैं सतत, इससे अधिक भी हो सकते हैं। दो हजार से कम नहीं होंगे, यदि गिन जायें तो। यह सारी जमात एक ही विचार रखे, यह बनेगा नहीं। लोगों के भिन्न-भिन्न विचार होंगे, लेकिन उन सबमें से सार निकालना और सर्व-सम्मत विचार करना, विचार करके निर्णय करना सर्व-सम्मति से, यह प्रथा बहुत जरूरी है, और इसका अपना स्वतंत्र महत्त्व है सर्वोदय की दृष्टि से। यह तब तक नहीं होगा जब तक कि सज्जनता चलेगी। जिसको संत पुरुष माना, आचार्य माना, ऐसे पुरुष की भी सत्ता राजसत्ता से कम खतरनाक नहीं होती। जन-शक्ति खड़ी करने में, आम जनता की सम्मिलित शक्ति खड़ी करने में जैसे राजशक्ति बाधक होती है, वैसे ही आचार्य की शक्ति, पुरुष-विशेष की शक्ति भी बाधक होती है। इस वास्ते मैंने कई दफा कहा है कि पुरुषविशेष का जो युग था वह युग गया। और अब, जब कि सब दूर एक महान शक्ति विश्व में प्रकट हुई है, एकता की आकांक्षा समग्र विश्व में इस वक्त सही है, इसके बिना मानव संहार सामने खड़ा है, इस वास्ते जो एक भूख पैदा हो गयी है विज्ञान के कारण, वह इस जमाने की एक शक्ति है। उस शक्ति में महान पुरुष, जो आज तक पैदा हो गये उनसे भी अधिक, पैदा होंगे, उत्तरोत्तर अधिकाधिक महान पुरुष होते जायेंगे, लेकिन उनकी यह खूबी रहेगी कि वे सर्व-सम्मति की शक्ति से काम करेंगे। क्योंकि काम लोगों का है। मुझे एक वाक्य याद आ रहा है, बहुत ही सुन्दर वाक्य है उप-निषद् का जो विद्वान है, ज्ञानी है, उसकी वाणी कैसी हो उस विषय में—"अहो देव उपरि मर्त्यम्" मर्त्यों से कुछ ऊपर और देवों से कुछ नीचे ऐसी उसकी वाणी होनी चाहिए, तब वह जनता के काम आयेगा। एक बिलकुल ऊँचा व्यक्तित्व हो, और उसकी वाणी ऐसी हो जो सबकी वाणी को दबाये या वश में करे, वशीकरण मंत्र चलाये, तो काम नहीं बनेगा, उससे फायदा नहीं।

मेरा नम्र विचार है कि अगर गांधीजी ऐसा कर पाते आखिर के ५-६ सालों में कि भाई आप सब मिलकर हर बात को तय करें सर्व-सम्मति से, तो मुमकिन है कि उनके नजदीक से-नजदीक के मित्रों में भी जो तीव्र मतभेद भारत में प्रकट हुआ—वे मामूली मतभेद होते तो दूसरी बात थी—उनमें इतना मतभेद है कि एक कहता है कि दूसरे के कहे अनुसार चलेंगे तो लोगों का सत्यानाश होगा, ऐसा मानने की नौबत जो आयी है, वह नहीं होती, अगर गांधीजी यह बात चलाते। गौतम बुद्ध के अनुयायियों का भी यही हुआ। यह नहीं होता अगर वे सर्व-सम्मति की बात पर विश्वास रखते।

राँची, ११ सितम्बर '६९ —विनोबा

सर्वोदय की क्रान्तिकारी अवधारणा : कुछ बुनियादी तत्त्व

हर क्रान्ति समाज के सामने भावी समाज रचना का एक चित्र रखती है। उस चित्र में मनुष्य अपनी समस्याओं और कठिनाइयों से मुक्ति देखता है, अपनी आशाओं की पूर्ति का आश्वासन पाता है। मुक्ति की यह आशा ही उसके पुरुषार्थ का आधार होती है। इसलिए क्रान्तिकारी और जनता, दोनों के सामने क्रान्ति का चित्र बहुत स्पष्ट होना चाहिए। क्रान्ति के कुछ लक्ष्य दूर के होते हैं, कुछ नजदीक के। दोनों ही स्पष्ट होने चाहिए।

विशिष्ट, बहु, सर्व

ग्रामदान ग्रामस्वराज्य की क्रान्ति 'सर्व' की क्रान्ति है—न किसी 'वर्ण' की है, न 'वर्ग' की। हम ऐसी समाज-रचना चाहते हैं जिसमें किसी समुदाय का वर्ण, वर्ग, धर्म, धन, लिंग, जाति, भाषा आदि किसी भी आधार पर न महत्व हो और न उसे सभ्यता के दायरे से बाहर ही रहना पड़े। समाज-रचना ऐसी होनी चाहिए जो सर्व के निर्णय और सर्व की शक्ति से सर्व के हित में चले, जिसमें कम या अधिक बौद्धिक या शारीरिक सामर्थ्य के सभी लोगों को समाज का 'संरक्षण' समान रूप से प्राप्त हो और सभी तुल्य पारिश्रमिक (इक्वीटेबुल वेजेज) के हकदार माने जायें। विज्ञान और लोकतन्त्र के इस युग में 'सर्व' ही क्रान्ति का सूत्र है, और सारे विकास का मापदंड है। सर्व की क्रान्ति में श्रम, पूँजी और बुद्धि के परस्पर संघर्ष की गुंजाइश नहीं है। वे समान स्तर पर परस्पर पूरक शक्तियाँ हैं। इसीलिए ग्रामदान की क्रान्ति में मालिक, मजदूर, महाजन, सबके लिए समान स्थान है। किसी के द्वारा किसी के दमन या शोषण की गुंजाइश नहीं है।

अन्तिम व्यक्ति

स्वभावतः सर्व की समाज-रचना में अन्तिम व्यक्ति समाज की चिन्ता का सबसे पहले अधिकारी है। आज के गाँव (या नगर) गाँव नहीं, केवल घरों के समूह हैं। उनमें न ग्रामभावना है, न एकता, और न कोई आपसी भाईचारा। ग्रामदान से नये गाँव का जन्म होता है। जब गाँव के लोग अपने स्वतन्त्र निर्णय से ग्रामदान में शरीक होते हैं, भूमिहीनों को बीघे में कट्ठा देते हैं, सब बालिगों को मिलाकर ग्रामसभा कायम करते हैं, और सबकी कमाई में ग्रामकोष इकट्ठा कर गाँव के विकास की योजना बनाते हैं तो मालिक, मजदूर, महाजन सभी एक दायरे के अन्दर आ जाते हैं, सहकार और अनुशासन के एक सूत्र में बँध जाते हैं। ग्रामसभा में बैठकर सबको सबकी बात सुननी पड़ती है। एक को दूसरे से अलग करनेवाली अविश्वास की दीवारें ढहती हैं, और दिन धीरे धीरे नजदीक आते हैं। नये साधनों और अवसरों का लाभ, सबसे पहले उनको पहुँचाने की चिन्ता होती है जो सबसे अधिक दुःखी और असहाय होते हैं। दुःखियों की सेवा, समस्याओं की गम्भीरता, और युग के विचारों का प्रभाव और दबाव ऐसा है कि सामने बैठे हुए भूमिहीन मजदूर या दस्तकार को, जो ग्रामसभा का बराबर दर्जे का सदस्य है, छोड़कर अपनी जेब भरने की योजना मालिक या महाजन बना नहीं सकते। सब अनुभव करते हैं कि सबके सबका भला है, अलग रहने में सब बारी-बारी दुःख के शिकार होंगे। सबकी चिन्ता है तो सबको चिन्तन करना चाहिए, और सबको मिलकर चिन्ता से मुक्त होने की चेष्टा करनी चाहिए।

त्रिविध मुक्ति

ग्रामदान खादी-शान्तिसेना के 'त्रिविध कार्यक्रम' में त्रिविध मुक्ति की सम्भावना छिपी पड़ी है। ग्रामदान जिस तरह सब 'वादों' से अलग हटकर समाज के जीवन में नये मूल्यों का प्रवेश करा रहा है यह अब प्रकट हो रहा है। लोग कानून की राह देखे बिना अपने निर्णय से भूमि की मालकियत का अन्त करें, तथा गाँव के विकास और व्यवस्था के लिए बालिगों की ग्रामसभा बनायें तो जन-जीवन से राज्य की दंड शक्ति की जड़ें उखड़ जायेंगी। और जब लोकनीति की योजना के अन्तर्गत विधान-सभाओं और संसद में संगठित स्वायत्त ग्रामसभाओं (ग्राम-स्वराज्य-सभाओं) के प्रतिनिधि जायेंगे, न कि राजनैतिक दलों के, तो राज्य का दमनकारी रूप बहुत कुछ समाप्त हो जायगा। तब ग्रामदानी गाँव और ग्रामदानी सरकार ग्राम-स्वराज्य (जिसमें नगर-स्वराज्य शामिल है) के सूत्र में बँध जायेंगे। ग्राम-स्वराज्य की तराजू के दो पलड़े हैं—एक, सरकार-निरपेक्ष ग्राम-व्यवस्था, और दो, दंडमुक्त राज्य-व्यवस्था। ग्राम-स्वराज्य से ये दोनों लक्ष्य साथ सधते हैं।

गाँव के कोष और गाँव की खादी से गाँव की विकास-योजना में धंधों और पूँजी की गुलामी समाप्त होने का रास्ता खुल जायगा। और ग्राम-शान्तिसेना तो निश्चित रूप से गाँव के भीतरी जीवन से लाठी और बन्दूक की शक्ति को तोड़ देगी। ग्रामदान से आज की जाति-निष्ठा, सम्प्रदाय-निष्ठा और क्षेत्र-निष्ठा के स्थान पर गाँववालों के मन में ग्रामनिष्ठा जगेगी, और उनके जीवन में समन्वय के ऊँचे मूल्य आयेंगे। ग्रामस्वराज्य की स्वायत्त ग्रामव्यवस्था में हर व्यक्ति का सीधा सम्बन्ध सरकार से नहीं होगा, जैसा आज है, बल्कि ग्रामसभा के द्वारा होगा। गाँव के भीतर सहकार होगा, गाँव के बाहर सरकार होगी। इसी तरह ग्रामसभाओं के आधार पर बनी हुई प्रखंडसभा, जिलासभा, राज्यसभा, राष्ट्रसभा (कभी विश्व-सभा भी) के रूप में लोक-शक्ति संगठित होती जायगी और सरकारी व्यवस्था का स्थान सहकारी व्यवस्था लेती जायगी। तब जनता के रोज के जीवन में सरकार के दमन-तन्त्र का स्थान नहीं रहेगा। पूँजी के शोषण और बन्दूक के दमन, दोनों से मुक्ति की राह खुल जायगी।

सत्य की सत्ता, अहिंसा की पद्धति

विज्ञान यानी सत्य की सत्ता। सत्य पक्षरहित, वस्तु-निष्ठ आग्रह-मुक्त होता है। अगर विज्ञान किसी पक्ष या विचार के आग्रह से जुड़ जाय तो वह विज्ञान नहीं रह जायगा। उसी तरह अगर लोकतन्त्र अहिंसा का आधार छोड़ दे तो वह संख्या-तन्त्र या भीड़-तन्त्र बन जायगा, जिसमें अधिक संख्यावाले कम संख्यावालों का दमन करेंगे और कम संख्यावाले विवश होकर 'विरोधवाद' को अपना धर्म बना लेंगे। परिणाम यह होगा कि गृहयुद्ध और अराजकता के कारण फौजी तानाशाही का जन्म होगा।

नेताओं से निराश और अव्यवस्था से ऊबी हुई जनता अपने को सेना के हाथों में सौंप देगी। विनोबाजी ने बार-बार कहा है कि विज्ञान और आत्मज्ञान का मेल होना चाहिए। अगर ऐसा नहीं होगा तो विज्ञान ने जो शक्तियाँ पैदा की है, जो साधन बनाये हैं, उनसे मनुष्य-जाति अपना सर्वनाश कर डालेगी। इसलिए अगर विज्ञान को मनुष्य के अभाव, अज्ञान और अन्याय से मुक्ति का साधन बनाना हो तो समाज में अनुकूल मानवीय सम्बन्ध स्थापित होने चाहिए। यदि मनुष्य की बुद्धि किसी दल, सम्प्रदाय, वर्ण, वर्ग या सिद्धान्त के नाम में उत्तेजना, आग्रह और उन्माद की गुलाम बनी रहे, तथा एक मनुष्य या समुदाय और दूसरे मनुष्य या समुदाय के बीच सहकार नहीं शत्रुता का सम्बन्ध हो तो निश्चित रूप से मनुष्य विज्ञान का प्रयोग विनाश के लिए ही करेगा। ग्रामदान पड़ोसी को पड़ोसी के साथ जोड़कर, तथा जीविका और जीवन दोनों को सहकारी बनाकर सत्य और अहिंसा, विज्ञान और लोकतन्त्र के लिए मानवीय सम्बन्धों का अनुकूल सन्दर्भ तैयार कर देता है। ग्रामदान नहीं मानता कि मनुष्य-मनुष्य के वास्तविक हितों में विरोध है; विरोध समाज की रचना में है। मनुष्य-मनुष्य के बीच मनुष्य होने के नाते मूलभूत एकता है। मनुष्य 'एक' होकर ही रह सकता है। आज यह एकता मनुष्य के अस्तित्व का प्रश्न बन गयी है। ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य की क्रान्ति मनुष्यों को हितविरोध अथवा अन्य किसी स्थायी विरोध के मतवाद (आइडियालोजी) के आधार पर अलग नहीं करती; वह उनकी मूलभूत एकता को समाज-परिवर्तन की गतिशक्ति बनाती है।

संघर्षमुक्त क्रान्ति

विज्ञान और लोकतन्त्र की भूमिका में वास्तविक क्रान्ति—स्थायी क्रान्ति, व्यवस्था के साथ-साथ मूल्यों की भी क्रान्ति—संघर्षमुक्त ही होगी। संघर्ष और हिंसा की क्रान्ति हिंसा से होती है, और उससे बड़ी हिंसा से टिकती है। हिंसा का कभी अन्त नहीं होता। वह व्यवस्था का स्थायी अंग बन जाती है। दमन की व्यवस्था में जनता का कल्याण तो होगा, उसे तरह-तरह के सुख भी मिलेंगे, किन्तु विचार की स्वतन्त्रता नहीं रह जायगी; वह चेतनाशून्य बना दी जायगी; वह अपना व्यक्तित्व खो देगी। पूंजीवाद का शोषण मनुष्य का अमानवीयकरण (डीह्यूमनाइजेशन) करता है, और साम्यवाद उसका अराजनीतिकीकरण (डीपोलिटिकलाइजेशन)। दोनों हिंसा की पद्धतियाँ है। इनके विपरीत संघर्षमुक्त क्रान्ति की प्रक्रिया षड्यन्त्र या विरोधवाद की न होकर विचार-परिवर्तन की होगी, शिक्षण की होगी। विज्ञान और लोकतन्त्र दोनों विचार की शक्ति पर खड़े हैं, बाजार (पूंजीवाद) या बन्दूक (साम्यवाद) की शक्ति पर नहीं। अगर विज्ञान और लोकतन्त्र भी विचार-परिवर्तन पर विश्वास छोड़ दें तो वे टिकेंगे किस शक्ति पर?

संघर्ष से मेल न विज्ञान का है, न लोकमत पर चलनेवाले लोकतन्त्र का। इसलिए अगर विज्ञान और लोकतन्त्र की रक्षा करते हुए सामाजिक क्रान्ति करनी हो, तो संघर्षमुक्त क्रान्ति की ही पद्धति विकसित करनी पड़ेगी। और, जो क्रान्ति संघर्ष-मुक्त होगी उसमें षड्यन्त्र आदि के लिए स्थान कहाँ होगा? वह खुली होगी, सबकी होगी; उसके पीछे लोक-सम्मति की शक्ति होगी। वह विश्वास रखेगी कि सामान्य मनुष्य का विचार-परिवर्तन हो सकता है। उसका आधार गुट या दल का समर्थन नहीं होगा, बल्कि होगी लोक की प्रेरणा, और लोक का निर्णय। ग्रामदान की क्रान्ति में नागरिक को परिस्थिति की प्रतीति होती है, वह अपना विचार बदलता है, सहानुभूति को व्यापक बनाता है। इस तरह उसका हृदय-परिवर्तन होता है। ग्रामदान लोकतन्त्र के 'तन्त्र' को गौण मानकर लोक को जगाता है, उसे शक्तिशाली बनाता है। ग्रामदान के आधार पर संगठित ग्रामस्वराज्य आज की तरह प्रतिनिधि-तन्त्र पर नहीं, स्वयं 'लोक' की सहकार-शक्ति पर भरोसा करता है। उसमें नागरिक मात्र वोट देकर प्रतिनिधि चुनने का ही अधिकारी नहीं होता, बल्कि अपने दायरे में प्रत्यक्ष निर्णय करने का अधिकारी होता है।

युग के साथ-साथ क्रान्ति की पद्धति भी बदलती है। एक जमाना था जब मुक्ति के लिए राजा की जालिम सत्ता के विरुद्ध खुला युद्ध (वार) छेड़ना पड़ता था। फिर षड्यन्त्र और छिपे विप्लव का सहारा लेना पड़ा। रूस का क्रान्तिकारी नेता लेनिन कितना भी चाहता जारशाही अन्त के लिए षड्यन्त्र और संघर्ष (कान्सपिरेसी एण्ड कान्फ्लिक्ट) सिवाय दूसरा करता क्या? लेकिन जमाना उससे भी आगे बढ़ा। अंग्रेजी राज के मुकाबिले गांधीजी का काम दबाव (प्रेशर) से च[illegible] गया। आज का जमाना एक ओर विज्ञान और लोकतन्त्र का है, दूसरी ओर नीचे गाँव और ऊपर विश्व-संघ का है। ऐसे जमाने में क्रान्ति की वही पद्धति सही होगी जो मानव-कल्याण और विकास के लिए लोकतन्त्र और विज्ञान को बचाती हुई समाज-परिवर्तन का स्पष्ट मार्ग दिखाये। वह पद्धति मनाव और शिक्षण (परसुएशन और एजूकेशन) की ही हो सकती है। हिंसा और संहार की पद्धति आज के जमाने में अनुचित तो है ही, अनावश्यक भी है। हिंसा की क्रान्ति पुराने ढाँचे को तोड़ सकती है, लेकिन जनता को दमन से मुक्त नहीं कर सकती, व्यक्ति को 'स्वतन्त्र' नहीं कर सकती, जीवन में नये मूल्य नहीं भर सकती। राज्यदान तक पहुँचा हुआ हमारा यह आन्दोलन इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य की चेतना क्रान्ति की ओर—संघर्षमुक्त क्रान्ति की ओर बढ़ने के लिए तैयार है।

भय से मुक्ति : क्रान्ति की बुनियाद

ग्रामदान में सार्वत्रिक अभय-भावना है। इसकी क्रान्ति-योजना में व्यक्ति द्वारा व्यक्ति का, वर्ग द्वारा वर्ग का, या किसी एक समुदाय द्वारा दूसरे समुदाय का संहार (एलीमिनेशन) आवश्यक नहीं है। मालिक-मजदूर की शत्रुता का विचार पुराना पड़ गया। दोष मुख्य रूप में व्यवस्था का है, जिसके कारण अधिक सामर्थ्यवालों के द्वारा कम सामर्थ्य-वालों का दमन और शोषण इस तरह संगठित हो गया है। हम सभी इस दूषित व्यवस्था के शिकार हैं। व्यवस्था के दोष इतने अधिक बढ़ गये हैं कि व्यक्ति असहाय हो गया है, और वह यह भी देख रहा है कि अकेले-अकेले वह जीवन की समस्याओं का मुकाबिला नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में व्यवस्था के परिवर्तन की माँग सभी वर्गों में व्यापक होती जा रही है। अगर व्यवस्था सुधर जाय और साथ ही शिक्षण द्वारा संस्कारों का परिष्कार होता जाय तो विकास के लिए उत्सुक मानव तेजी के साथ ऊपर उठेगा। विज्ञान के इस युग में मनुष्य ऊपर उठना

तो चाहता है, लेकिन सरकार और समाज की रचना उसे उठने नहीं देती। वह बार-बार उठने की कोशिश करता है, लेकिन बार-बार गिरा दिया जाता है, और जब वह गिर जाता है तो उसका गिरना उसकी नालायकी का प्रमाण बन जाता है, और डंडे की शक्ति से उसे सुधारने का स्वांग रचा जाता है। लेकिन यह मानना कितना गलत है कि भय से भी गुण-विकास हो सकता है? गुण-विकास के लिए मनुष्य को मनुष्य का प्रेम, विश्वास और सहकार चाहिए, न कि डंडे की मार। पड़ोसी को पड़ोसी की शक्ति मिले, और दोनों हाथ से हाथ मिलाकर आगे बढ़ें, इसकी बुनियादी योजना ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य में है। ग्रामदान केवल ...-परिवर्तन नहीं है, उसमें समाज-परिवर्तन है, चित्त-परिवर्तन है। ...न परिवर्तन के लिए किसी सम्प्रदाय का सहारा नहीं है।

जीवन के वर्तुल

मनुष्य और मनुष्य के बीच अनेक दीवालें खड़ी हो गयी हैं—धन ..., धर्म की, जाति की, वर्ग की, सम्प्रदाय की, भाषा, क्षेत्र, जन्म और ...ति की, यहाँ तक कि राष्ट्र भी एक जबरदस्त दीवाल ही है जो ...व मानव के विश्व-हृदय को प्रकट नहीं होने दे रही है। एक ही राष्ट्र ...अन्दर स्वयं सरकार ने तरह-तरह की दीवारें बना दी हैं। जिला, ...न्य, शासक-शासित, शिक्षित-अशिक्षित, दल और दल, आदि दीवालें ... हैं जिनसे आपसी टकराव में पड़ा हुआ आदमी मोहक किन्तु ...चित नारों के उन्माद में अपनी पाशविकता का प्रदर्शन करने में ही ...ने जीवन की सार्थकता मानता रहता है।

गाँव जीविका और जीवन दोनों की बुनियादी इकाई है, पहला ...ल है। इस वर्तुल के भीतर परिवार है, उसके भी भीतर व्यक्ति है जो ...के केन्द्र में है। एक सहकारी समाज में व्यक्ति, परिवार और गाँव के ...र सहकार के दूसरे वर्तुल बढ़ते जाते हैं। केन्द्र एक ही रहता है—...क्ति, किन्तु वर्तुल बनते जाते हैं, बढ़ते जाते हैं। आज की स्थिति ...ते बिल्कुल विपरीत है। वर्तुलों की जगह ऊपर-से-नीचे तक परतें ... गयी हैं जो एक-दूसरे के नीचे दबी हुई हैं। केन्द्र का व्यक्ति ...व है।

स्वस्थ, सहकारी, संतुलित जीवन नये सिरे से व्यक्ति को केन्द्र ...नकर वर्तुलों में संगठित होना चाहिए। वर्तुलों की रचना में छोटा ...ल विकसित होकर बड़ा वर्तुल बनता है, और इसी तरह बनता ही ...ता है। छोटा बड़े में विलीन होता है, लेकिन छोटे का विनाश नहीं ...ता। जब समाज की नयी रचना शुरू होगी तो एक दिन आयेगा जब ...ज की दमन की दीवारें ढह जायेंगी, और व्यक्ति से विश्व तक प्रेम ...वर्तुलों में समाज संगठित हो जायेगा। ग्रामदान जीवन का जो चित्र ...तुत कर रहा है उसमें व्यक्ति की सत्ता और स्वायत्तता अपनी जगह ...यम रहेगी किन्तु उसकी बुद्धि, उसकी पूँजी, और उसकी शक्ति बड़े ...र्तुल के साथ जुड़ जायेगी, तथा ग्रामसभा के रूप में गाँव एक प्रेम-...र्तुल बन जायेगा। एक बार गाँव का प्रेम-वर्तुल बन गया तो उसके ...द के वर्तुलों का बनना कठिन नहीं होगा।

विनोबा के शब्दों में "संसार की भावी व्यवस्था में दो ही चीजें रहेंगी—ग्राम और विश्व। सुविधा के लिए दुनिया के नक्शे पर विभिन्न देशों के नाम भले ही बने रहें, परन्तु विश्व और ग्राम के बीच अन्य किसी तंत्र का अस्तित्व नहीं रहेगा। जीवन के भौतिक पहलू से सम्बन्ध रखनेवाली सम्पूर्ण सत्ता गाँव में रहेगी। गाँव में, अपने जीवन की व्यवस्था स्वयं करने की शक्ति होगी। सम्पूर्ण जगत के नैतिक विकास और प्रगति की सत्ता विश्व-केन्द्र के हाथों में होगी। राज्य अथवा जिले केवल ग्राम-समाज के प्रतिनिधि रहेंगे। इस प्रकार सम्पूर्ण व्यवस्था का आधार ग्राम होगा और उसके केन्द्र में विश्व-सत्ता होगी। मानव-समाज का संगठन छोटी-छोटी ग्राम-सभाओं के आधार पर होगा। इस ग्राम-समाज में हमें सच्चे भ्रातृभाव के और सच्चे सहयोग के दर्शन होंगे। निजी स्वामित्व के लिए उसमें कोई गुंजाइश नहीं रहेगी।'

प्रेम के वर्तुल, शान्ति के वर्तुल

सहकार और प्रेम के ये वर्तुल शान्ति के वर्तुल होंगे, संघर्ष और संहार के नहीं। ये वर्तुल नित्य के जीवन में स्वावलम्बी होंगे, किन्तु परस्परावलम्बन से एक-दूसरे के पूरक रहेंगे। किसी वर्तुल का किसी दूसरे वर्तुल के द्वारा दमन या शोषण नहीं होगा। ग्रामदान में अगर गाँव शान्ति और सहकार की पहली इकाई बन जाय तो दूसरी इकाइयों का उसी आधार पर क्रमशः विकास होता जायेगा, और विश्व-शान्ति के वर्तुल तैयार होते जायेंगे।

ग्राम-स्वामित्व, ग्राम-प्रतिनिधित्व

इस वक्त दुनिया में उत्पादन के साधनों के स्वामित्व की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं—एक, निजी स्वामित्व (प्राइवेट ओनरशिप) दूसरी सरकार स्वामित्व (स्टेट ओनरशिप)। निजी स्वामित्व पूँजीवाद है, सरकार-स्वामित्व साम्यवाद। पूँजीवाद में शोषण है, साम्यवाद में दमन। क्या भारत को इन्हीं दो में से एक के रास्ते चलना है, या अपने लिए कोई तीसरी पद्धति विकसित करनी है? भारत की परम्परा, उसकी प्रतिभा, और उसकी परिस्थिति, तीनों की माँग है कि उसे राजनैतिक और आर्थिक संगठन की कोई तीसरी ही पद्धति विकसित करनी चाहिए ताकि उसे पूँजीवाद के 'निजी अभिक्रम' तथा साम्यवाद के 'सामूहिक हित' का लाभ तो मिल जाय किन्तु वह उनके दोषों से बच जाय। गांधीजी ने 'ट्रस्टीशिप' और ग्राम-स्वराज्य की कल्पना देश के सामने रखी थी। विनोबाजी ने उसकी कल्पना पर आधारित विस्तृत योजना प्रस्तुत की है। उसी योजना के व्यावहारिक स्वरूप का नाम है ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य। इसमें स्वामित्व न निजी है, न सरकार का, बल्कि गाँव का है जो स्वायत्त है। ग्रामस्वामित्व के साथ जुड़ा हुआ है सरकार में ग्राम-प्रतिनिधित्व, दल-प्रतिनिधित्व नहीं। इस तरह यह क्रान्ति इन दो नये तत्त्वों पर आधारित एक नयी व्यवस्था देश के सामने प्रस्तुत कर रही है।

परिस्थिति का सन्दर्भ और क्रान्ति की योजना

त्रिविध समस्या

हम देख रहे हैं कि एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के सदियों के शोषण से जर्जर देश अपना विकास करना चाहते हैं, और शीघ्र-से-शीघ्र विकसित पश्चिमी देशों की बराबरी में आना चाहते हैं। विकास के लिए इन तमाम देशों को पश्चिमी राष्ट्रों की ओर ताकना पड़ रहा है। उनकी दी हुई पूँजी के सहारे इनकी विकास-योजनाएँ चल रही है। प्रतिरक्षा के लिए अपनी सैनिक-शक्ति बढाने और सजाने में इन देशों को लगभग आधी कमाई लगानी पड रही है। इसका परिणाम यह है कि इनके विकास की गति इतनी धीमी है—गलत दिशा का सवाल अलग है—कि बढती हुई गरीबी और विषमता के कारण पैदा हुई आतरिक अशान्ति और राजनैतिक अस्थिरता एक अत्यन्त गम्भीर समस्या हो गयी है। सिवाय भारत के बाकी दूसरे सब देशो मे सैनिक शासन है, और कौन शासन कितने दिन रहेगा, इसका कोई ठिकाना नहीं रह गया है। विकास की कौन कहे, जब जनता की नित्य की आवश्यकताएँ भी पूरी न हो तो वह अधीर होकर, मुक्ति के लिए नेताओ को छोडकर, सेना की ओर न देखे तो किसकी ओर देखे ?

यह सिद्ध हो गया है कि पश्चिम की पद्धति से भारत या उसकी तरह के दूसरे देशों के सवाल नहीं हल होंगे—न वे अपनी प्रतिरक्षा कर सकेंगे, न विकास और न लोकतंत्र ही चला सकेंगे। कहाँ से लायेंगे विकास के लिए पूँजी और प्रतिरक्षा के लिए शस्त्र ? और लोकतन्त्र के बडे नाम मे चलनेवाली दलों की राजनीति उन्हें शक्तिशाली बनाने की जगह उनकी भीतरी एकता और शक्ति को दिनोदिन खडित करती चली जा रही है। कुल मिलाकर यह इन देशो के लिए अस्तित्व का प्रश्न बन गया है कि प्रतिरक्षा, विकास और लोकतन्त्र का अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार कोई नया स्वरूप और पद्धति विकसित करें।

ग्रामदान से ग्रामस्वराज्य उस दिशा में एक बडा कदम है। जनता की सगठित शक्ति से गाँव-गाँव की प्रतिरक्षा, उसके प्रत्यक्ष निर्णय से व्यवस्था, संगठित गाँवो के (दल के नहीं) प्रतिनिधियों की सरकार, उसकी अपनी पूँजी और योजना से विकास, यदि ऐसे तत्त्व है जो हमारे *लिए एक नया रास्ता खोलते हैं। लोकशक्ति के रास्ते पर चलने में ही* हमारा कल्याण है।

त्रिविध विफलता

स्वतंत्रता के बाईस वर्षों मे हम कहाँ पहुँचे हैं ? हमारी कल्याणकारी शासन-नीति, विरोधवादी राजनीति और थोडी-बहुत राहत देनेवाली सेवा-नीति अब तक क्या कर सकी है, और आगे क्या कर सकेगी ?

इन वर्षों मे 'लोक' की ताकत नहीं बन पायी है। 'लोक' का 'तन्त्र' पर नियन्त्रण हो, यह तो दूर का सपना-सा है। हकीकत तो यह है कि 'लोक' पगु हो गया है। जनता दिनोंदिन असहाय और सरकार की मुहताज होती चली जा रही है। विकास और लोक-कल्याण के नाम में स्थूल निर्माण के बहुत काम हुए हैं, किन्तु अब तक न जन-जीवन की प्राथमिक आवश्यकताएँ ही पूरी हुई हैं, और न विषमता ही घटी है उलटे विकास-योजनाओ से विषमता की खाई और भी चौडी हुई है, औ होती चली जा रही है। सरकार द्वारा केन्द्रित और भारी उद्योगो क ही प्रोत्साहन दिये जाने के कारण देश की अधिक सम्पत्ति थोः लोगो के हाथो मे केन्द्रित हो गयी है या राज्य के पास गयी है बावजूद समाजवाद के नारे के औसत व्यक्ति का उपभोग घ रहा है, उसकी चिन्ताएँ बढ रही हैं, और उसके टूटे हुए जीवन को जोड़ का कोई प्रयास कहीं दिखायी नहीं देता। लोक की शक्ति के बिना लोक *का कल्याण करने के मिथ्या प्रयोग का दूसरा क्या परिणाम होता ? औ* लोक की शक्ति भी तब बनती जब उसके रोज के जीवन का कोई सहकार आधार बनता, उसके सामने लक्ष्य होते, उसका पुरुषार्थ जगता। यह स *कुछ हुआ नहीं।*

स्वतंत्र भारत को जो राजनीति मिली वह निकम्मी ही नहीं विनाश कारी सिद्ध हुई। देश को नया नेतृत्व देने की बात तो अलग, सत्ता क नगा नाच नाचने के सिवाय जैसे दूसरा कोई लक्ष्य ही उसके सामने नह रह गया। अब तो उसमें यह सोचने की भी शक्ति नहीं रह गयी है कि उससे देश का कितना बडा अहित हो रहा है। जो राजनीति दल को मुख्य और देश को गौण माने, वह अपनी रचनात्मक शक्ति को कैसे कायम रख सकेगी ?

नौकरशाही और नेताशाही का जो हाल हुआ वह तो हुआ ही, जो प्रवृत्तियाँ रचनात्मक कही जाती थीं उनका भी क्या हाल हुआ ? उन्हें भी लोकशक्ति का आधार कहाँ मिला ? वे भी जन-जीवन से दूर राज्य के आश्रय मे पल रही हैं।

अब प्रश्न जनता की सेवा का नहीं है, उसकी मुक्ति का है—इस 'कल्याणकारी' नौकरशाही से, नेताशाही के लोकतन्त्र से, और शरणवादी सेवा से। ग्रामदान एक साथ इन तीनो से अलग एक नया रास्ता प्रस्तुत करता है।

एक ही उपाय

अगर अलग-अलग परिवार अलग-अलग लडते रहे तो हार निश्चित है। हार में विनाश है। एक ही रास्ता रह गया है। वह यह है कि पूँजीवाले, बुद्धिवाले, श्रमवाले, समान स्तर पर साथ हो जायँ, और अपनी सहकारी शक्ति बनायें। ग्रामदान से ग्रामभावना और ग्राम-सहकार सम्भव है।

नयी निष्ठाएँ

आज हमारा सारा जीवन निजी स्वामित्व और परस्पर प्रतिद्वन्द्विता के आधार पर सगठित है, इसीलिए सकुचित जीवन-मूल्य है, और घोर स्वार्थ की सकीर्ण मनोवृत्ति है। हमारी निष्ठाएँ दिनोंदिन सकुचित होती चली जा रही है। राष्ट्र की भावनात्मक एकता का प्रश्न अत्यन्त जटिल हो गया है। विरोधवादी राजनीति उसे और भी जटिल बनाती चली जा रही है। 'राइट' और 'लेफ्ट' के ध्रुवीकरण का नारा देश को ऊपर से नीचे तक दो टुकडो मे बाँट रहा है। निष्ठाओं का स्थान क्षोभपूर्ण नारे

सबसे पहले करेगी। हर व्यक्ति का विकास हो, और उसके जीवन के हर पहलू का विकास हो, इस दृष्टि से शान्तिपूर्ण, पर न्यायोचित, हल निकालेगी।

स्वतंत्र शिक्षण

ग्रामीण-शिक्षण गाँव के जीवन और विकास से अनुबन्धित होगा, तथा शिक्षण में शिक्षकों, अभिभावको और विद्यार्थियो की सम्मिलित चेष्टा प्रकट होगी। ग्राम-स्वराज्य की इकाइयाँ अपने क्षेत्र में शिक्षण के लिए उत्तरदायी होंगी, और उन्हें वैज्ञानिक भूमिका मे प्रयोग की पूरी छूट होगी। शिक्षण पर सरकार का एकाधिकार नही होगा, किन्तु स्थानीय अभिक्रम की पूर्ति में साधन और शोध की अपेक्षा उससे बराबर रहेगी।

सर्व-धर्म समभाव

सब धर्मों की समानता सर्वमान्य होगी। ग्रामसभा के द्वारा धर्म के आधार पर किसी प्रकार का पक्षपात नहीं होगा। हर नागरिक को अपने विश्वास और उपासना-विधि के अनुसार आचरण की छूट रहेगी, बशर्ते उससे सार्वजनिक नैतिकता खण्डित न होती हो। स्वभावतः ऐसे वातावरण में अस्पृश्यता के लिए कोई स्थान नहीं होगा, और न ही दूसरो को अपने धर्म में मिलाने की कोशिश होगी। एक-दूसरे के धर्म के प्रति आदर का भाव रखते हुए लोग पड़ोसीपन का जीवन बितायेंगे। इसी आधार पर हमारे देश की संस्कृति विकसित हुई है, और इसी दिशा मे देश का भविष्य भी है।

दो

स्वायत्त ग्रामसभा : नयी व्यवस्था की बुनियाद

ग्रामसभा का संगठन : कुछ प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

(क) ग्रामीणों मे ग्रामसभा बनाने की प्रेरणा कैसे पैदा हो? मालिक को उत्साह नही, मजदूर को भरोसा नहीं।

व्यापक प्रेरणाहीनता की इस स्थिति में ग्रामसभा बनाने का काम भी अभियान-पद्धति से ही करना चाहिए, धीरे-धीरे और छोटे क्षेत्र मे काम करने से आन्दोलन में गति और शक्ति नही आयेगी। इसलिए बिहार के १७ जिलों में से हर एक मे साथ काम शुरू किया जाय, और हर जिले के अन्दर अधिक-से-अधिक ब्लाक साथ लिये जायें। जिस तरह ग्रामदान-प्राप्ति में सरकारी, अर्द्धसरकारी, गैर-सरकारी, सभी तत्त्वों से सहयोग प्राप्त किया गया, उसी तरह इस अभियान मे भी प्राप्त किया जाय। अभी जिन कुछ जगहों मे काम शुरू किया गया है, उनमें इन सबसे सहयोग मिल भी रहा है। लोकनीति की बात लोगो को आकर्षित कर रही है, क्योंकि लोग पार्टीबन्दी की राजनीति में बेहद ऊब गये है, और कोई विकल्प चाहते है। उन्हें यह बात प्रभावित करती है कि जब कि राजनीतिक दल दूसरे दल के शासन के स्थान पर अपने दल के शासन की बात से आगे जा नहीं पाते, ग्रामस्वराज्य-आन्दोलन दल की जगह जनता की बात कहता है। बात ही नहीं कहता, बल्कि पूरी योजना प्रस्तुत करता है।

पुष्टि का अभियान गाँव-गाँव में जनता को जगाने का है; जगाकर ग्रामसभा बनाने का है; और बनाकर सक्रिय करने का है। एक बार ग्रामसभा सक्रिय हो जाय तो कागज दुरुस्त कराने और कानूनी तौर पर ग्रामदान को पक्का कराने की जिम्मेदारी ग्रामसभा पर छोड़नी चाहिए। अगर ग्रामीण लोगों के मुँह से यह वाक्य निकलने लग जाय कि 'ग्रामस्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'; तो मानना चाहिए कि आधा काम बन गया। गाँव-गाँव मे इस मंत्र को दोहरानेवाले दो-चार आदमी भी निकल आयें तो देखते-देखते सारे देहाती क्षेत्र में उत्साह की एक नयी लहर दौड़ जायगी।

समाज की परिस्थिति ऐसी बनती जा रही है कि कोई कारण नहीं कि लोग ग्रामस्वराज्य की बात न सुनें। समाज की पीड़ित, प्रताड़ित, विकल चेतना मुक्ति के इस मार्ग को अपनायेगी, इसमे कोई सन्देह नहीं है। गाँव विकास का भूखा है, और राजनीति के नारों से उसका पेट भर चुका है। ग्रामस्वराज्य मे विकास का भरपूर अवसर है, और दलबन्दी की समाप्ति का रास्ता है। हमारा काम है कि शिविरों, सभाओं, गोष्ठियों आदि के द्वारा ग्रामस्वराज्य का वैचारिक वातावरण तैयार करें ताकि नयी चेतना के प्रकाश में गाँव अपने हित को देख सके, तथा व्यक्ति अपने और सामूहिक 'स्वार्थ' के सही मेल को पहचान सके। इसमे सन्देह नही कि वह पहचानेगा, क्योंकि पहचाने बिना अब गुजर नहीं है। जिन्हे हम निहित स्वार्थ के तत्त्व (वेस्टेड इन्टरेस्ट) मानते हैं, वे जमाने को देख रहे है, अपने सही 'स्वार्थ' को पहचानने भी लगे हैं। समस्या दिनोंदिन गम्भीर होती जा रही हैं। समाज में बहुसंख्य गरीबो की माँगें जोरदार होती जा रही हैं। समाज-परिवर्तन के एक-से-एक उग्र विचार फैलते जा रहे है। समस्या, संख्या और नये विचारों के सम्मिलित दबाव से ऐसी परिस्थिति बनती जा रही है कि आज जहाँ हम हैं वहाँ ज्यादा दिनों तक नहीं रह सकेंगे। आम तौर पर लोगों की आँखें खुलने लगी है और उनका मानस परिवर्तन के अनुकूल होता जा रहा है। हमें विचार की मशाल लेकर सिर्फ रास्ता दिखाते जाना है। आज की नकली चेतना की जगह असली चेतना, तथा तात्कालिक अधूरे स्वार्थ की जगह स्थायी हित की प्रतीति जगाते चलना है। हमें गाँववालों से कहना है कि बहुत हो चुका, अब मार्गदर्शन के लिए विशेषज्ञों, आशाओं की पूर्ति के लिए शासकों और भय से मुक्ति के लिए सैनिकों के गुलाम मत बनो। अपनी शक्ति को पहचानो। अपनी शक्ति पहचान लोगे तो ऐसा कोई सवाल नहीं है जिसे हल न कर सको। नागरिकों की सहकार-शक्ति ही उनकी समस्याओं का स्थायी हल है।

(ख) देखा जाता है कि ग्रामसभा बन भी जाती है तो नियमित तौर पर

सोमवार, २९ सितम्बर, '६९

ठ नहीं पाती। लोगों में इतनी अरुचि है, इतना आलस्य और अविश्वास, कि कोई काम नहीं हो पाता। क्या किया जाय?

ग्रामसभा बनानी ही है अरुचि, आलस्य और अविश्वास तोड़ने के लिए। इस काम में कुछ समय लगेगा। लेकिन एक बार ग्रामसभा उठने लग जायगी तो लोगों के मन में जो सवाल छिपे, दबे, पड़े हैं वे सामने आयेंगे और लोग अपनी गृहस्थ-बुद्धि से उनके व्यावहारिक और सबको समाधान देनेवाले हल निकालेंगे। यह बहुत बड़ी बात है। अरुचि, आलस्य और अविश्वास पैदा होने का एक बहुत बड़ा कारण यह है कि गाँव का सामान्य आदमी मान बैठा है—अनुभव से मानने को विवश हुआ है—कि उसकी बात कौन सुनेगा, कौन उसके जीवन के सवाल हल करेगा? लेकिन जब वह जान जायगा कि ग्रामसभा एक ऐसी जगह है जहाँ सबकी बात सुनी जाती है, इसलिए उसकी भी सुनी जायगी, तो धीरे धीरे उसका दिमाग बदलने लगेगा। हमें विश्वास-पूर्वक अपना अभियान चलाते जाना चाहिए। अभियान में झकझोरने की शक्ति होती है। उस शक्ति का हमें पूरी तरह इस्तेमाल करना चाहिए। गाँव-पीछे दो-चार लोग तो निकलेंगे ही। वे ही क्रान्ति के प्रहरी बनेंगे और दूसरे लोगों को सोने नहीं देंगे। इसके अलावा जब ग्राम-सभा भूमि-व्यवस्था, खेती, उद्योग, कर्ज, व्यापार, शिक्षण, स्वास्थ्य, न्याय आदि के प्रश्न, जो गाँव के हर आदमी को छूनेवाले होते हैं, लेना शुरू करेगी तो अरुचि दूर होगी, और जैसे-जैसे ग्रामसभा सक्रिय और सफल होती जायगी, लोगों का विश्वास जमता जायगा। ग्रामसभा को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शुरू में ऐसे प्रश्न लिये जायँ जो अधिक-से-अधिक लोगों की रुचि के हों, और कम-से-कम विवाद के। इससे रुचि पैदा होगी, आलस्य टूटेगा, और विश्वास बढ़ेगा। ग्रामसभा सबकी भलाई की बात सोचेगी, किसी के साथ दुराव नहीं बरतेगी, तो गाँव का कोई भी निवासी ग्रामसभा से कबतक अलग रहेगा?

यह सही है कि कई कारणों से गाँव की सारी रचना ही ऐसी हो गयी है कि मालिक-मजदूर महाजन एक-दूसरे के दुश्मन-जैसे बन गये हैं। छोटी जाति का बड़ी जाति द्वारा दमन, और गरीब का अमीर द्वारा शोषण, यही गाँव के जीवन का ताना-बाना है। लेकिन यह भी सही है कि मालिक-मजदूर महाजन के मिले बिना ग्रामसभा की प्रगति सम्भव नहीं है। प्रश्न यह है कि ये तीनों एक-दूसरे के करीब कैसे आयें।

(ग) समाज की रचना तो जैसी है वैसी है, साथ ही हमारी मान्यता दोषपूर्ण है। हम देखते हैं कि मालिक मजदूरी देकर मजदूर से मेहनत लेता है, वह खुद मेहनत से बचता है, और मजदूर की मेहनत पर जीने की कोशिश करता है। उसका मजदूर उसके लिए मेहनत करता रहे, और कम-से-कम मजदूरी ले, इसलिए वह उसे कर्ज से, डंडे से, कानून से, किसी तरह अपने वश में रखता है। वह सोचता है कि अगर वह ऐसा नहीं करेगा तो मजदूर निकल भागेगा, और उसकी खेती नहीं हो सकेगी। इसी तरह का रुख महाजन भी कर्ज लेनेवाले के प्रति रखता है। मजदूर अपनी जगह मालिक और महाजन, दोनों की चंगुल में रहने की कोशिश करता है। लेकिन जब वह रोटी का दूसरा कोई रास्ता नहीं देखता तो विवश होकर अपनी गुलामी को बर्दाश्त करता रहता है। बर्दाश्त भले ही करता है, पर बेबसी की आग तो उसके दिल में सुलगती ही रहती है, और जमाने की अनुकूल हवा पाकर कभी-कभी धधक भी उठती है। दूसरी ओर ऐसी बात नहीं है कि मजदूरों के विरुद्ध सारे मालिक एक है। मालकियत, नेतागिरी, और झूठी सामाजिक प्रतिष्ठा की आपसी होड़ मालिकों को अन्दर-अन्दर बुरी तरह खा रही है। कुल मिलाकर ग्रामीण जीवन इतना अस्थिर, अरक्षित बनता जा रहा है कि मालिक, मजदूर, महाजन, तीनों चिन्तित है, त्रस्त हैं। उन्हें कोई रास्ता नहीं सूझ रहा है। गाँवों में अधिकांश परिवार ऐसे हैं जो अपने भरोसे खड़े नहीं हो पा रहे हैं। खानेवालों की संख्या बढ़ रही है, किन्तु न पूँजी बढ़ रही है, न श्रम-शक्ति और न भूमि। इन ८०-९० फीसदी परिवारों के लिए खेती एक माया है। उससे लाभ उठाने की शक्ति उनमें नहीं है। वे अभाव, अज्ञान और अन्याय के दुश्चक्र में फँसे हुए हैं।

क्या ऊँच-नीच, और गरीब-अमीर के विरोध का अन्त संघर्ष से किया जा सकता है? क्या संघर्ष एक एक गाँव को गृहयुद्ध का अखाड़ा नहीं बना डालेगा? क्या व्यापक संघर्ष से हमारा यह देश जाति, धर्म, वर्ग, वर्ण, क्षेत्र, सम्प्रदाय, भाषा, आदि के संघर्षों की आग में जलकर खाक नहीं हो जायगा? क्या दूसरा वियतनाम बनकर भारत अपनी स्वतंत्रता और एकता कायम रख सकेगा? क्या हिंसा और उपद्रव के वातावरण में क्रांति के कोई ऊँचे मूल्य प्रकट हो सकेंगे? इस तरह कोई नया समाज बन सकेगा?

ग्रामस्वराज्य चेतना को एक नये स्तर पर ले जाकर संकट से मुक्ति का उपाय सुझा रहा है। मालिक के पास साधन है, मजदूर के पास श्रम है, और महाजन के पास पूँजी है। साधन, श्रम और पूँजी एक-दूसरे के दुश्मन कैसे हो सकते है? इनमें से एक भी न रहे तो उत्पादन नहीं होगा, जीवन नहीं चलेगा। ग्रामस्वराज्य गाँव में ऐसी व्यवस्था कायम करने और ऐसे सम्बन्ध स्थापित करने के लिए है, जिससे साधन, श्रम और पूँजी एक-दूसरे के पूरक बन जायँ, शत्रु न रहे। अब मालिक, मजदूर, महाजन, तीनों अपनी इच्छा से ग्रामदान में शरीक हुए हैं तो ग्रामसभा का, जिसके ये तीनों सदस्य है, और जिसे सबने अपना स्वामित्व सौंपा है, अनुशासन समान रूप से तीनों अपने ऊपर लागू करेंगे, और ग्रामसभा भी बिना भेदभाव के सबके उचित हितों की रक्षा करेगी, और सबको समाधान देगी। अवश्य जो सबसे गरीब और असहाय हैं, हर दृष्टि से अन्तिम व्यक्ति हैं, उनका ध्यान सबसे पहले रखना ग्रामसभा का कर्तव्य होगा। महाजन की पूँजी गाँव के विकास में लगेगी तो उसे उचित सूद मिलेगा, गाँव का उत्पादन बढ़ेगा, रोजगार बढ़ेगा, और जरूरतमन्द को सस्ता कर्ज मिलेगा। उत्पादन बढ़ेगा, तो मालिक को भी ज्यादा मिलेगा, और मजदूर भी बढ़े हुए उत्पादन में मजदूरी के अलावा एक उचित भाग का अधिकारी होगा। रोजगार बढ़ेगा और धंधे चलेंगे तो बेकारी मिटेगी। सद्भावना और सहकार की न्यायपूर्ण व्यवस्था में सबकी समृद्धि बढ़ेगी, विषमता घटेगी, सुख बढ़ेगा, शान्ति आयगी। दमन और शोषण समाप्त होगा। यह सारा काम लोकशक्ति के संगठित होने से ही होगा।

कहीं-कहीं यह भी हो सकता है कि चेतना जगने पर युगों से दबे हुए क्षोभ उभरें और कहीं कुछ तनाव पैदा हो, यहाँ तक कि टकराव की

स्थिति भी आ जा जाय, लेकिन ऐसी सारी कठिनाइयों को शान्ति के साथ, तथा पास-पड़ोस के नेक और प्रबुद्ध लोगों के सहयोग से हल करना पड़ेगा। तनाव के भय से सही काम छोड़ा जा सकता है। ग्रामस्वराज्य का आन्दोलन सबके लिए भय-मुक्ति का आन्दोलन है। न गाँव में किसीको किसीका भय हो—लेहाज दूसरी चीज है—और न गाँव को सरकार की पुलिस और सेना का भय हो। किसीके मन में किसीके लिए भी भय क्यों रहे? उलटे भय का स्थान प्रेम और विश्वास लें। इसलिए अगर किसीके द्वारा किसीके साथ अन्याय होता है, और समाज उसे अन्याय मानता है, तो अन्याय के साथ प्रतिकार उतना ही बड़ा कर्तव्य होगा जितना न्याय के साथ सहकार, किन्तु पहले हमें सद्भावना और सहकार का वातावरण बनाने का भरपूर प्रयत्न करना चाहिए। आपस में सहकार के बिना दूसरे से प्रतिकार कैसे होगा? किसी प्रत्यक्ष कार्रवाई (डाइरेक्ट ऐक्शन) के लिए जनता का सक्रिय समर्थन (मास-सैंक्शन) हर कदम पर चाहिए।

हो सकता है कि सारे उपाय करने पर भी खून में घुसे हुए रगड़े-झगड़े, अहंकार और पूर्वाग्रह कुछ ग्रामसभाओं को बनने न दें, या बनकर भी चलने न दें। ऐसी लूली-लँगड़ी ग्रामसभाओं की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। ऐसी ग्रामसभाओं को दूसरी ग्रामसभाएँ और प्रखंड के अगुआ रास्ते पर लाने का प्रयत्न करेंगे। अन्त में हारने पर ग्रामदान-कानून में 'सुपरसेशन' की गुञ्जाइश भी रखी गयी है। लेकिन इन सबसे बड़ी शक्ति स्वयं युग के प्रवाह में है। हम यह मानकर चलें कि अधिकांश ग्रामसभाएँ सही रास्ते पर चलेंगी। बहुत थोड़ी ही निकम्मी निकलेंगी।

तीन

लोकशक्ति का रहस्य : गाँव की एकता

सर्वसम्मति, सर्वानुमति

• ग्रामसभा के सम्बन्ध में दूसरी कठिनाइयों के अलावा एक बड़ी कठिनाई है पदाधिकारियों और कार्यसमिति के सदस्यों का सर्वसम्मति या सर्वानुमति से चुनाव तथा चुनाव के बाद उसी तरह सर्वसम्मति या सर्वानुमति से काम। आज आपस में इतना अविश्वास है, और राजनीति के कारण बहुमत को इतना महत्त्व मिलने लगा है कि हमें विश्वास ही नहीं होता कि सर्वसम्मति से कोई काम हो सकता है। साथ ही मन में परम्परा से चला आया यह विश्वास भी काम कर रहा है कि आदमी बिना दंड और दबाव (कोएरशन) के कोई सही काम नहीं कर सकता। विज्ञान और लोकतन्त्र के इस जमाने में हमें अपनी यह धारणा बदलनी चाहिए। यह धारणा निर्मूल है, अव्यावहारिक है। लोकतन्त्र में सबसे बड़ी शक्ति लोक-सम्मति की है। सम्मति लोकतन्त्र का आधार है, और स्वयं सम्मति का आधार समता है। लोकतन्त्र की सफलता इस बात पर निर्भर है कि हर व्यक्ति, चाहे वह जो हो, निर्णय (डिसीजन) में शरीक किया जाय, और उसकी नेकनीयती में बिना कारण शंका न की जाय। निर्णय की साझेदारी (पार्टिसिपेशन) आदमी को जिम्मेदार बनाती है, और आपस में अविश्वास की जो दीवाल रहती है वह धीरे-धीरे ढह जाती है।

सर्वसम्मति का विचार यह नहीं है कि किसी प्रश्न पर मतभेद होगा ही नहीं। मतभेद होगा, लेकिन मनभेद नहीं होने पायेगा। बहुमत का निर्णय अल्पमत पर डंडे या कानून के बलपर लादा नहीं जायेगा। पंच बोले परमेश्वर रहेगा; आज की तरह तीन बोले, चार बोले परमेश्वर नहीं होगा। अगर किसी काम के लिए, भले ही वह अच्छा काम हो, सर्वसम्मति या सर्वानुमति नहीं है तो उसे टाल देना अच्छा है। अच्छे काम से कहीं ज्यादा जरूरी है अच्छा सम्बन्ध, और कीमती है आपस की एकता। उदाहरण के लिए पुस्तकालय का भवन यहाँ बने या वहाँ, इस प्रश्न को लेकर गाँव में झगड़ा पैदा होने देना कहाँ की बुद्धिमानी है? एक बार गाँव दल की राजनीति और जमीन के निजी स्वामित्व से मुक्त हो जाय तो गूढ़ प्रश्नों पर कुछ लोगों में तात्त्विक मतभेदों के होते हुए भी आमतौर पर गाँव की खेती-बारी, उद्योग-धन्धे, शिक्षण स्वास्थ्य आदि के बारे में सबको समाधान देनेवाली व्यावहारिक योजनाएँ बनायी जा सकती हैं। विचार भिन्न हों, फिर भी आचार की एकता हो सकती है, और होनी चाहिए। एक ही गाँव में कुछ लोग पारिवारिक खेती करें, कुछ सरकारी, और कुछ सामूहिक, तो क्या बिगड़ेगा? ग्रामसभा अपने साधनों के अनुसार सबकी मदद करेगी, और सभी पद्धतियों को अपना गुण-दोष प्रकट करने का मौका देगी। **एकता और मौलिकता में विरोध नहीं है।**

अब तो 'कन्सेंसस' का विचार राजनीति में भी मान्य होता जा रहा है। संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा-परिषद तो सर्वसम्मति के नियम के कारण ही चल रही है, नहीं तो कब की टूट गयी होती!

• सर्वसम्मति की पद्धति नयी है, इसलिए उसकी सफलता के लिए कुछ व्यावहारिक विधियाँ अपनानी पड़ेंगी। कुछ विधियाँ ये हो सकती हैं

(क) ऐसे प्रश्न हो सकते हैं जिन पर एक का मत सर्व का मत होगा—जैसे स्वास्थ्य के मामले में डाक्टर का। एक डाक्टर या इन्जीनियर की राय दूसरों की सर्वसम्मति या बहुमत से नहीं काटी जा सकती।

(ख) गाँव में जो जातियाँ या सम्प्रदाय अल्पमत में हैं उनके जीवन को प्रभावित करनेवाले निर्णयों में उनकी सम्मति जरूर होनी चाहिए। उनकी सम्मति पर 'सर्व' की सम्मति की मुहर होगी, लेकिन संख्या के बल से अमान्य नहीं की जायगी।

(ग) शिक्षण का एक प्रश्न ऐसा है जिसके लिए सर्वसम्मति आवश्यक हो सकती है।

(घ) कई प्रसंग ऐसे हो सकते हैं जिन पर अध्यक्ष ग्रामसभा की

ग्रामराय जानकर निर्णय दे सकता है और वह सर्वसम्मति मान ली जा सकती है।

ग्रामसभा को अधिकार होगा कि वह तय कर ले कि किन प्रश्नों पर निर्णय सर्वसम्मति से होगा, और किन प्रश्नों पर कितने बहुमत या अल्पमत से।

• सर्वसम्मति की स्थिति लाने के लिए सामान्यतः ये उपाय किये जा सकते हैं :

(क) सभा में खुलकर चर्चा करके सर्वसम्मति पैदा की जाय।

(ख) सभा के सामने कोई प्रश्न लाया जाय उसके पहले निजी चर्चा से सर्वसम्मति का वातावरण पैदा कर लेना अच्छा होगा।

(ग) सौ में दस से ज्यादा की असहमति न हो तो सर्वानुमति मान ली जाय।

(घ) मतभेद होने पर थोड़ी देर शान्त होकर हर व्यक्ति अपनी अन्तरात्मा से पूछे कि वह जो कह रहा है उचित है या नहीं। अन्तरात्मा की आवाज अक्सर सही होती है।

(च) कई निर्णय चिट्ठी डालकर किये जा सकते हैं।

(छ) आपस में लोग एक राय न हो तो किसी निष्पक्ष व्यक्ति का निर्णय प्राप्त किया जा सकता है।

(ज) यह भी हो सकता है कि अगर किसी प्रश्न पर ग्रामसभा की एक बैठक में मतभेद हो तो उस प्रश्न को स्थगित कर दिया जाय। बीच में जो समय मिले उसमें आपसी तौर पर चर्चा कर ली जाय और जब वातावरण अनुकूल हो जाय तो फिर उस प्रश्न को लिया जाय।

इन, या इन्हींकी तरह के दूसरे, उपायों से ऐसी स्थिति पैदा की जा सकती है कि लोग एक राय होकर काम कर सकें। वास्तव में जरूरत यह आदत डालने की है कि मतभेदों पर ज्यादा जोर न दिया जाय, बल्कि जोर मतों की एकता पर दिया जाय। ऐसा करने से मतभेद अपने-आप धीरे-धीरे कम हो जाते हैं।

गाँव में मतभेद के मुख्य कारण क्या होते हैं? जातियों, सम्प्रदायों, परिवारों या गुटों के पुराने झगड़े, किसी विषय को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेना, स्वार्थ की टक्कर, दूसरों के बारे में पूर्वाग्रह, आदि ऐसे कारण हैं जिनके प्रभाव में आदमी दूसरे पक्ष की बात खुले दिमाग से नहीं समझता—समझने की कोशिश ही नहीं करता। इसलिए जरूरत इस बात की है कि लोगों की मनोवृत्ति (ऐटीट्यूड) बदली जाय। यह लोक-शिक्षण का काम है। शिक्षण के साथ-साथ जब ग्रामसभा को अपनी योजनाओं में सफलता मिलने लगेगी तो गाँव के मानस पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा। लोग सोचने लगेंगे कि हम भी कुछ कर सकते हैं। इस भावना से आत्मविश्वास तो बढ़ता ही है, परस्पर-विश्वास भी बढ़ता है।

इतना निश्चित है कि जब ग्रामसभा पर जिम्मेदारी आयेगी तो चीजों के प्रति धीरे-धीरे लोगों का रुख बदलेगा। गाँव की जनसंख्या बढ़ रही है। गाँव की समस्याएँ बढ़ रही हैं। और, गाँव में युग के उग्र विचार तेजी के साथ पहुँच रहे हैं। संख्या, समस्या, और विचार का जोर एक साथ पड़ेगा तो परिवर्तन हुए बिना नहीं रहेगा। कुछ ग्रामसभाएँ औरों से आगे बढ़कर काम करेंगी, और वे ही प्रगति और परिवर्तन की अगुआई करेंगी। इस सम्बन्ध में दो बातों की ओर ध्यान देना जरूरी है। पहली बात यह है कि **ग्रामसभा के अध्यक्ष, मंत्री, और कार्यसमिति के सदस्यों के चुनाव में सर्वसम्मति का आग्रह जरूर रखा जाय। जिस गाँव में जितना ही ज्यादा झगड़ा हो, उसमें उतना ही ज्यादा सर्वसम्मति का आग्रह रखना चाहिए। किसी भी हालत में ग्रामसभा बनाने की जल्दी में बहुमत से चुनाव न कराया जाय।** अनेक गाँवों का अनुभव है कि सर्वसम्मति का आग्रह सफल होता है। समझौते से रास्ता न निकले तो निर्णय लाटरी डालकर किया जाय। किसी भी हालत में चुनाव को लेकर फूट के बीज न बोने जायँ।

दूसरी महत्त्व की बात यह है कि गाँव में जो लोग ग्रामदान में शरीक नहीं हैं उनके साथ किसी तरह के दुराव की नीति न बरती जाय। ग्रामसभा के सदस्य तो वे रहेंगे ही, लेकिन अगर उनके प्रति उदारता बरती जायगी, और सब सुविधाएँ उन्हें दूसरों की ही तरह मिलेंगी, तो वे शीघ्र महसूस करेंगे कि उनका असली हित ग्रामदान में है, अलग रहने में नहीं।

चार

सर्व के विकास की दिशा

विकास के नये मूल्य

ग्रामस्वराज्य

ग्रामसभा ग्रामस्वराज्य का माध्यम है। गाँव में स्वराज्य की स्थापना उसका मुख्य उद्देश्य है। गाँव को उचित नियमन और संचालन द्वारा संगठित इकाई के रूप में स्वराज्य की दिशा में ले जाना उसका काम है। गांधीजी ने गाँव की एक 'गणराज्य' के रूप में कल्पना की थी जो अपने रक्षण, पोषण और शिक्षण के लिए अधिक-से-अधिक आत्म निर्भर हो। आत्मनिर्भर व्यवस्था में सहकार-शक्ति का निरंतर विकास होगा और सरकार शक्ति का क्रमशः ह्रास होगा। यह विकास की एक सच्ची कसौटी है।

सर्व का उदय

ग्रामसभा सबकी है, इसलिए उसे सबको साथ लेकर चलना है, सबके सम्पूर्ण विकास की चिन्ता करनी है। ग्रामसभा सर्वोदय की वाहन है। सर्व के उदय की दृष्टि से वह गाँव के विकास की योजना बनायेगी, और इस बात का सदा ध्यान रखेगी कि विकास का फल सबसे पहले गाँव के उन लोगों को मिलना चाहिए जो अबतक विकास से वंचित रहे हैं। वह अंतिम व्यक्ति रूपी ध्रुवतारे को देखती हुई आगे बढ़ेगी। ग्रामसभा की जल्द-से-जल्द ऐसी स्थिति हो जानी चाहिए कि वह हर काम करनेवाले परिवार के लिए न्यूनतम आय की गारंटी दे सके।

ग्रामस्वामित्व

(क) ग्रामदान में ग्रामसभा को गाँव की भूमि का कानूनी स्वामित्व समर्पित किया गया है। यह बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। दुनिया में स्वामित्व (ओनरशिप) की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं—एक, निजी स्वामित्व (प्राइवेट-ओनरशिप, पूँजीवाद) और, दो, सरकार-स्वामित्व (स्टेट ओनरशिप, साम्यवाद)। इनसे भिन्न ग्रामस्वराज्य-आन्दोलन द्वारा ग्रामस्वामित्व (विलेज ओनरशिप) की स्थापना हो रही है। ग्रामस्वामित्व में व्यक्ति के अभिक्रम, जो पूँजीवादी व्यवस्था का गुण है, और सामूहिक हित का, जो साम्यवादी व्यवस्था की विशेषता है, मेल है। यह मेल इस तरह प्रकट होता है कि बीघे में कट्ठा देने के बाद बची भूमि को किसान जोतेगा बोयेगा और उसके नफे-नुकसान का भागी होगा, लेकिन अपने उत्पादन में से चालीसवाँ भाग ग्रामकोष में सामूहिक हित के लिए बराबर देता रहेगा। इसी तरह नक्द कमाई करनेवाले तीसवाँ भाग देते रहेंगे।

(ख) ग्रामस्वामित्व के अन्तर्गत गाँव की भूमि-व्यवस्था (लैण्ड मैनेजमेन्ट), तथा विकास-योजना (डेवलपमेन्ट प्लैन) की जिम्मेदारी ग्रामसभा पर होगी। भूमि-सम्बन्धी कागज ग्रामसभा के कार्यालय में रहेंगे। गाँव के किसान अपनी लगान ग्रामसभा को देंगे, और उससे रसीद पायेंगे, लेकिन सरकार के कागज में नाम अकेले ग्रामसभा का रहेगा। अनिवार्य होने पर ग्रामसभा की अनुमति से जमीन की बिक्री, रेहन आदि गाँव के भीतर हो सकेगी।

(ग) कानूनी पुष्टि के बाद ग्रामसभा को पंचायत और कोआपरेटिव के अधिकार एक साथ प्राप्त होंगे।

(घ) गाँव की विकास-योजना के अन्तर्गत खेती, उद्योग धंधे और व्यापार परिवारों की ओर से भी चलेंगे, और सामूहिक रूप से जरूरत के अनुसार ग्रामसभा की ओर से भी। इस प्रकार गाँव की अर्थनीति में 'फैमिली सेक्टर' भी रहेगा, और 'विलेज सेक्टर' भी। गाँव के हित में दोनों का मेल मिलाना ग्रामसभा का काम होगा। उदाहरण के लिए आज कुछ क्षेत्रों में खेती का सघन विकास हो रहा है जिसे 'हरित क्रान्ति' (ग्रीन रेवोल्यूशन) कहा जा रहा है। इस 'क्रान्ति' का लाभ किसे मिल रहा है? सिर्फ कुछ चुने हुए साधन-सम्पन्न परिवारों को। इसका परिणाम यह हो रहा है कि गाँव में विषमता बढ़ रही है, लाभ उठानेवाले परिवारों की शोषण-शक्ति बढ़ रही है, और बड़े पैमाने पर वर्ग-संघर्ष की भूमिका तैयार हो रही है। हरी क्रान्ति के गर्भ से लाल क्रान्ति का जन्म हो रहा है।

ग्राम-प्रतिनिधित्व

देश के राजनैतिक संगठन में प्रतिनिधित्व संगठित ग्रामसभाओं का होना चाहिए, न कि दलों का। दलों द्वारा चलनेवाली सत्ता की राजनीति हिंसा और 'स्टेटसको' (यथास्थिति) की राजनीति होती है। हमें संगठन चाहिए शान्ति और समता का; सत्य और अहिंसा का।

समग्र विकास

विकास का जो चित्र ग्रामसभा के सामने रहेगा वह कुछ इस प्रकार का होगा। इसमें व्यापक राष्ट्रीय अर्थनीति के विभिन्न आवश्यक मुद्दे है, केवल वे हैं जो ग्रामसभा के अधिकार-क्षेत्र के अन्दर हैं।

सन्तुलित और समग्र विकास के तीन मूल तत्त्व होंगे: भौतिक, नैतिक, सांस्कृतिक।

भौतिक विकास : उत्पादन-वृद्धि

• गाँव में उत्पादन-वृद्धि के लिए मालिक अपनी बुद्धि, महाजन अपनी पूँजी, और मजदूर अपने श्रम की शक्तियों का सम्मिलित संयोजन करें। गाँव की खेती और चालू उद्योग-धन्धों की उत्पादन-क्षमता बढ़ाने के लिए वैज्ञानिक साधनों और पद्धतियों का प्रयोग हो, तथा काम करनेवालों के तकनीकी प्रशिक्षण की व्यवस्था हो ताकि कमाई बढ़े। गाँव के हर आदमी को रोजगार मिले ताकि गाँव में किसीको भूखा-नंगा न रहना पड़े। इसके लिए गाँव में नये उद्योग-धन्धे चलें। कोशिश यह हो कि धीरे-धीरे सबकी उत्पादन-क्षमता बढ़े और सबको सन्तुलित आहार और सबके जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति होने लगे। हर परिवार की निर्धारित न्यूनतम आय तो होनी ही चाहिए, पर पीने लायक पानी पर तत्काल ध्यान दिया जाय।

• खेती में उत्पादन-वृद्धि के लिए चकबन्दी और सस्ते कर्ज की व्यवस्था सबसे पहले आवश्यक है।

शोषण-मुक्ति

शोषण-मुक्ति के लिए ये कदम उठाने होंगे :

• **आर्थिक क्षति को रोक।**

आर्थिक क्षति इन चीजों से होती है—महाजन के सूद की ऊँची दर, गिरवी भूमि, बाजार में किसान द्वारा पैदा की हुई चीजों का उचित मूल्य न मिलना, किसानों द्वारा अपना अनाज सस्ते बाजार में बेचने के लिए विवश होना (डिस्ट्रेस सेल), तथा मिल और कारखानों में बनकर आनेवाले माल का खेती की चीजों की अपेक्षा बहुत ज्यादा दाम आदि। इनके सम्बन्ध में ग्रामकोष और ग्रामभण्डार से शुरुआत की जा सकती है, यद्यपि स्थायी सुधार के लिए राष्ट्र की अर्थनीति, मुद्रानीति, करनीति आदि में परिवर्तन अनिवार्य है।

• नशा-मुक्ति।

• कुप्रथा—जिसके कारण व्यर्थ खर्च होता है और गाँव के लोग कर्जदार बनते हैं। जैसे—शादी, श्राद्ध, आदि के मौके पर होनेवाले फालतू खर्च का बहिष्कार।

• पुलिस अदालत-मुक्ति। गाँव की रक्षा के लिए ग्राम-शान्ति सेना का संगठन करना होगा तथा झगड़ों को गाँव में ही सुलझाना होगा। उत्पादन-वृद्धि के साथ-साथ शोषण-मुक्ति भी होगी तो जीविका सुरक्षित रहेगी और अनिश्चितता दूर होगी तथा कमाई का कुछ अंश पूँजी के लिए बचेगा। एक गाँव के भीतर शोषण का अन्त तो आवश्यक है ही, साथ ही एक गाँव द्वारा दूसरे गाँव के शोषण का भी अन्त होना चाहिए।

नैतिक तथा सांस्कृतिक विकास के मूल्य

गाँव का सामूहिक अभिक्रम जाग्रत हो, तथा सरकार-शक्ति की जगह सहकार-शक्ति और दण्ड-शक्ति की जगह सम्मति-शक्ति का विकास हो।

सर्वसम्मति और सर्वानुमति की मानसिक भूमिका बने और सामूहिक निर्णय की शक्ति पैदा हो।

एक-दूसरे की चिन्ता करने की आदत पड़े। पड़ोसी तथा पूरे गाँव के प्रति पारिवारिकता की भावना बढ़े। पड़ोसी और गाँव से आगे बढ़कर देश और दुनिया से हितों की एकता महसूस हो। व्यक्ति और परिवार के हित, तथा गाँव और समाज के हित, में विरोध समाप्त हो।

सर्व के उदय का चिन्तन हो। विषमता निरन्तर घटे। व्यवस्था ऐसी हो कि शोषण और शासन-मुक्ति की दिशा में प्रगति रुकने न पाये।

भौतिक विकास तभी सार्थक है जब उससे मनुष्य का सांस्कृतिक विकास हो। जिस भौतिक विकास का ठोस सांस्कृतिक आधार नहीं होगा उससे मनुष्य की मनुष्यता नहीं प्रकट होगी।

पाँच

सघन आर्थिक कार्यक्रम

अभाव की पूर्ति

(क) जिस गाँव में सम्भव हो उसमें भूमिहीनता मिटाने की कोशिश होनी चाहिए। बीघा-कट्ठा के अलावा सीलिंग के ऊपर की भूमि, तथा गाँव की सामूहिक और सरकारी भूमि, भूमिहीनों को खेती के लिए दी जाय। बड़े भूमिवालों से भूमिहीनों के लिए बीघा-कट्ठा के अलावा भी दान माँगा जाना चाहिए।

(ख) गाँव में जो भी उद्योग धंधे शुरू किये जायँ उनमें प्राथमिकता अंतिम व्यक्ति को दी जाय।

(ग) सबको उसके काम और श्रम का उचित मूल्य मिले। ग्रामसभा की जल्द-से-जल्द ऐसी स्थिति होनी चाहिए कि वह सबको काम और दाम का आश्वासन दे सके। अगर गाँव के पास समुचित साधन हों तो खेती, पशुपालन और उद्योग में यह आश्वासन दिया जा सकता है। काम-दाम-गारंटी-योजना के अन्तर्गत खादी-ग्रामोद्योग के श्रम-केन्द्र खोले जा सकते हैं। गाँव की योजना ऐसी होनी चाहिए कि गाँव के साथ-साथ गाँव का हर व्यक्ति अपना विकास महसूस करे। सामूहिक विकास के नाम में व्यक्ति की उपेक्षा न हो।

(घ) गाँव में श्रम-सहकार का वातावरण बने, तथा मिलकर निर्माण-कार्य करने का अभ्यास हो।

(च) सामूहिक विकास और सुरक्षा की दृष्टि से निम्नलिखित कदम आवश्यक मालूम होते हैं:

एक, थोक व्यापार, उद्योग और ऋण (क्रेडिट) का ग्रामीकरण हो। इन कामों के लिए ग्रामसभा के पास अपनी पूँजी होनी चाहिए। ग्रामसभा के अलावा निजी महाजन और व्यापारी भी अपना काम करें। उन्हें मिटाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। निजी महाजन तथा निजी व्यापारी के मुकाबिले में ग्रामसभा भी काम करेगी तो प्रतिद्वन्द्विता के कारण सूद और मूल्य पर अंकुश रहेगा, और जनता का लाभ होगा।

दो, पुराने कर्जों का निबटारा हो जाना चाहिए ताकि उनके बोझ से मुक्त होकर आदमी काम कर सके।

तीन, सामूहिक योजनाओं में साधन और पूँजी के साथ श्रम को भी बराबरी का स्थान दिया जाय। श्रम से पूँजी निर्माण करने का अधिक प्रयत्न किया जाय। महीने में एक दिन का श्रम, सामूहिक श्रम, गाँव के लिए रोज एक घंटा आदि योजनाएँ सोची जा सकती हैं। ग्राम-शान्ति-सेना इस दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी होगी। गाँव के दायरे में श्रम को 'करेंसी' मानकर काम हो सके, ऐसी कोशिश हो।

चार, सहकारी उत्पादन में अगर औसत से अधिक उत्पादन हो तो अतिरिक्त उत्पादन में बड़ा भाग श्रमिक को मिले। यह तथा इसी प्रकार की दूसरी कोशिशें होनी चाहिए।

पाँच, गाँव के जीवन में हित-विरोध समाप्त हो, और 'सर्वहित' की भावना और परिस्थिति बने, इसका निरन्तर प्रयत्न हो। उदाहरण के लिए भूमि का बीसवाँ हिस्सा निकालने, ग्रामकोष में अपना भाग देने, तथा ग्रामसभा में सर्वसम्मति का तत्त्व दाखिल करने, जैसे नये मूल्यों की स्थापना के कार्यक्रम से हित विरोध घटेंगे। परस्पर विश्वास तथा निर्भयता का वातावरण बनाकर ऐसी परिस्थिति लायी जाय कि ग्रामसभा में सभी अपनी बात खुलकर कह सकें।

छ, जीवन को उदात्त मूल्यों की ओर ले जाने के शैक्षणिक कार्यक्रमों का निरन्तर प्रयास और अभ्यास हो ताकि लोगों का संस्कार सुधरे, और चिन्तन का स्तर ऊँचा उठे।

विकास की योजना, संगठन, पूँजी

(क) उद्योग के प्रकार के अनुसार योजना परिवार, गाँव और क्षेत्र को 'यूनिट' मानकर बनेगी, क्योंकि कुछ उद्योग पारिवारिक स्तर पर, कुछ ग्राम-स्तर पर, और कुछ क्षेत्र-स्तर पर चलेंगे। उससे आगे राष्ट्रीय उद्योग भी चलेंगे ही। लेकिन योजना की प्रमुख इकाई गाँव ही होगी। योजना ऐसी हो जिसमें हर परिवार शरीक हो सके, और अपनी जीविका के लिए न्यूनतम कमाई कर सके ताकि अन्तिम परिवारों की उपेक्षा न हो। लक्ष्य एक समग्र ग्राम-योजना का विकास हो।

(ख) योजना गाँव की, साधन समाज का और शिक्षण संस्था का। इस सूत्र के आधार पर ग्रामदानी गाँवों के विकास की समन्वित योजना बननी चाहिए। सरकारी, अर्ध-सरकारी, और गैर-सरकारी संस्थाओं से साधन तथा प्रशिक्षण की सहायता प्राप्त करने का प्रयास होना चाहिए।

(ग) लेकिन गाँव या क्षेत्र दूसरों की सहायता पर ही निर्भर न रहे, बल्कि विकास-कार्य के लिए गाँव में उपलब्ध साधनों और शक्तियों की क्षमता को ही अपना आधार बनाये। वास्तव में एक ओर गाँव में मिलनेवाले साधन, और प्रतिभा तथा दूसरी ओर गाँव की आवश्यकता को सामने रखकर ही काम शुरू करना चाहिए। शुरू में 'एक-कदम काफी' की नीति व्यावहारिक होगी।

गाँव या क्षेत्र के पुराने, अनुभवी, और निपुण व्यक्ति गाँव के शिविरों में बुलाये जायँ, या लोग खुद उनके पास जायँ, और उनके

अनुभव तथा विशिष्ट ज्ञान का लाभ उठाया जाय। विकास में स्थानीय साधनों और स्थानीय प्रतिभा का बुनियादी महत्त्व है।

(घ) गांव में जो उत्पादन होता है उसका ग्राम-भंडार के द्वारा उचित मूल्य मिले और प्राथमिक बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति का सामान गांव में उचित दरों पर उपलब्ध हो, यह प्रयास किया जाय। गांव में 'प्रोसेसिंग' उद्योग शुरू किये जायें।

(च) स्थानीय साधनों से खाद तैयार करने का व्यापक अभियान चलाया जाय और अच्छे बीज प्राप्त करने और बांटने का काम प्रखण्ड-स्तर पर हो।

(छ) खेती के विकास के लिए चकबन्दी पर ज्यादा-से-ज्यादा जोर दिया जाय।

(ज) सामूहिक श्रमदान द्वारा जो निर्माण-कार्य हो उसका मूल्यांकन कर सरकार से सहायता प्राप्त की जाय और उसका पूरा या एक अंश गांव की विकास-योजना में लगाया जाय।

(झ) ग्रामदानी गांव के विकास के लिए राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर साधन तथा विशेषज्ञों की सहायता प्राप्त करने के लिए संगठन खड़े किये जायें।

खादी-ग्रामोद्योग

ग्रामदान की स्पिरिट की दृष्टि से अब खादी-ग्रामोद्योग का विकास ग्रामसभा और प्रखण्डसभा के ही माध्यम से किया जाय। ग्रामसभा की योजना हो, तथा सेवा-संस्था साधन और प्रशिक्षण की व्यवस्था करे, और जो माल गांव की जरूरत से ज्यादा तैयार हो उसे निकालने की जिम्मेदारी ले। ग्रामसभा यह निर्णय करे कि अपनी कुल खपत के किस अनुपात में वह खादी ग्रामोद्योग में होनेवाले उत्पादन को खपायेगी ताकि क्रमश: पूर्ण स्वावलम्बन की स्थिति में पहुँचा जा सके। रोजगार देने की दृष्टि से अनुकूल गांवों में खादी ग्रामोद्योग के श्रम-केन्द्र खोले जायें।

घ

ग्रामसभा : न्याय और दंड

नैतिक शक्ति

ग्रामसभा की शक्ति नैतिक है। दण्ड-शक्ति के स्थान पर नैतिक शक्ति, सरकार-शक्ति की जगह सहकार-शक्ति का विकास ग्राम-स्वराज्य की कसौटी है। इसलिए ग्रामदान के कानूनों के होते हुए भी हमें जनता के सामने नैतिक पहलू पर बराबर जोर देते रहना चाहिए।

कानून नहीं, समाधान

• गांव के आपसी जीवन में न्याय कानूनी न होकर समाधानकारी होगा। गांव में समाधान से ही शान्ति आयेगी और आपसी सम्बन्ध सुधरेंगे।

• ग्रामीण जीवन का जिस तरह ह्रास हुआ है उसके कारण उसमें हृदयहीनता इतनी अधिक आ गयी है कि कई बार प्रत्यक्ष अनीति और अन्याय के विरुद्ध भी गांव की अन्तरात्मा (कान्शस) को जगाना संभव नहीं होता। ऐसी स्थिति में पड़ोस, प्रखण्ड, या जिले के सज्जनों का इस्तेमाल करना पड़ेगा। कुछ भी हो, अनीति होने पर अंतिम न्याय गांव के अन्दर ही मिलना चाहिए। ग्रामसमुदाय के अपने हर सदस्य को न्याय मिल सके, यह स्थिति आनी ही चाहिए।

पंच-परमेश्वर

समाधान का सर्वोत्तम उपाय यही है कि दोनों पक्ष मिलकर पंच चुनें, और पंच परमेश्वर के सर्वसम्मत निर्णय से परस्पर-समाधान प्राप्त करें। पंच अपने गांव के या गांव के बाहर के हो सकते हैं।

न्याय-समिति

• हर ग्रामसभा की एक न्याय-समिति हो, जिसका काम अभियोग प्राप्त करना और न्याय के लिए उचित कार्रवाई करना हो, लेकिन स्वयं न्याय करना न हो। पक्षों के कहने पर यह समिति अथवा पूरी ग्रामसभा पंच नियुक्त कर सकती है।

• अच्छा होगा कि न्याय-समिति स्थायी न होकर तदर्थ (ऐडहाक) हो। यह भी हो सकता है कि एक स्थायी 'पैनेल' हो जिसमें से जरूरत पड़ने पर न्याय-समिति बनायी जा सके।

• गांव के भीतर झगड़ों के अलावा अन्तर्ग्रामीण झगड़े भी हो सकते हैं। ऐसे झगड़ों के निपटारे के लिए एक पंचायत-न्याय-समिति बना ली जा सकती है, या जरूरत पड़ने पर एक स्थायी 'पैनेल' में से 'अदालत' बनायी जा सकती है।

• विशेष स्थितियों में 'पंचायत-न्याय-समिति' के सामने गांव के भीतरी झगड़ों की अपील भी की जा सकती है। लेकिन अपील एक ही हो, दूसरी नहीं।

• जाब्ता फौजदारी के विशेष अपराधों में सरकार को अपनी ओर से कार्रवाई करने का अधिकार रहेगा।

• ग्रामसभा अपनी कार्यसमिति को 'सुपरसीड' कर सकती है। लेकिन क्या ग्रामसभा भी 'सुपरसीड' की जा सकती है? ग्रामदान के कानूनों में अधिकारों के दुरुपयोग या कर्तव्यों की ओर उपेक्षा की स्थिति में सुपरसेशन की गुन्जाइश रखी गयी है, लेकिन ग्रामस्वराज्य की दृष्टि से सामाजिक प्रयत्न, जैसे—बहिष्कार आदि विकसित होने चाहिए।

लोकशिक्षण : नया नेतृत्व

ग्रामसभाओं का शिक्षण

इस आन्दोलन की ग्रामसभाओं से जो अपेक्षा है उसकी पूर्ति की दृष्टि से उनका सघन शिक्षण आवश्यक है, विशेष रूप से उनके पदाधिकारियों तथा कार्यसमिति के सदस्यों का, क्योंकि उन्हींमें गाँव को नया नेतृत्व मिलेगा।

वास्तव में शिक्षण की ही शक्ति इस आन्दोलन की असली शक्ति शिक्षण यानी हृदय-परिवर्तन। यह क्रान्ति ही शिक्षण की है। शिक्षण जितना ही सही और सघन होगा उतना ही सही और शीघ्र परिणाम होगा।

मुख्य व्यक्तियों के शिक्षण के लिए शिविर-पद्धति अपनानी होगी। शिविर ३ दिन से ७ दिन के हो सकते हैं। शिविर पहले ब्लाक के स्तर पर शुरू होंगे, लेकिन उसके बाद का जब सम्भव हो तो एक ब्लाक में कई जगह हों। घर से रोज आने और लौट जाने की सुविधा होगी तो ज्यादा लोग शरीक हो सकेंगे। इस तरह के शिविर हर तीन महीने होने चाहिए, ताकि नया ज्ञान और नया अनुभव निरन्तर मिलता रहे। इन शिविरों के लिए निम्नलिखित अभ्यासक्रम प्रस्तावित है।

अभ्यासक्रम

ग्रामसभा का संगठन

(क) घोषणा-पत्र तथा संकल्प और समर्पण-पत्र भरना, बीघा-कट्ठा निकालना।
ग्रामकोष का संग्रह और विनियोग।

(ख) ग्रामस्वराज्य के तत्व।
ग्रामसभा के अधिकार और कृत्य।
आय के साधन।
न्याय और दंड।
ग्रामसभा की स्वायत्तता।
सर्वसम्मति, सर्वानुमति की पद्धति।

(ग) बैठकों की कार्यवाही—
पुस्तिका, विवरण, प्रतिवेदन आदि।

गाँव का विकास

(क) सर्व की सम्मति से, सर्व की शक्ति से, सर्व के हित के लिए गाँव का विकास।
अन्तिम व्यक्ति का मापदण्ड।
एकता और समता की दिशा में निरन्तर प्रगति।
भेदों और विरोधों का शान्तिपूर्ण हल।
चुनाव और दलबन्दी के दोष।

(ख) गाँव की योजना :
विकास कहाँ से शुरू करें?
गाँव की बुद्धि, श्रम और पूंजी का संयोजन, बाहर मदद, श्रमसहकार, हिसाब-किताब, विवरण।

(ग) उत्पादन-वृद्धि, खेती, खादी, पशुपालन अन्य उद्योग।
खेतों की चकबन्दी। भूमि के झगड़े और उनके हल।
भूमि-सम्बन्धी कानून। सहकारिता—कानून और जिम्मेदारियां।

(घ) शोषण-दमन-मुक्ति। शोषण और दमन के स्वरूप और उनसे मुक्ति के उपाय।

(च) स्वस्थ पारिवारिक जीवन।

(छ) संघर्षमुक्त सामाजिक सम्बन्ध। ग्राम-शान्ति-सेना।

(ज) पंचायतीराज, ब्लाक की विकास-योजना की जानकारी—कितना रुपया है, क्या योजनाएं हैं?

(झ) ग्रामस्वराज्य-आन्दोलन—समस्याएं, लक्ष्य और कार्यक्रम।

(त) गाँव का अपने क्षेत्र, जिले, राज्य और देश में स्थान, दुनिया से नाता, दूसरी संस्थाओं, दूसरे गाँवों, और सरकार से सम्बन्ध।

(थ) पड़ोस में ग्रामदान की प्राप्ति
पंचायत, ब्लाक, जिला, राज्य, देश के स्तर पर ग्रामदान का संगठन।

(द) लोकनीति—दलमुक्त ग्राम-प्रतिनिधित्व की पद्धति
ग्रामसभा-प्रतिनिधि मंडल की रचना और कार्य।

नोट : अभ्यासक्रम में क्रमशः और बातें जुड़ती जायेंगी। ग्रामीण प्रौढ़ों के शिक्षण में भाषण-पद्धति के स्थान पर ज्यादा-से-ज्यादा प्रश्न-उत्तर पद्धति (साक्रेटीज मेथड) अपनायी जाय और स्थानीय योग्य व्यक्तियों (लोकल टेलेन्ट) का इस्तेमाल अवश्य किया जाय। छोटी पुस्तिकाएं और चित्र तैयार किये जायं।

कार्यकर्ताओं का शिक्षण-प्रशिक्षण

(क) ग्रामसभाओं के मुख्य लोगों के अलावा कार्यकर्ताओं का शिक्षण-प्रशिक्षण भी आवश्यक है। ग्रामस्वराज्य के लिए कार्यकर्ताओं की एक बड़ी सेना चाहिए। कार्यकर्ताओं की दो श्रेणियां होंगी—एक आंशिक कार्यकर्ताओं की, दूसरी पूरे समय के कार्यकर्ताओं की। आंशिक कार्यकर्ता ग्राम-शान्ति-सेना के अन्तर्गत आ सकते हैं। उनका संगठन और प्रशिक्षण ग्राम-शान्ति-सेना के उद्देश्य और अभ्यासक्रम के अनुसार होगा। (आगे देखिए)

(ख) पूरे समय के कार्यकर्ता दो प्रकार के हो सकते हैं—एक, वे जिनके लिए ग्रामस्वराज्य जीवन-निष्ठा (लाइफ मिशन) है, लेकिन वे क्षेत्र के निवासी नहीं हैं; दूसरे, वे जो क्षेत्र के निवासी हैं, जिनकी खेती-गृहस्थी है, लेकिन जिनकी अधिक-से-अधिक शक्ति ग्रामस्वराज्य को मिलती है। दोनों तरह के लोगों के शिक्षण-प्रशिक्षण (एजूकेशन और

ट्रेनिंग) का कार्यक्रम काफी विस्तृत और सघन होगा। उसके मुख्य रूप से निम्नलिखित मुद्दे होंगे :

- आधुनिक चिन्तन, और दुनिया की परिस्थिति का परिचय। वैज्ञानिक चिन्तन बनाम पारस्परिक चिन्तन।
- सर्वोदय का जीवन-दर्शन।
- रचनात्मक कार्य—वैचारिक और व्यावहारिक पहलू।
- सामाजिक कौशल (सोशल स्किल)।
- अनीति का प्रतिकार।

यह शिक्षण संस्थागत काम के लिए नहीं होगा, ग्रामस्वराज्य आन्दोलन के लिए होगा। चूंकि इसमें नागरिक भी शरीक होंगे, इसलिए शिक्षण-प्रशिक्षण की अवधि एक बार में लम्बी नहीं होगी, बल्कि थोड़ी-अवधि की बार-बार होगी। फिलहाल सीमित अवधि का एक कोर्स चलाया जाय, बाद को आवश्यकतानुसार लम्बी अवधि का अभ्यासक्रम भी चलाया जा सकता है। इस बात का ध्यान रखा जाय कि ग्रामीण कार्यकर्ताओं का शिक्षण-प्रशिक्षण उनके लिए अनुकूल वातावरण में हो। ऐसा न हो कि गाँव के लोग किसी बड़ी संख्या में रख दिये जायं और वहाँ से प्रतिकूल प्रभाव लेकर लौटें।

ग्राम-शान्तिसेना

ग्रामस्वराज्य के भवन की आधार शिला जहाँ ग्रामदान है, वहाँ ग्राम-शान्तिसेना उसका स्तम्भ है। इसलिए प्रत्येक ग्रामदानी गाँव में ग्रामसभा के अन्तर्गत ग्राम-शान्तिसेना का संगठन आवश्यक है।

उद्देश्य

गाँवों में आपस के झगड़े न हों और यदि हो जायं तो शान्तिपूर्ण ढंग से उन्हें सुलझाने का प्रयास करना।

गाँव की सुरक्षा का प्रबन्ध करना।

गाँवों में चल रहे सामाजिक, आर्थिक अन्याय, और उत्पीड़न आदि का शान्तिपूर्ण उपायों से अन्त करना।

गाँव की सामाजिक कुरीतियों को लोक-शिक्षण तथा अन्य शान्तिमय उपायों से दूर करने का प्रयास करना।

गाँव में हर जाति, धर्म, पंथ, पक्षवालों के बीच सद्भावना एवं सहकार हो, इसका प्रयत्न करना।

पड़ोस के गाँव के साथ सद्भावना और भाई-चारे का सम्बन्ध स्थापित करना।

गाँव के युवकों का संगठन तथा रचनात्मक दिशा में उनका प्रशिक्षण करना।

ग्रामसभा के आदेश के अनुसार ऐसे सभी कार्य करना जिससे गाँव की ग्रामस्वराज्य की दिशा में प्रगति हो सके।

देश में अहिंसक लोक-शक्ति का निर्माण करना।

संगठन

ग्राम शान्तिसेना ग्रामसभा का एक अंग होगी और उसके मातहत काम करेगी। इस प्रकार हर ग्रामसभा में एक ग्राम-शान्ति-केन्द्र होगा।

ग्राम-शान्तिसेना के संगठन तथा कार्य-संचालन के लिए ग्रामसभा अपनी एक छोटी उपसमिति गठित करेगी। यह उपसमिति एक नायक की नियुक्ति करेगी।

१८ से ३५ वर्ष के बीच का कोई भी युवक (या युवती) जो ग्राम शान्तिसेना का प्रतिज्ञा-पत्र भरे, ग्राम-शान्तिसेना का सदस्य बन सकता है। ग्राम-शान्तिसेना का हर सदस्य शान्ति-सेवक कहलायेगा।

ग्राम-शान्तिसेना की सबसे छोटी इकाई पाँच शान्ति-सेवकों से आरम्भ होगी, जिसे 'पंजा' कहा जायेगा, और जिसका एक 'पंजा-नायक' होगा। १० शान्ति-सेवकों का एक दस्ता बनेगा, जिसका एक 'दस्ता-नायक' होगा। तीन या उससे अधिक दस्तों को मिलाकर 'जत्था' बनेगा, जिसका एक 'जत्था-नायक' होगा।

गणवेश

विशेष समय पर ड्यूटी करते समय भाइयों एवं बहनों, दोनों के लिए सफेद वस्त्र, गले में केसरिया रंग की खादी का २७"×२७" का स्कार्फ तथा बाँह पर ८"×४" केसरिया रंग की खादी की पट्टी होगी, जिस पर 'शान्ति-सेवक' लिखा होगा।

कार्यक्रम

बुनियादी तौर पर ग्राम-शान्तिसेना के मुख्य तीन कार्य रहेंगे—श्रम, स्वाध्याय, सेवा।

ग्रामसभा के निर्देशानुसार ग्राम-शान्तिसेना अपनी प्रवृत्तियाँ त करेगी, जिसके लिए सामान्यरूप से निम्नलिखित सुझाव है :—

श्रम

सुलभ-स्वच्छ-शौचालय का निर्माण।

कम्पोस्ट-खाद बनाना।

ग्राम-सफाई का कार्यक्रम, जैसे कुओं के आसपास, नदी और ताला के किनारे की सफाई आदि।

सड़क, भवन आदि का निर्माण और मरम्मत तथा खेती में सुधार वृक्षारोपण, सिंचाई-व्यवस्था आदि विकास-कार्य।

ग्राम-विकास के कार्यों के लिए गाँव के तरुणों और युवकों क उत्पादन-वृद्धि में योग देना। साधनहीन खेतिहरों की विशेष रूप से मदद करना।

स्वाध्याय

अध्ययन-केन्द्र आरम्भ करना।

पुस्तकालय गठित करना।

पत्र-पत्रिकादि पढ़ना और ग्रामवासियों को सुनाना।

भजन, नाटक, तथा अन्य प्रकार के रंजन-कार्यों का आयोजन करना।

ग्रामस्वराज्य एवं सर्वोदय-आन्दोलन से सम्बन्धित पत्रिकाओं का ग्राहक बनाना।

तात्कालिक समस्याओं के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करना तथा अपने सुझाव ग्रामसभा के सामने प्रस्तुत करना।

ग्राम-विकास-सम्बन्धी विभिन्न विषयों पर गोष्ठियाँ आदि आयोजित करना।

सेवा

आकस्मिक विपत्ति के समय सेवा एवं राहत के कार्य।

जरूरतमंदों के लिए आवश्यक प्राथमिक उपचार तथा चिकित्सा के न्य साधन उपलब्ध करना।

पर्व-त्यौहारों को प्रेम एवं सौहार्दपूर्वक शिक्षणात्मक रीति से मनाने ा आयोजन करना।

पुलिस-अदालत-मुक्ति का प्रयास करना।

व्यसन-मुक्ति आदि के लिए लोकशिक्षण करना।

विवाह, सभा, त्यौहार, मेले आदि में प्रत्यक्ष सेवा के कार्यक्रम ठाना।

गाँव के झगड़े का निपटारा गाँव में करना।

केन्द्र के सामूहिक कार्यक्रम

प्रार्थना, श्रम-यज्ञ, खेल-कूद, भोजन बनाना, सब्जी काटना, पानी भरना आदि।

आन्दोलन से सीधा सम्बन्ध रखनेवाले कार्य

शान्ति-पात्र-रखवाना।

शान्ति-पात्रों का अनाज आदि संग्रह करना।

सर्वोदय-मित्र बनाना।

ग्रामदान-प्राप्ति के कार्य में भाग लेना।

ग्रामदान-पुष्टि के कार्य में सहायता देना।

ग्राम-कोष इकट्ठा करने में तथा भूमि के वितरण में सहायता देना।

विशेष दिवस

वर्ष में ३० जनवरी 'शान्ति दिवस' और ६ अगस्त 'हिरोशिमा दिवस' के रूप में मनाना।

सदस्यता

१८ से ३५ वर्ष तक की आयु का कोई भी ऐसा ग्रामवासी (भाई या बहन) जो ग्राम शान्तिसेना के उद्देश्यों में विश्वास रखता हो और उसके अनुशासन को मानने को तैयार हो, ग्राम-शान्तिसेना का सदस्य बन सकता है।

प्रतिज्ञा-पत्र

मैं मानता हूँ कि गाँव तथा देश के सर्वांगीण हित के लिए समाज में हमेशा शान्ति का बना रहना आवश्यक है।

मैं राष्ट्रीय एकता, लोकतंत्र, सर्वधर्म समभाव में विश्वास रखता हूँ।

मैं मानता हूँ कि लोकतंत्र की बुनियादी इकाई ग्राम-स्वराज्य है। इसलिए मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि ग्राम-स्वराज्य की पुष्टि तथा उसे विकसित करने के लिए ग्राम-शान्तिसेना के उद्देश्यों को मानते हुए उसके सभी कार्यक्रमों में भाग लूँगा तथा उसके निर्देशों का पालन करूँगा।

हस्ताक्षर ....

दिनांक ....

पूरा नाम ....

पता ....

ग्रामदान और गाँव का स्कूल

(१) गाँव के स्कूल, उसके शिक्षकों और विद्यार्थियों का गाँव के शिक्षण और विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। इस दृष्टि से स्कूल के प्रधानाध्यापक को ग्रामसभा की कार्यसमिति का एक 'सहयोगी' सदस्य (असोसिएटेड मेम्बर) बनाया जा सकता है। इससे स्कूल गाँव के जीवन का एक अंग बनकर अपना काम कर सकेगा।

(२) ट्रेनिंग कालेजों और स्कूलों के अभ्यासक्रम में 'ग्रामस्वराज्य' एक विषय रखा जाय ताकि गाँव में पहुँचकर शिक्षक अपना सही रोल अदा कर सके।

(३) ग्रामसभा को चाहिए कि गाँव के स्कूल को अपना माने, सरकारी कहकर छोड़ न दे। गाँव का स्कूल गाँव के बच्चों की विकास-भूमि है, इसलिए ग्रामसभा से हर प्रकार का सहयोग पाने का अधिकारी है।

(४) अच्छा होगा कि प्रदेश में किसी उपयुक्त अवसर पर चुने हुए प्राथमिक शिक्षकों और प्रधानाध्यापकों की एक सभा बुलायी जाय जिसमें इन तमाम प्रश्नों पर चर्चा हो। क्षेत्रीय स्तर पर मिली-जुली गोष्ठियाँ तो हो ही सकती हैं।

(५) हमारे आश्रमों को शिक्षण-प्रशिक्षण की दिशा में विशेष रोल अदा करना चाहिए।

(६) शिक्षण का यह सारा कार्यक्रम अखिल भारतीय स्तर से अधिक राज्यों के स्तर पर चलेगा। राज्यों में काम करनेवाले साथियों को शिक्षण-कार्य को अपने ढंग से संगठित करना चाहिए, और उसके लिए समुचित आर्थिक व्यवस्था करनी चाहिए।

(७) शिक्षण के लिए उपयुक्त साहित्य की आवश्यकता होगी। ग्रामस्वराज्य के विभिन्न पहलुओं पर छोटी, सरल, पुस्तिकाएँ तैयार की जायँ, साथ ही कुछ 'टेक्स्ट बुक्स' भी लिखी जायँ।

घंटे भर का लोक-विद्यालय

लोक-शिक्षण में लोक-विद्यालयों का बहुत बड़ा महत्त्व है। घंटे भर के लोक विद्यालय अधिक-से-अधिक गाँवों में संगठित होने चाहिए। कोई शिक्षक, कोई शिक्षित नागरिक, कोई कार्यकर्ता, जो भी गाँव में रहता हो, लोक-विद्यालय की शुरुआत कर सकता है। गाँव के किसी केन्द्रीय स्थान, जैसे—विद्यालय, पुस्तकालय, देवालय, पर गाँव के लोग इकट्ठा हों, और देश-दुनिया की हलचलों से लेकर अपनी खेती-बारी, उद्योग-धन्धे, शिक्षा-स्वास्थ्य तथा अन्य प्रश्नों की चर्चा करें। शिक्षक नयी जानकारी और नया ज्ञान उनके सामने रखेगा, और उन्हें उद्बोधित करेगा। कालक्रम से ये लोक-विद्यालय ज्यादा साधन-समृद्ध और समर्थ हो सकेंगे।

गाँव की युवा-शक्ति

वृद्ध का आशीर्वाद और युवक का पुरुषार्थ हमारी शान्ति की दो मुख्य शक्तियाँ हैं। ग्रामीण युवकों के लिए 'ग्राम-शान्तिसेना' और विद्यालयों में पढ़नेवालों के लिए 'तरुण-शान्तिसेना' का कार्यक्रम है। श्रमिकों के लिए इनसे अलग 'श्रम-सहकारी-समितियाँ (लेबर कोआपरेटिव सोसाइटीज) बनायी जा सकती हैं।

ग्रामसभा : कृत्य, अधिकार, और साधन

कृत्यों का विभाजन

जहाँ तक कृत्यों और अधिकारों का प्रश्न है वह बहुत कुछ 'स्वायत्त ग्रामसभा' की अवधारणा में निहित है। ग्रामसभा हर व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के लिए आवश्यक अवसर, साधन और संरक्षण दे सके, यह स्थिति पैदा होनी चाहिए। इसके लिए कानून का बल तो चाहिए ही, लेकिन उससे अधिक आवश्यक है जनता की मान्यताओं, धारणाओं और परम्पराओं को शिक्षण द्वारा संशोधित और परिष्कृत करना। सिद्धान्त के तौर पर यह कहा जा सकता है कि ग्रामसभा को उसकी अधिकतम क्षमता के अनुसार काम करने का अधिकार और अवसर होना चाहिए, बशर्ते उसके किसी काम से किसी दूसरी इकाई का अहित न होता हो।

व्यवस्था की सुविधा की दृष्टि से ग्रामस्वराज्य के विभिन्न स्तरों, जैसे—गाँव, प्रखण्ड, जिला, राज्य, पर अधिकारों और कृत्यों का विभाजन होना चाहिए।

आय के स्रोत

ग्रामसभा के पास ग्राम-विकास के लिए प्रचुर साधन होने चाहिए। साधनों के ये ६ मुख्य स्रोत हो सकते हैं –

(१) कर, (२) फीस, (३) दान, (४) श्रम, (५) सहायता अनुदान और कर्ज, (६) शोषण और बरबादी में रोक।

ग्रामसभा की स्वायत्तता की दृष्टि से उचित है कि गाँव मुख्यतः अपने साधनों पर निर्भर रहे और बाहर के साधन पूरक रूप में ले। बाहर से प्राप्त धन 'रिवाल्विंग फण्ड' (आवर्ती-कोष) के रूप में इस्तेमाल किया जाना चाहिए ताकि गाँव के पास पूँजी बनी रहे।

गाँव के साधन बढ़ें, यह जितना आवश्यक है उससे कम आवश्यक यह नहीं है कि गाँव की कमाई गाँव में रह जाये। इस दृष्टि से नशाबन्दी, सूदखोरी पर नियन्त्रण, मुकदमेबाजी या शादी और श्राद्ध में फिजूलखर्ची पर रोक आदि बातों का नैतिक के अलावा आर्थिक महत्त्व भी हो जाता है।

श्रम गाँव की सबसे बड़ी और अक्षय पूँजी है। उस पूँजी के संवर्धन, संरक्षण और सदुपयोग पर जितना ध्यान दिया जाय थोड़ा है।

हिसाब और आडिट

(क) ग्रामकोष के साथ हिसाब और आडिट का प्रश्न जुड़ा हुआ है। इस काम के लिए इतनी बड़ी संख्या में विशेषज्ञों का मिलना संभव नहीं है, इसलिए आवश्यक है कि ग्रामसभाओं के चुने हुए व्यक्तियों को हिसाब और आडिट का अभ्यास कराने की योजना बनायी जाय।

(ख) हिसाब और आडिट में छोटी इकाई को बड़ी इकाई से पूरी मदद मिलनी चाहिए। हिसाब-किताब के काम में व्यापारी, साहूकार और शिक्षक बहुत उपयोगी होंगे।

(ग) धन के विनियोग में यह नियम मान्य होना चाहिए कि रुपया लेनेवाली इकाई देनेवाली इकाई (सरकारी या अन्य) के प्रति उत्तरदायी होगी।

ग्रामसभा और ग्रामपंचायत : ग्रामस्वराज्य और पंचायतीराज

प्रतिद्वन्द्विता नहीं

ग्रामीण क्षेत्रों में प्रतिद्वन्द्वी संस्थाओं का होना शुभ नहीं होगा। बिहार में सर्वोदय के साथियों और पंचायतों के मुख्य व्यक्ति चर्चा कर जिन निष्कर्षों पर पहुँचे हैं वे ग्रामसभा और ग्राम-पंचायत के समन्वय की दृष्टि से ठीक हैं। उनके मुख्य तत्त्व ये हैं :–

(१)
- २० परिवार या १ सौ जनसंख्या का हर गाँव या टोला अपनी अलग ग्रामसभा बना सकता है।
- इन सब ग्रामसभाओं के अध्यक्ष पंचायत की कार्यसमिति के सदस्य होंगे।
- कार्यसमिति के सब सदस्य मिलकर अध्यक्ष (मुखिया) का चुनाव करेंगे।

(२) पहाड़ी तथा आदिवासी क्षेत्रों में २० परिवार या एक सौ की जनसंख्या की शर्त ढीली की जा सकती है।

(३) अगर कोई टोला अपनी अलग ग्रामसभा न बनाकर पड़ोस की किसी ग्रामसभा में शरीक होना चाहता है, तो दोनों की सम्मति से उ ऐसा करने की छूट होनी चाहिए।

(४) अच्छा होगा कि एक ग्रामसभा की संख्या सामान्यतः एक सं से एक हजार के बीच हो।

प्रखण्ड-सभा

(१) ऊपर बतायी गयी रीति से चुने गये पंचायतों के सब अध्यक्ष (मुखिया) ब्लाक-स्तरीय प्रखण्डसभा (पंचायत-समिति) के सदस्य होंगे।

(२) गाँव से लेकर प्रखण्ड तक संगठन की तीन सीढ़ियों का होना अच्छा होगा :

एक, ग्रामसभा

दो, पंचायत-सभा

तीन, प्रखण्ड-सभा

इनकी रचना अप्रत्यक्ष (इनडाइरेक्ट) रीति से हो।

(३) प्रखण्ड-सभा की रचना के सम्बन्ध में तीन विचार हैं। एक विचार उपर्युक्त है। दूसरा विचार यह है कि ग्रामसभाओं का (रोटेशन

२) प्रखण्ड-सभा में सीधा प्रतिनिधित्व हो। लगभग एक हजार की संख्या पर एक प्रतिनिधि हो। तीसरा विचार यह है कि प्रखण्ड-सभा पंचायतों के प्रतिनिधि हों जो मुखिया से भिन्न भी हो सकते हैं।

(४) • प्रखण्ड-सभा के अधिकारों और कृत्यों के बारे में यह राय रही कि भूमि-कर पूरा इन स्थानीय संस्थाओं का ही होना चाहिए।

• माल (रेवेन्यू) व न्याय, शिक्षा और पुलिस के सम्बन्ध में यह राय रही कि हर सभा अपने कार्य-क्षेत्र में, स्वायत्तता के सिद्धान्त के आधार पर, अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करेगी। लोक-संगठन अधिकार माँगता नहीं, बल्कि अपने-अपने कर्तव्यों का निर्वाह करता है। और उस क्रम में उसे कर्तव्य से अधिकार स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। ग्रामस्वराज्य-आन्दोलन नीचे से शक्ति 'जेनरेट' करने का है, सत्ताधिकारियों से सत्ता की याचना करने का नहीं। उनका सहयोग सदा अपेक्षित है।

दस

ग्रामदानमूलक सरकार : दलमुक्त ग्राम-प्रतिनिधित्व

ग्रामसभा-प्रतिनिधि-मंडल की रचना

(१) ग्रामसभाओं को बुनियादी इकाई मान लेने पर 'ग्रामसभा-प्रतिनिधि-मंडल' (एक प्रकार का इलेक्टोरल कालेज) की रचना का सवाल मुख्य हो जाता है। राज्य की विधान सभा में ग्रामदानी ग्रामसभाओं का प्रतिनिधित्व होना चाहिए, लेकिन कैसे? यह अभी मौजूदा निर्वाचन-पद्धति के भीतर ही सोचा जा सकता है।

(२) 'ग्रामसभा प्रतिनिधि-मंडल' की रचना कैसे हो, और उम्मीदवार का चयन कैसे हो? इस सम्बन्ध में पाँच बातें हैं

• जिस निर्वाचन-क्षेत्र में कम-से-कम तीन चौथाई ग्रामसभाएँ बन जायँ उसमें 'ग्रामसभा प्रतिनिधि-मंडल' बनाया जाय।

• मंडल स्थायी हो।

• हर ग्रामसभा अपने क्षेत्र के प्रतिनिधि-मंडल के लिए अपने प्रतिनिधि सर्वसम्मति से चुने।

• एक ग्रामसभा से जनसंख्या के आधार पर कम-से कम एक, और ज्यादा-से-ज्यादा पाँच, प्रतिनिधि हों।

• मंडल में अधिक-से-अधिक दो-सौ-पचास सदस्य हों।

(३) यह प्रतिनिधि मंडल अपने निर्वाचन-क्षेत्र (कान्स्टीटुएन्सी) के लिए उम्मीदवार का चयन करेगा। मंडल मंथन करके अन्त में एक ही उम्मीदवार की घोषणा करेगा। अगर कोई प्रतिनिधि-मंडल चाहे तो वह अपनी ग्रामसभाओं के पास एक 'पैनेल' भी भेज सकता है, और 'सिंगल ट्रान्सफरेबुल वोट' से 'सर्वमान्य' उम्मीदवार का चयन कर सकता है।

ऐसे सर्वमान्य उम्मीदवार के पीछे ग्रामसभाओं की व्यापक शक्ति होगी। वे किसी दल या जाति या अन्य किसी संकुचित स्वार्थ का प्रतिनिधित्व नहीं करेंगे। वे प्रतिनिधित्व करेंगे गाँव-गाँव के सामूहिक ग्रामहित का, और सामूहिक निर्णय का। लेकिन किसी मतदाता के ऊपर कोई दबाव नहीं होगा कि वह इसी उम्मीदवार को वोट दे, दूसरे को न दे। मतदाता अपने वोट में स्वतंत्र होगा। साथ ही क्षेत्र के हर नागरिक का चुनाव में उम्मीदवार के रूप में खड़ा होने का संवैधानिक अधिकार भी बना रहेगा।

उम्मीदवार-चयन के बाद की प्रक्रियाएँ, जैसे 'नामिनेशन' और चुनाव आदि, प्रचलित पद्धति के अनुसार होंगी।

(४) • निर्वाचन-मंडल स्थायी होगा, लेकिन उसके सदस्य बदल सकते हैं।

• निर्वाचन-मंडल का काम है कि वह विधानसभाओं में भेजे गये अपने क्षेत्र के एम० एल० ए०, एम० पी० से सतत सम्पर्क रखें। वे मंडल को विधानसभा में अपने काम का ब्योरा दें और उससे अपने काम के बारे में परामर्श करें।

• मंडल को अधिकार होगा कि एक साल के बाद अपने निर्वाचन क्षेत्र के प्रतिनिधि को अगर वह क्षेत्र का सही प्रतिनिधित्व करने में अक्षम साबित होता है तो, विधान-मंडल से वापस बुला ले, लेकिन यह तय करना होगा कि मंडल कितने बहुमत से ऐसा कर सकेगा।

• मंडल चुनाव के समय टिकट देने में इस बात का ध्यान रखेगा कि किसी राजनीतिक दल के सदस्य को टिकट न दे। उसमें कहा जाय कि पहले दल से अलग हो जाय। विशेष स्थिति में यह शर्त भी मान्य की जा सकती है कि वह ५ साल के लिए दल की सदस्यता स्थगित रखे और चुन लिये जाने पर विधानसभा में दल-सचेतक (पार्टी व्हीप) का अंकुश न माने, और ग्रामदानी प्रतिनिधियों के साथ बैठे।

मतदाता-शिक्षण

ग्राम-प्रतिनिधित्व पर आधारित लोकतंत्र की इस नयी पद्धति की सफलता एक ओर ग्रामसभाओं की एकता पर तथा दूसरी ओर जनता के सघन राजनैतिक शिक्षण पर निर्भर है। आज की व्यवस्था में राजनैतिक शिक्षण राजनैतिक दलों के द्वारा होता है। इस नयी भूमिका में शिक्षण के लिए विशेष 'शिक्षण-ग्रुप' बनाने पड़ेंगे। शुरू में मतदाता-शिक्षण की जिम्मेदारी सर्व सेवा संघ को उठानी पड़ेगी। शिक्षण में दूसरी बातों के साथ-साथ इस बात पर जोर देना होगा कि ग्रामसभा, प्रखण्ड-सभा, जिला-सभा, राज्य-सभा आदि सब अपने-अपने क्षेत्र की जनता की समस्याओं के बारे में सोचें, और स्थानीय शक्ति से उनका हल ढूँढ़ने की कोशिश करें, सरकारी शक्ति के भरोसे कोई सभा बैठी न रहे।

विधान-सभा में ग्रामदानी प्रतिनिधि : सरकार का गठन

(क) विधान-सभा में ग्रामदानी प्रतिनिधियों का क्या 'रोल' होगा ? हमारे शिक्षण और ग्रामसभाओं के संगठन की यह कसौटी है कि अगले आम चुनाव में राज्य-दानी क्षेत्रों की विधान-सभाओं में ग्रामदानी प्रतिनिधियों का प्रबल बहुमत हो, तब प्रश्न उठेगा सरकार बनाने का।

(ख) ग्रामदानी प्रतिनिधि विधान-सभा में आज की तरह दलों में बंटकर नहीं बैठेंगे : वे बैठेंगे अपने निर्वाचन-क्षेत्रों के अनुसार (कन्स्टीच्युएन्सीवाइज) या वर्ण-माला के अक्षरों के अनुसार (अल्फाबेटिकली)। वे अपना अलग ब्लाक नहीं बनायेंगे।

(ग) विधानसभा में ऐसा वातावरण बनाना होगा कि कोई प्रतिनिधि अपने को दल-विशेष या हित-विशेष से जुड़ा हुआ नहीं माने, बल्कि वह समस्त जनता का प्रतिनिधि है, ऐसा सोचे।

(घ) इस तरह सब प्रतिनिधि मिलकर सर्वसम्मति से अपना एक नेता चुनेंगे। वह नेता 'सबकी' सरकार बनायेगा।

प्रतिनिधियों में सरकारी दल और विरोधी दल जैसा विभाजन नहीं होगा।

(च) सरकार में कमेटी-प्रथा (गवर्नमेन्ट बाई कमेटीज) का मुख्य स्थान होगा।

हर प्रतिनिधि विधान-सभा में अपने चुनाव-क्षेत्र की जनता की बात प्रस्तुत करते हुए जनता के हित को सामने रखकर सरकार की किसी नीति के प्रति अपनी असहमति प्रकट करने के लिए स्वतंत्र होगा। जाहिर है कि आलोचक की बात को अनसुनी कर बहुमत के बल पर अपनी नीति लागू करनेवाली पद्धति तब नहीं चलेगी। विधान-सभा का हर सदस्य आलोचक की बात को समझने और उसके अनुसार नीति-रीति में संशोधन करने, तथा आलोचक अपनी ओर से उस नीति के समर्थन की बात समझने की तैयारी रखेगा और आवश्यकतानुसार अपनी असहमति को वापस लेने को तैयार रहेगा।

विधान-सभा का काम सामान्यतः सर्वसम्मति से चलेगा। किसी प्रश्न पर 'अल्पमत' के साथ अधिक-से-अधिक उदारता बरती जायेगी, और निर्णय लोकहित के आधार पर किया जायेगा।

संसद

संसद के चुनाव में भी प्रतिनिधि मंडल की ही पद्धति अपनायी जायेगी। संसद के लिए विधान-सभा के निर्वाचन-क्षेत्रों के ग्रामसभा-प्रतिनिधि-मंडल बुनियादी इकाई (प्राइमरी यूनिट) माने जायेंगे।

शहरी क्षेत्र

शहरी और नोटिफाइड क्षेत्रों में 'मतदाता कौंसिलों' (वोटर्स कौंसिल) के द्वारा उम्मीदवारों का चयन हो सकेगा।

ग्यारह

लोकनीति और जन-आन्दोलन

कुछ प्रारम्भिक बातें

(१) सिद्धान्त के रूप में सत्याग्रह हर नागरिक का जन्म-सिद्ध अधिकार है। लोकतंत्र में अपने 'सत्य' का आग्रह रखने के पहिले विपक्षी के 'सत्य' को ग्रहण करने का पूरा प्रयत्न होना चाहिए। दबाव (प्रेशर) का स्थान मनाव (परसुएशन) के बाद ही आता है। दबाव के अस्त्र के रूप में सत्याग्रह के प्रयोग का प्रश्न तभी उठ सकता है जब अन्याय ऐसा हो जो समाज में आम तौरपर अन्याय माना जाता हो। ऐसे मान्य अन्याय का किसी व्यक्ति, समूह या सरकार द्वारा जानबूझकर उल्लंघन हुआ हो तो सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा के अस्त्र का प्रयोग उचित है, और आवश्यक भी।

(२) ग्रामदान के समर्पण-पत्र पर हस्ताक्षर करने के बाद भी अगर कोई उसकी शर्तें न पूरी करे तो क्या उसका ऐसा करना अन्याय की कोटि में आयेगा ? नहीं। हस्ताक्षर विचार की स्वीकृति का एक संकेत है। विचार से आचार तक एक सम्पूर्ण शैक्षणिक प्रक्रिया है जो अभी जारी है। हस्ताक्षर करनेवाले को पूरा मौका देना चाहिए। लेकिन यह स्थिति बदल जायगी अगर हस्ताक्षर करनेवाले लोग दुबारा सार्वजनिक तौर पर बीघा-कट्ठा देने की घोषणा करते हैं, किन्तु देते नहीं। वचनभंग करने पर कार्यकर्ता कष्ट-सहन (पेनेन्स) का कार्यक्रम अपना सकता है।

(३) गठित हो जाने के बाद क्या ग्रामसभा को बीघा-कट्ठा ले लेने का अधिकार होगा ? नहीं। पहले हृदय-परिवर्तन पर ही भरोसा रखना चाहिए। ले लेने की बात से ग्रामदान की मूल शर्तों के सम्बन्ध में जनता की ग्रामदान की स्पिरिट खंडित होगी, और गाँव में ग्रामसभा द्वारा होनेवाले आगे के कामों में बाधा पड़ेगी।

(४) सबसे पहले ध्यान ग्रामसभाओं के संगठन पर देने की जरूरत है। उनके सक्रिय होने से हमारी क्रान्ति को 'पीपुल्स-सैंक्शन' (जन-स्वीकृति) मिलेगा। उसके बिना कोई 'पीपुल्स-सैंक्शन' सम्भव नहीं होगा।

राज्यदान के बाद के कदम

लक्ष्य-प्राप्ति की दिशा में प्रारम्भिक तैयारी

भारत में सबसे पहले बिहार ही राज्यदान की मंजिल तक पहुँच रहा है। इसलिए बिहार में राज्यदान के बाद के कुछ प्रारम्भिक कदम सुझाव के रूप में। -

(१) 'ग्राम-स्वराज्य' की कल्पना, योजना और कार्य-पद्धति का व्यापक प्रचार। 'ग्रामस्वराज्य हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है'— इस नारे के आधार पर गाँव-गाँव की जनता की संकल्प-शक्ति जगायी जाय। इसके लिए प्रचार के सभी साधनों जैसे—प्रेस, रेडियो, पर्चे-

फिल्म-शो, डॉक्यूमेंटर, गोष्ठी, सभा, शिविर, पदयात्रा, आदि का प्रयोग किया जाय। गोष्ठियों और शिविरों का तांता लग जाना चाहिए। इन गोष्ठियों और शिविरों में इस्तेमाल के लिए ग्रामस्वराज्य के विभिन्न पहलुओं पर सरल, छोटी पुस्तिकाएं तैयार की जायें।

(२) बिहार की दृष्टि से राजगीर सर्वोदय सम्मेलन के बाद नवम्बर से अप्रैल तक ६ महीने का एक सघन 'पुष्टि अभियान' चलाया जाय जिसके अन्तर्गत :

(क) सबसे पहले बिहार की जनता के नाम एक अपील निकाली जाय, जिसमें ग्रामसभा बनाने का निवेदन हो। ग्रामसभा के बारे में कुछ प्रारम्भिक बातें बताते हुए पर्चे छापे जायें और व्यापक पैमाने पर प्रसारित किये जायें।

(ख) अभियान के लिए अनुकूल वातावरण बनाने के ख्याल से बिहार के ५८७ प्रखण्डों में से हर प्रखण्ड में प्रखण्ड-स्तरीय गोष्ठी की जाय। पूरे बिहार में श्री जयप्रकाशजी और श्री धीरेन्द्रभाई की यात्राएं हों। ये यात्राएं मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में हों।

(ग) नवम्बर या उसके आसपास पुष्टि-अभियान में लगनेवाले मुख्य कार्यकर्ताओं का एक हफ्ते का शिविर हो ताकि वे पुष्टि में ग्रामस्वराज्य की सही दृष्टि और पद्धति अपना सकें।

(घ) पुष्टि का अभियान पूरे बिहार में एक साथ चलाया जाय ताकि व्यापक प्रभाव (इम्पैक्ट) हो।

(ङ) गांव गांव में ग्रामसभाओं का संगठन हो और उन्हें ग्रामदान की शर्तों की पूर्ति करने के लिए प्रेरित किया जाय। बीघा-कट्ठा का मंगल-समारोह वितरण किया जाय। कोशिश की जाय कि पूरे गांव का बीघा-कट्ठा बंटे, लेकिन पूरे गांव की प्रतीक्षा न की जाय। जो लोग तैयार हों उनकी भूमि बंटनी जानी चाहिए।

(च) ग्रामसभाओं के संगठन के साथ-साथ ग्राम-शान्ति सेना संगठित करने का पूरा प्रयत्न हो, तथा शिविर आदि करके उन्हें प्रारम्भिक प्रशिक्षण दिया जाय ताकि आन्दोलन के विकास के साथ-साथ नये कार्यकर्ताओं की श्रेणी तैयार होती चले।

व्यापक और सघन कार्य

सघन-क्षेत्र

(१) ऐसे क्षेत्र जिनमें ग्रामसभाओं के गठन, ग्रामदान की शर्तों की पूर्ति, ग्राम-शान्ति-सेना के गठन की दृष्टि से उल्लेखनीय कार्य हो, तथा कुछ स्थानीय मित्र इतने सक्रिय हों कि आगे के काम के लिए आधार बन सकें, वे ग्रामस्वराज्य के सघन क्षेत्र माने जायें।

(२) ऐसे क्षेत्रों में ग्रामसभाओं के आधार पर प्रखण्ड-सभा बनायी जाय।

(३) इन सघन-क्षेत्रों में स्थानीय मित्रों की मांग पर आन्दोलन की ओर से पूरे समय का एक कार्यकर्ता भी रखा जाय। उसके सपरिवार भोजन और आवास की समुचित व्यवस्था क्षेत्रीय स्तर पर हो।

नये अभियान का नया आधार : समर्पित कार्यकर्ता

(१) पुष्टि अभियान के लिए अलग-अलग हर जिले में, तथा समूचे राज्य के स्तर पर, पूरे समय के समर्पित कार्यकर्ताओं का होना अनिवार्य है। ये कार्यकर्ता कहां से आयेंगे? सबसे पहले खादी संस्थाओं से अपील की जाय कि वे अपने कार्य-क्षेत्र के हर जिले में दो समर्थ और प्रौढ़ कार्यकर्ता दें जिनका पूरा समय और शक्ति जिले में ग्राम-स्वराज्य-अभियान को मिले। उनका वेतन संस्था से मिलता रहे, किन्तु उन्हें संस्था अपनी अन्य जिम्मेदारियों से मुक्त रखे।

(२) राज्य-स्तर पर योग्य कार्यकर्ताओं का एक नया 'कैडर' संगठित किया जाय। इस कैडर में पुराने और नये, दोनों तरह के साथी सम्मिलित हो सकते हैं। अभी बिहार में कोशिश की जाय कि शुरू में ऐसे कार्यकर्ताओं की संख्या अधिक नहीं तो २५ तक जरूर पहुंचे। इस काम के लिए प्रारम्भिक तौर पर एक लाख रुपये का केन्द्रीय कोष इकट्ठा किया जाय।

(३) कार्यकर्ता अपनी जीविका के लिए फिलहाल भले ही संस्था-आधारित रहें, किन्तु उनके क्षेत्र का कार्य मुख्यतः जनाधारित हो। जनाधार के साधन ये हो सकते हैं : प्रत्र सग्रह, सर्वोदय मित्र (६०२-६५ वार्षिक), सर्वोदय-सहयोगी (रु० १-०० वार्षिक) तथा आन्दोलन के लिए अन्य पुरस्कर सहायता। जनता के सामने आन्दोलन का यह चित्र आना चाहिए कि सारा कार्य उनकी सम्मति और सहायता से चल रहा है।

बैंकों का राष्ट्रीयकरण

प्रश्न—बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बारे में आपकी क्या राय है?

विनोबा—बैंकों के राष्ट्रीयकरण से अपने आप कोई समस्या हल होगी ऐसा नहीं। राष्ट्रीयकरण का विचार अच्छा है। लेकिन विचार अच्छा होने पर भी जो सत्ता पूंजीपतियों के हाथ में थी, वह अब सरकारी अधिकारियों के हाथ में आयेगी। इसलिए राष्ट्रीयकरण हुआ, इतने भर से अच्छा हुआ, ऐसा हम नहीं मानते। लेकिन वह कदम के तौर पर अच्छा कदम है, ऐसा बाबा मानता है।

चमरौनपुर, २७—८—'६९

राष्ट्रपिता के स्वप्नों का भारत

साकार करने के लिए

देश के प्रत्येक गाँव को स्वावलम्बी बनाना होगा

यह तभी सम्भव है जब

राष्ट्रपिता की स्वराज्य की कल्पना को मूर्तरूप प्रदान करेंगे !

सूचना-विभाग, उत्तरप्रदेश द्वारा प्रसारित
विज्ञापन नं० १

भारत को नयी दिशा देने के लिए ज्ञान-शक्ति और श्रम-शक्ति एक हो !

— विनोबा —

गांधीजी के जाने के बाद हमारी यात्रा शुरू हुई और २१ साल हो जारी है। कम-से-कम भारत के चार करोड़ लोगों ने हमारी बात रे मुंह से सुनी। १३॥ साल तो पदयात्रा हुई और अभी हम मोटर रह में घूमते हैं। २१ वर्ष यही आनंदमय दर्शन हमको होता रहा।

हमको यहाँ बताया गया कि इस स्थान में कोई न कोई दंगे होते। हमारा अनुभव रहा है कि चाहे वह तमिलनाडु था, चाहे आन्ध्र था, दे और कोई प्रान्त, हमारी सभा लोगों ने अत्यन्त शान्ति से सुनी। नए का बहुत बड़ा नगर मदुराई। हमको कहा गया था कि वहां के त अत्यन्त उच्छृंखल हैं, लेकिन हमारी घंटे-डेढ़ घंटे की सभा में न्त शान्ति रही। कारण इसका यह है कि बाबा इन चेहरों में भगवान दर्शन करता है, और हरेक के हृदय में अन्तर्यामी विराजमान है, वा उस पर विश्वास रखता है।

भारत की आत्म-शक्ति

विद्यार्थियों पर बाबा की अत्यन्त श्रद्धा है, शिक्षकों पर भी उतनी ही। गांवों के मजदूरों पर भी वैसी ही है। गांवों में जमीन के मालिक हैं न पर भी बाबा की श्रद्धा है। परिणाम यह है कि सब लोग बाबा को त्यन्त शान्तिपूर्वक सुनते हैं। जहाँ भी कहा गया कि चुनावों में लोगों ने त्यन्त दंगल किया, वहाँ भी हमारी सभा में शान्ति रही। यह समझने ी बात है। भारत की अपनी खुद की आत्म-शक्ति है। उपनिषदों ने हा कि अपनी आत्मा के अन्दर देखो—वही सन्देश यहाँ के सत वियों ने दिया और उड़ीसा के भी सतों ने दिया। वही प्राचीन सन्देश वेद और उपनिषदों का—"आत्मारे आत्माक देख, देखिले पाइबो सुख" यह बात हमने हिन्दुस्तान की हर भाषा में सुनी।

भारत के दो टुकड़े

लेकिन हिन्दुस्तान के दो टुकड़े हो गये हैं। एक है—ग्रामीण भारत और दूसरा स्कूल कालेज की शिक्षा पाये हुए शहर के लोग, जिनके दिमाग पर पश्चिम का असर पड़ा है। वे बाहर से राजनीति यहाँ लाते हैं और उसका परिणाम है, जहाँ-तहाँ सब दूर टुकड़े हो जाते हैं। एक है कांग्रेस, एक है कांग्रेस, एक है कांग्रेस, ऐसे कांग्रेस के तीन टुकड़े पड़ गये। वैसे ही कम्यूनिस्टों में भी तीन टुकड़े पड़ गये हैं—राइटिस्ट, लेफ्टिस्ट और एक्स्ट्रीम लेफ्टिस्ट। इस प्रकार से सब पार्टियों में अनेक भाग पड़ गये हैं। ऐसी २०—२५ पार्टियाँ भारत में पड़ी हैं और बेचारे लोग अपना नसीब आजमा रहे हैं। एक बार कम्यूनिस्टों को राज देकर देखा, बहुत लाभ नहीं हुआ, तो दूसरी पार्टी को दिया। बिहार में ढाई साल में सात मंत्रिमंडल बने। आखिरी मंत्रिमंडल ९ दिन टिका। करोड़ों रुपया खर्च होता है चुनावों में। लोगों को कुछ वचन भी दिये जाते हैं। वचन तो सब पार्टीवाले अच्छा-अच्छा देते हैं लेकिन जब वह मंत्री बन जाते हैं, तब उनका रुख बदल जाता है, और रोजमर्रा की उनकी समस्याएँ अपनी स्वतंत्र समस्याएँ होती हैं।

छात्र का असंतोष

मुझे लोग कहते हैं कि विद्यार्थियों में असन्तोष बहुत ज्यादा है। लेकिन मैं दूसरी बात कहता हूँ। आज तालीम इतनी खराब दी जा रही है कि आज जो असन्तोष विद्यार्थियों में है वह मुझे कम ही मालूम होता है। मुझे आश्चर्य इस बात का होता है कि इतना अनुशासन विद्यार्थी कैसे पालन करते हैं! इस वास्ते विद्यार्थियों में जो असन्तोष है उसके बारे में मुझे असन्तोष नहीं। आज जो तालीम दी जा रही है उसका क्या परिणाम होता है? विद्यार्थियों को कोई काम करना सिखाया नहीं जाता। आध्यात्मिक शिक्षण दिया नहीं जाता और विज्ञान बहुत कम सिखाया जाता है, ऐसी हालत में शिक्षा पूरी करने के बाद उनको नौकरी करने के अलावा कोई चारा नहीं रहता और आज भारत में नौकरी है कितनी? सरकार के नौकर और फौज के लोग मिलाकर ६० लाख नौकर हैं और हर कोई ३० साल के बाद 'रिटायर' होता है, यानी हर साल २ लाख लोग रिटायर होंगे और २ लाख नये लोगों को नौकरी मिलेगी। आज भारत में मैट्रिक से ऊपर शिक्षित ३ करोड़ लोग हैं। तो नौकरी की शक्यता बहुत कम रहती है। विद्यार्थियों का भविष्य बिलकुल अंधकारमय है। उस हालत में वे दंगे वगैरह करते हैं। उसका उपाय यह नहीं हो सकता कि पुलिस को वहाँ भेजा जाय। उपाय तो यह है कि विद्यार्थियों के पास जाकर उन्हें प्रेम से समझाया जाय और तालीम का पद्धति बदल दी जाय।

तालीम कैसे दी जाय, उस सिलसिले में दो-दो कमीशन हो गये। पहला डा० राधाकृष्णन् का कमीशन था। उसकी रिपोर्ट सरकार के पास ऐसी ही पड़ी है। उसके बाद दूसरा कमीशन बिठाया गया। उसकी भी रिपोर्ट सरकार के पास है। अभी तक शिक्षा के ढांचे में कोई फर्क पड़ा नहीं। उस बारे में इन्दिरा गांधी ने शिकायत की। उन्होंने कहा कि कांग्रेस की दो बहुत बड़ी गलतियाँ हुईं। एक तो यह है कि उन्होंने नौकरशाही पर विश्वास रखा और दूसरी यह कि तालीम बदली नहीं। अब कोई भी पूछेगा कि जब इन्दिरा गांधी शिकायत करती हैं तो मामला कौन सुधारेगा? इसलिए तालीम का स्वरूप बदलना होगा। ग्रामाभिमुख शिक्षा देनी होगी। एक-एक गांव में जाकर काम करना होगा।

स्वराज्य के बाद गांव-गांव के लोगों का उत्थान हुआ नहीं। १५-२० साल लगातार राज चला, लेकिन कुछ बढ़ा नहीं। दूध बढ़ा नहीं, अनाज बढ़ा नहीं, तरकारी बढ़ी नहीं। तो क्या बढ़ा? शराब बढ़ी, सिनेमा बढ़ा, सिगरेट बढ़ी। हमको कहा गया कि १० साल पहले लोग जितनी सिगरेट पीते थे, उससे पाँच गुना आज पीते हैं। तो मैंने कहा कि सिगरेट बढ़ी लेकिन अनाज तो बढ़ा नहीं। अब इस हालत को कैसे सुधारा जायेगा? उसका एक ही उपाय है—जो ग्रामीण जनता है, उसको स्वावलम्बी बनाना पड़ेगा। गाँव के लोगों का एक परिवार बने और गांव-गांव अपने पाँव पर खड़े हों। हमारे विद्यार्थी भी उनकी सेवा में गांव-गांव जायँ, तो उनकी जो विद्या है वह वीर्यवती बनेगी।

गाँवों का उत्थान यानी भारत का उत्थान

हिन्दुस्तान में पाँच लाख गाँव हैं और करोड़ों लोग गाँवों में रहते हैं। उनका उत्थान हुए बिना देश का उत्थान होगा नहीं। तो उस काम मे सब लोगों को लगना चाहिए. उसके लिए बाबा का आवाहन है विद्यार्थियों को। वे पदयात्रा करें और गाँव गाँव में जायें, लोक सम्पर्क करें। गाँव के लोगों की क्या हालत है उसका अध्ययन करें। इस प्रकार से काम होगा तब गाँव की बात बन सकती है। विद्यार्थियों से मेरी यह माँग है।

शिक्षकों से हमारी माँग

शिक्षकों से भी मैं यही माँग करता हूँ। शिक्षकों को सब पार्टियों से मुक्त होना चाहिए। शिक्षकों की शक्ति ३० साल तक काम करने की है और उसके बाद भी जो शिक्षक बनेंगे वे इन्हीं के विद्यार्थी होंगे यानी शिक्षकों की परम्परा आगे चलेगी। राजनीतिक दलवालों की शक्ति केवल पाँच साल की होती है। वे पाँच साल के लिए नौकर है। तो सारे देश का मानस बनाने का काम और अधिक-से-अधिक अधिकार शिक्षकों का है। लेकिन शिक्षक भी पक्षों मे शामिल होते हैं। एक ही स्कूल या कालेज मे इस पार्टी के चार शिक्षक, उस पार्टी के चार, इस तरह टुकड़े होते हैं। उसका परिणाम यह है कि कालेज मे भी असन्तोष फैला है। इस वास्ते शिक्षकों को प्रथम राज[illegible] दलों से मुक्त होना चाहिए। बाबा खुद को भी शिक्षक मान[illegible] है, और शिक्षक के नाते इस दुनिया में घूम रहा है। तो बाबा की हैसिय[illegible] शिक्षक की है। परिणाम यह है कि बाबा की सभा के लिए सब लोग आ[illegible] हैं और बाबा के स्वागत के लिए तमाम लोग आते हैं। पार्टियों के ने[illegible] जब आते है तब उनके स्वागत के लिए उस पार्टी के लोग आते हैं लेकिन बाबा के स्वागत के लिए सभी आते हैं। जो बाबा की हैसियत[illegible] वह शिक्षकों की होनी चाहिए। तो शिक्षक सभी पार्टी-मुक्त हो जा[illegible] और एक-एक गाँव के फ्रेण्ड, फिलासफर और गाइड (मित्र, दार्शनिक औ[illegible] मार्गदर्शक) बनें। इस तरह शिक्षकों की ज्ञान-शक्ति भारत में स[illegible] होगी। उधर ग्रामदान के द्वारा ग्रामीण की श्रम-शक्ति और उधर शिक्ष[illegible] के द्वारा शिक्षकों की ज्ञान-शक्ति। वह श्रम-शक्ति और यह ज्ञान-शक्[illegible] एक हो जाय तो सारे भारत का दिमाग ठीक दिशा में जायेगा। विद्या[illegible]र्थियों की शक्ति भी संगठित होनी चाहिए। आज अपने देश में अध्यय[illegible] की बहुत जरूरत है। विद्यार्थी अध्ययन-परायण बनेंगे और लोक-सेव[illegible] परायण। अध्ययन और लोक-सेवा विद्यार्थियों में होगी तो उसमें तरुण[illegible] में जो क्रिया-शक्ति होती है, उसको मार्गदर्शन मिलेगा।

करंजिया मयूरभंज (उड़ीसा)

२९-८-'६९

ग्रामदान-प्रखण्डदान-जिलादान

(११-६-'६६ तक)

भारत में				बिहार में			
प्रांत का नाम	ग्रामदान	प्रखण्डदान	जिलादान	जिला का नाम	ग्रामदान	प्रखंडदान	जिलादान
बिहार	५४,८६७	५३३	१४	दरभंगा	३ ७२०	४४	१
उत्तरप्रदेश	२२,४७१	११६	३	मुजफ्फरपुर	३,९१७	४०	१
तमिलनाडु	१२,३८५	१३९	४	पूर्णिया	८,१५७	३८	१
उड़ीसा	११,७३८	६१	१	सारण	३,७७१	४०	१
मध्यप्रदेश	६,४२१	२५	३	चम्पारण	२ ८९०	३६	१
आंध्रप्रदेश	४,१११	१२	–	गया	५,८४५	४६	१
संयुक्तपंजाब	३,६९४	७	–	मुंगेर	३ ०४४	३७	१
महाराष्ट्र	३,६४६	१५	–	सहरसा	२,७५१	२३	१
असम	१,५७०	१	–	धनबाद	१,२८४	१०	१
राजस्थान	१,५०५	१	–	पटना	२,०४८	२८	१
गुजरात	१,०१७	३	–	हजारीबाग	५,९३९	४२	१
प० बंगाल	७४८	०	–	भागलपुर	२,८७०	२१	१
कर्नाटक	६९२	–	–	शाहाबाद	४,५२६	४१	१
केरल	४१८	–	–	पलामू	८०४	२५	१
दिल्ली	७४	–	–	सिंहभूम	१,२६३	२३	–
जम्मू-कश्मीर	१	–	–	संतालपरगना	१,१९४	२७	–
				रांची	८३४	१७	–
कुल :	१,२५,३६६	९१३	२५	कुल :	५४,८६७	५३३	१४

संकलित प्रदेशदान–७ : बिहार, तमिलनाडु, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान

—कृष्णराज मेहता

विनोबा निवास,
नार्थ काके रोड, रांची

PASSBOOK
आधुनिक बनिए
अपना बचत खाता चैक से चलाइए
सभी डाकघर
आज ही डाकघर बचत बैंक में एक खाता खोल लीजिए
राष्ट्रीय बचत संगठन।

गांधीजन्म-शताब्दी-प्रकाशन

सर्वोदय-साहित्य-सेट
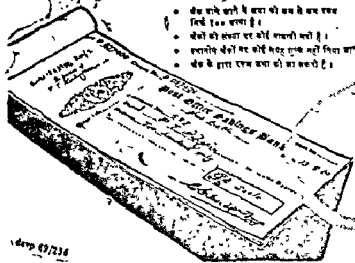
५ रु० मे १ हजार पृष्ठो की पठनीय सामग्री गाधी स्मारक निधि और गाधी शान्ति प्रतिष्ठान के सहयोग तथा नवजीवन ट्रस्ट के सौजन्य से सर्व सेवा सघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१ द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

आत्मकथा—ले० : मो० क० गांधी

पृष्ठ संख्या १६६, मूल्य १ रु०।

सन् १८६९ से १९१९ तक की गाधीजी की सक्षिप्त आत्मकथा–

मेरे सपनों का भारत—सं० : सिद्धराज ढड्ढा

पृष्ठ संख्या १२६, मूल्य १ रु०।

स्वतन्त्र होने के बाद भारत मे जो समाज कायम होगा उसकी क्या विशेषताएँ होगी इसकी बापू ने अनेक बार अपने लेखो और भाषणो मे चर्चा की थी। उसी के आधार पर 'नवजीवन प्रकाशन' अहमदाबाद ने 'मेरे सपनो का भारत' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी। प्रस्तुत पुस्तक उसी का नवसम्पादित सक्षिप्त सस्करण है।

गीताबोध और मंगल-प्रभात – ले० : मो० क० गांधी

पृष्ठ संख्या १०८, मूल्य १ रु०।

'श्री मद्भगवद् गीता' को गाधीजी ने अपने जीवन मे दीप के रूप मे ग्रहण किया था। गीता के प्रत्येक श्लोक का उन्होंने जो अर्थ समझा था वह 'गीता बोध' के नाम से प्रकाशित हुआ। 'मगल-प्रभात' मे बापू के उन ग्यारह व्रतो की व्याख्या है जिनका उन्होने आजीवन पालन किया।

बापू कथा—ले० : हरिभाऊ उपाध्याय

पृष्ठ सख्या २३२, मूल्य २-५०।

गाधीजी ने अपनी आत्मकथा को 'सत्य के प्रयोग' का नाम दिया था। आत्मकथा में सन् १८६९ से १९२० तक की गाधीजी की जीवन का विवरण ही आ सका है। उसके बाद का उनका सन् १९४८ तक का जीवन-विवरण समकालीन इतिहास के हजारो पृष्ठो म बिखरा हुआ था। सामान्य जनो को उसकी छिटपुट जानकारी भले ही रही हो लेकिन आत्मकथा की तरह गागर मे सागर को समेटनेवाली कोई ऐसी पुस्तक अब तक उपलब्ध नही थी जिसको पढकर साधारण पाठक को गाधीजी के जीवन की १९२० से १९४८ तक की मुख्य घटनाओ और विचारो की एकजुट जानकारी मिल सके।

गाधीजी के वचनो, लेखो, वक्तव्यो और भाषणों के विशाल-साहित्य सागर को छानकर गाधी-कथा की यह मणिमाला श्री हरिभाऊ उपाध्याय ने बडी तत्परता और सहजता के साथ प्रस्तुत की है।

गाधीजी की जीवनी का यह उत्तरार्ध पर्याप्त रोचक और हृदयग्राही है। वस्तुत यह ग्रन्थखण्ड भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम की गाधीयुगीन अहिंसक लडाइयो का एक आईना जैसा है। यह पठनीय ग्रन्थ फिलहाल सर्वोदय-साहित्य के ५ तथा ७ रुपये के सेट के अन्तर्गत ही उपलब्ध है।

तीसरी शक्ति—ले० : विनोबा

पृष्ठ संख्या २०७, मूल्य २ रुपया।

आज विश्व-समाज मे हिंसा-शक्ति और दण्ड-शक्ति, इन्ही दो शक्तियों का प्रभाव और प्रभुत्व है। इन शक्तियो के कारण एक ओर दुनिया पर आणविक-युद्ध का खतरा मडरा रहा है, दूसरी ओर दुनिया के लोग एक अति-केन्द्रित, अति-यान्त्रिक राजनीतिक-आर्थिक समाज-व्यवस्था के भारी बोझ के नीचे दबकर असह्य कष्ट उठा रहे हैं। जाहिर है कि हिंसा-शक्ति तथा दण्ड-शक्ति दोनो ही मानव-समाज की समस्याओ को हल करने मे विफल हुई हैं। किसी तीसरी शक्ति की आवश्यकता स्पष्ट दीखती है जो हिंसा और दण्ड दोनो शक्तियों से भिन्न हो।

वस्तुत ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य-अभियान द्वारा विनोबाजी उसी शक्ति की स्थापना और सगठन करने मे लगे हुए हैं। उन्होने इस नयी शक्ति को 'लोक-शक्ति' कहा है और उसे हिंसा-शक्ति की विरोधी और दण्ड-शक्ति से भिन्न बताया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे उसी तीसरी शक्ति की स्पष्ट और व्यापक व्याख्या विनोबाजी के ही शब्दो मे प्रस्तुत की गयी है। विनोबाजी के हजारों प्रवचनो, लेखो और वार्ताओ में प्राप्त यह विचार-नवनीत पहली बार एक ही ग्रन्थ मे सुलभ हुआ है। ग्रन्थ के ग्यारह अध्यायो मे तीसरी शक्ति के विभिन्न पहलू उजागर हुए हैं। श्री जयप्रकाशजी ने पुस्तक की भूमिका लिखकर इसकी महत्ता पर अपनी मुहर लगा दी है।

१. संगठन में ही शक्ति है, २. प्रभु ही मेरा रक्षक है, ३. यदि मैं तानाशाह बना, ४. त्याग हृदय की शुचि है

महात्मा गाधी के जीवन से सम्बन्धित लोकोपयोगी प्रसगो के सग्रह की चार पुस्तकें हमारे हाथ मे हैं जिन्हे गांधी जन्म-शताब्दी-प्रकाशन के अन्तर्गत गाधी स्मारक निधि तथा सस्ता-साहित्य-मडल ने प्रकाशित किया है। इन चारो पुस्तको मे गाधीजी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व पर प्रकाश डालनेवाले प्रसग दिये गये हैं। इन पुस्तको की सामग्री अनेक पुस्तको मे से चुनकर ली गयी है। इस सग्रह का तथा सम्पादन का कार्य श्री विष्णु प्रभाकर ने कुशलता के साथ किया है। इसकी विशेषता यह है कि इस पुस्तक-माला को छोटे-बडे सभी पढ सकेंगे। अतः हर परिवार को ये पुस्तकें मँगानी चाहिए। एक पुस्तक का मूल्य १.०० रु० है। प्रकाशक गाधी स्मारक निधि, सस्ता साहित्य मडल, नयी दिल्ली।

गांधीजी और राजस्थान

राजस्थान राज्य गाधी स्मारक निधि, भीलवाडा, राजस्थान ने गाधी जन्म-शताब्दी के अवसर पर इस पुस्तक का प्रकाशन किया है। इसके लेखक व सम्पादक श्री शोभालाल गुप्त को बड़ी मेहनत करनी पडी है। राजस्थान से गाधीजी का जैसा भी सम्पर्क आया है उसका उल्लेख इस पुस्तक मे आया है। ३०८ पृष्ठों की इस पुस्तक की कीमत ८ रु० है।

"भूदान-यज्ञ" १६ दिसम्बर, '६८ के अंक का परिशिष्ट

इस अंक में

१६ दिसम्बर, '६८
वर्ष ३, अंक ९] [१८ पैसे

सावधान, चुनाव आ गया !

उत्तर प्रदेश के राज्यपाल महोदय ने पुलिस-अधिकारियों को, प्रशासन के कर्मचारियों को चेतावनी दी है कि चुनाव आ गया है, सब लोग सावधान हो जायें ! क्यों भाई, चुनाव के आने पर पुलिस को, प्रशासक को इतनी चिन्ता क्यों ? चुनाव आया है तो जनता जिसे चाहेगी अपना वोट देकर चुन देगी, वोट के बक्से, कागज के टुकड़े और निशान लगाने के ठप्पे के साथ पुलिस का क्या सम्बन्ध ?

शायद इसलिए कि हर दल के नेताओं ने अपने कार्यकर्ताओं को आगाह कर दिया है कि, "सावधान, चुनाव आ गया है !" और शायद दलों के ये कार्यकर्ता चुनाव की तैयारी में जरूरत की सारी चीजें जुटाकर लग गये हैं। जरूरत की चीजों में झण्डे हैं, डण्डे हैं, वोटरों को तरह-तरह से फुसलाने, बहकाने, दबाने, धुमाने के हथकण्डे हैं ; लेकिन यह सब क्यों ? क्यों न हर उम्मीदवार खुद वोटरों के पास जाय, या अपने प्रतिनिधि भेजे, जाकर अपनी बात साफ-साफ बताये, और निर्णय के लिए 'वोटर' को खुला छोड़ दे ? तभी न सही माने में सरकार का जो तंत्र बनेगा, वह 'लोक' की राय से बना हुआ होगा, यानी सच्चा 'लोकतंत्र' होगा ?

लेकिन यह तो तब हो, जब कि 'वोटर' पर वोट माँगनेवालों का भरोसा हो। भरोसा तो सबको है 'डण्डे' पर, रुपये की थैली पर, और भी न जाने किन-किन चीजों पर ! नतीजा क्या है ? चुनाव के आते ही समाज में शान्ति और सुरक्षा की समस्या पैदा हो जाती है। 'चुनाव' एक लड़ाई-झगड़ेवाला नाटक भर रह जाता है। 'लोकतंत्र' का तन जर्जर हो रहा है, और 'डण्डे' का जोर बढ़ रहा है। लोकतन्त्र की शुरुआत हुई थी इसलिए कि समाज में लोगों की सम्मति से काम हो, चाहे वह पुलिस का हो या गुण्डे का, डण्डे का जोर खत्म हो। लेकिन

अच्छे लोग

प्रश्न : आपने कहा है कि अच्छे उम्मीदवार को वोट दिया जाय, लेकिन हम देख रहे हैं कि चारों ओर पार्टी की ही आवाज लग रही है। पार्टी से अलग हटकर किसीके लिए 'स्वतंत्र' उम्मीदवार होना भी कठिन हो गया है। 'स्वतंत्र' उम्मीदवार खर्च कहाँ से लाये, कार्यकर्ता और साधन कहाँ से जुटाये? वह तो बिलकुल असहाय हो जाता है। ऐसी हालत में आपके बताने के अनुसार कितने 'अच्छे' उम्मीदवार चुने जा सकेंगे?

उत्तर : आपका कहना सही है। इस काम में कठिनाइयाँ हैं, यह जाहिर है। लेकिन यह भी सही है कि दलों के दलदल से जनता ऊब गयी है। सामान्य लोगों के ही नहीं, सभी तरह के लोगों के मन में यह सवाल उठ रहा है कि इस दलदल से निकलने का कोई उपाय भी है या नहीं। जो लोग आगे की बात सोचते हैं वे तो यहाँ तक कहने लगे हैं कि पिछले बीस वर्षों में जिस तेजी के साथ सरकार की सत्ता बढ़ी है, और उस सत्ता के लिए दलों में जिस तरह छीना-झपटी होती जा रही है, और देश की जनता के सामने खड़े-खड़े तमाशा देखने के सिवाय दूसरा कुछ रह नहीं गया है, वह देश के लिए बहुत बड़ा खतरा है। देश के विकास के लिए यह जरूरी है कि सरकार की सत्ता कम हो, और नित-दिन का काम जनता आपस में मिलकर चलाना सीखे। अगर सरकार की सत्ता घटेगी तो उसकी शक्ति बढ़ेगी, और तब उसके जिम्मे जो काम होंगे उन्हें वह आज के मुकाबिले कहीं ज्यादा अच्छी तरह पूरा कर सकेगी। ये बातें ऐसी हैं जो जनता के सामने रखी जानी चाहिए। अगर हम इन बातों को नहीं सोचेंगे, और सोचकर सही काम नहीं करेंगे, तो परिणाम देश के लिए, और हम सब लोगों के लिए, बहुत बुरा होगा।

प्रश्न है, यह बात तो है, लेकिन तुरत क्या किया जाय? 'अच्छे उम्मीदवार को वोट दो', और ग्रामदान करके गाँव-गाँव का संगठन बनाओ; ये ही दो काम हैं जो समाज में नयी लहर

ऐसा हो नहीं रहा है। चुनाव आया तो पुलिस अपने 'डण्डे' सँभालकर सावधान हो जाती है, और गुण्डे अपने!

इसीलिए अब जरूरत है कि 'वोटर' भी सावधान हो जाय। वह सावधान हो जाय कि उसका 'वोट' न तो बिकेगा, और न दबेगा! तभी उसके 'वोट' में शक्ति आयगी, और 'डण्डा-थैली' का बोलबाला खत्म हो सकेगा।•

पैदा कर सकते हैं। जरूरत है एक बार जनता के सोचने की, दिशा को बदलने की। 'अच्छे उम्मीदवार' के नारे से लोगों के सोचने की दिशा बदलेगी, इसमें कोई शक नहीं। इस वक्त सबसे बड़ी बात यह है कि लोग दल से अलग हटकर सोचने लग जायँ। क्या आप नहीं मानते कि इस नारे से यह काम होगा?

प्रश्न : मानता हूँ, होगा। इस काम को करना चाहिए, और 'अच्छे उम्मीदवार' की बात वोटरों के पास पहुँचनी चाहिए। आज हमलोगों के दिलों को दल और जाति ने घेर रखा है। इस नये नारे से इतना तो होगा कि हम आदमी और उसकी अच्छाई को देखना शुरू कर देंगे। आदमी की नजर में आदमी की कद्र होने लगे तो यह अपने में बहुत बड़ी बात होगी, और इस एक अच्छाई में से दूसरी अनेक अच्छाइयाँ पैदा होंगी। लेकिन एक बात बताइए। सरकार तो दलों से बनती है, 'अच्छे' लोगों को लेकर कैसे बनेगी? यह बात जरा साफ-साफ बताइए।

उत्तर : देखिए, आज यह होता है कि दल और जाति के नाम में अच्छे लोग भी चुने जाते हैं, और बुरे लोग भी। बल्कि कई बार तो ऐसा होता है कि छोटे या कमजोर दल का अच्छा आदमी हार जाता है, और बड़े दल का निकम्मा आदमी जीत जाता है। अगर आप सब लोग 'अच्छे उम्मीदवार' को ही वोट दें तो सब अच्छे लोग चुने जायेंगे, चाहे वे जिस दल या जाति के हों।

प्रश्न : अगर किसी निर्वाचन-क्षेत्र में कोई अच्छा उम्मीदवार न हो तो?

उत्तर : वोटर को वोट देने का जितना अधिकार है, उतना ही न देने का भी अधिकार है। लेकिन आज लोगों की यह तैयारी नहीं है कि घोषणा करके संगठित रूप से वोट न देने के अधिकार का इस्तेमाल करें।

प्रश्न : अगर ऐसा हो सकता तो किसी निकम्मे उम्मीदवार को खड़ा होने की हिम्मत ही न होती। लेकिन उस तरह की जागृति कहाँ है, संगठन कहाँ है? छोड़िए उस बात को। सरकार बनाने की बात बताइए।

उत्तर : सरकार बनना बिलकुल आसान है। आज भी एक दल की सरकार नहीं बन पाती है। यह निश्चित है कि इस चुनाव के बाद भी मिली-जुली ही सरकार बनेगी। जब ऐसी ही सरकार बननेवाली है तो क्या यह अच्छा नहीं होगा कि अच्छे लोगों की मिली-जुली सरकार बने?

भ्रम की शिकार एकता

जिस दिन गाँव के ३०० लोगों ने ग्रामदान के कागज पर दस्तखत कर दिये, उसी दिन आपस-आपस में यह भी तय कर लिया गया कि सबसे जरूरी बात तो यह है कि पूरे गाँव के लोग बीच-बीच में एकसाथ मिलकर बैठा करें। इस तरह से आपसी अपनापा बढ़ेगा, और मेलजोल से गाँव की समस्याएँ हल करने में आसानी होगी। लेकिन पूरे गाँव का एकसाथ जुटना और मिलकर बैठना कोई मामूली बात नहीं है। गाँव के कई लोगों में सालों से आपस में बोलचाल, खान-पान, आना-जाना सब कुछ बन्द है। यों तो एकसाथ रहने पर खटपट हो ही जाया करती है, लेकिन इस तरह की बातें एक ओर से आती हैं, और दूसरी ओर से निकल जाती हैं। फिर भी कुछ झगड़े रगड़े का रूप लेते हैं, खासकर जब बात अदालत तक पहुँच जाती है।

गाँव के रगड़े-झगड़े को तूल देकर लोगों के कान फूँक-कर, बढ़ा-चढ़ाकर चुगली करने की आदत भी कुछ लोगों की हो जाती है। कुछ थोड़े पढ़े-लिखे लोग, जिनकी पहुँच पटवारी, दारोगा, वकील, मुख्तार तक हो जाती है, ऐसे लोगों का तो धंधा ही एक तरह से हो जाता है झगड़ा लगाने का, और फिर उन्हें कचहरी तक पहुँचाने का। इस तरह से कई लोगों की रोजी भी चल जाती है, और 'पहुँचवाले हैं' इस तरह की प्रतिष्ठा भी हासिल हो जाती है।

इस गाँव के हरिकिशुन की भी यही आदत है। महीने-दो महीने में एकाध 'केस' न बना लें, तो पेट का पानी न पचे। मजा यह कि गाँव में किसी भी मेल-जोलवाले को, चाहे कितनी भी घनिष्ठता क्यों न हो, चुनौती देकर झगड़ा लगाते हैं। और उनकी बुद्धि का कमाल तो यह है कि सब लोग जानते हैं, कि हरिकिशुन पहले दर्जे का चुगलखोर है, फिर भी लोग लड़ पड़ते हैं।

कुछ साल पहले की बात है। हरिकिशुन गाँव की एक बारात से लौट रहा था। साथ में गाँव के युवकों की टोली थी। पास के छोटे-से शहर के स्टेशन पर आकर गाड़ी पकड़नी थी। लड़कीवाले की ओर से सबको वापस आने का खर्च मिला था। सबकी जेबें गर्म थीं। हरिकिशुन ने अलग-अलग कई युवकों के कान में यह बात डाल दी कि 'शहर में बढ़िया सिनेमा लगा है। खेल देखकर चलेंगे। पैसे की चिन्ता नहीं करनी है। रात की गाड़ी से निकल चलेंगे, एक टी० टी० बाबू से अपनी दोस्ती है, कह देने से काम चल जायेगा।'

सिनेमा का लोभ, बिना टिकट पहुँचा देने की गारण्टी, फिर और क्या चाहिए था? बात कानों-कान फैल गयी, और हरिकिशुन के नेतृत्व में आठ-दस युवकों के दल ने रात को नौ से बारह बजे तक सिनेमा देखा, स्टेशन के पास की सरदारजी के होटल में डटकर भोजन किया और 'नम्बर टेन' सिगरेट की फूँक मारते हुए गाड़ी में आकर सब बैठ गये। चार बजे भोर में जब गाड़ी स्टेशन पर रुकी और सब लोग अलसाये-से उतरे तो हरिकिशुन का कहीं पता ही नहीं, सब लोग परेशान कि अब क्या होगा? गाड़ी चली गयी। छोटा-सा स्टेशन, आठ-दस आदमियों का झुण्ड देखकर टिकट माँगनेवाला आ धमका। अब क्या हो? सबने आखिर झूठ का सहारा लिया—'पैसा एक ही आदमी के पास था, उसकी जेब कट गयी, मजबूर होकर हमें बिना टिकट आना पड़ा।'

'सब झूठे हैं! पैसे सबके पास थे। सिनेमा देखकर मौज उड़ाते चले आ रहे हैं। आप की गाड़ी समझ ली है! आखिर मैं भी तो इनके साथ ही बारात से आ रहा हूँ।' सुनकर और

प्रश्न: जरूर अच्छा होगा। आज जो हालत है उससे बहुत अच्छी हालत होगी।

उत्तर: लेकिन यह मान लेने की भूल मत कीजिएगा कि अच्छे लोगों की मिली-जुली सरकार से हमारे सब सवाल हल हो जायेंगे।

प्रश्न: क्यों?

उत्तर: हो सकता है कि ये अच्छे लोग ईमानदार ज्यादा हों, मेहनती हों, जनता का भला चाहनेवाले हों, लेकिन ये अपने मन से अपने दल का पक्षपात न निकाल सकें, या उनका एक मिला-जुला कार्यक्रम न बन सके। उन्हें दूसरी बातें छोड़कर एक मिले-जुले व्यावहारिक कार्यक्रम की ही बात सोचनी चाहिए।

प्रश्न: मगर ऐसा न हुआ तब तो यह सरकार भी टूट जायेगी?

उत्तर: जरूर टूट जायेगी।

प्रश्न: तो फायदा क्या होगा?

उत्तर: यह होगा कि जनता का दिल साफ होगा। उसके अन्दर दल और जाति का जो जहर घुसा हुआ है वह काफी निकल जायगा। जनता समझ जायेगी कि सरकार को, राजनीति को, चुनाव की सारी व्यवस्था और रचना ही सड़ गयी है। उस व्यवस्था को बदलना जरूरी है। दल के दलदल को समाप्त किये बिना गुजर नहीं है। तब अच्छे उम्मीदवार की जगह अपने उम्मीदवार की बात आसानी से समझ में आयेगी।

स्टेशन पर जल रही गैस की रोशनी में यह देखकर सब लोग दंग रह गये कि हरिकिशुन स्टेशन के बाहर खड़ा-खड़ा ललकार रहा है।' तब बात सबकी समझ में आयी। लेकिन तब कर भी क्या सकते थे? पूरे चौबीस घंटे सबको हवालात की हवा खानी पड़ी। उधर हरिकिशुन ने गाँव में जाकर हल्ला कर दिया कि सबको सजा हो जायगी, इसलिए जल्दी जमानत पर छुड़ाने का इंतजाम होना चाहिए। घरों में तहलका मच गया। सबने हरिकिशुन की खुशामद शुरू की। काफी समय तक रोब जमाने के बाद हरिकिशुन ने स्टेशन जाकर कुछ दे-दिलाकर और बीच में ही कुछ अपनी जेब भरकर सबकी छुट्टी करायी। कमाई की कमाई, एहसान का एहसान!

ग्रामदान हो जाने पर सबसे अधिक परेशानी इस बात की थी, कि अगर गाँव में एकता आ जायगी, सब लोग मिल-जुलकर रहने की कोशिश में लगेंगे, तो उसके धंधे का क्या होगा? दस्तखत करने में हरिकिशुन पीछे नहीं था, लेकिन वह तो सिर्फ एक चाल भर थी। वह जानता था कि घुसपैठ करके ही काम निकालना आसान होता है, सीधा आक्रमण करने पर तो सतर्क हो जाने की गुंजाइश रह जाती है।

ग्रामदान के बाद हरिकिशुन ने सबसे पहला काम यह किया कि एक जबरदस्त अफवाह फैला दी—"ग्रामदानी गाँवों को सीधे दिल्ली की सरकार से बहुत-सा रुपया मिलता है। ग्रामदानी गाँव के विकास के लिए सरकार खास तौर पर मदद करती है। और उस सारे काम की ठीकेदारी ग्रामदानी ग्रामसभा के अध्यक्ष को मिलती है। उसमें काफी लाभ होता है।" इस बात का भरोसा दिलाने के लिए हरिकिशुन ने अखबार का हवाला दिया। निरंजन बाबू वकील और घनश्याम बाबू बी० डी० ओ० का नाम लिया।

योजना यह थी हरिकिशुन की, कि इससे कई लोगों के मन में अध्यक्ष बनने का लोभ उपजेगा, और वही लोभ उनकी ऊपर-ऊपर दीखनेवाली एकता को तोड़ देगा।

और हरिकिशुन का अंदाज गलत नहीं निकला। अगली पूर्णिमा को तय हुआ था कि पूरे गाँव की सभा बुलाकर अध्यक्ष चुना जाय, कार्यसमिति बने और आगे के काम पर विचार हो। लेकिन इस बीच हरिकिशुन के द्वारा उड़ायी गयी अफवाह इतनी जोरदार हो गयी थी, कि भीतर-ही-भीतर गाँव में तनाव बढ़ता जा रहा था, बढ़ता ही जा रहा था।

'अब सबकी राय से ग्रामसभा कैसे बनेगी?' यह जबरदस्त शंका पैदा हो गयी थी कइयों के मन में!

[एकता टूटते-टूटते बची। कैसे?…अगले अंक में पढ़ें।]

जाति नहीं, जातिवाद मिटे

प्रश्न : भारत से जातिवाद कभी समाप्त हो नहीं सकता। आपके क्या विचार हैं?

विनोबा : भारत से जातिवाद समाप्त हो सकता है। आज भी हो सकता है। लेकिन जाति समाप्त नहीं हो सकती। जातिवाद यानी मेरी जाति ऊँची दूसरे की जाति नीची, ऐसे जाति का अहंकार। दूसरा अर्थ यह है कि मेरी जाति को दुनिया में बढ़ावा मिलना चाहिए और दूसरी जातिवाले कमजोर रहें। और तीसरा अर्थ कि वोट देना है तो अपनी जाति को दूँगा, दूसरी जाति को नहीं दूँगा, इत्यादि। इन सबका अर्थ जातिवाद है। यह मिट सकता है और मिटना चाहिए और जल्द-से-जल्द मिटना चाहिए। और मुझे लगता है कि वह काफी मिटा है, लेकिन थोड़ा बचा है। यह जो थोड़ा बचा है, वह भी तकलीफ देगा। शरीर में छोटा-सा काँटा गया तो वह भी तकलीफ देता है। इसलिए जो जातिवाद बचा है उसे जल्द-से-जल्द खतम होना चाहिए।

मैंने कहा कि जातियाँ मिट नहीं सकतीं, क्योंकि वह हिन्दुस्तान की विशेषता है। दुनिया में यह और कहीं नहीं है। इसका मतलब यह नहीं कि एक जातिवाला दूसरी जातिवाले से शादी न करे। वह तो पहले भी होता था। जहाँ दो भाई एक ही विचार के होते हैं, भले भिन्न-भिन्न जाति के हों, एक ही विचार के हैं, मांसाहारी नहीं, शाकाहारी हैं, ऐसी शादियाँ हुई हैं। जाति के कारण वंश-परम्परा के कुछ गुण आते हैं। इसलिए पिता-माता का धंधा ही बच्चे करें तो काम बहुत अच्छा हो सकता है और सहज ही सकता।

यह मूलभूत विचार जाति के पीछे पड़ा है। भिन्न-भिन्न जातियों में शादी हुई, हिन्दू-मुसलमान इन दो धर्मों में भी शादी हुई तो हर्ज नहीं, बशर्ते कि दोनों समान विचार रखते हों, दोनों ने मांसाहार छोड़ा हो, दोनों एक परमात्मा की भावना रखते हों, दोनों एक ही विचार को मानते हों। लेकिन अकसर दोनों के संस्कार भिन्न होते हैं। इसलिए ब्राह्मण सोचता होगा कि मेरी लड़की ऐसे घर में जाय जहाँ उसे गोश्त-मोश्त पकाना न पड़े। तो सामान्यतया वह हरिजन के साथ शादी नहीं करायेगा। ब्राह्मण, हरिजन, दोनों के संस्कार समान हों तो शादियाँ होने में पहले भी अड़चन नहीं थी और आज भी नहीं। यह मन इंग्लैंड में भी चला है। वहाँ कुछ लोग अब शाकाहारी हुए हैं। तो सहज ही कोशिश करते हैं कि हमारी लड़की शाकाहारी के घर में जाय।

यह सारा मैंने इतने विस्तार से कहा वह इसलिए कि हमें समझना चाहिए कि जाति-संस्था में कुछ गुण होते हैं।

सत्यं शिवं सुन्दरम् यानी ग्रामदान

प्रश्न : सत्यं शिवं सुन्दरम् का अर्थ समझाने की कृपा करें।

विनोबा : सत्यं शिवं सुन्दरम् की व्याख्या यानी ग्रामदान। सत्य यानी आज जिसकी अत्यन्त आवश्यकता है। यह वस्तुस्थिति है जिसको कि हम छोड़ नहीं सकते। हिन्दुस्तान की गरीबी परम सत्य है। ग्रामदान में सत्य-निष्ठा है। दूसरी बात, ग्रामदान में प्रेम से माँगा जाता है, कम्युनिज्म में सिर काटकर माँगा जाता है। इसलिए वह शिवं है यानी कल्याणकारी है। तीसरी बात सुन्दरम्। हर गाँव सुन्दर तब होगा जब ग्रामदान होगा। हरेक के पास जमीन होगी, गाँव साफ होगा और एक परिवार के समान रहेगा। तो सत्यं शिवं सुन्दरम् यानी ग्रामदान। यह उसका उत्तम विवरण, व्याख्या आज की परिस्थिति में है।

ग्रामदान में क्या करना है? मिल्कियत गाँव की करनी है, भूमिहीनों को जमीन देनी है। लेकिन इतना ही नहीं, घर-घर में से असत्य हटाना है, प्रेम से रहना है और गाँव की कुरूपता मिटानी है, ऐसा सर्वांग सुन्दर ग्रामीण जीवन बनाना है। ऐसा सर्वांग सुन्दर ग्रामीण जीवन बनेगा तो शहरवाले उनके पीछे जायेंगे। आज गाँववाले शहरवालों के पीछे जाते हैं।

प्रश्न : करुणा और दया सम्पन्न लोगों के द्वारा असम्पन्न लोगों को मूर्ख बनाने के साधन हैं, जिससे उनकी क्रान्ति की भावनाएँ दबी रहें। सर्वोदय आन्दोलन भी इसीकी पूर्ति करता है, इसलिए यह पूँजीवाद का हथकण्डा है। ऐसा साम्यवादियों का कहना है। आपका क्या विचार है?

विनोबा : ऐसा साम्यवादियों का कहना था, अभी नहीं है। मेरा साम्यवादियों से काफी परिचय है और उन्होंने मुझे कहा है कि ग्रामदान-आन्दोलन जिस दिशा में जा रहा है उससे उत्तम मार्ग भारत में हो नहीं सकता। क्योंकि कम्युनिज्म की प्रतिक्रिया हो सकती है और इससे जो क्रान्ति होगी, उसकी प्रतिक्रिया नहीं होगी।

साम्यवादियों के शिरोमणि हैं नम्बूदरीपाद, और उन्होंने बाबा को व्यक्तिगत तौर पर कहा है और एलवाल में ग्रामदान के बारे में जो अखिल भारतीय कान्फरेंस हुई थी, उसमें भी कहा है कि मैं इस विचार को अत्यन्त मान्य करता हूँ। और मैं केरल में घूमा था चार-साढ़े चार महीना, तब कम्युनिस्टों ने मुझे साथ दिया था। तो केरल के कम्युनिस्ट पहले भी ऐसा नहीं कहते थे, बल्कि इसके उल्टा कहते थे। कम्युनिज्म में सत्ता सरकार के हाथ में आयेगी, उसके बाद क्रान्ति होगी और उनके हाथ में सत्ता कब आयेगी, इसकी कोई कल्पना वे कर नहीं सकते। इसलिए वे केवल स्वप्न में ही लीन हैं। और हमारा काम ग्रामों में हो रहा है। इसलिए अगर कम्युनिस्ट ऐसा मानते हों, तो वह उनका पुराना विचार है। आज वे ऐसा नहीं मानते।

सेवक की वृत्ति

प्रश्न : कुछ ऐसी संस्थाएँ हैं, जिनमें दूसरे नये विचारों के न ग्रहण करने के लिए दिमागबन्दी, दिलबन्दी के आदेश हों और उन संस्थाओं से सम्बन्धित जन न तो नया साहित्य लें और न बात करने का मौका दें, तो ऐसी स्थिति में क्या करें कि हमारे विचार को प्रवेश मिले?

विनोबा : इस प्रकार से प्रचार 'क्रिश्चियानिटी' करती है। लोगों को अपना साहित्य बेचते हैं, मुफ्त में भी बाँटते हैं। उनको विश्वास है कि लोगों के पास वह पहुँच जायेगा और उस पर आँखें पड़ेंगी तो वह इतना आकर्षक है कि उनका दिल खिंच जायेगा। ऐसा विश्वास होना चाहिए कि दिल बन्द हो, दिमाग बन्द हो, फिर भी अगर आपका साहित्य आकर्षक है तो वह लोगों को आकर्षित करेगा। कलकत्ता के दातारामजी ऐसा करते हैं। वे किताब एकदम बेचते नहीं। पहले पढ़ने को देते हैं और एकाध हफ्ते के बाद उसके पास जाते हैं। बहुत करके तो वह खरीद ही लेता है। सोचता है कि ठीक है, बहुत ज्यादा महँगी तो है नहीं, और अच्छी भी है, तो क्यों वापस दी जाय। और कोई वापस देता है तो वे दुःखी नहीं होते। कहते हैं कि ठीक है, यह दूसरी देख लीजिए। यों करके दूसरी दे देते हैं, और उसका नाम-धाम लिख लेते हैं। कभी-न-कभी कोई किताब तो पसन्द आयेगी ही।

प्रचारक को दूसरे का दिल बन्द है, दिमाग बन्द है, ऐसा मानकर नहीं चलना चाहिए। यह समझकर चलना चाहिए कि हरएक का हृदय और दिमाग खुल ही जायेगा। और पहले कहीं छोटा-सा भी छिद्र हो तो देख लेना और उसमें से प्रवेश करने की कोशिश करना चाहिए। दरवाजा बन्द हो तो भी उसमें छिद्र तो होगा ही। भगवान सूर्यनारायण क्या करता है? दरवाजा बन्द होता है तो खड़ा रहता है। देखता है कि कहीं छोटा-सा छिद्र है, झरोखा है, तो अन्दर घुसता है। वह कितना असामान्य है और हम कितने सामान्य! फिर भी वह नम्र होकर अन्दर आने की कोशिश करता है। इसलिए दरवाजा बन्द हो तो भी वह भाग नहीं जायेगा। वह उस पर हाथ देकर खड़ा रहेगा और दरवाजा खुलते ही अन्दर चला जायेगा। यह सूर्य नारायण की वृत्ति सेवक की वृत्ति होनी चाहिए।

[गाँव के प्रमुख लोगों के साथ की चर्चा से, रामानुजगंज, २१-११-'६८]

रसोई-घर की कुछ खास बातें

हमारे लिए जितनी साग-भाजी की आवश्यकता है, उतनी हमें मिलती नहीं, और जितनी थोड़ी मिलती है उसका हम अपने अज्ञान के कारण पूरा-पूरा उपयोग नहीं कर पाते। अगर नीचे बतायी बातों पर ध्यान दिया जाय तो हमें बिना अतिरिक्त पैसा खर्च किये ज्यादा साग-भाजी मिल जायेगी, और शरीर को पोषण देनेवाले पौष्टिक पदार्थ मिल जायेंगे।

मूली, गाजर, चुकन्दर तथा शलजम, ये ऐसी सब्जियां हैं जिनकी पत्तियों को अकसर फेंक दिया जाता है। दरअसल इनकी पत्तियां जड़ों से ज्यादा पौष्टिक होती हैं, क्योंकि इनमें खनिज तथा विटामिन होते हैं। इनकी पत्तियों से शोरबा, भुजिया या साम्बर जैसे कई व्यंजन बनाये जा सकते हैं। इन्हें बारीक काटकर और आटे में गूंथकर इनकी स्वादिष्ट रोटियां तथा पराठे बनाये जा सकते हैं। मूली की पत्तियों में थोड़ा-सा नमक मिलाकर तथा नीबू निचोड़कर सलाद के रूप में खा सकते हैं। इसी तरह फूलगोभी तथा बन्द गोभी के पत्तों को भी उनके रेशे निकालकर खाने के काम में लाया जा सकता है।

बथुआ तथा चौलाई जैसे सागों को कुछ लोग हेय दृष्टि से देखते हैं। लेकिन दरअसल इन सागों में दूसरी सब्जियों के मुकाबिले पौष्टिक तत्त्व ज्यादा होते हैं।

मटर के छिलकों की बड़ी स्वादिष्ट सब्जी बनती है। इसकी सब्जी बनाने के लिए अन्दर का रेशा छील लेना चाहिए। इसकी सब्जी में आलू डालकर स्वाद बढ़ाया जा सकता है। सब्जियों को हमेशा काटने से पहले धो लेना चाहिए। काटने के बाद धोने से इनके विटामिन नष्ट हो जाते हैं। जहां तक बने उन्हें छिलके-सहित ही पकाना चाहिए। अगर छीलना जरूरी हो तो उनका हल्का छिलका उतारना चाहिए, क्योंकि कुछ सब्जियों के छिलकों में गूदे के जितने ही विटामिन होते हैं।

सब्जियों को अधिक पानी में ज्यादा देर तक पकाने से पौष्टिक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। इसके लिए सब्जियों को जरूरत भर पानी में ढककर पकाना चाहिए। इससे उनके पौष्टिक तत्त्व नष्ट नहीं होंगे। अगर सब्जी उबालनी हो तो उसके लिए पहले पानी को खौलाकर उसमें सब्जी डालनी चाहिए। इससे सब्जी में पौष्टिक तत्त्व बने रहते हैं।

सब्जियां पकाते समय पहले कुछ मिनट के लिए बर्तन को खुला रखें और फिर उसे ढक दें। इससे सब्जियों का अपना रंग, स्वाद तथा उनके पौष्टिक तत्त्व बने रहते हैं।

सब्जियों को भाप देकर पकाना सबसे अच्छा रहता है क्योंकि इस तरीके से उनके पौष्टिक तत्त्व कम मात्रा में नष्ट होते हैं। इसके बाद तन्दूर में पकाना अच्छा रहता है। इस तरीके से पकायी गयी सब्जियों में अधिकांश पौष्टिक तत्त्व बने रहते हैं और इन्हें पचाना भी आसान होता है। इसलिए बच्चों तथा बीमारों के लिए भाप से या तन्दूर में पका भोजन बताया जाता है।

मुलायम तथा कच्ची सब्जियों में पौष्टिक तत्त्व काफी मात्रा में होते हैं। खीरा, गाजर, टमाटर, अंकुर फूटे मूंग, हरी मटर, प्याज, मूली तथा सलाद की पत्तियां कच्ची ही खायी जा सकती हैं।

इसी प्रकार छाछ की भी बेकदरी की जाती है। लेकिन इसमें प्रोटीन तथा खनिज होते हैं जिनसे शरीर बनता है। छाछ में अगर थोड़ा-सा नमक, पिसा जीरा तथा पोदीना मिला लिया जाय तो अच्छा खासा रायता बन जाता है। अगर छाछ बहुत खट्टी है तो इसमें बेसन मिलाकर कढ़ी बनायी जा सकती है। छाछ को इस्तेमाल करने का एक दूसरा तरीका इसे रोटी के आटे में मिला लेना है। छाछ के गूंथे आटे में थोड़ी-सी कोई पत्तीवाली सब्जी काटकर मिला लीजिये और उसके पराठे बनाकर खाइए। वे बहुत स्वादिष्ट लगेंगे।

रोटियों के लिए आटा गूंथते समय अकसर गृहिणियां आटे को छानकर चोकर फेंक देती हैं। लेकिन ऐसा नहीं करना चाहिए। क्योंकि चोकर में विटामिन तथा खनिज काफी मात्रा में होते हैं जो छानने पर बेकार चले जाते हैं।

चावल पकाते समय इन्हें थोड़े पानी में धोइए। धोते समय इन्हें हाथ से रगड़ना नहीं चाहिए। चावलों को जरूरत भर पानी में उबालें। अगर फालतू पानी छानना पड़े तो इसके पानी को फेंकने के बजाय दाल में इस्तेमाल कर लीजिए। इसकी लस्सी भी बनायी जा सकती है। इसे थोड़ा-सा नमक मिलाकर तथा नीबू निचोड़कर पीने के काम भी लाया जा सकता है। पीने में यह स्वादिष्ट लगता है।

इस प्रकार गृहिणियां बहुत-सी चीजों को बेकार समझकर फेंकने के बजाय उनका पूरा सदुपयोग कर सकती हैं। इससे उनको तथा उनके परिवार के सदस्यों को पौष्टिक भोजन मिलेगा।

—अर्चना सूद

("फार्म फीवर" से)

घर की लक्ष्मी !

शाम हो गयी थी। अंधेरा फैल चुका था। गाँव में स्त्रियों का 'खेत की ओर' आना-जाना शुरू हो गया था। मैं रास्ते के पास ही खड़ी थी। देखा कि विमला अपनी ढाई-तीन साल की लड़की को साथ लेकर अकेली जा रही है। 'अब तुम अकेली ही जाती हो ?' - यह पूछने पर विमला खड़ी हो गयी। 'हाँ अकेली ही जाती हूँ, लेकिन अब बच्ची को साथ ले जाना पड़ता है। घर का कोई आदमी मेरे साथ नहीं जाता, और न तो घर में इसे सँभालता ही है। और, घर जल्द न लौटूँ तो अनर्थ होने लगे। क्या करूँ !

विमला गाँव के एक धनी-मानी घर की बहू है। करीब चार-पाँच साल हो गये शादी होकर आयी है। तब से ससुराल में ही है। चार देवरानी-जेठानी हैं; सास, ससुर, देवर, जेठ, सबसे भरा-पूरा परिवार है। मायके में भी परिवार बड़ा है, और सम्पन्न भी है।

'इस बच्ची को बाबूजी के पास छोड़ दिया होता !' इतना सुनते ही विमला कुछ झिझककर बोली, 'मेरे साथ चलिए तो मालूम हो। शायद आपको मालूम नहीं है कि इस घर में मेरी क्या हालत है। जी ऊब गया है। कहाँ चली जाऊँ, कैसे मर जाऊँ! कौन जाने आपने सुना भी हो। मैं अपनी बेवकूफी अपनी जबान से क्या बताऊँ। घर में कई बार झगड़ा हुआ और सास ने मारा। उस समय यही इच्छा हुई कि न अब इनका मुँह देखूँ और न अपना इन्हें दिखाऊँ। एक बार मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगाने ही जा रही थी तब तक पति ने देख लिया। दूसरी बार ऐसा हुआ तो जहर खा लिया, लेकिन उससे भी मौत नहीं आयी। बीमार हो गयी, फिर इलाज हुआ, ठीक हो गयी। अभी थोड़े दिनों की बात है कि एक दिन सास से झगड़ा हो गया। सास ने मारा। जेठ और जेठानी ने मारा। फिर पति से घरवालों ने कहकर मरवाया। उस समय जैसे मैं पागल हो गयी। लड़की लेकर घर से बाहर निकलने लगी। सोचा, रात है कहीं डूब मरूँगी। वह भी न कर पायी। ससुर ने और सास ने मिलकर मुझे पकड़कर खम्भे से बाँध दिया। घंटों बाद खोला। इच्छा नहीं होती कि अब दुनिया में रहूँ, लेकिन क्या करूँ, मर भी नहीं पाती हूँ। बात पूरी करते-करते विमला फूट-फूटकर रो पड़ी।

'तुम्हारे पति कुछ करते नहीं, जब घर के लोग मारते हैं ?'

'पहले तो वह खुद कभी नहीं मारते थे, बल्कि मुझे समझाते थे और खाने-पीने को भी कहते थे। वह कर भी क्या सकते हैं ? उनकी कुछ चल नहीं सकती। अब तो वह भी चुप रह जाते हैं, चाहे जो होता रहे। बैल की तरह कमाना और खाना है, और कुछ नहीं।' विमला ने कातर होकर उत्तर दिया।

'तुम कुछ दिनों के लिए अपने मायके क्यों नहीं चली जाती हो ?' 'मायके में भी मेरे अपने माँ-बाप नहीं हैं। भाई भौजाई हैं। बरसों बीत गये, जब से मैं आयी हूँ, अभी तक कभी बुलाया नहीं। उस दिन जो झगड़ा हुआ उसके दूसरे दिन मेरे भाई को आदमी भेजकर ससुर ने बुलाया। जितनी शिकायत कर सकते थे, उनसे की।'

'तुमसे भाई ने चलने को नहीं कहा ?' रोते रोते बोली : 'भैया ने तो कहा कि तुमको इसी घर में रहना है, चाहे ये लोग तुम्हारा कुछ भी कर डालें। इस घर से मैं तुम्हारी लाश ले जा सकता हूँ, तुमको नहीं। तुम घुट-घुट के मर जाओ, परन्तु हमारी नाक मत कटाओ।' उस दिन से जो कुछ भी होता है चुपचाप सब सह लेती हूँ। किसके भरोसे बोलूँ ? पति को समझ लिया, भाई को भी देख लिया। किसी तरह जिन्दगी के दिन पूरे करना है। इतना ताना-मेहना सुनना पड़ता है कि कलेजा चलनी हो गया है।'

विमला इतना ही कह पायी थी कि दूर कहीं सास की आवाज सुनाई दी। वह कदम बढ़ाकर चली गयी। गाँव की किसी औरत से वह बात नहीं करने पाती। यही एक समय है जब वह घर से बाहर 'खेत की ओर' निकल पाती है और किसीसे कुछ कहकर अपना मन हल्का करती है। जरा देर हुई कि सास निगरानी के लिए निकल पड़ती है।

विमला तो चली गयी, पर मैं सोचती रही कि वह भाई और ससुर की नाक रखने के लिए घुट-घुटकर मर रही है। न वह अपने लिए जी रही है, न अपने लिए मर सकती है। वह अपने में कुछ है ही नहीं। ससुराल या मायका, उसे कहीं ठिकाना नहीं है। मैं अपने ही गाँव में देखती हूँ विमला अकेली नहीं है। इसी को जीते-जी मरना कहते हैं। न जाने कब तक स्त्री को इस घुटन और बेबसी का जीवन जीना पड़ेगा ?

ग्रामदान के आधार पर ग्रामविकास का प्रयास

हमलोग जब पुब्बिलिया गांव के स्कूल में पहुँचे तो स्कूल की छुट्टी का समय हो रहा था। बच्चों को किताब के थैले के साथ फावड़ा ले जाते हुए देखकर मुझे कुछ कुतूहल हुआ। मैंने श्री जिमोनीज से पूछा कि ये बच्चे फावड़ा क्यों लिये हैं ?

जिमोनीज मुस्कुराते हुए बोले : "इस स्कूल का हरेक बच्चा रोज पुस्तकों के साथ फावड़ा भी लाता है, क्योंकि शरीर-श्रम भी पढ़ाई का एक अंग है।" वे पुब्बिलिया गांव के स्कूल के प्रधान शिक्षक हैं।

पुब्बिलिया गांव मे ८७ परिवार रहते हैं, जिनमें ७६ भूमिवान और ११ भूमिहीन हैं। गांव में खेती लायक करीब ६०० एकड़ जमीन है, ५०० जनसंख्या है। ७ माह पहले श्रीलंका-सरकार की तरफ से एक बांध बनाने की योजना बनायी गयी थी। इस योजना के अन्तर्गत तीन गांव, जिनका क्षेत्रफल करोब १२००एकड़ होता है, इस बांध के पेट मे समा जानेवाले थे। बांध बनने पर करीब १५०० एकड़ जमीन दो-तीन बड़े-बड़े जमींदारों की बचती थी; अतः गरीबों को बांध के पेट मे झोंककर जमींदारों को ही लाभ होनेवाला था। वास्तव में बात यह थी कि सिंचाई-विभाग के विशेषज्ञों ने यह योजना जमींदारों के सुझाव पर कोलम्बो में ही बैठकर बना ली थी। उस स्थान पर कोई नहीं गया था।

स्कूल-शिक्षक श्री जिमोनीज को जब यह सारा किस्सा मालूम हुआ तो उन्होंने गांव के लोगों को इकट्ठा किया और कहा कि हम सब मिलकर यदि इस बात को सरकार के पास पहुंचायेंगे तो हमारी बात जरूर सुनी जायेगी। लेकिन हां, हम सबको मिलकर रहना होगा और सबके भले की दृष्टि से काम करना होगा। इसी सिलसिले में उन्होंने गांववालों को सर्वोदय तथा ग्रामदान की बात बतायी, तथा सर्वोदय-केन्द्र की स्थापना की। सर्वोदय-केन्द्र के मार्फत बांध-योजना का विरोध किया गया, क्योंकि वास्तव में कर्मचारियों ने मौके पर आकर योजना नहीं बनायी थी, इसलिए बांध बनाने की वह योजना स्थगित हो गयी। इस प्रकार से गांववालों को अपनी सामूहिक शक्ति का दर्शन हुआ। अब श्री जिमोनीज के मार्गदर्शन मे इस सामूहिक शक्ति ने ग्राम-निर्माण का काम शुरू किया। पहला निर्णय इन लोगों ने यह किया कि गांव की सारी जमीन सर्वोदय की है, अतः जमीन पर भूमिहीनों का भी अधिकार है।

इस संगठित सामूहिक शक्ति के आधार पर गांव में छोटे-छोटे दो तालाबों का निर्माण हुआ। मुख्य सड़क से गांव को जोड़ने के लिए डेढ़ मील की एक सड़क बनायी गयी। गांव में पानी का बहुत अभाव है, अतः कुएं खोदने का आन्दोलन यहां शुरू हो गया है। कुआं अपने श्रम से खोद लेते हैं और जिन लोगों के पास अधिक साधन नहीं हैं, उनको सीमेण्ट आदि की मदद सर्वोदय-केन्द्र की तरफ से दी जाती है। यह निधि एकत्र करने का एक अच्छा तरीका इन लोगों ने निकाला है। ७६ भूमिवान परिवारों ने अपने-अपने नारियल के बगीचे में एक-एक पेड़ सर्वोदय के लिए दे दिया है। जो पेड़ सर्वोदय के लिए निश्चित किया गया है उस पर 'सर्वोदय' लिख दिया है। इस प्रकार ७६ नारियल के वृक्ष सर्वोदय-कार्य के लिए दिये गये हैं। इन ७६ पेड़ों से हर दो माह बाद ४०० से ५०० के बीच नारियल मिलते हैं, अर्थात् साल मे करीब २५० नारियल हुए। एक नारियल की कम-से-कम कीमत यहां २५ पैसे होती है, जिसका अर्थ होता है ६२५ रुपये प्रति साल। करीब ४०० रुपये इन वृक्षों के पत्ते आदि से मिलेगा। अतः साल में एक हजार रुपयों का सामान मिलेगा। इसके अलावा चार एकड़ धान का खेत और ढाई एकड़ सर्वोदय आश्रम बनाने के लिए जमीन दी है। ये लोग इस गांव को ग्रामदान के आधार पर विकसित करना चाहते हैं।

इन लोगों के लिए सर्वोदय का सीधा-सा अर्थ है—सबकी भलाई की दृष्टि से किया गया काम। और, ग्रामदान का अर्थ है—सब मिलकर सोचें और मिलकर काम करें।

सर्वोदय के लिए दिये गये नारियल के वृक्ष तथा जमीन एक प्रकार से इन लोगों के लिए 'ग्रामकोष' का काम करते हैं। अभी तो स्कूल के प्रधान अध्यापक ही सारा संयोजन करते हैं, लेकिन धीरे-धीरे वे गांव के कुछ जवानों को तैयार कर रहे हैं। रोज एक घण्टे के लिए गांव के स्त्री-पुरुष स्कूल के हाल में इकट्ठे होते हैं। यहां लोक-शिक्षण की दृष्टि से विभिन्न विषयों की चर्चा होती है। एक प्रकार से स्कूल ग्राम-विकास का केन्द्र बना हुआ है।

हमलोगों के साथ भी कई विषयों पर चर्चा हुई। मलमूत्र का उपयोग, गोबर-गैस तथा वनस्पति से 'कंपोस्ट' बनाने की सब बातें इनके लिए बिलकुल नयी थीं। लेकिन ग्रामीणों ने काफी दिलचस्पी से चर्चा में भाग लिया। —संग्र

'गाँव की बात' : वार्षिक चन्दा : चार रुपये, एक प्रति : अठारह पैसे।
सम्पादक : राममूर्ति : सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी–१

नव-निर्माण के नये आयाम

समाज के नव-निर्माण के लिए प्रयोगिक आधार पर एक क्षेत्र का सुधार अथवा निर्माण करना आवश्यक है। उसके लिए जिस तरह से हमने वर्धा में सोचा है कि जिले में ५ लाख एकड़ जमीन का 'बंडिंग' हो, जितने नाले हैं, उन पर इंजिन-पम्प बिठाकर एक फसल के बदले दो फसल लेने का सोचा जाय, कुएं गहरे करके उनसे भी सिंचाई का प्रबन्ध किया जाय, नदियों पर छोटी-मोटी लिफ्ट इरिगेशन की योजना भी बने, आधुनिक साधन तथा शास्त्रीय ज्ञान का भी विकास हो, उसी तरह का कार्यक्रम हरएक क्षेत्र के लिए सोचना चाहिए और मुख्यतः वह सरकार के जरिये चलना चाहिए।

इसके साथ साथ सघन खेती तथा उद्योगों के माध्यम से नव निर्माण की दृष्टि रखकर पढ़े लिखे लोगों को ही उसमें हाथ बंटाना चाहिए और एक पदवीधारी व्यक्ति नौकरी करके माहवार ३०० से ४०० रु० की कमाई करता है, उतनी कमाई खेती और लघु उद्योग से एक परिवार में होनी चाहिए। इस तरह की खेती के लिए सुधरे हुए औजारों का उपयोग हो, यान्त्रिक शक्ति का उपयोग किया जाय और आधुनिक विज्ञान का भी पूरा लाभ उठाया जाय। गांव-गांव में या तो किसी एक क्षेत्र में पांच दस युवक परिवारों का इस तरह का संगठन बने, उसके लिए पर्याप्त जमीन उपलब्ध करा दी जाय और उसके साथ-साथ कुछ लघु उद्योग वे पारिवारिक जिम्मेवारी पर चला सकें, जिनसे उन क्षेत्र की आवश्यकता की पूर्ति में मदद होती रहेगी—इस तरह से योजना बनानी चाहिए।

तफ्सील में किसी एक छोटे केन्द्र की योजना बनानी हो तो वह नीचे लिखे अनुसार बन सकती है। अलग-अलग क्षेत्र की दृष्टि से और अलग-अलग परिस्थिति के अनुसार उसमें आवश्यक परिवर्तन स्थानिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किये जा सकते हैं।

(१) यदि ५ या १० इस तरह के परिवार हों तो उनके लिए प्रति परिवार ५ से १० एकड़ तक खेती की जमीन उपलब्ध हो। उसमें ५ एकड़ जमीन सिंचाईवाली हो तो कुएं आदि सहित जमीन के दाम प्रति परिवार १०,००० रु० तक गिने जा सकते हैं।

(२) आज की परिस्थिति में यह सम्भव नहीं है कि सब परिवार एक ही रसोई में खायें। इसलिए हरएक परिवार के लिए मकान आदि की सुविधा करनी होगी। प्रति परिवार एक सादी झोपड़ी के लिए ३००० रु० माने जायें।

(३) इस केन्द्र में कुछ औजार सामुदायिक और कुछ व्यक्तिगत रखने पड़ेंगे। बीज-घर, अनाज स्टोर तथा औजार-घर आदि खेती की चीजों के लिए सामुदायिक मकान बनेगा। इसके लिए भी प्रति परिवार २००० रु० तक खर्च होगा।

(४) यदि ५० एकड़ का कुल रकबा हो और उस पर १० परिवार काम करनेवाले हों तो सामुदायिक और व्यक्तिगत औजार-साधन मिलाकर प्रति परिवार ३००० रु० तक की पूंजी और लगानी होगी।

(५) कम-से-कम एक साल का खर्च चालू पूंजी के रूप में प्रति परिवार २००० रु० तक माना जायेगा।

(६) मोटे तौर पर इस तरह की योजना के लिए प्रति परिवार २०,००० रु० तक लगेंगे।

अपेक्षा यह रहेगी कि ये सारे परिवार अपनी जिम्मेवारी से कुछ व्यक्तिगत और कुछ सामुदायिक खेती करेंगे। बाहर का कोई मजदूर खेती में नहीं लगायेंगे। साथ ही काम का बंटवारा तथा फसल-योजना इस तरह से बनायी जायेगी कि यदि सालभर का हिसाब जोड़ा जाये तो प्रतिदिन ४ घण्टे से ज्यादा काम किसी व्यक्ति को न करना पड़े। एक परिवार में दो व्यक्ति काम करनेवाले रहेंगे और सम्भव है कि दो अवलम्बित रहेंगे।

खेती मिश्र-खेती रहेगी। अनाज की खेती के साथ-साथ दुग्ध-उत्पादन, साग-भाजी तथा कुछ फल-बगीचा की दृष्टि से भी सोचा जायेगा। केन्द्र में दुग्ध-व्यवसाय रहेगा तो कुल व्यक्तियों की आधी संख्या तक मवेशी रखे जायेंगे।

इस तरह के केन्द्र में अन्न के साथ वस्त्र-उद्योग भी चलाया जा सकता है। सुथारी, लुहारी का उद्योग भी चल सकता है। बीज तथा अनाज स्टोर के साथ आसपास के गांवों के सहकार से एक शीतागार (कोल्ड स्टोरेज) भी चलाया जा सकेगा। हर चीज स्वावलम्बन की दृष्टि से ही बनेगी, ऐसा जरूरी नहीं है। कुछ चीजें बेचने के लिए भी बन सकती हैं।

इस तरह के केन्द्र में औसत ४ घण्टे के परिश्रम से और सुधरे हुए औजारों का उपयोग करके सालाना प्रति परिवार ३००० से ४००० रु० तक की आय हो सकेगी।

इस केन्द्र में ऐसी योजना भी बन सकती है, जिसका उपयोग चारों ओर के गांववाले भी कर सकें, जैसे डाक्टर का उपयोग आस-पास के गांव को होता है। यहां के औषधि छिड़कने के यन्त्र आसपास के गांवों के लिए भी काम में आ सकते हैं। उसी तरह अनाज-भण्डार, शीतघर, लुहारी, बढ़ईगिरी, मरम्मत-वर्कशाप आदि का उपयोग सबके लिए हो सकेगा।

गांधी-जन्म शताब्दि के कार्यक्रम में इस तरह के केन्द्र क्षेत्रों में खोले जायें और एक बड़े क्षेत्र की योजना के साथ इनका अनुबन्ध किस तरह से बिठाया जाय, यह भी सोचा जाय। इस तरह के केन्द्र से यह अपेक्षा की जाती है कि यहां पांच साल में जो सिद्ध होगा, उसका लाभ उस क्षेत्र में व्यापक रूप से हो सकेगा, लोग उन चीजों को अपना लेंगे।

उपरोक्त विचार को ध्यान में रखकर जनवरी १९६९ में सेवाग्राम में एक त्रिदिवसीय शिविर करने का सोचा गया है। जो उत्साही नवयुवक परिवार अथवा व्यक्ति इस तरह के प्रयोग में शामिल होने के इच्छुक हों वे नीचे के पते पर पत्र-व्यवहार कर सकते हैं। पत्र व्यवहार का पता : श्री नरेन्द्र भाई, द्वारा—गांधी स्मारक निधि, राजघाट, नयी दिल्ली—१

विनीत,

—अबला सहस्रबुद्धे

पो० सेवाग्राम, जिला वर्धा (महाराष्ट्र)

आन्दोलन के समाचार

राजस्थान का आह्वान !

देश के अन्य भागों की तरह राजस्थान के सर्वोदय-कार्यकर्ता भी स्वराज्य के बाद इन पिछले १५-२० वर्षों में पूज्य विनोबा के मार्गदर्शन में चल रहे सर्वोदय-आन्दोलन के जरिये जनता की शक्ति जाग्रत व संगठित करने का प्रयास करते रहे हैं।

हमारी आजादी की लड़ाई के नायक और राष्ट्र के कर्णधार गांधीजी बराबर हमारा ध्यान इस ओर खींचते रहे कि सच्चे माने मे स्वराज्य तभी हुआ मानना चाहिए, जब देश के लाखो गांवो का विकास हो और सबसे गरीब और दुःखी को उसका लाभ पहले मिले। इस सत्य को पहचानकर गांधीजी ने कल्पना की थी कि स्वतंत्र भारत में गांव देश की प्राथमिक इकाई बनेगा। इस इकाई को और खेती तथा गांवो के उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दी जायेगी और फलस्वरूप हर इकाई अपने में भरी-पूरी, स्वाश्रयी और स्वायत्त, पर एक-दूसरे से सहकार के धागे मे बँधी हुई, और सब मिलकर पूरे देश और अखिल मानवता से अनेक रूपो मे जुड़ी हुई होगी। ग्राम-स्वराज्य का यह बापू का सपना अभी साकार होना बाकी है।

इस ग्राम-स्वराज्य की सिद्धि के लिए ही विनोबाजी ने भूदान-ग्रामदान का सबल कार्यक्रम देश को दिया है और यह सन्तोष क बात है कि कुल मिलाकर यह कार्यक्रम लक्ष्य की ओर बढ़ता जा रहा है। देशभर के ५॥ लाख गांवों में से इस समय तक ७२ हजार गांवो ने ग्रामदान को अपनी स्वीकृति दी है। अकेले बिहार में प्रदेश के कुल गांवो के आधे से अधिक, यानी ३५ हजार गांवो का ग्रामदान हो चुका है, जिसमे गया के उत्तर तट का लगभग २ करोड़ की आबादीवाला सारा उत्तर बिहार और उसके छ. जिले शामिल हैं। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश में दो जिले, तमिलनाड में एक, और मध्यप्रदेश में एक, इस तरह चार अन्य पूरे जिले ग्रामदान मे आ चुके हैं; बिहार के अलावा उत्तर प्रदेश, उत्कल तमिलनाड और महाराष्ट्र के कार्यकर्ताओं ने इन प्रदेशों मे सम्पूर्ण ग्रामदान यानी 'प्रदेशदान' का लक्ष्य घोषित किया है।

राजस्थान मे भी अब तक एक हजार से ऊपर ग्रामदान हो चुके है। पिछले दिनों हमारी शक्ति मुख्यतः शराबबन्दी के महत्वपूर्ण आन्दोलन में लगी रही, जिसका असरकारक परिणाम भी आया है। इससे निश्चय ही कार्यकर्ताओं का आत्म-विश्वास और शक्ति जगी है। अब पूज्य विनोबाजी ने राजस्थान के कार्यकर्ताओं को आवाहन किया है कि वे अपनी पूरी शक्ति से प्रदेश के सम्पूर्ण ग्रामदान के लक्ष्य की सिद्धि में जुट जायें। प्रदेशदान का यह आवाहन हमारे लिए बड़ा प्रेरणादायी और प्रदेश के लिए कल्याणकारी है। शराबबन्दी सत्याग्रह के तुरन्त बाद कार्य-समिति ने भी स्वाभाविकतया यही निश्चय किया था कि अब फिर से हमारी शक्ति शराबबन्दी को सफलता तक ले जाने के साथ-साथ ग्रामदान-ग्राम-स्वराज्य के काम मे लगनी चाहिए। क्योंकि यह निर्विवाद है कि हमारा बुनियादी काम ग्राम-स्वराज्य का है।

दुर्भाग्य से राजस्थान के अधिकांश भागो में भीषण अकाल की छाया पड़ी हुई है। इस विपत्ति मे जनता की राहत और पशुधन की रक्षा के लिए यथाशक्ति सेवा-कार्य हाथ में लेना जरूरी है। दुष्काल के मुख में आये दिन पड़नेवाले राजस्थान के गांवों की जो जन-धन व नीतिधर्म की हानि, और निस्सहायता का दुःखद दृश्य देखने में आता है वह ग्रामस्वराज्य के महत्व और उसकी अपेक्षा की ओर भी स्पष्ट करता है। सामुदायिक भावना के अभाव में गांव दुष्काल के अभिशाप से अपने को बचा नहीं पाते और इस स्थिति मे राहत भी ठीक लोगों के पास नहीं पहुँच पाती। अतः अन्य सकटों की तरह दुष्काल जैसे दैवी सकट के मुकाबले के लिए भी बापू का ग्रामस्वराज्य का विचार ही एकमात्र आधार है।

संघ की कार्य-समिति गांधी-शताब्दी के इस वर्ष में, प्रदेशदान के लिए पूज्य बाबा का यह सन्देश आन्दोलन को गतिशील बनाने के लिए एक शुभ लाभ एवं शुभ संकेत मानती है। इस लक्ष्य की ओर मनोयोग-पूर्वक सारी कार्यकर्ता-शक्ति एकजुट होकर लग जाय, ऐसा अवसर उपस्थित हुआ है। अतः कार्य-समिति बापू के 'ग्राम-स्वराज्य' में विश्वास रखनेवाले सब भाई-बहनों को अब बिना समय खोये, इस कार्य में लगने के लिए आवाहन करती है। हमारा विश्वास है कि ग्रामदान-कार्यक्रम से अकाल-राहत तथा शराबबन्दी के काम मे भी तेजी आयेगी और लक्ष्य प्राप्ति में मदद मिलेगी।

[राजस्थान समग्र सेवा संघ की कार्य-समिति द्वारा १७ अक्तूबर, '६८ को सभा में स्वीकृत प्रस्ताव]

१८ अप्रैल, '६९ : 'भूक्रान्ति-दिवस' तक समूचे छत्तीसगढ़ को ग्रामदान में लाने का निश्चय

अम्बिकापुर। आचार्य विनोबा भावे के आवाहन पर आगामी १८ अप्रैल, '६९ 'भू-क्रान्ति-दिवस' तक छत्तीसगढ़दान का निश्चय किया गया है। यह संकल्प यहाँ १८-१९ नवम्बर को मध्यप्रदेश गांधी-शताब्दी समिति द्वारा आयोजित छत्तीसगढ़ गांधी-शताब्दी सम्मेलन में भाग लेने हेतु एकत्रित कार्यकर्ताओं द्वारा लिया गया है।

छत्तीसगढ़ के संकल्प को पूर्ण करने के लिए जिला शताब्दी-समितियों को अधिक सक्रिय बनाने का सोचा गया है। छत्तीसगढ़ क्षेत्र में सरगुजा, बिलासपुर, रायपुर, रायगढ़, दुर्ग और बस्तर जिले हैं। इन प्रत्येक जिले में अब तक क्रमशः ६७६, ८, ५५, ९, २८, १०७ ग्रामदान मिल चुके हैं। इन छ जिलों में कुल मिलाकर लगभग १६,००० गांव हैं।

यह उल्लेखनीय है कि सबसे पहले सरगुजा जिले को ग्रामदान में लाने का प्रयत्न किया जा रहा है। २६ जनवरी तक पूरा जिला ग्रामदान में लाने की योजना कार्यान्वित की जा रही है। गांधी-स्मारक-निधि और रचनात्मक संस्थाओं के लगभग ६० कार्यकर्ता भाई-बहन अभियान में लगे हुए हैं। शासकीय अधिकारियों का सहयोग उल्लेखनीय है। जिले में इस अभियान का संयोजन संयुक्त रूप से सर्वोदय समिति सरगुजा, विनोबा-स्वागत समिति, छत्तीसगढ़ सभाग्रीय ग्रामदान प्राप्ति समिति और गांधी-शताब्दी समिति कर रही है। (संप्रेस)

दक्षिण-पूर्व एशिया में गांधी-विचार संदेशवाहक टोली

सिंगापुर में टोली पाँच दिन रुकी। वहाँ की भारतीय भाववादी ने ही सबसे अधिक सहयोग टोली को दिया। पर टोली ने स्थानीय भारतीयों के माध्यम से वहाँ के लोगों से मेलजोल बढ़ाया, बातचीत की, साहित्य बेचा, प्रदर्शनी दिखाई और भारतीयों को बतलाया कि गांधी के सन्देश को सिंगापुर के घर-घर में पहुँचाने की जिम्मेदारी अब उनकी है। यह भी स्पष्ट कर दिया कि गांधी का सन्देश वे अपने कर्म और व्यवहार से ही दे सकेंगे। सिंगापुर में टोली का आतिथ्य किया श्री जुमाभाई ने। जुमाभाई रईस बोहरे हैं, लेकिन कृष्णभक्त हैं। हज के साथ तीन धामों की यात्रा कर चुके हैं और चौथे धाम जाना चाहते हैं। गांधीजी के सम्पर्क में रहे हैं और नेहरूजी के निकट भी रहे। सत्तर की उम्र है, पर गांधी के सन्देश को घर-घर पहुँचाने में पच्चीस बरस के युवक से भी अधिक उत्साही और सक्रिय रहे।

सिंगापुर से टोली मलयेशिया गयी। टोली का काम करने का तरीका यह है कि पहले यह दो में बँट जाती है। अग्रिम दल आगे जाकर वातावरण बनाता है और पिछला दल बने हुए खेत में सन्देश के बीज बोता है। मलयेशिया में टोली कुआलालुम्पुर, ईपोह और पिनांग शहरों में घूमी। श्रीसंबन्धन ने हमारा आतिथ्य किया, वे मलयेशिया की सरकार के मंत्री हैं। विनोबा से मिल चुके हैं और उनसे अत्यधिक प्रभावित हैं। उनके परिवार के सहयोग से टोली ने मलयेशिया में अच्छा काम किया—खूब मिलना-जुलना, लोगों को समझाना-समझाना और गांधी का सन्देश फैलाना।

मलयेशिया से टोली गयी थाइलैंड, और थाईलैंड से पहुँची है कम्बोडिया। टोली बुद्ध के देश में है और उन्हीं के भिक्खुओं का रास्ता उसका रास्ता है। अब तक उसने कुल ३५ हजार रुपयों का गांधी-साहित्य लोगों को दिया है। उसके पास किताबें कम पड़ रही हैं। मद्रास से और साहित्य आ रहा है। टोली डेढ़ महीने से काम में लगी है, उसे डेढ़ महीना और लगेगा।

—प्रभास जोशी

मुंगेर के तारापुर प्रखण्डदान की घोषणा का समारोह सम्पन्न

विगत २५ नवम्बर को तारापुर प्रखण्ड-दान की एक विराट सभा तारापुर प्रखण्ड कार्यालय के प्रांगण में श्री वासुकीनाथ राय की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। सभा में श्री भवानी भाई ने प्रखण्डदान के सिलसिले में आज तक के हुए प्रयत्नों की चर्चा की तथा बताया कि निश्चित-स्वरूप प्रखण्ड की ८० प्रतिशत जन संख्या तथा ७५ प्रतिशत भूमि ग्रामदान में सम्मिलित हुई है। सभा ने सर्व-सम्मति से तय किया कि इस प्रखण्ड में ग्राम-दान-पुष्टि का काम तत्काल शुरू किया जाय, जिससे गाँवों में ग्राम-स्वराज्य का आकार रूप प्रकट हो सके।

घर-घर साहित्य पहुँचाने का प्रयास

श्री सत्यपाल सिंह से ग्राम मूजतानुमार कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश) जिला सर्वोदय मंडल गाँव-गाँव में साहित्य पहुँचाने का उल्लेख-नीय प्रयास कर रहा है। पिछले दस प्रयास में रु० १५४१-८५ का साहित्य बिका। 'भूदान-यज्ञ' के ११, 'नयी तालीम' के ८ 'ग्राम-भावना' के ८ तथा अंग्रेजी 'न्यूज लेटर' के ५ ग्राहक बनाये गये।●

पटना में सर्वोदय का मतदाता-शिक्षण-अभियान शुरू

'वोट किसे देना है ?' इस प्रश्न पर विचार करने के लिए ८ दिसम्बर को ३ बजे पटना के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन भवन में श्री जयप्रकाश नारायण के आमंत्रण पर प्रमुख नागरिकों तथा सर्वोदय-कार्यकर्ताओं की एक बैठक हुई। बैठक की अध्यक्षता मुजफ्फरपुर पंचायत परिषद् के अध्यक्ष तथा भूतपूर्व अध्यक्ष, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, ने की। उनके अलावा उपस्थित थे 'सर्च लाइट' और 'आर्यावर्त' के सम्पादक, पटना कालेज के प्रिंसिपल, विश्वविद्यालय के अन्य कई प्रोफेसर तथा नागरिक और कार्यकर्ता। सबसे पहले जयप्रकाशजी ने मतदाता-शिक्षण अभियान की भूमिका प्रस्तुत की। उसके बाद कई लोगों ने अपने विचार प्रकट किये। सबने इस अभियान का स्वागत किया। इस बात पर सभी एक राय थे कि वोट सबसे अच्छे उम्मीदवार को ही देना चाहिए। पार्टियों का [illegible] कोई अर्थ नहीं रह गया है। [illegible] और सम्प्रदाय आदि की तो बात ही नहीं [illegible] जा सकती।

अन्त में एक समिति नियुक्त हुई जो इस अभियान को व्यापक पैमाने पर चलाने का कार्यक्रम बनायेगी। इस तरह की समितियाँ जिला तथा ब्लाक स्तर तक बनेंगी। •

गांधी-शताब्दी वर्ष १९६८-६९

गांधी-विनोबा के ग्राम स्वराज्य का संदेश गांव-गांव, घर-घर पहुँचाने के लिए निम्न सामग्री का उपयोग कीजिए :

पुस्तकें—

१. जनता का राज : लेखक—श्री मनमोहन चौधरी, पृष्ठ ६२, मूल्य २५ पैसे
२. Freedom for the Masses : लेखक—श्री मनमोहन चौधरी 'जनता का राज' का अनुवाद, पृष्ठ ७६, मूल्य २५ पैसे
३. शांति-सेना परिचय : लेखक—श्री नारायण देसाई, पृष्ठ ११८, मूल्य ७५ पैसे
४. हत्या एक आकार की : लेखक—श्री ललित सहगल, पृष्ठ ६६, मूल्य ३ रु० ५० पैसे
५. A Great Society of Small Communities : ले० सुगत दासगुप्त, पृष्ठ ७८, मूल्य १० रु०

फोल्डर—

१. गांधी : गांव और ग्रामदान
२. गांधी : गांव और शांति
३. ग्रामदान : क्यों और कैसे ?
४. ग्रामदान : क्या और क्यों ?
५. ग्रामदान के बाद क्या ?
६. ग्रामसभा का गठन और कार्य
७. गांव-गांव में खादी
८. सुलभ ग्रामदान
९. देखिए : ग्रामदान के कुछ नमूने
१०. गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम

पोस्टर—

१. गांधी ने चाहा था : सच्चा स्वराज्य
२. गांधी ने चाहा था : ग्रामस्वराज्य
३. गांधी ने चाहा था : अहिंसक समाज
४. ग्रामदान से क्या होगा ?
५. गांधी जन्म-शताब्दी और सर्वोदय-पर्व

प्रदेश के सर्वोदय संगठनों और गांधी जन्म शताब्दी समितियों से सम्पर्क करके यह सामग्री हजारों-लाखों की तादाद में प्रकाशित, वितरित कराने का प्रयास करना चाहिए।

शताब्दी-समिति की गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति, दुर्गलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर-३ (राजस्थान) द्वारा प्रसारित।

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में १० रु०, या १४ शिलिंग या २ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : १२

सोमवार २३ दिसम्बर, '६८

अन्य पृष्ठों पर

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

ईसा : मेरी दृष्टि में

मैंने अपनी युवावस्था से ही धर्मग्रन्थों का मूल्य उनकी नैतिक शिक्षा के आधार पर आँकने की कला सीख ली है। उनमें वर्णित चमत्कारों में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है। ईसा के विषय में जिन चमत्कारों की बातें कही गयी हैं, उनके कारण मैं बाइबिल के ऐसे किसी उपदेश को नहीं मान सकता, जो सार्वभौम नीतिमत्ता के अनुरूप न हो। किसी-न-किसी तरह मेरे लिए, और मैं समझता हूँ कि मेरी ही तरह लाखों लोगों के लिए भी, धर्म-शिक्षकों के शब्द एक जीती-जागती शक्ति रखते हैं। यह शक्ति साधारण मनुष्यों द्वारा कहे हुए वैसे ही शब्दों में नहीं होती।

ईसा मेरी दृष्टि में दूसरे धर्म शिक्षकों के समान संसार के एक महान् धर्म-शिक्षक हैं। अपने समय के लोगों के लिए वे निश्चय ही 'एकमात्र ईश्वर-प्रसूत पुत्र' थे। परन्तु उन लोगों का जो विश्वास था वही मेरा भी हो, यह जरूरी नहीं। मेरे जीवन पर ईसा का इसलिए कम प्रभाव नहीं है कि मैं उन्हें अनेक ईश्वर-प्रसूत पुत्रों में से एक मानता हूँ। 'प्रसूत' विशेषण का मेरे लिए उसके शब्दार्थ आध्यात्मिक जन्म की अपेक्षा कहीं गहरा और सम्भवतः विशाल अर्थ है। अपने समय में ईसा ईश्वर के सबसे अधिक निकट थे।

जो लोग उनकी शिक्षाओं को स्वीकार करते थे, उनके पापों के निवारण के लिए ईसा ने अपने को निर्दोष बनाकर उनके सामने अपना उदाहरण रखा था। लेकिन ऐसे लोगों के लिए इस उदाहरण का कोई मूल्य नहीं, जिन्होंने अपने जीवन को उधार करने का कभी कष्ट नहीं किया। किन्तु जैसे सोने को तपाने से उसका मूल दोष दूर हो जाता है, उसी प्रकार इस दिशा में नये सिरे से कोशिश की जाय तो मूल दोष भी मिट सकता है।

मैं अपने अनेक पापों को स्पष्ट-से स्पष्ट रूप में स्वीकार कर चुका हूँ। लेकिन मैं हमेशा अपने कन्धों पर उनका बोझ लादे नहीं फिरता। यदि मैं ईश्वर की ओर जा रहा हूँ, और मुझे लगता है कि मैं उस ओर जा रहा हूँ, तो मैं सुरक्षित हूँ। क्योंकि मैं उसकी परिस्थिति के प्रखर प्रकाश का अनुभव करता हूँ। मैं यह जानता हूँ कि आत्मसुधार के लिए यदि मैं केवल आत्म-दमन, उपवास और प्रार्थना पर ही निर्भर रहूँ तो कोई लाभ न होगा। लेकिन अगर ये बातें अपने सिरजनहार की गोद में अपना चिन्ताकुल सिर रखने की मनुष्य की आकांक्षा को व्यक्त करती हैं—और मुझे आशा है कि ये इसी आकांक्षा को व्यक्त करती हैं—तो इनका अपार मूल्य है।

—मो० क० गांधी

"लाइफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गांधी", पृष्ठ ८३, खण्ड : ४

सामयिक चर्चा

अशान्ति के इस मौसम में...

हमारे देश का यह दुर्भाग्य है कि धर्म-निरपेक्षता का अत्यधिक आडम्बर करनेवाले राजनीतिक दल अपने अत्युत्साह में अशान्ति उत्पन्न करने का रवैया ग्रहण किये हुए हैं। सच पूछा जाय तो ये दल जान-बूझकर ऐसा करते हैं। वे शायद सोचते हैं कि साम्प्रदायिकता का नाश करने का पवित्र कर्तव्य वे पूरा कर रहे हैं, किन्तु वास्तविकता यह है कि ये तथाकथित असाम्प्रदायिक दल ही साम्प्रदायिकता फैला रहे हैं।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में अशान्ति जिन कारणों से हुई, वह सर्वविदित ही है। कटक, कलकत्ता और केरल में घटित घटनाएँ, विश्वविद्यालयों में उपद्रव और अराजकता, कहीं कुर्सी की लड़ाई, कहीं महानिर्वाचन के बाद बनी सरकारों की उठा-पटक, इन सबके परिप्रेक्ष्य में भारत में लोकतंत्र के स्थायित्व की आशा अगर धूमिल लगने लगे, तो आश्चर्य की बात नहीं है।

वाराणसी और इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्रों की अपनी कुछ माँगें हैं। कुछ माँगें सार्थक हैं और कुछ 'डमी' हैं। लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्रों को भी अपना 'सीजन' खाली नहीं जाने देना था, इसलिए विश्वविद्यालय एवं सम्बद्ध महाविद्यालयों के छात्रों ने गत वर्ष हिन्दी-आन्दोलन के समय छात्रों पर चलाये गये मुकदमों की वापसी की माँग लेकर २६ नवम्बर को हड़ताल की घोषणा कर दी। पुलिस-अधिकारियों को छात्रों की शक्ति का भान गत वर्ष ही हो गया था, अतएव जुलूस को विश्वविद्यालय के मुख्य द्वार के पास ही गोमती पर बने मोतीमहल पुल पर रोक दिया और हड़ताल कराने की चेष्टा में अग्रणी लोगों को गिरफ्तार कर लिया। 'छात्र' दोषी हो सकते हैं, क्योंकि उनको शिक्षा देनेवाले लोग स्वयं अपने में साफ नहीं हैं। जब शिक्षक ही हड़ताल, प्रदर्शन, विद्रोह का बिगुल बजा रहे हैं तो छात्र देखादेखी के अभ्यासी होते ही हैं। फिर लोकसभा और विधान-सभाओं में होनेवाली घटनाओं से भी तो उनको प्रेरणा मिलती है। इसके बावजूद भी शान्ति-स्थापना की जिम्मेदारी जिन पर है, वे कम दोषी नहीं हैं। उनमें चारित्र्य और साहस का अभाव है। अपनी कायरता छिपाने के लिए ही डण्डे का सहारा लेना पड़ता है।

छात्रों का एक दल ज्ञापन लेकर राजभवन जाना चाहता था, ताकि राज्यपाल को अपनी बात बता सके, लेकिन अधिकारियों ने धारा १४४ की घोषणा कर दी। ऐसे अवसरों पर जैसा कि प्रायः होता है, और होने के लिए पूर्वतैयारी भी की जाती है, ढेलेबाजी शुरू हो गयी। अन्धाधुन्ध फेंके जा रहे ढेलों को अपने-पराये का विवेक नहीं रहता, इसलिए कुछ लोग घायल भी हुए। उपकुलपति ने सारी परिस्थिति पर काबू रखने की भरसक कोशिश की, किन्तु लखनऊ जैसी नगरी में कोई भी उपद्रव, जुलूस या सभा बिना राजनीतिक आधार के हो जाये ऐसा तो अब तक देखा नहीं गया।

माध्यमिक शिक्षक-बन्धु सचिवालय के समक्ष अपनी माँगों को लेकर प्रतीक-अनशन कर रहे हैं। शिक्षक और छात्रों के एकसाथ बगावत करने पर भी सरकार निराश नहीं है। शिक्षक पढ़ाना नहीं चाहते, छात्र पढ़ना नहीं चाहते। अब क्या हो? क्या लौह-टोपधारी पढ़ेंगे भी और पढ़ायेंगे भी? इन लोगों का काम तो रक्षा करना है वह भी नहीं कर सके। फलस्वरूप रोडवेज की बसें, बिजली के खम्भे, और टेलीफोन के यन्त्र क्षतिग्रस्त हो गये। सरकार ने जब अपना कोई वश चलता नहीं देखा तो प्रदेश की सभी शिक्षा-संस्थाओं में 'आवश्यक सेवा अधिनियम' लागू करके ६ महीने तक हड़ताल पर प्रतिबन्ध घोषित कर दिया। विश्वविद्यालय के अहाते में पुलिस ने प्रवेश किया और कई कालेजों पर कब्जा कर लिया है। लखनऊ के छात्रों की सहानुभूति में कानपुर एवं अन्य नगरों के छात्रों ने भी छिटफुट तौर पर प्रदर्शन किये। कानपुर में अशान्ति की रोकथाम की दृष्टि से सभी शिक्षा-संस्थाएँ बन्द कर दी गयीं।

वाराणसी में अभी जो घटनाएँ घटी वे तो और भी शर्मनाक तथा खेदपूर्ण हैं। विश्वविद्यालय के अहाते में उपद्रव सीमातिक्रमण कर गया और पथराव के साथ ही ५ मोटरें जला दी गयीं। परिस्थिति पर काबू पाने के लिए जिलाधीश ने धारा १४४ की शरण ली। लेकिन छात्रों ने इसका उल्लंघन किया; जिसकी सजा उन्हें भुगतनी पड़ी।

वाराणसी के छात्रालयों में घुसकर पुलिस ने बड़ी बेरहमी से पिटाई की और कहा यह जाता है कि जहाँ जो कुछ भी हाथ लगा, वह भी अपने साथ लेती गयी। यहाँ के अस्पतालों में घायलों की दशा देखकर मन में एक दुःखपूर्ण विक्षोभ पैदा होता है।

अब विश्वविद्यालय अनिश्चित काल के लिए बन्द किया गया है, और शिक्षामंत्री की संस्तुति पर राष्ट्रपति जाकिर हुसेन ने विजिटर की हैसियत से जाँच-आयोग नियुक्त करने का आदेश दिया है।

उत्तर प्रदेश के शैक्षिक वातावरण में जो व्यवधान आया है उसको दूर करने के लिए शिक्षा-पद्धति, राजनीति, सामाजिक परिस्थितियों और भावी जीवन की अनिश्चितता के चौखटे को बदलना बहुत लाजिमी हो गया है। केवल भर्त्सना करने से होनेवाले सुधार का जमाना नहीं रहा, अपितु भविष्य के लिए छात्रों, शिक्षकों और अधिकारियों को यह प्रतीति हृदयंगम करनी होगी कि चाहे जिन परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित करना पड़े, ऐसी दुःखद घटनाएँ पुनः घटित न होने दें।

लखनऊ की परिस्थिति का विश्लेषण यह बताता है कि छात्रों में दो भयंकर गुट बन गये हैं। दोनों को राजनीतिक संरक्षण प्राप्त है। तीसरा दल पढ़ाई चाहता है; किन्तु उसे पढ़ने का अवसर नहीं मिल पाता। मध्यावधि चुनाव की तैयारी कर रहे दलों की योजना ही यह है कि अराजकता की सृष्टि छात्रों के माध्यम से हो। ईंट, पत्थर और गोली चलाता है कोई और, किन्तु बदनाम और बरबाद होते हैं नवयुवक छात्र। यह सचाई छात्रों की समझ में आ जानी चाहिए। यही समय है कि 'आचार्यकुल' के सदस्य, सामाजिक कार्यकर्ता और देशहित सोचनेवाले लोग आगे आयें और छात्रों का सही मार्गदर्शन करें।

—कपिल अवस्थी

बड़े बनाम लड़के

बड़े लोग लड़कों के लिए समस्या बन गये हैं, और लड़के बड़ों के लिए। दोनों पीढ़ियों के बीच की खाई दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। ऐसा लगता है जैसे दूसरी सब समस्याएँ इस एक समस्या में समा जायेंगी।

खाई क्यों बढ़ रही है? कहने को कहा जा सकता है कि जमाना खराब है, उपद्रवों के पीछे कम्युनिस्टों का हाथ है, सरकार कमजोर है, लड़के बदमाश हो गये हैं, आदि। ये बातें कहकर अकसर बड़ों की ओर से खाई को पाटने की कोशिश होती है। इस भावना से लड़कों को परम्परा और मर्यादा के आदर्श बताये जाते हैं, दंड का भय दिखाया जाता है, भविष्य की याद दिलायी जाती है। लेकिन इन बातों का लड़कों पर कोई असर नहीं दिखाई देता। *उनकी ओर से खाई को पाटने की जल्दी नहीं है।* उनकी शायद कोशिश यही है कि खाई ज्यादा-से-ज्यादा चौड़ी दिखाई दे, और वे सिद्ध कर सकें कि बड़ों की बनायी हुई यह दुनिया और उसका आचार, धर्म, कानून, और सरकार आदि सब थोथे हैं, निकम्मे हैं, और वे उन्हें बेखटके तोड़ सकते हैं। सबसे ऊपर वे एक बात कहते हैं : 'जिसे बनाने में हमारा हाथ नहीं, उसे मानने की हमारी जिम्मेदारी नहीं।' बड़ों के हर आदेश, उपदेश, आचार या मर्यादा के प्रति लड़कों का यही रुख है।

आज देश के विद्यालयों में जो कुछ हो रहा है उसके कारणों पर विभिन्न दृष्टियों से विचार करने की कोशिश की जा रही है। समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के प्रकाश में इन 'उपद्रवों' की छानबीन करने की भरपूर कोशिश है, और इसमें शक नहीं कि बहुत-सी ऐसी बातें सामने आयी हैं जिनकी ओर पहले विशेष ध्यान नहीं जाता था। इन कोशिशों में जो सबसे बड़ी बात सामने आयी है वह यह है कि जिसे हम कोरी 'शरारत' मान रहे हैं, वह सिर्फ शरारत नहीं है कुछ और भी है। ये शरारतें रोग के लक्षण हैं। रोगी पूरा समाज है। रोग से न बड़े मुक्त हैं, न लड़के। अगर बड़े मुक्त होते तो लड़के शायद रोगी होते ही न। जो कुछ भी हो, अब लड़के बड़ों से औषध लेने को तैयार नहीं हैं। बड़ों के पास औषधि है भी क्या? क्या है उनकी अपच्छी राजनीति में, मुनाफाखोरी की अर्थनीति में, बड़ी-बड़ी शिक्षा में, उनके निकम्मे धर्म में, विवाह में? जब बड़ी-बड़ी डिग्रियों को लेने के बाद भी एक रोटी का ठिकाना नहीं रहा, तो बड़ों की दुनिया में लड़कों के लायक रह क्या गया? आज की जिन्दगी में तकलीफ बड़ों को भी है और वे नया समाज बनाने की बात कहते भी हैं, लेकिन बनाते नहीं, उधर लड़के ऊब और घबराहट में न चालू समाज को मान पा रहे हैं, और न अपनी मर्जी का नया बना पा रहे हैं। एक ओर से जिद और दूसरी ओर से शरारत का बोलबाला है। नतीजा यह है कि सारे समाज का जीवन अशान्ति और बर्बरता से भरता जा रहा है। न पुरानी परंपरा काम आ रही है, न नया कानून। न विश्वविद्यालय का प्रॉक्टर कुछ कर पा रहा है, न सरकार की पुलिस!

आज तक हम यह समझते थे कि समाज के पास एक रामबाण औषधि है जो हर रोग का अचूक उपाय है। वह है शासन (अथारिटी)—परिवार में पिता और पति का शासन, खेत और कारखाने में मालिक का शासन, सरकार में अफसर का शासन, धर्म में पुरोहित का शासन, और शिक्षण में गुरु का शासन। इस शासन के डंडे से अब तक हम स्त्री, युवक, श्रमिक, हर एक को दुरुस्त रखते थे। इसी आधार पर हमने जीवन को टिका रखा था। इसीको हम सभ्यता समझते थे। लेकिन अब विज्ञान और लोकतन्त्र के इस जमाने में यह सभ्यता 'अधिकार की सत्ता' साबित हो रही है, और उसे स्त्री, युवक और श्रमिक, तीनों अस्वीकार कर रहे हैं।

यह अस्वीकृति सबसे अधिक विश्वविद्यालयों में क्यों प्रकट हो रही है? *क्योंकि वहाँ अधिकारवाद की अज्ञान को ज्ञान और संस्कृति का पर्दा कहकर सिखाया जा रहा है।* जहाँ आडम्बर जितना ही बड़ा है, वहाँ विद्रोह उतना ही गहरा होगा, और अब तो नक्सालबाड़ी और विश्वविद्यालय, दोनों एक लाइन में आ गये हैं। भूमिहीन मजदूर और भविष्यहीन युवक, दोनों नये विद्रोह के दो छोर हैं।

शरारत कह-कहकर हम समस्या से आँखें मूँदकर कब तक बैठे रहेंगे? पुलिस का डंडा सिर तोड़ सकता है, लेकिन किसी समस्या को नहीं हल कर सकता। हर टूटे सिर, और हर जली बस में यही संकेत है कि क्या बड़े और क्या लड़के, बुद्धि की कमी दोनों में है। आग और डंडे से बुद्धि का काम लेने की कोशिश की जा रही है। बुद्धि का क्या विकल्प है? एक ही विकल्प है—आत्महत्या, वही हो रही है।

अधिकारवाद (अथारिटेरियनिज्म) से यह समस्या हल नहीं होगी। कोई भी समस्या हल नहीं होगी। लेकिन जो दो तत्त्व सामने दिखाई दे रहे हैं यानी सरकार की पुलिस और दल के नेता, वे दोनों एक ही अधिकारवाद के दो स्वरूप हैं। पुलिस के लिए लड़के लड़के नहीं हैं, अपराधी हैं; नेता के लिए अगर वे दल के सदस्य नहीं हैं तो कुछ नहीं हैं। इसीलिए लड़के लड़के नहीं रह गये हैं। वे कांग्रेसी, संघी, समाजवादी आदि बन गये हैं। यह राजनीति के पर्दों की करतूत है। जो नेता विद्यालय में लड़कों को उभाड़ते हैं, वे ही विधानसभा और संसद में लड़कों के भविष्य और देश के भाग्य पर आँसू बहाते हैं। निकम्मा अधिकारवाद दम्भ का रूप लेकर समाज को छलने की कोशिश कर रहा है।

अधिकारवाद की पोथी हम चाहे जितनी पढ़ें, हमें समस्या का हल नहीं मिलेगा। अधिकारवाद की नींव पर खड़े आज के समाज में समस्याओं का हल है ही नहीं। इसीलिए तो जब नेता और लड़के, दोनों उपद्रव पर उतारू हैं, तो विनोबा इन दोनों से अलग समाज

को बुनियादें बदलने में लगे हुए हैं। लेकिन उस ओर दोनों में से किसीकी नजर नहीं है। दोनों की आंख में एक ही रोग है—पीलिया।

लेकिन हमारे ये विद्यालय अपनी बुनियादें बदलने के लिए क्यों बैठे रहें ? शायद विद्यालय के शासक और शिक्षक अपनी जगह से हिलना नहीं चाहते। इसलिए अब विद्यालयों को हिलाने का काम भी बाहर के नागरिकों को ही करना पड़ेगा—ऐसे नागरिक जो दिमागी हठवादिता और राजनैतिक अवसरवादिता, दोनों से मुक्त हों। उनके अभिक्रम से हर विद्यालय के शिक्षक, शिक्षार्थी, और अभिभावक, तीनों इकट्ठा बैठ सकते हैं, और मुक्त मन से समस्याओं का समाधान ढूंढ सकते हैं—कम-से-कम उन समस्याओं का जिनका सम्बन्ध उनके अपने विद्यालय से है। बड़ों और लड़कों की सम्मिलित बुद्धि कहीं एक जगह प्रकट तो हो !

★

आगामी आकर्षण

हिंसा की फैलती लपटें और गांधी की याद

• बापू को गये २१ साल पूरे हो रहे हैं ! इन २१ सालों में कहने-सुनने लायक बहुत सारे परिवर्तन देश और दुनिया की परिस्थितियों में हुए हैं, लेकिन इन सारे परिवर्तनों को एक ओर रख दें तो साम्प्रदायिक हिंसा की उग्र लपटों का जो दर्शन १९४६-४७-४८ में हुआ था, ऐसा लगता है कि बहुत थोड़े से परिवर्तित रूप में हिंसा की वही लपटें पुनर्जीवित हो उठी हैं। ऐसे वक्त में गांधी की याद जन-हृदय में स्वाभाविक हो ही उठती है। लोग कह पड़ते हैं कि गांधीजी होते तो ऐसा नहीं हो पाता !

जन-हृदय की यह अपेक्षा क्या स्वाभाविक मानी जायगी, जब कि हम जानते हैं कि खुद गांधी को इस साम्प्रदायिक हिंसा का शिकार होना पड़ा था ? जन-हृदय की इस आकांक्षा का आधार क्या है ? क्या आज के सन्दर्भ में गांधी की कोई सार्थकता नजर आती है ? अगर हां, तो गांधी की शक्ति किस रूप में और किस माध्यम से आज की समस्याओं का निराकरण प्रस्तुत कर सकती है।

• इस समय देश में कुछ ऐसी शक्तियां उभर रही हैं, जो गांधी को निरर्थक साबित करना चाहती हैं। एक ओर राष्ट्र के नाम पर, दूसरी ओर क्रांति के नाम पर जनता को संघर्ष के लिए संगठित कर रही हैं। इन संघर्षों में बुनियादी शक्ति हिंसा की दिखाई देती है। इस सन्दर्भ में गांधी-विचार के प्रति निष्ठावान् लोगों को क्या करना चाहिए ?

• सारी दुनिया में दलीय राजनीति के आधार पर विकसित लोकतांत्रिक सत्ता और फौजी तथा साम्यवादी तानाशाही नयी पीढ़ी को समाधान नहीं दे पा रही है। हर जगह युवजनों में हर प्रकार की सत्ता के खिलाफ एक विद्रोही चेतना की लहर-सी दौड़ रही है। नयी पीढ़ी की यह विकलता क्या मानवता के लिए कोई शुभ संकेत है ? क्या इस सन्दर्भ में गांधी-विचार से दिशा-निर्देश की अपेक्षा की जा सकती है ? गांधी-विचार का कौनसा पहलू इस समय नयी पीढ़ी के लिए समाधानकारी साबित हो सकता है ?

• आपने सन् '४७ के साम्प्रदायिक संघर्षों को करीब से देखा-समझा था। गांधीजी की उस समय की चिन्तन-धारा से आपका प्रत्यक्ष सम्पर्क भी रहा। क्या आप वर्तमान सन्दर्भ में कुछ सुझाव दे सकते हैं कि अशान्ति-निवारण के काम की रूपरेखा इन दिनों क्या होनी चाहिए ?

• २१ सालों की भारत की दलीय राजनीति और लोकतांत्रिक रचना को आपने बहुत ही निकट से देखा समझा है। क्या आप मानते हैं कि ये सारे प्रयास इस अर्थ में विफल रहे हैं कि देश की किसी समस्या का कोई स्थायी समाधान नहीं निकला है ? आपकी दृष्टि से इसके बुनियादी कारण क्या हैं ? क्या गांधीजी के आखिरी वसीयतनामे पर कांग्रेस ने अमल किया होता, तो परिस्थिति कुछ भिन्न होती ? अब, आज क्या हो सकता है ?

• स्वराज्य-प्राप्ति के लिए गांधीजी ने जनता की शक्ति देश में पैदा की थी। शायद अंग्रेजी दासता से मुक्ति के लिए जन शक्ति से भिन्न किसी शक्ति को इतनी जल्दी और आसानी से सफलता नहीं मिलती।

आज वही जन-शक्ति बिखरी हुई है, और आये दिन उसका हिंसात्मक उभाड होता रहता है। क्या देश में समग्र और बुनियादी परिवर्तन के लिए जन-शक्ति का संगठन सम्भव है ? किन आधारों पर उसे परिवर्तन के लिए जागरूक होकर एक दिशा की ओर बढ़नेवाली शक्ति के रूप में मोड़ा जा सकता है ?

• कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि इस देश में व्याप्त जड़ता, निष्क्रियता और प्रमाद को तभी खत्म किया जा सकता है, जब जगह-जगह 'नक्सलवादी संघर्ष' हों। क्या आप मानते हैं कि इन घटनाओं से यथास्थिति के परिवर्तन के लिए कुछ गति और शक्ति बनेगी ? या प्रतिक्रियावादी शक्तियां ही प्रबलतर होंगी ?

• एक ओर गांधी-जन्म-शताब्दी के समारोह, दूसरी ओर बढ़ती हुई हिंसा, क्या इन दोनों का कोई ऐतिहासिक सन्दर्भ और भविष्य है ?

• इस युग की क्रान्ति की प्रेरणा क्या हो सकती है, शक्ति का स्रोत क्या हो सकता है और माध्यम कौनसा हो सकता है, क्या इस पर कुछ प्रकाश डालेंगे ?

• भारत की वर्तमान स्थिति को देखते हुए यहां की क्रान्ति का अर्थ क्या हो सकता है ?

३० जनवरी '६९ के अवसर पर प्रकाश्य 'भूदान-यज्ञ' विशेषांक में उक्त प्रश्नों पर गांधी-युग की कुछ विशिष्ट विभूतियों की प्रतिक्रियाएं पढ़ने के लिए अपनी प्रति सुरक्षित करा लें।

—सम्पादक

दो और ईश्वर का ईश्वर को दे दो", तब उसका अभिप्राय यही रहा होगा कि सीजर यानी शरीर या भौतिक तत्त्व; क्योंकि उन दिनों प्रजा को सुखी रखने का दायित्व राजा का "धर्म" माना जाता था, और ईश्वर यानी आत्मा। क्योंकि दूसरे एक सन्दर्भ में उसने कहा है कि "जब मनुष्य आत्मा को खोकर सारी दुनिया भी कमा लेता है, तो क्या कमाता है ?" आत्मा की माँग क्या है, यह हम सब जानते हैं। वस्तुतः आत्मा प्रेमरूप है। "रसो वै सः"—मनुष्य जिस प्रकार रोटी के बिना जी नहीं सकता, उसी प्रकार प्रेम के बिना भी वह जी नहीं सकता। जैसे व्यापकता आत्मा का गुण है, वैसे ही प्रेम भी व्यापक है। जो व्यक्ति प्रेम पा नहीं सकता या दे नहीं सकता, वह संसार में जी नहीं सकता। इस सत्य का जीवन्त और व्यापक प्रतीक मानव-परिवार है। मानवीय सम्बन्धों में प्रेम का स्वरूप सेवा और सहकार है। जिस व्यक्ति में प्रेम नहीं है, वह अनन्त सम्पत्ति के बावजूद दरिद्र है; क्योंकि आध्यात्मिक सम्पन्नता तो सेवा और सहकार-रूप प्रेम में है। यही कारण है कि आज पश्चिम में ऐश्वर्य के बावजूद दरिद्रता की अजीब हालत दिखाई दे रही है।

हमारे पूर्वज ठेठ दूसरे सिरे पर पहुँच गये थे। उन्होंने सोचा कि आध्यात्मिक समृद्धि भौतिक दारिद्र्य में प्राप्त की जा सकती है। इसीलिए उन्होंने दारिद्र्य को एक सद्गुण माना, स्वर्गद्वार समझा। परन्तु शरीर की अवहेलना भी आत्मा के निषेध जितनी ही असत्योपासना थी। इस प्रकार जीवन की जो उपेक्षा की गयी, वही आज बदला ले रही है। सादगी और गरीबी बिलकुल भिन्न-भिन्न चीजें हैं। गरीबी का व्रत ले लेने मात्र से सादगी आ ही जाती हो, सो बात नहीं है। सादगी तो आत्मा की सुगन्धि है, सादगी अनासक्ति है, गरीबी नहीं। आत्मा व्यापक है, इसीलिए उसमें सादगी है। जीवन का निषेध करने के परिणामस्वरूप पौर्वात्य समाज में भौतिक तथा आत्मिक, दोनों क्षेत्रों में दारिद्र्य समा गया। आत्मा की तरह शरीर की उपेक्षा करना भी मानव के वास्तविक सुख और सन्तोष के लिए घातक है। वास्तविक सद्गुण न अमीरी है, न गरीबी ही। जीवन का स्वीकार करने का अर्थ है आत्मा और शरीर, दोनों का स्वीकार और दोनों की आवश्यकताओं की पूर्ति। सुख और सन्तोष का यही एकमात्र उपाय है। हरएक को रोटी मिलनी ही चाहिए और साथ ही उसे हरएक को बाँटकर खाना चाहिए।

मनुष्य की इन दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति करने की दृष्टि से परिवार-संस्था हजारों वर्षों से एक स्थायी आधार-स्रोत बनी हुई है। आज तक परिवार मनुष्य के सुख-सन्तोष का प्रमुख अधिष्ठान रहा है और संसार के समस्त दुःखों-कष्टों से त्राण पाने का स्थान भी रहा है। परन्तु इस संस्था की दुःस्थिति यह है कि मानव-चित्त क्रमेण उत्तरोत्तर विकसित होते हुए वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना तक पहुँचने के बदले वह अपने परिवार तक ही सीमित रह गया है और वह समाज-विरोधी रूप धारण कर चुका है। यह भी कह सकते हैं कि क्रिया-प्रतिक्रिया का सिद्धान्त यहाँ भी लागू होता है। समाज की ज्यों-ज्यों प्रगति होती गयी, त्यों-त्यों उसमें से कुछ परिवार-विरोधी तत्त्व भी उभरने लगे और उनके कारण परिवार-संस्था खतरे में पड़ी और स्थिति यहाँ तक है कि परिवार के मिट जाने का ही भय पैदा हो गया है। परन्तु भौतिक तथा आध्यात्मिक, दोनों पहलुओं से मानव की रक्षा यदि करनी है, तो परिवार-संस्था को बचाना होगा। लेकिन आज के इस रक्त-सम्बन्ध पर आधारित परिवार-संस्था असामयिक हो गयी है। उसका आधार व्यापक प्रेम का होना चाहिए। गांधीजी के शब्दों में परिवार-धर्म अर्थात् प्रेम समाज-धर्म बनना चाहिए। गांधीजी द्वारा प्रवर्तित 'स्वदेशी धर्म' के अनुसार मनुष्य को कम-से-कम छोटे समुदाय को अपना परिवार बनाना चाहिए, जहाँ पारस्परिकता जीवित रहेगी और सक्रिय हो सकेगी और जहाँ आध्यात्मिक समानता और आर्थिक बिरादरी स्थापित करना मनुष्यमात्र की पहुँच के अन्दर रहेगी। ग्रामदान इसका द्वार खोल देता है।•

गांधीजी दिल्ली छोड़ चुके हैं !

गांधी-स्मारक निधिवालों से मैंने कहा था कि हर गाँव में अपना संदेश पहुँचाने की योजना बनानी चाहिए। गाँव-गाँव में जो शिक्षक हैं उनके द्वारा आपका कोई अखबार हर गाँव में पढ़कर सुनाने का इन्तजाम होना चाहिए। उन लोगों ने कोई चित्र बेचने का, मूर्ति वगैरह बनाने का सोचा है। मैंने कहा, चित्र-चित्र से क्या होगा, हमें कोई मूर्तिपूजा थोड़े ही शुरू करनी है। क्या हिन्दुस्तान में कम मूर्तियाँ हैं ? इसीलिए समझना चाहिए कि यह जरूरी है कि आपका अखबार हर गाँव में पहुँचे, ताकि आपकी आवाज सबके पास पहुँच सके।

…एक दफा ग्रामदान हो गया, आगे क्या-क्या करना है, इसकी जानकारी परचे के द्वारा गाँव में पहुँचती रहे, तब गाँव के साथ आपका जीवित संपर्क बनेगा।

यह बात अभी तक नहीं बन पायी है। हमें अभी तक का जो अनुभव है वह बहुत आशादायक नहीं है। हमारे बहुत सारे लोग शहरों के आश्रित बने हुए हैं। इसलिए नहीं कि वह सर्वोदयनगर बने, बल्कि इसलिए कि वहाँ सुविधाएँ मिलती हैं। गांधी-निधिवाले दिल्ली में इसलिए रहते हैं कि वहाँ सुविधाएँ मिलती हैं। मैंने उन लोगों से कहा कि आपको एक खबर मालूम नहीं है, जब ईसा मसीह को दफनाया, तो फिर वह कब्र में से उठा और शिष्यों को उसका दर्शन हुआ। उसने शिष्यों से कहा कि अब मैं गेलीली जा रहा हूँ। मैं तुम्हें वहाँ पर मिलूँगा, यहाँ पर नहीं मिलूँगा। तो वे शिष्य गेलीली चले गये। उसी तरह मैंने कहा कि मुझे दर्शन हुआ है कि गांधीजी दिल्ली छोड़ चुके हैं और देहात में पहुँचे हैं। दिल्ली में हमें दफनाया गया, इतना बस है, अब वहाँ पर हमारा काम नहीं है, यह सोचकर देहात चले गये हैं।

रामानुजगंज, १५-११-'६८ —विनोबा

ग्राम-स्वराज्य

[दिल्ली से प्रकाशित प्रमुख हिन्दी दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के २१ नवम्बर '६८ के अंक में प्रस्तुत लेख सम्पादकीय के रूप में प्रकाशित हुआ है। ग्रामस्वराज्य आन्दोलन का इस प्रकार के सम्मानित पत्र द्वारा खुला समर्थन एक ओर जहाँ हमें शक्ति और साहस दे सकेगा वहीं दूसरी ओर इस बात का भी संकेत करेगा कि इस आन्दोलन के बारे में बुद्धिजीवी वर्ग पर्याप्त जानकारी नहीं रखता है। –सं०]

जिस तरह सर्वोदय-नेता श्री जयप्रकाश नारायण ग्रामदान-आन्दोलन बढ़ा रहे हैं, उससे प्रकट होता है कि इस आन्दोलन के अन्तर्गत ग्रामीण समाज के नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन का गांधीवादी सिद्धान्तों के अनुसार कायाकल्प ही नहीं हो जायेगा वरन् ग्रामदान के कामों में निर्मित ग्रामसभाएँ ही विधान-मण्डलों और संसद में अपने प्रतिनिधि भेज सकेंगी और देश के प्रशासन में ग्रामीण समाज की आवाज को उठानेवाले पर्याप्त प्रतिनिधि उपस्थित होंगे, जिनमें एक शासक दल अथवा दूसरा विरोधी दल का सदस्य न होगा, वरन् सब केवल जनता के प्रतिनिधि होंगे। उत्तर बिहार में सर्वोदय-मण्डल के कार्यकर्ताओं की देखरेख में ग्रामदान-आन्दोलन के अन्तर्गत जो गाँव ग्रामीण समाज में मिलकर सम्पूर्ण समाज के प्रति अर्पित किये हैं उन्हें देखकर यह सन्देह नहीं रह जाता कि यदि ग्रामदानवाले गाँव में पूर्णतः साम्यवाद की स्थापना नहीं हुई है तो भी गांधीवादी ढंग पर उसका सूत्रपात हो गया है।

किसी ग्राम की सम्पूर्ण जनता में से यदि साठ फीसदी लोग ही यह स्वीकार कर लेते हैं कि वे ग्रामदान के पाँच मूल सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं तो ग्रामदान सम्पन्न हुआ समझा जाता है। ये पाँच मूल सिद्धान्त हैं कि हम आश्रयहीन विधवाओं एवं अशक्तों के पालन पोषण के दायित्व का निर्वाह करेंगे, हम अपनी जमीन का एक अंश भूमिहीन लोगों को देंगे, हम जातपाँत और धर्म एवं सम्प्रदाय का भेदभाव नहीं करेंगे, हम अपने मामले पंचायत द्वारा तय करेंगे और अपनी बाहरी आय का तीसवाँ हिस्सा पंचायत-कोष को प्रदान करेंगे। ऐसा होने पर ग्राम के बाकी लोगों को भी परामर्श के जरिये इन सिद्धान्तों को स्वीकार करने के लिए राजी किया जाता है। ऐसे संकल्प-पत्र पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद गाँवों की सम्पूर्ण भूमि का स्वामित्व ग्राम-पंचायतों के हाथों में चला जाता है, हालांकि अपनी-अपनी जमीन को जोतने, बोने का तथा कानूनी अधिकार किसानों को प्राप्त है। लगभग ५ प्रतिशत भूमि प्रत्येक किसान ग्राम के गरीब लोगों को देता है। यह भी अपेक्षा की जाती है कि प्रत्येक क्षेत्र अपनी आय का बीसवाँ हिस्सा ग्रामसभा के अनाज-बैंक को देता है। ऐसे ग्रामों के जो लोग बाहर रहकर जो काम करते हैं वे महीने में एक दिन का वेतन सामुदायिक साधन को बढ़ाने के लिए देते हैं।

ग्रामीण साम्यवाद की स्थापना की दिशा में यह प्रारंभिक स्तर ही सही, परन्तु इन संकल्पों से यह आश्वासन अवश्य मिलता है कि ग्रामदानवाले गाँव में नयी फिजा पैदा की जा सकती है। प्रतिकूल आलोचना के बावजूद यह देखा जा सकता है कि जातीय अथवा साम्प्रदायिक आधार पर ऐसे ग्रामों में बहुत कम झगड़े होते हैं। यदि होते हैं तो ग्राम-पंचायत द्वारा उनका निर्णय होता है। बड़े और छोटे किसान अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए वर्ग-संघर्ष का शिकार नहीं बनते। बेसहारा लोगों को अनैतिक कार्यों में प्रवृत्त नहीं होना पड़ता और गाँव के किसी भी व्यक्ति को जमीन या काम के अभाव में गाँव छोड़ने पर मजबूर नहीं होना पड़ता। सर्वोदय-मण्डल ग्राम समाज के अपने ही साधनों के आधार पर विकास-अभियान को चलाना चाहता है, अतः परिणाम चमत्कार-पूर्ण साबित नहीं होते। यदि यह व्यवस्था की जा सके कि इन गाँवों के विकास के लिए उचित आर्थिक साजोसामान अविलम्ब प्राप्त हो जायें तो समूचे गाँव का थोड़े ही समय में कायाकल्प किया जा सकता है। और असमानता के बचे-खुचे आग्रहों को समाप्त किया जा सकता है।

आशावादी कल्पना ही सही, किसी एक राज्य में अथवा एक राज्य के एक जिले या परगने में भी ग्रामदान पूरी तरह से सफल हो जाय और ग्रामीण समाज के जीवन की देख-भाल करने का दायित्व ग्राम-पंचायत के हाथों में चला जाय तो श्री जयप्रकाश नारायण का यह स्वप्न साकार हो सकता है। और ये ग्रामसभाएँ विधान-मंडलों एवं संसद में अपने प्रतिनिधि भेजकर ग्राम-स्वराज्य की स्थापना कर सकती हैं। भारतीय संविधान में परिवर्तन किये बिना ही ऐसा परीक्षण होना चाहिए।

आजादी के २१ वर्षों में यह बात स्पष्ट होने लगी है कि साधन-सम्पत्ति के अभाव में ही हम जितनी प्रगति कर सकते थे, वह इसलिए नहीं हो पायी कि सरकार और विरोधी दलों के पारस्परिक संघर्ष के कारण श्रम, साधन और समय की विपुल हानि हुई है। एक वर्ग ने विकास-अभियान में सफल होने का प्रयत्न किया है तो दूसरे वर्ग ने उसे विफल बनाने का उससे भी ज्यादा प्रयास किया है।

यदि ग्राम-पंचायतें अपने प्रतिनिधि स्वयं चुनने के अधिकार का जागरूक प्रयोग करती हैं तो राजनीतिक दलों की ओर से खड़े किये गये उम्मीदवार उनके मुकाबले में जीत नहीं सकते। फिर भी इस सामाजिक क्रान्ति को सफल करने के लिए वैधानिक एवं जनतान्त्रिक उपायों को ही आधार बनाना चाहिए। व्यवस्था के आदर्श एवं उपयोगी होने पर ही यदि आग्रह को प्रधानता दी जायेगी तो क्रान्ति एवं प्रति-क्रान्तिवादी शक्तियाँ आपस में टकरा सकती हैं। श्री जयप्रकाश नारायण के इस ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के प्रयास को व्यापक समर्थन मिलना चाहिए।

('नवभारत टाइम्स' से साभार)

हिन्दुत्व की परिभाषा

मध्यावधि चुनाव ज्यों-ज्यों निकटतर आते जा रहे हैं और राजनैतिक दलों की सरगर्मियाँ बढ़ रही हैं, त्यों-त्यों एक और प्रवृत्ति भी अधिक साफ उभरकर आ रही है, जिससे लगता है कि आजादी के बीस बरस या आधुनिक राजनैतिक आन्दोलन के सौ बरस में तो क्या, हमने हजार बरस के इतिहास में भी बहुत कम सीखा है, या सीखा है तो केवल नया तंत्र कौशल—पुरानी मनोवृत्तियों की पुष्टि के लिए कोई भी चुनाव साम्प्रदायिक अथवा जातिगत चिंतन से मुक्त नहीं रहा है, प्रत्येक में ऐसे फिरकेवाराना स्वार्थों को उभारकर या उनकी दुहाई देकर वोट पाने का प्रयत्न किया गया है। फिर भी राजनैतिक लक्ष्यों के प्रति लगाव रहा है—जो प्रत्येक चुनाव में कमतर होता गया जान पड़ता है।

इनमें वह प्रवृत्ति प्रधान है जो धर्ममत की दुहाई देकर संकीर्णता और वैमनस्य को उभारती है। फरीदी साहब की मुस्लिम मजलिस भी यह करती है और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ भी, और इससे बहुत अधिक फर्क नहीं पड़ता कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेता कुछ ऐसी बातें भी कहते हैं कि जो अधिक आदर्शोन्मुख जान पड़ती हैं, या कि उनका संगठन अधिक व्यापक और अनुशासित है। दोनों संगठन, जैसा कि अन्य संगठन अपने को 'शुद्ध सांस्कृतिक कार्य' में लगे बताते हैं। स्वयं इस बात की अनदेखी करते हुए (और दूसरों को कदाचित् इतना बुद्धू समझते हुए ?) कि यह पिछले विश्वयुद्ध से ही साबित हो चुका है कि संस्कृति को राजनीति का एक कारगर हथियार बनाया जा सकता है और आज संसार की सभी बड़ी शक्तियाँ ठीक इसी काम में लगी हैं—और कोई भी किसी अच्छे उद्देश्य से नहीं, मगर खालिस सत्ता की दौड़ ही 'अच्छा उद्देश्य' नहीं है ! संस्कृति का नाम लेकर लोगों को अधिक आसानी से भड़काया और बरगलाया जा सकता है, तो ऐसा 'सांस्कृतिक' कार्य स्पष्ट आत्मविकारी 'राजनैतिक' कार्य से अधिक खतरनाक ही होता है। फरीदी साहब ने कहीं यह भी कहा कि उनका संगठन अल्पसंख्यकों की सांस्कृतिक उन्नति का काम करता है, और यह भी कि अगर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपनी सरगर्मियाँ बन्द कर दे तो वह भी अपना काम बन्द कर देंगे। क्यों ? क्या राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के निष्क्रिय हो जाने से अल्पसंख्यकों को भी 'संस्कृति' की आवश्यकता न रहेगी।

मुस्लिम मजलिस की कार्रवाइयों और मनोवृत्ति की हम भर्त्सना करते हैं। बिना किसी लाग-लपेट के हम उसे संकीर्ण, समाज-विरोधी और राष्ट्रीयता के विकास में बाधक मानते हैं। उसकी कार्रवाई बन्द करने की बात के साथ कोई शर्त हो, यह हम ठीक नहीं समझते; क्योंकि वह काम हर अवस्था में गलत है।

और क्योंकि हम ऐसा कहते हैं, इसलिए हम यह भी मानते हैं कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अनुशासन के मूल में भी वही दूषित संकीर्ण और कठमुल्लई मनोवृत्ति है, और वह भी एक लौकिक भारतीय समाज के और खरी राष्ट्रीयता के विकास में उतनी ही बाधक होगी, बल्कि इसलिए कुछ अधिक ही कि वह बहुसंख्यक वर्ग का संगठन है।

स्वाभाविक है कि कुछ लोग हमसे सहमत हों, कुछ चिंतित या प्रश्नाकुल हों, पर पूर्वाग्रहों में दो-एक का खण्डन हम आवश्यक मानते हैं। कई पत्रों में उसके वर्तमान संपादक के बारे में कहा गया है (या प्रश्न उठाया गया है) कि वह हिन्दू-द्वेषी है। दोनों ही की ओर से इस बात का खण्डन आवश्यक है। इन पंक्तियों के लेखक को अपने को हिन्दू मानने में न केवल संकोच है, वरन् वह इस पर गर्व भी करता है। क्योंकि इस नाते वह मानव की श्रेष्ठ उपलब्धियों के एक विशाल पुंज का उत्तराधिकारी होता है। उस संपत्ति को वह खोना, बिखेरने या नष्ट होने देना, या उसका प्रत्याख्यान करना वह नहीं चाहता। इसके बावजूद वह—और वैसा ही सोचनेवाले अनेक प्रबुद्धचेता हिन्दू—राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सरगर्मियों को अहितकर मानते हैं तो इसलिए नहीं कि वे हिन्दू-द्वेषी या हिन्दू धर्म-द्वेषी हैं, वरन् इसीलिए कि वे हिन्दू हैं और बने रहना चाहते हैं। संघ का ऐब यह नहीं है कि वह हिन्दू है, ऐब यह है कि वह हिन्दुत्व को संकीर्ण और द्वेषमूलक रूप देकर उसका अहित करता है, उसके हजारों वर्ष के अर्जन को स्खलित करता है, सार्वभौम सत्यों को तोड़-मरोड़कर देशज या प्रदेशज रूप देना चाहता है, यानी झूठा कर देना चाहता है।

जिस दाय की बात हम कर रहे हैं, वास्तव में 'हिन्दू' नाम उसके लिए छोटा पड़ता है। वह नाम न उतना पुराना है, न उतना व्यापक अर्थ रखनेवाला, न उसके द्वारा स्वयं चुना हुआ। यह उत्तर-मध्यकाल की, और इस्लाम से साक्षात्कार की देन है। इसके बोध से ही आर्य समाज में यह भावना प्रकट हुई थी कि अपने को 'हिन्दू' न कहकर 'आर्य' कहें। 'हिन्दू' धर्म 'आर्य धर्म' की एक परवर्ती शाखा भर थी। जो हो नाम एक छिलका-भर है और जिस वस्तु को चाहे जिसने, चाहे जब नाम दिया, महत्व वस्तु का ही है। और उसके बारे में इस आधार पर भेद करना कि कौन 'इसी मिट्टी में' उपजी, कौन बाहर से आयी गलत है। हिन्दू या आर्य धर्म की मूल सम्पत्ति था—ऋग्वेद का—एक महत्त्वपूर्ण अंश ऐसे प्रदेश की देन है जो न अब भारत का अंग है, न अतीत में समूचा कभी रहा। किसीके मन में यह भ्रान्त कल्पना हो भी सकती है कि पाकिस्तान आखिर भारत ही है और फिर उसमें आ मिलेगा। पर महाभारत के या गुप्तों के समय का गांधार जो आज अफगानिस्तान है, क्या उसे भी भारत में मिलाने का कोई स्वप्न देखता है ? या ईरान के भाग को ? अगर हाँ, तो उसकी बुद्धि को क्या कहा जाये ? अगर नहीं, तो इस 'देशज धर्म' वाले तर्क का क्या अर्थ रह जाता है ? वेदों के अधिभाग को हम इसलिए अमान्य कर दें कि वह उस भूमि पर नहीं बना जो भारत है ? क्यों, क्या सत्य इसीलिए अग्राह्य होगा कि वह अमुक मिट्टी का नहीं ? तब सार्वभौम सत्य क्या होता है ? और समूचे आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का हम क्या करेंगे ? कि सब अग्राह्य है, क्योंकि इस मिट्टी की उपज नहीं है ?

→

जय जगत् की मनोभूमिका जागतिक द्वन्द्वों का एक-मात्र विकल्प

मिस्टर इनोक पवल—विद्वान्, लेखक, वक्ता, राजनीतिज्ञ, कई सालों से इंग्लैंड के सार्वजनिक जीवन में एक सम्माननीय स्थान रखते आये हैं। वे पार्लियामेंट के सदस्य हैं और पिछले अप्रैल तक 'शैडो कैबिनेट' (Shadow Cabinet) के प्रतिरक्षा-मंत्री भी थे। अप्रैल में उन्होंने इस देश की वर्ण-समस्या पर एक ऐसा भाषण दिया, जिसके कारण कन्जरवेटिव पार्टी के नेता को उन्हें शैडो मंत्रिमंडल से हटाना पड़ा। इंग्लैंड में इस वक्त बाहर से आकर बसे हुए लोगों की संख्या साढ़े बारह लाख है और उनमें इक्कीस साल के ऊपर के सबको मत-दान का अधिकार प्राप्त है। किसी भी राज-नैतिक दल का उनके बीच अप्रिय होने में खतरा है। अलावा इसके, यह भी सही है कि कन्जरवेटिव पार्टी के बहुत सारे प्रतिष्ठित सदस्य इस विषय में उदार दृष्टिकोण रखते हैं। खैर, मिस्टर पवल के उस भाषण ने इस देश के सार्वजनिक चिन्तन में ऐसी खलबली मचायी, जिसके आघात प्रत्याघात कई महीनों तक लोकमत को प्रक्षुब्ध करते रहे।

उनके भाषण का सारांश यह था कि गैर-गोरे लोगों का इतनी बड़ी संख्या में यहाँ आकर बसना और फिर उनकी वंशवृद्धि जो कि मि० पवल के कहने के अनुसार यहाँ के निवासियों से अनुपात में कहीं ज्यादा है, इस देश के सामने एक बड़ा खतरा पेश करती है, जिससे निकट भविष्य में ही 'खून की नदियाँ' बहने की सम्भावना है। इसलिए इनके आने पर एकदम रोक तो लगायी ही जाय (जो कि बहुत कुछ लग ही गयी है) और जो अभी यहाँ पर हैं उन्हें वापस होने का किराया इत्यादि देकर यथासम्भव जल्दी और अधिक-से-अधिक संख्या में भेज दिया जाय। यह कहने में उनकी भाषा भी लोगों की भाव-नाओं को भड़काकर उत्तेजित कर देने-वाली थी।

देश के सभी विचारशील और उदार पक्षों ने ऐसी विचार पद्धति की कड़ी निन्दा की। फिर भी इसमें कोई शंका नहीं कि मि० पवल ने एक खासे बड़े तबके की अभी तक गुप्त भावनाओं को स्पष्ट शब्दों में प्रकट करने का साहस मात्र ही किया था। हजारों लोगों ने एक ठण्डी साँस ली कि वाह, आखिर एक आदमी को तो असलियत बताने की हिम्मत हुई। यह केवल वस्तुस्थिति है कि इस वक्त इस देश के कई सारे लोग चिन्तित ही नहीं, भयभीत भी हैं कि अगले दस-बीस साल में देश का 'रंग' ही बदल जायेगा। ऐसे लोगों की भावनाओं को बिना सोचे-समझे भड़काने से "खून की नदियाँ" किसी भविष्य में नहीं, आज ही बहने की आशंका प्रस्तुत होती है।

दस महीनों में स्थिति कम-से-कम ऊपर से तो थोड़ी शान्त हो रही थी कि इतने में पिछले शनिवार को मि० पवल ने और एक भाषण दिया, जिसमें उन्होंने उन्हीं विचारों का बड़े ही जोरदार शब्दों में आवर्तन किया और अपने कथन के समर्थन में बहुत सारे आँकड़े पेश किये। उन्होंने एक 'मिनिस्ट्री ऑफ रिपाट्रिएशन' (Ministry of repatriation) कायम करने का सुझाव दिया। पिछले तीन-चार दिनों से अखबारों में इनके समर्थन या विरोध के लेखों व पत्रों का ताँता ही चल रहा है। यह जाहिर ही है कि यह आज इस देश के सामने एक बड़ा प्रश्न है और उसकी तरफ आँखें मूँदने से यह हटेगा नहीं।

लेकिन आज की यह समस्या पिछले कुछ सौ सालों के इतिहास की देन है और आर्थिक प्रश्न के साथ अभेद्य रूप से जुड़ी हुई है। जो लोग व्यापार या काम की तलाश में दूसरे-दूसरे देशों में जाकर बसे हैं, मूलतः उनका प्रयोजन हमेशा आर्थिक लाभ ही रहा है, चाहे वह सन् १६०० में भारत के लिए रवाना हुई ईस्ट इण्डिया कम्पनी हो, नयी-नयी खोज निकाली अमेरिका की धरती पर जाकर बसे यूरोपीय परिवार हों या अफ्रीका में गये भार-तीय व्यापारी हों। आज भी भारत, पाकि-स्तान और वेस्ट इण्डीज से जो लोग यहाँ आते हैं, या आना चाहते हैं, उनके सामने एक अपेक्षाकृत ऊँचे जीवन स्तर का प्रलोभन है। ये हर सामाजिक स्तर के हैं—डाक्टर, नर्स, शिक्षक, क्लर्क, बस-ड्राइवर, मजदूर इत्यादि। डाक्टरों व नर्सों का सुस्वागत है, उनके बिना यहाँ का स्वास्थ्य-विभाग चल नहीं सकता। अस्पतालों में भारतीय और पाकिस्तानी डाक्टरों की संख्या बहुत है। वेस्ट इण्डीज से आयी हुई नर्सें भी आपको सब जगह दिखाई

जानकी देवीप्रसाद

→ और फिर उसका हम (और दूसरे) क्या करेंगे जो यहीं पैदा हुआ और अन्यत्र गया? क्या हम इसका समर्थन करेंगे कि श्रीलंका, बर्मा, तिब्बत, नेपाल, लाओस, कंबोडिया आदि बौद्ध धर्म को खदेड़कर भारत भेज दें, क्योंकि वह उन देशों की उपज नहीं है? या तब हम कहेंगे कि सिंहली या भोट बौद्ध धर्म अलग है, इसका स्वतन्त्र विकास हुआ है। पर एक तो मूल वही रहेगा, दूसरे क्या इस्लाम का स्वतंत्र विकास भारत में नहीं हुआ? क्या हिन्दुस्तानी मुसलमान, अरब या ईरानी मुसलमान से उतना ही भिन्न नहीं है, जितना सिंहली बौद्ध हिन्दुस्तानी बौद्ध से?

नहीं, ऐसी 'देशज' अपवाद को हम राष्ट्रीयता नहीं मान सकते, न हम हिन्दुत्व पर इस नाते गर्व करते हैं कि वह इस मिट्टी की देन है, बल्कि मिट्टी पर इसलिए गर्व कर सकते हैं कि उसमें ऐसे सत्य उपजे जो सार्व-भौम हैं। एक हिन्दू धर्म ने ही धर्म-विश्वासों और धर्ममतों से ऊपर मतापरित धर्म को, ऋत के अर्थात् सार्वभौम सत्य के अनुकूल आचरण को महत्त्व दिया। अन्य धर्मों के उदारतर पक्ष अब उस आदर्श की ओर बढ़ रहे हैं और उसीमें मानव मात्र के भविष्य की उज्ज्वल संभावनाएँ हैं, नहीं तो 'अन्धेन नीयमाना यथान्धाः' के लिए उपनिषद् में कहा गया है :

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥

ऐसे आत्महन्ताओं की संख्या हम न बढ़ावें : चुनाव जीतने के लिए भी नहीं।

—सं० डी० का०

('दिनमान' ८ दिसम्बर, '६८ से साभार)

देंगी। मगर ये चले जायें तो कई सारे अस्पताल बन्द करने पड़ेंगे। वैसे ही यातायात (ट्रान्सपोर्ट) का विभाग भी बहुत हद तक 'कामनवेल्थ' के बस-ड्राइवरों व कण्डक्टरों के ऊपर निर्भर है। लेकिन क्लर्कों व मजदूरों की संख्या इनसे कहीं अधिक है और वे स्वाभाविक ही ऐसे स्थानों पर इकट्ठे होते हैं, जहाँ बड़े-बड़े उद्योगों के कारण काम आसानी से मिल जाता है। उद्योगपतियों को इन हजारों लाखों कर्मचारियों की जरूरत है और ये भारतीय, पाकिस्तानी या वेस्ट इण्डियन आम तौर पर थोड़ा कम वेतन पर अधिक काम करने के लिए तैयार हैं, जो तब भी उनके अपने देश के वेतन स्तर से काफी ऊँचा है। पिछले आठ-दस सालों के अन्दर इंग्लैंड के कई बड़े-बड़े शहरों में इनकी आबादी घनीभूत हुई है। लन्दन के पश्चिम में सौथाल एक ऐसा स्थान है जहाँ की कुछ सड़कों पर आपको ऐसा भ्रम हो सकता है कि आप पंजाब के जालन्धर जिले में हों। सुनायी देती है पंजाबी, दुकानें हैं पंजाबी, स्त्रियों की पोशाक है साड़ी या सलवार-कमीज। जिससे भी पूछो, वे जालन्धर जिले से आये हैं। वैसे ही लाड्स के पास ब्रादफर्ड में बहुत बड़ी आबादी पाकिस्तानियों की इकट्ठी हुई है। कुदरतन वहाँ के स्कूलों में उनके बच्चे अधिक हैं, घर उनके हैं। वैसे ही कई और स्थान हैं। ये मि० पवल के उद्गार के लक्ष्य बन गये। उन्होंने चेतावनी दी है कि कुछ सालों के अन्दर ये 'परदेश' (alien territory) बन जायेंगे।

अक्सर कहा जाता है कि एक छोटे-से देश में बाहर से बहुत लोग आकर बस रहे हैं, निवास, शिक्षा, इत्यादि की व्यवस्था अपर्याप्त है, तंगी हो रही है, इसलिए तनाव पैदा होता है। लेकिन हिसाब लगाया गया है कि जितने लोग आ रहे हैं, उनसे कुछ ज्यादा ही लोग आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, कनाडा वगैरह देशों में जा भी रहे हैं। (तो भी शहरों में निवास इत्यादि की तंगी जरूर है, कहाँ नहीं है?) इससे समस्या और ही जटिल होती है, क्योंकि गोरे लोग जा रहे हैं, 'रंगीन' लोग आ रहे हैं। असल प्रश्न रंग का ही है। मि० पवल ने इस बार स्पष्ट ही आफ्रो-एशियन जातियों का नाम लिया। पूर्वी योरोप, हालैंड व आयरलैंड से भी काफी तादाद में लोग यहाँ आये हुए हैं। उन्हें वे इस वक्त भूलने के लिए तैयार हैं। (यह भी सही है कि रंग के अलावा संस्कृति, रीति-रिवाज इत्यादि की दृष्टि से इनमें और यहाँ के निवासियों में कम भेद है, बनिस्बत आफ्रो-एशियन लोगों के।) अमेरिका की जैसी वर्ण-समस्या इस देश में भी अपना विकृत रूप दिखाने में बहुत देर नहीं करेगी—अगर अभी से जनमानस को उचित शिक्षण न मिले, अंग्रेज और आगन्तुक, दोनों विवेक और सहिष्णुता से काम लेना न सीखें और सर्वोपरि आपस में सौहार्दभाव न बढ़ायें।

कल के 'गार्डियन' में एक लेखक ने लिखा है कि उन देशों के पास जहाँ से ये 'रंगीन' (कलर्ड) लोग हमारे यहाँ आये हैं, उनसे छह गुना गोरे लोग इस वक्त 'घर वापस भेजने' के लिए हैं। क्या मि० पवल की 'मिनिस्ट्री आफ रिपाट्रिएशन' इस काम में सहयोग देगी? प्रश्न ठीक भी है। दुनिया में इस वक्त कितने देशों से कितने लोग दूसरे देशों में जाकर बसे हुए हैं। क्या इन लोगों को वापस भेजना सम्भव या वाछनीय भी है? फर्क इतना ही है कि दक्षिण अफ्रीका, रोडेशिया, अंगोला, मोजाम्बिक इत्यादि देशों में गोरे लोगों ने आधिपत्य जमाकर रखा हुआ है। उनके पीछे सम्पदा तथा प्रभुत्व की शक्ति है। यहाँ बसनेवाले अफ्रीका व एशिया के लोगों के पास केवल अपनी कुशलता और मेहनत करने की तैयारी मात्र है।

दुनिया के सामने आज यह अणुबम से भी बड़ी विभीषिका उपस्थित हुई है—मानव जाति का काले और गोरे भागों में बँट जाने की। गोरा रंग किसी तरह से श्रेष्ठ है, यह भ्रम केवल गोरों के नहीं, पीले, साँवले व काले लोगों के मन से भी हट जाय इसके अलावा बचाव का दूसरा उपाय नहीं। इसके लिए सचेत प्रयास तथा शिक्षा की सख्त जरूरत है, क्योंकि बिना उसके ऐसी दृढ़मूल धारणाएँ हटती नहीं।

और यह धारणा इतनी व्यापक है कि इसमें केवल गोरे जातियों का दोष नहीं। भारत में भी क्या गोरे रंग की स्तुति तथा काले रंग की अवहेलना नहीं है? काली बहू घर आयी तो सबको दुःख हुआ, गोरी हो तो सुन्दर है। हालाँकि जनता का इष्टदेव मेघश्याम हुआ, सर्वशक्तिमयी दुर्गा काली हुई। फिर भी प्रचलित अभिरुचि गोरे रंग की तरफ है, उत्तर में हो, चाहे दक्षिण में। मुझे डर है कि कहीं एशिया के लोग अफ्रीका की जातियों को तरफ भी, उनके अधिक काले रंग के कारण नीची दृष्टि से न देखते हों। समझने की बात यह है कि अपनी त्वचा के रंग के कारण कोई भी ज्यादा बुद्धिमान, कुशल, सहृदय और अन्य मानवीय गुणों से युक्त या वंचित नहीं होता है, इसलिए रंग पर आधारित उच्च-नीच विचार या भेदभावना सर्वथा अक्षम्य और आपज्जनक है।

यह हुई रंग की बात। दूसरी बात, जहाँ भी दूसरे देशों से बड़ी तादाद में लोग आकर बसे हैं, वहाँ विभिन्न रीति-रिवाज, भाषा आदि के कारण कुछ जटिल प्रश्न खड़े होते ही हैं और लोगों को सचमुच परेशानी होती है। इसमें दोनों पक्षों को बहुत सब्र रखने की जरूरत है। समय बीतने पर बहुत कुछ ऐडजस्ट हो ही जाता है। यहाँ कुछ लोगों के मन में यह भी बड़ा डर है कि इन "बाहर के लोगों" के कारण इस देश की संस्कृति, परम्परा इत्यादि भी मिट जायेगी। लेकिन यह सवाल अब किसी एक जाति या देश के सामने ही नहीं। आज दुनिया एक ऐसी सन्धि पर पहुँच गयी है कि लोगों को यह तय करना होगा कि वे अपने ही देश की संस्कृति, परंपरा व रीतिरिवाज को कायम रखते हुए एक अलग इकाई के रूप में रहना चाहते हैं, या एक बहु वंशात्मक, परिवर्तनशील, सार्वभौम (A Multiracial changing global) समाज का स्वयं, सहर्ष अंग बनेंगे, जिसमें उनकी अपनी संस्कृति, परंपरा इत्यादि बहुत-कुछ बदल जायेगी, एक व्यापक धारा में लीन हो जायेगी। इस परिवर्तन को सुलभ और सानन्द बनाना या संघर्ष करना लोगों के अपने हाथ में है। अब जय जगत् ही दुनिया को बचा सकता है।

लन्दन,

२०-११-६८

कुछ अविस्मरणीय यादें

[महिला लोकयात्रा-टोली ने २० अक्तूबर को हरियाणा प्रदेश में प्रवेश किया। होडल नामक पड़ाव पर हरियाणा की जनता तथा रचनात्मक संस्थाओं के कार्यकर्ताओं ने टोली का स्वागत किया। यह गुड़गाँव जिले का पहला पड़ाव था। २५ अक्तूबर, '६८ को लोकयात्रा को शुरू हुए एक साल पूरा हो गया।

उस दिन टोली की चारों बहनें इकट्ठी बैठीं और आपस में चर्चा की। उसके बाद अदमी बहन ने विनोबाजी को एक पत्र लिखा, जिसमें लिखा कि मैंने जब यात्रा शुरू की तब मुझमें बहुत कटुता थी। एक साल के बाद वह कुछ कम हुई। कुछ मधुरता कुछ मिठास आयी है, ऐसा लगता है। फिर भी कुछ कटुता बाकी है वह इस यात्रा में जायेगी ऐसा विश्वास हो रहा है; क्योंकि फल पकता है तो उसकी कटुता जाती है। यों कहकर अदमी बहन (असम की लड़की) ने पंजाब में महाराष्ट्र के तुकाराम का एक अभंग सुनाया। "पिकलिया सेंद कडुपण गेले"—सेंद यानी फल जब कच्चा होता है तब कड़ुवा होता है, और पकता है तब मधुर होता है।

लोकयात्रा ने इंदौर, सरगुजा, टीकमगढ़, झाँसी, दतिया, ग्वालियर, मुरैना, धौलपुर, आगरा, मथुरा, गुड़गाँव जिलों की यात्रा पूरी की। करीब-करीब ३५,००० मील की यात्रा एक साल में हुई।

हरियाणा में इस यात्रा का हर तबके के लोगों ने स्वागत किया है। विचार को समझने की भूख लोगों में है ऐसा लोकयात्री बहनों को अनुभव आ रहा है। हरियाणा में आर्य समाज के लोग अधिक हैं। सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने में वे काफी सक्रिय रहते हैं, पर आर्थिक भेद मिटाने में उनकी दिलचस्पी कम है। लोकयात्रा-टोली को हरियाणा में यह अनुभव आ रहा है कि जहाँ-जहाँ आर्य समाज का असर है वहाँ-वहाँ बहनों में जागृति है।

गुड़गाँव में जेल में कैदियों के बीच इन बहनों का कार्यक्रम रखा गया था। यहाँ कोर्ट के मजिस्ट्रेट, वकील तथा शिक्षा-विभाग के लोगों की अच्छी सभा हुई।

लोकयात्रा-टोली को हरियाणा, पंजाब तथा हिमाचल प्रदेश में यात्रा चलाने का आमंत्रण मिल चुका है। गर्मी के दिनों में हिमाचल प्रदेश जाने का कार्यक्रम सोचा गया है। गुड़गाँव जिले के बाद महेन्द्रगढ़ जिले में जाने का कार्यक्रम बन चुका है।

राजनीतिक पार्टियों के लोग भी लोकयात्री बहनों से मिलकर चर्चा करते हैं। गुड़गाँव में जनसंघ कम्युनिस्ट तथा कांग्रेस पार्टी के लोग मिले। विद्यार्थियों के साथ भी अच्छा संपर्क हो रहा है। नीचे प्रस्तुत है यात्रा की कुछ दिलचस्प यादें।—गायत्री प्रसाद]

सुबह के गहन अन्धकार की नीरवता चित्त को शान्त कर देती है। प्रकृति का मौन भी सबको खींचता है। उसका सन्देश सबके लिए आनन्द देनेवाली, मगन करनेवाली शक्ति-स्वरूपा है। हमारी यात्रा प्रारम्भ होती है। कोई 'जप साहिब' पढ़ता है, कोई 'चौपाई', और कोई प्रकृति के साथ तन्मय होकर चिन्तन करता है। शीतल पवन, मक्खन जैसी नरम धरती, सिर पर तारिकाओं से दमकती चादर, शान्त, स्वच्छ कालिमा से रंगे जंगल, पहाड़ और मकान, पूरा वातावरण "तमसो मा ज्योतिर्गमय" इस ऋषि-वाक्य के अनुभव आनन्द की याद दिलाता है। यह अन्धकार आनेवाले प्रकाश की सूचना देता है। एक भाई ने कहा : "हम तो सोचते थे कि सुबह-सुबह की यह यात्रा बहुत कष्टप्रद होती होगी, पर यह तो आनन्ददायिनी है। प्रकृति का यह सौंदर्य तो रोज प्रकट होता है, पर आज इससे जो स्फूर्ति मिली, उसका तो अनुभव ही कभी नहीं हुआ था।"

एक बुढ़िया ने, जो घूँघट की एक बाजू को कसकर दूसरी तरफ से पकड़े थी, आकर कहा, 'बहिनजी, मैंने आपका नाम पिछले गाँव में सुना था तो सोचा कि आप होंगी।' बातचीत करने पर पता चला कि वह बुढ़िया अन्धी है। निर्मला दीदी ने कहा, 'आपको तो कुछ दिखता नहीं, फिर यह घूँघट किसलिए?' उस बहिन ने जवाब दिया, 'बहिनजी, मुझे तो कुछ नहीं दिखता, पर मुझे तो सब देखते हैं न?'

× × ×

गाँव के लोगों ने बताया कि उनके गाँव की आधी जमीन सरकार ने जबरदस्ती खरीद ली। सस्ती दरों में किसानों से खरीदकर महँगी दरों पर फैक्टरी के लिए बेच दी। सरकार में भी बनियापन आ गया है। जनता के लिए तो सरकार रिश्तेदारी, बिरादरी और पैसेवालों की है। कुछ लोगों ने बुद्धिमानी करके अपनी जमीन के बदले अन्य स्थानों पर जमीन खरीद ली। कुछ लोगों ने पैसे को शराब, होटल, जुआ व झगड़ों में गवाँ दिया। एक तरफ विदेशी अनाज खाकर सिर नीचा हो रहा है, और दूसरी ओर हजारों एकड़ जमीन इस तरह किसानों से ली जा रही है।

दूसरे गाँव के भाई ने अपने गाँव का किस्सा सुनाया। उनके गाँव के २०० घर उजाड़कर 'सेक्टर १५ ए' बनाने का विचार था, जिनकी कीमत लगभग २० लाख रुपये होगी। मकान तोड़ने की पूर्व सूचना नहीं थी। सरकारी कुमाइन्दों ने आकर घरों के छज्जे धूल में मिलाने शुरू किये। दो-तीन मकान तोड़ने के बाद एक पंजाबी मकान में गये। वहाँ स्त्रियाँ लाठी लेकर खड़ी हो गयीं। फिर तो पुलिस उल्टे पाँव भागी। उसके बाद मकान भी बच गये और अब कार्यवाही चल रही है।

गाँव की स्त्रियों से स्त्री-शक्ति की बात करते हैं। पहले तो उन्हें यह महसूस ही नहीं होता कि वे दबी हुई हैं। जो अपनी गुलामी को समझे, उसमें कभी आजादी के लिए लपट उठ सकती है, पर यह कितनी भयावह स्थिति है कि गुलाम को यह पता ही नहीं है कि वह गुलाम है!

× × ×

एक प्रौढ़ राजनीतिज्ञ ने एक गोष्ठी में प्रश्न किया, "हमने सुना है कि जो लोग अपने जीवन से निराश हो जाते हैं, वह—

हंगरी : भारत की असफलता से नाराज

हंगरी और युगोस्लाविया की सरहद मैंने बस से पार की। रात बेलग्रेड में बितायी। दूसरे दिन बस से ही बुदापेस्ट पहुँचा। बुदापेस्ट में शान्ति-परिषद के साथ मेरा पत्र व्यवहार था और उन्होंने शानदार आतिथ्य का प्रबन्ध कर रखा था। १० दिन का समय बुदापेस्ट, एस्तेरगोम, वेसप्रेम आदि नगरों में बिताया। विश्व-प्रसिद्ध बालाटोन लेक, जहाँ रवि बाबू ने अस्पताल में चिकित्सा करायी थी, और एक पेड़ भी लगाया था, मैंने देखा। दानूब नदी के एक किनारे पर बुदा शहर बसा हुआ है, तथा दूसरे किनारे पर पेस्ट। दोनों नगरों के सम्मिलित रूप से बुदापेस्ट कहा जाता है। खूबसूरत पार्लियामेंट-भवन मध्ययुगीन हंगेरियन शिल्पकला का अद्भुत नमूना है। दूसरे महायुद्ध में बुदापेस्ट को जबरदस्त हानि उठानी पड़ी थी। पर अब पुरानी इमारतें पुरानी शैली पर ही पुनः खड़ी की जा रही हैं।

हंगरी के लोग, उनकी भाषा, उनका खान-पान, उनकी कला और संस्कृति, तथा उनका सारा रहन-सहन यूरोप के अन्य देशों से एकदम भिन्न है। केवल फिनलैण्ड की भाषा और जीवन-परम्परा के साथ उनका कुछ मेल है। जिप्सी जाति के लोग और उनकी भाषा के अवशेष हंगरी में आज भी मौजूद हैं। कुमारी एवा वालिश, जो कि हिन्दी, संस्कृत और जिप्सी भाषाओं का अध्ययन कर रही है, ने बताया कि हंगेरियन भाषा, साहित्य और संस्कृति का भारत से काफी मेल है।

हंगरी के सुविख्यात चित्रकार और विचारक हिंच जूला से मुलाकात करके तीर्थ-यात्रा की सी तृप्ति मिली। हिंच जूला अपनी चित्रकला के माध्यम से मानवीय मुक्ति की आकांक्षा को अभिव्यक्त करते हैं। मुझे उन्होंने अपना एक चित्र भेंट किया, जो कि अफ्रीका के काले आदमी की मुक्ति से सम्बन्धित था। यद्यपि उनके चित्र कलात्मक संवेदना के प्रतीक हैं और आदर्शवादी उद्देश्यों के प्रचार के लिए वे किसी चित्र का निर्माण नहीं करते, फिर भी मानव की आन्तरिक उथल-पुथल और घुटन जब उनकी रेखाओं तथा आकृतियों में प्रकट होती है तो दर्शक सहज ही मानवीय मुक्ति की प्रेरणा पा लेता है। कभी-कभी अप्रत्यक्ष और कलात्मक माध्यम से उभरा हुआ सन्देश किसी भी प्रत्यक्ष उपदेश से ज्यादा प्रभावकारी सिद्ध होता है। हिंच ने कहा कि "कला आदमी के जीवन से कटकर नहीं जी सकती। उसी तरह आदमी भी कला से कटकर नहीं जी सकता। पर कला और आदमी के बीच का सम्बन्ध निर्धारित करने का दायित्व जब किसी कलाहीन राज-नीतिक के हाथ में पड़ जाता है तब कला और, आदमी दोनों की दुर्दशा होती है।"

चित्रकार हिंच जूला के साथ लेखक

हिंच जूला केवल हंगेरियन भाषा जानते हैं। इसलिए दुभाषिये के माध्यम से हमारी बातचीत हो रही थी। पर असल में उनकी कला को समझने के लिए किसी भाषा की अथवा किसी तरह की व्याख्या की जरूरत नहीं है। मैंने हंगरी के दीर्घस्थ ग्राफिक कला-कारों के चित्रों की प्रदर्शनी देखी और मुझे जूला के चित्रों ने सबसे ज्यादा प्रभावित किया। जीवन्त और सार्थक रेखाओं में जूला ने जिस तरह से आदमी के अकेलेपन को अंकित किया है, उसे देखकर कोई भी मुग्ध हुए बिना नहीं रहेगा। इन दिनों हिंच जूला गांधीजी का एक चित्र बनाने में लगे हुए हैं। उन्होंने कहा कि "गांधी के जीवन का सबसे बड़ा सन्देश था—मानव की मुक्ति। शासन से, शोषण से, मशीन से, और अपने अन्दर की घुटन से मानव आजाद हो, इस तरह का मिशन लेकर गांधी ने जिस तरह का जीवन जीया, उसे अभिव्यक्त करने का मेरा प्रयत्न होगा। फिलहाल गांधी का चित्र मेरे मन, मस्तिष्क और विचारों में तैयार हो रहा है।" मैंने जूला से कहा कि अगले वर्ष गांधी शताब्दी मनायी जा रही है। शायद आपका यह चित्र अपने आप में एक महत्वपूर्ण योगदान साबित होगा।

ग्रामदान-आन्दोलन के बारे में हंगरी में पहली बार मैंने जानकारी पहुँचायी। बुदापेस्ट

→'फ्रायड' की भाषा में कहें तो जीवन-संग्राम में असफल हो जाते हैं, वे सर्वोदय में चले जाते हैं। ऐसा हमसे बहुतों ने कहा है। क्या आप हमारी इस शंका का निवारण करेंगी? माफ कीजिएगा, आप खुद भी उनमें से तो नहीं हैं?"

सवाल यह है कि जीवन की हीनता को व्यक्ति पद, धन आदि से ढकेगा या समाज का अन्तिम व्यक्ति बनकर अपने आपको समाज में विलीन करने निकलेगा? स्वयं जीवन से निराश होकर दूसरों को कोई क्या आशा बँधायेगा? जिसकी अपनी दिशा प्रति-क्रियात्मक है, वह समाज का मार्ग-दर्शन कैसे करेगा? दूसरी बात, इस दुनिया में निराश व्यक्तियों ने यदि सर्वोदय में राहत का रास्ता खोज लिया है जो उन्हें संरक्षण देता है, उनकी सृजनात्मक शक्ति को विकसित करता है, तो इसमें नुकसान क्या है? संसार के आरोपों से बचने के लिए क्या वे घुट-घुटकर जीयें? अपनी अनन्त शक्तियों को सामा-जिक दुश्चक्रों में पड़कर आवृत्त कर दें? असन्तोष अच्छा होता है, बशर्ते कि वह कायरों का असन्तोष न हो। सर्वोदय यदि ऐसे लोगों को थाह देता है तो उसे इस पर गर्व है।

—देवी रीझवानी

विश्वविद्यालय के छात्रों के बीच जब मैंने व्याख्यान दिया तो मुझे तीखे सवालों की बौछार का सामना करना पड़ा। छात्रों की आम राय यह थी कि २० वर्षों की आजादी के बावजूद भारत ने अपनी बुनियादी समस्याओं का कोई हल नहीं ढूँढ़ा है। गांधी की मृत्यु के साथ ही भारतीय क्रान्ति की आत्मा भी मर गयी है। भारत की राजनीति और गांधी का प्रभाव असफल हो गया दीखता है। आजादी के २० सालों के बाद हम भारत से जो समाचार पाते हैं, वे यही है कि भारत भूखा है उसे और अधिक सहायता चाहिए भारतीय नेताओं को सत्ता प्राप्त करने की चिन्ता ज्यादा और समस्याएँ हल करने की चिन्ता कम है।

विद्यार्थियों की इस कटु आलोचना का उत्तर देना मेरे लिए आसान नहीं था। मैंने ग्रामदान-आन्दोलन की प्रगति और उसके लिए किये जा रहे पराक्रम की जानकारी दी। हंगरी के राष्ट्रीय समाचार-पत्र "मोज्योरनेमजेट" ने ग्रामदान के सम्बन्ध में शायद पहली बार विस्तृत जानकारी प्रकाशित की। परन्तु ग्रामदान की जानकारी मात्र से भारत की २० वर्षों की असफलता पर पर्दा नहीं डाला जा सकता। केवल हंगरी के बुद्धिजीवी और विद्यार्थी ही नहीं, बल्कि यूरोप के समझदार लोगों की यह आम धारणा है कि भारत को जो भी विदेशी मदद भेजी जा रही है, वह बरबाद हो जाती है तथा जिन्हें मदद की सचमुच जरूरत है, उन तक मदद नहीं पहुँच पाती।

हंगेरियन शान्ति-परिषद् इस समय मुख्य तौर पर वियतनाम-युद्ध के विरोध में वातावरण एवं जनमत तैयार करने का काम कर रही है तथा आम जनता से स्कूल, अस्पताल आदि के लिए मदद एकत्र करके वियतनाम भेज रही है। "वियतनाम-युद्ध के कारण अमेरिका सारे संसार की घृणा का पात्र बन रहा है।"—सुप्रसिद्ध दार्शनिक लुकाच जोर्ज ने कहा। "यह टेक्नोलाजी और मैं हथियार एक दिन स्वयं अपना ही संहार करेंगे और अपने साथ शायद इस मानव जाति का भी कुछ हिस्सा ले डूबेंगे।"—सुविख्यात कवि ज्येर्श आन्दोर ने कहा।

यूनेस्को के महामंत्री श्री मात्तेर शान्दोर से भी मेरी मुलाकात हुई। वे गांधी शताब्दी की तैयारियाँ कर रहे हैं। उन्होंने बताया कि हंगरी के एक सर्वश्रेष्ठ नाटककार नेमेथ लासलो ने गांधीजी पर एक नाटक लिखा है, उसका प्रदर्शन गांधी-शताब्दी के दौरान करेंगे। इसके अलावा, प्रदर्शनी, व्याख्यान माला पुस्तकों का प्रकाशन आदि की भी लम्बी योजना वे बना रहे हैं। —सतीश कुमार

जीवननिष्ठ विजय भाई

जब मैं श्री विजय भाई से मिला और बताया कि मैं 'भूदान यज्ञ' का प्रतिनिधि हूँ, आपके जीवन का और कार्यों का कुछ परिचय चाहता हूँ, तो उन्होंने बातचीत के दौर में बताया :

"सन् १९५५ में मैं इण्टर आइस (बाइलाजी) में सागर विश्वविद्यालय से पढ़ाई छोड़कर भूदान-यज्ञ आन्दोलन में आया। विनोबाजी के विचार और दर्शन का असर सन् १९५१ अक्तूबर को उनकी प्रथम सागर-यात्रा से हुआ था। उस समय उम्र छोटी थी, किन्तु एक बाबा भूमि माँग रहा है गरीबों के लिए और लोग दे भी रहे हैं यह एक कौतूहल था। चूँकि एक मालगुजार-परिवार में (वह भी राजपूत में) पैदा हुआ, इसलिए एक शोषण और अन्याय का चक्र नजदीक से चलते देखा था; फिर भी पिताजी के न्यायप्रिय, दयालु एवं भेदभाव से रहित स्वभाव का बचपन से ही असर रहा है। इसलिए हरिजन, छोटे, गरीब लोगों से कभी भेद नहीं करता।

"सन् १९५५ में देवरी ग्राम में हुई भूदान की पदयात्राओं के दौरान मेरे ग्राम में शान्ति टोली का मुझ पर असर हुआ। उस समय मैं किसी काम से घर पर ही था। कुछ साहित्य खरीदा और पढ़ा। पिताजी से मैंने खुद अपने हक की भूमि का छठवाँ हिस्सा प्राप्त किया, जैसी कि बाबा की माँग थी। श्री दादा भाई नाईक से इस आन्दोलन में शरीक होने तथा काम करने की बात हुई। मैं उसी समय से सागर जिले के अपने दौरे पर निकल पड़ा।

"सागर में मैं अकेला आया। दिन भर सर्वोदय व भूदान का कार्य करता। श्री राठेजा और श्री तुलसीराम यादव देवरी से मेरे पास आ गये। निधि मुक्ति के कारण ये लोग घर बैठ गये थे। किन्तु सर्वोदय-साहित्य-बिक्री करके मैंने इनके परिवारों का भरण पोषण किया। हाथठेले में साहित्य रखकर सागर शहर में घूमता, संस्थाओं में जाता तथा जिले के सभी केन्द्रों में घूमता था। ३०० या ४०० तक का साहित्य प्रतिदिन बेचता था।

"सन् १९५९ में शादी की बात तय की गयी। मेरी इच्छानुसार नीची जाति दाँगी के घर में बात चली। हम राजपूत लोग उनमें न तो शादी और न खाने-पीने का ही व्यवहार करते हैं। मैंने स्पष्ट शब्दों में लड़की से कहा कि 'आप जानती हैं मेरा काम क्या है? आप यह न सोचें कि मैं ७ ग्रामों के मालगुजार का लड़का हूँ। मैं गरीबों का सेवक हूँ। गरीबों की सेवा करना मेरा काम है।' शादी के लिए वे तैयार हो गयीं। और आज भी बहुत अनुकूल है। शादी सादगी से हुई। देवरी ग्राम में करीब १०० सर्वोदय पात्र शुरू किये थे। ग्राम में सामूहिक प्रार्थना आदि चलती थी। विनोबा जयन्ती पर एक शिविर करके जिले भर के सर्वोदय प्रेमियों को बुलाकर चर्चा एवं ग्राम में पदयात्राएँ भी की थीं, जिसमें विचार-प्रचार, साहित्य-बिक्री एवं सर्वोदय पात्र की स्थापना भी थी। सर्वोदय-पात्र-वाले साथियों में नयी प्रेरणा पैदा की गयी कि इन परिवारों में जिनके घर भी शादी

होगी अन्य सभी सर्वोदय-पात्रवाले निश्चित राशि देकर उसकी एक दिन की मदद करेंगे।

"सन् '६० में सागर के हरिजन-सेवक के राजनीति में चले जाने पर सागर के हरिजन सेवक संघ के अध्यक्ष एवं उस समय के लोकसभा-सदस्य के आग्रह पर ६० रु० मासिक पर हरिजन सेवक संघ का कार्य भी शुरू किया।

"सन् १९६२ में देवरी के मेहतरों ने अपनी माँगों के लिए हड़ताल की। मैं हड़ताल के पक्ष में था।

"बिना मुझे कुछ भी बतलाये ही मेहतर जब ग्राम छोड़कर चले गये और नगर में गन्दगी बढ़ गयी तब मैंने ग्राम का मैला-सफाई-कार्य अपने हाथ में लिया। मैं अकेला ही सफाई पर हाथ-गाड़ी लेकर निकला और प्रथम दिन करीब ८०-८५ टट्टीघरों की सफाई की। गाँव पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा। कुछ हाईस्कूल के लड़के, प्रमुख नागरिक सड़कों की सफाई में निकले। मैला-सफाई में नये लोग तो सामने नहीं आये, किंतु बहुत-से परिवारों ने अपनी टट्टी मुझे उठाने न देकर मेरी गाड़ी में डाल दी। इस प्रकार ११ दिन तक सफाई-क्रम चलता रहा।

"हाईस्कूलों और कालेजों में साहित्य-प्रचार-प्रवचन चलता रहा तथा 'भूदान-यज्ञ' और 'नयी तालीम' पत्रिकाओं के ग्राहक भी हमेशा बनाता रहा।

"सन् १९६६-६७ में केसली ग्राम में प्रखण्डदान-कार्यक्रम में शिविर किया। प्रथम प्रयास में पदयात्राओं में १६ ग्रामदान मिले। अनुकूलता देखकर केसली में ही स्थिर हुआ।

"पिछले वर्ष बिलासपुर जिले की १ माह पदयात्रा की थी, जिसमें सर्वोदय, ग्रामदान तथा राष्ट्रीय एकता का ४५ ग्रामों में प्रचार किया था। इस यात्रा में 'भूदान-यज्ञ' के २४, 'नयी तालीम' के ७, 'महादेव भाई की डायरी' के ११, 'अंत्योदय' (हरिजन से० संघ का प्रान्तीय पत्र) के ६७, 'हरिजन सेवा' (हरिजन सेवक संघ का मुखपत्र) के ३० ग्राहक बनाये थे। उस क्षेत्र के हरिजन-सवर्णों के तनाव को कम करने का ठोस व प्रभावकारी प्रयास किया था। हाईस्कूल और डिग्री कालेजों में कार्यक्रम लिये थे।

"जीवन का मुख्य उद्देश्य समाज की सेवा करने में खुद को खपाना है। राजनीति में घसीटने का कांग्रेस के मुख्य लोग खूब प्रयत्न कर चुके हैं। साहित्य-प्रचार में मुख्य रुचि है। पत्र-पत्रिकाओं का प्रचार एवं साहित्य-बिक्री अच्छी तरह कर सकता हूँ।"

जीवननिष्ठ श्री विजयभाई अपनी धुन में तन्मय रहते हैं। गरीब गरीबी से मुक्त हों, हरिजन समाज में प्रतिष्ठित हो तथा लोगों के दिलों तक सद्विचारों का स्पर्श हो, इसी कोशिश में वे बराबर लगे हुए हैं। उनके जीवन से औरों को भी प्रेरणा मिलेगी।•

प्रगति के आँकड़े

(१४ दिसम्बर '६८ तक)

प्रदेशदान	ग्रामदान	प्रखण्डदान	जिलादान
बिहार	३२,९८८	३२४	६
उत्तर प्रदेश	१०,१३६	५७	२
तमिलनाड	५,३०२	५०	१
मध्य प्रदेश	४,१५२	१८	१
अन्य	२४,४९३	६९	–
भारत में :	७७,०७१	५१८	१०

—कृष्णराज मेहता

महाराष्ट्र में ग्रामदान-कार्य

गत १३ अगस्त को शिरडी में हुए सर्वोदय-सम्मेलन में महाराष्ट्र प्रदेशदान का संकल्प करने के बाद हर एक जिले में कार्य प्रारम्भ हुआ है। कुछ जिलों में हुए कार्य का संक्षिप्त विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

चांदा : चिमूर विकास खंड में महाराष्ट्र के कुछ कार्यकर्ताओं ने पदयात्राओं द्वारा घर-घर विचार-प्रचार करके २६ ग्रामदान प्राप्त किये। गढ़चिरोली तहसील में शीघ्र ही दो प्रखण्डदान पूरे करने की योजना चरखा-संघ के कार्यकर्ताओं के सहयोग से बनी है।

भंडारा : यहाँ जिला सम्मेलन, विकास-खंड सम्मेलन, व्यक्तिगत पदयात्रा, बुद्धिवादी लोगों के शिविर आदि की योजनाएँ बनी हैं। पहले विचार-प्रचार कर और ग्राम-स्वराज्य सैनिकों की संख्या बढ़ाकर फिर पूरे जिले में एकसाथ कार्य करने पर जोर दिया जायेगा। सात-आठ ग्रामदानी गाँवों को 'रजिस्टर्ड' करने के लिए आवश्यक कागज-पत्र सरकार के पास भेजे गये हैं।

नागपुर : नागपुर शहर में शांतियात्रा के सफल आयोजन से नगर-कार्य का श्रीगणेश हुआ है। शांतियात्रा में नगर के सभी पक्षों का सहयोग मिला।

वर्धा : जिले भर में दादा-आचार्य सब के कार्यकर्ताओं की सभाओं द्वारा कार्य को गति दी जा रही है। २ अक्तूबर को शहर में शांति-जुलूस निकला था। जिले की कई ग्राम-पंचायतें ताड़ी और शराब की दुकानों के विरोध में प्रस्ताव पारित करके सरकार के पास भेज रही हैं।

यवतमाल : साहित्य प्रचार की दृष्टि से कार्यकर्ता गाँवों से सम्पर्क कर रहे हैं।

अमर वाणी

तुमने सुना है कि कहा गया है : "आँख के बदले आँख, और दाँत के बदले दाँत।" किन्तु मैं तुमसे कहता हूँ, बुरे का सामना मत करो, अपितु जो तुम्हारे दायें गाल पर थप्पड़ मारे, उसकी ओर दूसरा भी फेर दो।

तुमने सुना है कि कहा गया था : "अपने मित्र से प्रेम रखो और शत्रु से वैर।" किन्तु मैं तुमसे कहता हूँ, अपने शत्रुओं से प्रेम रखो और अत्याचारियों के लिए प्रार्थना करो, इससे अपने स्वर्गीय पिता के पुत्र साबित होगे।

सावधान, लोगों के सामने अपने धर्म कार्य इसलिए मत करो कि उनका ध्यान तुम्हारी ओर खिंचे। यदि ऐसा करोगे तो अपने स्वर्गीय पिता के यहाँ पुकार नहीं पाओगे।

जब तुम दान करते हो, तो तुम्हारा बायाँ हाथ न जाने कि तुम्हारा दायाँ हाथ क्या कर रहा है।

कोई भी दो स्वामियों की सेवा नहीं कर सकता। क्योंकि वह या तो एक से वैर और दूसरे से प्रेम रखेगा, या एक से मिला रहेगा और दूसरे का तिरस्कार करेगा। तुम ईश्वर और धन, दोनों की सेवा नहीं कर सकते। —संत मत्ती

अकोला : १३-१४ दिसम्बर को अकोला में जिला सर्वोदय-सम्मेलन हुआ। लोहगाँव नामक बड़ा गाँव सरकारी जाँच के बाद ग्रामदान घोषित हुआ। १५ से २१ दिसम्बर तक अर्थ-संग्रह और बाद में पातुर विकास-खंड में ग्रामदान-प्राप्ति की योजना बनी है।

अमरावती : ७ से १६ दिसम्बर तक कई गाँवों में पदयात्राएँ हुईं।

मराठवाड़ा : इस क्षेत्र के पाँचों जिलों के कार्यकर्ताओं ने संयुक्त कार्यक्रम बनाया। अब पदयात्राएँ की जा रही हैं। कलमनुरी तहसील की १२० मील की पदयात्रा में दो गाँव ग्रामदानी बने। कार्यकर्ता-शिविरों और पदयात्राओं द्वारा जनता में जागृति पैदा हो रही है।

सांगली : जयप्रकाशजी के आगमन पर, उनको एक लाख रुपये की थैली अर्पित करने और प्रखंडदान देने की तैयारी चल रही है।

सातारा : पाटण विकास-खंड में हुई हाल ही की पदयात्रा में, १८ ग्रामदान हुए। भूचाल-पीड़ित लोगों से सम्पर्क स्थापित कर सहायता-कार्य किया गया। यहाँ से जयप्रकाशजी को पचीस हजार रु० की थैली अर्पित करने के लिए स्वागत-समिति बनी है।

अहमदनगर : जिले में बारह हजार रु० की साहित्य-बिक्री का संकल्प किया, अब तक एक हजार रु० की साहित्य बिक्री हुई है।

जलगाँव : दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में अडावद के आस-पास पदयात्रा होगी।

धुले : जिला सर्वोदय मंडल ने बाढ़-पीड़ितों को सहायता पहुँचाने का काम किया। जिले में शीघ्र ही पदयात्राएँ होंगी।

रत्नागिरी : सर्व सेवा संघ के सहमंत्री श्री गोविन्दराव देशपांडे का दौरा जिले में ग्रामदान-कार्य को गति प्रदान करने की दृष्टि से ५ से ११ नवम्बर तक हुआ। 'आचार्यकुल' की स्थापना करने की तैयारी भी चल रही है।

भंडारा : जिले के चुने हुए कार्यकर्ताओं की सभा में जिलादान की संकल्प-पूर्ति के लिए सर्वसम्मति से प्रचार-कार्यक्रम बनाया गया है।

वाराणसी में उपवास और शान्ति-जुलूस

वाराणसी के विद्यालयों में हुई अशोभनीय, अशान्तिपूर्ण घटनाओं से व्यथित होकर अ०भा० शान्ति-सेना मण्डल के मंत्री श्री नारायण देसाई ने ७२ घंटे का उपवास किया। उनकी सहानुभूति में कुछ और लोगों ने भी २४ घंटे का उपवास किया और १५ दिसम्बर '६८ को वाराणसी नगर में शान्ति-जुलूस का कार्यक्रम रखा गया। जुलूस ने नगर-भवन के मैदान में आकर सभा का रूप ले लिया, जिसमें आचार्य दादा धर्माधिकारी ने उद्‌बोधक भाषण किया। आपने इस प्रयास को नागरिक-सत्ता का शुभारम्भ बताया।

श्री नारायण देसाई की उपवास-समाप्ति के अवसर पर दादा ने कहा : "इस उपवास में प्रतिकार का उपलक्षण नहीं था। यह प्रतिकारात्मक कदम नहीं था। जब कभी हम अपनी वेदना को सह नहीं पाते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि शारीरिक रूप से बीमार हो गये हैं। और, जब हम अपने को जिम्मेदार मानते हैं, और असहाय पाते है, तो वेदना और बढ़ जाती है। हम चीखने लगते हैं। यह स्वयस्फूर्त चीज है। इसमें संयोजन नहीं है। उपवास में सहज स्फूर्ति नहीं होगी तो वह हथियार के रूप में सफल हो सकता है, लेकिन उसमें से शान्ति की निष्पत्ति नहीं होती। प्रतिकार के साधनों में भी कुछ गुणवत्ता के तत्त्व होते हैं। चित्त में इतनी वेदना होती है कि स्वयस्फूर्त प्रेरणा होती है उपवास की। नारायण भाई का उपवास भी स्वयस्फूर्त था। इस उपवास का मकसद परिस्थिति पर किसी भी प्रकार का असर न डालने का था और परिस्थिति पर इसका असर भी नहीं होगा, असर नहीं पड़ना चाहिए।"

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

31 DEC 1968

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : १३

सोमवार ३० दिसम्बर, '६८

अन्य पृष्ठों पर

जहाँ बुद्धि का काम है, वहाँ बुद्धि चलनी चाहिए। लेकिन जहाँ बुद्धि टूटती है, वहाँ श्रद्धा की जरूरत है। जहाँ बुद्धि चलती है, वहाँ श्रद्धा का लाना गलत है। आँख के क्षेत्र में कान को पूछना और कान के क्षेत्र में आँख को पूछना गलत है। ध्वनि कैसी है, यह कान बतायेगा। उसमें आँख अंदाज नहीं लगा सकती। वैसे ही बुद्धि और श्रद्धा के अलग-अलग विषय हैं। बुद्धि के विषय में श्रद्धा चलाते हैं, तो गलत है। श्रद्धा के विषय में बुद्धि जा ही नहीं सकती वह टूट जाती है।

—विनोबा

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

चुनाव में महत्त्व पक्ष का या व्यक्ति का ?

मतदाताओं को उम्मीदवारों का विचार देखना चाहिए, पक्ष नहीं। उम्मीदवारों के विचार से भी अधिक महत्त्व उनके चारित्र्य को देना चाहिए। जो व्यक्ति चारित्र्य संपन्न होता है, उसे कोई भी स्थान क्यों न दिया जाय, वह अपनी योग्यता साबित करता है। उससे गलती हो जाय, तो भी हर्ज नहीं है। मेरा खयाल है कि जिस व्यक्ति का चारित्र्य ठीक नहीं है, वह राष्ट्र की उत्तम सेवा नहीं कर सकता। इसलिए यदि मैं मतदाता बनूँ तो उम्मीदवारों की सूची से सच्चरित्र व्यक्तियों को चुन लूँगा और फिर उनके विचार समझ लूँगा।

मतदाताओं को यदि अपनी पसन्द का उम्मीदवार नहीं मिलता है, तो उनको अपना मत देना ही नहीं चाहिए। ऐसी परिस्थिति में मत न देना ही मतदान है।

इस बारे में यह आपत्ति की जाती है कि यदि अच्छे मतदाता अपनी ओर से किसीको चुनते नहीं हैं, तो गलत लोग गलत उम्मीदवारों को चुन लेंगे। कुछ हद तक यह बात सही है। लेकिन मान लीजिए, कहीं पर सभी उम्मीदवार शराबी हैं तब अच्छे मतदाताओं का एक समूह मतदान से अछूता रहता है, और वे उम्मीदवार अपने ही ढंग के लोगों द्वारा मत प्राप्त करते हैं, तो विधान-सभाओं में उनका वजन थोड़े ही पड़नेवाला है ? यह ठीक है कि संख्या की दृष्टि से उनकी राय का मूल्य है, लेकिन कौंसिल में उनके भाषणों और दृष्टिकोण का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसके अलावा, जान-बूझकर जिन्होंने अपना मत नहीं दिया है, उसका भी प्रभाव होता है।

मतदाताओं को एक बार यदि योग्य उम्मीदवार नहीं मिला, तो दूसरी बार अच्छे व्यक्ति को खोजने का वे प्रयत्न करेंगे और उसे चुनकर लायेंगे। इस प्रकार वे अपने मतदाता-संघ का स्तर ऊँचा उठाते हैं। जो राष्ट्र प्रगतिशील होता है, उस राष्ट्र के लोग राष्ट्रीय बातों को समझते हैं। अपेक्षा यह है कि वे अपने क्षेत्र के राजनैतिक वातावरण को शुद्ध करें और शुद्ध रखें। सुशिक्षित और विचारवान मतदाताओं को इतना ध्यान रखना चाहिए कि कभी कभी ऐसी स्थिति पैदा होती ही है, जब कि उन्हें अपना मत देने से इनकार करना पड़ता है।

— मो० क० गांधी

'नवजीवन' : २६ मई, १९३०

हमारा काम मतदाता का विवेक जगाना : अच्छे उम्मीदवार का नाम बताना नहीं

पटना में १८ दिसम्बर '६८ को दिन में ढाई बजे बिहार भूदान-यज्ञ कमिटी के सभा-भवन में बिहार के जिलादानी क्षेत्र के कार्यकर्ताओं की एक चर्चा-गोष्ठी आयोजित हुई। चर्चा गोष्ठी के लिए निम्नलिखित विषय निर्धारित थे :

१. जिलादान के बाद ग्रामसभा के गठन, ग्रामदान-पुष्टि के लिए उठाये गये कदमों—जैसे, भूमिहीनों के लिए जमीन निकालने, ग्रामकोष स्थापित करने और ग्राम-शान्ति-सेना का गठन करने में हुई प्रगति की जिलावार जानकारी।

२ प्राप्त अनुभव के आधार पर आगे के लिए ऐसी व्यूह-रचना करना, जिससे ग्रामदान-पुष्टि-सम्बन्धी कार्यक्रम तेजी से आगे बढ़ सकें।

३. जिलादान के बाद ग्रामदान-पुष्टि के कार्यक्रम जिला सर्वोदय-मण्डल के माध्यम से सम्पन्न हों या जिला ग्रामस्वराज्य समिति के द्वारा, इस पर विचार।

४. मध्यावधि चुनाव में सर्व सेवा संघ द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार मतदाता-शिक्षण का कार्यक्रम असरदार तरीके से करने के उपायों पर विचार।

चर्चा-गोष्ठी में बिहार के जिलादानी जिलों के लगभग ५० कार्यकर्ता शरीक हुए थे। सर्वश्री जयप्रकाश बाबू, वैद्यनाथ बाबू और आचार्य राममूर्तिजी भी इस गोष्ठी में उपस्थित थे।

प्रारम्भ में बिहार ग्रामदान-प्राप्ति समिति के मंत्री श्री कैलाश बाबू ने मतदाता-शिक्षण-सम्बन्धी अब तक के कार्यों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया। उन्होंने बताया कि इसके लिए पिछले दिनों पटना के नागरिकों की एक बैठक बुलायी गयी थी। उस बैठक में सभी राजनैतिक दलों के नेताओं को बुलाया गया था। पूर्व निर्धारित कार्यक्रमों के कारण कांग्रेस के नेता बैठक में शरीक नहीं हो सके, इसलिए २३ दिसम्बर को पुनः बैठक हुई, जिसमें आचार-संहिता का निर्धारण हुआ।

श्री कैलाश बाबू के बाद आचार्य राममूर्तिजी ने चर्चा-गोष्ठी में सर्व सेवा संघ द्वारा स्वीकृत मतदाता-शिक्षण सम्बन्धी प्रस्ताव पढ़कर सुनाया और कहा कि पटना में जो कुछ काम हुआ है वैसा ही काम अन्य जिलों में भी होना चाहिए। आचार्य राममूर्तिजी ने कहा कि नागरिकों को दल-मुक्ति की तैयारी करनी है। वे दलों को ध्यान में रखने के बदले उम्मीदवार के गुण को ध्यान में रखकर वोट दें तो यह दल मुक्ति की दिशा में पहला कदम होगा। इस बार के चुनाव में विभिन्न दलों के अच्छे उम्मीदवार चुने जायेंगे तो आज की राजनीति और सरकार की हवा बदलेगी। अच्छे उम्मीदवारों के चुने जाने के बाद आगे चलकर नागरिकों को अपना उम्मीदवार चुनने में सफलता मिलेगी। आचार्य राममूर्तिजी ने कहा कि मतदाता-शिक्षण का काम अच्छे ढंग से चलाने के लिए निम्नलिखित दिशाओं में प्रयत्न करना है—

१ मतदाताओं को क्या करना है और क्या नहीं करना है, इसका स्पष्ट निर्देश देने के लिए एक अपील तैयार हो।

२ सभी उम्मीदवारों को एक मंच पर इकट्ठा करके सभा का आयोजन किया जाय। कई सभाएँ न हो सकें तो कम-से कम निर्वाचन-क्षेत्र में ऐसी एक सभा हो, ऐसा प्रयास किया जाय। जिला-स्तर पर तो ऐसी सभा होनी ही चाहिए।

३. श्री जयप्रकाशजी का चुनाव-सम्बन्धी एक भाषण रेकार्ड करा लिया जाय, ताकि चुनाव-सभाओं में उसका व्यापक उपयोग किया जा सके।

आचार्य राममूर्तिजी जब अपना निवेदन कह चुके तो दरभंगा के श्री रामप्रताप ठाकुर ने प्रश्न उठाया कि क्षेत्रों में नागरिक हमसे पूछते हैं कि हम अपना वोट किस उम्मीदवार को देंगे ? वे कहते हैं कि सबसे अच्छे उम्मीदवार का चुनाव करना उनकी बुद्धि के लिए कठिन काम है। इस शंका का समाधान करते हुए राममूर्तिजी ने कहा कि गुप्त मतदान लोकतंत्र का प्राण है। मैं किसे वोट दूँगा या मैंने किसे वोट दिया, यह बताने में गुप्त मतदान का शील समाप्त हो जाता है। अच्छे उम्मीदवार का नाम बताना हमारा काम नहीं, मतदाता का विवेक जगाना हमारा काम है। एक बार दिल से दल निकल जाय तो अच्छे उम्मीदवार की पहचान करना बहुत मुश्किल नहीं रह जाता।

राममूर्तिजी ने बताया कि १८ नवम्बर '६८ के 'भूदान यज्ञ' के परिशिष्ट 'गाँव की बात' के अंक में मतदाता-शिक्षण-सम्बन्धी आवश्यक सुझाव प्रकाशित किये गये हैं। उसमें बताया गया है कि (१) मतदाता पैसे के लोभ या डंडे के भय से वोट न दें, (२) चुनाव-प्रचार में बच्चों का इस्तेमाल न हो। (३) चुनाव के कारण गाँव की एकता पर कोई आघात न हो इसकी सावधानी, क्योंकि गाँव की एकता टूटेगी तो गाँव की सामूहिकता की भावना भी टूटेगी। (४) पक्षमुक्त और प्रतिष्ठित नागरिकों की निरीक्षक टोली (विजिलेंस टीम) बने, जो यह देखे कि चुनाव सम्बन्धी आचार-संहिता का पालन हो रहा है या नहीं।

चर्चा-गोष्ठी में अपना विचार प्रकट करते हुए श्री जयप्रकाश बाबू ने कहा कि राजनैतिक पक्षों के नेता पार्टी से आज स्वयं निराश हो रहे हैं। चुनाव में आम लोगों की कोई खास दिलचस्पी नहीं रह गयी है, न किसी पार्टी के लिए गहरा खिंचाव ही दीखता है। श्री जयप्रकाशजी ने सभी लोक सेवकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हुए कहा कि आप लोग अब तक चुनाव के काम से अलग रहते रहे हैं। कुछ लोगों ने कहीं-कहीं दूसरों की मदद भी की, पर कुल मिलाकर आप लोग इस काम से अलग ही रहे हैं। मध्यावधि चुनाव के लिए समय बहुत कम बचा है, इसलिए यदि जिलादानी क्षेत्रों के कार्यकर्ता इस बीच पुष्टि के काम में लगेंगे तो मतदाता-शिक्षण का काम ढीला पड़ जायेगा। इन दोनों कामों में मतदाता शिक्षण का अभी विशेष महत्त्व है; इसलिए हम सब इसमें पूरी एकाग्रता से जुट जायें।

अन्त में तय हुआ कि श्री वैद्यनाथ प्रसाद चौधरी, आचार्य राममूर्ति, श्री रामनन्दन सिंह ग्रामदानी जिलों की यात्रा कर मतदाता-शिक्षण का काम आगे बढ़ाने का प्रयास करें।

—रहमान

दो धड़ों का समाजवाद

अभी हाल में देश के दो बड़ों ने, जो राजनीति में एक दूसरे से कोसों दूर हैं, समाजवाद की व्याख्या की है। एक ने कहा है

'समाजवाद का अर्थ है कि सबको भोजन मिले। भोजन जीवन का आधार है, इसलिए कोई ऐसा न रहे जिसे भरपूर भोजन न मिले। यही समाजवाद है।' —कामराज (कांग्रेस)

इस व्याख्या के अनुसार समाजवाद = भोजन।

दूसरी व्याख्या है : 'समाजवाद का अर्थ है कि हर एक को काम मिले जिसे वह मेहनत से करे और अपने भोजन, आवास और वस्त्र के लिए कमाई करे।' —राजगोपालाचारी (स्वतंत्र)

इस व्याख्या के अनुसार समाजवाद = काम।

अगर राजाजी का जोर काम पर है तो श्री कामराज यह नहीं चाहेंगे कि भोजन सबको मुफ्त बाँटा जाय। मान लिया जा सकता है कि वह भी यही चाहते होंगे कि सबको काम मिले और काम से इतना दाम मिले कि पेट भर सके। इसलिए एक के काम तथा दूसरे के भोजन में अन्तर नहीं। अन्तर दूसरा है। राजाजी के अनुसार अन्तर समाजवाद के साध्य का नहीं है साधनों का है।

राजाजी के समाजवाद में राष्ट्रीयकरण के लिए स्थान नहीं है, जो दूसरे समाजवादियों का मुख्य नारा रहा है। वह नहीं चाहते कि सरकार पहले टैक्स आदि के द्वारा दौलत इकट्ठा करे, फिर बाँटने के उपाय सोचे। इसके विपरीत दूसरे समाजवादी अधिक-से-अधिक साधनों के राष्ट्रीयकरण द्वारा लोगों को भोजन देने की बात कहते हैं। लेकिन राजाजी का भरोसा इस बात में है कि उत्पादक उद्योगों का संचालन कुशल लोगों के हाथों में सौंपा जाय। उनके अनुसार कुशल वे ही हो सकते हैं जिनका उन उद्योगों में अपना हित है, क्योंकि हितवाले ही मुनाफे को उद्योग के विकास और विस्तार में लगा सकते हैं। राजाजी मानते हैं कि यह सरकार का काम नहीं है कि जनता पर कड़ा टैक्स लगाये, और वोट लेने के लिए लोककल्याण के नाम में खर्च करे, और अन्त में सोने का अंडा देनेवाली मुर्गी को ही मार डाले। राजाजी श्रमिकों का सुख इसीमें देखते हैं कि पूँजीवालों के हित के साथ श्रमवालों के हित का सामंजस्य होता चले, क्योंकि मजदूर और मालिक के मेल से मुनाफा होता है, और मुनाफे से ही उद्योग-धन्धों का विस्तार होता है। इसीमें सबका सुख है।

श्री राजाजी और श्री कामराज की राजनीति आपस में कोसों दूर है। एक का दल दूसरे के दल का घोर विरोधी है। अर्थनीति की दृष्टि से एक का नारा है 'फ्री इकानामी' (खुले बाजार की अर्थनीति) और दूसरे का है 'मिक्स्ड इकानामी' (मिश्रित अर्थनीति, जिसमें सरकार की प्रधानता है)। हाँ, इतना है कि सिद्धान्त का नाम चाहे जो हो, अमर्यादित मुनाफाखोरी का समर्थन न श्री राजाजी करेंगे, और न श्री कामराज। मुनाफा दोनों में है, लेकिन मर्यादित। राजाजी कहेंगे कि जब उत्पादक बाजार की खुली होड़ में उतरते हैं तो मुनाफे पर अपने आप सीमा लग जाती है, जब कि श्री कामराज के लोककल्याणकारी राज्य में मुनाफे पर मर्यादा लगाने की जिम्मेदारी सरकार पर है। खुले बाजार पर भरोसा करनेवाली अर्थनीति पूँजीवादी कहलाती है। उसमें समाजवाद नहीं है। वह ज्यादा-से-ज्यादा उदार पूँजीवाद कही जा सकती है, लेकिन है पूँजीवाद ही। मिश्रित नीति में भी समाजवाद क्या है? क्या यही कि उसमें बहुत-से अधिकार सरकार के हाथ में केन्द्रित हैं? क्या सरकारवाद से ही समाजवाद बन जाता है? उसे सरकारी कल्याणवाद भले ही कह लें, लेकिन बुनियाद में वह भी रहेगा पूँजीवादी ही। चाहे उदारवादी पूँजीवाद हो, चाहे कल्याणकारी मिश्रितवाद; समाजवाद न यह है, न वह। अनुभव यही बता रहा है कि दोनों पूँजीवाद हैं, मुखौटे उनके चाहे जो हों।

सबको भरपेट भोजन देने के नाम में हमारी राजनीति नये-नये नारे निकालती रहती है, और अपने हर नये नारे पर समाजवाद का मोहक रंग चढ़ाती है। किसी नारे में निजी पूँजीवाद का अंश अधिक हो, या सरकारी पूँजीवाद (स्टेट कैपिटलिज्म) का, सबको भरोसा सरकार और बाजार की ही शक्ति में है, समाज की नहीं।

भारत के समाजवाद का आधार न बाजार में है, न सरकार में। उसका आधार है समाज और उसकी शक्ति। समाज की शक्ति न तो राजाजी के खुले बाजारवाद से जगेगी, न श्री कामराज के मिश्रितवाद से, और न साम्यवादियों के सरकारवाद से। जरूरत है इन सबसे भिन्न समाजाधारित समाजवाद की धारा बहाने की। ग्रामदान यही चाहता है। वह चाहता है कि गाँव अपने दायरे में स्वयं अपना 'बाजार' हो, और स्वयं अपनी सरकार हो। स्वायत्त ग्रामसभा और स्वाश्रयी अर्थनीति का यही अर्थ है। गाँव की रक्षा न श्री राजाजी के समाजवाद में है और न श्री कामराज के।

बेशक हम गरीब हैं। हमारे लिए भात ही भगवान है। लेकिन क्या इसका अर्थ यह है कि जब दुनिया—आज की प्रगतिशील दुनिया—मुक्ति के नये क्षितिज पर पहुँचना चाहती है तो हमारे सामने रोटी लक्ष्य के रूप में पेश की जाय? क्या विज्ञान के इस जमाने में भी रोटी समस्या है? समस्या इसलिए है क्योंकि बाजार और सरकार की शक्तियाँ विज्ञान को जन जन के पास पहुँचने नहीं दे रही हैं। एक बार हमारे गाँवों को अपनी मूलभूत एकता की शक्ति पहचानने का अवसर मिल जाय तो वे नये-से-नये विज्ञान को बुला सकते हैं, और हर ग्रामीण को भरपूर काम और भरपेट भोजन, दोनों दे सकते हैं। रोटी को मुक्ति का विकल्प बनाने का अर्थ है समाजवाद के नाम में घोर सरकारवाद का समर्थन, जिसका आगे चलकर अर्थ है तानाशाही।

भारत का समाजवाद वही होगा जो सर्व से शुरू होगा, तथा सर्व द्वारा और सर्व के लिए चलेगा। बड़ों के समाजवाद में केवल सर्व की बात होगी, लेकिन सर्व की शक्ति या मुक्ति नहीं।●
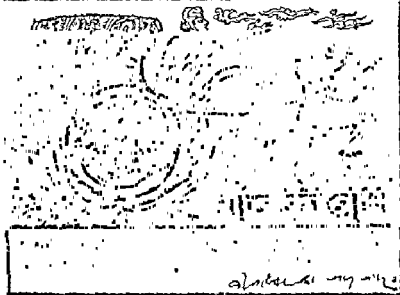
इस अंक में

२० दिसम्बर, '६८

वर्ष ३, अंक १०] [१८ पैसे

ठन-ठन…खन खन की सॉठ गॉठ

कल रात को एक अजीब सपना आया। यों तो सपने अकसर दिखाई पड़ते हैं, लेकिन बहुत कम ऐसे होते हैं, जो जगने पर भी अच्छी तरह याद रहते हों। लेकिन कल रातवाला सपना तो लगता है कि अब भी आँखों के सामने ज्यों-का-त्यों नाच रहा है :

"चारों तरफ धुन्ध-सी छायी हुई है। हम अपने गाँव से बाहर खेत की ओर जा रहे हैं। रास्ते में घास का एक लम्बा-चौड़ा मैदान है, जिसमें बहुत-सी भैंसें चर रही हैं। लेकिन चरवाहा एक भी नहीं है। चरवाहों की जगह छोटी-बड़ी बहुत-सी बाँस की लाठियाँ भैंसों के पीछे-पीछे घूम रही हैं। उनके छोटे-छोटे, पतले-पतले पाँव और हाथ उग आये हैं। उनके हिलने-डुलने पर 'ठन-ठन' की आवाज होती है और भैंसें बीच-बीच में पागुर करती हुई हरी-हरी घास चरती जा रही हैं।

"चुनाव की चहल-पहल के दिन हैं। हम दो-तीन साथियों के साथ चुनाव-चर्चा में मशगूल अपनी पगडण्डी पर जा रहे हैं। तभी कुछ अजीब-सी ठन-ठन…खन-खन…की आवाज सुनाई पड़ती है। हम चौंककर मैदान की ओर देखते हैं, जिधर से आवाज आ रही है। मैदान में जो कुछ दिखाई देता है वह बड़ा ही विचित्र है! हमारे पाँव ठिठक जाते हैं। बड़े गौर से हम सभी देखने-सुनने लगते हैं।

"मैदान के बीचों-बीच एक अजीब शक्ल की सफेद भैंस दिखाई देती है। (सफेद भैंस सपने में दिखाई दे सकती है, आप मानें या न मानें।) उसकी देह पूरी तरह चौकोर है। उस पर लिखा हुआ है—'*मध्यावधि चुनाव*'। सिर झुकाये वह भैंस पागुर कर रही है और उसके सामने रुपयों की एक थैली खड़ी है! कितनी अजीब बात है कि लाठियों की तरह उसके भी पतली-पतली टाँगें और पतले-पतले हाथ निकल आये हैं!

"धातु के रुपयों-पैसोंवाली खन-खन…की आवाज में थैली भैंस की ओर इशारा करके बार-बार कहती है—*अब की यह हमारी रहेगी।* और कई लाठियाँ एकसाथ ठन-ठन-सी आवाज में कहती हैं—*चल हट, यह हमारी रही है, और हमारी ही रहेगी!*

"फिर तो इसी बात पर दोनों की लड़ाई ठन जाती है। ठन-ठन…खन-खन की आवाजें जोरों से सुनाई पड़ती हैं। लाठी-थैली, दोनों एक-दूसरे पर वार करते जा रहे हैं।

"तभी अचानक भैंस चुपके-से दूसरी ओर पाँव बढ़ाने लगती है। लेकिन भैंस के एक-दो कदम आगे बढ़ते ही लाठी-थैली की लड़ाई थम जाती है। तुरन्त ही थैली की गर्दन में बंधी रस्सी→

नारद-मोह

हरिकिशुन की फैलायी अफ़वाह ने गाँव के कई लोगों के मन में यह लोभ पैदा कर दिया था कि ग्रामसभा का अध्यक्ष हमें ही चुना जाय। हरिकिशुन ने कई लोगों के कान में यह बात भी डाल दी थी कि 'जयनारायण और बलिराम पाँड़े वगैरह रामधनी बाबू से मिलकर ग्रामदान के बहाने माल मारना चाहते हैं। कलियुग है भाई, रुपया इस जमाने का मूलमंत्र है। पंडित की पूजा से लेकर पाकेटमार के पेशे तक का एक ही काम है रुपये हासिल करना।'

और यह बात इस प्रकार कही गयी थी कि मन के अन्दर-वाला चोर धीरे-धीरे प्रकट होने लगा था। इसलिए पूर्णिमा के दिन जब गाँव की सभा बैठी तो ग्रामदान के कागज पर हस्ता-क्षर करनेवाले दिन का जोश दूसरा ही रूप ले चुका था। ग्राम-दान के अगुवा लोगों का कहना था कि हरिहर काका को ही अध्यक्ष बनाया जाय। बात उनकी बहुत कुछ सही भी थी, क्योंकि हरिहर काका 'बेदाग' आदमी हैं। गाँव के छोटे-से लेकर बड़े तक, सब उन पर भरोसा करते हैं। कठिन-से-कठिन मामले में भी हरिहर काका की सूझ-बूझ काम देती है, लेकिन हरिकिशुन खुद ही हरिजन टोले में तरह-तरह की बातें बनाकर उनका अगुवा बन बैठा था। इसलिए हरिजन-टोले का मुखिया हरि-किशुन को अध्यक्ष बनाना चाहता था। उधर ठाकुर-टोले के लोग बाबू विश्वनाथ राय को अध्यक्ष बनाने पर उतारू थे।... और ये तो खुली बातें थीं। भीतर-भीतर तो और भी न जाने कितनों के मन में बात पक रही थी कि मौका नहीं चूकना है।

बलिराम पाँड़े को गाँव की इस तनातनी का अन्दाज मिल गया था, इसीलिए उन्होंने पड़ोसी गाँव के रामधनी बाबू को भी सभा में बुला लिया था।

गाँव के प्राइमरी स्कूल पर सभा की तैयारी थी। बैठने के लिए धान का पुआल बिखेर दिया गया था। जिन घरों में लाल-टेनें जलती थीं, उन घरों से माँगकर दिन में ही गाँव के कुछ लड़कों ने लालटेनें इकट्ठी कर ली थीं, और सबके शीशों को खूब अच्छी तरह कण्डे की राख से साफ कर लिया था। इन सब कामों में गनेसू सबका सरदार बन गया था। जगत् नारायण को यह देखकर बड़ा ही ताज्जुब हो रहा था इन दिनों, कि शरारती गोबर गनेसू इधर काफ़ी दिनों से सुधरता जा रहा है। उसे सभा बुलाने की जिम्मेदारी दे दीजिए, बैठक की जगह ठीक-ठाक करने को कह दीजिए, और भी कोई इसी तरह का काम कह दीजिए, झटपट लड़कों का एक गोल बनाकर काम में जुट जाता है। शायद इस प्रकार से उसके अन्दर आगे-आगे सबका ध्यान खींचने-वाले काम करने की भावना को एक नयी दिशा मिल गयी है, इसलिए आदतें बदलती जा रही हैं।

बैठक में करीब-करीब गाँव के सभी लोग आ गये थे। अधेड़ और बूढ़ी औरतें भी एक ओर आड़ में बैठी थीं, और लड़के तो गाँवभर के इकट्ठा हो गये थे। गाँव की सभा हो या सत्यनारा-यण की कथा हो, लड़कों के लिए यह एक विशेष दिलचस्पी की बात होती है। वे स्कूल के छोटे से मैदान में 'लुक छिपौवल' खेल रहे थे।

सभा में सबसे पहले बलिराम पाँड़े ने कहा कि "रामधनी बाबू हमारे सौभाग्य से आये हुए हैं। इनके गाँव का भी ग्रामदान हो गया है। ग्रामसभा भी बन चुकी है, इसलिए हमें इनके अनुभव की बातें भी जान लेनी चाहिए।"

लेकिन बीच में ही हरिकिशुन बोल उठा, "झटपट काम की बात करके छुट्टी दीजिए पाँड़ेजी, काम-काज का दिन ठहरा, तड़के सवेरे ही सबको जगना पड़ता है।" बात तो हरिकिशुन ने काम-काज की की थी, लेकिन मंशा यह थी कि कहीं रामधनी बाबू की बातों से उसका पासा ही न पलट जाय। इसीलिए पहले से सोची हुई योजना के मुताबिक हरिकिशुन ने प्रस्ताव पेश कर दिया, "मेरी राय में ग्रामदान की ग्रामसभा में सबसे पिछड़े लोगों को आगे लाना चाहिए। तभी तो गांधी-विनोबा की बतायी राह पर हम चल सकेंगे।"

रामधनी बाबू ने समझ लिया कि किस प्रकार की चाल चली है—हरिकिशुन ने, लेकिन बोले नहीं, सोचते रहे कि इस आदमी को ठीक राह पर लाने का क्या उपाय हो सकता है।

...आगे बढ़कर भैंस की सींग में लिपट जाती है, और लिपटकर उसे आगे खींचने लगती है। एक लाठी की बाँह भैंस की पूँछ मरोड़कर आगे ढकेलने लगती है। और तब सन-सन... ठन-ठन... की मिली-जुली समझौतेवाली आवाज सुनाई देती है—चलो, इस बार *हमारी भी, तुम्हारी भी*। थोड़ी देर और सन-सन... ठन ठन... की आवाज सुनाई देती है, और फिर तीनों धुन्ध में आँखों से ओझल हो जाती हैं। हम ठगे-ठगे-से खड़े-खड़े देखते रह जाते हैं!

"अजी, सोये ही रहोगे या उठोगे भी?" श्रीमतीजी रजाई खींचती हुई जगाती हैं।

"अरे, हाँ, आज वोट देने जाना है न!" मैं झटपट उठकर तैयार हो रहा हूँ। मन में हलचल मची हुई है कि कहीं चुनाव की भैंस को हमारे पहुँचने से पहले ही लाठी-पैली आपस में साँठ-गाँठ करके भगा न ले जायँ!•

"तुम्हारी राय में किसको अध्यक्ष बनाया जाय, हरि-किसुन ?" जगतनारायण ने पूछा। "हरिजन टोले के मुखिया बटेसर को। अगर हमें नया गाँव बनाना है, सबको समान बनाना है तो खुद को पीछे करके पीछेवालों को आगे करना होगा।" हरिकिसुन ने कहा। उसकी योजना यह थी कि सभा में इस तरह की बात कहकर वह हरिजन टोले का 'अपना' बन जायगा, फिर तो वे बेखटके उसको 'वोट' देंगे। उसकी चाल सफल भी हुई।

बटेसर ने कहा, "हम गँवार लोग क्या कर सकेंगे बाबू, मेरी राय में तो हरिकिसुन बाबू को ही ग्रामसभा का मुखिया बनाना चाहिए, आखिर गाँव में वही तो एक हैं, जिनकी पहुँच 'कोट-कचहरी' तक है, गाँव की भलाई उनसे ही होगी।"

"अरे, वाह रे बटेसर! तुम्हें भी गाँव की पंचायत में बढ़-चढ़कर बोलने की हिम्मत हो गयी। गाँव का भला अब तुम करोगे या हरिकिसुन—कचहरी का दलाल!" रामप्यारे सिंह ने ललकारते हुए कहा, "मेरी राय आप लोग मानें, और ठाकुर विश्वनाथ राय को अध्यक्ष बनायें। राज-काज का धन्धा 'राज-काज' को समझनेवाला ही कर सकता है, हर कोई नहीं। और यह ग्रामसभा का काम है तो आखिर एक छोटा-मोटा राज-काज ही।"

"यह नहीं हो सकता, कभी नहीं। अब हम जमींदारी नहीं लौटने देंगे। ग्रामदान इसलिए नहीं किया है कि जहाँ हैं वहाँ से भी पीछे जायें।" हरिकिसुन सहित उसकी तरफदारी करनेवाले लोगों ने जोश में आकर कहा।

"तो हम भी लुच्चे-लफंगों की नहीं चलने देंगे।" ठाकुर-वाले समूह के लोगों ने चुनौती दी।

हल्ला-गुल्ला और जोर-शोर की बातें सुनकर लड़के खेल बन्द करके सभा में बैठे लोगों के चारों ओर सहमकर खड़े हो गये थे। औरतें अपनी-अपनी बातें बन्द कर सभा की ओर कान लगाये थीं।

"भइया, ग्रामदान किया है, तो एक-दूसरे पर भरोसा करने के लिए, एक-दूसरे का सहारा लेकर मिलजुलकर काम करने के लिए, ताकि गाँव के सब लोगों का भला हो। अगर हम आपस में लड़ेंगे, तो हमारी हालत में क्या फर्क पड़ेगा?" हरिहर काका ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "अगर दंगल ही करना है तो ग्रामदान के कागज को चौड़े में डालकर फूँक दो, और फिर मजे से महाभारत रचाओ, देशभर में यही हो रहा है, तुम क्यों पीछे रहो?" काका की बातें सुनकर सन्नाटा छा गया। जाहिर था कि काका ने ये बातें दुःखी होकर कही हैं, नहीं तो काका को जल्दी नाराज होते किसीने नहीं देखा।

"ग्रामदान एक बार कर दिया, पैर आगे बढ़ा दिये, तो अब पीछे तो नहीं हटना है काका, लेकिन अध्यक्ष के चुनाव को लेकर सबके मन में जो चोर समा गया है, उसे कैसे भगाया जाय?" सभा में सबसे कम बोलनेवाले मनसुख ने कहा।

"गाँव का काम पूरे गाँव की एक राय से होगा तभी गाँव की भलाई हो सकेगी, इतनी बात तय है। लेकिन जबतक हम यह सोचेंगे कि अध्यक्ष-मंत्री बनकर अपना निजी लाभ उठायेंगे, तो मन का यह चोर गाँव में कुछ होने नहीं देगा। सब एक-दूसरे पर शक करेंगे, एक-दूसरे की टाँग पकड़कर पीछे की ओर खींचेंगे। यह भी समझ लेना चाहिए कि गाँव के जो भी काम होंगे, वे गाँव की पूरी सभा बुलाकर उसमें सबकी राय मिलने पर ही होंगे। गाँव के सभी आदमी बराबर की हैसियत से ग्राम-सभा के सदस्य माने जायेंगे।...और बारी-बारी से सबको जिम्मेदारी के काम करने का अवसर दिया जायगा। इतनी बातें हमने अपने गाँव में तय की हैं, अगर आप लोगों को भी अच्छी लगें तो इन पर विचार करें।" रामधनी बाबू ने कहा।

"और सरकार से जो रुपये मिलनेवाले हैं, उसे भी—सबको बराबर-बराबर बाँटेंगे?" बटेसर ने पूछा।

"कैसा रुपया? अरे भाई, सरकार के पास कहाँ इतना रुपया है कि हमें बाँटती फिरे। अबतक देश भर में सत्तर हजार से अधिक ही ग्रामदान हो चुके हैं। इतने गाँवों को कहाँ से रुपया मिलेगा? सरकार के पास तो खुद ही रुपया नहीं है कि वह अपनी योजनाएँ चला सके।" रामधनी बाबू ने कहा।

"लेकिन, हरिकिसुन बाबू ने तो...।" बटेसर बात पूरी नहीं कर पाया था कि तभी हरिहर काका बोल पड़े, "तो, यह सब हरिकिसुन मानो 'नारद' भगवान का मायाजाल है! तभी तो कहूँ कि अचानक गाँव में यह क्या होड़ मच गयी। 'लक्ष्मी' के चलते तो देवगण भी आपस में जूझ पड़े थे, लेकिन वहाँ साक्षात् 'लक्ष्मी' थीं, यहाँ उनकी कल्पना भर है।"

हरिकिसुन सहम गया। गाँव के लोगों में फिर से एक नयी भावना पैदा होने लगी। लेकिन फिर भी सवाल टेढ़ा था कि अध्यक्ष कौन बने? इसका फैसला कौन करे? कैसे करे?

★

(अध्यक्ष का चुनाव: अगले अंक में पढ़ें)

चोर की सजा

प्रश्न : ग्रामसभा के किसी परिवार ने अपनी जमीन ग्रामसभा या ग्राम-परिवार को बेची, परन्तु रात्रि को जमीन बेचनेवाले परिवारवाले के यहाँ चोरी हो गयी। वह परिवार अपनी जमीन का अधिकार छोड़ना नही चाहता है। तो ग्रामसभा उसके साथ कैसे फैसला करेगी?

विनोबा : चोरी ग्रामदान के पहले हुई है या बाद मे? अगर पहले हुई है तो उसका उपाय बताने की जिम्मेवारी बाबा पर नही आती। अगर ग्रामदान के बाद हुई होगी तो सवाल यह आयेगा कि ग्रामदान तो कागज पर था, वह असल मे आया था या नही? यानी क्या भूमिहीनों को जमीन दी गयी थी? ४० वाँ हिस्सा ग्रामसभा को दिया गया था? यह सारा हो चुका हो तो ग्रामदान हुआ, ऐसा माना जायेगा। नही तो एक संकल्प-पत्र हुआ। यादी का संकल्प हुआ था, इतने में दो मे से एक मर गया। तो अब क्या किया जाय? समझना चाहिए कि कागज पर आये हुए ग्रामदान वास्तव मे आये हैं, ऐसा मानकर मैं जवाब दे रहा हूँ।

फिर सवाल आयेगा कि चोरी किसने की, बाहर के मनुष्य ने या गाँव के अन्दर के। अगर अन्दर के मनुष्य ने की हो और वह पकड़ा गया है, ऐसा मानकर चलें; अगर न पकड़ा गया हो तो गाँववाले सावधान बनेंगे और कहेंगे कि हमारे गाँव मे चोरी होती है तो हमें सावधान बनना होगा और बारी-बारी से रात को जगना होगा, और जो चोरी हो चुकी है उसके लिए ग्रामसभा कहेगी कि इसके लिए पुलिस के पास जाने की जरूरत नही। जिसके घर चोरी हुई है, उसका निर्वाह हो सके इतनी मदद ग्रामसभा उसको दे देगी। अगर वह मनुष्य पकड़ा गया है तो उसे कहेंगे कि 'भाई, तुम्हे चोरी करने की क्यों जरूरत पड़ी? तुम्हें जिस चीज की जरूरत थी, ग्रामसभा के पास जाकर माँगना चाहिए था। ग्रामसभा तुमको मदद करने की कोशिश करती। इसलिए भैया, तुमने चोरी की यह ठीक नही किया। लेकिन अभी हम तुमको माफ करते हैं। और तुमने जिस माल की चोरी की थी उसको वापस दे दो तो वह हम मालिक के पास पहुँचा देंगे।' यों कहकर उसको थोड़ा इनाम दे देंगे, ताकि उसकी जरूरत पूरी हो।

अब इसके आगे अगर सवाल पूछेंगे कि किसीने किसी एक मनुष्य को कतल किया तो ग्रामसभा क्या करेगी? तो यह अपराध का मामला हुआ, इसलिए ग्राम में पुलिस जायेगी। तो मानना होगा कि सरकार का गाँव में इतना प्रवेश हुआ और ग्रामदानी गाँव को उतना आक्रमण सहन करना होगा। यह नही कि पुलिस को ग्रामदानी गाँव में आने का अधिकार ही नहीं, भले कतल ही की हो। यह हो सकता है कि मेरे लड़के की कतल किसीने की और उसके लिए मुझे कोर्ट मे बुलाया गया तो कोर्ट में मैं कह सकता हूँ कि इसे माफ कर दीजिए, मुझे केस करना नही। तो इसका असर पड़ेगा। मैं कह सकता हूँ कि कानून के मुताबिक उसको दण्ड दिया जा सकता है यह अलग बात है, लेकिन मैं चाहता हूँ कि इसे माफ कर दिया जाय।

भूमि-समस्या का हल

प्रश्न : पाँच प्रतिशत जमीन से भूमिहीनों की समस्या हल हो सकेगी? यदि हाँ तो कैसे? और ना, तो दूसरा क्या उपाय है?

विनोबा : हम सिर्फ पाँच प्रतिशत जमीन लेते हैं, ऐसी बात नही। मान लीजिए, किसीके पास सौ एकड़ जमीन है और उसने पाँच एकड़ जमीन दे दी। यानी बीसवाँ हिस्सा दे दिया। बाकी जो पन्चानवे एकड़ जमीन उसके पास बची, उसके उत्पादन का चालीसवाँ हिस्सा भी वह ग्रामसभा के लिए देगा। मुनाफे का चालीसवाँ हिस्सा नही। अपनी आमदनी का चालीसवाँ हिस्सा देगा। फिर वह अगर जमीन बेचना चाहे तो ग्रामसभा के द्वारा अपनी जमीन वह बेच सकेगा, क्योंकि जमीन की मिलकियत उसने ग्रामसभा में मिला दी है। ग्रामसभा उसकी जमीन की कीमत तय करके जमीन बेचने की इजाजत उसको देगी। फिर जो जमीन खरीदेगा उससे ग्रामसभा कहेगी कि अब तुम्हारे पास यह जमीन आयी है, उसका बीसवाँ हिस्सा भूमिहीनों के लिए देना होगा। इस तरह धीरे धीरे समानता की प्रक्रिया चलेगी। तो, पाँच प्रतिशत जमीन देना, यह एक फच्चर है। आखिर गाँव के सब लोग परिवार की तरह रहें, प्रेम से रहे, सब लोगों का जिम्मा उठायें, यह ग्रामदान का स्वरूप है। तो फिर आपके प्रश्न का उत्तर मैंने यह दिया कि आपका मसला पाँच प्रतिशत से समाप्त नहीं हुआ।

दूसरी बात, जिसको आप पाँच एकड़ जमीन देंगे उसके लिए वह जमीन पर्याप्त नहीं होगी। उससे अधिक उसे कुछ देना होगा, ग्रामोद्योग खड़े करने होंगे।

[गाँव के प्रमुख लोगों के साथ की चर्चा से, रामानुजगंज, २१-११-'६८]

ग्रामदान

मधुआ : ग्रामदान की एक मिसाल

मधुआ गाँव का ग्रामदान सन् १९६३ में हुआ। तब से लेकर आज तक इस गाँव में अनेक परिवर्तन हुए। लोगों के चरित्र में तथा उनकी जिन्दगी में बहुत बड़ा अन्तर पड़ा है।

यह मधुआ मुंगेर जिले के झाझा ब्लाक का छोटा-सा, १५ परिवारों का गाँव है। इसमें हरिजन और पासवान जाति के लोग रहते हैं। इनके पास २०० एकड़ जमीन है, लेकिन खेती नाममात्र की ही होती थी। क्योंकि ये लोग डकैती और चोरी करके अपनी जीविका चलाते थे। यहाँ के पुरुषों का ज्यादा समय या तो जंगलों में बिलता था या जेलों में। जेल में ही इस गाँव के प्रमुख व्यक्ति श्री धरम पासवान ने विनोबाजी का नाम सुना और ग्रामदान की बात सुनी। उन्हें ग्रामदान की बात बहुत पसन्द आयी। उनके दिमाग में ग्रामदान की बात चलती रही। जब वे जेल से छूटे तो उन्होंने गाँववालों से ग्रामदान की और विनोबाजी की बात बतायी। उन्होंने कहा कि अब चोरी और डकैती का काम छोड़कर विनोबाजी के बताये मार्ग पर चलना चाहिए, और इसलिए गाँव का ग्रामदान किया जाय। चूँकि वे गाँव के सरदार ही ठहरे, गाँव के लोग उनका आदर करते थे, इसलिए सबने तय किया कि चोरी और डकैती का काम वे छोड़ देंगे।

ग्रामीण ग्रामदान के कार्यकर्ताओं से मिले और गाँव का ग्रामदान कर दिया। गाँव का ग्रामदान कर देना तो उनके लिए बहुत सरल था, लेकिन ईमानदारी का जीवन बिताना कठिन हो गया। उनसे उस क्षेत्र की पुलिस को ५०० रुपये महीने कमाई होती थी, वह बन्द हो गयी। पुलिस उनको परेशान करने लगी। पुलिस कहती थी, चाहे जैसे हो, हमें रुपये मिलने चाहिए, और रुपये न मिलने पर उन्हें पीटती थी। इस गाँव के लोगों ने तो यहाँ तक कहा कि चोरी की योजना करने और संगठन करने में पुलिस उनकी मदद करती थी।

सन् १९६४ में धरम पासवान की मृत्यु हो गयी। गाँववालों ने पुलिस को रुपया देना पूर्ण रूप से बन्द कर दिया।

ग्रामदान कर देने मात्र से ही तो उनका पेट भरनेवाला नहीं था। चोरी, डकैती बन्द हुई यानी कमाई बन्द हुई; यद्यपि इनके पास जमीन ज्यादा थी, लेकिन सबकी सब टांड (अन-उपजाऊ), पथरीली। कहीं इन्हें मजदूरी नहीं मिलती थी, क्योंकि ये लोग पहले चोर थे, इन पर विश्वास कौन करता! अब पुलिसवाले फिर से इन्हें चोरी के धंधे में वापस आ जाने के लिए समझाने लगे। लेकिन पुलिस के लाख समझाने और न मानने पर धमकाने के बावजूद लोगों ने उनकी बात नहीं मानी। वे अपनी बात पर अड़े रहे।

इस परिस्थिति में बिहार की ग्राम निर्माण समिति ने भूमि-सुधार के लिए ३०० रुपये की मदद की। इससे ग्रामीणों में थोड़ा उत्साह आया। उन्होंने भूमि-सुधार का काम शुरू किया। ३० एकड़ भूमि खेती के लायक तैयार हुई। उन्होंने ५ मील सड़क का भी निर्माण किया।

सन् १९६६ के सूखे के समय 'फूड फार वर्क' और 'आक्सफेम' की तरफ से इन्हें भूमि-सुधार तथा सड़क-निर्माण के लिए सहायता मिली। इन कार्यक्रमों के कारण मधुआ के लोगों का उत्साह बढ़ा और तब उन्हें लगा कि नयी जिन्दगी का नया मार्ग मिल गया। सरकार के विकास-प्रयत्नों से यह गाँव २० वर्षों तक अछूता रहा है। ग्रामीणों के लिए प्रशासन का मतलब था पुलिस, पुलिस का अत्याचार और शोषण। परन्तु जब उन्हें नया कार्यक्रम मिला तो उनको रोजी तो मिली ही, लोगों में भाईचारे का भी विकास हुआ। उनका भरोसा बढ़ा और इस बात का अनुभव हुआ कि उनके कल्याण और विकास के बारे में सोचनेवाले लोग भी हैं।

इस गाँव के इन कार्यक्रमों का और इस क्षेत्र के अन्य ग्रामदानी गाँवों का प्रभाव सरकारी लोगों पर पड़ा और उनका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। सन् १९६६ में पहली बार सरकार की ओर से स्वास्थ्य-विभाग का अधिकारी इस क्षेत्र में सूखा-सहायता के लिए आया। वह गाँवों में घूम-घूमकर 'कठिन श्रम-योजना' के लिए प्रचार कर रहा था। वह ग्रामदान के महत्त्व को मानता नहीं था और कार्यकर्ताओं की उपेक्षा भी करता था। इसका नतीजा यह हुआ कि उसे सफलता नहीं मिली। फिर तो उसने इस क्षेत्र में लोगों को समझाना ही छोड़ दिया। जब उसको ग्रामदानी कार्यकर्ता की मदद मिली, तब उसके सहयोग से तीन महीने में ५३ कुएँ खोदे गये। इस कार्यक्रम में ससोदा के कार्यकर्ताओं का भी सहकार मिला।

ग्रामदान की घोषणा के बाद ही इस गाँव में ग्रामसभा का संगठन हो गया था। परन्तु दो वर्ष तक वे भ्रम और दुविधा में पड़े रहे। इनकी दुविधा तब बढ़ जाती थी जब सरकारी अधिकारी इन पर अपराध का झूठा आरोप लगाते रहते थे। इनके आरोपों से बचने के लिए ग्रामीणों ने आपस में बातचीत

की ओर यह तय किया कि इन झूठे आरोपों से बचने का एकमात्र उपाय है ग्रामसभा को मजबूत बनायें।

ग्रामदानी कार्यकर्ता ने उन्हें यह सलाह दी कि 'तुम ईमानदार रहो, मिलकर सोचो और मिलकर काम करो तो तुम सभी प्रतिकूलताओं का सामना अच्छी तरह कर सकोगे।' इस प्रकार की सलाह से उनका मनोबल मजबूत हुआ।

ग्रामीणों ने अपनी जमीन का बीसवां हिस्सा जो कुल ८ एकड़ होता है, भूमिहीनों में और कम जमीनवालों में वितरित कर दिया है। ग्रामसभा के निर्णय के अनुसार जमीन के उत्पादन का चालीसवां भाग ग्रामकोष में इकट्ठा किया जाता है। सन् १९६७ में इसकी शुरुआत की गयी थी। उस वर्ष में १९५ रु० का ग्रामकोष इकट्ठा हुआ था।

ग्रामसभा ने १०० एकड़ में भूमि-सुधार का काम शुरू किया है, जिसका ४० प्रतिशत काम अक्तूबर '६८ तक पूरा हो गया था। ग्रामसभा ने सिंचाई के लिए एक 'आहर' तैयार किया है, जिससे ३० एकड़ भूमि की सिंचाई हो जाती है। दूसरा 'आहर' बन रहा है, जिससे ५० एकड़ भूमि की सिंचाई हो सकेगी। एक और योजना सोची गयी है, जिससे इस गांव की सिंचाई पूरी हो जायेगी, और जो ज्यादा पानी होगा, वह पड़ोसी गांव को भी देंगे।

इस गांव के लोगों ने अपने गांव के लिए जो किया वह तो किया ही, ग्रामदान-आन्दोलन में भी सक्रिय भाग लिया। इनके ही पुरुषार्थ का परिणाम है कि जमुई अनुमण्डल में झाझा प्रखण्ड का दान पहले हुआ। इस गांव के ३० लोगों की टोली ने पड़ोस के गांवों में ग्रामदान-प्राप्ति का काम किया और पड़ोस के प्रखण्ड चकाई में भी ग्रामदान के काम में गये और उस प्रखण्ड का दान पूरा हुआ।

ग्रामदान में वे नयी आशा की किरणें देखने लगे हैं और उन्हें नयी जिन्दगी का रास्ता दिखाई पड़ने लगा है। नवनिर्माण कठिन परिश्रम और त्याग से ही होता है। वह इस गांव में भरपूर है। इसी तरह के प्रयत्न से पूरे देश में स्वतंत्रता, समता और भाईचारा कायम हो सकेगा। मधुरा जैसे ग्रामदानी गांवों ने इसकी शुरुआत कर दी है।

—शिवानन्द मिश्र

खेत-खलिहान

गेहूँ की पिछाही बोआई

अगर आपके पास सिंचाई की सुविधा है तो इस मौसम में गेहूँ की देर से बोआई कर सकते हैं। आप गेहूँ की बोआई गन्ना, आलू, तोरिया, फूल गोभी, गाजर या शलजम की फसलों को लेने के बाद कर सकते हैं।

खेत की तैयारी : सबसे पहले फसल की कटाई करने से एक सप्ताह पहले खेत में पानी दे दीजिए। यह गेहूँ के लिए पलेवा का काम देगा। इसके बाद एक जोताई मिट्टी पलटनेवाले हल से और दूसरी उथली जोताई कर दीजिए।

पिछाही किस्में : पिछाही बोआई के लिए नीचे बतायी किस्में बहुत उपयुक्त रहती हैं : सोनोरा ६४, शरबती सोनोरा और सोनालिका। इन तीनों किस्मों को आप दिसम्बर के मध्य से लेकर जनवरी के मध्य तक बो सकते हैं। एक अन्य बौनी किस्म सफेद लर्मा तथा लम्बी किस्म एनपी ८३० दिसम्बर के मध्य से जनवरी के पहले सप्ताह तक बोयी जा सकती है।

बीज दर और फासला : बोने के लिए प्रति हेक्टर १२५ किलोग्राम बीज लें। इस बीज को बोआई से पहले रात भर पानी में भिगोये रखें। बोआई के लिए बनायी कतारों के बीच १५ से १८ सेंटीमीटर का फासला रखें। बीज को ४-५ सेंटीमीटर की गहराई पर बोइए। इससे ज्यादा गहराई पर बोने से पैदावार गिर जायेगी। बोआई के बाद खेत में अच्छी सड़ी हुई गोबर-कूड़े की खाद की एक पतली-सी परत बिछा दीजिए।

रोपाई : आपका खेत अगर जनवरी तक तैयार होनेवाला है तो तीन सप्ताह पहले आप पौध तैयार कर सकते हैं। नरसरी में पौधों के बीच ५ सेंटीमीटर और कतारों के बीच १० सेंटीमीटर का फासला रखना चाहिए। नरसरी में पौधे घने न उगायें, क्योंकि इससे पौधे दुबले और लम्बे हो जायेंगे। स्वस्थ पौध को बाद में खेत में रोप दीजिए।

सिंचाई : बोआई के तीन-चार सप्ताह बाद पहली सिंचाई कीजिए। दोमट और भारी जमीनों में आप तीन सिंचाइयाँ कीजिए—पिछ'ही कल्ले निकलते समय, फूल आते समय तथा दूधिया अवस्था में। दूधिया अवस्था में सिंचाई उस दिन करें, जब कि तेज हवा न चल रही हो। रेतीली जमीन में दो-तीन अतिरिक्त सिंचाई की जरूरत और पड़ेगी। मार्च के महीने में तापमान बढ़ने पर सिंचाई करना बहुत जरूरी है। बौनी किस्मों की सिंचाई मार्च के शुरू में ही करना ज्यादा अच्छा रहता है।

—'कृषि-सूचना सेवा' से

विद्यार्थियों का रचनात्मक कार्य

अप्रैल से जून और सितम्बर से दिसम्बर तक श्रीलंका में एक विशेष चहल-पहल रहती है। रेलगाड़ी से या बसों से, विद्यार्थी हजारों की तादाद में किसी छोटे-से स्टेशन पर उतरकर खड़े हो जाते हैं। हर स्कूल के विद्यार्थियों के हाथ में उनके स्कूल का झंडा होता है। इन विद्यार्थियों का स्वागत करने के लिए ग्रामीण किसान पहले से स्टेशन पर मौजूद रहते हैं। गाँव के मुखिया के हाथ में श्रीलंका का राष्ट्रीय झंडा रहता है।

जैसे ही ट्रेन या बस से विद्यार्थी उतरते हैं, वे अपने स्कूल का झंडा गाँव के मुखिया के हाथ में थमा देते हैं और मुखिया राष्ट्रीय झंडा स्कूल की टोली के नेता के हाथ में थमाकर कहता है : "राष्ट्र के भविष्य की जिम्मेदारी तुम्हारे हाथ में है।"

और विद्यार्थियों की यह टोली ग्रामीणों के पीछे-पीछे चल पड़ती है। शिक्षक भी साथ होते हैं। गाँव के खेतों में पहुँचकर झंडों को खेत की मेड़ पर गाड़ दिया जाता है। इस प्रकार से ये 'खेत विद्यालय' शुरू हो जाते हैं। विद्यार्थी धान के खेतों की निराई का काम शुरू कर देते हैं। और लाखों हाथ मिलकर आनन-फानन में धान के खेतों से घास को निकालकर बाहर फेंक देते हैं।

श्रीलंका के किसान आमतौर पर धान की दो फसलें तो लेते ही हैं, अतः पौध तैयार करना, धान रोपना, और काटना यही सब करने में घास निकालने के लिए समय ही नहीं मिल पाता है। धान के खेत में घास इस देश की बहुत बड़ी समस्या थी। धान के खेतों में रासायनिक खादों का उपयोग करने से धान के पौधों के साथ-साथ घास भी बहुत तेजी से बढ़ती थी। नतीजा यह होता था कि यह घास धान के पौधे को दबा लेती थी। श्रीलंका की सरकार का ध्यान इस समस्या की तरफ गया और स्कूलों में पड़े लाखों बेकार हाथ धान के खेतों में पहुँच गये। धान के खेतों से घास गायब होने लगी। घासरहित धान के खेतों में जब रासायनिक खादों का प्रयोग शुरू किया गया तो कहीं-कहीं तो पैदावार तीन गुनी बढ़ गयी। सन् १९६६ से यहाँ की सरकार ने इस कार्यक्रम को बहुत गम्भीरता से उठाया है। नतीजा यह हुआ है कि धान की पैदावार पूरे देश में २५ लाख बुशल बढ़ गयी है। यह धान दूसरे देशों से ५ करोड़ डालर खर्च करके लेना पड़ता था। इस देश में ११ लाख एकड़ जमीन में धान की खेती होती है। यदि पूरी जमीन की औसत पैदावार ६५ बुशल प्रति एकड़ हो जाय तो अन्न की पूर्ति अच्छी तरह से हो सकती है।

'खेत विद्यालय' की योजना के अन्तर्गत विद्यार्थियों ने जहाँ धान के खेतों में से घास निकालने का काम किया है, वहाँ यदि किसान पहले ३८ बुशल प्रति एकड़ की उम्मीद करता था तो वहाँ अब ८० बुशल तक प्रति एकड़ पैदा होने लगा है। इस प्रतिफल के कारण किसान, विद्यार्थी, और सरकार, तीनों में इस काम के लिए जबरदस्त उत्साह निर्माण हुआ है।

इस कार्यक्रम से पैदावार बढ़ने के साथ-साथ और भी बहुत-से लाभ हुए हैं। जब विद्यार्थी खेतों में काम करने के लिए पहुँचते हैं तो उन्हें अपने देश को जानने का मौका मिलता है और उन लोगों से प्रत्यक्ष सम्पर्क होता है जो देशभर के लिए खाना पैदा करने का काम करते हैं।

शहर के बहुत-से बच्चों ने धान के खेत देखे भी नहीं हैं, जब वे धान के कीचड़ भरे खेतों में घुसकर ग्रामीणों के साथ-साथ घास निकालने या धान रोपने का काम करते हैं, तो उनको जानकारी होती है कि ग्रामीणों का जीवन कैसा है।

इस कार्यक्रम से ग्रामीणों की जिन्दगी में भी एक नया उत्साह तथा श्रम-प्रतिष्ठा का भाव पैदा हुआ है। इस प्रकार से काम के माध्यम से शहरी और देहाती जीवन का संयोग हो रहा है।

— नरेन्द्र

ग्रामदान-प्रगति के आँकड़े

प्रदेश	ग्रामदान	प्रखण्डदान	जिलादान
बिहार	३२,९८८	३२४	६
उत्तर प्रदेश	१०,१३६	५७	२
तमिलनाड	५,३०२	५०	१
मध्यप्रदेश	४,१५२	१८	१
अन्य प्रदेशों में	२४,४६३	६९	—
भारत में कुल :	७७,०७१	५१८	१०

मतदाताओं से

फरवरी में मध्यावधि चुनाव होनेवाला है। आप किसे वोट देंगे ? क्या आप यह नहीं कर सकते कि इस चुनाव में दिल से दल को निकाल दें ? दल, जाति, धर्म आदि के नारों से सरकार का क्या सम्बन्ध है ? अच्छे लोग चुने जायेंगे तो अच्छी सरकार बनेगी। इसलिए आप सबसे अच्छे उम्मीदवार को वोट दें, चाहे वह किसी दल, जाति या धर्म का हो। अपने और सरकार के बीच से दल को हटाइए। अच्छे लोगों को सरकार बनने दीजिए। गाँव में कोई किसी उम्मीदवार के पक्ष या विपक्ष में 'कन्वेसिंग' न करे। पूरा गाँव मिलकर तय करे या सबको अपनी मर्जी के अनुसार वोट देने की छूट दे दे।

- दलगत राजनीति अपनी विधायक शक्ति खो चुकी है।
- यह राजनीति देश को तोड़ने का कारण बन रही है।
- इस राजनीति से पूँजीशाही, नौकरशाही, और नेताशाही को बढ़ावा मिल रहा है।

अच्छा उम्मीदवार कौन ?

जो सच्चरित्र और ईमानदार हो, दल-बदल न करता हो, अपने क्षेत्र का सेवा करता हो, जो अपने बँटाईदार को बेदखल न करता हो, हमेशा खादी पहनता हो, ग्रामदान में शरीक हुआ हो, तथा जो भूमि-व्यवस्था, बेकारी, खादी-ग्रामोद्योग, नशाबन्दी आदि पर प्रगतिशील विचार रखता हो। सोचिए, आप ऐसे आदमी को वोट देंगे या दल का नाम लेकर, पैसे का लोभ देकर, डंडा दिखाकर, जाति या धर्म का पक्षपात जगाकर वोट माँगनेवाले, बुराइयों से भरे हुए उम्मीदवार को ?

चुनाव में और क्या-क्या करना चाहिए ?

पहले से दबाव, लोभ या भय के कारण वोट का वादा मत कीजिए। सोचिए अच्छा उम्मीदवार कौन है ?
चुनाव के कारण अपने गाँव की एकता मत टूटने दीजिए। उम्मीदवारों से कहिए कि वे एक दिन, एक समय, गाँव में आयें और एक सभा में अपनी-अपनी बात कहें। उनकी बात सुनकर गाँव या तो एक राय होकर वोट दे, या हरएक का अपनी मर्जी के अनुसार वोट देने को स्वतंत्र छोड़ दे। कोई किसी पर किसी तरह का दबाव न डाले।

अपने बच्चों को चुनाव के प्रचार में शरीक होने से बचाइए। दलों को उनका इस्तेमाल मत करने दीजिए। उम्मीदवारों और उनके साथियों से कहिए कि वे केवल अपनी बात कहें, अपना विचार समझायें। अपने विरोधी की भद्दी निन्दा न करें। आप खुद किसी उम्मीदवार की या किसी जाति, धर्म की निन्दा सुनने से नम्रतापूर्वक इनकार कर दीजिए।

हर ब्लाक, और हो सके तो गाँव-गाँव में, कुछ निष्पक्ष सज्जनों को लेकर 'निरीक्षण-समितियाँ' कायम कीजिए, जो देखती रहें कि चुनाव सही हो, निष्पक्ष हो, और दलों द्वारा मानी हुई मर्यादाओं का पालन हो।

सच्चे लोकतंत्र की शक्ति जनता में है, न कि दलों में। लोकशक्ति से लोकतंत्र गाँव-गाँव में आयेगा। **ग्रामदान** लोकशक्ति का आधार है।

'गाँव की बात' : वार्षिक चन्दा : चार रुपये, एक प्रति : अठारह पैसे
सम्पादक : राममूर्ति : सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-1

संकल्प लिया। इस संकल्प के बाद शायद बाबा से सतत प्रेरणा को स्थापित लेने के लिए उन्होंने चाहा कि बाबा के साथ उनका एक फोटो लिया जाय। उन्होंने मुझे एक घंटे तक सारे काम छोड़कर अपने साथ इन्तजार कराया कि इस बाप हमारे फोटो ले लीजिए। अब सुना है कि उन्होंने 'बिलादान का संकल्प' किसी फाइल में दबाकर आलमारी में रख दिया है, और मध्यावधि चुनाव में तकदीर आजमा रहे हैं।

थोड़ी धृष्टता के साथ, लेकिन नम्रतापूर्वक मैं कहना चाहता हूँ कि हमें इस पद्धति पर विचार करना चाहिए।

बाबा कार्यकर्ताओं को क्रान्ति की चार प्रेरणाएँ समझाते हैं : स्वार्थ प्रेरणा, समाज प्रेरणा, युग-प्रेरणा और ईश्वरीय प्रेरणा। और कहते हैं कि "हम जो भी काम करते हैं, वह किस प्रेरणा के अनुकूल है, यह देखना है। युग-प्रेरणा काम कर रही है। वही बाबा को भी हिला-डुला रही है। हमको विश्वास है कि भगवान ने हमको अपना औजार बनाया है, हम छोटे लोग हैं, हमसे वह बड़े काम लेना चाहता है। हमें उसका औजार बनकर युग प्रेरणा के अनुकूल काम करते जाना है।"

× × ×

शाम को आचार्यकुल की बैठक में बाबा समझाते हैं : "नीचे से जनशक्ति, और ऊपर से विद्वज्जन शक्ति खड़ी हो तो सही दिशा मिलेगी।

"यह भारतीय संस्कृति है कि यहाँ विद्वानों और ज्ञानियों पर सत्ता का अंकुश नहीं हो सकता, सत्ता पर अंकुश होना चाहिए ज्ञानियों का और विद्वानों का। आचार्यकुल से वह शक्ति हमें प्रगट करनी है।"

आचार्यकुल की इस गोष्ठी में हिन्दी साहित्य के दो मनीषी कवि महादेवी वर्मा और सुमित्रानन्दन पंत ने भी भाग लिया। आप दोनों ने आचार्यकुल के संगठन में अपना पूरा सहयोग दिया। इलाहाबाद में आप लोगों के सहयोग से आचार्यकुल की शक्ति प्रकट होगी, और पूरे देश को प्रेरणा और दिशा मिलेगी, ऐसी आशा बँधती है।

—रामचन्द्र राही

सेवाग्राम में गांधी-जन्म-शताब्दी शिविर-शृंखला आयोजित

राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी समिति की जन-सम्पर्क उपसमिति की ओर से गांधीजी के सेवाग्राम आश्रम में गत २ अक्टूबर से गांधी-जन्म शताब्दी शिविर शृंखला का आयोजन हो रहा है।

२ अक्टूबर, '६६ तक पूर्ण होनेवाले इन दस दिवसीय इन २४ शिविरों में सामूहिक प्रार्थना, ग्रामीण भाइयों के साथ कार्य, वार्तालाप, वाद विवाद, कताई, खेलकूद, गांधी-कुटी के सम्मुख सर्व-धर्म-प्रार्थना, सांस्कृतिक कार्यक्रम, गांधीजी पर चित्र व देहातों के लोगों का गायन तथा सामुदायिक जीवन मुख्य है।

शिविर प्रत्येक माह की दिनांक १ व १५ को प्रारम्भ होकर दिनांक १० व २४ को पूर्ण होते हैं। भाग लेनेवाले शिविरार्थियों को पाँच रुपये प्रवेश-शुल्क देना होता है। इन शिविरार्थियों को भारतीय रेलवे ने सेवाग्राम जाने हेतु किराये में विशेष रियायत की सुविधा प्रदान की है। विस्तृत जानकारी के लिए मंत्री, जन-सम्पर्क उपसमिति, राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी समिति, ६, राजघाट कालोनी, नयी दिल्ली-१ से सम्पर्क करें। (सप्रेस)

आन्दोलन के समाचार

पुष्पराजगढ़ तहसील में ४० ग्रामदान

शहडोल, १० दिसम्बर। मध्यप्रदेश गांधी-स्मारक निधि और प्रदेश सर्वोदय मण्डल द्वारा संचालित गांधी-जन्म शताब्दी ग्रामस्वराज्य शिविर शृंखला का उन्नीसवाँ शिविर यहाँ हाल में ही सम्पन्न हुआ। परिणामस्वरूप ४० ग्रामदान प्राप्त हुए। शिविर एवं पदयात्राओं में जिले के सर्वोदय-सेवकों, शिक्षकों आदि ने भाग लिया।

सरगुजा जिले में १०१ नये ग्रामदान

अम्बिकापुर, १५ नवम्बर से २१ नवम्बर तक की विनोबा-यात्रा के पश्चात् ७ प्रखण्डों—अम्बिकापुर, बतौली, मैनपाट सीतापुर, राजपुर, शंकरगढ़ और बलरामपुर—में आयोजित ग्रामदान-विचार-शिविरों और पदयात्राओं के फलस्वरूप १०१ नये ग्रामदान मिले हैं।

यह उल्लेखनीय है कि आगामी २६ जनवरी गणतंत्र-दिवस तक जिलादान-प्राप्ति के लक्ष्य की दिशा में उक्त पदयात्राओं का आयोजन किया गया था। इसमें सर्वोदय समिति, गांधी-निधि, भूदान बोर्ड, सर्वोदय मण्डल तथा छत्तीसगढ़ संभाग के लगभग ६० कार्यकर्ताओं ने भाग लिया—इसके अतिरिक्त सम्बन्धित प्रखंडों के चुने हुए शिक्षकों, ग्रामसेवकों, पंचायत-सचिवों, पटवारियों तथा सरपंचों ने भी हिस्सा लिया। (सप्रेस)

नीमका थाना में ग्रामदान-तूफान अभियान प्रारम्भ

पिछले ६ दिसम्बर को राजस्थान में प्रदेशदान-अभियान के प्रारम्भिक चरण के रूप में नीमका थाना में ग्रामदान-अभियान शुरू हो गया। इस अवसर पर आयोजित समारोह का उद्घाटन किया डा० दयानिधि पटनायक ने। प्रदेश के वरिष्ठ नेता सर्वश्री गोकुल भाई भट्ट और रामेश्वर अग्रवाल ने भी कार्यकर्ताओं को सम्बोधित करते हुए प्राणपण से तूफान में लग जाने की प्रेरणा दी।

भरतपुर में ग्रामदान-गोष्ठी

प्रदेशदान-अभियान को गति देने के लिए आयोजित ग्रामदान-गोष्ठी को सम्बोधित करते हुए प्रसार चिंतक श्री सिद्धराज ढड्ढा ने ग्रामदान को देश की नयी रचना की बुनियाद बताते हुए गांधीजी की कल्पना के स्वराज्य की रचना में जी-जान से लगने का आह्वान किया। इस अवसर पर भरतपुर के जननेता मा० आदित्येन्द्र ने ग्रामस्वराज्य की स्थापना को ही शान्तिपूर्ण समाज-रचना का आधार बताया।

हवेली खड़गपुर में तरुण शान्ति-सेना शिविर

दिनांक २१ दिसम्बर से २५ दिसम्बर तक हवेली खड़गपुर (मुंगेर) में जिले के सभी कालेजों एवं स्थानीय विद्यालयों के छात्रों एवं शिक्षकों का तरुण शान्ति-सेना शिविर सम्पन्न हुआ। शिविर में २५ शिविरार्थी एवं ५ विशिष्ट अतिथियों ने भाग लिया। गांधी-चित्र प्रदर्शनी एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम के समावेश से शिविर का आकर्षण बढ़ गया था। स्थानीय जनता खासी अच्छी तादाद में भाग लेने आती रही। शिविरार्थियों ने श्रमदान के कार्यक्रम द्वारा क्षेत्र की जनता से प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित किया। शिविर का संचालन राजेन्द्र श्रीकृष्ण उच्च विद्यालय के प्रा० श्री रामचरित्र सिंह द्वारा बड़ी लगन और निष्ठा से सम्पन्न हुआ।

आजमगढ़ में तहसील-दान

आजमगढ़ जिले की लालगंज तहसील के मेहनगर और तरवा प्रखण्डों में ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य का सफल हस्ताक्षर-अभियान तूफानी गति से चला रहा है। उपरोक्त दोनों प्रखण्डों की ८१ न्यायपंचायतों में जिले के सभी खादी एवं रचनात्मक कार्यकर्ताओं, शिक्षकों और ग्रामसेवकों ने तीन-तीन, चार-चार की टोलियों में बँटकर पूरे क्षेत्र में काम किया। यह स्मरण रहे कि लालगंज तहसील के ठेकमा और लालगंज प्रखण्डों का प्रखण्डदान पहले ही पूरा हो चुका था। अब मेहनगर और तरवा के प्रखण्डदान के बाद लालगंज तहसील के सभी प्रखण्डों का प्रखण्डदान पूरा हो गया। और इस प्रकार लालगंज तहसील-दान संपन्न हुआ।

—मेवालाल गोस्वामी

मीरजापुर की दुद्धी तहसील का दान बाबा को प्रयाग में समर्पित

विवरण…	
कुल जनसंख्या	१,४४,३७२
ग्रामदान में शामिल :	१,१५,५११
कुल भूमि रकबा में :	१,१०,३८४ एकड़
ग्रामदान में शामिल :	६५,२२१ ,,
कुल प्रखण्ड	: ३
ग्रामदान में शामिल	३
कुल गाँव	: २६६
ग्रामदान में शामिल :	२५७

—देवतादीन मिश्र

उत्तर प्रदेश में २० दिसम्बर '६८ तक कुल ग्रामदान : १०,५५६। प्रखण्डदान : ६६। जिलादान : २।

कानपुर में विचार-गोष्ठियाँ

विगत ७ और ८ दिसम्बर '६८ को श्री सिद्धराज ढड्ढा के सान्निध्य में 'व्यापारी समाज की स्थिति और सामाजिक दायित्व', तथा 'श्रमिक आन्दोलन की दिशा और दायित्व,' इन विषयों पर चर्चा-गोष्ठियाँ गांधी-प्रतिष्ठान केन्द्र द्वारा आयोजित की गयीं। गोष्ठियों में नगर के प्रगतिशील व्यापारी और प्रमुख श्रमिक नेताओं ने भाग लिया।

चौथा अखिल भारतीय शान्ति-सेना प्रशिक्षक शिविर सम्पन्न

पिछले २५ नवम्बर '६८ से १५ दिसम्बर '६८ तक वाराणसी में आयोजित अखिल भारतीय शान्ति-सेना प्रशिक्षक शिविर सम्पन्न हुआ। शिविर में ४५ प्रशिक्षकों ने भाग लिया, जो देश के १४ प्रदेशों से आये हुए थे। शिविर में 'शान्ति और क्रांति' विषय पर विधिवत अध्ययन का क्रम चला और देश के प्रमुख चिन्तकों एवं विचारकों के इन विषयों पर भाषण भी हुए।

फुलिया भगत के प्रयास : सन् १९६८ में

११४७ मील की पदयात्रा करके हरियाणा के ३८७ गाँवों में ग्रामस्वराज्य का संदेश पहुँचाया और रु० १४८४-१२ की साहित्य-बिक्री की।

मध्यावधि चुनाव के अन्तर्गत शराब के सेवन तथा बिक्री की रोकथाम की माँग

अखिल भारतीय नशाबन्दी परिषद् के महामंत्री श्री रूपनारायण ने चुनाव-आयुक्त श्री एस० पी० सेन वर्मा से अनुरोध किया है कि वह, जिन-जिन राज्यों में मध्यावधि चुनाव होनेवाले हैं, उनमें चुनाव की तिथियों से कम-से-कम एक सप्ताह पूर्व शराब की बिक्री तथा उसके सार्वजनिक प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाने का आवश्यक आदेश जारी करें, जिससे चुनाव में भाग लेनेवाले उम्मीदवार मतदाताओं को शराब पिलाने का प्रलोभन देकर उन्हें पथभ्रष्ट न कर सकें।

अखिल भारतीय नशाबन्दी परिषद् का एक शिष्टमण्डल इस सम्बन्ध में शीघ्र ही चुनाव-आयुक्त से मिलकर उपरोक्त सुझाव की स्वीकृति के लिए माँग पेश करेगा तथा विभिन्न राजनैतिक पार्टियों से भी इस सुझाव के समर्थन के लिए सहयोग प्राप्त करेगा।

सराहनीय !

लखनऊ से प्राप्त एक सूचना में बताया गया है कि राज्य आबकारी मंत्रालय ने गांधी-शताब्दी वर्ष के कारण अगले वित्तीय वर्ष के दौरान उत्तर प्रदेश में न कोई नया शराब का लाइसेन्स दिया जायगा तथा न शराब की दूकान खोलने का ही कोई लाइसेन्स दिया जायगा।

'वार्त्ता' संवाद समिति की सूचना के अनुसार उत्तर प्रदेश सरकार ने यह भी निश्चय किया है कि गांधी-शताब्दी-समारोह के दिनों में मद्यनिषेध के दिनों की संख्या नहीं बढ़ायी जायगी। सामान्यतया इस प्रदेश में मंगलवार को शराब की बिक्री पर प्रतिबन्ध है।

गांधी-शताब्दी वर्ष १९६८-६९

गांधी-विनोबा के ग्राम स्वराज्य का संदेश गाँव-गाँव, घर-घर पहुँचाने के लिए निम्न सामग्री का उपयोग कीजिए :

पुस्तकें—

१. जनता का राज : लेखक—श्री मनमोहन चौधरी, पृष्ठ ६२, मूल्य २५ पैसे

२. Freedom for the Masses : लेखक—श्री मनमोहन चौधरी 'जनता का राज' का अनुवाद, पृष्ठ ७६, मूल्य २५ पैसे

३. शांति-सेना परिचय : लेखक—श्री नारायण देसाई, पृष्ठ ११८, मूल्य ७५ पैसे

४. हत्या एक आकार की : लेखक—श्री ललित सहगल, पृष्ठ ९६, मूल्य ३ रु० ५० पैसे

५. A Great Society of Small Communities : ले० सुगत दासगुप्ता, पृष्ठ ७८, मूल्य १० रु०

फोल्डर—

१. गांधी : गाँव और ग्रामदान
२. गांधी : गाँव और शांति
३. ग्रामदान : क्यों और कैसे ?
४. ग्रामदान : क्या और क्यों ?
५. ग्रामदान के बाद क्या ?
६. ग्रामसभा का गठन और कार्य
७. गाँव-गाँव में खादी
८. सुलभ ग्रामदान
९. देखिए : ग्रामदान के कुछ नमूने
१०. गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम

पोस्टर—

१. गांधी ने चाहा था : सच्चा स्वराज्य
२. गांधी ने चाहा था : स्वावलम्बन
३. गांधी ने चाहा था : अहिंसक समाज
४. ग्रामदान से क्या होगा ?
५. गांधी जन्म-शताब्दी और सर्वोदय-पर्व

प्रदेश के सर्वोदय संगठनों और गांधी जन्म शताब्दी समितियों से सम्पर्क करके यह सामग्री हजारों लाखों की तादाद में प्रकाशित, वितरित कराने का प्रयत्न करना चाहिए।

शताब्दी-समिति की गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति, दुकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैंरू, जयपुर-३ (राजस्थान) द्वारा प्रसारित।

बिहार में स्वीकृत चुनाव आचार-संहिता

पटना, २१ दिसम्बर। श्री जयप्रकाश नारायण के सुझाव पर बिहार के विभिन्न राजनैतिक दलों ने आगामी मध्यावधि चुनाव के संदर्भ में कार्यान्वित करने के लिए एक सात-सूत्री आचार-संहिता स्वीकृत की है।

गत २१ दिसम्बर को इस नगर में राजनीतिक दलों के नेताओं की एक बैठक जयप्रकाशजी द्वारा प्रस्तावित आचार-संहिता पर विचार करने के लिए हुई थी। बैठक में उपस्थित कांग्रेस, प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी, लोकतांत्रिक कांग्रेस दल, भारतीय जनसंघ, भारतीय साम्यवादी दल, मार्क्सवादी साम्यवादी दल, भारतीय क्रान्ति दल तथा जनता पार्टी के प्रतिनिधियों ने प्रस्तावित आचार-संहिता पर गहराई से विचार किया और उसे कुछ संशोधनों के साथ आम राय से स्वीकार किया।

स्वीकृत आचार-संहिता इस प्रकार है :

(१) दूसरे पक्ष की आलोचना उसके उद्देश्य, नीति, कार्यक्रम तथा उसके द्वारा किये गये कार्यों को लेकर करें। किसी पक्ष के उम्मीदवार या उसके अन्य किसी सदस्य के निजी जीवन को लेकर आलोचना न करें। व्यक्तिगत आक्षेप भी ऐसे आरोपों के आधार पर न करें, जो सिद्ध न हो चुके हों।

(२) प्रचार के सिलसिले में जान-बूझकर झूठे बातें न करें।

(३) वोट प्राप्त करने के लिए गलत और निन्दनीय तरीकों का आश्रय न लें। जैसे, मतदाताओं को अपने पक्ष में करने के लिए डराना-धमकाना, रिश्वत देना, शराब पिलाना, जात-पाँत के आधार पर वोट माँगना या बोगस वोट देना दिलाना गलत और निन्दनीय है।

(४) विभिन्न जातियों, धर्मों, वर्गों, भाषाओं और प्रान्तों के लोगों के बीच घृणा पैदा करनेवाली या हिंसक भावना उभारनेवाली कोई बात न करें।

(५) विचार-प्रचार और आचार में दूसरे की स्वतन्त्रता में बाधा न पहुँचायें। जैसे, किसी पक्ष के सभा-जुलूस आदि को भंग करने-कराने का प्रयास करना, या उसके किसी और *काम में रुकावट डालना अनुचित है।*

(६) किसी प्रकार की हिंसा और अशान्ति का वातावरण न बनायें।

(७) सोलह साल से कम उम्र के बच्चों का उपयोग चुनाव-प्रचार में कतई न करें।

दुनिया भर के लोग एक हैं

'बड़ा दिन' के अवसर पर विनोबाजी का उद्बोधन

पटना, २५ दिसम्बर। आज सायंकाल ४ बजे विनोबाजी के पटना पहुँचने पर गांधी-संग्रहालय में पटना के प्रबुद्ध नागरिकों ने भावभीना स्वागत किया। पटना नगर-निगम के भूतपूर्व नगरपौर श्री रघुनाथी प्रसाद सिंह ने पटना जिलादान के कार्य के लिए अपना भरपूर सहयोग देने की घोषणा की तथा पटना के नागरिकों की ओर से विनोबाजी का हार्दिक स्वागत किया।

स्वागत-समारोह में उद्गार प्रकट करते हुए विनोबाजी ने कहा कि आज का दिन बड़ा मुबारक माना जाता है। यह ईसामसीह का जन्म-दिन है। दुनिया का कोई देश नहीं जहाँ यह दिन न मनाया जाता हो। क्या किया ईसामसीह ने ? वे एक ऐसी बात कह गये, जिसे दुनिया के सब व्यावहारिक मनुष्य अव्यावहारिक मानते हैं। ईसा ने कहा— "दुश्मन को प्यार करो, उसे प्रेम से जीतो।"

यह बहुत बड़ी बात है। चाहे दुनिया गलत रास्ते पर जाय, पर मैं सच्चाई के रास्ते पर ही रहूँगा, गलत रास्ते पर नहीं जाऊँगा।

श्री राजकिशोर साहु का देहावसान

पटना, २१ दिसम्बर। बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ के अध्यक्ष श्री राजकिशोर प्रसाद साहु का आज एक बजे दिन में सर्वोदयग्राम, मुजफ्फरपुर में देहान्त हो गया। वे ६२ वर्ष के थे। वे अपने पीछे अपनी विधवा के अलावा दो पुत्र और तीन पुत्रियाँ छोड़ गये हैं।

श्री साहु लगभग एक साल से कैंसर से पीड़ित थे।

श्री साहु को विद्यार्थी-जीवन से ही रचनात्मक कार्यों में रुचि थी। उन्होंने बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ के अनेक उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर काम किया। सन् १९६७ में वे संघ के अध्यक्ष चुने गये। इसके पूर्व वे कई वर्षों तक संघ के सचिव रह चुके थे।

'हमें पड़ोसी को उतना ही प्यार करना है, जितना हम अपने को करते हैं।' हम अपने दरवाजे में बन्द नहीं हैं, दुनिया भर में मेरे लोग फैले हुए हैं। वे सब एक हैं, अनन्त हैं और हमारे साथ हैं।•

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : ०० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ

अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : १४

सोमवार ६ जनवरी, '६६

नववर्ष का अभिनन्दन

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि
भूतानि समीक्षन्ताम् ।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि
भूतानि समीक्षे ॥

अगर मैं चाहता हूँ कि सारी दुनिया मेरी तरफ मित्र की निगाह से देखे, तो मैं भी सारी दुनिया की तरफ मित्र की निगाह देखूँगा ।

—यजुर्वेद

अन्य पृष्ठों पर

अन्य स्तम्भ

पुस्तकें, पत्र, आंदोलन-समाचार, सामयिक चर्चा

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

रचनात्मक संस्थाओं का असली मकसद

मैं नहीं चाहता कि रचनात्मक काम करनेवाली संस्थाओं का संघ कांग्रेस या सरकार का प्रतिद्वन्द्वी बन जाय। यदि रचनात्मक संस्थाओं का संघ सत्ता की राजनीति में उतरने की कोशिश करेगा तो इसमें उसका अन्त हो जायेगा। सत्ता से निगाह हटाकर, यदि हम वोटरों की निःस्वार्थ और शुद्ध सेवा करने में जुट जायेंगे तो हम उन्हें रास्ता दिखा सकेंगे और उन पर असर भी डाल सकेंगे। ऐसा करने पर हमें सरकार में पहुँचने के मुकाबले कहीं ज्यादा असली ताकत हासिल होगी। एक ऐसा समय आ सकता है, जब लोग स्वयं यह कहेंगे कि वे और किसीको नहीं, बस सिर्फ हमें सत्ता में देखना चाहते हैं। उस वक्त सत्ता में पहुँचने की बात सोची जा सकती है। मैं उस वक्त तक यकीनन जिन्दा नहीं रहूँगा। लेकिन जब वह वक्त आयेगा तबतक रचनात्मक संस्थाओं का संगठन अपने में से किसी ऐसे को ऊपर ले आयेगा, जो शासन की बागडोर सम्भाल लेगा। उस वक्त तक भारत एक आदर्श राज्य बन चुका होगा।

प्रश्न (डाक्टर जाकिर हुसेन) : आदर्श राज्य की शुरुआत करने के लिए क्या हमें आदर्श लोगों की जरूरत नहीं होगी ?

उत्तर : खुद सरकार में जाने के बदले हम अपनी पसन्द के लोगों को सरकार में भेज सकते हैं। आज कांग्रेस में सभी लोग सत्ता में पहुँचने की दौड़ में शामिल हैं। हमें सत्ता हासिल करनेवालों के इस हल्ले में शरीक नहीं होना है। हमें सत्ता की राजनीति के दूत से एकदम किनारे रहना है। रचनात्मक संस्थाओं के संगठन का असली मकसद है राजनीतिक शक्ति पैदा करना, उस पर कब्जा करना नहीं। लेकिन अगर हम कहते हैं कि राजनीतिक सत्ता हमें इसलिए मिलनी चाहिए, क्योंकि वह हमारी मेहनत का इनाम है तो इससे हम नीचे गिरेंगे।

आज की राजनीति भ्रष्ट हो गयी है। जो इसमें शामिल होता है वही भ्रष्ट हो जाता है। हम अपने आपको इससे एकदम अलग रखें। ऐसा करने पर हमारा प्रभाव बढ़ेगा। जैसे जैसे हम अपने आपमें स्वच्छ होते जायेंगे वैसे-वैसे अपनी ओर से बिना कोशिश किये ही जनता पर हमारा असर पड़ेगा।

रचनात्मक कार्यकर्ताओं का काम आम लोगों के बीच में है। उन्हें गाँवों को नयी जिन्दगी देनी है, तरक्की हासिल करानी है ज्यादा तालीम देनी है और ज्यादा ताकत देनी है।

—मो० क० गांधी

'दुर्बल व्यू होराइजन', पृ० : १२३-२४

बाबा की बातें

प्राथमिकता सत्य को

भभुवा अनुमंडल में जंगल की पड़ती जमीन पर कुछ गरीब लोगों ने कब्जा करके खेती करना शुरू किया। वह जमीन जंगल की होने के कारण सरकार ने उन पर कानूनी कार्रवाई की। उस सिलसिले में विनोबाजी की मदद माँगने के लिए आये हुए लोगों से उन्होंने कहा :

"सरकार उनको पकडकर जेल मे डालती है, यह अच्छा ही है। नही तो सरकार का कोई कानून दुनिया मे नही चलेगा। गरीबो को समझना चाहिए कि इधर-उधर से जमीन पकड़करके अपना काम चलनेवाला नही है। गाँववालों को समझना चाहिए कि उनका यह कर्तव्य है कि अपनी अच्छी जमीन का हिस्सा गरीबो को दें। गरीबों का उस जमीन पर हक है। पड़ती जमीन, जिस पर अपना हक नही है, उस पर कब्जा कर लेना ठीक नही है। बाबा गरीबो का पक्षपाती जरूर है, लेकिन सत्य का पक्षपाती पहले है। सत्य को छोड़कर किसीका पक्षपात नही करेगा। उनको जमीन चाहिए थी तो वे अर्जी करते, माँग करते।"

गांधी के नाम में गांधी की खिलाफत

भभुवा में शराब की दो दुकानें खुल गयी हैं। उस सम्बन्ध में विनोबाजी के पास वहाँ के लोगों ने शिकायत की। उस बारे में विनोबाजी ने कहा :

"आप कहते हैं कि ये दुकानें बन्द करने के लिए आप लोगों ने महामहिम के पास अर्जी भेजी है। वे तो महान महिम हैं। लेकिन महामहिम से भी बढ़कर आपकी (*जनता की*) महिमा है। *मान लीजिए, यहाँ गाय के गोश्त की दुकान* खुले तो कोई हिन्दू वहाँ गोश्त खरीदेगा? मैं सरकार को यह चुनौती देना चाहता हूँ कि 'सरकार यहाँ तीसरी भी दुकान खोल दे, लेकिन एक भी आदमी उसमें नहीं जायेगा।' यह हमें सरकार को दिखाना होगा कि कोई भी आदमी शराब की दुकान में नहीं जाता है।

"महामहिम का यह कर्तव्य है। उनको यह दुकान बंद करनी चाहिए। मेरी आवाज उनके कानों तक पहुँचेगी या नहीं, मुझे नहीं मालूम। लेकिन जहाँ गांधीजी की नहीं चली, वहाँ मेरी क्या चलेगी? यह गांधी-शताब्दी का साल है। गोवा में कांग्रेस ने तय किया है कि सात साल के बाद पूर्ण शराबबन्दी करेंगे। अब सात साल के बाद आपकी (कांग्रेसवालों की) हस्ती है कि नहीं, कौन कह सकता है? कांग्रेस ने प्रस्ताव किया है कि सात साल में एक एक दिन काटेंगे। इस काम का आरम्भ इस साल से करते तो भी कोई बात थी। लेकिन अगले साल से किया है। मतलब, एक एक दिन जो कटेगा वह अगले साल से। इससे बढ़कर गांधीजी का नाम लेकर उनके खिलाफ जाने की कोई सीमा नहीं है! इससे अच्छा तो यह होता कि वे छः साल की मर्यादा रखते और इसी साल से एक-एक दिन काटते। खैर, बहुत ज्यादा टीका मैं करना नहीं चाहता। उससे वाणी दूषित होती है।

"आप लोगों की शक्ति और महामहिम की जो भावना होगी, उसकी परीक्षा होगी।"

भभुवा (शाहाबाद): ६-१२-'६८

बिहारदान में

६ दिसम्बर के 'भूदान-यज्ञ' के अन्तिम पृष्ठ पर 'मंजूषा' में जो जानकारी दी गयी है, उससे सम्बन्धित कुछ बातें स्पष्टता के लिए लिख रहा हूँ। हमारे कार्यालय में जो भी फार्म हैं, वे सादे हैं। हस्ताक्षर किये हुए समर्पण-पत्र सर्वोदय-मण्डलो या प्राप्ति-समितियो में इकट्ठे होते हैं। इनमें से विवरण प्राप्त कर कुल १२०१ गाँवो के घोषणा-पत्र हमारे अध्यक्ष के प्रतिनिधियों के कार्यालयों में दाखिल किये गये हैं। प्रत्येक व्यक्ति के समर्पण-पत्र दाखिल होते ही प्राप्ति-रसीद दी जाती है। दाखिला-बही मे विधिवत दाखिल किया जाता है एवं पुष्टि की कार्यवाही को सचिका प्रारंभ होती है, जिन्हे काफी सुरक्षित रखा जाता है।

हमारे कार्यालय से इन दिनों प्रतिमाह दो-तीन लाख ग्रामदान के घोषणा-पत्र विभिन्न जिलो में भेजे जाते हैं, वैसे हम लोग यह कोशिश करते है कि जिन जिलो में प्राप्ति का सघन अभियान चल रहा है, वहाँ सरकारी प्रेस से सीधे फार्म चले जायें। प्रायः जिला भूदान-कार्यालयों में फार्म उपलब्ध होते हैं।

ग्रामदान के दो प्रकार के घोषणा-पत्रो के अतिरिक्त पुष्टि की कार्यवाही के लिए सात और फार्म की आवश्यकता होती है। बिहार के ग्रामदान-नियम के अनुसार कुल बीस प्रकार के फार्मों की आवश्यकता है। करीब दस हजार ग्रामदान के लिए पुष्टि के बाद काम आनेवाले फार्म भी हम लोगों ने उपलब्ध कर रखे हैं। ग्रामदान के फार्म के अतिरिक्त हमारे भूदान के कार्य से सम्बन्धित फार्मों का भी कामलायक स्टाक रखना पड़ता है। कमेटी गांधी-शताब्दी तक अवितरित भूमि का निस्तार करना चाहती है, इस हेतु इन दिनों भूमि-वितरण से सम्बन्धित फार्म आवश्यकतानुसार जिला कार्यालयों एवं वितरण-टोलियों को भेजे जाते हैं।

'भूदान यज्ञ' के पाठकों को यह भ्रम न हो कि बिहार में करीब चालीस हजार ग्रामदान हुए, जिनके लिए करीब चालीस लाख परिवारों की ओर से समर्पण-पत्र दाखिल हुए वे सब हमारे कार्यालय में केन्द्रित होकर जमा हो रहे हैं, जिनको रखने का हमारे यहाँ स्थानाभाव है। —निर्मलचन्द

मंत्री, बिहार भूदान-यज्ञ कमेटी, पटना-३

सन् १९६९ और हम

नया साल कई बातों में नया होता है। हमेशा नया होता है। लेकिन यह साल तो सबके लिए नया होते हुए भी हमारे लिए खास तौर पर नया है। सन् १९६९ गांधी-जन्म-शताब्दी का वर्ष है ; और, राज्यदान का भी। बिहार से राज्यदान शुरू होगा।

हममें से कोई ग्रामदान का काम करता हो, खादी में लगा हो या अन्य किसी सरकारी-गैरसरकारी कार्य द्वारा समाज की सेवा करता हो, ऐसे अनेक लोग हैं जो अपने को एक बड़े गांधी-परिवार का सदस्य मानते हैं और गांधी-विचार से जीवन की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। ऐसा परिवार भारत तक सीमित न रहकर अब विश्व भर में फैल रहा है।

गांधी-जन्म-शताब्दी का वर्ष राज्यदान का भी वर्ष हो, क्या इसमें इतिहास का कोई संकेत है, या सिर्फ विकास का एक संयोग ? भारत में ग्रामदान, तथा योरप में रूस के आक्रमण का चेक प्रतिकार, ये दो गांधी-विचार के नये-से-नये रूप हैं जो गांधी के बाद के जमाने में प्रकट हुए हैं। इन दोनों में अहिंसा की शक्ति का व्यापक और बिलकुल नयी परिस्थितियों में दर्शन हुआ है।

जिसे नया समाज (काउंटर सोसाइटी) कहते हैं, उसकी नींव राज्यदान से शुरू नहीं होगी तो किससे होगी ? इससे बड़ा प्रतिकार दूसरा क्या होगा कि अनीति की जिस व्यवस्था से हम पीड़ित हैं उसे जड़ से ही बदल दें ?

ग्रामदान में हमने ग्राम-स्वामित्व को नये समाज का आधार माना है। दुनिया परिवार का स्वामित्व जानती है, वह सरकार का स्वामित्व भी जानती है, लेकिन उसे ग्राम-स्वामित्व नहीं मालूम है। वह जानना चाहती है कि ग्राम-स्वामित्व के आधार पर ग्राम-व्यवस्था कैसी होगी ? राज्य व्यवस्था कैसी होगी ? कैसे होगी खेती, कैसे चलेगी शिक्षा, और कौन करेगा न्याय ? क्या रूप होगा मनुष्य और मनुष्य के नये सम्बन्धों का ? समाज-रचना के ये प्रयोग सन् १९६९ में शुरू हो जाने चाहिए।

चार राज्यों के इस मध्यावधि चुनाव में हमने कहना शुरू कर दिया है अच्छे उम्मीदवार को वोट दो, चाहे वह किसी दल का हो या किसी भी दल का न हो। यह बात बिलकुल नयी है। दिल से दल को निकालने से भूमिका बनती है दलमुक्त लोकतंत्र की। दुनिया 'एक दल का लोकतंत्र' देख चुकी है, 'एक से अधिक दलों का लोकतंत्र' भी देख चुकी है, लेकिन बिना दल के भी लोकतंत्र चल सकता है—बल्कि वह आज के लोकतंत्र से कहीं ज्यादा अच्छा और सच्चा होगा—यह बात लोगों की कल्पना के बाहर हो गयी है। लोग अब भी यह नहीं समझ पा रहे हैं कि अगर दल रहेंगे तो स्वयं लोकतंत्र समाप्त हो जायेगा, इसलिए अगर लोकतंत्र को रखना है तो दलों को समाप्त करना होगा। जाहिर है कि अब प्रयोग दलमुक्त लोकतंत्र का होना चाहिए। यह एक सत्य है जो चुनौती बनकर सामने आया है। भारत के कई राज्यों में किसी तानाशाह ने सत्ता नहीं छीनी, लेकिन जब राजनैतिक नेता न सरकार बना सके, और न चला सके, तो उनकी विफलता के कारण राष्ट्रपति-शासन लागू हुआ। जब दल सरकार भी नहीं बना या चला सकते तो उनका प्रयोजन क्या रहा ?

ग्राम-स्वामित्व यानी स्वामित्व-मुक्त ग्राम व्यवस्था तथा दलमुक्त लोकतंत्र। ये दो प्रयोग हैं जो हमारे पुरुषार्थ को पुकार रहे हैं। वस्तुत: सन् १९६९ में बिहार के राज्यदान के बाद गाँव की मुक्ति का अभियान शुरू होगा। दूसरा होगा क्या ? सन् १९४७ में विदेशी सत्ता से मुक्ति मिली थी। सन् १९६९ में हमारे गाँवों की पटना और दिल्ली की सत्ता से मुक्ति की शुरुआत होनी चाहिए। क्या हम मुक्ति के इस अभियान के लिए तैयार हैं ? अगर नहीं तो कब तैयार होंगे ?

हमारे राजनैतिक नेता जिस तरह विफल हुए हैं—और आगे भी उनके सफल होने की कोई संभावना नहीं दिखाई देती—उससे यह सिद्ध हो गया है कि दलों के हाथों में न हमारी स्वतंत्रता सुरक्षित है न लोकतंत्र। समाज में कोई नेतृत्व जैसे रहा ही नहीं। सत्ता और संगठन की एक भयंकर रिक्तता पैदा हो गयी है। ऐसी हालत में ग्रामदानी ग्राम-सभाओं का संगठन अंतिम उपाय है, जिससे जन-जीवन की यह रिक्तता भरी जा सकती है।

लोकतंत्र, आर्थिक योजना, और शिक्षण, सबकी समान स्थिति है। यह स्थिति देखकर अब कुछ विद्वान और विशेषज्ञ भी मानने लगे हैं कि आज जिस तरह का राजनैतिक और प्रशासकीय संगठन चल रहा है उसमें किसी योजना का चलना संभव नहीं है। नयी योजना के लिए नयी शक्ति चाहिए। वह शहरों से नहीं आयेगी। शहरों में मध्यम वर्ग अपने वर्ग-हित में व्यस्त है। कारखाने का मजदूर अपनी मजदूरी और महँगाई के आगे सोचता नहीं। इसलिए गाँव के सिवाय दूसरा कोई स्रोत नहीं है जहाँ से नयी शक्ति निकल सके। और, अब युग भी वर्ण, जाति या वर्ग की 'क्रांति' का नहीं रहा। अब क्रांति का मुख्य मोर्चा है शहर बनाम गाँव। लेकिन गाँव अभी इस क्रांति के लिए पूरी तरह जगा नहीं है। उसे जगाना है, और स्वत्व की रक्षा के लिए तैयार करना है, ताकि वह अपने हाथ में आने-वाली सत्ता को सँभाल सके। आज तक जो क्रांतियाँ हुई हैं उनमें सत्ता एक समुदाय के हाथ से दूसरे समुदाय के हाथ में हस्तांतरित होती रही है। अब वह दल के हाथ से निकलकर जनता के हाथ में, और शहर के हाथ से निकलकर गाँव के हाथ में जायेगी। इस दृष्टि से ग्राम-स्वराज्य में सत्ता का हस्तांतरण तो है ही, केन्द्रित सत्ता के लोप का प्रारम्भ भी है, क्योंकि अगर गाँव केन्द्रित सत्ता के प्रभुत्व से मुक्त नहीं होता तो उसके स्वराज्य का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

सन् १९६९ में 'अच्छा उम्मीदवार', और सन् १९७२ में 'अपना उम्मीदवार' ये दलमुक्ति की मंजिलें हैं। सन् १९६९ से ही तैयारी शुरू है सन् १९७२ की। सन् १९६९ पूरे तीन वर्षों का अवसर लेकर शुरू हो रहा है। इसलिए हमें तिगुने उत्साह और आत्मविश्वास के साथ उसमें प्रवेश करना है। हम तैयार तो हैं ? •

भूदान-यज्ञ, सोमवार, ६ जनवरी, '६९

अधिकार-लालसा से आबद्ध होना एकता में बाधक

—राष्ट्रीय एकता के प्रश्न पर स्वामी शरणानन्द के उद्गार—

एकता कैसे होगी ? इसका समुचित उपाय तभी स्पष्ट होगा जब हम भिन्नता क्यों होती है, इसे भलीभाँति जान लें। भिन्नता के मूल में हमारी अपनी भूल क्या है ? इस बात पर अपनी-अपनी दृष्टि से सभी को विचार करना चाहिए। हमारे दैनिक जीवन में अपने-पराये की बात कब उत्पन्न होती है ? जब हम यह भूल जाते हैं कि शरीर का, जिसे हम अपना मानते हैं, संसार और समाज से अविभाज्य सम्बन्ध है। इस मूल भूल से ही परस्पर दूरी-भेद, भिन्नता का जन्म होता है और यही सभी संघर्षों का मूल है। जिस शरीर को हम अपना मानते हैं, क्या उस पर हमारा सदा के लिए स्वतंत्र अधिकार है ? उसे जब तक चाहें, जैसा चाहें रख सकते हैं ? तो कहना होगा कि कदापि नहीं। हाँ, यह सभी कह सकते हैं कि मिले हुए शरीर का कुछ काल उपयोग करने में किसी सीमा तक स्वाधीनता है। अब यह विचार करना चाहिए कि मिली हुई वस्तु, योग्यता, शरीर आदि का अच्छे से अच्छा उपयोग क्या हो सकता है। मेरे जानते इस समस्या का समाधान यही हो सकता है कि मिली हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य के द्वारा कोई ऐसा कार्य न किया जाय, जो दूसरों के लिए अहितकर हो।

जब मानव अपने जीवन में उन सभी प्रवृत्तियों का अन्त कर देता है, जो दूसरों के लिए अहितकर हैं, तब अपने आप प्रत्येक भाई-बहन के जीवन में उन सर्वहितकारी प्रवृत्तियों की स्वतः अभिव्यक्ति होती है, जो परस्पर-एकता में हेतु है। इस दृष्टि से भिन्नता का कारण एकमात्र अहितकर प्रवृत्तियों से भिन्न कुछ नहीं है। अब विचार करना होगा कि जीवन में अहितकर प्रवृत्तियों का जन्म ही क्यों होता है ? मेरे जानते जब मानव पराश्रय के द्वारा सुख-सुविधा, सम्मान का भोग करना पसन्द करता है तभी अहितकर प्रवृत्तियों का जन्म होता है, जो भेद और भिन्नता का मूल है। सुख-सुविधा सम्मान की वासनाओं ने ही पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में अनेक भिन्नताओं को उत्पन्न कर दिया है। इतना ही नहीं, अपने में जो अपना अविनाशी जीवन है उससे भी मानव विमुख हो गया है और जो सर्वाधार, सभी का अपना है उसकी भी, विस्मृति हो गयी है, जिसका भयंकर परिणाम यह हुआ है कि व्यक्तिगत जीवन में शांति तथा स्वाधीनता नहीं है तथा पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में अविश्वास तथा संघर्ष उत्पन्न हो गया है।

आज हम लोग परस्पर-एकता, शांति, स्वाधीनता आदि दिव्य जीवन की खोज करने में लगे हैं। पर बड़े ही दुःख की बात तो यह है कि इसका उपाय अपने में नहीं खोजते। उसके लिए भी परापेक्षा ही करते हैं। जब तक इस भूल का अन्त न होगा तब तक जो सत्य सभी का है, सभी में है, सदैव है, उसकी प्राप्ति नहीं होगी और उसके बिना वास्तविक एकता संभव नहीं है।

गम्भीरता से विचार कीजिए कि क्या अधिकार-लालसा से रहित कर्तव्य-परायणता के बिना कभी भी दो व्यक्तियों, वर्गों, मजहबों, देशों आदि में एकता हो सकती है ? तो कहना होगा कि अधिकार-लालसा में आबद्ध रहने से एकता सर्वथा असंभव है। यदि एकता हो सकती है तो एकमात्र अपने अधिकार को त्यागकर दूसरों के अधिकारों की समुचित रक्षा करने से ही हो सकती है। अब विचार करना है कि हम पर दूसरों के अधिकार क्या हैं, यह तो सर्वमान्य होगा कि प्राप्त बल के द्वारा किसीको किसी प्रकार की क्षति न पहुँचायें, अपितु दूसरों के काम आयें। यहाँ तक कि उसके बदले में सेवक कहलाने की कामना भी न करें। सेवा करें, सेवक न कहलायें। त्याग करें, त्यागी कहलाने की रुचि न रखें। तब कहीं हमारे और दूसरों के बीच वास्तविक एकता सुरक्षित रह सकती है, जिसकी आज मानव आवश्यकता अनुभव करते हैं।

अधिकार-लोलुपता ने ही मानव को मानव नहीं रहने दिया। अधिकार मिलने पर प्रलोभन और न मिलने पर क्षोभ तथा क्रोध उत्पन्न होता है। अब महानुभाव विचार करें कि प्रलोभन तथा क्षोभ एवं क्रोध में आबद्ध मानव कैसे वास्तविक एकता के साम्राज्य में प्रवेश पा सकता है ? ज्यों-ज्यों अधिकार मिलता जाता है, त्यों-त्यों प्रलोभन भी बढ़ता जाता है और बलपूर्वक अधिकार छीनने से दूरी-भेद, भिन्नता बढ़ती ही जाती है, जिसका अनेक घटनाओं से अनुभव हुआ है।

वास्तव में तो कर्तव्य-पालन में ही मानव का अधिकार है, जिसका उपयोग मानव प्रत्येक परिस्थिति में स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकता है। कर्तव्यपरायण होने पर किसी बाह्य नेता, गुरु तथा शासक की अपेक्षा नहीं रहती। प्रत्येक मानव स्वाधीनतापूर्वक अपना गुरु, नेता और शासक हो सकता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें गुरुजनों-नेताओं तथा शासकों के प्रति आदर तथा सद्भाव नहीं रखना चाहिए। मानव को सभी को आदर तथा प्यार देना है सभी के प्रति सद्भाव रखना है, यह हम पर सभी का अधिकार है। सभी के अधिकारों की रक्षा ही अपना कर्तव्य है। इस दृष्टि से कर्तव्य-पालन से ही सभी के अधिकार सुरक्षित होते हैं। जिसके द्वारा सभी के अधिकार सुरक्षित होते हैं, उसमें अधिकार-लालसा की गंध भी नहीं रहती। अधिकार-लालसा से मुक्त मानव कर्तव्य-निष्ठ होता है।

कर्तव्य-परायणता ही मानवता है और मानवता की अभिव्यक्ति में ही वास्तविक एकता है और उसीमें जीवन है। दूरी-भेद, भिन्नता के रहते हुए न तो मानव स्वाधीनता ही पाता है और न उसमें उदारता तथा प्रेम की अभिव्यक्ति ही होती है। उदारता के बिना जीवन जगत् के लिए, स्वाधीनता के बिना अपने लिए एवं प्रेम के बिना प्रभु के लिए उपयोगी नहीं होता। आज मानव मानव-जीवन के महत्व को भूल गया है। उसीका यह परिणाम है कि जीवन उदारता, स्वाधीनता एवं प्रेम से भरपूर नहीं है। यदि हम ज्ञान-विरोधी विश्वास, सम्बन्ध एवं कर्म का अंत कर दें तो बड़ी सुगमतापूर्वक जीवन की सभी समस्याएँ हल हो सकती हैं। इस अनुभव-सिद्ध सत्य को अपनाये बिना कोई भी समस्या हल नहीं हो सकती। अतः प्रत्येक मानव सत्य को अपनाकर सभी के लिए उपयोगी हो जाय।

बोधगया : ८-१०-'६८

अतिमानस और 'साइंटिफिक आब्जेक्टिविटी'

• आध्यात्मिक आरोहण-अवरोहण • शब्द, भाष्य और संदर्भ

मनमोहन : आप जिसे 'अतिमानस' कहते हैं, उसकी व्याख्या कभी कभी 'साइंटिफिक आब्जेक्टिविटी' जैसी है, ऐसा आपके वचनों से लगता है। अरविन्द ने जिस अतिमानस की बात कही थी, उसमें विश्व के साथ आत्मैक्य तथा कुछ 'मिस्टिकल' अनुभव की बातें हैं। तो क्या इन दोनों कल्पनाओं में कुछ अन्तर है या एक ही वस्तु के दोनों अलग-अलग 'आस्पेक्ट्स' हैं, अरविन्द के अतिमानस का क्या साइंटिफिक आब्जेक्टिविटी' एक सोपान है ?

विनोबा : यह देखना होगा कि दोनों कल्पनाओं में क्या फरक है तथा उनको व्यक्त करने की भाषा में क्या फरक है ? अरविन्द की कल्पना वेद से ली गयी है—यद्यपि उसे 'ओरिजिनल' भी माना जाता है। अवतारवाद की यह कल्पना है। मनुष्य बिलकुल ऊँचा चढ़ते-चढ़ते परमात्मा के पास पहुँच जाता है और उसे मोक्ष मिल जाता है। तो एक तत्त्वज्ञान यह है कि मोक्ष-प्राप्ति के बाद मनुष्य को देह से छूटना ही चाहिए। उसके बाद वह कुछ काम नहीं कर सकता। मगर प्रारब्ध के कारण वह मोक्ष-प्राप्ति के बाद कुछ दिन जीये तो कुछ लोक-संग्रह भले ही करे। मगर दूसरा विचार यह है कि मनुष्य ऊँचे चढ़कर, परमात्मा के पास पहुँचकर मोक्ष प्राप्त करके फिर नीचे उतर आये और समाज में काम करे। वह बिलकुल नीचे उतरेगा नहीं, मन के ऊपर अतिमानस के स्तर पर वह रहेगा। तो उसका अवतार होगा। यह विचार वेदों में है और गीता में भी कहीं है। मगर शंकर-विचारक यह नीचे उतरने की बात नहीं मानते। वे कहते हैं कि अवतार होना, न होना तो भगवान के ऊपर छोड़ा जाय। मनुष्य को इसका अधिकार नहीं है। मोक्ष के बारे में भक्तिमार्गी तो यह कहते हैं, 'हरिनो भक्त मुक्ति न मागे, मागे जन्मजन्म अवतार रे।' खैर, यह तो कोई तत्त्वज्ञान नहीं है, यह भक्ति की महिमा प्रकट करने का एक ढंग है। इस तरह से इसके बारे में विचार है।

तो अरविन्द का यह मानना है कि मनुष्य मोक्ष के बाद नीचे उतरकर अतिमानस के एक नीचे के स्तर पर रहकर काम करेगा। यह तो कोई असामान्य पुरुष ही कर सकेगा। हरेक के लिए यह संभव नहीं है। तो सामान्य मनुष्य के लिए मेरा यह सुझाव है कि वह मानस के थोड़ा ऊपर, अतिमानस के 'साइंटिफिक आब्जेक्टिविटी' के स्तर पर उठकर काम करे। मानस से ऊपर मोक्ष तक सारा क्षेत्र अतिमानस का माना जायगा। मगर मैं उसके एक विशेष हिस्से, मानस से ऊपर का ही, बहुत ऊँचा नहीं, ऐसे स्तर की बात आम लोगों के लिए करता हूँ। मैं आरोहण की बात करता हूँ और वह अवरोहण की, चढ़कर फिर उतरने की बात करता है।

यह ठीक है कि जो आत्मदर्शन का अनुभव लेकर लौटा होगा उसकी वह ज्ञान तथा व्यापक दृष्टि होगी, वह सिर्फ 'साइंटिफिक आब्जेक्टिविटी' के स्तर पर चढ़नेवाले की नहीं होगी। पहाड़ के शिखर पर चढ़कर नीचे उतरनेवाले को जो दर्शन होगा, वह नीचे से थोड़ा ऊपर चढ़नेवाले को नहीं होगा, मगर वह ऊपर से नीचे उतरनेवाली भूमिका तो जो अवतार हो उसकी ही हो सकती है। यह दूसरी भूमिका सामान्य जन की, सब की हो सकती है। अवतार में जो दृष्टि की व्यापकता अपेक्षित है, वह सब में नहीं है।

हमने पीरपंजाल में वैसा किया, तीन-एक हजार फुट चढ़े, फिर डेढ़ एक हजार उतर गये। मगर हम बिलकुल ऊपर ही समाधि लगाकर बैठ जाते तो वह मोक्ष की स्थिति होती।

धर्मदेव : वेद में यह विचार कहाँ है ? किस वेद में ?

विनोबा : वेद के किसी एक वचन में ढूँढ़ने की जरूरत नहीं। यह विचार तो उसमें जहाँ देखो वहाँ भरा पड़ा है।

धर्मदेव : ऋग्वेद में भी है ?

विनोबा : कुछ लोग मानते हैं कि वेद एक आदिमानव के विचारों का संग्रह है और इसी दृष्टि से मानो उस आदिमानव का मन कैसे काम करता था, यह जानने की दृष्टि से अध्ययन करते हैं। दूसरे यह मानते हैं कि यह धर्म-विचार का मूल उद्गम-स्थान है। यास्क ने इन दोनों दृष्टियों से उसका भाष्य किया है। मेरा अपना मानना है कि वेद में एक पूर्ण मानव के विकसित मन का दर्शन मिलता है। बालक के जैसा कोई अविकसित मन नहीं। उस जमाने के लोग तो आदिम अवस्था में थे ही, लेकिन उनमें कुछ हो गये जिनको ध्यान-योग सधा और उन्हें अन्दर का दर्शन हुआ। और ध्यान अगर एक ध्रुव जैसे लड़के को या किसी वृद्ध को सधे तो आखिर ध्यान से प्राप्त दर्शन तो दोनों को ही होगा। उस जमाने में शब्द नये बन रहे थे, इसलिए उनके अर्थ बँधे हुए नहीं थे, व्यापक थे। इसलिए उनमें से हम गहरे अर्थ ले सकते हैं।

मनमोहन : लेकिन कुछ लोगों का यह मानना है कि किसी पुराने ग्रन्थ के शब्दों में हम जो अर्थ पढ़ते हैं, वह उसके रचयिता के मन में नहीं भी रहा हो, ऐसा हो सकता है। पुराने शब्दों का नये अर्थ में उपयोग, उनके अर्थों का विस्तार हम भी अहिंसक क्रान्ति का एक तरीका मानते हैं। वैसे ही जमाने से हुआ है और आज हम जो 'फंड' इस शब्द में पाते हैं, वह उस जमाने में जो लिखनेवाले थे उनके विचार में नहीं था।

विनोबा : यह ठीक है। मगर वैसा करने का अधिकार हमको है। ऋषि तो मंत्र-द्रष्टा होता है, मंत्र-कर्ता नहीं। इसलिए उस मंत्र के सारे अर्थों का दर्शन उसे भी होता है, ऐसा नहीं। उस मंत्र पर वह एक भाष्य लिखे और मैं—जिसे उसका दर्शन नहीं हुआ है—वह भी एक भाष्य लिखे तो यह संभव है कि उसका गलत और मेरा ही सही साबित हो। एक बार मंत्र उसने दे दिया तो फिर वह सबकी संपत्ति बन जाती है, उसकी नहीं रह पाती। इसलिए आज जो अर्थ मैं उसमें से लेता हूँ वह उसके रचयिता के मन में हो,→

शान्ति और क्रान्ति : दादा धर्माधिकारी

आज दुनिया मे पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी में बहुत फर्क पड गया है। तरुणों की क्रान्ति आज उच्छृंखल रूप ले रही है। दुनिया में यह एक अपूर्व घटना है। यह कोई ऐतिहासिक घटना है या नैसर्गिक घटना, या वैज्ञानिक प्रक्रियाओं का परिपाक, इसको समझने के पहले ही प्रतिकार की योजना हम बना लेते हैं।

सारी क्रान्तियों की परिसमाप्ति शान्ति में होगी, यह असल में क्रान्तिकारियों की कल्पना रही है। परन्तु आज हो क्या रहा है, शान्ति और क्रान्ति, दोनों एक-दूसरे के मुकाबिले में खड़ी हैं। यह क्यों हो रहा है? शान्ति का भी एक पक्ष हो, एक बाजू हो, यह एक अनहोनी-सी घटना है। असल में शान्ति का कोई पक्ष नहीं हो सकता। वह सार्वत्रिक है। आज आप शान्ति का एक पक्ष इसलिए देख रहे हैं कि शान्ति भी एक कल्पना है, क्रान्ति भी एक कल्पना है, शान्ति भी एक विचार और क्रान्ति भी एक विचार।

क्रान्तिवादी बनाम शान्तिवादी

जब जीवन का कोई एक आयाम, जीवन का कोई एक अंग तत्त्व में बदल जाता है, तब संघर्ष शुरू हो जाता है। जीवन कई तरह के अंगों से बना है। उनमें क्रान्ति और शान्ति जीवन के अनिवार्य अंग हैं। लेकिन जीवन का कोई एक अंग तत्त्व में परिणत हो जाता है, तब वह घनीभूत हो जाता है, फिर उस घनीभूत अंग का विचार बन जाता है, और जहाँ जीवन और विचार अलग-अलग हुए वहाँ दो विचार एक-दूसरे के मुकाबिले खड़े हो जाते हैं। ये दो विचार जब मुकाबिले में खड़े होते हैं तब वे वाद बन जाते हैं। उसी तरह शान्ति और क्रान्ति के भी दो सिद्धान्त बन गये हैं और दोनों वाद हो गये—शान्तिवाद, क्रान्तिवाद। एक क्रान्तिकारी खड़ा हो गया और एक शान्तिवादी खड़ा हो गया। शान्तिवादी अपने को 'पैसिफिस्ट' कहलाने लगा।

जीवन के दो टुकड़े

पुराने काल में हिंसा के विरोध में से अहिंसा का आरम्भ हुआ और अन्त में अहिंसा एक वाद बना—बौद्धों और जैनों ने उसका सिद्धान्त बनाया। सिद्धान्त का व्यवहार के साथ बहुत ही कम सम्बन्ध आता है, तो अब जीवन के दो टुकड़े बन गये—व्यवहार और सिद्धान्त। सवाल है, कौन किसके पीछे चले? व्यवहार सिद्धान्त के पीछे चले, या व्यवहार के पीछे सिद्धान्त चले। सिद्धान्तवादी ध्येयनिष्ठ कहलाया, स्वप्न-रंजन करनेवाला। उस सपने को वह अपने जीवन में चरितार्थ करना चाहता है। 'यूटोपियन' एक उदात्त कल्पना के पीछे चलनेवाला, और दूसरा है 'प्रेगमेटिक'। व्यवहारवादी यह कहता है कि व्यवहार के अनुरूप सिद्धान्त को चलना चाहिए। अब इन दोनों से भिन्न एक तीसरा चला, विज्ञानवादी, वस्तुवादी। वस्तुवादी की दृष्टि वैज्ञानिक है। वह यह कहता है कि केवल सिद्धान्तवादी और केवल व्यवहारवादी वैज्ञानिक नहीं हैं। वे हमारे काम के नहीं हैं। अब यह जो वस्तुवादी है—यहाँ वस्तुवादी से मेरा मतलब है समाज-परिवर्तन की प्रक्रिया में जो वस्तुवादी है—यह वस्तुवादी कहता है सारे सिद्धान्तों की कसौटी व्यवहार में है। यहाँ व्यवहार माने आचरण। तो सिद्धान्त आचरणीय होना चाहिए। इस पर सिद्धान्तवादी कहता है कि सिद्धान्त आचरणीय हो जायगा तो आचरण ही सिद्धान्त होगा। फिर अलग से सिद्धान्त की जरूरत ही नहीं। इसका मतलब यह है कि प्रगति रह ही नहीं जाती, प्रगति रुक जाती है। जीवन में कोई दिशा नहीं, कोई मकसद नहीं आदर्श का कोई सितारा नहीं, तो प्रगति होगी ही नहीं। इस पर व्यवहारवादी कहता है, जो सिद्धान्त आचरणीय नहीं है, वह हमारे किस काम का? पुराने शास्त्रकारों ने इसको नाम दिया है 'खपुष्प' आसमान का फूल। इसके दो प्रतीक हैं—पारस-पत्थर और वृत्त को चौकोर में बदल देना। दोनों असम्भव हैं। मनुष्य ने पारस-पत्थर की खोज की, उसमें से रसायन विज्ञान आ गया। पारस-पत्थर लोहे को सोना बनाता है, कीमिया करता है। इस प्रक्रिया में से रसायन-शास्त्र निकला और वृत्त को चौकोर बनाने की प्रक्रिया में से ज्यामिति (भूमिति) आयी। नतीजा यह हुआ कि दुनिया के विचारकों ने, बुद्धिमानों ने जीवन में आदर्श का स्थान अनिवार्य माना।

जीवन का प्रयोजन

आज दुनिया भर में तरुणों का विद्रोह हो रहा है। उसमें दो-तीन प्रेरणाएँ काम कर रही हैं। अस्तित्ववाद की प्रेरणा है, झेन-बुद्धिज्म (Zen Budhism) की प्रेरणा है और तत्त्ववाद की भी प्रेरणा इसमें है। अस्तित्ववादी कहता है, जीवन जो है सो है। उसमें कोई मतलब मत खोजो। जीवन का प्रयोजन खोजना गलत है। जीवन है उसको स्वीकार करो। प्रयोजन की खोज में लगोगे तो जीवन-विमुख बन जाओगे। अलबर्टकामू कहता है कि जीवन में कोई मतलब नहीं ऐसा मैं मानता हूँ, फिर भी देखता हूँ कि विश्व में कोई ऐसा प्राणी भी है, जो जीवन के मतलब की खोज में है। वह प्राणी मनुष्य है।

→ यह कोई जरूरी नहीं। ऐसा कानून के 'इंटरप्रिटेशन' में भी होता है। उसमें कुछ 'प्रेसिडेंस' भी देखा जाता है सही, मगर उसको गौण स्थान है।

फिर हमको कहते हैं कि अमुक कटेक्स्ट' में उसका अमुक अर्थ या 'पटेंट' था वह 'कटेक्स्ट' भी जमाने के साथ बदलता है। उस जमाने में उस 'कटेक्स्ट' का जो अर्थ था वह आज बदल गया है।

आज हम कहीं बेहतर स्थिति में हैं। हमारे पास वेद के शब्दों के सारे 'इंडेक्स' पड़े हैं। कौन शब्द कितनी बार आया है—दो दो, तीन-तीन शब्द एकसाथ कितनी बार आये हैं, ये सारे आज हमें उपलब्ध हैं। उन सारे वाक्यों को हम सामने रखकर चिंतन कर सकते हैं।

विज्ञान में एक शब्द को एक अर्थ देने की कोशिश होती है। 'प्रिसिजन' होता है। 'मॅथेमेटिक्स' में आप थोड़ा भी इधर-उधर नहीं कर सकते। कानून में भी एक ही अर्थ डालने की कोशिश होती है, फिर भी वकीलों की करामात से उनमें से दो-दो अर्थ निकल आते हैं। मंत्र में इसका उल्टा होता है। कोई भी उसका स्वतंत्र अर्थ कर सकता है। ज्ञानदेव के भजनों पर मैंने ध्यान किया है और 'ज्ञानदेव-चिंतनिका' छपी है। दूसरे को भी ध्यान वही हो, यह मैं दावा नहीं करता।

[दिनांक १-१०-'५६ को हुई चर्चाओं से।]

अन्त में हुआ क्या ? केवल व्यवहारवादी धीरे-धीरे किसी एक 'स्वर्ग' को सामने रखने लगा। टामस मोर ने इसे 'यूटोपिया' कहा। फिर उसने कहा, "इस आदर्श समाज की ओर बढ़ना ही शांति है। और ऐसे समाज की ओर बढ़ने की प्रक्रिया ही क्रान्ति की प्रक्रिया है। इस आदर्श समाज की ओर जाने की दो प्रक्रियाएँ हैं, एक क्रान्ति की प्रक्रिया और दूसरी सयोजन की। सारा सयोजन आदर्श की खोज के लिए होता है।"

व्यवहारवादी

अब यह जो केवल व्यवहारवादी है, उसका नाम है पालिटिशियन। यह पालिटिशियन वस्तुवादी नहीं है—व्यवहार अलग चीज है, वस्तु अलग चीज है। व्यवहार भी एक 'फिक्शन' है, कल्पना है। व्यवहार को कभी पकड़ नहीं सकते। जिसे आप व्यवहार कहते हैं, वह सबसे ज्यादा अव्यावहारिक है। कैसे ? व्यवहार का सिद्धान्त क्या है ? किसी पर सहसा भरोसा नहीं करना चाहिए। इसलिए सिखाया गया कि पैसा देना हो तो पहले रसीद लो और बाद मे पैसा दो। और जब पैसा लेना हो तो पहले पैसा लो, तब रसीद दो। अब यह जो व्यवहार है वह मनुष्यों के सम्बन्ध में असम्भव है। विसंगति स्पष्ट है। और सारी राजनीति इसी व्यवहारवाद पर खड़ी है। इसलिए वह सफल नहीं होती। अगर राजनीति सफल होती तो क्रान्ति की जरूरत ही नहीं होती।

वस्तुवादी

मार्क्स ने कहा था 'आज विश्व जैसा है उसका अर्थ दार्शनिकों ने समझाया और वैज्ञानिकों ने उसका आविष्कार किया। अब सवाल है, इसे बदलें कैसे ?' विश्व को बदलनेवालों में पहला है राजनीतिज्ञ। वह तो असफल हुआ। रहा वस्तुवादी, इसके मन में कोई कल्पना नहीं, कोई सिद्धान्त नहीं है। वह वस्तु को देखता है वस्तु जैसी है वैसी देखने की कोशिश करता है। यह है वस्तुनिष्ठ। और ये वस्तुनिष्ठ विज्ञानवादी कहलाते हैं। विज्ञान हमेशा वस्तुनिष्ठ होता है। कल्पनावादी कहता था, वस्तु अपने में कुछ नहीं है। हमारी कल्पना उसे बनाती है। विज्ञान के साथ वस्तुनिष्ठा आयी और उसके साथ-साथ बुद्धिवाद आया। बुद्धिवाद क्या है ? वस्तु को देखो। तो अब विज्ञान के कारण दन्तकथाओं और कल्पनाओं की जगह 'तथ्य' आया और श्रद्धा की जगह बुद्धि आयी। मानने की जगह जानना आया। यह वस्तुनिष्ठा आयी विज्ञान के साथ जो हमारे काम की है, क्योंकि इसके साथ तटस्थता आती है। लेकिन बुद्धि का भी एक वाद बन गया।

सिद्धान्तवादी

अमेरिकन क्रान्ति का हायप्रीस्ट टामस पेन कहता है, "दुनिया में मैं मानता हूँ (आइ बिलिव), इस वाक्य ने बहुत अधिक अनर्थ किया है। 'मैं मानता हूँ' पर ही धर्म और तत्त्वज्ञान खड़े हैं और इसीलिए धर्म तटस्थ और निष्पक्ष नहीं रह सके।" विज्ञान तटस्थ रहा। लेकिन इसने क्या किया ? वस्तुनिष्ठा मे से कुछ अनुमान निकाले और वैज्ञानिकों ने फिर अपने-अपने सिद्धान्त बनाये। तो एक तरफ धर्म शास्त्रज्ञों के सिद्धान्त हुए और दूसरी तरफ वैज्ञानिकों के सिद्धान्त। विज्ञान ने लड़ाई के हथियार दिये और इसका उपयोग सिद्धान्त और धर्म के लिए हुआ। विज्ञान वास्तव में तटस्थ है, लेकिन इसका उपयोग सिद्धान्त और धर्म के लिए हुआ। हम क्या चाहते हैं, विज्ञान का ऐसा उपयोग हो जिससे वह मानवीय सहार का साधन न बने। और सिद्धान्त के नाम पर उसका उपयोग न हो।

जीवन की एकता

अब यह जीवन क्या है ? जीवन को देखो। अब जीवन को सिर्फ देखना है, और देखने से मतलब खोलना है, उघाड़ना है। उसके अर्थ को मत खोलो। जीवन का स्वरूप क्या है ? जीवन 'युनिटी' है, एकता है। अनुभव से देखते हैं हम। एक माँ अपने बेटे को पीट रही है। वह अपरिचित है फिर भी आपको दर्द होता है। क्या ? संवेदना के कारण। अनुभव न हो तो संवेदना नहीं, वेदना नहीं। जीवन की एकता कोई आदर्श नहीं है। जीवन का स्वीकार है, जीवन को समझना है ज्यों का त्यों। सिद्धान्त और आदर्श को जीवन से अलग करना है। जीवन किस वस्तु का बना है ? जीवन बना हुआ है सम्बन्धों का—मनुष्य का मनुष्य के साथ सम्बन्ध, मनुष्य का अन्य जीव से सम्बन्ध, मनुष्य का सृष्टि के साथ सम्बन्ध। मूल क्या हुआ ? इन सम्बन्ध मे जितनी एकता होगी, उतनी जीवन में समृद्धि होगी, एकता होगी। जीवन की एकता ही जीवन की सम्पन्नता है। तीनों की एकता का आविष्कार इनके सम्बन्ध मे से होता है। एक-दूसरे के नजदीक आने का नाम ही प्रगति है। मनुष्य मनुष्य की तरफ बढ़ रहा है। सारे मनुष्य मिलकर अन्य जीवधारियों की तरफ बढ़ रहे हैं और ये सब सृष्टि की ओर बढ़ रहे हैं। यह सौहार्द है। सौहार्द जीवन का तथ्य है। इसकी तरफ बढ़ना है। यह शान्ति है। 'पैसिफिस्ट' की शान्ति शान्ति नहीं है, पुलिस की शान्ति शान्ति नहीं है, युद्ध के मुकाबिले में खड़ी है वह शान्ति नहीं है। शान्ति वह शान्ति है जो किसी के मुकाबिले खड़ी नहीं है। इसकी तरफ आगे बढ़ने का नाम प्रगति है। यह शान्ति क्रान्ति का साधन है। यह शान्ति सयोजन का प्रयोजन है। और यही शान्ति गांधी के प्रयोगों का ध्रुवतारा है।

(अ० भा० शान्ति सेना शिविर, वाराणसी मे दिये गये भाषण का पहला भाग, १४-१२-'६८)

महिला लोकयात्रा-टोली

हिसार। स्त्री-शक्ति का जागरण, भावनात्मक एकता एवं विद्या-प्रसार के महान् उद्देश्य को लेकर २,००० मील पैदल चलने के बाद इस लोकयात्रा टोली ने २० अक्तूबर '६८ को हरियाणा में प्रवेश किया। गुड़गांव और महेन्द्रगढ़ जिलों की पदयात्रा पूरी करके अब यह टोली गत २१ दिसम्बर से जिला हिसार में घूम रही है। लोकयात्रा-टोली का पता होगा : (१) जिला सर्वोदय भूदान मण्डल 'सर्वोदय-भवन', हिसार। (२) खादी भंडार, गली नाइयोंवाली, भिवानी, जिला हिसार। (३) खादी-भंडार, हांसी, जिला-हिसार।

विनोबाजी का कार्यक्रम

४ से ११ जनवरी तक : राजगृह
निवास निरीक्षण-भवन में
पत्र व्यवहार का पता :
द्वारा : बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ,
खादी भंडार, राजगृह, जिला-पटना

भारतीय युवकों की बेचैनी

पिछले २० वर्षों के दौरान शिक्षा प्राप्त करनेवाले युवकों की तादाद में भारी बढ़ोतरी हुई है। विश्वविद्यालयों की संख्या २० से बढ़कर ७० हो गयी है, जिसमें वे ४ विश्वविद्यालय अभी शामिल नहीं हैं, जो जल्दी ही विश्वविद्यालय का स्तर प्राप्त करनेवाले हैं। इन विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध कालेजों की संख्या २६०० तथा छात्रों की संख्या लगभग २० लाख है। इनमें से प्रतिवर्ष लगभग १ लाख छात्र स्नातक बनकर बाहर आते हैं।

शिक्षित होने की आकांक्षा और जागतिक सन्दर्भ

पिछले २० वर्षों के दौरान छात्रों की तादाद में भारी वृद्धि हुई है, इतना ही खास बात नहीं है। इससे भी ज्यादा खास बात यह हुई है कि जिस सामाजिक परिवेश के छात्र विश्वविद्यालयों में दाखिल हुआ करते थे, वह अब बिलकुल दूसरा हो चुका है। विश्वविद्यालयों में पहले ऐसे परिवारों से छात्र आते थे जिनके लोग साक्षर, सम्पन्न, और विद्वत्ता के प्रति सम्मान का भाव रखते थे। अब विश्वविद्यालयों में जो छात्र अध्ययन के लिए पहुँच रहे हैं, वे समाज के हर तबके से आये हैं। चूँकि शिक्षा आज ऊँची प्रतिष्ठावाली नौकरियाँ पाने और राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने का एक जरूरी साधन है और शिक्षित होना इज्जत और समझदारी का प्रमाण माना जाता है, इसलिए चाहे शहरी क्षेत्र हो या ग्रामीण, हर क्षेत्र की जनता में अपने बच्चों को ऊँची शिक्षा दिलाने की आकांक्षा जग गयी है। और हर क्षेत्र की शिक्षित होने की आकांक्षा ने धीरे-धीरे एक राजनैतिक माँग का रूप ले लिया है। विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त कर लेने पर हरिजन, कुम्हार, नाई या धोबी युवकों के साथ उसी प्रकार का व्यवहार नहीं किया जा सकता, जैसा उनकी जाति के अन्य निरक्षर लोगों के साथ होता आया है। शादी-विवाह के क्षेत्र में भी शिक्षित वर को ही अच्छी दुलहन मिलती है। इन्हीं सब कारणों से हर क्षेत्र के लोग चाहने लगे हैं कि उनके बच्चों के लिए ऊँची-से ऊँची शिक्षा हासिल करने की सुविधा उपलब्ध हो।

शिक्षा की इस बढ़ती हुई माँग की पूर्ति के लिए विभिन्न जातीय संगठनों को शिक्षण-संस्थाओं के क्षेत्र में प्रवेश करने की प्रेरणा मिली। जिन जातियों के लोग अधिक संख्या में हैं या जिनकी सदस्य बड़ी जाति के लोगों से कुछ कम है, उन्होंने अपनी-अपनी जातियों के लड़कों को शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराने के लिए शिक्षण-संस्थाओं का गठन किया। इस प्रकार के प्रयत्न से जो महाविद्यालय खुले उनकी इमारतें घटिया दर्जे की हैं, और विद्यालय के लिए आवश्यक उपकरण और साज-सामान भी प्रायः अपर्याप्त या घटिया किस्म के हैं। महाविद्यालयों के प्राचार्य, शिक्षक और अन्य कर्मचारियों के चयन में भी अपनी जाति के लोगों को प्रधानता देने की कोशिश की गयी। चुनाव करते समय उम्मीदवारों की योग्यता, चारित्र्य और अनुभव को प्रधानता देने के बदले, उनके जातीय और सामाजिक प्रभाव का विचार किया गया। ऐसे महाविद्यालयों में छात्रों को मुख्य रूप से इसलिए भर्ती किया जाता है कि उनके कारण विद्यालयों को फीस की खासी अच्छी आय होती है। छात्रों की संख्या जितनी ही अधिक होती है, विद्यालय की आय उतनी ही बढ़ती है। कई महाविद्यालयों में प्रवेश लेते समय छात्रों से भारी प्रवेश-शुल्क की रकम ली जाती है।

अधकचरी पढ़ाई और नयी सांस्कृतिक परिस्थिति

शिक्षण-सम्बन्धी अपर्याप्त सुविधाओं, अयोग्य अध्यापकों और अधकचरी पढ़ाई से जैसे-तैसे परीक्षा पास करनेवाले छात्रों की भारी तादाद एक ऐसी सांस्कृतिक परिस्थिति का निर्माण करती है, जिसके अन्तर्गत छात्र-बेचैनी पनपती और पुष्ट होती है। छात्र का एक ही लक्ष्य रहता है—अच्छे नम्बर हासिल करके इम्तहान पास करना। शिक्षक विद्यालयों में अच्छी तरह पढ़ाने के बदले 'प्राइवेट ट्यूशन' करना पसन्द करते हैं। परीक्षा में आनेवाले प्रश्नों के उत्तर छात्रों को बताने और परीक्षक पर प्रभाव डलवाकर छात्र को अधिक अच्छे नम्बर दिलाने में शिक्षकों की अधिक दिलचस्पी रहती है। ऐसा शिक्षक स्वयं अपनी पढ़ाने की योग्यता बढ़ाने के बदले अधिक आमदनी प्राप्त करने और अपना असर बढ़ाने की राजनीति में अधिक समय खर्च करता है। अपनी सफलता के लिए वह अपनी जाति, सम्प्रदाय या क्षेत्रीय सम्बन्धों का भरपूर इस्तेमाल करता है। वह अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रभावशाली और बदमाश स्वभाव के छात्रों का भी उपयोग करता है।

विश्वविद्यालय की कक्षाओं में प्रवेश पाना एक बात है और अच्छे अंकों में परीक्षोत्तीर्ण होना दूसरी बात है। जो छात्र भूमिहीन परिवारों, छोटी कारीगरी से जीविकोपार्जन करनेवाले लोगों या समाज की सेवा करनेवाले समुदाय में पल-पुसकर विश्वविद्यालयों में दाखिल होते हैं, उन्हें पढ़ाई के दौरान अपनी बुद्धि पर भारी दबाव झेलना पड़ता है। ऐसे अधिकांश छात्र अपने परिवारों के प्रथम साक्षर सदस्य हुआ करते हैं, और चूंकि कालेज या विश्वविद्यालय प्रायः नगरों में ही अवस्थित होते हैं, इसलिए ऐसे छात्र शहरी जीवन का प्रथम परिचय विश्वविद्यालय छात्र के रूप में ही प्राप्त करते हैं। समाजशास्त्रीय शब्दावली में यह तो कहना चाहिए कि उन छात्रों को अपनी जिन्दगी में दो-दो क्रान्तियों का साक्षात्कार करना पड़ता है—एक शिक्षा की क्रान्ति, और दो, शहरीकरण की क्रान्ति। इस दुहरी क्रान्ति की प्रक्रिया में से गुजरने के कारण ऐसे छात्रों को छात्र-जीवन में जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है, वे मुख्य रूप से दो हैं :

पहली समस्या छात्र की घरेलू संस्कृति और विश्वविद्यालय की संस्कृति के भारी अन्तर के कारण उपस्थित होती है। देहात के वातावरण में पला हुआ छात्र ऐसी परम्परा के समाज में से आता है, जहाँ परिवार में पुरुष और स्त्री अलग-अलग ढंग की दिनचर्या बिताते हैं, और लड़कों का विवाह बहुत कम उम्र में ही हो जाता है। विश्वविद्यालय का

सामाजिक वातावरण उससे बिलकुल भिन्न होता है, जहाँ २४-२५ वर्ष की अवस्था तक के अविवाहित छात्र और छात्राएँ विद्या-अध्ययन करती हैं। गाँव के लोग अक्सर ऐसी धारणा रखते हैं कि जो सयानी लड़कियाँ अविवाहित रहती हैं, वे अनैतिक जीवन जीती हैं। किसी लक्ष्य की उपलब्धि के लिए अविवाहित जीवन जीने की भी आवश्यकता हो सकती है, इस बात पर देहात के लोगों को आसानी से विश्वास नहीं हो पाता। ऐसे सामाजिक परिवेश में आनेवाले छात्र को विश्वविद्यालय में पहुँचकर वयस्क लड़कियों की बगल में बैठकर प्राध्यापक का लेक्चर सुनने, सभाओं में शरीक होने या अभिनय तथा खेल-कूद में भागीदार बनने पर एक नया ही अनुभव मिलता है। उनके साथ होटल में बैठकर चाय और काफी पीते हुए गपशप करने में भी एक नया तजुर्बा हासिल होता है। ऐसे सब अनुभव छात्र से एक नये सामाजिक अनुकूलन की माँग करते हैं। क्या इन माँगों का छात्रों की अनुशासनहीनता के साथ कोई सम्बन्ध है? यह एक ऐसा पहलू है, जिसकी वैज्ञानिक छानबीन होनी चाहिए।

ग्रामीण युवकों और नगरवासी युवकों के बीच की खाई

जहाँ तक ग्रामीण युवकों की बात है, यह आमतौर से माना जा सकता है कि उनके और नगरवासी छात्रों के बीच एक बड़ी खाई रहती ही है। गाँव के जिन लोगों के लड़के विश्वविद्यालयों में पढ़ते हैं, वे गौरव का अनुभव करते हैं। स्वभावतः वे उम्मीद करते हैं कि उनके पुत्र अच्छी तनख्वाह और इज्जत-वाली नौकरी के हकदार होंगे।

गाँव से आनेवाले छात्रों की दूसरी समस्या पढ़ाई के विषयों के कारण प्रस्तुत होती है। जो विषय छात्र हाईस्कूल में पढ़ चुका होता है, वे विश्वविद्यालय में पहुँचने पर बदल देने पड़ते हैं और प्रायः ऐसे विषय लेने पड़ते हैं, जो उनके लिए नये होते हैं। इसके विपरीत जो छात्र नगर के विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करके कालेज या विश्वविद्यालय में दाखिल होते हैं, वे अपने बचपन से ही अंग्रेजी-सैद्धांतिक शिक्षण-पद्धति और शहरी संस्कृति के अभ्यागत बने रहते हैं। देहातों और शहरी छात्रों की प्रतियोगिता की मिसाल 'रेस' के घोड़े और ताँगे में चलनेवाले घोड़े की घुड़दौड़ की मिसाल से बहुत मिलती जुलती है। विश्वविद्यालय की ऊँची कक्षाओं में जाकर यह मिसाल और भी मौजूँ हो जाती है, जब कि अंग्रेजी भाषा की अच्छी जानकारी प्रत्येक विषय की पढ़ाई का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन जाती है। इस अन्तर के कारण देहात से आनेवाले छात्रों को शहरी छात्रों के मुकाबले ज्यादा कठिनाइयाँ झेलनी पड़ती हैं।

आज के भारत में 'छात्र-शक्ति' रोजमर्रा की जिन्दगी की एक असलियत बन गयी है और यह हालत अब एक अर्से तक कायम रहनेवाली है। इसके साथ ही साथ कुछेक और भी असलियतें हैं। शिक्षण-संस्थाओं के अहाते के भीतर चाहे जो हो, पुलिस को अहाते के भीतर न रखा जाय।

हर हालत में पुलिस-प्रवेश निषिद्ध हो

आज पाविश्य की धारणा को मन्दिर तक सीमित रखने के बदले उसे विद्यालय तक लागू करने की आवश्यकता है। आचार्यों और कुलपतियों का छात्रों द्वारा बार-बार घेराव हो तो भी उन्हें विद्यालय में पुलिस नहीं बुलानी चाहिए, न शिकायत करनी चाहिए। क्योंकि जैसे ही कुलपति या आचार्य द्वारा पुलिस बुलायी जाती है, छात्र-नेताओं, राजनीतिज्ञों, समाचार-पत्रों और शिक्षकों द्वारा पुलिस बुलाने के निमित्त कुलपति अथवा आचार्य की फौरन निन्दा शुरू हो जाती है।

यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि आज जब कभी पुलिस को शिक्षण संस्थाओं के अहाते में बुलाया जाता है तो स्थिति सुधरने के बदले और ज्यादा बिगड़ जाती है।

विश्वविद्यालयों में शीघ्र ही शान्ति और सुव्यवस्था का वातावरण बनना चाहिए, अन्यथा शिक्षा के क्षेत्र में अराजकता की स्थिति पैदा होगी। विश्वविद्यालयों में अध्यापन करनेवाले अनेक वरिष्ठ प्राध्यापक अब ऐसे क्षेत्र में कार्य-संलग्न होना चाहते हैं, जहाँ छात्रों से सम्पर्क रखने की जरूरत ही न हो। कुलपति का पद स्वीकार करने के लिए आजकल अच्छे लोग बड़ी मुश्किल से तैयार हो पाते हैं। सम्प्रति कुलपति का पद आज सबसे अधिक नाजुक हो गया है।

राजनीतिक दलों की घुसपैठ उपद्रव की बुनियाद

विश्वविद्यालय के अहाते में राजनीतिक दलों की घुसपैठ का दुहरा परिणाम होता है। एक तो यह कि विश्वविद्यालय की प्रत्येक समस्या राजनीतिक समस्या में रूपांतरित हो जाती है और दूसरा यह कि कोई भी राजनीतिक समस्या विश्वविद्यालय के अन्दर हिंसा और हड़ताल का स्रोत बन जाती है। हरेक राजनीतिक दल की एक छात्र-शाखा है और यह भी जानकारी मिली है कि कुछ विश्वविद्यालयों के छात्र अपने सम्बन्धित दलों से नियमित रूप से आर्थिक सहायता प्राप्त करते हैं। विश्वविद्यालयों के छात्रों का इस प्रकार का राजनीतिकरण ऐसी स्थिति पैदा कर चुका है कि विश्वविद्यालयों के प्रांगण में आसानी से शान्ति-स्थापन नहीं हो पायेगा।

इसी बीच सार्वजनिक जीवन के खास-खास व्यक्ति बराबर यह कह रहे हैं कि राजनैतिक दलों को छात्र-राजनीति से अलग रहना चाहिए और वरिष्ठ विद्वानों को विश्वविद्यालय की समस्याओं पर शुद्ध शैक्षिक दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए। इसका मतलब है समस्या को उसके सामाजिक परिवेश से अलग करना। वामपंथी दल चाहते हैं कि विश्वविद्यालयों का क्षेत्र उनके लिए खुला रहे।

सच्चे लोकतंत्र में विभिन्न राजनीतिक दलों का छात्रों में प्रवेश रोकने का कोई उपाय नहीं है। आज तो ज्यादा-से ज्यादा इतना ही सम्भव है कि छात्रों की जो भी शिकायतें हैं, उनके बारे में राजनीतिक दलों के लोगों में पूरी जानकारी के साथ वादविवाद हो सके। इतना हो पाना भी आज की परिस्थिति में बड़ी दूर की बात है, क्योंकि छात्रों की शिकायतों को किस ढंग से दूर किया जाय, इसके बारे में राजनैतिक दल आसानी से एक राय नहीं हो पायेंगे।

जो परिस्थिति है उसमें छात्रों में बेचैनी का होना स्वाभाविक ही है। अब समय आ गया है, जब कि सामान्य जनता को हमारी शैक्षिक संस्थाओं की असली हालत की जानकारी मालूम होनी चाहिए। इसके कारण→

भूदान यज्ञ : सोमवार, १ जनवरी, '६१

जर्मनी

जहाँ के विद्यार्थी संपन्नता की दौड़ से मुँह मोड़ रहे हैं !

जर्मनी यूरोप में अमेरिका का नमूना है। उपयोगवाद के इस विशाल फ्रेम में आदमी कीलों की तरह जहाँ-तहाँ ठुका हुआ है। मशीनवाद की इस ऊँची चोटी पर चढ़कर देखता हूँ तो आदमी जहाँ तहाँ चींटियों की तरह चलता नजर आता है। आदमी का इतना छोटा कद शायद ही इतिहास में कभी रहा हो। स्वतंत्रता की सुहावनी बोली बोलकर उसे आकांक्षाओं, परिस्थितियों और अनावश्यक आवश्यकताओं का ऐसा दास बना दिया गया है कि इस 'नयी दास-प्रथा' का इतिहास लिखनेवाला शायद रो पड़ेगा। यूरोप के पत्रकार भारत की 'गरीबी' के चित्र छापते हैं 'अंडर डेवलप्ड' भारत पर लम्बे निबन्ध लिखते हैं, पर यूरोप की इस 'अमीरी' के चित्र हमारी 'गरीबी' के चित्रों से कम भयानक नहीं हैं! मैं देख रहा हूँ इस 'ओवर डेवलप्ड' जर्मनी को, जहाँ आदमी के अलावा सब कुछ शानदार है। आदमी की परवाह है भी किसे? और हो भी क्यों?

मैं पहली बार सन् १९६३ में जर्मनी आया था। सन् १९६३ की जर्मनी से सन् १९६८ की जर्मनी में कई दृष्टियों से काफी अन्तर है। सन् '६३ की जर्मनी एकजुट होकर संपन्नता की ओर दौड़ रही थी, पर सन् '६८ की जर्मनी संपन्नता के लिए दौड़नेवालों में फूट के दर्शन कर रही है! सन् '६८ की जर्मनी में बूढ़े तेजी से दौड़ रहे हैं, पर जवान हाँफ रहे हैं। बुद्धिजीवी और विद्यार्थी संपन्नता की इस दौड़ में भाग लेने से इनकार कर रहे हैं। सन् '६३ की जर्मनी में सादे और सरल जीवन की बातों के लिए कोई दिलचस्पी नहीं थी, पर सन् '६८ की जर्मनी में मशीन और मनुष्य के सम्बन्धों पर, संपन्न जीवन और सरल जीवन के गुणावगुणों पर बहस चल रही है।

मैंने जर्मनी की यात्रा का प्रारम्भ बोन से किया। राजधानी को नमस्कार करने और कुछ पुराने मित्रों से मुलाकात करने के अलावा बोन में मेरी ज्यादा दिलचस्पी नहीं थी। बोन वैसे काफी 'डल' शहर है। औपचारिकता से भरा वातावरण, सरकारी बाबुओं और दफ्तरों का निर्जीव परिवेश तथा सूखी मुस्कानों का स्वागत। पद, पैसा और परिचय के बिना आदमी निरा भोंदू है यहाँ। अपने मेजबान श्री स्पिकलर के साथ राइन नदी के किनारे घूम-घामकर दो दिन काटे और बोन से विदा हुआ।

स्टुटगार्ट में सचमुच जीवन के दर्शन होते हैं। 'एक्स्ट्रा पार्लियामेंटरी अपोजिशन' के जीवंत कार्यकर्ताओं की चर्चाओं में कल की जर्मनी के प्रति आशा बँधती है। 'ए० पी० ओ०' के नाम से मशहूर यह आन्दोलन शायद इस समय जर्मनी का सबसे विवादास्पद आंदोलन है। विभिन्न शांतिवादी संस्थाएँ, विद्यार्थी संघ और सामाजिक क्रान्ति चाहनेवाले व्यक्ति, जिनके विचारों का पार्लियामेंट में कोई प्रतिनिधित्व नहीं है और जो पार्लियामेंटरी शासन पद्धति को निकम्मी मानते हैं, 'ए० पी० ओ०' आन्दोलन के अंग हैं। "पार्लियामेंट क्रान्ति नहीं ला सकती और हम क्रान्ति चाहते हैं।" एलफ्रेड क्नोस ने कहा : "हम चाहते हैं इस सर्वसत्ता-संपन्न भीमकाय पार्लियामेंट की समाप्ति और श्रमिकों, बुद्धिजीवियों एवं नागरिकों की लघुकाय, क्षेत्रीय पार्लियामेंटों का निर्माण। औपचारिक एवं निर्जीव प्रजातंत्र के स्थान पर 'पार्टीसिपेट्री' प्रजातंत्र हमारा उद्देश्य है।" एलफ्रेड क्नोस भारत आ चुके हैं, सर्वोदय-आन्दोलन का निकट से उन्होंने अध्ययन किया है। और दामोदरदास मूंदड़ा के काम के साथ उनका न केवल संपर्क है, बल्कि सहयोग भी है। श्री क्नोस यह परिवर्तन और क्रान्ति अहिंसात्मक उपायों से लाना चाहते हैं, जब कि अनेक विद्यार्थी एवं युवकों का अहिंसा पर कोई भरोसा नहीं है। इसलिए श्री क्नोस काफी कठिनाई के साथ अपना रास्ता तैयार कर रहे हैं।

मैं स्टुटगार्ट में श्री वोल्फगाग किलगुस के साथ ठहरा था। उनका कमरा मार्क्स से लेकर माओ तक और गांधी से लेकर मार्टिन लूथर किंग तक की पुस्तकों से भरा था। किलगुस ने कहा : "हमें कोई भी विचारक रेडीमेड सत्य नहीं दे सकता। हर पीढ़ी को अपने सत्य की खोज स्वयं करनी होगी। ये विचारक हमारी खोज में सहायक होते हैं।" किलगुस के साथ मैं विद्यार्थियों द्वारा स्प्रिंगर-प्रेस के विरोध में आयोजित एक प्रदर्शन में भाग लेने गया। स्प्रिंगर महोदय पश्चिमी जर्मनी और पश्चिमी बर्लिन के ५० से ७० प्रतिशत अखबारों के मालिक हैं। प्रगति, परिवर्तन एवं क्रान्ति के घोर विरोधी होने के साथ-साथ श्री स्प्रिंगर द्वारा प्रकाशित अखबारों में समूचे विद्यार्थी समाज के खिलाफ एक विषैला 'टोन' रहता है। जर्मनी के १५० से अधिक बुद्धिजीवियों, लेखकों, कवियों

→आज जो हालत है, उससे सिर्फ इतना ही नहीं हुआ है कि छात्रों और शिक्षकों के स्तर में गिरावट आयी है, और हमारी शिक्षा-प्रणाली देश की समस्याओं का सामना करने के लायक नहीं रह गयी है, बल्कि अब इस बात का खतरा है कि अगर छात्र-असंतोष इसी तरह बढ़ता गया तो हमारी लोकतान्त्रिक व्यवस्था ही नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगी।

देश की आम जनता और दलों के नेता इस खतरे की गंभीरता को समझें, यह आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

परिस्थिति की माँग है कि हमारे राजनैतिक नेता और शैक्षिक क्षेत्र के प्रतिष्ठित व्यक्ति शिक्षा-सम्बन्धी तात्कालिक और दूरगामी निर्णयों तथा नीतियों के बारे में विचार-विमर्श करते रहें। राष्ट्रीय जीवन की अन्य समस्याओं की तरह शिक्षा के मामले में भी कुछ ऐसे स्वयंप्रेरित व्यक्तियों की आवश्यकता है, जो शिक्षा की वर्तमान और भविष्य की समस्याओं पर लगातार चिन्तन करते रहें।

[श्री एम० एन० श्रीनिवास के 'टाइम्स आफ इंडिया' : १२ नवम्बर, '६८ के अंक में प्रकाशित मूल अंग्रेजी लेख से साभार]

और साहित्यकारों ने सामूहिक रूप से स्प्रिंगर-अखबारों में लिखना बन्द करके इस अखबारी साम्राज्य का बहिष्कार किया है। पिछले दिनों विद्यार्थियों ने स्प्रिंगर-अखबारों का वितरण रोकने के कई आन्दोलन, प्रदर्शन आदि किये। भारतीय स्वातंत्र्य-आन्दोलन में विदेशी कपड़े का जिस तरह बहिष्कार किया गया था, कुछ उसी तरह का नमूना स्प्रिंगर-प्रेस के बहिष्कार में मुझे देखने को मिला।

विद्या की नगरी के रूप में म्युनिख का जर्मनी में वही स्थान है, जो स्थान भारत में वाराणसी का है। वनों, उपत्यकाओं और जलाशयों की गोद में बसी हुई इस विद्या-नगरी का असली जर्मन नाम 'मुंचेन' है, पर अंग्रेजों ने अपनी सुविधा के लिए मुंचन को बिगाड़कर उसी तरह 'म्युनिख' बना दिया, जिस तरह वाराणसी को 'बेनारस'। मुंचेन के छात्रों, युवकों और शान्तिवादियों के साथ दो दिन रहकर वापस फ्राकफुर्ट आया। जर्मन समाजवादी विद्यार्थी संघ का प्रधान कार्यालय फ्रांकफुर्ट में है। यह संस्था पूरे यूरोप में एस० डी० एस० के नाम से जानी जाती है। शुरू में एस० डी० एस० का संचालन जर्मन समाजवादी पार्टी (एस० पी० डी०) द्वारा होता था। पर जब से एस० पी० डी० ने क्रिश्चियन पार्टी की संयुक्त सरकार में प्रवेश किया है, एस० डी० एस० के क्रान्तिकारी विद्यार्थियों का वह विश्वास खो चुकी है। इस समय एस० डी० एस० एक स्वतन्त्र विद्यार्थी संघ है और विश्वविद्यालयों की पुनर्रचना, शिक्षा पद्धति में परिवर्तन और संपूर्ण सामाजिक क्रान्ति के उद्देश्यों के साथ ए० पी० ओ० आन्दोलन में यह संघ सारथी की भूमिका अदा कर रहा है।

अन्तरराष्ट्रीय युद्ध विरोधी सभा (डब्ल्यू० आर० आई०, जिसका प्रधान कार्यालय लन्दन में है और देवीप्रसाद जिसके मंत्री हैं) की जर्मन शाखा का राष्ट्रीय सम्मेलन बर्लिन में हो रहा था। सम्मेलन में भाग लेने के लिए मुझे निमंत्रित किया गया था। इसलिए फ्राकफुर्ट से मैं बर्लिन पहुँचा। देशभर के प्रमुख शान्तिवादियों के इस द्वि-दिवसीय सम्मेलन का स्वरूप सर्व सेवा संघ के अधिवेशन की तरह का था। फर्क इतना था कि हमारे सम-

अधिवेशन या सम्मेलन में नेताओं के लम्बे-लम्बे भाषण होते हैं, जब कि यहाँ प्रत्यक्ष कार्यक्रम से सम्बन्धित कठिनाइयों और कार्यक्रमों की नीतियों पर चर्चा हो रही थी। कोई भी वक्ता ५-७ मिनिट से ज्यादा नहीं बोलता था। प्राय विषय से सम्बन्धित किसी मुद्दे या पहलू पर ही लोग अपनी राय रखते थे। मैंने भारतीय शान्ति आन्दोलन, विशेष रूप से ग्रामदान-तूफान, प्रान्तदान आदि की जानकारी दी। अन्त में अध्यक्ष उपाध्यक्ष, मंत्री और कार्यकारिणी का चुनाव हुआ। अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और मंत्री, तीनों की उम्र ३५ वर्ष से कम है। २० हजार से अधिक सदस्योंवाली इस संस्था का नेतृत्व पूरी तरह युवकों के हाथ में है, यह देखकर मुझे प्रसन्नता हुई।

अन्तरराष्ट्रीय युद्ध-विरोधी सभा की इस जर्मन शाखा के नये उपाध्यक्ष थियोडोर एबर्ट मेरे पुराने मित्र थे। जब मैं उनको बधाई देने पहुँचा, तो उन्होंने मुझे बर्लिन आने का निमंत्रण दिया। थियोडोर, बर्लिन विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं। उन्होंने ३ साल के निरन्तर अध्ययन, अध्यवसाय और अन्वेषण के बाद 'अहिंसा के शास्त्र' की रचना की है। लगभग एक हजार पृष्ठों का यह 'शास्त्र' जर्मन भाषा में अपने ढंग की अकेली पुस्तक मानी जाती है। उन्होंने मेरे लिए बर्लिन विश्वविद्यालय, और 'क्रिटिकल यूनिवर्सिटी' में ग्रामदान के सम्बन्ध में दो व्याख्यानों का आयोजन किया। 'क्रिटिकल यूनिवर्सिटी' एक तरह से नयी तालीम का यूरोपीय संस्करण है। इसकी स्थापना २ नवम्बर, १९६७ में बर्लिन विश्वविद्यालय के छात्रों और अध्यापकों द्वारा संयुक्त रूप से की गयी थी। ५,५५७ छात्रों तथा अध्यापकों के समर्थन से स्थापित यह विश्वविद्यालय परीक्षा और किताबों से मुक्त शिक्षा का एक प्रयोग है। टेक्नालोजिकल शिक्षा से दमित समाज में इस प्रयोग को एक नयी क्रान्ति ही माना जायेगा। इसी तरह से लन्दन में 'एंटी यूनिवर्सिटी' और न्यूयार्क में 'फ्री यूनिवर्सिटी' की स्थापना हुई है। इन साहसिक क्रान्तिकारी और विधायक प्रयोगों के बाद यह कहना गलत होगा कि जर्मनी के विद्यार्थी मात्र विध्वंस चाहते हैं।

—मनोजकुमार

विकास की बुनियादी इकाई : गाँव

बलिया, २५ दिसम्बर '६८। जिलादान के बाद जिले के विकास-कार्यक्रम पर विचार करने के लिए आयोजित जिला-स्तरीय गोष्ठी में श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि स्वराज्य के बाद के अनुभव से हम इस नतीजे पर पहुँच चुके हैं कि ऊपर-ऊपर से बनायी और चलायी गयी एकांगी योजनाओं की इस देश में कोई सार्थकता नहीं रह गयी है, इसलिए अब यह अनिवार्य हो गया है कि विकास की समग्र योजना गाँव को प्राथमिक इकाई मानकर गाँव के लोगों द्वारा बनायी जाय, और गाँव की शक्ति से उसका क्रियान्वयन शुरू हो। ग्रामदान उसका आधार प्रस्तुत करता है। इसलिए हमें यह सोचना चाहिए कि जिलादान के बाद जिले में किस तरह इस दिशा में विकास का काम चले।

आपने कहा कि ग्रामदान की नयी मान्यताओं के आधार पर गाँव-गाँव में ग्रामसभाओं का यथाशीघ्र संगठन किया जाय और उसे प्रखण्ड तथा जिला स्तर तक विकसित किया जाय। सरकार द्वारा घोषित 'हरी क्रान्ति' (ग्रीन रिवोल्यूशन) की चर्चा करते हुए आपने कहा कि उत्पादन के सारे साधन समाज की सम्पत्ति हैं। उनका लाभ देश के सब लोगों को मिलना चाहिए। अगर ऐसा नहीं हुआ और कुछ सम्पन्न लोग ही विकास के उन्नत साधनों का लाभ उठाते रहे तो उस विकास से वर्ग-संघर्ष की नींव पड़ेगी। इसलिए यह आवश्यक है कि विकास के साधनों का लाभ निम्नतम स्तर के लोगों को मिले।

गोष्ठी में भाग लेने के लिए जिले भर के प्रखण्ड विकास अधिकारी, प्रखण्ड प्रमुख तथा अन्य नागरिक उपस्थित थे। इस गोष्ठी में प्रमुख जिला-अधिकारियों सहित जिलाधीश एवं नियोजन-अधिकारी ने भी गोष्ठी में भाग लिया। जिला परिषद् के अध्यक्ष ने आगन्तुकों का स्वागत करते हुए सर्वप्रथम इस गोष्ठी का संदर्भ प्रस्तुत किया और जिला नियोजन-अधिकारी ने जिले में अब तक हुए विकास-कार्यों की जानकारी दी।●

उत्तर प्रदेशदान के संदर्भ में सन् १६६६ की शिविर-योजना

मास	तिथि	स्थान
जनवरी	१० से १२	शान्ति-सेना शिविर मेरठ
	१५ से १६	मुजफ्फरनगर, चरथावल, पुरकाजी
	१७ से १८	वुलन्दशहर
	२३ से २४	,,
फरवरी	२ से ३	,,
	८ से ६	,,
	१४ से १५	सहारनपुर, बस्सर, बहादुराबाद
फरवरी	२० से २१	मेरठ
मार्च	६ से ७	मेरठ
	१८ से १६	सहारनपुर
	२४ से २५	बुलन्दशहर
मई	१ से २	बुलन्दशहर
	७ से ८	मेरठ
	१३ से १४	मुजफ्फरनगर
	१६ से २०	बुलन्दशहर
जून	८ से ६	मेरठ
	१४ से १५	सहारनपुर
	२० से २१	बुलन्दशहर
	२६ से २७	,,
जुलाई	६ से ७	मुजफ्फरनगर
	१२ से १३	मेरठ
	१८ से १६	सहारनपुर
	२४ से २५	बुलन्दशहर
अगस्त	३ से ४	,,
	६ से १०	मेरठ
	१५ से १६	मुजफ्फरनगर
	२१ से २६	बुलन्दशहर
	२८ से २६	,,
सितम्बर	७ से ८	सहारनपुर
	१३ से १४	मेरठ
	२२ से २३	मुजफ्फरनगर, सहारनपुर
	२८ से २६	,,

सन् १६६६ गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष है !

गांधीजी ने कहा था :

"मेरा सर्वोच्च सम्मान जो मेरे मित्र कर सकते है, वह यही है कि मेरा वह कार्यक्रम वे अपने जीवन में उतारें, जिसके लिए मै सदैव जिया हूँ या फिर यदि उन्हे उसमें विश्वास नही है, तो मुझे उससे विमुख होने के लिए विवश करें।"

मानव-समाज के सामने, आज के संघर्षपूर्ण एवं हिंसामय वातावरण से मुक्ति पाने के लिए, गांधी-मार्ग ही आशा का एकमात्र मार्ग रह गया है।

गांधीजी की दृष्टि में :

(१) दुनिया के सब धर्म एक जगह पहुँचने के अलग-अलग रास्ते हैं।

(२) जाति और प्रान्त की दोहरी दीवार टूटनी चाहिए।

(३) अछूत प्रथा हिन्दू समाज का सबसे बड़ा कलंक है।

(४) यदि किसी व्यक्ति के पास, जितना उसे मिलना चाहिए उससे अधिक हो तो वह उसका संरक्षक या ट्रस्टी है।

(५) किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।

(६) स्वराज्य का अर्थ है अपने को काबू मे रखना जानना।

(७) प्रत्येक को सन्तुलित भोजन, रहने का मकान और दवा-दारू की काफी मदद मिल जानी चाहिए, यह है आर्थिक समानता का चित्र।

पूज्य बापू की जीवन-दृष्टि में अपनी दृष्टि विलीन कर गाधी जन्म शताब्दी सफलतापूर्वक मनाइए।

उत्तर प्रदेशदान के संदर्भ में सन् १९६९ की शिविर-योजना

माह	तिथि	स्थान
जनवरी	१० से १२	शान्ति-सेना शिविर मेरठ
	१५ से १६	मुजफ्फरनगर, चरथावल, पुरकाजी
	१७ से १८	बुलन्दशहर
	२३ से २४	,,
फरवरी	२ से ३	,,
	८ से ९	,,
	१४ से १५	सहारनपुर, बक्सर, बहादुराबाद
फरवरी	२० से २१	मेरठ
मार्च	६ से ७	मेरठ
	१८ से १९	सहारनपुर
	२४ से २५	बुलन्दशहर
मई	१ से २	बुलन्दशहर
	७ से ८	मेरठ
	१३ से १४	मुजफ्फरनगर
	१९ से २०	बुलन्दशहर
जून	८ से ९	मेरठ
	१४ से १५	सहारनपुर
	२० से २१	बुलन्दशहर
	२६ से २७	,,
जुलाई	६ से ७	मुजफ्फरनगर
	१२ से १३	मेरठ
	१८ से १९	सहारनपुर
	२४ से २५	बुलन्दशहर
अगस्त	३ से ४	,,
	९ से १०	मेरठ
	१५ से १६	मुजफ्फरनगर
	२१ से २६	बुलन्दशहर
	२८ से २९	,,
सितम्बर	७ से ८	सहारनपुर
	१३ से १४	मेरठ
	२२ से २३	मुजफ्फरनगर, सहारनपुर
	२८ से २९	,,

सत्ता का विकेन्द्रीकरण

केन्द्रीय सरकार और राज्य-सरकारों के बीच चल रही अधिकारों सम्बन्धी खींच-तान पर अपनी राय प्रकट करते हुए श्री जयप्रकाश नारायण ने २१ दिसम्बर '६८ को पटना में कहा कि बहुसंख्यक जनसंख्या और विभिन्नताओंवाला देश होने के कारण यह स्वाभाविक है कि जैसे-जैसे विभिन्न प्रदेशों में गैर-कांग्रेसी सरकारें शासनारूढ़ होंगी, वैसे-वैसे वे केन्द्रीय सरकार पर अधिकार बाँटने के लिए दबाव डालेंगी। केन्द्र में चूँकि प्रदेशों के ही प्रतिनिधि जाते हैं, इसलिए राजनैतिक कारणों से केन्द्र अधिक समय तक इस दबाव का प्रतिरोध नहीं कर सकेगा। अपना विचार स्पष्ट करते हुए श्री जयप्रकाशजी ने कहा कि कोई वजह नहीं है कि विकेन्द्रीकरण की यह प्रक्रिया प्रदेश की राजधानियों तक पहुँचकर रुक जाय, इसका कोई औचित्य नहीं है। यदि ऐसा हुआ तो यह लोकतंत्र की भावना और लक्ष्य के विपरीत होगा। एक लोकतांत्रिक और दूरदर्शी केन्द्र को नीचे की ओर सत्ता के जाने की इस प्रक्रिया को राज्यों से नीचे जिलों तक पहुँचाने में सक्रिय रुचि लेनी चाहिए, ताकि राज्य-सत्ता सिर्फ १६ प्रदेशों तक सिमटित होने की जगह देश के कुल लगभग ३६० जिलों तक पहुँच सके।

इस प्रक्रिया द्वारा राज्यों की बढ़ती हुई शक्ति मर्यादित होगी और केन्द्र-राज्य तनाव के कारण अपने आप दूर होगा। इस प्रक्रिया से शासन का ढाँचा और अधिक लोकतांत्रिक होकर सामान्य जन को प्रशासन में और अधिक भागीदार बनायेगा।

इस प्रक्रिया का ही एक नतीजा यह होगा कि उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्यप्रदेश जैसे जो बड़े-बड़े प्रदेश हैं, उन्हें छोटा किया जाय। पांच हिन्दी भाषा भाषी प्रदेशों को छोड़कर बाकी सभी प्रदेश प्रायः भाषावार राज्य हैं। बड़े प्रदेशों के विघटन से जहाँ एक ओर गुजरात, असम और बंगाल के बीच निकट रहनेवाले राज्यों की रचना संभव होगी वहीं भाषा सम्बन्धी भावनाएं भी बहुत हद तक कम हो जायेंगी।

[illegible], सोमवार, ६ जनवरी, '६९

भारत : गांधी-विचार से दूर

दिल्ली विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग के सदस्यों के बीच में बोलते हुए दिल्ली में २८ दिसम्बर, '६८ को हुए श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि भारत का संयोजन इस देश को गांधीजी की धारणा की समाज-व्यवस्था से दूर हटा रहा है। गांधीजी होते तो उन्होंने औद्योगीकरण के लिए होनेवाली पागलों जैसी दौड़ को रोकने की कोशिश की होती।

जयप्रकाशजी ने कहा कि संयोजन के चलते एक ओर शहरों में गन्दी घिनौनी बस्तियां फैलती जा रही हैं, दूसरी तरफ गांव अव्यवस्था और पिछड़ेपन की हालत में पहुँच रहे हैं। लगता है कि अभी तक भारत 'गुलामी की मनोभावना' से छुटकारा नहीं पा सकता है। यद्यपि आप आध्यापक हैं, फिर भी आपके काम की यहाँ कदर नहीं होगी जबतक कि कहीं बाहर उसे प्रतिष्ठा मिल जाय।

जयप्रकाशजी ने कहा कि भारत में शायद आचार्य विनोबा भावे और उनके अनुयायी ही ऐसे लोग हैं, जो गांधीजी की कल्पना की समाज व्यवस्था स्थापित करने की कोशिश में लगे हैं। विनोबाजी ग्रामदान के द्वारा अपने ढंग से प्राथमिक समुदायों की रचना कर रहे हैं। भारत के लाखों गांवों के रूप में इन प्राथमिक समुदायों के घटक पहले से मौजूद हैं। इन समुदायों को दूसरे समुदाय के साथ और अन्त में औद्योगीकरण तथा विकास के साथ भी अनुबन्धित किया जा सकता था।

महात्मा गांधी ने जिस समाज-व्यवस्था की परिकल्पना की थी, वह प्राथमिक समुदायों का लहरों जैसा वृत्त था, जिसके बीच में व्यक्ति प्रतिष्ठित था। स्वतन्त्रता मिलने पर गांधीजी ने कहा था कि हमें अभी तक नैतिक, सामाजिक और आर्थिक आजादी नहीं हासिल हुई है। अन्त में श्री जयप्रकाशजी ने कहा कि विनोबाजी और उनके साथी जितना कुछ कर रहे हैं, वह काफी नहीं है। ऐसे इंजीनियरों, डाक्टरों, अर्थशास्त्रियों, समाज-शास्त्रियों और राजनीति-वेत्ताओं के सारे माने पर ही इस लक्ष्य की पूर्ति हो सकती है, जिनमें मौलिक और वास्तविक क्षमताएँ मौजूद हैं।

अपराधी राजनीति

२८ दिसम्बर, '६८ को ही इन्द्रप्रस्थ इस्टेट में आयोजित साम्प्रदायिकता-विरोधी द्वितीय राष्ट्रीय सम्मेलन के अध्यक्ष-पद से बोलते हुए आपने कहा कि राजनैतिक दलों ने धर्म-निरपेक्षता के प्रति उपेक्षा की नीति अपनाते हुए सत्ता प्राप्त करने के लिए ऐसी नीति अपनायी, जिससे साम्प्रदायिक संगठनों को बढ़ावा मिला।

जयप्रकाशजी ने कहा कि सम्प्रदायवाद धर्म का दुरुपयोग कर लेता है तो इसमें दोष धर्म का नहीं है। असली अपराधी तो राजनीति है, जिसके साथ साथ ही अर्थ-नीति भी रहती है।

अब तक सम्प्रदायवाद से किसी धार्मिक लक्ष्य की पूर्ति नहीं हुई है। सम्प्रदायवाद की असली प्रेरणा हमेशा राजनैतिक, आर्थिक या सामाजिक ही रहती आयी है।

सम्प्रदायों की बातें कहकर वोट प्राप्त करने के मुकाबिले साम्प्रदायिकता का हौआ खड़ा करके वोट हासिल करना बहुत आसान रहा है। देश में जो दल धर्म-निरपेक्षता के हिमायती हैं, उन्हें चेतावनी देते हुए जयप्रकाशजी ने कहा कि यदि वे तोड़ने और फूट पैदा करनेवाली ताकतों का मुकाबिला नहीं करेंगे तो भविष्य अन्धकारमय होगा।

जयप्रकाशजी ने अपने उद्गार जारी रखते हुए कहा कि आज देश की परिस्थिति का सबसे शोचनीय पहलू यह है कि देश के सबसे ऊँचे तबके के बुद्धिवादी लोग भारत के नवनिर्माण के कार्य में अपना ठीक रोल नहीं अदा कर रहे हैं। इसीका नतीजा है कि ऊँची शिक्षा अर्जित करने के स्थान भी सम्प्रदायवाद के अड्डे बदनाम हो रहे हैं।

जयप्रकाशजी ने हिन्दू और मुस्लिम-सम्प्रदायवाद का विशेष रूप से जिक्र करते हुए कहा कि हिन्दू सम्प्रदायवाद दूसरे सम्प्रदायवादों से अधिक विध्वंसकारी है। चूँकि भारत की जनसंख्या में से अधिकांश लोग हिन्दू हैं, इसलिए हिन्दू सम्प्रदायवादी भावनाओं से अपने→

आन्दोलन के भविष्य को ध्यान में रखकर उसकी व्यूह-रचना की जाय

—धीरेन्द्र भाई की संघ-अध्यक्ष को सलाह—

उत्तर प्रदेश में गत एक महीने की ग्रामदान-यात्रा पूरी करके दरभंगा वापस लौटते हुए वाराणसी में धीरेन्द्र भाई ने सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष मनमोहन चौधरी से पूरे आन्दोलन के सन्दर्भ में एक महत्त्वपूर्ण पहलू पर चर्चा करते हुए कहा कि अगर गांधी-जन्म शताब्दी-वर्ष में भविष्य को ध्यान में रखकर आन्दोलन की व्यूह-रचना नहीं की गयी, तो २ अक्तूबर १९६९ के बाद आन्दोलन में बहुत बड़ा उतार आयेगा, ठीक वैसा ही जैसा कि १९५७ के बाद हुआ था। उन्होंने कहा कि अब समय आ गया है, जब कि इस पहलू पर गम्भीरतापूर्वक सोचा जाना चाहिए। आपने कहा कि ग्रामसभाएँ अपने आप काम कर लेंगी यह ठीक है, लेकिन बीच के समय में प्रेरणा देनेवालों की जरूरत तो है ही। आज तो स्थिति यह है कि बिना बाहरी कार्यकर्ता के ग्रामसभा की बैठक भी नहीं बुलायी जा सकती है।

कम से कम एक ब्लाक में एक कार्यकर्ता तो होना चाहिए, जो लोगों को प्रेरणा दे सके। इसलिए नौजवानों को रिक्रूट करने की योजना बनानी चाहिए। जगह-जगह शिविरों, गोष्ठियों के आयोजन हों तो हमें कार्यकर्ता मिल सकेंगे। धीरेन्द्र भाई ने आन्दोलन की व्यूह-रचना के बारे में कहा कि लोकमानस में यह बात घुसा देनी है कि क्या करना है और कैसे करना है। भारतदान तक प्राप्ति-अभियान तो चलना ही चाहिए, साथ ही जगह-जगह लोकयात्राओं के आयोजन भी होने चाहिए। ये लोकयात्राएँ छोटे-छोटे क्षेत्रों में आयोजित की जायँ। उन्होंने आगे कहा कि आन्दोलन के सन्दर्भ में मेरा इस बात का आग्रह नहीं है कि कार्यकर्ता की जीविका उसके अमुक प्रकार के श्रम से ही निकले। वह चाहे कोई भी काम करके जीविका चलाये—चाहे तो दुकान खोल ले, कहीं किसी स्कूल में शिक्षक हो जाय, या चन्दा से इकट्ठा कर ले। इस प्रकार कार्यकर्ता जीविका में स्वावलम्बी हो और विचार-शिक्षण का काम करे। अगर ऐसा नहीं होता है तो सर्व सेवा संघ के सामने आर्थिक सकट बना ही रहेगा।

धीरेन्द्र भाई ने मनमोहन भाई से कहा कि इस सम्बन्ध में वे एक नोट बनायें और अगली प्रबन्ध समिति की बैठक में इस पर चर्चा करें।

मनमोहन भाई ने अपनी सहमति प्रकट की और कहा कि मेरा भी मानना है कि अगर आन्दोलन की व्यूह-रचना पर सोचा नहीं गया तो गांधी-शताब्दी के बाद उतार आयेगा। उन्होंने उड़ीसा में किये जा रहे प्रयत्नों की चर्चा की, और कहा कि उड़ीसा में यह निश्चय किया गया है कि अगली १५ मार्च तक १०,००० लोग ग्रामदान-प्राप्ति के काम में लगें। अभी पाँच जिले इस काम के लिए चुने गये हैं। शिविर के माध्यम से इतने कार्यकर्ता हमें मिलेंगे ऐसी आशा है। उन्होंने कहा कि हर गाँव में हमारा प्रवेश होगा और आशा है कि २० प्रतिशत गाँव ग्रामदान में आ जायेंगे। उन्होंने कहा कि ग्राम शान्ति-सेना गुरील्ला शान्ति-सेना है, ऐसा हम मानते हैं और गाँव-गाँव में गुरील्ला शान्ति-सेना के संगठन का प्रयास हम कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि उड़ीसा के वरिष्ठ कार्यकर्ता नन्दकिशोर दास और श्री नव बाबू ने निश्चय किया है कि इस काम में वे अपना पूरा समय देंगे।

धीरेन्द्र भाई ने उनके इस तरीके को पसन्द किया और कहा कि हर प्रदेश और जिले के कार्यकर्ताओं को इस योजना की जानकारी मिलना चाहिए। —विशेष संवाददाता

बिहार में ग्रामदान-प्रखंडदान

(२१ दिसम्बर '६८ तक)

जिला	ग्रामदान	प्रखंडदान	जिलादान
पूर्णिया	८,१५७	३८	१
सहरसा	२,३६०	२१	१
भागलपुर	४६५	४	—
संथाल परगना	१,०७४	३	—
मुंगेर	२,१६१	२६	—
दरभंगा	३,७२०	४४	१
मुजफ्फरपुर	३,६१७	४०	१
सारण	३,७७१	४१	१
चम्पारण	२,८६०	३६	१
पटना	४८	—	—
गया	१,२६३	४४	—
शाहाबाद	११४*	५	—
पलामू	८०४	१६	—
हजारीबाग	१,२७३	५	—
राँची	४८	—	—
धनबाद	५४८	६	—
सिंहभूमि	४६१	४	—
कुल :	३३,१६४	३३५	६

* अपूर्ण

— बिहार ग्रामदान-प्राप्ति समिति, पटना ३

वल्लभस्वामी की पुण्यतिथि के अवसर पर वल्लभ-निकेतन में स्नेह-सम्मेलन

विगत ८ दिसम्बर '६८ को स्व० वल्लभस्वामी की पुण्यतिथि के अवसर पर वल्लभ-निकेतन, बगलौर में स्नेह-सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में आचार्य काका कालेलकर, दादा धर्माधिकारी, शंकरराव देव, अण्णासाहब सहस्रबुद्धे, एस० जगन्नाथन् ने श्री वल्लभस्वामी का स्मरण करते हुए उन्हें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

मथुरा जिलादान का निश्चय

मथुरा, २३ दिसम्बर। आज नगर तथा जिले के कार्यकर्ताओं की सभा में निश्चय किया गया कि ११ सितम्बर, '६९ 'विनोबा-जयन्ती' के पूर्व ही मथुरा-जिलादान पूर्ण किया जाय।

सत्ता का विकेन्द्रीकरण

केन्द्रीय सरकार और राज्य-सरकारों के बीच चल रही अधिकारों सम्बन्धी खींच-तान पर अपनी राय प्रकट करते हुए श्री जय-प्रकाश नारायण ने २१ दिसम्बर '६८ को पटना में कहा कि बहुसंख्यक जनसंख्या और विविधताओंवाला देश होने के कारण यह स्वाभाविक है कि जैसे जैसे विभिन्न प्रदेशों में गैर-कांग्रेसी सरकारें सत्तारूढ़ होंगी, वैसे-वैसे वे केन्द्रीय सरकार पर अधिकार बांटने के लिए दबाव डालेंगी। केन्द्र में चूंकि प्रदेशों के ही प्रतिनिधि जाते हैं, इसलिए राजनैतिक कारणों से केन्द्र अधिक समय तक इस दबाव का प्रतिरोध नहीं कर सकेगा। अपना विचार स्पष्ट करते हुए श्री जयप्रकाशजी ने कहा कि कोई वजह नहीं है कि विकेन्द्रीकरण की यह प्रक्रिया प्रदेश की राजधानियों तक पहुंचकर रुक जाय, इसका कोई औचित्य नहीं है। वस्तुतः यदि ऐसा हुआ तो यह लोकतंत्र की भावना और लक्ष्य के विपरीत होगा। एक ओर सत्ता के जाने की इस प्रक्रिया को राज्यों से नीचे जिलों तक पहुंचाने में सक्रिय रुचि लेनी चाहिए, ताकि राज्य सत्ता सिर्फ १६ प्रदेशों तक सीमित होने की जगह देश के कुल लगभग ३२० जिलों तक पहुंच सके।

इस प्रक्रिया द्वारा राज्यों की बढ़ती हुई शक्ति मर्यादित होगी और केन्द्र [illegible] प्रशासन के कारण अपने आप सुदृढ़ होता जायेगा। इस प्रक्रिया से शासन का ढांचा और अधिक लोकतांत्रिक होकर सामान्य जन को प्रशासन में और अधिक भागीदार बनायेगा।

इस प्रक्रिया का ही एक नतीजा यह होगा कि उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य-प्रदेश जैसे जो बड़े-बड़े प्रदेश हैं, उन्हें तोड़ दिया जाए। पांच हिन्दी भाषा भाषी प्रदेशों को छोड़कर बाकी सभी प्रदेश भाषावार राज्य हैं। बड़े प्रदेशों के विभाजन से जहां एक ओर सुविधा, शासन और विकास के और निकट रहनेवाले राज्यों की रचना संभव होगी वहीं भाषा सम्बन्धी धारणाएं भी बहुत हद तक कम हो जायेंगी।

भारत : गांधी-विचार से दूर

दिल्ली विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र विभाग के सदस्यों के बीच में बोलते हुए दिल्ली में २८ दिसम्बर, '६८ को हुए श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि भारत का संयोजन इस देश को गांधीजी की धारणा की समाज-व्यवस्था से दूर हटा रहा है। गांधीजी होते तो उन्होंने औद्योगीकरण के लिए होनेवाली पागलों जैसी दौड़ को रोकने की कोशिश की होती।

जयप्रकाशजी ने कहा कि संयोजन के चलते एक ओर शहरों में गन्दी घिनौनी बस्तियां फैलती जा रही हैं, दूसरी तरफ गांव पंगुता और पिछड़ेपन की हालत में पहुंच रहे हैं। लगता है कि अभी तक भारत 'गुलामी की मनोभावना' से छुटकारा नहीं पा सका है। यद्यपि आप प्राध्यापक हैं, फिर भी आपके काम की यहां कदर नहीं होगी जबतक कि कहीं बाहर उसे प्रतिष्ठा न मिल जाय।

जयप्रकाशजी ने कहा कि भारत में शायद आचार्य विनोबा भावे और उनके अनु-यायी ही ऐसे लोग हैं, जो गांधीजी की कल्पना की समाज व्यवस्था स्थापित करने की कोशिश में लगे हैं। विनोबाजी ग्रामदान के द्वारा अपने ढंग से ग्रामीण समुदायों की रचना कर रहे हैं। भारत के लाखों गांवों के रूप में इन ग्रामीण समुदायों के घटक पहले से मौजूद थे। इन समुदायों को दूसरे समुदायों के साथ और अन्त में औद्योगीकरण तथा विकास के साथ भी अनुकूलित किया जा सकता था।

महात्मा गांधी ने जिस समाज-व्यवस्था की कल्पना की थी, वह ग्रामीण समुदायों का [illegible] जैसा ढांचा था, जिसमें बीच में व्यक्ति सुरक्षित था। स्वतन्त्रता मिलने पर गांधीजी ने कहा था कि हमें अभी तक नैतिक, सामाजिक और आर्थिक आजादी नहीं हासिल हुई है। अन्त में श्री जयप्रकाशजी ने कहा कि विनोबाजी और उनके साथी जितना कुछ कर रहे हैं, वह काफी नहीं है। ऐसे इंजी-नियरों, प्राविधिकों, अर्थशास्त्रियों, समाज-शास्त्रियों और राजनीति-नेताओं के आगे आने पर ही इस लक्ष्य की पूर्ति हो सकती है, जिनमें मौलिक और वास्तविक क्षमताएं मौजूद हैं।

अपराधी राजनीति

२८ दिसम्बर, '६८ को ही इन्द्रप्रस्थ इस्टेट में आयोजित साम्प्रदायिकता विरोधी द्वितीय राष्ट्रीय सम्मेलन के अध्यक्ष-पद से बोलते हुए आपने कहा कि राजनैतिक दलों ने धर्म-निरपेक्षता के प्रति उपेक्षा की नीति अपनाते हुए सत्ता प्राप्त करने के लिए ऐसी नीति अपनायी, जिससे साम्प्रदायिक संगठनों को बढ़ावा मिला।

जयप्रकाशजी ने कहा कि साम्प्रदायवाद धर्म का दुरुपयोग कर लेता है तो इसमें दोष धर्म का नहीं है। असली अपराधी तो राजनीति है, जिसके साथ साथ ही अर्थ-नीति भी रहती है।

अब तक साम्प्रदायवाद से किसी धार्मिक लक्ष्य की पूर्ति नहीं हुई है। साम्प्रदायवाद की असली प्रेरणा हमेशा राजनैतिक, आर्थिक या सामाजिक ही रहती आयी है।

समझदारी की बातें कहकर वोट प्राप्त करने के मुकाबिले साम्प्रदायिकता का होवा खड़ा करके वोट हासिल करना बहुत आसान रहा है। देश में जो दल धर्म-निरपेक्षता के हिमायती हैं, उन्हें चेतावनी देते हुए जय-प्रकाशजी ने कहा कि यदि वे तोड़ने और फूट पैदा करनेवाली ताकतों का मुकाबिला नहीं करेंगे तो भविष्य अन्धकारमय होगा।

जयप्रकाशजी ने अपने उद्गार जारी रखते हुए कहा कि आज देश की परिस्थिति का सबसे दुःखजनक पहलू यह है कि देश के सबसे ऊंचे तबके के बुद्धिवादी लोग भारत के नवजागरण के कार्य में अपना ठीक रोल नहीं अदा कर रहे हैं। इसीका नतीजा है कि ऊंची शिक्षा अर्जित करने के स्थान भी सम्प्र-दायवाद के [illegible] बदनाम हो रहे हैं।

जयप्रकाशजी ने हिन्दू और मुस्लिम साम्प्रदायवाद का विशेष रूप से जिक्र करते हुए कहा कि हिन्दू साम्प्रदायवाद दूसरे साम्प्रदाय-वादों से अधिक विघटनकारी है। चूंकि भारत की जनसंख्या में से अधिकांश लोग हिन्दू हैं, इसलिए हिन्दू साम्प्रदायवादी ताकतों से [illegible] →

राजस्थान सर्वोदय-सम्मेलन सम्पन्न

कार्यकर्ताओं में संकल्पबद्ध होकर प्रदेशदान के काम में जुट जाने की अभूतपूर्व प्रेरणा का संचार

जयपुर : ३१ दिसम्बर '६८। पन्द्रहवें राजस्थान सर्वोदय-सम्मेलन का ऐतिहासिक आयोजन आज सम्पन्न हो गया। विनोबा की पुकार और हाल में ही हुए शराबबन्दी आन्दोलन को प्रदेशव्यापी जागृत प्रेरणा के बल पर ग्रामदान से प्रदेशदान तक की मंजिल पूरी करने का तूफानी-संकल्प लेकर कार्यकर्ता अपने-अपने क्षेत्रों में वापस लौट गये।

इस महत्त्वपूर्ण सम्मेलन की अध्यक्षता श्री जयप्रकाश नारायण ने की। ३० दिसम्बर '६८ को इस अवसर पर नीम का थाना का प्रखण्डदान जयप्रकाशजी को समर्पित किया गया। आपने भाषण करते हुए कहा कि अपने अस्तित्व के लिए वोटों पर निर्भर रहनेवाले किसी भी राजनीतिक पार्टी से यह आशा करना बेकार है कि वह देश में सामाजिक, आर्थिक तथा कृषि-क्रान्ति ला सकेगी।

आपने कहा कि देश में राजनीतिक स्थिरता ग्रामदान-आन्दोलन से ही आ सकती है। इसके लिए गाँव-गाँव में नया नेतृत्व खड़ा करना होगा और ग्रामदानी ग्रामसभाओं को उसका आधार बनाना होगा। इसी संदर्भ में आपने कहा कि चूँकि प्रदेश राजनीतिक इकाई है, इसलिए प्रदेश के पूरे गाँवों को ग्रामदान में लाने के लिए प्रदेशदान का आन्दोलन तूफान की गति से चलना चाहिए।

को भारतीय राष्ट्रवादी कहकर अपने विरोधियों को राष्ट्र विरोधी बता सकते हैं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जिक्र करते हुए जयप्रकाशजी ने कहा कि [illegible]-निरपेक्षता शक्तियों के दब्बूपन के कारण यह जनसंघ को संचालित करनेवाली असली शक्ति बन गया। जनसंघ धर्म-निरपेक्षता के बारे में जो कुछ कहता है, उसको उस समय तक गंभीरता-पूर्वक नहीं माना जा सकता, जबतक वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के तंत्र से अपनी कड़ियाँ अलग नहीं कर लेता।

मुस्लिम-सम्प्रदायवाद का जिक्र करते हुए जयप्रकाशजी ने कहा कि इसलाम की कुछ गलत व्याख्याओं और कुछ ऐतिहासिक कारणों और हिन्दू-सम्प्रदायवाद की प्रतिक्रिया के चलते एक ऐसे सम्प्रदायवाद का जन्म हुआ जो खुद मुसलमानों और मुल्क, दोनों के लिए खतरनाक है। इस खतरे का स्रोत है—'जमायत-ए-इसलामी'। यह जमायत भारतीय राष्ट्र को अधार्मिक मानती है, जिसके नीचे मुस्लिम खुशी की जिन्दगी बिता नहीं सकते।

मुरादाबाद में ग्रामदान अभियान

मुरादाबाद जिले की बिलारी तहसील में १५ दिसम्बर से २२ दिसम्बर '६८ तक ग्रामदान-अभियान चला। प्रथम दो दिन बिलारी में कार्यकर्ता-शिविर हुआ। कुल तीन सौ से अधिक कार्यकर्ता तथा शिक्षक शिविर में रहे। १७ तारीख को प्रातः कार्यकर्ता निकल पड़े। १७ से २२ दिसम्बर तक कार्यकर्ता २५० ग्रामों में पहुँच पाये। १८८ ग्रामों की आबादी के ७५ से १०० फीसदी तक परिवारों ने ग्रामदान के घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर अथवा अंगूठे द्वारा सही की।

इस प्रकार लगभग ५१ प्रतिशत ग्राम तथा ७६ प्रतिशत परिवार ग्रामदान में सम्मिलित हुए। बिलारी तहसील के लगभग ५० ग्राम और, जनवरी के प्रथम पक्ष में ग्रामदान में सम्मिलित हो जायँ और बिलारी से लगी अन्य तहसील सम्भल करवरी तक ग्रामदान में आ जायँ, इस प्रकार की योजना जिले के कार्यकर्ता बना रहे हैं। —हरिप्रसाद वैद्य

संयोजक, जिला ग्रामदान-प्राप्ति समिति

बलिया में तरुण-शिविर

रसड़ा (बलिया) ३१ दिसम्बर '६८। जिलादान के बाद जिले में आगे के काम को गति और शक्ति देने के लिए तरुण-शिविरों का सिलसिला चल रहा है। पहले और दूसरे शिविर दो इंटर-कालेजों में सितम्बर-अक्तूबर में हुए थे। तीसरा ग्रामीण तरुणों का शिविर २५ से ३१ दिसम्बर '६८ तक रसड़ा में सम्पन्न हुआ। शिविर का उद्घाटन श्री विचित्र नारायण शर्मा ने और समावर्तन श्री धीरेन्द्रभाई ने किया। शिविर में अन्तरराष्ट्रीय युवक-संगठन के मंत्री कृष्णस्वामी तथा आचार्य राममूर्ति का मार्गदर्शन मिला। लगभग ३० शिविरार्थियों ने इस शिविर में भाग लिया।

श्रद्धाञ्जलि

बुलन्दशहर (उ० प्र०) से प्राप्त-सूचनानुसार जिला सर्वोदय मण्डल के अध्यक्ष स्वामी अभयानन्दजी २२ दिसम्बर '६८ को दिवंगत हो गये। सन् १९५४ से ही जिला सर्वोदय मण्डल के अध्यक्ष के रूप में आप सर्वोदय-आन्दोलन का संयोजन और संचालन करते रहे थे। अपनी सेवा-भावना और कर्मठता के कारण स्वामीजी लोगों के अत्यन्त प्रिय स्वजन बन गये थे।

× × ×

उत्तर प्रदेश के सुपरिचित रचनात्मक कार्यकर्ता श्री रामनाथ टण्डन का कानपुर में दिनांक २७ दिसम्बर '६८ को ६४ वर्ष की आयु में देहावसान हो गया। आप जीवन के प्रारम्भिक काल से ही गांधी-विचार के अनुयायी रहे। वर्षों तक आप खादी भवन, दिल्ली के व्यवस्थापक रहे। स्वराज्य आश्रम कानपुर तथा नरवल आश्रम में भी आपने महत्त्वपूर्ण कार्य किये।

× × ×

विशाल सर्वोदय परिवार की ओर से अब इन अशरीरी आत्माओं को हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।

वार्षिक शुल्क : १० रु०, विदेश में २० रु०, या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र
वर्ष : १५ अंक : १५
सोमवार १३ जनवरी, '६९

अन्य पृष्ठों पर

डा० सम्पूर्णानन्दजी का देहावसान

वाराणसी, १० जनवरी '६९। आज १० बजे दिन में ८० वर्ष की आयु में डा० सम्पूर्णानन्दजी का निधन हो गया। वे रोग-शय्या पर महीनों से पड़े थे। सर्वोदय-परिवार की ओर से हम शोक प्रकट करते हुए श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं।

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४१८५

धर्म का राजनीति में कोई स्थान नहीं

हिन्दुस्तान उन सब लोगों का है, जो यहाँ पैदा हुए और पले हैं और जो दूसरे किसी देश का आसरा नहीं ताक सकते। इसलिए वह जितना हिन्दुओं का है उतना ही पारसियों, बेनी इजरायलों, हिन्दुस्तानी ईसाइयों, मुसलमानों और दीगर गैर-हिन्दुओं का भी है। आजाद हिन्दुस्तान में राज्य हिन्दुओं का नहीं, बल्कि हिन्दुस्तानियों का होगा; और उसका आधार किसी धार्मिक पन्थ या सम्प्रदाय के बहुमत पर नहीं, बल्कि बिना किसी धार्मिक भेद-भाव के समूचे राष्ट्र के प्रतिनिधियों पर होगा। मैं एक ऐसे मिश्र बहुमत की कल्पना कर सकता हूँ, जो हिन्दुओं को अल्पमत बना दे। स्वतंत्र हिन्दुस्तान में लोग अपनी सेवा और योग्यता के आधार पर ही चुने जायेंगे। धर्म एक निजी विषय है, जिसका राजनीति में कोई स्थान नहीं होना चाहिए। विदेशी हुकूमत की वजह से देश में जो अस्वाभाविक परिस्थिति पायी जाती है, उसीकी बदौलत हमारे यहाँ धर्म के अनुसार इतने बनावटी फिरके बन गये हैं। जब देश से विदेशी हुकूमत उठ जायगी, तो हम इन झूठे नारों और आदर्शों से चिपके रहने की अपनी इस बेवकूफी पर खुद ही हँसेंगे।[1]

सब धर्म ईश्वर के दिये हुए हैं। लेकिन वे मनुष्य की कल्पना के हैं। और मनुष्य उनका प्रचार करता है, इसलिए वे अपूर्ण हैं। ईश्वर का दिया हुआ धर्म पहुँच के परे, अगम्य है। मनुष्य उसे अपनी भाषा में रखता है, उसका अर्थ भी मनुष्य करता है। किसका अर्थ सच्चा है? सब अपनी-अपनी दृष्टि से, जब तक उस दृष्टि के अनुसार वे बरतते हैं तबतक सच्चे हैं। लेकिन सबका गलत होना भी असम्भव नहीं। इसलिए हम सब धर्मों की ओर समभाव रखें। इससे अपने धर्म के प्रति हममें उदासीनता नहीं आती, लेकिन अपने धर्म के प्रति हमारा जो प्रेम है वह अन्धा न होकर ज्ञानमय बनता है, और इसलिए वह ज्यादा सात्त्विक, ज्यादा निर्मल बनता है। सब धर्मों की ओर समभाव हो तभी हमारे दिव्यचक्षु खुल सकते हैं। धर्मान्धता और दिव्य दर्शन में उत्तर-दक्षिण का अन्तर है। धर्म का सच्चा ज्ञान होने पर सारी अड़चनें दूर होती हैं और सब धर्मों के बीच समभाव पैदा होता है।[2]

सब विदेशियों को यहाँ रहने और बसने की पूरी आजादी है, बशर्ते कि वे अपने को इस देश की जनता से अभिन्न समझें। जो विदेशी यहाँ अपने अधिकारों के लिए विशेष संरक्षण चाहते हों, उन्हें भारत आश्रय नहीं दे सकता। अधिकारों के लिए संरक्षण मांगने का अर्थ यह होगा कि वे यहाँ ऊँचे दरजे के आदमियों की तरह रहना चाहते हैं। लेकिन उन्हें ऐसा नहीं करने दिया जा सकता, क्योंकि उससे संघर्ष पैदा होगा।[3]

—मो० क० गांधी

(१) 'हरिजन सेवक' : ९-८-'४२ (२) 'लाइफ ऑव मोहनदास करमचन्द गांधी', खण्ड-३, पृष्ठ-३१६-१७ (३) 'हरिजन' : २९-९-'४६

प्रदेशदान की सिद्धि के लिए एकजुट होकर पूरी शक्ति से लगने का आह्वान

गांधी-शताब्दी वर्ष में राजस्थान के हर गाँव में ग्राम-स्वराज्य का संदेश पहुँचाने का संकल्प

—राजस्थान में आन्दोलन एक नये ऐतिहासिक मोड़ पर—

हमारी आजादी के नायक और राष्ट्र के कर्णधार गांधीजी बराबर हमारा ध्यान इस ओर खींचते रहे कि सच्चे माने में स्वराज्य तभी हुआ मानना चाहिए, जब देश के लाखों गाँवों का विकास हो और सबसे गरीब और दु:खी को उसका लाभ पहले मिले। गांधीजी ने कल्पना की थी कि स्वतंत्र भारत में गाँव देश की प्राथमिक इकाई बनेगा, इस इकाई को और खेती तथा गाँवों के उद्योगों के विकास को प्राथमिकता दी जायगी और इस सबके फलस्वरूप हर ईकाई अपने में भरी-पूरी, स्वाश्रयी, और स्वायत्त, पर एक-दूसरे से सहकार के धागे में बँधी हुई, और सब मिलकर पूरे देश और अखिल मानवता से अनेक रूपों से जुड़ी हुई होगी।

राजस्थान प्रदेश का यह सर्वोदय-सम्मेलन अनुभव करता है कि ग्राम-स्वराज्य का बापू का यह सपना साकार होना बाकी है और इसमें देर होना देश की आर्थिक, औद्योगिक, राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक, हर प्रकार की सही दिशा की प्रगति के लिए हानिकर है।

इस ग्राम-स्वराज्य की सिद्धि के लिए विनोबाजी ने भूदान-ग्रामदान का एक सक्षम *क्रान्तिकारी कार्यक्रम देश को दिया है* और यह सन्तोष की बात है कि वह कार्यक्रम अपने लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ रहा है। देश के *कई प्रदेशों में एक से अधिक जिले पूरे ग्रामदान* में शामिल हुए हैं। बिहार में तो कुल गाँवों के आधे से अधिक, पूरे उत्तर बिहार के ६ जिले, ग्रामदान में आ गये हैं। बिहार के अलावा उत्कल, उत्तर प्रदेश, तमिलनाड और महाराष्ट्र ने भी *संपूर्ण प्रदेशदान का संकल्प* जाहिर किया है और उसकी सिद्धि में लगे हैं।

देश के अन्य भागों की तरह राजस्थान के *सर्वोदय-कार्यकर्ता भी स्वराज्य के बाद* इन पिछले १५-२० वर्षों में पूज्य विनोबाजी के मार्गदर्शन में चल रहे, सर्वोदय-आन्दोलन के जरिए जनता की शक्ति जाग्रत व संगठित करने का प्रयास करते रहे हैं। यहाँ भी अब-तक १ हजार से *ऊपर ग्रामदान हो चुके हैं।* किन्तु मानना चाहिए कि समय के तकाजे को देखते हुए यह प्रगति बहुत ही धीमी है। *पिछले दिनों प्रदेश की लोकशक्ति शराबबन्दी* के महत्त्वपूर्ण आन्दोलन में लगी और उसका असरकारक परिणाम भी सामने आया। इससे निश्चय ही *कार्यकर्ताओं का आत्मविश्वास* और शक्ति जगी। लेकिन आवश्यकता है और पूज्य विनोबाजी ने राजस्थान के कार्यकर्ताओं को सही, *सामयिक संकेत किया है* कि प्रदेश की पूरी शक्ति प्रदेश के संपूर्ण ग्रामदान के लक्ष्य की सिद्धि में लग जाय।

दुर्भाग्य से राजस्थान के कई भागों में *भीषण अकाल की स्थिति बनी है। स्वाभाविक ही* ऐसे समय जनता की राहत और पशुधन की रक्षा के लिए यथाशक्ति सेवा-कार्य किया जाना जरूरी है। लेकिन यह साफ *समझना होगा कि दुष्काल की स्थिति* आये दिन बने, वह स्थिति आ ही जाय, तब भी जनता बेबसी व नीति-धैर्य की कमी की *शिकार न हो तथा राहत वक्त पर व ठीक* लोगों के पास पहुँचे, इसके लिए भी जरूरी है कि प्रदेश की जनता में, मुख्यतः गाँव-गाँव के लोगों में, सामुदायिक भावना, आत्म-विश्वास व आत्म-निर्भरता बढ़े।

इस प्रकार चाहे शराबबन्दी सफल करने *की बात हो,* चाहे *जनता के आत्मविश्वास* को बढ़ाने व अकाल आदि संकट के निवारण व उस समय के सेवाकार्य को ठीक अंजाम *देने का काम हो। ग्रामदान, ग्रामस्वराज्य* के बुनियादी कार्य को आगे बढ़ाना व जल्दी-से-जल्दी कामयाब करना हर तरह से आवश्यक, *शुभ* और *कल्याणकारी* है।

राजस्थान प्रदेश सर्वोदय-सम्मेलन गांधी-शताब्दी के इस वर्ष में प्रदेशदान के लिए *पूज्य बाबा का सन्देश आन्दोलन को गतिशील* बनाने के लिए एक शुभ लग्न व शुभ संकेत मानता है। इस लक्ष्य की ओर मनोयोगपूर्वक सारी कार्यकर्ता-शक्ति एकजुट होकर लग *जाय, ऐसा अवसर उपस्थित हुआ है। अतः* यह सम्मेलन गांधीजी के ग्राम स्वराज्य में विश्वास रखनेवाले भाई-बहनों को अब बिना समय खोये, इस कार्य में लगने के लिए आवाहन करता है। विश्वास है कि प्रदेश की जनता इस क्रान्तिकारी काम के लिए तत्पर हो जायगी और सर्वोदय-विचार-प्रेमी संस्थाएँ, *कार्यकर्ता, गांधी-शताब्दी की अवधि में* प्रदेश-दान का संकल्प कर उसकी सर्वाङ्ग सिद्धि में लग जायेंगे।

(३०-३१ दिसम्बर '६८ को जयपुर में आयोजित १५ वें राजस्थान सर्वोदय-सम्मेलन का निवेदन)

राजस्थान प्रदेशदान का सामूहिक संकल्प

"हम महसूस करते हैं कि देश को शक्तिशाली, समृद्ध और सुखी बनाने के लिए गांधीजी की ग्राम-स्वराज्य की जो कल्पना थी उसे साकार करना आवश्यक है। विनोबाजी की ग्रामदान की योजना ग्राम स्वराज्य की स्थापना का उत्तम उपाय है। परिस्थिति की माँग है कि यह काम जल्दी-से-जल्दी सम्पन्न हो।

अतः हम संकल्प करते हैं कि गांधी शताब्दी के इस वर्ष में राजस्थान के सब गाँवों में ग्रामदान-ग्रामस्वराज्य का विचार पहुँचाकर उसके लिए सहमति प्राप्त करेंगे तथा प्रदेश-दान के *काम को पूरा करने में अपनी अधिक-से अधिक शक्ति लगायेंगे।"*

[१५ वें सर्वोदय-सम्मेलन के अवसर पर यह संकल्प सामूहिक रूप से दुहराया गया।]

चन्दामामा

शायद ही कोई बच्चा होगा जिसने अपनी माँ से चन्दामामा की माँग न की हो, और शायद ही कोई माँ हो जिसने चन्दामामा का नाम लेकर अपने बच्चे को खिलाया न हो, बहलाया न हो। दूर बैठे इस चाँद ने न जाने कितने बच्चों को कितनी खुशी दी है, कवि को कितनी कल्पना, और प्रेमी को न जाने कितना दर्द! सूर्य की मनुष्य ने पूजा की है, लेकिन हृदय उसने चाँद को ही दिया है। प्रकृति से मिलने की चेष्टा में न जाने कब चन्द्रमा मनुष्य की चिर आकांक्षा का विषय बन गया, और मनुष्य अपनी कल्पना के उड़नखटोले में बैठकर उस तक पहुँचने की कोशिश करने लगा। युगों की कोशिश के बाद अब मनुष्य अपने चन्दामामा को छू लेने के करीब है, और वह दिन दूर नहीं है जब वह अचानक कूदकर उसकी गोद में जा बैठेगा।

कौन पहले पहुँचेगा, रूस का उड़ाका या अमेरिका का, यह चाँद की दृष्टि से कोई बड़ी बात नहीं है। चाँद धरती से बहुत दूर है—इतनी दूर कि वह पहचान भी नहीं सकता कि कौन रूसी है, कौन अमेरिकी है। पहुँचनेवाले मनुष्य चाँद को अपना देश बनायेंगे, अपना झंडा दिखायेंगे, लेकिन चाँद खुद इन चीजों को नहीं जानता। धरती के जिन बेटों को उसने आज तक कभी देखा नहीं, उनकी भेदभरी माया वह क्या जाने? बेटों से भेदों की यह सौगात पाकर चाँद को कितना आश्चर्य होगा?

चन्द्रलोक पहुँच तो हम गये, लेकिन पहुँचने के बाद हम वहाँ क्या करेंगे? चन्द्रमा के टुकड़े काटकर अलग-अलग कब्जा करेंगे, और अपने-अपने झंडे फहरायेंगे? कारखाने बनायेंगे? पृथ्वीलोक के लोगों के सैर-सपाटे के लिए होटल और सिनेमाघर खोलेंगे? या, सबसे पहले चाँद पर बैठकर पूरी पृथ्वी को उड़ा देने के लिए बम के अड्डे कायम करेंगे?

आसमान में यन्त्र-चालित 'सैटेलाइट' उड़ रहे हैं। किसलिए उड़ रहे हैं? 'शत्रु' का भेद लेने के लिए। भेद लेने और बम गिराने के लिए मनुष्य ने अपने नये विज्ञान से आसमान का इस्तेमाल कर लिया है। चाँद के लिए उसके पास क्या इससे भिन्न कोई योजना है? जो मनुष्य अपने रहने की धरती को उड़ा देने की धमकी दे रहा है, वह कुछ दिनों में चाँद को भी वही धमकी देगा। उसको चाँद तक पहुँचने की प्रेरणा मिली है शत्रु के भय से, और विज्ञान मिला है प्रतिरक्षा की योजना से। आज का सारा 'स्पेस विज्ञान' जुड़ा हुआ है प्रतिरक्षा से। जिस पुरुषार्थ की मूल प्रेरणा भय हो, घृणा हो, दमन हो, शोषण हो उसमें से जो भी परिणाम निकलेगा उस पर उस मूल प्रेरणा का रंग रहेगा ही।

विज्ञान ने हमें अपार बुद्धि दी, शक्ति दी, साधन दिये, लेकिन नयी प्रेरणा वह कहाँ से लाये? सरकार और बाजार के हाथ में पड़े हुए विज्ञान में दमन और मुनाफाखोरी के सिवाय दूसरी मानवीय प्रेरणा कैसे आयेगी? नयी प्रेरणाओं का नया विज्ञान अभी हमें मिला नहीं।

चाँद को उसके घर जाकर हम जब देखेंगे तब देखेंगे, लेकिन दुनिया में हम क्या देख रहे हैं? हमारे सामने दो रूप हैं—एक पड़ोसी से हटे हुए मनुष्य का, और दूसरा मनुष्य से हटे हुए विज्ञान का। जो मनुष्य अपने पड़ोसी से अलग हो गया, वह प्रकृति को लेकर पड़ोसी का सिर तोड़ेगा, और तोड़ने की अपनी शक्ति को विज्ञान का वरदान घोषित करेगा।

कितनी अजीब बात है कि मनुष्य चाँद के पास तो पहुँच रहा है, लेकिन सामने की दीवार की आड़ में बैठे हुए पड़ोसी के पास नहीं पहुँच पा रहा है। बुद्धि और विज्ञान ने हमें चाँद तक पहुँचा दिया लेकिन पड़ोसी के पास पहुँचने के लिए तो दिल चाहिए। हृदय नहीं तो विज्ञान अज्ञान है, और दृष्टि नहीं तो आत्मज्ञान अंधविश्वास। मनुष्य ऐसे ही अधूरे विज्ञान और आत्मज्ञान का शिकार बना हुआ है। वह पड़ोसी से दूर और चाँद के पास जा रहा है।

चाँद की प्राप्ति एक कौतुक है, भले ही आवश्यक पुरुषार्थ का कौतुक हो, पर पड़ोसी से जुड़ना मनुष्य के जीवन-मरण की समस्या है। इस समस्या को वह कैसे सुलझायेगा? विज्ञान और आत्मज्ञान की पूँजी उसके पास कम नहीं है, लेकिन अपने चारों ओर उसने सत्ता और सम्पत्ति की जो दीवारें खड़ी कर ली हैं, जो संस्थाएँ बना ली हैं, जो सारे भय और अविश्वास विकसित कर लिये हैं, उनके कारण उस पूँजी का लाभ हमें मिल नहीं पा रहा है। लाभ तब मिलेगा जब हम पुराने में से कुछ छोड़ने, और नया लाने के लिए तैयार होंगे। जो विचार, जो व्यवस्था, जो परंपरा या संस्था, मनुष्य को मनुष्य न मानती हो, वह चाहे प्राचीन के नाम से चलती हो या नवीन के, लेकिन तुरन्त छोड़ने लायक है। उसे छोड़कर ही हम एक नये जीवन और संस्कृति में प्रवेश कर सकेंगे।

जो पुरुषार्थ चन्द्रमा तक पहुँचने में है, उससे कम पुरुषार्थ पड़ोसी तक पहुँचने में नहीं है। अंतर इतना है कि एक पुरुषार्थ चकाचौंध करके भी विध्वंसकारी हो सकता है, किन्तु दूसरे में कल्याण ही कल्याण है।

जिस दिन हम अपने और पड़ोसी के बीच की दूरी दूर कर देंगे, उस दिन चाँद और पृथ्वी भी एक हो जायेंगी। पड़ोसी को पाकर मनुष्य सारी सृष्टि को पा लेगा; अपनी नयी सृष्टि बना देगा। •

भारत में जिलादान	११	प्रखंडदान	५५९	ग्रामदान	८५०२६
बिहार	" ७	"	३३५	"	३१०८२
उत्तर प्रदेश	" २	"	७४	"	१३११२
तमिलनाड	" १	"	५०	"	५,३००
मध्यप्रदेश	" १	"	१८	"	४,१५२

संकलित प्रान्तदान : ७—बिहार, उत्तर प्रदेश, तमिलनाड, उड़ीसा, महाराष्ट्र, राजस्थान, मध्यप्रदेश।

८-१-६१

—कृष्णराज मेहता

प्यार : एक व्यवहार्य तत्त्व

आज का यह बहुत मंगल दिन दुनिया भर में मनाया जाता है। भगवान ईसा मसीह का आज जन्म-दिवस है। वैसे तो हर एक दिन मंगल ही है। जिस दिन हमें शुभ प्रेरणा होती है, हमारे मन में शुभ संकल्प पैदा होता है, वह शुभ दिन है। फिर भी कुछ दिन ऐसे होते हैं, जिस दिन की प्रेरणा बहुत शुभ होती है। ऐसे दिनों में आज का यह दिन है। दुनिया में कोई देश नहीं होगा, जहाँ आज का दिन नहीं मनाया जायेगा। क्या दिया ईसा मसीह ने हमको ? उन्होंने ऐसी चीज दी, जिसे दुनिया भर के व्यवहार-वेत्ता, अव्यवहार्य मानते आये हैं। 'दुश्मन पर प्यार करो, उसे प्रेम से जीतो', इसे व्यवहार-वेत्ताओं ने अव्यवहार्य माना है। लेकिन सूक्ष्मता से देखने पर मालूम होता है कि इससे बढ़कर व्यवहार्य चीज नहीं हो सकती है। 'दुश्मन पर प्यार करो' इसमें 'इनिशियेटिव' अपने हाथ में रहता है, सामनेवाले के हाथ में नहीं रहता। वह चाहे मेरा द्वेष करे, चाहे प्यार, मेरा 'इनिशिएटिव' मेरे हाथ में। मुझे क्या करना है, यह उससे सीखना नहीं है। मैं वह सीख चुका हूँ। वह चाहे जो करे, मुझे प्यार ही करना है।

यह बहुत बड़ी बात है। इससे बढ़कर व्यवहार्य बात नहीं हो सकती। चाहे दुनिया कुछ भी करे, मुझ पर जो भी आफत गुजरे, मैं वही करूँगा जो मुझे करना चाहिए। जिन लोगों ने ईसा को क्रूस पर लटकाया, उनके लिए ईसा ने क्या कहा ? अत्यंत शारीरिक वेदना का अनुभव करते हुए वे बोले, "भगवान उन्हें क्षमा कर। वे जानते नहीं हैं कि वे क्या कर रहे हैं ! वे जानते होते तो ऐसा नहीं करते। इसलिए हे प्रभु तू उन्हें क्षमा कर।" इससे बढ़कर क्षमा का आदर्श क्या हो सकता है ! मरते हुए भी प्रेम ही करना, क्षमा ही करना।

अनेक सम्राट आये और गये, उन्हें कोई याद नहीं करता। लेकिन आज के दिन ईसा को सारी दुनिया याद करती है। प्रभु ईसा का हम पर जो उपकार है, वह कभी भुलाया नहीं जायेगा। दो-ढाई हजार साल से सतत प्रेरणा जो दे रहा है, वह असफल माना जायेगा तो सफल किसे माना जायेगा ? हजार-हजार साल हुए तो भी जिन्हें लोग याद करते हैं, वे असफल माने जायेंगे कि जिन्हें याद नहीं किया जाता है, वे ? लेकिन युनिवर्सिटीवाले बच्चों से रटवाते हैं—फलाने राजा का जन्म फलाने साल में हुआ, उसने यह-यह काम किया, फलाने साल में वह मरा। बच्चे याद नहीं करते हैं, इसलिए कहा जाता है कि ३३ प्रतिशत याद करो तो भी चलेगा ! कितना भी किया जाय तो भी उन नामों को लोग उठानेवाले नहीं हैं। नाम तो उन्हींका उठानेवाले हैं, जिन्होंने सच्ची राह दिखाई।

ईसा ने हमें सिखाया कि तुम आत्मा हो, देह नहीं हो। सामनेवाला जो करे वैसा करना, गुस्सा करे तो गुस्सा करना, ऐसा स्याहीचूस बनना तुम्हारा काम नहीं है। वह हँसमुख रहेगा, तो तुम हँसमुख बनोगे और वह टेढ़ा मुँह करेगा तो तुम्हारा मुँह टेढ़ा होगा, ऐसे पुरुषार्थहीन मत बनो। तुम हमेशा हँसते रहो।

यही बात मैं गाँववालों को समझाता हूँ कि तुम्हारा भला तुम्हारे हाथ में है। पार्टीवाले उनको कहेंगे कि हमें वोट दो तो हम तुम्हें स्वर्ग में पहुँचायेंगे। हमारे स्वर्ग का 'मैनीफेस्टो' देख लो। कोई उन्हें यह नहीं समझाता कि तुम्हारा स्वर्ग और तुम्हारा नरक तुम्हारे ही हाथ में है। तुम्हारा उद्धार तुम्हारे ही हाथ में है। ये पार्टीवाले अहंकार-प्रयुक्त हैं। भगवान ने गीता में अर्जुन से कहा कि "ये मर चुके हैं। क्योंकि उन्होंने अहंकार का आश्रय लिया। तू निमित्त बन।" "मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।"

मैं यह कई दफा बोल चुका हूँ कि 'पॉलिटिक्स आउटडेटेड' हो गयी है। अब नये जमाने में अध्यात्म और विज्ञान ही टिकेगा। राजनीति, धर्म, पंथ मर चुके हैं। गीता में भगवान यही कहते हैं, वे मर चुके हैं। भगवान उन्हें खतम कर चुका है। हे अर्जुन, तुम जरा उठ खड़े हो, वे मर चुके हैं। जनता यही करे, उठ खड़ी हो। ग्रामदान में हम यही समझाते हैं कि तुम्हारा उद्धार तुम्हारे हाथ में है।

भगवान ईसा ने हमें यही सिखाया कि अपने पर जितना प्यार करते हो, सुबह उठकर अपने को नहलाया, अपने को खिलाया, कितना प्यार किया अपने पर ! वही प्यार पड़ोसी पर करो। कल एक बेलजियन बहन हमारे पास आयी थी। उसने सुना कि यहाँ विशेष काम होने जा रहा है, सारा बिहार ग्रामदान में आ गया है, लोग अपने पाँव पर खड़े होंगे, पराङ्मुख नहीं बनेंगे, यह देखने के लिए वह आयी और हमसे मिली। क्रिसमस के निमित्त उसने हमें साढ़े सात तोला स्वर्ण-मुद्राएँ अर्पित कीं। कहा कि किसी गरीब के खेत में इस पैसे से कुआँ बनेगा तो भगवान ईसा मसीह की दया से खेत फलेगा। और उस बहन ने मुझसे क्या माँगा ? उसने कहा—"आपकी पुरानी धोती मुझे दीजियेगा और धोती पा करके वह बहुत प्रसन्न हुई। बड़ी श्रद्धा और प्रेम से उसने वह धोती ली। मैं ताज्जुब में रह गया कि ७० साल की यह कन्या बेलजियम जैसे दूर देश से आती है, सर्वोदय का काम क्या हो रहा है, यह देखने के लिए। और प्रेम से दान देकर जाती है। प्रेम का उत्तम चित्र मैं कल देख चुका।

दुनिया भर में भले लोग हैं और वे भले लोग सारे एक हैं। भले भारत में चन्द लोग दीखते हों, लेकिन भले लोगों की संख्या कम नहीं है। भले लोग दुनिया में अनन्त हैं। अनन्त हो गये पहले और अनन्त होंगे आगे। भगवान की हम पर कितनी कृपा है यह कहने के लिए आज के दिन के निमित्त मैंने यह बात आपके सामने रखी। आपने यहाँ काम पूर्ण करने का वचन दिया है। काम तो आप ही करते हैं, मैं तो कुछ नहीं करता। और आप भी क्या काम करते हैं ? काम तो भगवान करता है। हम सब निमित्त हैं। उस भगवान की शरण में जाकर मैं समाप्त करता हूँ।

विनोबा

पटना में २५-१२-'६८ को दिया गया प्रवचन।

इस अंक में

१३ जनवरी, '६९
वर्ष ३, अंक ११] [१८ पै

ये सब चीजें मेरे काम की हैं, इन्हें लड़ाई का चिन्ह किसने बनाया ?

मेरी एक छोटी-सी झोपड़ी है। उसके सामने बरगद का पेड़ है। मैं सुबह सूरज निकलते-निकलते खेत में पहुंच जाता हूं, और शाम को जब अंधेरा होने लगता है तो दीया जलाकर घर में उजाला कर देता हूं। मेरी बैलों की जोडी कितनी अच्छी है ! ये बैल न हों, और यह हल न हो तो खेत कैसे जोता जाय ? समय से खेत की जोताई हो और बोआई हो, तो बीज उगें, पौधे बड़े हों, और हर पौधे में खूब गेहूं की बालें आयें। अब अनाज पक जाये तो हंसिया लाऊं, साथियों को बुलाऊं, सब मिल-कर खेत काटें, और अनाज को खलिहान में इकट्ठा कर दें। खलिहान को देखकर कितनी खुशी हो !

ये सब चीजें मेरे पास हों, तो खेती खूब अच्छी हो। लेकिन खेती चाहे जितनी अच्छी हो, और अनाज चाहे जितना पैदा हो, खेती के साथ चलनेवाले धंधों के बिना काम नहीं चलेगा। ग्रामोद्योग का पहिया गांव-गांव, घर-घर चलना ही चाहिए। खेती और उद्योग को मिलाकर उत्पादन का चक्र पूरा होगा, और घर लक्ष्मी से भर जायगा।

इन चुनाव लड़नेवालों ने अपने-अपने लिए जिन चीजों के चुनाव-चिन्ह बनाये हैं वे सब मेरे काम की हैं। हमारे नेता इन अच्छी चीजों को इकट्ठा कर मुझे क्यों नहीं देते ? कैसी बात है कि जो चीजें खुशहाली बढ़ानेवाली हैं, वे लड़ाई का चिन्ह बन गयी हैं। भला झोपड़ी और बैल, बरगद और गेहूं, गेहूं और हंसिया, या खेती और उद्योग में कोई लड़ाई हो सकती है ? बात यह है कि जीवन में जो चीजें मिल-कर रहती हैं वे राजनीति में एक-दूसरे से अलग हो जाती हैं। उसी तरह राजनीति पड़ोसियों को भी एक-दूसरे का दुश्मन बना देती है। लोगों को जोड़ने की जगह तोड़ देती है।

ग्रामदान दिलों को जोड़ता है। कहता है कि गांव एक है। उसकी एकता में ही उसकी शक्ति है। चुनाव के कारण, या और किसी भी कारण, उसकी एकता टूटने नहीं देनी चाहिए। →

दल-बदलू कौन है ?

प्रश्न : किसको वोट न दें, यह बताते हुए आप लोगों ने कहा है कि गलत उम्मीदवार की एक पहचान यह भी है कि वह दल-बदलू है। बात ठीक है, क्योंकि दल-बदलू की बात का एतबार क्या है ? जिस आदमी की बात और ईमान का एतबार न हो, उसके हाथ में सरकार कैसे सौंपी जायगी ? लेकिन यह तो बताइए कि दल-बदलू माना किसे जाय ? अभी चुनाव में जो उम्मीदवार खड़े हैं, उनमें अनेक ऐसे हैं जो अपना पहला दल छोड़कर दूसरे दल में शरीक हुए हैं। एक तरह से कई पूरी पार्टियाँ ही ऐसी हैं, जिसके लोग—कम-से-कम सब मुख्य लोग—पहले कांग्रेस में थे। क्या ये सब दल-बदलू माने जायेंगे ?

उत्तर : आपने बहुत अच्छी बात उठायी है। इस बात को अच्छी तरह समझ लेने की जरूरत है कि क्यों दल-बदल एक बड़ा दोष माना गया है, और क्यों मतदाताओं को वोट देने के लिए अच्छे उम्मीदवार को पसन्द करते समय दल-बदल का ध्यान रखना चाहिए।

एक पार्टी को छोड़कर दूसरी पार्टी में चला जाना, या दूसरी नयी पार्टी बना लेना अपने में बुरा नहीं है। ऐसा करना गलत भी नहीं है। हमारे देश में विचार की स्वतंत्रता है। जिसे जो विचार अच्छा लगे उसे माने, जो दल अच्छा लगे उसमें शरीक हों, या किसी भी दल में शरीक न हो और 'स्वतंत्र' रहे। जो आदमी अपना दिमाग खुला रखता है, जो सचाई के साथ चलने की कोशिश करता है, वह बदलता रहता है, बढ़ता रहता है। वह किसी दल के साथ रहने के लिए सचाई को—जिसे उसकी आत्मा सचाई मानती हो—नहीं छोड़ता। ऐसे सच्चे आदमी को दल-बदलू नहीं कहेंगे। वह भले ही एक पार्टी छोड़े, और दूसरी पार्टी में जाये, या साथियों के साथ मिलकर एक नयी पार्टी बनाये, लेकिन वह जो कुछ करेगा खुलकर करेगा, वह अपने विचारों के बारे में जनता को अन्धेरे में नहीं रखेगा।

लेकिन आप उस आदमी को क्या कहेंगे, जो एक पार्टी से तो चुनाव लड़े, लेकिन चुनाव के बाद जब सरकार बनाने की बात हो तो सरकार में पद पाने की लालच से एक पार्टी को छोड़कर दूसरी में, और दूसरी को छोड़कर तीसरी में चला जाय ? क्या ऐसे आदमी के लिए भी आप कहेंगे कि उसने ईमानदारी से अपना विचार बदल दिया है ?

प्रश्न : नहीं, ऐसे आदमी को तो पद का लोभी ही मानना पड़ेगा। दूसरा क्या माना जाय ?

उत्तर : बस, ऐसे ही लोभी और बेएतबार आदमी को दल-बदलू कहते हैं।

प्रश्न : यानी वह आदमी दल-बदलू है, जो चुनाव हो जाने के बाद पद के लोभ से अपना दल बदलता है। क्यों ?

उत्तर : बिलकुल ठीक। जो चुनाव के पहले दल-बदलकर जनता के सामने जाता है, और अपनी बात सचाई के साथ रखकर जनता का वोट माँगता है वह दल-बदलू नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न : और वह आदमी क्या है जिसने पिछले चुनाव के बाद सरकार में जाने के लिए दल बदला, नया दल बनाया, और अब अपने नये दल की ओर से चुनाव लड़ रहा है ?

उत्तर : आप खुद सोचें। आपने इतने दिनों तक उसका काम देखा। अगर आपको संतोष हो गया हो तो आप उसे वोट दे सकते हैं, बशर्ते उसमें दूसरे गुण भरपूर हों, और यदि संतोष न हुआ हो तो वोट न दें। कौन उम्मीदवार अच्छा है, और कौन बुरा, यह अपने विवेक से पूछिए। लेकिन विवेक सही काम तभी करेगा जब दिल से दल निकल जायगा, और जाति निकल जायगी। जिसके हृदय से यह दुहरा विष निकल जायेगा उसकी आत्मा उसे सही रास्ता जरूर दिखायेगी। •

→अगर एकता टूट जायेगी तो गाँव का पूरा जीवन टूट जायेगा। गाँव को नहीं, राजनीति को तोड़ना चाहिए। और, राजनीति तब टूटेगी जब हमारे दिलों से सारे दल निकल जायेंगे, जिन्होंने इन अच्छी चीजों को शान्ति और सुख का नहीं, बल्कि द्वेष और संघर्ष का चिन्ह बना डाला है।•

मैं गाँववालों से कहता हूँ कि तुम्हारे हाथ में ही सब कुछ है। तुम्हारा भविष्य तुम्हारे ही हाथ में है। आज की राजनीति मर चुकी है। इससे तुम्हारा हित नहीं होगा।

राजनीतिक पार्टियाँ वोटरों से कहती हैं कि तुम्हारा भाग्य हमारे हाथ में है। हमें वोट दो, हम तुम्हें स्वर्ग दिला देंगे। स्वर्ग में क्या-क्या मिलेगा, यह हमने अपने 'मेनिफेस्टो' (घोषणा-पत्र) में बताया है। दूसरी ओर कोई पार्टी नहीं जो तुम्हारे लिए स्वर्ग दिला सके। स्वर्ग नरक तुम्हारे हाथ में है, यह कोई पार्टी लोगों को नहीं समझाती।

पटना, २५-१२-'६८ —विनोबा

मन की मैल धुल गयी आसमान साफ हो गया !

हरिकिशुन ने नारद-मोह के लिए रुपयोंवाली जिस माया-पुरी की रचना की थी, वह भेद खुलते ही खत्म हो गयी। मोह का पर्दा फटते ही गाँव के कई लोगों में हरिकिशुन के खिलाफ रोष पैदा हो गया। खुद बटेसर सहित हरिजन-टोले के लोगों के मन में यह शंका समा गयी कि जरूर ही हरिकिशुन ने खुद अध्यक्ष बनने के लिए यह चाल चली थी। कई युवक तो एक-साथ हरिकिशुन पर उबल पड़े, "कभी तो नेकनीयत बनने की कोशिश किया करो हरिकिशुन, मन्दिर में भी मन के अन्दर का कूड़ा लिये जाते हो ? राम...राम, कम-से-कम गाँव के इन पाँच-दस बूढ़े-बुजुर्गों का तो खयाल किया होता कि कितनी मगज-पच्ची करने के बाद तो इन लोगों के चलते गाँव में सुमति दाखिल हुई है, अब तुम अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिए उसे खत्म करने पर उतारू हो गये ?...तुम्हें शर्म आनी चाहिए हरिकिशुन, और अब अच्छी तरह समझ लो, गाँव की एकता को तोड़ने के लिए फिर कभी ऐसी चाल चली तो टाँगें...!" एक युवक क्रोधित हो गया था।...शायद उसको बारात से लौटते समय की बात और हवालात की दुर्दशा याद हो आयी थी।

"चुप रहो रामलखन, बीती बात का बतंगड़ नहीं बनाते, जो बीत गया सो बीत गया, आगे की बात सोचो।" हरिहर काका ने कुछ डाँटती हुई आवाज में कहा।

हरिकिशुन सहम गया था। सिर उठाकर किसीसे आँख मिलाने की हिम्मत नहीं हो रही थी। जिन्दगी के चालीस साल बीत गये यही सब करते, लेकिन उसने कभी मात नहीं खायी, सबको पछाड़ता रहा, लेकिन आज न जाने क्यों, उनके दिल में उसीके मन की दुर्जनता काँटा चुभो रही थी। शायद पहली बार बहुत सारे सज्जन लोगों का एकसाथ सामना करना पड़ा था उसे। अकेले-अकेले तो लगभग गाँव के हर आदमी से वह कभी-न-कभी निपट चुका है। शायद दुर्जनता की यही सबसे बड़ी दुर्बलता है कि वह कभी भी संगठित सज्जनता का सामना नहीं कर सकती। यह दूसरी बात है कि सज्जनता का संगठित होना आसान नहीं है। सज्जन लोग या तो सार्वजनिक मामलों में चुप रहते हैं, या छिट-पुट कुछ करते भी हैं तो उसका कोई स्थायी असर नहीं होता, जबकि दुर्जन लोग अक्सर संगठित होते हैं, इसलिए दुर्जनता हावी पड़ जाती है।

"क्यों न हरिकिशुन को ही ग्रामसभा का अध्यक्ष चुना जाय? अगर इनके दिल में गाँव के लोगों की सेवा करने का उत्साह पैदा हुआ है तो हमें इनको मौका देना चाहिए।" रामधनी बाबू ने सुझाव दिया।

"हर्गिज नहीं, हम अपनी बात वापस लेते हैं। हरिकिशुन बाबू का मन साफ नहीं है।" अध्यक्ष के लिए हरिकिशुन का नाम पेश करनेवाले बटेसर ने ही जोर देकर कहा।

"मन तो 'पंचपरमेसर'की सेवा से ही साफ होता है बटेसर, हरिकिशुन को मौका देना चाहिए।" हरिहर काका ने रामधनी बाबू की मंशा समझकर उनकी बातों का समर्थन किया।

"लेकिन जब सेवा के नाम पर मेवा खाने के लिए जीभ से लार टपक रही हो तो ?" रामप्यारे सिंह ने कहा।

"बार-बार गड़ा मुर्दा क्यों उखाड़ते हो रामप्यारे ? एक बार जब कह दिया गया कि जो बीती, उसे भूलकर आगे की बात सोचनी है तो फिर वही प्रपंच शुरू कर दिया ?" विश्वनाथ राय ने डाँटते हुए कहा।

"आपकी क्या राय है ठाकुर ?" मनसुख ने धीरे से पूछा।

"मेरी भी राय है कि हरिकिशुन को ही मौका देना चाहिए। आखिर, काम जब गाँव के सब लोगों की राय से ही होगा, तो डर किस बात का ? जिम्मेदारी डालने और विश्वास करने से आदमी बदलता भी है।" ठाकुर विश्वनाथ राय ने कहा।

"मैं हाथ जोड़कर आप लोगों से प्रार्थना करता हूँ कि अब और मुझे लज्जित न करें। मैं अभी इस काबिल नहीं कि सबकी भलाई की बात सोच सकूँ। मेरा मन बहुत कमजोर है। जो कुछ हो सकेगा मैं वैसे ही करूँगा, लेकिन अध्यक्ष आप लोग किसी और को ही बनायें।" इतनी देर बाद हरिकिशुन सिर उठाकर बोल सका। उसकी आवाज भारी थी। चेहरे से कुछ परेशानी झलक रही थी।

"तो फिर, हरिहर काका को ही !..." बटेसर ने कहा।

"हाँ...हाँ, यही उचित है।" एकसाथ कई लोगों ने कहा।

"लेकिन मुझसे अब इस बुढ़ापे में यह भार नहीं ढोया जायगा। मुझे तो माफ करिए आप लोग !" हरिहर काका ने कहा।

"ठाकुर विश्वनाथ राय ही...!" जगत नारायण ने कहा।

"नहीं ..नहीं ..मैं नहीं !" ठाकुर विश्वनाथ राय ने साफ इन्कार किया।

"यह नहीं-नहीं...हाँ-हाँ कब तक चलती रहेगी ?" सभा में पीछे उत्तर पश्चिम के कोने में बैठे किसी आदमी ने पूछा।

"लेकिन फैसला हो तो कैसे ?" सबके सामने यही सवाल था।

→

जब वर्षों के द्वेष मिट गये !

बेगूसराय क्षेत्र में धांय-धांय ग्रामदान के हस्ताक्षर हो रहे थे। कौतुक था, मामूली अपरिचित कार्यकर्ता दिन भर में बड़े-बड़े भू-स्वामियों के ग्राम का भी ग्रामदान कराकर आ जाते थे। पर नवलगढ़ प्रश्नवाचक चिन्ह बना हुआ था। जो भी कार्यकर्ता जाता, उल्टे-पांव वापस आ जाता। यहां किसीका किसीसे परिचय नहीं। गांव में ४६ वर्षों से खचम-खच मुकदमेबाजी चल रही थी। गांव का हर परिवार मुकदमे मे उलझा हुआ—कोई मुदई, कोई मुदालह, कोई गवाह, तो कोई जमानतदार।

समस्या भाई गोखले के सामने आयी। दो हनुमान (कार्यकर्ता) गांव में बैठक बुलाने के लिए भेजे गये। निश्चित तारीख को भाई गोखले कन्धे पर बड़ा थैला लटकाये, अपने साइटिका से पीड़ित पांव को घसीटते हुए नवलगढ़ माध्यमिक विद्यालय पहुंचे, पर वहां कोई जानकारी नही ! सोचा, हाईस्कूल में पूछें। वहां पता चला कि हां, बैठक तो है, पर कोई आये नहीं। भाई गोखले एक बेंच पर बैठ गये। एक शिक्षक ने पूछा—'आप ही ग्रामदान लेने आये हैं ? बड़ा छोटा थैला है !' सारे शिक्षक ने कहकहा लगायी ! प्रश्नों की झड़ी—एक शिक्षक भाई अधिक मुखर हो रहे थे। उनके एक-एक व्यंग्य पर कहकहे लग रहे थे। इतने में एक सज्जन आये। शिक्षकगण थोड़ा सम्भल गये। भाई गोखले को यह भांपते देर न लगी कि ये यहां के प्रधानाध्यापक हैं। उन्होंने विनम्र स्वर में निवेदन किया कि प्रधानाध्यापक साहब, आपके सामने एक व्यक्ति कटघरे में खड़ा है। मेरे मित्रों के अनेक आरोप एवं टीकाएं हैं। मैं न्यायाधीश की तलाश में था। आप कृपाकर यह जिम्मेवारी उठाकर मुझे सफाई देने का मौका दें। एक-एक प्रश्न का उत्तर प्रारम्भ हुआ। धीरे-धीरे सारे शिक्षक मौन हो गये। प्रश्नकर्ता, शिक्षक भाई की आंखें सजल हो गयी।

अबतक सूर्यनारायण विदा हो गये थे। भाई गोखले यहां से कहां जायें ? स्कूल का चपरासी चाभी का गुच्छा लेकर खड़ा है। शिक्षक संकोच में बैठे हैं—सभी किसी-न-किसी परिवार के कायमी अतिथि। अन्त में एक युवक ने उन्हें अपने साथ लिया। एक दरवाजे पर जाकर बिठाया। बताया, गांव के आप जैसे अतिथि इन्हींके यहां ठहरते हैं। वहां उन्हें पता चला कि जो सज्जन उन्हें वहां तक ले आये थे, उनका वह खुद का दालान नहीं था। अन्धेरा हो चुका था, लाचार वहीं रहना पड़ा।

गृहपति गांव के महाभारत के महारथी थे। रात में ग्रामदान का विचार उन्होंने धैर्यपूर्वक सुना। आसपास के ग्रामदान की खबर मिली।

सुबह भाई गोखले पांच बजे दूसरी पंचायत जाने को तैयार ! देखा, सामने कमला बाबू चाय लेकर खड़े हैं। "क्या हमारा गांव ग्रामदान नहीं हो सकता? आप भी हमें इसी प्रकार छोड़कर चले जायेंगे ?" भाई गोखले ने पूछा—"क्या आपका समर्थन मिलेगा ?" "क्या पूछते हैं, गोखले बाबू। यदि आज भी हमारा गांव नहीं बना तो फिर ऐसा अवसर कब मिलेगा? आप कृपाकर दो घण्टे का समय दें ?"

सूर्यनारायण उदय हो रहे हैं। पचास वर्ष के बाद श्री कमला बाबू श्री चन्द्रमौली बाबू की दालान पर हाजिर हैं। द्वेष की दीवार प्रेमाश्रु से पिघल गयी। दोनों एक घण्टे में साथ होकर गांव के सभी दरवाजे पर घूम गये। देखते-देखते भाई गोखले के सामने 'ग्राम-समाज' उपस्थित हो गया। ग्रामदान के विचार बताये गये। कुछ युवकों ने दो-चार प्रश्न पूछे। हस्ताक्षर होना शुरू हुआ—पहले श्री चन्द्रमौली बाबू, उसके नीचे श्री कमला बाबू और फिर सारा गांव !

—निर्मलचन्द्र

रामधनी बाबू ने सुझाया, "एक उपाय है। सब लोग पांच मिनट के लिए मौन होकर भगवान का ध्यान करें, और अपने दिल से पूछें कि सबसे अधिक गांव की भलाई सोचनेवाला आदमी गांव में कौन है। फिर सब अपनी-अपनी बात कह दें। जितने लोगों के नाम लिये जायें, उनके नामो की पर्ची बनायी जाय, फिर सबको एकसाथ मिलाकर रख दिया जाय और किसी छोटे बच्चे से उसमे से एक पर्ची निकलवायी जाय, उसमें जिसका नाम आये, उसे ग्रामसभा का अध्यक्ष माना जाय।"

रामधनी बाबू की बात लोगों को पसन्द आयी। वैसा ही किया गया। कुल ७ नाम आये। जब एक गोद के बच्चे से पर्ची निकलवायी गयी तो बलिराम पांड़े का नाम आया।

बलिराम पांड़े ने भी बहुत ना-नू...की, लेकिन सबकी बात माननी ही पड़ी। और तब ऐसा लगा कि गांव की एकता के आकाश में घिर आये फूट के काले बादल बरसकर खत्म हो गये हैं, और आसमान साफ हो गया है। (क्रमशः)

राजनीति से संन्यास

प्रश्न : स्वतंत्रता के बाद से आपने राजनीति से संन्यास क्यों लिया ?

विनोबा : स्वतंत्रता के बाद मैंने राजनीति से संन्यास लिया, यह जो जानकारी मेरे बारे में आपको मिली है, वह मुझे खुद को नहीं है। स्वतंत्रता के पहले भी और बाद में भी मैं जनता की शक्ति बनाने का काम ही करता रहा। लोक-शक्ति खड़ी करनी है, राजनीति यानी राजसत्ता के द्वारा लोगों पर हुकूमत चलाना। यह पुरानी बात हुई। आज यह सत्ता लोगों के हाथ में रहे, यह बाबा की कोशिश है, जिसको लोक-नीति नाम दे सकते हैं। उत्तम राजनीति का नाम लोक-नीति। उस अर्थ मे न जयप्रकाशजी ने, न मैंने राजनीति छोड़ी है। छोटे साहब सामने बैठे हैं। एक जमाने में वे प्रान्त के मुख्यमंत्री थे। तब वे जिस राजनीति में थे, उसमें आज नहीं हैं। लेकिन आज भी वे राजनीति में ही हैं, जिसे लोक-नीति कहा जायेगा।

स्त्री-शक्ति

प्रश्न : स्त्रियाँ कोमल स्वभाव की होती हैं, परन्तु शक्ति का रूप उन्हें ही माना गया है। किसी पुरुष की कल्पना क्यों नहीं की गयी ?

विनोबा : बात सही है। स्त्री को शक्ति माना जाता है। पुरुष-की कल्पना शक्ति के रूप में क्यों नहीं हुई ? ऐसा कभी नहीं कहते कि पुरुष-शक्ति, स्त्री-शक्ति कहते हैं। हमने भी 'स्त्री-शक्ति' नाम की किताब लिखी है, जिसमें स्त्रियों की शक्ति के बारे में कहा है। गीता में भी कहा है कि सात शक्तियाँ हैं। और वे स्त्री-शक्तियाँ हैं, क्योंकि कठोरता में जितनी शक्ति है उससे कोमलता में बहुत ज्यादा शक्ति है। जिसमें कोमलता होगी वह दूसरे के हृदय में प्रवेश करता है और वहीं रह जाता है। जो कठोर होता है, वह हृदय में प्रवेश नहीं करता। वह हाथ पकड़ेगा, कान पकड़ेगा। परन्तु हाथ पकड़ने से और कान पकड़ने से ज्यादा शक्ति तो हृदय पकड़ने में है। कान तो बैलों के पकड़ना चाहिए। कान पकड़ने से बैल काबू मे आते हैं। लेकिन मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि जो कोमल स्वभाव के होते हैं, वे बैलों के हृदय पर भी कब्जा कर लेते हैं। बैल उनका उत्तम सेवक होता है। और कुत्ते पर भी वे कब्जा कर लेते हैं। कुत्ता भी उनका उत्तम सेवक होता है। एण्ड्रोक्लिस और सिंह की कहानी मशहूर है। उसने सिंह को भी कोमलता से वश में कर लिया था।

छूत-अछूत भेद

प्रश्न : आज भी बहुत स्थानों पर हरिजनों का कानून बनते हुए भी कुओं से पानी नहीं भरने दिया जाता है। पुलिस व सत्ताधारी भी सक्रियता से कानून को अमल में लाने के लिए योग नहीं देते। ऐसी दशा में क्या हरिजन लोग ईसाई या कम्युनिस्ट समुदाय में प्रवेश नहीं करेंगे ?

विनोबा : यह बात सही है कि यद्यपि कानून में छूत-अछूत भेद नहीं रहा है, फिर भी गाँवों में वह विद्यमान है। उसकी जिम्मेवारी सरकार पर नहीं डाल सकते। क्योंकि कानून में भेद नहीं है और सरकार में हरिजन मंत्री भी होते हैं। लेकिन गाँव में पिछड़े हुए लोग होते हैं। उनमें धर्मनिष्ठा होती है, जाति की भावना होती है। इसलिए गाँव गाँव मे जाना होगा, समझाना होगा। वहाँ जायेंगे और सभा करेंगे तो सभा में हरिजन और दूसरे लोग इकट्ठा बैठेंगे नहीं। तो हम उनको समझायेंगे। यह सारा काम करना होगा। यह काम लोगों को करना होगा, क्योंकि यह ज्ञान-प्रचार का काम है। यह सरकार की मदद से नहीं होगा। हरिजन सेवक संघ नाम की एक संस्था है। मैं उनसे कहता हूँ कि तुम लोग अलग संघ क्यों बनाते हो। बापू ने तो कहा था कि सब संघ को सर्व सेवा संघ मे विलीन हो जाना चाहिए। लेकिन वह अलग रहा। परिणाम यह हुआ कि सरकार से मदद प्राप्त करके काम करना पड़ा। ऐसे काम तो लोगों को करना पड़ता है, सरकार से नहीं होता।

एक दफा पंडित नेहरू ने मुझे कहा था कि ये हरिजन सेवक संघ और दूसरे संघ अच्छा काम करते हैं और सरकार से मदद माँगते हैं। अच्छे काम को मदद देना सरकार का कर्तव्य है, सरकार मदद देती है, लेकिन जैसे-जैसे ये सरकारी मदद लेते हैं वैसे-वैसे फीके पड़ते जाते हैं। होना तो यह चाहिए कि एक दफा सरकार से ४० प्रतिशत मदद लो और ६० प्रतिशत लोगों से प्राप्त किया, तो दूसरे साल ६० प्रतिशत मदद सरकार की होगी और लोगों से ४० प्रतिशत प्राप्त करेंगे। तीसरे साल ६० प्रति-शत की, ७० प्रतिशत सरकार की मदद होगी। तो, ये लोग इस प्रकार सरकार पर अवलम्बित होते हैं और फीके पड़ते हैं।

[गाँव के प्रमुख लोगों के साथ की चर्चा से रामानुजगंज, २१-११-'६८]

'बाबा गरीबों का देवता है'

ग्यारह वर्ष पूरे हुए बाबाजी (बाबा राघवदास) को देह छोड़े। पर हमें उनकी याद आज भी बनी हुई है। बाबाजी का जीवन सदा हमें प्रेरणा देता रहेगा। उनके जीवन के अनेक प्रसंगों में से कुछ प्रसंग हम यहाँ दे रहे हैं।

सन् १९३४ में पहली बाढ़ आयी थी। राप्ती और सरयू की बाढ़ से गोरखपुर-देवरिया जिले त्रस्त थे। गाँव डूब रहे थे और उनके निवासी नावों और जहाजों पर लादकर सुरक्षित स्थानों में पहुँचाये जा रहे थे। कछार क्षेत्र का एक गाँव राप्ती में विलीन हो रहा था। बाबाजी गोरखपुर से नाव लेकर गीता प्रेस के कुछ कर्मचारियों-सहित उस गाँव में पहुँचे। नाव देखकर गाँववाले दूर ही से दौड़-दौड़कर नाव में आकर बैठ गये। बाबाजी एक बुढ़िया की झोपड़ी में गये। उन्होंने कहा, "माता, सब लोग चले गये, तुम क्यों नही नाव पर चलती हो ?" बुढ़िया ने कहा, "बाबा, हम नाहीं जाइब। मरब चाहे जीयब, आपन मड़ई नाहीं छोड़ब।" बाबाजी ने बुढ़िया से बहुत अनुनय-विनय किया। उसने कहा, "अच्छा, जो हम चली त हमार चक्की कैसे चली ?" बाबाजी ने कहा, "मैं चक्की ले चलूंगा।" और यह कहते ही उन्होंने चक्की के दोनों पाट सिर पर उठा लिये। आगे-आगे बुढ़िया और पीछे-पीछे बाबाजी, चार फर्लाङ्ग चलकर नाव पर आये। यह दृश्य देखकर सभी लोग दंग रह गये!

× × ×

सन् १९३८ की बाढ़ ने उग्र रूप धारण कर लिया था। जब सरयू पार के आजमगढवाले देवारा के सैकड़ों गाँव डूबने लगे, तो बाबाजी ने दौड़-धूपकर जहाज की व्यवस्था की, जिससे कई हजार की संख्या में बाढ़-पीड़ित बरहज लाये गये। कई हजार बाढ़पीड़ित स्त्रियों, बच्चों, आबालवृद्धों को भोजन देना आसान नही था। १७ महीनों तक बरहज में बाबाजी ने इनके रहने-सहने और भोजन की व्यवस्था कैसे की, यह कोई आज तक पूर्ण रूप से नहीं जान सका। बाढ़-पीड़ितों के रहने के लिए आश्रम की सभी संस्थाएं बन्द रहीं और मकान खाली किये गये। बाढ़-पीड़ित-निवास भर चुका था। एक दिन दोपहर के समय बाबाजी बाढ़-पीड़ितों में घूमकर उनका दुःख-सुख पूछ रहे थे। इतने मे उनकी दृष्टि एक हरिजन महिला पर पड़ी, जो एक बकरी के बच्चे को गोद में लेकर अपना दूध पीला रही थी। बाबाजी ने कहा, "यह क्या ?" साथ के अन्य लोग इसकी गंभीरता को नहीं सोच पाये। बाबाजी और आगे बढ़े, उन्होंने सही बात जाननी चाही। पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह बकरी के बच्चे को इसलिए दूध पिला रही है कि इसकी माँ पैदा होते ही मर गयी। आज यह तीन महीने से इसे अपने बच्चे के हिस्से का दूध पिलाकर जिला रही है। बाबाजी ने कहा, "धन्य हो माता, बकरी के बच्चे पर इतना स्नेह! अपने बच्चे को जमीन पर लिटाकर बकरी के बच्चे को दूध पिला रही हो।" बाबाजी मातृत्व की इस महानता और मातृ-हृदय की इस कोमलता को स्मरण कर फूट-फूटकर रोने लगे। उन्होंने उसे बरहज की हरिजन-बस्ती में रहने के लिए स्थान दिया। झोपड़ी, बनवा दी, फिर उसको बाबाजी ने कुशीनगर में भगवान् बुद्ध की निर्वाण-भूमि मे स्थान दिया। यह आज तक अपने परिवार के साथ है।
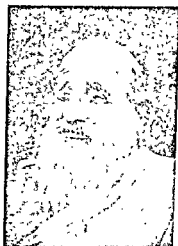
बाबा राघवदास

× × × ×

ग्रीष्म की आधी रात थी। चारों ओर सन्नाटा था। इसी समय दो-तीन हट्टे-कट्टे आदमी आश्रम की कुटिया के सामने आये। उन्होंने साधुओं और ब्रह्मचारियों से पूछा, "परमहंसजी कहाँ हैं ?" "सो रहे हैं।" "मुझे उनका दर्शन करना है।" बाबाजी जगाये गये। एक नाटे कद का अत्यन्त सबल आदमी सामने आया। बाबाजी का चरण-स्पर्श किया और हाथ जोड़कर बोला, "सरकार, हमारा नाम कोमल है। आपके दर्शन के लिए बड़ी दूर से आ रहा हूँ। मुझे पकड़ने के लिए पुलिस हमेशा लगी रहती है। अधिक देर तक रुक नहीं सकता। यह लीजिए, तिलक स्वराज्य-फण्ड का रुपया।" ऐसा कहते हुए सौ रुपये नीचे रख दिये। हाथ जोड़ा और चलता बना।

यह कहता गया : "बाबा गरीबों का देवता है। मैं गरीबों को सताता नही हूँ। आपका नाम और यश सुनकर यहाँ तक आया। दर्शन पाकर जीवन सफल हो गया।"

करुणा की मूर्ति गांधी

चम्पारण का एक करुण गम्भीर प्रसंग है। किसानों का सत्याग्रह चल रहा था। महात्माजी के सत्याग्रह में सभी भाग ले सकते थे। सैनिक युद्ध में बन्दूक चला सकनेवाले ही काम आते हैं, लेकिन जिस प्रकार छोटे से लेकर बड़े तक सब राम-नाम लेते हैं, उसी प्रकार सब अपने-अपने आत्मा के बल पर इसमें भाग ले सकते हैं। सत्याग्रह में तमाम लोग शामिल हो सकते हैं। चम्पारण की उस सत्याग्रही सेना में कुष्ठरोग से पीड़ित एक खेतिहर मजदूर था। वह पैरों में चिथड़ा लपेटकर चलता था। उसके घाव खुल गये थे। पैर खूब सूजे हुए थे। असह्य वेदना हो रही थी। लेकिन आत्मिक शक्ति के बल पर वह महारोगी योद्धा सत्याग्रही बना था।

एक दिन शाम को सत्याग्रही योद्धा अपनी छावनी पर लौट रहे थे। उस महारोगी सत्याग्रही के पैरों के चिथड़े रास्ते में गिर पड़े। उससे चला नहीं जा रहा था। घावों से खून बह रहा था। दूसरे सत्याग्रही तेजी से आगे बढ़ गये। महात्माजी सबसे आगे रहते थे। वे बड़े तेज चलते थे। दाण्डी-कूच के समय भी साथ के ८० सत्याग्रही पीछे-पीछे सरकते चलते थे, लेकिन महात्माजी तेजी से आगे बढ़ जाते थे। चम्पारण में भी ऐसा ही हो रहा था। पीछे छूट जानेवाले उस महारोगी सत्याग्रही का ध्यान किसीको नहीं रहा।

आश्रम पहुँचने पर प्रार्थना का समय हुआ। बापू के चारों ओर सत्याग्रही बैठे। लेकिन बापू को वह महारोगी दिखाई नहीं पड़ा। उन्होंने पूछताछ की। अन्त में किसीने कहा। "वह जल्दी चल नहीं सकता था। थक जाने से वह पेड़ के नीचे बैठा था।"

गांधीजी एक शब्द भी न बोलकर उठे। हाथ में बत्ती लेकर उसे खोजने बाहर निकल पड़े। वह महारोगी राम-नाम लेते हुए एक पेड़ के नीचे परेशान बैठा था। बापू के हाथ की बत्ती दीखते ही उसके चेहरे पर आशा फूट पड़ी। भरे गले से उसने पुकारा। 'बापू।'

गांधीजी कहने लगे: "अरे, तुमसे चला नहीं गया, तो मुझसे कहना नहीं चाहिए था?" उसके खून से सने पैरों की ओर उनका ध्यान गया। गांधीजी ने चादर फाड़कर उसके पैर को लपेट दिया। उसे सहारा देकर धीरे-धीरे आश्रम में उसके कमरे में ले आये। बाद में उसके पैर ठीक तरह से धोये। प्रेम से उसे अपने पास बैठाया। भजन शुरू हुआ। प्रार्थना हुई। वह महारोगी भी भक्ति और प्रेम से ताली बजा रहा था। उसकी आँखें डबडबा रही थीं। उस दिन की प्रार्थना कितनी गंभीर और कितनी भावपूर्ण रही होगी!

११ जनवरी, '१८

नम्रता ने ही चकमा दिया

यह कहानी सन् १९४२ की है, जब कि गांधीजी आगाखां-महल में थे।

बापूजी जेल में भी अपना समय व्यर्थ नहीं गँवाते थे। वाचन, लेखन, प्रार्थना, कताई, सब काम बराबर चलते थे। बीच में ही कभी कोई नयी भाषा सीखते थे, किसी नये ग्रन्थ का परिचय कर लेते थे। इस तरह चलता था।

उस दिन गांधीजी का जन्म दिन था। आन्दोलन के उन दिनों में जेल के बाहर सारे देश में जनता बड़ी गंभीरता के साथ वह दिन मनाती थी। उधर सरोजिनी देवी, डा० सुशीला नायर आदि ने गांधीजी से कहा: "बापू, आज सारे काम बन्द, आज आपका जन्म-दिवस है।"

बापू ने कहा। "सारा दिन काम बन्द नहीं रखना है। केवल दोपहर के समय कुछ देर बन्द रहे।"

तय हो गया। दोपहर को गांधीजी के परिवार के लोगों ने नया ही खेल शुरू किया। निश्चय हुआ कि संसार के महान् विचारकों के भाषण और लेख लिये जायँ और बारी-बारी से प्रत्येक व्यक्ति उन विचारकों का नाम पहचाने। दूसरों की बारी समाप्त हुई। गांधीजी की बारी आयी। उन्हें कुछ उद्धरण सुनाये गये और सब बापू से कह उठे: "बापू, पहचानिए तो, ये किनकी उक्तियाँ हैं?"

बापू ने कुछ देर सोचकर कहा: "पहली थोरो की है, दूसरी रोमां रोलां की और तीसरी इमर्सन की या कार्लाइल की है।"

सब चिल्ला उठे: "गलत, बिलकुल गलत!"

फिर उनमें से एक ने कहा: "बापू, ये सारे उद्धरण एक ही व्यक्ति के हैं और उस व्यक्ति का नाम है मोहनदास करमचन्द गांधी।"

बापू हँस पड़े। सब हँसने लगे। अनजाने ही गांधीजी ने अपने को महान् विचारकों की श्रेणी में बैठा दिया था।

यों तो नम्रता आड़े आ जाती, लेकिन उस दिन नम्रता ने ही गांधीजी को चकमा दे दिया था।

—साने गुरुजी

चन्द्र की खोज

२१ दिसम्बर को धरती के तीन मानव (फ्रैंक बोरमैन, जेम्स ए० लावेल जूनियर और विलियम ए० एण्डर्स) चन्द्रमा की यात्रा पर निकले। २,३८,८३३ मील की लम्बी यात्रा पर उन्हें जाना था। यह एक ऐसी यात्रा थी, जिसमें जान जाने का खतरा था। इसलिए यह बड़े साहस की यात्रा थी।

जिस यान (अपोलो-८) से ये यात्री यात्रा पर निकले थे, वह २५ हजार मील प्रति घंटे की रफ्तार से केपकैनेडी के अमेरिकी 'चन्द्रयान-अड्डे' से उड़ा। उस यान का आकार जितना बड़ा था और वजन में जितना भारी था उससे ऐसा नहीं लगता था कि यह उड़नेवाला कोई यान था। यह यान ३६४ फुट ऊँचा तथा लगभग ३१ लाख सेर वजन का था। यह यान उड़नेवाली मशीन के बजाय एक ऊँची अट्टालिका जैसा लगता था। लेकिन जिस रोज वह यान यात्रियों को लेकर आकाश में उड़ा, दुनिया के लोगों की निगाहें आकाश की ओर उठ गयी, कान रेडियो तक पहुँच गये। लोग भगवान से प्रार्थना करने लगे कि वे तीनों यात्री अपनी यात्रा की मंजिल पूरी कर धरती पर सकुशल उतर जायँ। सात दिन की उनकी यात्रा बिना किसी बाधा के शुरू हुई। २३ दिसम्बर को पृथ्वी से १ लाख ६४ हजार मील की दूरी पर यान पहुँच गया। और २४ दिसम्बर को यान चन्द्रमा की परिधि में पहुँचा। जब यान चन्द्रमा के पिछले भाग में पहुँचा तो ३६ मिनट तक उस यान का पृथ्वी से सम्पर्क टूटा रहा। परन्तु फिर उसका सम्पर्क जुड़ गया और यान चन्द्रमा से केवल ६० मील की दूरी पर रह गया। उसने चन्द्रमा के दस चक्कर लगाये। २० घण्टे चन्द्रमा की परिधि में रहने के बाद २५ दिसम्बर को पृथ्वी के लिए वापस हुआ। चन्द्रमा का चक्कर लगाते हुए यात्रियों ने चन्द्रमा के अनेक चित्र खींचे। चन्द्रमा के धरातल पर मनुष्य के उतरने के स्थान का भी उन्होंने चुनाव किया।

यात्रियों ने बताया कि चन्द्रमा धूसर रेतीले समुद्र तट-सा दिखाई पड़ा।

२७ दिसम्बर को अपने निश्चित समय (भारतीय समय के अनुसार रात्रि के ९ बजकर २१ मिनट पर) पर निर्धारित स्थान पर चन्द्रयान प्रशान्त महासागर में उतरा। दुनिया भर में इस सफल यात्रा की खूब प्रशंसा की गयी। यह सफलता सिर्फ अमेरिका की न होकर पूरी दुनिया की थी, विज्ञान की थी। इस सफलता से यह बात पक्की हो गयी कि जल्दी ही मनुष्य चन्द्रमा के धरातल पर उतरेगा। अमेरिका और रूस, दोनों इस होड़ में हैं कि पहले कौन चन्द्रमा पर उतरेगा। यह बड़ी बात नहीं है कि चन्द्रमा पर दोनों में से पहले कौन पहुँचेगा। चाहे कोई भी पहले पहुँचे, दुनिया के लिए वह दिन बहुत ही खुशी का दिन होगा, जिस दिन मनुष्य चन्द्रमा पर उतरेगा और चन्द्रमा की सही-सही जानकारी प्राप्त करेगा। अगर अमेरिका, रूस तथा दुनिया के अन्य देशों के वैज्ञानिकों ने मिलकर कोशिश की होती तो बहुत पहले ही चन्द्रमा पर मनुष्य उतरा होता!

'गाँव की बात' : वार्षिक चन्दा : चार रुपये, एक प्रति : अठारह पैसे

सम्पादक : राममूर्ति : सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१

१५ वाँ राजस्थान सर्वोदय-सम्मेलन

प्रदेशदान के संकल्प का व्यापक समर्थन

गत ३०-३१ दिसम्बर '६८ को जयपुर में १५ वाँ प्रादेशिक सर्वोदय-सम्मेलन गांधी-जन्म-शताब्दी के इस वर्ष में राजस्थान के समस्त गाँवों में ग्रामदान का विचार पहुँचाकर उसके लिए सहमति प्राप्त करने तथा प्रदेशदान के काम को पूरा करने के लिए अपनी अधिक-से-अधिक शक्ति लगाने के सामूहिक संकल्प के साथ सम्पन्न हुआ। सम्मेलन की अध्यक्षता की थी जयप्रकाश नारायण ने।

सर्वोदय सम्मेलन का शुभारम्भ करते समय श्री जयप्रकाश नारायण ने राजस्थान के साथ के अपने आत्मीय लगाव की चर्चा करते हुए राजस्थान के दुष्काल की चर्चा की, और दुष्काल-पीड़ितों के साथ अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट की।

ग्रामदान से प्रदेशदान तक की मंजिल पूरी करने के लिए कार्यकर्ता और नागरिक-शक्ति का आह्वान करते हुए आपने कहा कि प्रदेश एक राजनीतिक इकाई है, इसलिए बुनियादी राजनीतिक परिवर्तन के लिए छिट-पुट ग्रामदान से काम नहीं चलनेवाला है, इसके लिए प्रदेश भर के गाँवों का ग्रामदान होना चाहिए।

सत्ता के विकेन्द्रीकरण के औचित्य पर अपना मत व्यक्त करते हुए श्री जयप्रकाशजी ने कहा कि किसी भी राजनीतिक रचना की बुनियाद जबतक मजबूत नहीं होती, तबतक वह रचना पक्की नहीं हो सकती। आज भारत को सैनिक या साम्यवादी तानाशाही के खतरे से मुक्त करने का एक ही मार्ग है कि ग्राम-स्वराज्य की स्थापना द्वारा केन्द्रित शक्ति का विकेन्द्रीकरण हो।

सर्वोदय-सम्मेलन के दूसरे दिन की बैठक में यहाँ प्रदेशदान के संकल्प के बहुविध पहलुओं पर विचार-विमर्श हुआ। इस बैठक में श्री सिद्धराज ढड्ढा ने कहा कि देश की वर्तमान परिस्थिति का यह तकाजा है कि हम गांधीजी की कल्पना के ग्रामस्वराज्य की स्थापना के काम में जुट जायें। आपने कार्यकर्ताओं से अपील की कि शंका छोड़कर निष्ठा के साथ हम अपने को प्रदेशदान के लिए समर्पित करें।

श्री गोकुलभाई भट्ट ने कहा कि समाज के निर्माण में ग्रामदान का महत्त्वपूर्ण, बुनियादी स्थान है। भारत गाँवों का देश है और गाँवों की मजबूती पर देश की मजबूती निर्भर करती है। आपने गांधी-शताब्दी-वर्ष में ठोस काम करने की प्रेरणा कार्यकर्ताओं को दी।

श्री पूर्णचन्द्र जैन ने सम्मेलन का निवेदन रखते हुए कहा कि भारत की दृष्टि से ही नहीं, जगत् की परिस्थितियों में भी ग्राम-स्वराज्य की महत्ता स्पष्ट है।

प्रातःकाल शान्ति-सैनिकों की रैली हुई। इस रैली को सम्बोधित करते हुए श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि आज के हिंसा और संघर्ष के वातावरण में शान्ति के काम की विशेष आवश्यकता है। हमारी संख्या यद्यपि थोड़ी है, परन्तु ग्राम-स्वराज्य के लिए नयी पीढ़ी को तैयार करना होगा।

ता० ३१ दिसम्बर को ही सायं सचिवालय के सभाकक्ष में राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाड़िया की अध्यक्षता में राजस्थान गांधी-जन्म-शताब्दी समिति ने अपनी विशेष बैठक में ग्राम-स्वराज्य के लिए प्रदेशदान के कार्यक्रम का समर्थन किया है। समिति ने सर्वसम्मति से पारित प्रस्ताव में प्रदेश की समस्त रचनात्मक संस्थाओं और स्वायत्त-संस्थाओं तथा जनता से इस आन्दोलन में सहयोग करने का आह्वान किया। प्रस्ताव में आगे कहा गया है कि राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी समिति द्वारा आयोजित सेवा-ग्राम-समिति में स्वीकृत नौसूत्री कार्यक्रम के प्रकाश में राजस्थान प्रदेश की शताब्दी-समिति ने अपना सप्तसूत्री कार्यक्रम तय किया है, जिस पर हम सबको इस वर्ष दुष्काल की विषम स्थिति के बावजूद भी तत्परतापूर्वक लगना है। हमारा यह विश्वास है कि इन कार्यक्रमों की सफलता समग्र दृष्टि, जाग्रत जन-शक्ति, स्वतन्त्र अभिक्रम के समन्वित प्रयत्न पर ही निर्भर है और इनको हमारे सप्तसूत्री कार्यक्रम का प्रथम सूत्र 'ग्रामदान से ग्राम-स्वराज्य' का ऊँचा लक्ष्य ही प्रेरित कर सकता है। इस अवसर पर श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि गांधीजी के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि उनके आदर्शों को क्रियान्वित करना ही है। ग्रामस्वराज्य की स्थापना उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करने का उत्तम तरीका है। उन्होंने कहा कि राजनैतिक आजादी के बाद आर्थिक विषमता और सामाजिक असमानता को दूर करने का काम हमारे सामने है। गांधीजी समाज में प्रचलित मूल्यों में क्रान्ति लाना चाहते थे।

—विशेष संवाददाता द्वारा

राजस्थान का प्रथम प्रखण्डदान नीमकाथाना

जयपुर। सीकर जिले के नीमकाथाना क्षेत्र का ग्रामदान यहाँ आयोजित प्रादेशिक सर्वोदय-सम्मेलन के अवसर पर श्री जयप्रकाश नारायण को समर्पित किया गया। राजस्थान का यह पहला प्रखण्डदान है। नीमकाथाना पंचायत समिति में कोई १२२ गाँव हैं, जिनमें से लगभग १०० गाँवों के लोगों ने ग्रामदान का संकल्प लिया है। ग्रामवासियों ने ग्रामदान से ग्राम-स्वराज्य स्थापित करने का निश्चय किया है।

उल्लेखनीय है कि ग्रामदान के बाद गाँव में ग्रामसभा बनायी जाती है, जो सर्वसम्मति से ग्राम-निर्माण के लिए प्रयत्नशील रहती है। ग्रामवासी मिलकर ग्रामकोष बनाते हैं। बीस प्रतिशत या ग्रामसभा की अनुमति से अधिक जमीन भूमिहीनों के लिए प्रदान की जाती है।

नीमकाथाना क्षेत्रीय खादी-समिति के मंत्री श्री ज्ञानचन्द मोदी ने एक भेंट में बताया कि ग्रामदानी गाँवों में निर्माण की योजना भी बनायी गयी है।

'शांति-दिवस' बिल्ले

आगामी ३० जनवरी को 'शांति-दिवस' के अवसर पर बिक्री के लिए, वी० पी० से, या मनीआर्डर से रकम भेजकर 'शांति-दिवस' बिल्ले मँगाइए।

दर : ७५ रु० प्रति हजार

प्राप्ति-स्थान

अ० भा० शांति सेना मण्डल

राजघाट, वाराणसी-१

राजस्थान ग्रामदान-अभियान : प्रदेशदान की योजना

प्रथम चरण : जनवरी से मार्च, १९६९

अगले तीन महीने में प्रांत के कुछ चुने हुए क्षेत्रों में प्रदेशदान की पूर्वतैयारी के निमित्त कम-से-कम तीन सघन ग्रामदान-अभियान आयोजित किये जायँ। इन अभियानों के दो मुख्य उद्देश्य होंगे :

• प्रदेश के चुने हुए १००-१५० कार्यकर्ताओं को प्रत्यक्ष कार्य द्वारा ग्रामदान-प्राप्ति के काम का अनुभव देना, ताकि वे आगे प्रदेशदान के काम का संचालन कर सकें।

• अधिक-से अधिक ग्रामदानों की प्राप्ति, जिससे कार्यकर्ताओं में आत्म-विश्वास और उत्साह जगे।

इन अभियानों के प्रत्यक्ष अनुभव से आगे प्रदेशदान की पूरी योजना बनाना ज्यादा आसान होगा।

अभियानों की रूपरेखा

प्रदेशदान के आवाहन के बाद अभी दिसम्बर ६ से १५ तक नीमकाथाना में डा० दयानिधि पटनायक के मार्गदर्शन में पहला सघन ग्रामदान-अभियान आयोजित किया गया। इस अभियान में करीब ६० कार्यकर्ताओं ने भाग लिया था, जिनमें उत्तर प्रदेश तथा पंजाब के कार्यकर्ता भी शामिल थे। इस अभियान की अवधि करीब ४० ग्रामदान प्राप्त हुए। इन गाँवों में तीन-चार हजार की आबादी के गाँव भी हैं।

अभियान का अनुभव उत्साहप्रद रहा। अब प्रस्तावित तीन अभियान इस अनुभव के आधार पर आयोजित किये जा रहे हैं। डा० पटनायक ने इन तीनों अभियानों में भी उपस्थित रहने का आश्वासन दिया है। इन अभियानों की रूपरेखा इस प्रकार होगी :

• अभियान की अवधि पूरे ७ दिन की रहेगी।

• प्रदेशभर से चुने हुए १००-१५० कार्यकर्ताओं के अलावा स्थानीय शिक्षक, पंच-सरपंच, आदि कुल मिलाकर २००-२५० कार्यकर्ता हर अभियान में शरीक होंगे।

• अन्तर-प्रान्तीय सहयोग की दृष्टि से पड़ोसी प्रांत, जैसे—उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, मध्यप्रदेश, गुजरात आदि के भी कुछ कार्यकर्ताओं को अभियान में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रित किया जायगा।

• शुरू में दो दिन इन सब कार्यकर्ताओं का शिविर होगा, बाद में ५ दिन तक दो-दो, तीन तीन की टोलियाँ बनाकर कार्यकर्ता आसपास के क्षेत्रों में पदयात्रा द्वारा ग्रामदान-प्राप्ति का काम करेंगे। अभियान के अन्त में टोलियाँ अपने-अपने काम की रिपोर्ट केन्द्र-स्थान पर देकर विसर्जित की जायेंगी।

• प्रारम्भिक शिविर के बाद अभियान के दिनों में क्षेत्र के केन्द्र-स्थान से दो छोटे-छोटे दल निरन्तर क्षेत्र में घूमते रहेंगे। एक दल का काम जगह-जगह पदयात्रा-टोलियों से सम्पर्क रखने का, उनकी कठिनाइयों को दूर करने का, और मदद पहुँचाने का होगा। दूसरा दल क्षेत्र में बराबर घूमकर स्कूलों, कालेजों, शिक्षित समूहों, आदि में विचार-प्रचार और वातावरण बनाने का काम करेगा।

क्षेत्रों की छांट

इन अभियानों के लिए ऐसे क्षेत्र चुने जायँ, जहाँ अधिक-से अधिक ग्रामदान प्राप्त होने की सम्भावना हो। यह जरूरी नहीं है कि क्षेत्र कोई प्रशासनिक इकाई हो। इस दृष्टि से क्षेत्रों के चुनाव में नीचे लिखी बातें ध्यान में रखी जायेंगी।

• क्षेत्र में ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति का नेतृत्व हो, जो सामान्य तौर पर सभी वर्गों के आदर का पात्र हो, विवाद का विषय न हो और अभियान के संचालन में जिसका पूरा सहयोग हो।

• क्षेत्र के शिक्षकों तथा पंच-सरपंचों के सहयोग की सम्भावना बनी हो। इनमें से कम-से-कम कुछ अभियान में योग देने को तैयार हों।

• यथासम्भव बड़े नगरों से दूर का क्षेत्र हो।

पूर्वतैयारी

• अभियान के आठ-दस दिन पहले से क्षेत्र में सम्पर्क तथा वातावरण-निर्माण का व क्षेत्र के गाँवों की परिस्थिति, वहाँ के स्थानीय नेतृत्व आदि की जानकारी प्राप्त करने का काम किया जाय।

• सम्भव हो तो ग्रामदान-अभियान के समर्थन में क्षेत्र के सभी वर्गों, दलों आदि के प्रमुख लोगों के हस्ताक्षर से अपील निकाली जाय।

• अभियान के दो या तीन दिन पहले डा० पटनायक क्षेत्र में पहुँच जायेंगे। उनकी उपस्थिति में क्षेत्र के तमाम शिक्षकों, पंच-सरपंचों, आदि की अलग-अलग मीटिंगें आयोजित की जायँ।

• प्रचार पोस्टर-पर्चों आदि के द्वारा करने की बजाय सामान्यतः मौखिक ही हो तो ज्यादा अच्छा।

कुछ आवश्यक तैयारियाँ

• प्रदेशभर से १०० से १५० ऐसे कार्यकर्ताओं की छाँटकर ली जाय जो प्रथम चरण के इन तीनों अभियानों में शरीक हों। इन अभियानों में कार्यकर्ता बदलते रहने से उन्हें काम का परिपक्व अनुभव नहीं हो सकेगा।

• प्रान्तीय स्तर पर शिक्षा-विभाग द्वारा तथा अन्य सम्बन्धित अधिकारियों द्वारा परिपत्र निकलवाकर शिक्षकों को यह प्रेरणा तथा अनुमति दी जाय कि वे ग्रामदान-अभियान में पूरा सहयोग दें।

• शिक्षा-विभाग आदि से यथासम्भव यह बात भी मान्य करायी जाय कि ग्रामदान-अभियान में काम करना 'समाज-प्रशिक्षण' का, अतः उनके काम का अंग माना जाय। ग्रामदान-अभियान में शामिल होनेवाले शिक्षक 'काम पर हैं', ऐसा माना जाय।

• इसी प्रकार पंचों-सरपंचों आदि के सहयोग के लिए सरकार के सम्बन्धित विभाग या अन्य अधिकारियों द्वारा परिपत्र निकलवाये जायँ।

• पदयात्रा के दौरान जब किसी गाँव में ग्रामदान के लिए आवश्यक हस्ताक्षर हो जायँ तो गाँव में सभा करके उसमें ग्रामदान की घोषणा की जाय और हस्ताक्षर आदि की आवश्यक जानकारी दी जाय।●

सम्पादक के नाम पत्र

श्रीयुत सम्पादकजी, 'भूदान-यज्ञ'

वैसे तो 'भूदान' सर्वोदय-आन्दोलन की बुनियाद है। किन्तु इससे भी बढ़कर एक विराट और सम्पूर्ण क्रान्ति-स्वरूप "ग्रामदान" प्रगट हुआ है। स्वयं विनोबाजी इसे एक 'अवतार' एवं 'दुनिया के इतिहास में अद्भुत घटना' मानते हैं।

अवश्य ही 'भूदान' की तुलना में 'ग्रामदान' सर्वशक्ति सम्पन्न तथा ओजपूर्ण अन-क्रान्ति है। जहाँ ग्रामदान एक विशाल वृक्ष है वहाँ भूदान उसकी एक डाल है। भूदान एक पहलू का, ग्रामदान जीवन के तमाम पहलुओं का समाधान करता है। संक्षेप में, ग्रामदान साध्य है और भूदान साधन का एक अंग।

अतः मेरा सुझाव है कि आनेवाले नये साल (सन् ६९) से अथवा बापू की पुण्यतिथि से 'भूदान-यज्ञ' पत्रिका का नाम बदलकर 'ग्रामदान महायज्ञ' अथवा कोई माफिक नाम कर दिया जाय, जिससे लोकमानस पर इसका आकर्षण बढ़े। आशा है, सम्बद्ध अधिकारी इस ओर ध्यान देंगे।

आपका,

ईसा-जयन्ती जंगबहादुर भाई

२५-१२-'६८ ग्राम-स्वराज्य संघ, मुंगेर

[प्रस्तुत पत्र के संदर्भ में हम अपने पाठकों, कार्यकर्ता साथियों की सम्मति और सुझाव आमंत्रित करते हैं।—सं०]

विनोबाजी का कार्यक्रम

१५ जनवरी तक : बिहारशरीफ

१६ से २१ जनवरी : बाढ़

२४ से २६ जनवरी : पटना जिले में ही (पड़ाव अनिश्चित)

२७ से २९ जनवरी : मुंगेर

३० जनवरी : भागलपुर में प्रवेश

पते : १ विनोबा-निवास

मार्फत बि० ग्रा० ग्रा० संघ

बिहारशरीफ, पटना

२ बाढ़, पटना

३. मुंगेर

सन् १९६९ गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष है !

गांधीजी ने कहा था :

"मेरा सर्वोच्च सम्मान जो मेरे मित्र कर सकते हैं, वह यही है कि मेरा वह कार्यक्रम वे अपने जीवन में उतारें, जिसके लिए मैं सदैव जिया हूँ या फिर यदि उन्हें उसमें विश्वास नहीं है तो मुझे उससे विमुख होने के लिए विवश करें।"

मानव-समाज के सामने, आज के संघर्षपूर्ण एवं हिंसामय वातावरण से मुक्ति पाने के लिए, गांधी-मार्ग ही आशा का एकमात्र मार्ग रह गया है।

गांधीजी की दृष्टि में :

(१) दुनिया के सब धर्म एक जगह पहुँचने के अलग-अलग रास्ते हैं।

(२) जाति और प्रान्त की दोहरी दीवार टूटनी चाहिए।

(३) अछूत प्रथा हिन्दू समाज का सबसे बड़ा कलंक है।

(४) यदि किसी व्यक्ति के पास, जितना उसे मिलना चाहिए उससे अधिक हो तो वह उसका संरक्षक या ट्रस्टी है।

(५) किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।

(६) स्वराज्य का अर्थ है अपने को काबू में रखना जानना।

(७) प्रत्येक को सन्तुलित भोजन, रहने का मकान और दवा-दारू की काफी मदद मिल जानी चाहिए, यह है आर्थिक समानता का चित्र।

पूज्य बापू की जीवन दृष्टि में अपनी दृष्टि विलीन कर गांधी जन्म शताब्दी सफलतापूर्वक मनाइए।

राष्ट्रीय-गांधी-जन्म शताब्दी-समिति की गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति, दुगड़िया भवन, कुन्दीगरों का भैरु, जयपुर-३ (राजस्थान) द्वारा प्रसारित।

गया जिले का जिलादान घोषित

श्री भागवत मिश्र जिला शिक्षा-पदाधिकारी ने १५-१०-'६८ की बैठक में पूरे शिक्षक समाज को इस अभियान की जिम्मेवारी उठा लेने के लिए प्रेरित करते हुए गया का जिलादान पूरा कराने में बड़ा महत्त्वपूर्ण हाथ बँटाया है। राजनीतिक पक्षों के साथी, सरकारी सेवक, ग्रामपंचायतें और रचनात्मक संस्थाएँ भी अभियान में अनुकूल होकर जुटे थे। सबकी कोशिश के फलस्वरूप १ जनवरी '६९ को गया जिलादान की घोषणा हुई।

गया जिलादान के आँकड़े

अनुमंडल	प्रखंड	कुल गाँव	शामिल गाँव	जन-संख्या	शामिल जन-संख्या
गया सदर :	१८	२६३०	२२५२	१२,१८,७५१	९,३३,३१३
नवादा :	१०	९६७	११५८	७,००,९३६	५,५४,६६६
औरंगाबाद :	११	१७६६	१५४७	८,०३,५१५	६,१२,४१५
जहानाबाद :	७	८७३	८८७	६,५६,५८६	५,०२,४८४
कुल :	४६	६,२३६	५,८४५	३३,८२,७९४	२६,०२,९११

शाहाबाद जिलादान के मार्ग पर

शाहाबाद जिले में विनोबाजी की यात्रा के दरम्यान वहाँ के ग्रामदान-प्राप्ति समिति और जिला सर्वोदय-मण्डल आदि ने जिलादान और एक लाख रुपये की थैली समर्पण करने का तय किया था। वहाँ के समाहर्ता ने जिलादान के काम में सरकारी सेवकों का सक्रिय सहयोग देने के लिए एक परिपत्र निकाला और जिलादान के लिए जिले के निवासियों से एक अपील भी निकाली थी। जिले के सब पक्षों तथा सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की ओर से भी अपीलें प्रकाशित हुईं। उससे वातावरण बनने में मदद मिली। विनोबा के निवास-काल में वहाँ भगवानपुर, कुदरा और सासाराम, तीन नये प्रखंडदान पूरे हुए और कुल मिलाकर करीब ५,००० रु० की थैली समर्पित हुई। आरा से रवाना होने के पूर्व शाहाबाद जिला पंचायत परिषद की ओर से भी गत १८ दिसम्बर को बैठक बुलायी गयी और उन्होंने नीचे अनुसार निर्णय किये।

"श्री शंभूशरण उपाध्याय की अध्यक्षता में जिला पंचायत परिषद की बैठक हुई, जिसमें सर्वसम्मति से तय हुआ कि २६ जनवरी '६९ तक इस जिले का ग्रामदान सम्पन्न हो जाय तथा प्रत्येक पंचायत से दो दो सौ रुपया इकट्ठा कर श्री विनोबाजी को थैली भी उसी दिन समर्पित की जायेगी। इस काम की जिम्मेदारी प्रत्येक प्रखंड पंचायत परिषद के सभापति एवं मंत्री लेंगे तथा जिला एवं प्रखंड पंचायत के परिषद-पदाधिकारी जिलादान पूरा होने तक इस काम को ही अपना प्रमुख काम समझकर अपना पूरा समय इस काम के लिए देंगे।"

इस अवसर पर बिहार राज्य पंचायत परिषद के मंत्री श्री बिहारी प्रसाद तथा राज्य पंचायत परिषद के ग्रामदान प्रभारी श्री रत्नेश्वर प्रसाद सिंह भी उपस्थित थे।

पू० विनोबाजी का कहना है कि यहाँ की पंचायत परिषद २६ जनवरी '६९ तक जिले के सारे प्रखण्डों का दान करवा लेती है तो एक उदाहरण पेश होगा, जो अन्य जिलों और पंचायतों के लिए अनुकरणीय होगा।

वहाँ के जिला सर्वोदय मंडल, प्राप्ति-समिति, बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ, जिला कांग्रेस कमिटी आदि के प्रमुख कार्यकर्ताओं ने भी पू० बाबा को आश्वासन दिया है कि २६ जनवरी तक जिलादान के संकल्प को अवश्य पूर्ण करेंगे। —कृष्णराज

उत्तर प्रदेशदान की ओर

गाजीपुर से श्री रामयश भाई द्वारा समाचार मिला है कि सैदपुर, सादात और जखनियाँ का प्रखण्डदान हो गया है। तीनों प्रखण्डों में कुल ३४२ ग्रामदान हुए। दिसम्बर में चलाये गये ग्रामदान-अभियान की निष्पत्ति-स्वरूप मुरादाबाद जिले में श्री गांधी आश्रम द्वारा चलाये गये अभियान में १४३ ग्रामदान हुए। मैनपुरी में ३००, फर्रुखाबाद में १४४, फैजाबाद में १९६, देवरिया में ११५, मीरजापुर में १६, वाराणसी में ३८६ ग्रामदान हुए। इस प्रकार ३१ दिसम्बर '६८ तक प्रदेश के ३८ जिलों में कुल १२,१२२ ग्रामदान एवं ७४ प्रखण्डदान हुए।

जनवरी में एटा, मथुरा, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, बुलन्दशहर, मैनपुरी, गाजीपुर, आजमगढ़ और झाँसी में अभियान चलेंगे। हिमपात के कारण उत्तराखण्ड के अभियानों में कुछ व्यवधान पड़ने की संभावना है, किन्तु १५ फरवरी से तो सब जगह तीव्रता से अभियान शुरू हो जायेंगे।

अभी २०-२१ दिसम्बर को इलाहाबाद में विनोबाजी थे। उस समय स्वर्गीय राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन की आदमकद कांस्य-प्रतिमा का अनावरण, विश्वविद्यालय शांति-सेना का शुभारम्भ, रचनात्मक कार्यकर्ताओं एवं उत्तर प्रदेश ग्रामदान-प्राप्ति समिति की अभियान संचालन-समिति के सदस्यों का बाबा से प्रेरणा-ग्रहण आदि कार्यक्रम रहे। आचार्यकुल की एक मीटिंग भी हुई, जिसमें कविवर सुमित्रानन्दन पंत एवं महादेवी वर्मा ने भी भाग लिया और स्वेच्छा से योगदान देने को कहा है। —कपिलभाई, संयोजक, उ० प्र० ग्रामदान-प्राप्ति समिति

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०, या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ

ग्रामदान-मूलक ग्रामोद्योगप्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : १६

सोमवार २० जनवरी, '६९

अन्य पृष्ठों पर

आवश्यक सूचना

'भूदान यज्ञ' का अगला अंक विशेषांक के रूप में ३० जनवरी '६९ के अवसर पर प्रकाशित होगा। उसके बाद का ३ फरवरी का अंक बन्द रहेगा। विशेषांक की कीमत ५० पैसे होगी। सीमित प्रतियाँ ही छप रही हैं। अधिक मँगाना हो तो तत्काल सूचना दें। —व्यवस्थापक, पत्रिका विभाग

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

मैं तो गुण को ही सबसे अधिक महत्त्व देता हूँ !

हम जब अपने लिए स्वतंत्रतापूर्वक अपना मत प्रकट करने और कार्य करने के अधिकार का दावा करते हैं, तो यही अधिकार हमें दूसरों को भी देना चाहिए। बहुसंख्यक दल का शासन, जब वह लोगों के साथ जबरदस्ती करने लगता है तब, उतना ही असह्य हो उठता है जितना किसी अल्पसंख्यक नौकरशाही का। हमें अल्पसंख्यकों को धीरज के साथ समझा-बुझाकर और दलील करके ही अपने पक्ष में लाने की कोशिश करनी चाहिए। हमें किसीकी आज्ञा से और सजा के डर से ही काम करने की तालीम मिली है, इसलिए आज हम प्रतिदिन जो शक्ति प्राप्त कर रहे हैं, उसका भान हो जाने की वजह से संभव है कि हम अपने से कमजोर लोगों के साथ अपने सम्बन्धों में विदेशी शासकों की गलतियों को बहुत बढ़े-चढ़े रूप में दोहरायें। यह पहली स्थिति से ज्यादा बुरी स्थिति होगी।[1]

मैं तो गुण को ही सबसे अधिक महत्त्व देता हूँ—मैं संख्या का लगभग कोई खयाल नहीं करता। आज हमारे अन्दर सन्देह, भेदभाव, हित-विरोध, अन्धविश्वास, भय, अविश्वास आदि अनेक दोष विद्यमान हैं। ऐसी अवस्था में संख्याबल में न केवल सुरक्षितता का अभाव है, बल्कि खतरे का अन्देशा भी हो सकता है। संख्याबल उस समय एक दुर्दमनीय शक्ति हो सकता है, जब कि सब लोग एक आदमी की तरह पूर्ण अनुशासन के साथ काम करें। परन्तु जब कोई आदमी किधर खींचता हो और कोई किधर या कोई यह भी नहीं जानता हो कि किधर खींचना चाहिए, तब संख्याबल को एक विनाशक शक्ति ही समझिए।[2]

मैं किसी उम्मीदवार से इतना ही पूछूँगा : 'तुममें पुरुष या स्त्री के कितने गुण हैं ? क्या तुममें अवसर के अनुसार कार्य करने की योग्यता और क्षमता है ?' अगर वह उम्मीदवार—स्त्री या पुरुष—इन परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो जाय, तो मैं पहले उसको चुनूँगा, जो छोटे से-छोटे वर्ग का सदस्य होगा। इस तरह मैं ऐसे न्यायपूर्ण नियमों के अनुसार सारे अल्पमतों को तरजीह दूँगा, जो सारे हिन्दुस्तान का कल्याण साधनेवाले होंगे, न कि हिन्दुओं और मुसलमानों का या अन्य किसी विशेष समाज का।[3]

अहिंसा में मेरी दृढ़ श्रद्धा का अर्थ यह अवश्य होता है कि अल्पमतों के सामने झुका जाय, जब वे सचमुच कमजोर हों। सम्प्रदायवादियों को निर्बल बनाने का उत्तम मार्ग यह है कि हम उनके सामने झुक जायँ। हमारा विरोध केवल उनके सन्देह को बढ़ाने और बदले में उनके विरोध को मजबूत बनाने का ही काम करेगा।[4]

—मो० क० गांधी

(१) 'यंग इंडिया' : २६-१-'२२, पृष्ठ ५४ (२) हिन्दी 'नवजीवन', : २०-४-'२५, पृष्ठ २०२
(३) 'यंग इंडिया' : १२-८-'२५, पृष्ठ २७६ (४) 'यंग इंडिया' : ? '२१, पृष्ठ १६२

बाबा की बातें

- सृष्टि और दृष्टि के बीच आता है पढ़ना। ग्रन्थ पढ़े जाते हैं, युगों-युगों तक, अखबारों की हस्ती एक दिन की भी नहीं होती, सुबह का शाम को बासी हो जाता है।
- ऊपर से नीचे तक जहाँ भ्रष्टाचार है, वहाँ वह शिष्टाचार हो गया, जो वैसा नहीं करता, वह विशिष्टाचार करता है।
- सभी 'वादों' से ऊपर एक वाद है 'वे वाद' (दे इज्म) यानी वे हमारे लिए कर देंगे (दे विल डू फार अस)! ऐसी स्थिति में जनशक्ति की सख्त जरूरत है।
- 'काशी में गंगा-स्नान के लिए बने घाटों पर शराब के विज्ञापन हैं, दूकानें हैं। तब यह भी संकेत होना चाहिए कि पवित्र स्नान के बाद उत्तम शराब पीनी चाहिए या पीकर स्नान करना चाहिए!
- एक जगह हमें मानपत्र दिया गया। हमने कहा, "मानपत्र देने की बात पुरानी हो गयी, हमें आप दानपत्र दीजिए, मानपत्र हम आपको देंगे।"
- यह भारत की संस्कृति है कि विद्वानों पर सत्ता का अंकुश नहीं हो सकता, बल्कि सत्ता पर अंकुश रहना चाहिए विद्वानों का।
- जो अधिकार वाल्मीकि, तुलसीदास, शंकराचार्य आदि को नहीं दिया गया, वह मामूली 'एजुकेशन डायरेक्टर' को आज दिया गया है। वह तय करता है कि क्या शिक्षा दी जाय, कैसे शिक्षा दी जाय। इधर तो दिमाग को गुलाम बनाने की यह योजना चल रही है, उधर लोकतंत्र, स्वतंत्र चिंतन, स्वतंत्र मत आदि की चर्चा होती है। सारा मामला सड़ गया है।

त्रिवेणी संगम

[संगम-तीर्थ प्रयाग में पिछले २१ दिसम्बर '६८ को हिन्दी के दो महान कवियों, पं० सुमित्रानन्दन पन्त और श्रीमती महादेवी वर्मा के साथ आचार्य विनोबा की मुलाकात हुई। ज्ञान और प्रतिभा के इन तीन स्रोतों का मिलन एक त्रिवेणी संगम हो गया था। प्रस्तुत है उस समय हुई चर्चाओं के कुछ अंश। —सं०]

सुमित्रानन्दन पन्त : अतीत की मूर्तियों का अतिक्रमण करके नयी सांस्कृतिक मूर्ति की स्थापना करना हम अपना लक्ष्य मानते हैं।

आपको देखना पूरे भारत को देखना है, आपका कोई आदेश?

विनोबा : हम कभी कवि को आदेश देते नहीं। वह कभी आदेश में आ नहीं सकता।

महादेवी वर्मा : छात्राध्यापकों के असन्तोष का हल कैसे निकले? हम क्या करें? हर जगह हिंसा प्रकट हो रही है। आग से आलोक भी होता है, घर भी जलता है। आज दूसरीवाली स्थिति दिखायी दे रही है।

विनोबा : बाबा को जो सूझता है, वह कर रहा है। ग्रामदान में गाँव की जमीन की मिल्कियत ग्रामसभा की होगी। इससे गाँव में ग्रामसभा की शक्ति बनेगी, और गाँव में शान्ति कायम होगी। यह काम नीचे से हो रहा है।

ऊपर से आचार्यों की पक्षरहित स्वतंत्र शक्ति खड़ी हो, इसके लिए 'आचार्य-कुल' का कार्यक्रम है। विद्वान, कवि, कलाकारों आदि को—

जाति, धर्म, पंथ, भाषा, पक्ष, प्रांत—आज के इन षड्‌रिपुओं से मुक्त रहना चाहिए।

लोकयात्रा से

करुणा की प्रेरणा : आस्था का आधार

एक दिन कालेज में कार्यक्रम था। मंच पर आचार्य तथा आध्यापकगण आधुनिक वेषभूषा में बैठे थे। सामने छात्र-छात्राएँ बड़े ध्यान से सुन रही थीं। वक्ता कमीज के ऊपर बनियाइन और घुटनों के ऊपर तक का कच्छा पहने थे। पाँव फट रहे थे, जिनमें खड़ाऊँ थीं। वेषभूषा का भान न उन्हें था, न ही दूसरों को। उनके मन में न कोई ग्रन्थि (काम्प्लेक्स) थी, न हीनभावना। विचार-प्रचार की धुन थी और था भरपूर आत्मविश्वास। वे दीवाने हैं एक पथ के, हर कष्ट सहने को तैयार। निर्मल दीदी कह रही थी, "बाबा ने सबको निकाल-निकालकर कैसा निर्भय बना दिया है!" मैंने उन वक्ता महोदय से पूछ ही लिया, "बनियाइन तो कमीज के नीचे पहनते हैं न? आपने इसे ऊपर क्यों पहना है?" उनका जवाब था, "बहिनजी, यह बनियाइन स्वेटर का काम देती है। जब ठंड कम होती है, तो अन्दर पहनता हूँ। जब ठंड अधिक लगती है, तब ऊपर पहन लेता हूँ।"

ये भाई वर्षों तक शिक्षक रहे। उम्र होगी अब लगभग ४५ वर्ष। सब कुछ छोड़कर सर्वोदय-आन्दोलन में आ गये। अपनी जमीन का एक हिस्सा भूदान में, एक हिस्सा गाँव की सेवा में दे दिया और एक हिस्सा अपने गुजारे के लिए रखा। वायु और मौसम की उन्हें परवाह नहीं। आखिर इन लोगों को क्या मिलता है? ये लोग क्यों अभावों और कष्टों के बाद भी इसमें जुटे हैं? इनके अन्दर कौनसी ऐसी प्रेरणा काम कर रही है, जिससे वे अपने सुख के संसार को तिलांजलि देकर भटक रहे हैं? निश्चित ही देश की वर्तमान स्थिति उनके लिए असहनीय है। करुणा से प्रेरित होकर ये लोग जूझ रहे हैं समस्याओं से। भारत माता की पुकार और सन्त का आह्वान जनता में करुणा जागृत करेगा ही, इस आस्था के साथ।

—देवी रीझवानी

हमारा सच्चा अभियान

सभा की भूमि झण्डों और पताकों से सजायी गयी थी। भव्य
मंच बनाया गया था। सैकड़ों सिरों पर पार्टी की रंगीन टोपियां
चमक रही थीं। टप्पक में भी हजारों की संख्या में जनता नेता की
प्रतीक्षा में बैठी हुई थी। घोषित समय से लगभग एक घण्टा बाद
अचानक शोर हुआ : 'आ गये।' एक दर्जन मोटर साइकिलों पर
स्वयंसेवक आगे-आगे चल रहे थे। पीछे फूल मालाओं से लदी हुई,
सजी हुई, मोटर थी जिसमें नेता स्वयं विराजमान थे।

जय-जयकार हुआ। नेता स्वयं खड़े हुए, सभा के सामने झुक-
कर प्रणाम किया, बैठ गये। दल के युवक मन्त्री शुरू के दो शब्द
कहने उठे। बोले : 'आज हमारे बीच एक महान नेता, एक युग-
पुरुष, आया है। उनसे मार्गदर्शन लेकर हमें आगे बढ़ना है। हम
अजेय हैं।'

नेता लाऊडस्पीकर के करीब आये। दो घंटे तक धारा-प्रवाह
भाषण हुआ। लच्छेदार भाषा, विनोद की फुलझड़ी, आलोचना की
चोट, देशभक्ति की ललकार, विरोधियों की फटकार—कुल मिलाकर
भाषण मजेदार था। बीच-बीच में तालियां बजाकर, और ठहाके लगा-
कर, जनता ने बताया कि मजेदार भाषण में उसे भी मजा आया।

सभा समाप्त हुई। जाड़े की शाम थी। लोग कदम बढ़ाकर बाहर
निकले। मैंने भी भीड़ में रास्ता बनाने की कोशिश की। हर एक की
जबान पर एक ही चर्चा थी—भाषण। एक ने कहा 'इसी तरह की
बातें उस दिन वह नेता भी कह रहे थे।' दूसरा बोला : 'हर पार्टी-
वाला यही कहता है कि दूसरी पार्टी बुरी है। कोई अपनी बात तो
बताता नहीं। हम लोग बारी-बारी सबकी बुराई सुनते हैं। जब सब
बुरे ही हैं तो वोट किसे दें ?'

किसीने कहा 'सब निकम्मे हैं, किसीको वोट मत दो।' दूसरे
ने कहा : 'जो सबसे कम बुरा हो उसे दो।' तीसरा बोला : 'दल
की ओर देखो ही मत, जो आदमी सबसे अच्छा हो उसे वोट दो।'

चर्चा चलती आ रही थी, कदम बढ़ते जा रहे थे। सड़क पर
पहुँचते-पहुँचते किसीने कहा कि पाँच दिन बाद एक दूसरे दल के बड़े
नेता आनेवाले हैं।

इस बार उ० प्र० और बिहार की जनता का पेट भाषणों से भर
जायगा। दूसरी जगहों से निश्चिन्त होकर सब दलों के नेता फुर्सत के,
साथ-चण्डीगढ़ से कलकत्ता के बीच में घूम रहे हैं।

कहा जाता है कि लोकतन्त्र की सबसे बड़ी खूबी यही है कि उसने
बन्दूक की जगह विचार को बिठाया है। तरह-तरह के विचार मत-
दाता के सामने आते हैं, और उसे अपनी मर्जी का विचार पसन्द करने-
की पूरी छूट रहती है। विचार दल का, और वोट वोटर का, इन दो
के मेल से लोकतन्त्र की गाड़ी चलती है।

फरवरी में मध्यावधि चुनाव है। हम अपने को जरा वोटर की
जगह में रखें, और सोचें कि इस बार उसके सामने क्या-क्या विकल्प
हैं। एक पार्टी को छोड़कर दूसरी पार्टी को वोट देने का विकल्प तभी
सार्थक है जब इस विकल्प से समस्याओं का कोई नया हल सामने
आये। अगर ऐसा नहीं होता तो विकल्प नागनाथ की जगह साँपनाथ
के सिवाय दूसरा क्या होगा ?

पिछले सौ वर्षों में हमारे देश की राजनीति का कुछ अजीब ढंग
से विकास हुआ है। गांधीजी के पहले कांग्रेस में 'प्रार्थना' (पेटीशन
और प्रेयर) की राजनीति थी। कांग्रेस से अलग एक धारा प्रत्यक्ष
कार्रवाई (डाइरेक्ट ऐक्शन) की थी, जो आतंकवादियों की थी।
गांधीजी के नेतृत्व में प्रार्थना का स्थान प्रतिकार ने लिया, और
प्रत्यक्ष कार्रवाई में छिपे बम की जगह खुला आन्दोलन आया
सन् १९२० से १९४२ तक यही दौर चलता रहा।

सन् १९४६ में देश की सत्ता कांग्रेस के हाथ में आयी। सन्
१९६६ तक उसका एकछत्र-राज्य रहा। कांग्रेस ने मान लिया
था कि देश के लिए कांग्रेसवाद के सिवाय दूसरा रास्ता ही नहीं है।
उसकी प्रतिक्रिया में 'गैर-कांग्रेसवाद' प्रकट हुआ। लेकिन कुछ महीनों
में ही जाहिर हो गया कि गैर-कांग्रेसवाद वस्तुतः विरोधी दलों के
लिए अवसरवाद के सिवाय दूसरा कुछ नहीं था। इस अवसर का लाभ
उठाकर हर दल ने अपनी-अपनी शक्ति संगठित करने की कोशिश
की। हर एक ने अपने लिए संघर्ष का एक मंच तैयार किया। सम्प्र-
दाय का संघर्ष, जाति का संघर्ष, वर्ग का संघर्ष, वर्ण का संघर्ष, क्षेत्र
का संघर्ष, भाषा का संघर्ष, और इन सबको बढ़ावा देनेवाला
दलगत संघर्ष। बस हमारी सारी राजनीति, चाहे वह दक्षिणपंथी
हो, या वामपंथी, इसी संघर्षवाद में सिमट गयी। संघर्षवाद इतना
आगे बढ़ गया कि हर राजनैतिक दल ने अपनी अलग-अलग 'सेना'
संगठित कर ली। विद्यालयों तक में दलों के वैतनिक विद्यार्थी-
एजेण्ट रखे गये। आज हालत यह है कि जो बाहर से खुला और
और निर्दोष लोकतंत्र दिखायी दे रहा है, उसके पीछे उपद्रव
और हिंसा की शक्तियाँ योजनापूर्वक संगठित की जा रही हैं।
राजनीति जनता की बुनियादी समस्याओं का कोई हल नहीं दे
रही है। उसके पास हल है भी नहीं। राजनीति—विरोधवाद की
राजनीति—देश की चेतना को नहीं जगा सकती, उसकी रचनात्मक
शक्ति को संगठित नहीं कर सकती। नेता तो यहाँ तक कहने लगे हैं
कि सरकार तो एक साधन है दल की शक्ति बढ़ाने का, ताकि दूसरे
दल परास्त किये जा सकें। जनता भी मानने लगी है कि यह चुनाव
आदि सब सत्ता का मोहक खेल है, इससे अधिक कुछ नहीं। यह
समझती जा रही है कि नेताशाही और नौकरशाही की जबरदस्त
दीवारों को चीरकर उसकी आवाज सरकार में नहीं घुस सकती। देश
की समस्याओं को हल करने के लिए जिस शक्ति, प्रतिभा और पद्धति
की जरूरत है वह राजनीति के पास नहीं है।

इस स्थिति में एक विकल्प यह है कि एक दल को छोड़कर
दूसरे दल को वोट दिया जाय। दूसरा विकल्प है कि दल का ध्यान

पश्चिम की उथल-पुथल : नये पथ की तलाश

"पश्चिम और पूर्व यूरोप के विचारकों, चिंतकों और नयी पीढ़ी (१६ से २४ साल की उम्रवालों में अधिकतम) में वहाँ की वर्तमान जीवन-पद्धति, विज्ञान और उसकी तकनीक के बारे में व्यापक असंतोष और गहरा विद्रोह-भाव पैदा हो गया है। यद्यपि पूर्व और पश्चिम यूरोप के विद्रोहों के कारणों में भिन्नता है, लेकिन कुल मिलाकर सारे यूरोप की काया में गम्भीर बीमारी के लक्षण प्रकट हो रहे हैं। जिन राजनीतिक सिद्धान्तों के बारे में कुछ सालों पहले कोई विवाद नहीं थे, वहाँ अब निश्चित सवाल उठ खड़े हुए हैं। उदाहरण के लिए 'नेशन स्टेट' का सिद्धान्त। प्रश्न उठ गया है कि क्या भूखण्डों को 'राष्ट्रों' में विभाजित करना वैज्ञानिक बात है? क्या पिछले दो महायुद्धों की बुनियाद यह सिद्धान्त ही नहीं है?" एक लम्बे विदेश-प्रवास के बाद भारत लौटने पर सर्वोदय-परिवार की सुपरिचित विदुषी बहन विमला ठकार ने वाराणसी में अपने अनुभव सुनाते हुए उक्त बातें कहीं।

अपनी बातों का सिलसिला जारी रखते हुए विमलाबहन ने आगे कहा, "साम्राज्यवाद की १७ वीं शताब्दी से चली आ रही अर्थनीति, राजनीति और पूरी समाज-नीति पर नया चिंतन गैर-सरकारी क्षेत्रों में शुरू हो गया है। आज की जो रचना है उसे जड़-मूल से उखाड़ फेंकने की आकांक्षा पैदा हो गयी है। उत्पादक और उपभोक्ता के बीच की जितनी भी इकाइयाँ विकसित हुई हैं, उन्हें वे खत्म कर देना चाहते हैं। वे इस विषय पर गम्भीरता से विचार कर रहे हैं कि विज्ञान के सहकार से किस प्रकार की उत्पादन और उपभोग की पद्धति विकसित की जाय, जिसमें केन्द्रीकरण और उद्योगीकरण का वह रूप न रह जाय, जिसमें मनुष्य ही खो जाता है। मानव-स्वाधीनता की क्रान्ति हम इसे कह सकते हैं।"

इस नयी क्रान्ति के तरीकों की चर्चा करते हुए विमलाबहन ने कहा, "तरीके उनके पुरातन हैं। यद्यपि प्रतिपक्षी को मारने की भावना उनमें नहीं है, लेकिन विश्वविद्यालयों, थियेटरों आदि सार्वजनिक स्थानों पर कब्जा करने की उनकी चेष्टा रहती है। शुरू में तो इन सारे प्रयासों में हिंसा नहीं थी, लेकिन पुलिस के दुर्व्यवहार ने छात्रों में हिंसात्मक उभाड़ ला दिया और उन्होंने पुलिस के प्रतिरोध के लिए कई तरीके विकसित कर लिये।"

असंतोष और विद्रोह के इन उभाड़ों के विधायक पक्ष पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करती हुई विमलाबहन ने कहा, "धर्म, पुराण, शास्त्र, सबके प्रति भयकर असंतोष तो है ही, अपने से पहलेवाली पीढ़ी को वे दम्भी, पाखण्डी पीढ़ी मानते हैं और उनके दुहरे व्यक्तित्व के पर्दे को फाड़ देना चाहते हैं। विधायक क्रान्ति का कोई मार्ग अभी तक उन्हें सूझा नहीं है, लेकिन मानवीय स्वाधीनता में बाधक हर चीज उन्हें अमान्य है। आदर्शवाद और जीवन-पद्धति का नाम भी वे नहीं लेना चाहते, लेकिन निषेध कोई स्थायी भाव नहीं है। स्वतंत्र रीति से उनकी खोज जारी है।"

बिहारदान की अद्यतन स्थिति (१० जनवरी '६९ तक)

	क्षेत्र की कुल जनसंख्या	ग्रामीण जनसंख्या, जिसका ७५% ग्रामदान में शामिल हुआ
कमिश्नरी दान : तिरहुत (दरभंगा, मुजफ्फरपुर, सारण, चम्पारण)	१,५१,२२,२५४	१,४४,४७,६१३
जिलादान (अन्य) : सहरसा	१७,२३,५६६	१६,५६,९११
पूर्णिया	३०,८९,१२८	२६,०३,५३१
गया	३६,४७,८१२	३३,८२,७९४
प्रखण्डदान : मुंगेर ३१	२६,६१,६२९	२६,५५,६६५
भागलपुर ४	३,५०,५९२	६,१५,८३२
सं० परगना ३	१,५०,७८६	१,५०,७८६
पलामू १४	६,४१,३४२	६,१५,८३२
सिंहभूमि ५	२,४३,८७८	२,४३,७७८
शाहाबाद ५	३,५५,०१३	२,९४,१६७
धनबाद ६	५,५३,७५१	३,७५,७७३

बिहार की—

कुल आबादी का	६५%	ग्रामदान में शरीक
कुल ग्रामीण आबादी का	६३%	"
जिलादानी जिलों का अनुपात	५३%	
अनुमंडल का अनुपात	४३%	
प्रखण्डदान अनुपात	६०%	

छोड़कर 'सबसे अच्छे' उम्मीदवार को वोट दिया जाय चाहे वह किसी दल या व्यक्ति का हो। तीसरा विकल्प है कि स्वयं दलगत राजनीति का विकल्प ढूँढ़ा जाय।

इस समय देश में दो धाराएँ हैं जो इस राजनीति का विकल्प तलाश कर रही हैं। वे दल की राजनीति में नहीं, जनता के 'डाइरेक्ट ऐक्शन' में विश्वास करती हैं। एक धारा है नक्सालवाड़ी की, दूसरी है ग्रामदान की। एक हिंसा के षड्यंत्र में विश्वास करती है, दूसरी शांति की क्रान्ति में।

जहाँ तक इस मध्यावधि चुनाव का सम्बन्ध है, यह स्पष्ट है कि देश की राजनीति में दल अपना महत्त्व खो चुके हैं, इसलिए 'अच्छे उम्मीदवार' को वोट देना अच्छा है, ताकि कुछ अच्छी संयुक्त सरकारें बन सकें। लेकिन अच्छी सरकार हमारी स्थायी योजना नहीं हो सकती। हमें जरूरत है समाज-परिवर्तन की, मात्र सरकार-परिवर्तन की नहीं। हमें ऐसी सरकार चाहिए जिस पर क्रान्ति का रंग चढ़ा हुआ हो, जो क्रान्ति की पूरक शक्ति बन सके। वह सरकार कैसे बनेगी? बनेगी तब जब ग्रामदानी गाँवों के प्रतिनिधि सरकार में जायँगे, राजनैतिक दलों के नहीं। इस चुनाव के बाद, और राज्यदान के तुरंत बाद, हमारा 'दलमुक्त ग्राम-प्रतिनिधित्व' का अभियान शुरू हो जाना चाहिए। जब राजनीति लगेगी सरकार बदलने में, तब हमें लग जाना चाहिए समाज बदलने में।●

तीन बुनियादी ताकतें
भगवान की, शिक्षकों की, जनता की

हमारी आप लोगों (शिक्षकों) पर बहुत श्रद्धा है। नं० १ में हमारी श्रद्धा भगवान् पर है। नं० २ में आप पर है, यानी शिक्षकों पर। और नं० ३ में जनता पर है। ये तीनों ताकतें हैं। इनके अलावा समाज में व्यापारी, राजनैतिक लोग और सेना, इनको भी ताकतें हैं। लेकिन ये तीनों ताकतें मेरी निगाह में दुनिया का भला करनेवाली नहीं हैं। वे ताकतें तो हैं। शैतान की भी अपनी ताकत होती है। वह हर एक के दिल पर हावी होता है। काम, क्रोध, मद, मोह, मत्सर, लोभ, ये शैतान की ताकतें हैं। लेकिन वे कल्याणकारी नहीं हैं।

सेना, राजनैतिक मुत्सद्दी और अमीरों की ताकत, ये तीनों दुनिया में खूब चलती हैं। लेकिन उनसे भला होनेवाला नहीं है। महान पुरुष पैदा हुए तो वे गरीबी में पैदा हुए। अगर राज-गृह में पैदा हुए तो उन्होंने उसका त्याग किया, अमीरी का त्याग किया। भगवान गौतम बुद्ध राजकुल में पैदा हुए, लेकिन उन्होंने राज का त्याग किया, तब वे महान हुए। अनेक राजा आये और गये, उनको कोई याद नहीं करता, लेकिन गौतम बुद्ध को आज तक लोग याद करते हैं। क्योंकि उन्होंने सत्ता फेंक दी। मुहम्मद पैगम्बर की बात है। वे जिस दिन मर गये, उस दिन घर में दीपक जलाने के लिए तेल नहीं था। वे बादशाह थे। लेकिन अपने हाथ से काम करते थे और जो मिलता था, उसीमें गुजारा करते थे। खलीफा उमर की कहानी है। मुहम्मद के हाथ में जब राज आया, तब उमर को उन्होंने सरदार बनाया। लोगों ने मुहम्मद के पास शिकायत की कि खलीफा उमर जब से सरदार बना है, महीन आटा खाता है। मुहम्मद ने खलीफा से पूछा, 'क्या तू महीन आटा खाता है?' खलीफा ने कहा, 'जी हाँ।' तब मुहम्मद ने उसे डाँटा। कहा, 'अरे तू क्या बन गया? तू ने अपने को क्या समझा? महीन आटा नहीं खाना चाहिए। गरीब बना रहना, यह एक ताकत है।' इसलिए जो अमीरी में पैदा हुए, उन्होंने अमीरी का त्याग कर दिया, गरीबी में रहना पसन्द किया। 'कर गुजरान गरीबी में।' तो सेना की, अमीरों की और राजनैतिक लोगों की ताकत से दुनिया तंग आ जाती है।

आप पर हमारी जो श्रद्धा है, उसका क्या कारण है? कारण यह है कि आपकी जो शक्ति है, वह ज्ञान की शक्ति है। ज्ञान देने के लिए आप डण्डा लेकर नहीं जायेंगे। गाँव में जायेंगे तो प्रेम से समझायेंगे, तभी वे लोग हस्ताक्षर करेंगे। बुझाना, रिझाना, समझाना, यह शिक्षकों की शक्ति है। कल्याणकारी शक्ति है। जनता की शक्ति यानी 'ब्रेड लेबर'—मेहनत करने की शक्ति। जब भारत पर पाकिस्तान का हमला हुआ, तब शास्त्रीजी ने नारा दिया था "जय जवान, जय किसान।" किसान का काम चलता रहेगा तो जवान को ताकत मिलेगी। किसान यानी आम जनता, जो परिश्रम करती है। इसीलिए

विनोबा

उनके हृदय में सद्भावना भरी रहती है। वह अपना पसीना बहाती है तब फसल पैदा होती है। शरीर-परिश्रम से उनके पाप भस्म हो जाते हैं। भगवान् पर उनका भरोसा होता है। भगवान् ने सबके हृदय में करुणा रखी है। एक दफा एक पक्षी का छोटा-सा बच्चा नीचे गिर गया, वह छटपटाता था। कुछ लोगों ने वह देखा। उनसे उसकी छटपटाहट देखी नहीं गयी। उसे ठंड लग रही थी। तो उस बच्चे को उठाकर वे जरा अन्दर ले गये और उसे कुछ गर्मी पहुँचायी, तो वह खुश हो गया और आनन्द से उड़ गया। मनुष्य के हृदय में रहम है, वह किसीका दुःख देख नहीं सकता। कुत्ते का या बिल्ली का दुःख भी वह देख नहीं सकता।

दस-पन्द्रह दिन पहले हमने स्टेशन पर देखा कि प्लेटफार्म पर मनुष्य के पास कुत्ता सोया था। मनुष्य भी सोया था और उसके पास कुत्ता भी। फर्स्ट क्लास के रूम में कोई किसीको पूछेगा नहीं, लेकिन थर्ड क्लास का पैसेंजर कुत्ते को भी पूछता है। अब उस मनुष्य के घर का तो वह कुत्ता नहीं था, लेकिन यह दया है, रहम है, करुणा है। यह भगवान् की मनुष्य को दी हुई परम देन है। वह हमारा पिता है। उस पर हमारा विश्वास और श्रद्धा है। और नं० २ में आप पर श्रद्धा है। क्यों? क्योंकि आपको ताकत है ज्ञान, समझाने की ताकत। एक दफा आद्य शंकराचार्य से पूछा गया कि आप कैसे काम करेंगे? उन्होंने जवाब दिया शिक्षण-शस्त्र से। उनसे फिर से पूछा गया, अगर लोग नहीं समझेंगे तो? उन्होंने कहा—नहीं समझेंगे तो मैं दुबारा समझाऊँगा। फिर भी अगर नहीं समझेंगे तो तिबारा समझाऊँगा, समझाता ही रहूँगा। यही मेरा एकमात्र शस्त्र है। दूसरा शस्त्र मेरे पास नहीं है। न मैं वह चाहता हूँ, न उस पर मेरी श्रद्धा है।" एक दफा बुद्धि को बात समझ में आ गयी तो फिर क्या मजाल है कि मनुष्य उसे टाले। एक दफा समझ में आ गया तो बस, काम हो गया। और जनता पर इसलिए श्रद्धा है कि वह शरीर-परिश्रम करती है।

तो दया, करुणावाले भगवान् पर हमारी श्रद्धा है। और ज्ञान-शस्त्र रखनेवाले आप पर हमारी श्रद्धा है। शरीर-परिश्रम करके खटने वाली जनता पर हमारी श्रद्धा है।

आपने अभी कहा कि यह ग्रामदान का काम कठिन है। काम बहुत कठिन नहीं है, आसान है। आपको ब, बा, बि, बी की बारा-खड़ी समझानी है। गाँववालों से यही कहना है कि बेकार, बूढ़े, बच्चे, बेवाएँ और बीमार, इनकी व्यवस्था गाँववाले नहीं करेंगे तो कौन करेगा? गाँव का परिवार बनेगा तभी यह काम होगा। उसमें सबका हित देखा जायेगा। यह समझाना अत्यन्त आसान बनाया है। किन्होंने आसान बनाया? हमारा काम आसान बनाया उन्होंने, जिन्होंने अनेक वादे किये और जिनसे जनता तंग आ गयी है। यह कांग्रेस, टांग्रेस, फांग्रेस, ये सारी जो 'ग्रेस' हैं, यह कोई काम की नहीं। ये लोग जनता को कहते हैं—हम तुम्हें स्वर्ग देंगे, हमें वोट दो। हमारा स्वर्ग कैसा है? यह देखना हो तो हमारा 'मैनीफेस्टो' पढ़ो। अच्छे-अच्छे वादे करते हैं। वादे तो अच्छे ही करने पड़ते हैं। हम आपको गरीब बना देंगे, यह तो कोई नहीं

कहता, अच्छा ही कहता है। जनता को कोई यह नहीं समझाता है कि तुम्हारा स्वर्ग और नरक तुम्हारे हाथ में है। एक गीता ही ऐसी है, जो कहती है कि तुम्हारा भला तुम्हारे हाथ में है। तुम्हारा उद्धार तुम्हीं कर सकते हो। तो राजनीतिक लोगों के वादों से लोग निराश हो गये। पराक्रमी लोगों ने अपने पराक्रम से यह जो निराशा पैदा की है, उससे हमारा काम आसान बन गया है।

३१ दिसम्बर को सारा गया जिला ग्रामदान में आ गया। उस काम में शिक्षक लोग ही लगे थे। गया में जो अनुभव आया, उससे भिन्न अनुभव पटना में नहीं आयेगा।

जनता को बनाने की सत्ता आपके हाथ में है, क्योंकि आप ३० साल के लिए हैं। राजनैतिक लोग तो ५ साल के लिए आयेंगे और जायेंगे। 'मैन मे गो एण्ड मैन मे कम', लेकिन आप ३० साल के लिए रहेंगे। और आपके बाद कौन शिक्षक बनेंगे? आपने जिनको सिखाया है, उन्हींमें से शिक्षक बनेंगे, यानी आपकी सतत, अखण्ड सत्ता चलेगी। उसके लिए आपको दो-तीन काम करने होंगे। (१) गाँव-गाँव में जाना, ग्राम-सभा बनाने को समझाना, गाँव के 'फ्रेण्ड, फिलासफर, गाईड' बनना। (२) जिन बच्चों को सिखायेंगे, उनको प्रेम देना। आजकल प्रेम की कमी है। (३) रोज कुछ-न-कुछ अध्ययन करना। बाबा को मिसाल देखें। ७४ साल की उमर हो गयी, लेकिन उसका अध्ययन और अध्यापन जारी है। जो ज्ञान आपको मिल चुका है उतने से काम नहीं होगा। नया-नया ज्ञान प्राप्त करना होगा। ज्ञान की उपासना करनी होगी। आपको अहंकार, घमण्ड न हो, इसलिए आप यह समझें कि भगवान् का दिया हुआ ज्ञान आपके पास है। वही दूसरों को देंगे। ऐसी निरहंकार बुद्धि से आप काम करते जायेंगे तो दिल में अत्यन्त समाधान होगा। एक कवि ने बड़ा ही सुन्दर शेर लिखा है—"तू दुनिया में आया तो लोग हँस रहे थे, तू रो रहा था। अब तू हँसता जा, लोग रोते रहेंगे।" "मैंने भगवान् का काम किया। भगवान् का दिया हुआ ज्ञान लोगों के पास पहुँचाया।"—इस आनन्द से आप दुनिया छोड़कर जायेंगे। (३-१-'६९ : बिहारशरीफ)

गया जिलादान की श्रीभागवत-कथा

सन् १९६९ का पहला दिन। गया के कार्यकर्ताओं ने बिहारशरीफ पड़ाव पर 'गया जिलादान' की घोषणा की। बिहार का सातवाँ, पर दक्षिण बिहार का प्रथम जिलादान। श्री त्रिपुरारीजी नहीं आ सके। चार माह की रात-दिन की दौड़-धूप के बाद आज उन्हें विश्राम का अवसर मिला। श्री दिवाकरजी, श्री केशवभाई और सबसे आगे श्री भागवत झा, जिला शिक्षा-पदाधिकारी।

२८ दिसम्बर को श्री केशवभाई ने मुझे पटना में बताया, "आप जानते हैं, हमारे पास पैसा नहीं था, छियालीस प्रखण्डों का लम्बा-चौड़ा जिला, हमारी संस्था भी बड़ी नहीं, जो कुछ हो सका उसका श्रेय शिक्षकों को है। उनके प्रेरक रहे श्री भागवत झा, जिला शिक्षा पदाधिकारी। सम्भवतः जिलादान का अर्घ्य 'बाबा' को समर्पित कर उन्होंने अपनी सरकारी सेवा की पूर्णाहुति की। वे १ जनवरी से निवृत्त (रिटायर्ड) हो गये।"

श्री केशवभाई ने बताया कि प्रात ही 'झाजी' हमारे भूदान कार्यालय में आ जाते। मुझे तैयार न देख, मुस्कराकर कहते, "इसीसे जिलादान होगा?" और जब यह जानकारी मिलती कि अभी श्री दिवाकरजी जगे नहीं तो उन्हें थोड़ा कष्ट भी होता। नित्य दिन-रात को बारह-एक बज जाता, आखिर नींद भी कहाँ जाय, पर श्री झाजी की पलकों में नींद कहाँ?

निकल पड़ते सड़क पर। कोई गाँव हो, सामने सड़क पर कोई भी व्यक्ति मिल जाय, बस, झाजी की गाड़ी रुक जाती, "आप कौन हैं? शिक्षक?" 'नहीं, ग्रामीण?' "क्या आपके गाँव में ग्रामदान का हस्ताक्षर हो रहा है?" यदि उत्तर हाँ में आया तो आगे बढ़े, यदि नहीं तो पहुँच गये उस गाँव के स्कूल-शिक्षक के पास : "भाई, बाबा को कितना कष्ट देना है? कब तक हम संकल्प पूरा करेंगे?" यदि शिक्षक ने बताया कि गाँव के लोग साथ नहीं देते, तो फिर उन्हें अपने साथ लेकर गाँव में घूमने लगते। भव्य व्यक्तित्व, मधुर वाणी, हृदय की आतुरता, कौन ना करता? इसी तरह दूसरा गाँव, तीसरा गाँव, और रात के ग्यारह-बारह बजे तक! क्या मात्र सरकारी आदेश से ही भागवत झा पर जिलादान का 'भूत' सवार हुआ?

गया जिले का काम और भी पहले समाप्त होता। यह सत्य है कि अधिक पैसा पुरुषार्थ को कुंठित करता है, पर इतना तो जरूर चाहिए, जिससे साँस चलती रहे। एक दिन का प्रसंग श्री विद्यासागर भाई ने बताया। वे पटना से गया जिलादान की मदद के लिए गये थे। रात को गाँव से लौटकर आये। केशवभाई के परिवार के लोग सो गये थे। जगाया तो मक्के की एक रोटी मिली। श्री विद्यासागर भाई 'मेस' की ओर से निराश लौट रहे थे। पैसे के अभाव में आज खाना नहीं बना। केशवभाई ने उन्हें उसी रोटी में शरीक कर लिया। श्री त्रिपुरारीजी सोच रहे थे कि क्या करें? आखिर उसी रोटी का तीसरा भागीदार इन्हें भी बनना पड़ा। न जाने चार माह में कितनी रात त्रिपुरारीजी को उदर-विश्राम करना पड़ा होगा। इस जिले के प्रत्येक प्रखण्ड का काम पूरा करने में सिर्फ दो-तीन सौ रुपये का खर्च प्रति प्रखण्ड आया होगा।

जे० पी० को गया की विशेष चिन्ता थी : 'गया का जिलादान कब तक होगा, क्या मेरे विशेष स्नेह ने वहाँ का पुरुषार्थ कुंठित तो नहीं कर दिया?" मुझे याद है ११ जुलाई की उनकी टेहटा की बैठक की एक मुद्रा एकदम चुप! सारे मित्र बैठे थे। "अब मैं आप लोगों से और कुछ नहीं कहूँगा, मैं सोच रहा हूँ कि मुझमें ही कुछ दोष है।"

जे० पी० बाहर-बाहर रहे, पर उनकी बेचैनी गया के मित्रों में काम कर रही थी। परमात्मा ने वहाँ के मित्रों को शक्ति दी, और गया जिलादान पूरा हो गया।

चलता मुसाफिर ही पायेगा
मंजिल और मुकाम रे!
कायर का नहीं काम,
रे भाई, कायर का नहीं काम!

—निर्मलचन्द्र

जिलादान के बाद बलिया में संगठन और विकास की योजना

शिक्षण

शिविर और गोष्ठी : विचार-शिक्षण की दृष्टि से तीन प्रकार के शिविर सोचे गये :

विचार-शिक्षक शिविर इस तरह के शिविर जिले की तीनों तहसीलों में तहसील स्तर पर किये जायँ, जिनमें उस तहसील के थी गांधी आश्रम के कार्यकर्ता, चुने हुए शिक्षक तथा उद्‍बुद्ध नागरिक शरीक हों। एक शिविर में संख्या सामान्यतः २५-३० हो। इस प्रकार के शिविरों में दीक्षित मित्र अपने-अपने गाँव और क्षेत्र में विचार शिक्षण का काम करेंगे। जिलेभर में ऐसे लगभग दो सौ विचार शिक्षक तैयार किये जायेंगे।

ग्रामीण गृहस्थ शिविर जिन गाँवों में उत्साह हो और जिनकी ओर से माँग हो, उनमें दो या तीन दिन के लिए अपने एक या दो कार्यकर्ता साथी जायेंगे। दिन भर के काम-काज के बाद गाँव के लोग शाम को एक घंटे के लिए इकट्ठा होंगे और हमारे साथी उनके साथ चर्चा करेंगे। इस तरह के शिविर माँग आने पर बाँसडीह सघन क्षेत्र के बाहर भी किये जायेंगे, ताकि आन्दोलन की व्यापकता बनी रहे। सघन कार्य के साथ व्यापकता का कार्य आवश्यक है।

गर्मी में बाँसडीह सघन क्षेत्र में एक बड़ा श्रम-शिविर किया जायगा।

कार्यकर्ता प्रशिक्षण आश्रम के कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण एक सुव्यवस्थित अभ्यास-क्रम के अनुसार हो। इस अभ्यास के आधार पर उनकी लिखित और मौखिक परीक्षा भी ली जाय, और प्रमाण-पत्र भी दिया जाय। परीक्षा-फल उनकी दक्षता के मूल्यांकन का अंग माना जाय। इस योजना में वे ही कार्यकर्ता शरीक होंगे, जो होना चाहेंगे। कार्यकर्ताओं के लिए विशेष रूप से ६ महीने में एक शिविर होगा, जिसमें उनकी परीक्षा का कार्यक्रम रखा जायगा।

शिविर-संयोजन और संगठन : यह तय हुआ कि २४ जनवरी से ३० जनवरी '६९ तक एक हफ्ते में धीरेन्द्रभाई तीनों तहसीलों में तहसील-स्तरीय शिविर लेंगे।

जिले में शिविरों का संयोजन सुदिष्टपुरी इण्टर कालेज के प्राध्यापक श्री शिवकुमार मिश्र तथा अपने कार्यकर्ता साथी श्री कमलापति भाई करेंगे।

रुचि रखनेवाले नागरिकों की सुविधा की दृष्टि से फेफना में ग्रंथ-संग्रह किया जायगा, जिसमें सर्वोदय तथा आधुनिक विचार के चुने हुए ग्रंथ होंगे।

खादी, ग्रामोद्योग

बाँसडीह सघन क्षेत्र में खादी-कार्य : (१) बाँसडीह, मनीयर, और बेरुआरबारी प्रखण्डों का एक सघन क्षेत्र माना जायगा। खादी की दृष्टि से प्रश्न हुआ कि किन गाँवों को अम्बर चरखे की दृष्टि से प्राथमिकता दी जायगी? तय हुआ कि पहले उन गाँवों को लिया जाय, जो 'ग्राम-स्वराज्य' तथा 'ग्रामकोष' के संगठन की दृष्टि से आगे बढ़े।

सबसे पहले गाँव अपनी ग्राम-स्वराज्य सभा बनाये। ग्राम-स्वराज्य सभा की ओर से एक 'उद्योग समिति' गठित हो। यह समिति गाँव के लिए ३ साल की औद्योगिक विकास-योजना बनायेगी, और अम्बर की माँग करेगी। चरखा वस्त्र स्वावलम्बन के आधार पर ही दिया जायगा। उद्योग-समिति अपने गाँव में बुनाई के प्रशिक्षण की व्यवस्था करेगी, जिसकी सुविधा आश्रम की ओर से दी जायगी। लेकिन जबतक ऐसा नहीं होता तबतक सूत के बदले कपड़ा दिया जायगा, पैसा नहीं। गाँव में बुनाई की व्यवस्था हो जाने पर गांधी-आश्रम गाँव की समिति से अतिरिक्त कपड़ा लेगा, सूत नहीं। ग्राम-स्वराज्य सभा पूँजी के लिए 'ग्रामकोष' इकट्ठा करेगी, ताकि रुई आदि का स्टाक गाँव में रह सके।

(२) ऐसे गाँवों में जो अम्बर-शिक्षक परिश्रमालय चलाने के लिए भेजे जायेंगे, वे अम्बर का प्रशिक्षण तो देंगे ही, साथ-ही-साथ उनका एक मुख्य काम यह भी होगा कि वे ग्राम-सभा को मजबूत बनायें। ग्राम-स्वराज्य सभा की नियमित बैठकें हों। अम्बर-शिक्षक स्वयं ग्राम-स्वराज्य की दृष्टि ग्रहण कर सकें इसके लिए उन्हें धीरेन्द्रभाई के शिविर में शरीक किया जायगा। यह अच्छा होगा कि दृष्टि लेकर ही कार्यकर्ता गाँव में जायें।

फरवरी से अम्बर-परिश्रमालय ऐसे ही गाँवों में खोले जायेंगे, जो ऊपर लिखी शर्तें पूरी करेंगे। गाँवों का चुनाव श्री बद्रीसिंहभाई और जालिमभाई मिलकर करेंगे।

सर्वश्री चौबेजी, बचराजभाई, जालिमभाई तथा बद्रीसिंहभाई विशेष रूप से एक एक परिश्रमालय से जुड़ेंगे और उसे ग्राम-स्वराज्य की भूमिका में आगे बढ़ाने का प्रयत्न करेंगे।

हर अम्बर-परिश्रमालय में स्त्रियों के अलावा कुछ पुरुष भी लिये जायेंगे, जिन्हें यंत्र-सुधार का सामान्य ज्ञान कराया जायगा, ताकि गाँव में यंत्रों की देखभाल हो सके। जहाँ तक हो सके, शीघ्र एक और दो तकुए के अम्बर की व्यवस्था की जायगी।

उपोग चरखे के अलावा गोबर-गैस और कुम्हारी उद्योग पर तुरन्त ध्यान दिया जायगा। इनका सीधा सम्बन्ध खेती और किसान की आवश्यकता से है।

संगठन

ग्राम-स्वराज्य ट्रस्ट की स्थापना : जिले में संगठन और विकास के कार्यों के लिए एक ग्राम-स्वराज्य ट्रस्ट की स्थापना की जायगी, जिसमें सात सदस्य होंगे। ट्रस्ट की शीघ्र रजिस्ट्री करा ली जायगी और सारे काम उसीके माध्यम से होंगे। गाँवों की ग्राम-स्वराज्य सभाओं के आधार पर प्रखण्ड-स्तरीय सभा के बन जाने पर ट्रस्ट अपनी प्रवृत्तियाँ उन संस्थाओं को सौंप देगा। यह क्रम एक क्षेत्र के बाद दूसरे क्षेत्र में चलता रहेगा, जब तक कि पूरा जिला पुरुषार्थ में स्वाश्रयी न हो जाय।

बैठकें अपने मुख्य मित्रों की बैठक हर महीने होगी। पहली बैठक बाँसडीह में धीरेन्द्रभाई के साथ २६ जनवरी को होगी। हर बैठक में अगली बैठक की तारीख और स्थान का निर्णय कर लिया जायगा।•

कहता, अच्छा ही कहता है। जनता को कोई यह नहीं समझाता है कि तुम्हारा स्वर्ग और नरक तुम्हारे हाथ में है। एक गीता ही ऐसी है, जो कहती है कि तुम्हारा भला तुम्हारे हाथ में है। तुम्हारा उद्धार तुम्हीं कर सकते हो। तो राजनीतिक लोगों के वादों से लोग निराश हो गये। पराक्रमी लोगों ने अपने पराक्रम से यह जो निराशा पैदा की है, उससे हमारा काम आसान बन गया है।

३१ दिसम्बर को सारा गया जिला ग्रामदान में आ गया। उस काम में शिक्षक लोग ही लगे थे। गया में जो अनुभव आया, उससे भिन्न अनुभव पटना में नहीं आयेगा।

जनता को बनाने की सत्ता आपके हाथ में है, क्योंकि आप ३० साल के लिए हैं। राजनैतिक लोग तो ५ साल के लिए आयेंगे और जायेंगे। 'मैन मे गो एण्ड मैन मे कम', लेकिन आप ३० साल के लिए रहेंगे। और आपके बाद कौन शिक्षक बनेंगे? आपने जिनको सिखाया है, उन्हींमें से शिक्षक बनेंगे, यानी आपकी सतत, अखण्ड सत्ता चलेगी। उसके लिए आपको दो-तीन काम करने होंगे। (१) गाँव-गाँव में जाना, गाँव-सभा बनाने को समझाना, गाँव के 'फ्रेण्ड, फिलासफर, गाईड' बनना। (२) जिन बच्चों को सिखायेंगे, उनको प्रेम देना। आजकल प्रेम की कमी है। (३) रोज कुछ-न-कुछ अध्ययन करना। बाबा को मिसाल देखें। ७४ साल की उमर हो गयी, लेकिन उसका अध्ययन और अध्यापन जारी है। जो ज्ञान आपको मिल चुका है उतने से काम नहीं होगा। नया-नया ज्ञान प्राप्त करना होगा। ज्ञान की उपासना करनी होगी। आपको अहंकार, घमण्ड न हो, इसलिए आप यह समझें कि भगवान् का दिया हुआ ज्ञान आपके पास है। वही दूसरों को देंगे। ऐसी निरहंकार बुद्धि से आप काम करते जायेंगे तो दिल में अत्यन्त समाधान होगा। एक कवि ने बड़ा ही सुन्दर शेर लिखा है—"तू दुनिया में आया तो लोग हँस रहे थे, तू रो रहा था। अब तू हँसता जा, लोग रोते रहेंगे।" "मैंने भगवान् का काम किया। भगवान् का दिया हुआ ज्ञान लोगों के पास पहुँचाया।"—इस आनन्द से आप दुनिया छोड़कर जायेंगे। (३-१-'६९ : बिहारशरीफ)

गया जिलादान की श्रीभागवत-कथा

सन् १९६९ का पहला दिन। गया के कार्यकर्ताओं ने बिहारशरीफ पड़ाव पर 'गया जिलादान' की घोषणा की। बिहार का सातवाँ, पर दक्षिण बिहार का प्रथम जिलादान। श्री त्रिपुरारीजी नहीं आ सके। चार माह की रात-दिन की दौड़-धूप के बाद आज उन्हें विश्राम का अवसर मिला। श्री दिवाकरजी, श्री केशवभाई और सबसे आगे श्री भागवत झा, जिला शिक्षा-पदाधिकारी।

२८ दिसम्बर को श्री केशवभाई ने मुझे पटना में बताया, "आप जानते हैं, हमारे पास पैसा नहीं था, छियालीस प्रखण्डों का लम्बा-चौड़ा जिला, हमारी संख्या भी बड़ी नहीं, जो कुछ हो सका उसका श्रेय शिक्षकों को है। उनके प्रेरक रहे श्री भागवत झा, जिला शिक्षा-पदाधिकारी। सम्भवतः जिलादान का अर्घ्य 'बाबा' को समर्पित कर उन्होंने अपनी सरकारी सेवा की पूर्णाहुति की। वे १ जनवरी से निवृत्त (रिटायर्ड) हो गये।"

श्री केशवभाई ने बताया कि प्रातः ही 'झाजी' हमारे भूदान कार्यालय में आ जाते। मुझे तैयार न देख, मुस्कराकर कहते, "इसीसे जिलादान होगा?" और जब यह जानकारी मिलती कि अभी श्री दिवाकरजी जगे नहीं तो उन्हें थोड़ा कष्ट भी होता। नित्य दिन-रात को बारह-एक बज जाता, आखिर नींद भी कहाँ जाय, पर श्री झाजी की पलकों में नींद कहाँ?

निकल पड़ते सड़क पर। कोई गाँव हो, सामने सड़क पर कोई भी व्यक्ति मिल जाय, बस, झाजी की गाड़ी रुक जाती, "आप कौन हैं? शिक्षक?" 'नहीं, ग्रामीण?" "क्या आपके गाँव में ग्रामदान का हस्ताक्षर हो रहा है?" यदि उत्तर हाँ में आया तो आगे बढ़े, यदि नहीं तो पहुँच गये उस गाँव के स्कूल-शिक्षक के पास : "भाई, बाबा को कितना कष्ट देना है? कब तक हम संकल्प पूरा करेंगे?" यदि शिक्षक ने बताया कि गाँव के लोग साथ नहीं देते, तो फिर उन्हें अपने साथ लेकर गाँव में घूमने लगते। भव्य व्यक्तित्व, मधुर वाणी, हृदय की आकुलता, कौन ना करता? इसी तरह दूसरा गाँव, तीसरा गाँव, और रात के ग्यारह-बारह बजे तक! क्या मात्र सरकारी आदेश से ही भागवत झा पर जिलादान का 'भूत' सवार हुआ?

गया जिले का काम और भी पहले समाप्त होता। यह सत्य है कि अधिक पैसा पुरुषार्थ को कुंठित करता है, पर इतना तो जरूर चाहिए, जिससे साँस चलती रहे। एक दिन का प्रसंग श्री विद्यासागर भाई ने बताया। वे पटना से गया जिलादान की मददके लिए गये थे। रात को गाँव से लौटकर आये। केशवभाई के परिवार के लोग सो गये थे। जगाया तो सबके की एक रोटी मिली। श्री विद्यासागर भाई 'मेस' की ओर से निराश लौट रहे थे। पैसे के अभाव में आज खाना नहीं बना। केशवभाई ने उन्हें उसी रोटी में शरीक कर लिया। श्री त्रिपुरारीजी सोच रहे थे कि क्या करें? आखिर उसी रोटी का तीसरा भागीदार इन्हें भी बनना पड़ा। न जाने चार माह में कितनी रात त्रिपुरारीजी को उदर-विश्राम करना पड़ा होगा! इस जिले के प्रत्येक प्रखण्ड का काम पूरा करने में सिर्फ दो-तीन सौ रुपये का खर्च प्रति प्रखण्ड आया होगा।

जे० पी० को गया की विशेष चिन्ता थी : 'गया का जिलादान कब तक होगा, क्या मेरे विशेष स्नेह ने वहाँ का पुरुषार्थ कुंठित तो नहीं कर दिया?" मुझे याद है २१ जुलाई की उनकी टेहटा की बैठक की एक मुद्रा एकदम चुप्प! सारे मित्र बैठे थे। "अब मैं आप लोगों से और कुछ नहीं कहूँगा, मैं सोच रहा हूँ कि मुझमें ही कुछ दोष है।"

जे० पी० बाहर-बाहर रहे, पर उनकी बेचैनी गया के मित्रों में काम कर रही थी। परमात्मा ने वहाँ के मित्रों को शक्ति दी, और गया जिलादान पूरा हो गया।

चलता मुसाफिर ही पायेगा
मंजिल और मुकाम रे!
कायर का नहीं काम,
रे भाई, कायर का नहीं काम!

—निर्मलचन्द्र

प्रदेशदान का लक्ष्य और अस्थिर राजनीतिक संदर्भ

आखिर, यह प्रदेशदान क्यों ? ग्रामदान हुआ, ग्रामदान से आगे बढ़े तो प्रखण्डदान हुआ, जिलादान हुआ, अब बात होने लगी कि प्रदेशदान हो, क्यों ?

जयप्रकाश नारायण

आन्दोलन के विकास के साथ-साथ यह अनुभव आता गया कि आज जिस प्रकार की हमारी राज्य-व्यवस्था है, उसकी दो इकाइयाँ हैं—एक तो राष्ट्रीय इकाई, जिसमें संसद और राष्ट्रीय मंत्रिमण्डल है, उसके साथ 'सुप्रीम कोर्ट' है, और उसके बाद प्रादेशिक इकाई है।

राज्य की इकाई प्रदेश तक आकर रुक जाती है। और अनुभव आता है कि यह जो शासन की इकाई है, राज्य की इकाई है, इस पर आन्दोलन का प्रभाव नहीं पड़ता है, इसका परिवर्तन नहीं होता है, तो फिर सर्वोदय समाज की रचना की जो कल्पना है वह साकार नहीं हो सकती। एक गाँव में जितना करना चाहें करें, थोड़ा-बहुत उसका दर्शन हो सकता है, वह भी परिभाषा से हो, लेकिन वह अपूर्ण है। एक गाँव में, या सौ-दो-सौ गाँवों में बहुत परिश्रम करके कुछ नया कर भी लिया गया और ऐसा खयाल हुआ कि यह कुछ नया हो गया तो दूसरे गाँव भी नकल करेंगे, उनके ऊपर असर हो जायगा, ऐसा होता नहीं है। और, यह हजारों बरसों का इतिहास है कि जो 'आइडियल कालोनीज' स्वप्नद्रष्टाओं ने अपने-अपने स्वप्न के अनुसार समय-समय पर बसायीं और आज भी ऐसी 'कालोनीज' हैं यूरोप-अमेरिका में, उनसे पूरा समाज नहीं बदला।

प्रशासनिक इकाई पर विचार का प्रभाव जरूरी

इसलिए जब तक शासन की इकाई है, तब तक उसके ऊपर अगर विचार का प्रभाव नहीं होता है, उसके जो प्रतिनिधि चुनकर आते हैं वे सब या अधिकांश उस विचार के नहीं होते हैं तो जिस तरफ हम बढ़ना चाहते हैं, वह नहीं पाते। इसलिए प्रदेशदान हमारा लक्ष्य बना है। अब हर प्रदेश का दान हो जायगा तो भारत में बाकी क्या रहेगा ? प्रदेशों को छोड़कर तो भारत है नहीं! इस दान का मतलब क्या है ? यह तो एक प्रकार के जीवन-दर्शन का प्रतीकात्मक नाम है। गाँव का जीवन हो, जिले का हो या प्रदेश का हो, जिस जीवन में पारस्परिकता हो, परस्परावलम्बन हो, एक दूसरे के लिए त्याग और बलिदान की भावना हो, सहकारी वृत्ति हो, एक-दूसरे की मदद करके जीने की तैयारी हो, ऐसी समाज-रचना का संकेत है इस 'दान' में।

यह बात अब बिलकुल स्पष्ट है कि वर्तमान सारी राजनीति और अर्थनीति का परिवर्तन होना चाहिए। यह कैसे होगा, जब तक कि यह राज्य की इकाई अपने हाथ में नहीं आती है ? प्रदेशदान के बिना हम अपने काम में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। न तो देश में प्रगति हो सकती है, न समाज में संतुलन कायम हो सकता है।

अस्थिरता की राजनीति और मध्यावधि चुनाव

सन् १९६७ के चुनाव ने भारत की राजनीति के स्वरूप को बिलकुल बदल दिया है। हुकूमतें जल्दी-जल्दी बदलने लगी हैं। इसके लिए तरह-तरह के जोड़-तोड़ किये जाते हैं। अब बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब, पश्चिम बंगाल में मध्यावधि चुनाव होने जा रहे हैं। मध्यावधि चुनाव के बाद क्या होगा, यह सबके सामने प्रश्नचिन्ह है। कोई नहीं कह सकता है कि क्या होगा; फिर कोई ऐसा शासन कायम होगा, जो पाँच वर्ष के लिए स्थिर रह सकेगा या नहीं। इन्दिराजी कहती हैं—मैं कांग्रेस के खिलाफ बात नहीं कर रहा हूँ, यह केवल एक राजनीतिक विश्लेषण है—कि देश में स्थायित्व हो, इसकी गारन्टी सिर्फ एक है—कांग्रेस। लेकिन क्या यह सही रह गया है ? सन् १९६७ के चुनाव के बाद भारत के सबसे बड़े प्रदेश—उत्तर प्रदेश में जो स्वयं इन्दिराजी का प्रदेश है, चन्द्रभानु गुप्त मुख्यमंत्री हुए। लेकिन क्या स्थिर रह सके ? वहाँ '६७ के बाद स्थायी शासन रह सका ? क्या कांग्रेस यह गारण्टी कर सकेगी कि उत्तर प्रदेश में फिर गड़बड़ी नहीं होगी ? मध्यावधि चुनाव हो गया हरियाणा में, वहाँ डाँवाडोल परिस्थिति कायम है। आयाराम-गयाराम का खेल वहीं से शुरू हुआ था, इस वक्त भी उसका दर्शन आपको मिल रहा है। भगवतदयाल शर्मा ने कहा कि हमारे साथ इतने लोग हैं, लेकिन दूसरे दिन हुआ कि नहीं, कुछ चले गये ! यह भी एक ढंग निकल गया। कोई चुनौती देता है कि बुलाइए विधान सभा को, उसमें तय कर लीजिए, तो विधानसभा नहीं बुलायेंगे। अब इसके बारे में कुछ सोचना तो चाहिए जो विद्वान लोग हैं उनको। पश्चिम बंगाल में १८ दिन रह गये थे सिर्फ उस विधानसभा के। यद्यपि मैं अजय बाबू की मिनिस्टरी का बिलकुल ही प्रशंसक नहीं हूँ, बहुत खराब मिनिस्टरी रही उनकी, ऐसा मैं मानता हूँ, लेकिन लोकतंत्र तो था ! उनको 'डिसमिस' कर दिया गया।

देश में बहुत सी पार्टियाँ हैं, और इन पार्टियों के होने का एकमात्र आधार वैचारिक है, ऐसा माना जाता है। भिन्न-भिन्न विचार-धाराएँ हैं, भिन्न भिन्न हित हैं। इन हितों और विचारों के आधार पर भिन्न-भिन्न पार्टियाँ बनी हैं। लेकिन हमने तो देखा कि मंत्रिमण्डल बनाने के लिए एक तरफ साम्यवादी पार्टी और दूसरी तरफ स्वतंत्र पार्टी और जनसंघ का गठबन्धन हो गया। विचारधाराओं में इतना अन्तर जिसका कोई हिसाब नहीं, लेकिन इनकी मिलीजुली सरकार बन गयी, क्या अर्थ है इसका ? आज हम अमुक पार्टी के टिकट पर चुने गये और वहाँ जाकर कुर्सी के लिए इधर से उधर चले गये ! तो इन विचारधाराओं का, रीति-नीति का, इन राजनीतिक दलों का कोई अर्थ नहीं रहा, कोई मतलब नहीं रहा। यह एक खिलवाड़ हो रहा है अपने देश की जनता के भाग्य के साथ। अगर ये उलट-फेर बराबर होते रहेंगे, तो क्या हालत होगी ?

तानाशाही का विकल्प एक भयंकर भ्रमजाल

ऐसी हालत में हमें एक ही विकल्प नजर आता है, सर्वोदय के लोगों को तो नहीं, लेकिन अधिकांश पढ़े-लिखे लोगों को, कि लोकतंत्र तो विफल हो गया, अब तानाशाही चाहिए! तानाशाह का चुनाव तो दुनिया में कहीं हुआ नहीं, किसीको 'डिक्टेटर' होना होगा, तो होगा। लेकिन यह एक भ्रम है, जिसे दूर करना चाहता हूँ। जहाँ तानाशाही हो जाती है, वहाँ नक्शा बिलकुल बदल जाता है, दंगा-फसाद बिलकुल नहीं होता है, निर्माण का काम बड़ी तेजी के साथ चलता है, ऐसी बात नहीं है। चीन में आप देख रहे हैं कि दंगा-फसाद हो रहा है, पाकिस्तान में हो रहा है। इराक की बात लीजिए। बादशाह को गद्दी से उतारा गया, उनकी लाश बगदाद में घसीटी गयी। उसके बाद जनरल कासिम हुए वहाँ के तानाशाह। अब कासिम साहब की आर्मी में विद्रोह हुआ, उनकी जगह पर आरिफ साहब हुए, वह भी सेना के। आरिफ साहब की हवाई जहाज की दुर्घटना में मृत्यु हो गयी तो अब उनके छोटे भाई वहाँ राष्ट्रपति बने, 'डिक्टेटर' बने। उनका क्या हाल है? समस्याएँ हल हुईं क्या वहाँ की? नेविन साहब ने बर्मा में क्या कर लिया? क्या बर्मा में बहुत भारी प्रगति हो गयी? वहाँ जो गड़बड़ी है उसको दबा दिया गया है, लेकिन पहाड़ों में विद्रोह फैला हुआ है। चीनियों के साथ वहाँ के भी लोगों ने संपर्क कर रखा है। सुकर्णो से बड़ा डिक्टेटर एशिया में कौन होगा? घाना के एन्क्रूमा से बड़ा कौन होगा? आर्थिक दुर्दशा ऐसी हो गयी इण्डोनेशिया की कि सारी आर्थिक रचना ही टूट गयी, डिक्टेटर सुकर्णो साहब ने ऐसी कुशलता से काम किया था। वास्तव में तानाशाही एक भयंकर भ्रम है।

एक ही वैकल्पिक शक्ति : जनता की

तो फिर इसका विकल्प क्या है? जनता ही इसका विकल्प है। जनता की शक्ति के अलावा और कोई शक्ति है नहीं। वह शक्ति नीचे से प्रकट करनी है। कैसे करना है? मान लीजिए कि प्रदेशदान हो गया २ अक्तूबर '६९ तक। उसके बाद दो-चार साल लगा देंगे इसको पुष्ट करने में, गाँव-गाँव में ग्रामसभा का निर्माण करने में। ग्रामसभा का काम शुरू हो, गाँव के लोग बैठकर विचार करें, ग्राम-कोष बने, सर्व-सम्मति से या आम राय से उनके निर्णय होने लगें, जो झगड़े हों, उनको शांति से निपटाया जाय, और इस प्रकार नीचे का जीवन कुछ जागृत हो, सुव्यवस्थित हो। तब फिर ग्रामसभाओं के आधार पर, पार्टियों के आधार पर नहीं, इसी संविधान के अन्तर्गत एक स्थायी राज्य की, प्रशासन की स्थापना हो सकती है।

स्वराज्य हुए २०-२१ वर्ष हो गये। अब और २१ वर्ष तो हरगिज नहीं लगने चाहिए, नीचे से इस शक्ति का निर्माण करने में। फिर राजनीतिक दलों का भी परिवर्तन होगा। आज हम उसकी कल्पना नहीं कर सकते कि किस प्रकार का परिवर्तन होगा, उनकी क्या आवश्यकता रहेगी, किस हद तक वह सेवा के क्षेत्र में काम कर सकेंगे। प्रतिनिधियों को खड़ा करना, और प्रतिनिधियों को चुनकर भेजना, यह जो मुख्य काम है राजनीतिक दलों का, यह काम उनका खतम हो जायेगा। ग्रामसभाओं के प्रतिनिधि होंगे, जिनका काम होगा प्रतिनिधि खड़ा करने का, प्रतिनिधि के चुनाव का। राजनीतिक अस्थिरता की परिस्थिति में सर्वोदय-आन्दोलन के द्वारा—चूँकि यह बुनियाद का आन्दोलन है, गाँव-गाँव के अन्दर शक्ति पैदा करनेवाला, संगठन खड़ा करनेवाला आन्दोलन है इस कारण से—स्थिरता आने की सम्भावना है। और, शायद उतने बरसों में नहीं, जितने बरस स्वराज्य के बाद बीत चुके हैं। उससे आधे या चौथाई काल में भी इसके सफल होने की सम्भावना है। यह मुट्ठी भर सर्वोदय-कार्यकर्ताओं से ही नहीं होगा, इसके लिए गाँव-गाँव से नया नेतृत्व पैदा करना होगा। शिक्षकों, नागरिकों सभी राजनीतिक पक्षों में से बहुत से लोग जो इस विचार को माननेवाले होंगे, उन सबकी सम्मिलित चेष्टा और शक्ति से यह होगा।

हमें अपनी शक्ति के लिए, अपनी सत्ता के लिए, अपनी पार्टी के लिए नहीं, जनता के राज्य के लिए अपने को पीछे रखकर, अपने को भूलकर इस कार्यक्रम में लगना होगा।

(राजस्थान सर्वोदय-सम्मेलन के अवसर पर ३० दिसम्बर '६८ को दिये भाषण से)

★

मेरा कलमा… मेरी गायत्री

"सारा भारत पुकारकर कहे कि 'गांधी जो कहता है वह निकम्मी बात है, मियाँ-महादेव की दोस्ती नहीं हो सकती,' तो भी मैं कहूँगा कि यह झूठ है, मैं सच्चा हूँ, हिन्दू-मुसलमान जरूर एक हो सकेंगे। यदि खुदा, ईश्वर, सत्य जैसी एक भी चीज हो तो मैं कहता हूँ कि हिन्दू-मुस्लिम एकता भी सत्य वस्तु है। खादी को भारत जला डाले और कहे कि 'इसमें कुछ नहीं' तो भी मैं कहूँगा कि चरखे में ही उद्धार है, भारत पागल हो गया है। और इसी प्रकार अनेक हिन्दू मेरे पास आकर बड़े बड़े शास्त्र और स्मृतियाँ लाकर उद्धरण देंगे और कहेंगे कि सनातन धर्म में अस्पृश्यता के लिए स्थान है तो भी मैं उनसे कहूँगा कि तुम्हारी स्मृति, तुम्हारे शास्त्र झूठे हैं और मैं सच्चा हूँ। इस प्रकार मेरा कलमा, मेरी गायत्री, जिसे मैं मानता हूँ, वह सुनाकर मेरा सत्याग्रही होने का दावा सुनाऊँगा कि जिससे ईश्वर कहेगा कि मेरे इस बन्दे ने जो सुनाने की बात थी वह सच सच सुना दी है।

—मो० क० गांधी

दिनांक : २१-१२-'२६ ['महादेव भाई की डायरी' भाग–११ पृष्ठ २३२]

रचना के काम असहयोग की भूमिका

"हमारे देश का सत्तारूढ दल रचना के कामों में पूरी तरह सक्रिय नहीं रहा। वह अधूरे मन से इधर लगा है, किन्हीं क्षेत्रों में सत्तारूढ दल के हितैषी व्यक्ति दोष-निवारण के लिए उठे भी, तो इस दल ने उन्हें अपना पूर्ण सहयोग नहीं दिया। उदाहरण के तौर पर आचार्य विनोबा भावे ने भूदान-आन्दोलन का काम अपने हाथों में लिया। पिछले अठारह वर्षों से उनकी यह सतत चेष्टा है कि गांवों में भूमिहीन तथा छोटे किसानों को राहत मिल जाय, किन्तु सत्तारूढ दल उनको तथा उनके अनुवर्तियों को अभी तक असफल ही बनाये हुए है। यदि वह इस दिशा में सहयोग करने के लिए अग्रसर हो जाता तो एक क्षेत्र में शांत वातावरण में रचनात्मक बुद्धि का प्रताप फैल सकता। आज गांव उपेक्षित हैं। राजनीतिक दलों और विशेषकर सर्वाधिक समर्थ सत्तारूढ दल के नेता ग्रामीण जनता से एकदम अलग-अलग हैं। उन्हें न अपने लिए उधर दत्तचित्त होने की आवश्यकता महसूस होती है और न विनोबा और जय-प्रकाश नारायण जैसे लोगों के लिए। ग्रामीण क्षेत्रों में जहां-तहां होनेवाले विद्रोह भी उनकी 'योग (भोग) निद्रा' को भंग नहीं कर पा रहे। इसलिए गंभीरता और दायित्व उनसे छुट्टी लेकर कहीं चले-से गये हैं।"

(उपर्युक्त बात लिखी है श्री हरिदत्त शर्मा ने 'बदलती अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों में भारत की मूलभूत आवश्यकता और उनका अटिल समाधान' नामक लेख में, जो ३० दिसम्बर '६८ के 'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित हुआ है।)

पख्तूनिस्तान की मांग का समर्थन

"श्री जयप्रकाश नारायण का यह कहना गलत नहीं कि यदि भारत-सरकार पख्तूनि-स्तान की मांग का समर्थन करेगी तो वह उचित ही कहा जायगा। यह ठीक है कि यह एक विदेशी मामला है और भारत सरकार उसमें हस्तक्षेप करके पाकिस्तान से अपने सम्बन्ध बिगाड़ना न चाहे, पर पहली बात तो यह है कि "विभाजन से पूर्व जब इस प्रकार का एक समझौता नेताओं के बीच हुआ था कि उप-महाद्वीप के विभिन्न जातियों के पृथक् अस्तित्व को खत्म नहीं किया जायेगा तो पख्तूनों को पख्तूनिस्तान क्यों नहीं मिलना चाहिए? विभाजन से पूर्व यह भारत का ही अंग था, इसलिए भारत सरकार का हस्तक्षेप अथवा पख्तूनों की मांग का समर्थन किसी हद तक जायज ही कहा जा सकता है।"*

उर्दू नागरी लिपि में

"सर्वोदय-नेता आचार्य विनोबा भावे ने जो यह कहा है कि यदि उर्दू नागरी लिपि में लिखी जाय तभी भारत में पनपेगी और राष्ट्रीय जीवन में यह महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकेगी, उससे बड़ा सत्य और क्या हो सकता है!"*

* 'नवभारत टाइम्स' । ३०-१२-'६८ के अंक के 'विचार-प्रवाह' स्तम्भ से।

राजनीतिक आवाहन

"पूना में अन्तरभारती के मंच से श्री गजेन्द्रगडकर ने आवाहन किया है कि जिन लोगों ने देश की आजादी की लड़ाई में क्रान्तिकारियों के रूप में काम किया है, ऐसे उच्च शिक्षित, सुविचारक और सामाजिक चेतना से सम्पन्न राजनीतिक नेताओं को सक्रिय राजनीति से अवकाश ग्रहण न करके फिर से मैदान में आ जाना चाहिए। उनके मतानुसार जबतक ऐसा नहीं होगा, यह देश जनतान्त्रिक सामाजिक एवं प्रशासनिक खतरों के बीच से सुगमता से नहीं गुजर सकता। उन्होंने सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, पी० एच० पटवर्धन और अच्युत पटवर्धन को आवाहन किया कि वे फिर से राष्ट्रीय मंच पर उतरें और राजनीति के भद्दे प्रदर्शन को रोकने में सहायक हों। जब कभी अर्द्धराजनीतिक मंच पर गंभीर चर्चा होती है तो बार-बार यह बात दोहरायी जाती है कि श्री जयप्रकाश नारायण पुनः राजनीति में प्रवेश करें। इस बार यह नाम अकेला नहीं है, वरन् स्वाधीनता-संग्राम के दो और प्रमुख सेनानियों के नाम उसके साथ जुड़े हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे बीच इस समय ऐसे महापुरुष हैं, जिन्होंने भारतमाता की मुक्ति के लिए अपना सर्वस्व-बलिदान कर देने में कभी हिचक नहीं दिखाई। यदि वे पुनः राजनीति में प्रवेश करें, तो उनकी बात सुनी जायेगी। परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि यदि आजादी के बाद की राजनीति इतनी सहज सुगम होती तो स्वयं श्री जयप्रकाश नारायण को विरक्त होने की आवश्यकता न होती। हालांकि राजनीति से बाहर रहकर भी वे कम उपयोगी कार्य नहीं कर रहे हैं। तथापि देश को उनसे जो अपेक्षाएँ थीं, वे पूरी नहीं हुईं। ईमानदार और सत्यनिष्ठ राजनीतिक कार्यकर्ताओं का जहाँ तक ताल्लुक है, अनेक ऐसे समकालीन राजनीतिक नेता हैं, जिनकी बुलंदी किसी राजनीतिक दल की सीमा से पार निकल जाती है। यदि जनतान्त्रिक सामाजिक पद्धति में अन्यान्य राजनीतिक दलों द्वारा जनतंत्र को मजबूत बनाना है, तो यह भी जरूरी है कि वक्त की जरूरत के मुताबिक कुछ नेता अपने-आप को ढालें, अन्यथा उनकी स्थिति वही हो जाती है, जो तालाब से बाहर निकाली हुई सीपी की; यदि ये तीनों नेता फिर से राजनीति में प्रवेश करें तो निश्चय ही अपवाद साबित होंगे। उनके इस उदाहरण से अन्य नेताओं को भी फिर से राजनीति में प्रवेश करने का प्रोत्साहन मिलेगा।"

—'नवभारत टाइम्स' : ३१ दिसम्बर, '६८

कृषि-क्रान्ति

"इस विषय में दो रायें नहीं हो सकतीं कि इस देश का उद्धार कृषि-क्रान्ति से ही हो सकता है, जिस देश की अस्सी प्रतिशत जनता गाँवों में रहती हो और जिसके अर्थचक्र की धुरी खेती हो, उसमें इसके सिवा और कोई रास्ता हो भी क्या सकता है? पर क्रान्ति की बात करना जितना सरल है, उसे अमल में लाना उतना ही मुश्किल है। जितने भी राज-नीतिक दल हैं, वे सब इस बात पर जोर देते हैं। पर उसके स्वरूप और साधनों के विषय में कोई स्पष्ट तस्वीर उनके सामने नहीं है। कृषि-क्रान्ति के नारे के पीछे उनका मुख्य उद्देश्य वोट बटोरना होता है, पर इस तरह

तो देश में कृषि के क्षेत्र में क्रान्ति नहीं आ सकती।

सब सुधार-कानूनों और कृषि-सम्बन्धी नयी व्यवस्थाओं के बावजूद आम किसान की हालत बहुत अधिक अच्छी नहीं हुई है। भूमि पर बहुत भार है। भूमिधरों की संख्या बढ़ी अवश्य है और वे पहले की अपेक्षा समृद्ध भी हुए हैं, परन्तु भूमिहीन किसानों की संख्या उनसे कहीं अधिक है और वे मुश्किल से पेट भर जुटा पाते हैं। उत्पादन को ऐसी गति नहीं मिल सकी है कि देश का अर्थचक्र आत्म-निर्भरता की दिशा में बढ़ सके। खाद्यान्न के क्षेत्र में विदेशों का मुँह अब भी जोहना पड़ रहा है। इस स्थिति का एक अन्य परिणाम यह हो रहा है कि आम आदमी का जीवन अधिकाधिक महँगा होता जा रहा है और सरकार को विकास के लिए आवश्यक धन नहीं मिल पा रहा। इसका एक कारण यह हो सकता है कि कृषि के विकास के लिए जितने साधनों की आवश्यकता है, वे समय पर नहीं जुट पा रहे हैं। परन्तु उसके मार्ग में एक और भी रोड़ा है, जिसकी ओर श्री जयप्रकाश ने ध्यान खींचा है।

यह सही है कि जिस प्रकार का लोकतंत्र हमारे देश में चल रहा है, उसमें यदि सत्ता का विकेन्द्रीकरण ग्राम-स्तर तक कर दिया गया तो उससे अव्यवस्था का भय हो सकता है, परन्तु इसके साथ यह भी सत्य है कि जब तक हर किसान अपनी उन्नति के विषय में आश्वस्त नहीं होगा और यह अनुभव नहीं करेगा कि वह अपने भाग्य और उसे पूरा करनेवाले साधनों का स्वामी स्वयं है, तबतक कृषि-क्षेत्र में क्रान्ति नहीं हो सकती। क्रान्ति के लिए भौतिक साधन और कानून तो आवश्यक हैं ही, किन्तु मानव की इच्छा और प्रयत्न का उससे भी अधिक महत्त्व है। वही उन साधनों में जीवन भर सकती है और वे तबतक जागृत नहीं हो सकते जब तक सर्वोदय की भावना और प्रेरणा उसके पीछे न हो। जिन राजनीतिक दलों को केवल शासनसूत्र सम्भालने की चिन्ता है वह उसे जागृत नहीं कर सकते।

इस प्रसंग में श्री जयप्रकाश नारायण ने जो चेतावनी दी है वह भी उपेक्षणीय नहीं है, वे हिंसा के हामी नहीं हैं, परन्तु उनका यह अनुमान गलत नहीं कहा जा सकता कि यदि कृषि क्रान्ति के लिए सर्वोदय का रास्ता नहीं पकड़ा गया—भूमिहीनों को भूमि का स्वामी और कृषि-साधनों पर किसान का नियंत्रण अनुभव नहीं होने दिया गया, तो लोग हिंसात्मक तरीकों पर उतर सकते हैं। यदि ऐसा होता है तो देश में व्यवस्था की दृष्टि से यह बहुत खतरनाक होगा। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि जहाँ सरकार साधनों की व्यवस्था कर रही है वहाँ कुछ ऐसा भी करे, जिससे किसान इस क्रान्ति के लिए अधिक से अधिक योग दे सकें।"

—'नवभारत टाइम्स' के १ जनवरी '६१ अंक में प्रकाशित सम्पादकीय नोट से।

जनमत के जमाने में

आज हिन्दुस्तान की जो ४० करोड़ जनता है, उसके जनमत को साथ लेने के लिए तीन शक्तियाँ काम कर रही हैं—अमेरिका, रूस और चीन की। इन तीनों शक्तियों के पास ऐटम बम, हाइड्रोजन बम आदि सारी शक्तियाँ हैं, लेकिन वे जनमत को नहीं पकड़ पा रही हैं। हमारे देश में अकाल पड़ा तो अमेरिका ने करोड़ों रुपये की मदद दी, वह जनमत को पकड़ने के लिए ही। अमेरिका अच्छी तरह जानता है कि हिन्दुस्तान दुनिया का सबसे बड़ा प्रजा-तांत्रिक देश है। अगर हिन्दुस्तान में प्रजातन्त्र नहीं रहेगा तो अमेरिका का प्रजातंत्र भी नहीं रहेगा। अमेरिका सोचता है कि यहाँ जब प्रजातन्त्र रहेगा, तो हिन्दुस्तान की जनता का जनमत अमेरिका की तरफ रहेगा। रूस और चीन, दोनों कम्युनिस्ट देश होते हुए भी एक-दूसरे के शत्रु हैं। तो रूस अपनी 'स्फियरऑफ इन्फ्लुएन्स' के बारे में सोचता है, और वह भी हिन्दुस्तान का जनमत पकड़ना चाहता है। चीन कहता है कि अमेरिका, रूस क्या करेंगे? हिन्दुस्तान की ४० करोड़ जनता हमारी तरफ हो जायेगी तो हम सारी दुनिया को फतह कर देंगे। इस तरह से हिन्दुस्तान का जनमत अपनी तरफ लेने के लिए सब प्रयत्नशील हैं।

रूस ने यहाँ भारत में बड़े-बड़े कारखाने खोले हैं : भिलाई में, ऋषिकेश में, हरिद्वार में। इसके साथ-साथ 'सोवियत भूमि' आदि पत्रिकाएँ चलती हैं, 'हिन्दी-रूसी भाई-भाई' के नारे लगते हैं। ऐसी स्थिति में हिन्दुस्तान का अपना कोई विचार नहीं होगा, तो दूसरे देशों के विचारों का हम शिकार बनेंगे और कौन जनमत को पकड़ सकेगा, कहना मुश्किल है।

जनमत को वही रख सकेगा, जो दलगत राजनीति से ऊपर हो। 'पार्ट' कहते हैं हिस्से को, और 'पार्टी' कहते हैं हिस्सेदार को। आज जितनी पार्टियाँ हैं, सब जनमत की हिस्सेदार हैं, तो एकमत का राज्य कैसे हो सकता है? एक मत का राज्य तो तभी होगा, जब दलगत राजनीति से ऊपर उठकर जनमत बनाया जा सकेगा।

तो, हिन्दुस्तान की जो परिस्थिति है, हम उसको कब बदल सकेंगे? जब हिन्दुस्तान में एकता बनेगी और विभाजित करनेवाली चेष्टाएँ बन्द की जायेंगी तब। हिन्दुस्तान की एकता सबल होगी तो सारी शक्तियाँ—एटम बम, हाइड्रोजन बम भी पड़ी रह जायेंगी, हिन्दुस्तान का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा। लेकिन हिन्दुस्तान के जनमत को विभाजित करने में लोगों को सफलता मिल गयी तो हिन्दुस्तान को आसानी से बरबाद किया जा सकता है।

गांधीजी के हाथ में क्या पुलिस थी? नहीं, उनके साथ में जनमत था। देश की सबसे बड़ी शक्ति है, "पावर आफ दि पीपुल"। इसके लिए एकता और जन-जागृति चाहिए। इसीलिए हम गाँव-गाँव जाते हैं। लोगों से, चेतना पैदा करने में और एक होकर अपनी समस्याओं को अपनी शक्ति से हल करने की बात कहते हैं। गाँव-गाँव सचेत होंगे तो सारे समाज का स्वरूप बदल जायेगा। हिन्दुस्तान दुनिया को नयी दिशा दे सकेगा।

—डा० दयानिधि पटनायक

भाग्य की विडम्बना

स्टीफन ज्विग के दो प्रसिद्ध उपन्यासों का हिन्दी रूपान्तर।

पृष्ठ-संख्या : १३२, मूल्य : २'७५

विश्वप्रसिद्ध लेखक स्टीफन ज्विग के तीन उपन्यास सस्ता साहित्य मण्डल की ओर से पहले भी प्रकाशित हो चुके हैं। प्रस्तुत पुस्तक उसी प्रयास की चौथी किश्त हैं, जिसमें लेखक के दो लघु उपन्यास संकलित हैं।

हिन्दी साहित्य को अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की कृतियों से समृद्ध करने का यह प्रयास बिना हिचक स्तुति का पात्र तो है ही, विषयों और ग्रन्थों के चयन में जिस स्तर का निर्वाह आज के बाजारू वातावरण में किया गया है, वह तो निश्चय ही सत्साहित्य के महत्त्व को समझनेवाले हर उद्बुद्ध व्यक्ति के सहकार का हकदार भी है।

प्रस्तुत संकलन—*भाग्य की विडम्बना और अन्तर्वेदना*—में, नारी-जीवन के भावमय आरोह-अवरोह को सूक्ष्मता और संवेदनशीलता के साथ चित्रित करने की जो विलक्षण क्षमता लेखक की है, हिन्दी रूपान्तर करने में रूपान्तरकार आदर्शकुमारीजी ने उसे पूर्ण सुरक्षित रखने की सफल चेष्टा की है।

कुण्ठाग्रस्त तनावपूर्ण सम्बन्धों की घुटन में पल रहे वर्तमान स्त्री-पुरुष-सम्बन्धों को करीब से जानने, परखने और समन्वित जीवन के नये आयाम खोजने में प्रस्तुत संकलन सहायक होगा, ऐसी आशा है।

अन्तरिक्ष (गद्य काव्य)

रचनाकार : ब्रह्मदेव

पृष्ठ-संख्या : ४०, मूल्य : ३'००

विचारवाद और यथार्थवाद की सीमाओं से आज मनुष्य परिचित हो गया है। इस युग के संघर्ष और द्वन्द्व मनुष्य की सीमाओं में घिर जाने की ही निष्पत्तियाँ हैं। इसकी भयकरता का एहसास अब मानव की अन्तर्चेतना को होने लगा है। वह ढूँढ़ रहा है जीवन का एक तीसरा मार्ग, जो मनुष्य को मनुष्य के साथ असीमता के आँगन तक पहुँचा दे। न तो आज के धर्मों से वह सम्भव हो पा रहा है, और न विज्ञान की चाँद तक पहुँचा देनेवाली क्षमता से।

गद्य काव्य की अन्तरस्पर्शी शैली में रचनाकार ब्रह्मदेव ने शायद इसी प्रेरणा से अन्तरिक्ष की उड़ान लगायी है। 'अपोलो-८' की अन्तरिक्ष यात्रा और एक कवि-हृदय की अन्तरिक्ष यात्रा में अन्तर महान् है; लेकिन आन्तरिक विकलता और अन्वेषी चेतना के स्तर पर दोनों को एक परिप्रेक्ष्य में रखा जा सकता है। सम्भावना तो है कि इससे प्रेरणा पाकर मनुष्य अपनी सीमाओं को तोड़कर अनुभूति के आन्तरिक्ष में जा पहुँचे। रचनाकार इस युग के मन्थन से प्रकट हुए गरल के संहारक प्रभावों से धरती को मुक्त करने के लिए हो विषपायी शिव का स्मरण करते हुए पुस्तक का अन्त करता है :

"ओ शिव, ओ महाकाल, तुमने अपने कण्ठ का वह गरल इन्हें (पृथ्वी-पुत्रों को) क्यों सौंप दिया ? ओ मृत्युंजय, आज इस भय-विकम्पित धरती के लिए अमृत दो—अपना संजीवनास्त्र दो !"

रचनाकार—जो एक सफल चित्रकार भी है—की तूलिका से प्रकट हुए भावचित्रों को पुस्तक में विषय के साथ जोड़ देने से सौंदर्य में सुगन्ध भी जुड़ गयी है।

जागे तभी सवेरा (उपन्यास)

लेखक : जय भिक्खु

पृष्ठ-संख्या : २५७ मूल्य : ५'००

प्रस्तुत उपन्यास गुजराती के प्रसिद्ध लेखक श्री जय भिक्खु के *'प्रेमनुं मंदिर'* का हिन्दी रूपान्तर है।

मत्स्य-न्याय की निस्सारता को दिखाने के लिए लेखक ने इतिहास-प्रसिद्ध पात्र एवं कथानकों का सहारा लिया है। ऐसे कथानक प्राचीन काल के जैन, बौद्ध और ब्राह्मण साहित्य में विद्यमान हैं।

यों ऊपर से यह उपन्यास पौराणिक है, किन्तु इसकी अन्तरधारा में अर्वाचीन युग की भी झलक मिलती है। अवन्ती, चंपा और विदेह के स्थान पर जर्मनी, इंग्लैण्ड एवं रूस रखे जा सकते हैं।

उपन्यास पढ़ते समय ऐसा लगता है, जैसे सर्वत्र मत्स्य न्याय व्याप्त है, लेकिन बीच-बीच में करुणा के दीपक भी प्रज्वलित होते रहते हैं। पाठक मत्स्य-न्याय की शक्तियों से निराश होने के बदले आशावान बनकर पुरुषार्थी होने की प्रेरणा पाता है।

नयी राह (नाटक)

लेखक : हरिकृष्ण 'प्रेमी'

पृष्ठ-संख्या : १०८, मूल्य : १'५०

प्रेमीजी जो विचार प्रस्तुत करना चाहते हैं उसे वे नाटक की शैली में खूबी के साथ रख सके हैं। *'कालेजों से निकलकर लाखों की संख्या में युवक गाँवों की सेवा में क्यों न निकल पड़ें और वहाँ अपनी जीविका के लिए उत्पादन करते हुए गाँव की सेवा करें।'* एक युवक की इस आकांक्षा को अच्छे ढंग से व्यक्त किया गया है। समाज-परिवर्तन में लगे हर कार्यकर्ता को तथा युवकों और युवतियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

दिव्य जीवन की झाँकियाँ

लेखक : यशपाल जैन

पृष्ठ-संख्या : १३१, मूल्य : १.००

इस पुस्तक के तीन खण्ड किये गये हैं। पहले खण्ड में ४४ उद्बोधक प्रसंग हैं। दूसरे खण्ड में १० पावन स्मृतियाँ हैं और तीसरे में २० प्रेरक घटनाएँ हैं। मनुष्य-जीवन से सम्बन्धित एक-एक प्रसंग अत्यन्त रोचक है और उनका अप्रत्यक्ष रूप से मन पर असर पड़ेगा ही। नेताओं की कुछ स्मृतियाँ तथा लेखक की अपनी यात्रा की घटनाएँ भी उदारता, नम्रता, और समग्रता की शिक्षा देती हैं।

गांधीजी का जीवन-प्रभात

पृष्ठ-संख्या : ७२, मूल्य : १.००

यह छोटी-सी पुस्तक गांधीजी के बचपन से लेकर अफ्रीका में एक साल के जीवन पर प्रकाश डालती है। इसमें गांधीजी की आत्मकथा से शुरू के प्रसंग संग्रह किये गये हैं। कुछ गांधीजी के रेखाचित्र हैं। पुस्तक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है। —प्रियम्बु

उक्त सभी पुस्तकों के प्रकाशक :

सस्ता साहित्य मण्डल,

कनाट सर्कस, नयी दिल्ली–१

स्वस्थ लोकतंत्र और शिष्ट चुनाव के लिए बिहार में मतदाता-शिक्षण अभियान

भारत के चार आम चुनावों ने दलगत राजनीति को ऊँचा उठाने के बदले सम्प्रदायवाद, जातिवाद एवं अन्य संकीर्ण विचारों को बढ़ावा देने के साथ ही किसी भी प्रकार मत खरीदने के कार्यक्रम को बढ़ावा दिया है। मतदाताओं से मत खरीदने के अतिरिक्त विधान-सभा एवं लोकसभा के सदस्यों के भी खरीद-बिक्री का कार्यक्रम तीव्रता से बढ़ रहा है। राजनीतिक अनैतिकता इतनी बढ़ गयी है कि उसके परिणामस्वरूप सन् १९६७ के आम चुनाव के बाद बिहार में राजनीतिक स्थिरता नाम की कोई चीज नहीं रह गयी।

लोकतंत्र के स्वस्थ विकास के लिए समान विचार के व्यक्तियों को मिलाकर राजनीतिक दल बनाया जाता है। राजनीतिक दल चुनाव घोषणा पत्र द्वारा राज्य के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं अन्य ढाँचे बनाने का आश्वासन आम जनता को देता है।

विकसित लोकतांत्रिक पद्धति में मतदाता अपनी पसन्द के राजनीतिक दल को, घोषित घोषणा-पत्र के कार्यान्वयन की आशा में मत देता है। लेकिन सन् १९६७ के आम चुनाव के परिणाम एवं विधायकों के आचरण ने मतदाताओं को राजनीतिक दल से ऊपर उठकर अच्छे प्रत्याशियों को मत देने के लिए मतदाता को बाध्य किया है।

बिहार में श्री जयप्रकाश नारायण के मार्गदर्शन में आगामी मध्यावधि चुनाव के अवसर पर तीन कार्य करने की योजना है। योजनानुसार मतदाताओं को दल के बंधन से मुक्त होकर अच्छे उम्मीदवार को मत देने के लिए व्यक्तिगत सम्पर्क, बैठक, आमसभा, चर्चा एवं प्रचार के अन्य माध्यमों से सलाह देने का कार्यक्रम है।

पटना नगर में पटना के प्रमुख नागरिकों की बैठक में मतदाता-सलाह समिति का गठन किया गया है तथा राज्य के सभी जिला सर्वोदय मंडलों से निवेदन किया गया है कि वे अपने जिले के प्रमुख नागरिकों की बैठक में जिला सलाहकार समिति का गठन कर लें।

राज्य के ७ जिलादानी जिले-सारण, चम्पारण, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, सहरसा, पूर्णिया एवं गया में चुनाव दिन ९ फरवरी '६९ तक सघन मतदाता-शिक्षण का कार्यक्रम बनाया गया है।

इसके लिए आचार्य राममूर्ति एवं बिहार ग्रामदान-प्राप्ति समिति के रामानन्दन सिंह के दौरे का व्यापक कार्यक्रम बनाया गया है। सारण, चम्पारण, मुजफ्फरपुर, सहरसा एवं पूर्णिया जिले के दौरे के अवसर पर आचार्य राममूर्ति एवं रामनन्दन सिंह ने मतदाताओं की सभा में अच्छे उम्मीदवार को मत देने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला। श्री राममूर्ति ने मतदाताओं को बताया कि इस मध्यावधि चुनाव में तो अच्छे उम्मीदवार को मत देने की सलाह है, लेकिन सन् १९७२ के चुनाव में मतदाताओं को अपने उम्मीदवार खड़े करने हैं।

अपना उम्मीदवार का अर्थ सर्वोदय-कार्यकर्ता नहीं होगा। सर्वोदय-कार्यकर्ता को तो स्वयं किसी भी हालत में खड़ा नहीं होना है।

पिछले चुनाव के अनुभव से स्पष्ट है कि चुनाव के अवसर पर प्रत्याशी एवं उनके दल के नेता एक-दूसरे के विरोध में तीखा प्रहार करते हैं, जिसके कारण हिंसात्मक मनोभावना को तो उत्तेजना मिलती ही है, साम्प्रदायिकता, जातीयता, प्रान्तीयता, एवं अन्य राष्ट्रविरोधी भावनाओं को भी बल मिलता है। तनाव, ईर्ष्या, द्वेष आदि के बढ़ाव के कारण हिंसात्मक विस्फोट की सम्भावना बढ़ती है, साथ ही अलग-अलग सभा करने से खर्च भी अलग-अलग होते हैं। सर्वोदय-आन्दोलन की ओर से एक ही मंच से दल के प्रत्याशियों एवं उनके नेताओं को बारी बारी से अपने विचार व्यक्त करने के लिए निवेदन करने की योजना है।

५ जनवरी १९६९ को मुजफ्फरपुर नगर-भवन के प्रांगण में जिला सर्वोदय-मंडल मुजफ्फरपुर के तत्त्वावधान में एक आम सभा का आयोजन किया गया, जिसमें नगर-क्षेत्र के उम्मीदवारों—कांग्रेस दल के श्री प्रह्लाद प्रसाद मलहोत्रा, ससोपा के श्री मोहनलाल गुप्त, जनसंघ के प्रो० श्री अखौरी राजेन्द्रप्रसाद, भारतीय क्रान्ति दल के श्री वैद्यनाथ प्रसाद वर्मा एवं रामराज्य परिषद के श्री जगन्नाथ प्रसाद—ने अपने विचार व्यक्त किये। प्रयास करने के बाद भी साम्यवादी दल के उम्मीदवार श्री रामदेव शर्मा उपस्थित न हो सके।

चुनाव-अभियान में एक ही मंच से विभिन्न प्रत्याशियों के बारी-बारी से भाषण कराने का यह आयोजन एक नया प्रयोग था इस कारण सभा में अपार जनसमूह उमड़ पड़ा था।

इसी प्रकार एक ही मंच से विभिन्न प्रत्याशियों के भाषणों का आयोजन जिला एवं क्षेत्र स्तर पर भी करने की योजना है।

बिहार के विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधियों की एक बैठक २३ दिसम्बर को श्री जयप्रकाश नारायण की अध्यक्षता में आयोजित की गयी थी। बैठक ने आम राय से आगामी मध्यावधि चुनाव के अवसर पर समसूत्री कार्यक्रम को कार्यान्वित करने का निर्णय किया है। इन निर्णयों को तोड़नेवाले दल एवं उनके प्रत्याशियों की जाँच करने के लिए एक निगरानी समिति का गठन करने की भी योजना है।

सर्वोदय-आन्दोलन का तीसरा कार्य चुनाव के अवसर पर तनाव रोकने, डंडे का भय एवं पैसे के लोभ द्वारा मत प्राप्त करने के प्रयास को रोकने का है।

सर्वोदय-कार्यकर्ताओं की शक्ति सीमित है, अवधि अल्प एवं कार्य व्यापक है। फिर भी यथाशक्ति प्रयास हो रहा है।

—विशेष प्रतिनिधि

मतदाता-शिक्षण के लिए पोस्टर मँगाइये !

सर्व सेवा संघ की चुनाव सम्बन्धी मतदाता शिक्षण योजना के अन्तर्गत रंगीन पोस्टर और फोल्डर तैयार हैं। जिन क्षेत्रों में मध्यावधि चुनाव के इस मौके पर मतदाता-शिक्षण अभियान चलाये जा रहे हैं, उन क्षेत्रों के साथी संचालक, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी–१ : के नाम पत्र लिखकर शीघ्रातिशीघ्र मँगा लें।

मुंगेर में मतदाता-शिक्षण अभियान

गत १२ जनवरी '६६ को भाई गोखले की अध्यक्षता में मुंगेर के प्रबुद्ध नागरिकों की बैठक मध्यावधि चुनाव में मतदाता-प्रशिक्षण के सम्बन्ध में हुई। आचार्य राममूर्ति भाई ने अपने भाषण में कहा कि राजनीति का जमाना लद चुका। इसे स्पष्ट करने के लिए मुंगेर में तर्क से अधिक बलवान सबूत यह है कि जिले के स्वतंत्रता-संग्राम के दो सेनानी श्री गिरिधर नारायण सिंह एवं कामरेड ब्रह्मदेव ने अपने विचार को रखते हुए स्पष्ट कहा कि अब राजनीति का जमाना नहीं रहा। मुंगेर जिले में कम लोगों को इनके समान राजनीति का दर्शन, ज्ञान एवं गहरा अनुभव होगा।

बैठक ने सर्वसम्मति से जिला मतदाता-प्रशिक्षण समिति का गठन किया एवं निश्चय किया कि जिले के प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र में एक ही मंच से क्षेत्र के सभी उम्मीदवारों के भाषण कराये जायँ, एवं प्रमुख स्थानों में घूम-घूमकर अपने विचार का प्रचार किया जाय। सभा का संयोजन श्री रामनारायण सिंह, संयोजक, जिला सर्वोदय मण्डल ने किया था।

चाकसू में राजस्थान ग्रामदान-अभियान प्रारम्भ

चाकसू : जनवरी '६६। चाकसू तहसील में गत ७ जनवरी से प्रखण्डदान का अभियान प्रारम्भ हो गया है। अभियान में २० कार्यकर्ता भाग ले रहे हैं। अभियान के प्रथम चरण में ग्रामदान के विचार का प्रचार तथा शिक्षकों, छात्रों, समाजसेवियों, नागरिकों, पंच-सरपंचों तथा पटवारियों से व तहसील के समाज-सेवी संगठनों से सम्पर्क किया जा रहा है। अभियान में २० कार्यकर्ता भाग ले रहे हैं।

सन् १९६९ गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष है !

गांधीजी ने कहा था :

"मेरा सर्वोच्च सम्मान जो मेरे मित्र कर सकते हैं, वह यही है कि मेरा वह कार्यक्रम वे अपने जीवन में उतारें, जिसके लिए मैं सदैव जिया हूँ या फिर यदि उन्हें उसमें विश्वास नहीं है तो मुझे उससे विमुख होने के लिए विवश करें।"

मानव-समाज के सामने, आज के संघर्षपूर्ण एवं हिंसामय वातावरण से मुक्ति पाने के लिए, गांधी-मार्ग ही आशा का एकमात्र मार्ग रह गया है।

गांधीजी की दृष्टि में :

(१) दुनिया के सब धर्म एक जगह पहुँचने के अलग-अलग रास्ते हैं।
(२) जाति और प्रान्त की दोहरी दीवार टूटनी चाहिए।
(३) अछूत प्रथा हिन्दू समाज का सबसे बड़ा कलंक है।
(४) यदि किसी व्यक्ति के पास, जितना उसे मिलना चाहिए उससे अधिक हो तो वह उसका संरक्षक या ट्रस्टी है।
(५) किसान का जीवन ही सच्चा जीवन है।
(६) स्वराज्य का अर्थ है अपने को काबू में रखना जानना।
(७) प्रत्येक को सन्तुलित भोजन, रहने का मकान और दवा-दारू की काफी मदद मिल जानी चाहिए, यह है आर्थिक समानता का चित्र।

पूज्य बापू की जीवन-दृष्टि में अपनी दृष्टि विलीन कर गांधी-जन्म-शताब्दी सफलतापूर्वक मनाइए।

राष्ट्रीय-गांधी-जन्म शताब्दी-समिति की गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति, टूंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर-३ (राजस्थान) द्वारा प्रसारित।

उत्तर प्रदेश की चिट्ठी

उत्तर प्रदेश में ग्रामदान-आन्दोलन की गति प्रान्तदान के संकल्प के बाद से अब तीव्र होने लगी है। कई जिलों में जहाँ बलिया-समारोह के पूर्व कुछ भी कार्य नहीं प्रारम्भ हुआ था, वहाँ अब गांधी-जन्म-शताब्दी समिति की गोष्ठियों के माध्यम से रचनात्मक संस्थाओं के कार्यकर्ताओं के शिविरों द्वारा कार्य आरम्भ हुआ है और इसमें सफलता भी मिल रही है। फैजाबाद, बस्ती, गोरखपुर, देवरिया, गाजीपुर, हरदोई, कानपुर में आन्दोलन प्रारम्भ हुए और काफी प्रगति वहाँ भी हुई और यह आशा बँध रही है कि गाँव में विचार समझाने पर विचार ग्रहण करने की उत्सुकता है, केवल कार्यकर्ताओं के पहुँचने की आवश्यकता है। अभी मुरादाबाद जिले में भी, जहाँ काफी मुश्किल दीखता था, शिविर और अभियान चलाये जाने पर १४३ ग्रामदान प्राप्त हुए हैं।

कार्यकर्ता रचनात्मक संस्थाओं (मुख्यतः गांधी आश्रम) से, गांधी निधि, सर्वोदय मण्डल तथा कुछ दलों के भी, जो दल में सक्रिय नहीं हैं, शिविरों में आते हैं और पाँच दिन तथा इससे अधिक दिनों तक भी आवश्यकता पड़ने पर समय देते हैं। इनके अलावा प्रदेश के पश्चिमी जिलों में जूनियर हाईस्कूल, माध्यमिक विद्यालयों तथा प्राइमरी के शिक्षकों में से अच्छी संख्या मिलने लगी है। कहीं-कहीं तो यह संख्या १५० तक पहुँच जाती है। इनके सहयोग से पश्चिमी जिलों के अभियान एक प्रखण्ड से अधिक दो प्रखण्डों में और पूरी तहसील में अभियान चलाये जा सकते हैं। पूर्वी जिलों में शिक्षकों का सहयोग अभी शिविरों तक ही व्यक्तिगत रूप में मिलता है। कुछ शिक्षक सबेरे शाम अपने-अपने क्षेत्रों में गाँवों में पहुँचकर सहयोग दे देते हैं। जिन जिलों में कांग्रेस या कांग्रेस समर्थित जिला परिषद् के अध्यक्ष हैं, वहाँ सहयोग अधिक मिलता है, अन्य जगहों में कम।

शिविर और अभियान के खर्च के लिए पूर्वतैयारी के समय ही जिस क्षेत्र में अभियान चलाना होता है, वहाँ के सम्भ्रान्त नागरिकों, विद्यार्थियों और शिक्षकों से भी रसद और नकद रुपयों के रूप में संग्रह हो जाता है। एक प्रकार से शिविर और अभियान का करीब-करीब पूरा खर्च पश्चिमी जिलों में प्राप्त होने लगा है, पर कार्यकर्ताओं का वेतन यातायात खर्च व अन्य खर्च, स्टेशनरी आदि के लिए अभी गांधी आश्रम और कहीं-कहीं कुछ छोटी-छोटी संस्थाएँ ही मिलकर बरदाश्त करती हैं। पूर्वी जिलों में भी शिविर के लिए कुछ जगहों में अन्न-संग्रह मिला है, पर अभियान खर्च पूरा-का-पूरा संस्था को ही बर्दाश्त करना पड़ा। वाराणसी जिलादान के अभियान में प्रायः पूरा खर्च वाराणसी जिले की सभी खादी-संस्थाओं ने मिलजुलकर व्यय किया है और कर रही हैं। उत्तराखण्ड में शिविर एक दिन के ही होते हैं। कार्यकर्ता-संख्या कम है, गाँव के लोग ही खर्च बर्दाश्त करते हैं। कुछ थोड़ी सहायता गांधी-निधि ने की है, बाकी खर्च स्थानीय ग्रामस्वराज्य संघ ने उठाया है।

प्रदेशीय स्तर पर कोई अर्थसंग्रह-समिति नहीं बनी है। प्रदेशीय ग्रामदान-प्राप्ति समिति ने हर जिले को अपनी अपनी प्राप्ति-समिति को ही धन-संग्रह की योजना बनाने और धन-संग्रह करने की सलाह दी है और उस दिशा में सभी सक्रिय हुए।

अभियानों में अभी ग्रामसेवक व सरकारी कर्मचारियों का कुछ ही जगहों में सहयोग मिला है। सभी जगह सक्रिय नहीं हो पाये

श्रद्धांजलि

भाई धर्मवीर का पार्थिव शरीर अब नहीं रहा। अग्रज भाई धर्मवीर ने तीन माह तक लगातार, उनकी मृत्यु से जबर्दस्त संघर्ष किया। ऐलोपैथिक, यूनानी, आयुर्वेदिक तथा नेचुरोपैथी; सब चला, पर मौत की दवा कहाँ है? क्षीण होते-होते १० जनवरी को साढ़े पाँच बजे सन्ध्या समय उन्होंने अन्तिम साँस ली। प्रभु की लीला! इनके पिताजी तथा चार और भाई, सबने युवकाल में ही शरीर-त्याग किया। १४-१५ वर्ष की भरी जवानी में अपनी पत्नी और क्रमशः पाँच और तीन वर्ष के सोनू और मण्टू को समाज के ऊपर छोड़कर गये। अग्रज धर्मवीर अब अकेला हो गया। स्वसुर आचार्य राममूर्ति ने पहली बार अपने स्वजन की मृत्यु देखी। परमात्मा इनकी वृद्धा माता को यह असह्य शोक सहन करने की शक्ति दे।

न जाने बिहार को क्या बदा है! धनबाद जिलादान के पहले शायलजी चले गये। बिहारदान के निर्माण की पतवार सम्भालनेवाले राजकिशोर बाबू गये, और अब चला गया युवक चिन्तक एवं भावनाशील यह युवक भी। धर्मवीर की मृत्यु से हमने एक उदीयमान युवक मित्र खोया। कोमल कण्ठ, प्राञ्जल भाषा, और स्वतंत्र विचार। विनोबाजी सही कहते हैं—हमारे यहाँ गुणों का 'पोस्टमार्टम' होता है। सर्वोदय आन्दोलन उनकी शक्ति का पूरा उपयोग नहीं कर सका। धर्मवीरजी का भावुक एवं मुक्त मन स्वतंत्र मार्ग ढूँढता रहा। कितनी लगन एवं कितना बड़ा हौसला! ११ सितम्बर '६६ को संकल्प लिया, पलामू का ग्यारह प्रखण्डदान तीन माह में होगा। न अपना क्षेत्र, न कार्यकर्ताओं की शक्ति, न पास में पैसा, बस एकमात्र आत्मशक्ति का सम्बल।

पटना के बाँसघाट पर १० जनवरी की रात्रि में ९ बजे रचनात्मक जमात के सैकड़ों कार्यकर्ताओं ने मिलकर उनका अन्तिम संस्कार किया।

'जो बसो अमर कृते अमर।
वसो अमर कृतं अमर॥'

—निर्मलचन्द्र

हैं। प्रधान और प्रखण्ड-प्रमुख और उपप्रखण्ड-प्रमुखों का सहयोग सर्वत्र सराहनीय रहा है। वैचारिक दृष्टि से शिक्षण-संस्थाओं के प्रधानाध्यापकों का समर्थन उनकी गोष्ठियां करने के कारण मिला है। प्रदेश में कार्य के प्रचार-प्रकाशन के लिए कोई प्रबन्ध अभी तक नहीं हो सका। ग्रामदान के सम्बन्ध में सर्व सेवा संघ के वरिष्ठ लोगों के लेख एक कालम में भिन्न-भिन्न दैनिक पत्रों में जल्दी-जल्दी प्रकाशित हों, तो तूफान का वातावरण निश्चित रूप से बन सकता है।

प्रयत्न किया जा रहा है कि ग्रामदानी गांवों के नागरिक भी ग्रामदान-प्राप्ति के लिए अन्य गांवों में टोलियों के साथ पहुंचें। अभी मिर्जापुर में ही यह तरीका सम्भव हो पाया है। यदि यह तरीका चल पड़ा तो जिन जिलों में अभी तक अभियान प्रारम्भ नहीं हो पाया है, वहां भी प्रारम्भ हो जायेगा और जोर पकड़ लेगा।

३१ दिसम्बर तक १२,००० से अधिक ग्रामदान, ७८ प्रखण्डदान, २ जिलादान हो चुके हैं। और २ जिले—वाराणसी और चमोली जिलादान के करीब हैं। वाराणसी का काम एक सप्ताह के अन्दर पूरा हो जायेगा, अभियान जारी है। चमोली का भी करीब-करीब पूरा हो गया है, पर भीषण हिमपात, ठण्ड और यातायात के अवरोध से अभियान स्थगित हुआ है, वरना ३१ दिसम्बर तक वह भी पूरा हो गया होता। आजमगढ़ पूर्वी जिलों में, और मैनपुरी, आगरा, पश्चिमी जिलों में जिलादान की ओर तीव्रता से बढ़ रहे हैं।

अभी जनवरी में पश्चिमी जिलों में एटा, मैनपुरी, सहारनपुर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, मथुरा, बुलन्दशहर जिलों में अभियान चल रहे हैं। पूर्वी जिलों में केवल गाजीपुर में अभियान चल रहा है और सम्भवतः एक अभियान आजमगढ़ में चलाना सम्भव होगा। शेष जिलों के अभियान १५ फरवरी के बाद से तीव्रता से प्रारम्भ किये जायेंगे, और जुलाई-अगस्त तक तेजी से चलेंगे। —कपिलभाई

महाराष्ट्र की चिट्ठी

सर्व सेवा संघ की बैठक २६-२७-२८ फरवरी '६६ को सांगली में हो रही है। उसके लिए सर्वश्री जयप्रकाशजी, मनमोहन चौधरी, नारायण देसाई, आचार्य राममूर्ति, सिद्धराज ढड्ढा आदि प्रमुख नेता आयेंगे। बैठक के बाद ये सब इर्दगिर्द के क्षेत्रों में प्रचार-दौरा करेंगे। श्री जयप्रकाशजी कोल्हापुर और सोलापुर जिले में दौरा करेंगे।

श्री जयप्रकाश नारायण सांगली आयेंगे, उस समय उनका स्वागत एक लाख रु० की थैली समर्पण करते हुए किया जायेगा। सांगली जिले में उनके विभिन्न कार्यक्रम आयोजित किये गये हैं। कुछ ग्रामदान भी अर्पित किये जायेंगे। उसके लिए सरपंच, ग्रामसेवक आदि लोगों के एक-एक दिन के शिविर जनवरी में हो रहे हैं। बाद में ग्रामदान-प्राप्ति के लिए पदयात्राएं होंगी। सर्वोदय-मंडल के प्रमुख कार्यकर्तागण सर्वश्री गोविंदराव शिंदे, जयवंत मठकर, वर्धा के श्री बापूराव सोवनी आदि से मार्गदर्शन मिल रहा है।

पदयात्राएं : जावली तहसील के २५ गांवों के सरपंच, सदस्य, पटवारी, पुलिस-पाटील, सर्किल इन्स्पेक्टर आदि लगभग १५० व्यक्तियों का ग्रामस्वराज्य-शिविर २६ दिसम्बर को हुआ। पंचायत समिति के उपसभापति श्री कदम ने भूचाल-पीड़ित जनता के पुनर्वसन का जो काम सर्वोदय-मंडल ने इस क्षेत्र में किया, उसकी सराहना करते हुए लोगों को गांधी-जन्म-शताब्दी की अवधि में ग्रामदान द्वारा स्वराज्य की स्थापना करने के लिए प्रेरित किया।

मराठवाडा क्षेत्र के नांदेड, परभणी और औरंगाबाद जिले में गत अक्तूबर से दिसम्बर माह तक पदयात्राएं हुईं। कुछ ग्रामदान भी मिले। अब बीड जिले में सर्वश्री मोतीलालजी मंत्री, गंगाप्रसाद अग्रवाल, अच्युतभाई देशपांडे आदि प्रमुख कार्यकर्ताओं के मार्गदर्शन में १२ से १८ जनवरी तक ग्रामदान-पदयात्राएं हो रही हैं।

जलगांव जिले में २५ ग्रामदान प्राप्त : जलगांव जिले की चोपड़ा तहसील के अडावद विकास-खंड में २६ से ३० दिसम्बर तक हुई ग्रामदान-पदयात्रा द्वारा १६ टोलियों ने ८५ गांवों में विचार-प्रचार किया। उनमें से २५ गांवों ने ग्रामदान-संकल्प किया। १२३ रु० की साहित्य-बिक्री हुई। "साम्ययोग" मराठी साप्ताहिक पत्र के ५१ ग्राहक बने।

अकोला जिलादान का संकल्प : १३-१४ दिसम्बर को हुए जिला सर्वोदय-सम्मेलन में गांधी जन्म-शताब्दी-काल में अकोला का जिलादान कराने का संकल्प किया गया। उस दृष्टि से १५ से १८ दिसम्बर तक श्री भंग का दौरा जिले भर में हुआ। जनवरी के आखिरी सप्ताह में पातुर और बार्शी-टाकली विकास-खण्ड में पदयात्राएं होंगी।

अकोला जिले में कानूनन ग्रामदान : अकोला जिले में तुलजापुर गांव महाराष्ट्र में प्रथम ग्रामदानी गांव है, जो कानूनन ग्रामदान घोषित किया गया।

महाराष्ट्र रचनात्मक कार्यकर्ता-शिविर : महाराष्ट्र में [illegible] रचनात्मक संस्थाओं के कार्यकर्ताओं [illegible] लगभग एक हजार होगी। [illegible] से ३० दिसम्बर तक उन सबका एक शिविर आचार्य दादा धर्माधिकारी और श्री [illegible]राव देव के मार्गदर्शन में संपन्न हुआ।

शिविर में महाराष्ट्र की कई प्रमुख संस्थाओं के अनुभवी कार्यकर्ताओं की एक 'ग्राम-स्वराज्य समिति' बनायी गयी। सर्वसम्मति से निर्णय हुआ कि गांधी-जन्म-शताब्दी काल में महाराष्ट्रदान के कार्य में शक्ति केन्द्रित की जाय, उसके अनुसार योजना बनी है।

रत्नागिरी जिले में ५६ ग्रामदान : इस जिले की मण्डनगढ तहसील में हुई पदयात्रा में ५६ ग्रामदान प्राप्त हुए। सर्वश्री विजय भास्कर, शिवराम जाधव, हरिश्चन्द्र नाईक, शाहिर चव्हाण, राम गड्डेकर आदि कार्यकर्ताओं ने पदयात्रा में भाग लिया।

—'सर्वोदय प्रेस सर्विस', गोपुरी, वर्धा

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०, या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ
विशेषांक
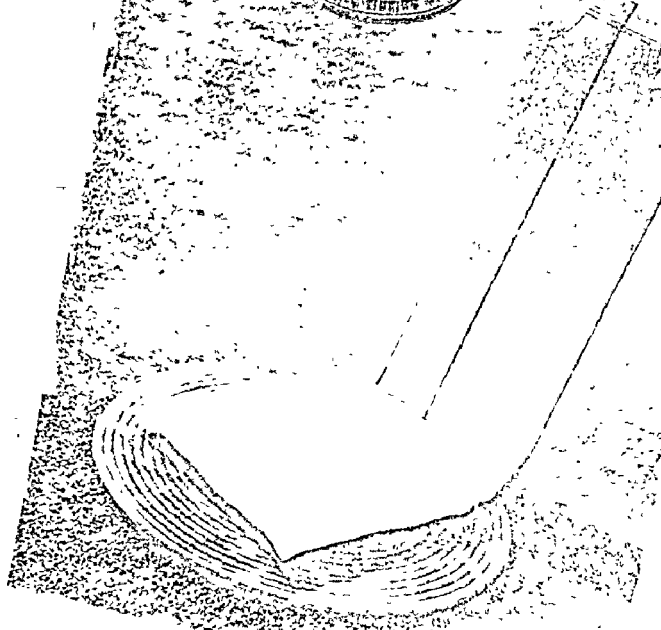
...तो, भारत का इतिहास भिन्न होता

मैं रूस गया था। मैंने वहाँ यह पाया कि कदम-कदम पर लेनिन के चित्र तथा उनके वाक्य नजर आयेंगे। इसमें संदेह नहीं कि लेनिन का जीवन-संदेश राज्यवाले जनता के सामने पेश करते रहे हैं। वहाँ जो चित्र देखे, उनके मुकाबले दूसरा कोई चित्र हमने देखा नहीं। लेनिन के साथ-साथ स्टालिन की मूर्तियाँ चारों तरफ पायी जाती थीं। आज स्टालिन की कोई मूर्ति नहीं और न चित्र है।

भारत में चारों तरफ हम लोग घूमते हैं। बापू के चित्र, संदेश कहाँ और कितने देखने को मिलते हैं? देश गांधी के मार्ग पर कितना चल सका, कितना चल रहा है, यह तो प्रश्न अलग ही है। अमेरिका में वहाँ के विश्वविद्यालयों मे गया था। लुई फिशर वहाँ रहते हैं। उनसे पूछा, "अगर लेनिन की मृत्यु ५४ वर्ष में न हुई होती, तो क्या रूस का इतिहास भिन्न होता?" उन्होंने बिना किसी हिचक के कहा, "पाँच वर्ष लेनिन जिंदा रहता, तो रूस का इतिहास एकदम भिन्न होता।" मैं भी इसी विचार का हूँ। ३० जनवरी सन् १९४८ को महात्मा गांधी की हत्या न हुई होती, तो भारत का इतिहास भिन्न होता। भारत को जो स्वराज्य मिला, उसमें गांधी का कितना हाथ है, कितना हाथ दूसरों का है, यह प्रश्न उठाकर बापू के स्थान को दुनिया के इतिहास में नीचे लाया गया। मैं इतना ही कहूँगा कि इतिहास की मदद न हुई होती, रूसी समाज मे बड़ी मात्रा मे विद्रोह की आग न जलती होती, तो सन् १९१७ में लेनिन को सफलता न मिली होती। इतिहास से क्रांतिकारी को मदद मिलती है।

आज गांधी-जन्म-शताब्दी के अवसर पर दो-एक वर्ष हम शोरगुल कर लें, पर अपने देश में ऐसे दल हैं, जिनका राज्य शासन में हाथ है, जो बापू को राष्ट्रपिता कहने मे हिचकते हैं। अभी बापू को गये कुल २१ वर्ष हुए। जिन पार्टियों के हाथ में राज्य की सत्ता है वे कितना क्या करेंगी, यह भगवान जाने! पर जो किया है वह सामने है। बापू की कितनी उपेक्षा देश मे हुई है? महात्मा को देवता मान लें और उनकी तरफ, उनके उपदेशों की तरफ पीठ कर लें; यह परिस्थिति आज है। महात्मा की जयन्ती मना लें, बस पूजा हो गयी! यह भारतीय संस्कृति है। शायद यही हाल और देशों का भी है। मानव का शायद यही स्वभाव है।

लेकिन जनता के दिलों में बापू का प्रवेश हो—पूजा के लिए 'देव' रूप में नहीं, क्रान्तिकारी के रूप में यह प्रयास हमें करना है।

जयप्रकाश नारायण

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र
वर्ष : १५ अंक : १७-१८
गुरुवार ३० जनवरी, '६९

अन्य पृष्ठों पर

आवश्यक सूचना

इस विशेषांक के बाद 'भूदान यज्ञ' का अगला अंक १० फरवरी को प्रकाशित होगा।

—व्यवस्थापक

सम्पादक
रामभूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४१८५

कल की दुनिया

आज दुनिया के भविष्य के बारे में जितनी अटकलबाजी लगायी जा रही है, उतनी पहले कभी नहीं लगायी गयी होगी। क्या हमारी दुनिया में सदा हिंसा का ही बोलबाला रहेगा? क्या दुनिया में गरीबी, भुखमरी और दुःख-दर्द का कभी अन्त ही नहीं होगा? धर्म में हमारी अधिक व्यापक और अधिक दृढ़ श्रद्धा होगी या दुनिया ईश्वरहीन बन जायेगी? अगर दुनिया में महान परिवर्तन होना है, तो वह परिवर्तन कैसे होगा? वह युद्ध से होगा या क्रान्ति से? या वह परिवर्तन शान्तिपूर्ण मार्ग से होगा?

अलग-अलग लोग इन प्रश्नों के अलग अलग उत्तर देते हैं। हर आदमी जैसी आशा और अभिलाषा रखता है, वैसी ही वह कल की दुनिया के लिए अपनी योजना बनाता है। मैं इन प्रश्नों का उत्तर न केवल विश्वास के कारण देता हूँ, बल्कि पूरी श्रद्धा होने के कारण देता हूँ। कल की दुनिया ऐसे समाज की होगी, जो अहिंसा की बुनियाद पर खड़ा होगा, होना चाहिए। अहिंसा सबसे पहला कानून है। उससे दूसरे वरदानों का जन्म होगा। यह बड़ी दूर का ध्येय, अव्यावहारिक आदर्श, मालूम हो सकता है; लेकिन यह ऐसा ध्येय अथवा आदर्श नहीं है, जो कभी प्राप्त ही न किया जा सके। क्योंकि इसे यहीं और इसी समय व्यवहार का रूप दिया जा सकता है। एक अकेला व्यक्ति दूसरों का रास्ता देखे बिना भविष्य की इस जीवन-पद्धति को—अहिंसक मार्ग को—अपना सकता है। और अगर एक व्यक्ति ऐसा कर सकता है, तो क्या व्यक्तियों के सम्पूर्ण समूह ऐसा नहीं कर सकते? और क्या सम्पूर्ण राष्ट्र ऐसा नहीं कर सकते? मनुष्य कोई काम आरम्भ करने में हिचकिचाते हैं, क्योंकि उन्हें लगता है कि वे अपने ध्येय को सम्पूर्ण रूप में सिद्ध नहीं कर पायेंगे। यह मनोवृत्ति निश्चित ही हमारी प्रगति में सबसे बड़ी रुकावट है—ऐसी रुकावट जिसे चाहे तो हर आदमी दूर कर सकता है।

परन्तु क्या अहिंसा की यह सम्पूर्ण कल्पना मानव स्वभाव में ही परिवर्तन की अपेक्षा नहीं रखती? और क्या इतिहास किसी भी जमाने में ऐसे परिवर्तन का प्रमाण देता है? इतिहास जरूर इस बात का सबूत देता है। अनेक मनुष्य तुच्छ, व्यक्तिगत और परिग्रहवाले दृष्टिकोण को छोड़कर ऐसे दृष्टिकोणवाले बन गये, जो सम्पूर्ण समाज को अपने सामने रखता है और उसके कल्याण के लिए ही काम करता है।

कल की दुनिया में न तो मैं गरीबी को देखता हूँ और न युद्धों, क्रान्तियों और रक्तपात को देखता हूँ। और उस दुनिया में ईश्वर के प्रति ऐसी महान और गहरी श्रद्धा होगी जैसी पहले कभी नहीं देखी गयी थी। व्यापक अर्थ में दुनिया का अस्तित्व ही धर्म पर निर्भर करता है। धर्म को जड़ से उखाड़ने के सारे प्रयत्न सर्वथा असफल सिद्ध होंगे।

—मो० क० गांधी

'लिबर्टी' से संक्षिप्त

अगर गांधीजी वापस लाये जा सकते !

[अमेरिका के विश्व-प्रसिद्ध दैनिक पत्र 'न्यूयार्क टाइम्स' के प्रतिनिधि मि० जोसेफ लेलीवेल्ड ने दिसम्बर '६८ की पहली, दूसरी, तीसरी तारीखें विनोबा के साथ बितायीं। प्रतिनिधि ने इन तीन दिनों में विनोबा से कई प्रश्न पूछे। उनकी चर्चाओं के कुछ अंश प्रस्तुत किये जा रहे हैं।—सं०]

प्रतिनिधि : आपके विचार से अगर गांधी पुन: भारत की स्थिति का अवलोकन करने के लिए वापस लाये जा सकते, तो वे आज की भारत की परिस्थितियों को देखकर क्या सोचते ? जिन माध्यमों से उनके प्रति देश अपनी श्रद्धा व्यक्त करता है, (उदाहरणार्थ-प्रतिमाएँ खड़ी करके, प्रदर्शनी आयोजित करके, पार्कों, गलियों के नाम उनके नाम पर रख करके) उसे देखकर उनके मन में क्या विचार उठते ?

विनोबा : 'अगर वे वापस लाये जा सकते !' यह न आपकी शक्ति के अन्दर है और न मेरी। तो भी, मैं सोचता हूँ कि गांधीजी जैसे महापुरुषों की कालातीत 'शक्ति' होती है। उनका प्रभाव तत्काल नहीं काम करता, लम्बी अवधि में काम करता है। बीस वर्ष कोई लम्बी अवधि नहीं है। अल्पावधि ही है। गांधीजी के पास इन्तजार करने का धैर्य काफी है। वे राष्ट्रपिता कहे जाते हैं। इसलिए हम सब बच्चे हैं, और बच्चों का-सा व्यवहार कर रहे हैं—जैसा कि आप लोग 'क्रिसमस' में नाचते-गाते और खेलते-कूदते हैं।

प्रतिनिधि : मैं समझता हूँ कि आप सन् १९५१ के बाद दिल्ली नहीं गये, वहाँ जाने की इच्छा आपको क्यों नहीं होती ?

विनोबा : यह बहुत उपयुक्त सवाल है। आप जानते हैं कि क्राइस्ट को जब सूली पर चढ़ा दिया गया, उसके बाद वह उठ खड़ा हुआ और अपने शिष्यों से कहा, 'अब मैं गैलिली जाता हूँ। तुम लोग मुझसे वहाँ मिलो।' उसी तरह मैंने पता कर लिया है कि गांधीजी ने दिल्ली छोड़ दी है। 'गाँव चलो'—यह गांधीजी की पुकार थी। इसलिए उन्होंने दिल्ली छोड़ दी।

प्रतिनिधि : आपने कहा है कि स्वराज्य दिल्ली में ही अटक गया है। क्या आप सोचते हैं कि भारत को स्वाधीनता के बाद गाँवों को कुछ नहीं मिला है, और पिछले २१ सालों की प्रगति को विफल मान लेना चाहिए ?

विनोबा : मानवीय प्रयास में विफलता जैसी कोई चीज नहीं है। इसीलिए उन्होंने आंशिक सफलता पायी है। लेकिन बुनियादी बातों पर ध्यान नहीं गया, और वे जैसी-की-तैसी ही रह गयीं। दुनिया में भोजन हर जगह प्राथमिक आवश्यकता की चीज है। उसकी उपेक्षा हुई। उन्होंने कुछ किया है। जैसे मलेरिया का उन्मूलन कर दिया। यह मैंने उनकी सफलता की एक छोटी-सी मिसाल बतायी।

प्रतिनिधि : क्या आपने 'तूफान' का आह्वान इसलिए किया था, कि आपकी दृष्टि में आन्दोलन शिथिल पड़ रहा था ?

विनोबा : यह सैनिक-व्यूहरचना जैसी बात है। सैनिक-व्यूहरचना में आपको देखना होता है कि किस बिन्दु पर आप सफल हो सकते हैं, किस तरह अगले मोर्चे पर लड़ सकते हैं। बिहार हमारे लिए आसान क्षेत्र था। बिहार भारत का सबसे गरीब प्रदेश है। भारत की प्रति व्यक्ति औसत आमदनी ४२३ रुपये है। अधिकतम पंजाब में है—६१६ रुपये और निम्नतम बिहार में है—२६२ रुपये। यह आय पंजाब की आधी और पूरे भारत के औसत से काफी नीचे है। इसलिए अन्तिम से आरम्भ किया है। बिहार प्रदेश सबसे गरीब और सबसे अधिक आस्थावान है, तथा गौतम बुद्ध एवं अन्यों की महान परम्पराओं से जुड़ा हुआ है, इसलिए यहाँ एकाग्र होने का सोचा। 'तूफान' एक प्रेरक शब्द है। आप जानते हैं कि शुरू में तो शब्द ही था।

प्रतिनिधि : आप क्यों मानते हैं कि बिहार सबसे आसान है ? बहुत सारे दूसरे लोग यह कह सकते हैं कि सबसे गरीब है, इसलिए सबसे कठिन है।

विनोबा : मैंने इसे अनुभव से जाना है। १२ साल पहले जब मैं अपनी पदयात्रा के सिलसिले में बिहार आया था तो हमारे विचार को लोगों ने बहुत अच्छी तरह ग्रहण किया, बहुत सारे गरीबों ने भी भूदान में जमीनें दीं।

आप जानते हैं कि 'भारत छोड़ो' एक प्रेरक शब्द था और उसने प्रेरणा दी। 'तूफान' एक दूसरा प्रेरक शब्द है। हम जितना सोचते हैं, उससे अधिक काम शब्द की शक्ति से होता है।

इतिहास का संकेत

मनुष्य की कहानी किस चीज की कहानी है ? छीना-झपटी की ? जन्म से मृत्यु तक किसी तरह जी लेने की ? प्रकृति और पड़ोसी से संघर्ष और प्रतिद्वन्द्विता की ? या विजय और वैभव की ? एक द्वारा दूसरे के शोषण और दमन की ? या, इनके विपरीत सहकार और संगठन के द्वारा, अभाव, अन्याय और अज्ञान से मुक्ति की, और ऊँचे पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों की स्थापना की है ? हिंसा से सतत हिंसा-मुक्ति की ओर बढ़ने की ? इतिहास का क्या संकेत है ? और, समाज के विकास के क्रम में जो क्रान्तियाँ मनुष्य के पुरुषार्थ की अमर-गाथा बन गयी हैं वे क्या बताती हैं ? आखिर हमारी नियति क्या है ? क्या मुक्ति की दिशा में एक-एक मंजिल पार करने की शक्ति हमने अर्जित की है ?

आज तक का जो भी प्रामाणिक और क्रमबद्ध इतिहास हमारे सामने है, उसमें चार क्रान्तियों का विशेष महत्त्व है—बुद्ध की क्रान्ति, फ्रांस की क्रान्ति, रूस की क्रान्ति और भारत में गांधीजी की क्रान्ति। ऐसा नहीं है कि इतिहास में दूसरे क्रान्तिकारी व्यक्ति नहीं हुए है, या क्रान्तिकारी घटनाएँ नहीं घटी हैं, किन्तु ये चार ऐसे उदाहरण हैं जिनमें इतिहास का संकेत स्पष्ट दिखाई देता है।

बुद्ध और उनके धर्म और संघ में क्या था ? और क्या था फ्रांस, रूस और भारत की क्रान्तियों में ? सामाजिक दृष्टि से बौद्ध धर्म एक विद्रोह था धर्म के नाम में पुरोहित की हिंसा से, अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस की राज्य-क्रान्ति विद्रोह थी राजा की हिंसा से, बीसवीं शताब्दी में रूसी क्रान्ति विद्रोह थी स्वामियों की हिंसा से; और अत में गांधीजी की क्रान्ति विद्रोह थी आधुनिक राज्य की सम्पूर्ण हिंसा से। 'वाम्ड वायलेंस', 'किंग्स वायलेंस', 'कैपिटलिस्ट वायलेंस', और 'स्टेट वायलेंस'—ये चार हिंसाएँ रही हैं जिनसे मुक्ति के लिए मनुष्य ने इन चार क्रान्तियों में अपना संगठित पुरुषार्थ प्रकट किया है। ये क्रान्तियाँ हिंसा के लिए नहीं हुई हैं, बल्कि एक प्रकार की असह्य हिंसा से मुक्ति के लिए हुई हैं। इसीलिए पूरा मानव-इतिहास इनके आलोक से आलोकित है। ये क्रान्तियाँ मनुष्य की मुक्ति-यात्रा में प्रकाश के स्तम्भ हैं।

जहाँ एक ओर यह कहना ठीक है, दूसरी ओर यह भी सही है कि इतिहास के पन्ने संघर्ष, युद्ध, हिंसा, संहार, दमन और शोषण से भरे हुए हैं। यह विरोध स्पष्ट है। लेकिन मनुष्य की कम-से-कम इतनी सफलता तो माननी ही पड़ेगी कि वह अपने प्रयत्न से एक 'दोहरे समाज' (डबल सोसाइटी) की स्थापना कर सका है। एक समाज में युद्ध, दमन और शोषण है, तथा दूसरे समाज में परिवार है, मानवीय सम्बन्ध हैं, गाँव है, खेती और उद्योग हैं, कला, दर्शन और साधना है, ज्ञान और विज्ञान है। हम आज भी इस दोहरे समाज में ही रह रहे हैं। अधिकांश जनता की दुनिया सदा से यह दूसरी ही रही है जिसमें सामान्य आदमी पैदा होता है, जीता है, काम करता है, मरता है, और अपने उत्तराधिकारियों को छोड़ जाता है। इस दूसरी दुनिया में मनुष्य ने शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की कला विकसित की है। इतना ही नहीं, सारे विश्व में शान्ति और सद्भावना का क्षेत्र बराबर बढ़ता रहा है, और बढ़ता जा रहा है। साथ-साथ मनुष्य ने एक ऐसी 'स्पिरिट' भी विकसित की है जो पराजय में जय को और मृत्यु में जीवन को प्रतिष्ठित करने में कभी हार नहीं मानती। मनुष्य पशु हो या देव, या कुछ मनुष्य हो और कुछ देव, लेकिन उसकी कल्पना असीम है, और उसकी अंतरात्मा अजेय।

कितनी सदियाँ बीत गयीं लेकिन आज भी हम इसी दुहरी दुनिया में रह रहे हैं। प्रश्न है कि क्या यह दुनिया दुहरी ही रह जायगी, या कभी एक भी होगी, और मनुष्य युग-युग से हिंसा-मुक्ति की जो साधना करता आया है वह कभी सफल भी होगी ?

योद्धाओं और शासकों को छोड़ें, स्वयं जनता ने अनेक बार हिंसा से मुक्त होने के लिए संगठित हिंसा से ही काम लिया है, लेकिन जब जब ऐसा हुआ है तो मूल प्रेरणा रही है बड़ी हिंसा से मुक्ति की ही। जिस हिंसा से जनता पर प्रहार होता था वह उसीसे उसका उत्तर देती थी। लेकिन एक विलक्षण बात यह है कि क्रान्ति के नाम में व्यापक हिंसा करते हुए भी मनुष्य ने अपनी क्रान्तियों के लक्ष्य आध्यात्मिक रखे हैं। मोक्ष की सर्वसुलभता, (बुद्ध), स्वतन्त्रता-समानता-भ्रातृत्व (फ्रान्स), मुक्त मानवों का मुक्त भाईचारा (रूस) और सत्य-अहिंसा (गांधी) आदि क्रान्ति-घोषों में जो जीवन-मूल्य हैं वे सब मानवीय हैं, सर्जनात्मक हैं, आध्यात्मिक हैं, मनुष्य की पूर्ण मनुष्यता को प्रकट करनेवाले हैं।

मुक्ति के इस अभ्यास में मनुष्य ने मुख्य रूप से दो शक्तियाँ विकसित की हैं। एक है, बाह्य जगत् का विज्ञान (साइंस आव दी आउटर वर्ल्ड) और दूसरी है अन्तर्जगत् की संस्कृति (कल्चर आव दी इनर वर्ल्ड)। बाहर की दुनिया के लिए उसने दो चीजें बनायीं—एक तकनीक (टेकनालोजी), और दूसरी संगठन (आरगेनाइजेशन)। इस 'टेकनालोजी' और 'आरगेनाइजेशन' की बदौलत मनुष्य के हाथ जो शक्ति आयी है उसकी कल्पना मनुष्य को स्वयं नहीं हो रही है। वह अपनी सफलता में भूला हुआ है। लेकिन इतनी चेतना उसमें तेजी के साथ आ रही है कि आज तक तकनीक (टेकनालोजी) और संगठन-शक्ति (आरगे-नाइजेशन) का जिस तरह विकास हुआ है उसके कारण अब यह संभव है कि वह इन दोनों को नियोजित कर सके, और इन्हें अपनी मर्जी के अनुसार मोड़ सके, तथा बाहरी (विज्ञान) और भीतरी (अध्यात्म) की दुनिया में संतुलन स्थापित कर सके। इस संतुलन में

ही यह संभावना है कि दुहरी दुनिया एक हो जाय। इस युग की साधना यही है। इसीलिए गांधी की क्रान्ति-योजना में जो बुनियादी तत्त्व हैं वे ये हैं कि तकनीक का प्रकार बदले, आकार बदले, और वह मानवनिष्ठ हो; तथा संगठन का प्रकार बदले, आकार बदले और वह मानवनिष्ठ हो। मनुष्य ने कभी नहीं सोचा था कि जिस टेक्नालोजी को उसने अभाव से मुक्त होने के लिए विकसित किया था वह उसके शोषण का कारण बनेगी, और जिस राज्य को उसने अपने संरक्षण के लिए निष्ठा दी थी वह उसके दमन का माध्यम बनेगा? अब संभव है कि हम इन दोनों को एक व्यापक जीवन-योजना के अंतर्गत ला सकें।

हर क्रान्ति में मनुष्य की कोई छिपी हुई, सोयी हुई, शक्ति उभरी है, और समाज का कोई दबा हुआ समुदाय ऊपर आया है। यह क्रम बराबर चलता रहा है लेकिन पहले यह संभव नहीं होता था कि पूरे समाज को एकसाथ आगे बढ़ने का मौका मिले। कुछ लोगों की कल्पना तो दौड़ती थी—परिस्थिति से बहुत आगे दौड़ती थी—लेकिन चेतना व्यापक नहीं थी, तकनीक पिछड़ी हुई थी, और संगठन भी कई दृष्टियों से अधूरा था। परिस्थिति की विवशताओं से घिरा हुआ, बंधनों में जकड़ा हुआ मनुष्य क्रान्तियाँ करता था, लेकिन उसकी क्रान्ति, बावजूद ऊँचे नारों के, आंशिक (सेक्शनल) होकर रह जाती थी। हर क्रान्ति में सत्ता *और सम्पत्ति का अधिकार समाज के एक अंग से निकलकर दूसरे* अंग के हाथ में चला जाता था लेकिन 'सर्व' के हाथ में नहीं पहुँचता था। यही कारण है कि बुद्ध की क्रान्ति में क्षत्रियों की प्रधानता दिखाई देती है, फ्रांस की राज्य-क्रान्ति में व्यापारी वर्ग की, रूस की क्रान्ति में श्रमिक वर्ग की, और अब गांधी की क्रान्ति में 'सर्व' का दर्शन हो रहा है। ग्रामदान खड़ा ही है उसी आधार पर। क्रान्तियों में जो हिंसाएँ हुई हैं उनके अनेक कारणों में एक मुख्य कारण यह रहा है कि उनमें सत्ता और सम्पत्ति को छीनकर एक अंग से दूसरे अंग के हाथ में करने की बात रही है, इसलिए दो अंगों में टक्कर हुई है और संहार अनिवार्य हो गया है। इसके विपरीत अगर छीनकर 'सर्व' के हाथों में होनेवाला हो तो अधिकार प्राप्त करने *में भी 'सर्व' शामिल हो सकता* है, और संहार की मजबूरी से बचा जा सकता है। आधुनिक 'टेक्नालोजी' और 'आर्गेनाइजेशन', अथवा विज्ञान और लोकतंत्र ने 'सर्व' को इस तरह ऊपर ला दिया है, या कम-से-कम इतनी संभावना प्रकट कर दी है, कि नये जमाने की क्रान्ति सर्व के द्वारा और सर्व के लिए ही हो सकती है। सर्व की क्रान्ति कभी हिंसक नहीं हो सकती। साम्यवाद आज भी सत्ता (पावर) और वर्ग (क्लास) की भाषा बोलता *जा रहा है, इसलिए उसकी क्रान्ति 'सेक्शनल' है, और हिंसक है।*

जबतक क्रान्ति एक अंग के नाम में और एक अंग के लिए होगी तबतक हिंसा से मुक्ति नहीं मिलेगी, और मनुष्य भटकता ही रहेगा। भारत की प्रतिभा ने वर्ण-व्यवस्था के रूप में समाज के विभिन्न अंगों के सहअस्तित्व की एक विलक्षण योजना बनायी थी। उस व्यवस्था में 'सर्व' की भावना थी, इसलिए भारत अपने लम्बे विकास में परस्पर-संहार की प्रक्रियाओं से बचता रहा है। लेकिन काम और प्रतिष्ठा के कठोर बँटवारे के कारण उसका इतना दुष्परि-

णाम तो हुआ ही है कि विद्या ब्राह्मण के हाथ में केन्द्रित हुई और शेष समाज अज्ञान में डूबा रह गया, वीरता क्षत्रिय में सीमित हुई और समाज भीरु हो गया, लक्ष्मी वैश्य के हाथ में गयी और बाकी लोग विपन्न हो गये, श्रमशक्ति शूद्र को मिली और पूरा समाज पंगु हो गया। ये दुष्परिणाम 'सेक्शनल' व्यवस्था और विद्रोह के हुए हैं, फिर भी मनुष्य हर क्रान्ति में किसी-न-किसी हिंसा से मुक्त हुआ ही है। अब उस मुक्ति को पूर्ण करने की बारी है।

'सर्व' ही क्रान्ति की शक्ति, और सर्व ही क्रान्ति का लक्ष्य, यह मान्यता क्रान्तियों के इतिहास में एक नया अध्याय है जो आज 'ग्रामदान' के नाम से लिखा जा रहा है। जिस दिन हम सर्व की शक्ति से समाज का अपेक्षित परिवर्तन कर लेंगे, उस दिन क्रान्ति की वास्तविक शक्ति हमारे हाथ आ जायगी। तब नयी तकनीक मनुष्य को सुरक्षा देगी, और नया संगठन स्वतंत्रता।

इतिहास का संकेत स्पष्ट है। मनुष्य की चिरन्तन अभिलाषा है मुक्ति। वह जीवन जीना चाहता है, और दूसरों के साथ जुड़कर जीना चाहता है। यह सम्भव है अगर हम इतिहास के संकेत को समझें। •

इस अंक में

यह युग शायद हिंसा की शक्तियों को अलविदा करने जा रहा है। सम्भवतः इसीलिए हिंसा अब आखिरी बार अपने विविध रूपों से देश और दुनिया की नजरों के सामने से हो लेना चाहती है। 'संघर्ष' शायद उसका सबसे सुभाषित 'सर्वनाम' है, जो मुक्ति की अन्तः आकांक्षाओं से निर स्वार्थ की सुरक्षा इन्टरप्रेटेशन के साथ जुड़ गया है। ऐसे में हमको गांधी की याद आती है। गांधी की याद में अहिंसा की शीतलता का स्पर्श है, 'संघर्ष' से मुक्ति का आभास है।

'भूदान-यज्ञ' के प्रस्तुत विशेषांक में हिंसा की बुनियादों को स्पष्टता और गहराई से जाँच देखने का प्रयास किया गया है। आचार्य जे० बी० कृपालानी, आचार्य विनोबा भावे और आचार्य धीरेन्द्रभाई के चिन्तनशील चिन्तन की झाँकी तो परिचर्चा में प्रस्तुत है ही, भारत में बढ़ रही भावनात्मकता के खतरों के प्रति सतर्क हो जाने की श्री जयप्रकाश नारायण की चेतावनी, और विचारोत्तेजक पर्यवेक्षणों है० एफ० शुमाकर द्वारा विज्ञान की शक्ति और तकनीक की विकृतियों से बोझिल दुनिया की नयी रचना का एक नया संकेत तथा उसके अन्त में पाश्चात्य जगत के वैभव की विभूतियों से ऊपर उठ मानवीय चेतना की अनुगूँज को व्यक्त करता हुआ हिन्दी युवक कवि राजकमल का हस्ताक्षरित लेख हमारी विशेष भेंट के रूप में इस अंक में दे रहे हैं।

★

हिंसा की फैलती लपटें और गांधी की याद

[हमने सोचा था कि गांधी-जन्म-शताब्दी-वर्ष के इस गांधी-निर्वाण दिवस (३० जनवरी) के अवसर पर भारत की वर्तमान उथल-पुथल और विस्फोटक परिस्थिति के बारे में गांधी युग की कुछ विशिष्ट विभूतियों का प्रकट चिन्तन 'भूदान-यज्ञ' के पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करें। यह लिखने में हमें कुछ संकोच हो रहा है कि हमें इस प्रयास में आंशिक सफलता ही मिल पायी। अपनी सीमाओं और अपेक्षित व्यक्तियों की व्यस्तताओं के कारण ही ऐसा हुआ। फिर भी हिंसा की फैलती लपटों को देखकर गांधी को याद करनेवाले हर संवेदनशील व्यक्ति के लिए प्रस्तुत परिचर्चा दिलचस्प और निःसन्देह प्रेरक भी होगी, ऐसा हमारा विश्वास है। — सं०]

नेतृत्वहीन भारत में...

प्रश्न : आज के हिंसा के वातावरण में गांधीजी के विचारों को अमली रूप देने के लिए आदमी क्या करे ?

आ० कृपालानी आज के भारत में रहनुमाई जैसी कोई चीज नहीं है। आजादी हासिल करने के पहले कांग्रेस-कार्यसमिति का हरेक सदस्य जिस मानी में मुल्क का रहनुमा था, उस मानी में अब न तो प्रधानमंत्री रहनुमा है और न तो कांग्रेस-अध्यक्ष ही। ऐसी हालत में एक ही उम्मीद रह जाती है कि भारत के रचनात्मक काम करनेवाले कार्यकर्ता शायद मुल्क को एक मिली-जुली रहनुमाई दे सकें। लेकिन जहाँ तक मुझे अनुभव आया है, गांधीजी की जन्म शताब्दी मनाने तक के मामले में रचनात्मक कार्यकर्ताओं ने सरकार की रहनुमाई को अपना सहयोग दिया। उन्होंने भारत के राष्ट्रपति को अपना अध्यक्ष और प्रधानमंत्री को जन्म-शताब्दी समिति की कार्यकारिणी का अध्यक्ष बनाया है। मैंने सुझाव दिया था कि जन्म-शताब्दी-संगठनों के प्रमुख व्यक्ति रचनात्मक कार्यकर्ता ही रहने चाहिए। लेकिन मेरी इस सलाह को नहीं माना गया। इसकी खास वजह यह है कि रचनात्मक कार्यकर्ता सरकार के सहयोग के बिना अपने को काफी मजबूत नहीं मानते। चूँकि सरकार जनता के सामने ऐसे रूप में आना चाहती है, जैसे उसे गांधीजी के खयालातों और कार्यक्रमों में विश्वास हो, इसलिए रचनात्मक कार्यकर्ताओं को सरकार का सहयोग मजे में मिल जाता है।

देश में गांधीजी की रहनुमाई चल सके, इसके लिए रचनात्मक कार्यकर्ता एक-दूसरे के साथ सहयोग कर सकें, इसकी बहुत कम उम्मीद है। जब कोई मिली-जुली कोशिश मुमकिन नहीं होती तो हर आदमी अपना बचाव करता है। जब समुद्र में कोई जहाज चकनाचूर होता है तो जहाज का हरेक यात्री अपने आपको बचाने की कोशिश करता है। अपने आपको बचाने के बाद ही वह किसीकी मदद कर सकता है। इसलिए मेरी राय है कि भारत में जबतक किसी एक आदमी की या लोगों की मिली-जुली रहनुमाई सामने नहीं
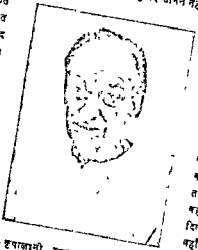
आ० कृपालानी रचनात्मक नेतृत्व की आकांक्षा

आती तबतक हरेक आदमी को सार्वजनिक जीवन के दायरे में अपने आचरण पर नजर रखनी चाहिए। अगर उसे गांधीजी के विचारों में यकीन है तो उसे यह देखना होगा कि वह अपनी जिन्दगी में गांधीजी के खयालातों और कार्यक्रमों के खिलाफ कोई काम न करे। आज की परिस्थिति में इतना ही किया जा सकता है।

राष्ट्रीय जीवन में काल-आवृत्ति

प्रश्न : आज हर जगह नवजवान बगावत कर रहे हैं। वे गांधीजी के विचारों की ओर कैसे लाये जा सकते हैं ?

आ० कृपालानी भारत के नवजवान अपने आचरण और कारगुजारियों से या तो पश्चिम के पूँजीवादी देशों की तरफ बढ़ते हैं या पश्चिम के कम्युनिस्ट देशों की तरफ, इसमें चीन भी शामिल है।

हमने गांधीजी को इस ढंग से पेश नहीं किया है कि वे नयी पीढ़ी के लोगों में जाने, माने और पहचाने जायँ। इस मामले में ज्यादा उपदेश देने, गोष्ठियाँ या परिसंवाद आयोजित करने या लेख लिखने का कोई खास नतीजा नहीं होगा। ढेर की ढेर कथनी से रत्तीभर करनी ज्यादा असरदार होती है। गांधीजी का यही खयाल था। वे जबतक कोई चीज खुद करके आजमा नहीं लेते थे, तबतक दूसरों को करने के लिए कभी नहीं कहते थे। आज इसके अलावा कोई तरीका दिखाई नहीं देता। जहाँ विश्वास नहीं है, वहाँ बिना अपना विश्वास पक्का किये, दूसरों में विश्वास का एहसास नहीं पैदा किया जा सकता। लेकिन और चीजों की तरह इस मामले में भी कालक्रम का प्रभाव काम करता है। इसी प्रकार राष्ट्र के जीवन में भी एक प्रकार की काल-आवृत्ति काम कर रही है। एक समय आता है, जब कि राष्ट्र के लोग आगे बढ़ते दिखाई देते हैं, फिर ऐसा समय आता है कि चाहे आप कितनी ही कोशिश करें, कोई प्रगति नहीं होती। जब प्रगति रुक जाती है तो गिरावट आती है। तब अच्छे स्वभाव और

वृत्ति के लोग देश को अवनति से बचाने की कोशिश करते हैं।

उदार चित्त और बेकारी-निवारण

प्रश्न : आपने सन् १९४६-४८ के समय के साम्प्रदायिक दंगों और लड़ाई-भिड़ाई को देखा है। उस समय गांधीजी की जो विचारधारा थी, उससे भी आपका सजीव सम्बन्ध था। आज जो टकराव की हालत बनी है उसका अन्त कैसे हो सकता है, इसके कार्यक्रम के बारे में क्या आप कुछ सुझाव और रूप-रेखा बतायेंगे?

आ० कृपालानी : मैंने उन दिनों जो अनुभव किया वह यह है कि जब कभी कोई तेज ढंग की हिंसात्मक कशमकश जाहिर हुई तो उसकी रोकथाम के लिए गांधीजी उपवास या अनशन करते थे। इससे कशमकश से सम्बन्धित जमात के नेता लोग गांधीजी के पास दौड़ जाते थे। वे सब लोग गांधीजी से कहते थे कि वे अमन-चैन कायम करने के लिए अपने असर का इस्तेमाल करेंगे। कुछ समय के लिए शान्ति हो जाती थी, लेकिन साम्प्रदायिक हिंसा किसी दूसरी जगह सिर उठा लेती थी। कभी-कभी तो उसी जगह दुबारा भी हिंसा फूट पड़ती थी। यह तरीका कुछ समय तक का उपाय था, क्योंकि यह समस्या की जड़ तक नहीं पहुँच पाता था।

भारत में साम्प्रदायिक हिंसा न हो, इसके लिए दो शर्तें पूरी होनी चाहिए। इस मामले में हम योरप से कुछ सबक सीख सकते हैं। वहाँ कैथलिक और प्रोटेस्टेंट ईसाइयों ने एक-दूसरे को मारकर नाम कमाने की कोशिश जारी रखी। इस सिलसिले को काफी समय तक चलाने के बाद, और बहुत-से लोगों को मौत के घाट उतारने के बाद उन लोगों ने यह ढंग छोड़ दिया। ऐसा नहीं है कि औसत कैथलिक इसके बारे में कुछ महसूस नहीं करता। वह महसूस करता है कि प्रोटेस्टेंट ईसा के खिलाफ है, इसलिए वह जरूर नरक का भागीदार होगा। प्रोटेस्टेंट लोगों का कैथलिकों के लिए यही दिमागी रवैया रहता है। लेकिन दोनों एक बात पर एक राय हैं कि दूसरा अगर नरक में जाता है तो उन्हें उसकी चिन्ता नहीं होगी। मैं ऐसे समय को नहीं देख पाता हूँ, जब कि मुसलमान यह माने कि हिन्दू धर्म भी मोक्ष तक पहुँचाने का एक रास्ता है। मैं उस समय की भी कल्पना नहीं कर पाता, जब कि हिन्दू यह न माने कि उसकी आस्था मुसलमान की आस्था से श्रेष्ठ है। इसलिए हिन्दू और मुसलमान, दोनों को एक-दूसरे के बारे में वही रुख अख्तियार करना चाहिए, जो योरप के कैथलिक और प्रोटेस्टेंट लोगों ने किया था। दोनों अगर यह भी मानें कि दूसरा मरने पर जहन्नुम या नर्क का भागीदार होगा, तब भी योरप की तरह भारत से साम्प्रदायिक हिंसा को टाला जा सकता है।

साम्प्रदायिक टक्कर को दूर करने का एक दूसरा रास्ता यह है कि दोनों धर्मों के लोग सरकारी नौकरियाँ हासिल करने के लिहाज से सोचना छोड़ दें। योरप और अमेरिका जैसे देशों में सरकारी नौकरी आला दर्जे की सेवा नहीं मानी जाती। दूसरे क्षेत्रों, जैसे—उद्योग, व्यवसाय और कला आदि में लोग ज्यादा आमदनी हासिल कर लेते हैं। यहाँ पर नौकरियाँ इतनी कम है और नौकरी चाहनेवालों की तादाद इतनी ज्यादा है कि स्वार्थ की टक्कर होना लाजिमी है। आजादी हासिल होने के पहले यह करीब तय हो चुका था कि विभिन्न भाषा-भाषी लोग आपस में बातचीत करने के लिए हिन्दुस्तानी हिन्दी का उपयोग करेंगे। आजादी के बाद जब सरकारी नौकरियों की तादाद बढ़ी तो कुछ लोगों ने, जिनकी मातृभाषा हिन्दुस्तानी नहीं थी यह सोचना शुरू किया कि सरकारी नौकरियाँ पाने के मामले में हिन्दुस्तानी जाननेवालों को ज्यादा सहूलियत होगी। यही बात सारी गड़बड़ी की जड़ साबित हुई। नौकरियों को लेकर मारी होड़ मची हुई है। इसका इलाज यह है कि देश के साधनों का विकास करके काम करने के दायरों को बढ़ाया जाय। लेकिन देश के साधनों का विकास ऐसे ढंग से किया जाय कि ज्यादा लोगों को काम मिल सके, न कि ऐसे ढंग से कि जिसमें ७५ हजार से लेकर १ लाख रुपया प्रति व्यक्ति को काम में लगाने के लिए खर्च करना पड़े। आजकल यह खर्चीला ढंग ही चल रहा है।

गांधीजी का उपवास करने का जो तरीका था, वह हर आदमी के लिए नहीं है।

पेचीदी दलीय पद्धति और नाजुक लोकतंत्र

प्रश्न : आजादी के बाद के २१ साल का नतीजा है कि देश में निराशा बढ़ी है। ऐसा लगता है कि हमारी समस्याएँ लोकतान्त्रिक ढंग से हल नहीं हो सकतीं। अगर गांधीजी की सलाह मानकर कांग्रेस लोक-सेवक संघ में बदल गयी होती तो आपकी राय में इसका क्या परिणाम सामने आया होता?

आ० कृपालानी : लोकतंत्र द्वारा सरकार चलाना अपने आप में एक निहायत नाजुक तरीका है। दरअसल यह एक खराब तरीका ही है, लेकिन बहरहाल इससे बेहतर तरीका हमें हासिल नहीं है। एकतंत्रवादी और तानाशाही हुकूमतें भी अपने को एक लोकतंत्र जैसा ही दिखाना चाहती हैं। इसलिए अगर हम अपनी परेशानियों से बचने के लिए लोकतंत्र को अस्वीकार करें तो इससे किसी राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी। फिर यह भी है कि सब लोगों को वोट देने का अधिकार मिला है और वे उसकी कीमत मानते हैं। जहाँ तक वे उसका उपयोग कर सकते हैं, वे उसे रद्द नहीं होने देंगे। इसलिए हमें लोकतंत्र का ज्यादा-से-ज्यादा फायदा उठाना है। इंग्लैण्ड के एक राजनीतिक विचारक ने बहुत पहले कहा था कि "मालिकों को शिक्षित करो।" आजादी की यह शिक्षा सिर्फ विद्यालयों और महाविद्यालयों में नहीं दी जाती। यह तो मतदाताओं का शिक्षण है, जिसके अन्तर्गत उनके अधिकारों और कर्तव्यों की उन्हें जानकारी दी जाती है।

दुनिया का कोई भी संविधान ठीक से काम नहीं कर सकता, जबतक कि उसे चलाने की स्वस्थ परम्परा नहीं बन पाती। मिसाल के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका को लें। वहाँ पर सरकार के मुख्य तीन अंग—विधान-सभा, प्रशासन, और न्याय संविधान के अनुसार एक-दूसरे से स्वतंत्र हैं। अमेरिका के उपनिवेशों ने जब अपने को संघीय राज्य में

संघबद्ध किया तो वे स्वतंत्र थे। भारत की मिसाल इससे ठीक उलटे ढंग की है। जो लोग एक सरकार में संगठित थे, उन्हें हमने बनावटी ढंग से बांट दिया। हमने प्रदेशों को प्रादेशिक स्वायत्तता सौंपी। संघीय व्यवस्था मे जबतक अलग-अलग इकाइयों के बीच स्वस्थ और आपसी समझदारी के सम्बन्ध नहीं बनते, तबतक अलग-अलग इकाइयों और केन्द्र के बीच हमेशा टकराव की हालत बनी रहेगी।

मेरी राय में, कांग्रेस जो कि केन्द्र और सभी प्रदेशो में सत्ता में थी, वह अपने शासन-काल में स्वस्थ परम्पराएँ कायम करने में नाकामयाब रही। उन्होंने लोकतंत्र की गड़-बड़ी को और भी बढ़ा दिया, यह कहना शायद ज्यादा सही होगा। आज चुनाव ज्यादातर जातीय आधार पर हो रहे हैं। कांग्रेस के पीछे आजादी की लड़ाई लड़ने की परम्परा थी। ऐसी कांग्रेस को चुनाव के मामले में जातिवाद का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए था। कांग्रेस की बाद की नयी और कमजोर पार्टियों ने भी कांग्रेस के ही तरीके को अपना लिया। इसके बाद चुनाव में रुपये और शराब का इस्तेमाल होना शुरू हुआ। सत्तारूढ़ दल ने ये जो नयी परम्पराएँ शुरू कीं, वे स्वस्थ नहीं थीं।

एक दूसरे रास्ते से भी कांग्रेस ने लोगों को गलत तालीम दी। जब कभी कोई बड़ा राजनीतिक नेता मरता है, तो उसकी विधवा को या उसकी अनाथ सन्तान में से किसीको कांग्रेस का टिकट दे दिया जाता है। इस मामले में आमलोग इतने भावुक होते हैं कि जिस उम्मीदवार की राजनैतिक हैसियत नहीं के बराबर रहती है वह विरोधी पक्ष के सक्षम कार्यकर्ता को भी चुनाव में हरा देता है। कांग्रेस का जो उम्मीदवार चुनाव में हार जाता है उसे किसी-न-किसी तरह के लाभ-जनक पद पर बिठा देना भी कांग्रेस का अपना तरीका है—राजदूत, बहुत-सी संस्थाओं के अध्यक्ष और राज्यपाल आदि ऐसे अनेक पद हैं। चुनाव में हारा हुआ उम्मीदवार किसी तरह की परेशानी में पड़े इसके बदले उसे सीढ़ी के ऊपर ढकेलकर चढ़ा दिया जाता है। अगर वह चुनाव में जीत गया होता तब जो कुछ आर्थिक आमदनी उसे हुई होती, उसकी नये पद की भारी आय से कोई तुलना नहीं हो सकती।

जहां तक कांग्रेस को लोक-सेवक संघ मे बदलने की गांधीजी की सलाह की बात है, मुझे भय है कि रचनात्मक कार्यकर्ताओं ने इस मामले में आमतौर से इसके सिर्फ आधे हिस्से का जिक्र किया है। कांग्रेस एक ऐसा संगठन था, जिसमें मुल्क के हर तबके के लोग थे और जिसे पूरे मुल्क का सहयोग हासिल था। गांधीजी उसे लोक-सेवक संघ में बद-लना चाहते थे। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि वे चाहते थे कि कोई सरकार ही न बने। जब कांग्रेस लोक-सेवक संघ मे बदल गयी होती तब भी ऐसे लोगो की जरूरत होती, जो सरकारी पदो को सम्भालते। इस-लिए उन्होंने राजनीतिज्ञों को सलाह दी थी कि वे अपनी-अपनी विचारधारा के अनुसार राजनीतिक दलों का गठन करके चुनाव लड़े और सरकार बनायें।

जहां तक जवाहरलाल नेहरू और सर-दार वल्लभभाई की बात थी, आजादी की लड़ाई के मामले में दोनों एक राय के थे। लेकिन आजादी के बाद मुल्क में कैसा सामा-जिक ढांचा बने, इस सवाल पर उनकी राय में मिलती-जुलती बातें बहुत कम थीं। इन दोनों व्यक्तियों ने यदि कैबिनेट में एक दूसरे से जूझने के बजाय बाहर आकर अपनी-अपनी पार्टियां बनाकर लड़ाई की होती तो बहुत अच्छा किया होता। इससे हमारे "मालिकों का भी शिक्षण" हुआ होता। गांधीजी बिना दल की सरकार नहीं चाहते थे। लोगों के लिए यह कल्पना करना मुश्किल था कि बिना दल की सरकार कैसे बनेगी। कोई भी सर-कार चाहे वह कितनी ही आमूल परिवर्तन-वादी (रेडिकल) क्यों न हो, यदि वह वोट द्वारा बदली नहीं जा सकती है तो कुछ समय बाद प्रतिक्रियावादी भले हो न हो, लेकिन पिछड़े विचारवाली तो हो ही जाती है।

जनता के बीच में ऐसे संगठित लोगो की जमात होनी ही चाहिए, जो सरकार बना सके। अगर शुरू में कोई दलमुक्त सरकार भी बने और समय बीतने के साथ उसकी ताजगी घटती जाय और उसके सदस्य देश की भलाई के मुकाबले सत्ता की कुर्सी की ज्यादा परवाह करने लगें तो उनका विरोध होगा। वे लोग एक गुट के रूप में संगठित होकर सारी सत्ता के अधिकारी होंगे। ऐसे लोगो का कौन विरोध करेगा ? क्या असंगठित व्यक्ति उनका विरोध कर सकेंगे ? सिर्फ जनता की सर्वानु-मति के बल पर ऐसी सरकार सत्ता से नहीं हटायी जा सकेगी। इसके अलावा विधान-सभाओं में राजनीतिक पक्ष कार्य का संगठन करते हैं। यदि लोकसभा मे कोई पक्ष न होता तो उसके ५०० सदस्यों में से हरेक सदस्य अपनी-अपनी मर्जी के मुताबिक अपनी राय जाहिर करता। ऐसी हालत में लोकसभा, लोकसभा न होकर बकवास की जगह बन जाती। इन सब पहलुओ तथा अन्य कई बातों को देखते हुए लोकतंत्र में दलों को समाप्त करने का कोई रास्ता नहीं दिखाई देता। तानाशाही के खिलाफ शिकायत यही है कि वह पार्टियों को कार्यरत होने का अवसर नहीं देती।

जबतक कि हम यह न सोच लें कि एक बार सर्वानुमति से सरकार बनाकर उसे हमेशा के लिए सत्ता में रखेंगे तबतक हम दलीय पद्धति से छुटकारा नहीं पा सकते। लेकिन दलो के अन्दर ऐसे लोग जरूर होने चाहिए, जो सर्वोच्च अवसरों के उपस्थित होने पर दल के सचेतक की आज्ञा मानने से इनकार करें। जो देश के हक की चीज है, उसे वे अपने दल को नहीं बेचेंगे। दल में किसी-न-किसी प्रकार का लचीलापन रहना ही चाहिए। इससे दल के अनुशासन को नुकसान पहुंचना जरूरी नहीं है।

इसमें कोई शक नहीं कि दलीय पद्धति मे अनेक खामियां मौजूद हैं। दल के सदस्य को व्यक्तिगत तौर पर दल के बड़े नेता या नेताओ की जरूरत के मुताबिक काम करना पड़ता है। उसे दल में अपने व्यक्तित्व को खोने का खतरा उठाना पड़ता है और उसकी सार्थकता सिर्फ इसमें रह जाती है कि दल के समर्थन में वह हाथ उठाता जाय। लेकिन दल के इस जकड़बन्द स्वरूप से अपना बचाव करने की कोशिश व्यक्ति को करनी है। यह हो सकता है कि अब तक जिस ढंग से लोकतन्त्र

चलता रहा है, मुझे उसीका अनुभव मिला है, लेकिन जबतक मेरे सामने यह प्रत्यक्ष नहीं हो जाता कि दल-निरपेक्ष सरकार कैसे बनेगी और बनने के बाद कैसे काम करेगी तबतक मुझे अपनी धारणाओं पर मजबूती से कायम रहना चाहिए। नाजुक मौकों पर हर देश के सामने एक बड़ा सवाल उपस्थित होता है। मिसाल के लिए उन देशों को लें, जिन्हें लड़ाई लड़नी पड़ी। लड़ाई के मौके पर दूसरे तमाम प्रश्न छोड़ दिये जाते हैं। देश की कुल शक्ति लड़ाई जीतने के उद्देश्य की पूर्ति में लगा दी जाती है। ऐसे मौकों पर दलों की मिली-जुली सरकार या राष्ट्रीय सरकार बनाने के लिए सभी दल एक हो जाते हैं। जबतक एक सर्वोच्च समस्या सुलझाने के लिए बाकी रहती है तबतक ये मिली-जुली सरकारें कायम रहती हैं। साधारण समय में देश के लिए क्या अच्छा है, इस प्रश्न पर लोगों की राय अलग-अलग होगी; क्योंकि लोग अलग-अलग स्वभाव के होते हैं, उनकी पसन्द और नापसन्द भी अलग-अलग ढंग की होती है। सरकार के काम में हमें किसी विनोबा का मार्ग-दर्शन नहीं मिल सकता, और विनोबा हर समय रहेंगे भी नहीं।

जनता की शक्ति और संगठन का सवाल

प्रश्न : जनता में जो शक्ति बिखरे हुए रूप में दबी पड़ी है, उसे समाज परिवर्तन की गतिवान शक्ति के रूप के कैसे बदला जाय ?

आ० कृपालानी : गांधीजी ने सत्य और अहिंसा के अनोखे तरीके से अन्याय के खिलाफ लड़ाई की थी। इस लड़ाई में उन्होंने जिस ढंग से जनता की शक्ति को स्वराज्य के संघर्ष में इस्तेमाल किया, उसकी कुछ विशेषताएँ भुला जा चुकी हैं। उनके भीतर अपनी बात समझाने की जो बुद्धिमत्ता मौजूद थी, उसकी ओर बहुत कम ध्यान गया है। उनके अन्दर संगठन करने की जो क्षमता थी, उस पर भी कम ध्यान गया है। मैं जब पहली बार गांधीजी से शान्तिनिकेतन में मिला था तो मैंने उनकी संगठन-शक्ति का साक्षात्कार किया। वहाँ की सफाई से वे सन्तुष्ट नहीं थे। वहाँ खाना पकाने के लिए जो इन्तजाम किया गया था उससे भी वे सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने वहाँ के शिक्षकों और विद्यार्थियों से बातचीत की और उन्हें कायल किया कि रसोई पकाने और खिलाने-पिलाने के मामले में जो गड़बड़ी चल रही है वह मिटायी जा सकती है, बशर्ते कि वे नौकरों से काम लेने के बदले खुद मिल-जुलकर उस काम को सम्भाल लें। कुछ ही दिनों में उन्होंने शिक्षकों और छात्रों में इतना उत्साह भर दिया कि उन्होंने आसपास के गन्दे टट्टीघरों को गिराकर उनकी जगह ज्यादा अच्छे और साफ सुथरे टट्टीघर बना लिये। उन्हें रसोई के काम में मजदूरों का इस्तेमाल न करने की भी प्रेरणा मिली। इसके फलस्वरूप शिक्षकों और छात्रों ने मिल-जुलकर सब काम आपस में बाँट लिया। शान्तिनिकेतन का यह प्रयोग आगे नहीं चला, इसमें उनका कोई दोष नहीं था।

गांधीजी की संगठन की शक्ति का दूसरा अनुभव मुझे चंपारण में हुआ। किसानों की शिकायत को दर्ज करने के काम में मदद पहुँचाने के लिए उनके जो वकील मित्र आये, वे मध्यम वर्ग के लोग थे। और जैसा कि बिहार के मध्यम वर्ग का रिवाज है, वे अपने-अपने साथ एक-एक रसोइया और एक-एक नौकर लेते आये थे। वे अपना सायंकालीन जलपान ८ बजे रात में करते थे और रात का खाना ११ बजे खाते थे। लेकिन जल्दी ही गांधीजी से उन्हें प्रेरणा मिली कि वे अपने नौकरों को वापस भेज दें। कार्यकर्ताओं के सहयोग से एक सामूहिक भोजनालय चलने लगा। इसके बाद ६ बजते-बजते खाना खा लिया जाता था। जीवन को संगठित करने की गांधीजी की यह विशेषता बार-बार दिखाई देती रही, चाहे वह अहमदाबाद के मजदूरों के संगठन के काम रहे हों, या खेड़ा और बोरसद में किसानों के प्रदर्शन के। अहमदाबाद के सूती-कामगारों का संघ इतनी कुशलता और समझ-बूझ के साथ संगठित किया गया था कि पिछले ४० वर्षों से वह देश का सबसे सुसंगठित मजदूर-संगठन है।

जनता की शक्ति सिर्फ संगठन के जरिये ही इस्तेमाल में लायी जा सकती है। ऐसे संगठन अपने आप नहीं बनते। उनकी संयोजना करनी पड़ती है। यह काम उस आदमी के जरिये हो सकता है, जिसमें लोगों की निष्ठा हो। जनता के नेताओं द्वारा यही काम मिल-जुलकर सहकारी ढंग से भी हो सकता है। लेकिन संगठन-सम्बन्धी सबसे बुनियादी बात यह है कि जो संगठन करनेवाले लोग हैं, उनकी मुख्य व्यक्ति में निष्ठा हो और वे अपनी व्यक्तिगत और सामाजिक जिन्दगी में ऐसे रद्दोबदल करने के लिए तैयार हों जिससे संगठन के उद्देश्यों की पूर्ति हो सके।

सशस्त्र संघर्ष : सैनिक तानाशाही को आमंत्रण

प्रश्न : अगर कम्युनिस्टों की एक जमात नक्सालवाड़ी के ढंग की कार्रवाइयों में विश्वास रखे तो क्या इसका देश के विकास पर असर पड़ेगा ?

आ० कृपालानी : नक्सालबाड़ी कोई नयी बात नहीं है। आजादी मिलने के ठीक बाद जब भारत-सरकार कई तरह की समस्याएँ सुलझाने में लगी हुई थी, उस समय तेलंगाना के कम्युनिस्टों ने सोचा कि किसानों को जमींदारों की जमीन पर कब्जा करने के लिए प्रेरित करके वे इस देश में एक क्रान्ति का सूत्रपात कर सकेंगे। जैसे ही दिल्ली के अधिकारियों का उधर ध्यान गया, और उन्होंने आन्दोलन को दबाने का कदम उठाया तो वह विद्रोह देखते देखते छिन्न-भिन्न हो गया। सिर्फ गरीब किसानों को मुसीबतें झेलनी पड़ीं और उनके कम्युनिस्ट नेता क्षेत्र छोड़कर भाग खड़े हुए। नक्सालबाड़ी के मामले में भी यही हुआ। यद्यपि संयुक्त मोर्चे में भीतरी एकता नहीं थी, फिर भी उसकी तरफ से जब कारगर कदम उठाये गये तो स्थिति सामान्य हो गयी। इस मामले में भी साधारण लोगों को ही तकलीफ झेलनी पड़ी, न कि उन नेताओं को, जिन्होंने कब्जा करने के लिए किसानों को उभाड़ा था। इसके साथ ही नक्सालवाड़ी का असर कलकत्ता पर भी हुआ। कम्युनिस्टों ने कलकत्ते में 'घेराव' शुरू किया। उसके कारण कलकत्ते की कई मिलें बन्द हो गयी। मिलों की बन्दी से बेरोजगारी बढ़ी। मुझे पक्का यकीन है कि जहाँ कहीं भी ऐसा विद्रोह संगठित किया गया हो, प्रादेशिक सरकारें

उसे धर दबा भी सकती है। प्रादेशिक सरकारें कामयाब न हो सकीं तो केन्द्रीय सरकार तो हो ही सकती है।

ऐतिहासिक दृष्टि से भारत की जनता ने कभी सत्ता के विरुद्ध बगावत नहीं की है। पुराने जमाने में रोम के गुलामों ने अपने मालिकों के विरुद्ध विद्रोह किया था। मध्य-युग में योरप के किसानों ने भी विद्रोह किया था। भारत के देशभक्तों द्वारा सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह को 'आजादी की पहली लड़ाई' की संज्ञा दी गयी है। अगर आजादी का मतलब सिर्फ अभारतीय के शासन से छुटकारा पाना भर हो, तब तो उसे आजादी की लड़ाई कहा जा सकता है। लेकिन लोग अपने अधिकारों को हासिल करने के लिए जो लड़ाई लड़ते हैं, वह उनकी आजादी की लड़ाई है तो सिपाही विद्रोह को आजादी की लड़ाई नहीं कहा जा सकता। अगर लोग अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ बगावत में उठ खड़े हुए होते तो ५०-६० हजार अंग्रेज आनन-फानन में खतम हो गये होते या भूखों मर जाते।

दरअसल वह विद्रोह ऐसे भारतीय राज-कुंवरों द्वारा संगठित किया गया था, जिन्हें लार्ड डलहौजी ने गद्दी से हटा दिया था। अंग्रेजों की फौज में भारत के लोग भर्ती हुए थे, उन्हींमें से कुछ लोगों ने राजकुंवरों को अपना सहयोग दिया था।

अगर भारत की जनता में विद्रोह करने की क्षमता होती तो हिन्दुओं में सबसे अधिक दलित और पीड़ित हरिजनों ने सवर्ण हिंदुओं के विरुद्ध बगावत की होती। यह एक हकीकत है कि जब गांधीजी का हरिजन-उद्धार का आन्दोलन शुरू हुआ तो मद्रास लोग अपने घर का पानी हमें पीने नहीं देते थे। उन्होंने कहा कि अगर वे ऊँची जाति के लोगों को पानी पीने के लिए देंगे तो वे पाप या अधर्म का काम करेंगे। ऊँची जाति के हम लोगों ने नीची जाति के लोगों को इतना दबाया है कि उनके भीतर अन्याय और अत्याचार के खिलाफ बगावत करने की इच्छाशक्ति ही नहीं बची है। एक तरह की गरीबी और पतन ऐसा होता है कि उसमें रहकर आदमी को बगावत करने की प्रेरणा मिलती है, लेकिन गरीबी और गिरावट के एक हद से नीचे पहुंच जाने पर व्यक्ति के लिए विरोध करना भी मुमकिन नहीं होता। इस मामले की एक ताजी ऐतिहासिक मिसाल है सन् १९४३ का बंगाल का अकाल। कुछ महीनों के भीतर कलकत्ते की सड़कों पर १३ लाख लोग भूखों मर गये। सचमुच अकाल था नहीं। दूकानें सामानों से और गोदाम अनाज से भरे हुए थे, लेकिन भूख से मरने-वाले लोग इतने दलित और दबाये हुए थे कि उन्होंने अपनी जान बचाने तक के लिए दूकानों के सामान को नहीं छुआ।

इसके अतिरिक्त, दुनिया के छोटे-से-छोटे देश के पास विध्वंस के इतने साधन हैं कि बगावत करनेवाले उनके सामने टिक नहीं सकते। इसलिए अब यह सम्भव नहीं रह गया है कि जैसे अठारहवीं सदी में फ्रांस की राज्य क्रांति हो सकी, वैसे ही इस जमाने में खुली बगावत करके कामयाबी हासिल की जा सके। उस जमाने में सम्राट के सैनिकों के पास कुछ हथियार थे और आम लोगों के पास भी। इसलिए संख्या का बहुत महत्त्व था। आज मशीनगन और बम के मुकाबले में जनता की बड़ी तादाद भी सफलता नहीं पा सकती। यह सम्भव है कि कुछ राजनीतिज्ञ मिलकर सैनिक-विद्रोह की योजना बना लें, लेकिन सामान्य जनता द्वारा विद्रोह सम्भव नहीं है जबतक कि भारत की सेनाएँ भी जनता का साथ न दें। अगर सेनाएँ जनता का साथ दें तो फिर वह जनता का नहीं, बल्कि सेना का विद्रोह होगा। फिर सेना ही सरकार पर कब्जा करेगी। उसमें न जनता होगी और न तो राजनीतिक लोग ही रहेंगे। वह सेना की तानाशाही होगी, जैसी कि पाकिस्तान में है।

एक ऐतिहासिक पुटेव : शस्त्र-संग्रह की आत्मघाती चेष्टा

प्रश्न : आज दुनिया में और देश में गांधी-शताब्दी समारोह और विनोबाजी की साथ-साथ चर्चा है। क्या इनका कोई ऐतिहासिक सन्दर्भ है और इनकी कोई ऐतिहासिक मंजिल भी है ?

आ० कृपालानी : यह संक्रान्ति-काल है। इस युग में अलग-अलग शक्तियाँ अगल-बगल खड़ी हैं। दुनिया को यह बात मालूम है कि विज्ञान और प्राद्योगिकी के विकास के जरिये जो कुछ तरक्की अब तक हुई है वह अणुयुद्ध के होने पर पल भर में मटियामेट हो जायेगी। राजनीति के व्यावहारिक लोग क्या कहते हैं ? वुडरो विल्सन के शब्दों में कहा जाय तो वे कहते हैं कि जबतक दुनिया निःशस्त्रीकरण और खुली राजनयिकता का रास्ता नहीं अपनाती तबतक विश्व-शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती। निःशस्त्रीकरण का मतलब क्या है ? यही कि अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के हल के लिए हिंसात्मक टक्कर का इस्तेमाल नहीं होगा। लड़ाइयाँ कोई मुक्के से नहीं लड़ा करते। फिर खुली राजनयिकता का क्या अर्थ होता है ? यदि वह खुली है तो वह सच्चाई की राजनयिकता ही होगी। इसका मतलब यह होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में एक राष्ट्र दूसरे के प्रति ईमानदारी और सच्चाई का व्यवहार करे।

गांधीजी ने जो कुछ नैतिक दृष्टि से कहा था, उसे ही राजनीतिक व्यक्ति राजनीतिक दृष्टि से प्रकट कर रहे हैं। इतना होते हुए भी गांधीजी और राजनीतिकों के बीच एक बड़ा फर्क है। गांधीजी जो कुछ कहते थे, उसका मतलब भी वही होता था और उसके लिए वे अपनी आहुति देने के लिए तैयार रहते थे। राजनीतिक व्यक्ति कहते एक बात हैं और करते दूसरी बात हैं। एक ओर वे निःशस्त्रीकरण और खुली राजनयिकता की बात कहते हैं, दूसरी तरफ वे शस्त्रों का ढेर लगाते जा रहे हैं और राजनयिकता को अधिक मक्कारी और ढोंग से भरी पूरी बना रहे हैं। उन्होंने ऐसे यंत्र बनवा लिये हैं कि उनके जरिये दूर से ही मेदिये का काम लिया जा सकता है। दूसरे देशों में अपने जासूस भेजने की जरूरत ही नहीं रही।

अब आज शान्ति के लिए उत्सुकता तो है, लेकिन जिनके मन में यह उत्सुकता है, वे इतने क्रान्तिकारी या बुनियादी परि-वर्तन चाहनेवाले नहीं हैं कि इतिहास की गलत परम्पराओं को उखाड़ फेंकें। लड़ाई-भिड़ाई मनुष्य का कोई स्वाभाविक गुण नहीं

है। यह आदमी की बहुत दिनों से चली आ रही एक आदत है, जिससे क्रियाशक्ति तो कुंठित होती ही है, विचार-शक्ति भी जड़ हो जाती है। अफसोस की बात यह है कि छोटे देश भी शस्त्र बढ़ाने की आत्मघातक कोशिश में लगे हैं। वे यह मामूली-सी बात भी नहीं समझते कि जबतक उनके हथियार औरों से ज्यादा तेज और ज्यादा तादाद में नहीं होंगे तबतक उन पर खर्च किया गया रुपया बेकार का खर्च ही होगा। यह एक ऐतिहासिक कुटेव है, जिससे छुटकारा पाया जा सकता है। अगर कई देश मिलकर ऐसा कर सकें तो यह सबसे अच्छा होगा। अगर यह संभव नहीं है तो कोई भी देश जो यह महसूस करता है कि लड़ाई खराब बात है वह इसका परित्याग करे, नतीजा चाहे जो सामने आये। ऐसी हालत में उस देश के ज्यादातर लोग ऐसा ही महसूस करते हों, यह जरूरी है। यह एक प्रकार का सामूहिक निर्णय है। अकेला व्यक्ति इस मामले में कुछ नहीं कर सकता। वह सिर्फ इतना कर सकता है कि देश जब अपने अधिकारों के लिए या अपनी सीमा के फैलाव के लिए सशस्त्र लड़ाई करे तो *उस प्रयास में शरीक न हो।* अगर मुमकिन हो तो लड़ाई का इस तरह प्रतिकार करनेवाले व्यक्ति अपने मुल्क को अन्याय या जुल्म का सामना करने का रास्ता भी दिखायें। मौजूदा परिस्थितियों में लड़ाई बहुत-सी समस्याओं को सुलझा सकती है, लेकिन आज वह एक समस्या सुलझाती है तो कई समस्याएँ पैदा करती है।

उद्देश्यों के अनुरूप जिन्दगी

प्रश्न : हमारे अपने जमाने में क्रांति के लिए शक्ति कैसे खड़ी की जाय?

आ० कृपालानी : जहाँ तक भारत का संबंध है, गांधीजी ने ऐसा कार्यक्रम दिया है, जो जमाने से आगे है। उसे पूरा करने के लिए हमें काफी समय तक प्रयत्नशील रहना होगा और काफी ताकत लगाकर काम करना होगा। अगर हम उसे छोड़ देना चाहते हैं तो हमें अपनी क्रान्ति की कोई अलग अवधारणा (कन्सेप्शन) निश्चित करनी होगी। इस दिशा में हमारी जो भी धारणाएँ हों, पहले हमें अपनी क्रान्ति के उद्देश्य के अनुसार अपनी जिन्दगी बनानी होगी। उदाहरण के लिए, अगर हम निजी मालकियत में विश्वास नहीं करते और उसकी समाप्ति चाहते हैं तो हमें उसके लिए उस समय तक नहीं रुकना चाहिए जबतक कि वह राष्ट्रीय नीति न बन जाय। अवांछनीय चीज समझकर हमें उसका परित्याग कर देना चाहिए। समाजवाद धन की विषमता को शायद दूर भी कर सके, लेकिन धन की चाह बनी रहेगी। धन की इस इच्छा और धन द्वारा मिलनेवाली सुख-सुविधाओं के कारण साम्यवादी देशों में भी सुविधा में रहनेवाले नये वर्ग पैदा हो रहे हैं।

बर्नार्ड शा जैसे व्यक्ति ने समाजवाद में अपनी आस्था रखी, लेकिन धन इकट्ठा करता चला गया, वह धन इकट्ठा करने की इच्छा की जड़ नहीं काट सका। कम्युनिस्ट देशों में भी प्रशासन तथा तकनीकी क्षेत्रों में नये-नये वर्ग बन रहे हैं। साधारण आदमी की आय की तुलना में उनका मेहनताना कई गुना ज्यादा रहता है।

पुराने जमाने में लोग धन का परित्याग करते थे और धन की इच्छा का भी। आज व्यक्ति को यह नहीं करना है, लेकिन जहाँ तक उसके लिए मुमकिन हो उसे ऐसे संगठन और साधनों की इच्छा करनी है, जो धन इकट्ठा करने या धन का उपयोग करने को ज्यादा मुश्किल बना दें। इस बात की भी सामूहिक आवश्यकता है कि धन का परित्याग किया जाय और उसकी इच्छा का भी, और इसके लिए हमें एक संगठन बनाना होगा। गांधीजी ने न सिर्फ धन और उसकी इच्छा का परित्याग किया था, बल्कि ऐसी आर्थिक और राजनैतिक परियोजनाएँ दी थीं, जिनका अनुसरण करने पर धन इकट्ठा करने की प्रक्रिया को टाला जा सकता था। आज हमें व्यक्तिगत और सामूहिक, दोनों स्तरों पर यह काम करना होगा।

मूल्यों का मूलगामी परिवर्तन

प्रश्न : क्रान्ति का क्या अर्थ होता है? कृपया स्पष्ट करें।

आ० कृपालानी : किसी संस्था या व्यवस्था के ढाँचे में होनेवाले परिवर्तन के लिए मोटे तौर पर 'क्रान्ति' शब्द का उपयोग किया जाता है। प्रचलित मूल्यों में परिवर्तन के लिए भी इसका इस्तेमाल किया जाता है। व्यक्तियों के मामले में यह शब्द उस समय उपयोग में लाया जाता है, जब कि उनकी जिन्दगी का पुराना आधार बदल जाता है और वे नये आधार पर अपनी जिन्दगी का तर्ज-तरीका अपनाते हैं।

अगर सरकार वोट के लोकतांत्रिक तरीके से बदलने की बजाय, किसी अन्य ढंग से बदल जाय तो उसे भी क्रान्ति माना जाता है। विदेशी शासक की जगह स्थानीय राजा या शासक का शासन सम्भाल लेना भी क्रान्ति माना जाता है। इंग्लैण्ड में चार्ल्स प्रथम की फाँसी और क्रामवेल के 'डिक्टेटरी' शासन को भी क्रान्ति माना जाता है। इंग्लैण्ड के सम्राट जेम्स द्वितीय का गद्दी से उतारा जाना और उसकी जगह राजकुमारी मेरी के गद्दी पर बैठने को भी मूक क्रान्ति माना जाता है। योरप में औद्योगिक उत्पादन के साधनों के रूप में यांत्रिक शक्ति के उपयोग को औद्योगिक क्रान्ति कहा जाता है। भारत में सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह को 'आजादी की पहली लड़ाई' कहा जाता है, जैसे कि उसके द्वारा क्रान्ति करने की बात सोची गयी हो। एक तानाशाह के सत्ता में आने को भी क्रान्ति कहा जाता है। कभी-कभी कुछ राजनीतिज्ञों द्वारा सैनिक-शक्ति की सहायता से सरकार पर कब्जा कर लेने के प्रयास को भी क्रान्ति कहा जाता है। योरप में असभ्य लोगों द्वारा ईसाई *मत में दीक्षित होने* और गैर-मुसलिमों द्वारा इसलाम को कबूल करने को भी क्रान्ति कहा जाता है। चीनियों द्वारा बौद्ध धर्म के स्वीकार करने को भी क्रान्ति कहा जाता है। फिर बहुत-से ऐसे लोग होते हैं, जो अपनी जिन्दगी बिताने का पुराना ढर्रा छोड़कर नया ढर्रा स्वीकार कर लेते हैं। इसे भी उनके जीवन की क्रान्ति माना जाता है। आमतौर से राजनैतिक क्षेत्र में क्रान्ति का अर्थ है— राजनैतिक शक्ति को धारण करनेवाले मूल आधारों में तेज और जोरदार परिवर्तन। इसी अर्थ में अठारहवीं सदी के अन्त की

फ्रांसीसी राज्यक्रान्ति, रूस की बोल्शेविक क्रान्ति और चीन की साम्यवादी क्रान्ति का लोग जिक्र करते हैं।

हम देखें कि फ्रांस की क्रान्ति, रूस की क्रान्ति और चीन की क्रान्ति में क्या घटित हुआ ? शुरू में फ्रांस की क्रान्ति को लें। फ्रांस में सम्राट का शासन समाप्त कर दिया गया। नेपोलियन ने लोकतन्त्र और तानाशाही के अनेक प्रयोग करके अन्त में फ्रांस पर सेना की तानाशाही थोप दी। यह सैनिक-तानाशाही कुछ समय के बाद पूँजीवादी लोकतन्त्र में बदल गयी। फ्रांस में क्रान्ति ने सत्ता के ढंग (पैटर्न) को बदल दिया। उसने फ्रांस की एकछत्र सम्राट आधारित सत्ता को लोकतांत्रिक गणतन्त्र में में बदल दिया। इस नतीजे को क्रान्ति कहा जाय, यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम क्रान्ति का क्या अर्थ करते हैं।

रूस की बोल्शेविक क्रान्ति क्रान्तिकारी नेताओं की तानाशाही के रूप में पेश हुई, यद्यपि उसे मजदूरों की तानाशाही कहा गया। तब से रूस ने लोगों को शक्ति सौंपे बगैर लोकतंत्र के तंत्र (मशीनरी) की शुरूआत की है। यह सब रूस को कहाँ पहुँचायेगा, यह भविष्यवाणी करना मुश्किल है।

चीनी क्रान्ति की शुरुआत च्यांग काइ-शेक और माओ के संघर्ष से प्रारम्भ हुई। च्यांग-काइ शेक एक जीर्ण और कमजोर लोकतांत्रिक व्यवस्था का प्रतिनिधि था और माओ के पीछे जो राजनीतिक दर्शन था, वह मार्क्स और लेनिन का ही दर्शन था और वह रूस के राजनैतिक दर्शन से मिलता जुलता था। इन क्रान्तियों ने बहुत सी संस्थाओं का स्वरूप बदल दिया है, लेकिन परिवर्तन मुख्यतः संस्थागत है। उन्होंने बुनियादी रूप से राजनीति के मूल्यों में कोई परिवर्तन नहीं किया है। बहुत पुराने जमाने से, राजनीति का आधार और खास तौर से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का आधार हिंसात्मक युद्ध और धूर्त राजनयिकता रही है।

युद्ध और राजनयिकता के बुनियादी मूल्यों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। एक तरह से देखा जाय तो ये दोनों क्रान्तियाँ हमें उल्टी दिशा में ले गयी हैं। कम-से कम आन्तरिक राजनीति में लोकतंत्र का अर्थ होता है हिंसा की समाप्ति और कुछ हद तक सत्य का समावेश। कम्युनिस्ट क्रान्ति में यद्यपि सरकार को सर्वहारा की तानाशाही कहा जाता है, लेकिन उसमें सर्वहारा कहीं दिखाई नहीं देता। इन क्रान्तियों के बारे में इतना ही कहा जा सकता है कि राजनीतिकों की एक अन्तरंग टोली के नेतृत्व में एक दल लोगों को सुखी बनाना चाहता है। वह सुख कैसा होगा इसका निर्णय आम लोग नहीं करते, बल्कि दल और उसके अन्तरंग नेतागण करते हैं। इसका निर्णय लोगों के हाथ में नहीं है।

राजनीतिक क्षेत्र में एक प्रकार की बुनियादी क्रान्ति भी होती है। यह क्रान्ति तब होती है, जब हिंसा और पेचीदी राजनयिकता के मूल्यों में परिवर्तन होते हैं। मूल्यों का ऐसा मूलगामी परिवर्तन जहाँ हो उसे अत्यन्त उत्कृष्ट प्रकार की क्रान्ति मानना होगा। गांधीजी ने ऐसी ही क्रान्ति की अपेक्षा की थी, जब कि उन्होंने चालबाजी की राजनयिकता की जगह सच्चाई, और हिंसा की जगह अहिंसा को प्रस्थापित किया था। वे जो सुधार लागू करना चाहते थे, वे इन बुनियादी और आधारभूत भित्ति पर खड़े थे।●

हिंसा की संयोजित भूमिका

प्रश्न बापू को गये २१ साल पूरे हो रहे हैं। इन २१ सालों के कहने-सुनने लायक बहुत सारे परिवर्तन देश और दुनिया की परिस्थितियों में हुए हैं, लेकिन इन सारे परिवर्तनों को एक ओर रख दें, तो साम्प्रदायिक हिंसा की उग्र लपटों का जो दर्शन सन् १९४६-४७-४८ में हुआ था, ऐसा लगता है कि बहुत थोड़े-से परिवर्तित रूप में हिंसा की वही लपटें पुनर्जीवित हो उठी हैं। ऐसे वक्त में गांधी की याद जनहृदय में स्वाभाविक ही हो उठती है। लोग कह पड़ते हैं कि गांधीजी होते तो ऐसा नहीं हो पाता!

जन-हृदय की यह अपेक्षा क्या स्वाभाविक मानी जायेगी, जब कि हम जानते हैं कि खुद गांधी को इस साम्प्रदायिक हिंसा का शिकार होना पड़ा था ? जन-हृदय की इस आकांक्षा का आधार क्या है ? आज के सन्दर्भ में में गांधी की कोई सार्थकता नजर आती है ? अगर हाँ, तो गांधी की शक्ति किस रूप में और किस माध्यम से आज की समस्याओं का निराकरण प्रस्तुत कर सकती है ?

धीरेन्द्र भाई : पिछले इक्कीस सालों में देश और दुनिया में कुछ विशेष गुणात्मक परिवर्तन हुआ है, ऐसा मानना नहीं चाहिए। विज्ञान की प्रगति में साथ-साथ राज्यवाद, पूँजीवाद और सैनिकवाद का विकास होता रहा है और आज की परिस्थिति उसीका विकसित रूप है। आर्थिक जिन्दगी के अत्यधिक केन्द्रीकरण के कारण सत्ता की शक्ति जिस पैमाने पर केन्द्रित हो गयी है उसके चलते दुनिया में सत्ता का संघर्ष अधिक बढ़ा है। पूँजीवाद और सत्तावाद का यह संघर्ष पहले भी था, लेकिन संघर्ष के साधन आज की तरह इतने विकसित नहीं थे, इसीलिए वह उतना उग्र नहीं था।

इस उग्र प्रतिद्वन्द्विता के जमाने में द्वन्द्व में लगे हुए हर तबके के लिए यह स्वाभाविक है कि समाज में मनुष्य से मनुष्य को अलग करनेवाले जितने तत्त्व हैं, सफलता प्राप्त करने के लिए वे उन सबका लाभ उठाने में सक्रिय हों। इस देश में जातिवाद और सम्प्रदायवाद ये दो ऐसे तत्त्व हैं, जिन्हें द्वन्द्व की सफलता के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। अबतक ऐसा इसलिए नहीं था कि देश में एक ही दल का आधिपत्य था, दूसरे दल पीछे थे, और उनको निकट भविष्य में सफल होने की आशा नहीं थी। दूसरे दलों ने सन् १९६७ के चुनाव की पूर्वतैयारी में अपने को अधिक सक्रिय किया। चुनाव के बाद हरएक के मन में सफलता की संभावना प्रकट हुई, और साथ-साथ दलों की संख्या भी बढ़ गयी। फलस्वरूप संघर्ष अधिक उग्र और व्यापक बन गया है।

लेकिन यह हिंसा सन् '४६-'४८ में घटित हिंसा का पुनर्जीवन नहीं है। सन् '४६-'४८ में

बहुत दिनों से दबे हुए साम्प्रदायिक द्वेष का भावनात्मक उभाड़ हुआ था। आज जो कुछ होता है, वह भिन्न-भिन्न दलों द्वारा संयोजित संघर्ष होता है। उस समय गांधीजी की शहादत से जिस शान्ति की भावना का उभाड़ हुआ, वह अशान्ति के उभाड़ को दबाने के लिए काफी था। इस समय साम्प्रदायिक हिंसा का जो उग्र रूप दिखाई दे रहा है वह हिसाब से संयोजित है। इसलिए जिन प्रतिद्वन्द्विताओं तथा संघर्षों में कुछ सफलता प्राप्त होने के बाद, और अधिक सफल होने के लिए हिंसा का संगठन किया जा रहा है, उसके निराकरण का प्रयास भी हिसाब से और व्यापक पैमाने पर करना चाहिए। स्पष्ट है कि दलवादी राजनैतिक पद्धति इसका मुख्य कारण है। इसलिए सबसे पहली जरूरत राजनीति को दलमुक्त करने की है।

हिंसा के इस उग्र रूप का दूसरा कारण है समाज का नैराश्य। आज देश के हर हिस्से के लोग निराश हैं, क्योंकि मुल्क के किसी भी हिस्से में गतिशीलता नहीं है। पूरा देश एक जड़ 'स्टीन' पर घूम रहा है। देश के अन्दर आगे बढ़ने का कोई कार्यक्रम नहीं है। विनोबा ने ग्रामदान-आन्दोलन के रूप में जो कार्यक्रम प्रस्तुत किया है, वह भी आज एक आवाज और पुकार ही है। धीरे-धीरे उसको मजबूत कार्यक्रम के रूप में विकसित करना होगा, जिससे मुल्क बेकारी और नैराश्य से मुक्त हो सके।

मनःस्थिति और परिस्थिति की विसंगति

प्रश्न : इस समय देश में कुछ ऐसी शक्तियाँ उभर रही हैं, जो गांधी को निरर्थक साबित करना चाहती हैं। एक ओर राष्ट्र के नाम पर, दूसरी ओर क्रान्ति के नाम पर जनता के संघर्ष के लिए संगठित कर रही हैं। इन संघर्षों में बुनियादी शक्ति हिंसा की दिखाई देती है। इस सन्दर्भ में गांधी-विचार के प्रति निष्ठावान् लोगों को क्या करना चाहिए?

धीरेन्द्र भाई : इस समय जो शक्तियाँ गांधीजी को निरर्थक साबित करना चाहती हैं, वस्तुस्थिति के सन्दर्भ में उनमें बहुत सामर्थ्य नहीं है। वस्तुस्थिति की माँग यह है कि दुनिया में राष्ट्रवाद का निराकरण हो। शस्त्र और सैनिकवाद की परिस्थिति ने हिंसक क्रान्ति को अव्यावहारिक बना दिया है। राष्ट्रवादी और हिंसावादी, दोनों ही आज की परिस्थिति में बहुत दिनों तक पनप नहीं सकते। आज कहीं कहीं हिंसा का जोर दिखाई दे रहा है, वह इसलिए कि इन्सान की मनःस्थिति परिस्थिति के साथ 'एडजस्ट' नहीं हो पायी है। इस युग की परिस्थिति निःशस्त्रीकरण की है और मनःस्थिति शस्त्र-निष्ठा की है, इसलिए सारी दुनिया में निःशस्त्रता की परिस्थिति में भी शस्त्र-संघर्ष का पुरुषार्थ हो रहा है। परिस्थिति के विरोध में यह जो पुरुषार्थ दिखाई दे रहा है, उसीके कारण कहीं भी किसी संघर्ष

धीरेन्द्र भाई : समग्र क्रान्ति की पुकार

का कोई निष्कर्ष नहीं निकल रहा है और हर संघर्ष नासूर (साइनस) जैसा स्थायी रूप ले रहा है। यह स्थायी संघर्ष कभी ठण्डा, कभी गरम होता है, लेकिन उसका कोई आखिरी नतीजा नहीं निकलता है। इस कारण संसार के चिन्तनशील व्यक्तियों में निराशा का दर्शन हो रहा है।

गांधी-विचार के प्रति निष्ठावान् लोगों को चाहिए कि वे व्यापक पैमाने पर जनमानस में अधिष्ठित शस्त्र-निष्ठा के निराकरण का प्रयत्न करें। देश और दुनिया में अहिंसक आन्दोलनों को और अधिक गतिशील बनाना ही इसका एकमात्र उपाय है।

उत्कट अधिकारवाद और जागृत लोकचेतना

प्रश्न : सारी दुनिया में दलीय राजनीति के आधार पर विकसित लोकतांत्रिक सत्ता और फौजी तथा साम्यवादी तानाशाही नयी पीढ़ी को समाधान नहीं दे पा रही है। हर जगह युवजनों में हर प्रकार की सत्ता के खिलाफ एक विद्रोही चेतना की लहर-सी दौड़ रही है। नयी पीढ़ी की यह विकलता क्या मानवता के लिए कोई शुभ संकेत है? क्या इस सन्दर्भ में गांधी-विचार से दिशा-निर्देश की अपेक्षा की जा सकती है? गांधी-विचार का कौनसा पहलू इस समय नयी पीढ़ी के लिए समाधानकारी साबित हो सकता है?

धीरेन्द्र भाई : पुराने जमाने में राजतंत्र यानी एकतंत्र था, जिसका आधार दण्ड-शक्ति का रहा। लोकतंत्र की कल्पना में सम्मति को सामाजिक शक्ति के रूप में मान्य किया गया था। लेकिन दुर्भाग्य से सम्मति को समाज-संचालन तथा संरक्षण की आधारभूत शक्ति के रूप में विकसित नहीं किया गया। 'एकतंत्र' द्वारा अपने लिए विकसित 'यंत्र' को ही लोकतंत्र के संचालन-यंत्र के रूप में स्वीकार कर लिया गया। किसी चीज को चलाने के लिए दो तत्वों की जरूरत होती है—शक्ति और यंत्र की। कोयले की शक्ति से जिस इंजिन को चलाना है उस इंजिन के पुर्जे और उसकी डिजाइन डीजल से चलनेवाले इंजिन से अनिवार्यतः भिन्न होने चाहिए। अगर डीजल-इंजिन में कोयले का 'पावर' डाल दिया जाय तो वह इंजिन चल नहीं सकता। ठीक उसी तरह दण्ड शक्ति यानी सैनिक-शक्ति से संचालन के लिए 'एकतंत्र' ने जिस प्रकार के केन्द्र-संचालित और सैनिक-शक्ति-आधारित संचालन-यंत्र को बनाया था, उसीसे लोकतंत्र को चलाने के प्रयास में विफलता ही हासिल होगी, भले ही उस संचालन-यंत्र को चलानेवाला लोक-सम्मति से चुनकर ही क्यों न आया हो। इसलिए आज किसी देश के

लोकतांत्रिक समाज में गतिशीलता नहीं है। और, चूँकि गति नहीं है, इसलिए युवजन समाज में समाधान नहीं है।

दूसरी बात यह है कि लोकतंत्र पिछले चार सौ वर्षों से जनमानस को साम्य, मैत्री, और स्वतंत्रता के विचार से उद्बोधित कर रहा है। ज्ञान विज्ञान के प्रसार से सार्वजनिक लोक-चेतना का निर्माण हुआ है। लोगों में आत्म-प्रत्यय और स्वाभिमान बहुत आगे बढ़ गया है। जनता की मनःस्थिति स्वतन्त्रतावादी बन गयी है। लेकिन इसके साथ ही शासन-सचालन में जन-सम्मत व्यक्ति के पहुँच जाने के कारण लोकतंत्र में राजतंत्र से अधिक जन कल्याण हो, ऐसी अपेक्षा भी बन गयी है। फलस्वरूप समग्र जन-कल्याण के नाम पर शासन का अधिकार जन-जीवन के अंग-प्रत्यंग तक पहुँच गया है।

इस प्रकार लोक-कल्याणवादी लोकतन्त्र के विचार का अत्यधिक प्रसार होने के कारण समाज की मनःस्थिति स्वतन्त्रवादी बन गयी है, और सत्ता का दायरा बढ़ जाने के कारण परिस्थिति उत्कट अधिकारवादी बन गयी है। स्वतंत्रता का स्वधर्म अधिकार को इनकार करने का होता है और अधिकार का स्वधर्म स्वतंत्रता को बर्दाश्त नहीं करने का होता है। इस आन्तरिक विसंगति के कारण आज का तरुण हर प्रकार की सत्ता के प्रति विद्रोही बन रहा है। जब लोकतन्त्र के विचार के प्रसार द्वारा लोकचेतना इतनी ज्यादा आजादी पसन्द बन गयी है तब यह आवश्यक हो गया है कि लोकतन्त्र सत्तामूलक न बनकर जनमूलक बने और समाज की गति-शक्ति दण्ड न रहकर सम्मति और सहकार हो। समाज का संगठन जबतक इस आधार पर नहीं होगा तबतक विद्रोह की यह लहर फैलती ही जायेगी। यह अपने में न शुभ है और न अशुभ। यह लोकतांत्रिक समाज के गलत 'इंजिनियरिंग' की परिणति मात्र है। अगर सामाजिक पद्धति इसी प्रकार अधिकार-वादी रही तो यह अशुभ संकेत है, और यदि युवजनों ने अपने अभिक्रम से समाज के निम्न स्तर से लेकर उच्च स्तर तक सामा-जिक पद्धति के बदलने का रचनात्मक प्रयास किया तो इनकी वर्तमान उफन पुफल मानवता के लिए शुभ संकेत साबित होगी।

स्वतंत्रतावादी लोकमानस अगर लोक-तांत्रिक सत्ता को भी मानने को तैयार नहीं, तो फिर फौजी या साम्यवादी तानाशाही से उनका समाधान कैसे हो सकता है?

गांधी-विचार की स्वावलम्बी समाज-रचना का पहलू एक ऐसा पहलू है, जो स्वतन्त्रतावादी लोकमानस को समाधान दे सकता है। स्वावलम्बी समाज तभी चल सकता है जब उसकी गतिशक्ति सम्मति और सहकार हो, न कि दबावमूलक नियन्त्रण।

ऐसे समाज में ही हर वर्ग, हर स्तर, और हर उम्र के लोगों में समन्वित विकास हो सकता है। तरुण समाज को यह समझना होगा कि अधिकारवादी रचना, जो कि पुराने समाज द्वारा शान्ति और श्रृंखला को कायम रहने के लिए ही रची गयी थी, आज की सार्वजनिक चेतना के युग में नहीं चल सकती है। उन्हें पुराने समाज की छोटी छोटी प्रवृत्तियों को तोड़ने के प्रयास में न लगकर समाज रचना के आमूल परिवर्तन में अपनी शक्ति लगानी चाहिए। उन्हें समाज को इस ढंग से संगठित करना चाहिए, जिससे अधिकारी का अधिकार किनारे पड़ जाय और समाज स्वतंत्र चिन्तन और निर्णय के सहारे आगे बढ़ जाय। इसी उद्देश्य की पूर्ति में आज विनोबा सम्मति और सहकार शक्ति के आधार पर ग्राम स्वराज्य के अधिष्ठान के लिए ग्रामदान-आन्दोलन चला रहे हैं। अगर तरुण समाज को अधिकारवाद से मुक्त होना है तो उन्हें इसी समग्र शान्ति में अपनी शक्ति लगानी चाहिए।

शान्ति सेना की आवश्यकता और शान्तिप्रिय व्यक्ति की जिम्मेदारी

प्रश्न आपने सन् १९४७ के साम्प्रदायिक संघर्षों को करीब से देखा-समझा था। गांधीजी की उस समय की चिंतन-धारा में आपका प्रत्यक्ष सम्पर्क भी रहा। क्या आप वर्तमान सन्दर्भ में कुछ सुझाव दे सकते हैं कि अशान्ति-निवारण के काम की रूपरेखा इन दिनों क्या होनी चाहिए?

धीरेन्द्र भाई साम्प्रदायिक संघर्ष गांधीजी के समय भी होते थे। वे सभी सम्प्रदायों को एकसाथ मिलाने का प्रयास करते थे और जब संघर्ष छिड़ता था तो वे उसे शान्त करने के लिए सक्रिय कदम उठाते थे। राष्ट्रीय जीवन में साम्प्रदायिक संघर्ष मुख्य रूप से सन् १९२४ से शुरू हुआ था। उस समय से देश में गांधीजी ने शान्ति-सेना के संगठन की बात शुरू कर दी थी। लेकिन उनका पूरा समय राष्ट्रीय आजादी के संघर्ष में लगा रहा, इसलिए वे स्वयं शांति सेना के संगठन में नहीं लग सके। तब, गांधीजी अपने समय के अकेले ही शान्ति-सैनिक रहे, और उनकी प्रेरणा से श्री गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे कुछ लोगों ने शान्ति-कार्य में अपने को समर्पित किया। लेकिन अब, जब अखिल भारतीय शान्ति-सेना का संगठन हो गया है तो देश में शान्ति चाहनेवाले हर व्यक्ति को उसमें शामिल होकर उसे सक्रिय बनाना चाहिए, ताकि अशान्ति-निवारण का काम प्रभावशाली पैमाने पर हो सके।

दलीय राजनीति : या व्यक्तिगत सत्ता का संघर्ष

प्रश्न २१ सालों की भारत की दलीय राजनीति और लोकतांत्रिक रचना को आपने बहुत ही निकट से देखा-समझा है। क्या आप मानते हैं कि सारे प्रयास इस अर्थ में विफल रहे कि देश की किसी समस्या का कोई स्थायी समाधान नहीं निकला है? आपकी दृष्टि से इसके बुनियादी कारण क्या हैं? क्या गांधीजी के आखिरी वसीयतनामे पर कांग्रेस ने अमल किया होता, तो परिस्थिति कुछ भिन्न होती? अब, आज क्या हो सकता है?

धीरेन्द्र भाई दलीय राजनीति संवै-धानिक लोकतन्त्र के संचालन की एक पद्धति है। आजादी से पहले इस देश की जनता को कभी किसीने लोकतांत्रिक विचार से उद्बोधित नहीं किया था और न पहले उस विचार के आधार पर कोई आन्दोलन ही चला था। संसार के सभी देशों की तरह इस देश में भी पहले राजतन्त्र चलता था। जिन दिनों अन्य देशों में दार्शनिकों द्वारा लोकतंत्र के विचार का प्रचार हुआ तथा क्रान्तिकारियों

द्वारा समाज में उसके लिए आन्दोलन चलाये गये, उन दिनों भारत में साम्राज्यवाद रूपी महान् सामंतवाद की स्थापना हुई। इस सत्ता के खिलाफ देश में जो वैचारिक उद्बोधन तथा राजनैतिक आन्दोलन चला वह लोकतंत्र का नहीं था, बल्कि आजादी का था। इसलिए हमारे देश में आजादी-प्राप्ति के समय से ही देश की जनता में लोकतांत्रिक चेतना का अभाव रहा है। ब्रिटिश राजनीति के सिद्धान्तों में दीक्षित हमारे नेता चूँकि संवैधानिक लोकतंत्र के कायल थे, इसलिए उन्होंने उसी पद्धति को जारी कर दिया। आन्दोलन में काम करनेवाले सामान्य जन की तथा ग्राम जनता की मन.स्थिति में लोकतंत्र का कोई असर नहीं था। इसलिए ऊपर से लादा हुआ अपरिचित लोकतंत्र व्यक्तिगत सत्ता-प्राप्ति का अखाड़ा बन गया है।

अतएव, आप जिसको दलीय राजनीति कहते हैं वह व्यक्ति-सत्ता नीति है। वस्तुतः नेताओं ने भी स्वतन्त्र रूप से देश की परिस्थिति के अनुसार लोकतंत्र के विचार-शिक्षण तथा मौलिक ढंग से तंत्र पद्धति के प्रश्न पर स्वतंत्र चिन्तन नहीं किया। काम चलाने के लिए इंग्लैंड और अमेरिका की अन्धी नकल कर कुल संविधान बना लिया और बाकी व्यक्ति-केन्द्रित पदमूलक मन स्थिति को बनाये रखा।

आजादी के संघर्ष के सिलसिले में कांग्रेस *देश की एक अनुशासित जमात बन गयी थी,* जिसके अनेक त्यागी और महान् नेता थे। अंग्रेज उनके हाथ में सत्ता सौंपकर चले गये। कांग्रेस पूर्वसंग्रहित शक्ति और संगठन के सहारे कुछ दिनों तक अंग्रेजों की छोड़ी हुई लीक से इस देश का काम चलाती रही; लेकिन कांग्रेस के अन्दर भी व्यक्तिवादी पदनीति परस्पर टक्कर लेती रही। फलस्वरूप कांग्रेस बिखर गयी। इसके अलावा दूसरे व्यक्तिवादी तत्व दलीय राजनीति का 'साइनबोर्ड' लेकर देश के सामने आज खड़े हैं। इस व्यक्तिवादी पदनीति के कारण ही इतने व्यापक पैमाने पर दल-बदल की समस्या समाज-जीवन में संकट के रूप में उपस्थित हुई है।

तब क्या आज की परिस्थिति को लोकतांत्रिक रचना के प्रयास की विफलता का परिणाम मान लिया जाय? वस्तुत. मैं ऐसा मानता हूँ कि इस देश में न कभी लोकतांत्रिक विचार के उद्बोधन का प्रयास हुआ है और न उसकी रचना का। अंग्रेजों के छोड़े हुए तंत्र को कुछ हेर-फेर लेकिन अधिकतर उसी रूप में चलाने का प्रयास हुआ है।

स्वराज्य-प्राप्ति के पहले और उसके बाद लोकतांत्रिक चेतना और रचना के प्रयास का मार्ग गांधीजी ने देश के सामने रखा था। लेकिन देश की जनता और नेताओं ने गांधीजी के विचार को नहीं माना। उन्होंने चरखा संघ को कहा था कि संघ अपने अस्तित्व को मिटा दे और कार्यकर्ता गाँव-गाँव में समग्र ग्राम-सेवक के रूप में बैठ जाय। उन्होंने कांग्रेस-जन को कहा था कि वे अपनी संस्था की राजनैतिक सत्ता के रूप में विसर्जित कर लोक-सेवक-संघ के सदस्य के नाते गाँव-गाँव में फैल जायें, ताकि फैले हुए कांग्रेस-जन और बैठे हुए रचनात्मक कार्यकर्ता लोकतन्त्र के 'लोक' को उद्बोधित, अधिष्ठित तथा संगठित करें। और फिर लोक-चेतना के सहारे लोकतंत्र का निर्माण करें। वैसा होता तो लोकतंत्र 'लोकमूलक' बनता, न कि आज के जैसा *'तंत्रमूलक'। फिर लोकनायक लोकतांत्रिक* चेतना के आधार पर तंत्र संचालन की नयी पद्धति का आविष्कार करते। वैसा हुआ होता, तो आज के नेताओं का व्यक्तिगत स्वार्थ दलगत राजनीति के बहाने मुल्क को दलदल में नहीं फँसा पाता।

मौजूदा संविधान में हेरफेर करके इस समस्या का हल निकालने की कोशिश अब करेंगे तो उपरोक्त परिस्थिति के कारण समाधानकारी कोई हल नहीं निकाल सकेंगे। अगर आज की परिस्थिति का समाधान करना है तो बुनियाद में लोकतंत्र के 'लोक' को अधिष्ठित करना होगा। यही काम आज विनोबा ग्रामदान की प्रक्रिया से ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करके करना चाहते हैं।

विचारात्मक लक्ष्य और रचनात्मक आन्दोलन

प्रश्न : स्वराज्य-प्राप्ति के लिए गांधीजी ने जनता की शक्ति देश में पैदा की थी। शायद अंग्रेजी दासता से मुक्ति के लिए जन-शक्ति से भिन्न किसी शक्ति को इतनी जल्दी और आसानी से सफलता नहीं मिलती।

आज वही जन-शक्ति बिखरी हुई है, और आये दिन उसका हिंसात्मक उभाड़ होता रहता है। क्या देश में समग्र और बुनियादी परिवर्तन के लिए जनशक्ति का संगठन सम्भव है? किन आधारों पर उसे परिवर्तन के लिए जागरूक होकर एक दिशा की ओर बढ़नेवाली शक्ति के रूप में मोड़ा जा सकता है?

धीरेन्द्र भाई : स्वराज्य-प्राप्ति के लिए गांधीजी ने देश की जनता की भावना को उद्बुद्ध किया। जनता में जो भावनात्मक उभाड़ पैदा हुआ था उसकी मार्फत उन्होंने जन-समूह को निर्भय बनाया था। लेकिन केवल भावनात्मक जोश और निर्भयता से शक्ति का निर्माण नहीं होता है। वह शक्ति वैसी ही होती है जैसी किसी चीज के नशे से होती है। नशा उतर जाने पर नयी उभड़ी हुई शक्ति तो समाप्त होती ही है, पहले की शक्ति का भी क्षय हो जाता है।

गांधीजी ने स्वराज्य-प्राप्ति की तीव्र उभाड़ आकांक्षा-जनित जनता के भावनात्मक तथा उस समय की व्यापक निर्भयता में से नयी शक्ति को जन्म देना चाहा था। इसके लिए उन्होंने पूरे राष्ट्र को व्यापक *स्तर पर रचनात्मक कार्यों में लगने को कहा* था, ताकि भावनात्मक चेतना सृजनात्मक रूप ले और धीरे-धीरे संगठित होकर एक ठोस लोक-शक्ति के रूप में अधिष्ठित हो सके। दुर्भाग्य से देश के नेता, जो मुख्य रूप से उच्च मध्यम वर्ग के थे, इस बात को पकड़ नहीं पाये। अंग्रेजी सल्तनत को हटाना ही उनका मुख्य लक्ष्य था। कभी भी जनता के सम्पर्क में नहीं रहने के कारण जनमानस को समझना उनके लिए कठिन था। अंग्रेजी शिक्षा से शिक्षित होने के कारण वे मानते थे कि अंग्रेजी तंत्र को स्वदेशी हाथ में सौंपने पर तंत्र-शक्ति द्वारा मुल्क की प्रगति हो सकेगी। इसलिए लोकशक्ति के निर्माण के लिए गांधीजी की व्यूह-रचना की ओर उनका ध्यान नहीं गया।

चूँकि रचनात्मक कार्य सार्वजनिक न होने के कारण देश की बुनियादी लोकशक्ति नहीं बन पायी, इसलिए आज लोक की यह दुर्दशा है। यह भी सोचना गलत है कि दासता से मुक्ति के लिए केवल उभाड़मूलक क्षणिक जोश से सफलता मिल सकती है। देश को अगर आजादी मिली तो उसमें जागतिक परिस्थिति भी एक बड़ा कारण बनी।

आज भी जो हिंसात्मक उभाड़ हो रहे हैं, उनके पीछे कोई जनशक्ति नहीं है। वह भी किसी-न किसी तात्कालिक क्षोभ को लेकर अस्थायी उभाड़ की अभिव्यक्ति मात्र है। उसके पीछे न रचनात्मक दृष्टि है, और न विचारात्मक लक्ष्य।

देश में समग्र और बुनियादी परिवर्तन के लिए जनशक्ति का संगठन ही एकमात्र साधन हो सकता है। उसके लिए चाहिए स्पष्ट विचारात्मक लक्ष्य और रचनात्मक आन्दोलन। दोनों के साथ-साथ चलने पर ही वास्तविक लोकशक्ति का निर्माण हो सकता है। उस लोकशक्ति द्वारा ही समाज का बुनियादी परिवर्तन हो सकेगा।

संघर्ष की पद्धति और पार्टियों की पट्टीदारी

प्रश्न : कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि इस देश मे व्याप्त जड़ता, निष्क्रियता और प्रमाद को तभी खत्म किया जा सकता है, जब जगह-जगह 'नक्सालवादी संघर्ष' हो। क्या आप मानते हैं कि इन घटनाओ से यथास्थिति के परिवर्तन के लिए कुछ गति और शक्ति बनेगी? या प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ ही प्रबलतर होंगी?

धीरेन्द्र भाई : नक्सालवादी-किस्म के संघर्ष से देश में व्याप्त निष्क्रियता और प्रमाद को खत्म नहीं किया जा सकता है क्योंकि जैसा कि मैंने पहले ही कहा है कि उसकी प्रेरणा के मूल में कोई निश्चित विचारात्मक लक्ष्य नहीं है। उनके नेताओं में भले ही निश्चित लक्ष्य हो, लेकिन जनता को निर्दिष्ट लक्ष्य की प्रेरणा से नहीं उभाड़ा जाता है। भिन्न-भिन्न स्थानों में जो संघर्ष होते हैं उनमें विभिन्न विक्षोभों का लाभ लिया जाता है। फलस्वरूप जनता में किसी किस्म के राष्ट्रव्यापी समान विचार का उद्बोधन नहीं हो पाता है। ऐसी पद्धति से देश में शान्ति और व्यवस्था भंग कर कोई जमात अगर सैनिक-सत्ता को कब्जे में कर भी ले और सैनिक की संगीन की नोंक से जनता को शान्त भी कर ले तो भी उसकी निष्क्रियता खत्म हुई, ऐसा नहीं कहा जा सकता है।

इस प्रकार की संघर्ष-पद्धति से कोई एक जमात सत्ता को दृढ़ता के साथ दखल कर लेगी, इसकी संभावना भी आज के जमाने में दिखाई नहीं देती है। पहले के जमाने में अगर इस पद्धति से किसी-किसी मुल्क में फासिस्टवादी या कम्युनिस्टवादी सत्ता का अधिष्ठान हुआ भी है तो आज की भूमिका में वह पद्धति बासी पड़ गयी है। उस समय एक हिटलर था एक लेनिन नेता था और उन नेताओं के साथ एक ही पार्टी थी। लेकिन आज इस देश में संघर्ष-पद्धति को माननेवाली अनेक पार्टियाँ हो गयी हैं। इन पार्टियों में आपसी पट्टीदारी चल रही है। केवल अन्तर-पार्टी प्रतिद्वन्द्विता है इतना ही नहीं, बल्कि हिटलर या लेनिन जैसे एकाधिपति नेतृत्व के अभाव में हर पक्ष के अन्दर भी नेतृत्व के लिए कुछ न-कुछ व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द्विता मौजूद है। ऐसी परिस्थिति में अगर इस संघर्ष-पद्धति के द्वारा देश-व्यापी विशृङ्खलता पैदा हो भी जाती है तो भिन्न-भिन्न इलाकों में उसका संयोजन भिन्न-भिन्न पार्टियों द्वारा ही होगा। फलस्वरूप सत्ता पर कब्जा पाने के लिए भिन्न-भिन्न दलों में जो आपसी संघर्ष होंगे उनके परिणामस्वरूप मुल्क का नाश ही होगा। यथास्थिति के परिवर्तन के लिए उसमें से कुछ भी गति और शक्ति नहीं बनेगी।

गांधी-जन्म-शताब्दी और हिंसा

प्रश्न . एक ओर गांधी-जन्म-शताब्दी के समारोह, दूसरी ओर बढ़ती हुई हिंसा, क्या इन दोनों का कोई ऐतिहासिक सन्दर्भ और भविष्य है?

धीरेन्द्र भाई . गांधी-जन्म शताब्दी समारोह मनाने के सिलसिले में भिन्न भिन्न जमातों के लोग बड़ी संख्या में लगे हुए हैं, उनमें खर्च भी बहुत हो रहा है। अगर सारी जमातों के लोगों की शक्ति और पैसा हिंसा का निराकरण करने के लिए अहिंसा शक्ति के अधिष्ठान हेतु सुसंगठित और एकाग्र-आन्दोलन में लगाया जाता, तो कह सकते थे कि आज की बढ़ती हुई हिंसा गांधी जन्म शताब्दी के इस वर्ष में अपनी अस्तित्व-रक्षा का आखिरी संघर्ष करती होती। लेकिन जिस तरीके से जन्म-शताब्दी समारोह मनाया जा रहा है उससे फैलती हुई हिंसा को रोका नहीं जा सकता।

अधिकारवाद से मुक्ति की सार्वत्रिक प्रेरणा

प्रश्न . इस युग की क्रान्ति की प्रेरणा क्या हो सकती है, शक्ति का स्रोत क्या हो सकता है और माध्यम कौनसा हो सकता है, क्या इस पर कुछ प्रकाश डालेंगे?

धीरेन्द्र भाई यह युग विज्ञान और लोकतन्त्र का है। विज्ञान ने पुराने अज्ञान और उसके कारण पनपे भिन्न भिन्न अंधविश्वासों को खतम कर सार्वजनिक चेतना का निर्माण किया है। उसके फलस्वरूप जन-साधारण में आत्म-विश्वास और स्वाभिमान पैदा हुआ है। लोकतन्त्र ने सामान्य जन को साम्य, मैत्री और स्वतन्त्रता का उद्घोष सुनाया है। फलस्वरूप जन-जन में समानता और स्वतन्त्रता की भावना का निर्माण हुआ है।

पुराने जमाने मे लोक-चेतना जब निम्न स्तर पर थी तथा अंधकार और अविश्वास का साम्राज्य था तब समाज की शान्ति और शृङ्खला के लिए दण्डशक्ति-आधारित अधिकारवाद की शायद आवश्यकता थी। आज एक तरफ लोक चेतना के युग में उसकी आवश्यकता नहीं रह गयी, दूसरी तरफ सार्वजनिक स्वाभिमान की वृद्धि के कारण जनता में अधिकार को इनकार करने की वृत्ति बढ़ रही है। लेकिन हर क्षेत्र में जमे हुए अधिकारी जनता की स्वतंत्रतावादी मन स्थिति को सहन नहीं कर पा रहे हैं और दिन-प्रतिदिन अधिकारवाद का दायरा बढ़ाते जा रहे हैं।

अतएव इस युग की क्रान्ति की प्रेरणा अधिकारवाद से मुक्ति ही हो सकती है। इसके लिए सामाजिक शक्ति के रूप में दण्ड-शक्ति

के स्थान पर सम्मति और सहकार की स्थापना के विचार से जनता को उद्बोधित करना होगा। अतएव शक्ति का स्रोत सामूहिक संकल्प ही हो सकता है। पहले शक्ति के लिए साधन-संग्रह करना पड़ता था। आज शक्ति के लिए सम्बन्ध निर्माण करने की आवश्यकता है। जबतक एक मनुष्य के साथ दूसरे मनुष्य की आत्मीयता का सम्बन्ध नहीं पनपेगा तबतक सहकारी शक्ति नहीं बन सकती है और सहकारी शक्ति के बिना स्वतंत्रता की स्थापना नहीं हो सकती है। अधिकारी द्वारा संचालित समाज में जिस तरह शक्ति के लिए शस्त्र-संग्रह की आवश्यकता होती है, उसी तरह स्वतंत्रतावादी समाज में शक्ति के लिए सामूहिक सम्मति और सहकार की भावना का निर्माण करना होता है। विनोबा आज जो ग्रामदान आन्दोलन चला रहे हैं, वही शक्ति-निर्माण के लिए एकमात्र माध्यम हो सकता है।

जो दुनिया के लिए वही भारत के लिए

प्रश्न : भारत की वर्तमान स्थिति को देखते हुए यहाँ की क्रान्ति का अर्थ क्या हो सकता है ?

धीरेन्द्र भाई : पूरे विश्व की जो स्थिति है वही भारत की है, भारत में कोई विशिष्ट स्थिति नहीं है। इसलिए क्रान्ति की दिशा भारत के लिए भी वही है जो दुनिया के लिए है। वह क्या है, यह अभी मैं कह चुका हूँ। •

केन्द्रीय सत्ता का अन्त आवश्यक

प्रश्न : बापू के जमाने में केवल साम्प्रदायिक हिंसा थी, उन्हें उसीका शिकार होना पड़ा। आज तो जाति और वर्ग की हिंसा भी है। वर्ण की हिंसा भी पैदा हो रही है। इस बढ़ती हुई हिंसा को देखकर लोग गांधीजी की याद करते हैं। क्या आज के सन्दर्भ में गांधी-मार्ग की कोई सार्थकता नजर आती है ? गांधीजी की शक्ति किस रूप में और किस माध्यम से आज की इस समस्या का निराकरण प्रस्तुत कर सकती है ?

विनोबा : बापू का जमाना यानी क्या ? यह एक सवाल पहले है। डाकू डाका डालने के लिए एक होते हैं। उनकी एकता तबतक कायम रहती है, जबतक डाका डालकर चीजें हासिल नहीं कर लेते। चीजों के हासिल होते ही उनकी एकता टूट जाती है—हासिल चीज को बाँटने के मामले में।

स्वराज्य का सवाल जबतक नहीं था, तबतक हम एक थे। स्वराज्य के मिलने का भास हुआ तो लड़ने लगे। बापू का जमाना यानी स्वराज्य-प्राप्ति का जमाना अगर माना जाय तो उस जमाने में प्राप्ति का अंदाज मिलते ही यह हिंसा शुरू हो गयी। और जब स्वराज्य मिल गया तब तो हिंसा बढ़ती ही चली गयी।

नीचे के स्तर पर अधिक-से-अधिक सत्ता आ जाय और लोग मिलकर काम करने लगें तो नीचे के 'बेस' में दंगे नहीं होंगे और ऊपर के लोगों को दंगे की प्रेरणा नहीं मिलेगी।

आज की शिक्षा बिलकुल बेकार है। वह नौकरी के लिए चलती है। अगर नौकरी का लोभ न रहे तो शिक्षा की प्रेरणा ही खतम हो जाय। आज देश में ५० लाख नौकर हैं, ५० करोड़ जनसंख्या है, और ३ करोड़ मैट्रिक पास लोग नौकरी चाहनेवाले हैं। हर साल कोशिश करके भी सरकार नौकरी के लिए ३ लाख जगहें खाली नहीं कर सकती।

आजकल जो दंगे होते हैं उनका एक मुख्य कारण आर्थिक है। एक ही उपाय है इसके निराकरण का, कि 'कसेण्ट्रेटेड वेल्थ' समाज में न हो। सत्ता भी 'कसेण्ट्रेटेड' न रहे और आगे चलकर मिलीट्री की भी सत्ता केन्द्रित न रहे। मिलीट्री की एक बहुत बड़ी 'कसेण्ट्रेटेड' सत्ता है, जिसे काल्पनिक आक्रमणों के भय ने खड़ा किया है। ये तीन, जो दबानेवाली शक्तियाँ हैं, वे खत्म हो जायँ, तो दंगों के कारण खत्म हो जायेंगे। अगर तीनों में से कोई भी रही तो दंगे होते ही रहेंगे। आजकल के दंगों को मैं 'सीरियसली' लेता ही नहीं। इनके कारण मैं जानता हूँ और मानता हूँ कि कारणों को समाप्त करेंगे तभी दंगे खत्म होंगे।

गांधी का स्मरण छोड़ दीजिए। उनके स्मरण से अगर यह होता कि जब वे थे तो उन्होंने हिंसा को रोक दिया था और आज वह होते तो यह हिंसा नहीं होती, तो, यद्यपि उस स्मरण से कोई लाभ नहीं होता, लेकिन कोई हानि भी नहीं होती। लेकिन आज तो जो स्थिति है, उसमें यह होगा कि गांधीजी इतने महान होकर भी इस हिंसा को नहीं रोक सके, तो हम लोगों से क्या होगा !

विनोबा

परिवर्तन की बुनियाद : बुनियाद का परिवर्तन

सीमित क्षेत्र में शान्ति की जिम्मेदारी लें !

प्रश्न : इस समय देश में कुछ ऐसी शक्तियाँ उभर रही हैं, जो गांधीजी को निरर्थक साबित करना चाहती हैं। एक ओर राष्ट्र के नाम में, दूसरी ओर शांति के नाम में, जनता को संघर्ष के लिए संगठित कर रही हैं। इन संघर्षों में बुनियादी शक्ति हिंसा की दिखाई देती है। इस सन्दर्भ में गांधी-विचार को माननेवाले तत्काल क्या कर सकते हैं ? अशान्ति-निवारण के काम की रूपरेखा इन दिनों क्या हो सकती है ?

विनोबा : इसके लिए हमने शान्ति-सेना का आह्वान दे दिया है। गांधीजी के रहते शान्ति-सेना नहीं बनी। वैसे हमारी दृष्टि से तो सेना बनी। उसके वे सेनापति हुए और सैनिक भी। सैनिक का काम उन्होंने किया। हिन्दू-मुस्लिम तनाव हो जाने के कारण उसको विकसित करना शक्य नहीं हुआ।

अब अखिल भारत शान्ति-सेना बन गयी है। लेकिन खास परिणाम लायक अभी कुछ किया नहीं है। देश बहुत बड़ा है, समस्याएँ भी बहुत बड़ी हैं। फिर भी एक काम किया है 'प्रिवेण्टिव', जो रिपोर्ट में नहीं आता। शान्ति-सेना के रहने के कारण हिंसा का जितना उभाड़ नहीं हुआ, वह बहुत महत्त्व का है। लेकिन इस तरह के काम लोगों की दृष्टि में नहीं आते। हिंसा के उभाड़ के अवसर पर भी कुछ शान्ति का काम हुआ है। टाटा में, रांची में काम हुआ है, जो लोगों की दृष्टि में आया है। लेकिन लोगों की दृष्टि में आये, न आये, इसका बहुत महत्त्व नहीं है।

हमने कहा था कि जहाँ-जहाँ आप बैठे हैं, वहाँ-वहाँ शान्ति के काम की जिम्मेदारी लेकर काम करें। भारत बहुत बड़ा है, और उसे हम अभी छोड़ दें। जहाँ-जहाँ हमारे केन्द्र हैं, वहाँ-वहाँ अशान्ति को रोकने के लिए हम मर मिटेंगे। यह सीमित कार्य है, लेकिन इतना करने से बल प्राप्त होगा।

युवक-विद्रोह की बुनियाद : आज की तालीम और बेकारी

प्रश्न : आज हर जगह सत्ता के खिलाफ युवकों की एक विद्रोह-चेतना की लहर-सी दौड़ रही है। क्या नयी पीढ़ी की यह विकलता मानव के लिए एक शुभ संकेत है? गांधी-विचार का कौन-सा पहलू इस समय नयी पीढ़ी के लिए समाधानकारी साबित हो सकता है?

विनोबा : युवक लोग इतना कम दंगा करते हैं, इसी पर मुझे आश्चर्य होता है। इतनी नालायक शिक्षा के बावजूद युवक इतने कम दंगे क्यों करते हैं, इसके कारणों पर विचार किया तो लगा कि इसमें भारत का संस्कार काम करता है।

इलाहाबाद में वहाँ के विश्वविद्यालय के छात्रों ने 'पीस ब्रिगेड' बनायी। एक युवक ने शान्ति के लिए संकल्प कराया, सबने मर मिटने की तैयारी बतायी। ऐसे विद्यार्थी बहुत-से हो सकते हैं। दंगा करनेवाले होते ही कितने हैं? बस, ५ प्रतिशत। लेकिन बाकी लोग संगठित होकर कुछ करते नहीं।

अगर एक कमीशन बिठाया जाय और उससे कहा जाय कि देश में खराब शिक्षा की योजना बनाइए तो आज जो शिक्षा चल रही है उससे खराब शिक्षा क्या होगी? १०० साल पुराना ढाँचा चल रहा है। १०० साल पहले जो कुछ जिस पद्धति से पढ़ाया जाता था, आज भी वही सब उसी पद्धति से पढ़ाया जा रहा है। फर्क इतना ही हुआ कि 'एफि-शियेंसी' कम हो गयी है।

शिक्षा को सुधारने के लिए अभी कोठारी-कमीशन बना था, लेकिन उससे समाधान नहीं हुआ। उसके पहले भी राधा-कृष्णन्-कमीशन और मुदलियार-कमीशन बने थे, लेकिन शिक्षा का ढाँचा बदला नहीं।

असल में तालीम का ढाँचा सरकार बदलेगी, यह बात अपने आप में ही गलत है। तालीम सरकार से मुक्त होनी चाहिए।

अभी देश में ६०-६५ विश्वविद्यालय हैं। मेरा तो मानना है कि हर पंचायत में, जहाँ ५ हजार की आबादी है, एक युनिवर्सिटी होनी चाहिए। कौनसा 'युनिवर्स' नहीं है शिक्षा देने के लिए वहाँ? सब 'फैकल्टी' वहाँ नहीं हो सकती, लेकिन अलग-अलग क्षेत्रों में विशेष 'फैकल्टीज' हो सकती हैं। कहीं कुछ विशेष प्रयोग हुआ तो दूसरे क्षेत्रों से लोग उस क्षेत्र में जा सकते हैं, उसका लाभ लेने।

विद्यार्थियों के झगड़े का मुख्य कारण है आज की यह तालीम और बेकारी। पहले घर में कुछ तालीम मिलती थी, संस्कार की, अध्यात्म की। इन दिनों शहर में घरों में कुछ तालीम तो मिलती नहीं, गाँव में कुछ भक्ति-भावना घरों में है अब भी, लेकिन विद्यार्थी शिक्षा के लिए शहर में चले जाते हैं। माता-पिता का कर्तव्य तो आज कुछ रहा ही नहीं। छात्र शहर में रहते हैं और पालक गाँव में। जिनके पालक शहर में ही रहते हैं, वे बच्चों को स्कूल भेजकर छुट्टी पा लेते हैं। विद्वान आदमी भी घर के बच्चों की ओर ध्यान नहीं देते।

गांधीजी की शिक्षण-पद्धति में यह है कि जो भी काम करना है सत्य निष्ठापूर्वक किया जाय। आजकल क्या होता है? किसान के लड़के ने मैट्रिक पास किया। कोई उद्योग आदि उसे सिखाया नहीं गया। खेती करेगा तो बीमार पड़ेगा, नौकरी है नहीं। शिक्षकों की भी योग्यता क्या है? बहुत ही 'पूअर शो' है। जो योग्य शिक्षक होता है वह ऊपर के क्लास लेता है, जहाँ शून्य में से शुरू करना है, वहाँ कम-से-कम योग्यतावाला शिक्षक पढ़ाता है।

सर्वोच्च लोग और सर्वाधिक सत्ता गाँव में

प्रश्न : क्या हमें मान लेना चाहिए कि भारत में संसदीय (दलीय) लोकतंत्र विफल हो गया? जब बापू ने कांग्रेस को लोक-सेवक संघ बन जाने की सलाह दी थी तो राजनैतिक संगठन की दृष्टि से उन्होंने संसदीय लोकतंत्र की सलाह दी थी। अन्तर क्या होता, सिवाय इसके कि कुछ सज्जन सरकार में न जाते? क्या उतने से ही देश ने गांधीजी की दिशा पकड़ ली होती?

विनोबा : कांग्रेस के जितने भी उत्तम नेता थे, स्वराज्य मिलने के बाद सरकार में गये। मान लीजिए कि गांधीजी की सलाह के अनुसार पंडित नेहरू सरकार से बाहर होते, उनकी जगह दूसरे लोग सरकार में जाते, तो वह कितना ज्यादा काम कर सकते थे। सरकार में जाकर उनकी शक्ति कुण्ठित हुई और दूसरे लोग उनके मत्सर में निकल आये।

गांधीजी की बात मानते तो सरकारी सत्ता गौण और जनता की सत्ता प्रधान होती। ऐसा हुआ नहीं। कांग्रेस सत्ता में गयी। स्वराज्य आन्दोलन के विश्व-इति-हास में कांग्रेस का विशेष स्थान माना जायगा। इतनी बड़ी शक्ति टूट गयी, कांग्रेस

की नाम जो इतना प्रभावशाली बना था, वह क्षीण हो गया। यह एक बहुत बड़ा नुकसान हुआ। सर्व सेवा संघ के ऊपर जो जिम्मेदारी आज आ पड़ी है, वह गांधीजी की योजना मे कांग्रेस पर होती, तो कितनी बड़ी शक्ति होती? सर्व सेवा संघ तो बहुत छोटा है; अब कुछ थोड़ी हैसियत उसे प्राप्त हुई है।

संसदीय पद्धति की कल्पना तो हम भी मान रहे हैं। लेकिन संसद में शक्ति ज्यादा नहीं रहेगी, नीचे अधिक शक्ति रहेगी। आज संसद में उत्तम-से-उत्तम लोग चुनकर जाते हैं, लेकिन संसद का स्तर बहुत नीचे गिर गया है। सड़कों पर-जैसी गाली-गलोज वहाँ चलती है, और फिर होता है कि अमुक बात को संसदीय कार्यवाही में दर्ज न किया जाय, वह असंसदीय हो गयी।

हमारी कल्पना में गाँव के अच्छे और अपने लोग चुनकर ऊपर जायेंगे, सर्वोत्तम लोग नहीं। 'डिमाक्रेसी' में हमेशा काम मध्यम स्तर पर होता है। बिलकुल निम्न स्तर के या बिलकुल उत्तम दर्जे के व्यक्ति चुनकर नहीं जायेंगे। जो चुनकर जायेंगे वे मध्यम योग्यतावाले ही होंगे। उत्तम योग्यता-वाले आज की चुनाव-पद्धति में भाग लेना चाहेंगे नहीं। अगर उन्होंने भाग लिया भी, और चुनकर चले गये, तो भी वे उन हथकण्डों को अपना नहीं सकेंगे, जो वहाँ अपनाये जाते हैं। इसलिए वहाँ जाकर उनकी शक्ति कुण्ठित ही होगी।

मनु की कहानी है। उस समय राजा नहीं होता था। प्रजा में अशान्ति पैदा हुई। वह मनु के पास गयी और उसने उनसे निवेदन किया कि आप राजा बनिए। मनु ने तब प्रजा के सामने दो शर्तें रखीं। पहली शर्त थी कि अगर एक भी आदमी का विरोध होगा तो राजा नहीं बनूँगा; दूसरी शर्त कि राजा के नाते मुझे अपराधी को दण्ड देना पड़ेगा, उसमें जो पाप होगा उसके भागीदार सब बनेंगे। प्रजा दोनों शर्तें मान गयी, तब मनु राजा बना।

तो, आज की जो चुनाव-पद्धति है, उसमें फर्क होना चाहिए। संसदीय पद्धति तो ठीक है। देखा जाय तो दुनिया में सबसे बड़े देश में जहाँ संसदीय व्यवस्था है वह भारत में है, इसलिए वह 'क्रेडीटेबुल' है। संसदीय पद्धति फेल हुई, ऐसा मैं मानता नहीं हूँ।

लेकिन सोचना चाहिए कि इतनी पार्टियाँ क्यों बनायी जाती हैं? पाँच पार्टियों से अधिक पार्टियाँ होनी नहीं चाहिए। एक मिडिल, एक राइट, एक एक्स्ट्रीम राइट, एक लेफ्ट, एक एक्स्ट्रीम लेफ्ट। आज तो बिहार में २४ पार्टियाँ चुनाव लड़ रही हैं। सभी अपने-अपने घोषणा पत्रों में अच्छी बातें लिखती हैं, अच्छे वादे करती हैं। कोई भी पार्टी यह तो लिखेगी नहीं कि हम गरीबी बढ़ायेंगे। तो, सभी के वादे थोड़े-बहुत फर्क के साथ एक-से होते हैं। फिर *बहुत सारी पार्टियों की क्या जरूरत है?*

वादे तो सब अच्छे ही अच्छे करते हैं, लेकिन वादे पूरे नहीं होते। उसका कारण भी है। लोगों को अनुभव तो है नहीं। करोड़ों की व्यवस्था चलती है सरकार में। इन बेचारों को उसकी जानकारी ही क्या? जो आफिसर होते हैं वे ही सारा काम करते हैं; थोड़े फर्क के साथ ये केवल हस्ताक्षर करते हैं। कुछ फण्ड होता है इनको स्वतंत्रतापूर्वक खर्च करने के लिए। कोई भी पार्टी सत्ता में आये, करनेवाला वही है 'आफिसर'। दूसरी बात कि एक पार्टी की सरकार एक योजना बाँधी कर चुकी है, दूसरी पार्टी की सरकार बनेगी तो उस योजना को तो पूरा करना ही होगा, नहीं तो कैसे चलेगा? इतनी सारी सीमाएँ हैं इनकी। फिर भी बेचारों के पीछे कितने लोग लगे रहते हैं? पतले तार पर चलने *जैसा होता है यह काम! मेरी राय में यह* लाइसेंस आदि कामों के लिए सरकार से बिलकुल स्वतंत्र एक कमीशन होना चाहिए।

आज की संसदीय व्यवस्था जो है, उसमें 'डिमाक्रेसी' अच्छी तरह चले ऐसा मैं चाहता हूँ। इसके लिए मैंने कुछ सुझाव भी दिये हैं:

(१) चुनकर जाने के बाद प्रतिनिधि पार्टी छोड़ दे। वह जनता का आदमी बन गया। ऐसा नहीं करेगा तो वह काम कर नहीं सकता। एक तो मिनीस्ट्री की जिम्मेदारी, ऊपर से दल के मुख्य व्यक्ति का नियंत्रण और 'पार्टी' का ह्विप। पार्टी का ह्विप नहीं चलना चाहिए। ४० प्रतिशत बहुमत पर सरकार बन जाती है। कानून के किसी मसविदे पर निर्णय लेना है तो पार्टी का लेना होगा, उसमें १९ प्रतिकूल हो और २१ की राय अनुकूल हो तो भी निर्णय लागू होगा। यानी वास्तव में २१ प्रतिशत का राज हुआ। उसमें यह भी चलता है कि सरकार की बात पार्टीवाले न मानें तो सरकार के लोग उसे अपने प्रति अविश्वास मानने लगते हैं।

(२) उम्मीदवारी की उम्र २५ से ६० तक सीमीत कर दी जाय। आज तो चुनाव लड़ने के लिए उम्र की कोई सीमा ही नहीं है। पुराने लोग सत्ता में रहते हैं। दकियानूसों का राज चलता है। इसे रोकना चाहिए। नयों को आने देना चाहिए।

(३) गांधीजी की कल्पना थी कि लोक-सेवक संघ के साथ जितनी रचनात्मक संस्थाएँ हैं, सब उससे जुड़ी रहेंगी। खेती भी उसमें जुड़ी होती। तब वह लोक-सेवक संघ ही 'प्लैनिंग कमीशन' की जगह होता। उसकी 'प्लैनिंग' पर सरकार अमल करती। अभी तो जो 'प्लैनिंग कमीशन' है वह, सरकार जो करना चाहती है, उसीकी योजना थोड़े हेर-फेर के साथ बनाती है। यह नहीं होता कि योजना 'प्लैनिंग कमीशन' स्वतंत्र ढंग से बनाये और सरकार उन पर अमल करे। बापू की कल्पना थी कि सबसे पहले खेती बढ़े। सरकार ने पैसा बढ़ाने की योजना बनायी। गांधीजी की चलती तो योजना नीचे के लोगों को ध्यान में रखकर बनती।

गांधीजी की बात कांग्रेस ने मानी होती तो कांग्रेस का विश्व के इतिहास में जो महत्त्व-पूर्ण स्थान बना था, वह कायम रहता। 'कांग्रेस' शब्द के साथ जो इतनी भावना और शक्ति जुड़ गयी थी, वह क्षीण हुई। इससे देश का बहुत बड़ा नुकसान हुआ। ऐसा नहीं हुआ होता तो देश के लिए कल्याणकारी बात होती।

नक्सालवादी और हम

प्रश्न: नक्सालवाड़ी के ढंग के संघर्ष छिटपुट होते रहते हैं। हम ग्रामदान के लोग उनके प्रति क्या रुख रखें? क्या

संघर्ष न हो, इतना ही हमारा काम है ? हम संघर्ष करनेवालों की समस्याओं के समाधान के लिए क्या कर सकते हैं ? कभी-कभी परिस्थिति ऐसी दिखाई देती है कि लगता है प्रहार ही पुरुषार्थ का उपाय रह गया है, परिणाम चाहे जो हो !

विनोबा. 'पुरुषार्थ' शब्द का अर्थ है पुरुष को कुछ पाना है, उसके लिए प्रयास करना, खोने के लिए प्रयास नहीं, पाने के लिए। जिन कारणों से नक्सालबाड़ीवालों को मौका मिलता है, उन कारणों को वे ले लेते हैं। कम्युनिस्टों को आधार मिलता है असन्तोष का। लूटा और बाँट लिया। उधर नाम हो गया कि क्रान्ति का काम किया, लेकिन समस्या क्या हल हुई ? अगर इनका मुकाबला करना है तो गाँव-गाँव में आपका परिचय होना चाहिए। वैसे तो हम ही गाँव-गाँव जावें, तो ठीक हो, लेकिन यह सम्भव नहीं, इसीलिए मैं सुझाता हूँ कि गाँव-गाँव में अपना पर्चा पहुँचे ताकि गाँववालों को मालूम हो कि उन्हें क्या करना है। यह आन्दोलन की 'मिनिमम रिक्वायरमेंट' है।

गांधी-शताब्दी में गांधी का महत्त्व कम, गणित का अधिक

प्रश्न : गांधी-जन्म-शताब्दी में आप उन गांधीवालों के लिए क्या सुझायेंगे, जो ग्रामदान में नहीं लगे हुए हैं, और न लगने की परिस्थिति में हैं।

विनोबा : ग्रामदान को छोड़ देते हैं तो भंगी-मुक्ति को ही ले लें। देश में भंगी-मुक्ति हो ही जाय। लेकिन यह होगा नहीं। होगा क्या ? कुछ शहरों में नये ढंग से पाखाने बनवा सकते हैं। लेकिन भंगी तो गाँव-गाँव में हैं। गन्दगी गाँव-गाँव में है।

मेरी मान्यता है कि गाँव-गाँव में ग्रामदान का बुनियादी काम करना आसान है, लेकिन अकेला कोई दूसरा काम कर लेना कठिन है।

लोग कहते हैं कि गाँव-गाँव में पीने का पानी हो। मुझे खुशी होगी अगर होता हो, लेकिन इससे क्या होगा ? सरकार के करने के काम हैं ये। आप कुछ करेंगे, तो ग्रामदान वगैरह की योजना बनायेंगे, और उसमें कुछ 'मिनिमम पैकेज' देकर काम चलायेंगे।

गांधी-शताब्दी में गांधीजी का महत्त्व कम है, गणित का महत्त्व ज्यादा है। ९९ में उत्साह था नहीं, १०१ में रहेगा नहीं, इसलिए यह उत्साह हमें बड़ा खतरनाक दीखता है। १०१ में सारा उत्साह खतम हो जायगा ।•

सम्प्रदायवाद के विरुद्ध लड़ाई : एक विधायक कार्य

जयप्रकाश नारायण

चालू वर्ष और पिछला वर्ष, सम्प्रदायवाद, समाज-विरोधीभाव एवं रूढ़िवाद—जो एक ही बुराई के तीन पहलू हैं—की दृष्टि से बहुत खराब रहा है। सन् १९६७ और '६८ में अनेक साम्प्रदायिक दंगे हुए; एक हरिजन जीवित जला दिया गया, और एक मनुष्य का बलिदान चढ़ा दिया गया। ये घटनाएँ एक चेतावनी थी और एक लक्षण। लक्षण एक गम्भीर रोग का, जिससे राष्ट्र पीड़ित है, और चेतावनी यह, जिसकी उपेक्षा राष्ट्रीय विनाश का कारण बन सकती है। यहाँ जो पोस्टर लगे हुए हैं, वे इस चेतावनी के स्पष्ट विज्ञापन हैं 'सम्प्रदायवाद ने ही विभाजन कराया' और 'सम्प्रदायवाद ने ही राष्ट्रपिता की हत्या की'। इस नगर में अभी हाल में जो पोस्टर दिखाई दिये, वे इस बात के साक्षी हैं कि हत्यारे की भावना अब भी जीवित और सक्रिय है।

अमीर और गरीब की दो दुनिया की तरह, एक दुनिया आभ्रत एवं मुक्त-मानस श्रेष्ठ लोगों की है, और दूसरी ऐसे शिक्षित और अशिक्षित कोटि-कोटि लोगों की है जो पूर्वाग्रह, अंधविश्वास तथा अज्ञानता के शिकार हैं। लेकिन जहाँ यह समझा जा सकता है कि अमीर गरीब से दूर दूर रहेगा, वहाँ यह समझना कठिन है कि क्यों आभ्रत लोगों ने अपना एक स्पष्ट कर्तव्य छोड़ रखा है और यह नहीं महसूस किया है कि अंधकार की शक्तियों से लोहा लेने की दिशा में उन्हें भी कुछ करना है। राष्ट्रीय परिस्थिति का एक अत्यन्त दयनीय पहलू यह है कि भारत के बौद्धिक नवजागरण में हमारे श्रेष्ठ लोगों की जो भूमिका थी, उसे अदा करने में वे असमर्थ रहे हैं। परिणामस्वरूप उच्च शिक्षा के स्थान भी सम्प्रदायवाद एवं रूढ़िवाद से अपवित्र हो रहे हैं।

भारत की सभी राजनीतिक पार्टियाँ कुछेक को छोड़कर, सम्प्रदाय-निरपेक्षता (सेक्यूलरिज्म में विश्वास प्रकट करती है। लेकिन जहाँ वे हमेशा सभी तरह के वास्तविक या काल्पनिक आदर्शों के लिए लड़ती रही हैं, वहाँ सम्प्रदाय-निरपेक्षता का आदर्श जो इस राष्ट्र की बुनियाद है, उपेक्षित रहा है। सम्प्रदाय निरपेक्ष राजनीतिक पार्टियों का निश्चित कर्तव्य सम्प्रदाय-निरपेक्षता के अर्थ और आचरण का निरूपण जोरदार ढंग से व्यापक पैमाने पर करने का था और है। वे न केवल ऐसा करने में असमर्थ रही हैं, बल्कि उनमें से कुछ पार्टियों ने, महज राजनीतिक 'सत्ता' में भागीदार होने के लिए, सम्प्रदायवादी पार्टियों के प्रति सहयोग की नीति अपना कर लोगों में सम्प्रदायवाद का असर फैलाने में मदद की है। वर्ग-एकता आदि के नारे से गुञ्जायमान मजदूर-आन्दोलन का चित्र भी इससे अधिक उज्ज्वल नहीं है। जमशेदपुर के पिछले दंगों में मैंने खुद इन ऊँचे-ऊँचे सिद्धान्तों की पराजय देखी है। इसलिए, अगर राजनीतिक पार्टियाँ सम्प्रदायवाद की शक्ति को पहचानती नहीं हैं और उससे लोहा लेने का साहस नहीं दिखाती हैं, तो उन्हें खुद सम्प्रदायवादी हो जाना पड़ेगा या सम्प्रदायवादी शक्तियों के नीचे दबकर रह जाना पड़ेगा।

राजनीतिक पार्टियों की भीरुता का एक ही कारण है। साम्प्रदायिक भावनाओं और आशंकाओं को उभारकर, साम्प्रदायिक सवालों को महत्त्व देकर तथा कोई साम्प्र-

दाधिक होना खड़ा कर किसी सम्प्रदाय के वोट हासिल कर लेना आसान है। इसके विपरीत राष्ट्रीय अपील के द्वारा वोट हासिल करना कठिन है। यही कारण है कि सम्प्रदायवाद, जातिवाद, अलगाववाद और क्षेत्रवाद की शक्तियाँ तेजी से आगे बढ़ रही हैं। अगर सम्प्रदाय-निरपेक्ष पार्टियाँ साहस करके अपने सिद्धान्तों पर अमल करने के लिए आगे नहीं बढ़ती हैं और विघटनकारी एवं विभाजनकारी शक्तियों के खिलाफ मोर्चेबन्दी नहीं करती हैं, तो भविष्य बहुत अन्धकारमय है।

इस परिस्थिति में दिल्ली की साम्प्रदायिकता-विरोधी समिति, बम्बई का सम्प्रदायनिरपेक्ष मंच (सेक्युलर फोरम), और कलकत्ते की साम्प्रदायिक मेल परिषद (काउंसिल आव कम्यूनल हारमनी) इस अंधेरी रात में जलती हुई मशालों के समान हैं। इनमें से हर मशाल से उनकी तरह हजारों मशालें जल उठें, तो क्या ही अच्छा हो!

साम्प्रदायिकता विभिन्न प्रकार की है, क्योंकि सम्प्रदाय विभिन्न प्रकार के हैं। इनमें से धार्मिक साम्प्रदायिकता सबसे घातक है, क्योंकि इस पर एक दैवी आवरण चढ़ा होता है और यह धार्मिक भावनाओं का शोषण कर सकता है। यह कोई धर्म का दोष नहीं है कि उसके कारण सम्प्रदायवाद उसका शोषण कर पाता है। सबसे बड़ा अपराधी है राजनीति और उसके पीछे लगी हुई अर्थनीति। साम्प्रदायिकता से कभी कोई धार्मिक लक्ष्य पूरा नहीं हुआ; उसका प्रेरक तत्व हमेशा राजनीतिक, आर्थिक या सामाजिक रहा है। कोई भी धर्म लूट, हत्या, शीलहरण, आगजनी और इससे भी निम्न कोटि के कृत्य, जो सभी साम्प्रदायिक दंगों में देखे जाते हैं, करने की इजाजत नहीं देता। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि हर दंगे से किसी-न-किसी साम्प्रदायिक पार्टी या जमात की लोकप्रियता बढ़ती है, और व्यापार, उद्योग, महाजनी आदि के क्षेत्र में किसी-न-किसी धार्मिक-आर्थिक हितों की पुष्टि होती है।

इसका यह अर्थ नहीं है कि साम्प्रदायिकता की जड़ें धर्म में नहीं हैं। झूठे धर्म के हृदय में ही सम्प्रदायवाद पलता है और पोषण प्राप्त करता है। धर्मों का विश्लेषणात्मक इतिहास बताता है कि द्रष्टा या पैगम्बर द्वारा व्यक्त किये गये सत्यरूपी स्वर्ण के साथ जो मैल मिश्रित हो जाता है, वह धर्म के राजनीतिक आर्थिक सामाजिक शोषण का ही परिणाम है। अपने धर्म में जो गहरी और सच्ची आस्था रखते हैं, उनको इससे एक चेतावनी ग्रहण करनी चाहिए। मेरे लिए धर्म एक जीवनदायी स्रोत है, वह मुझे उस अज्ञात

जयप्रकाश नारायण
मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा

शक्ति से सम्बन्धित करता है, जो अन्तिम सत्य है। मैं इस सम्बन्ध से आतंरिक शक्ति प्राप्त करता हूँ, चाहे उसकी कितनी क्षीण कल्पना मुझे हो। मुझे जो बात हिन्दू बनाती है—और हिन्दू होने में मैं गर्व का अनुभव करता हूँ—वह यह है कि अन्तिम सत्य की मेरी कल्पना, मेरा ज्ञान बुनियादी तौर से, प्राचीन द्रष्टाओं तथा आध्यात्मिक दिग्गजों के मार्गदर्शक वचनों से निर्धारित होता है। दूसरे, हिन्दू के रूप में मेरी पहचान धार्मिक पूजा-अनुष्ठान के उन कुछेक बाह्य रूपों के अमल से होती है, जो देश के उस हिस्से में, जहाँ मैं रहता हूँ, हिन्दू समाज द्वारा निर्धारित हैं। इसी प्रकार दूसरे लोग अन्य पैगम्बरों तथा पूजा के अन्य तरीकों का अनुसरण कर सकते हैं। इन सब बातों में कोई ऐसी चीज नहीं है जो घृणा एवं हिंसा तथा साम्प्रदायिक संघर्ष को जन्म देनेवाली हो।

भारत अनेक धर्मों का देश है, इसलिए यहाँ हर धार्मिक सम्प्रदाय की साम्प्रदायिकता अपने ढंग की है। हर किस्म की साम्प्रदायिकता घातक है, लेकिन हिन्दू साम्प्रदायिकता दूसरों से अधिक घातक है। इसका एक कारण यह है कि हिन्दुओं की संख्या भारत की आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा है और हिन्दू सम्प्रदायवाद आसानी से भारतीय राष्ट्रीयता की नकाब पहन ले सकता है तथा अपने सभी विरोधियों को राष्ट्र-विरोधी करार दे सकता है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की तरह कुछ संस्थाएँ भारतीय राष्ट्र को हिन्दू राष्ट्र घोषित कर ऐसा कर सकती हैं। दूसरे लोग और भी अधिक सूक्ष्मता के साथ ऐसा कर सकते हैं। अतः इस परिस्थिति में स्थायी संघर्ष और अन्ततः विघटन के बीज मौजूद हैं।

जो लोग भारत को हिन्दू जाति और भारतीय इतिहास को 'हिन्दू-इतिहास' के साथ एकरूप दिखाने का प्रयास कर रहे हैं, वे केवल भारत की महानता तथा भारतीय इतिहास और भारतीय सभ्यता के गौरव को कम करने की कोशिश कर रहे हैं। ऐसे लोग वास्तव में हिन्दुओं के ही शत्रु हैं, यद्यपि इस कथन में कुछ विरोधाभास मालूम पड़ सकता है। वे न केवल महान धर्म का मूल्य घटाते हैं और उसकी उदारता, सहिष्णुता तथा समन्वयात्मकता को नष्ट करते हैं, बल्कि वे उस राष्ट्र को ही कमजोर करते हैं, और तोड़ते हैं, जिसका बहुत बड़ा हिस्सा वे हिन्दू ही हैं।

एक दूसरे अर्थ में भी हिन्दू सम्प्रदायवादी उसी सम्प्रदाय को संकटग्रस्त कर रहे हैं, जिसके हितैषी होने का वे दावा करते हैं। चूंकि हिन्दू समाज असमान जातियों में और उससे भी अधिक असमान उपजातियों में बँटा हुआ है, इसलिए सम्प्रदायवाद की भावना निश्चित रूप से कुछ जातियों के समूह को दूसरे

...राजनीतिक दलों की भीरुता...अपराधी राजनीति...मिथ्या धर्म...घातक हिन्दूवाद...राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ : संकीर्णता छोड़े, व्यापकता अपनाये... मुस्लिम सम्प्रदायवाद : खुद के और देश के लिए गम्भीर खतरा...

समूह के खिलाफ और उन सबके खिलाफ बहिष्कृत जातियों के समूह को खड़ा कर देगी।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बारे में, जिसकी चर्चा मैंने ऊपर की है, मैं दो बातें कहना चाहता हूँ। गांधीजी की हत्या के बाद जब संघ खतरे में पड़ गया था, ऐसे अनेक दावे किये गये कि संघ पूरे तौर पर एक सांस्कृतिक संगठन है। लेकिन स्पष्टतः सम्प्रदायनिरपेक्ष शक्तियों की भीरुता से उत्साहित होकर, उसने अब अपनी नकाब उतार फेंकी है और भारतीय जनसंघ के पीछे की वास्तविक शक्ति तथा उसके नियन्त्रक के रूप में सामने आ गया है। जनसंघ के सम्प्रदाय निरपेक्ष होने के दावों को गम्भीरतापूर्वक तबतक नहीं लिया जा सकता, जबतक वह उन बन्धनों को, जिनके द्वारा वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की मशीन से मजबूती से जुड़ा हुआ है, काटता नहीं है। फिर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को एक सांस्कृतिक संगठन तबतक नहीं माना जा सकता, जबतक वह एक राजनीतिक पार्टी का मुख्य सलाहकार और प्रभावशाली प्रबन्धक है।

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूँ, वह राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के बारे में ही है। अगर उसको भारत का हित प्यारा है, तो उसे संकीर्ण-मानस हिन्दू संगठन होने के बदले व्यापक भारतीय संगठन के रूप में अपने आपको परिवर्तित करना चाहिए, और सभी सम्प्रदायों के युवकों को अपने संगठन में भर्ती करना चाहिए और उन्हें प्रशिक्षण देकर, क्योंकि वह प्रशिक्षण दे सकता है, भारत के वफादार एवं एकात्म-भाववाले नागरिकों के रूप में अनुशासित करना चाहिए। ऐसा करके वह भारत की कृतज्ञता का अधिकारी हो सकता है। लेकिन अगर वह अपनी वर्तमान नीतियों पर डटा रहता है, और इसी रूप में आगे बढ़ता है, तो वह निश्चित रूपेण हिन्दू धर्म की आत्मा को मार देगा और राष्ट्र की बुनियादों को खोद डालेगा।

मैं अब केवल मुस्लिम सम्प्रदाय की धार्मिक साम्प्रदायिकता की चर्चा करूँगा, क्योंकि इस अवसर पर अन्य सम्प्रदायों के बारे में कुछ कहने का समय नहीं है। भारतीय इतिहास के कुछ तथ्यों तथा इस्लाम की गलत व्याख्याओं के साथ हिन्दू सम्प्रदायवाद की

...कट्टरतापूर्ण दृष्टिकोण की बुनियाद । मूढ़ रूढ़िवादिता ... धर्म-परिवर्तन निरर्थक
...सम्प्रदाय-निरपेक्षता के अर्थ और व्यवहार का शिक्षण ज़रूरी...

प्रतिक्रिया ने मिलकर एक ऐसे मुस्लिम सम्प्रदायवाद को जन्म दिया है, जो स्वयं मुसलमानों के लिए और देश के लिए एक खतरा बन रहा है। ऐसे खतरे की स्रोत-संस्था एक जमायते-इस्लामी है। लेकिन ऐसी यही एक संस्था नहीं है।

इस युग की ऐतिहासिक परिस्थिति में, इस्लाम अपने प्रारम्भिक काल में राज्य रूपी राजनीतिक संस्था से अपरिहार्य रूप से मिल-जुल गया। आधुनिक काल में इसे निरर्थक कर्मकाण्ड के अलावा और कुछ नहीं कहा जा सकता, और न उसके लिए कोई संस्थात्मक रूपरेखा, अतातुर्क द्वारा खलीफात की समाप्ति के बाद, रह गयी है। लेकिन कुछ मुसलमानों का रूढ़िवादी मानस आधुनिक जगत् के तथ्यों को स्वीकार नहीं कर पाता है, और इसलिए पाकिस्तान के मुख्य न्यायाधीश थी जस्टिस मुनीर तथा मौलाना मौदूदी के बीच यह दिलचस्प वार्ता हुई है

जस्टिस मुनीर : अगर पाकिस्तान में इस्लामी राज्य हो, तो क्या आप हिन्दुओं को अपने धर्म के आधार पर विधान बनाने की अनुमति देंगे ? और अगर उस प्रकार के शासन में मुसलमानों के साथ मनुस्मृति के अन्तर्गत म्लेच्छों या शूद्रों की तरह बर्ताव होता है, तो क्या आपको उस पर कोई एतराज होगा ?

मौलाना मौदूदी अगर उस प्रकार के शासन में मनुस्मृति के अन्तर्गत म्लेच्छों या शूद्रों के रूप में भारत के मुसलमानों के साथ बर्ताव हो और मनु के नियम उन पर लागू करके उन्हें शासन में भाग लेने के अधिकार से तथा अन्य नागरिक अधिकारों से वंचित कर दिया जाय, तो मुझे कोई एतराज नहीं होना चाहिए।*

ऐसे कट्टरतापूर्ण दृष्टिकोण के लिए अत्यन्त मूढ़ रूढ़िवादिता ही जिम्मेवार हो सकती है। भारत में जमायते-इस्लामी इस सिद्धान्त का खुलेआम प्रचार नहीं करती है। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि वह भारतीय राज्य को अधार्मिक समझती है, जिसके अन्दर मुसलमान केवल दुखी जीवन ही बिता सकते हैं और उसकी आध्यात्मिक एवं भौतिक क्षति की पूर्ति मुस्लिम सम्प्रदाय, जीवन के सभी क्षेत्रों में, राजनीतिक क्षेत्र में भी, एकजुट होकर ही कर सकता है। इस विचारधारा की एक प्रतिनिधि पत्रिका 'मार्गदीप' के अनुसार "हर धार्मिक समुदाय का एक अलग राजनीतिक संगठन होना चाहिए, और हर सवाल विभिन्न सम्प्रदायों के नेताओं के द्वारा बातचीत के माध्यम से हल किया जाना चाहिए।" (संपादकीय, २५-१२-१९६४)

यह मजेदार बात है कि सभी धर्मों के सम्प्रदायवादी इस सामान्य बिन्दु पर मिलते हैं। हर सम्प्रदाय अपने आपको सुगठित करे, अपना अलग रूप रखे, उसकी अपनी राजनीतिक पार्टी हो, आदि। अपने ही में विभाजित राष्ट्र की या यों कहिए कि अनेक अलग राष्ट्रों के देश की यह तस्वीर भयानक है। लेकिन चाहे तस्वीर जितनी भयानक हो, सम्प्रदायवाद इस देश को उसी दुर्भाग्य की ओर ढकेल रहा है।

एक बात धर्म परिवर्तन के बारे में कहूँ। यह ठीक है कि हर व्यक्ति को धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए, लेकिन धर्म-परिवर्तन करने में मुझे कोई अर्थ नजर नहीं आता। वास्तव में, इस धर्म-परिवर्तन के प्रयास में धार्मिक कलह और संघर्ष के बीज निहित हैं। मानव-समाज का सुधार धर्म-परिवर्तन पर नहीं, बल्कि मनुष्य के सुधार पर निर्भर करता है। हर धर्म में अच्छे और बुरे आदमी हैं। और अगर यहाँ कोई धार्मिक समस्या है तो वह यह है कि हर आदमी अपने धर्म के प्रति सच्चा से बने। अगर हम सब अच्छे हिन्दू, अच्छे मुसलमान, अच्छे सिख, अच्छे ईसाई आदि बन जायें तो यह देश पृथ्वी पर स्वर्ग बन जाये। इसलिए मैं सभी धार्मिक प्रचारकों से

* सन् १९५४ के पंजाब-अधिनियम २ के अन्तर्गत सन् १९५३ में पंजाब में हुए उपद्रवों की जाँच करने के लिए गठित जाँच-अदालत की रिपोर्ट : पृष्ठ २२८।

अपील करूँगा कि वे दूसरे धर्मों के लोगों का धर्म-परिवर्तन करने का कार्यक्रम बन्द करें तथा अपने ही धर्म के अनुयायियों को बेहतर मनुष्य, बेहतर पुरुष और स्त्री बनाने में शक्ति केन्द्रित करें।

मैंने सम्प्रदायवाद के कुछ पहलुओं की यहाँ चर्चा की है। अपना कथन समाप्त करने के पूर्व मैं इस बात पर जोर डालूँगा, कि साम्प्रदायिकता के विरुद्ध हमारी लड़ाई बुनियादी तौर से नकारात्मक नहीं, बल्कि एक सकारात्मक कार्य है। लोगों को सम्प्रदाय-निरपेक्षता के अर्थ और व्यवहार का शिक्षण देकर ही सम्प्रदायवाद के राक्षस को समाप्त करने में हम समर्थ हो सकते हैं। •

विनोबाजी का कार्यक्रम

२९ जनवरी से ९ फरवरी : पटना जिला
(स्थान अनिर्णित)

१० फरवरी बख्तियारपुर
११ फरवरी मोकामा
१२ फरवरी मुंगेर
१३-१४ फरवरी कन्हैयाचक
१४ फरवरी भागलपुर

स्थायी पता : (१) द्वारा—ग्रामदान-प्राप्ति सयोजन समिति, कदम कुआँ, पटना–३

(२) द्वारा—जिला सर्वोदय मण्डल, तिलक मैदान, मुंगेर

(३) द्वारा—बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ, रेशमघर, भागलपुर (बिहार)

नया अर्थशास्त्र

[श्री जयप्रकाशजी की सलाह पर श्री ई० एफ० शुमाखर का अंग्रेजी 'रिसर्जेंस' में छपा यह लेख हम इस आशा से छाप रहे हैं कि सर्वोदय आन्दोलन में लगा हुआ हमारा हर साथी इसे ध्यान से पढ़ेगा। ध्यान से पढ़ेगा और गहराई से गुनेगा। इसे पढ़ लेने के बाद हर पाठक अपने आप बोल उठेगा कि प्रचलित अर्थशास्त्र वास्तव में अनर्थशास्त्र है! सच्चा अर्थशास्त्र वह है जो मनुष्य को पहचाने, और माने कि मनुष्य ही सर्वोपरि मूल्य है। ग्रामदान इसी सच्चे अर्थशास्त्र की खोज कर रहा है। यह अंग्रेज अर्थशास्त्री हमसे दूर है, ग्रामदान से दूर है, लेकिन विचार से हमारी बिरादरी का है। सर्वोदय की बिरादरी विश्वव्यापी बन रही है। आगे हम प्रयत्न करेंगे कि भारत के बाहर का चिंतन हम अपने यहाँ के साथियों के लिए जुटायें। —सं०]

आखिर, यह टुकड़ीकरण क्यों ?

मैंने जो इतिहास पढ़ा था उसमें बताया गया था कि शुरू-शुरू में परिवार थे, और परिवार आपस में मिले तो कबीले बने, बाद को इन कबीलों से राष्ट्र हुए। ये राष्ट्र बड़े होते चले गये, यहाँ तक कि उनके बहुत बड़े क्षेत्रीय संघ बन गये, जैसे एक संयुक्त राष्ट्र, दूसरा संयुक्त राष्ट्र, आदि। इस दिशा में सोचते-सोचते हम विश्व-सरकार की कल्पना तक पहुँच गये हैं।

लेकिन मैं देख रहा हूँ कि जो कुछ हो रहा है, वह कुछ और ही है। देशों की संख्या बढ़ रही है। बीस साल पहले 'संयुक्त राष्ट्र' ५०-६० देशों को लेकर शुरू हुआ, अब उनकी संख्या १२० हो गयी है, और बराबर बढ़ रही है। मेरी जवानी में यह प्रक्रिया 'टुकड़ीकरण' (बाल्कनाइजेशन) के नाम से पुकारी जाती थी, और बहुत बुरी मानी जाती थी। लेकिन मैं देख रहा हूँ कि पिछले पचास वर्षों में चारों ओर 'टुकड़ीकरण' बहुत ज्यादा हुआ है, और बड़े टुकड़े छोटे टुकड़ों में टूटे हैं। आखिर, ऐसा क्यों हो रहा है ?

दूसरी बात जो हम लोगों को सिखायी गयी थी वह यह है कि बड़ा ही देश समृद्ध हो सकता है। जितना बड़ा उतना अच्छा। अगर हम दुनिया के सबसे अधिक समृद्ध देशों की सूची बनायें तो हम देखेंगे कि उनमें से अधिकांश देश छोटे हैं। बहुत बड़े देशों में अधिक संख्या ऐसों की है, जो गरीब हैं। यह भी सोचने की बात है।

तीसरी चीज थी 'बड़े पैमाने की अर्थ-नीति' (इकानोमिक्स आव स्केल)। हमें सिखाया गया था कि राष्ट्रों की ही तरह व्यवसाय और उद्योग का भी हाल है। आधुनिक तकनीक (टेक्नालोजी) के कारण दोनों में प्रवृत्ति पैदा होती है बड़ा होने की—दोनों बड़े से और अधिक बड़ा होते जाते हैं। आजकल व्यवसाय के इतने बड़े संगठन हैं, जितने पहले कभी नहीं थे, लेकिन दूसरी ओर अमेरिका जैसे देश में भी छोटे संगठनों की संख्या घट नहीं रही है, और उनमें से बहुत-से ऐसे हैं जो बहुत समृद्ध हैं, और बराबर नयी-

ई० एफ० शुमाखर

नयी चीजें निकालते रहते हैं। आश्चर्य होता है कि विशाल संगठनों के मुकाबिले ये छोटे संगठन जीवित कैसे रहते हैं। हम लोगों को जो अर्थशास्त्र पढ़ाया गया था, उसके अनुसार तो उन्हें खत्म हो जाना चाहिए था।

वास्तविकता से दूर—बड़े आकार की पूजा

कहा जाता है कि आज के जमाने में भीमकाय संगठन अनिवार्य हैं। लेकिन हम देखें कि जहाँ वे बनाये गये हैं, वहाँ परिणाम क्या हुआ है ? 'जेनरल मोटर्स' की मिसाल लीजिए। जेनरल मोटर्स के मिस्टर स्लोन का बड़ा काम यह था कि उन्होंने इस विशाल संगठन के ढाँचे को इस तरह बनाया कि वह अनेक फर्मों का संघ बन गया, और उन फर्मों में कोई भी अपनी जगह विशाल नहीं था। इधर 'नेशनल कोल बोर्ड' में, जो योरप का सबसे बड़ा फर्म है, हम लोग क्या कर रहे हैं ? हम यह कर रहे हैं कि यह बोर्ड बड़ा संगठन तो बना रहे, लेकिन काम करे छोटे फर्मों (क्वासी-फर्म्स) के संघ की तरह। इस प्रकार यह एक विशाल स्तम्भ न बनकर अर्द्ध-स्वायत्त, जानदार, इकाइयों का समूह बन जाता है, जिसमें हर इकाई अपनी प्रेरणा और सफलता-विफलता की भावना से काम करती है। हम देख रहे हैं कि जहाँ एक ओर विद्वान लोग—ऐसे विद्वान जो वास्तविकता से दूर हैं—बड़े आकार की पूजा में लगे हुए हैं वो दूसरी ओर वास्तविक दुनिया छोटे आकार से लाभ उठा रही है, क्योंकि छोटे आकार के संगठन में मनुष्यता और प्रबन्ध की सुविधा बहुत है।

आवश्यकता है स्वतन्त्रता की, व्यवस्था की

यह सब तो कोई भी अपनी आँखों से देख सकता है। जो हो रहा है वह स्पष्ट है, लेकिन हम यह भी देखें कि सचमुच होना क्या चाहिए। अगर हम गहराई से देखें तो पायेंगे कि मनुष्य के जीवन के लिए दो चीजें आवश्यक हैं, जो देखने से परस्पर-विरोधी मालूम होती हैं। हमें आवश्यकता है स्वतन्त्रता की और व्यवस्था की—अनेक छोटे छोटे संगठनों की स्वतंत्रता और बड़े, संभवतः विश्वव्यापी संगठन की सुव्यवस्था। जब काम की बात आती है तो हम छोटी इकाई पसन्द करते हैं, क्योंकि काम में व्यक्तिगत सम्पर्क आवश्यक होता है, और एक बार में सीमित संख्या से ज्यादा लोगों से सम्पर्क रखा नहीं जा सकता। लेकिन जब विचार का प्रश्न आता है तो हमें विश्वव्यापी इकाई के स्तर पर सोचना पड़ता है। यह सही है कि दुनिया के सभी मनुष्य आपस में भाई-भाई हैं, लेकिन काम की दृष्टि से हम उनमें से बहुत थोड़े ही लोगों से सम्पर्क रख और सम्बन्ध निभा सकते हैं। हम सब जानते हैं कि किस तरह कितने ही लोग मनुष्य के भ्रातृत्व की बात करते हैं, लेकिन अपने पड़ोसियों के साथ दुश्मनों जैसा बर्ताव करते हैं। उसी तरह ऐसे लोग भी हैं, जो पड़ोसियों के साथ बहुत मीठा सम्बन्ध रखते हैं, लेकिन अपने सीमित दायरे के बाहर के लोगों और समुदायों के प्रति घोर दुराव और कटुता की भावना रखते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि मनुष्य की समस्याओं के लिए कोई एक ही समाधान

नहीं हो सकता। अलग-अलग उद्देश्यों के लिए हमें भिन्न भिन्न प्रकार के संगठन बनाने पड़ेंगे—बड़े-छोटे, सीमित-व्यापक। लेकिन कठिनाई यह है कि एकसाथ हम परस्पर-विरोधी दो तथ्यों और आवश्यकताओं को दिमाग में रख नहीं पाते। हम यह या वह का हल पसन्द करते हैं। हम चाहते हैं कि या तो छोटे संगठन की बात कही जाय, या बड़े संगठन की। इसलिए यह जरूरी है कि हम ऐसे प्रश्नों के बारे में सन्तुलित दृष्टि से विचार करें। इतना तय है कि 'विशालतावाद' (जायण्टिज्म) की अन्धी पूजा छोड़नी ही पड़ेगी। उसी तरह यह मानना भी गलत है कि सभी बड़े संगठन शैतान के बनाये हुए हैं। सच बात यह है कि जैसा काम हो उसके अनुसार उसका आकार (स्केल) होना चाहिए। शिक्षण को लीजिए। आजकल 'हवा का विश्वविद्यालय' (यूनिवर्सिटी आव दी एयर) की या शैक्षणिक यंत्रों (टीचिंग मशीन) की चर्चा चलती है। इस प्रश्न पर हम कैसे विचार करेंगे? सोचना पड़ेगा कि हमें पढ़ाना क्या है। इतना तय कर लेने पर हम आसानी से तय कर सकते हैं कि किन चीजों के शिक्षण के लिए एक अत्यन्त छोटा समूह चाहिए, जिसमें सब एक-दूसरे के करीब बैठ सकें, और कौन सी चीजें रेडियो और टेलीविजन द्वारा लोगों के कानों तक पहुँचायी जा सकती हैं।

आकार का प्रश्न बुनियादी महत्त्व का

आज की दुनिया में आकार का प्रश्न बुनियादी महत्त्व का बन गया है। राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में तो महत्त्वपूर्ण है ही, दूसरे क्षेत्रों में भी कम महत्त्व का नहीं है। उदाहरण के लिए हम सोचें कि एक शहर का क्या आकार होना चाहिए? उसी तरह एक देश का क्या आकार होना चाहिए? ये कठिन प्रश्न हैं—ऐसे प्रश्न नहीं हैं कि कम्प्यूटर को ऐंठ दीजिए और उत्तर पा जाइए। जीवन के प्रश्न बड़े पेचीदा होते हैं। अक्सर यह तो सोच लिया जा सकता है कि गलत क्या है, लेकिन सही क्या है, यह सोचना कठिन है।

शहर के आकार के बारे में कहा जा सकता है कि मोटे तौर पर एक शहर के लिए ५ लाख की जनसंख्या ठीक है। लन्दन, टोकियो या न्यूयार्क में जहाँ जनसंख्या इससे बहुत अधिक है, बढ़ी हुई संख्या से शहर का मूल्य क्या बढ़ता है। उलटे ऐसी परिस्थितियाँ पैदा होती हैं जिनमें मनुष्य का पतन होता है। हम जानते हैं कि इतिहास में अच्छे-से-अच्छे शहर वे ही रहे हैं जो बहुत छोटे थे। शहरों में साधन और संस्थाएँ धन के आधार पर बनती हैं, लेकिन एक शहर में कितना धन इकट्ठा करना है यह इस बात पर निर्भर है कि किस *तरह की संस्कृति रखनी है।* दर्शन, कला, धर्म आदि में बहुत थोड़ा पैसा लगता है, लेकिन 'स्पेस रिसर्च' या अति-आधुनिक भौतिकशास्त्र के लिए बहुत धन की जरूरत होती है। जरूरत तो होती है, किन्तु ये खर्चीली चीजें मनुष्य की वास्तविक आवश्यकताओं से दूर होती हैं।

शहरों का आकार राष्ट्रों के आकार के साथ जुड़ा हुआ है। आज का विशालतावाद आज की तकनीक (टेकनालोजी) पर निर्भर है, खासकर यातायात और संचार (ट्रांसपोर्ट ऐण्ड कम्युनिकेशन) पर। ये सुविधाएँ मनुष्य को घुमक्कड़, स्वच्छन्द बना देती हैं। लाखों-करोड़ों लोग देहाती क्षेत्रों या छोटे शहरों की ओर निकल पड़ते हैं। इसका नमूना है अमेरिका। समाजशास्त्र के जानकार अति विशाल नगरों (मेगैलोपालिस) की समस्याओं का अध्ययन करने लगे हैं। बड़े शहरों के लिए जब 'मेट्रोपालिस' शब्द पूरा नहीं पड़ा तो 'मेगैलोपालिस' शब्द आया। वे खुलकर कहने लगे हैं कि अमेरिका की जनसंख्या तीन ही क्षेत्रों में बँट जायेगी—एक बोस्टन से वाशिंगटन का क्षेत्र जिसमें ६ करोड़ लोग रहेंगे, दूसरा शिकागो के चारों ओर जिसमें दूसरे ६ करोड़ रहेंगे, और तीसरा पश्चिमी किनारे पर सैनफ्रैंसिस्को से सैनडीगो तक ६ करोड़ के लिए। इन तीन सघन क्षेत्रों के अलावा बाकी पूरा देश खाली रहेगा। प्रान्तीय नगर वीरान हो जायेंगे। खेती विशाल ट्रैक्टरों, हार्वेस्टरों, तथा रासायनिक पदार्थों आदि से होगी।

क्या इस तरह के भविष्य की कल्पना हम उत्साह के साथ कर सकते हैं? हम चाहें या न चाहें, करोड़ों के पैर अपनी जगहों से उठ चुके हैं तो उसके सिवाय दूसरा क्या होगा? अर्थशास्त्री इस श्रम-संचार (मोबिलिटी आव लेबर) का बहुत गुण गाते हैं। जिस जहाज का सामान हिलता-डोलता हो, घूमता हो, अस्थिर हो, उसका डूबना अनिवार्य है। पहले जब संचार और यातायात के इतने साधन नहीं थे तो लोग आज की अपेक्षा बहुत कम निकलते थे, लेकिन जो निकलना चाहते ही थे वे निकलते थे। लोगों में परस्पर आवागमन था, संचार था, लेकिन घुमक्कड़पन नहीं था। इस वक्त टेकनालोजी का बोझ इतना बढ़ गया *है कि पूरा ढाँचा ही बह रहा है। एक दृष्टि* से ढाँचा रह ही नहीं गया है। देश भी जहाज की तरह है। अगर सारा बोझ एक ओर आ जाय तो जहाज डगमगा जाता है।

सीमाओं का महत्त्व…?

मनुष्य के संगठनों में एक मुख्य संगठन 'राज्य' (स्टेट) है। राज्य के ढाँचे में देश की सीमाएँ एक मुख्य तत्त्व हैं। आधुनिक टेकनालोजी के पहले सीमाओं का महत्त्व राजनीतिक होता था, क्योंकि क्षेत्र बड़ा होता था तो युद्ध के लिए सिपाही अधिक मिल सकते थे। राजनीति के लोग सुरक्षित सीमाएँ चाहते थे, और दूसरी ओर अर्थशास्त्री लड़ते थे कि राजनीतिक सीमाएँ व्यापार में बाधक न बनें, इसलिए खुले व्यापार (फ्री ट्रेड) का विचार बना। लेकिन इतने पर भी चूँकि साधन नहीं था, मनुष्य या सामान का एक जगह से दूसरी जगह जाना एक सीमा के बाहर नहीं हो पाता था। औद्योगिक युग के पहले व्यापार जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं में नहीं होता था। *व्यापार होता था हीरे, जवाहरात, कीमती* धातुओं और वैभव की चीजों में। बुनियादी चीजों का स्थानीय उत्पादन होता था, और आदमी भी वे ही बाहर जाते थे, जिनके जाने *का कोई खास कारण होता था, जैसे—संत,* फकीर, विद्वान, व्यापारी आदि।

बोझिल और तनावपूर्ण समाज
(स्ट्रेस सोसाइटी)

अब तो हर चीज और हर व्यक्ति घुमंतू है, इसलिए कोई ढाँचा पक्का, मजबूत रह नहीं गया है। डाक्टर और मनोवैज्ञानिक आज के

समाज को '[illegible] समाज' कहते हैं। दुनिया में कहीं कोई घटना हो जाय, हमको फौरन पता लगता है और हम अपनी खोयी हुई राह खोजने के लिए विवश हो जाते हैं। आज बहुत सोच-विचारकर एक व्यवसाय खड़ा किया जाता है, लेकिन कल कोई ऐसी बात हो जाती है कि वह व्यवसाय घाटे का हो जाता है, और उसे बन्द कर देना पड़ता है। मेरा कहना है कि यह परिणाम है 'धुमक्कड़पन' का, जो तेज और सस्ते यातायात और संचार के कारण पैदा हुआ है।

अर्थशास्त्र सारे विषयों में सबसे अधिक महत्व का हो गया है। आर्थिक नीतियाँ सरकार का पूरा समय ले लेती हैं, लेकिन इतने पर भी नतीजा क्या होता है? पचास साल पहले जो बातें आसानी से हो जाती थीं, आज हो नहीं पातीं। जितना ही धनी समाज होता है, उसमें हर छोटी-से छोटी चीज पैसे की मुहताज रहती है। अर्थनीति इतनी हावी हो गयी है कि विदेशनीति वस्तुतः अर्थनीति हो गयी है। जिनको हम नफरत करते हैं उन्हें आर्थिक लाभ की दृष्टि से खुश रखना पड़ता है। नैतिकता आदि के ऊपर पहले अर्थशास्त्र आ गया है। निश्चित ही यह समाज के रोग का लक्षण है। इस रोग की जड़ें अनेक हैं, लेकिन एक मुख्य जड़ है आधुनिक यातायात और संचार।

संचार के द्रुतगामी साधन और मानवीय स्वाधीनता

कई लोग कहते हैं कि यातायात और संचार के तेज साधनों ने मनुष्य की स्वतंत्रता का विस्तार किया है। वे भूल जाते हैं कि इन साधनों के कारण मनुष्य की स्वतंत्रता खंडित हुई है, क्योंकि हर चीज अस्थिर, अरक्षित हो गयी है। इसलिए हम तकनीकी विकासों के विध्वंसात्मक परिणामों से तभी बच सकते हैं जब हम सोच विचारकर परिस्थिति के अनुरूप नीति-रीति विकसित करें, और उसके अनुसार काम करें।

विध्वंसात्मक परिणाम सबसे अधिक बड़े देशों में प्रकट होते हैं। जितना बड़ा देश होगा, उतना ही अधिक धुमक्कड़पन तथा एक जगह से उखड़कर दूसरी जगह जाने की स्थिति रहेगी। इसीके कारण अमेरिका में 'मेगेलोपालिस' की समस्याएँ पैदा हुई हैं। और ऐसे लोगों का तादाद बढ़ती जा रही है, जो समाज में कहीं अपने लिए स्थान बना ही नहीं पाते। इससे जुड़ी हुई वह भयंकर समस्या है, अपराध की, अलगाव (ऐलियनेशन) की, चिन्ता की, सामाजिक उच्छृंखलता की। यह समस्या ऊपर से शुरू होकर परिवार तक पहुँच गयी है।

गरीब देशों में, खासकर गरीब बड़े देशों में, शहरों की ओर झुकाव बहुत ज्यादा है, क्योंकि भयंकर बेकारी है, और देहात में भूख और अकाल का भय हमेशा बना रहता है, क्योंकि देहात में जीवनी शक्ति रह नहीं पाती। परिणाम है कि एक 'दुहरा समाज' (डुअल सोसाइटी) बन जाता है, जिसमें न सामाजिक संगठन रह पाता है, न राजनीतिक स्थिरता।

मिसाल के लिए पीरू के लहर लीमा को लें। चालीस साल पहले लीमा की आबादी एक लाख पचहत्तर हजार थी। इस वक्त उसकी आबादी तीस लाख है। किसी वक्त का सुन्दर शहर आज गन्दी बस्तियों से भरा हुआ है, और उसकी चारों ओर का क्षेत्र दुःख और समस्या का क्षेत्र बन गया है। यह कम दर भी नहीं रहा है। रोज एक हजार नये लोग आ जाते हैं। किसीको भी मालूम नहीं कि इन आनेवालों का क्या किया जाय। आस-पड़ोस के क्षेत्र में सामाजिक और मनोवैज्ञानिक जीवन टूट चुका है। लोग अपनी परम्परागत जड़ों से उखड़कर चले आ रहे हैं—एक हजार प्रति दिन। खाली जगह देखकर बैठ जाते हैं, एक झोपड़ी बनाने के लिए, कोई काम तलाश करने के लिए। पुलिस आती है, पीटती है, लेकिन वे आते ही जाते हैं। कोई बता नहीं पाता कि उनका आना रोका कैसे जाय?

आज की अस्थिरता की हालत में संगठन और व्यवस्था की बात सोचना सबसे पहले जरूरी है। उसमें राष्ट्र का नम्बर पहला है। आज की अस्थिरता के जमाने में बड़ा देश तभी टिक सकता है जब उसका भीतरी संगठन बहुत ठोस हो, यानी वह बड़ा देश छोटे छोटे राज्यों का संघ बन जाय। हर राज्य का अपना राजधानी नगर हो, जहाँ से उस पूरे राज्य को वे सारी चीजें मिलें, जो केवल शहर से मिल सकती हैं। उनमें सरकार भी शामिल है। प्रश्न उठता है कि वे छोटे राज्य आर्थिक दृष्टि से भरे पूरे कैसे होंगे?

छोटे, स्वतंत्र देशों की अर्थनीति के बारे में कैसे चर्चा की जाय? राज्यों या राष्ट्रों की आत्म-निर्भरता जैसी कोई चीज नहीं है, आत्म-निर्भरता जनता की होती है—मेरे और आपके जैसे मनुष्यों की। मनुष्य आत्म-निर्भर तब होते हैं जब वे अपने पैरों पर खड़े हों और अपने लिए आवश्यक कमाई कर सकें। जो लोग इस वक्त आत्म निर्भर नहीं हैं उन्हें आत्म-निर्भर बनाने का यह तरीका नहीं है कि बड़ी संख्या में एक जगह इकट्ठा कर दिया जाय; उसी तरह किसी आत्म-निर्भर समुदाय की आत्म निर्भरता मात्र इतने से हटती भी नहीं कि वह छोटे, ठोस और निकट टुकड़ों में बँट जाय। यह बात इतनी स्पष्ट है कि बहुत चर्चा की जरूरत नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि अगर किसी देश में एक प्रान्त धनी हो, और दूसरे कई प्रान्त गरीब हों, और धनी प्रान्त अलग हो जाय तो क्या होगा? इसका यही उत्तर है कि कोई खास बात नहीं होगी। धनी धनी होते जायेंगे और गरीब गरीब रह जायेंगे। फिर पूछा जाता है कि अलग होने के पहले अगर धनी प्रान्त गरीब प्रान्तों को मदद देता रहा होगा तब क्या होगा? धनी प्रान्त के अलग हो जाने के बाद गरीब प्रान्त कहाँ से मदद पायेंगे? ठीक है, उस स्थिति में मदद बन्द हो जायगी। लेकिन यह जान लेना चाहिए कि धनी शायद ही कभी गरीब को मदद देते हों, ज्यादातर तो वे उनका शोषण ही करते हैं। हो सकता है कि सीधे सीधे शोषण न करते हों, बल्कि व्यापार की शर्तें ऐसी रखते हों कि शोषण होता हो। टैक्स के बँटवारे या दान आदि से कुछ दिन तक इस स्थिति पर पर्दा भले ही डाला जा सके। लेकिन धनी गरीब से जल्दी अलग नहीं होना चाहते। सामान्य तौर पर यही होता है कि गरीब धनी से अलग होना चाहते हैं, धनी गरीब से नहीं, क्योंकि अपनी राष्ट्रीय सीमा के अन्दर रहनेवाले गरीबों का शोषण करना जितना आसान है उतना बाहर रहनेवालों का नहीं। ऐसी हालत में अगर कोई गरीब प्रान्त

धनी प्रान्त से मिलनेवाली काल्पनिक मदद छोड़कर अलग होना ही चाहे तो क्या करना चाहिए ? क्या इस इच्छा का आदर नहीं होना चाहिए ? क्या हम नहीं चाहते कि लोग अपने पैरों पर खड़े हों, आत्म-निर्भर बनें ? कोई देश दुनिया भर को अपना माल भेज सकता है, दुनिया भर से माल मंगा सकता है, लेकिन ऐसा करने के लिए उसे तमाम दुनिया को जीतने की जरूरत नहीं है।

असंतुलन का नियम

अर्थशास्त्र में इस बात पर जोर है कि एक बड़ा, घरेलू, बाजार आवश्यक है। ठीक है, लेकिन इसके लिए क्या यह भी जरूरी है कि अपने राष्ट्र की राजनीतिक सीमाएँ फैलायी जायें, समृद्ध बाजार गरीब बाजार से अच्छा होता है; फिर वह समृद्ध बाजार अपनी सीमा के भीतर या बाहर है, इसका क्या महत्व है ? जर्मनी अमेरिका को कोई माल भेजेगा तो क्या पहले अमेरिका को जीत लेगा ? लेकिन अगर कोई गरीब समुदाय धनी समुदाय से बँधा हुआ हो, या उसके द्वारा शासित हो, तो बहुत बड़ा अन्तर हो जाता है। क्यों ? क्योंकि अस्थिर, धुमंतू समाज में संतुलन के नियम से अधिक असंतुलन का नियम लागू होता है। सफल प्रान्त हमेशा असफल प्रान्त की जीवनी शक्ति चूस लेता है। ऐसी स्थिति में अरक्षित होकर कमजोर या तो कमजोर बना रहे या उजड़ जाय और कहीं दूसरी जगह जाकर धनियों की शरण ले। अपने लिए दूसरा कुछ वह कर नहीं सकता।

बीसवीं शताब्दी के इस दूसरे भाग में सबसे बड़ी समस्या है जनसंख्या का भौगोलिक वितरण — क्षेत्रवाद (रीजनेलिज्म) की समस्या। क्षेत्रवाद इस अर्थ में नहीं कि अनेक राज्यों को खुले व्यापार के लिए एक व्यवस्था में जोड़ दिया जाय, बल्कि इसके विपरीत इस अर्थ में कि एक ही देश के सब भागों का विकास हो। सब बड़े देशों के सामने यह समस्या प्रमुख है। और, आज छोटे देशों की राष्ट्रीयता का यही अर्थ है कि वे अपने क्षेत्र के विकास का अवसर चाहते हैं। गरीब देश में गरीब के लिए कोई आशा नहीं है जब तक कि क्षेत्रीय विकास न हो—ऐसा क्षेत्रीय विकास जो राजधानी के बाहर हो, देहातों में हो, उन सारी जगहों में हो जहाँ लोग बसते हों। अगर ऐसा प्रयत्न नहीं होगा तो या वे गरीब बने रहेंगे या घर छोड़कर शहर में भाग जायेंगे उनकी हालत और ज्यादा खराब हो जायगी। यह एक अजीब बात है कि आज के अर्थशास्त्र में कौनसा ऐसा उपाय है जिससे गरीब की सहायता हो सके ?

इसका यह अर्थ है कि वे ही नीतियाँ सही मानी जाती हैं जो धनी और शक्तिशाली को और अधिक धनी और शक्तिशाली बनाती जायें। इससे यह सिद्ध होता है कि वही आर्थिक विकास सही है जो राजधानी या दूसरे बड़े शहरों में हो, न कि देहाती क्षेत्रों में। इससे यह भी सिद्ध होता है कि बड़ी योजनाएँ छोटी योजनाओं से ज्यादा आर्थिक होती हैं। या पूंजी-केन्द्रित योजनाओं को श्रम-केन्द्रित योजनाओं से ज्यादा पसन्द करना चाहिए। आज के अर्थशास्त्र में उद्योगपति मनुष्य का बहिष्कार कर देता है, क्योंकि मनुष्य से जो भूलें होती हैं, मशीनों से नहीं होतीं। इसीलिए 'आटोमेशन' और बड़े संघटनों पर इतना अधिक जोर है। इसका यह परिणाम है कि जिनके पास श्रम के सिवाय दूसरा कुछ बेचने को नहीं है उनकी दशा सबसे अधिक दयनीय है। प्रवर्तक का अर्थशास्त्र गरीबों को छोड़ देता है, उन्हीं गरीबों को जिन्हें विकास की सचमुच जरूरत है। आटोमेशन और विशालतावाद (जायण्टिज्म) का अर्थशास्त्र १९ वीं शताब्दी का अवशेष है, उससे आज की कोई समस्या हल होनेवाली नहीं है। आज के युग के लिए चिंतन की नयी धारा चाहिए—ऐसी धारा जो जीवित मनुष्यों पर अधिक ध्यान दे, न कि माल और सामान (गुड्स) पर। मनुष्य की चिंता करने पर माल की चिंता अपने आप हो जायगी। यह बात एक वाक्यांश में इस तरह कही जा सकती है : 'व्यापक जनता द्वारा उत्पादन, न कि केन्द्रित ढंग से व्यापक उत्पादन' (प्रोडक्शन बाई दी मैसेज रादर देन मैस प्रोडक्शन)। जो १९ वीं शताब्दी में नहीं हो सका वह अब हो सकता है। जो बात १९ वीं शताब्दी में समझ में नहीं आती थी वह अब तत्काल आवश्यक है। वह यह है कि टेक्नालोजी और विज्ञान की जो संभावनाएँ हैं उनका पूरा इस्तेमाल मनुष्य को दुःख और पतन से बचाने के लिए हो। यह एक लड़ाई है जो मनुष्यों के निकट सम्पर्क में जाकर ही लड़ी जा सकती है— व्यक्ति, परिवार और छोटे समूहों के सम्पर्क में, न कि राज्य या दूसरे परोक्ष संगठनों के आधार पर। इसके लिए राजनीतिक दृष्टि से ऐसा संगठन होना चाहिए जिसमें इस तरह का सामीप्य संभव हो।

नया शुभारंभ

लोकतंत्र, स्वतंत्रता, मानवीय प्रतिष्ठा, जीवन-स्तर, आत्म-सिद्धि, और मुक्ति आदि का क्या अर्थ है ? इन चीजों का सम्बन्ध निर्जीव माल से है या मनुष्य से ? निस्सन्देह, इनका सम्बन्ध मनुष्यों से ही है। लेकिन मनुष्य अपने को छोटे समूह में ही पहचान सकते हैं। इसलिए हमें ऐसे ढांचे की बात सोचनी चाहिए, जिसमें छोटी इकाइयों के लिए गुंजाइश हो। अगर अर्थशास्त्र इस दिशा में नहीं सोच सकता तो वह बेकार है। अगर अर्थशास्त्र राष्ट्रीय आय, विकास रेट, पूंजी, उत्पादन-अनुपात, लागत लाभ विश्लेषण, श्रम संचार, पूंजीनिर्माण आदि की ही बातें करता रह जायगा, और इनसे निकलकर मनुष्य के जीवन की वास्तविकताओं,—जैसे गरीबी, निराशा, अलगाव, अपराध, पलायनवाद, दबाव, ऊब, कुरूपता तथा आध्यात्मिक मृत्यु आदि पर ध्यान नहीं देता तो आइए, अर्थशास्त्र को फाड़कर फेंक दें।

क्या जमाने में काफी संकेत नहीं हैं जो बता रहे हों कि अब नयी शुरुआत करनी चाहिए ? •

जीवन-कुसुम खिलने दो !

[यूरोप और अमेरिका में इन दिनों नयी पीढ़ी आन्तरिक विकलता के दौर से गुजर रही है। दमनकारी राज्य सत्ता, शोषक अर्थसत्ता और जीवन को कुंठित करनेवाली समाज की अन्य बहुतेरी सत्ताओं के विरुद्ध उनकी चेतना सक्रिय हो उठी है। समाज के आज के ढाँचे को इसकी सम्पूर्ण रचनाओं और मान्यताओं के साथ—वे समाज में रहकर अस्वीकार करते हुए नये जीवन की तलाश कर रहे हैं। इस खोज में वे जिस दिशा की ओर बढ़ रहे हैं उसमें गांधी का नाम न हो तो भी स्पष्ट दिखाई देता है कि गांधी की कल्पना के करीब वे पहुँच रहे हैं। 'हिप्पीज' के बारे में कोई चर्चा चलते ही अक्सर हम नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, लेकिन इस आन्दोलन के पीछे एक दर्शन भी है, जिसकी कुछ बुनियादी बातें प्रस्तुत हैं इंग्लैण्ड के युवक हिप्पी गॅय डाउन्सी के द्वारा।—सं०]

अफगानिस्तान के 'हर्ट' से बाहर ढलती बेला में उसने मुझे अपनी गाड़ी में ले लिया। वह अच्छी वेश-भूषावाला एक युवक भारतीय था। कुछ काम से तेहरान लौट रहा था। मैं 'हिच-हाइकिंग' (रास्ते में जो भी सवारी मिले उसकी सहायता लेना) से भारत आ रहा था और ३ माह पूर्व, जब से मैंने लन्दन छोड़ा था तब से सड़कों पर ही था। क्यों मुझे उसने अपनी गाड़ी में ले लिया, यह मैं अबतक समझ नहीं सका हूं। उसके विचार हिप्पीज के बारे में अनुकूल नहीं थे, और मेरी वेषभूषा भी बिलकुल वही थी—लम्बे बाल, बढ़ी हुई दाढ़ी और चमकीले रंग का एक अफगानी कोट। हो सकता है, उसने काबुल के बीच के लम्बे रेगिस्तान में अकेलापन महसूस किया हो! फिर भी यही समझा होगा कि हिप्पीज काहिल हैं, अपने माँ-बाप की कमाई पर आवारागर्दी करते हैं, न कोई काम, न कोई विचार, न कोई आकांक्षा, किसी चीज के बारे में कोई परवाह ही नहीं!

काम हम किसलिए करें ?

रेतों पर रात ढल रही थी। पहाड़ रिक्तता के संरक्षक बने खड़े थे। मैंने उसे अपनी जिन्दगी और विचारों के बारे में सुनाया, 'जब आप कहते हैं कि हम काहिल हैं तो आप मानते होंगे कि कुछ-न-कुछ काम करना उपयोगी है, लेकिन काम किसके लिए? हमने यही पसन्द किया कि घड़ी की सूई पर नजर रखकर अपनी मेहनत बेचना सहन न किया जाय। शामें टेलिविजन के इर्द-गिर्द बिताना, परिवार के साथ कारों में सैर-सपाटा करते हुए ऐयाशी में जीना, ६५ साल की उम्र में आकर सुरक्षित निवृत्त जीवन जीने के लिए किसी-न-किसी फर्म में वफादार नौकर बने रहना; यह सब बरदाश्त न करने का हमने निश्चय किया है। ऐसी जिन्दगी में शरीक होने से हम इनकार करते हैं। वरना, वही जिन्दगी जीने के मानी हैं अधिकाधिक कारों के निर्माण में मदद करना, जिससे पैदल चलने

गॅय डाउन्सी

वालों के लिए सड़क पर चलना दूभर हो, ज्यादा से ज्यादा सिगरेट तैयार करने में मदद करना, जिससे लोग बेमौत मरें, ज्यादा-से-ज्यादा पक्की सड़कें बनाने में मदद करना, जिससे निःसहाय लोगों के घर बरबाद बनें, ज्यादा-से ज्यादा शराब तैयार करने में मदद करना जिससे लोग अपनी ये सारी मुसीबतें भूल सकें, और ज्यादा-से ज्यादा विज्ञापन में मदद करना जिससे शराब की खूब बिक्री बढ़े। और यही व्यापारिक स्वार्थ हैं जिससे हम 'पोलरिस न्यूक्लियर सबमेरिन' बनाकर और वियतनाम में अमरीकियों को मदद पहुँचाकर इन उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चा माल प्राप्त करते हैं। कठोर परिश्रम का मेहनताना पाते हैं और अपनी भाषा में 'रोटी' पाते हैं। अगर हम शिक्षक बनते हैं तो बच्चों को समूचे समाज की रग-रग में पैठी हुई इसी जीवन पद्धति के गुलाम बनने की शिक्षा देते हैं। क्या हम उन्हें अपनी कब्र खुद खोदने की राह दिखायें? पश्चिम में कहीं कोई 'शिक्षा' है ही नहीं, सिर्फ है छल-प्रपंच। दस वर्षों में अधिकांश बच्चों की जिज्ञासा, उत्साह और मस्तिष्क की मुक्तता कारगर ढंग से खत्म हो जायेगी। और तब वे सिर्फ जो कुछ होगा उसे स्वीकार करेंगे और कुम्हलाते रहेंगे।'

'तब फिर क्या? अगर हम समाज सेवा में लगें तो हम इस रचना के पोषक बनेंगे जो टूट रही है। नगरों और गलियों में अब भी गरीबों हैं गंदी बस्तियाँ हैं, अपार भीड़ है। बच्चों को कारों से ही खेलना पड़ता है। वे माँ-बाप से अलग कर दिये गये हैं, क्योंकि उनको रहने को जगह नहीं है। मैं आपसे ही पूछता हूँ कि क्या हमको इसी रचना के लिए काम करना चाहिए?'

मैं कहता गया, 'हम इसे दो कारणों से ठुकरा रहे हैं, एक तो इस कारण से कि यह पूँजीवादी है, और दूसरे, यह हिंसक है, बहुतेरे रूप में हिंसक!' वेद ने स्वीकृति में अपना सिर हिलाया। 'हम जीवन का ऐसा मार्ग खोज निकालना चाहते हैं जिसमें मनुष्य एक-दूसरे का शोषण न करता हो, या अपने मतभेदों को लेकर युद्ध करने पर उतारू न हो जाय। हम मानते हैं कि अगर मनुष्य अपनी सभी पूर्व मान्यताओं से पूर्वसंस्कारों से और अपनी व्यक्तिवादिता से मुक्त हो जाय—हम तो यहाँ तक कहते हैं कि जगत् की बीमारियों को दूर करने का दम भरनेवाले इन तमाम महान् विचारों और आदर्शों की औषधियों से भी मुक्त हो जाय, तभी वह वास्तविक मुक्ति का अनुभव कर पायेगा। सत्य और वास्तविकता मनुष्य की जिन्दगी के चारों ओर बिखरी पड़ी है, लेकिन हम भ्रम-जाल के पीछे उन्हें छिपाते फिरते हैं। अपनी अज्ञानता और गलतफहमियों को लेकर हम जहाँ कहीं भी जाते हैं, वहाँ केवल छाया और अंधकार ही फैलाते हैं। लेकिन हम उसे रोक रहे हैं, उन परदों को हटा रहे हैं, मानवीय एकात्मता और वास्तविकता के प्रकाश में एक नयी समाज-रचना कर रहे हैं।'

एक सीधा-सादा सत्य

अब वेद अधिक बातचीत नहीं कर रहा था। सड़क सूनी थी। 'सीधा-सादा मन्त्र यह है कि हम उसी समष्टि के—जो कि जीवन है—अंश हैं। इसलिए हम जीवन को ही टुकड़े-टुकड़े करनेवाले अन्धविश्वासों और

जीवन-पद्धतियों की कल्पना करते बैठने में क्या बुद्धिमानी है ? हम सबको स्वीकार करते हैं और कोई माँग नहीं पेश करते । हम किसी भी प्रामाण्य को, किसी भी आनुवंशिकता को स्वीकार नहीं करते हैं, किसीसे, किसीकी तुलना नहीं करते हैं । हर प्रकार की रूढ़िवादिता से इनकार करते हैं । इससे केवल उन्हीं लोगों को तकलीफ होती है, जो हर प्रकार की वास्तविकता से आँख मूँद लेते हैं, छाया और अंधकार से भागते हैं। आज किसी बात की अत्यन्त आवश्यकता है तो इसकी कि मनुष्य का मन और मस्तिष्क पूर्णतया मुक्त हो । इस मुक्तता के कारण मनुष्य में निहित प्रचण्ड सृजनशील शक्तियाँ उत्स्फूर्त हो सकती हैं, जो आज तक तनाव, निराशा, भय पैदा करने के ही काम आती रही हैं। हम सचमुच 'मुक्त' तभी हो सकते हैं जब हम बाँधनेवाले सभी संस्कारों और भ्रमों से छूटते हैं । इनसे छूटने का एकमात्र उपाय है सजगता और उनकी सही जानकारी । तभी हम देख पायेंगे कि इन सबसे मुक्त होने पर ही मनुष्य के जीवन में प्रेम और सुख का सहज आविर्भाव होने लगता है, बिलकुल उसी तरह, जिस तरह पर्वतीय निर्झर के तटवर्ती छोटे-छोटे पक्षियों और पुष्पों में होता है । विशुद्ध जीवनधारा तब मानव के द्वारा अप्रतिहत गति से बहने लगेगी ।'

ईश्वर, नीति और विधेयता

'हममें से शायद ही कोई होगा, जो एक ईश्वर में विश्वास करता हो ।' अनेक के लिए अज्ञात उस तत्त्व पर साहसपूर्वक अपनी बात जारी रखते हुए मैंने कहा, 'क्योंकि हम लम्बे अरसे से देखते आये हैं कि वह (ईश्वर) उच्च श्रेणी के लोगों और शासकों के निजी मित्र ही के रूप में रहा है, वे उसकी पूजा करते हैं, और वह उनको सहारा देता है। इसके बदले में वे लोग निम्न श्रेणी के लोगों को धीरज रखने की सलाह देते हैं। लेकिन हम लोगों को नीति-शिक्षा देनेवाले धर्मगुरुओं की तनिक परवाह नहीं है, जो सद्गुणों और विधेयता के हिमायती हैं, क्योंकि यह भी उनकी यथास्थिति को कायम रखने का ही साधन है। ये सब अजीब विश्वास और कर्मकाण्ड, जो कि कोरे वहमों पर आधारित हैं, हमारी दृष्टि में मनुष्य की फाँसी है। ये सब आपको अपने जीवन की सीधी-सादी वास्तविकता और सत्य को सही रूप में देखने में बाधक बने हुए हैं, मुक्ति की ओर बढ़ने के मार्ग के रोड़े हैं, बिलकुल उसी तरह जिस तरह अन्धकार किसी भी पौधे के पनपने में बाधक बनता है ।'

बीच रास्ते में हम लोग कुछ देर रुके । अफगानी लोग हमारे इर्द-गिर्द जमा हुए । दूर कहीं रेडियो से पठानी गीत की धुन सुनायी दे रही थी ।

वेद ने वेदान्त में वर्णित मोक्ष की कल्पना मुझे थोड़ी समझायी। मोक्ष का अक्षरार्थ मुक्ति है, माया के बन्धनों से मुक्ति, और वह माया अज्ञान और भ्रमज्ञान से उत्पन्न होती है । मुझे ऐसा भास हुआ कि हम जिस जीवनगति का शोध कर रहे हैं, उसमें और इस विचार में काफी हद तक साम्य है । फिर हम निर्जन मरुस्थल की अगली मंजिल की ओर अग्रसर हुए । फिर मैंने कुछ और समझाने का प्रयत्न किया ।

समाज का त्याग नहीं, जीवन को कुंठित करनेवाले मूल्यों का अस्वीकार

'लेकिन हमें व्यक्तिगत बातों की, व्यक्तिगत निर्माण की भी विशेष चिन्ता नहीं है ।' इस तरह अपने मन्तव्यों का साधारणीकरण करने में मुझे कभी प्रसन्नता नहीं होती है । 'हमने योगी या साधु बनने के लिए कभी समाज का त्याग नहीं किया है, उलटे, हम इसी समाज में रहते हैं और यहाँ रहकर ही समाज और राज्य की पूर्ण उपेक्षा करते हुए उसकी गति को कुण्ठित करने का प्रयास करते हैं । साथ-ही-साथ शैतान के हृदय में पूर्णतया नयी एक जीवन-पद्धति की रचना कर रहे हैं । जो प्रेम पर आधारित है और ज्यों ही अन्ततोगत्वा शैतान खत्म होगा, त्यों ही अनेकानेक कुसुमों के रूप में पुष्पित और सुवासित होगा । उस शैतान को तो मरना ही है, खत्म होना ही है, क्योंकि वह स्वयं अपने ही अतिभार से दब गया है, अत्याग्रह से उलझन में पड़ गया है । ज्यों ज्यों लोग अपने अन्दर प्रफुल्लित कुसुमों का सौन्दर्य देखने लगते हैं, त्यों-त्यों वह प्रतिपल मरता जाता है ।'

'इंग्लैण्ड में ऐसे संन्यासी हैं, जिन्होंने सुन्दर जनता का त्याग कर दिया है, लेकिन वे ईश्वर के पीछे पड़े हैं, वे मनुष्य में दिखाई देनेवाले दोषों से घबड़ाकर ईश्वर में पनाह खोज रहे हैं । लेकिन हमारे दूषित कर्म तो हमारी उलझनों के ही परिणाम हैं। उन संन्यासियों के बिलकुल विपरीत हम त्याग तो करते हैं, पर शहरों में बसते हैं, समाज के बीच जीते हैं, निचली मंजिल से लेकर ऊपर की मंजिल तक कहीं भी रहते हैं, पर भीड़ से दूर एकान्त और विजन प्रदेश में भागते नहीं हैं। लोगों को हम दिखाना चाहते हैं कि हमने उनके समाज को ठुकराया है और समझ-बूझकर और खुलेआम एक नया समाज, प्रेम पर आधारित समाज बना रहे हैं ।'

'यह तो कोरा ध्येयवाद है ।' वेद ने दुःख के साथ कहा ।

वेद की स्पष्टवादिता मुझे छू गयी । मैंने फौरन जवाब दिया, 'सच बात तो यह है कि हम किसी आदर्श या ध्येय में विश्वास नहीं करते । लेकिन यह तथ्य देखते हैं कि समस्त मानव आज जीवन से संत्रस्त है । आप लोग जिसे वास्तविकता समझते हैं, वह दरअसल एक भ्रम है ।'

'ठीक है । लेकिन यह बताओ कि तुम्हारे इस प्रेम-समाज का दैनंदिन व्यवहार और कारोबार कैसे चलेगा ?'

काउण्टर-इकानामी

'तो सुनो'— मैंने शुरू किया, 'उसमें अनेक समुदाय (कम्युनिटीज) होंगे । ये समुदाय ही इस क्रान्ति का आधार हैं । ये समुदाय क्या हैं ? लोग इकट्ठा रहेंगे, सहजीवन जीयेंगे और एक-दूसरे की चिन्ता करेंगे ।

'हम सचमुच कम-से-कम खर्च पर सादा जीवन बितायेंगे । हम अपने शारीरश्रम से— जूता गाँठना, टोपी सीना, घड़ा बनाना, वगैरह काम करके अपने गुजारे के लायक [illegible] और वह भी अपने समय में, [illegible] करेंगे । सबसे बढ़कर हम [illegible]

भूदान-यज्ञ ३०-१-'६६ रजिस्टर्ड नम्बर एल० ३५४ [पहले से डाकव्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त] लाइसेंस नम्बर ए. १४

वोट किसे दें ?
दल को या व्यक्ति को ??

★ देश को दलों के दलदल से बचाने के लिए वोट सबसे अच्छे उम्मीदवार को दें, चाहे वह किसी दल या जाति का हो।

★ अच्छा उम्मीदवार वह है, जो शान्ति और समता में विश्वास रखता है तथा जिसे आप सच्चरित्र और सेवाभावी मानते हैं।

गांधीजी ने कहा था :

"मेरा विचार है कि जिस व्यक्ति का चरित्र ठीक नहीं है, वह राष्ट्र की उत्तम सेवा नहीं कर सकता। इसलिए यदि मैं मतदाता बनूं तो उम्मीदवारों की सूची से सच्चरित्र व्यक्ति को चुन लूंगा, उसके बाद उनके विचार समझ लूंगा।"

वार्षिक शुल्क १० रु०; विदेश में २० रु०; २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे। इस अंक का ५० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी-२ में मुद्रित।
आवरण-मुद्रक : खण्डेलवाल प्रेस, मानमन्दिर, वाराणसी-१

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : १९

सोमवार १० फरवरी, '६९

अन्य पृष्ठों पर

सत्य में समदर्शन है समाधान है, अन्त समाधान है। सौ अम्बर में एक आकाश रहती है। उसके साथ हू बनता है जो सत्य पर चलता है, ऐसा होता। फिर को मुझे रोना आवे तो, तीर्थ नहाने को, जरूरत नहीं। अतः निर्णय देते समय न्यायाधीश सत्य पर रहने की कोशिश करता है। जहाँ सत्ययुक्त निर्णय होता है, वहाँ सत्य है। सत्य के लिए समत्व आवश्यक है। सत्य प्राप्त होता है नम्रता, तटस्थता और अनाग्रह से।

—विनोबा

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

सच्चा प्रजातंत्र या समाजवाद शुद्ध साधनों से ही सम्भव

जबतक प्रजातंत्र का आधार हिंसा पर है, तबतक वह दीन दुर्बलों की रक्षा नहीं कर सकता।

प्रजातंत्र का अर्थ मैं यह समझता हूँ कि इस तंत्र में नीचे-से-नीचे और ऊँचे-से-ऊँचे आदमी को आगे बढ़ने का समान अवसर मिलना चाहिए। लेकिन सिवाय अहिंसा के ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। संसार में आज एक भी देश ऐसा नहीं है जहाँ कमजोरों के अधिकार की रक्षा कर्तव्य के रूप में होती हो। अगर गरीबों के लिए कुछ किया भी जाता है, तो वह कृपा के रूप में किया जाता है।

पश्चिम का आज का प्रजातंत्र जरा हलके रंग का नाजी और फासिस्ट तंत्र ही है। दक्षिण अफ्रीका में प्रजातंत्र क्या अर्थ रखता है? वहाँ का विधान देश के मूल मालिक काले हब्शियों के विरुद्ध गोरों की रक्षा करने के लिए ही गढ़ा गया है।(1)

कोई भी आदमी, जो सक्रिय अहिंसा में विश्वास करता है, सामाजिक अन्याय को—फिर वह कहीं भी क्यों न होता हो—बरदाश्त नहीं कर सकता, वह उसका विरोध किये बिना रह नहीं सकता। जहाँ तक मैं जानता हूँ, दुर्भाग्यवश पश्चिम के समाजवादियों ने यह मान लिया है कि अपने समाजवादी सिद्धान्तों को वे हिंसा द्वारा ही अमल में ला सकते हैं। मैं सदा से यह मानता आया हूँ कि नीच-से-नीच और कमजोर-से-कमजोर के प्रति भी हम जोर जबरदस्ती से सामाजिक न्याय का पालन नहीं कर सकते। मैं यह भी मानता हूँ कि पतित से पतित लोगों को भी सही तालीम दी जाय, तो अहिंसक साधनों द्वारा सब प्रकार के अत्याचारों का प्रतिकार किया जा सकता है। अहिंसक असहयोग ही उसका मुख्य साधन है। कभी-कभी असहयोग भी उतना ही कर्तव्यरूप हो जाता है जितना कि सहयोग। अपनी बरबादी या गुलामी में खुद सहायक होने के लिए कोई मनुष्य बँधा हुआ नहीं है। जो स्वतंत्रता दूसरों के प्रयत्नों द्वारा—फिर वे कितने ही उदार क्यों न हों—मिलती है, वह उन प्रयत्नों के न रहने पर कायम नहीं रखी जा सकती। दूसरे शब्दों में, ऐसी स्वतंत्रता सच्ची स्वतंत्रता नहीं है। लेकिन जब पतित से पतित भी अहिंसक असहयोग द्वारा अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने की कला सीख लेते हैं, तो वे उसके प्रकाश का अनुभव किये बिना नहीं रह सकते।(2)

जबतक सारे लोग समाजवादी न बन जायँ, तबतक हम कोई हलचल न करें, अपने जीवन में कोई फेरफार न करके हम भाषण देते रहें, पार्टियाँ बनाते रहें और बाज पक्षी की तरह जहाँ शिकार मिल जाय, वहाँ उस पर टूट पड़ें—यह समाजवाद नहीं है। समाजवाद जैसी शानदार चीज झड़प मारने से हमसे दूर ही जानेवाली है।(3)

—मो० क० गांधी

(1) 'हरिजन सेवक' : १८-२-'४०, पृ० : ११३-११४ (2) 'हरिजन सेवक' : २०-४-'४०, पृ० : ८०-८१ (3) 'हरिजन सेवक' : ११-८-'४०, पृ० . १९९।

अपराजित अन्तरस्वर

चेकोस्लोवाकिया मे पिछले अगस्त '६८ से वादो के छलपूर्ण अतिक्रमण का सिलसिला सोवियत रूप ने कायम किया है। चेक-भूमि पर रूसी सेनाओ ने यह कहकर घुसपैठ की कि, समाजवाद के लक्ष्य से भ्रष्ट होकर चेकोस्लोवाकिया 'लोकतांत्रिक समाजवाद' का प्रयोग कर रहा है। यह ठीक नही कि इस प्रकार रूस के प्रभाव-क्षेत्र में जनता खुद सोचने का प्रयास करे। शायद रूस को यह भय सता रहा है कि अगर चेक-नेताओ ने स्वयं अपनी दिशा निश्चित कर ली तो रूसी नमूने पर जो राज्य आज संगठित हैं कही वे भी स्वतन्त्र चेता न बन जायें। अगर ऐसा हो गया तो स्वय रूस की भी साम्यवादी व्यवस्था खतरे में पड़ जायेगी।

रूस की आधुनिकतम शस्त्रयुक्त सैन्य-शक्ति का निःशस्त्र प्रतिकार जिस साहस और दृढ़ता के साथ चेकोस्लोवाकिया की जनता ने किया, वह सारी दुनिया के लिए आश्चर्य और प्रेरणा की बात है। लोग सोचने लगे—कही भारत का गाधी वहाँ तो नही पैदा हो गया ? चेक-युवाशक्ति ने साम्यवादी रूस की जारशाही प्रवृत्ति से क्षुब्ध होकर मानवीय समाजवाद की मुक्ति के लिए गाधीजी के संकेत का अनुसरण किया और अब तक अनेक युवक युवतियो ने आत्मदाह किये हैं।

२४ जनवरी के "नवभारत टाइम्स" (दिल्ली) ने अपने सपादकीय मे लिखा है : "जिस किसी विदेशी सत्ता ने किसी गैर-मुल्क की आजादी की भावनाओ को कुचलने के लिए कदम उठाये, उसने उन भावनाओ से ओत-प्रोत युवकों और उनके आन्दोलन को उसी तरह बदनाम करने की कोशिश की, जैसे आज चेक-जनता और उसके आन्दोलन को लांछित किया जा रहा है। किन्तु इससे कम्यु-निज्म स्वयं बदनाम होगा। चेक-युवको के आत्मदाह से तो रूस का फासिस्टवादी चेहरा और ज्यादा बेनकाब होगा। आहुति के लिए कतार बाँधे खड़े चेक-युवकों का बलिदान अकारथ नहीं जायगा।"

लखनऊ से प्रकाशित होनेवाले हिन्दी दैनिक 'स्वतंत्र भारत' ने २६ जनवरी के अक में लिखा है : "चेकोस्लोवाकिया के शासक तथा पदारूढ कम्युनिस्ट नेता लोकतंत्र के प्रति उदारता की प्रगति का अर्थ जानते हैं, उसका फल भुगत चुके है। वे घटनाक्रम की पुनरावृत्ति नही करना चाहते, क्योंकि उन्हे अपनी क्षमता का ज्ञान है। अतएव छात्रो से समझ-बूझकर संयम बरतने की प्रार्थना कर रहे हैं। यह स्वर धमकी का नही, विवशता का है।"

२४ जनवरी के "दी स्टेट्समैन" (अग्रेजी दैनिक) ने लिखा है कि "रूस ने आत्मदाही युवको पर अनेक आरोप लगवा-कर विश्व को गुमराह करने की कोशिश की है। सन् १९२२ में मैडम कोलंताय ने सिलोन से कहा था—अगर तुम कभी सुनो कि मैं क्रेमलिन से चम्मच चुराने के अभियोग मे गिरफ्तार की गयी हूँ तो तुम यह मानना कि लेनिन से कृषि-नीति के प्रश्न पर मेरा कुछ मतभेद हो गया है।...कलकत्ते में जहाज से कूदकर राजनीतिक शरण चाहनेवाले नारासोव पर भी तो जहाज के कोष मे गबन का आरोप रूस ने लगाया था। चेकोस्लोवाकिया के प्रतिकार का आधुनिकतम उपाय विश्व-चेतना को झकझोर देगा।"

इस देश के सभी समाचार-पत्रो ने, कुछ ने दबी जबान से और कुछ ने मुखरित होकर, चेकोस्लोवाकिया मे रूस की आक्रामक कार्रवाई को शर्मनाक कहा है। चेक-युवक यह अच्छी तरह जानते हैं कि संगठित हिंसा का मुकाबला करने की स्थिति मे वे नही हैं। वे जानते है कि हंगरी मे सशस्त्र विद्रोह का परिणाम बड़ा दर्दनाक रहा है। और वे यह भी शायद जानते हैं कि जिस प्रकार के समाजवाद—लोकतांत्रिक समाजवाद की स्थापना करना चाहते हैं उसके लिए बाहरी समर्थन मिलनेवाला है नहीं। तब उनके सामने गांधीजी द्वारा निर्देशित असहयोग का रास्ता ही बचता है कि मूक हड़ताल करके समूची मानवता को अपनी व्यथा से अवगत करायें। आत्मदाह तो विवशता की परा-काष्ठा है।

दिल्ली के प्रमुख अग्रेजी दैनिक "दी टाइम्स आफ इंडिया" ने २५ जनवरी की अपनी सपादकीय टिप्पणी में कहा है कि, "हुतात्माओ की मांगों के प्रति चेक जनता एव नेता पूर्ण सहानुभूति रखते हुए भी असहाय हैं क्योकि क्रेमलिन इस 'मूड' में नहीं है कि अगस्त '६८ की पूर्व स्थिति वहाँ कायम हो। रूस को शका है कि चेकोस्लो-वाकिया के नये प्रयोगो का प्रभाव पूर्वी जर्मनी पोलैण्ड और यूक्राइन पर न पड़ जाय और वहाँ पर भी रूस का प्रभाव समाप्त हो जाय।" टिप्पणी मे हुतात्माओ के प्रयास का समर्थन करते हुए कहा गया है : "उनका तरीका न तो कायरतापूर्ण है और न राष्ट्र-द्रोही। यह देर से ही सही, किन्तु प्रभाव-शाली सिद्ध होगा।"

२ फरवरी के साप्ताहिक "दिनमान" ने लिखा है : "रूसी नेताओं को भी अब यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि यदि उन्होने अपना रवैया नही बदला तो चेक जनता का मुखर विरोध उनकी साख को ले डूबेगा।"

३० जनवरी को नई दिल्ली में प्रधान-मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा कि चेकोस्लोवाकिया की आत्मदाह की घटनाएँ भारतीय वीरता की परम्पराओ के अनुरूप हैं। हम आज उन्हे उसी प्रकार स्मरण कर रहे हैं, जैसे कि दुनिया के उन तमाम शहीदों को, जिन्होने अपने मुल्को के लिए कुर्बानियाँ दी हैं। चेक युवको की कुर्बानी का सारे विश्व की युवा चेतना पर प्रभाव पड़ रहा है।

रूस की शस्त्र-शक्ति के अहिंसक प्रतिकार के सन्दर्भ मे घटित ८ आत्मदाह की घटनाओ से व्यथित होकर राजनीति एव सत्तात्मक प्रपचो से दूर ९ तरुण सर्वोदय कार्यकर्ताओ ने—जिनमे डेनमार्क के भी दो युवक युवती थे—गाधी-समाधि पर ३० जनवरी की संध्या ५॥ बजे से २४ घण्टे का प्रतीकात्मक सामू-हिक उपवास किया। विश्व की युवा चेतना की यह मांग होनी चाहिए कि चेकोस्लोवा-किया में आत्मदाह के लिए मजबूर करनेवाली परिस्थिति शीघ्र समाप्त हो।—कपिल अवस्थी

रोटी और क्रान्ति

"सर्व की क्रान्ति महज एक शब्दजाल है। आप लोगों ने तथ्य का सामना करने से निकल भागने का एक सुन्दर-सा सिद्धान्त गढ़ लिया है। जिनका पेट तक नहीं भरता, जिनकी जिन्दगी का हर पल यातनाओं का शिकार है, उनसे आप अपेक्षा रखते हैं कि वर्गनिराकरण के लिए आपकी तथाकथित शान्तिपूर्ण क्रान्ति के वाहक बनें, विवेक से काम लें, खुद त्याग करें। जिनका पेट ही नहीं भरता, जिनके शरीर को बचपन से बुढ़ापे तक पोषण ही नहीं मिलता वे भला खुद क्या सोच पायेंगे?" आवेशपूर्ण आवाज में अपनी बात रखी।

हमारी चर्चा का विषय था कि समाज को वर्गों में विभाजित करके जो क्रान्ति होगी उसमें से प्रतिक्रान्ति का जन्म अवश्यम्भावी है। सच बात तो यह है कि उसे क्रान्ति कहना भी इस शब्द का दुरुपयोग सा है। वह तो मात्र दो प्रकार की परिस्थितियों की अदला-बदली है। परिस्थिति का समग्र और बुनियादी परिवर्तन हो, तब न उसे क्रान्ति कहेंगे'?

लेकिन हमारे मित्र अपनी बात पर अडिग थे। भारत आने पर सबसे पहले दिल्ली की आलीशान इमारतों और अत्यन्त व्यस्त सड़कोंवाली भारत की तस्वीर उन्हें दिखाई पड़ी थी, और उसके बाद उन्हें दिखाई पड़ी थी अधटूटी झोपड़ियोंवाली बियाबान जंगलों की मायूस और सूनी जिन्दगीवाली गाँवों की तस्वीर। भेद की इतनी लम्बी-चौड़ी खाई भारतीय जीवन में है, इसका उन्हें अन्दाज भी नहीं था। बौखला-से गये थे, और बार-बार यही कहते थे कि, "सबसे पहले इनका पेट भरना चाहिए, तन ढकना चाहिए, सर्दी, धूप, बरसात से बचने के लिए आश्रय होना चाहिए। इतना हो जाय, तब उसके बाद शान्तिपूर्ण क्रान्ति की बात सोचनी चाहिए। लेकिन अभी तो जो असन्तोष की आग यहाँ सुलग रही है, उसे और भी धधकाना चाहिए।"

मैंने कहा, "आपकी बात से हमें कोई इनकार नहीं है, अगर आग धधके सब कुछ जल जाय और उसके बाद क्रान्ति के अरुणोदय नये जीवन की किरणें फूटती दिखाई दें! लेकिन यह चेकोस्लोवाकिया की घटनाएं किस बात की ओर संकेत कर रही हैं? क्या आपको यह नहीं दीखता कि रोटी, वस्त्र, आश्रय और सुरक्षा आदि के एवज में मनुष्य की चेतना गिरवी रख ली जाती है, विषमता के कारण पैदा हुई असन्तोष की आग को भड़कानेवाले खुद ही एक नये—पहले से अधिक दमनकारी—अधिष्ठान के अंग बन जाते हैं? माना कि अभावग्रस्त जिन्दगी में पहली माँग रोटी की है, लेकिन क्या रोटी मात्र के लिए ही मनुष्य जीवित रह सकता है, और क्या सत्ता के दबाव में मानवीय चेतना कुण्ठित होती जाय, तो उसे हम क्रान्ति के बाद नयी जिन्दगी का आरम्भ कह सकेंगे? अगर ऐसा होता तो मार्क्स की क्रान्ति के लिए 'मुक्ति' का उद्घोष और 'मुक्त मनुष्यों का मुक्त भाईचारा' जैसा अन्तरचेतना को उद्बोधित करनेवाला लक्ष्य निर्धारित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती!"

"आप विषय को तोड़ मरोड़ रहे हैं। सवाल यह है कि जिसे भरपेट रोटी खाने को नहीं मिलती, उसके अन्दर मानवीय चेतना और संवेदना कहाँ से पैदा होगी?" मेरे डेनिश मित्र ने कुछ जोश के साथ कहा।

"तो क्या आप सोचते हैं कि रोटी-कपड़े की चिन्ता से मुक्त सारी सुख सुविधाओं के बीच रहनेवाले व्यक्ति में ये गुण अधिक विकसित हैं और विपन्न लोगों में हैं ही नहीं? अगर ऐसा होता तो एक बीघा जमीन रखनेवाला गरीब आदमी भी भूदान में अपनी जमीन हर्गिज नहीं देता। लेकिन हमारा अनुभव यह है कि गरीब लोगों में भी अपने से गरीब के लिए दान देने की प्रवृत्ति है, भावना है। और हम इसे मानवीय चेतना और संवेदना का ही एक रूप मानते हैं। इस पूरी क्रान्ति-योजना में सोचने और संयोजन करने का काम कुछ थोड़े-से समझदार लोगों का रहा, जो क्रान्ति के अगुवा बने। दुनिया में हुई साम्यवादी क्रान्तियों का अनुभव यह साबित करता है कि यह जो संयोजक समुदाय बना, वह संगठित होकर सोचने का काम अपने जिम्मे ही रखना चाहता है, क्रान्ति की सफलता के बाद के विकसित नये उत्पादक समुदाय को अपनी जिन्दगी और समाज के ढाँचे के बारे में कुछ नया सोचने की बात को प्रतिक्रियावादी लक्षण मानता है। शायद उनकी दृष्टि में उनके बनाये साम्यवादी ढाँचे में कहीं-न-कहीं जड़ जाने से अधिक मनुष्य की कोई हैसियत नहीं! क्या फर्क हुआ मनुष्य की हैसियत में—चाहे वह पूँजीवादी ढाँचा रहा, चाहे वह साम्यवादी ढाँचा रहा—अगर अधिष्ठान का ही पुर्जा उसे हर हालत में बना रहना पड़ा तो?"

लेकिन इससे और आपकी सर्व की क्रान्ति से क्या अनुबन्ध है?" मित्र ने पूछा।

"बात यह है कि हम मनुष्य को मात्र एक पुर्जा मानकर नहीं चलते, न ही हम उसे मात्र रोटी के लिए जीनेवाला प्राणी मानते हैं। हम मानते हैं कि हर व्यक्ति के अन्दर—मात्राभेद भले हो—मानवीय चेतना और संवेदनशीलता है। जिस तरह एक तथ्य यह है कि वह बिना रोटी के नहीं रह सकता, उसी तरह एक तथ्य यह भी है कि वह केवल रोटी के आधार पर जिन्दा नहीं रह सकता। वह अपने अलावा दूसरों के सुख-दुख का अनुभव करता है। अगर असंतोष की आग को धधकाकर उसमें जलाने की शक्ति पैदा की जा सकती है तो इस संवेदनशीलता को विकसित कर इसके द्वारा हर मनुष्य के अन्दर परिवर्तन की शक्ति पैदा क्यों नहीं की जा सकती? आरोपित क्रान्ति की बुनियाद में ही प्रतिक्रान्ति निहित है, लेकिन स्वयं की चेतना से स्वीकारी हुई क्रान्ति में प्रतिक्रान्ति की नहीं, निरन्तर क्रान्ति-प्रवाह के जारी रहने की अनुकूलता है; इसीलिए हम न तो मनुष्यों को वर्गों में विभाजित करते हैं, और न खुद उनके लिए क्रान्ति का नायक बनते हैं। हम क्रान्ति की चेतना जगाते हैं, और हर मनुष्य को उसका नायकत्व सौंप देते हैं।"●

स्नेह के तीन आधार : प्रेम, आदर, विश्वास

हम तो ऐसी सभाओं की तरफ सत्संग के खयाल से देखते हैं। यह एक सत्संग है। आप इकट्ठे होते हैं तो काम की चर्चा करता हूँ। ऐसा बेकार कौन है यहाँ सिवाय बाबा के! कई लोग बाबा के पास मुलाकात के लिए आते हैं तो उनको गिना हुआ समय मिलता है—२ से २॥, ३-३५ से ३-४५ तक। लेकिन ऐसी जो बातचीत की जाती है, वह गप्पों की जाती है।

भारत मे लगभग तीन सौ जिले हैं, उनमें से दो-ढाई सौ जिलो मे बाबा के परिचित लोग हैं। ७०-७५ जिले ऐसे हैं, जिनमें खास परिचय का मनुष्य नहीं मिला है, याने याद मे नहीं है। तो उन मनुष्यो का स्मरण किया करता हूँ। बाबा का कार्यकर्ता होगा, तो इस प्रकार के स्मरण करने से कुछ संदेश पहुँचाया जा सकता है। और, कुछ लाभ तो स्मरण करनेवाले को होता ही है। जिसका सम्पर्क किया जाता है, उसको भी होता है, ऐसा अनुभव कई दफा होता है। इस वास्ते बाबा के सामने जाकर बात रखने का भी अपना एक महत्त्व है। बाबा सूक्ष्म में है, इसलिए द्रष्टा बनकर बारीक-से-बारीक चीज भी देख लेता है, जो अपने काम के साथ सम्बन्धित है, जो सम्बन्धित नहीं है, ऐसे सवालों पर केवल थोड़ा देख लेता है। इसलिए बाबा के बहुत करके जो भी कोई सम्बन्धित विषय हैं, उन पर बाबा 'अप टु डेट' है। कुछ ऐसे विषय हैं, जिनके बारे में बाबा को जानकारी नहीं है। जो भी सर्वसामान्य विषय लेकर आता है, उनको ऐसा अनुभव होता है कि बाबा को 'अप टु डेट' जानकारी होती है। अब जैसे 'जर्मन ट्रिब्यून' बाबा के पास आता है तो आधा देख लेता है। उसको उससे जर्मनी की करीब करीब पूरी जानकारी मिल जाती है। इस तरह से जो-जो आते हैं, उनसे वाकिफ रहने की बाबा कोशिश करता है।

.. कियोंके मरने के बाद उसके बारे मे लेख लिखा जाता है। बाबा कहता है, मरने के बाद नहीं, मरने के पहले ही लिखो। इससे एक दूसरों की जानकारी एक दूसरों को होगी। चित्र के साथ उनका जीवन-चरित्र थोड़े में दिया जाय, उससे बड़ा लाभ होता है। अपने आन्दोलन में जो काम करते हैं, उनमें बहुत-से साधु पुरुष कहने लायक हैं। गीता में जो कसौटी आती है कि अपने लिए ज्यादा चाहते नहीं—फलत्याग, ऐसे जितने भी कार्यकर्ता होंगे, सबके-सब होंगे ऐसा नहीं कहना चाहता, लेकिन फिर भी एक समूह है, उनकी प्रतिष्ठा तो मिलनेवाली है नहीं।

इन लोगों का कोई नाम होनेवाला नहीं है और इनके बारे में पेपर भी मरने के बाद ही लिखते हैं। और उन्हें गृह सौख्य मिलेगा यह भी सम्भव नहीं है। महाराष्ट्र का एक कार्यकर्ता लिखता है कि मुझे आसाम भेज दीजिए। आसाम चले जायें तो वह भी बचे और ये भी बचें! अपने प्रान्त में रहकर अपने घरवालों की दशा देखने का जो मौका मिलता है, उससे तकलीफ होती है। मैं हमेशा कहता हूँ कि उनके बाल-बच्चे उनका काम करनेवाले नहीं हैं, यह पक्की बात है। कारण यह है कि काम करते हुए उनकी अत्यन्त उपेक्षा होती है। माता अपने बेटे से कहती है कि जो भी तू हो, लेकिन अपने बाप के समान बेवकूफ मत बनो! बाप की दुर्दशा बेटा देखता है। हालत यह है कि घर की ऐसी दुर्दशा और बाहर भी मान की आशा नहीं। अब एकनाथ भगत, कितना उत्तम कार्यकर्ता! वह बीमार रहा, फिर भी काम करता रहा। दूसरों ने भी सलाह नहीं दी। काम बन्द नहीं करवाये। मरने तक काम में लगा रहा। अब मरने के बाद स्मारक बनायेंगे, मरने तक दया नहीं की। ऐसी हालत में बहुत सारी हमारी कार्यकर्ताओं की 'मेजारिटी' है।

विनोवा

हम अपने साथियों को सुझाव देते हैं कि हम लोग एक-दूसरों पर अत्यन्त स्नेह करना सीखें। स्नेह मे तीन चीजें आती हैं : (१) प्रेम, (२) आदर और (३) विश्वास। ये तीनों मिलकर स्नेह बनता है। हम देखते हैं कि माता-पिता, पति-पत्नी, माँ-बेटे, इनका बहुतों का आपस-आपस में प्रेम तो सामान्यतया होता है, लेकिन आदर नहीं होता है। कुछ ऐसे परिवार होते हैं, जिनमें प्रेम और आदर हो, लेकिन विश्वास होता है ऐसी बात नहीं। पति को पत्नी की अक्ल पर विश्वास नहीं और पत्नी को पति की अकल पर विश्वास नहीं। पिता को बेटे की अकल पर विश्वास नहीं और बेटे को पिता पर विश्वास नहीं। प्रेम है, लेकिन विश्वास नहीं। आदर तो ऐसी वस्तु है, जो जरूरी है। इकट्ठे होने से एक-दूसरे के दोष देखने को मिलते हैं। दोष जो हैं, वे प्रकट होते हैं। नजदीक देखनेवाले को हमेशा लगता है कि जमीन ऊबड़-खाबड़ है, लेकिन दूर से देखते हैं तो सारी पृथ्वी गोल दिखती है। उसमें पांच मील ऊंचे पहाड़ हैं और पांच मील गहरे समुद्र हैं, उन दोनों के बावजूद विज्ञान कहता है कि पृथ्वी गोल है। नीचाई-ऊँचाई उसकी छोटी चीज लगती है। इस वास्ते नजदीक देखने पर ऊबड़-खाबड़ दिखती है। हम एक दूसरों के नजदीक आते हैं, आना पड़ता है। घर में प्रेम, आदर और विश्वास हो ऐसे घर आपको बहुत थोड़े मिलेंगे। प्रेमवाले ज्यादा परिमाण मे मिलेंगे। प्रेम और विश्वास हो यह कुछ मिल सकते हैं, लेकिन प्रेम, विश्वास और आदर, तीनों चीज इकट्ठी हो, ऐसे परिवार तो बहुत कम मिलेंगे।

यह अपना परिवार ऐसा बने कि जो एक-दूसरे पर प्रेम, आदर और विश्वास करता हो, बावजूद दोष-दर्शन के। इस विषय में हमारी तीन अवस्थाएँ हो चुकी। बचपन में मैं ज्यादा तार्किक था। अभी भी कुछ लोग कहते हैं कि मैं तार्किक हूँ। तो किसीमें दोष दिखे तो तुरन्त दिखता था। फिर, सन्तों ने सिखाया कि दूसरों के दोष देखना नहीं, अपने दोष देखना। और दूसरे का गुण देखना है तो बढ़ाकर देखना और अपने दोष देखने हैं तो बढ़ाकर देखना।...यह बार-बार पढ़ा तो असर हुआ, लेकिन समझ में नहीं आया कि दूसरे का गुण है तो छोटा, लेकिन बड़ा क्यों मानना? तो बापू के साथ इसकी चर्चा हुई मेरी। उन्होंने कहा—तू तो गणित जानता है। मैप में स्केल होता है १ इंच = ७० मील। मैं देखता हूँ एक इंच ही, लेकिन मानूँगे ७० मील। हमने अपनी आँखों का स्केल ऐसा

...और परिपुष्ट चित्त का दर्शन दो।

इस अंक में

१० फरवरी, '६९
वर्ष ३, अंक १२] [१८ पैसे

कस्तूरबा

सौराष्ट्र के पोरबन्दर नगर में जहाँ पूज्य बापूजी का जन्म हुआ था, उसी मोहल्ले में कोई तीन-चार सौ कदम की दूरी पर कस्तूरबा का जन्म हुआ था।

बा के माता-पिता, भाई आदि के सम्बन्ध में मैंने बहुत कम सुना है। उनके दो भाई थे। एक तो अधिक जी नहीं पाये, दूसरे, जिन्हें हम लोग मामा कहा करते थे, बंबई में एक घने मोहल्ले में छोटे-से कमरे में रहते थे और कुछ व्यापार करते थे।

कस्तूरबा के साथ बापू की सगाई सन् १८७६ में हुई तथा विवाह सन् १८८३ में हुआ। सगाई के समय उनकी आयु सात वर्ष की और विवाह के समय चौदह वर्ष की थी। इस हिसाब से बा का जन्म सन् १८६९ अप्रैल के आसपास पड़ता है।

अपनी दादी से मैंने सुना है कि बा में बचपन से ही परिश्रम करने की बड़ी उमंग थी। कस्तूरबा, बापूजी बैरिस्टर बनकर इंग्लैण्ड से लौटे तब तक, ससुराल में बड़ों की सेवा में लगी रहीं।

बा बापूजी की अनुचरी या परछाईं मात्र नहीं थीं, न असहाय अबला ही थीं, बल्कि समझबूझकर इच्छापूर्वक चलने-वाली जीवनसंगिनी थीं।

अफ्रीका के जीवन की झाँकी

अफ्रीका में बा ने अपनी सीधी-सादी साड़ी के अतिरिक्त कुछ भी नया नहीं अपनाया था। पैरों में जूते, मोजे और साड़ी पर फूलदार बेलबूटों की पतली-सी किनारी, इतना ही विशेष वह वे नगर में जाते समय धारण करती थीं। यह भी याद आता है कि घर में जो एक-दो चूड़ी आदि वे पहनती थीं, उनके अलावा कोई भी आभूषण पहनते-उतारते मैंने बा को नहीं देखा।

बा के जीवन में पहली कसौटी तब आयी, जब बापूजी ने अंग्रेजों, ईसाइयों और अन्य व्यक्तियों को अपने ही बंगले में बसाना शुरू किया। वहाँ के रिवाज के अनुसार अतिथि के लिए मल-मूत्र का पात्र भी खाट के पास रात में रखा जाता था। सबेरे इसकी सफाई अपने हाथों बा-बापू को करनी होती थी। वैष्णवधर्मी महिला के लिए विधर्मी के मल-मूत्र की सफाई का काम अत्यन्त कठिन कार्य था। परन्तु बा की बुद्धि ने इसे ग्रहण कर लिया।

दूसरी भारी कसौटी बा की तब हुई, जब बापूजी को प्रथम कारा-वास हुआ। उस समय बा ने जेल से बाहर रहते हुए वही भोजन लिया, जो जेल में नीचे-से-नीचे स्तर के कैदी को वहाँ उपलब्ध था—भूसी डबल रोटी और मक्का का दलिया। दूध का दर्शन नहीं। इस सबके कारण

माता

ामार हो गयीं व मौत के किनारे पहुँच गयी। बापूजी
से इस मतलब का पत्र भेजा, "जुर्माना देकर मैं
बा मे नहीं मा सकता। देश के लिए कारावास भुग-
ृ। मैं तुम्हारे पास पहुँच न पाऊं मौर तुम्हारी मृत्यु
। मैं तुम्हें जगदम्बा मानूंगा मौर पूजूंगा।"

स्वयं पढ़ी-लिखी नही थी, जो अपनी डायरी लिख
ाथा जहां तक मुझे पता है, अपने कष्ट की, अपनी
चिन्ताओं की कहानी औरों से कहने की भी उनकी
ीं थी। जब वह बातचीत करतीं तो औरों के कष्ट
ौरों की चिन्ता में शरीक होतीं।

ाण अफ्रीका में सन् १९१३ में जब बापूजी ने जनरल
ी सरकार के सामने तीसरा मौर अन्तिम सत्याग्रह-युद्ध
. बा घर और फीनिक्स संस्था के घरौंदे से बाहर
र दक्षिण अफ्रीका के लाखों भारतीयों की पूजनीया बन

य बा सर्वप्रथम जेल गयीं मौर जेल की तकलीफ को
ा से सहन किया। जब कारावास से रिहा होकर बा
ायी तब बा को देखकर मन कबूल करने को तैयार नहीं
था कि यह बा ही हैं! उनकी भरी हुई देह सूखकर
ो गयी थी। मुंह की हड्डियां उभर आयी थी।

ानिक्स पहुंचते ही बा का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया।
वह रोग-शय्या पर पड़ी रहीं। बापूजी ने भी उस समय
ा-शुश्रूषा की, उसका दूसरा उदाहरण लाखों-करोड़ों के
जीवन से ढूंढ़ निकालना कठिन ही होगा।

फ्रीका से वापस आने पर अहमदाबाद मे बापू आश्रम
: रहने लगे। एक अछूत परिवार दूदा भाई और दानी-
ो अपने आश्रम में स्थान दिया।

न्होंने बा को सुना दिया, "दूदा भाई, दानी बहन यहीं
आश्रम में हमारे रसोई-घर में साथ-साथ रसोई बनाने में
ायेंगे और पंगत में ही भोजन करेंगे। तुमसे यह बर्दाश्त
तो अलग कहीं रह सकती हो। तुम्हारे लिए मैं अलग
खोलने का प्रबन्ध कर दूंगा। कन्या मौर महिलाओं का
आश्रम तुम चलाओ। उसमें चाहो तो अस्पृश्यो को मत
इस सत्याग्रह आश्रम में ऊंच-नीच एक समान रहेंगे।"

ा के लिए तो यह 'भई गति सांप-छछुन्दर केरी।' बापूजी
ा कहीं जाकर रहने की कल्पना से ही उनके प्राण सूख
! क्षणभर भी उनसे पृथक् होना बा के लिए असहनीय
ैसा कि सीता ने राम से कहा था कि सूर्य और सूर्य की
ोनों अलग नहीं हो सकते, वैसे ही बा ने भी अपने मन से
कहा—मनुष्य होकर जो मनुष्य को अपमानित करे और अस्पृश्य
समझे वह अधर्म ही है, धर्म नही है। और बापूजी का यह
सिद्धान्त बा ने भी अपना लिया और वैसा ही आचरण करने को
तैयार हो गयी।

खादी आरंभ करने से पूर्व बा रंगीन शोभामय साड़ी पहनती
थीं। बुढ़ापे में भी खादी की अपनी शुभ्र साड़ी की चमकती
लाल किनार उन्हें प्रिय थी और वह पहनती थी। पूज्य बापूजी
ने बहुत चाहा कि सत्याग्रह आश्रम में बहनें और कन्याएँ केशकलाप
संवारने की परिपाटी हटा दें, ताकि स्त्री-पुरुषों के सामूहिक
जीवन और सहकार्य बढ़ने के साथ-साथ ब्रह्मचर्य की साधना की
बाधा दूर हो। मीरा बहन जैसी बापू की विदेशी शिष्या ने बापू
के इस विचार का जोरदार समर्थन किया और उस पर स्वयं
आचरण भी किया। किन्तु बा ने इस विचार का रंचभर स्वागत
नहीं किया। मजबूत किला बनाकर आश्रम की सब बहनों के
रक्षण में बापूजी के सामने अडिग बनी रही। बापूजी के उपदेश,
व्यग्य-विनोद, दलीलों आदि की वर्षा चट्टान की तरह झेलती
रही और केश-विन्यास तथा संपूर्ण साड़ी की वेशभूषा में तनिक
भी अन्तर बा ने स्वीकार नही किया।

सामान्य दादी नानी के समान ही अपने पौत्र, पौत्री, दामाद,
धेवते आदि के लिए उनके मन का खिंचाव बना रहा। अहमदा-
बाद के आश्रम से चलकर सुदूर कलकत्ता तक अपने बड़े पुत्र
हरिलाल गांधी के घर जच्चा-बच्चा का काम करने के लिए
प्राय: तीन महीने के लिए वे तब रही, जब बापूजी चंपारण में
अंग्रेज नीलहों और अंग्रेज सरकार से कठिन मोरचा ले रहे थे
तथा जेल जाने को उद्यत थे। बाद में जब हरिलाल गांधी
की पत्नी का देहान्त सन् १९१९ की फ्लू की महामारी के कारण
हो गया, तब उन्होने उनके तीन छोटे-छोटे शिशुओं को अपने
पास रखकर पाल-पोसकर बड़ा किया। साथ ही, सैकड़ों आश्रम-
वासियों का एवं बापूजी के पास आनेवाले अतिथियों का सौभाग्य
रहा कि घर के बच्चों पर बा का जो स्नेह था, उस अमृत-स्नेह
का लाभ, उनके पास जो पहुँचा उसने पाया।

चंपारण में नीलवरों के महासंकट से और पाशवीय आतंक
से किसानों की रक्षा में जब बापूजी सफल हो गये, तब उनकी
दीन-हीन दशा सुधारने के लिए खोली गयी सर्वप्रथम ग्राम-पाठ-
शाला का संचालन बापूजी ने बा के हाथ में सौंपा। नहाकर
बदलने के लिए दूसरी फटी साड़ी का भी अभाव जिन बहनों में
था, उनके बीच ले जाकर बापू ने बा को बैठा दिया। गरीब
भारत के लिए क्या क्या करना आवश्यक है, इसका प्रत्यक्ष अनु-
भव बा ने वहाँ पाया।

बा-बापू के जीवन का अब उत्तरार्ध प्रारम्भ हो चुका था। बापूजी की पचासवीं जन्मगांठ मनायी जा चुकी थी। गार्हस्थ्य के बाद वानप्रस्थ और उसके बाद संन्यास-धर्म बताया गया है। बा-बापू ने तीसरे और चौथे आश्रमों की दीक्षा विधिवत् नहीं ली। परन्तु उनके जीवन में तो भरी जवानी में ही संयम, नियम, त्याग, सेवा और धर्म साधना का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया था। उनका गार्हस्थ्य धर्म ही संन्यास-धर्म तक ऊंचा उठ गया था।

चौबीस-पच्चीस वर्ष के इस लगातार चलनेवाले युद्ध के सेनापति बापूजी रहे और इस अनोखे सेनापति की अर्धांगिनी के रूप में पूज्य बापू का कस्तूरबा ने जो साथ दिया है वैसे और उदाहरण विश्व के इतिहास में इने-गिने ही मिलेंगे। बापू के सेनापतित्व की इस लम्बी अवधि में बा के कदम भी उनके साथ-ही साथ आगे-ही-आगे रहे।

बयालीस के आन्दोलन के समय सरकार ने जो हृदयहीन अत्याचार किये, इससे कस्तूरबा का हृदय बहुत दु:खी हो गया था। बिना मुकदमा चलाये हजारों युवक-युवतियों को जेल में बन्द कर देने के अन्याय से बा के चित्त को बड़ा कष्ट हो रहा था। उनका कहना था कि—"अंग्रेज-सरकार को जितना भी कष्ट देना है, हमें दे ले। बापू को और मुझको जितना जी चाहे जेल में बन्द रख ले और हमें कष्ट पहुंचाने की अपनी इच्छा पूरी कर ले, पर अन्य सभी देशवासियों को जेल से मुक्त करने की बात सरकार मान जाय तो कितना अच्छा हो!"

लिखना-पढ़ना, भाषण देना उन्हें नहीं आता था। उन दिनों कहीं भाषण देने जाना हो तो कभी-कभी वह मुझे बुलाकर कहती, "प्रभु, कागज-कलम लेकर बैठ जा मेरे पास, वहां क्या बोलूंगी वह थोड़ा लिखवा दूं।" जब मैं लिखने बैठता, तब मेरी कलम पीछे ही रह जाती और एक-से-एक प्रबल विचार बिना रुके बा के मुख से निकलते रहते थे। मैं दंग रह जाता था कि बापूजी के 'नवजीवन' के बड़े-बड़े लेखों के मर्म को किस खूबी से थोड़े वाक्यों में बा प्रकट कर रही हैं।

बापूजी के कारावास के कारण बा का नित्य का भोजन फिर से आधा और सूखा रह गया था। उनकी काया लट गयी थी, परन्तु गुजरात भर में एक कोने से दूसरे कोने में उनकी यात्रा चलती रही। जहां जातीं वहीं प्राण फूंकतीं, नयी चेतना जाग्रत कर देती थीं। छुआछूत मिटाने, खादी और स्वदेशी अपनाने, हिन्दू-मुस्लिम भाईचारा बनाये रखने और अंग्रेजों को गुलामी फेंक देने के पाठ बड़ी-बड़ी सभाओं में बिलकुल मौलिक और सरल भाषा में हर जगह सुनाती थीं।

अब वे गृहिणी न रहकर राष्ट्रमाता बन चली थीं। पता नहीं था कि बापूजी छ: वर्ष बाद छूटकर आ पायें या यहीं उनके जीवन का अन्त होगा। पिता के होने पर जिस प्रकार माता घर के बालकों का सारा उत्तरदायित्व अपने कंधों पर महसूस करती है, वही स्थिति तब बा की थी। उनके मन में था कि बापू का जेल में बन्द होना कहीं अखरता न हो जाय। स्वराज्य के लिए लड़ने की धार लोगों के दिलों से कहीं टूट न जाय, लोग सुस्त न पड़ जायें।

सन् १९२१ के आन्दोलन से लेकर सन् १९४२ वाले आन्दोलन तक स्वराज्य संग्राम में कई उतार-चढ़ाव आये। परन्तु प्रत्येक बार बापूजी के आगे बढ़ने के साथ-साथ बा भी पूरे धैर्य, त्याग, तपस्यापूर्वक लगी रहीं।

स्वयं बा ही नहीं, उनके माध्यम से भारतवर्ष की विराट् नारी शक्ति जाग उठी और सुसंगठित होकर सक्रिय बन गयी।

—प्रभुदास गांधी

सफाई : ज्ञान का पहला पाठ

गांधीजी चम्पारण में घूम रहे थे। एक दिन उन्होंने कस्तूरबा से कहा : "तुम क्यों स्कूल नहीं शुरू करती? किसानों के बच्चों के पास जाओ, उन्हें पढ़ाओ।" कस्तूरबा बोलीं : "मैं क्या सिखाऊं? अभी तो मुझे बिहार की हिन्दी आती भी तो नहीं।"

"बात यह नहीं है। बच्चों का प्राथमिक शिक्षण तो सफाई का है। किसानों के बच्चों को इकट्ठा करो, उनके दांत देखो, आंखें देखो, उन्हें नहलाओ। इस तरह उन्हें सफाई का पहला पाठ तो सिखा सकोगी। मां के लिए यह सब करना कठिन थोड़े ही है। यह सब करते-करते उनके साथ बातचीत करोगी, तो वे भी तुमसे बोलेंगे। उनकी भाषा तुम्हारी समझ में आने लगेगी और आगे जाकर तुम उन्हें ज्ञान भी दे सकोगी। लेकिन सफाई का पाठ तो कल से ही उन्हें देना शुरू करो।"

कस्तूरबा अगले दिन से वहीं रहने लगीं, बाल-गोपालों की सेवा का असीम आनन्द लूटने लगीं।

गांधीजी सफाई को ज्ञान का आरम्भ मानते थे।

× × × ×

बापूजी सफाई के परम भक्त थे। सफाई परमेश्वर का रूप है। हमारे देश को अभी यह सीखना बाकी है कि सफाई ईश्वर है। घर में तो हम सफाई रखते हैं, लेकिन सार्वजनिक सफाई का हमें अभी ज्ञान नहीं है।

—काका कालेलकर

विकास की प्रगति धीमी क्यों ?

प्रश्न : भारत देश में सत्य, अहिंसा का विकास महर्षियों द्वारा हुआ। गांधीजी और आप उसमें विकास करते रहे हैं। परन्तु *आज देश की स्थिति विपरीत है। हिंसा में विश्वास* रखनेवाले समुदाय जेलों में रहते हुए भी चुनावों में विजयी हो रहे हैं। राजा-महाराजाओं का प्रभाव बढ रहा है। विधान-परिषद् व लोकसभाओं में असभ्य व्यवहार हो रहा है। हमारी ग्रामदानी कल्पना में, जैसा कि भारत को बनाना चाहते हैं, *प्रगति धीमी है। कैसे होगा? मन में घबड़ाहट है कि कहीं* भारतीय संस्कृति नष्ट न हो जाय।

विनोबा : यह जो कह रहे हैं कि इस वक्त हिंसा की शक्तियाँ काफी जोर कर रही हैं। इसे कबूल करना चाहिए। लेकिन अहिंसा के लिए वह कोई बड़ी समस्या नहीं। होता क्या है? एक सफेद खादी पहना हुआ मनुष्य है और उसके कपड़े पर थोड़ा-सा दाग लग गया स्याही का या और किसी चीज का, तो उधर एकदम ध्यान आता है। और अगर काला ही वस्त्र हो और दो-चार दाग पड़ जायें तो भी दीखता नहीं। सफेद पर दाग बहुत जल्दी दीख पड़ता है। मानव-स्वभाव में अहिंसा भरी है। इस-लिए जरा भी विरोधी चीज होगी तो मनुष्य को एकदम मालूम होगा। थोड़ी होगी तो भी ज्यादा मालूम होगा। एकदम उसका अखबार में प्रकाशन होगा।

मान लीजिए, यहाँ रामानुजगंज में एक माँ है और वह अपने बच्चे पर प्यार करती है, तो उसका टेलीग्राम अखबार को कोई भेजेगा नहीं, क्योंकि सभी माताएँ अपने बच्चों पर प्रेम करती हैं। मानव-स्वभाव में यह चीज पड़ी है, लेकिन उसके विरोधी बात हुई, कत्ल हुई तो तुरन्त उसका टेलीग्राम अखबारों को भेजा जायेगा, क्योंकि मानव-स्वभाव के विरोधी बात हुई। बच्चे पर प्यार करना मानव-स्वभाव के अनुकूल है। लाखों माताएँ प्यार करती हैं, माँ बच्चे पर प्यार करती है, भाई भाई पर, बहन पर, प्यार करता है, गरीबों के लिए दान देता है, ऐसा सतत चल आ रहा है। इसलिए इन बातों का टेलीग्राम नहीं जाता। अच्छाई मानव-स्वभाव में भरी है। उसका कोई प्रकाशन नहीं करता। लेकिन विरोधी बात हुई तो एकदम खलबलाहट होती है। रामा-नुजगंज में एक कत्ल हुई, बाकी सबका परस्पर-प्रेम का व्यवहार चल रहा है। केवल एक कत्ल हुई है तो भी वह बहुत ज्यादा क्षोभ पैदा करेगी। इसलिए हिंसा का बोलबाला दीखता है, *फिर भी अहिंसा का बोलबाला है।* और इसलिए बाबा का कार्य महत्त्व का है।

कार्य को देर लग रही है, क्योंकि हम अच्छे काम में लगे हैं। अच्छा काम एकदम दीख नहीं पड़ता। इस वास्ते हम खादीवालों को यह समझाते हैं—समझाते आठ *साल निकल गये— कि भाई ग्रामदान के आधार पर आपकी* खादी टिकेगी। अब उन लोगों की समझ में यह बात आयी और अब बिहार, उत्तर प्रदेश, तमिलनाड, इन प्रान्तों के खादीवालों ने ग्रामदान के कार्य को उठाया है। यही पाँच-छह साल पहले हो सकता था, लेकिन उनकी समझ में बात जल्दी आयी नहीं। *ये खादी में फँसे हुए थे। फिर जहाँ-जहाँ अकाल पड़ता था, वहाँ* खादी को ले जायेंगे, ऐसा उनका खयाल था। फिर उनके ध्यान में आया कि यह बात नहीं हो सकती। फिर इन लोगों ने क्या किया? अकाल में चरखा देकर खादी शुरू की, उसका कच्चा सूत आया। तो भारत सरकार के पास प्रार्थना की कि कच्चे सूत को सरकार खरीद ले, क्योंकि अकाल में राहत का काम उन्होंने किया है। तब मुरारजी भाई ने उनको सुनाया कि आपको यह धंधा दिया किसने? अकाल का निवारण करना तो सरकार का काम है। वह हमारी जिम्मेदारी है, आप क्यों उठा रहे हैं? जब उन्होंने यह कहा, तब इनके ध्यान में बात आयी। तो खादीवालों की आँखें अभी उघड़ी हैं। इसलिए इस काम को देरी हो रही है और प्रगति धीमी गति से हो रही है। अगर सब लोग समझ जायें और इस काम को उठा लें तो देर लगेगी नहीं।

[गाँव के प्रमुख लोगों के साथ की चर्चा से, रामानुजगंज, २१-११-'६८]

"हाँ, हम ग्रामदानी हैं !"

सराईदलनी-चैम्पपुर गाँव मैत्री आश्रम, नार्थ लखीमपुर से तीस मील पश्चिम में है, जहाँ भाई विश्व सइकिया अपनी गाड़ी में मुझे लिवा लाये। १२ जनवरी '६९ की सुनहली सुबह थी। सर्वोदय-कार्यकर्ता विश्व बरा उसी गाँव के निवासी हैं। मिडिल स्कूल के हेडमास्टर श्री मदन सुइयाँ ग्रामसभा के मंत्री (सेक्रेटरी) हैं, जो मेरे साथ हो लिये। इस कुलीन उच्च जातीय भाई की पत्नी आदिवासी है, जिसकी सफाई और स्नेह अतिथि का मन मोह लेता है। आप यहाँ कोई छुआछूत नहीं देख पायेंगे।

सन् १९५७ में यह गाँव पूरा ग्रामदान नहीं हो सका, जो कि सन् '६२ में हुआ। ग्रामदान होने के बाद सन् '६२ में ही पूज्य विनोबाजी यहाँ आकर ठहरे। राज्य के 'ग्रामदान-ऐक्ट' के अनुसार सन् '६३ में यह गाँव विधिवत् घोषित हुआ। पश्चिम लखीमपुर में यह पहला ग्रामदान था। प्रारंभिक उत्साह के वेग में गाँव के सभी उन्नीस परिवारों ने सामूहिक खेती शुरू की, किन्तु यह प्रयोग पूर्ण सफल नहीं हुआ। व्यक्तिगत जिम्मेवारी और स्वार्थ की प्रेरणा नहीं होने से, खेत की जुताई बुआई समय पर नहीं की जा सकी, इसलिए सामूहिक खेती का प्रयोग छोड़ना पड़ा।

दूसरा प्रयोग हुआ भूमि के समान वितरण का, किन्तु प्रत्येक परिवार की आवश्यकताएँ कम-ज्यादा होने के कारण, यह अधिक दिन नहीं चला। इसके बाद 'बीघा में कट्ठा' निकाला गया, जो ग्राम का स्वरूप है। प्रत्येक व्यक्ति के पास जितने बीघा जमीन थी उतने कट्ठा निकालकर उसने दी, इस तरह कुल आठ बीघा इकट्ठा हुई, जो जमीन गाँव के चारों भूमिहीन परिवारों में बाँट दी गयी। इसके अलावा आठ बीघा भूमि सामूहिक खेती के लिए रखी गयी है, जहाँ सब लोग श्रमदान करते हैं। कम जमीनवालों से कट्ठा नहीं लिया गया। यह गाँववालों ने मिलकर तय किया। प्रत्येक व्यक्ति प्रति बीघा आठ सेर धान ग्रामकोष के लिए दान देता है।

ग्रामकोष के दस हजार रुपये से गाँव का 'नामघर' निर्मित किया गया, जहाँ सामूहिक कीर्तन और सभा आदि होती है। प्रायः हर दो-तीन दिन बाद 'नामघर' में सब साथ बैठकर भगवान का नाम गाते हैं और गाँव के मसलों पर विचार-विनिमय करते हैं। निर्णय सर्वसम्मति से लिये जाते हैं, बहुमत से नहीं। पुस्तकालय में दैनिक असमिया अखबार, गौहाटी से असमिया 'भूदान-यज्ञ', वाराणसी से हिन्दी 'भूदान-यज्ञ' साप्ताहिक आदि पत्र नियमित आते हैं।

परम्परागत एण्डी का रेशम-उद्योग घर-घर में है। कुछ लोग कपास भी उगाते हैं। प्रत्येक घर में चरखा और कपड़े की बुनाई के लिए करघा है। यह आसाम की अपनी विशेषता है। 'सर्वोदय-पात्र' में प्रत्येक घर में प्रतिदिन एक मुट्ठी चावल डाला जाता है। इसका एक हिस्सा असम सर्वोदय-मण्डल को भेजा जाता है और शेष गाँव में जमा होता है। बालवाड़ी चलाने के लिए एक ग्रामसेविका को ग्रामसभा वेतन देती है। गाँव में पाँच 'शान्ति-सैनिक' हैं, जिनमें दो बहन हैं। शराबखोरी बिलकुल नहीं है। कोई चोरी-छिपे शराब पी ले, तो मालूम होने पर, उसके सिर के बालों का मुण्डन करा दिया जाता है, ग्रामसभा की ओर से यह अहिंसक दण्ड मिलता है! कोर्ट-कचहरी या पुलिस के पास कोई नहीं जाता। गाँव की अपनी समाधान-समिति है, कोई विवाद उत्पन्न होने पर दोनों पक्षों को परस्पर-समाधान करने में सहायता करती है। अभी पड़ोसी गाँव के एक आदमी से जमीन को लेकर ग्रामसभा का झगड़ा है। आपस में उस झगड़े के फैसले के लिए बहुत प्रयत्न हुए, परन्तु निबटारा न हो सका। आखिर में कचहरी की शरण लेनी पड़ी है। इस बात से गाँव के लोगों को तकलीफ है, लेकिन क्या करते, उनके पास कोई उपाय नहीं रह गया था।

डिबरुमल गाँव

आइए चलें, दूसरे गाँव में। डिबरुमल गाँव बगल ही में है। सन् '६५ में यह ग्रामदान हुआ, एवं विधिवत् घोषित हुआ। कुल बीस परिवार, जमीन लगभग दो सौ बीघा। बारह बीघे में सामूहिक खेती होती है। यह जमीन पहले बंधक रखी हुई थी, जिसे ग्रामसभा ने 'वार-आन वांट' की आर्थिक सहायता से छुड़ा लिया। ग्रामसभा की ओर से गाँव में एक सहकारी दूकान अच्छी तरह चल रही है। एक प्राइमरी स्कूल है। घर-घर में 'सर्वोदय पात्र' है। भूमिहीन एक भी नहीं। कोर्ट-कचहरी में एक भी मामला-मुकदमा नहीं। सारा गाँव एक ही 'महोम्' जाति का है। पहले यह पिछड़ी जाति मानी जाती थी, लेकिन अब इनमें से ही ग्रामसभा के अध्यक्ष के भाई डी० गगोई स्कूल-इंस्पेक्टर हैं, जो आपको गाँव घुमा लायेंगे। इनकी शिक्षिका पत्नी आपका स्वागत करेंगी। चावल की शराब, जिसे अपोंग या लाओपानी कहते हैं, पहले यहाँ बहुत प्रचलित थी। यहाँ तक कि सड़क पर लोगों का गुजरना मुश्किल था, इतना खतरनाक गाँव माना जाता था। लेकिन अब? ग्रामदान होने के बाद मानो कायापलट हो गया हो। डिबरुमल के लोग जब दूसरे गाँवों में जाते हैं तो गर्व से कहते हैं, "हाँ, हम ग्रामदानी हैं!"

—जगदीश बजाजी

१० फरवरी, '६९

"खाना नहीं दोगे, तो चोरी करूँगी"

धार जिले के बाकानेर विकास-खण्ड मे ग्रामदान-प्राप्ति के लिए घूम रहा था। नदीकिनारे का कोई गाँव था। रात के आठ बजे सभा बुलायी थी। सभा में १०–१२ लोग आये। मैंने अपने साथियों से कहा, थोड़ी देर और लोगों का इन्तजार किया जाय, कुछ लोग और आ जायें तो फिर अपनी बात शुरू करूँ। एक किसान बोला : "साहब ! जो कहना हो, जल्दी कहो—कोई हमारा खेत काट ले जायेगा।"

× × × ×

धार जिले की ही एक और बात याद आ रही है। ग्रामभारतीय-आश्रम, टवलाई में जिले का किसान-सम्मेलन आयोजित हुआ था। मुख्यमंत्री श्री गो० ना० सिंह से कुछ किसानो ने अपनी परेशानी कही : "हमारी फसलें सुरक्षित नहीं हैं। रात को चोर आते हैं, फसल काट ले जाते हैं। कुछ बडे व्यापारी भूखे-नंगे लोगों की मजदूरी देते हैं और ट्रक के साथ चोरी करने भेजते हैं। अतः हमें बंदूकों की आवश्यकता है, जिससे हम अपनी फसलों की रक्षा कर सकें।"

× × × ×

अल्मोड़ा में मेरे गाँव का एक किस्सा है। मेरे गाँव में 'जोगिया भगत' नाम का एक हरिजन रहता है। उसे चार-पाँच बच्चे हैं। आधे दिन जंगल में लकड़ी काटता है और गाँव मे बेचता है। आधे दिन भगवान के भजन गाता है और अनाज माँगकर अपने परिवार को पालता है। दो वर्ष पहले मैं गाँव गया तो, घरवालों ने बताया कि जोगिया किसी के खेत में धान काटते हुए पकड़ा गया और दो माह की सजा भुगतकर घर लौटा है। मैंने जोगिया से पूछा, तो उसने कहा। "हाँ बाबूजी, माँगने पर लोग देते नही हैं; जंगल मे 'फोरिस गाड' (फॉरेस्टगार्ड) मारने आता है। मजबूर होकर चोरी करनी पड़ी।"

× × × ×

रायगढ़ जिले के एक गाँव में शिविरों मे काम करनेवाले मेरे सहयोगी श्री द्वारिकाप्रसादजी तिवारी ग्रामदान के लिए गये हुये थे। एक जगह कुछ लोग इकट्ठा होकर एक औरत को पीट रहे थे। वह औरत जोर-जोर से रोती हुई कह रही थी : "मुझे रोटी दो, मैं दो दिन से भूखी हूँ।" पूछने पर लोगों ने बताया : "यह आधी पगली है, गाँव मे भीख माँगती है, और लोगों का छोटा-मोटा काम कर देती है। दो दिन से इसे खाना नही मिला। गाँव के एक सम्पन्न घर से पीतल का एक बरतन चुराकर ले जा रही थी। बर्तन गिरा, आवाज आयी और पकड़ी गयी। बदमाश कहीं की ! कितने हौसले बढ़ गये इन भुक्खड़ों के ?"

× × × ×

मन को कचोट देनेवाली ये चार घटनाएँ मैंने आपके सामने रखी हैं। इन चारों किस्सों की बुनियाद में एक ही बात दिखाई पड़ती है—पेट भरने को अनाज नहीं मिला। यानी जीवन की बुनियादी आवश्यकता की कम-से-कम पूर्ति के लिए इन चारों दृश्यों के पात्रों ने चोरी की या वे चोरी की तरफ बढ़े हैं। बाकानेर-प्रखण्ड के उस किसान से जब मैंने पूछा : "भाई ! तुम कहते हो, कोई खेत काट ले जायगा। आखिर यह कोई कौन है ? और रात को क्यों अपनी जान जोखिम में डालकर ऐसा काम करता है ?" तो वह बोला : "यही सा'बजी। भूखे-नंगे लोग, मजदूरी नही मिली, तो चोरी करने आते हैं।" किसान-सम्मेलन में आये किसानों के बीच बैठक मे मैंने उनसे पूछा, "आप कहते हैं कि पूँजीवाले लोग ट्रकों में मजदूरों को चोरी करने भेजते हैं। आप शासन से बन्दूकें भी माँग रहे हैं ! आपको एक बन्दूक मिल भी गयी तो क्या होगा ? क्या यह सम्भव नहीं है कि पूँजीपति ट्रक के साथ पाँच-दस बन्दूकें भी रखेगा ?" किसानों के पास कोई उत्तर नही था। दूसरी दो घटनाओं से भी यही बात सिद्ध होती है। 'जोगिया' को काम नही मिलता है, उसके बच्चों को खाना नही मिलता है। इसलिए चोरी का रास्ता अपनाता है। रायगढ़ की बहन भी यही कहती है : "मैं दो दिन से भूखी हूँ, मुझे काम नही दोगे, खाना नही दोगे, तो चोरी करूँगी।"

आप गहराई से सोचेंगे तो आपको लगेगा कि इन सवालों का जवाब ग्रामदान का विचार दे सकता है। ग्रामदान में गाँव-वाले बैठकर गाँव की योजना बनाते हैं; सबको काम, सबको घाम, सबको रोजी, सबको रोटी, सबको कपड़ा, सबको शिक्षा, सबको सुख, सबको सुविधा की बात ग्रामदान सोचता है। मतलब चोरी-चराई को गाँववाले ही रोक सकते हैं। यही ग्रामदान का विचार है। गरीब के बच्चे भूखों न मरें, इसलिए उसे साधन दिया जाय कि वह अपनी रोटी कमा सके। गाँव में प्रेम पैदा करने का नुस्खा है, ग्रामदान। इससे दिल जुड़ता है, प्रेम पैदा होता है, और गाँवों में सबकी व्यवस्था की योजना बनती है, फिर चोरी की कल्पना तक आदमी नही करता, बल्कि रक्षण की और एकदूसरे को सम्हालने-संवारने की बात सोचता है।

—गोपालदत्त भट्ट

दलहनी फसल को कीड़ों से बचाने के उपाय

भारत में करीब ५ करोड़ ७० लाख एकड़ भूमि में दलहनी फसलें उगायी जाती हैं। इनका अधिक उत्पादन करीब एक करोड़ टन है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और बिहार में दलहनी फसलें अधिक उगायी जाती हैं। इन फसलों को नुकसान पहुंचानेवाले कीड़ों की संख्या सैकड़ों में है। इनमें से कुछ कीड़ों का, जिनसे दलहनी फसलों को अधिक हानि होती है, विवरण दिया जा रहा है।

चना

चने का तना कटुआ चने पर इस कीड़े का भयंकर आक्रमण होता है। इसकी सूंडियां (केटरपिलर) रात में निकलकर चने के तने तथा शाखाओं को काटकर गिरा देती हैं। वयस्क सूंडियां भूमि के अन्दर प्यूपा बन जाती हैं। ५ प्रतिशत डी० डी० टी०, हैप्टाक्लोर, क्लोरडेन या एल्ड्रीन का १५ से २० पौंड प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करने से इस कीड़े से फसल की रक्षा हो सकती है। १० प्रतिशत बी० एच० सी० को मिट्टी में मिलाने से भी यह कीड़ा नष्ट हो जाता है।

चने का फली-छेदक - इस कीड़े की सूंडियां शुरू में मुलायम पत्तियों को खाती हैं। बाद में चने की फलियों में छेदकर दाने को भी खा जाती हैं। वयस्क सूंडियां भूमि के अन्दर प्यूपा बनाती हैं। ०.२ प्रतिशत डी० डी० टी० या एल्ड्रिन को ८० गैलन पानी में घोलकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़कने से या ५ प्रतिशत बी० एच० सी० या डी० डी० टी० को १५ से २० पौंड प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करके फसल को बचाया जा सकता है।

चने का सेमीलूपर ये कीड़े हरे रंग के होते हैं, जो पत्तियों को खाते हैं। एक मोटी रस्सी को मिट्टी के तेल में डुबोकर फिर पौधों में रगड़ने से कीड़ों को गिराकर नष्ट किया जा सकता है। जिन रसायनों से चने के फली छेदक कीड़ों को मारा जाता है, उन्हीं रसायनों से इन्हें भी नष्ट किया जा सकता है।

गुम्मिया घुन : इस कीड़े का प्रकोप चने के पौधे पर बहुत अधिक होता है। १० प्रतिशत की शक्ति के बी० एच० सी० का छिड़काव या ५ प्रतिशत की शक्ति के एल्ड्रिन का छिड़काव फसल को इस कीड़े से बचाने में बड़ा उपयोगी साबित हुआ है।

मटर

तना काटनेवाला लैफिग्मा कीड़ा : इसकी मादा समूह में मटर की पत्तियों पर अंडे देती हैं। इसकी सूंडी पौधों को खाती है। जब पौधे छोटे होते हैं, तब यह कीड़ा मुलायम पौधों को भी काटकर गिरा देता है। १० प्रतिशत डी० डी० टी० का १५ पौंड प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करने से फसल को बचाया जा सकता है।

मटर का तना छेदक : इस कीड़े की मादा तथा मैगट (बड़ा कीड़ा) दोनों पत्तियों तथा पौधों में छेद कर देते हैं, जिससे पत्तियां सूखकर गिर जाती हैं। ०.०२ प्रतिशत की शक्ति का एल्ड्रिन या ० ०३ प्रतिशत की शक्ति का डाइजिनान का छिड़काव करने से ये कीड़े नष्ट हो जाते हैं।

मटर की पत्ती में घर (लीफ माइनर) बनानेवाले कीड़े : इन कीड़ों की सूंडियां पत्तियों की ऊपरी सतह में घर बनाकर रहती हैं तथा पत्ती को खाती हैं। प्यूपा भी घर के अन्दर ही बनता है तथा मादा भी पत्तों के ऊपरी सतह के नीचे अंडे देती है। अतः ऐसी पत्तियों को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए। एक भाग निकोटिन सल्फेट और दो भाग साबुन को ४०० भाग पानी में घोलकर छिड़कने से पत्तियों के अन्दर की सूंडियां मर जाती हैं।

मटर का फली छेदक : हरे रंग के इस कीड़े की सूंडियां मटर की फलियों में छेदकर अन्दर के दानों को खा जाती हैं। १.२५ पौंड शुद्ध एल्ड्रिन का प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करने से फसल की कीड़ों से रक्षा की जा सकती है।

अरहर

प्लूम मौथ छेदक इस कीड़े के पतंगे पतले होते हैं, जिनके पंख कई भागों में बंटे होते हैं। इसकी सूंडियां फलियों के छेद करके दानों को खा जाती हैं। चने के फली-छेदक की तरह इससे भी फसल को बचाया जा सकता है।

हरफली मक्खी : ये मक्खियां फलियों के अन्दर अंडे देती हैं। मैगट (बड़ा कीड़ा) फलियों में छेद करके बीजों को खाते हैं तथा फलियों में जीवाणु डालकर सड़ा देते हैं। ०.२ प्रतिशत की शक्ति के सल्फेट का छिड़काव करके मैगट को मारा जा सकता है।

उर्द और मूंग

बालदार इल्लियाँ : उर्द तथा मूंग, दोनों फसलों को खासकर इस कीड़े से अधिक हानि पहुंचती है। बालदार सूंडियां पत्तियों को खाकर सिर्फ शिराएं ही छोड़ती हैं। भयंकर →

कुछ संस्मरण

रामायण में जो दूध की नदियों का वर्णन आता है वैसे तो नहीं, पर हरियाणा में दूध-मक्खन खूब मिलेगा। यहाँ के जानवरों को देखकर खुशी होती है। अच्छे तन्दुरुस्त हैं। गायें १५-१६ किलो दूध देती हैं और भैंसें २०-२२ किलो! यहाँ के लोग गाय कम पालते हैं। उनका कहना है कि गाय और भैंस का सेवा तो समान करनी पड़ती है, पर दूध व मक्खन में अन्तर आता है। गायों को चराना आवश्यक है, आजकल के लड़के चराना नहीं चाहते। अमीर लोग अपनी भैंस गरीब लोगों को पालने के लिए दे देते हैं। जब बड़ी हो जाती है तो बेचकर आधे-आधे पैसे ले लेते हैं *या गरीब ही आधी कीमत में* रख लेता है। इस प्रकार पशुओं की संख्या भी कम होती जा रही है।

× × ×

एक बहुत बड़े हाल मे लड़के-लड़कियाँ बड़े ध्यान से विचार सुन रहे थे। बड़ी तत्परता से सवालों का जवाब देते जाते थे। ऐसा लगा, जैसे शहर के स्कूल में हो। एक सूरदास बच्चे का हाथ पकड़कर आये थे! पता चला कि ये गाँव के बहुत प्रतिष्ठित सज्जन हैं। चार वर्ष की आयु में इनकी बाह्य आँखें 'माता' के रोग में चली गयी, पर ज्ञान-चक्षुओं से इन्होंने अपने आपको ग्रामसेवा में लगा दिया है। गाँव के लोगों से स्कूल के लिए ७०,००० रु० इकट्ठे किये। गाँव के बहुत-से व्यापारी कलकत्ते में रहते हैं। वह खुद उनके पास कलकत्ता गये और ३०,००० रु० ले आये। कुछ सरकारी मदद लेकर स्कूल का भवन खड़ा कर दिया। यहाँ की प्रधान अध्यापिका ने कहा, "वैसे तो मैं अपना तबादला करने का सोचती थी, पर इस गाँव का प्रेम देखकर मैं यहीं टिक गयी हूँ।" गाँव की गलियाँ गाँव के लोगों ने मिलकर बनायीं। यह पहला गाँव मिला, जिसमें महिलाओं के लिए पाखाने बनवाने की योजना गाँव के लोगों ने की है। किसी-न-किसीका हाथ पकड़कर ये भाई घूमते ही रहते हैं। सच है, जिनकी अन्तरात्मा जाग जाती है, वे कुछ करते हैं। बाकी हम तो आँखें होते पर भी अन्धे हैं, पाँव होने पर भी पंगु हैं और जागते हुए भी सोये हैं।

× × ×

एक शहर के भाई ने अपना कार्यक्षेत्र गाँव को बनाया है। गाँव में आते हैं, ठहरते हैं। एक स्कूल है, जसमें बच्चों द्वारा खेती भी करवायी जाती है। एक तरफ जीवन को व्यवसाय के दाँव पर लगानेवाले साथी, दूसरी ओर गुलामी के बन्धनों में जकड़े हुए गाँव के लोग। फिर भी इनमें दृढ़ता है, क्योंकि इनकी प्रेरणा का स्रोत बाहर नहीं, अन्दर है। सेवक की यही कसौटी है!

एक भाई ने कहा, "मैंने इनके कहने से कुएँ पर बिजली के लिए रिश्वत नहीं दी। इसलिए आज तक मेरे कुएँ पर बिजली नहीं है। बाहरी तौर से तो मुझे काफी नुकसान उठाना पड़ रहा है, फिर भी इस बात का एहसास होता है कि सच्चाई का रास्ता अलग है।" पहले यहाँ के लोग इनकी जान के दुश्मन बन गये थे, पर अब मानने लगे हैं।

× × ×

एक गाँव में पता चला कि एक भाई अपनी पत्नी और तीन बच्चों सहित काम की तलाश में यहाँ पहुँचा। उनके पास एक ही कम्बल था। कड़ाके की सर्दी में ठिठुरते हुए वह इस जन्म के दुःखों से छूट गया। गाँव के लोगों ने, विशेषकर गरीब लोगों ने आपस में मिलकर कुछ पैसा इकट्ठा करके उसके बाल-बच्चों को अपने गाँव में भेज दिया। *लोगों को लगता है कि गरीब-गरीब की क्या मदद करेगा? दुखी दुखी का दुःख क्या दूर करेगा?* क्या संसार का अनुभव इससे भिन्न नहीं है?

लोकयात्रा-टोली अब हिसार जिले की यात्रा पूरी कर जिन्द जिले की ओर बढ़ रही है। सर्दी अब कम हो गयी है। कर्नाटक में सरला बहिन तथा तारा भूटानी के साथ यात्रा करनेवाली लक्ष्मी बहन भी यात्रा में हैं। —देवी रोकवाली

→आक्रमण से पूरी फसल पत्तीहीन हो जाती है। ५ प्रतिशत बी०एच०सी० और पाइरो डस्ट को ३ : १ के अनुपात में मिलाकर २५ पौंड प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़कने या ०.०४ विद्यात फालीडाल को १०० गैलन पानी में घोलकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करके इस कीड़े को नष्ट किया जा सकता है।

सींगदार सूँडियाँ : सूडियाँ पौधों को पत्तीहीन बना देती हैं। ये सूडियाँ पत्तियों को खाती हैं अंडों तथा सूड़ियों को पत्तियों पर से पकड़कर नष्ट किया जा सकता है। कार्बनिक कीटनाशक दवाओं के गाढ़े घोल के प्रयोग से सूँडियाँ नष्ट हो जाती हैं। ('खेती" से साभार)

नगरों को ग्राम-जीवन का नमूना अपना लेना चाहिए व उन्हें पुष्ट करना चाहिए। —महात्मा गांधी

'गाँव की बात' : वार्षिक चन्दा : चार रुपये, एक प्रति : अठारह पैसे
सम्पादक : राममूर्ति : सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१

बनाया है कि दूसरे का दोष छोटा होने पर भी बड़ा दिखता है और गुण बड़ा होता है, फिर भी दिखता कम है। अपना गुण छोटा है, लेकिन दिखता है बड़ा। इस वास्ते उस पैमाने को उल्टा करने से 'पर्स्पेक्टिव' ठीक होता है। यह हमें उन्होंने गणित की भाषा में समझाया। मुहम्मद पैगम्बर ने एक कहानी ईसा मसीह के बारे में कही। अपने साथियों से ईसा मसीह के गुण की चर्चा करते हुए कहा कि विश्वास ऐसा होना चाहिए, जैसा ईसा का है। एक दफा वह रास्ते में जा रहे थे। सामने कुछ दूरी पर दो आदमी जा रहे थे। एक ने दूसरे को पकड़कर उसकी जेब में हाथ डाल-कर पैसे ले लिये और वह आगे चलने लगा। ईसा ने यह देखा। तो जल्दी-जल्दी चलकर उस मनुष्य के पास पहुँच गये और जिसने जेब में हाथ डाला था और पैसे ले लिये थे उससे पूछा, 'तूने क्यों पैसे ले लिये? उसने क्या अपराध किया था?' उसने कहा—'भगवान का नाम लेकर कहता हूँ, मैंने उसका पैसा नहीं लिया।' 'भगवान का नाम लेकर कहता हूँ', ऐसा कहा तो एकदम ईसा बोले—'भगवान का नाम लेता है तो मैं अपनी आँख से भगवान के नाम पर ज्यादा विश्वास रखता हूँ। मेरी अपनी आँखें मुझे धोखा दे सकती हैं। इसलिए भगवान के नाम पर अधिक विश्वास रखता हूँ।' ऐसा विश्वास होना चाहिए। ऐसा विश्वास अगर आप रखेंगे तो बुरा मनुष्य तुरन्त बदल जाता है। यह मिसाल हमने पढ़ी। धीरे धीरे कम होते-होते दो-तीन अवस्थाएँ ऐसी हो गयीं। अब हम जिस भूमिका में काम करते हैं, वह आपके सामने रखता हूँ। हम समझते हैं कि दूसरे के गुण ही गाना और अपने भी गुण ही गाना। मुझमें एकाध गुण है वह मैं गाऊँगा। मेरा भी गुण ही गाऊँगा, दोषों का उच्चारण नहीं, न दूसरे का, न अपना ही। मुझे कई लोग कहते हैं कि बाबा तो बड़ा पवित्र है। वह सारद की मिसाल है। कुछ लोग समझते हैं कि बाबा घमण्डी बन गया दिखता है। बड़ा मजा आता है, क्योंकि जो दोष हैं वह अगर हम देखेंगे तो वह देह के होते हैं, आत्मा के नहीं होते। दोष तो देह के साथ चले जायेंगे। हम समझेंगे कि जो जानेवाला देह है, उसके साथ वे चले जायेंगे।

तुलसीदासजी ने कहा है—निर धुनि धुनि पछताही गुण आदमी का स्वभाव है। एक एक आत्मा में एक एक गुण है, इस तरह से सब इकट्ठा होकर भगवान का होता है। हरएक को एक एक गुण देकर उसने भेजा, फिर भी बहुत सारे उसके पास बचे हैं। जो गुण दिया गया है, वह भगवान का गुण है, इस वास्ते प्यार से गुण गाना।

आसाम के महान साधु माधव देव ने मनुष्य के चार प्रकार बताये हैं—प्रथम मनुष्य वह होता है, जो केवल दोष देखता है। मध्यम मनुष्य वह होता है जो विचार करके गुण और दोष, दोनों लेता है। उत्तम वह होता है जो केवल गुण लेता है। ये तीन प्रकार हो गये। लेकिन उत्तमोत्तम पुरुष वह है, जो गुण का विस्तार करता है। यह आजकल हमको बड़ा आनन्ददायी मालूम होता है कि गुणगान करो।

(ग्रामदान-अभियान-संचालन उपसमिति के सदस्यों के बीच) राजगीर, पटना : ८-१-'६९।

ग्रामदान में तरुण शक्ति का आवाहन

[तमिलनाडु का नया सफल प्रयास]

यह सर्वविदित है कि तमिलनाडु सर्वोदय-संघ ने कुछ महीने पहले ता० २ अक्तूबर १९६९ तक तमिलनाडु राज्यदान का संकल्प किया है। उस दिशा में हर सम्भव प्रयत्न किया जा रहा है। परन्तु सबसे बड़ी कठिनाई जो उपस्थित हो रही है वह है मनुष्य-शक्ति की, कार्यकर्ताओं के अभाव की। खादी-ग्रामोद्योग के काम में लगभग १५०० साथी लगे हुए हैं और वह काम इतना बड़ा और गहरा है कि इन साथियों के लिए वह काम ही बहुत है, बल्कि दिन-ब-दिन उसमें ही अधिकाधिक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता बढ़ती है। बड़ी मुश्किल से मुट्ठीभर कार्यकर्ताओं को उस काम से मुक्त कर सके हैं और ग्रामदानी क्षेत्रों में सब जगह इन्हीं लोगों का उपयोग करना पड़ रहा है। इसका अर्थ ही है कि कार्यकर्ताओं का इधर से उधर आना-जाना बराबर चलता है, जिसमें प्रवास-खर्च भी अनिवार्य रूप से बढ़ता है। साथ ही ग्रामदान आन्दोलन भी जोर नहीं पकड़ पाता है कि निश्चित समय के अन्दर घर-घर हम जा सकें और प्रत्येक भाई-बहन तक विचार पहुँचा सकें। यह हम साथियों के लिए बड़ी चिन्ता का विषय बना रहा। श्री भूपति जिला रेविन्यू-अधिकारी थे और अब सेवानिवृत्त होकर सर्वोदय के काम में लगे हुए हैं। वे इस वक्त पूर्वी रामनाड सर्वोदय संघ के अध्यक्ष हैं। वे भी खादी-ग्रामोद्योगों के काम की उपेक्षा नहीं कर सकते थे, क्योंकि उस काम के रुकने से आज लोगों को जो रोजी-रोटी उससे मिल रही है वह भी खतम हो जाती और दुःस्थिति बढ़ जाती। तिसपर यह क्षेत्र सारे तमिलनाडु में विशेष पिछड़ा हुआ है। इसलिए भावी सुख की कल्पना से आज की व्यवस्था को तोड़ने की हिम्मत कोई नहीं कर सकता और आज की माँग को टाल नहीं सकता। फिर भी श्री भूपति के मन में क्षेत्र के कोने-कोने तक ग्रामदान का संदेश पहुँचाने की तीव्र उत्कण्ठा भी रही है।

स्थानीय नेता इस आन्दोलन के अनुकूल हैं। सुलभ ग्रामदान आन्दोलन की हर बात से वे सहमत हैं। आन्दोलन में भाग लेने के विषय में वे अपनी ओर से भी जनता को अपील करते रहते हैं। लेकिन समस्या यह है कि व्यक्तिशः प्रत्येक घर कैसे पहुँचा जाय और हर व्यक्ति के हस्ताक्षर कैसे लिये जायँ। इसके लिए बड़ी संख्या में मानव-बल की जरूरत है। इस तीव्र आवश्यकता के बीच श्री भूपति को एक नयी बात सूझी कि देहाती क्षेत्र में ऐसे कई युवक हैं, जो हाईस्कूल या कालेज की पढ़ाई पूरी करके किसी सरकारी नौकरी या शाला की मास्टरी की प्रतीक्षा में अपने घरों में खाली बैठे रहते हैं, उन्हें इस काम के लिए क्यों न आवाहन किया जाय। फौरन पंचायत-समितियों के मार्फत उन्होंने उन युवकों के नाम एक अपील निकाली। और सौ से ज्यादा युवक अपनी सेवाएँ देने आगे आये। उनको बुलाया गया। उनसे बातें कीं और उनमें से सौ युवकों को चुन लिया गया। प्रखण्ड के प्रमुख गाँवों में उनके लिए एक त्रिदिवसीय

. . प. . . के । पर्व में उन्हें बुनियादी जानकारी दी गयी। अन्तिम दिन क्षेत्र के शिक्षक और प्रखण्ड के अधिकारी भी शिविर में शामिल हुए। इस संयुक्त सभा में कार्यक्रम की योजना बनी। फिर योजना के अनुसार टोलियाँ काम पर लग गयी। पाँच दिन के अन्दर दान-पत्रों पर हस्ताक्षर ले लिये गये। गाँवों की दीवारों पर पोस्टर चिपकाये गये। पढ़े लिखे लोगों को पर्चे बाँटे गये। अन्त में देखा गया कि पर्याप्त संख्या में भूस्वामी अपनी-अपनी भूमि का स्वामित्व ग्रामसभा को सौंपने को राजी हो गये थे। तब प्रखण्डदान घोषित किया गया।

दूसरे जिलों में भी कार्यकर्ताओं की बैठकें बुलायी गयीं और श्री भूपति ने पूर्वी रामनाड के अपने अनुभव सुनाये। यह नयी प्रक्रिया सबको पसन्द आयी और अपने-अपने क्षेत्र में इसे आजमाने के विचार से सब लौटे। पश्चिमी रामनाड मदुराई और त्रिची जिलों में उसका प्रयोग किया। आज कुल मिलाकर इन तीनों जिलों में नौ सौ युवक ग्रामदान के काम में लगे हुए हैं। आन्दोलन में तेजी आ रही है। सरगरमी बढ़ रही है। विरोध शान्त हो रहा है। सर्वोदय-पक्ष के भीतर दक्षिण के तीनों जिले पूरे हो जायेंगे। पुराने की जगह नया ले लेगा। ता० १५ फरवरी के बाद उत्तरी जिलों की ओर हम बढ़ेंगे। हो सकता है कि संकल्पित तिथि से पहले ही संकल्प की पूर्ति हो जाय।

मैं इन युवकों में से कइयों से मिला हूँ। उनमें बहुत उत्साह है। वे इसी काम में आगे भी लगे रहने के इच्छुक हैं। सर्वोदय-मण्डल और सर्वोदय संघ को अब चिन्ता नहीं रही है कि ग्रामदान के आगे के पुष्टि तथा निर्माण के काम के लिए इन युवकों का सहयोग कैसे प्राप्त किया जाय। हमें ऐसे कार्यकर्ताओं की बहुत बड़ी संख्या में आवश्यकता है, जो समाज के लिए अपना सर्वस्व दें और समाज से अपनी कम-से-कम आवश्यकता भर के लिए लें। मुझे विश्वास है कि शीघ्र ही कोई-न-कोई मार्ग मिल जायगा।

—के० अरुणाचलम्

लोकतंत्र की बुनियाद : निर्भीक, विवेकयुक्त मतदान

गांधीजी ने अपनी 'आखिरी वसीयत' में मतदाता के शिक्षण पर सबसे अधिक जोर दिया था। चुनाव-कार्य शुद्ध, शान्तिपूर्ण और न्याय पर आधारित रहे तब ही लोकतंत्र टिक सकता है। लोकतंत्र की सबसे महत्त्व की और बुनियादी कड़ी मतदाता है। मतदाता का कर्तव्य है कि वह मतदान के अपने अधिकार का निर्भीकता से, स्वतंत्र रहकर तथा विवेकपूर्ण तरीके से उपयोग करे। विभिन्न राजनैतिक पक्षों, संगठनों एवं चुनाव के लिए खड़े होनेवाले व्यक्तियों की भी यह जिम्मेदारी है कि वे अपने-अपने हितों के बावजूद मतदाता के इस कर्तव्य-पालन में किसी प्रकार की बाधा या प्रतिकूलता पैदा न करें।

इसके लिए निम्न न्यूनतम आचार-संहिता का पालन किया जाय :—

(१) उद्देश्य, नीति, कार्यक्रम तथा उसके द्वारा किये गये कार्यों के आधार पर दूसरे पक्ष की आलोचना करें। दूसरे पक्ष के उम्मीदवार या सदस्य के निजी जीवन को लेकर आलोचना न करें।
(२) जनता से झूठे वादे न करें। (३) वोट प्राप्त करने के लिए गलत व निन्दनीय तरीकों का आश्रय न लें।
(४) विभिन्न जातियों, धर्मों, वर्गों, भाषाओं और प्रान्तों के लोगों के बीच घृणा पैदा करनेवाली या हिंसक भावना उभारनेवाली कोई बात न करें।
(५) विचार-प्रचार व अन्य कार्यक्रम इस तरह आयोजित करें कि दूसरे की स्वतंत्रता में बाधा न पहुँचे।
(६) किसी प्रकार की हिंसा और अशान्ति का वातावरण न बनायें।
(७) सोलह साल से कम उम्र के बच्चों का उपयोग चुनाव-प्रचार में कतई न करें।

इस सन्दर्भ में हरएक मतदाता का भी यह धर्म हो जाता है कि वह—

१–अपने मन की पवित्रता का ख्याल रखे, २–उम्मीदवार के गुणावगुण को देखकर मत दे,
३–मत को किसी भी प्रलोभन के कारण न बेचे, ४–किसी भय से भी मत का गलत उपयोग न करे,
५–सही व्यक्ति न मिले तो वोट दे ही नहीं, ६–हिंसा और अशान्ति का प्रसंग न आने दे।

राष्ट्रीय गांधी-जन्म शताब्दी-समिति की गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति, दुंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैंरू, जयपुर–३ (राजस्थान) द्वारा प्रसारित।

महाराष्ट्र की चिट्ठी

गत १० जनवरी से १० अप्रैल तक महाराष्ट्र प्रदेश के १०० प्रखण्ड के १० हजार गांवों में ग्रामदानमूलक ग्रामस्वराज्य का विचार पहुँचाने का संकल्प कार्यकर्ताओं ने किया है। इस संकल्प-पूर्ति के लिए विभिन्न स्थानों में कार्य प्रारम्भ किया गया है।

कुलाबा : कुलाबा जिला सर्वोदय सम्मेलन १५-१६ फरवरी को हो रहा है। सम्मेलन में जिला सर्वोदय-मण्डल की स्थापना करके ग्रामदान-काम की योजना बनेगी। सर्वश्री ठाकुरदास बंग और मधु रावकर ने वर्षारंभ के समय तीन दिन की प्रचार यात्रा में पूर्व प्राप्त १३७ ग्रामदान और आगे के काम की चर्चा विभिन्न स्तरों के लोगों से करते हुए ८०० रु० की सहायता निधि संकलित की।

भण्डारा : हाल ही में श्री रा० कृ० पाटील ने इस पूरे जिले में दौरा कर हरेक प्रखण्ड में आयोजित ग्रामस्वराज्य-सम्मेलन का मार्गदर्शन किया। ग्रामदान यात्रा के लिए १२५ ग्रामदान-सैनिकों ने नाम लिखाये। स्त्रियों में प्रचार करने के लिए सुश्री निर्मला बहन देशपांडे के दौरे का भी आयोजन किया गया है।

नागपुर : नाग विदर्भ चरखा संघ के पाँच कार्यकर्ता प्रचार-कार्य कर रहे हैं। १० जनवरी से कार्यकर्ताओं की पाँच टोलियाँ ग्रामदान अभियान के लिए निकल पड़ी हैं।

यवतमाल : दारव्हा तहसील के ४० कार्यकर्ताओं, विभिन्न संस्थाओं के पदाधिकारियों और शिक्षकों की एक सभा हुई। पदयात्रा की पूर्वतैयारी में सब लोग लगे हैं। जिले की पदयात्रा में श्री अण्णासाहब पटवर्धन, महाराष्ट्र सर्वोदय मण्डल के मंत्री श्री वसंतराव बोम्बटवार आदि का मार्गदर्शन मिल रहा है।

अमरावती : जिले की विभिन्न रचनात्मक संस्थाओं के कार्यकर्ताओं की बैठक ११ जनवरी को हुई। जिला परिषद् के अध्यक्ष ने ग्रामदान-कार्य को अपनाया है। सब संस्थाओं की ओर से सभी ६ कार्यकर्ताओं द्वारा प्रखण्ड सामूहिक पदयात्रा करने का निर्णय किया गया है। करजगांव के गांधी-केन्द्र ने चाकूर प्रखण्ड के ११२ गाँवों का ग्रामदान कराने की जिम्मेवारी ली। २७-२८ जनवरी को शिविर के बाद पदयात्राएँ होंगी। भातकुली प्रखण्ड की पदयात्रा में १० ग्रामदान हुए। कस्तूरबा स्मारक निधि के कार्यकर्ताओं ने मेलघाट तहसील के दो प्रखण्डों की जिम्मेवारी निभायी। प्राप्त ग्रामदानों को रजिस्टर्ड कराने की कोशिश जारी है। गुरुदेव सेवा-मण्डल के कार्यकर्ताओं का सहयोग सुविदित साहित्यिक श्री बाबा मोहोड़ द्वारा प्राप्त होगा।

बुलढाणा : जलगांव तहसील के संग्रामपुर प्रखण्ड में पदयात्रा होगी। 'साम्ययोग' पत्रिका द्वारा विचार प्रचार हो रहा है। विकास खण्ड-अधिकारी, पटवारी, शिक्षक, पंच आदि कार्यकर्ताओं से समर्थन का आश्वासन मिला है।

वर्धा : सेवाग्राम में हाल ही में १२० रचनात्मक कार्यकर्ताओं का शिविर सम्पन्न हुआ। इसी समय पवनार में मैत्री-सम्मेलन और गोपुरी में निसर्गोपचार-चिकित्सकों की परिषद् हुई। १६ जनवरी को खादी-ग्रामोद्योगी वस्तुओं से सुसज्जित 'मगन-संग्रहालय' का उद्घाटन अण्णासाहब सहस्रबुद्धे की अध्यक्षता में केन्द्रीय खाद्यमंत्री जगजीवन राम के द्वारा हुआ।

वर्धा जिले के कार्यकर्ताओं का पूरा समय जिले के प्रचार कार्य में लग रहा है।

अहमदनगर : इस जिले के हरेक गाँव में गांधी-विचार साहित्य पहुँचाने की कोशिश जारी है। २१ जनवरी को पदयात्रा का समाप्ति समारोह हुआ।

धुलिया : अक्राणी में दक्षिणी म० भा० आदिवासी-सम्मेलन हुआ। अक्राणी और अक्कलकुवा क्षेत्र के ग्रामदानी गाँवों में चल रहे ग्राम स्वराज्य का कार्य देखकर सबको समाधान हो रहा है।

सातारा : पदयात्रा में २० ग्रामदान हुए। २ मार्च को जयप्रकाशजी का दौरा सातारा जिले में होगा। २५ हजार रुपये की थैली उनको समर्पित की जायगी। ('साम्ययोग' से)

कर्नाटक में ग्रामदान की प्रगति

श्री एस० आर० वेंकटरमण अय्यर कर्नाटक सर्वोदय-मण्डल के अध्यक्ष सर्वसम्मति से चुने गये और नयी कार्यकारिणी का गठन हुआ।

• धारवाड़, बेलगाँव, बिजापुर और कोलार जिले में ६ ग्रामदान-शिविर सम्पन्न हुए। शिमोगा और बंगारपेट तालुका में ग्रामदान अभियान जोरों से चल रहा है।

• कर्नाटक सर्वोदय मण्डल के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री मल्लिकार्जुनप्पा गौड़ा ने २ अक्तूबर '६८ से मैसूर प्रदेश में पदयात्रा शुरू की है और अब तक ५०० मील की सात जिलों में पदयात्रा कर चुके हैं। इस तरह ग्रामदान और ग्रामस्वराज्य का सन्देश वे गाँव गाँव पहुँचा रहे हैं। अभी उन्होंने कारवार जिले में प्रवेश किया है।

• सुश्री निर्मला देशपांडे के ग्रामदान-शिविरों में भाग लेने के कारण आन्दोलन में गति आयी है।

दिसम्बर '६८ तक मैसूर में ५०० ग्रामदान हुए।

—एस० आर० वेंकटरमण अय्यर
अध्यक्ष, कर्नाटक सर्वोदय मण्डल

श्रद्धांजलि

बहुत थोड़ी अवधि में ही देश के तीन महान व्यक्ति दिवंगत हो गये। गांधी-विचार के एकनिष्ठ बुजुर्ग श्री मगन भाई देसाई का १ फरवरी को, तमिलनाड के जनप्रिय नेता और सफल मुख्य मंत्री श्री सी० एन० अन्नादुरै का ३ फरवरी '६९ को, तथा राजस्थान के वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ श्री माणिक्यलाल वर्मा का २४ जनवरी '६९ को देहावसान हो गया। जिनके जीवन का हर पल देश की जनता और पूरी मानवता के हितचिन्तन में लगता रहा हो, ऐसे इन महान आत्माओं को हमारी विनम्र श्रद्धांजलि!

भूदान यज्ञ १०-२-'६९ रजिस्टर्ड नम्बर एल. १२७ [पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त] लाइसेन्स नम्बर ए १४

सर्वोदय-पखवारे में पाँच जिलादान

तमिलनाडु का लगभग एक-तिहाई भाग ग्रामदान में शामिल

अब बिहार में सिर्फ ६ और तमिलनाडु में सिर्फ ८ जिलों का काम बाकी

प्रदेशों से प्राप्त जानकारी के अनुसार ३० जनवरी '६९ से १२ फरवरी '६९ तक ग्रामदान-आन्दोलन ने कई महत्वपूर्ण मंजिलें तय की हैं। देश भर में अधिकाधिक ग्रामदान प्राप्त करने के लिए चल रहे अभियानों में बराबर नये ग्रामदान प्राप्त होते जा रहे हैं। सब जगहों का अनुभव आमतौर पर यही है कि गाँव-गाँव में विचार पहुँचानेवाले जितनी जल्दी पहुँचेंगे, भारतदान का लक्ष्य उतना ही जल्द पूरा होगा। इस संदर्भ में इस सर्वोदय-पखवारे में हुई प्रगति अत्यन्त उत्साहवर्धक और प्रेरक है। अब यह स्पष्ट हो गया है कि 'तूफान' की शक्ति पूरे देश में काम कर रही है।

तमिलनाडु में ३ जिलादान

तिरुनेलवेली का जिलादान बहुत पहले ही हो चुका था। रामनाड जिलादान की

घोषणा ६ फरवरी '६९ को तथा त्रिचनापल्ली और मदुराई की १२ फरवरी '६९ को हो जाने की शत प्रतिशत आशा है।

तमिलनाडु सर्वोदय मण्डल ने ग्रामदान के लिए ५०० प्रशिक्षित ग्रामीण युवकों का जत्था तैयार किया है, जिनकी शक्ति निरन्तर तमिलनाडुदान के लक्ष्य को पूरा करने में लगी है। मदुराई और त्रिची नगरों में घर-

घर जाकर सम्पर्क करने का भी सघन कार्यक्रम चल रहा है, ताकि वे लोग १२ फरवरी के सर्वोदय मेले में शरीक हों।

जिलादान के अगले अभियान अब उत्तरी जिलों में चलाये जायेंगे।

बिहार में मुंगेर जिलादान

१० जनवरी '६९ को ही जिलादान पूर्ण हो गया। १२ फरवरी '६९ को मुंगेर नगर में विशाल पैमाने पर जिलादान-समारोह मनाया जायगा। जिलादान की भेंट स्वीकार करने के लिए भागलपुर जाते हुए विनोबाजी इस समारोह में उपस्थित होंगे। यह बिहार का आठवाँ जिला है। नौवाँ जिला धनबाद का काम भी लगभग पूरा हो गया है। सम्भव है कि उसकी भी घोषणा १२ फरवरी '६९ को ही हो जाय।

मध्य प्रदेश का दूसरा जिलादान प० निमाड़
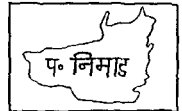
टीकमगढ़ के बाद मध्य प्रदेश की शक्ति प० निमाड़ का काम पूरा करने में लगी थी। जिले में कुल १७१२ गाँव हैं। गांधी स्मारक निधि के २० कार्यकर्ता २१ दिसम्बर '६९ से ही वहाँ जिलादान का काम पूरा करने में जुट गये थे। इसके अलावा मध्य प्रदेश सर्वोदय मण्डल के प्रमुख कार्यकर्ताओं, ग्राम-प्रधानों तथा सरकारी कर्मचारियों की भी शक्ति जिलादान का काम पूरा करने में सहायक रही।

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में १० रु०; या १५ शिलिंग या २ डालर। एक प्रति : २० पैसे।

श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : २०

सोमवार १७ फरवरी, '६९

अन्य पृष्ठों पर

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

गाँवों को भुला देना एक अपराध

यह हिन्दुस्तान की बदकिस्मती है कि जैसी दलबन्दी और मतभेद उसके शहरों में हैं, वैसे ही देहातों में भी देखे जाते हैं। और जब गाँवों की भलाई का ख्याल न रखते हुए अपनी पार्टी की शक्ति बढ़ाने के लिए गाँवों का उपयोग करने के ख्याल से राजनीतिक सत्ता की धू हमारे देहातों में पहुँचती है, तो उससे देहातियों को मदद मिलने के बजाय उनकी उन्नति में रुकावट ही होती है। मैं तो कहूँगा कि चाहे जो नतीजा हो, फिर भी हमें ज्यादा-से-ज्यादा मात्रा में स्थानीय मदद लेनी चाहिए। और अगर हम राजनीतिक सत्ता हड़पने की बुराई से दूर रहें तो हमारे हाथों कोई बुराई होने की सम्भावना नहीं रहती।

हमें याद रखना चाहिए कि शहरों के अंग्रेजी पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुषों ने हिन्दुस्तान के आधारभूत गाँवों को भुला देने का अपराध किया है। इसलिए आज तक की हमारी इस लापरवाही की याद करने से हममें धीरज पैदा होगा। अभी तक मैं जिस-जिस गाँव में गया हूँ, वहाँ मुझे एक-न-एक सच्चा कार्यकर्ता जरूर मिला है।

लेकिन गाँवों में भी लेने लायक कोई अच्छी चीज होती है, ऐसा मानने की नम्रता हममें नहीं है और यही कारण है कि हमें वहाँ कोई कार्यकर्ता नहीं मिलता। बेशक, हमें स्थानीय राजनीतिक मामलों से परे रहना चाहिए। लेकिन हम यह तभी कर सकते हैं जब हम सारी पार्टियों की और किसी भी पार्टी में शामिल न होनेवाले लोगों की सच्ची मदद लेना सीख जायेंगे। अगर हम गाँववालों से अलग रहेंगे, या उन्हें अपने कामों से अलग रखेंगे तो हमारा किया-कराया सब व्यर्थ जायेगा। इस कठिनाई का मुझे ख्याल था, इसीलिए एक गाँव में एक कार्यकर्ता रखने के नियम को दृढ़तापूर्वक पालने की मैंने कोशिश की है।

अभी तो मैं यही कह सकता हूँ कि इस तरीके से मेरा काम अच्छा चल रहा है। यहाँ मैं यह भी कह देना चाहता हूँ कि किसी नतीजे पर जल्दी से पहुँच जाने की हमें बुरी आदत पड़ गयी है। एक सवाल करनेवाले भाई कहते हैं कि

'इस तरह जारी रखा जानेवाला काम बाहर की मदद से ही चलता है। और इस तरह की मदद के बंद होते ही वह भी समाप्त हो जाता है।'

किसी काम में झट से इस तरह का दोष निकालने से पहले मैं तो यह कहूँगा कि किसी एक गाँव में कुछ साल रहकर वहाँ के कार्यकर्ताओं के जरिये काम करने का अनुभव भी इस बात का पूरा प्रमाण नहीं माना जायगा कि स्थानीय कार्यकर्ता खुद कोई काम नहीं कर सकते या उनके द्वारा कोई काम नहीं हो सकता।

—मो० क० गांधी

'हरिजन सेवक', २-३-'४७ : पृ३-३९

इसको क्या कहें ?

कलकत्ता में अभी एक घटना घटी जिसकी ओर हर चेतन भारतीय का ध्यान जाना चाहिए।

२६ जनवरी के अपने गणतंत्र विशेषांक में कलकत्ता के अंग्रेजी दैनिक 'स्टेट्समैन' ने प्रसिद्ध अंग्रेज इतिहासकार श्री आर्नल्ड टायनबी का लिखा हुआ और 'गांधी पीस फाउण्डेशन' के सौजन्य से प्राप्त और सरकार द्वारा प्रसारित, एक लेख छापा जिसका शीर्षक था 'रेलिवेंस आव गांधियन थॉट इन दी एटामिक एज'। जितना बड़ा लेखक है, उतना ही अच्छा यह लेख है। राजनीति-जैसी गंदी चीज को गांधी ने कितना ऊँचा उठाया, किन्तु अपने को उस गंदगी से किस खूबी के साथ अलग रखा, यह बताते हुए टायनबी ने लेख के अन्त में गांधीजी की अशोक, बुद्ध और हजरत मुहम्मद से तुलना की है। तुलना इस *दृष्टि से की है कि इतिहास की इन* विभूतियों का राजनीति के सम्बन्ध में क्या रुख और रोल रहा। विवेचन ऐतिहासिक दृष्टि से तथा तथ्यों के आधार पर किया गया है, निष्कर्ष लेखक के अपने हैं। लेखक ने लिखा है :

"मुहम्मद की तरह गांधी जानबूझकर राजनीति में गये। मुहम्मद राजनीति में व्यक्तिगत जीवन में विशेष संकट के कारण गये; गांधी के साथ यह बात नहीं थी।... मुहम्मद मसीहा थे। मुहम्मद ने राजनीति में जाने के अवसर का इस्तेमाल कर लिया, उस वक्त जब कि मसीहा के रूप में वह विफलता के करीब थे। मुहम्मद राजनीतिक दृष्टि से सफल हुए, लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से उनकी क्षति हुई। कम-से-कम ऐसा मुहम्मद के जीवन को सहानुभूति के साथ अध्ययन करनेवाले एक गैर-मुस्लिम विद्यार्थी को लगता है।"

इस लेख पर २६ जनवरी के 'स्टेट्समैन' में कुछ मुस्लिम सज्जनों के हस्ताक्षर से एक पत्र छपा। उसमें यह आपत्ति की गयी कि लेख 'हमारे नबी हजरत मुहम्मद की तुलना महात्मा गांधी के साथ इस तरह करता है जिससे नबी की छोटाई होती है और मुसलमानों की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचती है।... हमारे धर्म का तकाजा है कि नबी की तुलना किसी राजनीतिक नेता से न की जाय। चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो।'

पूरा घटना-चक्र इस प्रकार है। २६ को मूल लेख छपा। २६ को पत्र छपा। ३० को कलकत्ता के स्टेट्समैन हाउस के सामने शोर-गुल के साथ प्रदर्शन हुआ। ३१ को प्रातः एक बड़ी भीड़ इकट्ठा हुई। पुलिस वहाँ मौजूद थी। इस बीच कुछ मुस्लिम संस्थाओं की ओर से, जिनके साथ प्रमुख कांग्रेसजन जुड़े हुए हैं, प्रतिनिधित्व हुआ।

३१ को भीड़ तैयार होकर गयी थी। बहुतों के हाथ में लाठियाँ थीं, एक बम भी फूटा। सुबह १० बजे 'स्टेट्समैन' के सामने प्रदर्शन हुए। मुसलमानों के प्रतिनिधि-मण्डल ने सम्पादक से मुलाकात की, और मुलाकात के बाद वापस जाने के बजाय 'स्टेट्समैन' के दफ्तर के सामने प्रदर्शनकारियों को संबोधित, उत्तेजित करना शुरू कर दिया। इसके बाद स्थिति बिगड़ती शुरू हुई। उपद्रव हुआ। घटना-स्थल पर पुलिस की गोली से चार आदमी जान से मारे गये। ६७ घायलों में २२ पुलिसवाले थे। पुलिस ने पूरे धैर्य से काम लिया और लाठीचार्ज और आँसू-गैस के विफल होने के बाद गोली चलायी। दो जीप और एक पान की दूकान में आग लगा दी गयी। फल और पान की कई दूकानों को *तोड़-फोड़ डाला गया।* पूरे कलकत्ते में धारा १४४ लागू कर दी गयी।

१ फरवरी के अंक में मुखपृष्ठ पर अखबार ने सफाई छापी और लिखा कि जानबूझकर किसी सम्प्रदाय को ठेस पहुँचाने की नीयत नहीं थी। फिर भी अगर ठेस पहुँची तो उसे खेद है।

१ फरवरी के ही अंक में 'वायलेंस इन डिसेन्ट' शीर्षक की टिप्पणी में सम्पादक ने लिखा : "यह किसी तरह असंभव नहीं है कि ६ फरवरी के चुनाव के कारण जो राज-नीतिक दलबन्दी चल रही है उसीसे शुक्रवार की शर्मनाक घटनाओं को प्रेरणा मिली।" अन्त में उसने लिखा : "दिल से आशा है कि उन व्यक्तियों और संस्थाओं को अब भी अकल आयेगी जो राजनीति को मनुष्यता के ऊपर रखते हैं।"

यह है जो कलकत्ता में ३१ जनवरी को हुआ। उन लोगों के द्वारा हुआ जो हजरत मुहम्मद साहब की शान रखना चाहते थे, और उन लोगों की प्रेरणा से हुआ जो हरवक्त मानव-हृदय के हर विकार को गद्दी का हथकंडा बनाने के लिए तैयार बैठे रहते हैं। इस सारे काड से दो प्रश्न पैदा होते हैं। एक यह कि शुद्ध बुद्धि और तटस्थ विज्ञान को हम कितनी छूट देने को तैयार हैं या विज्ञान उतना ही बोल पायेगा जितनी हमारी कट्टरता और हमारा पक्षपात उसे बोलने देगा? दूसरा यह कि इस देश में राजनीति बेलगाम ही रहेगी या उस पर भी कोई अंकुश लगेगा? क्या वह कभी मनुष्यता को पहचानेगी? प्रश्न इस सम्प्रदाय या उस सम्प्रदाय का नहीं है, प्रश्न है पूरे सम्प्रदायवाद का। उसी तरह प्रश्न इस दल या उस दल का नहीं है, प्रश्न है पूरे दलवाद का। सम्प्रदायवाद की जड़ अज्ञान और पिछले इतिहास में तो है ही, लेकिन उसे नया रूप दलवाद से मिल रहा है। फिर भी कलकत्ते के मुसलमान भाइयों को इतना तो सोचना ही चाहिए कि उन्होंने शान्तिदूत हजरत मुहम्मद साहब की शान बढ़ायी नहीं है। भारत जैसे विभिन्न जातियों, विश्वासों और सम्प्रदायों के देश में असहिष्णुता का हर प्रदर्शन, चाहे वह जिसके द्वारा हो, देश की शांति और सुव्यवस्था में बाधा पहुँचाता है। —सिद्धराज

आमोद तालुका ग्रामस्वराज्य के पथ पर

गुजरात का आमोद तालुका शीघ्र ही ग्रामदान में आ जायगा। गत ११ से २० जनवरी तक हुई पदयात्राओं में ५५ में से २३ गाँव ग्रामदानी घोषित हुए हैं। उक्त २३ गाँवों को मिलाकर ४४ गाँवों ने ग्रामदान हेतु *संकल्प किया है।*

जॉन-जॉन : १४१५-१९६९

'हमारे देश की जनता विनाश के कगार पर खड़ी है। हमलोगों ने ऐसे स्वयंसेवकों की टोली बनायी है जिन्होंने अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आत्म-दाह करने का निर्णय किया है।...मुझे प्रथम आत्मदाही बनने, प्रथम पत्र लिखने, और प्रथम मानवीय टार्च बनने का गौरव मिला है।'

अपने अंतिम पत्र में यह सूचना छोड़कर २१ वर्ष का चेक युवक, चार्ल्स विश्वविद्यालय में दर्शन-शास्त्र का विद्यार्थी, जॉन पालाच ने आत्मदाह कर डाला। उसके 'देश की जनता विनाश के कगार पर खड़ी है', यह दुनिया कितने दिनों से देख रही है। लेकिन उस विनाश के प्रतिकार में जॉन को 'प्रथम मानवीय टार्च' बनना पड़ेगा, यह किसीको कल्पना भी नहीं थी। और, अब तो स्तब्ध और असहाय मानवता यह भी देख रही है कि जो टार्च जॉन छोड़ गया वह जलता जा रहा है।

वर्षों पहले चेकोस्लोवाकिया के राष्ट्रपिता जॉन मैजरिक की हत्या के बाद किसी भी घटना ने देश के लोक हृदय में इतना मथन नहीं पैदा किया था जितना जॉन पालाच की इस आत्माहुति ने किया है। उसकी मृत्यु के बाद चेकोस्लोवाकिया वही नहीं रह गया है जो पहले था। पालाच आत्मोत्सर्ग का प्रतीक बन गया है। उसकी शहादत राष्ट्र की चेतना को कुरेद रही है। उसे बार-बार याद दिला रही है कि जिस तरह १४१५ में जॉन हस अपने सुधारवादी धार्मिक विचारों के लिए विरोधियों द्वारा जलाया गया था, उसी तरह ५५४ वर्ष बाद उसी देश में एक युवक जॉन पालाच ने अपने देश के सम्मान और दमन के प्रतिकार में अपने-आप को जला डाला। वास्तव में चेकोस्लोवाकिया का इतिहास शहादत की एक लम्बी कहानी है। कम से-कम पिछले पचास वर्षों में तो वह नाजी और साम्यवादी दमन की प्रचण्ड यातना से गुजरा है, और आज भी गुजर रहा है। जॉन पालाच और उसके साथियों की आहुति देशवासियों को इस नये इतिहास की नये सिरे से याद दिला रही है। क्या विश्वविद्यालयों के बुद्धिवादी, क्या विद्यार्थी, और क्या कारखानों के श्रमिक, सब इस गहरे मथन में साझीदार हो गये हैं। उस दिन पालाच की शव-यात्रा में लाखों की संख्या में जनता के साथ विश्वविद्यालयों के अनेक डीन और रेक्टर अपनी विशेष टोपी और चोगे पहनकर शरीक हुए थे। उसके बाद पालाच की अपनी मातृ संस्था चार्ल्स विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने घोषणा की कि 'अगर यह स्थिति जारी रहती है तो हम सब इस बेबसी और बेचैनी में शरीक होंगे।' इतना ही नहीं, उसी जगह श्रमिकों ने यहाँ तक कह डाला कि : 'हम यह समाजवाद चाहते हैं जिसकी शक्ल में इंसानियत हो।...तुम्हारी माँगें हमारी माँगें हैं।' और, माँगें भी क्या हैं? समाजवादी चेकोस्लोवाकिया की समाजवादी रूस से इतनी ही माँग है : 'हमारी छाती पर से उतर जाओ।'

अगर दूसरों की छाती पर चढ़कर ही समाजवाद को कायम रखना हो तो हिटलर के नाजीवाद और रूस के साम्यवाद में अन्तर क्या है?

जॉन पालाच ने देश के लिए अपनी जान दी लेकिन ऐसे लोग होंगे जो उसकी और उसके साथियों की कुर्बानी को बहस का विषय बनायेंगे। कोई कहेगा यह आत्म-हत्या है, कोई कहेगा यह भी एक प्रकार की हिंसा है, तो कोई यह भी कहेगा कि इस तरह जान देना निराशा और मानसिक रोग का लक्षण है। ये बहसें हमेशा हुई हैं और होती रहेंगी, लेकिन वीर आत्माओं को भी जब जो करना होगा वे करती रहेंगी। सत्ताधारियों ने मनुष्य की विकल आत्मा की पुकार सुनने-समझने में कभी भी जल्दी नहीं की है। मनुष्य जिस वक्त अपनी आत्मा के लिए अन्तिम आहुति देने को तैयार होता है, उस वक्त उसके व्यक्तित्व को दुनिया की सामान्य तराजू में नहीं तोला जा सकता। शहीद की तराजू दूसरी होती है, उसके बाट-बटखरे दूसरे होते हैं। जिस दुनिया ने राजनीति, धर्म, कानून, व्यापार, और विज्ञान, सबको दमन और शोषण का साधन बनाने के एक-से-एक नमूने पेश किये हैं उसके पास वह तराजू कहाँ है जो शहीद की शहादत को तोल सके? वह तराजू उसके पास है जो मनुष्य को मनुष्यता के नाते मानता हो, जानता हो।

पूँजीवाद हो या समाजवाद, या दूसरा कोई भी वाद हो, स्थिति यह है कि अभी भी मानव को मानवता के लिए बहुत-कुछ करना है। एक बड़ी लड़ाई सामने है। उस लड़ाई की क्या व्यूह-रचना होगी, यह हर देश अपनी परिस्थिति में सोचेगा। एक ढंग था दक्षिण वियतनाम में बौद्ध साधुओं का जिन्होंने मिले जुले देशी विदेशी दमन के प्रतिकार में अपने को अग्नि की भेंट किया। उस रास्ते को जॉन पालाच ने चेकोस्लोवाकिया में पकड़ा। अगर हिंसा का हिंसा से मुकाबिला सम्भव न हो, या मानव-हित में हिंसक प्रतिकार उचित न हो, और दूसरी ओर अन्याय को स्वीकार भी न करना हो, तो प्रतिकार और विद्रोह का दूसरा क्या रास्ता रह जाता है? कुछ भी हो, चेकोस्लोवाकिया ही नहीं, हर देश के करोड़ों-करोड़ लोग जॉन पालाच के इन अन्तिम शब्दों का समर्थन कर रहे हैं 'मेरे काम ने मेरा उद्देश्य पूरा कर दिया। अच्छा होगा कि मेरी राह दूसरा कोई न चले। बस, जो जीवित हैं वे मुक्ति का अभियान जारी रखें।'

मशाल जल चुका है। अगर दुनिया के जालिम इसी पर उतारू हैं कि मनुष्य मरकर ही अपनी मनुष्यता को जिलाये रखे तो पालाच की तरह मरनेवालों की कमी नहीं होगी। एक ओर शहीद अपनी जानों की होली खेलेंगे और दूसरी ओर इतिहास प्रतीक्षा करेगा उस दिन की जब मनुष्यता के लिए शहीद के खून की जरूरत नहीं रह जायेगी।

पालाच चेकोस्लोवाकिया के दिल में आग पैदा कर गया है। राष्ट्रपति स्वोबोदा के शब्दों में : 'दावानल के लिए बस एक चिनगारी की जरूरत बाकी है।' आशा है चिनगारी की जरूरत नहीं पड़ेगी, लेकिन अगर पड़ गयी तो पालाच के चेकोस्लोवाकिया में चिनगारी की कमी नहीं पड़ेगी।●

मिर्ज़ा ग़ालिब

मिर्ज़ा ग़ालिब का नाम कौन नहीं जानता ! वह उर्दू साहित्य के सबसे बड़े, विख्यात, और लोकप्रिय गजल-गो शायर माने जाते हैं। उनके शेर हर शायरीपसन्द शख्स की जबान पर न आयें, यह हो नहीं सकता। ग़ालिब में रहस्यवाद और मानवतावाद; इन दोनों का अद्भुत सम्मिश्रण था। उनका यह विश्वास था कि सबसे बड़ा दुर्भाग्य—जीवन की वास्तविक विपदा—व्यक्ति की अपनी चेतना है। मानव-जीवन और मानव-नियति के बारे में उनके विचार अत्यन्त स्पष्ट थे। उनकी अदा जाहिर है :

"ये फितना आदमी की खानावीरानी
को क्या कम है !
हुए तुम दोस्त जिसके, दुश्मन उसका
आसमाँ क्यों हो ?"

उनके काव्य में अन्तर्दृष्टि की गहराई और अभिव्यक्ति की मोहकता है, जिससे वह शुष्क अन्वेषण और नीरस तर्क-विवाद से बहुत ऊपर उठ जाता है। वे कहते हैं :

"वफा कैसी, कहाँ का इश्क,
जब सर फोड़ना ठहरा,
तो फिर ऐ संगदिल,
तेरा ही संगे-आस्तां क्यों हो ?"

मिर्ज़ा ग़ालिब का जन्म २७ दिसम्बर १७९७ को आगरे में हुआ था। उनका पूरा नाम था असदुल्लाबेग खाँ। कविता करने लगे तो "असद" उपनाम रख लिया, जो बाद में बदलकर "ग़ालिब" हो गया। तेरह वर्ष की आयु में ही इनका विवाह नवाब इलाही बख्श की लड़की उमराव बेगम से हुआ। इसी सम्बन्ध के कारण वे १५-१६ वर्ष की आयु में आगरा छोड़कर दिल्ली आ गये और सारी जिन्दगी दिल्ली में ही बिता दी।

जीविका के लिए शाही दरबार से जुड़ना आवश्यक था, किन्तु लाख कोशिशों के बाद भी मिर्ज़ा ग़ालिब से यह सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका। क्योंकि यह वही समय था जब मुगल-शासन का ऐतिहासिक पतन हो रहा था। बहादुर शाह ने इन पर कृपा करके कुछ मासिक तनख्वाह बाँध दी। लेकिन उतने से इनका गुजारा नहीं हो पाता था।

सन् १८५७ के गदर के साथ ही मुगलों के राज्य के अन्तिम अवशेष भी मिट गये। पेन्शन बन्द हो गयी। सिवाय हिन्दू मित्रों के किसी और का सहारा भी न रहा। दिन आर्थिक संकट में गुजरने लगे। ग़ालिब लिखते हैं : "इस नादारी (गरीबी) के जमाने में जिस कद्र कपड़ा, ओढ़ना और बिछौना घर में थे, सब बेच-बेचकर खा गया। गोया और लोग रोटी खाते थे, मैं कपड़ा खाता था।" इस तरह की भीषण गरीबी में जिये हुए ग़ालिब की जिन्दगी उन्हींके लिए बोझ बन गयी। सन् १८६५ के आसपास मौत की घड़ियाँ गिनते हुए लिखते हैं :

"पहले आती थी हाले दिलपे हँसी,
अब किसी बात पर नहीं आती।
मौत का एक दिन मुअय्यन है,
नींद क्यों रात भर नहीं आती॥"

और, जब ७३ वर्ष की अवस्था में १५ फरवरी १८६९ को नींद आयी, तो ऐसी आयी कि फिर उठे नहीं ! उनका मज़ार दिल्ली में है, जहाँ प्रतिवर्ष १५ फरवरी को "ग़ालिब दिवस" मनाया जाता है।

कष्टमय जीवन की मुक्ति के बाद मिर्ज़ा ग़ालिब देश की दीवारों को तोड़कर दुनिया के हो गये। उनकी मौत ने ख्याति को सबके लिए चारों ओर बिखेर दिया। आज ग़ालिब-शताब्दी के अवसर पर दुनिया के कई देशों में बड़े जोरदार जश्न मनाये जा रहे हैं। दिल्ली ने तो ग़ालिब संस्थान की इमारत बनाने का इरादा किया है। यूनेस्को की मदद से "ग़ालिब अकादमी" स्थापित हो गयी है, इसका उद्घाटन २१ फरवरी को डा० जाकिर हुसेन करेंगे। ग़ालिब शताब्दी की शुरुआत १६ फरवरी से होगी। विज्ञान-भवन में १७ जनवरी को ग़ालिब के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का मूल्यांकन करने के लिए एक संगोष्ठी आयोजित है, जिसमें इंग्लैंड, अमेरिका, इटली, चेकोस्लोवाकिया, ईरान, अफगानिस्तान, रूस और पाकिस्तान के प्रतिनिधि भाग ले रहे हैं।

शताब्दी के अवसर पर मिर्ज़ा ग़ालिब की तुलना हेगल, ब्राउनिंग, वेनिट्सबरी, बर्गसन और शापनहावर से करते हुए यदि उनके काव्य का मुख्य लक्षण जीवन का गहरा दर्द, लाचार पीड़ा का हृदयवेधी संताप, असह्-नीय दुःख की शून्यता भरी बेचैनी, आकस्मिक दुर्भाग्य के क्रूर और अशमनीय आघात, पीड़ित चेतना का प्रतिबिम्ब माना जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

ग़ालिब के पास बालक का-सा हृदय और ऋषि की-सी प्रखर बुद्धि थी। उनको दिव्य दृष्टि और क्षमता असाधारण मात्रा में मिली थी। उनकी कविता महज शौक नहीं, आत्मज्ञान के लिए थी। हमें उनके स्वर में एक विश्वास और सच्ची लगन की छाप मिलती है। प्रयुत वे विश्वकवि थे। उन्हींके शब्दों में : "शब्दों की ज्योति का सौन्दर्य उन्हींको नसीब होता है, जिनके हृदय जलते हैं।" —क० ए० अ०

श्रद्धांजलि

श्री ईश्वरलाल व्यास

गुजरात के जिन ३-४ कार्यकर्ताओं को बापू ने उड़ीसा में ग्रामसेवा के लिए भेजा था, उनमें से एक श्री ईश्वरलाल व्यास का ११ फरवरी '६९ को दोपहर में एक बजकर २० मिनट पर देहावसान हो गया ! आप करीब ४० साल से उड़ीसा में सेवा-कार्य कर रहे थे। बालासोर जिले के सोरो नामक स्थान में आपने आश्रम बनाया था। उत्कल नव-जीवन मण्डल के आप प्रमुख कार्यकर्ता रहे। गांधी सेवा संघ के भी आप सदस्य थे। जब से भूदान का आन्दोलन शुरू हुआ, तब से ही आप इसमें अपनी पूरी क्षमता और निष्ठा के साथ लगे रहे। आपका अपना कोई निजी परिवार नहीं था, सारा उत्कल सर्वोदय-कार्यकर्ता समुदाय ही आपका स्नेह-परिवार था। आपके व्यापक स्नेह की याद और अटूट निष्ठा की प्रेरणा आपके जाने के बाद भी बल प्रदान करती रहेगी। दिवंगत आत्मा को हमारी विनम्र श्रद्धांजलि !

जन-शक्ति का उभरता स्वरूप

हमारे हाथ में कोई अधिकार तो है नहीं और फिर भी सारे (सरकारी) अधिकारी लोग काम में लग जाते हैं तो ठीक ही है। यह उनका काम ही है, बल्कि हमने तो बंगाल में कहा ही था—पंडितजी से मुलाकात होने के बाद—कि भाई, आप लोगों को अब सरकार का खाना है और बाबा का काम करना है। मैंने वहाँ के मिनिस्टरों से इस सम्बन्ध में कहा तो उन्होंने उत्तर दिया कि आप ठीक कह रहे हैं। 'भावना पैदा हो चुकी है, कानून बन जाता तो सारा मामला खतम', यह मुझे गाडगिल साहब ने सुनाया। वह बिहार में आये थे तो उन्होंने यह शब्द कहा कि हमारी सरकार को जरा भी 'इमैजिनेशन' (कल्पना-शक्ति) होती तो आपने जो वातावरण खड़ा कर दिया है जनता में, उसको आधार मान कर कानून बना देती तो एक 'कम्प्लीट रिवोल्यूशन' (पूर्ण क्रांति) हो सकता था। लेकिन सरकार ने नहीं किया और वह उससे होने का भी नहीं है। उसका कारण डा० राधाकृष्णन् ने वर्धा में बताया। वह वर्धा में किसी शिक्षा संस्थान के काम से आये थे, लेकिन बीच में पवनार पड़ता है तो मुझसे मिलने के लिए आये। उन दिनों मैं बोलता नहीं था, लिखकर चर्चा हुई, २०-२५ मिनट वहाँ रहे। उसके बाद वर्धा में जाकर उन्होंने शिक्षा पर व्याख्यान दिये। पहले भूदान पर बोले कि इस काम में जो देरी हो रही है उसका एक कारण यह है कि जिनके हाथों में सरकार है, वही जमीन के मालिक हैं। लोगों ने दूसरे दिन मुझसे पूछा तो मैंने बताया कि उस सिलसिले में मुझसे कोई बात उनसे नहीं हुई थी। उनको लगा कि यही कहना चाहिए तो कहा। आखिर वह फिलासफर तो हैं ही! इस वास्ते अगर सरकारी अधिकारी आते हैं और इस काम में लग जाते हैं, तो ठीक ही है।

सरकारी अधिकारी और ग्रामदान

यह सरकारी अधिकारी कौन हैं? अभी तो यह जो सारा गया जिला ग्रामदान में आया, उसमें ६० प्रतिशत शिक्षा-अधिकारियों और शिक्षकों का हाथ है। जितने शिक्षक थे उस जिले में, वे सब-के-सब इस काम में लग गये। मैंने शिक्षकों को समझाया कि आप लोगों को ३० साल तक सेवा करने का अधिकार है और 'पोलिटिकल' पार्टियों को तो केवल ५ साल। इस तरह से वे छ-छः बार आयेंगी तबतक आप लोग सेवा करते रहेंगे। इस वास्ते आप लोगों के हाथों में जनता का भला बुरा करने का जितना अधिकार है उतना उन लोगों के पास नहीं है। आप तो ३० साल तक शिक्षा का काम करेंगे। तो ज्ञान-शस्त्र के सामने कोई शस्त्र नहीं टिकता। ३० साल के बाद आप जायेंगे तो कौन शिक्षक होंगे? जिनको आपने पढ़ाया है, जो आपके विद्यार्थी रहे हैं।

अभी बिहारशरीफ में ४-५ दिन पहले शिविर हुआ। वहाँ के सब मुख्य मुख्य शिक्षक, करीब चार-पाँच सौ इकट्ठे हुए। वहाँ का शिक्षा-अधिकारी मुसलमान था। मैंने कहा कि यह आन्दोलन आप लोगों को उठा लेना चाहिए। वे लोग लग गये। फिर डी एम. भी आये थे। वे भी अपने सरकारी अधि-

विनोबा

कारियों को इसमें लगायेंगे। उन्होंने कहा कि २० जनवरी तक यह होना चाहिए। ऐसी कोशिश करेंगे, ऐसा आश्वासन देकर चले गये। अगर मेरी ऐसी सत्ता चलने लगे, तो हमारा क्या बिगड़ता है? अभी तो मैंने होम गार्ड्स के लोगों से कहा कि आप लोगों को लड़ाई के समय ही बुलाया जाता है, बाकी समय में काम नहीं रहता है तो गाँव-गाँव में जाकर काम करें। उन्होंने कहा कि हम यह काम करेंगे। तो ये शिक्षक, होम गार्ड्स, और ग्राम-पंचायत के मुखिया अनुकूल हुए हैं तो यह सारे जन ही हैं, इनके अलावा हस्ताक्षर करनेवाले लोग हैं। अब उसमें सरकारी लोग आते हैं तो अच्छा ही है। मैंने कहा कि इस काम में भाग लेते हैं और इस काम को पूरा करते हैं तो आपका 'ला एण्ड आर्डर' का काम खतम होता है, तो वह पैसा बाबा को दान करना चाहिए। वह इससे इनकार नहीं करते हैं और कहते हैं कि बात सही है। वह अगर दबाव डालते हैं तो दूसरी बात है।

उड़ीसा में १० हजार सेवक लगेंगे। लेकिन उनके पास पैसा तो है नहीं। ये १० हजार सेवक कहाँ से आयेंगे? वही जो ग्राम-पंचायत में काम करते होंगे, शिक्षक वगैरह होंगे। इसलिए जन शक्ति का स्रोत इससे सूख जायेगा, ऐसी बात नहीं है। अब जनता को ठीक से नहीं समझाया जाय तो यह मूर्खता मानी जायेगी। सारा मामला 'बोगस' होगा, हम पर सारा उलटेगा।

रचनात्मक कार्यकर्ताओं का सहयोग

कहते हैं कि आज जो रचनात्मक कार्यकर्ता हैं उनका पूरा सहयोग मिलता नहीं है। वे तो दया के पात्र हैं। उनका बोझ उनके सिर पर है। करोड़ों रुपयों की खादी पड़ी है, जो बिकती नहीं है। सस्ती करते हैं, फिर भी बिकती नहीं है। अधिक सस्ती करते हैं, तो फिर कैसे करेंगे? मैंने यह पाया कि ४० हजार लोगों की जिम्मेवारी जिस संस्था पर है, उस संस्था का ध्यान खादी-बिक्री पर रहता है। उस हालत में उस संस्थावालों की क्या दशा होगी? इतना ही है कि ये हमारे लोग हैं, यह बाबा के लिए 'क्रेडिट' है। बाबा को उनके ऊपर दया आती है। उनके पीछे उनका परिवार है। इतना कठिन कार्य वह कर रहे हैं। मैं तो बिलकुल ही उचित कार्य मानता हूँ। ग्रामदान का भी काम वे करते हैं। उनके पास खादी का काम भी है और ग्रामदान का भी। इसलिए समझना चाहिए कि वे जितना करते हैं, उतना बहुत है। वे बिहार में काफी करते हैं। हमने उनसे कहा कि आप नहीं करते हैं तो हमारे मन में आपके लिए दया है। हम दूसरे लोगों को काम में लगायेंगे, फिर आपका भार हलका होगा, तब आप काम करेंगे। इसलिए जो रचनात्मक कार्यकर्ता रचनात्मक काम में लगे हैं, उनसे मदद ही क्या मिलती है? इसका उच्चारण भी नहीं होना चाहिए। जितनी मदद वे देते हैं उतनी लेनी चाहिए। खादीवालों ने इस काम में काफी खर्च किया है।

गांधी-शताब्दी

इस काम में गांधी-शताब्दी के उत्साह का उपयोग मत कीजिए। वह बड़ा खतरनाक है। जो ९९ में नहीं था, १०० में है, और १०१ में समाप्त हो जायेगा, वह एक ज्वार है, जो उतर जायेगा। उन्होंने दस-पाँच कार्यक्रम माने हैं, उनमें यह भी एक माने हैं। उनसे जितनी मदद मिले वह ले लें, लेकिन उनका आधार नहीं लेना चाहिए।

प्रदेशदान के मामले में आंध्र क्यों पिछड़ रहा है? तमिलनाडु और उड़ीसा के बीच में वह है, तो वह भी प्रादान की बात क्यों नहीं करता है?

सीमा-प्रदेश

सीमा-प्रदेशों में अपना विस्तार बढ़ाने का रास्ता कम्युनिस्टों का है। उत्तर बिहार में, उत्तर काशी में, कश्मीर का विभाग और राजस्थान के जैसलमेर में, जहाँ-जहाँ बार्डर्स हैं वहाँ-वहाँ कम्युनिस्ट लोग काम कर रहे हैं। जहाँ असंतोष है, वहाँ वे उस असंतोष का उपयोग करते हैं। इसलिए आपकी 'स्ट्रैटजी' यह होनी चाहिए कि जहाँ सुलभ प्रदेश है वहाँ काम करें। मैं तो यहाँ तक विचार करता हूँ कि अनेक प्रदेशों में लगे हुए लोग अगर इकट्ठा हो जायँ और किसी एक प्रदेश को पूरा कर दें, फिर अपने प्रांत में जायें तो वह विजयी होकर जायेंगे, बजाय इसके कि हर प्रांत में अपना अपना करते रहें। मिलिटरी की 'स्ट्रैटजी' हो। एक जगह दो-चार सौ कार्यकर्ता आ जायें।

बाबा का प्रभाव

प्रश्न : बाबा, आप जाते हैं तो हरएक को कर्त्तव्य का बोध हो जाता है, लेकिन आमतौर पर यह स्थिति नहीं रहती। इसका क्या विकल्प है?

विनोबा : इस पर पहले भी चर्चा हुई है। इस विषय में ज्यादा चिंता की जरूरत नहीं है, क्योंकि यह परिस्थिति बिहार के अलावा दूसरे प्रांत में नहीं होनेवाली है। बिहार में इसलिए कि यहाँ मेरी दो-तीन पदयात्राएँ हो चुकी हैं। कुल मिलाकर बाबा ने यहाँ ६ साल बिताये हैं। इतना समय दूसरे प्रांत में नहीं बिताया है। उस सबका परिणाम यह है। जनता में जो श्रद्धा की भावना थी, उससे सरकारी सेवक भी अछूते नहीं रह सकते थे। और जब एक शिक्षक जाता है तो लोग समझते हैं कि बाबा ने भेजा है, इसलिए आया है। वह बाबा के काम को समझाता है। इसलिए लोगों के मन में भ्रम होने की गुंजाइश नहीं है। यह नहीं होता है कि यह सरकारी कार्यक्रम है, बल्कि वह जानते हैं कि बाबा यहाँ आया हुआ है इसलिए ये बोल रहे हैं। आखिर वे जो कुछ करते हैं, वह हमारे प्रभाव के अन्तर्गत है, उससे भिन्न भी नहीं और उसके विरोधी भी नहीं। इसलिए खास चिंता का विषय नहीं है, और जैसा कि मैंने कहा कि दूसरे प्रांतों में यह नहीं होनेवाला है। आप इस विषय में चर्चा कर सकते हैं। प्रश्न उठते हैं यह ठीक है।

प्रश्न : जन-शक्ति पैदा करने का काम उससे खंडित तो नहीं होगा? क्योंकि बिहार में जो कुछ होगा उसका असर दूसरे प्रदेशों में भी होगा।

विनोबा : बाबा एक प्रांत में है। हरएक प्रांत में तो नहीं है। दूसरे प्रांत में जो चले सो चले।

आध्यात्मिक स्रोत

मैंने दो बातें आप लोगों के सामने पहले भी कही हैं। एक तो यह कि आंदोलन भौतिक नहीं है। इसका असर भौतिक क्षेत्र पर पड़ेगा, सामाजिक और आर्थिक पर भी पड़ेगा। लेकिन यह आंदोलन मूलतः आध्यात्मिक है। इसलिए जितनी हमारी आध्यात्मिक शक्ति बढ़ेगी, उतना ही उसका प्रचार जनता में होगा। केवल स्थूल प्रचार पर हमारा निर्भर नहीं है। बहुत फर्क पड़ता है। यहाँ एक स्तूप खड़ा किया जाता है। इसलिए नहीं कि यहाँ का हवा-पानी अच्छा है; बल्कि इसलिए कि गौतम बुद्ध का असर ढाई हजार साल के बाद शुरू हो गया है। बीच में दबा हुआ था। तो आध्यात्मिक असर हवा में काम करता है। जितना हमारा आत्मिक संशोधन होगा, उतना ही उसका असर होगा। अगर हम शून्य हो जायँ तो कम-से-कम कर्म में ज्यादा-से-ज्यादा असर होगा। कर्म करना पड़ता है, कार्य करने पड़ते हैं। यह इसलिए कि कुछ कमी है।

साहित्य-प्रचार

जो एक बात कम्युनिस्टों के ध्यान में थी, वह यह कि विचारों का साहित्य जितना फैले उतना ही परिणाम होगा। सतत विचार पहुँचते रहने चाहिए। विचारों का गहन अध्ययन होना चाहिए। यह गांधीजी के जमाने में भी कम रहा। उनका सम्बन्ध ज्यादा शहरों से था। लेकिन हमें तो हर गाँव से हस्ताक्षर लेना पड़ता है, जो बहुत कठिन है। उस हालत में हर गाँव में आपका साहित्य पहुँचे, इसकी योजना आज तक हम कर नहीं पाये। सर्व सेवा संघ के लोग बैठते हैं, चर्चा कर लेते हैं और शायद समझते हैं कि यह अपनी औकात के बाहर की बात है। लेकिन ऐसा वास्तव में है नहीं। ७० हजार ग्रामदान प्राप्त किया है तो ७० हजार तो ग्राहक हो जायँ। लेकिन इनकी जो खपत है, उसमें मुश्किल से दो-ढाई हजार गाँवों में इनकी पत्रिका जाती होगी। ऐसी हालत में अब हम मशीनरी खड़ा करना चाहते हैं कि शिक्षकों के द्वारा विचार का प्रचार हो। पत्रिका हर गाँव में पहुँचे। शिक्षक इस काम में लगें। उनके द्वारा आपका चर्चा पहुँचे, इसके लिए वे तैयार हैं। ऐसा अगर आप इन्तजाम करते हैं, तो स्थूल रूपेण एक मशीनरी आपके हाथ में आ जायेगी।

चुनाव की चुनौती

रामपूर्ति ने एक अच्छा आर्टिकल लिखा है—'इस वक्त सन् १९६९ में अच्छे सेवक को चुनो और सन् १९७२ में अपने सेवकों को चुनो।" अच्छे सेवकों के लिए इस वक्त हम प्रचार करेंगे; उस वक्त अपने ही सेवक खड़े हो जायें, यह उन्होंने अच्छी तरह से रखा है। अब आपके पास तीन साल का अवकाश है। उतने अवकाश में आपको गाँव-गाँव में पहुँचना है। यह आपके लिए जितना आसान है उतना और किसीके लिए नहीं। एक श्रद्धा है वातावरण में।

[राजगीर, पटना में दि० ७-२-'६९ को हुई ग्रामदान-अभियान समिति की बैठक की चर्चा से।]

अहिंसा : दुहरी विजय की शक्ति

डा० मार्टिन लूथर किंग

जब किसी समाज में संकट पनपता है तो सदैव उसके फलस्वरूप उत्पन्न समस्या को हल करने और उसे भड़कानेवाली शक्तियों से छुटकारा पाने का प्रयत्न किया जाता है। निश्चय ही जो उत्पीड़ित होते रहते हैं वे संकट का सामना करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। और, उत्पीड़ित व्यक्ति अपने शोषण उत्पीड़न का सामना तीन उपायों से कर सकते हैं।

एक उपाय तो सन्तोष-सहमति का है, ऐसे बहुत-से लोग हैं, जो समझते हैं कि उनके उत्पीड़न से निबटने का एकमात्र उपाय यह मान बैठना है कि उनके भाग्य में ही उत्पीड़न बदा है। ऐसे लोग हैं, जो आत्म समर्पण कर देते हैं और जैसी भी स्थितियाँ हों उनके अनुसार चलने की उनको आदत हो जाती है। वे महसूस करते हैं कि पुराने तौर-तरीके व ढर्रे को बदलकर नया ढांचा बनाने की अग्नि-परीक्षा में से गुजरने के बजाय इन्हीं परिस्थितियों में रहना बेहतर है।

तो यह सन्तुष्टि सहमति का उपाय है—परन्तु यह सही मार्ग नहीं। कभी यह सुगम उपाय हो सकता है, किन्तु यह कायरता का मार्ग है, क्योंकि जो व्यक्ति खराब ढर्रे से ताल-मेल बिठा लेता है वह उस समय उस खराब ढर्रे में हिस्सेदार हो जाता है और उसे उस अनुचित ढर्रे को स्थायित्व प्रदान करने की कुछ जिम्मेदारी अपने ऊपर भी ओढ़नी चाहिए।

उत्पीड़ित व्यक्तियों द्वारा अपने उत्पीड़न का प्रतिकार करने का एक दूसरा उपाय है, और वह है हिंसा और क्षयकारी घृणा को अपनाकर विद्रोह करने का।

हिंसा : परिवर्तन के बजाय सर्वनाश

निस्सन्देह, अब हम इस उपाय के बारे में भी जान चुके हैं। हम हिंसा को समझते हैं और मैं यहाँ यह कहने नहीं आया कि हिंसा से कभी काम नहीं बना। इतिहास को पढ़नेवाला जल्दी ही यह जान जायगा कि राष्ट्रों ने बहुधा अपनी स्वाधीनता हिंसा के जरिये प्राप्त की है। हिंसा से बहुधा क्षणिक सफलताएं प्राप्त हुई हैं, किन्तु साथ ही मैं यह भी कहूँगा कि हिंसा से अस्थायी सफलताएँ भले ही प्राप्त हुई हों, पर उससे स्थायी शान्ति कभी नहीं हो सकती और अन्त में उससे बहुत सारी सामाजिक समस्याएं पैदा होती हैं। हिंसा अन्तिम रूप में, जातीय न्याय के संघर्ष में अव्यावहारिक होने के साथ-साथ अनैतिक भी है। यह अनेक कारणों से अव्यावहारिक है, और मेरी राय में एक सबसे बढ़िया कारण यह

डा० मार्टिन लूथर किंग : अहिंसक शक्ति के प्रतीक

है कि हमारे बहुत-से विरोधी यह चाहेंगे कि हम हिंसात्मक क्रान्ति आरम्भ कर दें, वे यह युक्ति देकर कि वे उपद्रव भड़का रहे हैं, बहुत-से निर्दोष व्यक्तियों की हत्या करने के लिए एक बहाने के तौर पर इसका सहारा लेंगे।

और, हिंसा अव्यावहारिक भी है, क्योंकि किसीकी आँख निकालने के बदले दूसरे की आँख निकालने के उपाय का अन्त यही है कि सभी अन्धे हो जायेंगे। यह तरीका गलत है। यह तरीका अनैतिक है। यह अनैतिक इसलिए है, क्योंकि इससे नीचे उतरते उतरते अन्त में सभी का विनाश हो जायेगा। यह गलत इसलिए है, क्योंकि उसमें विरोधी को परिवर्तित करने के बजाय उसको सफाया कर देने का यत्न किया जाता है।

एक तीसरा उपाय भी है और वह है अहिंसात्मक प्रतिरोध का। मेरे विचार में यही एक ऐसा उपाय है, जिससे हमें इस विक्षुब्ध अन्तरिम काल में मार्गनिर्देशन प्राप्त करना चाहिए। हम पुरानी व्यवस्था की जगह नयी व्यवस्था अपना रहे हैं। अनिवार्यतः हमें प्रसव-पीड़ाओं—नये युग के जन्म के साथ अनिवार्य रूप से होनेवाले तनावों—को झेलना होगा।

किन्तु मेरा विश्वास है कि अहिंसा एक ऐसा उपाय है, जिससे नये युग के आदर्शों, लक्ष्यों और सिद्धान्तों को प्राप्त किया जा सकता है।

अहिंसा : साधन और साध्य में समस्वरता

अब हम एक क्षण के लिए इस विचार-धारा और उसके आधारभूत आशय पर दृष्टि-पात करते हैं, क्योंकि हम अहिंसा के विषय में बहुत सारी बातें कहते और सुनते हैं, इस-लिए हम बहुधा यह नहीं समझ पाते कि इस उपाय की भी एक अन्तरावेष्टित विचारधारा है। सबसे पहले मैं यह कहूँगा कि अहिंसा की विचारधारा यह मानकर चलती है कि हम जिन साधनों का उपयोग करें, वे हमारे अभीष्ट लक्ष्यों की भाँति ही निर्दोष व शुद्ध होने चाहिए। साधनों और साध्यों में समस्वरता होनी चाहिए। साधन और साध्य अविभाज्य हैं। साधन निर्माणाधीन आदर्श का ही द्योतक है, इतिहास में अन्ततोगत्वा विनाशकारी साधनों से रचनात्मक उद्देश्यों की उपलब्धि नहीं हो सकती। अनैतिक साधनों या उपायों से नैतिक लक्ष्यों की सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिए अहिंसा का आधार यह है कि साधनों और लक्ष्यों में समन्वय होना चाहिए। अहिंसा नैतिक साधनों के द्वारा सत्य आदर्शों व लक्ष्यों की अनवरत प्राप्ति का नाम है।

अहिंसा के विषय में मैं जो दूसरी बात कहना चाहता हूँ वह यह है इसमें यह माना जाता है कि मनुष्य का लक्ष्य अपने विरोधी को क्षति पहुँचाना कदापि नहीं होना चाहिए। भारतीय दर्शन में इसे 'अहिंसा' की संज्ञा दी गयी है।

अहिंसात्मक संयम और अहिंसा के दर्शन का यही केन्द्रबिन्दु है। उसके दो पहलू हैं :

पहला, निःसन्देह यह है कि आप बाह्य शारीरिक हिंसा से विलग रहेंगे। अहिंसात्मक प्रदर्शन में भाग लेने के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति से हम यह कहते हैं कि आपको शारीरिक हिंसा का प्रतिशोध नहीं लेना चाहिए। यदि आप पर प्रहार हो तो आपको उलटकर प्रहार नहीं करना चाहिए, आपको ऊँचा उठकर प्रतिशोध लिये *बिना* प्रहारों को अपने ऊपर झेलने में समर्थ होना चाहिए। और इस प्रकार प्रहार न करने का तात्पर्य होगा कि आपने बाह्य शारीरिक हिंसा में उलझना स्वीकार किया। किन्तु इसका यह भी अर्थ है कि आप लगातार उस स्थिति की ओर बढ़ रहे हैं, जब आप अपने शत्रु से घृणा भी नहीं करेंगे। आप लगातार उस स्थिति में पहुँच रहे हैं, जब आप अपने शत्रु से प्रेम करेंगे।

इस कथन के सम्बन्ध में बहुत-से लोग गड़बड़ा जाते हैं। वे समय-समय पर मुझसे पूछते हैं, "जब आप कहते हैं कि 'अपने प्रतिपक्षी से प्रेम करो तो ससार में उसका क्या तात्पर्य होता है ?' एक दिन मेरे भाषण के बाद किसीने पूछा : "मैं नीति के रूप में अहिंसा का अनुसरण कर सकता हूँ, और मेरी राय में आपका यह मत सही है कि यह सर्वोत्तम नीति और सर्वोत्तम प्रक्रिया है। किन्तु जब आप इस 'प्रेम वस्तु' की बात कहते हैं तो मैं आपका साथ नहीं दे सकता।"

प्रेम : अहिंसा का केन्द्रस्थल

पर यह 'प्रेम वस्तु' ही अहिंसा का केन्द्रस्थल है। शांति न पहुँचाने की सर्वोच्च अभिव्यक्ति प्रेम है, और मेरा विचार है कि इस रूप में बहुत-से लोग प्रेम को ठीक-ठीक नहीं समझते। वे समझते हैं कि जब हम 'प्रेम' की बात करते हैं तो हम भावनात्मक स्नेह भाव की चर्चा करते हैं, किन्तु सबसे पहले मैं ही यह कहूँगा कि यह बेहूदा है; उत्पीड़ित लोगों से यह कहना निरर्थक है कि वे अपने उत्पीड़कों के साथ स्नेहात्मक भावना से प्रेम करें। यह बहुत कठिन है और प्रायः असम्भव है।

इसलिए जब मैं यह बतलाने का यत्न करता हूँ कि 'प्रेम-वस्तु' से मेरा क्या आशय है तो ग्रीक भाषा का शब्द 'अगेप' ग्रहण करता हूँ।

'अगेप' कल्पनात्मक या रोमांचक प्रणय मात्र नहीं है। यह मित्रता से बढ़कर है। इसका आशय सब मनुष्यों को समझना, उनके प्रति रचनात्मक, मुक्तिदायक सद्भावना है। यह सतत प्रवहमान प्रेम है, जिसमें कोई प्रत्याशा नहीं की जाती। धर्मशास्त्री कहेंगे कि यह परमात्मा का प्रेम है, जो मनुष्य की अन्तरात्मा में काम करता है। जब कोई प्रेम के इस स्तर तक पहुँच जाता है तो वह मनुष्य मात्र से प्रेम करता है, उसे इसलिए प्रेम नहीं करता कि वह उसे और उसके तौर-तरीकों को पसन्द करता है। वह प्रत्येक मनुष्य को प्रेम करता है, क्योंकि परमात्मा उससे प्रेम करता है। वह इस स्तर तक पहुँच जाता है कि वह व्यक्ति के दुष्कृत्यों से घृणा करते हुए भी दुष्कर्म करनेवाले व्यक्ति से प्रेम करे।

यह सदैव एक लक्ष्य है, और जहाँ ऐसा कहना सभव हो वहाँ संघर्ष की एक प्रणाली रखना अच्छा है, क्योंकि अब हम यह जानने लगे हैं कि घृणा खतरनाक है। जिससे घृणा की जाती है उसकी तरह ही यह घृणाकारी के लिए भी हानिकर है।

दुहरी प्रक्रिया : स्वयं कष्ट-सहन और प्रतिपक्षी को अंतरात्मा को अपील

हिंसा और अहिंसा इस पर सहमत है कि कष्ट-यातना एक प्रबल सामाजिक शक्ति हो सकती है। किन्तु अन्तर यह है कि हिंसा कहती है कि हिंसा तब प्रबल सामाजिक शक्ति बनती है *जब आप दूसरे पर उसका प्रहार करते हैं,* किन्तु अहिंसा कहती है कि कष्ट तब प्रबल सामाजिक शक्ति होता है जब अपने ऊपर कष्ट-यातना और हिंसा के प्रहार करने देते हैं। उसमें यह मान्यता रहती है कि अन्यायपूर्ण कष्ट सदैव मुक्तिकारक होता है।

और इसलिए अहिंसा का अभ्यासी अपने विरोधी से कहेगा : 'हम अपनी कष्ट-सहन की क्षमता से कष्ट-यातना पहुँचाने की आपकी क्षमता का मुकाबला करेंगे। हम आपकी शारीरिक शक्ति का आत्मिक शक्ति से मुकाबला करेंगे। आप हमारे साथ चाहे जो करें, हम आपसे प्रेम करते रहेंगे। हम पूर्ण सद्भाव रखते हुए भी आपके अन्यायपूर्ण कानूनों का पालन नहीं कर सकते, इसलिए आप हमें जेल में डाल दें और भले ही उसमें कितनी भी मुसीबतें हों, हम जेल जायेंगे और आपसे प्रेम भी करते रहेंगे। हम अब भी आप से प्रेम करेंगे। किन्तु आप यह यकीन रखिए कि हम अपनी कष्ट-सहन की क्षमता से आपको थका देंगे, और एक दिन आयेगा कि हम *अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेंगे।* इस प्रकार हम आपके हृदय व अन्तरात्मा से अपील करेंगे कि इस प्रक्रिया में हम आपको जीत लेंगे और हमारी विजय दुहरी विजय होगी।"

और अहिंसा का यही सबसे गहरा तात्पर्य है, और यही ऐसी चीज है जो विरोधी को हताश कर देती है। वह उसके नैतिक बचावों को नगा कर देती है, वह उसकी हिम्मत तोड़ देती है और इसके साथ-साथ वह उसकी अन्तरात्मा पर असर करती है। वह समझ नहीं पाता कि उससे कैसे निबटे।

यदि वह आपको जेल में नहीं डालता तो बहुत बढ़िया है। किन्तु यदि वह आपको जेल में बन्द कर देता है तो आप उसे लज्जाजनक काली कोठरी से आजाद और मानवी प्रतिष्ठा के पुनीत स्थल में परिणत कर दें। यदि वह आपकी हत्या का यत्न करे तो आप ऐसा आन्तरिक विश्वास पैदा करें कि कुछ ऐसी बहुमूल्य, ऐसी प्रिय और ऐसी शाश्वत सत्य चीजें होती हैं कि उनके लिए प्राणोत्सर्ग करना भी कोई बड़ी बात नहीं। और यदि मनुष्य ने कोई ऐसी चीज नहीं खोजी जिसके लिए वह प्राण दे सके तो उसे जीवित रहना ही नहीं चाहिए। •

हॉवर्ड विश्वविद्यालय में ६ नवम्बर सन् १९६१ को 'गांधी स्मारक भाषण' के रूप में दिये गये भाषण से।

मुरैना की अराजक स्थिति : संकेत की दिशा ?

लाठीचार्ज, अश्रुगैस, फायरिंग और कर्फ्यू—पुलिस की ओर से

हड़ताल, जुलूस और कचहरी, बैंक व सरकारी दफ्तरों पर ताला तथा चलती रेलों को रोक देना—जनता की ओर से

जनवरी, '६९ : गणतंत्र दिवस !

सारे नगर में सरकारी इमारतों पर कोई राष्ट्रीय ध्वज फहरानेवाला नहीं। सारे शहर में कर्फ्यू और जिधर देखो उधर ही एस० ए० एफ० पुलिस के सिपाही वर्दी पहने, लोहे के टोप लगाये हुए! नगर में चारों ओर आतंक ही आतंक! सन् १९४७ के बाद जन्मे तरुण नागरिकों को तबाही पर आमादा देखकर बड़े बूढ़े कह उठे—एक वे हैं जिन्हें तस्वीर बना आती है, और एक हम हैं कि लिये अपनी सूरत को भी बिगाड़।

बात यह हुई कि !

शहर के बीच में से दिनांक ९ जनवरी '६९ की सन्ध्या को ७ बजे एक व्यापारी बन्धु का ८ वर्षीय बालक मुरारी डाकुओं द्वारा अपहृत कर लिया गया। नगरवासियों को चिन्ता हो उठी कि अभी तक तो गाँवों से ही पकड़ ले जाते थे, अब तो ये शहर से भी सरेआम ले जाने लगे। कांग्रेस २८ जनवरी '६९ से प्रदेशीय स्तर पर सत्याग्रह करने वाली ही थी और उस सत्याग्रह का एक केन्द्र मुरैना भी था, अतः सबसे पहले कांग्रेस दल ने एक आम सभा में संविद शासन की बुराई करते हुए 'गद्दी छोड़ दो' का नारा दिया।

कांग्रेस को इस अवसर का श्रेय मिलते देखकर अन्य राजनैतिक दलों ने भी एक संयुक्त सभा का आयोजन किया, जिसमें कांग्रेस भी शामिल रही। हर राजनैतिक दल की ओर से एक-एक व्यक्ति लेकर सामूहिक अनशन आरम्भ हुआ। जनता की मांग के मुताबिक शहर-कोतवाल तथा सुपरिन्टेन्डेन्ट-पुलिस, दोनों का मुरैना से दूरस्थ स्थानों को स्थानान्तरण हो गया। अनशन का यह क्रम व्यक्ति बदल-बदलकर सतत चलता रहा। इस बीच अपहृत बालक पुलिस द्वारा ले आया गया, पर उस सम्बन्ध में न कोई डाकू-पुलिस मुठभेड़ हुई और न कोई मुखबिर या डाकू-दल का सदस्य ही पकड़ा गया। इस पर जनता में नारा लगा कि निश्चित ही यह डाकू-पुलिस गठबन्धन है। यह भी अफवाह रही कि उस व्यापारी के पल्लेदार ने ही उस बालक का अपहरण कराया था और उस व्यापारी का भी डाकुओं से लेन-देन है।

जनता की मालिकी

आवाज बुलन्द हुई कि पहले जो लड़के गाँवों से गये हैं, वे भी वापिस आने चाहिए। पुलिस गुनाहों से पल रही है, इसलिए वह डाकू-समस्यारूपी जाल को काटना नहीं चाहती, क्योंकि वह खुद उस पर बैठी है। मांग हुई कि एक न्यायिक जाँच होनी चाहिए। इन सबसे एक तथ्य उभरकर प्रकट हुआ कि मुरैना नगर की जनता अपने को मालिक समझने लगी और पुलिस तथा सरकारी कर्मचारियों को नौकर कहकर सम्बोधित कर उठी। लेकिन यह भी सही है कि मालिक ने अपने में मालिकी के गुण अपनाने शुरू नहीं किये, अर्थात् सार्वजनिक सम्पत्ति जो जनता रूपी मालिक की ही कही जायगी, उसे वह खुद अपने हाथों नष्ट करने लगी। यह भी एक विडम्बना या विरोधाभास कहा जायगा!

दस दिन बाद, १९ जनवरी '६९ को एक सर्वदलीय सार्वजनिक सभा आयोजित हुई, जिसमें नगर के आसपास की जनता ने भी हजारों की संख्या में भाग लिया। मुरैना के इतिहास में यह ऐसी पहली सभा थी। अभी तक अनशनकारियों को तथा सभाओं में पुलिस तथा प्रशासन को गालियाँ देनेवालों को पुलिस ने गिरफ्तार नहीं किया था, अतः २० जनवरी को पूर्ण हड़ताल रखकर २१ जनवरी से जिले के मुख्य न्यायालय पर जनता ने ताला डाल दिया। अन्य सरकारी इमारतें बैंक आदि पर भी ताले डाल दिये। नगर का सारा प्रशासनिक कार्य ठप्प हो गया।

इस उफनते जोश में होश खोकर 'मालिकों' ने अपने 'नौकरों' को बुरी तरह पथराव शुरू कर दिया।

प्रशासन के उठते कदम

जिलाधीश श्री आई० एस० राव ने अभी तक बहुत धीरज से काम लिया था। गिरफ्तारियाँ न करके आन्दोलन के शान्त होने की राह देखी, पर कचहरी पर कितने दिनों तक ताला लगा रह सकता है? २३ जनवरी की रात को कचहरी का ताला ही नहीं, बल्कि पूरा फाटक ही पुलिस ने अलग करके जन-सुरक्षा समिति को गिरफ्तार कर २४ जनवरी '६९ को प्रातः से ७ दिन के लिए धारा १४४ लगा दी।

प्रशासन की गलतियों पर गलतियाँ

(१) गिरफ्तार किये गये व्यक्तियों को डाकबंगले में रखा गया। उनको टेलीफोन का खूब उपयोग करने दिया गया, जिससे उन्होंने नगर के अनेक नागरिकों को डाकबंगले पर आमंत्रित किया और मुरैना नगर के हजारों व्यक्ति डाकबंगले पर गिरफ्तार व्यक्तियों को छुड़ाने पहुँच गये। वहाँ पड़ी हुई पत्थर की गिट्टी का उपयोग हुआ और देखते-देखते डाकबंगला क्षत-विक्षत हो गया। एक पुलिस-गाड़ी में आग लगा दी गयी। फलस्वरूप लाठीचार्ज और अन्त में फायरिंग शुरू हो गयी। एक लड़के की बाँह से गोली आरपार हो गयी, जिसे सिविल अस्पताल में रखा गया। नगर में खबर फैल गयी कि इस बच्चे के अलावा एक और दूसरा बच्चा मारा गया, पर यह बात बाद में भ्रामक सिद्ध हुई।

(२) छात्रों से मामूली छेड़छाड़ की घटना में पुलिस शासकीय भूनिधर कालेज में घुस गयी और वहाँ कई अध्यापकों व आचार्य

को डण्डों से पीटा। इस पिटाई से छात्रवर्ग भी प्रतिशोध की अग्नि में जल उठा।

(३) असामाजिक तत्त्व इस नेतृत्व-विहीन आन्दोलन में घुस आये, उनकी तत्काल गिरफ्तार न करने से उन्हें बढ़ावा मिला। 'तीन दिन से कचहरी पर ताला लगा है। जनता प्रशासन को ठप्प होता देखकर हँस रही है।' इस स्थिति ने आगे की परिस्थिति को नितनूतन बद से बदतर बनाया और असामाजिक तत्त्वों में रेल तक रोक देने का दुस्साहस पैदा किया। शुरू-शुरू में एक जनसंघी विधायक गिरफ्तार हुए थे। उसके बाद कोई जनसंघी नेता व कार्यकर्ता गिरफ्तार नहीं हुए और कांग्रेसी तथा संसोपा के नेताओं को चुन-चुनकर घर से बुलाकर बुरी तरह पीटा गया और गिरफ्तार करके दूरस्थ स्थानों को भेजा गया। 'चूँकि जनसंघ दल के पुलिस-मंत्री हैं, इसलिए कांग्रेसियों की हालत बिगाड करके आगे के लिए उनका पुलिस-रेकार्ड खराब करने का यह षड्यंत्र है।' ऐसा समझदार लोग भी कहने लगे।

जनता की ओर से गलती

(१) जनसुरक्षा-समिति के संचालकों के जेल जाने के बाद नये संचालक नहीं बनाये गये। बिना नायक की फौज-सी जनता इधर-उधर भगदड़ में पड़ गयी। सब लीडर-ही-लीडर हो गये, 'फालोअर' कोई नहीं रहा। कोई किसीकी सुननेवाला नहीं रहा!

(२) बाजे-गाजे के साथ सैकड़ों लोगों ने पुलिस-मंत्री श्री सकलेचा की अर्थी चौराहे पर जलायी, जब कि जनसुरक्षा-समिति में पहले ही तय हो गया था कि चूँकि इस आन्दोलन में सभी राजनैतिक दल सम्मिलित हैं, इसलिए किसी दलविशेष के नेता को अपमानित व लांछित नहीं किया जायेगा।

(३) छात्रों तथा जनता के बीच के असामाजिक तत्त्वों ने मिलकर रेलवे की दोनों ओर के केबिन बन्द करके ताले लगा दिये। रेल-यातायात ठप्प हो गया। एक फर्स्ट क्लास के डिब्बे की सीट से रेक्सीन फाड़कर आग लगा दी, जो स्टेशन मास्टर के तुरन्त देख लेने से बुझा दी गयी, नहीं तो पूरी गाड़ी में आग लग जाती। कलक्टर तथा नगर के कतिपय शान्तिप्रिय व्यक्तियों ने बहुत समझाया, पर लोग हटे नहीं। अन्त में लाठीचार्ज और अश्रुगैस बड़े पैमाने पर छोड़ी गयी।

शान्ति के नागरिक-प्रयास

पूरे नगर में इनेगिने कुछ व्यक्तियों ने चेष्टा की कि जनता शांतिपूर्ण वैधानिक साधनों से अपना सत्याग्रह चलाये, पर ये ओस की बूँदें जलते तवे पर छन होकर रह गयीं। इतना जरूर हुआ कि लोगों ने महसूस किया कि शांति की ताकत भी खड़ी होनी चाहिए, ताकि पहले तो ऐसे अवसर आने ही न पायें और यदि आ जायें तो उस समय केवल चार नहीं, बल्कि अनेक लोग सीना तानकर इस आग को बुझाने में अपनी भक्ति और शक्ति से जुट जायें। जब सही बात कहने को कुछ खड़े हो जाते हैं तो उनको भी धीरे-धीरे समर्थन मिलने लगता है। इन ४ व्यक्तियों को १४ अपने जैसे और मिल गये।

२७ जनवरी को शांति का प्रयास करनेवाले व्यक्तियों ने मुहल्ले-मुहल्ले दूध, दवा व अनिवार्य आवश्यकता की वस्तुएँ पहुँचाने की व्यवस्था की और इस सेवा के माध्यम से घर के बुजुर्गों को समझाया भी कि बच्चों द्वारा मुहल्ले और गली में पथराव न होने दें, जिसमें सफलता मिली और इस दिन ढाई घंटे के लिए कर्फ्यू उठा लिया गया और इस बीच नगर में पूर्ण शान्ति रही और लोगों ने बाजार से सामान खूब खरीदा, लेकिन बेचारे वे क्या खरीदते जो दिन भर मेहनत-मजदूरी से कमाकर शाम को खरीदा करते थे, उन्हें तो मेहनत करने को ही नहीं मिली और न कोई कमाई ही हुई, दिन भर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे।

२८ जनवरी को प्रातःकाल शांति-समिति के सदस्य नगरपालिका-भवन में कलक्टर और पुलिस सुपरिटेंडेंट से मिले और कर्फ्यू-पास लेकर सारे नगर में शान्ति-स्थापनार्थ घूमे और दोपहर बाद २ से ४ बजे तक फिर इन दोनों अधिकारियों से मिले और ४ से १० बजे ६ घंटे के लिए कर्फ्यू हटवाया। इस बीच कोई उपद्रवकारी घटना नहीं हुई।

२९ जनवरी को फिर ६ बजे मिले और दोपहर बाद २ बजे से १० बजे तक ८ घंटे के लिए कर्फ्यू हटवाया। इस सबसे अनुभव यह आया कि जनता शान्ति तो चाहती है, पर पुलिस की पिटाई से उनके कलेजों में बदले की आग अभी भी धधक रही है!

लड़ाई जारी है

२६ जनवरी गणतंत्र-दिवस के प्रातः से लगा हुआ कर्फ्यू बापू-निर्वाण दिवस ३० जनवरी के प्रातः तक बराबर लगा रहा। नगर में चारों ओर अशान्ति भी फैली रही। कहा नहीं जा सकता, इसका अन्त क्या होगा? लड़ाई अभी जारी है। स्कूल-कालेज अनिश्चित काल के लिए बन्द हैं। २९ जनवरी को कर्फ्यू खुलने पर भी दूकानदारों ने अपनी दूकानें नहीं खोलीं। उनका कहना रहा कि मुरैना के नाम पर ग्वालियर में हड़ताल हो गयी। दूसरे हमारे लिए मर रहे हैं। हमारे नेताओं को बुरी तरह अभी भी पीटा जा रहा है। हम दूकानें नहीं खोलेंगे।

पहले दो दिन खोला गया तो सारा नगर अपनी दैनंदिन की जरूरतें लेने उमड़ पड़ा, पर वह भी डरते-डरते। अधिकांश लोग भागते-भागते बाजार जा-आ रहे थे। स्कूल से छुट्टी के बाद छात्रों की भीड़ का जो दृश्य होता है, वैसा ही देखा गया। कुछ कह रहे थे, पिंजड़े में से पंछी निकलकर अब पान-तम्बाकू और सिगरेट की फिक्र में हैं। यह भी सुना गया कि कर्फ्यू के दौरान नागरिकों को बुरी तरह पीटा गया। घर के बाहर खड़ा देखा तो फिर घर के भीतर से भी घसीटकर बाहर लाकर पीटा, ताकि सारे मुहल्ले पर आतंक छा जाय। लोग अपने-अपने घरों में घोसलों की तरह अपने छोटे-छोटे बच्चों को दाना चुगाते रहे और बाहर निकलने से रोकते रहे। पर तीसरे दिन की स्थिति और ही थी। लोग खुली दूकानें बन्द करा रहे थे।

यह चिनगारी पूरे जिले और समीपवर्ती जिलों में पहुँच गयी, जिसके फलस्वरूप अम्बाह में गोली चली और जौरा, सबलगढ़, सभी तहसीलों के प्रमुख स्थानों पर अशान्ति फैल गयी। ग्वालियर, भिण्ड, शिवपुरी भी अशान्त हुए और डर हुआ कि यह कहीं पूरे मध्यप्रदेश में न फैल जाय! —गुरुशरण

बिहार में ग्रामदान-कानून के अन्तर्गत पुष्टि-कार्य के प्रयास

पुष्टि-कार्य की अनुकूलता-प्रतिकूलता के बारे में जानकारी एवं चिन्तन के लिए प्रस्तुत कुछ तथ्य

(१) क—गांवों की संख्या, जिनके संकल्प-पत्र पुष्टि पदाधिकारियों के कार्यालय में दाखिल किये गये— १,२३०

• ४०० गांवों के कागज सितम्बर '६८ या उसके बाद दाखिल हुए।

• इन गांवों के करीब ७५ हजार परिवारों को नोटिस दी गयी, जिसकी प्रति गांव के सुलोचर स्थान, पंचायत, कार्यालय एवं ब्लाक आफिस में भी दी गयी। प्रत्येक नोटिस के साथ साथ संकल्प-पत्र की प्रतिलिपि लगानी पड़ती है। प्रत्येक घोषक के लिए एक नोटिस करनी पड़ती है।

ख—पुष्टि-पदाधिकारियों के द्वारा नोटिस किये गये गांवों की संख्या – १,०७३

ग—शेष गांव जिनकी नोटिस तैयार की जा रही है (समस्तीपुर क्षेत्र के) – १५७

(२) क—नोटिस किये गये १०७३ गांवों में से उन गांवों की संख्या, जिनके व्यक्तिगत घोषणा पत्र पुष्ट हो गये— ९५३

ख—शेष गांव, जिनकी पुष्टि की कार्रवाई अब तक नहीं हो पायी है— १०२

ग—गांवों की संख्या, जिनके सम्बन्ध में आपत्ति आयी— १७

(३) क—८३३ गांवों से ३३४ गांव भूमिहीनों के हैं। इनका ग्रामदान तभी होगा, जब किसी पड़ोसी गांव के साथ जुड़ें या कानून में संशोधन हो। शेष गांवों की संख्या, जिनके सम्बन्ध में अब यह जांच करनी है कि उस गांव की ७५ प्रतिशत जनसंख्या तथा ५१ प्रतिशत जमीन पूरी हुई है या नहीं— ४९९

ख—गांवों की संख्या, जिनका सर्वेक्षण अब तक पूरा नहीं हुआ— २९८

ग—गांवों की संख्या, जिनका सर्वेक्षण हो गया— २०१

(४) क—सर्वेक्षित २०१ गांवों में से गांवों की संख्या, जिनकी शर्तें पूरी नहीं हुईं— १२६

ख—पुष्टि-पदाधिकारियों द्वारा गजट में घोषित ग्रामदान-संख्या— ७५

उपर्युक्त आंकड़ों से न तो हम यह अंदाज लगा सकते हैं कि पुष्टि में कितनी शक्ति लगानी होगी और न यह अंदाज होता कि गांवों में किस अनुपात में ग्रामदान की शर्तें पूरी हो रही हैं।

पुष्टि की अपेक्षित शक्ति का अंदाज

(क) अभी हमारे सात पुष्टि-पदाधिकारी काम कर रहे हैं। इनमें से सदर-दरभंगा के पुष्टि-पदाधिकारी के यहां वर्ष भर में सिर्फ ६२ गांवों के कागज दाखिल हुए, जब कि समस्तीपुर के पुष्टि-पदाधिकारी के यहां ४६७ गांवों के कागज दाखिल हैं। इनमें से करीब साढ़े तीन सौ गांवों के कागज ११ सितंबर, '६८ को दाखिल हुए थे।

(ख) पुष्टि-पदाधिकारियों को समान और लगातार एक-सा काम नहीं मिलता। यह भी सम्भव नहीं कि इनकी तुरन्त बदली कर दें, क्योंकि इनके क्षेत्र का बदल गजट के द्वारा करना होगा। कार्य सन्तुलित करने के लिए सहायकों की संख्या में अन्तर करना पड़ता है। उदाहरणार्थ—दरभंगा के पुष्टि-पदाधिकारी को एक तथा समस्तीपुर के पुष्टि-पदाधिकारी को चार सहायक दिये गये, फिर भी निर्णय लेना तो पुष्टि-पदाधिकारी को होगा। सभी फाइलों पर उन्हीं के हस्ताक्षर होंगे।

(ग) पूर्णिया पूर्व में अप्रैल, '६८ से काम प्रारम्भ हुआ एवं अक्तूबर, '६८ तक २०० गांवों का अन्तिम निर्णय हो गया। दरभंगा-सदर में वर्षभर में ६२ गांवों का निर्णय हुआ। इस प्रकार वर्तमान काम से अपेक्षित काम का सही मूल्यांकन नहीं हो सकेगा।

(घ) दाखिल कागजों में जो काम शेष हैं, उनमें से अधिकांश समस्तीपुर के हैं। इनके लिए विशेष व्यवस्था कर ली गयी है।

(ङ) मार्च तक करीब एक हजार गांवों के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय किया जा सकेगा।

• अभी की स्थिति से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि किस अनुपात में गांव शर्तें पूरी नहीं कर रहे हैं, या किस अनुपात में भूमिहीनों के गांव हैं।

(क) अभी कार्यकर्ता सुविधा की दृष्टि से पहले भूमिहीन या अल्प भूमिवाले गांवों का कागज पूरा करते हैं। इस कारण दाखिल कागज में भूमिहीनों के गांवों का अनुपात अधिक है।

(ख) टोले-टोले का अलग-अलग ग्रामदान हुआ (पूर्णिया, दरभंगा आदि में)। जिलादान के बाद अब पूरा राजस्व गांव ग्रामदान में आ गया। मार्गदर्शन के अभाव में सुलभता के लिए कार्यकर्ता पुष्टि भी टुकड़े में करते हैं। नतीजा यह होता है कि कोई टोला जनसंख्या के अभाव में और कोई भूमि के अभाव में अपूर्ण रह जाता है।

(ग) अभी की पुष्टि में कार्यकर्ताओं को गांव से विवरण नहीं मिलता। वे सरकारी कर्मचारी से विवरण पाते हैं। इसमें जमीन छूट जाती है। कई मालिकों के नाम जमीन आज तक सरकारी कागज में दर्ज नहीं हो सकी है। उनके बाप-दादों का नाम चलता है। गांव के सहयोग के अभाव में यह पता चलना मुश्किल होता है। इससे जमीन का अनुपात गिरता है। कहीं-कहीं तो यह भी होता है कि कार्यकर्ता विवरण पाने के कष्ट से बचने के लिए अल्प भूमिवान (१०-१५ कट्ठा) को लिख देते हैं कि इनके पास सिर्फ वास की जमीन है, चास की नहीं। जिससे जोत की जमीन का अनुपात कम हो जाता है।

उपाय

(१) एक अंचल में सरकारी अधिकारी, ग्रामदान-पुष्टि करने एवं विचार समझानेवाले→

कस्तूबाग्राम में अ० भा० शिविर-सम्मेलन

कस्तूरबा की स्मृति में संस्थापित ट्रस्ट के द्वारा कस्तूरबाग्राम (इन्दौर) में ५ फरवरी से १२ फरवरी १९६९ तक दूसरा अखिल भारतीय शिविर-सम्मेलन हुआ, जिसमें सारे देश से आयी हुई लगभग ५५० बहनों ने भाग लिया। सम्मेलन के पूर्व ५ फरवरी से ८ फरवरी तक अ० भा० कस्तूरबा स्मारक ट्रस्ट द्वारा बा-बापू जन्म-शताब्दी के सिलसिले में "अ० भा० कस्तूरबा-शिविर" हुआ। इसी अवसर पर मध्य प्रदेश गांधी-शताब्दी समिति की महिला व शिशु उपसमिति ने भी एक महिला-शिविर आयोजित किया, जिसमें शताब्दी-वर्ष में कस्तूरबा-सम्मेलन के निर्णय एवं उद्देश्यों के व्यापक प्रचार की योजना पर विचार हुआ।

अ० भा० कस्तूरबा-शिविर का उद्घाटन आचार्य दादा धर्माधिकारी ने किया और अध्यक्षता की सुश्री अमलप्रभा दास ने। उद्घाटन-भाषण में सामाजिक क्रान्ति की चर्चा करते हुए दादा ने कहा कि आज दुनिया में जो क्रान्तियाँ हो रही हैं, वे सांस्कृतिक क्रान्तियाँ हैं। लेकिन विनोबाजी ने इस देश की परिस्थितियों के सन्दर्भ में क्रान्ति की एक ऐसी प्रक्रिया की खोज की है, जिससे सांस्कृतिक एवं सामाजिक क्रान्ति साथ-साथ हो सकती है।

शिविर के दूसरे दिन श्रीमती सरोजनी महिषी ने तथा तीसरे दिन मध्य प्रदेश के भूतपूर्व विकास-आयुक्त श्री प्रताप सिंह बापना ने शिविरार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि गाँवों की पिछड़ी हुई महिलाओं में विचार की जागृति एवं आत्मस्वातंत्र्य की चेतना का विकास बहुत जरूरी हो गया है। इसके लिए महिलाओं को चाहिए कि घर के काम से बचे समय का उपयोग समाज के लिए करें। समाज की वर्तमान स्थिति का आत्मविवेचन करते हुए वक्ताओं ने लोक-शिक्षण पर विशेष बल दिया। विकास-आयुक्त श्री बापना ने अपने विगत जीवन के अनुभवों के आधार पर कहा कि सरकार सिर्फ ईंट और गारा भले जुटा दे, उससे कोई ठोस काम होने की उम्मीद नहीं करनी चाहिए। विकास-खण्ड द्वारा गाँवों में किये जानेवाले कामों की असफलता का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि गाँववालों को हमने इतने झूठे सपने दिखाये कि वे हम पर आश्रित हो गये। आपने स्पष्ट शब्दों में कहा कि वेतनभोगी लोग गाँवों में निष्ठा नहीं पैदा कर रहे हैं। गाँववालों में स्थानीय अभिक्रम, नेतृत्व, संकल्प और विश्वास यदि पैदा हो जाये तो *गाँव की समस्याएँ वे* खुद हल कर लेंगे।

केन्द्रीय समाज-कल्याण बोर्ड की अध्यक्षा श्रीमती अली जहीर ने कहा कि आजादी के बाद सामाजिक प्रगति बहुत धीमी हुई है, जो कि एक बड़े देश को सजाने-सँवारने के लिए कम है। आपने धीमी प्रगति का एक कारण शिक्षा भी बताया। महिलाओं के पिछड़ेपन के लिए उन्होंको जिम्मेदार ठहराते हुए कहा—

खुदा ने आज तक उस
मुल्क की सूरत नहीं बदली,
न हो जिसको खयाल जबतक
खुद अपने को बदलने का।

९ फरवरी को कस्तूरबा-सम्मेलन का उद्घाटन राष्ट्रपति डा० जाकिर हुसेन करनेवाले थे, किन्तु अस्वस्थता के कारण वे नहीं आ सके और तब उद्घाटन किया डा० चिंतामणि देशमुख ने।●

→योग्य कार्यकर्ता तथा भूदान कमेटी की ओर से पुष्टि करनेवाले अधिकारी आवश्यक सहायकों समेत लगें, तो हमें पता चलेगा कि गाँव को तैयार करने के लिए क्या करना होगा एवं कितनी शक्ति लगेगी, सरकारी अधिकारी कितने मददगार हो सकते हैं, कमेटी को कितने कार्यकर्ता लगाने होंगे तथा खर्च क्या आयेगा।

(२) एक बार जे० पी० ने कौवाकोल का सुझाव दिया था, उसी प्रकार सात प्रखंड लिये जा सकते हैं। इन प्रखण्डों में हमारे वरिष्ठ कार्यकर्ता स्वयं अत्यन्त पुष्टि-कार्य में लगें।

(३) छिट-पुट पुष्टि-कार्य से न तो प्रगति होगी और न हम सही काम कर सकेंगे।

—निर्मलचन्द्र
मंत्री,
बिहार-भूदान-यज्ञ कमेटी,
कदमकुआँ, पटना-३

अखबार की कतरन :

सर्वदलीय चुनाव-मंच

"श्री जयप्रकाश नारायण ने चुनाव-प्रचार के लिए *सर्वदलीय मंच* का उदाहरण प्रस्तुत करके निश्चय ही भारत की राजनीति में एक उल्लेखनीय कार्य किया है। जलसों, जुलूसों और सभाओं द्वारा चुनावों में अंधाधुन्ध खर्चा होता है। इसमें धन ही नहीं, बहुमूल्य समय भी नष्ट होता है और उपयोगिता भी उनकी नगण्य ही होती है। आज का चतुर मतदाता न इससे प्रभावित होता है और न उनके द्वारा अपने विचार ही बनाता है। अधिकांश प्रचार-सामग्री रद्दी के योग्य ही होती है। यही बात भाषणों के सम्बन्ध में भी है।

"दलों का एकपक्षीय प्रचार केवल एकांगी ही नहीं, वरन् कटुतापूर्ण भी होता है। अपने मंच पर प्रायः लोग दूसरों को कोसते हैं। इससे कटुता उत्पन्न होती है। यही कटुता आगे चलकर चुनाव-झगड़ों का कारण बन जाती है। इसके विपरीत अगर एक ही मंच पर सभी दलों के नेता अपने-अपने विचार रखें तो जनता को उन्हें तोलने और उम्मीदवारों की योग्यता को सामने परखने का सही अवसर मिल जाता है। इतना ही नहीं, पीठ पीछे गाली देने का जो सिद्धान्त है, उसका *यहाँ अवसर नहीं* रहता। सब लोग तर्क ही देते हैं, गाली नहीं।

"ऐसे सर्वदलीय चुनाव-मंच की कल्पना बहुत दिनों से विचारवान लोगों के दिमाग में चक्कर काट रही थी। जयप्रकाशजी ने बिहार में उसे मूर्त रूप देकर अपनी सर्वोदयी सक्रियता का सही परिचय दिया है। इसके लिए वे निस्सन्देह बधाई के पात्र हैं। उन्हें ऐसे ही महत्त्वपूर्ण और आवश्यक रचनात्मक कार्यों की सलाह देकर देश की जनता का मार्ग-दर्शन करना चाहिए। इनमें उनकी पैठ भी है और *सफलता भी असंदिग्ध है।*"

—'हिन्दुस्तान' दैनिक के ११ फरवरी '६९ के सम्पादकीय नोट से।

संयुक्त मंच की शानदार सफलताएँ

फरवरी १९६९ में बिहार, बंगाल, उत्तरप्रदेश एवं पंजाब में होनेवाले मध्यावधि चुनाव में सर्वोदय कार्यकर्ता क्या करें यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही नहीं, आवश्यक भी था। इसलिए सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति की १-६ अक्तूबर १९६८ को सोखोदेवरा में हुई बैठक में मध्यावधि चुनाव के प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया। विचार विमर्श के बाद यह निर्णय लिया गया कि इस मध्यावधि चुनाव में लोकनीति की पूरी योजना जनता के सामने प्रस्तुत नहीं की जा सकती। लोकनीति का आधार 'दलमुक्त ग्राम-प्रतिनिधित्व' है, किन्तु जबतक राज्यदान पूरा नहीं हो जाता तथा ग्रामदानी गाँवों में ग्रामसभाएँ गठित नहीं हो जातीं तबतक दलमुक्त ग्राम प्रतिनिधित्व का प्रयोग संभव नहीं। परन्तु बैठक में यह महसूस किया गया कि मध्यावधि चुनाव के अवसर पर हमें लोकनीति की दिशा में ले जानेवाले विचार तो प्रस्तुत करने ही चाहिए। अतः इस चुनाव में लोक-शिक्षण की दृष्टि से मतदाताओं का ध्यान दलों की ओर से हटाकर उम्मीदवार की अच्छाई की ओर ले जाना चाहिए। उम्मीदवार की अच्छाई आँकना कठिन है, फिर भी कुछ कसौटियाँ निश्चित की गयीं।

देवघर में ३० अक्तूबर १९६८ को बिहार सर्वोदय संघ की बैठक हुई, जिसमें सर्व सेवा संघ के प्रस्ताव पर बड़ी ही दिलचस्पी के साथ चर्चा हुई तथा आम राय से यह तय किया गया कि सर्व सेवा संघ के प्रस्ताव का कार्यान्वयन पूरी मुस्तैदी से किया जाए। बैठक में एक मतदाता-शिक्षण समिति का भी गठन किया गया। समिति ने इस कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए जिला सर्वोदय-मंडलों को सक्रिय बनाने का प्रयास किया। समिति ने यह भी महसूस किया कि सर्वोदय-कार्यकर्ताओं के अलावा अन्य नागरिकों को भी इस विचार और कार्यक्रम में शामिल करना चाहिए। इस दृष्टि से श्री जयप्रकाश नारायण की अपील पर बिहार के नागरिकों की एक बैठक ता० ८ दिसम्बर को पटना में श्री रत्नेश्वरीनन्दन सिंह की अध्यक्षता में हुई, जिसमें सर्व सेवा संघ के प्रस्ताव से मिलता-जुलता ही एक प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। इसमें कहा गया कि दल, जाति एवं सम्प्रदाय के विचार से ऊपर उठकर उम्मीदवार की अच्छाई का ख्याल करके सबसे अच्छे उम्मीदवार को वोट दिया जाना चाहिए। मतदाताओं के शिक्षण के लिए और स्वीकृत प्रस्ताव के कार्यान्वयन के लिए बिहार मतदाता-सलाहकार समिति का गठन किया गया, जिसकी अध्यक्षता पटना हाईकोर्ट के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री नागेश्वर प्रसाद एडवोकेट ने खुशीपूर्वक स्वीकार की।

समिति के तत्वावधान में बिहार के सभी प्रमुख राजनैतिक पक्षों के प्रतिनिधियों की एक बैठक श्री जयप्रकाश नारायण की उपस्थिति में २३ दिसम्बर को आचार संहिता स्वीकृत करने के लिए हुई, जिसमें आमराय से एक सप्तसूत्री आचार-संहिता मान्य की गयी तथा उसका पालन ठीक से हो, इसकी देखभाल के लिए प्रान्तीय, जिला एवं सब-डिवीजन स्तर पर निगरानी-समितियाँ गठित करने का तय किया गया। समिति ने सभी जिलों में आमतौर पर पक्षरहित नागरिकों एवं खास तौर पर सर्वोदय-कार्यकर्ताओं की सहायता से पर्चे, फोल्डर्स, पोस्टर्स तथा सार्वजनिक सभाओं एवं गोष्ठियों के माध्यम से मतदाता-शिक्षण का काम प्रारम्भ किया।

जिलादानी जिलों के प्रतिनिधियों की १८ दिसम्बर की बैठक में यह निर्णय लिया गया कि चुनाव तक सभी कार्यकर्ता सर्व सेवा संघ के प्रस्ताव को कार्यान्वित करने में लगेंगे। इस निर्णय के अनुसार मुजफ्फरपुर, सहरसा तथा पूर्णिया में सघन रूप से तथा अन्य जिलादानी जिलों में साधारण तौर पर कार्यक्रम को सफल बनाने में कार्यकर्ता लग गये। आचार्य राममूर्ति का अधिकांश समय बिहार के इस कार्यक्रम में मिला।

ऐसा निर्णय किया गया कि कम-से-कम सभी जिलों के मुख्य नगरों में अवश्य, और यदि सम्भव हो सका तो हर निर्वाचन-क्षेत्र में सम्मिलित मंच का आयोजन किया जाय। जहाँ कहीं भी इसका आयोजन हुआ, उसे बड़ी ही ख्याति मिली। मुजफ्फरपुर—१६, पटना—१, छपरा—५, दरभंगा—७, सहरसा—६, मुंगेर—३, पूर्णिया—३, आरा—१, गया—१, रांची—१, भागलपुर—१, संथाल परगना—१, और धनबाद—१—अबतक प्राप्त सूचनानुसार ४७ स्थानों में सफलतापूर्वक कार्यक्रम आयोजित किये गये। ऐसी सभाओं का निर्वाचन-क्षेत्रों में अच्छा असर पड़ा। आपस की कटुता में कमी आयी है तथा तनाव घटे हैं।

नागरिकों को भविष्य के चुनाव के लिए एक अच्छा संकेत मिला है। इस ढंग से कम खर्च में चुनाव लड़े जा सकते हैं, ऐसा विश्वास जमता जा रहा है। इसलिए मतदाता एवं नेता, दोनों पक्षों ने इसका स्वागत किया है। कहीं-कहीं दलविशेष के उम्मीदवार मंच पर आने से कतराते भी रहे।—कैलाशप्रसाद शर्मा

इलाहाबाद में भी

विभिन्न पक्षों के नेताओं की एक सम्मिलित बैठक १९ जनवरी को उत्तरप्रदेश शांति-सेना समिति के तत्वावधान में इलाहाबाद में हुई। इसकी अध्यक्षता श्री शंकरदयालु श्रीवास्तव, सम्पादक 'भारत' ने की। इस बैठक में सर्वसम्मति से एक आचार-संहिता स्वीकृत की गयी, जिसमें विभिन्न पक्षों में रहते हुए भी पारस्परिक सौहार्द और सद्भावना के साथ काम करने पर जोर डाला गया। श्री सुरेशराम भाई के सुझाव पर सर्वसम्मति से चार सदस्यीय पर्यवेक्षक दल का गठन हुआ।

—सत्यप्रकाश

शिक्षण की निःशुल्क व्यवस्था

कस्तूरबा विद्यालय पसना, पो० पसना, जिला इलाहाबाद में कम से अप्रैल व मई '६९ से, ८वीं तथा ५वीं कक्षा उत्तीर्ण, १८ से ३० वर्ष तक की प्रौढ़ बहनों को प्रवेश देकर २ वर्ष में हाईस्कूल और जूनियर हाईस्कूल तक की शिक्षा और भोजन की निःशुल्क व्यवस्था है। प्रार्थना-पत्र, प्रतिनिधि या मंत्री, कस्तूरबा ट्रस्ट, पो० पसना, वाया मेजा, जिला इलाहाबाद के पास पहुँचने की अन्तिम तिथि ५ मार्च '६९ है।

सम्पादक के नाम पत्र

'भूदान-यज्ञ' : नाम-चर्चा

महोदय,

१३ जनवरी के अंक में भाई जंगबहादुर का सुझाव कि 'भूदान-यज्ञ' का नाम बदलकर 'ग्रामदान महायज्ञ' अथवा कोई और अन्य नाम रख दिया जाय, पढ़ा। एक पाठक की हैसियत से मेरी सम्मति है कि 'भूदान-यज्ञ' एक व्यापक शब्द है ठीक वैसा ही, जैसा कि गीता का 'स्थितप्रज्ञ'। भूदान के अन्तर्गत 'विश्वदान' की भावना अन्तर्निहित है, क्योंकि 'भू' का अर्थ अखिल विश्व से है। मेरे विचार से इसकी जगह प्रत्येक नाम हास्यास्पद लगेगा। —अतर सिंह वर्मा

कुकथला, आगरा : १४-१-६९।

महोदय,

पिछले अंक में एक भाई ने 'भूदान-यज्ञ' का नाम 'ग्रामदान महायज्ञ' रखने का सुझाव दिया है। यह नाम सब तरह से लायक और उपयुक्त है। भूदान की परिणति हुई है ग्रामदान में, जो आखिरी और सर्वोत्तम निदान है समग्र उत्थान का।

मुंगेर, —नरेश कुमार चौहान

१४-१-'६९।

महोदय,

'भूदान-यज्ञ' पत्रिका का नाम परिवर्तन करने के बारे में पाठकों की सम्मति और सुझाव आमंत्रित किये हैं। मैं इस सुझाव से पूर्ण सहमत हूँ कि इस पत्रिका का नाम बदलकर ग्रामदान महायज्ञ अथवा कोई माफिक नाम कर दिया जाय, जिससे लोकमानस पर इसका आकर्षण बढ़े। —नत्थू सिंह

आसफपुर, बदायूँ : १५-१-'६९।

महोदय,

'भूदान-यज्ञ' का नाम 'ग्रामदान महायज्ञ' रखा जाय, इसके समर्थन में मुझे इतना ही कहना है कि इस कार्य में शीघ्रता की जाय।

१६-१-'६९। —एन० द्विवेदी

भारत की ग्रामीण संस्कृति

गांधीजी का शिक्षा-जगत् को सन्देश

गांधीजी ने कहा था :

"हम ग्रामीण संस्कृति के उत्तराधिकारी हैं। हमारे देश की विशालता, यहाँ की विराट् जनसंख्या एवं इसकी स्थिति और जलवायु के कारण ग्रामीण संस्कृति ही यहाँ सर्वथा उपयुक्त है। यद्यपि वर्तमान ग्राम-व्यवस्था की कमियाँ सर्वविदित हैं, परन्तु उनमें से एक भी ऐसी नहीं है जो नाइलाज हो। इस देश में ग्रामीण संस्कृति को उखाड़ फेंककर शहरी संस्कृति की स्थापना असम्भव ही है, जब तक कि किन्हीं प्रचण्ड साधनों द्वारा यहाँ की ३० करोड़ (आज तो ५० करोड़) जनसंख्या को ३० लाख या ३ करोड़ तक ले आने का कोई भयंकर विचार न करे। अतः ग्रामीण संस्कृति को ही इस देश में स्थायित्व देना होगा, ऐसा मानकर मैं इसके वर्तमान दोष दूर करने के उपाय बताता हूँ।

"इसका एकमात्र हल यही है कि इस देश के नवयुवक अपने को ग्रामीण जीवन में ढाल लें। यदि वे इस ओर बढ़ना चाहें तो अपने जीवन के पुनर्निर्माण हेतु उन्हें अवकाश के हर दिन का उपयोग अपने कालेज या स्कूल के समीपवर्ती गाँवों में करना चाहिए। जो युवक शिक्षण समाप्त कर चुके हों या जो शिक्षा प्राप्त कर रहे हों उन्हें तो गाँवों में जाकर बस ही जाना चाहिए। वहाँ उन्हें सेवा, शोध एवं ज्ञान-प्राप्ति का अपार क्षेत्र मिलेगा। शिक्षकगण यदि छात्र-छात्राओं के अवकाश के दिनों में, उन पर साहित्य-अध्ययन का बोझ डालने के बजाय उनके लिए गाँवों में विचार-शिक्षण का कार्यक्रम निर्धारित करेंगे तो बहुत उपयुक्त होगा। अवकाश के दिनों का उपयोग पुस्तकें याद करने में नहीं, सृजनात्मक कार्मों में होना चाहिए।"

उपरोक्त गांधी-वाणी भारत की वर्तमान युवक-समस्या के समाधान हेतु एक महत्त्वपूर्ण संकेत है। लक्ष्यहीन शहरी जीवन के अभ्यस्त एवं किंकर्तव्यविमूढ़ नवयुवक को ग्रामीण जीवन में प्रवेश देने हेतु विनोबाजी ने आज ग्रामदान रूपी नया द्वार खोल दिया है।

क्या शिक्षा-जगत् इस ओर ध्यान देगा?

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म शताब्दी समिति), दुंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

भूदान-यज्ञ १७-२-'६९ रजिस्टर्ड नम्बर एल. ३२४ [पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त] लाइसेन्स नम्बर ए ३४

मुंगेर जिलादान समर्पण-समारोह सम्पन्न

प्रदेशदान का काम शीघ्र पूरा करें

जमाने को लम्बे अर्से तक इन्तजार करने का धीरज नहीं

आचार्य विनोबा की मार्मिक अपील

मध्यावधि चुनाव के सिलसिले में दो सम्प्रदायों के आपसी तनाव के कारण मुंगेर शहर का वातावरण क्षुब्ध था। धारा १४४ कायम थी और शहर में पुलिस गश्त लगा रही थी। इसलिए जिलादान-समारोह की बड़ी सभा करना सम्भव नहीं था। स्थानीय 'श्रीकृष्ण सेवा सदन' के छोटे-से मैदान में अल्प सूचनाओं से जितने लोग आ सकते थे आये। जिले के विभिन्न क्षेत्रों से आये कार्यकर्ताओं, भूदान किसानों और ग्रामसभाओं के प्रतिनिधियों को जिला सर्वोदय मंडल के संयोजक रामनारायण बाबू ने धन्यवाद दिया। समारोह की अध्यक्षता श्री ध्वजा प्रसाद साहु ने की।

सभा में सूतांजलि-समर्पण का कार्य पहले सम्पन्न हुआ। कुल ३२ केन्द्रों से ६,६०० गुण्डियाँ आयी थीं।

श्री ब्रजमोहन शर्मा ने जिलादान का कागज बाबा को समर्पित किया। उन्होंने बताया कि जिलादान का कार्य गांधी-पुण्य-दिवस ३० जनवरी को ही पूरा हो गया था। जिलादान-अभियान का आयोजन जिलादान-प्राप्ति समिति तथा जिला सर्वोदय मंडल की ओर से किया गया था। इस अभियान में ग्राम-स्वराज्य संघ का महत्त्वपूर्ण योगदान मिला। उसी तरह जिला पंचायत परिषद का सहयोग भी विशेष रूप से प्राप्त हुआ। जिले के सभी राजनैतिक दलों का समर्थन तथा अधिकांश वरिष्ठ कार्यकर्ताओं के सहयोग भी अभियानों में बराबर प्राप्त हुए।

जिलादान के आँकड़े :

कुल प्रखण्ड	३७
कुल पंचायतें	७२४
ग्रामदान में शामिल	६४०
कुल गाँव	३,३८०
ग्रामदान में शामिल (गाँव तथा टोले)	३,०४४
कुल परिवार-संख्या	५,२०,७६५
शामिल परिवार	३,७६,६१७
कुल जनसंख्या	२८,७७,७५६
शामिल जनसंख्या	२२,७६,२२९
कुल रकबा	२६,६०,६४३
शामिल रकबा	१७,६३,७६६

बाबा ने पहले सूतांजलि का महत्त्व बताते हुए कहा, "गांधीजी ने कातने पर इतना जोर लगाया कि जिस दिन मरे गोली मारे गये उस दिन कातकर मरे। एक दिन भी जीवन में नागा नहीं गया। जो बात दूसरे को समझा दे उसके पहले उस पर खुद अमल करे, यह सज्जनों काम है, वही गांधीजी का काम था।" उन्होंने आगे सूतांजलि के विषय पर बोलते हुए कहा कि "सूतांजलि का मतलब यह नहीं है कि अनेक विधियों में एक और नयी विधि हम भी जोड़ दें। सूतांजलि को जन-शक्ति के विकास का चिह्न मानना चाहिए। सूतांजलि गुंडी के रूप में मतदान है।" उन्होंने अपनी अपेक्षा व्यक्त की कि पूरे देश की जनसंख्या ५० करोड़ है तो ५० लाख गुंडियाँ सूतांजलि के रूप में क्यों नहीं मिलनी चाहिए? कम-से-कम एक प्रतिशत की माँग है यह। लेकिन बिहार में चूँकि ज्यादा काम होता है, इसलिए यहाँ से २ प्रतिशत की अपेक्षा उन्होंने व्यक्त की और कहा कि कम-से-कम १० लाख गुण्डियाँ यहाँ से मिलनी चाहिए। उन्होंने कहा, "पूरे राज्य से सिर्फ १-१॥ लाख ही गुण्डियाँ मिलें तो यह 'धूमर को' है।" उन्होंने अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए कहा, "मालूम नहीं, सूतांजलि का यह काम हमारे—जिनका गांधी के साथ लगाव है—मरने के बाद चलेगा या नहीं।"

जिलादान पर बोलते हुए बाबा ने कहा, "जिलादान का काम अव्वल का काम है। इसमें किसीने किसी पर उपकार नहीं किया है, सबने अपने आप पर उपकार किया है। गाँव एक परिवार, जिला एक प्रखण्ड, प्रदेश एक जिला, देश एक प्रदेश होगा, और पृथ्वी देश बनेगी, और तब, दुनिया के हद मिटेंगे, मसले हल होंगे, शान्ति कायम होगी। आणविक शक्ति के साथ टुकड़े में रहना संभव नहीं। लोग कहते हैं कि बाबा, आपका लोभ बढ़ रहा है...लेकिन बाबा कहता है कि बाबा को तो धीरज है, लेकिन जमाने को धीरज नहीं है। बाबा को जमाने के कारण तीव्रता है। दो महीनों में बचे हुए जिले भी आप पूरे कर लें।"

मुंगेर के अशान्त वातावरण पर उन्होंने कहा कि गंगा के किनारे दंगा हमारे लिए आवाहन है। हिन्दू-मुसलमान का नाम लेकर झगड़ा करना वाहियात बात है। इससे तो हम कायम के लिए गुलाम रहेंगे। इसके लिए शांतिसेना के संगठन पर उन्होंने जोर दिया।

"हमारे उत्तम-से-उत्तम कार्यकर्ता शरीर से क्षीण और कमजोर हो रहे हैं।" इस बात पर भी अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि कार्यकर्ताओं को अपना शरीर अपना नहीं, जनता का मानना चाहिए। उन्होंने अपनी मजबूरी प्रकट करते हुए कहा कि हम उन्हें दूध-दही तो दे नहीं सकते, क्योंकि हमारे पास है नहीं, लेकिन एक सलाह दे सकते हैं कि उन्हें खूब सोना चाहिए। सब चिन्ताओं से मुक्त होकर नाम-स्मरण करके सोना चाहिए, ताकि गाढ़ी निद्रा आये।

अन्त में श्री ध्वजा प्रसाद साहु ने कहा कि इस काम को सब लोग अपना मान लें तो काम आसान हो जायेगा। —कृष्ण कुमार

विनोबाजी का पता

द्वारा—'लक्ष्मीनारायण भवन',
नया बाजार, भागलपुर-२

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में १० रु०; या १५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र
वर्ष : १५ अंक : २१
सोमवार २४ फरवरी, '६९

अन्य पृष्ठों पर

मृत्यु ईश्वर की देन है। जब हमारे निकटतम नातेदार, मित्र, विशेषकर कोई भी हमें दुःखों से नहीं बचा पाते, तब मृत्यु ही छुटकारा देती है। मृत्यु में जो दुःख माना जाता है, वह वास्तव में जीवन का दुःख है। रोगादि से होनेवाला दुःख मृत्यु का नहीं, जीवन के असंयम का फल है। मृत्यु तो उनसे हमें छुटकारा दिलानेवाली है। मृत्यु का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है। —विनोबा

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

जितनी अहिंसा उतना ही स्वाधीनता

सारा समाज अहिंसा पर उसी प्रकार स्थित है, जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण से पृथ्वी अपनी स्थिति में बनी हुई है। लेकिन जब गुरुत्वाकर्षण के नियम का पता लगा उस समय इस शोध के ऐसे परिणाम निकले, जिसके बारे में हमारे पूर्वजों को कोई ज्ञान नहीं था। इसी प्रकार जब निश्चित रूप से अहिंसा के नियमानुसार समाज का निर्माण होगा, तो उसका ढाँचा खास-खास बातों में आज से भिन्न होगा।...

आज तो अहिंसा के नियम की उपेक्षा करके हिंसा को सिंहासन पर बैठा दिया गया है, मानो वही जीवन का शाश्वत नियम हो।...

मैं यह मानता हूँ कि अहिंसा को राष्ट्रीय पैमाने पर स्वीकार किये बिना वैधानिक या लोकतांत्रिक शासन जैसी कोई चीज नहीं हो सकती, इसलिए अपनी शक्ति को मैं इस बात का प्रतिपादन करने में लगाता हूँ कि अहिंसा हमारे व्यक्तिगत, सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन का नियम है।...

मैं अक्सर यह कहता रहा हूँ कि अगर साधनों की सावधानी रखी जाय, तो साध्य अपनी चिन्ता खुद कर लेगा। अहिंसा साधन है और साध्य हरेक राष्ट्र के लिए पूर्ण स्वतंत्रता। अन्तर्राष्ट्रीय संघ तभी स्थापित होगा जब कि उसमें शामिल होनेवाले बड़े-छोटे राष्ट्र पूरी तरह स्वाधीन हों। जो राष्ट्र अहिंसा को जितना हृदयंगम करेगा उतना ही वह स्वाधीन होगा।

एक बात निश्चित है। अहिंसा पर आधार रखनेवाले समाज में छोटे-से-छोटे राष्ट्र भी बड़े-से-बड़े राष्ट्र के समान ही रहेंगे। बड़ेपन और छोटेपन का भाव सर्वथा मिट जायेगा।

इस प्रकार अपने आप यह परिणाम निकलता है कि जब तक अहिंसा को केवल नीति के बजाय एक जीवित शक्ति अर्थात् अटूट ध्येय के रूप में स्वीकार न कर लिया जाय, तबतक वैधानिक या लोकतांत्रिक शासन एक दूर का स्वप्न ही रहेगा। मैं विश्वव्यापी अहिंसा का हिमायती हूँ, परन्तु मेरा प्रयोग हिन्दुस्तान तक ही सीमित है। यहाँ उसे सफलता मिली तो संसार बिना किसी प्रयत्न के उसे स्वीकार कर लेगा। 'विघ्नों की मुझे चिन्ता नहीं है। घोर अन्धकार के बीच भी मेरा विश्वास उज्ज्वलतम बना रहता है।'

अहिंसक स्वराज्य में न्यायपूर्ण अधिकारों का किसीके भी द्वारा कोई अतिक्रमण नहीं हो सकता और इसी तरह किसीको कोई अन्यायपूर्ण अधिकार नहीं हो सकते। सुसंगठित राज्य में किसीके न्याय्य अधिकार का किसी दूसरे के द्वारा अन्यायपूर्वक छीना जाना असम्भव होना चाहिए और कभी ऐसा हो जाय तो अपहर्ता को अपदस्थ करने के लिए हिंसा का आश्रय लेने की जरूरत नहीं होनी चाहिए।[१]

१) 'हरिजन सेवक' : ११-२-'११ : पृ०...
'हरिजन' : २२-...

दिवंगत ईश्वरलाल भाई

ईश्वरलाल भाई भारतीय सेववत्व के प्रतीक थे। वे पैदा हुए थे भारत के पश्चिम किनारे पर गुजरात में, पर अपना सेवामय जीवन बिताया उसके पूरबी किनारे पर उड़ीसा में। बचपन और जवानी के ३० साल गुजरात में बिताये तो परिपूर्ण सेवक-जीवन के ४१ साल उड़ीसा में। बापू ने उन्हें सन् १९२८ में उड़ीसा भेज दिया था सेवा करने के लिए। ईश्वरलाल भाई मजाक में कहा करते थे कि बापू ने कहा था कि जाओ, वहाँ महीने भर रह करके देखो, तो तीस दिन के तीस साल हो गये।

ईश्वरलाल भाई
विनोबा के साथ

वे विरमगाम में पैदा हुए थे। जवानी में व्योपार-धन्धे में लगे थे। पर सेवा की प्रेरणा हृदय में पैदा हुई और बापू के पास पहुँचे, और बापू ने उनको जीवन की दिशा दे दी।

वे उड़ीसा आये उससे पहले ही उनकी पत्नी का देहान्त हो चुका था। उनका कोई परिवार नहीं था। पर उत्कल के सारे सर्वोदय-कार्यकर्ता उनके परिवार के बन गये थे। उनकी स्नेहशीलता उनका सर्वोत्तम गुण था। और यही कारण था कि प्रान्त के हजारों कार्यकर्ता तथा गृहस्थों को उन्होंने अपना बनाया था और उन सबने भी उनको अपने परिवारों में शामिल कर लिया था। वे बड़ों के भाई, तो कइयों के बापा तथा छोटों के और बच्चों के प्यारे जेजे (नाना) थे। उनके चेहरे पर से कभी प्रसन्नता की मुद्रा मिटती नहीं थी। जहाँ भी वे पहुँचते थे, अपनी प्रसन्नता के प्रकाश से सारे वातावरण को उज्ज्वल कर देते थे। निराशा और मायूसी तो उनके सामने टिकती ही नहीं थी।

वे शुरू में ऐसे दूर के देहात में जा बैठे, जहाँ पहुँचने के लिए उन दिनों बीसों मील चलना पड़ता था। पहाड़, जंगल या बाढ़ से घिरा हुआ प्रदेश, कोई भी उनके लिए दुर्गम्य नहीं था। हिम्मत भी गजब की थी। एक बार राउरकेला में रेल की पटरी पर गिरकर उनकी घुटने की हड्डी टूट गयी। समाचार पाकर उनकी देखभाल के लिए कटक से एक साथी रवाना हो ही रहे थे तो देखते हैं कि ईश्वरलाल भाई ३०० मील की मोटर-बस की यात्रा करके कटक पहुँच गये हैं।

चालीस साल में उत्कल के रचनात्मक कार्य तथा सर्वोदय-आन्दोलन के साथ वे इस तरह से ओतप्रोत हो गये थे, कि उनके बिना किसी भी प्रवृत्ति की कल्पना करना असम्भव था। कठिन से कठिन जिम्मेदारी संभालने में वे हिचकिचाते नहीं थे और कितना भी कष्ट उठाकर जिम्मेदारी पूरी करते थे। उन्होंने हरिजनों के मुहल्ले में बैठकर चरखा चलवाया है और बीहड़ आदिवासी-क्षेत्र में अकाल-पीड़ितों को अन्न बाँटा है। गाँव-गाँव, घर-घर घूमकर भूदान प्राप्त किया है और अनाथ बच्चों के लिए बालाश्रम चलाया है। वे उत्कल में सर्वोदय-आन्दोलन के अनन्यतम आधार-स्तम्भ थे और खास करके आन्दोलन की आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने का भार अपने कन्धों पर उठा रखा था। अखिल भारतीय प्रवृत्तियों के साथ भी उनका संपर्क था। सन् १९५६ में असम के आर्थिक उपद्रवों के बाद उन्होंने वहाँ महीनों काम किया था और अपने सदा प्रसन्न और प्रेमपूर्ण स्वभाव से वहाँ के साथियों का तथा जनता का हृदय जीत लिया था।

वे हममें से उठ गये। गांधीजी के जमाने का तपपूत साधक और सेवकों में से एक और कम हुए। देश के सर्वोदय-परिवार का एक प्रेमी गुरुजन का स्थान रिक्त हुआ। उनका अभाव हमें बरसों तक अखरता रहेगा। पर इसमें शक नहीं कि उन्होंने प्रेम, आशावादिता, धृति, उत्साह, कर्मठता आदि गुणों का जो स्पर्श अनेगिनत साथियों को दिया है, वह उनके जीवन में काम करता रहेगा, और उनके तथा समाज के जीवन को समृद्ध करता रहेगा।

—मनमोहन चौधरी

उ० प्र० में ग्रामदान आन्दोलन

ता० ३१-१-१९६९ तक की प्रगति

जिला	ग्रामदान	प्रखण्डदान
१. अल्मोड़ा	८४	
२. टिहरी	६९	
३. गढवाल	६१	
४. चमोली	५६९	५
५. उत्तरकाशी	२६६	४
६. पिथौरागढ	९४	१
७ मेरठ	२२०	
८. मुजफ्फरनगर	२०७	
९. सहारनपुर	३८७	
१०. देहरादून	२३२	१
११. बुलन्दशहर	१५७	
१२. मुरादाबाद	१४६	
१३. शाहजहाँपुर	१	
१४. आगरा	९७९	८
१५ मथुरा	३३२	
१६. अलीगढ़	२३५	
१७. मैनपुरी	७६०	४
१८. एटा	४८१	
१९ झाँसी	१२४	
२०. हमीरपुर	१	
२१. इलाहाबाद	४०	
२२. फतेहपुर	१	
२३ कानपुर	२६५	
२४. इटावा	२	
२५. फर्रुखाबाद	८३५	
२६. उन्नाव	५	
२७. हरदोई	३०६	
२८. रायबरेली	१	
२९. फैजाबाद	२८०	३
३०. गोण्डा	१	
३१. बस्ती	१०५	
३२. गोरखपुर	१८७	
३३. देवरिया	१८४	
३४. आजमगढ़	१,०८७	७
३५. गाजीपुर	४७६	४
३६. बलिया	१,४६६	१८
३७ वाराणसी	१,९७१	२०
३८. मिरजापुर	३७१	३
कुल योग	१३,२८८	७८

—कपिल भाई

ये चुनाव और हम

सन् १९६९ के चुनावों से यह एक सम्भावना पैदा हो गयी है कि शायद सन् १९७२ मे दिल्ली में कांग्रेस का आज की तरह बहुमत नहीं रहे। स्वराज्य के बाद पहली बार इस स्थिति का आभास हुआ है। अगर दिल्ली में भी खिचड़ी और डाँवाडोल सरकारें बनने लगेंगी तो देश का क्या होगा? सरकार के न बन सकने, या न चल सकने की हालत में राज्यों के लिए जिस आसानी के साथ राष्ट्रपति-शासन की बात कह दी जाती है, और राष्ट्रपति का शासन लागू भी कर दिया जाता है, वह बात क्या दिल्ली के लिए भी कही जा सकती है? भारत के लिए संघीय संविधान बनानेवाले हमारे कानून के विशेषज्ञ बुजुर्गों ने क्या सोचा था? क्या उन्होंने यह मान लिया था कि अनंत काल तक दिल्ली मे एक ही दल का शासन रहेगा? हमारा आज का संविधान बदलती हुई राजनैतिक परिस्थिति का मुकाबिला कैसे करेगा?

भारत के संविधान की यह मूल कल्पना है कि सरकार उस दल के हाथ मे रहे जो स्थायी सरकार बना सके, यानी जिसका बहुमत हो। लेकिन हमारा वोटर दिनोंदिन ज्यादा मजबूती के साथ घोषित करता चला जा रहा है कि वह अपना भविष्य किसी एक दल के हाथ में सौंपने के लिए तैयार नहीं है। अगर संविधान की शर्त को संविधान से अधिकार प्राप्त करनेवाला स्वयं वोटर स्वीकार न करे, और एक से अधिक दल मिली-जुली सरकार न चला सकें, और दलों की संख्या बराबर बढ़ती ही चली जाय, तो राष्ट्र की राजनैतिक व्यवस्था की गुत्थी कैसे सुलझेगी? देश के सही संदर्भ में मिली-जुली सरकार का शास्त्र और आचार अभी हमने विकसित नहीं किया है। एक दल की सरकार का बनना मुश्किल, और कई दलों की सरकार का चलना मुश्किल जब दोनों मुश्किल हो तो क्या हो?

बात यह है कि हमारे वोटर ने एक दूसरी दिशा ही पकड़ ली है। पिछले २० वर्षों मे राजनैतिक दलों ने वोटर के दिल से देश को निकालकर अपने को बिठाने की जो संगठित कोशिश की है उसका परिणाम यह हुआ है कि वोटर ने अब दल और देश दोनों को दिल से निकालना शुरू कर दिया है। वह अब दल के प्रभाव को मानने से इनकार कर रहा है। वह व्यक्तिगत उम्मीदवार को देखने लगा है, और यह भी मानने लगा है कि किसी उम्मीदवार की सबसे बड़ी कसौटी यही है कि वह उसकी अपनी जाति का है या नहीं। वोटर की निष्ठाओं में सबसे बड़ी निष्ठा है जाति। इस मध्यावधि चुनाव में सर्वोदय की ओर से हमने उससे कहा था : 'दल और जाति का ध्यान छोड़कर सबसे अच्छे उम्मीदवार को वोट दो।' उसने हमारी इतनी बात तो मान भी ली कि दल का ध्यान बहुत-कुछ छोड़ दिया, लेकिन जाति का ध्यान नहीं छोड़ सका। वह यह नहीं सोच सका कि जाति का ध्यान छोड़ दें तो रखें किस बात का? बात यह है कि वह यह देख रहा है कि दल चाहे जो हो, जाति ही वह ट्रम्प है जिसे लगाकर हर दल चुनाव की बाजी जीतना चाहता है। देश की निष्ठा कमजोर हो, और दूसरी कोई सबल नयी निष्ठा बनी न हो, तो जाति के सिवाय दूसरा रह क्या जाता है? दल के लिए यही देश से ऊपर, और वोटर के लिए जाति दल और देश दोनों के ऊपर—इसी 'शास्त्र' पर चुनाव की यह राजनीति चल रही है। कहाँ रह गयी स्वराज्य के दिनों की वह अखिल भारतीयता? सारी राजनीति क्षेत्रीय और स्थानीय हो गयी है। बड़े दल भी इस चुनाव में सिमटकर क्षेत्र और जाति के घरौंदे में बंध गये, उन्होंने वोटर को भी बाँध दिया। सीमित और संकीर्ण होकर चुनाव लड़ा गया, जीता गया। ऐसी हालत में कैसी होंगी वे सरकारें जो इन तुच्छ निष्ठाओं के आधार पर बनेंगी?

वोटर क्या चाहता है? वह सुविधाएँ चाहता है। दल का नाम कोई हो, उसके झंडे का रंग कुछ भी हो, वोटर का ध्यान इस बात पर है कि वह जिसे वोट दे रहा है उससे या तो उसके सवाल हल होने की उम्मीद हो, या गाँव-गाँव में चलनेवाले जीवन-संघर्ष में उसका प्रतिनिधि मददगार सिद्ध हो, इसका भरोसा हो। वास्तव में सामान्य व्यक्ति के लिए जाति के सिवाय दूसरा कोई सहारा नहीं है, और विकास के अत्यंत सीमित अवसरोंवाले समाज की प्रचलित छीना झपटी में आगे बढ़ने का दूसरा कोई रास्ता नहीं है।

सन् १९५१ से लेकर आज तक हम भूदान-ग्रामदान आन्दोलन में दो बातें कहते आये हैं—एक बात गरीब की, और दूसरी गाँव की। लेकिन न तो गरीब अभी अलग कोई 'समुदाय' बन सका है, और न तो गाँव अपने मे कोई 'इकाई'। ऊँची जाति का गरीब गरीब होते हुए भी अपने को ऊंचा मानता है, अपनी जाति के ऊँचे लोगों के साथ अपना हित जोड़ता है। वह नीच गरीब के साथ एकता का अनुभव नहीं करता। इसलिए गरीब स्वयं आपस में एक नहीं हैं। तभी तो एक राजनीति बन गयी है ऊँची जातियों की, दूसरी 'बैकवर्ड' की, और तीसरी 'अछूतों' की, यानी बहिष्कृतों और वंचितों की। इन सबके एक दूसरे से और आपस में संघर्ष हैं। एक ही गाँव में रहते हुए भी ये तीनों एक नहीं हैं। इसलिए हिन्दू होते हुए भी तीनों राजनीति में अलग होते जा रहे हैं। राजनीति का हिन्दू अब एक नहीं रहा। सम्प्रदाय जातियों में टूट रहा है। या दूसरी दृष्टि से जातियों में बँटा हुआ हिन्दू राजनीति मे एक बन नहीं पा रहा है, यद्यपि कोशिश बहुत है बनाने की। सवर्ण जातियाँ अपने स्वामित्व, अपनी प्रतिष्ठा और अपने अधिकार को बनाये रखना चाहती हैं। बैकवर्ड जातियाँ फारवर्ड बनना चाहती हैं। अवर्ण जातियाँ व्यापक व्यवस्था में अपने लिए स्थान बनाने की कोशिश कर रही हैं। सबने एक ही रास्ता अपनाया है—सत्ता को किसी तरह हथियाने का। सन् १९६९ में 'हिन्दू' का नाम लेकर 'मध्यम पूंजीपति' (मिडिल कैपिटलिस्ट) सामने तो आया लेकिन टिक नहीं सका। हिन्दू-भारत की एक ही राजनीति है, और वह उसका प्रतिनिधि है, यह भ्रम टिकाऊ नहीं हो सकता। सम्प्रदायवाद ऐसा बाहुर भी हो सकता है→

चाँद की परिक्रमा और ग्रामदान-तूफान

तीन अमरीकियों ने चन्द्रमा की परिक्रमा करके मनुष्य की सभ्यता के इतिहास को एक नये मुकाम तक पहुँचाया है। इस घटना पर टिप्पणी करते हुए एक समाचार पत्र ने लिखा है : "चन्द्रयान 'अपोलो-८' सारी मनुष्य जाति के समवेत ज्ञान के बल पर चन्द्रमा तक पहुँचा। हजारों इंजीनियरों और श्रमिकों ने मिलकर अन्तरिक्षयान तैयार किया। चन्द्र-परिक्रमा के कार्यक्रम को सफल बनाने के निमित्त हजारों अन्य व्यक्तियों ने विभिन्न प्रकार का काम किया और उनके पीछे समय और दूरी की दृष्टि से न्यूटन से लेकर केप्लर तक अनेक गणितशास्त्रियों, ज्योतिषशास्त्रियों, भौतिकशास्त्रियों, रसायनशास्त्रियों, प्राणिशास्त्रियों और चिकित्सा-वैज्ञानिकों के शताब्दियों के अध्ययन व शोध का सिलसिला था। सबके समवेत परिश्रम का फल 'अपोलो-८' में एकाकार हुआ था।"

चन्द्र-परिक्रमा एक जबरदस्त तथ्य है, जिसका हमारी चेतना पर देर तक प्रभाव बना रहेगा। तात्कालिक दृष्टि से चन्द्रयात्रा एक अमेरिकी उपलब्धि है, लेकिन यह उपलब्धि पूरी मानव-जाति के हजारों वर्षों के संचित ज्ञान और शक्ति के समवेत प्रयास का परिणाम है। वस्तुतः यह मात्र ज्ञान और विज्ञान की उपलब्धि है। यह मानवीय सचेतना की भी उपलब्धि है। पूरे विश्व के मानव की आकांक्षा ने चन्द्र-यात्रियों को इस साहसपूर्ण कृत्य के लिए उत्साह प्रदान किया। उन्होंने भीषण खतरे की सम्भावना के बावजूद चन्द्रयात्रा का साहस किया। उनके पीछे चन्द्रयात्रा-कार्यक्रम में संलग्न अन्य सहयोगियों के प्रति उनके विश्वास की भावना थी और यह सब सदियों से चले आ रहे मूल्यों, और आध्यात्मिक आस्था से पोषित था। उन्होंने अपने धर्म ग्रंथ बाइबिल से उत्साह ग्रहण किया और इस बात

मनमोहन चौधरी

से भी कि तमाम दुनिया के हजारों नर-नारी उनकी सुरक्षा के लिए प्रार्थना कर रहे थे।

चन्द्रलोक की यात्रा और ग्रामदान में बहुत दूर-दराज का नाता है, लेकिन इसके बावजूद हम इससे कुछ सबक ले सकते हैं। ग्रामदान द्वारा हम एक नये समाज की नींव डालना चाहते हैं। वह नया समाज ५ लाख छिटपुट और एक-दूसरे से अलग-थलग ऐसे गाँवों का समाज नहीं होगा, जो अपनी-अपनी अलग-अलग जिन्दगी बितायेंगे। इनके बदले वे एक विशाल सहकारी ग्राम-कुल के अंग होंगे, जिनके नागरिकों को एक ऐसा जीवन बिताने की अधिक-से-अधिक सुविधाएँ प्राप्त होंगी जिसकी बुनियाद में स्वतंत्रता, प्रेम और शांति प्रतिष्ठित होंगे। यद्यपि हमारे प्रयत्न भारत की भौगोलिक सीमा तक मर्यादित हैं, फिर भी हम विश्वास करते हैं कि यह नया समाज सारी दुनिया में स्थापित होगा और इसके द्वारा हम आदर्श के विश्वव्यापी लक्ष्य-सिद्धि में सहायता मिलेगी।

अब हमें यह समझना होगा कि हमारा यह आन्दोलन "सभी लोगों के ज्ञान के योग-फल" से सफलता की सिद्धि प्राप्त करेगा। विनोबाजी ने कहा है कि आध्यात्मिकता यानी आत्मज्ञान तथा विज्ञान मिलकर सर्वोदय बनता है। हमें आत्मज्ञान के सिर्फ गहरे-से-गहरे स्तर तक ही नहीं बल्कि विज्ञान की ऊँची से ऊँची उपलब्धियों तक पहुँचना होगा। और अगर यह थोड़े-से लोगों तक सीमित रह जाय तो काम नहीं होगा। हमारे यहाँ के व्यापक जनसमूह को इसमें शरीक होना होगा। आज दुनिया में ज्ञान-प्राप्ति और उसका विनियोग एक बहुत बड़ा सहकारी प्रयास बन गया है, जिसमें दुनिया भर के लाखों नर-नारी संलग्न हैं। यूनान के प्रसिद्ध महाकाव्य 'ओडेसी' से चन्द्र-परिक्रमा तक की दास्तान एक ही मानवीय संस्कृति का नाटकीय रूपान्तर है। अगर हम विज्ञान की एक भी शाखा को लें तो देखेंगे कि उसके अन्तर्गत दुनिया के हजारों वैज्ञानिक शोध और प्रयोग में संलग्न हैं। फिर इन वैज्ञानिकों के पीछे उनसे कई गुने अधिक अन्य प्राविधिक

→जो समय पड़ने पर फट पड़े, लेकिन वह राजनीति में एक स्थायी तत्त्व नहीं बन सकता। उसके मुकाबिले में जातिवाद टिकाऊ है, क्योंकि उसमें हमारी समाजनीति और अर्थनीति, दोनों का सूक्ष्म मेल है।

भला हो या बुरा, आज की राजनीति दलों के हाथ में है, और चुनाव जातियों के। यह जानते हुए भी हम सर्वोदय आन्दोलन की ओर से कुछ मूल्य लेकर मध्यावधि चुनाव के मंच पर उतरे। हमने कुछ इनी-गिनी बातें कहीं। लोगों को अच्छी लगीं। हमारे आन्दोलन को प्रतिष्ठा मिली। कार्यकर्ताओं में एक नया आत्म विश्वास जगा। आगे के लिए रास्ता खुला। साथ ही यह भी समझ में आया कि नया साफ, ईमानदार और टिकाऊ सरकार, और नया शुद्ध और निष्पक्ष चुनाव, इन दो में से कोई भी आज की पद्धति में संभव नहीं है। पूरी पद्धति को बदले बिना गुजर नहीं है। हमें वोटर को दल और जाति की जगह एक नयी निष्ठा देनी है—ग्राम निष्ठा; नया हित देना है—ग्राम-हित; नयी व्यवस्था देनी है—ग्राम व्यवस्था; नया प्रतिनिधित्व देना है—ग्राम-प्रतिनिधित्व। वोट की दृष्टि से दल और जाति की जो निष्ठाएँ बन चुकी हैं, उनकी जगह नागरिक की दृष्टि से देश और गाँव की नयी निष्ठाएँ बनानी हैं। देश का भविष्य वोट की निष्ठाओं में नहीं, नागरिकता की निष्ठाओं में है।

ग्रामदान तो मिल रहे हैं, और तेजी के साथ मिलेंगे भी, लेकिन प्रश्न है कि गाँव गाँववालों के लिए निष्ठा और प्रेरणा कैसे बने? हमारे लिए सन् १९७२ की यही चुनौती है। कौन जाने यह भविष्य का संकेत ही हो कि जो बिहार इस वक्त सबसे अधिक दलों का दलदल देख रहा है वह शीघ्र राज्यदान देखनेवाला है। राजनैतिक अनिश्चितता और राज्यदान का विचार, दोनों को मिलाकर बिहार में एक ओर स्वायत्त ग्रामव्यवस्था और दूसरी ओर दलमुक्त राज्यव्यवस्था के लिए अनुकूल परिस्थिति बन रही है। परिस्थिति को क्रान्ति का अवसर बनाना क्रान्तिकारी का काम है, यानी हमारा काम है।●

इस अंक में

२४ फरवरी, '६६
वर्ष ३, अंक १३] [१८ पैसे

दो चेहरे

ज्यों चुनाव का हो हल्ला कुछ पड़ा कान में,
मतदाताजी मूँछ ऐंठने लगे शान में !
नेता चरण पूजते, "मालिक तू है माई,
महिमा तेरी बहुत कहाँ तक करूँ बड़ाई !
आस तुम्हारे वोट की, और न कोई आस !
वोट का 'ठप्पा' मार दो, रहूँ जनम भर दास !
रहूँ जनम भर दास, सभी सुख तुम पर वारूँ
सेवा करके लोक और परलोक सुधारूँ !
तरह-तरह के नेता लाये, रंगबिरंगे झण्डे,
'वादों' की पेटी में भर-भरकर चुनाव-हथकण्डे—
"जाति, धर्म, कुनबे की जय-जय !" बोले औघडनाथ—
"राजनीति में लोकनीति का, बालक हुआ अनाथ !"

दंगल जीत लिया नेताजी ने चुनाव का,
पकना शुरू हुआ मंत्रीपद के पुलाव का !
मतदाताजी चरण चूमकर करें मारजू—
"एक बार तो नजर फेर ले महाराजजू !
हम हैं गवईं गाँव के, दीन-हीन-निरुपाय,
संकट हमरे दूर हों, ऐसा करें उपाय !
ऐसा करें उपाय, नाथ अब आस तिहारी,
देगी वोट तुम्हें आगे भी जाति हमारी !"
नेताजी मुँह फेर उधर को, करते 'कुर्सी-जाप'—
"जाने कबतक घिघियायेगा यह जाहिल का बाप !"
'जनता-मालिक-नाटक' खतम हुआ अब भाई,
'नेता-माई-बाप' की अब तो बारी आई !

—अनिकेत

चुनाव के पहले

चुनाव के बाद

कार्टून : 'हिन्दुस्तान-टाइम्स' से साभार :

ग्रामदान की तीन मंजिलें
व्यंग्य-जिज्ञासा-हस्ताक्षर

जिन्हें ग्रामदान के विचार का परिचय तो है लेकिन तूफान में पड़ने का सौभाग्य नहीं मिला, वे अक्सर यह शंका करते हैं कि सामान्य कार्यकर्ताओं के प्रयास से ग्रामदान किस प्रकार हो सकता है ? १ दिसम्बर को बिहार भूदान-यज्ञ कमिटी के नये कार्यकर्ता सर्वोदय-विचार की प्रारम्भिक जानकारी के लिए खादीग्राम बुलाये गये। सबके सब कोरे थे, स्कूल-कालेज छोड़कर अपनी रोटी के लिए कमिटी की सेवा स्वीकार की थी। कमिटी के मंत्री श्री निर्मल भाई ने दो दिनों तक विचार समझाया। उन लोगों ने 'ग्रामदान-दर्शन' नामक श्री अनिल भाई की चित्र-प्रदर्शनी देखी, और 'गाँव का विद्रोह' नामक श्री राममूर्ति भाई की पुस्तक पढ़ी। सबके सब लोग मुंगेर-जमालपुर क्षेत्र में ग्रामदान के लिए भेजे गये। मेरे पास भी पाँच साथी श्री रामनारायण बाबू का पत्र लेकर आये। मुझे कोई उत्साह नहीं मिला। मजदूरों का यह बीहड़ क्षेत्र, इसमें ये नये साथी क्या कुछ कर पायेंगे ? मित्रों को पंचायतों के प्रमुख लोगों के नाम पत्र लिखकर भेजा। अपने मन में जिज्ञासा हुई कि एक-एक मित्रों के यहाँ जाकर देखें कि वे क्या कर रहे हैं। प्रान्त के कोने-कोने से आये हैं, कम-से-कम उन्हें कष्ट नहीं होने पाये। लेकिन जहाँ भी गया, उनकी प्रगति देखकर दंग रह गया।

रविवार की संध्या समय, एक चाय की दूकान पर एक अच्छी जमघट थी। सूट-पैंटवाले बाबू लोग जुटे थे। कोई चाय की चुस्की ले रहा था तो कोई सिगरेट का धूआँ छोड़ रहा था। उनके बीच एक कार्यकर्ता चुपचाप बैठा था। उपस्थित लोगों के बीच फोल्डर और पर्चे वितरित किये गये थे। ऊटपटांग प्रश्न हो रहे थे : 'क्यों नहीं विनोबाजी एक बार भारत-दान ही कर देते हैं ?' 'अरे भाई, ये लोग अपने पेट के लिए घूम रहे हैं,' आदि आदि। कार्यकर्ता भाई ने रामायण की एक पंक्ति बोली, 'एकु तो मद मूढ़मति कुटिल हृदय अज्ञान'। और फिर आगे बोले : भाई साहब, मैं सामान्य जानकारी का बाबा का सेवक हूँ। यदि ग्रामदान में किसी ऐसे त्याग की आवश्यकता होती, जैसा कि आप सोच रहे हैं, तो मैं आप तक आने का साहस नहीं करता। हमारा आपसे क्या परिचय ? हमारे कहने पर आप किसीको कोई चीज क्यों दे देंगे ? यदि ग्रामदान का अर्थ सारी जमीन विनोबाजी को दे देना होता तो हमारे इस निवेदन के साथ ही मुझे आप गाँव से बाहर निकलवा देते। आपके दिल में आज की परिस्थिति के प्रति निराशा है, मैं भी उससे पीड़ित हूँ। जब पढ़ना आरम्भ किया था तब बड़ा हौसला था। लेकिन पेट ने हमें पढ़ाई छोड़ने को मजबूर किया। न जाने कितनी जगह आवेदन किया ! परमात्मा की कृपा से सब जगह से मुझे निराश होना पड़ा। सोच रखा था कि पैरवी और पहुँच के बिना शायद परमात्मा भी शरण नहीं देगा। लेकिन रहा होगा कोई पूर्वजन्म का पुण्य जो संत के विचार को लेकर आप लोगों के दर्शन को आने का मौका मिला। आप सब सोचने के लिए स्वतंत्र हैं और हमारे जैसे नाचीज की ओर से कोई दबाव भी आप पर हो नहीं सकता। मैं विनम्र शब्दों में निवेदन करूँगा कि आन्दोलन का दुर्भाग्य है कि आप जैसे पढ़े-लिखे लोगों को भी इस कार्यक्रम की सही जानकारी नहीं है। आज से सिर्फ ३ दिन पहले मैंने भी दूर-दूर से इस आन्दोलन के बारे में कुछ सुन रखा था और आप जैसे प्रश्न पूछ रहे हैं, वे सारे प्रश्न हमारे भी थे। लेकिन इन दिनों मैंने जो समझा उससे मुझे बहुत राहत मिली है।'

'मित्रो, सिर्फ १० मिनट मुझे निवेदन करने का मौका दें।' उनके शब्द एक-एक व्यक्ति को छू रहे थे। सब लोग शान्त होकर सुनने लगे। उन्होंने 'फोल्डर' से ग्रामदान का विचार पढ़कर सुनाया। फिर प्रश्न शुरू हुए। कार्यकर्ता भाई ने धीरेन्द्र भाई की प्रश्नोत्तरी सम्भाली और एक-एक का उत्तर दिया। अब फिजा दूसरी ही थी। मैंने साइकिल खड़ी की। आगे बढ़ा। दो-एक सज्जन मेरे परिचित थे। मैंने उनमें से एक से पूछा, 'क्या सहदेव बाबू, अब अपने गाँव का ग्रामदान होगा ?, बीच में ही एक युवक आगे आकर बोला, बड़े अच्छे मौके पर यह विचार हमारे गाँव में आया है। अभी चुनाव की व्यूह-रचना शुरू भी नहीं हुई थी कि आपस में तू-तू मैं-मैं शुरू हो गया था। मुझे विश्वास है कि इस कार्यक्रम से हमारा गाँव टूटने से बचेगा। उस युवक ने कार्यकर्ता के हाथ से घोषणापत्र लिया और वहाँ उपस्थित एक-एक आदमी का हस्ताक्षर पूरा हो गया।

—सूर्यनारायण शर्मा

बदलते आदमी, बदलते गाँव

असम के उत्तर लखीमपुर जिले में जिलादान-अभियान चल रहा है। लखीमपुर से कुछ दूर पर माझगांव-कमलाबरिया गांव है, जिनका दस वर्ष पहले ग्रामदान हुआ था।

एक दिन शाम को मैं माझगांव की सामूहिक प्रार्थना में शरीक हुआ। प्रार्थना यहां रोज होती है। प्रार्थना के बाद हाजिरी के लिए बारी बारी से सबका नाम पुकारा जाता है, और लोग 'जय जगत्' कहकर जवाब देते हैं। फिर असमिया 'भूदान-यज्ञ' सबको पढ़कर सुनाया जाता है। उसके बाद गांव के मसलों पर चर्चा शुरू होती है। मिलकर रास्ता खोजा जाता है। संयोजिका हैं सर्वेश्वरी, शान्ति-सेवादल की नायिका। फणीप्रभा बालवाड़ी चला रही हैं। घर-घर में 'सर्वोदय-पात्र' रखवाया है। महिला समिति प्रत्येक रविवार को सामूहिक भूदानयज्ञ और पठन-पाठन करवाती है।

पैसे की कुछ बाहरी मदद मिल गयी तो गांव में एक सहकारी दूकान खोल ली गयी है। इससे बाहर के व्यापारी का शोषण बन्द हो गया है। वह अपनी दूकान उठा ले गया है। सामूहिक खेती में सब लोग श्रमदान करते हैं, जिसकी आमदनी 'ग्रामकोष' में इकट्ठा होती है। गांव के लोग अब अदालत-कचहरी में नहीं जाते, शराब पीना भी छोड़ दिया है। ग्रामदान के अध्यक्ष हैं भोलानाथ और मंत्री हैं डिबेश्वर। सभा में जिलादान की भी चर्चा हुई।

कमलाबरिया सन् १९५८ में ग्रामदान हुआ था। सरकारी कानून के अनुसार ग्रामदान की पुष्टि भी हो गयी है। ग्रामसभा के मंत्री धनिराम ने बतलाया कि गांव के चालीस परिवारों में से तीन नहीं शामिल हुए। गांव में एक परिवार के पास अधिक-से-अधिक भूमि ४० बीघे और कम-से-कम ७ बीघे है। भूमिहीन कोई नहीं है। जमीन की मालकियत ग्रामसभा की है। ग्रामकोष में भी अभी ढाई हजार रुपये शेष हैं।

'नामघर' (गांव की सार्वजनिक चौपाल, जहां कीर्तन-भजन तथा गांव की पंचायत होती है) में साप्ताहिक सामूहिक प्रार्थना होती है। कोई झगड़ा हुआ, तो आपस में बैठकर सुलझाते हैं, कचहरी नहीं जाते।

इस इलाके के चार ग्रामदानी गांवों ने मिलकर एक 'ग्रामदान-संघ' बनाया है, जिसके अध्यक्ष श्री भदेश्वर बरा से भेंट हुई। ये लोग अन्य गांवों को ग्रामदान में लाने के लिए पदयात्राएं निकालते हैं। निर्माण-कार्य करने का भी विचार है। जनकपुर गांव ऐसे आदिवासियों का है, जो पहले चाय-बगानों में मजदूर थे, बाद में ईसाई हो गये (उनका उसके पूर्व कोई धर्म नहीं था)। 'मैत्री आश्रम' की कोशिश से उन्हें बाहर से दस हजार रुपये की मदद मिली, जिनसे बैल खरीदे गये हैं। इसके भुगतान में हर साल बारह मन धान वे ग्रामसभा को लौटाते हैं। इस धान से जिनके बैल मर जाते हैं उन्हें नये बैल खरीद दिये जाते हैं। ग्रामीणों ने रात्रि-पाठशाला चलायी है, जिसके लिए मिट्टी का तेल और पुस्तकें दी जाती हैं। स्थानिक समिति की ओर से एक सहकारी दूकान चलती है।

—जगदीश भवानी

ग्रामदानी गाँव की होली

रतनपुर पक्की सड़क के किनारे का एक गांव है। गांव में लगभग २०० परिवार हैं। गांव के किनारे सड़क होने के कारण कुछ लोगों ने दूसरी जगह से आकर सड़क के किनारे की जमीन पर दूकानें बनवा ली हैं। रतनपुर में सभी प्रमुख जातियों के लोग रहते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ कुनबी, अहीर, पासी, नाई, कानू, कहार और चमार के साथ-साथ रतनपुर में कुछ जुलाहे और सड़क के किनारे कुछ तेली, तमोली और पंजाबी परिवार हैं।

रतनपुर के ग्रामीणों ने तीन महीने पहले अपने गांव के ग्रामदान की घोषणा की। ग्रामदान के घोषणापत्र पर जब दस्तखत हो रहे थे तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ, अहीर और कुनबी परिवारों में से कुछ लोगों ने हस्ताक्षर करने में आनाकानी की। हस्ताक्षर न करनेवालों ने कहा था कि जब हम देख लेंगे कि ग्रामदान से क्या फायदा होता है तब ग्रामदान में शामिल होंगे।

ग्रामदान की घोषणा होने के बाद तीन महीने बीत चुके अभी तक रतनपुर में ग्रामदान की घोषणा के बाद न कोई सभा बुलायी गयी थी और न कोई दूसरा काम हुआ था। बीच में मध्यावधि चुनाव आ गया, इसलिए गांव के विचारशील लोगों ने सोचा कि चुनाव की चहल-पहल बीत जाय तो ग्रामदान के आगे के काम के बारे में सोचा जायेगा। मध्यावधि चुनाव भी जब हो गया तो गांव के बुजुर्ग श्री शंभुनाथ मिश्र ने सोचा कि अब ग्रामदान की पुष्टि के बारे में कुछ होना चाहिए। उन्होंने ग्रामदान के घोषणा-पत्र पर सबसे पहला हस्ताक्षर किया था। उनके बाद श्री रामदास सिंह, श्री रामप्रसाद, श्री रामनाथ

यादव, श्री रामधनी, श्री अलियार और जद्दू राम ने हस्ताक्षर किये थे। इसके बाद तो जैसे हस्ताक्षर करनेवालों का तांता लग गया।

श्री शम्भुनाथ मिश्र ने अपने बाद हस्ताक्षर करनेवाले छहों व्यक्तियों को अपने बैठके में बुलवाया। निश्चित समय पर सब लोग आ गये। श्री शंभुनाथ मिश्र ने कहा—"ग्रामदान की घोषणा पर दस्तखत किये कई महीने हो गये। उसके बाद हम लोग अपने-अपने धंधे में लगे रहे। इसी बीच मध्यावधि चुनाव आया और वह भी बीत गया। अब हमें ग्रामदान के अगले कदम के बारे में सोचना है।"

श्री रामदास सिंह ने कहा—"बाबा! आपने हमें बुलाकर बड़ा जरूरी काम किया है। ग्रामदान की घोषणा करने के बाद अभी तक हमने सचमुच कुछ किया नहीं। जिन लोगों ने ग्रामदान घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किया, उन्होंने कहा था कि ग्रामदान का काम देखकर फिर शामिल होंगे। मध्यावधि चुनाव बीता तो अब होली आनेवाली है। क्यों न होली बीत जाने पर इसके बारे में विचार करें?"

श्री रामप्रसाद—"मेरा तो विचार है कि इस तरह टालते रहने से कुछ नहीं हो सकेगा। गाँव की जिन्दगी में कभी चैन लेने की नौबत नहीं आती। जो कुछ करना-धरना हो वह तय करके उसका पालन करना चाहिए। कहा भी है कि काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।"

"मुंशीजी, आप रंगीन तबीयत के चतुर आदमी हैं। आप सोचते हैं कि फगुआ के मुहूर्त में ग्रामदान का जोगीरा गली-गली और खोर-खोर में गाया जाय।" "मुंशीजी के सुर में सुर मिलाने के लिए भला कौन राजी नहीं होगा! मुझे ढोलक बजाना नहीं आता, लेकिन मजीरा तो बजाऊँगा ही।"—श्री रामनाथ यादव ने कहा।

श्री रामधनी, श्री अलीयार और जद्दू राम ने एकसाथ सिर हिलाकर कहा—"रामनाथ भैया ने सवा लाख की बात कही है। ग्रामदान के बाद हमारी यह पहली होली आ रही है। हमें होली का सा रंग जमाना चाहिए कि सबको गोकुल की याद आने लगे और देखनेवाले देखते ही रह जायँ।"

"ग्रामदान का घोषणा करके हम लोगों ने यह संकल्प प्रकट किया है कि हम गाँव को एक परिवार मानकर गाँव के हर व्यक्ति को अपने परिवार का अङ्ग बनायेंगे। होली एक ऐसा अनोखा त्योहार है कि यह हमें सबसे मिलाता है और सबसे सबको आनन्द और उल्लास प्राप्त कराता है। यही एक ऐसा अजब त्योहार है जो जात-पाँत, स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े, धनवान-गरीब और ऊँच-नीच का भेद-भाव मिटाकर सबको एक-दूसरे का संगी बना देता है"—यह कहते हुए पंडित शंभुनाथ मिश्र जैसे ग्राम-परिवार के प्यार में बहने लगे।

श्री रामदास सिंह ने उन्हें जैसे सम्भालते हुए कहा—"बाबा, आपने तो साठा में पाठा होनेवाली कहावत सही साबित कर दिया। आपका कहना बिलकुल ठीक है। हमें होली ऐसे ढङ्ग से मनाने का तरीका सोचना चाहिए कि गाँव का हरेक आदमी उसमें आनन्द पा सके और ग्राम-परिवार की भावना बढ़े।"

श्री अलीयार ने कहा—"अपनी तरफ से मैं सिर्फ एक अर्ज करना चाहता हूँ कि होली के मौके पर जो फूहड़ किस्म की गालियाँ और भद्दे जोगीरा गाये जाते हैं उनकी जगह भगवान रामचन्द्र और श्रीकृष्णजी से सम्बन्ध रखनेवाले अच्छे जोगीरा ही गाये जायँ, ताकि गाँव के बच्चों और लड़कों को इस त्योहार से अच्छी तालीम मिल सके।"

श्री रामधनी—"अलीयार भाई ने तो कमाल की बात कही है! मैं इसमें इतना और जोड़ना चाहता हूँ कि इस बार हम-लोग होली-सम्बन्धी सामान जैसे—रंग, अबीर, मेवा, पान, इलायची, सौंफ आदि एकसाथ चंदा करके मँगा लें और फिर पूरे गाँव के लोगों के लिए उसे खर्च करें। इससे गरीब और अमीर, सबको इस त्योहार का भरपूर आनन्द मिल सकेगा।"

जद्दू राम ने गद्गद् होकर कहा—"भगवान करें कि ग्रामदान देशभर में जल्दी फैल जाये, ताकि गाँव के गरीब दुखिया की जिन्दगी में भी खुशियाली आ सके। बस एक बात मैं जोर देकर कहना चाहता हूँ कि होली के हुड़दंग में किसीके साथ जोर-ज्यादती नहीं होनी चाहिए। गन्दा कीचड़, कालिख या ऐसी ही दूसरी चीजें चेहरे पर पोतने या देह पर रगड़ने का तरीका ठीक नहीं है। इससे किसीको आनन्द मिलता है और किसीको कष्ट पहुँचता है। यह ठीक नहीं है।"

श्री रामप्रसाद—"आज की सभा बुलाकर पंडितजी ने बड़ा अच्छा काम किया। होली के सामूहिक फण्ड का सुझाव बहुत ठीक है। मैं अपनी ओर से इसके लिए ५ रु० देता हूँ। श्री अलीयार के इस सुझाव का भी मैं स्वागत करता हूँ कि गाली-गलौजवाले जोगीरे के बदले राम और कृष्णजी से सम्बन्धित फाग ही गाये जायँ। ब्रजभाषा के कई कवियों की भी अच्छी-अच्छी रचनाएँ चुनकर गाँव के बच्चों को बतायी जायँ तो इससे उनका संस्कार बनेगा और ज्ञान भी बढ़ेगा।"•

'तुम भी सही कर दो'

गांव में हमारे पहुँचते ही लोगों में कुतूहल पैदा होता है। एक-दूसरे से लोग पूछने लगते हैं—"क्यों आयी हैं बहनें ?" दूसरा आदमी जवाब देता है—"देश को, गांव को, हमको, सुधारने के लिए आयी हैं।" विचार सुनने के पहले ही समझ जाते हैं कि ये अमीर-गरीब दोनों को प्रेम से जीने का रास्ता बताने आयी हैं, सब एक सुर में कैसे रहें यही समझाने आयी हैं।

"देश की, दुनिया की खबरें यहां के कोने-कोने में पड़ी हुई बहनों को कहां मालूम ? बहनों को न तो दुनिया का ज्ञान है, न देश का हाल मालूम है। लेकिन गांव का हाल तो सबको मालूम है। और इसीलिए चाहती हैं—गांव से गरीबी मिट जाय, सुख-शान्ति से गांव में लोग निवास कर सकें।

सत्ता और सम्पत्ति को लेकर राष्ट्र-राष्ट्र में झगड़ा, गांव-गांव में झगड़ा और उसने घर को भी छोड़ा नहीं। एक गांव में एक धोबिन जो ६० वर्ष की होगी, रोती हुई हमारे पास आयी, कहने लगी—"मेरी बहुरिया मुझे मानती नहीं। वह मेरा घर है, लेकिन मुझे पूछे बगैर वह सामान लेती है। मैं उसकी सास हूं, इसलिए उसे मेरी बात माननी चाहिए कि नहीं ? वह कहती है, मेरा भी तो यह घर है, इसलिए मैं तुमको क्यों पूछूं ? क्यों मानूं ?" बेचारी धोबिन को समझ में नहीं आ रहा था कि उसका यह झगड़ा क्यों है ? जब उसे समझाया कि तुम्हारा झगड़ा वास्तव में बहू के साथ नहीं है, झगड़े का कारण है अधिकार और सम्पत्ति। धोबिन को बात समझने में देर न लगी, वह कहने लगी—"तब तो कल ही मैं सब कुछ बहुरिया को सौंप दूंगी। सचमुच, इतने से हमारा झगड़ा खतम हो जायेगा।"

× × × ×

गांव में प्रेम, शान्ति तथा सुख बढ़ाने के लिए क्या करना होगा, इस पर चर्चा चल रही थी। भूमि की व्यक्तिगत मालकियत छोड़ने से संगठन होगा, दुःख बंटेगा और सुख भी बढ़ेगा। लोग हमारी बातें बड़ी ध्यान से सुन रहे थे। उनके चेहरे के भाव बता रहे थे कि वे हमारी बातें समझ रहे हैं। हमारे साथी के पास ग्रामदान का फार्म था। लोग हस्ताक्षर करने लगे। इतने में मैंने देखा। एक बहन अपने पति को खींच रही थी, वह बोल रही थी—"चलो, तुम भी सही कर दो, मालकियत छोड़ दो, सब लोग सही कर रहे हैं, तुम क्यों दूर हो ?" दूसरे कुछ लोग बोल रहे थे—"हम गरीब अगर गरीबों की मदद करने लग जायेंगे तो दुःख मिटेगा ही।"

× × ×

सरगुजा की आदिवासी बहन राजमोहिनी देवी, जिन्होंने यहां के आदिवासी भाई-बहनों के दिल में अलख जगाया, उनके आश्रम में हमारा पड़ाव था। पत्थरों के एक छोटे-से टीले पर उनका आश्रम है, छोटी-छोटी दस-पांच झोपड़ियां, जिनमें मिलने वाले भक्तगण ठहरते हैं। ६०-६५ साल उम्र की यह बहन बारिश के दिनों में खेती करके अपनी आवश्यक चीजें खुद पैदा करती है और बाकी समय आदिवासी भाई-बहनों को शिक्षण देती हुई घूमती हैं। जो आदिवासी बहन पति से कभी अलग होना नहीं चाहती है, वैसी बहन ने पति को छोड़ा, बाल-बच्चों को छोड़ा, वानप्रस्थाश्रम को स्वीकार करके समाज-सेवा में लगी है। एक क्षण में उसके जीवन में क्रान्ति हुई और आगे वही क्रान्तिकारी सामाजिक क्रान्ति के लिए दर-दर घूम रही है।

× × ×

एक गांव में कुएं के पास कुछ बहनें मिलीं। कोई उबाले हुए साल के बीज धोने को आयी थी और कोई पीपल के पत्ते उबालकर लायी थी। उनसे पूछने पर पता चला कि दोपहर को वही आहार वे लोग करेंगे। फिर पूछा, शाम को क्या खाओगे ? "शाम को क्या खायेंगे, हमें ही मालूम नहीं ! साल का बीज भी ज्यादा मिलता नहीं।" जिनका पेट दोपहर को तो जैसे-तैसे भरेगा, लेकिन फिर शाम के लिए उनके सामने वही सवाल खड़ा है, ऐसे लोगों को भी अपनी हालत बताते समय हमने उनकी रोती सूरत नहीं देखी, अपनी गरीबी का वर्णन और उसके साथ-साथ हंसी, दोनों का मेल बढ़ाना भौतिकवाद के पीछे दौड़नेवालों को मुश्किल जायेगा। लेकिन यहां की भूमि में जो अध्यात्म पड़ा हुआ है, उसी के कारण वे दुःख को भी हंसकर ही झेलते हैं। —पदमा

बैंगन की कीड़ों से रक्षा

कीड़ों से बहुत अधिक हानि होने की वजह से कभी-कभी बैंगन की पैदावार ५० प्रतिशत तक कम हो जाती है। पैदावार के अलावा इसके गुणों में भी कमी पायी गयी है। आधुनिक कीटनाशक दवाओं के प्रयोग से इसकी पैदावार में काफी वृद्धि हो सकती है। जोतवानी तथा सरूप प्रकाश के प्रयोगों के आधार पर सेविन नामक कीट-नाशक दवा के प्रयोग से २,७८८ किलो० बैंगन प्रति हेक्टेयर अधिक पैदा हुआ।

बैंगन की फसल को नुकसान पहुँचानेवाले कीड़ों के नाम इस प्रकार हैं :

(१) बैंगन की छोटी पंखवाली मक्खी, (२) कपास का फुदका, (३) बैंगन का माहू कीट, (४) बैंगन का फल व शाखा-छेदक, (५) बैंगन का तना-छेदक, (६) बैंगन का इपीलेचना भृंग, और (७) बैंगन का उड़नेवाला भृंग।

इन कोड़ों में सबसे अधिक नुक्सान फल व शाखा-छेदक कीड़ों से होता है। इपीलेचना जाति के कीडे, कपास का फुदका तथा बैंगन का माहू कीट भी फसल को काफी हानि पहुँचाते हैं।

कुछ मुख्य कीड़ों की पहचान तथा उनके जीवन-चक्र का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है :—

बैंगन का फल व शाखा-छेदक कीड़ा : इस कीड़े की सूण्डी (गिडार) पौधों की मुख्य शाखा में छेद करके उसे काट देती है। इससे पौधे की मुख्य शाखा सूख जाती है तथा पौधे की बढ़वार रुक जाती है। जब पौधों पर फल लगते हैं तो यह फलों में छेद करके अन्दर घुस जाती है। अन्दर घुसकर यह फल के गूदे को खाती है, जिससे फल सड़ जाते हैं।

वयस्क सूण्डी की लम्बाई करीब १५ मिलीमीटर होती है। इसका रंग गुलाबी होता है। पतंग के पंख २० मिलीमीटर से कुछ अधिक लम्बे होते हैं। यह भूरे रंग का होता है। दोनों जोड़ी पंख सफेद होते हैं और अगले पंखों पर गुलाबी धारियाँ होती हैं।

जीवन-चक्र : मादा कोड़ा (मौथ) पत्ती को निचली सतह पर या फल पर अंडे देती है। अंडे फूटने पर उससे सूण्डी निकलती है। सूण्डी फल या शाखा के अन्दर घुस जाती है तथा बाद में प्यूपा में बदल जाती है। इससे पतंगा निकलता है।

इपीलैचना जाति के कीड़े : पहचान : यह कीड़ा छोटा व गोल आकृति का होता है। इसका रंग लाल होता है तथा ऊपर काले गोल धब्बे होते हैं। ये केवल पत्ती या कभी-कभी फल भी खाते हैं। ये कीड़े पत्ती में छेद नहीं करते।

जीवन-चक्र : मादा कीड़ा पत्तियों की निचली सतह पर समूह में अंडे देती है। अंडे पीले रंग के होते हैं, जिनके फूटने पर पीले रंग की सूण्डी निकलती हैं। प्यूपा पत्ती पर पलता है। इसके बाद में प्रौढ कीड़े बनते हैं। जुलाई से अक्तूबर तक इसका आक्रमण अधिक होता है।

बैंगन का उड़नेवाला भृंग : इसका वयस्क कीड़ा चमकीले नीले रंग का होता है। यह पत्ती को जगह-जगह काटकर उसमें छेद बना देता है।

बैंगन का माहू कीट : ये कीड़े झुण्डों में बैंगन की पत्ती की निचली सतह पर पाये जाते हैं। इनका आकार सरसों के माहू कीड़े से बड़ा तथा रंग कुछ काला-सा होता है। ये पत्ती का रस चूसते हैं।

कपास का फुदका : ये कीड़े हल्के हरे रंग के होते हैं। सुबह के समय ये शान्त पड़े रहते हैं। इन्हें पत्तियों की निचली सतह पर देखा जा सकता है।

बैंगन का तना छेदक कीड़ा : यह कीड़ा भूरे रंग का होता है। सूण्डी केवल तने में छेद बनाकर उसे अन्दर ही खाती रहती है।

रोकथाम

(१) गोल किस्म की अपेक्षा इन कीड़ों का बैंगन की पूसा पर्पल लौंग किस्म पर आक्रमण होता है। इसलिए इन कीड़ों से बचने के लिए पूसा पर्पल लौंग किस्म ही उगानी चाहिए।

(२) नाइट्रोजनधारी उर्वरकों को कम मात्रा में तथा फास्फोरस व पोटाशधारी उर्वरक को अधिक मात्रा में देना चाहिए।

(३) आलू तथा बैंगन का फसल-चक्र न अपनाया जाय।

(४) जिनमें रोग लगे हों, ऐसी शाखाओं तथा फलों को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

(५) ०.२५ प्रतिशत की शक्ति की सेविन नामक कीट-नाशक दवा का पानी में घोल तैयार कर पौधों पर छिड़काव करना चाहिए। इसका पहला छिड़काव पौध लगाने के करीब ८ दिन बाद, दूसरा छिड़काव फल आने के समय तथा तीसरा छिड़काव दूसरे छिड़काव के करीब १७ दिन बाद करना चाहिए। यह कीटनाशक दवा बैंगन के सभी कीड़ों को नष्ट करने में बहुत→

चुनाव में एकता पराजित हो गयी

हरिकिशुन का नारदमोह खतम हो गया। ग्रामसभा के अध्यक्ष की बात को लेकर गाँव में जो तनातनी पैदा हो रही थी, वह भी समाप्त हो गयी। सबने कहा, "भगवान पर भरोसा रखकर हमें एक-दूसरे के हाथ में हाथ मिलाकर अब आगे बढ़ना है। बलिराम पांडे को सबका दिल जोड़कर एकसाथ ले चलने में अगुवाई करनी है।" बलिराम पांडे को हारकर उस दिन जब सबकी बात माननी ही पड़ी, और ग्रामसभा का अध्यक्ष बनना पड़ा, तो अंत में सबके सामने हाथ जोड़कर बोले, "पंचों के रूप में आप लोग हमारे 'परमेशर' हैं। आपने मुझ पर एक साथ भरोसा करके मेरे कमजोर कंधे पर एक बहुत भारी बोझ लाद दिया है। अब इस बोझ को सम्भालकर ले चलने की ताकत भी आप ही लोगों को देनी है। गाँव के छोटे-बड़े सबने मुझे अपना माना है तो भाइयों, मैं भी आप लोगों के सामने यानी 'परमेशर' के दरबार में यह संकल्प करता हूँ कि गैर किसीको नहीं समझूँगा। अबतक एक छोटे परिवार का सदस्य था, अपना दुख-सुख अपने घर के आंगन तक ही सिमटा था, आज से पूरा गाँव अपने घर का आंगन और गाँव के सभी लोग अपने परिवार के।...लेकिन आदमी हूँ। आदमी से भूल होती ही है। इसीलिए मैं आप सबसे इसी समय प्रार्थना कर देना चाहता हूँ कि अगर मुझसे कोई गलती हो जाय तो अपने परिवार के सदस्य की तरह ही मुझे समय पर चेतावनी देने, और जरूरत पड़े तो डाँटने-डपटने में भी आप लोग हिचकियेगा नहीं, तभी यह जिम्मेदारी मैं निभा पाऊंगा।"

बलिराम पांडे की यह बात सबके दिल को छू गयी थी। गाँव में एकता की ऐसी भावना भर गयी थी जैसी कि पहले कभी किसीने कल्पना भी नहीं की थी। सचमुच गाँव के लोग यह महसूस करने लगे थे कि वे एक बड़े परिवार के सदस्य हैं। निजी परिवारों में भी पहले से अधिक प्रेमभाव पैदा हो गया था। पूरे गाँव की हवा में ही पारिवारिकता का प्यार बस गया था।

लेकिन सिर मुड़ाते ही ओले पड़े। इस एकता और पारिवारिकता के धागे को तोड़ने और उस धागे से सबको उलझाने का जाल बुनने के लिए आ गया यह मध्यावधि चुनाव।

बलिराम पांडे ने इस चुनाव के खतरे से गाँव की एकता और पारिवारिकता को बचाने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया, लेकिन गाँव को होश तब हुआ जब 'चिड़िया चुग गयी खेत!'

श्रीपालपुर के रामधनी बाबू और बलिराम पांडे ने कोशिश करके एक दिन क्षेत्र के सभी उम्मीदवारों की एक सभा बुलायी। सबके लिए एक बड़ा-सा मंच बनाया गया। इलाके भर में प्रचार किया गया कि सभी उम्मीदवार एक ही सभा में एक ही मंच से मतदाता-जनता को अपनी बातें बतायेंगे। जनता ने यह तमाशा तो कभी देखा नहीं था, इसलिए खूब भीड़ लगी। सबके लिए १५-१५ मिनट का समय तय किया गया। पर्ची डालकर कौन किसके बाद बोलेगा, यह सिलसिला तय हुआ। और लगभग तीन घंटे तक चुनाव का यह मजेदार नाटक चलता रहा। जनता को खूब मजा आया। सभा के अंत में रामधनी बाबू ने उम्मीदवारों से हाथ जोड़कर निवेदन किया, "अब इस इलाके की जनता ने आप सबकी बातें सुन लीं, जिसे वोट देना चाहेगी, देगी, अब भगवान के नाम पर कलह की आग लगाने-वाले चुनाव के हथकण्डे आप लोग इन गाँवों में आजमाने की कृपा नहीं कीजिएगा, यही हम लोगों का आप सबसे निवेदन है। चुनाव के बाद तो आप हमारी भलाई का काम करेंगे ही, लेकिन इतनी भलाई तो चुनाव के पहले भी कर सकते हैं।" रामधनी बाबू की बात पर सबने ताली बजायी और सभा समाप्त हो गयी।

करीब एक सप्ताह तक तो ऐसा लगा कि सचमुच इस बार का चुनाव बहुत सभ्य ढंग से बिना लड़ाई-झगड़े के निपट

→कारगर साबित हुई है। एक हैक्टेयर में कितनी मात्रा में यह दवा छिड़की जाय यह पौधों को बढ़वार पर निर्भर करता है। यह मात्रा करीब ४०० से ६०० लिटर तक होनी चाहिए। पहले छिड़काव में दवा की मात्रा कम तथा तीसरे छिड़काव में ज्यादा होनी चाहिए।

अगर सेविन नामक कीटनाशक दवा प्राप्त न हो सके तो गामा बी० एच० सी० तथा डी० डी० टी० (१ : १ में) के .०२ प्रतिशत की शक्ति के घोल का छिड़काव ऊपर बतायी गयी सेविन कीटनाशक दवा की घोल की तरह तीन बार करना चाहिए।

छिड़काव किये गये फलों को बाजार में भेजने से पहले धो लेना चाहिए। कारण, सभी कीटनाशक दवाएं मनुष्य के लिए जहरीली होती हैं। वैसे यह ध्यान रखना चाहिए कि छिड़काव करने के पहले फल तोड़ दिये जायें।

("खेती" नवम्बर '६८ से साभार)

—राजेन्द्र सिंह

जायगा। लेकिन जब चुनाव १० दिन रह गया तो इस आशा पर पानी फिर गया। उम्मीदवारों के सामने समस्या थी कि इन गाँवों का 'वोट' किसको मिलेगा, यह तो पता ही नहीं चलता। और इन्हीं गाँवों का वोट निर्णायक साबित हो रहा था। इसलिए यह अंदाज लगाने की कोशिशें शुरू हुईं।

कहते हैं कि कलियुग राजा नल के नाखून में से घुस गया था। चुनाव का संघर्ष इस 'अंदाज' लगाने की कोशिश में से गाँव में पैठ गया।

पहले गाँव में पार्टियों के झण्डे लोगों के दरवाजे पर एक-एक कर लहराने लगे। 'अमुक' के यहाँ 'अमुक' पार्टी का झण्डा लग गया तो हम क्यों पीछे रहें ?...हम भी...और इस प्रकार खींचतान शुरू हुई। पहले तो रिश्ते-नाते जोड़कर वोट माँगे जाने लगे। फिर रिश्ते-नाते तोड़कर वोट माँगने का दौर चला। कूटनीति की पुरानी चालें आजमायी गयीं। साम, दाम, दण्ड, भेद, सब तरीके आजमाये गये। जाति-बिरादरी की जय बोली गयी। कोटा, परमिट, ठीका आदि के सुनहले सपने दिखाये गये। पूरा गाँव अखाड़ा बन गया। 'एकता' और 'पारिवारिकता' गायब हो गयी, सबके सब एक-दूसरे के दुश्मन हो गये।

...और यह सब कर गुजरने के बाद चुनाव-दंगल पूरा हुआ। चुनाव में खड़े हार जानेवाले उम्मीदवारों के दिल बैठ गये। आँखों से गंगा-यमुना की धारा बहने लगी। जो चुन लिये गये, उनकी जय-जयकार से आसमान गूँज उठा।

इस दंगल में, सबसे बढ़चढ़कर भाग लिया हरिकिशुन ने। शुरुआत भी उसने ही की थी। अफवाह थी कि इलाके के सबसे बड़े आदमी—जो 'अमुक दल' से चुनाव लड़ रहे हैं—ने हरिकिशुन को पूरे पाँच बीघे का पट्टा लिख देने का वादा किया है। बात भी सच थी। इलाके भर के लोग यह जानते थे कि हरिकिशुन बड़े काम का 'बिकाऊ' आदमी है। और इस बार गाँव में 'एकता' हो जाने के कारण उसकी दर बढ़ गयी है। इसलिए इसे कोई 'बड़ा' आदमी ही इस बार खरीद सकेगा। हरिकिशुन ने भी सौदा पटाने में भरपूर ऐंठने की कोशिश की। ५ बीघे की शर्त तो जीत जाने पर थी।...लेकिन इस बार हरिकिशुन धोखा खा गया। चुन जाने के बाद 'नेताजी' का दरवाजा उसके लिए बन्द हो गया था।

'गांधी मर गया'

हम सबको मृत्यु का बड़ा भय लगता है। लेकिन जीवन और मरण, दोनों ईश्वर की बड़ी देन है। दिन और रात, दोनों में बड़ा आनन्द है। दिन में सूरज दीखता है, तो रात में चाँद और असंख्य तारों की शोभा दीखती हैं। अमावस्या और पूर्णिमा दोनों की वन्दना करनी चाहिए। छोटा बच्चा माँ के दोनों स्तनों से भरपेट दूध पीता है। जीवन और मरण, जगत्-माता के दो स्तन ही हैं। दोनों में आनन्द है।

महात्माजी मरण को भी ईश्वर की कृपा मानते थे। वे कई बार अपने उपवास के समय कहा करते थे कि 'मर जाऊँ तो भी ईश्वर की कृपा ही मानिए।' सन् १९१६-१७ की बात है। बिहार के चम्पारण जिले में महात्माजी किसानों का आन्दोलन चला रहे थे। गोरे जमींदार सरकार की मदद से भारी जुल्म करते थे। एक बार एक जवान किसान लाठी की मार से सिर फूट जाने से मर गया। उसकी माँ बूढ़ी थी। उसका वह इकलौता बेटा था। उस माँ के दुःख की सीमा नहीं थी। वह महात्माजी के पास आकर बोली: 'मेरा इकलौता बच्चा चला गया। उसे किसी तरह जिला दीजिए।' गांधीजी क्या कर सकते थे? गम्भीर होकर बोले: 'माँ, मैं तुम्हारे बच्चे को कैसे जीवित करूँ? मेरी ऐसी शक्ति कहाँ? और वैसा करना ठीक भी नहीं है। मैं उसके बदले में तुम्हें दूसरा बच्चा हूँ?'

यह कहकर महात्माजी ने उस बूढ़ी माँ के काँपते हाथ अपने सिर पर रख लिये और आँसू सम्भालते हुए उस माता से कहा: 'लो, लाठी-चार्ज में गांधी मर गया। तुम्हारा लड़का जिन्दा है और वह तुम्हारे सामने खड़ा है, तुम्हारा आशीर्वाद माँग रहा है।'

उस माँ के आँसू रोके न रुकते थे। उसने बापू को अपने पास खींच लिया। उनका सिर अपनी गोद में लेकर 'मेरा बापू' बोलने लगी। उसने उन्हें प्रेमभरा आशीर्वाद दिया कि 'सौ साल जियो!'

—साने गुरुजी

'गाँव की बात' : वार्षिक चन्दा : चार रुपये, एक प्रति : अठारह पैसे
सम्पादक : राममूर्ति : सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१

तथा अन्यान्य कर्मों कार्य संलग्न हैं, जिन्हें दूसरे ढंग की ऊँची योग्यता हासिल है। आधुनिक कृषि तथा उद्योग के क्षेत्र में काम करनेवाले कार्यकर्ताओं को आज कहीं ज्यादा शैक्षिक योग्यता और समझ की आवश्यकता पड़ती है। उत्पादकता और विज्ञान के बीच में सम्पर्क बना रहने पर दोनों का विकास होता है। विज्ञान का विकास शीशमहल जैसे किसी ऐसे स्थान में नहीं होता, जो दैनिक जीवन की यथार्थताओं से बिलकुल अलग हो, बल्कि वह आम जनता की सामान्य शिक्षा और संस्कृति के निरन्तर बढ़ते हुए स्तर से विकास की गति प्राप्त करता है।

लेकिन हमेशा से ऐसा ही नहीं होता आया है। धन-दौलत के मामले में जैसे आज की दुनिया में धनवालों और निर्धनों की दो अलग-अलग श्रेणियाँ हैं, उसी तरह एक ऐसा समय भी था, जब कि कुछ लोगों को ज्ञान प्राप्त करने का मौका था और कुछ लोगों को नहीं था। हमारे देश में ब्राह्मण लोगों को हर प्रकार का ज्ञान हासिल करने का अधिकार प्राप्त था और शूद्रों को ज्ञान-प्राप्ति की मनाही थी। यह स्थिति कई कारणों से थी और उनमें से प्रमुख कारण यह था कि उस समय की प्राद्यो-गिकी और उत्पादकता का स्तर नीचा था। दुनिया भर के मुल्कों में यही हालत थी, लेकिन भारत में ब्राह्मणों की विचारधारा के प्रभाव ने इसे एक मजबूत सामाजिक व्यवस्था का रूप दे दिया।

जब दुनिया के बुलन्द दिमागवालों ने समाज में मौजूद अन्याय और विषमता के विरुद्ध आवाज शुरू की थी उनमें से कुछ लोगों ने एक छोटे से समूह द्वारा ज्ञान प्राप्ति के एकाधिकार को अपने स्वार्थ के लिए हथि-याने के खिलाफ भी विद्रोह किया। उनमें से टाल्स्टाय जैसे लोगों ने समस्त संस्कृति और शिक्षा को एक ऐसी आडम्बरपूर्ण विलास की वस्तु माना, जिसका उत्तम गुणवाले लोगों को परित्याग करना चाहिए। वे लोग मानते थे कि आम जनता के अन्दर जो देहाती या सहज चेतना होती है वह उन्हें भलाई के सही रास्ते पर ले जाने के लिए पर्याप्त है। कैनेडा में कुछ लोग रहते हैं, जिन्हें "दोखो-बोर" कहा जाता है। वे लोग जारशाही के

१०-१५ साल पहले कोई यह सपना भी नहीं देखता था कि चन्द्र परिक्रमा इतनी जल्दी सम्भव होगी। लेकिन आज यह बात एक असलियत का रूप ले चुकी है। नया समाज बनाने के साधन हमारी पहुँच के अंदर हैं, बशर्ते हम उन तक पहुँचने की फिक्र करें।

जमाने में रूस से भागकर कैनेडा में बस गये थे। इन लोगों का अहिंसा में खासा अच्छा विश्वास है। वे अहिंसा धर्म और नीति की दृष्टि से सम्पूर्ण शिक्षा को गलत मानते हुए उससे दूर रहते हैं।

हमारे देश में ब्राह्मणों के जीवन दर्शन का अभी भी भारी प्रभाव है और ऊँची शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा एक छोटे-से वर्ग को उपलब्ध है। जो लोग ऊँची स्थिति में पहुँच गये हैं वे सोचते हैं कि शिक्षा के व्यापक विस्तार-प्रसार के कारण ही हमारी राष्ट्रीय व्याधियाँ—जैसे बेकारी, छात्र-असंतोष और नक्सालवादी आदि पैदा हुई हैं। वे महसूस करते हैं कि यदि शिक्षा-प्राप्ति के अवसर सीमित कर दिये जायें तो ये व्याधियाँ दूर हो सकती हैं। ऐसे लोगों का सामान्य-जन की क्षमता में भी भरोसा नहीं है। वे मानते हैं कि ऊँचे तबके के मुट्ठी भर लोग ही देश के भाग्य निर्णायक हो सकते हैं। इसीलिए हमारी आर्थिक सयोजना और प्रशासन के दायरे में हर तरह से यह कोशिश की जाती है कि आम जनता किसी मामले में पहल न ले पाये और पहल लेने की शक्ति नौकरशाही के हाथों में केन्द्रित होती जाय। इस रुख के प्रतिक्रिया-स्वरूप एक वर्ग सामान्यजन की सामान्य बुद्धि को ही आदर्श मानता है।

दरअसल, समस्या इतनी आसान नहीं है। वस्तुतः व्यक्ति और समुदाय को इस बात की स्वतंत्रता रहनी चाहिए कि वे अपनी योग्यता और ज्ञान के अनुसार अपने जीवन की व्यवस्था कर सकें। और किसीको यह ताकत नहीं होनी चाहिए कि वह उन्हें धक्का देकर आगे ले जाय। व्यक्ति और समुदाय को यह अधिकार उपलब्ध होना चाहिए, यह सर्वोदय का आधारभूत और बुनियादी तत्त्व है। लेकिन इस अधिकार का भरपूर लाभ तभी समय उठाया जा सकता है, जब कि मानव-समाज के पास जो भी नया-से-नया ज्ञान और दक्षता है उसकी मदद ली जाय। इसका यह अर्थ होता है कि सामान्य जन और ग्राम-

दानी गाँवों के ग्रामीण विश्व-ज्ञान के भण्डार को खोलनेवाली कुंजी को प्राप्त करने में लग जायँ।

औसत आदमी के भीतर अनेक सहज स्वाभाविक प्रेरणाएँ होती हैं, जो वांछनीय और उदात्त हैं। लेकिन एक अस्वस्थ, अन्याय-पूर्ण और भ्रष्ट समाज-व्यवस्था योजनापूर्वक उन प्रेरणाओं की उपेक्षा करती है, तोड़ती-मरोड़ती है या दबाने का प्रयत्न करती है। लोगों को समझ बूझकर इस समाज-व्यवस्था द्वारा लादी गयी गुलामी और तोड़-मरोड़ की पद्धति से अपनी आध्यात्मिक प्रेरणाओं को मुक्त करना होगा। लोगों को अपनी प्रेरणा से काम करने की क्षमता पुनः प्राप्त करनी होगी। इसके साथ-साथ उस प्रेरणा को ज्ञानपूर्वक और अधिक वेगवान और सूक्ष्म बनाना होगा।

सर्वोदय के अनुरूप समाज व्यवस्था कायम करना अपने आप में एक भारी काम है। हमें इसके बारे में कोई गलत ख्याल नहीं होना चाहिए। ग्रामदान इस ओर उठाया गया सिर्फ पहला कदम है। अपनी मंजिल तक पहुँचने के लिए हमें अभी कई कदम आगे बढ़ाना होगा। लेकिन इस स्थिति से किसीको निराश नहीं होना है। १०-१५ साल पहले कोई यह सपना भी नहीं देखता था कि चन्द्र-परिक्रमा इतनी जल्दी सम्भव होगी। लेकिन आज यह बात एक असलियत का रूप ले चुकी है। एक नया समाज बनाने के साधन हमारी पहुँच के अन्दर हैं, बशर्ते हम उन तक पहुँचने की फिक्र करें। हमें इसके लिए आगे आना चाहिए। विनोबाजी बहुत वर्षों से ज्ञान के महत्त्व पर जोर देते आ रहे हैं और इस बात पर भी कि हमारे देश के ६ लाख गाँवों तक यह ज्ञान पहुँचना चाहिए। अब तक इस मामले में हमने बहुत थोड़ा काम किया है। अब समय आ गया है कि चन्द्रलोक की विजय से प्रेरणा प्राप्त करके अपने समस्त साधनों के साथ हम इस काम में जुट जायँ। ●

गाँव लोकसत्ता की सबल इकाई कैसे बने ?

हेमनाथ सिंह

मुंगेर जिलादान सम्पन्न हुआ; मुख्यतः ग्राम-स्वराज्य संघ के कार्यकर्ताओं के प्रयास से। कन्धा लगा उन समाज-सेवियों का, जिनकी सेवा का उनके क्षेत्र पर असर है। जब चम्पारण जिलादान सम्पन्न होने-होने पर था, तब एक दिन रमापति बाबू—मंत्री बिहार खादी ग्रामोद्योग संघ—से भेंट हुई। वे चम्पारण जिलादान में सक्रिय रूप से लगे थे। गणितो तो वे हैं ही। मिलते ही उन्होंने बताया कि बिहारदान अब हाथ में आ गया है। हर जिले मे गाँववालो के पास पहुँचने भर की देर है। हर प्रखण्ड के हर पंचायत मे पहुँचने के लिए यदि जीप की व्यवस्था हो और साथ में ग्रामदान प्राप्त करनेवाले कार्यकर्ता हों तो गाँववालो की ओर से हस्ताक्षर करने मे बहुत विलम्ब नही होता। मुंगेर जिले के भरियारी, शेखपुरा और बरबीघा प्रखण्डो में यह अनुभव प्रत्यक्ष आया।

दरभंगा जिलादान का जिन दिनो प्रयास चल रहा था, उन दिनो मधुबनी-अनुमण्डल-दान की घोषणा के अवसर पर विनोबाजी ने कार्यकर्ताओं से जिन बातों को सावधानी बरतने के लिए कहा था, उनमें एक बात यह थी कि गाँववालो से ग्रामदान-हस्ताक्षर प्राप्त करते समय ग्रामदान की बातें कहने में एकरूपता है अथवा नहीं। उस समय उनकी बात सुन हमे थोड़ा आश्चर्य हुआ था कि बाबा ऐसा क्यों कहते हैं! मैंने मान रखा था कि कार्यकर्ता जब परिश्रम करके गाँव-गाँव पहुँचते हैं, तब ग्रामदान की चारों बातें ही कहते होंगे, अन्य नहीं। इस मान्यता की पृष्ठभूमि में मन मे उद्वेग था कि बाबा कार्यकर्ताओ की नीयत पर शक करते हैं, क्या? अथवा उन्हें यह भरोसा नही कि ग्रामदान का विचार गाँववालो तक पहुँचाने मे ये समर्थ हैं।

गाँव का सामान्य अनुभव तो यह है कि गाँववालो का जिन पर भरोसा है, उनके कहने से वे ग्रामदान-घोषणा और समर्पणपत्र पर हस्ताक्षर करते हैं। कहीं-कहीं तो देखा कि समझानेवालो मे से अधिकतर लोग जो कुछ कहते थे उसका सारांश यह था कि यह एक हस्ताक्षर-अभियान है, इसमें जमीन देना-लेना कुछ नही है, विनोबाजी को जब इसीमे सन्तोष है, तब हम लोग यह हस्ताक्षर प्राप्त करके उनको यह सबूत दे रहे हैं कि उनका संवाद हम लोगो ने गाँव-गाँव मे पहुँचा दिया है। कहीं-कहीं यह भी अनुभव हुआ कि हस्ताक्षर प्राप्त करनेवाले मित्रगण इस अभियान को यथास्थिति बनाये रखने के विचार के जितना नजदीक संभव था उतना बतलाते थे। यह संभव है कि मैं जिन मित्रो के साथ घूमता था, उनकी यह भाषा हो। पर यह मानकर कि जिन लोगो ने पूरे जिले मे ग्रामदान प्राप्त किया है आखिरी क्षण में उनसे भाषा के सम्बन्ध में कोई रगड़ा-झगडा न करूँ, उनकी बातो में कोई बाधा नही देता था। हाँ, अपनी ओर से ग्रामदान को ग्राम-स्वराज्य की बुनियाद के रूप में रखने की चेष्टा करता रहता था। पर कुल मिलाकर हस्ताक्षर करनेवालो के मन पर असर यह अवश्य होता था कि ग्रामदान मे कुछ दान करने का संकल्प है। उन्हें यह सन्तोष अवश्य था कि जो सबका होगा, वही उनका भी होगा। ऐसा एक प्रसग उस मुसलमान किसान से सुनने को मिला जिसने यह कहा, "ऐसा मत कहिए कि जमीन का वितरण वगैरह कुछ नही करना होगा। हाँ, यह अवश्य होगा कि जो आप लोगो की गति होगी वही हमारी भी होगी। हम देश के आन्दोलन के साथ रहना चाहते हैं, अलग नहीं।" इस तरह पाता यह था कि गाँववालो के कान मे ग्रामदान का नाम चाहे जिस रूप मे आता था बीघा कट्ठा जमीन देने, मालकियत-विसर्जन, ग्राम-कोष एवं ग्रामसभा की बात किसी-न-किसी तरह उनके मन मे आ ही जाती थी।

सर्व सेवा संघ ने ग्रामदान पर सेमिनार आयोजित कर 'ग्रामदान : प्रचार, प्राप्ति, पुष्टि' नाम की जो किताब निकाली है, उसके अनुसार यदि ग्रामदान का चित्र गाँव में खड़ा करने की कोशिश होती तो, संभव है, कार्यकर्ता को स्वयं रास्ता दीखता कि ग्रामदान-प्राप्ति के बाद क्या करना है। अभी तो ऐसा लगता है कि खादी संस्था ने एक लक्ष्य अपने सामने रखा है कि ग्रामदान के हस्ताक्षर प्राप्त किये जायँ, तो कार्यकर्ताओं ने इसे पूरा किया। ग्रामदान में ग्रामस्वराज्य का बीज है, यह बात जिलादान प्राप्त करनेवाले प्रमुख लोगो के सामने चाहे जितनी भी स्पष्ट क्यों न हो, उसको प्रकट करने के आयोजन मे एक कदम से अगला कदम अभी निकलता नहीं दीख पड़ता। मेरा खयाल है कि यह तब होता जब आयोजक एवं कार्यकर्ता सम्मिलित रूप से यह महसूस करते होते कि गाँव में जब पहुँच गये हैं तब हर परिवार में ग्रामदान से सम्बन्धित कुछ-न-कुछ किताब, फोल्डर अथवा परचा छोड़ आयें। चाहे पाँच पैसा ही सही, देकर जब कोई किताब या फोल्डर खरीदता है, तब उसे गौर से पढ़ जाने की उसकी एक वृत्ति बनती है। यह भी सभव है कि कार्यकर्ता का आग्रह देख सौजन्यवश पुस्तक का मूल्य वह दे देता हो। पर कार्यकर्ता के हाथों विचार का कोई छपा हुआ अंश पढ़े-लिखे ग्रामीण के हाथ भी बहुत कम मात्रा में पहुँचा है। कार्यकर्ताओ के मन मे अगर गाँववालो से आगे भी जुड़े रहने की योजना होती तो वे गाँव छोड़ने के पहले उन्हें किसी-न-किसी सर्वोदय-पत्रिका का ग्राहक अवश्य बनाते। पर यह सब तो तब होता जब वे स्वयं इन पत्रिकाओ को नियमित पढ़ते होते। उनमे से तो कई ऐसे हैं, जो यह भी नहीं जानते होंगे कि सर्वोदय-आन्दोलन सम्बन्धी पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ कहाँ से प्रकाशित होती है तथा कौन-कौनसी पुस्तकें एव पत्रिका किसे पढ़ने के लिए दी जायँ!

जिलादान सम्पन्न होने पर अगला कदम क्या हो, इस सम्बन्ध मे इस समय या तो उन संस्थाओं को पहल करनी चाहिए, जिन्होंने ग्रामदान प्राप्त किया है या व्यक्तिशः उन लोगो को जो ग्राम-स्वराज्य को मूर्त रूप में देखना चाहते हैं। अगला कदम क्या है, ग्राम-स्वराज्य का क्या चित्र है, आदि बातें तो शिविर की पद्धति से ही फैलायी जा सकती हैं। मेरा निवेदन है कि जिलादान प्राप्त करनेवाले प्रमुख लोग एकसाथ बैठकर अगला कदम स्थिर करें और उस दिशा मे गाँव-गाँव को आगे बढ़ाने की योजना करें।

आंदोलन के समाचार

दांडी से पोरबन्दर तक पदयात्रा

गुजरात के रचनात्मक कार्यकर्ताओं द्वारा आयोजित पदयात्रा-टोली ने गांधी-जन्म-शताब्दी के निमित्त से २ अक्तूबर '६८ के दिन दांडी से पोरबन्दर तक की यात्रा का श्रीगणेश किया था। टोली ने पिछले महीनों में बलसाड, सूरत, भड़ोच और बड़ोदा जिलों की अपनी पदयात्रा पूरी करके पंचमहाल जिले में गत १४ जनवरी से प्रवेश किया है।

सर्वश्री रविशंकर महाराज, बबलभाई मेहता डा॰ द्वारकादास जोशी, जुगतरामभाई दवे आदि गुजरात के प्रमुख सर्वोदय-सेवक बीच-बीच में पदयात्रियों के पड़ावों पर पहुंचकर उनके कार्यक्रमों में सम्मिलित होते रहते हैं।

बड़ोदा जिले की पदयात्रा के चलते वहाँ जिले भर के शिक्षकों का सम्मेलन हुआ और उसमें 'आचार्यकुल' की चर्चा की गयी। बड़ोदा जिला शिक्षण समिति ने अपने प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के सम्मेलन तहसील के मुकामों पर आयोजित किये। पदयात्रियों को ग्रामजीवन के वैभव और दारिद्र्य के दोनों पहलुओं का दर्शन होता रहता है।

लोकयात्रा से…

सुश्री निर्मला बैद ने अपने २८ जनवरी '६९ के पत्र में लिखा है, "हिसार में ६ रोज तक हमारा पड़ाव रहा। वहाँ के कृषि-विद्यालय के करीब दो हजार छात्राध्यापकों के बीच डेढ़ घंटे एक चर्चा और प्रश्नोत्तर का क्रम चला। अन्य विविध कार्यक्रम नगर में आयोजित हुए। महिलाओं की अलग भी एक बहुत बड़ी सभा हुई। कुछ बहनों ने समाज-सेवा के लिए अपना समय दिया। हिसार के टेक्सटाइल मिल में तो पूरे दिन भर का व्यस्त कार्यक्रम रहा। हिसार में हमारे छात्रजीवन के कई मित्रों से १०-१५ वर्षों बाद मुलाकात हुई।"

भारत की ग्रामीण संस्कृति

गांधीजी का शिक्षा-जगत् को सन्देश

गांधीजी ने कहा था :

"हम ग्रामीण संस्कृति के उत्तराधिकारी हैं। हमारे देश की विशालता, यहाँ की विराट् जनसंख्या एवं इसकी स्थिति और जलवायु के कारण ग्रामीण संस्कृति ही यहाँ सर्वथा उपयुक्त है। यद्यपि वर्तमान ग्राम-व्यवस्था की कमियाँ सर्वविदित हैं, परन्तु उनमें से एक भी ऐसी नहीं है जो लाइलाज हो। इस देश में ग्रामीण संस्कृति को उखाड़ फेंककर शहरी संस्कृति की स्थापना असम्भव ही है, जब तक कि किन्हीं प्रचण्ड साधनों द्वारा यहाँ की ३० करोड़ (आज तो ५० करोड़) जनसंख्या को ३० लाख या ३ करोड़ तक ले आने का कोई यंत्र कर विचार न करे। अतः ग्रामीण संस्कृति को ही इस देश में स्थायित्व देना होगा, ऐसा मानकर मैं इसके वर्तमान दोष दूर करने के उपाय बताता हूँ।

"इसका एकमात्र हल यही है कि इस देश के नवयुवक अपने को ग्रामीण जीवन में ढाल लें। यदि वे इस ओर बढ़ना चाहें तो अपने जीवन के पुनर्निर्माण हेतु उन्हें अवकाश के हर दिन का उपयोग अपने कालेज या स्कूल के समीपवर्ती गाँवों में करना चाहिए। जो युवक शिक्षण समाप्त कर चुके हों या जो शिक्षा प्राप्त कर रहे हों उन्हें तो गाँवों में जाकर बस ही जाना चाहिए। वहाँ उन्हें सेवा, शोध एवं ज्ञान प्राप्ति का अपार क्षेत्र मिलेगा। शिक्षकगण यदि छात्र-छात्राओं के अवकाश के दिनों में, उन पर साहित्य-अध्ययन का बोझ डालने के बजाय उनके लिए गाँवों में विचार-शिक्षण का कार्यक्रम निर्धारित करेंगे तो बहुत उपयुक्त होगा। अवकाश के दिनों का उपयोग पुस्तकें याद करने में नहीं, सृजनात्मक कामों में होना चाहिए।"

उपरोक्त गांधी-वाणी भारत की वर्तमान युवक-समस्या के समाधान हेतु एक महत्त्वपूर्ण संकेत है। लक्ष्य-हीन शहरी जीवन के अभ्यस्त एवं किंकर्तव्यविमूढ़ नवयुवक को ग्रामीण जीवन में प्रवेश देने हेतु विनोबाजी ने आज ग्रामदान रूपी नया द्वार खोल दिया है।

क्या शिक्षा जगत् इस ओर ध्यान देगा?

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी जन्म शताब्दी समिति), दुकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

भूदान-यज्ञ २४-२-'६६ रजिस्टर्ड नम्बर एल. ११७ [पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त] लाइसेन्स नम्बर ९ १७

नाथनगर प्रखण्डदान विनोबाजी को समर्पित

गत १८ फरवरी '६६ को भागलपुर जिले का नाथनगर प्रखण्डदान विनोबाजी को समर्पित किया गया। प्रखण्डदान का विवरण :

	कुल संख्या	शामिल संख्या
पंचायतें :	१४	१४
गाँव :	७८	७६
जनसंख्या :	७०,०००	६२,४००

इन्दौर नगर में महिलाओं का विशाल मौन शांति-जुलूस

इंदौर, १२-२-६६। इंदौर नगर में एक विशाल जुलूस निकला, जिसमें लगभग ३००० महिलाओं ने भाग लिया। कस्तूरबाग्राम में गत ५ से १२ फरवरी तक हो रहे कस्तूरबा-सम्मेलन में देश के विभिन्न भागों से आयी ८०० बहनों ने भी इसमें भाग लिया। इसके अलावा नगर की विभिन्न महिला शिक्षण-संस्थाओं और महिला-मण्डलों की सम्रान्त बहनें सम्मिलित थीं।

इस विशाल मौन जुलूस में लगभग दो मील तक शांति और सौम्यता के साथ हाथों में बेनर लिये, जिन पर "सत्य, प्रेम, करुणा" "हमारा कार्यक्रम शान्ति-सेना, शील-रक्षा", "हमारा मन्त्र जय जगत्—हमारा तंत्र ग्रामदान", "माता अहिल्यादेवी की नगरी से अशोभनीय पोस्टर हटाये जायँ" आदि वचन लिये हुए बहनें नगर के केन्द्र सुभाष चौक, राजवाड़ा से गांधी-प्रतिमा तक पहुँची। बापू की प्रतिमा की परिक्रमा कर जुलूस नेहरू पार्क में पहुँचकर एक सभा के रूप में परिवर्तित हो गया। जुलूस का नेतृत्व सुश्री मणिबेन पटेल, श्री यशोधरा दासप्पा, श्रीमती लक्ष्मी मेनन, कस्तूरबा ट्रस्ट की अध्यक्षा श्रीमती प्रेमलीला ठाकरसी, मध्यप्रदेश गांधी-शताब्दी समिति की महिला-बाल उपसमिति की अध्यक्षा श्रीमती सरोजम्मा रेड्डी आदि महिलाएँ कर रही थीं।०

विभिन्न स्थानों में सर्वोदय-पक्ष

(३० जनवरी से १२ फरवरी)

गाजीपुर में सर्वोदय-पक्ष में प्रभात फेरी का आयोजन हुआ और सूत्रयज्ञ का। शान्ति-सैनिकों तथा किशोर-दल का जुलूस निकला। शान्ति-बैज तथा साहित्य बेचा गया। भिंड जिले में ३० जनवरी से १२ फरवरी के बीच विभिन्न स्थानों में सभाएँ की गयीं। १२ फरवरी को प्रशिक्षण बुनियादी विद्यालय में जिला गांधी-शताब्दी समिति के मंत्री श्री लल्लू दद्दा के मार्गदर्शन में एक सभा आयोजित की गयी। हाथरस में सर्वोदय-पक्ष के अवसर पर ५ ग्रामदान हुए। १२ फरवरी को गोकुल में सर्वोदय मेला लगा। सूत्रयज्ञ, सामूहिक प्रार्थना, तथा सूतांजलि समर्पित की गयी। इस अवसर पर मतदाता-शिक्षण का कार्यक्रम विशेष रूप से चला। मध्यावधि चुनाव के फोल्डर और पोस्टर की मदद से यह काम आसान हो गया था। मथुरा में प्रभात फेरी, सामूहिक सूत्रयज्ञ तथा सूतांजलि-समर्पण का कार्यक्रम हुआ, तथा गांधी-विचार पर प्रकाश डाला गया। लहेरिया-सराय में बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ के प्रांगण में १२ फरवरी को सूत्रयज्ञ, सफाई और सूतांजलि समर्पण का आयोजन हुआ। इस आयोजन में मुख्य अतिथि थे पं० श्री रामनन्दन मिश्र। उन्होंने अपने प्रवचन में व्यक्ति के चरित्र-निर्माण पर जोर दिया।

इलाहाबाद के पर्यवेक्षक दल का निवेदन

मध्यावधि चुनाव के लिए विभिन्न पक्षों ने आचार-संहिता बनाते समय जिस पर्यवेक्षक दल का गठन किया था, उसने गत १० फरवरी को एक प्रेस वक्तव्य दिया है, जिसमें कहा है—"पर्यवेक्षक दल के सदस्यों ने विभिन्न मतदान-केन्द्रों पर घूमकर जनता तथा उम्मीदवारों तथा उनके कार्यकर्ताओं से मुलाकातें कीं। विश्वविद्यालय शान्ति-सेना दल के पचास शान्ति-सैनिक, कालेजों के बीस शान्ति-सैनिक एवं खादी तथा शान्ति-सेना के स्वयंसेवक, लगभग नब्बे लोग, चुनाव के तीसरे और अन्तिम दौर में कार्यरत रहे।" उन्होंने कहा है, "कुछ मामूली शिकायतों को छोड़कर कोई ऐसी चीज हमारे देखने में नहीं आयी, जिससे शान्ति भंग हुई हो या चुनाव-कार्य में बाधा पड़ी हो।" जाति-पाँति और धर्म के नाम पर वोट मांगा गया, इस पर अपना दुःख प्रकट किया गया है और कहा गया है, कि अधिकतर उम्मीदवारों एवं पक्षों ने जात पाँत एवं धर्म आदि का वोट-प्राप्ति के साधन के रूप में इस्तेमाल किया, जो पारस्परिक सम्बन्धों में आगे चलकर कटुता पैदा कर सकता है। हमें डर है कि अगर इस प्रवृत्ति को रोका नहीं गया तो इसका राष्ट्र के जनजीवन पर हानिकारक असर पड़ेगा और हमारी एकता और स्वतंत्रता दोनों, खतरे में पड़ सकती है। —सत्यप्रकाश

नशाबन्दी दिवस

मथुरा, २ फरवरी '६६। आज मद्य-निषेध के सन्दर्भ में शराब के ही ठेके पर ४० कार्यकर्ताओं ने सूत्रयज्ञ एवं प्रचार-पोस्टरों के साथ मौन-प्रदर्शन किया, जिनमें माध्यमिक कला विद्यालयों की प्रधानाचार्या तथा छात्राओं ने विशेष उत्साहपूर्वक भाग लिया।

श्री धीरेन्द्र भाई का कार्यक्रम

२३ फरवरी से १० मार्च : जिला सर्वोदय मण्डल, आरा (शाहाबाद)

११ से १२ मार्च : सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी-१

१४ से २३ मार्च : श्री गांधी आश्रम, मोतीगंज, आगरा

२४ से २६ मार्च : श्री नेहरू महाविद्यालय, ललितपुर (झाँसी)

२७ मार्च से १ अप्रैल : जिला सर्वोदय मंडल, लालदरवाजा, टीकमगढ़ (म० प्र०)

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इंडियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : २२

सोमवार ३ मार्च, '६९

अन्य पृष्ठों पर

सम्पादक
काकागुरु

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४३८५

जात-पाँत अच्छी चीज है या बुरी ?

जात पाँत के बारे में मैंने बहुत बार कहा है कि आज के अर्थ में मैं जात-पाँत नहीं मानता। यह समाज का 'फालतू अंग' है और तरक्की के रास्ते में रुकावट जैसा है। इसी तरह आदमी आदमी के बीच ऊँच नीच का भेद भी मैं नहीं मानता। हम सब पूरी तरह बराबर हैं। लेकिन बराबरी आत्मा की है, शरीर की नहीं। इसीलिए यह मानसिक अवस्था की बात है। बराबरी का विचार करने की और उसे जोर देकर जाहिर करने की जरूरत पड़ती है, क्योंकि दुनिया में ऊँच नीच के भारी भेद दिखाई देते हैं। इस बाहर से दीखनेवाले ऊँच-नीचपन में से हमें बराबरी पैदा करनी है।

कोई मनुष्य अपने को दूसरे से ऊँचा मानता है, तो वह ईश्वर और मनुष्य दोनों के सामने पाप करता है। इस तरह जात-पाँत जिस हद तक दरजे का फर्क जाहिर करती है, उस हद तक वह बुरी चीज है।

लेकिन वर्ण को मैं अवश्य मानता हूँ। वर्ण की रचना पीढ़ी दर पीढ़ी के धन्धों की बुनियाद पर हुई है। मनुष्य के चार धन्धे सार्वत्रिक हैं—विद्यादान करना, दुखी को बचाना, खेती तथा व्यापार और शरीर की मेहनत से सेवा। इन्हीं को चलाने के लिए चार वर्ण बनाये गये हैं। ये धन्धे सारी मानव-जाति के लिए समान हैं।[1]

गुरुत्वाकर्षण के कानून को हम जानें या न जानें उसका असर तो हम सभी पर होता है। लेकिन वैज्ञानिकों ने उसके भीतर से ऐसी बातें निकाली हैं, जो दुनिया को चौंकानेवाली हैं। इसी तरह हिन्दू धर्म ने वर्ण धर्म की तलाश करके और उसका प्रयोग करके दुनिया को चौंकाया है।

जब हिन्दू अज्ञान के शिकार हो गये, तब वर्ण के अनुचित उपयोग के कारण अनगिनत जातियाँ बनीं और रोटी-बेटी व्यवहार के अनावश्यक और हानिकारक बन्धन पैदा हो गये। वर्ण-धर्म का इन प्रतिबन्धों के साथ कोई नाता नहीं है। अलग-अलग वर्ण के लोग आपस में रोटी बेटी व्यवहार रख सकते हैं। चरित्र और तन्दुरुस्ती के खातिर ये बन्धन जरूरी हो सकते हैं, लेकिन जो ब्राह्मण शूद्र की लड़की से या शूद्र ब्राह्मण की लड़की से ब्याह करता है वह वर्ण धर्म को नहीं मिटाता।[2]

अस्पृश्यता जाति व्यवस्था की उपज नहीं है, बल्कि ऊँच नीच भेद की भावना का परिणाम है। ज्यों ही अस्पृश्यता नष्ट होगी, जाति व्यवस्था स्वयं शुद्ध हो जायेगी। यानी मेरे सपने के अनुसार वह चार धन्धोंवाली सच्ची वर्ण व्यवस्था का रूप ले लेगी।'

—मो० क० गांधी

१ 'मंगलप्रभात' : १६-६-३० २ 'हरिजन' : ११-२-'३३

अभ्यादकीय

पाकिस्तान की नयी चेतना

पाकिस्तान में बेसिक डिमाक्रेसी का बेस (आधार) टूट गया। वहाँ के बुनियादी लोकतन्त्र की बुनियाद लोक में तो थी नहीं, थी एक तानाशाह और उसके तंत्र में जिसे पिछले दिनों जनता के प्रहारों ने तोड़ डाला। संगठित सैनिक-शक्ति को नागरिकों के सामने झुकना पड़ा। इसके कारण पाकिस्तान में दूसरे चाहे जो सुधार हों, पर इतना तो होगा ही कि हर बालिग नागरिक को वोट का अधिकार मिल जायगा। वोट का अधिकार भूलें करके सीखने का, और सामूहिक इच्छा शक्ति को प्रकट करने का अधिकार है जिससे अयूब ने अब तक एक शुभचिंतक पिता की तरह अपनी नादान प्रजा को अलग कर रखा था।

यह सब पाकिस्तान में देखते-देखते हुआ है। क्या चेकोस्लोवाकिया और क्या पाकिस्तान, दोनों जगह यह बात खुलकर सामने आ गयी है कि विद्रोह अगर व्यापक हो तो उसे षडयंत्र करने और हाथ में बन्दूक लेने की जरूरत नहीं है। चेकोस्लोवाकिया के निशस्त्र प्रतिकार के कारण तो दुनिया के विस्तारवादियों और शस्त्रवादियों में अन्दर-अन्दर यह बेचैनी भी पैदा हो गयी है कि बन्दूक का जवाब तो बन्दूक से दिया जा सकता है, लेकिन जो विद्रोह बन्दूक को अलग रखकर उभरता है उसका मुकाबिला कैसे किया जायगा? कितनी भी दीवानी सरकार हो वह जवानों की जवानी को नहीं दबा सकती। पाकिस्तान के जवानों की जवानी ने उनकी दीवानी सरकार को झुकाया है। अब से कुछ महीनों बाद जब पाकिस्तान में खुला आम चुनाव होगा और भारत की तरह वहाँ भी दलों के आधार पर सरकार बनेगी तो जनता देखेगी कि 'बुलेट' का जवाब बुलेट से ही देने में एक अयूब की जगह दूसरा अयूब स्वीकार करना पड़ता है, लेकिन अगर खुले, निशस्त्र विद्रोह का रास्ता अपनाया जाय तो 'बैलट' से बुलेट का पूरा जवाब दिया जा सकता है। लेकिन प्रश्न है कि केवल अयूब के जाने से क्या हुआ अगर अयूबशाही न खत्म हुई?

अयूब के जाने से सरकार बदल जायगी, इसमें कोई शक नहीं, लेकिन सरकार का बदलना आज के जमाने में काफी नहीं होता यह पाकिस्तान के उन नेताओं को जो जनता के नाम के नारे लगा रहे हैं, तथा उस जनता को जो अपने नये 'वीरों' के नारे लगा रही है, भारत को देखकर समझ लेना चाहिए, ठीक उसी तरह जैसे हमें उन्हें देखकर यह सबक ले लेना चाहिए कि कागज के एक टुकड़े को (जिसे बैलट-पेपर कहते हैं) क्या कीमत होती है। जिस समय अयूब गद्दी पर आया था- उस वक्त उसका कितना स्वागत हुआ था! निकम्मे नेताओं के जाने पर जनता ने मुक्ति की ठण्डी साँस ली थी। और, पाकिस्तान में अयूबशाही के जमाने में, जिसे आज देश का विकास कहा जाता है वह भी कुछ कम नहीं हुआ। खेती में जो 'हरी क्रान्ति' (ग्रीन रेवोल्यूशन) भारत में आज हो रही है वह पाकिस्तान में काफी पहले शुरू हो चुकी थी। वहाँ की मजबूत, स्थायी सरकार, खेती के विकास तथा राष्ट्रीय आय में वृद्धि को देखकर पश्चिम के देश पाकिस्तान को 'विकास का नमूना' मानने लगे थे। लेकिन हाल की घटनाओं से सिद्ध हो गया कि ये नारे कितने छिछले होते हैं! रोटी के लिए तरसनेवाली जनता भी केवल रोटी से संतुष्ट होने से इनकार कर रही है। इसलिए अब कोई भी शासन, नाम वह अपना चाहे जो रख ले, नौकरशाही के भरोसे नहीं चल सकता; और न तो ऊपर के थोड़े-से लोगों को लेकर देश का सच्चा विकास कर सकता है, और राष्ट्रीय आय के मोहक आँकड़े दिखाकर जनता को देर तक धोखे में रख सकता है। आज का मनुष्य रोटी के साथ-साथ भूखा है सम्मान का, स्वतंत्रता का, समता और भाईचारे का। इन चीजों से वंचित मनुष्य क्षोभ में कुछ भी करेगा—मारेगा, मरेगा—लेकिन चुप नहीं बैठेगा। पाकिस्तान की जनता देखेगी, जैसे भारत की जनता चुनावों के बाद देखती आयी है, कि सरकार बदलने की खुशी टिकाऊ नहीं होती। मुक्ति की प्यास सिर्फ सरकार-परिवर्तन से नहीं बुझती।

पाकिस्तान की जनता ने अपनी विरोधात्मक प्रतिकार-शक्ति का भरपूर परिचय दिया है, लेकिन समाज तो तब बदलेगा जब विद्रोह रचनात्मक होगा। और, विद्रोह रचनात्मक तब होगा जब गाँव-गाँव की जनता अपनी सामूहिक इच्छा-शक्ति का परिचय देगी। निर्णय की शक्ति सरकार के हाथ से निकलकर जनता के हाथों में आनी चाहिए। जनता को अपना जीवन अपने ढंग से बिताने की छूट होनी चाहिए। यह काम मात्र शासक बदलने से नहीं होगा। बल्कि शासन और उत्पादन के पूरे ढाँचे को बदलने से होगा। भारत में ग्रामदान-आन्दोलन यही करने की कोशिश कर रहा है। इस तरह के आन्दोलन की पाकिस्तान को उतनी ही जरूरत है जितनी भारत को।

भारत और पाकिस्तान, दोनों की जनता जिस दिन अपने-आप सोचना शुरू करेगी, उस दिन वह देखेगी कि जिस तरह शासकों के नारे ऊपरी और क्षणिक होते हैं उसी तरह राष्ट्र के नाम में लड़ी जानेवाली लड़ाइयाँ भी प्रायः निरर्थक होती हैं, क्योंकि उनके साथ शासकों की महत्त्वाकांक्षाएँ जुड़ी होती हैं, सामान्य जनता की आकांक्षाएँ नहीं। हमें आशा है कि पाकिस्तान में जो शक्ति पैदा हुई है, और भारत में ग्रामदान के द्वारा जो विकसित हो रही है, वह मुक्ति तो लायेगी ही, साथ-साथ दोनों देशों की जनता को मैत्री के सूत्र में भी बाँधेगी। पाकिस्तान की नयी चेतना पूरे एशिया में मुक्ति और मैत्री की दिशा में प्रेरक सिद्ध हो सकती है।

शिवसेना : न शिव, न सेना

सेना बड़ा-से-बड़ा विध्वंस कर सकती है, लेकिन उपद्रव नहीं करेगी। संगठित हिंसा का भी एक ऊँचा लक्ष्य हो सकता है, और न्याय का दूसरा कोई रास्ता न रह जाने पर उसका औचित्य भी

हिंसा और टकराव का वर्तमान संदर्भ तथा विकल्प और समाधान के कुछ पहलू

...उत्तर इतिहास के गर्भ में

प्रश्न : बापू को गये २१ साल पूरे हो रहे हैं। इन २१ सालों में कहने सुनने लायक बहुत सारे परिवर्तन देश और दुनिया की परिस्थितियों में हुए हैं, लेकिन इन सारे परिवर्तनों को एक ओर रख दें तो साम्प्रदायिक हिंसा की उन लपटों का जो दर्शन सन् १९४६-४७-४८ में हुआ था, ऐसा लगता है कि बहुत थोड़े से परिवर्तित रूप में हिंसा की वही लपटें पुनर्जीवित हो उठी हैं। ऐसे वक्त में गांधी की याद जनहृदय में स्वाभाविक ही हो उठती है। लोग कह पड़ते हैं कि गांधीजी होते तो ऐसा नहीं हो पाता। इस पहलू पर आपका क्या दृष्टिकोण है?

जयप्रकाश नारायण : ऐसा कहना मुझे अतिशयोक्ति लगता है कि देश के विभाजन के समय सांप्रदायिक हिंसा की जो लपटें देश में फैल गयी थीं, थोड़ी-सी परिवर्तित मात्रा में वैसी ही लपटें आज भी फैल रही हैं। उस समय जो कुछ होता था उसके पीछे अनेक कारण थे। इनमें से एक कारण यह भी था कि अंग्रेज राज्यपाल और अन्य प्रशासक, जो देश के उन हिस्सों में थे जहाँ पाकिस्तान बना, निःसन्देह इस बात की साजिश कर रहे थे कि भारत को खून के दरिया में डुबो दें। पंजाब और सरहदी सूबों में जो घटनाएँ घटी वे उनकी साजिश के बगैर उतने बड़े पैमाने पर नहीं घटती। इन कारणों के अतिरिक्त और भी कई कारण थे, जो भारत के दोनों हिस्सों में मौजूद थे। आज, की साम्प्रदायिक हिंसा में मुख्यतः राजनीतिक और कुछ गौण अंश में आर्थिक 'मोटिव्स' हैं। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सुचिंतित नीति का एक बड़ा परिणाम हिंदू-मुस्लिम दंगा ही हो सकता है; बल्कि दंगा नहीं, हिंदुओं का मुसलमानों पर एकतरफा आक्रमण कहा जा सकता है। उस तरफ मुसलमानों में भी ऐसी शक्तियाँ काम कर रही हैं, जो उनको एक संप्रदाय तथा राजनीतिक जमात में बाँधकर संगठित कर रही हैं, जिसका परिणाम मुसल-

जयप्रकाश नारायण :
शांतिमय क्रान्ति की सचेत आकांक्षा

मानों का राष्ट्रीय जीवन से पृथक् पड़ जाना और उनकी साम्प्रदायिक भावनाओं को पुष्ट करना ही होगा।

इस प्रकार से दो साम्प्रदायिक शक्तियों का टकराव अनिवार्य हो जाता है। दुर्भाग्य से देश में जितनी भी संप्रदाय-निरपेक्ष शक्तियाँ हैं, वे इस उभरती हुई साम्प्रदायिकता की तरफ से नजर बचाये हुई हैं। अक्सर साम्प्रदायिक शक्तियों को नया बल उस समय मिल जाता है जब संप्रदाय-विरोधी वामपंथी शक्तियाँ भी राजनीतिक लाभ के लालच से उनके साथ हाथ मिला लेती हैं। मुझे इस बात से कुछ संतोष अवश्य हो रहा है कि पिछले दो सालों की घटनाओं से और साम्प्रदायिक शक्तियों की बढ़ती हुई ताकतों से जनता सचेत हो गयी है और राष्ट्रीय एकता परिषद् ने भी इस प्रश्न को गम्भीरता से उठाया है।

गांधीजी होते तो क्या करते, यह तो बेमानी प्रश्न है। कौन कह सकता है कि वह क्या करते? इतना तो अवश्य है कि विभाजन के बाद भारत और पाकिस्तान जिस तरह एक दूसरे से दूर होते गये, वह शायद यदि गांधीजी होते तो न होता। वह अंतिम दिनों में सोच ही रहे थे कि पश्चिम पाकिस्तान जाकर जिन्ना साहब से दोनों देशों के भावी सम्बन्धों के बारे में चर्चा करेंगे। यह भी विदित ही है कि गांधीजी नये भारत के निर्माण के लिए सेवकों की एक नयी सेना खड़ी करना चाहते थे। अगर वह जीवित रहते तो आज कौन कह सकता है कि भारतीय जनता की जागृति और उसकी अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति, शासन करनेवालों पर अंकुश रखने की शक्ति, अपनी समस्याओं को अपनी शक्ति से हल करने की शक्ति, इन सभी शक्तियों का कितना विकास हुआ होता और हिंसा की परिस्थिति पर उसका क्या असर हुआ होता। परन्तु आपके प्रश्नों का उत्तर तो इतिहास के गर्भ में ही पड़ा रहेगा।

...बहुत आगे नहीं बढ़ सकेंगी

प्रश्न : इस समय देश में कुछ ऐसी शक्तियाँ उभर रही हैं, जो गांधी को निरर्थक साबित करना चाहती हैं। एक ओर राष्ट्र के नाम पर, दूसरी ओर क्रान्ति के नाम पर जनता को संघर्ष के लिए सुसंगठित कर रही हैं। इन संघर्षों में बुनियादी शक्ति हिंसा की दिखाई देती है। इस सन्दर्भ में गांधी-विचार के प्रति निष्ठावान लोगों को क्या करना चाहिए?

जयप्रकाश नारायण : जहाँ तक मेरा अनुमान है हिंसात्मक क्रांति की शक्तियाँ बहुत आगे नहीं बढ़ सकेंगी। भारत के राजनीतिक और आर्थिक बनाव में इसकी संभावना मुझे कम ही दीखती है। पर चाहे जो कुछ भी हो, हमारा कर्तव्य तो स्पष्ट ही है कि हम शांतिमय क्रांति को जितनी तीव्रता से आगे बढ़ा सकते हैं, बढ़ाते जायँ। सौभाग्य से हमारे

बीच पूज्य विनोबाजी मौजूद हैं, जिनके हृदय की आग की चिनगारी देश भर में आज फैल रही है और जिसके परिणामस्वरूप तमिलनाडु से लेकर उत्तर प्रदेश तक, और उत्कल से लेकर महाराष्ट्र तक, कई प्रदेशों ने—जिनमें देश के सबसे बड़े प्रदेश भी सम्मिलित हैं—प्रदेशदान का संकल्प लिया है। प्रदेशदान अपने आपमें शांतिमय क्रांति नहीं है। परन्तु शांति और अशांति के प्रश्न का उत्तर तो इसमें निहित है कि हम कितनी अधिक कुशलता से उसकी तैयारी करते हैं, और उसकी ठोस बुनियाद का निर्माण करके उस पर क्रांति की मंजिलें कितनी तीव्रता से खड़ी करते हैं।

काश, अगर...

प्रश्न : सारी दुनिया में दलीय राजनीति के आधार पर विकसित लोकतांत्रिक सत्ता और फौजी तथा साम्यवादी तानाशाही नयी पीढ़ी को समाधान नहीं दे पा रही है। हर जगह युवजनों में हर प्रकार की सत्ता के खिलाफ एक विद्रोही चेतना की लहर-सी दौड़ रही है। नयी पीढ़ी की यह विकलता क्या मानवता के लिए कोई शुभ संकेत है? क्या इस सन्दर्भ में गांधी-विचार से दिशा-निर्देश की अपेक्षा की जा सकती है? गांधी-विचार का कौनसा पहलू इस समय नयी पीढ़ी के लिए समाधानकारी साबित हो सकता है?

जयप्रकाश नारायण : आपके प्रश्न में जो कुछ संकेत है, वह यूरोप, अमेरिका के युवजनों के बारे में तो सही है, लेकिन जहां तक भारत के युवजनों की बात है, खासकर विद्यार्थियों में जो कुछ उथल-पुथल नजर आ रही है, उसके पीछे कोई क्रांतिकारी भावना अथवा विचारधारा काम कर रही है, ऐसा नहीं लगता। पाश्चात्य जगत् के जिनमें यूरोप के साम्यवादी देश भी शामिल हैं—विद्यार्थियों में जो आज विद्रोह देखा जा रहा है उसमें भविष्य के लिए बहुत बड़ी आशा छिपी हुई है। उस विद्रोह में यों तो कई विचारधाराएं काम कर रही हैं, परन्तु एक प्रबल धारा यह है कि वह वर्तमान अति औद्योगिक, अति संगठित अति, केंद्रित, अति शासित समाज-रचना, जिसमें राज्य-रचना तथा अर्थ-रचना भी निहित है, का अस्वीकार है। उनमें से बहुतेरे विद्रोही 'पार्टीसिपेटिव' या 'पार्टीसिपेटरी डेमोक्रेसी' की बात कर रहे हैं, छोटे-छोटे राज्य और विकेंद्रित समाज-रचना की ओर इंगित कर रहे हैं। ये सब विचार गांधीजी के ही विचार हैं। यद्यपि ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उन सबने गांधीजी से ही ये विचार लिये हैं। यद्यपि यह भी सही है कि उनमें से बहुत-से युवक नेता गांधीजी से अत्यन्त प्रभावित हुए हैं। दुर्भाग्य से भारत उसी दिशा में बढ़ता जा रहा है, जिस ओर पाश्चात्य राष्ट्र पिछले २०० वर्षों में बढ़े हैं, और जिधर बढ़ते हुए आज ऐसी जगह पहुंचे हैं जहां वर्तमान यांत्रिक सभ्यता का निर्माण हुआ है। काश, इस देश के युवकों को यूरोपीय और अमेरिकी छात्रों के विद्रोह से कुछ चेतावनी मिलती।

विफलता का मूल कारण

प्रश्न २१ सालों की भारत की दलीय राजनीति और लोकतांत्रिक रचना को आपने बहुत ही निकट से देखा समझा है। क्या आप मानते हैं कि ये सारे प्रयास इस अर्थ में विफल रहे हैं कि देश की किसी समस्या का कोई स्थायी समाधान नहीं निकला है। आप की दृष्टि से इसके बुनियादी कारण क्या हैं? क्या गांधीजी के आखिरी वसीयतनामे पर कांग्रेस ने अमल किया होता, तो परिस्थिति कुछ भिन्न होती?

जयप्रकाश नारायण : स्थायी हल तो यों किसी समस्या का नहीं हो सकता, क्योंकि परिस्थिति बदलती है। इसलिए इस तरह सोचना चाहिए कि आज की परिस्थिति में जो समस्याएं उठ रही हैं उनका हल संतोषजनक मिल पा रहा है या नहीं। आपका यह कहना ठीक है कि जिस प्रकार की बहुदलीय राजनीति अपने देश में आज चल रही है उसके परिणामस्वरूप हमारी बुनियादी समस्याओं का कोई संतोषजनक हल नहीं निकल पाया है। लेकिन अनेक दलों का होना ही इसका कारण नहीं हो सकता, क्योंकि १६ वर्षों तक तो एक ही दल का शासन देश भर में रहा था (केरल प्रदेश छोड़कर)। कांग्रेस को एक बहुत बड़ा अवसर मिला था आरम्भ में, जनता की जो श्रद्धा उस पर थी उसको देखते हुए। कांग्रेस की विफलता के मूल कारण क्या हैं, यह एक गहन अध्ययन का विषय है। मुझे लगता है कि गलती पं० जवाहरलाल नेहरू से ही शुरू हुई। वह मान बैठे कि देश का नवनिर्माण केवल शासन और प्रशासन के हाथों हो सकेगा।

गांधीजी ने अपने 'वसीयतनामे' में जो विचार रखा था, उसका अक्षरशः पालन यानी कांग्रेस का लोक-सेवक संघ में परिवर्तन तो गांधीजी के अलावा और कोई करा नहीं सकता था। परन्तु गांधीजी के उस प्रस्ताव में जो विचार व्यक्त किये गये थे उसकी तरफ तो जवाहरलालजी का और कांग्रेस के अन्य शीर्षस्थ नेताओं का ध्यान अवश्य जाना चाहिए था। लेकिन ऐसा लगता है कि अंग्रेजी साम्राज्य का जो भारत में प्रशासन का विशाल संगठन बना हुआ था, उस पर कांग्रेस-नेताओं का कब्जा हो जाने से उनको यह भ्रम हुआ कि सत्ता की शक्ति, कानून, ऊपर की बनी योजनाओं और अरबों रुपयों आदि के द्वारा भारत की सभी समस्याओं का हल किया जा सकेगा। जवाहरलालजी को अपनी भूल तो लगभग उनके जीवन के अंत में समझ में आयी, परन्तु तब तक तो सारा काम बिगड़ चुका था, और देश की जनता विशेषकर युवकों तथा बुद्धिजीवियों की जो छिपी हुई शक्ति देश के नव निर्माण में चमत्कारी पार्ट अदा कर सकती थी और जिसके कारण देश के सारे मनोवैज्ञानिक वातावरण में क्रांतिकारी परिवर्तन हो सकता था, वह छिपी ही रह गयी। विफलता के अन्य भी कारण हो सकते हैं, और अवश्य हैं, लेकिन मैं समझता हूं कि यह मूल कारण है।●

···और एक साथी गये

• काका कालेलकर

यह सारी सृष्टि ही मर्त्यलोक है। सबको मरना ही है। ऐसी स्थिति में मृत्युलेख का रिवाज एक पक्षपात के जैसा हो जाता है।

मेरी एक दूसरी कठिनाई है। श्रुति भले कहे सौ बरस जीने की इच्छा रखनी चाहिए (जिजीविषेत् शतं समाः)। मनु भगवान ने भले ही कहा हो कि न अपनी मृत्यु का हम अभिनन्दन करें, न जीवित का अभिनन्दन करें। निष्ठावान नौकर जिस तरह हुक्म की राह देखता है उसी तरह काल की प्रतीक्षा करनी चाहिए। तो भी जब मैं देखता हूँ कि मेरे अत्यन्त नजदीक के निष्ठावान और उत्तम सेवा करनेवाले साथी मेरे पहले चले जाते हैं तब उनके पीछे मैं जिन्दा रह रहा हूँ यह कोई गुनाह कर रहा हूँ, ऐसी भावना मेरे मन में उठती है और मानने लगता हूँ कि अपना समय कब का पूरा हो चुका है, तब भी जी रहा हूँ। ऐसी मनस्थिति में अपने पुराने साथी के बारे में लिखने मन अस्वस्थ होता है। लिखने की इच्छा होते हुए भी कलम नहीं चलती। और दुनिया ने मृत्युलेख लिखने का ढंग ही इस तरह निश्चित कर डाला है कि यह एक रस्म अदा करने की बात होती है। लोग दिवंगत आत्मा का स्मरण करने की जगह लेख कैसा लिखा है, यही देखने बैठते हैं। मेरे बचपन से ऐसे लेख पढ़ता आया हूँ, इसलिए मृत्युलेख लिखने का उत्साह ही नहीं रहता।

अभी-अभी मेरे पुराने आश्रम और विद्यापीठ के साथी श्री मगनभाई देसाई का देहान्त हो गया! समाचार सुनते ही मैंने रात को अपनी प्रार्थना के समय उनका स्मरण किया, उन्हें श्रद्धांजलि अर्पण की और सन्तोष माना। लेकिन जब चन्द स्थानिक कार्यकर्ताओं ने उनकी सभा में मुझे बोलने को कहा तब मौन धारण करना भी कठिन हो गया।

श्री मगनभाई ने मुझे अपना पहला परिचय दिया अपनी विशिष्ट शैली से। उन्होंने एक कागज मेरे हाथ में दिया। उसमें लिखा था—

"मैं आश्रम में दाखिल होना चाहता हूँ। आश्रम की शाला में काम करने की इच्छा है। अगर आपकी राय हो कि आश्रम में दाखिल होने के लिए जरूरी योग्यता मुझमें नहीं है तो कृपया मुझे बताइए कि मुझे कौन-कौनसी योग्यता हासिल करनी चाहिए। मैं बाकायदा प्रयत्न करूँगा और फिर से आपके पास आऊँगा।"

मैंने कहा, "गांधीजी ने मुझे जब बुलाया तब मुझे कहा नहीं था कि मुझमें कौनसी योग्यता होनी चाहिए। सेवा करनी है। आश्रम इसके लिए अनुकूल स्थान है। गांधीजी से बहुत कुछ मिल सकेगा और अपने हाथों

श्री स्व॰ मगनभाई देसाई

कुछ-न-कुछ सेवा होगी ही ऐसे विश्वास से मैंने गांधीजी का आमंत्रण मान्य किया।"

मैंने मगनभाई का स्वागत किया और वे मेरे साथी बन गये। हम दोनों में अच्छा सद्भाव था और मैंने देखा कि सार्वजनिक संस्था में काम करने का व्याकरण वे अच्छी तरह से जानते हैं। किन्तु थोड़े ही दिनों में मेरा अनुभव हुआ कि वे जो कुछ कहते हैं, मैं पूरा-पूरा समझ नहीं पाता हूँ। विचार करने का उनका तरीका मैं ठीक तरह से समझ नहीं सकता। मैंने मान लिया कि शायद मेरा भाषा का ज्ञान ही अधूरा होने से मैं उनका कहना समझ नहीं पाता हूँ। हमारा परस्पर-सम्बन्ध इतना निर्मल था कि मैंने उन्हें मेरी कठिनाई समझा दी। मेरी बात वे समझ गये। इससे हमारे बीच कोई अन्तर भी पैदा नहीं हुआ, लेकिन हम समय-समय पर अनेक बातों की चर्चा करने लगे। हमने देखा कि आदर्शों के बारे में हमारा पूरा मतैक्य है, लेकिन हर सवाल की ओर देखने की दृष्टि में कुछ मौलिक भेद है। लेकिन हमारे काम में कभी भी कुछ कठिनाई या बाधा न आयी। मैं पूरे विश्वास से उनको काम सौंपता गया और वे मुझे सन्तोष देते रहे।

जब गांधीजी की स्वराज्य-साधना में आश्रम के सब लोगों को और विद्यापीठ के अध्यापकों को जेल भेजने की नौबत आयी, तब मैंने स्वयं जेल जाने के पहले आज्ञा दे रखी कि सब लोग जेलयात्रा कर सकते हैं। अपवाद सिर्फ दो व्यक्तियों का—मगनभाई देसाई और जीवणजी देसाई। इसका कारण बताते हुए मैंने कहा—

जब लड़ाई छिड़ती है तब मामूली अनेक संस्थाएँ बन्द की जाती हैं, लेकिन युद्ध के शस्त्रास्त्र बनाने का कारखाना बन्द नहीं हो सकता। सैनिकों को गोलियाँ, बारूद और कारतूस न मिले तो केवल बन्दूक लेकर वे कैसे लड़ेंगे? 'नवजीवन' साप्ताहिक हमारी 'एम्युनिशन फैक्टरी' है। उसे चलाने का भार मैं मगनभाई और जीवणजी पर सौंप देता हूँ। इसलिए उन्हें जेल जाने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। सरकार ही उन्हें उठाकर ले जाय तो बात अलग है। मेरी बात दोनों देसाई समझ गये और प्रसन्नता से उसका उन्होंने पालन किया।

सर्वधर्म-समभाव अथवा समन्वय आश्रम का एक महत्त्व का व्रत है। इसके लिए उपयोगी साहित्य तैयार करना चाहिए। मगनभाई को इस विषय में काफी दिलचस्पी थी। इसलिए उन्होंने कई छोटी-छोटी किताबें तैयार कीं।

एक दिन महात्माजी के साथ मैं अन्ध-जगत् की एक अमेरिकन नेत्री, हेलन केलर के बारे में बातचीत कर रहा था तब गांधीजी ने कहा, मैंने उसका जीवन-चरित्र पढ़ा है। गुजराती में वह आना चाहिए। मैंने यह काम मगनभाई को सौंपा। तुरन्त उन्होंने मुझे साहित्य तैयार करके सौंप दिया। ▸

मध्यावधि चुनाव परिणामों की विविध व्याख्याएँ

चुनाव को लोकतांत्रिक शासन-पद्धति की नब्ज कहा जा सकता है। जैसे नाड़ी की गति बन्द होने से जीवन की समाप्ति का बोध होता है, वैसे ही जिस शासन-व्यवस्था में जनता को स्वतंत्रतापूर्वक अपना वोट इस्तेमाल करने का अवसर नहीं होता उसे लोकतांत्रिक शासन नहीं कहा जाता। इसीलिए लोकतांत्रिक शासन में नागरिक का वोट का अधिकार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

गत फरवरी महीने के प्रथम तथा द्वितीय सप्ताह में भारत के चार मुख्य प्रदेशों में मध्यावधि चुनाव सम्पन्न हुए। चुनावों के परिणाम को दर्शानेवाली दलीय और प्रदेशवार सारणी आगे दी गयी है। इन परिणामों पर भारत के प्रमुख समाचार-पत्रों में जो प्रतिक्रिया प्रकट हुई, वह विविध पहलुओं को उजागर करती है। आगे हम कुछ चुने हुए समाचार-पत्रों के अग्रलेखों के अंश प्रस्तुत कर रहे हैं।

'स्टेट्समेन' (दिल्ली) ११ फरवरी '६९ के सम्पादकीय में कहा गया है : "मध्यावधि चुनाव की एक मुख्य विशेषता यह मानी जा सकती है कि इसके कारण चारों प्रदेशों में जनसंघ की उत्तर भारत की मुख्य राजनीतिक शक्ति बनने की आशा को गहरा आघात लगा है। सं० सो० पा० को भी क्षति पहुँची है, लेकिन उसकी पराजय के लिए पार्टी की भीतरी कशमकश उतनी ही जिम्मेदार है, जितनी उसके नेताओं द्वारा जनता में प्रदर्शित सस्ती नेतागिरी।...जिन पार्टियों का गहरा स्थानीय प्रभाव था उनका महत्त्व बढ़ता जा रहा है, यह मध्यावधि चुनाव का एक चिन्ताजनक पहलू है। पंजाब में अकाली दल के नेतृत्व के सामने आने और कुछ हद तक उत्तर प्रदेश में भा० क्रां० द० का चौधरी चरण सिंह के नेतृत्व में उभरने से (और मद्रास में द्र० मु० क० है ही) अखिल भारतीय स्तर के दलों के समर्थकों की तादाद कम होगी।"

दिल्ली के अंग्रेजी दैनिक 'टाइम्स आफ इण्डिया' के १४ फरवरी '६९ के अग्रलेख में कहा गया है : "उत्तर प्रदेश में कांग्रेस अभी भी मामूली बहुमत हासिल कर सकती है। मगर उसे बहुमत नहीं भी प्राप्त होता है, और भले ही उसके कई बड़े नेता चुनाव में हार गये हों, फिर भी उसकी चुनाव में प्राप्त सफलता की रोशनी को ढँका नहीं जा सकता। वर्षों से चली आ रही आपसी दलबन्दी की लड़ाई और चरण सिंह के नेतृत्व में एक शक्तिशाली गुट के कांग्रेस के बाहर निकल जाने के कारण कांग्रेस लोगों की निगाह में बहुत नीचे गिर गयी थी। उसी कांग्रेस ने इस मध्यावधि चुनाव में सन् १९६७ के मुकाबले एक दर्जन से अधिक सीटें प्राप्त कीं।...ऐसा लगता है कि सन् १९६७ के चुनाव में मुसलमान मतदाताओं का जो वोट मामूली शिकायतों के कारण कांग्रेस को नहीं मिल पाया था, वह इस बार कांग्रेस को पुनः प्राप्त हुआ है, क्योंकि कांग्रेस ही अब अल्पमत के लोगों की सुरक्षा और समृद्धि का सबसे मजबूत आश्वासन है।"

मद्रास के अंग्रेजी दैनिक 'दी हिन्दू' ने अपने अग्रलेख में लिखा है : "जिन चार बड़े प्रदेशों में अभी-अभी छोटा आमचुनाव समाप्त हुआ है, उसके नतीजों से कांग्रेस के उन लोगों को भी जो अत्यधिक निराशावादी हैं, बड़ा आश्चर्य होना चाहिए। यह दल जिसने सभी प्रदेशों में २० वर्ष तक शासन किया और सन् १९६७ के आम चुनाव में जिसे पाँच प्रदेशों के शासन से हाथ धोना पड़ा, उसकी हालत तीन प्रदेशों में और नीचे गिरी है। यद्यपि उत्तर प्रदेश में जो सभी प्रदेशों में आबादी की दृष्टि से बड़ा है, कांग्रेस की स्थिति कुछ सँभली है। कांग्रेस की यह हार एक हद तक उसकी दोषपूर्ण चुनाव रणनीति का नतीजा है। पंजाब में इसके मतदाताओं की तादाद तो बढ़ी है, लेकिन सन् १९६७ की तुलना में इसे इस चुनाव में १० सीटें कम प्राप्त हुई हैं। यह एक निर्णीत तथ्य है कि जबतक यह दल अकेले ही चुनाव लड़ने की परिपाटी अपनाये रहेगा, जब कि इसका विरोध करनेवाले दूसरे दल आपस में चुनाव-समझौता करके अपनी विजय की सम्भावना बढ़ाते रहेंगे, तबतक इसे बराबर कम ही सीटें मिलते रहना निश्चित-सा है। यद्यपि पिछले आम चुनाव की तुलना में इस बार कांग्रेस-विरोधी वातावरण कुछ कम हुआ है, फिर भी

→ मैं जानता था कि मगनभाई वेदान्त के उपासक हैं, परिणीत होते हुए भी ब्रह्मचर्य के उपासक हैं। अध्यात्म विद्या का उनका गहरा अध्ययन है। इसीलिए इस विषय पर भी हमारी अनेक बार चर्चा होती थी, अथवा कोई नया विचार सूझा तो स्वयं आकर अपनी बात विस्तार से मुझे समझाते थे। उनके स्वभाव में चर्चा और विवेचन का माद्दा काफी था तो भी अनेक लोगों का प्रेम और निष्ठा हासिल करने की उनमें शक्ति भी थी। स्वराज्य के आन्दोलन में आश्रम और विद्यापीठ का जब संकोच हुआ तब मगनभाई ने अपनी स्वतंत्र प्रवृत्ति चलायी। गुजरात की स्वराज्य सरकार ने जब गुजरात युनिवर्सिटी की स्थापना की तब वहाँ मगनभाई ने उपकुलपति का काम किया। भिन्न मत के लोगों के पास से काम लेते उनकी अच्छी कसौटी हुई। उनका अनुभव भी बढ़ा।

अभी-अभी उन्होंने 'सत्याग्रह' नाम का एक साप्ताहिक शुरू किया था। उसमें उनकी स्वतंत्र वृत्ति और निडर नीति का उन्होंने अच्छा परिचय दिया था।

इस नैष्ठिक ब्रह्मचारी का स्वास्थ्य था तो अच्छा। रहते थे प्रसन्नता से। पता नहीं, इनको एकायक दिल का दौरा कैसे हुआ? वर्तमान युग का जीवन ही ऐसा जटिल है कि पता नहीं चलता कि आबोहवा, आहार, रहन-सहन और सामाजिक वायुमण्डल का शरीर-व्यापार पर कैसा और कितना असर होता है। गांधीजी से सीधी प्रेरणा पाकर समाज की विविध सेवा करनेवाले निष्ठावान सेवकों की संख्या घटती जा रही है, यह तो प्रकृति के नियम के अनुसार ही हो रहा है। गांधीजी की अध्यात्मनिष्ठा और कार्य-परम्परा चलानेवाले नये-नये लोग तैयार होने चाहिए, जो भूतकाल के प्रति आदर रखते हुए वर्तमान-काल को अच्छी तरह से पहचानें और अपनी सारी निष्ठा भविष्यकाल के निर्माण में लगा दें।•

कांग्रेस का वही हाल है। उत्तर प्रदेश को सन् १९६७ में १९९ सीटें मिली थीं और इस बार २११ सीटें मिली हैं। यह बात भी उपरोक्त तथ्य की पुष्टि करती है, क्योंकि इस बार उत्तर प्रदेश में जनसंघ, भारतीय क्रान्ति दल आदि विरोधी दलों ने चुनाव अलग-अलग लड़ने का निश्चय किया, इसलिए वे कांग्रेस के मुकाबले कम सफल हुए।

बिहार तथा बंगाल में जो परिणाम सामने आया है, उससे इस तथ्य की और अधिक पुष्टि होती है। बंगाल में सन् १९६७ के आम चुनाव के बाद संयुक्त मोर्चा बना था। वह मोर्चा इस चुनाव के पहले ही बना लिया गया, इसलिए मोर्चे को बड़ा लाभ मिला। जब विरोधी दल अलग-अलग चुनाव लड़ते थे तो कांग्रेस अपने अल्पमत मतदाताओं के बल पर अधिकांश सीटें जीत लिया करती थी, क्योंकि विरोधियों की शक्ति बिखर जाती थी। विरोधी पक्ष मिलकर कांग्रेस के खिलाफ जो संयुक्त मोर्चा बना लेते हैं, उसका सामना करने की दृष्टि से जबतक कांग्रेस कोई नया और असरदार उपाय नहीं ढूंढ़ लेती तबतक इसकी शक्ति और कमजोर ही होती जायेगी। पिछले चुनाव के बाद संयुक्त मोर्चा की सरकारों ने जिस ढंग का कुशासन किया उससे कांग्रेस ने कोई लाभ नहीं उठाया है यह साफ जाहिर है।"

दिल्ली से प्रकाशित होनेवाले अंग्रेजी साप्ताहिक 'मेनस्ट्रीम' के सम्पादक ने अपने २४ फरवरी, '६९ के अंक में लिखा है :

"पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, और पश्चिमी बंगाल के हुए मध्यावधि चुनाव ने देश की लोकतांत्रिक शक्तियों को कई अच्छे पाठ पढ़ाये हैं।

जो चीज शायद बहुत खतरनाक तौर पर सामने आयी है वह यह है कि राजनैतिक दलों ने विशेष रूप से देहाती क्षेत्रों में चुनाव-अभियान चलाते समय जातियों और सम्प्रदायगत निष्ठाओं को अपने-अपने पक्ष में इस्तेमाल करने की कोशिश की। जातिगत राजनीति का जहर जो परम्परा की दृष्टि से बिहार की राजनीति में सबसे पहले प्रकट हुआ, उसने प्रच्छन्न रूप में उत्तर प्रदेश में भी अपना कुरूप चेहरा ऊपर उठाया है। मुख्य चुनाव-आयुक्त

मध्यावधि चुनाव-परिणाम

	उत्तर प्रदेश	पंजाब	बिहार	प० बंगाल
कुल सीटें	४२५	१०४	३१८	२८०
परिणाम घोषित	४२५	१०३	३१५	२८०
कांग्रेस	२११	३८	११८	५५
जनसंघ	४९	८	३४	—
स्वतंत्र	५	१	३	—
कम्युनिस्ट पार्टी (दक्षिण)	४	३	२५	३०
कम्युनिस्ट पार्टी (वाम)	१	२	३	८०
प्र० सो० पा०	३	१	१७	५
सं० सो० पा०	३३	२	५१	९
भा० क्रां० द०	९९	—	६	—
अकाली	—	४३	—	—
बंगला कांग्रेस	—	—	—	३३
दूसरे दल	२	१	३९	५७
निर्दलीय	१८	४	१९	११

ने ठीक ही कहा है कि मतदाताओं पर नाजायज दबाव डालने की समस्या सिर्फ चुनाव-सम्बन्धी नये नियम-कानून बनाने से नहीं हल होगी, बल्कि इसके लिए दीर्घकालीन आर्थिक और राजनीतिक कदम उठाने होंगे।

गाँवों के लोगों द्वारा हरिजन मतदाताओं पर दबाव डालने के पीछे स्पष्ट रूप से कुछ आर्थिक कारण हैं। यह स्थिति इस कारण बनती है कि गाँव के जीवन में कुछ सम्पन्न किसानों का गरीब किसानों या खेती में लगे दीन-दरिद्र मजदूरों पर गहरा दबाव है। गाँव के जीवन में बैलगाड़ी की जगह ट्रैक्टर का इस्तेमाल होना जिस तरह उन्नतिशील सम्पन्न किसान का प्रतीक बन गया है, उसी तरह यह इस बात का भी प्रतीक बन गया है कि गाँव के राजनीतिक जीवन में दूसरों पर हावी होने और सतानेवाली शक्ति पैदा हुई है।

इस परिस्थिति में सबसे नुकसानदेह बात यह है कि बावजूद इसके कि देश आधुनिक आर्थिक व्यवस्था की ओर काफी आगे बढ़ा है, राजनैतिक जीवन में जातिवाद का असर लगातार बढ़ता जा रहा है। यह ठीक है कि जमींदारी के समय का सामंतशाही ढाँचा टूटा है, लेकिन उसकी पृष्ठभूमि में मौजूद जातिगत संचेतना को उन लोगों द्वारा बल प्राप्त हुआ, जो आज निहित स्वार्थ के शक्तिशाली वाहक बने हुए हैं।

यह एक ध्यान देने लायक तथ्य है कि जातीय राजनीति को उन्हीं क्षेत्रों में नयी जिन्दगी हासिल हुई है जहाँ कमजोर पड़ती हुई कांग्रेस और जनसंघ जैसे दक्षिण पंथी तत्वों या दलों के बीच सत्ता हासिल करने का संघर्ष छिड़ा। इसके साथ ही यह भी *कम महत्व की बात नहीं है कि पश्चिमी* बंगाल जैसे क्षेत्र में जहाँ कांग्रेस को वामपंथी तत्वों की चुनौती स्वीकार करनी पड़ी वहाँ जातिगत निष्ठाओं का इस्तेमाल करना बहुत कठिन साबित हुआ। इससे साफ-साफ जाहिर होता है कि प्रगतिशील राजनीति का प्रभाव जैसे-जैसे बढ़ेगा वैसे-वैसे प्रतिक्रियावादी राजनीति द्वारा जाति और सम्प्रदाय को उकसाने की संभावना कम होती जायेगी और अन्ततः विशुद्ध वामपंथ की सफलता ही जातीय राजनीति का अभिशाप हमेशा के लिए दूर करेगी।

—रुद्रभान

श्रमभारती मधुबनी

जिलादान के बाद : प्रयोगात्मक कार्यों का एक वर्ष

फरवरी, १९६७ में जब दरभंगा जिले का ग्रामदान हुआ तब विनोबाजी ने श्री धीरेन्द्रभाई को बुलाया। उन्होंने कहा "मेरा काम समाप्त और आपका काम प्रारम्भ।" उस समय श्री धीरेन्द्रभाई इलाहाबाद जिले के बरमपुर गाँव में रहते थे। उनको वहाँ के काम से मुक्त होकर आने में छः महीने लगे, और अगस्त में दरभंगा चले आये। प्रारम्भ में, खादी-ग्रामोद्योग संघ रहिका केन्द्र में अपना आश्रम बनाया, ताकि वहाँ रहकर आगे का कार्यक्रम निश्चित कर सकें।

पहला चिन्तन ग्रामदान-प्राप्ति के बाद के कार्यक्रम पर रहा। उसके लिए तीन काम साथ-साथ चलने चाहिए, ऐसा सोचा गया :

(१) प्राप्त ग्रामदानों को ग्रामदान-अधिनियम के अनुसार पुष्ट कराना तथा ग्रामसभाओं का गठन करना;

(२) जनता में ग्रामस्वराज्य के विचार-शिक्षण का काम करना, और

(३) लम्बे वर्षों तक ग्रामदानी गाँवों के लोगों को विचार शिक्षण तथा ग्रामस्वराज्य की स्थापना में उनका मार्गदर्शन करने के लिए स्थायी लोकसेवकों का संयोजन।

पुष्टि का काम करने के लिए खादी-ग्रामोद्योग संघ के जिन कार्यकर्ताओं ने प्राप्ति का काम किया है, वे ही इसमें सफल हो सकेंगे, ऐसा माना गया और इस काम के लिए सर्व सेवा संघ की ओर से श्री जयप्रकाश बाबू की अध्यक्षता में जिला ग्रामस्वराज्य समिति का संगठन किया गया। ग्रामदान-पुष्टि तथा लोक-शिक्षण का काम इस समिति के जिम्मे रहा।

विनोबाजी की प्रेरणा से तथा जयप्रकाश बाबू की अपील पर देश के कुछ विशिष्ट कार्यकर्ता, जो लोक-शिक्षण के काम के योग्य है, जिले के एक-एक प्रखण्ड की जिम्मेवारी लेने के लिए अग्रसर हुए। जिला समिति इसका संयोजन करती रही।

श्री धीरेन्द्रभाई ने उपरोक्त दो कामों के लिए जिला समिति को मार्गदर्शन करना अपनी जिम्मेवारी माना और उसके लिए जिला समिति के अन्तर्गत शिविरों और गोष्ठियों में अपना समय देते रहे। तीसरे काम के लिए कुछ ठोस आधार निर्माण करना होगा, ऐसा मानकर उस काम को उन्होंने अपने खुद की जिम्मेदारी पर रखा।

सर्वजन की क्रान्ति का वाहक कौन ?

ग्राम-स्वराज्य की क्रान्ति के सन्दर्भ में मुख्य प्रश्न क्रान्ति के वाहक के रूप में कार्यकर्ताओं का संगठन है, ऐसा सभी मानते हैं, लेकिन आन्दोलन की गतिविधि में अबतक उसका छोर निकल नहीं सका। जब हम इस विषय पर विचार करते हैं तो स्पष्ट होता है कि इस नयी क्रान्ति के लिए नये प्रकार के वाहन और संगठन की आवश्यकता है। हम कहते हैं कि हमारी क्रान्ति का लक्ष्य संचालित समाज-व्यवस्था के बदले स्वावलम्बी समाज-व्यवस्था की स्थापना करना है। अतः समाज के कामकाज के लिए लोग राज्य या केन्द्रित संस्था के भरोसे न रहकर सामूहिक संकल्प तथा सम्मति और परस्पर सहकार के आधार पर ही निर्भर करें। इस दृष्टि से यह स्पष्ट नहीं है कि कार्यकर्ताओं की कोई केन्द्रीय संचालित जमात बने, और वह जमात जनता को साथ लेकर, क्रान्ति कर, उसे बद्ध मुक्त करे। क्योंकि इस प्रक्रिया से स्वतन्त्र लोकशक्ति का विकास न होकर, जमात-शक्ति ही पनपती है, जिसके सहारे जनता को मुक्ति मिलती है। इतिहास का अनुभव यह है कि जब क्रान्ति की सफलता से जमात के हाथ में समाज की बागडोर आ जाती है, तब वह सफलता ही जमात के लिए निहित स्वार्थ बन जाती है, और अपने हाथ में उसे कायम रखने के लिए वह जनसाधारण के कलेजे पर बैठ जाती है।

यही कारण है कि जब विनोबाजी से कहा जाता है कि वे ग्रामदानी गाँवों के निर्माण के काम में लगें तो उनका स्पष्ट उत्तर होता है : "यह मेरा काम नहीं है।" ग्रामस्वराज्य की अर्थ गाँव के लोगों को मिलकर अपना काम चलाना है। इस प्रक्रिया से वे अगर अपनी अपूर्णता के कारण अपना नुकसान भी कर दें तो उनको वैसा करने देना आवश्यक है। इसलिए सर्वोदय क्रान्ति सर्वजन से ही हो सकेगी। ग्रामस्वराज्य-आन्दोलन का यह मूल मंत्र माना गया है। इसीकी सिद्धि में विनोबा समाज के हर तबके को इस आन्दोलन में लगाने का प्रयास कर रहे हैं।

लेकिन अति प्राचीन काल से ही जनता ने अपनी समस्याओं पर सोचना, उसका हल निकालना और अपने को चलाना अपनी जिम्मेवारी नहीं माना है। हजारों वर्षों से जनता ने यही माना कि राजा, गुरु, सन्त-महात्मा, सेवा-संस्था या किसी पार्टी को उनके लिए सोचना है और उनकी समस्या का समाधान खोजना है। इसलिए यद्यपि क्रान्ति-विचार के अनुसार जनता को यह अभ्यास करना है कि वह उपरोक्त किसी एजेंट के भरोसे न रहकर, सामूहिक संकल्प, सम्मति तथा परस्पर-सहकार से स्वावलम्बी बनकर वास्तविक स्वराज्य कायम करे, फिर भी, हजारों वर्षों से ऐसा अभ्यास न रहने के कारण विचार को समझते हुए भी जनता अपने अभिक्रम से आज कुछ नहीं कर पाती है। क्योंकि प्रारम्भ-काल से आज तक दूसरे के भरोसे पर रहने के कारण जनता की आत्मशक्ति शून्यवत् हो गयी है। इसलिए काफी वर्षों तक जनतारूपी हनुमान को शक्ति का भान कराने के लिए देश भर में फैले हुए लोकसेवकों की आवश्यकता है।

स्वावलम्बी लोकसेवक

अब सवाल उठता है कि ऐसे कार्यकर्ताओं के जीवन का पैटर्न क्या हो ? और उनके योगक्षेम का जरिया क्या हो ? हम मानते हैं कि गाँव के सब नागरिक मिलकर गाँवों का विकास करें। अतः हम यह अपेक्षा रखते हैं कि नागरिक अपनी जीविका के लिए कृषि-मूलक ग्रामोद्योगप्रधान अर्थनीति को अपनायें और उसमें से कुछ समय निकालकर अपने गाँव की सेवा करें। इस अपेक्षा का मतलब साफ है कि कार्यकर्ता उसी प्रकार की अपनी जीविका के पैटर्न को कायम रखे

ग्रामस्वराज्य के मार्गदर्शन के लिए समय निकाले। तभी स्वतंत्र नागरिकों को प्रतीत होगा कि *यह एक व्यावहारिक विचार है* और तभी वे लोग बिना किसी विशिष्ट नेता या सेवक के सहारे अपना काम चलाने का संकल्प ले सकते हैं। गांधीजी ने भी ग्राम-स्वराज्य के लिए देश भर से जो सात लाख *नौजवानों का आह्वान किया था,* उनके लिए उन्होंने कहा था कि वे अपने श्रम तथा जनता के प्रेम से अपना गुजारा करें और समग्र ग्राम-सेवा करें, अर्थात् कार्यकर्ता स्वावलम्बी हों। इसका अर्थ हमने यह माना है कि जनता *स्वावलम्बन के आवश्यक साधन* प्रेमपूर्वक दे, ताकि उसके सहारे लोकसेवक स्वावलम्बी बन सके।

वैसे भी देखा जाय तो ग्रामस्वराज्य के विचार के अलावा भी लोकसेवकों के लिए यही पैटर्न *आज की परिस्थिति में व्यावहारिक* है। प्राचीन काल में लोकसेवक भिक्षाधारित थे। चूँकि सहूलियत की चाह प्राणीमात्र की स्वाभाविक वृत्ति है, इसलिए सेवक श्रीमानों के सहारे हो गये। फलस्वरूप वे श्रीमानों की विभिन्न हरकतों के पृष्ठपोषक हो गये। यह सही है कि कुछ विशिष्ट त्यागी और तपस्वी लोकसेवक भिक्षा के आधार पर रहकर भी सार्वजनिक प्रतिष्ठा पा सकते हैं, अपनी स्वतंत्र तेजस्विता कायम रख सकते हैं। लेकिन हमारा अनुभव यह है कि अगर वह सपरिवार होता है तो, कम-से-कम उसका परिवार धीरे-धीरे अपने आप में हीनता महसूस करने लगता है। उसकी पत्नी से दूसरी स्त्रियाँ कुछ कह देती हैं तो वह अपने को अपमानित स्थिति में पाती है। परिणाम यह हुआ कि इस जमाने में भिक्षा-आधारित सामान्य लोक-सेवकों के प्रति जनता में बहुत अधिक आदर नहीं रह गया। अगर राज्य या संस्था के पास संचित निधि जमा करके लोकसेवकों के योगक्षेम का इन्तजाम किया भी जाता है तो इस युग में थोड़े लोगों को छोड़कर बाकी आलसी और गैरजिम्मेदार हो जाते हैं। इसलिए भी हम मानते हैं कि स्थायी लोक-सेवक स्वावलम्बी नागरिक के रूप में ही स्थायी सेवा कर सकते हैं, यद्यपि हम यह भी मानते हैं कि क्रान्ति की सफलता के लिए काफी संख्या में परिव्राजकों का आवश्यकता है, जो स्वभावतः जनाधार ही होगा। लेकिन ऐसे व्यक्ति के लिए जिस पर परिवार की जिम्मेदारी है, परिव्राजक बनना कठिन है।

बरनपुर से मधुबनी

अतः जिले के नौजवानों के सामने स्वावलम्बन-साधना की दिशा स्पष्ट करने के लिए हम लोग बरनपुर (इलाहाबाद) से दरभंगा जिले में चले आये।

शुरू में, हम मधुबनी अनुमण्डल के बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ के केन्द्र रहिका में जहाँ *हम लोगों को चौदह कट्ठा जमीन काम करने* के लिए मिल गयी थी, रहने लगे। बाद में बिहार के मित्रों ने यह महसूस किया कि अगर श्री धीरेन्द्र भाई को दरभंगा जिले के काम के लिए सलाह देनी है तो उन्हें किसी केन्द्रीय स्थान पर रहना चाहिए। अतः हम लोग मार्च, १९६८ से मधुबनी केन्द्र में, उनकी अपनी तीन एकड़ जमीन पर तेलघानी-उद्योग के साथ स्वावलम्बन के प्रयोग में लग गये।

मधुबनी की जमीन, एक ईंट-भट्ठे का अवशेष मात्र थी, इसलिए वह जमीन बहुत ही ऊँची-नीची सतह में बँटी हुई थी। साथ ही, वर्षा से उसीके बगल से होकर रहाई-विभाग का पानी बहते रहने के कारण कास्टिक सोडा के असर से कुछ जमीन ऊसर बन गयी थी। हमारा पहला काम जमीन की लेवलिंग, मेड़बन्दी कर प्लाट बनाना और मिट्टी को सुधारकर रेह के असर को कम करने में ही गया। यद्यपि धान की फसल आसपास के किसानों की दृष्टि से अच्छी थी, फिर भी स्वावलम्बन की दृष्टि से वह हानिकर ही रही, क्योंकि इसमें से दूसरा से जमीन बनाने का खर्च कृषि-खर्च ही निकल गया। लेकिन हमारी फसल को देखकर आसपास की जनता को काफी आकर्षण हुआ। फलस्वरूप वे लोग हमेशा हमसे मिलते रहते हैं और चर्चा करते रहते हैं। इस तरह हमारे स्वाव-लम्बन का प्रयोग ही नयी तालीम की पद्धति से लोकशिक्षण का माध्यम बनता जा रहा है। स्वावलम्बन का प्रयोग दूसरी दृष्टि से भी लोकशिक्षण का माध्यम बन रहा है।

लोकशिक्षण के लिए हमने क्या किया ?

ग्रामस्वराज्य और सर्वोदय के प्रचार-प्रसार के लिए हमको जब समय मिलता है तब हम गाँवों में चले जाते हैं। ग्राम-सम्पर्क का यह कार्यक्रम जब हम लोग रहिका में थे उस समय काफी होता था। मधुबनी शहर में आने के बाद गाँव में जाने का प्रसंग अब तक नहीं आया है। लेकिन नगर-सम्पर्क कुछ हो रहा है।

यद्यपि हम यहाँ स्वावलम्बन का मार्ग खोजने आये हैं, फिर भी चूँकि रहिका और मधुबनी, दोनों जगहों की जमीन को ठीक करने में ही सारी शक्ति खर्च हुई, इसलिए अभी तक हम अपना खर्च जो औसत तीन परिवारों का है, बरनपुर में तीन साल में स्वावलम्बन के उपरान्त जो कुछ बचाकर रखा था, उससे तथा मित्रों के सहारे ही चला रहे हैं। अब तक की उपलब्धि को देखते हुए हम मानते हैं कि सन् १९६९ में हमें आंशिक रूप से भिक्षाधार पर ही रहना है और सन् १९७० से स्वावलम्बी हो जायेंगे।

स्वावलम्बी लोकसेवक के प्रश्न पर एक शंका यह उठायी जाती है कि स्वावलम्बन के साथ लोक-सम्पर्क नहीं हो सकता। पिछले दस-बारह सालों तक इस प्रयोग में लगे रहने से हमारा अनुभव इससे भिन्न है। हम नहीं मानते हैं कि लोक-सम्पर्क के लिए लोकसेवकों को निरन्तर घूमते ही रहना चाहिए; बल्कि हमारा अनुभव यह है कि केवल सम्पर्क और प्रचार की अपेक्षा स्वावलम्बन के समवाय के प्रसंग के साथ लोकशिक्षण का काम अधिक ठोस, तेजस्वी और असरकारक होता है। कार्यकर्ता के प्रति जनता की भी भावना अधिक अच्छी रहती है। हम मानते हैं कि रहिका में जिस प्रकार सम्पर्क का काम शुरू हुआ था, वह सिलसिला अगर जारी रहता और हम स्थायी रूप से वहीं पर रहे होते तो अवश्य काफी बड़े क्षेत्र में हमारा सम्पर्क हो चुका रहता। लेकिन मधुबनी में भी अब जमीन सुधर जाने से अपेक्षाकृत, कार्यक्षेत्र में जाने का काफी अवकाश मिलेगा, क्योंकि जो लोग यहाँ आकर→

अखिल भारतीय कस्तूरबा-शिविर-सम्मेलन

कस्तूरबाग्राम (इन्दौर) में गत ८ से १२ फरवरी तक सम्पन्न हुए शिविर एवं सम्मेलन के सारे आयोजन के पीछे जिन दो बातों का पूरे शिविर एवं सम्मेलन पर प्रभाव रहा, वे थीं कस्तूरबा गांधी-स्मारक ट्रस्ट द्वारा सन १९४५ से लेकर अबतक ग्रामीण महिलाओं और बालकों के लिए जो कार्य किये है, उनका मूल्यांकन करना और ट्रस्ट की भावी योजनाओं के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करना, जिससे ग्रामीण महिलाओं को अज्ञान, निरक्षरता, गरीबी और मानसिक गुलामी से मुक्ति दिलाने के लिए नयी दिशा और प्रेरणा प्राप्त हो सके।

पूरा-का-पूरा शिविर एवं सम्मेलन इन्हीं दो बातों के इर्द-गिर्द घूमता रहा। बा-बापू का सन्देश शहर से दूर बसी हुई मूक ग्रामीण महिलाओं तक कैसे पहुँचे? बच्चों के कल्याण के लिए क्या योजनाएँ हों? स्त्री शक्ति का जागरण कैसे हो? स्त्री पुरुष के बीच की असमानता कैसे मिटे?—ये सब बातें उक्त दो मुख्य उद्देश्यों की सहचरी थीं।

सर्वोदय-दर्शन के सुप्रसिद्ध भाष्यकार एवं मूर्धन्य विद्वान श्री दादा धर्माधिकारी ने शिविर का उद्घाटन करते हुए कहा "बा और बापू के नाम इस शिविर और सम्मेलन के साथ जुड़े हैं। बापू ने क्रान्ति की प्रक्रिया में एक नया आयाम जोड़ा कि जो क्रान्ति करना चाहता है, उसके जीवन में पहले क्रान्ति करनी होगी। आज विचारणीय यह है कि जो क्रान्ति करनेवाले मनुष्य होंगे, उनमें स्त्री की भूमिका क्या होगी?

"अब स्त्री के नागरिक हो जाने से स्त्री की भूमिका पुरुष के तुल्य हो गयी है। कानून जो कर सकता है, वह उसने किया है। लेकिन कानून अधिकार दे सकता है, सामर्थ्य नहीं। सामर्थ्य तो स्वायत्त होता है।"

विदेश उपमंत्री श्रीमती सरोजिनी महिषी ने कहा कि आज महिलाएँ हर बात में पुरुषों पर आश्रित हैं। मैं ऐसा नहीं मानती कि पुरुष को भगवान ने कुछ ज्यादा बुद्धि दी है और स्त्रियों को कम। परिश्रम करे तो स्त्री भी अपनी बुद्धि का विकास कर सकती है। संविधान ने स्त्री पुरुष समानता का अधिकार प्रदान किया है, पर ठीक ढंग से उसका उपयोग करने के लिए परिश्रम करना पड़ेगा।

मध्यप्रदेश के भूतपूर्व विकास-आयुक्त श्री प्रतापसिंह बापना ने कहा कि भारत में प्रगति जो धीमी रही, उसका कारण यही था कि हम उचित जन-मानस का निर्माण करने में असफल रहे। वेतन पाकर गांवों में काम करनेवाले लोग निष्ठा पैदा नहीं कर सकते। अगर गांवों में प्रगति करना है, तो वहाँ के लोगों को अपनी समस्याओं के प्रति सचेत करना होगा। सरकारी सहायता से जनमानस नहीं तैयार होगा। सरकार सिर्फ ईंट और चूने की सहायता उपलब्ध करा सकती है।

कस्तूरबा कुष्ठ निवारण, निलयम् (तमिल-नाडु) के मंत्री श्री टी० एन० जगदीशन् ने कहा कि कस्तूरबा ट्रस्ट का कार्य देश में भावनात्मक एकता की दिशा में उल्लेखनीय कार्य है। यहाँ मैं उस नारी का दर्शन कर रहा हूँ, जिसकी कल्पना महात्मा गांधी ने की थी।

उत्कल की सुप्रसिद्ध लोकसेविका माता श्रीमती रमादेवी ने अपनी उड़िया मिश्रित हिन्दी में कहा कि बापू ने स्त्री को अपनी शक्ति का भान करवाया। उससे पहले स्त्री को मालूम नहीं था कि स्त्री में जागने पर विप्लव करने व परिवर्तन लाने की शक्ति है।

सुप्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्री एवं केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की भूतपूर्व अध्यक्षा श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख ने शिविर का समारोप करते हुए कहा कि शासकीय स्तर पर किया गया कार्य गांधीजी को जीवित नहीं रख सकेगा। गांधी-शताब्दी-पर्व के लिए किये गये कार्य कहीं ऐसा न हो कि २ अक्तूबर को खत्म हो जायें और हम शताब्दी-वर्ष के बाद गांधीजी को जीवित न रहने दें। जबतक गांधी-शताब्दी के साथ सरकारी मशीनरी जुड़ी है, तबतक गांधी-शताब्दी-वर्ष में किसी खास तरक्की की मैं आशा नहीं रखती। मैं जनशक्ति में विश्वास रखती हूँ और विचारपूर्वक जनशक्ति के आधार पर ही गांधी-शताब्दी कार्यक्रम को सफलतापूर्वक मनाया जा सकता है।

केन्द्रीय गांधी-स्मारक-निधि के मंत्री श्री देवेन्द्रकुमार गुप्त ने कहा कि आज जमाने की सबसे बड़ी मांग है समाज में स्त्री पुरुष अभेद की स्थापना करना, और यही कस्तूरबा कार्य का मुख्य उद्देश्य है।

भूतपूर्व केन्द्रीय स्वास्थ्य-मंत्री और महिला एवं बाल-कल्याण समिति की अध्यक्षा डा० सुशीला नैयर ने कहा कि हमें बा और बापू का सन्देश उन लोगों तक पहुँचाना है, जिन तक वह नहीं पहुँचा है। कस्तूरबा का मुख्य कार्य तो स्त्री-शक्ति का जागरण है।

भूतपूर्व केन्द्रीय वित्तमंत्री श्री चिन्तामणि देशमुख ने कहा कि गांधी शताब्दी-वर्ष एक ऐसा अवसर है, जब हम विचार कर सकते हैं कि गांधीजी और कस्तूरबा की स्मृति में ऐसे कौन-कौनसे कार्यक्षेत्र हैं, जिनमें हमें कार्य करना है।

गांधी-जन्म-शताब्दी समिति की जन-सम्पर्क उपसमिति के मंत्री श्री एस० एन० सुब्बाराव, भूतपूर्व केन्द्रीय उप-विदेशमंत्री श्रीमती लक्ष्मी मेनन, सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष श्री मनमोहन चौधरी और श्रीमती मदालसा नारायण ने कहा कि छोटे बालकों को राष्ट्रपिता से परिचित कराने के लिए देश की भिन्न-भिन्न भाषाओं में पुस्तकें प्रकाशित करनी चाहिए और गीतों-भजनों के माध्यम से भी सन्देश पहुँचाये जाने चाहिए।

शताब्दी-वर्ष की समाप्ति के बाद भी हमारा कार्य स्थायित्व को प्राप्त हो— ऐसी कोशिश की जानी चाहिए।

→इनसे चर्चा करते हैं, वे सब ग्रामीण किसान ही हैं।

ग्रामभारती का एक विशेष काम यह भी है कि आन्दोलन में लगे पुराने कार्यकर्ता यहाँ आकर सर्वोदय-विचार तथा व्यवहार का प्रशिक्षण हासिल करें। ऐसे प्रशिक्षण शिविरों तथा 'स्वल्प प्रशिक्षण कोर्स' के द्वारा करने की कोशिश की जाती है। अबतक, तीन माह का एक प्रशिक्षण शिविर और एक-एक सप्ताह का एक शिविर हुआ है। इस वर्ष ऐसा शिविर हर माह में चलाने का निश्चय किया गया है। —[illegible]

आचार्य, ग्रामभारती

मधुबनी (दरभंगा)

ऊपरी स्मारक बनाने के स्थान पर उनके स्मारक हृदयों में बनाये जाने चाहिए।

श्रीमती लक्ष्मी मेनन के इस प्रस्ताव का स्वागत किया गया व उसे स्वीकृत किया गया कि २२ फरवरी, बा-पुण्यतिथि को 'मातृदिवस' के रूप में मनाया जाय। इस दिन विशेष कार्यक्रम रखकर अपनी माताओं के प्रति प्रतिष्ठा ज्ञापित की जाय।

अ० भा० शान्ति-सेना विद्यालय की संचालिका सुश्री निर्मला देशपांडे ने कहा, 'हिंसा, भय और द्वेषग्रस्त संसार में जहाँ कहीं भी अहिंसा के माध्यम से काम किया जाता है, उसे गांधी-काम की संज्ञा दी जाती है। इसीलिए अमेरिका में डा० मार्टिन लूथर किंग और इटली में दानीलो डोलची को वहाँ के लोग गांधी कहते हैं। नोआखाली में बापू के चरण चिह्नों से जो राह बन गयी है, उसका हम अनुसरण करें, तो बा-बापू की शताब्दी का यह वर्ष सार्थक हो सकता है।"

सम्मेलन का समारोप करते हुए उप-प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने कहा कि वह समाज कभी बहादुर व निर्भय नहीं हो सकता, जिस समाज में स्त्रियाँ अपने मौलिक अधिकारों से वंचित हैं। स्त्री सारे समाज को शक्ति दे सकती है। वह सेवा की मूर्ति है। उस पर जुल्म करने के बावजूद वह सेवा करती रहती है। स्त्री में समाज संगठन के गुण पुरुष की अपेक्षा अधिक हैं।

ट्रस्ट की पूर्वराशि कुछ प्रान्तों को छोड़कर समाप्त होने को है। ५० लाख रुपये की एक नयी राशि एकत्र करने की जानकारी के साथ ही श्री विट्ठलदास ठाकुरसी ट्रस्ट द्वारा १ लाख, जाल ट्रस्ट द्वारा ५० हजार, श्री सोहनलाल गांधी द्वारा ५ हजार की राशि ट्रस्ट को दान में प्राप्त होने की घोषणा भी कम प्रेरणाप्रद नहीं रही। उसका करतल-ध्वनि के साथ स्वागत किया गया

शिविर एवं सम्मेलन में निम्नलिखित सुझाव दिये गये :

• ट्रस्ट केन्द्रों के कार्य के साथ-साथ महिला-जागरण एवं ग्राम-स्वराज्य अभियानों का संयोजन किया जाय।

• ट्रस्ट के लिए दिये गये सुझावों को मान्यता देते हुए महिला लोकयात्रा–जैसे कार्यक्रमों को स्वतंत्र रूप से व ट्रस्ट के साथ सहयोग से चलाया जाय।

• देश में व्याप्त हिंसा के शमन के लिए सब स्तरों पर शान्ति-सेना का संगठन किया जाय एवं हर प्रान्त में ट्रस्ट के द्वारा संचालित सब प्रकार के विद्यालयों में शान्ति सेना प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाय।

• ग्रामदानी क्षेत्र में, ग्रामसभाओं के कार्य में महिलाओं का विशेष योगदान हो, उसके लिए विशेष प्रयास किया जाय।

• स्त्री की मानवीय एवं नागरिकता की प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिए अशोभनीय पोस्टर, अश्लील साहित्य, सिनेमा तथा विज्ञापन आदि के द्वारा स्त्री का जो अपमान हो रहा है, उसके खिलाफ आन्दोलन किया जाय।

• महिलाओं को सम्मानपूर्वक रोटी-रोजी प्राप्त हो, इसलिए हर परिवार में कम-से-कम २० रुपये की खादी पहुँचाने का व्यापक अभियान किया जाय।

• पाकिस्तान तथा अन्य पड़ोसी देशों की महिलाओं को गांधी शताब्दी का संदेश सुनाने के लिए भारत की महिलाओं के प्रतिनिधि मंडल भेजे जायँ।

• अस्पृश्यता-निवारण और पूर्ण नशाबंदी हेतु व्यापक आन्दोलन किये जायँ।

—अवधकुमार गर्ग की रिपोर्ट से

एक अनूठी कलाकृति

श्री नारायण देसाई की 'संत सेवता सुकृत वाधे' मूल गुजराती में पढ़ी। एक अनूठी कलाकृति है। उसमें आत्मकथा की सजीवता और प्रतीति है। फिर भी महत्ता का दर्प नहीं है। जिन घटनाओं और परिस्थितियों का वर्णन इस छोटी-सी पुस्तक में है, उनके साथ लेखक का घनिष्ठ और प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहा है। वह केवल एक तटस्थ प्रेक्षक नहीं रहा है। कई प्रसंगों में उसकी अपनी भूमिका भी महत्त्वपूर्ण है। परन्तु अन्य व्यक्तियों की भूमिका का चित्रण करने में उसने अपने को गौण स्थान ही दिया है। लेखक की सदभिरुचि का यह द्योतक है।

'मोहन और महादेव' इस सुन्दर पुस्तक की दो विभूतियाँ हैं। 'हरिहर' की तरह उनका विभूतिमत्त्व अविभाज्य है। अनेक घटनाओं और प्रसंगों के चित्रण में नारायण भाई ने उस विभूति-मत्त्व की जो झाँकियाँ दिखाई हैं, वे नितान्त मनोज्ञ हैं। साबरमती और सेवाग्राम आधुनिक भारत के तिर्थक्षेत्र माने जाते हैं। वहाँ के दैनंदिन जीवन के जो दर्शन इस पुस्तक में कराये गये हैं और जिस रुचिर शैली में कराये गये हैं, वह हृदयस्पर्शी है। नारायण भाई की भाषा में एक अनलंकृत लावण्य है। पृष्ठ २९ और ३० पर लेखक के मानस पर जो छाप पड़ी, उसकी उपमा उसने कृष्ण पक्ष के नभोमण्डल से दी है। पुस्तक में करुण, उदात्त आदि रसों के साथ-साथ ऋजु और सौजन्ययुक्त विनोद की छटाएँ भी हैं, जो उसे अधिक चित्ताकर्षक बनाती हैं। लेखक की सहृदयता की छाप तो पृष्ठ पृष्ठ पर है।

पुस्तक का हिन्दी भाषान्तर हमारे मित्र श्री दत्तोबा दास्ताने ने किया है। दत्तोबा का 'रचनवन' पत्रकार के सन्त ने किया है। उनके जीवन में जो संस्कारिता और प्रगल्भता है, वह विनोबा के साथ दीर्घ सहवास का परिपाक है। नारायण भाई को भाषा-न्तरकार भी समानशील मिले। पाठक की दृष्टि से यह बड़ा ही शुभ संयोग है। गांधी की विभूति की विविधता की झाँकी जो देखना चाहते हों, उनके लिए यह पुस्तक निःसन्देह उपादेय है।

२०-१-१९६९ —दादा धर्माधिकारी

[श्री नारायण देसाई की नयी पुस्तक : "बापू की गोद में" की प्रस्तावना। प्रकाशक : सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी; मूल्य ४ ॥ रुपया]

सम्पादक के नाम पत्र

'भूदान-यज्ञ' : नाम-चर्चा

महोदय,

११ जनवरी के 'भूदान-यज्ञ' में एक साथी ने 'भूदान यज्ञ' जैसे नाम के स्थान पर 'ग्रामदान महायज्ञ' जैसा नाम दिया जाय, ऐसी इच्छा प्रकट की है। अतः इसी सन्दर्भ में मैं अपना विचार स्पष्ट कर रहा हूँ। भूदान एक बीज है, जिसका विकास होते-होते ग्रामदान की भूमिका स्पष्ट हुई है। ग्रामदान के सन्दर्भ में भूदान ही कपड़े के ताने-बाने की तरह ओतप्रोत है और यदि ग्रामदान से इसे पृथक् किया जाय तो ग्रामदान का वास्तविक मूल्य ही समाप्त होगा।

'भूदान' शब्द में इतनी व्यापकता है कि यह समस्त जगत् को अपने में आत्मसात करता है, जिसके दायरे से गाँव के अतिरिक्त नगर भी बाहर नहीं जा सकते। भूदान-यज्ञ वैदिक शब्द है, जो अति प्राचीन है, बदलते युग की परिस्थिति में अपना नया अर्थ धारण कर जनमानस को प्रेरित करता है। अतः इसकी रक्षा करनी है, इसके अभाव में हम शब्द शक्ति को ही खो बैठेंगे।

—शिवनारायण शास्त्री

मथुरा, २०-१-'६९

महोदय,

मैंने जब 'भूदान-यज्ञ' मँगाना शुरू किया तो मेरी सहेलियों और कुछ बहनों ने पूछा कि यह क्यों मँगाती हो? इसमें तो जगह-जमीनदान करने की खबर रहती है। मैंने उन्हें समझाया कि संकटग्रस्त संसार का उद्धार जिससे सम्भव है वही पैगाम इस पत्रिका में रहता है। जीवन का एक मुख्य मसला है जमीन का। यही खेत-पथार का प्रबन्ध अफसर के द्वारा न हो, प्यार से ग्रामीणों के द्वारा हो।

मेरी राय है कि अब खाली खेत के दान-दक्षिणा का किस्सा इसमें नहीं है एक सर्व-गुण-सम्पन्न समाज की स्थापना का सन्देश है तो एकांगी नाम 'भूदान-यज्ञ' हटाकर सार्थक अधिक सुहावन, अतिमनभावन नाम रखा जाय और वह 'ग्रामदान महायज्ञ' ही है, ताकि सभी वर्ग (नर-नारी) के लोग नित्यधर्म की तरह इसका पठन-पाठन कर सकें और आन्दोलन में गति आये।

विष्णुपुर, मुंगेर
२२-१-'६९

—फूलमयि

हिंसात्मक खूनी क्रान्ति एवं गांधीजी

गांधीजी ने कहा था :

"आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है पूंजी और श्रम के बीच के शाश्वत संघर्ष का अन्त करना। इसका मतलब जहाँ एक ओर यह है कि जिन थोड़े से अमीरों के हाथ में राष्ट्र की सम्पदा का कहीं बड़ा अंश केन्द्रीभूत है उनके उतने ऊँचे स्तर को घटाकर नीचे लाया जाय, वहाँ दूसरी ओर यह कि अध-भूखे और नंगे रहनेवाले करोड़ों का स्तर ऊंचा किया जाय। अमीरों और करोड़ों भूखे लोगों के बीच की यह चौड़ी खाई जब तक कायम रखी जाती है तब तक तो इसमें कोई सन्देह ही नहीं कि अहिंसात्मक पद्धतिवाला शासन कायम हो ही नहीं सकता। स्वतंत्र भारत में, जहाँ कि गरीबों के हाथ में उतनी ही शक्ति होगी जितनी कि देश के बड़े-बड़े अमीरों के हाथ में, वैसी विषमता तो: एक दिन के लिए भी कायम नहीं रह सकती, जैसी कि नयी दिल्ली के महलों, और वहीं नजदीक की उन सड़ी-गली झोंपड़ियों के बीच पायी जाती है, जिनमें मजदूर-वर्ग के गरीब लोग रहते हैं। हिंसात्मक और खूनी क्रान्ति एक दिन होकर ही रहेगी, अगर अमीर लोग अपनी सम्पत्ति और शक्ति का स्वेच्छापूर्वक ही त्याग नहीं करते और सबकी भलाई के लिए उसमें हिस्सा नहीं बँटाते।"

देश में दंगे-फसाद और खून-खराबी का वातावरण बढ़ता जा रहा है। इसमें आर्थिक, सामाजिक विषमता भी बड़ा कारण है। गांधीजी की उक्त वाणी और चेतावनी आज अधिक ध्यान देने को बाध्य करती है। क्या देश के लोग, विशेषतः अमीर, समय के संकेत को पहचानेंगे?

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी जन्म-शताब्दी समिति), डुंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

तंजौर में शान्ति-कार्यक्रम का अभिक्रम

दक्षिण भारत की प्रसिद्ध नदी कावेरी तमिलनाडु प्रदेश के तंजौर जिले से बहती है। कावेरी नदी के पानी से तंजौर जिले की लगभग १६ लाख एकड़ कृषि भूमि की सिंचाई होती है। इसके ही कारण तंजौर जिले को तमिलनाडु का धान्य-भाण्डार होने का गौरव प्राप्त है। लेकिन वहाँ के लिए दुर्भाग्यजनक बात यह है कि जमींदारों और किसानों के अमैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के चलते वहाँ विद्वेष और पारस्परिक हिंसा का ऐसा प्रवाह फूट पड़ा है, जिसका वहाँ के कृषि-उत्पादन पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। पिछले महीनों में वहाँ कई हत्या की घटनाएँ हुई हैं और हाल ही में ४२ निर्दोष प्राणियों को जीवित जला देने की दर्दनाक घटना भी घटी है। जलनेवालों में मुख्यतः हरिजन स्त्रियाँ और बच्चे थे।

जैसा कि ऊपर से दीखता है वहाँ की इस समस्या के मूल में सिर्फ मजदूरी बढ़ाने की बात नहीं है। वहाँ के जमींदार बाहर से मजदूर बुलाकर फसल काटने की मजदूरी के रूप में स्थानीय माप से साढ़े चार लिटरोस अनाज देने लगे। कम्युनिस्टों के नेतृत्व से प्रभावित किसानों ने हिंसात्मक कार्रवाइयाँ करते हुए ६ लिटरोस मजदूरी की माँग की। तंजौर की इस समस्या की जड़ें वहाँ गहराई तक घुसी हुई हैं। दरअसल यह सामंतवादी जमाने की व्यवस्था और शान्ति के लिए सिर उठानेवाली नयी शक्तियों के बीच की कशमकश है।

तंजौर की इस समस्या का यदि शान्तिपूर्ण समाधान नहीं ढूँढ़ लिया जाता तो वहाँ का वातावरण और भी अधिक हिंसापूर्ण होता जायेगा और वह पूरे तमिलनाडु में फैल जायेगा।

तमिलनाडु सर्वोदय मण्डल और तमिलनाडु सर्वोदय संघ ने तत्काल अपनी संयुक्त बैठक करके निम्नलिखित कार्यक्रम निर्धारित किया :—

१. पूरे तंजौर जिले के बारहों तालुके में एक-एक शान्ति-केन्द्र स्थापित करके प्रत्येक केन्द्र के लिए पूरे समय का एक शान्ति सेवक नियुक्त करना।

२. प्रत्येक शान्ति-केन्द्र के इर्दगिर्द के कम-से-कम एक सौ युवकों को शान्ति-सेना का प्रशिक्षण देना। यह प्रशिक्षण ४०-५० की दो टोलियों में होगा।

३. विश्व-शान्ति तथा अन्य समस्याओं के लिए अहिंसक समाधान प्राप्त करने की जानकारी के लिए सेमिनार (अध्ययन-गोष्ठियाँ) आयोजित करना।

४. क्षेत्र में पदयात्राओं का आयोजन करके लोगों से शान्तिपूर्वक जीने और ग्रामदान स्वीकार करने की अपील करना।

५. गांधीजी की अहिंसक कार्यप्रणाली का लोगों में प्रचार करने के लिए, सभा, सांस्कृतिक कार्यक्रम, और नाटक इत्यादि का आयोजन करना।

६. ग्रामदान प्राप्त करना और उसके बाद ही ग्रामसभाओं का गठन करना और भूमिहीनों के लिए प्राप्त भूमि का वितरण करके भूमिवानों और भूमिहीनों के बीच पारस्परिक प्रेम और विश्वास का वातावरण पैदा करना।

तमिलनाडु सर्वोदय मण्डल ने १२ जनवरी '६६ की अपनी बैठक में उपरोक्त सभी कार्यक्रमों को तत्काल लागू करने और तंजौर जिले में शान्ति आन्दोलन को सबल बनाने के लिए १ लाख का कोष एकत्र करने का निर्णय किया है। —एस० हरिहरन्

आन्दोलन के समाचार

पश्चिमनिमाड़ जिलादान-समारोह

महीनों के कठिन परिश्रम और उससे भी कठिन तप तथा व्रत के बाद सर्वोदय-पक्ष की समाप्ति से पहले पश्चिमनिमाड़ के जिलादान का संकल्प पूरा हुआ और गत १३ फरवरी, '६६ की शाम को खरगोन में जिलादान का समर्पण-समारोह प्रदेश की सुप्रसिद्ध लोक-सेविका कुमारी श्री कमलप्रभाबहन दास की अध्यक्षता में सानन्द सम्पन्न हुआ। जिले की आठों तहसीलों और सोलहों विकास खण्डों के ग्रामदान उस उस क्षेत्र के प्रतिनिधियों ने अध्यक्षाजी को समर्पित किये। समर्पण विधि के बाद सबने मिलकर जिले में ग्राम स्वराज्य की स्थापना के सामूहिक संकल्प को दोहराया।

सामूहिक संकल्प के बाद सुश्री निर्मला-बहन देशपाण्डे ने खरगोन जिले और खरगोन नगर के नागरिकों को जिलादान की उज्ज्वल सिद्धि पर अपनी आन्तरिक बधाई दी और राष्ट्रव्यापी अहिंसक क्रांति के सन्दर्भ में जिलादान तथा प्रदेशदान के ऐतिहासिक महत्त्व की चर्चा करते हुए इसे लोक-जागरण का एक सशक्त साधन निरूपित किया। उन्होंने कहा कि गांवों में ग्राम-स्वराज्य की स्थापना से राष्ट्र की सुरक्षा के साथ ही लोकतंत्र की अपनी मूल शक्ति का विकास हो सकेगा और जब गाँव गाँव की जनता अपने विकास की योजना स्वयं बनायेगी, तो आज की योजना के क्रम और उनके स्वरूप में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हो सकेगा। इस अवसर पर सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष श्री मनमोहन चौधरी ने भी जिलादान का स्वागत करते हुए ग्राम के द्वीप और अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ में उसके विशिष्ट महत्त्व पर विस्तार से प्रकाश डाला। अध्यक्षा कुमारी श्री कमलप्रभाबहन दास ने जिलादान के लिए जिले की जनता का अभिनन्दन किया और जिले में ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के लिए अपनी मंगल कामना प्रकट की।

मध्यप्रदेश सर्वोदय मण्डल के अध्यक्ष श्री वि० स० खोड़े ने जिलादान-सम्बन्धी जानकारी देते हुए बताया कि जिले के कुल २,०६२ गांवों में से ३६२ गाँव गैर-आबाद और १,७०० गाँव आबाद हैं। इनमें से १,४८१ गांवों ने ग्रामदान के घोषणापत्रों पर अपने हस्ताक्षर देकर ग्रामदान के विचार और कार्यक्रम को अपनी स्वीकृति दी है। इस तरह जिले के कुल ८७ प्रतिशत गाँव ग्रामदान में सम्मिलित हुए हैं। जिला गांधी-शताब्दी-समिति के संयोजक और पश्चिमनिमाड़ के जिलाध्यक्ष श्री बैजनकृष्ण सेठी ने प्रारम्भ में बाहर से आये अतिथियों, प्रतिनिधियों और नागरिकों का स्वागत किया। समर्पण समारोह का सारा आयोजन जिला शताब्दी-समिति के तत्त्वावधान में हुआ। (सप्रेस)

मतदाता-शिक्षण अभियान

कानपुर। कानपुर के सभी उम्मीदवारों से एक सातसूत्री सहित आचार-संहिता पर हस्ताक्षर कराने का प्रयास हुआ। १३ प्रत्याशियों ने हस्ताक्षर किये। ८ जनवरी को जिला परिषद हाल में एक सभा की गयी, जिसमें प्रमुख नागरिकों के अलावा ३ प्रत्याशियों ने भी अपने विचार व्यक्त किये। हमारे सुझाव पर कई क्षेत्रों के नागरिकों ने संयुक्त चुनाव सभाओं का आयोजन किया। लोक शिक्षण के लिए ८ हजार पत्रक छपवा-कर बाँटे गये। गांधी शताब्दी-फोल्डर तथा पोस्टर का अच्छा उपयोग हुआ।

—विनय अवस्थी

बैतूल जिले में ४७ गाँव ग्रामदान

इन्दौर १७ फरवरी। प्राप्त जानकारी के अनुसार ३० जनवरी से १२ फरवरी (गांधी बलिदान दिवस से श्राद्ध-दिवस) तक मनाये जानेवाले सर्वोदय-पखवारे के अन्तर्गत बैतूल जिले के शाहपुर गाँव में दो दिन का शिविर सम्पन्न हुआ। शिविर में २५० नागरिकों ने भाग लिया। तत्पश्चात् शाहपुर विकास खण्ड में ग्राम-स्वराज्य अभियान चलाया गया। अभियान में सर्वोदय केन्द्र, करकवाई सेन्ट के व्यवस्थापक, पटवारी, ग्रामसेवक तथा गांधी निधि के तीन कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। परिणामस्वरूप ४७ गाँव ग्रामदान घोषित हुए। ८० रुपये का सर्वोदय-साहित्य बिका तथा "शताब्दी-सन्देश" पत्रिका के चार वार्षिक ग्राहक बनाये गये।

तीन तहसीलोंवाले बैतूल जिले में कुल १,२५० गाँव हैं, जिनमें से अब तक ७१ ग्रामदान हो चुके हैं। (सप्रेस)

सरगुजा जिले में उदयपुर प्रखण्डदान

अम्बिकापुर, १७ फरवरी। जिला ग्रामदान अभियान के अन्तर्गत सरगुजा जिले का उदयपुर प्रखण्ड ग्रामदान के अन्तर्गत आ गया है। पूरे प्रखण्ड में ९७ गांव हैं, जिनमें से ८१ गांव ग्रामदानी घोषित हुए। जिले में अबतक पाँच प्रखण्डदान घोषित हुए।

चांदा जिले में गढ़चिरोली प्रखण्डदान

महाराष्ट्र के चांदा जिले के गढ़चिरोली प्रखण्ड में गत १ फरवरी से पदयात्रा चल रही है। ग्राम-विकास चरखा संघ और ग्राम दान के कार्यकर्ताओं के संयुक्त प्रयास के फल-स्वरूप गढ़चिरोली का प्रखण्डदान हुआ है। इस प्रखण्ड में कुल ९८ गाँव हैं, जिनमें से ८९ गाँव प्रखण्डदान में शामिल हुए। चांदा जिले में इसके पहले सिरोंचा का प्रखण्डदान हुआ था। यह अब दूसरा प्रखण्डदान हुआ है।

विभिन्न स्थानों में सर्वोदय-पक्ष

भीलवाड़ा (डाक से)। गांधी श्राद्ध-दिवस के अवसर पर यहाँ से कोई २४ मील दूर त्रिवेणी-संगम पर आयोजित गांधी-मेले में प्रमुख सर्वोदय नेता श्री सिद्धराज ढड्ढा ने कहा कि समाज जीवन में सेवा और सहयोग के मूल्यों के विपरीत प्रतिस्पर्धा का वातावरण ही वर्तमान समस्याओं का कारण है। आपने कहा कि ग्रामदान आन्दोलन से समाज-जीवन में प्रेम और सहयोग भावना का विकास सम्भव है। आपने ग्रामस्वराज्य को गांधीजी की कल्पना की नवसमाज रचना का प्रतीक बताया।

सेवा संघ, भीलोद यहाँ प्रतिवर्ष १२ फरवरी को गांधी मेले का आयोजन करता है।

गत १२ फरवरी को खादी-ग्रामोद्योग कमीशन, श्रीनगर के तत्त्वावधान में सर्वोदय-दिवस के उपलक्ष में 'सूतांजलि' का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इस कार्यक्रम में श्रीगांधी आश्रम, श्री कस्तूरबा सेवा-मंदिर, कश्मीर दस्तकार अंजुमन और जम्मू-कश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने भी उत्साहपूर्वक भाग लिया। इसके अतिरिक्त श्रीनगर के प्रमुख आमंत्रित नागरिक भी उपस्थित थे। कश्मीर के खादी-कमीशन के राज्य कार्यालय के अन्तर्गत जितने केन्द्र हैं, उनमें ३० जनवरी से १२ फरवरी तक प्रतिदिन आध घंटा में गीता-पाठ, कुरान शरीफ के मंत्रों का पाठ, भजन एवं सामूहिक कताई की गयी। आखिरी दिन १२ फरवरी को स्थानीय सभी रचनात्मक खादी संस्थाओं को निमन्त्रित कर सूतांजलि का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम का महत्त्व सबको समझाने के लिए सर्व सेवा संघ द्वारा प्रसारित "सूतांजलि" नामक एक फोल्डर की नकलें आमंत्रितों को दी गयीं।

गांधी-जन्म शताब्दी के उपलक्ष में ३० जनवरी से १२ फरवरी तक बिहारीगंज "रामबाग", सहरसा में लोकसेवक श्री सोमनाथ साह के संयोजकत्व में सन्त-सम्मेलन, छात्र-सम्मेलन, महिला-सम्मेलन, शिक्षा और शिक्षक-सम्मेलन आदि रचनात्मक कार्यों का आयोजन किया गया। लगातार चौदह दिनों तक सामूहिक प्रार्थना, सामूहिक सफाई और गांधी-विचारों का अध्ययन अध्यापन चलता रहा।

१२ फरवरी को नागरिकों की ओर से बाल-सहभोज हुआ। रात्रि में "गांधी का चरखा ही एकमात्र सहारा है" नामक नाटक का अभिनय स्थानीय बच्चों द्वारा किया गया। इस मेले में गांधी-साहित्य, बैज और 'गांधी-चित्रावली' काफी मात्रा में बेची गयी। स्थानीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों द्वारा धुनाई से लेकर बुनाई तक की क्रियाओं का प्रदर्शन किया गया, जिसमें एक थान खादी का कपड़ा बुना गया।

श्री प्रभाकरजी का अनशन समाप्त

श्री प्रभाकरजी ने गत १ फरवरी से अनशन शुरू किया था। अब आन्ध्र में शान्ति का प्रयास किया जाने लगा है तथा वातावरण में शान्ति है, अतः ११ फरवरी '६९ को रात को प्रभाकरजी ने अपना अनशन समाप्त किया।

प्रसन्नता की बात है कि आन्ध्र प्रदेश के सभी देश-हितैषियों का ध्यान अब इस ओर गया है। राज्य में शान्ति की स्थापना का प्रयत्न होने लगा है। आन्ध्र के सर्वोदयी नेता व कार्यकर्ताओं के एक दल का भी संगठन हो गया है, जिसमें डा० वेंपटि सूर्यनारायण, कोदाटि नारायण राव तथा उम्मेतल केशव राव जैसे सर्वोदयी नेता व कार्यकर्ता हैं। इस दल ने अपना कार्य शुरू कर दिया है।

कर्नाटक में महिला लोकयात्रा

मैसूर राज्य सर्वोदय मण्डल और अन्य रचनात्मक संस्थाओं के तत्त्वावधान में २२ फरवरी, ६९ कस्तूरबा पुण्यतिथि से एक महिला लोकयात्रा टोली निकली है। फिलहाल एक वर्ष के लिए मैसूर राज्य में मर्यादित इस लोकयात्रा का नेतृत्व गांधीजी की अंग्रेज शिष्या मिस हैलीमन (सुश्री सरलादेवी) कर रही हैं। सुश्री सरलादेवी ने देश के आजादी-आन्दोलन में उल्लेखनीय योगदान दिया है। भारत की आजादी के पश्चात वे उत्तराखण्ड में रचनात्मक कामों में लगी रहीं। टोली में पंजाब की कु० तारा और कर्नाटक की कु० लक्ष्मी भी शामिल हैं।

लोकयात्रा का उद्देश्य वर्तमान परिस्थिति के संदर्भ में स्त्री-जागरण एवं उनमें नवशक्ति का संचार करना है। यह स्मरणीय है कि विनोबाजी की प्रेरणा से ऐसी एक लोकयात्रा १२ वर्ष तक भारत-भ्रमण का निश्चय कर अक्तूबर, '६७ में इन्दौर से आरम्भ हुई थी। यह लोकयात्रा टोली आजकल हरियाणा राज्य में घूम रही है। (सन्देश)

दिल्ली में ८-९ मार्च को शराबबन्दी हेतु राष्ट्रीय सम्मेलन

सम्पूर्ण देश में शराबबन्दी लागू करने के उद्देश्य से ८ व ९ मार्च को एक राष्ट्रीय सम्मेलन नयी दिल्ली में करने का निश्चय किया गया है।

कलकत्ता में साहित्य-प्रचार

कलकत्ता शहर में वयोवृद्ध श्री दानारामजी मक्कड़ कई वर्षों से लगनपूर्वक सर्वोदय-साहित्य का प्रचार कर रहे हैं। सन् १९६७ की दीपावली से १९६८ की दीपावली तक के वर्ष में आपने लगभग दस हजार रु० की साहित्य-बिक्री की, पत्रिकाओं के १८३ ग्राहक बनाये और ५९६ रु० की पत्रिकाएँ भी बेचीं।

दिल्ली में राष्ट्रीय एकता-सम्मेलन

श्री शंकरराव देव की अध्यक्षता और श्री जयप्रकाश नारायण की उपस्थिति में दिल्ली में ११ से २३ फरवरी, '६९ तक राष्ट्रीय एकता-सम्मेलन हुआ। उक्त सम्मेलन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय जनसंघ, प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) और भारतीय रिपब्लिकन पार्टी तथा सार्वजनिक क्षेत्र के ७० से अधिक प्रतिनिधि शरीक हुए। विभिन्न प्रकार के मतों की अभिव्यक्ति के बावजूद एकता सम्मेलन में हुई चर्चाओं द्वारा सम्बन्धित कई मुद्दों पर बहुत हद तक सर्वानुमोदित राय बन गयी।

श्री धीरेन्द्र भाई के कार्यक्रम में परिवर्तन

८ मार्च तक : आरा
१० मार्च से १३ मार्च तक : मधुबनी
१५ मार्च, १६ मार्च : हाजीपुर
१८ मार्च से २८ मार्च तक : आगरा
२९ मार्च, ३० मार्च : ललितपुर
१ अप्रैल से ९ अप्रैल तक : टीकमगढ़
१० अप्रैल से २ मई तक : मधुबनी

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट, सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इंडियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : २३

सोमवार १० मार्च, '६९

अन्य पृष्ठों पर

मदुराई जिलादान

तार से सूचना मिली है कि २८ फरवरी को जनमेला में मदुराई जिलादान की घोषणा की गयी। कोडाईकनाल प्रखण्ड को छोड़कर ३३ प्रखण्ड इसमें शामिल हैं। कुल ४,०२ गाँवों में से ३,११३ गाँवों का ग्रामदान पूरा हुआ।

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

विजय का असंदिग्ध साधन

यदि हम लिखित इतिहास के आदिकाल से लेकर हमारे अपने समय तक के क्रम पर नजर डालें, तो हमें पता चलेगा कि मनुष्य अहिंसा की तरफ बराबर बढ़ता चला आ रहा है। हमारे प्राचीन पुरखे मानव-भक्षी थे। फिर एक समय ऐसा आया जब लोग मानव भक्षण से ऊब गये और शिकार पर गुजर करने लगे। आगे चलकर मनुष्य को आवारा शिकारी का जीवन व्यतीत करने में भी शर्म आने लगी। इसलिए वह खेती करने लगा और अपने भोजन के लिए मुख्यतः वह धरती माता पर निर्भर हो गया। इस प्रकार एक खानाबदोश की जिन्दगी को छोड़कर उसने सभ्य और स्थिर जीवन अपनाया, गाँव और शहर बसाये और एक परिवार के सदस्य से वह समाज और राष्ट्र का सदस्य बन गया। ये सब उत्तरोत्तर बढ़ती हुई अहिंसा और घटती हुई हिंसा के चिह्न हैं। इससे उलटा होता तो जैसे बहुत-से निचली श्रेणी के प्राणियों की जातियाँ लुप्त हो गयी वैसे ही मानव-जाति भी लुप्त हो गयी होती।

पैगम्बरों और अवतारों ने भी थोड़ा बहुत अहिंसा का ही पाठ पढ़ाया है। उनमें से एक ने भी हिंसा की शिक्षा देने का दावा नहीं किया। और करे भी कैसे ? हिंसा सिखानी नहीं पड़ती। पशु के नाते मनुष्य हिंसक है और आत्मा के रूप में अहिंसक है। जब मनुष्य को आत्मा का भान हो जाता है, तब वह हिंसक रह ही नहीं सकता। या तो वह अहिंसा की ओर बढ़ता है या अपने विनाश की ओर दौड़ता है। यही कारण है कि पैगम्बरों और अवतारों ने सत्य, मेलजोल, भाईचारा और न्याय आदि के पाठ पढ़ाये हैं। ये सब अहिंसा के गुण हैं।

यदि हमारा विश्वास हो कि मानव-जाति ने अहिंसा की दिशा में बराबर प्रगति की है, तो यह निष्कर्ष निकलता है कि उसे उस तरफ और भी ज्यादा बढ़ना है। इस संसार में स्थिर कुछ भी नहीं है, सब कुछ गतिशील है। यदि आगे बढ़ना नहीं होगा तो अनिवार्य रूप में पीछे हटना होगा।¹

अहिंसा के बिना सत्य की खोज और प्राप्ति असम्भव है। अहिंसा और सत्य आपस में इतने ओतप्रोत हैं कि उन्हें एक-दूसरे से अलग करना लगभग असम्भव है। वे सिक्के या इससे भी बेहतर किसी चिकनी चकती के दो पहलुओं की तरह हैं। कौन कह सकता है कि उनमें कौनसा पहलू उलटा है और कौनसा सीधा ? फिर भी अहिंसा साधन है, सत्य साध्य है। साधन तभी साधन है जब वह हमारी पहुँच के भीतर हो, और इसलिए अहिंसा हमारा सर्वोपरि कर्तव्य है। यदि हम साधनों की सावधानी रखें तो आगे पीछे हमारी साध्य सिद्धि होकर रहेगी। जब एक बार हमने इस मुद्दे को अच्छी तरह समझ लिया, तो अन्तिम विजय असंदिग्ध है।²

—मो० क०

(१) ११-८-'४० (२) 'मंगल प्रभात' : सन् १९४५, पृष्ठ

छुट्टियों में तरुणों के लिए राष्ट्र-निर्माण का कार्यक्रम

हर साल भारत के लाखों विद्यार्थियों को महीनों तक ग्रीष्मकाल की छुट्टियां मिलती हैं। लेकिन उनमें से विरले ही ऐसे होते हैं, जो इन छुट्टियों का उपयोग अपने चरित्र-निर्माण तथा राष्ट्र-निर्माण के काम में करते हैं। क्या आप उनमें से एक बनना चाहेंगे ?

भारतीय तरुण शांति-सेना आपको इसका मौका दे रही है। इस साल मई और जून महीने में तरुण शांति-सेना की ओर से दो शिविर लिये जायेंगे, जिनमें आप यदि चाहें तो शरीक हो सकते हैं। दोनों शिविरों में भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों से चुने हुए छात्र-छात्राएँ इकट्ठे होंगे, साथ जियेंगे, साथ निर्माण का काम करेंगे, साथ अध्ययन करेंगे और साथ मनोरंजन करेंगे। भारत के कोने-कोने से शिविरार्थी इकट्ठे होंगे। उनमें धर्म, जाति, भाषा और प्रांत का कोई भेद नहीं होगा। आप शिविर में शामिल होकर अपनी छुट्टियों का सदुपयोग कर सकते हैं।

प्रथम शिविर नगर के वातावरण में होगा और वह मुख्यतः अभ्यास-शिविर होगा, जिसमें शिविरार्थी छात्रों की समस्या के बारे में गहराई से सोचेंगे तथा दूसरा शिविर ग्रामीण वातावरण में होगा और वह मुख्यतः श्रम-शिविर होगा, जिसमें शिविरार्थी राष्ट्र-निर्माण के एक प्रत्यक्ष कार्यक्रम में शामिल होते हुए इस विषय पर अध्ययन करेंगे कि ग्राम-निर्माण के कार्यक्रम में छात्र क्या सहयोग दे सकते हैं।

शिविरों की जानकारी तथा आकर्षक अंग

आठवाँ अ० भा० तरुण शांति-सेना शिविर

दिनांक : ११ मई से २५ मई, '६९

स्थान : बम्बई

(१) प्रतिदिन डेढ़ घंटे का श्रमदान।

(२) निम्न विषयों पर अधिकारी व्यक्तियों के व्याख्यान :

(क) आधुनिक युग में गांधी का प्रसंगानुरूप महत्त्व,

(ख) विश्व युवक आन्दोलन,

(ग) दूसरे महायुद्ध के बाद का विश्व।

(३) निम्नलिखित विषयों पर चर्चाएँ :

(क) राष्ट्रीय एकता,

(ख) धर्म-निरपेक्षता,

(ग) लोकतंत्र,

(घ) विश्व-शान्ति।

(४) वैविध्यपूर्ण मनोरंजन कार्यक्रम।

(५) सर्वधर्म-प्रार्थना।

नौवाँ अ० भा० तरुण शांति-सेना शिविर

दिनांक : १ जून से २१ जून, '६९

स्थान : गोविंदपुर, जि० मिर्जापुर (उ० प्र०)

(१) श्रम-योजना

इस शिविर में जमीन के बांध बांधने तथा भूमि सुधार के ठोस कार्यक्रम उठाये जायेंगे, जिससे ग्रामदानी ग्राम के आदिवासियों का स्थायी लाभ होगा।

(२) प्रतिदिन ४ घंटे का श्रमदान।

(३) निम्न विषयों पर व्याख्यान तथा चर्चाएँ :—

(क) राष्ट्रीय परिस्थिति,

(ख) राष्ट्र-निर्माण में युवकों का स्थान,

(ग) ग्राम-विकास के कार्यक्रम।

(४) वैविध्यपूर्ण मनोरंजन-कार्यक्रम।

(५) सर्वधर्म-प्रार्थना।

दोनों शिविरों के साथ एक दिन का प्रवास भी आयोजित किया जायेगा। भोजन की व्यवस्था दोनों शिविरों में निःशुल्क रहेगी। आवेदन-पत्र भरने की आखिरी तारीख पहले शिविर के लिए २० अप्रैल, '६९ तक, और दूसरे शिविर के लिए १० मई, '६९ तक होगी। *शिविरों का आवेदन-पत्र* एक रुपये का डाक-टिकट भेजने से मिल सकता है। इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी निम्न पते से मंगवाइए :

संचालक, तरुण शांति-सेना शिविर,
अ० भा० शांति-सेना मण्डल,
राजघाट, वाराणसी-१

जापान की 'सर्वोदय' पत्रिका के लिए विनोबाजी का संदेश

भारत की दुनिया को सबसे श्रेष्ठ देन है—महात्मा गौतम बुद्ध। उन्होंने भूतमात्र के लिए निर्वैरता सिखायी। निर्वैरता का रूप है इस जमाने में सर्वोदय।

सर्वोदय-विचार के प्रचार के लिए जापानी भाषा में पत्रिका चलती है, यह जानकर हमको खुशी हुई। हम आशा करते हैं कि उस पत्रिका का सब जगह स्वागत होगा और हजारों लोग उसका अध्ययन, मनन, चिन्तन करेंगे।

सबको प्रणाम।

[हस्ताक्षर]

तरुण शांति-सेना का राष्ट्रीय सम्मेलन

दिनांक . २६, २७ मई '६९; स्थान : बम्बई

भारतीय तरुण शांति-सेना (इण्डियन यूथ पीस कोर) का प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन दिनांक २६ और २७ मई, '६९ को बम्बई में होगा। राष्ट्रीय प्रश्नों में दिलचस्पी रखनेवाले सभी छात्रों के लिए सम्मेलन खुला रहेगा। तरुणों की आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति देने तथा छात्र-आन्दोलन को विधायक मोड़ देने के कार्यक्रमों की चर्चा होगी।

यह स्मरण रहे कि तरुण शांति-सेना की जनतंत्र, राष्ट्रीय एकता, धर्म-निरपेक्षता और विश्व-शांति के मूल्यों पर निष्ठा है और उसमें जाति, सम्प्रदाय या स्त्री-पुरुष का कोई भेदभाव नहीं माना जाता।

- प्रवेश शुल्क रु० ५-००
- रहने की मुफ्त सुविधा
- दो दिन का भोजन-खर्च रु० १०-००
- शरीक होनेवालों के लिए रेलरियायत की सुविधा।

प्रवेश-शुल्क भेजें तथा सम्पर्क करें :

—संचालक, तरुण शांति सेना

बजट

सरकार का तो बजट होता ही है, बाजार भी बिना बजट के नहीं चल सकता, और कुछ परिवार भी ऐसे होते हैं जो अपनी आमदनी और खर्च का हिसाब लगाकर काम करते हैं। लेकिन हमारे देश के लगभग ६॥ करोड़ खेतिहर परिवारों की एक विशेषता है। उनमें से बहुत ज्यादा परिवार ऐसे हैं जो आमदनी-खर्च का हिसाब कभी नहीं लगाते। अगर लगायें तो खेती करना छोड़ दें, क्योंकि उनकी छोटी खेती में खर्च से आमदनी कभी ज्यादा होती ही नहीं। लेकिन बाजार की बात दूसरी है। व्यापार चल ही नहीं सकता अगर व्यापारी को माल और पूँजी उधार न मिले। कर्ज मिलता है साख (क्रेडिट) पर। साख घाटे से नहीं बनती, मुनाफे से बनती है। साख उस व्यापारी की बनती है जो पूँजी से कमाई करना जानता है। हमारी सरकार परिवार और बाजार दोनों से निराली है। सरकार व्यापार करती है लेकिन बाजार की तरह कुशल नहीं है, घाटे पर घाटा देती है लेकिन परिवार की तरह मजबूर नहीं है। वह कमी को टैक्स से पूरा कर सकती है, और चूँकि सूद देने की शक्ति रखती है इसलिए भरपूर कर्ज ले सकती है। अगर इन दोनों की गुंजाइश न हो तो एक हद तक नोटें छाप सकती है। कुछ भी हो, टैक्स लगाने या कर्ज लेने का अंतिम आधार जनता की समृद्धि ही है। २७ फरवरी को वित्तमंत्री ने संसद में भारत सरकार का सन् १९६९-७० का जो बजट पेश किया वह पहले की तरह घाटे का बजट था। घाटे का बजट न होता तो जनता टैक्स से बचती, सरकार नये कर्ज और सूद से बचती, और ग्राहक चीजों के ज्यादा दाम देने से बचता। इस बजट में बचत किसीको नहीं हुई। राहत बड़े उद्योगों को मिली है, निर्यात को मिली है। शायद आज की स्थिति में वह जरूरी भी था। बजट में खर्च को आमदनी से ज्यादा दिखाया गया है। खर्च ज्यादा इसलिए नहीं है कि सरकार ने इस साल कोई खास बड़ा काम करने का इरादा किया है, सिवाय चौथी पंचवर्षीय योजना के, बल्कि इसलिए ज्यादा है कि उसका खर्च बेतहाशा बढ़ता जा रहा है—पहले के कर्ज का सूद और चालू खर्च दोनों। सरकार के व्यापारिक कामों में मुनाफा नहीं। राष्ट्र की आय में सरकार की देन घटती जाय और उसका खर्च अबाध गति से बढ़ता जाय, यह सरकार की अक्षमता का प्रमाण नहीं तो क्या है? सन् १९५०-५१ से १९६०-६१ के दस वर्षों में राष्ट्रीय आय ४४ प्रतिशत बढ़ी और सरकारी खर्च ६८ प्रतिशत बढ़ा; यानी ५·६ प्रतिशत से बढ़कर ८·१ प्रतिशत हो गया।

सरकारी खर्च क्यों बढ़ रहा है? अगर ऐसा होता कि सरकार के खर्च के कारण देश की प्रतिरक्षा बढ़ती, शांति और सुव्यवस्था बढ़ती, जनता के जीवन में सुख और समाधान बढ़ता, विकास की शक्ति और साधन बढ़ते, तो कोई बात नहीं थी, मगर स्थिति इससे बिलकुल भिन्न है। सैनिकों की संख्या बढ़ाकर या नये-से-नये साधन लाकर सेना का खर्च चाहे जितना बढ़ा लिया जाय, लेकिन देश की जनता में देश की अखंडता और स्वतंत्रता के लिए मर-मिटने की जो उत्कटता और तत्परता होनी चाहिए वह नहीं है। क्या उसके बिना भी कोई देश सुरक्षित माना जायगा? सेना को छोड़ें, सरकार में जो 'सिविल' विभाग हैं उनके कर्मचारियों की संख्या सन् १९५०-५१ के लगभग ५० लाख से बढ़कर सन् १९६७-६८ में लगभग १ करोड़ तक पहुँच गयी। इसका यह अर्थ है कि आज देश के लगभग ५ करोड़ लोग सीधे-सीधे सरकार के नमक पर जीवित हैं! ५० लाख श्रमिक हमारे कारखानों में उत्पादन का काम करें और १ करोड़ लोग सरकारी दफ्तरों में बाबूगीरी करें! क्या यह है हमारे विकास की दिशा, और गहराई! इतना ही नहीं, बावजूद सारी योजनाओं के अगर प्रतिदिन बेकार और अर्द्ध-बेकार रहनेवालों की संख्या जोड़ी जाय तो १० करोड़ से कम नहीं होगी।

पूरा बजट पढ़ डालिए, लगता है कि वित्तमंत्री का यही लक्ष्य है कि चालू काम चलता जाय और सरकारी ढाँचा बना रहे। सरकार को अपने अस्तित्व और अपनी योजनाओं की चिंता चाहे जितनी हो, लेकिन जनता के लिए सरकार साधन है, साध्य नहीं। बजट में जनता अपना कल्याण देखना चाहती है, अपने विकास के लक्ष्य और चित्र समझना चाहती है। वित्तमंत्री के ही शब्दों में 'राष्ट्रपिता के स्मृति वर्ष में हम फिर याद करें कि आर्थिक विकास का लक्ष्य सामाजिक मूल्यों का विकास ही होना है। लोगों की बुनियादी आवश्यकताएँ जैसे पीने का पानी, शिक्षण, बीमारी में इलाज आदि पूरी हों, तथा दिनोंदिन समता बढ़े जो सचमुच समाजवादी समाज का सत्व है।' गांधीजी का नाम चाहे जहाँ जितनी बार लिया जाय लेकिन हकीकत यह है कि सन् १९६९ के इस गांधी-वर्ष में भी करोड़ों लोगों को भर-पेट अन्न और भरतन कपड़े की कौन कहे, पीने का पानी तक मयस्सर नहीं है, और न तो बजट में मयस्सर कराने का कोई आश्वासन है। बजट में ऐसी कौनसी चीज है जिससे माना जाय कि बजट बनानेवाले के लिए सन् १९६९ का कोई विशेष अर्थ है? मालूम नहीं बजट में प्रकट की गयी करुणा जीवन में कब उतरेगी? गांधीजी का नाम तो पिछले २२ वर्षों से लिया जा रहा है, लेकिन आज तक सरकार के विशेषज्ञ और अर्थशास्त्री यह नहीं तय कर सके कि हमारी ६० प्रतिशत, यानी ३० करोड़, जनता की आमदनी १९ पैसा रोज है, या २८ पैसा या ४७ पैसा। ४७ पैसे से ज्यादा होने की तो बात भी नहीं है। जब ऐसी हालत है तो सरकार की साख विदेशी पूँजीपतियों और देशी महाजनों में चाहे जितनी हो, देश की जनता की नजर में तो नहीं रह गयी है। जनता बजट नहीं, अपनी जेब देखती है। पेट वादों और शुभकामनाओं से नहीं भरता। योजनाओं से भी नहीं भरता। भरता है काम और कमाई से जिसकी आशा नहीं दीखती।

बजट में इस बात पर बहुत खुशी जाहिर की गयी है कि इस साल हमारा विदेशी व्यापार बढ़ रहा है, और खेती में अधिक अन्न

पैदा हो रहा है। विदेशी व्यापार से डालर की कमाई बढ़े, जरूर बढ़े, लेकिन घरवालों की जरूरत भी तो पूरी हो। शौकीनों की कुछ चीजों पर कुछ टैक्स बढ़ा देने से क्या होता है? हमारे बाजार शौकीनों की ही नयी-नयी चीजों से भरते चले जा रहे हैं, जैसे सरकार और बाजार दोनों देश के उन्हीं १ फीसदी लोगों के लिए हैं जिनकी मासिक आय ७५ रुपये या उससे अधिक है। भारत जैसा गरीब देश 'बिल्डिंग' और 'डेराइटो' में जिस तरह अपनी पूँजी गँवा रहा है उस तरह शायद ही कोई दूसरा देश गँवाता हो।

खेती में जगह-जगह जो 'हरी क्रांति' (ग्रीन रिवोल्यूशन) दिखाई देती है उससे निःसंदेह नयी संभावनाएँ प्रकट हुई हैं, लेकिन शंका यह होती है—शंका ही नहीं होती, निश्चित है—कि कहीं इस 'समृद्धि' से ऐसे संघर्ष न पैदा हो जायँ जो सही समाज-परिवर्तन के अभाव में देश को 'लाल-क्रांति' और 'फासिस्टवाद' के दलदल में फँसा दें। नये बीज और नयी खादें देहाती क्षेत्रों में निहित स्वार्थों का भयंकर जाल बिछा रही हैं। लेकिन सरकार अपनी कल्पना की आत्म-निर्भरता में मस्त है। प्लानिंग का नाम बहुत है, लेकिन चार-छः साल भर आगे के सामाजिक संदर्भ को सोचकर काम करने की बुद्धि अभी तक दिल्ली या अन्य राजधानियों में कहीं दीखती नहीं है। बजट में आँकड़े बहुत हैं, लेकिन दूर तक देखनेवाली आँखें नहीं हैं।

लगभग पौने दो खरब के देशी-विदेशी सार्वजनिक ऋण से लदे हुए, तथा असंख्य गरीबों, बेकारों, बीमारों और निरक्षरों के बोझ से दबे हुए, देश के वित्तमंत्री ने आश्वासन दिया है कि हमारी अर्थ-नीति भीतर से चुस्त है। तीन साल की 'छुट्टी' के बाद १ अप्रैल से चौथी पंचवर्षीय योजना फिर चालू होगी। सरकार में जो कुछ हो रहा है, होता रहेगा, और बहुत कुछ नया भी होगा, लेकिन देश चौराहे पर खड़ा रास्ते के लिए भटकता रहेगा।

जल्दी क्या है, अगली फरवरी में अगला बजट पेश होगा।•

हिंसात्मक खूनी क्रान्ति एवं गांधीजी

गांधीजी ने कहा था :

"आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है पूंजी और श्रम के बीच के शाश्वत संघर्ष का अन्त करना। इसका मतलब जहाँ एक ओर यह है कि जिन थोड़े-से अमीरों के हाथ में राष्ट्र की सम्पदा का कहीं बड़ा अंश केन्द्रीभूत है उनके उतने ऊंचे स्तर को घटाकर नीचे लाया जाय, वहाँ दूसरी ओर यह है कि अध-भूखे और नंगे रहनेवाले करोड़ों का स्तर ऊंचा किया जाय। अमीरों और करोड़ों भूखे लोगों के बीच की यह चौड़ी खाई जब तक कायम रखी जाती है तब तक तो इसमें कोई सन्देह ही नहीं कि अहिंसात्मक पद्धतिवाला शासन कायम हो ही नहीं सकता। स्वतंत्र भारत में, जहाँ कि गरीबों के हाथ में उतनी ही शक्ति होगी जितनी कि देश के बड़े-बड़े अमीरों के हाथ में, वैसी विषमता तो एक दिन के लिए भी कायम नहीं रह सकती, जैसी कि नयी दिल्ली के महलों, और वहीं नजदीक की उन सड़ी-गली झोंपड़ियों के बीच पायी जाती है, जिनमें मजदूर-वर्ग के गरीब लोग रहते हैं। हिंसात्मक और खूनी क्रान्ति एक दिन होकर ही रहेगी, अगर अमीर लोग अपनी सम्पत्ति और शक्ति का स्वेच्छापूर्वक ही त्याग नहीं करते और सबकी भलाई के लिए उसमें हिस्सा नहीं बंटाते।"

देश में दंगे-फसाद और खून-खराबी का वातावरण बढ़ता जा रहा है। इसमें आर्थिक, सामाजिक विषमता भी बड़ा कारण है। गांधीजी की उक्त वाणी और चेतावनी आज अधिक ध्यान देने को बाध्य करती है। क्या देश के लोग, विशेषतः अमीर, समय के संकेत को पहचानेंगे?

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी जन्म-शताब्दी समिति), दुंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर–३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

इस अंक में

१० मार्च, '६६
वर्ष ३, अंक १४]
[१८ पैसे

बजट की परख

हमारे देश की जनता आर्थिक दृष्टि यानी रहन-सहन और जीविका के आधार पर मुख्यतः तीन प्रकार की श्रेणियों में बंटी हुई है। सबसे नीचे की श्रेणी में ऐसे करोड़ों लोग हैं, जो किसी तरह कभी आधा और कभी पूरा पेट खा-पीकर और मामूली ढंग से रहकर अपना जीवन बिता रहे हैं। गाँव के किसान और खेतिहर मजदूर तथा नगर के सामान्य जन और छोटे कारीगर इसी श्रेणी के लोग हैं। इनके ऊपर की श्रेणी में लाखों और करोड़ों ऐसे लोग हैं, जो पढ़े-लिखे हैं। गाँव में उनके पास खेत हैं और शहर में अपने मकान हैं। ये लोग मध्यम श्रेणी में आते हैं। ये ज्यादातर नौकरी या रोजगार करते हैं। ये सुन्दर कपड़े पहनते हैं, कुछ अच्छा खा पी लेते हैं, और अगर चाहें तो अपनी आमदनी में से भविष्य के लिए कुछ बचा भी लेते हैं, लेकिन बहुत कम लोग सचमुच कुछ बचाने की कोशिश करते हैं। इस श्रेणी के लोग अपने से ऊपर के लोगों की शान-शौकत और सुविधाएं प्राप्त करना चाहते हैं, इसलिए ये जैसे-तैसे आमदनी से ज्यादा खर्च करने के अभ्यासी होते हैं।

तीसरी श्रेणी में वे लोग हैं, जो बड़े कारखानों, मिलों या व्यापारी प्रतिष्ठानों के मालिक हैं। बड़े-बड़े सरकारी अधिकारी और व्यापारी फर्मों के मैनेजर जिनकी तनख्वाह हजारों रुपये मासिक है, वे भी इसी श्रेणी के लोग हैं। खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने या परिवार की आर्थिक तंगी की समस्या इनके सामने नहीं है। इनकी मुख्य समस्या इनके सामने ऊँचे-से-ऊँचे पहुँचने की होती है यानी जो लखपती है वह करोड़पती बनने में अपनी सार्थकता मानता है और जो करोड़पती है वह अरबपती बनने के मनसूबे रखता है!

इन तीनों श्रेणियों के लोगों की स्थिति में इतना अन्तर है कि ये तीन अलग-अलग दुनिया के लोग माने जा सकते हैं।

सरकार के बजट पर विचार करने की इन तीनों की अपनी-अपनी अलग-अलग कसौटियाँ हैं। पूंजीपती मानते हैं कि नये-नये

सरकारी अर्थनीति

उद्योगों में अपनी पूंजी लगाकर वे देश का उत्पादन बढ़ाने को महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इसलिए बजट ऐसा होना चाहिए कि उन्हें उत्पादन से लाभ होता रहे और उस लाभ को वे नये-नये उद्योगों की स्थापना में लगाते जायं।

मध्यम श्रेणी के लोगों का मानना है कि देश का राजतंत्र, अर्थ-तंत्र, प्रशासन-तंत्र और शिक्षा-तंत्र उन्हींकी बदौलत कायम है। वैज्ञानिक, तकनीशियन, इंजीनियर, वकील, डाक्टर, प्रशासक, अर्थशास्त्री, पत्रकार, नेता और शिक्षाविद् के रूप में यह वर्ग देश के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने का गौरव अनुभव करता है। यह वर्ग चाहता है कि उसे सुखी और भरा-पूरा जीवन बिताने लायक वेतन मिले। मंहगाई बढ़ने पर यह वर्ग मंहगाई-भत्ता की मांग करता है और मांग पूरी न हो तो हड़ताल और आन्दोलन का सहारा लेता है।

जो लोग निचली श्रेणी में हैं, उनकी ओर से अभी तक कोई जोरदार दावा नहीं पेश किया गया है। ये लोग खेतों में अनाज उपजाते हैं, कारखानों और उद्योगों में पसीना बहाकर अपनी जीविका चलाते हैं और सेना में भर्ती होकर देश की सुरक्षा के लिए मरमिटने की जिम्मेदारी निभाते हैं। इन लोगों की संख्या बहुत बड़ी है। अपने देश में लोकतांत्रिक शासन-पद्धति है, इसलिए इनमें से हरेक को वोट देने का अधिकार प्राप्त है। इस वोट के अधिकार के कारण इस वर्ग का राजनैतिक महत्त्व स्वयंसिद्ध है। यह वर्ग जिस दल या व्यक्ति को अपना वोट दे देता है, वही देश का भाग्य-विधाता बन जाता है। देश के राजनैतिक ढांचे में तो इस वर्ग को उचित महत्त्व मिल गया है, लेकिन आर्थिक और सामाजिक ढांचे में इसका कोई स्थान नहीं है।

उच्च श्रेणी के लोग आज स्वर्ग-सुख से घिरे हुए हैं। मध्यम श्रेणी के लोग लौकिक सुख वाली जीवन को आम सुविधाओं जैसे रेडियो, बिजली और मोटरगाड़ी इत्यादि का उपभोग कर ले पा रहे हैं। और तीसरी श्रेणी के लोगों की जिन्दगी नरक की यातना में जैसे-तैसे बीत रही है। उनकी आशाएँ-आकांक्षाएँ भरपेट खाने, तन ढंकने और नीरोग रहकर जीने तक सीमित हैं।

इस वर्ष के बजट के नये कर-प्रस्ताव में उद्योगपतियों को नीचे लिखी रियायतें दी गयी हैं—

१—सूती कपड़ा, जूट, ऊन और चाय का उत्पादन करनेवाले उद्योगपति दूसरे देशों में अपना माल सस्ता बेच सकें इसके लिए उन्हें चालू कर-प्रस्ताव में छूट दी गयी है। इस छूट से सरकारी कोष को २३ करोड़ रुपये का घाटा होगा।

२—नायलोन के १ किलो धागे पर पहले ५.५० रु० कर लगता था वह घटाकर अब ३ रु० कर दिया गया है। इस छूट से सरकारी कोष को १ करोड़ ७३ लाख का घाटा होगा। इसी प्रकार बिजली की भट्ठियों में स्क्रैप इस्पात गलानेवाले उद्योगों को १ करोड़ तथा सेलुलोज बनानेवाले उद्योगों को ८० लाख की छूट देने की व्यवस्था की गयी है।

३—सूत और जूट के कारखानेदारों को सरकारी करों से ५ वर्ष के लिए मुक्त कर दिया गया है।

४—कारखाने के हिस्सेदारों को वर्ष में ५०० रु० से अधिक मुनाफा मिलता था उन पर कर लगाने की व्यवस्था थी। अब १ हजार रुपये तक मुनाफा पानेवालों को कोई टैक्स नहीं देना होगा। इस छूट को लागू करने पर सरकारी कोष को ८ करोड का घाटा होगा। नये कर-प्रस्तावों में जहां धनी-वर्ग को रियायतें मिलती हैं वहीं मध्यम वर्ग के लोगों का कर-भार निम्न अनुसार बढ़ा है।—

१—जिन लोगों की वार्षिक आय १० हजार से १५ हजार रुपये तक है, उनके आय-कर की दरें १५ रु० सैकड़े की जगह १७ रुपया सैकड़ा कर दी गयी है। और जिनकी आय १५ हजार से ऊपर और २० हजार से कम है उनकी आय-कर की दर २० रु० सैकड़ा से बढ़ाकर २३ रु० सैकड़ा कर दी गयी है। आय-कर सम्बन्धी इस कर-वृद्धि के साथ-साथ रासायनिक खाद, पेट्रोल मशीनरी, बिजली के पम्प, महीन कपड़े, रेयन, बाजार में बिकनेवाली चीनी और सिगरेट पर लगनेवाला कर भी बढ़ाया गया है।

श्री मोरारजी देसाई ने बजट-प्रस्ताव में गरीबों से सम्बन्धित किसी वस्तु पर नया कर नहीं लगाया है, इसलिए इतना तो है कि गरीबों पर तत्काल कोई नया बोझ नहीं बढ़ाया गया है। लेकिन असलियत यह है कि मध्यम श्रेणी पर या उच्च श्रेणी पर जो भी कर-भार बढ़ता है उसे वे किसी-न-किसी प्रकार नीचे के लोगों पर लाद देते हैं। वकील और डाक्टर तथा अन्य विशेष योग्यतावाले लोग अपनी फीस बढ़ा लेते हैं, और सरकारी कर्मचारी घूस या नाजायज आय से अपने घाटे की पूर्ति कर लेते हैं। सबका आखिरी बोझ बेचारी गरीब जनता ही बरदाश्त करने पर मजबूर होती है। अतः ऊपर-ऊपर से ये कर-प्रस्ताव गरीबों के प्रति चाहे जितने अनुकूल दिखाई देते हों, लेकिन दरअसल देश की पूरी अर्थ-व्यवस्था गरीब का खून चूसकर अमीर को और अमीर बनाने का एक यंत्र बनी हुई है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। •

गाँव—बस गाँव !

चुनाव हो चुका। सरकारें भी बन गयी। बंगाल में संयुक्त वामपंथी फ्रण्ट की, जिसमें मार्क्सवादी कम्युनिस्ट लोगों की संख्या अधिक है, सरकार बनी है। पंजाब में अकाली दल और जनसंघ ने मिलीजुली सरकार बनायी है। उत्तर प्रदेश और बिहार में कांग्रेस की सरकार बनी है। बिहार में कांग्रेस के साथ कुछ दूसरी पार्टियाँ भी हैं। हमारे देश का संविधान ही ऐसा है कि एक ही देश में अलग-अलग तरह की सरकारें बन जाती हैं, और कभी-कभी तो एक राज्य और दूसरे राज्य की सरकार में, या किसी राज्य की सरकार और दिल्ली की सरकार में, ऐसी नोक-झोंक शुरू हो जाती है कि लगने लगता है, जैसे ये एक देश की सरकारें हैं ही नहीं।

इस वक्त उत्तर भारत में पंजाब, बंगाल और मध्यप्रदेश में गैर-कांग्रेसी मिली-जुली सरकारें हैं। गुजरात, राजस्थान, उ०प्र०, बिहार, और असम में कांग्रेसी सरकारें हैं। दक्षिण भारत में उड़ीसा, मद्रास और केरल की तीन सरकारें गैर-कांग्रेसी हैं। महाराष्ट्र, आन्ध्र, और मैसूर में कांग्रेस का शासन है। इन सबके ऊपर दिल्ली में पूरी-पूरी कांग्रेसी सरकार है।

मध्यावधि चुनाव के बाद जो चार नयी सरकारें बनी हैं वे बन तो गयी हैं, लेकिन कौन कह सकता है कि किस राज्य की सरकार कितने दिन चलेगी! पहले यह माना जाता था कि एक ही दल की सरकार होगी तो टिकाऊ होगी, लेकिन अब तो वह बात भी नहीं रही। हर पार्टी में गद्दी की छीना-झपटी इतनी अधिक हो गयी है कि जिसे गद्दी नहीं मिलती वह दूसरों से मोल-तोल करने लगता है, और कोशिश करने लगता है कि दूसरी सरकार बने, ताकि उसको भी जगह मिल जाय। यह तोड़-फोड़ बराबर होता रहता है। एक बार सरकार किसी तरह बन भी जाती है तो दिन-रात उसे यही चिन्ता रहती है कि किसी तरह सरकार बनी रहे। ठीक इसके उलटे, जो लोग सरकार नहीं बना पाते वे विरोधी बनकर दिन रात इसी दौड़-धूप में रहते हैं कि किसी तरह उनकी सरकार बन जाय। राजनीति में सरकार ही ब्रह्मा है, सरकार ही विष्णु है, सरकार ही महेश है। राजनीति के कितने लोगों को चिन्ता है देश की, समाज की, गरीबों की?

बड़ी भारी चिन्ता की बात यह है कि राज्यों में सरकारें बनती हैं, बिगड़ती हैं, तो राष्ट्रपति का शासन लागू हो जाता है, और किसी तरह काम चलता रहता है, यद्यपि जैसा काम होना चाहिए वैसा नहीं हो पाता। सरकार अपनी जगह स्थिर न हो, सक्षम न हो, तो जनता का बड़ा अहित होता है। सोचिए, क्या होगा अगर दिल्ली में भी एक सरकार आज बने और कल बिगड़ जाय? या, अगर मिली-जुली सरकार बने और पार्टियों में बराबर आपसी खींचतान होती रहे?

स्वराज के बाद संविधान बनाते समय यह सोचा गया था कि देश में कई पार्टियाँ बनेंगी, और जनता को जिस पार्टी का विचार और कार्यक्रम अच्छा लगेगा उसके हाथ में वह शासन सौंपेगी। उस वक्त यह विचार बहुत अच्छा मालूम हुआ था, लेकिन इतने बरसों का अनुभव क्या बता रहा है? इस मध्यावधि चुनाव में क्या हुआ? ऊपर-ऊपर देखने में एक-दो-चार नहीं, एक-एक राज्य में बाईस-बाईस पार्टियाँ अखाड़े में उतरीं, लेकिन सचमुच अन्दर-अन्दर लड़ाई जातियों की हुई। कहीं ऊपर की जातियाँ आपस में लड़ीं, कहीं उनमें और 'बैकवर्ड' में टक्कर हुई, और कहीं 'बैकवर्ड' और 'नीचे की जातियाँ' मिलकर ऊपर-वालों से भिड़ीं। कुछ भी हो, ऐसा लगता था कि जाति ही सबसे बड़ी पार्टी है, और जातिवाद सबसे बड़ा नारा। जब ऐसी बात है तो क्या आश्चर्य है कि हमारी राजनीति जातिवाद की राजनीति बन गयी है।

यह तो था ही, इस बार चुनाव में जिस तरह वोट पड़ा उसे देखकर समझ में नहीं आता कि यह राजनीति हमें कहाँ ले जायगी। जहाँ जाइए, लोग यही कहते हैं कि इतनी बोगस वोटिंग पहले किसी चुनाव में नहीं हुई थी। चुनाव के दूसरे दिन गाँव के एक मित्र चुनाव के दिन का अपना अनुभव बता रहे थे। कहने लगे, 'कल दिन भर वोट दिया। वोट देते-देते थक गया।' सोचने की बात है कि उन सज्जन ने कितने सौ—सौ नहीं हजार—वोट दिये होंगे! छोटे-छोटे बच्चों तक ने वोट दिये। कहीं कोई डंडा लेकर बैठ गया कि विरोधियों को वोट नहीं देने देंगे, तो कहीं कोई थैली खोलकर बैठ गया कि जितने वोट चाहेंगे नोटों से खरीद लेंगे।

यह सब क्या हो रहा है? क्या इसमें सन्देह रह गया है कि हमारी राजनीति दलवाद से जातिवाद और अब बोगसवाद पर उतर आयी है! और, इस तरह जो सरकार बनती है उससे हम भरोसा करते हैं कि देश की स्वतंत्रता कायम रखेगी, सबके जान-माल की रक्षा करेगी, गरीबी मिटायेगी, रोजगार देगी! कौन मानेगा कि ऐसी सरकार में यह सब करने की शक्ति हो सकती है?

• मार्च, '७१

"माँ, पंडितजी मोटे क्यों हैं ?"

नन्दू—"मां अपने यहां जो पंडितजी आते हैं, वे इतने मोटे क्यों हैं ? क्या वे खूब अच्छा-अच्छा खाना खाते हैं, इसलिए इतने मोटे हैं ?"

निर्मला—"वे अच्छा-अच्छा खाने के कारण मोटे नहीं हुए, सिर्फ बैठे रहने और सोते रहने से मोटे हुए हैं।"

नन्दू—"सच कहती हो मां या हंसी करती हो ? मैं भी तो बैठता हूं और सोता हूं, फिर मैं भी मोटा क्यों नहीं हो जाता ?"

निर्मला—"तू खूब खेलकर थक जाता है तब सोता है। पंडितजी कुछ काम नहीं करते। बस, उनका काम है खाना, पूजा-पाठ करना और सोना।"

नन्दू—"मां, काम न करें तो मोटे कैसे होते हैं ?"

निर्मला—"खाने से शरीर में गर्मी और शक्ति पैदा होती है। उसी शक्ति से हम काम कर सकते हैं। यदि काम न करें तो वह शक्ति खर्च नहीं होती और शरीर में चर्बी बढ़ जाती है। शरीर में जितनी ही चर्बी बढ़ती है, शरीर उतना ही मोटा हो जाता है।"

नन्दू—"मां, पंडितजी का पेट कितना बड़ा है ? बेचारे ठीक से चल भी नहीं सकते। उन्हें सोते हुए देखकर डर लगता है। खूब खुर्राटे लेते हैं।"

नन्दू की ये बातें सुनकर निर्मला की हंसी रोके न रुकी। वह बोली—"चुप ! बड़ों के लिए ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए।"

बचपन में सभी बच्चे चंचल और नटखट होते हैं। यह अलग बात है कि सभी का नटखटपन एक जैसा नहीं होता। जैसे हाथ की सब उंगलियां एक बराबर नहीं होती उसी तरह सब बच्चों की चंचलता कम या अधिक हुआ करती है।

नन्दू निर्मला का तीसरा बच्चा है। निर्मला का पहला लड़का रामनाथ १३ साल का है। दूसरी लड़की उर्मिला ९ साल की और रामानन्द ७ साल का हो गया है। बड़े लड़के को निर्मला प्यार में रामू कहकर पुकारती है और छोटे को नन्दू।

निर्मला को रामू और उर्मिला ने बचपन में उतना परेशान नहीं किया था, जितना नन्दू ने। रामू जब छोटा था तो खेल-खिलौने से खेलने में व्यस्त रहता था। निर्मला ने रामू के खेलने के लिए बहुत-सी चीजें इकट्ठी कर दी थीं। वह उसी सबमें उलझा रहता था। लेकिन नन्दू ऐसा नहीं है। वह नयी चीजों से कुछ देर खेलकर उनसे अलग हो जाना चाहता है। ऐसा लगता है, जैसे उसका मन खिलौने से बहुत जल्दी ऊब जाता है। नन्दू अपने भाई-बहन के मुकाबले ज्यादा नटखट और बातूनी है। वह तरह-तरह के सवाल पूछकर निर्मला को इतना तंग करता है कि जब वह जवाब नहीं दे पाती तो कह पड़ती है—"अभी मुझे बहुत काम करने को पड़ा है, जा अपने भैया से पूछ ले।" यह उत्तर सुनकर नन्दू अकड़ जाता है और कहता है—"भैया से नहीं पूछूंगा, जाओ।" निर्मला को जैसे हार मानते हुए कहना पड़ता है—"अच्छा मुझसे ही पूछना, पर अभी मुझे धन्धा करने दे।" निर्मला अक्सर इसी तरह के बहाने बनाकर नन्दू के सवालों को टालना चाहती है और नन्दू ऐसा नटखट है कि हमेशा नये-नये ढंग के सवाल पूछता रहता है। कुछ सवाल ऐसे होते हैं, जिनका झटपट आसान-सा जवाब दिया जा सकता है। लेकिन कुछ सवाल ऐसे भी होते हैं, जिनका उत्तर देना निर्मला की समझ के बाहर की चीज हो जाती है। ऐसे ही प्रश्नों को वह टालना चाहती है तो कह देती है—"इस सवाल का जवाब तुझे रामू बतायेगा।" नन्दू को इस प्रकार के उत्तर से चिढ़ है। उसे रामू के साथ खेलना पसन्द है, लेकिन उससे कुछ पूछना उसे नहीं भाता। नन्दू चाहता है कि वह जो सवाल अपनी मां से पूछे उसका जवाब उसे मां से ही मिले। उसे अपनी मां से जवाब पाने में जो तसल्ली और खुशी अनुभव होती है वह रामू से नहीं। नन्दू को मां की गोद में बैठना, गर्दन से लटक जाना और मां से मांगकर कुछ खाना अच्छा लगता है। रामू के साथ उसे खेलना और घूमना अच्छा लगता है, लेकिन उससे सवाल पूछने का जी नहीं होता।

निर्मला जैसी न जाने कितनी स्त्रियां घर-गृहस्थी और बच्चों के लालन-पालन सम्बन्धी अनेक समस्याओं से परेशान हैं। उन्हें उनकी परेशानी में कौन मदद पहुंचा सकता है, इसका भी उन्हें पता नहीं है। 'गांव की बात' के पाठकों में से ऐसे कितने ही लोग होंगे, जिनके बच्चे तरह-तरह के सवालों से उन्हें तंग करते रहते हैं। यदि हमारे पाठकगण ऐसे प्रश्न हमारे पास लिख भेजें तो हम उन प्रश्नों का समुचित उत्तर 'गांव की बात' में प्रकाशित करते रहेंगे।•

←लेकिन सचमुच असहाय होने की बात नहीं है। जरूरत है सोच-समझकर नया कदम उठाने की। इतना तय है कि गांव-गांव में फैली हुई जनता को अब साहस करके सामने आना पड़ेगा। उसे संगठित होकर अपने पैरों पर खड़ा होना होगा, और कहना होगा। 'अब न दल, न जाति, बल्कि गांव, बस गांव।'•

"माँ, भिक्षा दो !"

बाहर किसीने पुकारा, "माँ, भिक्षा दो !" गुरो अम्मा चौके में बैठी मसाला पीस रही थी। वह बोली, "जाओ बाबा, अभी हाथ खाली नहीं है।"

बाहर फिर पुकार हुई, "माँ भिक्षा दो ! एक मुट्ठी भिक्षा दे दो न गरीब को माँ !"

इस बार उसने कोई जवाब नहीं दिया। उसकी आँखों के सामने अपने छोटे भाई रामू का चित्र खिंच गया। रामू ने एक दिन उससे इसी प्रकार भिक्षा माँगी थी। इसी प्रकार कहा था, "माँ, भिक्षा दो !"

रामू बेचारा जब छोटा-सा था, तब उसकी माँ मर गयी थी। उसने अनेक वर्षों तक छोटे भाई को बेटे की तरह लाड़-प्यार से अपने यहाँ रखा। रामू अपनी बहन को उसी प्रकार परेशान करता था, जिस प्रकार बेटे माताओं को परेशान करते हैं।

जब गुरो अम्मा की शादी हुई थी और ससुराल आयी थी, रामू को भी मानो दहेज के रूप में साथ ले आयी थी। उसका पति शंकर बेचारा एक सीधा-सादा व्यक्ति था, उसे पत्नी के साथ रामू का आना अखरा नहीं था। यद्यपि घर के अन्य लोगों ने नाक-भौं चढ़ायी थी। लेकिन उसने देखा था, उसका साला एक पैर का लंगड़ा है और एक हाथ भी बिलकुल बेकार है। वह यह भी देखता था कि उसे अपनी बहन से उतना ही मोह है, जितना कि गुरो अम्मा उसे चाहती है। एक दिन गुरो अम्मा अपने पति से बोली थी, "देखो, मेरे भाई का बुरा न मानना। वह ज्यादा दिनों तक तुम्हारे यहाँ नहीं रहेगा।"

"क्यों ?" शंकर ने पूछा था, "मैं यह कब कहता हूँ कि वह कुछ ही दिन यहाँ रहकर वापस लौट जाय।"

"वह एक भेद की बात है, अभी नहीं बताऊँगी।" उसने कहा था, "तुम चाहे जो कहो, यह घर उसका नहीं। उसे यहाँ से जाना ही पड़ेगा। लेकिन अभी नहीं। कुछ साल बीत जायें तब। मैं उसे घर में नहीं रखूँगी।"

शंकर ने बातों ही बातों में इस भेद को जानना चाहा था। लेकिन उसने कुछ नहीं बताया।

पाँच वर्ष बीत गये। इस बीच गुरो अम्मा दो बच्चों की माँ बन गयी। रामू अब उससे जिद नहीं करता था, न सताता था। वह घर में कुछ ऐसा संयत रहता था जैसे बाहर का कोई अतिथि हो। वह बहुत कम किसीसे बोलता, बहुत कम घर की बातों में दिलचस्पी लेता। शंकर को उसकी यह चुप्पी अखरती थी। एक दिन वह गुरो अम्मा से बोला, "तुम्हारा भाई न जाने क्यों चुप-चुप-सा रहता है, जैसे हम सबसे नाराज हो। तुम भी कुछ ऐसी ही हो, कि दो बच्चों की देखभाल में शायद उसको बिलकुल भूल जाती हो !"

शंकर ने आगे कहा, "मैं हमेशा इसके भविष्य के बारे में सोचा करता हूँ। अब यह चौदह बरस का हो चला है। दाढ़ी-मूँछें फूट पड़ी हैं ! मैं सोचता हूँ, इसे किसी काम में लगा दूँ। पर क्या काम करेगा यह ? चार अक्षर तो इसने पढ़े ही हैं। कोई छोटी-मोटी पान-बीड़ी की दूकान चला सकेगा।"

"नहीं, यह काम इससे नहीं होगा।" गुरो अम्मा बोली, "माँ ने मरते समय मुझे एक बात कही थी और मैंने वचन दिया था। अब वह वचन निभाने का समय आ गया है।" उसकी आँखें भर आयीं।

"कैसा वचन ?" शंकर को गुरो अम्मा की कई वर्षों पुरानी बात याद आ गयी और उसने फिर यह जानने की इच्छा प्रकट की।

गुरो अम्मा ने कहा, "अब रामू को यहाँ से जाने का समय आ गया है।" और वह आँसू पोंछने लगी।

रामनवमी के दिन राममन्दिर के बाबा स्वामी आनन्दजी घर पधारे थे। गुरो अम्मा ने सारी बातें उनके सामने रख दी थीं। बोली थी, "बाबा, रामू माँ को बहुत कष्ट देकर पैदा हुआ था। दाई का कहना था, दोनों में से किसी एक का जीवन बचाया जा सकता है—पुत्र का या माँ का। माँ पुत्र को मरने देना नहीं चाहती थी और पुत्र के लिए खुद जीना चाहती थी। तभी माँ ने भगवान से प्रार्थना की कि यदि पुत्र जीवित रहा तो वह उसे साधु-सम्प्रदाय में प्रवेश कर देगी। दस वर्ष पहले जब माँ मरी थी तब मुझे इस मनौती का भार सौंप गयी थी। मैंने वचन दिया था—माँ, ऐसा ही होगा। जब रामू चौदह वर्ष का हो जायेगा, उसे भगवान को सौंप दूँगी। और आज ..."

वह आगे कुछ न बोल सकी।

रामू गेरुआ वस्त्र धारण किये शंकर के चरणों के निकट बैठा था और अबोध आँखों से बहन की ओर देख रहा था।

गुरो अम्मा रामू से लिपट गयी थी। बोली थी, "जाओ मेरे भाई, माँ की आत्मा को शान्ति पहुँचाओ। उसके वचनों का पालन करो।" वह फूट-फूटकर रोने लगी थी।

रामू ने घर से बाहर निकल द्वार पर खड़े होकर सबसे पहले अपनी बहन से भिक्षा माँगी थी। गुरो अम्मा ने रोते हुए, अपने काँपते हाथों से एक नारियल, कुछ अरवा चावल और पाँच ताँबे के पैसे उसकी झोली में डालते हुए उसे नमस्कार किया था। और वह खूब फूट-फूटकर रोयी थी। —गुरुबचन सिंह

स्त्री-शक्ति कैसे जागे ?

मैसूर राज्य में स्त्री-शक्ति को जगाने के लिए पूज्य माता कस्तूरबा के स्मरण में, १२ फरवरी को, सुरेवान (बापू के अस्थि-विसर्जन के स्थान) से चार बहनों की एक लोकयात्रा-टोली निकली।

सिर्फ तीन-चार दिनों में हमें कई अनुभव मिले। इनसे अच्छी तरह समझ में आता है कि आज की सामाजिक मान्यताओं की वजह से अनेक बहनों को अपना जीवन दुखी एवं संघर्षमय परिस्थिति में गुजारना पड़ता है। और इसी वजह से समाज को उनकी शक्ति का लाभ नहीं मिल पाता है।

यह सिर्फ इस इलाके की परिस्थिति नहीं है। सारे भारत में सामाजिक दृष्टिकोण ऐसा है कि बहुत जल्दी में लड़की का विवाह हो जाना चाहिए। विवाहित जीवन बिताना आमतौर पर मनुष्य का स्वभाव है, लेकिन जिस प्रकार भारत में समाज की मान्यता है कि पुरुष ब्रह्मचारी रह सकता है, उसी तरह स्त्री जिन्दगी भर ब्रह्मचर्य का संकल्प नहीं कर सकती। यह मान्य होते हुए भी विधवा होने पर जवान स्त्री या अबोध लड़की दुबारा शादी नहीं कर सकती है, जब कि पुरुष किसी भी उम्र में विधुर होने पर दुबारा, तिबारा, चौबारा विवाह कर सकता है।

इसमें कितना विरोधाभास है! एक तरफ तो पुरुष को ब्रह्मचर्य का संकल्प करने की इजाजत और दुबारा विवाह करने की भी इजाजत, दूसरी तरफ स्त्री को ब्रह्मचर्य का संकल्प करने की इजाजत नहीं, और वहाँ आजीवन ब्रह्मचर्य रहने की जबर्दस्ती!

बचपन से ही लड़कियों के सामने उनका विवाह स्त्रियों के बीच मजाक का विषय बन जाता है। एक बार एक जवान बहन ने बड़े दुख और गम्भीरता से कहा, "जब मैं अपने में कमजोरियाँ पाती हूँ, और उनका कारण खोजती हूँ, तो मुझे लगता है कि यह इसलिए है क्योंकि मैं बहुत छोटी थी तब से स्त्रियाँ मुझे चिढ़ाती रहती थीं कि पुष्पा बहुत सुन्दर लड़की है, बड़ी होकर उसे अवश्य एक बहुत सुन्दर दुलहा मिल जायेगा।"

ऐसी सामाजिक कुरीतियों का फल भुगतनेवाली छोटी उम्र की तीन-चार बहनें हमें मिली हैं।

एक बहन शादी करना नहीं चाहती थी। लेकिन उसकी इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह किया गया था। उसका पति मिलिटरी में है, शराबी है। उस बहन के तीन छोटे बच्चे हैं, लेकिन उसका पति उनके लिए खर्च नहीं देता है। वह कहीं एक दूसरे नाजायज परिवार को पाल रहा है। वह बहन ग्रामसेविका के काम के द्वारा अपने बच्चों का पालन कर रही है। जब उसका पति कभी छुट्टी में आता है, तो वह उसको पीटता है, कामनावश होकर उस पर बलात्कार करता है। इससे बच्चों की संख्या बढ़ती जाती है, और उस अकेली बहन के सिर पर ज्यादा-से-ज्यादा आर्थिक बोझ तथा नैतिक जिम्मेदारी बढ़ रही है। लेकिन न समाज में तलाक की मान्यता है, न समाज ऐसी बहनों की रक्षा के लिए कुछ कर रहा है। सिर्फ छोटी उम्र में उन्हें ऐसी परिस्थिति में फँसाकर, उनके भविष्य से अपने हाथ धो लेता है। शुरू में समाज की गलत मान्यताओं की वजह से, और बाद को समाज की उदासीनता की वजह से बहनों को इस प्रकार का दुखी और असुरक्षित जीवन बिताना पड़ता है।

इधर हमें एक उदाहरण मिला है। लगभग साठ वर्ष का बूढ़ा। जमीन काफी है, बड़ा भक्त भी है, लेकिन जीने की कला से बिलकुल अनभिज्ञ। उसके तीन विवाह हो चुके थे, तीनों पत्नियाँ मर चुकी थीं। तीसरी पत्नी का देहान्त हुए एक वर्ष भी नहीं हुआ कि उसने उन्नीस वर्ष की एक लड़की के साथ अपना चौथा विवाह कर लिया। जरा सोचिए, उस लड़की का भविष्य क्या होगा ?

एक समझदार और संयमी लड़की का मामला अभी-अभी सामने आया है। वह बहुत मेहनती है। परिवार गरीब है, उसके कई छोटे भाई-बहन हैं। पिता ने राष्ट्रीय आन्दोलन में सब कुछ होम किया, उसमें भी त्यागी जीवन का प्रोत्साहन मिला। सारी परिस्थिति को देखकर, लड़की को विवाह करने की बिलकुल इच्छा नहीं है। वह अपने वृद्ध पिता को बच्चों के पालन-पोषण और शिक्षण में मदद देना चाहती है। आजकल वह दिन में पाठशाला में पढ़ाती है। रात्रिशाला में भी राष्ट्रभाषा पढ़ाती है, छोटे भाई-बहनों के लिए गृहस्थी चलाती है, उसकी माँ देहात में रहकर कृषि का काम संभालती है और छुट्टियों में वह अम्बर चरखा चलाती है। लेकिन उसकी माँ-उसकी शादी कराने पर तुली हुई है। ऐसी गरीब परिस्थिति में जब सदाचारी लड़की का विवाह किया जायेगा, तो क्या हम समझ नहीं सकते हैं कि ऐसे बेमेल विवाह की परिस्थिति में उसका जीवन दुखी होगा, उसका आदर्श मिट्टी में मिल जायगा ?

ग्राम-स्वराज्य के द्वारा जो नया समाज बनाना है, इसमें ऐसी गलत रूढ़ियों पर महाप्रहार करना होगा। लड़कियों को एक स्वावलम्बी और स्वाभिमानी जीवन बिताने के लिए तैयार करना पड़ेगा। जवान बहनों की शक्ति का लाभ समाज-निर्माण में मिल सके ऐसा वातावरण बनाना होगा। —सरलादेवी

आम के कीड़े

आम भारत का मुख्य फल है। लगभग ६ लाख हैक्टेयर भूमि में आम की खेती की जाती है। इसके कीड़े इस फसल की बड़ी समस्या हैं। नीचे कुछ कीड़ों की जानकारी दे रहे हैं।

आम का मधुआ या भन्ही

पहचान—ये कीड़े हरे तथा भूरे रंग के ⅛ इंच से ⅙ इंच लम्बे होते हैं। इनका सिर चौड़ा तथा पूंछ नोकदार होती है। भारत में इनकी ३ किस्में पायी जाती हैं, जिनमें कुछ तनों पर, कुछ पत्तियों की दूसरी ओर तथा कुछ डालियों एवं फलों के डंठलों पर पायी जाती हैं। कीट शिशु हल्के रंग के होते हैं और इनके पंख नहीं होते। इनके सिर पर तीन धब्बे पाये जाते हैं।

जीवन-चक्र—मादा गंदले सफेद रंग के अण्डे दिसम्बर से फरवरी तक आम की कोमल पत्तियों, फूलों या कलियों की नसों में देती है। अण्डों से ७ से ६ दिनों के बाद छोटे-छोटे पीले रंग के कीट-शिशु निकलते हैं और पत्तियों, फूलों तथा तनों का रस चूसते हैं। कीट-शिशु २ से ३ सप्ताह बाद ५ बार केंचुल छोड़कर प्रौढ़ हो जाते हैं। प्रौढ़ होने पर ये पेड़ों के आस-पास झाड़ियों में जहाँ ठंडक रहती है चले जाते हैं। अप्रैल के मध्य से जून के अन्त तक ये आम के तनों या पत्तियों की दूसरी ओर बैठे रहते हैं। दिन में तनिक भी छेड़ने पर ये मनुष्य की आँखों तथा मुंह पर आ बैठते हैं। वर्षा तथा जाड़े में इनकी संख्या कम हो जाती है। गर्मियों में ये कीड़े आम के अतिरिक्त दूसरे पेड़ों पर भी बैठते हैं, किन्तु उन्हें हानि नहीं पहुँचाते। १ वर्ष में इनकी २ पीढ़ियां होती हैं।

आक्रमण काल—मार्च के अन्तिम सप्ताह से जून के अन्तिम सप्ताह तक इनका आक्रमण होता है।

प्रसार—ये कीड़े भारत में लगभग सभी आम उत्पन्न होने-वाले प्रान्तों में पाये जाते हैं। भारत के अलावा इनका आक्रमण पाकिस्तान और बर्मा में भी होता है।

हानि—ये आम के विनाशकारी कीड़े हैं। इनके कीट-शिशु और प्रौढ़ आम के कोमल तनों, कलियों और फूलों के रस चूसते हैं। टिकोरा के रस को भी ये चूसते हैं, जिससे वे झड़ जाते हैं। इनके आक्रमण के बाद आम पर फफूंद का भी आक्रमण होता है। कभी-कभी इनके आक्रमण से २० से २५ प्रतिशत तक हानि हो जाती है।

रोक-थाम—१. आम के पेड़ों के पास पानी देर तक नहीं रुकने देना चाहिए।

२. सूखी पत्ती, सूखी डाल आदि को छांट देना चाहिए, जिससे आम के पेड़ को अधिक-से-अधिक सूर्य का प्रकाश मिल सके।

३. पाँच प्रतिशत डी०डी०टी०पाउडर को गंधक के पाउडर के साथ १–२ के अनुपात में मिलाकर आम के फूल लगने के समय १०–१५ दिन पर जब हवा नहीं रहे छिड़कना चाहिए।

४. प्रति पेड़ पर १ आउंस इंड्रैक्स २० ई० सी० को डेढ टीन (२७.३ लीटर) जल में घोलकर छिड़कना चाहिए।

बड़े-बड़े आम के पेड़ों पर दवाओं का छिड़काव यदि सम्भव हो तो यंत्रचालित मशीनों द्वारा करना चाहिए।

५. आम के फूलने के समय आम के पेड़ों पर मछली का तेल या रोजीन का घोल या ५० प्रतिशत जल में घुलनेवाली डी०डी०टी० पाउडर सवा सेर तथा लगभग २ छटांक पायरो क्नोयड में मिलाकर २५ टीन जल में घोलकर जब हवा नहीं रहे छिड़कना चाहिए। यह घोल ४५ से ५० वृक्षों के लिए पूरा है।

आम की दहिया

पहचान—इसकी मादा लाल होती है, लेकिन देखने में सफेद लगती है, क्योंकि इनका शरीर सफेद रुई जैसी चीज से ढंका रहता है। मादा को पंख नहीं होते। यह कोमल होती है और धीरे-धीरे चलती है। इसकी लम्बाई आधी इंच तथा चौडाई चौथाई इंच होती है। मादा और कीट-शिशु आम की नयी टहनियों पर गुच्छे-के-गुच्छे बैठे रहते हैं। नर के पंख का रंग गंदला रहता है। वे कम दिखाई देते हैं।

जीवन चक्र—इसकी मादा पेड़ों पर से धीरे-धीरे धरती पर उतरकर इधर-उधर घूमती है और बाद में दरारों में ६ से १० अंगुल भीतर अप्रैल से मई तक ३०० से ४०० तक गुलाबी रंग के अण्डे देती है और उसके बाद मर जाती है। अण्डों से नवम्बर-दिसम्बर तक गंदले भूरे रंग के कीट शिशु निकलते हैं। ये आम की नयी और कोमल टहनियों का रस चूसते हैं। मादा को बच्चे से प्रौढ़ होने तक ६०–६५ दिन और नर को लगभग ८०–८५ दिन लगते हैं। कीट-शिशु ३ बार केंचुल छोड़ने के बाद प्रौढ़ हो जाते हैं। प्रौढ़ मादा १ माह तक और नर १ सप्ताह तक जीवित रहते हैं। १ वर्ष में इनकी एक ही पीढ़ी होती है।

आक्रमण-काल—मार्च से मई तक।

प्रसार—ये कीड़े सम्पूर्ण भारत में आम पैदा होनेवाले क्षेत्र में पाये जाते हैं।

→

गाँव का बाजार-शास्त्र

[आज गाँव की हर चीज शहर में चली जा रही है, मनमाने भाव में जा रही है, मजदूरी में जा रही है। जब ग्रामदान हो जायेगा तब भी क्या ऐसा ही होगा ? क्या गाँव की चीजों का भाव शहरवाले तय करेंगे ? विनोबाजी ने थोड़ा-सा संकेत किया है कि ग्रामसभा शोषण से कैसे बचेगी और अपने सामान का भाव खुद तय करेगी।—सं०]

अभी किसीने पूछा, बाबा का आंदोलन गांवों में ही चलता है, शहरों में क्यों नहीं चलता ? शहरों में क्या है ? वहाँ न दूध है, न फल है, न तरकारी। शहरों में दूध नहीं है, प्याला है। अब यह प्यालवाला दूधवाले पर टूटता है। ऐसी नौबत आयी है। इसलिए गांववाले दूध बेचना छोड़ दें और पीपल के पत्ते में दूध पीयें। आप लोग क्या पसंद करेंगे, हवा से भरा हुआ प्याला, कि दूध से भरा हुआ पत्तल का दोना ? लोग उस प्याले के पीछे पड़े हैं। शहर से चीजें खरीदते हैं। मक्खन बेचते हैं, कपड़ा खरीदते हैं। बाबा का मंत्र है—मक्खन खाओ और कपड़ा बनाओ। कपड़ा एक आवश्यक बात है। गाँव में मक्खन खाना शुरू करेंगे तो शहर का व्यापारी गाँव में आयेगा, आपको पूछेगा—"मक्खन क्यों नहीं बेचते ?" आप उत्तर देंगे, "हमें फुर्सत नहीं है, ग्रामसभा को पूछो।" व्यापारी ग्रामसभा के पास जायेगा—"क्या हुआ, पटना में मक्खन क्यों नहीं आता ?"

"*हम बच्चों को मजबूत करने के लिए मक्खन खिलाते हैं।* बच्चे मजबूत नहीं होंगे तो खेती कौन करेगा ? बैल भी कमजोर नहीं होने चाहिए तो बच्चे कमजोर कैसे चलेंगे ? एक बाबा हमारे गाँव में आया उसने कहा कि भागवत में लिखा है कि मक्खन खाओ। बच्चों को मक्खन खिलाओ।" व्यापारी कहेगा, "शहर में भी तो बच्चे हैं।" "ठीक है। पाँचवां हिस्सा शहर में बेचेंगे, लेकिन भाव क्या देंगे ?"

इस तरह से भाव आपके हाथ में रहेगा। व्यापारी कहेगा, हम मक्खन १० रु० सेर नहीं, २० रु० सेर खरीदने के लिए तैयार हैं। ग्रामसभावाला कहेगा, रुपयों की कीमत घट गयी है। ८० रुपये सेर से कम में हम नहीं बेचेंगे। तो व्यापारी सोचेगा और कहेगा—ठीक है, ८० रुपये सेर ही सही। ग्रामसभावाला कहेगा, पैसे के लोभ में हम नहीं पड़ेंगे और ज्यादा नहीं बेचेंगे। पाँचवां हिस्सा ही बेचेंगे। हमें भी थोड़े पैसे की जरूरत है और आपको मक्खन की जरूरत है, इसलिए हम थोड़ा बेचेंगे।

यह सारा नाटक सुनने को अच्छा लगता है तो करने के लिए कितना अच्छा लगेगा !

चीटियों को अपने भविष्य की चिन्ता कभी नहीं होती। शास्त्रकार कहते हैं—"मनुष्य खतम होंगे, लेकिन चीटियाँ रहेंगी। आखिर में चीटियाँ ही रहेंगी, क्योंकि चीटियाँ छोटा-सा जीव है, लेकिन मिल-जुलकर काम करती हैं। एक चींटी को पता चला कि मिश्री का टुकड़ा पड़ा है तो वह अपनी अकेली की *ताकत नहीं लगाती, हजारों को बुलाकर ले आयेगी और सब* मिलकर वह टुकड़ा ले जायेंगी। बारिश में चीटियाँ कभी बाहर नहीं आती हैं। मक्खियों में इकट्ठा होकर काम करने की आदत नहीं होती, इसलिए बारिश में वह मर जाती हैं। •

→ रोक थाम—१. पेड़ के २-३ हाथ ऊपर तनों पर ६ अंगुल चौड़ा लसदार कपड़ा लपेट देना चाहिए। ऐसे लसदार कपडे ५ भाग रोजीन और ८ भाग रेंड़ी के तेल में पकाकर कपड़ों पर लपेटकर बनाये जाते हैं।

लसदार कपड़ों के स्थान पर चिकने कागज भी लगाये जाते हैं, जिससे कीड़े फिसलकर गिर पड़ते हैं और ऊपर नहीं चढ़ पाते।

२. बरसात के बाद और अप्रैल में बगीचों की मिट्टी उलटनेवाले हल से जोत देना चाहिए।

३. मध्य दिसम्बर में आम की जड़ से २ फीट की ऊंचाई पर अच्छी तरह झाड़कर एक आउंस डाइल्ड्रेक्स १८ ई० सी० को लगभग सवा सेर जल में घोलकर लगा देना चाहिए तथा ४ आउंस ५ प्रतिशत एल्ड्रेक्स पाउडर को जड़ के पास चारों ओर मिट्टी में छिड़क देना चाहिए। *यह क्रिया दिसम्बर से मार्च तक* करनी चाहिए। ऐसा करने से कीट-शिशु पेड़ों पर नहीं चढ़ पाते।

४. जिन पेड़ों पर इनका आक्रमण हुआ हो, उन पर मछली का तेल या रोजीन के घोल का छिड़काव करना चाहिए। सस्ता साबुन १ सेर, मिट्टी का तेल ५ सेर, जल १२ सेर, इनको १-८ के अनुपात में अच्छी तरह जल मे मिलाकर वृक्षों पर छिड़कना चाहिए।

५. पेड़ों पर सवा सेर ५० प्रतिशत बी० एच० सी० या डी० डी० टी० के जल में घुलनेवाले पाउडर को २५ टीन जल में घोलकर यंत्र-चालित मशीन स छिड़कना चाहिए। यह रसायन ४५-५० पेड़ों के लिए पूरा है।

—शैलेन्द्र कुमार 'निर्मल'

'गाँव की बात' : वार्षिक चन्दा : चार रुपये, एक प्रति : अठारह पैसे

सम्पादक : राममूर्ति : सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१

तमिलनाडु प्रान्तदान की ओर अग्रसर

तमिलनाडु ने ग्रामदान के लिए प्रदेश की युवा शक्ति को संलग्न कराने की जो नयी पद्धति अपनायी है, उसके बहुत अच्छे परिणाम आये हैं। पिछले दो महीनों के भीतर लगभग १ हजार युवकों के सघन अभियान के द्वारा कई जिलादान प्राप्त हुए हैं। १२ फरवरी को तिरुचि जिले का जिलादान घोषित हुआ, जिसके ३६ प्रखण्डों में से ३३ प्रखण्डों ने ग्रामदान-घोषणा स्वीकार कर ली थी। मदुराई जिले के कोदाईक्नाल प्रखण्ड को छोड़कर बाकी सभी ३३ प्रखण्ड ग्रामदान के अन्तर्गत आ गये हैं। मदुराई जिले का जिलादान ६ फरवरी को घोषित होना निश्चित था। तमिलनाडु के लोकप्रिय मुख्यमंत्री श्री अन्नादुरै के अचानक निधन से जिलादान का समारोह २८ फरवरी तक के लिए स्थगित कर दिया गया था। फरवरी माह के पहले सप्ताह तक रामनाथपुरम् जिले के ३२ प्रखण्डों में से १६ प्रखण्ड की जनता ने ग्रामदान की घोषणा कर दी थी। रामनाथपुरम् की भी जिलादान-घोषणा २८ फरवरी तक होने की आशा थी। इन सफलताओं के कारण १२ फरवरी तक तमिलनाडु के कुल ग्रामदानी गाँवों की संख्या ११,६२३ और जिलादान की संख्या तीन तक पहुँच गयी।

मदुराई जिला

मदुराई जिले का जिलादान प्राप्त करने का अभियान चलाने के लिए जो क्षेत्रीय संयोजन किया गया था, वह इस प्रकार था :—

तिरुमंगलम् क्षेत्र का ग्रामदान-अभियान चलाने का दायित्व गांधी-निकेतन आश्रम कालूपट्टी, डिंडीगल क्षेत्र का वहाँ के ग्रामराज्य निर्माण संघ, और पेरियाकुलम् क्षेत्र का दायित्व मदुराई जिला सर्वोदय संघ पर निर्भर था। प्रत्येक क्षेत्र के लिए सौ सौ युवकों की टोली को त्रिदिवसीय शिविर में प्रशिक्षित किया गया था। बटलागुण्डु के सर्वोदय आश्रम के प्रेरक और समर्थ नेता श्री वैथान ने युवकों के प्रशिक्षण में बहुत बड़ा दायित्व निभाया। यो ग्रामराज्य निर्माण संघ ग्रामदान के विकास से सम्बन्धित जिले की सर्वप्रमुख संस्था है।

तमिलनाडु के जिन क्षेत्रों में पहले ही ग्रामदान हो चुके हैं, वहाँ क्षेत्रीय सहयोग और इंग्लैण्ड की 'वार ऑन वॉण्ट' नामक एक जन-संस्था द्वारा प्राप्त कुछ आर्थिक सहायता के बल पर कई प्रकार के विकास-कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। गाँव के लोगों का पुराना कर्ज चुकाना, अनाज-बैंक स्थापित करना, सहकारी उपभोक्ता भण्डार चलाना, गोदामों का निर्माण करना, पशु-पालन की सुविधा उपलब्ध करना और कृषि विकास की प्रक्रिया को गतिशील करना आदि मुख्य कार्यक्रम हैं, जो बटलागुण्डु क्षेत्र के ४३ गाँवों में चलाये जा रहे हैं। इन कार्यक्रमों के लिए 'वार ऑन वॉण्ट' की ओर से साढ़े तीन लाख रु० की धनराशि प्राप्त हुई है।

जिन गाँवों के ग्रामदान की हाल ही में घोषणाएँ हुई हैं, उनमें से अनेक गाँवों में और विशेष रूप से उसीलामपट्टी, नाथम, और कोट्टमपट्टी के क्षेत्रों में 'ग्रामराज्य निर्माण संघ' ने ग्रामसभाओं का गठन करके उन्हें सक्रिय और प्रेरित किया है कि वे अपने गाँव के बेकार मजदूरों की श्रम-शक्ति का उपयोग करके, पुराने सिंचाई के कुओं को और गहरा बनाने, नये कुएँ बनाने, खेतों की हदबन्दी करने और बेकार जमीन को खेती लायक बनाने के कार्यक्रम पूरा करें। अबतक उस क्षेत्र में १८४ पुराने कुएँ और गहरे किये जा चुके हैं, २५० नये कुएँ खोदे गये हैं, और १,६५० एकड़ बेकार पड़ी हुई जमीन खेती करने योग्य बना ली गयी है। ग्राम-निर्माण के इन कार्यक्रमों को गतिशील बनाने के लिए 'कासा' नामक संस्था (सामाजिक कार्यक्रमों को गतिशील बनानेवाली क्रिश्चियन संस्था) ने इन कार्यक्रमों में मेहनत करनेवालों के लिए गेहूँ बाँटने की व्यवस्था की है।

तिरुचि जिला

तिरुचि जिले का जिलादान-अभियान चलाने का पूरा दायित्व तिरुचि जिला सर्वोदय संघ ने वहन किया। संघ ने तीन दिन की पूर्वतैयारी का शिविर आयोजित करके लगभग १०० युवकों को ग्रामदान-प्राप्ति अभियान के लिए प्रशिक्षित किया। यह शिविर दिसम्बर महीने में पुंगुडी में आयोजित हुआ था।

पुदुक्कोट्टाई क्षेत्र में कुट्टीजी ने, पूर्वी क्षेत्रों में जिला सर्वोदय मण्डल के प्रतिनिधि श्री पल्नीसामी और पश्चिमी क्षेत्र में सर्वोदय संघ के कार्यकर्ताओं ने ग्रामदान अभियान संयोजित किया। जब १२ फरवरी को तिरुचि का जिलादान घोषित हुआ उस समय तीन प्रखण्डों को छोड़कर बाकी सभी प्रखण्डों का प्रखण्डदान हो चुका था। श्री अन्नादुरै के अचानक निधन से इस क्षेत्र के अभियान

→जनशक्ति खड़ी करना। कत्तिनों को काम देने की जिम्मेवारी आपकी नहीं है, सरकार की है।

आपका, खादी का और देश का भविष्य आपके ही हाथ में है। खादी को अलग करके सोचेंगे तो खादी जीवित नहीं रहेगी। पेट में फोड़ा है तो हाथ के लिए उपाय करने से नहीं होगा। पेट मजबूत होगा तो हाथ भी मजबूत होगा। अतः खादी की शक्ति बढ़ाने के लिए ग्रामशक्ति को बढ़ाना होगा। खादी यानी समग्र विचार का एक टुकड़ा है। बापू हमेशा कहते थे, हमें समग्र चिंतन करना चाहिए; एक टुकड़ा लेकर चिंतन नहीं करना चाहिए।

आपके सामने खादी बेचने का सवाल है। खादी गाँववाले बनायें यह तो आगे का विचार है। सत्तर हजार गाँव हैं और साढ़े तीन सौ करोड़ की खादी है। यानी हर गाँव में पाँच सौ रुपये की खादी बेचनी होगी। हर आदमी को पचास रुपये की खादी खरीदनी होगी। ऐसे ५० खरीददार हर गाँव में हों तो आपका काम बनेगा। इस काम के लिए भी आपको गाँव से संपर्क करना होगा। ग्रामदान हो या न हो, गाँव में आपको जाना ही होगा। फिलहाल इस खादी को बेचने का काम कीजिए।

—विहारशरीफ, बिहार

७–२–१९६९

को स्थगित कर देना पड़ा। ग्रामदान-अभियान में पंचायत संघ के अध्यक्ष, पंचायतों के सदस्य, कर्मचारियों और सरकारी अधिकारियों ने भरपूर सहयोग प्रदान किया।

जिलादान का ब्योरेवार विवरण निम्न लिखित है—

कुल प्रखण्डों की संख्या—३६
ग्रामदान-घोषित प्रखण्ड—३३
कुल गाँवों की संख्या—५,९१३
ग्रामदानी गाँवों की संख्या—४,३१२

मणिकान्तम् प्रखण्ड में विकास-कार्यक्रम शुरू हो गया है। सिंचाई की व्यवस्था को विकास-कार्यक्रम में सर्वोच्च महत्व का माना गया है। इस क्षेत्र में कुएँ खोदने की ६ परियोजनाएँ हाथ में ली गयी हैं। बैल और दुधारू गायें खरीदने, और सिंचाई के लिए दो पम्पिगसेट बँटाने के लिए आर्थिक सहायता की व्यवस्था की गयी है। आनेवाले महीनों में यह विकास-कार्यक्रम कुछ और प्रखण्डों में भी फैलाया जायेगा। इन विकास-कार्यक्रमों के लिए जर्मनी के एक दाता से सन् १९६८ में ४३,८०० रुपये प्राप्त हुए।

तिरुचि जिले का जिलादान १२ फरवरी ो 'सर्वोदय-मेला' के दिन घोषित हुआ। ई मेला कावेरी नदी के किनारे पर बसे हुए 'रंगम्' नामक तीर्थस्थान पर आयोजित होता है। तमिलनाडु सर्वोदय संघ के अध्यक्ष श्री के० वेंकट चलपथी सर्वोदयमेला' के सभापति थे। उस मेले में श्री शंकरराव देव, श्री आर. कैथान, श्री जगन्नाथन् श्री के० अरुणाचलम् और श्री कुड्राकुडी अदीगालार जैसे कर्मठ और वरिष्ठ लोगों के उपस्थित रहने से लोगों को बड़ी प्रेरणा प्राप्त हुई।

जर्मनी के श्रा मेयर मेले के मुख्य अतिथि थे। उन्हें ही ग्रामदान घोषणा पत्र अर्पित किये गये। उक्त अवसर पर भाषण करते हुए श्री मेयर ने कहा कि वे मानव के भाईचारे की भावना बढ़ाने के गांधीजी के तरीके के विधायी हैं, इसलिए ग्रामदान आन्दोलन के काम से जुड़कर उन्हें बड़ी प्रसन्नता थी। उन्होंने कहा कि जबतक दुनिया में कहीं भी गरीबी रहेगी तबतक मानव की स्वतन्त्रता और विश्व भर के लोगों के भाईचारे का आदर्श खयाली पुलाव ही बना रहेगा।

श्री शंकरराव देव ने अपने भाषण में कहा कि क्रान्ति की शुरुआत व्यक्ति से होनी चाहिए। उन्होंने जोर देकर कहा कि जिन लोगों ने ग्रामदान के घोषणा-पत्र पर अपने हस्ताक्षर किये हैं, वे यदि अपने पड़ोसी और दूसरे लोगों के प्रति अपने व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं लाते हैं तो जिलादान घोषणा का कोई महत्व नहीं रह जायेगा। उनके व्यवहार में जो परिवर्तन होना चाहिए वह एकांगी नहीं, बल्कि समग्र और सम्पूर्ण होना चाहिए यानी वह केवल भावना के क्षेत्र तक ही नहीं, बल्कि बुद्धि और भौतिक पदार्थों तक व्याप्त होना चाहिए। दान का सिर्फ इतना ही आशय नहीं है कि समाज को कुछ दिया जाय, बल्कि उसका असली आशय है अपने आपको समाज को अर्पित करना। गाँव के कुल साधन और बुद्धि, शक्ति सबकी भलाई के काम में लगे यही ग्रामदान का आशय है। ग्रामदान द्वारा जिस अहिंसक क्रान्ति का सूत्रपात हो रहा है वह या ही पूरी हो जाने-वाली प्रक्रिया नहीं है। इस प्रक्रिया की सफलता के लिए तकलीफ भी उठानी पड़ेगी और कभी कभी आँसू बहाने की भी परिस्थिति झेलनी होगी। उसकी तैयारी के लिए यह जरूरी है कि आदमी के अन्दर जो सद्वृत्ति मौजूद है, उसके प्रति वह बराबर जागरूक रहे। यदि यह जागरूकता पूरी तरह से कायम रहेगी तो अच्छाई के प्रकाश के सामने बुराई का अंधेरा नहीं टिक पायेगा।

रामनाथपुरम् जिले की ग्रामदान प्रगति

रामनाथपुरम् जिला भी जिलादान की ओर अग्रसर है। वहाँ के लगभग ४०० कार्यकर्ता, जिनमें से अधिकतर युवक हैं वे तीन दिन की पूर्वतैयारी के प्रशिक्षण-शिविर में प्रशिक्षित हो चुके हैं। उस क्षेत्र के शिक्षक भी ग्रामदान-अभियान में सहयोग प्रदान करने के लिए आगे आये हैं। फरवरी के पहले सप्ताह तक वहाँ के कुल ३२ प्रखण्डों में से १६ प्रखण्डों का प्रखण्डदान हो चुका था।

रामनाथपुरम् के ग्रामदानी गाँवों के विकास कार्य को गतिशील बनाने में जिला ग्रामदान विकास ट्रस्ट संलग्न है। अब तक वहाँ ६० सिंचाई के तालाबों को और गहरा बनाया जा चुका है, १५ तालाबों में से बरसात की आयी हुई मिट्टी बाहर निकाली गयी है, २ विद्यालय-भवनों का निर्माण हुआ है, १२ सार्वजनिक कुएँ बने हैं और ७ एकड़ बंजर जमीन खेती लायक बनायी गयी है। ये स्वावलम्बी विकास कार्य स्थानीय ग्राम-सभाओं के नेतृत्व में पूरे किये गये हैं, जिनमें 'कासा' ने आर्थिक सहायता प्रदान की है। ग्रामदानी गाँवों के लोगों ने १ लाख ३३ हजार रुपयों के मूल्य का श्रमदान किया। 'कासा' की ओर से २५२३ बोरे गेहूँ अनुदान में प्राप्त हुए। इस क्रम में जो कार्य-योजनाएँ पूरी हुईं उनका लागत खर्च ३ लाख रुपये माना गया है। तमिलनाडु गांधी स्मारक निधि ने भी कुएँ खोदने के लिए २१ हजार रुपये की सहायता की। क्षेत्र की पंचायत परिषद और नेताओं ने मिलकर बोगालुर प्रखण्ड का औद्योगिक सर्वेक्षण भी किया है। वे ३० हजार रुपये इकट्ठा करके ढलाई करने और दियासलाई बनाने की दो इकाइयाँ गठित करने की भी योजना बना रहे हैं। —एस० हरिहरन्

देशभर में
ग्रामस्वराज्य-गोष्ठियों का सिलसिला चले

सांगली में हुई प्रबन्ध समिति की बैठक में—'ग्रामदान के बाद क्या?'—इस प्रश्न पर चर्चा करते हुए प्रबन्ध समिति ने प्रदेश और जिला-स्तरीय ग्रामस्वराज्य-गोष्ठियों का सिलसिला चलाने के लिए प्रदेशीय और जिला-संगठनों से सिफारिश की। इस सम्बन्ध में गत जुलाई '६८ में वाराणसी में आयोजित ग्रामस्वराज्य-गोष्ठी की उपलब्धियों के आधार पर दिशा निर्देश के लिए एक 'ग्राम स्वराज्य' नामक पुस्तिका तैयार की गयी है जिसे इन गोष्ठियों के आयोजक निम्न पते पर मँगा सकते हैं

मंत्री, गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति,
(गांधी शताब्दी समिति) दुकलिया-भवन,
कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर—३ (राजस्थान)

प्रबन्ध समिति ने अपेक्षा व्यक्त की है कि इन गोष्ठियों की उपलब्धियों, प्रश्नों, समस्याओं आदि को लेकर पुनः एक अखिल भारतीय गोष्ठी का आयोजन जून जुलाई तक किया जाय। इस गोष्ठी के संयोजन की जिम्मेदारी श्री राममूर्तिजी को सौंपी गयी।●

सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति द्वारा चेकोस्लोवाकिया की जनभावना का हार्दिक समर्थन

सांगली : २७ फरवरी '६९। सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति ने अपनी अंतिम बैठक में चेकोस्लोवाकिया की परिस्थिति के संदर्भ में एक प्रस्ताव पारित करते हुए कहा है कि अपनी लोकतांत्रिक स्वतंत्रता की नीति को कायम रखने के लिए सोवियत रूस तथा वारसा-सन्धि के देशों द्वारा की गयी आक्रामक कार्रवाइयों का चेकोस्लोवाकिया की जनता ने जिस बहादुरी के साथ अहिंसक प्रतिकार किया है, वह शांतिपूर्ण प्रतिकार के इतिहास में सुवर्ण-पृष्ठ बनकर जुड़ा है।

चेकोस्लोवाकिया की जनता को उसके मूलभूत मानव अधिकारों से वंचित रखने की जो असह्य परिस्थिति सोवियत रूस सहित वारसा संधि के देशों ने अपनी आक्रामक कार्रवाइयों द्वारा पैदा कर दी है, उसके कारण ही उन्हें मानवीय-ज्योति जलाने के लिए आत्मदाह करने को मजबूर होना पड़ रहा है। इस परिस्थिति में सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति ने गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुए चेकोस्लोवाकिया की जनता के साथ हमदर्दी जाहिर की है।

समिति ने यह राय जाहिर की है कि अपने देश में अहिंसा की शक्ति प्रकट करके ही हम चेकोस्लोवाकिया की जनता के मददगार हो सकते हैं। इस गंभीर परिस्थिति में, और बावजूद सारे दबावों के वहाँ की सरकार ने अपनी नीति पर कायम रहने की जो दृढ़ता प्रकट की है, समिति ने उसकी सराहना की है।

अंत में प्रबन्ध समिति ने संयुक्त राष्ट्रसंघ की मानव-अधिकार समिति से अपील की है कि चेकोस्लोवाकिया की वर्तमान समस्या के सम्बन्ध में अविलम्ब कार्रवाई करे।

सर्व सेवा संघ का आगामी अधिवेशन

सांगली में हुई संघ प्रबन्ध समिति की बैठक में निश्चय किया गया कि आगामी सर्व सेवा संघ का अधिवेशन आंध्र प्रदेश में २५-२६-२७ अप्रैल '६९ को किया जाय। स्थान का निर्णय आंध्र के कार्यकर्ता साथी करेंगे। अनुमान है कि अधिवेशन तिरुपति में आयोजित होगा।

उक्त अधिवेशन में सर्व सेवा संघ के नये अध्यक्ष का चुनाव तथा नयी कार्य-समिति का गठन भी होगा। अध्यक्ष के चुनाव के सम्बन्ध में कई जिलों तथा अन्य मित्रों से प्राप्त सुझावों पर चर्चा करके प्रबन्ध समिति ने निर्णय किया कि चुनाव की कोई पूर्वनिश्चित पद्धति नहीं लागू करके नाम प्रस्तावित करने से लेकर सर्वसम्मत चुनाव-पद्धति के निर्णय तक के सारे मामले संघ-सदस्यों की आम सभा यानी संघ अधिवेशन में ही तय किये जायँ।

अधिवेशन में भाग लेनेवाले संघ सदस्यों से अपेक्षा की जाती है कि वे अपने जिले के लोकसेवकों की राय जानकर अधिवेशन में अपने जिले के लोकसेवकों की सर्वसम्मत राय का प्रतिनिधित्व करेंगे।

महाराष्ट्र यात्रा में जे० पी० को १,४६,७२८ रुपये की थैली तथा दो प्रखण्डदान समर्पित

सांगली नगर की ओर से २६ फरवरी '६९ को आयोजित 'जयप्रकाश नारायण सत्कार-समारोह' में १० हजार से अधिक की संख्या में एकत्रित नागरिकों की उपस्थिति में मानपत्र और ६७ हजार एक रुपये की थैली जयप्रकाश नारायण को समर्पित की गयी। स्मरणीय है कि जे० पी० इस समय अपनी आयु के ६७ वर्ष पूरे कर रहे हैं। इस थैली में से चौथाई भाग सर्व सेवा संघ को देने का निर्णय महाराष्ट्र सर्वोदय मण्डल ने घोषित किया। चौथाई भाग प्रदेश के लिए, और आधा भाग सांगली के लिए रहेगा। इस अवसर पर महाराष्ट्र सर्वोदय मण्डल के अध्यक्ष श्री ठाकुरदास बंग ने गढ़चिरोली (चांदा) कवठे महांकाल (सांगली), इन दो प्रखण्ड-दानों की घोषणा की।

इसी प्रकार सातारा, कोल्हापुर, इचल-करंजी में भी थैलियाँ भेंट की गयीं। इस प्रकार महाराष्ट्र की इस यात्रा में १,४६,७२८ रु० की थैली भेंट की गयी।

अपने प्रति सांगली के नागरिकों की ओर से अभिव्यक्त स्नेह और आदर-भाव को अपनी सेवाओं और सद्विचारों के प्रति स्नेह और आदर घोषित करते हुए श्री जयप्रकाश नारायण ने लगभग ढाई घण्टे के अपने भाषण में जागतिक और राष्ट्रीय परिस्थिति के संदर्भ में ग्रामदान को प्रस्तुत किया।●

चुनाव, लोकतंत्र और ग्रामस्वराज्य

देश के चार राज्यों में हुए मध्यावधि चुनाव के समय सर्व सेवा संघ की प्रबन्ध समिति के निर्णयानुसार मतदाता शिक्षण का जो काम हुआ, उसके बारे में अपनी प्रति-क्रिया जाहिर करते हुए श्री जयप्रकाश नारा-यण ने कहा कि आज सब तरफ से यह माँग आ रही है कि लोकतंत्र की बुनियाद को मजबूत करने के लिए हम लोगों के द्वारा मत-दाता शिक्षण का काम व्यापक और सघन रूप से किया जाय। आपने कहा कि राज्यदान के बाद लोकतंत्र की नयी भित्ति के निर्माण के लिए ग्राम-सभाओं के संगठन और उनके अन्दर चेतना-निर्माण का काम करने के बाद ही इन ग्रामसभा मण्डल आदि की रचना हो सकती है, और उनके आधार पर ही ग्राम-प्रतिनिधित्व आदि की बात हम सोच और कह सकते हैं। इसलिए जिलादान हो जाने के बाद हमें उस दिशा में तत्काल सक्रिय हो जाना चाहिए।●

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : २४

सोमवार १७ मार्च, '६९

अन्य पृष्ठों पर

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ४२८५

युवक क्या करें ?

हमारे देश की विशालता, आबादी की विशालता और हमारी भूमि की स्थिति तथा आबहवा ने मेरी राय में मानो तय कर दिया है कि उसकी सभ्यता ग्राम सभ्यता ही होगी। उसके दोष मशहूर हैं, लेकिन उनमें कोई ऐसा नहीं है, जिसका इलाज न हो सकता हो। इस सभ्यता को मिटाकर उसकी जगह शहरी सभ्यता को जमाना मुझे तो असम्भव मालूम होता है। हाँ, हम लोग किन्हीं कठोर उपायों के द्वारा आबादी घटाकर, ३० करोड़ से घटाकर ३ करोड़ या ३० लाख करने को तैयार हो जायँ तो दूसरी बात है। इसलिए यह मानकर कि हम लोगों को मौजूदा ग्राम सभ्यता ही कायम रखनी है और उसके माने हुए दोषों को दूर करने का प्रयत्न करना है, मैं उन दोषों का इलाज सुझा सकता हूँ। लेकिन इन इलाजों का उपयोग तभी हो सकता है, जब कि देश का युवक वर्ग ग्राम जीवन को अपना ले। अगर वे ऐसा करना चाहते हों तो उन्हें अपने जीवन का तौर तरीका बदलना चाहिए और अपनी छुट्टियों का हरेक दिन अपने कालेज या हाईस्कूल के आस पासवाले गाँवों में बिताना चाहिए; और जो अपनी शिक्षा पूरी कर चुके हों या जो शिक्षा ले ही न रहे हों, उन्हें गाँव में बसने का इरादा कर लेना चाहिए।[1]

मैं चाहता हूँ कि तुम नवयुवक गाँव में जाओ और वहाँ जमकर बैठ जाओ—उनके मालिकों या उपकार-कर्ताओं की तरह नहीं, बल्कि उनके विनम्र सेवकों की तरह अपनी दैनिक चर्या से, और अपनी रहन सहन से उन्हें समझने दो कि उन्हें खुद क्या करना है और अपने रहने का ढंग किस तरह बदलना है। महज भावना का कोई उपयोग नहीं है, ठीक उसी तरह जैसे कि भाप का अपने आपमें कोई उपयोग नहीं है। भाप को उचित नियंत्रण में रखा जाय तभी उसमें ताकत पैदा होती है। यही बात भावना की है। मैं चाहता हूँ कि तुम भारत की आहत आत्मा के लिए शान्तिदायी लेप लेकर जानेवाले भगवान के दूतों की तरह उनके बीच जा पहुँचो।[2]

नैतिक अपवित्रता की विषैली हवा आज हमारे विद्यार्थियों में भी जा पहुँची है और किसी छिपी हुई महामारी की तरह उनकी भयंकर बरबादी कर रही है। ...तुम्हारा सारा पाण्डित्य और शास्त्रों का तुम्हारा सारा अध्ययन बिलकुल बेकार होगा, यदि तुम उनकी शिक्षाओं को अपने दैनिक जीवन में न उतार सको।[3]

—मो० क० गांधी

---

(१) 'यंग इंडिया' : ७-११-'२९ (२) 'यंग इंडिया' : २६-१२-'२७

(३) 'यंग इंडिया' : २१-२-'२९

प० बंगाल का संकट

मद्रास, ७ मार्च। श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि बंगाल की सरकार ने राज्यपाल द्वारा पढ़े जाने के लिए जो वक्तव्य तैयार किया था उसे उन्होंने न पढ़कर "संयुक्त मोर्चे की सरकार के हाथ में एक ऐसा शक्तिशाली हथियार दे दिया है, जिसे वे कांग्रेस दल और केन्द्रीय सरकार, दोनों के खिलाफ इस्तेमाल करेगी।"

श्री जयप्रकाशजी ने इस प्रश्न पर अपने मत का खुलासा देते हुए आगे कहा—"मैं आखिर समय तक यही उम्मीद करता रहा कि पश्चिमी बंगाल का वैधानिक संकट टल जायेगा। मुझे यह कहना जरूरी मालूम होता है कि केन्द्रीय सरकार ने असंवैधानिक ढंग से काम किया, इतना ही नहीं हुआ है, बल्कि इससे यदि पूरे देश को नहीं तो कम से-कम बंगाल के कांग्रेस दल की प्रतिष्ठा को गहरी चोट पहुँची है। मुझे पूरी तरह से विश्वास है कि अगर आज स्थिति इसके विपरीत होती, यानी केन्द्र में संयुक्त मोर्चे की सरकार होती और प० बंगाल में कांग्रेस की, तो कांग्रेस पार्टी ने केन्द्र की संयुक्त मोर्चे की सरकार की इस प्रकार की असंवैधानिक कार्रवाई की कड़े-से-कड़े शब्दों में निंदा की होती।

इससे कहीं अच्छा हुआ होता कि कांग्रेस दल ने अपनी पराजय शालीनतापूर्वक स्वीकार करके विधानसभा के अधिवेशन के पहले ही राज्यपाल को वापस बुला लिया होता। यह दयनीय बात है कि जिस कांग्रेस दल ने अपने हाथों से संविधान तैयार करने की जिम्मेदारी निभायी थी, उसीने स्वयं उस संविधान को भंग करने की जिम्मेदारी भी ली।"

पश्चिम बंगाल की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए दिल्ली के हिन्दी दैनिक "हिन्दुस्तान" ने ८ मार्च, '६९ के अग्रलेख में लिखा है—"श्री जयप्रकाश नारायण ने अपने प्रवचन में पश्चिम बंगाल की स्थिति के लिए केन्द्र को दोषी बताते हुए कहा है : "खेद है कि कांग्रेस पार्टी ने, जिसका संविधान के निर्माण में बड़ा हाथ था, स्वयं उसमें तोड़-फोड़ का कार्यभार सम्हाल लिया है।" वक्तव्य देने में हींग-फिटकिरी कुछ नहीं लगती, लेकिन उसका असर तो बुरा हो सकता है। यदि जयप्रकाश बाबू सत्य उद्घाटन कर वामपंथियों विशेषतः कम्यूनिस्टों की रोषपूर्ण आलोचना का शिकार न होना चाहते थे तो वे मौन ही रहते। यदि जयप्रकाश बाबू प० बंगाल के राज्यपाल होते तो वह क्या उन अंशों को पढ़ लेते? प्रधानमंत्री होते तो क्या मान लेते कि केन्द्रीय सरकार का कार्य अलोकतंत्रीय रहा है?"

दिल्ली से प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक "टाइम्स आव इण्डिया" ने अपने ७ मार्च, '६९ के अग्रलेख में लिखा है—"यह सच है कि अगर केन्द्र के किसी भी कार्य से यह जाहिर होता है कि वह कार्य राज्य-सरकार के दबाव के चलते हुआ है तो इससे एक गलत परम्परा बनेगी। राज्यपाल के ओहदे को संवैधानिक ढाँचे में जो स्थान दिया गया है, वह इस प्रकार के कार्य द्वारा स्थान च्युत हो जायेगा। लेकिन बंगाल के मामले में स्थितियाँ विचित्र हैं और ऐसा दुबारा होने की संभावना नहीं है। कुछ भी हो, केन्द्र और राज्य के सम्बन्धों के मामले में इस प्रकार एक-दूसरे को अंगूठा दिखाने का रवैया नहीं चलना चाहिए। केन्द्र और राज्य, दोनों समझदारी के साथ एक दूसरे के रुख को समझने की तैयारी रखेंगे तभी ठीक होगा।"

मद्रास के अंग्रेजी दैनिक "दी हिन्दू" ने अपने ८ मार्च '६९ के अग्रलेख में लिखा है "यह याद रखने की बात है कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया सिर्फ कानून मात्र नहीं है। संविधान के अन्तर्गत जहाँ तक सम्भव हो, जनता के प्रतिनिधियों की इच्छाओं का लोकतांत्रिक प्रक्रिया में समावेश होना चाहिए। इसी आधार पर इस राय का औचित्य सिद्ध होता है कि जो परिस्थिति सामने है, और मध्यावधि चुनाव में जनमत ने जो फैसला जाहिर किया है उसे मद्देनजर रखते हुए, यह उचित ही था कि श्री धर्मवीर वहाँ से वापस बुला लिये जाते।

जब कि स्वयं गवर्नर ने केन्द्र से अनुरोध किया था कि उन्हें वहाँ से वापस बुला लिया जाय, और बंगाल के नये मंत्रिमण्डल का उनके खिलाफ जो स्पष्ट रुख है उसे देखते हुए सिर्फ इतनी ही बात सोचने को रह गयी थी कि उन्हें कब वापस बुलाया जाय।"

दिल्ली के हिन्दी दैनिक 'नवभारत टाइम्स' ने ८ मार्च के सम्पादकीय में लिखा है—

लोकतंत्र में जो बहुमत की आवाज है वह सर्वोच्च है इसमें सन्देह नहीं, किन्तु अच्छे-से-अच्छा लोकतंत्र भी ऐसी व्यवस्था जरूर रखता है, जिससे उसका दुरुपयोग कम-से-कम हो सके। राज्यपाल के अपने विवेक के प्रयोग का जो अधिकार दिया गया है, वह इसी उद्देश्य से है।...यदि श्री धर्मवीर ने अपने अभिभाषण में से कुछ अंश नहीं पढ़े तो इसमें असंवैधानिक क्या है? फिर राष्ट्रपति का जो भाषण तैयार किया जाता है क्या उसमें ऐसे अंश हो सकते हैं, जिसमें उसके ही किसी कार्य की आलोचना हो? यदि नहीं तो प० बंगाल के राज्यपाल द्वारा अपनी आलोचना के अंश न पढ़ने पर आपत्ति क्यों?"

'संकट टल गया' शीर्षक के अन्तर्गत 'स्टेट्समैन' ने अपने ७ मार्च '६९ के सम्पादकीय में लिखा है—

'दोनों पक्ष अपनी-अपनी बातें मनवाने में सफल हो गये दीखते हैं। एक दूसरे के प्रति कुछ हद तक समझौते की भावना बरतकर दोनों पक्षों ने उस दुर्भावना को कम कर दिया जो ऐसा न करने पर फैली होती। जब राज्यपाल ने विधानसभा में प्रवेश किया और जब वे वापस बाहर आये तो संयुक्त मोर्चे के सदस्य अपनी-अपनी कुर्सियों पर बैठे रहे। इस प्रकार एक शिष्टाचार की परम्परा टूटी। इसी प्रकार सरकार धन्यवाद-ज्ञापन के प्रस्ताव में अपनी नाराजी जाहिर करनेवाला अंश जोड़ेगी। अप्रिय होते हुए भी लोकतांत्रिक ढंग से अपनी राय प्रकट करने के ये ढंग हैं। इनकी तुलना में शारीरिक कष्ट पहुँचाने, सड़कों पर उग्र प्रदर्शन करने या अन्य प्रकार से दबाव डालने के तरीके निश्चय ही कहीं कम सभ्य ढंग हैं।'•

राज्य बनाम केंद्र

हमारा देश जिस तरह-तरह के तनावों और संघर्षों में से गुजर रहा है उनमें राज्यों और केन्द्र के झगड़े रगड़े का एक विशेष स्थान हो गया है। ये रगड़े 'सिद्धान्त की लड़ाई' बनते जा रहे हैं, और कभी-कभी ऐसा लगने लगता है जैसे राज्य अपनी जनता और लोकतन्त्र के नाम में केंद्र के मुकाबिले 'मुक्ति का अभियान' चला रहे हैं, और केंद्र स्वयं देश की एकता, विकास और सुव्यवस्था के लिए संविधान की रक्षा करने में जुटा हुआ है। केन्द्र और राज्यों के बीच अधिकारों की खींचतान का यह सारा व्यापार याद दिलाता है बीते इतिहास के उन दिनों की जब दिल्ली के सम्राट तथा 'बागी' सूबेदारों और सरदारों में टक्करें होती थीं, और इन टक्करों से राजनैतिक एकता टूटती थी, अव्यवस्था होती थी, जन जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता था। आज भी अगर ये टक्करें न रुकीं तो इतिहास के पुराने अनुभव नये होकर फिर सामने आयेंगे।

केंद्र और राज्यों में विभिन्न दलों की सरकारें हों, तथा उन दलों में सत्ता के लिए देशव्यापी होड़ हो, यहाँ तक कि बुनियादी प्रश्नों पर भी वे एक राय न हों, तो स्वाभाविक है कि उनमें समय-समय पर गंभीर तनाव पैदा होते रहें। विकास के साधनों का बँटवारा, कर, खाद्यनीति, भाषा, आदि कितने ही प्रश्न हैं जिन पर केंद्र और कुछ राज्यों के दृष्टिकोण परस्पर-भिन्न हैं। और जब दिमाग पर दलगत प्रतिद्वंद्विता और पूर्वाग्रह का धुन्ध छाया रहता है तो आँखों के लिए और भी कठिन हो जाता है कि तथ्यों को साफ साफ देख सकें। दुःख तो यह है कि अब यह भावना भी दिनों दिन क्षीण होती जा रही है कि मतभेद चाहे जो हों, देश के नाते हम सब एक हैं। विभिन्न दलों में एकता की तलाश से ज्यादा उत्कंठा है मतभेदों को खोजने और प्रकट करने की।

हमारे संविधान में इस बात की गुंजाइश है कि केन्द्र और राज्यों में एकसाथ आधे दर्जन विभिन्न दलों की सरकारें हों, लेकिन इस रचना में *केंद्र की सरकार का अपना अलग महत्त्व है।* वह पूरे देश का प्रतिनिधित्व करती है। ऐसी हालत में यह जरूरी है कि विभिन्न राजनैतिक दलों में मूल प्रश्नों पर 'कन्सेन्सस' हो, तथा केंद्र-सरकार निष्पक्ष हो। सरकार *निष्पक्ष हो, इतना ही काफी नहीं है,* बल्कि सामान्य रूप से देश को विश्वास हो कि वह निष्पक्ष है। उसकी निष्पक्षता एक ऐसी शर्त है जिसके बिना आज के संघीय संविधान का चलना कठिन मालूम होता है। इस दृष्टि से दिल्ली में अभी हाल में 'एकता और लोकतंत्र' पर जो राष्ट्रीय कन्वेन्शन हुआ था उसने कुछ सुझाव दिये थे जो अत्यन्त उपयोगी हैं। उसकी निश्चित राय थी कि देश की एकता और सुरक्षा की दृष्टि से केंद्र का शक्तिशाली होना आवश्यक है। साथ ही यह भी जरूरी है कि राज्यों में स्वाभिमान जगे और अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़े। ये दोनों बातें परस्पर-विरोधी नहीं, पूरक हैं। देश की बदली हुई परिस्थिति में केंद्र और राज्यों में अधिकारों का नये सिरे से बँटवारा होना चाहिए। सबसे बड़ा प्रश्न योजना का है। योजना की सारी प्रक्रिया में विकेन्द्रीकरण की जरूरत है, किन्तु खाद्य ऐसी चीज है जिसे केंद्र के उत्तरदायित्व से अलग नहीं किया जा सकता। कन्वेन्शन का सबसे महत्त्वपूर्ण सुझाव था एक 'राष्ट्रपति की कौंसिल'—प्रेसिडेण्ट्स कौंसिल—बनाने के बारे में। कन्वेन्शन की राय थी कि राज्यों और केंद्र के बीच पैदा होनेवाले विवादों में तथा गवर्नरों की नियुक्ति के मामले में यह कौंसिल राष्ट्रपति को सलाह दे, ताकि यह कहने को न रहे कि दिल्ली में निर्णय कांग्रेस को सामने रखकर होते हैं। कौंसिल के संयोजक स्वयं उपराष्ट्रपति हों, उनके अलावा प्रधानमंत्री, सर्वोच्च न्यायालय के पिछले चीफ जस्टिस, तथा पाँच अन्य सार्वदेशिक प्रतिष्ठा के व्यक्ति उसके सदस्य हों। इन पाँच को विभिन्न विधानसभाओं तथा लोकसभा के स्पीकर मिलकर चुनें, या स्वयं राष्ट्रपति संसद में विभिन्न दलों के नेताओं की सलाह से चुनें। कौंसिल की सलाह मानने के लिए राष्ट्रपति बाध्य नहीं होगा, लेकिन किस मामले में कौंसिल ने क्या सलाह दी, यह प्रकाशित हो जाना चाहिए, ताकि गलतफहमी के लिए गुंजाइश न रहे। अगर कन्वेन्शन की यह सलाह आवश्यक सुधारों के साथ मान ली जाय तो देश में फैला दुर्भावना का बादल बहुत कुछ साफ हो जायगा।

एक और बात ध्यान देने लायक है। जो राज्य आज अपने अधिकारों का नारा लगा रहे हैं—भले ही उनकी माँग में चाहे जितना औचित्य हो, वे स्वयं जिला को, या और नीचे जाकर गाँवों को, कोई ठोस अधिकार नहीं देना चाहते। राज्यों की इसी अधिकार-लिप्सा के कारण पंचायती राज की सारी कल्पना मिट्टी में मिल गयी। जो ग्रामदान आंदोलन एक एक गाँव की व्यवस्था और विकास को एक अधिकार-सम्पन्न इकाई बनाना चाहता है, उसके प्रति इतनी उपेक्षा क्यों है? क्या इसीलिए नहीं कि क्या केन्द्र, और क्या राज्य, नेताओं के सामने अपने दल की सत्ता का प्रश्न है, लोकसत्ता का नहीं? जब किसी राज्य की सरकार का दिल्ली से विवाद छिड़ता है तो जनता यह समझती है कि राज्य की सरकार उसके लिए दिल्ली से लड़ रही है। वह क्या जाने कि उसे खुद अपने अधिकारों के लिए किसी दिन अपने ही राज्य की सरकार से 'लड़ाई' छेड़नी पड़ेगी। हमारे देश में मूल 'लड़ाई' 'नागरिक-शक्ति' बनाम 'दैनिक-शक्ति' है, न कि राज्य बनाम केंद्र। राज्य और केंद्र, दोनों दैनिक-शक्ति के प्रतीक हैं। लेकिन इतना होते हुए भी देश की एकता को कमजोर करनेवाले राज्य-केंद्र या राज्य-राज्य के विवादों का निपटारा सही, निष्पक्ष, ढंग से हो, इसकी उचित व्यवस्था में देर नहीं होनी चाहिए। दल, संसद, संविधान, सबका अपनी जगह महत्त्व है, किन्तु सबसे अधिक महत्त्व है देश का। ये रहकर ही क्या करेंगे अगर देश न रहा?●

भूदान यज्ञ । सोमवार

हिंसक क्रान्ति का प्रयास : एक निष्फल चेष्टा

आपने अभी प्रखण्डदान किया। इसके लिए मैं बहुत ज्यादा अभिनन्दन नहीं करता। इसलिए कि इस काम में बहुत देरी हो रही है। गये साल बिहार की भिन्न-भिन्न पार्टियों के नेता, सर्वोदय-सेवक, ग्राम-पंचायत के मुखिया, सब इकट्ठा हो गये थे और उन्होंने तय किया था कि सारा बिहार गये साल अक्तूबर की २ तारीख को ग्रामदान में लायेंगे। अभी दूसरा वर्ष शुरू हो गया है। ११ महीना हो चुका। बहुत देर हो गयी है। कई परिस्थितियाँ होती है जिनके कारण काम नहीं बनता या बनता है। इसलिए मैं किसीको दोष नहीं देता। मैं अपने को पूछता हूँ—तू क्यों अधीर है?' बाबा के हृदय में जरा भी उतावली नहीं। अपने हृदय में वह अत्यन्त शांति देखता है। अगर परमात्मा बाबा को आज उठा ले तो बाबा का कुछ भी नहीं बिगडेगा, बल्कि सब सुधरेगा। बाबा यह भी चिन्ता नहीं करेगा कि वह मरेगा तो उसकी अस्थियाँ कहीं ले जायी जायँ। जहाँ सामान्य लोगों का उद्धार होता है उसी श्मशान में बाबा की क्रिया की जाय। बाबा के मन में पूर्ण धीरज है। दुनिया का काम परमात्मा देखता है। बाबा के सिर पर कोई बोझ नहीं है। लेकिन जमाने की रफ्तार तेज है और जमाने को धीरज नहीं है।

क्रान्ति का मूर्ख प्रयत्न

इस वक्त भारत में और आसपास की दुनिया में हिंसा की ताकतें जोर मार रही हैं। अगर यह होता कि हिंसा की सफल ताकतें काम करतीं तो बाबा उसे सपोर्ट करता। बाबा नक्सालबाड़ी की तरफ गया था (ठाकुरगंज, पूर्णिया)। वहाँ उसने यही कहा कि तुमने अगर सफल क्रांति की होती, हिंसा की ही सही, तो बाबा तुम्हें धन्यवाद देता। भारत की आज की 'स्टेटमंकी' के खूनी क्रान्ति बाबा पसन्द करता है; लेकिन वह निष्फल क्रान्ति पसन्द नहीं करेगा। अपने यहाँ कानून है, आत्महत्या अवैध मानी गयी है, लेकिन सफल आत्महत्या के खिलाफ कोई कानून खड़ा नहीं है। निष्फल प्रयत्न होगा तो उसके खिलाफ कानून है। वैसे ही कोई सफल खूनी क्रांति करे तो बाबा धन्यवाद देगा। लेकिन धनुष और तीर लेकर वे सफल क्रान्ति कैसे करेंगे? मैंने उन्हें समझाया, तुम धनुष और तीर लेकर क्रान्ति के लिए खड़े हो और तुमने वोट देकर ऐसी सरकार बनायी है जिसे सेना रखने का अधिकार दिया है तो सेना तुम्हें खतम करेगी। इसलिए मूर्ख लोगों को बाबा उत्तेजन नहीं देता, और ऐसा ही हुआ। सेना ने नक्सालबाड़ी की क्रान्ति को दबा दिया, खतम किया, वे असफल हो गये। लेकिन आज ग्रामदान का भी बोलबाला उतना नहीं है जितना नक्सालबाड़ी का बोलबाला है। नक्सालबाड़ी याने क्रांति का असफल, मूर्ख प्रयत्न। फिर भी उसकी कीर्ति फैली है। बाबा की भी कीर्ति फैल सकती है। कल बाबा अगर किसी घर में घुसकर चोरी करके खाना खाता है तो अमेरिका के अखबार में एकदम खबर आयेगी कि हिन्दुस्तान में इतना अकाल पड़ा है कि बाबा जैसे को भी चोरी से खाना पड़ा! लेकिन बाबा ऐसा काम करता नहीं, इसलिए बाबा की कीर्ति दुनिया में फैलती नहीं। बल्कि बाबा तो ऐसे ढंग से काम करना चाहता है और कर रहा है कि 'लेट नाट दाय लेफ्ट हैण्ड नो व्हाट दाय राइट हैण्ड डूएथ।' यह बाबा की पद्धति है। हम भगवत् कार्य करते चले जायँ। हमें अपना इजहार करने की जरूरत नहीं। वह कार्य अपना इजहार करेगा।

विनोबा

मैं कहता यह था कि हिंसा की ताकतें जोर कर रही हैं। अभी बम्बई में हजारों रुपयों का माल जला दिया गया, कुछ लोग मर गये। झगड़ा है महाराष्ट्र और कर्नाटक की सीमा का। उसके 'प्रोटेस्ट' में दंगा किया गया। कहा जाता है कि हमारा देश गरीब है और इधर हजारों रुपयों का माल जलाते हैं। यह निष्फल प्रयत्न है। इससे कुछ होने-जानेवाला नहीं है। यह तो बचपना है। इसलिए बुनियादी काम तो है सबसे नीचे के स्तर की जनता को ऊँचा उठाना। यह हम नहीं करते हैं तो बहुत खतरा बाबा देखता है।

अन्तिम व्यक्ति को न्यूनतम कब मिलेगा?

सब पार्टियों में बाबा के मित्र हैं। बाबा की यह बड़ी दुर्दशा है। तुम बड़े दुर्दैवी हो, अगर सब लोग तुम्हारे बारे में अच्छा-ही-अच्छा कहते हो। किसी भी पार्टीवाले को पूछा, क्या ग्रामदान ठीक है? तो कहेगा, हाँ ठीक है। ना कहता तो समझाने की बात थी। हाँ कहा तो बात खतम। प्लानिंग कमीशन में बाबा के मित्र पड़े हैं। हमने उनसे पूछा कि अन्त्य को, सबसे आखरी जो है उसको, 'अण्टू दी लास्ट' को 'मिनिमम' (न्यूनतम) कब मिलेगा? 'मिनिमम' याने देह और आत्मा को इकट्ठा करने के लिए जितना देना होता है; 'मॉक्सीमम' (अधिकतम) नहीं।

यह मिनिमम कब दिया जायेगा? उनकी तरफ से उत्तर मिला सन् १९८५ में, याने १८ साल के बाद! मालूम नहीं, १८ साल के बाद हम रहेंगे या वे रहेंगे और क्या हालत होगी भारत की और दुनिया की। कौनसी ताकतें काम करेंगी यह कौन कह सकता है? सन् १९४७ में आजादी मिली। २२ साल हो गये। और १६ साल राह देखने की बात है। सन्त तुकाराम का वचन याद आता है। 'उद्धाराची नाहीं उधाराचे काम'—उद्धार में उधार नहीं चलता। एक आदमी डूब रहा है, चिल्ला रहा है, मदद में आओ। आप कहेंगे, आ रहा हूँ, दो घण्टे के बाद। चलेगा? तुरन्त मदद देनी होगी। उद्धार में उधार नहीं चलता। डूबते हुए को तारना है तो तुरन्त मदद देनी होगी। ऐसे वादे बिलकुल व्यर्थ हैं, इसे हम फिजूल मानते हैं। बड़ी आश्चर्य की बात है, प्लानिंग कमीशनवाले यह हिम्मत करते हैं भारत के सामने बोलने की। इसलिए इस बात की बहुत तीव्रता है। 'धर्मस्य त्वरिता गतिः'—धर्म की सफलता तब होती है जब धर्म तुरन्त होता है।

इसलिए मेरे प्यारे भाइयो, मैंने कहा मैं आपका अभिनन्दन नहीं कर सकता। जल्दी-से-जल्दी यह काम आपको पूरा करना चाहिए ताकि आगे का काम हम कर सकें।

पुरानी पीढ़ी बनाम नयी पीढ़ी

पुरानी पीढ़ी जाती है और नयी पीढ़ी आती है। नया और कल्याणकारी रूप प्रकट होता है। पुरानी पीढ़ी से अति कल्याणकारी पीढ़ी निर्माण होती है। लेकिन जहाँ नयी पीढ़ी निर्माण होती है वहाँ पुरानी पीढ़ी के साथ उसका संघर्ष होता है। नया जमाना, नयी माँगें, नयी उमंगें, नया उत्साह, इसका ख्याल पुराने लोगों को नहीं होता है, इसलिए विद्यार्थी आगे बढ़ते हैं तो उन्हें पुराने लोग पीछे खींचते हैं। मुझसे कहा जाता है कि भारत में विद्यार्थी बहुत उद्दण्ड हो गये हैं। मैं कहता हूँ, इतनी रद्दी तालीम, निष्क्रिय विद्या उन्हें दी जा रही है, उस तुलना में उनकी उद्दण्डता कुछ भी नहीं। अगर मैं विद्यार्थी होता तो आज के विद्यार्थी जितनी उद्दण्डता करते हैं उससे जरूर ज्यादा करता। नारायण के दो अवतार हो गये—परशुराम और राम। राम नया अवतार था, परशुराम पुराना। राम का अवतार हुआ उसे परशुराम स्वीकार नहीं कर सका। परशुराम मामूली आदमी नहीं था। वह भी नारायण का ही अवतार था। लेकिन पुराना अवतार नये अवतार को समझ नहीं सका। तुलसीदासजी ने लक्ष्मण और परशुराम का संवाद लिखा है। बात-बात में लक्ष्मण जवाब दे रहा है और परशुराम को चिढ़ा रहा है। और बीच में रामजी बोलते हैं, उसे शान्त करते हैं। नवजवान लक्ष्मण ने खूब तोड़ा है परशुराम को। दो पीढ़ियों का अन्तर प्रकट हो जाय, इसलिए तुलसीदासजी ने यह लिखा है। तो विद्यार्थियों को रोकना नहीं चाहिए। उनकी आशाएँ और आकांक्षाएँ ध्यान में लेकर उनको उत्तेजना देनी चाहिए, चालना देनी चाहिए।

आचार्यों की शक्ति प्रकट हो

मैं इलाहाबाद गया था। वहाँ मैंने बताया कि सारे उत्तर प्रदेश में और सारे भारत में भी आचार्यों की शक्ति कब प्रकट होगी, मैं राह देख रहा हूँ। आचार्यकुल के बारे में मैंने अपने विचार वहाँ रखे। तो हिन्दी के साहित्यिक जैनेन्द्रजी पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा। और उन्होंने तय किया कि इस काम के लिए वे एक साल देंगे। मैंने कहा था कि तीन शक्तियों पर मेरा विश्वास है। नम्बर एक में जन शक्ति पर विश्वास है। जन-शक्ति याने लोक-शक्ति। उसे जगाने के लिए ग्रामदान के द्वारा काम चल रहा है। नम्बर दो में विद्वत् जन शक्ति। देश के तटस्थ विद्वान और आचार्य इकट्ठा हों और आपने में राजनैतिक पक्षों को घुसपैठ होने न दें और तीसरी शक्ति है परमात्मा की।

एक है साक्षात जन-शक्ति, जो श्रम करती है और श्रम करने के कारण उनका जीवन पवित्र होता है। इन तीनों शक्तियों को मैं आवाहन कर रहा हूँ। आचार्यों की नयी शक्ति प्रकट होनी चाहिए, इसकी बहुत जरूरत है। आज भारत अन्धाधुन्ध है। कोई मार्गदर्शन नहीं है। आचार्यों की शक्ति प्रकट होती है तो भारत को एकत्र मार्गदर्शन मिलेगा और बहुत लाभ होगा। [भागलपुर, १८-२-१९६९]

गांधीजी और मौजूदा समस्याएँ

जे० बी० कृपालानी

हिन्दुस्तान को मौजूदा कठिनाइयों में गांधीजी यहाँ की सरकार और आम लोगों को क्या करने की सलाह देते यह बताना कोई मुश्किल नहीं होना चाहिए। फिर भी, कुछ भी कहना सिर्फ अन्दाज लगाना ही कहा जायेगा क्योंकि अपनी बात तो खुद गांधीजी ही कह सकते थे। वह सरकार के सबसे ऊँचे अधिकारी खुद न होते लेकिन सरकार व लोगों, दोनों को वह उस रास्ते पर चलने की सलाह देते जो देश के नंगे-भूखे लोगों के फायदे का होता, क्योंकि इन्हीं भूखे-गरीब लोगों की भलाई पर ही हिन्दुस्तान की तरक्की निर्भर है। वह हमेशा हिन्दुस्तान के आम लोगों की भलाई के नजरिये से सोचते थे। वह राजनीति के मैदान में आये भी यही ख्याल लेकर, कि मुल्क के लाखों-करोड़ों की कमरतोड़ गरीबी दूर हो। सच तो यह है कि हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई शुरू करने के पहले उनकी सारी कोशिशें किसानों और मजदूरों की हालत में सुधार करने की तरफ लगी थीं। उनके लिए स्वराज का मतलब था हिन्दुस्तान की दर्दनाक गरीबी दूर होना। दूसरे गोलमेज सम्मेलन में उन्होंने कहा था कि इंडियन नेशनल कांग्रेस का बने रहना सिर्फ इसीलिए ठीक कहा जा सकता है कि वह मुल्क के आम लोगों की भलाई करे। और इस एक चीज के सामने कोई भी दूसरी चीज, देशी या विदेशी, ज्यादा महत्त्व नहीं रखती। उनसे जब यह पूछा गया कि एक रूहानी आदमी होते हुए भी वह राजनीति में क्यों पड़े तो उन्होंने यही कहा कि भूखे हिन्दुस्तान के आगे वह रूहानियत एक थाल भात की शक्ल में ही ले जा सकते हैं।

गरीब की बुनियादी जरूरतों की पूर्ति हो

गांधीजी हिन्दुस्तान के आम लोगों के लिए चाहते क्या थे? क्या वही सारी चीजें जैसे रेडियो, टेलीविजन, मोटर या घरेलू काम की मशीनें, वगैरह वगैरह, जो पश्चिमी मुल्कों में मामूली नागरिक को भी हासिल हैं? नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं। लेकिन वह यह जरूर चाहते थे कि यहाँ के हर आदमी की रोजमर्रा की जरूरतें पूरी हों, उसे रोटी, कपड़ा, मकान की सहूलियतें हों, हर बच्चे को ७ साल की जरूरी बेसिक तालीम मिले, हर इन्सान को डाक्टरी मदद मिले और इन सभी जरूरतों को पूरा करने के लिए पूरी रोजगारी मिले। इसीलिए उन्होंने 'स्वदेशी' की भावना फिर से जगायी। लेकिन उनकी 'स्वदेशी' के साथ आर्थिक और आध्यात्मिक दोनों चीजें मिली हुई थीं। इस आध्यात्मिक पहलू को गीता में 'स्वधर्म' कहकर समझाया गया है। जहाँ तक 'स्वदेशी' के आर्थिक पहलू की बात है, उसमें देश या विदेश की बड़ी-बड़ी मिलों या कारखानों के मुकाबिले घरेलू उद्योग-धन्धों की चीजों को अहमियत दी जाती है। उन्हें बिजली, इस्पात के कारखानों, जहाजरानी वगैरह से कोई एतराज नहीं था लेकिन इस मुल्क को बनाने की उनकी योजना में पहल किसको दी जाय इसे तय करने का नजरिया जरूर बदल जाता है। मुल्क की पंचसाला योजनाओं में जो बड़े उद्योग धन्धों को अहमियत दी गयी उसे वह जरूर नापसन्द करते क्योंकि इससे हमारे औद्योगिक विकास को तो बढ़ावा जरूर मिला लेकिन उसे सम्भाल सकने वाला मुल्क में खेती-बारी और घरेलू उद्योग-धन्धों का आधार तैयार नहीं किया गया।

'स्वदेशी' सम्बन्धी अपने इन्हीं खयालों को असली जामा देते हुए गांधीजी ने अपना रचनात्मक कार्यक्रम निकाला, जिसमें चरखे को प्रतीक के तौर पर बीच में जगह दी गयी। वैसे वह एक समय कौंसिल-बहिष्कार की बात कहते थे, लेकिन जब उन्हें लगा कि राजनीतिक अधिकार हाथ में लेने से मुल्क की भलाई होगी तो उन्होंने कांग्रेस को सूबों में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बनाने की सलाह दी, गो वह जानते थे कि उस समय की सियासत के बीच कांग्रेस अधिकार का पूरा फायदा नहीं उठा सकती थी। कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों के सामने उन्होंने रचनात्मक कार्यक्रम पूरा करने की बात रखी। वह चाहते थे कि मिनिस्टर लोगों के 'ट्रस्टी' के तौर पर रहें और मुल्क की आम जनता का खयाल करके सादगी की जिन्दगी बितायें।

आजादी के बाद, चूँकि आम लोगों की माली हालत में सुधार नहीं हुआ, अतः वे मुल्क को उन्हीं नीतियों की तरफ लौट पड़ने की सलाह देते जिन्हें आजादी के पहले कांग्रेस ने और उसकी मार्फत सारे मुल्क ने अपनायी थीं।

शासन की शान-शौकत खत्म हो

हमारी आर्थिक बीमारियों को दूर करने के लिए वह सरकार और मुल्क दोनों को जितना हो सके कमखर्ची और किफायत की

. . . . .

यह राष्ट्रपति और गवर्नरों दोनों को सादगी से रहने और अंग्रेजी हुकूमत के दिनों की शान-शौकत छोड़ देने के लिए कहते। राज्य-विधान-सभाओं से वह सेकेण्ड-चेम्बर जैसी फालतू चीज खत्म करने की सलाह देते। विदेशों से यह भारी भरकम कर्ज भी वह न लेने देते। अपनी बिसात से बाहर खर्च करने की बात वह कभी न कहते। खाने-पीने की मौज इतनी तंगी की हालत में वह आत्म-संयम की ही बात कहते क्योंकि उनका यह खयाल था कि कुदरत हमेशा सबकी जरूरत भर पैदा करती है और इस तरह सबकी जरूरतें पूरी भी हो सकती हैं बशर्ते कुछ लोग अपने स्वार्थ के लिए चीजों को बटोर न लें और वे चीजों का गलत इस्तेमाल ही करें। मेरा अपना खयाल है कि खाने की यह बेहद कमी केवल इस वजह से है कि उसका ठीक से बँटवारा नहीं होता और लोगों में उसे खरीदने का माद्दा नहीं है।

मतदाता का शिक्षण हो

जहाँ तक राजनीतिक क्षेत्र का सवाल है, गांधीजी अपनी सारी ताकत हमारे 'मालिकों' यानी वोट देनेवालों को ट्रेनिंग देने में खर्च करते। उनके रचनात्मक कार्यक्रम का भी यह एक हिस्सा था। आज जाति, धर्म, भाषा वगैरह को लेकर वोट देनेवालों को जो भुलावे में डाला जाता है उसकी तो वह पूरी खिलाफत करते। चुनाव को लेकर जो तमाम गलत तरीकों से पैसा इकट्ठा किया जाता है और फिर उसे वोट के लिए अन्धाधुन्ध खर्च किया जाता है और कभी-कभी जो सरकारी मशीनरी का भी गलत इस्तेमाल किया जाता है उसे गांधीजी कभी बर्दाश्त न करते। वह यही महसूस करते कि मुल्क और जनतंत्र तभी सुरक्षित रह सकते हैं जब वोट देनेवाले समझदार हों और सही रास्ते पर चलें। साथ ही, वे साम्प्रदायिकता तथा जाति-पाँति और अपने खुद के स्वार्थ के मुकाबिले देश और राष्ट्र को ज्यादा महत्त्व दें।

हृदय-परिवर्तन संगठन से पहले

अन्तरराष्ट्रीय मामलों में गांधीजी सिर्फ सतही दिलचस्पी ही दिखलाते। उनका यह खयाल था कि इन्सान को पहले अपने घर को ठीक देखभाल करना चाहिए। बाहर से आने-वाले खास लोग जब उनसे यह कहते कि बाहर उनके विचारों के प्रचार की, ज्यादा गुंजाइश है और संगठन के काम के लिए भी उनको काफी पैसे मिलते, वगैरह वगैरह, तब वह यही जवाब देते थे कि, "मुझे पहले यहीं हिन्दुस्तान में कुछ करके दिखाना है।" वह मानते थे कि सुधरा हिन्दुस्तान खुद दुनिया के सामने एक मिसाल बन जायेगा। इस सम्बन्ध में वह अक्सर कहा करते थे कि जैसे आदमी परिवार के लिए, परिवार गाँव के लिए, गाँव जिले के लिए, जिला सूबे के लिए और सूबा राष्ट्र के लिए कुरबान हो जाता है, वैसे ही जरूरत पड़ने पर एक राष्ट्र को दुनिया के लिए कुरबान हो जाना चाहिए। वैसे वह संयुक्त राष्ट्रसंघ की हमेशा भलाई ही चाहते, लेकिन वह यह भी जानते थे कि जबतक बड़ी ताकतों के राजनीतिज्ञों के दिल और दिमाग भी इस विश्वसंगठन के सिद्धान्तों को कबूल न कर लें तबतक ऐसी चीजें संगठन के एक ढाँचे के अलावा कुछ अधिक महत्त्व नहीं रखतीं। दिल बदले बगैर सिर्फ संगठन उनकी नजर में कोई कीमती चीज न थी।

एक राजनीतिक सुझाव

हमने एक राजनीतिक सुझाव पेश किया है कि जब आप सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश को पैंसठ साल की उम्र में रिटायर करते हैं, तो क्या वजह है कि राजनीतिज्ञ लोग मरते दम तक राजनीति में दखल देते रहें? सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश का दिमाग समत्वयुक्त होता है, फिर भी आप उन्हें रिटायर करते हैं। कोई राजनीतिज्ञ अपने लिए यह 'क्लेम' (दावा) तो नहीं कर सकता कि उसका दिमाग न्यायाधीश से अधिक समत्वयुक्त होता है। इसलिए होना यह चाहिए कि जैसे चुनाव में खड़े होने के लिए पच्चीस साल की उम्र आवश्यक मानी गयी है, वैसे ही साठ साल के बाद कोई चुनाव में खड़ा न हो, जिससे पैंसठ तक सब अपने-आप रिटायर हो सकें।

(कांग्रेस के अध्यक्ष श्री निजलिंगप्पाजी से हुई चर्चा से) —विनोबा

ग्रामदान के सिवाय कुछ सूझता नहीं

[गांधी स्मारक निधि और राष्ट्रीय गांधी शताब्दी समिति के मंत्री श्री देवेन्द्र कुमार गुप्त गत १ फरवरी '६९ को विनोबाजी से राजगीर में मिले थे। विनोबाजी और श्री देवेन्द्रभाई की बातचीत का कुछ अंश यहाँ दिया गया है। —सम्पादक]

नया और पुराना मन

देवेन्द्र भाई—गांधीकाल में, जिन कार्यक्रमों को सार्वभौमिकता प्राप्त हो गयी थी—जैसे खादी, हरिजन-सेवा आदि उनको तो आज सब लोग मान लेते हैं, पर जिन गांधी-कार्यक्रमों का विकास बाद में हुआ है—जैसे शान्ति-सेना, ग्रामदान आदि इनको सार्वभौमिकता प्राप्त कराना बाकी है। जो मान्य करते हैं, उनको शताब्दी-समितियाँ मदद करती हैं। पर इसे अपना कार्यक्रम मानकर थोड़े ही स्थानों पर लोग चल रहे हैं।

विनोबा—नये और पुराने मन में अन्तर है। जो गांधीजी के साथ थे, उनके समय के हैं वे कहते हैं कि ग्रामदान बहुत अधिक की अपेक्षा करता है इसलिए व्यवहार्य नहीं है। और जो नये लोग हैं, गांधीजी के बाद के और नये मन के, वे मानते हैं कि जितनी जमाने की आकांक्षा है, उससे बहुत कम की अपेक्षा ग्रामदान में है। इसलिए ग्रामदान का कार्यक्रम पुराने और नये दोनों मनों के अनुकूल बने यह हमारी कोशिश है।

देवेन्द्र भाई—यह समझाने की कोशिश तो हम कर ही रहे हैं कि ग्रामदान का अर्थ है ग्रामसंकल्प। गाँव में सबकी भलाई पूरा गाँव मिलकर करेगा। इस प्रकार जब लाखों लाख गाँव अपनी अनुमति देते हैं तो उस संकल्प पर अमल करने में देर न लगेगी। कुछ लोगों को प्रान्तदान, राष्ट्रदान जैसे शब्दों से एतराज है।

विनोबा—हमें इसमें गलती नहीं दीखती। बापू ने कहा था कि देश आजाद इसलिए हो कि विश्वहित के लिए अपने हितों का समर्पण कर सके। इसीको राष्ट्रदान कहेंगे। ग्रामदान का अर्थ है व्यक्ति अपने हितों को ग्राम के लिए समर्पित करे। अब नया विचार बड़े पैमाने पर सबके पास पहुँचता है और कबूल होता है, तो, उसमें से समाज परिवर्तन की शक्ति निकलती है। मुझे तो ग्रामदान के सिवाय कुछ सूझता नहीं। इसमें आप लोग क्या मदद कर रहे हैं?

एक और येलवाल

देवेन्द्र भाई—दस साल पूर्व येलवाल में सभी राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हुआ था, जिसमें सबने ग्रामदान-कार्यक्रम को अपनी सहमति प्रदान की थी। अब तो काफी विकास हो चुका है। क्यों न वैसी बैठक दोबारा बुलायी जाय?

विनोबा—बाबा तो किसीको बुला नहीं सकता, क्योंकि बाबा किसीके बुलाने पर जाता नहीं। पिछली बार सर्व सेवा संघ की ओर से बुलाया गया था तो बाद में कुछ एतराज उठा कि बड़ी-बड़ी राजनैतिक पार्टियों को और जिसमें विशेषतया शासन-कर्ता भी आयें ऐसे सम्मेलन को बुलानेवाली बहुत बड़ी जमात होनी चाहिए। छोटे लोगों के बुलाने पर हम आयें, यह उचित नहीं, पर उस समय पण्डित नेहरू थे। उनका हमारा व्यक्तिगत स्नेह-सम्बन्ध था। पर अब वे नहीं रहे, तो सवाल कठिन हो जाता है।

देवेन्द्र भाई—राजनैतिक दलों में जो बड़े हैं वे इन दस सालों में अधिक अनुभवी बने हैं और नये, जो राजनीति में आये हैं उनको भी अपनी स्थिति का भान हुआ है। राजनेता की कदर इस काल में बढ़ी नहीं है, कम हुई है। साथ ही सर्व सेवा संघ सतत कार्यरत रहा है तो उसकी साख भी कुछ बढ़ी है, इसलिए यह अन्तर कम ही हुआ है। अर्थात् अब ऐसा सम्मेलन बुलाया जाय और सर्व सेवा संघ बुलाये तो ठीक ही रहेगा।

विनोबा—वैसी स्थिति में अगले सर्वोदय सम्मेलन के अवसर पर २५-२६ अक्तूबर के करीब राजगीर में सबको बुला सकते हैं।

देवेन्द्र भाई—ये सब लोग आयेंगे तो सर्व सेवा संघ के निमंत्रण पर, लेकिन आपसे मिलना चाहेंगे और सम्मेलन में सबके साथ और लोगों की तरह आकर भाग लें, इसमें उनकी दिलचस्पी उतनी नहीं होगी। इसलिए इस काम के लिए तो खास दिन अलग ही आगे-पीछे रखने होंगे और आप भी रहें, यह मानना होगा।

विनोबा—अब बिहारदान का काम पूरा होगा तो भी एकाएक तो हमको कोई जाने नहीं देगा। शताब्दी-काल का सर्वोदय सम्मेलन है, इसलिए भी बहुतों का आग्रह है कि बाबा उसमें रहे। इसलिए सम्भावना माननी चाहिए कि बाबा तबतक बिहार में रहेगा तो वहाँ आयेगा।

ग्रामदान के बाद की राष्ट्रीय योजना

देवेन्द्र भाई—दक्षिण पूर्व एशिया के और बौद्ध देशों के प्रतिनिधियों को, इस अवसर पर राजगीर-सम्मेलन में निमंत्रित करने का विचार चल रहा है। इससे बड़ा उत्साह आ सकता है।

विनोबा—बाहर से लोगों को बुलावे हो तो उनको कुछ दिखाना भी चाहिए। यह जो गया और पटना का बौद्ध-तीर्थक्षेत्र है इसमें दस हजार गाँव हैं। इनमें यदि अक्तूबर के पूर्व ग्रामदान के बाद का काम शुरू हो जाय, कुछ काम दीखे तो आनेवालों का उत्साह बढ़ेगा। इस काम को गांधी-शताब्दी समिति को राष्ट्रीय योजना के रूप में करना चाहिए।

गांधी स्मारक निधि सबकी स्मारक निधि

देवेन्द्र भाई—बापू के निधन के बाद साल-भर में जो निधि एकत्र हुई थी उसके ट्रस्टियों ने यह विचार व्यक्त किया कि जिस अनुसार उसका विनियोग सोचा गया था, वह अब हो गया है। जिन प्रान्तों से जितनी रकम आयी थी उसका तीन-चौथाई उन उन प्रान्तों में संस्था बनाकर सौंप दिया जाय। जो चौथा भाग अखिल भारतीय कार्य का था उसमें ३-४ तीन चार बड़ी संस्थाएँ बना दी गयी हैं, जैसे कुष्ठ सेवा संस्थान, शान्ति प्रतिष्ठान, संग्रहालय समिति आदि। प्रान्तीय गांधी-निधि संस्थाएँ और कार्यविशेष के लिए बनी संस्थाएँ बनी रहेंगी, पर अखिल भारत निधि का संगठन समाप्त किया जाय। पर दिसम्बर में निधि-संस्थाओं के प्रतिनिधियों की बैठक में प्रस्ताव आया कि सबको जोड़ने के लिए केन्द्रीय संस्था आवश्यक है। इसको ट्रस्टियों ने→

श्री जयप्रकाश नारायण

जिस समय लोग यह कहते हैं कि श्री जयप्रकाश नारायण को राजनीति में आना चाहिए और देश की बागडोर संभालनी चाहिए तब वे भूल जाते हैं कि श्री जयप्रकाश राजनीति में हैं। उनकी राजनीति चुनाव और हड़तालों की राजनीति नहीं, वरन् रचनात्मक कार्यक्रम पर आधारित नीति है, सर्वोदय-नीति है। सर्वोदय-दर्शन के अधीन ग्रामदान-कार्यक्रम उनका प्रमुख आधार है। ग्रामसभा उसकी बुनियादी इकाई है। देश के ५ लाख ५७ हजार गांवों में से ८७ हजार गांव ग्रामदानी बन चुके हैं। शीघ्र ही यह संख्या एक लाख तक पहुंचनेवाली है। उनके कार्यक्रम के अनुसार प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के राजनीतिक उम्मीदवार को चुनने का दायित्व क्षेत्र की ग्रामसभाओं ने मिलकर निभाना जिस दिन प्रारम्भ कर दिया, उस दिन सभी चीख-पुकार मचानेवाले राजनीतिक दलों और उनके नेताओं की धरती सहमा खिसक जायेगी। उस समय श्री जयप्रकाश नारायण और उनके कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त कोई भी मैदान में न टिक सकेगा। देर केवल सर्वोदय दर्शन के सपूर्ण भारतीय ग्राम-समाज तक पहुंचने की ही है।

ग्रामदान कार्यक्रम गांधीवाद पर बुनियादी तौर से आधारित है। ग्रामदानी गांव की समूची धरती पर ग्रामसभा का स्वामित्व होता है। दान में आयी भूमि का वितरण ग्रामसभा भूमिहीन ग्रामीणों में करती है। उद्देश्य यह है कि प्रत्येक ग्रामवासी को जीवन की न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति का सहज अवसर हो, वह अपने भोजन-वस्त्र, साज-समान, शिक्षा-दीक्षा में आत्मनिर्भर हो और उन्नति के लिए उसका रास्ता अवरुद्ध न हो।

इस कार्यक्रम के पीछे गांधीवाद का मूल सिद्धान्त है कि अपनी जरूरत से ज्यादा संपत्ति जरूरतमंद पड़ोसी को दें। साम्यवाद का वह अंश है कि अपनी सामर्थ्य के अनुसार सपत्ति अर्जित करने से आगे अपनी आवश्यकता के अनुसार ही संपत्ति का उपभोग करो। साधु-संतों की उस वाणी की भी प्रेरणा सम्मिलित है कि 'सबै भूमि गोपाल की", अत उसका सम वितरण हो। राजनीति से अधिक यह कार्यक्रम धार्मिक है और सामाजिक न्याय की प्राप्ति से आगे इसकी मूल प्रेरणा आध्यात्मिक है। परामर्श द्वारा हृदय-परिवर्तन समूची धारणा के पीछे सक्रिय है। कभी-कभी यह कपोल कल्पना 'यूटोपिया'-सी प्रतीत होती है, लेकिन बुद्ध, महावीर और मार्क्स की परिकल्पनाएं भी 'यूटोपिया' ही थीं। गांधी की कल्पना के समान निर्माण के प्रयास को ही बीच में क्या निस्सार समझा जाय?

तथापि उपलब्धि की प्रक्रिया में यह कार्यक्रम निर्विरोध रहेगा, ऐसा नहीं मानना चाहिए। दो ओर से प्रबल विरोध आयेगा। निजी क्षेत्र से यह तर्क आयेगा कि उद्देश्य यदि मनुष्य को न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति ही करना है तो सारी जमीन हमें दो। हम उसे पूरा करेंगे। और साम्यवादी शिविर से यह तर्क आयेगा कि जब जमीन किसी एक की नहीं है तो उसमें हिस्सा बांटने के लिए किसीके सामने रिरियाने की क्या जरूरत है। वोट हमको दो, अगले ही दिन जमीन का वितरण हम कर देते हैं। दोनों ही तर्क गलत नहीं हैं। श्री जयप्रकाश का मार्ग मध्यम मार्ग है, सम्मिलित मार्ग है। इस प्रयोग में से निजी नवोन्मेषवादी दर्शन भी अधिक स्वीकार्यता प्राप्त कर सकता है और साम्यवादी तत्वों को भी शक्ति मिल सकती है।

सर्वोदयवादी राजनीति किसीके विरोध में यकीन भले ही न करती हो, लेकिन विरोधी तर्कों की जवाबदेही से नहीं बच सकती। जबतक जनतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत कार्य करना है तबतक सिद्धान्त और परिणाम, दोनों का ही खुलासा करते रहना पड़ेगा। गांव से बाहर भी जीवन है। फिलहाल तो सारा जीवन गांव से बाहर ही है। गांव के नेता भी अपनी सफलता के लिए बाहरी साधनों के सर्वथा अधीन हैं। परिणाम से बड़ा तर्क कोई नहीं होता। कुतर्क से बड़ा अवरोध कोई नहीं होता। आशा है सर्वोदय-अभियान सभी अपेक्षित प्रतिरोधों का सामना करने के लिए पूरी तैयारी के साथ आगे चलेगा। सही जानकारी के अभाव में सर्वोदय-दर्शन देश के बौद्धिक वर्ग को आकृष्ट नहीं कर पाया है। वह अ स्फूर्त जीवन-दर्शन नहीं बन पाया है। परिणाम से बुनियाद पक्की न बनी तो पहले से फैले हुए भ्रमों में और भी गहरी गुत्थियां पड़ जायेंगी।

—'नवभारत टाइम्स' का सम्पादकीय नोट, ५ मार्च, १९६९

→पुनर्विचार करके मान्य किया है। इस प्रकार निधि ने अपने केन्द्रीय संगठन को जारी रखने का निर्णय लिया है।

विनोबा—गांधी स्मारक निधि को नये संग्रह करते रहने चाहिए। अपने देश में जीवन से अधिक मृत्यु, चेतनादायी सिद्ध होती दीखती है। मरने पर धन एकत्र करके स्मारक बनाना, चाहे जीते-जी उसके बारे में चिन्ता न रखी हो, ऐसा होता है। इसलिए गांधी-कार्य में जो भी बड़े लोग मरें और उनके निमित्त जनता से जो भी धन संग्रहीत हो, वह गांधी स्मारक निधि में जाये। इस प्रकार गांधी के स्मारक में, उस कार्य में लगे सभी लोगों का स्मारक समा जाता है। •

विनोबाजी का कार्यक्रम

१७ से २५ मार्च : बांका :
पता—बि०ग्रा०प्रा० संघ, खादी भंडार
बांका
जिला-भागलपुर

२६ से २८ मार्च : देवघर :
पता—ग्रामोद्योग समिति
देवघर
जिला—संथाल परगना।

२९ मार्च को : पटना—तूफान एक्सप्रेस से
रात ९ बजे पहुंचेंगे।
पता—ग्रामदान प्राप्ति संयोजन समिति
कदमकुआं
पटना-३

—कृष्णराज मेहता

एकता और लोकतंत्र पर राष्ट्रीय सम्मेलन

[गत २१ से २३ फरवरी '६९ तक दिल्ली में 'राष्ट्रीय एकता और लोकतंत्र' पर 'राष्ट्रीय सम्मेलन' का आयोजन श्री शंकरराव देव की अध्यक्षता में हुआ था। 'भूदान-यज्ञ' के ३ मार्च '६९ के अंक में उक्त सम्मेलन का समाचार प्रकाशित किया जा चुका है। सम्मेलन का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है। —सं०]

एकता और लोकतंत्र पर राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाने का विचार पहली बार श्री शंकरराव देव ने १ से ३ सितम्बर, १९६७ को सर्व सेवा संघ की सेवाग्राम की बैठक में प्रस्तुत किया था। उस बैठक में यह महसूस किया गया था कि एकता और लोकतंत्र पर राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाने के पहले पूर्वतैयारी करने की आवश्यकता होगी। पहले कदम के तौर पर एक पूर्वतैयारी-कमेटी गठित हुई, जो नयी दिल्ली स्थित 'इण्डिया इंटरनेशनल सेण्टर' में २७-२८-२९ जनवरी, १९६८ को पहली बार मिली। वहाँ पूर्वतैयारी करनेवाली कमेटी ने तय किया कि एक की जगह तीन राष्ट्रीय सम्मेलन होने चाहिए, क्योंकि एक ही राष्ट्रीय सम्मेलन में एकता और लोकतंत्र से सम्बन्ध रखनेवाले सभी मुख्य प्रश्नों के साथ न्याय बरतना सम्भव न हो पायेगा। अतः वहाँ यह तय हुआ कि पहला राष्ट्रीय सम्मेलन एकता और लोकतंत्र मुद्दों पर ही गौर करेगा। अगले दो राष्ट्रीय सम्मेलन (१) आर्थिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक प्रश्नों, तथा (२) प्रतिरक्षा और वैदेशिक नीति पर होंगे। पूर्वतैयारी की कमेटी ने अपने आपको राष्ट्रीय सम्मेलन की कमेटी में रूपान्तरित कर लिया और चार अध्ययन दलों की नियुक्ति करके उन्हें विचारणीय सुझाव तैयार करने का भार सौंपा।

जब कि यह सब तैयारियाँ चल ही रही थीं, उसी दरमियान भारत सरकार की ओर से दो ऐसे काम हुए, जिनका राष्ट्रीय सम्मेलन के दोनों विषयों—एकता और लोकतंत्र—से नजदीकी सम्बन्ध था—(१) भारत सरकार ने लोकसभा के आदेश पर 'दलबदल' पर एक समिति की नियुक्ति। (२) भारत की प्रधानमंत्री द्वारा राष्ट्रीय एकता समिति को पुनर्जीवन प्रदान करना।

जब भारत सरकार की ओर से 'दलबदल समिति' काम करने लगी तो 'राष्ट्रीय सम्मेलन' ने दलबदल पर अपना समय न लगाने की बात तय की। राष्ट्रीय सम्मेलन के दूसरे विषय 'राष्ट्रीय एकता' के साथ 'राष्ट्रीय भावनात्मक एकता' का गहरा सम्बन्ध होने के कारण पूर्वतैयारी समिति ने महसूस किया कि यद्यपि भारत सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय भावनात्मक एकता समिति' पुनरुज्जीवित हो चुकी है, फिर भी राष्ट्रीय एकता का विषय इतना महत्त्वपूर्ण और उलझनों से भरा हुआ है कि इस पर राष्ट्रीय सम्मेलन जैसे महत्त्वपूर्ण और गैरसरकारी प्रतिनिधियों के राष्ट्रीय मंच में विचार हो तो वह राष्ट्रीय भावनात्मक एकता समिति के लिए भी महत्त्वपूर्ण होगा और आम जनता के लिए भी।

सम्मेलन की पूर्वतैयारी करनेवाली समिति ने राष्ट्रीय परिस्थिति के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए कहा—

"राष्ट्रीय एकता और लोकतंत्र देश के उद्देश्यों में सर्वाधिक महत्त्व के उद्देश्य हैं, लेकिन (१) अभी तक इनके अर्थ और इनको सिद्ध करने के उपायों के बारे में एकमत नहीं है और (२) इन दोनों उद्देश्यों को देश की भीतरी फूट, बढ़ती हुई राजनैतिक अस्थिरता तथा कुछ अन्य विघटन की प्रवृत्तियों से खतरा पैदा हो गया है।

देश की वर्तमान राजनीति, अर्थनीति और समाजनीति के बारे में हर सोचने समझनेवाले आदमी को चिन्ता हो रही है। स्थिति खतरनाक हो गयी है यह मानने की जरूरत तो नहीं है, लेकिन इस हालत में कुछ न करके बैठे रहना एक बड़ी दुर्घटना का कारण बन सकता है। भारत इस समय जिस अजीब हालत में से गुजर रहा है, उसमें राजनीति अपनी हैसियत से कहीं ज्यादा बड़ी-बड़ी भूमिका निभा रही है। आज जब कि राजनीति पर बहुत सारा दारोमदार निर्भर है, राजनीति की खुद की जो हालत है, उसके ही कारण सबसे ज्यादा चिन्ता बन रही है।

देश की समस्याएँ बहुत व्यापक हैं, बहुत अधिक हैं और कठिन भी हैं। इन समस्याओं में से अनेक ऐसी हैं, जिनका जल्दी हल होना चाहिए ऐसा परिस्थिति का दबाव है। और यह भी निश्चित सा है कि किसी संयुक्त राष्ट्रीय प्रयास द्वारा ही ये समस्याएँ हल हो सकेंगी, जो लगातार त्याग और कठोर श्रम पर आधारित हों। सबसे बड़ी बात है कि इन समस्याओं को राष्ट्रीयता की गहरी भावना से ही सुलझा पाने की आशा की जा सकती है। आज की जो राजनैतिक संस्थाएँ हैं और उनकी जो कार्य-प्रणाली है उसने एकता के बदले मतभेद ही बढ़ाये हैं। जहाँ एकजुट होकर काम करने की जरूरत है वहाँ इनके कारण अलग-अलग शक्ति बर्बाद करने की मनोभावना पनपी है। कर्तव्य की अन्तःप्रेरणा से काम करने के बजाय कर्तव्य की अवहेलना चल रही है और राष्ट्रीयता की जगह क्षेत्रीयता और संकुचितता का प्रभाव काम कर रहा है।

इस स्थिति के कारण यह आवश्यक हो गया है कि राजनीति की इन संस्थाओं और उनकी कार्य-प्रणाली के दायरे के बाहर कोई ऐसा प्रयास किया जाय, जिससे कुछ सर्वमान्य राष्ट्रीय लक्ष्यों के बारे में सर्वसम्मत मानस बन सके और सर्वसम्मत प्रयास को बढ़ावा मिलने की स्थिति बने।"

राष्ट्रीय सम्मेलन ने यह प्रयास किया कि 'राष्ट्रीय एकता और लोकतंत्र' के प्रश्नों के बारे में सर्वसम्मत मानस और सर्वसम्मत कार्य दिशा का स्वरूप सामने आये।

राष्ट्रीय एकता सम्मेलन में अपने विचार प्रकट करते हुए श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि "हमारे देश की आज जो स्थिति है उसमें मतभेदोंवाले मुद्दों पर जोर डालना राजनीति का स्वधर्म बन गया है। सत्ता में पहुँचने के संघर्ष में विजयी होने के लिए राजनीतिक दलों के लिए यह जरूरी हो गया है कि वे एक-दूसरे के विरुद्ध काम करें। इस परिस्थिति का नतीजा यह है कि राष्ट्रीय पुरुषार्थ और कर्मशक्ति छिन्न-भिन्न हो गयी है, जब कि जोरदार राष्ट्रीय विकास के लिए एकजुट होकर प्रयत्नशील होना समय की माँग है। राष्ट्रीय शक्ति का जो क्षय आज हो रहा है वह नहीं होता, यदि राजनैतिक दलों की

वोदार्द कुछ सीमित होती। जबतक इतने अधिक राजनैतिक दल बने रहेंगे तबतक परिस्थिति वही रहनेवाली है, जो आज मौजूद है। भारत के कई प्रदेशों में, जिनमें दो तो सबसे बड़े हैं, प्रशासन का कार्य ठप्प पड़ा है। अतः प्रदेशों का विकास भी या तो रुक गया है या नाममात्र का हो रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में जो गिरावट दिखाई देती है वह अधिकांश रूप में राजनैतिक परिस्थिति का ही परिणाम है।

श्री जयप्रकाशजी ने अपने भाषण में आगे कहा कि इस स्थिति को देखते हुए कुछ लोगों को यह सूझा कि राजनैतिक दलों के कार्य का जो परम्परागत और स्पर्द्धामूलक दायरा बना हुआ है उसके बाहर विभिन्न राजनैतिक दलों के नेताओं को एकत्र किया जाय और *यह पता लगाने की कोशिश करें* कि क्या आज की परिस्थिति में क्रियान्वित होने योग्य कुछ राष्ट्रीय सर्वानुमति के मुद्दे तय हो सकते हैं, जिनके द्वारा राष्ट्रीय संकल्प-शक्ति देश की कुछ बुनियादी समस्याओं के निराकरण में विनियोजित हो सके।

श्री जयप्रकाशजी ने सर्वसम्मति की राजनीति का जिक्र करते हुए कहा कि यह कोई नयी बात नहीं है। कोई भी समाज या सामाजिक संगठन व्यक्ति के जीवन-मूल्यों, अधिकारों, कर्तव्यों, रहन-सहन के ढंग और पारस्परिक व्यवहार के कुछ सर्वसम्मत आधारों पर ही टिका रहता है। प्रत्येक राजनैतिक दल के सदस्यों के बीच उनके राजनैतिक पहलू के बारे में कुछ सर्वसम्मत धारणा होती है और दुनिया भर में अनेक प्रकार के राजनैतिक और सामाजिक संगठन किसी-न-किसी प्रकार की सर्वानुमति के आधार पर ही अस्तित्व में हैं।

आमतौर से सर्वानुमति द्वारा समाज में स्थायित्व और क्रमबद्धता को पोषण प्राप्त होता है, अतः परिवर्तन तथा विकास चाहनेवालों को असहमति का अवलंबन करना पड़ता है। लेकिन कभी ऐसी परिस्थिति भी आती है, जब कि प्रगति, परिवर्तन और विकास सर्वसम्मति के बगैर असंभव-से हो जाते हैं और हमारे देश की आज ऐसी ही परिस्थिति है। अपने देश की परिस्थिति में अनेक ऐसे राष्ट्रीय प्रश्नों की मिसालें हैं कि चूँकि उनके बारे में देश के राजनैतिक दलों में कोई सर्वसम्मति नहीं बन पायी, इसलिए अत्यावश्यक होते हुए भी उन्हें शीघ्रता और कारगर ढंग से हल नहीं किया जा सका।

अब सवाल यह है कि जो राजनैतिक दल सत्ता-प्राप्ति की कशमकश में मशगूल हैं, क्या वे इतने के लिए भी राजी किये जा सकते हैं कि वे अपनी कशमकश की स्पर्द्धामूलक राजनीति जारी रखते हुए कुछ हद तक पूरक रूप में सहयोगमूलक राजनीति को स्वीकार कर लें?

देश के राजनैतिक दलों के प्रति अपने उद्गार प्रकट करते हुए श्री जयप्रकाशजी ने कहा कि यद्यपि उनकी राजनैतिक नैतिकता में गिरावट आयी है, फिर भी उनमें और देश के सभी लोगों में अभी इतनी राष्ट्रीयता बची हुई है कि सबके हित के काम के लिए सब मिलकर अपनी शक्ति लगा सकेंगे। यह देखा ही गया है कि सरकार बनाने जैसे अपेक्षाकृत कम महत्त्व के काम के लिए आपस में भारी मतभेद रखनेवाले राजनैतिक दल भी एक-दूसरे के करीब आये। इसलिए यह मानने का कोई कारण नहीं है कि उससे और ऊँचे उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे निकट नहीं आयेंगे। यदि भारत के राजनैतिक दल अपनी वर्तमान प्रतिस्पर्द्धात्मक राजनीति को छोड़कर एक-व-एक सर्वानुमति की राजनीति को कबूल करने के लिए तैयार नहीं हो पाते, फिर भी यदि वे इतने भर के लिए राजी हो सकें कि पूरक रूप में वे सर्वानुमति की राजनीति को मान्य कर लेंगे तो आज की परिस्थिति में से निकलकर हमारा देश काफी आगे जायेगा। प्रसन्नता की बात है कि सम्मेलन में उपस्थित प्रतिनिधियों ने आमतौर से सर्वानुमति की राजनीति की प्रक्रिया को अपना सहयोग देने का आश्वासन दिया।

राष्ट्रीय सम्मेलन के मुख्य सुझाव

(१) *केन्द्र-राज्य सम्बन्ध* : राष्ट्रीय सम्मेलन ने एकमत से यह राय जाहिर की कि भारतीय संविधान के २६३वें अनुच्छेद के अनुसार 'अन्तरराज्य परिषद' (इंटर-स्टेट काउंसिल) का गठन होना चाहिए। सम्मेलन की राय रही कि 'अन्तरराज्य परिषद' न सिर्फ केन्द्र और राज्य के आपसी विवादों पर विचार कर सकेगी, बल्कि ऐसे कारगर उपायों का भी सुझाव देगी, जिससे राज्य और राज्य, राज्य तथा केन्द्र के बीच नीति और कार्यक्रमों का समायोजन स्थापित हो।

(२) *चुनाव* : सम्मेलन के प्रतिनिधिगण इस सुझाव से भी सहमत थे कि चुनाव-आयोग को और शक्तिशाली बनाया जाय, ताकि वह चुनाव-सम्बन्धी देखरेख तथा नियंत्रण और अधिक कारगर ढंग से कर सके। देश में चुनाव सही और ठीक ढंग से हो सकें, इसके लिए प्रतिनिधियों ने स्थायी रूप से प्रत्येक राज्य में चुनाव आयुक्त की नियुक्ति की बात स्वीकार की और यह सुझाव भी मान्य किया कि मुख्यचुनाव-आयुक्त तथा चुनाव-आयुक्त एक ऐसी स्वतंत्र संस्था की *तरह कार्य करने के लिए मुक्त रहने चाहिए,* जिनपर अधिकारियों का प्रभाव या दबाव काम न कर पाये।

(३) *लोकतंत्र को जड़मूल से मजबूत बनाना* : राष्ट्रीय सम्मेलन ने यह कबूल किया कि लोकतंत्र को जड़मूल (ग्रासरूट) से मजबूत बनाने और अनेक स्तरीय सरकार (मल्टीटायर) स्थापित करने की आज बहुत बड़ी आवश्यकता है। इस सुझाव को व्यावहारिक रूप देने के लिए सम्मेलन ने श्री एस० एम० जोशी के संयोजकत्व में एक उपसमिति नियुक्त की, जो लोकतंत्र को जड़मूल से विकसित करने की सभी 'बाधाओं' को दूर करने के बारे में अपने सुझाव देगी।

(४) *हिंसा और तनाव पर आयोग की नियुक्ति* : हमारे देश में आये दिन उत्पात और हिंसा की विभिन्न घटनाएँ घटती रहती हैं। किन्तु हमारे देश में अभी कोई ऐसी संस्था या संगठन नहीं है, जो इन घटनाओं की जड़ में निहित मूल कारणों की खोजबीन करे। सम्मेलन ने इसी कमी की पूर्ति के लिए एक आयोग नियुक्त करने की सिफारिश की है।

इस आयोग के कोई प्रशासकीय या न्यायिक अधिकार न होंगे। जिन परिस्थितियों के भीतर से हिंसात्मक अथवा तनावपूर्ण स्थिति का विस्फोट हो सकता है, उनके भीतरी कारणों का अध्ययन करना आयोग का मुख्य काम होगा।

(मूल अंग्रेजी)

लोक-नेता का समादर : लोक-चेतना के द्वारा

"स्टालिनवाद के रक्त प्रवाह में साम्यवाद डूब गया।" भारत के इतिहास की गौरवशाली गाथा सुनानेवाला छत्रपति शिवाजी का दुर्ग कुछ ही दूर की पहाड़ी पर अपनी अग्नावशेष विशालता लिये अडिग था, और उस अतीत के सान्निध्य में सातारा नगर के मध्य चौक में उपस्थित हजारों नर-नारियों को उद्बोधित करते हुए जे० पी० यह ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत कर रहे थे। महाराष्ट्र के इस तीन दिन के दौरे का यह आखिरी कार्यक्रम था। स्वराज्य-आन्दोलन के समय का जे० पी० का भूमिगत जीवन कुछ समय इस क्षेत्र की युवा चेतना को झकझोरने में भी बीता था। इसीलिए यहाँ के जन-हृदय में जे० पी० 'नेता' से अधिक 'हीरो' और शायद इसीलिए अधिक 'आत्मीय' हैं। यह हार्दिकता अभिव्यक्त होती थी, मुखर होती थी हर सभा के शुरू में, जब कि जे० पी० का स्वागत होता था, विभिन्न तबकों के प्रमुखों द्वारा पुष्पहार और थैली भेंट होती थी। इस अंतिम सभा का आखिरी पुष्पहार था—बुर्जुआ समाज की ओर से। जे० पी० कह रहे थे, "सत्य का सूरज उदित होगा और असत्य का अंधकार अवश्य मिटेगा।" हिंसा की शक्ति बुनियादी तौर पर, और अपने मूल रूप में ही साम्राज्यवादी है। यह बात स्पष्ट होकर सामने आयी थी जब चीन ने तिब्बत स्वायत्तता को हड़प लिया और वहाँ अपनी साम्यवाद रूपी साम्राज्यवादी सत्ता लाद दी। भारत पर सीमा के सवाल को लेकर वह आक्रमण कर बैठा और हजारों वर्गमील भारत की भूमि पर आज भी कब्जा जमाये हुए है। ..यह बात दुनिया के सामने और स्पष्टतर हो गयी है, चेकोस्लोवाकिया के ऊपर की गयी सोवियत रूस की आक्रामक कार्रवाइयों से। क्या इसके बाद भी हम हिंसा की शक्ति का सहारा लेना चाहेंगे?!...कुछ लोग हँसते हैं हृदय परिवर्तन और विचार-परिवर्तन की बात पर। मैं पूछता हूँ कि फिर आप लोकतंत्र का नारा क्यों लगाते हो? लोकतंत्र की तो इमारत ही विचार-परिवर्तन और हृदय-परिवर्तन की नींव पर खड़ी है। .."

फिर पाकिस्तान से लेकर भारत के निकटवर्ती लगभग सभी तानाशाही सत्तावाले देशों की दुर्दशा का विश्लेषण करते हुए वह यह बात खोलकर रख देते हैं कि इसके द्वारा समस्याएँ और उलझेंगी, समाधान नहीं मिलेगा, भले ही आज की परिस्थिति से ऊबे हुए हमारे मन को कुछ बाहरी परिवर्तनों से एक मिथ्या सान्त्वना मिल जाय। और इस व्यापक संदर्भ में लोकतंत्र और समाजवाद की भव्य और ठोस इमारत खड़ी करने के लिए वे ग्रामदान की महत्त्वपूर्ण भूमिका स्पष्ट करते हैं।

पिछले दिनों की अस्वस्थता के बाद की स्वाभाविक कमजोरी में कार्यक्रमों का बोझ जे० पी० पर अधिक न पड़े, इसके लिए योजना बनी थी सभाओं में दर्शन जे० पी० का और भाषण आचार्य राममूर्ति का। लेकिन यह योजना बहुत थोड़े अंशों में ही सफल हो पायी। सांगली, सातारा, और कोल्हापुर के नागरिकों के अगाध स्नेह और श्रद्धाभाव ने जे० पी० को विवश कर दिया और वे हर सभा में बोले।

सर्व सेवा संघ की प्रबंध समिति की बैठक और उसमें जे० पी० की उपस्थिति का लाभ उठाकर महाराष्ट्र सर्वोदय मण्डल ने मार्गदर्शक का काम किया है। प्रायः हर प्रदेश की तरह ही महाराष्ट्र में भी सर्वोदय आन्दोलन अर्थाभाव का सामना कर रहा था। उन्होंने इससे उबरने का उपाय सोचा और सांगली के बुजुर्ग और सुप्रतिष्ठित कार्यकर्ता श्री लिमयेजी के सुझाव पर प्रबंध समिति की बैठक सांगली में आयोजित की गयी। तय हुआ कि पौने दो लाख की थैली जे० पी० को समर्पित की जाय। इसके लिए २८ फरवरी और १-२ मार्च को जे० पी० के कार्यक्रम आयोजित किये गये। महाराष्ट्र सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष श्री ठाकुरदास बंग अपनी सहधर्मिणी थीमती सुमन बंग और मंत्री श्री वसंतराव बोम्बटकर के साथ क्षेत्र [...] महाराष्ट्र ग्रामदान मण्डल के मंत्री श्री गोविन्दराव शिंदे, बुजुर्ग श्री श्रंदुर्णीकरजी आदि सहित महाराष्ट्र सर्वोदय आन्दोलन में लगे कई कार्यकर्ता गाँवों नगरों में फैल गये। प्रखण्डदान और थैलीदान-अभियान चलने लगा। हर जगह स्थानीय सत्कार समितियाँ बनायी गयीं, जिनमें प्रायः राजनीतिक दल के स्थानीय नेताओं ने भाग लिया, जनसंघ और साम्यवादी दल के भी। अपनी ओर से सबने सम्मिलित अपील निकाली। सत्ता-निरपेक्ष जे० पी० का व्यक्तित्व राजनीतिक दलों की सीमाओं से अलग सबके आदर का केन्द्र है, इसलिए न तो देनेवालों का कोई विरोध और न लेनेवालों में कोई हिचक।

छात्र-छात्राओं ने अपने जेब खर्च के पैसे बचाकर दिये। मजदूरों, किसानों ने अपनी कमाई का एक अंश दिया। और इस प्रकार जे० पी० को सांगली में ६७ हजार, इचलकरंजी में १५ हजार, कोल्हापुर में १८ हजार और सातारा में ११ हजार रुपयों की थैलियाँ भेंट की गयीं।

महाराष्ट्र सर्वोदय मंडल के निर्णयानुसार प्राप्त रकम का एक-चौथाई भाग सर्व सेवा संघ को और चौथाई भाग महाराष्ट्र सर्वोदय मंडल को दिया जायेगा। शेष भाग स्थानीय आन्दोलन के खर्च के लिए रहेगा। सांगली में दो प्रखण्डदान भी जे० पी० को समर्पित किये गये।

महाराष्ट्र के कार्यकर्ताओं में भरपूर उत्साह व्याप्त है। अगली योजना है कि इस क्षेत्र के अनुकूल जिलों में पहले अभियान चलाया जाय, और महाराष्ट्र के ग्रामदान आन्दोलन को जिलादान की मंजिल तक पहुँचाया जाय। उनके उत्साह और क्षेत्र की अनुकूलता को देखकर अब कोई शंका नहीं कि महाराष्ट्र में ग्रामस्वराज्य का आन्दोलन जिलादान की सीढ़ियाँ पार करता हुआ महेशदान की मंजिल पर जल्द पहुँचेगा।

—रामचन्द्र राही

विनोबाजी भागलपुर जिले में

१२ फरवरी को मुंगेर जिलादान समर्पित हुआ। उसके बाद वहाँ से गोगरी, कन्हैयाचक होते हुए सुलतानगंज (भागलपुर जिले में) पहुँचे। स्वागत के लिए गंगा के उस पार नाव लेकर भागलपुर जिला कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष श्री सियाराम सिंहजी, बिहार खादी-ग्रामोद्योग संघ के प्रतिनिधि श्री कामेश्वर बाबू तथा अन्य प्रमुख कार्यकर्ता पहुँचे थे। गंगा पार करते ही सुलतानगंज की जनता, प्रमुख नागरिक और भागलपुर जिला ग्रामदान-प्राप्ति समिति के अध्यक्ष श्री जागेश्वर मंडल, डा० रामजीव सिंह आदि सज्जनों ने जिला-प्रवेश के साथ पुष्पहार और सूतहार से स्वागत किया। उस रोज का पड़ाव सुलतानगंज खादी भंडार में रहा। दूसरे दिन सुबह नगर के प्रमुख नागरिक, सरकारी अधिकारी बाबा से मिलने आये।

बाबा ने बताया कि "चुनाव को लेकर दल गाँवों को तोड़ने का काम कर रहे हैं। चुनाव खेला जाय, लड़ा नहीं जाय। आपस में ईर्ष्या न हो, जनता की शक्ति खड़ी हो, यही जनतंत्र होगा।" ३ सज्जनों ने ११३ रु० ग्रामदान-कोष में समर्पित किये।

दोपहर को तेजनारायण बनैली कालेज में सवातीन बजे पहुँचे। कालेज के प्राचार्य डा० सुदर्शनजी ने बाबा का स्वागत किया। हजारों विद्यार्थी, शिक्षक और नागरिक बाबा के दर्शन और प्रवचन के लिए अनुशासित ढंग से बैठे थे। वह दृश्य बड़ा ही भव्य था। वहाँ गांधी-शताब्दि की ओर से छात्रों को गांधीजी की आत्मकथा बाबा के आशीर्वाद के साथ वितरित की गयी और नाथनगर का प्रखण्डदान समर्पित हुआ।

अबतक भागलपुर जिले में कुल चार प्रखण्डदान प्राप्त हुए थे। यह पाँचवाँ प्रखण्ड-दान था। बाबा ने कहा कि जिलादान के काम में बहुत विलम्ब हो गया है। अब १५ दिन में इस काम को पूरा कर देना चाहिए। शिक्षकों और विद्यार्थियों को आचार्यकुल की आवश्यकता और महत्ता विस्तार से समझायी।

अंत में भागलपुर विश्वविद्यालय के उप-कुलपति ने बाबा का आभार माना और खेद प्रकट किया कि गत एक साल में आचार्यकुल के बारे में हम अधिक नहीं कर सके हैं। अब सक्रिय होंगे।

१६ ता० को सुबह जिलाभर के खादी-कार्यकर्ता बाबा से मिले। जिलादान के संयोजन में अपनी व्यावहारिक दिक्कतों के बावजूद अपनी सक्रिय शक्ति लगाने का तय किया। बाबा ने बताया कि 'खादी के पुराने दिन लद गये। आगे खादी इस प्रकार नहीं पनप सकती। उसके लिए गाँव-गाँव में ग्रामदान और ग्राम-संकल्प करके गाँव की सामूहिक शक्ति और भावना जगायेंगे तभी खादी-विचार बढ़ेगा।"

दोपहर को सदर अनुमण्डल के शिक्षकों, सरकारी सेवकों और पंचायत के मुखियों की बैठक सघन अनुमण्डल के बचे हुए प्रखण्डों में ग्रामदान-प्राप्ति के लिए हुई। बाबा ने बताया, "लोक शिक्षण और विचार-प्राप्ति के लिए शिक्षक इस काम में लगेंगे तो सारे बिहार का काम पंद्रह दिन में पूरा हो जायेगा। बिहार में पौने दो लाख शिक्षक हैं और सत्तर हजार गाँव हैं। प्रति गाँव में ढाई शिक्षक पड़ते हैं और वे सारे गाँवों में फैले हुए हैं। वे विचार ठीक समझ सकते हैं। इससे गाँव-गाँव में ग्रामदान और ग्रामस्वराज्य की स्थापना तो होगी ही, परन्तु उससे शिक्षकों की शक्ति भी बनेगी। आचार्यकुल की स्थापना इसी दृष्टि से जगह-जगह की जा रही है। सरकारी अधिकारी और सेवकों का तो कर्तव्य है कि वे जनशक्ति खड़ी करने और गाँव-गाँव में 'ला एण्ड आर्डर' बनाये रखने के लिए ग्रामदान का विचार लोगों को समझायें। सारण और चंपारण के सरकारी सेवकों ने सयोजित ढंग से काम किया। वैसा भागलपुर में भी क्यों न हो? पंचायत-वालों को तो बिहार राज्य पंचायत परिषद का सर्वसम्मत आदेश ही है कि वे गाँव-गाँव में ग्रामदान करके पंचायतों की पूर्णता प्राप्त करें।

तारीख २० को सुबह भागलपुर के कुछ आचार्यों और प्राचार्यों की बैठक बाबा के पास हुई। निर्णय लिया कि आचार्यकुल के संगठन और प्रचार के लिए आचार्य जानकी-प्रसाद सिंह और प्रो० नित्यानन्द मिश्र के संयोजकत्व में एक समिति जिले के सम्बन्धित कालेजों से संपर्क करें और उनकी एक वृहद् बैठक बुलायें, जिसमें संगठन के लिए लगनेवाले खर्च का आवश्यक संयोजन शीघ्र किया जाय। २० तारीख की दोपहर को बाबा यहाँ से रवाना होकर बाँका पहुँचे। बाँका प्रखण्ड के प्रभारी श्री जमना बाबू ने २३० रु० की थैली भेंट की और नागरिकों की ओर से बाबा का स्वागत किया।

२१ फरवरी को सुबह बाँका अनुमण्डल के प्रधान शिक्षण इन्सपेक्टर्स आफ स्कूल्स, सरकारी अधिकारी और पंचायतों के प्रमुख और प्रतिनिधि एकत्रित हुए और अनुमण्डल के १० प्रखण्डों में एकसाथ ग्रामदान प्राप्ति का अभियान शुरू करने के लिए प्रखण्ड-प्रखण्ड की समितियाँ गठित की गयीं। प्रखण्ड स्तरीय सभाओं की तारीखें तय हुईं। बाबा ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा कि "इस आरोहण का आधार आध्यात्मिक है। ४० लाख एकड़ का भूदान मिला। १२ लाख एकड़ बँटा और करीब ६० हजार ग्रामदान प्राप्त हुए। इतने बड़े पैमाने पर दान और त्याग का यह कार्यक्रम दिखाता है कि लोगों में कितनी श्रद्धा और भक्ति है। हमें इसी भक्ति और प्रेम को बढ़ावा देना है और परमेश्वर का काम मानकर करना है।" दोपहर को बाँका प्रखण्ड के शिक्षक, सेवक और पंचायत के लोगों की बैठक हुई। उसमें प्रखण्ड की हर पंचायत की ग्रामदान-टोली बनी और विनोबा के बालमित्र श्री द्वारका-नाथ लेले द्वारा पंचायत टोली-नायक को ग्रामदान समर्पण-पत्र वितरित किये गये, जिससे कि वे निश्चित अवधि तक प्रखण्डदान पूरा करके समर्पित कर सकें। करीब १० भूमि-मालिकों, पंचायत के मुखियों ने ग्राम-दान पर हस्ताक्षर कर अपने फार्म बाबा को समर्पित किये।

बाबा ने कहा, "आपने जिस काम का शुभारम्भ किया, उसके लिए मेरा धन्यवाद

सम्पादक के नाम पत्र

"भूदान-यज्ञ" : नाम-चर्चा

महोदय,

आपके सम्मानित साप्ताहिक के १३ जनवरी और १७ फरवरी '६९ के अंकों में "भूदान-यज्ञ" के नाम-परिवर्तन के सम्बन्ध में कई पत्र छपे हैं। इन पत्रों में सुझाया गया है कि "भूदान यज्ञ" साप्ताहिक का नाम बदलकर "ग्रामदान महायज्ञ" कर दिया जाय।

भूदान का लक्ष्य पूरा हुआ और उसका विकसित स्वरूप ग्रामदान आन्दोलन दूसरा चरण है। ग्रामदान भी प्रखण्डदान, जिलादान और प्रदेशदान तक बढ़ता हुआ "भारतदान" को अपना लक्ष्य मान चुका है। तो कौन गारण्टी दे सकता है कि ये पत्र-लेखक थोड़े ही दिन बाद फिर इस समाचार-पत्र का नाम बदलने की पेशकश नहीं करेंगे?

सन् १९३७ से लेकर जून १९४५ तक "सर्वोदय" नाम की मासिक पत्रिका छपती थी। सन् १९४२ से १९४८ तक आजादी के आन्दोलन में सभी लोगों के सक्रिय हो जाने से केवल गांधीजी का "हरिजन सेवक" ही सबका प्रतिनिधित्व करता था। विनोबाजी और दादा धर्माधिकारी के कुशल संपादन में "सर्वोदय" ने इस आन्दोलन का सही चित्र देशवासियों के सामने रखा है। स्थगित होने के समय इसकी पंजीकृत संख्या एन० १६१ थी। वह संख्या अपनी थी, पत्रिका अपनी थी, और सारी व्यवस्था अपनी थी। केवल आन्दोलन की त्वरा से प्रकाशन स्थगित किया गया था। क्या यह हम सबके लिए प्रसन्नता की बात नहीं होगी कि "सर्वोदय", अपनी नयी सजधज एवं नये उत्साह के साथ हमारे सामने फिर आये?

हमारा, आपका, सबका यह अनुभव है कि हम चाहे खादीवाले हों, भूदान अथवा ग्रामदान का काम कर रहे हों, किन्तु समाज में, सामान्य ही नहीं, पढ़े-लिखे लोगों के बीच भी हम सब 'सर्वोदयवाले' ही माने और जाने जाते हैं।

हमें चाहिए कि हम अपने ही मासिक पत्र "सर्वोदय" को जो कि स्थगित किया गया था पुनः साप्ताहिक के रूप में "भूदान-यज्ञ" का नाम बदलकर चालू करें।

राजघाट, वाराणसी —कपिल अवस्थी

२५-२-'६९

हिंसात्मक खूनी क्रान्ति एवं गांधीजी

गांधीजी ने कहा था :

"आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है पूंजी और श्रम के बीच के शाश्वत संघर्ष का अन्त करना। इसका मतलब जहाँ एक ओर यह है कि जिन थोड़े-से अमीरों के हाथ में राष्ट्र की सम्पदा का कहीं बड़ा अंश केन्द्रीभूत है उनके उतने ऊँचे स्तर को घटाकर नीचे लाया जाय, वहाँ दूसरी ओर यह है कि अध-भूखे और नंगे रहनेवाले करोड़ों का स्तर ऊंचा किया जाय। अमीरों और करोड़ों भूखे लोगों के बीच की यह चौड़ी खाई जब तक कायम रखी जाती है तब तक तो इसमें कोई सन्देह ही नहीं कि अहिंसात्मक पद्धतिवाला शासन कायम हो ही नहीं सकता। स्वतंत्र भारत में, जहाँ कि गरीबों के हाथ में उतनी ही शक्ति होगी जितनी कि देश के बड़े-बड़े अमीरों के हाथ में, वैसी विषमता तो एक दिन के लिए भी कायम नहीं रह सकती, जैसी कि नयी दिल्ली के महलों, और यहीं नजदीक की उन सड़ी-गली झोंपड़ियों के बीच पायी जाती है, जिनमें मजदूर-वर्ग के गरीब लोग रहते हैं। हिंसात्मक और खूनी क्रान्ति एक दिन होकर ही रहेगी, अगर अमीर लोग अपनी सम्पत्ति और शक्ति का स्वेच्छापूर्वक ही त्याग नहीं करते और सबकी भलाई के लिए उसमें हिस्सा नहीं बँटाते।"

देश में दंगे-फसाद और खून-खराबी का वातावरण बढ़ता जा रहा है। इसमें आर्थिक, सामाजिक विषमता भी बड़ा कारण है। गांधीजी की उक्त वाणी और चेतावनी आज अधिक ध्यान देने को बाध्य करती है। क्या देश के लोग, विशेषतः अमीर, समय के संकेत को पहचानेंगे?

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी समिति), दुकलिया भवन, कुन्दीगरों का भेरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

माननीय श्री पं० विचित्र नारायण शर्मा ने किया। शिविर में खादी एवं रचनात्मक कार्यकर्ताओं के अलावा, राज्य खादी ग्रामोद्योग बोर्ड के क्षेत्रीय कार्यकर्ता, जिला परिषद् के शिक्षक, राष्ट्रीय इण्टर कालेज राया के शिक्षक एवं २० विद्यार्थियों ने भी भाग लिया। क्षेत्र के स्थानीय कार्यकर्ताओं ने भी शिविर में सम्मिलित होकर ग्रामदान ग्रामस्वराज्य-विचार का शिक्षण प्राप्त किया।

१७ से २१ फरवरी तक ७२ कार्यकर्ताओं की ३५ टोलियाँ, जिनमें जिला परिषद् के २० अध्यापक भी शामिल थे, राया और मांट विकास खण्ड के कुल छोटे-बड़े २३६ ग्रामों में से २१९ ग्रामों में पदयात्रा करके ग्राम-स्वराज्य का सन्देश लोगों को सुनाया। फलस्वरूप १३२ ग्रामों के लोगों ने ग्रामदान घोषणा पत्र पर अपनी सहमति दी और ग्रामदान विचार को स्वीकार किया।

२२ फरवरी '६६ को समापन-समारोह राष्ट्रीय इंटर कालेज राया के प्रांगण में मनाया गया। समापन समारोह की अध्यक्षता श्री अक्षय कुमार करण ने की।

शाहपुरा तथा वैराठ प्रखण्डों में ८६ गाँव ग्रामदान

जयपुर, २२ फरवरी। प्रमुख सर्वोदय-नेता डा० दयानिधि पटनायक के संचालन में आयोजित पाँच दिन के ग्रामदान-अभियान में जयपुर जिले के शाहपुरा तथा वैराठ प्रखण्डों में ८६ गाँव ग्रामदान में प्राप्त हुए हैं। दोनों प्रखण्डों के १५० गाँवों में से ११७ गाँवों में कार्यकर्ता-टोलियाँ १८ से २२ फरवरी तक ग्रामजनों से ग्रामदान के लिए यह सहमति प्राप्त करने हेतु की गयी थीं। जयपुर जिला सर्वोदय मंडल तथा क्षेत्रीय खादी ग्रामोद्योग समिति ने इस अभियान का आयोजन किया था।

जयपुर जिले में प्रथम बार आयोजित इन अभियानों में प्रदेश के १२५ का कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। सर्वश्री सिद्धराज ढड्ढा, पूर्णचन्द्र जैन, जवाहिरलाल जैन, यज्ञदत्त उपाध्याय, मा० आदित्येन्द्र, बद्रीप्रसाद स्वामी, रामेश्वर अग्रवाल आदि प्रमुख कार्यकर्ताओं का भी अभियान में सहयोग रहा। राज्य के विद्युत्-मंत्री श्री शिवचरण माथुर ने भी गाँवों में जाकर कार्यकर्ता टोलियों से सम्पर्क किया।

सिरोही जिले में ग्रामदान-अभियान

जयपुर, ४ मार्च। राजस्थान ग्रामदान-अभियान समिति द्वारा कार्यकर्ता-प्राप्ति व प्रशिक्षण के लिए आयोजित शिविरों के क्रम में अब तीसरा और अंतिम शिविर सिरोही जिले के स्वरूपगंज में दिनांक १५ से १९ मार्च तक आयोजित किया गया है। प्रथम दो दिन शिविर रहेगा और अगले तीन दिन तक कार्यकर्ता-टोलियाँ गाँवों में ग्रामदान के लिए सहमति प्राप्त करने जायेंगी। प्रमुख सर्वोदय-नेता डा० दयानिधि पटनायक अभियान का संचालन करेंगे। प्रदेश के रचनात्मक कार्यकर्ताओं के अलावा सिरोही जिले के पंच सरपंच तथा शिक्षक भी इस अभियान में भाग लेंगे। प्रदेशदान के संदर्भ में अब प्रादेशिक स्तर से क्षेत्रीय स्तर पर अभियान चलाये जाने का क्रम रहेगा। इस दृष्टि से भी सिरोही-अभियान महत्त्वपूर्ण रहेगा।

राजस्थान ग्रामदान-अभियान समिति के संचालक श्री गोकुल भाई, महाराव अभयसिंह, सिरोही महाराज, रामसिंह—जिला-प्रमुख तथा देवीचन्द सागरमल, मंत्री सिरोही जिला सर्वोदय मंडल ने एक संयुक्त अपील में सिरोही जिले के नागरिकों से ग्रामदान अभियान को सफल बनाने का आवाहन किया है।

आगामी सर्वोदय-सम्मेलन

सर्वोदय समाज का आगामी सम्मेलन बिहार के राजगीर नामक स्थान पर २५-२६-२७ अक्तूबर '६६ को होगा। २१ अक्तूबर को प्रबन्ध समिति की बैठक और उसके बाद २२, २३, २४ को संघ-अधिवेशन होगा। इसी अवसर पर २५ अक्तूबर को राजगीर में जापान बौद्ध संघ की ओर से बौद्ध-स्तूप का उद्घाटन भी होगा। २५ को दोपहर के बाद सम्मेलन शुरू होगा। बिहारदान की घोषणा के सन्दर्भ में उक्त सर्वोदय सम्मेलन में आन्दोलन का नया क्षितिज स्पष्ट होगा, और एक नये ऐतिहासिक अध्याय का सूत्रपात होगा, ऐसी आशा की जा रही है।

सोमनाथ में आन्तर भारती श्रम-संस्कार छावनी

महाराष्ट्र के चांदा जिला स्थित सोमनाथ में दूसरी आन्तर भारती श्रम-संस्कार छावनी का आयोजन किया जा रहा है। यह आयोजन २१ से ३१ मई '६६ तक होगा। ऐसा प्रयास किया जा रहा है कि देश के सभी प्रान्तों से कम-से-कम पचास शिविरार्थी इस छावनी में अवश्य उपस्थित रहें। शिविरार्थियों का चुनाव उनके द्वारा आवेदन-पत्रों में दी गयी जानकारी के आधार पर किया जायगा।

छावनी के संयोजन में व्यवस्था की दृष्टि से दैनंदिन कार्यक्रमों को चार विभागों में बाँटा गया है। प्रथम, चार घण्टे शारीरिक श्रम, दूसरे, तकनीकी प्रशिक्षण, तीसरे, बौद्धिक कार्यक्रम और चौथे, कला मनोरंजन।

छावनी से पहले एक सप्ताह के लिए ५० से १०० चुनिंदा युवक-युवतियों का एक अग्रगामी (पायोनियर्स) कैम्प होगा। यह अग्रगामी शिविर १४ मई से २० मई तक चलेगा।

छावनी में श्रमार्थी दो प्रकार के होंगे—सामान्य और सपारिश्रमिक। छावनी में शिक्षक युवक-युवतियों के साथ सेतिहर और कारखाने के मजदूर भी भाग ले सकते हैं। आवेदन-पत्र और विशेष जानकारी हेतु आनन्दवन, वरोरा, जिला चांदा (महाराष्ट्र) से सम्पर्क करें।

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

भूदान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक साप्ताहिक

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र

वर्ष : १५ अंक : २५

सोमवार २४ मार्च, '६९

अन्य पृष्ठों पर

हमारे कार्यकर्ता जरा थोड़ी देर अपने काम से, अनुभव से, देह से, स्मरण से, आस पास के समाज से, अपने चित्त से अलग होने का अभ्यास करें तो हम उस स्थान पर पहुँच सकते हैं, जो मूल स्रोत है, जहाँ से आगे दुनिया पैदा होती है, जहाँ दुनिया नहीं थी, देह नहीं थी और चित्त भी नहीं था, लेकिन कुछ था अवशेष। उसीको किसीने 'सत्' नाम दिया, किसीने 'असत्', तो कोई 'परमात्मा' भी कहते हैं। —विनोबा

सम्पादक
राममूर्ति
सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : ६४६५

लोकतंत्र और जन्मजात लोकतंत्रवादी की विशेषता

लोकतंत्र का अर्थ है आम लोगों के भौतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक साधनों को सब लोगों की आम भलाई के कामों में जुटाने की कला और विज्ञान।[1]

वास्तविक लोकतंत्र का सबक आम लोग न किताबें पढ़कर हासिल करते हैं और न सरकारों से। दरअसल खुद हासिल किया गया अनुभव लोकतंत्र का सबसे अच्छा शिक्षण है।[2]

लोकतंत्र के बारे में मेरी धारणा है कि उसमें कमजोर-से-कमजोर आदमी को उतना ही सुअवसर रहेगा, जितना बलवान को।[3]

'जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए शासन' का मतलब है "बेमिलावट की अहिंसा," क्योंकि हिंसा के तरीकों के अपनाने का सीधा नतीजा होगा मुखालफत करनेवाले को दबाकर उसका खात्मा कर देना। इस ढंग से व्यक्तिगत आजादी कायम नहीं रहेगी।

जन्मजात लोकतंत्रवादी वह होता है, जो जन्म से ही अनुशासन का पालन करनेवाला हो। लोकतंत्र स्वाभाविक रूप में उसीको प्राप्त होता है, जो साधारण रूप में अपने को मानवी तथा दैवी सभी नियमों का स्वेच्छापूर्वक पालन करने का अभ्यस्त बना ले। जो लोग लोकतंत्र के इच्छुक हैं, उन्हें चाहिए कि पहले वे लोकतंत्र की इस कसौटी पर अपने को कस लें। इसके अलावा, लोकतंत्रवादी को निःस्वार्थ भी होना चाहिए। उसे अपने या अपने दल की दृष्टि से नहीं, बल्कि एकमात्र लोकतंत्र की ही दृष्टि से सब कुछ सोचना चाहिए।...

व्यक्तिगत स्वतंत्रता की मैं कदर करता हूँ, लेकिन आपको यह हरगिज नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य मूलतः एक सामाजिक प्राणी ही है। सामाजिक प्रगति की आवश्यकताओं के अनुसार अपने व्यक्तित्व को ढालना सीखकर ही वह वर्तमान स्थिति तक पहुँचा है। अबाध व्यक्तिवाद वन्य पशुओं का नियम है। हमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक संयम के बीच समन्वय करना सीखना है। समस्त समाज के हित के खातिर सामाजिक संयम के आगे स्वेच्छापूर्वक सिर झुकाने से व्यक्ति और समाज, जिसका कि वह एक सदस्य है, दोनों का कल्याण होता है।[4]

मो॰ क॰ गांधी

(१) 'हरिजन' : २७ मई, '३९, पृष्ठ-१४२ (२) 'हरिजन' : १८ जनवरी, '४८ पृष्ठ-५१६
(३) 'हरिजन' : १८ मई, '४०, पृष्ठ-१२९ (४) 'हरिजन' : २७ मई, '३९, पृष्ठ-१४३

२ अक्तूबर '६९ से दिल्ली में अहिंसक पद्धति से सीधी कार्यवाही का निश्चय

गांधी स्मारक निधि और अ० भा० नशाबंदी परिषद् के तत्वावधान में ६ और १० मार्च को दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय कन्वेंशन ने गांधी जन्म-शताब्दी के दौरान पूर्ण नशाबंदी के लिए एक विस्तृत कार्यक्रम बनाया है। कन्वेंशन में सारे देश से लगभग २३० प्रतिनिधियों ने, जिनमें राजनैतिक और धार्मिक नेता, समाज सेवक, रचनात्मक कार्यकर्ता, कानूनविद एवं चिकित्सक शामिल थे, भाग लिया। कन्वेंशन का उद्घाटन भूतपूर्व कांग्रेस-अध्यक्ष श्री के० कामराज ने तथा अध्यक्षता खादी-ग्रामोद्योग आयोग के अध्यक्ष श्री उ० न० ढेबर ने की।

कन्वेंशन में मुख्य चर्चा नशाबंदी-कार्यक्रम को कार्यान्वित करने के सम्बन्ध में रही। इस दिशा में श्री गोकुल भाई भट्ट के नेतृत्व में पिछले साल हुए राजस्थान के शांतिमय धरना आन्दोलन की सफलता से कन्वेंशन में भाग लेनेवालों को खूब प्रेरणा मिली। श्री गोकुल भाई की अध्यक्षता में गठित सत्याग्रह उपसमिति ने अपनी सिफारिशों में कहा है कि :

(१) गांधी शताब्दी वर्ष में नशाबंदी-कार्यक्रम गांधी-विचार के अनुसार चलाया जाना चाहिए। गांधीजी ने नशाबंदी को स्वराज्य-प्राप्ति का एक प्रमुख कार्यक्रम बताया था, और नशाबन्दी को स्वाधीन भारत की सरकार की जिम्मेदारी के रूप में प्रतिपादित किया था।

(२) कांग्रेस-महासमिति के गोआ-अधिवेशन में पारित नशाबन्दी का प्रस्ताव असंतोषप्रद है। केन्द्र सरकार एवं प्रधान मन्त्री से आग्रह किया जाता है कि आगामी १५ अगस्त १९६९ तक नशाबन्दी के सम्बन्ध में राष्ट्रीय नीति की घोषणा करें।

यदि उस दिन तक राष्ट्रीय नीति की घोषणा न की गयी तो ११ सितम्बर, '६९ (विनोबा-जयन्ती) से सामूहिक सत्याग्रह का आवाहन किया जायगा। समिति २ अक्तूबर '६९ से दिल्ली में भी सत्याग्रह करने का सुझाव देती है।

(३) धार्मिक स्थानों, शैक्षणिक संस्थाओं, हरिजन बस्तियों और मजदूर क्षेत्रों से शराब की दुकानें अविलम्ब हटायी जायें। एक गांव की ६० प्रतिशत जनता यदि शराब की दुकान के विरुद्ध हो तो दुकान हटायी जाय। जिस तहसील या जिले की ६० प्रतिशत पंचायतों द्वारा शराब की दुकानों का विरोध हो, वहाँ से शराब की सभी दुकानें हटा दी जानी चाहिए।

(४) शराब के कारखाने खोलने के लिए दिये गये लायसेंस रद्द किये जायें।

(५) पूर्ण नशाबन्दी का कार्यक्रम अगर अमल में नहीं लाया गया तो अहिंसक सीधी कार्यवाही की जानी चाहिए।

एक शराबबंदी सत्याग्रह समिति का गठन किया गया है, जिसमें सर्वश्री गोकुल भाई भट्ट, प्रकाशवीर शास्त्री, डा० सुशीला नैय्यर, ओमप्रकाश त्रिखा, मनुभाई पटेल, करण भाई, यशोधरा दासप्पा एवं के० केलप्पन् प्रभृति सदस्य हैं।

सत्याग्रह उपसमिति के सदस्य प्रधान मंत्री, उद्योग-मंत्री, कांग्रेस अध्यक्ष एवं राज्यों के मुख्यमंत्रियों से मिलकर उन्हें सीधी कार्यवाही के बारे में अवगत करायेंगे।

कानून और नशाबन्दी

डा० जीवराज मेहता की अध्यक्षता में कानून और नशाबन्दी के सम्बन्ध में गठित उपसमिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि भारत सरकार संविधान के अनुच्छेद ४७ के अन्तर्गत मद्य-निषेध कानून बनाये। यदि इसमें कोई संवैधानिक कठिनाई हो तो संविधान में संशोधन किया जाय। जिन राज्यों ने नशाबन्दी को ढील दी है, उनके इस आशय के कानूनों को उच्च न्यायालय में चुनौती दी जाय। मद्य-निषेध कानूनों की अवहेलना करनेवालों के विरुद्ध त्वरित कार्यवाही करने हेतु पुलिस को शराबी की साँस और खून की जाँच करने का अधिकार दिया जाना चाहिए। शराबबन्दी कानून भंग करनेवालों को कम-से-कम ६ मास का कारावास-दण्ड देने की व्यवस्था होनी चाहिए।

सरकार कर्मचारियों के सेवा नियमों में कर्मचारियों द्वारा शराब पीने पर पाबंदी लगायी जानी चाहिए।

सार्वजनिक स्थानों पर शराब के विज्ञापनों पर रोक लगायी जाय।

ऐसे मोटर-चालकों का, जो मोटर चलाने से पूर्व और उस दौरान शराब पीयें, मोटर चलाने का लायसेंस ६ मास के लिए समाप्त किया जाना चाहिए।

शराब पीनेवालों की बीमा-पालिसियों पर २५ प्रतिशत अधिक प्रीमीयम लिया जाना चाहिए।

स्वास्थ्य और शराब

स्वास्थ्य पर शराब के कुप्रभाव के सम्बन्ध में चण्डीगढ के डा० छुट्टानी ने अपना लेख प्रस्तुत किया और श्री रसिकलाल पारीख की अध्यक्षता में गठित उपसमिति ने अपनी सिफारिशों में कहा है कि स्वास्थ्य सेवा संगठन और मुख्यतः प्राथमिक चिकित्सा-केन्द्रों और परिवार नियोजन केन्द्रों का उपयोग जनता में शराब के कुप्रभावों का प्रचार करने के लिए किया जाना चाहिए। इस प्रकार का प्रचार मुख्यतः देहाती और पर्वतीय तथा समुद्रतटीय क्षेत्रों में किया जाना चाहिए।

भारतीय चिकित्सा संघ डाक्टरों से शराब न पीने की अपील करे।

यह धारणा कि पर्वतीय क्षेत्रों में शराब पीना उपयोगी है, निराधार है, और सैनिक-अधिकारियों से यह प्रार्थना की गयी है कि पहाड़ी स्थानों में सैनिकों को मुफ्त शराब के स्थान पर सूखे मेवे और डिब्बे का दूध आदि देने का प्रावधान भी रखें।

मोरारजी का आह्वान

कन्वेंशन का समारोप करते हुए उप-प्रधान मंत्री श्री मोरारजी देसाई ने शराबबंदी के लिए सत्याग्रह के निश्चय का स्वागत करते हुए कहा कि एक बार जो कदम उठाया जाय वह लक्ष्य-प्राप्ति तक रुकना नहीं चाहिए।

—सुन्दरलाल बहुगुणा

संपादकीय

सर्वोदय-आन्दोलन किस ओर ?

दिल्ली से प्रकाशित होनेवाले एक प्रमुख हिन्दी दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के दिनांक ११-३-'६१ के प्रभात संस्करण में श्री जगतराम साहनी का एक लेख छपा है—"सर्वोदय आन्दोलन किस ओर !" पिछले कुछ दिनों से—खासकर सन् १९६२ के महानिर्वाचन के परिणामस्वरूप प्रकट हुई नयी परिस्थितियों के बाद से—अखबारवालों की निगाहें सर्वोदय आन्दोलन की ओर भी उठने लगी हैं। यह एक संतोष की बात मानी जा सकती है, वर्ना सर्वोदय आन्दोलन चाहे जिस ओर हो, इसकी ओर ध्यान देने की अखबारवालों को जरूरत और फुरसत कहाँ थी ?

लेकिन दुःख तो यह देखकर होता है कि किसी विषय पर कलम चलाने से पूर्व उसकी पूरी जानकारी प्राप्त करना शायद अधिकांश अखबारी लेखक आवश्यक नहीं मानते। अखबारों में छपी अधूरी खबरें, इधर-उधर से सुनी सुनाई बातें सर्वोदय आन्दोलन को परखने के लिए वे पर्याप्त मानते हैं।

फिर भी, निगाहें इधर मुड़ी हैं, तो यह आशा भी की जा सकती है कि भारत की अखबारी दुनिया के लोग इस आन्दोलन को और अधिक करीब से देखने की कोशिश करेंगे, और इस प्रकार इस आन्दोलन को अधिकाधिक लोगों की नजरों के सामने ला सकेंगे।

यह तो स्वाभाविक ही है कि जब देश में हिंसात्मक उत्तेजना और उपद्रव उग्र से उग्रतर हो रहे हों, तो ऐसी परिस्थिति में अहिंसक क्रान्ति का उद्घोष करनेवाले सर्वोदय आन्दोलन से जनमानस में कुछ अपेक्षाएँ पैदा हों।

लेकिन कभी-कभी ऐसा लगता है कि सर्वोदय आन्दोलन का क्रान्तिकारी दृष्टिकोण लोगों के सामने स्पष्ट नहीं है। वे इसे अभी तक एक लोककल्याणकारी प्रवृत्ति से भिन्न रूप में देख नहीं पाये हैं। इसके लिए जिम्मेदार सर्वोदय-आन्दोलन में लगे हुए कार्यकर्ता कितने अंशों में हैं, इस आन्दोलन से अपेक्षा रखनेवाले कितने अंशों में हैं, और ऐतिहासिक परिस्थिति कितने अंशों में है, यह स्पष्ट कर पाना बहुत कठिन है।

वास्तव में क्रान्ति के लिए दो बुनियादी बातें अनिवार्य हैं : जीविका के साधनों के स्वामित्व का परिवर्तन, और संचालन तथा नेतृत्व की इकाई का परिवर्तन। स्वामित्व और नेतृत्व, इन दो बुनियादी परिवर्तनों के आधार पर ही क्रान्ति सफलता की मंजिलें पूरी करती है। इसीके लिए मार्क्स ने 'सर्वहारा की तानाशाही' का उद्घोष किया था, लेकिन यह क्रान्ति का अधूरा उद्घोष था, इसीलिए सोवियत रूस या साम्यवादी चीन की क्रान्ति का काफिला इस समय एक नये प्रकार की प्रतिक्रान्ति के दलदल में फँसा दीखता है।

गांधी ने इस संकट की संभावना को अपनी दूरदृष्टि से परख लिया था, अतएव उन्होंने स्वराज के बाद नये भारत के निर्माण की जो कल्पना की थी, वह इस युग के जाने पहचाने लोकतांत्रिक या समाजवादी क्रान्ति के रास्ते से भी भिन्न एक नया मार्ग था।

गांधी के बाद विनोबा ने तेलंगाना की घटना में इतिहास का संकेत देखा और इस नयी क्रान्ति के लिए निकल पड़े। १८ अप्रैल '५१ से लेकर आज तक विनोबा निरन्तर इसी क्रान्ति की आराधना में लगे हैं। इस क्रान्ति का बुनियादी स्वरूप क्या है ? क्या स्वामित्व और नेतृत्व के सवाल पर सर्वोदय आन्दोलन कुछ सक्रिय है ?

सर्वोदय आन्दोलन इस समय ग्रामदान से प्रदेशदान तक की बात कर रहा है। बिहार में प्रदेशदान की मंजिल अब 'बहुत दूर' नहीं। क्या भूमिका है इसके पीछे ? साम्यवादी क्रान्तियों की सीमाओं को सामने रखकर ही सर्वोदय-आन्दोलन ने अपनी बुनियाद निर्धारित की है : स्वामित्व गाँव का—न सरकार का, न व्यक्ति का; और नेतृत्व गाँव का—न दल का न तानाशाह का।

सर्वोदय-आन्दोलन इन दो बुनियादी परिवर्तनों के आधार पर नये समाज की रचना का स्वप्न देख रहा है। और सिर्फ स्वप्न ही नहीं देख रहा है, पूरी एकाग्रता के साथ उसकी तैयारी में शक्ति भर जुटा है। यह ठीक है कि सर्वोदय आन्दोलन देश में व्याप्त बहुविध अन्यायों के खिलाफ सत्याग्रह नहीं करता, क्योंकि वह अन्यायों के टुकड़ों में हल करना असम्भव मानता है, क्योंकि वह सत्याग्रह के पूर्व उस सवाल पर लोक चेतना को पूरी तरह जगाना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य मानता है, क्योंकि वह देख रहा है कि आर्थिक प्रश्नों को लेकर सत्याग्रह या प्रतिकार की जो कोशिशें होती हैं, उनमें जनता की चेतना का नहीं, उन्माद का सहारा लिया जाता है, चेतना को जगाने का धैर्य कहाँ है वहाँ, लोगोंको राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए मौका चूक जाने के खतरे दीखते हैं। ऐसे वातावरण में सर्वोदयवालों ने अगर फुटकर प्रतिकारों की ओर ध्यान न देकर स्वामित्व और नेतृत्व के बुनियादी परिवर्तनों के लिए जन-चेतना जगाने में अपने को एकाग्र बनाये रखा है तो क्या यह गलत है ? जिस लोकतंत्र के ऊपर खतरा आज दिखाई दे रहा है उसको बचाने के लिए आखिर शक्ति कहाँ से प्राप्त होगी ? राजनीतिक दलों से ? सेना और प्रशासन के बल से ? या लोक-चेतना से ? और लोक-चेतना को जगाने तथा उसे संगठित करने के लिए कुछ बुनियादी आधार चाहिए या वह बिना किसी आधार के ही हो जायगा ? सर्वोदय-आन्दोलन देश के हर गाँव में एक-एक व्यक्ति तक पहुँचकर यह चेतना जगाने का ही काम तो कर रहा है। दूसरे कौन हैं जो देश की जनता के पास जाकर उनकी सुप्त शक्ति को जाग्रत करने की चेष्टा कर रहे हैं ?

सर्वोदय आन्दोलन उसी ओर जा रहा है जिस ओर जाकर देश में बुनियादी क्रान्ति लाना सम्भव हो सकेगा, लोकतंत्र को खतरे से मुक्त किया जा सकेगा और समाजवाद के सपने को साकार किया जा सकेगा। साथ ही सर्वोदय आन्दोलन अपील कर रहा है देश के प्रबुद्ध नागरिकों से, कि समस्याओं का हल टुकड़ों में ढूँढ़ने से नहीं मिलेगा, बिखरकर आंशिक तौर पर नहीं हो सकेगा, समस्याओं को हल करने के लिए एक समग्र क्रांति की त्वरित आवश्यकता है। अतएव, इस काम की जिम्मेदारी 'सर्वोदयवालों' की ही न मानकर आप सब इस क्रान्ति की पूर्वतैयारी में एकाग्रता के साथ जुट जाइए !

—सुरेशराम ; ओंकार,

★ जनहित-संरक्षण के उद्घोष : पोषक या शोषक ?

★ लोकमत की अवहेलना करनेवाली लोकतांत्रिक राजनीति...

आज की राजनीति में सत्ता हासिल करने या उसे बनाये रखने के लिए लोगों के वोट प्राप्त करने की होड़ लगी रहती है। वोट प्राप्त करने के लिए लोगों का आकर्षण अपनी ओर बनाये रखना होता है। इसका एक आसान तरीका यह है कि लोगों के सामने ऐसी तसवीर खड़ी की जाय कि उनके अमुक हित खतरे में हैं, और फिर अपने को, अपनी पार्टी को, या खुद सरकार में हों तो अपनी सरकार को, उन हितों का रक्षक और समर्थक घोषित किया जाय। ये हित कभी वास्तविक भी हो सकते हैं, लेकिन अधिकांश में वे काल्पनिक या बनावटी होते हैं, या ऐसे होते हैं जो अखबारी प्रचार के द्वारा जनमानस पर अंकित किये जाते हैं। ऐसे हित अक्सर जाति, सम्प्रदाय, धर्म, भाषा, भौतिक साधन या सुविधाओं आदि से सम्बन्धित संकुचित स्वार्थों के नाम पर उभाड़े जाते हैं और इस प्रकार वे जनता को विभक्त करने, उसमें एक-दूसरे के प्रति द्वेष की भावना पैदा करने और उसके दिलों को तोड़ने का साधन बन जाते हैं।

महाराष्ट्र-मैसूर का सीमा-विवाद इसी तोड़नेवाली राजनीति का एक नमूना है। सिवा उन राजनैतिक नेताओं के, जिन्हें इस या उस राज्य में अपनी नेतागिरी सुरक्षित लगती हो, या उन व्यापार-धन्धेवालों के, जिन्हें इधर या उधर ज्यादा मुनाफा या सुविधा नजर आती हो, महाराष्ट्र या मैसूर के लाखों-करोड़ों आम लोगों के लिए इसमें क्या फर्क पड़ता है कि बेलगाँव शहर और आस-पास के कुछ गाँव इस प्रदेश में रहें या उसमें? पर दुर्भाग्य से इस सवाल ने ऐसा रूप धारण कर लिया है जैसे इसीके फैसले पर महाराष्ट्र या मैसूर की जनता का भाग्य निर्भर करता हो। लोगों की भावनाएँ ऐसी उभाड़ दी गयी है कि लोग अपने इस काल्पनिक हित की रक्षा के लिए जान भी हथेली पर रखकर सब कुछ करने को तैयार हो जाते है। अभी अभी बम्बई की सड़कों पर ५५ व्यक्तियों की जानें इसी प्रश्न को लेकर गयीं, करोड़ों की सम्पत्ति बरबाद की गयी, और इन सारे भौतिक नुकसान से भी भयंकर बात यह कि देश की आम जनता के मनों में एक-दूसरे के प्रति—महाराष्ट्री और गैर-महाराष्ट्री आदि के नाते—द्वेष और वैमनस्य का जहर फैल गया। और यह सब किसलिए कि अगले किन्हीं चुनावों में बाल ठाकरे और उनके साथियों को, या मुख्य मंत्री नाईक और उनकी पार्टी को महाराष्ट्र के हितों के समर्थक के नाते तथा वीरेन्द्र पाटिल या निजलिंगप्पा आदि को मैसूर के हितों के रक्षक के नाते वोट मिल जायें। दोनों ओर की जनता जहरीले प्रचार का शिकार बनकर सुध बुध खो देती है। वह दंगा फसाद करना न चाहे तब भी परिस्थिति ऐसी विस्फोटक बन गयी होती है कि उसमें चंद भाड़े के गुण्डे दंगा खड़ा कर देने के लिए काफी होते हैं।

जयप्रकाश नारायण ने सुझाया है कि प्रधान मंत्री विभिन्न पार्टियों के नेताओं को बुलायें और ऐसे विवादों को सुलझाने के लिए कुछ सर्वसम्मत सिद्धान्त स्थिर करें। प्रदेशों के बीच की सीमाओं के प्रश्न, नदियों के पानी और बिजली आदि के बँटवारे के प्रश्न आखिरकार ऐसे प्रश्न नहीं हैं, जो किन्हीं निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर न सुलझाये जा सकते हों—अगर वे सचमुच में वास्तविक हों। इसलिए प्रधान मंत्री को जयप्रकाश नारायण के सुझाव पर अमल करने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए। पर मुश्किल यह है कि जिन विवादों की बुनियाद में ही राजनीति हो, जहाँ उन विवादों की आग का सुलगते रहना ही अपने हित में माना जाता है, वहाँ ऐसा सीधा और सरल नुसखा क्योंकर काम में लाया जा सकता है? इसीलिए तो जैसा जयप्रकाशजी ने कहा है, महाराष्ट्र-मैसूर विवाद का फैसला करने के लिए जो 'महाजन-कमीशन' नियुक्त किया गया था उसके सामने भी कोई निश्चित और स्पष्ट कार्य-पद्धति तथा मुद्दे नहीं रखे गये। नतीजा हमारे सामने है। 'महाजन कमीशन' का फैसला निश्चित सिद्धान्तों पर होने के बजाय रुख देखकर किया गया है, और वह फैसला स्वयं ही दोनों प्रदेशों के बीच विवाद का कारण बन गया है। क्या लोग अब भी राजनीति के विनाशकारी अभिनय को समझकर सावधान नहीं होंगे?

× × ×

आजादी हासिल होने के तुरन्त बाद गांधीजी ने कांग्रेस को जो सलाह दी थी कि उसे एक राजनैतिक दल के रूप में सत्ता के पीछे न जाकर लोक-सेवा के काम में लगना चाहिए, उस सलाह के पीछे रही हुई दूरदर्शिता और उसका औचित्य दिन-ब-दिन स्पष्ट होता जा रहा है। विदेशी साम्राज्य की गुलामी से मुक्त होने के संघर्ष में कांग्रेस भारतीय जनता का संगठित मोर्चा थी। साठ बरस के इस लम्बे संघर्ष में एक के बाद दूसरी पीढ़ी के नेताओं तथा आम जनता के द्वारा इसके तत्वावधान में किये गये त्याग और बलिदान के कारण कांग्रेस भारत के करोड़ों लोगों के आदर, श्रद्धा और विश्वास की तथा दुनिया के स्वातन्त्र्य-प्रिय लोगों की प्रशंसा की पात्र बन गयी थी। गांधीजी चाहते थे कि इस "पूँजी" का अधिक-से-अधिक उपयोग भारतीय समाज और मानव जाति की सेवा के लिए हो, जो सत्ता की होड़ में पड़ जाने पर संभव नहीं था। पर दुर्भाग्य से यह नहीं हो सका। कांग्रेस ने गांधीजी के सुझाव पर विचार भी नहीं किया और फलस्वरूप कई पीढ़ियों की तपस्या की आग में शुद्ध और पैना बना हुआ हथियार जल्दी ही भोथरा और निकम्मा हो गया।

सत्ता को भी अगर सेवा का ही साधन माना जाय, स्वार्थ-सिद्धि का नहीं, और जरूरी होने पर उसे छोड़ने की भी तैयारी हो, तबतक तो सत्ता के मार्ग में भी प्रतिष्ठा बनी रह सकती है। पर ऐसा, मुश्किल से

'भूदान-यज्ञ' २४ मार्च, '६९ के अंक का परिशिष्ट

...और परिपुष्ट विश्व का दर्शन हो।

इस अंक में

२४ मार्च, '६९
वर्ष ३, अंक १५] [१८ पैसे

अब किसे भेजें ?

प्रश्न : जब चुनाव का समय आता है तो कुछ उम्मीदवार दलों की ओर से खड़े किये जाते हैं, और कुछ निर्दलीय होते हैं। यही हाल हम लोग स्वराज्य के बाद से लेकर आज तक देखते आ रहे हैं। सन् १९६७ में हम लोगों ने सोचा कि कांग्रेस की जगह उसके विरोधी दलों के लोग सरकार में आयें तो शायद शासन अच्छा हो और हम लोगों की तकलीफें दूर हों। बड़ा उत्साह था हम लोगों में, और हुआ भी यही कि कांग्रेस हारी और विरोधी जीते। विरोधियों की मिली-जुली सरकार भी बनी। कुछ दिन तक चली भी, लेकिन फिर चल नहीं सकी। जितने दिन चली उसमें हम लोगों ने कोई ऐसा काम नहीं देखा, जिससे भरोसा होता कि आगे कोई खास काम हो सकेगा। अन्त में आपसी झगड़े के कारण संविद सरकार टूट गयी, और राष्ट्रपति का शासन लागू हो गया। राष्ट्रपति के शासन में भी कोई सुधार नहीं हुआ। राष्ट्रपति का शासन चलता भी कितने दिन ? फरवरी १९६९ में मध्यावधि चुनाव हुआ। चुनाव के बाद नयी सरकारें बनी हैं, लेकिन क्या ठिकाना है कि कौन सरकार कितने दिन चलेगी ? आपका क्या विचार है ?

उत्तर : क्या बताया जाय, हमारे देश की राजनीति ऐसी हो गयी है कि किस वक्त क्या होगा, कहना कठिन है। जो लोग आपके वोट से चुनकर जाते हैं उनके दिमाग में गद्दी के सिवाय दूसरा कुछ रहता नहीं। हर वक्त उनका मन इसीमें लगा रहता है कि किसी तरह मिनिस्ट्री मिल जाय, या कोई बड़ा ओहदा मिल जाय। गद्दी के चक्कर में वे एक दल छोड़कर दूसरे में मिलने को तैयार बैठे रहते हैं। जो नेता ज्यादा कीमत दे सकता है वह मेंबरों को 'खरीद' लेता है। बहुत कम लोग हैं जो इस खरीद-बिक्री से अलग रहते हों। ऐसी हालत में कौन सरकार कितने दिन चलेगी, यह कहना मुश्किल है।...

प्रश्न : हम गाँव के मेहनत करनेवाले लोग हैं, किसी तरह कमाते-खाते हैं। हम लोग यह देख रहे हैं कि सरकार चाहे जिसकी हो, हमारे लिए एक सरकार और दूसरी सरकार में जैसे कोई अन्तर ही नहीं रह गया है। एक सरकार जाये, दूसरी आये, न घूस में कमी पड़ती है, और न किसी काम में आसानी होती है। किसी सरकारी दफ्तर में काम करा लेना आसान नहीं है, सरकार चाहे जिसकी हो। एक दूसरी बात है जो इससे कहीं अधिक भयकर है। वह यह है कि सरकार में ही नहीं, हम लोगों के गाँव-गाँव में राजनीति का बोलबाला हो गया है। ऐसा लगता है कि अब गाँव में रहना मुश्किल हो जायगा। न आपसदारी रह गयी है, और न एक-दूसरे के सुख-दुःख में शरीक होने की बात ही रह गयी है। बस, दिन-रात गुटबन्दी की कतर-ब्योंत चलती रहती है। मालिक-मजदूर, जाति-जाति, सवर्ण-अवर्ण, दल-दल, यहाँ तक कि पड़ोसी-पड़ोसी, सब एक-दूसरे के दुश्मन हो गये हैं। न जान सुरक्षित रह गयी है, न इज्जत, और न घर-बार। क्या किया जाय, कुछ समझ में नहीं आता !

उत्तर : इसमें कोई शक नहीं कि बात बहुत बिगड़ गयी है। लेकिन उसका उपाय सरकार के पास नहीं है, किसी दल के पास भी नहीं है। है तो आपके ही पास है।

प्रश्न : हमारे पास है ? बताइए, हमारे उपाय है ?

उत्तर : उपाय यही है कि इस दलबन्दी और राजनीति को दिमाग से निकाल देना पड़ेगा। उसके बारे में सोचना ही बन्द कर देना पड़ेगा।

प्रश्न : यह कैसे होगा? ग्रामदान के बाद भी तो नहीं सूझता कि क्या करें?

उत्तर : आपका गाँव ग्रामदान में शरीक हुआ है तब तो सूझना ही चाहिए। ग्रामदान से और कुछ हुआ हो या न हुआ हो, इतना तो हुआ ही होगा कि गाँव के अधिकांश लोग, कहीं-कहीं सब लोग ग्रामदान में शरीक हुए होंगे।

प्रश्न : हाँ, अभी इतना ही हुआ है, और कुछ नहीं।

उत्तर : ठीक है। गाँव में ऐसे कुछ लोग तो होंगे ही जो ग्रामदान के बाद का काम करना चाहते होंगे?

प्रश्न : हाँ, हैं क्यों नहीं, लेकिन वे यह नहीं जानते कि क्या करना चाहिए, कैसे करना चाहिए।

उत्तर : तो अब यह करना चाहिए कि हर गाँव के लोग बैठकर सोचें कि अपने गाँव में कौन-कौनसे काम वे मिलकर आपस की शक्ति से कर सकते हैं। कुछ काम तो ऐसे हैं ही जिनमें आप जल्द-से-जल्द सरकार का भरोसा छोड़ सकते हैं। दूसरा काम यह करना है कि आप अभी से सोचें कि अगले चुनाव में आप अपना उम्मीदवार कैसे खड़ा करेंगे। आपके गाँव का ग्रामदान हो गया, और इसी तरह हजारों गाँवों का हुआ, लेकिन अगर सरकार में ग्रामदान के अपने आदमी नहीं गये तो ग्रामदान की क्या शक्ति प्रकट होगी?

प्रश्न : लेकिन यह होगा कैसे? अगर गाँव में मेल की ही शक्ति होती तो रोना किस बात का था!

उत्तर : शक्ति है; उसे जगाने की जरूरत है। आप जैसे सोचने-समझनेवाले लोग सामने आयें तो सामान्य लोग पीछे चलने को तैयार हो जायेंगे। यह जाहिर है कि अब शायद ही कोई हो जिसे भरोसा हो कि राजनीति से कोई काम हो सकता है। दलबन्दी और नेतागिरी से लोगों का मन भर चुका है। क्या ऐसी बात नहीं है?

प्रश्न : हाँ, लोग चाहते हैं कि कोई नया रास्ता निकले। क्या कोई रास्ता है?

उत्तर : वह रास्ता यही है कि फौरन गाँव-गाँव का संगठन हो। हर छोटे-बड़े गाँव में ग्रामसभा-ग्रामस्वराज्य सभा का संगठन हो, ग्रामकोष शुरू हो, और ग्राम शांति-सेना बने। ग्रामसभा गाँव की व्यवस्था और विकास की जिम्मेदारी ले। ग्राम शांति-सेना गाँव की रक्षा करे, गाँव में शान्ति रखे। किसीको पुलिस और अदालत में न जाना पड़े। ग्रामकोष से गाँव में विकास का काम शुरू किया जाय। ग्रामसभा इस तरह काम करे कि वही गाँव की सरकार है। हाँ, इतना अन्तर होगा कि ग्रामसभा की शक्ति कानून और डंडे की शक्ति नहीं, गाँव की जनता के प्रेम की शक्ति होगी। उस शक्ति से ग्रामसभा काम करेगी। पूरे इलाके में इस तरह की ग्रामसभाएँ बनाइए। ग्रामसभाएँ बनाने का अभियान चलाइए। घर-घर में ग्रामस्वराज्य की बात पहुँचाइए। यह है ग्रामस्वराज्य का पहला कदम। गाँव के बाहर सरकार उन्हीं कामों के लिए होगी, जिन्हें गाँव के लोग अपनी शक्ति से नहीं कर सकते। उस सरकार को चलाने के लिए आप लोगों को अपने ही आदमी भेजने चाहिए, न कि दलों के उम्मीदवारों को।

प्रश्न : वह कैसे होगा?

(अगले अंक में पढ़ें)

सरकार का बोझ और 'वोटर' का कंधा

स्वराज के बाद से सन् १९६७ तक देश भर में कांग्रेसी राज कायम रहा।

सं
वि
द
'६७ का
चुनाव
सन् '६७ में कई राज्यों में कांग्रेसी सरकारें गिरीं, दूसरे दलों की बनीं...
राष्ट्रपति
शासन
सं
वि
द
नतीजा यह हुआ कि ये सरकारें भी गिरीं, और राष्ट्रपति का शासन हुआ...
सं
वि
द
शा स न
...लेकिन ये मिली-जुली सरकारें आपस में ही लड़ने लगीं...!
राष्ट्रपति
फिर
मिलीजुली
सरकार
और अब फिर सन् '६९ में मिली जुली सरकारें बनी हैं, लेकिन कब तक चलेंगी, यह कौन कह सकता है ?
संविद
की
आपसी लड़ाई
राष्ट्रपति
सरकार चाहे एक दल की हो या मिले-जुले दलों की हो, या सीधे राष्ट्रपति की हो, जनता यानी 'वोटर' की स्थिति में क्या फर्क पड़ता है ? उसके कंधे का बोझ तो बढ़ता ही जाता है ! यह बोझ कम कैसे होगा ?

झगड़े निपटाकर गले मिले

एक रोज ग्रामदानी गाँव के एक साथी ब्रह्मदेव यादव ग्रामदान कार्यालय बाँसडीह पर आये, और बताया कि हमारे पड़ोसी गाँव जयनगर के लोगों ने बड़ी श्रद्धा और उत्साह से ग्रामदान फार्म पर दस्तखत किया है। लेकिन आजकल इस चुनाव के समय की पार्टीबन्दी के कारण गाँव में ऐसे-ऐसे काण्ड हो रहे हैं कि कुछ समय बाद जयनगर क्षयनगर हो जानेवाला है।

गाँव का समाचार सुनकर हम बहुत ही दुःखी हुए। उसी रोज तय किया कि जयनगर चला जाय और गाँव में मेल-जोल करा दिया जाय।

बाँसडीह ग्रामदान कार्यालय से कुछ साथी जयनगर के लिए चल पड़े। रास्ते में ग्रामदान के काम में सहयोग देनेवाले दो और भी साथी आ गये। जयनगर में हम वहाँ के सभापति के दरवाजे पर पहुँचे। काफी कोशिश के बाद गाँव के लोग इकट्ठा हुए। गाँव में हर जाति के सब मिलकर लगभग ५०० घर हैं, लेकिन अधिकता कुनबी, यादव तथा क्षत्रियों की है। एकत्र हुए लोगों में प्रत्येक जाति के खास-खास लोग थे।

बैठक में सबसे पहले गाँव की परिस्थिति की जानकारी दी गयी। गाँव के काफी लोगों ने मवेशी खोलने, हरी फसल कटवाने, मार-पीट व छप्पर जलवाने आदि प्रकार के एक-दूसरे के द्वारा हुए गलत कामों की जानकारी दी।

आमने-सामने एक-दूसरे की बात कह चुकने के बाद जब गुस्सा कुछ शांत हुआ तो आपस के इन झगड़ों को निपटाने में ही सबकी भलाई है, यह बात हमने बतायी। काफी वाद-विवाद चला। लोग आपसी कलह से तंग तो थे ही, इसलिए समस्याओं को हल के लिए सर्वसम्मति से तय हुआ कि अगली १३ मार्च को फिर हम सभी लोग सार्वजनिक स्थान पर इकट्ठा हों।

१३ मार्च को जयनगर ग्रामदानी गाँव की बैठक ग्राम-सभापति के दरवाजे पर हुई। पूर्वनिश्चित कार्यक्रम के अनुसार गाँव के ८५ व्यक्तियों की उपस्थिति रही।

दोपहर के १२ बजे से लेकर शाम के ७ बजे तक सभा चलती रही। पिछले झगड़ों को निपटाने तथा वर्तमान समस्याओं को हल करने के लिए गाँववालों के सामने कुछ सुझाव रखे गये। सर्वसम्मति से समझौते की बात तय हुई।

क्षेत्रिय ग्रामदानी गाँव के सहयोगी साथियों की कोशिश से गाँव के दोनों पक्षों के लोगों तथा निष्पक्ष व्यक्तियों के दस्तखत से लिखित समझौता हुआ। और सब लोग शंकर भगवान् के मन्दिर के सामने आपस मे गले मिले और आगे किसी प्रकार की चोरी-कटाई न करने का संकल्प लिये। यदि कोई नयी समस्या पैदा होगी तो उसे ग्रामसभा के द्वारा हल करने का भी निश्चय दुहराया गया।

अंत में गाँव के लोगों ने भारतमाता और गांधी-विनोबा का जय जयकार किया, और—'गाँव हमारा है परिवार, सबकी सेवा धर्म हमार'—का नारा लगाते हुए अपने-अपने घरों को वापस लौटे।

—भिखलू भाई, बागेश्वर प्रसाद

धरती माँ से जितना माँगो उतना देगी

कुछ दिन पूर्व मैं गांधीसागर जा रहा था। रास्ते में प्यास लगी। एक स्थान पर एक आदमी मोट चला रहा था, मोटर रोककर मैं वहीं उतर गया। उसके पास जाकर मैंने पूछा, "भाई, तुम्हारे पास कितनी भूमि है?" उसने उत्तर दिया, "चार एकड़। इसमें से ढाई-पौने तीन एकड़ में मैं खेती करता हूँ। शेष अभी आबाद होने को है।" मैंने फिर पूछा, "तुम्हारे परिवार में कितने प्राणी हैं?" उसने उत्तर दिया, "मेरी माँ, पति-पत्नी हम, दो बच्चे और गत वर्ष मेरी बहन विधवा हो गयी है, वह भी यहीं रहती है तथा उसका एक लड़का है।" मेरे यह पूछने पर कि क्या इतने से तुम्हारा काम चल जाता है, बड़े ही दृढ़ स्वर और स्वाभिमान से उस किसान ने कहा, "हाँ।" मैंने पूछा, "तुम्हें इतनी भूमि से कितना मिल जाता है?" उसने कहा, "मिलने-जुलने का हिसाब मेरे पास नहीं है, यह धरती माता है, इससे जितना माँगो वह देती है।"

—गोविन्द नारायण सिंह

मैं तो अपनी 'सोना' के लिए 'सोहर' गाऊँगी हो !

पाँच वर्ष के वैवाहिक जीवन के बाद नीलिमा की कोख से एक पुत्री ने जन्म लिया। बच्ची नहलाने के बाद जब सास की गोद में दी गयी तो सास की आँखें भर आयीं। उनकी पोती जैसे सोने की गुड़िया थी। बड़ी-बड़ी आँखें, पतले होंठ, रेशम जैसे घुंघराले बाल और उस पर कंचन जैसी काया देखकर पारबती के हृदय में नन्ही-मुन्नी के प्रति खूब स्नेह उमड़ आया। आसपास जुटी गाँव की औरतों की ओर मुसकराकर देखते हुए पारबती ने कहा—"हमारी सोना पाँच साल की चिरौरी-मनौती के बाद मिली है। इसकी खुशी में मैं सोहर गवाऊँगी।" नाइन चौथिया की ओर देखते हुए पारबती ने कहा—"जा, सबके यहाँ कह दे कि सोहर गाने चलना है, सब लोग जल्दी आ जायँ।" चौथिया भौचक्की होकर पारबती की ओर देखती रह गयी। फिर बोली—"मइया! लड़की के जन्म लेने पर कहीं कोई सोहर गवाता है?"

"नहीं गवाता तो न गवाये, लेकिन मैं तो गवाऊँगी। भगवान ने सृष्टि चलाने के लिए लड़के-लड़की में कुछ शारीरिक अन्तर किया है, लेकिन अज्ञान के कारण हमने लड़के के जन्म को शुभ और लड़की के जन्म को अशुभ बात मान ली है।"

चौथिया कुछ तिलमिला उठी। बोली—"आपका सन्देश मैं घर-घर पहुँचा देती हूँ। लेकिन जो सुनेगा वही पूछेगा कि लड़की के जनमने पर कहीं सोहर गाया जाता है?"

"तू जाकर सबके यहाँ कह दे। यह तो मालूम हो जायेगा कि कौन आता है, कौन नहीं आता। और हाँ! तू तो लौटकर आयेगी न?"

"मइया! जबतक जिन्दगी है तबतक आपके किसी काम से मैं इनकार नहीं कर सकती।"

चौथिया के चले जाने के बाद पारबती नन्ही सोना को नीलिमा के बगल में लिटाने के लिए ले गयी। सास की बातें नीलिमा ने सुन ली थीं, इसलिए पारबती जब बच्ची को लेकर सुलाने आयी तो लेटे-लेटे ही नीलिमा ने अपने हाथ बढ़ाकर पारबती के पाँव छू लिये। आँखें छलछला आयीं और वह रो पड़ी।

पारबती ने नीलिमा के माथे पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा—"पगली! देख मैं कितनी खुश हूँ और तू रो रही है!!"

"माँजी! आप खुश हैं यह आपकी कृपा है, लेकिन...!" लेकिन कहने के बाद नीलिमा का गला भर आया।

पारबती ने बहू का मुँह अपने सामने करते हुए कुछ मुसकराकर पूछा—"तू कुछ कहते-कहते रुक क्यों गयी?"

"माँजी! यह लड़की की जगह लड़का होती तो आज कितना अन्तर होता!"

पारबती ने जरा कड़ी आवाज में कहा—"अन्तर तो होता ही, लेकिन औरों के लिए। मेरे लिए हर्गिज नहीं।"

"माँ जी! आप ठीक कहती हैं, लेकिन अपनी तबियत को क्या कहूँ। पाँच साल के बाद यह बच्ची आयी है, इसलिए आप लोग खुश हैं। यह बच्चा होती तो आज आपके पाँवों में लग गये होते।"

"तू चाहे जो कह और मान, लेकिन मैं ऐसा नहीं मानती मैं अपनी सोना के लिए सोहर जरूर गवाऊँगी। सब पट्टीदारिन भले ही न आयें, लेकिन मुखियाइन और ४-६ दूसरी बहुएं तो जरूर आयेंगी। और कोई नहीं आया तो भी देख लेना, मैं चुप बैठनेवाली नहीं हूँ।"

पारबती के पाँव में पंख नहीं लगे थे यह बात कुछ हद तक ठीक थी, लेकिन पारबती ने जीवन में कोई काम सिर्फ दूसरों की देखादेखी नहीं किया था। हर काम और रीति-रीवाज को वह अच्छाई और विवेक की कसौटी पर कसकर परखने की अभ्यासी है। उसके बेटे के ब्याह की जब बातें चल रही थीं तो विवेक के साथ सोच-विचार करके ही उसने नीलिमा को अपनी बहू के रूप में स्वीकार करने का फैसला किया था। नीलिमा रंग की साँवली, लेकिन शरीर से तन्दुरुस्त और स्वभाव की मेहनती लड़की थी। बेटे का मन टटोलने के लिए उसने कई बार पूछा था।—"लल्लू, तेरे पसन्द की बहू कैसी होगी?"

"अम्मा, तुम्हारी बहू में दो बातें तो जरूर होनी चाहिए—पहली यह कि वह स्वभाव से मेहनत-पसन्द हो, दूसरी यह कि हँसमुख हो। बात-बात में पिनकने या मुँह फुलाये रखनेवाली लड़की से मेरी नहीं निभेगी।" लल्लू ने दो टूक बात कही थी।

अपने पाँच वर्ष के वैवाहिक जीवन में नीलिमा ने सभी जिम्मेदारियाँ अच्छी तरह निभायी और वही नीलिमा अपनी कोख से बच्ची पैदा होने की कसक से सिसक उठी थी। पारबती ने मन ही मन तय कर लिया कि वह बेटी और बेटे में भेदभाव माननेवाले रिवाज को नहीं मानेगी, क्योंकि इसमें मातृ जाति का अपमान है। इसी भावना से पारबती ने अकेली ही अपनी पूरी आवाज में जैसे ही सोहर कढ़ाया कि पास-पड़ोस की औरतें आँधी के झोंके की तरह उसकी दालान में उमड़ पड़ीं।

—श्रीशंकर

४ मार्च, '६१

आम के रोग

आम का तनाछेदक—गिडार या मॅगरा

पहचान—प्रौढ़ कीड़े कड़े भूरे रंग के लगभग ३६ से ६० मिलीमिटर (१½ से २½ इंच) लम्बे होते हैं। इनको पीठ पर बहुत-से टेढे-मेढ़े मक्खन जैसे सफेद रंग के धब्बे पाये जाते हैं। प्रारम्भ में मक्षी-जातक लगभग १२ मिलीमीटर (आधा इंच) लम्बे होते हैं। मक्षी-जातक ही पेड़ों के तनों को काटते हैं। विकसित मक्षी-जातक का सिर काला, शरीर गंदले रंग का और जबड़ा बहुत पुष्ट होता है। ये पैर-विहीन और लगभग ८० से १०० मिलीमिटर (१ से ४ इंच) लम्बे होते हैं।

जीवन-चक्र—प्रौढ़ मादा सूखे या पुराने पेड़ों के तनों की दरारों में एक-एक करके अण्डे देती है। अण्डों से ७ से १४ दिन के बाद मक्षी-जातक निकलते हैं और तनों के चारों ओर छेद करते हुए आगे बढ़ते जाते हैं। मक्षी-जातक ४ से ८ महीने के बाद पूर्ण विकसित हो जाते हैं और तने में ही ४ से ६ सप्ताह तक कोषावस्था में बदल जाते हैं। मई से अगस्त (वैशाख से भादो) तक ये कीड़े प्रौढ़ावस्था में निकलते हैं और संयुजन करके वंशवृद्धि करते हैं। प्रौढ़ प्रकाश-प्रेमी होते हैं और रात को बत्तियों पर आते हैं। प्रौढ़ आम की कंछियों को खाकर जीवित रहते हैं। एक वर्ष में इनकी एक ही पीढ़ी होती है।

आक्रमण काल—आम एवं अन्य पेड़ों पर इनका आक्रमण वर्षभर विभिन्न अवस्थाओं में होता रहता है।

पोषक पौधे—ये आम, तूत, कटहल, सेमर, रबर और अंजीर से पोषण प्राप्त करते हैं।

प्रसार—भारत में ये भोपाल, बम्बई, हैदराबाद, मैसूर प्रदेशों में अत्यधिक पाये जाते हैं।

क्षति—ये आम के विनाशकारी कीड़े हैं। इनके मक्षी-जातक तनों में घुसकर इधर-उधर काटते हुए नालियां बनाते हैं, जिससे तने बहुत कमजोर हो जाते हैं। यदि आक्रमण अधिक हुआ, तो डाली या पेड़ टूटकर गिर जाते हैं। कभी-कभी तो इनका आक्रमण पेड़ की जड़ के पास भी होता है। ऐसे पेड़ों के तनों से स्थान-स्थान पर से इन कीड़ों की काली-काली टट्टियां निकलती दीख पड़ती हैं।

रोक-थाम—सूखी डाली एवं तनों को काटकर जला देना चाहिए, जिससे उस डाल के अन्दर के कीड़े नष्ट हो जायं।

दमन—(१) रोगी तनों एवं बड़ी टहनियों में एक-एक भाग क्लोरोफार्म क्रियोजोट आयल तथा कार्बन बाई सल्फाइड को मिलाकर रूई में भिगोकर या पिचकारी से उन नलियों में, जिनसे काली-काली टट्टियां निकलती हों, दवा डालकर उसके छेद को मिट्टी से भर देना चाहिए। दूसरे दिन फिर जब किसी दूसरी नली से ताजी टट्टी दिखाई दे, तब उसे फिर उपर्युक्त दवा से भरकर मिट्टी से बन्द कर देना चाहिए।

(२) रोगी पेड़ों के छेदों को २ प्रतिशत नमक का घोल या मिट्टी का तेल या मशीन का खराब तेल सुई के द्वारा भरने से अधिक लाभ होता है।

(३) मई-जून में (वैशाख से ज्येष्ठ-आषाढ़ तक) इनके प्रौढ़ पेड़ों की डालियों के बीच या पुराने पेड़ों के खोखलों में पाये जाते हैं। इन्हें सुबह या शाम को चिमटे से पकड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

पतरकट्टी

पहचान—यह कीड़ा भूरे रंग का छोटा होता है। इसका ऊपरी पंख चमकीले रंग का तथा मुख लम्बा थूथन जैसा भूरे रंग का होता है। इसकी लम्बाई लगभग ६ मिलीमीटर (चौथाई इंच) होती है।

जीवन-चक्र—मादा पत्तियों की रीढ़ की नसों में, बेलनाकार सफेद अण्डे घुसेड़ देती है और उस पत्ती को काटकर धरती पर गिरा देती है। अण्डों से दो-तीन दिनों बाद मक्षी-जातक निकलते हैं और कोमल पल्लवों को काट-काटकर खाते हैं। लगभग एक सप्ताह के बाद मक्षी-जातक मटमैले रंग के हो जाते हैं और मिट्टी में घुसकर कोषावस्था में बदल जाते हैं। दूसरे वर्ष जब वर्षा शुरू होती है, तब ये प्रौढ़ावस्था में निकलते हैं। प्रौढ़ भी नई पत्तियों को काटकर खाते हैं। एक वर्ष में इनकी एक ही पीढ़ी होती है।

आक्रमण-काल—इनका आक्रमण अगस्त (श्रावण) के अंतिम सप्ताह से अक्तूबर (क्वार) तक होता है।

पोषक पौधे—आम।

प्रसार ये भारत में आम उत्पन्न होनेवाले क्षेत्रों में सर्वत्र पाये जाते हैं, विशेषकर बम्बई, बिहार, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में।

क्षति—नये आम के पेड़ों को इन कीड़ों से अधिक हानि होती है। ये कीड़े आम की पत्तियों के डंठलों को बहुत सफाई से काट देते हैं। आक्रमण अधिक होने पर बहुत-से नये पल्लव आम के→

बच्चों की बगिया

['गाँव की बात' के ग्रामीण पाठकों के सुझाव पर हम इस अंक से ग्रामीण बच्चों के लिए सुन्दर गीत और कविताओं का प्रकाशन शुरू कर रहे हैं। आशा है, पाठकों को यह रुचिकर लगेगा। —सं०]
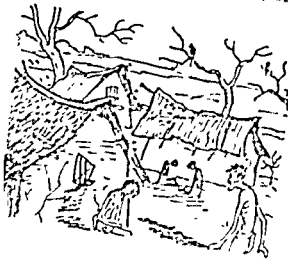
ग्राम-स्वराज्य से पहले

मेरा प्यारा प्यारा गाँव।
रोता है बेचारा गाँव॥

तरह-तरह के फैले रोग।
घर-घर फिरते भूखे लोग॥
बैठे हैं दिन भर बेकार।
सूना है सबका घर-बार॥

ग्राम-स्वराज्य के बाद

मेरा प्यारा प्यारा गाँव।
सारे जग से न्यारा गाँव॥

यहाँ धूप के छाते ऊपर।
ताल-तलैया, मन्दिर, पोखर॥
यहाँ फली है जामुन काली।
डाल से झरती आम की डाली॥

×

मेरा गाँव बड़ा अलबेला।
मैं इसकी मिट्टी में खेला॥

×

पंचायत-घर, बाग-बगीचे।
मेड़, पोखरे, ऊँचे-नीचे॥
ग्राम-कूप के सुन्दर ऊपर।
चिड़ियाँ रोज चहकतीं उस पर॥
खेतों में फसलों का मेला।
मेरा गाँव बड़ा अलबेला॥

—रहमान

—पेड़ों के नीचे गिरे हुए दिखाई देते हैं। आम हमेशा नये पत्तों में ही फलता है, किन्तु ये कीड़े उन पत्तों को पहले ही काट देते हैं, जिससे आम लग ही नहीं पाता है। नये आम को इनसे कभी-कभी ३० से ३५ प्रतिशत तक हानि हो जाती है।

रोक-थाम—बगीचों को नवम्बर-दिसम्बर (कार्तिक से पौष तक) में मिट्टी उलटनेवाले हल से जोत देना चाहिए, जिससे कोषावस्था के कीड़े धरती के ऊपर आकर नष्ट हो जायें।

दमन—पेड़ों के नीचे पड़ी हुई रोगी पत्तियों को बटोरकर नष्ट कर देना चाहिए, जिससे भविष्य में आक्रमण न होने पाये।

—देवेन्द्र कुमार 'निर्मल'

माँ, मैं कहाँ से आया ?

मुन्ना चार बरस का था। एक दिन बेचारे ने माँ से पूछ लिया, "माँ, मैं कहाँ से आया ?" माँ कुछ काम कर रही थी। उसने झपटकर मुन्ना को डाँट दिया, "इतने छोटे बच्चे को इससे क्या मतलब ?" इसी तरह एक दिन बगल के मकान की माँ को अपनी बच्ची से कहते हुए सुना, "अभी तू नहीं समझेगी, जब बड़ी हो जायेगी तो खुद समझ जायेगी !" भला कैसा लगा होगा इन बालकों को ? उनके सवालों का जवाब तो मिला ही नहीं, बल्कि उसके पीछे एक अजीब भाव आ गया। मन में बेचारे बालकों ने सोचा होगा, "शायद इसके पीछे कुछ रहस्य होगा !"

एक अवस्था तक तो बालक यही सोचता है कि माँ उसे कहीं से उठाकर ले आयी या शायद बाजार से लायी। किन्तु जब पड़ोसी के घर में बच्चा आया तो यह प्रश्न फिर उठता है कि वह कहाँ से आया ? फिर जब बालक को अपनी छोटी बहन या भाई होनेवाला होता है तो सवाल और भी कठिन हो जाता है। "माँ के पेट में छोटी बहन या भाई है, मैं भी माँ के पेट में था !" इस तरह की जानकारी पाकर जिज्ञासा और बढ़ती जाती है, "माँ, मैं पेट में कहाँ से आया ?"

इधर 'आधुनिक शिक्षण-शास्त्र' यह कहने लगा था कि बालक की जिज्ञासा को पूरा-पूरा तृप्त कर देना चाहिए। इतना ही नहीं, बल्कि बालक की जिज्ञासा-वृत्ति का लाभ उठाकर उसे और भी वैज्ञानिक जानकारी देनी चाहिए। इस 'सद्-भावना' के कारण अनेक पढ़े-लिखे माता-पिता और शिक्षक भयानक गलतियाँ कर बैठते हैं। जब 'वैज्ञानिक' बारीकियों में जाकर बालक को शिशु-जन्म की बात बात बताने बैठते हैं, तो बहुत आदर्शवाद के बावजूद भी बालक को वही बातें बता डालते हैं, जो बालक को उसके वे साथी बतायेंगे जो 'बदमाश-शैतान, बिगड़े हुए लड़के-लड़कियाँ' कहलाते हैं।

श्री मेकेरेको नामक एक लेखक ने अपनी "माता-पिताओं के लिए एक पुस्तक" में एक किस्से का वर्णन किया है, कि एक पिता ने अपने ५ वर्ष के पुत्र के इस सवाल का माकूल जवाब देने और उसकी जिज्ञासा पूरी करने के लिए उसकी माता का शिशु-जन्म देते हुए दिखाया। कितना भयानक अनुभव हुआ होगा, उस नन्हें-से बच्चे को !

यह हुई एक हद। और दूसरी हद है, जिसका पहले ही जिक्र किया गया—'बालक को जवाब देने के बदले डाँट-फटकार कर चुप कर देना।'

आजकल के ज्ञानी शिक्षाशास्त्री कहते हैं कि बच्चे के इस प्रश्न का उतना ही उत्तर दो जितना कि उसने पूछा है। यानी उसे खींच-तानकर उससे अधिक बताने का प्रयत्न न करो। यह भी कठिन चीज है, क्योंकि कितना बताना, यह तय करना क्या आसान है ? चार वर्ष का चुन्नू जो प्रश्न पूछ रहा है वह क्या छोटा प्रश्न है ? "माँ, मैं कहाँ से आया ?" कितना बड़ा प्रश्न है यह ! बड़े-बड़े दार्शनिक भी उसका उत्तर नहीं दे पाये।

हम इस प्रश्न का एक उत्तर आपके सामने रखना चाहते हैं, जिसे हमने अपने-आप सुना और देखा है। इसका यह मतलब नहीं कि हर माता-पिता और शिक्षक इस उत्तर को अपना नमूना समझें और हमेशा इस तरह के मौके पर इसका उपयोग कर लें। उसे तो समझना है उसकी भावना को। उसके पीछे जो चीज है वह वैज्ञानिक जानकारी नहीं है। उनके पीछे उस प्रेम और मानवीय सम्बन्ध का चित्र है जो शिक्षा का आदर्श है, शिक्षा का उद्देश्य है।

एक माता दोपहर में बैठी शाम के भोजन के लिए भाजी काट रही थी। साढ़े चार साल का नन्दू, जो शाला छूटने के बाद अभी तक अन्य बालकों के साथ खेल रहा था, आया। गम्भीर आवाज में उसने अपनी माँ से पूछा, "माँ, रामलाल है न, वह कहता है कि मैं तुम्हारे पेट में था। माँ, मैं तुम्हारे पेट में कहाँ से आया ?" माँ का हृदय स्नेह से लबालब भर गया और उसने बड़ी गम्भीर, पर प्रेमभरी आवाज से नन्दू को कहा, "तुझे मैंने बहुत दिनों तक भगवान की प्रार्थना करके पाया !"

नन्दू को प्रश्न का उत्तर ही केवल नहीं मिला, उसे माँ के हृदय में एक बार और गोता लगाने का मौका मिल गया। वह माँ के कन्धे पर चढ़ गया और उसने अपने कोमल शरीर और मन से माँ को प्यार से भर दिया, "माँ, तू मुझे इसीलिए तो इतना प्यार करती है न ?" एक सामान्य स्त्री न तो बाल-मनोविज्ञान की बातों से परिचित है, और न बहुत पढ़ी लिखी ही है। लेकिन कितना माकूल जवाब है ?

—देवी प्रसाद

'गाँव की बात' : वार्षिक चन्दा : चार रुपये, एक प्रति : अठारह पैसे
सम्पादक : राममूर्ति : सर्व सेवा संघ-प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी–१

सम्भव होता है। इसके अलावा, खासकर आज के केन्द्रित युग में, सत्ता का स्वधर्म ही ऐसा हो गया है कि सत्ता के स्थान पर बने रहने के लिए सिद्धान्तों और नैतिकता से उत्तरोत्तर अधिकाधिक समझौता करते रहना पड़ता है। आजादी के बाद पिछले बीस बरस का कांग्रेस का इतिहास इसका ज्वलन्त उदाहरण है। पुरानी प्रतिष्ठा और जवाहर लाल नेहरू के व्यक्तित्व के कारण कुछ बरसों तक बात ढकी रही पर दिनोंदिन यह साफ होता जा रहा है कि कांग्रेस के "नेताओं" के सामने सिवा इसके कोई उद्देश्य नहीं है कि जैसे भी हो अपनी सत्ता कायम रखी जाय। देश या जनता के हित की बात तो दूर, अब तो दल के या पार्टी के हित की बात भी नहीं रही, सिर्फ व्यक्तिगत पद, प्रतिष्ठा, या सीधे शब्दों में कहें तो, स्वार्थ की बात शेष रह गयी है। मध्यावधि चुनाव के बाद बंगाल और बिहार में जो कुछ हुआ, तथा हो रहा है, वह देश और जनतंत्र के हित में तो है ही नहीं, स्वयं कांग्रेस पार्टी के लिए भी ये घटनाएं घातक साबित होनेवाली हैं। पिछले साल बंगाल के राज्यपाल ने जिस भद्दी जल्दबाजी और फूहड़ तरीके से तत्कालीन संयुक्त मोर्चा सरकार को भंग किया तथा कांग्रेस समर्थित अल्पमत की सरकार को पदारूढ़ किया उसकी भर्त्सना उस समय सब विचारवान लोगों ने की थी। मध्यावधि चुनाव में फिर जनता ने भी राज्यपाल की इस कार्रवाई के खिलाफ अपनी राय जाहिर की। चुनाव की मौजूदा पद्धति में कई दोष हैं, और उसमें अनुमत प्राप्त करने के लिए गलत तरीकों के काम में लिये जाने की बहुत गुंजाइश है, यह अलग बात है। पर चुनाव में जीतने पर जनमत को अपने पक्ष में बताने की आशा अगर कांग्रेस ने रखी थी तो परिणाम उल्टा आने पर उसके नतीजे से बचने की कोशिश करना कांग्रेस के लिए उचित नहीं था। झूठी प्रतिष्ठा के मोह में न पड़कर मध्यावधि चुनावों के बाद जीते हुए पक्ष की मांग का सम्मान करके केन्द्रीय सरकार को उसी समय बंगाल के राज्यपाल को हटा लेना चाहिए था।

बिहार में तो कांग्रेस ने सत्ता में आने के लिए जो कुछ किया वह और भी शर्मनाक तथा अनैतिक है। एक से अधिक बार स्वयं कांग्रेस ने यह माना और घोषित किया है कि दल बदलनेवाले लोगों को मंत्री मंडल में लेकर इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। बिहार के राजा रामगढ़ ऐसे लोगों में हैं, जिन्होंने एक बार नहीं, बार बार दल-बदल कर चुनाव को मजाक बना दिया है। इतना ही नहीं, उन पर अपने पद का दुरुपयोग करने के आरोप की उच्च न्यायालय ने भी पुष्टि की है। पर राजा रामगढ़ को मंत्री मंडल में शामिल किये बिना कांग्रेस के लिए अपने दल की सरकार बनाना संभव नहीं था। इसलिए सब सिद्धान्तों को ताक पर रखकर भी 'ऐसे व्यक्ति' को मंत्रि-मंडल में ले लेना इस बात का प्रमाण है कि स्वयं कांग्रेस, या कम से कम उसके नेता, लोकतंत्र को अपनी स्वार्थ-सिद्धि के साधन से ज्यादा कुछ नहीं मानते। पिछले साल बंगाल में प्रदर्शित इस मनोवृत्ति का जनता ने मध्यावधि चुनाव में जवाब दिया, पर उससे भी कांग्रेस ने कोई सबक नहीं सीखा। इस तरह बार-बार जनमत की, लोकतांत्रिक परम्पराओं की और सामान्य नैतिकता की अवहेलना करना लोकतंत्र का, और अतः देश और जनता का, द्रोह नहीं तो और क्या है? ऐसा तो है नहीं कि जो कांग्रेस के नेता यह सब कर रहे हैं वे इतना नहीं समझते होंगे कि चुनावों द्वारा अभिव्यक्त जनमत के साथ इस प्रकार खिलवाड़ करने से वे जनतंत्र पर से लोगों का विश्वास समाप्त करने में सहायक बन रहे हैं।

विनोबा निवास से :

आश्रमों से अपेक्षा

"आज पाँच मार्च है। सात साल पूर्व आज के दिन असम में मैत्री-आश्रम की स्थापना हुई थी। ठीक डेढ़ साल असम की यात्रा करने के बाद ५ सितम्बर, ६२ को हम पाकिस्तान-यात्रा पर यहाँ से चले गये थे।" शाम के समय सहज भाव से बाबा ने अपने आसपास बैठे २०-२५ लोगों को सम्बोधित करते हुए उपरोक्त बातें कहीं, और असम की स्त्री शक्ति का गौरव करने लगे। बोले, 'अमलप्रभा बाईदेव एक संपन्न, विद्वान की कन्या है, ब्रह्मचारिणी है और उनके आसपास असम में स्त्री शक्ति के जागरण की परंपरा ही बन गयी है। यहाँ की हेम भराली और लक्ष्मी को हमने सुझाया और वे १२ वर्ष का संकल्प लेकर भारत यात्रा के लिए निकल पड़ीं। पंजाब की निर्मला और सिंध की रोशनानी, ये दोनों भी शामिल हो गयीं। यह लोक यात्रा अभी पंजाब में है। बहुत अच्छा अनुभव आ रहा है। यह यात्रा मैत्री आश्रम का ही एक अंग है।"

बाबा ने कहा—'इस जमाने में हमें गाँव-गाँव पैदल घूमते देखकर लोगों को आश्चर्य होता था। हमें जमीन प्राप्त करनी थी, तो जमीन पर ही चलना हमने ठीक समझा। इससे गहरा जनसम्पर्क भी सधा। बाबा चलता जमीन पर था, परन्तु सोचता जगत् का था। मैत्री-आश्रम अंतर्राष्ट्रीय प्रेम बढ़ानेवाला एक केन्द्र बने, यह हमारी भावना थी। आश्रम ऐसे ही स्थान पर है, जहाँ से हवाई अड्डा एकदम नजदीक है, और दुनिया के किसी भाग से यहाँ पहुँचना सहज है। हमने सोचा था कि कुछ लम्बे काल के बाद इस आश्रम का महत्त्व आयेगा। देखते हैं कि स्थापना के बाद इस छोटे से सात वर्ष के काल में ही यहाँ कुछ अच्छे काम हो गये। भारत-चीन मैत्री यात्रा का तीन महीने यहाँ महत्त्व का पड़ाव रहा। आश्रमवालों को यहाँ की सैनिक-छावनी का स्नेह मिल रहा है। सेना के लोग महसूस करते हैं कि सेना के साथ-साथ शांति रखने में इस मैत्री स्थान का भी बड़ा उपयोग है। अभी यहाँ दक्षिण पूर्व एशिया के भिन्न भिन्न भागों से आये २५-५० लोगों का एक शिविर हुआ था। इस तरह इस आश्रम को एक इंटरनेशनल महत्त्व प्राप्त हुआ है।"

→ बाबा ने आज मैत्री-आश्रम की स्थापना का स्मरण करके बोधगया के समन्वयाश्रम, पठानकोट के प्रस्थान-आश्रम, बंगलौर के वल्लभ निकेतन, इन्दौर के विसर्जन-आश्रम, पवनार (वर्धा) के ब्रह्मविद्या मन्दिर को भी याद की। और यह इच्छा व्यक्त की कि भारत में और भी कुछ आश्रम हैं; और खादी तथा रचनात्मक कार्य के कुछ मुख्य केन्द्र हैं; ये सब स्थान सर्वोदय कार्यकर्ताओं के लिए आश्रम-स्थान हों, वहाँ अध्ययन, भगवद्भक्ति और व्रत-निष्ठा का दर्शन हो। क्षेत्र में काम करते-करते बीच-बीच में वहाँ जाकर कार्यकर्ता रहें और ताजे होकर फिर काम में लग जायें।

बाबा ने बताया कि मुहम्मद साहब की भी ऐसी आज्ञा थी, जो उन्होंने 'कुरान-सार' में से पढ़कर सुनायी : "श्रद्धावानों के लिए उचित नहीं कि सबके सब कूच कर जायें। उनके हर समुदाय में एक भाग क्यों न कूच करे! शेष लोग धर्म का ज्ञान प्राप्त करें, जिससे कि ये लोग अपने समाज को, जब कि वह युद्ध से लौटकर आये, सावधान करें, जिससे कि वह समाज धर्म के विषय में सचेत रहे।"

भागलपुर : दिनांक ५-३-'६६

तरुण शान्ति-सेना सम्मेलन तिथियों में परिवर्तन

बम्बई में आयोजित होनेवाला तरुण शांति-सेना का राष्ट्रीय सम्मेलन अब १७ व १८ मई १९६९ को श्री जयप्रकाश नारायण की अध्यक्षता में भवन कालेज, अंधेरी में सम्पन्न होगा।

"नेशनल सर्विस कोर" का प्रथम शिविर

"एन० सी० सी०" के विकल्प के रूप में नव-निर्मित योजना "नेशनल सर्विस कोर" के प्रथम शिविर का आयोजन दिनांक १२ फरवरी से २१ फरवरी तक, गांधी-शताब्दी की जनसम्पर्क उपसमिति के सहयोग से सेवाग्राम में किया गया। उद्घाटन काकासाहब कालेलकर द्वारा सम्पन्न हुआ। शिविर में देश भर के विश्वविद्यालयों से ३७८ छात्र-छात्राएँ तथा १३० प्राध्यापकों ने भाग लिया। इस प्रकार शिविरार्थियों की कुल संख्या ५०० से अधिक रही। "नेशनल सर्विस कोर" के भावी स्वरूप के संदर्भ, संगठन, कार्यक्रम आदि की चर्चा हुई। —अमरनाथ

हिंसात्मक खूनी क्रान्ति एवं गांधीजी

गांधीजी ने कहा था :

"आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है पूंजी और श्रम के बीच के शाश्वत संघर्ष का अन्त करना। इसका मतलब जहाँ एक ओर यह है कि जिन थोड़े-से अमीरों के हाथ में राष्ट्र की सम्पदा का कहीं बड़ा अंश केन्द्रीभूत है उनके उतने ऊंचे स्तर को घटाकर नीचे लाया जाय, वहाँ दूसरी ओर यह है कि अध-भूखे और नंगे रहनेवाले करोड़ों का स्तर ऊंचा किया जाय। अमीरों और करोड़ों भूखे लोगों के बीच की यह चौड़ी खाई जब तक कायम रखी जाती है तब तक तो इसमें कोई सन्देह ही नहीं कि अहिंसात्मक पद्धतिवाला शासन कायम हो ही नहीं सकता। स्वतंत्र भारत में, जहाँ कि गरीबों के हाथ में उतनी ही शक्ति होगी जितनी कि देश के बड़े-बड़े अमीरों के हाथ में, वैसी विषमता तो एक दिन के लिए भी कायम नहीं रह सकती, जैसी कि नयी दिल्ली के महलों और वहीं नजदीक की उन सड़ी-गली झोंपड़ियों के बीच पायी जाती है, जिनमें मजदूर-वर्ग के गरीब लोग रहते हैं। हिंसात्मक और खूनी क्रान्ति एक दिन होकर ही रहेगी, अगर अमीर लोग अपनी सम्पत्ति और शक्ति का स्वेच्छापूर्वक ही त्याग नहीं करते और सबकी भलाई के लिए उसमें हिस्सा नहीं बंटाते।"

देश में दंगे-फसाद और खून-खराबी का वातावरण बढ़ता आ रहा है। इसमें आर्थिक, सामाजिक विषमता भी बड़ा कारण है। गांधीजी की उक्त वाणी और चेतावनी आज अधिक ध्यान देने को बाध्य करती है। क्या देश के लोग, विशेषतः अमीर, समय के संकेत को पहचानेंगे?

गांधी रचनात्मक कार्यक्रम उपसमिति (राष्ट्रीय गांधी-जन्म-शताब्दी समिति), डुंकलिया भवन, कुन्दीगरों का भैरू, जयपुर-३ राजस्थान द्वारा प्रसारित।

गांधी का अनुयायी क्रान्ति चाहता है

['गांधी का अनुयायी क्रान्ति चाहता है' शीर्षक के अन्तर्गत अमेरिका से प्रकाशित विश्वप्रसिद्ध दैनिक पत्र 'न्यूयार्क टाइम्स' के २१ दिसम्बर, '६८ के अंक में उसके नयी दिल्ली स्थित संवाददाता की एक विशेष रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। उक्त रिपोर्ट का मुख्य अंश आगे प्रस्तुत है। —सं०]

अपनी घटाभरी वाणी में विद्यालय के एक आचार्य ने कहा कि उनके विद्यालय के छात्र गांधीजी के जीवन का अध्ययन कर रहे हैं। आचार्य की यह बात विनोबा के दाहिने कान के पास दो बार जोर से कही गयी (क्योंकि वे दाहिने कान से ही कुछ सुन पाते हैं), फिर भी वे खामोश ही रहे।

विनोबा के शरीर पर चादर लिपटी हुई थी और सिर पर हरे रंग की कान ढंक लेनेवाली टोपी थी, इसलिए उनकी सफेद दाढ़ी, नाक और नाक पर टिके चश्मे के अलावा और कुछ दिखाई नहीं देता था। कुछ देर के बाद दाढ़ी कुछ हिली और तब संगीत भरी वाणी में कहा—"युक्लिड की जीवनी पढ़ने का कोई उपयोग नहीं है। सबसे मुख्य बात है ज्योमेट्री सीखना। गांधी के साथ भी यही बात है। उनका विचार उनके 'व्यक्ति' से बड़ा था।"

विनोबा भारत के लोगों को बीस वर्षों से समझा रहे हैं कि गांधी का विचार यह मांग करता था, और आज भी कर रहा है, कि भारत के गरीब और जातिवाद से दबे पिसे गांवों में एक अहिंसक सामाजिक क्रान्ति हो। विनोबा जोर देकर कहते हैं कि गांधीजी ने जो आजादी अंग्रेजों से हासिल की वह अहिंसक शक्ति द्वारा ही वास्तविक स्वराज्य में बदल सकेगी।

इन दिनों भारत गांधी-जन्म-शताब्दी के समारोह में व्यस्त है। लेकिन ७४ वर्ष के हैं विनोबा, जो, राजनीतिक क्षेत्र के अधिकांश जागरूक भारतीयों द्वारा मात्र उपेक्षा या असंतोष की नजर से देखे जा रहे हैं, अपनी क्रान्ति को पूर्ण करके शताब्दी-समारोह मनाने की तैयारी में अत्यन्त व्यस्त हैं।

विनोबाजी और अपनी आंखों में लगभग बच्चों जैसी चमक लाकर विनोबा अपनी हरी टोपी को उंगलियों से दिखाकर उसे शान्ति-सेना के सुप्रीम कमाण्डर की पोशाक कहते हैं। वास्तव में वे हरे रंग की टोपी इसलिए पहनते हैं, ताकि प्रकाश की चमक से उनकी आंखों का बचाव हो सके और कान के पर्दे ऊंची ध्वनि-तरंगों के कारण होनेवाली तकलीफ से बच सकें।

विनोबा के विनोद के पीछे कठोर संकल्प-शक्ति का आच्छादन है। जब वे कहते हैं कि वे बिहार जैसे पिछड़े प्रदेश को जीत लेना चाहते हैं और उसके बाद समूचे भारत को, तो वे मजाक नहीं करते। बिहार में वे ३ वर्षों से काम में लगे हैं।

विनोबा ने "भूदान" मांगकर अपना कार्य प्रारम्भ किया। वे गांव के भूमिवानों से जमीन मांगते थे, ताकि उसे भूमिहीनों और निचली जाति के लोगों में बांट सकें।

सन् १९५१ से "भूदान" मांगना प्रारम्भ करके भारत के नीचे-ऊंचे भूभागों में घूमते हुए विनोबा ने ४४ हजार मील की पदयात्रा की। पदयात्रा में उन्होंने ४ लाख एकड़ से अधिक भूमि भूदान में प्राप्त की। भूदान में प्राप्त ज्यादातर भूमि पहाड़ी, कंकरीली, पथरीली और खेती के अयोग्य थी। किन्तु उसमें से १० लाख एकड़ से अधिक भूमि भूमिहीनों में बांटी जा चुकी है। भारत की कोई भी सरकार जितनी जमीन भूमिहीनों को दे सकती है, उससे यह कहीं ज्यादा है। लेकिन भूदान से क्रान्ति की ओर कदम नहीं बढ़ रहे थे, इसलिए विनोबा ने शीघ्रतापूर्वक "ग्रामदान" पर जोर देना शुरू किया। सन् १९६६ में उन्होंने ग्रामदान को गतिमान बनाने के लिए "ग्रामदान तूफान" शुरू किया। अबतक बिहार राज्य के ७० हजार गांवों में से ३१ हजार गांवों का ग्रामदान हो चुका है।

विनोबा जोर देकर कहते हैं कि क्रान्ति को वह पहली पायदान है। इसके बाद "बिहार का राज्यदान" होगा। जब "बिहार का राज्यदान" हो चुकेगा तब ग्रामसभाएं राज्य की विधान सभा में अपने खड़े किये गये प्रतिनिधि भेजेंगी। इससे भारत के स्थापित सभी दलों की पराजय होगी।

संशय प्रकट करनेवाले कहते हैं कि विनोबा के पास सिर्फ संकल्प-पत्र हैं और उनका आशावाद है। विनोबा के कुछ कार्यकर्ताओं में उनके जैसी दूरदर्शी निष्ठा नहीं है लेकिन वे यह मानकर आश्वस्त हैं कि ग्रामदान के बाद गांव में विकास की जो कोशिशें होंगी, उसमें से असली और नयी शक्ति का उदय होगा। वे इतना अच्छी तरह जानते हैं कि एक न्यायपूर्ण समाज-रचना कहीं ऊपर से गांव में नहीं आ सकती। वह नीचे गांव में से ही स्थापित हो सकेगी।

श्री जयप्रकाश नारायण विनोबा के आन्दोलन में शरीक होने के पूर्व भारत के सबसे प्रख्यात समाजवादी थे। वे यह स्वीकार करते हैं कि कभी-कभी उन्हें भी संशय होता है, लेकिन फिर वे दृढ़ता के साथ कहते हैं—"रास्ते सिर्फ दो ही हैं—विनोबा या माओत्से तुंग के।"

पिछले कुछ वर्षों से विनोबा को पदयात्रा बन्द करनी पड़ी। लेकिन वे अभी भी एक मोटर द्वारा घूम रहे हैं। उन्होंने जान-बूझकर भाषण देना बन्द कर दिया है, क्योंकि उनका इस आध्यात्मिक निष्ठा में विश्वास है कि स्वार्थ-रहित कर्म सबसे प्रभावपूर्ण कर्म होता है और विकर्म सबसे बड़ा निःस्वार्थ कर्म है।

विनोबा से पूछा गया कि वे जो करना चाहते हैं उसे क्या गांव के लोग सचमुच समझ पाते हैं और ग्रामदान के प्रति जो विरोध की कमी है क्या वह इस कारण है कि उसके परिवर्तनकारी परिणाम अभी तक प्रकट नहीं हो सके हैं। विनोबा ने उत्तर दिया—"किसीने कहा है कि गांववालों के पास युग-युगों की बुद्धिमत्ता इकट्ठी है। अमेरिका की जनता लगभग ३०० वर्ष पुरानी है, लेकिन भारत के गांवों की जनता १० हजार वर्ष पुरानी है। वह अनुभवी है। मैं मानता हूं कि मैं जो करना चाहता हूं, उसे वह समझती है।"

२४-३-'६१ रजिस्टर्ड नम्बर एल. ११७ [पहले से डाक-व्यय दिये बिना भेजने की स्वीकृति प्राप्त] लाइसेन्स नम्बर ९ ३१

बिहार का नौवाँ जिलादान-धनबाद-घोषित

बिहारदान की मंजिल अब दूर नहीं रही

भागलपुर : १३ मार्च '६१। आज बिहार प्रदेश का नौवाँ जिलादान-धनबाद-जिला सर्वोदय-मण्डल के संयोजक हरिशंकर लाल द्वारा विनोबाजी को समर्पित किया गया। कोयला खदानों के लिए प्रसिद्ध धनबाद जिले ने, बिहार को प्रदेशदान के बहुत निकट ला दिया है। निश्चित ही विविध प्रतिकूलताओं के बावजूद जिलादान का काम पूर्ण करनेवाले धनबाद के लोग इस पुरुषार्थ के लिए धन्यवाद के पात्र हैं। जिलादान के आंकड़े निम्न प्रकार हैं :

कुल प्रखंड संख्या ...	१०	
कुल पंचायत संख्या	१६६	
कुल गाँव-संख्या ...	१,५६२	
चिरागी : १,४३६		
बेचिरागी : १२३		
ग्रामदान में शामिल गाँव ...	१,२८४	८६.२ प्रतिशत
कुल जनसंख्या	११,५८,२६३	
कोलियरी की जनसंख्या : ३,५६,७६१		
शहरी जनसंख्या : १,६१,११४		
गाँव की जनसंख्या : ६,१०,४८८		
ग्रामदान में शामिल जनसंख्या ...	४,६२,४३२	८०.६ प्रतिशत
कुल परिवार-संख्या ...	८२,५३२	
ग्रामदान में शामिल परिवार-संख्या ...	६१,६८६	७५.४ प्रतिशत
कुल जमीन का रकबा ...	३,३६,२३६	
ग्रामदान में शामिल रकबा ...	२,०१,७४१६	६० प्रतिशत

भारत में जिलादान-ग्रामदान-प्रखण्डदान प्राप्ति

(१२ मार्च '६१ तक)

	जिलादान	प्रखण्डदान	ग्रामदान	
भारत में	१६	६६५	६६,५४५	
बिहार में	९	३५८	४०,७६८	कानूनी घोषित १०८
उत्तर प्रदेश में	२	७६	११,२८८	
तमिलनाडु में	३	१३४	११,६२३	
मध्य प्रदेश में	२	१८	५२,१००	

संकल्पित प्रान्तदान : (१) बिहार, (२) उत्तर प्रदेश, (३) तमिलनाडु (४) उड़ीसा, (५) महाराष्ट्र, (६) राजस्थान, (७) मध्यप्रदेश।

विनोबा-निवास, भागलपुर —कृष्णराज मेहता

आजमगढ़ में दूसरी तहसील का दान

लालगंज तहसील के बाद अब आजमगढ़ की दूसरी तहसील सगड़ी का प्राप्ति-अभियान २७ फरवरी को पूरा हो गया। तहसील के कुल ४०४ गाँवों में से ३४६ गाँवों का दान प्राप्त हुआ।

इस प्रकार अब जिले में १,३६५ ग्रामदान हो चुके हैं। पूरी आशा है कि १५ अगस्त १९६१ तक जिलादान की मंजिल पूरी हो जायगी।

जौनपुर (उ० प्र०) में ग्रामदान अभियान

जौनपुर में पहली बार बड़े पैमाने पर ग्रामदान अभियान का आयोजन किया गया। ६, ७ मार्च को चन्दवक में हुए प्रशिक्षण-शिविर में भाग लेने के बाद कार्यकर्ता ११ टोलियों में बँटकर डोभी प्रखण्ड की ११ न्याय-पंचायतों में ग्रामदान-प्राप्ति के काम में जुट गये हैं।

अबतक प्राप्त सूचना के अनुसार क्षेत्र के पुराने निष्ठावान कार्यकर्ता श्री भुवनाथ चौबे का दुघोड़ा गाँव सबसे पहले ग्रामदान में प्राप्त हुआ। अभियान का संयोजन सर्वश्री रामजी भाई, दलजीत भाई, रामनारायण चौबे आदि कर रहे हैं।

—मेवालाल गोस्वामी

वार्षिक शुल्क : १० रु०; विदेश में २० रु०; या २५ शिलिंग या ३ डालर। एक प्रति : २० पैसे।
श्रीकृष्णदत्त भट्ट द्वारा सर्व सेवा संघ के लिए प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस (प्रा०) लि० वाराणसी में मुद्रित।

सर्व सेवा संघ का मुख पत्र
वर्ष : १५ अंक : २६
सोमवार ३१ मार्च, '६९

अन्य पृष्ठों पर

सम्पादक
राममूर्ति

सर्व सेवा संघ प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-१, उत्तर प्रदेश
फोन : [illegible]

अर्थशास्त्र : झूठा और सच्चा

अर्थशास्त्री यह सोचने में भूल करते हैं कि किसी राष्ट्र के लिए स्पर्धा या होड़ अच्छी है। स्पर्धा से सिर्फ खरीददार को मजदूर की मजदूरी अन्यायपूर्ण ढंग से सस्ती मिल जाती है। नतीजा यह होता है कि धनवान अधिक धनी और निर्धन अधिक गरीब बनते हैं। अन्त में इसका परिणाम राष्ट्र के लिए विनाशकारी ही हो सकता है। मजदूर को अपनी योग्यता के अनुसार न्यायपूर्ण मजदूरी मिलनी चाहिए। तब भी एक प्रकार की स्पर्धा तो होगी ही, परन्तु लोग सुखी और कुशल होंगे, क्योंकि उन्हें मजदूरी पाने के लिए एक दूसरे से कम-से-कम दर पर काम नहीं करना पड़ेगा, बल्कि उन्हें रोजगार हासिल करने के लिए नये-नये कौशल प्राप्त करने होंगे। सरकारी नौकरियों के आकर्षक होने का यही रहस्य है, क्योंकि उनमें वेतन ऊँचे नीचे पदों के अनुसार मुकर्रर होता है। उनके लिए एक उम्मीदवार दूसरे से कम तनख्वाह लेने का प्रस्ताव नहीं करता, परन्तु यही दावा करता है कि वह अपने प्रतिस्पर्धियों से अधिक योग्य है। जल और स्थल सेना में भी यही हाल है, जहाँ बहुत थोड़ा भ्रष्टाचार है। परन्तु व्यवसाय और उद्योग में हद दर्जे की प्रतिस्पर्धा है और उसका परिणाम धोखेबाजी, धूर्तता और चोरी में आता है। रद्दी माल तैयार किया जाता है। उद्योगपति, मजदूर और खरीददार सब अपने अपने स्वार्थ का ध्यान रखते हैं। इससे सारा मानव-व्यवहार विषैला हो जाता है। मजदूर भूखों मरते हैं और हड़ताल कर देते हैं। कारखानेदार मक्कार बन जाते हैं और ग्राहक भी अपने आचरण के नैतिक पहलू की उपेक्षा करते हैं। एक अन्याय से दूसरे अनेक अन्याय पैदा होते हैं और अन्त में मालिक, मजदूर और ग्राहक, सब दुखी होकर बरबाद हो जाते हैं।

सच्चा अर्थशास्त्र न्याय का अर्थशास्त्र है। लोग जितने न्याय करना और सदाचारी बनना सीखेंगे उतने ही सुखी होंगे। और सब बातें न केवल व्यर्थ हैं, बल्कि सीधी विनाश की ओर ले जानेवाली हैं। येन केन प्रकारेण लोगों को धनवान बनना सिखाना उनकी महान कुसेवा करना है।[1]

जो अर्थशास्त्र धन की पूजा करना सिखाता है और कमजोरों को हानि पहुँचाकर सबलों को दौलत जमा करने देता है, वह झूठा और भयानक अर्थशास्त्र है। वह मृत्यु का दूत है। इसके विपरीत सच्चा अर्थशास्त्र सामाजिक न्याय की हिमायत करता है, सबकी—जिनमें दुर्बल से दुर्बल भी शामिल है—समान रूप से भलाई चाहता है और सभ्य जीवन के लिए अनिवार्य है।[2]

मो॰ क॰ गांधी

(१) गांधीजीज पैराफ्रेज आफ 'अन्टु दिस लास्ट', पृष्ठ : ५०-५१
(२) "हरिजन" : ९-१०-३७।

सामयिक चर्चा

ऊपर, नहीं, नीचे

लोग, जानकार लोग, कहने लगे हैं कि भारत की राजनीति में किसी एक बड़े दल की सरकार के दिन खत्म हो गये; अब हैं संविद सरकारों के दिन, जो अभी वर्षों तक रहेंगे। वे यह भी कहते हैं कि जैसे-जैसे दिन बीतेंगे दलों की संख्या घटेगी, और राजनीति की दक्षिणपंथी, वामपंथी, मध्यवर्ती धाराएँ निखरकर ऊपर आयेंगी। इस निखार के होने पर लोकतंत्र सुपरिचित रास्ते से आगे बढ़ेगा। तो, क्या राजनीति चाहती है कि देश उसके निखार की प्रतीक्षा करे?

मध्यावधि चुनाव के बाद पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार और पश्चिमी बंगाल, हर जगह ऐसी ही सरकारें बनी हैं जो किसी-न-किसी रूप में मिली जुली हैं। पंजाब में और पश्चिमी बंगाल में मेल जोल बहुत कुछ चुनाव के पहले ही हो गया था। लेकिन उत्तर प्रदेश और बिहार में 'मिलाने' की क्रिया-प्रक्रिया चुनाव के बाद शुरू हुई। इस मिलाने को राजनीति के लोग चाहे जो नाम दें, पर जनता को यह सौदेबाजी से भिन्न दूसरी कोई चीज दिखाई नहीं देती। क्या चुनाव लड़ने में, क्या सरकार बनाने में, और क्या विभागों के बँटवारे में, लगता है जैसे राजनीति मे शायद ऐसा कोई काम रह ही नहीं गया है जो सौदेबाजी के बिना भी चल सकता हो। कुछ लोगों का कहना है कि ये विकार गंभीर तो हैं किन्तु टिकाऊ नहीं हैं। अभी संविद सरकार का शास्त्र विकसित नहीं हुआ है। उसमें कुछ समय लगेगा। उसका लगना जरूरी है। तब तक हमें बुराइयाँ बर्दाश्त करनी पड़ेंगी।

मगर बात इतनी ही होती तो कोई बात नहीं थी। बात तो सचमुच बहुत गहरी है। देश की राजनीति तेजी के साथ अपना स्वरूप बदल रही है। इतना ही नहीं, स्वरूप बदलने के साथ-साथ जन-जीवन से अपने को अलग भी करती जा रही है, और इस नाते अपनी बची खुची रचनात्मक शक्ति भी तेजी के साथ खो रही है। जनता यह देख रही है कि सरकार बनाने के लिए जो 'कोएलिशन' बन रहे हैं, उनमें नीयत यही है कि मिलकर सत्ता पर कब्जा किया जाय और उससे मिलनेवाले अवसरों और सुविधाओं से दल का हित साधा जाय। दल के लिए लाभ उठाया जाय, या खुद अपने लिए लाभ उठाया जाय, सार्वजनिक जीवन की दृष्टि से दोनों में कोई खास अंतर नहीं है। राजनीति के 'कोएलिशन' के पीछे वही प्रेरणा दिखाई देती है, जो आर्थिक क्षेत्र के 'कारपोरेशन' के पीछे रहती है। कोएलिशन कोई दलपतियों की शक्ति से बनते हैं, और कारपोरेशन कोई पूँजीपतियों की। आधार दोनों में निहित स्वार्थ का ही है। दोनों 'स्टेटस को' को मानकर चलते हैं।

सत्ता केन्द्रित हो, भले ही वह एक पार्टी के हाथ में रहे या मिली-जुली पार्टियों के; उसी तरह पूँजी केन्द्रित हो, भले ही वह एक पूँजीपति के हाथ में रहे, या अधिक पूँजीपतियों के; क्या हाथों की संख्या घटने-बढ़ने से कोई गुणात्मक अंतर पड़ता है? जनता को अब संख्या से संतोष नहीं है, वह भीतर का गुण देखना चाहती है। वह पिछली संविद सरकारों का जमाना देख चुकी है। वह जान चुकी है कि बाहरी चेहरे बदलने से भीतरी शक्ल नहीं बदलती।

शकल कब बदलेगी, और कैसे बदलेगी? इस प्रश्न का संविद की राजनीति के पास भी क्या उत्तर है? संविद सरकारें भी अपने को चलाने के सिवाय दूसरा क्या करेंगी? संविद सरकारें बुनियादी प्रश्नों पर सामान्य सहमति (कन्सेन्सस) से बन रही हैं या मात्र सौदेबाजी से? हम देख रहे हैं कि आज समाज में सुख-सुविधा के सीमित साधनों और अवसरों के लिए भयंकर छीना झपटी छिड़ी हुई है। लोग जाति, धर्म, क्षेत्र, वर्ग या दल के नाम में संगठित होकर सरकार में घुसना चाहते हैं, और सरकार के हाथों में केन्द्रित साधनों का अपने और अपने समुदाय के लिए इस्तेमाल करना चाहते हैं। इस छीना-झपटी से लोग प्रगति की दौड़ में आगे बढ़ना चाहते हैं। कोई संविद सरकार से किसी जाति या वर्गविशेष को लाभ भले ही पहुँच जाय लेकिन सम्पूर्ण समाज के लिए किसीके पास क्या योजना है? जो भी होगा वह न्याय नहीं होगा: एक हित को बढ़ावा देकर दूसरे हितों का दमन किया जायगा। देश दिनोंदिन हित-संघर्ष में पड़ता चला जायगा।

देश के लाखों गाँवों की मुक्ति का रास्ता दूसरा है। वह यह है कि सरकार के हाथ में, चाहे वह एक दल की हो या संविद हो, जो अधिकार और साधन केन्द्रित हो गये हैं वे उसके हाथ से निकलें और गाँव-गाँव में फैलें। इसके विपरीत आज सरकार यह योजना बनाती है कि पहले साधनों को अपने हाथ में केन्द्रित करे, और उसके बाद उसका बँटवारा करे। इसका नतीजा यह होता है कि साधनों का बहुत बड़ा अंश बटोरने और बाँटने में ही निकल जाता है और जो बचता है वह सरकार के समर्थकों के हाथ में चला जाता है।

गाँवों की मुक्ति का रास्ता साफ कैसे हो? पाकिस्तान ने सिद्ध कर दिया है कि तानाशाही निकम्मी होती है, और भारत ने सिद्ध कर दिया है कि नेताशाही अस्थिर और कमजोर होती है। विकल्प है जनता का संगठन—ग्राम-संगठन; जिसमें लोकशक्ति का बुनियादी स्वरूप प्रकट हो सकेगा। ऐसी बुनियादी इकाइयों के हाथ में शक्ति और साधन जाने चाहिए। समस्या का हल ऊपर के संविद में नहीं, नीचे की संगठित ग्राम इकाइयों में है। एक बार समाज को दलों में बाँटा जाय और फिर संविद बनाया जाय, तो क्या उससे अच्छा यह नहीं होगा कि गाँव को 'एक' माना जाय और उसे एक ही रहने दिया जाय?

—सादिम

संघ-अधिवेशन की तिथियों में परिवर्तन

सर्व सेवा संघ का अधिवेशन कुछ अनिवार्य कारणों से अब २५, २६, २७ अप्रैल '६९ की जगह २३, २४, २५ अप्रैल को तिरुपति (आंध्र प्रदेश) में ही होगा। तिरुपति के लिए द० रेलवे के गुडूर स्टेशन से रेनीगुण्टा जाना होगा। वहाँ से तिरुपति 12 कि० मी० है। रेनीगुण्टा से तिरुपति के लिए रेलमार्ग भी है।

'निराशा का दर्शन'

किसी विदेशी पत्रकार ने कहा था कि भारत एक नहीं अनेक क्रान्तियों के लिए पककर तैयार है, लेकिन आश्चर्य है कि एक क्रान्ति भी नहीं हो रही है। डा० लोहिया कहा करते थे कि आज ही क्या, पिछले पन्द्रह सौ वर्षों से भारत में कोई विद्रोह तक नहीं हुआ है। उनकी शिकायत थी कि भारतीय भूखा है, नंगा है, अन्याय और विषमता का मारा हुआ है, लेकिन असन्तुष्ट नहीं है। किसी भी स्थिति में वह यह नहीं कहता कि बस, अब यह बर्दाश्त के बाहर है। न जाने कैसे वह अपने दिमाग को परिस्थिति से अलग कर लेता है, और किसी तरह जी लेने में ही धन्यता का अनुभव करता है।

ऐसा क्यों है? क्या जाति-प्रथा ने हमें यथास्थितिवादी बना दिया है? क्या उसके कारण ऐसे संस्कार बन गये हैं कि हमने विषमता और अन्याय को जीवन पद्धति के रूप में स्वीकार कर लिया है? डा० लोहिया बार-बार पूछते थे: क्या भारत में भी कभी क्रान्ति होगी?

स्वतंत्रता के पहले देश में आदर्श और जीवन के ऊँचे मूल्यों के लिए तकलीफ उठाने की एक हवा थी। बहुत व्यापक तो नहीं थी, फिर भी थी। लेकिन देश के स्वतंत्र होते ही वह हवा जैसे खत्म-सी हो गयी। हमारा नया शासक, जिसने कभी देश के लिए त्याग किया था, तकलीफ झेली थी, भोगवादी बन गया। खुद तो भोगवादी बना ही, सारे देश को, विशेष रूप से युवकों को, भोगवादी बना दिया।

लेकिन यह बात नयी नहीं थी। हमारे देश में सत्ता के इर्द गिर्द रहनेवाले लोगों ने कभी भी जीवन की ऊँची मिसाल नहीं रखी है। पिछले हजार-डेढ़ हजार वर्ष का इतिहास साक्षी है। पठान गये, मुगल आये, मुगल गये मराठा आये, अन्त में मराठा भी गये, और अंग्रेज आये। सत्ता के अधिकारी बदलते रहे, किन्तु दरबार के पुजारी जहाँ के वहीं बने रहे। फारसी हो या अंग्रेजी, उन्हें दरबार की भाषा बोलनी थी, जिसे वे बोलते रहे, और दूसरों को सिखाते रहे।

स्वतंत्रता के बाद भी हमारे शासक-समुदाय में कोई गुणात्मक परिवर्तन नहीं हुआ। उसने अपनी पुरानी ऐतिहासिक विशेषता कायम रखी। नये प्रभाव में वह नये विचार तो ग्रहण करता रहा, लेकिन अधिकारों को अपने ही हाथ में रखा, समाज पर अपने आधिपत्य को ढीला नहीं होने दिया। पिछले बाईस वर्षों में देश में राजनैतिक नेतृत्व का जिस तरह विकास हुआ है, उससे यह सिद्ध होता है कि हमारे नेता समाज के बुनियादी परिवर्तन के लिए तैयार नहीं थे। इतिहास का कितना क्रूर किन्तु सही व्यंग्य है कि जो कभी अन्याय से जूझते हैं वे आगे चलकर 'स्टेटस को' के पुजारी बन जाते हैं।

ऐसी स्थिति में अगर निराशा, मनोरथा और अविश्वास का दर्शन बन जाय तो आश्चर्य क्या है? डा० लोहिया स्वयं इस दर्शन से प्रभावित हो जाते थे, और कहते थे कि सत्ता में जाकर उनका अपना दल पाकर अपनी आदर्शवादिता कायम नहीं रख सकेगा। इसलिए वह चुनाव लड़ने के साथ एक जन-आन्दोलन की कल्पना किया करते थे। उनका पहला प्रहार जाति प्रथा पर होता था, और वह ऐसी क्रान्ति चाहते थे जिसमें नीचे के दबे हुए लोगों को तरजीह मिले। इसे वह 'प्रिफरेंशियल रेवोल्यूशन' कहते थे। लेकिन अब इतने वर्षों के बाद कहाँ है करोड़ों को आन्दोलित करनेवाला वह आन्दोलन, और कहाँ है 'स्टेटस को' को हिलानेवाली वह क्रान्ति जिसकी प्रेरक शक्ति डा० लोहिया अपने दल को बनाना चाहते थे? उनका दल भी, इतिहास के क्रूर व्यंग्य का शिकार हो गया।

निराशा के कारणों की कमी नहीं है, लेकिन क्या निराशा का कोई उत्तर भी है? क्या राजनीति के पास है, चाहे वह दलों की राजनीति की राजनीति हो, चाहे किसी तानाशाह की? विज्ञान और लोकतंत्र के इस युग को जिस क्रान्ति की भूख है वह पहले की क्रान्तियों से भिन्न है—बहुत भिन्न। आज तक के जितने भी क्रान्तिकारी आन्दोलन हुए हैं उन सबका लक्ष्य रहा है षडयंत्र और हिंसा द्वारा सत्ता-परिवर्तन। विशुद्ध वर्ग संघर्ष द्वारा अभी तक कोई क्रान्ति नहीं हुई है। यही कारण है कि वोट से बदलनेवाली सरकार के इस देश में साम्यवादी इस दुविधा में है कि वह अपनी 'क्रान्ति' के लिए कौनसा रास्ता अपनाये। वर्ग-संघर्ष का नारा लगानेवाले भी उन वर्गों का वोट माँगते हैं जिनका अन्त उनका घोषित लक्ष्य है।

आज का नागरिक पहले की अपेक्षा कहीं अधिक चेतना है, और कहीं अधिक शक्तिशाली है। क्या क्रान्ति के लिए उसकी चेतन और शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता? पहले की तरह अब भी हम सत्ता प्राप्त कर लेने के बाद क्रान्ति का सूत्रपात करने की बात सोचते रहेंगे तो आशा का क्या नया स्रोत हमारे हाथ आयेगा?

समाज बदलने के लिए अब नागरिकों का सामूहिक संकल्प जगाये बिना काम नहीं चलेगा। लेकिन संकल्प की प्रेरणा कोई दल नहीं दे सकता। उसके लिए सत्ता-निरपेक्ष पयान्तिकारी चाहिए। गांधीजी की लोकसेवक की कल्पना में यह क्रान्ति-तत्त्व था। विनोबा उसे चरितार्थ करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

भारत के लम्बे इतिहास में कोई बात है जिसके कारण दो मूल-गामी क्रान्तियों का दर्शन यहाँ हुआ है। बुद्ध ने जाति-हिंसा (काल्ट वायलेंस) से विद्रोह किया, और गांधी का तो सारा क्रान्ति-दर्शन ही राज्य-हिंसा (स्टेट कायर्वेध) को समाप्त करने का था। बुद्ध ने जाति को मोक्ष में बाधक नहीं माना, और गांधी ने राज्य को नागरिक की मुक्ति में साधक नहीं माना। दोनों ने नागरिक और उसकी चेतना और शक्ति को ही सबसे ऊपर स्थान दिया। देश का लोकमानस बुद्ध और गांधी को भूला नहीं है। इसके विपरीत दूसरे देशों की क्रान्तियों ने शासक बदले, लेकिन अन्त में वे सब दमनकारी कल्याणवाद में फँसकर रह गयीं। रूसो और रोबसपियर की क्रान्ति ने नेपोलियन को जन्म दिया; लेनिन की क्रान्ति का उत्तराधिकारी स्टालिन हुआ। माओ का भी क्या कोई भिन्न होगा? हर जगह क्रान्ति की उत्तराधिकारी प्रतिक्रान्ति हुई है। अगर हम इतिहास को बदलना हो तो एक बार नागरिक को क्रान्ति का नायक बनाकर देखना चाहिए। उसके सिवाय आशा की दूसरी किरण नहीं है।

सुराज मत्र ।

—विनोबा का कार्यकर्ताओं के लिए प्रेरक सन्देश—

क्रान्ति के लिए स्थिर नहीं, गतिशील जीवन की आवश्यकता

ग्रामदान-आंदोलन सिर्फ भलाई के लिए नहीं, परिवर्तन के लिए

हमने आन्दोलन को आरोहण नाम दिया था। आरोहण याने चढ़ना। आरोहण का लक्षण है उत्तरोत्तर काम कठिन होता चला जाय। ग्रामदान-प्राप्ति को एक बहुत ही कठिन काम माना गया था भारत में। दूसरे देश के लोग तो आश्चर्यचकित होते हैं, जब सुनते हैं कि अखण्ड-के-अखण्ड ग्रामदान में आ रहे हैं। और सारा प्रान्त ग्रामदान में लाने की बात हो रही है। लेकिन यह हमारे आरोहण का सबसे पहला और सबसे आसान चरण है। उसके आगे का चरण, उत्तरोत्तर ऊपर चढ़ना है, इसलिए उत्तरोत्तर कठिन होता जायेगा। किसीने यह समझा होगा कि हमने बहुत ताकत लगायी, कमजोर हो गये; आज तक बहुत परिश्रम किया तो इससे आगे आसान काम मिलेगा, तो उसे निराश होना पड़ेगा, क्योंकि काम कठिन होता जाता है। लेकिन कठिन होते हुए भी आसान मालूम होगा, क्योंकि इससे पहले भी कठिन काम कर लिया है, तुलनात्मक दृष्टि से कठिन। उससे ताकत बढ़ गयी है। लेकिन हमें उस काम के लायक बनना होगा और अपने जीवन को उसमें डालना होगा। जहां गांव-गांव में आप नया जीवन लाना चाहते हैं तो अपना भी नया जीवन बनना चाहिए। गांधीजी ने शब्द दिया था—"नवजीवन"। उस नाम का अखबार भी उन्होंने चलाया। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी "नवजीवन रस ढाले" कहा है। सारे समाज का पुराना रूप बदलकर नया रूप लाने की हमारी कोशिश है। तो हमें भी नया रूप लेना होगा। अपना पुराना रूप कायम रखकर समाज को नया रूप कैसे देंगे?

नवजीवन, नवतर जीवन

एक बार विचार जंच जायेगा तो काम कठिन नहीं मालूम होगा। एक बार स्टेशन पर पहुंच गये तो दिशा बदलती है। कई बार इंजन दिशा बदलता है। यह ध्यान में आ जाय कि हमारे जीवन का अभी तक का तरीका आगे काम नहीं आयेगा। कोई अगर कहेगा कि "वी आर टू ओल्ड टु चेंज" (हम इतने पुराने हो गये कि बदल नहीं सकते) तो नहीं चलेगा। उन्हें तो कहना होगा कि हमें परिवर्तन की आदत हो गयी है। हम पहले बाल थे, फिर जवान हो गये, जवान थे तो अब बूढ़े हो गये। मृत्यु तक नया-नया रूप हम लेते हैं। मृत्यु के बाद नवजीवन, नवतर जीवन होगा—चाहे इस दुनिया में हो, चाहे दूसरी दुनिया में हो। "नवतरम् कल्याणतरं रूपम्"" आत्मा शरीर का अच्छा उपयोग करता है, सदुपयोग करता है, तो आगे आज के रूप से अच्छा, ज्यादा नया रूप प्राप्त करता है। उपनिषद् में कहा है, 'इसके आगे जो रूप होगा वह नये से भी नया और कल्याणतर रूप होगा।' यह हमें उनके जीवन में देखने को मिला, जो नया-नया रूप लेते गये। ऐसे महान् पुरुष भारत में हो गये। गांधीजी की मिसाल आपके सामने है। कोई कल्पना नहीं कर सकता था सन् १९३७ में कि १९४२ वाला रूप दीखेगा। और, १९४२ में कोई कल्पना नहीं कर सकता था कि १९४५ का रूप कुछ अलग होगा। १९४४ में जेल से छूटने के बाद उन्होंने अंग्रेज सरकार को नया सूत्र दिया और कहा कि इन सूत्रों (ग्यारह सूत्र) के आधार पर 'काम्प्रोमाइज' (समझौता) कर सकते हैं। एक विदेशी नामानिगार ने उनसे पूछा कि १९४२ में तो आपने "क्विट इण्डिया" कहा था, तो अब 'काम्प्रोमाइज' की बात कैसे करते हैं? "१९४४ इज नाट १९४२" (१९४४, १९४२ नहीं है)—यह गांधीजी का जवाब था। ऐसा अजीब जवाब था, जिसकी कोई कल्पना कर नहीं सकता था। नित्य नया रूप उनका था। रवीन्द्रनाथ ने ऐसी ही भाषा इस्तेमाल की है। उन्होंने कहा, "नूतन करे नूतन प्राते।" आज नया प्रातःकाल हो, इसलिए नया रूप आपको और हमको प्राप्त करना होगा और वह कल्याणतर होगा।

शास्त्रकारों का हम पर बड़ा उपकार है कि वे हमें जरा चैन से नहीं रहने देते। बच्चा माता-पिता के घर में खुशहाल रहता है। उसे वहां से उठा लिया और कहा, 'गुरु के घर जाओ, वहां तपस्या करो, पढ़ाई करो, श्रम करो।' गुरु के घर कठिन जीवन की आदत हो गयी, स्थिरत्व प्राप्त हो गया। वेदाध्ययन अच्छा हुआ। गुरु की प्रसन्नता प्राप्त हो गयी तो शास्त्रकार कहते हैं, 'चलो उठो, गृहस्थाश्रम में जाओ या वानप्रस्थाश्रम में। गुरु का आश्रम छोड़ो। गुरु ने समावर्तन कर दिया।' गृहस्थाश्रम में पहले कठिनाई मालूम हुई। अतिथि-सेवा आदि करनी पड़ी। लेकिन घर में धीरे धीरे आनन्द होने लगा। आदत हो गयी। तो शास्त्रकार कहते हैं, 'चलो उठो, जंगल में जाओ, वानप्रस्थ बनो। उसमें एक जगह, शहर से बाहर रहना होता है। विद्यार्थियों को सिखाना होता है। विद्यार्थी जम जाते हैं। उनका प्यार हासिल होता है।'

आश्रमवासी के लोग भिक्षा ला देते हैं। इससे आराम हो गया।' फिर कहा, 'यह छोड़ दो, संन्यास लो। संन्यास में तो घूमना होता है।' जहाँ मनुष्य को थोड़ा भी आराम मिलने लगा, वहाँ उसे छोड़ने की आज्ञा हुई। यह हमारे जीवन की रचना है। शास्त्रकारों की कितनी दया है! पंडित नेहरू का तो प्रसिद्ध वाक्य है—'आराम हराम है।' शास्त्रकार हमें आराम से बैठने नहीं देते, यह उनका उपकार है।

गाँव के लिए मित्र, मार्गदर्शक, सेवक

इसलिए अभी तक का जीवन—जिसके हम आदी हो गये, वह हमें बदलना होगा। 'घर से गुंगार चतुर अलबेली, साजन के घर जाना होगा।' इसलिए हमें ग्रामीणों में जाकर गाँव-गाँव का मित्र, मार्गदर्शक और सेवक बनना होगा। मान लीजिए, यहाँ २५० कार्यकर्ता हैं और ३६-३७ प्रखण्ड हैं, तो हर प्रखण्ड के पीछे ६ या ७ लोग आयेंगे। एक-एक प्रखण्ड में छह-छह आदमियों की योजना करनी होगी। १२-१६ गाँवों के लिए एक कार्यकर्ता और उन सबको इकट्ठा करने के लिए एक आफिस हो, तो प्रति प्रखण्ड २ मनुष्य आफिस में और ४-५ घूमनेवाले। ये गाँव में घूमते रहेंगे, काम कराते रहेंगे, सलाह देते रहेंगे। इसके लिए जीवन में परिवर्तन करना होगा। आज जो व्यवस्था होगी वह बदलनी होगी। मित्र-मण्डली जम गयी है तो वहाँ से उठना होगा और बिखरना होगा। १९१६ में मैंने गांधीजी से एक बात सुनी थी, वह मैं १९६६ में, ५३ साल बाद कह रहा हूँ। साबरमती आश्रम में शाम को बापू घूमते थे। घूमते-घूमते बोले—"देखो विनोबा, हमें यहाँ तैयार होकर गाँव-गाँव में बिखर जाना होगा। ७ लाख गाँव हैं। (उन दिनों पाकिस्तान हिन्दुस्तान अलग नहीं हुए थे।) ७ लाख लोगों को ट्रेनिंग देना होगा और बिखर जाना होगा।"

भलाई भी, परिवर्तन भी

यहाँ मैंने कल देखी (श्रीकृष्ण सेवासदन में निवास था) श्री बाबू की जीवनी। १९६१ में वे मर गये। वे मुझसे ८ साल बड़े थे। आज मैं उनकी उम्र में आ गया हूँ। हमारे साथी निकल गये हैं—जिनको जाना था वे भी और जिनको नहीं जाना था वे भी। देश विराना है, रास्ता लम्बा है। आगे न मुंगेर में, न बिहार में, न भारत में रहना है। "यह संसार है कागज की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है।" इसलिए हमारे कितने दिन हैं मालूम नहीं। तो जीवन में परिवर्तन करना ही होगा। एक-दूसरे को मदद करनी होगी। जो स्थिर-जीवन के आदी हो गये हैं, उन्हें अस्थिर जीवन लेना होगा। ऋग्वेद में वर्णन है "नवोनवो भवति जायमान.।" चन्द्र नया-नया रूप लेता है। तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, रोज नया रूप लेता है। स्थान भी बदलता है, रूप भी बदलता है। पूरा परिवर्तन है। नक्षत्र बदलता रहता है। जिस घर में आज है, उस घर में कल नहीं। और जिस रूप में आज है, उस रूप में कल नहीं रहेगा। यह हमने मामूली आन्दोलन शुरू नहीं किया है कि जिसमें जनता का 'वेल-फेयर' हो, भला हो। उसमें जनता का भला भी करना है और उसके जीवन में परिवर्तन भी लाना है। रवीन्द्रनाथ ने कहा था, 'हमें अग्नि-स्नान करना होगा।' अग्नि-स्नान याने "ब्लडबाथ', 'खूनी रक्तोद्गम' नहीं। "युगान्तरे अग्नि स्नाने, युगान्तर दिन"—युगान्तर के अग्निस्नान से युगान्तर दिन आयेगा। ये सारी कल्पनाएँ हमारे पूर्वजों ने हमारे सामने रखी थीं, इसलिए फिर गाँव में जाकर क्या-क्या करना होगा, यह वहाँ पहुँचने के बाद, याने गाँव में पहुँचने के बाद आपको एकदम सूझेगा।

परिवर्तन की कसौटी ?

गाँव शुरू होता है, यह नाक से मालूम होता है! कहने की जरूरत ही नहीं पड़ती। आमदनी बढ़ाने के लिए क्या करना होगा? (१) गाँव की माँग होगी, तदनुसार निर्णय होगा। (२) आपकी जो योग्यता होगी, तदनुसार निर्णय होगा। नारदमुनि गाँव में आयेंगे तो वीणा चलती रहेगी। (भागवत में वर्णन है कि नारदमुनि की वीणा एक दफा बन्द हो गयी थी। नरसिंह अवतार हुआ तो प्रह्लाद ने कहा—"नाहं बिभेमि' लेकिन नारद की वीणा बन्द हो गयी।) नारद जैसा कार्यकर्ता गाँव में आयेगा तो बच्चों को गाना, भावना सिखायेगा। बच्चे आनन्द से सीखेंगे और घर में अपनी माँ से कहेंगे, "माँ तुम भी चलो। वह तो साधु पुरुष है। उसके साथ चलने में मुझे कोई हर्ज नहीं।" फिर गाँव की बहनें भी उस कार्यकर्ता के पास आयेंगी। बहनों को भी भजन, कहानियाँ सुनायी जायेंगी। इस तरह गाँव की आवश्यकता और हमारी काबिलियत, दोनों देखकर काम करना होगा। एक ही काम सब गाँव में नहीं होगा। लेकिन कुछ, जैसे पुष्टि के काम हैं, ग्रामसभा इत्यादि बनाने के काम हैं, ये काम हर गाँव में होंगे। पुष्टि-कार्य करने के बाद जिसे जैसा सूझेगा वैसा करना होगा। अनेक ने इसके बारे में लिखा है। बालकोबा जी की एक किताब है, किशोरलालजी की एक किताब है। लेकिन मेरी एक ही कसौटी रहेगी। जिस त्याग की भावना से गाँववालों ने दान दिया वह भावना उत्तरोत्तर बढ़ रही है क्या? कि एक दफा त्याग कर लिया तो खत्म हो गया, ऐसा सोचते हैं? भावना में आनन्द है, कष्ट, तकलीफ नहीं है। वैसे त्याग में भी आनन्द होता है कि नहीं? त्यागानन्द होता है कि नहीं? गये साल त्याग किया वैसा इस बार भी करने को राजी हैं या नहीं? या एक बार त्याग किया और रोज कयामत तक वैसे ही रहेंगे, ऐसा सोचते हैं? यह कसौटी है। गाँव में प्रेम भावना, त्याग-भावना बढ़ रही है यही मुख्य बात है। बाकी उत्पादन बढ़ाना इत्यादि काम तो करते ही हैं। कौन मूर्ख आदमी होगा, जो 'प्रोडक्शन' नहीं बढ़ायेगा? '[illegible]'—कहने की जरूरत ही नहीं।

मुंगेर : (जिले के कार्यकर्ताओं से)
दिनांक १३-२-'६६

लोकतंत्र : विकास और भविष्य

लेखक : दादा धर्माधिकारी

आचार्य दादा धर्माधिकारी लोकतंत्र, लोकनीति और संस्कृति के मर्मज्ञ प्रवक्ता और तत्त्वदर्शी चिंतक हैं। भारत में लोकतंत्र की स्थिति, उसके भविष्य के परिप्रेक्ष्य में लेखक ने विश्व की राजनीति तथा सम्प्रदायवाद, पूँजीवाद, छुआछूत, संविधान, चुनाव आदि का मार्मिक विश्लेषण प्रस्तुत पुस्तक में किया है।

मूल्य : २'५०
सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी-१

गांधी-जीवन का नया बोध

[२ फरवरी '६९ को पूना में महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा के तिलक सभागृह में नासिक के श्री कृ० व० वेदरकर द्वारा लिखित 'सत्याग्रहाची पहिली पावले'—सत्याग्रह के प्रारम्भिक चरण—मराठी पुस्तक का प्रकाशन-समारोह श्री शंकरराव देव की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। प्रारम्भ में श्री भाऊ धर्माधिकारी और प्रा० कोतुरकर ने पुस्तक और लेखक का परिचय दिया। बाद में श्री शंकरराव का जो भाषण हुआ, उसका सार यहाँ दिया जा रहा है। —सं०]

शंकरराव देव : जीवन साधक

शंकरराव देव

यह वर्ष गांधी-जन्म-शताब्दी का वर्ष है। भारत भर में यह शताब्दी मनायी जा रही है। विभिन्न तरीकों से गांधीजी को भारतीयों के सामने प्रस्तुत करने का भगीरथ प्रयत्न हो रहा है। यह जन्म-शताब्दी न सिर्फ भारत में ही, बल्कि दुनिया भर में मनायी जा रही है। पेरिस में आगामी २ अक्तूबर को इस शताब्दी के अवसर पर यूनेस्को की ओर से 'गांधीजी का सत्य, अहिंसा और मानवता-वाद', इस विषय पर एक अन्तर्राष्ट्रीय परिसंवाद आयोजित किया जा रहा है। इसमें दुनिया भर के चुने हुए २५ विद्वान भाग लेंगे। यूनेस्को मानता है कि सिर्फ परिसंवाद का आयोजन करने भर से ही काम पूरा हुआ, ऐसा न सोचकर उसके फलस्वरूप एक जागतिक नैतिक आंदोलन शुरू होगा तभी वह परिसंवाद सार्थक माना जायेगा।

गांधीजी ने नया साधन दिया

गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका के कार्य को देखने पर भी 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे...किमकुर्वत संजय', यह प्रश्न गांधीजी के बारे में पूछा जा सकता है। गांधीजी ने अपने जीवन में क्या बोध दिया, यह सोचने और चर्चा का विषय हो सकता है। किस श्रद्धा से उन्होंने अपने जीवन का प्रयोग किया? 'प्रतिबोध-विदितं मतम् अमृतत्वं हि विन्दते'—जाग्रत होकर शांत हुए विचार से ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है। कहा जाता है कि दक्षिण अफ्रीका ने गांधीजी को गढ़ा, तैयार किया और बाद में गांधीजी ने भारत को तैयार किया। दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी को जो बोध हुआ, वह सत्य का बोध था। यह बोध मनुष्य को प्रतिक्षण होता रहता है। गांधीजी को जो अमृतत्व प्राप्त हुआ वह सत्य की अखण्ड खोज से हुआ। गांधीजी के जीवन से हमें अगर कोई बोध, सबक लेना हो, तो यह बोध उन्होंने किस तरह हासिल किया इसका परिशीलन होना चाहिए। सत्य के बारे में गांधीजी जो कर सके उसमें अंध-भक्ति नहीं थी। गांधीजी ने जो सत्य के दर्शन किये, उनके पहले और किसीने उसके दर्शन नहीं किये। वह कहते थे कि 'सत्य-अहिंसा के बारे में मैं नया कुछ नहीं बता रहा हूँ।' उनका कहना था, "सत्य अहिंसा तो पहाड़ों जितनी पुरानी है।" लेकिन उन्होंने उसके जो दर्शन किये और दूसरों को कराये, उसीमें से एक नया साधन दुनिया के सामने वह रख सके।

गांधीजी का जीवन-योग

वह साधन कौनसा है? हमारी भारतीय परम्परा में इस दर्शन के लिए कई साधन बताये गये हैं। गुरु, ग्रंथ, ज्ञानयोग, भक्ति-योग, कर्मयोग, ध्यानयोग, ऐसे कई साधनों का उपयोग हुआ और हो रहा है। लेकिन गांधीजी ने सत्य-दर्शन के लिए ऐसे किसी भी साधन का सहारा नहीं लिया। उन्होंने अपनी साधना 'मधुमक्षिका-न्याय' से की है। दुनिया के मानवों पर गांधीजी द्वारा यह महान उप-कार हुआ है। अगर गांधीजी सनातन रूढ़ मार्ग से चले होते; गुरु, प्रमाणग्रंथ, तत्त्वज्ञान, योग-मार्ग को पकड़कर उन्होंने सत्य-साधना की होती, तो उनको जो नया सत्य-दर्शन हुआ वह नहीं हुआ होता। 'योग' शब्द का अर्थ है—मेल करनेवाला। गांधीजी ने अपने साध्य से अगर किसीका मेल किया तो वह अपने साक्षात, प्रत्यक्ष जीवन का। उस अर्थ से उनका तो वह 'जीवन-योग' था। जीवन का साक्षात जीवन से हर क्षण मेल याने सम्बन्ध स्थापित करने से वह सनातन सत्य उनके हाथ आया—पुराना ही, लेकिन नये आविष्कार में। उन्होंने जीवन का अपरोक्ष, प्रत्यक्ष सम्बन्ध जीवन से स्थापित किया। मध्यस्थ के रूप में गुरु, ग्रंथ या तत्त्वज्ञान, किसीका भी आधार नहीं लिया और इसमें से उन्हें जो सत्य मिला वह पुराना ही, लेकिन इतने नये रूप में वह प्रकट हुआ कि उस सत्य को पहचानना लोगों के लिए मुश्किल हुआ!

साधना याने जीवन का साक्षात अनुभव

जीवन ही मूलतः सत्य है—यह है गांधीजी का दर्शन। 'सत्य प्रतिक्षण बदलता जा रहा है। उस सत्य से मेरे जीवन का मेल हुआ है, इसलिए सत्य के साथ-साथ मैं भी प्रतिक्षण बदलता रहता हूँ।' यह जीवन-योग है, यह सत्य का साक्षात्कार है। गांधीजी ने कहा कि मेरे पिछले और अभी के विचारों में मेल बनाये रखने के लिए मैं बंधा नहीं हूँ, मैं सिर्फ सत्य से बंधा हूँ। और, अगर पिछला सत्य आगे के सत्य से सुसंगत हो तो मेरे विचारों और आचारों में आप सुसंगति देखेंगे। यह जीवन-योग है। यह सत्य का नित्य-नूतन साक्षात्कार है। नूतन याने अधिक परिशुद्ध, साफ किया हुआ। यह परिशुद्धता कैसे प्राप्त हुई? गांधीजी ग्रंथों के पन्नों में या योग के क्लिष्ट साधनों में नहीं उलझे। जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव लेने में वह समरस हुए। जीवन याने एक व्यक्ति का, एक समूह का, एक राष्ट्र का जीवन नहीं, जीवन याने समग्र जीवन।

अहिंसा में समाविष्ट भौतिक प्रेम

पुराना सत्य सीमित था। नया सत्य अगर देखना है तो वह समग्र मानवों में, समग्र

दृष्टि से, पूर्णतः, पूरी आकांक्षा से देखना होगा। उसके लिए हमें मानव के समग्र जीवन—अध्यात्म से लेकर भौतिक तक और जप से लेकर राजनीति तक के समग्र जीवन—को देखना होगा। सत्य का दर्शन सिर्फ बुद्धि तक या विचारों तक सीमित नहीं होता। हमें यह दर्शन गरीब के प्रतिदिन की रोटी में होगा। भूखे आदमी को भगवान के दर्शन रोटी के रूप होंगे, यह प्रतीति हमें होनी चाहिए और वह तभी संभव है जब कि हमारी दृष्टि में प्रेम का आविर्भाव होगा। तो यह प्रेम सिर्फ भावात्मक, बौद्धिक, आध्यात्मिक प्रेम नहीं, मानव के प्रति प्रत्यक्ष, भौतिक प्रेम हो। सत्य को मानवता के रूप में देखना ही अहिंसा है। सत्य से एकरूप होने की साधना प्रेम के बिना सम्भव नहीं। और प्रेम, भौतिक प्रेम के माने क्या है? भौतिक प्रेम के माने है प्रत्यक्ष सेवा। प्रेम एक शक्ति है। वह कभी सुप्त नहीं रहती। उसका आविर्भाव जिसमें होता है, वह मनुष्य सक्रिय बनता है। वह प्रेमी-जन की प्रत्यक्ष सेवा में लग जाता है, उनकी मदद के लिए दौड़े जाता है। इसके बिना उससे रहा ही नहीं जाता। प्रेम क्रियात्मक शक्ति है। समग्र विश्व के सत्य को देखना हो तो समग्र विश्व से प्रेम करना चाहिए। और समग्र विश्व से प्रेम याने समग्र विश्व की सेवा करनी होगी। गांधीजी को जो सत्य मिला, वह इसी नये रूप में। सत्य का यह नया अवतार है। इस सत्य-शोधन से पुरानी साधना का परावलंबन समाप्त हुआ।

सज्जनता में अस्पृश्यता

सत्य का स्वरूप कैसा है? 'स्वे महिम्नि प्रतिष्ठित.'—परमात्मा अपनी महान शक्ति पर अधिष्ठित है, ऐसा कहा गया है। सत्य स्वयम्भू है, अपनी शक्ति पर खड़ा है। दुनिया में पाप बढ़ा, धर्म का लोप हुआ, अब क्या किया जाय? हे परमेश्वर, तुम अवतार लो और इस दुनिया का उद्धार करो—इस तरह परमेश्वर के अवतार की प्रतीक्षा करने की हमारे मन को आदत हो गयी है। इस नये सत्य को अपनानेवाला समाज स्वयं काम करने लगता है, पुरुषार्थ करने लगता है। युद्ध में पहली हत्या सत्य की होती है, इसलिए युद्ध का त्याग किया जाय, ऐसा कहनेवाले सर्वोदयी लोग बहुत अच्छे हैं, लेकिन निष्क्रिय हैं, ऐसा अन्य लोग मानते हैं। परमेश्वर द्वारा दुर्जनों का संहार हुए बिना दुनिया का सुधार नहीं होगा, ऐसा वे मानते हैं। सज्जनता स्वयं दुर्जनता को नष्ट नहीं करेगी, क्योंकि दुर्जनता से सज्जनता का संपर्क होते ही वह अपवित्र होती है, ऐसी अस्पृश्यता लोगों ने सज्जनता में लायी है। यही अस्पृश्यता सब प्रकार की अस्पृश्यता का मूल है। दुर्जन का कांटा निकालने के लिए ज्यादा दुर्जन बनना पड़ेगा, सेर के लिए सवा सेर बनना पड़ेगा। ऐसा हमने माना है। लेकिन इसमें सेर का चौथाई हिस्सा भी क्यों न हो, कम होने की अपेक्षा, एक सेर और सवा सेर मिलकर सवा दो सेर, पाँच सेर, पाँच सौ सेर, इस तरह बढ़ती श्रेणी में दुर्जनता बढ़ती रही और परिणाम स्वरूप आज मानव-समाज सर्वनाश के कगार पर खड़ा है। गांधीजी ने सज्जनता को इस अस्पृश्यता के कलंक से मुक्त किया और सत्य को स्वतन्त्र किया, यह गांधीजी का महान जीवन-कार्य है। गांधीजी के जीवन का यही बोध है, सबक है।

—मूल मराठी 'साधना' साप्ताहिक के
दिनांक ८-२-'६९ के अंक से,
अनुवादक . बसन्तभाई पोहरे

अन्याय और अवगुणों से मुक्ति का मार्ग

—प्रश्न कार्यकर्ता के : उत्तर धीरेन्द्र भाई के—

प्रश्न : आपने लिखा है कि हर मनुष्य के विचार, दृष्टिकोण, कार्यपद्धति, यहाँ तक कि बेवकूफी के प्रति भी आदर-भाव रख सको तो तुम्हारे सम्बन्धों में और जीवन में सदा आनन्द कायम रहेगा। आपकी यह बात पूरी तरह गले उतरती है। जीवन में इसकी अनुभूति भी कई मौकों पर हुई है। परन्तु एक बात समझ में नहीं आती, उसका जिक्र आपने भी नहीं किया है। मनुष्य की बदमाशी और शैतानियत के प्रति कौनसा भाव रखना चाहिए?

उत्तर तुमने पूछा है कि मनुष्य की बदमाशी और शैतानियत के प्रति कौनसा भाव रखना चाहिए? जैसे शून्य में कोई शक्ति नहीं होती है, और किसी अंक की पीठ पर बैठकर वह शक्तिशाली होता है, उसी तरह बदमाशी और शैतानियत में अपने आपकी कोई शक्ति नहीं होती है। किसी मनुष्य के दिमाग में घुसकर ही वह शक्तिशाली होती है। शैतानियत शैतान के दिमाग से कैसे निकाली जाय, उसका कोई सामान्य फार्मूला नहीं होता है। हर मामले की तरफ अलग-अलग उसके सदर्भ में देखना होता है। बदमाश और शैतान के प्रति उदारता और करुणा की ही भावना रखनी चाहिए।

प्रश्न : इस युग में कुछ भी आंशिक नहीं होगा, यह विचार अच्छी तरह से हृदयंगम किया है। उसीके अनुसार कार्य करूँगा, ऐसी निष्ठा बन रही है। पूरा समाज किस ओर से कैसे संघर्ष में शामिल होगा यह देखने की बात है। कार्यक्रम इस प्रकार का उठाना होगा, जिसमें पूरे समाज के शामिल होने की बात हो। परन्तु शुरू तो कुछ ही व्यक्तियों को करना पड़ेगा। अन्याय और भ्रष्टाचार के दो रूप हैं. एक तो हम स्वेच्छा से उसमें शामिल हैं, दूसरा यह कि वह हमारे ऊपर लादा जा रहा है। इस स्थिति में सत्याग्रह और असहयोग की दुहरी शक्ति से काम करना होगा। आपका 'दुहरा-मोर्चा' मेरे विचार से इसमें फिट बैठता है। केन्द्र बनाकर बेस के रूप में साधना असहयोग का स्वरूप है, और व्यापक आन्दोलन सत्याग्रह का स्वरूप है। यह व्यवस्था ठीक है क्या?

उत्तर : पूरा समाज अवगुणों से कैसे संघर्ष करेगा उसीकी खोज तो विनोबा कर